080583

080583

4.4.87
7/76
3.4.87

0.80583

सारिका

080583

जनवरी १९८६

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी

80||26

तथा अन्य कहानियां और सभी स्तंभ!

इस वर्ष के महत्वपूर्ण प्रकाशन

अज्ञेय की सम्पूर्ण कहानियां :
छोड़ा हुआ रास्ता—भाग 1
लौटती पगडंडियां—भाग 2

प्रारम्भ से अब तक लिखी लेखक की सत्तर के लगभग कहानियां, महत्वपूर्ण भूमिकाओं तथा अध्ययन के लिए उपयोगी परिशिष्टों सहित। विशिष्ट साज-सज्जा। दोनों खण्ड आकर्षक डिब्बे में एक साथ। 40-00

पैर तले की ज़मीन : **मोहन राकेश**—लेखक का बहुप्रतीक्षित अन्तिम नाटक। 8-00

औरत : एक दृष्टिकोण : **अमृता प्रीतम**—विश्वविख्यात लेखिका का अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के लिए विशेष रूप से लिखित एक रोचक अध्ययन। 8-00

अन्तरा : **अज्ञेय**—'भवन्ती' की परम्परा में मूर्धन्य लेखक की विशिष्ट कृति। 12-00

अमीर खुसरो : भावात्मक एकता के अग्रदूत : **संपा० डा० मलिक मोहम्मद**—खुसरो की सातवीं जन्मशती पर विशेष रूप से प्रकाशित, राष्ट्रपति महोदय द्वारा उद्घाटित, महत्वपूर्ण ग्रंथ। 25·00

हमारी विरासत : **डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन**—प्रख्यात दार्शनिक की एक और अध्ययनपूर्ण कृति। 10-00

संत साहित्य के प्रेरणा स्रोत : **आचार्य परशुराम चतुर्वेदी**—संत साहित्य के विशेष अध्येता और लेखक की नवीन खोजों से पूर्ण विशेष रचना। 20-00

हिंदी साहित्य के विकास में दक्षिण का योगदान : **संपा०—जी० सुन्दर रेड्डी, राव, राजू**—एक सामयिक विषय पर महत्त्वपूर्ण अध्ययन, सभी दक्षिणी भाषाओं के योगदान पर स्वतंत्र निबंध। 8-00

अच्छी शिक्षा की ओर : **डा० गोवर्धनलाल बख्शी**—सफल शिक्षा के आधुनिक प्रयोगों पर एक विशेषज्ञ की रचना; लेखक सेन्ट्रल बोर्ड आफ सेकिण्डरी एजुकेशन के अध्यक्ष हैं। 15-00

विश्वविख्यात महिलाएं : **आशारानी व्होरा**—अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष में विशेष रूप से प्रकाशित, सचित्र कृति। 12-00

भारतीय चलचित्र का इतिहास : **फीरोज रंगूनवाला**—सिने जगत और साहित्य के मान्य अध्येता का विशद, रोचक अध्ययन, सचित्र। 12-50

वातायन : **शिवानी**—लोकप्रिय लेखिका के सामयिक विषयों को आधार मानकर लिखे गये ललित निबंध। 7-00

कंचनजंघा : **सत्यजित राय**—प्रख्यात फिल्मनिर्माता की प्रसिद्ध फिल्म का नाट्य रूप, सचित्र। 7-00

उपन्यास

शृंगार : **लक्ष्मीनारायण लाल**—लोकप्रिय लेखक का नवीन दृष्टिकोण से संपन्न महत्त्वपूर्ण उपन्यास। 7-00

कोई नहीं जानता : **अमृता प्रीतम**—विख्यात लेखिका की नवीनतम और अत्यन्त पठनीय कृति। 5-00

किसलिए : **प्रभाकर माचवे**—आधुनिक जीवन की समस्याओं को भीतर से कुरेदनेवाला श्रेष्ठ उपन्यास 10-00

वसंत की प्रतीक्षा : **लक्ष्मीनारायण लाल**—प्रेम के चिर पुरातन विषय पर एक विशिष्ट कृति जो सोचने को बाध्य करती है। 8-00

डाक बंगला : **कमलेश्वर**—लोकप्रिय लेखक की एक पुरानी प्रसिद्ध कृति का नवीन संशोधित संस्करण। 7-00

महाकाल : **गुरुदत्त**—कालिदास के जीवन पर आधारित एक मनोरंजक उपन्यास। 10-00

मृत्युहीन : **विमल मित्र**—एक बिलकुल अछूते विषय पर बहुत ही अनूठा उपन्यास। 8-00

प्रारब्ध और पुरुषार्थ : **गुरुदत्त**—अकबरकालीन जीवन पर आधारित एक विशिष्ट रचना। 8-00

आज कल परसों : **विमल मित्र**—लेखक के दो रोचक और लघु उपन्यास : 'आज कल परसों' और 'गुलजारी बाई'। 7-00

युग बदल गया : **सोहण सिंह सीतल**—इसी वर्ष के साहित्य अकादमी पुरस्कार से विभूषित श्रेष्ठ पंजाबी उपन्यास। 15-00

रात और दिन : **मन्मथनाथ गुप्त**—अफसरशाही की कारगुजारियों और भ्रष्ट जीवन का पर्दाफाश करनेवाला मनोरंजक उपन्यास। 10-00

चरित्र : **विमल मित्र**—मानव चरित्र की जटिलताओं को बड़े ही रोचक ढंग से व्यक्त करनेवाली कृति। 10-00

सबसे बड़ा छल : **मधुकर सिंह**—ग्राम जीवन के भ्रष्टाचार को व्यक्त करनेवाला मार्मिक उपन्यास। 7-00

कहानी

स्वयंसिद्धा : **शिवानी**—लोकप्रिय लेखिका की एक-से-एक बढ़कर रोचक और मार्मिक कहानियां। 5-00

कोयला भई न राख : **राजेन्द्र राव**—सत्य घटनाओं पर आधारित मार्मिक कहानियां। 8-00

मेरी प्रिय कहानियां : **अज्ञेय**— 7-00

मेरी प्रिय कहानियां : **रमेश बक्षी**— 7-00

मेरी प्रिय कहानियां : **राजेन्द्र अवस्थी** इस लोकप्रिय माला में नई पुस्तकें, लेखकों की भूमिकाओं सहित। माला में अब तक 28 पुस्तकें छप चुकी हैं। 7-00

कविता

सुबह के बाद : **देवराज**—प्रतिष्ठित लेखक की नवीन कविताएं। 12-00

आज के लोकप्रिय कवि : **रामकुमार वर्मा**—लोकप्रिय कवि माला की तेरहवीं पुस्तक, कवि की सत्तरवीं वर्षपूर्ति पर प्रकाशित। संपादक—डा० राधेकृष्ण श्रीवास्तव की विस्तृत भूमिका। 5-00

नाटक

व्यक्तिगत : **लक्ष्मीनारायण लाल**—लेखक का एक बहुप्रशंसित नाटक, मंचन के चित्रों सहित। 6-00

जीवनी

इंदिरा गांधी : सफलता के वर्ष : **ख्वाजा अहमद अब्बास**—प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के जीवन और प्रधान मंत्रित्व-काल का विवेचन करनेवाली महत्वपूर्ण कृति। 12-00

हास्य-व्यंग्य

बुरे फंसे : **बरसानेलाल चतुर्वेदी**—एक-से-एक बढ़कर मनोरंजक हास्य-व्यंग्य की कहानियां। 6-00

बालोपयोगी

शकुन्तला : **अवनीन्द्र नाथ ठाकुर**—विख्यात कलाकार की एक श्रेष्ठ कृति, अनेक चित्रों सहित। 3-0

आजादी का गीत : **निरंकारदेव सेवक**—बाल साहित्य के सुप्रसिद्ध लेखक की बच्चों के लिए लिखी कविताएं। 2-0

प्यारी-प्यारी चिट्ठियां : **प्रयाग**—रोचक पत्रों के माध्यम से बच्चों को विविध विषयों का ज्ञान कराने वाली रचना। 1-2

विविध

फीजी : **भगवान सिंह**—'देश और निवासी' माला की सत्ताईसवीं पुस्तक, फीजी में नियुक्त भारतीय उच्चायुक्त द्वारा लिखित। बीसियों चित्र। 4-0

आओ, गुलाब उगायें : **स्वरेश कुमार**—गुलाब की खेती के विशेषज्ञ की सरल भाषा में लिखी, अनेक चित्रों से युक्त, पुस्तक। 6-00

जवान : राष्ट्र का गौरव : **सं० डा० श्यामसिंह शशि**—भारतीय सैनिक की गौरव-गाथा पर एक सामयिक कृति। 6-50

मानव शरीर : एक अद्भुत यंत्र : **श्री रामनाथ 'सुमन'**—मानव-शरीर की विशेषताओं का ज्ञान करानेवाली सचित्र पुस्तक। 4-00

आगामी प्रकाशन

कवि की प्रेयसी : **इलाचन्द्र जोशी**—कालिदास-पूर्व नाटककार सौमिल्ल के जीवन पर आधारित श्रेष्ठ सांस्कृतिक उपन्यास।

एक नशा, हज़ार मुसीबतें : **विराज**—शराबखोरी के दुष्परिणामों पर एक सचित्र, रोचक रचना। 4-00

नाच्यो बहुत गोपाल : **अमृतलाल नागर**—भंगियों के जीवन पर आधारित महत्त्वपूर्ण उपन्यास।

सांगीत : एक लोकनाट्य परम्परा : **राम नारायण अग्रवाल**—उत्तर भारत की सांगीत परम्परा का विशद अध्ययन और विवेचन, सचित्र।

शल्य क्रिया : **डा० आत्म प्रकाश, कैलाश साह**—आधुनिक शल्यक्रिया पर एक रोचक सचित्र कृति।

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

तुरंत

दही बनाने की मशीन

कर्ड-ओ-मेटिक®

डीलक्स

'दोहरे नियंत्रण-स्विच' के साथ

एक आदर्श उपहार
CURD-O-MATIC
DELUXE

कर्ड-ओ-मेटिक डीलक्स क्यों? अंतरराष्ट्रीय बुलवर्कर के निर्माता भारत में पहली बार प्रस्तुत करते हैं कर्ड-ओ-मेटिक डीलक्स. इस से दही जमाने की लम्बी और पुरानी प्रणाली खत्म. अब अपनी उंगलियों के इशारों पर दही जमाइए. कर्ड-ओ-मेटिक डीलक्स में दूध डालिए और प्लग लगाइए. स्विच दबाते ही बढ़िया और अत्यन्त पौष्टिक दही दो घंटों में तैयार! मौसम चाहे कितना भी ठंडा हो, चाहे आप कहीं भी हों, आप के लिए स्वास्थ्यप्रद दही का साधन है कर्ड-ओ-मेटिक डीलक्स.

अत्यन्त पौष्टिक और स्वास्थ्यप्रद—यह अनोखा दही जमाने वाला यंत्र सालों की अथक वैज्ञानिक खोजबीन का परिणाम है. इस यंत्र द्वारा कुछ ही मिनटों में दूध उस तापमान तक गर्म होता है जो दही जमाने के लिए आदर्श है. इस के बाद कर्ड-ओ-मेटिक डीलक्स सधे हुए निश्चित तापमान पर कार्य करता है जो दही जमने की प्रक्रिया के लिए बिलकुल उपयुक्त है. कर्ड-ओ-मेटिक डीलक्स दूध की शक्कर (लेक्टोस) को दुग्धाम्ल (लेक्टिक एसिड) में परिवर्तित करता है ताकि श्रेष्ठ, स्वास्थ्य-सम्मत दही बने तथा प्रोटीन, कैलशियम और विटामिन बी के सारे गुण समाए रहें। दही जमाने की पुरानी पद्धति में कई खतरे हैं। बाहरी तापमान में परिवर्तन, धूल-कणों, कीड़ों या तिलचट्टों का जाना, लाखों रोगाणुओं का प्रवेश और साथ ही साथ वातावरण का प्रदूषण भी दही को बिगाड़ देता है. कर्ड-ओ-मेटिक डीलक्स हवाबंद बर्तन में, प्राकृतिक विटामिन नष्ट करने वाली इन सारी गंदगियों और अनचाहे वातावरण के प्रभाव से दही को बचाए रखता है.

निश्चित और निश्चिंत—कर्ड-ओ-मेटिक डीलक्स चलाने में इतना आसान है कि दही जमाना जैसे बच्चों का खेल हो गया है. बस आप इतना सा कीजिए—यंत्र में दूध डालिए, प्लग लगाइए और स्विच चालू कीजिए. निश्चिंत हो कर दो घंटे बाद आकर देखिए कितना ताजा, शुद्ध, गाढ़ा और मलाईदार दही तैयार! मुंह में पानी भर आया न? बस यही है बिलकुल प्राकृतिक विटामिनयुक्त दही. कर्ड-ओ-मेटिक डीलक्स हो तो शंका का प्रश्न ही नहीं उठता. न बर्तन बदलने की जरूरत. न बिगड़ने की. अब चिंता ही नहीं की दही कैसा जमेगा, कब जमेगा? अभी आपने सोचा और काम चालू. दही मीठा चाहिए या खट्टा आपकी अपनी पसंद है चुन लीजिए.

अप्रत्याशित मेहमान—एक गृहिणी के लिए कर्ड-ओ-मेटिक डीलक्स ऐसे अवसर पर वरदान साबित होता है. अचानक मेहमान आ जाएं तो खाना बनाने के साथ साथ दही भी बना लें. बाजार का दही स्वास्थ्य के लिए नुकसानदेह तो है ही, बड़ा महंगा भी है.

दोहरा नियत्रंण स्विच—कर्ड-ओ-मेटिक डीलक्स में दो चमकीली बत्तियों वाला नवीनतम दोहरा नियत्रंण स्विच है. एक स्विच चालू कीजिए और दूध गर्म होना शुरू, कुछ ही मिनटों बाद स्विच उलटा घुमाइए और दही जमाने का काम शुरू! है न मजेदार?

दो साल की बेशर्त गारंटी

© Mail Order Sales Pvt. Ltd., 15 Mathew Road, Near Opera House, Bombay 400 004

मुफ़्त घरेलू आज़माइश कूपन

CM-D/1H

फेदर लिविंग प्रोडक्टस
मेल ऑर्डर सेल्स प्रा. लि. का एक विभाग १५ मैथ्यू रोड, बम्बई-४०० ००४

कृपया कर्ड-ओ मेटिक डीलक्स १० दिन की मुफ्त घरेलू आजमाइश योजना के अंतर्गत तुरंत भेजिए. अगर मैं संतुष्ट न हुआ तो वापस भेज दूंगा. आप मेरे पूरे पैसे बिना किसी सवाल के तुरंत लौटा देंगे। (कृपया मनचाहे चौकोर में ☑ निशान लगाइए) SB

☐ मैं रु.१२८ भेज रहा हूं (डाकखर्च व पैकिंग के रु.८ अलग) ☐ रु.१३६ का मनीऑर्डर भेजा है (रसीद नं......दिनांक...... ☐ वी.पी.पी. द्वारा प्राप्त होने पर मैं डाकिए को रु.१३६ दे दूंगा.

नाम..

पता..

कूपन भेजिए या स्थानीय विक्रेता से मिलिए

पीठ का दर्द ?

आयोडेक्स
मलिए, जो
पीड़ा हरे, अच्छा करे

दूसरे बाम पीड़ा से आराम भले पहुंचाएं, आयोडेक्स आराम पहुंचाने के साथ साथ अच्छा भी करती है. क्योंकि इसमें आयोडीन मिली है.

जोड़ों और मांसपेशियों की पीड़ा के लिए एकमात्र बाम— आयोडेक्स.

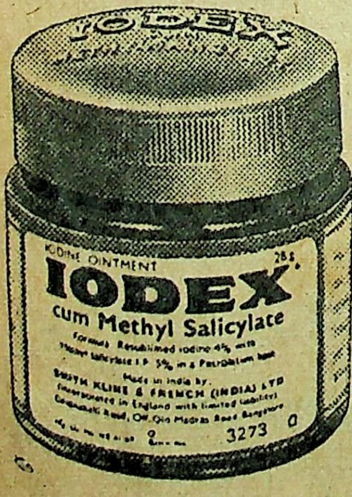
IODEX
IODINE OINTMENT
28g
IODEX
cum Methyl Salicylate
Made in India by
SMITH KLINE & FRENCH (INDIA) LTD
3273

आयोडेक्स मलिए-अपने काम पर चलिए

लिंटास-IODEX. 1-140 H

चेहरे पर लाए...

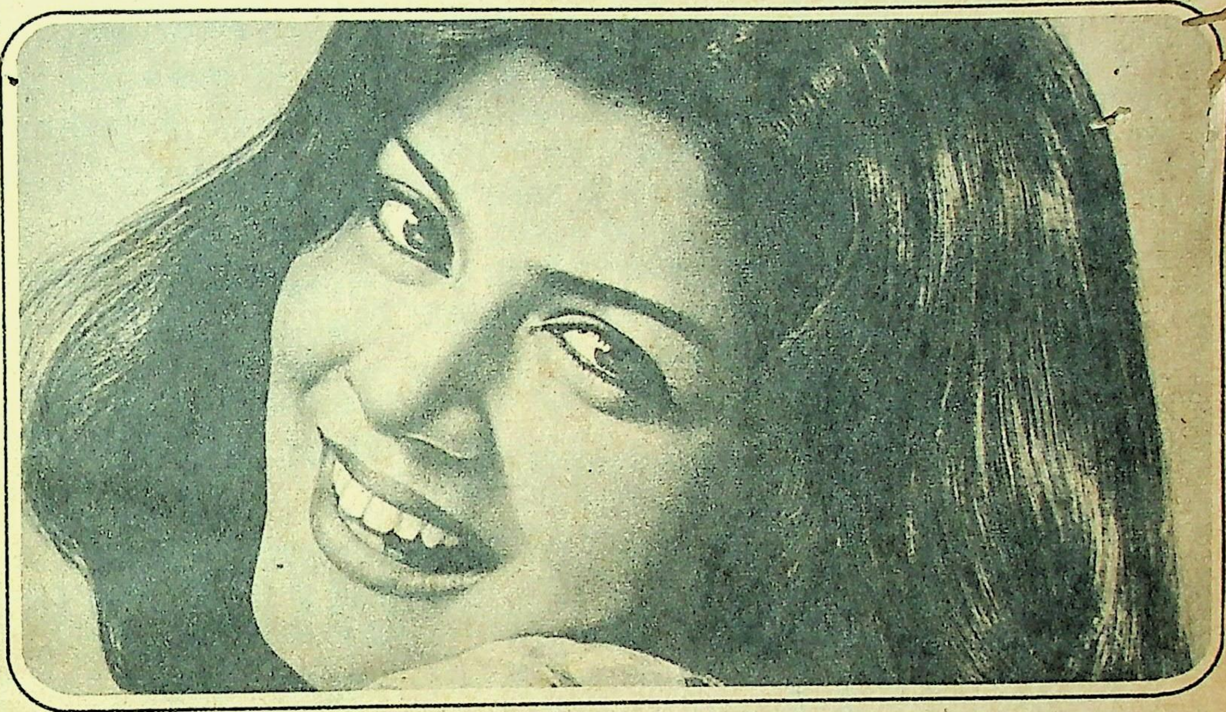

...दिल की जवानी

POND'S
COLD CREAM
(DEEP CLEANSER)

त्वचा में कोमल बेदाग़ जवानी की झलक ...
पाण्ड्स कोल्ड क्रीम से. यह उन सभी क्रीमयुक्त प्राकृतिक तेलों से मिश्रित है. जिनकी एक सुंदर रूपरंग के लिए आपको आवश्यकता है. इसे अपनी त्वचा के पोषण के लिए मलिए और जाड़े की ज़ुलमी बयारों से त्वचा बचाइए.

आपकी... युवा त्वचा का आधार
पाण्ड्स कोल्ड क्रीम

चीज़ब्रो पाण्ड्स इन्क. (सीमित दायित्व के साथ यू एस ए में स्थापित)

लिंटास - CPC. 6-140 HI

सारिका के वार्षिक ग्राहकों के लिए विशेष छूट

'सारिका' के प्रत्येक अंक का मूल्य एक रुपया है. किंतु वर्ष भर के लिए वार्षिक शुल्क मात्र दस रुपये है, यानी साल भर में २ अंक मुफ्त। यदि आप दो साल के लिए ग्राहक बनते हैं, तो शुल्क केवल उन्नीस रुपये है यानी दो वर्षों में ५ अंक मुफ्त, हां, तीन वर्ष के लिए शुल्क केवल सत्ताईस रुपये है.

आपके लिए सारिका की विशेष दरें इस प्रकार हैं:

एक वर्ष — १० रुपये

दो वर्ष — १९ रुपये

तीन वर्ष — २७ रुपये

विदेश में समुद्री डाक से एक वर्ष — २२ रुपये

कृपया यह कूपन जरूरी राशि के चेक/ड्राफ्ट/मनी-ऑर्डर के साथ-साथ आज ही भेज दें—

सर्कुलेशन मैनेजर
सारिका, टाइम्स आफ इंडिया
बिल्डिंग, बम्बई-४००००१

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/दो वर्षों/तीन वर्षों के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. १० रुपये/१९ रुपये/२७ रुपये चेक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा भेजे जा रहे हैं.

नाम........................

पता.........................
....
....

हस्ताक्षर.....................

पांच लंबी कहानियों का विशिष्ट अंक

अक्सर देखा गया है कि आज पाठक लंबी कहानियां पढ़ने से कतराता है लेकिन सारिका की लंबी कहानियां उसने एक ही बैठक में पढ़ी हैं और उन्हें पसंद किया है. इस बार सारिका एक साथ पांच लंबी कहानियां प्रकाशित कर रही है और उसे विश्वास है कि ये कहानियां पसंद की जायेंगी.

•

साथ ही—
दो कहानियां मॉरिशस से

इस अंक के लेखक—
सूर्यबाला, ओंकार ठाकुर, रमेश गुप्त, सुरेश चतुर्वेदी, ज्योत्स्ना देवधर, मधुकर सिंह, विनोद शाही, निरुपमा सेवती आदि.

•

गर्दिश के दिन—
दीप्ति खंडेलवाल

•

तथा सभी स्थायी स्तंभ
विविधा, फिल्में, कृतियां आदि

सारिका
फरवरी १९७६

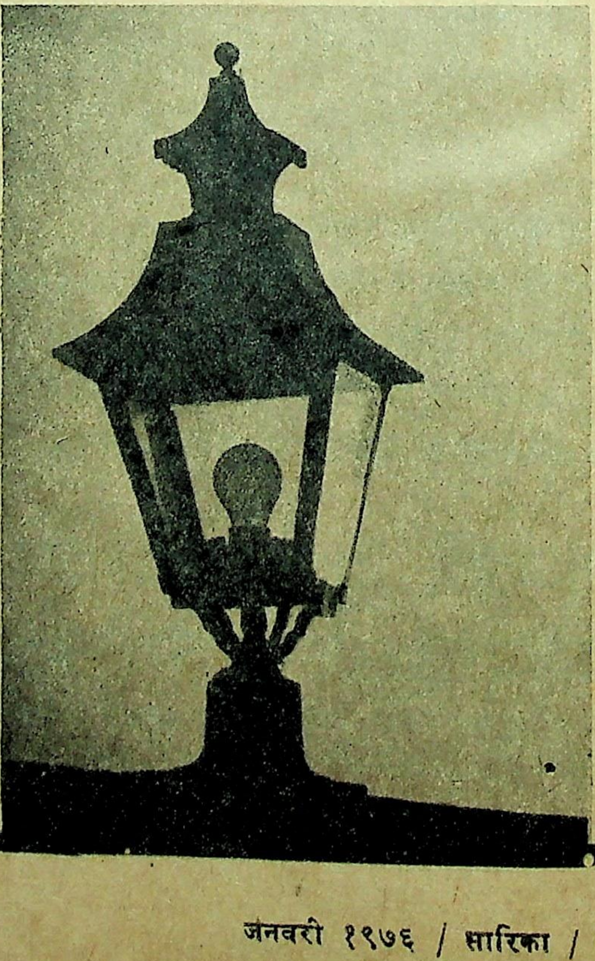

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका
जनवरी, १९७६
वर्ष : १६; पूर्णांक : १७७

देवदासियां : साहित्य के चौखटे में--विशिष्ट खंड

कहानियां

लक्ष्मण राव सरदेसाई : चंपा : १२
शंकर राव खरात : देवदासी : २१
मधु मंगेश कर्णिक : कस्तूरी : २४
प्र. श्री. नेरूरकर : आवडा : ३२
जयवंत दलवी : महानंदा (उपन्यास अंश) : ४४
संस्मरण : ३०, ३१, ३९, ४०, ४१, ४२, ४३

रिपोर्ताज

पी.आर. तलाशीकर: कुमुद की कहानी, उसीकी जुबानी : १६

विशिष्ट लेख

प्र. श्री. नेरूरकर : गोमंतकीय देवदासी : १०

● ●

अन्य कहानियां

मधुकर गंगाधर : अंतराल : ४८
ए. रमेश चौधरी आरिगपूडि : वंदे भगवती : ६०
हृदयलानी : कब तक : ६४
चंद्रकिरण सौनरेक्सा : स्टाफ आर्टिस्ट : ७२
अनीता औलक : हत्यारा : ८४

लघुकथाएं

प्रतीक्षा : ७६
विद्वता बनाम सहज बुद्धि : ७९
रामसरूप अणखी : छह लघुकथाएं : ८०

स्थायी स्तंभ

पाठकीय : ८
आद्यकथाकार : ५२
विविधा : ८२
कृतियां : ८६
प्रसंग : ८८
आमुख : एस. टी. चौधरी

संपादक : कमलेश्वर

● मुख्य उप-संपादक : आनंद प्रकाश सिंह
● उप-संपादक : अवधनारायण मुद्गल, सुदीप
● कार्यालय-सहयोगी : श्रीनाथ पांडेय, देवचंद्र झा, भिकाजी शिर्के

इस अंक में 'देवदासी विशिष्ट खंड' प्रकाशित किया जा रहा है. दक्षिण-पश्चिम महाराष्ट्र और विशेष रूप से गोवा के मंदिरों में देवदासी प्रथा सामंती युग के अवशेष के रूप में अब भी जीवित है. यह प्रथा अंधविश्वासों के सहारे भारतीय नारी के शोषण का घिनौना इतिहास प्रस्तुत करती है. इस खंड की कहानियां देवदासियों के जीवन, संस्कृति और उनकी यंत्रणाओं का सही दस्तावेज हैं. इस खंड में जितने भी संस्मरण प्रस्तुत किये गये हैं वे सब देवदासी पुत्र श्री राजाराम पैंगीणकर की आत्म रचना--मी कोण--से लिये गये हैं. इस खंड के संचयन में हमें श्री विष्णु निवसकर, श्रीमती मालिनी बिसेन और श्री प्र. श्री. नेरूरकर से विशेष सहयोग मिला है.

इस अंक के 'देवदासी' विशिष्ट खंड के सज्जाकार हैं 'सारिका' के पाठकों के चिरपरिचित चित्रकार अक्षय कुमार झा. भागलपुर (बिहार) निवासी इस चित्रकार ने बड़ौदा युनिवर्सिटी से फाइन आर्ट का एम. एस. डिप्लोमा प्रथम श्रेणी में प्राप्त किया और चार वर्ष के भीतर तीस हजार से ऊपर रेखाचित्र बनाये. आजकल स्वतंत्र रूप से चित्रकारी में लगे हुए हैं.

पाठकीय

अक्तूबर अंक

● सोमेश्वर सिंह, २२८, भाभा होस्टल, रीजनल इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, जमशेदपुर, लिखते हैं:

'**सारिका**' के अक्तूबर अंक की रोमानिया और वेस्ट-इंडीज की कहानियों में '**लहरें तुम्हें पुकारें**' काफी रोचक रही. अन्य कहानियां सामान्य लगीं.

प्रेमसिंह 'नेगी' की '**कथा की कथा**' ने आज के सामान्य जन की विपत्तिग्रस्त स्थिति का रोचक दिग्दर्शन कराया है.

'**अंधेरे की उम्र**' के जनार्दन बाबू ने आज के सभ्य और ऊंचे कहे जाने वाले लोगों का अच्छा प्रतिनिधित्व किया है. ☐

● अशांत श्रीभोला सिंह, रूपछाया आर्ट कैलेंडर्स, बेगूसराय (बिहार) से लिखते हैं :

कहानी-प्रमुख पत्रिकाओं में '**सारिका**' मेरी मनपसंद पत्रिका है. पिछले दस वर्षों से नियमित पाठक हूं. कम कीमत में ढेर सारी सामग्रियां, जो केवल मनोरंजन ही नहीं करती, बल्कि झकझोर कर जगाती है, क्योंकि '**सारिका**' की कहानियां मात्र बहस से जुड़ी नहीं होती हैं. इसकी कहानियां जीवन के जीवंत क्षणों की सुगबुगाहट होती हैं. आधुनिक परिवेश में आम आदमी की जिंदगी में घटी घटनाओं की सही अभिव्यक्ति नयी दृष्टि देती है. सामाजिक संभावनाओं के इर्द-गिर्द '**सारिका**' की कहानियां बेहतर जमीन की तलाश होती हैं.

'**सारिका**' ने लघुकथाओं के माध्यम से सामाजिकता को दिशा-बोध दिया है.

अक्तूबर अंक में रॉबिन भाई की आत्मरचना '**गर्दिश के दिन**' ईमानदारी के साथ तराशी गयी है. ☐

● श्रीमती मिथिलेश दीक्षित, वाई. डी. डिग्री कालेज के समीप, जयदेव नगर, लखीमपुर खीरी से लिखती हैं:

'**सारिका**' के अक्तूबर अंक में रॉबिन शॉपुष्प ने अपने 'गर्दिश के दिनों' को अत्यंत प्रभावपूर्ण ढंग से चित्रित किया है. प्रारंभिक जीवन के विलक्षण और विषम क्षणों में अपने निर्धारित साध्य को पाने का विफल प्रयास करता हुआ हिंदी का यह लेखक अब उसे बहुत कुछ पा चुका है और पीछे का बहुत कुछ भूल भी जाये, पर पाठक उसके जीवन की इन घटनाओं को आत्मसात कर चुके होंगे और कभी न भूल सकेंगे.

कृष्ण बलदेव वैद के उपन् '**दर्द लादवा**' का एक अंश 'इंत जो कि टूटे-फूटे वाक्यों के चंद टु का जोड़-तोड़ है, अद्भुत कथा शिल्प का सर्वथा नवीन प्रयोग है.

कथा का फॉर्म किसी स्वप विष्ट, सन्निपात ग्रस्त अथवा विक्षि व्यक्ति का प्रलाप लगता है, इसके मूलमें निहित आक्रोश, पीड़ा की छटपटाहट हृदय के अन पर दर्द से भीगे कोने को छू जाती

हिंदी के अतिरिक्त भी अ भाषाओं के कथा-साहित्य का परिचय पा कर बहुत प्रसन्न होती है. हि में '**सारिका**' ही एकमात्र ऐसी पत्रि है जो हमें देश-विदेश के कथा साहित्य से अवगत कराती है.

* * *

● राजेंद्र शर्मा 'कपिलेश्वर', सीता रोड, चंदौसी, मुरादाबाद से लिखते हैं :

अक्तूबर, ७५ का अंक पढ़ा. इतने कम मूल्य में इतनी अच्छी सामग्री, वास्तव में प्रशंसनीय सेवा है. गोपालचंद्र जोशी का लेख अत्यंत उपयोगी लगा. '**सारिका**' का इस दिशा में सराहनीय प्रयास है, क्योंकि हिंदी पाठकों को यह हिंदुस्तान के बाहर कहानी-विधा के अंतर्गत होने वाले विकासों, उनकी मूल प्रवृत्तियों व प्रेरणाओं एवं शिल्प के विषय में परिचित कराती है.

'**अपने-अपने साथी**' की संवेदना और '**प्यार की जीत**' की उत्तेजना भली लगी. '**लहरें तुम्हें पुकारें**' में वेस्ट-इंडीज का अंतस् बड़े ही कारुणिक रूप से उभर कर आया है.

छोटी कहानियों की एप्रोच जीवन के प्रति बड़ी ही तीखी और सच्ची है. '**एक खिड़की की खातिर**' मर्मस्पर्शी है. '**ट्रांसफर**' के खन्ना साहब और '**आइस्क्रीम का एक कोन**' का कुंतल अतिरिक्त रूप से जागतिक मानव हैं. दोनों ही आजकल के जमाने में बड़ी उपलब्धियां हैं. '**इंतहा**' पढ़ कर लगा कुछ अधिक ही भाषणबाजी और दुहराव है अथवा मनःस्थिति विशेष का विशिष्ट कथ्य अथवा कथ्य का विशिष्ट अंदाज.

* * *

● गोविंद सिंह थापा, युनाइटे बैंक ऑफ इंडिया, लखनऊ लिखते हैं :

प्रेमसिंह नेगी जी की कहा '**कथा की कथा**' कुमाऊं अधिकांश घरों का एक मार्मि वास्तविक चित्रण है. नेगी जी कहानी के माध्यम से पहाड़ी जीव का, समाज का, वर्णन किया उनकी पहुंच अत्यंत गहरी एवं वास विक है. कहानी पढ़ने से ऐसा अनु होता है जैसे हम कुमाऊं के किसी गां में पहुंच गये हैं. नेगी जी ने कहानी माध्यम से पहाड़ी गावों की आर्थि सामाजिक समस्याओं पर भी प्रका डाला है. उनकी कहानी सिर्फ कहा ही नहीं, कुछ और भी है.

● अमर दोषी, वीरभद्र लिखते हैं :

पत्रिका '**सारिका**' मैं, ठीक याद नहीं आ रहा है, परंतु का दिनों से पढ़ता आ रहा हूं. अक्तूबर, ७५ का बेहद पसंद आय कारण स्पष्ट है, सभी कहानियां मा वीय क्षेत्र की समानांतर कहानि हैं. मेरे लिए सर्वश्रेष्ठ कहानी चु तो असंभव है, परंतु कई कहानि हृदय के शांत तारों को झंकृत क गयीं. मेरे हृदय के शांत तारों झंकृत करने का सफल साहस यशपा जी ने '**कौन जाने**' कह कर, प्रेम

ी ने 'कथा की कथा' सुना कर या. □

नवंबर अंक

नीलमकांत जैन, नया बाजार, लियर से लिखते हैं :

सबस पहले मैं **'सारिका'** नवंबर क के लिए धन्यवाद देना चाहूंगा, सने गणिकाओं या नगरवधुओं या ह सकते हैं कि 'समाज के उज्ज्वल ल पर लगे कलंक' के जीवन के रिचित आयाम से परिचित ाया है.

इस अंक में सबसे ज्यादा पसंद या रमाकांत आजाद का लेख. जाद जी न पॉश कालोनियों होनेवाले पॉश व्यवसायों को च्छी तरह उजागर किया है.

सारी कहानियां पढ़ कर मन में यंतकुमार की गजल का एक र उभर आया :

ब नयी तहजीब के पेशे-नजर हम
दमी को भून कर खाने लगे हैं."

'मेरा पन्ना' न देख कर कोफ्त-सी ई. किसी भी भाषा की पहली हानी खोजने में **'सारिका'** की हल के लिए धन्यवाद.

'सारिका' के हर अंक में यथा एक गजल अवश्य दिया करें. यंतकुमार की उपरोक्त गजल रिका' में इतनी अच्छी लगी थी अभी भी गुनगुना लेता हूं.

'सारिका' में प्रकाशित कहानियों साथ जो चित्र रहते हैं, कहानी बोध सुगमता से कराते हैं.

मैं आज से सात साल पहले ब १० वर्ष का था, तब से ही मैं हित्य में रुचि लेने लगा था और र सारे उपन्यास और पत्रिकाएं ढ़ने लगा. आज से तीन साल पहले ब **'सारिका'** पढ़ी, तब पसंद नहीं यी थी, क्योंकि मैं घटिया और स्ते, रूमानी साहित्य का पाठक ा, पर जिस महीने से **'सारिका'** **'समांतर कहानी'** का पहला अंक ढ़ा, तब से आज तक **'सारिका'** हर अंक को सहेज कर रखता आ हा हूं.

'सारिका' ने मेरी रुचियां एकदम बदल दीं और मुझे घटिया साहित्य की गिरफ्त से छुड़ा कर 'साहित्य' से परिचित कराया.

सचमुच **'सारिका'** आज के जीवन में, जबकि मानवीय मूल्य शून्य होते जा रहे हैं. . सारे संदर्भ अपरिभाषित होते जा रहे हैं. . . आपस के बीच की दरारें खाइयां बन कर गहराती जा रही हैं, मील का पत्थर बन कर दिशा-बोध दे रही है और समय-सापेक्ष साहित्य से हमें परिचित कराने में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है. □

● **मनोज कुमार गौतम, मलयपुर, मुंगेर से लिखते हैं :**

'सारिका' गंभीर और ठोस सामग्री प्रस्तुत करने में वस्तुतः प्रशंसनीय है. कथा-जगत की अनेक पत्रिकाओं का मैं नियमित पाठक हूं, किंतु **'सारिका'** के साथ उनका तुलनात्मक मूल्यांकन न तो सरल ही है और न वांछनीय. प्रत्येक के उद्देश्य और दृष्टिकोण भिन्न हैं.

● **मोहम्मद मन्नान सिद्दीकी 'तस्लीम', आजाद रोड नं. ५, मनेंद्रगढ़ (सरगुजा), म. प्र. से लिखते हैं :**

हम **'सारिका'** के उस समय से ग्राहक हैं, जब मनेंद्रगढ़ में इसकी अत्यंत अल्प प्रतियां आती थीं. आज जब **'सारिका'** सबको प्रिय है, हम इस पर टिप्पणी करना अपना अधिकार समझते हैं. विगत कई माहों से हमें **'सारिका'** में **'मेरा पन्ना'**, **'मीनाकुमारी की डायरी'**, **'नयी पौद'** का अभाव खटकने लगा है. मैं पूछना चाहूंगा गुलजार जी से कि स्वयं की गजल लिखने-छपाने का समय मिल जाता है, किंतु मीनाकुमारी जी के डायरी के अंश को भेजने को समय नहीं मिल पाता?

विगत कई अंकों से हम यह अनुभव कर रहे है कि **'सारिका'** की कहानियों में अश्लीलता का समावेश लेखक बंधु अधिक करने लगे हैं. मानता हूं कि आज के आम आदमी के साथ यही सब घटित होता है, किंतु जो बातें पहले इशारों में की जाती थीं, अब निस्संकोच कही जाती हैं. आखिर क्यों?

नवंबर अंक में विशेष प्रभावित करने वाले लेखक थे, प्रकाश पंडित (**'प्रसंग'**), प्रकाश बाथम (**'क्षौर-कर्म'**), हबीब कैफी (**'भाई'**), सैयद जमीर हसन (**'लुच्ची'**), नूरशाह, (**'अंधेरे उजाले'**), अहमद नदीम कासमी (**'सफेद घोड़ा'**). सबसे अधिक प्रभावित किया भाई चंदूलाल पटेल ने **'गुलाब और हिना'** में, जिसमें वाकई, गुलाब और हिना की खुशबू थी और इस खुशबू से **'सारिका'** का नवंबर अंक मुअत्तर था. . . □

● **वेदकुमार अरोड़ा, १२/१२ राजेंद्र नगर, नयी दिल्ली—६० से लिखते हैं :**

'सारिका' द्वारा गणिका विशेषांक एक सराहनीय प्रयास है. इस अंक में रमाकांत आजाद की रिपोर्ट **'महानगर बंबई : वेश्यावृत्ति के सामाजिक आयाम'** दिलचस्प लगी. कहानियों में सैयद जमीर हसन की **'लुच्ची'** और अहमद नदीम कासमी की **'सफेद घोड़ा'** मर्मस्पर्शी रहीं. □

● **जगजीत सिंह दाद पटियाला से लिखते हैं :**

'सारिका' बहुत देर से पढ़ता आ रहा हूं. कई बार इसकी कहानियों के बारे में पत्र लिखना चाहा, लेकिन हिंदी लिखना कम आने की वजह से खत लिखने में झिझकता रहा. **'सारिका'** का नवंबर अंक पढ़ कर पत्र लिखने को मजबूर हो गया हूं.

इस बार का गणिका-जीवन का अंक औरतों के पक्ष में एक वकालतनामा है.

वैसे तो सब कहानियां अपना-अपना स्थान रखती हैं, फिर भी सबसे बढ़िया कहानी चंदूलाल पटेल की **'गुलाब और हिना'** लगी.

अहमद नदीम का तो क्या कहना! **'सफेद घोड़ा'** जिंदगी के बहुत नजदीक की कहानी है. . .

'अंधेरे-उजाले' की नयी टैकनीक के लिए लेखक बधाई का पात्र है.

प्रथम मौलिक कहानियां एक खोज-भरपूर काम है. . इससे किसी भाषा की कहानी कला की शुरुआत का पता चलता है. □

गोमंतकीय देवदासी

● प्र. श्री. नेरूरकर

महाराष्ट्र के कोंकण क्षेत्र और खासकर दक्षिण रत्नागिरी जिले एवं उसके सागर-किनारे से दक्षिण में नीचे की तरफ फैले हुए गोमंतक अर्थात गोवा प्रदेश में सदियों से 'भावीण,' 'कलावती' अर्थात 'देवदासी' प्रथा चली आ रही थी. यह देवदासी प्रथा हिंदू देवालयों से संबंधित हुआ करती थी. थोड़ा-बहुत प्रचलन तो इसका आज भी है, लेकिन बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध तथा मध्य में इसी जाति में जन्मे कुछ कर्तृत्ववान, जागृत स्त्री-पुरुषों ने मिल कर इसे काफी हद तक खत्म कर दिया है. इस घृणित प्रथा को तोड़ने का प्रयास 'देवदासी' समाज के पुरुषों ने किया. साथ-साथ इसका उतना ही बड़ा श्रेय देना पड़ेगा दक्षिण रत्नागिरी स्थित सावंतवाड़ी संस्थान के भूतपूर्व महाराजा पंचम खेमराज बापूसाहब के बनाये हुए कानूनों को, जो उनके प्रगतिशील दृष्टिकोण के परिचायक हैं. स्व. बापूसाहब सावंत ने अपनी रियासत म इस प्रथा को कानूनन बंद करवा दिया. उस समय पूरे तौर पर यद्यपि यह प्रथा बंद नहीं हो पायी, फिर भी इससे इस समाज की अभागिन स्त्रियों को इसका एहसास तो हो गया कि धर्म के नाम पर वास्तव में उन पर जुल्म ढाये गये हैं. इस जाति के जिन पुरुषों ने शिक्षा प्राप्त की—विशेष रूप से इन लोगों ने चिकित्सा के व्यवसाय में महारत हासिल की—उन्होंने इस प्रथा के खिलाफ आंदोलन का नेतृत्व किया.

देवदासी समाज की नारियों को निम्न जाति की समझा जाता था. जमींदारी समाज-व्यवस्था के अंतर्गत भगवान, ब्राह्मण और धर्म की दुहाई दे कर वंश-परंपरा से इन्हें अपना यह व्यवसाय चलाये रखने पर मजबूर किया जाता था. गोवा में पुर्तगाली राजसत्ता ने भी देवदासी प्रथा के खिलाफ कानून बनाया, लेकिन तब भी किसी-न-किसी रूप में यह जारी रही और आगे चल कर इसे वेश्यावृत्ति का रूप प्राप्त हुआ.

गोवा में 'देवली,' 'देवदासी' अथवा 'बंदे' समझी जाने वाली जाति का स्वरूप अब बदल कर 'गोमंतक मराठा समाज' के नाम से जाना जाने लगा है. इसी समाज में जन्मे श्री राजाराम पैंगणिकर ने इस समाज के उद्धार के लिए आंदोलन किये. आज इनकी उम्र करीब अस्सी वर्ष की होगी. १९६९ में उनकी आत्मकथा—**'मैं कौन?'** ('मी कोण'?) नाम से प्रकाशित हुई है. काणकोण ताल्लुके में पैंगणि गांव में 'कलावती' के घर में उनका जन्म हुआ. मां रंगी 'कलावती' थी. दरअसल रंगी शेणवी (सारस्वत) घराने में ही जन्मी थी. लेकिन चूंकि वह एक विधवा की कोख से जन्मी थी, इसलिए पैंगणि की 'कलावती' पुतलाबाई को उसे बेच दिया गया था. इस पुतलाबाई को कोई आगा-पीछा न था. इसी ने रंगी को पाला-पोसा, नृत्य-गायन की शिक्षा दी. चौदह साल की हो गयी तो रंगा जी शेणवी भेंडे नामक किसी जवान ने इसे अपनी देवदासी—'भावीण'—बना लिया. 'रखैल' होते हुए भी मरते दम तक रंगी ने पत्नी का-सा साथ निभाया. लेकिन जब बड़े हो कर श्री राजाराम पैंगणिकर अपने नाम के साथ बाप का नाम लगाने लगे तो कड़ा विरोध किया गया. उनके हिस्से आया अपमान, अवहेलना, भर्त्सना.

सावंतवाड़ी, गोवा, पेडणे प्रदेश की यह देवदासी प्रथा कर्नाटक में भी चल रही थी. परंपरा से इनमें कुछ जातिगत विशेषताएं मिलती थीं—

(१) पीढ़ी-दर-पीढ़ी इनमें संगीत, नाट्य, नृत्य का अभ्यास किया जाता था.

(२) कोंकण में मशहूर दशावतारी लोक नाट्य-कला को इन लोगों ने जतन से बनाये रखा.

(३) इस जाति में कुशल मृदंगिये, गायक तथा पुराण-कथाओं के भाष्यकार पैदा हुए.

(४) त्योहारों तथा विशेष अवसरों पर देवालयों में, भगवान की मूर्ति के सम्मुख नाचने-गाने वाली कलावती स्त्रियां इसी समाज की होती थीं.

(५) इसलिए ये अपने आपको गंधर्व-अप्सराओं के वंशज माना करते थे.

(६) कार्तिक स्वामी इनके यजमान देवता थे.

(७) भगवान पर अपनी कन्याएं अर्पित करने का रिवाज इन लोगों में था.

(८) सावंतवाड़ी गोमंतकीय नाट्य कला का प्रमुख केंद्र था.

महाराष्ट्र के नामवर समाजशास्त्री, ज्ञानकोषकार डा. श्रीधर व्यंकटेश केतकर ने **'महाराष्ट्रीय ज्ञानकोष'** के पंद्रहवें भाग में महाराष्ट्र की देवदासी प्रथा को ले कर निम्नलिखित जानकारी दी है:

'कई सदियों से दक्षिणी देवालयों में देवता को देवदासी अर्पित करने का प्रचलन है. ये देवदासियां सदा के लिए देवता की सेवा में लग जातीं. अविवाहित रह कर सारा जीवन बितातीं. भगवान पर चंवर डुलाना, भगवान के सम्मुख नृत्य करना, भगवान के रथ के जुलूस के आगे नाचना और भगवान की आरती उतारना आदि इनके काम हुआ करते थे.'

महाराष्ट्र के पूर्वी भाग में देवदासी की एक और किस्म देखी जाती है, जो 'मुरली' अथवा 'जोगतीण' नाम से जानी जाती है. गरीब मां-बाप अपनी कन्याएं खंडोबा नामक देवता को अर्पित कर देते हैं. अर्थात् पहले इन मुरलियों का ब्याह खंडोबा के साथ रचाया जाता है. तब पुजारी जाति की तरफ से गर्भाधान हुआ करता है. आगे चल कर इस 'देवदासी', 'कलावती' या 'भावीण' समाज के लिए 'नायकीण' शब्द भी मराठी म प्रचलित हो गया. और फिर इसी 'नायकीण' शब्द को 'वेश्या' के अर्थ में प्रयुक्त किया जाने लगा. इसी जाति के श्री सु. शा. मांद्रेकर ने 'नायकीण' या 'कलावंत' शब्द के संदर्भ में लिखा है: ' 'कलावंत' जाति होती है और 'नायकीण' पेशा. पुराने जमाने में हमारे समाज म मृदंगादि बजाने वाले वादक हुआ करते थे. उनके मुखिया को 'नायक' कहा जाता था और प्रमुख गायिका 'नायिका' कहलाती थी. ऐसा लगता है 'नायकीण' शब्द इसी

'नायिका' शब्द का अपभ्रष्ट रूप है. उस जमाने में हमारे समाज की केवल स्त्रियां 'कलावंत' कहलाती थीं और पुरुष 'गायक', 'गानू' अथवा 'गुणीजन' नाम से जाने जाते थे.'

गोवा या कोंकण प्रदेश की ग्राम-रचना में आज भी देवदासी बिरादरी का एक अलग स्थान पाया जाता है. गांव का प्रमुख देवालय देवालय-वाड़े (देऊलवाड़ा) से घिरा हुआ होता है. इसी में 'देवली' तथा 'भावीण' समाज की बस्ती हुआ करती है. इनके गुजारे भर के लिए देवप्रतिष्ठान की तरफ से थोड़ी-बहुत जमीन दी जाती है. हर 'भावीण' के परिवार में देवता की सेवा के लिए महीने, तिथि, दिन, त्योहार आदि बंटे हुए होते हैं. कीर्तन-भजनादि के अवसर पर उस परिवार का पुरुष देवालय में आ कर मृदंग, वीणा आदि बजाता है.

श्री पैंगणिकर अपने आत्मचरित **'मी कोण'** में एक जगह पचास वर्ष पूर्व तथा उसके पश्चात गोवा के 'कलावंत' समाज की अवस्था का वर्णन करते हैं, जिसके अनुसार, (१) इस समाज पर हमेशा सारस्वत ब्राह्मण समाज का दबाव रहा है, (२) देवदासी-भावीणों की धर्मभीरुता का फायदा उठाते हुए सारस्वत उन्हें धोखा देते आये, (३) इस जाति का गुजारा वेश्या-व्यवसाय से ही प्रमुख रूप से चलता है, इसलिए इस सदा ही अपने महाजन सारस्वतों के सामने विनम्र हो कर, झुक कर चलना पड़ता है.

कुछ समय बाद सारस्वत समाज भी बदलने लगा. इसका विवरण भी श्री पैंगणिकर देते हैं : 'आज सारस्वत समाज भी उन्नति कर रहा है. और जातिभेद के खिलाफ विचारधारा भी इस समाज में प्रसृत हो रही है. गोवा और महाराष्ट्र से कई सारस्वत ब्राह्मण युवा गोमंतक मराठा समाज की युवतियों से विवाहबद्ध हो चुके हैं. कुछ बरसों बाद यह जातिभेद नष्ट हो जायेगा और दोनों समाज आपस में मिल जायेंगे—जरूर...'

देवदासी प्रथा की वजह से इस समाज के लोगों की जो बेइज्जती होती थी, उससे चिढ़ कर इसी समाज के श्री आ. स. कवरे ने एक पुस्तक लिखी है— **'खत्म हुआ यह नरकवास!'** (**'बस्स, पुरे झाला हा नरकवास'**) जिसमें वह लिखते हैं : 'हमारे समाज में देवताओं-देवालयों की दुहाई दे कर लड़कियों को अनीति की राह दिखाने की जो निंदनीय रूढ़ि है, उसे जल्द-से-जल्द नष्ट कर देना चाहिए, क्योंकि **इस** रूढ़ि का सहारा ले कर हम न केवल उस एक लड़की को अनीति की गंदगी में झोंक रहे हैं, बल्कि उसकी आने वाली सारी पीढ़ियों को अनीति के, गंदगी के, भंवर में डुबो रहे हैं.'

देवदासी समाज की स्त्रियां रूढ़िवश देवदासी जरूर होती थीं, मगर इसका मतलब यह नहीं कि वे कोई बाजारू औरतें या चरित्रहीन वेश्याएं हुआ करती थीं. वयोवृद्ध विद्वान श्री गो. आ. कामत लिखते हैं. 'शेसविधि संपन्न होने के बाद इस समाज की जो स्त्रियां अविवाहित रहा करती थीं, उन्हें 'वेश्या' कहना कदापि ठीक नहीं होगा. जो सच्ची कलाकार थीं, नृत्य-गायनादि में निपुण थीं, उन्होंने अपनी कला के सहारे रुपया कमाया. अपने किसी एक प्रिय पुरुष के साथ वे विहाहेतर संबंध रखती थीं. तब भी देहविक्रय उन्होंने नहीं किया था. हां, जिन्हें यह सौभाग्य प्राप्त नहीं था, उनकी किस्मत में जरूर अनेकानेक पुरुषों का साथ लिखा होता. इसे टालना बड़ा कठिन था. फिर भी ये स्त्रियां न तो मानसिक दुर्बलतावश वेश्या बनती थीं, न ही ऐशो-आराम के लिए वारवनिता का वेश धारण करती थीं. हिंदू समाज में प्रचलित जाति-व्यवस्था का यह अनिवार्य परिणाम था. उनके बर्ताव, रहन-सहन में कहीं किसी प्रकार की बीभत्सता, कुरूपता नहीं झलकती थी....'

भगवान को अर्पण करने से पहले 'शेसविधि' नामक एक धार्मिक विधि संपन्न होती थी. यह ठीक ब्याह की-सी विधि हुआ करती थी. बस, अंतर इतना ही था कि दूल्हे की जगह कोई एक कुंआरी लड़की ही रहती थी, जिसे दूल्हे की पोशाक में, सेहरा-वेहरा बांध कर सजाया जाता. मुहूरत देखा जाता. और उस दिन विभिन्न संस्कार संपन्न होते.

दूल्हा-दुल्हिन (अर्थात दोनों ही लड़कियों) से उपवास रखवाया जाता. अंगों पर तेल-उबटन मला जाता. दूल्हे के हाथ में नारियल और खंजर दे कर जुलूस निकाले जाते, दूल्हे के घर आते ही मालकिन—दुल्हिन की माता—उसे विवाहस्थल पर ले आती. मुहूरत पर दोनों के बीच मंगलवस्त्र (अंतरपाट) का परदा पकड़ कर तब दोनों में पुष्पमालाएं बदली जातीं. होम-हवनादि के बाद ब्राह्मण पुरोहित को दक्षिणा दी जाती. अंत में गांव को भोज दिया जाता.

आगे चल कर धीरे-धीरे यह विधि बंद हो गयी. इसका वर्णन भी श्री राजाराम पैंगणिकर करते हैं. उन्हीं के शब्दों में : 'ताज्जुब की बात है कि शेसविधि जैसी अनिष्ट रूढ़ि के खिलाफ किसी भी जाति या समाज ने आवाज नहीं उठायी. उलटे इस समारोह में गांव के संभ्रांत, प्रतिष्ठित व्यक्ति शामिल होते थे और बिना किसी शास्त्राधार के गढ़ी हुई इस विधि को कर्हाडे ब्राह्मण संपन्न किया करते. इसी से भोले-भाले, भावुक, धार्मिक लोग यही समझते थे कि वे जो कर रहे हैं, वह देवता एवं ब्राह्मण देवता दोनों को मंजूर है.' श्री पैंगणिकर आगे लिखते हैं: '१९११में मैंने इस समस्या को ले कर आंदोलन छेड़ दिया. इस वेश्या-व्यवसाय को बंद करने के लिए श्री शंकराचार्य के पास अर्जी भेजी कि वह इस अनिष्ट शेसविधि को बंद करवायें. लेकिन अर्जी का कुछ फायदा न हुआ. यह हमारा बेसिरपैर का शास्त्राधार!! तब मैंने पुर्तगाली सरकार को दरख्वास्त दे कर इस शेसविधि को बंद करवाया...'

मराठी-लेखकों ने देवदासी जीवन पर कहानियां लिखी हैं, उपन्यास लिखे हैं, लेकिन यह साहित्य इन स्त्रियों के जीवन-यथार्थ से कोसों दूर है. आज भी कोंकण में, गोवा में, देवालय हैं, देवालयों को घेरे हुए ये बस्तियां हैं. हां, देवदासी समाज का वर्तमान चित्र अतीत के उस चित्र से काफी बदला हुआ नजर आने लगा है. बदला हुआ—बिगड़ा हुआ, भ्रष्ट रूप... □□□

(अनुवाद : रेखा देशपांडे)

चंपा

• लक्ष्मणराव सरदेसाई

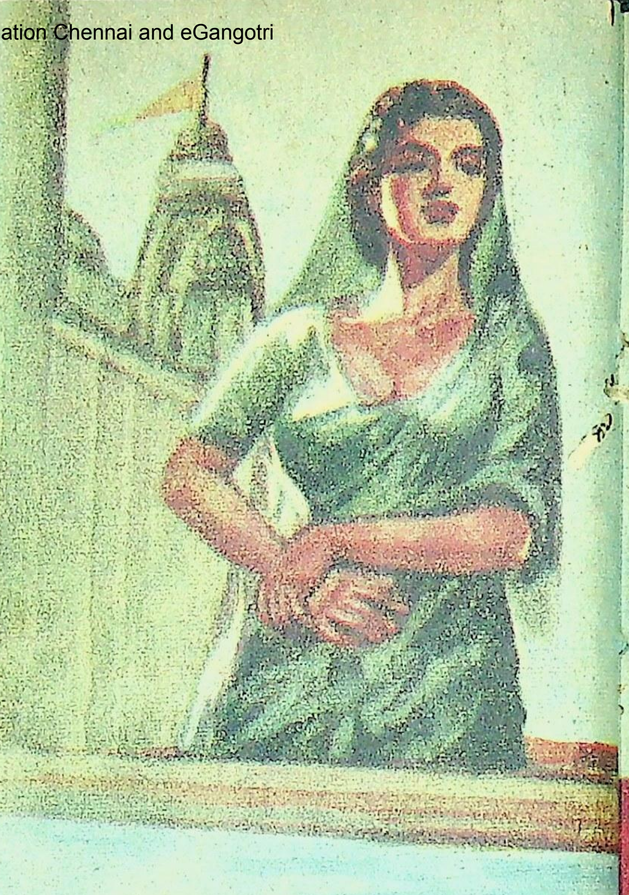

प्रस्तुत कहानी के यशस्वी कथाकार ने कोंकण के जीवन को बहुत नजदीक से देखा-परखा है और उनकी अधिकांश कहानियां कोंकण के जीवन पर ही आधारित हैं. और देवदासी प्रथा कोंकण-गोआ के जीवन का एक अभिन्न अंग रही है... प्रस्तुत कहानी उसी अंग की एक मार्मिक झांकी है...

मां की पुकार सुन कर चंपा हड़बड़ा कर जग गयी. आंखें मलते हुए उसने अंगड़ायी ली. बिस्तर पर उठ कर बैठ गयी और खिड़की में से बाहर झांकने लगी. उसे लगा अभी-अभी कहीं सुबह हुई है! लेकिन फिर उसे याद आया कि भोजन के बाद दोपहर में ही तो वह सो गयी थी. यथार्थ का ज्ञान होते ही वह हंसी, एक उदास फीकी हंसी!

बिस्तरे पर दुबारा वह लेट गयी. यह देख कर उसकी मां कहने लगी—चंपा, देख तो शाम हो गयी है. छह बज रहे हैं. और कितनी देर सोती रहेगी?

इस पर बिगड़ते हुए, कुछ क्रोधित स्वर में चंपा ने जवाब दिया—मां, आज पूरी पांच रातों से मैं जग रही हूं. पालकी निकलने तक मध्यरात्रि हो जाती है, उसके बाद मेरे जीवन का नाटक आरंभ होता है—मेरा मन इन सब बातों से अब ऊब-सा गया है. अपने ही से मुझे अब घृणा होने लगी है. यह भी कोई जीने का तरीका है!

उसकी मां को उसकी मानसिक व्यथा का पूरा एहसास था. शेवंती ने भी तो जिंदगी भर यही सब किया था. इसी के कारण साठ साल होने के बहुत पहले ही वह बूढ़ी हो गयी थी. आज अपनी बेटी के हृदय में उठे हुए बवंडर को देख कर उसकी आत्मा रो रही थीं.

पिछली पांच रातों से चंपा को एक झपकी लेने का भी अवकाश नहीं मिला था. सजधज कर, पूरे साज-श्रृंगार के साथ मेले में शरीक हुए बिना कैसे चल सकता था? सात आदमियों का पेट कैसे भरता? उनका निर्वाह और कौन से तरीके से हो सकता था? यह सब कुछ भुगते बिना दूसरा कोई चारा नहीं था. अन्य कोई उपाय भी तो उसके पास नहीं था.

मेले की रातों को बाहर से आये हुए शौकीन भगवान के दर्शन का बहाना बना कर मंदिर के आ पास चक्कर काटते रहते. भगवान को आगे बढ़ा वे अपनी वासनापूर्ति के लिए, अपने दिल बहलाव लिए सरंजाम की तलाश में रहते. गांव में पांच-पच्ची वेश्याएं हैं. वैसे ही उनमें होड़ लगी रहती है. रूप औ यौवन ढलने लगता है तो पुरुष स्त्री के पास क्यों आये भला? पुरुष तो अर्ध-विकसित पुष्प पर मंडराने वा भृंग होता है.

* *

चंपा शरीर से नाजुक! आजकल कुछ उसकी से भी ठीक नहीं रहती थी. उस पर रात के दो-तीन घर लौट कर आती क्योंकि मेले का जश्न तब चलता ही रहता. साथ में कोई-न-कोई घर पर आता दस-पंद्रह रुपयों के लिए, चंद चांदी के सिक्कों खातिर बेचारी चंपा रात भर उस अजनबी के शरी की भूख शांत करने में लगी रहती. थक कर चूर- हो जाती है वह! सूर्य ऊपर चढ़ने पर जब उसकी आं खुलती हैं तो खड़े रहने तक की शक्ति उसमें बा नहीं रह पाती. शरीर क्षीण हो चुका है इसीलिए फि वह चिड़चिड़ाती रहती है. दूसरों पर गुस्सा उतार रहती है.

यह सब सोच कर, चंपा की हालत देख कर, की ममता उभर आती है. उससे कहे बिना नहीं र जाता—बेटी, तेरी तबियत ठीक न हो तो आज म जा.

चंपा एक लंबी आह भर कर बोली—मैं नहीं गय

तो यह गृहस्थी कैसी चलेगी? हमारी जरूरतें कौन पूरी करेगा? पिछले दस सालों में सैंकड़ों मर्दों ने आ कर मेरा उपभोग किया पर उनमें से क्या एक भी टिक कर रहा? किसाका सहारा है हमें? तू ही बता मां, तू ही बता!

शेवंती के दिल को बेटी की जानलेवा बातों से गहरी चोट पहुंची थी; पर वह कुछ नहीं कर सकती थी. असहाय थी, बेसहारा थी! हतभागी मां अपने आंसू छुपाते हुए चुपचाप अंदर गयी और थोड़ी देर में एक प्याला चाय बना कर ले आयी. कुल्ला करके चंपा ने चाय पी. चंपा कहने लगी—यह सब देख कर लगता है मुझे इस धंधे में पड़ना ही नहीं चाहिए था. यह सारी यातनाएं कब तक मैं सहती रहूं. मन और शरीर में कशमकश अहोरात चलती रहती है. दूसरी औरतों को जिस भोग में सुख मिलता है वही भोग मेरे लिए असहनीय हो जाता है. मैं क्या करूं मां, कुछ समझ में नहीं आता.

मां के अंतःकरण में भी सारी सहानुभूति सारा प्रेम उमड़ आया. अपनी बेटी उसे बेहद थकी-हारी नजर आयी. उसकी आंखों की चमक भी कम हो गयी थी. रस निचोड़ लेने के बाद जो आम के फल की स्थिति होती है, ठीक वैसी ही. चंपा सूख गयी थी, रसहीन हो गयी थी. उसके फूले हुए गाल अब अंदर धंस गये थे. छुटपन में रेशम जैसे मुलायम उसके काले घने बाल अब कड़े हो गये थे और झड़ रहे थे. पहले की मोटी चोटी अब पतली हो गयी थी. बालों का सारा सौंदर्य ही लुप्त हो गया था. गुलाबी तेजपुंज शरीर अब सूखा-सा और स्याह पड़ गया था. सौंदर्य की जगह अब रूक्षता ने ले ली थी. जिंदगी के थपेड़ों ने चंपा के मन को हताश, निराश कर दिया था.

चंपा की तरफ एकटक देखती हुई शेवंती की आंखों के सामने दस वर्ष पहले के जीवन के अनेक प्रसंग साकार हो उठे.

चंपा बारहवें साल में रजस्वला हो गयी थी. उसका शरीर भर गया था. उसके तीखे नाकनक्श में सम्मोहन आ गया था. भविष्य के सुनहले स्वप्न देखने वाले चंपा के नेत्रयुगल मादक-मधुर भावों से भर गये थे. चंपा में परिवर्तन आ गया था. यौवन ने उसके हर

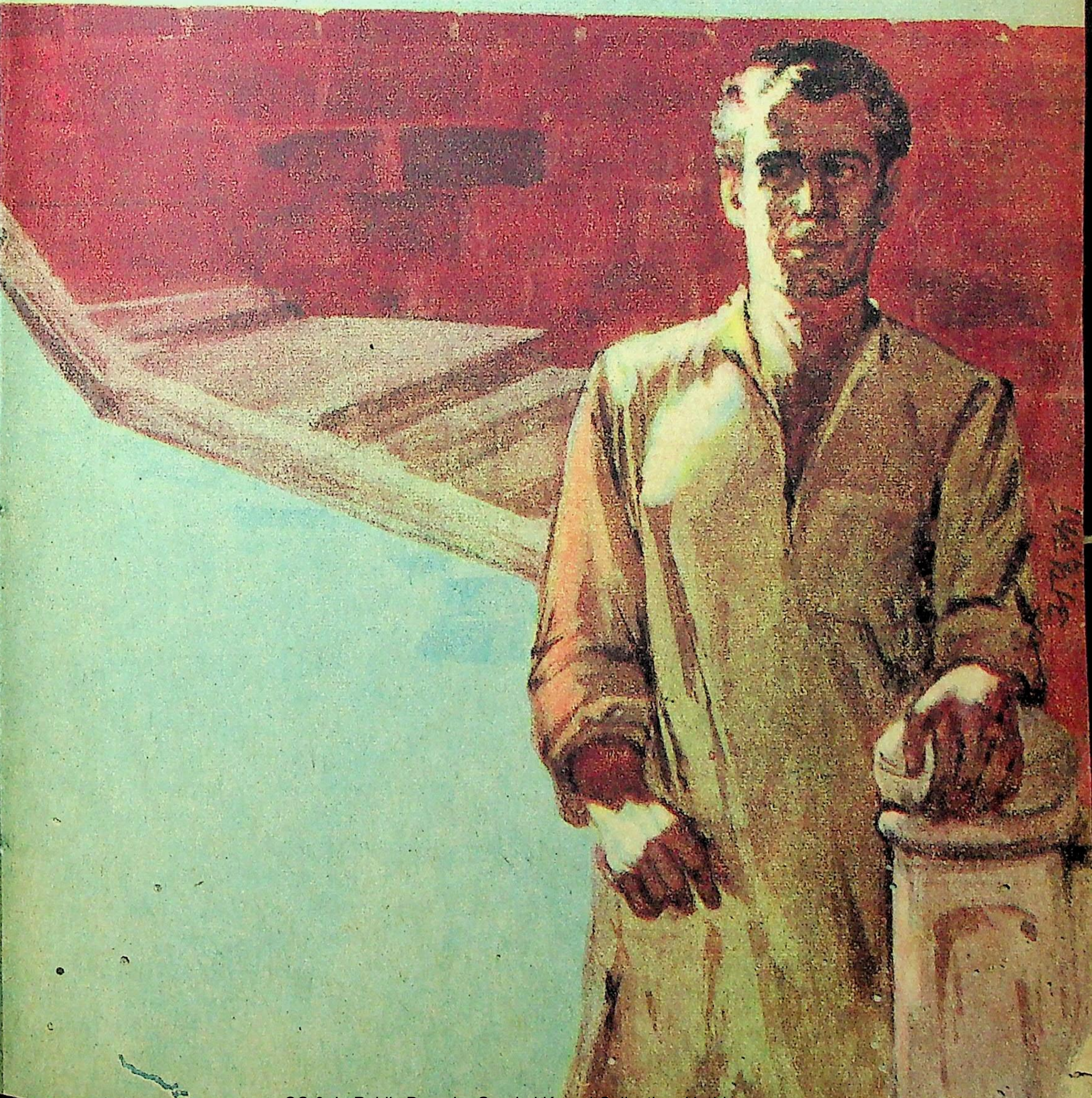

एक अवयव में रस भर दिया था. बड़ी सुंदर, बड़ी मोहक लगती थी चंपा. देखने वाले की नजर उसकी प्यारी छवि पर अटक कर रह जाती. धीरे-धीरे शौकीन लोग उसके इर्दगिर्द मंडराने लगे.

चंपा ने खुली आंखों से अपनी मां की जिंदगी की विडंबना देखी थी: तभी तो उसने खानदान की सालों से चली आ रही प्रथा से मुंह मोड़ लिया था. साफ-साफ उसने अपनी मां के सामने देवदासी का पेशा अपनाने से इन्कार कर दिया था.

--चंपा बेटी! याद है तुझे, शेवंती ने पूछा, चंपा ने प्रश्नवाचर्यक दृष्टिसे मां की तरफ देखा. शेवंती आगे बोली--मैं तेरी शादी कर देने के लिए तैयार हो गयी थी.

बीच ही में चंपा ने उसे टोका--पर बाद में तो बदल दिया तुमने अपना इरादा.

--क्या करती, वह निहूर का जमींदार आ टपका था. उसीने तो मुझपर दबाव डाला. उसने मुझे धमकी भी दी कि तेरी शादी मैं कर दूंगी तो वह हमें इस घर से निकलवाकर रहेगा.

--हां मां, मगर तू डर गयी. और तूने मेरी जिंदगी को नर्क बना दिया!

--क्या कर सकती थी मैं? यह हमारा घर उसकी जमीन पर ही तो खड़ा है ना. उसका विरोध करती तो मैं कहां टिक सकती थी! कोई भी मुझे शरण नहीं देता.

--लेकिन मां, उसने तो अपना वचन भी नहीं निभाया. उसने वादा किया था न कि पूरी उम्र वह मुझे अपनी बना कर रखेगा, मुझे ब्याहता पत्नी जैसे सम्मान का स्थान देगा. उसके वचन और उसकी कृति बिल्कुल एक दूसरे से विपरीत निकले!

--भाग्य अपना, बेटी. समाज में ऊंचा स्थान, मान-मर्यादा रखने वाले उस आदमी पर मैंने विश्वास किया. उसके हर वचन का मैंने एतबार किया. पर वह धोखेबाज निकला. एक बच्चे का जन्म होते ही उसने तेरी पूछताछ करना भी छोड़ दिया.

--किंतु मां, तू भी तो भयभीत हो गयी. मंदिर के उत्सव के समय उस स्वार्थी की करामात जाहिर कराने, उसका पर्दाफाश करने से तू भी तो डर गयी.

शेवंती बोली -- चंपा, क्या कहती है तू? वह गांव का साहूकार और जमींदार! हम गरीब लोग. मुझ जैसी अकेली स्त्री उससे भला कैसे जूझ सकती थी?

--मां, रहने भी दें. अब इन पुरानी यादों को कुरेदने से क्या लाभ?

--मगर बेटी तेरी हालत देखती हूं तो मेरी छाती फटने लगती है. पर हम दोनो ही मजबूर हैं, उठ नहा ले! ठंडे पानी से नहायेगी तो ताजगी महसूस होगी. उठ बेटा. मां का स्वर आर्त हो गया था.

--थोड़ी देर यूं ही पड़ी रहने दे मुझे, मां. यह कहते-कहते चंपा फिर से बिस्तर पर लेट गयी.

बच्चे चंपा की मौसी के साथ घूम कर लौट आये थे.

ऊपरी मंजिल के कमरे की खिड़की से चंपा को मंदिर का दृश्य साफ दिखायी दे रहा था. पिछले पांच दिनों में चंपा ने मंदिर के आसपास कई चक्कर लगाये थे. विशेषतः पालकी निकलने के समय शौकीन रईस-जमींदारों की नजर अपनी तरफ आकृष्ट करने के इरादे से, मौके की जगह पर खड़ी हो कर अपने मोहक अंग-प्रत्यंगों का प्रदर्शन करते हुए चंपा उन लोगों की तरफ नशीले कटाक्ष फेंकती रहती. लेकिन लोगों को लुभाने के लिए खड़ी चंपा के अंतःकरण से एक आर्त स्वर प्रार्थना का निकला था जो किसी को भी नहीं सुनायी दिया था. हाय रे किस्मत! बदनसीबी की भी हद हो गयी थी कि जिस क्षण वह आंचल पसार कर जगत्नियंता से अगले जन्म में साफ-सुथरे जीव[illegible] की भीख अपने मन में मांग रही थी, उसी समय इस जीवन में जीने के लिए, अपने और अपने बच्चों के उदर-निर्वाह के लिए, उसे अपने शरीर का सौदा करना पड़ रहा था.

विचारों में डूबी हुई चंपा की नजर सहसा कमरे के फर्नीचर पर पड़ीं. आठ साल पहले उसने वे सब चीजें खरीदी थीं. शीशम की कीमती लकड़ी की बड़ी चारपाई, नक्काशीदार आईना लगी हुई बड़ी-सी आलमारी, दो गोल मेज, सात-आठ कुर्सियां, दो छोटी चारपाइयां और दो बड़े आईने दीवार पर शान से लटक रहे थे. मादक जवानी के नशे में उसने वह सब खरीदारी बड़े गरूर से की थी. गांव के साहूकार ने उससे विश्वासघात किया था. उसके तुरंत बाद ही शहर के एक जानेमाने रईस ने उसे आमंत्रित किया था आते समय उस रईसजादे ने उसे ५०० रु. इनाम दिये थे. यह सब चीजें चंपा ने उन्हीं ५०० रुपयों से खरीदी थी.

आठ साल बीत गये थे तो भी वे सब चीजें नयी दिखायी देती थीं. पुरानी तो वह स्वयं हो गयी थी. उसका शरीर पुराना हो गया है. मर्दों द्वारा उसके नाजुक, कोमल देह में डाले हुए बीमारी के कीटाणुओं के कारण उसका शरीर खोखला हो गया है.

बिस्तरे पर से उठ कर जैसे ही वह बैठी, उ अपना चेहरा सामने के आईने में दिखायी दिया. गुस से उसने मुंह फेर लिया तो सामने दीवार पर टं हुई अपनी खुद की तस्वीर पर उसकी नजर पड़ी.

किसी अच्छे फोटोग्राफर ने पणजी के एक रंगी रईस के साथ उसकी वह तस्वीर खींची थीं. उस तस्वी में वह खड़ी हुई थी और घने काले बाल उसके उभ हुए आकर्षक उरोजों को ढकते हुए नीचे की तर फैल गये थे. उसके एकदम दूधिया रंग में और उसके ती नाकनक्शों में उस समय कैसा सम्मोहन था! चेहरे प्रसन्न भाव उसकी खूबसूरती में चार-चांद लगा दे दस साल पहले की अपनी वह मनमोहक प्रतिमा देख चंपा सकते में आ गयी. अनजाने ही एक दीर्घ निश्वा उसके मुंह से निकला.

फिर वह स्नानघर में गयी. कपड़े उतारे औ अपने सूखे हुए शरीर को देख कर शर्म से उसने गर्द नीचे झुकायी. उभरे हुए वक्षस्थल अब सूख गये हंडे में से ठंडा पानी निकाल कर लोटे से वह अपने ऊप डालने लगी. साबुन भी रगड़ा. यौवनकाल की मीठ

मीठी स्मृतियां साबुन के फेन के साथ ऊपर उठने लगीं. पर शरीर साफ करके नीचे गिरते हुए गंदे पानी के साथ, जीने के लिए अपनाये हुए गंदे नापाक तरीके की वास्तविकता मन को झुलसाने लगी. ओफ् यह कैसी जलन, कैसा दाह जिसमें अब तनमन जल कर भस्म होता जा रहा था! अपनी उध्वस्त जवानी की यादों के भार के नीचे चंपा दबी जा रही थी. मां और मौसी के भार के बारे में चंपा सोचने लगी.

इन्हीं परस्पर विरोधी विचारों में उलझी हुई चंपा नहा-धो कर गुसलखाने से बाहर आयी. नहाने से उसे थोड़ी ताजगी महसूस हुई थी. आईने के सामने खड़ी हो कर वह अपने आपको ही निहारने लगी. अभी भी उसकी आंखों में एक अजीब मीठा-सा आकर्षण बाकी था. अभी तक की जिंदगी में संकटों से, विपत्तियों से मुकाबला करते-करते शरीर थक गया था, दुबला हो गया था. फिर भी चंपा में ऐसा कुछ जादुई सम्मोहन बाकी था कि उसके पास ग्राहक अपनी वासना-पूर्ति के लिए पहुंच ही जाते.

चंपा ने तीन बच्चों को जन्म दिया था. सात साल की सुमन, चार साल का सुरेश और सबसे छोटी दो साल की अनिता. अब तीनों बच्चों के साथ बैठ कर वह थोड़ी देर उनकी बातें सुनती रही. उसके मन में विचार आते रहे कि इन तीनों के भविष्य में पता नहीं क्या बदा है. बाप का पता नहीं और मां की यह ऐसी दारुण स्थिति. बेचारे अबोध बालक किसके सहारे जियेंगे. काफी देर गुमसुम बैठी हुई चंपा उठ खड़ी हुई.

मंदिर अब जगमग करने वाली रोशनी से चमक उठा था. चंपा ने अपने बाल संवारे. उनका मोहक-सा जूड़ा बनाया और उस पर एक अर्ध-विकसित कली खोंस दी. मुंह पर पावडर लगाया, लिपस्टिक लगाकर होंठों में लाली भर दी और बदन पर सुगंधित इत्र लगाया ताकि मन और शरीर दोनों ही उल्लसित हो जायें.

सामने रास्ते पर से सजी-धजी अनेक औरतें हास-परिहास में मग्न, चली जा रही थीं. उनमें से कुछ खरीदी करतीं, नाटक-सिनेमा देखतीं और जीने का मजा लूटतीं. उनको देखते हुए चंपा के उदास मन में भी कुछ आशाभरी उमंग जाग उठी. पर फिर वह सोचने लगी, यह सब औरतें कितनी खुश हैं, मस्ती से कैसी झूम रही हैं! और मैं तो खुशी का सिर्फ नाटक कर रही हूं!

कुछ ऐसे ही विचार उसके अंतर में उठ रहे थे कि पड़ोस की उसकी सहेली इंदु आ पहुंची. इंदु अभी भी काफी जवान और लुभावनी दिखती थी क्योंकि वह इस धंधे की बारीकियां खूब अच्छी तरह से जानती थी. चंपा भावुक थी. हर छोटी-सी घटना उसके अंतर में गहरी पहुंच जाती और चंपा के कोमल हृदय पर असहनीय आघात करती.

इंदु बोली—अरी चंपा, देख तो जरा घड़ी की तरफ. रात के ९ बजने वाले हैं और तू अभी तैयार भी नहीं.

चंपा ने झट से उठ कर आलमारी खोली. पांच-छह कीमती रेशमी साड़ियां इंदु के सामने रखते हुए पूछा—बता इनमें से कौन-सी आज पहनूं?

इंदु ने हंसते हुए कहा—चंपा तू खूब जानती है, कौन-सी साड़ी पहनने से मर्द पागल हो उठते हैं.

दोनों ही फिर दिल खोल कर हंसती रहीं. अंदर जा कर हलके नीले रंग की कश्मीरी रेशम की साड़ी परिधान करके चंपा बाहर आयी. इंदु तो चंपा के सौंदर्य पर स्वयं ही मुग्ध हो गयी और एक टक उसे देखती ही रह गयी. चंपा ने काले रंग का टीका माथे पर लगाया. मोगरे के मादक गंधवाला गजरा जूड़े पर लगाया और आईने के सामने खड़ी हो कर अपना प्रतिबिंब देखने लगी. उसने सोचा, जितना मैं सोचती थी, उतना मेरा रूपसौंदर्य ढल नहीं गया है. झटके से उसने सारे निराश विचार हटा दिये. सहसा वह चौंक गयी इंदु पूछ रही थी—आज क्या खरीदने का इरादा है?

—खरीदी कर ही नहीं सकती मैं, इंदु, चंपा ने उखड़े हुए स्वर में कहा.

—क्या मतलब? पिछली पांच रातों में तूने कुछ भी नहीं कमाया? ताज्जुब है!

अनमने भाव से चंपा बोल पड़ी—वह भी कोई कमायी है! बीमारी में लिया हुआ कर्जा तक अभी अदा नहीं कर पायी हूं. जो कुछ भी कमा लेती हूं, उससे हम सात आदमियों का पेट ही ठीक से नहीं भर पाता तो कर्ज की रकम कहां से अदा हो पायेगी?

—मगर चंपा आज तो आखिरी रात है. तू काफी-कुछ आमदनी कर सकती है.

—हां, तू ठीक कहती है, पर इंदु मेरे साथ हमेशा धोखा होता है. पिछले साल की ही तो बात है. एक पहचानवाला सुनार मिला था. रातभर मेरे साथ रहा. कुछ ऐसा प्रभाव डाला मुझ पर कि मैंने डेढ़ तोला सोना उसके सिपुर्द कर दिया. उसने वादा किया था कि चंद दिनों में ही मेरे लिए उस सोने का चंदनहार बना कर लायेगा. सोना भी गया और मेरी कमायी भी. चंपा का स्वर रोने-रोने जैसा हो गया था.

उसे दिलासा देते हुए इंदु बोली—चंपा असल में तू बहुत भोली है और इस संसार के लोग बहुत धूर्त होते हैं. खास कर हमारे इस धंधे में तो और भी अधिक होशियारी से रहना पड़ता है.

कोई खास सुंदर न होते हुए भी इंदु ने अपनी होशियारी से कमाया कुछ द्रव्य संचय कर लिया था. आगे बढ़ कर चंपा का हाथ पकड़ते हुए इंदु ने कहा—चल उठ. छोड़ सब पिछली बातें. देख, जशन शुरू होने का समय हो गया है.

उठते हुए चंपा ने पूछा—मगर तू तो पहले खरीदारी करने पर जोर दे रही थी न?

—हां-हां, पहले बाजार का ही चक्कर लगायेंगे. तुम्हारी मां, मौसी और बच्चों को कीर्तन सुनने के लिए बिठा देंगे और हम दोनों घूमने निकल पड़ेंगे. अरी चंपा मेले में घूमेफिरे बगैर ग्राहक कहां से मिलेंगे?

दोनों ही मेले के लिए चल दीं. चंपा आसपास की

(आगे पृष्ठ ९१ पर)

कुमुद की कहानी उसीकी जुबानी

• वी. आर. तलाशीकर

प्रस्तुत कहानी, कहानी न हो कर एक सत्य-कथा है. इसके लेखक बंबई सिटी सिविल कोर्ट के रिटायर्ड जज हैं जो अपने निर्भीक तथा स्पष्ट फैसलों के लिए पर्याप्त ख्याति अर्जित कर चुके हैं.

सेशन कोर्ट के जज के रूप में मेरा वह दिन भी औ दिनों की तरह ही सामान्य लग रहा था. मैंने सपने में भी न सोचा था कि उस दिन मुझे कोई ऐसा केस सुनना पड़ेगा जिसमें किशोरावस्था को भी न लांघ पायी एक सुंदर लड़की की मजबूर, शर्मनाक जिंदगी की मार्मिक झलकियां होंगी.

मैंने मंच पर कदम रखा और पब्लिक प्रॉसीक्यूटर से पूछताछ की तो उन्होंने बतलाया कि कठघरे में खड़े दोनों अभियुक्त पर महिलाओं तथा बच्चों के अनैतिक व्यापार की रोकथाम संबंधी कानून के अंतर्गत मुकदमा चलाया जा रहा है. मैंने कठघरे की ओर नजर दौड़ायी.

पैंतीस वर्षीया पीली त्वचा वाली रंगम्मा कठघरे में बैठी हुई थी. उसका गोल चेहरा अब भी मोहकता

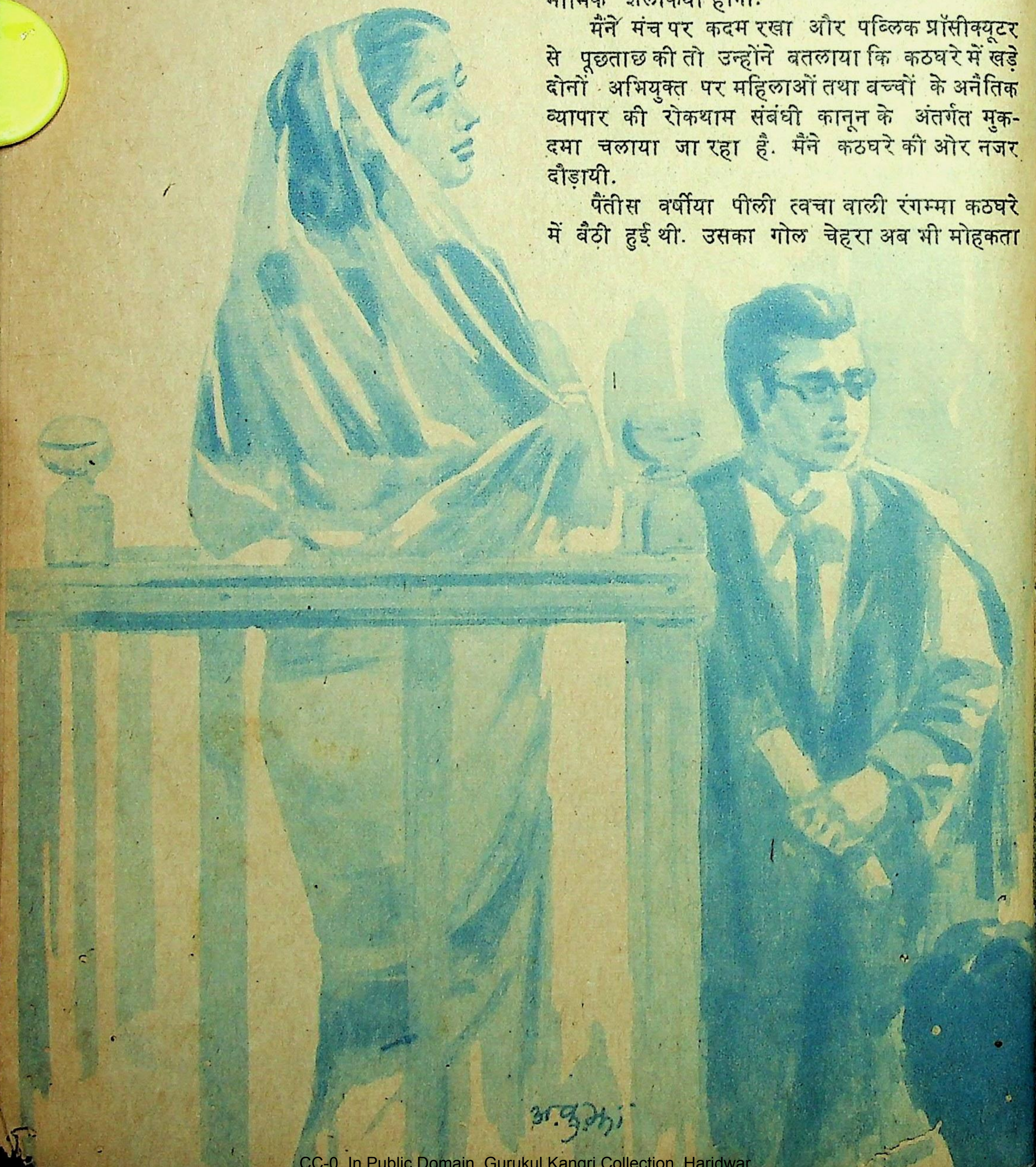

लिये हुए था, यद्यपि अनैतिक जीवन बिताने के कारण उसमें अब वह आकर्षण नहीं रह गया था. फिर भी लगता था कि अतीत में उसमें बरबस आकृष्ट करने वाला शारीरिक सौंदर्य अवश्य रहा होगा. उसकी मादक आंखों में सचमुच ही चुंबकीय शक्ति थी. कठघरे में अन्य व्यक्ति था एक मोटा, गठीले बदन का बदमाश जो दलाल के तौर पर रंगू के साथ फारस रोड पर एक वेश्यालय चलाता था. वह लापरवाही से देख रहा था किंतु रंगम्मा चिंतित दिखलाई पड़ रही थी.

मैंने उन दोनों पर यह आरोप गढ़ा कि स्वयं को लाभान्वित करने के विचार से कुमुद को जबरन उसकी इच्छा के विरुद्ध वेश्यावृत्ति अपना कर अपना शरीर बेचने को बाध्य करने के लिए उसका उन दोनों ने अपहरण किया, जिसपर उन दोनों ने ही अपने को निर्दोष बतलाया.

पब्लिक प्रॉसीक्यूटर ने केस को संक्षेप में कह सुनाया और कहा कि अच्छा तो यह हो कि स्वयं कुमद ही अपने दुर्भाग्य की मार्मिक कहानी कह सुनाये, जो अपने आप में अभियुक्तों के विरुद्ध एक सीधा सबूत होगा.

कुमुद को बुलाया गया. किशोर वय की एक प्रफुल्ल-वदना, दुबली-पतली लड़की, जिसका चेहरा कुमुदिनी जैसा शुभ्र था, धीरे से बेंच पर से उठ कर सामने आयी. उसकी आंखें बड़ी-बड़ी और काली थीं, भौंहें कमान की तरह खिंची हुई थीं और उनके बीच लाल टीका लगा हुआ था. उसकी नाक नुकीली थी, पतले लाल ओठ बोलने को अधीर हो रहे थे. उसके संगमरमरी गालों पर जैसे गुलाबी पंखुरियां खिली हुई हों. वह कठघरे की ओर राजसी चाल से बढ़ी तो उसके उरोजों का हिलना देख कर दर्शक बेचैनी का अनुभव करने लगे. वह कठघरे में बिना किसी घबराहट के खड़ी हो गयी. वह कन्नड बोल सकती थी और मराठी भी समझ सकती थी. मैंने उसे शपथ दिलायी कि वह पूरा-पूरा सत्य बोलेगी और उसने वैसा करने का वचन दिया.

* *

——मैं अपने माता-पिता तथा दो बहनों और दो भाइयों के साथ मंगलूर से कुछ दूर एक गांव में रहती थी और स्कूल में पढ़ा करती थी. . .उसने शुरुआत की और आगे कहने के लिए साहस बटोरने लगी.

——मेरी माता पहले एक देवदासी थी, मंदिर में गाती तथा पुजारी के घर भोजन किया करती थी. मेरे पिता को लगा कि जल्दी ही वह अनैतिक जीवन बिताने को मजबूर की जायेगी, अतएव वह उसे अपने गांव ले आये जहां उनके पास धान का एक छोटा-सा खेत था. उन्होंने उससे शादी कर ली और १२-१४ वर्षों में मेरी माता के छह बच्चे हुए. मेरे पिता परिवार का लालन-पालन, भरण-पोषण करने में असमर्थ थे. दो बच्चे बचपन से ही पोलियो-ग्रस्त थे, जिससे हमारी आर्थिक स्थिति बदतर हो गयी थी. मेरे माता-पिता हर समय चिंताग्रस्त रहते. किसी ने उन दोनों के मस्तिष्क में यह बात बैठा दी थी कि चूंकि मेरी माता को देवता की सेवा से हटा दिया गया था, शापवश उसके दो बच्चे पोलियो-ग्रस्त हैं और शेष भी बीमार हुए बिना नहीं रह पायेंगे. कुछ और लोगों

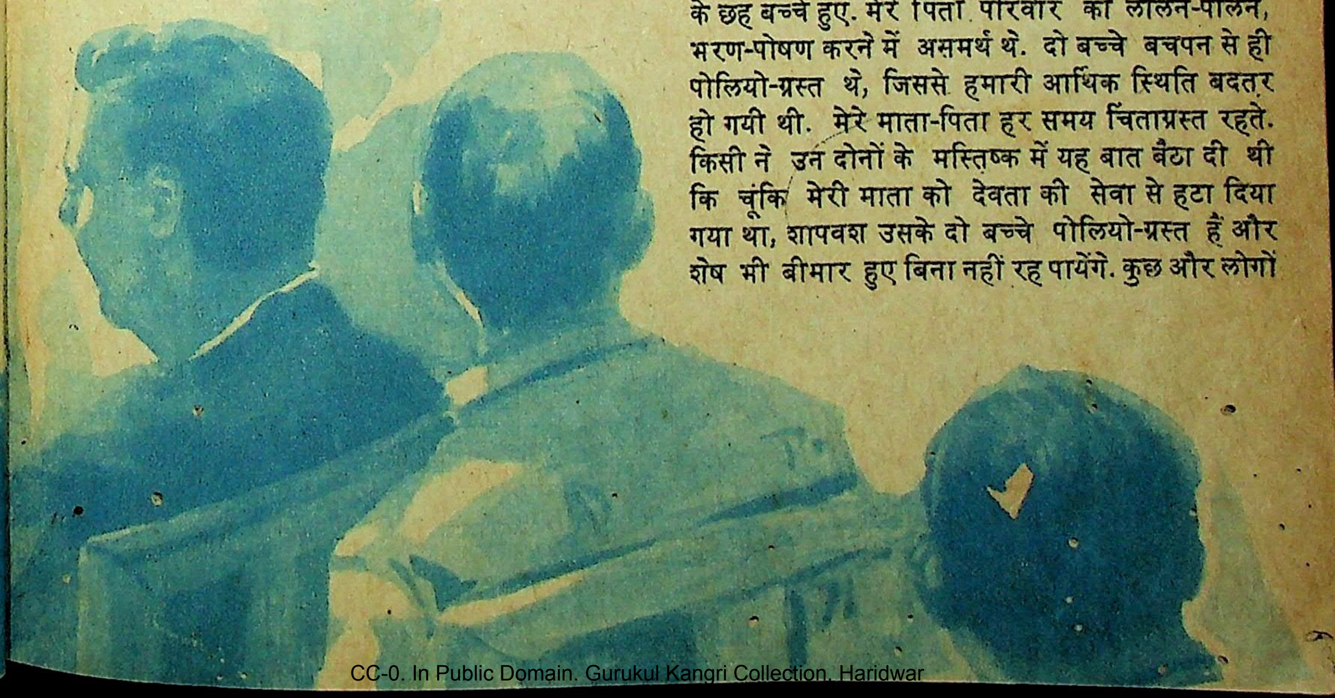

ने उन दोनों के दिमाग में यह बात भी भर दी कि अन्य बच्चों को रोग से बचाने और परिवार की हालत को और गिरने से बचाने के लिए यह जरूरी है कि कम-से-कम दो वर्ष के लिए किसी लड़की को सौंदत्ती में यलम्मा की सेवा में भेजा जाये ताकि उनका क्रोध शांत हो सके, उसने अपने भीतर के उफनते मनोभावों के साथ कहा. कुछ देर के लिए वह चुप रही. उसकी छाती पिछले अनुभवों को याद करके धड़कने लगी. दुख और पाश्चाताप के भाव उसके चेहरे पर स्पष्ट थे और अपनी रामकहानी सुनाने में वह हिचकिचाहट का अनुभव कर रही थी. पब्लिक प्रॉसीक्यूटर ने उसके मनोभाव ताड़ लिये और उसने कहा कि वह भरी अदालत में अपनी रामकहानी सुना पाने में अपने को असमर्थ पा रही है अतएव लोगों को अदालत से बाहर जाने को आज्ञा दी जानी चाहिए. इस पर हाल को दर्शकों-तमाशबीनों से खाली करा लिया गया.

कुछ मिनटों में ही वह शांत हो गयी और उसने कहना पुन: जारी रखा—

तब मैं १५-१६ वर्ष की थी. मैंने लोगों को अपने माता-पिता से कहते सुना था कि चूंकि मैं सभी बच्चों में आकर्षक तथा सुंदर हूं, मुझे यलम्मा के चरणों में सेवा के लिए भेज दिया जाना चाहिए. चूंकि मैंने अच्छा गला पाया है, अच्छी तरह जीविकोपार्जन कर सकती हूं. मेरी माता ने शुरू में इस क्रूर सलाह को मानना नहीं चाहा और कई दिनों तक रोती-कलपती रही. उसे बार-बार याद आती रही कि कितनों दिनों तक उसे इस प्रकार का कुत्सित तथा अनैतिक जीवन बिताना पड़ा था. एक दिन मेरे माता-पिता ने छाती पर पत्थर रखकर मुझे मेरे मामा के साथ, जो बंबई में टैक्सी ड्राइवर थे और कुछ दिनों के लिए मंगलूर आये थे, सौंदत्ती भेज दिया, उसने कुछ थम कर अपने स्वाभाविक दीप्ति से चमक रहे चेहरे को पोंछ कर साड़ी के पल्ले को दोनों कंधों पर सम्हाला.

हम दस दिन बाद सौंदत्ती पहुंचे. मेरे मामा गुंडप्पा ने वहां पर आयी हुई अन्य लड़कियों से भी जो देवी की सेवा में नाचने, गाने, बजाने के लिए आयी हुई थीं, पूछताछ की. उन्होंने मेरा सबसे परिचय कराया और यह जानकर संतोष पाया कि मेरे रहने-खाने आदि का प्रबंध हो सकता है. कुछ दिनों उपरांत वे बंबई चले गये. जाते समय अपना पता देकर कहते गये कि कोई संकट आने पर मैं उनसे पत्र-व्यवहार जरूर करूं, उसन कहा.

यह जानकर मुझे गर्व हुआ कि आगंतुक मेरी ओर आकृष्ट होने लगे हैं और मुझे यह भी पता चल गया कि मुझमें दूसरों को आकृष्ट करने का पर्याप्त सौंदर्य है. मैंने अन्य लड़कियों से जिन्होंने नाचना अपना पेशा बना लिया था, नृत्य सीख लिया जिसके कारण मैं रूपलोलुप व्यक्तियों के और भी नजदीक आ गयी. दो-एक वर्ष तक मैं अपनी सहेलियों, देवी की आराधना के बहाने वहां आनेवाले युवकों द्वारा बड़ा मान-सम्मान पाती रही. क्रमशः मेरा भ्रम दूर होता गया जब मैंने पाया कि देवी की पूजा-आराधना के लिए आने वाले कुछ व्यक्ति मेरे साथ शारीरिक संपर्क जोड़ने को लालायित हैं. कुछ ने मुझे यह वचन भी दिया कि यदि मैं उनकी हो कर रही तो सभी सांसारिक सुख पा सकूंगी. मैं उनकी निर्लज्जता देखकर स्तब्ध रह गयी किंतु देवदासी होने के कारण उनकी बातों को बर्दाश्त करती रही, उनको टालने का प्रयास करती रही. मैंने महसूस किया कि मेरे पास जीविकोपार्जन का अन्य कोई साधन नहीं है अतएव उनसे अलग नहीं रह सकती हूं. मुझे उनके वासनापूर्ण जीवन से समझौता करने को बाध्य होना पड़ा यद्यपि मैं स्वयं को उससे बचाने का हर संभव प्रयत्न करती रही. किंतु ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, स्वयं को दूसरों को समर्पित किये बिना उस मंदिर में रहना असंभव हो गया. मैंने अपनी कुछ सहेलियों को धन के लिए खुल्लमखुल्ला अनैतिक जीवन बिताते देखा जिसके लिए वे मुझ पर भी दबाव डालती जा रही थीं. मेरा मन विद्रोह से भर उठा और अनैतिक जीवन बिताने के लिए बाध्य किया जाना मेरे लिए असह्य होने लगा.

मैंने उसके चेहरे पर गौर किया तो लगा कि यह वर्णन अपने आप में उसके लिए कितदा दुखद साबित हो रहा था. मनःसंताप की भावना उसके चेहरे पर स्पष्ट झलक रही थी.

* *

उसने आंखें मेरी ओर उठायीं और पानी का गिलास मांगा. उसे पानी दिया गया और सम्हल कर उसने फिर कहना जारी रखा. मैं उसके पतले मोहक ओंठों से निकल रहे वाक्यों को वक्तव्य के रूप में रिकार्ड किये जा रहा था.

मैंने गुंडप्पा को पत्र लिखने प्रारंभ किये कि वह मेरा उस स्थिति से उद्धार करे. मैं अपने माता-पिता के पास लौटना नहीं चाहती थी क्योंकि ऐसा करने से उन पर बोझ और बढ़ जाता. ३-४ पत्रों के बाद मामा सौंदत्ती आये और उन्होंने कहा कि वे स्वयं एक निर्धन टैक्सी ड्राइवर हैं, अपने परिवार में मेरा भरण-पोषण नहीं सकते. मैं उनके पैरों पर गिर पड़ी और मंदिर से छुटकारा पाने के लिए गिड़गिड़ाने लगी. मने कहा कि बंबई पहुंच कर मैं कोई काम खोज लूंगी, उन पर भार नहीं बनूंगी. उनको मुझ पर दया आ गयी और मुझ बंबई स्थित अपने घर ग्रांट रोड ले आये. बंबई पहुंच कर मैंने अपने माता-पिता को सूचित कर दिया कि चूंकि मैं शर्मनाक जिंदगी से बचना चाहती थी इसलिए बंबई आ गयी हूं, उसने कहना जारी रखा. लगता था कि वह एसे व्यक्तियों के सामने अपने बोझ को हलका कर देना चाहती थी जो धन तथा इंद्रिय सुख से अधिक नैतिकता को महत्व देते हैं. उसका भार सचमुच हलका होता लगता था.

गुंडप्पा मेरे लिए किसी सुरक्षित काम की तलाश में थे और उन्होंने मुझे बंबई की सड़कों पर चलने वाले ऐसी लोभी दृष्टिवालों तथा गिद्धों से सचेत किया जो धन के लिए कुछ भी करने को उतारू हो सकते ह. एक दिन उन्होंने बतलाया कि गिरगांव में वे दारशा नाम के पारसी सज्जन से मिले हैं जिसे घर के काम के लिए एक नौकरानी की जरूरत है. गुंडप्पा मुझे उसके पास ले

गये तो उसने मुझे बतलाया कि चूंकि वे पति-पत्नी भिन्न दफ्तरों में काम करने जाते ह, मुझे उनके घर के काम के अलावा उनके एकवर्षीय पुत्र की देखभाल करनी होगी. उसने मुझ ४० रु. प्रतिमाह तथा फ्लैट म रहने तथा भोजन देने का वचन दिया. दारशा एक सुंदर युवक था और म उसकी सादगी से प्रभावित हुए बिना न रही. मैंने उसके घर में काम प्रारंभ कर दिया. उसकी पत्नी मेरा बड़ा खयाल रखती थी. मैं अच्छा खाती-पीती तथा ४० रु. पाती थी. प्रतिमाह मैं अपने माता-पिता को ४० रु. भेजने लगी. इस प्रकार दो वर्ष गुजर गये और मैं सुखी थी, उसन स्पष्ट किया.

एक मिनट के लिए वह चुप हो गयी और मुझे लगा कि उसके भीतर कोई द्वंद्व चल रहा है. मैंने उससे कहा कि वह बिना झिझक उसके साथ जो कुछ भी हुआ, कहती चले.

मुझे काम देनेवाले पारसी युवक को मेरा बड़ा खयाल रहता था. उसने मेरा वेतन बढ़ा कर ५० रु. प्रति माह कर दिया और अगले साल और भी बढ़ाने की बात कही. उसे मुझसे लगाव हो गया था. अपनी पत्नी की गैर-मौजूदगी में वह मेरा बार-बार चुंबन लिया करता और मैं प्रतिरोध नहीं कर पाती थी. कई बार हम दोनों एक दूसरे का चुंबन-आलिंगन करने लगे किंतु एक सीमा के आगे नहीं गये, उसने स्पष्ट किया.

प्रति सायं को मैं उसके पुत्र को घुमाने के लिए गिरगांव स्थित एक बगीचे में जाया करती थी. एक दिन मैं रोज की तरह बगीचे में बैठी थी और बालक पास ही खेल रहा था कि एक औरत करीब की बेंच पर आ कर बैठी और लगातार मेरी ओर देखने लगी. वह बच्चे को दुलारती-पुचकारती रही और मुझे कनखी मारती हुई उठ कर चल गयी. दो दिन बाद वह पुनः बगीचे में आयी और मेरी ही बेंच पर बैठ गयी——किसका बेटा है, यह? उसने मुझसे पूछा. मैंने बतलाया कि मेरे मालिक का है, तो उसने मेरा कन्नड़ उच्चारण भांप लिया और पूछा कि क्या मैं कन्नड़ जानती हूं. मेरे हां कहने पर वह मुझसे कन्नड़ में बातें करने लगी. उसने पूछा कि मैं पारसी के घर यहां कब से काम कर रही हूं और वह मुझे क्या देता है. बिना कोई संदेह किये मैंने उसे बतला दिया कि मैं दारशा के घर में पिछले तीन वर्षों से काम कर रही हूं और वह मुझे ५० रु. देता है. खाना-पीना तथा रहने को भी मिलता है. उसने अचरज दिखला कर कहा, इतने के लिए ही तुम वहां काम कर रही हो!

दो दिन के बाद वह फिर से बगीचे में आयी. उसके साथ एक अन्य व्यक्ति भी था. ये दोनों वही हैं जो कठघरे में खड़े हुए हैं. उसने बतलाया कि उसके साथवाला वह व्यक्ति उसका चचेरा भाई है. उसने बलपूर्वक कहा कि बंबई में मुझे अधिक रुपये मिलने चाहिए और नुकसान नहीं उठाना चाहिए. उसने आगे कहा कि मुझ जैसी लड़कियों को बंबई में घरेलू काम के लिए १०० रुपये आसानी से मिल सकते हैं और इतना तो शुरू में ही वह भी मुझे देने को तैयार है. उसके चचेरे भाई ने कहना शुरू किया कि उसकी बहन रंगू के पास अच्छी-खासी जगह है और उसका दूध का धंधा इतना अच्छा चल रहा है कि वह बड़े मजे में मुझे १०० रु. प्रति माह दे सकती है. मैंने उन्हें जवाब दिया कि मैं कुछ दिनों बाद सोच कर बताऊंगी, वह कहती गयी.

अगले ही दिन मेरे पिता का पत्र आया कि मैं १०० रु. तत्काल भेजूं ताकि मेरे बीमार भाई की दवा की जा सके. जैसे-तैसे करके मैंने १०० रु. भेज दिये और गंभीरतापूर्वक सोच-विचार करने लगी कि क्यों न रंगू के यहां काम कर लूं ताकि माता-पिता को अधिक रुपये भेज सकूं. मैं रोज की तरह बगीचे में गयी जहां मौजूदा अभियुक्त मुझे मिला. उन दोनों ने घरेलू नौकरानी के तौर पर मेरे सामने मेरे भविष्य के सुनहरे चित्र खींचे. रंगू ने जल्दबाजी में मुझे यह दिलासा भी दी कि वह मुझे अपनी बहन समझेगी और बाद में अपने धंधे में मुझे भागीदार बना लेगी. यह सुनकर मैं उनकी बातों में आ गयी. रंगू ने बतलाया कि अगले दिन १० बजे वह दारशा के फ्लैट के सामने टैक्सी में मेरा इंतजार करेगी, उसने लंबी सांस लेकर कहा.

* *

अगले दिन मैंने सड़क पर एक टैक्सी को प्रतीक्षारत पाया. मैंने रंगू को टैक्सी में बैठे पाया और अपने कपड़ों का थैला लेकर उसके पास चल पड़ी. वह मुझे फारस रोड स्थित एक मकान में ले गयी. हम पहले माले पर पहुंचे तो मैंने ३ अन्य किशोरियों को वहां पाया. क्षण भर के लिए मेरे मस्तिष्क में यह विचार कौंध गया कि हो न हो, यह वह जीवन नहीं है जिसका मुझे वचन दिया गया था. रंगू मुझे अपने कमरे में ले गयी जो इत्र की सुगंध से भरपूर था. उसने मुझे भोजन कराया और एक अलग कमरे में कुछ देर आराम करने को कहा. चाय के बाद उसने मुझे अपनी साड़ी में इस्त्री करने को कहा जो कि मैंने किया. सायंकाल मैंने तीन लड़कियों को साज-शृंगार करते देखा. उन्होंने मुझे भी वैसा ही करके तैयार होने की सलाह दी. मैंने पूछा कि किस बात के लिए तैयार होना है, तो उन तीनों ने बताया कि शीघ्र ही मुझे पता चल जायेगा. रंगू ने मुझे अपने कमरे में बुलाया जहां दूसरा अभियुक्त भी मौजूद था. दोनों ने मुझे साफ-साफ शब्दों में बतला दिया कि मुझे ग्राहकों को संतुष्ट करने के लिए तैयार होना है. और यदि मैंने उसका विरोध किया, चिल्लाने अथवा भागने की कोशिश की तो मुझे जान से मार डाला जायेगा. खलीद ने मुझे रामपुरी छुरा भी दिखलाया. रंगू ने धमकाया कि विरोध करने पर मुझे पीटकर बेहोश बना देगी किंतु मुझे अच्छी लड़की बन कर ग्राहकों से अधिकाधिक रुपये ऐंठने चाहिए. उसने वचन दिया कि वह धनीमानी ग्राहकों को ही मेरे पास भेजेगी. यह सब सुन कर मैं लगभग बेहोश हो गयी, मुझे विश्वास हो गया कि मैं एक ऐसे वेश्यालय में आ फंसी हूं जहां से मुक्ति पाना असंभव है, वह रुक-रुक कर बोलने लगी.

मुझे भयभीत करने के लिए खलीद ने दो बार मेरी कमर पर भीषण चोट पहुंचाई और मेरे गले पर छुरा

रख दिया. वह मुझ पर बराबर निगाह रखता था. एक महीने तक मुझे उस मकान से बाहर नहीं निकलने दिया गया. प्रति दिन मुझे तीन-चार कामुक व्यक्तियों की वासना का शिकार होना पड़ता था जिनमें से प्रत्येक से से रंगू १००-२०० रुपये ऐंठ लेती थी. अगले महीने मुझे एक फिल्म के लिए काम करने को बाहर जाने दिया गया किंतु खलीद छाया की तरह मेरे पीछे चाकू लिये लगा रहता था. मैं पूरी तरह असहाय बन चुकी थी. इसी प्रकार एक वर्ष गुजर गया, उसने दुखपूर्वक कहा.

एक रोज बालकनी में खड़ी मैं सड़क की ओर देख रही थी. खलीद पास ही खड़ा था. मैंने मकान के सामने एक टैक्सी को रुकते देखा. टैक्सी से ड्राइवर ने निकल कर दरवाजा खोला. यात्री ने उसे रुपये दिये और अपनी राह चल दिया. मैंने पहचान लिया कि टैक्सी ड्राइवर मेरे मामा गुंडप्पा थे. खलीद की पैनी निगाह से यह छिपा न रहा, उसने मुझे जोर की चिकोटी काट कर मार डालने की धमकी देते हुए भीतर की ओर ढकेल दिया. मैं दर्द से तिलमिला उठी. मुझे लगा कि गुंडप्पा ने मुझे देख लिया है. यह सब क्षण भर में घटित हो गया. खलीद नीचे उतर गया जब कि रंगू ने मुझे बांहों में भर लिया, मेरी कमर को सहलाते हुए, मुझे सांत्वना देने लगी. मुझे गुंडप्पा के जोर-जोर से बोलने की आवाज सुनाई दी और खलीद का कहना भी सुनाई पड़ा कि कुमुद नाम की कोई लड़की हमारे घर में नहीं है. फिर टैक्सी के चले जाने की आवाज भी सुनाई पड़ी. मुझे लगा कि मेरे भाग्य के द्वार हमेशा के लिए बंद हो गये. मेरे चारों ओर पहरा और भी कड़ा हो गया और मैं असहायावस्था की चरम सीमा को पहुंच गयी, उसने गंभीर मुस्कान के साथ कहा. उसकी आंखें आंसुओं से भर गयी थीं और वह उन्हें बरबस रोके हुए थी.

कुछ महीनों के भीतर ही अनैतिकता और इंद्रियवासना से पूर्ण जीवन का प्रभाव मेरे स्वास्थ पर दिखाई पड़ने लगा. मेरे पास शब्द नहीं कि मैं अपने पर किये गये ग्राहकों की काम-वासना के पागलपन का वर्णन कर सकूं. मैं बीमार पड़ गयी और डाक्टर बुलाया गया. अभियोगियों को लगा कि मं असहाय अवस्था को पहुंच चुकी हूं और अपने पूर्व के शारीरिक यौवन-लावण्य को पुनः नहीं प्राप्त कर सकूंगी. मैंने डाक्टर के पास जाने का हठ किया और एक बारहवर्षीया लड़की के साथ मुझे वहां जाने दिया गया, उसके चेहरे पर अनेक भाव आ-जा रहे थे और वह बोलती जा रही थी.

हां, खलीद द्वारा अपने पर किये गये एक अत्याचार को बताना तो मैं भूल ही गयी. उसे लगा कि गुंडप्पा कभी भी मेरी खोज में आ सकता ह. उसने मुझ फारस रोड से हटा कर कमाठीपुरा की एक तंग अंधेरी कोठरी में डाल दिया. वहां मुझे तीन सप्ताह तक रहना पड़ा. एक दिन दोपहर को वह छुरा और स्टैंप पेपर लेकर मेरे पास आया. उसने मुझे उस पर यह कहते हुए सही करने को मजबूर किया कि ऐसा वह एक नये राशन कार्ड के लिए करवा रहा है. बाद में मुझ पता चला कि वह दो हजार रुपये १२% ब्याज के साथ लौटाने का समझौता था, यह कहते-कहते वह अपना धैर्य लगभग खो चुकी थी.

हां, तो उस दिन मैं उस बारहवर्षीया लड़की के साथ डाक्टर के पास गयी. उसने देखभाल के बाद दवा लिख दी. मैंने बोतल लड़की को पकड़ायी कि वह कंपाउंडर से दवा ले ले जब तक कि मैं पाखाना हो आऊं. दवाखाने से निकल कर मैं एक टैक्सी में बैठ कर गुंडप्पा के घर पहुंची और उसकी पत्नी की बांहों में लिपट कर सुबकती रही. मैंने रोते-रोते उसे अपनी रामकहानी सुनाई. कुछ देर बाद गुंडप्पा मामा भी आ गये. मैं उनके पैरों पर गिर पड़ी और गुनाहगारों से रक्षा की भीख मांगने लगी. वह मुझे पुलिस थाने ले गये, वहां मेरी रिपोर्ट दर्ज करवायी गयी किंतु गुनाहगार कई दिनों तक नहीं पकड़े गये, उसने चैन की सांस ली और पैंतरा बदला.

★ ★

गुंडप्पा मुझे दारशा के घर पर मिलने को आया करते थे और दारशा को भी गुंडप्पा का घर मालूम था. गुंडप्पा के घर पहुंचने के २-३ दिन के भीतर ही दोनों अभियुक्त वहां आये और उसे धमकी देते हुए मुझे वापस भेजने की मांग की. उनका कहना था कि मैंने स्वेच्छा से वह अनैतिक धंधा अपनाया था. गुंडप्पा के इंकार करने करने पर खलीद ने २ हजार रुपये का स्टैंप पेपर दिखला कर गुंडप्पा से वह रकम १२ % ब्याज सहित वापस मांगी ताकि वह मुझे अपने चंगुल से मुक्त कर सके. गुंडप्पा ने दोनों को घर के बाहर निकाल दिया तो वे उसे यह धमकी देते हुए चले गये कि उसे जान से मार डालेंगे, उसका बंबई में टैक्सी चलाना असंभव बना देंगे, उसने लड़खड़ाती जबान से कहा और ५ मिनट का आराम चाहा क्योंकि वह थक चुकी थी.

दीवार के पास अपनी बेंच तक वह मंथर गति से पहुंची. वहां पहुंच कर कुछ देर तक रूमाल से चेहरे को हवा करने के बाद उसने एक गिलास पानी पिया और वापस लौटी.

अगले २-३ दिनों में खलीद ने गुंडप्पा से बदला लेने का बहुतेरा प्रयास किया. भयभीत हो गुंडप्पा ने मुझे मंगलूर भेज दिया जहां मैं दो महीने रही. उसके बाद वह मुझे इस मुकदमे के लिए लाये, उसने आखिरी वाक्य कहा.

अभियुक्तों के वकील की जिरह का उसने भलीभांति जवाब दिया. शरीर-व्यापार के अपने घिनौने अनुभवों का सच्चाई के साथ वर्णन करने में उसे सफलता मिली. मैंने अन्य गवाहों से भी पूछताछ की, अभियुक्तों को सुना और उन्हें जेल जाने की सजा दी.

जैसा कि जोसेफ कानरड ने कहा है: 'स्त्री होना अपने आप में एक भयंकर कठिन कार्य है क्योंकि वैसा होने पर मुख्यतया पुरुषों से ही पाला पड़ता है.' □□□

(अनुवाद: आनंद प्रकाश सिंह)

८ रागिनी, साहित्य सहवास,
बांद्रा (पूर्व), बंबई ५१

देवदासी

• शंकर राव खरात

यह एक ऐसी औरत की कहानी है, जो जवानी में फूल थी और जवानी समाप्त होते ही पत्थर बन गयी, जिसे या तो लोग ठोकर मारते हैं या जिससे बच कर निकल जाते है. . .

सड़क के किनारे बबूल का कंटीला ठूंठ खड़ा था. उसकी तार-तार-सी विरल छाया में गीता खड़ी थी. उसका चेहरा फक पड़ा हुआ था.

गीता की केशराशि पक कर सफेद हो चुकी थी, चेहरे पर झुर्रियां पड़ गयी थीं, आंखें अंदर धंस गयी थीं, गालों में गड्ढे पड़ गये थे. उसके हाथ-पैर सूख कर कांटा हो चुके थे.

कभी देवता के अक्षत्-कंकू-हल्दी से भरा गीता का सिर आज सफेद पड़ गया था. उसके हाथों की अगुलियों की अंगूठियां सरक-सरक कर गिर पड़ती थीं. पैर के घुमावदार तोड़े टूट चुके थे. कमर का बंद पता नहीं कब का खो चुका था. कानों के छेद सूने पड़ गये थे. कर्णफूल कहां गिर गये, पता नहीं. गीता के गले में अब बची थी तांबे की मणियों की डोरी, जिससे उसके देवदासी होने का पता चलता था. आज उसके शरीर पर तार-तार हुई झीनी काली साड़ी अपना करुण अतीत बता रही थी. कभी उसके शरीर पर खिलने वाला बेशकीमती, जरी से भरा हुआ शाल और गुलाबी-आसमानी रंग की जरी वाली साड़ी का पता नहीं था. उसके गोरे शरीर पर कसमसाती धारवारी चोली का भी पता नहीं था. आज उसके शरीर पर सफेद ढीली-ढाली अंगरखी झूम रही थी.

रस भरे ओठों के गुलाबी रेशे गायब हो चुके थे. आज उसके ओठों पर पपड़ियां पड़ चुकी थीं.

★ ★

भीषण गर्मी. सब कुछ झुलस रहा था. पक्षी पेड़ों की छांह में छिपे थे. पशु पेड़ों की ओर चल पड़े थे. लोग भी पेड़ों के नीचे छाया में बैठे थे.

केवल गीता ही उस सूखे-कंटीले बबूल के पास खड़ी पथराई आंखों से देख रही थी. उसके पास भूखा कुत्ता भी था, जो पेड़ के तने की छाया में बैठा था.

गीता की निश्चल-रोती आंखें टीले पर खड़े उस मंदिर पर लगी थीं. उसकी आंखें मंदिर के अहाते में ही तैर रही थीं. उसके चारों ओर चक्कर लगा रही थीं. उस तपती दुपहरी में उसकी आंखें तप रही थीं.

080583
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

--पांडु! गीता का साथी 'वाध्या' आज उसे कहीं नहीं दिख रहा था, जिसकी वह घंटों राह ताका करती थी. कभी बीच में कौआ बोल पड़ता तो कहती--वाध्या! वाध्या!! मैं भी आती हूं. ठहर! आज हमें रात भर जागना है!

गीता ऐसे ही बोला करती---बका करती. और फिर उसके अंग में 'देवी' का सचार होता.

. . .और एकाएक गीता के मन में क्या आया, किसे मालूम! उसने आनन-फानन में साड़ी का पल्लू कमर में मजबूती से खोंसा और ऐसे ही कुछ बजाने को हाथ हिलाया---फिर क्या था! वह थिरक उठी. उसने आवाज दी--वाध्या! बजा! बजा!! बोल! और गीता को दूर से आती आवाज सुनायी दी--- थिरक! थिरक! देवी, थिरक!!

--होने दे. अक्षत गुलाल उड़ने दे! येलकोट देवस्थान!

--येजुरी की जयमल्हारी, येलकोट देवस्थान. . . गीता उस बबूल के पेड़ के नीचे से निकली और रास्ते पर ताल-नृत्य करने लगी--और बबूल के पेड़ पर कौआ कांव-कांव बोल उठा. . .

★ ★

गीता को रास्ते पर थिरकते हुए देख कर राह जाते हुए अधेड़ पटवारी ने ताना कसा--अरे गीता, तुझे इस बुढ़ापे में क्या सूझी है? और पास के हल्दी-कंकू वाले की दुकान के अंदर जा कर और भी बड़बड़ करने लगा--अरी मैया री, मैया! गीता पगला गयी है. जरा देखो तो उसका पागलपन!

पटवारी के व्यंग्यबाण कान में पड़ते ही गीता फुफकार उठी--क्यों रे पटवारी के बच्चे, तुझे पाड़े का आम चाहिए? आता है मेरे पाड़ का आम उतारने? अब कैसे-कैसे नाक-आंख सिकोड़ता है!

गीता की यह झिड़की कान में पड़ते ही पटवारी वहां से हटा--- उसे लगा. . .यह गीता मुझे भी पागल बना देगी.

और पटवारी को चलते देख गीता उसके पीछे हो ली. पटवारी बड़े जोर से बोल उठा-- ए बुड्ढी! मरे पीछे क्या आती है!

इतना सुनते ही गीता उस पर बमक पड़ी---क्यों रे भड़वे! मेरी जवानी में तो तू कुत्ता बना हुआ था! अब मैं बुढ़िया हो गयी?

और तलाठी इतना सुनते ही वहां से उलटे पांव भाग पड़ा. . .

★ ★

गीता मंदिर की सीढ़ियों के पास आम के पेड़ के नीचे बैठ गयी.

आम में बौर आया था. उसकी मादक सुगंध वातावरण में फैल रही थी. आम के बौर पर मधुमक्खियों और भौंरों का दल टूट पड़ता था, झुंड-का-झुंड चला आ रहा था.

गीता की दृष्टि सहज ही बौर पर पड़ी और वह मन-ही-मन बुदबुदायी--अरे, मेरी जवानी भी तो कभी ऐसे ही बौरायी थी! कभी मुझमें भी यौवन का उभार आया था! मेरी मदभरी जवानी के दिनों में ऐसे ही पागल लोगों की मेरे दरवाजे पर भीड़ लगा करती थी. मेरे पीछे भी ऐसे ही 'भौंरों' का गुंजन हुआ करता था.

बौराये आम की बहार देखते ही बनती थी. आम्र बौर की मीठी-मीठी, मंद-मंद गंध से सारा वातावरण गमक रहा था. . .

एक, दो, तीन . . .सारी-की-सारी तितलियां, मधुमक्खियां! . . .

देखते-देखते गीता हंस पड़ी और फिर कुछ बोल उठी--मेरे दरवाजे पर भी देवी का कंकू-गुलाल उड़ा करता था. भक्तों की भीड़ लगा करती थी. बैठने को जगह नहीं रहती थी. भक्तों की आंखें मुझ पर अटक जाती थीं, उनमें कुछ जवान, कुछ किशोर और कुछ अधेड़ भी होते. मुझ पर कंकू-गुलाल-हल्दी उड़ाते वक्त उनकी आंखों में एक हविस होती. उनके मन में कितने मनसूबे हुआ करते! मेरे उभरते रूप-यौवन पर सभी भौंरों की तरह मंडराते!... सच! मुझ पर पैसों की बौछार होती. मुझे लगता ये भौंरे नहीं, ये वास्तव में देवी के भक्त हैं. इन्हें भगवान के दर्शन चाहिए-- इसीलिए मेरी तरफ दौड़ रहे हैं!... हां, मैं देवदासी, मैं ही उन्हें भगवान के चरणकमलों तक ले जाया करती. भगवान का नाम रटा करती. जय मल्हार, जय मल्हार! . . .येलकोट! इस तरह भगवान के नाम का जयजयकार होता. मैं और वाध्या आगे-पीछे और सारे भक्तों की भीड़ पीछे-पीछे! इस तरह बाजे-गाजे के साथ भगवान के दर्शन की यात्रा निकला करती.

. . .और लोग मेरी तरफ मुंह बाये देखते रहते. रास्ते के दोनों ओर भीड़-ही-भीड़. उनकी आंखें मुझ पर गड़ी होतीं--और लोग मुझ पर मुग्ध हो कर हल्दी-कंकू का 'भंडारा' उड़ाते.

इस 'भंडारे' की पीली बौछार से मेरा चंपा खिल उठता. और फिर देवस्थान के अहाते में मुझ पर देवी का 'उन्माद' चढ़ता और वाध्या को भी 'देवी' का प्रमाद भरता. उसके हाथ दिमड़ी पर पड़ते, मेरे पैर भी थिरक उठते. . . और फिर थकने का नाम न लेते. . . दिमड़ी और मेरे पैरों की ताल दोनों एक हो जाती! . . .

---थिरक! और थिरक!! देवदासी! बीच-बीच में ऐसी आवाज उठती. मैं उस उड़ते कंकू-गुलाल में मस्त हो कर नाचती. मुझ पर पूरा नशा चढ़ जाता. . . और वाध्या भी अपनी सुध-बुध खो बैठता. . .

हमारे शरीर में देवता का 'वास' होता. जय मल्हार! जय मल्हार!!

मेरा अंग-अंग पसीने से सराबोर हो उठता. सिर पर से पसीने की धारा बह निकलती. और मैं कमर में खोंसा आंचल निकाल कर पसीना पोंछती. मैं निढाल हो जाती, पर मुझे ऐसा लगता जैसे सब कुछ मिल गया हो. और तभी कोई फिर मुझ पर 'भंडारा' फेंक कर मुझे सराबोर कर देता.

मेरे चारों ओर यात्रियों की भीड़ लग जाती. उनकी आंखें मुझ पर गड़ी होतीं. उन आंखों में मुझे मादकता के चिह्न स्पष्ट दिखते. हविस की आग जलती दीखती!

गुलमोहर-सी मैं खिल उठती!

रंग-बिरंगी 'तितलियां', 'भौंरे' चारों ओर जैसे गुनगुना रहे थे, गुंजन कर रहे थे. फूलों की सुगंध उन्हें मदमत्त कर रही थी. पराग का छक कर पान करते भौंरों की मस्ती देखते ही बनती.

आम्र-बौर का पता नहीं!

भौंरे आकाश में उड़ कर गायब हो गये. और गीता फिर अचानक कुछ बुदबुदा उठी——

अरे मैं देवदासी,
लेकिन मुझे पुरुषों ने लूटा!
पत्थर को देवत्व मिला,
लेकिन मानव पत्थर हो गया!
सब कुछ. . .उलटा न्याय!

गीता ऐसे ही बड़बड़ाये जा रही थी. और फिर एकाएक उसने आसमान की तरफ नजर उठायी और जोर से चीख पड़ी ——वाघ्या! अरे पांड्या!! अरे तू भी मुझे छोड़ गया ——मैं अकेली ही रह गयी. . .अकेली.

गीता भावाभिभूत हो कर फिर बबूल के पेड़ के पास आयी. उसने फिर आकाश की ओर देखा. उसे कांटे-ही-कांटे दिखायी दिये. सफेद और नुकीले कांटे. सारा बबूल कांटों से भरा हुआ था. गीता ने रास्ते की ओर पथरायी आंखों से देखा. उसका चेहरा सफेद पड़ गया था. उसने सामने देखा. वह लजा गयी और बोल उठी——सुना जी, मैं अब मां बनने वाली हूं, दो महीने चढ़ गये.

——चल हट, बच्चा-वच्चा कुछ नहीं चाहिए! एक रोबदार और कड़क आवाज गूंज उठी.

——नहीं मालिक, ऐसा मत कहिए! मैं इस संसार में अकेली हूं, मुझे साथी मिल जायेगा!

——रंडी! मेरा साथ होते हुए तुझे और किसके साथ की जरूरत पड़ गयी! वह रोबीली आवाज फिर गूंज उठी.

——अजी लड़के की! पेट के बच्चे की!

——अरे! पागल पागल. . .इस जवानी का आनंद ऐसे ही लेना चाहिए.

——देवस्थान में ऐसा कहते हो?

——हां-हां, तेरी जवानी ही भगवान का 'भंडारा' है.

——लेकिन मेरे प्रियतम, भंडारा खत्म होने पर मेरे हाथ क्या लगेगा?

——यह सब कुछ नहीं! भगवान का भंडारा भगवान को ही अर्पित होना चाहिए!

और गीता को अपनी सुध आयी. . .

——भगवान संतान देता है!. . .और मनुष्य संतान मारता है!. . .हे भगवान, यह क्या!. . .अंत में मैं अकेली!. . .

और गीता के मन में अचानक जाने क्या आया. वह बबूल के नीचे से एकदम उठी और दौड़ती हुई ऊपर की ओर चली, जहां भगवान का मंदिर था.

वह रोती जा रही थी——कुछ बुदबुदाती जा रही थी. उसके थके हुए शरीर में जैसे जान आ गयी हो! उसका खून खौल उठा था. वह चिल्लाती जा रही थी. . . .

——अरे, देखो!. . .गीता पागल हो गयी.

——कुछ मत पूछो, उस रंडी के जवानी के दिन भी क्या थे!

——एक, दो, तीन. . .रास्ते पर फिर कोई ताल दे रहा था. गीता के कानों से फिर ये बोल टकरा रहे थे. उसने पागलपन की स्थिति में चारों ओर एक नजर दौड़ायी और खिलखिला कर हंस पड़ी. और रास्ते पर बजते बोलों की खिल्ली उड़ाते हुए वह चीख उठी——अरे, मैं पागल नहीं!. . .पागल तो तुम हो! तुम्हारा मानव-हृदय पत्थर हो गया!

——चल हट, कहीं मनुष्य भी पत्थर होता है!

——हां, हां! मनुष्य भी पत्थर बन जाता है.

——तभी पत्थर में देवत्व जागता है!! औरगीता इसी विह्वल अवस्था में मंदिर की सीढ़ियां चढ़ती जा रही थी. . .

★ ★

गीता देवस्थान के अहाते में आ गयी. देवस्थान का अहाता, वाघ्या, देवदासियों और भक्तों से ठसाठस भरा था. सारा देवस्थान कंकू-गुलाल-हल्दी से भर उठा था. मदमाती जवान देवदासियों के नृत्य से सारा वातावरण रंगीन हो उठा था.

उनके चारों ओर खड़े भौंरे आंखों से यौवन-मदिरा का रसपान कर रहे थे. वाघ्या ताल देने में मस्त था.

लेकिन, गीता के लिए वहां स्थान नहीं था. उसका ललाट किसी ने 'भंडारे' से नहीं भरा. उसे किसीने पूछा तक नहीं. यह बात उसे तीर-सी लगी. वह छटपटा उठी.

वह निराश हो उठी! पागल हो गयी. क्रोधावेश में चिल्ला उठी——हे भगवान, तू भी मुझे भूल गया! तेरा नाम ले कर मैंने सारा जीवन बिता दिया. तेरे नाम से मैंने अपना रोम-रोम भरा. हे भगवान, हे भगवान, तू मेरे लिए क्यों मौन हो गया! आदमी पत्थर बन गया. पर तुझमें तो देवत्व है!

गीता का शरीर भयंकर क्रोधाग्नि में जल रहा था... वह उस भीड़ में से चीखती-चिल्लाती निकली——मनुष्य पत्थर! सभी पत्थर! मैं भी पत्थर!

गीता चिल्लाती हुई सीढ़ियों से नीचे उतर रही थी. दौड़ रही थी. हाथों से पत्थर उठा रही थी. . . लोगों पर फेंक रही थी.. . .भगवान पर फेंक रही थी. . . चिल्ला रही थी. . .भाग रही थी. . .उसे सभी ओर पत्थर ही पत्थर दिख रहे थे. . .वह बेतहाशा भागी जा रही थी.

दौड़ते-दौड़ते वह ठोकर खा कर सीढ़ियों से गिर पड़ी. उसका सर फट चुका था. . . .

खून से लथपथ . . .ऊपर पत्थर. . .नीचे पत्थर. . .

□□□

(अनुवाद: चंद्रमौलि शर्मा)

उपकुलपति, मराठवाड़ा विश्वविद्यालय,
औरंगाबाद, महाराष्ट्र

• मधु मंगेश कर्णिक

महाराष्ट्र में नाम पूछने पर अपने नाम के साथ पिता का नाम भी बताने का प्रचलन है. किंतु देवदासी ही एक-मात्र इसका अपवाद है. कस्तूरी से डिप्टी साहब ने स्कूल में जब उसका पूरा नाम पूछा तो वह कांप गयी. . . प्रस्तुत कहानी में देवदासी प्रथा से संबंधित रातियों का भी मार्मिक चित्रण है.

●

डिप्टी साहब हमारे स्कूल में मुआइने के लिए आने वाले थे. उसके एक दिन पहले ही मास्टर साहब ने हम सब विद्यार्थियों को साफ-सुथरे कपड़े पहन कर और अच्छी तरह से नहा-धो कर स्कूल में आने का आदेश दिया था. विशेष रूप से संभाल कर रखे हुए कपड़े पहन कर हम लोग स्कूल पहुंच गये थे. ओटवनेकर साहब का लड़का पद्मनाभ तो जवान पुरुष जैसी खूब लंबी पतलून पहने हुए था. बड़े ठाठ से उसने अपनी कमीज पतलून के अंदर दबायी थी. लडकियां तो खूब बन-ठन कर आयी थीं. भगवान गणेश की बगल में बैठी हुई देवी गौरी जैसी हर एक लड़की सजी-धजी दिखायी दे रही थी.

समय पर डिप्टी साहब आ गये. बांबुलीकर मास्टर साहब जान हथेली पर ले कर उनकी जी-हुजूरी में लगे हुए थे. मेरा ध्यान आकृष्ट किया डिप्टी साहब से अधिक उनके साथ वाले चपरासी ने. स्वच्छ-सफेद कड़क इस्त्री के कपड़े पहने हुए और कंधे से कमर तक लटके हुए लाल पट्टे के कारण वह बहुत रोबीला दिख रहा था. मुझसे चुप न रहा गया तो पास बैठी हुई कस्तूरी से मैंने कहा---ए कस्तूरी, उस तरफ देख ना. साहब के साथ वाला वह लाल पट्टे वाला चपरासी कितना सुंदर है!

कस्तूरी का भी ध्यान उसी पर केंद्रित था. यह देखते हुए मेरा मन भी आनंदित हुआ. उसको एकटक निहारते हुए कस्तूरी ने कहा---जरा उसके कोट के बटन तो देख. चांदी जैसे चमक रहे हैं.

आगे मैं कस्तूरी को बतलाने वाला ही था कि राजा पार्टी वाले लोग ऐसे ही चमकदार कपड़े पहनते हैं पर उतने में डिप्टी साहब ने हमारी कक्षा में कदम रखा. बांबुलीकर मास्टर साहब की आंखों का इशारा पाते ही पहले नंबर का छात्र तपाक से खड़ा हो गया और कर्कश आवाज में दोहराने लगा---एक, दो. . .हम पांचवी कक्षा के सभी विद्यार्थी खड़े हो गये. हलके-से मुसकराते हुए डिप्टी साहब ने कहा---बैठ जाओ, तुम सब!

मैं तो डर रहा था कि कहीं डिप्टी साहब गणित के सवाल न पूछने लगें. साक्षात मृत्यु से भी मैं उतना नहीं डरता जितना गणित से. पर मेरी बगल में बैठने वाली कस्तूरी गणित के मुश्किल सवालों का हल मुझे बड़ी आसानी से ढूंढ़ देती. गणित के सवाल उसके लिए बायें हाथ का खेल था. पलक झपकने की देर कि कस्तूरी के पास सवालों के जवाब तैयार रहते.

परंतु डिप्टी साहब ने गणित के सवाल पूछे ही नहीं. वह तो मास्टर साहब से ही बातें करने में व्यस्त हो गये थे. सहसा अपनी नजर हम सब विद्यार्थियों पर डालते हुए, वह कस्तूरी की तरफ एकटक देखने लगे. काफी देर उसे निहारते ही रहे. पता नहीं उनके मन में क्या-क्या विचार आये होंगे. सहसा वह आगे बढ़े और बड़े प्यार से उन्होंने कस्तुरी से पूछा---बेटी! बताओ तो तुम्हारा नाम!

तपाक से खड़ी हो कर कस्तूरी ने अपनी मीठी आवाज में बताया---कस्तूरी आचरेकर.

मुझे लगा कि डिप्टी साहब उसकी आवाज की मिठास पर ही बेहद खुश हो गये थे. हंस कर ममता भरे स्वर में उन्होंने कहा---वाह-वाह! नाम तो बड़ा प्यारा है तुम्हारा! पर हमेशा नाम पूरा बतलाना चाहिए; है ना? क्या है तुम्हारा संपूर्ण नाम, बेटी?

हाय! हाय! डिप्टी साहब ने भी अनजाने ही मेरी कस्तूरी से वह प्रश्न पूछा, जिससे वह डरती थी, उसका

कस्तूरी

तर्मन जिससे दहल जाता था. उसी प्रश्न को ले कर कूल के सारे बदमाश लड़के उसे छेड़ा करते, उसका जाक उड़ाया करते. और फिर कस्तूरी की आंखों में ारुण व्यथा के आंसू चमक उठते.

डिप्टी साहब का सवाल सुन कर कस्तूरी की बान पर घबराहट से जैसे ताला पड़ गया. हीनता की ावना से उसकी गरदन नीचे झुक गयी और सके गोरे गाल शर्म से लाल हो गये. सहमी-ी वह केवल अपने पांव के अंगूठे पर नजर ड़ाये खड़ी रही. उसका सारा शरीर कांप हा था.

परतु मास्टर साहब ने स्थिति को ंभालते हुए कहा---साहब, स्कूल के ाजिस्टर में उसका नाम केवल कस्तूरी चरेकर ही लिखवाया गया है. इन लोगों े समाज में पिता का नाम लगाने की प्रथा ी नहीं है.

मास्टर साहब का वह उत्तर सुन कर डिप्टी ाहब भी कुछ संभले. ममता से उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा---कोई बात नहीं! बैठ जाओ, बेटी. भावावेग से उनकी आवाज भी कुछ भारी-सी निकली थी.

* *

उस प्रसंग के बाद कस्तूरी चार दिन स्कूल आयी ही नहीं. इसीलिए शायद कि लड़के उस पर ऐसे कटाक्ष करते, छींटे कसते और जीवन की ऐसी आलोचना करते कि बेचारी का सांस लेना भी दूभर हो जाता. अच्छा ही हुआ, वह स्कूल नहीं आयी. लेकिन उन चार दिनों में मैंने कितनी दारुण व्यथा सही, यह केवल मेरा ही मन जानता है.

कस्तूरी उमर में मुझसे कुछ बड़ी थी. तेरह-चौदह साल की कस्तूरी हमेशा मोतिया या हलके हरे रंग का

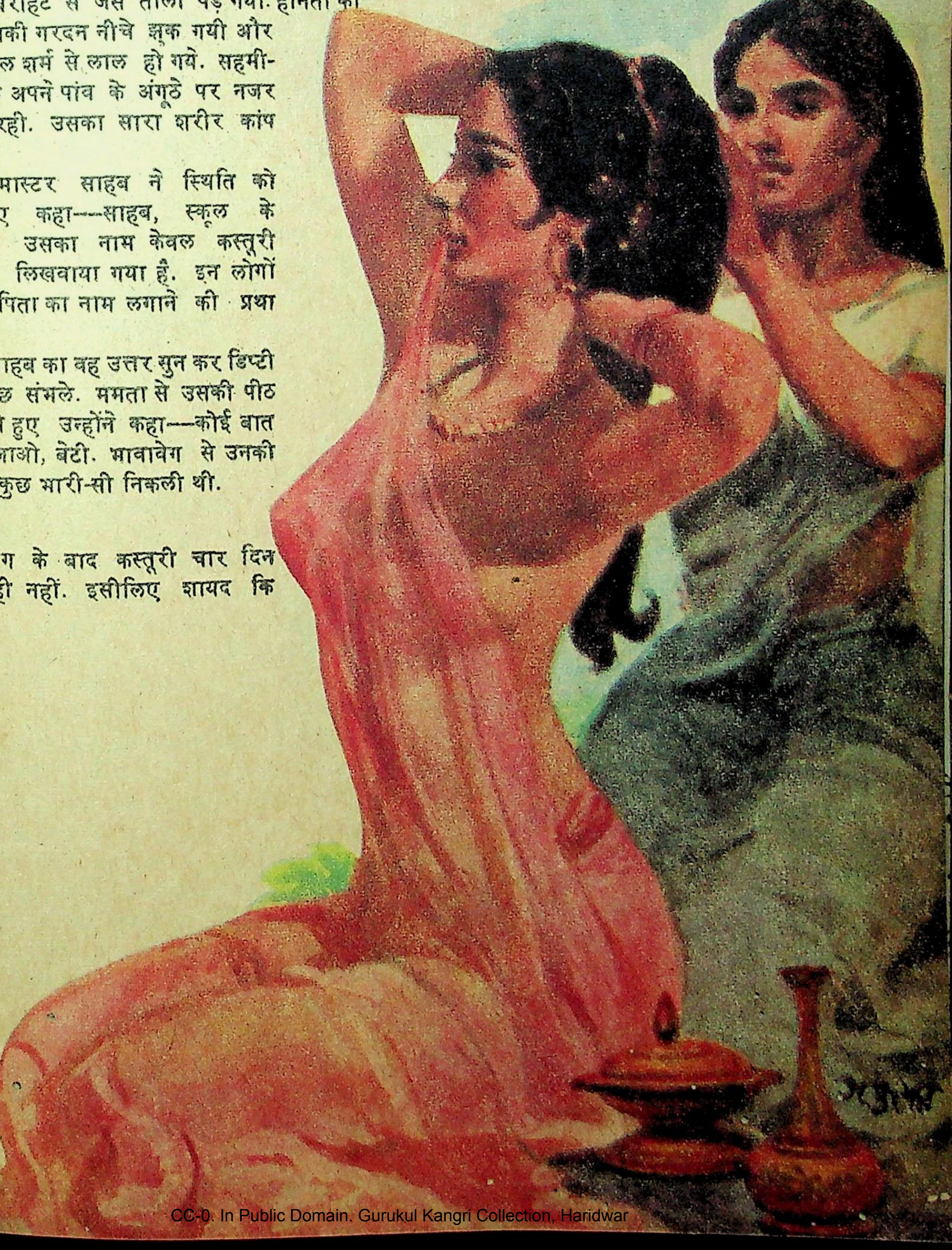

लहंगा और चोली पहनती. उसने लंबे-लंबे बालों में हमेशा कोई न कोई सुंदर फूल लगा रहता. जब मंद-मादक सुगंधवाले रंगीले नाजुक फूलों का पीला गजरा लगाये हुए कस्तूरी स्कूल आती तो घंटों उसकी वह मनोहारी छवि निहारते रहने के लिए मन ललच जाता. कस्तूरी गोरी और सुंदर तो थी ही पर शरीर से भी अच्छी-खासी तंदुरुस्त थी.

पर बेचारी की कोई सहेली नहीं थी, स्कूल में भी लड़कियां उसे अपने गुट में शामिल नहीं करती थीं. हमेशा कस्तूरी अकेली ही दिखायी देती थी. मैं ही एक ऐसा था जो उसके आसपास मंडराता रहता. गायन कला का उसे काफी अभ्यास था. नाटक-सिनेमा के बढ़िया गाने जब वह मुझे गा कर सुनाती तो उसकी सुरीली आवाज की मिठास में बंधा हुआ मैं मंत्र-मुग्ध-सा बैठा रहता. दुनिया से बिल्कुल बेखबर!

कभी-कभी अपने बस्ते में छिपा कर वह मेरे लिए एकाध लड्डू ले आती और आसपास जब कोई अन्य विद्यार्थी नहीं होता तो धीरे-से लड्डू मेरी हथेली पर रखकर कहती——जल्दी से खा ले.

कस्तूरी को मुझसे बड़ा लगाव था पर हमारी दोनों की वह दोस्ती स्कूल में उपहासपूर्ण मजाक का विषय बन गयी थी. स्कूल के सभी विद्यार्थी हम दोनों पर फब्तियां कसते, व्यंग करते और उपेक्षा से हम पर हंसते रहते. देवदासी की लड़की से मित्रता रखने के कारण अन्य सभी लड़के मुझसे भी दूर भागते. मेरा भी कोई दोस्त नहीं था.

एक दिन स्कूल की पढ़ाई समाप्त होने के बाद जब मैं घर की तरफ जा रहा था तो पांडू म्हसकर ने मुझे रास्ते में ही रोककर कहा——अरे ए बाम्हन के छोकरे, उस अपनी दोस्त, देवदासी की लड़की कस्तूरी को मेरी यह चिट्ठी दे देगा क्या? मुझे लालच देते हुए वह आगे बोला, इतना मेरा काम कर देगा तो देख लेना बाजार के अपने होटल में तुझे ढेर सारी जलेबी खिलाऊंगा. करेगा ना यह काम?

पहले तो मैं कुछ हिचकिचाया मगर फिर मुझे अपने आप पर बड़ा गर्व हो आया. यह सोचकर मेरी छाती अभिमान से फूल गयी कि पांडू म्हसकर ने आगे बढ़कर मुझसे बात की और अपना निजी काम करने को कहा. पांडू म्हसकर हमारे स्कूल में सातवीं कक्षा का विद्यार्थी था. स्कूल में पढ़नेवाले सभी छात्रों से वह उमर में बड़ा था और सब पर अपना रौब जमाये रखता. मैंने कहा ——हां दे दो, चिट्ठी. पहुंचा दूंगा कस्तूरी के पास.

कागज का एक छोटा-सा गोला मेरे हाथों में थमाते हुए पांडू ने हिदायत दी—— दूसरे किसी के हाथ में मत देना. समझे ना? और हां कस्तूरी का जवाब मुझे ही आकर बताना. मैंने हामी भर दी, वैसे ही पांडू वहां से चला गया. फिर भी जाते-जाते चिल्लाकर उसने आवाज दी——ए, रात को दुकान पर जरूर आना. जलेबी खिलाऊंगा.

मुझे जो खुशी हो रही थी पांडू की अपनेपन से की हुई बातों की, जलेबी मिलने की उतनी नहीं.

वहां से सीधे मैं कस्तूरी के घर की तरफ मुड़ा. उसके घर जाना मुझे बेहद अच्छा लगता था. कलेश्वर मंदिर के पिछवाड़े उसका घर था. लाल मिट्टी से पुती हुई उसके घर की दीवारें और उनपर खिंची हुई सफेद लकीरें मन को अनायास ही आकर्षित कर लेतीं. लीपापोता स्वच्छ आंगन और उस के बीच पूजा के लिए तुलसी चौरा. सुन हरे पीले-पीले फूलों से लदा हुआ दरवाजे के सामने चंपा का ऊंचा पेड़ और अहाते के फाटक पर कटहल के दो विशाल वृक्ष. सब कुछ मन को बड़ा लुभावना लगता था.

अंदर से भी घर देखने लायक था. दालान में पीतल की मजबूत सांकल से लटकता हुआ एक नक्काशीदार झूला था. पास ही में चमकता हुआ पीतल की महीन सलाखोंवाला पिंजड़ा और उसमें लगी हुई छोटी डंडी पर हिलोरें लेता हुआ सफेद चोंचवाला हरा तोता लगातार बोलता जा रहा था ——ए कस्तूर! कस्तूरी दाल दे, मुझे खाने को अमरूद दे. दीवारों पर ढेर सारी तस्वीरें टंगी हुई थीं. एक में एक राजा को उसकी सात रानियां स्नान करवा रहीं थीं और महल की खिड़की में से राजमाता बड़े कौतूहल से उस दृश्य को देखे जा रही थी. दूसरी तस्वीर में अपनी गोद में नन्हीं बच्ची को लेकर खड़ी एक सुंदर युवती के सामने एक दाढ़ीवाला ऋषि ऊपर उठे हुए अपने दाहिने हाथ से अपना मुंह ढांपकर नहीं-नहीं कह रहा है. यह सब देखने के लिए मुझे कस्तूरी के घर जाना बहुत भाता था. लेकिन जब कभी भी मैं उसके यहां जाता, मुझे बड़ी डांट-फटकार सुननी पड़ती.

पांडू की दी हुई चिट्ठी कस्तूरी को देनी थी और यह जोरदार बहाना था उसके घर जाने के लिए.

* *

मैं उसके घर पहुंचा तो उसकी मां और नानी ही दिखायी दीं. कस्तूरी की मां उसी की जैसी सुंदर थी. मेरी मां से तो वह उमर में बहुत ही कम लगती थी. मैंने जब पूछा कि कस्तूरी कहां है, तो उसकी मां ने बताया ——बाजार से ताजी बांगड़ा मछली खरीदकर लाने गयी है.

कस्तूरी की नामौजूदगी में मुझे अपने घर लौट जाना चाहिए था पर पता नहीं क्यों मैं वहीं झूले पर बैठा रहा. हमारे घर के झूले से अधिक मुझे कस्तूरी के यहां का झूला पसंद था. लाल पॉलिश पर पीतल से नक्काशी का चमकदार काम किया हुआ वह झूला बड़ा लुभावना था. झूलते समय उसमें से निकलनेवाली 'कुंई ऽ ऽ कुंई ऽ ऽ' की ध्वनि भी अनायास मन को मोह लेती.

थोड़ी देर बाद कस्तूरी आ गयी. कागज में लपेटी हुई मछली अपनी नानी के हाथ में सौंपकर, उसने हाथ धोये. फिर मेरे पास झूले पर बैठ गयी. हंसते हुए उसने पूछा —— क्यों रे, गणित के सवाल पूछने हैं क्या?

मैंने उससे कहा —— नहीं तो. आज और ही कुछ काम है. प्रश्नार्थक दृष्टि से उसने मेरी तरफ देखा और मैंने उत्तर दिया, सातवीं कक्षा में पढ़ने वाले पांडू म्हसकर को तो पहचानती हो ना. उसी ने यह चिठ्ठी दी है. जेब से निकालकर मैंने वह चिट्ठी उसे दे रहा था कि पता नहीं कैसे उसकी मां वहां आ पहुंची.

उसने पूछा——किसकी चिठ्ठी है? किसने दी है?

डरते-डरते ही मैंने उसे बताया कि पांडू म्हसकर ने कस्तूरी को देने के लिए यह चिट्ठी दी है. उसकी मां गरजकर बोली——पढ़कर तुरंत सुना, कस्तूरी!

कस्तूरी ने कागज के उस गोले को खोला और एक-एक शब्द अपने आप ही पहले पढ़ लिया. फिर गुस्से से लाल-पीली होती हुई वह चिल्लायी — बदमाश, पाजी कहीं का! अपनी मां की तरफ वह चिट्ठी फेंककर वह बोली, इसीलिए मैं बारबार तुझे कहती हूं कि मुझे इस स्कूल में पढ़ना ही नहीं है. पर तू मानती ही नहीं.

कस्तूरी की मां ने मुझे चिट्ठी दे कर कहा—तुम पढ़कर सुना दो. मैंने चिठ्ठी पढ़कर सुना दी. आड़े-टेढ़े अक्षरों में और बेहद अश्लील भाषामें लिखा हुआ वह एक गंदा प्रेमपत्र था. कम उम्र का होने के कारण उस समय उस प्रेमपत्र के गंदे ध्येय की मुझे कल्पना नहीं हो पायी. मैं तो केवल इतना ही समझ पाया था कि कस्तूरी को छेड़ने के लिए ही पांडू ने वह प्रेमपत्र भेजा था.उस पत्र द्वारा पांडू ने उसे पूछा था कि कलेश्वर के मंदिर की अटारी पर मुझे मिलने आओगी क्या? उसने उसे प्रलोभन भी दिया था कि तुम वहां मेरे पास आओगी तो नयी फैशनवाली साड़ी तुम्हें उपहार में दूंगा.

कस्तूरी की मां शेरनी जैसी दहाड़ती हुई बोली—उस नालायक, हरामखोर पांडू को कह दे जाकर कि हम देवदासियों की भी इज्जत है, हमारे अपने खास रस्म-रिवाज हैं और व्यवहार के हमारे अपने निजी तरीके हैं. हम लोग देवदासी जरूर हैं पर कमर की साड़ी छोड़ कर सर पर नहीं लपेटते. उसे समझा दे कि मेरे से टक्कर लेनेकी जुर्रत न करे. नतीजा खतरनाक होगा. समझ गया ना? तो जा अब तू!

मैं जो वहां से भाग निकला तो घर पहुंचकर राहत की सांस ली. कस्तूरी दूसरे दिन स्कूल नहीं आयी. तीसरे दिन नहीं आयी और बाद में फिर कभी आयी ही नहीं.

पांडू म्हसकर ने मुझसे असलियत जानने की बहुतेरी कोशिश की. जलेबी और भजिये खिलाने का लालच भी दिया. जब वह मुझे किसी भी तरह फुसलाने में सफल न हुआ तो उसने मुझे दहशत भी दी कि मार-मार के मेरी हड्डी-पसली एक कर देगा. पर मैं जरा भी डांवाडोल नहीं हुआ. मैंने उसके हर सवाल का एक ही जवाब दिया—तुम्हारी दी हुई चिट्ठी कहीं खो गयी.हो सकता है कि पतलून की जेब में रह गयी हो और धोने में छुट गयी हो.

उसके बाद भी पांडू ने एक बार फिर कस्तूरी को देने के लिए मुझे चिट्ठी देने का यत्न किया पर मैंने कहा—मैं भई उसकी मां से बहुत डरता हूं.किसी भी हालत में और किसी भी कीमत पर मैं उनके घर नहीं जाऊंगा. फिर पांडू ने कभी मुझे परेशान नहीं किया.

कस्तूरी भी कहीं नजर नहीं आयी. स्कूल के रजिस्टर से उसका नाम हटा दिया गया. घर पर भी वह दिखायी नहीं दी. चार-छः बार मैं उसके घर के आसपास चक्कर भी काट आया पर उसकी आहट तक न मिली. एक दिन सारा साहस बटोर कर मैंने उसकी मां से पूछ ही लिया—आजकल कस्तूरी नहीं दीखती!

गर्दन गर्व से ऊपर उठाते हुए उसकी मां ने कहा—बेलगांव उसे उसके मामा के यहां भेज दिया है. अब वह वहां अंग्रेजी पढ़ती है. वहां का स्कूल बढ़िया है.

कस्तूरी कुड़ाल गांव से चली गयी थी. पांचवीं कक्षा के बाद मेरे घरवालों ने भी मुझे अंग्रेजी पढ़ने के लिए बंबई भेज दिया. धीरे-धीरे मैं कस्तूरी को भूल-सा गया. उसकी मनोहारी मूर्ति मेरे मानस-पटल से गायब हो गयी.

हर गर्मियों की छुट्टियों में मैं अपने कुड़ाल गांव पहुंच जाता. कस्तूरी भी छुट्टियों में गांव आ जाती थी. अक्सर मैं उसे मिलने उसके घर ही चला जाता. शाम को हम दोनों गवलदेव के जंगल की तरफ घूमने निकल जाते. सुप्रसिद्ध उपन्यासकार खांडेकर के नये-नये उपन्यासों पर चर्चा भी छिड़ जाती. कस्तूरी खांडेकर-साहित्य की अनन्य उपासक थी. उसी ने तो मेरा ध्यान उपन्यासों की तरफ आकृष्ट किया था.

बातों के दरम्यान एक शाम अचानक बड़े ही व्यथित अंतःकरण से वह बोल पड़ी—सच, मेरा मन जिंदगी के इस घेरे के बाहर निकल जाने को करता है—इस देवदासी की जिंदगी के घेरे के बाहर. अब तो 'देवदासी' शब्द से मुझे घृणा होती है. इस नाम से जीने की मुझे शर्म लगती है पर...

मैं उसके भावविह्वल शब्द केवल सुनता रहा. मैट्रिक की परीक्षा देकर गांव आया हुआ मैं, क्या कह सकता था? उसके भविष्य के बारे में कुछ सोचने की या उसकी जिंदगी के बारे में कुछ राय देने की काबलियत कहां थी मुझ में! मुझे तो जरा भी खयाल नहीं था कि उस बदकिस्मत कस्तूरी के सामने किस्मत ने कितना बड़ा प्रश्नचिह्न खड़ा कर रखा था. मैं तो यही समझता रहा कि जिस तरह मेरा जीवन सही रास्ते पर से गुजरते हुए आगे बढ़ रहा है, उसी तरह कस्तूरी का भी होगा.

और वहीं मेरे और कस्तूरी के जीवन का एक महत्वपूर्ण अध्याय समाप्त हुआ.

* *

समय अपनी रफ्तार से गुजरता गया. मेरी शिक्षा पूरी हो गयी. उच्च डिग्री प्राप्त होते ही मुझे ऊंचे पद की नौकरी भी मिल गयी. मैं अपनी जिंदगी संवारने में लगा था और मेरे सभी अपने लोग मुझे आगे बढ़ने में सहायता दे रहे थे. अब केवल मेरा विवाह हो जाने की कमी थी. विवाह से मुझे समाज में मान्यता मिलती और मेरा अपना एक प्रतिष्ठित स्थान बन जाता.

छुटपन की निरर्थक बातें भी मेरे दिलोदिमाग से कब की निकल गयी थीं; तेज धूप हो जाने पर नींबू के पेड़ पर बैठी हुई गोरैया जिस तरह फुर्र से उड़ जाती है.

उस साल मेरी शादी तय की गयी. सावंतवाड़ी के एक बहुत रईस खानदान की लड़की थी. पढ़ी-लिखी और सुंदर थी. दहेज भी बहुत मिलनेवाला था. विवाह समारंभ सावंतवाड़ी में ही होनेवाला था. वहीं हमारे घर के सभी सदस्य, रिश्तेदार और दोस्त एकत्रित हो गये थे. विवाह धूमधाम से होनेवाला था.

विवाह की रस्में प्रारंभ हो गयीं. सावंतवाड़ी में एक विशेष रस्म प्रचलित है. शादी की अनेक विधियों के बीच एक समारंभ का आयोजन किया जाता है. नववधू की वेशभूषा करने के बाद उसे सुंदर फूलों का साज चढ़ाया जाता है. खानदान से संबंध रखनेवाली

झील के किनारे खड़े हेमंत ने डबडबायी आंखों से डूबते हुए सूरज को देखा.... उसकी आंखों में मीनल का सलोना मुखड़ा झिलमिला उठा.... उसने आह भरी और क्षितिज को एकटक देखता रह गया....

अब तक आप जो साहित्य पढ़ते रहे हैं, क्या उसमें इस तरह के गुदगुदाने वाले बेशुमार वाक्य आते रहे हैं? अगर हां, तो हमें यह कहने के लिए आप माफ करेंगे कि अब तक आप अपना कीमती समय और पैसा बरबाद करते रहे हैं — साहित्य का काम गुदगुदाना नहीं, अपने समय और परिवेश को समझने की सही सूझ और दृष्टि देना है.

सभी भारतीय भाषाओं में लिखा जा रहा समांतर साहित्य आज यही काम कर रहा है.

पलायनवादी साहित्य के झरोखे से बाहर आइए और अपने जीवन से संबद्ध सही साहित्य पढ़ने की आदत डालिए.

भारतीय भाषाओं के प्रखर जनवादी लेखकों की पुस्तकें प्राप्त करने का आसान तरीका यह है — आप 'समांतर सहयोग' की सदस्यता स्वीकार कीजिए और वार्षिक शुल्क ४८-०० रुपये मनीआर्डर, ड्राफ्ट या चेक के द्वारा हमारे पास भेजिए. अगर आप ४८-०० रुपये एक साथ न भेज सकते हों तो इस रकम को चार किस्तों में भी भेज सकते हैं. इन रुपयों के बदले में 'समांतर सहयोग' आपको ६०-०० रुपये की पुस्तकें अपने ही डाक खर्च पर उपलब्ध करायेगा.

'समांतर सहयोग' के पहले सेट की पुस्तकें :

- ० कामतानाथ का उपन्यास : *सुबह होने तक*
- ० जितेंद्र भाटिया का कहानी-संग्रह : *रक्तजीवी*
- ० मलयालम, तेलुगु, तमिल और कन्नड की अनूदित कहानियों का संकलन.
- ० कमलेश्वर का कहानी-संग्रह : *आधी दुनिया*

आगामी सेटों के लेखक

सुदीप, दामोदर सदन, सुधा अरोड़ा, निरुपमा सेवती, हृदयेश, से. रा. यात्री, हिमांशु जोशी, मधुकर गंगाधर, कुमार विमल, बदीउज्जमा, अनीता राकेश, मनीष राय यादव, राम अरोड़ा, हृदय लानी, मधुकर सिंह आबिद सुरती, राम सुरेश, ललितमोहन अवस्थी, प्रकाश बाथम, सुभाष पंत, अजित पुष्कल, स्वदेश दीपक, मेहरुन्निसा परवेज, आलमशाह खान, लाल मोहम्मद रिज्वी, प्रभु जोशी, निर्मला ठाकुर, सच्चिदानंद धूमकेतु, रामवचन राय, बालशौरि रेड्डी, शौरिराजन, गंगा प्रसाद विमल, श्रवण कुमार, सुरेंद्र अरोड़ा, जवाहर सिंह, विभुकुमार, मणि मधुकर, केशव दुबे, बाबूराव बागूल, सतीश कालसेकर, दया पवार, अर्जुन डांगले, नारायण सुर्वे, नामदेव ढसाल, ओम गोस्वामी, हरिकृष्ण कौल, जसवंत सिंह विरदी, राम सरूप अणखी, नंदिनी सतपथी, शांतनु आचार्य, ईश्वर चंदर, एम. टी. वासुदेवन नायर, एन. पी. मोहम्मद, पुन्नत्तुल कुंजब्दुल्ला, टी. के. सी. वट्टलला, पी. एन. भट्टत्तिरी, पंचाक्षरी हीरेमठ, ईश्वर, नील पद्मनाभन, राज नारायण, इब्राहीम शरीफ आदि...!

याद रखिए, 'समांतर सहयोग' हिंदी का पहला प्रकाशन संस्थान है जो लेखकों द्वारा लेखकों - पाठकों के लिए खोला गया है.

सदस्यता-राशि भेजते रहने के लिए हमारा पता याद रखिए —
सेक्रेटरी 'समांतर सहयोग' ५४, बाजार रोड, मइलापुर, मद्रास-६०० ००४

देवदासी को आमंत्रित किया जाता है और उसी के हाथों यह रस्म अदा की जाती है. वधू के बालों का फूलों से श्रृंगार करने के पहले वह देवदासी अपने हाथों उसे मंगल-स्नान करवाती है और वधू के उतरे हुए वस्त्र उस देवदासी को इनाम में दिये जाते हैं.

आज सुबह ही यह समारंभ वधू के घर होने जा रहा था. वर पक्षवाले हम सभी लोगों के ठहरने की व्यवस्था जिस घर में की गयी थी, वह ठीक वधू के घर के सामने था. इसी से दोनों तरफ के लोगों को दोनों मंडपों में होनेवाली हलचल, भागदौड़ सभी कुछ बड़े आराम से देखने को मिलती. अपने मंडप में लगे हुए झूले पर बैठकर मैं और मेरे दोस्त वधू-मंडप में होनेवाली रस्में देख रहे थे. मेरी मंगेतर की सहेलियों के हंसी-मजाक से सारा वातावरण गूंज उठा था. बाहर की तरफ शहनाई बज रही थी. उसके मधुर स्वर उस मनोहारीहंसी-मजाक में और उत्तेजना भर रहे थे.

फिर मैंने देखा कि मेरी होनेवाली पत्नी एक कीमती, महीन साड़ी परिधान किये हुए सहेलियों से घिरी बाहर आयी. गुलाब के लाल-पीले फूलों से उसके बालों का सौंदर्य और भी बढ़ गया था. नहा-धोकर, मोहक प्रसाधन और साज-श्रृंगार करके एक-एक कदम आहिस्ते से उठा कर सीढ़ियां उतरनेवाली उस लावण्यवती की सौंदर्य-गरिमा देखते हुए मैं तो क्षण भर अवाक् रह गया. तुलसी मैय्या के सामने घी का दीप जला कर और श्रद्धा से माथा नवाकर वह जैसी आयी थी, वैसी ही सहेलियों से घिरी घर के अंदर चली गयी. मैं सोचने लगा. पता नहीं यह मेरी भावी पत्नी तुलसी मैय्या से कौन-सा वरदान मांग रही है.

मेरे सब मित्र मजाक के बीच मुझे लाख-लाख बधाई देते हुए मेरे सौभाग्य की सराहना कर रहे थे कि कितनी सुंदर जीवन-संगिनी मैंने पायी थी.

अचानक मेरी नजर सामने के घर में से बाहर आनेवाली नवयुवती पर पड़ी. मेरी पत्नी से वह कितनी अधिक गोरी और सुंदर थी! चंपा के विकसित फूल जैसी नाजुक और मोहक उस नवयौवना को देख कर मैं ठिठक गया. पर दूसरे ही क्षण मैंने पहचान लिया अपने बाल्यकाल की मित्र कस्तूरी को. और उस निषाद बाल्यकाल की कितनी सारी छोटी-छोटी घटनाएं कल्पना के सामने साकार हो उठीं. यादों की गौरय्या जो नींबू के आंगनवाले पेड़ से उड़ गयी थी, उसने वापस आकर मेरे मन में हलचल मचा दी. सहसा चौंककर मैंने देखा कि म वहां उस झूले पर अकेले ही बैठा हुआ था; सारे मित्र कब से चले गये थे. उस क्षण मैं अपने खानदान की इज्जत, शोहरत, अपनी खुद की प्रतिष्ठा सब कुछ भूल गया था. मैंने आवाज दी——कस्तूरी!

वह वहीं ठिठक गयी. उसके हाथ में मेरी मंगेतर की उतरी हुई गीली साड़ी थी और केशभूषा के समय गुलाब के साज में से गिरे हुए चंद फूल. उसने आंखें ऊपर उठा कर मेरी तरफ देखा. तुरंत पहचान गयी थी वह मुझे. उसकी आंखों में दारुण व्यथा के भाव स्पष्ट दिखायी दिये.

——कस्तूर, तू! और यहां?" मैंने अधीर होकर पूछा. उसके हाथों की गीली साड़ी और मुरझाये-से गुलाब के फूल देखकर मेरे मन में उसके जीवन की जो एक गंदी कल्पना उभर आयी थी, उसे असत्य साबित करनेवाले उत्तर की मैं उससे अपेक्षा करता रहा.

कस्तूरी एक पल सहमी-सहमी खड़ी रही; फिर चारों तरफ नजर घुमायी. वह पसीने में तरबतर हो गयी थी, शायद लोकलाज का उसे भय था. गर्दन नीचे झुकाकर मंद स्वर में वह बोली——तुम्हारी दुल्हन को फूलों का साज चढ़ाकर आ रही हूं. उसका चेहरा घबराहट और आत्म-ग्लानि से फीका पड़ गया था.

थोड़ी देर के बाद बड़े ही अलिप्त भाव से उसने कहा—बहुत अर्से के बाद मुलाकात हुई. ठीक तो हो ना?

उसका वह प्रश्न सुनकर लगा जैसे एकाएक वह मुझ से चालीस साल बड़ी हो गयी हो और नानी-मां जैसी मेरी सेहत की पूछताछ कर रही हो.

सामने के आंगन से अपने श्वसुरजी को बाहर आते देखकर मैंने अपना होश सम्हाला. कस्तूरी तो पता नहीं कब की वहां से चली गयी थी.

छुटपन में गणित के कठिन सवाल हल करने में मेरी मदद करनेवाली, छुपछुप कर मुझे लड्डू खिलानेवाली, पांडू म्हसकर की छेड़खानी से तंग आकर स्कूल त्यागनेवाली, खांडेकर के उपन्यास के उदात्त विचार और उनका भाव-सौंदर्य मेरे सामने स्पष्ट करके, मुझमे रुचि पैदा करनेवाली कस्तूरी. 'देवदासी के जीवन को बदलना है रे,' ऐसी हृदय की गहराई से आर्तता से पुकारनेवाली, मेरी बचपन की सहेली कस्तूरी. आज दस साल बाद वही मरी कस्तूरी मेरी ही पत्नी को स्नान करवा कर, उसके केशों का फूलों से श्रृंगार करने का मान लेने आयी थी और जाते समय बड़े चाव से पत्नी की उतरी हुई गीली साड़ी लेकर जा रही थी. पत्नी के बालों में से गिरे हुए जूठे गुलाब बड़ी खुशी से ले जा रही थी. विधि की यह कैसी बिडंबना थी!

* *

शादी ठाठबाट से हुई. दावतें हुईं, रस्में की गयीं. लेन-देन भी बड़े पैमाने पर हुआ. अंत में एक ऐसी रस्म बाकी रह गयी थी जिसमें देवदासी का हाथ लगना आवश्यक था. महिलाएं कस्तूरी को ढूंढ़ने लगी पर वह कहीं नहीं दिखायी दी. तभी एक स्त्री बोली——दुल्हन को फूलों का साज चढ़ाकर वह कहीं चली गयी.

नौकर को उसके घर फौरन भेज दिया गया ताकि वह आ जाये और उस रस्म को पूरा कर दे. नौकर ने आकर खबर सुनायी कि उसके घर में ताला पड़ा है और वह कहां चली गयी, किसी को भी पता नहीं.

फिर वे रस्में देवदासी का हाथ लगे बगैर ही कर दिये गये. दोपहर का समय था. शहनाई में से कोई अनाड़ी कलाकार जोगिया राग का उदास सुर निकाल रहा था. □□□

(अनुवाद : मालिनी बिसेन)

७, मेघधनु, दादाभाई रोड,
बंबई–५६

देवदासी समाज : कुछ संस्मरण

(इस विशिष्ट खंड में देवदासियों या उनके परिवार अथवा समाज से संबंधित जितने भी संस्मरण दिये जा रहे हैं वे सब राजाराम पैंगीणकर की आत्मरचना---मी कोण (मैं कौन ?) से लिये गये हैं. राजाराम जी स्वयं भी एक देवदासी मां की संतान हैं और उन्होंने उस समाज के सुधार के लिए काफी काम किया है. उसी पुस्तक के कुछ अंशों का संक्षिप्त रूपांतर प्रस्तुत कर रही हैं श्रीमती चित्रा मुद्गल)

समाज क्रांति

मैं कौन हूं (मी कोण) मेरी कहानी अर्थात् आत्मकथ्य है. मेरा जन्म ज्येष्ट शु. पंचमी शक संवत १८११ में काणकोण तालुका के अन्तर्गत पैंगीण में एक रंगी नामकी देवदासी के पेट से हुआ था. मेरी मां का जन्म सदाशिव गढ़ काजूवाड़ा में एक विधवा के पेट से हुआ था. अपनी लज्जा की रक्षा करने के लिए इस विधवा ने अपने पेट के इस कलंक को पैंगीण की पुतलीबाई नाम की एक देवदासी के सिपुर्द कर दिया. पुतली बाई ने मेरी मां को दत्तक ले कर उनका उचित रूप से पालन-पोषण किया तथा विधिवत् नाच-गाने की साधारण शिक्षा दी. मेरी मां के नाक-नक्श बड़े तीखे थे तथा अंग-प्रत्यंग बड़ा सुडौल होने की वजह से वे चार के बीच में अलग ही दिखाई देती थीं. वे स्वभाव से अत्यंत स्नेही तथा निरीह थीं इसी वजह से वे अपने परिवार में सबकी लाड़ली थीं. चौदह वर्ष में उनका "नहान" हुआ तथा श्री रंगा जी शेणवी मेडे नामक एक तरुण ने उन्हें हमेशा के लिए अपनी रखैल बतौर रक्खा. आजीवन वे उनके सहचर्य में पत्नी की तरह रहीं. प्रथस वर्ष में ही वे गर्भिणी हुईं. मोगाबाई के प्रयत्न स्वरूप असाध्य कष्ट के बाद मेरा जन्म हुआ. माणू जोशी नामके प्रसिद्ध ज्योतिषी के पास नारियल रख कर मेरी जन्म कुंडली उनसे बनाने की विनती मेरी आजी (पुतलीबाई) ने की तथा उन्होंने मुझसे संबंधित सारी जानकारी दी. प्रसूति के समय मुझे बिना देखे ही माणू जोशी ने मेरा नाम मृत्युंजय रखने की सोची और घोषणा की इस बच्चे के हाथ से कभी बुरा काम नहीं होगा. हमेशा शुभ ही शुभ होगा तथा आपकी गरीबी नष्ट होगी. यह सुन कर आजी प्रसन्नता से गद्-गद् हो उठीं. मेरा नाम मृत्युंजय ही रक्खा गया किंतु प्रचार में राजाराम ही उपयोग में आने लगा. ☐

आजी का प्रेम

कुछ पुरानी यादें हैं. . .उस समय मैं दस-ग्यारह वर्ष का रहा होऊंगा. गांव में 'रामनवमी' की यात्रा थी. यात्रा में निकलने से पूर्व आजी ने मेरी हथेली पर पांच आने रख दिये तथा बोलीं---जो तुम्हें अच्छा लगे, वह खाना. मैंने पिताजी के द्वारा दिये हुए पैसे ही खर्च किये तथा आजी के पैसों से उनके लिए जलेबी ली. मुझे पता था उन्हें गर्म-गर्म जलेबी बहुत पसंद है. घर आ कर जब वह पुड़िया मैंने उनके हाथ में दी तब उनका गला भर आया, वह रोने लगीं. मैं आश्चर्य में पड़ गया. पूछा---अजी, क्या बात है? मुझसे कुछ गलती हो गयी है क्या?

वह बोलीं---बेटा, तुम्हें खर्च करने के लिए दिये हुए पैसों में से तुम स्वयं न खर्च कर मेरे लिए जलेबियां लाये हो. यह देख कर मेरा मन भर आया है. उन्होंने खींच कर मुझे अपनी छाती से भींच लिया. कितनी वात्सल्यमयी थीं वे. ☐

कुर्सी पर बैठने का अपमान!

सामाजिक आंदोलन शुरू हो जाने के बाद की घटना है. प्रसिद्ध दिवंगत गायिका देवदासी शामाबाई पैंगीणकर के घर मैं गया हुआ था. वहां पर कोई सारस्वत गृहस्थ पहले से ही कुर्सी पर विराजमान थे, कुछ बोल भी रहे थे. मुझे देख कर शामाबाई उठ खड़ी हुईं तथा अपनी कुर्सी उन्होंने मुझे बैठने के लिए खिसका दी. काफी देर तक बैठने के पश्चात मैं घर वापस आ गया. दूसरे दिन जब मैं शामाबाई के घर के सामने से गुजर रहा था तो उन्होंने आवाज दी. मैं गया. उन्होंने बताया, कल आप कुर्सी पर बैठे थे न!

---हां, तो क्या हुआ?

---यह उन आये हुए गृहस्थ को उचित न

लगा, उन्होंने अपने समक्ष आपके इस तरह बैठने से अपमान अनुभव किया. ऐसा उन्होंने ही बताया.

मैंने कहा—घर हमारा है. तुम हमारी हो, मैं भी घर की तरह ही हूं. कुर्सियां भी हमारी हैं, ऐसा समझ कर ही मैं कुर्सी पर बैठा था. उन सज्जन ने अपना अपमान महसूस किया, इसमें उनका दोष नहीं है. गलती हमारी स्वयं की है. इसीलिए मैं कहता हूं, लड़कों को शिक्षा दिलाओ तथा लड़कियों की शादी करो. हमेशा के ये पूर्वाग्रह तभी टूट सकेंगे और हम अपमानित न हो सकेंगे.

वे सुन कर हंस दीं. □

कैप्टन वेलोज से भेंट

शायद घटना १९१७ या १८ के मध्य की है, पुर्तगाली गृहस्थ कैप्टन वेलोज काणकोण के तत्कालीन शासक थे तथा राणे लोगों के दंगों के कारण उस समय मिलिटरी कायदा लागू था. एक दिन अब्बुल नामका एक सिपाही मुझसे मिलने आया. सारे घर में खलबली मच गयी. उसने समझाया, डरने की कोई वजह नहीं है. कैप्टन वेलोज से मैंने आपकी बड़ी प्रशंसा की है, अत: वे ब्राह्मणों से न मिल कर आपसे भेंट करना चाहते हैं.

मैंने उस सिपाही के साथ जा कर वेलोज साहब से भेंट की. उनकी पत्नी गोवा की होने की वजह से कोंकणी अच्छी तरह समझती थीं, उन्होंने मेरी बातों को पोर्तुगीज में अनूदित किया. गांव के विषय में उन्होंने संपूर्ण जानकारी प्राप्त करने के पश्चात कहा कि मैं एक पंच-कमेटी बनाना चाहता हूं. उसमें आप भी एक सदस्य होंगे. यह सुन कर मैंने उनसे विनती की कि वे मुझे उसमें शालि न करें. क्योंकि समस्त ब्राह्मण समाज हमें 'नीच' समझता है. आप सिर्फ इतना ही करें, पैंगीण में एक पोस्ट आफिस की अत्यंत आवश्यकता है क्योंकि काणकोण पोस्ट से हमें पत्र प्राप्त होने में आठ-दस दिन लग जाते हैं. तथा शिवाय ग्राम में एक पोर्तुगीज भाषा का स्कूल खुल जाये तो हम लोगों को भाषा सीखने में बड़ी सुविधा होगी.

वे बोले—मैं कल ही पैंगीण आ रहा हूं. मैंने गांव के कुछ प्रमुख सारस्वतों को बुलवाया किंतु कोई आगे आने को तैयार ही नहीं था. उनके इस व्यवहार से वेलोज साहब अत्यंत दुखी हुए तथा उन्होंने कड़े शब्दों में उनकी भर्तसना की कि—पिछड़ा वर्ग पोस्ट ऑफिस तथा स्कूल की मांग कर रहा है ताकि वह कुछ सीख सके, आगे बढ़ सके किंतु आप लोग इन प्रयत्नों में अपना सहयोग तक नहीं दे रहे हैं; इस तरह आप लोग जीवन में कभी आगे नहीं बढ़ सकेंगे.

कुछ समयोपरांत उन्होंने पोस्ट ऑफिस खुलवा दिया. पत्र-पेटी, पोस्ट ऑफिस में मैंने दी थी और आज भी वह पैंगीण पोस्ट में सुरक्षित है. □

एक लड़की को तो रहने दीजिए...

एक दिन मैं पड़ोस के एक गांव में गया हुआ था. देवदासी समाज की ही एक बाया नाम की महिला ने मुझे आग्रह कर के भोजन के लिए रोक लिया. साथ में उनके भाई पोपू तथा एक अन्य यजमान भी थे. भोजन करते समय वे मेरे समक्ष आ कर बैठ गयीं. तथा बोलीं—राजाराम मामा, मैं आपसे एक बात पूछूं क्या?

मैंने कहा—पूछो.

उन्होंने कहा —आपने तो अपनी दोनों पुत्रियों का विवाह कर दिया, अब तीसरी को तो घर में रहने दीजिए. आपको अब किसका सहारा है.

मैंने कहा—अभी तो वह छोटी है आगे देखा जायेगा.

वे बोलीं—अपनी लड़की को मैंने अपने कलेजे के टुकड़े की तरह पाला है, उसको व्याह कर के किसी अजनबी के गले मढ़ दूं और भविष्य में कुछ अच्छा-बुरा हो गया तो वह अपनी आंखों से देखने की अपेक्षा यह स्थिति ही ठीक है... मैंने मन-ही-मन सोचा, इन महिला का विचार बदलते अभी समय लगेगा.

एक दिन मैं पैंगीण की एक दुकान में जो रास्ते के किनारे स्थित थी, बैठा हुआ था. इतने में काणकोण की बस मेरे समक्ष आ कर खड़ी हो गयी. अचानक मेरी दृष्टि 'बस' में बैठी हुई उन महिला पर पड़ी. वे अपनी पुत्री तथा उन्हीं यजमान के साथ बैठी हुई थीं. मुझ पर दृष्टि पड़ते ही वे प्रसन्न-सी नीचे उतर आयीं. गद-गद स्वर में बोलीं—राजाराम, मुझे क्षमा कर दो, आपके कहने के अनुसार मैंने लड़की की शादी पक्की कर दी है तथा 'काणकोण' में जा कर रजिस्ट्री सिव्हील कर आयी हूं. . .मेरी पुत्री को उसके सुखमय घर संसार के लिए आशीर्वाद दीजिए.

मेरी आंखें सहसा भर आयीं. उठ कर लड़की के माथे पर आशीष स्वरूप दोनों हाथ रख दिये. मन-ही-मन कहा—कालाय तस्मै नम: मेरी पुत्रियों की शादी की बात ले कर एक दिन उन्होंने मेरी आलेचना की थी. और भी बहुत से लोगों ने, आज वही लोग बेहिचक अपनी पुत्रियों की शादी धड़ाधड़ करने लगे हैं. यह उदाहरण है कि देवदासी समाज में नैतिक मूल्य बदले हैं. ऊंचे हुए हैं... □

आवडा

• प्र.श्री. नेरूरकर

देवदासी —नाम के लिए भगवान को अर्पित हो अंत में महज़ इनसान की भोगदासी बन कर रह जाती है. अपनी एक निष्ठा के बावजूद उसे किसी संभ्रांत पुरुष की दया, कृपा के सहारे महज़ जिंदा रहना होता है, वह भी समाज की नजरों से गिरी हुई रह कर ही. गोआ के कोंकणी समाज में देवदासी-जीवन के एक अनोखे पहलू पर सोचने को मजबूर कर देती है प्र. श्री. नेरूरकर की प्रस्तुत मराठी कहानी 'आवडा'.

●

अमा आवडा को पुकार-पुकार कर थक गयी. लेकिन देवताल पर मौलसिरी-तले अच्छे-खासे बड़े-से पत्थर को चुन कर कपड़े धोती आवडा के कान तक वह पुकार नहीं पहुंची. अपनी टोकरी से चिथड़े निकाल-निकाल कर वह कभी पत्थर पर उन्हें फटक-फटक फटकती, कभी मसल-मसल मसलती. घुटनों तक पांव पानी में छोड़े वह बैठी थी. बिखरे अस्तव्यस्त बालों का ढीला-ढाला जूड़ा गर्दन पर घिस-घिस जाता था. खूब लंबा, बेढंगा बदन बड़े ही बेढंगे तरीके से ऊपर-नीचे हो रहा था. मोटे, टेढ़े होंठ और टेढ़े हो आये थे. कानी, बड़ी आंख से कभी पानी में तो कभी टोकरी में टकटकी लगाती और कंधे से खिसक-खिसक जाने वाला पल्लू कभी वैसा ही छोड़ देती, तो कभी बड़ी बेतरतीबी से उसे दूर करती. छोटा माथा, चपटी नाक, छोटी चपटी ठुड्डी और लंबी गर्दन पर झूलता हुआ लंबा, काला घना केशसंभार!

आवडा जब तक दोपहरी को ताल पर पहुंचती, बाकी औरतें नहाने-धोने से निबट चुकी होतीं. दोपहरी अब झुकनेवाली होती. देवालय की बस्ती में सन्नाटा होता. लोग खा-पी चुके होते, इस समय देवालय के अंदर-बाहर की आवाज भी रुक गयी होती. शिवालय के पिछवाड़े में ही दाहिनी तरफ बंडू गुरव का घर, बाग था. बीच का एक गलियारा पार कर लें, तो बायीं तरफ अमा का घर. देवालय की बाहरी दीवार से सटा हुआ-सा. वहीं से पीछे घाडी की नहर तक देवालय की बस्ती फैली हुई थी. अमा देवदासी थी और घाडी वाली नहर से लेकर बड़े रास्ते के पीपल के चबूतरे तक और देवताल के किनारे पर बसे लाल रंग के सारे घर देवदासियों के थे.

अमा के घर से एक पगडंडी देवालय के पिछवाड़े तक आती. पीपल से निकलने वाली पगडंडी दक्षिण की तरफ से आकर नगाड़खाने पर पहुंचती. यह पगडंडी ताल के किनारे-किनारे होकर आती. वहां से देवालय की तरफ आने लगो तो दाहिनी तरफ खलनाथ, सातेरी, भैरव जैसे छोटे-छोटे देवताओं के छोटे-छोटे मंदिर. अमा अपने आंगन में खड़ी, कमर पर दोनों हाथ रखे चीखे जा रही थी—अरी ओ ऽऽ आवडा ऽऽऽ, आवडा री ऽऽ. . . दोहपर के भयावने सन्नाटे में, देवताल के अहाते में गूंजती हुई चीख आवडा तक फिर भी नहीं पहुंच पाती.

पर यह तो रोज-रोज की बात थी. देर-सबेर अमा आवडा को यूं ही चीख-चीख कर पुकारा करती. बस्ती के लोगों को अमा की इस आदत की इस कदर आदत पड़ गयी थी कि कभी उसकी चिल्लाहट सुनायी नहीं देती तो लोग पूछने आते. बात भी सही थी. अमा कभी बीमार हो जाती या गांव से बाहर कहीं चली जाती तो वहां एक अजीब-सा खालीपन लगने लगता. बिना अमा की पुकार के अहाता बदसूरत-सा हो जाता. घर-घर से बच्चों के लिए पुकारें सुनायी देतीं, पर उनकी अपनी एक सीमा होती. पुकार आते ही आते ही कहीं पर सुनी भी जाती. उसका जवाब मिलता और मामला वहीं खत्म हो जाता. लेकिन अमा और आवडा की तो बात ही निराली थी. आवडा चाहे ताल पर हो, चाहे पिछवाड़े गुरव के बाग में, अमा की पुकार वह न सुनती, न सुनती. पुकार जारी रहती और न सुनना भी जारी रहता. हर बार, हर दफे. फिर ऊब कर अमा चीखना बंद कर देती. दो चार भद्दी कोंकणी गालियां बककर चुप हो जाती. आवडा को भी कोसती, अपने को भी कोसती, और बस चुप हो जाती.

और आवडा है कि ताल पर अपने चिथड़े धोने में मगन! चारों तरफ, दूर तक उसके कपड़े फटकने की ध्वनि-प्रतिध्वनि गूंजती रहती. पानी में छोटी-सी मछलियां उसकी पिंडलियों को काटती रहतीं, पर अब तो उसे सहने की आदत भी आवडा को पड़ चली थी. बहुत ज्यादा ऊब जाती तो एक पैर निकाल कर पत्थर के किनारे रख लेती; फिर थोड़ी देर बाद उसे पानी में छोड़ दूसरा पैर ऊपर रख लेती, उस समय पानी में चबक्- चबक् आवाज निकलती, पानी में हलचल होती. पल भर के लिए सन्नाटे का भंग हो जाता! बस! पेड़ों पर पक्षी भी चुपचाप बैठे रहते. देवताल के बांध से होकर एक पगडंडी देवालय तक जाती थी और बांध के उस पर पार दूर-दूर तक हरेभरे खेत फैले थे. पगडंडी का दूसरा छोर चौपाल तक जा मिलता था. वहीं पर बाजार था. दो-तीन चाय—मिठाई के होटल, दो-तीन किराना की दूकानें, बच्चों का प्राइमरी स्कूल. वहीं पीपल का चबूतरा था और एस. टी. वहीं रुका करती थी. हनुमान का टूटा-पुराना मंदिर था. . . . और भी बहुत कुछ था. . . . टेलरिंग शॉप, पोस्ट आफिस था, चमारों के झोंपड़े थे, यहीं, रास्ते के दोनों तरफ 'गाबती' औरतें मछली बेचने बैठी जातीं. शाम के समय लोग वहां आने-जाने लगते, चहल-पहल

होती. चौपाल पर काम खत्म करके लोग देवताल के बांध से होते हुए शिवालय जाते. घंटानाद होता. फिर देवालय की बस्ती भी काम में जट जाती. तब फिर ताल-वाले तत्थर पर शायद ही कोई कपड़े धोता नजर आता. लेकिन यह सारी चहल-पहल होती दोहपर के ढल जाने के बाद. भरी दोपहर में चौपाल पर कोई ताकने भी नहीं जाता. एक आवडा अकेली ताल पर झुक-झुक कर कपड़े धोती, रुक-रुक कर पत्थर पर कपड़े फटकती रहती. फटके हुए कपड़े पानी में से निकाल कर निचोड़ कर टोकरी में रखती. कभी धोये-निचोड़े कपड़ों को अपनी ही धुन में दुबारा धो देती. और कपड़े धोना जारी ही रहता.

* *

कल-परसों तक आवडा घाघरा पहनती थी. घाघरे चोली में वह और भी अजीब लगती. जवानी का रंग चढ़ा, तब भी कभी तो उसकी जवानी बेढंगे तरीके से कपड़ों से बाहर अपने आपको उंडोलती-सी लगती तो कभी उसके कपड़े इस कदर बदन से चिपके रहते कि लगता उसकी जवानी को मुंह बना-बना के चिढ़ा रहे हों.

उसके शरीर में नाम के लिए भी कहीं होई सलीका न था. चलने लगती तो एक कदम इस तरफ पड़ता, दूसरा उस तरफ! लगता, दोनों पांवों से लंगड़ी खेल रही है, बांहें भी ऐसी ही बेढंगी! एक बांह छोटी लगती, दूसरी लंबी. तलुवे कलाई की तरफ मुड़े हुए-से विरूप! नाक चपटी और बड़ी-बड़ी गोलियों जैसी आंखें. गले की हड्डी बाहर झांकती हुई. हां, शरीर था पूरा सशक्त और भरा-भरा उरोभाग. पीठ में कूबड़ झांकता था, लंबाई आम औरतों से फुट पौन फुट ज्यादा ही थी. ताड़-सी लंबाई. एक मात्र धन था—— लंबे और घने काले केशकलाप का. गर्दन पर या तो बड़ा-सा जूड़ा झूलता रहता या तो ढीला बनकर पीठ पर फिसल-फिसल जाता. लेकिन खुद आवडा को तो किसी बात कोई दिलचस्पी न थी. उसके सिंगार में जो कुछ थोड़ा बहुत कहने भर को था, वह सब अमा की ही करतूत थी.

अमा आवडा को लेकर चिंतित रहती. अक्सर सोच कर रह जाती कि इस आवडा का क्या होगा? कहीं कोई आशा नहीं जगती थी. आवडा की तरफ न तो कभी किसी ने देखा था, न ही कोई देखेगा, ऐसा उसको विश्वास हो गया था. कोई देखे भी तो क्यों? आवडा अमा जैसी खूबसूरत थोड़े ही थी? खूबसूरती से वह कोसों दूर थी, लेकिन इसमें दोष न तो अमा का था, न ही आवडा का! जाने वह कैसा मनहूस क्षण था, जब अमा की कोख में आवडा ने जन्म लिया था. आवडा ने जन्म लिया और अमा के सरल-सीधे जीवन को झकझोर कर रख दिया. एक व्यंग्य पैदा हुआ. पास-पड़ोस की देवदासियों ने टोटका-टोना करके अमा की कोख में अंतिम बार इस बदसूरती को ला डाला था. अमा उनको फूटी आंखों नहीं सुहाती थी न. अमा उनके नाम पर सिर धुनती. शिवजी के पास भी अपनी शिकायत रखी थी अमा ने; शिवजी से अनुरोध किया था उसका अहित करनेवाले का सत्यानाश करने को.

अमा तो देवदासी थी. लेकिन वही अपने परिवार की अंतिम देवदासी भी तो होने जा रही थी. बड़ी लड़की सीतू, दूसरी गंगू और तीसरी आवड़ा. मुकुंद और भास्कर दो बेटे. एक आवडा को छोड़ सारे बच्चे खूबसूरत, बुद्धिमान, सशक्त. तीस सालों से अमा भगवान को साक्षी रख एक ही पुरुष के साथ निष्ठा एवं संयमपूर्वक रही थी. पूरी श्रद्धा के साथ!

★ ★

अमा को अनंत नाना ने रखा था. अनंत नाना ब्राम्हण थे. उनकी इसी बात को लेकर अमा सदा ही गौरव महसूस करती रहती. बस्ती की दूसरी देवदासियों की स्थिति पर सोचने लगती तो अपनी बात सोचकर खुशी से फूली न समाती. किसी देवदासी को किसी मराठे ने रखा था तो किसी का संबंध बनिये से था. एक दो ही देवदासियां ऐसी थीं, जिन्हें ब्राह्मणों का सहारा मिला था. अमा उन्हीं भाग्यवानों में से एक थी. नाना थे तब तक तो अमा को देखते ही बनता था. सुदृढ़, गोरे-गोरे कामदेव की सुंदरता और पौरुष धारण किये हुए नाना बूढ़े पिता विठोबा अण्णा के बाद गांव के कुलकर्णी बन गये थे. यही कुछ बीस-बाईस की उम्र रही होगी. गांव के स्कूल में ही सातवीं तक पढ़े थे, लिखावट बड़ी सुंदर थी, तालुके के सरकारी कामकाज के कागज पढ़ने तक के लिए बुलावा आता. शादी भी हो चुकी थी. गांव उनकी पत्नी को बड़े अदब से 'काकीबाय्' नाम से बलाता. बड़े संपन्न, सुसंस्कृत जमींदार घराने में काकीबाय् पली थीं. ब्राह्मणों की बस्ती देवालय से बहुत दूर थी. घर क्या थे, बड़ी-बड़ी हवेलियां थीं. एक के ऊपर दूसरी मंजिल चढ़ी थी, चारों तरफ बाग. केले के बाग, नारियल के पेड़, सुपारी, पान के बेल, स्वर्णचंपा के पेड़. अन्ननस फल रहे थे. कुएं थे, कुओं पर रहट थे. हमामखाना था. संपन्नता, विफलता वहां पूरी सज-धज के साथ बैठी थी. नाना ने घर-गिरस्ती बड़े मन से संभाली थी. न कभी कोई झगड़ा, न फसाद.

बाराबंदी अंगरखा, कदमों तक झूलती हुई सफेद, महीन धोती, सिरपर पगड़ी, हाथ में वजनी लट्ठ, उन्हीं के एक असामी चमार के बनाये हुए मोटे-मोटे कर्र-कर्र बजने वाले जूते, गले के पास बाहर झांकता हुआ जनेऊ, लच्छेदार मूंछें, पहले के लाल हंसते होंठों पर घर के बनाये पान का चढ़ा हुआ लाल रंग. . . नाना देवालय में आते तो उनके रूप की प्रभा के सामने भगवान का रूप भी पलभर के लिए निष्प्रभ-सा लगता. भाऊ गुरव टकटकी बांध कर नाना की तरफ देखता रहता. नाना खिसियाने-से होकर उसे टोकते.

——क्यों रे? क्या देख रहा है?

——नहीं, जी नहीं, नाना. . . मैं तो बस देख रहा था यूं ही.

——क्या देख रहा था?

——आपका यह राजा का रूप. . .

——नजर लगा दोगे एक दिन. . .

——छिः . . . छिः! . . . . ऐसा कभी हुआ है साऽऽब! गुरव जिस किसी तरह बात को समेटता और फिर नाना की हथेली पर तीर्थ उंडेलने लगता.

धूप ढल चुकी थी. सांझ का रंग चढ़ने लगा था. लेटे-लेटे अमा आवडा की तरह देख रही थी. आवडा के लिए उसने भुनी हुई बांगडे की मछली और भात थाली में निकाल रखा था. लेटे-लेटे अमा सोच रही रही थी, यह आवडा आयेगी कब? खाना कब खायेगी? लगा फिर एक बार आंगन में जाकर उसे पुकारे. लेकिन इस कदर अपने आपको जलाने से फायदा ही क्या! आज तक कभी अमा की पुकार उसने सुनी है, जो आज सुन पायेगी? यह सब जानते हुए भी अमा चीख-चीख कर पुकारती. उसका यह पुकारना दरअसल आवडा के लिए नहीं था. यह उसी का अपना अपने लिए वत्सल आक्रंदन था. कई बार ऐसा भी होता कि आवडा अमा की बगल में खड़ी होती और अमा पुकार रही होती——आवडा रीऽऽ, अरी ओऽऽ आवडागरऽऽ!

आखिरकार आवडा ने सारे कपड़े धो लिये, निचोड़ लिये, टोकरी में भर लिये, लेकिन सीधा रास्ता पकड़ने की आदत उसकी न थी. रास्ते पर पहला मंदिर पड़ता

ा खलनाथ का. पहले तो वह वहां गयी. खलनाथ को ाथ जोड़कर होंठों ही होंठों में कुछ फुसफुसायी. . . जाने या मांगती थी खलनाथ के द्वार पर! फिर सातेरी के ंदिर गयी. फिर बैताल, ब्रह्मनाथ. . . और अंत में शिवजी के मंदिर में उसने कदम रखा.

पिछवाड़े से जब आवडा घर में घुसी, तब अमा झपकी े रही थी. आवडा के पेट में चूहे दौड़ रहे थे. धोये हुए कपड़ों की टोकरी एक ओर रख कर वह चूल्हे के पास यी. थाली पर रखी थाली हटायी और जल्दी-जल्दी भात खाने लगी. घर में कोई था नहीं. मुकुंद कहीं मृदंग बजाने चला गया था. भास्कर चौपाल पर अपनी पान-बीड़ी की दूकान सजा कर बैठा करता था; वहीं था. पास-पड़ोस के बच्चे स्कूल में थे और आवडा मचक्-मचक् करती हुई भात का भूसा पेट में भर रही थी. लोटा मुंह को लगाकर उसने गटक्-गटक् पानी पिया और सट से लोटा जमीन पर रखा. रखते समय वह पीतल की थाली से टकराया, टकराहट की आवाज से अमा की नींद खुली. आवाज से ही पहचान गयी कि आवडा चूल्हे के पास है.

—आवडा ऽ . . . .

—क्या है अमा? . . . घर में आते ही आवडा अमा की पुकार का जवाब तत्परता से देती.

—आ गयी?

—हां.

—कितनी देर तेरे को पुकारती रही.

—काहे को?

—ताल पे अकेली गयी थी तू.

—तो ?

—तो क्या ?

—डूब कर मर तो नहीं जाऊंगी.

—अच्छा? . . .

—मेरी चिंता तुम मत करो अमा. . . . अमा बोलने लगती तो हर बात पर आवडा का जवाब तैयार रहता.

अमा ऊब कर कहती—जाने क्या होगा तेरा!

—मेरा खलनाथ जो है.

—वह क्या करेगा?

—कुछ भी. . . .

इस पर अमा की जबान बंद हो जाती. आवडा टोकरी से कपड़े निकाल-निकाल कर, दुबारा निचोड़ कर आंगन में सूखने के लिए डाल देती. किरणें छिप गयी होतीं. देवालय और देवालय की बस्ती में लोगों की आवाजाही शुरू हो जाती. बस्ती बोलने लगती. घंटानाद होने लगता. शहनाई-वादक किशा अपनी शहनाई साफ करते-करते धीरे-धीरे फूंकने लगता और बेसुरी ध्वनि गूंजती रहती. पत्ते-पत्ते, बूटे-बूटे पर पंखी चहचहाने लग जाते. देवालय बस्ती में कहीं कोई मृदंग पर थाप देता, कोई शहनाई-सींग बजाता, कोई तबले पर हाथ चलाता. भजन शुरू हो जाता.

शाम हो आती तो अमा प्रदक्षिणा के लिए निकलती. पिछवाड़े से वह देवालय में कदम रखती, वहीं चबूतरे पर सफेदपोश औरतें बैठा करतीं. वहीं कुछ देवदासियां थी, उन्हीं में बैठ जातीं. गर्भागार में गुरव के हाथों पूजा-पुजापा करवाकर अमा आगे सभागार से होती हुई अहाते में आती और उसकी प्रदक्षिणा शुरू होती.

अनंता नाना एकाएक ही गुजर गये थे. विघ्नबाधा जैसी कोई छोटी-मोटी वजह से. तब से अमा ने माथे का टीका पोंछ डाला था. काकीबाय् और अमा— दोनों एक साथ ही विधवा हो गयी थीं. अमा को याद आया, अमा का टीका पोंछने कोई सुहागिन नहीं आयी थी. अमा ने खुद अपने ही हाथों अपना सुहाग-चिह्न मिटा दिया था. सबसे बड़ी सीतू नाना की छत्रछाया में ही बड़ी हुई थी. मुकुंद पला था, गंगू जवान हुई थी, आवडा भी पल रही थी. अनंत नाना के कहने से अमा ने बच्चों को स्कूल में दाखिल करा दिया था. सीतू सातवीं तक पढ़ी थी, गंगू ने भी सातवीं पास कर ली. मुकुंद और भास्कर नहीं पढ़ पाये. मुकुंद मृदंग की ताल में ही मगन हो जाता. दो-तीन साल पढ़ाई कर लेने के बाद भास्कर ने पानबीड़ी का धंधा शुरू किया. अनंत नाना अक्सर अमा से कहा करते.

—बेटियां तो मेरी हैं, बेटे तुझ पर गये हैं.

—आप ठीक कहते हैं. . . अमा अदब से कहती और हंसकर रह जाती. वह तो इसी में अपने आपको धन्य समझ लेती कि उसके यह बच्चे नाना की औलाद हैं. सीतू गोरी थी, सुंदर थी. उसका ब्याह हो गया. उसी तरह गंगू की शादी भी मांग कर हुई थी. नाना खुद दोनों शादियों में मौजूद थे. यही नहीं, काकीबाय् भी पहुंच गयी थीं बेटियों को आशीर्वाद देने. पढ़े-लिखे पति मिले थे. पूना-बंबई में सरकारी नौकर थे.

—नाना, अब तो आवडा ही रह गयी. . . अमा लाड़ से कहती.

—वह भी ठिकाने लग जायेगी. . . . नाना यकीन के साथ कहते.

—हुं! यूं ही कह रहे हो. . . अमा कहती.

—तब तक मैं बचा रहा तो. . . नाना सहसा गंभीर होकर कहते. . . . और सचमुच नाना कुछ करें, इससे पहले ही चल बसे.

उनको इस तरह नहीं जाना चाहिए था. इतनी जल्दी, अचानक. . . अमा सोचती रहती. अपने आपसे कहती रहती. काश, बेटे पढ़-लिख लेते! अभी उनके ब्याह होने हैं. अमा तो बहू देखने के लिए कितनी उत्सुक है.

★ ★

प्रदक्षिणा समाप्त हो जाती तो अमा के कदम बैताल मंदिर के पीछेवाले ब्राह्मणों के घरों की तरफ मुड़ते. वहां वामन पुजारी का रुतबा बड़ा था. अच्छा-खासा बड़ा-सा घर. दो-दो ब्याहताएं. पहली पत्नी से कोई बच्चा नहीं हुआ इसलिए दूसरी शादी की. दूसरी के

एक के बाद एक बच्चे पैदा होते रहे. उम्र तो वामन की वही थी जो अमा की थी पर अभी उसके घर में पालना झूल रहा था. चौदह-पंद्रह बच्चों में आठ-दस तो लड़कियां ही थीं. बाप की तरह कुछ-कुछ गोरी, मां की तरह कुछ-कुछ काली. सुख-समृद्धि में पलती हुई. इसके अलावा वामन ने दो देवदासियां रखी थीं, उनके बच्चे थे. इससे गांव के आवारा, गुंडागर्दी करने वालों को मजाक के लिए अच्छा-खासा लक्ष्य मिल गया था. शाम के समय देवालय के पास मिलकर वे मखौल उड़ाकर हंसते रहते, शर्तें बदते रहते. शाम को जवान लड़कियों के झुंड भी देवालय में आते रहते; उनमें वामन की कुछ जायज, कुछ नाजायज बेटियां हुआ करतीं. उस भीड़ में वामन की संतति को खोज निकालने की शर्तें लगतीं. लेकिन वामन को इस बात का रंज कभी रहा नहीं. सबसे बड़ा लड़का वासू. वासू अब जवान हो चला था. हर कक्षा में दो-दो साल करते-करते सातवीं तक पहुंच गया और वहीं फंसकर रह गया. वामन पुजारी उसे पुजारी बनाने में लगे थे, पर यह है कि सारा समय जुआ अड्डे पर ही गुजार आता. जुआरी उनकी तारीफ किया करते---वासू, चाहे जो हो, तुम तो वामन की असली नस्ल हो. उसकी बहनों की छेड़खानी होती तो वासू उसमें भी बेशर्मी से शामिल होता. कहता— वे ही बस मेरी असली बहनें हैं. बाकी तो. . . और हंसी-ठट्ठे फव्वारे फूटते रहते.

अमा वामन पुजारी के यहां भविष्य-ज्योतिष पूछने जाती. शगुन पूछने जाती, तावीज बंधवाने जाती. वामन पुजारी का असली धंधा यही था. काला सांवला भारी-भरकम शरीर, निकली हुई तोंद, गले में जनेऊ और मैली-कुचैली धोती---हरि ओम् हरि ओम् ' जाप करते हुए वामन पंचांग की राशि लेकर बैठ जाता. एक तरफ एक चौकोर कुंड में भभूत जमा कर रहता. दूसरी तरफ काठ की संदूक में तरह-तरह के तावीज. टोटके निशानों से भरा माथा और सिर पर बीचोंबीच गांठ देकर खड़ी की गयी चुटिया— वामन पुजारी किसी भयावह, रहस्यमय शैतान के दूत-से लगते. जब देखो गांव के दस-पंद्रह आदमी उनके सामने बैठे पाये जाते. चमार, कुम्हार, धेड़, सफेदपोश, देवदासी, ईसाई, मुस्लिम— सभी वहां आते. दो-चार आने से लेकर रुपये तक की फीस होती. बस्ती के बाकी ब्राह्मण तो अपना-अपना पुजापा देखते, भगवान संभालते, खेती-बाड़ी करते. उनके बच्चे स्कूलों में पढ़ते— जिस किसी तरह जी लेते. उन्हें वामन पुजारी से ईर्ष्या होती. लेकिन वामन को किसकी परवाह थी? उसकी आमदनी तो दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही थी.

★ ★

अमा वामन पुजारी के घर पहुंची तो शाम ढल चुकी थी. लोगबाग जा चुके थे. वामन पुजारी अपने काम को निपटा कर आराम फरमा रहे थे, कमरे में चक्कर लगाते-लगाते राम-रक्षा का पाठ कर रहे थे. कभी-कभार बच्चों को पुकार रहे थे. चरवाहे को डांट रहे थे. अमा देवदासी को इस समय देखकर वह दंग रह गये. पर पल भर के लिए ही क्योंकि अमा की आने की तो यही आदत थी. वे जानते थे.

---क्या काम है? उन्होंने रोब भरे सुर में पूछा.

—यूं ही जरा. . .

---बैठो.

अमा वहीं बैठी रही. मन में ढेर सारे सवाल उमड़ रहे थे. कितने सवाल पूछ पायेगी, कितनों के जवाब वामन पुजारी दे पायेंगे. बड़ी उलझन थी. सांझ की बेला भी मन को कैसा तो मसोस रही थी. आखिरकार वह उठ गयी. बोली---कुछ नहीं पुजारीजी. . . मैं तो आपको देखने भर को आयी थी.

—क्या मतलब?. . .

—अच्छे तो हो?. . .

—मैं क्या मर रहा हूं? फिर वही रोबीली आवाज.

—सोचती हूं, कभी जाऊंगी दोपहरी में. . .

---अच्छा-अच्छा! . . .और पुजारी जी ने जोर-जोर से राम-रक्षा का पाठ शुरू कर दिया. अमा फिर फूंक-फूंक कर कदम रखती हुई देवालय और अपनी बस्ती की तरफ बढ़ चली. आवडा का भविष्य वह पूछने जा रही थी. . . पर होंठों की बात फिर वैसी की वैसी निगल कर लौट पड़ी थी.

नाम था आवडा— 'सबको अच्छी लगनेवाली.' पर देखा जाय तो आवडा सब की 'नावडा' थी— किसी को अच्छी न लगनेवाली. लेकिन अमा की बात ही दूसरी थी. आवडा उसने अपनी कोख से जनी थी. अनंत नाना की वह अंतिम स्मृति थी, धरोहर थी. . . और वैसे देखा जाय तो आवडा निरी अनाड़ी भी तो न थी. दिमाग ठीक था. आवडा समझदार थी, लोगों के स्वभाव से बेखबर भी न थी. वह सब कुछ महसूस कर सकती थी, सब कुछ समझ सकती थी. कैसे बोलना चाहिए, कैसे चलना चाहिए इसलिए इसकी समझ भी उसे थी. बचपन से ही उसके शारीरिक व्यंग्य को लेकर आसपास उसका मखौल उड़ाया जाता. बच्चे-बूढ़े सभी मखौल उड़ाते. अमा से जलनेवाली कुछ देवदासियां तो यहां तक कहतीं कि अमा की आवडा अनंत नाना से हुई ही नहीं थी; और अमा चाहे अनंत नाना के मर जाने के बाद विधवा का स्वांग रचे, पर इससे बात छिपनेवाली नहीं थी. कई बार आवडा से पूछा जाता— आवडा, तुम्हारा बाप कौन है? और फिर एक सड़ा-सा ठहाका लगता. फिर दूसरा सवाल, आवडा, ब्याह कब कर रही हो? एक गलीज फेहरिस्त बनायी जाती अमा के दूल्हों की, लूला गजावतारी, पागल कूबड़ा जन्या सुतार, लार टपकाते हुए नंगा गांव भर में चक्कर काटता फिरनेवाला गूंगा. . . . और आवडा सब चुपचाप सुन लेती. आंखों से सब कुछ समेट लेती. घर में दोनों भाई भी उससे अच्छा बर्ताव नहीं करते. कई बार मुकुंद ने उसे छड़ी से पीटा था. उसका बनाया खाना घर में नहीं चलता. अमा ही को रसोई बनानी पड़ती.

मुकुंद आजकल वासू भट की 'कंपनी' में शामिल हो गया था और वासू के साथ और भी कई आवारा दोस्त

लोग अमा के घर पर ही बैठक लगा कर बैठने लगे थे. आवडा को सामने आने की मनाही थी, वह पिछवाड़े वाली, मुर्गियों-कुत्तोंवाली अंधियारी कोठी में पड़ी रहती. वहीं अपना बिस्तर लगा देती. एक फटी दरी, कंबल, फटी-पुरानी आवडा की ही साड़ी के चिथड़े! मुकुंद उसे अक्सर चुड़ैल कह कर बुलाता. उसको लेकर अमा को भी जली-कटी सुनाता रहता. आवड़ा से कहता— मर क्यों नहीं जाती चुड़ैल?...ताल में जाकर डूब क्यों नहीं मरती?.... मर जायेगी तब कहीं चैन की सांस ले पायेंगे हम लोग. ऐसे अमानुष बोल उसके मुंह से निकलने लगते तो आवडा बेचारी चुपचाप अपनी कोठी में जा बैठती. कभी जब लगता कि अब मार पड़नेवाली है, वह मन से, शरीर से भी इसके लिए तैयार रहती. अमा को भी जबान बंद रख कर यह सारा दर्द सहना पड़ता. मुकुंद को लगता, आवडा की ही वजह से उसकी शादी नहीं हो पा रही है. इसीलिए जैसे मुकुंद घर में घुसता, आवडा चुपके से बाहर निकल जाती, बस्ती में घूमती-घामती समय काटती रहती. घर की इस मर्म-यंत्रणा से तो बेहतर था लोगों द्वारा उड़ाये गये मखौल को बरदाश्त कर लेना.

छोटी थी तभी से वह अमा के साथ-साथ भगवान की सेवा में जाती. झाड़ना, बुहारना, बत्ती जलाना, कालीन बिछाना, पालकी के पीछे-पीछे चलना, खलनाथ, बैताल, गावडोबा, सातेरी जैसे छोटे-छोटे मंदिरों की गोबर से लीपा-पोती करना. त्यौहार पर, मेले के अवसर पर सराय को लीप-पोत कर साफ रखना, पानी भरना, छोटे-बड़े भक्तगणों की सेवा करना, उनके बर्तन मांजना, कपड़े धोना, मंदिर-मंदिर घुमा लाना, उनके लिए बाजार से चीजें ले आना... अमा भी अपने काम आवडा को सौंप देती. कई बार आवडा को वामन पुजारी के यहां जाना पड़ता. वामन पुजारी उसकी तरफ भूखी निगाहों से ताकता रहता. छोटे काम के लिए भी देर तक उसे उलझाये रहता.

* *

शाम का धुंधलका हो चला था. नगाड़ा बज रहा था. आवडा ने बैताल के मंदिर में ज्योत जलायी और अमा के किसी काम से वह वामन पुजारी की तरफ जाने लगी... घुप्प अंधेरा तेजी से उतर रहा था. किर्र-किर्र शुरू हुई. ऐसे समय पैरोंतले सांप-नाग के आ जाने का भी कितना डर रहता है. पर आवडा आदतन, अपनी ही धुन में निडर बनी चली जा रही थी. मन ही मन सोच रही थी, अपन तो ठहरे देवदासी की लौंड़िया. हल्की जात. सूरत से तो और भी गयी बीती; और वामन पुजारी, वह तो ठहरे ब्राह्मण, सबसे ऊंची जात के. लोग कितना मानते हैं ब्राह्मण को, वे शुद्ध होते हैं. उनके घर जा रही हूं, कहीं कोई भ्रष्टाकार न होने पाये. अदब से रहना चाहिए, कहीं किसी चीज को छूना भी नहीं चाहिए. वह अशुद्ध हो गया तो... और फिर वामन पुजारी तो ठहरे मांत्रिक, भगवान से नाता उनका, वह तो दूसरे के मन की बात जान लेते हैं. होनी को जानते हैं, भूत-प्रेत को वश में रखते हैं, वह तो किसी भगवान से कम नहीं. भगवान का आदमी. अपने राम ले देकर देवदासी.... हमें तो दासी बनकर ही रहना होता है. अमा भी जिंदगी-भर दासी बनकर रही. अमा भगवान की दासी और वामन पुजारी भगवान का मालिक. उसके साथ बात भी बड़े अदब से, झुक कर करनी चाहिए. उसका गुस्सा बड़ा बुरा है. और गुस्सैल भी तो बड़ा है वह... ठीक वैसा, जैसा वह वालावलकर वाली कृष्णजन्म की झांकी में विश्वामित्र को देखा था एक बार... ठीक वैसा ही... कभी आवडा के दिल में इच्छा उभड़ती रहती, अपना भविष्य पूछ ही लें, वामन पुजारी से....

अपनी ही धुन में मगन अपनी लंगड़ाती चाल से आवडा भूत-प्रेत की तरह चली जा रही थी. घुप्प अंधेरे में इस प्रकार कोई उसे अचानक सामने पाता तो वह डर के मारे जरूर बेहोश हो गिरता... लेकिन देवालय की बस्ती में आवडा की आदत से सभी लोग अच्छी तरह वाकिफ थे... और आवडा का वह काला घना केशसंभार, उस अंधेरे में भी झूल-झूल अपनी हस्ती का एहसास करा रहा था.

आवडा पुजारी के घर के पास आ गयी तो उसने अपने आप को जरा संभाला. पहले तो वह पिछवाड़े में जानेवाली थी, पुजारिन को पुकारने वाली थी पर पुजारीजी से मिलती. अमा ने पुजारीजी से तावीज मांगा था. तावीज वह अपने नातियों के लिए पूना-बंबई भेजनेवाली थी. घर के नजदीक ही कोने में विशालकाय पीपल सर सरा रहा था. पीपल के चारों ओर पेड़ों-झंखाड़ों ने घना जंगल-सा बना दिया था. उस तरफ निचले बाजू से घाडी बस्ती की तरफ नहर बहती चली जा रही थी. किसी किसान का बनाया कोठीनुमा टूटा हुआ झोपड़ा भी खड़ा

था. घास का छप्पर था. चारों ओर सुनसान. रात के समय तो उस तरफ कोई झांकता तक न था. जरा उस तरफ को देवालय बस्ती का श्मशान बेढंगी शांति से लिपट कर काली-कलूटी भीषणता उगल रहा था. आवडा अभी अहाते में पैर रखने ही वाली थी कि. . . किसी की गर्म सांस आवडा को अपनी गर्दन पर महसूस हुई. . . उसकी स्थूल, सुस्त कल्पना फिर भी सोयी रही. . . दूसरे ही क्षण किसी ने उसकी बगल में हाथ डाल उसे पीछे की तरफ खींचा. वह खड़ी नहीं रह पायी, न ही चिल्ला पायी. मुंह पर कोई बलिष्ठ पंजा पड़ा था . उसकी तोतली जबान को उसने बंद रखा.

—क. . . क. . . क. . . कौ. . ऽऽन ? बस इतना ही बोल पायी आवडा.

—बाद में पता चलेगा. चल. . .

—क. . . क. . . कहां? . . .

—मैं जहां ले जाऊं. . .

—क. . . क. . . क्यों? . . .

अभी पता चलता है. . .

उसके जूड़े को पकड़कर घसीट-घसीट कर पीपल के पास से होते हुए वासू भट उसे उस टूटी कोठीनुमा झोंपड़ी में लाया. अंधेरा घुप्प था. वह कराहती रही. अपने बाप ही की तरह वासू भट काला-कलूटा था. काले कारनामों में उसी की तरह माहिर. अपने तगड़े शरीर की एक ही ठोकर में उसने झोंपड़ी का दरवाजा तोड़-मरोड़ कर खोल दिया और आवडा को अंदर धकेल दिया. आवडा तो सन्न रह गयी. सिर कहीं जा टकराया. झनझनाहट-सी हुई. बाहरी रूप से अभागिन का हर दुख-दर्द वह झेल रही थी, झेल चुकी थी. उपहास के बोल, शारीरिक यंत्रणा—मारपीट. अब की बार का यह दर्द कुछ अजीब था. उस संवेदनाहीन स्थिति में भी उसके अंदर कोई अबोध बोध-सा जगा. फिर संवेदना तीव्र होती गयी. . . वह समझ गयी. . . लेकिन यह आदमी कौन था? . . . वह तो देवदासी थी. उसे भोगने की इच्छा थी, तो पहला अधिकार तो भगवान खलनाथ का था. सबसे पहले वह भगवान की थी. उसके बाद इनसान की. लेकिन यह भोग. . . यह किसलिए. . . क्यों. . . आखिर यह किसकी वासना इसकदर अंधी हो गयी थी? . . . इतनी लंगड़ी हो गयी थी? . . . इतनी लूली हो गयी थी. . . किसकी. . . कौन . . .कैसे कहां. . . क्यों. . . कुछ समझ नहीं आ रहा था. समझ कर भी नहीं समझ पा रही थी. जिस्मानी दर्द और तेज हुआ. कहीं कोई उसके शरीर से आ टकराया. चिपक गया, खेलने लगा, और दर्द, दर्द, दर्द — वेदना की संवेदना, एक के बाद दूसरी, एक से तेज दूसरी. कुछ अजीब-सा लग रहा था. सारा बदन निचोड़ा जा रहा था. वेदना की हजारों-लाखों निठुर सुइयां एकबारगी उसके शरीर में घुसी जा रही थीं रह-रह कर! फटे-पुराने, गंदे कपड़ों को कोई फाड़-झाड़ कर और चिथड़े बना रहा था. होंठों को काट रहा था. न ही वह बोल पा रही थी, न ही कोई उससे बोल रहा था. . . . एक राक्षसी, तगड़ा, उतावला, अमानुष हाथ बार-बार उसके अंगों पर फिसल रहा था. मसल रहा था. बाल खींच रहा था. . . और घुप्प अंधेरा आंखें मूंदकर देख रहा था. उसकी साक्षी में कोई अप काम किये जा रहा था. काल मानो रुक गया था. . और फिर सब कुछ रुक गया. आवडा खड़ी नहीं हो प रही थी. न ही बैठ पा रही थी. न तो समझ पा रही थी हुआ क्या ? . . . उसके अस्त-व्यस्त कपड़ों को अब को हाथ ठीकठाक कर रहा था. कोई अपने कपड़े ठीकठा कर रहा था.

—आवडा. . . कोई एक भारी-सी, मोटी-सी आवा आयी.

—हूं. . . हुं. . . आवडा महज कराह पायी.

—आवडा. . . उठो. . .

—क. . . क. . . कांपती हुई आवडा की आवा महज इतना ही बोल पायी.

—आवडा. . . उसने उसे जूड़े से पकड़ कर खड़ा कर दिया. आंखें फाड़-फाड़ कर कोशिश करने के बावजू आवडा को कुछ नहीं दिख रहा था. कोई पहचानने नहीं आ रहा था.

—मैं. . . मैं वासू भट. . .

—क. . . क. . . क्या ऽऽ?

—मैं वासू भट . . .

—भट. . . आप. . . ? अचरज में भरी अब की बा वह बोल पायी.

—हां . . . मैं. . . वासू भट. . .

—यह क्या कर दिया?

—ठीक किया. . . मजा आया. . .

—भट. . .

—क्या ? . . .

—मैं अब घर कैसे जाऊं?

—जैसे आयी थी. . .

—क. . . क. . . कैसे?

—आवडा. . .

—क्या है?

—सुन लो, ध्यान से. आज से तुम मेरी देवदासी हो.

—देवदासी. . . ?

—हां. . . देवदासी. . . वासू भट की देवदासी. . . मेरी. . .

—लोग हंसेंगे आप पर!

—दांत तोड़ दूंगा उनके.

—मुझ पर भी हंसेंगे.

—कह तो रहा हूं, दांत तोड़ के रख दूंगा.

—मैं. . . मैं. . . आवडा हूं. . .

—मैं जानता हूं. . .

—भूल से आपने. . .

—भूल से नहीं, जानबूझकर. . .

—लेकिन . . .

—क्या है. . . ?

—देवदासी तो. . . भगवान को साक्षी रख कर रखते हैं.

—सब कुछ करूंगा मैं. . . चलो. . .

—कैसे जाऊं. . .?

—मैं कहता हूं निकल जाओ, चली जाओ. और सुनो,

. . . तुम्हारे घर नहीं आऊंगा. . . कल रात को खलनाथ के मंदिर में इंतजार करूंगा. . .

—मं. . . दि. . . र. . में. . .

—हां . . . वहीं आओ.

फिर कोई किसी से नहीं बोला. जूते चटखाता हुआ वासू भट घर की तरफ चल पड़ा. उसकी नस नस में मस्ती खेल रही थी. खून उबल रहा था. 'जितं मयां' की मस्ती में झूमता हुआ वह दानवी ब्रह्मपुरुष चल रहा था. मंदिर में लोग जाग रहे थे. छोटी-बड़ी घंटियां एक साथ अलग अलग सुरों की मिठास में गूंज रही थीं. भैरव गीत गा रही थीं. रात काफी हो चली थी. देवालय-बसरी में खाना वाना हो गया था, बत्तियां बुझ चली थीं. देवताल के बांध से गुजरने वालों के कदमों की आहट आ रही थी, उनके हाथों में झूलती लालटेनों की हलकी किटपिट सुनायी दे रही थीं. लट्ठ के जमीन पर मारने की आवाजें आ रही थीं. मौलसिरी तले पत्थर खाली खाली-सा-पड़ा हुआ ताल की प्रसन्न शांति का साथ दे रहा था. अम्मा बेचारी अकेली जाग रही थी. आंगन में आ आ कर चीख रही थी. . .

—आवडा री ऽऽ, अरी ओ आवडा ऽऽ. . .

आवडा का एक एक कदम मनों का बोझ ढोता हुआ गलियारे के कंकड़-पत्थरों से अंधी टक्करें खा रहा था. धूल में घिसट-घिसट रहा था. . . □□□

(अनुवाद : रेखा देशपांडे)

१३ फुलरानी, साहित्य सहवास, बांद्रा (पूर्व), बंबई—५१

देवदासी समाज : कुछ संस्मरण

भिमाबाई

६ जून के 'राष्ट्रमता' में एक जिज्ञासु गृहस्थ ने 'तुम्हारी यह साथिन भिमाबाई कौन हैं,' के विषय में पूछा है . . . बचपन से ही हम दोनों एक दूसरे के हमजोली थे, एक दूसरे के बिना शायद रह नहीं सकते थे ऐसे ही काफी अरसा व्यतीत हो गया. चौदह वर्ष में मेरी शादी हो गयी. शादी में भिमा भी थी यह मुझे अच्छी तरह याद है. उस समय तक शादी क्या चीज है, वेश्या व्यवसाय अच्छा है या बुरा, इसकी समझ मुझे नहीं थी. मेरा तथा भिमा का प्रेम दिन प्रतिदिन गहरा होता चला गया, उसका परिणाम वही हुआ जो होता है.

. . . भिमा जब अपनी उम्र के उभरते हुए मोड़ पर आयी, उसकी मां ने उसे वेश्या के धंधे पर लगा दिया. अच्छे कपड़े तथा आभूषणों की लालच दे कर मां ने उसे उकसाया किंतु जब भिमा को यथार्थ अनुभव हुआ तब उसका मन उचट गया. उसके मन को ढाढस मेरे सामीप्य में था किंतु ऐसे समय में गायिका चंद्रा बाई के साथ तबले की संगत हेतु पूना चला गया था. . .

एक वर्ष पश्चात् जब मैं घर लौटा, मैं सबसे पहले उससे मिलने गया. वह हर्ष-विभोर हो उठी. बोली—मुझे छोड़ कर अब तुम कभी कहीं मत जाना. भिमा के पास मेरे बढ़ते हुए आने-जाने को देख कर मेरी आजी ने मुझे टोका—अब तुम्हारी शादी हो गयी है, ध्यान रखना.

. . . मैंने जब यह बात भिमा को बताई, उसे अत्यंत बुरा लगा, वह बोली—मुझे कहीं कुछ सीखने के लिए रख दो मैं अब यहां एक क्षण भी नहीं रह सकती, और वह फफक कर रो पड़ी. एक दिन किसी बात पर उसका अपनी मां के साथ झगड़ा हो गया और वह बिना बताये 'येसो' नाम के अपने पड़ोसी को ले कर अकोला चली गयी फिर मेरे आग्रहवश वापस आ गयी किंतु उसका मन अत्यंत अनमना हो उठा था. उसके पिता 'शाबा प्रभु' ने उसे स्वामी इंदिरा कांत के विषय में अनेक घटनाएं सुनायीं, जिससे प्रभावित हो वह उनके मठ में भेंट करने गयी. स्वामी जी औरतों से कभी भेंट नहीं करते थे किंतु भिमा को उन्होंने स्वयं का चित्र भी दिया तथा आशीर्वाद भी. सारे लोग आंखों में अश्रु लिये अचंभित थे, स्वामी जी जसे व्रतस्थ ब्रह्मचारी अपने हाथों से अपना ही चित्र एक वेश्या को दे रहे हैं. गांव में दूसरे दिन चर्चा थी 'राम ने शबरी के बेर खाये थे'. ऐसे ही . . .

इसी तरह अनेक दिन निकल गये. पणजी में भिमा शिक्षा लेने गयी. एक वर्ष तक उसकी पढ़ाई अच्छी चलती रही. इसी बीच उसके साथ वहां बहुत ही गलत व्यवहार हुआ, भिमा छोड़ कर वापस चली आयी. मैं स्वयं को भिमा के लिए अपराधी महसूस कर रहा था, मैंने उससे 'गंधर्व विवाह' का प्रस्ताव रखा. वह बोली—तुम वेश्या व्यवसाय खतम करने के आंदोलन से जूझ रहे हो, सारे लोग कहेंगे इसने तो खुद वेश्या से विवाह किया है . . .

और अंत में हम लोगों ने शादी कर के अपने बचपन के प्रेम को सामाजिक मर्यादा भी दे दी. घर में सब जानते थे, किसी ने विरोध नहीं किया. मेरी पहली पत्नी शांत-सौम्य थी, वह परिवार देखती थी, भिमा मेरी जीवनपर्यंत सच्ची सहचरी थी. . . भिमा अत्यंत कुशाग्र बुद्धि, कर्त्तव्य परायण तथा दानशीला थी . . . यही थी मेरी भिमा ! □□□

कालाय तस्मै नमः

जीवन में देवदासी पुत्र होने का अपमान कभी-कभी अत्यंत घृणित रूप में भोगना पड़ा है. सामाजिक उपेक्षा ने मेरे संपूर्ण अंतरतम को हिला कर रख दिया था, ऐसी ही एक अपमान जनक घटना मैं आपको बताने जा रहा हूं—किसी कार्यवश मैं काणकोण की मामलतदार कचहरी में गया हुआ था, बाहर कुछ बेंचें पड़ी हुई थीं जो कचहरी में आने-जाने वाले लोगों के बैठने के लिए थीं. उन्हीं पर मैं भी बैठ गया. इतने में कचहरी में क्लर्क का काम करने वाले एक पोके प्रभू चोडणकर नामक सज्जन का लक्ष्य मेरी तरफ गया. वे मुझे बेंच पर बैठे देख कर सिर से पैर तक जल उठे और बोले—तुम कौन हो, किस जाति के हो, यह बिना सोचे-समझे ही यहां बैठ गये? यहां बैठने के काबिल हो क्या तुम? यह तुम्हारे बैठने के लिए नहीं है.

मैंने कहा—सारे लोगों को बैठा देख कर मैं भी यहां बैठ गया. इतने लोगों के बीच अपमानित हो कर मुझे गुस्सा आ गया, मैंने जिद्द भरे स्वर में कहा—जो चाहे कर लो मैं उठने वाला नहीं हूं. सारा हंगामा जान कर बहुत से लोगों ने पोके प्रभु को समझाया तथा मुझसे बोले, आप बैठिए, मैं क्रोध से भरा हुआ उठ खड़ा हुआ तथा पोके प्रभू से बोला, अगर मेरी नसों में मानव-रक्त प्रवाहित हो रहा है तो एक दिन तुम लोगों की कुर्सी के समक्ष ही कुर्सी डाल कर हमारी आने वाली पीढ़ी बैठेगी.

वह बिद्रूप हंसी हंसे, बोले— इस युग में यह कभी संभव नहीं होगा.

शुरुआत अपने घर से मैंने की. मैंने अपनी मौसी से कहा, तुम्हारा नाती 'नरहरी' बड़ा बुद्धिमान बालक है, उसे पोर्तुगीज की शिक्षा देनी चाहिए, गालजीबाग में प्रबंध हो सकता है.

वह बोली—वह छोटा है अगर उसे साथी मिल जाये तो आने-जाने में असुविधा न होगी. मैंने एक दत्तू नामके पड़ोसी बच्चे को इस बावत मना लिया. दोनों दोपहर का खाना ले कर पढ़ने के लिए जाने लगे. मेरी प्रसन्नता का परावार न था. उन बच्चों ने मुंह जबानी तथा लिखित दोनों परीक्षाओं में अच्छे अंक प्राप्त किये. यह देख कर मादू शेणवी नाम के व्यक्ति ने व्यंग्य भरे शब्दों में बच्चों से कहा—मृदंग बजाना छोड़ कर यह शिक्षा प्राप्त करने की सलाह तुमको किस भले मानस ने दी? बच्चों को अत्यंत बुरा लगा, किंतु उनकी क्रिश्चियन शिक्षिका ने मुह तोड़ जवाब दिया—ये बच्चे बहुत होशियार हैं परीक्षा इन्होंने अच्छे नंबरों से पास की है. . .

यही बच्चे आगे चल कर बड़े होनहार बने. हमारी जाति में उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले ये दो बच्चे सबसे प्रथम हैं. नरहरी कोर्ट में अनुवादक तथा दत्तू फारेस्ट डिपार्टमेंट में लग गये. परीक्षा के समय इन बच्चों पर 'मृदंग बजाना छोड़ कर पढ़ाई क्यों कर रहे हो,' व्यंग्य कसने वाले मादू शेणवी को जब मडगांव कोर्ट में किसी सरकारी काम की वजह से जाना पड़ा, तब उन्हें नरहरी से ही अपने काम के लिए याचना करनी पड़ी. मैंने कहा—कालाय तस्मै नमः ☐

राजा और चिड़िया

एक दिन मेरे पड़ोस की पुत्तू मौसी मेरे घर आयी तथा बोली—गांव के लोग कहते हैं, पहले अपनी लड़की की शादी करो फिर लोगों को उपदेश दो. मैंने पुत्तू मौसी से कहा, उन लोगों से कहना मेरी लड़की की शादी शीघ्र होगी और यह काम मैं आप लोगों को निमंत्रण दे कर ही करूंगा. थोड़े दिनों के पश्चात मेरी लड़की की शादी बंबई में हो गयी.

इस घटना के काफी अरसे बाद, मैं गाव में गणपति पूजा के उत्सव में गया हुआ था. काफी संख्या में स्त्रियां वहां एकत्र थीं, मुझे देख कर वे आपस में कहने लगीं—लड़कियां काली हैं, इसीलिए शादी कर रहे हैं गोरी होतीं तो नाच-गाना सिखाते, शादी क्यों करते?

सुन कर मुझे हंसी आयी. मैंने उन लोगों से कहा—आप लोगों का कहना ठीक है. एक चिड़िया के मुंह से एक पैसा नीचे गिर पड़ा. उसी पेड़ के नीचे शिकार में भटकते-भटकते सुस्ताने हेतु राजा आ कर बैठ गया. उसने वह पैसा उठा लिया. चिड़िया बोली—राजा को गरीबी आ गयी है, मेरा पैसा ले लिया. राजा ने सुना तो पैसा नीचे फेंक दिया. यह देख कर चिड़िया बोली—राजा मुझ से डर गया है इसीलिए पैसा फेंक दिया. ऐसी ही स्थिति आप लोगों की है. ☐

महापतिव्रता

जब १९११ में देवदासी प्रथा को समाप्त करने के लिए प्रस्ताव पास हुआ तब आस पास के गांवों में काफी हलचल मच गयी. कुछ लोगों ने, अनादि काल से, शास्त्रानुसार चली आ रही इस परंपरा को समाप्त करने के संदर्भ में मेरा बहिष्कार करना शुरू कर दिया. किंतु उनकी लड़कियों की चेतना जागी थी, वे मेरे विचारों से अत्यंत प्रभावित थीं तथा नाच-गाना छोड़ कर शादी करना चाहती थीं. कुछ लोगों ने अपनी लड़कियों को अंग्रेजी शिक्षा देनी शुरू कर दी थी, कई लोगों ने इस तरह सोचा कि नाच-गाना उस पर शिक्षा होने से लड़कियों की कीमत बढ़ जायेगी. . . .

. . .ऐसे समय किसी कार्यवश मैं गांव के एक परिवार में गया हुआ था, वहां देखा, औरतों का भारी जमघट गप्प बाजी में जुटा हुआ है. मुझे देख कर एक औरत ने सबको संबोधित किया ——अगर किसीने मुझे पति ढूंढ़ दिया होता, तो मैं इस उम्र में भी शादी कर लेती. सुन कर मुझसे रहा नहीं गया, मैं बोला——चंदा मौसी, द्रौपदी के पांच पति थे तब भी वे पतिव्रता थीं, तुम्हारे पति तो दस से भी ज्यादा हैं, तुम तो महापतिव्रता हो.

. . . सुन कर सारी औरतें हंसने लगीं. ☐

तीन अभागी बहनों की कैफियत

तारीख १८ जून १९६९ के 'राष्ट्रमता' में तीन बहनों की कैफियत प्रकाशित हुई है, वह मैंने पढ़ी. मराठा समाज में वेश्या-व्यवसाय में रत स्त्रियों द्वारा ही विवाहित घरेलू महिलाओं का सुखी संसार नष्ट करने के अनेक उदाहरण हैं, ऐसे विचार उन्होंने अपने लेख में व्यक्त किये हैं. उन बहनों को मेरा उत्तर इस प्रकार है:——

मैं आप लोगों के विचारों से पूर्ण सहमत हूं. इस वेश्या-व्यवसाय की वजह से ही आपकी भरी-पूरी गृहस्थी उजड़ती है तथा हमारे नाम पर भी बट्टा लगता है, जब से यह बात मेरी समझ में आयी है पिछले साठ वर्षों से मैं वेश्या-व्यवसाय को नष्ट करने का सतत् प्रयत्न करता रहा हूं, और इस उद्देश्य के पीछे मैंने अपना समस्त जीवन बेच दिया यह आप लोगों ने मेरी पुस्तक 'मी कोण' पढ़ कर महसूस नहीं किया? अगर यकीन न आता हो तो इसी पुस्तक में मेरी तथा स्वामी इंदिरा कांत की भेंट-वार्ता है, वह पढ़ देखिए. उस भेंट-वार्ता में मैंने अपने उद्देश्य को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है. आप बहनों का संसार सुखमय रहे इस हेतु हमने वेश्या-व्यवसाय संपूर्ण रूप से खत्म करने के लिए सरकार से कानून पास करवाया . संस्था स्थापित कर लड़कियों की शादी के लिए रुपये देने की व्यवस्था की. वेश्या व्यवसाय से अलग हो सकें ऐसी स्त्रियों को नर्सिंग प्रशिक्षण दिलाने की तजवीज की. यह सब आप लोगों को मालूम है फिर यह कहां का न्याय है कि मुझ पर ही आरोप लगाया जा रहा है!

आपका तथा आने वाली पीढ़ी का संसार सुरक्षित रहे, आप लोग ऐसा चाहते हैं. यही वजह है देवालय जैसे पवित्र स्थान पर होने वाले इन वेश्याओं के नृत्य-समारोह में जब आपके पति उनके वासनात्मक हाव-भाव के जाल में फंस जाते हैं ऐसा न हो इसीलिए मैंने आप जैसी कुलीन सुशिक्षित महिलाओं को आगे आने के लिए प्रेरित किया तथा यह नृत्य बंद हो इसका महत् प्रयत्न किया. मैंने इन मठाधीशों से भी इस प्रकार के नृत्यों को बंद करने की विनती की किंतु उनका उत्तर था 'यह परंपरागत चला आ रहा रिवाज है.

वास्तव में वेश्याओं का नृत्य सारस्वतों को ही बंद करना चाहिए था क्योंकि गोवा के अधिकांश देवालय उनके ही आधीन हैं. दूर प्रांतों से लोग भक्ति-भाव से नमित यहां आते-हैं तथा पवित्र देवालय में इन वेश्याओं का वासनात्मक नृत्य देख कर यही महसूस करते हैं कि गोवा की संस्कृति है क्या? पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी कहा है 'गोवा तो अजब है.' इसका अर्थ यह है कि एक तरफ तो महान उच्च संस्कृति तथा दूसरी तरफ स्त्रियों द्वारा ही लज्जास्पद कृत्य. पवित्र देवालय के प्रांगण में अपवित्र वेश्याओं का नृत्य. किंतु विरोध व्यक्त करने पर यही उत्तर होता है——यह प्रथा परंपरागत है हमने शुरू नहीं की. ☐

सुधार प्रिय शामा बाई पैंगीणकर

शामा बाई को दत्ती नाम की एक पुत्री थी. जब वह छोटी थी तभी आस-पड़ोस के तथा परिवार से संबंधित लोगों ने मिल कर उन्हें डराया-धमकाया कि 'शेसविधि'' (देवदासी बनाने का एक प्रकार का नियम) संपन्न कर दीजिए नहीं तो देवी का कोप-भाजन बनना पड़ेगा. मुझे जब इस बात का पता चला तब मैं शामा बाई से भेंट करने गया तथा उनको समझाया यह तथ्य निर्मूल है, हमारे सतत् प्रयत्नों तथा आंदोलन की सफलता तुम जैसी समझदार स्त्रियों पर ही निर्भर है. यह सुन कर वे बोलीं—आप निश्चित रहें! भगवान की कृपा से मुझे हिम्मत है, मैं जो जो उचित है वही करूंगी....और उन्होंने अपनी पुत्री को अच्छे इंग्लिश स्कूल में पढ़ा कर डा. रामकृष्ण नार्वेकर के साथ विधिवत् विवाह संपन्न किया. १९४१ में 'गोमन्तक मराठा समाज' की ओर से 'नागेशी' में जिस प्रचंड सभा का आयोजन हुआ था, उस सभा की अध्यक्षा वही दत्ती उर्फ इंदिरा बाई नार्वेकर थीं. □

राणे लोगों का दंगा तथा घर में आग

यह भी मेरे बचपन की एक भयानक घटना है. राणे लोगों का दंगा-फसाद शुरू हो गया था. उस टोली का सरदार राजाराम सावंत था तथा उसका एक जोड़ीदार था पावटो शेणवी. उसने गांव में फसाद करने शुरू कर दिये. 'कुसके' नाम के एक जंगली गांव के ऊंचे घने जंगल में उनका डेरा था. एक दिन रात्रि के करीब बारह बजे किसीने हमारे घर के दरवाजे पर जोरों से ठक-ठक की. कौन है, यह देखने के लिए जब दरवाजा खोला गया तब भड़भड़ाते हुए वही राणे लोग अंदर घुस आये, घर में सबको सांप-सूंघ गया. यह देख कर राजाराम सावंत ने कहा—घबराइये नहीं, हमें 'दत्ती' का गाना सुनना है. यह सुन कर सबके मन में ढाढ़ेस हुआ. राणे लोगों को सम्मान सहित बैठा कर दत्ती बाई ने गाने गाये. गाने सुन कर वे अत्यंत खुश हुए तथा पांच रुपये दे कर चले गये. सबने राहत की सांस ली. किसीने कल्पना भी न की थी कि आगे जा कर यह घटना क्या रंग लायेगी. दूसरे ही दिन 'कुसके' गांव से एक परिचित उनका पत्र ले कर आया. पत्र में यह संदेस था कि कल शाम को दत्तीबाई को उनके साजिंदों समेत तथा दो नाचने वाली लड़कियों सहित कुसके के जंगल में बुलाया है. तथा—हमारा यह आदमी तुम्हारे साथ रहेगा. सारे लोगों की हालत ऐसी कि काटो तो खून नहीं. न जायें तो प्राणों का भय, और जायें तो सरकार का. आये हुए व्यक्ति से उनके भीतर की कुछ बातें मालूम पड़ीं. यहां से जाने के पश्चात राजाराम सावंत ने अपने साथी पाबटो शेणवी, जो नशे में धुत पड़ा था, से गर्वित हो कर कहा—तू यहां दारू पी कर पड़ा है और हम दत्ती बाई का गाना सुन कर आ रहे हैं. पाबटो शेणवी ने मजाक उड़ाते हुए कहा—तुम तो गाना सुनने उसके घर गये हुए थे. मैं उसे यहीं बुला कर गाना सुन लूंगा. बकरे तथा दारू के प्रबंध की भी बात थी. यह सब सुन कर हम सब के होश फाख्ता हो गये. अंत में हम लोगों ने ब्रिटिश सीमा के अंतर्गत आने वाले 'मजाली' गांव में जा कर कुछ दिन ठहरने का निश्चय किया. दूसरे दिन तड़के पूरा कुटुंब घर में ताला लगा कर 'मजाली' के लिए निकल पड़ा. लकड़ी चीरने वाले व्यंकटी नाम के एक गृहस्थ के यहां हम रहे, यह मुझे अब तक याद है. हम लोग नहीं, यह देख कर दूसरे ही दिन पावटो शेणवी ने बिना आगा-पीछा सोचे अपने साथियों को घर में आग लगाने की आज्ञा दे दी. घर कवलों का था अतः आग लगाने में उन्हें करीब दो घंटे लग गये. उन लोगों के चले जाने के पश्चात मेरे पिता ने लोगों को एकत्र कर आग बुझायी. जब यह सूचना हम लोगों को मिली तो घर की सारी स्त्रियों में रोना-पीटना मच गया. काफी अरसे पश्चात जब दंगे समाप्त हो गये तब हम लोग घर आये व घर को दुरुस्त किया. □

चिनू बाई

चिनू बाई नाईक समाज में से थीं. वे अत्यंत कुशाग्र बुद्धि की महिला थीं. जब मैं उनसे भेंट करने गया तब उनका निवासस्थान कुंकल्ली था. तीखे नयन-नक्श की स्वामिनी चिनू बड़ी ही सौंदर्यमयी थीं तथा उनका रहन-सहन अन्य ब्राह्मण परिवार की पत्नियों के समान था. वे उसी तरह की पोशाक धारण करती थीं.

तथा माथे पर बड़ी-सी बिंदी लगातीं. उस समय उन्हें देख कर ऐसा प्रतीत नहीं होता था कि वे एक देवदासी हैं. जब मैं उनसे मिला तब मैंने उन्हें इस सामाजिक आंदोलन के विषय में जानकारी दी. उन्होंने कहा---आपके विचार बहुत ही अच्छे हैं. हमारी तरह ही यदि आप लोग भी लड़की की शादी करेंगे तो गलत नहीं सोचेंगे. मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछूं क्या?

---हां, हां ! खुशी से पूछिए.

मैंने पूछा---क्या आपकी शादी हो गयी है?

मेरे पूछते ही उनका चेहरा फक पड़ गया. वह बोलीं---नहीं.

मैंने कहा---यह तो मुझे मालूम था ही. यह प्रश्न आपसे यों ही पूछ लिया क्योंकि लड़कियों की शादी करने के लिए आप मुझे कह रही हैं और आप स्वयं वेश्या व्यवसाय में रत हैं. इतना ही नहीं, जब शादी का प्रश्न सामने आता है तो आप उन सुंदर नाक-नक्श वाली लड़कियों को वेश्या वृत्ति के लिए रख लेती हैं, ऐसा मैं सुनता हूं. आप गुस्सा न हों, आप मुझे अपने भाई की तरह ही समझिए. वेश्या व्यवसाय बंद हो तथा इस व्यवसाय में रत लोगों को सामाजिक प्रतिष्ठा भी मिले तथा शिक्षा प्राप्त कर जीवन में वे आगे आ सकें, ऊंच-नींच का भेद समाप्त हो, यही मेरी हार्दिक इच्छा है. ब्राह्मण तुम्हारा भोग तो कर सकते हैं किंतु वे तुम्हें सामाजिक मर्यादा देने के लिए तैयार नहीं हैं जिसकी तुम पूर्ण रूप से अधिकारिणी हो. वे धूर्त हैं. मेरी मां देवदासी हैं और जन्म से ही एक ब्राह्मण के साथ रह रही है. उन्हींका पुत्र हो कर भी, मैं न उन्हें पिता कहने का अधिकारी हूं तथा ना ही वे मेरे द्वारा पिता कहलाना पसंद करते हैं.

यह सुन कर वे बोलीं---तुम्हारे विचार से मैं सहमत हूं, मैं भविष्य में प्रयत्न करूंगी कि तुम्हारे विचारों को प्रतिफलित कर सकूं. □

भोजन के उपरांत जूठन भी साफ करना

वेश्या व्यवसाय करने वाली, 'देवदासी भाविणी' नाईक , बंदे, पेणी आदि सब समाज में एक है यह घूम-घूम कर समझाने का प्रयत्न कर रहा था. नाईक समाज के पुन्हा नामके एक गृहस्थ कुंकली में रहते थे. उनसे मेरी जान पहचान थी. मैं प्रचार कार्य के लिए घूम रहा था कि एक दिन रात को मैं उनके घर पहुंचा. मुझे देख कर वे अत्यंत प्रसन्न हुए. समाज के एकीकरण और शिक्षण के विषय पर उनसे काफी तर्क-

वितर्क हुआ. मेरे विचारों पर उन्होंने सहमति प्रकट की, इतने में ही अंदर से भोजन का आमंत्रण आया. हाथ-पैर धो कर हम भोजन वाले कमरे में गये. घर के सभी सदस्यों को एक साथ तथा मेरे लिए अलग से एक पीढ़ा और पत्तल था. जैसे ही मैं अंदर आया मुझे मेरा पीढ़ा दिखा दिया गया. मैं पीढ़े पर बैठ गया . पुरुष मंडली सहित पुन्हा भी अपने आसन पर बैठ गये. भोजन समाप्त हो जाने के पश्चात पुन्हा मुझसे बोले ---पत्तल उठा कर बाहर की तरफ फेंक दीजिए. मैंने वैसा ही किया. जहां मेरा जूठन गिरा था, उस स्थान को लीप देने के लिए उन्होंने मुझे गोबर ला कर दिया. मैंने उनके आदेशानुसार गोबर से उस स्थान को लीप दिया तथा हाथ धोने के पश्चात मैं बैठक खाने में उनके साथ आ कर बैठ गया.

मैंने उनसे कहा---आज मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि ब्राह्मण के घर भोजन करने के पश्चात जिस तरह अपना जूठन स्वयं को साफ करना पड़ता है, वैसा ही व्यवहार आपने मेरे साथ किया. मात्र ब्राह्मण होने में आपके अंदर थोड़ी सी ही कमी रह गयी है वह ऐसी है कि जब हम जैसे क्षुद्र जीव ब्राह्मणों के यहां आमंत्रित होते हैं तो वे पानी पीने के लिए पत्तल के पास शौच वाला लोटा रख देते हैं. आपने बस इतना ही कम किया.

यह सब सुन कर वे झेंप गये.

मैंने फिर कहा---इसमें बुरा लगने का कोई कारण नहीं हैं. अगर मैं ब्राह्मण के घर में भोजन करके जूठन साफ करता हूं तो अपने घर में जूठन साफ करने में लाज कैसी ! हम और आप एक ही व्यवसाय के बंधु हैं, दोनों के ही घर में कुछ कमी-वेसी वेश्या-व्यवसाय चलता है. लड़कियों की शादी तो आपके समाज में भी होती है किंतु देवी का आधार बना कर आप लोग भी किसी मासूम लड़की को देवदासी बनने पर मजबूर करते हैं. ब्राह्मण आपको अपनाते तो जरूर हैं, मगर वे आपकी लड़की के साथ शादी तो नहीं करते? बराबरी पर बैठाते तो नहीं हैं! अपनी पिछली पीढ़ी की इस रूढ़ि को खत्म कीजिए और स्वयं को सुधारिए. □

महानंदा

• जयवंत दलवी

मराठी के प्रसिद्ध लेखक जयवंत दलवी का लघु उपन्यास 'महानंदा' कोंकण (महाराष्ट्र) की लुप्तप्राय देवदासी प्रथा की पृष्ठभूमि में निर्मित अत्यंत लोकप्रिय एवं सशक्त कृति है. 'महानंदा' में लेखक ने इस चिरंतन प्रश्न का सहज-स्वाभाविक उत्तर दिया है कि वारांगनाओं में ऐसा क्या आकर्षण होता है जिससे पुरुष अपनी गृहिणी के साये से परे हट कर कहीं अन्य भटक जाता है. प्रस्तुत हैं—'महानंदा' के कतिपय रोचक अंश... •

मंदिर की परिक्रमा में घुप अंधेरा था, भीतर गर्भ गृह में भी अंधियारा था—दो दीवटें जल रहीं थीं जिनके प्रकाश में ठाकुरजी की चांदी की आंखें और मूंछें बड़ी अजीब-सी दिखाई दे रही थीं.

—'मां ठीक है न!...उस अंधेरे से किसी स्त्री की आवाज़ आयी.

—हां,...मैंने भी कह दिया लेकिन पता न चला

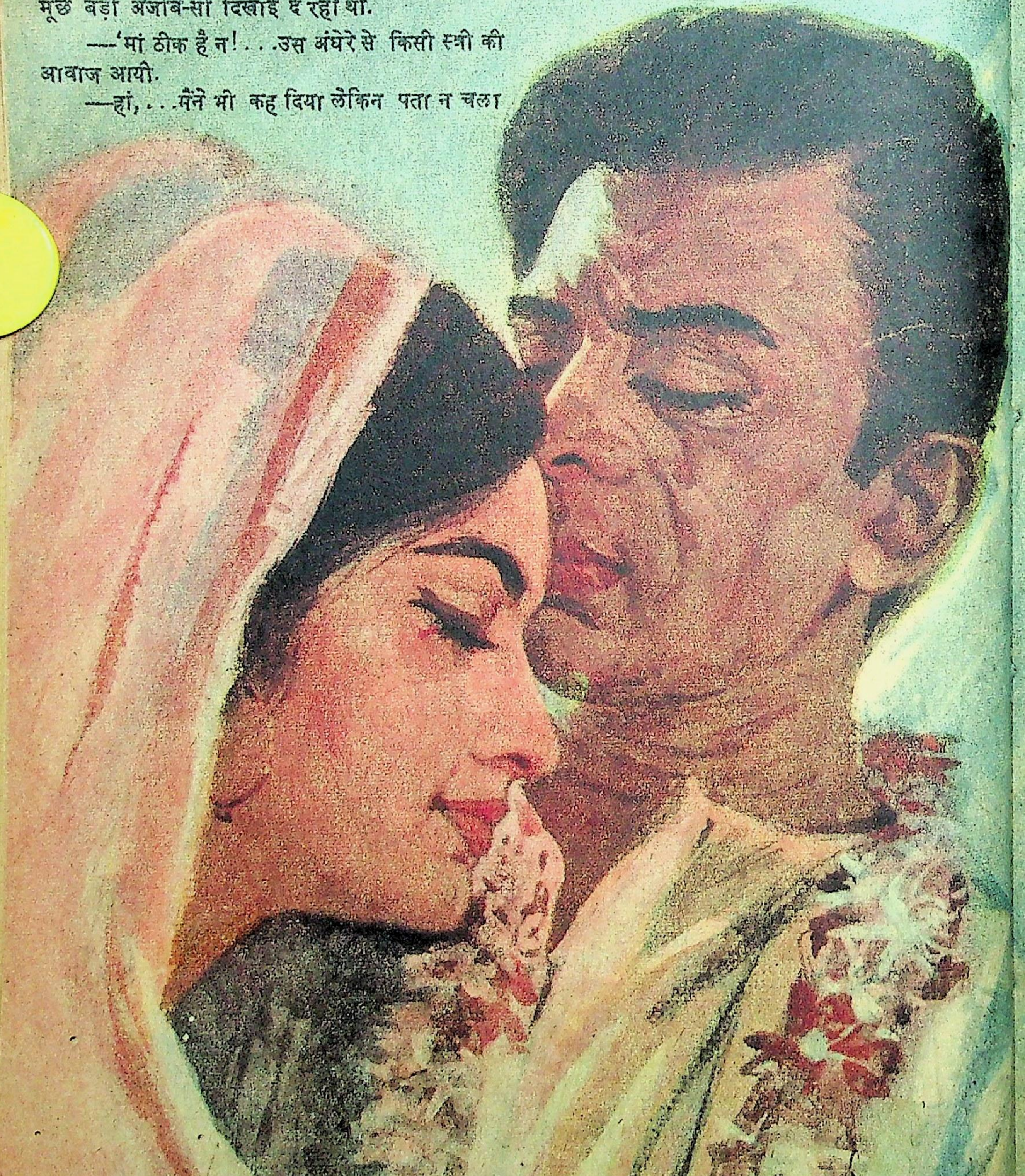

अंतर-कक्ष से कौन बोल रहा है. मैंने टार्च के प्रकाश में देखा, छत से लटकती दीवट तले ढलती-सी उम्र की एक स्त्री नीराजन जला रही थी.

—कौन? मैंने नारायण पुजारी से पूछा.

—कल्याणी—ठाकुरजी की देवदासी. . .कल्याणी हंसी और हंसी की ध्वनि मंदिर की घंटियों जैसी गूंज कर रह गयी.

—तुम्हारा नाम बाबुलनाथ है न?

—हां.

—तुम मुझे नहीं पहचान सकते. लेकिन तुम्हारी मां जानती है, केवल कल्याणी देवदासी कहना, वह फौरन जान जायेगी.

सीढ़ियां उतर कर कल्याणी मंडप द्वार के पास आयी. उसके हाथों में चांदी की थाली थी जिसमें पान तथा इलायचियां थीं. उसने थाली मेरे सामने बढ़ा कर कहा—यह हमारा धरम है जो हम जीते जी निभायेंगे. आजकल की लड़कियां कहां क्या करती हैं? अब तो वे विवाह तक कर लेती हैं—नरक जाने के लच्छन! . . .अब देवदासी की बेटी ठाकुरजी के चरन छोड़ कर अगर विवाह कर ले तो ठाकुर जी हमारी आंखें न फोड़ देंगे? सच है कि नहीं?

मैंने सकपकाकर उसकी थाली में अठन्नी डाल दी वह हंसी, जैसे उसने आशीर्वाद दिया हो.

* *

मंदिर की सीमा से ही कल्याणी का घर लगा था. कच्चे आंगन में जूही का मंडप था. मंडप के उस ओर कोई लड़की फूल चुन रही थी. हरे पत्तों के बीच से उसकी अस्पष्ट रूपरेखा भर दिखाई दे रही थी. कल्याणी ने बताया। वह उसकी लड़की मानू अर्थात 'महानंदा' है.

. . .गयी रात तक ठीक से नींद न आयी. दूर पहाडों पर सियार चिल्ला रहे थे. आंख लगने को ही थी कि कहीं जूतों के 'कर्र-कर्र' की आवाज आयी. आंगन में नजर दौड़ाई तो मद्धिम लालटेन का पीला धब्बा आंगन के द्वार से बाहर सरकता जा रहा था—पीछे से दरवाजे के खुलने और मामी की चूड़ियों की महीन खनक तथा ठंडी निःश्वास की मिली-जुली आवाजें आयीं. . . .इतनी रात मामा कहां गये होंगे? . . .मैं आश्वस्त हो गया. एक ओर मामी और दूसरी ओर कल्याणी. कल्याणी से मेरी जरा-सी पहचान लेकिन लगा जैसे पुरानी पहचान हो. . . कितने अपनेपन का स्वर! कितनी स्पष्टता! उसकी जरा-सी बातों से ही पता चलता था कि वह आकंठ सुखों में डूबी है. . . .और मामी, मामा से विवाह हो कर भी. . .सब कुछ उदास, ऊसर, और उजाड़. . .

वास्तव में सुख-संतोष किसमें है? विवाह में? गृहस्थी में? बाल-बच्चों में? मामा शायद कल्याणी के यहां गये होंगे. ढलती उम्र में वे घर की गृहिणी को छोड़ कर वहां क्यों गये? मामी से क्यों कोई लगाव नहीं? कल्याणी से क्यों इतना आकर्षण है? . . .मन में ऐसे प्रश्न आने पर न जाने क्यों मुझे कल्याणी से इतना अपनापन लगने लगा! विवाह किये बगैर भी वह किसी पुरुष को अपनी ओर खींचे रहती है. . .अगर यह मामा की पत्नी होती तो क्या मामा आधी-रात उठ कर बाहर जाते!

* *

उस सांझ मानू तुलसी वृंदा के सामने नीराजन जला कर अधखिपी आंखों से 'शुभम् करोति कल्याणम्,' का सस्वर पाठ कर रही थी और नीराजन की शीतल मंद ज्योति मानू के चेहरे का सौंदर्य बढ़ा रही थी. आज पहली बार इतनी भावुक लड़की देख रहा था. . .तुलसी, जूही का मंडप, गीत की मंजुल ध्वनि. लगता था घर के आसपास ऐसा ही वातावरण होना चाहिए. भले ही घर देवदासी का सही परंतु मामा के घर से कहीं अधिक मधुरता थी.

कल्याणी ने मुझे बिठा कर कहा—'यह मानू है—पूरा नाम महानंदा है पर हम मानू ही कहते हैं.' . .और परिचय बढ़ता गया.

. . .रात ठंड से अकड़ी जा रही थी और इधर मेरी आंखें जली जा रहीं थीं. . .जूही के छप्पर तले कोई न था, सीधा मानू के कमरे में गया. वह खिड़की के पास बैठी जूही का गजरा बना रही थी. वह मेरी ओर एकटक देखे जा रही थी, उसकी मुद्रा में क्रोध था; न जाने असली या नकली. फिर उसने धीमे से पूछा—यहां कितने दिन रहना तय किया?

—गांव के उत्सव और जत्रा (मेले) के बाद ही जाऊंगा.

—ठीक, तब तक मेरा बंदनवार तैयार हो जायेगा. कहते हुए उसने गजरा मेरी कलाई पर बांध दिया.

—लेकिन बंदनवार अपने ही पास रखना मानू.

—क्यों?

—सब तुम्हारे साथ ही ले जाऊंगा.

—सच?

—क्यों, संशय क्यों?

—मेरी मां विरोध करेगी. उसका कहना है हम देवता के हैं. अगर देवता के चरण छोड़ कर हमने विवाह किया तो हमारा कभी कल्याण न होगा. . . .लेकिन तुम्हारे घर के लोग?

—मैं स्वतंत्र हूं. बंबई जाते ही बाहर तबादला करा लूंगा; फिर हम अपने मन के राजा-रानी. मैंने अनजाने उसकी गोदी में सिर रख कर कहा—मानू कितना

सुख, कितना समाधान!

—ओ, मेरे भगवान! माथे पर हाथ मार कर कल्याणी हंसी. पता नहीं उस हंसी में सम्मति थी या विरोध.

—क्यों?

—देवदासी की बच्ची और विवाह? क्या हमने विवाह किया?

—वह जमाना और था, मैंने कहा.

—तुम्हें पता है उस जमुनिया का क्या हुआ?

—कौन जमुना?

—वही, चंद्रा की लड़की. पांचवीं तक पढ़ी तो बड़ी अकल आ गयी. सबने मना किया तो भाग गयी और उस भागो के बच्चे से विवाह कर लिया. नास हो गया. जब देवदासी ब्याह रचायेगी तो देवताओं का कोप न होगा. जागृत देवता! उसको साल भर भी न बीता था कि पागल हो गयी और एड़ियां रगड़-रगड़ कर मरी...और भाऊ भट्ट की सुनी? उसका घराना भी बड़ा नामी है. एकादशी को भगवान की पालकी उसके घर जाती है. उसके देवघर में भगवान विठोबा हैं. लेकिन ससुरे की मत मारी गयी. ब्राह्मण की लड़की छोड़ गंगा देवदासी की सुंदरी ब्याह ली... ...तुम्हारी मां जानती है, सारा गांव विरुद्ध लेकिन भट्ट काहे को मानने लगा! एकादशी को देवी के मंदिर तक जा कर ही लौट आयी. छह महीने में ही भट्ट का शरीर फूल कर सड़ गया. दसों गांवों के बैद आये, बीमारी न घटी. आखिर भट्ट होश में आया. ठाकुरजी के सामने नाक घिसी, सुंदरी को छोड़ दिया! शुद्धि की गयी. गोबर में गंगाजल मिला कर घर लीपा गया. तब कहीं उसकी दशा सुधरी.

—और सुंदरी का क्या हुआ? मैंने सहज भाव से पूछा.

—अरे, वह कहां मरघट में जायेगी. देवी की सेवा करती है. भट्ट उसके यहां आता जाता है. देवदासी को रखने से देवता कुपित नहीं होते, लेकिन ब्याह... मेरी आंखों में मानू की कल्पना से पानी आ गया पर मैं दृढ़ था.

★ ★

उत्सव के दिन की सांझ. हजारों लोग गांव के मेले में जुटे थे. कोलाहल बढ़ता जा रहा था. दूकानें सजी थीं. मध्यरात्रि में देवता की पालकी उठी. आगे ताशे और ढोल वाले, फिर असंख्य नर-नारी, आबाल वृद्ध. पालकी के पास जरतारी पट्टों वाले चौबदार. फिर कौशेय में लिपटे पुजारी लोग. पालकी के दोनों ओर पंचारतियां लिये सिंगार किये देवदासियां. पीछे कल्याणी किसी महारानी-सी चल रही थी. उसके साथ शैवाल के रंग की जरतारी साड़ी में थी—महानंदा! कितने ही आभूषणों में सजी—महानंदा! मैं कल्याणी का विरोध भूल गया.

मैं स्तंभित खड़ा था कि कंधे को छू कर एक आंचल निकल गया. मैंने घूम कर देखा, मानू ने पीछे-पीछे आने के संकेत में गर्दन घुमायी. मैं मंत्रमुग्ध-सा नीरव पगडंडी पर घुले अंधयारे में चल दिया. हम दोनों अंधेरे में टटोलते पिछले दरवाजे पर पहुंचे. मानू ने ताला खोल कर दीवट जलायी...मैं उसे देखता रहा और सब कुछ भूल गया.

उसने फूलों का एक बड़ा हार मेरे गले में डाल दिया. हार गले में पड़ने पर न जाने क्यों पहला उन्माद कम हो गया. विवाह हो जाने का आभास हुआ. कुछ पवित्रता झांक उठी. छाती पर टिके उसके सिर को सहलाता रहा. मानू ने हाथ बढ़ा कर दीवट बुझा दी. पता नहीं जागते-जागते सवेरा कब हुआ... दिन चढ़ने को था, जल्दी-जल्दी कमीज के बटन लगाता बाहर निकला.

★ ★

मैंने उमर के चालीस वर्ष पार कर लिये थे. किसी ईषत आघात से असमय वृद्ध हो चुका था. बीमारी ने छाती को जर्जर छलनी बना दिया था. तभी अकस्मात मां का पत्र आया कि मामा की मृत्यु हो गयी है—मामी से मिल आऊं....जहाज बंदर से लगा. अब कुछ भी पहचाना-सा न लगा. अगली शाम देवमंदिर गया तो हांफता-सा सीढ़ियों पर बैठ गया. पायल बजाती लगभग बीस वर्ष की एक तरुणी पास आ कर बोली—आपको मां बुला रही हैं.

—कौन? मैंने क्षीण आवाज में पूछा.

—महानंदा.

मन में तो आया था चीख कर कहूं—जाओ, रास्ता देखो! बिल्कुल कल्याणी और महानंदा जैसी आवाज थी...आंखों में आंचल लगाये मानू रो रही थी. उसका मुंह खुला था—जैसे मृत्यु के समय खुलता है. ..सारा इतिहास स्पष्ट हुआ. मानू बोली—तुमने जब मुझे आ कर ले जाने का पत्र लिखा, वह मां के हाथ लगा. उस डाइन ने मुझे सीतू मृदंगिये के साथ पिंगुलि गांव भेज दिया और तुम्हें झूठ बताया कि मुझे पांच महीने का गर्भ रहा है. मुझे पता भी न चला कि तुम आ गये हो. मैं वर्षों जलती रही, तीन साल पहले यह रहस्य मालूम पड़ा...अब वह बैरिन पागल हो कर सड़ रही है—मेरा विनाश करके...

उस स्थिति में भी लोकलाज को तिलांजलि दे मैंने मानू को बेटी के साथ ही चलने का प्रस्ताव किया.

★ ★

—दमयंती इनके पैर छू...मानू युवती से बोली. फिर मुझसे कहा—कम-से-कम इसका तो विवाह हो जाये. इसे ले जाओ. मैं कहां इस योग्य पवित्र रही... पेट के लिए सब देवदासी धर्म निभाना पड़ा.

दमयंती हाथ में बैग लिये बंदर पर आयी. मानू ऊंची चट्टान पर खड़ी विदा दे रही थी. मानू ने बैग खोला तो महानंदा के बनाये बीस साल पहले के बंदनवार और तकिये के गिलाफ दिखाई दिये... एक बिंदु की भांति, किनारे पर खड़ी मानू की आकृति घुलती जा रही थी.

आंखों से आंसू बह चले. □□□

(अनुवाद: विष्णु निवसरकर)

४, मलिक बिल्डिंग, शिवाजी पार्क, रोड नं.४, बंबई-२८.

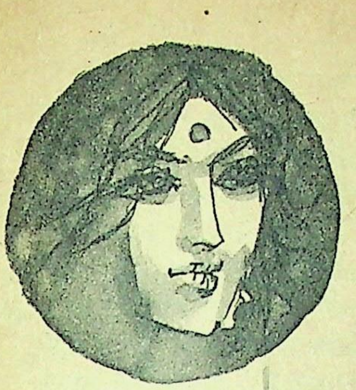

देवदासी समाज : कुछ संस्मरण

डा. शामराव मुलगांवकर के साथ मुलाकात

गोमंतक मराठा समाज गोवा, इस संस्था का कार्य-भार मेरे द्वारा ग्रहण करने के कुछ ही समयोपरांत मैं बंबई गया. उस समय डा. मुलगांवकर साहब ने मुझे भेंट करने के लिए निमंत्रित किया. मैं तुरंत श्री मुरारी शिरोडकर को साथ ले कर रात्रि के आठ बजे उनके निवास स्थान पर गया. डा. साहब बैठकखाने में आ कर बैठ गये तथा मेरी ओर मुखातिब हो कर बोले–शिक्षण के विषय में आपके क्या विचार हैं?

मैंने कहा––स्त्रियों के लिए माध्यमिक शिक्षा अनिवार्य तथा पुरुषों के लिए उच्च शिक्षा होनी चाहिए.

यह सुन कर वे मुसकराये तथा बोले––स्त्रियों को चूल्हे के पास ही रहना चाहिए ऐसे मत के लगते हैं आप?

मैंने कहा––नहीं, साहब, यह बात नहीं है. सभी को उच्च शिक्षा मुहैया करने के लिए अभी न तो हमारे समाज के पास पैसा है न पूर्ण रूप से उचित साधन. अन्यथा स्त्रियों को भी उच्च शिक्षा मिलनी ही चाहिए.

मुरारी शिरोडकर बोले––स्त्रियों की पूर्ण स्वतंत्रता के पक्षपाती हैं श्री पैंगीणकर. ☐

दत्ता दलाल

मडगांव के दत्ता पांडुरंग नायक दलाल मेरे निकट के परिचित हैं. बहुत वर्ष पूर्व मैं उनके यहां गया था, वे बड़े ही सुधारप्रिय व्यक्ति थे. सहज स्वर में बोले–आपके इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य क्या है?

मैंने उन्हें पांचों प्रस्तावों का अर्थ विस्तृत रूप से समझाया. ब्राह्मण समाज में हुंडी लेने तथा पुनर्विवाह न करने से कितनी बुराइयां उत्पन्न हुई हैं. इस तरह की रूढ़िवादी विचारधारा के अंध-अनुयायी होने की वजह से ही यह समाज गर्त में पड़ा. यह सब देख-सुन कर ही हुंडी न लेने तथा पुनर्विवाह करने के लिए दोनों प्रस्ताव हमने पास करवाये. स्त्रियों को पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए. इतना ही नहीं, पारिवारिक लेन-देन की जानकारी उनको होनी ही चाहिए. घर-संसार में लगने वाली वस्तुओं की खरीद-फरोख्त उनके द्वारा अगर होगी तो पुरुषों के कंधों का भार कम होगा तथा स्त्रियों को व्यवहार ज्ञान प्राप्त होगा, उनकी अज्ञानता भी दूर होगी, मेरे विचारों को सुन कर वे अत्यंत प्रसन्न हुए तथा बोले––हिंदू समाज में पुरुषों द्वारा स्त्रियों को सामाजिक व्यावहारिकता से अनभिज्ञ रखने की वजह से ही कितने कुटुम्ब रसातल में मिल गये. ☐

नागली बाई से भेंट

सामाजिक आंदोलन शुरू होने के बहुत वर्ष पूर्व, गोपाल मामा जांबांवलीकर मुझे ले कर 'शिरोड' की श्रीमती नागली बाई के यहां गये. वे गाने में तथा देवदासी समाज सुधार के कार्यों में अत्यंत प्रसिद्ध थीं. उनके पुत्र चि. विट्ठल राव शिरोडकर उस समय डाक्टरी की शिक्षा ग्रहण कर रहे थे. मेरा परिचय उनसे कराते हुए गोपाल मामा बोले––यह राजाराम पैंगीणकर हैं. इन्होंने समाज (देवदासी समाज) सुधार का आंदोलन विशाल पैमाने पर शुरू किया है. 'पंच महाल' तथा 'बंबई' में जा कर वहां सभाओं का आयोजन किया है तथा समाज सुधार के लिए पांच प्रस्ताव पारित किये हैं, जो इस प्रकार हैं: (१) वेश्या व्यवसाय (देवदासियों के संदर्भ में) करने वालों का हिंदू समाज में एकीकरण (२) शिक्षण प्रसार (३) लड़कियों का विवाह (४) हुंडी न लेना (५) पुनर्विवाह करना.

सुन कर वे बोलीं––आपके चार प्रस्तावों से मैं अत्यंत सहमत हूं किंतु मुझे पांचवां प्रस्ताव उचित नहीं लगा, वह 'गंगा नहाने के पश्चात गू पर पैर देना' जैसा है. इतना बोलते हुए उन्होंने 'बाबा पुकार कर बिट्ठल राव को अवाज लगायी. विठ्ठल राव अपने कमरे से बाहर आये, उनकी ओर मुखतिब हो कर नागली बाई ने परिचय करवाया––ये पैंगीणकर क्या कह रहे हैं देखो? मैंने इनको सुझाव दिया है कि आंदोलन के चार उद्देश्य ही रखें. पांचवां किसलिए नहीं, वह भी समझा दिया है. यह सब सुन कर वे कुछ न बोले, मात्र हंसते हुए अपने कमरे में चले गये. पिछले तीन वर्ष के पहले मैं बंबई गया हुआ था. उस समय सहज बोलते हुए मैंने उन्हें उस गोष्ठी की याद दिलायी थी. ☐

अंतराल

• मधुकर गंगाधर

वे दोनों आमने-सामने थे. बीच में एक टेबल थी—कांच से ढंकी. बासी फूलों का एक गुलदस्ता टेबल पर बेतरतीबी से रखा था. कमरे में मोटे-गहरे हरे पर्दे थे. पूरे कमरे में सूनापन और उदासी भरी थी.

नौजवान ने, जो उत्तर की ओर बैठा था, बड़े ही दार्शनिक ढंग से कहा—इस कमरे में यद्यपि उदासी और सूनापन भरा है, फिर भी लगता है, आपके मन में गुलाब की कलियां चटक रही हैं. जैसे किसी मीठे सपनों की प्रतीक्षा की जा रही हो!

उस प्रौढ़ ने, जो नौजवान के आमने-सामने बैठा था, आंखें उठा कर नौजवान को देखा. अधरों में जरा-सा मुसकराया और व्यंग्य-भरे लहजे में बोला—तुम कब आये?

—मैं?

—हां.

—मेरा एक प्रश्न था?

—बचकाना.

—उसे आप प्रौढ़ संदर्भ दे सकते हैं. प्रश्नों की उम्र नहीं होती.

—मगर तुमने जो प्रश्न किया है, उसकी उम्र है. ठीक तुम्हारी जितनी. चेहरे पर लाली, आंखों में उमंग...

—महाशय, मैंने जब प्रश्न किया था, तब आपकी आंखों और चेहरे की वही स्थिति थी. आपके इर्द-गिर्द सपने तैर रहे हैं!

—बहुत खूब! तुम्हारी आंखें बड़ी पैनी हैं!

—क्या मैंने झूठ कहा?

—नहीं.

—क्या आप प्रेमिका की प्रतीक्षा में बैठे हैं?

प्रौढ़ व्यक्ति हंस पड़ा. भरी-पूरी हंसी. उसने आसन बदला. जरा सावधान हो कर बैठा—तुम्हारा प्रश्न नौजवानी का प्रतीक है. सीधा. सपाट. दो टूक. मैं इसका उत्तर भी दूंगा. लेकिन मैं यह जानना चाहता हूं कि जिसे उत्तर दूंगा, वह कहां तक मुझे ग्रहण कर सकेगा?

—क्या मतलब?

—आज की दुनिया की सारी क्राइसिस ग्रहणशीलता की है. आपसी संवाद की ग्रहणशीलता समाप्त है. मैं चाहता हूं कि जो कहूं, उसे तुम ग्रहण करो.

—करूंगा.

—फिर मैं एक सवाल पूछूंगा.

—आप बड़े सधे हुए हैं—सीजंड. ठंडे राजनीतिज्ञ. उत्तर देने की बजाय प्रश्न करने लगे.

—यह आवश्यक है.

—फिर पूछिए.

—तुमने कभी प्रेम किया है? जानते हो, प्रेमि
क्या होती है?

युवक की उद्दीप्त आंखें बुझती-सी लगीं. वह गंभी
हो उठा. दूसरी ओर, प्रौढ़ व्यक्ति की उदास आंखों
चमक आ गयी. वह जरा तन कर बैठ गया.

—प्रेम मैंने किया है, नौजवान ने कहा.

—तुमने जो किया है, वह प्रेम ही है, ऐसा कै
कहा जा सकता है? औरत-मर्दों के आपसी संबंधों
प्रेम ही कहा जाये, यह जरूरी नहीं.

—मैं परिभाषा नहीं जानता. शायद प्रेम
कोई परिभाषा नहीं होती. मजनू ने अपनी कुर्बानी दे
और आथेलो ने डेस्डिमोना की हत्या कर दी. राधा
प्रेम के लिए मर्यादा का खयाल नहीं किया और राम
मर्यादा की रक्षा के लिए प्रेम को ठुकरा दिया. सभी
प्रेम था. मैं किसी परिभाषा द्वारा प्रेम को साबित नह
कर पाऊंगा. किंतु, इतना जरूर कहूंगा कि मैंने
किया, वह प्रेम ही था.

—क्या किया तुमने?

● उमेश व्यास

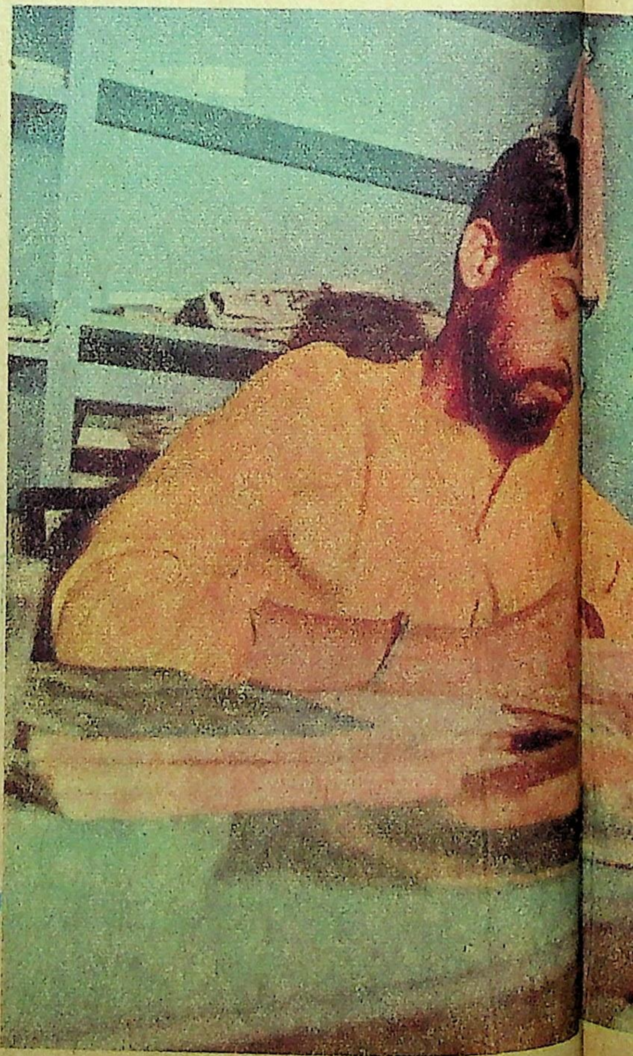

—बतलाता हूं.

नौजवान जरा और उदास हो गया. उसकी आंखों में अतीत तैरने लगा. वह भर्रायी आवाज में बताने लगा :

—मुझसे उसका परिचय कैसे हुआ, नहीं जानता. सच पूछिए तो हम किसी के भी बारे में नहीं कह सकते कि कब और कैसे परिचय हुआ? हम जीवन में रोज नये लोगों से मिलते हैं, किंतु कहां परिचित हो पाते हैं? परिचय एक मानसिक संयोजन है. कब, कहां, कैसे होगा, कोई नहीं कह सकता!

—वह दुबली-पतली, भोली-भाली लड़की थी. मेरे मन पर उसकी अजीब किस्म की छबि अंकित है—जाड़े की भोर में किसी कस्बे की एक पुरानी खपड़ैल... छत पर ओस धुली काशीफल लता में पहला फूल—नन्हीं-नन्हीं पीली पत्तियों वाला अर्द्धविकसित फूल! मैंने उसे पहली बार पीले स्वेटर में देखा था... उसके मकान के बगल में किराये के कमरे में रहता था. उसके भाई से कॉलेज की दोस्ती हुई. मैं परदेश में था. उसके घर पर मां की ममता और पिता का स्नेह मिला.

—फिर ऐसा हुआ कि मैं सपना देखने लगा. अजीबोगरीब सपना. कभी गृहस्थ बनने का सपना, कभी जंगल-बियावान में भटकने का सपना. फिर ऐसा होने लगा कि मैं अपने को कई रूपों में उभारने लगा—उ साहसी, दुर्दांत लालसामय, निश्छल, फकीर..

—हम ब्याह कर गृहस्थी बसायेंगे और समाज लड़ेंगे. हम विश्वविद्यालय की अंतिम् पढ़ाई करेंगे- पी- एच. डी. और लोगों के सामने नजीर रखेंगे. गांव चले जायेंगे अपने को अनाम बना कर मान महासमुद्र में विलीन कर देंगे. हम ऐसी कल्पन करने लगे, जिनका एक दूसरे से कोई मेल नहीं था.

—हमने कुछ ऐसे भी क्षण गुजारे जो खतरे सीमांत रेखा से भी आगे चल कर गुजारे जा सकते मसलन एक बार, बरसात की आधी रात, मैंने उस मिलने की इच्छा की. उसका कमरा घर के पिछवा था. सामने के कमरों में परिवार के अन्य लोग सो थे और मुख्य-द्वार बंद रहता था. पीछे की ओर ग थी. पानी बरस रहा था. घोर अंधकार. आहिस् आहिस्ते पैर रखते हुए बढ़ रहा था. सहसा बगल पानी में तीव्र हलचल हुई. एक सांप जोर से फुंका उठा. मेरे पास टार्च नहीं थी. चुपचाप खड़ा रह गय अंधेरे में हर ओर सांप ही सांप लग रहे थे. मन आया कि शायद यह इम्तहान है. पीछे लौटने पर भी त सांप का खतरा था ही. थोड़ी देर रुक कर मैंने आ

● सजान छि

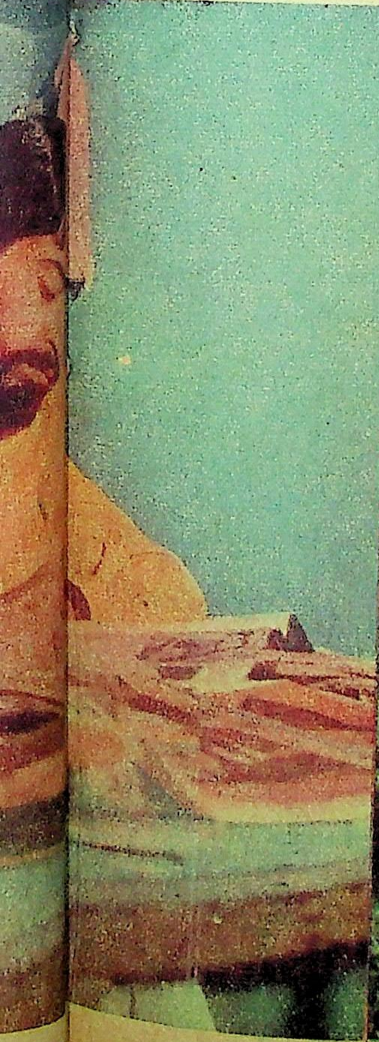

बढ़ाया. पता नहीं, सांप कहां चला गया ? मैं के कमरे तक पहुंचा.

—प्रेम एक अवांछित सम्मोहन है. हम नहीं चाहते, ु वहीं जाते हैं, हम नहीं चाहते, किंतु वही करते यह एक प्रक्रिया बन जाती है. . .

—फिर हम लोग एक ऐसे मोड़ पर पहुंचे, जहां सानियत हमारे इम्तहान को बैठी थी. उस लड़की अपने पिता से हमारे प्रेम की चर्चा कर दी. शादी आज्ञा मांगी. ऐसे अवसरों पर माता-पिता अक- बौखला उठते हैं. उन्होंने वैसा कुछ नहीं किया. दोनों को एक साथ अपने पास बुलाया. प्यार से ाया. बड़े ही सहज ढंग से कहा—तुम लोग एक रे को प्यार करते हो और सुखमय जीवन की मना करते हो. मैं विरोध नहीं करता! इस लड़के मैंने अपने बेटे जैसा प्यार दिया है. जैसे एक बाप जिम्मेदारी होती है, वैसी ही एक बेटे की भी होती तुम्हारा भी कुछ कर्त्तव्य होता है. तुम लोगों ब्याह से मैं दफ्तर में काम नहीं कर पाऊंगा. मारा यह छोटा-सा शहर इस अंतर्जातीय ब्याह से खिला जायेगा. फिर मेरी और लड़कियां हैं. वे वांरी रह जायेंगी. उन बच्चियों को भी पूछ लो. क्या चाहती हैं. मैं एक बाप हूं. कई लोगों की कब्र र एक महल की स्वीकृति देना क्या संभव है?

वह कमरे से बाहर चले गये. मैंने महसूस किया कि एक अजीब किस्म के दबाव के नीचे आ गया हूं. अपने हल की नींव मैं किसी कब्र पर क्यों रक्खूं? प्यार, री नजर में, फूलों की खुशबू है— इसका इस्तेमाल त्या के लिए नहीं किया जाना चाहिए.

हम दोनों कई दिनों तक अबाध मिलते रहे. बहसें ईं. झड़पें हुईं गंभीर चुप्पियों से गुजरे. रोये. और, अंत में हम विदा हो गये—एक दूसरे से सदा के लिए.

नौजवान चुप हो गया. जैसे वह बहुत अधिक थक गया, जैसे कोई तूफान उसके लहू से गुजर गया. उसकी आंखों में अपूर्व ज्योति थी. वह शांत था. . .

प्रौढ़ मुसकरा रहा था. उसने सहज ढंग से कहा—ऐसा ही होता है. लैला-मजनू, शीरीं-फरहाद, सेम्पसन-डिलेला की फीडिंग-बोतल उनके पापाओं ने इसी प्रकार गुम करायी थी.

—क्या मतलब?

—नाबालिगों का प्यार खुशबू होता है, उत्सर्ग होता है, सुगंध होता है. . . जाने क्या-क्या होता है!

—और बालिगों का प्यार?

—बालिगों का प्यार अभावों की पूर्ति है.

—यानी आपका प्यार?

—तुम इसे प्यार ही कहोगे— क्योंकि साहित्य ने आज तक औरत-मर्दों के संबंध के लिए मात्र एक शब्द गढ़ा है— प्यार.

—आप प्यार नहीं करते क्या?

प्रौढ़ चुप था. कुटिल मुसकान उसके चेहरे पर थी.

—आप यहां क्यों बैठे हैं?

—मैं जानता हूं कि तुम्हारे मन में एक धारणा घर कर गयी है.

—क्या मेरी धारणा गलत है?

—धारणा गलत या सही नहीं होती है. वह निर्मल तरल जल है, जिस पात्र में पड़ती है वैसा ही रंग, उसी का आकार ग्रहण करती है. तुम्हें एक आदमी कबूतर ले कर जाते देखता है कि तुम शांति के नाम पर इसे उड़ाने जा रहे हो, दूसरा आदमी देखता है और सोचता है कि कबूतर को घर ले जा कर जिबह करोगे.

—आप क्यों नहीं बताते—यहां क्यों बैठे हैं?

—अब जरूरी हो गया कि मैं तुम्हें बतला दूं कि क्यों बैठा हूं. भीतर एक महिला है. स्नान कर रही है. स्नान के बाद शृंगार करेगी. फिर बाहर आयेगी और मेरे साथ घूमने चलेगी.

—वह आपकी प्रेमिका है?

—प्रेमिका? भाषा भी अजीब चीज है? शब्दों की सीमाएं कितनी सकुंचित हैं? प्रेमिका शब्द को ही लो. तुम्हारी एक प्रेमिका थी. उसकी भावनाओं का एक नक्शा तुम्हारे दिमाग में है. जिसे तुम मेरी प्रेमिका कह रहे हो, उसकी भावनाओं का एक दूसरा ही नक्शा मेरे दिमाग में हो सकता है, आसमान और जमीन का फर्क. मगर संबोधन का एक ही शब्द!

—क्या फर्क है?

—फिर तो पूरी दास्तान सुनानी होगी!

—कोई एतराज?

—नहीं.

* *

प्रौढ़ पलभर चुप रहा. अपने भीतर कुछ जुटाता रहा. फिर धीमे स्वर में बोलने लगा :

—अक्तूबर का महीना था. दार्जिलिंग का माल-रोड. आदमियों से खचाखच भरा. हम दोनों गप्पें करते नीचे उतर आये. फिर चंडीप्रसाद के मन में जाने क्या आया कि बोल उठा— यहां बड़ी भीड़ है. चलो, रेस-कोर्स चलें.

—यह बतला देना जरूरी है कि चंडीप्रसाद से मेरा क्या ताल्लुक था. वह गोरखपुर के आसपास का रहनेवाला था. बचपन में भाग कर कलकत्ता आया था—अनाथ. द्वितीय विश्वयुद्ध के समय ठेकेदारी में मालामाल हो गया. आयरन कास्टिंग का बड़ा-सा कारखाना खोल बैठा. कई चाय बागान और कोयले की खानें खरीद बैठा. मुझसे एक ट्रेन-यात्रा में भेंट हुई थी. मैं काफी भटकने के बाद जीविका की खोज में कलकत्ता आया और एक छोटे-से अखबार में नौकरी करने लगा. चंडीप्रसाद से दूसरी बार गवर्नमेंट हाउस की एक पार्टी में भेंट हुई. फिर मुलाकातें होने लगीं. कई बार होटलों में चाय पिलाने के बाद अपने घर पर बुलाया.

—चंडी प्रसाद के घर पहुंच कर मैं अवाक रह गया. उसकी उम्र लगभग अठ्ठावन वर्ष की थी, किंतु घर पर एक तीस-बत्तीस वर्षीया खूबसूरत पत्नी थी. पूरी तरह शहरी. पत्नी को लिखने-पढ़ने से रुचि थी. चंडीप्रसाद ने अपनी पत्नी को मुझे लिखने-पढ़ने में

सहायता लेने को प्रोत्साहित किया. मैं उसके घर अबाध रूप में जाने लगा.

—एक अजीब किस्म का त्रिभुज बन गया. चंडी प्रसाद को मेरी तरह पढ़ा-लिखा, चुपचाप सुनते रहने वाला, एक चमचा चाहिए था. उनकी पत्नी, मध्यमा को मुझमें एक दूसरे की संभावनाएं दिखलाई पड़ीं. निरंतर भटकाव से थके हुए मेरे जैसे आदमी को विभवशालिनी मध्यमा में अपनी मंजिल का संकेत मिला.

—यह त्रिभुज क्रमशः मजबूत होता गया. इसी बीच चंडी प्रसाद ने दार्जिलिंग घूमने का कार्यक्रम रखा. मुझे भी साथ लिया. हम लोग कुंडू होटल में आस-पास दो कमरे ले कर ठहरे.

—हम रेस-कोर्स में काफी देर तक घूमते रहे. अंत में चंडी प्रसाद न वापस चलन का प्रस्ताव किया. हम लोग टैक्सी छोड़ चुके थे. रेस-कोर्स के किनारे, जहां टैक्सियां रहती हैं, एक भी टैक्सी नहीं थी, पैदल ही धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे.

—हम काफी देर तक चलते रहे. मुझे गत रात की बातें याद पड़ रही थीं. खाना खाने के बाद हम अपने-अपने कमरे में जा रहे थे. मध्यमा ने मेरी ओर देखा— सिर्फ देखने में इतनी बातें कही जा सकती हैं— यह मैंने पहली बार जाना था.

—हम डायनिंग हाल से बाहर निकल कर अपने कमरों की ओर मुड़ गये.

—गुड नाईट!

—गुड नाईट!

—तेनसिंग -राक तक पहुंचते-पहुंचते हम थक गये थे. इस राक के बगल में विशाल खड्ड है. खड्ड के किनारे सड़क से गुजरते लोगों की हिफाजत के लिए घुटनों तक की दीवाल उठा दी गयी है. हम दोनों उसी दीवाल पर बैठ गये. थोड़ा सुस्ताने के बाद चंडीप्रसाद ने सिगरेट-केश निकाला. उनके पास दियासलाई नहीं थी. मैंने झट से जेब से लाइटर निकाला कर उनके सिगरेट को सुलगा दिया. सहसा मेरे मन में एक अजीब किस्म की भावना आयी. पलक गिरने जितना समय लगा. मैंने चंडीप्रसाद को पीछे की ओर ढकेल दिया. चीख भी नहीं निकली. सूख पत्ते की तरह चंडीप्रसाद हवा में चक्कर काटते गहराइयों में खो गये!

—मैं वहां से जल्दी-जल्दी आगे बढ़ गया. मेरे पांव कांप रहे थे. शरीर थरथरा रहा था. लगभग दस मिनट चलने पर पैर स्थिर हुए. मन थोड़ा शांत हुआ. कुछ दूर आगे जाने पर पैसेंजर ढोने वाली एक जीप मिली, जिसके द्वारा मैं मुख्य बाजार आ गया. एक होटल में बैठ कर चाय पी. मन स्थिर हुआ. फिर भी काफी देर तक इधर-उधर चक्कर काटता रहा. शहर की चहल-पहल में पूरी तरह भूल गया कि क्या किया है. प्राकृतिक मनःस्थिति में आ गया.

—अपने होटल पहुंचा. मध्यमा कंबलों में लिपटी पुस्तक पढ़ रही थी. उसे सर्दी लग गयी थी, सो शाम में वह घूमने नहीं निकली थी.

—साहब कहां हैं? मैंने पूछा.

—वे तो आप ही के साथ गये थे न?

—नहीं. गेट के बाहर निकल कर वे एक ऊन की दूकान में घुस गये और बोले कि आपकी तबीयत ठीक नहीं है, सो वे घूमने नहीं जायेंगे, मैं अकेले चला जाऊं. मैं जाना नहीं चाहता था, मगर उन्होंने जबरन भेजा.

—लेकिन वे तो तभी से नहीं आये?

—फिर एक तनापूर्ण और दुखद नाटक का प्रारंभ हुआ. रातभर लोग उन्हें खोजते रहे. दूसरे दिन मैंने मध्यमा को समझाया कि चंडीप्रसाद मेरे और उसके बारे में बुरे संबंधों की बातें सोचने लगे थे. एक बार इस आशय का मजाक भी किया था. अपने बाहुबल और चालाकियों से विशाल संपत्ति अर्जित करने वाला धनपति ढलती उम्र में खूबसूरत पत्नी करता है, तो वह निःशंक कभी नहीं रह सकता! हो सकता है, वे चिढ़ गये हों और चुपचाप कलकत्ता चले गये हों. मैंने इसी आधार पर मध्यमा को काफी समझाया और दूसरे दिन मध्यमा को ले कर कलकत्ता चला आया.

—लगभग सात महीने हुए. मैं मध्यमा पर छाया हुआ हूं. मध्यमा— याने एक खूबसूरत जिस्म और अथाह संपत्ति! मैं यह भाव मध्यमा में जाग्रत करने पर लगा हूं कि चंडीप्रसाद उसके लिए अनिवार्य नहीं थे— अनिवार्य मैं हूं!

नौजवान उठ कर खड़ा हो गया. उसके चेहरे पर तनाव आ गया. वह लगभग चीख-सा उठा— हत्यारा!

प्रौढ़ व्यक्ति मुसकराने लगा. आहिस्ते-आहिस्ते बोला— मैं अगर हत्यारा हूं तो तुम आत्म-हंता. इंडियन पेनलकोड में दोनों एक जुर्म हैं. खैर, छोड़ो इन बातों को तुम्हारे जैसे भावुक दुध-मुहों की मुलाकात जुगाकर रखने की चीज है.

—और तुम्हारे जैसे घुटे हुए हत्यारे का परिचय पुलिस को दे आना चाहिए. तुम्हारा नाम क्या है?

—सदानंद!

—सदानंद तो मेरा भी नाम है. तुम्हारे बाप का नाम?

—चिंतामणि.

—चिंतामणि? यह तो मेरे पिताजी का नाम है. तुम्हारा घर कहां है?

—फ्लैट नंबर सात-सात-तीन-दो जीरो, वेस्ट ब्लाक, आर. के. पुरम्, दिल्ली.

नौजवान तेज आवाज में बोला—मक्कार! तुम वे ही बातें बोल रहे हो, जो मैं हूं. यह तो मेरा पता है.

इस बार प्रौढ़ थोड़ा ज्यादा गंभीर हो कर बोला— ज्यादा चीखो मत! मध्यमा के कानों तक आवाज नहीं जानी चाहिए. मैंने जो कहा है, वह सत्य है. मुझमें और तुममें सारी समानताओं के बावजूद एक बड़ा फर्क है?

—क्या है यह फर्क?

—पच्चीस वर्षों का अंतराल.

फिर, जैसे पूरे कमरे में कांपता हुआ ठंडा ईथर भर जाता है. ड्राइंगरूम का पीछे वाला पर्दा जरा-सा हिलता है. शायद मध्यमा बाहर निकल रही है. □□□

३८।२७६, राजेंद्र नगर, पटना-१६. बिहार.

भारतीय भाषाओं की प्रथम मौलिक कथाएं और आद्यकथाकार

(१०)

किसी भी भाषा की पहली कहानी की खोज अपने आप में एक महत्वपूर्ण और रोचक कार्य है. इस महत्वपूर्ण खोज के लिए 'सारिका' ही पहल कर रही है. पूर्व के अंकों में मलयालम, गुजराती, बंगला, तेलुगु, डोगरी, कश्मीरी, सिंधी, उड़िया और पंजाबी की प्रथम मौलिक कहानियां आप पढ़ चुके हैं. इस अंक में दी जा रही हैं--मराठी की तीन कहानियां 'प्रवासी', 'किस्मत', और 'मैकेनो' जिनमें से प्रत्येक को मराठी की पहली कहानी होने का दावा किया जा सकता है. जब यह क्रम समाप्त होगा, तब आप स्वयं ही निर्णय ले सकेंगे--एक; कि भारतीय भाषाओं में से पहली आधुनिक कहानी किस भाषा के पास है और दो; कि क्या कहानियां सचमुच पश्चिम से आयी थीं?

मराठी मौलिक कथा का उदय

गंगाधर गाडगील

मराठी की प्रथम कथा कौन-सी है? यह प्रश्न वास्तव में क्लिष्ट है, यह मुझे पहले से ही ज्ञात था, परंतु जब 'सारिका' संपादक कमलेश्वरजी ने यही प्रश्न किया तो मुझे मजबूरन इसकी छानबीन करनी पड़ी. पर अंततः यही निष्कर्ष निकला कि इस प्रश्न का समुचित और संतोषपूर्ण उत्तर देना असंभव है.

वैसे इस निष्कर्ष पर पहुंचने में मुझे काफी समय लगा और इस दौरान मस्तिष्क पर काफी बोझ पड़ा. पर अब मैं निश्चित हूं कि चिंताओं का पहाड़ मेरे सिर से उतर गया लेकिन अब यह नैतिक जिम्मेदारी मेरे सिर पर आ पड़ी है कि अगर समाधानकारक उत्तर देना संभव नहीं तो कम से कम असमाधानकारक उत्तर तो अवश्य देना है. और यह भी कोई आसान काम नहीं है.

इस प्रश्न का उत्तर देने में दो अड़चनें मेरे समक्ष खड़ी हैं. प्रथम, इतिहासवेत्ताओं के बारे में. उन्नीसवीं शताब्दी में कभी मराठी में कथाओं का श्रीगणेश हुआ और ये कथाएं तत्कालीन प्राचीन पत्रों में प्रकाशित हुई बिखरी पड़ी है. अब उन सारी कथाओं का मंथन करना और उसमें से कथा का चयन करना और यह भी प्रथम कथा का चयन, यह वास्तव में एक बड़ा ही दुष्कर कार्य है. इस काम का जिसे शौक है, वही यह काम कर सकता है. 'सारिका' संपादक श्री कमलेश्वर के कहने मात्र से ही कोई लेख लिखने पर राजी नहीं हो सकता. इससे कोई इनकार नहीं कर सकता कि 'सारिका' एक प्रसिद्ध और उत्कृष्ट पत्रिका है और दूसरे इसके संपादक कमलेश्वरजी मेरे मित्र हैं जो उससे भी महान हैं. मित्रता निभाने के लिए मनुष्य ज्यादा से ज्यादा जान दे सकता है. पर इतिहास-संशोधन के लिए वह क्यों उद्यत होगा?

लेकिन सौभाग्य से यह दुष्कर कार्य अभी हाल ही में एक सज्जन ने किया है. और वह हैं स्वनामधन्य श्री राम कोलारकर. इन्होंने संग्रहालयों में धूल जमी हुई सैकड़ों पत्र-पत्रिकाओं की छानबीन की और मराठी कथा को जड़ से लेकर पल्लव तक सब छान मारा. इतना ही नहीं, इन्होंने अपना यह प्रयास सन् १९६८ में पुस्तक रूप में प्रकाशित कर पाठक वर्ग के समक्ष रखा. गृहस्थ का मतलब पागल! और हम पागल हैं, यह तथ्य उन्होंने पुस्तक की प्रस्तावना में ही स्पष्ट कर दिया है. वैसे यह सब लिखने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि पुस्तक देखने पर सभी ने इसका मूल्यांकन किया. लेकिन इस "पागल" मनुष्य नें जो कागज का अपव्यय किया, उससे मुझे बड़ी सहूलियत हो गयी. पागलपन भरा प्रयास किया कोलारकर ने और अब मैं उस पर शेखी बघारने चला हूं!

लेकिन इसमें भी तो अड़चन है. कथा कथा कब बन गयी, इसका स्पष्टीकरण भी तो मुश्किल है. कथा, कथा आखिर यह है क्या बला? उसका स्वत्व किसमें है? उसके विषय में, रचना में, प्रस्तुतीकरण में,

मराठी कथाकार :
कैप्टन गो. ग. लिमये

जन्म : २५ सितंबर १९९१, पूना में में हुआ.

शिक्षा —बेलगांव, पूना तथा बंबई में हुई.

ग्रांट मेडिकल कालेज, बंबई से १९१६ में एम. बी. बी. एस. की पदवी मिली. इसके उपरांत १९१८ से १९२९ तक पूर्व अफ्रीका तथा ईराक में सेना में कैप्टन के पद पर कार्य किया.

सन १९२२ में विवाहबद्ध हुए. सन १९२७ में उन्हें एक कन्यारत्न की प्राप्ति हुई. १९२७ में उनकी धर्मपत्नी का स्वर्गवास हो गया. इसके बाद जीवन भर उन्होंने विवाह नहीं किया.

इन्होंने लगभग १२५ कथाएं लिखीं हैं. इनकी साहित्यक कृतियों में ५ कथा-संग्रह, ६ विनोदी कथा-संग्रह, २ नाटक तथा इसके अतिरिक्त औषध व आरोग्य पर इन्होंने बारह ग्रंथ लिखे. सैनिक जीवन के संस्मरण को मिला कर इनके २६ ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं. इन्हें चित्रकला, फोटोग्राफी, हस्तकला, बेबी सिनेमा से विशेष लगाव था.

१८ नवंबर १९७२ को ८२ वर्ष की उम्र में पूना में इनकी इहलीला समाप्त हो गयी.

भाषाशैली में, आत्मलेखन में, आखिर किसमें है? कदाचित इसका समुचित उत्तर प्राध्यापक दे सकें क्योंकि उन्हें इसका उत्तर देना ही पड़ता है. अगर नहीं तो विद्यार्थियों को क्या बतायेंगे? परीक्षाओं में कौन-से प्रश्न अपेक्षित हैं और उनका उत्तर कैसे सोचना है? शिक्षण, यह एक बड़ा व्यापार है और इसे सुचारुरूप से चलाने के लिए बुद्धि होनी चाहिए. परंतु ऐसी कोई जिम्मेदारी मुझ पर नहीं है. यह सच है कि मैंने जन्म भर कथाएं लिखीं अर्थात जो कुछ भी लिखा उसे कथा की संज्ञा दी. अब मुझे इस बात का पता होना चाहिए कि आखिर कथा है क्या? यही सारे सिरदर्द की जड़ है. लेकिन किसे परवाह है? यह कथा नहीं है, यह मैं स्पष्ट कह सकता हूं. आगरकर के लेख में एवं बालकवि की कविताओं में भी कथाएं नहीं हैं. इतना ही नहीं, खाडिलकर की 'भाऊबंदकी' और काणेकर की 'पलव्याची कला' (भागने की कला) ये भी कथाएं नहीं हैं, यह मैं सीना ठोंक कर कह सकता हूं. लेकिन कथा को व्याख्या के जाल में डाल कर पकड़ना चाहूं तो वह जाल में सत्रह छेद करके निकल जायेगी.

कोई कह सकता है कि मैं नया कथाकार हूं. कथा के क्षेत्र-विस्तार पर मैंने गप्प लगायी है. और अब परिणाम भुगतना है! मुझे मान्य है. सर्वथा मान्य है. लेकिन नयी कथा के भूत के जन्म के पहले भी कथा की व्याख्या करने का साहस किसने किया है. लघुकथा छोटी होती है, ठीक है पर प्रश्न यह है कि कितनी छोटी? आखिर यह 'कितनी छोटी' नापने के लिए फीता है किसके पास?

हम चार कोने बता सकते हैं अर्थात गाय के सींग होते हैं. लेकिन बिना सींग की गाय होती ही नहीं, इसकी कोई हामी नहीं भर सकता. और तो और, हर गाय दूध देगी ही, ऐसा भी कोई निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता.

कथा के लिए कथानक होना ही चाहिए, यह दुराग्रह करने का कोई साहस नहीं करेगा. लेकिन पहली कथा की शोध करते वक्त ऐसा मान कर ही चलना पड़ेगा कि कथा का कथानक होना ही चाहिए. लेकिन कहानी में भी कथानक होता है. ऐसी स्थिति में कहानी और कथा के कथानक में अंतर क्या? प्रश्न जटिल है. इतना कहा जा सकता है कि कहानी का कथानक मजबूत बांधे हुए गट्ठर के समान है. प्रवाह में बहते जाते हुए एक लकड़ी की सिल्ली की तरह. कहानी के कथानक में एक स्वच्छंदता होती है. उसका आरंभ शुरू में ही नहीं होता है और उसका अंत एकदम बाद में हो, ऐसी लेखक की मनोवृत्ति होती है. कथा के पहले कुछ और ही घटित हो रहा था और इसे अगर कथा में समाविष्ट किया जाता तो वही कथा कुछ दूसरी ही हो जाती. और कथा जहां समाप्त हो रही थी, उससे और आगे भी बढ़ सकती थी. इसी तरह कथाओं के कथानक के अलग-अलग भाग आपस में नट बोल्ट की तरह फिट ही बैठे रहते.

कहानियों में भी विषय और प्रकृति की विविधता होती है. ईसप की कहानियां, बोक शिओ की कहानियां, ढकसेन राजपुत्र की कहानी, बीरबल बादशाह की कहानी, कहानी की कहानी और पुराणों की कहानियां, ये सभी कहानियां हैं. परंतु सभी के विषय और स्वभाव में अंतर है.

फिर भी कहीं कोई समानता है. उन सभी के विषयों एवं स्वरूप का एक खास ढांचा होता है. अरबी भाषा की मजेदार कहानियों में वर्णित राक्षस और पुराणों के राक्षस, इन दोनों में फर्क है. इनके जाति-धर्म अलग हैं. उनकी दुनिया अलग है और इस अलगाव को बनाये रखना और उसे उसी सीमित परिधि में बांधे रखना स्वाभाविक ही है. ठीक यही स्थिति हमारे हिंदू समाज की है, कुलगोत्र अलग, आचार-विचार अलग, अन्न अलग, परिधान अलग, और यहां तक कि भाषा में भी विभिन्नता है. इन विभिन्न जातियों को मिलाकर एकाकार करना वास्तव में बड़ा दुष्कर कार्य है.

★ ★

कहानी की एक विशिष्टता यह भी सर्वविदित है कि वह हमारी रोजमर्रा की जिंदगी से कुछ हटकर ही होती है. अधिकतर भूतकाल की ओर ज्यादा आकर्षण, अद्भुतपने की तीव्र उत्कंठा, विलक्षणता लिये हुए हो, यही उस से अपेक्षित है. लेकिन आजकल के लेखकों की जब कलम उठी तो उन्होंने उसमें थोड़ा हेर-फेर कर डाला. विषय का अलगाव तो नहीं रहा लेकिन उनकी प्रकृति में, स्वभाव में, अलगाव अवश्य दिखाई दिया. अगर हम सूक्ष्म दृष्टिपात करें तो आजकल हरिभाऊ की कहानियों में इस अलगाव के कुछ अवशेष अवश्य हमें प्राप्त होते हैं.

कहानी की एक और विशेषता यह होती है कि लेखक उसमें कहीं न कहीं लेखक रूप में अवश्य उपस्थित रहता है और इसमें उसे किंचित मात्र भी संकोच नहीं होता. और नतीजा यह होता है कि कहानी और पाठकों के बीच एक व्यवधान पड़ जाता है जिससे प्रस्तुतीकरण पर भी असर पड़े बिना नहीं रहता.

प्रस्तुतीकरण और भाषाशैली में एक सूक्ष्म परंतु महत्वपूर्ण अंतर है. प्रस्तुतीकरण का स्वरूप कायम रखते हुए भी भाषाशैली में विभिन्नता हो जाती है. कहानी को भाषाशैली वास्तव में क्लिष्ट होती है, अपना अस्तित्व बनाये रखने का भरसक प्रयत्न करती है, अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करते हुए कार्यरत रहती है. सारे शिष्टाचार का उसे ध्यान रहता है.

कहानी के पात्र भी प्रभावशाली तथा मंजे हुए हैं. उनके विभिन्न चरित्र एक चौहद्दी में ही सीमित रहते हैं. और यह चौहद्दी भी चौकोन ही होती है.

लेकिन कथा इन सब विवादों से अलग होती है. उसमें कोई जातिधर्म का भेद नहीं होता. अरबी भाषा की कहानियों और गोविंदराव की कहानियों में कोई अंतर नहीं है. दोनों एक दूसरे से मेल खाती हैं. इनमें समान अनुभव के दर्शन होते हैं जो भिन्न प्रकार के रूप ग्रहण करते हैं.

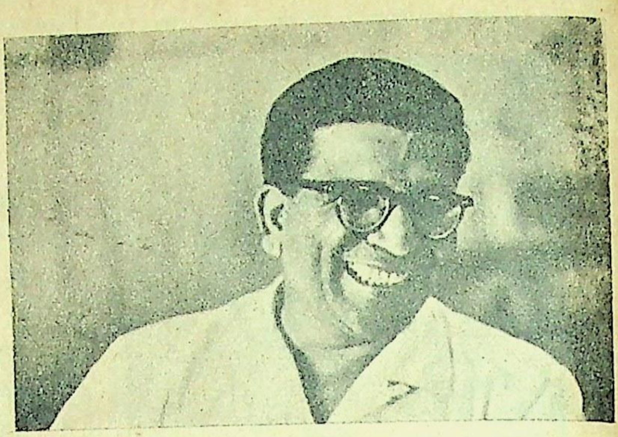

गंगाधर गाडगील (जन्म १९२३) : मराठी की 'नई कहानी' के सर्जक और प्रवर्तक. अब तक १६ कहानी संग्रह, १ उपन्यास तथा २ आलोचना संबंधी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं.

अनेक साहित्यिक परिषदों के पदाधिकारी रह चुके हैं तथा कई साहित्यिक पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं. राकफेलर फाउंडेशन फेलोशिप के अंतर्गत १९५७-५८ में यूरोप तथा अमरीका में अध्ययन प्राप्त. लंबे अर्से तक बंबई में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर. संप्रति यहीं पर एक उद्योग समूह के परामर्शदाता हैं.

जीवन से अलग रहना कथा को मान्य नहीं है. उसे भूतकाल भी वर्जित नहीं है. रोमांचपूर्ण वर्णन से भी उसका संबंध अभी टूटा नहीं है. लेकिन इसके उपरांत भी जीवन से जो उसका अटूट संबंध रहा है, वह ज्यों का त्यों अक्षुण्ण है. इतना ही नहीं, उससे रस-तृप्ति भी होती रही है. जीवन के प्रति उसकी यह निकटता, उसके विषय एवं स्वभाव दोनों में दृष्टिगोचर होती है.

कथा में लेखक उपस्थित नहीं रहता अर्थात वह कथा में लेखक के रूप में भी नहीं रहता. पात्र के रूप में भी वह उपस्थित ही रहता है, ऐसा भी नहीं है. प्रस्तुतीकरण के लिए पात्र हो, यह भी आवश्यक नहीं, ऐसी कथा-लेखकों की मान्यता है. कथा-वस्तु स्वयं ही गतिशील रहती है. उसकी भाषा स्वाभाविक एवं सहज ही बोधगम्य होती है. कथा की भाषा व्याकरण तथा बंधन स्वीकार नहीं करती. भाषा कथा से अलग अस्तित्व रखती है, यह उसे ज्ञात रहता ही है.

कथा का स्वरूप कैसा होता है, यह समझाने की मूर्खता तो मैंने कर ही दी है और मैं भलीभांति जानता हूं कि इसके लिए मुझ पर प्रहार अवश्य ही होंगे. मैंने जो भी विधान दर्शाये हैं, उनके अपवाद निश्चित रूप से ही मौजूद हैं. इसलिए ये 'प्रहार' मुझे बिना किसी विरोध के सहने ही होंगे. और यह सब कमलेश्वरजी की कृपा का ही प्रसाद है. इसके सिवा अब दूसरा चारा ही क्या रह गया है! लेकिन इतना मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि ये प्रहार कथा के विशदरूप के वर्णन करने की अपेक्षा कम त्रास-दायक हैं. अच्छा ही हुआ जो मैं अधिक त्रासभार से बच गया.

लेकिन बड़ी मुश्किल है, इसके बाद भी एक बड़ा पहाड़ पार करना है और वह है मराठी की पहली कथा का निर्णय लेना. आधुनिक काल की मराठी की पहली कहानी सन् १८५४ में छपी. उसके पश्चात १९२४ तक छपी कहानियों की सूची राम कोलारकर ने अपनी सर्वोत्कृष्ट मराठी कथा, खंड १ में दी है. लेकिन कहानी कब कथा रूप में परिवर्तित हुई,

मराठी कथाकार :
शंकर काशीनाथ गर्गे : दिवाकर

जन्म---१८ जनवरी १८८९. प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा नूतन मराठी विद्यालय, पूना. सन् १९०८ में, स्कूल से फाइनल परीक्षा उत्तीर्ण.

विवाह--२४ जून १९१०. व्यवसाय--नौकरी, कई वर्षों तक शिक्षक रहे.

अध्ययन का शौक बहुत पहले से रहा.सन १९१० में प्राध्यापक वासुदेवराव पटवर्धन जैसे रसिक व्यक्ति से स्नेह हुआ. उसके बाद केशवसुत, हरिभाऊ आपटे, न. चिं. केलकर, गिरीश, यशवंत माधवराव पटवर्धन इत्यादि अनेक महान मराठी साहित्यकारों से परिचय. साथ-साथ अंग्रेजी साहित्य के उत्तम ग्रंथों का अध्ययन.

१८ सितंबर १९११ को प्रथम एकपात्री नाटक लिखा. इस शैली के नाटक का आरंभ दिवाकरजी ने ही किया. अतएव इनके लिखे एकपात्री नाटक को मराठी साहित्य का भूषण माना जाता है. इसके अतिरिक्त इन्होंने कई नाटिकाएं एवं भावकथाएं लिखीं.

इनकी पत्नी का १९१७ में स्वर्गवास हो गया. सन् १९३१ के अक्तूबर महीने में ४२ वर्ष की उम्र में इनका स्वर्गवास हो गया. दिवाकरजी का भावनात्मक सर्जन विलक्षण था. इनके एकपात्री नाटकों में करुणा, आलोचना, विसंगति एवं अंतर्द्वंद्व का बड़ा संयमित और सहज प्रवाह है. इनके छोटे-छोटे नाटकों में जीवन के विराट एवं हृदयस्पर्शी क्षणों का सशक्त सम्मिश्रण है.

यह मूल प्रश्न तो ज्यों का त्यों कायम है. वास्तविकता तो यह है कि कहानी का रूप धीरे-धीरे बदलता गया और कथा का प्रादुर्भाव हुआ. परिवर्तन के कई पड़ाव आए और किस पड़ाव पर कहानी का रूप कथा रूप में परिवर्तित हुआ, इस बारे में निश्चयपूर्वक कहना कठिन है. वजह यह है कि कथा की तथाकथित विशिष्टता उस परिवर्तन काल की कहानियों में भी कुछ हद तक विद्यमान है. और यह विशिष्टता अमुक एक कहानी में है इसलिए यही पहली कथा है, इसका निर्णय हमें ही करना है. पर इस निर्णय से हमें संतोष मिलेगा, यह संदेहास्पद ही है और लोगों का भी इसे समर्थन मिलेगा, यह तो सर्वथा असंभव है.

बस इतना ही सही है कि मराठी साहित्य में कथा ने धीरे-धीरे अपना आकार बनाया. उसके विकास की एक सीधी रेखा निर्धारित करना हमारे बस की बात नहीं. हरिभाऊ आपटे ने 'डिस्पेशिया' जैसी कथा लिखी और फिर उनके साथ और लेखक भी पुराने ढर्रे पर चलते रहे तथा कहानियां लिखते रहे, यह कई बार दुहराया जा चुका है. आखिरकार 'डिस्पेशिया' की कथा लिख कर हरिभाऊ जैसे अन्य लेखकों को यह एहसास नहीं हुआ कि उन्होने क्या लिख डाला पर इसके लिए हरिभाऊ को दोषी ठहराना उचित नहीं.

कहानी की लघुकथा में जब परिवर्तन हुआ, इसका मंगलाचरण हरिभाऊ ने ही किया. सन १८९२ में 'डिस्पेशिया' और दो चित्र और दो कथाएं लिख कर कहानी के कथानक और उसके विषय मे जो भी पारंपरिक कल्पनाएं थीं, उन्होंने तोड़ा. हल्के-फुल्के कथानक के साथ उन्होंने आशय-संपन्न विषयों का भी चुनाव किया, परंतु ठोस कथानक के बदले यत्रतत्र बिखरी घटनाओं का संकलन कर के उसे कलात्मक परिधान से सजाया. उसी तरह उन्होंने एकपात्री सांकेतिक पद्धति का भी परित्याग कर दिया. 'डिस्पेशिया' की कथा में विनोद भी भिन्न प्रकार का है. इसके साथ-साथ वह अधिक व्यापक आशय का अविभाज्य अंग बन गया इन सब तथ्यों को हृदयगत रखते हुए हरिभाऊ की पहली कहानी मराठी की कथा की श्रेणी में सर्वप्रथम है और इसकी पुष्टि करने वाले से विवाद करना सर्वथा असंभव है. "माझी आगगाड़ी कसी चुकली" (मेरी आग गाड़ी किस तरह चूक गयी) तात्यासाहब केलकर की कहानी भी उपरोक्त श्रेणी में आती है. उसमें आये हुए विनोद में स्वच्छंद गति है, स्वाभाविक प्रवाह है. वह ठोस कथानक के भार से मुक्त है. उसकी रचना में एक प्रकार का प्रवाह है तथा साथ ही साथ कलात्मक गुंफन भी है. इस कथा में तथा हरिभाऊ की कथा दोनों में हो लेखक की उपस्थिति परिलक्षित होती है. उसका प्रस्तुतीकरण भी कठिन एवं दुर्बोधगम्य है. तो भी "माझी आग गाड़ी कसी चुकली" को अगर कोई कथा की श्रेणी में मानता है तो उसे अमान्य करना कठिन है. और अगर इस वाद-विबाद के विषय को छोड़ भी दिया जाय तो कथा के प्रयास में यह एक महत्वपूर्ण पड़ाव है, इसे तो स्वीकार करना ही होगा. मुझे तो ऐसा आभास होता है कि तात्यासाहेब यह सोच कर लिखने बैठे कि उन्हें रुचिकर सत्य को प्रतिपादित करना है और उन्होंने कथा लिख डाली. और यही प्रयास लघुकथा के विकास में एक और उपलब्धि थी.

सच्चाई तो यह है कि केलकर की कहानी के पहले की "हरिण्यां ची झुंडा" कथा भी कथाओं के विकास में एक महत्वपूर्ण कीर्तिमान है. यह एक हरिण की कथा है. प्राणीजीवन की वास्तविकता को दर्शानेवाला चित्रण इस कथा का विषय हो सकता है. इस तथ्य से भलीभांति परिचित होने पर लघुकथा के विषय की एक विस्तृत परिधि का आकलन हुआ, एक नयी दिशा मिली. परंतु फिर भी कथावस्तु उसी पुरानी लीक पर चल रही थी. हां, उसमें कुछ क्लिष्टता एवं सीमित बंधन थे. इसके अलावा उसका जिस तरह से उपसंहार किया है, उससे लगता है कि कथा के बीज उसमें अवश्य विद्यमान हैं. 'लोकमित्र' में इनकी 'भिवार सूचना' नाम की कथा भी रहस्यमय वातावरणों में से हो कर गुजरती है लेकिन वह अपने दायरे में ही सीमित है, सीमोल्लंघन नहीं करती. कथा का यह खास

गुण उसमें विद्यमान है. इसी तरह हम गौर करें तो 'तोरंच हास्य' जो श्री वा. रानाडे ने लिखी है, वह अपने लक्ष्य में असफल रही है. शास्त्रीय चमत्कारों को कथा संसार में प्रवेश दिलाने का यह प्रथम प्रयास था—महत्वपूर्ण भी था परंतु उसमें से कथा नाम की कोई वस्तु नहीं मिली. रानाडे जैसे महान लेखक को इस प्रयास में यश नहीं मिला. वि. सो. गुर्जर, सरस्वतीकुमार, ना. के. बेहरे, ना. ह. आपटे इत्यादि साहित्यकारों ने इस काल में काफी-कुछ लिखा. मराठी साहित्य में कथा परिवर्धन करने तथा उसे लोकप्रिय करने में बहुत प्रयास किया लेकिन कथा को स्वयं अपना रूप निर्धारित करने एवं पहचानने में किंचित भी सहकार्य मिला, इसमें संदेह है.

इसके विपरीत एकपात्री नाटककार दिवाकर की "प्रवासी" नामक एक ही कथा का कोलारकर ने संग्रह किया और उनकी दी हुई सूची में भी दिवाकर के नाम पर कोई दूसरी कथा का उल्लेख नहीं मिलता. लेकिन इतना कहना पड़ेगा कि और लेखक ढेर सारी कथाएं लिख कर जो प्राप्त न कर सके, वह उन्होंने अपनी एक ही रचना "प्रवासी" में प्राप्त कर लिया. प्रवास पर निकले एक मनुष्य के छोटे-छोटे उद्गार पर ही यह कथा आधारित है. परंतु यह प्रयास भी साधारण नहीं है. उसके वर्णन के लिए तथा उसके बड़प्पन की डींग मारने की उनमें उत्कंठा नहीं, वे तत्वचिंतन भी नहीं करते तथा काव्यात्मक भाषा का भी उपयोग नहीं करते—आम लोगों की बोलचाल की भाषा ही वर्णित है. भावनाओं की भी उद्दाम तरंगों का कोई वेग नहीं. केवल सीधे-सादे शब्दों का ही प्रभावपूर्ण विलक्षण संकलन है. शब्द जितना बोलते है, उससे अधिक कहीं इंगित करते हैं. इतना ही नहीं, इन उद्गारों का जो परस्पर संबंध है, वह कथन जितना ही महत्वपूर्ण है.

इस कथा में पात्र हैं लेकिन चेहरे नहीं हैं. कौन-सा कथन किसका है, इसका लेखक ने कहीं उल्लेख नहीं किया है और उससे पाठकवर्ग को परिचित कराना लेखक ने उचित नहीं समझा. इसमें पात्रीयता है ही नहीं. कथा में पात्र हैं ही नहीं, मानो लेखक इस कथा में अपरोक्ष रूप से भी प्रवेश नहीं करता: सारे अवांछित वार्तालाप उन्होंने बड़ी खूबी से दूर रखे हैं.

कथा, कथानक से वंचित है. पारंपरिक समाधानकारक जैसा उसका अंत भी नहीं है. फिर भी उसका अंत किसी और प्रकार का होना चाहिए, ऐसा भी कोई नहीं कह सकता. इस कथा का आरंभ अकस्मात होता है और अचानक ही कहीं अंत होता है. इतना होने पर भी आरंभ से अंत तक उसका एक सार्थक रूप है. एक निश्चित वातावरण है. ऐसा आभास होता है कि श्री दिवाकर को ही मराठी का आदि कथाकार माना जाय. लेकिन कोलारकर इससे सहमत नहीं हैं. शायद, "प्रवासी" नाटक के अधिक समीप है, ऐसी उनकी मान्यता है. यह सही है कि वह नाटक के अधिक समीप है परंतु नाटक नहीं है. वह क्या है? उनकी दूसरी नाट्यकथाएं इस नाटक जैसी नहीं हैं. उसी तरह यह नाट्य-छटा भी नाटक नहीं कथा है. डोरोथी पार्कर ने भी इसी प्रकार से एक कथा लिखी है जिसे एक उत्कृष्ट कलाकृति का दर्जा मिला है. इसीलिए मेरा आग्रह है कि "प्रवासी" भी प्रकाशित की जाय.

एकपात्री नाटककार दिवाकर, मराठी साहित्य के एक मूर्धन्य लेखक ने हमसे कई साल पहले जन्म लिया. परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि उनके लेखनकार्य पर अन्य साहित्यकारों एवं उनके समकालीन लेखकों की दृष्टि नहीं पड़ी. उस समय श्री दिवाकर के अल्प लेखन कार्य पर भी अन्य लेखक भी भरसक टीका-टिप्पणी करने से बाज नहीं आए. लेकिन दिवाकर जैसे मूर्धन्य लेखक उस वक्त क्या कर रहे थे, कितना महान कार्य उन्होंने हाथ में लिया था, इसका सही मूल्यांकन उनके समकालीन नहीं कर सके. उसका नतीजा यह हुआ कि उनके लेखनशैली का, पद्धति का उनके समकालीन विभूतियों पर उनका कोई असर नहीं पड़ा.

दिवाकर की मराठी साहित्यिक कृतियों पर दूसरे लोगों ने भी प्रतिक्रिया व्यक्त की लेकिन कैप्टेन गो. गं. लिमये नामक लेखक ने जो थोड़ी लेकिन अप्रतिम कथाएं लिखीं, उनमें से कई कथाएं प्रायः विस्मृति के गर्त में खो चुकी थीं. अगर कोलारकर अपने अथक परिश्रम से इन रचनाओं को प्रकाश में न लाते तो मराठी साहित्य हमेशा के लिए उससे महरूम रह जाता और यह कैप्टन लिमये के प्रति थोड़ा-सा अन्याय हो जाता. श्री कोलारकर का इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए उनकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है.

इस तरह लिमये के साथ जो अन्याय हुआ, उसके लिए श्री लिमये भी कुछ हद तक जिम्मेदार हैं. इस बीच दिवाकर का लेखनकार्य अबाध गति से चलता रहा परंतु प्रतिकूल वातावरण के कारण उनकी साहित्यिक प्रतिभा का उतना विकास नहीं हो सका. लेखनी छोटे एकपात्रीय नाटकों में ही उलझी रही हालांकि उन्हें अपनी क्षमता एवं अपनी प्रतिभा के बारे में कभी संदेह नहीं हुआ. अपने व्यक्तित्व के साथ उन्होंने पूरी ईमानदारी बरती. लिमये ने जानते हुए भी अपनी ईमानदारी नहीं छोड़ी. "मैकॅनो" जैसी उत्कृष्ट कथा लिखने पर "अंतरपाटापासून सप्तपदीपर्यंत" उस दृष्टि से एक मामूली कथा थी. उसके उपरांत उन्होंने अनेक कथाओं में न चाहते हुए भी कुछ अपनी इच्छा के प्रतिकूल लिखा. इसके पश्चात उन्होंने कथालेखन का कार्य छोड़ दिया तथा साधारण स्तर पर हास्य रचनायें करने लगे. ऐसा करते हुए उन्हें अपने कर्तव्य का आभास नहीं हुआ लेकिन निश्चय ही उन्होंने अपनी साहित्यिक प्रतिभा से ईमानदारी नहीं बरती. कलावंत नामक नाटक में इनकी यह कमी खुलकर सामने आयी और इसी कमी के कारण वे कथा के क्षेत्र में बहुमूल्य योगदान देने के वावजूद भी अन्य साहित्यकारों की दृष्टि में उपेक्षित रहे.

लेकिन अब आज हमें इस बात से कोई सारोकार नहीं है. हमें उनकी बहुमूल्य साहित्यिक प्रतिभा का जायजा लेना है. उनकी जो उपेक्षा हुई, उसका मूल्य चुकाना है. हालांकि उन्होंने हमसे कभी ऐसी अपेक्षा नहीं की लेकिन हमारा कर्तव्य है कि हम अभी भी उनसे

उऋण हो सकें. उनकी उपेक्षा से उनका जो कुछ नुकसान हुआ, वह तो हुआ ही पर अप्रत्यक्ष रूप में यह नुकसान उनकी अपेक्षा अधिक मराठी साहित्य-रसिकों का हुआ. मराठी की 'मैकॅनो' लघुकथा सबसे पहली कथा है कि नहीं, इस विषय पर कोलारकर से हमें एक प्यारभरा झगड़ा करना है. लेकिन मराठी कथा के मूलस्रोत के रूप में उस कथा की गणना हो, यह इस प्रेमद्वंद्व का विषय नहीं हो सकता. इसीलिए मेरी उत्कट इच्छा है कि इस लेख के साथ वह कथा भी प्रकाशित हो.

लिमये ने जब यह कथा लिखी, उस समय मराठी कथा पूर्णरूपेण कथा हो चुकी थी. उसका शीर्षक ही देखिये––कथा से उसका कोई संबंध ही नहीं है, कोई नाता ही नहीं है. शीर्षक का औचित्य कितना है, इस बारे में अप्रत्यक्ष रूप में भी उसकी चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है. अपरिपक्व कन्या द्वारा प्रस्तुत आत्मकथा से उस अंग्रेजी शीर्षक का कोई ताल-मेल नहीं है. और यही खामी सब कुछ खोल कर रख देती है. साथ ही साथ "मैकॅनो" शब्द से जिस प्रतिमा का जो रूप हमारे समक्ष आता है, उससे कथ्य को और भी बल मिला है. प्रस्तुतीकरण से जो कुछ भी व्यक्त हो सका है, उसे एक अलग चौहद्दी प्राप्त हुई है. सारी कथा को एक अलग ही कलेवर मिला ह. कहने की आवश्यकता नहीं कि ये सारी विशेषताएं कथा की ही हैं.

इस कथा के प्रस्तुतीकरण में एक स्वाभाविक सहजता का उल्लेख विशषकर इसलिए किया है कि सहजता भी कृत्रिम हो सकती है. मराठी के अच्छे कथाकारों ने यह दुःसाहस किया है. इसका प्रस्तुतीकरण सहज ही आरंभ हो जाता है. प्रस्तावना का अवांछित विस्तार नहीं है. बहते हुए प्रवाह में जैसे पत्ता बहते-बहते आखों से ओझल हो जाता है, लगभग कुछ हद तक इस कथा का भी यही रूप है. यह इसलिए कि इसका अंत नाटकीय है. बेजोड़ कपबसी का दरी में उलझ जाना जब तीसरी बार कथा में आता है तो हमें भी थोड़ा खटकता है. परंतु थोड़ी-सी खटकन पर यह भी विचार उठता है कि कहीं यह कथा की कलात्मकता का ही भाग तो नहीं है! शेष प्रस्तुतीकरण में सहजता है. कथा की पृष्ठभूमि आत्मनिवेदन पर है इसीलिए लेखक को कथा में अनायास प्रवेश का अवसर नहीं मिल पाया है, यह सही है. लेकिन लेखक बड़े कुशाग्र हुआ करते हैं. आत्मनिवेदन की स्थिति में भी कथा में प्रवेश कर जाते हैं. पर ऐसा कोई अप्रत्याशित चमत्कार नहीं घटित होता है जैसे, कथानायिका बीच में ही काव्य प्रतिभा दिखाने लगे. वह तत्वचिंतन नहीं करती, भावनाओं के फूल खिलाने नहीं पड़ते, कथानक की कड़ियां सूत्रबद्ध करने की आवश्यकता नहीं पड़ती. वह अपनी स्वाभाविक एवं स्वच्छंद गति से चलती रहती है. अपनी भाषा बोलती है. अपने मन के उद्गार प्रकट करती जाती है. जो कुछ उसे कहना है, उसके लिए उसे कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता, वह स्वयं ही उद्धृत हो जाता है और वह कहती जाती है. इसके अतिरिक्त उसे और कितना दुख है, क्लेश है, वह कहती ही नहीं. उसका यह दूसरा पहलू हमें कहीं न कहीं चुभने लगता है, सा लगता है. अवांछित विस्तार उस प्रस्तुतीकरण में स्वयं दब जाता है. वह गृहस्थ उसकी पत्नी, नायिका का प ये सभी पात्र बिना चेहरे के हैं. वह गृहस्थ मतलब, पैकेट जिसमें कुछ खाने को रखा है, और उसकी प मतलब वह कलाई-घड़ी. बस इतना ही!

और वे दो वर्णन, नायिका पति से कैसे व्यवह करती है तथा दूसरा वह जिसमें गृहस्थ से किस तरह व्यवहार करती, ये दोनों कितने सहज और सरल, कितने प्रभावशाली हैं. प्रतिभाशाली कवि भी जिस ब को कहने में सक्षम नहीं, वह सब इतनी सहजता अ सरलता से कह दिया. इसमें कितनी बारीकी है, खूबी जिससे नारी वर्ग परिचित है. और उन बारीकियों से छानकर निकाली गयी और बारीकियां. . . .

इतना ही नहीं, इन दो वर्णनों में आपस में कितन सहज तारतम्य है और यह तारतम्य कितना आर्थपूर्ण है पहला वर्णन पढ़ते हुए हम कुछ गाफिल-से रहते पर दूसरा वर्णन आरंभ होते ही पहले वर्णन से कितन भिन्न अर्थ मिलता है! और अगर पहला न होता तो दूस को ऐसा उन्माद कैसे मिलता? मतलब यह कि इस दूस वर्णन को पढ़ते ही थोड़ा-सा अस्वाभाविक-सा लग लगता ह. उलटी-सुलटी सिलाई जैसी थोड़ी यांत्रि गड़बड़ी और किंचित नाटकीयता खटकने लगती है. परं मन में यह शंका उठती है कि यह थोड़ी-सी नाटकीयता उ कथा के कलात्मक परिणाम का आवश्यक भाग तो नहीं है?

उपमा, प्रतिभा इत्यादि तो है ही नहीं. खाने का व पैकेट, कलाईघड़ी और छाता, दरी में उलझना, बेजो कपबसी, बस इतनी ही सारी सामग्री, लेकिन वह कलाई घड़ी कितनी जंचती है, वह खाने का पैकेट कितना मीठ होता है––इसीलिए आगे आए वर्णन में मिठास ही मिठास है.

दूसरा वर्णन पढ़ते समय हंसी नहीं आती. उस का प्रेम कितना मधुर है, मधुर होने के साथ कितना हठी है, नाटकीय और चपल––और न मालूम क्या-क्या है! कितने रंग हैं उसके व्यक्तित्व के––यह सब देखने के बाद ऐसा आभास होता है कि इन सब में कितना तारतम्य है. इस व्यक्तित्व में आज्ञाकारी पत्नी का एक ही रंग है. और अब एक दूसरा रंग. अगर यह सब कहने का पागलपन करते हुए कहा जा सकता तो इस कथा को लिखने के लिए श्री लिमये की क्या आवश्यकता थी? "मैकॅनो" ही पर्याप्त था जिसमें से मनचाही कथाएं गढ़ी जा सकती थीं. मराठी के आदि कथाकार में दिवाकर कृष्ण का भी नाम लिया जाता है. उनकी कथा, "पिंजरे का तोता" बड़ी ही सुंदर कथा है. अगर उसका भी यहां उल्लेख करना आरंभ करूं तो निश्चय ही कमलेश्वरजी मेरी पिटाई किये बिना नहीं रहेंगे. इसलिए उसका उल्लेख कर रहा हूं! अंततः कमलेश्वरजी के प्रश्नों का उत्तर तो मैं नहीं ही दे पाया पर मैं उत्तर देने के लिए बंधा हुआ थोड़े ही था––मैंने तो पहले ही अपने कान बंद कर लिये थे!

□□□

(अनुवाद : चंद्रमौलि शर्मा)

किस्मत: एक विवेचन

• माधव मोहोलकर

. यू. महाविद्यालय में प्राध्यापक तथा अध्यक्ष, हिंदी विभाग. हिंदी तथा मराठी में गंभीर तथा ठोस लेखन-कार्य. मराठी लेखन 'सत्यकथा', 'मौज' में प्रकाशित तथा हिंदी लेखन 'धर्मयुग' और 'सारिका' में. भारतीय ज्ञानपीठ तथा हिंदी में अनूदित पुस्तकें---रणांगण, तीन सहेलियां (मनू तथा सावित्री) और सुप्रिया. 'रणांगण' के लिए भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत. फिल्मों, नाटकों तथा संगीत में रुचि.

यूं तो सन् १८५४ से लेकर १९२१ तक मराठी में सैकड़ों मौलिक कहानियां लिखी गयीं लेकिन आधुनिक कहानी के आसार १९२२ में नजर आए. पहली महत्त्वपूर्ण आधुनिक कहानी कैप्टन गो. गं. लिमये की 'किस्मत' थी जो १९२२ में 'नवयुग' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी. उसके बाद उनकी 'मेकॅनो' , 'विठूचें भविष्य' आदि अच्छी कहानियां एक के बाद एक प्रकाशित होती गयीं. ऐतिहासिक दृष्टि से मील का पत्थर बनने का सौभाग्य 'किस्मत' को प्राप्त हुआ और वकौल प्रख्यात मराठी कथा-समीक्षक राम कोलारकर के, सन् १९२२ से कैप्टन लिमये के कथा-लेखन ने जो नया मोड़ लिया, वह मराठी कहानी की 'किस्मत' बदल देनेवाला था.

'किस्मत' से पहले लिखी गयी मराठी कहानियां आधुनिक कहानी की कसौटियों पर खरी नहीं उतरतीं. बहुत-सी कहानियां उपन्यास के सारांश जैसी लगती थीं. शायद कहानी-लेखकों के दिमाग में उपन्यास और कहानी का अंतर भी स्पष्ट नहीं था. लंबे-लंबे ब्यौरेवार वर्णन, बीच-बीच में अनावश्यक स्पष्टीकरण, व्याख्या आदि उस समय की कहानियों के प्रमुख दोष थे. उन कहानियों में वस्तुपरक यथार्थता का संपूर्ण अभाव था. सन् १९०७ के बाद आश्चर्यकथा, प्राणिकथा जैसी कल्पनानिष्ठ स्वच्छंद कहानियां लिखी गयीं. उनका भी अपना एक महत्व है ही. लेकिन 'किस्मत' और उसके बाद लिखी गयी कैप्टन लिमये की कहानियां, न केवल कहानी-कला की दृष्टि से उच्च कोटि की थीं, बल्कि उनमें पहली बार समकालीन जीवन का यथार्थ चित्रण किया गया था. वस्तुत: कैप्टन लिमये ने अपनी 'किस्मत' से आधुनिक कहानी की नींव डाली जिस पर बाद में गंगाधर गाडगील, अरविंद गोखले, दि. बा. मोकाशी और पु. भा. भावे जैसे सशक्त कहानीकारों ने नयी कहानी की पुख्ता इमारत खड़ी की. कथा-समीक्षक राम कोलारकर के अनुसार 'इंद्रियगोचर यथार्थ के माध्यम तथा 'भ्रम तोड़ देने की दुःसह प्रक्रिया के द्वारा जीवन की अपरिहार्यता का निर्मम दर्शन करानेवाली यथार्थवादी कहानी लिखने के लिए गो. गं. लिमये सामने आए, कैप्टन लिमये को कॉमेडी से त्रासदी अधिक प्रिय थी. 'किस्मत' भी एक दुःखांत कहानी है. मृत्यु का भय न केवल मनुष्य, बल्कि प्राणि मात्र की मूलभूत भावना है. हर कोई मौत से बचना चाहता है लेकिन वह नहीं जानता कि बहुत बार मृत्यु से बचने की हर संभव कोशिश उसे मृत्यु के और ज्यादा करीब ले जाती है. मौत से दूर भागने के लिए जो रास्ता वह अख्तियार कर लेता है, वह दर असल मौत के पास पहुंचने का पास का रास्ता होता है. नियति के इस क्रूर खेल का शिकार है रामदयाल---'किस्मत' का नायक.

'किस्मत' घटना-प्रधान कहानी नहीं है. उसमें बल दिया गया है रामदयाल की मानसिक दशा के चित्रण पर. वह एक मामूली 'डोलीवाला' है जिसे युद्धभूमि पर मृत्यु का भय लगातार सताता रहता है. भय और आशंका से ग्रसित रामदयाल सदा अनिश्चय के अधर में लकता रहता है. उसमें न निश्चित निर्णय लेने की क्षमता है, न अपने निर्णय पर दृढ़ता से अमल करने की. यही उसके दुखमय अंत का कारण है. 'किस्मत' में रामदयाल के अंतर्द्वंद्व पर बल देने के कारण वह जितना अपने आप से बातचीत करता हुआ दिखाया गया है, उतना दूसरों से नहीं. फिर भी रामदयाल और 'ड्रेसी बाबू!' के संभाषण में स्वाभाविकता है और रामदयाल का स्वगत-कथन उसके मानसिक संघर्ष को उजागर करता है.

युद्धभूमि का जीवंत वातावरण पैदा करने में कैप्टन लिमये की सफलता ताज्जुब की बात नहीं है क्योंकि युद्ध उनके लिए 'भोगा हुआ यथार्थ' था. पहले विश्वयुद्ध में वे मोर्चे पर गए थे और मौत के साये में पलती जिंदगी देखी थी और अप्रत्याशित रूप से आनेवाली सस्ती से सस्ती मौत भी. और जो कुछ भी देखा था, तटस्थता से देखा था और अपनी कहानियों में चित्रित किया था. युद्धभूमि का चित्रण करने के लिए कल्पना का सहारा लेने की उन्हें कतई जरूरत नहीं थी. कॉलम, किट बॅग, फॉल इन, नोटिस, रिटायर इत्यादि फौजी जीवन से संबंधित अंगरेजी शब्द 'किस्मत' में सहज रूप में आए हैं. यही नहीं, ध्वनि-प्रभाव पैदा करनेवाले शब्दों ने वातावरण के निर्माण में सहायता की है. प्रवाहमयी शैली आखिर तक पाठक की औत्सुक्य भावना को बनाये रखती है. रामदयाल का अंतर्द्वंद्व जब पराकाष्ठा पर पहुंच जाता है, तब कहानी ही समाप्त हो जाती है. ओ. हेनरी की कहानियों की तरह 'किस्मत' का अंत सिर्फ झटका देनेवाला ही नहीं, बैचैन कर देनेवाला भी है क्योंकि 'किस्मत' रामदयाल ही के जीवन की त्रासदी नहीं, समूचे मानव जीवन की त्रासदी है. □ □ □

प्रवासी

•दिवाकर

एक ऊबड़खाबड़ रास्ता. बहुत-से लोग रास्ते में बातचीत करते हुए खड़े हैं. सूर्य का प्रकाश धूमिल हो जाने के कारण आसपास कुछ दिखाई नहीं दे रहा है. प्रवासियों में से तीन-चार वृद्ध हैं, शेष में से कोई मध्यम आयु का है तो कई युवा है. दस-बारह वर्ष के दो-तीन बालक अपने पिता को ताकते हुए खड़े हैं.

दादा अपने को अभी और कितनी दूर जाना है! हमारे पैर दर्द करने लगे हैं.

★

नजदीक ही आ गया है, बच्चों.

★

हां, ऐसा तो आप कितनी बार कहते आये हैं. नजदीक आ गये हैं, नजदीक आ गये हैं. हमेशा यही कहते हो, लेकिन दूरी कभी खत्म नहीं होती. ये क्या है? एक बार बतला दीजिए, कितने नजदीक आ गये हैं? चलने से हम बहुत तंग आ गये हैं.

★

ये क्या पागलपन है! ऐसा कौन-सा धुंधलका हो गया है! मैं ये कैसे बतालाऊं कि नजदीक आ गये हैं.

★

फिर आप यह कैसे कहते हैं कि नजदीक आ गये हैं?

★

चुप बैठ! बदतमीज कहीं का. अभी तक बड़ों से कैसे बात की जाती है, इसकी अकल नहीं है.

★

चुपचाप चलने की बजाय, बकबक लगा रखी है! ठीक है लेकिन हम कहां आ पहुंचे हैं?

★

मुझे लगता है, हम रास्ता भटक गये हैं.

★

नहीं-नहीं, यही वह रास्ता है.

★

कैसे कह सकते हैं कि यह वही रास्ता है.

★

कैसे कह सकता हूं? मुझे ऐसा लगता है इसलिए!

★

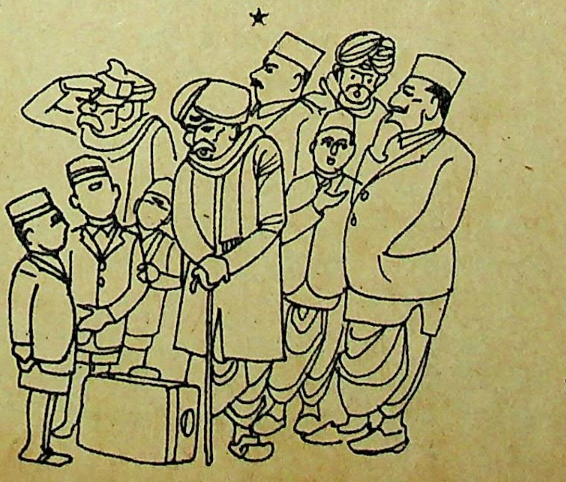

सब कुछ गड़बड़ है. रास्ता भटक गये हैं या रास्ते पर हैं, कुछ समझ में नहीं आता है.

★

और उस पर कहां आ पहुंचे हैं, यह भी समझ नहीं आता! हम दो-एक मील तो पहुंच ही गये होंगे

★

इतना ही थोड़े चले होंगे! कम से कम ढ़ाई-
मील तो चले ही हैं.

★

तीन मील? इतनी ही दूरी कैसे हो सकती हैं?
तो लगता है कि हम चार-पांच मील तय कर चुके

★

हं: ! चार-पांच मील कहां तय किया है? अभी
एक मील भी तय नहीं किया है.

★

क्या मील भर नहीं हुआ? उस गांव को छो
हुए घंटे, डेढ़-घंटे तो हो ही चुके होंगे.

★

बहुत हुआ होगा तो आधा या पाव घंटा.

★

हां-हां, इतना ही समय हुआ होगा.

★

नहीं-नहीं! अच्छा खासा-समय हो चुका है.

★

हम जिस गांव से आये हैं, उस गांव का नाम मजेदा
है कि नहीं? मुझे तो अभी भी रह-रहकर हंसी आ रही
है. क्या है? किसी को याद है क्या?

★

नहीं भई, मुझे तो बिल्कुल याद नहीं आ रहा है.

★

क्या था? टरगुन गुड़गुड् गुड् ऐसा ही कुछ था!

★

नहीं-नहीं! यह नहीं. कोई और ही नाम है!

★

जाने दो! उससे करना क्या है! ऐसे कितने ही, गांव हमारे प्रवास में आयेंगे. कौन याद रखता है! हमारे ठहरने का स्थान शायद धर्मशाला हो, नहीं तो शायद किसी मंदिर में ठहरकर कुछ अपने हाथों से बनाकर, कुछ देर सोकर, हंसी-खुशी आगे चल देंगे. गांव में क्या रखा है! ठीक है या नहीं? और फिर इतना सब देखने-सुनने की फुर्सत किसे है!

★

हां और क्या! और अब हम किस गांव में जा पहुंचेंगे और किस में नहीं, इसका भी क्या भरोसा.

★

हं!-हं! हम चला ही तो रहे हैं.

★

तो फिर अब चलो न आगे. यहीं पर कितनी देर खड़े रहेंगे?

★

आगे क्या चलें? धुंधलका कितना छा गया है! उस पर कहते हैं, चलो.

(आगे पृष्ठ ७७ पर)

वंदे भगवती

ए. रमेश चौधरी 'आरिगपूडि'

हम सब कटीले तार पकड़े खड़े थे, उससे परे हम जा नहीं सकते थे. वार्डरों का सख्त पहरा था. तार ड़ भी देते, तो भी उनसे बच कर भाग निकलना संभव था. तैश में थे, उबल रहे थे, लाचार थे.

और तार के परे, वार्डरों से परे, ऊंची दीवार के छे से, जोर से आवाज आयी—वंदे मातरम—देमातरम गोपाल कृष्ण को कोड़ों की सजा दी जा ही थी. हर कोड़े के साथ वह 'वंदेमातरम' का नारा गाता. सात कोड़ों के बाद, उसकी आवाज बंद ड़ गयी—कोड़ों की आवाज भी. वह बेहोश हो या होगा.

सन बयालीस की बात है यह. इतने वर्ष गुजर ये हैं. पर इस घटना की याद ऐसी है, जैसे कल ही ह गुजरी हो.

तब भी कई तरह की बहादुरी दिखाई थी. साधारण साहस, और सहिष्णुता का परिचय दिया ा, पर मैं उनको व्यक्तिगत रूप से नहीं जानता, न रा उनसे उस तरह का भावुक संबंध ही था, जिस तरह के गोपाल कृष्ण से था.

वह मेरा मित्र है—अब तो खैर हम बिछुड़े हुए हैं. पर उस समय उससे अधिक घनिष्ठ मित्र मेरा कोई न था. अब दोनों के शायद अलग रास्ते हैं, पर 'भारत छोड़ो' आंदोलन के समय, हम दोनों का रास्ता एक ही था जो जेल की चार दीवारी में खत्म हो गया था.

जेल आने से छह महीने पहिले मैं उसकी शादी पर गया था. उसकी नवेली पत्नी का लजीला चेहरा अब भी मन में तैर रहा है. दोनों ने एक दूसरे को फूलों से लाद दिया था, अलौकिक दृश्य था. दो प्राणी एक ही मंच पर, सदा के लिए एक दूसरे के हो गये थे.

गोपाल कृष्ण बड़ा हट्टा-कट्टा था, गेहुंआ रंग, मुंह पर विचित्र शालीनता, और इस सबको यौवन का सहज अलंकरण. और उस पर कोड़े, खून की नदियां, खुले घाव—फिर भरे दाग, कटु स्मृतियों के चिर चिन्हों की तरह.

वह मेरे बाद जेल आया. वह भी वही काम करते पकड़ा गया था जिसे मैं करता पकड़ा गया था, यानि पुलिस-चौकी पर धावा बोलने, और वहां से बंदूक उड़ा ले जाने के कारण. उस पर भी वही इल्जाम थे, जो मुझ पर थे. पर सजा दोनों को अलग-अलग हुई. हम दोनों के न्यायाधिकारी अलग-अलग थे. कहते हैं कानून अंधा है, इसका जीवंत उदाहरण गोपाल कृष्ण है, उसे दो वर्ष की जेल के साथ सोलह कोड़ों की सजा भी दी गयी थी, जो मुझे नहीं दी गयी थी.

अगर यह सजा मुझे होती तो मैं शायद उस बहादुरी से उसे न झेल पाता, जिस बहादुरी से उसने झेली थी. मैं उससे ज्यादह ताकतवर नहीं हूं, पर मुझे उसकी तरह फूलों पर भी नहीं पाला गया था. मैं कांटों का आदी हूं. वह तो रईस घराने का इकलौता लड़का था. उसके मां-बाप एक साधारण शिक्षणालय में भेज कर उसे संसार की वास्तविकता से परिचित कराना चाहते थे, मेरे लिए उस शिक्षणालय में जाना भी भाग्य की सबसे बड़ी देन थी. वहीं हमारी मैत्री हुई. और धन-दौलत की दीवारें होते हुए भी, वह बेमेल मैत्री न थी. उस शिष्ट, अभिजात परिवार के कोमल तरुण, भावुक युवक को कोड़े की सजा दी गयी. गोपाल कृष्ण ने अपने मां-बाप को इस सजा के विरुद्ध अपील भी न करने दी. अदालत में उसने वकीलों को भी बोलने न दिया, वह उस सरकार को ही अस्वीकार करता था, जो उसे सजा दे रही थी.

मैंने बहुत से सत्याग्रही देखे हैं, मैं स्वयं एक रहा हूं, पर उस जैसा सत्याग्रही नहीं देखा. लेकिन? तभी तो आश्चर्य होता है जब यह सोचता हूं कि वह क्यों कर बैठा, जो उसने बाद में किया. क्यों न वह शहीद हो गया? क्यों शहीद होते-होते उसके पैर कांप उठे, और पीछे हट गये? कैसे उस गले से, जिसमें वंदे मातरम का पुनीत नारा पावन गंगा की तरह निकला था, कोई और बात निकली? खैर.

सजा के बाद उसे जेल के अस्पताल में भेजा गया. वार्डरों की खुशामद कर करा कर, मैं उसे देखने गया! सारी पीठ की चमड़ी उतार दी गयी थी. लाल लाल मांस पर कोड़े के दाग. बड़ा दर्द रहा होगा, पर वह कराह भी न रहा था, मुंह पर एक अजीब दर्दभरी मुसकान थी.

मैं उससे क्या कहता, और क्या पूछता? उसमें सिवाय आंखें फाड़ कर देखने के और कोई ताकत न थी. चेहरा पथरा गया था. वह यह भी न चाहता था कि कोई यह जाने कि उसे अत्यंत दर्द हो रहा था. वह उस समय बेहोश तो न था, पर एक तरह की बेहोशी-सी थी, जिसमें होश के सब दर्द और भी भयंकर हो उठते हैं. जिस मुख से कराहट ही न निकली हो बात क्या निकलती? उसने एक क्षण मेरी ओर देखा, और फिर सिर मोड़ लिया.

उसका जमा जमा, मुरझाया हुआ चेहरा, बड़ी-बड़ी नादान चुप आंखें, अब भी मेरा पीछा करने लगती हैं. कहती-सी लगती हैं, आदर्श आदर्श है, मानवता

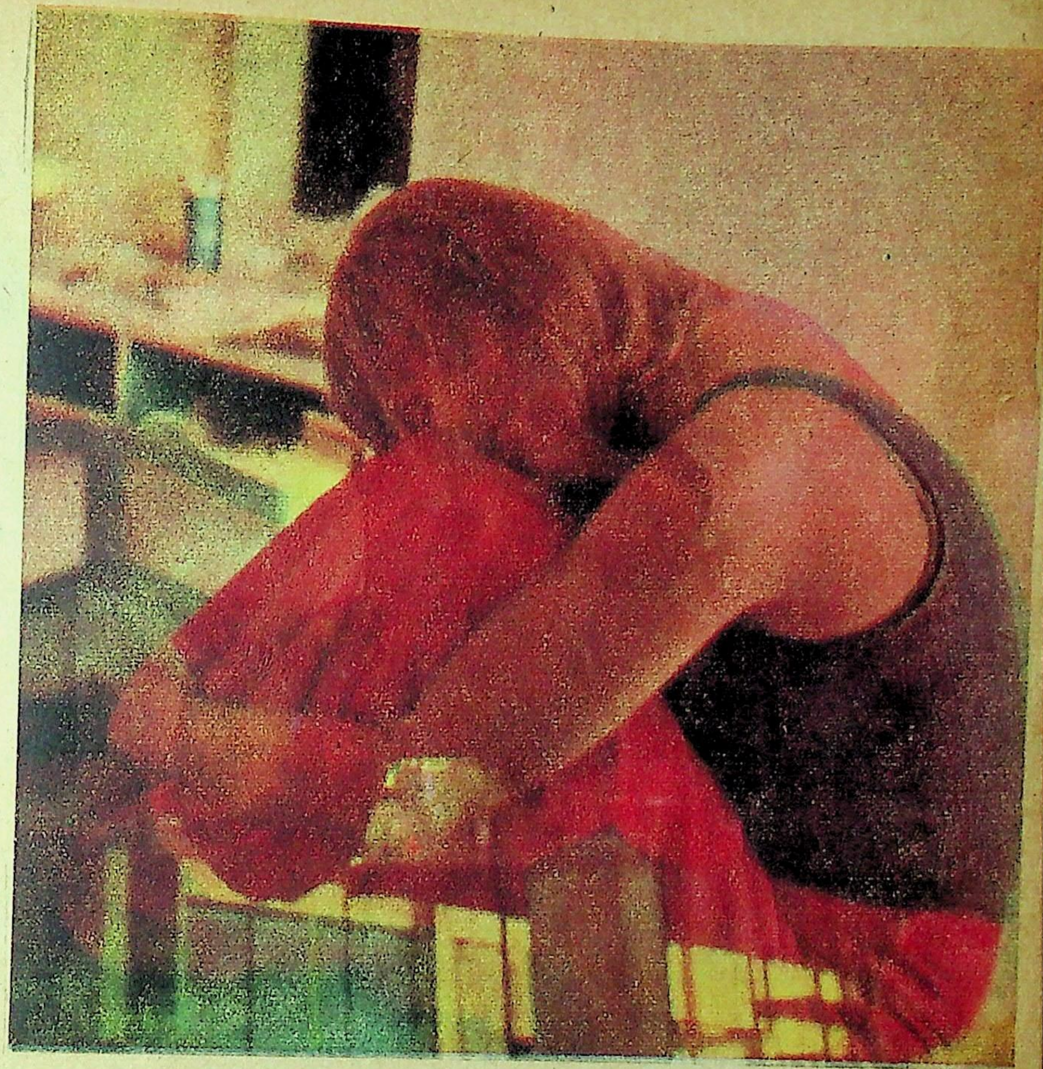
रतन प्रकाश

भी कुछ हैं. बलवानों में भी दुर्बलताएं होती हैं. वह फिर दुर्बलता भी क्या जो स्वाभाविक हो?

गोपाल कृष्ण के बारे में ही हर कोई जेल में बातचीत कर रहा था. सब उसकी प्रशंसा कर रहे थे. उसके साहस, सहिष्णुता, और शालीनता पर चकित थे. अखबारों के लिए भी जेल के साथियों ने चोरी-चोरी खबर भेज दी थी, देश में उसकी चर्चा हो रही थी, और मैं खुश था कि मेरे साथी ने देश के लिए वह कष्ट खुशी-खुशी सहा जो मैं न सह पाया था. वह मेरी नजर में साथी न रह कर यकायक एक आदर्श पुरुष हो गया था. किंतु?

उसके माता पिता आये, पत्नी आयी. सुना गया कि वे जेल के फाटक पर थे. जेल सुपरिंटेंडेंट से गोपाल कृष्ण को देखने की अनुमति पाने का प्रयत्न कर रहे थे, सुपरिंटेंडेंट शायद अनुमति दे भी देता, यदि गोपाल कृष्ण स्वयं उनको देखने से इनकार नहीं कर देता— यह भी एक विचित्र आभिजात्य व्यवहार था, जिसमें मानवता थी भी और नहीं भी थी.

दो-चार दिन बाद, मुझे फिर गोपाल कृष्ण को देखने का मौका मिला. वार्डर खुद मुझे बुला कर ले गया था. मुझे आश्चर्य हुआ. जेल में यह प्रायः न होता था.

हास्पिटल वार्ड में पहुंचा तो देखता हूं कि गोपाल कृष्ण तकियों के सहारे अपने बिस्तर पर बैठा था, चेहरे पर अजीब मुसकराहट थी, और उसकी बगल में एक विदेशी नवयुवती खड़ी थी. विदेशी वेषभूषा में मुझे उसकी पीठ ही दिखाई दे रही थी. मेरी उत्सुकता उभरी.

बिस्तर के पास पहुंचा तो उस महिला ने स्नेह भरे मंदहास के साथ मेरा स्वागत किया. पर वह वहां क्यों थी ? वह हमारे जेल सुपरिंटेंडेंट की लड़की थी. कभी-कभी अपने पिता के साथ हमें देखने जेल में आ जाती थी. उसके आते ही जेल में एक अजीब-सी लहर उठती थी, सहसा दबी हुई, सोई हुई एंद्रिक लालसा मन में फुंकारने लगती थी. राजनीतिक कैदी उसे देखने सीखचों के पास खड़े हो जाते थे, और उसके आंखों से ओझल होने तक उसे देखते रहते. बड़ी खूबसूरत थी वह. बड़ी कशिश थी उसमें. हममें से कई सोचते थे कि सुपरिंटेंडेंट हमें चिढ़ाने के लिए उसे अपने साथ लाता था.

लेकिन वह यहां क्यों है? गोपाल कृष्ण को भी क्या चिढ़ाने की कोशिश की जा रही है? सुपरिंटेंडेंट

श्रीनिवास नारी-शक्ति को नयी दिशा प्रदान करेगा

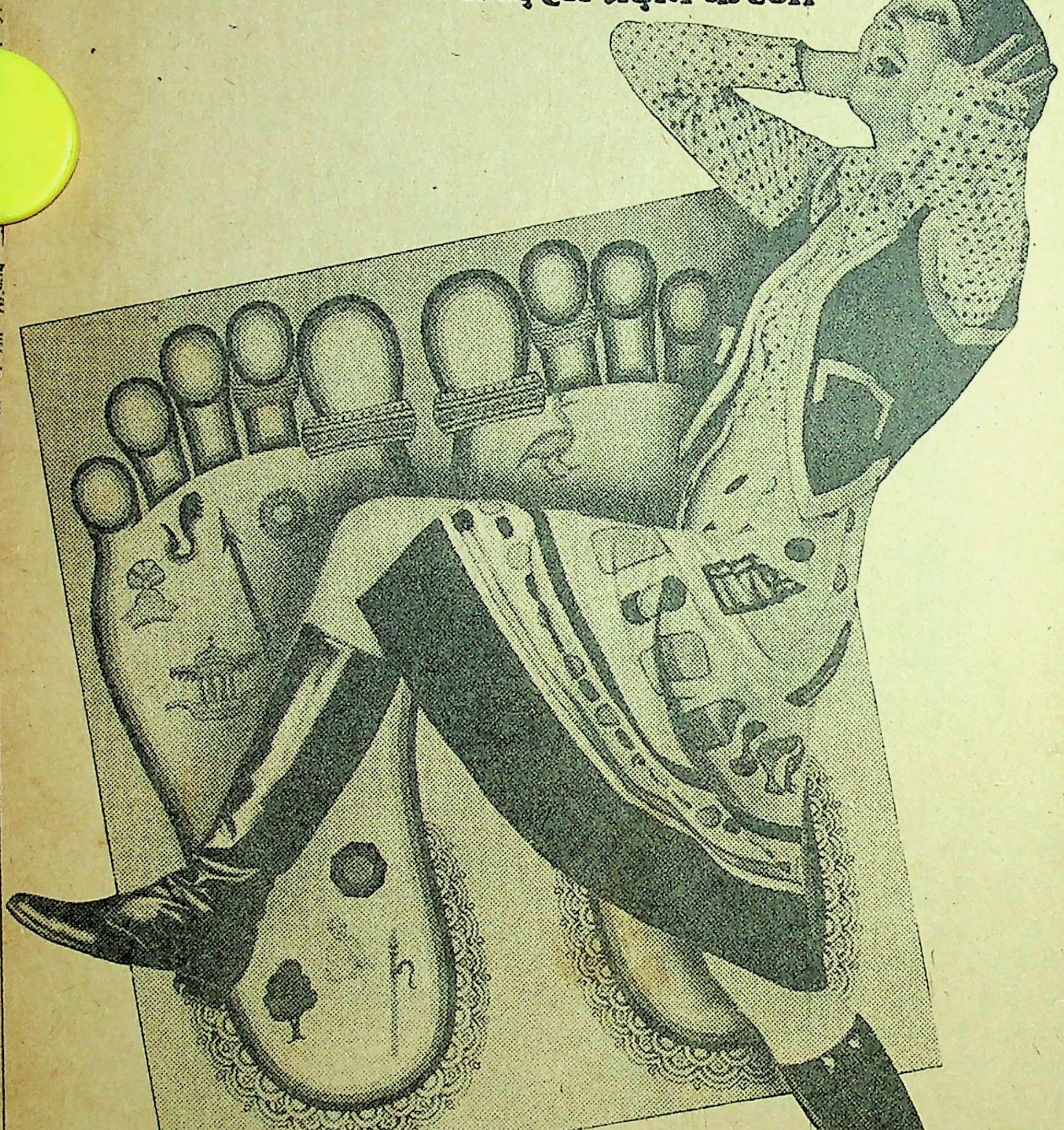

जीवन तथा परिवर्तन की एक अटूट, अनंत प्रक्रिया :

आधुनिक नारी के मनपसंद कपड़े।
चित्ताकर्षक प्रिण्ट, रंगों की बहार।
'टेरीन', टेरीन / काटन तथा काटन के नाना प्रकार के पोशाक के कपड़े।

श्रीः

दि श्रीनिवास काटन मिल्स लिमिटेड

की लड़की हो तो हो किंतु वह जेल के नियमों के खिलाफ एक कैदी को देखने नहीं आ सकती थी. फिर वह यहां क्यों है?

—यह हैं मिस हाऊ, गोपाल कृष्ण ने आभिजात्य शिष्टता के साथ मेरा उनसे परिचय करवाया.

—हां, हां, ये अपने अंग्रेज सुपरिटेंडेंट की लड़की हैं न?

—अंग्रेज नहीं, आयरिश, मिस हाऊ ने मुसकरा कर कहा.

—हमारे लिए सभी गोरी चमड़ी वाले अंग्रेज ही हैं. मैंने शिष्टता का बिना खयाल किये कह दिया.

—हूं, उस महिला की मीठी मुस्कराहट ने मुझे शांत कर दिया, और मैं महसूस करने लगा कि मैं गलती कर बैठ.

—मैं अपने पिता की लड़की होने के सिवाय क्या कुछ भी नहीं हूं? मैं अठारह साल से बड़ी हूं. उस महिला की मुसकराहट में अब कुछ शरारात खो गयी थी. वही चुलबुलापन जो हमें दूर से ललचा कर चली जाती थी.

—उम्र छुपाने का मर्ज शायद स्त्रियों को ढलती जवानी में ही होता है. आप तो अट्ठारह की भी नहीं लगतीं? यह बात प्रथम परिचय की शिष्टता के प्रतिकूल ही थी, लेकिन मेरे मुख से निकल ही पड़ी.

—खैर, अब आपके मित्र कुछ ठीक हो गये हैं; तकिये के सहारे बैठ सकते हैं, क्यों मि. कृष्ण? उसने बड़े प्यार के साथ गोपाल कृष्ण की ओर इशारा किया.

—सब आपकी मेहरबानी हैं, मिस हाऊ की मेहरबानी न होती तो शायद मैं . . . गोपाल कृष्ण कहता-कहता कुछ सकुचाया.

—नहीं, मैंने तो अपना कर्त्तव्य किया है. मिस हाऊ ने कहा.

—और ऐसी जगह, जहां मामूली मानवीय कर्त्तव्यों का भी पालन नहीं होता है, इसलिए आपने जो कुछ मेरे लिए किया है, उसकी महत्ता और भी बढ़ जाती है. मैं आपका एहसान नहीं भूल सकता. गोपाल कृष्ण ने कहा. उसकी बातों से अनुमान किया जा सकता था कि उसके घाव करीब-करीब भर गये थे.

गोपाल कृष्ण ने बताया कि जब से उसे कोड़े लगवाये गये थे, तभी से वह आ जा रही थी. और उसकी हर तरह से सेवा कर रही थी. पिता कोड़े लगवाये, और लड़की घाव सहलाये—विचित्र बात थी.

आंदोलन चल रहा था, बहुत सी बातें थीं, जो हम पुलिस से छुपाये हुए थे, कहीं यह लड़की सरकारी भेदिया तो न थी, जो इस तरह गोपाल कृष्ण से भेद पाने के लिए उसकी सेवा शुश्रूषा कर रही थी?

आयरिश ही सही, थी तो वह गोरी जाति की ही, फिर वह मिशनरी भी न थी, क्या वह गोपाल कृष्ण की यूं देख भाल कर रही थी? और क्यों गोपाल कृष्ण ने, जो उस हालत में मां-बाप, पत्नी तक को नहीं देखना चाहता था, इसको पास आने दिया?

संपन्न परिवार का लड़का है? गोरी ही सही, है तो एक वेतन पाने वाले सुपरिंटेंडेंट की लड़की ही? हो सकता है, उसे फंसाना चाहती हो!

मेरे मन में यूं संदेहों का बवंडर-सा उठ रहा था, और गोपाल कृष्ण मेरे सामने मुसकराता-मुसकराता लेटा था. वह मुसकराहट, जिसमें विवशता थी, निश्चिंतता थी, कृत्रिमता थी. हम दोनों में कोई खास बातचीत, सिवाय कुशल प्रश्नों के नहीं हुई.

मैं उससे विदा ले कर आ रहा था कि मिस हाऊ उसके लिए एक बड़ी ट्रे पर, अंग्रेजी खाना ले जा रही थीं. वह जेल का खाना न था. वह अवश्य उसे अपने घर से ला रही थीं. ...इतना कुछ मैंने उसके बारे में सोचा था कि मैं और कुछ न सोचना चाहता था.

थोड़े दिनों बाद, गोपाल कृष्ण जेल के हास्पिटल वार्ड से घर चला गया. हमने सुना कि उसने सरकार से माफी मांग ली थी, हमें आश्चर्य हुआ और अफसोस भी. यह भी सुनने में आया कि उसकी पत्नी स्वयं उसको लिवा लेने जेल के फाटक पर आयी थी.

गोपाल कृष्ण का यह कार्य हमें नितांत लज्जाजनक लगा. अगर पत्नी को ही इतना चाहता था, तो जेल क्यों आया था? जेल से माफी मांग कर ही जाना था, तो क्या आदर्शवादी सत्याग्रही का दिखावा करता रहा?

– और तो और, मिस हाऊ स्वयं उसके कारण लज्जित थीं, वे सोच रही थीं कि वे "देश भक्त" की सेवा कर रही थीं, पर वह तो एक कामुक कायर निकला.

अगर उस समय मैं कोई नारा लगा पाता तो लगाता —वंदे भगवती.

मिस हाऊ को शायद नहीं मालूम कि एक प्रकार से वह ही गोपाल कृष्ण के इस 'निन्दनीय', कार्य की कारण थीं.

आज जब मैं जीवन की ढलान पर हूं, तो सोचता हूं देश प्रेम से परे भी कुछ ऐसी शक्तियां हैं, जो उससे कहीं अधिक प्रभावशाली और बलवती हैं. तब तो अनुमान नहीं कर पाया था, पर आज अनुमान कर सकता हूं, कि उसके पीछे एक ऐसी स्वाभाविकता थी, जो देश भक्ति के बौद्धिक आदर्श से कहीं अधिक शक्तिशाली है.

और शायद मिस हाऊ नहीं जानतीं कि उनके स्नेहपूर्ण व्यवहार ने ही अमूर्त देश भक्ति से गोपाल कृष्ण को वास्तविक पारिवारिक प्रेम की ओर प्रेरित किया था. □□□

१३८, शेनोय नगर, मद्रास–३०

कब तक?

• हृदय लानी

एड़ी को खुद ही तग्गे सेठ से मुंह-दर-मुंह बात करने सायन-कोलीवाड़ा जाना पड़ा.—नईं मंगता तुम्हारा माल! मंगता ए भाव बदली करो. माल का शिकायत गिराहक नईं करना मांगता.

और झूठ क्यों बोले. . .गयी वह गणपति के दरसन करने भी थी. इसलिए उसने बदरू से आज आने के लिए कह दिया था. बदरू बहुत बेचैन था. शादी भले ही बना ली हो, लेकिन एड़ी की जिद थी कि गणपति के दरसन से पहले वह बदरू को हाथ तक नहीं लगाने देगी.

अलेग्जेंड्रा सिनेमा के बस-स्टॉप पर उतर कर एड़ी ने ठिकाने पर पहुंचने के लिए लंबे-लंबे डग भरे.—देर हो गयी मेरे को. . .आ गिया होएंगा. . .

शाम कोठों पर बैठ चुकी थी. शीः . . शीः की आवाजें और भोंड़े इशारे नीचे उतर रहे थे. चालू मेकप किये हुए कुछ दादा किस्म की छोकरियां, एड़ी के फुटपाथ से सटे खंबे के आसपास, पंडित और जाड्या ईरानी होटल में बैठी पुरानी फिल्मों के गाने सुनतीं, गिराहकों को ताड़ने लगी थीं. बढ़ती हुई आमदरफ्त के साथ-साथ सस्ते इत्र की बू बदबू की तरह फैलती जा रही थी. 'मतलब' के लिए आये हुए लोग नसों की तरह फैली हुई गलियों में खोते जा रहे थे. सिनेमा हॉल से सटी बिल्डिंग की नेपाली छोकरियां, पहले से चौथे माले तक की खिड़कियों की चौखटों में सज चुकी थीं. . . .और पंडित चाय वाले होटल के सामने मंगती का धंधा करने वाला मदकची अपने सामने कपड़ा बिछा कर, घुटनों और माथे के बल उकड़ूं लेट चुका था.

पंडित चाय वाले को एक 'पेशल' चाय का ऑर्डर दे कर एड़ी छोटेखान के क्लब के नीचे, बरामदेनुमा फुटपाथ पर पड़ी अपनी खाट की तरफ बढ़ गयी. लड्डन मालिश वाला हमेशा की तरह आंखों में काजल डाले होटल के बाहर चंपी कर रहा था. चालू खोपड़ी छोड़ कर, एड़ी के पास आ कर उसने खबर दी कि उसका मेहमान आया है.

भारी-भरकम बदरू, बोझ की तरह छोटी-सी खाट पर पड़ा खर्राटे ले रहा था. खाट के पायों के नीचे उसकी नयी चप्पलें दबी थीं.

छोकरियों के गुट से चुहलबाजी करता हुआ ड्यूटी का लाखू हवलदार एड़ी को देख कर आया.

—माल आ गिया ए तेरा. . .

—आ गिया? . . .किदर. . .?

जाड्या होटल के सामने उकड़ूं बैठा हुआ एक घिनौना छोकरा थैला लिये हुए सड़क पार करके आया. थैले में से बरगद के पत्ते झांक रहे थे. एड़ी ने धंधे पर काम करने वाले गोल-मटोल छोकरे को आवाज दी. और फिर थैले वाले छोकरे से बोली—ये पत्ता डाल मेरी बन्नो के सामने. छोकरे ने थैले के पत्ते खंबे से बंधी हुई बकरी के सामने डाल दिये. ब्लैडर निकाल कर लकड़ी के एक जर्जर दरवाजे में कलिजर के पीछे-पीछे घुस गया.

* *

बदरू ने करवट ले ली थी. खाट की बची हुई पाटी पर एड़ी बैठ गयी. पंडित चाय वाले होटल का बाहर वाला छोकरा चाय लिये खड़ा था.

आधी चाय प्लेट में उंडेल कर एड़ी ने सर पर खड़े हुए लाखू हवलदार को दे दी. कप की बची हुई चाय एक घूंट में पीते हुए उसने कप नीचे रख दिया. कमर में खुसे पनथैले से एक रुपया निकाल कर एड़ी ने लाखू को थमा दिया.

—ये क्या! लाखू ने मुंह बना कर रुपया फेंक दिया.

—ऐ ऽ ए ऽ ए ऽ घाटी! एड़ी बोली. रोकड़ा फेंकता है. काए का रुआब रे. . .वरदी का? उसीका रोकड़ा दे रैली मैं, नईं तो. . .कौन साला तेरे को पूछता था. . . चाऽल उठा रुपया. . . !

लाखू ने रुपया उठा लिया—एक और दे. . .

—चल. . . चल, देंगा. . .बाद में आने का. . . भोनी नीं. . .बट्टा नीं. . .चल रे कलिजर, चाऽ बोल एक, छोकरे कूं. . .

उसी फुटपाथ पर थोड़ा हट कर छोटेखान क्लब के 'खेली' छोकरों के साथ दम मारने लगे थे. एड़ी उधर देख कर चिल्लायी—ए. . .! तुम लोग को दूसरी जगा नईं? साला मेरे को भी नस्सा होता ए घुएं से. . . बकरी की तरफ देख कर मुसकरायी— मेरी बन्नो को हो गिया तो. . .फाइडे को बच्चा देंगी वो.

—एड़ी है. . .क्लब की सीढ़ियां उतरता हुआ भगवती गल्ले वाला मुसकरा कर बोला. काए को बूम मार रैली, एड़ीऽ? . . . . मेमान की खातिर-वीतर कर न. . .

—तू रैन दे. . .एड़ी बोली. मेमान को तेरे सर पे नईं बुलाया ए भगवती. . .अपना छोकरा लोक का चंडूखाना हटाव इदर से. . .क्या साला धुआं-धुआं. . .

—तू जलती है! भगवती हंसा. तेरा धंधा दारू का है न. . . !

—जले तेरी जबान, एड़ी ने ऊपर देखा. देने वाला वो. . .मै काए को जलेगी. . . ?

चाय वाले छोकरे को देख कर एड़ी ने बदरू को हिलाया.

गरदन उचका कर मुंह में भरा हुआ लुआब बदरू ने ठक से सोडा बॉटल के बुच की तरह नाली में उछाल दिया. छोकरे से पानी का गिलास ले कर एड़ी ने बदरू को थमा दिया. बदरू ने पानी की एक पीक मार कर मुंह धोया. कागज का टिप्पा लगे हुए नये रंगीन

रूमाल से उसने मुंह पोंछ कर बालों में कंघी फेरी.

—नईं, नईं. . .मैं अब्बी पिया, एड़ी ने चाय के लिए मना किया.

—आओ. बदरू भगवती के बेडौल चेहरे को देख कर मुसकराया.

—बोलो, कहते हुए भगवती ने बदरू के हाथ से प्लेट ले ली.

—बस कर. . .बस कर. . .झटके से उठ कर एड़ी ने खंबे से बंधी हुई बन्नो के मुंह से बरगद के पत्ते खींच लिये. मां बनने जा रैली ए तू. . .ऐसे टाइम में इतना खाते क्या!. . .में-में नईं. . .थूथन तो डुालेगी. . . तेरा चलन अच्छा होता तो अस्पताल में बच्चे होते तेरे!. . .

* *

—ऐ ऽऽ लड्डुन. . .चल इधर. . .एड़ी ने आवाज दी. बदरू की तरफ देख कर बोली—इसका चंपी कर दे, बरोबर, हाथ-पांव दबा के. .बिंदास कर दे. . .

लड्डुन अपनी 'चौरंगी' ले कर बदरू की तरफ जाने लगा. बदरू बोला—अरे नईं रे. . .चंपी-उंपी मेरे को नईं कराने का. . .

—नईं कराने का!. . .एड़ी ने डांटा. . .समझता ए कुछ! जासती फैसन नईं करने का. . .चंपी-मालिस से बदन को कितना कस मिलता. . .

—मोत. लड्डुन बोला. . .अक्सीर बोलो. . .पीछे हमाम में न्हा के आओ. . .फिर देखो कइसा हलका-हलका बदन. . . फूल के माफक. लड्डुन ने गमछा झटक कर बदरू की पीठ पर डाल दिया.

—हां भाई. . .बदरू बोला. . .अपने सिक्सन में बुला के मेरी चंपी करवा रैली ए. . .

लड्डुन बदरू और एड़ी को बारी-बारी से देख कर थोड़ी देर तक हंसता रहा.

अलेग्जेंड्रा सिनेमा वाली बड़ी सड़क से इस तरफ मुड़ती हुई गश्त की गाड़ी दिखायी दी. सड़क पर खड़ी और टहलती हुई छोकरियों में भगदड़ मच गयी. जानवरों की तरह इधर-उधर, जिधर सींग समाये—होटलों, गलियों, खोलियों में भागीं.

गलियों में पड़ी खाटों पर बैठी हुई छोकरियां छिटक कर दहलीज के उस तरफ लपकीं.

इस टाइम छोकरियों का धंधे के लिए सड़क पर टहलना, खड़ा होना कानूनन मना है. खोली में रहो, दरवज्जे के उस तरफ. . .'गिराहक' खोली पे आये तो बैठो—सो बिंदास. . .दूसरे की खोली पर खड़े 'गिराहक' को आंख उठा के भी देखना यहां की रीत के खिलाफ हैं.

साला खोटा, धंधा. . .! ये भी धंधा है कोई. . ▫

मेडिमिक्स दवाई साबून

चर्म रोगों के लिए
डाक्टर लोग
सिफ़ारिश करते हैं

मुंहासे	■	बेवाई
काले धब्बे, खूट	■	खुजली
फुन्सियां	■	रूसी
अधौरी	■	धोबी फेन

मेडिमिक्स एक बेहतरीन
नहाने वाला साबुन भी है।
इससे त्वचा की चिकनाहट
और खूबसूरती बढ़ती है।

MEDIMIX
AYURVEDIC TOILET SOAP

SUBHODAYA

CHOLAYIL PHARMACEUTICALS,
I, Palayakara Street, Madras-600 023

पश्चिम महाराष्ट्र के लिए वितरक : मेसर्स वीनस एक्सपोर्ट्‌स, रामचंदानी कॉटेज, पो. बा. नं. ७४६६, बंबई-४०००६०. फोन– ५७५५३६.

पावली-आठ आने पे मुंह मारने वाले हवलदार को देख के भागो डर के. . .कोई भी आके पांच-दस का नोट फेंके और बिछा दे. . . ! छिः छिः! . . .

वह भी अपनी मां की बात मान कर यहां की इसी रीत पर चलती तो वह भी भागती होती इधर-उधर. वरना मां ने इस नरक में ढकेल देने में कोई कसर छोड़ी थी क्या? वह तो चलो, झगड़ा-लफड़ा करके बच गयी किसी तरह, पर सुंदरी फंस गयी 'गोदाम' के चक्कर में. . .जिसका एड़ी को अब भी अफसोस होता है. . .

सुंदरी को उसकी मां कहीं से बचपन में उठा लायी थी. 'कामचलाऊ' होते-होते सुंदरी के सर पर कर्जा ले कर एड़ी की मां ने 'गोदाम' में तैयार करके डाल दिया था. सुंदरी मान गयी, वरना किसी की क्या मजाल कि मरजी के खिलाफ छोकरी से धंधा करवा ले! नईं तो क्या. . . अपने माफक मैं सुंदरी को भी इज्जतदार धंधा करवा देती कोई.

सुंदरी के यहां एड़ी आती-जाती नहीं. . .कभी-कभी मन होता है देखने का. . .खोटी बहन ही सही. . . पर बहन बोला तो बहन. . .और फिर बचपन तो साथ-साथ निकाला है दोनों ने, मां के घर. . .एड़ी को धंधे वाली छोकरियों के साथ उठना-बैठना, चा-पानी पसंद नहीं. . .इसलिए उसकी किसी के साथ उठक-बैठक नहीं. एक फूला कमाठिन है और छोटकी. . .दोनों के यहां भी तो खानदानी धंधा था. नईं किया खोटा धंधा. कारखाने में मेहनत-मजूरी का काम किया. इज्जत वाली औरत मेरे सर पे आके बैठे, वांदा नईं. मगर आज सुंदरी से मिलने जायेगी, बदरू को ले कर. . .कि ले, देख ले. . .क्या करे, बिचारी खोटे धंधे में फंस गयी. . . है तो भैन. . . अब कौन धरमिंदर मिलेंगा उसकूं धंधा छुड़वाने वाला! तार-तार निकाल लिया है जमाने ने. . .इसकी जमाने की तो. . .

* *

—अरे बड़ी गपचुप बैठेली ए, एड़ी बाई! सुंदरी की खोली और आसपास की आठ-दस खोलियों में बरतन-भांडे घिसने वाली बाई थी. एड़ी की तरफ पांच का नोट बढ़ा कर बोली—अय एड़ी बाई. . .! मैं सुना तुम सादी बनाया. . .अरे कौन है वो सिकंदर. . .दिखा न, बाई!

हंस कर एड़ी ने बदरू की तरफ इशारा किया जो मालिश के बाद हम्माम जाने के लिए तैयार था. कलिजर ने बाटली ला कर बाई को थमा दी. बाई ने आंखें छोटी करके बदरू को तौला. बाटली नीचे रख कर उसने कनपटियों पर उंगलियां चिटका कर बलाएं लीं—देवा रक्खे. . .! जैसी कौली तू वैसा कौला बो. . .कह कर बाई ने बाटली उठायी और जाने को हुई.

एक रुपये का नोट बाई को देते हुए एड़ी बोली—ले बाई. . . चा-पानी कर.

—एऽ देवा, बाई हंस कर बोली, दिल वाली का गोदभर घाई कर. . .

—हट साली, एड़ी ने झिड़का. मेरी बन्नो को बोल. . . देखती नईं इसका हालत. . . नर बच्चा दिया कोई, तो नियाज के लिए सेवा करेगी उसका.

—होएंगा. . . होएंगा. . . उसकूं भी होएंगा. . .

—अरे अइसा कइसा! एड़ी सड़क पर देख क बुदबुदायी.

फूला कमाठिन के भाई को पुलिस वाले ले जा रहे थे. एड़ी को देख कर फूला रुक गयी.

—तड़ी पार किया था इसकूं. . . वह बोली. . . आज घर आया था मिलने कूं. . . मुखबिर देखा इसको इधर. . . और अबी ये. . .

—क्या साला. . .जा-जा. . .एड़ी बोली. . .मुखादम जामनगीर को ले के जा. . .मांडवाली कर डाल सा'ब से नईं तो मारी पड़ेंगा. . .तड़ीपार का केस है रघड़ डालेंगा. . . समजा. . .!

—रोकड़ा नईं न. . . दागीना है. . . रखने-बेचने को टाइम मांगता न. . . कहते हुए फूला अपने झुमके उतारने लगी.

—अरे सोना रखने-बेचने को किदर टाइम मांगता? ए भगवती! एड़ी ने आवाज दी. फिर फूला से पूछा—रखने का . . . बेचने का?

—रखने का. . . छुड़ायेगी मैं.

—भगवती. . .! ये ले. . .सौ रुपया लाके दे इसकूं. . . मुसीबत में है. . . .

रुआंसी फूला को देख कर भगवती ने एड़ी के हाथ से झुमके ले कर परखे और क्लब की सीढ़ियां चढ़ गया.

—मुखादम किदर होएंगा? फूला ने पूछा.

—जाड्या ईरानी होटल के पीछे बाजू चंडूखाने में देख. नईं तो ग्यारा गल्ली में केरी के झाड़ के बाजू में जमना की खोली में पड़ा होएंगा. . . जा, घबरने का नईं. . . . वापिस आके बोल मेरे को. . . आं. . . कहते क्लब की तरफ देखा, भगवती सौ का नोट हाथ में लिये हुए सीढ़ियां उतर रहा था.

* *

. . .पांच का एक नोट एड़ी को दे कर कलिजर बाटली लेने अंदर गया. गलियों में धंधा. . . बाटलियों की बिक्री और ठंड धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी. खाट के पास सिगड़ी सुलगने लगी थी. एक-दो छोकरियां और आसपास की दुकानों पर काम करने वाले छोकरे हाथ पांव सेंक रहे थे.

एड़ी खाट की तरफ आयी. . . . खाट पर बैठी हुई छोकरियां उठ कर जमीन पर बैठ गयीं. . .

—बस क्या लड्डन? बैठती हुई एड़ी बोली. मैं क्या बोली थी तेरे को. . . हाथ-पांव रगड़ के . . . हो गयी चंपी. . . .

—अबी मैं क्या करेंगा?. . . हटा दिया मेरे को. . . लड्डन इस तरफ आता हुआ बोला.

—वो तो हरामी है, एड़ी बोली.

—अबी मेरे को क्या मालुम! कहता हुआ लड्डन अपनी कुर्सी के पास मंडराते हुए 'गिराहक' को देख कर भागा.

—चलो छोकरियो, भागो. . .एड़ी हाथ सेंकती हुई छोकरियों से बोली. अबी इधर तुमेरा कोई काम नईं. . .

पश्चिम महाराष्ट्र के लिए वितरक : मेसर्स बोनस एक्सपोर्ट्स, रामचंदानी कॉटेज, पो. बा. नं. ७४६६, बंबई-४०००६०. फोन- ५७५५३६.

चलो धंधा देखो अपना... छोकरियां उठ कर जाने लगीं...––एड़ी को गाली नईं देने का...

★ ★

––अबे हरामी! ...एड़ी चिल्लायी...

मंगती का धंधा करने वाला मदकची झगड़ा कर रहा था...

––मर जाएंगा... अइसा बूम मारेंगा क्या? दो दिन बाकी है तेरा... गपचुप जी लेनें का...

––अबी तुम देखो एड़ी बाई, वह बोला... कल पंद्रा पाई का पाव लिया... आज बीस का बोलता... मैं बोला बरोबर... दस पाई कल देंगा... मेरे को सपना गिरता था क्या?

––तू रैता किदर है, भड़वे? एड़ी चिड़चिड़ायी. पता नईं तेरे को... इधर साल में छे टाइम मंगाई गिरता...

––पता क्या! मै पढ़ेला-लिखेला क्या!... अपुन को तभी मालूम गिरता... जबी पाव पंद्रा का बीस हुआ चाऽ बीस का पच्चीस हुआ... एक आने में उस्सल-पाव होता था, मुंबई में...वह गिड़गिड़ाया––एड़ी भेन... तू बोल न... मै दस पाई कल देता...

एड़ी दस का सिक्का उछाल कर बदहवास-सी आती हुई छोटकी को देखने लगी...

कलिंजर ने मिमियाती हुई बन्नो की पीठ पर कपड़ा डाल दिया. आसपास से इकठ्ठा किये लकड़ी के टुकड़े और गत्ते सिगड़ी में डालने लगा. धुआं लगते ही एड़ी ने कलिंजर को चपत मार कर गाली दी. कलिंजर ने खीसें निपोर दीं...

––ए सकुंतला भेन... छोटकी बोली... सुन न...

एड़ी उठ कर छोटकी के साथ दो कदम चली. मुसकरा कर बोली–– बोल... सकुंतला भेन, बोल... साली काम बोल... अबी किदर से आ रैली तू?

––सीधा कंपनी से... सेठ बोला, पइस कल देंगा... तू आधा बाटली दारू दे न!

––ए वेड़ी! तेरे कूं पता नईं... मै खुचरे का धंधा नईं करती. कभी बाटली से कमती धंधा किया क्या?

––कुछ कर न...

––हां-हां... देती मैं तेरे को दारू... छोड़ दे! नौकरी-मजूरी करने वाली छोकरी का पीना खोटी बात!

––कस्सम से... छोटकी बोली, अपनें लिए नईं... मां के लिए... दारू लेके नईं गयी तो घर में नईं घुसने दे. बोलती... किसी के पास 'बइठ' के ला... मगर ले कें आ...अबी...तू बोल मैं खोटा धंधा करेगी क्या?...

––नईं.. कब्बी नहीं. एड़ी रुपये निकालती हुई बोली, तू किदर और से ले ले... मेरे पास नौटाक-पाव सेर का धंधा नईं... अपनी मां को दारू पिलाने का सबाब तू-लूटे... रोकड़ा मेरा...स्यानीऽऽ, पइसा कल वापिस देने का...

––देंगा... देंगा... कहती हुई छोटकी ...पीने चली गयी.

एड़ी के खाट पर बैठते ही कलिंजर उसे कुछ रुपये देता हुआ बोला–– माल खलास...! दो-तीन बाटली होएंगा बस...

––वांदा नईं...एड़ी बोली. दो-तीन, जितना भी बाटली होवे, निकाल डाल... बंद कर... रोटी खाया?

कलिंजर उसका मुंह ताकता रहा.

––चल भाग! ... एड़ी रुपया देते हुए बोली. खा ले... एक चाऽ बोल उसकूं... अरे देख रे...बन्नो क्या कर रैली...

फूला आ कर खाट पर चुपचाप बैठ गयी.

––आ ...एड़ी बोली..हो गिया...?

––हो गिया, फूला ने बताया... छोकरा दो बरस के वास्ते 'तड़ीपार-हुकुम' में था. छोकरा बोलता दो बरस खलास हुआ. पुलिस बोलता, इधर चोपड़ी में लिखंत-पढ़ंत नईं... कइसा हो गया दो बरस...? चारज मारेंगा!

––हां. फिर?

––मुखादम सा'ब को बात किया... सौ का नोट लिया. बोलता बीस रुपया और देव....!

––मुखादम! एड़ी बोली. उस मां का यार को एक पइसा नईं देने का ... लिया होएंगा...

––मैं जाती, फूला उठती हुई बोली...तेरे को बोलने आया बस...

––जा...आने का फिर... फूला, चाऽ पी के जाना...!

पर फूला चली गयी. एड़ी ने छोकरे के हाथ से चाय ले ली.

★ ★

बिजली के खंबे की गोद में पीक भरता हुआ भगवती एड़ी के सामने आ कर बैठ गया–– बचेंगा नईं...!

––कौन रे? एड़ी ने पूछा.

––छोकरा... भगवती बोला..वो कलिंजर के माफक एक छोकरा होता था न... पालिस वाला... वेवड़ी का छोकरा.

––कौन...? छोटकी का भाई? एड़ी ने पूछा.

––हां-हां... खीसे में बुरुस-पालिस डाल के टिरेनों में फिर-फिर के धंधा करता था... टिरेन का हड़ताल हुआ... उसका धंधा बंद... उसके पास पेटी तो है नहीं...जो जंटलमैन पालिस कराके रुपया देंगा... किदर-किदर करके दो रुपया कमाया बिचारा... घर आया. दो रुपया उसका मां ले लिया.. रोटी नईं दिया... लात मार के बाहर किया... वो... घासलेट पी गया... अस्पताल ले गये उसकूं. बचेगा नईं.

––अरे अइसा कइसा!...ऐड़ी ने सोचा .. अब्बी तो ... छोटकी... अइसा कइसा....

लड्डन पास आ कर बोला–– मगर उसकूं घासलेट मिला किदर?

★ ★

बदरू को आते देख कर एड़ी उठ कर उस तरफ चल दी.

––ओय होए, हीरो लग रैलाए!... एक टिक्का लगा ले... नजर नीं लग जावे...

—बस. . . बस, रैन से अब्बी. . तेरे को हम्माम जाने का, तो जा! बदरू ने कहा.

—नईं रे. . . एड़ी बोली, मैं कब्बी की न्हा-धो के पाक-साफ. . .

—दरसन किये न. . . गणपति के? बदरू ने पूछा.

—छोकरा बनता ए. . . समजता नईं जइसा!

—ये भेन. . .क्या जवाब हो गया?. . .

—हां. ऐड़ी ने सर हिलाया.

—तो हो जाये फिर, बदरू मुसकराया. क ाए क टेम खा रैली. . .? अबी इदर कोई काम-वीम है तेरा?

—ट्र ऽ. . . अब्बी क्या?

—तो चल फिर. . . बदरू ने एड़ी को देखा. ये क्या. . . थोड़ा कपड़ा-बिपड़ा चेन् कर. . . तेरे माकड़े में देख जाके. . . बैग पड़ेला ए मेरा. . . साड़ी तपास उसमें. . . पहन के आ. . . आदा बारंडी की बाटली. . .दो बीर पडेली ए. . ले ले. . उसकू बी ले ले. . . चल घाई कर. . . अबी क्या हो गया तेरे को?. . . मेरे थोबड़े में क्या देख रैली ए?. . .

—क्या. . . आती मैं. एड़ी चौंक कर बोली.

—हां, जा के आ. . . मैं चाऽ पीता होटल में.

अचानक एड़ी की नजर बदरू के हाथ पर पड़ी.

—अरे बता तो. . . अगूंठी नवो डाली क्या. . .?

—अरे नईं रे. . बदरू हाथ बढ़ाता हुआ बोला. मैं बोला चल डाल लेवे हाथ में. . . मंगता ए. . .?

—नईं, एड़ी हाथ छोड़ कर बोली. नग कमजोर इसका. . . लाफा-वाफा मारे तो गिर जावे. . .

—नईं गिरता. . . मैं मार के देखा. . .अबी जा न तू. . . बंकस कर रैली. . . .

* *

चाय पीता हुआ बदरू जाड्या ईरानी होटल में एड़ी का इंतजार करने लगा.

नयी साड़ी में लिपटी एड़ी. . .बदरू को एड़ी न लग कर कोई और ही लग रही थी.

बदरू खड़ा हो गया. एड़ी बदरू के पास आ कर चुपचाप खड़ी हो गयी. दोनों में से कोई कुछ नहीं बोला.

—चल, एड़ी के होठ हिले. . .

—चल. . . अरे! चाऽ का पइसा देने का. . .वे दोनों चल दिये.

—नईं! इदर से नईं. . . सरम लगती. . .

सिनेमा हॉल का चक्कर लगा कर एड़ी उसे एक सुनसान अंधेरी गली में ले जाने लगी.

—अरे, इदर किदर जा रैली तू?

—चल न, बताती मैं. . .!

गली के बीचो-बीच थोड़ी-सी जगह घेरे एक बहुत ही छोटा-सा मंदिर था. एड़ी ने सर ढक कर दहलीज को हाथ लगाया. माथा टिकाया. जलते हुए दिये की रोशनी को दोनों हाथों से बटोर कर चेहरे पर पोता. बदरू से भी उसने ऐसा करने को कहा. बदरू ने भी किया.

—अब चल. बदरू जाने के लिए मुड़ा.

—ठेर ना. . . एड़ी ने उसकी बांह पकड़ ली. एड़ी बैठ कर मन-ही-मन कुछ बुदबुदाती रही. फिर उ बदरू के पांव छू लिय.

—अरे! बदरू पीछे हटता हुआ बोला. ये क्या रैली तू?

एड़ी डांट कर बोली— बस क्या! अबी मेरे कुंकुम लगा! कह कर एड़ी ने चेहरा ऊपर उठा दिया

बदरू ने मूरत के पांव से अंगूठा रगड़ कर एड़ी माथे पर टीका लगा दिया. एक लंबी सांस ले एड़ी ने आखें खोल दीं—आ. . .अब्बी चल. . .

—चल. दोनों आगे बढ़े. किदर? बदरू ने पूछा

—मैं सब बंदोबस्त किया. . . पैले से. . . बिंदास. फिकर नईं. . .मैं पैला सुंदरी को मिल लेवे दो मिनिट. भेन होती ए वो मेरी. . . खोटे धंधे में पड़ गयी बिचारी.

—अरे छोड़. . . बदरू बोला. अपुन आज होटल रूम बुक करायेंगा. . .

—न बाबा, न. . .! होटल-फोटल में जाने वा मैं नईं. . .

—काए को?

—होटल में रंडियां जाती. . . मेरे को उदर न जाने का. . .

—क्या बात करती तू?. . . होटल में नईं जा का. . . बड़ा-बड़ा लोग जाता. . . वो सब रंडी है क्या?

—होएंगा. . . मेरे को उदर नईं जाने का!

—नईं जाने का? बदरू चिढ़-सा गया.

—नईं. . . .

—लाफा खाने का?. . .

एड़ी ने झटके से बदरू को देखा. उसका चेहर कस गया. —लाफा मारेंगा! मार! सच्चा मरद है त मार!

तड़ाक! बदरू ने थप्पड़ मार दिया. . . एड़ी क आंख में पानी आ गया. . . अरे!. . .

बदरू नजरें झुका कर अपना हाथ देखने लगा. एड़ी ने उसका हाथ पकड़ लिया.—देख, गिर गया न! मुसकरा कर बोली. मै बोली थी. . .नग गिर जायेगा. . .!

बदरू को हंसी आ गयी. बोला— जाने दे. . . गाल पर हाथ रखा. . . जास्ती लगा तो नईं? चल, जिदर तू मंगती ए, चल. . .मेरी मां. . .

—नईं. . .जिदरं तू मंगता ए. . .ले के चल. . .! मैं जरा सुंदरी को दिखा देऊं एक मिनट. . .

सुखला जी स्ट्रीट में खुलने वाली कमाठीपुरा, चौदहवीं गली के नुक्कड़ से सटे संडास के सामने के गलियारे में दोनों आगे-पीछे बच-बच कर चलने लगे. दोनों तरफ की खोलियां कुछ दिन हुए पुरानी बिल्डिग के साथ धसक गयी थीं. गलियारे के बीच में खड़ी गल्लियों पर नयी छत टिकी है. बायीं तरफ दस कदम पर सुंदरी की खोली है.

खोली में पहुंच कर एड़ी ने बदरू से बैठ जाने को कहा. बदरू बैठ गया. दाहिनी तरफ का पलंग परदों से घिरा था. अंदर से परेशान आवाजें आ रही थीं.

एड़ी ने सुंदरी को आवाज लगायी.

तेज-तेज सांस लेती सुंदरी नीचे आयी—अरे मेरी एड़ीऽऽ. . . एड़ी को भींचते हुए सुंदरी ने कहा. मैं तो

प्रधान मन्त्री के २० सूत्री कार्यक्रम के
सफलतापूर्वक कार्यान्वयन के लिये

मध्य रेलवे द्वारा उठाये गये कदम

अनुशासन का पालन करना
कार्यकुशलता में सुधार करना
बिना टिकट यात्रा की रोकथाम करना
खतरे की जंजीर का गलत ढंग से इस्तेमाल न होने देना
चोरियां और छिटपुट चोरियां रोकना
समय पालन में सुधार करना
खर्च घटाना
राजस्व अर्जन करना
अधिक से अधिक माल की ढुलाई करना
यात्री सेवाओं में सुधार करना
ग्राहकों की मांग के अनुसार सेवाएं प्रदान करना

हमें काफी सफलता मिली है.
हमारे कार्यों के अच्छे परिणाम निकले हैं.
आपका, रेलों का और राष्ट्र का भविष्य उज्जवल है.

मध्य रेल

सोचा. . . तू भूल गयी अपनी मेन को. . . . दरवाजे की तरफ मुंह उठा कर बोली—– दो थंडा लेके आ. . . आ, बैट न. . . कहते हुए वह बदरू को देख कर एड़ी की तरफ शरारत से मुसकरायी. यही है न?

एड़ी ने सर हिलाया और पूछा—–कइसा है?

—–एक रात मेरे को दे दे. . . सुंदरी बोली. बगल से गुजरती हुई बाई के हाथ से सोडे की एक बोतल ले कर एड़ी को थमा दी और बदरू की तरफ इशारा किया.

—–अबी जायेगी मैं. . .तू ऊपर क्या करती थी? गिराहक. . .!

—–अरे, नईं रे. . . सुंदरी बोली. उधर राजस्थान में सूखा पड़ा. .. कितना माल गिरा बंबई में. . . ब्योपारी लोग सस्ता-सस्ता, कड़क माल लाया उदर से. . . मेरे पास चार दाना था..तीन को तो भेजा 'गोदाम' में तैयार करके. . .एक बचा ए. . .मानती नहीं. . .मारो-पीटो. . . खाना नईं देव. . .कुछ भी करो. . . . उदर ई थी मैं. . .

—–अच्छा! ऊपर. . .मेरे को बी दिखा. . .

—–चल, देख ले. . . सुंदरी ने कहा.

दोनों सीढ़ियां चढ़ने लगीं. एड़ी ने जाते-जाते बदरू से पूछा. बदरू ने सोडे की खाली बोतल कुर्सी के नीचे रखते हुए एड़ी को जाने का इशारा किया.

पलंग के परदे खन-खन करते खुले. एक आदमी बटन बंद करता हुआ बाहर निकल गया. बदरू न सिगरेट सुलगा ली. छोकरी मोरी से वापस आ कर कंघी करती हुई बदरू के घुटनों से अपनी जांघें रगड़ने लगी. कंघी फेंक कर वह धच् से बदरू की गोद में बैठ गयी. बदरू ने एक तरफ का गाल चूम कर दूसरा थपथपाया—–अबी बस. . . आ. . .उदर बैठ सीधा. . .

—–अच्छा, एक सिगरेट दे: बदरू नें सिगरेट दे दी.

* *

वह राजस्थानी छोकरी एक कोने में घुटनों में चेहरा छुपाये सुबकियां लेती बैठी थी. सीढ़ियों पर होती आवाजों पर उसने आखें खोलीं. चेहरा उठाते हुए उसकी निगाह एड़ी के पैरों से होती हुई चेहरे पर आ कर अटक गयी.

ताजे बहे हुए आंसू अब भी उसकी आखों और गालों पर थे. बिखरे हुए बाल. . . थोड़ी धंस गयी आंखें. . . पीला पड़ गया चेहरा. . . इकहरा-कमजोर बदन. . . बाहों, गालों और पेट पर उछले हुए बेंत के निशान . . .

एड़ी को सामने देख कर उसने पीठ सीधी कर ली.

—–तू वी मारवे आई वे. . .? मार ले, मेरी बूटी-बूटी नूंच ले. . .मी राजपूऽतनीं बेटी. . .मी वो काम नी करूं. . .

एड़ी ने उसके सामने बैठते हुए उसके बदन पर पड़े बेंत के निशानों को सहलाया. गालों पर आंसुओं की नमी महसूस की.—–नईं रे. . . मैं तेरे को मारने नईं आयी.

सुंदरी की तरफ देख कर एड़ी बोली—–जाने दे, सुंदरी. . .ये नहीं मानेगी. . .इसे जाने दे. . . तरस खा. . .

—–तरस खाऊं! . . .सुंदरी बोली. . .काए का तरस. . . मेरे पे कोई तरस नईं खाया. . .बारा बरस की उम्मर में मेरे सर पे कर्जा लेके 'गोदाम' में पटक दिया था. कइसा छोड़ेगी मैं? कइसा जाने देगी?

. . .उस छोकरी ने बिखर कर एडी को भींच लिया और फूट-फूट कर रोने लगी—– मी नी रऊं यां. . . चल. . . आपणे संग. . . जिनगी भर चाकरी क तेरी. . . मेरी भैणा, ले चल. . .

एड़ी ने उसे चुप कराया—– घबरने का नईं. . . मर जाना. झैर खा लेने का. . खोटा धंधा नईं करने का. मैं आयेगी फिर. . . आं! घबरने का नईं. . .

सुंदरी ने एड़ी का कंधा झकझोर दिया.—–ये क्या क रैली तू?. . . मैं इसका पइला गिराहक का मांडवाल हजार रुपये में नक्की किया. . .हां. . .

—–तू एक टाइम हां बोल दे. . . एड़ी ने सुंदरी क देखा. देखा और देखती रही. उसे लगा उसकी मां अभ मरी नहीं है. . .

—–तू एक टाइम हां बोल दे. . . हजार रुपये में न उतरवाऊं तेरी. काए को मुकद्दर पे थूक रैली तू?. . . पइसा बटोर ले. . . पइसा अपना मरद. . .पइसा धरम. .

—–नई. . .मेरे को ये खोटा धंधा नहीं करने का. . पइसे के लिए सब मरद के साथ नईं सोयेगी मैं. . .

—–फिर क्या करेगी तू?. . . धंधा नईं करेगी. . ऐक्टर बनेगी! . . .

—–शादी बनायेगी. . . इज्जतदार धंधा करेगी.. . अपना एक मरद होयेंगा. . . खानदान वाला. . . . इज्जतदार धंधेवाला. . .

—–शादी बनायेगी तू?. . . एड़ी हो गयी तू. . . अ अपने यहां आज तक किसी औरत ने शादी बनायी जो तू सती-सावित्री बनेंगी. . . सरम नईं आती?. . . एक मरद की गुलामी क़रेगी. . .?

—–मैं किसी की घरवाली बनेगी. . . औरत बनेगी. . . रंडी नहीं बनने का है मेरे को. . . समजती है क्या. . .?

—–क्या बोली?. . . इतनी छोकरी धंधा करती, वो औरत नहीं?. . . रंडी हैं. . . मैं अउरत नहीं! . . . सिरफ रंडी है! . . . .

—–तू अपने को अउरत बोल तो बोल. . . दुनिया मानती क्या. . .?

—–मैं किसी की अउरत नहीं. . . मैं अउरत नहीं!

—–हां-हां. . .तू रंडी है. . . औरत नहीं. . . बोल किस की औरत है तू? . . . पीर माय अली माय की. . . जिसको तू मेरा बाप बोलती. . . किदर है वो! . . . तू किसी की अउरत होती तो उसके घर में होती. . . इधर कमाठीपुरा के बाजार में खटिया नहीं चलाती होती. . . तू अउरत होती तो मेरे को, अपनी छोकरी को धंधा करने को नईं बोलती. . . बोल किदर से अउरत है तू. . .?

—–मैं तेरी जबान खींच लेंगी. . . मिरचें भरवा देंगी. . . . देखती मैं भी कइसा नईं मानती तू. . . एड़ी को उसकी मां ने मारना शुरू कर दिया था. मारती रही थी, मारती रही थी. अचानक ही एड़ी ने अपनी मां को धक्का दे दिया था. . . वह दीवार से टकरा गयी थी. फिर वह धीरे-धीरे अपनी मां की तरफ आगे बढ़ी थी. . .

चीख सुन कर बदरू ऊपर लपका. सुंदरी की गरदन को एड़ी की उंगलियां कसती जा रही थीं. . . □□□

द्वारा श्री नितिन सेठी, बी-२, अल्वोराडा,
ऑफ सेंट् रोक् रोड, बांद्रा, बंबई–४०००५०

स्टाफ आर्टिस्ट

• चंद्रकिरण सौनरेक्सा

अहमद को लगा, आज रास्ता बेहद लंबा हो गया है. चलते-चलते उसके पांव थके जा रहे थे और जामा मसजिद दिखाई ही नहीं पड़ रही थी. इस रास्ते वह जिंदगी में सैकड़ों बार जामा मसजिद गया है. जुमए अलविदा और ईद की नमाज पढ़ने वह हमेशा यहीं आता है. फिर आज रास्ता इतना लंबा क्यों लग रहा है? उसने पीछे मुड़ कर देखा. साठ वर्षीया अमीना मैले-फटे बुरके में अपने को लपेटे टूटी जूतियां सटर-पटर करती घिसटती-सी चली आ रही है.

वह रुक कर उसका इंतजार करने लगा. अमीना ने भी उसे रुका देख कर अपनी चाल बढ़ायी. दो मिनट बाद वह अहमद के करीब आ गयी. पर तेज-तेज चलने से उसकी सांस फूल गयी थी, खांसी उठ रही थी और अहमद ने देखा, अमीना की उभरी नीली नसों वाला, झुर्रियों भरा गोरा हाथ कांप रहा था. बुरके में छिपा मुरादाबादी कलई का घिसा कटोरा हिल रहा था.

अहमद का दिल दर्द से भर आया.

—भावज! उसने बड़े प्यार से कहा. थक गयीं?

—नहीं, छोटे मियां ..अमीना ने अपनी खांसी पर काबू पाते हुए बुरके के भीतर से कहा. मुई खांसी ने परेशान कर दिया है, बस. पर अब रुको नहीं, कदम बढ़ाये चलो.

अहमद का मन हुआ अमीना का हाथ थाम ले—उसी तरह जैसे आज से पचीस साल पहले भाई जान के चालीसवें के दिन थामा था. लेकिन तब वह आज की तरह बेकार बूढ़ा नहीं था, तैंतीस साल का कुंवारा जवान था और पैंतीस वर्ष की तीन बच्चों वाली भाभी को उसने जिंदगी भर के लिए सहारा देने की कसम खायी थी. बाकायदा, निकाह पढ़ा कर भावज को बीवी बनाया था. भाई के बच्चों को सरपरस्ती बख्शी थी, और तब तक की आवारगी और मौज-मजे को बालाये ताक रख कर नौकरी के लिए कमर कसी थी.

आज वह ताकत कहां है?

उन दिनों भी कितनी मुश्किलों से उसे नौकरी मिली थी. वह खास पढ़ा-लिखा नहीं था. बस उर्दू की चार जमातें पढ़ कर उसने मदरसे को सलाम कर लिया था. अब्बा के हुक्के की निगालियां या बड़े भाई के थप्पड़ों की मार भी उसे फिर मदरसे न पहुंचा पायी थी. काश, वह उस वक्त पढ़ लेता! दसवीं भी कर लेता तो आज यह नौबत न आती. अब से चालीस साल पहले दसवीं पास को आसानी से क्लिर्की की पक्की नौकरी मिल जाती थी. लेकिन तकदीर का लिखा कौन मेट सकता था! उसे तो बचपन से ही गाने-बजाने की महफिलों का चस्का पड़ गया था. बब्बन खां की सारंगी ने तो उसका तन-मन लूट लिया था. वह मार खाता, घर से भागता और बब्बन के यहां पहुंच जाता.

बब्बन खां उस वक्त के नामी सारंगिये थे. चावड़ी बाजार की मशहूर तवायफ जानी बेगम के सारंगिये. कभी-कभी राजे-नवाबों की महफिलों में भी उनकी बुलाहट होती थी. वह ठाठ से रहते थे. सफेद बुर्राक लट्ठे का अलीगढ़ कट पाजामा और उस पर चिकन का लखनवी कुरता, पांवों में नागरा, आंखों में सुरमा और मेहंदी से रंगी दाढ़ी के साथ पानों से रंगे होंठ. उंगलियों में फीरोजे की कई-कई अंगूठियां. उनकी लंबी-पतली उंगलियां जब सारंगी पर चलतीं तो लगता मानो दरियाए-यमुना में हलकी-हलकी मौजें उठ रही हों. और घड़ी भर में वे मौजें आसमान चूमने लगती थीं. बच्चे अहमद का मन, उसके कान, उसका नन्हा जिस्म उन मौजों के साथ-साथ बहने लगता. वह घर से भागता और बब्बन की सीढ़ियों पर छिप जाता. सारंगी के इश्क में खाना-पीना भूल जाता. मार-पीट, डांट-डपट से जब कुछ नहीं बना, तो मां, बाप, भाई, सभी ने उसे उसके हाल पर छोड़ दिया था. रोटी-सालन के वक्त घर में हुआ तो खाना दे दिया, न हुआ तो कोई परवाह न करता.

* *

बब्बन खां ने शुरू के कई सालों तक उसे कोई लिफ्ट नहीं दी थी. कभी प्यार से और कभी डांट से समझा कर घर भगा देते थे. लेकिन जहां चाह, वहां राह निकल ही आती है. उस बार ईद के अपने नये कपड़े बेच कर चौदह साल का अहमद उन्हीं रुपयों से सारंगी खरीद उस्ताद के कदमों में जा पड़ा तो उन्हें जगह देनी ही पड़ी थी.

और फिर तो पांच-छह बरसों में उस्ताद की जूतियां सीधी करके, उनका हुक्का भर कर अहमद भी धीरे-धीरे सारंगी पर अपनी पकड़ बढ़ाता गया... वह अच्छी सारंगी बजाने लगा और उसी कूचे का हो कर रह गया.

वैसे जिंदगी मजे में गुजर रही थी. बब्बन का शागिर्द था. सारंगी पर उसका हाथ छोटी उम्र में ही खूब रवां हो गया था. बब्बन अब प्रायः उसे ही संगत पर बैठा देते थे. कोई बड़ा राजा-रईस आया तो खुद संगत पर बैठते, वरना अहमद ही अब जानी बेगम और उनकी लड़की का सारंगिया था. अच्छा खाना-पीना, शराब ...सभी कुछ मयस्सर था.

छठे-छमाहे, ईद-बकरीद पर घर जाता तो बीस-तीस रुपये भाभी को दे आता, भतीजियों को खिलौने ले देता. घर वाले भी अब उसे घर पर रहने को या कहीं कोई छोटी-मोटी नौकरी को न कहते. जानते

थे, अहमद का मन तो सारंगी के सुरों में बंधा है. उससे भला किसी किराने या बजाजे की दुकान पर सामान या थान उठाने-धरने या किसी रईस की चौकीदारी का काम काहे को होगा?

देखने में अहमद ऊंचे-पूरे कद वाला गबरू जवान था, लेकिन शादी उसकी नहीं ही हुई. कोठे के सारंगिये को कोई शरीफ आदमी अपनी बेटी कैसे देता? उसके अपने ठाठ तो कोठेवालियों की मेहरबानी से निभ रहे हैं. पर उनकी बेटी के रोटी-कपड़े का इंतजाम कौन करेगा? अहमद ने भी कभी शादी की बात नहीं सोची. सारंगी ही उसकी दुल्हन थी. उसे ही गले लगाये-लगाये वह तीसी पार करके तैंतीसवें में कदम रख चुका था. अहमद सारंगिये की शादी की चर्चा भी अब भाई-बिरादरी वालों को भूल गयी थी––कि अचानक अहमद के बड़े भाई चार दिन की बीमारी में चल बसे . . . पीछे छोड़ गये पैंतीस वर्ष की विधवा और तीन बच्चे.

बेकस बेवा भौजाई ने पति के चालीसवें के दिन तीनों बच्चे अहमद की गोद में बैठा कर कांपते स्वर में कहा––नन्हे मियां, अब तो तुम्हीं इनके बाप-चाचा-बाबा हो. ऐसा मत करना कि इन्हें थाम कर मैं दर-दर मारी फिरूं.

अहमद का दिल भर आया था. उसने छोटे नन्हे को गले लगाया, दोनों भतीजियों के सिर पर हाथ फेरा और कहा––भाभी! अहमद आवारा भले ही हो, कमीना नहीं है. अब से चाहे चोरी करूं, डाका डालूं पर तुम्हें और बच्चों को भूखा नहीं सोने दूंगा.

भावज कृतज्ञ स्वर में दुआएं दे कर बोली––खुदा तुम्हें सलामत रखे! चोरी-डाका क्यों डालोगे, मियां! तुम्हारे तो हाथों में हुनर है. कमाते भी हो. बस इस मुई शराब को कम कर दो. उतने में ही हमारी गुजर हो जायेगी.

अहमद शराब से तौबा तो न कर सका, लेकिन उसने घर पर रहना मंजूर कर लिया. कोठों की महफिल रात दो बजे भी खत्म होती, तो भी वह लौट आता . . . फिर छह महीने बाद उसने भावज से निकाह पढ़ा लिया. भावज अब अधिकार से उसकी कमाई थामने लगी. साल-भीतर एक बच्ची भी हो गयी. और अहमद चार बच्चों का बाप कहलाने लगा.

* *

भावज अमीना, जो अब उसकी नेक बीवी थी, की खिदमत और अपनापे ने अहमद को घर से बांध लिया. यहां तक कि देश को आजादी मिलने के बाद जब कानून की चक्की में पिस कर कोठे उजड़ गये, कोठेवालियां गायब हो गयीं और अहमद की सारंगी महफिलों की संगत के अभाव में सिर धुन कर कोने में बैठ गयी, तो हमेशा के आजाद तबियत अहमद ने दौड़-धूप व रईसों की खुशामद करके एक नौकरी भी जुटा ही ली. वह ऑल इंडिया रेडियो का आर्टिस्ट बन गया.

उन दिनों बोलती फिल्मों का इतना धुआंधार बोलबाला नहीं था. पक्के गानों के रसिया रेडियो पर उस्तादों के गाने और तबले-सारंगी के बोल शौक से सुनते थे. अहमद वहां के लिए कारामद इनसान साबित हुए. और उनकी यह नौकरी जो यद्यपि हर साल नयी होती थी, एक तरह से पक्की-सी हो गयी.

तनख्वाह थोड़ी थी. अहमद को कभी-कभी अफसोस होता था कि तनख्वाह जितनी रकम तो कोई-कोई कद्रदान रईस उन्हें एक ही महफिल में न्योछावर करके दे देता था. परंतु वे महफिलें अब उजड़ चुकी थीं. कुछ भी हो, अफीम के नशे की भांति तनख्वाह पहली तारीख को मिल तो जाती थी, जिससे घर की सूखी दाल-रोटी से बेफिक्री हो गयी थी.

कभी-कभी किसी रईस के घर मुंडन-छेदन या शादी में गवैये की संगत के लिए भी बुलावा आ ही जाता था, जिससे घर के कपड़े-लत्तों व पान-पत्ते का खर्च निकल आता था. शाम को एकाध ट्यूशन लगाये रहते कि नशे-पानी का खर्चा चलता रहे.

* *

अहमद खां सारंगी वाले का पहाड़ी झरने-सा जीवन अब एक शांत, छोटी नहर की भांति अपनी एक ही लीक पर बहने लगा था. घर से दफ्तर, दफ्तर से घर.

अपनी सारंगी का सारा रस, अपनी उंगलियों का सारा कमाल, उन्होंने माइक पर न्योछावर कर दिया.

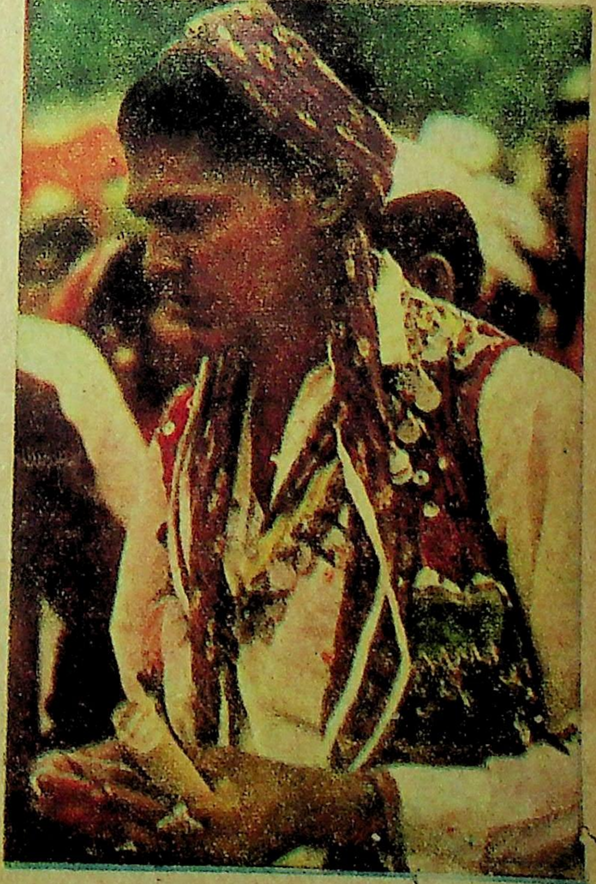

● सुरेश सेठ

बड़े से बड़ा उस्ताद भी वहां आता तो सारंगी अहमद ही बजाते थे.

मशहूर गवैये इलियास मुहम्मद खां तो जब सन साठ में विलायत के टूर पर तशरीफ ले जा रहे थे तो अपने साथ संगत के लिए अहमद को ले जाना चाहते थे. उन्होंने उससे कई बार कहा––म्यां, क्या रखा है तुम्हारी इस साली नौकरी में! पंद्रह बरसों से घिस रहे हो और 'अब तुम्हें कुल पौने दो सौ मिल रिया है. हमारे साथ यौरुप चलो. पांच सौ रुपये महीना दूंगा. आने-जाने, रहने-खाने का खर्च मेरा...

पर...पर अहमद नहीं गये. एक तो उन्हें अंग्रेजी, बिल्कुल नहीं आती थी और उन्हें डर था कि जब यहां ही बिना अंग्रेजी-पढ़े की उनकी कदर नहीं होती तो विलायत तो अंग्रेजों का मुलुक ठहरा, वहां बिना अंग्रेजी जाने जाना महज बेवकूफी है. वह तो किसी से पीने को पानी भी न मांग सकेंगे. फिर खां साहब तो कुल छह महीने तक साथ रखेंगे, उसके बाद क्या होगा? हजार-दो हजार वहां से कमा भी लायेंगे तो कै दिन खायेंगे? यहां उनकी नौकरी पक्की तो थी नहीं कि छह महीने की छुट्टी मिल जायेगी. हर साल कांट्रैक्ट बनता था. कहीं इस विलायती सैर का सबब न बना तो बेमौत मारे जायेंगे.

जिंदगी में आये ऐसे स्वर्णावसर को भी उन्होंने बच्चों की रोजी-रोटी के लिए छोड़ दिया. वह अपनी इसी नौकरी से चिपके रहे.

★ ★

कहते हैं बारह बरस पर घूरे के भी दिन फिरते हैं. अहमद के भाग भी जागे. अर्थात् स्वतंत्र देश की स्वतंत्र सरकार ने उनके विभाग के उन जैसे कलाकारों का वेतन-मान बढ़ा दिया. दो सौ से वह एकदम साढ़े तीन सौ पाने लगे — और हर साल के कांट्रैक्ट की जगह पूरे पचपन साल की आयु तक का कांट्रैक्ट एक ही बार भरवा कर छुट्टी कर ली.

नये भरती कलाकारों ने सुख की सांस ली. कम-से-कम पचीस साल के लिए सिर पर से लटकती बेकारी की तलवार हट गयी. अहमद भी खुश थे. इस नये परिवर्तन से उन्हें केवल छह-सात सालों की बेफिक्री हुई थी, परंतु वेतन लगभग दूना हो गया था. परदे में बैठी जवान तीनों बेटियों की शादी अब वह कर सकते थे. उधार ले कर ही सही, लेकिन अब उधार की किस्त देने के बाद भी दाल-रोटी से भूखे मरने की नौबत नहीं आने वाली थी.

सारी जिंदगी उनकी नेकबख्त बीवी के हाथ बरतन मलते-मलते फटीचर हो गये थे. बढ़ी तनख्वाह में उन्होंने दस रुपये में एक बरतन मांजने वाला नन्हा छोकरा भी रख लिया. जिंदगी में पहली बार अमीना को एक तोले सोने की झुमकियां बनवा कर दीं. यूं बीवी ने हरचंद मना किया कि इस बुढ़ापे में झुमकियां पहन कर क्या करूंगी? लेकिन अहमद माने नहीं. खुदा की मेहरबानी से अब गुजर लायक तनख्वाह थी और हर साल पंद्रह रुपयों की तरक्की भी.

यूं इस बीच महंगाई भी सुरसा की भांति बढ़ रही थी. अहमद के चार हरे नोट देखते-देखते उड़ जाते थे. फिर भी वह खुश थे. अमीना खुश थी. जो कहीं पहले वाले पौने दो सौ ही मिलते होते, तो तन पर चीथड़े लटक जाते.

इस ढलती उम्र में अहमद की बाहर की महफिलें भी तो बंद हो गयी थीं. न वे पक्के गानों के पसंद करने वाले रईस रहे थे और न सारंगी सुनने के शौकीन-कद्रदां. फिर भी अल्लाह का शुक्र था. वह अपनी नौकरी में खुश थे. बहुत खुश.

लड़के दोनों छोटे थे. लड़कियां तीनों बड़ी. धीरे-धीरे सबकी शादियां कर दीं. एक लंबी रकम किस्तों में कट जाती थी. फिर भी दाल-रोटी मयस्सर थी. दोनों लड़के पढ़ने में होशियार नहीं थे. अहमद ने एक को दर्जी का काम सिखाया, दूसरा जरपोशी की कढ़ाई करने लगा.

मतलब यह कि अहमद के अट्ठावन साल के होते-होते उनके दोनों लड़के अपनी गुजर लायक कमाने लगे, यही चार-पांच रुपये रोज के कारीगर. दो गरीब घर की लड़कियां उनके घर बहू बन कर भी आ गयीं. और शीघ्र ही अहमद दो पोतों के बाबा बन गये.

अमीना बिल्कुल नहीं चाहती थी कि अहमद पोतों के होने पर दावत करे. पर अहमद नहीं माना. उसने भर्रायी आवाज में बीवी से कहा–– भावज, मेरी नौकरी खत्म होने जा रही है. आज का पांच सौ रुपये कमाने वाला दो महीने बाद रिटायर हो कर एकदम निट्ठला-बेकार बन जायेगा. तब खुदा जाने कभी किसी को बुला कर खिला सकूं या नहीं! यह आखिरी जश्न मना लेने दो न!

अमीना सुन कर एक बार कांप गयी थी. सचमुच अहमद अट्ठावन का होने वाला था. यूं सभी नौकरीपेशा एक दिन रिटायर होते हैं. अट्ठावन साल के बूढ़े अगर रिटायर न हों, तो नयी पौद को नौकरियां कहां से जुटेंगी?

लेकिन अहमद का रिटायर होना अमीना के लिए जीवन की सबसे बड़ी दुर्घटना थी, क्योंकि वह सरकारी नौकरी करने पर भी पक्का नौकर नहीं था. वह आज भी स्टाफ आर्टिस्ट था, जो अठ्ठावन सालों तक कांट्रैक्ट पर पूरे पच्चीस वर्षों से अपना हुनर सरकार को बेच कर घर की रोजी-रोटी कमा रहा था. उसकी नौकरी का नियम ही यही था–– कि जब तक काम, तब तक दाम.

और यह काम भी उसे वहां केवल अट्ठावन साल की उम्र तक ही मिल सका था.

★ ★

यूं अहमद के अब आराम करने के दिन थे. वह बूढ़ा हो चला था. आधे दांत गिर चुके थे, सिर के बाल भी कपास जैसे सब सफेद हो गये थे. हाथों पर नीली नसें उभर आयी थीं. परंतु उसकी उंगलियां, लंबी-पतली उंगलियां, सारंगी पर आज भी वैसे ही थिरकती थीं, जैसे अब से तीस साल पहले जानी बेगम की महफिलों में. पर इससे क्या होता है? वह जो अट्ठावन साल का हो गया था!

सरकारी नियम से उसे अब रिटायर होना ही था. रिटायर यानी एकदम बेकार. कौड़ी का तीन. पूरे पांच सौ रुपये की अच्छी-भली रकम एक ही झटके में खत्म हो जानी थी. अमीना सोच कर कांप उठती. यूं दोनों लड़के अपनी गुजर लायक मजदूरी कमा लेते थे, फिर भी घर

का अधिकांश खर्च अहमद की कमाई से चलता था. बेटियों का आना-जाना, देना-लेना, ईद-बकरीद और पोते-पोतियों की पैदाइश की दावतें, सभी कुछ उसी कमाई से था.

अहमद की शराब का खर्च भी था ही. आधी-तिहाई पेनशन मिलने की उम्मीद होती तो अमीना इतनी परेशान न होती. सौ-डेढ़ सौ, जो भी मिलता, बूढ़े-बूढ़ी का खर्च तो निकल ही जाता. लड़के, जैसे बनता, अपनी-अपनी गुजर करते.

बेटियों के ब्याह का कर्ज तो लगभग निबट गया था, लेकिन अहमद को पेनशन नहीं मिलेगी. वह जो स्टॉफ आर्टिस्ट था! अमीना सोचती, सोचती और सिर थाम कर बैठ जाती. उसकी बूढ़ी आंखों के आगे अंधेरा-ही-अंधेरा था.

* *

और अहमद रिटायर हो गया.

पांच सौ रुपये की पूरे परिवार की पोषक रकम एक झटके में खत्म हो गयी. एक समर्थ कलाकार जीवन की उतरती संध्या में अकस्मात ही अपंग हो उठा. अपंग ही समझो. अब इस आयु में उसे कहां काम मिलने वाला था?

अमीना के बचाये पांच-सात सौ रुपये तीन महीनों में ही साफ हो गये थे. वो भी तब, जब घर में सिर्फ दाल-रोटी पकती है, गोश्त, अंडा, दूध, सभी बंद है, क्योंकि लड़कों की कमाई में इसकी कोई गुंजाइश नहीं है.

सारी जिंदगी अच्छा खाने वाले बड़े लड़के ने अहमद से उस दिन तल्ख आवाज में कहा था —— अब्बा, ये उधार गोश्त क्यों ले आते हो? जुबान के ये चटखारे अब बंद कीजिए. क्या हम और हमारे बच्चे खाना नहीं जानते? लेकिन इतना कहां से आये? आपने तो जिंदगी भर कमाया और लुटाया. जानते थे, बिला पिनसन की नौकरी है, फिर भी चार पैसे बुढ़ापे के लिए बचा के न रखे! अब तो जिंदगी भर हमारी ही खोपड़ी पर रहना है. . . जरा जुबान पर ताला लगाइए. और हां, ये शराब के पव्वे भी नहीं चलेंगे —— समझे!

अहमद तो मानो जड़ हो उठा था. बड़ी देर तक मुंह से बोल ही न फूटा. अमीना ने ही दबे स्वर में बेटे से कहा—— इलियास, सारी जिंदगी की आदत धीरे-धीरे ही कम होगी, बेटा. चालीस बरसों से रोज पीने वाला एकदम से छोड़ देगा, तो कैसे जियेगा? अभी तो उन्होंने तेरे से इसके लिए पैसे नहीं मांगे हैं! मैं अपनी गांठ से देती हूं.

इलियास दबा नहीं. मां को घूर कर बोला —— हां-हां, मुझे पता है कि तुम्हारे पास खजाना गड़ा है! कै दिन पिलाओगी गांठ से? अभी से बंद नहीं करोगी, तो चार दिन बाद उधार की पियेंगे और दरवाजे पर पठान लठ ले कर हमारा सिर तोड़ेगा! हजार-दो हजार चुरा कर रखे भी हो तो रखे रहो, हम छीन न लेंगे. पर समझ लो, अपना पान-पत्ता, कपड़ा-लत्ता, बेटियों को बुलाना-चलाना हमारे सिर मत डालना. घर में जो चटनी-रोटी बने, खाओ और खुदा का शुक्र करो. . .

इलियास तो बड़बड़ाता चला गया, पर अमीना मानो उसी दिन मर गयी थी.——उफ! बीस बरस खिला-पहना कर पाल देने पर उनका अपना पेट का जाया दो महीने में ही आंखें बदल गया! उसके सूखे गालों पर निश्शब्द ही बड़े-बड़े मोती ढुलकने लगे.

——भावज! अहमद ने हाथ बढ़ा कर उसके आंसू पोंछे. रो मत. सब वक्त की बातें हैं. हमारा वक्त बुरा है. . . खैर, अब आज से न पीने की कसम खाता हूं. मर जाऊंगा, पर शराब. . .

अमीना ने अहमद का हाथ थाम लिया था. दोनों सिर झुकाये रात के बढ़ते अंधियारे में अपनी कोठरी में बैठे रहे.

* *

फिर, शराब की जगह अहमद जरा-सी अफीम खाने लगा था. बिना कोई भी नशा किये उसकी यह नशे-खायी बूढ़ी देह उठती ही न थी. दूध तो बंद था, पर अमीना चोरी से उसके लिए रेवड़ियां मंगा लेती थी. आखिर यह अफीम का नशा भी तो दूध-मिठाई मांगता है!

छह महीने गुजरते-न गुजरते अमीना के पास झंझी कौड़ी भी न बची. दोनों को दिन में ही तारे नजर आने लगे. दोनों झुमकियां और चांदी की चारों चूड़ियां भी अफीम के चक्कर में निकल गयीं. अब रेवड़ियां तो दूर, अफीम के लिए एक रुपया पाना भी अमीना के लिए सूली पर चढ़ने के बराबर था.

पिछले इतवार को बड़ी बहू एकदम बरस पड़ी, अपने को कोस कर बोली—— अल्लाह पाक सात दुश्मनों को भी ऐसे सास-ससुर न दे! मेरे बच्चे बूंद भर दूध को तरसते हैं, महीने में एक बार भी गोश्त की हांडी नहीं चढ़ती, पर इन्हें रोज अफीम चाहिए. . . अरे, एक ही बार दो तोला खा कर छुट्टी क्यों नहीं करते!

और. . . और रुपया मांगने गयी अमीना निर्वाक उलटे पैरों अपनी कोठरी में लौट आयी थी.

फिर तीन दिन अहमद को अफीम नहीं मिली. बूढ़ा रात-रात भर खांसता और कराहता. अमीना के पानदान में न सुपारी थी, न पान. . . वह कोरी तंबाकू फांक रही थी और तंबाकू भी खत्म होने वाली थी.

अहमद बिना अफीम कल से मुरदे की भांति लस्त पड़ा था. और तब लाचार-मजबूर अमीना ने रात के अंधेरे में पति के आगे जो प्रस्ताव रखा, उसे सुन कर अहमद एक बार सिरकटे बकरे-सा तड़प उठा. कांप उठी थी उसकी जर्जर देह. . .

अमीना ने उससे कहा था —— छोटे म्यां! क्यों न तुम मुझे मुंह-अंधेरे जामा मस्जिद की सीढ़ियों तक पहुंचा दिया करो. बुर्का ओढ़े रहने पर कोई पहचान भी न पायेगा. वहां तो बीसियों फकीर-फुकरा मांगते हैं. अल्लाह उन्हें भी रोजी देता ही है——तुम इधर-उधर टल जाया करना, मैं अल्लाह वाले हाथ पसार लूंगी. धेली-पावली कुछ तो देगा ही खुदा ताला. आखिर इसके सिवा अब मैं कर ही क्या सकती हूं!

यह सुन कर अहमद गूंगा हो गया था. . .बड़ी देर में सांस खींच कर बोला —— भावज! अब यह नौबत आयेगी? इससे तो मैं ही चौराहे पर खड़ा हो कर सारंगी बजाऊं तो क्या. . .

——न-न! अमीना ने बीच में ही बात रोक ली. इससे इलियास की बदनामी होगी. वह चिढ़ जायेगा, बुर्के में मुझे तो कोई पहचानेगा नहीं. बस सुबह-सुबह दो-तीन घंटे सीढ़ियों पर हाथ फैलाऊंगी. लौटने पर अगले मोड़ से तुम साथ हो लिया करना...

अहमद क्या कहे?...बात गले के नीचे उतर तो गयी थी, पर गले से पेट तक एकदम चीरती भी गयी थी. आधी रात तक खाट पर पड़ा करवटें बदलता रहा. छटपटाता रहा...नींद कोई सुबह के पहर आयी...

...और भोर के धुंधलके में अहमद अमीना को ले कर उसी रास्त बढ़ रहा था. जामा मस्जिद अभी दूर थी. हांफती-कांपती अमीना उसके पीछे थी.

अहमद मोड़ पर रुक गया. ——भावज! अहमद ने पत्नी के कान में फुसफुसाया, नहीं, लौट चलो...मैं...मैं यह बरदाश्त नहीं कर सकता.

——रुकिए भी...अमीना फुसफुसायी और आगे जाते एक सफेदपोश के पीछे सड़क की दूसरी ओर मुड़ गयी. ——अल्लाह के नाम पर...उसने बुर्के में ही गुनगुनाया...खुदा तुम्हारी कमाई में बरकत दे...एक पांच पैसे बूढ़ी लाचार को...उसने अपना कटोरा बढ़ा दिया. हाथ उसके कांप रहे थे.

——धत् तेरे की! इतने सुबह-सुबह भी इन बलाओं से पीछा नहीं छूटता! सफेदपोश मुंह में बड़बड़ाया और एक पांच का सिक्का कटोरे में उछाल कर आगे बढ़ गया. अमीना भी पलटी, पर पीछे आती साइकल की घंटी उसने नहीं सुनी थी. मुड़ी तो साइकल का धक्का लगा...वह वहीं गिर पड़ी. ——या अल्लाह...वह कराही. कटोरा छिटक कर दूर जा गिरा था और पांच का सिक्का उछल कर नाली में.

अहमद दौड़ा. गिरी अमीना को गोद में उठाते हुए चीखा—— भावज! नहीं-नहीं...वह एकदम पसीना-पसीना हो उठा था. कांप रहा था...उसका गला खुश्क हो रहा था, जैसे गले में कांटे उग आये हों.—— भावज!

——छोटे म्यां! छोटे म्यां! अमीना ने उसे झकझोर कर जगा दिया. क्या हुआ? सपना देख रहे हो क्या? पसीने से तर अहमद की आंख खुल गयी—— वह परेशान हालत में अपनी खाट पर पड़ा था. दूर कहीं सुबह की अजान का स्वर आ रहा था —— अल्ला हो अकबर!

□□□

सी १८१२, रिवर बैंक कॉलनी, लखनऊ

केरल की दंतकथा

प्रतीक्षा

एक बार जंगल में दो-तीन दिनों तक लगातार बारिश होती रही. पशु-पक्षियों का शिकार के लिए बाहर निकलना संभव नहीं हुआ. एक सियार भूख से बेहाल हो गया था. चौथे दिन जब बारिश बंद हुई, तो सियार भोजन की तलाश करता-करता एक शेर की मांद में जा घुसा. शेर उस समय शिकार की खोज में बाहर निकलने वाला था. उसने कड़क कर पूछा—— कौन हो तुम?

इसके पहले कभी सियार ने शेर नहीं देखा था. वह घबरा गया. परंतु शीघ्र ही उसने अपनी घबराहट को दबा कर जवाब दिया—— मैं महाशेर हूं! क्या आपने अभी तक मुझे नहीं देखा है? मैं आस-पास के सात जंगलों का स्वामी हूं, जिसके अधीन यह जंगल भी आता है. मैं यहां अभी आप को खबरदार करने के लिए आया हूं कि आप अपने जंगल की सीमा से बाहर न जाया करें, वरना आप की चटनी बना दी जायेगी. शेर ने सोचा कि वाकई, यह कोई असाधारण शक्तिशाली जीव है. तभी तो मुझसे डरना तो दूर, मुझे ही धमका रहा है. और फिर सात जंगलों का राजा! उसे कोई उपाय नहीं सूझ रहा था कि इस महाशेर का कैसे स्वागत किया जाये! उसे अपनी पुत्री की याद हो आयी. उसने महाशेर से कहा—— महाराज! मैं तो अपनी कन्या की शादी का प्रस्ताव ले कर आप के ही पास जा रहा था. आइए, पधारिए!

सियार अकड़ कर बैठ गया. शेर ने अपनी लड़की का विवाह सियार से करके उन दोनों को विदा दे दी. रास्ते में एक गड़रिया भेड़-बकरियां चरा रहा था. भेड़-बकरियों को देख कर शेरनी बोली——भूख तो आपको भी लगी होगी. क्यों न एक-दो भेड़-बकरियां खा लें?

——जरूर खाना चाहिए! सियार ने कहा.

पति की आज्ञा पाते ही शेरनी ने झपट कर दो बड़े-बड़े बकरों को फाड़ डाला और उनकी चटनी बना कर अपनी भूख मिटा ली. उधर महाशेर रूपी सियार भेड़ के एक बच्चे से ही दो-दो हाथ कर रहा था. उसके लौटने पर शेरनी ने कहा——आप तो भेड़ के एक बच्चे से ही जूझ रहे थे?

——तुम बिल्कुल गंवार ही हो! सियार ने उत्तर दिया. जो मजा बच्चों के मांस में होता है, वह बड़ों के में नहीं!

इस प्रकार अंत में उस महाशेर रूपी सियार की मांद भी आ गयी. वहां पहुंच कर उसने शेरनी से कहा——तुम यहीं प्रतीक्षा करो. यहां मेरा एक दोस्त रहता है. उससे मिल कर आता हूं.

और वह मांद में जा घुसा. इधर शेरनी अपने दूल्हे के लौटने की प्रतीक्षा करती रही. सांझ रात में बदल गयी. रात दिन में बदल गयी. दिन रात में बदल गया और रात पुनः दिन में बदल गयी—— परंतु दूल्हा नहीं लौटा.

□□□

प्रवासीः पृष्ठ ५६ से आगे

रास्ता हमें ठीक से पता नहीं है और अगर किसी जंगल में या किसी घाटी में जा गिरे, तब क्या करेंगे?

★

नहीं भई, अब तो नहीं जायेंगे आगे! हम जहां हैं, वहीं रहेंगे.

★

ऐसा क्या करते हैं! हम लोग जिस मार्ग पर खड़े हैं, वह मार्ग आगे भी कहीं जाता है या नहीं? हमारे आने से पहले बहुत से मनुष्य इसी मार्ग से तो गये होंगे.

★

हां, बैलगाड़ी के पहियों के निशान स्पष्ट तो दिख रहे हैं. और क्या चाहिये?

★

और कुछ नहीं चाहिये ! बेशक आगे चले चलो धुंधलका है तो क्या हुआ? देर करने से क्या फायदा?

★

जाओ, आगे जाओ ! हंसी-खुशी चलते चलो ! हम यहां से रत्ती भर भी हटेंगे नहीं ! बेसिर पैर के रास्ते पर जाकर मरना है क्या ?

★

हां! आज तक इस मार्ग पर जानेवाले मनुष्य जैसे मर ही गये हैं है न !

★

कैसे नहीं मरे हैं? सभी लोग एक बार गढ़े में या घाटी में गिर कर, सिर फूट जाने पर मरे कैसे नहीं होंगे?

★

मैं कह रहा हूं. दूसरे मरे, इसलिए हमें भी मरना ही चाहिये क्या?

★

भई, मुझे तो ऐसा लगता है कि अपने अब लौट कर पीछे जायं और उस धर्मशाला में जाकर ठहरें.

★

हां! -हां! बहुत अच्छी बात है! चलो फिर से चलें.

★

दुबारा जायें ? नहीं भई, हम फिर से नहीं आयेंगे.

★

और अब फिर से लौट कर जाना कहां है? और. कैसे? किस तरह से का क्या मतलब? उसी मार्ग से धर्मशाला आसानी से पहुंच जायेंगे.

★

अपने भी उसी तरह जायेंगे, तो रास्ता भटक जायेंगे. ऐसा लगता है क्या ?

★

ऐसा कैसे नहीं हो सकता है? रास्ता भटक कर या फिर किसी घाटी में गिरकर सिर फूटने पर मर कैसे नहीं जायेंगे ? बतलाना तो ?

★

ओफ, हो! लेकिन अभी इसी रास्ते से आये हैं या नहीं ? यह ठीक है ..

★

लेकिन जिस रास्ते से हम आये हैं, उसे भी कैसे भूल सकते हैं ?

★

क्या धुंधलका साफ हो जाने तक हम यही खड़े रहें?

हां हां हां, ऐसी ही करना पड़ेगा !

★

क्या ऐसा ही करना पड़ेगा? मान लो, धुंधलका साफ होने तक हम यहीं खड़े रहें और भूकंप आ जाये?

★

इसीलिये तो कह रहा हूं. कि हम आगे ही चलें, तब मौत भी आ जाये तो कोई बात नहीं !

★

नहीं, भई, इससे अच्छा तो पीछे लौटते वक्त मरें.

★

और जीते जी मर जाना ही क्या बुरा है ?

★

हां ! हां! हां!

★

ठीक है ! मैं तो आगे चलता हूं. जिसे मेरे साथ आना हो आ जाय.

★

लो ! हम भी चल रहे हैं आपके साथ !

★

अरे, रे! जा कहां रहे हैं? मुड़ो और हमारे साथ पीछे चलो! नहीं! हम लौट कर नहीं जायेंगे. तुम्हें जाना है तो जाओ! कोई तुम्हारा रास्ता नहीं रोक रहा है.

★

तुम नहीं आ रहो हो हमारे रास्ते में ! लेकिन हम तुम्हें जाने देंगे तब न !

★

यह बात है क्या? तो हम भी देखते हैं कि दुबारा कैसे लौटते हैं ?

★

अरे ए मूर्खों! हमारे साथ चुपचाप यहीं खड़े रहो!

★

नहीं ! हम तुमसे आगे जायेंगे!

★

हम तुम्हें पीछे खींच लेंगे.

★

खबरदार ! जरा भी हिले तो ! अपने स्थान पर ही खड़े रहो, मूर्खों !

★

कौन मूर्ख है ?

★

तुम मूर्ख हो !

★

नहीं तुम्हीं मूर्ख हो !

सब लोग हाथापाई पर उतर आते हैं. एक दूसरे को घसीटने लगते हैं. कोई किसी को लकड़ी से मार रहा है तो कोई पत्थरों की वर्षा कर रहा है. बेचारे बच्चे घबराकर रोने लगते हैं. मेरा सिर फूटा! मां, सीने पर पत्थर लग गया ! अरे वो आगे भाग रहा है पकड़ो-पकड़ो ! ' और ऐसे शोरगुल के साथ लोगों का दौड़ना शुरू हो जाता है. □□□

(अनुवाद : रेखा सिंह)

किस्मत

गो. गं. लिमये

ठिक्-टिक्, ठाक् और उसके बाद गोलाबारी का धूम-धड़ाका.

वह जानी-पहचानी आवाज सुनते ही रामदयाल का कलेजा धक् से हो गया. हाथ कांपने लगे और उसके हाथों से डोली (स्ट्रेचर) गिरने को आयी. यह आवाज बद्दू (बागी अरब) लोगों की बंदूकों की थी. इससे पहले यह विशिष्ट आवाज रामदयाल ने दो-चार बार ही सुनी होगी. फिर भी उससे अच्छी तरह जान-पहचान हो गयी थी. मानों उनका जिंदगी भर का साथ हो. गुस्सैल या मरकहे शिक्षक के खखारने की आवाज चाहे एकाध बार ही सुनी हो, फिर भी बच्चों के लिए वह पूरी परिचित हो जाती है. वैसे ही यह ठाक्-ठिक् रामदायाल के कानों में पूरी तरह समा गयी थी. कहीं से कोई आवाज आती तो रामदयाल का दिल धड़कने लगता था, वह कान उठाकर देखने लगता था, और इस बार तो सचमुच लड़ाई शुरू हो गयी थी. फिर उसकी घबराहट न पूछिए ! ठीक से बोल भी न पा रहा था वह.

रामदयाल एक फील्ड-एंबुलेंस में डोलीवाला था, और वह एक कालम के साथ जा रहा था. सामने लड़ाई शुरू होते ही अगाड़ी की पलटन ने गोलाबारी शुरू की. ढप् ढप्. . . हमारे फौजियों की गोलाबारी शुरू हो गयी. लुईस गनों की 'सटटटट' सुनाई देने लगी मशीन गनों ने भी 'चट्चट्' चट-चट गोलियों की बौछार आरंभ की. अपनी तरफ की यह भयंकर गड़गड़ाहट सुनकर रामदयाल की जान में जान आ गयी, और इतने में बाकी कालम को अपनी जगह पर रुकने का हुक्म आया. तब उसे अच्छा लगा, लेकिन यह खुशी ज्यादा देर तक न रही. सूं-सूं करती हुई एक गोली उसके सिर के ऊपर से चली गयी. फौरन दूसरी आयी. फिर अगल-बगल से 'सूंऽऽ' करती हुई गोलियां गुजरने लगीं. रामदयाल को लगा कि जीवन का अंत आ गया. अब वह कभी घर नहीं लौट सकेगा. उसकी हड्डियां तक सियार-कुत्ते ले जायेंगे.

डोलियां नीचे रख कर रास्ते के किनारे बैठ जाने का हुक्म दिया गया. झट से रामदायल एक छोटे-से कनाल में हाथ-पैर सिकोड़ कर और सर छुपा कर लेट गया. बाकी लोगों में से कुछ हंसी-मजाक करने लगे. कुछ बद्दुओं को गालियां देने लगे और जो समझदार थे वे अपना झोला (किट्-बग) खोल कर 'रोटी और सब्जी' खाने लगे. एक ने तो जल्दी से जमीन खोद कर चूल्हा बनाया. और पास से घास ला कर चाय के लिए पानी भी चढ़ा दिया. जो डरपोक थे, वे छिपने के लिए तरह-तरह की जगहें ढूंढ़ने लगे और वहां बैठ कर किसी ने हुक्का पीना भी शुरू कर दिया. कुछ बीच में उठकर 'परिस्थिति' का अंदाजा लगा रहे थे. गोलियों का धड़ाका जारी था. कभी पंचम में तो कभी सप्तम में गाना गाती हुई गोलियां जा रही थीं. एक गोली तो रामदयाल जहां लेटा हुआ था, उस कनाल के बांध को लगी. लेकिन सौभाग्य से उसने घुटनों में सर छुपा लिया था इसलिए गोली से उड़ी धूल उसने नहीं देखी और उसी वक्त एक खच्चर के उछलने की वजह से उस गोली की ठप् आवाज उसकी समझ में नहीं आयी. वरना उसे लगता कि उसी को गोली लग गयी है और वह मर जाता.

अब 'फॉल इन' का हुक्म आया. अगाड़ी पर बहुत से लोग घायल हो गए थे इसलिए डोलीवालों की एक टोली आगे भेजनी थी. घुटनों से सर निकाल कर रामदयाल अपनी जगह पर थरथराता खड़ा हो गया. उसने डोली उठायी और वह डोली आगे बढ़ने लगी. अब तो रामदयाल के होश उड़ गये थे. मन को लगातार डर लग रहा था. अब यह गोली तो नहीं लगेगी—बाप रे बाप ! कितनी करीब से चली गयी यह—ओह! यह तो बिलकुल सट कर चली गयी. हां, उसके साथ चलनेवाले डोलीवाले को ही लगी. लेकिन खुशकिस्मती से वह बच गया. वह गोली उसकी बांह के आरपार चली गयी. 'ड्रेसी बाबू' (ड्रेसर) ने पट्टी बांध कर उसे वापस भेज दिया. रामदयाल को लगा, हाय! वह गोली मेरी बांह में क्यों नहीं लगी? फिर मैं एंबुलेंस में बैठ कर वापस चला जाता, फिर अस्पताल, फिर बगदाद और आखिर 'इंडिया' जाने का मौका मिलता. कम से कम कुछ दिनों के लिए इस घमासान लड़ाई से छुटकारा तो मिलता. लेकिन नहीं, वे आगे बढ़ते रहे. गोलियों की बौछार जारी थी. 'सट्'– और एक गोली आयी. आयी नहीं, उसके नाइक के सीने में घुस गयी. धड़ाम से वह नीचे गिर पड़ा. ड्रेसी बाबू ने देखा. देखने की कोई जरूरत ही नहीं थी. दस कदमों पर एक गड्ढा था. रास्ते से हटा कर वहां उसे छोड़ दिया गया. भगवान का नाम लेने की भी फुरसत नहीं मिली उसे. गोलियां कह कर थोड़े ही आती हैं? बंदूक की आवाज सुनायी देने से पहले ही उसमें से निकली गोली सीधी हमारे पीछे चली गयी होती है. गोली आ गयी, कहना गलत है. गोली चली गयी, कहना चाहिए. आने से पहले गोलियां 'नोटिस' नहीं देतीं.

नाइक की मौत देख कर रामदयाल के रोंगटे खड़े हो गये. आगे बढ़ने की उसमें बिलकुल हिम्मत न रही. उसे चक्कर आ गया और चलते-चलते वह एकदम नीचे बैठ गया. दूसरे लोगों ने उसे बहुत समझाया कि तुम यहीं रह जाओगे बीच में ही. हम तो आगे बढ़ जायेंगे. एंबुलेंस भी बहुत पीछे रह गयी है. लेकिन नहीं, 'मेरे पेट में दर्द हो रहा है,' कह कर वह सड़क के किनारे बदन सिकोड़ कर पड़ा रहा. ड्रेसर ने भी उसे बहुत समझाया-बुझाया, धमकाया, बूट से कोंचने की भी कोशिश की लेकिन सब बेकार! 'डरने से क्या फायदा? जो होना है, सो होगा. तुम्हारी किस्मत में मरना हो तो यहां पड़ कर भी मरोगे. चल उठ, पागल कहीं का!' ड्रेसर ने कहा. रामदयाल कहता है, 'बाबूजी, मैं डर नहीं रहा हूं. लेकिन पेट में भयानक दर्द उठ रहा है. चक्कर आ रहा है और बिलकुल चला नहीं जाता. मैं भी क्या करूं?' ड्रेसर ने उसे थोड़ी-सी 'दवा' पिलाई और 'मरो साले यहीं पर!' कह कर वह टोली के साथ आगे चला गया.

वह टोली आंखों से ओझल हो जाते ही रामदायाल के पेट का दर्द अचानक गायब हो गया और धीरे से उठ कर झुके-झुके उसने 'रिटायर' करना शुरू किया. अगल-बगल से गोलियां आ ही रही थीं. गोली की 'सूंऽऽ' आवाज आते ही वह और नीचे झुक जाता. जरा मुड़ जाने पर उसने इर्द-गिर्द देखा तो कोई भी नजर नहीं आ रहा था. अगाड़ी के लोग आगे और पिछाड़ी का कालम पीछे. वह बीच में ही अकेला रह गया था. अब शाम हो गयी थी. उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाये. एक बार उसे लगा कि कुछ भी हो, आगे जा कर अपनी टोली में शामिल हो लिया जाये, फिर मरना हो तो दोस्तों के बीच मर जाऊंगा. घायल हो गया तो लौटने को डोली मिल जायेगी. एक घूंट पानी की जरूरत हो तो कोई भी दे देगा. लेकिन अगर पैर को गोली लग गयी तो? तो क्या करूंगा? मर गया तो किसी को पता तक नहीं चलेगा. मरा नहीं और इधर से बद्दू आयें और पकड़ कर ले जायें तो? इस तरह सोचते हुए वह पीछे की ओर मुड़ा. लेकिन फिर उसे लगा, जितना आगे बढ़ता जाऊंगा, उतना डर भी ज्यादा, और वह टोली अब नहीं मिली तो? इस तरह दो-तीन बार वह आगे-पीछे चला गया. इतने में उसकी बायीं ओर तीन कदमों पर एक गोली आ कर टकराई. वह डर के मारे कांपने लगा. वॉटर-बॉटल में से थोड़ा-सा पानी पीने की भी ताब न रही.

इधर रात हो गयी. गोलाबारी धीरे-धीरे कम होती गयी. तोपों की गड़गड़ाहट भी थम गयी. उस रात वहीं 'कैंप' करने का हुक्म आया.

ड्रेसर बाबू अपनी टोली को ले कर लौटने लगा. चलते-चलते रास्ते में उसे ठोकर-सी लगी. दियासलाई जला कर देखा तो रामदयाल की लाश! गोली ठीक सीने में लगी थी और सीने के पार हो गयी थी. □□□

(अनुवाद : माधव मोहोलकर)

(स्थानाभाव के कारण कैप्टन गो. गं. लिमये की दूसरी कहानी 'मैकेनो' फरवरी '७६ के अंक में प्रकाशित की जा रही है. --संपादक)

लघुकथा

विद्वता बनाम सहज बुद्धि

किसी नगर में चार ब्राह्मण रहते थे जिनमें परस्पर बड़ी मित्रता थी. उनमें से तीन अत्यंत विद्वान थे किंतु उनमें सहज बुद्धि का अभाव था. चौथा विद्वता से दूर था किंतु सहज बुद्धि का धनी था. एक दिन चारों विचार-विमर्श करने लगे. सभी एकमत हुए कि यात्रा करके राजदरबार में पहुंच कर राजा को प्रभावित कर धन अर्जित किया जाये.

चारों यात्रा पर निकल पड़े. अभी वे कुछ ही दूर गये होंगे कि उनमें से सबसे बड़े ने कहा--हममें से चौथा विद्वान नहीं है, उसमें सिर्फ सहज बुद्धि ही है. राजा का ध्यान सहज बुद्धि से ही कोई आकर्षित नहीं कर सकता. अतएव हम अपनी कमाई उसको नहीं देंगे. वह लौट जाये.

दूसरे ने कहा--मेरे बुद्धिमान मित्र, तुममें ज्ञान का अभाव है. अच्छा हो कि तुम वापस लौट जाओ. किंतु तीसरे ने कहा--नहीं, यह उचित व्यवहार नहीं है. हम सब बचपन से साथ ही खेल-कूद कर साथ-साथ बड़े हुए हैं. चलो मित्र, तुम भी साथ चलो. हम सब अपनी कमाई आपस में बराबर-बराबर बांटेंगे.

इस समझौते के बाद वे चारों यात्रा पर बढ़ते गये. अंत में वे एक वन में पहुंचे जहां एक मृत सिंह की हड्डियां पड़ी हुई थीं. उन्हें देख कर एक ने कहा--अपनी विद्वता का परीक्षण करने का अवसर आ पहुंचा है. यहां पर किसी मृत प्राणी की हड्डियां पड़ी हैं. अपनी ईमानदारी से अर्जित ज्ञान द्वारा हम इसे जीवित कर देंगे .

अब पहले ने कहा--हड्डियों को जोड़कर ढांचा बनाना मुझे आता है.

दूसरा बोल पड़ा--मैं उसमें चर्म, मांस तथा रक्त भर सकता हूं.

तीसरा भी पीछे न रहा--मैं उसमें प्राण फूंक सकता हूं.

सो पहले ने ढांचा तैयार किया, दूसरे ने उसमें चर्म, मांस तथा रक्त डाला किंतु तीसरा उसमें प्राण फूंकने ही वाला था कि सहज बुद्धि वाले मित्र ने विरोध किया--यह सिंह है. जीवित होते ही यह हम सब को ही निगल जायेगा.

--तुम पोंगा हो, हम अपने ज्ञान को व्यर्थ नहीं जाने देंगे, वे तीनों बोले.

--ऐसा है, तो जरा ठहरो. पहले मुझे इस वृक्ष पर चढ़ जाने दो.

उसके ऊपर चढ़ते ही तीसरे मित्र ने सिंह में प्राण फूंक दिये. उसने तीनों को मार डाला जब कि चौथे ने वृक्ष से उतर कर अपने घर की राह ली.

--(पंचतंत्र' से) □□□

एस. डी. चौधरी

छह लघुकथाएं ● रामसरूप अणखी

भेद की बात

एक महिला थी. उसके दो जेठ थे और तीन देवर. गांव में परिवार नियोजन वालों का शिविर लगा. वहां बहुत-से मर्दों-औरतों के ऑपरेशन किये गये.

उस महिला का स्वामी बड़ा भोला था. उसे असली संसार का ज्ञान बहुत कम था. उनके पांच बेटियां और दो बेटे थे.

स्वामी शिविर में पहुंचा. ऑपरेशन के लिए उसने अपना नाम लिखवा दिया. महिला भी पीछे-पीछे आ पहुंची. स्वामी कहता— ऑपरेशन मैं कराऊंगा. महिला कहती— मैं करवाऊंगी. हेल्थ डिपार्टमेंट हैरान था — इतनी जल्दी है इन्हें! यहां केस तो ढूंढ़ने से नहीं मिलते और ये दोनों ही तैयार हैं!

आखिर उस महिला ने एक लेडी डॉक्टर को एक ओर ले जा कर समझाया — बहन जी, मेरा ही ऑपरेशन कर दीजिए. मैं किस-किसका ऑपरेशन करवाती फिरूंगी? मेरे तो दो जेठ और तीन देवर हैं. ब्याह तो इस अकेले गावदी से ही हुआ है. □

खटिया और फांस

किसी भी हाई स्कूल का हेडमास्टर एक खटिया होता है. आप कहेंगे—खटिया? जी हां, हमारे इलाके में हेडमास्टर को खटिया ही कहते हैं.

यह तो आप जानते ही हैं कि खटिया के पाये जरूर होते हैं, सो, हेडमास्टर के भी चार पाये होते हैं. पहला पाया — पी. टी. आई., जो अनुशासन कायम रखता है. दूसरा पाया — क्लर्क, जो दफ्तर का काम चलाता है. तीसरा पाया — ड्राइंग मास्टर, जो स्कूल की सजावट करता है. और चौथा पाया—चपरासी, जो हर समय हेडमास्टर के अंग-संग रहता है, हर तरह से उसकी सेवा करता है.

आप पूछेंगे, महाराज, तब सेकेंड मास्टर की कौन-सी जगह हुई? लीजिए, इसका जवाब भी सुनिए. क्लर्क के पास काम ज्यादा हो तो हेडमास्टर उसकी सहायता के लिए सेकेंड मास्टर को लगा देता है, ड्राइंग मास्टर को मोटो वगैरा लिखना हो तो सेकेंड मास्टर उसको गाइड कर देता है. चपरासी को घंटी बजाने के लिए टाइम टेबल बना देता है. पी. टी. आई. को कोई मैच खेलाना हो तो हेडमास्टर कह देता है— सेकेंड मास्टर सा'ब जरा पी.टी. के साथ जाइए. सो भाई साहब, इस खटिया की अगर कोई चूल ढीली हो तो सेकेंड मास्टर को फांस के रूप में ठोक दिया जाता है. आप कहूंगे – फांस, हां श्रीमान, सेकेंड मास्टर किसी भी स्कूल की 'फांस' होता है. हेडमास्टर उसे हमेशा अपने हाथ में रखता है. □

किताब

तब मैं छठी जमात में पढ़ता था. किसी मित्र के कहने पर मैंने भाई चतरसिंह, पुस्तकों वाले, बाजार माई सेवां, अमृतसर से 'हीर-वारिस', चिट्ठी भेज कर मंगवा ली. छह रुपरे की बी. पी. छुड़वायी तो बापू को पता चल गया. पूछने लगे- कौन-सी किताब मंगवायी है? मैं चुप. उन्होंने फिर पूछा — बताते क्यों नहीं?

मैंने कहा — यों ही बस, एक किताब मंगवायी है. पढ़ने के लिए.

बापू ने कड़क कर कहा — अरे नाम तो होगा उसका कोई?

मैंने डरते हुए जवाब दिया — वारिस शाह की 'हीर' है.

बापू को तसल्ली हो गयी. बोले—फिर तो कोई बात नहीं. मुझे तो डर था कहीं कोक-शास्त्र न मंगवा लिया हो . . .

मैंने धीरे से कहा—उसकी क्या जरूरत है, बापू. . . □

घर और घर

रघुकुल और प्रियदर्शन दोस्त थे. उनके घर भी पास-पास थे.

रघुकुल के पिता की बहुत ऊंची और शानदार इमारत थी, प्रियदर्शन के पिता का बस एक छोटा-सा एक कमरे का ही मकान था. दोनों दोस्त छोटी उम्र के थे. अभी स्कूल नहीं जाते थे. वे दोनों सारा दिन म्यूनिसिपल पार्क में खेलते रहते. सबेरे ही पार्क में आ जाते. दोपहर की रोटी खाने घर जाते और फिर पार्क में पहुंच जाते.

एक दिन दोपहर-बाद वे दोनों पार्क में आये तो दोनों उदास थे. बातें तो करते रहे, पर खेले नहीं!

---रघु, तू क्यों उदास है? प्रियदर्शन ने पूछा.

---आज मेरी ममी ने भाजी में देसी घी नहीं डाला था. रोटी अच्छी नहीं लगी.

अब रघु ने पूछा---तू क्यों उदास है?

---मुझे तो आज रोटी ही नहीं मिली. घर में आटा नहीं था. . . पिताजी पिछले छह दिन से बीमार हैं . . . ☐

टैंकर

गेहूं की पकने के करीब आयी बालियां सूखने को हो आयी थीं. बारिश की भी कोई उम्मीद नहीं थी. नलकूपों के इंजिन गुमसुम थे---तेल का अभाव था.

एक-एक डिब्बे के पैसे जेब में डाल कर किसान लोग शहर जाते और सारा-सारा दिन यों ही गुजार कर खाली हाथ घर लौट आते.

शहर के पंपों पर जाने कब तेल आता था और जाने कब खत्म भी हो जाता था.

इसी तरह कई दिन गुजर गये. एक दिन वे उदास चेहरे लिये दिन-छिपे गांव के अड्डे पर बस से उतरे. तेल का एक टैंकर उन्हें सामने से आता दिखायी दिया. क्षण भर के लिए एक आदमी ने दूसरे आदमी की आंखों में देखा. अन्य कई लोगों ने उनकी आंखों की ओर देखा. दूसरे पल ही वे सब पंक्ति बना कर टैंकर के सामने खड़े हो गये. पत्थरों की दीवार की तरह. टैंकर रुक गया. ड्राइवर और क्लीनर की क्या मजाल कि वे नीचे न उतरते!

---ड्राइवर सा'ब, भरो डिब्बा! एक ने कहा.

---ड्राइवर सा'ब, मेरा भी! दूसरे ने कहा. . . और इसी तरह सभी ने . . .

थोड़ी देर में ही सबके डिब्बे भर गये. तेल के पैसे ड्राइवर की जेब में थे.

उनके चेहरों पर लाली थी.

ड्राइवर के चेहरे पर भी लाली थी. ☐

• एस. डी. चौधरी

मॉडर्न रांझा

चूचक ने हीर की मर्जी के खिलाफ जब उसे सैदा से ब्याह दिया, तब डोली चढ़ने से पहले हीर ने रांझे से कहा कि वह उससे मिलने आये. ब्याह के बाद भी वह उससे पूरा-पूरा इश्क निभायेगी.

रांझा जोगी बन कर रंगपुर गया. देखा, हीर पर तो बहुत-सी पाबंदियां लगी हुई हैं! सख्त पहरा था. उसे तो घर से बाहर ही नहीं निकलने दिया जाता था. हीर की ननद, सहती से रांझा की बातचीत हुई. सहती सुंदर भी थी और बातचीत में बहुत कुशल. . .बस, एक चिनगारी ही थी वह! रांझे की मुलाकातें सहती से ही होने लगीं. हीर तो एक बार ही मिल सकी. हीर ने सहती को सारी बात बताते हुए कहा कि वह उनके लिए कुछ ऐसा प्रबंध करे कि वे रंगपुर से निकल सकें. सहती रांझे से पूरी तरह घुल-मिल गयी थी. हर रोज उस जोगी से मिलने जाती. पांच दिन बाद पूरे रंगपुर में हाहाकार मच गया. रांझा जोगी अज्जू की बेटी सहती को अगुवा करके ले गया था. ☐

विविधा

समांतर कहानी : एक विचार-गोष्ठी

● विनोदकुमार तिवारी

१७ अगस्त को पुहुप साहित्य परिषद के तत्वावधान में बाराबंकी जनपद में 'समांतर कहानी' पर विचार-गोष्ठी का एक महत्वपूर्ण आयोजन स्थानीय युवा पीढ़ी के साहित्यकारों द्वारा किया गया.

मुख्य वक्ता डॉ. शंभूनाथ चतुर्वेदी जी ने 'समांतर कहानी' के कथ्य और शिल्प पर प्रकाश डालते हुए कहा कि इस प्रकार की कहानियां एक नये आंदोलन या नारे के रूप में पाठक वर्ग के सम्मुख आ रही हैं. डॉ. चतुर्वेदी ने यह स्वीकार किया कि समांतर कहानियां आर्थिक और सामाजिक वैषम्य को अंकित कर रही हैं. उन्होंने कमलेश्वर के इस कथन पर आपत्ति प्रगट की कि समांतर कहानियां जिंदगी की सक्रियता से जुड़ी रह कर अपने अस्तित्व को भोगने के लिए प्रेरित करती हैं.

डॉ. घनश्याम कृष्ण शुक्ल, पुलिस अधीक्षक, बाराबंकी ने कहा कि समांतर कहानी जीवन की कहानी है. साहित्य में खेमे गड़ने से अच्छा ही है, क्योंकि नये-नये खेमों के गड़ने से नयी प्रतिमाओं का जन्म होगा.

जिलाधीश श्री आर. एस. टोलिया ने परिचर्चा में भाग लेते हुए कहा कि आंचलिकता का प्राधान्य समांतर कहानियों में होना चाहिए. विनोदकुमार तिवारी ने विषय प्रवर्तन करते हुए कहा कि 'समांतर कहानी' वर्तमान समय का दस्तावेज है और आम आदमी के जीवन का नग्न अंकन इसमें हुआ है. शिल्प और कथ्य की दृष्टि से ये महत्वपूर्ण हैं. विनय कुमार दास ने कहा कि 'समांतर कहानी' मानवीय संवेदना को प्रमुखता देती है और किसी स्तर पर पाठकों के मन में टीस पैदा करती है. ये कहानियां न तो जीवन का हल देती हैं और न ही दिशा-निर्देश ही करती हैं. यही दोषारोपण अभिलाश चंद्र धीर ने भी किया. इसका उत्तर देते हुए विनोदकुमार तिवारी ने कहा कि आज का आम आदमी जीवन की अनिश्चयात्मक स्थिति में जी रहा है. समांतर कहानीकार भी उससे संबंधित है, तो वह दिशा-निर्देश ही कैसे दे सकता है!

राजेश वर्मा ने गोष्ठी में भाग लेते हुए कहा कि समांतर कहानी एक नारा मात्र है. इसके पूर्व भी साभाजिक यथार्थ प्रधान कहानियां लिखी जा चुकी हैं. विनोदकुमार तिवारी ने कहा कि समांतर कहानियों में यथार्थ का चित्रण तो है, परंतु शिव और
सुंदर का अभाव नितांत खटक
है. इन पात्रों से कोई पाठक प्रेर
नहीं प्राप्त कर सकता. इस
प्रत्युत्तर में विनयकुमार दास
कहा कि वर्तमान युग में मनुष्य
लिए दो वक्त की रोटी ही स
कुछ हो गयी है. ऐसी स्थिति में
और सुंदर की कल्पना कैसे की
सकती है? इसका समर्थन अम
बहादुर सिंह ने अरस्तू के कथन द्वा
किया कि 'स्वस्थ शरीर में स्व
मस्तिष्क का निर्माण होता है.'

इस गोष्ठी का संचालन डा. रा
अंजोर सिंह, हिंदी-विभागाध्य
जवाहरलाल नेहरू स्मारक प
स्नातक महाविद्यालय ने कि
उन्होंने कहा कि समांतर क
नियां सामाजिक वैषम्य को
करने का प्रयास कर रही हैं.

परिचर्चा-गोष्ठी का एक महत्वपूर्ण क्षण

कच्छी कथाकारों क सम्मान

साहित्यकार संघर्ष से भाग
नहीं, न ही वह समाज
अलग-थलग रह सकता है. साहि
तथा जीवन एक दूसरे पर आश्रि
हैं, किंतु जो शाश्वत है, वह
साहित्य—ये उद्गार कच्छ
खारी धरती के मीठे फल
रूप में वहां की कहानियों
सर्वप्रथम संग्रह **'खारी धर
मीठा फल'** पुस्तक का विमो
करते हुए **'सारिका'**-संपादक
कमलेश्वर ने प्रकट किये.

श्री कमलेश्वर ने यह
कहा कि भाषा एक सीमा अ
है, किंतु मानव-संवेदना स
समान है. यही कारण है कि साहि
को प्रादेशिक अथवा देश-देश
भौगोलिक सीमा में नहीं बां
जा सकता.

समारोह के अध्यक्ष, बं
के महापौर श्री नानालाल मे
ने कच्छ के सभी कहानीक
का अभिनंदन किया.

प्रारंभ में संस्था के मंत्री
हेमराज शाह ने सबका स्वा
करते हुए कहा कि स्व.
जयंत खत्री की कहानी को पा

स्तान की पाठ्य पुस्तक में सम्मिलित किया गया है. महाराष्ट्र राज्य के हायर सेकंडरी (कक्षा ११) की पाठ्य पुस्तक में जयंत खत्री के विषय में प्रिंसिपल श्री अमृतलाल याज्ञिक ने जो कुछ लिखा है, उससे प्रत्येक कच्छी को गर्व का अनुभव करना चाहिए.

कच्छ से आये हुए डॉ. मनुभाई पांधी ने कथा-संग्रह की भूमिका को समझाया और कच्छी साहित्य के प्रणेताओं की सराहना की.

कथा-संग्रह के संपादक श्री मूलराज रूपारेल ने बतलाया कि कच्छी कलाकारों ने अपनी रचनाओं में अपनी विशिष्टता को बनाये रखा है, तथापि वे क्षेत्रीय भावनाओं से ऊपर हैं. श्रीमती सरोज पाठक ने इस समारोह को एक आनंददायक अवसर बतलाया. अंत में श्री बाबूलाल मेघजी शाह ने सबके प्रति आभार व्यक्त किया. □

बनारस : कथा-साहित्य की अद्यतन प्रवृत्तियों पर विचार

● मृगांक शेखर घोषाल

दीपावली के इर्द-गिर्द की ही कोई एक समशीतोष्ण शाम. मदैनी मोहल्ले में गोस्वामी तुलसीदास के नाम पर बनी प्राचीन संस्था 'तुलसी पुस्तकालय'.

गोष्ठी में मुख्य अतिथि पद पर आसीन बंगला की प्रतिनिधि कथा-लेखिका श्रीमती आशापूर्णा देवी ने विषय-प्रवर्तन के बहाने कहा कि बंगला का वर्त्तमान कथा साहित्य विदेशी साहित्य की विकृत अनुकृति के कारण भोगवादी दौर से गुजर रहा है, जिसमें परंपरागत मूल्यों को तोड़ने की प्रवृत्ति अधिक है और नया विकल्प देने की क्षमता बिल्कुल कम.

उन्होंने कहा कि युद्धोत्तर काल में मूल्यों के टूटने का जो सिलसिला शुरू हुआ, वह सामाजिक संदर्भों से जुड़ा हुआ था. साहित्य युद्ध की विभीषिका से संत्रस्त मानव मन को नजर-अंदाज नहीं कर सकता था. लेकिन इसके साथ ही एक रोग भी पैदा हुआ है, और वह रोग है दिशाहीनता का. संप्रति नयी पीढ़ी के रचनाकार दिशाहीनता के दौर से गुजर रहे हैं.

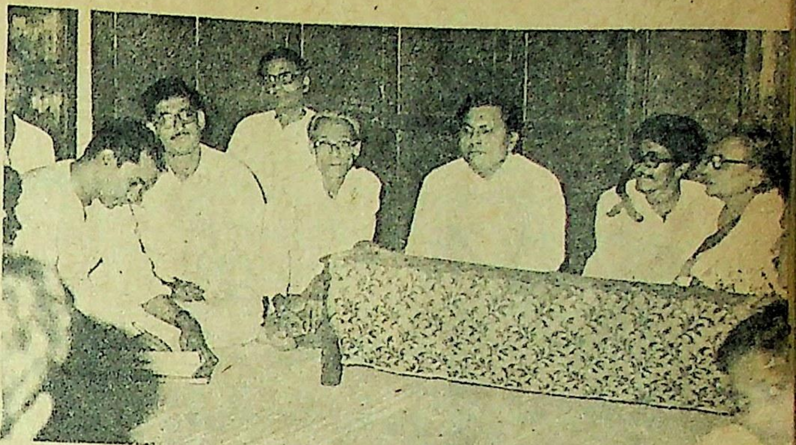

गोष्ठी का एक दृश्य : (बायें से) सर्वश्री बुद्धिनाथ मिश्र, मनुदेव भट्टाचार्य, देवानंद शर्मा, भोलाशंकर व्यास, डा. शिवप्रसाद सिंह, मृगांक शेखर घोषाल तथा श्रीमती आशापूर्णा देवी

उन्होंने चिंता व्यक्त की कि बंगला कथा साहित्य में प्रतिभाशाली लेखिकाओं की संख्या धीरे-धीरे घटती ही जा रही है. आज बंगला कथा लेखिकाओं का प्रतिनिधित्व पुरानी पीढ़ी ही कर रही है.

हिंदी के प्रतिनिधि कथाकार डॉक्टर शिवप्रसाद सिंह ने संतोष व्यक्त किया कि हिंदी में यह बात नहीं है और नयी पीढ़ी की कई कथा लेखिकाओं ने हिंदी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है. उन्होंने बताया कि नयी पीढ़ी का हिंदी कथाकार दिशाहीनता की स्थिति से उबर कर नवीन मूल्यों की सृष्टि में जुट गया है. वह अपने दायित्व को अच्छी तरह समझने लगा है और इसीलिए वह कहानी में मामूली लोगों को उनकी अपनी भाषा और परिवेश में प्रस्तुत करने में ज्यादा सक्षम दिखायी देता है.

उन्होंने आशापूर्णा देवी की इस बात पर आपत्ति की कि बंगला में जो कुछ नया लिखा जा रहा है, वह बेकार ही है. उन्होंने कहा कि बंगला की कथा विधा भावुकता में रोने-गाने की स्थिति से बहुत आगे बढ़ चुकी है और हिंदी की कथा विधा भी 'देवदास' की परंपरा से मुक्त हो कर नया बौद्धिक आयाम ग्रहण कर रही है.

हिंदी के सुप्रतिष्ठित विद्वान प्रोफेसर भोलाशंकर व्यास ने कहा कि नवीनता के नाम पर यौन कुंठाओं और संत्रास वाली मनोवृत्तियों को आधार बना कर लिखी जा रही कथाओं का दौर अब लगभग खत्म हो चुका है. यह अच्छी बात है, जो स्वस्थ दिशा की ओर संकेत करती है.

गोष्ठी के संयोजक युवा कवि बुद्धिनाथ मिश्र ने काशी में एक ऐसे मंच की आवश्यकता महसूस की जहां हिंदी के अलावा अन्य भाषाओं के साहित्यकार एक-दूसरे से मिल सकें और समसामयिक स्थितियों पर विचार-विमर्श कर सकें. उन्होंने कहा कि हिंदी में जिस अनुपात में अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की कृतियों का अनुवाद हो रहा है, उस अनुपात में हिंदी की कृतियों का क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद नहीं हो रहा है.

गोष्ठी का समापन श्री बुद्धिनाथ मिश्र के काव्य-पाठ से हुआ. आरंभ में तुलसी पुस्तकालय के मंत्री श्री देवानंद शर्मा ने साहित्यकारों का स्वागत किया और अंत में श्री मृगांक शेखर घोषाल ने धन्यवाद-ज्ञापन किया. □□□

हत्यारा

अनीता औलक

उसे अचानक मोड़ पर संजीव मिल गया. मिल क्या गया, टकरा गया. उस टकराहट से जो झंकार पैदा हुई, उसमें वह खो गयी. वह सुन नहीं सकी कि संजीव ने उससे क्या-क्या कहा. उसका सारा ध्यान इसमें केंद्रित था कि उसे संजीव से क्या-क्या कहना है. लेकिन जिस तरह बिना किसी चेतावनी के वह दिखा था, ठीक उसी तरह गायब भी हो गया. उसने फिर चलना और सोचना शुरू किया. आखिर संजीव ने उससे क्या कहा होगा! क्या उसने यह तो नहीं कहा...और अगर यह नहीं तो यह कहा होगा...अगर यह भी नहीं तो फिर क्या?...

अच्छा हुआ जो उसने नहीं सुना, क्योंकि संभव है कि संजीव ने वह सब न कहा हो कि जिसकी उसे दरकार है—तलब है.

वह जानती है कि संजीव एक व्यस्त और स्तर वाला व्यक्ति है. शायद इसीकी वह कायल भी है. यह भूल कर कि वह अपने में कुछ भी नहीं. संभवतः यही हीन भावना उसे सुनने का अवसर कम और सोचने का अवसर अधिक देती रहती है.

अशोक से भी उसे संजीव ने ही मिलवाया था.

—तुम्हारा नाम संजीव है न?

—कहो.

—तो मिलवा दो...

वह देखता रहा था, उसे बिखरते हुए. उससे रहा नहीं गया. वह उसे घर ले आया. तब अशोक भी वहीं था. फिर पता नहीं कब संजीव लापता हो गया.

उसे संकोच जरूर हुआ था, लेकिन बिखरने से बच गयी थी. उसका महल बन गया था. महल के दो झरोखे थे. एक उसका बनाया हुआ था, दूसरा संजीव का. दुनिया से जुड़े रहने के लिए अशोक ने इन्हीं दो झरोखों को चुन लिया था.

वह अशोक को आंखों से पिलाती और संजीव उसे उनमें डूबने से बचाये रखता. संभवतः इन दोनों के बिना अशोक का जीवन बेवजह था. वह खुद भी इसका फैसला नहीं कर सका था कि इन दोनों में से किस एक की कमी होने पर भी वह जी सकता है.

वह अशोक को फूल, पत्तों और हवा का महत्व समझाती और संजीव उसका ध्यान सड़क के पत्थर और आकाश में उड़ान भरती पतंग की तरफ मोड़ता.

कभी-कभी जब उसके और संजीव के बीच मतभेद हो जाता तो अशोक के लिए धर्मसंकट उत्पन्न हो जाता. उस समय उसका और संजीव का आपसी समझौता ही उसे नया जीवन देता.

* *

पड़ोस में हत्या हो गयी थी—सुन कर उसकी रूह कांप गयी. यदि उसके घर में हत्या हो जाती तो संभवतः वह बर्दाश्त न कर सकती.

—क्यों...? हत्या करना कोई अनोखा काम है क्या? अशोक ने पूछा था.

—पता नहीं, लेकिन हर कोई भी नहीं कर सकता, उसने उत्तर दिया था.

—कोई भी कर सकता है... अगर मुकाम आये तो... संजीव ने कहा था.

—लेकिन हत्यारे को क्या मिलेगा...?

—मिलेगा कुछ नहीं ...हत्यारा एक दयनीय व्यक्ति होता है... वह व्यक्ति जो किसी को कुछ दे न सके... हत्यारा ही होता है...उसे नफरत नहीं...अंडरस्टैंडिंग की दरकार होती है...

—अंडरस्टैंडिंग ... क्यों... एक हत्यारे का अंडरस्टैंडिंग से क्या वास्ता? ...

—हत्यारा भी इनसान ही होता है. ...उसकी भी अपनी अपेक्षाएं और सीमाएं हो सकती हैं...

—तुम समझते हो कि तुमने कह दिया और मैंने मान लिया!...वह बिगड़ पड़ी.

तभी अशोक बोला—सबसे ज्यादा तो तुम्हें अपनी सीमाएं तंग कर रही हैं... तुम समझने की कोशिश ही नहीं करना चाहतीं.

फिर उसे अपने साथ सटा कर बोला—अच्छा, अब छोड़ो...बड़ी नादान हो.

—और संजीव जिद्दी है...

—यह उसकी सीमा है...

—और तुम पक्षपाती हो...

—लेकिन... यह भी तुम्हारी ही सीमा है, उसने बचते हुए कहा. और तीनों हंस दिये.

* *

कई बार शामें घर पर ही निकल जातीं—जब संजीव नहीं होता था. ऐसे में भीड़ में अशोक को और भी अकेलापन सताता था.

दोनों खिड़की के पास बैठ कर चाय की चुस्की लगाते बाहर क्षितिज तक की सैर कर लेते. वह वही सब देखती जिसे अशोक देखता, उसी हवा में सांस लेती और फिर दोनों सांसों को एक ही लय देती—अशोक के जिस्म से आती गंध को अपने में कैद करती. फिर उसके कहे गये एक-एक शब्द को दस्तावेज का रूप देती और एक-एक पल को भी किसी दास्तान से कम न समझती. फिर दोनों अंधेरे की गिरफ्त में आ जाते...तब तक, जब तक कि किरणें ही न आक्रमण करतीं.

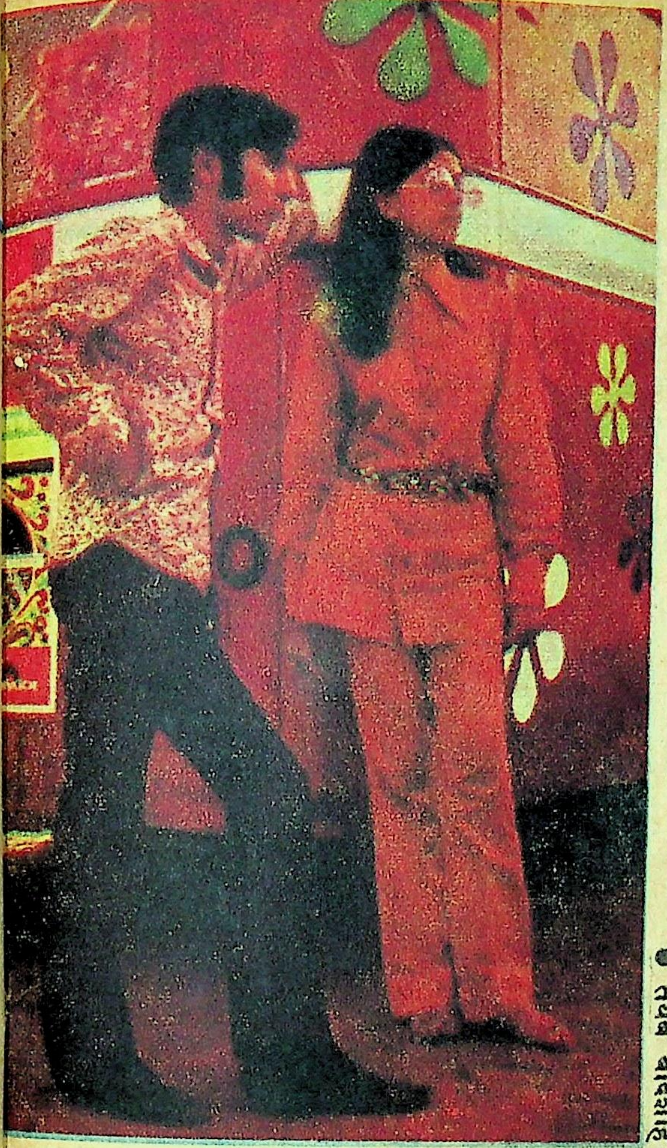

● राघव आलवाणी

—तुम संजीव से क्यों प्यार करते हो? उसने बच्चों की तरह मचल कर पूछा.

—मैं तुम्हें क्यों प्यार करता हूं?

—मुझे क्या पता . . .तुम्हीं बताओ. . .

—मुझे तो यह भी नहीं पता. . .

—अच्छा तो फिर यह बताओ कि तुम मुझसे क्यों प्यार करती हो. . .?

—मुझे भी नहीं पता . . . फिर अशोक को कस कर, चूम कर बोली—तुम जलील हो.

—और तुम बेवकूफ हो. . .बैठे-बैठे अपने लिए समस्याएं पैदा करती रहती हो. . . फिर उसे अपने वक्ष से सटा कर बोला —तुम्हारी सीमा यह है. . . इसके आगे कुछ नहीं . . .

* *

पत्र-व्यवहार से अधिक और कोई संपर्क उसका संजीव से नहीं रह गया था. वह भी बारह पत्रों पर एक पत्र की वसूली की दर से :

तुम्हारे सभी पत्र मिल गये. . . तुमने अपने बारे में कुछ नहीं लिखा. . .

वह चाहती थी कि लिखे कि उसकी भी अपनी सीमाएं हैं. . .या फिर. . .तुमने भी तो अपने बारे में कुछ नहीं लिखा.

पता नहीं क्यों, वह अपेक्षा करती थी कि ऐसे में संजीव को उसके बिल्कुल निकट होना चाहिए था. अशोक के नाते ही सही. . .

वह उसे लिखना भी चाहती थी. लेकिन संभवतः कारण दूसरा होने के नाते नहीं लिख सकी.

एक बार वह रानीखेत भी गयी थीः संजीव को उसके आने का पता भी चला था. लेकिन उसके काम की दिक्कतें उसे परेशान किये हुए थीं. फिर वह जिन दिक्कतों को समझाने आया था, उन्हीं की वजह से लौट भी गया था.

उसने फिर उसे दूर,बहुत दूर तक जाते देखा—इतनी दूर, जहां समझना और समझाना दम तोड़ देता है.

जाने से पहले उसके मन में आया था कि उससे पूछे कि तुम्हारा नाम संजीव ही है न! लेकिन आज के संदर्भ में उसे यह सब बेमानी लगा.

जिस समय संजीव अशोक का दाह-संस्कार कर रहा था, उस समय कहीं उसे विश्वास था कि वह उसे जलायेगा नहीं,बल्कि जिलायेगा. . .फिर से. . .उसके लिए.

लेकिन देखते-देखते और का और ही हो गया था. संजीव इतना बिखर गया था कि उसे जिलाने की बात समझ ही नहीं आयी. उसे सब असंभव और अशुद्ध लगा. संभवतः सीमाओं के घेरे में आ चुका था.

—प्रत्येक व्यक्ति, फिर चाहे वह 'हत्यारा' ही क्यों न हो, किन्हीं सीमाओं से बंधा होता है—जिंदगी की मजबूरियां ही उसे 'हत्यारा' बना देती हैं. . . कोई भी व्यक्ति महज शौक से 'हत्यारा' नहीं बनता. . . संजीव ने कहा था. . .

—उसकी सीमाएं कुछ भी रहें, लेकिन औरों को तो नाहक दुख देता है न. . . वह बोली थी.

—लेकिन यह कैसे कह सकती हो कि स्वयं भी दुख नहीं पाता?. . .

—पाता होगा. . .लेकिन इससे तो बेहतर होता यदि अपने आप को मार देता, क्योंकि अपने दुख से दूसरों को मारना कोई समाधान नहीं. . .

—ठीक है, लेकिन अपने को मारना भी कहां का समाधान है?

—जो भी हो. . .लेकिन रहेगा 'हत्यारा' ही. . .

उसने इतना लंबा पत्र संजीव को लिखा कि जितने से वह अपने लिए न्याय मांग सकती. उसने उस पत्र को कई बार पढ़ा, मानो सामने खड़े संजीव को विश्वस्त कर रही हो. लेकिन सुनाने की जगह उसने सुना अधिक. . .

क्या संजीव भी उसे विश्वस्त करना चाहेगा?

□□□

सी-७१५७ ईस्ट ऑफ कैलास,
डी. डी. ए. फ्लैट्स, नयी दिल्ली.

कृतियां

दो कहानी-संग्रह

'बातूनी लड़की'

लेखक : रामसरूप अणखी;
प्रकाशक : चित्रलेखा प्रकाशन, १४७ सोहबतिया बाग, इलाहाबाद;
१३० पृष्ठ; सात रुपये

● से. रा. यात्री

रामसरूप अणखी मूलतः पंजाबी के लेखक हैं और पंजाबी में अब तक उनके छह कथा-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं. प्रस्तुत संग्रह में अणखी की आठ कहानियां संग्रहीत हैं जो हिंदी की पत्रिकाओं में यत्र-तत्र प्रकाशित भी हो चुकी हैं. संग्रह के आरंभ में भूमिका स्वरूप **'गर्दिश के दिन'** (**'सारिका'** में पूर्व-प्रकाशित) भी शामिल है.

अणखी की कहानियां प्रायः छोटी हैं—मात्र एक कहानी **'कटे पंखों वाला उकाब'** अपेक्षया काफी लंबी है. **'गर्दिश के दिन'** को कहानी नहीं कहा जा सकता, पर इसमें उन परिस्थितियों का गहराई से उल्लेख किया गया है, जिन्होंने अणखी को रचनात्मक लेखन की ओर प्रवृत्त किया है. अणखी ने अपनी परिस्थितियों और परिवेश का बहुत बेबाकी और बारीकी से उल्लेख किया है. भूमिका के व्याज से इस आत्म-कथ्य में जो कुछ कहा गया है, उसमें श्रेष्ठ रचनात्मकता के सभी गुण समाविष्ट हैं.

'बातूनी लड़की' की लगभग सभी कहानियों में निम्नमध्य वर्ग के निरंतर ध्वस्त होते चले जाने के संकेत हैं. अणखी के लेखन की सर्व-प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने पंजाब के वृहत्तर देहात का प्रकृत रंग अपनी रचनाओं में पूरी तरह उजागर किया है. उनके कथ्य में एक ऐसी बेलौस सादगी है जो उन्हें पाठक से सीधे जोड़ देती है और शैली या शिल्प के स्थान पर कथ्य की विदग्धता ही पाठक का अभीष्ट बन जाती है. अणखी के अधिकांश पात्र पंजाब के ठेट देहाती रंग में रंगे हैं, परंतु उनकी संवेदना इतनी व्यापक और सार्वजनीन है कि लोकेल कहीं व्याघात उपस्थित नहीं करता. वह अपनी कहानी किसी विचार अथवा गंभीर मंतव्य से आरंभ नहीं करते—रोजमर्रा की जिंदगी का घिचपिच माहौल और क्षीण होते हुए पात्र उनकी कहानियों को गहरी मानवीय संवेदना दे जाते हैं. आदमी से आदमी को जोड़ने वाला डायलॉग अणखी के लेखन का अदम्य अस्त्र है!

अणखी का कथ्य चूंकि महत्वपूर्ण है, इसलिए उन्हें कहानीपन को बरकरार रखने के लिए व्यर्थ की जोड़-तोड़ नहीं करनी पड़ती. संग्रह की आठ कहानियों में कई तरह के रंग देखे जा सकते हैं. इन कहानियों में यौन संबंधों का आकर्षण-विकर्षण भी देखा जा सकता है. अणखी ने दांपत्य संबंधों की बारीकियों का विश्लेषण कतिपय कहानियों में किया है—इस दृष्टि से उनकी कहानियां **'कटे पंखों वाला उकाब'**, **'खारा दूध'**, **'फासले'**, **'नहाया हुआ घोड़ा'** आदि द्रष्टव्य हैं. परिस्थितिजन्य संदेहों से दांपत्य संबंधों का अंदरूनी विश्वास किस प्रकार खंडित हो कर विदीर्ण हो जाता है, यह उनकी कई कथाओं का उपजीव्य है.

आम आदमी आज कितना त्रस्त है, और सुरसामुख-ऐसी बढ़ती महंगाई ने उसके पैरों को अपनी जमीन से कितना उखाड़ दिया है— यह भी अणखी की कहानियों में व्यक्त हुआ है. उनकी कहानी **'पहली तारीख'** और **'ईंधन'** इस दिशा में उल्लेखनीय हैं. मात्र बहिर्परिवेश अणखी के लेखन में नहीं मिलता — **'कटे पंखों वाला उकाब'**, **'खारा दूध'**, और **'नहाया हुआ घोड़ा'** में दैहिक उष्णता और वर्जना-विखंडन के सूक्ष्म संकेत निहित हैं.

अणखी की कहानियों से गुजरते हुए महसूस होता है कि ये कहानियां गहरा कंप और जीवित थरथराहट पैदा करती हैं—ये कहानियां केवल इकहरी सचाइयों का अलबम नहीं हैं. आंदोलित करने वाली संप्रेषणीयता कतिपय कहानियों का मूल स्वर है. आर्थिक पराधीनता मानवीय आकांक्षाओं के कोमलतम स्तरों पर कैसी घिनौनी खरोंच छोड़ जाती है, यह कटु यथार्थ भी कई कहानियों में सफलता के साथ उभर कर सामने आ गया है. ☐

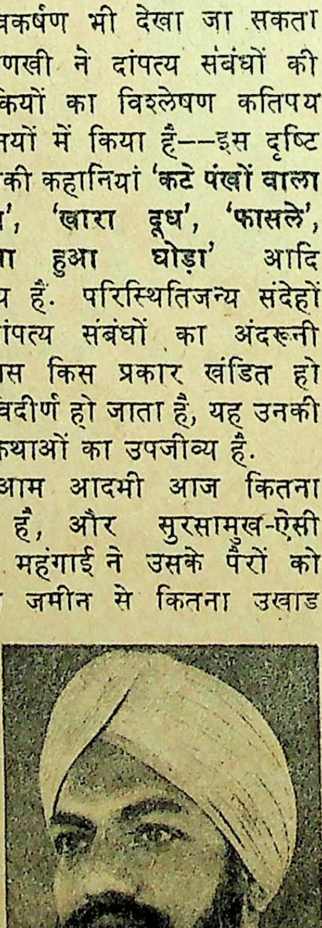

रामसरूप अणखी

'अजनबी होता हुआ मकान'

लेखक : रॉबिन शॉ पुष्प;
प्रकाशक : अनुपम प्रकाशन, पटना;
७१ पृष्ठ; छह रुपये.

● डॉ. उषा वर्मा

कथ्य और कथन तथा आधुनिक भाव-बोध की दृष्टि से सातवें दशक के कहानी-शिल्प ने जिस स्वरूप और धारा-प्रवाह को अपनाया है, उसमें रॉबिन शॉ पुष्प की कहानियां सही उतर पायी हैं.

'अजनबी होता हुआ मकान' की सारी कहानियां जीवन की गहरी सूझ, नवीन अर्थ-गौरव, शिल्प के अनौपचारिक सुलझाव, ताजगी, सार्थक तथा उपयुक्त सांकेतिकता तथा दृष्टि की गहनता के कारण विशेष प्रभावशाली बन गयी हैं. इनकी कहानियों में अभिव्यक्त वर्तमान नारी-जीवन की विसंगतियों का सजीव चित्रण

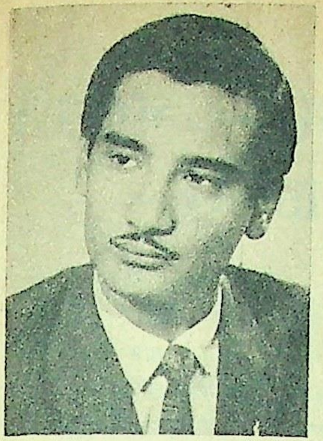

रॉबिन शॉ पुष्प

पाठक को न जाने कितने अलिखित अर्थ समझाने की क्षमता रखता है. प्रस्तुत कहानी-संग्रह की कहानियां दुनिया की वास्तविकता तथा जीवन के टूटते-चुभते दर्पण के स्वच्छ प्रतिबिंब हैं.

'**अजनबी होता हुआ मकान**' नारी-जीवन की गहरी पीड़ानुभूति तथा द्वंद्वपूर्ण मनोदशाओं का एक ऐसा चित्रफलक है, जहां जीवन की एक अव्यक्त उमस भरी तड़पन से मुक्ति पाने के लिए इला श्रीवास्तव पति, घर-द्वार, नारी-रिश्ते, सब कुछ छोड़ देने के बाद भी एक तनावपूर्ण संघर्ष तथा हर वक्त पीछा करती एक कड़वी संदेह दृष्टि से अपने को मुक्त करने में असफल रही. '**शवयात्रा**' मध्यम-वर्ग की घिसती-टूटती कसमसाहट भरी, बिखरती जिंदगी का दस्तावेज है, लक्ष्मी ऐसी ही टूटी हुई जिंदगी ढोने को विवश है. लेखक ने बड़ी ही बारीकी से मध्यम वर्ग के अर्थाभाव में संघर्ष-रत जीवन का चित्र खींचा है. एक ओर पैसे का अभाव, दूसरी ओर जीवन के प्रति एक नहीं टूटने वाला मोह '**शवयात्रा**' का दर्दनाक प्रस्तुतीकरण है. '**विकल्प**' एक शाश्वत अंत:संघर्ष की विकल गाथा है. आदमी उम्र या परिस्थितियों से नहीं हारता है, बल्कि अंत:संघर्ष की सुलगती आग में तिल - तिल बिखर कर राख हो जाता है. '**सर्पदंश उर्फ बैसाखियों पर टिका चेहरा**' नयी पीढ़ी के असफल विद्रोह की कहानी है. राजनीतिज्ञ पिता की तिकड़मबाजियों की बैसाखियों पर टिका पुत्र सामाजिक व्यवस्था, गंदी और बेईमान राजनीति के विरुद्ध विद्रोह करना चाहता है, किंतु कर नहीं पाता, क्योंकि आत्मा नाम की चीज ढेर-सारी कुर्सियों, पदलोलुपता और काले धन के बोझ तले दब जाती है. □

एक उपन्यास

'माटी की महक'

लेखक : सच्चिदानंद धूमकेतु

● **मधुकर सिंह**

सन ६० के आसपास कतिपय कथाकारों ने भारतीय आर्थिक सामाजिक स्थितियों से कट कर वैयक्तिक अनुभूतियों और जिस 'संबंधहीनता की खोज' के प्रति अपनी संलग्नता दिखलायी थी, उसकी जड़ता से उपन्यास भी अछूता नहीं रहा था. इन बौद्धिक विलासियों की यह लाचारी थी कि वे अज्ञेय-जैनेंद्र की परंपरा से जुड़ते चले गये. नागार्जुन के '**बलचनमा**' और फणीश्वरनाथ रेणु के '**परती : परिकथा**' के बाद कुंठा और गत्यावरोध की स्थिति उत्पन्न होने लगी थी; परंतु '**अलग-अलग वैतरणी**', '**आधा गांव**' की परंपरा पुनर्जीवित हुई और युवा कथाकार सच्चिदानंद धूमकेतु ने साठोत्तरी ग्रामीण जिंदगी के अंतर्विरोधों, मूल्यों और अर्द्धचेतन सामाजिक, राजनीतिक स्थितियों को ले कर '**माटी की महक**' की रचना की.

धूमकेतु का यह उपन्यास '**माटी की महक**' बिहार के एक गांव रामपुर के आसपास केंद्रित है जो सन् '४६ के सांप्रदायिक दंगे से शुरू हो कर सन् '६२ के भारत-चीन युद्ध तक आ कर समाप्त हो जाता है. संपूर्ण उपन्यास नायिका गौरी के इर्द-गिर्द चक्कर काटता है जो किसानों के लिए जीवन-पर्यंत संघर्ष करती हुई अपने को बलिदान कर देती है. इस उपन्यास की कथा से अधिक महत्वपूर्ण है ठाकुर दे, भैन काका, हाजी साहब, मिसिर जी, ज्योति बहू, ओझाइन आदि के माध्यम से परिवर्तित होते गांवों की जीवंतता का वास्तविक चित्रण. लेखक अपने उद्देश्य में पूर्णतया सफल है और ग्रामीणों के संघर्षपूर्ण जीवन को चित्रित करते हुए इसने '**माटी की महक**' के अंतर्गत स्पष्ट किया है कि गांवों में सामूहिकता अब बिल्कुल नहीं रह गयी है. भाई और भाई तथा बाप-बेटे के बीच का तनाव अजीब तरह से जन्म ले चुका है. वैयक्तिक ईर्ष्या, राग-द्वेष, जातीयता और तरह-तरह की धार्मिक-सामाजिक संकीर्णताएं प्रबल होती जा रही हैं और बड़े और प्रतिष्ठित किसानों के चंगुल में खेतिहर मजदूर और निम्न श्रेणी के किसान तबाह और शोषित होते जा रहे हैं. परंतु लेखक को विश्वास है कि गंदी राजनीति के जाल से उबर कर गांव के सही लोग आगे आयेंगे. 'रास्ते कंटकाकीर्ण हैं, लेकिन उन्हें चलना है, रोटी के लिए, जीने के लिए.'

सामंती संस्कारों से ग्रस्त मोहन किसानों पर जुल्म करने के बावजूद अपनी प्रेमिका गौरी के प्रति कुंठाएं मार नहीं पाता और गौरी की हत्या भी करा देता है. गांवों से हो कर नेशनल हाइवे गुजरता है, बिजली के बल्ब चारों तरफ दौड़ गये हैं. फिर भी गांव में ऐसी अफवाहें जोर पकड़ लेती हैं कि 'पुवारी मुहल्ले में मुसलमान हिंदुओं को मार रहे हैं.' फिर तो गंड़ासे दंगाइयों के हाथों में दिखलायी पड़ने लगते हैं. उनकी आंखें खूंखार भेड़िये की तरह नजर आती हैं. सभी मरने-मारने पर उतारू हो जाते हैं. कितना भयावह बनता जा रहा है गांव! वस्तुत: धूमकेतु ने गांवों की छटपटाती हुई आत्मा की चीख पहचान ली है. इसीलिए '**माटी की महक**' एक संपूर्ण दशक की कथात्मक प्रतिक्रिया से ग्रामीण अर्थनीति में आमूल परिवर्तन की ओर संकेत देता है और इस सच्चाई के प्रति विश्वास व्यक्त करता है कि बगैर जनवादी चेतना के परिवर्तन की कामना गलत है. □□□

प्रसंग

मराठी का साहित्य बहुत संपन्न है. अधिकांश पाठक-वर्ग परिष्कृत रुचि का है. लेखकों का आदर किया जाता है... पर वे इससे अधिक के हकदार हैं. फिर भी राम गणेश गडकरी ऐसे अकेले मराठी नाटककार, कवि और हास्यकार हैं, जिनके चमत्कार ने पिछली आधी शताब्दी से अधिक लोगों को मंत्रमुग्ध कर दिया है.

परंतु भाग्य बड़ा क्रूर होता है. ३४ वर्ष की ही आयु में इस राजहंस को मौत ने बड़ी निर्ममता के साथ उठा लिया. उस समय एक प्रतिभाशाली लेखक के रूप में, अपने जीवनकाल में ही, वह एक किंवदंती बन गये थे. भाग्य हमेशा ही उनके प्रतिकूल रहा.

बड़े आश्चर्य की बात है कि गडकरी, जिन्हें मराठी रंगमंच का शेक्सपियर कहा जाता है, २६ मई, १८८५ को गुजरात में, नवसारी के पास, गणदेवी में एक सामान्य दर्जी के घर में जन्मे थे. उनके पिता गायकवाड़ी (गुजरात) में मामलतदार थे. इसलिए दस वर्ष की आयु तक उन्हें गुजराती में शिक्षा मिली. बालक राम, जिसे लाड़ में लालजी कहा जाता था, छुटपन में ही अपने पिता की छत्रछाया से वंचित हो गया. सारा परिवार ही इस आघात से चरमरा गया.

किशोर राम का जीवन घोर संघर्ष में बीता. **'ज्ञान प्रकाश'** के संपादक ने न जाने क्या सोच कर उसे पंद्रह रुपये मासिक पर व्यापार संवाददाता नियुक्त किया. परंतु युवा पत्रकार अंग्रेजी तारों का मराठी में अनुवाद करता था और घर पर ही रहता था. जब उससे बुला कर पूछा गया, तो वह संपादक पर उबल पड़ा—हर दिन मूल्य कैसे घट-बढ़ सकते हैं? अगर ऐसा होता है तो अधिकारियों की यह शैतानी रोकनी होगी. नतीजा यह हुआ कि उसकी वहां से छुट्टी कर दी गयी.

पुण्य-स्मृति

मराठी नाट्य-आकाश के राजहंस : राम गणेश गडकरी

१९०५ में राम ने सीता से विवाह किया, लेकिन विवाह असफल रहा. कुछ वर्ष बाद, उनकी मां ने अपने होनहार पुत्र को थियेटर की जगमगाती रोशनियों की रंगीन दुनिया से दूर रखने के लिए, दूसरा विवाह करने पर विवश किया. लेकिन दूसरा विवाह भी एक त्रासदी में बदल गया. भाग्य एक झटके के बाद दूसरा झटका दे रहा था.

उनका मस्तिष्क विचारों की चकरघिन्नी में घूम रहा था. फर्गुसन कॉलेज के पहले वर्ष में ही उन्होंने नाटक लिखा—**'प्रेम संन्यास'**. इसकी प्रमुख कथा विधवा-विवाह से संबंधित थी, जो कि उन दिनों का बहुत विवादास्पद विषय था. निस्संदेह गडकरी का लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ा, यद्यपि नाटक पर लोगों की मिश्रित प्रतिक्रिया देखने को मिली. लेकिन उनका यह प्रयास थियेटर की रोशनी देखता, इससे पहले ही उन्हें एक और विपक्ष का सामना करना पड़ा.

राम गणेश गडकरी

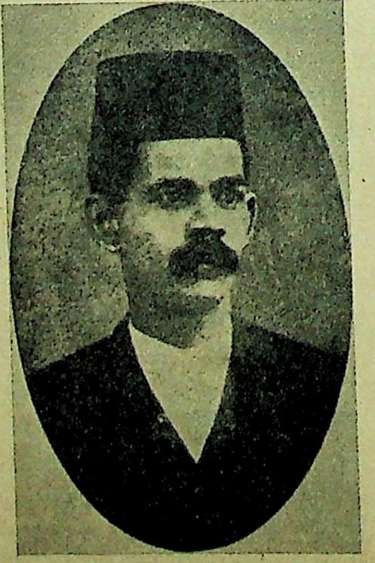

संघर्षशील लेखक ने कुछ दिन पहले अपना नाटक **'गर्व निर्वाण'** लिख कर पूरा किया था. उनके स्टेज-मैनेजर शंकरराव मुजुमदार ने उसे चुपचाप कहीं खो दिया. बेचारे लेखक को पूरा नाटक फिर से लिखना पड़ा, और प्रसिद्ध किर्लोस्कर कंपनी में पुनर्लिखित नाटक का पाठ शुरू हुआ.

महाराष्ट्र में उन दिनों सामाजिक और राजनीतिक उथल-पुथल का दौर चल रहा था. लोकमान्य तिलक **'केसरी'** के माध्यम से दहाड़ रहे थे. आगरकर तथा अन्य कुछ समाज-सुधारक सामाजिक क्रांति के अग्रदूत थे. गडकरी यद्यपि स्वभाव से कुछ संकोची थे, फिर भी उन्होंने नासिक जा कर कुछ क्रांतिकारियों से भेंट की थी. वहीं ओजस्वी बैरिस्टर सावरकर ने प्रखर राष्ट्रप्रेम की मशाल जलायी थी. गडकरी का नाटक एक रूपक था, जिसमें हिरण्यकश्यप के पौराणिक चरित्र द्वारा ब्रिटिश साम्राज्यवाद की भर्त्सना करायी गयी थी.

प्रकृति से वह भक्त थे. पूना की गलियों में जहां कहीं भी वह गुजरते तो मारुति या किसी और मंदिर के समक्ष रुक कर जल्दी-जल्दी अपनी प्रार्थना जरूर कहते. अपने सिरहाने वह **'शिवलीलामृत'** अवश्य रखते थे. शिव और विठोबा के चित्र भी उनकी शैया के पास अवश्य रहते थे. शायद उनकी इसी भक्तिपरक रुचि की देन था **'पुण्यप्रभाव'**.

गडकरी का नाटक लिखने का एक अलग ही ढंग था. पहला अंक बाद में लिखते, बाद वाला पहले. नाटकीय गुणों, वाक्चातुर्य, भव्यता, करुणा और घोर त्रासदी में मराठी रंगमंच पर यह नाटक अभी तक अनोखा रहा है.

लेकिन उनके नाटकों में सबसे अधिक संपूर्ण और सशक्त है 'एकच

प्याला', जिसमें उन्होंने एक शराबी पति और उसकी परंपरागत, दुख झेलती हिंदू पत्नी का इतने मार्मिक और प्रभावपूर्ण ढंग से चरित्र-चित्रण किया है कि स्त्री और पुरुष दोनों, आज भी थियेटर में आंखों में आंसू भर लाते हैं. मराठी रंगमंच के प्रिय कलाकार बालगंधर्व, सिंधु की भूमिका इस निपुणता के साथ निभाते थे कि वृद्ध दर्शक आज भी यही बताते हैं कि ऐसा नाटक कभी नहीं लिखा जायेगा और कोई कलाकार भी इस उत्पीड़ित गृहिणी की भूमिका में बाल गंधर्व को नहीं पहुंच सकेगा.

भाग्य ने गडकरी के साथ अपना जो क्रूर खेल खेला, उसमें सबसे दुखद बात यह थी कि गडकरी अपने अंतिम और सर्वश्रेष्ठ तीन नाटकों का मंचन स्वयं नहीं देख सके. ये नाटक उनकी मृत्यु के पश्चात् रंगमंच पर प्रस्तुत किये गये. '**भाव बंधन**' तो उस समय लिखा गया, जब उनका स्वास्थ्य बुरी तरह से बिगड़ रहा था. अपनी मृत्यु वाली रात, २३ जनवरी १९१९, को उन्होंने अंतिम अंक का अंतिम दृश्य लिखना आरंभ किया. साहित्य-जगत के इतिहास में ऐसा कोई दूसरा उदाहरण देखने को नहीं मिलता, जहां नाटककार तब अंतिम दृश्य लिख रहा हो, जब कि वह स्वयं संसार के रंगमंच से विदा ले रहा है.

गडकरी की सबसे बड़ी ताकत और प्रभाव है, उनकी शब्दों पर मजबूत पकड़. सचमुच वह शब्दों के जादूगर थे, मराठी के सच्चे शब्द-मर्मज्ञ और चतुर श्लेषवादी.

जब किर्लोस्कर कंपनी पणजी (गोवा) में थी, उन दिनों उनकी जेब में कागज और स्याही खरीदने के लिए भी कुछ पैसे नहीं थे. निर्मम थियेटर मैनेजर शंकरराव मुजुमदार ने इस काम के लिए उन्हें चंद आने देने से भी साफ मना कर दिया. उस दशा में गडकरी ने इश्तहार इकट्ठा करके उनके पीछे अपने बहुत सुंदर नाटक '**पुण्यप्रभाव**' का पहला अंक लिखा.

उनकी सबसे अच्छी कविता '**राजहंस माझा निजला**' एक अमर कृति है. 'सुनहरे राजहंस' को विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन पर स्ट्रेचर में लाया गया. उनका चेहरा सूजा हुआ था और आंखें धंसी हुईं. वहां से उन्हें सावनेर (नागपुर के पास) ले जाया जा रहा था, जहां उनके भाई एडवोकेट थे. आंखों में आंसू लिये, सिसकियां भरते हुए, अपनी मौत का आभास पा उन्होंने अपनी अंतिम यात्रा शुरू की.

जब वह मरे तो ब्राह्मणों ने उनकी देह छूने से इनकार कर दिया. इसलिए नानासाहब खेडकर और मावलकर ने इस बदकिस्मत प्रतिभा का शव उठाने के लिए किसी तरह से चार भैया बुलाये--रामचरण, कालिकाचरण, शिवदयाल और रामरतन. कोलार नदी के किनारे उनके शव का दाह-संस्कार किया गया.

उनकी रचनाएं उद्धरणों का रूप ले चुकी हैं. अपने जीवनकाल में वह एक किंवदंती थे, आज भी हैं. मैं इस छोटी-सी श्रद्धांजलि को उनकी एक महान कविता '**कन्हैया बजाव मुरली**' की इन पंक्तियों से ही पूरा करूंगा:

अणु रेणु ही वेही स्वैर
भिन्नता विसरली वैर
अब नंदलाल! कर खैर,
प्रेमाची दुनिया उरलि,
कन्हैया बजाव मुरलि.

□ **वसंत देशमुख**

वह घर, जहां मराठी नाट्य-आकाश के राजहंस, राम गणेश गडकरी का जन्म हुआ

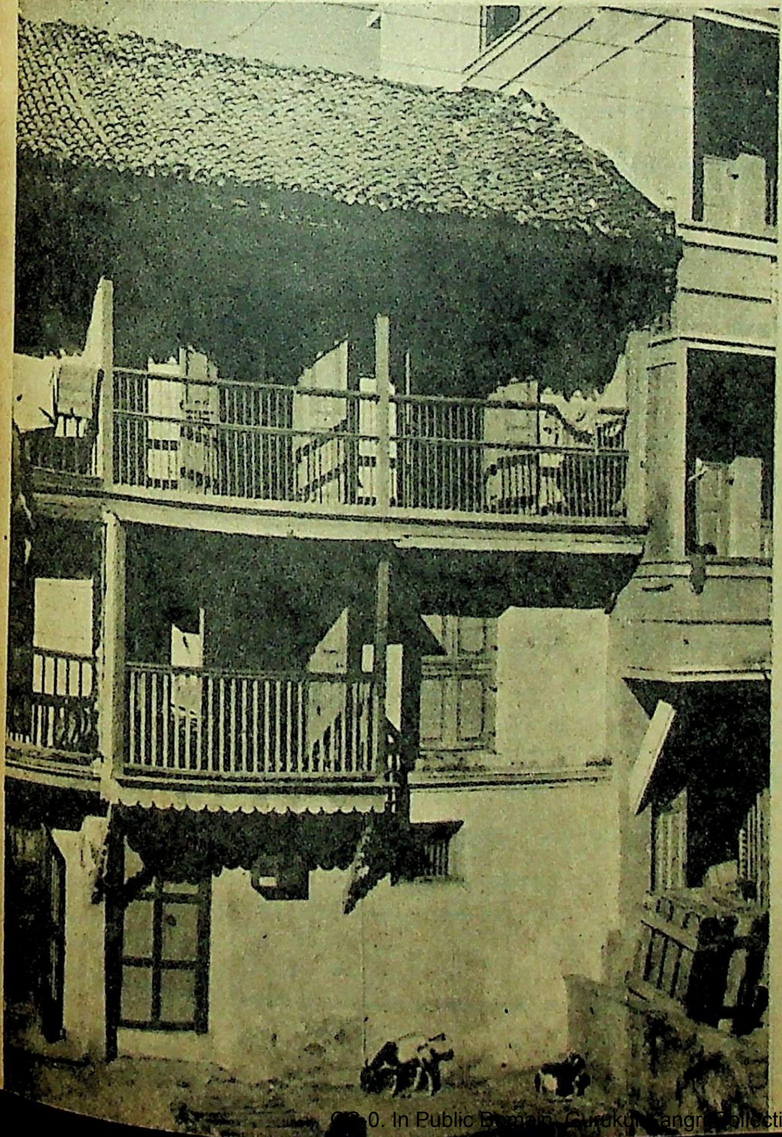

ऐटेक्स
सौंदर्य प्रसाधन
EYETEX REGD.
EYETEX 4 IN 1 BINDI
EYETEX BINDI
EYETEX DELUXE BINDI PENCIL
ARAVIND LABORATORIES
MADRAS-600 033
AL-75/76

"अपने परिवार में आज ही लाइए"

परमात्मा की अमर वाणी : सबसे प्राचीन धर्म ग्रंथ

"चारों वेदों का हिन्दी भाष्य"

मंत्र-अर्थ-स्वर-देवतादि सहित–२१०० पृष्ठ; २५×३८ से. मी. साईज के पृष्ठ–चार सुनहरी जिल्दें.

लागत ३५०) रु., मूल्य २८४) रु. – किन्तु प्रचार के लिये केवल २११) रु.–साथ में अनेक ग्रंथ उपहार में.

सर्वश्रेष्ठ आर्ट पेपर पर : मूल्य ५०१) रु. मात्र

१/४ धन अग्रिम भेजें. रेलवे स्टेशन का नाम लिखें– पंडिता राकेश रानी-प्रधानमंत्री–

दयानन्द संस्थान १५९७-हरध्यानसिंह मार्ग–करौल बाग, नयी दिल्ली-५
दूरभाष :– ५६६६३९

जन ज्ञान (मासिक) का नमूना मुफ्त मंगाए

DAM:76

चंपा: पृष्ठ १५ से आगे

चीजों पर नजर डालती हुई, अपने में ही मस्त आगे बढ़ी जा रही थीं. कई लोग जानबूझ कर इंदु और चंपा के बदन को हलका-सा स्पर्श करके चले जाते. कोई विलासप्रिय युवक अश्लील गाने की पंक्ति गुनगुनाता हुआ दो उंगलियां मुंह में डाल कर जोरों की सीटी बजा देता.

थोड़ी ही देर में वे दोनों भवानी के भव्य दालान में से निकल कर मंदिर के विस्तीर्ण आंगन में पहुंच गयीं. क्षणभर वे वहीं रुकी रहीं और सोचने लगीं कि अब किस दिशा में आगे बढ़ा जाये. दोनों ने प्रथम सारी दुकानें देख डालने का निश्चय किया.

दुकानों में बहुत भीड़ थी. कुछ लोग चीजें देखने-परखने में व्यस्त थे, कुछ मोलतोल करने में उलझे हुए थे और कुछ औरतों से बातचीत करने का मौका ढूंढ़ निकालने की ताक में थे. अपनी आंखें मटकाती हुई चंपा शौकीन नवयुवकों को तलाश रही थी. घंटे भर दोनों सहेलियां घूमती रहीं. अपने कामुक कटाक्षों से चंपा ने पांच-छह मर्दों को घायल कर दिया.

जब पालकी में बैठे हुए भगवान की फेरी निकली तो चमकीले कपड़े और हार पहने महाजन पालकी के इर्दगिर्द एकत्रित हो गये. उनकी कामांध नजर सुंदर-मोहक औरतों को खोजती रही.

देवदासियों के घेरे में चंपा शामिल हो गयी. उसकी मस्त शानदार चाल अनायास ही सबको अपनी तरफ आकर्षित कर रही थी. चंपा के अंग-प्रत्यंगों का सौंदर्य उस जानलेवा बीमारी में लगभग गायब हो चुका था. फिर भी सौंदर्य की कमी वह अपने नाजुक कटाक्षों से और लुभावने हावभावों से पूर्ण करने का प्रयास कर रही थीं.

मेलों का एक अनोखा नशा होता है. उस नशे से लोग बेहोश हो गये थे. चंपा देवदासी एक ही रात में ज्यादा से ज़्यादा रुपये कमा लेने की लालसा से पागल हो उठी थी. नींद से आंखें झपक रही थीं, फिर भी वह आंख फैला कर उस असीम भीड़ में से शौकीन तथा दिलदार मर्दों को चुनने का प्रयत्न कर रही थी. मंदिर के अहाते में बेशुमार भीड़ थी. रात का एक बज चुका था पर फिर भी नाटक का पर्दा ऊपर नहीं उठा था. भीड़ में कोलाहल मचने लगा था.

चंपा मंदिर की सीढ़ियों पर ही बैठी थी ताकि मनचाहे तब उठ कर जा सके. उसकी नजर मर्दों की भीड़ पर टिकी हुई थी.

अचानक पिछवाड़े से किसी ने धीरे से उसे आवाज दी. घबड़ा कर वह पीछे मुड़ी तो व्यंकू देवले ने उसे इशारे से अपने पास बुलाया. चंपा उठ कर उसके पास गयी और फिर उससे हलकी आवाज में फुसफुसाती रही.

थोड़ी-सी देर बाद भड़कीले कपड़े पहने हुए एक मर्द वहां आ पहुंचा. जेब में से निकाल कर उसने नोटों की एक गड्डी व्यंकू देवले के हाथ में दी. व्यंकू ने वह चंपा के स्वाधीन किया.

--आधे घंटे के बाद आप आइयेगा. मैं इंतजार करूंगी, कहते हुए चंपा उसी क्षण घर की तरफ मुड़ी.

मेले के घुलीमिली आवाज वातावरण में निनादित हो रही थी. चंपा के हाथ में पचास रुपयों के नोट थे पर उन रुपयों के बदले में देने वाले की वासनापूर्ति करने की ताकत अब उसके शरीर में थी ही नहीं.

घर में कदम रखते ही मेले का वह अजीब नशा उतर गया. जीत कर आते हुए वीर के समान वह हतबल हो कर क्षणभर चारपाई पर लेट गयी.

मां और मौसी बच्चों के साथ अभी भी नाटक देख रही थीं. घर में वह बिल्कुल अकेली थी. तभी वह अनजान गृहस्थ पांवों से जमीन कुरदते भारी-भरकम गैंडे के समान मस्ती में झूमता हुआ आ धमका, उसकी आहट पाते ही चंपा भय से कांप उठी.

वह चारपाई से उठी. मुंह पर मुसकान लाते हुए उसका स्वागत करके वह आगे बढ़ी. उसकी तरफ देखते ही वह मर्द सहसा रुक गया. उसके चेहरे पर परिवर्तित भाव उभरे. मंदिर की सीढ़ियों पर उसने चंपा को थोड़ी देर पहले ही तो देखा था. चंपा का यौवनावस्था का उन्माद लुप्त हो गया था. वह सूख गयी थी, पूर्णतः रसहीन हो गयी थी.

गुस्से से उस मर्द ने एक झटके में चंपा को अपने पास खींचा. वह दाम दे चुका था और अपनी पसंद लायक कुछ चंपा से प्राप्त करने की उसकी आशा नष्ट हो चुकी थी. लेकिन उसकी कामवासना अमर्यादित हो गयी थी. उस पर वह काबू नहीं कर सकता था.

चंपा ने नम्रतापूर्वक कहा--इस तरह आप नाराज मत हों. जरा बैठिये ना.

वह गरजकर बोला--बैठूं? किसलिए? पचास रुपयों में तो मुझे मस्त जवान लड़की मिलती. कहते हुए चंपा की बांह उसने इतनी ज़ोर से पकड़ी कि दर्द के मारे चंपा चिल्ला पड़ी. उसने तुरंत बत्ती बुझा दी और चंपा को चारपाई पर पटक दिया.

चंपा अब जोर-जोर से चिल्लाने लगी--नहीं नहीं, ऐसा मत करो!

घर में और कोई था भी तो नहीं. वह बिल्कुल अकेली थी. शरीर से क्षीण, थकीहारी, पुरुष से घृणा करने वाली और संभोग से पूरी नफरत करने वाली, वह चीख रही थी पर उसकी पुकार सुनने वाला कोई नहीं था. वह कामासक्त मर्द अपनी मर्दानगी, अपना पौरुष बेचारी बेसहारा चंपा पर उतारते हुए अपने पचास रुपये पूरी तरह वसूल कर रहा था. चंपा का हृदयविदारक आक्रोश, उसका हाहाकार क्षीण होते हुए घर के उस सूने अंधेरे में विलीन होता गया. . .

□□□

(अनुवाद : मालिनी बिसेन)

जीवन में कई खुशियों के पल होते हैं
सरदर्द को आपकी खुशियां बिगाड़ने न दीजिये

२ ऐस्प्रो लीजिये
माइक्रोफ़ाइन्ड ऐस्प्रो दर्द को जल्दी खींच निकालता है
ASPRO
Nicholas
A.G.62

एक मस्ती भरी चाय
जैसे बोतल में भरी जाय

सूपर ललित

सूपर ललित—एक कड़ी चाय, मस्त चाय, मज़ेदार चाय। इसका भरपूर ज़ायका और बेमिसाल खुशबू दिल खुश कर देगी। जी हां, एक असली चाय के ये ही गुण तो आपको चाहिएं न! सचमुच यही चाय है, सही चाय। सूपर ललित जी भर के पीजिए। इस पर कोई बंदिश नहीं है।

SUPER
lalit
CTC
LEAF
TEA
सूपर
ललित
सी टी सी
पत्ती
चाय

सूपर ललित चाय

हर घूंट में नशा—हर चुस्की में मज़ा

dCA/1FSL/3d Hln.

समय के साथ चलिए!

वातावरण चाहे संघर्षमय तूफान का हो या बिल्कुल खामोशी का! समय क्या चाहता है, इसे धर्मयुग अच्छी तरह जानता है. इसीलिए जीवन के हर क्षेत्र में वह हर तबके के लोगों को साथ लेकर समय के साथ कंधा मिलाकर चलता है. आप भी धर्मयुग के साथ चलिए, समय के साथ चलिए, हर हफ़्ते धर्मयुग पढ़िए.

धर्मयुग

सामयिक साहित्य और
नव-सामाजिक चेतना का दर्पण

ARMS/BC/DH-16-140-HN

आज के युवा वर्ग के लिए...

नेसा

परिधान

नेसा आपकी पसंद के लिये बनाते हैं—
विविध प्रकारके 'टेरिन' काटन सूटिंग,
शर्टिंग, साडीयां और ड्रेस मेटेरियल्स

न्यू स्वदेशी मिल्स,
अहमदाबाद

Sobhagya NS-11 Hin

बेनेट कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए श्रीकृष्ण गोविंद जोशी द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित. पो बाक्स २१३, बंबई–१; दिल्ली आफिस : ७ बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली–१; कलकत्ता आफिस : १३/१ और १३/२ गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट लंदन आफिस : [illegible]

पंजीयत सं एम. एच. दक्षिण बंबई ३९

PODAR

textile

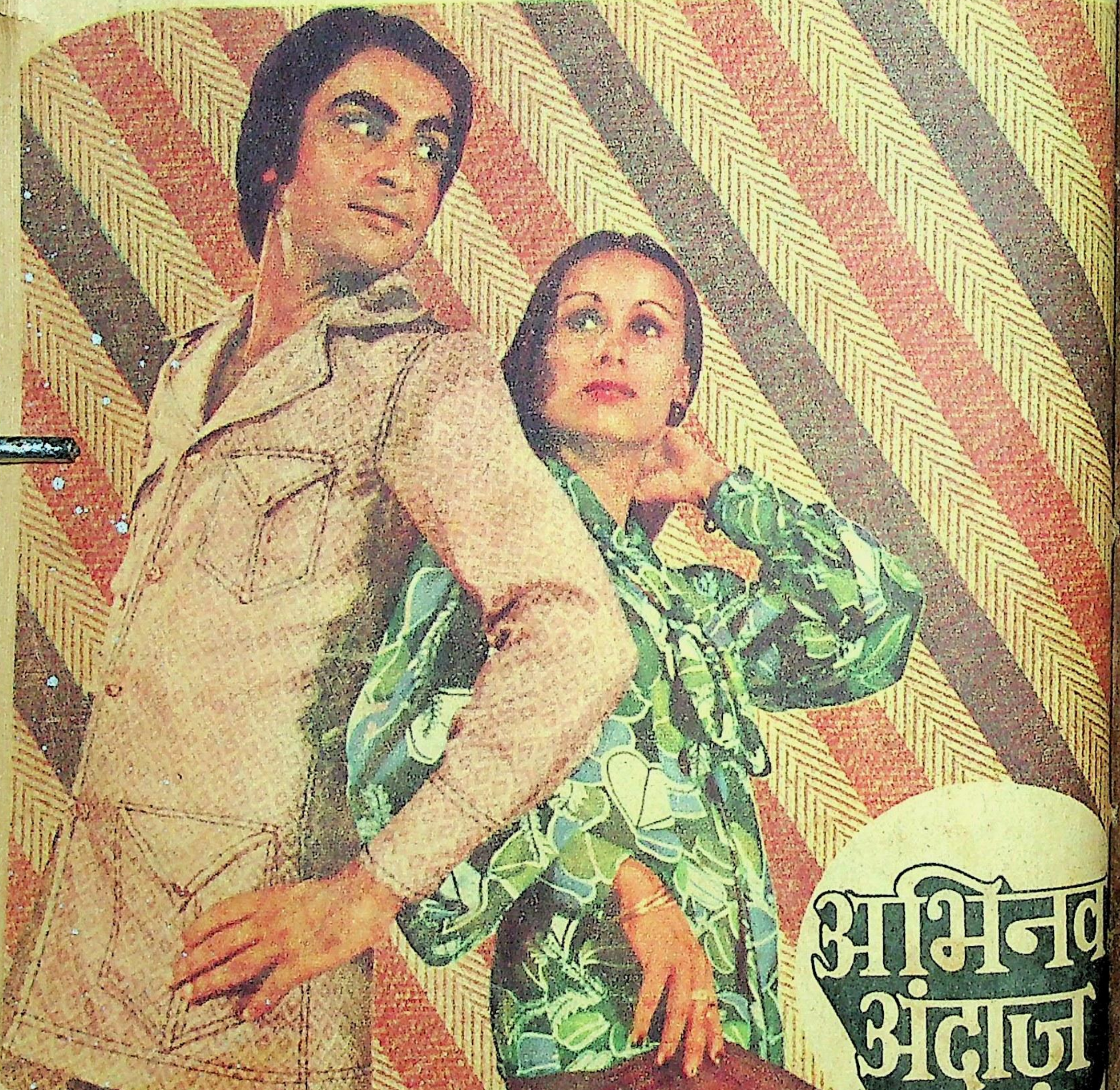

आपके व्यक्तित्व में निखार है। इसलिए हम आपके लिए विविध रंगों और डिज़ाइनों में सूटिंग्स के अनेक पोत बनाते है। हम आपके लिए नवेली कल्पना से सराबोर १००% पोलिएस्टर और पोलिएस्टर ब्लेंड सूटिंग्स, शर्टिंग्स, प्रिंटस, पापलिन्स और नायलान जार्जेट साड़ियों का निर्माण करते है।

पोदार मिल्स लिमिटेड • पोदार सिल्कस् एन्ड सिंथेटिक्स लिमिटेड • पोदार प्रोसेसर्स • पोदार स्पिनिंग मिल्स • पोदार

वरी १९७६

सारिका

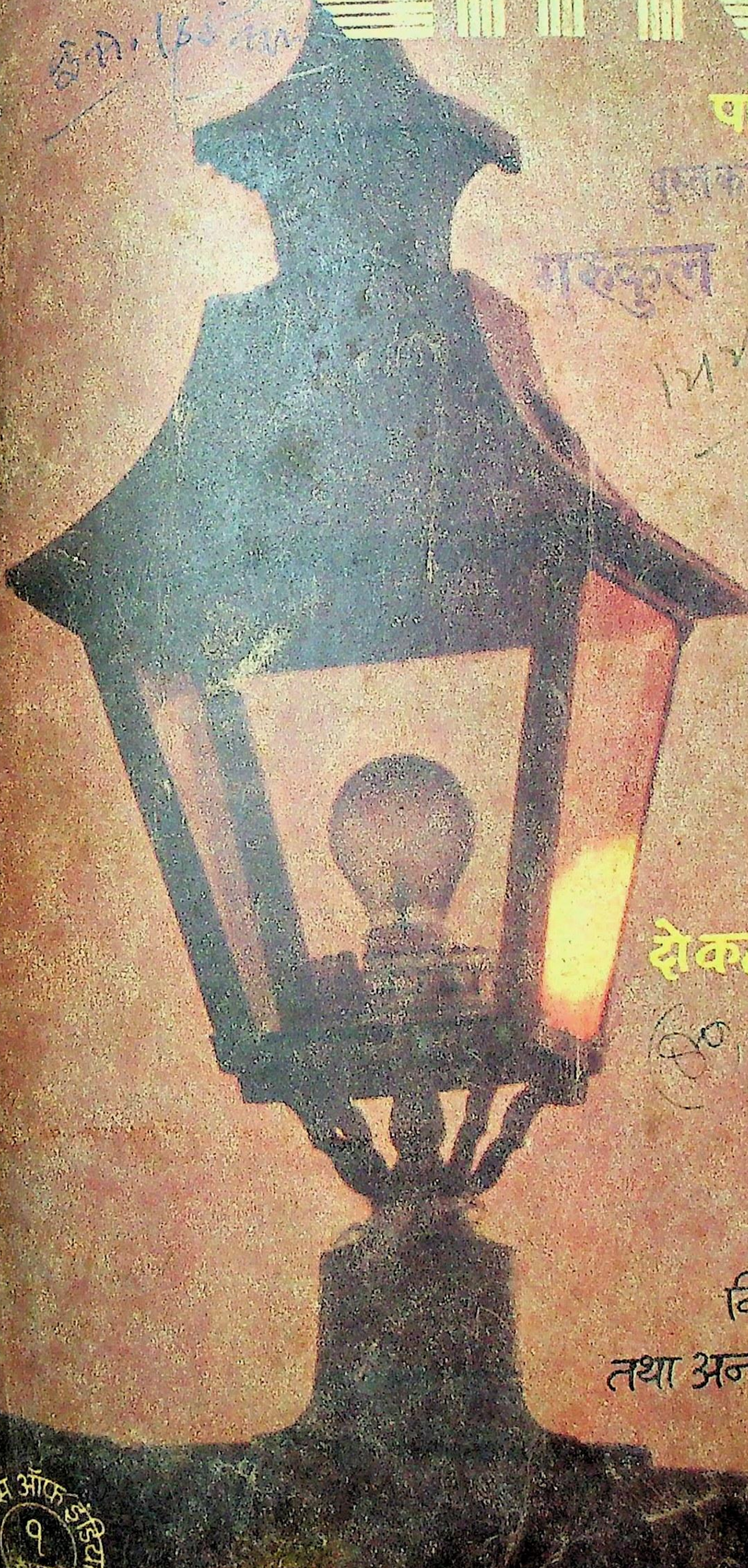

हि.प. 165
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी
14174

पांच लंबी कहानियां

सूर्यबाला
ओंकार ठाकुर
सुरेश चतुर्वेदी
मधुकर सिंह
विनोद शाही

•

रमेश गुप्त
ज्योत्स्ना देवधर
निरुपमा सेवती
मंदाकिनी गोगटे
आदि की रचनाएं

•

दो कहानियां मॉरिशस से

•

60

गर्दिश के दिन

दीप्ति खंडेलवाल

•

साथ में-
विविधा, फिल्में, कृतियां,
तथा अन्य सभी स्थायी स्तंभ

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन
१ रुपया

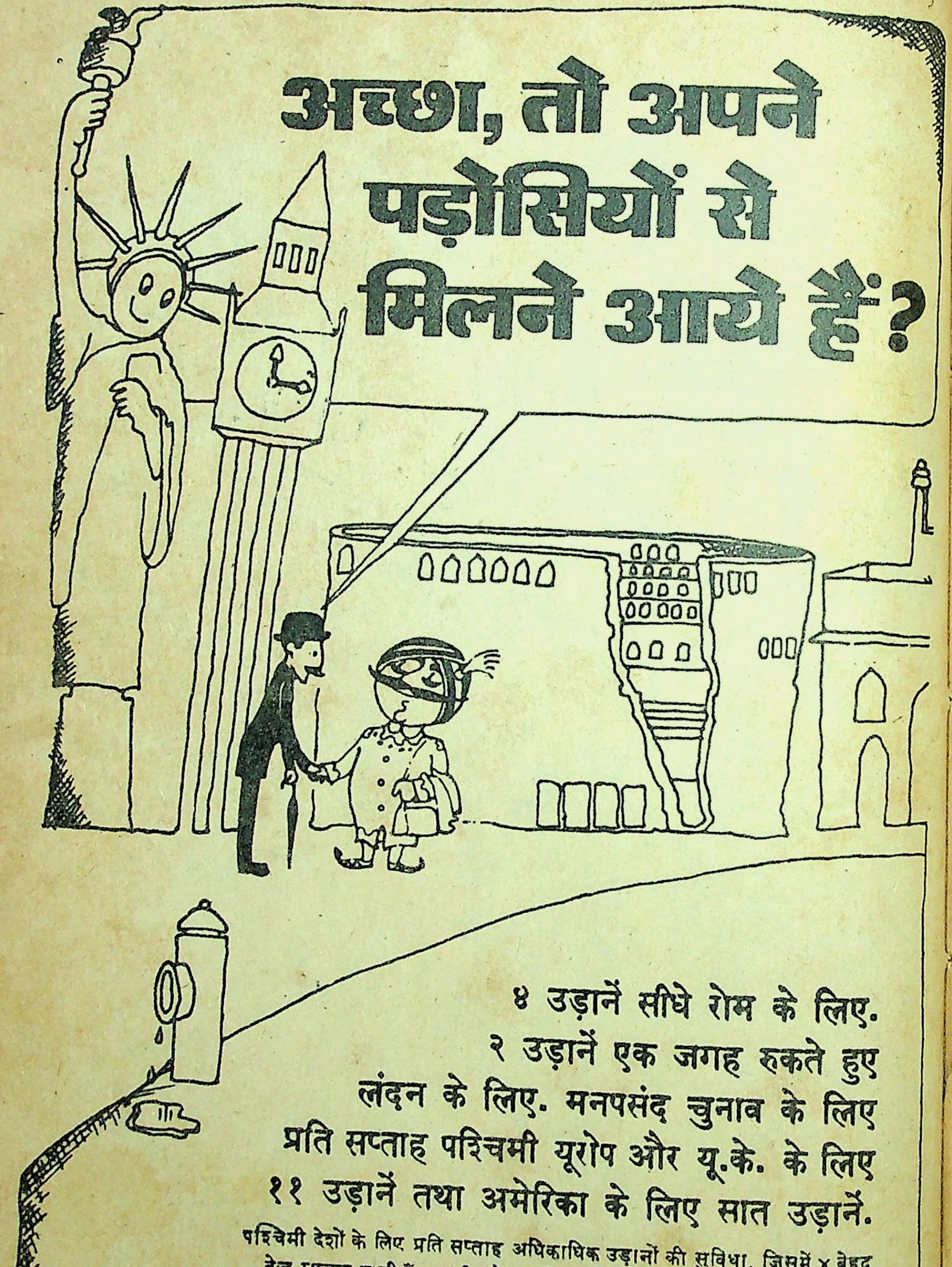
अच्छा, तो अपने पड़ोसियों से मिलने आये हैं?

४ उड़ानें सीधे रोम के लिए.
२ उड़ानें एक जगह रुकते हुए
लंदन के लिए. मनपसंद चुनाव के लिए
प्रति सप्ताह पश्चिमी यूरोप और यू.के. के लिए
११ उड़ानें तथा अमेरिका के लिए सात उड़ानें.

पश्चिमी देशों के लिए प्रति सप्ताह अधिकाधिक उड़ानों की सुविधा, जिसमें ४ बेहद तेज़ रफ़्तार वाली हैं. सफ़री और कारोबारी दृष्टिकोण से यूरोप और अमेरिका के प्रमुख आकर्षण केन्द्रों को एयर-इंडिया मानो आपके पड़ोस में ही ले आती है.

एयर-इंडिया

AI-9519(A)

नेसा

वह परिधान
जिसमें जीने का
मोह हो जाता है...

नेसा में उपलब्ध है
टेरीन/सूती सूटिंग, शर्टिंग,
साड़ियाँ और विविध वस्त्रों
का असीम आकाश

न्यू स्वदेशी

द न्यू स्वदेशी
मिल्स ऑफ
अहमदाबाद लि.
नरोडा रोड,
अहमदाबाद-३८० ००२

Sobhagya NS/75-1G HN

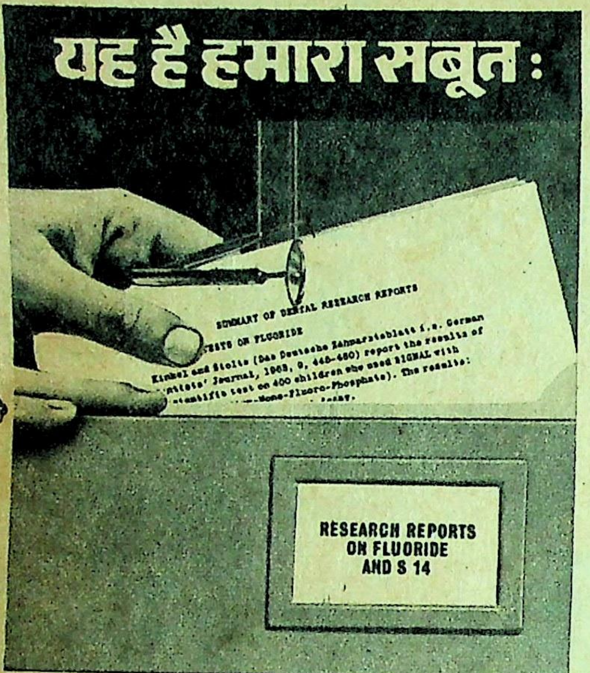
यह है हमारा सबूत :
SUMMARY OF DENTAL RESEARCH REPORTS
TESTS ON FLUORIDE
Kimbel and Stolte (Das Deutsche Zahnarzteblatt i.e. German Dentists' Journal, 1963, 9, 446-460) report the results of ... test on 400 children who used SIGNAL with ... -Mono-Fluoro-Phosphate). The results:
RESEARCH REPORTS ON FLUORIDE AND S 14

यह है आपका सबूत :
मम्मी, दांत का दर्द क्या होता है?

केवल सिग्नल फ़्लोराइड साबित करती है कि यह दांतों की सड़न और सांस की दुर्गंध रोक देती है,

दंत-सफ़ाई के एक अनोखे आधार में.

सिग्नल में मिला फ़्लोराइड दांतों की सड़न रोक देता है :

दंतचिकित्सकों किंकेल और स्टोल्टे द्वारा जर्मनी में ४०० बच्चों पर किए गए परीक्षणों से यह सिद्ध हुआ है कि सिग्नल फ़्लोराइड दांतों के एनामेल पर एक घेरा बना देता है ताकि एनामेल तेज़ाब के हमले का और अधिक मुक़ाबला कर सके. इसीलिए तो सिग्नल इस्तेमाल करने वाले बच्चे यह नहीं जानते कि दांत का दर्द क्या होता है ! अपने परिवार की सुरक्षा के लिए अभी से सिग्नल चिकित्सा शुरू कीजिए.

सिग्नल में मिला S-14 सांस की दुर्गंध रोक देता है :

डा. हावर्ड ई. लिंड द्वारा यू. एस. ए. में किए गए परीक्षणों ने यह सिद्ध किया है कि सिग्नल में मौजूद S-14 मुंह में दुर्गंध पैदा करने वाले ९५% बैक्टीरिया को इस्तेमाल के १५ मिनट के अंदर खत्म कर देता है.

सिग्नल के दंत-सफ़ाई के अनोखे आधार से दांत ऐसे साफ़ जैसे डाक्टर करे :

सिग्नल के अनोखे अल्युमिना ट्राइ-हाइड्रेट आधार से आपके दांत ऐसे साफ़ हो जाते हैं जैसे किसी डाक्टर ने किए हों–दांतों के एनामेल को बिना नुकसान पहुंचाए. केवल सिग्नल में यह विशेष सम्मिश्रण मौजूद है : फ़्लोराइड और S-14 दंत-सफ़ाई के एक अनोखे आधार में. कोई भी दूसरी टूथपेस्ट इतना नहीं कर सकती.

केवल सिग्नल फ़्लोराइड के पास है सबूत– अपने दंत-चिकित्सक से पूछिए.

लिंटास-SGF.63-140 HI

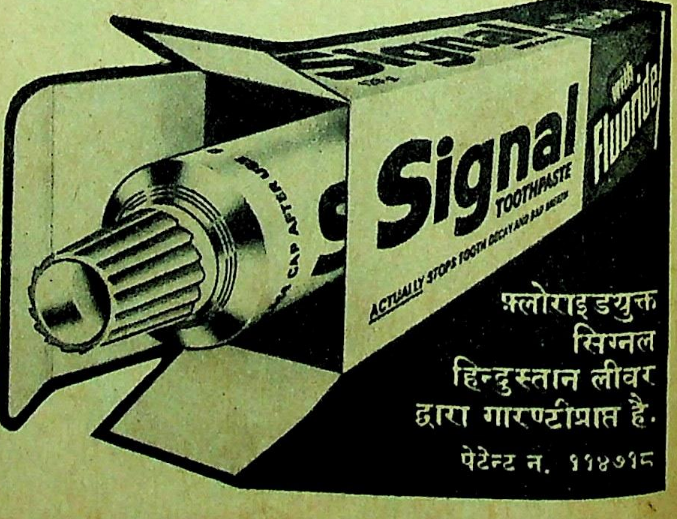
Signal
TOOTHPASTE
with Fluoride
ACTUALLY STOPS TOOTH DECAY AND BAD BREATH
CAP AFTER USE

फ़्लोराइडयुक्त
सिग्नल
हिन्दुस्तान लीवर
द्वारा गारण्टीप्राप्त है.
पेटेन्ट न. ११४७१८

महिलायें सदियों से खाना बनाती आ रही हैं और अब महिलायें सदियों तक

देवीदयाल प्रेशर कुकर

में स्वादिष्ट भोजन बनाती रहेंगी

devidayal
समय बचाये
ईन्धन बचाये

विशिष्टतायें :

गैस्केट अधिक चौड़ा है और इसकी गोलाई कुकर के ढक्कन के समान है। इससे भाप रिसने की कोई सम्भावना नहीं।

वाल्वपिन स्टेनलैस स्टील के बने होने के कारण ज़ंग से बचे रहते हैं।

फ़ैरुल डाई कास्ट होने के कारण सुन्दर, मज़बूत तथा टिकाऊ होते हैं। फ़ैरुल में ब्रास नट चूड़ियों को मज़बूत पकड़ देते हैं। (पेटैन्ट विचाराधीन) कुकर ISI द्वारा निर्धारित आदेशों के अनुसार टैस्ट किया गया है।

निर्माता: हिन्दुस्तान चेन्स प्राईवेट लिमिटेड
गाज़ियाबाद

सारिका के वार्षिक ग्राहकों के लिए विशेष छूट

'सारिका' के प्रत्येक अंक का मूल्य एक रुपया है. किंतु वर्ष भर के लिए वार्षिक शुल्क मात्र दस रुपये है, यानी साल भर में दो अंक मुफ्त. यदि आप दो साल के लिए ग्राहक बनते हैं, तो शुल्क केवल उन्नीस रुपये है यानी दो वर्षों में पांच अंक मुफ्त, हां, तीन वर्ष के लिए शुल्क केवल सत्ताईस रुपये है.

आपके लिए सारिका की विशेष दरें इस प्रकार हैः

एक वर्ष—१० रुपये
दो वर्ष—१९ रुपये
तीन वर्ष-२७ रुपये
विदेश में समुद्री डाक से एक वर्ष—२२ रुपये

कृपया यह कूपन जरूरी राशि के चेक/ड्राफ्ट/मनी-आर्डर के साथ-साथ आज ही भेज दें—

सर्कुलेशन मैनेजर
सारिका, टाइम्स आफ इंडिया बिल्डिंग, बम्बई-४०० ००१

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/दो वर्षों/तीन वर्षों के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. १० रुपये/१९ रुपये/२७ रुपये चेक/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा भेजे जा रहे हैं.

नाम ------------------

पता ------------------

हस्ताक्षर ------------

आज का पोलिश कथा-साहित्य

सारिका अपने पाठकों को सिर्फ भारतीय कथा-साहित्य तक ही सीमित नहीं रखती, अपितु विश्व की सभी भाषाओं के कथा-साहित्य से उनका परिचय कराती है. इस बार मार्च '७६ में आप पोलैंड की संपूर्ण मानसिकता पर लगभग ३० कहानियां पढ़ सकेंगे. इन कहानियों के माध्यम से आप पोलैंड के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन का सही जायजा ले सकें, यही **सारिका** के इस अंक का ध्येय है.

साथ ही लेख, यात्रा-कथा तथा सभी स्थायी स्तंभ —आद्यकथाकार, कृतियां, विविधा आदि.

सारिका
मार्च, १९७६

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका

सारिका

फरवरी, १९७६

वर्ष : १६; पूर्णांक : १७८

कहानियां

सूर्यबाला : एक इंद्रधनुष : जुबेदा उर्फ जुव्वी के नाम : १२
ज्योत्स्ना देवधर : शायद कोई है : १६
द्वारका प्रसाद : मुक्ति : १९
ओंकार ठाकुर : रेत के पौधे : २४
रमेश गुप्त : घर : ३२
सुरेश चतुर्वेदी : संज्ञा और सर्वनाम : ३६
निरुपमा सेवती : विषाक्त : ६०
मधुकर सिंह : एक और शुरुआत : ६४
विनोद शाही : एडजस्ट होने की कोशिश में : ७२
सुधींद्र कुमार : प्रतिरोध : ८०
मंदाकिनी गोगटे : राहु और केतु : ८४

मॉरिशस की दो कहानियां

अभिमन्यु अनत 'शबनम' : नदी जा रही सागर को : ४४
पूजानंद नेमा : विकल्प : ४८

● ●

गर्दिश के दिन

दीप्ति खंडेलवाल : ५२

आद्य कथाकार

गो. गं. लिमये : मैकेनो : ५८

स्थायी स्तंभ

पाठकीय : ८
कृतियां : ८२
गोष्ठी रिपोर्ट : ८८
प्रसंग : ८९
विविधा : ९०

●

आमुख : कोमला वरदन

● ●

संपादक : कमलेश्वर

- मुख्य उप-संपादक : आनंद प्रकाश सिंह
- उप-संपादक : अवधनारायण मुद्गल, सुदीप
- कार्यालय-सहयोगी : श्रीनाथ पांडेय, देवचंद्र झा, भिकाजी शिर्के

पाठकीय

नवंबर अंक

● **'सुधाकर', २७३७ गली आर्य समाज बाजार, सीताराम, दिल्ली -- ६ से लिखते हैं**

सारिका ने 'मेरा पन्ना' स्तंभ समाप्त करके मुझ जैसे अनेक पाठकों से जो छीना है क्या मैं आशा करूं कि वह **सारिका** फिर हमें दे सकेगी? कहानियों से कहीं ज्यादा **'मेरा पन्ना'** ने हमेशा कहा है. कम से कम मेरा तो यही विचार है.

टी. ए. राणा के विशेष चित्रांकन ने कहानियों को वास्तव में साकार कर दिया है. एक-एक चित्र कहानी से सटीक है और उन्हें सार्थक करता है.

'कृतियां' के अंतर्गत रा. अ. की समिक्षाएं जैसे किसी दवाब में लिखी गयी हैं. रमाकांत आजाद का लेख **'महानगर बंबई : वेश्यावृत्ति के सामाजिक आयाम'** अपनी स्पष्टवादिता के लिए प्रशंसनीय है.

उर्दू कहानी **'सफेद घोड़ा'** (अहमद नदीम कासमी) व गुजराती कहानी **'गुलाब और हिना'** (चदूंलाल पटेल) विशेष पसंद आयीं. शरत की **'खत'** अंत्यंत मार्मिक है. ☐

● **कुमार, संपादक 'तीर' त्रैमासिक गोड्डा, संथालपरगना (विहार) से लिखते हैं. :**

सारिका का नवंबर अंक **महानगर बंबई : वेश्या वृत्ति के सामाजिक आयाम** – रमाकांत आजाद का यह प्रामाणिक एवं कटु-सत्य लेख महानगरों में पनप रही वेश्यावृत्ति के तमाम नये तरीकों एवं श्रेणियों का जम कर रहस्योद्घाटन करता है. यह रचना इस अंक की उपलब्धि मानी जा सकती है. ऐसे साहसिक लेखन एवं प्रकाशन के लिए लेखक एवं **सारिका** को हार्दिक बधाई.

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की साहित्य चर्चा पढ़ कर रूस एवं स्वीडन में कहानी की वर्तमान स्थिति पर गहरा क्षोभ हुआ. कहानियों में **क्षौरकर्म** महत्वपूर्ण लगी. पंजाबी की प्रथम मौलिक कहानी **'भत्ता'** बहुत जंची कृपया अनुवादक को मेरा अभिनंदन पहुंचावें. ☐

सम्पादकजी, नमस्कार.

अस्सी बरीस क जिन्दगी होय गयी अउर कउ लड़िकनन्ह क बावा कहवावै लागे ह पर **'सारिका'** जइसन पत्रिका आज तक कौनों जगहां देखै बदे नांय मिला. इ अपने नांवगुने में अउवल और अकेल बाटै. खड़ी बोली हम्मैं साफ साफ लिखै नांय आवत मुदा **'सारिका'** के कहनियन्ह के बांचै अउर ओकर अरथ जुमा जुमा समुझै में कौनों किसिम क दिक्कत नांय होत. लड़िकन-गदेलन सब सकूल-दफतर चला जाथेन, तब दुपहरे क जून सुतारे से पढ़े क बखत मिलथ. आपन पिन्सिन पउतै एक रुपिया **'सारिका'** बदे निसार के अलग धइ देइथ. एहमें कौनों रियायत नांव होय. नवम्बर अंकमें **'सफेद घोड़ा'**, **'मानकुंवरः एक आपबीती'**, **'अंधेरे-उजाले'**, **क्षौर-कर्म'** और **'बेटियों वाले'** कहानी बहुत निक लाग. 'गणिका-जीवन : कुछ अपरिचित आयाम-विशिष्ट खंड' और लघु कथा क वही असर रहा जौन जेवनार में अचार, चटनी और रायता क रहा थै. ढेर का लिखी. बूढ़ मनई हई. हमार आशीर्वाद.

तोहार —
रामअधार तिवारी,
१११ शेखपुरा, जौनपुर

सेन माध्यमिक विद्यालय तान सेन, पाल्या, नेपाल से लिखतें हैं :

याद नहिं कब और कहां मेरा आंख किसी रेल्वे स्टेशन की बुकस्टल पर झुलती और हिलति हुई **'सारिका'** पर रुकती है और मैं उसे खरिदता हूं. और उसके बाद यह सिलसिला जारी होता है हर मास पास के बुकस्टाल पर **'सारिका'** खरिदने वालों कि पंक्ति में सब से आगे अपने आपको पाता हूं. और **'सारिका'** ला कर अपना भोगा हुआ यथार्थ पढ़ने लगता हूं. मैं सच कहता हूं कि **'सारिका'** पढ़ते समय यह महसूस नहिं होता है कि कोहि साहित्य का अध्ययन करने के लिए मष्तीष्क पर जोड लगाना पड़े. वरन वास्तविक जीवन भुगतने वाला सिर्फ मैं हूं ऐसा अनुभव होता है. यहि **'सारिका'** का सबसे बडी सफलता है. इस प्रकार का सामाजिक प्रतिवद्ध साहित्य का चयन और आम आदमी का वास्तविक जीवन कि सहि प्रस्तुतीकरण सम्पादक कि निष्ठा और मेह से ही हुआ है. **'सारिका'**. यह विशेषता अटूट रहे यहि हार्दिक शुभ कामना.

आपका
बनमाली निराकार

● **इन्द्र देव दीक्षित, के. पी. ओ कम्पूटर सैल, चौथी मंजिल, ए. जी. सी. आपू. इंद्रप्रस्थ मार्ग, नई दिल्ली -- ११०००२ से लिखते हैं:**

यद्यपि **'सारिका'** सात वर्ष से पढ़ता आया हूं और एक-एक अंक को माला के मणिकों की तरह संजो कर रखे हुए हूं, पर मैं इस बार अपने आंतरिक उद्गार को आप तक पहुंचाये विना कैसे रह सकता हूं कि 'नवम्बर' अंक अति सुंदर अंक है. ☐

दिसंबर अंक

• श्री राम सागर प्रसाद "सदन" हिंदी विभाग, ज्ञानोदय निकेतन, पंजाबी कालोनी, समस्तीपुर (बिहार) से लिखते हैं :

'सारिका' का दिसंबर अंक पढ़ कर बेहद प्रसन्नता हुई. चुस्त संपादन के कारण यह पाठकों को तुरंत अपनी ओर आकर्षित कर लेता है.

मेरे एक मित्र श्री लाल बाबू शर्मा 'ललन', जो इतिहास विशेषज्ञ हैं, पहले 'सारिका' को देख कर घबरा जाते थे. कहते थे कि इसकी कहानियां इतनी गंभीर होती हैं कि उन्हें केवल साहित्यकार ही समझ सकते हैं. परंतु मेरे निकट में रहने के कारण इसकी कहानियों के मर्म को जान गये. अब वे उन्मुक्त कंठ से सारिका की प्रशंसा करते हैं.

'सारिका' की कहानियां पाठकों का मनोरंजन ही नहीं करती हैं, बल्कि आधुनिक जीवन को सभी पहलुओं पर कटु दिशाएं भी देती हैं.

दिसंबर, '७५ अंक में प्रभाकर माचवे की रचना **'हमारे भी मेहमां हैं कैसे-कैसे'** तथा सविता बैनर्जी की रचना **'गलत नंबर'** बड़ी अच्छी लगीं. उन्हें नव वर्ष पर बहुत-बहुत बधाइयां. लघु कहानियों में **'भिक्षा और दान'** प्राचीन होते हुए भी नयी लगती है.

'गर्दिश के दिन' में राजेंद्र यादव जी खूब अच्छी रचना नहीं लिख सके. उक्त स्तंभ में अक्तूबर अंक में राबिन शॉ 'पुष्प' जितना जमे, वैसी ही आत्मरचना की पाठकों को प्रतीक्षा रहेगी---ऐसा मेरा विश्वास है. □

• राजाराम सिंह,
६८।३१ ए, लोकमन मोहाल,
कानपुर–१ से लिखते हैं :

राजेंद्र यादव की आत्मरचना **'गर्दिश के दिन'** के अंतर्गत पढ़ने को मिली. लगता है, यादव जी लेखनी के जरिये पाठक वर्ग को चमत्कृत करना चाहते हैं, □

एक परिचर्चा

कहानी की संबद्धता : कितने रूप, कितने आयाम

परिचर्चा - आयोजक—वशीकांत 'अमलतास'

'निशांत'---मुंगेर की सर्वथा अपरिचित संस्था है. किंतु मुंगेर, पटना और आस-पास की भीषण बाढ़ ने इस संस्था की साहित्यिक चेतना को प्रवाह दिया. इसके पुनरुत्थान (या तत्वावधान कहा जाये) में श्री वशीकांत 'अमलतास' ने एक अनौपचारिक परिचर्चा का आयोजन किया. अध्यक्षता श्री मनोज दीक्षित ने की और भाग लेने वाले थे मुंगेर के कुछ युयुत्सु. यथा---सुश्री दीपाली चौधरी, अरविंद 'नीरव', निशिकांत और सुनयना ठाकुर. परिचर्चा का विषय था—कहानी की संबद्धता : कितने रूप, कितने आयाम.'

शुरुआत निशिकांत ने की. वे **'सारिका'** को चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, मोहन राकेश और कमलेश्वर के संपादन में देखते रहे हैं. उन्होंने कहा---स्टैंडर्ड की आरोहावरोह परिस्थितियों के बावजूद **'सारिका'** की 'कांसटेंसीको नकारा नहीं जा सकता.

लेकिन, दीपाली चौधरी ने आशंका व्यक्त करते हुए कहा—इधर के कुछ दिनों मैं जैसा फील करती हूं, **'सारिका'** की कथायात्रा में कुछ 'डाइवर्सन' आ गया है. दरअसल आज का लेखक सिर्फ कलम रख कर सच्ची साहित्यिकता नहीं बरत सकता, बल्कि आवश्यक है कि सही अर्थों में जिन 'मामूली' आदमियों के लिए कहानी लिखी जा रही हो, उनके लिए कुछ सक्रिय कार्य किया जाये.

अरविंद 'नीरव' ने दीपाली का समर्थन किया. और **'सारिका'** में प्रकाशित श्री 'केशव' की कहानी **'अंधा सूरज** का उद्धरण प्रस्तुत किया---' दो हजार में थाना गायब. पांच सौ में मुखिया. . .और शेष ढाई हजार मेरे ही न.

अमलतास---मैं इससे पूर्णतः सहमत नहीं हूं. अंशतः इसलिए हूं कि आदमी की दो प्रवृत्तियां होती हैं---एक जीने की और दूसरी जी लेने की. जीने की पिपासा में जी लेने की स्थिति वाला आदमी वह सब करता है जो **'अंधा सूरज'** और **'परिक्रमा'** में है.

सुनयना ठाकुर :---बर्नार्ड शा ने ठीक ही कहा है कि आज के जमाने में नैतिकता और कर्तव्यपालन आउट डेटेड डिक्शनरी के शब्द हो गये हैं. हमें सबसे पहले आम आदमियों को रोटी देने का प्रयत्न करना चाहिए.

दीपाली चौधरी:---आबजेक्शन . सुनयना भी शॉ की तरह फेबियनिस्ट बन रही हैं. इस सिद्धांत से समाज का सिर्फ डिस्ट्रक्शन ही हो सकता है. मेरे विचार से साहित्य का सर्वप्रथम उद्देश्य क्रियात्मकता होना चाहिए.

मनोज दीक्षित—अब लेखकों को क्रियात्मकता का पक्षधर होना चाहिए. दो तीन दशकों (या अधिक) से कहानी या कविता या संपूर्ण साहित्य मात्र समाज का दर्पण बनकर रह गया. . .सही अर्थों में इसे 'प्रतिक्रिया' कहा जायेगा.

मनोज दीक्षित के इस तर्क को सबों ने स्वीकार किया. और अमलतास ने कहा कि---संघर्ष अब संघर्ष के लिए नहीं, 'सृजन' के लिए किया जाना चाहिए.

||सहम कर चुप हो गये थे समुन्दर,
ज़मीं हिल रही थी, जहां हिल

कहाँ तो तय था चिराग़ां हरेक घर के लिए
कहाँ चिराग़ मयस्सर नहीं शहर के लिए

दुष्यंत कुमारः

जन्मः १ सितंबर १९३३

अभी सुन के तेरी दहाड़
रहा था, अभी हिल रहे थे पहाड़ ॥

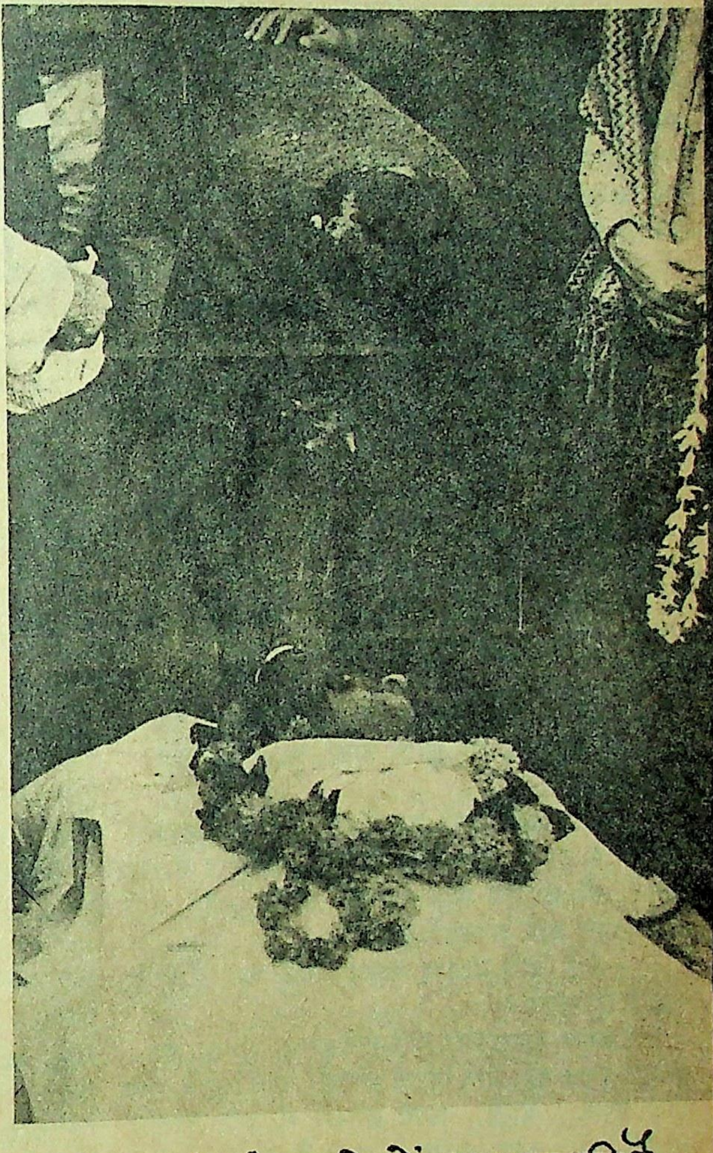

यहां दरख्तों के साये में धूप लगती है
चलो, यहाँ से चलें और उम्र भर के लिए!

एक श्रद्धांजलि

देहावसान: ३० दिसंबर १९७५

एक इंद्रधनुष:

जुबेदा उर्फ जुब्बी के नाम

• सूर्यबाला

ऊपर घुले फिरोजी आसमान में शफक (इंद्रधनुष) फूल रहा है. . .अटाला मस्जिद की मीनारों के ऊपर, सतरंगे जादुई रेशों में खिंचा, पूरा कमान-सा शफक. . . एक पुरानी गजल की लाइन जुबान पर आयी ही थी कि टाट के परदे खिसका कर गफूरे ने चुटकी ली—— गोया, जवानी लौट रही है. . .क्यों उस्ताद?

झुर्रियां सिकुड़-सिमट कर एक साथ हौले से मुसकरायीं——शफक देख रहा था म्यां! देखो, क्या नजारा है कुदरत का! और नजारे का पूरा लुत्फ उठाने के लिए जो गरदन टिकाने की कोशिश की तो दीवाल से बालिश्त भर नोना झड़ गया. उस्ताद तोबा कह कर चिपचिपी गरदन से नोने के चूरे झाड़ने लगे.

——और. . .मिजाज कैसे हैं?

——दुआ है तुम सबकी. . .ठीक हूं. अभी कोठरी के गोरबे से शफक का टुकड़ा दिखा तो रोक न सका. सोचा, बाहर चल कर नजर भर कर देखूं, मीनारों पर फूलता शफक, सो दीवाल का सहारा लिये-लिये सहन में आ गया.

——अरे, तो मैं कौन दूर था! आवाज लगा देते. . आज तो यह खाट भी काफी पानी खा गयी दिखे. . अपनी डाल दूं?

——नहीं-नहीं. लमहे भर में ही अंदर चला जाऊंगा. कोठरी में उमस जरा ज्यादा ही है. उस्ताद ने फिर टिकने की कोशिश की कि खांसी उधड़ गयी. गफूरे ने पीकदान आगे सरका दिया. . .

——बस करो उस्ताद, शफक मिट रहा है, चलो, कोठरी में पहुंचा दूं.

सचमुच दूसरा छोर धीरे-धीरे हलका हो रहा था. . . उस्ताद देखते रहे. जाने कितने मौसमों, जाने कितने सालों बाद शफक. . .यानी. . .यानी जलेखा की हरी, फीरोजी ओढ़नी से ढका माथा. . .यानी वे गजलें. . .यानी वह तरन्नुम, वे अल्फाज, उनकी अपनी आवाज. . .इसी इंद्रधनुष की तरह. . .जिसे वह सारी-सारी रात महफिलों में उतारा करते थे. आज, आज कितने सालों बाद दीखा है यह शफक जिसे वह पिछले सालों की तरह नजर-अंदाज नहीं कर सके. . .सैकड़ों बरसातों के बाद देखा इधर मौसम का पहला शफक.याद आयीं शामियानों में सजी, इत्र-बसी महफिलें, जब 'बादल हैं तेरे गेसू, बिजली है तेरा जलवाऽऽ'. . .सुन कर आशिकों की नजरें चिलमन के पीछे से उलझ कर झूम-झूम जाया करतीं और बुड्ढों की आंखों की चिलमन में हसीन यादें परिंदों-सी फड़फड़ाने लगतीं. . .गर्मजोशी से भरे, लबालब जाम छलकते तो उस्ताद की आंखें जलेखा की जादुई मुसकराहट के नूर से छलकने लगतीं. उस्ताद की हर महफिल की कामयाबी के लिए नमाज पर मन्नत मानती जलेखा. और जब बुलावा आता तो आधी-आधी रात तक पा थाली सामने धरे इंतजार में डूबी जलेखा. उस्ताद लौ पर सबसे पहले उनींदी जलेखा का माथा चूमते. जले का माथा यानी——यानी फीरोजी आसमान पर खि शफक. यादें भी अब हद से गुजर गयी हैं. इतने सा महीनों, हफ्तों, घड़ियों में घिसटते-घिसटते दुहराते-ति रातें उनका भी तो रंगो-आब, चमक-दमक फी पड़ती जाती हैं. लेकिन आज कुछ जुनून ही चढ़ा कि उस्ताद उन फीकी, टूटी-फूटी यादों को सालों बा झाड़-पोंछ कर सहेज-सहेज कर धर रहे हैं.

पुरवाई का मद्धम-सा झोंका सुरसुरा गया. उस्ता की आंखों से एक पल को भी हाई कोर्ट के बा हाल का नजारा नहीं हट रहा है. बत्ति जलने के साथ ही वह शब्बन मस्ताने के पीछे सारं लिये बैठे थे. दिल कैसा धड़का था, जैसे पहली बा स्टेज पर आये हों. आये तो पहली बार ही थे. जलेख के मरने के इतने . . .इतने सालों बाद, नहीं तो उध जलेखा का जनाजा उठा था और इधर उस्ताद की कव्वा लियों का मजलिसों से जनाजा उठ गया था. तब चहे शागिर्द शब्बन ने समझाया-बुझाया, आरजू-मिन्नत पर सब बेकार. बस एक लफ्ज बोले थे——शब्बन, मे आवाज चली गयी. बुलावे आते रहे. . .राय साहब सगाई के जश्न के, ठाकुर उमराव सिंह की पचास सालगिरह के, नवाब हुसेनाबाद की लड़की के निका के. . .पर वह न बाहर जाते, न हाथ जोड़ कर माफी मांग पांच साला जुबेदा को गोद में लिये या खाट पर लिटा पड़े रहते—नहीं तो पहले जलेखा चिक की आड़ देखती, उस्ताद किस अदब से सिर झुका-झुका क आये हुए बुलावों के लिए असमर्थता जाहिर कर कि कल के लिए तो जनाब खुदाबख्श के घर, जुम को नवाब की ड्योढ़ी पर हफ्ते पहले का बुलावा जलेखा गद्गद् हो आसमान की ओर हाथ फैला क खुदा का शुक्रिया अदा करती कि उसकी कड़ी, पाब पांचों वक्त की नमाज सफल हुई. उस्ताद एक फाकेमस् बेरोजगार से जमाने के मशहूर कव्वाल बन चुके थे.

* *

लेटे-लेटे कुरते की निचली जेब में हाथ जाता वही मटमैला-बादामी पोस्टकार्ड—— प्यारे अब्बा हुजू को जुबेदा का आदाब मंजूर हो! आगे, अब्बा, आप पता हो कि इधर छह महीनों से हम संडीले हैं. नू के अब्बा की मिल मशीन से चलने लगी, काम छू गया. रोजी-रोटी की तलाश में संडीला आ गये. कुछ न-कुछ काम मिल जाता है. इधर डेढ़-दो महीने गुजारे का आसरा हो गया है. आगे खुदा मालिक आगे, अब्बा, अब हम एक दिन आपके पास आयें पहले तो बहुत दूर थे, कुछ बस न था. यहां से ठेकेदा की ट्रक जाती है. ईद के अगले हफ्ते पहुंच सकूं रोजे का सबसे बड़ा सवाब इसे ही मानूंगी. नूरी और उसके अब्बा का सलाम मंजूर हो. . .आप

प्यारी बेटी जुबेदा उर्फ जुब्बी.

पिछले जुम्मे को डाकिया भटकता-भटकता लौटने को था कि गफूरे से मुलाकात हुई थी और भला हो गफूरे का कि पोस्टकार्ड पर लिखा नाम देख कर लमहे भर कान के पास की जूं टटोलते-टटोलते उसे सहसा याद आ गया. ठहरो, ऐसा ही कुछ तो अपने उस्ताद का नाम है. उस्ताद की कोठरी पर आवाज दे कर डाकिया खीझा था.—तौबा हो उस्ताद! जिसे ढूंढ़ते थे गली-गली, वो मकान के पिछवाड़े मिली. . .खासा बड़ा-सा नाम था. किसी जमाने में तुम्हारा. . .शर्त बद सकता हूं जो शहर को तुम्हारा ये नाम याद हो. . .

'आपकी प्यारी बेटी जुबेदा उर्फ जुब्बी' के बादामी पोस्टकार्ड ने वह काम किया कि वह हकीम समीउल्ला खां की दवा से बढ़ कर असरदार साबित हुआ.

● आर. एन. प्रसाद

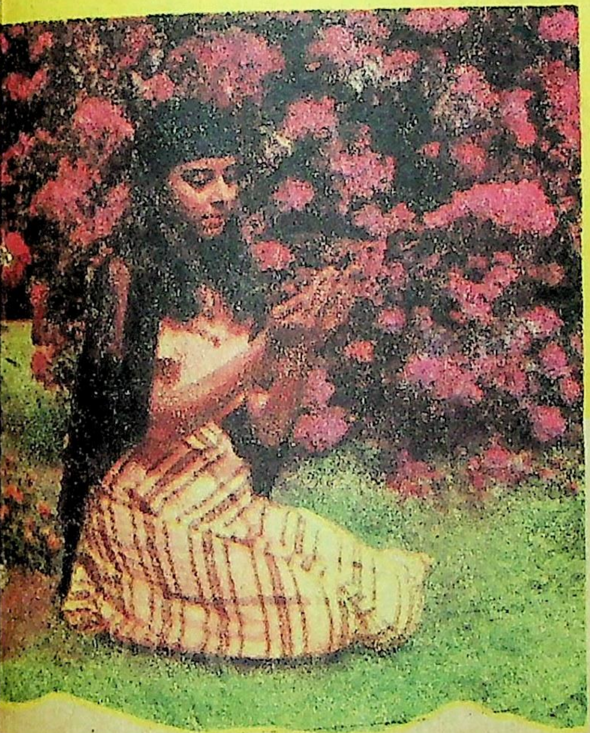

उस सीली कोठरी के दरवाजे पर जब डाकिये की हथेली पर उस्ताद की दी हुई चवन्नी चमकी थी तो वह दो पल बौड़म-सा खड़ा रहा . . .रुक-रुक कर उसकी नजर कोने में रखी अल्यूमीनियम की पिचकी रकाबियों, जंग लगे टूटे ढक्कन वाली बकुचियों, और सीलन तथा पलस्तरों के साथ चिपकती, उखड़ती रही और अंत में चवन्नी पर रुक गयी थी.—यह क्या उस्ताद! तुम्हारी बेटी मेरी बेटी हुई, बख्शीश कैसी?

उस्ताद ने कोशिश तो की, पर कुछ बोल न सके. बोलते कैसे? जाने कितने महीनों-सालों की भूली-बिसरी दास्तानें आ कर धंसी हुई थीं, गले में, आंखों में, दिलो-दिमाग में. हर कहीं उन्हीं दास्तानों का पहरा था. . . फिरोजी, कासनी, सुरमई दास्तानों का पहरा. . .

उन्होंने हाथ आगे बढ़ा कर धीमे-धीमे डाकिये की चवन्नी वाली हथेली बंद कर दी.

फिर गफूर मियां को बुलवाया. राय ली कि कम-से-कम कितने में डेढ़ फुट तक की दीवार थोड़ी दुरुस्त हो जाये, तारकोल ही पुतवा दें? संडास के लिए एक टाट का परदा. . .नयी रकाबियां गफूर मियां अपनी दे देंगे. . . दीवार के लिए मजदूरों से बात करनी होगी. फिर एक गोटे-किनारी वाली फिराक, चड्ढी, दामाद को और कुछ नहीं तो एक तौलिया हो और एक फूलदार साड़ी. गफूर खां चले गये तो उस्ताद अकेले बैठे-बैठे ब्योंत बिठाने लगे—–एक-एक पाव भी दो-दिन गोश्त आये तो, तेल-साबुन-मंजन. . .अरे,नूरी के लिए दूध. . .सारा हिसाब लगा कर जोड़ा तो लगा बहुत-बहुत थक गये हैं. . . . यूं ही पड़े-पड़े जालों में फंसी-मरी मक्खियां देखते-देखते एकाएक उठे और छड़ी उठा कर शब्बन के घर चल दिये.

★ ★

वही शफ्फाफ बत्तियां,वही मजलिस, वही समां. . . हारमोनियम और सारंगी के मिलते स्वर. फर्क बस इतना था कि स्टेज के बीचो-बीच झिलमिलाती कामदानी की अचकन, धुले, अलीगढ़ी पाजामे और तिरछी मखमली टोपी लगाये उस्ताद नहीं, शब्बन 'मस्ताना' बैठे थे. उस्ताद तो अपनी जीर्ण कामदानी की गुड़ी-मुड़ी अचकन और गफूरे से मांगा पाजामा पहने, झेंपते-से, उस जमाने के अपने प्यारे शागिर्द और इस जमाने के मशहूर कव्वाल शब्बन 'मस्ताना' के पीछे बैठे थे. शब्बन ने एकाध बार सामने आने का इशारा किया था, पर उस्ताद अपनी अचकन और मैलखाई टोपी को देख कर झेंप गये थे. वैसे इस बदले लिबास और झुर्रीदार जिस्म में, गुजरे वक्त के कामदानी में कसे तगड़े सीने और नुकीली दाढ़ी को ढूंढ़ना मुश्किल ही था, पर हाथ में संभाली सारंगी के तारों पर टपटप कर टपकते आंसुओं को छिपा पाना शायद नामुमकिन. .

सुर बंधे. . .हाथ फैले—–उस्ताद के नहीं,शब्बन के—– और माहौल में उस्ताद की अपनी बहुत प्यारी गजल के अल्फाज शब्बन की आवाज में तैर गये. . .

यही रंगत भरी शामें कभी हमने गुजारी थीं. . .
शफक, बादल, तड़पती बिजलियां, सब कुछ हमारी थीं

सम के साथ ढोलक तड़कती रही. पीछे बैठे शागिर्द उसी ताल में हथेलियां घुमा-घुमा कर तालियां बजाते रहे—जैसे कभी शब्बन बजाया करते थे.

लय तेज हो गयी—–यही शामें, तड़पती बिजलियांऽऽऽऽ

हमारी थीं, हमारी थीं. . .हथेलियां तेजी से घूम कर ताली देने लगी. शब्बन ने ठहर कर उस्ताद की ओर इशारा किया. एक आलाप खींचने के लिए उस्ताद संभले. एकदम खयाल आया, ले आने से पहले शब्बन ने कहा तो था.—–दो-तीन आलाप भी खींचने पड़ेंगे, उस्ताद . . लेकिन तुम्हारा दमा उमड़ गया तो? ऐसा है कि सारंगी

तो इम्तियाज के न आने पर यह लौंडा गज्जू ही संभाल लेता है, लेकिन अब तुम इतनी दूर से आये हो. . .और उस्ताद ठहरे . . .न. . .नहीं कर सकता. . .वरना जब कभी कमी पड़ती है, इसी गज्जू के भाई को बुला लेता हूं. नवीं में पढ़ता है, लेकिन फिल्लिम के तराने गाते-गाते, कव्वाली के आलाप भी खींच लेता है . दस-पंद्रह दे देता हूं. कुछ कहना नहीं, बड़ा अदब करता है मेरा, पर तुमको न करके अल्लाताला को क्या मुंह दिखाउंगा? उस्ताद ठहरे, पच्चीस से कम क्यों दूंगा. . . वैसे मजलिसों में भी वह आमदनी अब कहां रही!

शब्बन शुरु से ही होशियार था. और वक्त के साथ-साथ आदमी और भी होशियार तथा सतर्क होता जाता है. क्या बुरा कह रहा है . . .पहले ही बात साफ हो जानी चाहिए. नहीं तो कहीं उस्ताद मन-ही-मन सैकड़ा-सवाई के मंसूबे बांध कर आये हों तो बाद में झिक-झिक हो. बाद को लोग कहते फिरें कि शब्बन मस्ताना बूढ़े उस्ताद से काइयांपन कर बैठे—शहर का बच्चा-बच्चा शब्बन मस्ताना को जानता है, इज्जत का सवाल पहले है, पैसे का दूसरा. इसलिए पहले से पक्का होना चाहिए.

शब्बन अपनी तरफ से इतनी दरियादिली कर रहा है, आखिर, उस्ताद को भी तो कुछ कहना चाहिए. सो बोले—मुझे तुमसे कोई मोल-भाव नहीं करना, शब्बन, कुछ भी . .

'न दो तो भी' नहीं कह पाये वह. इतना बड़ा झूठ कैसे, किस बूते पर बोलते? आदमी कभी कुछ चाह कर भी तो नहीं कह पाता. वक्त की पहरेदारी है यह शायद. . . वक्त का पहरेदार ठहाका मार कर हंस पड़ेगा—कुछ भी नहीं चाहिए?. . .तब क्या यह गुड़ी-मुड़ी अचकन और मांगे का पाजामा पहन कर शौकिया मजलिस का लुत्फ उठाने जा रहे हैं?

नहीं-नहीं, शब्बन को उन्होंने बेटे की तरह माना है. आवाज की एक-एक कशिश, अपने गले की एक-एक बारीकी उसके गले में उतारी है. . .तो? वह भी तो उनकी कितनी कद्र करता है! वह जानते थे शब्बन मना नहीं करेगा, जईफी और तंगी में आज इतने सालों बाद जब उन्हें जरूरत पड़ी तो मदद जरूर करेगा—और की भी उसने.

—बुरा मत मानना, उस्ताद! अपने भी बाल-बच्चे हैं. साल बीतते-न बीतते बेटी का निकाह कर डालना है. . . .समय की तंगी तुम्हारे सामने है.

ठीक कहता है—कुछ गलत नहीं—आदमी नहीं बदलता, हालात बदल देते हैं उसे.

* *

शब्बन के दूसरे इशारे पर उस्ताद ने कांपते गले से, संभालते हुए, अल्लाह का नाम ले कर आलाप खींचा. . . बदली हुई आवाज से लोग चौंके. एकाएक जैसे तैरता हुआ सब कुछ रुक गया हो. . .चारों ओर से स्तब्ध, अवाक्, खामोश निगाहें उस ओर जुड़ गयीं. . .यह. . .यह कैसी कशिश है! . . .शब्द कहीं नहीं, बस स्वर. . .स्वर. . .आकारहीन. इन स्वरों को खींचते हुए, जैसे कोई समूचा दिल खींचे लिये जा रहा हो. . .जानकार तो एकदम वाह-व कर पागलों-से चिल्ला उठे—कमाल है—कमाल है. सामने आरामकुर्सियों पर बैठे हुए हाईकोर्ट के अफ रान—मजिस्ट्रेट साहब, सरकारी वकील जनाब मुश्ता अली, रिटायर्ड जस्टिस सहाय साहब—सबकी आंखों तल्लीनता के साथ कद्रदानी थी. आलाप खत्म होते जनाब मुश्ताक अली एक बुलंद वाह के साथ उठ हुए—मस्ताना! उस हीरे को सामने लाओ. एकाव फ कती हुई चीज सुनवाओ.

शब्बन ने इशारा किया. उस्ताद झुकी नजरों वाहवाहियां रोपते, सकुचाते-से थोड़ा आगे खिसक आ हकदार की तरह नहीं, कुसूरवार की तरह. उन्हों शब्बन की ओर फिर देखा, मानो माफी चाहते हैं, शब्बन ने मुसकराते हुए बढ़ावा दिया—सुनाओ उस्ता पुरानी चीज की लज्जत ही और होती है! . . . .लेकि फरमाइशों का तांता बंध गया. उस्ताद को खुद प नहीं, वह कैसे गाते चले गये—एक बार भी खांसी न उभड़ी—गला नहीं फंसा . . . यह करिश्मा था या रो का सवाब . . .

समां बंधता गया. पूरी मजलिस समंदर की लह की तरह मचलते-उफनते अल्फाजों पर झूम रही थी.

इन्हीं अश्कों के राजदार को हम ढूंढ़ने निकले
अजी हम ढूंढ़ने निकले. . .

आवाज की लहरें तेज और तेज होती जा रही और उस्ताद को लगता है—एक साथ हजार-हजा बिजलियां तड़प रही हैं, तमाम जादुई रंगों में शफ फूल रहे हैं, समंदरी झागों में परी-सी झिलमिला जुलेखा उन्हें आवाजें दे रही है—जुबैदा रोजे का सवा पाने आ रही है शौहर के संग, नूरी को गोद में उठाये. .

रहम खुदा का, खांसी नहीं उभड़ी, इज्जत र गयी. शब्बन की भी, उस्ताद की भी. शब्बन ने ऊपर हां भले कह दी हो, पर रहा होगा पशोपेश में ही कि कहीं उस्ताद मजलिस न उखाड़ दें—या खुदा—

कव्वाली खत्म हुई तो सहाय साहब एकदम साम आ गये.—आपकी तारीफ?

झुकी नजरों से सारे जादुई रेशे बिखर गये थे खाकसार को अली अफजल मुराद कहते हैं. . .

—क्या! एकदम सहाय साहब की याददा को खटका लगा—अफजल मुराद? मशहूर शान-ए-कव्वाली? शहनाजन गढ़ी वाले? उन्हों आगे बढ़ कर उस्ताद को गले से लगा लिया था औ लगातार बाकी अफसरान को बताते जा रहे थे कितनी बार पिताजी के साथ बचपन में आपकी कव्वा लियों का लुत्फ उठाया है—आप लोगों ने क्या सुना. मैंने जो इस शख्स को जवानी के दिनों में सुना है मुश्ताक अली, यह गुदड़ी के लाल हैं, लाल!

तब लम्हे भर को बादल, बिजलियां क्र नहीं, बस पूरे आकाश पर इंद्रधनुष ही इंद्रधनुष फै गये थे.

बाद में सकुचाते हुए शब्बन को फिर याद दिला

--इधर एक दो मजलिसों में बुला लेते तो...

--जरूर-जरूर.

गफूरे ने कितनी मदद की; खुदा झूठ न बुलाये, दिन के दिन मजूरे के साथ लगा रहा, फिर भी संकोच तो होता ही है. मौका लगे तो पूछना है--म्यां, दो-चार मजलिसों के लिए और चाहिए था पाजामा. तुमसे कुछ छुपा नहीं है--क्या कहूं, तुम्हें परेशानी तो होगी--लगता तो नहीं कि गफूर इनकार करेंगे और उन्हें किसी और से पाजामा मांगना पड़ेगा ... आते तो जरा खर्चे का ब्योंत भी बिठा लेते...एक पाव दूध रोज, कम-से-कम बच्चों के लिए, चाय, पान, जर्दा, तेल, तरकारी और गोश्त--गफूर होते तो इसी शफक की ओर उंगली दिखा कर समझा देते--म्यां, ऐसी ही शोख रंगों वाली लहरियादार साड़ी जुबैदा के लिए ले आना.

सामने से शब्बन का शागिर्द आता दिखा. उस्ताद उतावली में बुलाने ही वाले थे कि वह खुद ही लौटा.

--आदाब, उस्ताद! आपका ही घर ढूंढ़ रहा था. तबीयत नासाज नजर आती है.

उस्ताद ने पीकदान खींचा और गला साफ कर हंस दिये--नहीं, यूं तो अब बुड्ढा हुआ ही--लेटे-लेटे शफक देख रहा था. शब्बन ने भेजा है?

--जी हां ...

--कब लग रही है मजलिस?

--कल शाम की है...

--ठीक है, ठीक है. कितने बजे? वही साढ़े आठ-नौ का टाइम होगा और क्या--है न?

--हांऽ ऽ ...

--कहना, आठ तक जरूर पहुंच जाऊंगा, फिक्र न करें...जरूरत पड़ी तो हारमोनियम भी संभाल लूंगा--हां, कहना सारंगी जरा कसवा लेंगे, खूंटियां हर बखत ढीली हो जाती हैं--कसो, फिर ढीली...

शागिर्द खड़ा रहा तो उस्ताद को अपनी बुढ़ौती पर कोफ्त हुई, बैठने को न पूछा--बैठो-बैठो म्यां, चाय पियोगे?

--न...नहीं, शागिर्द धीमे से मुसकराया. मुझे तो शब्बन मियां ने इसलिए भेजा था कि आपसे कह दूं, कल आने की तकलीफ न करें.

चुपचाप कहीं खड़े हों और किसी ने पीछे से गहरे खंदक में धक्का दे दिया हो...उसी गहरी खंदक से आवाज आयी--क्या ...? क्या कहा है शब्बन ने?...

--कि उनका सारंगी वाला आ गया है, आप तकलीफ न करें...बुढ़ापे में दमा-वमा उभड़ जायेगा... आराम की जरूरत है आपको--अच्छा, आदाब.

जाता हुआ शागिर्द अटाला मस्जिद के टीलों के पीछे उतर रहा था. ऊपर आसमान बेहद सपाट था....

□□□

द्वारा श्री आर. के. लाल, फैक्टरी इंजीनियर,
ग्लैक्सो लैबोरेट्रीज (इंडिया) लिमिटेड,
पो. बा. १, अलीगढ़

आज मैं फ़ाइनल इन्टरव्यू दूँ तो कैसे! सर बुरी तरह दुख रहा है।
मेरी मानो तो एनासिन ले लो।

जल्द आराम पाने के लिए
तेज़ असर
और विश्वसनीय
एनासिन लीजिए

तेज़ असर--एनासिन में वह दर्द-निवारक दवा ज़्यादा है, जिस की दुनिया-भर के डॉक्टर सिफ़ारिश करते हैं। इसी लिए एनासिन दर्द से जल्द आराम दिलाती है।

विश्वसनीय-एनासिन आपके डॉक्टर की दवाई की तरह दवाओं का नपा-तुला सम्मिश्रण है। इसी लिए एनासिन पर लाखों लोगों को पूरा भरोसा है।

एनासिन बदन के दर्द, दाँत के दर्द, सर्दी-जुकाम और फ़्लू की पीड़ा से भी जल्द आराम दिलाती है।

तेज़ असर और विश्वसनीय
एनासिन
भारत की सब से लोकप्रिय दर्द-निवारक दवा

A/2/8-74
Regd. User of TM: Geoffrey Manners & Co. Ltd

शायद कोई है

• ज्योत्स्ना देवधर

सुबह से बरखा हो रही थी. बड़ी-बड़ी बूंदे, पानी की घनी चादर-सी बरसात. वह अपने घर में बैठी रही. कहीं आयी नहीं, कहीं गयी नहीं. जा नहीं सकती थी. यह मरी बरसात आती है और मन में आग सुलगा जाती है. सड़क पर गढ़े पड़ जाते हैं, पानी उसमें जमा हो जाता है, इसी तरह उसके मन में भी यहां वहां पानी जम जाता है, यादों का पानी. कितनी ही घटनाएं उस पानी में तैर कर ऊपर आ जाती हैं. जख्म गीला हो जाता है. टीस भर आती है. वह अपने मन को सम्हाल रही थी. इधर-उधर बहने से रोक रही थी. हाथ काम में जुटा रखे थे. प्रश्न का उत्तर दे रही थी. प्रश्न पूछ रही थी. लेकिन यह तो वह नहीं थी. वह तो अतीत के गह्वर में डूब मरी थी.

पति असफर था.

गाड़ी ले कर चला गया.

स्कूल जाने वाले बच्चे थे.

बस आयी . चले गये.

उसने एक लंबी सांस छोड़ी . अब वह अकेली थी. अपने बंगले के किले में बंदिनी हो कर भी वह स्वतंत्र थी. बरसात ने उस किले के चारों ओर एक चहार-दीवारी बांध दी थी. बंगला बगुले-सा खड़ा था. समाधिस्थ भीग रहा था.

कहीं पानी नहीं चू रहा था. कहीं गीला नहीं था.

बंगले का नीला रंग चिपका था—भीगे वस्त्र-सा

बाग में पत्ते, फूल, टहनियां झूम रहे थे.

सब धुल गया था. साफ हो गया था निर्मल

कहीं माटी नहीं, मैल नहीं, कीचड़ नहीं.

लेकिन

इस बरसात ने उसकी ओढ़ी हुई विस्मृति की चादर खींच ली थी. शरीर पर डाली हुई प्रतिष्ठा की शाल भिगो डाली थी. पहने हुए सुख ने समाधान का मुखौटा तोड़-फोड़ डाला था. वह बेचैन थी.

वह कपड़े ओढ़े जा रही थी, पहने जा रही थी. स्वेटर, स्कार्फ, दस्ताने, मौजे, सपाता, ओवरकोट लेकिन फिर भी जैसे वह एकदम नंगी थी. कांप रही थी. फिर वह और उसके मन की वह, दानों का झगड़ा शुरू हुआ. उसके दो मन बिजली-से टकरा उठे. गड़गड़ा उठे.

कोई मेहमान भी नहीं.

किसीका बुलावा नहीं, संदेसा नहीं.

किसीका फोन तक नहीं.

आज कुछ-न-कुछ होना चाहिए. अतीत से निकाल कर वर्तमान में झोंक देने वाली कोई घटना.

एक्सीडेंट.

तार.

बीमारी.

शाम ढली. अब वे आयेंगे. बच्चे आयेंगे, वह फिर जी लेगी, लेकिन शाम आती है तो जाती भी है. औरत-सी नहीं कि आयी तो वहीं—पूरी उम्र. इच्छा से, अनिच्छा से, रोती, हंसती—वहीं चिपकी रही, शाम जाती है रात के लिए जगह कर जाती है. उमर कैद नहीं, एक ही रिश्ता . जबरदस्ती . लूट. . .मार छी: कुछ फर्क नहीं. परिवर्तन नहीं.

स्पर्श .

गंध

शब्द .

सबकुछ वही. बासा. सडा-सडा-सा.

अति परिचय से मरा-मरा.

—मां कहानी कहो ना.

—राजा बेटा कौन-सी कहानी सुनेगा?

—कहो ना अच्छी-सी.

राजा ! हां वह उसे हमेशा राजा ही कहती थी. वह कहता था, कैसी है सुंदर . . .सुंदर .

—मां

—अं ?

—कहो ना कहानी मां

—अच्छा सुन.

—बेटे एक दिन खूब बरसात हुई , बड़ी-बड़ी बूंदें, घनी-घनी बूंदें.

—आज बरसात हो रही है वैसी ही ?

—हां बेटे.

—आगे क्या हुआ मां ?

वह सोचती रही आगे क्या कहूं? बरसात आयी उसकी खूब याद आयी. फिर. . .?

—मां. . .

—हां बेटे सुन. . .खूब धुआंधार बरसात आयी चिड़िया का घर था मोमका, कौए का घर था गोबर का. चिड़िया का घर बरसात में भी वैसे ही रहा, कहीं कीचड़ नहीं, कहीं माटी नहीं. . .

—लेकिन मां कौए का घर था गोबर का, वह बह गया. . . .

—आं? नहीं बेटे, अगर उसका घर बह गया तो वह कहां जायेगा ? उसका है भी कौन ?

—मां , अभी भी वह बरसात में ही भीग रहा है.

—नहीं राजा बेटे, वह चिड़िया के घर आता है, कहता है. . .

—मां वह कहता है, चिड़िया दीदी दरवाजा खोलो . . .दरवाजा खोलो.

—चिडिया ने दरवाजा खोला?

—नहीं

—क्यों?

—यों ही बेटे, यों ही . .

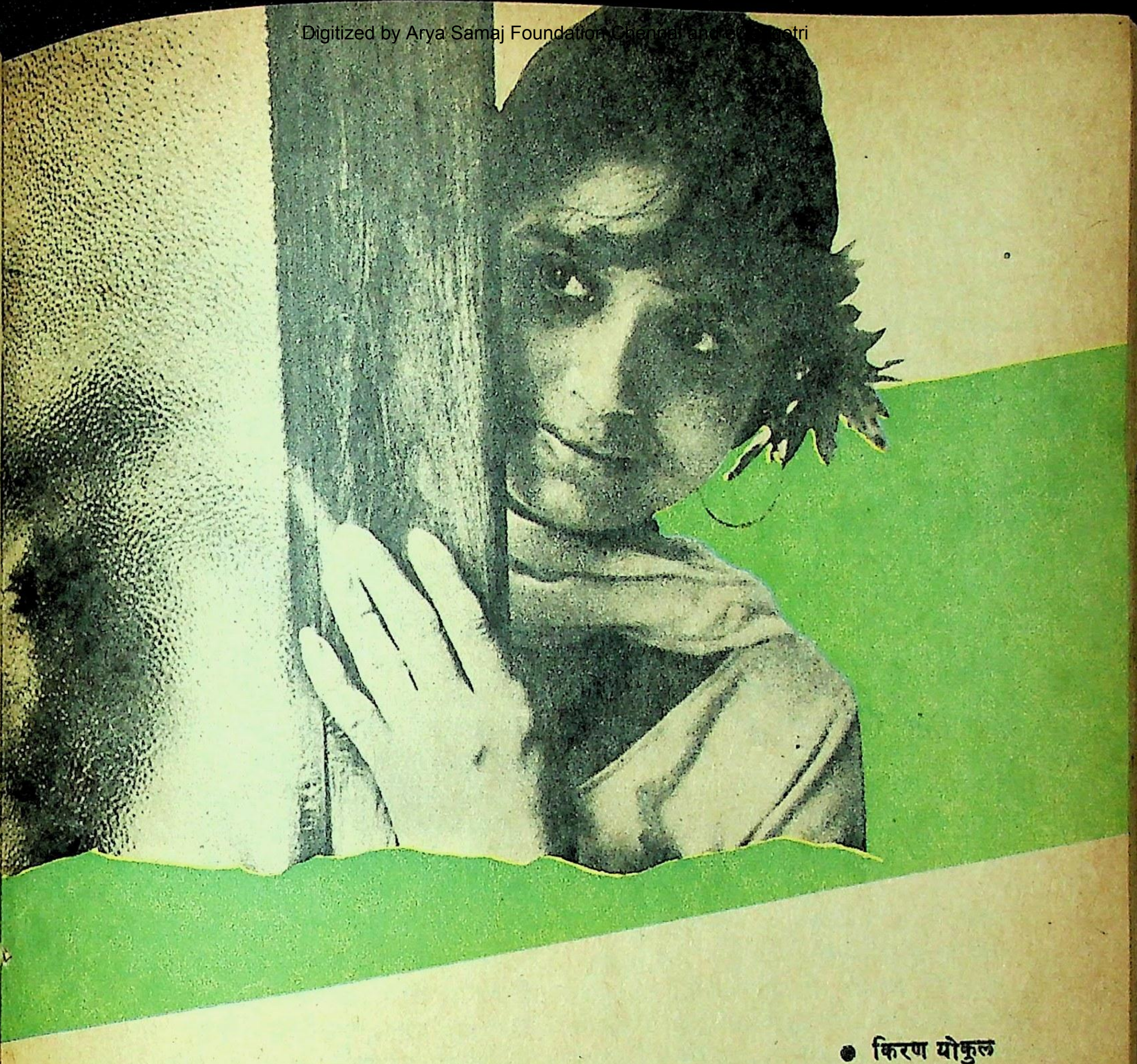

• किरण योकुल

—उसको दरवाजा खोलना चाहिए, हमारी सिस्टर हमेशा कहती है, पडौसी से प्यार करो.

—पड़ोसी से प्यार करो, ऐसा कहा सिस्टर ने?

—हां. क्यों?

—नहीं, पडौसी से प्यार नहीं कर सकते बेटे..

—क्यों? वह बुरा होता है?

—नहीं खूब अच्छा, प्यार...

—फिर?

—वह बोली नहीं, बच्चे को सहलाती रही. बच्चा अं..अं करता रहा. थोड़ी देर बाद मां के पेट पर पैर डाल कर सो गया. उसे अच्छा लगा. वह सोचती ही रही, सोचती ही रही. स्टडी में से रौशनी आ रही थी. उसे लगा, आज रात भर ये काम करते रहें तो अच्छा हो, आज वह अकेली सोना चाहती थी. आज उसे कोई छुये नहीं. नहीं तो उसका शरीर बोल जायेगा. उसकी आत्मा की भाषा शरीर बोल डालेगा.

लेकिन यह शब्दहीन भाषा हर कोई जान लेता है?

वह समझ लेता था.

छोटा-सा स्पर्श वह पहचान लेता था.

लेकिन ये? उन्हें तो यह भाषा समझती नहीं.

तो क्या हूआ . अधिकार तो है, अनबोली भाषा न भी समझे तो क्या हुआ.

उसे लगा वह गुलाम है, लाचार है, पराधीन है, बंधनों में जकड़ी है. लगा, यह सब तोड़-फोड़ दूं. सब खतम कर दूं, उसने बच्चे के पैर हटा दिये. बच्चे ने करवट बदली. मां के गले में अपने मक्खन से हाथ डाल दिये.

वह उन रेशम से हाथों पर हाथ फेरती रही. ममता से, प्रेम से, उसकी आंखें भर आयीं. ये रेशमी पाश टूटेंगे नहीं. कभी नहीं.

इसीलिए शायद चिड़िया ने कौए से कहा होगा.

ठहरो अभी अपने बच्चे को दूध पिला रही हूं...

बच्चा बड़ा होगा. उसको शादी होगी. उसकी पत्नी आयेगी.

फिर लेगी वह कौए को अपने घर में?

आज बच्चे के पाश गले में,

कल पोते के पाश .

ऐसी ही बरसात थी, बड़ी-बड़ी बूंदों वाली. भरी-भरी बरसात. वह आया था. भीगा-भीगा अपना आंचल उसके सर पर डाल कर उसने उसके घुंघराले बाल पोंछे थे. उसे छाती के पास खींच लिया था...

उसने धीरे से कहा था—अब काजल लगा दे... बच्चा हूं.

—कौन है? मां ने पूछा था.

—कोई नहीं मां, सहेली है.

—अच्छा...अच्छा.

अंधी मां जपमाला लिये चुपचाप बैठी रही. उस बरसात में दोनों ने चाय पी, नाश्ता किया. दोनों ने एक दूसरे को बांहों में भर कर गरमी दी, वह शांत हुआ, चला गया.

उसने मां को धोखा दिया?

मां को या अपने आपको? या दुनिया को?

शायद सबको लेकिन उसे नहीं.

सच?

वह उस घर में जा नहीं सकती थी.

उसका रास्ता रोक कर उसकी पत्नी खड़ी थी.

—राजा, मुझे शादी करनी होगी. मां अब मानती नहीं.

—लेकिन हम दोनों ने जन्म भर एक दूसरे का साथ देने की कसम खायी थी.

—हां मेरे राजा, लेकिन तुम जो बंधन में बंधे हो.

—रानी, नाममात्र के लिए, मैं अकेला ही हूं.

—लेकिन अधिकार तो उसका है.

—वही बातें कितनी बार दोहराओगी?

कितना कहा-सुना, मां नहीं मानी, आखिर उससे कहा—जा रही हूं, अपने आपको सम्हालना. अपना ढहता घर बचा लेना...

—कभी तुम्हारे दरवाजे पर आ कर खड़ा रहूं, तो अंदर लोगी?

—जरूर, कभी भी चले आना.

—ना, तुम यह नहीं कर सकती.

—क्यों नहीं? क्यों न कर सकूंगी? जवानी तो जैसे-तैसे निभ जायेगी लेकिन बुढ़ापे में एक दूसरे को सहारे की जरूरत होगी. एक साथ जिये नहीं, एक साथ मर तो लेंगे.

—ना, इतनी उम्र जीना नहीं चाहता. झुका, थका, खांसता, तुम्हारे दरवाजे पर आ कर क्या दूंगा, क्या लूंगा?

—राजा, प्लीज इतनी उदास बातें मत करो... मेरी कसम.

—अब कसम दिलाने से क्या फायदा? कौन हो अब तुम मेरी?

उसके बाद वह कभी आया नहीं, मिला नहीं. कुछ महीने कितनी बेचैनी से काटे. सुख का क्षण जैसे नोंच खींच कर बीतता. अब तो यादगार भी पुरानी हो गयी. जंग लगी यादें. उन उफनते दिनों में आता तो वह सचमुच सब कुछ छोड़छाड़ कर चली जाती उसके साथ. अब आया तो? यह बच्चा...वह बेबी. अब आया तो वह न जायेगी.

पति?

प्रतिष्ठा?

समाज?

वह सोचती रही. अब वह अकेली नहीं है. बच्चे हैं, समाज में लोग सम्मान से जानते-पहचानते हैं. पति भी बुरे नहीं. यह घर...यह सब फर्नीचर, गहने, कपड़े, नौकरी, बरतन,...ना अब वह कैसे जा सकती है. कितने बंधन हैं, कितने पाश हैं!

सोचती रही. न जाने कब आंख झपकी.

स्टडी में जलती बत्ती बुझी. दो पैर पास आये. मां, बच्चे पर लिहाफ डाल कर अपने कमरे में चले गये.

वह जाग गयी. आंखें फटी-फटी रह गयीं.

हवा बह रही थी—तेज हवा. बरसात बरस रही थी. उई मां...दरवाजे पर कौन है? कौन दरवाजा खटखटा रहा है?

वह? आया है? इतनी बरसात में? आधार, आसरा मांगने?

वह इतने साल अपनी बाट जोहता रहा?

प्यार करता रहा? कसमें? स्पर्श? अभिवाचन?

और वह? प्रतिष्ठा, पैसा, बच्चे-पाश में वह?

दरवाजे पर किसीने फिर से दस्तक दी.

वह एकदम झटके के साथ उठी. लिहाफ अलग जा गिरा. बच्चा खुला खुला हो गया.

वह कांपते पैरों से दरवाजे के पास आयी.

वह बरसात में भींग रहा है. वह खड़ा है. प्रतिक्षा में. अब वह जरूर उसे घर में लेगी.

माया, ममता, सुख देगी.

उसका अकेलापन खतम कर देगी.

उसने दरवाजे की सांकल पर हाथ रखा, और अचानक डर कर पीछे हटी.

उसके सुखी दरवाजे पर मादाम बोआरी की लाश टंगी थी.

फ्लाबर्ट की नायिका...मादाम बोआरी.

प्रियतम ने दगा दिया

उसने विष पी लिया. मादाम तड़प रही है, पूरा शरीर वेदना से खिंच रहा है.

होठों की कोर पर खून जमा है, आंखें फूट पडी हैं.

मादाम का पति. खूब-खूब प्यार करने वाला.

घबराई हुई छोटी-सी लड़की.

मृत्यु के द्वार पर खड़ी मादाम बोआरी.

वह भागी-भागी अपने पति के कमरे में आयी. पति के गले में हाथ डाले. उससे चिपकी पड़ी रही.

कितनी घबरा गयी थी. पुअर मादाम चिड़िया. चिड़िया का दरवाजा बंद है.

बरसात थमने का नाम नहीं लेती.

वह बाहर खड़ा है.

अकेला.

बेचारा कौआ. □□□

१२०५-१२०९ कौस्तुभ, शिवाजी नगर, पुणे-४

• छविदेव

मुक्ति

• द्वारका प्रसाद

आज आनंद आयेगा—शाम को.

इस शाम का स्मिता को कितने दिनों से इंतजार था. उस शाम, जब आनंद आया था, और इस शाम, जब आनंद फिर आयेगा, के बीच कितना बड़ा अंतराल है. लगता है, जैसे युग बीत गया, युग-युग बीत गये. समय इतना लंबा हो सकता है. स्मिता ने कभी नहीं सोचा था.

सुबह पांच बजे ही नींद खुल गयी थी उसकी. कमरे में धीरे-धीरे प्रकाश आने लगा था. उसने साइड टेबल पर से रिस्टवाच उठायी, टेबल लैंप जला कर वक्त देखा, स्विच आफ किया, अंगड़ाई ली और सोचा—चाय तो पी ही लूं.

उठते ही सबसे पहले चाय पीने की आदत किसी जोंक की तरह पिछले ढाई वर्षों से उसके साथ चिपक गयी है. पहले सुबह बेड-टी लेने की बात ही क्या, वह कभी चाय को हाथ तक नहीं लगाती थी. कहीं जाओ, चाय ऑफर हुई और कहो—एक्स्क्यूज मी, मैं चाय नहीं पीती. उसके सभी मिलने वाले इसे जानते थे, फिर भी हर बार उससे चाय के लिए पूछा जाता था और हर बार वह वही उत्तर देती थी—एक्स्क्यूज मी. . .पता नहीं, सुनने वाले को यह कैसा लगता था, लकिन स्मिता की समझ में नहीं आता था, लोग जान-बूझ कर क्यों उससे वही बात हर बार दुहरवाते हैं. वह चाय नहीं पीती जबकि उसके सर्कल के सभी लोग चाय पीते हैं, चाय पीना सभ्यता की निशानी समझी जाती है. चाय नहीं पी कर वह अपने को सबसे अलग कर लेती है और उसे लगता है, वह न सिर्फ औरों से अलग है बल्कि वह औरों से ऊपर भी है. यह सोच कर उसे बड़ा संतोष मिलता, उसे लगता, अपने अंदर ही मुसकरा लेने का यह मौका बड़ा सुखद है, मानो वह उसके शरीर में एक आरामदेह झुरझुरी छोड़ जाता.

लेकिन आज से ढाई साल पहले जब आनंद ने उसे चाय का प्याला आफर किया था तो वह इनकार नहीं कर सकी थी. एक्स्क्यूज मी, मैं चाय. . .जबान की नोक पर आते-आते रुक गया था. क्षण भर की झिझक-सी हुई थी और उसने थैंक्स कह कर हाथ बढ़ा दिया था.

फिर तो हर उस मौके पर, जब आनंद साथ होता, वह चाय पीती और मन-ही-मन कहती, चाय कितनी स्वादिष्ट पेय है! लेकिन उसके मन ने कभी यह नहीं कहा कि इतने दिन, अपने जीवन के पूरे छब्बीस वर्ष, उसने जो चाय नहीं पी उसने कुछ मिस किया था. वह वक्त और था, और जब आनंद ने चाय दी तो वह वक्त और था. दोनों की तुलना नहीं की जा सकती.

रफ्ता-रफ्ता चाय उसकी आदत बन गयी, जैसे आनंद उसकी आदत बन गया. इस आदत पर स्मिता न अपना भी एक मुलम्मा चढ़ा दिया. आनंद को बेड-टी की आदत नहीं. वह गहरा सोने वाला था. एक बार जब वह नींद में खो जाता तो सुबह आठ बजे के पहले कभी नहीं जगता था. जगते ही वह पलंग पर से छलांग-सी लगा कर फर्श पर जा रहता था. एकाएक जाने कहां की हड़बड़ी उसके अंग-अंग में छा जाती थी. सीधे वह बाथरूम भागता था.

जब पहली मर्तबा स्मिता ने अपनी बगल से आनंद को उछल कर पलंग से उतरते देखा था तो उसने कहा था—चाय नहीं पीओगे?

आनंद ने—नो, आई डोन्ट टेक बेड-टी-कह कर बाथरूम का तेजी से रुख किया था तो उसे कुछ अजीब लगा था.

लेकिन यह आनंद की आदत थी. स्मिता को तो सुबह-सुबह उठ कर, चाय का प्याला ले कर, तकिए के सहारे टेक लगा कर धीरे-धीरे चाय की चुस्कियां लेते हुए पिछले दस बारह घंटों की अनुभूतियों को मन-ही-मन दुबारा भोगते हुए बहुत अच्छा लगता था. कभी-कभी तो पिछली शाम के यथार्थ अनुभवों से उनके खयाल उसे अधिक सिरहन दे जाते थे.

पहली दफा जब उसने पिछली शाम आनंद को दस बजे अपने फ्लैट से जाने दिया था. . . जाने दिया था क्योंकि उसे लगा था, उसका रुकना ठीक नहीं, उसे उस वक्त चला ही जाना चाहिए, तो सुबह उठ कर

हाथ में चाय का प्याला ले कर अपने तकिए के सहारे उटंगी हुई उसने एक नहीं, हजार बार पिछली शाम को जिया था.

उसके बाद तो ऐसी जाने कितनी शामें आयीं, एक पर एक आती गयीं, और प्रायः शामें रात के दो-दो, तीन-तीन बजे तक चलती रहतीं और स्मिता ने यह समझना छोड़ दिया था कि आनंद को सारी रात उसके फ्लैट में नहीं रहना चाहिए. जब कभी आनंद शहर में होता, भले हो। वह किसी भी होटल में ठहरता, किसी एक ही होटल में हर बार ठहरना उसकी आदत नहीं थी . रातें उसकी स्मिता के फ्लैट में ही गुजरतीं और ये रातें अधिकतर शाम सात बजे से ही शुरू हो जातीं. आनंद चाहता, ये शामें जरा और जल्दी शुरू हो जातीं, स्मिता भी ऐसा ही चाहती, लेकिन ऐसा हो नहीं पाता था क्योंकि वह आफिस से साढ़े छह बजे के पहले किसी हालत में घर वापस नहीं पहुंच सकती थी. घर आ कर उसे आफिस के कपड़े बदलने होते थे, स्नान करना पड़ता था, हलका-सा शृंगार करना होता था और साथ ही बाई को रात के खाने के लिए आदेश देना पड़ता था. यह सब होते-होते आनंद आ जाता था, फ्लैट के अंदर "हैलो एवरीबॉडी" कहता हुआ दाखिल हो कर, ड्राइंगरूम के अपने मनपसंद सोफे पर बैठते हुए बाई को चाय का आर्डर देता था और स्मिता की ओर मुसकरा कर कहता था—सो?

स्मिता चाहती, जब वह आता है, सबसे पहले आ कर मुझे बांहों में क्यों नहीं ले लेता. उसके पैरों की आवाज सीढ़ियों पर सुनते ही उसकी नर्सें कुछ तन-सी जातीं. उस कभी नहीं मिलने वाले आलिंगन के लिए उसकी पेशियां, उसके शरीर की सारी त्वचाएं प्रतीक्षारत हो जातीं. वह जो कुछ भी करती रहती रुक जाता, जैसे चलते-चलते कोई फिल्म रुक गयी हो और एक ही फ्रेम की तसवीर सामने अचल हो गयी हो. ऐसा बस कुछ पल तक ही रहता, तब तक जब तक आनंद कमरे में प्रवेश करते ही—हलो एवरी बडी कह कर चाय का आर्डर देते-देते सोफे की ओर नहीं बढ़ जाता. उतने में स्मिता होश में आ जाती, उसकी प्रतीक्षा जिस तरह हवा के झोंके की तरह आती उसी तरह निकल जाती और वह सुनती——सो? वह मुसकरा देती, लेकिन उसके शरीर को लगता, अगर वह अपने को झटक सकता तो राहत मिलती.

★ ★

पूरे ढाई साल हो गये हैं आनंद को इस फ्लैट में आते हुए. स्मिता को इस फ्लैट में रहते हुए चार साल से कुछ ऊपर ही हो चुके हैं. किन परिस्थितियों में वह यहां आयी थी, कैसे वह यह नौकरी करने को बाध्य हुई थी, क्या हालत थी तब उसकी!

उसका विवाह आज से सात साल पहले उसी धूम-धाम से हुआ था जिससे किसी बड़े आदमी की एकमात्र लड़की का हो सकता था. पिता एक्साइज कमिश्नर थे. दो लड़कों पर यह एक ही लड़की थी. इसके जन्म के बाद ही मां का देहांत हो गया था. बड़े लाड़ से उन्होंने उसे पाला था. सीनियर कैंम्ब्रिज तक की पढ़ाई उसकी कान्वेंट स्कूल में हुई थी. बापू बेटे बेटी के बीच की अपनी बातचीत की भाषा अंग्रेजी थी. हिंदी का व्यवहार घर में ज्यादातर नौकरों के साथ होता था या उन अगंतुकों के साथ जो हिंदी छोड़ अंग्रेजी में चाहे तो बात नहीं कर सकते थे या करना नहीं चाहते थे.

स्मिता शुरू से ही पढ़ने में तेज थी. उन्नीस साल की होते-न-होते उसने फर्स्ट डिवीजन में बी. एससी. पास कर लिया था. वह एम. एससी. में ऐडमिशन लेना चाहती थी लेकिन उसके डैडी चाहते थे कि वह आई. ए. एस. के कंपटीशन में बैठे. स्मिता के लिए डैडी की इच्छा सबसे बड़ा कानून थी क्योंकि वह जानती थी, डैडी उसे जान से बढ़ कर प्यार करते हैं और खुद वह उन्हें उनसे भी अधिक प्यार करती थी. कभी-कभी भाइयों से उसकी इस बात पर अच्छी-खासी तकरार तक हो जाया करती. वह बड़े गर्व से कहती——डैडी मुझे सबसे ज्यादा चाहते हैं.

उसने आई. ए. एस. की तैयारी शुरू की. वह जानती थी, वह कंपटीशन में जरूर सेलेक्ट हो जायेगी. इस बात में डैडी या दोनों भाइयों को भी शक नहीं था.

तभी एक दिन डैडी शांतिप्रिय को साथ लिये घर आये थे और कहा था——स्मिता, यह शांतिप्रिय मेरे मरहूम दोस्त रामनाथ का लड़का है, अभी कई रोज हुए बिजनेस मैनेजमेंट का कोर्स करके स्टेट्स से लौटा है. आते ही रामपुरिया ब्रदर्स में डिप्टी जनरल मैनेजर लग गया है.

स्मिता को, या उसके दोनों भाइयों को, कुछ दिनों के अंदर ही यह समझ में आ गया कि डैडी शांतिप्रिय को क्यों इतना घर लाते हैं या जानबूझ कर स्मिता को उसके साथ अकेले घूमने-फिरने को क्यों उत्साहित करते हैं.

तीन महीने के अंदर-ही-अंदर सारा कुछ तय हो गया और स्मिता शांतिप्रिय की पत्नी बन ससुराल चली गयी.

स्मिता जब उन दिनों की बात सोचती है तो उसे लगता है मानों उस समय जो कुछ हुआ था उसमें वह नहीं थी. स्मिता नाम की जो नारी वह सब भोग रही थी वह कोई और थी. उसे लगता जैसे वह किसी सिनेमा में बैठ कर कोई फिल्म देख रही हो, पर्दे पर जो कुछ हो रहा है वह समझ पाती है, किसी खास दृश्य में उसके पात्रों की अनूभूतियां उसे छू भी जाती हैं लेकिन सारा समय वह जानती होती है कि जिन पर यह सब हो रहा है, वह कोई अन्य हैं जिनसे उसका अपना कोई संबंध नहीं.

स्मिता ने पलंग पर से उतर कर स्लीपर पांव में डाले और किचन में चली गयी. गैस जलायी, पतीली में पानी डाला और उसे स्टोव पर चढ़ा कर फिर से पलंग पर चली गयी. उसन तकिए सिरहाने एक पर एक रख दिये और उनके सहारे बैठ गयी.

आनंद की गाड़ी पौने छह बजे आती है. स्टेशन से होटल पहुंचने में लगभग आधा-पौना घंटा लगेगा. उसने लिखा है, वह इस बेर होटल रॉयल में रुकेगा. होटल में कमरा ले कर, सामान रख कर यहां आने में मान लो आधा घंटा और लग जाय तो भी सात-सवा सात बजे तक तो

आ ही जायेगा. कितने दिन हो गये इस बार आनंद को गये हुए. पूरे तीन महीने! ऐसा तो पहले कभी नहीं हुआ था. ढाई साल से वह स्मिता के पास आता रहा है. जब आता था कुछ दिन रह कर वापस चला जाता था. उसका काम ही ऐसा है कि उसे बंबई-दिल्ली के चक्कर लगाते रहना पड़ता है. पहले जब आता था तो हद-से-हद पंद्रह दिनों में आ ही जाता था. लेकिन इस बार उसकी कंपनी ने उसे शिलांग भेज दिया था. परिणाम यह हुआ है कि पूरे तीन महीनों से स्मिता का एक-एक रोआं उसकी प्रतीक्षा की अकुलाहट से तन-तन जाता रहा है. थैंक गॉड, इंतजार के दिन समाप्त हुए और आनंद आज शाम वापस आ रहा है.

स्मिता ने सोचा, वह आज आफिस नहीं जायेगी. आज सारा दिन अपने फ्लैट से बाहर नहीं जायेगी,, प्रतीक्षा का आखिरी दिन सिर्फ अपने साथ बितायेगी दस बजे फोन कर देगी, उसकी तबियत अच्छी नहीं. वह जानती है, उसका बॉस, स्वयं मैनेजर होते हुए भी, सारे काम अपनी असिस्टेंट मैनेजर स्मिता पर ही छोड़ देता है क्योंकि वह जरूरत से कुछ ज्यादा ही एफिशिएंट और कांशस है. वह जानती है, उसका फोन सुनते ही पद्मनाभन् कहेगा, मिस सिंह आप नहीं आयेंगी तो अमुक ऐग्रीमेंट आज एक्जीक्यूट नहीं हो पायेगा और कंपनी को . . . लेकिन स्मिता उसे साफ कह देगी--- वह किसी भी हालत में नहीं आ सकती.

आज स्पेशल आकेजन है, स्मिता हर्गिज-हर्गिज नहीं जायेगी. स्मिता उठी. पानी उबल चुका था. चाय की पत्तियां डालीं, चाय बनायी और प्याले में डाल कर पलंग पर आ बैठी.

शादी के वे पहले दिन, कितने अच्छे थे वे! क्या यह सिर्फ सात साल पहले की बात है? जो लड़की दुल्हन बन कर शांतिप्रिय के साथ हनीमून पर गयी थी, क्या वह स्मिता ही थी? उसे विश्वास नहीं होता. मसूरी से नैनीताल, नैनीताल से रानीखेत, रानीखेत से कौसानी, कौसानी से अल्मोड़ा. पूरे दो महीने गुजारे थे उन दोनों ने. ऐसा लगता था मानो सारी दुनिया में शांतिप्रिय है और स्मिता. उनके अलावा अगर और किसी का अस्तित्व है तो मात्र उनकी जरूरतें पूरी करने के लिए. देखते-देखते ही तो वे दो महीने बीत गये थे. लगा था जैसे अभी कल तो आये थे और आज ही वापस जाना पड़ रहा था इस स्वर्गलोक को छोड़ कर.

शांतिप्रिय ने उसकी पढ़ाई की बात पूछी थी. उसने एम. एससी. करने की अपनी इच्छा की बात बतलाई थी लेकिन डैडी आई. ए. एस. के कंपटीशन में बैठने के पक्ष में थे इसलिए वह उसीकी तैयारी करने लगी थी. शांतिप्रिय ने पूछा था--- क्या अब भी आइ. ए. एस. करना चाहती हो? उसने जवाब दिया था--- अगर तुम अनुमति दो. शांतिप्रिय ने कहा था--- अब आई. ए. एस. करने की क्या जरूरत? स्मिता ने सहमत होते हुएं कहा था--- जैसा तुम कहो.

हनीमून समाप्त कर अल्मोड़ा से सीधे अहमदाबाद वापस गये थे. शांतिप्रिय को कंपनी की तरफ से बंगला मिला हुआ था. जब कार फाटक में प्रवेश करने लगी थी तो शांतिप्रिय ने कहा था--- लो स्मिता, यह हुआ तुम्हारा नया घर. आज तक लोग इसे मेरा बंगला कहा करते थे, आज से सब इसे तुम्हारा घर कहा करेंगे.

स्मिता ने उत्तर दिया था--- मेरा घर नहीं, हमारा घर. और कह कर मुसकरा दी थी.

क्या वह स्मिता ही थी?

उस नये घरे में रहते उसे अभी तीन महीनें भी नहीं हुए थे कि एक दिन वह हुआ जिसकी कल्पना वह सपने में भी नहीं कर सकती थी.

जब शांतिप्रिय आफिस जाने के लिए बंगले से निकलने लगा तो सुबह से जो बात तय हो चुकी थी उसे दसवीं बार दुहराते हुए कार पर बैठा--- देखो स्मिता, तुम ठीक पौने छह बजे पूरी तरह तैयार रहना. ऐसा नहीं हो कि मैं आऊं और तुम कहो, बस, दो मिनट और. जरा आखरी टच दे लूं और साड़ी बदल लूं. मैं जानता हूं, तुम्हारे दो मिनट कितनी देर के होते हैं. ठीक छह बजे शो स्टार्ट हो जायेगा.

स्मिता ने कहा था--- मैं खुद यह पिक्चर पिछले साल भर से देखना चाह रही थी. मैंने तो समझा था, सेठियों के इस शहर में ऐसी पिक्चर तो कभी क्या आयेगी. पौने छह बजे क्या, मैं साढ़े -पांच बजे तक ही तैयार हो कर तुम्हारा इंतजार करती रहूंगी.

और सच ही पांच बजे वह तैयार हो गयी थी. साढ़े पांच बजे और पौने छह के बीच पंद्रह मिनट का वक्त इतना लंबा होता है उसे पता नहीं था. मिनट-मिनट पर घड़ी देखती और फिर खिड़की के पास जा कर फाटक के बाहर नजर दौड़ाती.

जब पौने छह बज गये होंगे और स्मिता बाहर बरामदे पर आ गयी होगी कि उसे इस तरह ठीक समय पर तैयार देख कर शांतिप्रिय को कैसा लगेगा? कितना आश्चर्य होगा उसे? कितना प्रसन्न होगा वह? और उसे फाटक के बाहर देखा होगा, उसके कान सड़क पर से करीब आती कार की आवाज सुनने को उत्सुक होंगे और उसने फिर देखा होगा, फिर-फिर देखती गयी होगी और बार-बार घड़ी की सुइयों की ओर देखा होगा और बड़ी सुई पौने छह की जगह से छह की ओर बढ़ गयी होगी और न तो कार की आवाज आयी होगी और न शांतिप्रिय तो उसे कैसा लगा होगा?

कैसा लगा होगा उस स्मिता को जब साढ़े छह बज गये होंगे और फिर सात और फिर आठ?--- स्मिता सोच नहीं पाती.

जैसे-जैसे देर होती गयी थी उसकी बेचैनी बढ़ती गयी थी. अगर नहीं आना था तो फोन तो कर सकते थे. कितना गुस्सा आया था उसे. वह उबल-उबल पड़ रही थी. तभी अचानक उसे लगा--- कहीं कोई ऐक्सिडेंट? और सिहर उठी थी. उसने ऑफिस फोन किया था. वहां से उत्तर मिला था--- साहब सवा पांच बजे ही निकल गये थे. मन नहीं माना था तो उसने डायरेक्टरी से नंबर देख-देख कर अस्पतालों और नर्सिंग होमों को फोन किया

था. सभी जगहों से एक ही उत्तर मिला था—— सवा पांच के बाद कोई एक्सीडेंट का केस नहीं आया है.

फिर वह कहां गया?

जाने कहां-कहां की बातें वह सोच गयी थी. उत्कंठा और चिंता में कपड़े बदलना भी भूल गयी थी. सवा आठ बजे सोचा, अब कपड़े बदल ले. तभी मन में आया—— नाइट शो में फंस गया होगा, संभवतः ऐसी जगह पर जहां से फोन करना मुमकिन नहीं हो. कहीं सेठ ने तो नहीं बुला लिया? उसने चाहा, एक बार वहां फोन करके पूछ ले. लेकिन मन ने कहा—— नहीं, यह ठीक नहीं होगा.

पिक्चर जाने वाले कपड़ों में ही वह साढ़े दस बजे तक बैठी रह गयी थी जब कि बहुत पहले ही नाइट शो का वक्त खत्म हो चुका था. खानसामा ने टेबल पर डिनर लगा दिया था. स्मिता ने उसे चले जाने को कह दिया था. कहा था, अब उसकी जरूरत नहीं. साहब आयेंगे तो वह स्वयं सब देख लेगी.

बिना खाये वह इंतजार कर रही थी.

साढ़े दस बजने के दो एक मिनट बाद ही बाहर का फाटक खुलने और कार के अंदर आने की आवाज आयी थी. स्मिता सोफे पर से नहीं उठी थी. अंदर-ही-अंदर उबलती हुई शांतिप्रिय के अंदर आने की राह देखने लगी थी.

और शांतिप्रिय दरवाजे पर आ कर खड़ा हो गया था. उसने कुछ लड़खड़ाती -सी आवाज में कहा था—— हलो स्मिति. मीट माई फ्रेंड मिस रीता परेरा.

स्मिता के कानों में ये शब्द आज भी ठीक उसी तरह सुनाई पड़ते हैं, नशे से लाल आंखें और बगल में मिस रीता परेरा को साथ लिये दरवाजे पर खड़ा शांतिप्रिय आज भी वैसे ही दिखलाई पड़ता है लेकिन वह उस आवेश से सर्वथा शून्य होती है जो उसने उस दिन अनुभव किया था.

स्मिता ने कुछ कहा था, फिर शांतिप्रिय ने भी कुछ कहा था, और रीता परेरा चुपचाप बैठी थी, और स्मिता ने चाहा था, वह अंदर के कमरे में अकेला आता कि वह उससे कुछ कहना चाहती थी लेकिन शांतिप्रिय ने कहा था—— रीता से उसका कुछ छिपा नहीं, उसे जो कहना हो उसके सामने ही कहे और स्मिता ने कहा था, उसे कुछ नहीं कहना. इस पर शांतिप्रिय ने कहा था—— मुझे पता है, तुम क्या कहना चाहती हो. तो मेरा जवाब सुन लो, रीता इज माई गर्ल एंड आई ऐम नॉट गोइंग टू लीव हर बिकाज आव यू, अंडरस्टैंड? वह मेरे साथ रात को रहेगी, यहीं, इसी बंगले में. अगर तुम चाहो तो तुम भी अपना बॉय फ्रेंड रख सकती हो, यहीं, इसी बंगले में. आई डोंट माइंड, अंडरस्टैंड? यू आर फ्री जस्ट ऐज आई ऐम फ्री. अंडरस्टैंड?

और स्मिता ने अच्छी तरह समझ लिया था. इन्हीं परिस्थितियों में उसने लगभग तीन साल गुजारे थे. लेकिन हजारों बार चाहने पर भी शांतिप्रिय जिस आजादी की बात बार-बार कहता रहता था वह आजादी वह नहीं ले सकी थी.

* *

उसके डैडी आये थे. उसने उन्हें सब कुछ बतला दिया था. उन्होंने शांतिप्रिय को समझाने की कोशिश की थी. अंत में उन्होंने सलाह दी थी कि वह शांतिप्रिय से डाईवोर्स ले ले. स्मिता ने कहा था—— वह सोचेगी.

* *

उसकी शादी के दो साल बाद डैडी चल बसे थे. दोनों भाई अलग-अलग जगहों पर काम करते थे. दोनों ने ही चाहा था, वह जिसके साथ चाहे रहे. लेकिन स्मिता ने स्वीकार नहीं किया था.

एक दिन उसने शांतिप्रिय से कहा था—— मैं जा रही हूं.

उसने पूछा था—— कहां?

——बंबई, कहा था स्मिता ने.

शांतिप्रिय ने सिर्फ इतना कहा था——डाईवोर्स हो जाता तो अच्छा था.

स्मिता ने उत्तर दिया था—— कानून के अनुसार मैंने विवाह किया था, उससे मुझे जो मिला सामने है. मैं अब उसे मान्यता नहीं दूंगी. उसीसे तलाक मांगने नहीं जाऊंगी. मैं बिना डाईवोर्स लिए आज से अपने को मुक्त मानती हूं.

शांतिप्रिय ने शायद पूछना चाहा था—— बंबई में करोगी क्या? रहोगी कहां? लेकिन पूछ नहीं सका था.

और आज से चार साल पहले स्मिता इस बंबई में आ गयी थी और तीन साल पहले उस फर्म में आ गयी थी जहां की असिस्टेंट है वह.

स्मिता की चाय समाप्त हो गयी थी. फिर भी हाथ में सॉसर और प्याला लिये वह चुपचाप बैठी थी.

बंबई आने के पहले उसने तय कर लिया था, वह वहां पहुंचते ही पूरी तरह आजाद हो जायेगी. उसने घर छोड़ दिया था, पति छोड़ दिया था, भाइयों के साथ रहने से इनकार कर दिया था. उसके पास इतने पैसे थे कि अगर पांच-सात साल भी उसे काम नहीं मिलता तो उसे तकलीफ नहीं होती. इस बीच वह आई. ए. एस. के कंपटीशन में बैठ सकती है, एम. एससी. कर सकती है. अगर कंपटीशन में नहीं भी आयी तो कहीं लेक्चरर तो हो ही जा सकती है. लेकिन यह सब कुछ होने पर भी वह पूरी तरह आजाद महसूस नहीं करेगी. उसे लगेगा, एक बंधन उसे अब भी जकड़े हुए है. तब तक वह उससे मुक्त नहीं महसूस कर सकेगी जब तक अपने शरीर का अपनी इच्छा के अनुसार उपयोग नहीं कर सके. उसने निश्चय कर लिया था, यह आखरी बंधन भी बंबई पहुंचते ही वह उतार फेंकेगी.

बंबई आने के पंद्रह-बीस दिनों के अंदर ही उसे ऐसा अवसर मिला था. उसने जिंदगी में पहली दफा पूरी आजादी भोगी थी. वह आदमी भी अच्छा था. लेकिन उसके तुरंत बाद उसे बाथरूम जाना पड़ा था जहां वाशबेसिन में उसने उल्टी की थी. उसे आजादी के उन क्षणों में भी ऐसा लग रहा था जैसे उसकी सारी नसें तन कर फटने-फटने को हो रही हैं, उसके पेट में बड़े जोर की मरोड़ उठ रही थी. उसने चाहा था, कुछ देर रुक कर बाथरूम जाय वर्ना उसके साथी को बुरा लगेगा, लेकिन अपने को संभाल नहीं सकी थी.

उसके बाद दूसरे मौके पर भी ऐसा ही हुआ, और तीसरे पर भी. वह अपने को समझ नहीं पायी थी, ड्रिंक भी बदल कर देखा था. लेकिन जिस आजादी के लिए उसकी आत्मा तड़प रही थी हर बार उसके उप-भोग की चेष्टा उसके शरीर को ऐंठ-ऐंठ जाती थी. उसे लगता, मन उसे जो करने को कहता है शरीर उससे विद्रोह करता है. ऐसा पहले तो कभी नहीं हुआ था—— तब भी नहीं जब शांतिप्रिय रीता को ले कर आया था, आता ही गया था और वह समझती थी, उसके सारे संबंध खत्म हो गये हैं. . .कई मौके उन तीन वर्षों के भीतर ऐसे आये थे जब वह इनकार नहीं कर सकी थी. लेकिन हर ऐसे मौके पर, जब उसका मन घृणा और वितृष्णा से विद्रोह करता होता था, उसका शरीर पूरी तरह उसका साथ देता था.

अब क्यों ऐसा हो रहा है? शायद इस आदमी में कुछ है. और स्मिता ने कहा, वह आदमी भी बदल कर देखेगी.

उसने ऐसा किया. सात महीने में कई बार ऐसा किया. हर बार उसे एक ही अनुभव हुआ. और उसने अपने आपसे कहा—— नहीं, अब नहीं जिस सर्कल में वह मूव करती थी उसके मिलने वालों को आश्चर्य होता, मिस सिंह में यह परिवर्तन कैसे आ गया.

मिस सिंह जानती थी यह परिवर्तन कैसे लायी है वह, क्यों लायी है वह, लेकिन वह यह नहीं जानती थी कि उसे यह क्यों करना पड़ा, वह जानना चाहती थी.

और उसे अंदर-ही-अंदर अफसोस होता, वह आजाद नहीं हो सकी. जो अपने आप का मालिक नहीं वह आजाद कैसा? मन से भले ही वह अपने को आजाद महसूस करे, जब वह शरीर, जिसे आज तक अपना समझती आयी थी, उसके इस प्रयास में किसी तरह साथ देने को तैयार नहीं होता तो वह तो स्वतंत्र नहीं हुई.

उसने उस स्थिति से समझौता कर लिया. महीने पर महीना गुजरता गया. इस बीच उसे नौकरी मिल गयी थी. उसे लगा था, अब उसके जीवन का एक र्रा बंध गया और वह इसी तरह अपने आप में खुश, अपना काम करते, सबसे मिलते-जुलते अपना जीवन काट देगी. क्या बुरा था यह? क्या कुछ नहीं था इसमें? उसने मान लिया था, अपने जीवन के उस क्षेत्र में भी असफलता मिली थी जिसे वह आजादी की पूर्णता मानती. फिर भी क्या हुआ था? वह जैसे रह रही थी उसमें भी तो खुश रहा जा सकता था. लेकिन उसके मन के किसी कोने में भी एक हलका-सा असंतोष पल रहा था.

* *

स्मिता पलंग पर से उतरी, किचेन में जा कर सिंक पर प्याला-सॉसर रखा और स्नान घर में घुस गयी. उसने दांत ब्रश करते हुए शायद हजारवीं मर्तबा अपने मन में दुहराया—— नहीं, आज ऑफिस नहीं जाऊंगी. आनंद तीन महीने के बाद आ रहा है. दस बजते ही फोन कर दूंगी.

ब्रश करके उसने कपड़े उतारे और बाथटब में घुस कर शावर खोल दिया. पानी की फूहारें उसके शरीर को सहलाने लगीं. कौन कहता है कि आत्मा ही सत्य है, शरीर माया है? क्या आत्मा का आनंद शरीर को मिलने वाले सुख की प्रतिछाया मात्र नहीं? आज स्मिता की आत्मा अपनी है, आजाद है, उसका शरीर भी अपना है, उसकी आजादी का साथी और भोक्ता है. कितना सुख है इस आजादी में?

लेकिन तब क्या हुआ था? क्यों उसे लगातार दस महीनों तक अपने आप में कुंठा पालते हुए संतोष का मुखौटा लगाये फिरना पड़ा था? अगर उस दिन अपनी कंपनी के काम से आनंद उसके ऑफिस में नहीं आता और उसकी कंपनी के उस काम में इतनी दिलचस्पी नहीं होती और स्मिता को ही यह सौदा पक्का करने की जिम्मेदारी नहीं मिलती तो क्या उसे वह अनुभव होता जो सर्वथा अप्रत्याशित रूप में उसे आनंद के साथ मिल गया था? उस दिन उसके सारे संबंध आप-से-आप खुल गये थे. उसका विद्रोही शरीर उस दिन पूरी तरह उसका सहयोगी हो उठा था मानो वह इसी दिन का इंतजार कर रहा था—— आज वह परीकथा की वह राजकुमारी थी जो अपने राजकुमार के होंठों के स्पर्श की प्रतीक्षा में युगों से सोती चली आयी थी. ढाई साल हो गये थे इस घटना को. उस दिन उसने अपने आपको संपूर्ण रूप में मुक्त अनुभव किया था. कितनी खुशी हुई थी उसे!

पता नहीं कितनी देर वह नहाती रही थी. जैसे घंटों नहायी थी, उसी तरह ड्रेसिंग टेबल के सामने घंटों बैठी बालों कर ब्रश फेरती रही थी. बाई ने पूछा था—— बाई, इतना देर होने को आया, ऑफिस जाने का नहीं है क्या? स्मिता ने कहा था—— नहीं, आज वह ऑफिस नहीं जायेगी. साथ ही कहा था—— देखो, दस बजे मुझे ऑफिस फोन करने की याद दिला देना. कहीं मैं भूल न जाऊं.

बाई ने "अच्छा बाई" कहा था और मन-ही-मन यह सोचते हुए कि जरूर आज कुछ खास बात है अपने काम में लग गयी थी.

दस बजे बाई जब स्मिता के बेडरूम में फोन करने की याद दिलाने को गयी तो देखा, ऑफिस के कपड़ों में तैयार, हाथ में पर्स लिये हुए वह बाहर आ रही है. उसने कहा—— बाई, देखो, मैं ऑफिस जा रही हूं, शाम को देर से लौटूंगी.

बाई ने कहा—— लेकिन बाई, तुम तो ऑफिस नहीं जाने वाला था.

—मैंने विचार बदल दिया है, कहा स्मिता ने और फ्लैट से बाहर निकलते हुए कहा— और देखो, तुम शाम छह बजे फ्लैट में ही रहना. आनंद साहब का फोन आये तो कह देना, मैं देर से लौटूंगी. पूछें, कहां गयी हैं तो कह देना, कुछ कह कर नहीं गयीं.

बंगले के बाहर आ कर उसने पड़ोस वाले मकान से ऑफिस को फोन किया—— वह आज नहीं आ रही है.

फोन करके सड़क पर आयी टैक्सी पर बैठी और ड्रायवर को कहा—— पवई लेक.

सीट पर उठंग कर उसने पांव आगे की ओर फैला दिये, सर को झटका दिया, गहरी सांस ली और अपने आपसे कहा—— आज मैं दूसरी बार पूरी तरह आजाद हो सकी हूं. □□□

५, गांधी मार्ग, रांची —८३४००१

रेत के पौधे

• ओंकार ठाकुर

वह घर वापस आया, तो ठंड की शाम पूरी तरह घुल गयी थी. उसका घर अंधेरे में दुबक-सा गया था. मां दालान में बैठीं उसका इंतजार कर रही थीं. उन्हें अब कम दिखने लगा है. अकेले में मां घबराती भी हैं. पता नहीं कौन-सा भय उन्हें सालता रहता है. रात में उनके पास खाट पर बैठ कर जब वह 'टाइम्स आफ इंडिया' का बंबई एडीशन पढ़ता है, तो मां उसके हाथ से अखबार झटक कर घर में दिन भर अकेले रहने की शिकायत करती हैं. वह सुन लेता है, चाह कर भी बोल नहीं पाता.

खाट पर लेटने के बाद भी अकेलेपन का बोझ उसके शरीर से चिपका रहता है. फिर धीरे-धीरे गल कर उसके रक्तकणों में पहुंच जाता है. वह देर तक माथे की फूली नसों को दबाता रहता है. उसने दूर से ही देख लिया था. घर की काली पड़ती जा रही खपरैल काफी दूर से दिख जाती है. घर के सामने छोटा खाली मैदान है. नीम का पेड़ उसके घर के पीछे है. मां हमेशा अपने हाथ से लीपी धरती पर ही बैठती हैं, कमरे से कुरसी बाहर ला कर नहीं बैठतीं. बैठ जाती हैं, तो उठने में उनके जोड़ों में दर्द होता है. उठते समय उनका चेहरा लाल हो जाता है.

मां के कहने पर उसने डाक्टर मित्र से इस दर्द के बारे में पूछा था. डॉक्टर ने साइटिका कहा था. कहा था कि चिंता की बात नहीं है, इस उम्र में बहुत लोगों को यह दर्द हो जाता है. उसने डाक्टर की बतायी गोलियां मां के हाथ में रख दी थीं. गोलियों के ऊपर की पन्नी देख कर मां का चेहरा कुछ पल के लिए हलकी चमक से पुत गया था. वैसे, अब मां हंसती या मुसकराती नहीं हैं. धीरे-धीरे तमाम रिश्ते भी भूल रही हैं. कभी उसे भी भूल जाती हैं—उसका नाम और रिश्ता.

पिछले दो-ढाई बरस से यह होने लगा है. पहले कभी नहीं हुआ. मां को ले कर अब वह किसी आशंका से घिर गया है. उसने यह मां से नहीं बताया. बताने का भी अर्थ नहीं है. और सच तो यह है कि अगर कुंती उसे यह सब न बताती, तो वह पता नहीं कब तक मां की इस मानसिक दशा से अपरिचित रहता.

कुंती मां के पास आ कर बैठा करती थी. एक दिन कुंती ने उससे कहा था— बस, स्कूल मास्टरी ही करते रहोगे या मां का भी ध्यान रखोगे! कुंती और भी कुछ कहती, पर उसका चेहरा देख कर चुप हो गयी थी. उस रात अक्षरों के पीछे से कुंती का चेहरा बार-बार झांकने लगता था. कुंती के चेहरे पर चिपके कई अर्थों वाले एक और चेहरे को वह अपनी हथेलियों में दबाना चाहता था.

वह पास आ गया तो मां ने देख लिया. कुछ पल स्थिर हो कर वह सीढ़ियों के पास खड़ा रहा और हाथ टेक कर मां का तकलीफभरा उठना देखता रहा. उसे लगा कि मां उसे देख कर सब कुछ व्यवस्थित कर लेने के प्रयास में जुट जाती हैं. उसके वापस आ जाने से घर में नये सिरे से दिन शुरू होता है. दिन भर मां से जो भी छूटता रहा है, अनायास ही मां की पकड़ में आ जाता है.

मां खड़ी हो गयीं तो उन्होंने पूछा—आ गया बबुआ?

—हां, मां. उसने कहा.

फिर मां भीतर जाने लगीं. वह भी अपराधी भाव से मां के पीछे चलने लगा. उसे लग रहा था कि दिन भर की थकान के बावजूद भी वह बेफिक्र नहीं है. घर आ कर भी वह अपने को सुरक्षित महसूस नहीं कर पाता. भीतर जलता हुआ भय उसकी कनपटियों को गर्म करता रहता है. मां के चेहरे पर भूल कर भी तृप्ति का भाव नहीं आता. उसे पा कर पल भर के लिए ही मां के चेहरे की झुर्रियां अपनी संख्या कम कर लेती हैं. लेकिन जल्दी ही गहरी हो जाती हैं. अपने घर में ही वह उपेक्षित हो जाता है. मां की तरह.

मां सिर खुला नहीं रखतीं. लेकिन उनका सिर हमेशा ढंका भी नहीं रहता. पल्लू बार-बार कंधे पर गिर जाता है. मां के सफेद बाल वह अकसर देखता रहता है. मां के बाल पूरी तरह सफेद हो गये हैं. इसका उन्हें स्मरण नहीं है. वह शेव करने लगता है, तो मां कभी-कभी उसका आईना उठा कर अपना चेहरा देख लेती हैं. उनके चेहरे पर किसी तरह का भाव नहीं आता. जैसे वह पहचाना हुआ चेहरा हो, उसमें कोई परिवर्तन न पा कर वे खुश हों.

अंगीठी जल रही थी. मां ने कोयला डाल दिया. फिर पूछा—चाय पियेगा?

—पी लूंगा. बना दो. उसने खड़े-खड़े कहा.

—मुंह-हाथ धो लिया?

—अभी धो लेता हूं.

—आज देर कर दी. . . .

—हां.

—रोज ही तो देर से आता है.

—क्या करूं, मां. . . .

—अजीब नौकरी है ! क्या करता है?

—पढ़ाता हूं.

—पढ़ाता है?

—हां, मां. कल बताया था न.

—क्या पढ़ाता है?

—पेड़-पौधों के बारे में

—कौन-सी क्लास?

—बड़ी क्लास.

फिर मां चुप हो गयीं. उन्होंने एक बार उसे आत्मीयता और बेहद खुलेपन से देखा भर था. जैसे बड़ी क्लास सुन कर अच्छा लगा हो उन्हें.

वह गुसलखाने चला गया. गुसलखाने से ही जैसे

ह मां को देख सकता था. मां ने चाय का पानी चढ़ा दिया. दूध डाल दिया. अब शक्कर डाल रही हैं. सुबह भी ां यह सब करती थीं. सुबह सबसे पहले उठ कर पूरे र में झाड़ू देती थीं. पानी भरती थीं. जल्दी ही नहा ती थीं. चाय बना कर उसके पास आ जाती थीं. उसके थ ही चाय पीती थीं. उसे देखती रहती थीं. कभी छती थीं-- भूख तो नहीं लगी?

वह मना कर देता था. सोचता था कि मां को ौन तकलीफ दे. उसके सामने ही मां खाना बनाने लगती थीं. लेकिन वह घर से खाना खा कर नहीं जाता था. पड़ोस का रिक्शे वाला उसका खाना स्कूल पहुंचा देता था. वह बहुत सुबह लाला हरदयाल के यहां ट्यूशन पढ़ाने चला जाता था. मां यह जानती थीं.

वह तौलिया निकाल रहा था. खूंटी पर लटका था. चाय की पत्ती डालते हुए मां ने कहा--- मैं तो भूल ही गयी. . . ले, यह चिट्ठी आयी है. चिट्ठीरसा दे गया था.

उसने मां की तरफ नये ढंग से देखा. उसे मां के चेहरे के आसपास एक और चेहरा दिखने लगा. मां के आसपास फैले स्याहीभरे उजाले में उसने चिट्ठी पढ़ डाली. हाथ में लिये वह मां के पास बैठ गया. मां चाय छान रही थीं.

गिलास उसकी ओर बढ़ा कर मां ने पूछा--क्या लिखा है ?

अभी पढ़े हुए शब्दों का अर्थ निकालने लगा वह. निहायत जरूरी अर्थ मां से वह कहना चाहता था. उसी की तलाश में लग गया. कुछ देर तक द्विविधा में पड़ा सोचता रहा. फिर उसने कहा-- कुंती की चिट्ठी है.

—कुंती की चिट्ठी है? क्या लिखा है?

मां ने दुबारा पूछा था. उसे याद आ गया. आसपास की दीवारों पर नाचती परछाइयां वह देखने लगा. उसने चाय का बड़ा घूंट लिया. उसके मुंह से हलकी-सी आवाज निकली. मां ने उसे फिर देखा. उससे कुछ सुनना चाहती थीं.

उसने कहा—कुंती आ रही है.

मां ने अपने लिए चाय नहीं बनायी थी. शाम को मां चाय नहीं पीतीं. उसे देखने लगीं. काफी देर तक देखती रहीं, जैसे कह रहीं हों कि बोलता क्यों नहीं. कुछ बोल. या पूरी चिट्ठी ही पढ़ कर सुना दे. फिर मां ने ही कहा— कुंती आ रही है. अभी पिछले महीने ही तो गयी थी. बहुत जल्दी आ रही है !

—जल्दी कहां.

—और नहीं तो क्या. . . ससुराल से लड़कियां इस तरह भाग कर घर नहीं आया करतीं. ठीक नहीं कर रही है कुंती.

—उसका घर यह भी तो है, आ गयी तो क्या होगा.

—तू नहीं समझेगा. तू अब बहुत पढ़ने लगा है. ये बातें किताबों में नहीं लिखी रहतीं. दुनियादारी की बातें हैं.

—लेकिन, मां. . .

—अरे, बबुआ, मेरे घर में बहू आ जाये तब देखना. कभी मायके नहीं जाने दूंगी. इस तरह जवान लड़कियां बार-बार घर नहीं आतीं.

—जो हो, मां. आ तो रहीं है. कल शाम. मुझे बुलाया है.

—कल शाम ही आ रही है. और उसी वक्त तुझे बुलाया है. मां ने अचरज व्यक्त किया. अपनी आवाज में उन्होंने आसपास की बहुत ठंड भर-सी ली थी. उनकी आवाज कांप भी रही थी. उसे बुरा लगा.

उसने कहा-- मां, काफी ठंड है. तुम शाल तो डाल लो.

—ठीक है, रे.

—और मां, कुंती अब बच्ची तो नहीं है. हो सकता है शर्मा जी ने ही उसे बुलाया हो. या घर का और कोई काम हो.

—हूं.

—मां.

—क्या है?

—अब खाना भी दे दो. आज रात कुछ काम करना है.

—खाना? अभी?

—घर के लिए कुछ सामान तो नहीं लाना?

—नहीं. सब है. राशन की शक्कर भर लानी है.

वह मैं दिन में किसी से मंगवा लूंगी. तू तो देर से आता है.

—तो खा लेता हूं.

—बैठा रह. थाली ले कर आती हूं.

मां उठ कर भीतर गयीं. बर्तन बगल के कमरे में रहते हैं, जहां मां सोती हैं. दो ही तो कमरे हैं. एक मां के लिए, दूसरा उसके लिए. मेहमान उसीके कमरे में ठहरा करते हैं. वैसे उसके यहां मामा भर आते हैं, पास के देहात से, साल में एकाध बार.

खाट पर लेट कर वह सोचता रहा. मां भी लेट गयी थीं. शायद उन्हें नींद आ गयी थी. लेटते ही मां को नींद आ जाती है. लेकिन रात में कई बार जागती हैं. उसके कमरे में भी आती हैं. महरिन के बारे में शिकायत करती हैं या उससे बार-बार सोने के लिए कहती हैं. कभी उसके हाथ से किताब भी छीन कर अलग रख देती हैं. वह कुछ नहीं कहता. बाद में मां को समझाता है. कहता है कि कल पढ़ाने के लिए उसका आज पढ़ना जरूरी है. आज रात में नहीं पढ़ेगा तो बच्चों को ठीक से पढ़ा नहीं पायेगा. मां मान जाती हैं. लेकिन अविश्वास की पतली-सी लकीर चेहरे पर जरूर खींच लेती हैं.

मरने से पहले पिता की भी अजीब आदतें हो गयी थीं– उसे याद आता है. घंटों पूजा करते रहते थे. ढेर-सा प्रसाद बांटा करते थे. सप्ताह में कई दिन फलाहार करने लगे थे. कई बार उसके प्रिंसिपल से आ कर मिले थे. पता नहीं क्या बातें करते रहते थे. एक बार अकेले इलाहाबाद चले गये थे. फिर काशी भी चले गये. वह कई दिनों तक मां के साथ परेशान रहा. पिता के बारे में सोचता रहा. कहीं कुछ हो न गया हो. मां ने कुछ नहीं कहा. जैसे वह पिता की आदत जानती हों. या आश्वस्त हों कि उन्हें कुछ नहीं होगा.

बीमार पड़ने पर पिता ने अपना इलाज भी ठीक से नहीं कराया था. कहने लगे थे कि मरना है तो इलाज से क्या होता है. कुछ दिन नाव और सरकेगी. लंबी जिंदगी में कुछ दिनों का कोई अर्थ नहीं होता. वह पिता का विरोध नहीं करता था. विरोध करने पर पिता जिद्दी हो जाते थे.

मां के साथ यह कुछ नहीं है. मां की आदतें विचित्र नहीं हैं. उन्हें बीमारी भी नहीं है. ले-दे कर बस अकेले रहने से घबराती हैं. और वह भी तो तनहाइयों से घबराता है. घर और बाहर की तनहाइयों से.

कभी-कभी उसे अहसास होता है कि उसका घर उसके कान में कुछ फुसफुसा रहा है. तब वह चौकन्ना हो जाता है. उसे लगता है कि मां से इतनी जल्दी संबंध नहीं टूटेगा – वह टूटने नहीं देगा. मां बीमार पड़ीं तो चाहे प्रावीडेंट फंड से पैसा ही क्यों न निकालना पड़े, वह मां का सही ढंग पर इलाज करेगा. फल खिलायेगा. थारो चैक-अप करायेगा.

उसे लगने लगा था कि अब वह घर में बिजली लगवा ले. दोनों कमरों में ट्यूब लाईट फिक्स करवा ले. गर्मियों के लिए कूलर भी ले आये. लेकिन फिर सारा सारा प्लान अगले बरस के लिए स्थगित कर देता था. कुछ पैसे तब तक और जमा हो जायेंगे. अभी से कर्ज लेने की आ वह नहीं डालना चाहता था.

वह कुंती के बारे में भी सोचता रहा. क्यों आ है? पत्र में आने का कारण लिख सकती थी. बस, दो पंक्तियों का पत्र लिखने से क्या फायदा हुआ उसे. लि वट भी सधी हुई है. पत्र उसने सोच कर लिखा है. म की कमी के कारण घसीटा हरगिज नहीं है. बंबई से उ शहर में पत्र तीसरे दिन आ जाता है. और पत्र पांच पुराना है. पोस्ट करने की तारीख भी उसने लेटे-लेटे देख ली थी. पोस्ट करने के दो दिन पहले कुंती ने उसे लि लिया था. सब कुछ गड़बड़ा गया तो वह फिर मां बारे में सोचने लगा.

* *

वह तेज चलने लगा. अभी काफी दूर चलना है. शर्माजी का दोमंजला मकान काफी दूर से दिख जाता उस गली में दोमंजला मकान शर्माजी भर का है. आगे है. किसी सिंधी ने नया बनवाया है. नीचे दूकान खोल रखी है.

जब वह कुंती के घर के पास पहुंचा तो अंधेरा चुका था. अपने-अपने घर के आगे लोग या तो खड़े या बैठे थे. कई लोग बच्चों को खिला रहे थे. यह देख कर उसे मतली-सी आने लगी. लेकिन वह उदा हो गया. क्यों आने लगी उसे मतली? पहले भी कई बा इस तरफ आया है. अनजाने में उसने कुंती से कह दिया था—जानती हो, तुम्हारे घर का नाम क्या रखा मैंने?

कुंती ने आंखें फैला कर उसे देखा था. जैसे कह रही हो, सुनाओगे या बस पहेलियां ही बुझाओगे.

उसने सिर झुका कर कहा था—हैपी हाउस.

कुंती ने तपाक से दुहराया था— क्या कहा! हैप्पी हाउस!' फिर सोचने लगी थी. फिर कुरसी से टिक कर कहा था— क्यों? फिर वह उदास हो गयी थी. उसने कहा था— यह हैप्पी हाउस नहीं है. तुम मुझ पर व्यंग्य कर रहे हो!

वह सहम गया था.

* *

उसे याद है. वह दिसंबर का महीना था. इसी तरह कोल्ड-वेव आयी थी. अचानक कुंती ने उसे बुलवाया था. पड़ोस के एक लड़के ने खबर दी थी. कुंती दीदी आपको याद कर रही हैं.

वह चला गाया था. कोट भर ऊपर डाल पाया था. जीना चढ़ कर ऊपर गया था. कुंती कमरे में बैठी फफक-फफक कर रो रही थी. वह काफी देर कमरे में खड़ा रहा. कुंती की रुलाई थमने को नहीं आ रही थी. पास जा कर उसने कुंती का कंधा झकझोरा था और पूछा था— क्या हुआ कुंती?

लेकिन कुंती रोती रही. उसकी तरफ उसने देखा भी नहीं. अचानक शर्माजी कमरे में आ गये. उन्होंने उसे बताया — आज ही खबर आयी है. सुमेश ने जहर खा कर आत्महत्या कर ली.

—आत्महत्या! क्यों?

--पुलिस वाले जांच कर रहे हैं. वह खड़े-खड़े सुमेश के बारे में सोचने लगा. एक ही लड़का है शर्माजी का. सुमेश इंजीनियरिंग पढ़ता था. वह बायोलाजी पढ़ता रहा. मैट्रिक तक दोनों साथ थे. सुमेश ने गणित ले लिया. उसने बायोलाजी. लेकिन सुमेश इंजीनियरिंग में लगातार फेल होता रहा. तीन बरस में वह इंजीनियरिंग का पहला इम्तहान पास कर पाया था. दूसरे साल भी वह कई बार फेल हुआ था. फिर तंग आ कर उसने पढ़ाई छोड़ दी थी. किसी तरह उसे नागपुर की एक फैक्टरी में काम मिल गया था. वहीं नौकरी करने लगा था. साल में दीवाली पर वह जरूर आता था. उससे मिलता था.

सुमेश आता तो अपने साथ रम की बोतल लाता था. दोनों मिल कर पीते थे. दो दिनों में पूरी बोतल खाली हो जाती थी. फिर सुमेश उससे मांग करता था. वह सुमेश को होटल ले जाता था.

उसे याद है. सुमेश की सेहत खराब हो गयी थी. वह रात-रात भर सो नहीं पाता था. उसे भूख भी नहीं लगती थी. उसने दो-चार बार उससे कहा था कि कहीं उसे कैंसर तो नहीं हो गया. डाक्टर छिपा रहे होंगे. उसने हंस कर टाल दी थी सुमेश की बात. लेकिन उसका मन आशंका से भर गया था. कौन जाने, हो भी गया हो. वह बंबई जा कर इलाज करवाना चाहता था. नौकरी भी छोड़ना चाहता था. लेकिन शर्माजी ने उसे प्रोत्साहित नहीं किया. उलटे उसे डांट भरे पत्र लिखते रहे. कुंती ने पिता का विरोध किया था. उसने सुमेश को लिखा भी था कि वह अपने खर्च से बंबई जा कर इलाज करवा ले.

लेकिन सुमेश के पास पैसों की कमी थी. वह बंबई नहीं गया. नागपुर में ही रहा. पैसे उसके पास भी कभी नहीं जुड़े. वह चाह कर भी सुमेश को देखने और उसके साथ कुछ दिन बिताने नागपुर नहीं जा पाया. हालांकि वह एक बार सुमेश से मिलना चाहता था.

शर्माजी को रिटायर हुए दस बरस हो गये हैं. फंड के पैसे से कुंती की शादी की थी. उनकी जिद थी कि कुंती की शादी किसी डाक्टर या इंजीनियर से ही करेंगे. चैन से खा तो सकेगी.

पहले अपने महकमे का लड़का खोजते रहे. पर जब कोई ठीक लड़का नहीं मिला, तो एक डाक्टर से शादी कर दी. नौकरी करते हुए शर्माजी ने मकान बनवा लिया था. बनवाया कहना ठीक नहीं, रेनोवेट कराया था. सामने का कमरा तुड़वा लिया था. और उसी नींव पर ऊपर तक खींच ले गये थे.

घर का सारा सामान भी नौकरी के वक्त का खरीदा हुआ है. नौकरी पर थे तो बड़ा दबदबा था. गुंडे उनसे कांपते थे. महाजन उन्हें इज्जत देते थे. घूस लेते उन्हें किसीने नहीं पकड़ा, पर कहते हैं, सारा पैसा घूस का ही है. पता नहीं.

पुलिस महकमे के बारे में उसकी जानकारी यूं ही कम है. और जो बात वह जानता नहीं, उस पर ज्यादा सोचे ही क्यों. फिर कुंती के कारण वह शर्माजी के बारे में अच्छे विचार रखता आया है. मन में बुरी बात हो, तो कभी-न-कभी तो निकल आती है.

--आपने किसीको लिख दिया होता, उसने कहा.

--मैंने किसीको नहीं लिखा. शर्माजी ने कहा.

--अब जांच का लाभ ही क्या है?

--न हो. पर पुलिस अपना काम तो करेगी. आत्महत्या का मामला है. इसीका तो खाती है पुलिस.

शर्माजी चले गये. कुंती सामान्य हो गयी थी. वह बैठ कर कुंती को समझाता रहा.

फिर कुंती ने कहा था— चलो, भीतर. कुछ देर वहीं बैठना.

वह कुंती के पीछे-पीछे चला गया था. ऊपर बगल वाला कमरा कुंती का है. वहीं पढ़ती थी. उसके कमरे में किसीको जाने की इजाजत नहीं थी. हां, उसकी सहेलियां ही उस कमरे में जा सकती थीं.

काफी देर तक कुंती इधर-उधर की बातें करती रही. शर्माजी को ले कर वह चिंतित थी. कहा था—पिताजी का क्या होगा ?

--क्यों?

--उनकी देखभाल करने वाला कोई नहीं है.

--तुम तो उनका सारा काम करती हो. तुम्हारे रहते वे निश्चिंत हैं.

--लेकिन. . . मेरे बाद.?

--अरे, अभी कहां. तुम अभी यहीं रहोगी.

--नहीं, बाबूजी ने रिश्ता पक्का कर लिया है. कह रहे थे. उस दिन तुम्हें बुलाया था. घर भी गयी थी, लेकिन तुम किसी इम्तहान में बिजी थे. शाम तक बैठी रही थी तुम्हारे यहां.

--कुंती!

--ठीक कह रही हूं.

वह कुछ देर चुप रहा. सोच नहीं पा रहा था कि क्या कहे. कुंती का रिश्ता पक्का हो गया है. उसे बाद में मालूम हो पाया. दूसरे दिन भी कुंती से वह नहीं मिल पाया था. शायद कई दिन नहीं मिल पाया था. उसके फाइनल इम्तहान हो रहे थे. प्रैक्टिकल्स की तैयारी करनी पड़ती थी. सारा समय लैबोरेटरी खा जाती थी.

* *

आज याद करता है तो मन पर नीला-सा कुहासा छा जाता है. आसपास की धुंध भी आंखों में आंसू बन कर गलने लगती है. रात में वह महसूस करने लगा है कि उसे अब चश्मे की जरूरत पड़ेगी.

ऊपर का दरवाजा खुला था. उसने दूर से देख लिया था. कमरे में काला उजाला भरा था. सीढ़ियां चढ़ कर वह ऊपर चला गया. नीचे के कमरे में शर्माजी अकेले बैठे थे. वह उनके पास नहीं रुका. शर्माजी ने उसे देख लिया था. कुछ बोले नहीं. पहले उसका मन हुआ था कि शर्माजी से पूछे कि कुंती क्या कर रही है. लेकिन सीढ़ियां चढ़ते समय वह इसे याद नहीं रख सका. भूल गया.

उसने कुंती को देख लिया था. वह खड़ी हो कर साड़ी की सलवटें ठीक कर रही थी. जूतों की आहट से कुंती ने चौंक कर उसे देखा था. देख कर मुसकरायी नहीं. हालांकि वह उसे देख कर मुसकराये बिना कभी नहीं

रही. उसे याद है. उसे देखते ही कुंती मुसकराती है. फिर उससे बैठने के लिए कहती है. विदा लेते समय कुंती उसे नीचे के दरवाजे तक छोड़ने आती है. कुंती उसके यहां आती है, तो वह भी कुंती का सारा व्यवहार वापस कर देता है.

वह भीतर आया और बगैर किसी औपचारिकता के कुरसी पर बैठ गया.

कुंती घबरायी-सी कुछ पीछे हट गयी. फिर उसके सामने की कुरसी पर बैठ गयी.

उसने कुंती को गौर से देखना चाहा . लेकिन नहीं देख सका. कुंती उसे ही गौर से देख रही थी. कुंती ने ही कहा--मैं जानती थी कि तुम आज ही आओगे. न आते तो मैं और टूट जाती .

--क्यों? उसने आश्चर्य से पूछा.

कुंती ने सांस भरी. साड़ी ठीक की. बाल संवारे. सामने आ गयी चोटी पीछे की. पैर के ऊपर पैर रख लिया. शायद वह सीधे जवाब से बचना चाहती थी. वह कई मौकों पर ऐसा करती है. उसे जब सीधे जवाब से बचना होता है, तो वह भीतर से ऊन का गोला उठा लाती है. यह क्रूमिये से बुनने लगती है.

या हो सकता है, आज न बताना चाह रही हो. अभी दो-चार दिन आराम करेगी. सारी थकान उतारेगी. फिर उसे बुलायेगी, खिलायेगी और उस दौरान कोई वजनदार बात कहेगी. यह भी कई बार हो चुका ह. ठीक है, वह सोच लेता है. कुंती की भावना की रक्षा का खयाल उसके सामने सर्वोपरि होता है.

सोचते हुए कुंती ने कहा--- आज ही सुनोगे?

--क्यों, आज क्यों नहीं?

--आज कितना सुना पाऊंगी.

वह कुछ नहीं बोला. कुंती ने फिर कहा -- अभी तो यहां हूं. फिर कभी सुन लेना.

--कब तक हो?

--बहुत दिनों तक.

--मतलब?

--वह भी बताऊंगी.

यह कमरा कुंती सोने के लिए भी इस्तेमाल करती थी. अब घर में दो ही व्यक्ति बचे हैं. वह और शर्माजी. सुमेश नीचे का कमरा लिये था. दाहिनी ओर कुंती की कई साड़ियां टंगी थीं. बेतरतीब. शायद हैंगर भी उसने अभी नहीं निकाले. दोनों सूट-केस भी बंद रखे थे. एक ओर होलडाल लुढ़का पड़ा था.

बगल में काफी पुरानी मैगजीन पड़ी थी. उसने उठा ली. देखने लगा. फिर उसे लगने लगा कि वह जान-बूझ कर चुप है. उसने कहा--आज मैं बिलकुल खाली हूं. आज बता दो. अभी. इस तरह तुम्हारा मन भी हलका हो जायेगा.

--क्या बता दूं?

--वही, सब कुछ.

टोक दिये जाने से कुंती के चेहरे पर कई भाव आये थे. सोच के और झिझक के. उसने भी महसूस किया कि वातावरण व्यर्थ ही बोझिल हो रहा है और उसीके कारण हो रहा है. तब वह झुक कर बाहर दे लगा. उसे कुछ भी दिखाई नहीं दिया. दरवाजे परदा लटका हुआ था.

कुंती ने पूछा--क्या पियोगे?

--मैं?. . . कुछ नहीं.

--क्यों?

--अभी खाना है. मां इंतजार करती रहती तुम जानती हो.

--तो क्या होता है! इतने दिनों बाद आयी है

--पिछले महीने ही तो गयी थीं. ज्यादा दि कहां हुए?

--एक माह कम होता है!

वह कुछ नहीं बोला. कुंती को देखने लगा. वा भीतर जाने लगी थी.

--कहां जा रही हो? बैठो.

--महरिन से चाय के लिए बोल आऊं. औ आयी.

कुंती लौटी तो उसके हाथ में दालमोठ की प्ले थी. उसने कहा--यह क्यों ले आयी?

--और क्या लाती?

--मेरा मतलब यह नहीं है. चाय भर ठीक थी.

कुंती उठ कर सूटकेस से साड़ियां और दीग सामान निकालने लगी. कुंती उसकी उपस्थिति मात्र भूल गयी थी. वह कुंती को देखता रहा. उसके कानों रिंग अचानक चमक उठते थे. दो-एक बार कुंती कलाई-घड़ी देखी थी. यह अंतराल उसने जान कर दिय था शायद. वह उसे बरदाश्त करता रहा.

फिर खिड़की के फड़फड़ाते पर्दे देखते हुए कुंती पूछा था--मां कैसी हैं?

--ठीक हैं.

--उन्हें मेरे आने की खबर है?

--है. मैंने बताया था.

--क्यों?

--चिट्ठी तो मां को ही दे गया था, पोस्टमैन उन्होंने पूछा था कि किसकी चिट्ठी है.

--क्या कह रही थीं?

--कह रही थीं कि तुम ससुराल से बहुत जल्दी वापस आ रही हो. पिछले महीने ही तो गयी थीं.

--तुमने क्या कहा मां से?

--मैंने तुम्हारा पक्ष लिया था. तुम्हारे आने का औचित्य समझाने की कोशिश की थी मां को.

--मेरे आने का कारण तुम्हें कैसे मालूम हो गया?

--मालूम नहीं था. इस वक्त भी नहीं मालूम. ही अंदाज से कह दिया था कि कोई खास बात होगी. तभी आ रही हो.

वह कुछ नहीं बोली.

महरिन चाय रख गयी थी. वह खाने लगा था. बीच-बीच में चाय सिप करता जाता था. कुंती चाय के बड़े घूंट ले रही थी.

जितने उत्साह में भर कर वह कुंती के पास आया था, उससे ज्यादा ही उदासी उसके भीतर उतर

गयी थी. कुंती का उदास भाव कमरे में भरे हुए अंधेरे को और भी कुरूप बना रहा था.

उसने कहा—क्या बात है, कुंती? तुम सामान्य नहीं हो!

वह बोली नहीं. खड़ी हो गयी. फिर उसने खाली कप नीचे रखते हुए उसे आत्मीय नजरों से देखा. कुंती ने मुसकराने का प्रयत्न किया था. उसके गालों में मामूली भंवर की तरह उथले गड्ढे भी पड़ गये थे. लेकिन फिर वह संभल-सी गयी. उसका चेहरा कुम्हला गया.

कुछ देर द्विविधा में पड़े रहने के बाद कुंती कप-प्लेट समेट कर भीतर चली गयी. वह कमरे में फिर अकेला हो गया.

* *

एक दिन वह इसी तरह शर्माजी के पास अकेला बैठा था. उनसे मिलने आया था. जिस वक्त वह शर्माजी के यहां पहुंचा, शाम उतर आयी थी. वह अभी-अभी कहीं से लौटे थे. जूते भी नहीं खोले थे.

उस दिन पहली बार उसे लगा था कि शर्माजी असाधारण व्यक्तित्व के धनी हैं. दुनियादारी समझते हैं. संभल-संभल कर कदम रखना उनकी आदत बन चुकी है. एक-एक मिनट का हिसाब रखते हैं. जीवन की उनकी नाप-तौल में शायद ही कभी फर्क आया हो.

उसने गौर से देखा था, उन्हें. वह सामने देख रहे थे. हर कश के साथ काफी धुआं उगल रहे थे. यह चेहरा सुमेश के चेहरे से बिल्कुल भिन्न था. कई बार उसने इस बारे में सोचा भी था. बाप-बेटे के चेहरों में किसी तरह की समानता नहीं है. सुमेश का रंग साफ होने के साथ ही एक तरह का खुलापन लिये रहता था. ओठों पर मुसकराहट तिरती रहती थी. वह सब शर्मा जी के चेहरे पर नहीं था. यह दूसरा ही चेहरा लगा था, उसे.

उसने कहा था—आपने मुझे याद किया था. कल खबर मिली थी.

—मैं तो कल ही तुम्हारा इंतजार करता रहा था. तुम नहीं आये. आना था. जरूरी बात कहनी थी तुमसे.

—देर से घर वापस आया था. सोचा कि आप कहीं निकल न गये हों.

वह रुक गये थे. कहा था—यही तो दिक्कत है. आज की यह पीढ़ी बहुत गैर-जिम्मेदार हो गयी है. और जानते हो मैंने क्या सोचा था? लेकिन शर्माजी एका एक कुछ नहीं कह सके. सोचने-से लगे. फिर कहा उन्होंने—तुम्हारे बारे में ही सोचा था, मैंने. सोचा था कि तुम नौकरी करते हुए ऐसा कोई काम नहीं करोगे जिससे मेरे ऊपर किसी तरह की आंच आये. पर, तुमने सब गड़बड़ कर दिया.

उसने मार्क किया कि गड़बड़ शब्द पर शर्माजी ने जोर दिया था. अपने को संभालने की कोशिश में वह बेहद खोखली हंसी हंसने लगा था.

पहले वह शर्माजी के यहां जाता जरूर था. बहुत जाता था. पर कभी वह शर्माजी के पास नहीं बैठा. सीधा कुंती के पास चला जाता था. सुमेश था, तो उसीके पास बैठा रहता था. शर्माजी के कमरे से ही भीतर जाने का रास्ता था. शर्माजी कमरे में रहते भी थे, तो भी वह उनसे नहीं बोलता था. हाथ में चश्मा ले कर कई बार उन्होंने देखा था, उसे. उसने भी यह देख लिया था.

शायद उन्होंने उत्तर की आशा की थी. पर वह नहीं बोला कुछ. अधीर हो कर शर्माजी बोले थे—मिस्टर विलसन तुम्हारी शिकायत कर रहे थे. तुम बाहर बहुत ट्यूशनें करने लगे हो. सुबह स्कूल देर से भी पहुंचते हो. स्कूल का काम इस सबसे सफर होता है. . .यही सब है. .

वह चुप. आरोपों को स्वीकारता हुआ.

शर्माजी फिर चीरती-सी आवाज में बोले—मुझे नहीं मालूम था कि तुम भी वही सब करोगे, जो आम मास्टर करते हैं.

वह अपने एक मित्र की शादी में पटना जाना चाह रहा था. उसने मिस्टर विलसन से छुट्टी मांगी थी. मिस्टर विलसन ने छुट्टी देने से इनकार ही नहीं किया उसे खरी-खोटी सुना दी थी. उसका जाना जरूरी था. उसने मिस्टर विलसन को समझाने की असफल कोशिश की थी. यही कहने वह शर्माजी के पास आया था. तभी उसे समाचार मिला था कि शर्माजी उसे बुला रहे हैं. उस दिन वह बहुत भरा हुआ था. कहीं जाने का मन नहीं था. उसने सोचा था कि वह शर्माजी से कल मिल लेगा.

लेकिन उसे अपनी बात कहने का मौका ही नहीं दिया शर्माजी ने. उसे लगा कि शर्माजी नहीं, मिस्टर विलसन ही उसका अपमान कर रहे हैं. उसके अस्तित्व को चुनौती दे रहे हैं. उसे यह भी लगा कि वह अपनी सारी शक्ति संचित कर ले और इस टुच्ची मास्टरी को लात मार दे. कोई दूसरी नौकरी कर ले, यह शहर छोड़ कर कहीं और चला जाये—जहां उसका कोई परिचित न हो, जहां उसे काम करने की कम-से-कम सीमित आजादी हो. लेकिन उसे अपने पिछले दिन याद आ गये. . .अभी घाव सूखा भी नहीं है. वह एम. एस-सी. प्रीवियस में था, जब उसके पिता मर गये थे. घर में पैसा नहीं था. पिता ने बीमा भी नहीं कराया था. मां के पास गहने भी नहीं थे. उसका कोई भी रिश्तेदार नहीं था, जो उसे आर्थिक मदद देता. लिहाजा मां को सिंधी की दूकान के लिए पैकेट बनाने पड़ते थे, वह घर-घर जा कर छोटी ट्यूशनें करता था, अखबार के लिए लिखता था और किसी तरह पढ़ाई पूरी करना चाहता था. पढ़ाई के बाद फौरन नौकरी करना चाहता था.

इम्तहान के बाद उसे नौकरी नहीं मिली. कुंती ने शर्माजी से कह कर उसे एक एंग्लो-इंडियन स्कूल में नौकरी दिलवा दी थी. एक थर्ड डिवीजनर को नौकरी दिला दी थी, शर्माजी ने.

बहुत दिनों तक वह सोचता रहा था कि उसे नौकरी कुंती ने दिलवाई है या शर्मा जी ने. उसने इस बारे में कभी कुंती से चर्चा नहीं की थी. वह कुंती को हर्ट नहीं करना चाहता था. उस दिन उसने महसूस किया था कि परेशानियों का भी अंत नहीं होता. परेशानियां अपना मुखौटा भर बदल लेती हैं.

बुझा हुआ चेहरा ले कर वह वापस आ गया था. उसने कसम खायी थी कि वह भविष्य में कभी शर्माजी से मुलाकात नहीं करेगा. वह कभी कुंती के यहां नहीं जायेगा. कभी नौकरी छूट भी जाये, तो किसीके सामने हाथ नहीं फैलायेगा नौकरी के लिए.

* *

लौटते समय सब ठीक था, पर घर पहुंच कर उसका सिर दुखने लगा था. मां से उसने नहीं बताया था. लेट गया था. घना अंधियारा. उसे नींद नहीं आ रही थी. अपने और मां के बारे में सोचता रहा था. आंखें बंद करता था, तो शर्माजी और मिस्टर विलसन उसे दिखने लगते थे. उस पर थूकते हुए-से. उसकी आंखों को निकालते हुए-से.

अंधेरे में भी बनी अंधेरे की छायाएं वह देखता रहा था. चित्रपट की तरह. छायाओं का तांता. सभी उसे घूरती हुईं. खिलखिलाती हुईं. फुसफुसाती हुईं.

शर्माजी का विकृत चेहरा उसकी आंखों में नीली रोशनी बन कर समा गया था. उसे डर लगने लगा था. वह उठ कर मां के कमरे में चला गया था. मां सो रही थीं. आहट पा कर उठ गयी थीं. पूछा था —— कौन है?

उसने कहा था—— मैं.

मां आवाज पहचान कर लेट गयी थीं. फिर कहा था—— जा, सो जा, बबुआ. बहुत जागने लगा है. मेरा कहा नहीं मानता. ये अच्छे लक्षण नहीं हैं.

उस रात उसे पहली बार अपना घर मिट्टी का घरौंदा लगा था. कितनी कच्ची गृहस्थी है उसकी! कितना बेबस है वह, उसका दो जनों का परिवार! कौन-सी दुश्मनी उससे निकाली जा रही है. कौन-सा रेगिस्तान उसके हाथ पर रखा जा रहा है.

उसे याद आया था. इसी कमरे में पिता की मौत हुई थी. किसी मरते आदमी का चेहरा उसने पहली बार देखा था. कितना विवश, कितना दयनीय, कितना एकाकी. आज वह भी अपने पिता के समान है. फर्क यही है कि वह दुनिया के लिए जिंदा है. उसे अभी जिंदा रखा जायेगा. उसे पिता की तरह जल्दी मरने नहीं दिया जायेगा.

लेकिन फिर सुबह आयेगी. उसे स्कूल की तैयारी करनी पड़ेगी. न आये सुबह, तो क्या हो? मगर सुबह को कौन रोक सकता है! वह आयेगी और उसीके लिए आयेगी. उसे स्कूल ले जाने के लिए. मिस्टर विलसन के कमरे के भीतर जा कर दस्तखत करने के लिए. बतलाने के लिए कि वह समय पर स्कूल आ गया है.

सुबह वह देर तक सोया रहा. सिर दर्द कम नहीं हुआ था. उसने जल्दी-जल्दी दरख्वास्त लिखी थी और स्कूल जाते एक लड़के के हाथ में थमा दी थी, मिस्टर विलसन को देने के लिए. कैसे जा सकता था स्कूल? सिर दर्द कम हो, जब न. पता नहीं, कब कम होगा.

मां से कह दिया था कि सिर दर्द है. छुट्टी ले ली है. मां ने उसका शरीर छुआ था. देखा था कि कहीं बुखार तो नहीं है. नहीं था. निश्चिंत हो कर सुबह का काम निबटा लिया था. फिर दवाई की एक टिकिया उसे खिला गयी थीं. दवाई खा कर वह फिर लेट गया था.

दोपहार के पहले ही मां ने खाना तैयार कर लि था. मां उसे बुलाने आयीं, तब भी वह लेटा था. सि दर्द नहीं था. मां ने पूछा भी था. उसने कह दिया था कि अब वह ठीक है. वह खाना खाने आया तो मां ने उसे डां था. उसकी चढ़ती उमर की चर्चा छेड़ दी थी. और उस सोचा था कि मां ठीक कह रही हैं. उसके भले की कह र हैं. कई बार वह तीखे उलाहने दे चुकी थीं. कहा भी थ कि अपने बड़े भाई को लिखेंगी. और ब्याह वह अप लिए कर रही हैं. आराम उन्हें होगा. अब उनकी कमर त झुकने लगी है. गठिया का दर्द कम नहीं होता. आंख त और खराब होगी.

उसे मालूम है, उसके बड़े मामा समाज के मुखिया है उनके पास तमाम ब्याहे जाने वाले लड़के-लड़कियों की फेहरिस्त रहती है. उसमें उसका नाम होगा और जरू होगा. उनके पत्र भी आते रहते हैं.

मां का घुमड़ता हुआ मन मुखर हो गया था. मा कह डाला था. एक ही तो औलाद है. वह भी कितनी मान मनौवल के बाद हुई थी——कितने देवताओं का हवन पूजन बाबूजी ने करवाया था. बचपन में चांदी का कड़ा डाला था, पैर में. दस बरस तक तो सिर भी नहीं मुड़वाया था. दूध का फोहा था वह. सर्दी-गर्मी से उसे बचाती रहीं राजकुमार था एक तरह का. गरीब राजकुमार. क्या राजकुमार गरीब नहीं होते? बाबूजी यही कहते थे.

फिर ऊब कर पूछा था——तू क्या कहता है?

——मैं मामा को लिखूंगा.

——लिख चुका. कितनी चिट्ठियां लिखी हैं उसे अब तक. बोल?

——तुम मानती क्यों नहीं, मां.

——मैं तेरी बात मानूं या तू मेरी बात मानेगा?

इस तर्क के सामने वह हार गया था. वैसे भी मां के किसी तर्क का वह जवाब नहीं देना चाहता था. मां भरी हुई थीं. वह जानता था.सारा संकोच मां ने तोड़ कर अपने दिल की बात कह दी थी. यही तो मां का दिल है. वह सोचता रहा. पहली बार तीखेपन के साथ उसने मां शब्द का सही अर्थ जाना था. कितना अच्छा होता है, पढ़े शब्दों का सही अर्थ जान लेना.

शाम को बाजार गया था. सब्जी खरीदने. मां के बारे में ही सोचता रहा था. छिह, इतनी-सी बात पर उसका दिल भर आया. इतनी भावुकता ठीक नहीं. वह बच्चों को समझाता है और खुद भावुक बना फिरता है. कच्ची मिट्टी का लौंदा है वह. जरा-सी बात पर उस पर निशान बन जाता है. बचपन तो केंचुल है. वह पीछे छोड़ आया है. आगे का रास्ता उसे तय करना है. मां को साथ ले जाना है. रास्ते भर वह मन-ही-मन पछताया था. अब जीवन को सीरियसली जियेगा. नौकरी है, तो हजार दिक्कतें हैं. पैसा कमाना कठिन होता है. तन इसी तरह पेरना पड़ता है. मन को बांधना पड़ता है.

* *

खट् खट् खट्. . .

——कौन है? उसने कहा.

——अरे, मैं हूं. कब आ गये? शर्माजी ने पूछा.

—बहुत देर से बैठा हूं. आते समय आपको देखा था, लेकिन आप अखबार पढ़ रहे थे. फिर मैं ऊपर चला आया था.

—अच्छा!

—बैठिए न . वह खड़ा हो गया था.

—नहीं, भाई. भीतर जाऊंगा. कुंती कहां है?

—कुंती? भीतर होगी. भीतर ही गयी थी.

शर्माजी भीतर चले गये. कुछ देर बाद कुंती आ गयी. आते ही देर कर देने के लिए माफी मांगने लगी. कहने लगी कि महरिन से खाना बनवायेगी आज. वही समझा रही थी. सामान निकाल रही थी. सब्जी भी नहीं थी. पसे दे कर समझाती रही. पढ़ी-लिखी नहीं है. कुछ-का-कुछ काम कर आती है.

फिर कुंती बैठ गयी थी. बहुत देर तक बात का सिलसिला नहीं बन पाया था.

—और कुछ खाओगे?

वह हंसा. कहा—अभी तो खाया है. अब क्या खाना?

—मेरा मन रखने के लिए कुछ खा लो.

उत्तर सुनने के लिए कुंती नहीं बैठी. भीतर चली गयी. लौटी तो उसके हाथ में प्लेट थी. उसके सामने रख दी.

फिर कुंती ने उठ कर दरवाजे का परदा ठीक किया. खिड़की बंद की. स्टील की आलमारी से गहरा पीले रंग का शाल निकाला और लापरवाही से ऊपर डाल लिया. फिर बैठ गयी. वह खाने लगा.

धीरे-धीरे सन्नाटा उतरने लगा. उसे इसी सन्नाटे से डर लगता है. खाते समय उसने महसूस किया कि कमरे की ठंड भुरभुरी रेत बन कर उसके शरीर में समाने लगी है, समा गयी है. शरीर का सारा रक्त किरकिरा हो कर तेजी से बहने लगा है.

कुंती ने उसके संवेदनशील चेहरे की रेखाएं गिनीं और स्वर को संजीदा बना कर कहने लगी—अब मैं बंबई नहीं जाऊंगी.

झन्न!

सन्नाटा एक झटके से चिटख गया. जैसे कांच का खाली गिलास अचानक हाथ से छूट जाये.

कुंती ने सिर झुका लिया और बहुत धीमे स्वर में उसने कहा—मैं अनिल से सारे संबंध तोड़ लूंगी. जानते हो, उसने तलाक की कार्रवाई की है. पहले दिन से ही उससे मेरी नहीं पटी. वह मुझे कोठे वाली समझता है. दोस्तों के साथ कर देता है. खुद रात-रात भर गायब रहता है. शराब पीता है और मुझ पर चाहे जब हाथ भी उठा देता है...

पिछले माह उसने अबार्शन करा दिया था... उसे मालूम पड़ा था, तो बहुत नाराज हुआ था. मुझे दवा ला कर दी थी. मुझे जबरन खानी पड़ी थी. मार डालने की भी धमकी देता रहता है.

मैं कई दिनों तक रोती रही थी—वह खूनी है, किसी मासूम के खून से उसके हाथ रंगे हैं. मैंने बहुत सोचा है और यह निर्णय लिया है.

वह कुंती को बरदाश्त कर रहा था. उसे लगा था कि उसके सामने कुंती नहीं, शर्माजी बैठे हैं. रिटायर्ड पुलिस अफसर मोहनलाल शर्मा. जबड़े भींचे हुए. उसे किसी उलझे मुकदमे की कार्रवाई सुना रहे हैं. वह अपराधी का कोई रिश्तेदार है या खुद अपराधी है.

चेहरा पोंछने के बहाने उसने रूमाल निकाल लिया और उससे चेहरा छिपा लिया...

फिर याद करने लगा. सुमेश कहा करता था कि पिता कुंती की शादी इंजीनियर या डॉक्टर से ही करेंगे. उन्होंने कुंती को बी. ए. भी नहीं करने दिया. उस बरस वह फाइनल में थी. शादी के बाद उसका पढ़ना छूट गया था.

किसी रिश्तेदार के सुझाव मात्र से उन्होंने जल्दी में कुंती की शादी डॉक्टर अनिल से कर दी थी. शेष आफर ठुकरा दिये थे.

उसने बाहर नजर डाली. हवा के साथ परदा फड़फड़ा रहा था. दरवाजे के बाहर गाढ़ा अंधेरा टुकड़ों में बिखरा हुआ था.

उसे मां याद आ गयी. घर में अकेले उसका इंतजार कर रही होंगी. दरवाजे पर ही बैठी होंगी. हर निकलने वाले को बबुआ समझ रही होंगी. नाहक ही आज यहां आ गया. और कभी आ सकता था. वह अफसोस से भर गया.

जाने के लिए और कुछ कहने के लिए वह खड़ा हो गया, लेकिन उसे उपयुक्त शब्द नहीं मिले. वह कुंती को देखने लगा. कुंती भी खड़ी हो गयी. उसने कहा—इस साल बी. ए. करना चाहती हूं. तुम मेरी मदद कर सकते हो?

—तुम पढ़ोगी?

—हां, एम. ए. भी करूंगी.

—फिर?

कुंती बोली नहीं. उसे देखती रही. वह हलके-से कांप रहा था.

क्षण भर बाद ही अस्फुट स्वर में कुंती ने कहा—बहुत देर हो गयी...

सौ-सौ अर्थों वाली निगाह से उसने कुंती की तरफ देखा और सीढ़ियां उतरने लगा, गिनता हुआ... एक, दो...

□□□

१९१०, राइट टाउन, जबलपुर.

एक लघुकथा

जमाना

● अग्निशेखर

बाबा, उसका लड़का फेल हो गया.

एक व्यक्ति ने अपने पड़ोसी से कहा.

—मुझे क्या!

—तुम्हारा पास हो गया.

—तुझे क्या!

□□□

घर

रमेश गुप्त

वह भूखा प्यासा कृषि-भवन से बाहर आ गया.

मां को डिस्पेंसरी ले जाना है. वह उसके साथ जायेंगी? पता नहीं. सुबह पापा के सामने तो उन्होंने मना कर दिया था.

वह बस स्टॉप की ओर बढ़ गया. उसे जल्दी घर पहुंच जाना चाहिए.

घर! घर की याद आते ही खटमलों को मारनेवाली दवा की बदबू का भभका उसके नथुनों में घुस गया और वह 'सी. सी. . ' करने लगा. जब भी वह अपने आपको किसी ऐब्सर्ड स्थिति में पाता है, उसके मुंह से हलकी 'सी. सी. .' सीटी-सी बजने लगती है.

वह क्यू के सिरे पर जा कर खड़ा हो गया. निरर्थकता से उपजती लिज-लिजाहट को वह झेलता हुआ लेडी डाक्टर की कल्पना करता रहा.

—छक्का!

—किसने मारा?

—इंजीनियर ने.

उसके पीछे खड़े सुरी ने सुपर बाजार से साठ रुपये में खरीदे मीडियम वेव ट्रांजिस्टर को थोड़ा तेज कर के कान से चिपका लिया.

—दिन के खेल की समाप्ति के अंतिम क्षणों में छक्का मारना बड़ी हिम्मत और जोखिम का काम है.

—लो, अगली गेंद पर क्लीन बोल्ड. इंजीनियर पेवेलियन को लौट रहा है.

कानपुर टेस्ट मैच के तीसरे दिन का खेल समाप्ति पर था. घर में ग्यारह खिलाड़ियों में चार की कमी थी.

—यार, इस साल तो सर्दी बिलकुल ही नहीं पड़ी.

—तुझे सर्दी क्यों लगने लगी, साले? रीता तेरा बिस्तर जो गर्म रखती है.

कौन कहता है इस साल सर्दी नहीं पड़ी है. वह तो पूरे सीजन सर्दी से ठिठुरता रहा. रात को बिस्तर में पड़े-पड़े ठंड के कारण वह सो नहीं पाता. रजाई और पप्पू के बावजूद उसके पांव घंटों तक ओले की माफिक ठंडे रहते हैं. पप्पू भी इतनी घिचपिच करता है कि ठीक से नींद नहीं आती. जैसे ही उसकी आंख लगती है, पप्पू की टांग फटाक् से उसके पेट पर आ कर पड़ती है.

उसने शुरू से ही पप्पू को अपने पास सुलाने का विरोध किया था.

—जाड़ों में कोई पास सोये तो अच्छा लगता है, मां ने सूखे से मुंह से कहा था.

वह मां से सिद्धांत रूप में सहमत था. पर अपनी बगल में उसने पप्पू की कल्पना नहीं की थी.

—भैया, अभी से प्रेक्टिस शुरू कर दो. बाद में दिक्कत होगी. बी. ए. फाइनल में आते ही शशि का मुंह खुलने लगा था.

शशि की बात सुन कर शायद उसके मुंह से 'सी. . सी. .' की आवाज होने लगी थी. उसे सुन कर आरती हंस कर बोली थी— भैया, दीदी इसलिए ऐसा कहती है कि उसकी लाइन क्लियर हो जाये.

—मुझ से ऊपर तो अभी पूजा है. शशि ने आरती के चपत जड़ दी.

तो उसकी ट्रेन एक छोटे से स्टेशन पर अनिश्चित समय के लिए क्यों रुकी खड़ी है?

—शाम को जरा जल्दी आ जाना. ममी को डिस्पेंसरी ले जाना है. वह सुबह आफिस जाने के लिए तैयार हो रहा था तो पापा ने 'राधा तू बड़भागिनी, कौन तपस्या कीन' का पाठ करते हुए, बाथरूम से निकल कर कहा था.

—आप आज जरा जल्दी आ जाना. मां पापा से बोली थीं.

—तुम्हें पता है, आजकल संसद का अधिवेशन चल रहा है.

—मैं अनु के साथ डिस्पेंसरी नहीं जाऊंगी.

—क्यों ?

उसने ममी का उत्तर नहीं सुना था. शायद ममी ने उत्तर दिया ही नहीं था. वह जल्दी से घर से निकल पड़ा था. इसी हड़बड़ाहट में वह अपना लंच लाना भूल गया था.

बस आ गयी. पांच बीस की स्पेशल थी. एकदम खाली. नियंत्रित क्यू आगे बढ़ने लगी.

वह बस के अंदर पहुंचा तो सिर्फ एक सीट खाली थी. उसने उसे हथिया लिया. बस चल पड़ी.

एक के बाद एक क्यू! बस की क्यू के बाद डिस्पेंसरी में मरीजों की क्यू. पर इस सबसे ज्यादा अहम एक क्यू और है जिसमें वह वर्षों से खड़ा है— एकाकी, निष्प्रयोजन, दिशाहीन-सा.

बस की छत्त से लगी रेलिंग से बहुत से लोग लटके थें. उनमें से एक पर उसकी दृष्टि खटक गयी. कोणार्क मंदिर की दीवार से उतर कर कोई मूर्ति उसके सामने आ खड़ी हुई थी. सांवला रंग. भरपूर मांसलता. बड़ी-बड़ी आंखें. कमर तक झूलती बालों की गुच्छियां. सौंदर्यप्रसाधनहीन मुख.

उसे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि उसके सिवाय कोई भी उस कोणार्क की मूर्ति में रुचि नहीं ले रहा है.

—कहां का?

—पच्चीस पैसे की. उसने जेब से एक रुपये का नोट निकाला और कंडक्टर की ओर बढ़ा दिया.

—रुपया न दिखा, भलेमानुस. चेंज निकाल.

घर में चेंज की दिक्कत होती है इसीलिए वह नोटों को भुनाता रहता है. उसे यह देख कर संतोष हुआ कि कोणार्क की मूर्ति के ओंठों पर एक क्षीण-सी मुसकान उभर आयी थी. उसने फौरन चवन्नी निकाली और

● गिरीश शुक्ला

कंडक्टर को पकड़ा दी.

तभी दृश्य-परिवर्तन हुआ.

कोणार्क की मूर्ति दुल्हन की तरह सज गयी थी—गहरे लाल रंग की सिलमा सितारों से जड़ी साड़ी में लिपटी. उसके हाथ में वरमाला थी और वह कह रही थी— मनु, अपना सिर झुकाओ न!

वह मुड़ा. उसे मां को तलाशना था. मां को एक साथ बहू-बेटे की आरती उतारनी थी. पर मां नहीं थीं. शायद वह डिस्पेंसरी गयी थीं.

अगले स्टॉप पर कोणार्क की मूर्ति उतर गयी. उसकी जगह एक आधुनिका आ गयी. कंधे तक झूलते बाल—कटे, खुले, रूखे. रंगे ओंठ, नीले रंग के ढ़ीलेढ़ाले पैंरेन. चुस्त ब्लाउज टाइप का आला कुर्ता. गोरा रंग. मासूम-सी आंखें.

उसे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि इस लड़की को देख कर, उसके अलावा, सब में हलचल मच गयी.

घर तो वह ठीक समय से पहुंच जायेगा. मां से कहेगा. यदि उनकी मर्जी हो तो वह उन्हें डिस्पेंसरी ले जायेगा. अगर वह न जायें तो उनकी मर्जी. उससे ज्यादा वह और कुछ नहीं कर सकता है.

—अब क्या करने का इरादा है? एक दिन लंच में मधुर ने पूछा था.

—इस प्रश्न का उत्तर देने की स्थिति में होना एक उपलब्धि होती.

—सात रुपये दैनिक की तुम्हारी यह नौकरी कभी भी खत्म हो सकती है. तुम उस बार भी कम्पटीशन में रह गये.

—अगले साल बैठ नहीं सकता. इन इक्कीस दिनों ने समूची जिंदगी को एक अंधी गली में ला कर खड़ा कर दिया है.

—पच्चीस ऊपर इक्कीस दिन. ओवर ऐज. अब क्या करोगे मनु?

—नयी नौकरी की तलाश में जुटूंगा. कविताएं लिखूंगा. सपने देखूंगा. क्यू. . . और ज्यादा क्यू!

उसकी बगल में बैठ पॉप-सिंगर टाइप एक नवयुवक ने अपनी सीट उस आधुनिका के लिए खाली करके उसे धर्म-संकट में डाल दिया.

आधुनिका के सामीप्य से उसे कुछ असुविधा-सी होने लगी.

अकसर वह देखता है, वह एक महिला को अपने सिर पर उठाये बीहड़ मार्ग से गुजर रहा है. वह उस महिला को पहचानने की कोशिश में जुट जाता है—क्या वह मां है? नहीं, वह तो डिस्पेंसरी जाने के लिए पापा की बाट जोह रही हैं. तो क्या मधुर? कई दिन से वह मधुर के दाहिने गाल पर उभरे एक लाल निशान को देख रहा है— एकदम दंत-पंक्ति जैसा. यह निशान क्लर्क-ग्रेड के परीक्षाफल घोषित होने के बाद उभरा था.

वह गौर से उस आधुनिका को देख रहा था जिसके घुटने बार-बार उसके घुटनों से टकराते थे. धीरे-धीरे लड़की की शक्ल स्पष्ट होने लगी. वह मधुर से कितनी मिलती-जुलती थी. . . आज से वीस वर्ष बाद यह मधुर की लड़की होगी. . . मधुर की लड़की यानी उसकी बेटी. अनंत काल की तुलना में ये बीस वर्ष कितना नगण्य समय था! ये बीस वर्ष चुक गये थे और वह एकटक अपनी बेटी को निहार रहा था.

—मुझे मनु के साथ डिस्पेंसरी नहीं जाना है. उसे याद आया.

बस टर्मिनस पर पहुंच गयी थी. सब उतर पड़े. वह भी उनमें था. पर यह क्या? उसकी बच्ची अपने घर की विपरीत दिशा में जा रही थी.

* *

स्टॉप से घर तक के लिए घुमावदार रास्ता लेना पड़ा. सेक्टर एक के चौकोर स्क्वायर में शामियाने तने थे और रंगबिरंगी रोशनियां झिलमिल कर रही थीं. किसी की शादी हो रही थी.

उसे ठंड़ लगने लगी. उसने अपने कोट का कालर खड़ा कर दिया.

सेक्टर एक के बाजार से समोसे खरीद कर लाती हुई, टेलीविजन में कैमरामेन के पद पर काम करनेवाले उसके पड़ौसी खुराना की पत्नी उसके सामने पड़ गयी. उन्होंने अपने स्थूल शरीर को समेट कर जबर्दस्ती इकट्ठा किया और मुसकरा कर बोलीं—मिठाई कब खिला रहे हो, मनु?

—मिठाई? किसलिए? वह उलझ गया.

—क्या शादी का यह मौसम भी यूं ही सूना चला जायेगा?

--शादी? किसकी? वह चौंक गया.

--क्या जन्म भर यूं ही क्वांरे रहोगे?

--ममी की तबियत खराब है, आंटी. उन्हें डिस्पेंसरी ले जाना है.

--मनु, तुमसे कितनी बार कहा है कि मुझे भाभी कहलाना अच्छा लगता है.

वह श्रीमती खुराना को नीचे छोड़ कर फटाफट सीढ़ियां चढ़ कर घर में पहुंच गया.

बरामदे में लगे वाश बेसिन पर मां कमान बनी खड़ी थीं. वह पल भर को ठिठका. मां के पास गया. उनकी पीठ सहलाई. मां सीधी खड़ी हुईं तो उसने देखा--उनकी नाक और आंख से पानी टपक रहा है. नाक का अगला हिस्सा लाल हो रहा है. वह हांफ रही थीं और दोनों हाथों से अपने वक्ष को दबाए हुए थीं. माथे पर पड़ी झुर्रियों की खाइयां और गहरी हो गयी थीं. आंखों के इर्दगिर्द उभरे काले साये और ज्यादा गढ़ा गये थे.

--डिस्पेंसरी चलिए, मां.

--नहीं.

--पापा का कुछ ठीक नहीं.

--मैं ठीक हूं.

वह वहां से हट गया. कमरे में फटी चटाई पर बैठी कविता ड्राइंग कर रही थी. न वह बोल सकती है और न सुन सकती है. उसके पास ही पप्पू बैठा प्लास्टिकसीम से खिलौने बना रहा था.

पूजा खिड़की के सहारे प्रस्तरमूर्ति बनी खड़ी थी. उसे बी. ए. किये पूरा वर्ष हो चुका था. वह बी. टी. करना चाहती थी पर दाखिला ही नहीं मिला. वह आगे बढ़ा. उसने पूजा के कंधे पर हाथ रखा और पूछा--क्या बात है?

--कुछ नहीं.

--फिर तुम्हारा मुंह कैसे पीला हो रहा है?

--मुंह पीला होने में क्या लगता है, भैया. हां, हाथ पीले करने में जरूर परेशानी होती है.

अनायास उसके मुंह से 'सी. . सी. . . की आवाज होने लगी.

--हम्टी डम्टी सेट आन ए वॉल! पप्पू आया और बोला--भैया, आज हमने नयी कविता सीखी है. पूरी सुनेंगे?

--पप्पू, मुझे आती है यह, उसने पप्पू को टाल दिया.

वह जूते खोल कर और कोट उतार कर चारपाई पर लेट गया.

--हम्टी डम्टी सेट आन ए वॉल. . .

--अब क्या करोगे, मनु? मधुर ने आज फिर पूछा था.

--शादी. उसने मधुर के गाल पर उभरे लाल निशान को देखते हुए निर्विकार भाव से कह दिया.

मधुर बुरी तरह चौंकी थी. फिर उसने मुसकरा कर पूछा था-- उसे खिलाओगे कहां से?

--क्या वह मुझे नहीं खिला सकती?

--अगर वह नौकरीपेशा न हुई तो?

--हम्टी डम्टी हेड ए ग्रेट फाल!

वह घबरा कर चटाई से उठ बैठा. बाहर बरामदे से अजीब-सी आवाजें आ रही थीं. वह दहलीज पर आ कर खड़ा हो गया. मां एक बार फिर वाश बेसिन पर झुकी खड़ी थीं. शशि और आरती आ गयी थीं और मां की पीठ सहला रही थीं.

वह वाश बेसिन पर लगे शीशे में मां का प्रतिबिंब देख रहा था.

--मां,मुंह में भुनी इलायची डाल लो,आरती बोली

मां ने कुल्ला किया और धोती के पल्लू से मुंह पोंछ कर वहां से हट गयी.

--आग लगे मरी! मां बड़बड़ा रही थीं.

--मां, तबीयत खराब है तो डिस्पेंसरी चल कर दवा क्यों नहीं ले आतीं?

--दवा इसमें क्या करेगी? ये बेटे-बहुओं के दिन हैं या. . .

मां कमरे में जा कर चारपाई पर पड़ रहीं.

* *

पूजा रसोईघर में खाना बना रही थी. वह रसोईघर की चौखट पर जा कर खड़ा हो गया और बोला--यह मां को. . .

--चाय पी थी सो उलट दी. पूजा ने परोठे सेंकते हुए कहा.

--तो क्या. . .?

--तुम्हें क्या पता भैय्या,तुम्हारे घर में तुम पर क्या गुजर रही है?

--आल दि किंग्स हार्सेस एंड आल दि किंग्स मैंन. कुड नाट पुट हम्टी डम्टी टुगेदर अगेन. पप्पू ने नर्सरी राइम की अंतिम पंक्ति गा दी थी.

वह तेजी से बराबर वाले कमरे में जा कर चारपाई पर लेट गया. कमरे की चारों दीवारें सिकुड़ती हुई उसकी ओर बढ़ रही थीं. छत नीचे की ओर झुकी आ रही थी.

--मैं खुद नये जन्म के लिए तड़प रहा हूं, वह बुदबुदाया.

--रानीपुर से भाभी आयेंगी जापा कराने के लिए. पूजा रसोईघर से आ कर सूचना दे गयी.

उसके मुंह से अनवरत 'सी. . सी' की सीटियां बजने लगीं.

'राधा तू बड़भागिनी. कौन तपस्या कीन' का स्वर जीने में गूंज रहा था. दिन के खेल की समाप्ति के अंतिम क्षणों में छक्का मारना हिम्मत का काम है. अगले क्षण काफी जोखिम के होते हैं. □□□

१, बाबर प्लेस,
नई दिल्ली --१

सारिका के कुछ आगामी अंक

- अप्रैल, १९७६ — **दुष्यंत कुमार-स्मृति-अंक**
- मई, १९७६ —— **नवलेखन अंक**
- जून, १९७६ —— **कच्छी कहानियां**

हिंदी के ओजस्वी, प्रखर प्रतिभावान साहित्यकार श्री दुष्यंतकुमार ३० दिसंबर १९७५ को हमारे बीच नहीं रहे. सारिका का अप्रैल, १९७६ अंक उनकी स्मृति को समर्पित है.

●●

हर बार की तरह इस बार भी मई अंक नवलेखन अंक होगा. यद्यपि पिछली बार जून और जुलाई अंक नवलेखन अंक थे लेकिन उससे पहले मई अंक ही नवलेखन को समर्पित रहा था और इस बार फिर से रहेगा.

●●●

जून, १९७६ अंक में अधिकतर कच्छी कहानियां रहेंगी, जो हिंदी पाठकों को कच्छ के सामान्य जन-जीवन से परिचित करायेंगी.

साथ ही सभी स्थायी स्तंभ

सारिका

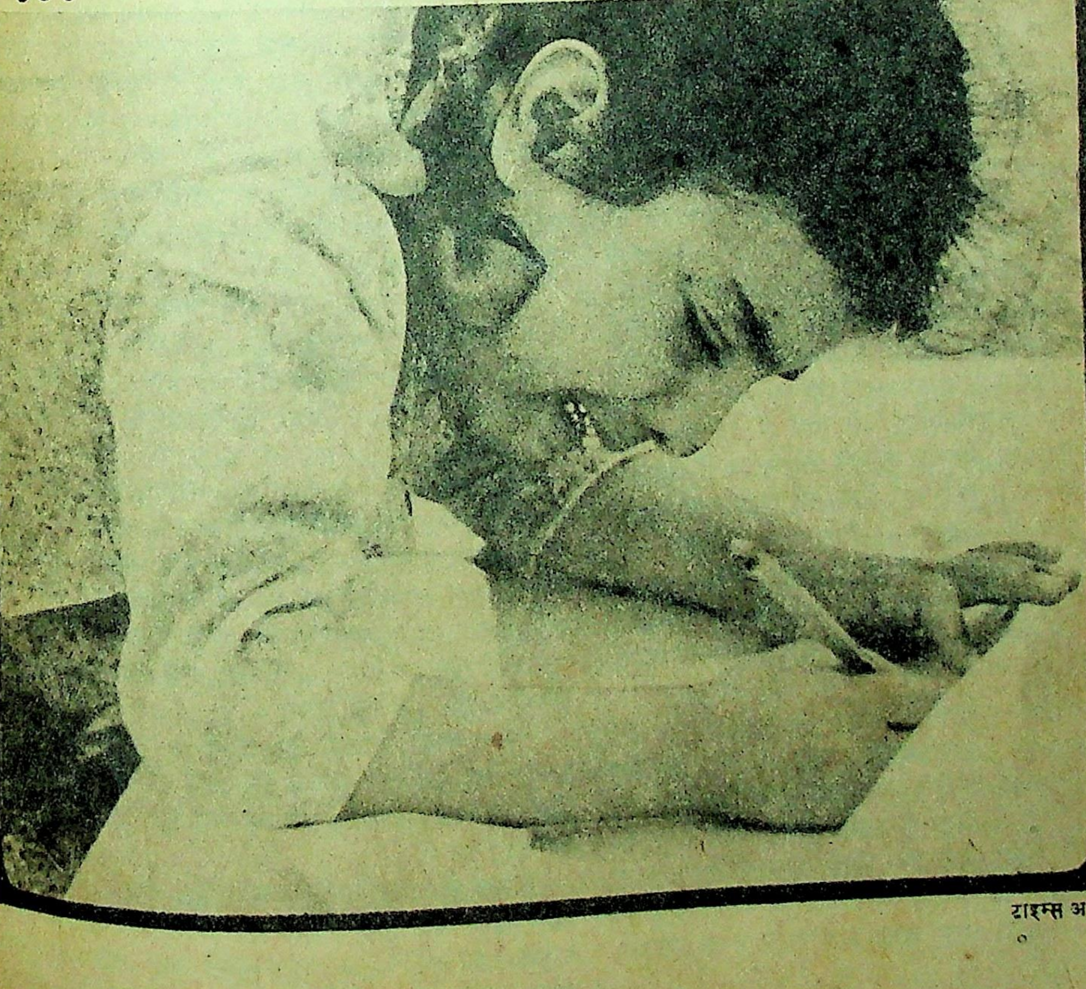

टाइम्स आर्ट

जब-जब, मैंने तुमसे वह बात कहनी चाही है, तब-तब, न जने कितनी तरह के डर, कितनी आशंकाओं और अनिष्ट की न जाने कितनी संभावनाओं ने मेरी जुबान पर ताला डाल-डाल दिया है.

कई बार मैं इस विश्वास के बहुत निकट पहुंच-पहुंच गया हूं कि मेरी मन:स्थिति का ज्ञान तुम्हें हैं, फिर भी,वह बात तुमसे कहने का इरादा मैं अकसर करता रहा हूं, हालांकि उस निश्चय को कार्यान्वित करने का पूरा साहस उस दिन के पहले मैं जुटा नहीं सका था.

मुझे मालूम है कि तुम शार्ट टैंपर्ड हो और तुम्हारी अप्रसन्नता की अपेक्षा तुम्हारी औपचारिक उदासीनता सहते जाना मैंने इसीलिए हमेशा बहतर समझा है. यह भी कितनी अजीब बात है कि तुम शार्ट टैंपर्ड तो हो, मगर तुम्हारे गुस्से से मेरा साबिका अभी तक सिर्फ एक ही बार पड़ा है, जब कि तुम्हारे भाई-बहन तो अकसर ही, और तो और, कभी-कभी तुम्हारे मम्मी-पापा भी इसके शिकार हो जाते हैं.

संज्ञा और सर्वनाम

• सुरेश चतुर्वेदी

उस बार जब तुम गुस्सा हुई थीं तो अचानक ही तुम्हारा चेहरा तमतमा आया था और आंखें चढ़ गयी थीं. अपनी कुर्सी से उठ कर तुम मेरे पास आ खड़ी हुई थीं और अपने दोनों हाथों की मुट्ठियां बांध कर, उन्हें मेरे सामने हिला कर, तुमने पूछा था कि वह बात मैंने उस व्यक्ति विशेष से आखिर कही ही क्यों थी?

तुम्हारी तुनकमिजाजी के बारे में उस दिन तक मैंने सिर्फ सुना भर ही था. तुम्हारे उबाल पर मैं बेसाख्ता हंस दिया था और मैंने कहा था—तो इसमें नाराज होने की क्या बात है, नीना— नीना तुम्हारा नाम नहीं है—तुमने चोरी नहीं की है, डाका नहीं डाला है, किसीसे कुछ मांगने भी तो नहीं गयी हो. सिर्फ नौकरी ही तो करने लगी हो न. कितनी सारी लड़कियां आजकल नौकरी करती हैं—कर रही हैं.

और तुम्हारा गुस्सा खौलते दूध में पानी पड़ने की तरह अगले ही क्षण ठंडा हो गया था और तुम इस तरह मुसकरा पड़ी थीं जैसे कुछ हुआ ही नहीं था.

और नीना—नीना तुम्हारा नाम नहीं है, मगर संबोधन के लिए मुझे तो कोई संज्ञा चाहिए ही न, क्योंकि बिना संज्ञा और सर्वनाम के काम जो नहीं चलता है—उसके बाद तुम्हारे क्रोध से मेरा सामना दुबारा नहीं हुआ है.

यही कारण था कि मैंने तुम्हें उस दिन बहुत डरते डरते फोन किया था. वैसे फोन इसलिए भी करना पड़ा था कि तुम्हें कई दिन से देखा जो नहीं था. तुम्हारी आवाज सुनने की इच्छा तो रही थी, अकसर ही जब तुम्हें देखे दो-चार दिन हो जाते हैं, तो तुमसे मिलने को, और नहीं तो, कम-से-कम, तुमसे फोन पर ही बात करने को तबीयत मचलने लगती है.

कुछ दिन पहले मैंने तुमसे कहा था—नीना—तुम्हारा नाम नीना नहीं है, तुम्हारा वास्तविक नाम रहता तो मेरे होठों पर हर समय ही है, मगर उसका उल्लेख यहां करना संभव नहीं है—चौथे-छठे मुझे फोन कर लिया करो न.

तुम्हारी 'क्यों' के जवाब में मैंने कहा था—क्योंकि मैं तुम्हारे यहां रोज-रोज तो आ नहीं पाता हूं. बिना तुम्हें . . .

अपना मन्तव्य कि बिना तुम्हें देखे बेचैनी होने लगती है, मैंने अस्पष्ट ही रहने दिया था और टुकड़ों में जोड़ दिया था—तुमसे . . . बात ही . . .हो जाया करेगी.

—बेकार, तुमने एक साथ ही जैसे सवाल भी किया था और फैसला भी दे दिया था.

—बेकार ही सही, मेरा मन रखने को तुम इतना भी नहीं कर सकोगी क्या ?

—देखेंगे, तुमने मुसकरा कर जवाब दिया था.

चार-पांच दिन के बाद मैंने तुम्हें एक चिट भेजी थी, लिखा था— तुमसे कुछ कहा था, तुम्हें शायद याद नहीं रहा. अगर सोचने पर भी याद न आये तो कल सुबह नौ बजे के पहले मुझे रिंग कर लेना.

अपने पंच पेपर की फाइल से फाड़ी एक चिट पर तुमने उत्तर लिख भेजा था—कल सुबह हम आपको नौ बजे फोन कर लेंगे.

मगर दूसरे दिन तुमने फोन किया नहीं था. दफ्तर से जब ग्यारह बजे मैंने तुम्हारे यहां फोन किया था तो तुम्हारी छोटी बहिन इक्की ने बताया था कि तुम यूनीवर्सिटी चली गयी हो. इक्की उसका भी असली नाम नहीं है.

मैंने तब इक्की से कहा था—नीना, लौट कर आये तो उससे पूछना कि अभी नौ नहीं बजा है क्या?

तुम्हारे द्वारा तब अपनी अवज्ञा किये जाने पर मुझे अजहद तकलीफ हुई थी. और फोन तुमने फिर भी नहीं किया था. शायद इक्की तुम्हें मेरा मैसेज देना भूल गयी थी. या फिर उसने तो तुम्हें बता दिया होगा, तुम खुद ही भूल गयी होगी.

सच मानो, पिछले कुछ दिनों से मानसिक अशांति इतनी बढ़ गयी थी कि न तो रातों को नींद आती थी और न दिन को ही चैन मिलता था. हर वक्त तुम, तुम और तुम !

जिस दिन तुम्हें फोन किया था, उसके तीन-चार दिन पहले मैं तुम्हारे यहां आया था न? यही निश्चय करके गया था कि वह बात तुमसे कह जरूर डालूंगा. मगर तुमसे सामना होते ही हिम्मत साथ छोड़ गयी

थी—तुमसे बात करने का इरादा, मैंने बीसियों बार किया है, मगर होता हर बार यही है.

सच पूछो तो तुम्हारे घर पर मुझे तुम्हारे साथ एकांत भी तो नहीं मिल पाता है—एक बार के अलावा कभी मिल, नहीं है. और तब यही सोचा था कि तुमसे फोन पर बात करूंगा—तब, कम-से-कम, तुम्हारे सामने बात करने की जहमत तो नहीं होगी मुझे.

पिछली बार जब तुम अपने चाचा के पास पटना गयी थीं तो मेरे वे पैंतीस दिन कितनी बेकली से कटे थे इसका तुम अनुमान भी नहीं कर सकोगी. अठारह महीनों में वह सब से लंबा वियोग था.

हां, छत्तीसवें दिन तुम अचानक लौट आयी थीं. उस दिन तुम्हारे आने की बात भी नहीं थी—गाड़ी का टाइम भी निकल चुका था—उस दिन मेल काफी लेट आया था न—सो तुम्हारे अनायास आ जाने पर मुझे बेहद खुशी हुई थी.

तुम्हारे चले जाने के कोई हफ्ते भर बाद मैंने तुम्हारे घर फोन किया था तो तुम्हारी छोटी बहिन पम्मी ने—पम्मी उसका भी असली नाम नहीं है—छूटते ही कहा था—अंकल, जीजी नहीं है तो आपने आना भी छोड़ दिया है.

तुम्हारे भाई-बहन तुम्हें जीजी नहीं कहते हैं. मगर जो संबोधन वे तुम्हें देते हैं, वह है जीजी का पर्यायवाची ही. और बात तो सच ही थी. उधर जाने का मन ही नहीं होता था. मगर मैंने उलटे शिकायत ठोक दी थी—कहा था नीना नहीं है तभी न तुम में से किसीने एक बार भी यह खबर ली है कि अंकल मर गये या जिंदा हैं?

मैंने जब उस दिन तुम्हें फोन किया था तो न तो मेरी आवाज कांपी थीं और न मैं घबराया ही था—बिल्कुल सहज स्वर में मैंने कहा था—नीना, तुमसे कुछ बात करनी है.

—कहिए, तुमने तुरंत पूछ लिया था.

मगर असली मुद्दे पर आने से पहले मुझे उन सभी संभावनाओं का ध्यान आ गया था जो यदि तुम्हें क्रोध आ जाता, तो उसके विस्फोट से उत्पन्न हो सकती थीं. ज्यादा सोचने का वक्त था ही कहां और विषय चूंकि मैंने छेड़ ही दिया था, एक पल में सारी विषमताओं का सामना करने को मैं तैयार हो गया था और मैंने कहा था—पहले तुम्हें यह वायदा करना होगा कि तुम नाराज नहीं होगी. तुम शार्ट टैंपर्ड हो न. और दूसरे यह कि वह सब तुम किसीसे कहोगी भी नहीं.

धीरे से हंस कर तब तुमने कहा था—ऐसा कोई प्रामिस हम नहीं कर सकते, अंकल.

असहमति में भी कहे गये तुम्हारे वे शब्द फूल से महकते और तुम्हारे नाम के अनुरूप कोमल हैं.

और तुम्हारी वह संक्षिप्त हंसी बड़ी उजली थी. चमेली के फूलों की तरह बेदाग. तुम्हारी वह, वैसी हंसी मैंने बहुत बार देखी है. तुम्हारी वह हंसी किसी लंबे वाक्य में अल्पविराम की तरह होती है.

● प्रबोध गोबीवाला

तुम्हारी भरपूर हंसी का स्वर मेरे कानों में हर वक्त गूंजा करता है. थोड़ाखाल की देवी के मंदिर में टंगी अनगिनत घंटियों की मिली-जुली झंकार की तरह ही ती है तुम्हारी खिलखिलाहट.

उस बार जब मैं भवाली में तुम्हारे यहां था, हम लोग साथ-साथ ही तो देवी के दर्शन को गये थे. उसी दिन कैंची भी गये थे, भीमताल भी गये थे. सैकड़ों घंटियां हम लोगों ने बजा कर भी देखी थीं. हजारों घंटियां लटकी हैं वहां. छत से, पेड़ों से, खंभों से, बांसों पर, दीवालों पर—छोटी-बड़ी, माझोली, अलग-अलग आकार की, भिन्न-भिन्न धातु की. अलग-अलग ध्वनि वाली.

एक बार हम लोग तुम्हारे यहां अंदर बरामदे में बैठे उन दिनों चर्चित मेरी कहानी 'फिर' पर बात कर रहे थे. मैंने दिल्ली के एक सीनियर आई. ए. एस. आफिसर की चिट्ठी का हवाला दिया था जिन्होंने कहानी की प्रशंसा करने के साथ यह भी पूछा था कि अंत में नीना का होता क्या है.

कई दर्जन प्रशंसक पाठकों में से, जिन्होंने मुझे सीधे पत्र लिखे थे, वहीं एक, कोई मिस्टर जौहरी थे, जौहरी उनका भी असली नाम नहीं है, जिन्होंने यह जिज्ञासा की थी. मुझे तब लगा था और अब भी मेरा यही खयाल है कि वे भी तो मेरी तरह किसी नीना के साथ डीपली इन्वाल्व हैं. अगर ऐसा न होता तो वे नीना का अंत जानने को व्यग्र होते ही क्यों.

मैंने तुम लोगों को बताया था कि मैंने उन्हें यही लिख भेजा है, कि सारी कहानी मेरा भोगा यथार्थ है,

कि अभी नीना का कुछ भी नहीं हुआ है. कुछ होगा भी या नहीं, यह न तो मैंने उन्हें ही लिखा था और न तुम्हीं लोगों को बताया था. और सच पूछो तो अभी कुछ हुआ ही कहां है! कभी कुछ होगा भी या नहीं यह भी तो मैं नहीं जानता. तुम भी तो नहीं कह सकती हो. होगा शायद कभी भी कुछ नहीं.

तुम ठीक मेरे सामने बैठी थीं. तुम्हारे मुंह पर लाली दौड़ गयी थी और तुम अजीब तरह मुसकरा दी थी—वही चमेली के सफेद फूलों को शरमा देने वाली मुसकान. तुम्हारे मुंह पर उस वक्त एक साथ गुलाब और चमेली खिल उठी थीं और मुझे कॉकटेल का स्वाद याद आ गया था.

तुम्हें शायद यह घटना भी याद नहीं होगी, क्योंकि तुम्हारी उम्र में, बहुत कुछ भूले रहने की मस्ती और बेपरवाही आदमी के मन पर छायी रहती है.

और उस दिन तुम्हारे शरमा कर लाल हो जाने पर मुझे बहुत खुशी हुई थी, क्योंकि तब मैं इस विश्वास के और भी ज्यादा पास पहुंच गया था कि अपने प्रति मेरी रुझान तुम समझती अवश्य हो.

नीना—तुम्हारा नाम नीना नहीं. जो है वह तुम्हें मालूम है. मैं भी जानता हूं. और भी बहुत सारे लोगों को मालूम है. नीना तो मेरी उस कहानी की प्रमुख नारी पात्र का नाम था न? तुम्हारी वह चमेली के फूलों से होड़ करने वाली मुसकान मैंने हजारों मर्तबा देखी है. बहुत बार तो तब देखी है जब तुम्हारे यहां से चलते वक्त अपना हाथ आगे बढ़ा कर मैंने कहा है—नीना, मैं अब चलूंगा.

तुम्हें परोक्ष रूप से छूने का यह बहाना मैंने अपना रखा है. तुमसे विदा लेते वक्त तुम्हें स्पर्श करने की इच्छा अनायास होने लगती है. संभव है, तुम मेरा यह छल समझती भी हो. मगर यह जानने का कोई साधन मेरे पास नहीं है. हां, मेरा छल जान कर, समझ कर भी अगर तुम अपना हाथ मेरे हाथ में दे देती तो यह तुम्हारी बहुत बड़ी उदारता है. और हां, वह इस बात का प्रमाण भी है कि तुम मेरी मनोभावना से अनवगत नहीं हो.

तुम अपनी खुली हथेली मेरी तरफ बढ़ा देती हो जिसे मैं अपने हाथ में ले कर धीरे से दबा देता हूं तो तुम आंखें झुका कर मुसकरा पड़ती हो. हर बार तुमसे विदा लेते वक्त मुझे तुम्हारे चेहरे पर खिली चमेली देखने को मिल जाती है.

तुम्हारी हथेली का आकार बिलकुल शंख जैसा है यह मैंने तुमसे कहा भी है. तुम्हारा शार्ट टैंपर्ड होना शायद तुम्हारे हाथ की इस बनावट के कारण ही होगा. मैंने पढ़ा जरूर है. बहुत दिन पहले पढ़ा था, ज्यादा कुछ अब याद नहीं है.

कभी-कभी, मुझे यह सोच कर आश्चर्य होता है कि आखिर तुम कितनी तरह मुसकरा लेती हो.

नाट्य शास्त्र के प्रणेता भरत मुनि ने हंसने के छह प्रकार बताये हैं—स्मित, हसित, विहसित, उपहसित, अपहसित और अतिसहित . तुम इन सभी तरह से हंस लेती हो .

मैं जब चलने लगता हूं तो तुम फेयरवैल में अपना बांया हाथ ऊपर उठा कर वेव करती हो तो इस प्रक्रिया के साथ, अपनी गुलाबी मुसकान छिपाने को तुम अपने होंठ भींच लेती हो, हांलाकि मुसकान तुम्हारे बंद होंठों पर आ ही जाती है—तो तुम्हारे होंठ इस तरह आगे बढ़ जाते हैं जैसे उन्हें एक चुंबन में दबा लिया गया हो.

तुम्हारी मुसकान जहां चमेली की याद दिलाया करती है, वहीं तुम्हारा शरमा कर लाल हो जाना मुझे गुलमोहर की याद दिलाया करता है. वैसे, शरमा कर लाल तो सभी लड़कियां हो जाती हैं. मगर तुम्हारा शरमाना भी कुछ खास है—औसत से कुछ ज्यादा ही लाली तुम्हारे गालों पर बिखर जाती है.

तुम्हारे उतने ज्यादा लाल हो उठने का कारण शायद यही है कि अपने प्रति मेरा प्यार और मेरे प्रति अपने आदर की भावना-दोनों के बीच, किसी जगह तुम अटकी हुई हो. काश मेरा अंदाज ठीक हो.

एक बार हम लोग—मैं और तुम दो ही थे—और वहां एक अवसर ऐसा था जब हम लोग काफी देर तक अकेले बात करते रहे थे, बड़े कमरे में बैठे थे. अचानक मेरा फोल्डर हाथ से छूट कर नीचे जा गिरा था. उसे उठाने को तुम झुकीं थीं तो तुम्हारे कुर्ते के गले के लटक जाने से तुम्हारे छोटे-छोटे कुआरे बक्षों के बीच की, पसीने से नम, तलहटी की एक झलक मुझे पल भर के लिए मिल गयी थी और मुझे लगा था जैसे मेरी आंखों के सामने बर्फ की किरचें उड़ने लगी हों.

एक सुखद आश्चर्य से मेरी आंखें खुली रह गयी थीं. विस्मय विमुग्धता का भाव तुमने जरूर ही मेरे मुंह पर पढ़ लिया था, तभी न तुम गुलमोहर की तरह सुर्ख हो उठी थीं और अपना एंबैरेसमेंट छिपाने को, चाय का पानी चढ़ाने के बहाने, किचन की तरफ दौड़ गयी थीं.

तुमने जायसी का पद्‌मावत पढ़ा है न, एम. ए. में पढ़ा जरूर होगा. उसमें एक स्थान पर फुट नोट में नारी अंगों की आदर्श सुंदरता के सोलह प्रतिमान बताये गये हैं. चार दीर्घ-केश, अंगुली, ग्रीवा और नयन, चार लघु-दशन, कुच, ललाट और नाभि, चार पुष्ट—कपोल, जंघा, नितम्ब और कलाई और चार प्रतनु,-नाक कटि, पेट और अधर.

तुम नहीं जानती होगी—अपने बारे में कोई जान भी तो नहीं पाता है—कि उन सोलह में से तेरह प्रतिमान तुम्हारे अंगों पर पूरी तरह सार्थक उतरते हैं. कहना चाह कर भी यह मैं तुम से कभी नहीं कह सका हूं.

तुम्हारे ब्लाउज और कुर्ती के चौड़े गले से झांकते तुम्हारी ब्रा के शोल्डर स्ट्रैप्स तो मुझे अकसर दिख जाते हैं और जब तुम आंचल का एक हिस्सा ब्लाउज के गले में खोंस लेती हो तो ब्रा-स्ट्रैप्स का बकल तक दिखाई दे जाता है, तो मुझे ऐसी अनुभूति होने लगती है जैसे तुम्हारे बाहुमूलों को पकड़े मेरे दोनों हाथों की तर्जनी अंगुलियां उन स्ट्रैप्स में उलझी तुम्हें टीज कर रही हैं, तुम्हारे अध उघाड़े कंधों को सहला रहीं है.

तुम्हें छल से छूने का एक रास्ता मैंने और भी खोज रखा है. कान कुरेदने के बहाने मैं कभी-कभी तुमसे एक हेअरपिन मांग लेता हूं. अपनी जरूरत जस्टीफाइ करने को कान खुजलाता भी हूं और फिर हेअरपिन चुपचाप जेब के हवाले कर लेता हूं.

हेअरपिन के माध्यम से तुम्हारे स्पर्श की अनुभूति, है न अजीब बात.

हेअरपिन बहुत मामूली चीज है. तुम अपनी ड्रेसिंग टेबल की ड्राअर से दूसरा निकाल कर लगा लेती होगी. तुमसे अकसर खो भी जाते होंगे. सभी लड़कियों से खो जाते हैं. मगर मैं उन्हें बहुत सम्हाल कर रखता हूं. मेरे पर्स में तुम्हारे कई हेअर पिन हर वक्त रखे रहते हैं.

आकार और मूल्य की दृष्टि से हेअरपिन बहुत छोटी चीज है. तुम्हारा भी यही खयाल होगा. मगर मेरा दृष्टिकोण तुमसे भिन्न है. तुम्हारे शरीर के स्पर्श और गंध तत्व का कुछ न कुछ अंश तो हेअरपिन में बस ही जाता है. और इसलिए होम्योपैथिक हाई पोटैंसी दवा की तरह तुम्हारे हेअरपिन का प्रभाव भी मुझ पर बहुत गहरा और लंबा होता है. तुम्हारे हेअरपिन पर्स में पड़े मेरे शरीर से लगे रहते हैं, मानो तुम हर वक्त मेरे पास रहती हो.

अब, जब तुम्हारे शरीर की गंध की बात चल पड़ी है तो तुम्हें यह भी बता दूं कि वह भी मेरे लिए अब अपरिचित नहीं रह गयी है. तुम चौंक रही हो क्या? नहीं नीना, चौंको मत, डियर.

तुम्हारे बाल बहुत लंबे नहीं हैं—तुम्हारी कमर तक ही तो पहुंचते हैं न, मगर हैं बहुत घने, इतने घने कि उनकी चोटी बहुत मोटी बनती है—रीतिकालीन कवियों द्वारा दिये गये काली नागिन के उपमान की तरह होती है तुम्हारी चोटी.

तुम्हारे खुले बाल मुझे बहुत अच्छे लगते हैं. यह तो मैंने तुमसे बीसियों बार घुमा-फिरा कर कहा है. खुले बालों में तुम्हारे बहुत सारे स्नैप्स भी लिये हैं मैंने. कई बार तो जबर्दस्ती तुम्हारे बाल खोल कर मैंने कंधों पर बिखेर दिये हैं और तब तुम्हारी तसवीरें खींची हैं.

कभी-कभी तुम ढीली चोटी बना कर दाहिने या बायें कंधे से आगे निकाल लेती हो. तुम्हारी यह मुद्रा मुझे बहुत भाती है. यह भी मैंने तुमसे कभी नहीं कहा है.

कई बार नहाने जाने से पहले धोने को खुले, या नहाने के बाद सूखने को खुले छोड़ दिये गये तुम्हारे बालों को, इस बहाने, कि देखूं तो उनसे कैसी गंध आती है, मैंने अपनी मुट्ठियों में भर-भर कर सूंघा है.

तुम्हारे बालों से एक अजीब, पर्सनल-सी गंध आती है. यह तो मैंने तुम से कहा भी है. मगर वह गंध मुझे बहुत रुचिकर है यह कभी नहीं कहा है.

उस बार मवाली में-जब तुम्हारी मम्मी शारदा बीमार थीं—तुम्हारी मम्मी का नाम शारदा नहीं है और न वह कभी बीमार ही थी—एक दिन मर्दाने बाथरूम में, लिनेन बास्केट पर पड़े तुम्हारे काले ब्लाउज पर मेरी नजर जा पड़ी थी. मैं उसे अच्छी तरह पहचानता था क्योंकि तुम्हें उसे पहिने मैंने यहां बहुत बार देखा था.

साबुन लगे हाथों मैंने उसे लपक कर उठा लिया था और उसे अपने होठों तक ले जाने की अदम्य इच्छा मेरे रोके रुक नहीं सकी थी. तुम्हारे पसीने की वह तीखी गंध-प्रवोकेटिव, पंजेंट, आर्म-पिट ओडर! उफ! मुझे रोमांच हो आया था? आंखें बंद किये न जाने कितनी देर तक मैं उसे नाक से लगाये सांसें अंदर खींचता रहा था. और मुझे लगातार यही लगता रहा था जैसे पसीने से तर, तुम्हारे गूढ़ अंगों पर मेरे होंठ फिसलते जा रहे हों. यह मेरी इडियोसिंक्रैसी हो सकती है. मैं शायद फैटिचिस्ट हूं.

तुम्हारे पसीने की वह गंध जिससे औरों को जुगुप्सा हो सकती है, मेरे लिए दुनिया के बेहतरीन कास्मेटिक्स से ज्यादा खुशगवार है.

जब भी उस गंध की याद मुझे आ जाती है तो दिल की धड़कन तेज हो जाती है और सांस उखड़ने लगती है.

* *

तुम्हारे लिए मेरे मन में यह टैंडरनेस चूंकि मवाली में पैदा हुई थी. तेरह जून का वह दिन सचमुच बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण था—कुछ लोग तेरह के अंक को अशुभ मानते भी हैं. . .मवाली से मेरा कुछ भावनात्मक संबंध जुड़ गया है. अकसर ही, यह इच्छा हुआ करती है कि अगर जिंदगी के शेष दिन उसी हवा, पानी और मिट्टी में बीत सकें तो कितना अच्छा हो. और इससे भी आगे-अगर इस शरीर के अवशेष उसी मिट्टी के हवाले हो जायें तो और भी अच्छा हो.

तुमसे मैंने कई बार कहा है —नीना, डार्क शेड तुम पर बहुत फबता है—कहा है न? यह भी तुम्हें याद नहीं होगा.

एक बार तुम्हारे लिए कहीं से हलके शेड की जापानी नाइलोन की एक साड़ी आयी थी. तुमने दिखाई थी तो मैंने कहा था यह शेड तुम पर चलेगा नहीं, नीना.

—नहीं चलेगा तो मम्मी पहन लेंगी, तुमने अपनी आयु-सुलभ बेपरवाही से कहा था. मगर तुम भूल गयी थीं कि शारदा का रंग तो तुमसे भी ज्यादा साफ है. यह घटना भी तुम्हें याद नहीं होगी.

तुम्हारी सालगिरह के दिन मैं तुम्हारे यहां पहुंच नहीं पाया था. वैसे, अपने यहां लड़कियों की सालगिरह मनाता ही कौन है. मनाना तो दूर, उसे याद रखना भी बहुत से लोग जरूरी नहीं समझते हैं. मगर वह तारीख याद थी. तुम्हें विश करने को मैंने फोन किया था. और पूछा था—नीना आज कौन तारीख है?

—क्यों, ग्यारह है? तुमने कुछ चौंक कर पूछा था.

—तो?

—कोई खास बात? तुमने कुछ पल सोच कर सवाल किया था.

—तुम्हें नहीं मालूम? मैंने तुम्हें प्रांप्ट किया था.

सोचो तो?

—नहीं, हमें नहीं मालूम .

—इडियट कहीं की! आज तुम्हारी सालगिरह है न. मैंनी हैपी रिटर्न्स डार्लिंग!

—ओह! हाउ स्वीट आफ यू!! तुमने एक लंबी सांस खींच कर कहा था—मगर आपको यह तारीख याद कैसे रही आयी, अंकल?

—याद रखने की बातें तो याद रखनी ही चाहिए नीना, कहने के बाद मैंने सोचा था, तुम्हारी तरह सब कुछ भूल जाने, भूले रहने की मेरी उम्र अब रही ही कहां है.

उस दिन फोन पर तब तुमने कहा था—ऐसा कोई प्रामिस हम नहीं कर सकते, अंकल! अगर कोई ऐसी ही बात हुई जिस पर हमें गुस्सा आ ही गया तो?

मुझसे उम्र और रिश्ते दोनों में जूनियर होते हुए भी तुमने मुझ पर गुस्सा हो जाने का अपना अधिकार कैसे मान लिया था इसलिए तो नहीं कि तुम जानती थी कि मैं तुम्हें प्यार कता हूं.

तुम्हारी आवाज में सख्ती नहीं थी, रूखापन नहीं था, अथवा अवज्ञा नहीं थी, निरादर, आक्रोश, झुंझलाहट कुछ भी तो नहीं था. सीधे सपाट लहजे में तुमने यह कहा था. ऐसा लहजा जिसे इंटरप्रिट करना हमेशा मुश्किल होता है.

—गुस्सा तुम्हें आना तो नहीं चाहिए, मैंने तुम्हें कॉर्नर करना चाहा था—पूरी बात सुनने के बाद गुस्सा तुम्हें आयेगा नहीं, नीना.

—तुम्हें मुझ पर गुस्सा नहीं, दया आयेगी, यह मैंने सोचा जरूर था मगर कहा नहीं था.

लाइन पर कुछ देर खामोशी रही थी. तुम सोचने लगीं थीं. यह भी शायद इस बात का सबूत था कि तुम जानती थीं मुझे क्या कहना है, जानती थीं न?

—तो बोलो न? मैंने खामोशी तोड़ी थी.

—क्या बोलें? तुमने बहुत ही कोमल, बहुत ही मीठे स्वर में, जवाब दिया था, इतने मीठे स्वर में कि मेरा मन भीग आया था.

स्वर में छटपटाहट नहीं थी, उलझन नहीं थी, अधीरता नहीं थी. मुझे लगा था जैसे तुम अपने को कुछ मजबूर-सा महसूस तो कर ही रही हो मगर न तो उस जाल से बाहर ही आना चाहती हो और न ही उसमें फंसे रहना तुम्हें गवारा हो रहा है.

—यही कि, मैंने थूक गटका था, 'कल जब तुम्हारे यहां आऊं तो तुम्हें यह याद रहेगा न कि मुझे तुमसे कुछ कहना है.

—कह नहीं सकते, अगर भूल गये तो, तुमने भरपूर मासूमियत से जवाब दिया था—मासूमियत, जिस पर कई जिंदगियां निसार की जा सकती हैं और, उम्र तो खैर तुम्हारी भूलने की है ही.

—अच्छा, मैंने एक दीर्घ निश्वास ली थी, या शायद वह औचक ही निकल पड़ी थी और अगले क्षण मैंने इस विश्वास को थपकी दी थी कि वह निश्वास तुम्हें उस सबके विषय में आश्वस्त कर देगी, जो तुम जान थीं, मुझे तुम से कहना है. और अगर. उस वक्त तो तुमने उस सब के बारे में नहीं भी सोचा होगा तो मे निश्वास तुम्हें उस दिशा में सोचने के लिए बाध्य नहीं कर पायेगी, तो प्रेरित तो अवश्य ही कर देगी.

—बस? तुमने पूछा था और रिसीवर तुमने नहीं मैंने ही रख दिया था.

तुमसे अपने मन की बात कहने की इच्छा इस बहुत तीव्र, कहना चाहिए अदम्य, हो गयी है, क्योंकि मैं कुछ दिनों से एक असह्य मानसिक संत्रणा, एक मेंटल टार्चर से गुजरता आ रहा हूं. यह यातना मात्र निराशा जनित ही नहीं है—अपराध की भावना का प्रतिफल भी है और यह इतनी अधिक हो गयी है कि कभी-कभी लगता है जैसे इससे छुटकारे की एक ही राह रह गयी है—आत्महत्या.

मेरी आयु और बौद्धिक स्तर के आदमी के लिए इस तरह की बात सोचना अजीब है न?

अगर मैं किसी डाक्टर के पास जाऊं तो वह मेरी मानसिक विपन्नता को लंबे डिप्रेशन का कुफल बतायेगा कोई ट्रैंक्विलाइजर बता देगा जिसके खाने से मेरी नर्व्ज का तनाव कम हो जाये, कोई टॉनिक प्रेसक्राइब कर देगा जिसे खाने से मेरी स्पिरिट पैप-अप हो जाये और मेरी जीने की इच्छा लौट आये.

मगर जीने की इच्छा का अभाव मुझमें है ही कहां!

तुम्हारे लिए जब मेरे मन में मोह उत्पन्न हो गया और जैसा मैंने शुरू में सोचा था कि यह एक पासिंग फेज है, जल्द खत्म हो जायेगी. वैसा न हो कर जब इसने स्थायी रूप ले लिया था तो मैं एक डाक्टर के पास गया तो था.

तुम्हार लिए मैं जो फील करता हूं उसे उन्होंने अस्वाभाविक तो नहीं कहा था, हां दुर्भाग्यपूर्ण जरूर बताया था. कोई नयी बात नहीं थी. दुर्भाग्यपूर्ण तो उसे मैं स्वयं भी मानता हूं. मानता ही आ रहा हूं. अगर ऐसा न होता तो मैं इस अनवरत मानसिक संताप से पीड़ित ही क्यों रहा आया होता.

उन्होंने सलाह दी थी कि मैं अपनी इच्छा शक्ति का सहारा ले कर उस भावना से लड़ने का प्रयत्न करूं, तुम्हें मन से निकालने की कोशिश करूं और वह नाकाम कोशिश मैं इतने दिनों से करता तो आ ही रहा हूं. मगर लगता है कि उस कोशिश में अंदर से मैं बहुत कुछ टूट आया हूं. पहले से ज्यादा बलनेरबिल भी हो गया हूं.

शायद मुझे अब किसी सायकैटिस्ट के पास ही जाना चाहिए. मगर, फिर सोचता हूं कि अगर एक इस बात को छोड़ दूं तो अन्य दृष्टियों से तो मैं बिल्कुल सामान्य हूं. वह बेचारा भी क्या करेगा. वन्ही ट्रैंक्विलाइजर्स, वही नर्वाइन टॉनिक्स, वही बी-वन, बी-ट्वैल्व के इंजेक्शन और सिटिंग्स का वही लंबा सिलसिला. उहुंक! वह कुछ भी नहीं कर सकेगा. क्योंकि तुम मेरे मन में, कहीं अंदर, बहुत गहरे पैठ चुकी हो.

चाणक्य ने कहा है कि राजा, लता और नारी

उसीकी तरफ झुकते हैं जो उनके पास होते हैं. कभी-कभी मैं सोचता हूं कि क्या मैं तुम्हारे बहुत पास नहीं हूं? तब क्या तुम मेरी तरफ झुक आयी हो? आकृष्ट हो गयी हो? काश ऐसा ही हो. ना, ना, ना! काश ऐसा कभी न हो.

खैर, आत्महत्या तो मैं नहीं कर पाऊंगा क्योंकि जिंदगी की दुश्वारियों से भाग जाने वाला आदमी मैं नहीं हूं. इतना कायर भी मैं नहीं हूं. फिर, घर के लोग, नाते-रिश्तेदार, इष्ट-मित्र, परिचित और उनसे ऊपर, तुम! कितनी बाधाएं हैं उस राह में. तुम्हें देखते-देखते रहने का लोभ मुझे कभी मरने नहीं देगा. नीना, मेरी जीने की इच्छा अभी मरी नहीं है न-- वैसे कौन जानता है कि यह सब, जो तुमसे कहना है, उसे कह पाने, लिख पाने के पहिले ही मौत आ धमके.

और यह स्थिति भी कितनी विषम है कि जीने और मर जाने की दोनों ही इच्छाएं मेरे मन में हर वक्त विद्यमान रहती हैं.

नैनीताल में एक शिव मंदिर है, जो गुफा महादेव के नाम से प्रसिद्ध है. पिछले साल भवाली पहुंचने के शायद दूसरे ही दिन तो हम लोग गुफा महादेव के दर्शनों को गये थे. तुमने उस दिन व्रत रखा हुआ था. सोमवार था न उस दिन.

मैंने उस दिन उनके सामने शीश नवा कर कहा था—— हे ईश! अब यह यातना बिल्कुल असह्य हो गयी है. इस व्याधि से मुक्त करा दो, देव - यह अंतर्द्वंद्व अब पागल किये दे रहा है, मुझे कुछ नहीं चाहिए, भूतनाथ-बस मुक्ति. मैं जो था वही फिर हो जाऊं.

और दूसरे दिन मुझे सचमुच यही लगा था, जैसे मैं तुम्हारे प्रेमपाश से मुक्त हो गया हूं. जैसे मुझे कभी कुछ हुआ ही नहीं था. मैं फिर मैं हो गया था.

मैंने तुमसे कहा भी था कि गुफा महादेव सचमुच ही भक्त-वत्सल हैं, दीनानाथ हैं, बड़े कृपालु हैं. उनसे मैंने जो मांगा था उन्होंने दे दिया है. तुम्हें शायद यह भी याद नहीं होगा.

मगर बीस दिन के बाद यहां लौट कर आते ही वह सब रिलैप्स हो गया था. अनिश्चय का वही दौर, विकल्प की वही स्थिति— मैं उसी चौराहे पर आ खड़ा हुआ था जहां से आगे बढ़ने की सही दिशा मैं भूल गया था.

यह तो तुम समझती ही होगी, सिर्फ उस स्थिति में समझती होगी, जब मेरी मनःस्थिति का ज्ञान तुम्हें होगा—और इस विश्वास को मैं अकसर सहला लेता हूं कि तुम्हें देख लेने, तुमसे बात कर लेने और एक आचार संगत सीमा में रह कर तुम्हें छू लेने से आगे मैं कभी नहीं बढूंगा-कभी नहीं बढ़ सकूंगा.

* *

तुम्हें पाने के सपने मैं चाहे जितने संजोता रहूं. तुम्हें पाने की दिशा में कोई प्रयत्न मैं कभी नहीं कर सकूंगा. उस स्थिति में भी नहीं कर सकूंगा जब मुझे यह पता भी चल जायेगा कि तुम मेरा प्यार रेसीप्रोकेट करने को सिर्फ तैयार ही नहीं हो, उत्सुक और आतुर भी हो.

जब मुझे यह पता चलेगा कि तुम भी मुझे प्यार करने लगी हो तो——काश ऐसा कभी न हो! और अगर हो जाये तो काश मुझे इसका पता कभी न लगे——मैं तुमसे यही कहूंगा. यह अनुचित है नीना. बहुत बुरी बात है, बेबी.

यही तो मैंने तुमसे भुवाली में, वर्षा धुली पूनम की उस रात को भी कहा था, कहा था न?

और हालांकि अब तुम तेईस-चौबीस की भरपूर औरत हो गयी हो, तुम्हें बेबी कहने का लोभ कभी-कभी हो आता ह, क्योंकि बचपन म तुम्हें गोद खिलाया है न मैंने. काश वे दिन लौट सकते. मगर गुजरे दिन कभी लौटा नहीं करते, नीना.

अपने और तुम्हारे बीच के लौकिक संबंध के संदर्भ में मैंने इससे आगे की बात जाने कभी सोची भी नहीं है, डार्लिंग, हालांकि डॉक्टर की राय के अनुसार तुम्हें पाने की इच्छा करना अस्वाभाविक नहीं है. इंसैस्ट की कानूनी रुप से भी तुम मेरे लिए अभोग्या नहीं हो, क्योंकि हम लोग आपस में शिबलिंग नहीं हैं.

नीना-तुम्हारा नाम नीना नहीं है, मगर मुझे जो भी कहना है वह है तुम्हारे ही निमित-जिंदगी डाक्टरी राय पर नहीं, संस्कारों पर चलती है. और संस्कार कानून से ऊपर होते हैं. शायद वही संस्कार तुम्हारे भी आड़े आ रहे हैं-आ रहे हैं न ?

तुम्हें मैं एक थाती मानता हूं जिसे सप्तपदी तक सुरक्षित रहना है, अछूता रहना है, क्योंकि तुम मेरे दोस्त की बेटी हो.

और यह भी कितने संतोष की बात है कि इधर कुछ दिनों से, तुम्हारे घर में, तुम्हारे विवाह की चर्चा चलने लगी है. काश, वह दिन जल्द आ जाये. बहुत जल्द आ जाये ताकि मैं एक साथ रो भी सकूं और हंस भी सकूं.

कभी-कभी मैं सोचता हूं कि क्या यह जरूरी है कि प्यार कुछ पान की खातिर ही किया जाये. बाईस महीने पूर्व की उस तेरह जून के पहले भी तो मैं तुम्हें प्यार करता ही था न, हालांकि सयानी तुम तब भी हो चुकी थीं. क्या मन की भावना, प्यार का प्रकार बदलने भर ही से कुछ पाना, कुछ पाने की इच्छा करना आवश्यक हो जाता है. क्या तुम्हें देख लेना, तुमसे बात कर लेना, तुम्हें छू लेना, तुम्हारे लिए कुछ कर पाना, पहले की तरह ये सब उपलब्धियां नहीं हैं ?

नीना-तुम्हारा नाम नीना नहीं है, मगर अपनी बात कहने के लिए मैंने नीना को तुम्हारा स्थानापन्न जो बनाया हुआ है. कहते हैं चौबीस घंटे में एक क्षण ऐसा होता है जब मुंह से निकली बात घट जाती है, मन की हुई इच्छा पूरी हो जाती है. मगर वह क्षण कौन-सा होगा, कब होगा, यह हमें नहीं मालूम होता, हम जान नहीं पाते हैं. अगर जान पाते तो हमारी कोई भी आकांक्षा अधूरी नहीं रह पाती.

तुम्हें ले कर मेरे साथ ऐसा कई बार हो चुका है-पहली बार तो उस साल भवाली से चलत वक्त मैंने

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennal and eGangotri

भगवान से मनाया था कि तुम हम लोगों के साथ ही लौट चलो और हालांकि दोपहर के बारह बजे तक, जब हमारा सामान पैक हो चुका था, तुम्हारे चलने की कोई बात नहीं थी. तुम अचानक ही तैयार हो गयी थी क्योंकि तुम्हें यहां अपने भाई-बहनों के एडमिशन का प्रबंध करना था.

फिर एक बार, जब तुम अपने चाचा के पास गयी हुई थीं, मैंने चाहा था कि तुम जल्द आ जाओ और तुम अगले दो दिन के बाद लौट आयी थीं और पिछले साल सोलह अगस्त को, पता नहीं क्यों, सुबह उठने के साथ मैंने इच्छा की थी कि काश, आज तुम मुझे अपने आप फोन करो. दोपहर बीतते न बीतते तुम्हारा फोन आ भी गया था.

मगर तुम मुझे मिल जाओ, यह इच्छा मैंने आज तक इसी डर से नहीं की है कि कहीं ऐसा न हो जाये कि यह इच्छा मैं उसी भाग्यशाली क्षण विशेष पर कर बैठूं जब मुंह से चाही निकली बात पूरी हो जाती है.

तुम्हें शायद भवाली के वे दिन याद होंगे, जब हम लोग वहीं थे---पाइन काटेज में न---यों बहुत कुछ भूल जाने, भूले रहने की तुम्हारी उम्र तो है ही---जब हम लोग वहां थे---और उस वर्षा भीगी रात को तुम मुझे जबर्दस्ती कोटेज के बगल वाले टीले पर ले गयी थी---कितनी बातें की थीं हमने, याद है न? मेरा मतलब है तुमने मेरी कहानी 'फिर' तो पढ़ी है न. छपने के पहले ही मैंने तुम्हें पढ़ा दी थी वह, क्योंकि उस कहानी की प्रमुख नारी पात्र नीना छद्म-धारिणी तुम्ही जो थीं एक सुखांत कहानी है न वह.

एल्डिस के अनुसार हर कहानी, हर उपन्यास, हर नाटक, हर फिल्म, बैले, आपेरा, यहां तक पार्टियों में सुनाये जाने वाले गंदे लतीफे, सभी एक विशफुल थिंकिंग होते हैं.

उस कहानी को सुखांत बनाने के पीछे मेरी भी विशफुल थिंकिंग ही थी. तुम्हें प्राप्त कर लेने की कल्पना, क्योंकि कहानी का 'मैं' मैं स्वयं ही था न.

मेरी और तुम्हारी आयु का अंतर देखते हुए कहानी का जो अंत मैंने रचा था वह एक असंभव-सी, अनहोनी बात थी. और असंभव का घटित होना चूंकि बहुत रोचक और आकर्षण होता है, वह कहानी बहुत पसंद भी की गयी थी. तुम्हारी उम्र की लड़की मेरे जैसे प्रौढ़ के प्रति यौनिक रूप में आकृष्ट हो जाये, इसके चांसेज ज्यादा से ज्यादा हजार पीछे एक पर रखे जा सकते हैं. और मैं उन हजार में से वह एक नहीं हूं. यह मैं जानता हूं. बखूबी जानता हूं, नीना.

वैसे अपवाद तो हर जगह होते हैं. काश, तुम एक अपवाद हो सकती सिर्फ मेरे मानसिक संतोष के ही लिए, एक दिन को, एक बार, एक पल को ही अपवाद हो सकती. मगर नहीं, तुम भी उन हजार में से वह एक नहीं हो. अपवाद तुम नहीं हो, अपवाद तुम नहीं हो सकोगी. और अगर होना भी चहोगी तो मुझे खुद एक अपवाद होने को विवश होना पड़ जायेगा.

औरत अगर स्वयं को समर्पित करने आगे आये और ना कर दे, ऐसा मर्द अभी पैदा नहीं हुआ. मगर नीना, वैसा मर्द, तुम्हें ले कर वैसा मर्द मैं जरूर बनना चाहूंगा, मुझे अपने पर विश्वास है कि मैं अपवाद बन भी जाऊंगा. क्योंकि तुम मेरे दोस्त की बेटी हो-मैंने तुम्हें गोद खिलाया है न.

हां, इतना अवश्य है कि यह विशफुल थिंकिंग, तुम्हें पा लेने की कल्पना करना, करते रहना, जीने का एक आधार तो बन ही गयी है. भविष्य में बनी भी रह सकती है, बनी रहेगी भी, मगर है तो मृगमरीचिका ही न, कभी न पूरी होने वाली एक असंभव इच्छा जो सृष्टि के अंत तक जीती रह सकती है. जिसे युग युगांतरों तक मन में सहेज कर रखा जा सकता है क्योंकि उसे कभी पूरा नहीं होना है.

और नीना---तुम्हारा नाम नीना नहीं है. तुम तो वह मौलिक मूर्ति हो जिसने मेरी कहानी की प्रमुख नारी पात्र को एक आधार दिया था, एक रूप दिया था, एक अस्तित्व दिया था, अगर मृगतृष्णा न हो तो दुनियां के न जाने कितने लोग निराश हो कर आत्महत्या कर लें.

अगर कोई मुझसे पूछे कि तुम्हें ले कर मेरी न्यूनतम इच्छा क्या है? और मैं चाहता हूं कि आगे-पीछे कभी यह प्रश्न तुम्हीं पूछो तो कितना अच्छा हो. काश तुम्हें यह सवाल करने को मजबूर हो ही जाना पड़े, तो म पूरी ईमानदारी से कहूंगा कि वह मात्र इतनी ही है कि वह अपनी पीड़ा, अपना अंतर्द्वंद्व, अपना रिमोर्स, तुम चाहे उसे पहले से भले ही जानती हो, अपने मुंह से तुम्हें सुनाने का एक अवसर मुझे मिल जाये. हां, पिछले बाईस महीनों से तुम्हारे लिए मैं जो फील करता आ रहा हूं, उसे कभी मन से निकाल पाऊंगा, यह संदिग्ध ही है.

और नीना—तुम्हारा नाम नीना नहीं है, वह कमला हो सकता है, विमला हो सकता है, शोभा, रचना, सरोज, मृदुला, राजुल, ममता, सरिता, कुछ ही हो सकता है. यह विश्वास मुझे हो चला है कि अपने प्रति मेरे प्यार से नावाकिफ अब तुम रह नहीं गयी हो.

तुम्हें पाने की आतुरता और न पा सकने की कुंठा से उत्पन्न अशांति के साथ तुम्हारे प्रति अपराधी होने की भावना से उपजा पश्चाताप, ग्लानि, क्षोभ, शर्मिंदगी, उलझन और अंतर्द्वंद्व ही तुम पर प्रकट कर पाने का एक अवसर मैंने चाहा था. अपराध की भावना किसी से न कह पाने से उपजी घुटन से मुक्ति पाने को मैं तुम्हारे समक्ष एक स्वीकारोक्ति करना चाहता था. एक कनफैशन करना था मुझे. हालांकि भवाली की उस चांदनी रात में टीले पर तुमसे बात करते हुए मैंने यह कहा जरूर था कि कनफैशन अपने से छोटों के नहीं, बड़ों के सामने किया जाता है. मेरा उद्देश्य इतना ही था. मगर इतनी जरा-सी शर्त कि तुम नाराज मत होना तुमने नहीं मानी. मेरी मानसिक मुक्ति में सहायक तुम नहीं हो सकीं. यद्यपि यह तुम्हारे हाथ की बात थी.

पाप और पुण्य की विवेचना के पचड़े में मुझे नहीं पड़ना है, क्योंकि पाप और पुण्य के बीच का अंतर एक

कृत्य को अलग-अलग तरह इंटरप्रिट करने का ही फर्क होता है. मेरी समझ में यह नहीं आ रहा है कि मेरा तुम्हें प्यार करना गलत है तो क्यों?

अगर बाईस वर्षीया मार्गेट सिनक्लेयर कनाडा के बावन वर्षीय प्रधान मंत्री त्रूदो को प्यार कर सकती है तो तुम मुझे प्यार क्यों नहीं कर सकती? अगर पैंसठ वर्षीय अरबपति ओनासिस जैक्विलिन को प्यार कर सकते हैं तो मैं तुम्हें प्यार क्यों नहीं कर सकता?

मगर नीना, तुम मार्ग्रेट सिनक्लेयर नहीं हो और मैं पियरे त्रूदो नहीं हूं. तुम जैकी नहीं और मैं ओनासिस नहीं हूं. मैं तो पंकज हूं, तुम्हारे पापा का दोस्त. नहीं, मैं पंकज भी नहीं हूं. वह तो मेरी अनुकृति था, मेरी भावनाओं को व्यक्त करने का एक माध्यम था. असल और नकल में बहुत अंतर होता है. नीना डार्लिंग.

तो नीना, तुम्हारा नाम नीना कभी नहीं था, कभी होगा भी नहीं. मेरी कहानी की नीना का भी यह नाम नहीं था. नीना तो उस मूर्ति की एक प्रतीक मात्र थी जिसे मैं प्यार कता हूं मगर पा नहीं सकता, कभी पा भी नहीं सकूंगा, पाना चाहता भी नहीं हूं क्योंकि मेरे और उस मूर्ति के बीच संस्कारों के ऊंचे हिमालय जो खड़े हैं.

हजार कल्पों तक तुम्हें पाने की कल्पना करते रहने के बाद भी मैं तुम्हें पा नहीं सकूंगा. कभी नहीं पा सकूंगा.

* *

कहते हैं कि मारने वाले के हाथ पकड़े जा सकते हैं, उसे कानून दंड भी दे सकता है. गाली देने वाले का मुंह भी, अगर कोशिश की जाये तो शायद बंद किया जा सकता है. कानून उसे भी सजा दे सकता है. मगर तुम किसी को प्यार या घृणा करने से रोक सकती हो? किसी को चाहना, या किसीसे नफरत करना किसी के हाथ में नहीं होता, नीना.

फिर प्यार करने की कोई एक खास उम्र हो ऐसा भी तो नहीं है—ए मैन इज ऐज ओल्ड ऐज ही फील्स-मेरी मनःस्थिति दूसरों के लिए हास्यास्पद होगी. मगर मेरा विचार है कि जिस पर किसी का वश न हो प्यार की उस भावना को उम्र के दायरे में बांधना गलत है. यह भी मैंने तुमसे भवाली की उस वर्षा धुली पूर्णिमा की रात को कहा था-कहा था न?

नीना—तुम्हारा नाम नीना नहीं है. मगर यह अपने अर्थ में बहुत कोमल है, बहुत प्यारा है. मन कानून से नहीं, भावना से बंधते हैं. और भावना न कानून के दायरे में आती है और न संस्कारों की परिधि में. वह तो नितांत निर्बाध होती है.

मेरा अंतर्द्वंद्व तुम शायद अब समझ गयी होगी. इससे मुक्ति तुम मुझे दिला सकती थीं. किंतु तुम मेरी बात सुनने को तैयार ही नहीं हुई. और मैं सोचता हूं कि तुमने यह अच्छा ही किया. अगर तुम मेरी बात सुनने को सहमत हो जातीं तो शायद मैं अपनी बात तुम्हारे सामने इतने विस्तार से और तर्कसंगत रूप में प्रस्तुत कर नहीं पाता.

अदालत में मौखिक और लिखित दोनों ही प्रकार से वक्तव्य देने की छूट होती है. चलो, मैं यही समझ लूंगा कि मैंने तुम्हारे सामने एक कलमबंद बयान ही पेश कर दिया है.

उस दिन जब तुम्हारे यहां दस-बारह दिन के बाद पहुंच पाया था तो मैंने तुम्हें जी भर देखा था, तुमसे खूब बातें भी की थी और किसी न किसी बहाने से तुम्हें छुआ भी था. इतना ही तो मेरा प्राप्य है न? मैं बहुत संतुष्ट और प्रसन्न लौटा था उस दिन.

बी. बी. सी. ने उस दिन एक बड़ी मनोरंजक बात बतायी थी. दिन था चौदह फरवरी, जिसे ब्रिटेन में सेंट बैलेंटाइंस डे कहते हैं—उसे प्रेमियों का दिन भी माना जाता है. यह भी कैसा सुखद और अनपेक्षित संयोग था कि प्रेमियों के दिन पर ही मैं तुम्हारे पास था—चाहे थोड़ी ही देर को सही, हम लोग साथ-साथ थे.

वैसे, सच पूछो तो सही अर्थ में हम तुम कभी साथ नहीं हो पायेंगे. क्योंकि मेरे और तुम्हारे बीच संस्कारों के हिमालय ही नहीं आचारों की गंगा-यमुना भी है.

शायद यहां आ कर तुम्हारी आंखें नम हो आयी होंगी, क्योंकि नारी का मन बहुत कोमल होता है. चलो ठीक है, अपने अभागे अंकल की मानसिक विपन्नता अपने आंसुओं ही से धो डालो, नीना डियर.

आज उन्नीस फरवरी है. अभी-अभी बी. बी. सी. सुन कर रेडियो आफ किया है और यह चिट्ठी पूरी करने लगा हूं. बी. बी. सी. ने अभी बताया था कि ब्रिटेन में आज के दिन का भी विशेष महत्व होता है. आज के दिन अगर कोई लड़की किसी लड़के से प्रपोज करे तो या तो लड़के को उससे विवाह करना पड़ता है या फिर एक पाउंड का जुर्माना देना पड़ता है.

नीना, अगर आज तुम मुझसे प्रपोज करतीं तो सच कहता हूं मैं तुम्हें बखुशी एक पाउंड का जुर्माना दे देता.

तुम्हारी आंखों में आंसू आ गये हैं न? उन्हें पोंछ डालो, बेबी. पूरी तरह आश्वस्त रहो कि तुम्हारा अंकल इतना गया गुजरा नहीं है, कभी होगा भी नहीं. भावना और कर्म में बहुत अंतर होता है, नीना डार्लिंग, आदमी सोचने को, सपने देखने को, कल्पना के महल बनाने को स्वतंत्र अवश्य होता है. मगर कर्म के रास्ते में, समाज, कानून, संस्कार, लोकाचार और भी न जाने कितनी तरह की बाधाएं होती हैं.

खैर, अब यह चिट्ठी पूरी हो गयी है. इसे पढ़ने के बाद मुझे फोन करके बताना कि तुमने मुझे माफ कर दिया है. माफ तुम जरूर कर दोगी क्योंकि तुम बहुत समझदार हो. वैसे, मैंने अपने को क्षमा योग्य भी रखा कहां है?

मगर यह नौबत आयेगी ही कैसे? चिट्ठी मैंने लिख जरूर ली है. इसे पोस्ट कभी नहीं कर पाऊंगा. कभी पोस्ट नहीं करूंगा. □□□

२ बिहारी भवन, गौतम बुद्ध मार्ग, लखनऊ—१

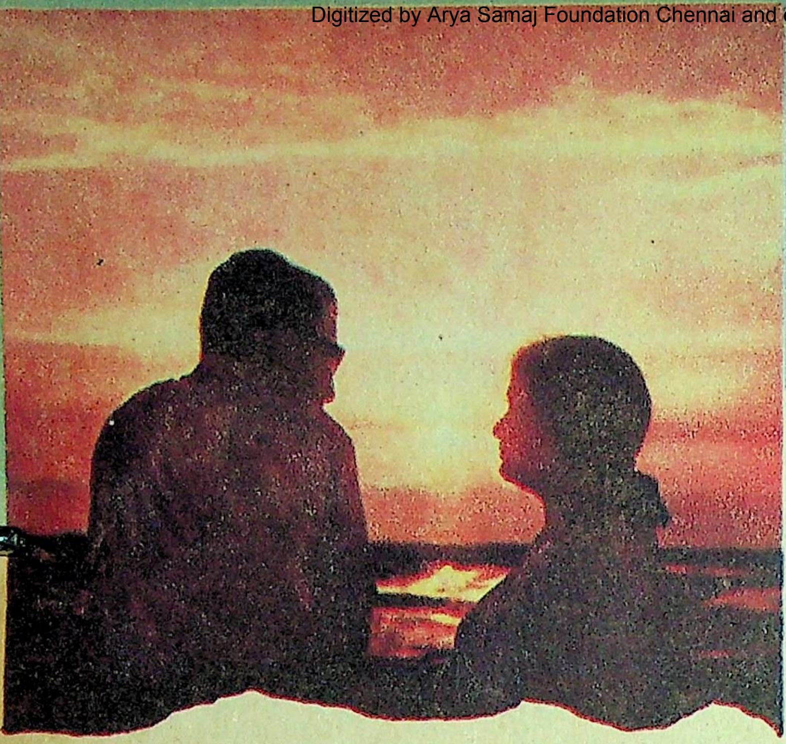

नदी जा रही सागर को

•अभिमन्यु अनत 'शबनम'

● प्रबोध गोदीवाला

शारदा आयेगी इसी पगडंडी से. . . .!

दूर तक फैली ईखों के बीच से, पहाड़ों की बगल से होती हुई. हमेशा की तरह सर्वप्रथम उसकी धुंधली-सी आकृति दिखाई पड़ेगी. सूरज निकल आयेगा, उसके प्रकाश में उसके काले बाल चमकते-से प्रतीत होंगे. उसकी वही नीली ओढ़नी हवा से बातें करती हुई लगेगी. और जब किशन उसे एकटक लगाये देखता रह जायेगा तब उसे प्रतीत होगा कि शारदा की आंखें भी चमक रही हैं, ठीक सूरज की तरह. सूरज की तरह उनमें भी अहम के भाव होंगे. आंखें आज भी हमेशा की तरह उसे पहचान कर भी नहीं पहचानेंगी और वह इसी चट्टान पर खड़ा रह जायेगा, एक अजनबी की तरह.

जिस बात को महत्व देना हो, वह नहीं देती. क्यों ? उसके होंठ हिलते हैं कुछ कहने के लिए. किशन अधीर हो जाता है, सुनने को बेताब हो जाता है.पर धीरे-धीरे बेसब्री टूट जाती है और वह सामने से निकल जाती है बिन कुछ कहे.

किशन ने पहाड़ से आंखें हटा लीं. पगडंडी अदृश्य हो गयी. बगल की किसी डाली से दो मैनाओं की आवाजें आयीं---टॉय टॉय !!

किशन ने दोनों मैनाओं की ओर आंखें फेरीं. डाली ऊपर थी. सूर्यकिरणों ने, जो कि पत्तों की आड़ से आंख-मिचौनी खेल रही थीं, किशन की आंखें को चकाचौंध कर गयीं. उसकी कल्पना बिखर गयी, सपना टूट गया. हर बार तो ऐसा ही होता आया है. जब भी शारदा की याद उसके ख्यालों में अधिक सजीव हो जाती, तभी किसी न किसी झटके से सभी कुछ भंग हो जाता. खेतों की लालमुनियाओं की तरह उसकी अपनी कल्पना भी एक डाली से दूसरी डाली को उड़ती चली जाती और धीरे-धीरे उससे ओझल हो जाती.

इस तरह रोज किशन को अपना वह सपना नये सिरे से शुरू करना पड़ता था. नयी उमंग और नये विश्वास के साथ, नयी कल्पना और नये रंगों के साथ. और खयाल अतीत को दौड़ जाता. शारदा से जब उसकी भेंट हुई थी, उस समय भी वह एकदम आज ही की तरह थी. इस लंबी जान-पहचान के बाद आज भी उसी पहले दिन का अजनबीपन . किशन को हैरत होती. उसने सुन रखा था समय के साथ अजनबीपन गायब हो जाता है और घनिष्टता आ जाती है. शुरू से आज तक की घटनाओं को उसने इस ढंग से याद किया मानो किसी पाठ्यपुस्तक की पुनरावृत्ति कर रहा हो. उसने चाहा कि उन तमाम यादगारों के साथ, जो कि हकीकत थीं, कुछ कल्पना भी जोड़ दे ताकि उसमें केवल यथार्थ की कड़वाहट ही न हो.

उस दिन भी सूरज अपनी पूरी शक्ति के साथ चमक रहा था. उस दिन भी शारदा नीली ओढ़नी ओढ़े आयी थी, समस्त मासूमियत के साथ.

पहाड़ों के आगे पेड़ों का झुरमुट था. पगडंडी अदृश्य हो गयी थी और उससे आती हुई शारदा भी आंखों से ओझल थी. किशन ने अपने भीतर एक बहुत भारी सन्नाटा महसूसा. श्मशान की निर्जनता अनुभव की अपने भीतर. एक खटकता हुआ एकाकीपन और वह कराह उठा हेमंत की हवा की तरह. पहले भी एक बार उसने ऐसा ही अनुभव किया था. उस समय प्यास से उसका कंठ सूख गया था. बगल से जामुनी रंग की ईख तोड़ कर उसने चूसने की कोशिश की थी. ईख फीकी थी. रंज में आ कर उसने उसे फेंक दिया था. रोया था भीतर ही भीतर और दौड़ गया था घर की ओर.

---किशन! किशन!

किसीने उसे पुकारा. आवाज सुरीली थी, जानी-पहचानी थी. वह उसकी मां की आवाज थी. वह दौड़ गया उसके पास. मां श्वेत साड़ी में थी. उसके हाथ में पूजा की थाली थी और ओंठों पर मीठी मुसकान. किशन ने सोचा मां टीका लगाने के बाद उसे कोई काम सौंप

देगी और नीरसता की झुंझलाहट अपने आप मिट जायेगी. मायूसी कम हो जायेगी. मां के अति पास आ जाने पर उसने उसकी उस मुसकान को अपने माथे पर अनुभव किया. उसका कोमल स्पर्श और मीनी गंध.

उसके माथे पर चंदन का टीका लगाते हुए मां ने पूछा—तू उदास है?

—नहीं मां.

—कहां था तू?

—खेतों से मैनाओं को खदेड़ने गया था.

—मैं कई दिनों से खेत नहीं जा सकी हूं. क्या हाल है वहां?

—ठीक है मां. बीजों से अंकुर आने लगे हैं.

—पानी पहुंचाते रहना.

—हां, मां!

और मां हंस कर घर के भीतर चली गयी थी. किशन आंगन में आम के पेड़ के नीचे अकेला रह गया.बॉबी कहीं से दौड़ता हुआ आ कर उसके पास पूंछ हिलाने लगा.कुत्ते को भूख लग गयी थी. किशन ने सिर उठा कर सूरज की ओर देखा. समय का अनुमान किया और तब बॉबी से बोला — अभी समय है बॉबी!

अपनी मां की बातों से उसका सपना टूट गया था. एक तरह से अच्छा ही हुआ था. वह उस सपने से एकदम थक गया था. उसका अंग-अंग दुख रहा था. छटपटाना चाह कर भी वह नहीं छटपटा पाता.सांस लेने में भी उसे कठिनाई पेश आती. इस वक्त बॉबी से खेलते हुए उसे कुछ शांति-सी मिली थी. बॉबी अच्छा था, बहुतों से अच्छा. सक्रियता थी उसमें. वह प्यार का जवाब देता. प्यार की प्रतिक्रिया थी उसमें.

* *

घड़ियां बीत जाती हैं. कभी धीरे-धीरे और कभी एकदम वेग से लेकिन आज वे घड़ियां रुकी हुई-सी थीं. उसके हृदय की एक धड़कन एक सेकंड थी. वह उन्हें गिनता रहा. एकदम धीरे-धीरे धड़क रहे थे वे. सेकंड भी धीरे-धीरे चल रही थी. उसके हृदय की ६० धड़कनें कहीं जा कर एक मिनट होतीं.खेतों में भी यह समय इसी तरह अलसाई चाल से बीतता था. उस समय उसे शारदा की प्रतीक्षा होती थी. बहुत देर बाद वह दिखाई पड़ती थी और दिखाई पड़ते ही हृदय की धड़कनों की रफ्तार बढ़ जाती. सेकंड और मिनट भी दौड़ने लग जाते और वह मनमोहक समय कब बीत जाता, किशन को पता तक नहीं चलता. अगर उसे कुछ खलती थी तो बस समय की नीरस शिथिलता जिसका इस वक्त वह शिकार था.

खेतों की नीरसता में कभी-कभार बीच-बीच में क्षणिक रमणीकता भी आ जाती थी. पक्षियों के कलरव होते. रमोतार भगत के बिरहे की टीस भरी आवाजें होतीं. पहाड़ों से खोयी हुई ध्वनियों की अनुध्वनियां और ईख के पत्तों की सरसराहट होती थी.माहौल वियावान हो कर भी किशन को भा जाता क्योंकि इसका अपना दिमाग भी एक तरह से उसी तरह का था. उसमें भी लंबे सन्नाटे होते और फिर बीच-बीच में क्षणिक कोलाहल.

काले बादल चारों ओर से आ-आ कर ठीक खेतों के ऊपर इकट्ठे होने लगे थे. वातावरण अधिक गुमसुम हो चला था. अकुला देने वाली गरमी का खयाल करके मन में बहुत भारी वर्षा की संभावना हो चली थी. किशन खुश था. वह जानता था कि मूसलाधार वर्षा के बाद का दूसरा दिन बहुत ही सुहावना होता है. सूरज का ताप कम हो जाता है और प्रकृति नदी से स्नान करके निकली हुई युवती की तरह होती है — सौंदर्य की पराकाष्ठा पर.

...कल शारदा आयेगी उसी हरी पगडंडी से. वह आयेगी और भी निखरी हुई.

नदी की बगल में वह जो नाली है, उसमें बहता हुआ बरसात का पानी होगा. किशन खाद के पुराने कागज की नाव बना कर उसमें छोड़ेगा. और उसके पीछे-पीछे पहाड़ की गोद तक चला जायेगा जहां शारदा का गांव है. वहां उसका कोई जाना पहचाना न होगा और निराश वह वहां से लौट आयेगा.चट्टान पर बैठ कर पगडंडी की ओर आस लगाये रह जायेगा. रमोतार भगत पास से गुजरेगा और हमेशा की तरह इतना कहते हुए आगे निकल जायेगा —कल आ जायेंगे ईखों में फूल!

लेकिन इधर कई दिन होने को हैं वर्षा होती ही नहीं. बादल आते हैं, चले जाते हैं. किशन ने सिर उठा कर ऊपर देखा. काली बदली फट गयी थी. बादल के टुकड़े तितर-बितर होने लग गये थे. पांच मिनट पहले का धुंधलापन मिट गया था. वर्षा की संभावना जाती रही और किशन निराश अपने स्थान पर बैठा रहा. सामने के पेड़ पर मैनाओं का एक झुंड 'टांय-टांय' करता हुआ झगड़ रहा था. दो मैनाएं ऊपर से छूट कर नीचे गिरीं और कांय-कांय करती हुई दूसरे पेड़ को उड़ गयीं. किशन के पड़ोस के लड़के भी ठीक इन्हीं मैनाओं की तरह आपस में लड़ते, चिल्लाते एक दूसरे को गालियां देते. पंडितजी के आ जाने पर वे इधर से उधर भाग जाते. किशन अपने बरामदे में बैठा यह सब देखता. कभी उसका मन भी उन बच्चों के बीच जा मिलने को करता पर न जाने किस डर के कारण वह उनके बीच नहीं पहुंचता. देवदत्त के बार-बार के आग्रह पर भी जब वह टस से मस नहीं होता, उस वक्त देवदत्त कह उठता, तू लड़का नहीं, लड़की है.

सभी बच्चे उसे लड़की कह कर चिढ़ाने लग जाते और वह सुनते-सुनते रो उठता था. फिर अधिक सुनते रहने के कारण अंत में वह उसका आदी हो गया था और बात की कोई गिनती न ले कर वह चुपचाप बैठा रहता.बाद में जब लड़कों ने देखा कि अब चिढ़ाने पर किशन रोता नहीं तो उन्होंने भी चिढ़ाना बंद कर दिया था. इस दौरान किशन को अपने बाप की एक बात याद आ गयी थी. वह

कहा करता था, बड़े आदमी का कुछ बहरा होना जरूरी है. जो हर प्रहार, हर व्यंग्य और हर गाली को सुन लिया करता हो और उससे घायल हो कर हताश हो जाता हो, वह कभी भी बड़ा आदमी नहीं बन सकता.

किशन को बातें बहुत कम याद रहती थीं पर यह एक बात उसे जीवन भर याद रहेगी. वह भूल से भी अपने बाप के बारे में नहीं सोचना चाहता था केवल इसलिए कि वह डरता था कहीं बार-बार उसके बारे में सोचने से वह इस निर्णय पर न पहुंच जाये कि उसका बाप हृदयहीन था. लेकिन अपने बाप की इसी एकमात्र सीख की याद आते ही वह विवश हो उसके बारे में सोच ही उठता था.

★ ★

वर्षा अब नहीं होगी, यह जान कर किशन अपनी जगह से उठा और आगे बढ़ गया. सोचा आज अपने ही बनाये दायरे से निकल कर रहेगा. चलते-चलते सब्जियों के खेतों के बीच वह उस काली माई के चौतरे के पास पहुंचा जहां हर वर्ष बड़ी धूमधाम के साथ बहरिया पूजा हुआ करती है. शुरू में फूलों से घिरे इस चौतरे के पास आते उसे डर लगता था. उसका डर उस दिन भागा था जबकि निर्दोष होने पर भी वह अपने बाप द्वारा मौत की मार खा कर घर से भाग आया था और इन्हीं फूल की झाड़ियों के बीच उसने सिसकते हुए वह घटाटोप रात बिता डाली थी. इस भयानक स्थल पर उसने अपनी मां की मौजदगी महसूसी थी और निर्भयता के साथ सो गया था. बाद में उसकी मां ने कहा था—बेटा तू कालीमाई की गोद में था.

जो बात उसकी समझ में आज भी नहीं आती, वह यह थी कि जो काली मां इतनी अच्छी हो और जिस ने उस दिन उसके हृदय से डर निकाल कर उसकी रक्षा की थी, उसी काली देवी को बकरों का खून क्यों चढ़ाया जाता है. मां इसे परंपरा कहकर बात टाल जाती थी. फिर भी उस दिन से जब भी वह वहां से गुजरता उसके हाथ अपने आप जुड़ जाते और मन ही मन वह कह उठता—मां, मेरी रक्षा करना.

यह उसकी मां का अनुरोध था, फिर भी बात उसके हृदय से निकलती थी.

वह चौतरे के पास ठिठक गया. उस पर सिंदूरी टीके थे. अपने हाथों को परस्पर जोड़ कर उसने अपनी वही प्रार्थना की और शीघ्र ही इस डर से आगे बढ़ गया कि कहीं छटपटाते बकरों की आवाजें उसे सुनाई न पड़ जायें. वह चलता रहा.

पगडंडी आ गयी. उस पर चलते हुए उसे एहसास हुआ वह अपने सपनों के रास्ते पर चल रहा हो. उसे अपना चलना भी एक सपना-सा लगा. नदी दौड़ी जा रही थी और किशन उसकी विपरीत दिशा को बढ़ रहा था. प्रतीत हुआ, जीवन की राहों से अलग और एकदम विपरीत राह पर वह बेतहाशा दौड़ रहा हो. उसने थकावट महसूस की पर रुका नहीं, चलता रहा. बादल भी प्रतिकूल दौड़ रहे थे.

सब्जियों के बाद ईख के खेत आये फिर तंबाकू के और फिर सब्जियों के. टमाटर का खेत आ गया, टमाटर जिसे यहां की क्रिओली और फ्रेंच में मुहब्बत का सेब कहते हैं. वह देख रहा था, फैले हुए हरेभरे पौधों पर गोल और चिकने प्यार के सेब लदे हुए थे. चमकीले और हरे थे, कुछ पर हलकी सफेदी थी और एक-दो प्यार से लबालब लाल हो गये थे. किशन ने देखा, पौधों के बीच शारदा अपनी छोटी बहन के साथ चुन-चुन कर टमाटर तोड़ रही थी— टमाटर नहीं बल्कि मुहब्बत के सेब.

परिस्थिति का सामना करना सीख, मां की यह याद आते ही किशन ने अपने ऊपर और भीतर के कंपन पर अधिकार पाया और अग्रसर रहा, सेब-ए-मुहब्बत के खेत में.

दोनों झुकी हुई टमाटर तोड़ रही थीं. एक की ओढ़नी नीली थी, दूसरी का झगला हरा था. अपने ही में खोयी हुई सावधानी के साथ पौधों को हटाती हुई दोनों आगे बढ़ी आ रही थीं. नीली ओढ़नी की खोंच टमाटरों से भर गयी थी. खेत के बीच इमली का एक बहुत ही पुराना वृक्ष था. किशन उसकी आड़ में जा कर खड़ा हो गया ताकि शारदा को जी भर कर देख सके. खेत के छोटे से कुंए के पास पहुंच कर शारदा ने कमर सीधी की. एक अंगड़ाई-सी ली और पीछे को जा कर अपनी ओढ़नी से टमाटरों को बोरे में गिर जाने दिया. आगे बढ़ी जहां पत्थरों की ऊंची मेंड़ थी और जिस पर जहां-तहां जंगली फूलों के पौधे पीले रंग के फूलों के साथ झूम रहे थे. अपने पतले कोमल हाथ को, जिसपर लाल रंग की रबड़ की चूड़ियां थीं, आगे बढ़ा कर शारदा ने एक फूल तोड़ा. उसे अपनी नाक तक ला कर उसने एक लंबी सांस के साथ सूंघा. दीर्घ श्वास लेते वक्त शारदा बेहद सुंदर लग रही थी. किशन ने चाहा, वह इसी तरह सांस लेती रहे.

—हाथ में फूल लिये लड़की इतनी सुंदर कैसे लगती है? किशन ने अपने ही प्रश्न का उत्तर दिया.

—दो सौंदर्यों का मिलन जो ठहरा! फूल और लड़की!

यहां किशन पक्षपात कर गया और अपने आप से बोला— फूल और फूल में अंतर आ गया. शारदा के हाथ का फूल तो डालियों के सभी फूलों को मात कर गया. सौंदर्य से सौंदर्य निखरता है.

चाहा कि शारदा के पास दौड़ जाये और उसके हाथ से फूल ले कर फेंक दे क्योंकि यह उसे गवारा नहीं था कि फूल उसके गालों का स्पर्श करके उसके सौंदर्य को अपना लें. ईर्ष्या ने उसे आगे बढ़ने को कहा और भय ने उसे रोक लिया. मन माननेवाला नहीं था. चाहा कि चिल्ला कर कह दे, शारदा फेंक दो उस फूल को! देखती नहीं, उसमें अनेमिया का पीलापन है, कहीं तुम्हारे गुलाबी रंग पर छाप न छोड़ जाये.

किशन को हमेशा से रंगों से प्रेम था और वह चित्रकारी भी कर लिया करता था. उसे रंगों की पहचान थी

अतः उसे अपना इरादा बदल देना पड़ा क्योंकि वह जानता था कि पीले और लाल की मिलावट से जिस रंग का जन्म होता है, वह दोनों रंगों से भी अधिक सुंदर होता है. उसे अपने रंग का भी खयाल आया. उसका अपना रंक गेंहुआ था. उसने कभी भी गेंहुवे और लाल का मिश्रण नहीं किया था पर उसे विश्वास था कि जो परिणाम आयेगा, अच्छा ही आयेगा.

* *

शारदा अपनी छोटी बहन के पास लौट आयी थी. दोनों बेखबर अपने कामों में जुट गयीं. किशन ने तुलना की. दोनों बहनें सुंदर थीं. छोटी बहन का नाम उसे मालूम था. उसका नाम अरुणा था. बेहद सुंदर थी वह, फिर भी उसके विकसने में अभी समय था जबकि शारदा विकसित थी और सौंदर्य की चरम सीमा पर थी. सूर्य की लोलुप किरणें उसके गालों को चूम रही थीं. पर किरणें स्त्रीलिंग थीं किशन को ईर्ष्या नहीं हुई. वह अनुमान कर रहा है सामने के उस सौंदर्य के सामर्थ्य को जो कि सेब-ए-मुहब्बत के खेत में इस छोर से उस छोर तक फैला था. ओठों पर हलकी मुसकान थी. मुखड़े पर पसीने की बूंदें जो मोती-सी लग रही थीं. आंखें झुकी हुई थीं, फिर भी किशन जानता था कि उसमें जो गहराई है वह अन्यत्र से अधिक है, जो मादकता और तरलता है वह कहीं भी नहीं. उसके वे घने घुंघराले बाल अमावस की रात थे. तभी एक दर्द भरा खयाल आया. इतनी सुंदर लड़की मुझे कैसे चाह सकेगी?

शारदा को देख लेने के बाद वह शीशे के सामने अपनी सूरत भी देखा करता था. वह कुरूप नहीं था और शारदा की तुलना में सुंदर भी नहीं था. उसे आत्म सांत्वना आती थी इसीलिए उसने अपने आपसे कहा था—सुंदर लड़कियां होती हैं, लड़के नहीं.

—तो फिर लड़के क्या होते हैं?

—मेहनती!

यह विशेषता तो उसमें थी और अपनी योग्यता पर उसे खुशी हुई थी.

किशन दायरे के भीतर खड़ा रहा. बाहर निकलने का साहस करके भी वह असफल रहा. लड़कियां सामने से गुजर गयीं. वह सांस रोके खड़ा रहा. बादल दौड़ रहे थे, दो मनाएं उड़ी जा रही थीं. अडिग था तो सामने का पहाड़ और स्थिर था किशन.

घड़ी बाद दोनों लड़कियां नदी की ओर दौड़ पड़ीं, अल्हड़-सी. किशन उनके पीछे हो लिया. रास्ते में उसे एहसास हुआ कि शारदा को उसकी उपस्थिति का भान था, फिर भी वह अनजान-सी बनी हुई थी. आखिर क्यों? किशन ने अपने आपसे पूछा. शायद इसलिए कि मेरी उपस्थिति उसे खटक न रही हो. एक बड़ी-सी चट्टान पर बैठ कर दोनों ने अपने-अपने पैर पानी में डुबो दिये. शारदा का लहंगा घुटने से ऊपर उठ गया था. किशन ने उन अंगों को देखा जिन्हें सूर्यकिरणें स्पर्श नहीं कर पायी थीं और जो अधिक गोरे थे. कहकहों के साथ दोनों बहनों ने एक दूसरे पर पानी की बौछार की. दोनों उन्मादित थीं. किशन ने उस खुशी को परखना चाहा, वह आगे बढ़ा, कंपन और झिझक के साथ.

वह संयोग था, भाग्य ने साथ दिया था या भगवान ने उसकी सुन ली थी, या कोई मानसिक संक्रमण था वह. अभी-अभी उसे अरुणा की उपस्थिति खटक रही थी. उसका यह सोचना था कि आखिर कबाब में हड्डी क्यों है, वह यहां से टल क्यों नहीं जाती. तभी सचमुच शारदा को अकेली छोड़ अरुणा टमाटर के खेत की ओर दौड़ पड़ी. खुशी के कारण किशन की बाकी हिम्मत भी जाती रही.

किसी तरह वह बढ़ता रहा. शारदा के पास आते-आते उसे सिसकियां सुनायी पड़ीं. उसने देखा, उसके गालों के रास्ते दो बूंदें नीचे को उतर रही थीं. उसकी खोयी हुई हिम्मत वापस आ गयी और उसने धीरे से पूछा.
——तुम रो रही हो?

उसने हाथों से मुंह छिपा लिया.

——अरुणा कुछ कह तो नहीं गयी?

ओढ़नी से आंख पोंछती हुई उसने किशन की ओर देखा. किशन की हैरत बनी रही. सिर के इशारे से उसने दोबारा प्रश्न किया.

* *

पानी में अंजली डुबो कर उसने पानी ऊपर निकाला और मुंह पर छिड़कती हुई हाथों को ललाट से ठोड़ी तक लायी. किशन की ओर देखा और नीली ओढ़नी से चेहरे के ऊपर की पानी की बूंदें पोंछने लगीं. बालों के आंसू अस्तित्वहीन हो गये थे, फिर भी आंखें डबडबायी रहीं.

दूर से अरुणा के पुकारने की आवाज आयी, एक पल बाद जिसकी प्रतिध्वनि पहाड़ों ने की. दोनों चुप हो एक दूसरे को देखते रहे. किशन ने जानना चाहा, क्या उसके भीतर भी कंपन है धड़कनों की रफ्तार में तेजी है? गले में बातें रुकी हों और बाहर न आ पाती हों?

तभी एकाएक आम की डाली से छूट कर गौरैया का एक बच्चा नदी में गिर पड़ा. उस जगह का पानी पत्थरों के बीच स्थिर था. बच्चा अपने कोमल पर हीन डैनों को फड़फड़ाने लगा और शारदा चिल्ला उठी :

——उसे पानी से निकाल दो.

बीच की धारा पार करके उसे वहां पहुंचना था. किशन ने अपने पतलून को घुटने तक उठाया और धाराओं से होते हुए पत्थरों के बीच पहुंचा. गौरैया के बच्चे को उठाये वापस आया और शारदा को अलसाई चाल से पगडंडी पर जाते पाया. वह जा रही थी सेब-ए-मुहब्बत के हरे भरे खेत की ओर. किशन हाथ में गौरैया का बच्चा लिये चल पड़ा——इस बार विपरीत दिशा को नहीं.

□□□

त्रिओले, मारीशस.

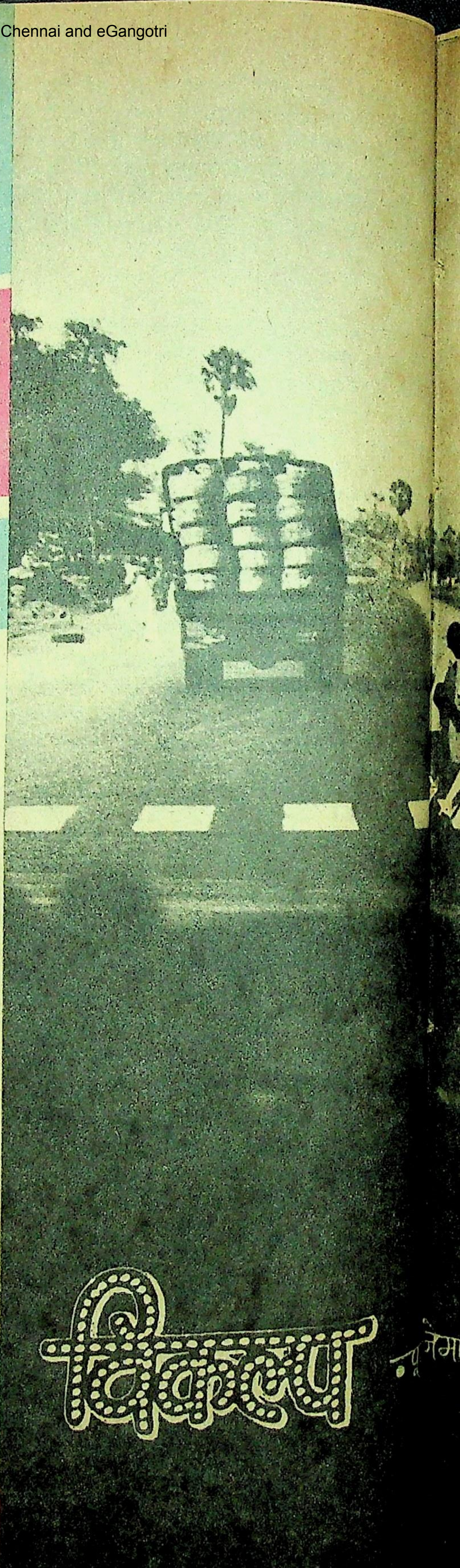

विकल्प

न्यू गेमा

आधी रात. गुजर चुकी थी.

बबन को लगा कि वह चार-पांच घंटे से अधिक सो चुका है. वह हड़बड़ा कर उठ बैठा. उसे बहुत पहले उठ जाना चाहिए था. सुबह से पेश्तर काम पूरा कर लेना है.

बत्ती जला कर मड़ई के हर कोने को एक बार देखा कि कहीं कोई कुत्ता बीवी-बच्चे के साथ तो नहीं सो गया है. कई बार ऐसा हुआ है, और सबेरे उठने पर जब पता चलता है तो मुंह से कुबोली निकलती है. पर बबन कभी कुछ नहीं कहता है क्योंकि वह जानता है कि कुत्ते को थोड़ी-सी आड़ देन के लिए वह एक टुक्का टीन नहीं ला सका है. बात सच भी है, वह अभी तक अपने लिए कुछ नहीं कर पाया है तो फिर. . .

औरत सूखी घास पर बोरे का बिछौना डाल कर सोयी है. उसका अपना बच्चा गहरी नींद में सोया है, उसके नंगे मैले पैर भारी ओवरकोट से झांक रहे हैं. फेरी वाले ने कहा था––मिलिट्री का ओवरकोट है, शायद अब नहीं मिलेगा. टोकर देख लो कितना मोटा और गरम है. महंगी का जमाना है, फिर भी मैं तुमसे अधिक नहीं मांग रहा हूं, बस, सात रुपया देना. अपने को ठाट-बाट नहीं चाहिए फिर ज्यादा दाम काहे लूंगा. आखिर पांच में बबन ने पकड़ लिया था.

उसने पहले ही से अधकटे पीपे में दो-चार डोल पानी, एक गालन गुड़-मुट्ठी भर मान्युर उन्नीस-बीस सेर चीनी और एक कटोरी अरहर के पीसे पत्ते आदि डाल कर तुशाने के लिए रख छोड़े थे. उसने आग सुलगा दी.

सरदी काट रही थी. उसने रत्ती भर गांजे को हथेली पर मल कर गन्ने के पत्ते की बनी चिलम में तंबाकू के साथ भर दिया. एक-दो कश में ही हलका-सा नशा आ गया. उकडूं बैठे-बैठे उसने एक बोरा अपने ऊपर फैला लिया. बारलू के घोल को एक दो-बार घोंटा, फिर ढक्कन लगा दिया जिसमें तांबे की नल्लिका लगी थी. बबन ने उसे दूसरे अधकटे पीपे के ठंडे पानी में डुबोया और दूसरे सिरे का मुंह साफ गालन में डाल दिया.

आंखों में कैफ आ गया था. अब प्रतीक्षा थी वी. सी. टेन की, याने रम् की. यह वी. सी. टेन के जमाने की देन है और इसे पीने से आदमी में वही विमान वाली रफ्तार और उड़ान आ जाती है, संभवत: इसीलिए इस चीज को हवाई जहाजों का नाम मिला है. परंतु बबन को उड़ना नहीं है, उसे तो सरदी के लिए पैसा चाहिए. हां, माह के अंत में जब उसे बीस रुपये का गरीबी का भत्ता मिल जाता है और खाद्यान्न जुट जाता है तो वह एकाध गुड़की (पेग) जरूर चढा लेता है. इस तरह जब भी जेब खाली हो जाती है या जब कड़ाही गरम हो जाती है तो वह रात को उठ कर यह कारबार करने लगता है.

★ ★

उसने बत्ती बुझा दी, नाहक इतना महंगा तेल जलेगा. आग की सुलगन से जो ज्योति फैल रही है, इस काम के लिए वह काफी है. आग की तपिश और गांजे

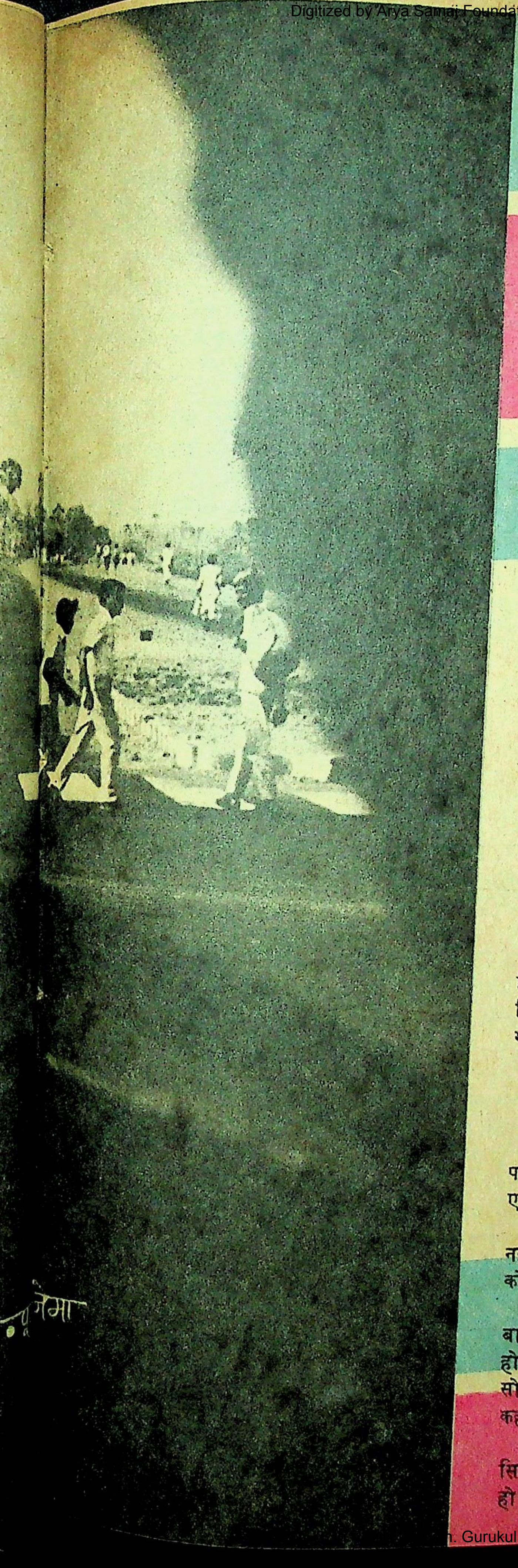

के असर से वह पिनकने लगा था कि अचानक उसकी आंखें खुलीं. कुत्तों के भूंकने के अंदाज से वह समझ गया कि कोई आफत आ पहुंची है. शायद पुलिस की गाड़ी हो जो गली के बीहड़पन से कुछ दूर ही पर रुक गयी है. बबन डरा नहीं, वह मड़ई की एक सुराख से झांकने लगा. बातचीत सुनाई देती है, कदाचित् सब उसी के यहां आ रहे हैं. इस गली में इधर कोई दूसरा तो नहीं रहता है.

सन्नाटा, खुसफुसाहट और फिर दो कुत्तों का दौड़-दौड़ कर भूंकना-गुर्राना. जरूर किसीन थान में इत्तला कर दी है. चुगलखोरों को चाहे जितना भी पिला दो, वे अपना हसद छोड़ेंगे नहीं. मालूम नहीं आज के दोस्त इतने बेईमान और बेवफा क्यों हो जाते हैं? चवन्नी-अठन्नी के लोभ में अपने दोस्त को भी बेच डालते हैं.

यह जानने के बावजूद कि रंगे हाथों पकड़े जाने की सजा कड़ी होती है, वह पीपे को लुकाने-छुपाने की कोशिश नहीं करता है. वह इस चमक्को औरत से पिंड छुड़ाना चाहता है. उसे पता चल गया है कि यह अपनी आदत से कभी बाज नहीं आयेगी. एक बच्चा पहले ही बिना रसीद के जन चुकी है और अब फिर पेट वाली हो गयी है. मन-ही-मन वह एक फूहड़ गाली दे देता है.

अपना पेट भरता ही नहीं है और इसका पेट है कि कूड़ा करकट भी पचा लेता है. बबन कई बार कह चुका है—फमिली पनालिंग जाओ, शादी नहीं हुई तो क्या हुआ? अब तो सब जानते हैं कि तू मेरी औरत है, मेरे साथ रहती-सोती है. मांग-मांग कर कब तक कंट्रोल करेगी? आदमी करने में कंट्रोल नहीं तो फिर संतति का कैसा कंट्रोल?

* *

कुत्ते लगातार भूंक रहे थे. खोली पर टार्चलाईट फिसल-फिसल कर कुत्तों पर पड़ जाती थी. बबन बाहर निकला तो रोशनी उसकी आंखों को एक बार चौंधिया गयी.

—कौन?

—हम हैं, बबन. कांतोरेल से आये हैं.

—क्या बात है?

—तुम्हारे, पिताजी चल बसे. तुम इतनी दूर पहाड़ पर आ बसे हो कि तुम्हारा घर खोजते-खोजते एक घंटे से अधिक समय लग गया.

—अच्छा तो वह बूढ़ा साला मर गया! वह मरता नहीं तो शायद कोई मुझे खोजता भी नहीं. तुम लोगों को कैसे मालूम हुआ कि मैं अभी तक जिंदा हूं?

—बबन भैया, बिपत्त का समय है, गयी-गुजरी बातों को छोड़ दो. हम तो यहां तक आ भी गये. दूसरा होता तो तुम्हें इतना ढूंढ़ने की कोशिश नहीं करता. सोते आदमियों को जगा-जगा कर पूछते आये हैं. कोई कहता कि जेल में हो, कोई कहता लौटे हो.

जिंदगी के बस ये ही दो विकल्प तो हैं—इल्लिसिट रम और जेल. गैरकानूनी हरकतें तो आजकल आम हो गयी हैं, अंतर केवल इतना है कि जो हैसियतदार हैं

ह बाहर हैं और जो असमर्थ हैं, वह जेल की चक्की सता है. बबन के लिए जेल कोई बुरी जगह नहीं. ाना-पीना अच्छा मिलता है, दोस्त भी आत्मीयता रतते हैं और जेलरों को पटाना कोई मुश्किल काम हीं. पहली बार कुछ कष्ट जरूर अनुभव हुआ था पर सके बाद पूरी जेल धर्मशाला लगने लगी थी.

बाहर शराब और औरतें मिल जाती हैं और जेल ं जीने का थोड़ा बहुत एहसास हो जाता है, फिर आदमी ो चाहिए क्या? मड़ई की अपेक्षा जेल में कितनी सुरक्षा हसूस होती है, नींद भी खूब आती है.

* *

दोनों बबन के चिन्हारू हैं. बहुत दिनों के बाद मिले ैं, कुछ तो आतिथ्य होना चाहिए. उन्हें अंदर बुला कर उसने शराब की बोतल निकाली और दो बरतनों में ढाल ढाल कर शराब आगे बढ़ा दी. ---यह तुम्हारे लिए बची थी, पी लो.

मोहन उसका जाना-पहचाना हमउम्र दोस्त है और दूसरा व्यक्ति नयी पीढ़ी का लगता है जिसके बारे में उसने कुछ जानना भी नहीं चाहा. उसने कहा था---चचा, मोटर में जगह है, हमारे साथ ही चलें. पर बबन ने यह कह कर इनकार कर दिया था कि वह सुबह बस के द्वारा आ जायेगा. वह जानता था कि शामरेल से कांतोरेल पहुंचने में उसे बहुत समय लग जायेगा और कभी-कभी सवारी मिलने की इतनी कठिनाई होती है कि पंगत में ही दिन बीत जाता है. फिर भी, वह साथ नहीं गया. उसे तो लांबिक (अवैध रम की गूढ़ोक्ति) चुआना था.

उन्होंने खड़े-खड़े पी ली.

उसे अपनों से इस बात पर चिढ़ हो गयी थी कि कि जब से छोटू पुलिस में भर्ती हुआ है, तब से बूढ़े ने बी. सी. टेन का पुश्तैनी धंधा छोड़ दिया है. कांतोरेल में कौन नहीं जानता कि छोटू ने बाप-बेटे के इसी रोजगार के सहारे पढ़ा-लिखा है और काम पर लगा है. अब उसे इसी कारोबार से नफरत हो गयी है.

घर में इल्लिसिट रम बरामद हो गया तो छोटू अपदस्थ हो सकता है. इस भय से बूढ़े ने यह खोटा व्यवसाय छोड़ तो दिया पर बबन की जेब एकदम खाली रहने लगी. उसे तंबाखू पानी के लिए छोटू के सामने हाथ फैलाना पड़ता. कभी-कभी उसने इधर-उधर रखा पैसा चुपके से उठा लिया पर यह आदत उसे अच्छी नहीं लगी. सिनेमा देखने के लिए एक बार उसने बूढ़े की जेब पर हाथ साफ किया. उस दिन घर में काफी हुड़दंग मचा था. बूढ़े ने कहा था---कोढ़ियिा-चोट्टा! न काम, न धाम, खा-पी कर मटरगश्ती करता है और बूढ़े बाप की चोरी करता है. जवानी में कमाई नहीं करेगा तो बुढ़ापे में करेगा? कान खोल कर सुन ले कि अब हम तेरा जिम्मा नहीं ले सकते.

बबन को यह बात चुभ गयी थी. पीठ पर यह कूबड़ नहीं होता तो वह भी किसी काम-धंधे में लग जाता. दरजी का काम तो वह सीख ही रहा था कि लोगों ने डरा दिया कि वह और कुबड़ा हो जायेगा और सेहत खराब हो जायेगी. फिर...

घर वालों ने तो हौसला नहीं बढ़ाया कि वह कोई काम सीखता. बचपन से उसने बारलू में औटती राब को देखा और नल्लिका में उतरती हुई अस्सी-नब्बे डिग्री की रम. जीने के लिए इससे आसान और क्या हो सकता है? उसने बूढ़े के साथ-साथ यह धंधा किया जिससे पूरे परिवार का पेट भरा, कंक्रीट का यह पक्का मकान बना और खेती-बाड़ी बढ़ी. छोटू को काम मिलते ही बबन का कूबड़ गोया संक्रामक हो गया. सब उसे ऐसे देखते जैसे घर में खारिश वाला कुत्ता कहीं से आ गया हो.

* *

खौलते खमीर से भाप उठ-उठ कर नल्लिका के जरिये पानी की ठंडक से गुजरती हुई रम बन कर बूंद-बूंद टपकने लगी थी. बबन की आंखों से प्रतिशोध और नफरत की ललाई उत्तर चुकी थी, उसके बदले में कतरे-दर-कतरे आंसू भर-भर कर लुढ़क रहे थे. जब अपनों ने ठुकरा दिया तो फिर कौन सुनेगा इस दिल की बात? कहा---मेरा बाप मर गया, अनित. मेरा अपना कोई नहीं. उसने अपनी आंखों को पोंछ लिया.

---उनके साथ चले जाते तो अच्छा था.

---सवेरे चला जाऊंगा.

---पैसा?

---आचून से उधार ले लूंगा.

आचून चीनी दुकानदार है जो उसकी रम सस्ते में खरीदता है और दाम चढ़ा कर बेचता है. साला धनी हो गया है. शहर में भी दुकान खोल दी है फिर भी शामारैल के पहाड़ पर रहना पसंद करता है. कहता है --- शहर में कुछ नहीं, पैसा तो देहातों में है. बबन को उसने उधार दे तो दिया पर शराब लेते समय कई पली अधिक ले लेगा.

शामारैल में बस जाती ही नहीं है. मोटरें घंटे-दो घंटे के अंतर से जाती हैं इसलिए सुबह होते ही वह टाट की थैली में लांबिक से भरा गालन् ले कर पैदल ही बेजूकाप पहुंचा.

अनीता साथ जाना चाहती थी पर उसने टाल दिया ---न अनि, न फेरा, कोई पूछ ले कि यह कौन है तो क्या जबाब दूं? पेपे ने जिद्द की तो अनीता उस पर टूट पड़ी थी. कांतोरेल से निकल कर वह तीन गांवों में रह चुका है, इस हिसाब से अनीता उसकी तीसरी औरत है जिसके साथ वह पति का रोल अदा कर रहा है. वैसे उसने अपने गांव में एक लड़की से निस्बत जोड़ी थी, पर लड़की वालों ने आपत्ति की थी---कुबड़ा अपना पेट नहीं पाल सकता तो बीबी-बच्चा कैसे पोसेगा? छोटू की कई जगहों से बात आयी पर उसने अस्वीकार किया---बड़का का हो जाये, तब करूंगा. पर बड़का उर्फ बबन को लड़की पसंद ही नहीं करती. उसका कूबड़ हर किसीके सर पर लद जाता है.

एक बार दो बहनों की बात आयी थी. घर वाले प्रसन्न हो गये कि बड़का का भाग्य चमका पर लड़की ने ना कर दी थी. छोटू की बात भी कट गयी. धीरे-धीरे उसने अनुभव किया कि उसे क्वांरा ही रहना गवारा

कर लेना चाहिए. शादी का प्रस्ताव कर के हर बार उसके साथ मजाक ही किया जाता है. उस दिन जब उसे कोढ़िया—चोट्टा कहा गया था, उस दिन उस पर कहर-सा टूट पड़ा था. उसी क्षण उसने तै कर लिया था कि अब वह और ढेर दिन किसी पर बोझ नहीं बनेगा.

* *

बबन हर बार जेल से निकलता है तो अपने बाप के पास वापस चला जाना चाहता है. पर उसे ऐसा लगता है कि वह उन सबकी खुशहाली में बला का वह रक्तपूर्ण घड़ा बन कर जा रहा है जो ऋषियों ने रावण को कर रूप में सर्वनाश के हेतु दिया था.

थाने का हर अफसर उसका दोस्त है, और नये-पुराने सब मुखबिर उससे हाथ मिलाते हैं. इस फील्ड में वह इतना आ-जा चुका है कि उसे यथेष्ट जानकारी मिल गयी है. कौन बालाई आमदनी खाता है, किसे झिंगे पसंद हैं, किस वकील को ताड़ का गोंफा भाता है, किस जज का घर कहां है, कौन अच्छी वकालत करता है? यह सारी कुंजी बबन के पास है.

एक बार जिला मजिस्ट्रेट ने उस पर कृपा कर दी जब उसने कहा कि कुबे की वजह से वह काम नहीं कर पाता है. उसे कोई नौकरी नहीं मिलती है और विवश हो कर यही कारबार करना पड़ता है. उसे सोशल सेक्युरिटी की ओर से बीस रुपये माहवार मिलने लगे. शर्त यह थी कि अब वह यह व्यवसाय छोड़ देगा और एक ही जगह पर भले आदमी की तरह रहेगा. तभी से शामारैल के पहाड़ पर बच्चे वाली अनीता के साथ वह रहने लगा है.

* *

वर्षों बाद सुयाक के थानेदार ने उसे पहचान लिया और बुला कर थैली का माल देखा. कालर पकड़ कर थाने ले गया और हिरासत में रख लिया. उसके लाख कहने पर कि वह अपने बाप की मरनी में जा रहा है, दारोगा ने उसे नहीं छोड़ा क्योंकि पहले भी वह कई बार यह बहाना कर चुका है.

उसने सोचा था कि गर्मी में बहुत सारे लोग आयेंगे. कांतोरेल में पुलिस चौकी बन जाने से वहां पर लांबिक का कारबार बंद हो गया है, अतः यह चीज वहां पर खूब खपेगी. लौटने का भाड़ा तो मिलेगा ही, अच्छा दाम मिल गया तो एकाध कबाड़ कपड़े भी मिल जायेंगे, पर ऐसा नहीं हुआ.

उसे दुख है तो केवल इतना कि उसका बाप मरा है और उसे यहां रोक लिया गया है. पकड़े जाने का उसे तनिक भी विक्षोभ नहीं. उसे तो फरियाद का मौका मिला है. इस बार पेशी हुई तो वह जज से अवश्य कहेगा कि इस महंगी में उसके बीस रुपैये में न कोई वृद्धि हुई है न 'कोला' (मूल्यवृद्धि के मान पर मिलने वाली वेतन-वृद्धि—कास्ट ऑफ लीविंग अलाउंस) ही मिला है. अब बीवी-बच्चे हैं, बीस बस नहीं होता है.

उसने देखा कि एक सिपाही उसकी ओर आ रहा है. बूट की चरमराहट से उसका दिल दहल गया. □□□

ला फलोरा मारिशस.

ऐटेक्स
सौंदर्य प्रसाधन
EYETEX
REGD.
EYETEX BINDI
EYETEX DELUXE BINDI PENCIL
ARAVIND LABORATORIES
MADRAS-600 033
AL-75/76

आत्मरचना (२८)

गर्दिश के दिन

• दीप्ति खंडेलवाल

जून, १९७२ से सारिका में इस महत्वपूर्ण लेखमाला की शुरुआत हुई थी और अब तक आप इसमें हरिशंकर परसाई, शानी, से. रा. यात्री, राही मासूम रजा, मोहन राकेश, भीष्म साहनी, चंद्रकांत बक्षी, शैलेश मटियानी, मधुकर गंगाधर, ईश्वर चंदर, शांतनु आचार्य, कृष्णा सोबती, मधुकर सिंह, इब्राहीम शरीफ, रवींद्रनाथ त्यागी, फिक्र तौंसवी, दामोदर सदन, हृदयेश, राम सरूप अणखी, एम. टी. वासुदेवन नायर, कृष्णप्रसाद मिश्र, श्रीलाल शुक्ल, रॉबिन शॉ पुष्प तथा राजेंद्र यादव की आत्मरचनाएं पढ़ चुके हैं. तमाम संघर्षों, व्यक्तिगत तनावों और दुख-सुख के क्षणों के बीच से गुजरते हुए कोई प्रतिभा किस तरह रचनात्मकता ग्रहण करती जाती है और साथ ही सामान्य व्यक्ति के रूप में किस तरह संघर्षरत रहती है—इसी संघर्षशील यथार्थ का निरूपण करने वाली, प्रख्यात लेखकों की आत्मरचनाएं इस स्तंभ के अंतर्गत दी जा रही हैं. इस अंक में पढ़िए हिंदी की कथा-लेखिका दीप्ति खंडेलवाल की आत्मरचना

कहानी बहुत बड़ी है, बहुत छोटी भी, जैसी कि जिंदगी होती है. लम्हों, क्षणों में जी जाती जिंदगी फैल कर दिनों, वर्षों का विस्तार पाती है. . . . और फिर सिमट कर शून्य भर रह जाती है.

याद आता है, एक अबोध लड़की थी. खरे गोरे रंग. बड़ी उज्ज्वल आंखों और रेशमी, काले बालों वाली. उस अबोध लड़की को दो आदतें पड़ गयी थीं— एक, अंगूठा चूसने की, दो— आकाश देखने की! और जब वह अंगूठा चूसते-चूसते, आकाश को देखते, चलने लगती, तो गिर पड़ती थी. गिर पड़ती, तो चोट लगती थी. चोट लगती, तो दर्द होता था. आकाश को देखने की परिणति में उसे दर्द मिलता था. लेकिन वह थी कि आकाश को देखते-देखते चलना छोड़ नहीं सकती थी. और चोट थी कि बार-बार लगती थी. और दर्द था कि बार-बार मिलता था. वह अबोध लड़की आज चोटों और दर्द से भरपूर है. किंतु आकाश को देखना वह आज भी नहीं छोड़ सकी है.

आकाश उसके लिए पर्याय है विस्तार का—उन्मुक्त विस्तार का. . . . जिसमें उड़ जाने के लिए वह होश संभालने के बाद से सदा आतुर रही है. आकाश की नीलाभ उज्ज्वलता उसके लिए पर्याय रही है उस सौंदर्य का, जिसे उसने सांसों में उतार लेना चाहा है. . . आकाश पर क्षण-क्षण बिखरते रंग उसकी चेतना में रंग भरते रहे हैं. . . और धरती पर जकड़ी खड़ी वह आकाश में उड़ जाने के लिए संघर्ष करती रह गयी है. . . . क्योंकि वह पंखहीन है. पंखहीनता उसकी नियति है. . . . आकाश उसकी कामना. . . इस नियति और कामना के बीच झूलती उसकी जिंदगी शायद एक शून्य है. . . . शायद यह शून्य वैसा ही है, जैसा आकाश होता है— बहुत कुछ और कुछ भी नहीं.

आज आकाश को देखने के साथ एक आदत और जुड़ गयी है. अंगूठा चूसना वह छोड़ चुकी है, तो आकाश को देखने के साथ कुछ और भी होना चाहिए न! ऐसा कुछ, जो उसके पार्थिव अस्तित्व को धरती से जोड़े रख सके. तो वह अगरबत्ती से जुड़ गयी है. अंगूठा चूसने की वह अबोधता, आज जीवन और जगत के बोधों से, और उससे भी अधिक दर्द और चोटों के यथार्थ से इतनी बोझिल हो गयी है कि यदि अब पंख मिल भी जायें तो भी उड़ नहीं सकेगी, आकाश को देखते-देखते थक कर पंखहीनता के क्षण-क्षण सालते यथार्थ को झेलती वह बोध-भरी अब अपने कमरे के एकांत में अगरबत्ती जला लेती है. . . . फिर उस घुटते एकांत को देर तक कड़वे घूंटों की तरह पीती वह उस धीरे-धीरे जलती, सुगंध बिखेरती अगरबत्ती को एकटक देखती रहती है. अगरबत्ती उसे अपने अस्तित्व का पर्याय लगती है.

जलना दीप्ति की नियति रही है, आग को आलोक बनाना उसकी प्रकृति. . . और इन दोनों का द्वंद्व उसकी जिंदगी. उसे याद नहीं, कब से उसे अपने भीतर कुछ 'उज्ज्वल' होने की चेतना रही है. यह 'उज्ज्वल' उसका जीवन-दर्शन रहा है. यह 'उज्ज्वल' उसकी विडंबना भी रहा है.

* *

सूरज में आग है तो वह एक प्रकाशपुंज बन गया है, जो ऊष्मा देता है, जीवन देता है, आलोक देता है. दीपक उस आग को अपने लघु परिवेश में आत्मसात कर लेता है, तो निविड़ अंधकार से जूझता, जलता, 'तमसो मा ज्योतिर्गमय'. . . को जीने लगता है. सूरज का तपना और दीपक का जलना सार्थक होता है. किंतु अगरबत्ती का तपना या जलना एक सुगंध की क्षणिक परिणति के अतिरिक्त कुछ नहीं होता. जलती अगरबत्ती भी है. . . जलने की दाह को झेलती राख होती जाती है. . . किंतु एक हलकी-सी सुगंध के अतिरिक्त अपनी दाह का कोई प्रमाण उसके पास नहीं होता. और वह सुगंध भी क्षणिक

होती है. और सुगंध को न छुआ जा सकता है, न देखा, केवल महसूस किया जा सकता है. वह भी तब, जब बहुत पास से उसे सांसों में भरा जा सके. किंतु किसी का पार्थिव अस्तित्व यदि अगरबत्ती-सा हो उठे, तो सूरज और दीपक की तुलना में वह नगण्य हो कर रह जाता है. सुगंध अपने आप में एक सूक्ष्म उपलब्धि हो सकती है, किंतु आग और आलोक की तुलना में वह कहीं नहीं ठहरती.

उसने सूरज-सा प्रकाशपुंज बनना चाहा था कि जीवन दे सके, आलोक दे सके. उसने दीपक-सा जलना चाहा था कि अंधकार से जूझ सके. . . . आग को उसने आत्मसात कर लिया था. . . 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' उसका जीवन-दर्शन बन गया था, किंतु इनकी परिणति में वह केवल एक अगरबत्ती बन कर रह गयी है. हां, उसके भीतर वह आग अभी भी भड़क रही है, जिसे वह आलोक बनाना चाहती है और इस आग को आलोक बनाने के प्रयास में वह जलने की शर्त भी पूरी कर रही है.

पिता उसके संदर्भ में दो घटनाओं का जिक्र करते हैं. पहली घटना उसकी देह की है. बहुत छोटी थी वह, शायद पूरे एक वर्ष की भी नहीं. किसी धार्मिक उपलक्ष्य में पिता नदी में स्नान कर रहे थे, तो सोचा, एक गोता उस नन्ही जान को भी लगवा दें. पिता ने उसे एक बार डुबो कर निकाला ही था कि वह न रोयी, न चीखी, बस नीली पड़ गयी. पिता दुखी और चकित, एक साथ थे. न पानी इतना ठंडा था कि एक वर्ष की बच्ची की देह नीली पड़ जाये, न वह बच्ची ही देखने में इतनी दुर्बल थी. लेकिन नीली वह पड़ गयी थी.

और फिर उसका नीला पड़ना चलता रहा. तीन वर्ष की आयु तक उसे सात बार चेचक निकल चुकी थी. छह वर्ष की उम्र में उसे डिफ्थीरिया हुआ था. नौ वर्ष की अवस्था में वह खूनी पेचिश के कारण मरते-मरते बची थी. और सोलह वर्ष का कैलेंडर अभी बदला नहीं गया था कि वह टॉयफॉयड के आक्रमण से जो शैया पर गिरी, तो आज तक नहीं उठ सकी है. टॉयफॉयड ने उसे ऐसा क्षत-विक्षत किया कि उसका अंग-अंग पंगु-सा हो कर रह गया. सोलहवें वर्ष के वसंत के बीच खड़ी वह देखती रह गयी कि उसके चारों ओर पतझड़ की हवा चलने लगी है. . . उसकी देह का वसंत पथरा गया था.

आज भी जब उसकी पथराई देह तीन हजार से भी अधिक इंजेक्शनों से कोंची जा चुकी है और वह अनगिन दवा-प्रयोगों की त्रासदी से गुजर चुकी है, उसकी देह का नीला पड़ना जारी है. दोष उन हवाओं का नहीं, जिनमें वह सांस लेती है, दोष शायद उन पंचतत्वों का है, जिनसे उसका निर्माण हुआ है. और देह की यह अस्वस्थता इतनी दीर्घ हो गयी है कि अब मन भी रोगी हो उठा है. देह की यातना मन की यातना बनी जा रही है. . .जिस देह में उसे रहना है, वह देह उससे पग-पग पर विद्रोह किये रहती है. . .और उसका सब कुछ विरूप हो कर कर रह जाता है. उसकी आत्मा के रंग उसके जीवन में केवल इसलिए नहीं उतर सके कि बीच में उसकी चिर-अस्वस्थता की दीवार खड़ी हो गयी थी. . . आज भी जब वह लहूलुहान है, पराजित है, आंसुओं से अधिक अपने ही रक्त से भीगी हुई है, तो भी वह इस दीवार पर अपनी कोमल, दुर्बल हथेलियों से निरंतर प्रहार कर रही है. . .और, और अधिक लहूलुहान हुई जा रही है. यह दीवार शायद नहीं, निश्चित रूप से उसकी नियति है. . . और नियति से कोई जूझ भले ही ले, जीत नहीं सकता.

★ ★

अगरबत्ती जल कर बुझ जाती है और उसकी सुगंध भी विलीन हो जाती है तो वह उठ कर फिर खिड़की खोल लेती है और देखने लगती है——आकाश के उस अंतहीन विस्तार को, उस नीलाभ उज्ज्वलता को, उन बिखरते-मिटते रंगों को, जिन्हें पंखों से तौल लेने का सपना कभी उसका था. . .आज पंखहीनता उसका यथार्थ है!

दूसरी घटना उसकी चेतना की है. पिता बताते हैं, उसके मामा का विवाह था. बारात निकल रही थी. उस बारात में, रेशमी फ्रॉक पहने, मोटर में बैठी और शायद अंगूठा चूसती वह भी थी कि दूसरी ओर से एक अर्थी गुजरी. शहनाइयों के स्वरों से 'राम नाम सत्य है' के बोल टकरा गये. उसके मुंह से अंगूठा निकल गया——एक तरफ बारात जा रही है, दूसरी तरफ कोई मर कर जा रहा है, शायद यही जिंदगी है! उसने साफ-साफ कहा. उसकी अबोध आंखें किसी दार्शनिक बोध से फैल गयी थीं. पिता ने उसे खींच कर सटा लिया था. वह उसे फिर बारात दिखाने लगे थे कि दार्शनिक बोध से फैल गयी उसकी आंखें अबोधत्व में सिमट जायें.

वह डर गये थे कि इतनी छोटी लड़की ऐसी बड़ी बात क्यों कर रही है! वह जानते थे कि बड़ी बातें करने वाले छोटे बच्चे संसार के लिए चुनौती बन जाते हैं और संसार चुनौती बनने वालों के बुत पीछे बनाता है, पहले उन्हें सूली पर चढ़ाता है. शायद पिता समझ गये थे कि उनकी. बेटी को भी सूली पर चढ़ाया जायेगा. पिता का अनुमान गलत नहीं निकला, उनकी बेटी को सूली ही मिली है.

तीसरी बात जो पिता को नहीं, लड़की को याद है, वह है, पिता का उसे कहानियां सुनाना. पिता उसे अनेक कहानियां सुनाते, उसे केवल एक याद रह जाती——झांसी की रानी की. दांतों से घोड़े की लगाम पकड़े, दोनों हाथों से तलवार चलाती, रक्त से नहाती, स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करती, वह झांसी की रानी, उस कहानी सुनने वाली लड़की की आंखों में इतनी मूर्त हो उठती कि वह चीख पड़ती——मैं भी झांसी की रानी बनूंगी. अनेक कहानियों के अनेक पात्रों में से उसने झांसी की रानी को ही क्यों अपना आदर्श चुना, यह वह तब नहीं बता सकती थी, अब बता सकती है——अब जब वह एक लेखिका बन चुकी है, उसके हाथ में तलवार नहीं, लेखनी है, तो इस लेखनी से वह तलवार का ही काम लेना चाहती है. यानी वह, वह सब काट फेंकना चाहती है जो अन्याय है, गुलामी है, गलत है! अर्थात वह सत्य को बदलते संदर्भों के व्यापक परिवेश में आंक लेना चाहती है, फिर चाहे वह लेखन में हो, चाहे जीवन में. सत्य को वह रूढ़ अर्थों में नहीं, चेतना के जीवंत धरातल पर, सूक्ष्म और स्थूल दोनों स्तरों पर, जी लेना चाहती है. आज भी. . .अब भी. . .किंतु लेखन में चाहे वह किसी सत्य को पा भी सकी हो, जीवन में सब कुछ झूठ हो कर रह गया है. और जिसे सत्य की चेतना और झूठ का धरातल एक साथ मिला हो, उसकी सांसें एक साथ जीती-मरती रह जाती हैं.

* *

सत्रहवें वर्ष में एक ओर उसकी क्वांरी, कोमल, सुंदर देह में वसंत पथरा रहा था, दूसरी ओर उसके आंगन में शहनाइयां बजी थीं. उसके मेहंदी-लगे, लाल हाथों किंतु रक्तहीनता से सफेद पड़ी कलाइयों को किसी ने थाम लिया था. उसे थाम लेने वाले हाथ जिस राम के थे, वह निश्चय ही अभिराम थे—बिल्कुल सपनों के राजकुमार जैसे! एक ओर वह थरथरा रही थी कि उसे सपनों का राजकुमार मिला था. दूसरी ओर वह कांप भी रही थी कि सपनों के राजकुमार जिस महल में रहते थे, वह जीर्ण-शीर्ण था, पुराना था, भुतहा था. उसे फिर दो विरोधी तत्व एक साथ मिल गये थे. सपनों के राजकुमार का चिर इच्छित, चिर काम्य साथ और साथ-साथ रहने के लिए भुतहा महल. स्पष्ट कर दूं, वह भुतहा महल रूढ़ियों का था, अंधविश्वासों का. . .सत्य वहां बंदी था.

उस कोमल और दुर्बल देह वाली युवती को, जिसके मन में प्रतिपल किसी सत्य और सुंदर की चेतना फड़फड़ाया करती थी, उस भुतहे महल के भूत हांट करने लगे. सपनों के राजकुमार उन भूतों के आदी थे, वह उन्हें सहज स्वीकार कर चुके थे, किंतु वह युवती धीरे-धीरे उन प्रेतछायाओं के बीच होश खोने लगी थी. यदि उसके पैरों में शक्ति होती तो वह निश्चय ही उस महल से भाग निकलती . . .उस महल में सत्य के साथ वह युवती भी बंदिनी बना दी गयी थी.

सीता का आदर्श भी उस युवती का चिर इच्छित, चिर काम्य आदर्श था. तन-मन में उजले कमलों की शुभ्रता और सुगंध लिये सीता एकमात्र राम की थी . . . किंतु इतिहास की वह कोमल, उज्ज्वल सीता दुर्बल नहीं थी. उसे कर्त्तव्य के नाम पर राम के साथ वन के कंटीले-कंकरीले रास्ते पर चलना आता था. उसे राम के रामत्व के साथ रावण के राक्षसत्व का सामना करना भी आता था. उसे अग्नि-परीक्षा देना भी आता था. . . किंतु इन सबके पश्चात् भी जो अस्वीकार की दुर्वह त्रासदी से खंड-खंड होती भूमि में समा गयी थी. . .और भूमि में समा जाना भी हर सीता की नियति होती है.

उस युवती को राम मिल गये थे और वह सीता बन जाना चाहती थी. एक स्वतंत्र अस्तित्व वाली सीता, जो सत्य को उसकी जड़ता में नहीं, चेतना में जीना चाहती थी. और फिर, एक ओर उसकी सत्य की चेतना थी, दूसरी ओर रोगी देह में अचेत होता उसका पार्थिव अस्तित्व था . . .वह राम की अनुगामिनी नहीं, सहगामिनी बनना चाहती थी, किंतु केवल बोझ बन कर रह गयी थी. फिर राम की प्रशस्ति में कसीदे पढ़े गये और निर्दोष सीता बोझ बन जाने के कारण अपराधिनी बन कर रह गयी.

और, यद्यपि अग्नि-परीक्षाओं का साहस उसमें भी था . . .वह अग्नि-परीक्षाएं देती भी रही . . . फिर भी उसके राम भी शत-प्रतिशत राम थे! सीता के लिए रावण से युद्ध करने वाले योद्धा राम, लोकापवाद जैसी हलकी बातों के डर से सीता का परित्याग करने वाले कायर राम भी थे. दो विरोधी राम दो ओर थे और बीच में अग्नि-परीक्षा देती वह सीता थी, अर्थात् वह युवती थी, जो केवल नियति के कारण अवश हो कर रह गयी थी, अन्यथा कदाचित जीवन में वह एक नयी रामायण लिख देती. तब वह कदाचित् राम के रामत्व को एक नयी परिभाषा देती, अपने सीतात्व को भी. किंतु, ऐसा नहीं हुआ, हो नहीं सका. हुआ केवल यह है कि राम का अभिराम साहचर्य पा कर भी एक दुर्वह त्रासदी उसकी नियति रही है. . . वह खंड-खंड भी हो चुकी है. . .कदाचित् अब केवल भूमि में समा जाना शेष है.

आज भी वह सोचती है कि सत्य को जीने की, सुंदर को पाने की अपनी जिद वह छोड़ क्यों नहीं देती? क्यों नहीं बाहर और भीतर दो स्तरों पर जीना सीख लेती? क्यों नहीं हार मान लेती? किंतु सारी स्थूल पराजयों के नेपथ्य में कहीं कोई संभावित जय का सूक्ष्म स्वर है, जिसे अपने बहुत भीतर केवल वह सुन पाती है . . .यह स्वर बहुत क्षीण हो चुका है, फिर भी कहीं है. . .जिस क्षण यह स्वर नहीं होगा, वह भी नहीं होगी.

न, आप गलत न समझें. न इस सीता का परित्याग हुआ है, न होगा. स्थूल स्तर पर वे सदा साथ रहेंगे—किंतु नियति के क्रूर बाण से विद्ध क्रौंच-युगल के समान मृत्यु के पलों में भी मिलन की चिर कामना चंचु में लिये . . .हां, रस से भरे पात्र और कांप-कांप जाने वाले हाथ भी उसे एक साथ मिले हैं . . .रस की तृप्ति केवल रस की प्राप्ति नहीं होती. . .उस रस का ओठों से प्राणों तक उतर जाना होती है . . . ! और इस अर्थ में उसे रस कहां मिला है? . . .मिले हैं सूखते ओठ और चटखते प्राण. . .जीवन भर अतृप्ति का अभिशाप झेला है उसने . . .पल-पल रस का विद्रूप सहा है उसने . . .और कदाचित उसने रस के पात्र बांटे भी हैं, किंतु स्वयं प्यासी रही आयी है. स्थूल स्तर पर साहचर्य मिला है उसे, किंतु सूक्ष्म स्तर पर वह एकाकिनी है—पंखहीन और एकाकिनी. यह एकाकीपन जैसे एक अंतहीन भटकन है—भटकन, जो किसी भी तलाश की शर्त होती है. यह पंखहीनता जैसे एक चिरंतन दर्द है—दर्द, जो किसी भी रचनात्मकता की शर्त होता है. हां, दर्द का भी एक दर्शन होता है . . .दर्द आत्मा का संस्कार कर देता है. . . और वह अपने दर्द के दर्शन में जीना सीख चुकी है . . . दर्द उसकी आत्मा का संस्कार भी कर चुका है.

तो सत्य और सुंदर की चेतना से स्पंदित रोम-रोम लिये उसका यथार्थ यह है कि वह भयानक अनिद्रा की रोगिणी है . . .बीस वर्षों से सेडेटिव्स ले रही है. . . नारी देह के रोग उसे घेरे रहे हैं. . .उसका अंग-अंग कष्टों से जकड़ा रहा है . . . घोर रक्ताल्पता के कारण जीना उसके लिए कठिन रहा है और वह इतना कम खा-पी पाती है कि उसे फूल सूंघने वाली राजकुमारी की संज्ञा दी जा सकती है . . .और सब कुछ तो वह झेल लेती है, किंतु अनिद्रा के कारण अंतहीन बनी रातें उससे काटे नहीं कटतीं. . .करवटें बदलती वह तड़पती होती है. . .फिर कोई दिन उसके लिए नया नहीं होता . . .केवल वह उस निरर्थक छटपटाहट की पुनरावृत्ति मात्र होता है, जिसे जाने कब से वह झेल रही है. . . और जाने कब तक झेलती रहेगी. . .थकी रात का सहारा ले कर खड़ा होता उसका दिन लड़खड़ाता होता है . . . और लड़खड़ाते दिन से गुजर कर उसकी रात और थक जाती है . . .रात के सन्नाटों में शैया पर अकेली करवटें बदलती वह केवल सोचती होती है—

किसी की शबे वस्ल सोते कटे हैं
किसी की शबे हिज्र रोते कटे हैं
ये कैसी शब है या इलाही
न सोते कटे है न रोते कटे है!

कितनी सच हो गयी हैं ये पंक्तियां उसके संदर्भ में! उसकी अपनी देह ही उसका 'वाटरलू' बन गयी. एक दुर्बल देह में बंदी एक प्रबल मन हारता रहा.

* *

बार-बार याद आता है, उसके अंग्रेजी के ट्यूटर, जो उसकी उड़ान भरने की क्षमता से बहुत आशा रखते थे, कहते रह गये थे—सांग बर्ड! व्हाई हैस्ट दाउ ए ब्रोकन विंग!

अपने आत्मपरिचय में उसने लिखा है :

एक पराजित नारी देह में बंदी एक अपराजेय मन है, जिसके संघर्ष भी इसलिए अमूर्त रहे कि उसकी आत्मा के रंग उसके जीवन में नहीं उतर सके . . . दीप्ति केवल इसलिए दो टुकड़ों में बंट कर रह गयी कि बीच में उसकी चिर रुग्णता की दीवार खड़ी हो गयी थी . . . फिर नियति से दो टुकड़ों में बंटा यह पंखहीन अस्तित्व जिंदगी की दीवारों पर सिर पटकता रहा. . . किंतु खंडित आकाश को झेल जाने का साहस उसमें था, कांटों भरी धरती पर चल कर लहू-लुहान होने का भी . . .और खंडित स्तरों पर चलती वह बाहर से भीतर की ओर लौटती गयी. . .दीप्ति की कहानियां इसी बाहर से भीतर की ओर की यात्रा की कथाएं हैं . . .

और खंडित स्तरों पर चलती, बाहर से भीतर की ओर की यह यात्रा दीप्ति का अति त्रासद भोगा हुआ यथार्थ रहा है. स्थूल स्तर पर वह निरंतर हार रही थी . . .सूक्ष्म स्तर पर निरंतर मर रही थी . . .उसका यथार्थ इतना विद्रूप था कि चेतना के स्तर पर सुंदर एक विद्रूप बन कर रह गया . . .फिर इसी हार, इसी मृत्यु, इसी विद्रूप के बीच उसके लेखन ने जन्म लिया. . . जैसे उसे लड़खड़ाते पैरों पर खड़े होने के लिए एक अपनी जमीन मिल गयी . . .जैसे उसे सारे अस्वीकारों के बीच एक स्वीकार मिल गया.

मानवीय संवेदनाओं के प्रति व्यापक धरातल पर खड़ी वह कहती है—लेखक केवल इस अर्थ में एक असामान्य प्राणी होता है कि वह मानसिक धरातल पर, विभिन्न कोणों से, अनेक रूपों में जी सकता है. ये रूप, ये कोण, उसके अपने व्यक्तिगत जीवन के ही हों, ऐसा कहां आवश्यक है? हर भोगा हुआ यथार्थ स्थूल स्तर पर उसका हो, न हो, संवेदना के स्तर पर उसका अपना होता है. मृत्यु को जानने के लिए मरना जरूरी नहीं होता.

संवेदनाओं के धरातल पर खड़ी वह अपने पात्रों के साथ जीती-मरती होती है. . .यथार्थ को हर कोण से चित्रित करती होती है . . .किंतु उन क्षणों वह लेखिका नहीं, स्वयं पात्र होती है, चित्रकार नहीं, स्वयं चित्र होती है. किसी भी मानवीय स्थिति से, किसी भी दर्द से उसका तादात्म्य इतना गहरा है कि वह तादात्म्य किसी भी कहानी को उसका भोगा हुआ यथार्थ बना जाता है . . .

अपने लेखकीय वक्तव्य में उसने कहा है—आदमी कुत्ता हो सकता है, लेकिन आदमी केवल कुत्ता ही नहीं है. उसका यह कथन उसके समस्त लेखन में प्रतिध्वनित एक सूक्ष्म स्वर है. आदमी से बहुत प्यार है उसे. उसने साफ-साफ देखा है—यदि देवत्व एक भ्रम है, तो प्रभुत्व भी सच नहीं. आदमी तो इन दोनों के बीच कहीं होता है. अपनी कहानियों में वह इसी बीच के आदमी को तलाश करती होती है . . .इस बीच के

आदमी से अतिशय प्यार है उसे!

पाप-पुण्य, नैतिक-अनैतिक की कोई रूढ़िगत मान्यता को वह नहीं मानती, किंतु प्रकाश में उसकी आस्था है और प्रकाश और अंधकार के भेद को वह दृढ़ता से स्वीकारती है--जिद की हद तक.

कला के संदर्भ में किसी पश्चिमी कलाविद का यह कथन उसकी कला-चेतना पर अंकित हो कर रह गया है--सेब के चित्रण में सेब के चित्रण के साथ कुछ और भी होना चाहिए--यही 'कुछ और' कला है. इस कथन में वह अपना लेखकीय अनुभव और जोड़ देती है--यही 'कुछ और' तो वह कुछ है जो संवेदनाओं के माध्यम से कला की सृष्टि करता है. वस्तु की प्रामाणिकता और शिल्प के सौष्ठव को यही कुछ और जीवंतता, व्यापकता और अर्थ देता है. संवेदनाओं की तादात्म्य में परिणति जितनी तीव्र और व्यापक होगी, रचना उतनी ही सार्थक होगी.

प्रयोग के लिए प्रयोग में उसका विश्वास नहीं है. प्रयोग कला के लिए और कला जीवन के लिए--उसका विश्वास भी है, उसका प्रयास भी. उसके अनुसार रचनाकार को प्रतिबद्ध होना चाहिए--युग के प्रति, शाश्वत मूल्यों के प्रति, एवं अपनी कला-चेतना के प्रति. उसकी पसलियों से एक प्रश्न बार-बार टकराता है--क्या इन प्रतिबद्धताओं के प्रति मैं ईमानदार हूं? या मैंने भी रचनाधर्मिता के धर्म को झुठलाया है? क्या दिशा की खोज में मैं भी दिग्भ्रमित हूं?

* *

कागज पर कलम से, कुछ सिलसिले से, लिखना वह सन् ७० के आसपास ही शुरू कर सकी.

'क्षितिज', 'मूल्य', 'विषपायी', 'हव्वा', 'एक पारो पुरवैया', 'परिणति' एवं **'शेष-अशेष'** उसकी चर्चित रचनाएं रही हैं. **'क्षितिज'** में दंपती की चिर ट्रेजेडी को दीप्ति ने अपने समकालीन 'अंदाजे बयां' में कह दिया था. उसने बार-बार सुना है--यथार्थ की बेझिझक एवं ईमानदार अभिव्यक्ति के साथ मानवीय संवेदनाओं को गहरे स्पर्श करने तथा झंकृत करने की अप्रतिम सामर्थ्य आपमें है. . .

किंतु यदि इस अप्रतिम सामर्थ्य की चर्चा में आप दीप्ति से जानना चाहें कि उस सामर्थ्य का कितना गर्व है उसे? तो वह अचकचा जायेगीं, फिर धीरे से कहेगी--सामने अनंत पारावार है और मेरी अंजुलि में केवल कुछ बूंदें . . . .इन बूंदों का गर्व मुझे क्या होगा!

'हव्वा' एवं **'विषपायी'** उसकी सेक्स-स्नात रचनाएं हैं, वह स्वीकार करती है. फिर सेक्स को ले कर पाठकों के प्रश्न के उत्तर में एक प्रश्न ही और कर देती है--**'हव्वा'** एवं **'विषपायी'** सेक्स-स्नात रचनाएं हैं . . .किंतु, क्या इन रचनाओं में सुगंध एवं उजालों का वह संस्पर्श नहीं, जो इनमें वर्णित निर्मम, नग्न यथार्थ के सामयिक सत्य को सत्य की शाश्वतता से संपृक्त कर दे?

'विषपायी' के संदर्भ में उसने अपने एक जबरदस्त प्रशंसक को बधाइयों के उत्तर में लिखा था--रचना इसलिए बधाई के योग्य नहीं है कि इसमें एक लेखिका ने 'होमोसेक्सुएलिटी' पर कलम चलायी है, वरन् इसलिए कि विषपायी सुगंध और उजालों के लिए छटपटाती मानवीय चेतना की संघर्ष-कथा है! ये सुगंध और उजाले दीप्ति की समग्र लेखकीय चेतना एवं रचनाधर्मिता के लक्ष्य हैं.

चेतना के स्तर पर दीप्ति में गौतम की करुणा थरथराया करती है, कि वह बांहें पसार कर सारी पीड़ित मानवता को अपनी करुणा में समेट ले. . . सुकरात की तरह वह जहर का प्याला पी कर मरने को तत्पर रहती है, कि कुछ अमर दे सके! और ईसा की तरह वह त्रासदियों की सूली पर चढ़ा ही करती है . . . वह बहुत आहत है, बहुत क्षत-विक्षत भी . . . पता नहीं, उसका बुत बनाया जायेगा या समय अपनी निर्मम ठोकरें मार कर उसे किसी अतल गर्त्त में ढकेल देगा. . . किंतु क्या एक ईमानदार संघर्ष अपने आपमें एक उपलब्धि भी नहीं होता? तो, दीप्ति का संघर्ष ही उसकी एकमात्र उपलब्धि है.

हां, लेखकीय संदर्भ में एक बात बताना वह भूली जा रही है कि उसका मूल स्वर कवि का था. . . यह कवि वर्षों दीप्ति की चेतना को झंकृत करता रहा. उसके काव्य के विषय होते थे -- प्रेम और सौंदर्य एवं प्रकृति और दर्शन. एक समय था कि उसकी कविताएं प्रकाशित हुई थीं, सराही भी गयी थीं. किंतु फिर, जीवन की उठा-पटक ने उसकी लेखनी को कल्पना के कोमल आकाश से उतार कर यथार्थ की कांटों भरी धरती पर ला खड़ा किया. और फिर कहानी घावों के रिसते आंसू पोंछने लगी. अब, कविता दीप्ति को एक छद्म लगती है. प्रेम और सौंदर्य के अर्थ उसके निकट बदल गये हैं. . . प्रेम और सौंदर्य के स्थान पर जब यथार्थ का कटु और कुरूप उसके रूबरू खड़ा हो गया तो उसने घबरा कर आंखें नहीं बंद कीं, उस रूबरू खड़े यथार्थ को भी अपना लिया. . . फिर वह प्रेम और सौंदर्य के कैनवस पर कटु और कुरूप के चित्र खींचने लगी.

वह केवल दो सौ के लगभग कविताएं और साठ के लगभग कहानियां लिख सकी है. कविताएं दराज में बंद हैं. कहानियां लगभग सभी प्रकाशित हो चुकी हैं. और अब वह चाहे भी तो कविता नहीं लिख पाती, कहानियां न चाहने पर भी लिखती चली जाती है. . . शायद इसलिए कि जिंदगी कविता नहीं होती, कहानी होती है. अपने कथाकार-रूप से दीप्ति को बहुत मोह है. . . शायद इसलिए कि यह रूप उसकी जख्म खाती जिजीविषा का एकमात्र प्रमाण है.

लेखन उसके सिर पर एक जुनून की तरह सवार होता ह. . .एक ज्वार की तरह सारे बांध तोड़ कर वह निकलता है. . . एक आग की तरह भड़क उठता है. . . उसकी हर कहानी केवल एक या दो सिटिंग का परिणाम है. और जब वह लिखती होती ह, तब उसे अपना भी होश नहीं होता. . . रचना-क्षण उसके लिए आत्म-विस्मृति के तन्मय क्षण होते हैं.

वह शून्य होती है कि कोई सामने आता है, कोई घटना घटती है, कोई स्थिति करवट लेती है. . . कोई चोट लगती है. . . कोई दर्द होता है. . . फिर यह 'कोई' उसके भीतर दफन मुरदों को जिंदा कर देता है. . . और कोई कहानी जन्म लेती है. उसके भीतर मुरदों का इतना विशाल अजायबघर है कि कभी-कभी जब वह अकेली उस अजायबघर में घूमती है तो चलते-चलते थक जाती है, लेकिन अजाबघर है कि खत्म नहीं होता. . . इस अजायबघर का दशमांश भी तो न वह देख पायी है, न दिखा पायी है. . . वह स्वयं भी तो इस अजायबघर में जाने कितने रूपों में दफन है.

* *

इस आत्मलेख में आपके सम्मुख दीप्ति बाहर से भीतर की ओर गयी थी, अब फिर बाहर आती है. . . नहीं, लीजिए, वह भीतर और बाहर की संधि-रेखा पर खड़ी हो गयी है.

जन्म और मृत्यु के जिस फासले को जिंदगी कहते हैं, दीप्ति का वह फासला गतिहीन रहा है. प्रकृति से कर्मवादिनी वह नियति से अकर्मण्य हो कर रह गयी है —— निर्दोष, किंतु अकर्मण्यता की अपराधिनी. और उम्र उस पर से नहीं गुजरी है, वह उम्र पर से गुजर गयी है —— अछूती, अतृप्त, अनजियी!

उसके पास न कोई उल्लेखनीय डिग्री है, न कोई स्पृहणीय पद. उसकी सारी भौतिक स्थितियां उसके साथी की ही दी हुई हैं. इन भौतिक स्थितियों को ले कर केवल एक तीव्र दंश है उसके मन में कि क्यों सारी मानसिक क्षमताओं के बावजूद वह देह की अक्षमता के कारण निरंतर लेने पर मजबूर हो गयी?. . . कुछ दे नहीं सकी. काश! अपनी भौतिक स्थितियों का निर्माण वह स्वयं कर पाती. . . काश! वह एक लेखिका होने के साथ एक सफल व्यक्ति भी होती! किंतु कहा न, उसकी अपनी ही देह उसका 'वाटरलू' बन गयी है. . . एक दुर्बल देह में बंदी एक प्रबल मन निरंतर हारता रहा है.

आज भी प्रतिदिन, जब एक थके, उदास दिन के कंधों पर ढहती और भी थकी, उदास शाम को झेलती वह घर की घुटन से हट कर कुछ देर मुक्ति की सांस लेने के लिए बाहर निकलती है, तो प्रायः सुनती है——व्हाट ए कपल एंड व्हाट ए लाइफ! श्लाघा से कहे गये ये शब्द उसे भीतर तक बेध जाते हैं. . . एक विद्रूप को झेलते उसके ओंठ टेढ़े हो जाते हैं और वह अपने आपसे दुहरा कर कहती है—— येस, व्हाट ए कपल एंड व्हाट ए लाइफ इनडीड! उन क्षणों वह उस साथी के प्रति नत हो कर रह जाती है, जिसने अपनी सतत संभाल से उसके शरीर और प्राणों का संयोग बनाये रखा. . . यदि जीवन ही नहीं होता तो लेखन कहां होता! अतः उसका जीवन ही नहीं, उसका लेखन भी इस सतत संभाल के प्रति नत है.

उसकी आत्मा के दो अंश उसके निकट हैं. पहला अंश एक सुकुमार बेटी है, जिसने पथ्य बना कर, रस पिला कर, अपनी छोटी-छोटी कामनाओं का त्याग कर और किन्हीं अर्थों में अपने नन्हें-से जीवन की भी बाजी लगा कर अपनी मम्मी को जीवनदान दिया है. वह बेटी जब एक स्वीकार-सी सामने खड़ी होती है, तो उसकी मम्मी की मन की आंखें छलछलाती होती हैं—— क्या दे सकेगी वह अकिंचन मां इस बेटी को? इस बेटी को वह अपनी मां कहती है.

उसकी आत्मा का दूसरा अंश एक तेज, धूमधाम करने वाला बेटा है जो एक दिन कुछ छिपाये उसके सामने आ खड़ा हुआ था. —मम्मी, आप आंखें बंद कीजिए, एक चीज है. उसने आंखें बंद कीं, खोलीं, तो उसके हाथों में नन्हें हाथों से लिखी अंग्रेजी की एक कविता थी. शीर्षक था——'माई मदर'. कविता की कुछ पंक्तियां थीं——

ओह! लुक एट माई मदर सो प्रेटी एंड फेयर
लुक एट हर डार्क ब्यूटीफुल हेअर
लुक एट हर ब्राइट लवली आइज
एज वाइड एज द ओपन स्काइज. . .

. . . तो उसकी आंखों से आकाश के तादात्म्य को उसकी ही कोख से जन्मे उस नन्हें कवि ने पढ़ लिया था. . . एक तृप्ति-सा वह बेटा जब सामने खड़ा होता है, तो उस अकिंचन मम्मी की आंखें फिर छलछलाती हैं——क्या दे सकेगी वह अपने इस बेटे को भी? इस बेटे को वह अपना 'साक्षी' कहती है.

वह बार-बार सुनती है —— क्या कमी है आपको? ऐसा जीवन साथी, ऐसे बच्चे, और ऐसी आप स्वयं. . . ! और अब तो यह ढेर-सा यश भी! तब उसके भीतर कुछ सिर पटकने लगता है —— और देह की एक उमर-कैद नहीं. . . ?

उसे यदि कोई सहसा देखे तो एक संपूर्णता का आभास होना निश्चित है. प्रायः उसने भी सुना है —— ए परफेक्ट वूमन नोबली प्लांड. . . लेकिन यह संपूर्णता कितनी खंडित, कितनी जर्जर है. . . यह कौन जानता है?

उसकी बाहरी सज्जा साधारण होती है. किंतु भीतर की कोई सज्जा उसके व्यक्तित्व में प्रतिभासित होती-सी उसे कुछ असाधारण बना जाती है. बाहरी सज्जाओं पर तो उसका वश नहीं रहा, किंतु भीतर की सज्जा को वह पल-पल संवारती-सहेजती रही है. . .

इस संपूर्णता को खंडित स्तरों पर झेलती, घुटन को मुक्ति देने, कुछ देर जीने, वह कभी-कभी ही लिखती है और फिर सुनती है —— आप इतना अधिक कैसे लिख लेती हैं? पता नहीं, यह सब कैसे. . . क्यों. . .? इन प्रश्नों का कोई निश्चित उत्तर उसके पास नहीं है. . .

. . . और उसने कमलेश्वर जी को एक पत्र में लिखा है —— नितांत व्यक्तिगत संदर्भों में मेरा व्यक्ति बहुत थका, बहुत लड़खड़ाया हुआ है. . . और मेरा लेखक थकी, निस्पंद होती उंगलियों में लेखनी थामे भीतर और बाहर के विरोधों से जूझ रहा है. . . ऐसे में किसी रचना का स्वीकार जैसे उस अस्तित्व का स्वीकार बन जाता है, जो मृत्यु के दमघोंट क्षणों में सांस के लिए संघर्ष कर रहा हो. . . मेरा लेखन मेरे लिए ऐसी ही सांसें हैं. . . लिखती हूं कि इन दमघोंट क्षणों में कुछ सांसें और ले सकूं. . . कुछ देर और जी सकूं. . . और बस. . .

मॅकॅनो

गो. गं. लिमये

पिछले अंक में 'भारतीय भाषाओं की प्रथम मौलिक कथाएं और आद्यकथाकार' स्तंभ के अंतर्गत मराठी की जिन तीन प्रथम मौलिक कहानियों की विस्तृत चर्चा की गयी थी, उनमें से तीसरी 'मॅकेनो' स्थानाभाव के कारण प्रकाशित नहीं की जा सकी थी; उसे हम यहां प्रकाशित कर रहे हैं.

उस बात को बीते आज एक अरसा हो चुका है. पर आज बरबस उसकी याद आ ही गयी. . .लगता है जैसे कल ही की बात है! उस दिन 'वो' मुझे देखने आये थे. . .पर मुझे शादी-ब्याह में कोई दिलचस्पी नहीं थी. रह-रह कर कुछ अजीब-सा लग रहा था. ऐसी हालत मेरी शायद ही कभी हुई हो. . . हां, एक बार जब मेरी भाभी के पहले मंगलागौर के अवसर पर जब मैंने टोकरी भर-भर के फूल लूटे थे और एक बार और ऐसा हुआ था जब मैं मारे लाज के अपने में समा नहीं पा रही थी. मुझे अपनी सुध ही नहीं रहीं, बेमेल कप-बसी की जोड़ियों में चाय उंडेल डाली. दूध पर से मलाई हटाने लगी तो टोप में चम्मच ही गिरा दिया. नीचे देख कर चलते हुए दरी में पांव उलझा लिया. इतना ही नहीं, मैंने खूब जोर-जोर से बोलने की ठानी थी, परंतु मैं धीरे-धीरे बोलती रही. जो-जो सोचा था ठीक सब उसके विपरीत हुआ. उस 'प्रस्ताव' के बारे में पूरी आश्वस्त हो चुकी थी. मुझे विश्वास हो चुका था कि 'वह' मुझे जरूर पसंद आयेंगे. मन के किसी कोने में यही गांठ बंध गयी थी और ऐसा लगने लगा कि 'विवाह हो ही गया.'

लोग मुझे देख कर चले गये. मेरे आनंद और उत्सुकता की सीमा नहीं थी (लेकिन अब मुझे ऐसा लग रहा था कि प्रेम-रूपी प्रसाद जो मेरे अंतर्मन को प्राप्त हुआ, वह जाते समय अपने साथ ही लेते गये– वरना आज 'वह' और कहीं और उनके प्रति प्रेम भावना ही केवल मेरी थाती रह गयी– ऐसा क्यों कर हुआ) उस दिन मैं गर्व से फूली नहीं समा रही थी जिस दिन 'वे' मुझे देख कर गये. उस दिन मेरा मन बल्लियों उछल रहा था. भाई का रूमाल साबुन से झक धो डाला. आंगन में झाड़ू लगायी. और वो-वो काम किये जो कभी नहीं किये थे.

लेकिन अचानक फिर क्या हुआ, किसे मालूम! उस दिन के बाद उनके बारे में घर में फिर कभी चर्चा तक नहीं हुई. मेरा धीरज छूट रहा था. मैं बेचैन थी. जैसी तैसी चाय पी लेती थी––मीठी या फीकी चाय में मुझे कोई फर्क नहीं मालूम पड़ता था. बुनाई का काम हाथ में लेती पर वह भी धरा का धरा रह जाता. . .

आज घर में सबेरे से ही हलचल थी पर मैं स्तब्ध पड़ी थी. इतने में ही किसी ने घर में आ कर कहा––जल्दी करो लोग उसे देखने आ रहे हैं. मैं आपे में न रह सकी. बहुत क्रोध आया. . . दांत पीस कर रह गयी. मारे गुस्से के रोना आ गया. . . मेरे मन में शादी के लिए कोई ललक नहीं थी.

मैंने गुस्से में खूब पटक-झटक की. दूध से भरे टोप में चम्मच फेंक दिया और आज जानबूझ कर बेमेल कप बसी में चाय उंडेली और जबरन दरी में पांव उलझाया. आज जो-जो मैंने सोचा ठीक वैसे ही किया. आज मैं खूब जोर-जोर से बोल रही थी. धृष्टता पूर्वक गर्दन ऊंची कर के सबको आंकती जा रही थी. मुझे यह प्रस्ताव जो अस्वीकार करवाना था.

लेकिन विधि का विधान कौन कहे? मैंने जो सोचा था, ठीक उसके विपरीत हुआ और––और बात यहीं पक्की हो गयी! मैं मानो मर-सी गयी. न जाने क्या हो गया. मैं अनमनी हो चली. हाथ में लिया अनाज जहां का तहां फेंक देती. . . छाछ लेने के पहले ही मेरा भात खत्म हो जाता और न जाने ऐसे ही क्या-क्या होने लगा था. एक दिन सबेरे ही उठ कर सेवैयां तैयार करनी थीं लेकिन मैं जानबूझ कर बैठी रही. बैठे-बैठे जी ऊब गया और उठ पड़ी. मन में विचार हुआ बाहर खुली हवा में सांस लूं. बाहर जाने की तबीयत हुई. मैं ठकू के पास गयी लेकिन ठकू तो मेरे ही यहां सेवैयां तैयार कराने आयी थी. मैं वापस लौटी. मुझे लगा जैसे मैं पागल हो जाऊंगी!

मैं 'मॅकैनो' (एक विशेष प्रकार का खेल जिसमें भिन्न प्रकार के प्लास्टिक अथवा स्टील के टुकड़ों को जोड़ कर मनचाहा आकार बनाया जाता है) जोड़ने लगी. उससे भी जी ऊब गया. अपना ट्रंक सहेजने लगी. उसमें भी मन नहीं लगा. कुछ बुनने का विचार हुआ लेकिन सारी औरतें दरवाजा रोक कर ही बैठी थीं और सेवैयां बनवा रही थीं. किसीने आवाज दी. मैं अंदर गयी. मुझसे चाय बनाने के लिए कहा गया. मैं चाय बना रही थी. उधर मुझ पर ताने कसे जा रहे थे. आज पहली बार मेरे मन में मुझे ऐसे तानों के प्रति तिरस्कार की भावना जाग्रत हुई. मैं मन ही मन कुढ़ कर रह गयी. मैं क्रोधित हो उठी थी. पर धीरे-धीरे मेरा क्रोध शांत हुआ और मैं उस आनंद और उल्लासमय वातावरण में समरस हो चली. मुझे स्वयं भी कुछ अजीब-सा लगा. इतने में मेरा कोई गांव से आया और वह भी मुझे चिढाने लगा. मेरे मन में पड़ी विषाद की गांठ खुलती गयी और मन ही मन मैंने गुदगुदी महसूस की जिसकी शुरुआत मुसकान से हुई पर परिणीत हंसी में बदल गयी. धीरे-धीरे घर में जमघट बढ़ने लगा और मैं भी लोगों की हां में हां मिलाती उनमें घुल मिल गयी. चम्मच, कप-बसी तथा दरी में उलझने की बात तो मैं भूल ही गयी.

आज मैं उनके साथ एक सभा में गयी हुई थी. सामने की कुर्सियों की पीछे की पंक्ति में 'उन्हें' बैठना था और मैं औरतों में जा कर बैठ गयी. इतने में मेरी दाहिनी तरफ कुछ चमका. मैंने देखा वह एक अष्टकोण की घड़ी थी. उसे देखते ही झट कोई बात मेरे मन में कौंध गयी. मेरे मन में उथल-पुथल-सी होने लगी. मैं भूली-बिसरी

कड़ियां जोड़ रही थी. इतने में मुझे छूती हुई एक छतरी नीचे गिरी. मैंने छतरी उठायी और उसे झटक कर साफ कर के उसकी मालकिन को दे दिया. उस चमकती घड़ी और छतरी दोनों की मालकिन एक ही थीं.

पर मुझे ऐसा लग रहा था जैसे 'यह' छतरी कहीं देखी अवश्य है. मैं मन-ही-मन ताल-मेल बैठाने लगी. सामने की कुर्सी पर बैठा एक व्यक्ति उठ कर चला गया था और पीछे की पंक्ति में मेरे 'उनके' पास बैठा हुआ एक व्यक्ति मुझे दिखाई दिया. परंतु उसी बीच एक व्यक्ति आया और उस पहली पंक्ति की खाली कुर्सी पर बैठ गया जिससे वह व्यक्ति आड़ में पड़ गया. मैं उसकी सिर्फ एक ही झलक देख पायी थी. लेकिन अगर वह व्यक्ति आ कर न भी बैठता तो मैं 'उस' व्यक्ति को अधिक देर तक नहीं देख सकती थी. मुझे चक्कर आ रहा था. मेरी आंखों के समक्ष सब कुछ जैसे एकाएक स्पष्ट हो चुका था. उस घड़ी और छतरी की जो मालकिन थी उसी का वह पति था. . . और वह कोई और नहीं 'वही' थे जो मुझे पहली बार देखने आये थे.

मुझे कुछ विचित्र-सी अनुभूति होने लगी. लगता था जैसे मेरा रक्ताशय ही जम गया हो. मुझे कोई अदृश्य चीज छूती हुई गुजर गयी. मुझे खटकने जैसी तो कोई बात नहीं थी पर कुछ था जो मुझे रह रह कर सालता था. मैं अच्छे भले सुखी परिवार में थी. उनको भी मुझसे प्रगाढ़ प्रेम है और मैं भी उनकी सेवा में कोई कमी नहीं होने देती. मैंने कभी उनकी इच्छा के विपरीत आचरण नहीं किया. उनके इशारे पर डोलती रही. तिलमात्र भी इधर से उधर नहीं. कभी भूले से भी उनको 'जवाब' नहीं दिया. कभी मिथ्याचरण नहीं किया. कभी जिद नहीं की. अगर कभी उन्हें सिर दर्द हुआ तो उनका सर दबाती और तब तक दबाती जब तक मेरे हाथ जवाब न दे देते. और ऐसे में कभी-कभी मुझे सर दर्द हो जाता. अगर उनके हाथ में चाकू लग जाता तो मैं पट्टी बांधती. कभी सिनेमा जाने का उनका विचार होता तो झट उनके कपड़े निकाल कर लाती–– और अचानक कहीं उनका विचार बदल भी गया तो मैं चुप रह जाती. कभी किसी बात पर जिद नहीं की. अगर उन्हें कभी लौटने में देरी की आशंका होती तो मुझसे खा-पी लेने के लिए कह जाते. मेरा मन इस बात को नहीं मानता पर उनका आदेश जो ठहरा कैसे अवज्ञा करती. कभी प्यार से मेरे जूड़े में गुलाब का फूल खोंस देते तो मैं वह गुलाब उनके कॉलर में लगा देती. कभी ज्यादा थक जाते तो मैं उनके पांव भी दबाती.

और. . . अगर उनके पास बैठे हुए व्यक्ति से मेरी शादी हुई होती तो? मैं वही रिस्टवाच और छतरी ले कर अपनी बगल की कुर्सी पर बैठती. हम दोनों साथ साथ बैठतीं और 'वे' दोनों भी साथ बैठे होते. लेकिन भाग्य की विडंबना. मेरी हालत उसी बेमेल कप-वसी की सी हो गयी है. कहीं मेरी ससुराल 'उस' घर में होती तो मैं उस प्यार की आड़ में सब कुछ सह लेती. उनको मैं खूब चिढ़ाती, खूब तंग करती. अगर वे मुझसे रेशमी ब्लाउज पहनने को कहते तो मैं खादी का ब्लाउज पहनती– टेढी मांग निकालने को कहते तो मैं जानबूझ कर सीधी मांग निकालती. ज्यादा जगने से अगर हम दोनों को सिरदर्द हो जाता तो मैं उनकी तीमारदारी में अपना सिरदर्द भूल ही जाती. उन्हें कहीं जो सिर में चोट लग जाती तो मैं बर्फ की ठंडी पट्टी रखने के बजाय बेहोश ही हो जाती. उनके कहने पर 'चलो कहीं घूम आयें' तो मैं नहीं-नहीं की जिद करती. परंतु उनका मन जो बाहर वे बोलते, 'इस बरसात में कैसे घूमने चलें?' मैं बोलती, 'कुछ नहीं आज जरूर चलेंगे.' बरसात में घूमने का आनंद ही कुछ और है.' उनसे मेरी कभी नहीं पटती. अमुक बात अच्छी है, अगर उनकी ये मंशा होती तो मैं जी तोड़ उसका विरोध करती और अपनी बात मनवाने की जिद करती. इतना ही नहीं अगर उनकी कोई निंदा कर बैठता तो मैं उसी की हां में हां मिलाती. उनको कभी घर लौटने में देरी होती और अगर मुझसे खा-पी लेने को कह जाते तो मैं सिर्फ 'हूं' कह कर गर्दन हिलाती. लेकिन करती अपने मन का ही वे देरी से आते और खा कर उठ जाते.

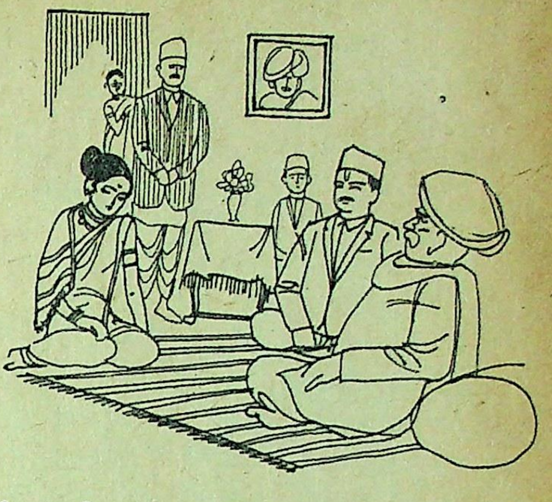

मैं उनकी जूठन का आस्वादन करती. अगर वे कभी अपने कोट में लगाने के लिए गुलाब का फूल लाते तो मैं झट फूल खींच कर अपने जूड़े में लगा लेती. पांव दाबते-दाबते अगर वो कहते 'बस रहने दो' तो भी मैं दबाती ही रहती. और अगर यह कहते कि 'जरा और दबाओ' तो मैं मुंहफट-सी फट बोल बैठती, 'जरूर! पर मेरे थके हाथ भी दाबने पड़ेंगे.'

मुझे उस बेमेल कप-वसी, दूध में फेंके गये चम्मच और दरी में पांव उलझने की बात आज फिर याद आ गयी. इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है? आज फिर वही भूल मुझसे हुई––सभा खत्म होने पर तालियों की गड़गड़ाहट से मैं कल्पना-लोक से जागी. हम घर आये. मेरी हालत कुछ विचित्र ही थी. मुझे कुछ होश नहीं था. आज फिर चाय बनायी. आज फिर दरी में पांव उलझे–– लेकिन आज आंखों के सामने वाकई अंधेरा छाया था. . . जो बेमेल जोड़ी मैंने बनायी, आज उसीका वास्तविक रूप मेरे सामने जो था.

□□□

(अनुवादक : चंद्रमौलि शर्मा)

विषाक्त

• निरुपमा सेवती

घर से निकली थी तब सुबह के छह बजे थे और ताजा नीला उजाला अनायास ही मुझे उत्साह दे गया था.

और सोचा यही था कि आज लौटते समय बाजार की तरफ से ही आऊंगी. बहुत-सी चीजें खत्म थीं जिनकी लिस्ट बैग में रखी हुई अब मुंह चिढ़ा रही है-- 'तुम लोग बाज नहीं आते, भविष्य को यूं मुट्ठी में ले लेना चाहते हो मानो तुम्हारे सोचे जैसा ही सब हो जाना है.

सचमुच ही कहां तो बाजार जाने की बात और कहां अब आक्रमणकारियों द्वारा ऐन सुनसान जगह खड़ी करवा दी गयी यह मनहूस बस!

हमें यह भी पता नहीं कि ये हैं कौन! दो आदमी जबरदस्ती ड्राइवर को उधर लिवा लाये और फिर धमाका मचाते ये कुछ युवक आ धमके.

यूं ती सुबह यूनिवर्सिटी पहुंचने के लिए बस-स्टाप पर खड़े हुए हमेशा की तरह आज भी यही लगा था कि यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण दिन की शुरुआत है.

हर सुबह यही होता है . वही अनुभूति कि आज का दिन सब समस्याओं को सुलझा देगा. इतने दिनों की दमतोड़ मेहनत आज जरूर रंग लायेगी. पर शाम होते ना होते फिर वही कहीं कुछ ना होने की हताशा घोर अंधेरों में धकेल देती है.

सुबह नहाने के बाद अक्सर ही पूजा का-सा भाव लिए अपने पति के उन कागजों को देख लेती हूं जो उनके सारे जीवन की अर्जित निधि हैं.

उनकी तसवीर टेबल के सामने ही टंगी है. जहां बैठ कर मैं चाय पीती हूं. उनकी सूक्ष्म निगाहें बड़ी सतर्कता से मुझे परखती रहती हैं और मैं ईमानदारी भरे अहं से लबरेज स्वयं को बहुत ऊंचा उठते महसूस करती हूं.

बेशक वे निगाहें परत-दर-परत मुझे उघाड़ती चलें पर कहीं कुछ ऐसा है ही नहीं., जिसे मैं छिपा जाना चाहूं.

एक मौन ब्यौरा उन सब बातों का मस्तिष्क में स्वयं ही दोहराया जाता है, जो जैसे अपनी मूक भाषा से उन तक पहुंचा हुआ ही समझती हूं.

उन सारी पीड़ाओं का विवेचन जिन्हें मैंने उनकी मृत्यु के बाद झेला है, उनकी इच्छा-पूर्ति के लिए झेला है. उनकी अदम्य महत्वाकांक्षा--मरते दम तक बनी उनकी वह तीव्रतम इच्छा--जिसके लिए वह स्वयं को फूंकते रहे, उसी को पाना अब मेरी जिंदगी की एकमात्र इच्छा रह गयी; सारे विचारों, कार्यों का बहाव ही उसी ओर बह रहा है--उसे पाने की ओर.

चाहे मेरे बाल समय से बहुत पहले ही सफेद हो गये, जिन्हें खूबसूरती से छिपा लेती हूं--और आंखों के नीचे कालिमा बन आयी--बन जाने दो. मैं अपने स्टूडेंट्स में सड़ियल प्रोफेसर का नाम पा गयी--उसकी भी परवाह नहीं.

हमउम्र पुरुष साथियों ने मेरी ओर से निराशा पा ली--बेशक पायें ! और मैं एक 'अकेली औरत' के रूप में प्रसिद्ध हो गयी--हो जाऊं!

लेकिन उनकी आकांक्षा पूरी करनी है, यही प्रेरणा मेरा जीवन चला रही है--और इस दृढ़ता पर मुझे गुमान ना हो, ऐसा भी नहीं है.

तभी तो इस समय भी इतनी आक्रांतकारी परिस्थिति बन आने पर भी स्वयं को साथ के कई लोगों से कहीं ऊंचा पा रही हूं.

मेरे वे साथी, जो मेरी तरह यूनिवर्सिटी से ही लौट रहे थे, जिन्हें बस के अंदर ही बैठाया हुआ था--वे सब मिमियाए-से दिखायी दे रहे थे. और बाकी के सहयोगी, जिन्हे नीचे उतार दिया गया, एकदम डरे हुए से लगे.

मैं औरत ना होती तो देख लेती इन सबको--और इतने सारे ये पुरुष ही चुप हैं तो मेरा कुछ कहना कितना फिजूल होगा--ये विचार बहुत तसल्ली दे गये मुझे.

इस आत्मविश्वास ने मुझे संयतता दे दी और मैं सारे परिदृश्य का विवेचन मस्तिष्क में उतारने लगी. बाहर जितने लोग थे, उन पर गुंडे किस्म के तीन आदमी तैनात थे.

अंधेरे की परछाइयां शाम की नीलाहट में घुल रही थीं. इस कारण किसी की शक्ल ठीक से पहचान लेना आसान नहीं--यह शायद अच्छा ही है.

बस में हलकी रोशनी थी. फिर यहां के चेहरे बिन पहचाने हों, ऐसा भी नहीं. ठीक है, मैं उनसे परिचित नहीं. पर ऐसा भी नहीं लगा कि उनके परिचय से बिल्कुल ही नावाकिफ हूं. उन लोगों की चाल-ढाल और लहजा फिजां में विध्वंस फैलाने का आभास देता था.

--और ये वही लोग हैं, जिनसे मिलने की उत्सुक-प्रतीक्षा मेरे अवचेतन में कई दिन से पनप रही थी. यह बात मेरे मस्तिष्क की कोई खास प्रज्ञा सहज ही समझा गयी.

--बहनजी, आप भी बाहर ही आ जाइए, मैं बुरी तरह से चौंक गयी. पर यह तो खिड़की के नजदीक ही खड़ी एक औरत थी. जिसके चेहरे पर बिछी, लपकती सहानुभूति को साफ महसूस किया जा सकता था--'एक बेचारी अकेली औरत बस में बैठे दूसरे पुरुषों के बीच क्यों परेशान हो रही है !' ऐसा ही कुछ था उसके चेहरे पर.

तो इतनी खूंखार स्थिति में भी यह ऐसे औरताना अंदाज में पड़ोसिनों की खोज खबर लेने वाली कला इस्तेमाल कर सकती है!--मुझे उसकी उद्वेग रहित तटस्थता से जलन हो आयी.

और इतने में ही वह जंगली-सा आदमी, जिसके बाल सिर पर खड़े उठंग बने क्रूरता का भाव जगाते थ,

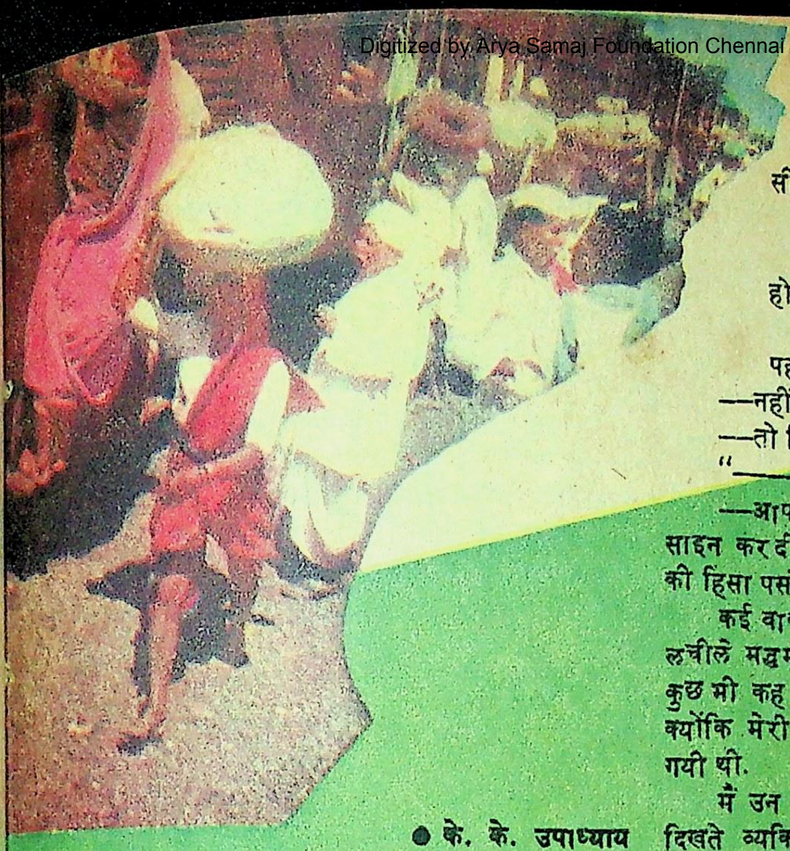

● के. के. उपाध्याय

झपाटे से नजदीक आ गया. शायद औरत की बात सुन कर ही.

—आप चुपचाप बस से दूर हटिए. हमें आपकी बहन जी से ही काम है, उसकी गोल-गोल आंखें कुछ अधिक लाल हो उठीं.

उस औरत का चेहरा सहमी-कालिमा से भर गया और वह सिर झुकाए दूर हट चली.

और एक प्रतीक्षा का तनाव मेरे मस्तिष्क को ऐंठन देने लगा—बस, अब कुछ घटित होने ही वाला है.

लेकिन प्रतीक्षा का यह तनाव क्या नया है? बहुत दिनों से थी एक अवचेतनीय प्रतीक्षा बाजार में चलो तो यहीं दुबकता भय आगे-पीछे रहता कि बस अभी ठांय करती पिस्तौल की गोली सिर फोड़ देगी .

या फिर यही कि किसी सुनसान नुक्कड़ से निकलता, लाठियां पकड़े कोई जलूस आयेगा और रौंदता हुआ चला जायेगा.

यूंही सोये-सोये खयाल आ जाता कि अचानक सारा घर धुंएं से भर गया है और हर दरवाजा आग की लपट से दहक रहा है, बच निकलने का कोई रास्ता ही नहीं.

* *

और अब हो यह गया है कि हमारी बस को वीरान इलाके की तरफ ये लोग जबरदस्ती ले आये हैं. इस क्षण की स्थिति के महत्व को ठीक से परखने के लिए अगली सीटों पर बैठे साथियों और युवकों के बीच चल रही तनातनी पर ध्यान से कान दिये.

लेकिन कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि कौन क्या चाहता है?

—तुम लोग बहुत गलत काम कर रहे हो. सीनियर साथी ने कहा था.

—तो आप लोग इसे सही कीजिए न.

—अंत में तुम्हारा अपना ही नुकसान होगा.

—क्योंकि आप हमारे फायदे को बहुत पहले ही खरीद चुके हैं.

—नहीं हमने नहीं खरीदा.

—तो फिर कौन हैं वे?

"————"

—आप लोग चुपचाप हमारे इस 'मैमोरैंडम' पर साइन कर दीजिए यही ठीक रहेगा. हमें खुद किसी तरह की हिंसा पसंद नहीं.

कई वाक्य-खंड सुनायी दिये थे. और अब वे लोग लचीले मद्धम-स्वरों में बातें करने लगे थे. धीमे-धीमे कुछ भी कह रहे हों. चाहने पर सुनायी दे नहीं सकता था, क्योंकि मेरी सारी चेतना एक हिंसा शब्द में उलझ गयी थी.

मैं उन युवकों और उनके साथ आये गुंडों से दिखते व्यक्तियों में सामंजस्य खोजने लगी.

पता नहीं क्यों, यह सच ही लगा कि मेरे माथे पर एक पिस्तौल सवार है. मौत की शक्ल आंखों के सामने आकारित हो रही है. एक सिहरन-सी सारे मस्तिष्क को कंपा गयी. क्या करूं ?—क्या करूं कि ये लोग मेरा पीछा छोड़ दें.

इसके साथ ही एक तनाव मेरे मस्तिष्क में विस्फोट की सीमा तक खिचने लगा. क्योंकि अचानक ही मुझे हाथ में थामे बैग की याद आ गयी थी. जिसमें अपने पति की सारी योजनाओं के कागजात भरे थे.

—ओह नहीं.—इसे छीन लेंगे तो ?—और फिर कितनी शून्य हो जाऊंगी. एकदम अस्तित्वहीन. जीवन-मरण-व्यर्थता-बोध. इतने सारे शब्दों के आकार मुझे बेहोश-सा करने लगे. इसीलिए उन लोगों को किसी भी तरह उलझा लेने की बात दिमाग में दौड़ती चली गयी.

लेकिन बात किससे करूं!—प्रत्येक आस्था को तोड़ना है—ऐसा नारा मानो हर माथ पर चिपका था और मेरे पति की यादगारों पर आस्थाएं चिमट कर रह गयी थीं. इसलिए यह बग के कागजों को तोड़-मरोड़ सकते हैं.

मैंने उन सबकी ओर सहमते हुए देखा. पर उनमें से कोई भी मेरी ओर ध्यान नहीं दे रहा था.

नजदीक खड़ा वह उठंग बालों वाला भी बस के दरवाजे पर जा पहुंचा था जिसकी शक्ल कम-से-कम दो हफ्ते तक सपने में डराती रहेगी. यह यकीन पक्का था—डरायेगी !—यह 'गी' भी क्या! अब किसी भविष्य नाम की चीज पर सोचा भी जा सकता है?

आने वाला सब कुछ किन्हीं दूसरे हाथों में है और मैंने उन सबके हाथों को घूरना शुरू कर दिया.

इनमें तो विध्वंस करने को उतारू छटपटाती उतावली है. आने वाला कुछ भी इनके हाथों में ठहर पायेगा? उसे सम्हालने की सक्षमता होगी इनमें ?

पर फिर भी इनमें सब को कंपा देने जैसा सामर्थ्य तो है ही. इसे मेरा मस्तिष्क नहीं नकार सका और इसी कारण ये लोग महत्वपूर्ण भी हैं. मुझे इनसे बात करनी ही होगी.

मैंने उस लड़के को नजदीक बुलाया जो मित्रों का साथ देने वाली रस्म अदायगी भुगतने वाले ढंग से ऊपर-नीचे और इधर-उधर देख रहा था.

—मैंने तुम्हें कहीं देखा है. शायद प्रीवियस में हो?

—कहीं तो हैं ही. तभी तो उलझ रहे हैं! वह साथ की सीट पर बैठ गया था.

तो यह यूं ही चुपका-सा जान पड़ा. यूं तो यह भी भरा बैठा है.

—तुम इतने कालेज बंद क्यों करवाना चाहते हो?

—हम क्यों ना बंद करवायें? जब हमारी पोजीशन वहां धूल के बराबर भी नहीं है.

—पर इसका तरीका यह तो है नहीं. मैंने धैर्य गले में उतारा—परसों तुमने लाइब्रेरी जलाने का प्रयत्न किया था. और उससे पहले लैब...

—जिन चीजों का प्रयोग ठीक ना हो रहा हो उनका रहना क्या और ना रहना क्या?

—पर जानते हो अधजली चीजों से उठती गंध कितनी विषैली थी? हम सबको खत्म कर सकती थी ऐसी गंध.

—तो खत्म होने से डरता ही कौन है ? आप बुड्ढे लोग डरते होंगे. हम तो नहीं, उसकी शक्ल ऐंठ गयी थी.

मेरी जुबान पर आने वाले शब्द जड़ होते जा रहे थे.

—उधर शांति -वार्ता चल रही है, आप क्यों परेशान होती हैं.

मुझे चुप देख उसने तीखी सहानुभूति से कहा. जिसमें छिपी अधिकारिता का आभास मुझे कौंच गया था.

और उधर वे लोग और मेरे साथी जो बातें कर रहे थे उनकी मुद्राओं में किसी समझौते का फैलाव महसूस किया जा सकता था.

इस चुप्पी को काटने के लिए मैंने कुछ कह लेना चाहा—तुम लोगों की निडरता पर हमें गर्व है लेकिन. . .

—ये कोरे नेतागीरी वाले वाक्य अपने पास ही रखिए.

—तुम हर बात पर अविश्वास की नजर फैंकते हो. यही तो मुसीबत है.

—यह अविश्वास आप लोगों ने ही दिया है.

मेरे दिल में एक गहरी सहम-सी उतरने लगी थी, पता नहीं क्यों?

बाहर अंधेरा पूरी तरह घिर आया था. और दूर खड़े सब लोग बुतों जैसे दिखायी दे रहे थे. कहीं कोई हलचल नहीं. वह लाल आंखों वाला भी दरवाजे पर खड़ा चुपचाप सिगरेट फूंके जा रहा था.

—जो भी हो, तुम लोग गुंडों को क्यों साथ लिये फिरते हो? भयावह नीरवता में डूबते-उतरते मैंने पूछ ही लिया.

—गुंडागर्दी की काट गुंडागर्दी से ही होती है.

अब मुझे लग रहा था कि किसी आरोप से जूझने की अंशमात्र भी शक्ति मुझ में नहीं बची है. हर सोच सुन्न-सी थी.

मेरी सहमी चुप्पी ने जैसे अनायास ही उसे बढ़ावा दे दिया हो. पर इस गलती का एहसास बाद में हुआ तब तक वह अपने दम्भी साहस को बटोर चुका था.

—और एक आप हैं, जाने क्या-क्या बेतुकी योजनाएं लिये फिरती हैं. हमारी भलाई के लिए अपना जीवन दिये जाने की बात से बड़ी संतुष्ट हैं. मैं पूछता हूं—क्या जरूरत है कि आप हमारे बारे में सोचें जबकि हम खुद अपने बारे में ज्यादा ढंग से सोच सकते हैं.

—नहीं, यह बात नहीं. यूं, तो आप लोग स्वयं ही सब करेंगे पर एक रास्ता. . .

—क्या रास्ता?——हूं? उसने सिर को तेजी से झटका, मानते हैं आपके पति बहुत समझदार आदमी थ, वह इस यूनिवर्सिटी को दूसरा नालंदा बना देना चाहते थे.

"— — —"

—पर अब आप जो उनकी योजनाएं ओढ़े फिरती हैं, सुनी भी है आज तक किसीने आपकी बात.

मुझे लगा कि एक रोने की आवाज मेरे चारों ओर लिपट रही है, इस बित्ते भर के छोकरे ने इतने दिनों से संचित मेरे पुरुषोचित आत्मविश्वास को एक धचके में ही ढहा-सा दिया था. वरना क्यों मेरा दिल इतना ज्यादा औरतनुमा बन आया.

—हमारे भविष्य को एक सरीखे सांचे में नहीं ढाला जा सकता —अब बिल्कुल यह नहीं होगा.

और मैं हैरान थी कि मैंने इससे कहा ही क्या है.

—आप यह देवी बन जाने वाला रूप घर में ही रखिए. हमें आपका वैसा सुव्यवस्थित इंस्टीट्यूट नहीं चाहिए. जिसे सिर्फ सपने में ही बनाया और संवारा जा सकता है.

—और इक्कीस साल से ऊपर वालों की कद्र क्यों होती है. हमें सपने क्यों दिखाये जाते हैं! हम सब समझते हैं. उसकी मुठियां भिंच आयी थीं और आंखें ऐसे गाढ़े लाल रंग से भर चलीं कि बस, अभी इनमें से खून टपकने लगेगा.

मैं कुछ भी नहीं समझ पा रही थी, कुछ भी नहीं—और वह एक बात से दूसरी बात पर कूदता चला जा रहा था.

उसने ये अंतिम बातें इस तरह चिल्ला कर कही थीं कि दूसरे लोग भी करीब आ गये. पर उन्होंने इस विषय में पूछा कुछ नहीं.

मेरे साथी उस 'मैमरेंडम' पर हस्ताक्षर करने की महत्ता समझाने लगे तो मैंने जान लिया कि वे स्वयं

इसका महत्व जरा ज्यादा ही अच्छी तरह समझ चुके हैं.

मैंने एक बार युवकों की ओर देखा, वहां उन चेहरों पर अगले ही पल सब कुछ समाप्त कर देने की उछल-उछल पड़ती धमकियां हाहाकार-सा मचा रही थीं—सीनियर कुछ और भी गंभीरता से हस्ताक्षर कर देने की बात कहने लगे.

मैं कई क्षण ज्ञापन-पत्र को घूरती रही. बैग को और भी पास सटा लिया.

और कुछ देर बाद हम सब उन युवकों के साथी बन चुके थे. सिवाय इसके कि हस्ताक्षर करने के बाद मेरे हाथ बिल्कुल बेजान हो आये थे. और कोई परिवर्तन मैंने स्वयं में नहीं पाया.

* *

ऐसे में भगदड़ मच गयी. बाहर भेजे गये लोगों को अंदर बैठाया जा रहा था. मेरे दूसरे साथी चुपचाप ऐसे बैठे रहे जैसे कोई दुर्घटना यहां कभी घटित ही ना हुई थी और वह दूसरे दिनों की तरह आज भी एक थकान भरा दिन पूरा करके घर लौट रहे हैं.

—इस बैग को दिखाइए, बड़ा खूबसूरत है,. मुझे पता भी नहीं चला कि वह उठंग बालों वाला कब पास आया और कब उसने बैग बड़ी सहजता से अपने हाथ में ले लिया .

—अरे. . .यह तो . . .मैं कहती ही रही और वह बस से बाहर हो लिया था.

उसे रोक लेने की चीख मेरे माथे में जम कर रह गयी. आंखें अंधेरे के भंवर में डूब चलीं.

—देखो. . .देखो. . .सिर्फ इतना भर ही जमी हुई आवाज में कह पा रही थी. पर ना किसी दे देखा और ना ही किसीने आवाज सुनी. सब किसी भी तरह घर पहुंच जाने की मन्नत मानते अपनी सीटों पर जम जाने की व्यस्तता में तल्लीन थे.

उठंग बालों वाला इसी खिड़की के पास दिखने वाले मैदान के हिस्से में पहुंच चुका था और तजी से बैग की चीजें उलट रहा था.

—बात क्या है? आपको क्या हुआ? लगता है आप बेहोश हो रही हैं, यह वही युवक था जो पहले मेरे पास आ बैठा था.

—वह. . .वह. . .मैंने बाहर की ओर संकेत भर किया.

—रास्कल. . .युवक उछल कर खड़ा हुआ और बाहर की तरफ झपटा.

बाहर 'वह' बैग की सीमित रेजगारी उछाल चुका था और बैग को ही भद्दी गाली देते हुए उसने ठोकर मार दी थी.

उसके दूसरे साथी भी वहीं पहुंच गये थे. पर कुछ भी ना मिलने की बात जान उनकी सारी तेजी सुस्ती में बदल गयी थी.

और मैं देख रही थी. देख रही थी, और पथराती जा रही थी. बिल्कुल उसने मेरी नजरों के सामने लाइटर खटकाया और झमक से वहां आग का बिंदु चमका और एक लपट बैग के सामान को निगल रही थी.

—अरे, रुक जाओ—रुक जाओ. क्या हम तुम्हें किसीका सामान छीन लेने के लिए थोड़े ही साथ लाये थे. . .युवक चीखता-चिल्लाता वहां आ पहुंचा था. उसीकी दौड़-भाग देख दूसरे युवक भी बस से उतर पीछे चले आ रहे थे. वही क्यों, अब तो बस के सारे लोग बाहर का दृश्य देखने को उतावली से खिड़कियों पर पहुंच चुके थे.

पर मैं वहीं बैठी थी. मेरी आंखें उस अग्नि के गोले पर स्थिर हो गयी थीं. जिसमें सारे कागज फड़फड़ा रहे थे जिसमें से उठता धुआं मेरे रोम-रोम में जहर-सा भर मुझे बेहोश करता जा रहा था.

मुझे लगा कि सब युवक निराशा भरे भाव लिये खड़े हैं और उनके चेहरों पर उस जहरीले धुएं की परछाइयों के वृत्त रेंग रहे हैं.

—कौन लोग हैं! वे कौन हैं जो ऐसा जहर सप्लाई करते हैं. यह प्रश्न मेरे धुंआते हुए मस्तिष्क में लगातार फैलता गया. मेरी आंखों के सामने काले-काले साये तिरते गये और . . . और फिर क्या हुआ, मैं नहीं जानती .

वह बाद में मुझे बताया गया कि मैं बेहोश हो गयी थी और मुझे अस्पताल भेज दिया गया था. जहां फिर कई दिन तक पड़ी रही.

मुझसे यह भी कहा गया कि अब मैं स्वस्थ हूं और यह सच भी है कि यूनिवर्सिटी में रुका हुआ काम शुरू होने के बाद मैं भी नियमित रूप से अपना काम सम्हालने लगी.

लेकिन मुझे यह यकीन नहीं होता कि मेरी बेहोशी दूर हो चुकी है.

मस्तिष्क पर जोर देती हूं याद कर लेना चाहती हूं कि वहां कौन-सी आकांक्षा थी . क्या करना चाहती थी मैं? पर कुछ याद नहीं आता. दिमाग पर किसी जहरीले धुएं की धुंध छा गयी है.

वे युवक भी कभी-कभार दिख जाते हैं तो उनके चेहरे पर भी एक पल के लिए स्याह बेहोशी दिखायी दे जाती . वैसे सब ठीक ही था

कहीं कोई अंतर नहीं. कुछ नहीं, यह मेरा वहम होगा. जीवन बिल्कुल सही ढर्रे पर बह रहा है.

बस, एक दिन चाय पीते समय सही ध्यान आया था कि मेज के सामने वाली दीवार पर टंगी पति की एकमात्र तसवीर गायब हो चुकी है. और फिर यही महसूस हुआ था कि अब दिमाग के चेतना-बिंदु को पकड़ लेने का हर प्रयत्न मेरे हाथ से फिसलता जा रहा है—और फिसलता जा रहा है.

लेकिन फिर भी मेरी सांस घुट नहीं गयी थी—बेहोश-दिमाग की घुटन लिये मैं जिंदा थी. ☐☐☐

१० ब्ल्यूनाइल, २४ वां रास्ता, बांद्रा, बंबई—५०

एक और शुरुआत

• मधुकर सिंह

बहुत जमाने से अगल-बगल मुहल्लों का कचरा लोग यहीं फेंक जाते हैं. रामन कलक्टर जब थे तब उन्होंने इस मैदान की सफाई करायी थी, फूल-पत्तियां लगवायी थीं, तालाब खुदवाये थे, तब कहीं जा कर इस मैदान का कायाकल्प हुआ है. मगर लोग-बाग अभी भी अपने-अपने घरों की गंदगी लिये दरवाजे से झांकते रहते हैं और मन मसोस-मसोस कर रामन साहब को गालियां देते रहते हैं. दो ही साल बाद, उनका तबादला होते ही यह काम फिर शुरू हो गया है. तब से हमारी उम्र भी पच्चीस-छब्बीस साल लंबी हो गयी है. मैदान को रमना मैदान कहा जाता है. बचपन से हम यहीं गेंद खेलते हैं. तब से यहां हर दशहरे में रामलीला होती है— सर्कस, भाषण सब कुछ यहीं होता है. मैंने पं. नेहरू को पहले पहल यहीं अपने घर के पास से देखा था, चुनाव-भाषण करने के सिलसिले में यहां आये थे. तब भी कूड़ा-करकट का अंबार यहां था. मगर सरकारी इंतजाम ऐसा था कि गंदगी को नेहरूजी की नजरों से ओझल रखा गया था. तत्कालीन कलक्टर ने अपनी मासिक प्रेस-कांफ्रेंस में अधीनस्थ पदाधिकारियों की अतिशय सराहना करते हुए संवाददाताओं को बताया कि इस समाचार को बड़े चोखे ढंग से भेजिएगा कि सरकारी इंतजाम इतना सुंदर था कि प्रधानमंत्री की नजर भी वहां तक नहीं गयी. वर्ना क्या यह भारी गंदगी छिपाना किसी जिला प्रशासन के लिए आसान था? सर्कस के अलावा इस मैदान में संगीत-सम्मेलन, दंगल, स्पोर्ट्स, भारी-भारी चीजें अब भी बाढ़ या अकाल के नाम पर होती रहती हैं और स्थानीय सरकारी अफसर दो दिनों के भीतर हजारों रुपए व्यापारियों, दूकानदारों आदि मध्यम श्रेणी के लोगों से जबरन वसूल कर लाते हैं और शहरी संभ्रांतों के साथ बैठ कर दो दिन बड़े मजे उठाते हैं. रमना का सौभाग्य है कि यहां सब कुछ टिकट पर होता है. शहर के नागरिकों के लाखों, करोड़ों पांव इसकी छाती पर अपने दुख-दर्द की कथाएं छोड़ जाते हैं. इसी मैदान में एक तरफ राज्य ट्रांसपोर्ट के दो कर्मचारी कुर्सी-टेबल लगा कर टिकट बुक करते हैं. बराबर ऊपर से खबर मिलती है कि उनकी सुरक्षा के लिए गुमटीनुमा काउंटर बनाया जा रहा है. मगर सालभर से भी ज्यादा हो रहा है, इनके लिए कहीं कोई गुमटी नहीं बनी है. बारिश आ गयी तो सब कुछ समेट कर नुक्कड़वाली चाय की दूकान के अंदर भागते हैं.चाय वाला इन्हें मामूली समझ कर इज्जत नहीं करता. उसे लगता है कि दोनों युवक कोई बाबू नहीं, खलासी होंगे. मगर इन्हींकी वजह से तो यहां बस-डिपो है यात्रियों की वजह से उसकी दूकान चलती है. यही वजह है कि वह कुछ बोलता नहीं है.

दोनों युवक आपस में बहुत खुश रहते हैं. मैं एक तीसरा आदमी हूं और इनकी मस्ती में शरीक रहता हूं. दोनों लगभग एक उम्र हैं और प्यारे-प्यारे. इनमें एक गोरा-चिट्टा और लंबा-चौड़ा युवक है,जो पहले पूना फिल्म इंस्टीट्यूट में नाम लिखा कर शत्रुघ्न सिनहा बनना चाहता था. कई साल तक चिठ्ठी -पत्री और कोशिश के बाद युवक निराश है. उस तरफ से निराश हो कर लेखक हो गया है. मुझे अपनी कहानियां पढ़ाता है. बहुत भोली बातें करता है. स्कूल से छुट्टी के बाद अकसरहा उसी के पास बैठ जाता हूं. पांच बजे तक प्रायः बुकिंग बंद हो जाती है और बसों का जाना रुक जाता है. मेरे पहुंचते ही वह पहले मुसकराता है और इसके बाद जोर से हंस देता है, जैसे बहुत हलका हो गया हो. इसे संभवतः इसकी बहुत कचोट है कि डिपो बुकिंग बहुत ही गलत जगह पर है. एक कमरानुमा दफ्तर होता, सीलिंग पंखा चलता रहता, तब कहानी सुनाने में भी मजा आता मगर इसके बाद फिर वही जोर से हंस कर कहता है——हम लोग भी कैसे बुर्जुआ हैं, एकदम पेटी बुर्जुआ. तब हम क्या खाक कहानियां लिख सकते हैं? असल बुर्जुआ तो गांवों से उठ कर राजनीति में घोंसला बना चुके हैं. अपने को अगर कहानी लिखनी है तब तो यह बुर्जुआ मनोवृत्ति बिल्कुल नहीं चल सकती क्रांति मजदूर ही करते हैं. क्या खयाल है आपका? फिर वह चुप हो जाता है और दुखी हो कर कहने लगता है——मुझे एक सौ बहत्तर रुपए मिलते हैं. मां को सीधे सौ रुपए भेज देने पड़ते हैं. खाली बहत्तर रुपए में गुजारा करता हूं. जाली लोग हजार, दो हजार रुपए तनख्वाह उठाते हैं. गांवों में उन्हें फाजिल जमीनें पड़ी हैं, जिन पर कहते हैं, उनका पुस्तैनी दखल है. बल्कि इनके पास जमीनें बढ़ती जा रही हैं. और सर्वहारा की बात करते हैं. मेरी लड़ाई तो ऐसे ही लोगों से होगी जो पूरे हिंदुस्तान को उल्लू बना रहे हैं.

बसें आ कर रुकती हैं और धुंए की तरह उठ कर धूल चारों तरफ फैल जाती है.हम लोग भी एक-एक कर उसके भीतर डूबते चले जा रहे हैं. उसे फिर गुस्सा आता है और बोलता है——देख रहे है? मेरे आप जैसे नौजवान क्या करेंगे! इन्हें तो बेकारी, भूख, जहालत की मार से ऐसा अधमरा कर दिया गया है कि शरीर में छंटाक भर भी रक्त नहीं जो गर्मी पैदा कर सके. देखिए, हमारा मैनेजर आया था. साला खूब कार पर घूमा. रात सर्किट बंगला जा कर रुका और मुझसे बोला——सोलन की एक बोतल ला दो.मैं तो अभी तक शराब नहीं जानता. काउंटर से पैसे उठा कर शराब की दूकान में गया और उसके स्वागत के लिए एक बोतल ले आया . अब आप ही बताइए, बहत्तर मेरे माह भर का खर्च है. चालीस रुपए जी. एम. में घुस गये. किस लिए? क्या कोई इस जी. एम. को ठिकाने नहीं लगा सकता?

सच-सच बताइएगा, आप भी किरानी होते तो घूस लेते या नहीं? कभी-कभार मुझसे पूछता है —वेतन से पेट नहीं चलता तो घूस जरूरी हो गयी है. अब तो हमें कोई पैसे भी नहीं देता. पचास पैसे ले कर पचास हजार तक लोग उसी टेबुल पर रख आते हैं. हमें कौन पूछता है! मैं तो एकाध घंटा शाम को आपके साथ बैठ जाता हूं तो

मन लगता है. हर तरह से मिजाज ऊबा हुआ है. यह तो ट्रांसपोर्ट की कृपा है कि हमें यहां भी थोड़ी जिंदगी मिल जाती है.

अचानक बारिश होने लगती है. हम सभी काउंटर के साथ चाय की दूकान में भागते हैं. चाय वाला कुढ़ने लगता है. जहां हम बैठना चाहते थे वहीं दूसरे हमसे पहले बठ जाते हैं. हमें खड़ा देख कर चाय वाले को खुशी ही होती है. उसे विश्वास है कि हम से उसे कोई आमदनी नहीं.ऐसे घूरता है जैसे वे नकली कर्मचारी हों.चायवाला कभी विश्वास नहीं कर सकता कि ट्रांसपोर्ट सरकारी भी हो सकता है. यहां पर तो न कोई ऑफिस है, न सौ-पचास बाबू ही हैं. दोनों खलासियों की तरह खाकी पैंट की जेब में हाथ डाले चाय पी जाते हैं और आज के पैसे कल देते हैं.'तीन गिलास जल्दी से चाय?' वह बार-बार आवाज लगाता है और चाय वाला अनसुनी कर देता है.

वह काउंटर के छोटे बक्से पर बैठ जाता है और बहुत उदास लगता है — चलिए, हम कहीं दूसरी जगह चाय पियेंगे, मैंने कहा.

—मां की चिट्ठी आयी है.

—क्या लिखा है मां ने?

—उसे तत्काल दो सौ रुपए चाहिए . मकान का कोना गिर गया है. अगर सरकारी सेल के उठा कर पैसे भेज दूं तो चुकता कौन करेगा. मैं तो घबड़ा गया हूं. घूस लेने की सुविधा नहीं है. कल राजधानी जा कर किसीसे सिफारिश करूंगा. मैं ऐसी जगह सुविधा चाहता हूं, जहां ड्राइवर-कनडक्टर से दो-चार रुपए मिलें.

मुझे आश्चर्य होता है—ड्राइवर-कनडक्टर क्यों देंगे?

—आप जानते नहीं क्या? उसने कहा, इन्हें रोज कम-से -कम पंद्रह-बीस रुपए की आमदनी है. जब भी कोई गाड़ी बुक हुई तो ये टिकट बाबू को एक रुपए थमा देते हैं. राजधानी में तो लोग रोज दस-बारह रुपए कमा लेते हैं. मेरी तरह चिंतित नहीं रहते. उनकी मां जब भी पैसे मांगती है, भेज देते हैं. हमारे यहां तो अफसर रोज लखपति बन रहे हैं.अभाव पूरा करते हैं. मेरे बॉस का चले तो सबको भूखे मार दे. एक बंबर का कसाई है, कसाई. इस पर भी कोई बुर्जुआ रोब गालिब करे तो कितनी खराब बात है. पहले हम मिलजुल कर इनके खिलाफ क्यों नहीं लड़ते? मां और कहानी के बारे में बाद में सोचेंगे.

मैं भी मजाक में उसे शत्रुघ्न सिनहा कह देता हूं. उसे भी संभवतः सुनना अच्छा लगता है. मेरा शत्रु हंस देता है. उसनें मेरी रुचि बदल दी है. और साहित्य के प्रति मेरी रुचि बढ़ने लगी है. हम घंटों बहस करते हैं और स्थितियों से ऊब कर भद्दी-भद्दी गालियां बकते हैं.

शिक्षक संघ में मेरा वक्त ज्यादा गुजरने लगा है. मेरे साथ अकसर वह संघ के दफ्तर में आता रहता है.मेरे कामों में वह भी हाथ बंटाता है. और चिट्ठियां लिखते समय शिक्षक की समस्याओं में शामिल हो जाता है. धीरे-धीरे संघ के तमाम लोग भी उसे अपने संघ का ही समझने लग गये हैं.

बारिश छूटते ही हम वहां से जल्दी भागे. उसने पच्चीस रुपए में कमरा ले रखा है. मगर बराबर कमरा बदलने की बात करता है. गली में उतरते ही सुबह अपना नया कमरा दिखलाता है— देखिए, वहां. कल के ठीक सामने . जगह तो बहुत अच्छी है. सामने फूल हैं और दूसरे किराएदारों ने सब्जियां लगा रखी हैं. उसीमें ताक कर सौंदर्य-बोध जगाता हूं. कमरा इतना सर्द है कि पता नहीं मच्छर और मक्खियां कहां से चली आती ह. अब तो खाना बनाने की भी इच्छा नहीं होती. होटल में भी कितने दिन तक खाऊंगा? परसाल शादी हुई है. पत्नी को यहां लाना ठीक नहीं है.कहां रखूंगा? मेरा स्वास्थ्य कितना गिर गया है. मां देख कर बहुत दुखी होती है. इसीलिए घर बहुत कम जाता हूं. मछली, गोश्त और अच्छी सब्जी खाये तो जमाना हो गया. कैसी मजबूरी है! मैं इस कमरे में बिल्कुल रहना नहीं चाहता. आपकी नजर में कोई कमरा हो तो बतायेंगे. तब आपको मछली खिलाऊंगा नजर में कोई सस्ता कमरा है?

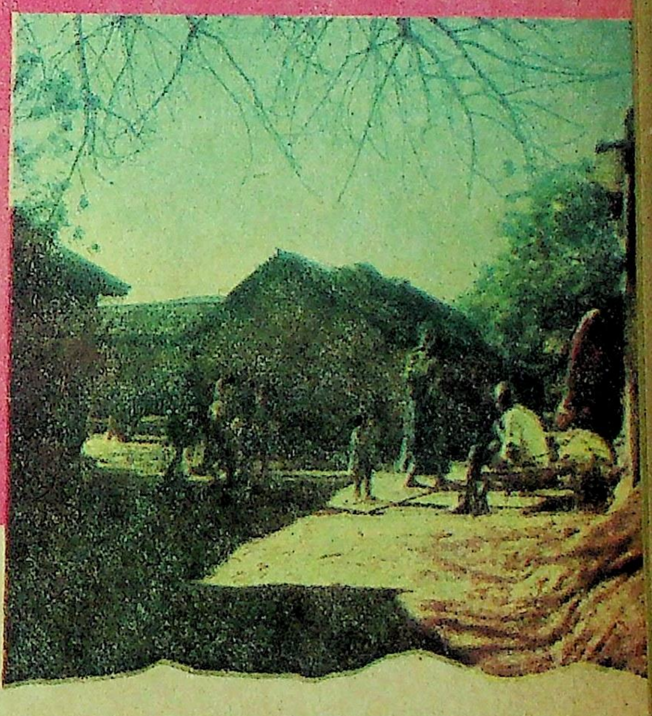

एम. डी. शर्मा

मगर सच्ची बात यह है कि वह अबतक चार-पांच कमरे बदल चुका है. पच्चीस रुपए में जैसा कमरा वह चाहता है, कहीं नहीं मिलता. उसने जैसे ही कमरा खोला, मच्छरों के अपार समूह ने हम पर हमला कर दिया. हम उन्हें ठेलते हुए अंदर घुस गये. भीतर गाढ़ा अंधेरा था. उसने टटोल कर लालटेन जलाई. किताबें चौकी पर इधर उधर बिखरी थीं. नीचे पत्रिकाएं और अखबार पड़े थे. एक ओर चमड़े का पुराना सूटकेस था और उसके ऊपर

उतारे हुए कपड़े थे. दूसरे कोने में अलम्युनियम के बर्तन, ठंडा कुकर और एक बाल्टी पानी पड़ा था. सिमटी हुई मच्छरदानी के अंदर भी मच्छर भनभना रहे थे, जिन्हें वह मार-मार कर उड़ा रहा था. मैं उससे कुछ पत्रिकाएं लेने के लिए उलटने लगा.

—सुना है बंबई में चालीस हजार लोग डिब्बे पहुंचाने का काम करते हैं? अचानक वह मुझसे पूछता है.

—बंबई तो मैं कभी गया नहीं. परंतु हिंदुस्तान में करोड़ों लोग ऐसे हैं जो जितना काम करते हैं उस हिसाब से उन्हें मजदूरी नहीं मिलती. देश का सारा धन मुठ्ठी भर लोगों के हाथों सिमटता जा रहा है.

—एक बार बंबई देखना चाहता हूं.

—हम तो सोच कर भी वहां नहीं पहुंच सकते.

—इसलिए भी पूना फिल्म इन्स्टीट्यूट में दाखिला चाहता था. बंबई सोचते ही तबियत रूमानी हो उठती है.

—आप कहें तो कोई प्रयत्न करूं?

वह ठठा कर हंसता है—आप मेरा मजाक उड़ा रहे हैं.

—हम लोग हर महीने दस-दस रुपए इकठ्ठा करें और अगले साल घूमने चलेंगे. ऐसे मालूम भी नहीं पड़ेगा कि हम अपना पेट काट रहे हैं.'

मेरी बात शायद उसे अचानक पसंद आयी है. हम भूल गये हैं कि असंभव बात भी कर रहे हैं. वह भी बेहद खुशी में कहता है— यह तो आप बहुत अच्छी बात कर रहे हैं.

उसने सूट केस से दस का एक नोट निकाल कर मेरी तरफ बढ़ा दिया.

—खाना नहीं बनायेंगे ? मैंने पूछा.

—आज नहीं बनाऊंगा. फिर होटल में ही खाऊंगा. आपसे बहुत बात करने की इच्छा है.

—बात तो हम रोज करते हैं.

—करते हैं, मगर इस तरह से कहां करते हैं?

मुझे भी लग रहा है कि हम इतनी मधुर बातें कहां करते हैं —हम लोग अपनी बातों से अपने को बराबर गायब क्यों कर देते हैं? मैंने कहा.

—लगता है, घूमने-फिरने वाली बात टाल रहे हैं आप.

—तब हमें क्या करना चाहिए?

—आप भी निकालिए दस रुपये.

—मेरे पास तो अभी नहीं है . कल दे जाऊंगा.

—मिला दीजिएगा. पैसे तो आप ही के पास रहेंगे.

—नहीं, नहीं, मैंने घबड़ा कर कहा—मैं नहीं रख सकता. घर में कोई बीमार पड़ा कि सब डाक्टर के घर चला जायेगा. और हम लोग बंबई घूमते रह जायेंगे.

मैं जोर से हंसा. मगर वह मुसकरा कर रह गया. शायद वह सोचता रहा कि उपाय क्या है. उसने कहा—हम एक जगह पैसे इक्ट्ठा कर सकते हैं.

—कहां ? मैंने पूछा.

—बाजार में गुल्लक मिलती है. चल कर अभी खरीदते हैं.

★ ★

जब हम शिवगंजवाली गली निकल कर रूपम सिनेमा के सामने आ गये तब मैंने कहा—अब मैं घर चलूं ? पहला शो टूट गया है. नौ से ज्यादा रात हुई है. दूसरे शो वाले तेजी से अंदर घुस रहे हैं.

—अभी तो और आपसे बातें करनी हैं. आपकी साइकिल तो मेरे ही कमरे में है. घर कैसे जायेंगे?

—तब जल्दी चलिए, ले लूं.

—आज रह जाइए मेरे साथ, रात भर गप करेंगे.

—मां और पत्नी चिंतित होंगी. कह कर आता तो रुकता. कल हम रात भर जागने का कार्यक्रम रखें.

—रात भर किसलिए?

—गप करेंगे.

वह मुसकराया —पता नहीं कल कैसा रहेगा. अच्छा, थोड़ी देर बैठने के बाद चले जाइएगा.

—यह जरूर कर सकता हूं.

वह बुझ गया है और पैसे जमा करने की उस गुल्लक को नचा रहा है, जैसे नोटों से भरे डब्बे की तौल तजबीज कर रहा हो. उसकी बड़ी-बड़ी आंखें चमक उठी हैं. उसे पूरा यकीन है कि अगले साल हम बंबई जायेंगे. वह आज ही से तैयारी में लगना चाहता है. हम जब भी कुछ कल्पना करने लगते हैं, दुख से भरा मन तत्काल हलका हो जाता है . हमें कल्पनाएं जिंदगी देती हैं. अभी लगता है कि कल्पनाएं बेहद जानमारू हैं.

—क्या सोच रहे हैं आप? उसने पूछा.

—सिनेमा के ऊपर बत्ती बहुत अच्छी लग रही है.

—जैसे लाल टेसू कचनार हो.

—एकदम सही आप कह रहे हैं.

उसके कमरे में दोबारा बैठे हैं. मच्छर फिर हमला कर रहे हैं. मगर हमें बिल्कुल उनकी परवाह नहीं है. हम कुछ देर तक और मच्छरदानी के अंदर बैठना तय कर चुके हैं.

—आप तब तक चावल-दाल कुकर में डाल क्यों नहीं देते?

—सचमुच यह आप ठीक कह रहे हैं. आप रहेंगे तो मन भी लगेगा.

वह जल्दी-जल्दी बर्तन धो-धा करने लगा. कमरे के अंदर ही पानी गिरा रहा था.आपके दरवाजे से हो कर नाली बहती है. आप उन्हें पानी गिराने से मना क्यों नहीं कर देते? मैंने कहा.

—मैं उन्हें मना नहीं कर सकता.वह बोला—बेचारे की हालत बहुत दयनीय है.यहां से थोड़ी दूर पर एक गांव में बेचारा शिक्षक था. स्कूल का सेक्रेटरी ब्राह्मण है और यह जात का बनिया. इसे स्कूल से निकाल दिया है.

—किसलिए?

—सेक्रेटरी ने बहाना लगाया कि तुम रोज शहर मत जाओ. स्कूल और लड़कों का नुकसान होता है. मगर वह शिक्षक आप ही की तरह बहुत सरल है. दो-चार

ट्यूशन के लालच से ही शहर जाता है. स्कूल में जो डेढ़ सौ वेतन मिलता है उसमें क्या होगा. ट्यूशन न करे तो दोनों जून बच्चों को रोटी न मिले. बेचारा जात का छोटा है, यही उसका कसूर है.

—दूसरी तरफ वाले छात्र हैं, वह फिर कहता है, जो किसी तरह गुजारा कर लेते हैं. एक ही कमरे में चार रहते हैं. सोचता हूं ये लोग भी गरीब हैं, तभी तो इस तंग कमरे में चार रहते हैं. रात में कैसे पढ़ते-लिखते हैं मुझे आश्चर्य होता है. मगर यह भी सच है कि पढ़ते हैं. इन्हें तो खुद अकल होनी चाहिए थी कि पानी उधर हट कर गिरावें मगर इन लौंडों में चेतना कहां है? आप मुझे कोई कमरा दिला दीजिए. मैं यहां से घबड़ा गया हूं. मकान-मालिक ने पूरे अहाते को कल-परसों बेच दिया है. कमरा एकाध रोज में खाली कर देना है. पता नहीं, नया मकान-मालिक कैसा होगा! रहने देता है या निकाल-बाहर करता है. हां, कभी आपको मां से मिलाऊंगा. मेरी मां बहुत अच्छी है.

मुझे शाम को अकसर भूख बहुत तेज लगती है. घर शहर से दूर है. साइकिल से नौ-साढ़े नौ बजे ही घर छोड़ देता हूं. मैंने हंसते हुए कहा — आप बहुत कंजूस आदमी हैं. कभी कुछ खिलाते नहीं हैं.

वह हंस देता है. बेहद दयनीयता और मजबूरी से— क्या कहूं? देखिए न, बड़ी बहन का रांची से खत आया है. जीजा जी के बाबूजी बीमार हैं. बचेंगे नहीं, अब एक दिन के लिए भी तो जाना चाहिए. दिन को नौ बजे और रात को नौ बजे खाता हूं. नाश्ता बिल्कुल नहीं करता. पढ़ने-लिखने की तबीयत एकदम नहीं होती. बिछावन पर गिरते ही नींद आने लगती है. कई कहानियां अधूरी पड़ी हैं. कुछ समझ में नहीं आता क्या करूं.

हमारी योजनाओं में कोई दम नहीं है. मगर बातों से अह्लाद जरूर होता है. बाद में उस बात को जीने के लिए खींचतान भी नहीं किया जा सकता. उसका मैनेजर फिर आया था. उसने शराब नहीं पिलायी.मैनेजर उसे डांट कर चला गया. उस दिन वह बेतरह उदास था. कैसा नरम आदमी है. इसे बिल्कुल गुस्सा नहीं आता, उदास हो जाता है. उसने आई. टी. ओ. को कस कर डांट दिया था— सुनिए, मि. बी. एन. सिंह, आप मैनेजर से चुगली कर मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते. मेरे भी लोग विभाग में भरे पड़े हैं. बी. एन. सिंह को डांट कर उसे सुख अनुभव हुआ था. मुझसे वह बोला, आप सिनेमा चलेंगे? आज तबीयत बहुत खुश है. मगर आज नहीं तो कल यह नौकरी मुझे छोड़नी है. इनकी धौंस मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता. आप क्या समझते हैं मैं बर्दाश्त करूंगा? मैं आज ही डिपो कर्मचारियों को इकठ्ठा करूंगा और बी. एन. सिंह की हालत खराब कर दूंगा. बी. एन. की ऐंठ और मैनेजर की घूसखोरी न छुड़ा दी तो मेरा नाम बिशनलाल नहीं.

मैं भी बिशनलाल से कम खुश नहीं हो रहा था. मगर वह इस नौकरी से ऊब जाता है. उसकी तरह के लाखों लोग हैं जो भूखे और आधा पेट खा कर जी रहे हैं. जब कोई जिंदगी नहीं तो स्वाभिमान की बात क्या है? वह शौक के लिए कहानीकार बनना नहीं चाह रहा था. उसका खयाल है कि डिपो के तमाम लोग उसके पाठक बनेंगे और व्यवस्था के खिलाफ खड़े हो जायेंगे. हम लोग उसके कमरे में बैठ कर गप कर रहे थे कि वह अचानक मुसकुराते हुए बोला— मुझे लोग डिपो-सेक्रेटरी चुन रहे हैं. हो जाऊं?

—उनका काम कर सकें तो जरूर हो जाइए.

—वे बी. एन. सिंह को हटा रहे हैं. बी. एन. मामूली आदमी नहीं है. सौ एकड़ के लगभग उसे जोत है. खानदान में आवारा था और पढ़ा-लिखा नहीं तो छोटी नौकरी में चला आया. उनकी शिकायत है कि अफसरों से मिला रहता है और यूनियन का पैसा खा जाता है. सेक्रेटरी बनते ही ऐसे गंदे आदमी को डिपो में नहीं रहने दूंगा. देखिए, एक गलत आदमी से लड़ाई की शुरुआत यहीं से होगी.

—यूनियन का काम और कहानी लिखना, दोनों एक साथ नहीं चल सकता . मैं बोला.

—जिम्मेदारी तो बढ़ जायेगी. मगर जब सेक्रेटरी हो कर काम करने का संतोष मिलेगा तो कहानी लिखने की जरूरत क्या है?

हमारी मजबूरी है कि हम फुर्सत मिलते ही एक-दूसरे के लिए छटपटाने लगते हैं. उसके सेक्रेटरी बनते ही मैं भी शिक्षक संघ को ज्यादा समय देता हूं. दोनों बेतरह थके हुए थे और रात को लगभग दस बजे तक यों ही पड़े हुए थे. तभी डिपो का खलासी उसके पास आया.

—मैनेजर साहब आये हैं, खलासी ने कहा.

—कौन मैनेजर?

—अरे! खलासी हंसता है. अपना मैनेजर भई? आपको याद कर रहे हैं.

—कल सुबह नहीं आ सकता? अभी तो बहुत रात है. कहना, सात बजे तक हाजिर हो जाऊंगा.

—बी. एन. सिंह यहां नहीं हैं. उन्होंने फौरन आप ही को बुलाया है.

—रात को क्या जरूरी है, कहो न?

—अरे, उसे तो एक बोतल चाहिए, बस.

—उसने पैसे दिये हैं? उसने जानते हुए भी पूछा.

खलासी फिर हंसा—बिशन बाबू की बात, आज तक पैसे उसने दिये किसीको? बड़े लोगों का सारा काम मुफ्त होता है.

—रुका कहां है?

—सर्किट बंगला.

—बिशनलाल थोड़ी देर तक चुप रहता है, जैसे अपने को तौल रहा है. ऐसे वक्त तमाम यूनियनों और महासंघ के होते हुए भी उसे स्थितियां निस्तेज और बहुत उदास लगती हैं. अपने लोगों से अपनेपन का कोई एहसास नहीं होता. बिशन को यही लगता है, मजदूरों के सामने एक ही तरह के काज हैं मगर सभी अलग-अलग हैं. मैनेजर के नाजायज और एय्याश आदेश को इंकार करने की चेतना जब अपने भीतर नहीं है तो यूनियन में रहने का क्या मतलब है? वह डिपो-सेक्रेटरी जरूर है. बी. एन. से लड़ सकता है, मैनेजर से उसकी लड़ाई क्यों नहीं हो सकती? क्या बिशनलाल बिल्कुल अकेला है? हां,

जीवन में कई खुशियों के पल होते हैं

सरदर्द को आपकी खुशियां बिगाड़ने न दीजिये

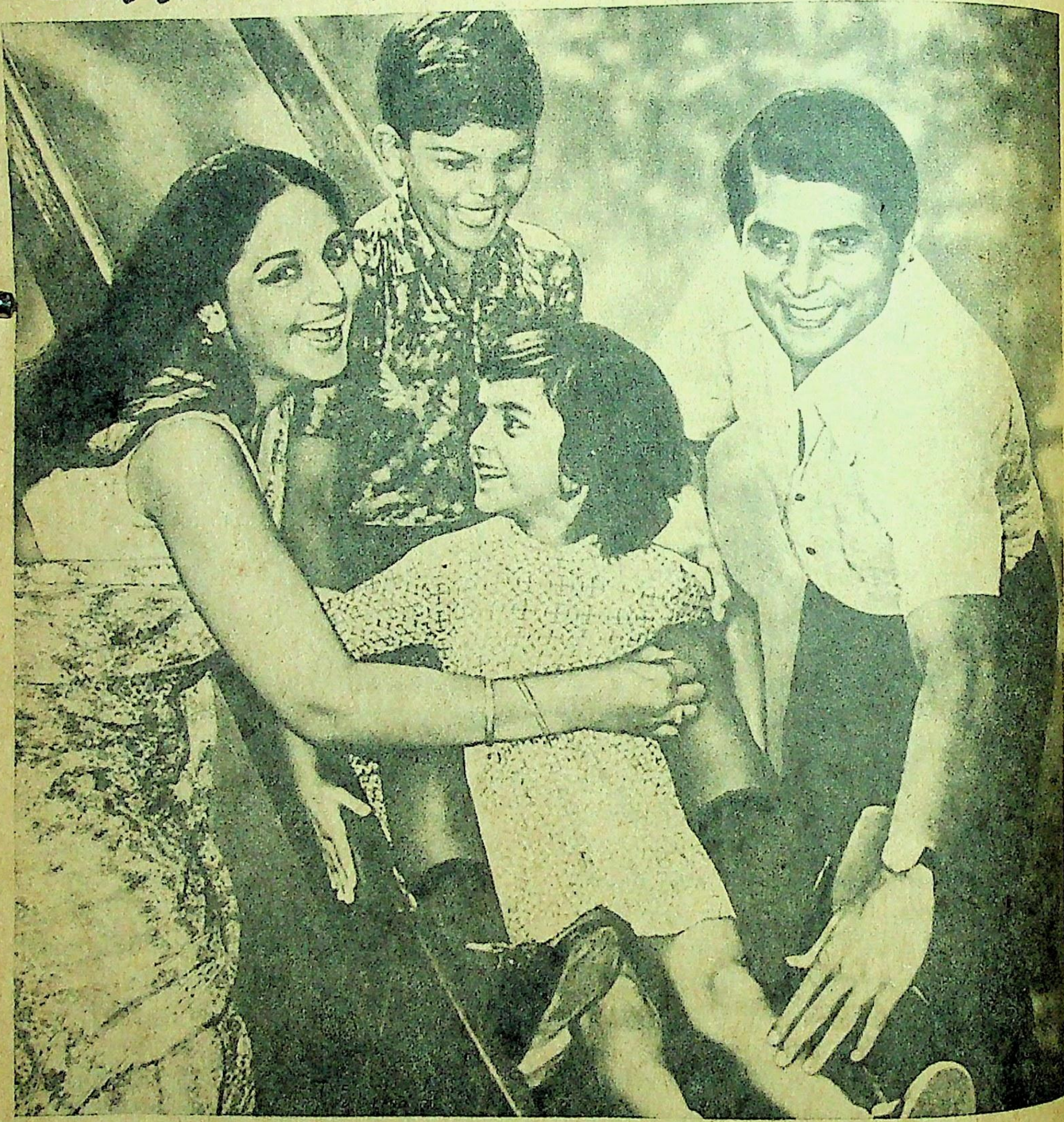

२ ऐस्प्रो लीजिये

माइक्रोफ़ाइन्ड ऐस्प्रो दर्द को जल्दी खींच निकालता है

ASPRO

Nicholas

A.G.66.HN

अभी तो एकदम अकेला है, तभी तो मैनेजर के आदेश पर इस रात को भी बिना ड्यूटी के उसके पास जा रहा है.

मेरे साथ वह भी कमरे से बाहर निकल आया.

—कुछ महसूस कर रहे हैं? वह गुस्से में बोला.

—नौकरी करनी है तो बर्दाश्त करना पड़ेगा.

—मैनेजर हमारी तरह बर्दाश्त क्यों नहीं करता? वह भी तो नौकर है.

—आप जल्दी जाइए. खामख्वाह कुछ बक दे तो क्या फायदा. मैं भी साइकिल की पैडल पर पैर रखता हूं और वह जल्दी से ताला बंद करने लगता है.

* *

तभी अहाते में किराएदार का लड़का एक महिला के साथ पहुंच कर उसे चौंका देता है—आपकी मां आयी हैं.

—कहां ? वह इस झटके से पीछे की ओर मुड़ता है कि उसका दाहिना हाथ सीधे मां के चरणों पर जा गिरता है—तुम अचानक कहां से चली आयी मां. सब कुछ ठीक तो है?

मां अंधेरे में जरूर मुसकरायी होगी. परंतु उनकी आंखें डबडबायी हुई थीं.

—अरे सुनिए यादव जी? उसने मुझे जोर से बुलाया, अब आप नहीं जा सकते. मेरी मां आयी हैं इससे मिलेंगे नहीं?

मैं भी लौट गया और उन्हें नमस्कार किया. देखा कि वे मुझे ही नहीं, उसे भी अजनबी की तरह घूर रही हैं. उन्हें शायद अपने बिशन को ऐसी स्थिति में पाने की कल्पना न हो.

वे समझ रही होंगी, कमरा इतना तंग और बेशर्म नहीं होगा. बेटे की सारी गृहस्थी इसी कमरे में सिकुड़ती देख कर मां की माया फटती जा रही है. बोलीं —तूने तो ऐसा कभी नहीं लिखा बिशन, कि इस नरक में रहता है मैं तो बहू को भी यहीं भेजना चाह रही थी. बिशन अब तो बिजली गांवों में भी आ गयी है. कैसा मनहूस मालिक है? कल सुबह ठीक से देखूंगी. अभी तो इस लालटेन में तुम्हें पहचान भी नहीं पा रही हूं. मां अपनी आंखें पोंछ रही हैं.

बिशनलाल ने भी देखा है. मगर वह भी करे क्या, यहां अकेली यही मां नहीं है. इनकी तरह लाखों मां हैं जो इसी तरह रोज अपने बेटों को देखती हैं. यहां तक कि भूखे बेटों को ठोक-ठोक कर सुला देती हैं.

बिशनलाल चुपचाप गालों पर उंगलियां दे कर चौकी पर बैठा था. एक तरफ मां थीं और मैं था.

मैं भी जल्दी घर जाने के लिए उकता रहा था. अब तो तत्काल जाना मुश्किल था.

उसने खलासी को कहा—अब तुम जाओ, सरन भाई. देख रहे हो न, मां को? अभी तो बिल्कुल नहीं जा सकता.

—आप तो मैनेजर को जानते हैं, कैसा आदमी है. देखिए, वहां पहुंचने पर मेरी हालत क्या होती है. अभी तक तो चूल्हे में लकड़ी तक नहीं डाली है, बीवी बीमार है. अभी मैनेजर कहां-कहां भेजेगा, कुछ पता नहीं. खलासी बहुत झुंझला कर बोलता है.

—क्या हो गया है, तुम्हारी पत्नी को?

—पीठ में कई महीने से घाव है. लोग बताते हैं कि कारबंकल है.

—कहीं दिखलाया है?

—दिखलाता क्या, ठेंगा? अस्पताल में डाक्टर से ले कर नर्स तक, सभी कसाई हैं. असल में काउंटर बाबू, अस्पताल गरीब के लिए नहीं है. अमीर हर तरफ छा गये हैं.

—मैं तो सरन, यमराज के आने पर भी नहीं चल सकता. तुम जाओ?

—मैनेजर भी यमराज से कम है क्या?

हम उसकी बातों पर हंसते हैं—असल में, इस वर्ग के पास दिल ही नहीं होता. बिशन लाल बोला.

खलासी लौट जाता है.

* *

उसके कमरे में एक ही दो मिनट पर चुप्पी गहराने लगती है. मुझे ही हो रहा था कि जल्दी यहां से भाग चलूं परंतु, बोला—मां के लिए कुछ बनायेंगे नहीं?

—अब तो बनाना ही पड़ेगा. उसके कहा, आप भी घर मत जाइए. सुबह चले जाइएगा. तीन आदमियों के लिए चावल डाल रहा हूं. मां चौकी पर सो रहेंगी. हमदोनों बाहर उस चबूतरे पर सो रहेंगे. ठीक है न?

—ठीक है, लेकिन. . .

—आपकी घर पर कोई खोज तो नहीं करेगा?

—खोज कौन करेगा. यही पत्नी झुंझलाती है कि कहीं रह ही जाना है तो बता कर क्यों नहीं जाते. एक आदमी का खाना नुकसान हो जाता है.

* *

दोनों मिल कर खाना बनाते रहे. वह बीच-बीच में गांव-घर का हाल - चाल पूछता रहा.

परंतु मां की उदासी मिट नहीं रही है, बिशन को इतनी देर तक करीब पा कर भी नहीं. वह जानते हुए भी मां को भुला रहा है.

—बी. एन. सिंह यहां डिपो-इंचार्ज हो रहा है. मैनेजर उसे मानता है न. कह रहा था, तुम्हें डिपो-बुकिंग में स्थायी रखूंगा और तुमसे तेज यहां कोई नहीं है कह कर बिशनलाल जोर से हंसता है.

—आपने क्या कहां ?

—कहता क्या? उसने कहा, मैं तो बी. एन. सिंह. को ठीक से समझता हूं न. एक ही बात है. अगर मैं यहां बुकिंग में बराबर रह गया तो पढ़ने-लिखने के

रह गयी महिला वर्ष की याद

हो गया युगारंभ

नारी के संघर्ष का संकल्प चिरजीवी हो
महिलाओं ने वर्ष मनाया, पुरुषों ने पाए स्मित क्षण
किन्तु हुआ क्या नारी का उत्कर्ष ?
एक भावभरा प्रश्न !
नारी चाहती है, क्या केवल अधिकार ?
नहीं ! चाहती है वह अवसर···
मिला सके जो उसे
राष्ट्र जीवन-धारा से सत्वर
स्टेट बैंक की योजनाओं से खुलते अवसर के
नये-नये द्वार
करते आलोकित उनका संघर्षभरा संसार

स्टेट बैंक

लिए काफी समय मिलेगा. और यूनियन का काम भी ठीक से चलेगा.

—आमदनी तो होगी?

—होगी क्यों नहीं? बी. एन. अपने लाभ के लिए मुझे दिलवायेगा. कनडक्टर को चार-छह यात्रियों की यहीं से छूट मिल जाती . सबका काम चल जाता है. समझिए, ड्राइवर और हम लोग बारह घंटे में ग्यारह घंटे काम करते हैं—कठिन श्रम . तब भी भर पेट रोटी नहीं मिलती. उस पर हमारे साहब लोग रोब गालिब करते हैं और रोज लखपति बनते जा रहे हैं,'

मां सब कुछ सुन रही हैं. मगर हिस्सा नहीं ले रही हैं. क्या उनकी उदासी ज्यादा गहराती जा रही है? मैं भी उनकी माया में कहीं से भी शरीक नहीं हो पा रहा हूं !

उस वक्त मुझे भी अपनी मां का खयाल आता है. उसको भी ऐसा ही रोग है. किसी बात पर वह भी लगातार मुझे देखती रह जाती है. मैं तो उसकी ऐसी आदतों का अभ्यस्त हो गया हूं.

सुबह खलासी बिशनलाल को बुला कर सर्किट बंगला ले गया.

आधी रात को खलासी सरन प्रसाद बी. एन॰ सिंह को गांव से बुला लाया था. बी. एन. ने कहीं से मैनेजर के लिए बोतल ला दी थी.

मैनेजर का नशा अभी तक पुरा नहीं था. रात से ही उसकी आंखें लाल थीं.

उसने डांट कर पूछा—बिशनलाल, तेरे को ड्यूटी करनी है या नहीं?

—करनी क्यों नहीं है, सर. खाने-पीने की फुरसत भी तो चाहिए.

—ठेंगा खायेगा? नौकरी ले लूंगा, समझे?

बिशनलाल को गुस्सा चढ़ता है. परंतु कहता है—ड्यूटी में कोई चूक हो तो माफ कर दें. आगे से अपने को सुधार लूंगा?

—बाप का माल समझ रखा है सरकार को क्या? मैनेजर तमतमाया हुआ है.

बिशनलाल इससे ज्यादा बर्दाश्त भी नहीं कर सकता है. उसने पैर से चप्पल निकाल ली और तड़ातड़ मैनेजर के सिर और पीठ पर चलाने लगता है.

मैनेजर चीखता है और बिशन का हाथ चलता ही जा रहा है,

—साले जब तक तुम्हें खींच कर सड़क पर लोग मारेंगे नहीं तब तक कुछ नहीं बदलेगा. हरामी कहीं का. . ?

तभी से बिशनलाल सस्पेंड है और पुलिस उसके पीछे है. □□□

धरहरा, आरा (बिहार)

ताक़त

अपनी ताक़त को बनाए रखने के लिए ओकासा की चांदी चढ़ी
टॉनिक टिकियाँ लीजिए. शक्ति और स्फूर्ति के लिए
मशहूर टॉनिक ओकासा. तंदुरुस्ती की
एक निशानी ओकासा.

OKASA
THE 20th CENTURY TONIC
RESTORATIVE
Manufactured by
OKASA CO PVT LTD
BOMBAY

ओकासा
टॉनिक टिकियाँ
पुरुषों के लिए चांदी वाली

सभी बड़े-बड़े केमिस्टों के यहाँ मिलता है।

OKASA CO. PVT. LTD.
12K Gunbow Street,
P. B. No. 396 Bombay 400 001

एडजस्ट होने की कोशिश में

• विनोद शाही

सड़कें, एक-दूसरे को काटती हुई बहुत आगे तक भागती-सी चलीं गयी थीं. सड़कें, सर्पीलीं, गोलाकार, चौरस, त्रिकोण बनाती हुई, समानांतर ...सड़कें ही सड़कें....चौराहे के मध्य ट्रैफिक पुलिस का छतरीनुमा स्टैंड, जैसे काला-सा घेरा बनाता हुआ मेरी आंखों के समक्ष नाच रहा था ...मैं प्रयत्न कर रहा था कि घेरा काला न दिखायी दे कर सफेद-सा नजर आये. अचानक मैं पुनः भटक गया ...केंद्रित होने के संदर्भ में मिलने वाली सफलताएं मेरे लिए अभी तक बहुत मामूली थीं ...जैसे मैं उस गोलाकार स्टैंड पर खड़ा हो कर सोच रहा था कि मेरी आंखों में अद्भुत शक्ति आ रही है, मैं सबसे शक्तिशाली व्यक्ति हूं, मैं सभी को अपने वश में कर सकता हूं ...तभी सचमुच की भीड़ उन्हीं सड़कों पर उमड़ती हुई दिखायी दी. मैंने अपनी आंखों पर जोर डाला, शक्ति का आह्वान किया ...तभी सारी भीड़ अपने स्थानों पर जड़वत-सी हो कर खड़ी हो गयी. फिर धीरे-धीरे मेरी ओर खिसक कर आगे बढ़ने लगी ...मैं अपनी सफलता पर जैसे गर्व से पुलकित हो उठा ...मुझे ऐसा एहसास हो रहा था जैसे मैं अपने बैठने वाले स्थान से थोड़ा ऊपर उठ गया हूं, जैसे मैं अपने आप से थोड़ा भिन्न हो गया हूं—दर्पण में दीखने वाले प्रतिबिंब की भांति, मात्र प्रतिबिंब ...फिर मुझे अनुभव हुआ जैसे मैं पुनः अपने उसी काले घेरे से बहुत दूर भटक गया हूं. मैंने लौटने का प्रयत्न किया ...काला गोलाकार स्टैंड, धूमिल-सा होता हुआ ...भीड़, धुंधली-सी पड़ती हुई ...सड़कें किसी शून्य में मिलती हुई ... मात्र घेरा, वही काला घेरा, सामने की दीवार पर लगे कागज पर बना, अठन्नी के आकार का काला घेरा... मुझे लगा, मेरी आंखें दुख-सी रही हैं, मुझे पलकें झपका लेनी चाहिए ...काफी कठिनाई हुई पलकें बंद करने में ...लगा जैसे कुछ समय के लिए आंखें जड़-सी हो गयी थीं. मैंने पलकें बंद कर लीं. एक सुखद-सा एहसास हुआ ...लगा जैसे आंखों में विशेष प्रकार की ~~ऊष्मता~~ दौड़ रही है ...काफी समय तक पलकें खोलने की इच्छा ही नहीं हुई. उसी प्रकार आंखें बंद किये जमीन पर बैठा रहा ...अचानक ऐसा प्रतीत हुआ जैसे पलकें नीचे की ओर ढुलक रही हैं. मैंने आंखों के अनुभव के साथ-साथ आंखें बंद करके बैठे-बैठे ही अपने शरीर का अनुमान लगाना चाहा ...लगा कि मेरे बैठने वाले स्थान के नीचे से गर्मी-सी पैदा हो रही है—एक ही स्थान पर काफी समय तक लगातार बैठे रहने के कारण अब बैठक बदलने की आवश्यकता हो गयी थी ...शेष सारा जिस्म ...जैसे किसी स्वप्न से अचानक जागने की अनुभूति मुझे हुई ...मैं कहां था इतने समय तक? .....आज पहली बार मैं इतना अधिक आत्म-विस्मृत हुआ था ...अब उठना चाहिए....

अचानक इस अनुभूति को अधिक तीव्र पा कर मैंने अपनी आंखें खोल दीं ...उसी काले घेरे को देखता हुआ उठ खड़ा हुआ. पास की मेज पर पड़ी किताबों पर धूल-सी चढ़ गयी थी. कई दिनों से कुछ पढ़ा नहीं था.....हूं, तो नौकर भी ठीक से काम नहीं करता आजकल ...परंतु फिर दोबारा उस बात को सोचते हुए मुझे यह सब बड़ा हास्यास्पद लगा. मुझे अपने भीतर उत्साह का-सा भाव उमड़ता हुआ प्रतीत हुआ. मेरा यह उत्साह शायद मेरी लंबी निष्क्रियता का परिणाम था...जो हो, मेज पर एक मक्खी आ कर बैठ गयी थी. मैंने बिना कुछ सोचे-समझे उसे उड़ा दिया. फिर अपने कमरे से बाहर निकलने की बात सोचने लगा.

* *

मैं अपने पढ़ने वाले कमरे से अभी-अभी हिप्नॉटिज्म का अभ्यास करके बाहर आंगन में आया था. कमरे में अंधेरा-सा होने के कारण मेरी आंखें कुछ चुंधिया रही थीं. पिछले एक महीने से मैं लगातार हिप्नॉटिज्म का अभ्यास करने का प्रयत्न कर रहा था. कॉलेज की लाइब्रेरी से लायी पुस्तक के आधार पर मैंने सफेद कागज पर काला निशान लगा कर अपने स्टडीरूम की सामने वाली दीवार पर चिपका लिया था. अब प्रतिदिन उस पर दृष्टि केंद्रित करने के प्रयास में लगा था. वैसे अभी तक इसमें किसी प्रकार की सफलता का आभास मुझे नहीं मिला था, फिर भी इसके कारण कुछ परिवर्तन अवश्य दिखायी दिये, जैसे मेरी आंखों का कुछ लाल रहना तथा दुखना, थोड़ा एकांतप्रिय तथा आत्मकेंद्रित-सा हो जाना, मित्रों के हास-परिहास में रुचि का थोड़ा कम हो जाना आदि. मैं कुछ चिड़चिड़ा भी होता जा रहा था. इसके अतिरिक्त एक अन्य प्रवृत्ति भी मेरे व्यवहार में काफी अधिक स्पष्ट होने लगी थी. वह यह कि अब मैं प्रायः यह प्रयत्न करने लगता कि लोग मुझसे केवल प्रभावित ही न हों, मेरी बात भी मानें. मैं प्रायः बातें करते समय लोगों की आंखों में आंखें डाल कर मन ही मन में उन्हें आज्ञा देता रहता कि ऐसा नहीं, ऐसा करो. जब वे लगातार मेरे आदेशों के विरुद्ध चलते तो मैं खीज उठता...

अपने चेहरे को प्रयत्नपूर्वक गंभीर बना कर मैं चिंतक की-सी मुद्रा में आंगन में खेलते अपने छो भाई को देखने लगा. वह पड़ोस में रहने वाले अपने हम उम्र साथी शामू के साथ आंगन का पलस्तर उखा रहा था. वे दोनों अधिक-से-अधिक सीमेंट के टु

एकत्र करने का प्रयत्न कर रहे थे. एक-दूसरे के ढेरों की ओर देखते हुए वे कहने लगते—मेरा ढेर तुम से बड़ा है. इसी वाद-प्रतिवाद की स्थिति में अचानक सीमेंट का टुकड़ा उखाड़ते हुए विक्की की उंगली में कुछ चुभ गया. वह तुरंत हाथ खींच कर रोने लगा. फिर उंगली की ओर देख कर चुप हो गया.

आंगन के दूसरी तरफ रसोई थी. मम्मी शाम के भोजन की तैयारियों में व्यस्त लगती थीं. अंगीठी पर रखे प्याज के तड़के की खुशबू मेरी भूख को जगाने में सहायक हो रही थी. विक्की और शामू को उनके खेल से रोकना मैंने उचित न समझा. अचानक मन में विचार आया, कितनी पुरानी हो गयी होगी यह बिल्डिंग! अब तो अनेक स्थानों पर टूट-फूट भी गयी है. कई दीवारें तड़क गयी हैं. रात को पास ही बने रेलवे स्टेशन पर कोई भी गाड़ी आते ही घर के सारे दरवाजे बजने लगते हैं. अचानक मुझे अपने घर के पुराने नौकर की बात याद आयी, जो कह रहा था कि आजादी से पहले यहां कचहरियां होती थीं. . .

* *

ठक्. . . ठक्. . . ठक्. . . . मेरी विचार-शृंखला भंग हो गयी. दोनों छोटे बच्चे दरवाजे की ओर देख रहे थे. तभी विक्की ने भाग कर दरवाजा खोल दिया. कोई बाहर से खटखटा रहा था. मैं भी यह देखने के लिए बढ़ा कि कौन आया है.

दरवाजा खुलने पर वहां काले-से रंग का एक लड़का खड़ा दिखायी दिया. नीले रंग का कोट पहने वह दोनों हाथ जोड़ कर मुझे नमस्ते कर रहा था. वह मुझे खस्ता हाल ही दिखायी दिया. कोट के भीतर से झलकता हुआ उसका कुर्त्ता काफी मेहनत से धोया होने के बावजूद घटिया-सा लग रहा था. पांवों में वह पुराने टाइप के जूते पहने था, जिनकी नोक ऊपर को उठी हुई थी. पैंट खाकी रंग की थी—सलवटों से युक्त होने पर भी उसमें क्रीज की झलक-सी उभरती थी . . . मैंने सिर हिला कर उसके अभिवादन का उत्तर दे दिया. तभी अचानक वह बोला—क्यों मुकेश! मुझे पहचान लिया न?

मैं उसके संबोधन पर आश्चर्यचकित-सा हो पलकें झपकाने लगा. फिर ध्यान से उसके चेहरे पर दृष्टि गड़ा कर उसे पहचानने का प्रयत्न करने लगा. बोलते समय उसके काले-काले होंठों के मध्य सफेद दांत बहुत अजीब लगे. वैसे भी अब उसके काले होंठ चमक रहे थे. कालिमा में भी इतनी चमक आ सकती है, मैंने पहली बार अनुभव किया था. मैं अपनी स्मृति पर जोर डालने लगा. मुझे पहचानता हुआ न पा कर वह स्वयं ही बोल उठा—मैं, मंगल. . . कालका से. तुम्हारे घर आया करता था, पहचान लिया ना? मैंने तो तुम्हें देखते ही पहचान लिया था!

उसकी इन बातों से मुझे उसकी याद आ गयी. मैं जैसे उसके अभिवादन पर पुनः मुसकरा दिया. मुझे अब समझ में आया कि इतना खस्ताहाल-सा लड़का मुझे मेरे नाम से कैसे पुकार रहा है. फिर भी अभी मुझे वह सब अटपटा ही लग रहा था. बोला—अच्छा-अच्छा, तुम मंगल हो! आओ-आओ, भीतर आ जाओ.

मैं दरवाजे से एक ओर हट गया. वह अपने साथ अपना बिस्तर भी लाया था. क्या वह यहां रहने के लिए आया है? मुझे पुनः आश्चर्य हुआ. मैंने फिर पूछा—कब आये? काफी समय हो गया है न उस बात को, इसीलिए पहचान नहीं पा रहा था.

—सच, मैं भी आता हुआ इसी बात से डर रहा था कि कोई मुझे यहां पहचानेगा भी या नहीं!

वह भीतर आ गया था. वैसे एक बात उसके व्यक्तित्व से स्पष्ट परिलक्षित होती थी कि वह हर बात कहता हुआ मुसकराने का प्रयत्न करने लगता था और अपनी बात कह कर शालीनता से हंस-सा देता था. उसके सफेद दांत उस अवस्था में कुछ भले ही लगते थे. उसके बोलने का ढंग कुछ ऐसा था कि उसके कथन में शिष्टता, नम्रता और आत्मीयता की झलक मिलती थी.

मैंने उसे आंगन के एक ओर सामान रखने का निर्देश दिया और स्वयं रसोई के सामने पहुंच कर मम्मी को सूचना देने लगा—मंगल आया है, कालका वाला . . .

—अच्छा!

वह काम छोड़ कर रसोई के दरवाजे तक ही पहुंची थीं कि मंगल ने आगे बढ़ कर उनके पांव छू लिये. मुझे अजीब-सा लगा. मम्मी भी कुछ पीछे हट गयीं.

—अरे-अरे, क्या करता है? ऐसे नहीं, भई . . . वह अपने पांवों को मुक्त कराने का प्रयास करती हुई बोलीं. पांव छू कर मंगल सीधा खड़ा हो गया.

—अरे! कब आया तू?

—बस, अभी आ ही रहा हूं.

—घर ढूंढ़ने में तो मुश्किल नहीं हुई न तुझे?

—नहीं-नहीं, मदन ने मुझे पहले ही समझा दिया था, सो पूछता-पुछाता इधर ही निकल आया.

—अच्छा, तो फिर बैठ जा इधर.

मम्मी के निर्देश पर वह बाहर ही जमीन पर बैठ

● आर. एन. प्रसाद

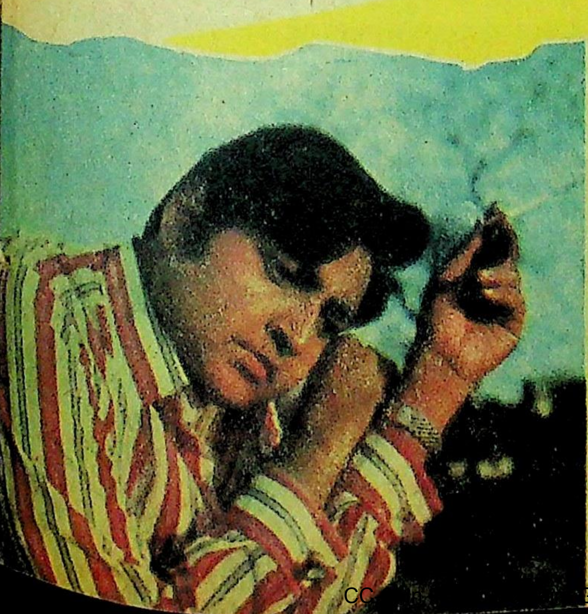

गया. मम्मी उसके लिए चाय चढ़ाने में रत हो गयीं. विक्की और शामू अजनबी को देख कर उसके पास हीं आ खड़े हुए थे. विक्की का जन्म कालका में ही हुआ था. इस बात का अचानक विचार आते ही मंगल ने अनुमान लगाया कि यह वही मुन्ना भी तो हो सकता है! उसने विक्की से कुछ पूछने से पहले जैसे थोड़ा सकुचाते हुए पूछा—क्या नाम है तेरा?

विक्की ने पहले तो उसकी ओर देखा. फिर अपनी फैली पुतलियां संकुचित करता हुआ-सा, धीरे से बोला—मिक्की. वह अभी अपने नाम का सही उच्चारण भी सीख न पाया था. उसके उत्तर से उत्साहित-सा हो कर मंगल उसे छेड़ने लगा—अरे, इतना बड़ा हो गया है तू!

—साथ में शरारती भी. सचमुच बड़ा तंग करता है, कभी-कभी . . .

मम्मी उसके सामने भी विक्की की प्रशंसा करने लगी थीं. विक्की थोड़ा हंस कर शरमा गया और शामू के साथ भाग गया. तभी मंगल ने पुनः मेरी ओर देखा और मम्मी को संबोधित करते हुए कहने लगा—ये भी बहुत छोटे थे तब. कभी हमारी भी याद आती थी आप लोगों को?

मम्मी प्रत्युत्तर में हंस दीं.

★ ★

मंगल और मम्मी की उसके पश्चात् भी काफी समय तक बातचीत होती रही. मैं लगभग खामोश रहा. पास खड़ा उसके चेहरे की ओर देखता रहा. वह काफी अटपटा लग रहा था, विशेष तौर पर सजाने-संवारने के प्रयत्न में लगभग बिगाड़े गये उसके बाल. बात करते-करते जब अचानक नम्रता प्रदर्शित करने के प्रयत्न में वह थोड़ा झुक जाता, तो मुझे लगता जैसे अंधेरे में कहीं उजाड़ जगह पर उगा कोई छोटा-सा पौधा तेज हवा में झुक-झुक कर पुनः सीधा खड़ा होने का प्रयत्न कर रहा हो. . . अचानक फिर कितनी ही सड़कें मेरे मस्तिष्क में घूमती हुई दिखायी दीं और साथ-साथ काले घेरे-सा पुलिस-स्टैंड. . . . मुझे बात-बात में अपनी हिप्नोटिज्म वाली प्रैक्टिस सूझने लगती. . . अनेक विचारों के प्रवाह-सी भागती हुई उन्हीं सड़कों पर उमड़ती भीड़ में, मंगल भी शायद खड़ा हो गया था. मुझे पुलिसमैन की भूमिका पुनः निभानी होगी. वही उन्माद फिर जाग आया था. किस बात का प्रयोग किया जाये इस पर? . . . हां, इसके मुंह से यह कहलवाना चाहिए कि यह किस प्रयोजन से आया है. . . . काफी समय हो गया, मगर वह और मम्मी और ही किस्म की बातें करते चले जा रहे थे. . .

कुछ समय पश्चात मेरा हृदय कुछ खिन्न हो गया और मैं वहां से उठ आया.

राजी और कुक्कू बाजार से सामान वगैरा ले कर लौट आये थे. राजी ने नमक की प्लास्टिक की थैली में, उंगली से छेद कर दिया था, जिससे आंगन में नमक गिरता जा रहा था. मैंने उसे हाथ से इशारा करके कहा—आंखें नहीं हैं क्या? देख तो, कितना नमक गिराती चली आ रही है!

राजी ने चौंक कर थैली की ओर देखा और उस छिद्र पर पुनः हाथ धर कर रसोई की ओर चली गयी. मंगल रसोई के बाहर ही बैठा था. मम्मी उसके सामने सहृदय बनने का प्रयत्न करती हुई बोलीं—चल, फिर क्या हो गया? थोड़ा-सा ही तो गिरा है!

मैं जानता था कि यह मम्मी की पुरानी आदत है कि जब भी कोई अतिथि आया होता है, वह अपने शिष्ट गुणों का अत्यधिक प्रदर्शन करने लगती हैं. मैंने मम्मी की बात का कोई उत्तर न दिया और पुनः अपने पढ़ने वाले कमरे की ओर चल दिया. मैंने अनुमान लगाया कि इसके पश्चात वह पूर्ववत् मेरे बारे में कहने लगेंगी कि यह बाजार से सौदा आदि लाने के लिए कभी नहीं जाता या फिर यह कि इसे किसी भी व्यावहारिक कोटि के कार्य में रुचि नहीं है. परंतु ऐसा कहने के तुरंत पश्चात वह कभी भी यह जोड़ना न भूलती थीं कि वैसे यह पढ़ाई आदि में बहुत होशियार है और फिर मेरी मामूली सफलताओं का हृदयग्राही चित्रण प्रारंभ हो जाता.

मैं अपने कमरे में आ कर बैठ गया. सामने लगा हुआ हिप्नोटिज्म वाला काला घेरा जैसे मुझे घर की मामूली बोरियत भरी घटनाओं के समक्ष एक अत्यंत महत्व वाली बात लग रहा था.

अचानक उस काले घेरे को देखते हुए मैंने काले मंगल की कल्पना करनी प्रारंभ कर दी. मुझे उसके कालका वाले स्वरूप का स्मरण हो आया. वह और उसका बाप, दोनों रेलवे कर्मचारियों के कंडम कोट तथा पैंटों को ठीक-ठाक करके पहना करते थे. यह बात और थी कि वे लंबे-लंबे नीले कोट उनके शरीर पर पूरी तरह फिट कभी नहीं आ पाते थे. मंगल का बाप हमारे मोहल्ले में भंगी का काम करता था. परंतु उसके बहुत अधिक झगड़ालू होने के कारण मोहल्ले वाले उससे काम लेना ज्यादा पसंद नहीं करते थे. इस कारण कभी उसकी बहू और कभी मंगल वहां काम करने आते थे. वैसे दोपहर के खाली समय में गली के नुक्कड़ पर बैठ कर बीड़ी फूंकते हुए मैंने उसे प्रायः देखा था. उन दिनों मैं चौथी या पांचवीं क्लास में था.

चूंकि अब उन्होंने भंगी का पेशा अख्तियार कर लिया था, अतः सभी उन्हें वैसा ही कहते थे. मगर मंगल का बाप कुछ और ही बताता था. उसके अनुसार वे लोग जात के भंगी नहीं थे, बल्कि उन लोगों की जाति में से थे, जो गावों में कुओं से पानी भर कर लोगों के घर पहुंचाया करते थे. उनके ऐसा पेशा अपनाने का एक खास कारण था. मंगल का बाप बताया करता कि उसके परदादा ने एक बार अपने घर किसी भंगी को पनाह दे दी थी. वह उन दिनों बीमार था. उसके घर उसकी देखभाल करने को कोई न था. गांव के लोगों ने इस बात पर एतराज करके उनसे पानी भरवाना बंद कर दिया. कोई दूसरा नेक काम करने की भी उनको इजाजत न मिली. मजबूरन उन्हें वह धंधा अपनाना पड़ा. वैसे यह बात और थी कि उसकी कहानी पर कोई भी विश्वास नहीं करता था. फिर भी उसके परिवार के प्रति हमारे घर की कुछ अधिक सहानुभूति होने का कारण था

था कि वह जो गांव अपना बताता था, वह हमारे डैडी के पुराने गांव से अधिक दूर न था.

मंगल के बाप का नाम तो मुझे अब याद नहीं रहा, पर इतना अवश्य याद है कि हम लोग उसे 'उल्लू का पट्ठा' कह कर चिढ़ाया करते थे. इस शब्द को प्रयुक्त करने की उसकी बहुत आदत थी. अतः हमने भी उसे उसी नाम से पुकारना प्रारंभ कर दिया था. उसे छेड़ने का काम सदा मेरे ही जिम्मे लगाया जाता, क्योंकि अगर मैं उसे कुछ कह भी देता, तो वह भी मुसकरा कर मुझे 'उल्लू का पट्ठा' कहने लगता.

मुझे याद है जब मुझे पहली बार इस बात का पता लगा था कि मंगल का बाप शराब भी पीता है. बात यूं हुई कि उस दिन गली के उसी नुक्कड़ पर उसने मंगल को अचानक पकड़ लिया और हरामी-सूअर आदि की ही नहीं, मां-बहन आदि की गालियां देते हुए उसे पीटने लगा. वह बीच-बीच में यह भी कहे जाता था—बोल साले, फिर उठायेगा बिना पूछे? वहां बहुत-से लोग इकट्ठे हो गये थे. बड़ी कठनाई से उन्होंने मंगल को उसके चंगुल से छुड़ाया था. मैं इसके बाद भी वहां काफी देर तक खड़ा रहा. बाद में मैंने सुना, कुछ लोग कह रहे थे—साला, पी कर चला आता है यहां गुंडागर्दी करने. . . ! मैं यह सुन कर भागा-भागा घर आया था और रसोई में पहुंचने से पहले ही जैसे जोश में बोलने लगा था — मम्मी, आज मंगल की खूब पिटाई हुई. . .

परंतु फिर रसोई तक पहुंचते-पहुंचते ठिठक गया. दहलीज पर मंगल बैठा सिसक रहा था. मम्मी उसे ढाढ़स बंधा रही थीं. मैं झेंप-सा गया. मुझे लगा था, जैसे इस प्रकार जोश में आ कर बोलते हुए मैंने कोई गलती कर दी है. और सचमुच कई दिनों तक मुझे इस बात का अफसोस भी रहा था. मुझे मंगल के बाप पर बेतहाशा गुस्सा आया था. उस दिन के बाद मैं मंगल के बाप से बहुत डरने लगा था. उसके पास फटकता भी नहीं था. कभी-कभी वह घर आ कर भी कहता—क्या बात है, काका जी, अब कभी खेलने नहीं आते? . . . . लेकिन मैं उसकी बात का कोई जवाब तक न देता. कई दिनों बाद मुझे मंगल की पिटाई का कारण भी पता लग गया था. मंगल को नवीं की फीस देनी थी, इसलिए उसने बिना पूछे बाप के पैसे उठा कर स्कूल में दे दिये थे.

मम्मी के अनुसार मंगल बहुत भला लड़का था. वह यथासमय उसकी सहायता करती रहती थीं. कभी स्कूल की फीस के लिए पैसे एडवांस दे देतीं, कभी खाना न खा कर आने पर घर से दो रोटियों पर अचार धर कर उसे दे देतीं. बदले में मंगल भी कभी-कभी आंगन के अलावा कमरों की सफाई कर जाता, या कपड़ों पर प्रेस करने के लिए जिद करता. उसके कपड़े प्रेस करते समय, मुझे याद है, मम्मी उसी कमरे में जा कर बैठ जातीं और कभी बड़े-से थाल में दाल के कंकर वगैरा चुनती रहतीं, कभी आधा काढ़ा गया मेजपोश काढ़ती रहतीं.

मम्मी प्रायः उनके घर की दयनीय स्थिति पर करुणार्द्र हो उठती थीं. वैसे मंगल की मां मुझे कभी अच्छी नहीं लगी, क्योंकि वह प्रायः गंदे कपड़े पहने रहती और मम्मी के पास बैठ कर अकसर रोने लग जातीं. वैसे उस समय उन लोगों की अवस्था का वास्तविक मूल्यांकन न कर पाने पर भी मुझे यह एहसास तो हो ही जाता था कि वे काफी दुखी हैं. उनके दुख का कारण दो जवान लड़कियां थीं. एक की शादी हो चुकी थी, पर वह ससुराल में पड़ने वाली रोजाना की मार से दुखी हो कर घर बैठी थी. दूसरी लड़की की अभी तक शादी ही नहीं हो पायी थी. ऊपर से मंगल का बाप सारी कमाई शराब और बीड़ियों में फूंक देता था. वैसे मुझे उस समय यह कभी समझ न आता था कि अगर लड़की ससुराल से घर आ गयी है तो इन्हें दुख क्यों होता है. मम्मी से पूछता तो वह जवाब देतीं—तुझे क्या पता? ब्याही लड़की के घर बैठने से बड़ा दुख मां-बाप के लिए और क्या हो सकता है?

★ ★

मेरे पिताजी उन दिनों किसी बैंक में हेडक्लर्क थे. उनके परिवार की ऐसी स्थिति देख कर उन्होंने मंगल के बड़े भाई बाली को अपनी सिफारिश से चपरासी लगवा दिया था. मुझे याद है कि पिताजी द्वारा यह काम करने पर मंगल की मां हमेशा उनके निकट आते ही उन्हें आशीषें देने लग जाती थी—राम भला करे! बड़े यजमान बनो! सारे सहर में आपजी का नाम होवे. दूधो-पूतों फलो. . . . आदि-आदि

वैसे मंगल के घर में सबसे अधिक अच्छा लगने वाला प्राणी मेरे लिए मंगल ही था. मंगल से संबंधित अनेक घटनाएं मुझे आज भी याद हैं. कभी-कभी वह हमें पड़ोस में किसी घर के पिछवाड़े लगे अंजीर के पेड़ के पास ले जाता और पेड़ पर चढ़ कर पकी अंजीरें तोड़ कर हमारी तरफ फेंकता रहता. चाहे ऐसा करने से उसे भी और हमें भी पड़ोसियों से खूब झिड़कियां सुननी पड़ती थीं, फिर भी इस बात में जो आनंद था, वह हमें प्रतिदिन वैसा करने को प्रेरित करता रहता था. इसके अतिरिक्त मंगल दूसरी गली के बाहर स्थित 'टॉकी' में भी काम करता था. अतः वहां पड़ी कटी-फटी रीलों की छोटी-छोटी तस्वीरें बटोर लाता और हमें दे देता. सचमुच वह बड़ी प्रसन्नता की घड़ी होती थी, जब हम एक-दूसरे की तस्वीरें देख कर घोषणा करते कि यह दिलीपकुमार है, जब कि कोई दूसरा उसके प्राण होने का दावा करता. कभी-कभी हम शर्त आदि लगाने की स्थिति पर पहुंच जाते. ऐसे समय पर मंगल ही हमारे झगड़े में सरपंच का कार्य किया करता. इन छोटी-छोटी बातों के अतिरिक्त खाली समय में उसका हमारे खेलों में रैफरी बनना, कुश्ती के दाव-पेंच सिखाते हुए लंगड़ी मारने के महत्व को स्पष्ट करना आदि उसके और हमारे प्रिय खेल हुआ करते थे. . .

मैं मंगल के बारे में सोचते-सोचते उसी शहर के कालीमाई के मेले में (अचानक न जाने कैसे) पहुंच गया. वैसे इस मेले का मंगल से कोई संबंध नहीं है, फिर भी मैं अपने विस्मृत विचारों के उसी प्रवाह को दोबारा पा लेना चाह रहा था. आखिर कुछ समय

पश्चात थोड़ी सफलता हुई, जब काली माई के काले मुंह में मंगल का चेहरा उभरना प्रारंभ हो गया. मैंने अपने अतीत की ओर पुनः मुड़ना चाहा, परंतु जैसे रस में व्याघात-सा पड़ गया था. कुर्सी पर बैठे-बैठे अचानक मुझे थकान का अनुभव हुआ. मैं थोड़ा हिला, तभी मुझे प्रतीत हुआ जैसे मेरा पैर सुन्न हो गया है. मैं पैर को हिलाने का प्रयत्न-सा करता हुआ पुनः हिप्नोटिज्म के काले घेरे की ओर देखने लगा.

* *

मैं अभी खाना खाने के लिए रसोई की ओर जाने की बात सोच ही रहा था कि मंगल आ गया.

--क्यों मुकेश, रोटी नहीं खानी आज? मांजी बुला रही हैं.

उसका मुझे पुनः मुकेश कह कर बुलाना इस बार इतना, तो नहीं अखरा, पर मम्मी को मांजी कहना. . .पता नहीं क्यों, उसके संबोधनों पर मुझे इतनी आपत्ति क्यों हो रही थी. खैर, इतना मैं अवश्य समझ गया कि वह यह सब कुछ उसी पुरानी आत्मीयता के संबंध को बनाये रखने के लिए ही कह रहा है. मैंने उत्तर देने के पूर्व उस की ओर देखा. वह मुसकरा रहा था. मैंने उत्तर दे दिया--बस, अभी सोच ही रहा था कि उठा जाये. भाई वगैरा खा चुके हैं क्या?

--हां, उन्होंने तो खा ली है. बस मांजी और बाऊ जी ही रह गये हैं.

--यहां आ कर कुछ अजीब-सा तो नहीं लग रहा तुम्हें? मैंने वैसे ही उसे कुरेदते हुए पूछा.

--नहीं, ऐसा तो कुछ नहीं लगा. सच, याद है तुम्हें, जब हम उधर अंजीरें तोड़-तोड़ कर खाया करते थे?. . .

वह बाल्यकाल की यादों में जाने के लिए बहुत उत्सुक प्रतीत हो रहा था. मैंने भी उसे निराश नहीं किया. हम दोनों कालका की बातें करते हुए रसोई की ओर चल दिये.

डैडी रसोई में बैठे थे. शायद मम्मी के साथ मंगल की ही बातें चल रही थीं. मैं भीतर चला गया. मम्मी ने मंगल को, जो रसोई के बाहर ही खड़ा रह गया था, भीतर आ जाने के लिए कहा.

डैडी ने भी उनकी बात का समर्थन किया. मंगल सकुचाता-सा रसोई के अंदर आ गया और एक कोने में दुबक कर बैठ गया. डैडी उससे कह रहे थे---मैंने फैक्ट्री वालों को फोन कर दिया है. वे कह रहे हैं कि कल से ही काम शुरू कर दो तुम. मैं चपरासी को भेज दूंगा. फैक्ट्री दिखा लायेगा तुम्हें. . .

मैं समझ गया. मंगल के लिए नौकरी का प्रबंध किया जा रहा है. डैडी अब बैंक में अकाउंटेंट हो गये थे. इस कारण फैक्ट्री वालों ने उनकी बात तुरंत मान ली थी. वैसे उस समय मैं यह भी सोच रहा था कि मंगल को कितना आदर दे रहे हैं ये लोग! आते ही रसोई के भीतर भी बुला लिया. क्या यह सब करने पर मंगल इस परिवार में एडजस्ट हो जायेगा?

खाना खाते हुए मम्मी ने मुझे उसके बारे में सभी बातें बता दीं, कि कैसे मंगल का अपने बाप से पैसों के लिए झगड़ा हो गया था और कैसे वह उससे झगड़ कर यहां आया है. वह कह रही थीं---सचमुच, किस्मत खराब है इस छोकरे की! मेहनती तो है, पर ग्रह ही उलटे पड़ते जा रहे हैं. मैंने तेरे डैडी से कह कर इसकी नौकरी की बात पक्की करवा दी है. मजदूरी करके पेट पालता रहेगा यह भी. . .वह जरा रुकीं. रोटी आग पर सेंकते हुए थोड़ी-सी भाप उनके हाथ को लग गयी थी. हाथ को झटक कर उन्होंने फिर कहना शुरू किया---फैक्ट्री वाले एक सौ पच्चीस माहवार के लिए मान गये हैं. औरों को तो एक सौ दस ही मिलता है. तेरे डैडी के कारण ही. . .

बात भटकते देख कर मैंने बीच में ही पूछ लिया--अब यहीं रहेगा क्या यह?

---बेसहारा है बेचारा. अभी कुछ दिन वह पास वाले गुसलखाने के पीछे टूटे-फूटे में छोटे कमरे में रहेगा. कुछ देर बाद अपना कमरा किराये पर ले लेगा.

हमारी यह बिल्डिंग पुरानी होते हुए भी काफी बड़ी थी. पहले गुसलखाने के साथ वहां छोटा-सा स्टोर बनवा दिया गया था. पर अब वह काफी टूट-फूट चुका था. अतः वहां एक टूटी हुई चारपाई के सिवा कुछ भी नहीं था.

तो मंगल अब यहीं रहेगा. मैं सोच रहा था कि क्या उस पर इतना प्रेम प्रदर्शित करना उचित है? मैं भी मम्मी-डैडी की तरह जाति आदि की बात तो स्वीकार नहीं करता था, फिर भी मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा था, जैसे मेरे और मंगल के बीच कोई पतली-सी दीवार तन चुकी है. जैसे अब वह मेरा मित्र नहीं हो सकता. शायद इस प्रकार की अनुभूति का कारण उसके-मेरे मानसिक स्तरों में उत्पन्न परिवर्तन ही था. मेरे स्तर का निर्माण पिछले कई वर्षों में बहुत तीव्र गति से हुआ था. तो फिर मम्मी-डैडी. . .मेरी बात का यह अर्थ भी हो सकता है कि उनका स्तर मेरे स्तर से निम्न है! तो फिर क्या यह मान लिया जाये कि उनके अंतःकरण कोमल हैं? यह बात मम्मी पर तो कुछ लागू हो भी सकती थी, पर डैडी पर. . .शायद उन्होंने इस प्रकार का व्यवहार इस कारण से किया हो कि उनका बचपन भी इसी प्रकार गरीबी में गुजरा था. अथवा इसका कारण यह भी हो सकता था कि आजादी मिलने से पहले उन्होंने हरिजनों के साथ मिल कर किसी आंदोलन में भाग लिया था.

खाना खा कर पानी का पूरा भरा हुआ गिलास मैं बिना किसी आवश्यकता के पी गया और उठ कर बाहर निकल आया. आंगन में कुछ राहत-सी महसूस हुई. . .यह आजकल मुझे क्या हो रहा है? मैं इतना आत्मकेंद्रित क्यों होता जा रहा हूं? मुझे अपने आपको इस स्थिति से बचाना होगा. . .कमरों के भीतर बच्चे शोर मचा रहे थे. . .भीतर जाने के लिए मेरा दिल न माना. अतः कुछ समय के लिए घूम आने का निर्णय ले कर मैं दरवाजे से बाहर निकल गया. . .वैसी ही सड़क . . .वैसी ही अनगिनत सड़कें . . .मैं हंस दिया

भीतर-ही-भीतर. . .ठंडक की कल्पना मुझे सुखद प्रतीत हो रही थी. मुझे आनंद-सा आने लगा था. . .सामने से एक ट्रक आ रहा था. मैं किनारे हो लिया. ट्रक तेजी से मेरे पास से गुजर गया. धूल उड़ी और ट्यब-लाइटों की रोशनी में रेखाओं के समान चमकने लगी. अचानक धूल की रेखाओं को देखते हुए मुझे 'ऐसींपटोट्स' की याद आ गयी. मैथमेटिक्स के प्रोफेसर ने मुझे तीसरी बार उसे एक्सप्लेन करके दिखाया था-- एसींपटोट इज दैट पैरेलल लाइन, विच कट्स द कर्व एट इनफिनिटी. . . इनफिनिटी यानी अनंत. . .यानी कहीं भी न मिल पाने वाली रेखा. मिल भी कैसे सकेगी?. . .समानांतर रेखाएं कहीं नहीं मिलतीं. अचानक मुझे याद आया जैसे मंगल भी तो एक ऐसी ही पैरेलल रेखा है--हमारे फैमिली कर्व के लिए. . .कैसे एडजस्टमेंट करेगा वह? कैसे? कैसे?. . .

★ ★

मंगल ने फैक्ट्री जाना प्रारंभ कर दिया था. इसके साथ उसकी दिनचर्या में भी काफी परिवर्तन हुआ था. अब वह सुबह पांच बजे उठता था, और मम्मी के जागने से पहले ही अंगीठी सुलगा देता था.

वैसे मंगल एहसान मानने वाला लड़का सिद्ध हुआ था. उसके लिए यह एक बहुत बड़ी बात थी कि हम लोगों ने उसकी कठिनाई के समय मदद की थी. वह इसे बहुत बड़ी बात मान कर हर प्रकार से यह सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहा था कि वह सचमुच उस एहसान के योग्य था. सहायता का पात्र बन कर अब वह भी हर प्रकार से हमारे परिवार की सहायता करने का प्रयत्न करने लगा. हमारे सोने के कमरे के अतिरिक्त वह साढ़े छह बजे तक सभी कमरों तथा आंगन में झाड़ू लगा देता. इसके पश्चात वह नहाने आदि के कार्यों में लग जाता और अपना पुराना-सा स्टोव जला कर अपनी चाय का पानी उबलने के लिए धर देता. अब तक उसने अपने खाने-पीने का इंतजाम अपने कमरे में ही कर लिया था. अपने लिए आटा और दालें वह बाजार से खुद ले आया था. यह बात और थी कि मम्मी उसके अपने बाप से दूर बैठे होने के कारण करुणार्द्र हो उठती थीं और उसे शाम को सब्जी, अचार तथा छाछ आदि प्रायः भिजवा देती थीं.

साढ़े आठ बजे वह फैक्ट्री चला जाता तथा शाम को चार या साढ़े चार बजे लौट आता. एक बात और भी थी. फैक्ट्री घर से लगभग तीन मील की दूरी पर शहर से बिल्कुल बाहर स्थित थी. मंगल प्रतिदिन वहां पैदल ही जाता, पैदल ही आता था. यही कारण था कि जब वह शाम को वापस लौटता तो बहुत थका होता था. इसके बावजूद उसने सदा अपनी थकान को छिपाने का ही यत्न किया था.

फैक्ट्री से आते ही वह मम्मी के पास रसोई के बाहर जा बैठता. मम्मी उसे प्रायः चाय बना कर वहीं दे दिया करती थीं.

चाय के पश्चात वह प्रतिदिन मम्मी से पूछने लगता कि अगर बाजार से कुछ चीज ले कर आनी हो तो उसे बता दिया जाये. उसके रोज-रोज पूछने के कारण अब मम्मी भी दिन भर कभी बाजार न जातीं और न ही राजी या कुक्कू को भेजतीं.

मंगल रात के खाने की तैयारियां प्रायः छह या साढ़े छह बजे से ही प्रारंभ करता था. अगर उसे बीच में कुछ समय मिलता, तो वह बच्चों के साथ खेलता रहता.

पिछले कुछ महीनों से मुझे यह आदत-सी पड़ गयी थी कि मैं रात के समय उधर आंगन में काफी समय तक घूमता रहता था और कुछ-न-कुछ सोचता रहता था. अब भी उसी आदत के कारण मैं उधर चला जाता तो गुसलखाने के पास मंगल के 'कमरे' में बत्ती जलती दिखायी दे जाती. मुझे बड़ी कोफ्त होती. परंतु फिर मैं उस भावना को दूर करके मंगल के 'कमरे' के दरवाजे पर जा खड़ा होता और उसके साथ कोई बात छेड़ लेता.

मंगल मुझसे सदा हंस कर मिलता और बड़ी ही आत्मीयता से मेरे साथ बातें करता. हमारे वार्त्तालाप के विषय प्रायः या तो बचपन की घटनाओं से संबंधित होते या मंगल के बाप के व्यवहार से. कई बार मैं मंगल से उसकी पढ़ाई के बारे में पूछने लगता, जो उसने नवीं में फेल होने के कारण छोड़ दी थी. मंगल अगर कभी मुझसे कुछ पूछता तो हिप्नोटिज्म के बारे में या किताबी ज्ञान के बारे में. उसे अध्ययन के विषय में इतनी बात जान कर ही संतुष्टि हो जाया करती थी कि बड़ी क्लासों की पढ़ाई किताबें मोटी होने के कारण काफी कठिन होती है.

★ ★

अचानक घनिष्ठता के इन आयामों में आकस्मिक-से परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए. इसका कारण शायद यही था कि मंगल अपने आपको इतने प्रयत्नों के बावजूद इस परिवार में एडजस्ट नहीं कर पाया था. उसके अपने प्रयत्न उसे घर का नौकर अधिक बना रहे थे और घर का सदस्य कुछ कम. और फिर आत्मीयता के संबंधों के लिए जिन एकताओं और समानताओं की आवश्यकता होती है, वे उसके स्तर पर अनुपलब्ध थीं. वह अपने प्रयत्नों के कारण उस स्तर तक एडजस्ट अवश्य हो गया था, जहां उसका स्तर परिवार से कुछ नीचा था, परंतु परिवार के सभी सदस्यों से आत्मीयता का व्यवहार प्राप्त करते हुए वह उस स्तर पर रहना नहीं चाहता था. अतः उसकी मनोवृत्ति अधिकार-प्राप्ति की ओर उन्मुख होती चली गयी. उसे घर में टिके लगभग दस दिन हो चुके थे. अतः उसने उचित अवसर पा कर उस प्रकार की चेष्टाएं आरंभ कर दीं. परंतु सारा परिवार उसे स्वीकार कर पाने की स्थिति में नहीं था.

मैं पहले की तरह उस दिन भी उसके कमरे की दहलीज पर जा खड़ा हुआ. पूर्ववत् वार्तालाप प्रारंभ हो गया. मैं उस दिन की भांति पिछले दिनों में भी जब उसके साथ बात करता था तो जानबूझ उसे किसी दार्शनिक विषय पर घसीट कर ले जाता था, जहां उसका स्तर उसे कुछ भी समझने में असमर्थ बना देता था. ऐसे अवसरों पर वह प्रायः रटी-रटायी कुछ उक्तियां बोल दिया करता था, जैसे सुबह का भूला

अगर शाम को घर लौट आये तो भूला नहीं कहाता, या जिस तन लागे सोई तन जाने. . . आदि. जब वह इस प्रकार की बातें चिंतकों की-सी मुद्रा में सिर हिला-हिला कर कहता तो मैं उसका आनंद लेने के साथ-साथ इन उक्तियों का कुछ उदाहरण दे कर प्रतिवाद कर देता, जिसे स्वीकार करने के लिए वह तैयार न होता.

तो उस दिन भी जब हमारी बातचीत इस चरम सीमा पर आ कर खड़ी हो गयी, अचानक वह मेरी आशा के विपरीत खिसिया कर पहले दिनों वाला वाक्य नहीं बोला. उसे इस बात का तो पूरी तरह एहसास था ही कि मैं मन-ही-मन उसका उपहास उड़ा रहा हूं, अतः उसने इसका प्रतिवाद करने की सोच ली. इतने दिनों के इस वार्त्तालाप का अर्थ उसने आत्मीयता के शब्द में करने की भूल कर ली थी, अतः वह मेरी बात का उत्तर देने की बात को अपने अधिकारों में शामिल करने का प्रयत्न कर रहा था. उसने कुछ देर सोचा, फिर अचानक बोल दिया—बस मुकेश, आगे से मेरा मखौल मत उड़ाया कर. मुझे पता है तू बहुत गियानी हो गया है. मुझे भी पता है इन सारी बातों का और यह भी पता है कि तू कितना जानता है. उसके बोलने के ढंग में दुख की ध्वनि अधिक थी और व्यंग्य की कम. परंतु मुझे उसकी बात में व्यंग्य ही अधिक लगा. उसको इस प्रकार बोलते हुए पा कर अचानक मुझे लगा जैसे उसने अपनी सीमा का अतिक्रमण करके यह बात कही है. आखिर वह हम लोगों पर ही तो आश्रित है!

उस दिन के बाद से मैंने उससे बातें करना काफी कम कर दिया था. केवल काम की बात ही उससे कहता. वह सचमुच में ही 'एसींपटोट' बनता जा रहा था. या तो वह ही समानांतर रेखा हो गया था या फिर मैं कर्व की तरह बहुत पहले मुड़ गया था. . . तभी मुझे याद आया कि उसकी नियति अपने परिवार के साथ भी एसींपटोट वाली ही थी. वैसे खाना खाने के लिए बुलाने वह अब भी आता था. परंतु उसका आना जैसे मुझे खलने लगा था. . .कुछ दिनों पश्चात अचानक मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कि वह मेरे मन की बात को भांप गया हो, परंतु उसने कभी मेरे सामने उस दिन की बात के लिए अफसोस जाहिर नहीं किया.

जिस दिन मेरे और उसके बीच यह घटना घटी थी, उससे अगले दिन ही जब मैं मम्मी और डैडी के दोपहर के भोजन के समय बैठा हुआ था, मुझे पता लगा कि ठीक मेरे जैसी प्रतिक्रियाएं उन पर भी हुई थीं.

मम्मी बतला रही थीं कि अब मंगल जैसे यह समझने लगा है कि वह किसी बहुत ऊंची जाति से संबंधित है. आज सुबह ही अचानक उसने मम्मी से कहा कि उसने हमारे नौकर और बैंक के चपरासी के बीच होने वाली बातें सुनी हैं. मंगल के अनुसार हमारा नौकर चपरासी से कह रहा था कि साहब ने घर में एक चमार जैसी शक्ल वाला नौकर और रख लिया है! इसके अतिरिक्त एक बात और भी उसने कही थी कि नया नौकर उसकी रोजी पर भी लात मारना चाहता है. मंगल ने यह बात सुना कर मम्मी के आगे यह टिप्पणी भी जोड़ दी थी कि नौकर ने इस तरह की बात आज तो उसके लिए ही कही थी, कल हमारे किसी रिश्ते-दार के लिए भी कह सकता है.

मम्मी की बात का डैडी ने (पूर्ववत्) समर्थन किया और प्रश्न उठाया कि आखिर मंगल और कितने दिन तक वहीं रहेगा. आखिर तय हुआ कि अब उसे कह दिया जाये कि वह अपना कमरा कहीं और ले ले.

सो, शाम को ज्यों ही आ कर वह मम्मी के पास रसोई के बाहर बैठा तो मम्मी ने बातों-ही-बातों में उसे अपना मकान लेने के लिए कह दिया. पहले तो वह मम्मी की बात सुन कर उनके चेहरे की ओर देखता रह गया. फिर उसने धीरे से बताया, फैक्ट्री वाले कह रहे थे, अगर मैं चाहूं तो फैक्ट्री के गोदामों के सामने खाली पड़े चौकीदार के कमरे में रह सकता हूं, क्योंकि इससे उनके गोदामों की रखवाली भी होती रहेगी.

—तो फिर चला. . .क्यों नहीं जाता वहां? मम्मी ने कह ही दिया.

—पर, इससे वे मेरे ऊपर एक और जिम्मेदारी डाल रहे हैं. अगर गोदाम से कुछ गायब हो गया, तो मेरा नाम लगा दिया करेंगे. . .वह कह रहा था.

—खैर, चाहे जो भी हो, अब अपना कमरा ढूंढ़ना शुरू कर दे.

खैर, उस दिन तो वह बात इस तरह आयी-गयी हो गयी, पर अगले दिन जैसे ही वह फिर फैक्ट्री से लौटा, मम्मी ने फिर टोक दिया—आज ढूंढ़ा था कहीं कमरा फिर?

—भला आप खुद ही सोचें, मेरे पास कमरे ढूंढ़ने को टैम बचता ही कहां है! फैक्ट्री से थक-हार कर वापस आता हूं, सो घूमने को जी नहीं करता. . .

मंगल अपनी तरफ से तो पूरी आत्मीयता के साथ मजबूरी जताने की कोशिश कर रहा था, पर मम्मी कुछ और भी चिढ़ गयीं. बोलीं—फैक्ट्री से थका-हारा आता है तो अपने लिए! हम पर क्या एहसान जताता है? मंगल ने उस बात को सुना, सोचा, परखा और फिर बिना चाय की प्रतीक्षा किये ही वहां से उठ कर अपने कमरे में चला गया.

* *

इस प्रकार की घटने वाली इन कुछ घटनाओं के संकेत पा कर मंगल भी समझने लगा कि अब उसे यहां नहीं रहना चाहिए. उसने उस दिन के पश्चात शहर में कमरा ढूंढ़ने का कार्य प्रारंभ कर दिया. परंतु इस बात के आड़े अनेक बातें आ जाती थीं, जैसे कि वह अभी तक कुंआरा था, या फिर कमरे की कीमत इतनी होती कि किराया देना उसके वश की बात न होती थी. फिर शहर में उसके चाल-चलन की गारंटी देने वाला कोई न था. और फिर ऊपर से उसकी नीची जाति. . . .

मम्मी के साथ होने वाली उस दिन की झड़प के पश्चात अगले ही दिन एक और घटना भी हो गयी, जिसने मंगल को इस घर की आत्मीयता से और भी परे हटा दिया. उस दिन मेरे बड़े भाई साहब, जिन्होंने पिछले

सालही सर्विस जॉयन की थी, दो-तीन दिन की लगातार सरकारी छुट्टियां होने के कारण घर मिलने के लिए आ गये. राजो और कुक्कू को उनके आने का ऐसा चाव पड़ा कि वे दोनों उन्हीं के आसपास मंडराते फिरते रहे. उस दिन उन्होंनें मंगल के साथ बाजार जाने से भी न कर दी.

खैर, उस दिन की बात तो आकस्मिक भी हो सकती थी. परंतु राजी, कुक्कू और विक्की का यह व्यवहार अगले दिन भी जारी रहा और उसके अगले दिन भी. मंगल, एडजस्ट होने का शायद अंतिम प्रयत्न करना चाह रहा था. उसने मेरे सामने अचानक मम्मी से कह दिया-—क्या बात है, मांजी, अब तो बच्चे भी मेरे साथ खेलने नहीं आते?

सचमुच उस दिन अचानक मुझे न जाने क्यों लगा जैसे कि उसके इन शब्दों में अपार व्यथा भरी है. यदि करुणा उपजाने में इन शब्दों के अतिरिक्त उसमें कोई अन्य कमी रह गयी थी तो वह यह कि बात कहते-कहते उसकी आंखें भर नहीं आयी थीं.

परंतु मम्मी पर न जाने क्यों, इन शब्दों का प्रभाव मेरे विचारों के पूर्णतया विपरीत पड़ा. इस प्रभाव को उन्होंने उसके समक्ष तो प्रकट नहीं किया, परंतु उसके जाते ही वह मुझसे कहने लगीं-—देख लिया न मुकेश, अब यह तेरे भाई साहब से भी जलने लगा है.

कुछ क्षणों के लिए मैंने मम्मी के शब्दों को तौला, तभी लगा, जैसे मम्मी भी इस विषय में काफी सीमा तक ठीक ही थीं. सचमुच सुबह की बुझी अंगीठी में प्रत्यक्ष तौर तर तो राख ही बची हुई दिखायी देती थी, परंतु भीतर एक छोटी-सी चिंगारी अभी शेष थी—आश्चर्य होता है, मंगल की स्थिति. वैसी ही तो हो गयी थी. उस छोटे-से स्फुलिंग की उष्णता को छिपाये हुए उसकी आत्मीयता ने जैसे गिड़गिड़ा कर अपने तेजस रूप के आह्वान का निश्चय किया, परंतु वह जा गिरा किसी और के शरीर पर. जलन हुई, मम्मी और मंगल के मध्य उदासीन युद्ध का नाटक खेला जाने लगा. एक छोर पर मम्मी खड़ी थीं, दूसरे छोर पर मंगल. दोनों एक-दूसरे की प्रतिक्रियाओं को अपने-अपने स्तर पर समझने का प्रयत्न कर रहे थे और मैं दोनों के मध्य अनिश्चित मनस लिये खड़ा था.

घर में घटने वाली इन सभी घटनाओं का मंगल पर क्या प्रभाव पड़ रहा था, मैं पूर्णतया जान न पाया. इस पर भी मंगल इन प्रभावों को अपने व्यवहार से पूर्णतया छिपा न पा रहा था. अब वह प्राय: खोया-खोया-सा रहता. फैक्ट्री से लौट कर मम्मी के पास चाय के लिए न बैठता. बस, उनसे बाजार से कुछ लाने के लिए पूछ कर शीघ्रता से अपने कमरे में चला जाता. कई बार उसका जी रात का खाना पकाने के लिए भी न करता. बस चाय बना लेता और सो रहता.

मम्मी के व्यवहार में भी इन घटनाओं के कारण कुछ परिवर्तन परिलक्षित हुए. अब वह बिना बात कई बार हम पर खीझने लगती थीं. कई बार हमारे कामों में वैसे ही गलतियां निकालने लगतीं.

इसके अतिरिक्त एक बात जो सबके व्यवहार में दृष्टिगोचर हो रही थी, वह यह थी कि अगर हमारे आपस में बातें करते हुए मंगल अचानक सामने दिखायी दे जाता, तो सभी एक-दूसरे से खिंचने लगते.

* *

बड़े भाई साहब के छुट्टियां काट कर पुन: सर्विस पर जाने के ठीक तीन दिन पश्चात अचानक मंगल ने आ कर मम्मी को बताया कि उसे कहीं शहर में ही कमरा मिल गया है.

उसकी बात सुन कर न केवल मम्मी को, बल्कि हम सब को राहत-सी महसूस हुई. मम्मी के मुंह से केवल इतना निकला-—कहां?

-—उधर ही, फैक्ट्री एरिया में.

मम्मी ने और कुछ पूछना ठीक न समझा. वह कुछ देर और वहीं खड़ा रहा, फिर बोला-—आज ही सामान ले जाऊं अपना?

-—जैसे तेरी मर्जी में आये! मम्मी ने गोलमोल-सा उत्तर दे दिया.

शीघ्र ही इस बात की खबर न केवल हम सब बल्कि नौकर को भी हो गयी. यह बात सुनते ही वह पहले थोड़ा चौंका, फिर धीरे से मुसकराया, फिर आधे मांजे हुए हाथ के बरतन को जोर-जोर से रगड़ने लगा.

थोड़ी देर में ही मंगल सामान बांध कर घर से बाहर निकल गया.

* *

मंगल के जाने के दो या तीन दिन बाद तक सभी कुछ सामान्य रहा. हम लोग प्राय: उसके बारे में ही बातें करते रहते. उसके स्टोर में टूटी हुई चारपाई पुन: डाल दी गयी थी. स्टोर में उसके रहने के शेष बचे चिह्नों के रूप में केवल एक गंदा-सा, घिसा हुआ, रूमाल के साइज का, छोटा-सा कपड़ा रह गया था, जिसे वह स्टोव साफ करने के लिए प्रयोग में लाता था. तीन दिन बीतने पर मम्मी फिर से यह आशा करने लगी थीं कि अगर मंगल यहीं है तो वह उनसे मिलने एक-आध बार जरूर आयेगा.

आखिर सारी बात ने एक बार फिर पलटा खाया, जब शाम को बैंक का चपरासी कुछ फाइलें वगैरा ले कर घर आया. आते ही उसने मम्मी से पूछा—मंगल कहीं चला गया क्या?

-—नहीं तो, अभी तो यहीं है.

-—मैं आज बैंक के काम से फैक्ट्री गया था. साहब पूछ रहे थे कि मंगल कहीं चला गया है क्या? उनके यहां से तो सारा हिसाब चुकता कर गया है.

-—क्या! हिसाब चुकता कर गया है!

मम्मी उसकी बात पर बेहद चौंकी थीं और मैं अपने स्टडीरूम में हिप्नोटिज्म के काले घेरे की तरफ देखता हुआ अनुमान लगा रहा था कि मंगल फिर लौट कर आयेगा या नहीं . . . □□□

२९७, लाहौरी गेट, पटियाला (पंजाब)

उन्हें अपने पैरों की आवाजें पीछे से लौटती हुई सुनाई पड़ रही थीं. पार्क से निकल वे फिर सड़क पर थे.

—आगे फिर चौरंगी को भीड़ होगी, लड़के ने कहा. लड़की जैसे अचानक चलते-चलते रुकी हो और उत्तर में उसके कदम बहुत छोटे और धीरे हो आये. लड़के को इससे और भी तेजी से महसूस हुआ, उन्हें अब जल्दी ही बिछुड़ जाना है.

अगला मोड़ आ गया. बहुत सी कारें अचानक गुजर गयीं. लड़के को पूरी तरह लगने लगा कि कुछ ही देर में वे शायद कभी न मिलने के लिए बिछुड़ जायेंगे.

—तुम कल किस समय जा रही हो. तुम्हें कल फोन करूं?

लड़की चुप रही.

उन्होंने चौरंगी से कार निकाल फिर एक और चक्कर उसी सड़क पर लगाया. इस बीच भी वे कुछ बातें नहीं कर सके. लड़के ने कार छोटे रास्ते से वाई. डब्लु. सी. ए. की ओर बढ़ा दी. हॉस्टल से पहले रोक वह लड़की के टैक्सी लेने तक रुका रहा. टैक्सी का इंतजार करते समय लड़की ने कहा—नहीं हॉस्टल में नहीं. लड़का काफी देर बाद अपनी बात का उत्तर समझा.

* *

अगली सुबह सर भारी था. लड़का नींद खुलते ही कौंधा, वह सारा दिन क्या करेगा. लोगों की लंबी लिस्ट से उसे कोई भी नाम ठीक नहीं लगा. फिर इतवार में कौन मिलता है. लड़का लेटा रहा.

दस बजे वह फिर तैयार था. कमरे के अंदर वह फिर घूमने लगा. ऐसे ही एक बार फिर चौरंगी घूम कर आयेगा, उसने सोचा. साढ़े ग्यारह वह फिर तीसरी बार वाई. डब्ल्यू. सी. ए. पर था.

रिसेप्शन रूम में वह देर तक इंतजार करता रहा. उसे अपने आप पर रह रह कर गुस्सा आया. अच्छा होता सर्वेंट बिना ढूंढ़े ही कह देती कि वह जा चुकी है या कहीं बाहर गयी है.

लड़का उठा और फिर उसे लगा उसके इस तरह से जाने से न जाने ये क्या सोचें. और फिर सोफे में धंस गया.

लड़की के ठंडे हाथों ने उसे जगाया. —इंतजार करते थक गये थे न?

—नहीं तो.

लड़की के हाथों में लटका पर्स बता रहा था कि वह बाहर जाने के लिए तैयार हो कर आयी है. वह उठ खड़ा हुआ.

दोनों फिर चुपचाप बाहर निकल आये. चौरंगी के पास रोक आज भीड़ वाले मार्केट में काफी देर घूमे. फिर एअर कंडीशंड रेस्त्रां के अंदर लंच के लिए घुस गये. रेस्त्रां से बाहर निकलते ही लड़के ने पूछा—अब?

लड़की चुप रही.

—अब फिर वापस चलें. तुम्हें तुम्हारे होस्टल—

लड़की चुप थी. कार फिर चौरंगी वापस थी. पार्किंग के बाद कोई नहीं उतरा.

—लौटूंगा. थोड़ा सोना चाहता हूं. पूरी शुक्र शनि की दो शाम तुम्हारे साथ. . .उसके बाद दोनों में बिल्कुल नहीं सो पाया.

—तुम्हारे फ्लैट पर. . .

—तुम भी आराम कर लेना.

—इतने में कुछ किताबें या मैगजीन पढ़ लूंगी.

* *

कार के पार्क करने तक वह बहुत धीरे-धीरे अन बिल्डिंग की ओर बढ़ती रही. लड़का जब तक लौटा, लिफ्ट के काफी करीब पहुंच चुकी थी.

लिफ्ट खाली थी. लड़के ने लिफ्ट बंद की और का बटन दबा दिया. लिफ्ट रूकी. और फिर एक दर में लड़के ने चाभी धुमा दी. वह अंदर गयी और लड़का. लेकिन दरवाजा लड़की ने ही वापस बंद किय

लड़का मैगजीन और कुशन दे एक दरवाजे से हो गया. मैगजीनों के बीच वह सोचती रही शाम की से वापस जाने के लिए उसे अब वापस लौट जाना चा

उसे लगा वह थक रही ह. उसने आंखें मींच सैंडिल उतार टेबल पर पैर फैला दिये. सोने से लड़की ने देखा लड़के वाला दरवाजा अभी भी उसी आधा खुला और आधा बंद है.

लड़की की आंख लग गयी.

लड़का धीरे से आया. नहा कर एकदम ताजा लड़की सोफे पर ढीली हो आयी थी.

लड़का खड़ा रहा. सोचता रहा, सोने दे या

प्रतिरोध

• सुधींद्र कुमार

—मिस शैल —शैल. लड़के ने दोनों बार धीरे पुकारा.

सोफे पर फैले हाथ को उसने छुआ. लड़की का गरम लगा. उसे तुरंत ही अपनी उंगलियों के ठंडे होने आभास हो आया.

—हां

उसे लड़की की आवाज सुनाई दी. उसने चौंक अपना हाथ उठा लिया.

—अंदर आराम कर लो. मैं काफी बना इसके साथ ही लड़का मुड़ गया. लड़की की आंखें खुल आयीं. लड़की उठी और उसी दरवाजे की ओर गयी जिसमें उसने लड़के को जाते देखा था.

बिस्तरा ठीक था. वह लेट गयी. कोई ए उसके शरीर में लहर की तरह गुजर गया. वह के किनारे पर सिमट आयी. उसका शरीर इस

● किरण गोकुल

जैसे जम गया.

—काफी.

लड़का पास तक आया टिपाय पर गिलास रख कर दूसरा गिलास ले बेड की दूसरी तरफ से दूसरे किनारे पर सिमटा-सा बैठ गया.

—शायद मैंने दो बार सोने नहीं दिया.

—काफी बहुत अच्छी है.

—हूं. लड़का बस मुसकराया.

एक लंबा मौन रहा. लड़का कुछ आगे सरका. उसके पास तक उसका हाथ आया. लड़की ने महसूस किया. वह काफी के घूंट भरती सीधा देखती रही. लड़के ने थोड़ी देर हाथ को उसी तरह रख फिर अपनी ओर खींच लिया.

गिलास खाली हो गये. लड़का फिर उठा और दोनों गिलास ले फिर गायब हो गया. अब लड़की पूरी तरह से बिस्तरे पर फैल गयी. शायद काफी के साथ ही वह रिलेक्स हो आयी थी.

एक बार फिर उसे लगा कि वह शुन्य में खोती जा रही है. पहली बार भी किनारे से लेट अपने शरीर को खो निर्जीव हो गयी थी और अब पूरी तरह फैल कर.

लड़का अंदर आया. लड़की ने आंखें नहीं खोलीं, उसकी सांसें तेज हो आयीं. वह उसी किनारे से लग कर बैठा. लड़की ने मैट्रस के दबने से महसूस किया. लड़की ने आंखें खोलीं और फिर सर के ऊपर चलते पंखे को ताक बंद कर लीं.

शायद उन दोनों के सांस रुके. सिर्फ पंखे की हवा का शोर उनके बीच ठहर गया. लड़की को कमर के नीचे बेड की चादर उससे चिपकती लगी. लड़की ने चाहा वह थोड़ा सरके और चादर को छुड़ा ले. लेकिन वह लेटी रही. उसे लगा सरकते ही वह उसे छू गयी होगी.

लड़का सोने की जगह हेड-रेस्ट का सहारा ले कोई किताब या मैगजीन पढ़ता रहा और लड़की पन्नों के पलटने की आवाजें सुनती रही.

लड़के का पैर उसके पैर से छुआ और फिर दोनों के छूते पैर उसी जगह ठहर गये. उसे लगा उसके पैर का खून जमता जा रहा है.

लड़की को शरीर का बाकी हिस्सा गरम होता लगा. सर से ले कर पैरों तक उसे पसीना तेजी से उतर आया. उसे लगा पंखे की हवा पसीने में कुछ नहीं कर पा रही है और चादर उसके ब्लाउज और साड़ी के पार भी चिपकने लगी है.

लड़की हिली. शायद लड़के ने उसकी उंगलियां पकड़ लीं और उसकी उंगलियां लड़के के हाथों में निर्जीव हो गयीं. उसे लगा उसके शरीर में छुड़ाने की कोई भी शक्ति नहीं है.

लड़के ने उंगलियों को अपनी उंगलियों के बीच फंसा कर दबाया. लड़की को लगा उसमें सिहरन हुई है—मुंह से मुंह चिपका कृत्रिम सांसों के द्वारा सांसो के वापस लाने सी. और वह जैसे सिहरन को रोक नहीं पा रही है. और फिर लड़की ने उंगलियों से दौड़ती सिहरनों को बढ़ता ही महसूस किया. उसे लगा उसके न चाहने के बावजूद वह खुद इसमें उलझती जा रही है. गुलगुली-सा उसे कुछ गुदगुदाता गया. और वह फिर उसमें स्वयं पूरी तरह से डूबती गयी.

लड़की की आंखें खुलीं तो कमरे में पूरा अंधेरा भर चुका था. उसे सबसे पहले यही कौंधा कि उसकी गाड़ी जा चुकी होगी. उसने फिर भी समय देखना चाहा. घड़ी वाला हाथ लड़के की गरदन के नीचे दबा था. लड़के की सांसें उसके शरीर से टकरा रही थीं. कंधे से अटका कपड़ा उसे चुभता महसूस हुआ उसने कपड़ा निकाल देना चाहा लेकिन उसे लगा लड़का उठ जायेगा और उसे छुने वाला लड़के के चेहरे और सांसों का स्पर्श खतम हो जायेगा.

लड़का जब उठा तब लड़की सो रही थी लेकिन उसे भूख बड़े जोरों से लग आयी थी. वह लड़की की बिना परवाह किये उठ गया लेकिन जब लड़की उसी तरह सोती रही तो वह लिफ्ट से दो खानों के लिए नीचे उतर गया. □□□

सुधी इंडस्ट्रीज, फ्री गंज रोड, हापुड़

कृतियां

एक उपन्यास

'कंधे से टंगी बगावत'

लेखक : अजित पुष्कल;
प्रकाशक : स्मृति प्रकाशन,
६१, महाजनी टोला, इलाहाबाद;
३५४ पृष्ठ; ११ रुपये.

किसी कृति में सामाजिक संदर्भ से आरंभ हुई बात व्यक्ति-संदर्भ में उलझ कर टूट जाये तो उस कृति का प्रभावहीन हो जाना निश्चित है. यही अजित पुष्कल के इस उपन्यास के साथ हुआ है. बुंदेलखंड के ग्रामांचल पर आधारित इस उपन्यास की शुरुआत हुई है जमींदार श्रीनाथ और कुलपुरोहित रामपत के संघर्ष से, जो अपने आपमें जमींदार बनाम सामान्य जन के संघर्ष का प्रतीक है. श्रीनाथ जब रामपत को जमीन से बेदखल कर देते हैं तो मानो यह संघर्ष एक स्पष्ट वर्ग-संघर्ष का मार्ग प्रशस्त कर देता है. इस संघर्ष में रामपत की मृत्यु भी हो जाती है, और फिर आगे जा कर यह संघर्ष रामपत के पुत्र दिल्लीपत और श्रीनाथ के पुत्र बड़े भइया की पीढ़ी में खिसक आता है. रामपत उपन्यास के आरंभ में ही अपनी पत्नी से कहता है: 'उनके गुंडे आयेंगे, खेतों से हमारी फसल काट ले जायेंगे. ज्यादा कुछ करोगी तो हाथ-पांव तोड़ देंगे. पंडिताइन, हत्या कई तरह से होती है. गंडासे से, कर्ज से, धोखेधड़ी से और सामने परोसी थाली छीन लेने से!' और रामपत का यह संवाद उपन्यास के आरंभ से काफी दूर तक प्रतीक वाक्य-सा प्रतीत होता है, लगता है कि यह एक सही वर्ग-संघर्ष को जन्म देगा. दिल्लीपत का व्यवहार और तेवर बहुत. दूर तक प्रतीक वाक्य के विचार की पुष्टि करता है, लेकिन धीरे-धीरे उपन्यास मानो अपने मूल मार्ग से भटक जाता है और व्यक्ति-संदर्भ व व्यक्ति-संघर्ष की सीमाओं में उलझ जाता है. दिल्लीपत एकाध बार जरूर बड़े भइया से बदला लेता है, लेकिन धीरे-धीरे वह महज एक बागी और अपने गिरोह के साथ जंगल-जंगल भटकने वाला डकैत बन कर रह जाता है. वह चंदा नामक वेश्या को भगा लाया है, इसलिए उसकी प्रेमिका श्यामली उससे क्रुद्ध हो जाती है. शिरोमन के साथ मिल कर वह दिल्लीपत के खिलाफ षड्यंत्र कर डालती है. धीरे-धीरे घटनाएं नाटकीय मोड़ लेती हैं. दिल्लीपत श्यामली के षड्यंत्र के कारण बड़े भइया से लड़ाई होने के फलस्वरूप फरार होता है, लेकिन अंत में जमींदारों—अत्याचार करने वालों के प्रतीक—को तो मानो भुला ही देता है. यही नहीं, वह चंदा को भी भूल जाता है और बड़े नाटकीय ढंग से एक रोज बीमार श्यामली को अपने कंधे पर उठा कर जंगल में ले जाता है. उसके सहयोगी पलटू, बोंगा, पहलवान आदि उसे इस कार्य में सहयोग देते हैं. उपन्यास खत्म हो जाता है.

लेखक की ओर से दिये गये 'और अंत में' अध्याय में नायक दिल्लीपत के अलावा श्यामली, चंदा, शिरोमन व अन्य सहायक पात्रों का जिक्र है, लेकिन बड़े भइया की कहीं कोई चर्चा नहीं है. क्यों?

कहीं ऐसा तो नहीं कि लेखक का मूल उद्देश्य दिल्लीपत की कहानी को महज एक प्रेमकथा के रूप में प्रस्तुत करना रहा हो और थोड़ा-सा वर्ग-संघर्ष उसमें संयोगवश आ गया हो, या कथावस्तु की मांग के कारण विवशतावश लाना पड़ा हो? यदि हां, तो फिर न्यास का नाम 'कंधे से टंगी क्यों?

☐ प्रदीप

अजित पुष्कल

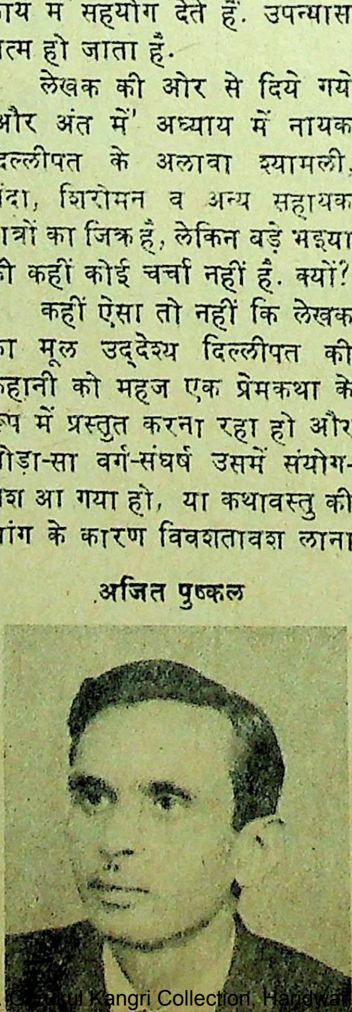

कहानी-संग्रह

'एक टुकड़ा आका

संपादक : प्रफुल्ल प्रभाकर;
प्रकाशक : प्रभाकर प्रकाशन,
५०-२४ तेला सदन, अजमेर.

संकलन में राजस्थान के प्रति कथाकारों की कहानियों के लन का दावा किया गया है कहानियों की संवेदना इस सी परे है. अधिकांश कहानियां क्रिया जगाने में कामयाब हैं. स्वयंप्रकाश, रमेश उपाध्याय, मधुकर, मन्नू भंडारी, ईश्वर अशोक आत्रेय एवं यादवेंद्र चंद्र आदि की कहानियों का ष्ट्य अप्रत्याशित नहीं है. अलावा अन्य कहानियों में जिंदगी का कोई-न-कोई चिलाता टुकड़ा है.

स्वयंप्रकाश की **'मात्रा और भार'** 'सारिका प्रकाशित हुई थी. यह संकलन पहली कहानी है, और अपने पन को प्रमाणित भी करती पारिवारिक परिवेश में मनःस्थितियों का सादा और प्रस्तुतीकरण जहां मन को स्पर्श देता है, वहीं अंत में ठूंसी बलात् आदर्शवादिता से जाता है. यहीं लेखक का पैबंद-सा उभर आता है.

अशोक सक्सेना की एवं कमर मेवाड़ी की **जंगल'** में ऊब है. कुंठा की व्यक्ति कितना तिलमिला है! उसे हर क्षण बासा और खाया हुआ लगने लगता है सही मनोदशा की सही अभि है, लेकिन इन कहानियों में कलात्मकता नहीं कि इस स्रोत तथा उसकी सरसता जायका भी पाठक को मिल कहानी में किसी भी तरह की स्थिति हो, कितनी ही दुरूह कितनी ही बीभत्स, पर उस

सौंदर्यनुमा संप्रेषणीयता भी हो सकती है, जो पाठक की चेतना को आकर्षित किये रहती है---ये गुण मन्नू भंडारी की **'क्षय'**, हबीब कैफी की **'वे तीन'**, मनमोहिनी की **'कवच'**, मनोहर वर्मा की **'विकल्प'** और 'चंद्र' की कहानी में मौजूद हैं.

किशन शर्मा, सुभाष दीपक, सुरेश शर्मा, भास्कर, प्रफुल्ल प्रभाकर, विनोद सोमानी 'हंस' कदाचित नये नाम हैं. इनकी कहानियां भी परिचित सतह से हट कर हैं. प्रत्येक कहानी में आधुनिकता को छूने का प्रयास स्पष्टत: मालूम होता है. सब विभिन्न स्तरों पर अपने उद्देश्य में सफल हुए हैं.

राम जैसवाल की 'गंध' में शालीन मौन का स्वर प्रखर है. रमेश सत्यार्थी की कहानी 'अपने ही घर में' चिर परिचित स्थिति को लेकर लिखी गयी है. आर्थिक विषमता के सूत्र आदमी को न केवल अपने आपसे अपितु घर से भी बेगाना बना देते हैं. कहानी में स्वाभाविक प्रतिक्रियाओं की रक्षा संपूर्ण सहजता से हुई है.

मणि मधुकर ने अपनी कहानी **'उजाड़ और अवसरे'** के माध्यम से नये आयामों को दस्तक दी है. मणि मधुकर ठीक नाजुक वक्त पर उन मानवीय पहलुओं को समेट गये जो अब तक हिंदी कहानी के लिए परायी चीजें थीं. कहानी की पृष्ठभूमि में रेगिस्तान की रेत और दो देशों की सीमाएं हैं. ऐसे रेत के छोर पर ले जा कर कहानी जगाना. . .अछूते श्मशान में जा कर सिद्धि करने जैसा ही है.

□ राजेशकुमार जैन

कहानी-संग्रह

'गुजराती की पुरस्कृत कहानियाँ'

संपादक : आबिद सुरती ; प्रकाशक : पराग प्रकाशन, दिल्ली- ११००३२; १५२-८ पृष्ठ; २० रुपये.

आबिद सुरती

चयनकर्ता और संपादक आबिद सुरती के अनुसार आधुनिक गुजराती कहानी १९५५ के आसपास से शुरू होती है, और इस संग्रह में उस काल की कहानी है विट्ठल पंड्या की **'अमृत का जहर'**, जोकि किसी भी स्तर पर उल्लेखनीय नहीं मानी जा सकती. इसके अलावा पंद्रह और पुरस्कृत कहानियां है -- **'भेड़िया और श्री पापी'** (पवनकुमार जैन), **'तप'** (मोहम्मद मांकड़), **'बुरी छाया'** (मूलराज रूपारेल), **' "क्ष" पर से कोई गीत आता है?'** (अश्विन देसाई), **'तीसरी आंख'** (आबिद सुरती), **'कांच के पीछे'** (वेणीभाई पुरोहित), **'छोटी-सी घटा'** (अभेसिंह परमार), **'शिखा एक, शिखा दो'** (रमेश कोटक), **'मैं-दो'** (विभूति शाह), **'झिलमिलाते हुए चेहरे'** (दिनकर जोषी), **'स्त्री'** (शशि शाह), **'खुले आकाश का एक टुकड़ा'** (सुहास ओझा), **'गृह-प्रवेश'** (ईला डेव), **'पानी बिच मीन पियासी'** (हरिसिंह क. दोड़िया) और **'खून की सगाई'** (ईश्वर पेटलीकर).

पठनीयता और शिल्प-शैली के हिसाब से ये सारी कहानियां अच्छी-खासी हैं. शायद इसीलिए पुरस्कृत हैं. मगर ये श्रेष्ठ भी होंगी, इसमें पूरा-पूरा शक है; क्योंकि इनमें से अधिकांश कहानियां समकालीन संदर्भों से च्युत है---इनमें से किसी भी कहानी का पात्र किसी भी 'वाइटल' सामाजिक, आर्थिक या व्यवस्थागत असंगति से जूझता नहीं मिलता; ज्यादातर को कोई न-कोई 'संगीतमय' तकलीफ है.

ताज्जुब है कि इन तमाम कहानियों की पृष्ठभूमि नगर है और पात्र मालदार किस्म के अनोखे-अलबेले लोग. एक तरह से यही इन कहानियों के दोषों की जड़ भी है; क्योंकि औसत गुजराती शहरी प्राय: संपन्न प्राणी होता है, और कोई कारण नहीं कि उसके संघर्ष और व्यथाएं उस आम आदमी जैसी ही हों, जो पिछले कुछ वर्षों से हिंदी और शेष भारतीय कहानी में तेजी से उभरने लगा है. यानी १९४७ के बाद का हिंदुस्तान और आम हिंदुस्तानी इन कहानियों में नहीं मिलेगा.

* *

प्रतीक शैली में कही गयी पवन कुमार जैन की **'भेड़िया और श्री पापी'** जरूर इस दृष्टि से अपवाद है, मगर प्रतीकात्मकता के फेर में पड़ कर यह कहानी पैनी के बजाय सुहानी हो कर रह गयी है. इसी प्रकार **'बुरी छाया'**, **' "क्ष" पर से कोई गीत आता है?'** और **'स्त्री'** अपेक्षाकृत बेहतर यथार्थ दृष्टि वाली रचनाएं मानी जा सकती हैं. यदि इनके लेखक संस्कारगत रूमानियत के फेर में पड़ कर इनमें अवांछित नाटकीयता और सुंदरपन न घुसेड़ते तो काम फतेह था. शशि शाह ने **'स्त्री'** का अंत करते हुए वेश्या का हृदय-परिवर्तन-सा करके एक खूब बढ़िया कहानी का बंटाढार कर दिया है. इसके विपरीत दिनकर जोषी की **'झिलमिलाते हुए चेहरे'** एक सीधी-सादी व्यथा को अतिरंजित करके पेश करती है.

'तीसरी आंख', **'छोटी-सी घटा'** और **'शिखा एक, शिखा दो'** इस संग्रह की बढ़िया कहानियां हैं.

संग्रह की कहानियां शायद गुजराती की प्रतिनिधि कहानियां नहीं हैं, मगर गुजराती कथा-साहित्य का एक प्रतिनिधि चित्र अवश्य प्रस्तुत करती हैं.

□राम अरोड़ा

उसे शॉपिंग के लिए जाना था इसलिए इधर-उधर भागदौड़ चल रही थी. दरअसल उसकी यह आदत ही थी.

भागते-दौड़ते काम करने से आदमी बड़ा व्यस्त दिखाई देता है और व्यस्त दिखाई देने से आदमी का बड़प्पन बढ़ता है. यह सब एक मेजर की पत्नी के योग्य ही था.

—मां, इतनी भागदौड़ क्यों हो रही है? पहले मेरी तरफ देखो, चारपाई पर पड़े-पड़े संजू ने हुक्म दिया.

—चुप रहो, शब्द होठों तक आते-आते रुक गये. तरसती आंखों को देखकर मन पसीज गया, शॉपिंग का क्या? होती रहेगी धीरे-धीरे...

कैसा आनंद से लोट रहा है मेरा मुन्ना! अधखुली पलकें, नीली आंखें और उनमें से झांकती नटखट हंसी—मेजर साहब का ही प्रतिबिंब.

वह रुक गयी.

—हट शैतान कहीं के! कहता है मेरी ओर देखो. क्यों देखूं भला? पर ऐसा कहते हुए भी आंखों से प्यार उमड़ा जा रहा था.

उसे लगा वह बिल्कुल मेजर साहब का डुप्लीकेट है—फूले हुए गालों समेत.

—मेरा लाड़ला राजा बेटा! गाल कितने सुंदर हैं! मेजर की याद में विह्वल होकर उसने मुन्ने के फूले हुए गाल दोनों हाथों की चुटकियों से पकड़े.

—बस करो मां, बस करो, मेरे गाल दुखने लगे, बच्चे ने अपनी बात साफ-साफ कह दी. बच्चा भला विरह के आवेग को क्या समझे?

—दुखने दो, दुखते हैं तो. कितने दिन हो गये उनसे मुलाकात हुए... मन ही मन वह बुदबुदाने लगी.

—कह दिया न, बस करो. मेरे गाल क्यों मींचती हो, संजू का वही सीधा सट्ट रवैया.

वह होश में आयी पर ममता एकदम उफन पड़ी.

फिर वही हमेशा का धीरे-धीरे आगे बढ़ने वाला भालू और गुदगुदी. हलुआ, खीर आदि नामी-नामी मिठाइयां गिनाते-गिनाते कढ़ी में होनेवाला उसका अंत.

—मां..ऽ..ऽ..ऽ हम भी यहां हैं...

अचानक दूसरी चारपाई पर ईर्ष्या जागृत हुई अच्छा, हमें तो पता ही नहीं था.

—कैसे होता पता? मुझ पर प्यार हो तब न?

—ऐसे तो चलता ही है. किसी पर प्यार ज्यादा तो किसी पर कम?

वह भी मेजर साहब का ही पुत्र. उन्हीं के ढंग से बोलने वाला.

—अच्छा यह बात है? मुझ पर तुम्हारा प्यार कम है न? तो लो मैं भी सेना में भर्ती हो जाता हूं. हमें गोली लग भी जाय तो क्या? मैं कौन हूं किसी का?

—अरे, अरे! इतने तुनक गये. जरा-सी बात पर, आखिर मेजर की पत्नी को ही झुकना पड़ा. दूसरी चारपाई पर जाकर अपने दूसरे लाड़ले को उसने गोद में उठा लिया.

—क्यों मां, वह तो तुम्हारा लाड़ला और मैं?

—तुम भी मेरे लाड़ले बेटे हो, पुरानी यादें उ आयीं, साथ ही बच्चे का सहलाना भी बढ़ गया.

—रहने दो, रहने दो, नहीं चाहिये तुम्हारा प्या चोट खाया हुआ स्वर.

—क्यों? क्या हुआ?

—संजू को पहले प्यार किया और मुझको बाद में.

—अरे तुम दोनों ही मेरे हो, कहते हुए उसने रा को चूम लिया. रगड़ कर गालों छूते हुए दूसरा सवाल मुझे ऐसा जूठा प्यार नहीं चाहिए. बताओ मुझे पह प्यार क्यों नहीं किया?

गुस्सा तो जैसे बिल्कुल उसकी नाक पर धरा था.

हताश-सी होकर वह बोली—सच है बाबा! कि से मिलजुल कर रहना तो तुम्हारे खून में ही नहीं है उन्हें भी तो तालमेल कहां जचता है.

—क्या कहा मां?

वह चौंक पड़ी.

—मां क्या तुम्हें डैडी की याद आयी?

—नहीं, नहीं, चौंके हुए ही उसने बात बनाने का असफल प्रयत्न किया. फिर तुमने कैसे जाना? पल कर उसने पूछा.

राहु और केतु

मंदाकिनी गोगटे

जवाब में वह हल्के-से मुसकरा दिया, बिल्कुल मेजर साहब की तरह.

—इसमें कौन बड़ी बात है? जैसे मुझे याद आते हैं, वैसे ही तुम्हें भी. क्यों ठीक है न?

बालसुलभ उत्तर सुन कर वह पस्त हो गयी. जमीन पर से पांव अब फिसलते-से लगने लगे

—मां..ऽ..ऽ...संजू को पीट डालूं?

—क्यों बेटे उस पर इतना गुस्सा क्यों?

—क्यों नहीं! जब देखो तब हमारे प्यार के बीच न जाने कहां से आ टपकता है. बोलते समय उसके गाल और भी ज्यादा फूल गये.

शादी से पहले उनकी भी यही जिद थी जो कोई भी रास्ते में आड़े आयगा, उसे तोड़ कर रख दूंगा. ऐसी हिम्मत रखता हूं, इन हाथों में. एक बार पसंद आ गयी सो आ गयी...

उसे लगा मानो मेजर साहब की ही अदा से फूले हुए गाल सवाल पूछ रहे थे.

पुचकारते हुए समझाने के स्वर में उसने कहा—

अरे, वह तुम्हारी पीठ का छोटा भाई है. तुम उससे बड़े हो. तुम्हें तो उसका पूरा खयाल रखना चाहिए.

राजू कुछ बोला नहीं. धीरे-से हंस दिया. स्वस्थ एवं सुडौल शरीर के उभरे हुए तगड़ेपन पर स्मित की रेखा बड़ी लुभावनी लग रही थी.

—बिल्कुल पठान हो, पीठ पर स्नेह से हाथ फिराते-फिराते उसने कहा.

'हम इन पठानों को फौज में भर्ती करायेंगे. सीधे कमांडर इन-चीफ बनायेंगे, उसके डैडी ने एक बार कहा था.

ना बाबा ना. फौज में तो बिल्कुल नहीं. बाद में सिर्फ यादों पर ही जीना पड़ता है. वह बुदबुदाने लगी.

मन पर असह्य तनाव और विरह की चुभन बढ़ने लगी.

. . .कितने दिनों से मुलाकात तक नहीं हुई. छुट्टी लेना तो दूर रहा, एक मामूली-सा खत भी नहीं लिखा. क्या मुझे भूल गये ? या कोई दूसरी. . .?

यहां पर आये भी तो सदा बहार ही बाहर रहे. एक मेजर की पत्नी हो ना, कभी महसूस न कर पायी! अनजाने में उसकी आंखें भीग गयीं !

—मां. . .ऽ तुम रो रही हो? प्रश्न पूछते वक्त उसकी आंखों में इस बात की आश्चर्य की मुद्रा थी कि बड़े लोग भी कभी रोते हैं.

—नहीं-नहीं मुन्ने! रो कहां रही हूं यह तो आंखों में कुछ गिर गया है. अपना हमेशा का नाटक आज भी खेला.

—हमेशा मम्मी की आंखों में कुछ कैसे गिर जाता है?

● महेंद्र बंसल

—हां! समझ में नहीं आता. पहले तो हमें प्यार करती है. फिर तुरंत इसकी आंखों में कुछ गिर जाता है.

—अच्छी बात है, मम्मी! जाओ, मत करो हमें प्यार, बोलते वक्त हमेशा की तरह गाल फूल कर कुप्पा हो गये.

पर उसकी आंखों में जो कुछ गिरा था, वह निकल ही नहीं रहा था.

टेलीफोन की घंटी अचानक बज उठी.

भाग कर उसने रिसीवर उठाया.

—इज इट फोर फाइव सिक्स थ्री नॉट वन ?

—यस प्लीज.

—मिसेज सुलोचना रेगे?

—स्पीकिंग.

—प्लीज स्पीक टू मिस्टर रेगे

उनका अनपेक्षित ट्रंक काल .

वही चिरपरिचित आवाज .

—कहो कैसी हो? हमारी याद आती है ?

अपनत्व से सराबोर आवाज में प्रश्न . मन की हजारों पंखुड़ियां एक साथ खिल उठीं .

—बहुत ज्यादा याद करती हूं तुम्हें. . .आपको. . . बच्चों को सामने देख कर उसने झिझक कर जवाब दिया.

—सचमुच? तभी तो फोन किया.

खुशी के मारे मन सातवें आसमान पर पहुंच जाना चाहता था, फिर भी उसे लगा कि मन में उठी आशंका उन्हें बतला कर बोझ हलका कर लिया जाय.

—मां, किसका फोन है?

कौतूहल भरी चार आंखों में प्रश्नचिह्न दिखायी दिया.

वह सहम गयी. इन दोनों के सामने खुल कर कैसे बात की जाय?

—अच्छी तरह हो न ? फिर से प्रश्न .

—अं. . .हां उसने जैसे-तैसे जवाब दिया.

—क्यों क्या हुआ? उधर से प्रश्न .

—नहीं नहीं, मजे में हूं. किसी भी तरह उसने जवाब तो दे दिया पर उस तरफ संतोष नहीं हो रहा था.

इसी बीच ठीक उसके सामने हथेली पर ठुड्डी टिकाये चौकन्नी आंखें टकटकी लगाये देख रही थीं.

बेचारी क्या करे? क्या न करे?

—अरे ! तुम दोनों यहां खड़े क्या कर रहे हो जरा भीतर चले जाओ, चिढ़ती आवाज में उसने कहा.

—क्या कहा तुमने ? उधर से प्रश्न .

वह बिलकुल गड़बड़ा गयी.

—मां ऽ डैडी आने वाले हैं?

—मां डैडी से कहो ना जल्दी चले आयें, कमर पर हाथ धरे शरारतभरी आंखें ऊपर की ओर ताक रही थीं.

—हां-हां कह दूंगी, तुम दोनों भीतर तो जाओ, मनाने की मुद्रा में वह बोली.

—नहीं, पहले हमारी बात डैडी से कहो, चारों आंखें फिर भी उसी पर टिकी हुई थीं.

—क्यों? हो क्या गया है तुम्हें? बोलती क्यों नहीं? उधर से प्रश्न!

—जरा रुकिए जी. देखो तुम दोनों भीतर जा कर

दस्युराज सुल्ताना

कुख्यात भांतू कबीले के सुल्ताना को अंग्रेजों ने शांति व व्यवस्था की स्थापना के नाम पर अन्य कबीले वालों के साथ कैद कर लिया था. पर किसी तरह वह जेल से भाग निकला और डाकुओं के एक दल में शामिल हो गया. और फिर एक दिन वह भी आया जब सुल्ताना गंगा-सिंधु के मैदान का सबसे बड़ा डाकू बन गया. वह अमीरों को लूटता था और लूट कर गरीबों में बांट देता था. उसकी आकांक्षाओं की कोई सीमा नहीं थी—लूटना, लड़ना, हत्या करना, कानून को चुनौती देना-बस यही उसका काम रह गया था. भारत के इतिहास में सुल्ताना जैसा खूंख्वार डाकू कोई और नहीं हुआ.

भारत के रॉबिनहुड के नाम से प्रसिद्ध सुल्ताना की सनसनीखेज व रोमांचक कथा.

१ फरवरी १९७६ अपनी प्रति आज ही खरीदें.

इंद्रजाल कॉमिक्स

कैरम खेलो. जो जीतेगा, उसे पांच रुपये इनाम दूंगी.

—रुकी क्यों? बात करने मे क्या परेशानी है तुम्हें? जानती नहीं ट्रंक काल का समय नपा-तुला होता है, उधर की आवाज में नाराजगी झलकने लगी.

—अं. . .अं. . .हां. . .हां करती हूं बात अभी, कहते-कहते गुस्से से भरी निगाहों से उन चार आंखों को घूरा.

—हमारे इम्तहान नजदीक आ रहे हैं. हम कैरम कैसे खेलें? गर्दन हिला कर ना कहते हुए गुस्से से जवाब.

—तो फिर हटो यहां से. जा कर पढ़ो. जाओ. मैं कहती हूं जाओ! चिढ़न और क्रोध के पीछे निस्सहायता झांक रही थी.

—क्या कहा तुमने? गुस्से में उधर से प्रश्न.

—कुछ नहीं. यों ही बच्चों से कह रही थी. बोलते-बोलते क्रोधभरी निगाहों से उसने बच्चों को देखा.

दोनों थोड़ा-सा हिले-डुले पर डटे रहे.

बेताबी से उसने उन्हें पूछा—अब कब आओगे?

—मेरे हाथ में थोड़े ही है आना? जब ऑर्डर मिलेंगे, तब आना होगा.

—मां, डैडी से कहो हमारे लिए एयर गन जरूर लायें. तुम्हारे पांच रुपये नहीं चाहिए हमें.

उसने चिढ़ कर दोनों को फिर आंखें दिखायीं. दोनों ने मुंह दूसरी ओर कर लिया पर कमर पर हाथ धरे फौजी निडरता के प्रतीक बने खड़े रहे.

—मैंने तुमसे बात करने ट्रंक काल मिलाया और तुम जो हो सो कुछ बोल ही नहीं रही हो! उधर से उलाहने का पुट लिये नाराजगी साकार हो उठी.

—नहीं जी. ऐसा कोई बात नहीं है. अरे तुम लोग अभी तक यहीं खड़े हो! भीतर जा कर क्यों नहीं मरते?

उसका प्यार उमड़ रहा था. और उसने बहुत चाहा कि वह उनसे खूब बातें करे. मन की सारी बात कह डाले. आजकल चिट्ठियां बहुत कम लिखते हो. यादही नहीं करते. कहीं मुझे भूल तो नहीं गये!

पर वह सिर्फ इतना ही कह पायी—आये दिन कम से कम चिट्ठी तो डाल दिया करो.

—संभव होता है, वहां तक भेजता तो हूं.

—पहले संभव था पर आजकल क्यों नहीं?

—काम ज्यादा है. बिलकुल ठंडा जवाब.

—क्या यह सच है कि . . .? या. . .या मैं अब अच्छी नहीं लगती. मन में हिम्मत तो गांठी पर सामने चार आंखें अब तक टकटकी बांधे देख रही थीं.

—मां, तुमने हमारा संदेशा डैडी को अब तक क्यों नहीं दिया? रूठने की मुद्रा में गाल फूल गये.

—मां मेरे लिए फाइटर जैट लाने को कहना.

—तुम बोलती क्यों नहीं? तुम्हारी तबीयत तो ठीक है? उधर से प्रश्न.

—मां, मेरा संदेशा डैडी को जल्दी से दो, कान पर गुस्सा ला कर संजू चीख उठा.

—नहीं मां, पहले मेरी बात कहो, कहते हुए राजू ने संजू की पीठ पर घूंसा जमा दिया.

—अरे तुम लोग भीतर जाते हो या नहीं, अत्यधिक चिढ़े हुए स्वर में वह बोली.

—मां, डैडी से कहना एयर से आयें, ट्रेन से नहीं.

—वहां बच्चे हैं क्या? तो फिर टेलीफोन उन्हीं को देदो, उस ओर से फरमाइश हुई.

—नहीं, नहीं. ऐसी कोई बात नहीं है वे भीतर जा रहे हैं, बात को सम्हालने का प्रयास करते हुए उसने कहा.

इधर एक दूसरे के कंधे पर हाथ रखे दोनों ध्यान से बातें सुनते खड़े रहे.

—सब ठीक है ना? उधर से बातचीत का सिलसिला नये सिरे से आरंभ.

—मां, तुम हमारी बात जल्दी से डैडी को बता क्यों नहीं देती?

—नहीं मां, पहले मेरी बात कहो फिर इसकी.

वह चुप! क्या बोले! क्या न बोले!

—मुझे लगता है आजकल तुम्हारा मूड ठीक नहीं है, उधर से फिर क्रोध भरा आवेश.

—अब मैं कैसे बतलाऊं आपको? मूड तो ठीक है लेकिन. . .फिर परेशानी के कारण वह कुछ कह न पायी.

फोन एक ओर करके उसने बच्चों को फिर से डांट दिया. मैं इतनी देर से तुम्हें सवाल पूछ रहा हूं और तुम हो कि एक का भी जवाब ढंग से नहीं दे रही. बेकार ही मैंने फोन किया. कुछ गुस्सा, कुछ नाराजगी, कुछ रूठने की अदा से सामने से आवाज आयी.

वह बेचैन हो उठी. दिल की बात को शब्दों में संजोना चाहती थी. बच्चों के सामने भी कह डालने की हिम्मत की पर इतने ही में सामने से. . .

—ठीक है तो अब टाइम इज अप, उधर से नाराजगी के साथ टेलीफोन का रिसीवर रख देने की आवाज.

—टाइम इज अप, मैडम, टेलीफोन एक्सचेंज की कर्मचारी की नपी तुली आवाज के साथ लाइन कट गयी.

टेलीफोन हाथ से नीचे रखते वक्त उसकी आंखों से सामने वालों पर बेहद गुस्सा बरस रहा था.

—खड़े रहो तुम लोग यहीं पर. पहली बार स्नेह की जगह क्रोध व आक्रोश ने ले ली.

—तुमने हमारी बात क्यों नहीं सुनी, गर्दन हिलाते हुए दबी आवाज में फिर से प्रश्न.

—मां, डैडी कब आने वाले हैं? दूसरे का प्रश्न.

—मुझे नहीं मालूम, चिढ़े हुए स्वर में वह बोली. अनजाने में मन का दुःख आंखों से बह निकला था.

वह सोचने लगी. . . .तुम्हारा मूड ठीक नहीं, कह रहे थे—पर अपने मन को चीर कर कैसे दिखाती! मन की सारी व्यथा व्यक्त करने का कितना अच्छा अवसर मिला था पर बच्चों के सामने मैं कैसे बोलती! अपार दुःख और क्रोध की मिली-जुली मुद्रा में उसने दोनों को फिर से देखा.

कमर पर हाथ धरे उत्सुक एवं मासूम नजरों से अब तक दोनों सामने खड़े ही थे.

उसे लगा जैसे प्रत्यक्ष में राहु और केतु दोनों ही सामने खड़े हैं. □□□

बेला, प्लाट नं. ११४, शींव (पश्चिम) बंबई–२२

(अनुवाद: डा. सविता जाजोदिया)

मोतीहारी में समांतर साहित्य पर बातचीत

● जगदीश विकल

ऐतिहासिक जिला चंपारण के प्रधान नगर मोतीहारी में समांतर लेखन पर एक अनौपचारिक गोष्ठी 'समांतर साहित्य मंच' के तत्वावधान में श्री रविनारायण राय के निवास-स्थान पर गत २० नवंबर को संध्या ७ बजे संपादित हुई. गोष्ठी की अध्यक्षता कथाकार सच्चिदानंद धूमकेतु ने की.

विषय का प्रवर्तन श्री अवधेश अलिंद के निबंध से हुआ. अलिंद ने समांतर लेखन को जनवादी लेखन की प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करते हुए यह बतलाया कि ऐसे लेखक भी समांतर से जुड़े हैं, जो सही लेखन की मानसिकता को गुमराह करना चाह रहे हैं. रामसकल सिंह प्रकाश ने इस पर आपत्ति प्रकट की. उन्होंने यह जानना चाहा कि वे कौन-से लेखक हैं, जो ऐसा कर रहे हैं. पर अलिंदजी मौन रहे.

जगदीश विकल ने समांतर लेखन के प्रति आस्था व्यक्त करते हुए बतलाया कि यह अत्यंत हितकर है कि लेखक एकजुट हो कर आम आदमी की तरह लेखन का उत्तरदायित्व निभा रहे हैं. उन्होंने कहा कि '७२ से अब तक समांतर लेखन ने जन-जीवन के अछूते आयामों को अभिव्यक्ति दी है.

श्री रविनारायण ने कहा कि तमाम समांतर लेखक एकजुट हो कर सामंती साहित्य का रचनात्मक विरोध कर आम आदमी को साहित्य में साझीदार बना रहे हैं.

श्री नारायण सिंह ने स्वीकारा कि समांतर लेखन सार्थक प्रयास है. वीरेंद्रकुमार ने स्पष्टतः स्वीकारा कि आज लेखन मात्र मन-बहलाव का साधन नहीं, वरन् एक माध्यम है, जिसका उपयोग नूतन समाज की संरचना के लिए हो रहा है.

प्रकाश ने इस तथ्य पर बल दिया कि समांतर लेखन एक क्रांतिकारी दृष्टिकोण है.

सतीश भास्कर ने साहित्य मंच के उपस्थित लोगों से यह जानना चाहा कि क्या समांतर लेखन इतर साहित्यिक आंदोलनों की तरह एक और आंदोलन नहीं है?

धूमकेतु जी ने कहा कि समांतर लेखन मूलतः आंदोलन नहीं है. यह जन-जीवन से संबद्ध रचनात्मकता की सही अभिव्यक्ति है. समांतर लेखक कहीं से भी अलग नहीं हैं—वे एकदम से सामान्य जन हैं. ऐसी स्थिति में जबकि लेखक प्रत्येक बिंदु पर आम आदमी की हैसियत से उपस्थित है, आंदोलनात्मक दृष्टि का कोई प्रश्न ही नहीं उठता. अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में धूमकेतु ने समांतर लेखन के स्वरूप और प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए कहा कि आम आदमी को भावनात्मक एकता तो मिली, लेकिन मानव कुंठा, संत्रास और घुटन से नहीं उबर सका. रूमानी सपनों के फैलाव में हमने अपने को पहचानने की कोशिश की, लेकिन वहां सिवा महज बंचनाओं के और क्या मिला? आज आम आदमी की स्थिति यह है कि वह अपने ही परिवेश की सीमा में जैसे कैदी है. समांतर लेखन आम आदमी की विद्रूप समस्याओं से सीधे टकरा रहा है.

समांतर कहानियों ने नाटकीयता के चकाचौंध करने वाले वस्त्रों को उतार फेंका है और अपनी समग्रता में वह आम आदमी की सपाटबयानी है. इसीलिए कृत्रिमता के लिए उसमें कोई जगह नहीं है. समांतर कहानियां आम हिंदुस्तानी जीवन के अलग-अलग शेड्स हैं और आस्था की धरती पर मार्ग ढूंढ़ने की इनमें छटपटाहट है.

अंत में रामसकल सिंह प्रकाशने सबको धन्यवाद दिया और धूमकेतु जी को विशेष धन्यवाद देते हुए उन्होंने कहा कि 'समांतर साहित्य मंच' की स्थापना कर उन्होंने नगर को सार्थकता प्रदान की है. ☐

'मुर्गीखाना' पर विचार-गोष्ठी

केवल सूद के नये उपन्यास 'मुर्गीखाना' पर नयी दिल्ली के केरल क्लब में ९ अक्तूबर को एक विचारगोष्ठी का आयोजन 'सबरंग' की ओर से किया गया. गोष्ठी की अध्यक्षता श्री प्रभाकर माचवे ने की. गोष्ठी में लगभग ४० साहित्यकार उपस्थित थे.

डॉ. वीरेंद्र सक्सेना ने कहा कि लेस्बियन प्रवृत्ति एक समस्या बन गयी है. यह प्रवृत्ति भारत में भी मौजूद है, लेकिन हमारे यहां का लेखक ऐसे विषयों पर लिखने से कतराता रहा है. रमेश बक्षी के अनुसार उपन्यास की प्रमुख पात्र एक मनोरोग से पीड़ित है. समलैंगिक संभोग-प्रवृत्ति के कारण उसमें एक मनोग्रंथि बन गयी है कि वह नॉर्मल सेक्स लाइफ का उपभोग नहीं कर सकती. उनके अनुसार यदि लेखक ने प्रतीकों का सहारा न भी लिया होता, तो भी उपन्यास उतना ही सफल रहा होता और भाषा यदि अधिक स्पष्ट और गैर-छायावादी होती तो कथानक अधिक असरदार हो गया होता. जगदीश चतुर्वेदी ने आरोप लगाया कि उपन्यास में जानबूझ कर एक ऐसे वर्जित विषय को उठाया गया है, जिससे लोग चौंक उठें. बलदेव वंशी ने कहा कि लेस्बियनिज्म एक पाश्चात्य प्रवृत्ति है, हमारी वास्तविकता नहीं. डॉ. हरदयाल ने लेखक के दृष्टिकोण को स्वस्थ बताया और कहा कि यह एक सफल उपन्यास है, यद्यपि इसकी समस्या का संबंध मनुष्य की नियति के साथ व्यापक रूप से जुड़ा हुआ नहीं है.

डॉ. माचवे ने समापन करते हुए कहा कि उपन्यास की विषयवस्तु चौंकाने वाली अवश्य है, लेकिन शायद इससे इतनी सनसनी नहीं फैलेगी, जैसी **'चाकलेट'**, 'लिहाफ' आदि को ले कर फैली थी. उन्होंने सुझाव दिया कि इस पुस्तक पर महिलाओं की प्रतिक्रिया जाननी चाहिए. ☐☐☐

प्रसंग

मलयालम-कथाकार कारूर : एक याद

● **जीवन मलाबारी**

मलयालम के महान कथाकार कारूर नीलकंठ पिल्लै हमारे बीच नहीं रहे. दलितों, पीड़ितों और गरीबों के इस सशक्त कहानीकार के निधन से भारतीय कथा-साहित्य को अवश्य ही भारी क्षति पहुंची है. थोड़े शब्दों में बड़ी बातें कहने वाले थे कारूरजी. उनका शब्द-शास्त्र ही ऐसा था. 'हजारों खंबे हों तो वे बड़े मजबूत भी न हों, तो कोई हर्ज नहीं है, पर खंबों की संख्या घटे तो और बात है. तब वे ज्यादा-से-ज्यादा मजबूत हों.'

उनका जन्म २८ फरवरी, १८९८ को केरल के कोट्टयम जिले में एट्टुमानूर नामक गांव में कारूर घराने में हुआ. सातवें दर्जे तक ही उनकी पढ़ाई हुई. जब वह पंद्रह साल के थे तो एक सरकारी प्राइमरी स्कूल में सात रुपये मासिक वेतन पर अध्यापक बने. अध्यापक बनने के बाद उन्होंने हायर परीक्षा पास की. हिंदी का भी उन्हें थोड़ा-बहुत ज्ञान था. ४४ वर्ष तक अध्यापकी करने के बाद ही वह रिटायर हुए. इस बीच उन्होंने 'अध्यापक समाज' नामक एक संघ बनाया, जिसके कारण १९२० के आसपास सरकार ने उन को डिसमिस कर दिया, कारूरजी ही केरल के पहले अध्यापक हैं, जिनको सरकार ने पहली बार ऐसी सजा दी दी. फिर डिसमिसल को सस्पेनशन में बदल कर सरकार ने सजा कम कर दी. वह कोट्टयम सहकारी संघ के सेक्रेटरी और नायर सर्विस सोसायटी में कर्मचारी भी रहे. थोड़े अरसे तक पत्रकार भी रहे.

केरल में लेखकों की सहयोगी प्रकाशन संस्था की स्थापना में कारूर जी का सहयोग उल्लेखनीय है. १९४५ में साहित्य प्रवर्तक सहकरण संघ (एस. पी. सी. एस.) की स्थापना हुई. तब से १९६५ तक कारूरजी उसके मंत्री रहे. उस संस्था ने अब तक जो प्रगति की है उसका श्रेय कारूरजी को ही है.

★ ★

कारूरजी मुख्यतया कहानीकार थे, हालांकि उन्होंने उपन्यास और नाटक भी लिखे. उनके बीस से अधिक कहानी-संग्रह अब तक प्रकाशित हुए हैं. बाल-साहित्य के क्षेत्र में उनका योगदान प्रशंसनीय है. उनकी रचनाएं पुरस्कृत हुई हैं. उनकी **'आनक्कारन'** (महावत) नामक बालसाहित्य रचना केंद्र सरकार और केरल साहित्य अकादमी की ओर से पुरस्कृत हुई. उनकी **'अंचु कटलास्सुकल'** (पांच कागज) के आधार पर बच्चों के लिए एक फिल्म भी बनी है, जिसका नाम है **'पूंपाट्टा'** (तितली). उनकी कुछ पुस्तकें सरकार की ओर से पाठ्यपुस्तक के रूप में भी स्वीकृत हुई हैं.

'हरि' और **'गौरी'** उनके दो उपन्यास हैं. **'अप्पूप्पन'** (दादा) उनका नाटक है. कारूरजी की कुछ कहानियां हिंदी, कन्नड और अंग्रेजी में अनूदित हुई हैं.

स्व. कारूर

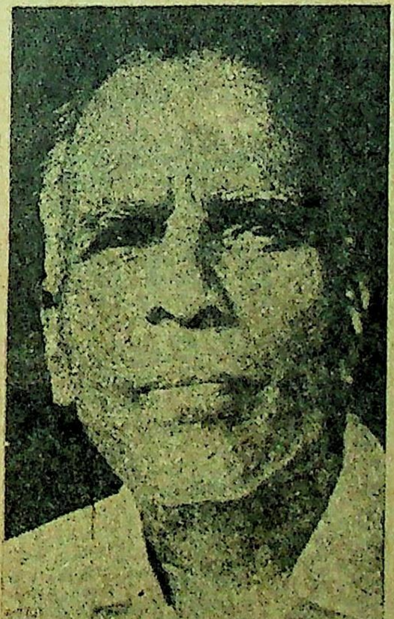

★ ★

कारूरजी के साहित्य का सृजन आम आदमी के जीवन को ले कर ही हुआ. उसमें कृत्रिमता का लेश मात्र भी नहीं है. हरदम वह इनसान की भलाई की तलाश में रहे. मानव-मन की गहराई से कितने ही अनमोल मोती निकाल कर उन्होंने हमको दिये हैं. उनका साहित्य सर्वथा शुद्ध है. उसमें जरा भी मिलावट नहीं है. **'मरप्पावकल'** (कठपुतलियां), **'पोतिच्चो'** (भात की पोटली), **'उतुप्पांटे किणर'** (उतुप्पान का कुआं), **'येकुत्तान'** (शैतान), **'मोतिरम्'** (अंगूठी) आदि कारूरजी की अमर कहानियां हैं.

यद्यपि वह अंग्रेजी और उसके साहित्य से करीब-करीब अपरिचित थे, फिर भी उनकी कहानियां अंग्रेजी कहानियों से शिल्प या सौंदर्य में किसी भी प्रकार कम नहीं हैं. सचमुच कारूरजी कहानीकार बनने के लिए ही जन्मे थे. उनका कथा-साहित्य एक प्रकाश-स्तंभ है.

बरसों से कारूरजी दमे के शिकार थे. इलाज भी चल रहा था. पर ३० सितंबर '७५ की रात को दस बजे के आसपास उनकी धड़कन सदा के लिए बंद हो गयी. साथ ही एक महान साहित्यकार की कथा-यात्रा एक अनजाने मोड़ पर आ कर रुक गयी. वह प्रेमचंद के सामान 'कलम के सिपाही' थे. जीवन भर आम आदमी के लिए लिखते रहे. इसमें शक है कि साहित्य अकादमी या उस जैसी संस्थाएं कारूर नीलकंठ पिल्लै नामक कहानीकार को भली भांति पहचान सकी हैं. पर पाठक बेशक उनको पहचान सके हैं और उन्हें उनसे समुचित स्वीकार और अंगीकार भी मिला है. कुछ दिनों से कारूरजी को अकादमी का फेलोशिप देने का विचार भी हो रहा था. □□□

विविधा

समांतर रंगमंच

'रूपांतर' : एक अच्छी शुरुआत

● कृष्ण गोपाल

गोरखपुर जैसे साधनहीन शहर में एक खास किस्म की समांतर अभिरुचि वाला दर्शक-वर्ग तैयार करना भी अपने-आप में एक बड़ी सफलता कही जा सकती है. किंतु, वास्तविक महत्व तो सीमित साधनों में ही विभिन्न समसामयिक ज्वलंत प्रश्नों वाले नाटकों के कथ्य को उनकी रंगमंचीय संभावनाओं के साथ दर्शकों तक संप्रेषित करने का है. इस दृष्टि से 'रूपांतर' की अब तक की सभी प्रस्तुतियां समांतर रंगमंच के प्रेमियों को आश्वस्त करती हैं. रंगमंचीय व साहित्यिक, विशेषकर प्रयोगधर्मी नाटकों का अभाव प्रबुद्ध दर्शक-वर्ग व रंगकर्मियों से छुपा नहीं है. 'रूपांतर' ने जहां महत्वपूर्ण नाट्यकृतियों को मंच के लिए चुना, वहीं पत्र-पत्रिकाओं में पड़े हिंदी एकांकियों व लघुनाटकों की ओर भी बहुत-से रंगकर्मियों का ध्यान आकृष्ट कराया है. 'रूपांतर' अब तक छोटी-बड़ी कुल बारह कृतियों को मंच पर प्रस्तुत कर चुका है.

अभी पिछले दिनों संस्था की तेरहवीं प्रस्तुति **'खामोश अदालत जारी है'** के कई प्रदर्शन हुए. 'थियेटर मूवमेंट' को तेजी से बढ़ावा देने के लिए इसे नगर में व नगर के बाहर भी खेला गया. सभी प्रस्तुतियों का प्रदर्शन टिकट के आधार पर हुआ. निर्देशिका डॉ. गिरीश रस्तोगी के अनुसार व्यावसायिक दृष्टिकोण से भी यह नाटक बहुत उपयुक्त है, क्योंकि इसमें ट्रेजिडी के साथ ही सामान्य दर्शकों के लिए पर्याप्त मनोरंजन ह. साथ ही है गंभीरता के साथ सहज व्यंग्य.

विजय तेंडुलकर का यह नाटक एक ओर कानूनी तर्क के खोखलेपन को सामने लाता है; दूसरी ओर समाज के विशिष्ट उत्तरदायी समझे जाने वाले वर्ग के भीतर की गंदगी और विकृतियों को छील कर प्रस्तुत करता है. लीला बेणारे, जो समाज के फ्रेम में फिट नहीं बैठती, संपूर्ण दलित वर्ग की प्रतिनिधि तस्वीर बन जाती है. नाटक के अंत में उसकी न्याय की मांग पूर्ववत् बनी रहती है.

नाटक में कुल आठ पात्र हैं. कई प्रदर्शनों में अब तक मात्र बेणारे या अधिक-से-अधिक सुखात्मे ही उभर कर आते रहे हैं. किंतु 'रूपांतर' ने ध्यान रखा कि सारे चरित्र समान रूप से अलग-अलग उभरें और अपने व्यक्तित्व की विद्रूपताओं पर व्यंग्य करते हुए नाटक को एक समग्र प्रभाव के रूप में दर्शकों तक संप्रेषित करें.

तेजिंदर पाल (लीला बेणारे) एक आम स्त्री के माध्यम से व्यक्ति के भीतर दबी आकांक्षाओं को पूर्ण सहजता के साथ उभार सकीं. कई स्थानों पर उनका मौन भी बहुत कुछ कह गया. प्रमोद पांडेय (सुखात्मे) ने वकीली हथकंडों को समय-समय पर खूब उभारा. शंभु (सामंत) का कस्बाई जीवन में ढलाव एक उपलब्धि रहा है. जज मि. काशीकर द्वारा हास्य के अतिरेक की प्रायः प्रदर्शनों में समीक्षा की जाती रही है. किंतु, दुर्गाप्रसाद श्रीवास्तव ने सराहनीय ढंग से संयत प्रदर्शन किया. ऐसा ही अशोक महर्षि (बालू रोकड़े) ने भी. चेतना रस्तोगी (मिसेज काशीकर) ने आम, अपढ़, घरेलू स्त्रियों के-से हाव-भाव, ईर्ष्या-उत्साह आदि भावों को कई स्थलों पर सहज अभिव्यक्ति दी. अजित श्रीवास्तव (कर्णिक) व संतकुमार (पोंक्षे) क्रमशः एक अभिनेता व अल्पशिक्षित, ठसकेदार वैज्ञानिक (!) की भूमिका में उपयुक्त रहे. दोनों का अभिनय दूसरे प्रदर्शन में काफी सधा था. दृश्य-सज्जा सभी स्थानों पर अशोक महर्षि की थी. प्रकाश एवं ध्वनि-व्यवस्था पन्नालाल जैसवाल द्वारा उनकी सीमाओं में उपयुक्त कही जायेगी. संगीत आशुतोष सिन्हा व विश्वनाथ शर्मा ने दिया. ☐

'रूपांतर', गोरखपुर द्वारा प्रस्तुत 'खामोश, अदालत जारी है' का एक दृश्य

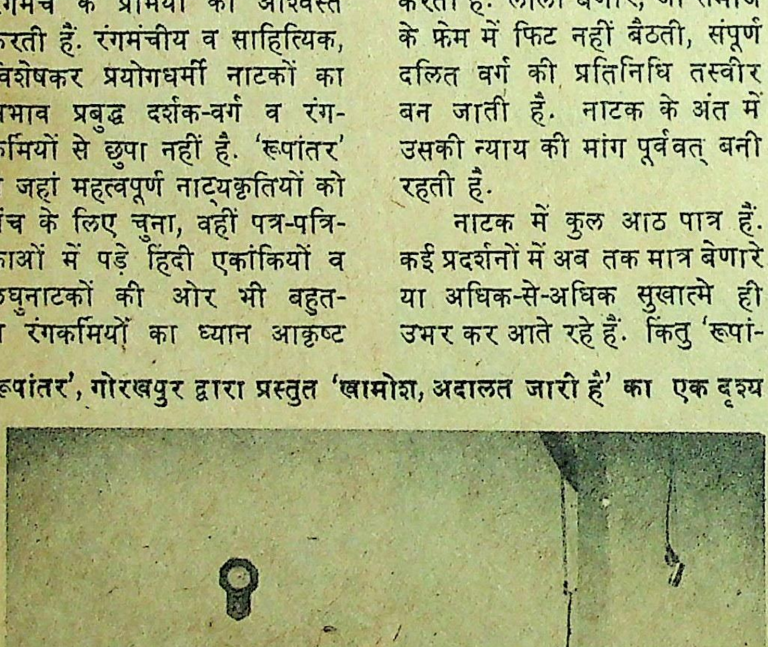

कविताओं का नाटकीय मंचन

● शीला गार्गी

अभी पिछले दिनों रायपुर में नवोदित सांस्कृतिक संस्था 'रचना' द्वारा श्रीकांत वर्मा की कविता **'जोसफ अब्रकुआं'** तथा धूमिल द्वारा रचित **'मोचीराम'** कविता का नाटकीय मंचन अशोक

धूमिल की कविता 'मोचीराम' का नाटकीय **मंचन** प्रस्तुत करते हुए भूपेंद्र टिकरिहा

कुमार मिश्र के निर्देशन में प्रस्तुत किया गया. आनंद चौबे ने जोसफ अब्बुकुआं तथा भूपेंद्र टिकरिहा ने मोचीराम का सफल नाटकीय मंचन किया.

इस अवसर पर श्री प्रमोद वर्मा ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा कि कविता का नाटकीय मंचन अभिनय के क्षेत्र में एक उपलब्धि होने के साथ ही यह कविता को अधिकाधिक व्यक्तियों तक पहुंचाने का अच्छा माध्यम है. डा. राजेंद्र मिश्र ने कहा कि दो युवा कलाकारों ने कविता का नाटकीय मंचन कर उसके साथ न्याय किया है. श्री हरिशंकर परसाई ने अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त किये —धूमिल की तरह हर आदमी के दो मुखौटे होते हैं.

रायपुर जैसे शहर में अपने आप में यह एक अनोखा प्रयास था, जो संप्रेषण के एक नये आयाम को ढूंढ़ने में सफल रहा. □

जर्मन कवि रिल्के-परिसंवाद

गुजरात विश्वविद्यालय से संलग्न नवजीवन आर्ट्स एंड कॉमर्स कॉलेज, दाहोद में जर्मन महाकवि रिल्के की जन्म-शताब्दी के शुभ अवसर पर रिल्के-परिसंवाद का दो-दिवसीय शिविर ७ तथा ८ नवंबर, १९७५ को आयोजित किया गया. परिसंवाद का उद्घाटन-प्रवचन गुजराती साहित्य के लब्ध-प्रतिष्ठित कवि, विवेचक एवं गुजरात विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति श्री उमाशंकर जोशी ने किया, जिसमें उन्होंने 'रिल्के का विश्वसाहित्य में योगदान' विषय संबंधी सामग्री प्रस्तुत की. इस शिविर में गुजरात विश्वविद्यालय के अतिरिक्त सौराष्ट्र, बड़ौदा, वल्लभ विद्यानगर एवं बंबई विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक, छात्र एवं छात्राओं ने भाग लिया. प्रथम दिवस के कार्यक्रम में प्रा. चंद्रकांत शेठ तथा प्रा. प्रबोध पारिख ने भी रिल्के की 'प्रारंभिक' एवं 'नवीन' कविताओं तथा 'रिल्के और नीत्शे' विषयों पर क्रमानुसार ज्ञानवर्धक व्याख्यान दिये.

द्वितीय दिवसीय प्रथम बैठक में बड़ौदा विश्वविद्यालय के गुजराती के प्रख्यात कवि, विवेचक, कथाकार एवं चिंतक डा. सुरेश जोशी ने रिल्के की एक महत्वपूर्ण रचना **'डुइनो एलेजिस'** पर विद्वतापूर्ण व्याख्यान देते समय श्रोताओं को मंत्र-मुग्ध कर दिया. नवजीवन आर्ट्स एंड कॉमर्स कॉलेज के आचार्य तथा गुजराती नयी कविता के तरुण कवि एवं विवेचक श्री चंद्रकांत टोपीवाला ने अपनी नयी अनुवादित रिल्के की कृति **'डुइनो एलेजिस'** के अनुवादों का अनुलेख प्रस्तुत किया. अन्य प्रवचनकारों में प्रा. दिगीश मेहता ने रिल्के के 'गद्य-साहित्य' तथा गुजरात विश्वविद्यालय के हिंदी के प्रा. भोलाभाई पटेल ने **'सोनेट्स टू ऑर्फियस'** के संदर्भ में रिल्के की मूल जर्मन कविताओं से दृष्टांत प्रस्तुत किये. विवेचक श्री सुमन शाह एवं प्रा. अनिरुद्ध ब्रह्मभट्ट ने भी रिल्के की कृति **'माल्ट लोरिद्जब्रिज'** तथा 'रिल्के की कविता में प्रतीकवाद' विषयों पर विशिष्ट ज्ञानवर्धक जानकारी प्रस्तुत की.

परिसंवाद का समापन डा. सुरेश जोशी के भाषण से हुआ. □□□

रिल्के-परिसंवाद : **माइक पर हैं डा. सुरेश जोशी. दायीं ओर बैठे हैं—प्रख्यात गुजराती कवि श्री उमाशंकर जोशी**

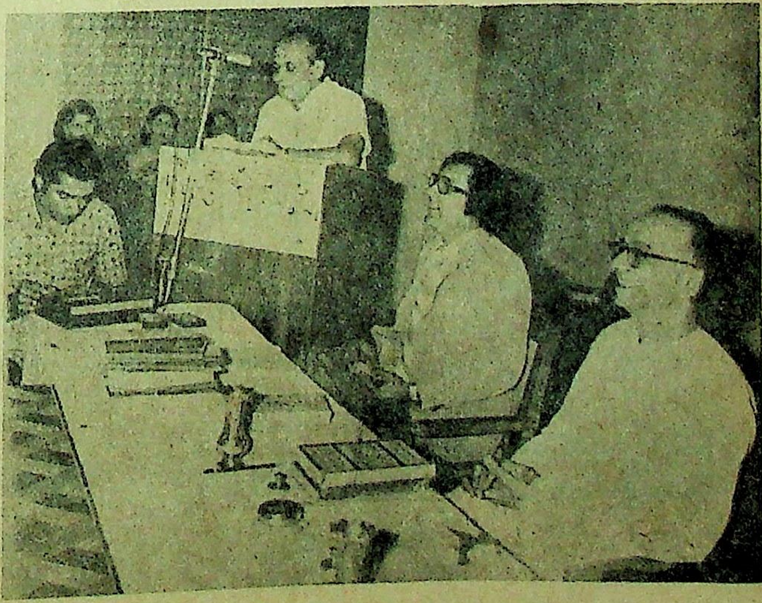

दाँतों को चाहिये जीवनभर मज़बूत आधार

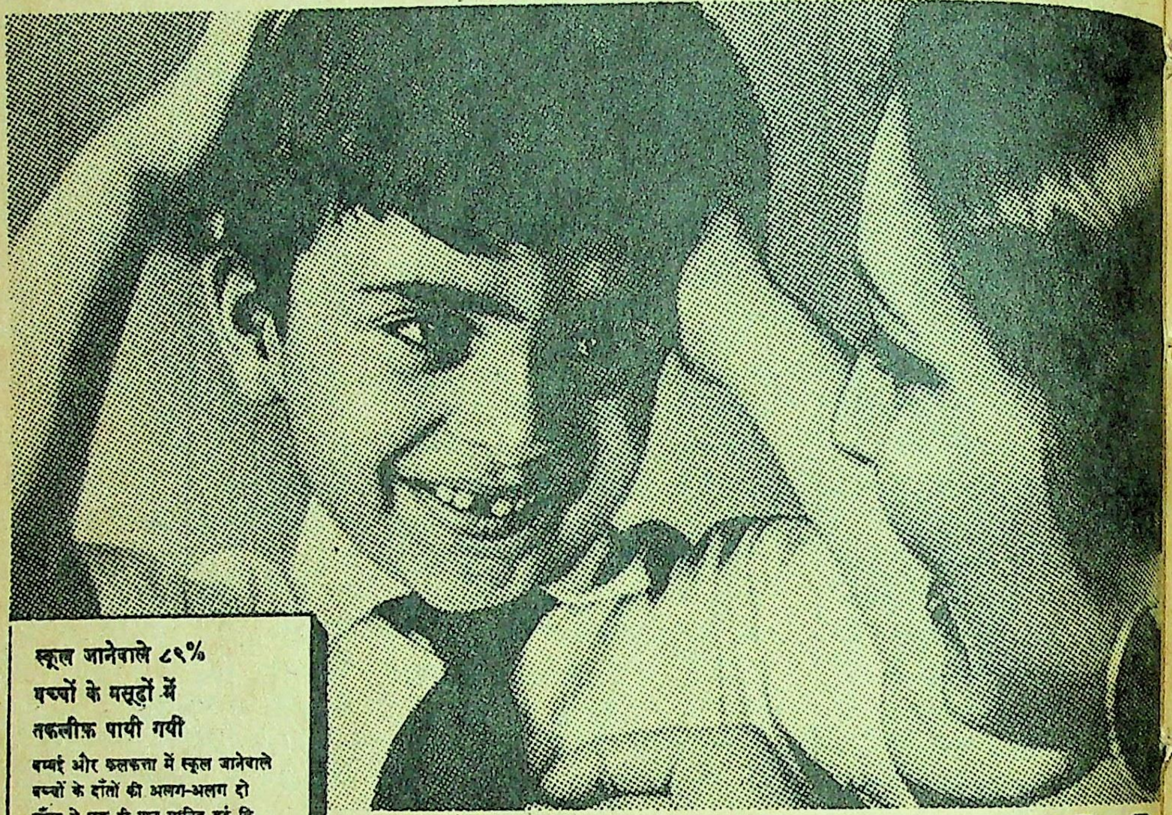

स्कूल जानेवाले ८९%
बच्चों के मसूढ़ों में
तकलीफ़ पायी गयी

बम्बई और कलकत्ता में स्कूल जानेवाले बच्चों के दाँतों की अलग-अलग दो जाँच से एक ही बात साबित हुई कि ८९% बच्चों के मसूढ़ों में तकलीफ़ थी। बम्बई में सर्वे किया डा. जे. सी. ग्रीन ने जिसकी रिपोर्ट पेश की विश्व-स्वास्थ्य-संघ ने-इसमें ८११ बच्चे थे जबकि कलकत्ता के सर्वे में थे १४२४ बच्चे।

इसलिये उसे अपने दाँतों को ब्रश करने के साथ मसूढ़ों की मालिश के लिये फ़ोरहॅन्स टूथपेस्ट इस्तेमाल करना सिखवाइये।

फ़ोरहॅन्स दाँतों और मसूढ़ों की रक्षा के लिये ख़ास तौर से बनाया है।

इसके पहले कि आपके मुन्ने के दूध के दांत गिरने लगें उसे अपने दाँतों और मसूढ़ों की सही देखभाल के लिये फ़ोरहॅन्स टूथपेस्ट इस्तेमाल करना सिखायें। हर रात और सवेरे फ़ोरहॅन्स से दांतों की देखभाल से उसके दांत स्वस्थ मसूढ़ों के मज़बूत आधार पर उग सकेंगे।

याद है न, फ़ोरहॅन्स टूथपेस्ट में एक ख़ास एस्ट्रिंजेंट है जो मसूढ़ों के लिये गुणकारी है। और हां, अपने मुन्ने को दांतों के डाक्टर को नियमित दिखाना न भूलें।

फ़ोरहॅन्स की दोस्ती तो सारे परिवार के दांत ख़ुशहाल

मुफ़्त। दांतो और मसूढ़ों की रक्षा सम्बन्धी रंगीन सूचना पुस्तिका। कृपया डाक-खर्च के लिये २५ पैसे के डाक-टिकट के साथ इस पते पर लिखिये : फ़ोरहॅन्स डेण्टल एडवाइज़री ब्यूरो, डिपार्टमेंट— P-115
पोस्ट बैग नं. ११४६२, बम्बई-४०० ०२०
अपनी पसन्द की भाषा अवश्य लिखिये।

Forhan's
Forhan's
FOR THE
GUMS
BRUSH

फ़ोरहॅन्स-दाँतों के डाक्टर का बनाया हुआ टूथपेस्ट

ISSF-203 H

मनमोहक
और आकर्षक रंगों में
उपलब्ध

के० डी० आर० – कैशमिलोन
के० डी० आर० – कैशमोएर
के० डी० आर० – कैशमीरा
के० डी० आर० – कैशीमो-रॉयल

केडीआर
वूल्स

adEnvoys

हमारी कहानियां : यानी आपकी कहानियां..

कुछ लोग कहानियों के वादों पर विवाद करते हैं, कुछ पीढ़ियों की उम्र से कहानी को नापते हैं. लेकिन 'धर्मयुग' का रास्ता कुछ अलग है. हम नये-से-नये संदर्भों से जुड़ कर भी कहानी के कहानी-पक्ष को अक्षुण्ण रखने में यकीन करते हैं यानी गहरी मानवीय अनुभूतियों और सामाजिक संलग्नता के साथ कहानी अपने पाठक के हृदय को कहीं छू सके, उसके चिंतन को कहीं उकसा सके! और इसीलिए हमारे लिए प्रतिष्ठित या अप्रतिष्ठित नाम नहीं; वरन सार्थक और सशक्त कथा-रचना का महत्व प्रमुख रहता है. यही कारण है कि पिछले १५ वर्षों में चुपचाप 'धर्मयुग' ने एक ठोस काम किया है—कहानी को खोने न देना, संवेदनशील पाठक से उसे जोड़े रखना और नये-से-नये प्रतिभाशाली कथा-हस्ताक्षर को उभार कर प्रस्तुत करना.

यही कारण है कि आज लाखों पाठक यह मानते हैं कि 'धर्मयुग' की कहानियों का अपना विशिष्ट स्तर है—वे उनके अपने दुख-सुख की जीती-जागती कहानियां हैं.

और जहां तक आंकड़ों का सवाल है

आप जानते हैं, हमने एक वर्ष (१९७५) में अपने पाठकों को क्या दिया?

- ५७ कहानियां
- ९ लंबी कहानियां
- ६ लघु उपन्यास—
- 'ज्वालामुखी के गर्भ में' और 'पाषाण युग'—**मालती जोशी**
- 'सफेद घोड़ा काला सवार'— **हृदयेश**
- 'कई लहरों के बीच' — **आशीष सिन्हा**
- 'रजनीगंधा आकाश'—**अशोक प्रभाकर मोटे**
- 'वह तीसरा'— **दीप्ति खंडेलवाल.**
- प्रसिद्ध मराठी उपन्यासकार **चिं. त्र्यं. खानोलकर** का संपूर्ण उपन्यास 'चानी'.
- **कमलेश्वर** की सशक्त कलम से संपूर्ण उपन्यास 'आगामी अतीत'

और एक पूरा अंक—**कहानी-बहुल अंक**
—उपहार अंक के रूप में

आप भी क्यों नहीं पढ़ते?

धर्मयुग

नव सामाजिक चिंतन का अग्रदूत

KIYNE OINTMENT
28g
IODEX
cum Methyl Salicylate
3273

पैरों में मोच?

आयोडेक्स मलिए, जो पीड़ा हरे, अच्छा करे

दूसरे बाम पीड़ा से आराम भले पहुंचाएं, आयोडेक्स आराम पहुंचाने के साथ साथ अच्छा भी करती है. क्योंकि इसमें आयोडीन मिली है.

जोड़ों और मांसपेशियों की पीड़ा के लिए एकमात्र बाम—आयोडेक्स.

आयोडेक्स मलिए-अपने काम पर चलिए

लिंटास-IODEX.3-140 HI

बेनेट कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए श्रीकृष्ण गोविंद जोशी द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित. पो. बाक्स २१३, बंबई–४०० ००१; दिल्ली आफिस : ७ बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली–११० ००२; कलकत्ता आफिस : १३/१ और १३/२ गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट. लंदन आफिस : ३०–ए, डिस्ट्रिक्ट रोड, सडबरी, वेम्बले, मिडिलसेक्स, यू. के.

पंजीयत सं. एम. एच. दक्षिण बंबई ३९९

शाही सवारी आधुनिक सवार...

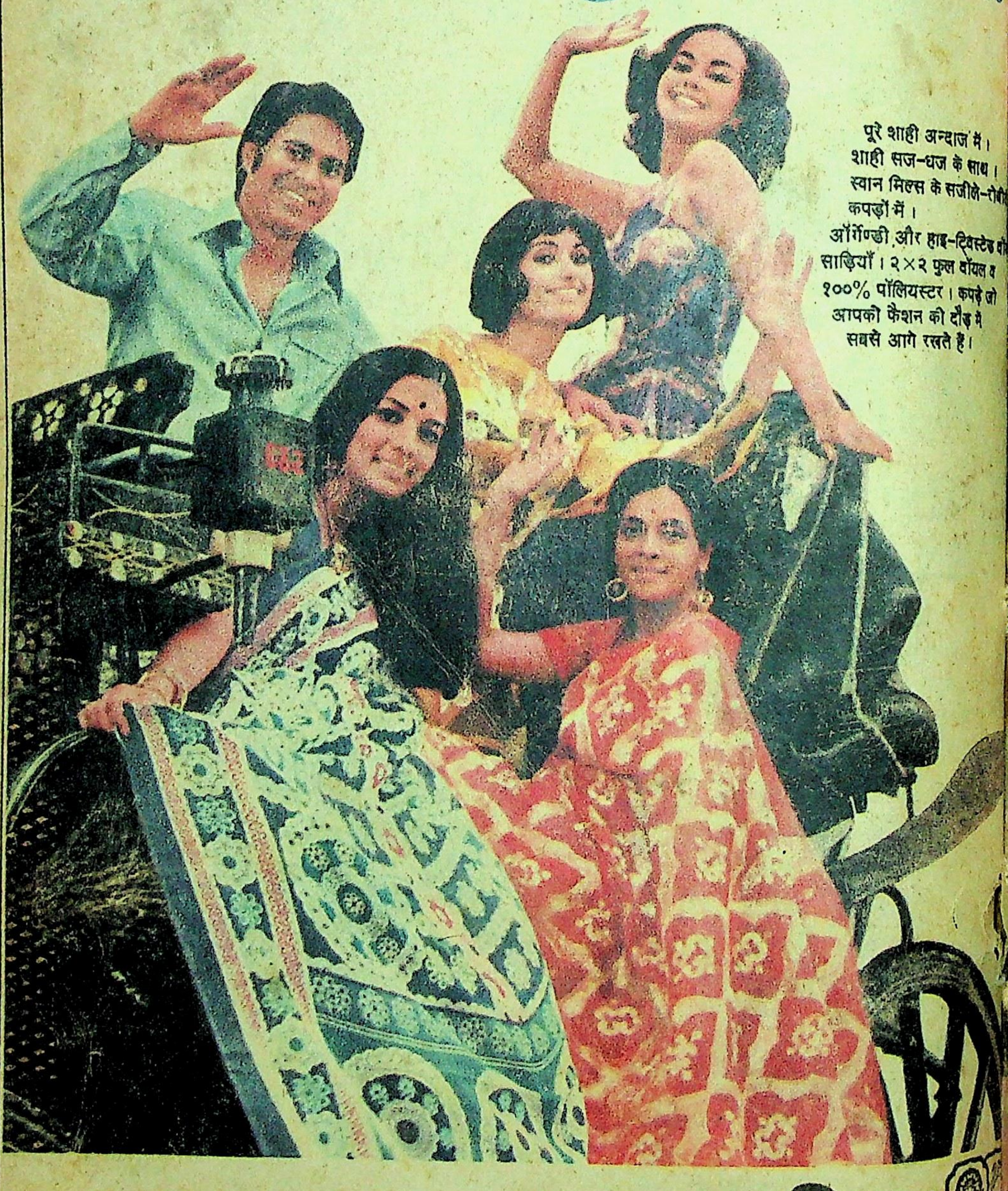

पूरे शाही अन्दाज में।
शाही सज-धज के साथ।
स्वान मिल्स के सजीले-रोबी
कपड़ों में।
ऑर्गेण्डी और हाइ-ट्विस्टेड
साड़ियाँ। २×२ फुल वॉयल व
१००% पॉलियस्टर। कपड़े जो
आपको फैशन की दौड़ में
सबसे आगे रखते हैं।

स्वान मिल्स के कपड़े—बस आपकी पसन्द **स्वान मिल्स**

खुदरा दुकानें — बम्बई : १, खुशरो बाग, कोलाबा ☐ 'अप्सरा' १२०/१३४ ए, प्रार्थना समाज ☐ १५, ठाकरसी जीवराज रोड, शिवरी ☐ ४६४, न्यू मिल रोड, कुर्ला,
२९, वॉटरलू स्ट्रीट ☐ २०८/२५, विधान सरणि. नई दिल्ली : एम-५, बाराखंबा रोड, कनॉट सर्कस ☐ मद्रास : १६-डी, माउण्ट रोड. अमृतसर : ७, धर्मसिंग मार्केट,
☐ अधिकृत विक्रेता—बम्बई : ए टू जेड टेक्सटाइल डिपार्टमेंट स्टोर्स, क्रॉफर्ड मार्केट के सामने ☐ बम्बई स्वदेशी स्टोर्स, वेस्टर्न इंडिया हाउस, सर पी. एम. रोड ☐
टेक्सटाइल इम्पोरियम, २२, हर्षिद चेम्बर्स, आश्रम रोड. ☐ वाराणसी : राजहंस टेक्सटाइल्स, डी १३/२७, बांस फाटक ☐ स्थानीय विक्रेता-कलकत्ता : हनुमानमल
जमनालाल बजाज स्ट्रीट.

सारिका

अप्रैल १९७६

2/6/76

नवलेखन विशेषांक

- मोहर सिंह यादव • बलराम • सीतेश आलोक
- शांता वर्मा • नासिरा शर्मा • अजित • प्रेमचंद सहजवाला
- संजीव • केशव • योगेंद्र दत्त • मनीषराय यादव
- कैलाशचंद्र • मधु शर्मा • सुधा चंदोला • मनजीत
- योगेश श्रीवास्तव 'प्रवीन'

१

साथ में – गर्दिश के दिन : श्रवणकुमार

तथा सभी स्थायी स्तंभ

अच्छा, तो अपने पड़ोसियों से मिलने आये हैं?

४ उड़ानें सीधे रोम के लिए.
१ उड़ान एक जगह रुकते हुए
लंदन के लिए. मनपसंद चुनाव के लिए
प्रति सप्ताह पश्चिमी यूरोप और यू.के. के लिए
११ उड़ानें तथा अमेरिका के लिए सात उड़ानें.

पश्चिमी देशों के लिए प्रति सप्ताह अधिकाधिक उड़ानों की सुविधा, जिसमें ४ बेहद तेज़ रफ़्तार वाली हैं. सफ़री और कारोबारी दृष्टिकोण से यूरोप और अमेरिका के प्रमुख आकर्षण केन्द्रों को एयर-इंडिया मानो आपके पड़ोस में ही ले आती है.

एयर-इंडिया

AI-5343(A)

"नस पर नस चढ़ना
क्रिकेट के पेशेवर खिलाड़ियों
के लिए भारी मुसीबत है,"

क्लाइव लॉयड कहते हैं,

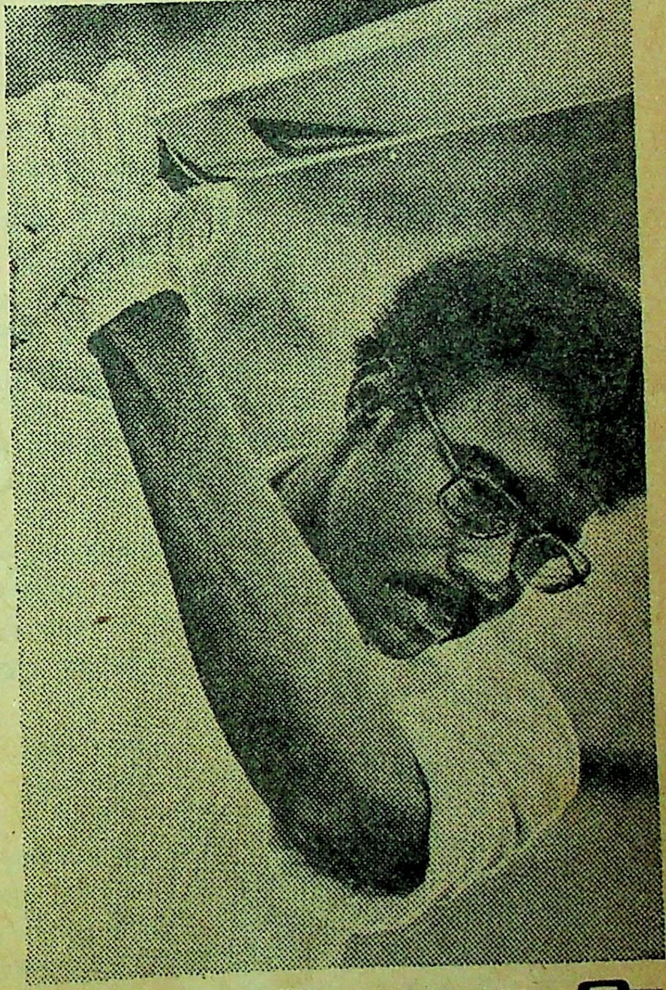

"आयोडेक्स
से मैं
चुस्त दुरुस्त
रहता हूं"

आयोडेक्स पीड़ा हरे, अच्छा करे

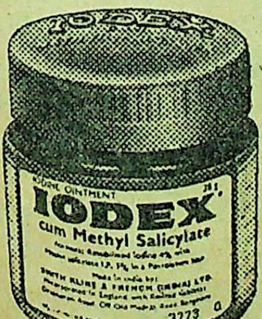
IODINE OINTMENT
IODEX
cum Methyl Salicylate
3273

आयोडेक्स मलिए- काम पर चलिए

लिंटास-IODEX. 6-140

श्रेष्ठ रचना - श्रेष्ठ पुरस्कार

बंबई की साहित्यिक पत्रिका 'आशीर्वाद' की ओर से प्रतिवर्ष हिंदी की सर्वश्रेष्ठ कहानी, कविता, लेख तथा एकांकी विषयों पर प्रतियोगिता पुरस्कार प्रदान करने का निर्णय लिया गया है. योजना का प्रारूप निम्नलिखित है:—
● **सर्वश्रेष्ठ कहानी :** १००० रुपये का पुरस्कार तथा अहिंदीभाषी रचनाकारों के लिए २५० रुपये का एक प्रोत्साहन पुरस्कार. ● **सर्वश्रेष्ठ कविता :** १००० रुपये का पुरस्कार तथा अहिंदीभाषी रचनाकारों के लिए २५० रुपये का एक प्रोत्साहन पुरस्कार. ● **सर्वश्रेष्ठ लेख :** १००० रुपये का पुरस्कार तथा अहिंदीभाषी रचनाकारों के लिए २५० रुपये का एक प्रोत्साहन पुरस्कार. ● **सर्वश्रेष्ठ एकांकी :** १००० रुपये का पुरस्कार तथा अहिंदीभाषी रचनाकारों के लिए २५० रुपये का एक प्रोत्साहन पुरस्कार. ● **कुल पुरस्कार ८** ● **कुल पुरस्कार राशि ५००० रुपये.**

● **रचना प्राप्त होने की अंतिम तिथि : ३० जून १९७६**
● **श्रेष्ठ रचना-श्रेष्ठ पुरस्कार की घोषणा तिथि : १५ अगस्त १९७६.**

श्रेष्ठ रचना - श्रेष्ठ पुरस्कार प्रतियोगिता के लिये नियम एवं शर्तें

(१) इस पुरस्कार योजना में भारतीय नागरिकता प्राप्त कोई भी नागरिक भाग ले सकता है.

(२) रचनाएं सर्वथा मौलिक, अप्रकाशित और अप्रसारित तथा कागज के एक ओर हाशिया छोड़ कर सुस्पष्ट अक्षरों में लिखी अथवा टाइप की गयी हो.

(३) अस्पष्ट, काट-छांट की गयी अथवा पृष्ठ के दोनों ओर लिखी या टाइप की गयी रचना को विचारार्थ स्वीकृत नहीं किया जायेगा.

(४) इस पुरस्कार योजना में किसी भी रचना का छोटा या बड़ा होना (सामग्री की दृष्टि से) उसके मूल्यांकन का मापदंड नहीं होगा.

(५) रचना बंद लिफाफे में ही भेजी जानी चाहिए तथा रचना की तीन प्रतिलिपियां भेजना आवश्यक है.

(६) जिस लिफाफे में रचना प्रेषित की जाये उस पर एक कोने में स्पष्ट अक्षरों में लिखा होना चाहिए.

श्रेष्ठ रचना - श्रेष्ठ पुरस्कार, कहानी-कविता - एकांकी - लेख

रचनाएं इस पते पर भेजी जायें—

संपादक, "आशीर्वाद", ए. १२, जीवन तरंग, १९३, गरोडिया नगर, घाटकोपर (पूर्व) बंबई-४०० ०७७.

(७) एक रचनाकार कहानी, कविता, एकांकी, लेख आदि चारों विधाओं की पुरस्कार योजना में भाग ले सकता है किंतु उसे अपनी प्रत्येक रचना की तीन-तीन प्रतियां अलग-अलग लिफाफों में ही भेजनी होगी.

(८) रचनाओं के डाक में खो जाने अथवा विलंब से मिलने का दायित्व आयोजकों पर नहीं होगा.

(९) रचना की वापसी के लिए पर्याप्त डाक टिकट आने आवश्यक है अन्यथा उन्हें वापस नहीं किया जायेगा.

(१०) प्रत्येक रचना के साथ निम्नलिखित घोषणा पत्र होना आवश्यक है, इसके अभाव में रचना को पुरस्कार योजना में सम्मिलित नहीं किया जा सकेगा.

(११) प्रोत्साहन पुरस्कार के लिए विचारार्थ भेजी जानेवाली रचना तथा लिफाफा दोनों के ऊपर स्पष्ट अक्षरों में लिखा होना चाहिए "अहिंदीभाषी रचानाकार". अन्यथा उसे प्रोत्साहन पुरस्कारों के अंतर्गत विचारार्थ नहीं लिया जायेगा. घोषणा पत्र में भी उसे अपनी मातृभाषा घोषित करना आवश्यक है.

घोषणा पत्र

'मैं श्री–श्रीमती– कु . . . . , ... यह घोषित करता हूं–करती हूं कि मेरी . . . . शीर्षक (कहानी-कविता-लेख-एकांकी) रचना सर्वथा मौलिक एवं अप्रकाशित है. इसे किसी भी पत्र या पत्रिका में प्रकाशनार्थ नहीं भेजा गया है और मैं यह आश्वासन देता हूं—देती हूं कि पुरस्कार की घोषणा-तिथि १५ अगस्त १९७६ से पूर्व इसे कहीं भी प्रकाशनार्थ नहीं भेजा जायगा. रचना के पुरस्कृत होने की स्थिति में प्रदत्त पुरस्कार मुझे सहर्ष स्वीकार्य होगा तथा रचना पर आप का संपूर्ण स्वत्वाधिकार रहेगा. उसके प्रकाशन प्रचार या प्रसार का पूर्ण अधिकार "आशीर्वाद" पत्रिका को होगा. मेरी ओर से पुरस्कार राशि के अतिरिक्त इस रचना हेतु उसके प्रकाशन एवं अन्य प्रयोग की स्थिति में किसी भी प्रकार के अतिरिक्त पारिश्रमिक की मांग नहीं होगी. पुरस्कार योजना के निर्णायकों का मत मुझे अंतिम रूप से मान्य होगा.

रचनाकार का नाम : . . . . पूरा पता : . . . . . .
. . . . दिनांक . . . . हस्ताक्षर. . . . .

केवल अहिन्दीभाषी रचनाकारों के लिए

● (मेरी रचना प्रोत्साहन पुरस्कार के लिए ही विचार की जाये. मेरी मातृभाषा " . . . . " है.)

हस्ताक्षर . . . .

यह है हमारा सबूत:
RESEARCH REPORTS ON FLUORIDE AND S 14

SUMMARY OF DENTAL RESEARCH REPORTS

...TESTS ON FLUORIDE

Kinkel and Stolte (Das Deutsche Zahnarzteblatt i.e. German
...ntists' Journal, 1958, 9, 445-460) report the results of
...ientific test on 400 children who used SIGNAL with
...-Mono-Fluoro-Phosphate). The results:
...decay.

यह है आपका सबूत:
मम्मी, दांत का दर्द क्या होता है?

केवल सिग्नल फ़्लोराइड साबित करती है कि यह दांतों की सड़न और सांस की दुर्गंध रोक देती है,

दंत-सफ़ाई के एक अनोखे आधार में.

सिग्नल में मिला फ़्लोराइड दांतों की सड़न रोक देता है :
दंतचिकित्सकों किंकेल और स्टोल्टे द्वारा जर्मनी में ४०० बच्चों पर किए गए परीक्षणों से यह सिद्ध हुआ है कि सिग्नल फ़्लोराइड दांतों के एनामेल पर एक घेरा बना देता है ताकि एनामेल तेज़ाब के हमले का और अधिक मुक़ाबला कर सके. इसीलिए तो सिग्नल इस्तेमाल करने वाले बच्चे यह नहीं जानते कि दांत का दर्द क्या होता है ! अपने परिवार की सुरक्षा के लिए अभी से सिग्नल चिकित्सा शुरू कीजिए.

सिग्नल में मिला S-14 सांस की दुर्गंध रोक देता है :
डा. हावर्ड ई. लिंड द्वारा यू. एस. ए. में किए गए परीक्षणों ने यह सिद्ध किया है कि सिग्नल में मौजूद S-14 मुंह में दुर्गंध पैदा करने वाले ९५% बैक्टीरिया को इस्तेमाल के १५ मिनट के अंदर ख़त्म कर देता है.

सिग्नल के दंत-सफ़ाई के अनोखे आधार से दांत ऐसे साफ़ जैसे डाक्टर करे :
सिग्नल के अनोखे अल्युमिना ट्राइ-हाइड्रेट आधार से आपके दांत ऐसे साफ़ हो जाते हैं जैसे किसी डाक्टर ने किए हों—दांतों के एनामेल को बिना नुक़सान पहुंचाए. केवल सिग्नल में यह विशेष सम्मिश्रण मौजूद है : फ़्लोराइड और S-14 दंत-सफ़ाई के एक अनोखे आधार में.

कोई भी दूसरी टूथपेस्ट इतना नहीं कर सकती.

Signal
TOOTHPASTE
Fluoride
ACTUALLY STOPS TOOTH DECAY AND BAD BREATH

फ़्लोराइडयुक्त
सिग्नल
हिन्दुस्तान लीवर
द्वारा गारण्टीप्राप्त है.
पेटेन्ट न. ११४७१८

**केवल सिग्नल फ़्लोराइड
के पास है सबूत–
अपने दंत-चिकित्सक से पूछिए.**

लिंटास-SGF.63-140 HI

सारिका के वार्षिक ग्राहकों के लिए विशेष छूट

'सारिका' के प्रत्येक अंक का मूल्य एक रुपया है. किंतु वर्ष भर के लिए वार्षिक शुल्क मात्र दस रुपये है, यानी साल भर में दो अंक मुफ्त. यदि आप दो साल के लिए ग्राहक बनते हैं, तो शुल्क केवल उन्नीस रुपये है यानी दो वर्षों में पांच अंक मुफ्त. हां, तीन वर्ष के लिए शुल्क केवल सत्ताईस रुपये है.

आपके लिए सारिका की विशेष दरें इस प्रकार हैं:

एक वर्ष—१० रुपये
दो वर्ष—१९ रुपये
तीन वर्ष—२७ रुपये
विदेश में समुद्री डाक से एक वर्ष—२२ रुपये

कृपया यह कूपन जरूरी राशि के चेक/ड्राफ्ट/मनी-आर्डर के साथ-साथ आज ही भेज दें—

सर्कुलेशन मैनेजर
सारिका, टाइम्स आफ इंडिया बिल्डिंग, बम्बई-४०० ००१.

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/दो वर्षों/तीन वर्षों के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. १० रुपये/१९ रुपये/२७ रुपये चेक/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा भेजे जा रहे हैं.

नाम - - - - - - - - - - - - -

पता - - - - - - - - - - - - -

- - - - - - - - - - - - - - - -

- - - - - - - - - - - - - - - -

हस्ताक्षर - - - - - - - - - - -

दुष्यंतकुमार-स्मृति-अंक

हिंदी के ओजस्वी, प्रखर प्रतिभावान साहित्यकार श्री दुष्यंत कुमार ३० दिसंबर, १९७५ को हमारे बीच नहीं रहे.. सारिका का मई १९७६ अंक उनकी स्मृति को समर्पित है- इस अंक में दुष्यंत जी की गजलें, कविताएं, लेख और उपन्यास अंश पढ़ेंगे—साथ ही उनके मित्रों, संबंधियों और सहधर्मी साहित्यकारों द्वारा विशिष्ट और महत्वपूर्ण संस्मरण भी.

संस्मरणों के संभावित रचनाकार—

डॉ॰ धर्मवीर भारती, शानी, शरद जोशी, मार्कंडेय, श्रीमती राजेश्वरी त्यागी, महावीर अधिकारी, रवींद्रनाथ त्यागी कन्हैयालाल नंदन, बलभद्र तिवारी, श्रीकृष्ण दास, बद्री विशाल पित्ती, विट्ठल भाई पटेल, प्रेमनारायण त्यागी, प्रभात कुमार भट्टाचार्य, राजेंद्र यादव, श्रीमती साधना कांतिकुमार आदि.

सारिका मई, १९७६

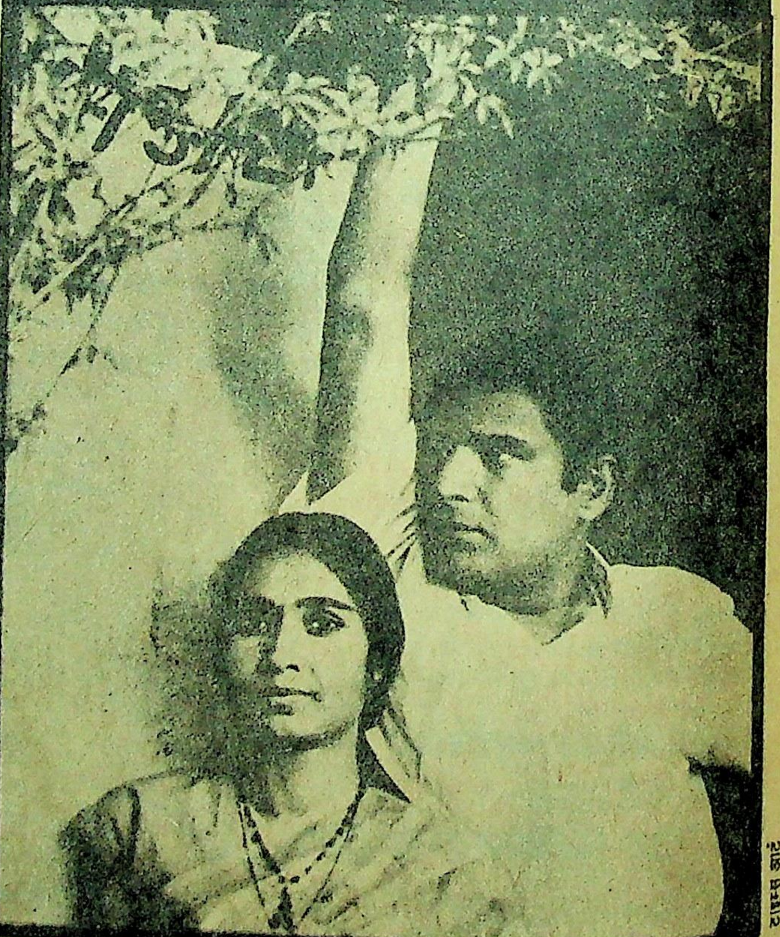

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका
अप्रैल, १९७६
वर्ष : १६; पूर्णांक : १८०

कहानियां

मोहरसिंह यादव : कहर आपाढ़ का १२
बलराम : कलम हुए हाथ १६
सीतेश आलोक : फिर दुनिया में २४
शांता वर्मा : विमली २७
नासिरा शर्मा : बुतखाना ३२
अजित : इम्तहान ३६
प्रेमचंद सहजवाला : कितना सुख ४०
संजीव : किस्सा एक बीमा कंपनी की एजेंसी का ४४
केशव : दरिंदे ४८
योगेंद्र दत्त : टुकड़ा-टुकड़ा मौत ५७
मनीषराय यादव : फरिश्ते की मौत ६०
कैलाशचंद्र : कमीना ६४
मधु शर्मा : छायाएं ६८
सुधा चंदोला : वन वे ट्रैफिक ७२
मनजीत : मुखौटे ७६
योगेश श्रीवास्तव 'प्रवीन' : किस्सा किस्सागोई का ८४

● ●

लघु कथाएं

वचन तथा फल १५
अदृश्य भय, अदृश्य शक्ति २३
ब्राह्मण, चोर और राक्षस ४३

लोककथा

निर्णायक युद्ध ७५

● ●

गर्दिश के दिन

श्रवणकुमार ५२

● ●

स्थायी स्तंभ

पाठकीय ८
प्रसंग ८०
कृतियां ८२
पांचवां समांतर लेखक सम्मेलन : रिपोर्ट ८६
विविधा ९०

● ●

आमुख : वंसल
इस अंक के सज्जाकार : नाफड़े ('सारिका' कला विभाग)

संपादक : कमलेश्वर

- मुख्य उप-संपादक : आनंदप्रकाश सिंह
- उप-संपादक : अवधनारायण मुद्गल, सुदीप
- कार्यालय-सहयोगी : श्रीनाथ पांडेय, देवचंद्र झा, भिकाजी शिर्के

पाठकीय

दिसंबर अंक

● **रत्नेश कुमार, द्वितीय वर्ष विज्ञान, सेंट जेवियर कालेज, रांची, बिहार से लिखते हैं :**

सारिका का मैं नया-नया पाठक हूं. सिर्फ पिछली दो-तीन प्रतियां ही पढ़ चुका हुं. पर अब नियमित रूप से पाठक बन गया हूं. काफी तलाश के बाद यह पत्रिका मिली जो मेरे लिए उपयुक्त सिद्ध हुई. कहानियों के शौक ने ही मुझे **सारिका** का प्रेमी बना दिया है.

दिसंबर अंक में आपने विदेशी लेखकों की कहानियों का अद्‌भुत चयन किया है. **'एक तरफा प्यार'** (फ्रिजेश कारिथी) की प्रशंसा लिख कर नहीं की जा सकती. **'गलत नंबर'** (सविता बैनर्जी) दिल को इस तरह छू देती है कि वारंवार उसके बारे में सोचना पड़ता है कि यह कहीं सच्ची घटना तो नहीं.

लघुकथाओं में **भिक्षा और दान** तथा **समानता** (रूसी) सर्वोपरि लगीं. ☐

● **हेमराज काचा, बालंभा, जामनगर से लिखते हैं :**

सबसे सरस, सुंदर और रोचक कृति है श्री राजेंद्र यादव की गुड्डी —**'गर्दिश के दिन'**. गंतव्य तक पहुंचने की दौड़ ही तो सब कुछ है. कैसा होता है साहित्यकार का जीवन.! धक्के मार कर भी वह कदापि गिर नहीं पड़ता! इस बात को ही यादवजी ने बखूबी रख दिया है —एकदम सजीव रूप में.

विशिष्ट खंड की प्रथम दोनों सोवियत कहानियां वास्तव में भारतीय मूल्यों की परिचायक हैं. दोनों मानवीय भावनाओं से प्रेरित हैं. प्रायश्चितजनक बलिदान एवं कुंवारी और विवाहिता का फर्क क्या एकदम भारतीय नहीं लगता? **'बहुत दिन बीते'** नाटकीय होने की वजह से विशेष रोचक बन सकी है. भारत में जैसा रूप नौकरी के लिए उम्मीदवार की पसंदगी का है, ठीक वैसा ही हो रहा है **'हीरोइन की तलाश'** में.

वास्तविक धरातल पर नारी जीवन की परवशता का जीवंत रूप है—**'गलत नंबर'** की 'सुस्मिता' उसका नाम गलत नंबर बन जाता है. और पुरुष की दुर्भावना भरी कामुकता का अंत नहीं. आधुनिकता को तोड़-फोड़ कर हम उसे गलत मोड़ पर ले जा चुके हैं. यही है. **'आधुनिक औरत की मौत'**. पौरुष में आ जाना केतकी के लिए सहज है. सशक्त एवं समांतर कहानी है **'एक और वापसी'**. संघर्षों से टक्कर लेती हुई सुनीता अपने आपको आग में रख सकती है. मध्यमवर्गीय जीवन की यह एक कलात्मक कहानी है.

'नये सफेद गुलाब' 'चोरी'. 'पारदर्शी चेहरा', 'न चाहते हुए' एवं **'मेहमां कैसे कैसे**...नारी जीवन के किसी-न-किसी पहलू को सबलता से अंकित करती हैं. ☐

● **हरि भक्त, वल्लभ नगर कालोनी, पंजवाणी, कोटा -३२४००७, (राजस्थान) से लिखते हैं :**

'सारिका' के जनवरी अंक की दो कहानियां विशेष पसंद आयीं. , **'अंतराल'** तथा **'हत्यारा'**

फरवरी की लगभग सभी कहानियां ही पसंद आयीं, विशेष—**'संज्ञा व सर्वनाम'** (सुरेश चतुर्वेदी) **'शायद' कोई है** (ज्योत्सना देवधर) **'प्रतिरोध'** (सुधींद्र कुमार) **'एडजस्ट होने की कोशिश में'** (विनोदशाही) के अन्त: . . .'कि मंगल फिर लौट कर आयेगा या नहीं. . .' के साथ यदि. . .'कि मुझे लगा, वह नहीं आयेगा' जुड़ा होता तो ज्यादा अच्छा लगता .

दीप्ति खंडेवाल की आत्मरचना को अच्छा कहना तो कमीनापन होगा, किसीकी पीड़ा को अच्छा कहना और क्या होगा ! . . .बस मन भर आता है. एक चुप्पी से. . .और मारीशस की कहानियों का धन्यवाद .

इस बार श्वेत-श्याम चित्र चार आये हैं, श्वेत-श्याम चित्रों की संख्या बढ़ायें. मुझे ऐसे चित्र बहुत पसंद आते हैं. तथा चित्रों को शीर्षक के साथ प्रकाशित करें तो बहुत अच्छा रहेगा. पहले 'पेंटिंग्स' आया करती थीं. आजकल वो भी नहीं आती, क्यों ? उन्हें भी शीर्षक के साथ दें तो कितना अच्छा रहेगा.

कुछ चित्रों में कुछेक व्यक्ति सीधे कैमरे में देखते हुए कुछ अटपटे-से लगे, लगा, सारे चित्र का अर्थ कहीं बिखर गया. दुनिया का हर आम आदमी निश्चय ही फोटोग्राफिक आब्जेक्ट होता है. किंतु अच्छा माडल हो, आवश्यक नहीं. संपादक जी, आपने **'मेरा पन्ना'** भी बंद कर दिया, **'नयी पौद'** को बंद किये तो अरसा बीत गया, जहां तक मुझे याद आता है इसकी कोई सूचना नहीं थी, कृपया कारण बताएं तथा इन्हें पुन: शुरू करें. क्या दिक्कतें हैं जो आप इन्हें शुरू नहीं कर सकते ?

हालांकि मैं लिफाफे के २५ पैसे आसानी से खर्च करने की स्थिति में नहीं हूं. किंतु **'सारिका'** को एक रुपये में खरीदाना अन्याय लगता है, इतनी अच्छी कहानियां इतने अच्छे फोटोग्राफ्स, खूबसूरत छपाई एवं कागज, एवं विकसित तकनीकी वाली **'सारिका'** का मूल्य एक रुपया कम नहीं? ☐

● **रमणीक लाल सरोज ४३।ए, फ्रायडे बाजार, गिरीडीह (बिहार) से लिखते हैं :**

आपकी पत्रिका **'सारिका'** का मैं पाठक होने के नाते प्रत्येक अंक प्रेम एवं सद्भाव से स्वीकार करता हूं. परिवार सहित **'सारिका'** को बड़े चाव से पढ़ता आ रहा हूं. अफसोस तो इस बात का है मुझे, आजतक अपनी प्रिय पत्रिका **'सारिका'** के विषय में अपने शुभ विचार पत्र द्वारा आपके सम्मुख प्रस्तुत न कर सका. कारण कोई विशेष नहीं है.

मेरे लिए **'सारिका'** में प्रमुख विशेषता यह है कि पत्रिका की दो खूबसूरत एवं आर्कषक देन **'आद्य कथाकार'**, **'गर्दिश के दिन'** यही दोनों स्थायी स्तंभ पत्रिका के लिए चार चांद से कम ही नहीं है, अधिकतर ही पाठकगण इसी स्तंभ से काफी प्रभावित होते हैं. इनके विषय में दो बातें––

"आद्य कथाकार" के रूप में भारतीय भाषाओं की मौलिक कहानी के साथ लेखकों से परिचय कराने में आपका ही पहला प्रयास है. **"गर्दिश के दिन"** के अंतर्गत लेखकों की आत्मरचना प्रकाशित करके आपने पाठकगण पर बहुत बड़ा उपकार किया है. कृपया इन दो स्तंभों के लिए मेरी ओर से आप हार्दिक बधाई स्वीकार करें.

'सारिका' का फरवरी अंक शुरू से अंत तक पढ़ डाला. सर्व प्रथम **"गर्दिश के दिन"** में अपनी प्रिय लेखिका "दीप्ती खंडेलवाल जी" की आत्मरचना पढ़ने को मिली. चित्र के साथ उनकी आत्म रचना से मैं काफी प्रभावित हुआ. जो हृदय की गहराईयों तक छू जाती है. **"मुक्ति"** (द्वारकाप्रसाद) की कहानी में नायिका का चित्रण काफी सुंदर ढंग से किया गया है. लड़कियों के लिए कथा शिक्षाप्रद है––**"संज्ञा और सर्वनाम"** '(सुरेश चतुर्वेदी) कहानी पढ़ने से यही महसूस किया मैंने? लेखक कहानी में क्या बताना चाहते हैं जबकि एक ही नाम को दुहराने के बाद पुनः तुम्हारा नाम यह नहीं है. यही एक चीज कहानी में पढ़ने के बाद खटकती है. **"रेत के पोधे"** (ठाकुर) **"एक और शुरुआत"** (मधुकर सिंह) **"एडजस्ट होने की कोशिश में"** (विनोद शाही) **"एक इंद्र धनुष"** (सूर्यबाला) प्रत्यक कहानी मुझे बेहद पसंद आयी. ☐

जनवरी अंक

● **नंदकिशोर अरोड़ा. ३२२, ३ / ए रोड सरदारपुरा, जोधपुर– १३ (राजस्थान) से लिखते हैं :**

'सारिका' के जनवरी अंक में **'देवदासियां : साहित्य के चौखटे में'** विशिष्ट खंड के अंतर्गत स्मृति-पलट पर छा जाने वाले देव-देवदासी समाज के संस्मरण बेहद रोचक रहे.

रामस्वरूप अणखी की लघु कथा **'भेद की बात'** अश्लीलता की सीमा को छूती है. अन्य लघुकथाएं भी सामान्य रहीं.

भारतीय भाषाओं की प्रथम मौलिक कथाओं के क्रम के अंतर्गत मराठी कथाकार 'दिवाकर' की कहानी **'प्रवासी'** ने सबसे अधिक प्रभावित किया. हिंदी की नई कहानी के साथ शिल्पगत दृष्टि से कहानी-विधा का मूल्यांकन करने पर यह रचना अधिक समय-साक्षेप ठहरती ह. ☐

● **ए. डी. चौहान. स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, बंबई मेन ब्रांच, बंबई से लिखते हैं :**

जनवरी की **'सारिका'** देवदासियों पर ही आर्टिकल होंगे सोच कर ही खरीदी, पढ़ी और अब लिखने को मजबूर हो गया हूं.

मि. पैंगींणकर की आंसू की बूंदें पूरी जमीन **(सारिका में)** पर मोती के दानों की तरह बिखरी हुई है. पैंगींणकर के अनुभव तो हैं ही, पर एक कुशल संपादक की कारीगरी भी उसमें झलकती है. "अन्य कहानियां" के अंतर्गत **'अंतराल'**, पूरी सारिका में नगीने की तरह लगी. **'वंदे भगवती'**, **'स्टाफ आर्टिस्ट'** उसके बाद हृदय को छू गयीं. **'हत्यारा'** समझ में नहीं आयी. लगती ठीक है. न जाने क्यों? अखर गयी तो **'कब तक'** यह भी समझ में नहीं आया. ☐

● **विनोदपुरी 'रंजू' मुहल्ला : फतेहगढ़, लुधियाना, पंजाब से लिखते हैं :**

"सारिका" हमारे परिवार की प्रिय पत्रिका है. हमारा सारा परिवार इसे बड़े ही चाव से पढ़ता है. इस पत्रिका में वो सभी कुछ है जो कि एक सुंदर से सुंदर पत्रिका में होना चाहिए. **'सारिका'** जनवरी अंक में वैसे तो सभी कहानियां अपनी-अपनी जगह अच्छी थीं पर **"देवदासी"** (शंकर राव खरात) व **"कस्तूरी"** (मधु मंगेश कार्णिक ने काफी प्रभावित किया. हमारी तरफ से लेखकों को धन्यवाद दें. ☐

● **रविशंकर चौबे बी. एम. बी. एस. मेडिकल कालेज कानपुर से लिखते हैं :**

सारिका जनवरी' ७६ का 'देवदासी' अंक पढ़ा. देवदासियों से संबंधित कहानियों में **'आवडा'** सबसे अधिक मर्मस्पर्शी लगी. अन्य कहानियों में **'अंतराल'** के लिए बधाइयां स्वीकार करें. कहानियों में दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा 'सामान्यीकरण' अब थोड़ा खटकता है. समांतर आंदोलन की कहानियों में आंचलिकता बढ़ रही है कथानक जैसे जबर्दस्ती पाठकों के ऊपर मढ़ा जाने लगा हो. फिर भी, सामान्य जन के समीप जाने वाली ये कहानियां आज ज्यादा-से-ज्यादा प्रकाशित करें, तभी 'समांतर' का उद्देश्य पूरा होगा. ☐

आगे बढ़ता देश हमारा

रेल यात्रा अधिक आरामदेह और रफ्तार भी तेज

भारतीय रेलें प्रतिदिन 10,000 से अधिक गाड़ियां चलाती हैं। इनमें लम्बी दूरी की यात्रा करने वाले दूसरे दर्जे के यात्रियों की सुविधा के लिए 2,570 शायिका डिब्बे होते हैं। और, सभी जगह, रेल गाड़ियां समय पर चल रही हैं। माल गाड़ियां प्रतिदिन 5.5 लाख टन जरूरी वस्तुएं ला-ले-जा रही हैं।

आप भी रेल सेवा के सुधार में सहायता दे सकते हैं। बेटिकट यात्रा और रेलों के जुड़नारों की चोरी रोकिए।

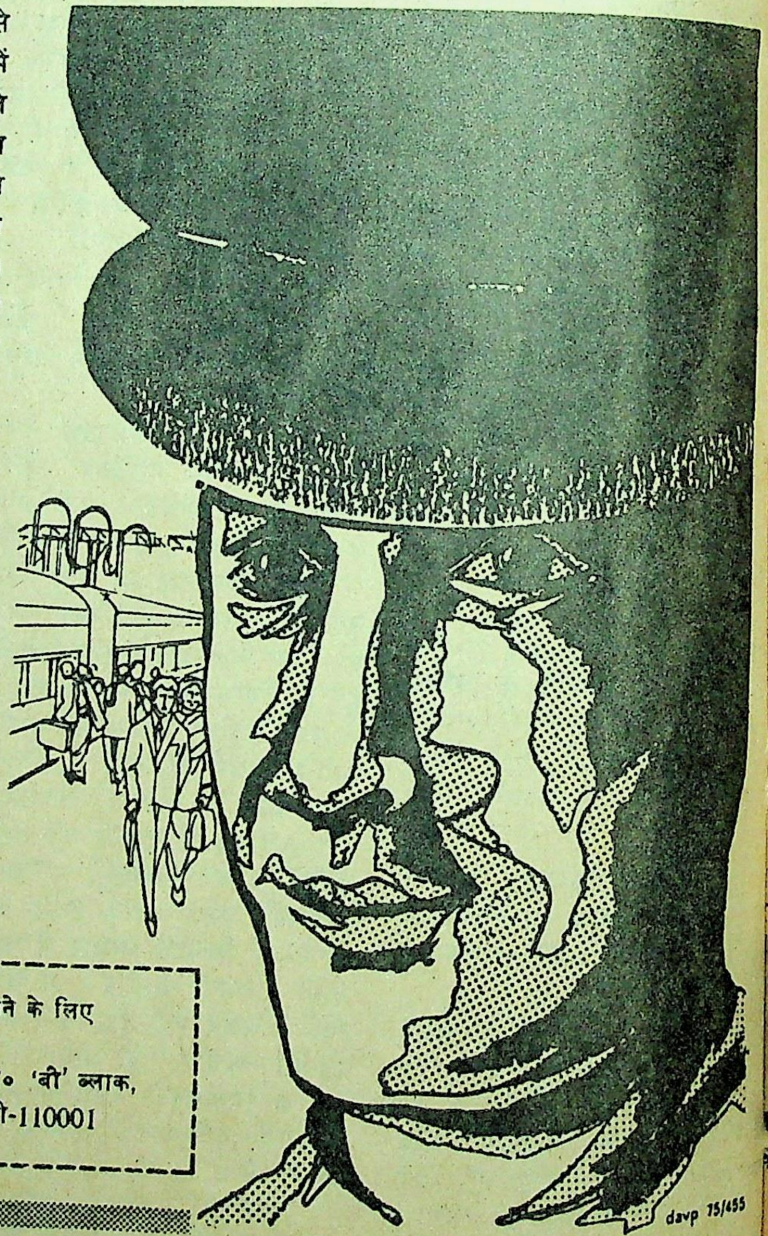

दृढ़ संकल्प और कड़ी मेहनत से हम और बढ़ेंगे

भारतीय रेल पुस्तिका मुफ्त पाने के लिए
कृपया इस पते पर लिखें
वितरण प्रबन्धक, डी० ए० वी० पी० 'बी' ब्लाक,
कस्तूरबा गांधी मार्ग, नई दिल्ली-110001

davp 75/455

इस नवलेखन अंक के लेखक

- **मोहरसिंह यादव :** अभी तीन-चार कहानियां ही लिखी हैं, लेकिन अपने समय-संगत कथ्य और नय शिल्प के कारण प्रभावित करते हैं.
- **बलराम :** पिछले तीन-चार बरसों से लेखन-रत ह. ग्रामीण परिवेश पर इनकी पकड़ बहुत मजबूत ह. शैली में तल्खी है और कहानी के प्रति असीम उत्साह.
- **सीतेश आलोक :** प्रयाग विश्वविद्यालय से एम. ए. पी-एच. डी. अब तक अनक प्रतिष्ठित और छोटी पत्रिकाओं में लगभग ६० रचनाएं --कहानियां, कविताएं, व्यंग्य, लघु-नाटक--आदि प्रकाशित. पर्यटन म विशष रुचि.
- **शांता वर्मा :** हाल ही में कहानियां लिखना शुरू किया है. कथ्य और परिवेश की जबरदस्त पकड़ इनकी कहानियों में मौजूद है.
- **नासिरा शर्मा :** अब तक बच्चों और महिलाओं की पत्रिकाओं में ही लिखतीं रही ह. अब गंभीरता से कथा-लखन की ओर प्रवृत्त. फारसी, पश्तो, उर्दू तथा अंग्रेजी का इन्हें अच्छा ज्ञान ह.
- **अजित :** आरा में १९४३ म जन्म. वहीं पर अध्ययन. ग्रामीण परिवेश के गहन खोजी. संप्रति शिक्षक हैं.
- **प्रेमचंद सहजवाला :** १९४५ म जन्म. एम. एस-सी. (गणित). अब तक करीब २० कहानियां प्रकाशित.
- **संजीव :** उत्तर प्रदेश में जन्म, प. बंगाल में बड़े हुए. बचपन घोर निर्धनता में गुजरा. संप्रति इंडियन आयरन एंड स्टील कं. में रसायनज्ञ.
- **केशव :** हाल ही म लिखना शुरू किया है, लेकिन जागरूक लेखन के कारण चर्चित हो रहे हैं. सात - आठ कहानियां प्रकाशित.
- **योगेंद्र दत्त :** लघुकथाओं के क्षेत्र से कहानी के क्षेत्र में आये हैं और अच्छा लिख रहे हैं.

- **मनीषराय यादव :** १९४५ में म. प्र. के एक गांव में जन्म. चुभती हुई व्यंग्य लघुकथाएं लिखन में माहिर हैं.
- **कैलाशचंद्र :** निम्न मध्यवर्गीय जीवन को इन्होंने बड़ी गहराई से देखा-भोगा है और उसी का अपनी कहानियों में चित्रण भी करते हैं.
- **मधु शर्मा :** पिछले तीन-चार वर्षों से लिख रही हैं. कुछ कहानियां प्रकाशित. दो उपन्यास प्रकाशनाधीन. युवा मानसिकता मुख्य कथ्य.
- **सुधा चंदोला :** पिछल १२ वर्षों से अमरीका में रह रही हैं और वहां की अनेक पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुई हैं.
- **मनजीत :** जन्म १९५७ में. शिक्षा केवल आठवीं तक. आगे पढ़ने की कोशिश में. रंगमंच से विशेष लगाव.
- **योगेश श्रीवास्तव 'प्रवीन' :** लखनऊ विश्वविद्यालय में हिंदी के शोध-छात्र और स्थानीय कॉलेज में प्रवक्ता. पत्रकारिता में विशेष रुचि.

अजित

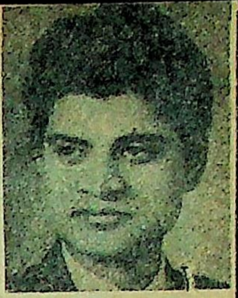
सीतेश आलोक

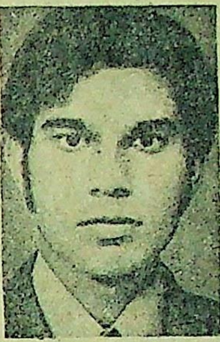
बलराम

संजीव

मनीषराय यादव

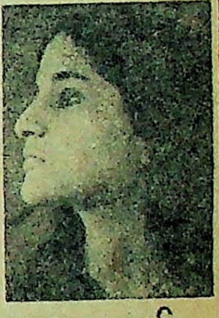
मधु शर्मा

प्रेमचंद सहजवाला

नासिरा शर्मा

सुधा चंदोला

कैलाश चंद्र

केशव

योगेंद्र दत्त

योगेश 'प्रवीन'

मोहरसिंह यादव

मनजीत

कहर आषाढ़ का

• मोहरसिंह यादव

नीम की छाया में लेटे-लेटे घींसिया ने हिसाब लगाया. अंगुलियों के पोरवों पर अंगूठा रखते हुए गिनती गिनने लगा ...आज जठ सुदी दसमीं हो गयी. ग्यारस एक. . .बारस दो. . .तेरस तीन. . .चौदस चार. . . और पूर्णमासी पांच. . .पूरमपट, पांच दिन रह गये जेठ के!

उसे चिंता होने लगी. केवल पांच दिन बाकी रह गये आसाढ़ लगने में. वह सोचने लगा, दो महीने से खाट में पड़ा हूं. एक अंगुल भी फायदा नहीं हुआ. दस दिन पहले सरकारी अस्पताल के डाक्टर को दिखाया था. उसने एक मटमैली-सी पर्ची पर बीस रुपये की सुई और दवाइयां लिख दीं. बीस रुपये कहां से लाता? उसके लिए तो पहाड़ से भी बड़ी थी यह रकम. कोशिश तो खूब की थी. घींसिया और पांची दोनों मर्द-बीर सारे गांव में डोल आये; पर किसी ने एक पाई भी उधार न दी. किसी का भी कलेजा नहीं पसीजा. आखिरी उम्मीद लालाजी से थी, उसने भी टका-सा जवाब दे दिया. कहने लगा—तेरे घर में पांच मन जौ पहुंच गये हैं. साठ रुपया मन के भाव से लगा हिसाब. . . सिफर की सिफर और छः पंच तीस. हो गये पूरे तीन सौ रुपये . और तीन रुपया सैकड़ा के हिसाब से चार महीने के ब्याज के हुए. . .नौ चौक छत्तीस रुपये. . . .तीन सौ छत्तीस. और दस रुपया सैकड़ा कटोता के . . . तीस रुपये. सारी रकम जुड़-जुड़ाके हो गयी तीन सौ छियासठ रुपये, परमपट. और आगे, भूल-चूक लेनी. या तो दस्तूरी बात है: सुन ले कान खोल के!

घींसिया बैठा-बैठा लाला राम औतार की बातें सुनता रहा. उसकी हिम्मत नहीं हुई कि वह बीस रुपये के लिए दुबारा बोले. पांच मन जौ की कीमत तीन सौ छियासठ रुपये सुनकर वह ढ़ीला पड़ गया. उसने सपने में भी यह उम्मीद न की थी कि सेठ इतने अधिक रुपये जोड़ देगा. उसका जी मिचलाने लगा और सारे बदन से पसीना चूने लगा. शरीर के जोड़ों का सारा सत निकल गया. उकड़ूं बैठे-बैठे घुटने जकड़ गये और उसे ऐसा लगा जैसे देह किसी भारी बोझ के तले दब गयी.

सेठ राम औतार बोलता जा रहा था—खुली आंख? पहले बकाया हिसाब साफ कर दे, सारा का सारा, फिर आगे की बात कर! मेह बरसते ही तू तो मेरे ऊंट पर हाली लग जा और पांची को मेरे खेत में निराई-गुड़ाई के लिए भेज देना. तेरे सिर का बोझ हल्का हो जाएगा, और मेरे रुपये लौट आयेंगे. अब ऐसी सूरत में बीस रुपये तो जहां-तहां, एक पैसा भी नहीं मिल सकता. और नाज भी नहीं मिलेगा. दोनों कान खोलकर सुन ले. फिर मत रोना कि सेठ ने धोखा किया. हिसाब जौ-जौ का और बकसीस सौ-सौ की. लेन-देन की शर्तें तु साफ बता दी हैं. व्यवहार तो व्यवहार है. इसमें न को भाई और न कोई बंद.

सेठ अन्य दो असामियों से लेन-देन की बातें क लग गया. घींसिया ने दबी पलकों से एक बार से की ओर देखा और दीवार का सहारा लेकर खड़ हो गया. सेठ से हाथ जोड़ कर 'राम-राम' की और कम पर दोनों हाथ रखकर अपने घर की ओर चल पड़ा था.

गर्दन नीचे किये सारे रास्ते चलता-चलता वह से द्वारा बताये रुपयों में के बारे में सोचता रहा. उसने म ही मन हिसाब लगाया, शीतला सातें से दो दिन पहले चैत बदी पांचे को, जौ लिये थे. उस समय गांव मे जौ का आम भाव पैंतालीस रुपये मन था. सेठ ने पंद्रह रुपये मन ज्यादा लगा लिये. दस रुपया सैकड़ा का कटौता और आम दर से दुगुना ब्याज लगा लिया. उसने हिसाब लगाने की काफी कोशिश की, किंतु तीन सौ छियासठ रुपये का जोड़ नहीं बिठा पाया. वह हद से ज्यादा उलझ गया. उसने कमर से हाथ हटाकर अंगुलियों पर हिसाब लगाने की चेष्टा की, पर घर पहुंचने तक कुछ भी स्पष्ट नहीं हुआ. वह केवल इस नतीजे पर पहुंचा कि सेठ ने डेढ़-दो गुना अधिक रुपये लगा लिये हैं.

उसके दिल में सेठ के प्रति घृणा-सी हो गयी. वह निढाल हो कर खाट पर गिर गया. पड़ा-पड़ा धीमे-धीमे बड़बड़ाने लगा——स्याला. . .कीड़े पड़के मरेगा. . . खून चूसता है. . .गरीबों की हाय . . .

पांची झप्पर में झाड़ू लगा रही थी. तीनों बच्चे नीम की छाया में घरघूले बना कर खेल रहे थे. घींसिया ने थकान दूर करने के लिए पांव पसारे और शरीर तना दिया. उसे एक लंबी उबासी आयी. आंखों के सामने अंधेरा-सा हो गया और तारे से बहते दिखायी दिये. उसने दोनों आंखों को हथेलियों से मला तो दृष्टि साफ हो गयी. पांची ने छप्पर का निकला हुआ कूड़ा गलियारे में फेंका और घींसिया के पास में आकर पूछने लगी——फूसिया

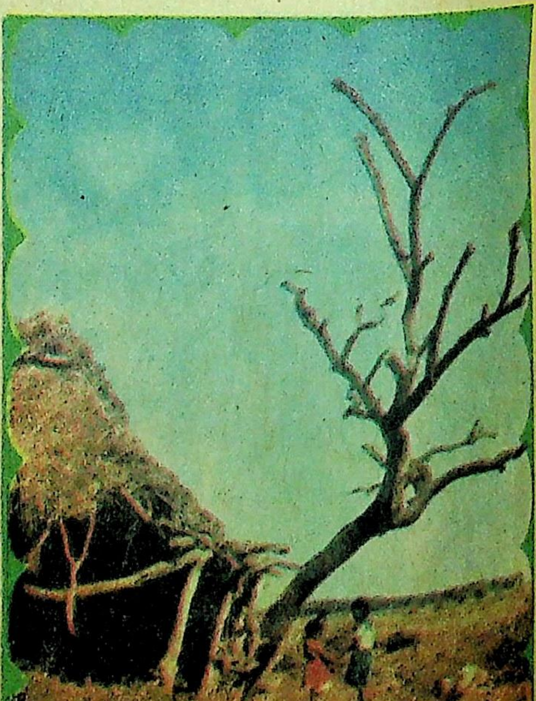

चित्र

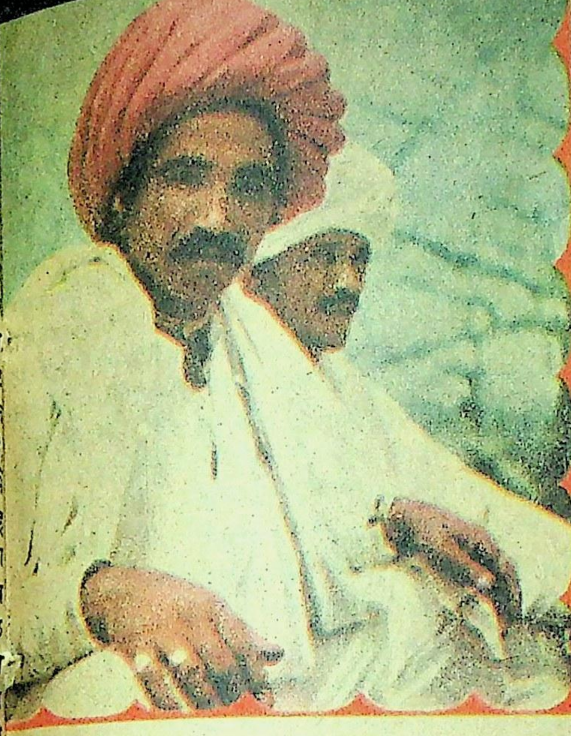

का काका, मिल गया कि ना रुपिया?

—कित मिल गया, घींसिया ने कराहते हुए कहा.

—क्यूं के बात हुई, सेठ से?

—बात के हुई, कुछ बी ना. यूं कहे है कि पहले जौ के पैसे दो. . .

—तीन सौ छियासठ रुपिये निकाले हैं, बाकी.

—यी कितना होवे है? पांची ने उत्सुकता से पूछा.

—नौ कम पोणे चार सौ.

—हाय. . .राम! इतना घणा!

—साठ के भाव जौ लगाया है और ब्याज-बट्टो अलग है.

—तड़के दिन निकला सरकारी अस्पताल में मंडावर जाऊंगी. . .

—कोई घोल-घाल लेके आऊंगी.

—वा अस्पताल की दवाई से के फायदो होवे है! पहलड़ी सीसी से ढिगाभर बी असर ना हुयो. पुरानी जुरी है, बिना सुरी के मुसकल से निकलेगी.

पांची इतनी बात कह कर रोटी बनाने के लिए लकड़ियां तोड़ने चली गयी. घींसिया ने जम्हाई ली और करवट बदल कर खाट की बांही के पास समांतर पांव फैला कर लेट गया. उसकी पलकें भारी होने लगीं. वह आंखें मूंद कर सो गया. उसे नींद में भी सेठ और उसका बताया हुआ हिसाब दिखता रहा. पहाड़ से भी भारी लग रहा था उस सेठ का हिसाब!

* *

दूसरे दिन सुबह उठते ही वह सरकारी अस्पताल में मंडावर पहुंचा. डाक्टर की मेज पर पुरानी पर्ची रखी. डाक्टर ने पर्ची पर एक नजर डाली और उसकी नब्ज देखने लगा. स्टूल पर बिठा दिया और स्टेथेस्कोप को छाती और कमर पर लगा-लगा के जांच करने लगा. सब कुछ देखभाल कर डाक्टर ने पूछा :

—तुम इतने रोज से कहां थे? टिकिट में तो दस दिन पहले की तारीख लगी है. इस तरह से इलाज थोड़े ही होता है!

—डाकदर सा'ब, गांव में ही था. दवाई-मूली का पैसा को बंदोबस्त कर रह्यो थो, घींसिया ने नम्रता से कहा.

—कुछ भी हो, तुम्हारी हालत ठीक नहीं है. बुखार बिगड़ गया है. अब तुम्हें लगातार कैपसूल्स लेने पड़ेंगे और चार-पांच इंजेक्शन लगेंगे या फिर तुम भर्ती हो जाओ. हमारे यहां तो हाल-फिलहाल कोई खाली बैड है, नहीं तुम ऐसा करो. अलवर बड़े अस्पताल में चले जाओ. मैं तुम्हें पर्ची बना देता हूं.

डॉक्टर की बात सुन कर घींसिया कुछ भी न बोल पाया. वह नीची पलकें किये जड़वत एक ही मुद्रा में बैठा रहा जैसे उसकी जुबान पर बहुत भारी ताला लग गया है. डाक्टर उसकी ओर देखता रहा. उसने एक बार पुनः पूछा—क्यों, अलवर के अस्पताल में भर्ती होने के लिए चिट बना दूं? घींसिया मौन साधे बैठा रहा. उसने हां या ना, कुछ भी नहीं कहा.

डाक्टर समझ गया. उसने घींसिया के फटे-मैले कपड़ों को एक बार पुनः देखा. स्थिति को समझते हुए एक बार फिर पूछा—क्या पैसों का बंदोबस्त नहीं हुआ? यह सुनकर धीमें से घींसिया ने पलकें उठायीं और उसकी आंखों में आंसू भर आये. डाक्टर ने तुरंत काल-बैल बजायी और चपरासी से कंपाउंडर को बुलाने को कहा. उसने एक खाकी टिकिट पर दो-तीन दवाओं के नाम लिखे और कंपाउंडर के हाथ में थमा दिया. कंपाउंडर जल्दी से दो शीशियों में घुली हुई दवाइयां और एक पुड़िया में कुछ गोलियां लपेट कर ले आया.

डाक्टर ने घींसिया को दवाइयां दे दीं और एक दिन में तीन खूराक, सुबह, दोपहर और शाम लेने की सलाह दी.

घींसिया ने गोलियों को अपनी पगड़ी के किनारे बांधा और दोनों शीशियां हाथ में उठाते हुए डॉक्टर को सिर झुकाकर 'राम-राम' किया. वह जल्दी-जल्दी कदम रखता हुआ अस्पताल से बाहर निकला और अपने गांव के रास्ते पर चल दिया. सारे रास्ते, वह अपनी बीमारी, बच्चों, पांची और सेठ के कर्ज के बारे में सोचता रहा. उसने अपनी समस्याओं के उपाय ढूंढ़ने की काफी चेष्टा की पर कोई उपाय न सूझा. उसे ऐसा लगा जैसे समस्याएं दैत्याकार रूप धारण किये हुए मुंह खोले खड़ी हैं और उसका अपना व्यक्तित्व चींटी से भी छोटा है. उसका सारा सोचना व्यर्थ गया. इसके अलावा बीमार भेजा दुगना खराब हो गया.

घर पहुंच कर घींसिया ने चिमनी वाले आले में दवाइयां रख दीं और खाट पर लेट गया. पांची उत्सुकता से छप्पर से बाहर निकली और पूछा—के बेमारी बताई है, डॉक्टर ने? घींसिया अपना सर दबाये चुपचाप बैठा रहा. पांची ने पुनः पूछा तो उसने धीमे से, जुरी है,

कह दिया. पांची पायताने बैठ कर घींसिया के पांव दबाने लग गयी. घींसिया ने पांची से दवाई और गर्म पानी लाने को कहा. पांची दोनों शीशियां, एक गोली और बाहर धूप में रखी मटकी से एक कटोरा पानी ले लायी. घींसिया ने शीशियों से एक-एक घूंट दवाई पी और एक गोली पानी के साथ गिटक ली. उसने मुंह पर लगे पानी को हाथ से पोंछा और जोर से डकार लेकर वापस लेट गया. उसने करवट बदल कर जोर से खांसा और पाये के पास सारा डाल दिया.

पांची ने दवाइयां वापस उसी आले में रख दीं. वह चूल्हे के पास बैठ कर लकड़ियों के छोटे-छोटे कुटकले तोड़ कर फूंकनी से आग जलाने लग गयी. आग जलाकर उसने हांडी को धोया और चूल्हे पर घींसिया के लिए जौ का दलिया चढ़ा दिया. उसे मालूम था कि जौ का दलिया जुरी में नुकसानदेह होता है. पर चावल-मूंग की खिचड़ी कहां से आये?

घींसिया की खाट के पास आकर तीनों बच्चे, काका, काका कहने लगे. घींसिया ने अपना अलसाया हाथ उठाया और बिचले लड़के कालिया के सिर पर हाथ फेरने लगा. कालिया चुपचाप खड़ा-खड़ा अपनी खोपड़ी सहलवाता रहा.

★ ★

तीन दिन बीत गये, दवाई लेते-लेते. घींसिया को अपनी तंदुरस्ती में थोड़ा फायदा महसूस होने लगा. पांची ने भी सुबह दवाई पिलाते वक्त कह दिया——अब तो थारी आसंग चोखी लाग री है. मुंह पे बी रौनक है, आज तो! और पांची की बात सुनकर वह स्वयं को चोखा समझने लग गया था. उसने स्पष्टीकरण और अपने दिल की शांति, के लिए पांची को तीन-चार बार पूछ लिया था कि क्या वाकयी उसकी हालत चोखी हो रही रही है? पांची ने हर बार, 'हां,' कह दिया. अब उसे पूरा विश्वास हो गया था कि वह पांच-सात दिन में बिलकुल ठीक-ठाक हो जाएगा।

दूसरे दिन सुबह तो उसकी तंदुरस्ती में काफी सुधार हो गया. सुबह खाट से उठ कर वह पोखर से दूर निबटने चला गया. हाथ-पांव धोकर घर चला आया. उसने पांची से साफ-साफ कह दिया कि जौ का दलिया खाते-खाते मन ऊब गया है. आज तो मैं कोई चरपरी चीज खानो चाहऊं हूं! रोटी और चटणी मिल जाए तो मजा आ जाए. और पांची ने भी मुस्करा कर कह दिया——पतली-पतली जौ की रोटी बना दूंगी और लसन-प्याज की चटणी बना दूंगी.

घींसिया को पांची का प्रस्ताव बहुत अच्छा लगा,

घींसिया ने जौ की दो पतली-पतली रोटियां लहसुन-प्याज की चटनी के साथ खा लीं. काफी दिनों बाद चरपरी चटनी और रोटी उसे खूब स्वाद लगीं. वह एक रोटी और भी खाना चाहता था, पर पांची ने मना कर दिया. कहने लगी——इतने दिना में तो ऊठे हो, लीलिया का काका! घणी रोटी खाबा से फेर बेमार पड़ जाओगे. और घींसिया मन. मसोस कर बैठ गया. था. उसने दूसरी बार रोटी और चटनी नहीं मांगी.

दोपहर में वह नीमतले खाट पर आकर गया. आसमान में बड़े गहरे-भूरे बादल फैले हुए जेठ की पूर्णमासी थी. दूसरे दिन से आषाढ़ लगनेवा था. सुबह से गर्मी बहुत भयंकर पड़ रही थी. नीम ठंडी छाया में उसकी आंखें लग गयीं. थोड़ी देर बा मोटी-मोटी बूंदें गिरने लगीं. वह हड़बड़ा कर उठा. पांची छप्पर में से बाहर भागी और घींसिया की खाट को छप्पर में बिछा दिया. घींसिया ने दूधिया आकाश को ए बार देखा और छप्पर में जाकर खाट पर बैठ गया बारिस की बूंदें और तेज हो गयीं थीं और कुछं पल बा मूसलाधार पानी बरसने लगा था.

लगभग दो-ढाई घंटे लगातार पानी बरसा. खूब गरक मेह हो गया था. शाम को सब बादल हट गये थे. सारा आकाश साफ हो गया. पांची ने छप्पर से बाहर चारपाई निकाल दी. घींसिया उस पर बैठ गया. पांची चूल्हे पर रोटियां सेकने लगी. सामने की गली से छाता हाथ में लिये सेठ आया और घींसिया के छप्पर की ओर मुड़ गया. घींसिया खाट से उठ गया और सर झुका कर सेठ से 'राम-राम' की. सेठ छाते का सहारा लिये खड़ा-खड़ा कहने लगा——घींसिया, कल से तू मेरे हल पे हाली जाएगा. बिरखा गरक हो गयी है. अब बुवाई कर दे फटाफट!

घींसिया नीची गर्दन किये बैठा रहा. वह कुछ भी न बोल पाया. पांची ने थोड़ी देर घींसिया के जवाब का इंतजार किया, किंतु जब घींसिया ने मौन स्वीकृति दे दी तो उससे न रहा गया. वह छप्पर के बारने से घूंघट में से बोली--सेठजी, अभी तो आसंग हल जोतबा की कित है इणकी! दो-तीन दिन कोई दूसरी हाली कर लो.

सेठ की भौंहें तन गयी थी, पांची की बात सुनकर. वह गुस्से में तमतमाकर बोला--हराम के थे मेरे पांच मन जौ! खा लिये और हाथ पोंछ लिये. मेरा भी नाम रामौतार नहीं जो या ढूंडो फुड़क नहीं करवा दूं तो. के समझ राखी है? हरामी, नीमक हराम!

सेठ कुछ और सुनाता, किंतु घींसिया से न रहा गया. वह बीच में ही हाथ जोड़ कर कहने लगा——सेठजी, गुस्सा मत करो. आप तो म्हारा भाई-बाप हो. भगवान से भी बड़ा हो. बैयरबानी की बात पे मत जाओ. मैं, ना थोड़ी कर रह्यो हूं. तड़के ही सबेरे हल लेके चलो जाऊंगो. थम फिरकर मत करो.

घींसिया की बात सुन कर सेठ का उफान शांत हो गया. वह यह कह कर कि अच्छो ठीक है, सबेरे बखत से आजइयो, चला गया. घींसिया ने एक लंबी सांस ली जैसे आफत टल गयी और उसे सुख मिल गया हो.

सेठ के जाने के पश्चात भी पांची घींसिया को हल न जोतने के लिए कहती रही. घींसिया सुनी-अनसुनी करता रहा.

★ ★

दूसरे दिन सकाले-सकाले घींसिया सेठ का हल जोतने चला गया. दिन चढ़े पांची ने तीन जौ की रोटियां बनायीं और कचरियों की चटनी लेकर घींसिया को

खातिर खेत में ले गयी. बीमारी से टूटे घींसिया ने तीनों रोटियां चटनी के साथ लगा-लगा कर खा लीं. वह बुरी तरह से थक गया था. दिन ढले पांची गांव में लौट आयी और घींसिया खेजड़े के पेड़ की छाया में सो गया. लगभग एक घंटे आराम करके वह उठा और पुनः हल जोत दिया. चिलकते-से दिन उत्तर-पूर्व से एक काला बादल चढ़ा और बूंदा-बांदी शुरू हो गयी. घींसिया हल्की बूंदों में भी हल चलाता रहा.

बारिश के साथ-साथ आंधी और आ गयी. बूंदें भी तेज और मोटी हो गयीं. उसने ऊंट की नकेल हल से बांधी और खेजड़े की पेड़ी की ओट में चिपक गया. आंधी तथा वर्षा और भी अधिक तेज हो गयी. उसके सारे कपड़े भीग गये. दांत किटकिटाने लगे. मुट्ठियां बंद हो गयीं और रोंगटे खड़े हो गये थे. वह सिमटता-सिकुड़ता तने से चिपका रहा.

अचानक खेंजड़े का एक मोटा डाला टूटा और घींसिया के सिर पर आ गिरा. उसकी मुंडी जमीन में घुस गयी. वह काफी देर छटपटाता रहा, सिसकता रहा, कराहता रहा और थोड़ी देर बाद हमेशा-हमेशा के लिए शांत हो गया. अंधेरा पड़ गया था. घींसिया घर नहीं पहुंचा तो पांची को चिंता हुई. वह भागी-भागी सेठ के घर पहुंची और घींसिया के बारे में पूछा तो सेठ को भी अपने ऊंट की चिंता हुई. उसने अपने घर के नौकर को पांची के साथ खेत में भेज दिया.

पांची और सेठ का नौकर खेत में पहुचे. ऊंट हल से बंधा हुआ था. किंतु घींसिया उसके पास नहीं था. पांची और अधिक घबरा गयी. वह खेजड़े के पेड़ की ओर भागी. घींसिया को पड़ा देखकर उसका सारा सत निकल गया. उसने टटोल कर देखा, घींसिया का मुंह जमीन में गड़ा हुआ था और सिर से खून बह रहा था. खेजड़ का डाला कमर पर पड़ा हुआ था. पांची घींसिया का सर पकड़ कर उसके ऊपर गिर गयी और जोर-जोर से बिलखने लगी. उसकी चीख सुनकर सेठ का नौकर भी खेजड़े की ओर भागा. घींसिया की नब्ज टटोली और देखा, उसका शरीर ओले-जैसा ठंडा हो गया था. सेठ के नौकर ने फुर्ती से घींसिया के बदन पर पड़ा डाला हटाया और ऊंट खोल कर घींसिया की लाश के पास जैका दिया. उसने घींसिया को दोनों हाथों से उठाकर बैठाने की चेष्टा की, किंतु घींसिया लुढ़क गया. नौकर ने घींसिया के मृत शरीर को उठा कर ऊंट की पीठ पर डाला.

पांची अपना सर-माथा पीटती ऊंट के पीछे-पीछे हो लई. वह फूट-फूटकर रोती हुई कह रही थी. . ..हाय . . .रेऽ. . .रामऽऽ. . .या. . .साढ़ कहर . . .लेके. . .आ . . .गयोऽ. . .मैंऽ. . .मरऽ. . .गयीऽऽ. . .. .

ऊंट जुगाली करता हुआ गांव की ओर बढ़ रहा था. पांची की चीख सारे जंगल में गूंज रही थी. आसमान में छाये बादल कहीं-कहीं से फट गये थे और उन फटी परतों के गर्भ से एक-दो तारे झांक रहे थे. □□□

द्वारा योगेन्द्र किसलय,
पुरानी गिनानी, बीकानेर (राजस्थान)

लघुकथा

वचन तथा फल

महात्मा गंगातट पर प्रभु-भजन में लीन चहलकदमी कर रहे थे. सहसा कुछ शोर सुनकर उनकी दृष्टि पास ही के श्मशान पर चली गयी. क्या देखते हैं कि एक युवती एक मृत व्यक्ति के पैरों के समीप बैठी हुई है. उसकी मांग में सिंदूर भरा हुआ है तथा शरीर अलंकारों से सुसज्जित है. पास ही खड़े हुए उसके सगे-संबंधी सती की महिमा का बखान कर उसका जय-जयकार कर रहे हैं. सती होने को उद्यत उस युवती ने महात्मा को अपनी ओर देखते लख कर कहा—हे महात्मा, मुझे आशार्वाद दीजिये ताकि मैं भी सुख से यह संसार छोड़ सकूं!

—कहां जाने की तुम्हारी तैयारी है?

—अपने मृत पति के पास स्वर्ग में.

—किंतु यह पृथ्वी छोड़कर तुम स्वर्ग क्यों जाना चाहती हो? स्वर्ग की रचना करनेवाले ने ही तो यह पृथ्वी भी बनाई है.

युवती महात्मा की इस गूढ़ भाषा को न समझ पायी. कुछ सोचने के उपरांत हार कर बोली— यदि मेरे स्वामी मुझे इसी पृथ्वी पर मिल जायें तो मुझे स्वर्ग से क्या लेना-देना?

इस पर महात्मा ने किंचित मुस्करा कर कहा—माई, चलो घर लौट चलो. साधु का वचन है कि तुम्हारे पति तुम्हें एक माह में मिल जायेंगे.

यह सुन युवती के चेहरे पर आशा और उल्लास की किरण फूट पड़ी. वह महात्मा के पीछे-पीछे चल पड़ी. यह देख सगे-संबंधी पहले तो विस्मयविमूढ़ हुए, फिर महात्मा तथा युवती के प्रति अभद्र वचन बोलने लगे.

महात्मा ने युवती को समीप ही एक कुटिया में विश्राम करने को कहा और स्वयं गंगातट पर आ गये. रात भर वे प्रभु-भजन करते रहे. प्रातः युवती के पास आ कर उससे सहानुभूति की बातें करते रहे, प्रभु की महिमा का बखान करते रहे.

एक मास तक यही क्रम चलता रहा. अब विधवा युवती के चेहरे पर से दुख-संताप हट चुका था, आंखों से आंसू झरने बंद हो गये थे. चेहरे पर एक दिव्य आभा झलकने लगी थी.

उधर एक माह पूरा होते ही विधवा के सगे-संबंधी कुटिया में आ धमके, पूछा-क्या तेरा स्वामी जीवित हो गया?

—हां, युवती का संक्षिप्त उत्तर था.

—कहां है, किस कमरे में है?

—यहां, इस हृदय-कुटीर में वे जीवित वास कर रहे हैं? है आप लोगों में देखने की क्षमता?

सगे-संबंधी कुटुंबीजन क्या उत्तर देते? □□□

कलम हुए हाथ

• बलराम

बापू ने शंकर को आवाज दी तो अम्मा उठ गयीं. दरअसल बापू ने आवाज अम्मा को ही दी थी. रात के चार बजे मुर्गा बोलने पर शंकर का नाम लेकर दी गयी बाबू की हल्की-सी आवाज अम्मा के लिए ही होती है, इस बात को अम्मा अच्छी तरह से जानती हैं और शंकर भी. कभी-कभी बापू को इस आवाज से शंकर की आंख भी खुल जाती है, लेकिन वह, न तो उठता है और न ही बोलता है, चुपचाप पड़ा रहता है. आज भी बापू की आवाज पर शंकर की आंख खुल गयी.

बापू की आवाज का जवाब देते हुये अपनी रजाई से निकल कर अम्मा ने सलूका पहन लिया और भुसवारी से थोड़ा-सा भूसा अपनी मूठी में लेकर बरामदे में आ गयीं. बिरौसिया को खखोर कर राख में दबी हुई आग निकाली. अंगूठे से उसे खूंथा और भूसा रख दिया. लौट कर कोठरी में आयीं और आले में रखे चिराग को उठा लिया.

चिराग लेकर अम्मा बिरौसिया के पास पहुंचीं तो भूसा धुंधुवा रहा था. बैठकर उसे फूंकने लगीं, लेकिन उनका पोपला मुंह उसे जला पाने में सफल न हो सका. सुलगते हुए भूसे का धुआं कोटरों में धंसी उनकी आंखों में घुस गया तो उनमें आंसू चुचुवा आये. भूसा शायद बारिश का भीगा हुआ था, इसीलिए नहीं जला. अम्मा की परेशानी समझकर, तब तक हाथ में माचिस लिये हुये, शंकर कोठरी से बाहर निकल आया था. उसने माचिस घिसी और जलती हुई तीली को चिराग से छुआ कर उसे जला दिया.

शंकर ने अम्मा से लाख बार कहा कि कम से कम रात में तो चिराग को माचिस से जला लिया करो, पर अम्मा भी न जाने किस माटी की बनी हैं कि माचिस को छूती तक नहीं. वे बिरौसिया में गड़ी कंडे की आग और भूसे का ही इस्तेमाल करती हैं. शायद ही कभी उन्होंने माचिस छुई हो. दरअसल बिरौसिया की आग और भूसे ने उन्हें कभी भी माचिस का मोहताज नहीं किया. माचिस रहने के बावजूद वे कभी उसका इस्तेमाल नहीं करतीं. यह अम्मा की कंजूसी नहीं है, आदत है. जिंदगी में कभी भी उन्होंने हाथ खोलकर खर्च नहीं किया. उनका हाथ हरदम बंधा रहा है. उन्होंने बहुत ऊंच-नींच देखे हैं, और अपनी जिंदगी बहुत सादगी से गुजारी है. उन्हें वे दिन भी याद हैं जब बड़के पैदा हुए थे और घर में भूंजी भांग तक न थी. लगान दे पाने की वजह से जमीन बेदखल हो गयी थी. गरीबी और संकेती के उन दिनों से लेकर चार-चार हजार रुपये की आलू बेचने तक बापू के खुशहाल दिनों में भी अम्मा की जिंदगी का ढर्रा एक-सा रहा है. थोड़ा बहुत रफा-दफा कर दें तो उसमें कभी कोई खास परिवर्तन नहीं आया.

अम्मा के पैरों में चांदी के खड़वे तब भी थे, जब वे शादी के बाद इस घर में आयी थीं. वही खड़वे अब भी हैं. हाथों में भी वही कड़े हैं, और कानों में हैं वही पचास साल पुराने कर्णफूल. फर्क सिर्फ इतना ही है कि अब सब कुछ घिस-घिसा कर चमकहीन हो गया है. मोटी किनारी की सादी धोती वे तब भी पहनती थीं और अब भी. हां, पहले किसी रंग से रंग लेती थीं लेकिन अब सफेद ही पहनती हैं. बापू के पास तमाम-तमाम रुपया आने की बात वे सुनती भर रही हैं. लेन-देन से उन्हें कभी कोई मतलब नहीं रहा. अम्मा ने कभी कुछ खरीदा नहीं, बेचा नहीं, सारी की सारी खरीद-फरोख्त बापू ही करते रहे हैं. बापू ने जो कुछ ला दिया, अम्मा ने बना कर सबको खिला दिया, खा लिया, पहना दिया, पहन लिया. कभी कोई शिकवा नहीं, शिकायत नहीं. बड़के या मंझले से झांय-झांय होने पर बापू ने ही, जरूर अम्मा को ताना-सा दिया है.

—तुमहीं जिंदगी भरि रोउती रहिउ कि ख्यात चलेंगे, ख्यात चलेंगे. जब ख्यात वापस मिलिगे, तब ट्याढ़व शुरू कीन्हिव कि घरु नाइं नीक है, घरु बनवाव, घरु बनवाब ख्यातन अउर घर के चक्चर मां जिंदगी भरि, न ढंग ते खा सकेन, न पहिरि सकेन. सोंचे रहै कि बुढापा मां लरिका-बच्चा दुई रोटी तौ ढंग ते पयाहैं, लेकिन हिन रोटी तौ दूरि, कउनव सार पानी लग का नांइ पूछत हैं. इयो सब तुम्हरे हे मारे भा. न घरू बनवउतेन, न अउर कुछ करतेन. रुपया बैंक मां जमा करि देतेन, तौ बुढ़ापा मां ई सब सार आगे-पीछे फिरत. चौबिस घंटा हांथ-पांव दबावत, ड्यूटी अस बजावत रहत.

—काहे बांटि कै दइ दीन्हिव. न देतेव. न बांटि कै देतेव, न इया हालत होति.

बापू के ताने का संक्षिप्त जवाब अम्मा देती हैं तो बापू चुप रह जाते हैं, और फिर बापू की आंखें सामने वाली अधूरी दीवाल पर टिक जाती हैं. वे आगे वाले कमरा-बरामदा के बारे में सोचने लगते हैं. कमरा-बरामदा ही तो घर की छबि होते हैं और शायद उनकी आंखें उसी छबि की तलाश में भटक जाती हैं.

जलता हुआ चिराग लेकर अम्मा कोठरी में आयीं और बापू के पास बैठ गयीं. उन्हें सहारा देकर उठाया और खूंटे पर टंगे कुर्ते को उतार लिया और हाथ उठा कर उन्हें पहना दिया. बापू का एक हाथ बेकार हो गया है. सुन्न पड़ गया है, बापू अब उससे कुछ कर नहीं पाते. कुछ करना तो दूर, बापू का वह हाथ उठता तक नहीं. उस हाथ को दूसरे हाथ से उठा कर इधर-उधर करते हैं. कुर्ता पहनाने के बाद अम्मा ने बंडी भी उतार ली, मैली-चीकट बंडी. सफेद बंडी को मल की काली-काली पर्तों ने लगभग चितकबरा कर दिया

है. वैसे तो शंकर ही कभी धो देता या अम्मा ही, पर यह रुइया बंदी है. धुलने पर रूई भीग जायगी और बंडी का मजा किरकिरा हो जायगा, और फिर सूखने में एक-दो दिन लगेंगे. बापू को यह सब खोखट लगती है. इसीलिए जब से यह बंडी बनी है बेचारी को रेह या साबुन तो दूर, पानी तक नसीब नहीं हुआ. हाथ उठा कर अम्मा ने बंडी भी पहना दी और फिर अपने दोनों हाथों से सहारे से बापू को खड़ा कर दिया. कोने में खड़ी उनकी लाठी पकड़ा दी और बाहर ले चलीं.

बापू नित्यकर्म से निपटना चाह रहे थे. उनमें अब इतनी शक्ति नहीं रह गयी है कि फलींग, दो फलींग दूर गांव से बाहर दिशा-मैदान को जा सकें इसलिए उन्होंने चार बजे को नियम-सा बना लिया है. उधर इब्राहीम की नीम पर बैठा हुआ राना मुर्गा बांग देता है और इधर शंकर का नाम लेकर अम्मा को बापू आवाज देते हैं. . . . और शंकर नही उठता, अम्मा ही उठती हैं और टोले-पड़ोस के अन्य लोगों के जगने के पहले ही बापू नित्यकर्म से निपट लेते हैं. लौट कर फिर अपने बिछावने में दुबक रहते हैं. बापू से निपटकर अम्मा ने चकिया ओइर दी. चकिया चल पड़ी तो शंकर ने चिराग संभाला और पढ़ने लगा.

चकिया का काम खत्म होते ही अम्मा घर के बाहर छप्पर के नीचे आयीं. बड़के और मंझले ने अपना-अपना बैल निकाल कर लिड़ौरी पर बांध दिया था. शंकर की भैंस छप्पर के नीचे ही रह गयी थी. उसे निकाल कर अम्मा ने नांद पर बांध दिया. बंटवारे में एक बैल बड़के को मिला और एक मंझले को. शंकर और बापू के हिस्से में भैंस आयी. घर का उत्तरी हिस्सा बड़के को और दक्षिणी हिस्सा मंझले को मिला. पश्चिमी हिस्सा बापू और शंकर के पल्ले पड़ा. बड़के और मंझले अपने-अपने बीवी-बच्चों के साथ अपने-अपने हिस्सों में चले गये. शंकर के साथ रह गये अम्मा और बापू या यों कहें कि अम्मा और बापू के साथ शंकर रह गया. अपने लिए बापू ने कुछ नहीं रखा. सब कुछ बांट-चांट कर दे दिया. अपनी रोटी के लिए तीन बीघेवाला चक अपने पास रखा, बस.

अम्मा की आवाज ने शंकर का ध्यान भंग किया तो उसने अपनी किताबें समेंटी और बाहर निकल आया. खाली चूनी वाली बाल्टी देखी, अम्मा पानी से भर गयी थीं और शायद उसे आवाज देकर स्कूल वाले कुयें से पानी भरने चली गयी थीं. शंकर ने एक नजर बखरी में लगे हैंड पंप पर डाली. पानी सब लोग भरते हैं, लेकिन जब बनता-बिगड़ता है तो बापू ही ठीक करवाते हैं. इस बार बापू के हालात ऐसे हैं कि चाह कर भी ठीक नहीं करवा सके. कई रोज से बिगड़ा पड़ा है. सब लोग स्कूल वाले कुयें से पानी भर लाते हैं, लेकिन बिगड़े हुए पंप को कोई ठीक नहीं करवाता, मानो हर बना-बिगड़ी को ठीक करवाने का ठेका बापू ने ही ले रखा है. बड़के सोचते हैं कि मंझले ठीक करवायें और मंझले सोचते हैं कि बड़के ठीक करवायें. ठीक होने में एक-दो रुपये लगेंगे और सभी अपने-अपने रुपये बचाने के चक्कर में हैं. बस, पंप बिगड़ गया तो बिगड़ा पड़ा है.

★ ★

शंकर बाहर निकला तो कांख में कलसिया दबाये और एक हाथ में पानी से भरी बाल्टी लटकाये अम्मा अंदर आ गयीं. वह झबई लेकर भुसवारी में चला गया. अम्मा कोठरी से पड़िया निकाल लायीं. भूसा निकाल कर उसने रख दिया. अम्मा ने पड़िया छोड़ दी तो वह बाल्टी ले आया. पड़िया हूंथा-मार-मार कर पी रही थी, भैंस के थनों में अभी दूध उतरा नहीं था. पड़िया की पीठ पर हाथ रख कर शंकर बैठ गया और दूसरे हाथ से भैंस के थन मिलगाने लगा. थोड़ी ही देर में भैंस ने दूध उतारना शुरू किया और रुई की तरह मुलायम थन कड़े होने लगे. भैंस पन्हा आयी तो शंकर ने पड़िया को खींच कर बांध दिया और थन धोकर दुहना शुरू किया. दूध की पहली छांछें बाल्टी की पेंदी पर पड़ीं तो वह टनकार उठी. थोड़ी देर बाद जब पेंदी में कुछ दूध आ गया तो उसकी टनकार गरगराहट

में बदल गयी. संगीत की सुर-लहरी के आरोह-अवरोह की मानिंद गर-गर-गर्र, गर-गर-गर्र बाल्टी की पेंदी पर दूध की मोटी धारें पड़ीं तो ढेर सारा फेन उठने लगा और शंकर के दुहने की गति तेज हो गयी. भैंस दुहकर अंदर आया तो बापू ने गुहारा.

बापू की आवाज पर शंकर कोठरी में पहुंच गया. इस बार बापू का यह संबोधन शंकर के लिए था. अम्मा के लिए नहीं और उनके पास पहुंचा भी वही. तख्ती से दवा की बोतल निकाली और चम्मच में डाल कर बापू को दी. बापू उसे गटाक् से पी गये और फिर रजाई हटाने लगे. शंकर समझ गया कि अब वे बाहर धूप में जाना चाहते हैं. उसने उन्हें उठा कर खड़ा कर दिया और लाठी पकड़ा दी. लाठी और उसके कंधे के सहारे बापू बाहर आ गये.

बड़के और मंझले अपना-अपना बैल लेकर खेतों पर चले गये थे. बड़के की दोस्ती बिंदा से है और बिंदा के पास भी एक ही बैल है. वह भी अपने भाई पुत्तीलाल से अलग हो गया है. इस तरह एक बैल बिंदा का और एक बैल बड़के का मिला कर गोईं बनती है और साझेदारी में बारी-बारी से वे अपने-अपने खेत जोत और बो रहे हैं. इसी तरह मंझले और पुत्तीलाल ने भी जुट्टी बना ली. है.

राजा ठाकुर गांव के परधान हैं, न जाने क्यों शंकर और बापू पर मेहरबान हैं. शायद बापू की बीमारी और शंकर की असहाय स्थिति को देख कर या इसकी वजह यह हो सकती है कि राजा ठाकुर का लड़का शंकर के साथ इंटर में है और पढ़ने-लिखने में भोंदू है, जबकि शंकर हरदम फस्ट आता है. राजा ठाकुर ने बीस रुपये महीने पर शंकर को इस बात पर राजी कर लिया है कि वह उनके लड़के के साथ बैठ कर एक-दो घंटे पढ़ा करे और उसे भी समझा दिया करे. बापू की बीमारी का सारा पैसा राजा ठाकुर ने दिया है और शंकर के हिस्से के खेत टेक्टर से जुतवाकर अपने ही बैलों से बुआ दिये हैं. बापू के हिस्से के तीन बीघे खेत रह गये हैं. एक-दो बार बापू ने ठाकुर से कहा तो उनके बैल और टेक्टर खाली नहीं थे.

नकद पैसे देकर किसी और से जुतवाने और बुवाने का माद्दा उनमें रह नहीं गया है. बड़के अपने खेत जोतने-बोने में पड़े हैं. मंझले भी आपाधापी में हैं. फुर्सत में भी होते तो क्या बापू के हिस्से के खेत जुत जाते, क्या बापू उनसे कहते? कह पाते, किस मुंह से कहते, किस विश्वास के साथ कहते? जो लड़के बंटवारे के बाद अपने बाप से बोलते तक नहीं, उसके मरने-जीने का हाल तक नहीं पूछते, बाप उनसे क्या उम्मीद कर सकता है, क्या कह सकता है. कल शंकर ने बताया था कि ओइंठि खरा रही है. एक-दो दिन में खेत न जुते तो ओइंठ चली जायगी. खेत सूख जायेंगे. खेत सूखने की बात सुनकर बापू की आंखें बोझिल हो आयीं थीं. उनको लगा था कि उनका घर बिखर गया है, बिखर कर कई टुकड़ों में बंट गया है. एक घर होता तो संभाला भी जा सकता था. लेकिन टुकड़ों-टुकड़ों में बंटे इस घर को संभालना अब किसी के बूते की बात नहीं रह गयी है.

जब सूरज काफी ऊपर चढ़ आया तो बापू ने शंकर से खेतों पर चलने की इच्छा व्यक्त की. शंकर ने मना किया कि तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है, उतनी दूर चलोगे तो थक जाओगे, वैसे भी तुम्हारी सांस फूलती है. शंकर ने मना किया लेकिन बापू माने नहीं. शंकर के कंधे और अपनी लाठी के सहारे डोलते हुये वे बड़े चक पर पहुंच गये. इस चक को पांच-पांच बीघे के तीन हिस्सों में बांटा गया है. बड़के, मंझले और शंकर के लिए. शंकर के हिस्से के खेत तो खैर जुत-बो गये हैं, पर बड़के और मंझले अभी भी हाथ-पांव मार रहे हैं और बापू के खेतों की तो ओइंठि ही जा रही है. यह पहला मौका है, जब दीवाली आ जाने के बाद भी खेत बिना जुते-बोये पड़े हैं, अन्यथा जब बंटवारा नहीं हुआ था, सारे के सारे खेत दीवाली तक जुत और बो जाते थे. बापू को एक मेड़ पर बिठाकर शंकर अपने खेत देखने चला गया और बापू बड़के-मंझले के खेतों में चलते हलों को टुकुर-टुकुर देखते रहे. अपने खेतों में घूम-फिर कर शंकर लौट आया तो बापू अपने हिस्से के चक की तरफ डगर चले.

* *

बड़े चक और बापू के हिस्से के चक के बीच राजा ठाकुर का चक पड़ता है. ठाकुर के चक के कुछ खेत पहले बापू के थे, लेकिन अच्छे होने के कारण चकबंदी में राजा ठाकुर ने उन्हें अपने चक में करवा लिया और बाप के चक को ऊसर की ओर खिसकवा दिया. ठाकुर के पास बहुत खेती है, उसका अपना टेक्टर है, मड़ाई मशीन है, उड़ाई मशीन है, ट्यब वेल है, किसिम-किसिम के हल और औजार हैं, जिनसे राजा ठाकुर के सारे काम पलक झपकते हो जाते हैं. जब बापू वहां से गुजरे तो राजा ठाकुर चारपाई पर बैठे सुपारी कतर रहे थे. बापू ने उनसे राम-राम की. राजा ठाकुर ने बापू से कहा :

—आव-आव, बइठौ माधौ भाई! कई दिनन मां दिखानेव .

—हां ठाकुर? अब चले नाइं चुकत है. हाथ-पांव जवाब दई गे हैं.

—हां-हां ! बुढापा मां तौ अइसै होत है.

—अउर का हाल-चाल हैं ठाकुर!

—सब ठीकै हैं. तुम आ गेव, नाही तौ अबहिन हम तुम्हरे घरै खुद अवइंया रहन.

ठाकुर की बातें सुनते हुए बापू चारपाई पर बैठ गये. ट्यब वेल चल रहा था. आलू सिंच रही थीं. दूर खेत से नौकर ने फावड़ा भेज देने की आवाज लगाई तो ठाकुर ने शंकर से फावड़ा दे आने को कहा. फावड़ा लेकर शंकर चला गया. बापू और ठाकुर आपस में बातें करने लगे. शंकर जब लौटकर आया तो दोनों आदमी विचारमग्न थे. शंकर के आते ही बापू उठ खड़े हुये और ठाकुर से कहा—संझा लग सोचि कै बतइबे, और फिर ठाकुर से राम-राम कर अपने चक

की ओर चल दिये. उनके पैर तो जमीन पर चल रहे थे, किंतु मस्तिष्क विगत जीवन की अंधेरी गुफाओं में भटक रहा था.

तब राज था अंरेजों का और गांव के जमींदार थे ठाकुर के बाप. बाप की शादी हुई ही थी. ओला आ गया तो खरीफ की फसल चौपट हो गयी. और फिर सूखे ने रबी की फसल को खा लिया तो छोटे-मोटे किसानों की रही-सही कमर भी टूट गयी. बापू भी दाने-दाने को तबाह हो गये. लगान न दे पाने की वजह से उनकी खेती बेदखल करवा दी गयी. बापू किसान से मजदूर हो गये और तीन आने रोज की मजूरी पर शिवपुर के चंपत ठाकुर की मदत में जाने लगे. तभी उन्हें चंपत ठाकुर का खोया हुआ बैग मिला, जिसमें चांदी के कुछ रुपये और कुछ जरूरी कागजात थे, उस बैग को बापू ने ज्यों का त्यों उन्हें दे दिया. बापू की इस ईमानदारी से चंपत ठाकुर इतने खुश हुए कि कुछ मांग लेने को कहा. चंपत ठाकुर बहुत बड़े जमींदार थे. बापू के कहने पर उन्होंने बेदखल खेत वापस दिलवा दिये और बापू फिर मजदूर से किसान हो गये. और तब बड़के तथा मंझले पैदा हुये.

बापू ने बड़के और मंझले को पढ़ाने की बहुत कोशिश की, किंतु वे पढ़ नहीं सके. तब बापू ने उन्हें भी खेती में जुटाया. बापू के साथ बड़के और मंझले का भी खून-पसीना पाकर खेती सचमुच सोना उगलने लगी. पहले से ड्योढा-दूना पैदा होने लगा और गेहूं नौ छटांक तक के भाव में बिक गया और बापू के पास नोटों की गड्डिया ही गड्डियां हो गयीं. तब अम्मा ने बापू से घर की शिकायत की. बापू ने कानपुर से कोयला मंगवाया और अपने खेत में ईंटें पथवा कर पचास हजार ईंटों का भट्ठा लगवा दिया और भट्ठा खुलने पर पीछे से घर की पक्की नींव डाल दी. वर्ष के बाद वर्ष गुजरे और दीवालों पर दीवालें बनती गयीं. तीन तरफ से पक्का घर बनकर तयार हो गया. सिर्फ पूरब का हिस्सा और आगे के कमरे-बरामदे रह गये.

अब तक बड़के और मंझले के दो-दो, तीन-तीन बच्चे हो चुके थे. पढ़ाई के कारण शंकर ने शादी नहीं की. बाप सबको समान रूप स कपड़ा-लत्ता देते, खर्चा-पानी देते, सबको खुश रखते. न लड़ाई, न झगड़ा. बापू अपने भरे-पूरे परिवार से खुश थे. बच्चों को गोद में लिये अम्मा घूमा करतीं. ऊपर का सारा काम-काज बहुएं संभालतीं.

इस बीच मंझले की दोस्ती राजा ठाकुर से हो गयी थी. राजा ठाकुर और मंझले की उम्र में दस-बारह बरस का अंतर था, फिर भी दोस्ती, दोस्ती है, किसी से भी हो सकती है. और राजा ठाकुर की मंझले से यह दोस्ती पान-बीड़ी से बढ़ कर देशी और अंग्रेजी शराब तक पहुंच गयी. पहले तो पिला-पिला कर मंझले को आदी बनाया गया और फिर पिलाना कम कर दिया गया. तब मंझले बापू से कुछ अधिक खर्चे की मांग करने लगे और जब यह सीमा काफी आगे बढ़ गयी तो बड़के ने बापू को समझाया कि शराब के लिए मंझले को इस तरह इतने अधिक पैसे मत दीजिये. मंझले की शराब की सीमा अगर ऐसे ही बढ़ती रही तो एक दिन यह घर बरबाद हो जायगा. शराब जिस घर में भी प्रवेश करती है, उस घर को बरबाद किये बगैर नहीं छोड़ती. अगली बार पैसा देने से बापू ने कतई-कतई इनकार कर दिया.

बापू की इनकार से मंझले अकड़ गये और बापू की कोठरी से उनका बक्सा उठा कर ताला तोड़ने लगे. बड़के यह चुपचाप देखते रहे. बापू ने दौड़कर अपना बक्सा छीनना चाहा, पर मंझले ने उन्हें धक्का दे दिया. धक्के से बापू पलट कर गिर पड़े. बापू को गिरता देखकर बड़के अपने को रोक नहीं सके. उठकर खड़े हो गये और आव देखा न ताव, तड़ तड़ तड़ मंझले की कनपटी पर कई झापड़ एक साथ लगा दिये और बक्सा छीन-कर बापू को सौंप दिया. खुनियायी आंखों से मंझले ने बड़के को देखा और अपने को उन्नीस पाकर बंटवारा करवा लेने की धमकी दे कर घर से बाहर निकल गये.

उसी दिन मंझले का चूल्हा अलग जल गया. बाद में बापू ने जीतोड़ कोशिश की कि बिगड़ी बात किसी तरह से बन जाय. बापू की कोशिश सफल हो जाती, अगर तीसरे आदमी के रूप में ठाकुर दखलंदाजी न करते. जानबूझ कर ठाकुर ने बंटवारे की पक्की जमीन तैयार कर दी. कहने को ठाकुर की जमींदारी चली गयी है, पर उनका प्रभाव और दबदबा तो पहले जैसा ही है, उनकी उपेक्षा कैसे की जा सकती है! बड़के बंटवारे के पक्ष में कतई नहीं थे, इसके लिए वे राजा ठाकुर से भी भिड़ने तक को तैयार थे.

बड़के ने बापू से कहा कि आप बंटवारा कतई न कीजिये. मंझले को घर से निकाल दीजिये, घर से निकलते ही उसका नशा हिरन हो जायगा. लेकिन बापू तो बापू थे, मंझले को घर से कैसे निकालते और मंझले, राजा ठाकुर के दोस्त थे और बंटवारा न करने पर राजा ठाकुर क्या-क्या कर सकते थे, बापू को मालूम था और बापू ने बंटवारा कर दिया. बड़के ने इसे अपनी पराजय के तईं लिया और बापू से कट गये. इतना कट गये कि अब

और वही ठाकुर आज एक नयी मुद्रा में नये तेवर के साथ बापू के सामने थे. ठाकुर यह पैंतरा बापू को अंदर तक छील गया. उनका मन किया कि ठाकुर की नाक पर हनक कर घूंसा मार दें और सभी झंझटों से पार हो जायं. राजा ठाकुर ने जो सवाल आज उनसे किया, उसका कोई जवाब बापू से देते न बना और संझा तक सोच कर जवाब देने की बात कहकर शंकर के साथ अपने चक की ओर बढ़ गये. अपने खेतों की मेंड पर पहुंच कर बापू रुक गये. खेतों की ललछौंह धीरे-धीरे पिलछौंह में बदल रही थी. खेतों के पिलछौंहपन को उन्होंने बेबस नजरों से देखा और फिर आसमान को ताकने लगे, शायद उनका आस्तिक मन भगवान की ओर निहार रहा था

और फिर बापू लौट पड़े. खरामा-खरामा चलते हुये शंकर के कंधे और लाठी के सहारे बापू घर

आ गये और चारपाई पर लेट गये. तभी सामनेवाली दीवाल से बिल्ली ने एक ईंट गिरा दी. गिरा क्या दी, उसके निकलने से गिर गयी तो बापू को लगा कि दीवाल से ईंट नहीं, उनका कोई अंग कट कर गिरा है और ईंट का यह टुकड़ा जमीन पर नहीं, उनकी छाती पर गिरा है. शंकर की समझ में न आया कि बापू आज इतने उदास और व्याकुल क्यों हैं. आज तो दीवाली है.

* *

बंटवारे के बाद यह पहली दीवाली है. पिछले साल बापू ठीक थे. तमाम गट्टे-खिलौने आये थे, और आये थे गगरा भर फूल और खील. पिछले कई साल से दीवाली की दियालियां शंकर ही जलाता आया है. उससे पहले बड़के जलाते थे और बड़के से पहले बापू. जब शंकर जूनियर में फस्ट आया तो उस साल की दीवाली में ऐन टाइम पर बड़के को न जाने क्या सूझी कि उन्होंने शंकर को बुला कर दीवाली की दियालियां जलाने को कह दिया. बड़के की बात सुनकर शंकर की आंखें मंझले को तलाशने लगीं. उसकी समझ में न आया कि बड़के यह दायित्व उसे क्यों सौंपना चाहते हैं. तभी नशे में धुत्त मंझले आ गये थे, झूमते हुये, गलगलाते और कुछ बकते हुए. दियालियों से हटकर सबकी नजरें मंझले पर टिक गयी थीं. बापू का चेहरा तमतमा आया था और अम्मा की जबान छुरी बन गयी थी, वे बकने लगी थीं—न ठिअऊ मरी कटउनूं, आजौ इयो माहुरु पी आयेव. अम्मा न जाने क्या-क्या और बकतीं, पर बापू ने उन्हें डांट कर चुप करा दिया. मंझले को पकड़ कर मंझली कोठरी में ले गयी और फिर बिना किसी खास हंगामें के सब कुछ शांत हो गया.

अम्मा, बापू, बड़के, बड़की, मंझली तथा लड़के-बच्चे शंकर को घेर कर बैठ गये थे. उसने दियालियों में परई से तेल डाला और उनमें बात्तियां रख दीं. और फिर उसके हाथों में पहली बार दीवाली की दियालियां जगमगा उठी थीं. आग पर घी डालकर उसने थोड़ी-सी मिठाई रख दी और कुछ गट्टे तथा खिलौने फोड़ दिये, दियालियों पर दो मुट्ठी खील बिखेर दी. लोटे का पानी सात बार अंजुलि में भर कर दियालियों के चारों ओर फेर कर आचमन किया और धरती के पैर छू लिये. यह सब करते हुये शंकर को बहुद-बहुत अच्छा लगा था. पूरा घर दीवाली की रोशनी से जगमगा उठा. दियालियों रख जाने के बाद शंकर ने भर-भर मूठा खील और खिलौने सबको बांट दिये. खील-खिलौने खा चुकने के बाद उसने परात से काट-काटकर सबको मिठाई दी. सबने छक-छक कर खायी. तब तक बड़के भी खेतों में दियालियां जलाकर लौट आये थे. बड़के ने मंझले को उठाना चाहा, पर वे उठे नहीं; शायद कुछ ज्यादा पी गये थे. तब फिर बड़के और शंकर ने साथ बैठकर मिठाई खाई. मंझले का हिस्सा सुबह के लिए रख दिया गया. जिंदगी में पहली बार दियालियां जलाते, खील-गट्टा और मिठाई बांटते हुये शंकर को एक प्रकार के गर्व की अनुभूति हुई थी और सुख का अहसास भी.

और इस बार की दीवाली, दीवाली नहीं, कुछ और लगती है. एक दीवाली वह थी और एक दीवाली यह है. आंगन में बैठे बापू यह सब टुकुर-टुकुर देख रहे हैं—घर के एक कोने में बड़के के बीवी-बच्चे तथा दूसरे कोने में मंझले के बीवी-बच्चे पानी में भीगी हुई दियालियां निकाल कर पड़ोर से लिपी जगह में रख रहे हैं, शंकर भी एक कोने में पड़ोर कटकर दियालियां रखने की जगह बना रहे हैं. जब जगह बन गयी तो पानी से निकाल कर अम्मा ने दियालियां रख दीं. तभी अचानक बापू ने बड़के और मंझले को आवाज दी. आवाज सुनकर वे बापू के पास आ गये तो बापू ने उनसे पूछा—हमारे हिस्सा के खेतवा जुतिहो?

—हां-हां! दइ देव.

बड़के और मंझले ने एक साथ जवाब दिया तो बापू ने अपनी शर्त रखी.

—लेकिन रुपया परिहै.

—कित्ते?

—एक हजार .

रुपयों की बात आते ही बड़के-मंझले बगलें झांकने लगे. तब बापू ने फिर पूछा.

—कउनव जवाबु नाइं दीन्हिव कोऊ?

—ई मंदी मां हमारे पास इत्ते रुपया कहां ते होइहैं?

कहकर दोनों जने चुप हो गये और थोड़ी देर तक बैठे रहने के बाद उठ-उठ कर अपने-अपने बीवी-बच्चों के पास खिसक गये, तो बापू को लगा कि युद्ध के मैदान में वे निहत्थे हो गये हैं. लड़के ही तो बाप के हथियार होते हैं. उनकी नजरें सामनेवाली अधूरी दीवाल पर टिक गयी. वे सोचते लगे कि उनके [illegible] में लोना लग गया है. अलग-अलग रहकर तो सिर्फ लोने को अपना घर खाते हुये बेबस और लाचार आंखों से देखा जा सकता है. बस, और किया ही क्या जा सकता है, सोचते हुए बापू ने देखा कि बड़के और मंझले अपनी अपनी दियालियां जल रहे हैं. तब शंकर की ओर मुखातिब होकर उन्होंने कहा —तुमहूं अपनी दियाली जलाव शंकर!

—नाहीं बापू ! आजु तुम जलाव.

शंकर की जिद पर बापू तैयार हो गये तो उसने जल्दी-जल्दी सारा सामान बखरी में इकट्ठा किया. डेलवा में खील-गट्टे और फूले-खिलौने रखे. अगियारी के लिए घी और मिठाई रखी. बिरौसिया से निकालकर आग रख दी और दियालियों में तेल डालकर बातियां भी. तब तक अम्मा लोटे में जल ले आयीं. बापू ने अपने बेकार वाले हाथ में माचिस ले ली. आज न जाने कहां से उनके उस हाथ में इतनी ताकत आ गयी थी कि उससे पकड़ कर दूसरे हाथ से माचिस घिस दी. फुर्र की आवाज करती हुई तीली जली तो बापू ने उसे एक दियाली की बाती की तरफ बढ़ाया. इसके पहले कि

बाती जल उठे, तीली बुझ गयी. बापू ने दूसरी तीली निकाल ली. हाथ उठा कर जलाने जा ही रहे थे कि जतों की चरमराहट हुई और उनका हाथ जहां का तहां रुक गया. नजर अपने-आप दरवाजे पर चली गयी. राजा ठाकुर आये थे. खटिया पर बैठते हुए ठाकुर बोले —तनुक जल्दी मा हन, बैठिबे नाइं. अउर माधौ भाई! सब सोचि-समुझि लीन्हिव कि नाहीं?

....

—का हो माधौ भाई! बोलतेव काहे नाइं?

—ठाकुर! अबहिनै आप जाव. साल भर क्यार त्योहारु है, जानै पारसाल लग जिंदा रहिबे कि मरि जइबे. राति भरे केरि मोहलत अउर देव. सबेरे लग बता देबे.

—द्याखौ माधौ भाई! अइसे टारैं ते काम न चली. कहत हौ तौ हम जात हन, मुलां सबेरे पांच बजे लग सब सोचि-समुझि लेहेव.

कहकर राजा ठाकुर चल दिये और बापू उन्हें जाते हुये निर्निमेष देखते रहे. थोड़ी देर में जब ध्यान आया तो फिर तीली घिसने की कोशिश करने लगे, लेकिन उनकी हर कोशिश असफल रही. उनका हाथ फिर निर्जीव हो गया. माचिस शंकर की ओर बढ़ाते हुए उन्होंने कहा —लेव, अब तुमही जलाव, हमरे बस क्यार अब कुछु नाइं रहो. अब तौ सब कुछ तुमहीं का झयालैं का है, कहते-कहते बापू की सांस तेज हो गयी. बापू के इन शब्दों में निहित अर्थ को शंकर झेल नहीं पाया. उसकी चेतना पर एक हथौड़ा-सा पड़ा. बापू की आंखें छलक आयी थीं, शंकर भी अपने आंसू रोक नहीं सका. बापू की यह असमर्थता उसकी अपनी असमर्थता भी तो थी. वह घर को संभाले, कालेज देखे या खेती की चिंता करे. एम. यस-सी. करके कालेज में प्राध्यापक बनने के अपने सपने के आगे उसने अम्मा और बापू की अंतिम अभिलाषा तक को ठुकरा दिया और शादी नहीं की, अन्यथा अपने आगे ही बाप, शंकर का घर भी बसा देना चाहते हैं. अचानक जब बापू बहुत बीमार हो गये तो ठाकुर से कर्ज लेकर अपने कानपुर में बापू का इलाज करवाया. तमाम रुपया खर्च हो जाने पर डाक्टर ने कह दिया कि अब इनका इलाज करवाना बेकार है. इन्हें घर ले जाओ और जो दवायें लिख दी हैं, पिलाते रहना. डाक्टर की यह बात सुनकर शंकर सिहर उठा था.

बापू के हाथ से माचिस लेकर उसने चुपचाप दियालियां जलाईं और घर-आंगन में रख आया. दियालियों की रोशनी से पूरा घर जगमगा उठा था, फिर भी शंकर को लग रहा था कि दीवाली के इन चिरागों के रोशन होने के बावजूद हमारे सबके दिलों में कहीं न कहीं बहुत घना अंधेरा है, जिसे कोई चिराग़ नहीं मिटा सकता. दीवाली की ये जलती हुई दियालियां रात के अंधेरे को तो ख़त्म कर सकती हैं, पर हमारे दिलों के अंधेरों को कौन दूर करेगा? कैसे दूर होंगे दिलों के ये खौफनाक अंधेरे, जिन्होंने रिश्तों की चमक तक को लील लिया है? शंकर एक डेलवा में कुछ दियालियां, बातियां, माचिस और तेल की गरैया रख कर खेत-खलिहान को चल दिया.

* *

चारों तरफ से जागौऽऽऽऽ धरती माता जागौऽऽऽऽऽ की आवाजें आ रही थीं. दूर-दूर तक चारों तरफ जलती हुई दियालियों की रोशनियों से दसो दिशायें जगमगा उठी थीं. काली अंधेरी रात में आकाश में झिलमिलाते तारों की मानिंद झिलमिलाती ये धरती की रोशनियां शंकर को बेहद-बेहद भली लगती हैं. यह पहला ही मौका है, जब शंकर को खेत-खलिहान में दियालियां जलाने जाना पड़ रहा है. पहले तो बड़के ही जाया करते थे.

हाथ में डेलवा लिये शंकर अपने खेतों की तरफ बढ़ा जा रहा था. कुछ लोग अपने-अपने खेतों पर ऊंचे स्वर में दिवारी गा रहे थे और कुछ लोग बड़ी तेज आवाज में धरती माता को जगा रहे थे——जागौऽऽऽऽऽधरती माता जागौऽऽऽऽऽ. अपने खेतों पर पहुंच कर शंकर ने भी तेज आवाज लगायी---जागौऽऽऽ धरती माता जागौऽऽऽऽऽ. पूरी कोशिश के बावजद शंकर को लगा कि उसकी यह आवाज पूरी की पूरी उभरी नहीं. कहीं बीच में ही दब कर रह गयी है.

बड़के और मंझले अपने खेतों में दियालियां रख कर चले गये थे. शंकर ने उनके खेतों में जलती हुई दियालियां देखी और फिर उसका ध्यान बड़के के हिस्से में स्थित कुयें पर चला गया. वहां पर कोई दियाली नहीं जल रही थीं फिर उसने मझले के हिस्से में स्थित महुये के पेड़ को निहारा. उसके नीचे एक दियाली जल रही थी. अपने खेतों और आम के पेड़ में दियालियां जलाने के बाद शंकर कुयें की ओर बढ़ गया.

पहले ढेर सारे महुये होते थे, सबके काम आते थे और अब महुओं का उपयोग सिर्फ मंझले कर सकते हैं, क्योंकि महुआ मंझले के हिस्से में है. बापू ने कुयें में बोरिंग करवाने की बात सोची थी. बोरिंग हो जाती तो सबके खेत सिंचते और अब बोरिंग तो दूर, बड़के रहट या पिपिया लगवाने की स्थिति में भी नहीं हैं, हों भी तो सिर्फ उनके खेत ही सिंच सकते हैं. शंकर के हिस्से के आम से सब लोग आम खाते, लेकिन अब कोई किसी के हिस्से की चीज नहीं खा सकता. अब तो सबका अलग-अलग अपना आकाश हो गया है, उस आकाश के अलग-अलग रंग हैं. पहले घर एक सतरंगी इंद्रधनुष हुआ करता था और अब तो घर के काले, भूरे या सफेद बादलों की मानिंद बिखरे हुये टुकड़े भर रह गये हैं. और बिखरे हुये टुकडों से भला कभी इंद्रधनुष की छबि प्राप्त होती है? हमारे घर की भी तो कोई छबि नहीं रह गयी है, सोचता हुआ शंकर बड़के के कुयें की जगत पर एक दियाली जलाकर बापू के चक पर पहुंच गया और वहां पर दियालियां जलाने के बाद चुपचाप घर लौट आया. रात में सोते समय उसने बापू से पूछा

जीवन में कई खुशियों के पल होते हैं

सरदर्द को आपकी खुशियां बिगाड़ने न दीजिये

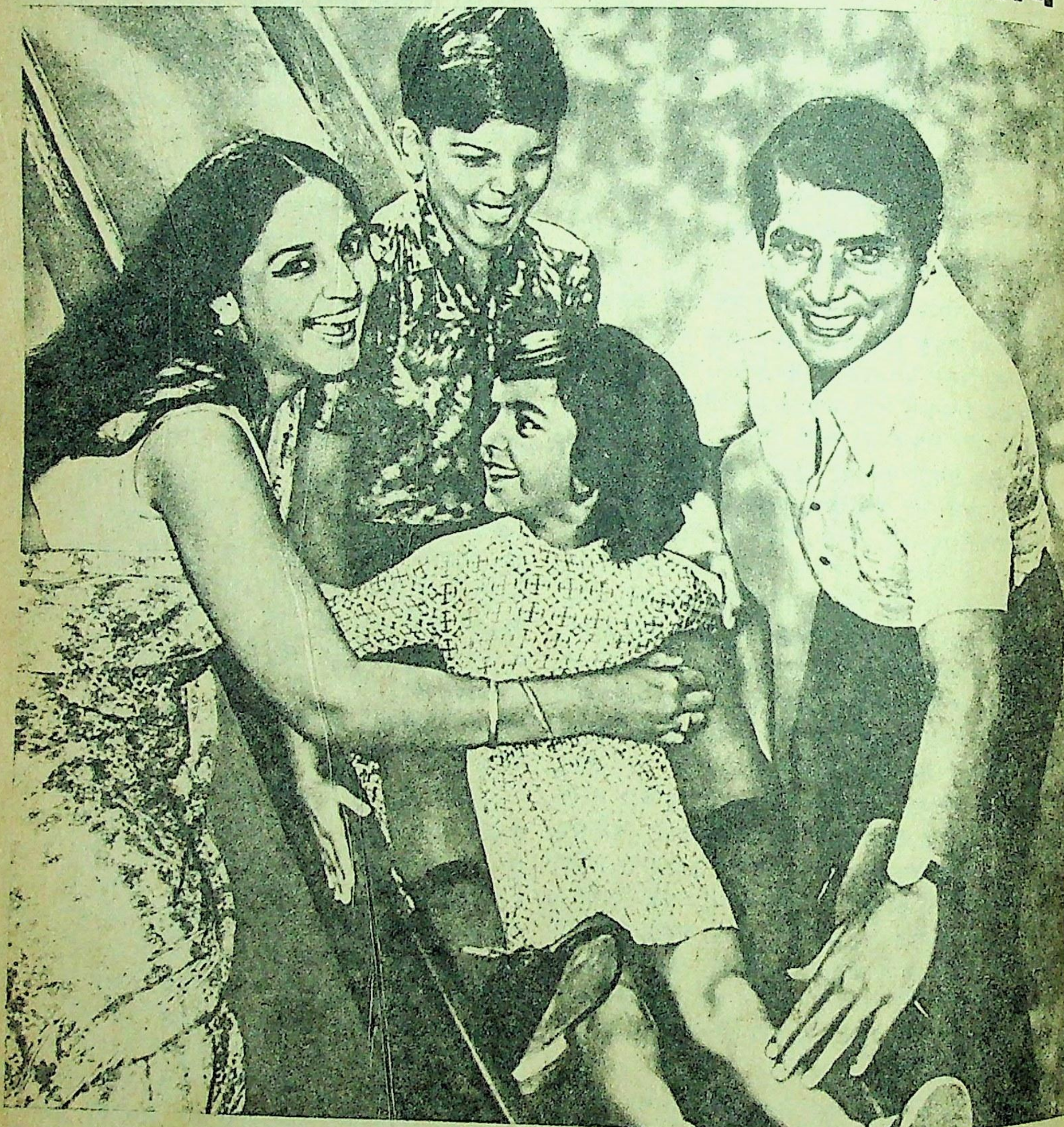

२ ऐस्प्रो लीजिये

माइक्रोफ़ाइन्ड ऐस्प्रो दर्द को जल्दी खींच निकालता है

ASPRO
Nicholas

A.G.66.HN

—राजा ठाकुर का पूछन आये रहैं, बापू !

—अपने करजा के बदल मां हमारे हिस्सा के खेतवन क्यार सउदा.

—कईस सउदा ?

—सबेरे जब तुम्हारे साथै खेतवन पर गे रहन, अउर तुम फरुहा देन चलेगे रहन, तब हम अउर ठाकुर बतात रहे रहन. ठाकुर बतावत रहैं कि सब मिलाय कै हमरे ऊपर उनके एक हजार ते ज्यादा हुई गे हैं, तउनै चह उनके रुपया देन, चहै उनके नाम एक बिगहा का बइनामा करि देन, चहै तीनिव बिगहा पांच साल खातिर ज्वातन-बवन का दइ देन. तउनै उनते हम कहते रहै कि संझा लग सोचि-समझि कै बतइबे. उहै पूछन आये रहैं.

—तौं तुम का सोंचो हऊ?

—हम का सोंचि सकत हन, कोउ का सोंचि सकत है? एक हजार रुपया दइ नाइं सकत हन. एक हजार के बदले मां तीन हजार के एक बिगहा का बइनामा कइस करि देन. पांच साल खातिर तीनिव बिगहा दई देबे तौ खइबे का? सोंचो रहै कि एक हजार दइ कै बड़के या मंझले लइ लेत. कम से कम घर केरि चीज घर मां रहति, लेकिन का करब, हमार तौ हाथै-पांव कटिगे हैं. हमारे काहे, तुम्हारौ सब के तौ कटिगे हैं हाथ-पांव, कोऊ कुछु करि सकत हौ, ठाकुर के खिलाफ ठाढ़ हुई सकत हौ? नाइं ठाढ़ हुई सकत हौ, काहे कि सब कोऊ अलग-अलग हौ फिरिउ, हम ठाकुर का अइस कर न नदेबे, चाहौ कुछ होइ जाय.

कहते-कहते बापू की आवाज तेज हो गयी थी मानों ठाकुर के खिलाफ एक दृढ़ संकल्प उन्होंने ले लिया था, कोई विकल्प उन्होंने सोच लिया था. कौन-सा विकल्प उन्होंने सोचा है, यह पूछने की हिम्मत शंकर को नही हुई और फिर कोठरी में नीरवता व्याप गयी. इसके बाद रात में कब, कौन सोया, कोई नहीं जान सका. सबेरे गजरदम कुंडी की खड़खड़ाहट से शंकर की आंख खुली और उसके साथ अम्मा की भी. भर-भर भर्र, भर-भर भर्र बाहर दरवाज पर ठाकुर का टक्टर भराभरा रहा था. अम्मा ने उठ कर किवाड़ खोला तो राजा ठाकुर अंदर आ गये और बापू को आवाज दी—का हो माधौ भाई ! सब सोचि-समझि लीन्हिव कि नाहीं?

बाबू शायद अभी तक जागे नहीं थे. शंकर ने उनके मुंह से रजाई हटाई, पर बापू हिले तक नहीं. उसने उनका हाथ पकड़ा, वह ठंडा था, लोहे की मानिंद. उसने उनकी नाक के आगे हाथ किया तो बापू की सांस भी शेष नहीं थी. और ठाकुर को शायद देर हो रही थी, आंगन से ही उन्होंने बापू को फिर से आवाज दी.

—बतउतेव काहे नाइं माधौ भाई ! का सोचो हऊ?

□□□

१०-१०८ खलासी लाइन,
कानपुर—२०८००१

लघुकथा

अदृश्य भय, अदृश्य शक्ति

एक नगर में एक राजा रहता था. उसकी पुत्री अत्यंत रूपवती थी. उसके रूप की चर्चा सुनकर एक राक्षस प्रतिदिन सायं उसके पास आया करता और उसे भगा ले जाने की तरकीब सोचा करता. किंतु राजकुमारी ने अपने चारों ओर एक ऐसा जादुई घेरा खींचा हुआ था कि राक्षस उससे छेड़खानी करने के बावजूद अपने प्रयास में सफल नहीं हो पा रहा था.

एक दिन राक्षस ने अपना असली रूप प्रकट किया तो राजकुमारी ने अपनी सखी से कहा—देख, यही है वह राक्षस जो रोज सायंकाल यहां आकर मुझे सताया करता है!

राक्षस ने यह सुना तो सोचा, हो न हो, यहां कोई आदमी आता है. क्यों न मैं एक घोड़े का रूप धर कर उसकी शक्ति का पता लगाऊं?

उसके ऐसा करने पर आधी रात के समय घोड़ों का एक चोर महल में आया. उसने सभी घोड़ों को देख लेने के बाद राक्षस-घोड़े को सर्वोत्तम पाया. उसने उसके मुंह में लगाम लगायी और उसे ले चला. इस पर राक्षस ने सोचा, हो न हो, यही वह मनुष्य है, यह मुझे मार डालना चाहता है. अब मैं क्या करूं?

वह ऐसा सोच ही रहा था कि घोड़ा-चोर ने उसे एक जोर का चाबुक लगाया. अब तो राक्षस-घोड़ा डर के मारे उड़ चला. कुछ दूर जाने पर घोड़ा-चोर ने लगाम खींची किंतु राक्षस-घोड़ा बेतहाशा भागता ही रहा. इस पर घोड़ा-चोर भी डर गया कि कहीं यह कोई राक्षस न हो.

कुछ दूर दौड़ने पर राक्षस-घोड़ा एक बरगद के नीचे से गुजरा. फिर क्या था, घोड़ा-चोर ने एक डाली पकड़ ली और इस पर दोनों ने एक-दूसरे से जान छूटने पर चैन की सांस ली.

बरगद के पेड़ पर ही एक बंदर रहता था जो राक्षस का मित्र था. उसने उसे भागते देख कर कहा—तुम एक अदृश्य भय से क्यों भाग रहे हो? यह तो एक मनुष्य है, तुम्हारा आहार!

यह सुनते ही राक्षस अपने असली रूप में प्रकट हो गया किंतु वह उलझन में पड़ गया. जब चोर ने बंदर को उसे वापस बुलाते सुना तो वह बड़ा क्रुद्ध हुआ. उसने डाल पर बैठे बंदर की लटकती हुई पूंछ को दांत से जोर से पकड़ कर उसे काटना शुरू कर दिया. बंदर ने समझा कि वह राक्षस से भी बलवान है अतएव भय के आंखें मूंद कर पीड़ा सहता रहा.

इस पर राक्षस ने उसकी यह दशा देख कर कहा—मित्र बंदर, जीवित वही रहता है. जो दौड़ में जीत जाता है.

□□□

फिर दुनिया में

•सीतेश आलोक

प्रेमो-नाइन लेने के बाद से उसे बासठ साल पहले की ही नहीं, उससे भी पहले की हर घटना कल की ही बात लग रही थी. फिर भी, वह एक अजीब-सी उलझन महसूस कर रहा था.

बाहर आते ही पहली बात जो उसे अजीब लगी, वह थी सड़कों का सूनापन. इतनी सूनी सड़कें तो उसने बर्फीली रातों में भी शायद ही देखी हों. सड़कें चौड़ी थीं लेकिन उन पर चलनेवाले उंगलियों पर गिने जा सकते थे और वे भी दूर से एक जैसे पुतलों की तरह ही लग रहे थे. सब के बदन पर लगभग एक जैसा ही 'कन्कोट' था. हां, सर के हेल्मेट अलग रंगों के थे.

उसने गर्दन जहां तक हो सका, झुका कर अपने आप को देखने की कोशिश की, लेकिन अपने को देखना उतना आसान नहीं था. उसे मान लेना पड़ा कि वह भी वैसा ही पुतला-सा लग रहा होगा जैसे कि उसने सड़कों पर देखे थे. कोट में उसे एक हल्कापन तो लग रहा था... न सर्दी न गर्मी, बहती हुई हवा का अहसास. लेकिन वह सर से पांव तक ढंके होने की बात से समझौता नहीं कर पा रहा था. 'कन्कोट' की मशीन की धीमी-सी घरघराहट के लिए भी उसके कान अभी आदी नहीं हो पाए थे. उसे बताया गया था कि इसके लिए कम से कम दो सप्ताह तो लगेंगे ही.

कुछ और पास आने पर उसे लगा कि सड़क पर बेशुमार साये दौड़ रहे हैं, बिना आवाज...जैसे अनदेखे भूतों के साये. उसे दहशत-सी हुई और अनजाने ही उसकी निगाह ऊपर उठ गयी. ऊपर...बहुत ऊपर... तार के जाले से बिछे थे. और उनके सहारे कई तरह के डिब्बे, कुछ छोटे, कुछ बड़े, और कुछ लंबी गाड़ियों जैसे दौड़ रहे थे. सूरज कभी निकलता था तो कभी छिप जाता था. उसी के साथ-साथ साये सड़क पर दौड़ते हुए दिखाई देने लगते थे या गायब हो जाते थे. उसका मन हुआ कि वह यह दृश्य हेल्मेट उतार कर देखे, लेकिन उसे आवाज बंद कमरों के बाहर ऐसा करने से मना किया गया था. बिना आवाज...शायद उसका कारण यह हेल्मेट ही हो. 'रोप वे...' उसने सोचा. इसलिए ये सड़कें सूनी हैं. उसने फिर सिर उठा कर देखा. अलग-अलग ऊंचाइयों पर अलग-अलग तार के जाले थे और उन पर अलग-अलग प्रकार के डिब्बे लटके हुए दौड़ रहे थे. वह फिर चल पड़ा.

बस एक ही जगह थी जहां वह जा सकता था. उसके बताए सभी नामों में से एक ही व्यक्ति ऐसा था, बिली, जो अब तक जिंदा था. जिंदा...लेकिन अब तो शायद वह अस्सी बरस के करीब का होगा. पहचानेगा भी या नहीं? उसे शक था. बासठ साल पहले जब बिली उसे देखने आया था तब वह नौजवान था... अठ्ठारह बीस साल का ही रहा होगा, और स्वयं वह. हां—उसकी उम्र उस समय पचपन ही तो थी. अ

अंतिम दिनों की याद उसे अजीब बेचैन बनाने ल मौत की मंडराती साया में सांसों के 'काउन्ट डाउ वाला वातावरण जैसे उसे फिर घेरने लगा.

उसे कुछ देर लगी अपने को आश्वस्त करने यह यकीन दिलाने में कि वह भोगी हुई घड़ी स भले ही हो...लेकिन यह भी सच है कि वह जि है...शायद बहुत दिनों के लिए जिंदा है. मौत का साय कहीं उसके पास नहीं है. वह कई साल जी सकता शायद बीस-पच्चीस साल और या शायद और भी ज्यादा अब तो विज्ञान बहुत बढ़ चुका है. कम ही रोग ऐसे, जिनका इलाज नहीं हो सकता. उसने सुना कि अब प्राकृतिक मौतें बहुत कम हो चुकी हैं. मरनेवाल में अधिकांश लोग आत्महत्या ही करते हैं. कितनी बुरी बात है... वह बस इतना ही सोच पाया. क्या हो गया है लोगों को...हालांकि उसे पूरी तरह विश्वास नहीं हो पा रहा था कि लोग भगवान की इस अनमोल भेंट को इस तरह खो भी सकते हैं. आत्महत्या पाप है—वह यही मानता रहा है. वह ही क्या, सब यही मानते र है. धार्मिक किताबों में भी यही कहा गया था.

—तुम्हारा पर्सनल नंबर क्या है...? उसे घूरता हुआ एक व्यक्ति उससे पूछ रहा था. वह काफी बूढा था.

—पर्सनल नंबर...? ओह हां...कोई नहीं.

कम्प्यूटर ने यही बताया. उसे सवाल से कुछ घबराहट-सी हुई थी.

—ओह...तभी तो. डीप फ्रीज...?

—तुम्हें कैसे पता लगा? वह पूछ बैठा.

—तुम्हें नहीं मालूम? अक्सर डीप फ्रीज वालों को ही रिजेक्ट करता है कम्प्यूटर.

—उससे क्या होता है? उसने पूछा तो, यद्यपि रिजेक्ट होने की बात ही बुरी लगती है.

—उसको कोई दोस्त नहीं मिलता. नहीं, दोस्त तो वैसे भी नहीं मिलता...लेकिन कंप्यूटर रिजेक्ट कर दे तो बात करने वाला भी नहीं मिलता.

—क्यों? उसे कुछ अजीब बात लगी.

—देखना...लोगों के यहां पर...उसने सीने पर दाहिनी ओर ऊपर उंगली से दिखाते हुए कहा, तुम्हें एक नंबर दिखाई देगा. वह लोगों का पर्सनल नंबर होता है जो कंप्यूटर स्टडी के बाद उन्हें मिलता है.

—लेकिन क्यों...? आदमी के लिए क्या नाम काफी नहीं होता?

—नाम भी होता है. लेकिन नंबर देख कर दूसरा आदमी यह जान सकता है कि तुम बात करने लायक हो या नहीं उसने समझाते हुए कहा.

......

उसे सोचते देख कर वह बोला—कितने साल बाद जागे हो?

—बासठ साल.

—ओह. . .तभी तो . . .तुम्हारे समय में ब्लड ग्रुप होते होंगे? वह सोचते हुए बोला.

—एक आदमी को खून देते समय. . .

—हां-हां. . .वह बात काटते हुए बोला. बात उसकी समझ में आ रही थी.

—इसी तरह व्यक्ति के शौक, पढ़ाई, शरीर रचना, आयु और बहुत-सी बातों के आधार पर कंप्यूटर उसे पर्सनल नंबर देता है. यह भी बताता है कि किस नंबर वाले के साथ उसे बात करना चाहिए, किसके साथ नहीं. साल में एक बार यह टेस्ट होता है.

—नहीं तो क्या होगा. . .? उसने पूछा.

—नहीं तो बात करके उसे प्रसन्नता नहीं होगी. शायद लड़ाई भी हो. लोग यह खतरा लेते ही नहीं. . .

—लेकिन तुम मुझसे क्यों बात कर रहे हो? तुम्हारा नंबर क्या है.

—नहीं. . .मेरा भी कोई नंबर नहीं. मुझे भी कंप्यूटर ने रिजेक्ट कर दिया था.

—तो क्या तुम भी डीप. . .

—नहीं, नहीं मैं तो पुराने खयालों का हूं. . .कुछ ज्यादा ही पुराने ख्यालों का. बूढ़ा हो गया हूं. पहले मुझे नंबर मिलता था. धीरे-धीरे मैं अयोग्य होता गया. इधर बीस साल से कंप्यूटर मुझे रिजेक्ट करता रहा है. चौरासी साल का हूं लेकिन वक्त के साथ बदल नहीं पाया. कंप्यूटर मुझे बस 'कॉम्प्लक्स' बताता है. लोग मुझे पागल समझते हैं. शायद ज्यादा जी गया हूं. और कोई बात नहीं है.

—तुम्हारा और कौन है. . .? उसकी सहानुभूति बढ़ती है.

—कोई नहीं. दो साल पहले पत्नी अन्य व्यक्तियों की बेरुखी सहते-सहते सचमुच पागल हो गयी.

—और बच्चे!

—वे भी मुझे पागल समझते हैं. चार थे. . .शायद हैं. बात ये है कि लगभग बीस साल से दिखाई नहीं दिये. वह कुछ खो-सा जाता है, हां, अब तुम क्या करोगे?

—कुछ भी. मेरे हिसाब में तीन लाख डालर बचे थे. उसकी पास बुक मुझे दी गयी है. मैं कुछ काम करना चाहता हूं.

—सिर्फ तीन लाख . . .? क्या होगा इसमें? बूढ़ी आवाज में. आश्चर्य भी था, व्यंग्य भी.

—क्यों? मैंने अपना पुराना काम तीन हजार में शुरू किया था.

—लेकिन अब तो तीन लाख शायद पुराने एक हजार के बराबर भी नहीं हैं.

उसे पूरा विश्वास तो नहीं हुआ लेकिन फिर भी एक चिंता ने घेर ही लिया.

—फिर भी . . .दुखी होने की बात नहीं. सरकारी बैंक से तुम्हें जीने भर के लिए कुछ मिल ही जाएगा. रिजेक्टेड लोगों के लिए एक निवास बना दिया है सरकार ने. खाने के लिए महीने भर की गोलियों का कोटा भी वहीं मिल जाता है.

—गोलियां. . .?

—हां. . .अब सब गोलियां ही खाते हैं. दिन में तीन बार.

—तुम गोलियां खाते हो, कोई तुमसे बात नहीं करता तो तुम समय कैसे बिताते हो. . .? वह अचरज से पूछता है.

—समय तो किसी का नहीं बीतता. नंबर वाले कम से कम एल. डी. खाकर छः-आठ घंटे बिता तो लेते हैं.

—एल. डी. . . .?

—एल. एस. डी. जैसी ही एक दवा है. हम लोग उसे नहीं खाते. हम लोग सो सकते हैं. आजकल के लोगों ने पहले तो चुंबकीय ढंग निकाला था जिससे आदमी दो घंटे में ही आठ घंटे की नींद पूरी कर लेता था. लेकिन बाद में अगली पीढ़ी ऐसी जन्मने लगी जो दो घंटे से ज्यादा सो नहीं पाती. ज्यादा से ज्यादा काम मशीनें करने लगी हैं. अब आज का आदमी सबसे ज्यादा खालीपन से डरता है, इसीलिए उसे एल. डी. बनानी पड़ी.

—तुम सब क्या करते हो. . .?

—मौत का इंतजार, उसने छूटते ही कहा.

● नरेंद्र एम. शाह

—मौत का. . .? मौत का इंतजार तो कायर करते हैं. जिंदगी इतनी सुंदर चीज है. . .तुम जीना क्यों नहीं चाहते ?

—पता नहीं . . .शायद इसलिए कि मौत हमसे दूर हो गयी है.

—तुम जरूर पागल हो. क्या तुम्हारे बाकी साथी भी मौत का इंतजार करते हैं ?

—हां. . .सब. उसने बिना संकोच उत्तर दिया. सब जीते-जीते बोर हो चुके हैं. सब मौत का इंतजार करते हैं.

—सब. . .? क्या वे भी जो डीप-फ्रीज से आए हैं? वह पूछता है.

—नहीं. . .ऐसा कोई हमारे बीच नहीं है.

—क्या ऐसा कोई तुम्हें नहीं मिला?

—मिला क्यों नहीं? कुछ तो ऐसे होते हैं जो दो-चार साल बाद ही डीप-फ्रीज से निकाल लिये जाते हैं. उन्हें कंप्यूटर रिजेक्ट नहीं करता. उन्हें साथी भी मिल जाते हैं और दुनिया का ढंग भी बुरा नहीं लगता. लेकिन तुम्हारी तरह. . .जो इतने बरसों बाद जागते हैं वे. . . वह कुछ अटकता है.

—वे. . .क्या कह रहे थे तुम ?

—कुछ खास नहीं. उन्हें ही कंप्यूटर रिजेक्ट करता है.

ऐसे किसी को तुम जानते हो ? . . .मैं मिलूंगा उनसे. हम मिल कर साथ रह सकते हैं.

ऐसा कोई तुम्हें नहीं मिलेगा, वह बताता है.

क्यों . . .?

—तुम्हें जानकर दुख होगा. . .बहुत पूछने पर भी वह कुछ नहीं बताता.

* *

वह पिछले दस दिनों में बहुत घूमा था. सभी कुछ तो बदल गया था. पहले कई दिन उसमें बच्चों जैसा उत्साह था—नयी-नयी बातें देखने का उल्लास था. लेकिन अब वह थकान महसूस कर रहा था. उसे बहुत कुछ मिला. . .बस, अपनापन नहीं मिला. कहीं कोई पास से निकलता तो लोगों की आंखें उसके सीने पर दाहिनी ओर कुछ ढूंढ़ती-सी लगतीं और दूसरे ही क्षण छिटक कर अलग हो जातीं. किसी के पास उसके लिए समय नहीं था. उसने कुछ लोगों से बात करने की भी कोशिश की लेकिन . . .

उसे बार-बार अपनी पत्नी की याद आती थी. काश उसके पास इतने डालर होते कि वह अपनी पत्नी के लिए भी कुछ इंतज़ाम कर सकता! फिर भी क्या जरूरी था कि दोनों का इलाज एक ही समय में संभव हो पाता? दोनों साथ ही आंखें खोल पाते? अब उसे पत्नी की आवश्यकता महसूस हो रही थी.

शादी . . .बिली ने बताया था कि अब कोई शादी नहीं करता. . .

नारी और पुरुष का भेद करीब-करीब मिट गया है. दोनों को एक दूसरे की जरूरत बस महीने में एक बार होती है. ऐसी दवाएं हैं जिनके प्रयोग से वे बड़ी आसानी से एक दूसरे के बिना महीने भर तक रह सकते हैं. सिर्फ कुछ घंटों का साथ न तो उन्हें भावुक बनाता है और न ही किसी प्रकार की ग्लानि उन्हें होती है. कंप्यूटर बताता है कि किसे किसके पास जाना है.

परिवार . . .बच्चे. . .कहीं कुछ नहीं. बच्चों से लोगों को घृणा है. एक बोझ. . .इक्कीसवीं सदी आते-आत आबादी इतनी बढ़ी थी कि लोगों को बच्चों में सिर्फ एक प्रतिद्वंद्वी की शक्ल दिखाई देने लगती थी. प्रतिद्वंद्वी जो उनके खाने में, उनकी जगह में, उनके हिस्स के हवा, पानी में, उनके समय में और गरज यह कि उनकी हर सुविधा में हिस्सा लगाने को बिना बुलाए आ गया है. बच्चोंवाले बुढापे में अपने बच्चों को बेरोजगार, निराश और बुरी आदतों में फंसा देख कर रोते थे. संतान-हीन भाग्यवान समझा जाने लगा था. धीरे-धीरे विवाह से पहले ही लड़कियां आपरेशन कराने लगीं . . .और आबादी तेजी से कम होने लगी. तब सरकार को प्रतिबंध लगाना पड़ा. दो बच्चे होने से पहले आपरेशन पर प्रतिबंध हो गया.

—लेकिन मां की ममता . . . उसने पूछा था.

—वह भी नहीं रही. परिवार बिना बच्चे का पोषण कैसा? कैसी ममता . . .? वैज्ञानिकों और डाक्टरों ने तरकीब न निकाली होती तो औरतें बगावत कर देंती. सरकार कानून न बना पाती. अब सर्जरी से महीने भर के अंदर ही गर्भ निकाला जा सकता है और शेष समय उसका विकास प्रयोग-शाला में होता है. बच्चे सरकार पालती है.

उसे रह-रह कर सब कुछ बड़ा घिनौना-सा लगा था. वह किसी से बात करने के लिए बेचैन हो उठता था. गोलियों के स्वाद का वह अभी आदी नहीं हो पाया था. गिरजे बंद हो चुके थे. उनमें से ज्यादातर टूट गए थे और शेष में रिजेक्ट किये हुए लोग रहा करते थे.

अपने समय में उसे संगीत का शौक था. वह चित्रकारी भी करता था. उसने बजाने के लिए पियानो ढूंढ़ने की कोशिश की . . . चित्र बनाने के लिए रंगों की तलाश की . . .ब्रश चाहे. लेकिन हर बार उसे अलग-अलग आकार के अलग-अलग काम करने वाले कंप्यूटर दिखाए गए.

क्या करे . . . . ? वह कहां जाए . . . ?

उसने डीप-फ्रीज हाउस के कंट्रोलर को फोन किया. कंट्रोलर विस्मय भरे स्वर में बोला—यह कैसे हो सकता है ? हम पर उनका ऋण ह. हम वचनबद्ध हैं कि उनके रोग का निदान पाते ही हम उन्हें जिला देंगे.

—उन्हें सोते रहने दें तो उन पर सबसे बड़ा उपकार होगा.

उसने चोंगा रख दिया.

* *

उसकी लाश चिथड़े-चिथड़े हो गयी थी. सफाई करते हुए एक व्यक्ति ने कहा—इतनी ऊंचाई से कूदने की क्या जरूरत थी? क्या इसे पता नहीं था कि आत्महत्या पर कोई रोक नहीं है और मरनेवालों को मांगने पर इंसटैन्ट रिलीफ की गोलियां मुफ्त दी जाती हैं? □□□

के ४।१२ मॉडल टाउन, दिल्ली—९.

विमली

• शांता वर्मा

वह मोची का अड्डा, उसको अड्डा ही कहना चाहिए, विमली के आने से काफी मशहूर हो गया था. विमली थी भी बड़ी चटपटी. पैंतीस साल की होते हुए भी सब बाइयों के बीच बिलकुल अलग लगती थी. गौरा शरीर, दुबली-पतली, मराठी साड़ी में उसका शरीर और भी कसा हुआ लगता था, बस पान-तंबाकू से उसके दांत हमेशा लाल रहते थे. इसीसे सब लोग पहचान लेते थे कि वह काम करने वाली घाटिन है, नहीं तो कभी चमकीले रंग की साड़ी में अच्छे घर की औरत लगती थी. और फिर कांतीलाल सेठ के घर काम करती थी, उसका उसको अलग ठसका था. कांतीलाल सेठ उस आठ माला बिल्डिंग में इक्यावन फ्लैटों में सबसे ठोस पैसे वाले व्यक्ति थे. उनकी दो औरतें थीं. दोनों औरतों के लिए सेठ ने अपने टैरस में अलग-अलग हिस्सा बनवा दिया था, पर विमली को बड़ी सिठानी ज्यादा पसंद थी. उसीसे वह अपना रोना-धोना गाती रहती थी.

और वह मोची का अड्डा, उसकी करीब रोज की बैठक वहीं रहती थी. वह मोची का अड्डा क्या, एक तरह से औरतों का सौदा पटाने वाली जगह थी. और मोची बड़े शांत ढंग से सबका निपटारा कर देता था. ऐसा लगता था, सभी बाइयों की तकलीफ वही मोची सुनता है, और गाडफादर बन कर चुपचाप सबको शतरंज के मोहरों की तरह बैठा देता था. शाम के समय जो रसिया लोग उसके पास आते थे, रात का सौदा चुपचाप पट जाता था. वह सब ऐसे सोफियाने तरीके से होता था कि बरसों से रह रहे लोगों को कानोंकान खबर तक नहीं होती थी. वह मोची हमेशा दयनीय लगता था और उसके पास बैठने वाली बाइयां शरीफ लगती थीं, इसीलिए विमली हमेशा सबको शरीफ, चटपटी, स्मार्ट, हमेशा खुश रहने वाली बाई लगती थी.

उस समय तक विमली ने कोई ऐसा वैसा कदम नहीं उठाया था, उसको बराबर अपने सेठ और उनकी इज्जत का ध्यान रहता था, या उसके मन में एक डर समा गया था. अपने पति की क्रूरता का डर, जब भी उसे याद आ जाता था, उसका मन सिहर उठता था.

दो साल पहले की रात, वह अभी तक नहीं भूली थी; कारण शायद उसका तीन साल का लड़का था, जिसको वह गुस्से में छोड़ आयी थी, अगर ले भी आती तो रखती भी कहां, कौन उसको नौकरी देता. अब तो वह आजद है पर जब कभी दुःख उसको सालता तो बड़ी बाई के पास जा कर बैठ जाती थी, और उनके पाव दबाने लगती थी, उसी बीच उसकी आंखें नम हो आती थीं और बोलती जाती थी.

—बड़ी सिठानी जी, क्या करूं, मुझे इस जनम में कहीं शांति मिलेगी नहीं, पता नहीं रमेश इस समय क्या कर रहा होगा. उसको दूध कोई देता होगा. या चुपचाप सो जाता होगा. पहले जब भी मेरे पास आता था, मेरा पल्लू पकड़ कर तोतली-तोतली बोली में सिर्फ पांच पैसा मांगता था. अब की दीवाली पर वह पांच साल का हो जायेगा. वह निर्दयी मेरा मरद, सोच के गुस्सा आता है. अपनी कंपनी से जो क्रिश्चियन औरत पकड़ लाया था; उसीका गुलाम हो गया था. वह काली कलूटी को गिटपिट करना क्या आता है, खटिया के नीचे पांव तक नहीं रखती. मैं ही सारे दिन मरूं और कभी ऊंची आवाज में बोल दूं तो डंडों से धुनाई होने लगती थी!

यह किस्सा बड़ी सिठानी हजारों बार उससे सुन चुकी थीं, बस वह इतना ही समझा देती थीं कि—मेरी देखो, मैंने जिंदगी भर सेठ का सब कुछ किया, पैसा-पानी मैं अपने घर से इतना लायी थी, कि सेठ कंपनी के मालिक बने बैठे हैं. और मैं सिर्फ अपने बच्चों के खातिर यहां पड़ी हूं. तुमने देखा नहीं, कौन मुझे पूछता है. सभी जगह छोटी की चलती है. तुम तो फिर भी बाहर निकल कर अपना मन बहला सकती हो और मैं इन चहारदीवारी में बंद, किसी से कुछ कह भी नहीं सकती. धीरे-धीरे सिठानी की आंखों में नमी तैरने लगती थी. पर विमली को एक तरह से राहत मिल जाता थी, कि मैं ही अकेली दुःखी नहीं हूं. बड़ी सिठानी की मुझसे भी बुरी हालत है.

जब कोई दुःखी दूसरे को दुःखी देखता है तो उसे इतनी बड़ी शांति मिलती है कि बस. . .विमली की हालत वही थी. उसकी रगों में जमाने के विपरीत लड़ने का एक साहस-सा आ जाता था. शायद इसी कारण मोची के अड्डे पर बैठ कर, जमाने का रंग देख कर साहस प्राप्त करती हो.

उसकी शक्ल-सूरत देख कर बिल्डिंग में एक अफवाह तो जरूर फैली थी, कि विमली के चाल-चलन ठीक नहीं हैं, क्योंकि कभी वह जूड़े में फूल खोंस लेती थी, कभी बड़ी-सी सिंदूर की बिंदी लगा लेती थी. जब भी ऊपर से उतरती थी, उसका रंग-रूप देखने लायक ही होता था. कोई चौकीदार या नौकर उसको

छेड़ता तो लड़ने को उतारू हो जाती थी. एक बार किसी बिल्डिंग के ही साहब ने उससे कहा——विमली, आज तो तुम चमक रही हो. क्या तेरे मरद ने तुझको याद किया है, बस बरस पड़ी. खड़े-खड़े पचासों गालियां दे डालीं. हरामजादे, तुम्हारे कोई बहू-बेटी नहीं हैं, बड़े रसिया बनते हो, शहर में बहुत-सी रंडियां बसती हैं, वहां तुम्हें क्या पानी नहीं मिलता है? वह बेचारा चुपचाप, अपने फ्लैट में घुस गया. तीन-चार दिन तक बिल्डिंग से बाहर ही नहीं निकला.

इसीलिए विमली से कोई कुछ नहीं कह सकता था. पर मोची के अड्डे पर बैठ कर जो वह मजा लेती थी, वह उसका दूसरा ही रूप था. बड़े मजे से वह पूछती थी अपनी सहेलियों से—— कितनी-कितनी कमाई हुई. कैसी-कैसी रंगरेलियां रहीं, सभी मोची के सामने जरा शरमा-सी जाती थीं. पर विमली कहती कि मुझे कोई मोची-बोची की मदद की जरूरत नहीं पड़ती. हमारे तो बंधे हुए लोग हैं. मैं पैसे नहीं लेती, सीधे कहती हूं, मुझे तो साड़ियां चाहिए या अच्छा खाना. पैसे-पानी की मुझे जब जरूरत होगी हक से मांग लूंगी. बस जोर से तंबाकू मल कर फांक लेती थी. उस समय सब बातें बड़ी शान से कहती थी. सभी बाइयां उसको ताकने लगती थीं. जो ईर्ष्या करती थीं, वह उठ कर चल देती थीं.

★ ★

एक दिन क्या हुआ वह राशन की लाइन में खड़ी थी. सेठ के घर की चीनी लेने के लिए, पान तो उसके मुंह में हमेशा ठुंसा रहता था. उस दिन भी पान से उसके दोनों होंठ लाल हो गये थे और कुछ गर्मी के कारण उसका चेहरा भी लाल सुर्ख हो गया था. उसके कानों में एक आवाज गूंजी, कि कोई कह रहा है कि 'विमली, तुमने पान खाना कब से शुरू किया है? पहले तो उसे भ्रम हुआ कि यहां उसको कौन जानता है. पर वह आवाज तो जानी-पहचानी थी. उसने मुड़ कर देखा, वही रामलाल, उसका पति, पहले से थोड़ा दुबला हो गया है. विमली ने गुस्से से अपना मुंह सामने कर लिया. पर उसके शरीर में एक अजीब-सी घबराहट होने लगी थी. वह सोचने लगी कि कितनी जल्दी उसका नंबर आ जाये और चीनी ले कर बड़ी सिठानी के पास भाग जाये पर रामलाल ने दुबारा उससे वही प्रश्न किया कि 'तुमने पान खाना कब से शुरू किया है.' उसने उसी जोश में उत्तर दिया कि 'जब से तुमने मुझे छोड़ा है.' रामलाल बराबर उसको ताके जा रहा था. पर विमली उसी चुस्ती से खड़ी थी, अंदर उसके क्या हो रहा है, वह जाहिर नहीं करना चाहती थी. और सोच रही थी कि इसको किसने बताया कि मैं यहां काम करती हूं. वह एक-एक करके मोची के पास बैठने वाली बाइयों को सोचने लगी थी.

जैसे-तैसे उसकी चीनी मिल गयी थी और वह थैला कमर पर रख कर चलने लगी, तो रामलाल उसके पीछे-पीछे आने लगा. राशन की गली से निकल कर जब वह सड़क पर आया तो उसने विमली का कंधा पकड़ लिया. विमली के जैसे डंक मार दिया हो. उसने तुरंत उसका हाथ झटक दिया. पर रामलाल बोला-सुन विमली, रमेशा तुम्हारा बहुत बीमार है. तुमको बहुत याद करता है. और तुम तो मेरी शादी वाली औरत हो. ऐसे थोड़े ही घर छोड़ देते हैं.

विमली सोच में पड़ गयी थी कि दो साल बाद अचानक इसको मेरा खयाल कैसे आ गया है. क्या इन दो सालों में यह भी कहीं मेरा यहां भाग आने का पश्चाताप करता रहा है इसीलिए दुबला हो गया है, पर वह क्रिश्चियन, उसने इसको नहीं संभाला. रमेशा की बीमारी सुन कर वह पिघल गयी थी. पूछ बैठी इन दो सालों में वह कैसे-कैसे मुझे याद करता था. रामलाल को जैसे बात करने का सिलसिला मिल गया था. बोला——मैंने बहुत बार सोचा, तुझको ढूंढ़ लाऊं, पर कहीं लगता था कि तुम अपने आप आ जाओगी.

विमली को वह रात याद आने लगी थी, बोली——मैंने वापस जाने की बात दिल-दिमाग से निकाल दी थी. सोच लिया था कि जिंदगी अब अकेले काट दूंगी. वैसे भी मार खानी है, और ऐसे भी मार खानी है. आखिरकार तो दुनिया में सब अकेले हैं...

रामलाल, उसकी बातें सुन कर अचंभे में पड़ गया था. बोला——अब तो तुम बहुत अक्कल की बात करने लगी हो. चलो घर चलो, मैं खुद बुलाने आया हूं.

विमली का घमंड अभी टूटा नहीं था. बोली——अभी मुझे सोचने का टेम दो. अगर कल सुबह तुम आ सको तो मैं बता सकूंगी कि मैं चल सकती हूं या नहीं.

रामलाल ज्यादा उलझना नहीं चाहता था. बोला——अच्छा मैं चलता हूं. कल दस बजे आऊंगा. तुम तैयार रहना.

उसके जाते ही विमली भागी हुई बड़ी सिठानी के पास आयी. बड़ी सिठानी उस समय पूजा कर रही थीं, इसलिए चीनी की थैली रख कर दरवाजे पर ही खड़ी रही. जब सिठानी पूजा पर से उठीं तो देखा विमली खड़ी है. बोलीं——यहां क्या खड़ी हो, चीनी रसोईघर में डिब्बे में रख दो न.

विमली बोली——सिठानी जी, मुझे बहुत कुछ कहना है आपसे.

सिठानी बोली——जा, सब काम निपटा के फिर फुरसत में सब कुछ सुन लूंगी. विमली के जैसे हाथ-पैर में मशीन लग गयी हो, जल्दी-जल्दी उसने सब काम कर डाला. फिर भी कोई बीच-बीच में उसको बुला लेता था. इनकार करना उसकी आदत नहीं थी. सभी का मन खुश रखती थी. पर आज उसका हर काम बेमन से हो रहा था. साथ में यह भी सोचती जाती थी कि अगर मैं कल इस घर से चली जाऊंगी तो यह सब कैसे होगा. पर बड़ी सिठानी के अलावा उसकी तकलीफ सुनने वाला भी कौन था!

जब सब काम समाप्त हुआ तब दोपहर हो चुकी थी. बड़ी सिठानी खा-पी कर रोज की तरह अपने कमरे में आ कर लेट गयी थीं. विमली को अब अच्छा मौका मिल गया था. पर सिठानी ने उसे खुद ही बुला लिया

था, बोलीं—अब कह विमली, सुनते ही विमली ने रोज की तरह उनका पांव दबाना शुरू कर दिया था. फिर बोली—सिठानीजी वह आया था, मेरा मरद, राशन की दुकान पर मुझे मिला था.

सिठानी ने उत्सुकता जाहिर की, बोली—क्या कहता था?

—कहता क्या, बुलाने आया था, रमेशा की तबियत की कह रहा था, कि बीमार है.

सिठानी—फिर क्या तू जायेगी?

विमली—यही तो समझ में आ नहीं रहा है. मुझे तो कुछ दाल में काला लगता है. पूरे दो साल बाद मेरी अचानक ऐसी क्या याद आ गयी कि दौड़ा चला आया.

सिठानी—हो सकता है रमेशा तुमको सौंप दे, या क्रिश्चियन ने कुछ गड़बड़ किया हो और तुम्हारी उसको जरूरत हो.

विमली—वैसे तो आप सब ठीक कहती हैं, पर सिठानीजी, वह रात तो मैं कभी भूल हीं नहीं सकती हूं. जरा-सी बात, बस इतनी कि मैं सब घर का काम निबटा कर, सामने वाली खोली में कुछ देर बैठने चली गयी थी. तुम्हारी तरह वह मेरी मौसी कुंती बहुत अच्छी थीं. मैं खुल कर उससे सब कुछ कह देती थीं. पर वह कभी किसीसे मेरी चुगली नहीं करती थी. मुझे उतना ही भरोसा था जितना आप पर. उस दिन वह दोनों, मेरा मरद और वह काली कलूटी, अपनी खोली के सामने खाट पर बैठे हुए थे. शायद सलाह मसवरा कर रहे थे. मेरा मरद भी कंपनी के काम करते-करते टूटी-फूटी अंग्रेजी सीख गया था और वह तो सिखेली थी ही. दोनों की बातें मेरी समझ में आती भी नहीं थीं. इसीलिए मैं उठ कर चली आयी थी. मौसी अपनी रजाई में डोरे डाल रही थी. मैंने भी दूसरी सुई ले कर डोरे डालने शुरू कर दिये थे. उसी बीच मौसी का देवर आया था साइकिल ले कर, पैंट बुशर्ट में लग रहा था कहीं अच्छी जगह काम करता है. वह भी साइकिल टिका कर वहीं पीढ़े पर बैठ गया था. मुझे देखते ही वह बोला—कुंती भाभी, तुम्हारी पड़ोसन तो बहुत सुंदर है. कहां रहती है? मैं चुपचाप सिर नीचे किये डोरा डालने लगी थी. मौसी ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया तो मुझसे ही बोला—कहां रहती हो? मैंने सामने वाली खोली की तरह इशारा कर दिया था.

मुझे क्या मालूम कि वह सब नाटक, मेरा मरद सब देख रहा है. तुरंत ही उठ कर आया और कड़क कर बोला—चल अपने घर. मैं चुपचाप चल दी थी. खोली में पहुंचते ही कोने से डंडा उठाया और मेरी धुनाई करना शुरू कर दिया . बोला—मुझे क्या मालूम तुम वहां रंडीबाजी करने जाती हो. घर में कोई और काम नहीं है. वहां बैठ कर तफरी सूझी है. फिर मैंने भी जोर से कहा था—तू जो वह रंडी ले आया है काली कलूटी, वह कुछ नहीं. वह सुनते ही उसका पारा और भी चढ़ गया था. जोर से कमर पर डंडा मारते हुए बोला—मरद को टोकने वाली तू कौन होती है.

सारे खोलियों के लोग जमा हो गये थे. मेरी इज्जत उतरते सभी ने दिल खोल के देख ली थी. रमेशा सहम गया था, इसलिए कोने में जा कर बैठ गया था.

मेरा तो हाल बेहाल था. रात होने तक मैं वहीं पड़ी रही थी कि रमेशा मेरे पास जबरन आ गया था पर इतना छोटा, करता भी क्या, मैंने उससे पीने के लिए पानी मांगा था. उसने छोटे-छोटे हाथों से एक छोटी-सी कटोरी में ला कर दे दिया था.

जाने कैसे साहस करके मैं उसी आंगन में एक किनारे जा कर लेट गयी थी. जगह-जगह छिल गया था. खून झलक आया था. सारे बदन में पीड़ा हो रही थी. बस उसी रात को चार बजे मैं हिम्मत करके उठी और आंगन में फैली धोती समेट कर चुपचाप बाहर निकल आयी थी. सड़क का सन्नाटा देख कर जरूर भय लग रहा था. जब मैं खोली से काफी दूर निकल आयी तो एक पेड़ के नीचे बैठ कर दिन निकलने का इंतजार करने लगी थी. दिन निकलने पर मैं बस पर बैठ कर बिना टिकट अपनी चाची सास के पास बरली आ गयी थी.

उसके बाद आपके पास.

यद्यपि बड़ी सिठानी ने यह किस्सा पहले भी सुना था. पर आज उनकी आंखों में आंसू छलक आये थे. बोलीं—विमली, कितने निर्दई हो जाते हैं यह मरद, जैसे दूसरी औरत का जादू-सा चल जाता है. अपने सेठ को देखो, मान-सम्मान सब मेरी वजह से है. पर कभी अकेले में आ कर पूछा है कि तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं है.

मुझे तो लगता है कि आदमी अपनी जिंदगी में दूसरी औरत रख तो लेता है पर जिंदगी भर उसके मन में कुछ सालता रहता है. वह कुछ भी करे अपनी तकलीफ अपने आपसे भी कहते डरता है. जिंदगी में सब स्लेट की तरह पुछ तो नहीं जाता. मैंने तो कभी तुमसे कुछ कहा नहीं. मेरा बाबू जब होने वाला था, तो सेठ ने ही मेरी कितनी देखभाल की थी. दवाइयां और फल तो भरे रहते थे. कभी-कभी अपने हाथ से दवाई पिला देते थे. उन्हीं दिनों बाबू की देखभाल के लिए छोटी को रखा था. और अब देखो. यह कहते-कहते वह खाली छत की तरफ देखने लगी थीं. एक आंसू उनकी आंख की कोर में छलक आया था. विमली भी चुपचाप बैठी उनको देख रही थी. थोड़ी देर बाद सिठानी ने ही कहा था—विमली, तुमको तो तुम्हारा मरद बुलाने आया है, बस इतना ही बहुत है. तुम जरूर चली जाओ.

विमली—सिठानी, आपके साथ रहते-रहते एक मोह-सा हो गया है. दोनों एक दूसरे का दुःख बांट तो लेते थे. मेरे चले जाने से आपका सब कैसे होगा.

सिठानी को यह बात अंदर तक हिला गयी थी फिर भी बहुत हिम्मत जुटा कर के कहा था—मेरी क्या, अभी तो मेरे हाथ-पांव चलते हैं. धीरे-धीरे सब कर लूंगी. फिर आदत पड़ जायेगी. बस मेरा बाबू कहीं ठिकाने पर लग जाये, मैं उबर जाऊंगी.

दूसरे दिन विमली की अजीब-सी हालत थी. सेठ से बस इतना कहा था उसने, कि थोड़े दिन के

लिए मैं गांव जाना चाहती हूं. फिर आ जाऊंगी. सेठ ने भी हां कह दिया था.

उसके मन में कहीं एक उत्साह भी था. इतने दिनों बाद रमेशा को देखेगी. इसलिए सुबह जा कर दुकान से दो-तीन बिस्कुट के छोटे पैंकेट ले आयी थी.

उसने वही अपनी चमकीले किनारे वाली साड़ी पहन ली थी और बालों से एक फूल लगा लिया था. सिठानी के सारे काम उसने सुबह से ही निपटा दिये थे.

ठीक दस बजे रामलाल बिल्डिंग के नीचे आ गया था. विमली ऊपर से बराबर देख रही थी. उसको देखते ही वह सिठानी के पास भागी हुई गयी. और सिठानी से मिल कर नीचे उतर आयी थी. सिठानी ने जब ऊपर से उसे देखा तो उनको सेठ का ध्यान आने लगा था. कहीं ऐसा मेरी जिंदगी में एक क्षण को हो सकता. और जोर से सांस ले कर अपने अकेले कमरे में बंद हो गयी थीं.

★ ★

विमली जब घर में घुसी तो देखती क्या है, दलान में एक छोटा-सा स्कूल लगा हुआ है और उसकी सौत, वह क्रिश्चियन, एक छोटी-सी कुर्सी पर बैठ कर बच्चों को सिखा रही थी. रमेशा सबसे पीछे बैठा स्लेट पर कुछ आड़ी-तिरछी लाइनें बना रहा था. दलान का फर्श भी अब पक्का हो गया था. सारी खोली में रंग हो गया था. वह थोड़ी देर खड़ी हो कर सब देखती रही थी. रामलाल सीधे खोली के अंदर चला गया था. कुछ देर बाद रमेशा ने ही मुड़ कर देखा. पर उसकी नजरों में एक अजीब-सा अजनबीपन था.

रामलाल जब खोली से निकल कर आया, तो क्रिश्चियन से बोला---देख, विमली आयी है. वह तुरंत सब छोड़छाड़ कर उसके पास आ कर अंदर चलने के लिए कहने लगी. तभी विमली ने देखा कि उसकी सौत के पांव भारी-भारी पड़ रहे हैं. शायद सातवां महीना रहा होगा. वह अंदर-ही-अंदर सब समझ गयी थी, कि कितना बड़ा धोखा उसने फिर खाया है सिर्फ रमेशा के कारण. वह तुरंत लौट जाना चाहती थी. पर जाने क्या सोच कर रुक गयी थी, और चुपचाप खोली के अंदर जा कर अपना थैला रख दिया था. उसी समय उसने सोच लिया था कि यह दो महीने जैसे-तैसे वह निकाल लेगी. पर अंदर-ही-अंदर वह आग से सुलग रही थी. होठों से वह बहुत कुछ कहना चाहती थी जैसी उसकी आदत थी पर चुपचाप वहीं गड़ कर बैठ गयी थी. वहीं से रमेशा को देख रही थी. वह उसी तरह स्लेट पर कुछ बना रहा था. इसका भी अफसोस उसको खाये जा रहा था कि अपना भी खून इतनी जल्दी दोगला हो जायेगा. शायद उसको यह याद भी नहीं होगी कि उसकी भी कोई अपनी मां है. हिम्मत करके वह स्वयं ही उठी और सब बच्चों के बीच से जा कर रमेशा को उठा लिया. पांच साल का रमेशा अब भारी हो गया था. चुपचाप विमली को सकपकाई आंखों से देख रहा था. विमली बोली---तूने पहचाना नहीं, मैं तेरी मां हूं.

रमेशा ने कहा---मां, मां तो मेरी मर गयी है. वह तो मर कर भगवान के पास चली गयी है. विमली को बरदाश्त होना मुश्किल हो गया था. पर वह ऐसे पिंजरे में फंस गयी थी कि जहां आसानी से सब छोड़-छाड़ के निकल कर भाग भी नहीं सकती थी. उसका मन रुंआंसा होने लगा था! फिर भी उसने हिम्मत करके रमेशा से पूछा---यह सब किसने बताया?

वह सीधा बोला---बाबू ने, वह मेरी दूसरी मां है न, वह बहुत अच्छी है. हम सबको नई-नई कहानी सुनाती है.

विमली को लगा कि वह बहुत अकेली हो गयी है. न मरद अपना, न लड़का अपना, बड़ी सिठानी में भी अब कितना फासला हो गया है. किसको बताये कि उसका शरीर जो कि लचकदार हो चला था, एक क्षण में सूखने लगा है. फिर भी वह रमेशा को ले कर खोली में चली गयी थी, अपने थैले में से बिस्कुट का एक पैंकेट निकाल कर उसको दे दिया था.

और बाकी सब अपनी सौत को थमा दिये थे. इस बीच रामलाल खोली में पड़ी चारपाई पर लेट गया था. उसकी मौजूदगी का कोई आभास नहीं हो रहा था. जैसे विमली को इस खोली में ला कर डाल दिया हो और अपने आप में संतुष्ट हो गया हो. क्रिश्चियन एक खोली में रक्खे स्टोव पर चाय बनाने लगी थी.

विमली भी रमेशा को ले कर खोली में ही अपने थैले के पास बैठ गयी थी. जब चाय बन गयी तो रामलाल उठ कर बैठ गया था. खोली में बैठे वे तीनों लोग मशीन की तरह अपनी-अपनी जगह जैसे फिट थे. कोई बात का सिलसिला ही नहीं था. रमेशा जरूर बिस्कुट खाने में लगा हुआ था. और बाहर बैठे बच्चों का कुछ शोर अंदर आ रहा था. क्रिश्चियन ने विमली और रामलाल को चाय दी. और बाहर बच्चों के पास जा कर बोली कि आज तुम्हारी छुट्टी. तुम लोग अब घर जाओ.

आज पहली बार विमली को इस घर में इतना सम्मान मिल रहा था. उसने भी सोचा कि क्यों न अब की रौब से रहे. इन लोगों को मेरी जरूरत है. उसका पूरा फायदा उठा ले और चलती बने. पर दूसरी तरफ उसको अपनी स्थिति मालूम थी. नितांत अकेलापन, उसको वह कैसे भरेगी! सिर्फ काम ही करना उसका सहारा रह गया था, जिसमें वह अपने आपको भुला देना चाहती थी.

सारी रात उसे नींद नहीं आयी. दूसरे दिन जब उठी, तो पहले की तरह अपने कामों में लग गयी थी, पर इस बार सब कुछ अलग था. चीजों के स्थान बदल गये थे. कुछ हिचक भी लग रही थी. फिर भी उसने दो खाली कलसे उठाये और नल की तरफ चल दी थी. सुबह-सुबह पानी भरना उसका पहले भी काम था.

नल पर पहुंच कर उसको सिठानी का भी ध्यान आया था कि आज मैं जितनी अकेली हूं, उतनी वह भी अकेली होंगी. उनका भारी बदन कैसे चल रहा होगा. वह सोच रहीं होंगीं कि कितनी भाग्यवान हूं.

पर यहां तो जैसे जेल मिल गयी हो. यहां रामलाल, जो कि राशन की दुकान पर कितनी मीठी-मीठी बातें कर रहा था, यहां तो उसको मुझसे मतलब ही नहीं था. जैसे मुझे ला कर बस क्रिश्चियन को सौंप दिया हो. और फिर वह मोची का अड्डा, कितनी रौनक लगती थी. यह सोच कर उसने अपने शरीर की तरफ देखा और मन-ही-मन बुदबुदायी, क्या कमी है मुझ में. एक क्षण को उसके मन में आया कि क्यों न मैं दुनिया का आनंद लूं. कौन क्या कर लेगा. बुराई ही क्या है इन सब में.

कौन किसका सहारा होता है. मैं दो महीने अगर रह कर सब कुछ अपने ऊपर ओढ़ भी लूं तो भी मेरी यही हालत रहेगी. शायद इससे भी बदतर हो जायेगी. और फिर किसको अहसास होगा कि मैंने इतना सब सहा. और अपना रमेशा , वह भी कहां अपना रहा. अगर उसे अहसास भी दिलाऊं कि मैं उसकी असली मां हूं, वह सब झूठ था, जो तुम्हारे बाबू ने बताया था, इसमें भी क्या फायदा! वह तो अपने आपमें यहां खुश है फिर दो साल में उसकी आदतें भी बदल गयी होंगी. मैं भी कितनी बदल गयी हूं. मुझे भी बंधापन अच्छा नहीं लगता.

यही सब सोच कर उसके मन में आया कि क्यों न आज ही रात को भाग जाये पहले की तरह. इसी जोश में उसने दोनों कलसे उठाये और चाल की तरफ चल दी. वह पहुंची तो देखा रामलाल और क्रिश्चियन दोनों जाग गये थे. उसको आते देख कर रामलाल तो खामोश रहा, पर क्रिश्चियन बोली—दीदी, आप क्यों यह बरतन भरने गयी थीं. यह तो सब इनका काम है, रामलाल की तरफ इशारा करके . वह समझ गयी कि अब रामलाल इसका बिलकुल ही गुलाम हो गया है. पहले तो उसके सामने उठा कर गिलास तक नहीं पीता था.

उसका मन अंदर-ही-अंदर चीत्कार करने लगा वापस जाने के लिए. तुरंत उसको एक तरकीब सूझी. कलसे रख कर वह अपने थैले के पास आयी और उसके अंदर से कपड़े निकालने लगी. फिर बोली रामलाल की तरफ देख कर कि यह क्या हुआ, मैं तो अपने पैसे वहीं भूल आयी. रामलाल बोला—क्या हुआ, तुमको यहां जरूरत ही किस चीज की है?

विमली ने भी इन दो सालों में कुछ कम पापड़ नहीं बेले थे. तुरंत बोली थी—वह सिठानी के कमरे में मेज पर ही पड़े होंगे. किसी के हाथ लग गये तो मुश्किल हो जायेगी. और फिर सिठानी की दवाई की नई शीशी, जिसे मैंने अलमारी में बंद कर दिया था, सिठानी बिचारी परेशान हो जायेंगी. तुमको तो कंपनी जाना ही है, मैं भी चलती हूं. सब ठीक करके तुम्हारे ही साथ वापस आ जाऊंगी. रामलाल उसकी बातों में पूरी तरह आ गया था. बोला—अच्छा चलो, मुझे तो अभी जाना ही है.

* *

रामलाल तैयार हो कर जब जाने लगा तो विमली भी तैयार हो गयी थी. इस बीच क्रिश्चियन ने पराठे और सब्जी एक लंच बाक्स में रख दिये थे. विमली ने खाना ठीक नहीं समझा. धीरे से थैला उठा लिया और बगल में दबा लिया. कंपनी जाने की जल्दी में किसीने उसकी तरफ ध्यान ही नहीं दिया. रमेशा अभी तक उठा नहीं था. विमली ने मुड़ कर एक झलक उसकी तरफ देख लिया. और मन-ही-मन बोली, तुम्हारी मां सचमुच भगवान के सहारे जा रही है. स्थितियां आदमी को कितना कठोर बना देती हैं. विमली को अब किसीका माया-मोह नहीं था. खुले पक्षी की तरह उड़ना चाहती थी. चाल से बाहर आ कर उसको एक तरह की संतुष्टि हो गयी थी.

रामलाल आगे-आगे और वह पीछे-पीछे चली जा रही थी. विमली का मन हुआ कि यहीं से वह कहीं चली जाये. उसी बीच रामलाल ने जब उसे मुड़ कर देखा, वह उसके लिए रुक गया था. विमली अब उसके साथ चलने लगी थी. बहुत देर तक दोनों खामोश चलते रहे. बस स्टाप काफी दूर था. रामलाल ही बोला—विमली, तुम जा कर आ जरूर जाना, जैसे इसको कहीं उसके ऊपर शक हो रहा हो.

विमली बोली—क्यों नहीं, आदमी को आदमी पर ही विश्वास होता है, जानवरों पर थोड़े ही . विमली ने जब यह बात कहीं थी तो धीरे से मुसकरा दी थी. इतने में बस स्टाप आ गया था. वहां पहुंच कर फिर वही खामोशी . विमली का मन भी नहीं कर रहा था कि कुछ बात करे. शायद रामलाल को भी बात करने का कोई सिलसिला नहीं मिल रहा था. कल से आज तक कुछ खामोशी में ऐसा घटित हो गया था कि बातों के अर्थ बदल गये थे.

इतने में बस आ गयी थी. विमली जान कर उस सीट पर बैठी, जिस पर कोई आदमी बैठा था. इससे रामलाल अलग हो गया था. रामलाल को कहीं शक होने लगा था कि कहीं विमली धोखा तो नहीं दे रही है. पर वह सीट पर बैठा कुछ कर भी नहीं सकता था. दोनों लोग खिड़की के बाहर दुनिया देख रहे थे.

इतने में बस के सफर में दोनों की कोई बात नहीं हो पायी थी.

बस स्टाप आते ही विमली जल्दी ही उतर गयी. भीड़ के कारण रामलाल पिछड़ गया था. विमली को शायद रामलाल का ध्यान भी नहीं रहा, या जान छुड़ा कर भागना चाहती थी, इसीलिए जल्दी-जल्दी चलने लगी. रामलाल भी उतर कर उसके पीछे जल्दी-जल्दी चलने लगा. पास आ कर बोला—विमली, कहां भागी जा रही हो.

विमली ने तपाक से जवाब दिया, जैसे घर में कुत्ता भी शेर हो जाता है—अपने घर.

रामलाल बोला—मुझसे तुमने क्या झूठ बोला था.

विमली को गुस्सा आ रहा था, बोली—तुमने क्या मुझसे कम झूठ बोला था.

आज रामलाल को अपनी पुरुषता पर शर्म आ रही थी नहीं तो कहीं चाल में खड़े हो कर अगर यह कहती तो चांटा भी मार देता. पर वह लाचार हो कर

(आगे पृष्ठ ७१ पर)

सुलखाना

•नासिरा शर्मा

रमेश ने अंतिम बार अपने पेंट की क्रीज ठीक की और संभल कर बैठ गया. गाजियाबाद गुजर चुका था, दिल्ली बस गाड़ी पहुंचना ही चाहती थी. बेचैनी से वह बैठ न सका, होल्डाल और अटैची को उसने दरवाजे के समीप पहुंचा दिया और पीछे की जेब से कंघा निकाल कर बाल फिर से संवारे. दिल की धड़कन पटरी पर फिसलते पहियों के साथ ही झक, झक, झक का ताल दे रही थी. गाड़ी के रुकते ही उसने थूक निगला, कालर को ठीक किया, गर्दन थोड़ी अकड़ाई और एक अदा से प्लेटफार्म पर नजर डाली.

—अरे यार, तू आ गया. . . दीक्षित ने उसे खींच लिया और एक धप लगायी.

—सफर कैसा रहा?

वह बौखलाई-सी हंसी हंसता रहा, बार-बार सचेत-सा इधर-उधर दृष्टि डाल रहा था जैसे कि लोगों को इतनी फुर्सत है कि वे केवल उसी को देख रहे हैं. सच है, दिल्ली मानव जंगल है. जंगल भी कैसा, बहुत ही सघन.

दो साल पहले जब वह बी. ए. कर रहा था तो दीक्षित सात साल बाद दिल्ली से आया था उसका पुराना सहपाठी. दीक्षित पढ़ाई में अच्छा था, सीधा-सादा लड़का था, घने बालों के बीच चुटिया के गुच्छे में पड़ी बड़ी-सी गांठ और गले में पड़ा जनेऊ—पर अब तो जैसे पहचाना ही नहीं जाता—पैंट, शर्ट, निखरा मुखमंडल, कटे बालों की लट माथे पर झूलती हुई और बालों का अंदाज. . . धीरे-धीरे उसे गिराते गये. फिर जब दीक्षित दिल्ली वापस गया तो रमेश को हीनता के दलदल में छटपटाता छोड़ गया. तब से जाने कौन-सी ज्वाला रमेश के मन को जलाये जा रही थी कि उसे कुछ बनना है, आगे बढ़ना है. दिल्ली उसे एक झिलमिलाते सितारे की तरह नजर आता— मानचित्र रूपी आकाश का सबसे ज्वलंत सितारा, सब शहरों का सरताज.

दीक्षित के बुलावे पर वह दिल्ली पहुंच गया. ड्राइंग रूम देख वह कर स्तंभित-सा रह गया. कालीन, सोफा, कुशन, लैंप, तस्वीरें, मूर्तियां एकदम अपने में संपूर्ण. दीवान के एक सिरे पर बैठ कर वह अपने को काफी संभाल चुका था. अटैची खोल कर उसने बांबे डाइंग की नयी तौलिया, नयी साबुनदानी, और नये कपड़े निकाले. बाथरूम देख कर वह प्रसन्न हो गया. घर पर बाबूजी लाइफबाय के अतिरिक्त अन्य साबुन आने नहीं देते थे. पर लक्स की भीनी महक और अंगौछे की जगह इंद्रधनुषी तौलिये ने उसे गुनगुनाने पर मजबूर कर दिया.

बड़ा शरमाते हुए उसने मां के हाथ के बने लड्डू और मठरियां चाची को दिये. वह सोच रहा था कि अभी दीक्षित अलग कमरे में सामान रखने को कहेगा पर वह साफ इंकार कर देगा. चंद दिन के लिए तो आया हूं, यार से बातें न हुईं तो फायदा क्या? मैं तो साथ ही कमरे में रहने की कहूंगा, बाहर से कितना बड़ा घर लगता है. जाने अंदर कितने कमरे हैं. ८-१० तो होंगे जरूर.

—क्या सोच रहे हो, कुछ खाओ तो, चाची ने उसे टोका.

—गीता, बर्फ की ट्रे निकाल ले बेटा, कितना आराम है वरना बर्फ के लिए चौराहे तक दौड़ कर जाओ.

दीक्षित ने छुट्टी ले रखी थी. इस कारण पूरा दिन खूब दिल्ली की सैर हुई. दिल्ली घूमते हुए उसे एक अनजाना-सा भय दबोचने लगा, उसका कद घट रहा है. . . . कुतुमब मीनार के ऊपर चढ़ कर उसे अच्छा लगा. ऐसा प्रतीत हुआ कि उसमें इतनी शक्ति है कि वह बांहों में तो नहीं पर आंखों में यह दृश्य, यह प्राकृतिक छटा, छुपा सकता है. एक अछूती-सी ठंडी-सी अनुभूति हुई. वह मुस्करा पड़ा.

कनॉट प्लेस पर घूमते हुए फिर उसे उस भयानक कल्पना ने दबोचना शुरू कर दिया. वह घट रहा है, तिल-तिल कर के. यह कैसे हो सकता है. यह केवल उसका भ्रम है. दोस्तों में वह सबसे लंबा है, पांच फीट आठ इंच यानी दीक्षित से चार इंच लंबा. . . . ऊंह. . . . उसने गर्दन अकड़ाई.

रात को जब वह घर लौटे तो कमरे में घुसते ही रमेश को झटका लगा. गलत घर में घुस आया है शायद? नहीं, पर चाची और गीता तो बैठी हैं.

—आओ बेटे, आओ. तुम्हारा बिस्तर दीक्षित के साथ ही लगा दिया है. ऊपर खिड़की है, ताजी हवा भी आयेगी, चाची ने नूरानी तेल, पैरों में मलते हुए कहा.

—ठीक है चाची, पुताई-सफाई के समय ऐसा होता ही है.

—क्या मतलब, पुताई कैसी? दीक्षित के हाथ बुशर्ट के बटन खोलते हुए रुक गये.

—बाकी कमरों की पुताई लगी है न, रमेश ने कहा.

—क्या? दीक्षित अवाक् रह गया. फिर ठहाका मार कर वह हंस पड़ा, अरे उल्लू की दुम! बाकी कमरे हैं किसके पास? यहीं अपना किला समझो, जिसका एक कमरा समय के अनुसार बदलता रहता है. . . . यार मुंह मत खोलो—सुनो, सूरज की पहली किरण के साथ यह कमरा अलसाया हुआ करवट बदलता है, फिर भरपूर अंगड़ाई ले कर ड्रेसिंग रूम बन जाता है, फिर डाइनिंग रूम और नौ बजते-बजते ड्राइंग रूम, समझे. सूरज के उगत और मुंह छुपाते

यह खेल फिर से शुरू हो जाता है–– अरे सुन गीता, काफी बना, अभी नया-नया बच्चू इलाहाबाद से आया है न, फाख्ता उड़ती दीख रही है. . . . अरे इस इकलौती बालकनी और कमरे के पूरे २०० रु. देने पड़ते हैं. समझे, राजकुमार, अब भी हम छोड़ दें तो फौरन ही ३०० रु. पर उठ जायें.

रात को जब वह लेटा तो उसके मन-मस्तिष्क दोनों में जाले-से बुन गये थे. सब कुछ धुंधला और उलझा हुआ दिख रहा था. प्रातः सब्जी की तीखी छौंक से वह छींकता हुआ जाग पड़ा, केवल ५ बजे थे पर कमरे में एक तूफान मचा-सा लग रहा था कि मकान की कुर्की आ गयी है कि २ मिनट में खाली करो. गीता बिस्तर लपेट कर दीवान के अंदर रख रही थी, चाचाजी ब्रश कर रहे थे. ७ बजे गीता को बस पकड़नी थी, चाची के हाथ आटा गूंथने में लगे थे. यदि चाचा को देर हो गयी और आठ की बस छूट गयी तो उन्हें क्यू में पीछे लग के दफ्तर तक डंडा पकड़े मौत और जिंदगी के बीच झूलते हुए जाना पड़ेगा. चाचाजी को जीते जी यह नर्क की आग में जलना पसंद न था. मजे तो केवल दीक्षित के थे, चार मील पर दफ्तर, सुबह-शाम आराम से साइकिल पर आता-जाता था.

• छाया : मुखर्जी

सुबह कब होती, धूप कब निकलती, उसे पता न चलता.. आकाश का एक छोटा-सा टुकड़ा नजर आता. एक दिन गर्दन टेढ़ी करके उसने बड़े परिश्रम से आकाश की नीलाहट को देखा. देखना भी तो कितना कठिन है, चारों ओर तो एक-सी ऊंची इमारतें हैं. वह भी इतनी सटी हुई कि रमेश को सदा लगता कि वह एक दूसरे के कान में फुसफुसा कर जाने कौन-सी कहानी कह कर, दुख बांटना चाहती हैं.

आज उसे १५ दिन हो गये आये हुए, आरंभ में वह कितना प्रभावित था इस यंत्रचालित रूपी जीवन से पर अब धीरे-धीरे यही जीवन प्रभावहीन-सा, महिमा को खोता हुआ लगता है. लगता है यदि पर्दा हटा नहीं कि संघर्ष का समुद्र ठाठें मारता हुआ नजर आ जायेगा. वह सिहर उठता.

सुबह की सरपटाहट से वह समझौता भी नहीं कर पाया था कि बंबई से दीक्षित के बहन-बहनोई आ गये, सब मस्त. कहकहे बिखर रहे थे, किसी को बेचैनी, परेशानी, उलझन नहीं थी. पर उसे, उसे तो केवल सुई की टिक-टिक की तरह यह प्रश्न चोटें मार रहा था, आखिर यह सोयेंगे कहां?

कमरा चादरों में बंट कर दो हो गया. बंटवारे के बाद सब गहरी नींद में डूब गये. वह पसीने में लथपथ एक करवट से दीवाल की ओर मुख किये पड़ा रहा. उसे याद आया, उसकी घर की दीवालें प्लास्टररहित कितनी घायल-सी लगती हैं पर उनमें कितनी विशालता है. यह बेदाग डिस्टेंपर की हुई गुलाबी हंसती दीवारें कितनी तंग हैं. इनकी बांहों के कसाव में उसकी एक-एक पसली चटक जायेगी. . .तीन दिन तक नाजुक चादर की दीवार के पीछे गहरी सांसें, चूड़ियों की आवाज, कपड़े की सरसराहट ने उसकी आंखों की नींद छीन ली, उसे आश्चर्य के साथ बेचैनी लगती. आखिर यह लोग सो कैसे लेते हैं और पर्दे के उस पार वाले कितने साहसी हैं!

सुबह होते-होते उसकी आंख लगती तो उसे स्वप्न दिखता कि वह किसी ट्रेन के पीछे भाग रहा है या भटक गया है या फिर किसी समुद्र में डूब रहा है और बचाव के लिए पुकार नहीं पा रहा है या फिर दलदल में फंस छटपटा रहा है. दम घुटने से उसकी आंखें खुल जातीं, गले में कांटे से चुभने लगते. अपने पेट पर से दीक्षित की भारी टांगे हटा कर वह गहरी सांस खींचता.

उसे स्थानीय स्कूल में जगह मिल गयी और दौड़ने, भागने के बाद एक बोसीदा-सा गैराज भी रहने को मिल गया था. अलग रहने वाली बात उसने सबसे छुपाई थी क्योंकि उसे मालूम था कि जिस दिन वह बात मुंह से निकालेगा, चाचा-चाची बुरा मानेंगे. दीक्षित क्रोध से उबल पड़ेगा. हो सकता है, हाथ भी जड़ दे. गीता तो उसे जरूर ही हठ कर रोकेगी, आखिर उसे नोट्स बनाने में मदद भी चाहिये न!

बड़ी हिम्मत करके उसने शाम को यह बात कह डाली. फिर माथे पर छलक आये पसीने को शीघ्रता से रूमाल से पोंछा, पर यह क्या? लगा सब कुछ हिल रहा है, डगमगा रहा है. शायद उसे चक्कर आ गया है––

भाग्यवान हो बेटा, इतनी जल्दी दिल्ली में कौन सर छुपाने की जगह पा लेता है, फिर खूबीराम का ढाबा भी दस कदम पर है, सौ-सवा सौ में पका-पकाया खाना भी मिल जायगा.

--रमेश भाई साहब, आते रहियेगा, वरना वह नोट्स. . .गीता की आंखों में विनतीभरा अनुरोध था.

--यार रमेश, तू इतनी जल्दी सैटिल हो जायेगा. मुझे विश्वास नहीं होता, खैर, बधाई हो, दीक्षित ने जोर का धप जांघ पर लगाया.

* *

परसों रात को छः बजे का शो देख कर लौटते हुए बस में बड़ी भीड़ थी, फिर भी इंसानों की एक बाढ़ उस नन्हे-से द्वार से अंदर घुसने को तड़प उठी थी. एक बुढ़िया को चढ़ाने की प्रतीक्षा में वह रुका था पर दीक्षित बस में जाने कब चढ़ गया. अभी बुढ़िया ने पांवदान पर पैर रखा ही था कि बस झटके से चल पड़ी और जीवन भर कठिनाइयों से लड़ती-झगड़ती बुढ़िया औंधी पड़ी थी.

रमेश घबरा गया--माताजी चोट तो नहीं लगी?

--नहीं बेटा, पर यह बस कंडक्टर अपने को कप्तान से क्या काम समझते हैं, उसने कराह कर कहा. तब ही पास से गुजरते स्कूटर को उसने रोका--धौला कुंआ, बुढ़िया का घर वहीं था.

--उधर नहीं, सेक्टर तीन चलना हो तो बोलो.

इस तरह से कई स्कूटर आये और चले गये. सबकी मंजिलें विभिन्न दिशाओं को जाती थीं जो सवारियों की दिशाओं से तालमेल नहीं खाती थीं. अंतिम स्कूटर वाले से रमेश की झड़प हो गयी--आखिर शराफत भी है कोई चीज कि नहीं. तब ही एक टैक्सी रुकी--साब चलिये, क्यों गर्म हो रहे हैं, मुझे उधर ही जाना है.

--साब है! दो अक्षर पढ़ लिये तो दिमाग फिर गया है, साला, शराफत सिखाता है! कानून की. . .

बाकी शब्द स्कूटर की घड़घड़ाहट में दब गये पर जो सुना उससे लगा कि वह भरे बाजार में नंगा कर दिया गया हो. वह मुट्ठी भींचता, दांत पीसता, बुढ़िया को वहीं फुटपाथ पर बिठा अपनी असमर्थता की बेड़ियों को खड़खड़ाता जख्मी पैरों से आगे बढ़ गया--लो, श्रवणकुमार चल दिये!

इस ताने से वह बिखर गया. जितनी तेज हो सकता था, वह चलने लगा, जाने किन अनजाने से रास्तों पर निकल गया. खून की गर्मी जब कम हुई तो अपने आप ही रफ्तार सुस्त पड़ी, दर्द से पिंडलियां ऐंठ रही थीं. पर सड़क के अकेलेपन ने उसे सहलाया, दुलारा, उसे सहारा दिया. उसे लगा, उसका बिखरा व्यक्तित्व फिर से जुड़ रहा है. आत्मबल उसके खोखले पड़े शरीर में बूंद-बूंद कर जमा हो रहा है.

सोने से पहले उसने बाबूजी का पत्र दोबारा पढ़ा, कम्मो दिल्ली आकर पढ़ना चाहती है. उसने आवेश में आकर पत्र की चिंदी-चिंदी कर डाली. उसे मुट्ठी में भींचे रहा, फिर जाने क्यों खिड़की के बाहर उन्हें उन्मुक्त हवा में छोड़ दिया. 'दिल्ली, दिल्ली, छेनी-हथौड़ की चोट के साथ दिमाग में गहरी धंस गयी. आखिर दिल्ली में है क्या? हर कोई दिल्ली-बंबई जाना चाहता है.

कल दीक्षित आफिस आ गया--भाई रमेश, शाम को बोतलें खुल रही हैं.

--किस खुशी में?

--अपना गुरु, मोहन है न, सुपरिटेंडेंट हो गया है.

--कैसे? कब?

--कैसे क्या? यार यह है जादुई डंडा, उसने प्याली पर चमचा बजाया, जीवट का आदमी है, दो साल कस के चमचागिरी की और अब क्रीम स्वयं पैरों पर बह रही है. अच्छा, चलता हूं, आना अवश्य.

रमेश को उसका हंसता चेहरा बड़ा अपरिचित-सा लगा. कहीं अनजानी-सी हूक, गुमनाम-सा दुख, अजनबी-से द्वेष की भावना ने उसके हृदय को थपथपाया. इस थपथपाहट के हल्केपन के बावजूद पक्के फोड़े की तरह उसका मन तड़पन से भर उठा-- आखिर हर ओर भागदौड़, नोच-खसोट, किसलिए? किस उद्देश्य के लिए? आखिर इसका अंत कहां होगा? उसे अपने इतिहास के अध्यापक याद आये. 'बेटे, कहां पराये शहर में नौकरी करोगे, इतना अच्छा परीक्षाफल है. यहीं अपने स्कूल में रहो.' यह सुन कर वह झुंझला गया था. उहं कोरी भावनाएं! यह हमारे बुजर्ग भी सदा रिश्तों को महत्व देते हैं, संवेदनाओं के गुलाम हैं. मुझे कुछ बनना है. मैं क्यों इस सड़े खूंटे से बंधा रहूं? फिर वह किसी बिगड़ैल, अविचल, बैल की तरह खूंटे से बलपूर्वक रस्सा तुड़ा कर दिल्ली भाग आया था.

हफ्तों बाद दीक्षित दिखा भी तो किसी लड़की के साथ. शाम को वह शिकवा भरे लहजे में बोला--मैं चाय तो पीऊंगा नहीं. मैं बहुत नाराज हूं, भाभी यूं पसंद कर ली और बताया भी नहीं.

--तुम रहोगे वहीं, जहां से चले हो. वह तुम्हें मेरी पत्नी जैसी दिखती है? अरे यार, वह मोहन की बहन है, उसे सिफारिश चाहिए और मुझे. . . .रमेश आवाक्-सा रह गया.

उसका मन किया, वह लौट जाये, पर क्यों लौट जाये? क्या वह संघर्ष से हार गया? हारना कैसा और जीतना कैसा? रास्ते में उसे दो कुत्ते लड़ते मिले, एक हड्डी के लिए लड़ रहे थे. अरे यह हड्डी तो उस काले कुत्ते की टांग है जो सुबह तेज कार के नीचे आ कर कुचल गया था. कुछ रुका, थमा नहीं था. सब पूर्ववत-सा चलता रहा था, इंसान के मरने पर तो कोई रुकता. थमता नहीं, फिर यह तो जानवर. . . वह भी कुत्ता.

कम्मो का पत्र मिला. . . . भैया अब की राखी में जरूर आना, आते समय इंपोर्टेड नायलान की साड़ी भी, अब मैं खूब लंबी हो गयी हूं. मैं बहाना नहीं सुनूंगी. सब कहते हैं कि दिल्ली में छोटे बाजारों में बाहर की चीज खूब मिल जाती है. वह सांस खींचता है.

शाम को घर लौटने से पहले प्रिंसिपल का बुलावा आता है--रमेश, सुनील खुराना का रिजल्ट कैसा रहा?

--सर, एक सब्जेक्ट में भी पास नहीं है.

—ठीक, उसकी रिपोर्ट फिर से बना परमिट कर दो.

—जी, क्या कह रहे हैं? वह कुर्सी से उछल गया.

—हूं, मैं ठीक कह रहा हूं. तुमको पता नहीं, खुराना साहब इस शहर के गिनेचुने बिजनेसमैन हैं.

दो मिनट खामोशी रही——फिर बच्चों के लिए जो नयी इमारत बन रही है, वह खुराना साहब की ही देन है, हमें यह नहीं भूलना चाहिए.

—यस सर, वह पिटा-पिटाया-सा लौट आया.

दिन यूं गुजरते चले गये, दिन क्यों साल गुजर गये. शुरू में मन करता था कि पुराने कालेज लौट जाये और उन्हीं अध्यापकों के चरणों की धूल माथे पर लगा शेष जीवन शिक्षादान में लगा दे. पर जाने वहां भी क्या हो, यह आशंका उसे रोक लेती. अब तो कुछ दिनों से उसे जिद सवार हो गयी, वह क्यों लौट जाये? क्यों, हार जाये? उसे समझौता नहीं करना है.

रोज रात को उसका मामूल हो गया था कि वह सूनी जख्मी सड़कों पर चले जिन्हें दिन भर लोग पैरों तले दबाते हैं. निस्तब्धता, बंद खिड़कियां, फीकी रोशनी, पेड़ों की आड़ी-तिरछी गहरी काली छाया उसमें आत्मबल का संचार करतीं. कभी-कभी डर लगने लगता है कि कहीं वह घटते-घटते एक मामूली-सा कीड़ा न बन जाये और कोई उसको कुचल कर न रख दे.

कई दिनों से काम की अधिकता से रात्रि जागरण के कारण स्कूल देर से पहुंचता. आज फिर वही हुआ. प्रिंसिपल के सामने रोज-रोज की पेशी—— वह आगे बढ़ा, धक्का-मुक्की जाने किसको उसकी कोहनी लगी, कुछ ज्ञात नहीं, बस पर चढ़ कर पूरे बोझ से किसी बच्चे का पैर दबाया.

इलाहाबाद स्वयं तो जा न सका पर अपनी इच्छा के विरुद्ध केवल बहन का मन रखने की लिए उसने इंपोर्टेड नायलोन की दो साड़ियां खरीद ली. पिता का पत्र आया है. कम्मो के विवाह को ले कर उसे बुलाया है.

कल जाने क्यों, बैठे-बैठे फिल्म का मूड आ गया. वह भी सेकेंड शो में. पर दिल्ली में दिल चाहने से तो सब कुछ नहीं हो जाता है न? 'हाउस फुल' देख खिन्नता से बाहर आ कर खड़ा हो गया, तब ही किसी ने कहा——सुनिये, आपको टिकट चाहिए तो मेरे पास है.

—नेकी भी पूछ-पूछ? रमेश हंस दिया.

—मेरे दोस्त की अचानक तबीयत खराब हो गयी. मैं तो सोच कर आया था कि दोनों टिकट लौटा दूंगा पर आपका साथ भी बुरा न रहेगा, वह हल्के-से मुस्कराया. उसके व्यक्तित्व में आकर्षण के साथ एक तरह का सादापन था. जरा-सी बात ने उनको बहुत करीब ला दिया. फिल्म के बाद काफी देर तक 'क्वालिटी' में बैठे बातें करते रहे. संयोग की बात है कि वह उसके होने वाले बहनोई का मित्र निकला और कानपुर से आये हुए उसे तीन वर्ष हो गये हैं और स्वयं नरेश को छह साल. इस बीच वह केवल एक बार इलाहाबाद गया है. वह भी कम्मो की सगाई पर. उसके विपरीत प्रकाश तीन बार कानपुर हो आया है, इस बार छुट्टियों में वह पूरे घर वालों को दिल्ली ही ले आयेगा.

शाम को लौटते समय भीड़ क्या बढ़ती है, लगता है, भीड़ का समुद्र है जो हिलोरें ले रहा है. सुपर बाजार के सामने, मिनी बस, ग्रीनलाईंस की लाइनें लगी थीं. टिकट जल्दी-जल्दी कंडक्टर दे रहा था, तब ही एक चीख उभरी—— साले ने मार डाला! टिकट की लाइन भीड़ की शकल में जमा हो गयी. मिनी बस के पहिए के बीच किसी युवक की कुचली लाश पड़ी थी. खून फैल गया था और उस खून में डबल रोटी के ताजे टुकड़े तैर रहे थे——अरे यह तो कृषि भवन में काम करता है!

——पकड़ो साले को!

——अंधे हो कर चलाते हैं!

वह भी आगे बढ़ा, बिजली कौंधी. तीन मास पहले सिनेमा के सामने क्वालिटी का सब दृश्य सामने आ गये. उसके बाद फिर कभी मुलाकात ही न हुई और आज तीन मास बाद यूं. . . .वह आगे बढ़ा, तब ही कंडक्टर की सीटी गूंजी. 'चलो-चलो', शोर मचाती, गाली बकती भीड़ यंत्रचालित-सी सीटों पर जमने लगी. वह जड़ित-सा वहीं खड़ा रहा. एक ने उसके कान में फुसफुसा कर कहा—— वह आपका जान-पहचान का था क्या? उससे उत्तर न देते बना. केवल सूनी आंखों से उसने उस प्रश्न पूछने वाले की ओर देखा.

——मेरी मानिए तो फूट लीजिये, ड्राइवर-पुलिस जानें, बेकार में आप फंसियेगा. वह चौंका. अब भी उसके मस्तिष्क में विराम चिह्न जलबुझ रहा था.

——चलो भइया, पुलिस आती होगी, वरना बेगुनाह हम भी फसेंगे कि बयान दो. वह चौंका, नीली मिनी बस, काली सड़क, लाल खून, सफेद डबल रोटी के टुकड़े, गोश्त का बेजान पुतला. वह चौंक पड़ा. कानपुर में इसका कुटुंब? वह भाग कर चलती बस पर चढ़ गया. नहीं, नहीं, उसे नहीं रुकना चाहिए. १५ दिन बाद ही तो कम्मो का विवाह है. उसे भी तो छुट्टी चाहिए. वह धप से सीट पर बैठ गया. कहीं से आवाज उभरी :

—तुम बचाव की सोच रहे हो न?

——नहीं, बगावत की.

—एकदम, वरना भागे क्यों? तुम पत्थर नहीं हो?

——नहीं-नहीं, कभी नहीं. मैं पत्थर नहीं बल्कि भावनाओं व संवेदनाओं से बना इंसान हूं.

——झूठ, तुम केवल एक बुत हो.

—नहीं, मैं इंसान हूं. इंसान की भी इंसानियत की एक सीमा होती है, मजबूरी होती है

——हठ छोड़ दो. अरे मान जाओ कि तुम इस बुतखाने के केवल बुतमात्र हो.

——नहीं-नहीं मैं तमाशबीन नहीं हूं. मैं बुत नहीं हूं, आखरी दम तोड़ती कोशिश उसने की.

——बहस छोड़ो, तुम केवल एक बुत हो, वह भी इस बुतखाने का. और उसका सर एक ओर लुढ़क गया.

□ □ □

द्वारा डा. आर. सी. शर्मा,
स्कूल आफ इंटरनेशनल स्टडीज,
न्यू मेहरौली रोड, नयी दिल्ली.

इम्तहान

• अजित

घर के सामने खेत की मेड़ पार करते सर्दी से ठिठुरे नंगे पांव में बड़े जोर की ठेस लगी. वह बुरी तरह लड़खड़ा गया. अचानक इस तीखे दर्द के लिए वह तैयार नहीं था. कुछ देर लगा कि पूरा बांया पैर एकदम सुन्न हो गया है. आह-ऊंह के साथ मुंह से निकली सिसकियां उसकी अपनी नहीं लग रही थीं. दिमाग में एक साथ कई खयाल, शकुन-अपशकुन उभर आए. थोड़ी देर बाद लंगड़ाते हुए वह धीरे से आगे बढ़ा. एक बड़े जोर की खीझ उसे एक साथ घरवाली, शिवालेवाले पंडित और शिवलिंग पर जल चढ़ाती गांव के उन ऊंचे घरों की औरतों पर आयी जो दोपहर में रोज लड़ती-झगड़ती या शिकायत-चुगली करती, शाम को अक्सर अपने-अपने मर्दों को कुछ देर भारी तनावों में खड़ी कर देती हैं. आज इन्हीं की वजह से उसे आधे घंटे तक इस कड़ाके की ठंठक में सुबह नंगे बदन लोटा लिये शिवाले के दरवाजे पर खड़ा रहना पड़ा गया. वह तो चाह रहा था कि घर के सामने वाले बरगद के नीचे ही जल चढ़ा दे, पर सुबास की मां माने तब तो! गांव के इस बड़े शिवाले में जल चढ़ाने से जाने कौन-सा बड़ा पुण्य हो जाएगा. वह पंडित ऐसे घूर रहा था जैसे कह रहा है, अरे, तू कब से बगला भगत बन बैठा रे! जल चढ़ाकर लौटती वे औरतें ऐसे चुभते हुए ताकते हुए गुजर रही थीं जैसे उसके सामने की हवा भी उन पर पड़ गयी तो फौरन सैकड़ों गाय मारने का पाप सिर चढ़ जाएगा. नहा-धोकर जल चढ़ाने के फिजूल बखेड़े में न पड़ कर वह तो सुबास के साथ ही निकल जाना चाहता था. मगर ससुरी इस घरवाली की कल रात ही से यही रट लगी रही कि बिना नहाए-धोए बेटे का 'रिजल्ट' सुनने कैसे चल दोगे?

घर से निकलते यही तो शुरू-शुरू मिला फल. बाछी के लिए कुट्टी काटना था और इसी तरह कई छोटे-बड़े काम करने को रह गए, जिसे यह औरत भला काहे को याद रखेगी! वैसे उसका स्कूल जाना भी फिजूल ही लग रहा था. बहुत से गार्जियन आज के दिन लड़कों के साथ जाया करते हैं, तो उनके पास उनके लिए वक्त होता है. अपने पास तो दम मारने की भी फुर्सत नहीं. तिस पर भी आज इस महंगी में खाने को लाले पड़ रहे हैं. लड़के को पढ़ाना-लिखाना क्या खाक होगा! अब आज स्कूल से घर लौटते-लौटते आधे दिन से ऊपर चढ़ जाएगा. तब दीपा साहू भला अपने खेत में आलू-कोड़ाई के लिए काम लगाने पर क्यों तैयार होगा?

अचानक वह रुक गया. पलट कर पीछे देखने लगा. अब, वह बड़ी दूर निकल आया है वरना पत्नी से चल कर कह देता कि लड़की को लेकर तब तक वहीं दीपा के खेत में काम शुरू कर देती, फिर दोपहर तक वह भी आ जाता. हड़बड़ी में कहना भूल गया और अब तो सामने वाले बगीचे को पार करते सिर्फ एक ही मील रह जाएगा, लड़के का स्कूल. कोई इधर-उधर अपने पड़ोस का लड़का भी नहीं दीख रहा है कि यह खबर घर भिजवा दे. आगे-आगे दो तीन लड़के जो दीख रहे हैं, वे ऊंचे घरों के हैं, जिनसे कुछ कहना-सुनना भी बेकार है. शायद सामने इस तुलसीराम के बगीचे में कोई लड़का मिल जाए, यह सोच कर वह तेजी से मेड़ पार करता बगीचे में आया, मगर यहां भी कोई नहीं दीखा. बगीचे में एक किनारे मचान लगाए, तुलसीराम दो तीन गांव के दोस्त मुहिम के साथ गांजे का दम लगा रहा था. बगीचे से सटे उसके कई खेत पड़ते थे. पूरब वाले खेत में लगे ईख के अगोरिया में इधर महीने भर से बगीचा गुलजार किये बैठा रहता है. बिना रुके ही वहां से निकल जाना चाहा, पर तुलसी के बगल में बैठे बंसी ने उसे देख लिया. उसने तुलसी को भी दिखा दिया और तुरत तुलसी उसे पुकार बैठा. यह सुनकर कि वह बेटे का रिजल्ट सुनने दरियापुर जा रहा है, तुलसी ठठाकर हंस पड़ा. एक साथ ढेर सारा धुआं मुंह-नाक से छोड़ते उसी में डूबे-डूबे बोला—हर दयालराम! यह रिजल्ट लड़के का होगा. उसे सुनने लड़का गया होगा. इसमें तुम्हारा क्या काम?

——नहीं भाई, जरा आज के दिन खुद भी चले जाने से शायद मास्टर लोग ध्यान. . .

——मास्टर लोग क्या ध्यान देंगे? अपने से आज किसी को फुर्सत है जो कोई दूसरों पर और वह भी तुम्हारे जैसों पर ध्यान देगा. बताओ तो जरा हमें कि अभी तक तुम्हारे सुबसवा पर मास्टर लोग किस किस्म का कितना ध्यान दिया है? उसे कौन-सी सुविधा मिली है? . . . थोड़ी देर रुक कर तुलसी हरदयाल को ताकता रहा. फिर जरा आगे की तरफ झुका, हरिजन-फंड से हरिजन बच्चों के लिए जो सरकारी अनुदान आते हैं, क्या उसमें से कभी तुम्हारे लड़के को कुछ मिला है? केवल स्कूल में फीस नहीं भरते या स्कूल से मिला भी है कभी कुछ?

हरदयाल चुप खड़ा मुंह ताकता रहा. तुलसी तब तक दम मारने लगा.

——आओ काका, दो मिनट बैठ लो. हम भी चलेंगे. अपने छोटका का रिजल्ट सुनने. मचान पर एक तरफ थोड़ी जगह बंसी ने छोड़ी. अभी-अभी तुलसी 'का' पांडेपुर वाले स्कूल का एक किस्सा सुना रहे थे. . .

हरदयाल को याद आया कि कुछ साल पहले तुलसी पांडेपुर वाले स्कूल में चपरासी और जाने क्या-क्या, बहुत कुछ था. स्कूल की बहुत-सी बातें यह जानता होगा. काफी दिनों तक वहां रहा. थोड़ी तुनकमिजाजी में सुना था एक दिन हेड मास्टर से लड़-झगड़ कर हट गया. हरदयाल बैठ गया. पूछा—क्या किस्सा है भइया, तुलसी भगत?

——कुछ नहीं, . . . चिलम बगल में बैठे हीरा को

बढ़ाते उसने अपनी छोटी-सी मूंछ सहलाई, वही हर जगह का दांवपेंच, पक्षपात, बेईमानी और दूसरा क्या?

—कैसा पक्षपात, कैसी बेईमानी? हरदयाल जैसे कुछ समझ नहीं सका.

—तुम्हें क्या मालूम , आंख मूंदे पैदा हुए और आंख मूंदे मर जाना, तुलसी थोड़ी झुंझलाहट में खिलखिलाया, अरे स्कूलों में तो वह सब चलता है जो शायद कहीं भी नहीं चलता. मास्टर लोग गुरू कहलाते हैं न. कोई कैसे जानेगा उन्हें ! अब तू ही देखो, तू क्या जानता कि दरियापुर वाला स्कूल तेरे-मेरे लड़कों को पढ़ाने लिए खुला है? दरियापर वाले हेडमास्टर कल तक पांडेपुर वाले स्कूल में मास्टर रहे और आज वहां छोड़-कर एकदम बगल के गांव में दूसरे स्कूल को खोलने की क्या जरूरत पड़ गयी? क्या पांडेपुर वाले स्कूल में अगल-बगल चारों तरफ के गांवों के लड़कों के लिए कमी हो गयी थी? नहीं समझा तू अब भी इस जातिवाद को. . अरे भई, बिलकुल साफ तो है कि पांडेपुर वाला स्कूल अगर बांमनों का हुआ तो दरियापुर में ठाकुरों के लिए भी एक स्कूल खुलना चाहिए न! तब भला आज इसमें तेरे-मेरे लड़के की पढ़ाई-लिखाई पर कौन ध्यान देने जा रहा है? दूसरी यह बिलकुल साफ बात है और समय इतना गंदा हो गया है कि पहले की तरह बच्चों में पढ़ाई - लिखाई करनेवाले अब मास्टर रहे हीं कहां? तू जाकर अपने उस मित्र की दुम हरिहरवा से क्यों नहीं कहता जो यहीं का होकर भी ऐसी कोई व्यवस्था तुम लोगों के लिए क्यों नहीं कभी सोचता? सोचेगा कैसे? सोचना तो दूर रहा. राजधानी से जब कभी आना भी होता है तो यहां न आकर दरियापुर में ठाकुर के यहां ही ठहर लेता है. ठीक ही है. यहां क्या धरा है! यहां तुम्हारे-हमारे पास कौन-सा सलीका-तरीका है जो उसे ठहरा लें. ठाकुर की मदद से वह इत्ती दूर पहुंचा है कि हमने उसे क्या दिया जो हमारी बात पर सोचेगा? वह तो कभी-कभी थोड़ी-सी इसलिए सुन-सोच लेता है क्योंकि बदकिस्मती से हमारी-तुम्हारी जाति का है.

● ब्रह्मदेव

हीरा के बढ़ाने पर तुलसी दम मारने के लिए चिलम पर चिथड़ा ठीक करने लगा. हरदयाल को उसकी बातें घाव पर छनछनाते मलहम-सी लग रही थीं. वह जानता है कि तुलसी कितना सही आदमी है, केवल मुंह के फुहड़पन को छोड़ कर हालांकि उसे कभी इतनी भी फुर्सत नहीं मिली कि किसी बात पर कभी कुछ गौर से सोच सके. बस इसी तरह तुलसी या दो-एक उसी तरह के पड़ोसियों की देखादेखी वह अब तक सब कुछ करता आया. बंसी एकाएक उठ खड़ा हुआ. हीरा चिलम को उलट कर बांस की फट्टी पर झाड़ने लगा.

—अब चलो काका रिजल्ट सुनने, उसने हरदयाल की कुछ अंगुलियां पकड़ कर खींचीं, तुलसी 'का' की बातों में शाम तक उठने का नाम न ले सकोगे.

तुलसी भी एक दम उठ खड़ा हुआ—हां, भई, जाओ सुन आओ रिजल्ट, तब तक मैं देखूं कि ये क्या सुनाने आ गए, ईख. . .से सटे अपने दूसरे खेत में इशारा करता वह लाठी लेकर दौड़ पड़ा. हरदयाल ने देखा, गेहूं की नन्ही बालों पर एक सांड मुंह मारने लगा था. हीरा के साथ बंसी हंस रहा था. हरदयाल आगे बढ़ गया. हरिहर सचमुच अब इस गांव में एकदम नहीं आता. कुछ वर्ष पहले पांडेपुर वाले मिसिरजी के साथ ठाकुर किरपाल सिंह का 'पनवट' को लेकर जो झगड़ा चला था, उसमें ठाकुर साहब की हरिहर ने खूब मदद की थी. उसी साल तो दरियापुरवाला यह स्कूल भी नया खुला था. लेकिन यह तुलसी 'हरिजन-फंड' के बारे में क्या कह रहा था?

उसने बंसी की ओर देखा. वह ईख चूसते हुए कुछ अलग सोचता चल रहा था.

—अच्छा बंसी, मैं तो अनपढ़ ठहरा. कभी-कभी तुम लोगों की कोई बात मैं एकदम नहीं समझ पाता. यह तुलसी क्या कह रहा था हरिजन-फंड के घोटाले के बारे में . . . .

लेकिन बंसी अभी कुछ समझाने के मूड में नहीं था.

—अरे छोड़ो काका, यह सब तुम्हारी समझ में नहीं आएगी. तुलसी 'का' की बातें उन्हीं से समझना. मैं तो खुद अपने छोटका को लेकर परेशान हूं. बाबू से कई मर्तबा कहा कि बेकार आटा गिला रहे हो. छोटका को कोई काम पर डाला जाय. पढ़ाई-लिखाई इसकी आज के स्कूल और मास्टरों से हो चुकी. मगर मेरी कोई सुने तब तो. यहां तो दिहात-गंवई में इन मास्टर लोगों का कुछ चल भी रहा है लेकिन शहर में तो लड़के अब इन्हें कुछ बूझते ही नहीं. हमेशा आग लगी, हड़ताल और अपनी तरह-तरह की मांगों से स्कूल-कालेज कंपाए हुए हैं. ऐसे में भला क्या सीखने के लिए बच्चों को स्कूल में दोगे? अच्छा छोड़ो, यह तो बताओ कि सुबसवा पास-वास करेगा? मेरा छोटका तो लगता है फेल कर दिया जाएगा. . .

—फेल कर दिया जाएगा. हरदयाल की भौंहे तन

गयीं. क्या मतलब ?

—मतलब भी समझाऊं, बंसी ने कुछ आवाज दबाई, मतलब यही समझ लो कि वहां एक मास्टर है, धर्मराजजी. वे ट्यूशन पढ़ाते हैं. छोटका से बोल रहे थे कि इस साल उनसे पढ़ा नहीं इसीलिए पास करने की उम्मीद कम है. बताओ भला, जरा इसका मतलब? स्कूल में बच्चे आखिर क्यों जाते हैं? फीस क्यों देते हैं? अब जिनके पास स्कूल फीस के अलावे ट्यूशन के पैसे होंगे, उन्हीं के बच्चे पास-वास करेंगे या पढ़ सकेंगे. यह तो शहरवाले अस्पताल जैसी हालत हो गयी.

* *

स्कूल नजदीक आ गया. कुछ लड़के दौड़-दौड़ कर स्कूल के अहाते की एक तरफ टूटी दीवार फांद कर भीतर जा रहे थे. बंसी के साथ हरदयाल गेट की ओर से होकर अहाते में घुसा. भीतर भीड़ थी, हर ओर लड़के और गार्जियन बिखरे हुए थे. जिनके लड़के इस स्कूल में नहीं थे, वे भी अपने कुछ मित्रों की वजह से आए हुए थे. इस तरह कई गांवों के लोग थे, जिनमें लगभग सभी को हरदयाल जानता था. सलाम-वंदगी हुई. कुछ मास्टर स्कूल के बरामदे में और कुछ बाहर लान में कुर्सियां डाले धूप सेंक रहे थे. कुछ मास्टर लोग इधर-उधर गार्जियनों से बातें करते टहल करते रहे थे. लेकिन सुबास कहीं नजर नहीं आया. बंसी के पूछने पर एक शिक्षक कुछ रूखा होकर कहने लगा कि उसका छोटका उसकी जेब में तो नहीं हो सकता, इन्हीं लड़कों के बीच उन्हें ढूंढ़ा जा सकता है. तभी सेदवा के मास्टर श्री भगवान सिंह ने मक्खी उड़ाने जैसी आवाज लगायी—लो हरदयाल! तुम्हारा सुबास तो नेता बन गया है. संघ के कार्यालय में हेड मास्टर साहब की चिट्ठी पहुंचाने शहर गया है.

हरदयाल ने हाथ जोड़ कर दांत निकाल दिये. मगर बंसी उसे दूसरी ओर खीच ले गया —काका मैं खूब पहचानता हूं इन लोगों की बोली. हेड मास्टर संघ का कुछ मंत्री-वंत्री भी है. स्कूल में चपरासी तो बस एक ही है और काम ढेर सारा. तुम्हें क्या मालूम कि ये कैसे-कैसे काम लड़कों से करवाते हैं!

हरदयाल ने इस बार जल्दी से बंसी का हाथ दबाते अलग खींचा—चुप भी रह भइया, सुबास कह रहा था कि पार साल यही चिट्ठी वाला काम एक ठाकुर का लड़का करता था इसीलिए उसे फेल होते हुए भी कुछ नंबर बढ़ाकर पास कर दिया गया.

फिर सोचने लगा, लेकिन आज तो सुबास अच्छी तरह जल्दीबाजी में कुछ खा-पीकर भी नहीं चला है. शहर दो-तीन मील पड़ता है. लौटते-लौटते उसका मुंह सूखकर चोंचा हो जाएगा.

तभी दरियापुर के नामी रईस बाबू झब्बनसिंह हाथी पर अपने साथ कुछ लोगों को लिये हेड मास्टर साहब के कक्ष के बंद दरवाजे पर आ खड़े हुए. झब्बनसिंह से लोग दूर-दूर तक कांपा करते हैं. चपरासी जो बंद दरवाजे के पास भी किसी को खड़े नहीं होने दे रहा उनके लिए भीतर जाने का दरवाजा झट से खोल दिया. भीतर हेड मास्टर अपने सहयोगियों के साथ मिलक तय करते हुए ऊंचे-ऊंचे वर्गों के परीक्षा-फल तैयार कर रहे थे और चपरासी को हिदायत थी कि दरवाजे के पास भी किसी को फटकने नहीं देना है.

—-आओ काका, हम हेड मास्टर साहब के इस कमरे के पीछे वाली खिड़की की तरफ चलें, बंसी हरदयाल को घसीटे लिये जा रहा था, उस खिड़की की तरफ से हम छिप कर भीतर की बात तो कम-से-कम सुन ही सकते हैं.

हरदयाल को यह ठीक नहीं लग रहा था. कहीं उसमें से हेड मास्टर खुद झांक कर हरदयाल को देख लें तो. लेकिन जब सामने से घूम कर पीछे इस खिड़की के निकट हरदयाल ने दो-चार और लोगों को छिप कर कान लगाए खड़े पाया तो बंसी की खींच में उसने ढील दे दी. नजदीक जा कर भीतर की आवाजें एक दम साफ-साफ उसने सुनीं. कभी-कभी कई लोग आपस में कुछ इस तरह से बातें करने लगते कि बाहर शोर में मिलजुल कर एकदम गडमड हो जाती. पर कभी-कभी दो-एक आदमी जब बोलते और तमाम लोग चुप रहा करते तो कुछ पल्ले पड़ता. झब्बनसिंह की आवाज भारी और कड़कती-सी थी. बीच-बीच में हेड मास्टर की धीमी-सी आवाज भी सुनाई पड़ती. वह किसी बात पर समझा कर शायद झबनसिंह को राजी करना चाहता था. एक और आवाज जो बार-बार बीच में सुनाई पड़ती, हरदयाल को लगा जैसे बी. डी. ओ. साहब की है. झब्बनसिंह ने इस बात को कई बार दुहराया कि एक लड़के को किसी भी कीमत पर पास कर देना पड़ेगा. वरना वह नदी में डूबने चल देगा.

—डूब भी मरो तो अच्छा रहेगा, बंसी ने धीरे से कहा, इन ऊंचे लोगों ने नाज-नखरे भी बड़े गजब के होते हैं काका...

—अच्छा हटो अब जल्दी से, हरदयाल बंसी को खींच कर जिधर से आया था, उसी तरफ लौटने लगा. मगर बंसी अपना बकना जारी रखे रहा, काका, कान खोल के सुन लो, हमारे-तुम्हारे लड़के पढ़ने और पास करने के लिए नहीं पैदा हुए हैं क्योंकि हमें ये नाज-नखरे नहीं आते और अगर आएंगे भी तो कोई इन्हें बर्दाश्त नहीं करेगा.

* *

हेड मास्टर के गेट पर आ कर हरदयाल ने देखा झब्बनसिंह, हेड मास्टर और बी. डी. ओ. साहब एक ही पत्ते पर से पान और चूना वगैरह उठा रहे हैं. हरदयाल को याद आया कि बी. डी. ओ. साहब उसी की जाति के हैं. तीनों पान मुंह में डाल कर सींक से चूना एक ही पत्ते से उठा रहे थे. झब्बनसिंह का चेहरा कुछ इस तरह खिला हुआ था जैसे खून के केस में बेलाग डिग्री हुई हो.

सबको प्रसन्न पाकर हरदयाल आगे बढ़ा और बरामदे पर चढ़ गया—सरकार, हमारे सुबसवा का क्या हुआ?

हेड मास्टर ने कुछ पहले तो अनसुनी जैसा रवैया दिखाया पर हरदयाल के दुबारा पूछने पर उसकी कनपटी की नसें तन गयीं और लाल आंख किये उसने उसे घूर कर देखा. फिर जाने क्यों झटपट तिरछी नजर फिरायी—देखिए भाई, ये क्या कह रहे हैं?... फिर बी. डी. ओ. के साथ बाहरी गेट की तरफ बढ़ गया. कुछ लोग उसके पीछे-पीछे लपके. हड़बड़ाए, से एक शिक्षक ने हरदयाल को धूप में बैठे शिक्षकों की तरफ इशारा किया और यह कहते हुए हेड मास्टर के पीछे दौड़ गया—तुम्हारे लड़के का 'रिजल्ट' हो गया. वहां ओझाजी बैठे हैं, उन्हीं से पूछो.

हरदयाल ओझाजी की तरफ बढ़ा. बंसी शायद हेड मास्टर साहब के पीछे वाली भीड़ में आगे निकल चुका था. एकाएक हरदयाल को मुख्य गेट से आता हुआ सुबास दिखलाई पड़ा. उसके हाथ बंसी का छोटका भी था. हरदयाल उसी की तरफ मुड़ा लेकिन जल्दीबाजी में मेंहदी की बाड़ के साथ लिपटे कांटेदार तारों से उसकी धोती बुरी तरह उलझ कर 'चर्र' से फट गयी.

—कहां चला गया था रे, हरदयाल ने सुबास की कलाई पकड़ ली, इतना हांफ क्यों रहा है? चल, उधर ओझाजी तुम्हारा 'रिजल्ट' बताएंगे.

ओझाजी हाथ पर खैनी मल रहे थे. उनके बगल में अपने गांव के मास्टर नरेशलाल कुछ इस तरह मुंह फेरे बैठे थे जैसे हरदयाल कुछ कर्ज मांगने आ पहुंचा हो. ओझाजी सुबास को देखते ही आंखों में उदासी भरे हुए होंठ बिदोरकर सिर हिलाने लगे.

—क्या, सरकार, यह फेल हो गया है? हरदयाल को डंक मारने जैसा झटका लगा.

—हां जी, गलत काहे कहूंगा, ओझाजी ने खैनी ठोककर मुंह में फक्की जैसी झोंक मारी. फिर रजिस्टर के पास रखे एक पुलिंदे पर झुके—लो खुद ही देखो.

—अब क्या होगा सरकार? हरदयाल एकदम कातर हो गया.

—मैं क्या कहूं, अब तो कुछ भी नहीं होने का, ओझाजी अब कुछ झुंझलाए, अब फाइनल 'रिजल्ट' सुना दिया गया. तभी किसी वर्ग से लड़कों की तालियां और 'जय हिंद' के नारे सुनाई पड़े. वहीं पर एक मास्टर के साथ हंसते हुए बंसी भी दीखा. उसे देख कर छोटका उसकी तरफ दौड़ा. इसी बीच हेड मास्टर अपने सहयोगियों के साथ उस वर्ग से निकला और सबको वहीं छोड़ कर अकेला बाहर खड़ी बी. डी. ओ. की जीप की तरफ बढ़ चला. इधर मास्टर नरेशलाल अपने सामने वाले एक नए मास्टर से अंग्रेजी में जाने क्या-क्या बतियाने लगे. उनकी आवाज में तीखापन था और हरदयाल को लगा जैसे कहीं-न कहीं से उनकी बातों का विषय वही तो नहीं है, क्योंकि जो दूसरे मास्टर थे, वे कभी कभी बीच-बीच में उसे और सुबास को देख लेते थे. तभी नरेश लाल के बगल में बैठे हेड पंडितजी ने सुंघनी का डिब्बा निकाला और सुबास की तरफ चुटकी लेने की अंदाज में ताका—कहां चले गए थे कि अब आ रहे हो 'रिजल्ट' सुनने, कहीं ताड़ी-भंग पी रहे थे क्या?

—ना सरकार, हरदयाल ने तेजी से हाथ जोड़े, यह सब बुरी आदत इसमें नहीं. संघ में हेड मास्टर साहब की चिट्ठी पहुंचाने चला गया था. काफी रात-रात तक पढ़ा करता था. कैसे फेल हो गया हजूर?

—सब यही कहते हैं, पंडितजी छींकने लगे.

—नहीं माई-बाप, जो सौंगंध कहिए खा लूं जो झूठ कहूं, हरदयाल ने उनके घुटने छूने झुकना चाहा, पर तुरत रुक कर हाथ जोड़ लिये. पंडितजी का स्पर्श हरिजनों के लिए कैसे हो सकता है? उसी तरह खड़े-खड़े कहने लगा, सरकार, संघ में चिट्ठी पहुंचाने का काम भी इस साल यही करता था. सुना था कि इस काम को करनेवाले लड़के पर विशेष ध्यान दिया जाता है.

इस बार ओझाजी बिगड़ पड़े.—वाह, अच्छी कही तुमने! एक यही चिट्ठी पहुंचाने वाला है कि सैकड़ों लड़के हैं. हेड मास्टर साहब के सामने यह कहोगे तो अच्छी सुन लोगे. यह काम इस पर लादा थोड़े गया होगा. वैसे अगर तुम्हें तसल्ली नहीं हो रही है तो जरा देर और ठहर लो. शायद हेड मास्टर साहब लौट कर आवें.

हरदयाल ठहर गया. बरामदे में एक खंबे से सटकर सुबास के साथ जा बैठा. कुछ गार्जियन अपने बच्चों को लेकर उन शिक्षक लोगों के पास आते रहे, जाते रहे. कुछ लोग पास होने की खुशी में मिठाइयों का दोना भी लाते रहे. चपरासी या खुद वे लड़के ही दौड़-दौड़ कर गिलास भर-भर कर पानी लाते रहे. हरदयाल सुबास को यह सब देखते हुए देखता रहा और भीतर-भीतर लगातार कुछ-न कुछ टूटते हुए संभालता रहा. धीरे-धीरे सब खत्म होने लगा. भीड़ गायब हो गयी. मास्टर लोग चल दिये. धूप ढलने लगी.

कुछ देर बाद कुर्सी-टेबल भीतर बंद कर और सभी कमरों के ताले खींच-खींच कर देख लेने के बाद चपरासी हरदयाल के पास आ खड़ा हुआ. इस तरह वह दो-तीन बार पहले भी खड़ा हो चुका था. पर इस बार उसके चेहरे पर व्यंग्य नहीं था—अरे अब उठो, जाओ भइया, शाम डूबने को आयी. अब का आवेंगे हेड मास्टर साहब! बड़े दिन की छुट्टी बीतने के बाद ही अब उनसे भेंट हो सकेगी. घर पर भी अब उनसे भेंट न हो सकेगी. हां, शहर पहुंच कर संघ में चाहो तो उनसे मिलने जा सकते हो...

हरदयाल उठ खड़ा हुआ. पैर झनझना रहे थे. सुबास के चेहरे पर नजर डालते और झनझनाने लगे. उसका खून जैसे एकदम सूख गया हो.

—चल बेटा, घर चलें, डबडबायी आंखों को बेटे से छिपाते हरदयाल ने उसे सहारा देने के लिए हाथ बढ़ाया.

□□□

तरी महल्ला, आरा (बिहार)

कितना सुख

• प्रेमचंद सहजवाला

देवेन की आंख खुली तो कुछ देर यूं ही बस्तर पर लेटा रहा. रात भर काफी पानी बरसता रहा. बीच में बारिश की आवाज के कारण कई बार उसकी नींद खुली. लेकिन इस समय बारिश बहुत कम, लगभग नगण्य है.

बिस्तर से उठ कर वह बाहर आया और गुसलखाने में लोटा उठा कर आंखों पर पानी के छींटें मारते हुए उसने सोचा, आज सबसे पहले स्टेशन जा कर दफ्तर के स्टोर का वह पार्सल छुड़वाना है जिसकी कल बिल्टी आयी थी. वह रोज इसी प्रकार आंखों पर छींटें मारते समय ही सोच लेता है कि आज दफ्तर का क्या-क्या काम करना है.

कमरे में पहुंच कर उसने आंखें पोंछीं और कुर्सी पर बैठ कर, मेज पर रखी सिगरेट की डिब्बी से एक सिगरेट निकाल कर सुलगाई. साथ के कमरे में चपरासी केशव की पत्नी शायद नाश्ता बना रही थी. उसने सोचा, अभी केशव को बुला कर सख्त-सी आवाज में आदेश दे दे कि जल्दी से जल्दी तैयार हो जाए लेकिन उसे लगा केशव नहीं चलेगा. रात सोने से पहले उसने केशव से सुबह रेलवे स्टेशन चल कर पार्सल छुड़वाने की बात कही तो केशव उसकी बात सुनी-अनसुनी कर के बोला था--देखूंगा जी, बारिश न हुई तो चल्या चलूंगा.

कोने में स्टोव पर चाय बनाते समय उसे एक क्षण के लिए अनायास स्वयं पर खीझ हो आयी कि वह जाने क्यों, लोगों के साथ जरूरत से ज्यादा नर्मी से पेश आता है. उसने कई बार सोचा है कि केशव के खिलाफ रिपोर्ट लिख कर भेज दे कि वह गैरकानूनी तौर पर दफ्तर के दो कमरों में अपनी बीवी और तीन बच्चों समेत रह रहा है. लेकिन उसे लगा है —शायद वह ऐसा नहीं कर पाएगा. अपनी नौकरी के दौरान यह बात उसने बड़ी गहराई से अनुभव की है कि जहां-जहां वह अपने आचरण में एक सही व्यक्ति रहा है या उसने कहीं गलत हो रहे कुछ के खिलाफ कदम उठाया है, वहां-वहां वह नितांत अकेला पड़ गया है. पर गलती के साथ स्वयं भी समझौता करना उसने कभी गवारा नहीं किया. अलबत्ता गलत लोगों के प्रति एक तटस्थता या उपेक्षाभरी विरक्ति का नजरिया उसे अधिक सम्मानजनक लगा है.

नहा-धो कर तैयार होने के बाद दफ्तर के मुख्य कमरे में आ कर उसने उपस्थिति-रजिस्टर में हस्ताक्षर किये. जिस कंपाउंड में उसने चालीस रुपए किराए पर कमरा ले रखा है, उसी में चार कमरे दफ्तर के भी हैं, जिनमें से दो केशव ने घेर रखे हैं. इस शहर में उसके ट्रांसफर से काफी पहले से ही केशव यहां रहता था. इस छोटे से दफ्तर में मात्र दो कर्मचारी हैं. वह, मुख्य अधिकारी, केशव चपरासी.

हस्ताक्षर कर के वह अपने कमरे में आ गया. केशव की पत्नी अपने कमरे में चारपाई पर बैठी ही-ही कर के हंस रही थी और तहमद-बनियान पहने खड़ा केशव अपने आठ महीने के मुन्ने को कंधे पर बिठाए नचा रहा था. उसने सोचा इस समय अगर वह केशव को बुला कर स्टेशन चलने को कहे तो केशव चौंक कर पूछेगा, इस बारिश में ? ऐसे कि जैसे वह पागल हो. और अंदर ब्लाउज-पेटीकोट पहन कर बैठी उसकी बीवी ही-ही कर के हंस पड़ेगी.

--मैं तो कैत्ता ऊं जी, आप भी जाओ मत. अब आप वां पौंचें और बारिश पड़े जबर्दस्त . . . अभी कुछ दिन पैल्लैई तो आप की तबियत ठीक हुई है . . . दो दिन बाद चल्ये चलेंगे जी. दफ्तर का पार्सल है, कौन भाग्या जाा हो ऐ. केशव मुन्ने को कंधे पर उठाए, उसके बुलाए बिना ही कमरे में आ टपका था और अब उसे 'सलाह' दे रहा था, मैं तो कैत्ता ऊं जी आप भी जाओ मत . . .

--नहीं, उसने बड़ी सख्त-सी आवाज में कहा और उठ खड़ा हुआ. कम से कम अपने लिए वह एक जिद्दी आदमी है. बेहद. बारिश लगभग नगण्य थी जिसमें आदमी चाहे तो बिना छाते ही दूर-दूर तक जा सकता है.

स्टेशन पर पार्सल रूम के दरवाजे उढ़के हुए थे और बाहर नीली वर्दी में बैठे दो-तीन आदमी बीड़ी फूंकते गप्पें हांक रहे थे. उन्होंने उसे बताया कि पार्सल वाला बाबू अभी आया नहीं. शायद आधे घंटे से पहले न आए. वहां से लौट कर दो प्लेटफार्मों वाले इस छोटे-से स्टेशन पर आधे प्लेटफार्म को ढंक पाने वाली छत के नीचे आ खड़ा हुआ. प्लेटफार्म पर बहुत भीड़ थी और एक अजीब कोलाहल-सा मचा हुआ था. यहां से दिल्ली और पानीपत जाने वाली गाड़ियों के मुसाफिर जैसे बौखलाए हुए जोर-जोर से बातें कर रहे थे. कई लोग उचक-उचक कर कंट्रोल रूम के बाहर लगे श्यामपट्ट पर लिखी सूचना बार-बार पढ़ रहे थे---दिल्ली से आनेवाली और दिल्ली की तरफ जाने वाली सभी गाड़ियां अनिश्चित काल तक स्थगित. लोगों की बातों से पता चला कि आगे बहुत पानी बरस जाने के कारण कोई पुल टट गया है. वह सिगरेट के कश खींचता सामने मुंडी के ऊपर के आसमान को देख रहा था. इस समय बारिश नहीं थी, लेकिन आसमान में काले-घने बादलों की तहें दर तहें बड़े भयावह ढंग से एक दूसरे पर जम-सी रही थीं. चिलचिलाती धूप और दोजख जैसी गर्मी से जब दो महीने होश उड़े रहे तो इसी बारिश की प्रतीक्षा में जैसे आंखें पथरा गयी थीं. पहले दिन आसमान में मंडराते बादल और ठंडी हवा देख मन मोर की तरह नाच उठा था. पर अब जोंक की तरह चिपक जानेवाली इस बारिश ने अजीब बेजार-सा माहौल पैदा कर दिया है. चार दिन से लगातार पानी बरस रहा है. कुछ गाड़ियां कल भी कैंसिल हुई थीं. आज सब कैंसिल

वह मुड़ कर फिर पार्सल रूम की तरफ गया. बाबू अभी आया नहीं था.

इस बीच वह स्टेशन से एकाध फर्लांग दूर चुंगी दफ्तर से भी निपट आया. चुंगी दफ्तर से इस बात का प्रमाणपत्र लाना था कि पार्सल सरकारी है इसलिए चुंगी माफ हो. वहां एक 'कॉम्प्लीकेशन' यह आ गया कि एकदम नया चुंगी बाबू उसके दफ्तर के नाम से सर्वथा अपरिचित था और उसे पता नहीं लग रहा था कि इस दफ्तर के पार्सल की चुंगी माफ हो सकती है कि नहीं. बाबू काम करने के मूड में नहीं था शायद. वह कुछ देर सोफे पर बैठा रहा. मैला सफेद कमीज पहने बाबू मेज पर टांगें फैलाए मजे में केवेंडर्स सिगरेट फूंक रहा था और दो आदमियों से गप्पें हांक रहा था. उसके दो-तीन बार याद दिलाने पर उसने सरसरी निगाह बिल्टी पर डाली और हरियाणवी अंदाज में कहा—जे चुंगी माफ नहीं होग्गी जी.

उसके समझाने पर वह हर बार कहता—सो-तो ठीक ऐ जी पर जे चुंगी माफ नहीं होग्गी.

उसे बड़ी झुंझलाहट हुई. उसने बड़ी सख्त-सी आवाज में कहा—तो फिर इस एप्लीकेशन पर लिख दो कि माफ नहीं होगी?

बाबू नर्म पड़ गया—तो बैठो जी फिर. अभी सुपरिटेंडेंट साहब के दफ्तर जा कर गजेट में देखणा पड़ेगा कि आपके दफ्तर का नाम चुंगी माफ लिस्ट में है कि नहीं.

वह सोफे पर बैठ गया. चुंगी सुपरिटेंडेंट का दफ्तर वहां से कुछ दूर नगरपालिका भवन में है. बाबू जाने के मूड में नहीं था. कुछ देर बैठा रहा और अब फिर कहने लगा—आप कल आ जाणा जी, मैं देख के रखूंगा.

उसने सोफे से उठ कर मेज पर एक मुक्का मार कर बाबू को सीधा खड़ा कर दिया—यह मुझे अभी चाहिए, उसे लगा पूरे के पूरे शहर को अकर्मण्यता ने अपाहिज कर दिया है.

पार्सल रूम के पिछवाड़े वाला दरवाजा स्टेशन की बाहरी सड़क की तरफ खुलता है. सामने छोटा-सा चौराहा है और दुकानों के पीछे कई एक-मंजिला, दो-मंजिला मकान भी. इसी दरवाजे के बाहर एक तंग-सी छत के नीचे वह खड़ा है. अपना अभी-अभी छुड़वाया हुआ पार्सल पास रखे हुए, और सामने बारिश है. बारिश भी कोई ऐसी-वैसी नहीं, मूसलाधार शब्द शायद इस बारिश को अभिव्यक्ति दे पाने में अक्षम हो. आंखें बंद करने पर आवाज से उफनते समुद्र में आए ज्वार का आभास हो, ऐसी बारिश. सड़क की सतह पर पानी और हवा की मिली-जुली क्रुद्ध लहरें क्रुद्ध सर्पिणियों-सी फुंफकारती एक जगह से दूसरी जगह जा रही हैं. लगता है, बारिश बाढ़ की तरह चौराहे के इस टुकड़े को ही अपनी जगह से हिला कर कहीं बहा ले जाना चाहती है. दूर-दूर तक दुकानों मकानों की छतें उफनते पानी से रिस रही हैं . . .

. . . और वह सिगरेट के कश खींचता इस बारिश को देख रहा है. जैसे देख नहीं रहा, इस सारी परिस्थिति को तौल रहा है . . .

● जी. एल. अग्रवाल

उसे अनायास अपने कालेज के दिन याद आ गए और अगले क्षण उसने अपने शरीर में एक अजीब थ्रिल-सा महसूस किया. ऐसी ही मूसलाधार बारिश थी और प्रोफेसर कंवर का पीरियड सुबह साढ़े सात बजे था. कालेज उसके घर से चार-पांच किलोमीटर दूर था. मां के मना करने के बावजूद वह एक हाथ में छाता और दूसरे हाथ में साइकल का हैंडल थामे कालेज के लिए निकल पड़ता. ऐसी बारिश में प्रोफेसर कंवर की कक्षा में केवल दो विद्यार्थी पहुंचते थे. एक वह स्वयं, एक जितेंद्र कौर जो उसके पड़ोस में ही कहीं रहती थी. पूरे कालेज की कक्षाओं में केवल सन्नाटा होता क्योंकि ऐसी बारिश में प्रोफेसर भी क्यों आएं. लेकिन प्रोफेसर कंवर आते थे. कभी उसे देर हो जाती तो जितेंद्र प्रोफेसर कंवर से कहता, कुछ देर वेट कर लें, सर, देवेन आता ही होगा. कभी जितेंद्र न आयी होती तो वह कहता जितेंद्र अभी आ जाएगी, सर. प्रोफेसर कंवर कहते, दरअसल अगर हम क्लास में तुम जैसे दो-एक विद्यार्थी न होते तो मैं कब का यह प्रोफेसरी छोड़ चुका होता. तुम दोनों ही तो मेरी साधना का संबल हो.

★ ★

वह दस पंद्रह मिनट इसी प्रकार खड़ा रहा. उसे ध्यान आया, अभी दफ्तर में भी काफी काम है. सामने चौराहे के एक किनारे पंद्रह-बीस रिक्शे खड़े भीग रहे थे. रिक्शे वाले लगभग सभी वहां से गायब, शायद किसी चाय की दुकान में जा छिपे थे. वह सोचने लगा, इस वक्त कौन रिक्शे वाला यह चालीस किलो का बक्सा ले जाने को तैयार होगा? वह भी देवनगर! अच्छे-खासे दिनों में भी कभी कोई रिक्शेवाला स्टेशन से देवनगर जाने को बड़ी मुश्किल से तैयार होता है.

स्थानीय कालेज की पिछली लंबी दीवार के बाहर ऊबड़-खाबड़ से रास्ते पर कई छोटे-बड़े खड्डे हैं और पत्थर. फिर दफ्तर की ओर जाने वाली लंबी गली ढेरों मिट्टी और गारे से भरी रहती है. बारिश में यही मिट्टी आटे-सी गुंथ-गुंथ कर लबालब कीचड़ बन जाती है. दफ्तर वाले मकान की दीवार के समानांतर पानी का तालाब भी बन गया है. यह हिस्सा पार करने के लिए गेट से निकलते ही दीवार की तरफ मुंह कर के, उससे लिपट-लिपट कर धीरे-धीरे चल कर जाना पड़ता है. कौन जाएगा ऐसी जगह, इस बारिश में ?

तभी उस की नजर एक रिक्शे पर पड़ी. केवल कच्छा और आधे खुले बटनों वाली फटी कमीज पहने एक रिक्शे वाला बाहर रिक्शे की सीट पर ही बैठा था और बड़ी मस्ती में पैडल उल्टा घुमा रहा था. बारिश का उस पर कोई असर ही नहीं. कैसे मजे से सीट पर ही उछलकूद रहा है! उसे लगा किसी न किसी स्तर पर उसमें और इस रिक्शेवाले में कुछ साम्य है जरूर.

इधर बायीं तरफ उसी तर छत के नीचे चारपाई पर पार्सल रूप के ही दो-चार कुली छोकरे बैठे थे. उसने एक से पूछा---यह रिक्शे वाला चलेगा. इस वक्त?

---चलेगा सा'व चलेगा. . .बनवारी ईई ई. . . छोकरे ने दो-चार तालियां बजा कर रिक्शेवाले को आवाज दी.

बनवारी पैदल ही रिक्शा बड़ी तेजी से दौड़ाता सामने आ खड़ा हुआ---हां जी सा'ब, किधर चलना है? उसने बड़ा हिचक कर बताया-देव नगर .

---चलेंगे सा'ब क्यों नईं चलेंगे ?

* *

रिक्शे की बंद छतरी के अंदर बैठे उसके सामने की तरफ दाएं-बाएं दो छोटे-छोटे पर्दे लटका कर बनवारी ने उसे पूरी तरह से ढंक दिया. उसके सीट पर बैठने से पहले उसने रिक्शे की सीट उखाड़ कर अंदर से एक कपड़ा निकाला और सारी सीट पोंछ दी. लेकिन पोंछने के बाद भी सीट गीली रही. अंदर फर्श पर रखे पांच-छः पुराने पिचके हुए टायरों के ऊपर पार्सल का बक्सा ऊंचाई के बल टेढ़ा-सा रखा था. चलना शुरू करने से पहले बनवारी, अभी आया सा'ब' कह कर दौड़ता गया और किसी साथी से दो जगह फटा एक पुराना छाता ले आया. वह छाता बनवारी ने किसी प्रकार अपने कंधे के सहारे टिका दिया. रिक्शा धीरे-धीरे डगमगाता हुआ चलना शुरू हुआ. तूफान में थपेड़े खाती नाव की तरह. बारिश की घमासान आवाज से रिक्शे की छत बज रही थी. वही समुद्र में आए ज्वार जैसा शोर.

उसने अंदर एक सिगरेट सुलगा ली और पीने लगा. हवा के कारण पर्दे किसी-किसी क्षण बाहर की तरफ उड़ जाते. स्वयं को पानी से बचाने की पूरी कोशिशों के बावजूद वह कहीं-कहीं से भीग रहा था. पैंट के घुटनों पर काफी पानी गिरा और गर्दन पर पानी की एक मोटी-सी धार पता नहीं कहां से निरंतर टपक रही थी. वह सिगरेट का एक कश खींच कर अनायास मुसकरा दिया. जैसे यह सारी परिस्थिति अगर झेली जा सकती है, तो केवल मुसकरा कर.

उसे किसी किसी क्षण बाहर की थोड़ी-बहुत झलक मिलती. वैसे उसे अधिकांश केवल बनवारी की रिक्शा खींचती टांगें नजर आ रही थीं. पैडल के साथ ऊपर-नीचे होती टांगें, जैसे वे लोहे की बनी हों और रिक्शे का ही एक अंग हों. शुरू करते समय बनवारी ने यूं ही पूछा था– बक्से का वजन कितना है सा'ब?

---चालीस किलो .

---बअअअअस!

वह हंस दिया था---पर पूरे साठ किलो मेरा भी है, भाई.

* *

रिक्शा रेलवे फाटक से कुछ दूरी पर था. बनवारी उतर कर पैदल ही रिक्शे को चढ़ाई पर खींचने लगा, अड़े हुए बैल को रस्सी से घसीट कर अपने साथ ले जाने की तरह. उसने देखा. बनवारी ऊपर से नीचे बुरी तरह भीग रहा है. जगह-जगह पानी की धारें उसके शरीर पर रेंग रही हैं उसने यूं ही बनवारी से पूछा---ऐसे इतना भीग कर बीमार नहीं पड़ जाते?

बनवारी हांफ-हांफ कर रिक्शा खींचता हुआ बोला---बीमारी-सी मारी तो. . .आत्ती रैत्ती रोजी. . . पर. . .

वह दिल्ली जब अपने घर था. तब भी ऐसी ही लापरवाही और जिद के कारण कभी-कभी बीमार पड़ जाता. खास कर ऐसी बारिशों में या कड़ाके की ठंड में. मां बहुत चिंतित रहती. बुखार के दिनों में रात नौ बजे ही दूध पिला कर, रजाई उढ़ा कर जबर्दस्ती सुला देती. लेकिन आधी रात उसकी आंख खुलती तो देखती, बत्ती जली हुई है और वह रजाई से मुंह निकाले गोद में रखी पुस्तक पढ़ रहा है. मां करवट बदलते-बदलते कहती –तूं बड़ा जिद्दी एं देबू. कहीं किसे दी मन्या बी कर! फिर दूसरी तरफ मुंह कर के शांत हो जाती. वह केवल मुसकरा देता. और ऐसे में बुखार के बावजूद पढ़ते रहने के दौरान उसे एक अजीब-सी तृप्ति का एहसास होता, जैसे सोचता हो, कितना सुख मिलता है. विरोधी से विरोधी परिस्थितियों में भी अपनी साधना जारी रखे रहने में ! मां इस बीच एकाध करवट और बदलती. वह देखती वह शांतचित्त काफी देर पढ़ता रहेगा. इसी अंदाज में उसके दिवंगत पिता कभी सुबह-सुबह उठ कर गुरबाणी पढ़ते और उनके चेहरे पर भी ऐसी ही तृप्ति का भाव होता.

इस क्षण उसे अनायास एक बार फिर केशव का ध्यान हो आया. अभी कहीं पैरों से ऊपर तक पानी से भरी सड़कों, कालेज की पिछली दीवार के बाहर ऊबड़खाबड़ दुर्गम पथ और दफ्तर वाली कीचड़ भरी गली पार करता रिक्शा दफ्तर से कुछेक मकान

पहले जा कर रुकेगा, जैसे तूफान में थपेड़े खाती नाव किनारे आ लगी हो. रिक्शे से उतर कर बक्सा बनवारी के सिर पर रखवाते समय शायद सामने, दफ्तर के जिस कमरे में केशव रहता है, उसकी चौड़ी जालीदार खिड़की की जाली के पीछे से एक चेहरा चिपका नजर आएगा. यह केशव की बीवी का चेहरा होगा तो अब 'ही ही', 'ही-ही' कर के इधर ही देखने लगेगी. फिर केशव और उसके दोनों बच्चों के चेहरे भी जाली से चिपक जाएंगे. और फिर इस तमाशे से वंचित न रह जाने के लिए पीछे से एक चेहरा और आगे लाया जाएगा. . .केशव का आठ महीने का मुन्ना. इसी दफ्तर में जब केशव को यह मुन्ना हुआ था, तब केशव लड्डू बांट रहा था और वह केवल यही सोच रहा था कि केशव का परिवार बढ़ रहा है. . .दफ्तर के कमरे में बक्सा उतरवा कर बनवारी का छाता एक तरफ रख कर अभी वह हांफता हुआ खड़ा होगा कि केशव धड़धड़ाता हुआ कमरे में आएगा, अरे! आप भीग गए सारे? मैं तो कैता थाजी आप भी जाओ मत. दफ्तर आपको तनख्वाह के सिवाय दे देता है कुछ?

वह केशव की बकबक को अनसुना कर तौलिए से सिर पोंछने लगेगा. उपलब्धि के तौर पर उसके भीगे बदन में केवल पूर्ण संतुष्टि की एक ठंडी सिहरन ऊपर से नीचे तक दौड़ जाएगी. केशव बकता रहेगा—दफ्तर से कोई देखने आएगा जी कि आप इस बारिश में यह पार्सल ले आए? किसको पता लगेगा. . .वह कुछ न कह कर जैसे केशव पर ही तरस खा कर केवल मुसकरा भर देगा. कोई ऐसे समय उसकी कर्तव्यपरायणता का कभी साक्षी भी बने, यह कामना उसने कब की. . .?

रिक्शा इस समय रेल की पटरी के ठीक ऊपर था. छोटा-सा पर्दा हवा में फरफराता बाहर की तरफ उड़ा. उसने पर्दा पकड़ कर अंदर की तरफ कर दिया. बाहर की एक झलक मिली. ऊपर आकाश में काले भयावने बादलों का एक गिरोह बड़ी तेजी से कहीं जा रहा था. नीचे दूर तक जाती रेल की पटरियां थीं और रेलवे सिगनल, अपाहिज-से अपनी जगह खड़े भीग रहे थे. और सामने भीग रहे पेड़ों के झुरमुट के पीछे से कई मकानों को भेद कर काफी ऊंचाई तक जाता तार-दफ्तर का रडार इस समय पूर्णतः अपाहिज बन चुका था. यह माहौल साक्षी है तो केवल अपने अपाहिजत्व का. उसने पर्दा ठीक से लगा कर स्वयं को ढंक दिया. बनवारी रेलवे फाटक पार होने के बाद सीट पर बैठ चुका था और अब रिक्शा पैरों से काफी ऊपर तक के पानी वाली सड़क की चपेट में था. उसे अब फिर केवल बनवारी की टांगें नजर आ रही थीं. इस समय इस निष्काम निःस्वार्थ एक दुर्गम यात्रा में उसकी एक मात्र साक्षी ! एकमात्र संबल ! !

□□□

१५, एल मॉडेल टाउन,
सोनी पत, हरियाणा

लघुकथा

ब्राह्मण, चोर और राक्षस

एक गांव में एक ब्राह्मण रहता था जो दूसरों के दान पर जीवनयापन किया करता था.

किसी को उस पर दया हो गयी और उसने उसे दो बछड़े दिये. ब्राह्मण अब उनके लिए भी भिक्षा मांगने लगा और खिला-पिला कर उन्हें मोटा-ताजा बना दिया. एक चोर ने उन्हें देखा तो ललचा गया. रात को उसने रस्सी उठायी और बछड़ों की चोरी करने निकल पड़ा.

रास्ते में उसे एक अन्य व्यक्ति मिला जिसके पैने-पैने दांत तथा लंबी नाक थी. उसकी भुजाएं बलिष्ठ थीं किंतु गालों में गड्ढे पड़े हुए थे. शरीर अग्नि के समान पीला था. उस पर नजर पड़ते ही भय के मारे चोर पूछ बैठा—आप कौन हैं ?

उस व्यक्ति ने कहा—मैं राक्षस हूं. अब बताओ, तुम कौन हो ?

चोर बोला—मैं तो एक चोर हूं. मैं एक निर्धन ब्राह्मण के दो बछड़े चुराने जा रहा हूं.

राक्षस यह सुन कर आश्वस्त हुआ और उसने कहा—प्रिय मित्र, मैं तीन दिन में एक बार भोजन करता हूं. आज मेरे भोजन करने का दिन है, सो मैं ब्राह्मण को अपना आहार बनाऊंगा.

दोनों साथ-साथ चलने लगे और गंतव्य स्थान पर पहुंच कर छिप गये. ब्राह्मण के सोने के लिए जाते ही राक्षस उसे खाने के लिए आगे बढ़ा किंतु चोर ने उसे देख लिया और बोला—प्रिय मित्र, यह उचित नहीं. जब तक मैं बछड़ों की चोरी नहीं कर लेता, तब तक तुम ब्राह्मण का आहार नहीं कर सकते !

इस पर राक्षस बोला—बछड़ों की आवाज सुन कर ब्राह्मण जाग जायगा. तब मेरी मेहनत बेकार जायगी.

यह सुन कर चोर उबल पड़ा— यह तो बिलकुल उल्टी बात है ! तुम ब्राह्मण का आहार करने लगोगे तो मैं बछड़ों को नहीं चुरा पाऊंगा. पहले मुझे बछड़े चुरा लेने दो!

दोनों में वाद-विवाद होने लगा, प्रत्येक का कहना था—पहले मैं! पहले मैं!

हल्ला-गुल्ला सुन कर ब्राह्मण जाग गया.

चोर बोला—यह राक्षस तुम्हें खा जाना चाहता है !

राक्षस बोला—यह चोर तुम्हारे बछड़े चुरा ले जाना चाहता है!

यह सुन कर ब्राह्मण उठ खड़ा हुआ. मंत्रोच्चार करके उसने राक्षस से अपनी जान बचायी. उसके उपरांत उसने एक डंडा उठाया और चोर से बछड़ों की रक्षा करने में भी सफल हुआ.

('पंचतंत्र' से) □□□

किस्सा एक बीमा कंपनी की एजेंसी का

• संजीव

न जाने किस मनहूस घड़ी में मैंने पीयरलेस जनरल इंस्योरेंस कंपनी का एजेंट बनने का फैसला किया था. फैसला! —जी, शायद यह गुरु-गंभीर शब्द मेरे जैसे अतिसामान्य जन के मुख से धृष्टता लगे. फैसला करना और बदलना तो समाज की स्थापित और प्रतिष्ठित हस्तियां ही किया करती हैं. यूं कहूं, सनक सवार हुई. सच-सच कहूं, तो मुझ जैसे शिक्षित बेरोजगार युवक को बेकारी के रेगिस्तान में नौकरी की मरीचिका के पीछे काफी धूल फांकने के बाद रोजगार के नखलिस्तान का यह भूत सवार हुआ. दुर्भाग्य से फील्ड ऑफीसर मेरा दोस्त निकला. एक दिन जब उसने मेरे ज्ञान-चक्षु खोलते हुए अपने तर्क की कैंची से मेरी बेकारी-जनित आत्महीनता के झाड़-झंखाड़ को कतर-कतर कर जमीन पर लिटा दिया तो डिबेटिंग-कंपिटीसन में अपने फर्स्ट आते रहने का गरूर जाता रहा. उसकी बातें अभी भी दिमाग में टंकी पड़ी हैं—हर पढ़ा-लिखा युवक अगर नौकरी ढूंढ़ेगा, तो कहां से आयेंगी इतनी सारी नौकरियां! नौकरी की ऐसी जरूरत भी क्या है जब कि रोजगार की अन्य उन्नत संभावनाएं सामने पड़ी हों. युवकों का उसूल कुछ इस तरह होना चाहिए—ऐसा रोजगार जो स्वार्थ और परमार्थ दोनों का साधन हो; बल्कि दूसरों के भले में ही अपना भला देखना. लोगों को उनकी परेशानियों से और मनमाने खर्च से आगाह करो. बचत की जरूरत और अनिवार्यता बताओ, कनविंस करो और खुद उनके आशीर्वाद और कंपनी के विकास के साथ-साथ आर्थिक स्वावलंबन के पावदानों पर एक-एक कर चढ़ते चलो—एजेंट, फील्ड ऑफीसर, सब-आर्गनाइजर, आर्गनाइजर, इंस्पेक्टर. फिर स्कूटर, कार, बंगले, टेलीविजन और न जाने क्या-क्या!

अपनी टूटी खाट पर बैठे-बैठे मैं कहां-कहां उड़ चला था! उस दिन अपने को भारी लगनेवाला मैं कितना हल्का हो गया था!

हां, तो मैंने काम शुरू कर दिया. बाकायदा एजेंट बनकर, एक पोर्टफोलियो बैग में चंद पंफ्लैट्स, गाइड पुस्तिकाएं, फार्म इत्यादि भर कर दर-दर भटकने वाला मैं अब जनता का उद्धारक बन कर बिचरने लगा. लेकिन कुछ ही दिन में हौसले ढीले हो गये. बरसात में उगने वाले छत्रकों की तरह जिसे देखता, पीयरलेस का एजेंट ही नजर आता. एजेंटों की पलटन देखने पर मुझे भ्रम होता कि कहीं बीमा कराये व्यक्तियों से एजेंटों की संख्या ही अधिक तो नहीं है. साल भर में कम से कम बारह केस तो करने ही थे. दो माह गुजर गये. एक भी नहीं कर पाया. कैसे कर पाता? प्रायः एक ही दिन, एक ही व्यक्ति के पास मैंने दो-दो, तीन-तीन एजेंटों को धावा बोलते देखा था. बड़ा टफ कंपिटीसन था. तीर्थ स्थानों में पंडों और स्टेशनों पर कुलियों का एक ही व्यक्ति पर हक जतलाने और फिर तू-तू मैं-मैं के बाद की कोम्प्रोमाइज को यहां एक नया आयाम दिया गया था. दो महीनों तक निरर्थक टापते रहने के बाद एक दिन उदास और विरक्त होकर अपना बैग, कागज-पत्र अपने मित्र फील्ड ऑफीसर के सामने पटकने लगा तो उसने समझाते हुए कहा—तुम युवकों में धैर्य कब आयेगा? अरे भई, अभी तक कोई केस नहीं मिला तो क्या हुआ, तलाश करो. अब तक के प्रयास में कहीं न कहीं खोट जरूर है. भगवान के घर देर है, अंधेर नहीं. जिसने बिल्ली बनायी है, उसने चूहे भी बनाये हैं, जिसने तुम्हें एजेंट बनाया है, उसने तुम्हारा शिकार कहीं न कहीं जरूर बनाया होगा.

—लेकिन कमबख्त एक आदमी भी तो मिलना चाहिए था, मैं झुंझला कर बोला.

—तुमने अपने दोस्तों को एप्रोच किया?

—दोस्त! एक तो तू ही रहा.

—बाकी?

—बाकी! बाकी तेरे जैसे ही स्वयं मुड़वाने की बजाय दूसरों को मूड़ने में व्यस्त हैं.

—हूं! कह कर वह गंभीर दीखने का उपक्रम करने लगा. फिर कुछ सोचता हुआ बोला पड़ा, अच्छा पहले यह तो बता तेरे घरवाले किसी स्कीम में बीमा करा चुके हैं कि नहीं ?

—नहीं.

—अरे तब तो कहना ही क्या! वह ऐसे आवेश में चिल्ला उठा कि मैं सकते में आ गया. अपने भाई साहब, भाभी साहिबा और भतीजे के नाम पर एक-एक स्कीम खोल दो. वैसे यह एक बोगस पालीसी है लेकिन चैरीटी बिगिंस एट होम.

—सच ! मुझे तो अब तक सूझा ही नहीं था. मैं चहकने लगा और इन तीनों केसों को पकड़ने के बाद मैंने अपने 'अकारथ जनम' को पहली बार सार्थक महसूस किया.

इस सफलता से नया आत्मविश्वास लेकर मैंने काम शुरू किया. मैं रात में बैठ कर जिस क्षेत्र में जाना होता, उसके एप्रोच करने योग्य लोगों की सूची बनाता, उनको कनविंस करने के नये-नये तौर-तरीकों की खोज करता और दूसरे दिन चाय पीकर, चप्पल घसीटते हुए मैं जनसेवा के लिए निकल पड़ता . जो तंबाकू खाते, उनके लिए जेब में तंबाकू रखता, जो पान खाते, उनके लिए अच्छा-सा मसाला, जो जिस ढंग की सिगरेट पीते, उन्हें फंसाने के लिए उस दिन मेरी जेब में वह बंसी के कांटे की तरह पड़ी होती. मैं उस समय उनकी राजनीतिक पार्टी में रंगा होता, उनकी हॉबीज मेरे लिए प्रशंसा की वस्तु होतीं. उनके गम में अपनी खुशी खो बैठता और उनकी खुशी में अपने गम...... लेकिन जैसे ही उनसे निवृत्त होता, अपना मुखौटा उतार कर रख देता. अब मैं नया मुखौटा पहने हुए दूसरे किस्म का इंसान होता जो अपने नये ग्राहक के रंग में रंगा और ढंग में ढला होता. मुझे पहले तो लोग बड़े ध्यान से सुनते पर बात का असली मतलब सूंघते ही ऊंघने लगते या उन्हें जम्हाइयां आने लगतीं. धीरे-धीरे उनकी ऊबन और जम्हाइयों का सीजंड होता चला गया. मैंने अपना प्रचार कार्य अव्याहत रखा और चौथे महीने तक मैं सचमुच हौआ बन गया. मुझे देख कर मेरे दोस्त कन्नी काट जाते, परिचित गली में मुड़ जाते. हालत यहां तक आ गया कि अब खिड़कियां और दरवाजे तक बंद होने लगे.

अपनी आत्मा के विरुद्ध कितने ही काम मुझे करने पड़े, उनकी क्या गिनती करूं! एक का जिक्र काफी होगा. मुझे शास्त्रीय संगीत से चिढ़ है. मेरे अपने क्षेत्र के एक्सप्लोरेसन के बावजूद एक मालदार सज्जन बचे पड़े थे जो शास्त्रीय संगीत के प्रेमी थे. उनके इस विशिष्ट गुण की ही महिमा थी कि डर के मारे कोई एजेंट वहां नहीं जा सका था. उन्हें रिझाने के लिए ताल, लय और रागों को मुझे रटना पड़ा और उनके कंठ स्वर को भाड़े के या चाटुकार समालोचक की तरह अपने रागों के ज्ञान की कसौटी पर कस कर अद्वितीय बताना पड़ा. सारे दिन उनके आलाप के प्रलाप, टप्पे की ठोकर और ठुमरी पर ठुमकता रहा, उनके विलंब और द्रुत के आरोह-अवरोह में डूबते-उतराते सांस फूल गयी पर असली मतलब समझते ही उसने मुझे चाय तक से वंचित कर दिया.

ऐसी ही घटना एक लड़की के 'केस' पकड़ने के चक्कर में घटी जो सौभाग्य से नौकरी करती थी और अविवाहिता थी और दुर्भाग्य से असुंदर और मनहूस. मैंने हिंदी फिल्मों से सीखे कई फार्मूले अपनाये और न जाने कितने पापड़ बेल कर उसके रूखेपन में चिकनाहट पैदा की और उसके अंदर की विलुप्त नारी को आविर्भूत किया. मेरी संवेदना की आंच पाकर वह पिघल रही थी और पिघलने के बाद स्वभावतः मुझसे चिपक रही थी. मैंने क्रिटिकल वक्त समझ कर एक दिन उससे अपना हाले दिल बयां किया तो उसकी चिकनाहट सूखकर चिटक गयी और फिर तो इतना ही बताना काफी है कि 'बड़े बेआबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले' की आशिकी की उपलब्धि ही मुझ जैसे निराश आशिक के पल्ले रह गयी.

★ ★

जब मेरे फील्ड ऑफीसर को मेरी संघर्ष-कथा की चरम व्यथा मालूम हुई तो संवेदना का लेप लगाने लगे मेरे जले पर. मेरी बची-खुची झेंप मिटाकर मुझ में नया आत्मविश्वास भरने के लिए उन्होंने एक वार्षिक मीटिंग में मुझे आमंत्रित किया. एक प्रसिद्ध होटल में तरह-तरह के युवक इकट्ठे थे. वह जश्न था कि कुछ न पूछिये. पेग पर पेग शराब के उड़ रहे थे. लाख, दस लाख और करोड़ों की बातें उछल रही थीं. मैं पलक झपकाते हुए कभी इधर तो कभी उधर ताक

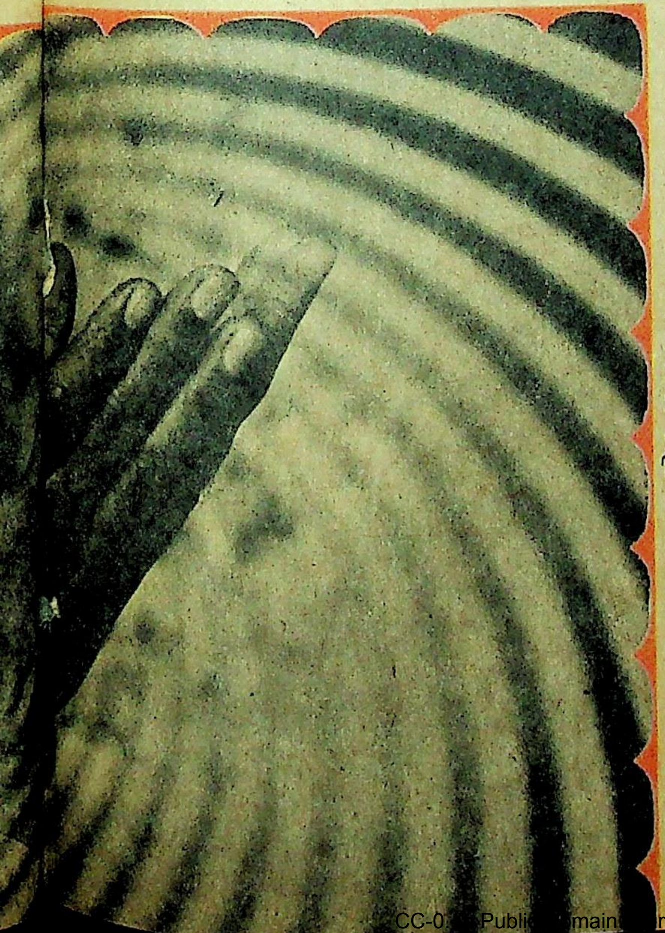

● रमेश शुक्ला

रहा था. जब प्रतिशत का ही सवाल है तो एक बार एजेंसी का पौधा लगा दो. पहले वर्ष की प्रीमियम के एक चौथाई अंश से भी अधिक को रिच हार्वेस्ट लो. फील्ड आफीसर तक पहुंचने पर स्वयं एजेंट बहाल करते हुए अपनी शाखा-प्रशाखा फैला दो, फिर उनसे मिलनेवाले फूलों-फलों में भी तुम्हारा शेयर होग.. और इसके बाद सब-आर्गनाइजर, आर्गनाइजर और इन्सपेक्टर तक पहुंचते न पहुंचते तो चांदी ही चांदी है. मुझे तो पीयरलेस की एजेंसी रक्तबीज से भी अधिक प्राणवान लगी. केवल बेरोजगार ही क्यों, कलाकारों और निठल्लुओं के लिए भी इससे उत्तम कोई बिजनेस नहीं है. दो-तीन वर्षों की मेहनत के बाद कला के जंगल (या दंगल) में निर्द्वंद्व घूमो, बाद-प्रवाद के प्रवर्त्तक या अपवर्तक बनने, गुट बनाने या छूट करने, अपनी दमित या सोयी भावनाएं जगाने, बहुत सारे लोगों की कृतियां देख-सुनकर कहीं से भी अपनी 'नायाब चीज' गढ़ने और उन्हें स्थापित करने का पर्याप्त अवसर मिल जाता है.

वहां से आने के बाद दुनिया मेरे लिए और खुल चुकी थी. यारों ने मुझे जो घुट्टी पिलायी, उससे मेरी मृत्यु की अवधारणाओं में क्रांति आये बिना न रही. मैं अब कनविन्स कर सकता था कि मौत तब तक मौत नहीं है जब तक डॉक्टर उसे सर्टिफिकेट न दे दे. अपने समाज की जाति-व्यवस्था की तरह ही मौत की भी श्रेणियां और उपश्रेणियां हैं. और सभी श्रेणियों की मौतों को बीमा कंपनी के मंदिर में प्रवेश का अधिकार नहीं है. कभी-कभी तो उस तथाकथित ईश्वर पर काफी गुस्सा आता है जिसने न जन्म लेना अपने वश में छोड़ा, न मनचाही मौत मरना. अब उसको कौन बताये कि जैसे-तैसे जन्म लेने पर (तथाकथित सामाजिक प्रतिष्ठित वंश में जन्म न लेने पर) भी सरकार विभिन्न प्रकार की सुविधाएं देकर उसे उबार लेती है लेकिन जैसी-तैसी मौत मरने पर यह बीमा कंपनी कोई रियायत नहीं करती.

मीटिंग में बड़ी-बड़ी हस्तियों ने यह बताया था कि संभावनाओं की अमित दिशाएं इस क्षेत्र में अभी भी हैं, उनका दोहन करना चाहिए. मैं अपने क्षेत्र की दुधारू गाय का लात खा चुका था अतः दोहन के लिए मैंने एक कोलियरी अंचल को चुना . इसी चक्कर में अपने बचपन के मित्र भोला से मुलाकात हो गयी. बातों ही बातों में उसने बताया कि वह अब ट्रेड यूनियन का लीडर हो गया है. उसने मेरी आफत सुनकर कहा––अरे भोला के रहते हुए तू काहे को मरा जा रहा है ? संयोगवश उस दिन पेमेंट का दिन था. उसने चुटकी बजा कर कहा––तेरी समस्या यूं हल किये दे रहा हूं. पान की डबल गिलौरियों को जबड़े में दबोच, एक चार मीनार सुलगा कर उसने पेमेंट लेकर जाते हुए मजदूरों को यूं बुलाना शुरू किया जैसे सूदखोर महाजन कर्जदारों को बुलाते हों. और फिर कहा––निकाल अपना फारम-वारम. एक-एक कर भरता चल.

मैंने आव देखा न ताव, अपना शिकार हड़पने लगा. कुल मिला कर बीस पालिसियां उसी दिन बन गयीं. क्वार्टरली प्रीमियम के मेरे पास इतने पैसे जमा हो गये कि मैं उत्साह में ठीक से गिन भी नहीं पा रहा था. तीन महीनों तक वह जनून सवार रहा कि मैं किसी भी भाग्यवान व्यक्ति से तुलना करना अपनी हेठी समझता था लेकिन तीसरे महीने जब दूसरे प्रीमियम के लिए कोई पैसा जमा कराने नहीं पहुंचा तो मेरा माथा ठनका . मैं जब उनसे मिला तो कोई ताड़ी-शराब में डूबा हुआ था, कोई महाजन द्वारा सारे पैसे छीन लिये जाने का रोना रो रहा था, किसी ने सारा पैसा अपने गांव के आश्रित परिवार को मनी आर्डर कर दिया था. मेरा बेड़ा भी गर्क किया. भोला से मिला तो उसने डांट कर कहा––पेमेंट के दिन ले लिया कर.

लेकिन मैं तो 'भोला' नहीं था अतः मुझसे न हो सका.

उन्हीं गर्दिश के दिनों में पीयरलेस की महिमा से मेरा मुंडन-संस्कार भी संपन्न हुआ. एक दिन अगले दिन का प्रोग्राम और चार्ट बना ही रहा था कि कल किन-किन लोगों को एप्रोच करना है और कैसे कि अपने मुहल्ले का एक लड़का बुलाने आया–– आप ही पीयरलेस के एजेंट हैं?

––मैंने कहा-हां-हां! और हवा का रुख अंदाजने लगा.

––मेरे घर पर कुछ लोग आपका इंतजार कर रहे हैं, उसने बताया.

आज कहां से सूरज पश्चिम में उगा है, यह सोचते हुए मैं अपना बैग-वैग समेटते हुए चल पड़ा. लेकिन वहां तो मुहल्ले के दादा लड़के जमा थे, भाग नहीं सकता था. उन्होंने जाते ही मुझे घेर लिया और तरह-तरह की जिरह करने लगे. हुआ यह था कि एक रामावतार सिंह नामक सज्जन ने किसी सयाने एजेंट से इंस्योरेंस करवाया था जो पहले साल की प्रीमियम की 'रिच हार्वेस्ट' लेकर फिर झांकने नहीं आया. कुछ दिन बाद अचानक एक्सीडेंट में वे चल बसे तो उनकी विधवा और अनपढ़ पत्नी को पैसे नहीं मिले. दादा लोगों ने सुना तो उनकी मानवता एकाएक कराह उठी. मैंने लाख समझाया कि मैं वह एजेंट नहीं हूं लेकिन मुझे ही प्रतीक मान कर मेरी मरम्मत शुरू की. बीसियों एजेंट, फील्ड आफीसर, आर्गनाइजर वगैरह उस क्षेत्र में भरे पड़े थे पर मुंडन-सस्कार का सौभाग्य तो मेरी ही तकदीर में लिखा था. मैंने वायदा किया कि उनका पैसा दिलवा कर ही छोड़ूंगा, तब कहीं जान बची. अब उन्हें लेकर डिवीजनल आफिस में चेष्टा की, क्लर्क से लेकर चपरासी तक के पांव पकड़े लेकिन मेरी आवाज नक्कारखाने में तूती की तरह पर फड़फड़ा कर रह गयी. यह तो कृपा हुई मेरे मित्र फील्ड आफीसर की, जो उन दिनों सब-आर्गनाइजर बन गया था जिसकी पैरवी पर दर्खास्त ली गयी और तीन महीनों के बाद आने को कहा गया.

* *

एक दिन प्रीमियम जमा करने आसनसोल जा रहा था कि कोई मेरा नाम लेकर चिल्ला उठा. आंखें मल-मल

कर देखा.उसकी आंखों के युवतीनुमा विन्यास को पहचान न सका. उसने मुस्कराते हुए कहा—अरे यार प्रसाद, मुझ घोषाल को भूल गये? मुझे अब हल्का-हल्का याद आया कि घोषाल नाम का एक लड़का भी मेरे साथ कालेज में पढ़ता था जिसके लिए मैं मनहूस था और मेरे लिए वह बोदा. मैंने देर में पहचानने के कारण उससे क्षमा मांगते हुए सरक कर अपने पास स्थान दिया. उसके हाथ में एक ब्रीफ केस था और शक्लो-सूरत से वह संपन्न दीख रहा था. पता चला कि वह भी असनसोल ही जा रहा है. बातों की सीढ़ियां चढ़ता हुआ मेरा अंतरंग बन चुका था. मुझे आग्रह कर एक प्रसिद्ध कैफे में लिवा गया. मेरे मन में बार-बार इच्छा हो रही थी कि काश,पैसे होते तो इतने मोटे आसामी को मैं स्वयं ऐसे कैफे में लाकर पटा पाता! उसने मेनू कार्ड देख कर एक से एक अच्छे आर्डर देने शुरू किये. कैफे का फर्श शतरंज के खानों की तरह कलात्मक डिजाइन का बना हुआ था. मेरे दिमाग में यह बात कौंध गयी कि वह भी शतरंज का नामी खिलाड़ी था. शतरंज के प्रश्नों पर हुई मेरी मस्केबाजी पर रईसों की तरह उसने मुझे 'हां,' 'हूं' के गोलमटोल उत्तर दिये. फिर एकाएक शतरंज की बाउंड्री से छलांग लगा कर मेरी प्राइवेट जिंदगी के अहाते में पिल पड़ा.

—प्रसाद , तेरी शादी-वादी हो गयी लगती है?

—हां, और तेरी?

—अभी नहीं, और तेरे बच्चे-वच्चे?

—दो हैं, बड़े होने पर 'बाबी फिशर' बनाने उन्हें तेरे पास भेजूंगा, मैंने फिर शतरंज की बिसात पर घसीटा.

—वो तो जब होंगे, तब होंगे. तब तक तुझे ही क्यों न सिखाना शुरू करूं, उसने पैंतरा बदला.

—अच्छा यही सही. कब शुरू करूं?

—आज और अभी. देख शतरंज की पहली शर्त है कि आनेवाले भविष्य के लिए शानदार प्लानिंग. अनाड़ी की तरह बेतरतीब चाल चले कि पिट जाओगे.

मैंने बेवकूफ की तरह पलक झपका कर उसे और शह दी.

—मान लो तुम, प्रतिदिन खा-पीकर एक पैसा बचा लेते हो तो साल में ३ रुपये ६५ पैसे होते हैं. दस पैसे प्रतिदिन बचाओ तो ३६ रुपए ५० पैसे और एक रुपए प्रतिदिन बचा पाओ तो ३६५ रुपए. अभी से बचत का पाठ शुरू कर देना चाहिए ताकि नाके-नाके पर तुम्हारा मुहरा प्रतिद्वंद्वी के मुहरे को पीट सके. तू कुछ करता है कि नहीं.?

—नहीं, मैं जरा चौंकते हुए बोला, मगर. . .

—नहीं ! क्यों नहीं? उसने मेरे 'मगर' को उभरने का मौका ही न दिया और डांटते हुए अपना वक्तव्य जारी रखा, मैं यह नाइंसाफी बर्दाश्त नहीं कर सकता. आज हो, कल नहीं रहो तो इस बड़ी दुनिया में भाभी और बच्चों को किसके सहारे छोड़ जाओगे? देखो यह एक बचत की स्कीम है . . . .

मैं पैंतरा बदल ही रहा था कि उसका हमला हो चुका था. सिकंदर के तीरंदाजों से घायल हो पुरु की तरह मेरे हाथी-घोड़े मेरी पैदल सेना को रौंदते हुए भाग चले थे. इसके पहले कि मैं कुछ बोलूं वह मुझे सब कुछ बता गया—पीयरलेस कंपनी की महिमा और जनगण सेवा का व्रत, अनुषांगिक रूप से राष्ट्र का उत्थान. अंत में उसने एक परचा निकालते हुए कहा—तुझे दस हजार की एक पालिसी करानी ही है.

मैंने कई बार कहा—जरा मेरी भी तो सुनो, लेकिन उसे तो जैसे कहने का भूत सवार था. उसने कागज आगे बढ़ाया और बेफिक्री से बेयरे को बिल लाने का आदेश दिया.

—एक बात मैं कब से कहना चाह रहा था पर तेरा हांकना बंद हो तब तो, मैंने कहा.

—बोल !

—मैं कोई नौकरी-वौकरी नहीं करता. तेरी ही तरह पीयरलेस का एजेंट हूं.

कहते-कहते मैंने अपने फार्म-वार्म उसके सामने रख दिये.

—यह क्या? वह चिहुक पड़ा. बेफिक्री का स्थान अब झुंझलाहट ने ले लिया.

—साले, मैंने तो समझा था कि अच्छी एकेडेमिक कैरियर के कारण तू आज तक जरूर किसी अच्छे ओहदे पर होगा. मेरा सारा प्लान बेकार गया.

—मैंने भी तुझे अच्छा-खासा बिजनेसमैन समझ कर मस्केबाजी शुरू की थी. तूने मेरी सारी उम्मीदों पर पानी फेर दिया.

उसने मुझे सिकंदर की तरह चबा जाने वाली खिसियायी नजरों से देखा और आंखों ही आंखों में सवाल किया—बोल बेटा, तेरे सथ कौन-सा सुलूक किया जाय?

और मैं पुरु की तरह एजेंसी के शौर्य से दमकते हुए अंदाज में ताकता रहा— जैसा एक एजेंट दूसरे एजेंट के साथ करता है.

बेयरा बिल लेकर आ चुका था—बीस रुपए, साठ पैसे का बिल. इस बार वह थोड़ा हिचकिचाया, फिर तन गया— तूने मेरा मूड आफ कर दिया. अब प्रायश्चित के लिए यह बिल तुझे ही अदा करना होगा.

और इसके पहले कि मैं उसे टोकता, वह बाहर जा चुका था. लाचारी में मैंने पाकेट टटोले तो भैया के प्रीमियम का पैसा निकल आया. बिल अदा कर खुदरे पैसों का टिप देकर मैं जब बाहर आया तो अब पीयरलेस के दफ्तर जाना बेकार था.

अभी-अभी मेरे मित्र फील्ड आफिसर की जो अब आर्गनाइजर बन गया है, कार धूल उड़ाते हुए बगल से गुजर गयी है. मेरी आंखों में कुछ कसक रहा है, पता नहीं वह अभी-अभी उड़ कर पड़ी हुई किरकिरी है या स्वयं कार की आकृति. किरकिरी तो निकल जायेगी लेकिन वह कार शायद नहीं निकल पायेगी. और मैं आंखें मलते-मलते यह सोच रहा हूं कि मुझे उस विषय पर फिर से सोचना चाहिए. □□□

मुख्य प्रयोगशाला,
इंडियन आयर्न ऐंड स्टील कं, पोस्ट कुलटी, जि. वर्द्धमान

दरिंदे

• केशव

ट्रींग. . .ट्रींग. . .ट्रींग. . .
—हाथ बढ़ा. रिसीवर कान से आ लगा.

—हॅलो! प्रिंसिपल डिग्री कालिज, दिस साइड .

—मैं सी. एम. ओ. बोल रहा हूं. दूसरी ओर से आवाज आयी.

—कहिए, प्रिंसिपल के मुंह से एक सूखी आह निकल कर माउथ पीस में घुस गयी.

—देखिए, हास्पिटल में एक एमरजेंसी केस आ गया है. उसे खून की सख्त जरूरत है. बहुत देर से मुंह में भरे हुए शब्द इधर के कान में आ गिरे.

—मेरे लिए क्या हुक्म है? इधर के कान खड़े हो गये.

—कालिज से कुछ लड़के भेज दीजिए. बस, काम बन जायेगा. उधर की आवाज ने पैंतरा बदला.

इधर कुछ पल की खामोशी .

—ठीक है. इधर शब्द खूंटी से उतर कर माउथ-पीस में खो गये और रिसीवर कैडिल पर. खटाक्.

टेबल के नीचे पांव घंटी पर पड़ा .

चपरासी भीतर.

—प्रोफेसर बतरा को बुलाओ.

चपरासी के निकलते ही प्रिंसिपल ने एक फाइल खिसका कर सामने कर ली. चश्मा लुढ़क कर नाक पर. आंखें टाइप हुए अक्षरों पर बौखलाये चूहों की तरह दौड़ने लगीं.

—आपने मुझे बुलाया? प्रोफेसर बतरा भीतर पहुंचते ही बोले.

—ओह. . .हां. . .हां. . . चौंकने का सफल अभिनय हुआ प्रिंसिपल की ओर से.

प्रोफेसर बतरा ने मन-ही-मन तारीफ की इस अभिनय की. रोज ही तो देखने को मिलता है यह अभिनय. पर आज तो सचमुच आसमान छू रहा था.

—आपका लड़कों में उठना-बैठना है—प्रिंसिपल की चुंधियाई आंखों से चापलूसी का एक फव्वारा निकला.

—हास्पिटल की बैन आती होगी. कुछ लड़कों को हास्पिटल भेज दीजिए.

—मगर किसलिए?

प्रिंसिपल की छोटी-सी गर्दन तन गयी. आंखें जले हुए पटाखे-सी. प्रोफेसर बतरा अप्रभावित. हर रोज घूम-फिर कर आने-जाने वाले ये रंग अब उन्हें बेहद बासी और फीके लगते थे.

—एक ऐमरजेंसी केस के लिए फौरन खून की जरूरत है. मटर की सूखी फलियों की तरह प्रिंसिपल की आवाज खड़खड़ायी.

—बेहतर है. और प्रोफेसर बतरा बाहर निकल आये क्लास में जा कर लड़कों से कहा. उनमें होड़-सी लग गयी. अधिकांश जाना चाह रहे थे. समझा-बुझा कर कुछ लड़कों को तैयार किया. तभी बैन आयी और लड़कों को ले कर चल दी.

बैन हॉस्पिटल के गेट पर ही रुक गयी.

—उतरो. ड्राइवर दरवाजा खोल कर नीचे उतर आया. लड़के उतर कर सी. एम. ओ. आफिस की ओर चल दिये . तंग गैलरी में आफिस के बाहर दिन के बारह बजे ही, चपरासी स्टूल पर ऊंघ रहा था. लड़कों ने शरारत से एक दूसरे की ओर देखा. आंखों ही आंखों में इशारे हुए. और सबसे आगे खड़े लड़के ने चपरासी के कान के पास मुंह ले जा कर जोर से कहा—रात जगराते में गये थे क्या?

चपरासी ने हड़बड़ा कर आंखें खोल दीं . और लड़के को फाड़ खाने वाली नजरों से घूरने लगा. तभी उसकी नजर गैलरी के आखिरी सिरे तक गयी. इतने लड़के देख कर चपरासी का गुस्सा हिरन हो गया.

—क्या बात है? चपरासी अपनी टोपी संभालता हुआ बोला.

—हम सबको जुकाम हो गया है. एक लड़के ने कहा. गैलरी में एक सम्मिलित ठहाका लगा.

तभी घंटी बजी. चपरासी पर्दा उठा कर भीतर लपका.

—यह कैसा शोर है? सी. एम. ओ. की आवाज में गुस्से से अधिक खीझ थी.

—जी, कुछ लड़के हैं. चपरासी फौजियों की तरह तन गया.

—लड़के? ओह, अच्छा. . . अच्छा. उन्हें लेबोरेटरी में मिस्टर शर्मा के पास ले जाओ.

—जी साहब. चपरासी ने मुस्तैदी दिखायी.

—मेरे पीछे आओ. बाहर आते ही चपरासी ने एक सरसरी नजर लड़कों पर डाली और गैलरी से बाहर.

लड़के पीछे हो लिये.

—स्साला सी. एम. ओ. बाहर क्यों नहीं आया? एक लड़का उत्तेजित हो रहा था.

—अंदर कोई मरीज होगी. एक ओर से उत्तर आया. और एक अट्टहास.

—चपरासी ने पीछे घूम कर देखा. बुरा-सा मुंह बनाया. और चाल तेज कर दी.

लड़कों ने लेबोरेटरी पर हमला-सा कर दिया. मक्खियों की तरह शर्मा के इर्द-गिर्द भिनभिनाने लगे.

—ऐसे नहीं, शर्मा की भद्दी तीखी आवाज उभरी .

—इनको कमरे के बाहर लाइन में खड़ा करो. चपरासी को हुक्म हुआ.

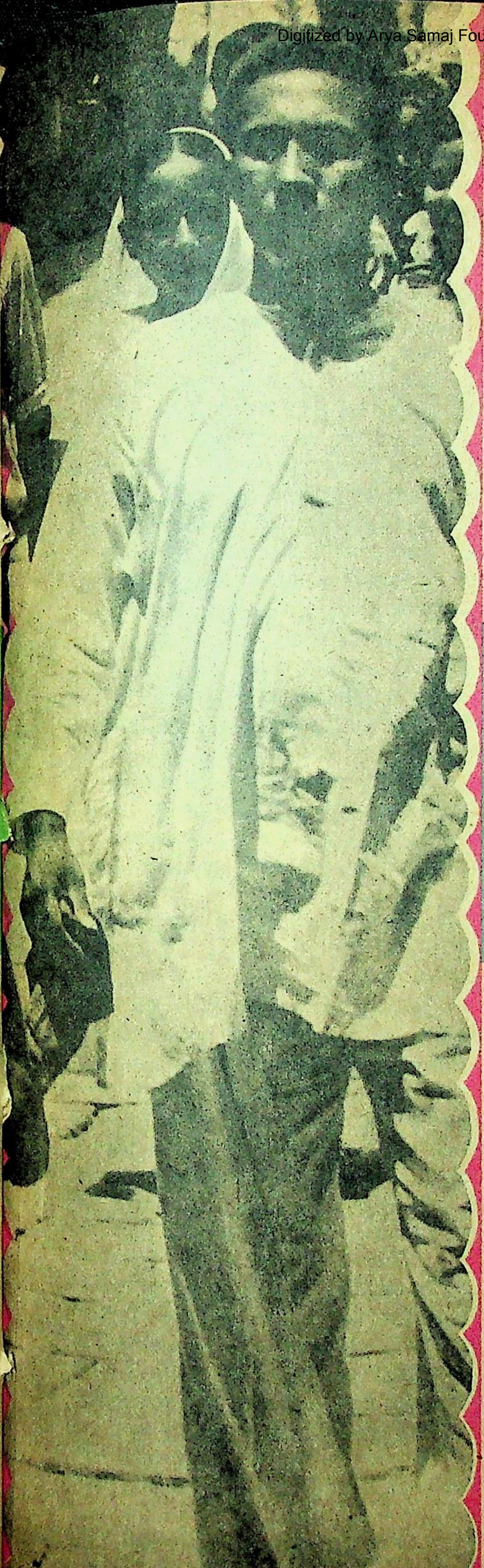
● संतोष कुमार

——खून भी दो! और फटकार भी सुनो. बाहर निकलते लड़कों में से एक फुंफकारा.

——खून दो, फटकार लो. एक लड़का चीखा.

फिर हास्पिटल में हंगामा-सा मच गया.

सभी कंठ चीखे ——खून दो, फटकार लो!

शर्मा घबराया हुआ अपनी ढुलमुल पेंट संभालता बाहर निकला.——अरे भई, क्यों मेरी नौकरी के पीछे पड़ गये हो? शर्मा ने बदहवासी में चारों ओर नजरें घुमायीं. भीड़ जुड़ गयी थी. सभी आंखों में कौतूहल लहरा रहा था.

——आ जाओ . शर्मा ने सबसे आगे खड़े लड़के को बांह से पकड़ कर अंदर कर लिया. और खुद कुर्सी पर धम्म से बैठ गया.

★ ★

जिन दो लड़कों का ग्रुप 'ओ' निकला, उनमें से एक को रोक लिया गया. बाकी मुंह लटकाये हास्पिटल के कंपाउंड में इधर-उधर बिखर गये.

लड़के का नाम था सुनील. गेहुंआ रंग. कद लंबा. औसत देह. लेकिन चेहरा उम्र के लिहाज से तनिक उदास-गंभीर . सुनील को आप्रेशन थियेटर के बाहर कुछ देर इंतजार करना पड़ा. बाकी लड़के भी वहां जमा हो गये थे.

तभी दरवाजे से एक सिर बाहर निकला——आपमें से जिसको खून देना है, भीतर आ जाये. और सिर गायब.

सुनील का चेहरा लाल हो रहा था. आंखों में चमक. उसे अजीब-सी पुलक का अहसास हो रहा था अपने भीतर. जिस टेबल पर उसे लिटाया गया, उसे चार डाक्टरों ने घेर रखा था. जैसे आप्रेशन उसीका होना हो.

उसने थियेटर में चारों ओर नजरें घुमायीं. आप्रेशन रूम किसी तहखाने-सा लग रहा था. अजीब कसैली-सी गंध भरी हुई थी भीतर.

तभी उसकी बांह नंगी हुई. और दर्द की एक पतली तीखी रेखा उसके भीतर रेंग गयी. उसने होंठ भींच लिये. फिर सब कुछ शांत. वह निश्चल लेटा रहा. धीरे-धीरे उसकी आंखें स्वतः मुंद गयीं. उसे लगा, वह टेबल पर न हो कर किसी झूले में लेटा हुआ है. उसे गुमान भी न था कि वह कभी किसीको नया जीवन देने का कारण बनेगा. उसने तंद्रा-सी में देखा——वह खून दे कर बाहर आया है. एक डाक्टर उसकी पीठ थपथपाते हुए कह रहा है——वेल डन ब्वाय. यू हैव सेव्ड ए लाईफ. देश को तुम्हारे ही जैसे नौजवानों की जरूरत है. बाहर भीड़ ने उसे कंधों पर उठा लिया है. कृतज्ञता-सनी कुछ आंखें उसे बराबर देखे जा रही हैं. और वह भीड़ के कंधों पर मछली की तरह तैर रहा है. वह बेहद खुश है. तभी अचानक भीड़ में से निकल कर लड़के के मां-बाप ने उसे गले लगा लिया है. उसकी पीठ थपथपाई जा रही है. वह चाह रहा है, ऐसे मौके बार-बार आयें.

तभी दर्द की एक और लहर उसके बदन में

उठी. उसने घबरा कर आंखें खोल दीं. कमरा वैसे ही पत्थर की ठंडी सिल-सा पड़ा था. उसकी बांह से सिरिंज निकाल ली गयी थी. डाक्टर धीरे-धीरे बतियाते हुए हंस रहे थे. वह कुछ पल निश्चल पड़ा इंतजार करता रहा. लेकिन उसे उठने के लिए नहीं कहा गया.

तब उसने बुझे हुए स्वर में कहा——डाक्टर, मैं उठ सकता हूं. सभी ने चौंक कर उसकी ओर देखा.

——हां. एक डाक्टर ने औपचारिकता निबाही.

वह बुझ-सा गया. कुछ देर पहले उसके भीतर दौड़ने वाली उत्साह की तरंग न जाने कहां खो गयी. उसे बेहद खाली-खाली-सा लगा. लगा, वह टेबल पर न हो कर किसी ठंडी सिल पर लेटा हुआ है. और जैसे उसकी देह निचुड़ गयी है. वह खुद को बेहद कमजोर महसूस करने लगा. किसी तरह जोर लगा कर उठा. जिस थैली में उसका खून भरा गया था वह सफेद कपड़े से ढंकी हुई थी. उसकी इच्छा हुई, थैली में भरा हुआ अपना खून देख ले. डाक्टर शायद उसका इरादा भांप गये थे.

——नो नो, तुम ऐसा नहीं कर सकते. एक डाक्टर ने हिदायत की.

——तुम अब बाहर जा सकते हो. दूसरे डाक्टर ने झपट कर कपड़े समेत थैली को हाथों में उठा लिया. सुनील को अपने जिस्म में जगह-जगह सुइयां-सी चुभती हुई जान पड़ीं. वह भारी कदमों से बाहर आ गया.

बाहर लड़कों के साथ प्रोफेसर बतरा भी थे.

——क्यों क्या बात है? उसका उतरा हुआ चेहरा देख प्रोफेसर बतरा ने पूछा.

उसने आहत नजरों से प्रोफेसर बतरा की ओर देखा. बोला कुछ नहीं.

प्रोफेसर बतरा ने समझा, शायद लड़का कमजोरी महसूस कर रहा है. उन्होंने बढ़ कर उसकी बांह थाम ली.

——नहीं, मैं ठीक हूं. उसने जिद की और हौले से अपनी बांह छुड़ा ली.

——मैं अभी आता हूं. कह कर सुनील कनसलटेशन रूम की ओर बढ़ गया.

दोपहर का एक बज चुका था. सभी मरीज एक-एक कर जा चुके थे. कनसलटेशन रूम के बाहर बरामदा अब सूना था. दाहिनी ओर बने वार्डों में से कभी कोई इक्का-दुक्का आदमी बाहर भीतर आता-जाता दिखाई पड़ता था.

सुनील दरवाजे पर एक पल ठिठका. फिर पर्दा उठा कर भीतर घुस गया.

भीतर उनमें से दो डाक्टर हीटर के पास जमे हुए बतिया रहे थे. एक डाक्टर की पीठ दरवाजे की ओर थी. दूसरा दरवाजे की ओर मुंह किये बैठा था. सुनील पर नजर पड़ते ही सामने वाले डाक्टर ने तनिक रूखे स्वर में कहा—— अब क्या है?

सुनील तनिक लड़खड़ाया. उसे लगा, वह गिर पड़ेगा. लेकिन उसने संभल कर हिम्मत बटोरी. और खुद को संभाल लिया.

दूसरे डाक्टर ने भी अनिच्छापूर्वक उसे देखा और आंखें हीटर पर गाड़ दीं.

——मैं डाइट वगैरा की पूछने आया था. सुनील की आवाज काफी कमजोर थी.

——कोई खास जरूरत नहीं. अगर चाहो तो दूध ले लेना. डाक्टर का स्वर सपाट था.

तभी पर्दा हटा कर प्रोफेसर बतरा भीतर दाखिल हुए. सुनील को खड़ा देख कर डाक्टर से बोले—— आप इसे बैठने के लिए तो कहते. डाक्टर को प्रोफेसर बतरा का अचानक हस्तक्षेप शायद रुचा नहीं. उनके चेहरे तन गये.

——ड्यूटी ऑफ हो चुकी है. हम जाने ही वाले थे कि यह आ गया. कह कर वे सचमुच ही उठ खड़े हुए.

प्रोफेसर का मन हुआ कि बढ़ कर डाक्टर के गालों पर एक जोरदार चांटा जड़ दे. इतने रूखे ढंग से पेश आने का मतलब? एक तो लड़के ने खून दिया, तिस पर एक शब्द सहानुभूति का भी नहीं. आदमी हैं या दरिंदे? लेकिन उन्होंने अपनी इस भावना पर किसी तरह काबू पा लिया.

——लड़कों को ले जाने के लिए मेहरबानी कर के बैन भिजवा दीजिए, प्रोफेसर बतरा ने शब्दों को चबाते हुए कहा.

——यह क्या कांसटीट्युशन में लिखा है कि जिसे बैन लेने जाये उसे छोड़ भी आये? एक डाक्टर ने उकता कर कहा.

सुनील चुपचाप खड़ा यह सब देख रहा था.

प्रोफेसर को वहां अधिक देर रुकना अपमान लगने लगा. उन्होंने आग्नेय नेत्रों से डाक्टर की ओर देखा और सुनील का हाथ थामते हुए बोले—— आओ अब यहां से चलें.

और वे डाक्टरों के निकलने से पहले ही बाहर आ गये.

★ ★

——डाक्टर्स हैव नॉट बिहेव्ड विद अवर ब्वाय. कालेज पहुंचते ही प्रोफेसर बतरा ने प्रिंसिपल से कहा.

प्रिंसिपल ने सरसरी नजरों से प्राफेसर बतरा की ओर देखा. सर को एक झटका दिया. और अपना सर कछुए की तरह कंधों की ओर सिकोड़ लिया. ऐसा करते ही उनकी छोटी-सी गर्दन एकाएक गायब-सी हो गयी. सिर धड़ पर एक पत्थर की तरह रखा हुआ लगने लगा. प्रोफेसर बतरा बेचैनी और क्रोध से कुर्सी पर पहलू बदलने लगे. एक तो वह पहले से ही जले-भुने हुए थे. तिस पर प्रिंसिपल का यह तिरस्कार! वह लगभग चीख-से पड़े——अगर उनकी ओर से हम इस कदर उदासीन हो गये तो भविष्य में किसी ऐसे नाजुक मौके के लिए उनको तैयार कर सकेंगे हम?

प्रिंसिपल का सर एकाएक सेल से निकल आया. चुंधियाई आंखों में मेंढक की तरह कुछ उछलने लगा. चेहरा फिर गिरगिट की तरह रंग बदलने लगा.

——उनका हक छीन कर हम अच्छा नहीं कर रहे. प्रोफेसर बतरा ने अपनी आवाज पर काबू पा लिया

था.--द रिकोगनीशन आव दयर इमोजनल नीड्स इज मस्ट. उन्हें गुमराह होने से बचाने का यही तरीका है.

—ठीक है, मैं सी. एम. ओ. को टेलीफोन कर के उसे सर्टीफिकेट दिला दूंगा. प्रिंसिपल ने जैसे पीछा छुड़ाने के लिए कहा. और व्यस्त-सा दीखने लगा.

प्रोफेसर बतरा को अब और बहस करना फिजूल लगने लगा. वह कुर्सी छोड़ कर बाहर निकल आये.

प्रोफेसर बतरा के बाहर निकलते ही प्रिंसिपल ने छुटकारे की सांस ली. रिसीवर उठा कर सी. एम. ओ. का नंबर मांगा. उधर कुछ पल घंटी बजती रही.

—सी. एम. ओ. स्पीकिंग. आवाज आयी.

—प्रिंसिपल डिग्री कालिज. आप उस लड़के को कुछ दे दिला देते.

—ईवनिंग में लड़के को हास्पिटल भेज दें. सर्टीफिकेट दे दूंगा.

—थैंक्यू. प्रिंसिपल ने रिसीवर क्रैडिल पर कुछ इस तरह से पटका मानो बहुत बड़ी मुसीबत से छुटकारा पा लिया हो.

घंटी बजी. चपरासी भीतर.

—थर्मस से चाय कप में डाल दो. और बी. ए. थ्री में से सुनील को बुला लाओ.

चपरासी ने खूंटी से थर्मस उतार कर चाय कप में ढाल दी. और कप प्रिंसिपल की ओर सरका दिया.

प्रिंसिपल कप में से चाय सुड़कने लगा.

चपरासी चला गया.

चाय का घूंट भरते ही कमरे में सड़ाप की ध्वनि गूंजती. प्रिंसिपल चाय पीता है या गीला चमड़ा पीटता है. स्टाफ रूम में कई बार कहकहे लगते थे.

—मे आई कम इन सर? सुनील ने दरवाजे से हांक लगायी.

—एस, कम इन. चाय का एक लंबा घूंट भर कर प्रिंसिपल ने कहा.

—शाम को हास्पिटल जा कर सी. एम. ओ. से सर्टीफिकेट ले लेना, प्रिंसिपल ने अपनी ड्यूटी निभायी. कछुए-सी गर्दन गर्व से तन गयी. चाय के घूंट के साथ हाजमे की गोली की तरह संतोष गटक लिया.

—यह बात नहीं है सर, आखिरकार कुछ तो. . .

प्रिंसिपल ने सुनील को बीच में ही टोक दिया—इतना ही जरूरी है तो. . . प्रिंसिपल ने अपनी बात अधूरी छोड़ कर जेब की ओर हाथ बढ़ाया.

—इसकी जरूरत नहीं है सर. और सुनील एक झटके से आफिस से बाहर निकल आया.

* *

शाम को जब सुनील हास्पिटल पहुंचा तो पांच बज रहे थे. उसका आने को मन नहीं हो रहा था. होता भी कैसे, उसे हलाल कर उसकी रगों पर रेगमार चलाया गया था. वह बेहद उखड़ा-उखड़ा-सा महसूस कर रहा था. उस दिन उसका व्रत था. सर फोड़े की तरह दुख रहा था. रह-रह कर आंखों के सामने चिंगारियां उड़ने लगती थीं.

सी. एम. ओ. आफिस के बाहर दो- तीन मरीज खड़े थे. भीतर भी दो-एक लोग जमे हुए थे. उसने चपरासी से अपने आने की सूचना भीतर भिजवा दी.

उसे काफी देर इंतजार करना पड़ा. भीतर वाले उठने को ही नहीं आते थे. बाहर खड़े मरीज भी आपस में बड़बड़ाने लगे थे. उसे खड़ा रहना काफी कठिन लग रहा था. लेकिन गैलरी में एक ही स्टूल था, जिस पर चपरासी आसीन था. उसने दीवार के सहारे टिक कर आंखें मूंद लीं. पता नहीं कितनी देर वह वैसे ही निश्चल खड़ा रहा.

तभी उसके कानों में जैसे बहुत दूर से आता हुआ स्वर पड़ा—डाक्टर साहब बुला रहे हैं.

उसने खुद को बटोरा और लड़खड़ाता हुआ-सा भीतर घुस गया.

भीतर सी. एम. ओ. के सिवा सिर्फ एक ही आदमी और था. वह जल्दी-जल्दी पलकें झपका रहा था. और हाथों से टेबल पर तबला बजा रहा था.

सी. एम. ओ. ने टेबल की दराज में से टाइप किया हुआ एक कागज निकाल कर सुनील की ओर बढ़ा दिया—यह रहा सर्टीफिकेट. और फिर उसी दराज में से एक सफेद लिफाफा निकाल कर उसकी ओर बढ़ा दिया—इसमें सौ एनर्जी टेबलट्स हैं. और बीस रुपये.

सुनील का मन हुआ कि यह कागज चिंदी-चिंदी कर के कमरे में उड़ा दे. और लिफाफा सी. एम. ओ. के मुंह पर दे मारे. साले इसमें भी एहसान जता रहे हैं. उसका मन कड़वाहट से भर गया. उसने चाहा यह सारी कड़वाहट सी. एम. ओ. के चेहरे पर थूक दे.

उसने लिफाफा खोल कर नोट निकाले और सी. एम. ओ. की ओर बढ़ा कर तिरस्कार से बोला—रेडक्रास फंड में मेरी ओर से जमा कर लेना.

सी. एम. ओ. ने नोट बाज की तरह झपट लिये. सुनील जब दरवाजे से निकल रहा था तो सी. एम. ओ. ने पीछे से पुकारा—सुनो.

वह ठिठक कर पीछे घूम गया.

—तुम्हें स्टेट की ओर से सर्टीफिकेट दिलाने की भी कोशिश करूंगा. डिप्टी कमिश्नर से प्रशंसा पत्र तो मिलेगा ही. शायद कोई इनाम भी मिल जाये. सी. एम. ओ. बिछा जा रहा था.

इस अचानक आने वाले परिवर्तन ने सुनील को चौंका दिया. वह विस्फारित नेत्रों से सी. एम. ओ. को देखने लगा.

सी. एम. ओ. हंस दिया. एक निहायत चापलूस हंसी.

—कल अपने दूसरे साथी को भी भेज देना. हमें खून की सख्त जरूरत है.

सुनील ने मुंह बिचका दिया. और फिर बिना एक पल भी वहां ठहरे आफिस से बाहर निकल आया.

बाहर अंधेरा धीरे-धीरे बढ़ रहा था. मेन गेट की सबसे निचली सीढ़ी पर एक कुत्ता लेटा हुआ था. सुनील ने एक जोरदार लात कुत्ते के जमायी. कुत्ता चीत्कार करता हुआ भाग खड़ा हुआ. वह रास्ता टटोलता हुआ उस अंधेरी गली में आगे बढ़ने लगा. □□□

उप संपादक, लोक संपर्क विभाग, शिमला-२

आत्मरचना (२९)

गर्दिश के दिन

• श्रवणकुमार

जून, १९७२ से सारिका में इस महत्वपूर्ण लेखमाला की शुरूआत हुई थी और अब तक आप इसमें हरिशंकर परसाई, शानी, से. रा. यात्री, राही मासूम रजा, मोहन राकेश, भीष्म साहनी, चंद्रकांत बक्षी, शैलेश मटियानी, मधुकर गंगाधर, ईश्वर चंदर, शांतनु आचार्य, कृष्णा सोबती, मधुकर सिंह, इब्राहीम शरीफ, रवींद्रनाथ त्यागी, फिक्र तौंसवी, दामोदर सदन, हृदयेश, रामसरूप अणखी, एम. टी. वासुदेवन नायर, कृष्णप्रसाद मिश्र, श्रीलाल शुक्ल, रॉबिन शा पुष्प, राजेंद्र यादव तथा दीप्ति खंडेलवाल की आत्मरचनाएं पढ़ चुके हैं. तमाम संघर्षों, व्यक्तिगत तनावों और दुख-सुख के क्षणों के बीच से गुजरते हुए कोई प्रतिभा किस तरह रचनात्मकता ग्रहण करती जाती है और सामान्य व्यक्ति के रूप में किस तरह संघर्षरत रहती है——इसी संघर्षशील यथार्थ का निरूपण करने वाली, प्रख्यात लेखकों की आत्मरचनाएं, इस स्तंभ के अंतर्गत दी जा रही हैं. इस अंक में पढ़िए हिंदी कथाकार श्रवण कुमार की यह आत्मरचना

• •

कभी-कभी लगता है जैसे जीवन में एक अजीब-सा ठहराव आ गया है. फिर लगता है, जैसे हमें गठरी में बांध कर एक ओर पटक दिया गया है. जैसे कि हम निरीह, निश्चेष्ट प्राणी हैं और हमें किसी ओर भी ठोकर मार कर ढुलकाया जा सकता है. लेकिन हमारे अंदर कुछ है जो हर वक्त करवटें लेता रहता है, जो हर वक्त बेचैन रहता है, और कुछ कर गुजरने पर मजबूर करता रहता है.

मैं अपने दिमाग पर जोर देता हूं. ऐसा क्यों है कि अकसर चारों तरफ साजिशों का ही एहसास होता रहता है? क्या यह भी एक साजिश नहीं है कि मेरे व्यक्तित्व में वह तीखापन नहीं आ पाया जिसकी कभी अपेक्षा की गयी थी? और क्या यह भी एक साजिश नहीं है कि अक्सर मेरे अस्तित्व को भी नकारने की कोशिश की जाती है?

मैं मुड़कर समूची स्थिति का जायजा ले लेना चाहता हूं. लेकिन मुड़ कर देखने की फुरसत किसको है? जो एक बार छूट गया, सो छूट गया. जिंदगी की रफ्तार कुछ ऐसी बेढंगी है, परिवेश में कुछ ऐसा बेहूदापन है, जो हर वक्त हमको भींच कर एक सांचे में बंद कर देना चाहता है. बचपन में 'शाह दौला की चुहिया' कहे जाने वाले 'जीव' देखा करते थे. मुंह-सिर-शरीर सब आदमी का, लेकिन उनके मस्तिष्क को कुछ इस तरह से दबा दिया जाता था, कि जहां उनका सिर अनुपात में बिल्कुल छोटा रह जाता था, वहां उनके शरीर के अंग भी अवरुद्ध हो जाते थे. कुल मिला कर वे बौनों के बड़े भाइयों का एहसास देते थे. क्या हमारी दशा भी लगभग वैसी नहीं है?

मैं अक्सर सोचता हूं. कौन है इस साजिश के पीछे? किसने हमें दगा दिया? क्योंकि इस साजिश का शिकार मैं ही नहीं हूं, मेरे जैसे वे असंख्य लोग भी हैं, जो आराम खरीद नहीं सकते, जिन्हें जिंदगी की छोटी-से-छोटी जरूरत के लिए बेहूदा जद्दोजहद करनी पड़ती है और जिन्हें अकसर फालतू करार दे दिया जाता है. ये सब वे लोग हैं, जिन्हें हम दूसरे शब्दों में 'अनप्रिविलेज्ड' या मामूली लोग कह सकते हैं. मेरे लघु उपन्यास **'प्रेत'** में एक ऐसे ही बेहूदा स्थितियों से कशमकश करने वाले पात्र का जन्म हुआ है. वह पात्र इन स्थितियों को बराबर ललकारता रहता है, लेकिन ये स्थितिया ऐसी 'चालाक' हैं कि हर बार उसे झांसा देकर उसकी पकड़ से बाहर हो जाती हैं. मेरी **'चालाक'** कहानी में भी ऐसी ही वाहियात स्थितियों का चित्रण है.

★ ★

मां कहती है कि मैंने सहक-सहक कर लिया है. वह कहती है कि मैंने करतारपुर में 'सुक्खा' था कि हे बाबा, जे तू सच्चा हैं वे ते . . . . बाबा सच्चा ही निकला क्योंकि मेरा जन्म हुआ, चार लड़कियों के बाद, और घर में काफी खुशियां मनायीं गयीं. कहते हैं बचपन में मेरे गले में सोने की एक चेन भी रहती थी, कोई दो तोले की, जिसे कहते हैं हमारे किरायेदार की बीवी ने चुपके से उतार लिया था और जिसे पुलिस में रिपोर्ट करने के बावजूद बरामद नहीं किया जा सका था.

जाहिर है कि मेरे जीवन का आरंभ अभाव में नहीं हुआ. पिताजी पहले कभी स्कूल मास्टर रहे थे, जिसकी वजह से उनके पुराने परिचित उन्हें 'मास्टरजी' कहकर ही पुकारते थे. बाद में वह रेलवे-मुलाजिम हो गये और आखिर तक रेलवे-मुलाजिम ही रहे. पिताजी थे, इसलिए क्या कहूं, पर यह मुलाजिमत थी लाजवाब. आज मैं भी कितना चाहता हूं कि काश, यह क्लास वन अफसरी न हो कर कहीं इंस्पेक्टरी होती! और इस महंगाई और अभाव के युग म तो इंस्पेक्टरी के प्रति मेरी श्रद्धा और भी बढ़ गयी है.

मेरा जन्म गुजरांवाला में हुआ. मेरी जन्म-तिथि शायद १ अगस्त १९३१ है. सही जन्मतिथि जानने की बात मेरी शादी तय करते समय उठी थी. तभी मेरी जन्म-पत्री भी बनी. जन्म-पत्री में कई उत्साहजनक बातें थीं. शायद उन्हीं से प्रभावित हो कर मेरे सास-ससूर

ने यह रिश्ता पक्का किया था. लेकिन अब . . . ? गुजरांवाला अब पाकिस्तान में हैं, पर गुजरांवाला की कई यादें अब भी वैसे की वैसी बनी हुई हैं. कुछ यादों को मैंने अपनी एक कहानी **'मामूली लोग'** में पिरोया है, कुछ यादें अब भी बिन-पिरोयी हैं. मसलन, मैंने अपनी रचनाओं में उन लोगों का कभी कोई जिक्र नहीं किया, जिनसे मेरा परिवेश बना था, मेहनतकशी और जफाकशी जिनका जीवन था, और उसके बावजूद जिनके घरों के चूल्हे अक्सर ठंडे पड़े रहते थे. हां, कुछ ऐसे जीवन-प्रसंग भी हैं जिन्हें मैं और किसी रूप में बयान नहीं कर पाया. मसलन यह कि मेरी मां सिख परिवार की है और मुझे भी उसने सिख बनाना चाहा था. शुरू के चार-पांच वर्षों तक, जैसा कि मुझे अब बताया जाता है, मेरे नाम के साथ 'कुमार' की जगह 'सिंह' भी जुड़ता रहा, पर फिर 'सिंह' की जगह' कुमार कब हो गया, इसका मुझे इल्म नहीं.

मेरी प्रारंभिक शिक्षा दिल्ली में शुरू हुई. चाहें तो जिस मोहल्ले में हम रहते थे, उसका नाम भी बता दूं, पर उससे फायदा कुछ नहीं होगा. हां, इतना जरूर कहूंगा कि इस मोहल्ले में हर किस्म के लोग रहते थे, अमीर-गरीब दादा-दब्बू, कुम्हार-कहार. लेकिन जिन लोगों से मेरी दोस्ती हुई, तकरीबन सब गरीब, यानी कुम्हार-कहार ही थे. इनमें से कुछ मेरे सहपाठी थे. जैसे वे तख्ती-स्लेट लटका कर स्कूल जाते थे, वैसे मैं भी जाता था. जैसे वे तख्ती पोतते थे, वैसे मैं भी पोतता था. मुझे इस दोस्ती का एक खास फायदा (!) भी हुआ. वह यह कि मैंने कम उम्र में ही कई 'बातें' सीख लीं. हां, मुझे जो बात नहीं भूलती, वह थी एक कुम्हार-परिवार में हुक्को का निर्ममता से प्रायः हर रोज पीटा जाना, और उसका क्रंदन करना. हुक्को की पिटाई भी हाथों से नहीं, लाठी से होती थी. दरअसल हुक्को, एक कुबड़ा, अपंग युवक था, जिसके सौतेले भाई-बहन तो बाकायदा घर में रहते थे और उसे नसीब हुई थी एक सीखची-मढ़ी, जमीनदोज कोठरी जो जानवरों के लिए शायद ज्यादा उपयुक्त होती. अपंग होने के कारण हुक्को अपने आप कोठरी में से बाहर नहीं निकल पाता था और हाजत के लिए चिल्लाता रहता था और जब मजबूर हो जाता था तो वहीं गंदा कर देता था और फिर सिलसिला शुरू होता था, उसकी पिटाई का. मैं अक्सर सोचता—क्या गरीब भी एक-दूसरे के प्रति इस कदर निर्मम हो सकते हैं?

लेकिन मेरी गर्दिश? हो सकता है, मुझमें खुद्दारी का माद्दा अधिक रहा हो कि मैं किसी भी हालत में किसी प्रकार की पर-निर्भरता सहन नहीं कर सकता था. प्राइमरी की शिक्षा पूरी हुई तो फिर गुजरांवाला लौटना पड़ा. खुद्दारी क्योंकि मुझमें अब तक पूरी तरह जग चुकी थी, इसलिए मुझे यह भी गवारा नहीं नहीं था कि मैं क्लास में सबसे आगे न रहूं. इत्तेफाक ऐसा था कि जब तक मैं गुजरांवाला में पढ़ता रहा, स्कूल का सर्वग्र विद्यार्थी माना जाता रहा. और शायद यही कारण था कि घर से खर्चा पूरा न मिलने पर मैंने दो सहपाठियों को ट्यूशन पढ़ाना शुरू कर दिया था. लेकिन इसका अर्थ यह भी है कि मेरे भीतर विद्रोह की भावना ने जन्म लिया था.

पाकिस्तान बनने पर हमें गुजरांवाला छोड़ना पड़ा. लाखों-करोड़ों में हम भी थे. किसी प्रकार का जानी नुकसान तो न हुआ, पर वैसे सब कुछ मिसमार हो गया. कुछ दिनों तक फगवाड़ा में शरण ली (पिताजी तो रिटायर होने के बाद वहीं बस गये). मैं उन दिनों दसवीं कक्षा में था. मां से बात-बात प ठन जाती थी. वह किसी न किसी बात को ले कर चिंताग्रस्त रहती. वह पाकिस्तान बनने से पहले भी चिंताग्रस्त रहती थीं. पिताजी भी अधिकतर मां की ही तरफदारी करते. या कभी-कभी पिताजी खुद ही कुछ उलटा-सीधा कह देते. मुझे अकसर अपने माता-पिता पर दया भी आती. बेचारे, गरीब लोग! जाने यहां तक भी किस तरह पहुंचे हैं! खैर, मैं फगवाड़ा छोड़कर दिल्ली चला आया, और यहीं बड़ी बहन के पास रह कर हायर सैकेंडरी करने लगा.

पिताजी की नौकरी बहाल हो चुकी थी. इसलिए वह परिवार को ले कर खड़गपुर चले गये. मैंने भी हायर सैकेंडरी पूरी की और दिल्ली छोड़ पहले वाराणसी और फिर कलकत्ता चला गया. पिताजी का रिटायरमेंट अब बिल्कुल करीब था. उन्होंने इस बीच यही चाहा था कि पढ़ाई-लिखाई छोड़ उन्हीं के कार्यालय में लग जाऊं. इससे पहले मां ने भी यही चाहा था कि मैं 'ढंग से कमाने लगूं. बल्कि एक तरह से तो वह शुरू से ही मेरी शिक्षा के हक में नहीं थी और चाहती थी

कि मैं कोई 'धंधा' करूं.

खैर, मैं भी बजिद था. मुझे अपने ऊपर पूरा एतकाद था. बल्कि दिल्ली और वाराणसी में भी मैं अग्रणी विद्यार्थियों में रहा. कलकत्ता में टर्मिनल परीक्षाओं में तो ठीक रहा, पर अंतिम परीक्षा में लुढ़क गया. किसी को विश्वास ही न होता था कि मैं परीक्षा में असफल हो सकता हूं. कहां तो यूनिवर्सिटी का रिकार्ड तोड़ने की बात और कहां यह असफलता! जिन दिनों रिजल्ट निकला, उन दिनों मैं फगवाड़ा में था. मां तो पहले ही कलपती रहती थी, अब और कलपने लगी. पिता जी को चिढ़ इस बात की थी कि मैं अपने पाठ्यक्रम की ओर ध्यान न दे कर 'फिजूल' की चीजें पढ़ता रहता हूं. दरअसल, हुआ भी कुछ ऐसा ही था. जब कभी पिता जी कलकत्ता में होस्टल में मेरे पास आये, उन्होंने मुझे वॉल्तेयर, शॉ, दोस्तोएवस्की, खलील जिब्रान, आंद्रे जीद या ऐसे ही किसी लेखक को पढ़ते पाया.

लेकिन यहां मुझे थोड़ी और साफगोई से काम लेना होगा. ठीक-ठीक कहूं तो जब तक मैं क्लास का, और स्कूल का भी, अग्रणी विद्यार्थी रहा, तब तक मुझे साहित्य नाम की किसी चीज का इल्म नहीं था, पर दिल्ली लौट कर बात कुछ और हो गयी. हमारे एक अध्यापक थे, थम्मन. उनसे ही पहली बार गोर्की और ज़ोला का नाम सुना, और उन्होंने ही हमें बताया कि **'गाइड टु मॉडर्न थाट'** (सी. ई. एम. जोड) एक उपयोगी पुस्तक है. फिर उन्हीं से हमने **'हिंट्स टु सेल्फ-कल्चर'** की बात सुनी, और शायद उन्हीं की बदौलत मैंने पहली बार ऑलिवर गोल्डस्मिथ की नकल में कुछ लिखने की कोशिश की.

यहां एक मित्र (दरअसल मित्र के बड़े भाई) हरिकृष्ण मिट्टू का भी जिक्र करना चाहूंगा (आजकल वह हिमाचल प्रदेश सरकार के जन-संपर्क विभाग के निदेशक हैं.) जिन दिनों का मैंने ऊपर जिक्र किया, उन दिनों हम सब दिल्ली के एक ही मोहल्ले में रहते थे. हरिकृष्ण बला के जहीन आदमी थे. उन दिनों गर्दिश के शिकार थे. बुरी तरह. पर उन्होंने हाथ से हिम्मत न जाने दी. उन्हीं से पहली बार 'सैटायर' का अस्त्र के रूप में प्रयोग और उस अस्त्र को सशक्त रूप से चलाने वाले योद्धा वॉल्तेयर का नाम सुना और उन्हीं की प्रेरणा से मैं **'कंदीद'** तथा **'ज़ा दीग'** पढ़ गया. मुझे याद है, कलकत्ता में मैंने एक कवि से कहा था कि बिना 'सैटायर' का उपयोग किये हमारा लेखन भोथरा ही रहेगा. और शायद यही कारण है कि कलकत्ता के एक अंग्रेजी साप्ताहिक **'द ओरियेंट इलस्ट्रेटिड वीकली'** में मैंने जब एस. के. चड्ढा के नाम से **'द ग्लिपसिज ऑव कैलकटा'** लेख लिखा था, तो उसका अवलंब भी 'सैटायर' ही था.

* *

घर वालों को मुझसे एकदम विरक्ति हो चुकी थी. पिता जी को मेरा पत्रकारिता तथा लेखन की ओर रुझान बिल्कुल सह्य नहीं था. इसलिए घर में एक दिन खासा बवंडर मच गया. मैंने तहैया कर लिया कि घर की एक-एक चीज को तिलांजलि दे कर अपने तईं जीवन शुरू करूंगा. हुआ भी यही. मैं सब कुछ छोड़ कर घर से भाग खड़ा हुआ (पिता जी तब तक रिटायर हो चुके थे) पर मां के कलपने-कुरलाने की आवाजें मेरा अब भी पीछा कर रही थीं. मैं मां की इन आवाजों की जद से दूर हो जाना चाहता था. पिता जी को पता चला तो वह मेरी छोटी बहन को साथ लिये रेलवे स्टेशन तक ढूंढ़ते-ढूंढ़ते चले आये. मेरे सामने अब एक ही विकल्प था, और वह था बंबई. बहन और पिता जी ने जबरदस्ती मेरी मुट्ठी में दो सौ रुपये ठूंस दिये.

बंबई में एक-एक अखबार के दफ्तर की खाक छानी. सपना था पत्रकारिता के माध्यम से लेखक बनने का. कोई रास्ता बनता नजर नहीं आता था. मुल्कराज आनंद, कृष्णचंदर, सब से मिल लिया था. मुल्कराज आनंद से थोड़ा रिश्ता भी था, क्योंकि उनके भाई की लड़की उन दिनों मेरी मंगेतर थी. पर मुल्कराज आनंद ने सबसे अधिक निराश किया. उन्होंने पहले तो मुझे एक लंबा-चौड़ा भाषण पिला डाला, और इस बात पर विशेष बल दिया कि यदि मेरे पास कहने को कुछ विशेष है तो लिखूं, वरना 'स्क्राइब' बनने से कोई फायदा नहीं. उनका यह भी कहना था कि किसी भी हालत में बी. ए. की डिग्री जरूर प्राप्त कर लूं. सोचता हूं यदि उनकी बात न मानी होती तो जीवन ने शायद दूसरा ही मोड़ ले लिया होता.

बंबई से मैं दिल्ली चला आया था. दिल्ली में मेरी दो बड़ी बहनें थीं. अब मैं कभी बड़ी बहन के यहां रहता, कभी उससे छोटी के. सब कहते थे कि स्टेनोग्राफी और टाइपिंग सीख कर कहीं लग जाओ. अधिकतर लोगों की नियति तो यही है. वे इससे परे सोच भी नहीं सकते. पर मैं अडिग था. इस बीच कलकत्ता के मेरे दो मित्र मुझे ढूंढ़ते-ढूंढ़ते आ निकले. एक ने बिरला एयरलाइंस में नौकरी कर ली थी—इसलिए उसके पास कुछ पैसा था. दूसरा मित्र मेरी तरह ही खाली था, पर मुझसे कुछ बेहतर हालत में था. मेरे मित्र मेरी स्थिति से बखूबी वाकिफ थे. उन्होंने कहा, चिंता मत करो, सब ठीक हो जायेगा. वे, दरअसल, मसूरी का कार्यक्रम बना कर आये थे. इसलिए मुझे भी साथ लिवा ले गये. कुछ दिन तो अच्छे बीत गये, पर फिर वही चिंता. अब पिता जी मेरी किसी भी कीमत पर मदद करने को तैयार न थे,

४४-वर्षीय श्रवणकुमार का जन्म गुजरांवाला (पाकिस्तान) में हुआ. श्रवणकुमार अपनी रचनाओं में निरंतर विकासशील रहे हैं और सामान्य जीवन की कहानियां लिखना उन्हें अच्छा लगता रहा है. अब तक दो कहानी-संग्रह, एक लघु-उपन्यास तथा कुछ संपादित पुस्तकें प्रकाशित.

और उधर मेरे पास पैसे के नाम पर एक कौड़ी भी न थी. गनीमत यह थी कि कलकत्ता से मेरे उन दोनों मित्रों का पत्र आ गया. उन्होंने कलकत्ता में मेरे लिए नौकरी की व्यवस्था कर ली थी और मुझे बुला भेजा था. मैं किसी-न किसी तरह कलकत्ता पहुंच गया और एक हिंदी दैनिक में सौ रुपये माहवार की नौकरी करने लगा. नौकरी तो मिल गयी. पर हिंदी मुझे नाम-मात्र को ही आती थी.

* *

मैंने अभी-अभी जिन दो मित्रों का जिक्र किया है, उनमें से एक ने ही नौकरी की थी. दूसरे ने एम. ए. करने की सोची. मेरे इस मित्र का नाम था जगदीशप्रसाद खंडेलवाल. हिंदी में खूब रवां था, इसलिए मेरी कई बलाएं अपने ऊपर ले लेता था. मसलन, जब मुझे किसी न्यूज आइटम का अनुवाद लेना होता, तो मैं या तो उसका सहारा लेता या शब्दकोश का. हिंदी के प्रति मेरी रुचि जगाने का जिम्मा भी उसी के सिर है.

पर नौकरी मिल जाने से हमारी मुश्किलात का हल नहीं हुआ, बल्कि मुश्किलात ने एक तरह से नया और उग्र रूप ले लिया. जगदीश के फूफा पहले जगदीश से थोड़ा परेशान थे. मेरे वहां होने से उनकी परेशानी और बढ़ गयी. उन्हें शायद उतनी आपत्ति न थी, जितनी उनके भाई को थी. इसलिए फूफा ने जब बाहर किया तो हम दोनों को ही कर दिया. हां, इतना जरूर किया कि घरसे बाहर करने से पहले उन्होंने हमारे लिए अपनी दुकान के पास ही एक कमरा (बल्कि एक कमरे का तिहाई) तय कर दिया. किराया था बीस रुपये माहवार. कमाने वाला मुख्यत: मैं ही था. स्टोव मैं साथ ले ही गया था. इसलिए खाना हम स्वयं ही बनाने लगे. जगदीश को खाना बनाने में अधिक रुचि थी. इसलिए वह खाना बनाता और साथ में कविताएं भी लिखता रहता.

लेकिन यह खाना बनाने का सिलसिला कायम न रह सका. खाना मैं भी बना सकता था, पर खाना बने तो किससे? कभी स्टोव में तेल नहीं है तो कभी दाल नहीं है. किसी-किसी दिन चाय की पत्ती भी नहीं होती थी. चाय की पत्ती का इंतजाम होता तो दूध का चूर्ण नदारद. दूध का चूर्ण लाते तो चीनी गायब हो जाती. यह सब क्यों हो रहा था? मैं परेशान था, जगदीश परेशान था. नौकरी करते एक महीना बीत गया था, पर तनख्वाह के नाम पर बीस रुपये हाथ में थमा दिये गये थे. अब कार्यालय जाऊं भी तो कैसे? हुगली पार करवाने के नाव वाला दो पैसे लेता था. ट्राम पर शायद तीन पैसे लगते थे. पर बिना पैसे के ट्राम या नाव पर कौन बैठने देता? जेब तो खाली होती ही थी, अब पेट भी खाली रहने लगा. कभी रुलाई आती, कभी लड़ने को मन होता. एक बार मैं अपने पत्र के संपादक और मैनेजर से भिड़ भी गया था. मैं दया का पात्र नहीं बनना चाहता था. अजब हालत थी. मेरा इंजर-पिंजर सब खस्ता होता जा रहा था. पहचानने वाला मुझे मुश्किल से ही पहचान पाता. इसी से मेरी बीनाई इतनी कमजोर हो गयी कि चश्मे के शीशे और-और मोटे होने लगे.

इधर खाली पेट और उधर जमीन पर सोना. सोने को होते तो खटमलों की कतारों की कतारें हम पर चढ़ाई कर देतीं. बड़ी कुढ़न हो गयी थी उन दिनों मन में मेरे. ऐसे में क्या पढ़ें और क्या जियें!

मन अच्छा होता तो सब अच्छा लगता, वरना सब बेमानी दीखता.

इस संकट ने मेरे मन पर कई घाव छोड़े, पर इस संकट ने मेरी अभिव्यक्ति को नये प्राण भी दिये. उन दिनों जिस तीव्रता से जो कुछ झेल रहा था, उसी तीव्रता से उसे शब्दचित्रों का रूप देने लगा. प्राय: हर रोज पत्र में 'दिव्य' उपनाम से इस किस्म का कुछ-न कुछ छपने लगा. **'भिखमंगे'** उन्हीं दिनों की देन है.

इम्तिहान सिर पर था. इसलिए अब जगदीश मेरी जगह काम करने लगा था और मैं उसकी जगह. इसके साथ-साथ हमें रामगोपाल के रूप में एक मित्र, संरक्षक भी मिल गया था, क्योंकि जब कभी रामगोपाल हमारा स्टोव ठंडा देखता, उसे गरम करने की वह कोई-न कोई तरकीब भिड़ाता. जितना संरक्षण हमें उससे मिला, उतना ही पड़ोस के (हमारे कमरे के बाकी दो-तिहाई में रहने वाले) बंगाली परिवार से मिला. उस परिवार के पास अपने लिए चाहे कोई जुगाड़ हो या न हो, हमारे लिए कुछ-न कुछ कर ही देते थे. दूसरे, जाने क्यों, सब ने अपना दांव मेरे इम्तिहान पर लगा रखा था. दरअसल, इस परिवार से हमारा संबंध काफी बढ़ गया था, जिससे मालिक-मकान तथा उसके परिवार के लोग मारे ईर्ष्या के अंगारा हो उठे थे. परिणाम स्पष्ट ही था. हम सबको वह जगह खाली करनी पड़ गयी.

* *

पिता जी को मेरे हालात का किसी तरह पता चल गया था. इसलिए उन्होंने मुझे बड़ा मिन्नत-समाजत भरा पत्र भेजा और साथ में कुछ पैसे भी. मेरी भी हिम्मत अब जैसे टूट चुकी थी. हर रोज की कशमकश मुझे कुंठित करने लगी थी. मुझमें अब वह धार न थी. इम्तिहान खत्म हुए कुछ दिन बीत चुके थे. इस बीच मैंने दो-एक अंग्रेजी दैनिकों में भी कोशिश की थी, पर कामयाब नहीं हो सका था. हां, उनमें से एक ने मेरे दो-तीन अनुवाद जरूर छापे थे. अब जिस कमरे में मैं (क्योंकि अब जगदीश मेरे साथ नहीं था) रहता था, वह बिल्कुल लबे-सड़क था और था भी चौ-मंजिले पर. ट्रामें नीचे से गुजरतीं तो लगता जैसे मुझमें बिजली का करंट छोड़ती जा रही हों. मैं रह-रह कर चौंकता. जीवन एकदम असुरक्षित हो गया था. प्रांतीयता वाले गुंडों की हमेशा आशंका बनी रहती.

दिल्ली लौटने को हुआ तो काफी आंसू बहे. वह बंगाली परिवार नहीं चाहता था कि मैं दिल्ली लौटूं. उन्हें मेरी गरीबी भी मंजूर थी. लेकिन मुझे दिल्ली लौटने में ही सुरक्षा दीखती थी, इसलिए मैं लौटने को मजबूर था. बहरहाल, एक हथ-रिक्शा में

ही सारा सामान समा गया था. सामान था भी क्या? मुश्किल से एक सूटकेस और एक छोटा-सा बिस्तर. बस! रिक्शा में बैठा तो मन में एक कहानी चलने लगी जो गाड़ी में बराबर चलती रही. दिल्ली पहुंच कर मैं सबसे पहले उससे ही निबटा. वह एक तरह से मेरी पहली कहानी थी–'**जीवन का सार**'. यह १९५३ की बात है.

दिल्ली में मैं अपनी बड़ी बहनों के पास ही रहता था, पर कुछ भी न होने का एहसास मुझे बराबर कुतरता रहता. अब यह जरूर था कि दोनों वक्त की रोटी मिल जाती थी (कमा कर नहीं), पर शर्मिंदगी मेरा साथ न छोड़ती थी. जाने कब पिता जी अपनी साइकल दिल्ली में छोड़ गये थे, जिसका मैं अब भरपूर इस्तेमाल करता. हर रोज बीस-पच्चीस मील का चक्कर लगाना हस्बे-मामूल बन गया था. अगर कहीं कोई काम मिलता भी तो एक-आध महीने के लिए, इससे ज्यादा नहीं.

यहां मुझे एक प्रसंग याद आ रहा है. बहनोई के घर में उनके बड़े भाई भी आ गये थे. वह बहनोई पर बाप जैसा हक जमाते थे. मेरा वहां रहना उन्हें बिल्कुल गवारा नहीं था. साथ में उनके एक दूर के रिश्ते की उनकी बहन भी थी. एक दिन मैं साइकल पर चक्कर लगा कर पसीने से तर-बतर लौटा तो वह बहन बोली––ऐनक ला (उतार) छड (छोड़). अक्खां नूं हवा लग्गन दे. उसका इससे अभिप्राय असल में यह था कि मैं चश्मा उतारूंगा, तो बिल्कुल अंधा हो जाऊंगा. इन लोगों के अनुसार मेरे चश्मा लगा होना तथा मेरा नौकरी न करना मेरे बहुत बड़े दोष थे, और इसी कारण बिरादरी वाले मुझे अपनी लड़की देते हिचकते थे. (पहले वाला रिश्ता अब तक टूट चुका था.)

उसी रात शायद बहनोई के भाई ने दूध मांगा. दूध शायद बिल्ली पी गयी थी. इस बात का पता चलने पर वह तुरंत बोले––मुझे पता है कौन कुत्ते-बिल्लियां दूध पीते हैं! उनका इशारा स्पष्ट ही था. इसलिए मुझे सुबह ही कहीं और इंतजाम करना पड़ा.

इस बीच मैंने काफी जद्दोजहद की थी, लेकिन धीरे-धीरे मैं काफी छपने लगा था. अज्ञेय उन दिनों '**थॉट**' के साहित्य-संपादक थे. रामसिंह ('**थॉट**' के संपादक) ने मुझे उन दिनों की साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित मुख्य कृतियों की हर महीने समीक्षा तैयार करने को कहा था, पर अज्ञेय ने उसे आगे न बढ़ने दिया.

★ ★

लेकिन अब मैं क्या हूं? यह एक बड़ा मार्मिक प्रश्न है. कहने को मेरे दो कहानी-संग्रह, एक लघु उपन्यास और दो-तीन अनुवाद - पुस्तकें छप चुकी हैं, अनेक पत्र-पत्रिकाओं में चर्चित भी रहा हूं. ढेरों पाठकों की आत्मीयता भी प्राप्त कर चुका हूं, पर फिर भी लगता है कि मंजिल अभी मीलों दूर है. कभी-कभी तो ऐसा भी लगता है कि जहां से शुरू किया था, वहां पहुंच गये हैं. मेरे कुछ-एक लेखक बंधु हैं और वे मामूली आदमी की चिंताओं से दूर भागते रहते हैं. कुछ-एक मामूली आदमी की बात करते हैं, पर उनके लिए एक मामूली आदमी वह प्राणी है जो अनिवार्य रूप से झोपड़ी में रहता हो–यानी वे बाकी के 'अनप्रिविलेज्ड' वर्ग से आंखें मूंद लेना चाहते हैं. कुछ ऐसे भी हैं जो और कुछ नहीं तो 'काउंटर वर्ल्ड' (प्रति संसार) की दुहाई देते हैं. लेकिन यह सब सच्चाई से मुंह मोड़ना है, या एक नकाब के बाद दूसरा नकाब पहनना है. उन्हें मेरे फ्लैट से चिढ़ है. उन्हें मेरे स्कूटर से भी चिढ़ थी (उसे तो कर्ज चुकाने के लिए बेचना पड़ा.) उन्हें मेरा फ्रिज, कूलर, सोफा सेट, पलंग, स्टील की अलमारी, सभी कुछ खलते हैं. डाइनिंग टेबल, राइटिंग टेबल भी उन्हें आभिजात्य के प्रतीक लगते हैं. उनके शब्दों में मैं यों ही घुटन और 'बदहवासी' की दुनिया में रहता हूं! लेकिन क्या ये चीजें हम सब के पास नहीं होनी चाहिए? क्या मैं अपनी यह तथाकथित संपन्नता किसी तरह अपनी झोपड़ी में रहने वाले देशवासियों के साथ बांट सकता हूं? वैसे ये सब सामान कभी-कभी विसंगत भी लगता है. जैसे-डाइनिंग टेबल है, पर उस पर बैठ कर खाने लायक खाना नहीं. कूलर है, पर पॉवर का खर्च बरदाश्त करने की ताब नहीं...

मामूली आदमी को दूसरी तरह परिभाषित करने वाले अतिवादियों के लिए मैं एक संपन्न व्यक्ति हूं. तनख्वाह कट-कटा कर मिलती ही क्या है? जो मिलती है, दो-चार बिल चुकाने में ही हवा हो जाती है. तब हर महीने कुछ-न कुछ चालाकी से काम लेना होता है––इस महीने उसके रोके, दूसरे महीने दूसरे के. एतबार बना हुआ है, इसलिए किसी-न किसी तरह चल जाता है. पर कई बार उलाहना भी मिल जाता है––चलो, हम तो एक महीना और इंतजार कर लेंगे, पर मुश्किल तो अगले महीने आपको आयेगी! वाकई, बनिया ठीक कहता है. घर पहनने के लिए अपने एक ही पाजामे से चला लेता हूं, पर बच्चे की स्कूल-ड्रेस तो बनवानी ही पड़ेगी. नहीं बनवा पाते तो सिर पर आफत-सी मंडराने लगती है. और यह आफत तब और भयावनी हो जाती है, जब उनके जूते फटते हैं. तीन बच्चे, तीनों स्कूल जाने वाले. उधर फगवाड़ा में मां और साथ में एक बहन. (पिता जी का देहांत हुए तेरह-चौदह वर्ष हो गये.) उन्हें कुछ नहीं भेजें तो लगता है जैसे कोई जुर्म कर रहे हों.

लेकिन ये मेरी व्यक्तिगत मजबूरियां नहीं हैं. मेरी ये मजबूरियां साझी हैं. यह एक आम आदमी की मजबूरियां हैं. मैं जानता हूं सच और झूठ के बीच अब भेद कर पाना बहुत कठिन हो गया है. मैं यह भी जानता हूं कि तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर हमारे सामने पेश करना एक कला बन गया है, लेकिन स्थितियों से जूझना आम आदमी की नियति है और उसे हम झेले जा रहे हैं.

नहीं, मेरी गर्दिश खत्म नहीं हुई. शायद यह कभी खत्म होगी भी नहीं, क्योंकि मेरी सृजनशीलता भी इस गर्दिश से जुड़ी हुई है. दरअसल, मैंने जो कुछ पाया है, इस गर्दिश में से ही पाया है. □□□

• नरेंद्र सक्सेना

टुकड़ा-टुकड़ा मौत

• योगेंद्र दत्त

मेरा खयाल है, आप उसे जानते होंगे. हो सकता है, आप उसे उसी नाम से न जानते हों, जिससे मैं जानता हूं. बहुत मुमकिन है कि वह आपके कस्बे अथवा शहर में अपना नाम बदल कर रहता हो. शायद आप उसे रोशन, आतम, बिसनू, सम्मन अथवा ऐसे ही किसी नाम से पुकारते हों. हमारे शहर के लोग उसे मुसद्दी के नाम से जानते हैं.

वह राज-मजदूरी का थोड़ा-बहुत काम जानता था. किसी बड़े राज के साथ वह बेलदारी का काम भी कर लेता था. इसके अलावा वह कभी गुब्बारे बेचते, कभी मूंगफली, गजक, रेवड़ी का खोमचा लगाते हुए पाया जाता था. गरज यह कि वह कोई भी काम मुस्तकिल तौर पर नहीं करता था. इसके बावजूद वह राज-मजदूरी का काम करते अक्सर देखा जाता था.

उससे मेरी जान-पहचान लगभग पांच साल पहले हुई थी. यों कोई खास जान-पहचान भी नहीं थी. बस यों ही अपने मकान की मरम्मत के सिलसिले में पिछले पांच सालों में कोई पांच-छह बार उससे मिलता रहा हूं. इन मुलाकातों के अलावा भी करीब दो-तीन बार मैं उससे बाजार में सैर करते वक्त मिला हूं.

खैर, ये सब बातें अवांतर हैं. दरअसल, मैं उसके बारे में अपनी सारी जानकारियां देने का लोभ इसलिए संवरण नहीं कर पा रहा हूं, कि उससे मेरा संबंध अनजाने ही किसी खास किस्म की संवेदना पर आकर टिक गया था.

हुआ यह कि आज से लगभग पांच साल पहले हमारे मकान की छत, बारिश के दिनों में छलनी होकर चूने लगी थी और एक दिन किसी विपदा की गाज की तरह धड़ाम से नीचे आ गिरी थी. मैं एक ऐसे मजदूर की तलाश में था जो सस्ते में छत का काम निबटा दे. मास्टर होने के नाते इक्नामिकल होने की मेरी अपनी विवशता थी. मुझे अधिक तलाश नहीं करना पड़ा. हाट में वह अकेला ही रह गया था. अन्य मजदूरों को शायद काम मिल गया था और वे जा चुके थे.

--क्यों भई, कुछ काम करोगे मरम्मत का? मैंने उससे पूछा.

--वाह बाबूजी, काम करना तो म्हारा पेशा ही है. मजूरी नीं करें तो पेट कहां शै भरेगा? तम काम बोलो! बड़ी बेबाकी से उसने उत्तर दिया.

उसकी बात से मैं बुरी तरह झेंप गया, लेकिन जल्दी ही स्थिति को संभाल गया.

मैं उसे अपने घर ले आया.

--यह काम कब तक निबट सकता है? टूटी छत दिखाते हुए मैंने पूछा.

--बश, शाम लौं ही निबट लेगा, उसने बड़े इत्मीनान से कहा और बीड़ी सुलगाने लगा.

--तुम्हारा नाम क्या है?

--मुशद्दी कह देवै जी! 'स' को 'श' कहना उसकी आदत थी, यह उससे थोड़ी-सी बातचीत के बाद ही मुझे मालूम हो गया था.

--शिलीमन्ट-रेत्ता (सीमेंन्ट-रेता) तो होंगे ही, उसने पूछा.

--हां-हां सब लाकर रख दिया है. काम शुरू कर दो.

इसके बाद वह काम में जुट गया.

रात के दस बजे के करीब छत बनकर तैयार हो गयी. हाथ-मुंह धोकर उसने बड़ी बेतकल्लुफी से रोटी मांग ली. मेरी पत्नी को यह बात नागवार गुजरी, वह नाक-भौं सिकोड़ने लगी. एक तरफ ले जा कर उसने मेरे कान में कहा—इसकी मजदूरी तो दे दी, अब रोटी किस बात की? और फिर दिन में तो दे ही दी थी. अब रात की रोटी भी मांग रहा है. अच्छा धंधा रहा यह तो! यहां कोई खैरात बंट रही है क्या?

उसने शायद मेरी पत्नी की बात भांप ली थी. उसकी ओर संबोधित होते हुए वह बोला—बीबीजी, घर में मैं और मेरी मां हैं. मेरी शादी तो हुई नीं. बुढ़िया पै तो रोटी पोई नीं जातीं. मुझे ही पोनी पड़ैं. ग्यारह बजे लौं पहुंचूंगा तो बड़ी मुश्किल हो जागी. यहां कुछ खा लूंगा तो बुढ़िया के लिओं डबल रोटी ले जाऊंगा.

थोड़ी-सी न-नुच के बाद मेरी पत्नी ने उसे खाना दे दिया. खाना खा कर वह चला गया.

बाजार से गुजरते हुए किसी की आवाज सुनकर मैं ठिठक गया. मुड़कर देखा, मुसद्दी था. मेरे नजदीक आकर उसने उसी आवाज में 'नमस्ते बाबूजी' कहा और हाथ जोड़ कर होठों पर भीगी हुई मुस्कराहट बिखेरते हुए बोला-----पिछाना नीं बाबूजी, आपकी छत्त डाली थी मैंने, उसके हाथ अभी तक जुड़े हुए थे.

--पहचान लिया, भई! मुसद्दी हो न! कहो, अभी शादी-वादी हुई या नहीं?

--एक पहाड़न कर लाया हूं बाबूजी! रोटी-वोटी का तनक आराम हो गया है!

--अच्छा कब?

--चारेक महिने हो गये, जी! उसके चेहरे पर चमक आ गयी.

--चलो अच्छा हुआ! कहकर मैंने जेब से सिगरेट निकाल कर उसे पिलायी और आगे बढ़ गया.

उसके बाद कई दिनों तक उससे मेरी कोई मुलाकात नहीं हुई.

अगले साल जब बरसात का मौसम शुरू हुआ, तो वह नयी बनी छत फिर चूने लगी. इसी सिलसिले में हाट में मुसद्दी को देखने गया, मगर वह मिला नहीं. वहां खड़े एक-दो लोगों से उसके घर के बारे में मालूम किया. जब मैं उसके घर पहुंचा, वह खाना बना रहा था. मुझे देखते ही वह तपाक से उठा और अपने पुराने अंदाज में 'नमश्ते बाबूजी' कहते हुए बोरी उठा लाया और जमीन पर बिछाते हुए बोला--बैठो बाबूजी!

--नहीं-नहीं, बस ऐसे ही ठीक है.

--हां जी, कुर्सी पै बैठने वाले बोरी पै क्यूं बैठने लगे भला!

--लो भई, बैठ जाता हूं! अपनी झेंप मिटाते हुए मैं बोरी पर बैठ गया

--रोटी खा लो बाबूजी, गरम-गरम! वह अपने अतिथि-सत्कार का परिचय देते हुए बोला.

--खाओ भई! क्यों आज खुद ही खाना बना रहे हो? तुम्हारी घर वाली कहां चली गयी?

मेरी बात सुन कर वह उदास हो गया. उसकी आंखों में अजीब-सा दैन्य तैर आया. फिर अचानक ही उस दैन्य को झाड़ते हुए वह इधर-उधर देखने लगा. अपनी आवाज को किसी अंधे कुंए से निकालते हुए बोला--बाबूजी, शब कर्मों के लेखे हैं. वो पहाड़न तो भाग गयी. एक लड़की हुई थी, उशे यहीं छोड़ गयी. मेरे पीछे घर के शगले बर्तन-भांडे उठा ले गयी. या लड़की की देख-भाल भी मेरे ही जिम्मे आ गयी. बुढ़िया पै तो कुछ काम-धाम होता ही नहीं नीं, कहकर वह चुप हो गया, एक उखड़ी हुई मुस्कराहट उसके चेहरे पर उभरी और झुर्रियों में धंस गयी.

--ओफ्फो.लेकिन मुसद्दी इससे तो तुम्हारे काम पर भी असर पड़ रहा होगा !

--हां, महिने में दश-पंद्रह दिन काम कर लूं, बाकी का भगवान मालिक! उसने बड़ा अजीब-सा चेहरा बना कर एक ओर लटका दिया.

छत के बारे में बात करने की हिम्मत मुझमें नहीं रह गयी थी. थोड़ी देर यूं ही बैठे रहने के बाद मैं उठ खड़ा हुआ.

--अच्छा मुसद्दी, अब चलूं!

--अरे बैठो तो थोड़ी देर! आज कैशे तकलीफ की? रोटी सेंकते हुए वह बोला.

--यूं ही, इधर से गुजर रहा था. सोचा तुमसे मिलता चलूं.

--और कोई खिदमत? उसके हाथ फिर जुड़ गये.

उसकी बात का कोई उत्तर दिये बिना ही मैं घर लौट आया.

हमारे पडोस में ही बन रहे एक मकान में उसे बेलदारी का काम मिला. मकान बनने के दौरान वह दो-तीन बार मिलने आया. उसका स्वास्थ्य निरंतर गिरता जा रहा था. उसके चेहरे की झुर्रियां गहरी होती जा रही थीं. आंखें गड्ढे में धंसती चली जा रही थीं. मकान अभी अधूरा ही बन पाया था, एक दिन सुना कि काम में सुस्ती दिखाने की वजह से ठेकेदार ने मुसद्दी की छुट्टी करदी.

फिर बाजार से गुजरते हुए दो-तीन बार उसे मूंगफली की ठेली लगाये देखा. उसके बाद एक दिन उसे सड़क के किनारे पटरी पर गजक, रेवड़ी और बच्चों के लिए मिठाई की गोलियां इत्यादि लगाये देखा. मैं उसके पास गया.

--कहो मुसद्दी, तुम्हारी उस ठेली का क्या हुआ?

एक नंगी विवशता उसके चेहरे पर नमूदार हो आयी. बढ़ी हुई दाढ़ी की फुनगियों पर दर्द रेंगने लगा.

--बाबूजी, ठेली का किराया जुटाता या अपना पेट पालता? एक रूपा रोज का किराया कहां से लाता? ठेली वाला अपनी ठेली ले गया और मेरी मूंगफलियां भी. मां की हंशली (हंसुली) बेचकर ये गज्जक, रेवड़ियों का खोमचा लगाया है. गरीब का जीना भी कोई जीना है, बाबूजी? इश्शे तो अच्छा, रामजी उठा ही लें!

उसकी हालत पर तरस खाकर कुछ सौदा मैंने ले लिया. पैसे देने लगा तो वह बोला--अजी रहने भी दो बाबूजी! बच्चे ही तो खायेंगे, जैशे आपके, वैशे मेरे!

मैंने दो का नोट जबरन उसके हाथ में रखा और चल दिया.

* *

करीब एक महीने के बाद वह मेरे घर आया और चार रुपये मांगने लगा. मैंने कारण पूछा तो बोला--बाबूजी कुछ गुंडे खोमचा उठाकर ले गये. छै रुपै का जुगाड़ तो हो गया, चार रुपै और चाहियें.

चार रुपये देकर उसे विदा किया.

लेकिन चैन उसके भाग्य में शायद था ही नहीं. कुछ लोगों की जिंदगी हमेशा घिसटते रहने के लिए ही होती है. मुसद्दी उन लोगों में से था, जिनकी जिंदगी में मौत के कई पड़ाव होते हैं, मौत जिन्हें एक झटके के साथ नहीं आती, तरसा-तरसा कर आती है. लोहूलुहान आदमी की टुकड़ा-टुकड़ा मौत जिंदगी का अभिन्न अंग बन जाती है.

मैं अपने कालेज के ग्राउंड में अन्य अध्यापकों के साथ धूप सेंक रहा था कि जमीन पर लाठी पड़ने

की जोरदार आवाज से चौंककर सिर उठाया. लाठी लिये मुसद्दी खड़ा था. उसके कंधे पर एक लड़की बैठी थी. उसके सारे कपड़े फटे हुए थे--यहां शै हटो, शाले ये हमारी जमीन है, मुसद्दी हमसे कह रहा था. वह विक्षिप्त हो चुका था. उसने एक-दो बार लाठी जमीन पर पटकी और चल दिया. मेरा मन हुआ, उसे रोकूं, लेकिन न जाने क्या सोचकर चुपचाप अपनी कुर्सी पर ही बैठा रहा.

--शाले आ जाते है धकियाने! तुम्हारे बाप की जमीन है? भागो, यहां कोई खोमचा नहीं है. उसके बड़बड़ाने की आवाज मेरे कानों से अभी तक टकरा रही थी. उसके विक्षिप्त हो जाने का कारण जल्दी ही स्पष्ट हो गया.

मेरे एक साथी गुप्ता आजकल उसी मुहल्ले में रहने लगे हैं जिसमें मुसद्दी रहता था. एक दिन उनके घर गया तो रास्ते में एक और हादसा हुआ जिसने मेरे दिमाग को झनझना दिया.

एक निहायत ही दुबला-पतला आदमी अपनी दोनों कुहनियां पेट में धंसाये, हाथ जोड़े, सिर लटकाये सड़क के एक तरफ उकडूं बैठा था. उसका चेहरा पिचके गुब्बारे की शक्ल में बहुत ही बेहूदा और भयानक मालूम होता था, जिस पर बालों का चितकबरा झंखाड़ था. उसकी बदहवास संवेदनशून्य आंखों में भीगा हुआ दैन्य था. कपड़े फटे हुए और मैले थे. उसके दांत बहुत छीदे और पीली चिपचिपाहट लपेटे हुए घिनौनेपन को बढ़ा रहे थे. सिर के रूखे बाल मूंज-से लगते थे. कमजोर टांगें आबनूस की छीपटी की तरह काली और पतली थीं.

उसके चारों तरफ बच्चों की भीड़ जमा थी. वह पागल नहीं था, क्योंकि न तो वह किसी को गाली दे रहा था और न ही पास पड़े ईंट पत्थर उठाकर किसी पर मार रहा था. आवाज के नाम पर उसके पास केवल फुसफुसाहट भर थी.

काफी देर तक उसे देखता रहा. उसकी शक्ल में से कोई परिचित चेहरा उभर रहा था. बहुत कोशिश के बाद भी वह परिचित चेहरा मेरी चेतना पर अपनी कोई पहचान अंकित नहीं कर सका. आखिर उस दृश्य को झटका देकर मैं गुप्ता के घर चल दिया.

रास्ते में मुसद्दी का घर पड़ा जिसके बाहर ताला लटक रहा था. सहसा मुसद्दी का चेहरा मेरी चेतना में उभरा और सड़क पर बैठे उस आदमी के चेहरे से टकरा कर गड्ड-मड्ड होता हुआ एक निश्चित आकृति लेकर कौंधने लगा. तो क्या बाहर बैठा आदमी मुसद्दी ही है, मैंने सोचा.

गुप्ता के यहां पहुंच कर मालूम हुआ कि वह आदमी मुसद्दी ही था.

--तुम इसे जानते हो? गुप्ता ने पूछा.

--हां. . .ऽ, कई बार मिला हूं. मैंने जवाब दिया.

--फिर तो तुम उस हादसे को भी जानते होंगे, जो इसके साथ गुजरा है.

--कैसा हादसा? हां, पिछले दिनों विक्षिप्त हो गया था, मगर ऐसी कोई गंभीर बात तो नहीं थी.

--विक्षिप्त होने के बाद तो ठीक भी हो गया था, उसके बाद का नहीं मालूम?

--नहीं तो, क्या बात हुई?

--होना क्या था! गरीबी जो करा ले, वही ठीक है. घर में पैसा तो था नहीं. कुछ काम-धाम भी नहीं था. पैसे के लालच में यह ब्लड-बैंक में अपना खून दे आया. शरीर में दम तो पहले ही नहीं था, तिस पर अपना खून और निकलवा दिया. बस तभी से ऐसा है. खड़ा भी नहीं हुआ जाता, कमर झुक गयी है. बस यों ही बैठा रहता है.

--लेकिन उसकी मां और बेटी भी तो थीं, उनका क्या हुआ? मैंने पूछा.

--बुढ़िया उस लड़की को लेकर मांगने निकल जाती है. जो कुछ मिलता है, उसमें से थोड़ा-बहुत इसे भी दे देती है. कभी-कभार मुहल्ले वाले भी कुछ खाने को दे देते हैं.

गुप्ता की बात सुनकर मैं भीतर तक सहम गया.

* *

आज सुबह मुसद्दी के मरने की खबर मिली है. सोचा था, कालेज जाते हुए उसके अंतिम दर्शन करूंगा, लेकिन कर नहीं पाया. शाम को लौटते हुए उधर से गुजरा, तो सड़क साफ मिली. सड़क को धो दिया गया था. मालूम हुआ, रात को उसे खूनी कै हुई थी, जिसके उसका मृत शरीर भी औंधा हो गया. सुबह लोगों ने देखा, उस पर मक्खियां भिनक रही थीं. कमेटी वाले सुबह ही उसे उठा कर ले गये थे. सड़क को इसीलिए धोया गया था.

रात को खाना खाने बैठा, खाया नहीं गया. उठ खड़ा हुआ. मेरी पत्नी हैरत से देखती रही. उसने पूछना चाहा, मगर मुझे चुप देख कर कुछ नहीं बोली.

इस वक्त रात के ग्यारह बजे हैं मैं लेट गया हूं. करवटें बदलने के बावजूद नींद नहीं आ रही. आंखें मींचता हूं तो मुसद्दी का घिघियाता चेहरा सामने आकर ठहर जाता है और फीकी-सी हंसी फेंकता हुआ कहता है--

गरीब का जीना भी कोई जीना है, बाबूजी! इश्शे तो अच्छा, राम जी उठा ही लें.

मैं चौंक कर उठ बैठा हूं. मुझे लग रहा है, मुसद्दी अभी मरा नहीं है. मौत के पिछले पड़ावों की तरह शायद यह भी एक पड़ाव हो. यह भी तो संभव है कि वह नाम बदल कर इसी अथवा किसी दूसरे शहर में रहने लगा हो. □□□

१६१, मुहल्ला कन्हैयालाल,
गाजियाबाद (मेरठ)

फरिश्ते की मौत

• मनीषराय यादव

आज से मैं पत्रकारिता छोड़ रहा हूं. पिछले १५ वर्ष इस पेशे में गुजारे. जाने कितने उतार-चढ़ाव देखे कभी सच लिखा, कभी तिल को ताड़ बनाया. पर आज आखिरी बार आपसे कुछ नहीं छुपाऊंगा. जो कुछ लिखूंगा सच लिखूंगा, और सच के सिवाय कुछ नहीं लिखूंगा.

आज मैं जिस स्थिति में हूं, आपसे छुपा नहीं है. एक निजी प्रेस, बंगला, कार यह अटूट मान-सम्मान, यह सब इस पत्रकारिता के कारण है. जिस पेशे ने इतना दिया हो, उसे छोड़ते कितना दुख होगा, पर मृतक महेंद्रनाथ की डायरी ने मुझे यह पेशा छोड़ने पर मजबूर कर दिया है. डायरी ने मेरी आंखें खोल दी हैं.

पत्रकारिता के क्षेत्र में मैं अनायास ही आ गया था. कभी सोचा भी नहीं था कि यह पेशा मुझे इतना मान-सम्मान और पैसा देगा, उस समय तो सोचने जैसी स्थिति में भी नहीं था. बी. ए. करने के बाद दो वर्ष की बेकारी ने मुझे मजबूरन निडर बना दिया था. मैं तब कोई 'रिस्क' लेने से नहीं डरता था. 'मरता क्या-क्या न करता', की स्थिति थी. तभी अनायास मेरी मुलाकात एक प्रतिष्ठित पत्र के संपादक से हो गयी थी. बातचीत के दौरान वह मुझसे प्रभावित हो गये थे और मुझे अपने पत्र का संवाददाता बना दिया था. उत्साह तो था ही. मैंने बड़े-बड़े रहस्योद्घाटन किये. जनता की प्रशंसा, शुभ-कामनाएं अर्जित कीं. भ्रष्ट अधिकारी, मुनाफाखोर व्यापारी मेरे नाम से कांपते थे. वैसे कई से मेरा 'मंथली' हिसाब तय था, जिस माह जिसका हिस्सा नहीं आता, वह शहर के गली-चौराहों पर नंगा हो जाता था.

★ ★

जिन दिनों जिलाधीश महेंद्रनाथ की पोस्टिंग मेरे जिले में हुई थी, जिले में मेरी धाक जम चुकी थी. झुग्गी-झोंपड़ी से उठ कर मैं सरकारी बंगले में आ गया था. सरकारी कोटे से स्कूटर भी मिल गया था. तभी दो-तीन कमाऊ मामले हाथ आ गये थे और मैं लगे हाथ अपना प्रेस डालने के चक्कर में था.

महेंद्रनाथ ने जिले में आते ही तहलका मचा दिया था. उसके चर्चे बिना अखबारी पब्लिसिटी के लोगों की जबान पर थे—आज कलेक्टर साब देहाती बन कर, राशन की लाइन में खड़े हो गये. डीलर ने जब सदा की तरह कम तौला तो उसे जेल में भेज दिया गया. कभी सुनाई पड़ता, आज वह थाने में रात के समय ऊंघते पहरेदारों की बंदूकें उठा कर ले गये और जब पहरेदार बंदूकें लेने गये तो उनकी ड्रेस उतरवाली. आज फलां व्यापारी के यहां छापा पड़ा. आज फलां अधिकारी रिश्वत लेते पकड़ा गया. जितनी जबान उतने किस्से. इन सबका नतीजा यह हुआ कि जिले में आवश्यक वस्तुओं के भाव गिरने लगे थे, सरकारी काम धड़ाके से चलने लगा था. भेंट-पूजा पर बहुत कुछ अंकुश लग गया था. मेरा धंधा भी चौपट हो गया था.

और उन्हीं दिनों जब मुझे महेंद्रनाथ का बुलावा मिला तो मैं अंदर-ही-अंदर दहशत से भर गया था. मुझे अच्छी तरह याद है. वे ठंड के दिन थे. मुझे नौ बजे महेंद्रनाथ से मिलने जाना था पर मैं सात बजे ही उनके बंगले पर पहुंच गया था. सोचा था सात बजे ही जा कर बंगले पर हाजिरी लगा आऊंगा. कहने को हो जायेगा कि उनके आदेश का पालन कर दिया है वैसे सही बात यह थी कि मैं उनसे मिलना नहीं चाहता था.

मैं जिस समय बंगले पर पहुंचा, सुबह की खुशनुमा हलकी धूप निकल आयी थी. मुझे फाटक पर चौकीदार को आवाज देने की जरूरत नहीं पड़ी थी. फाटक खुला हुआ था और पट्टे का पैजामा पहने एक नवयुवक बगीचे में पानी दे रहा था.

मैंने उस नवयुवक को पुकारा था—सुनो भाई माली, मैं कलेक्टर साब से मिलना चाहता हूं. पर वे अभी आराम कर रहे होंगे. उन्हें जगाने की जरूरत नहीं है. कह देना सुधीर वर्मा पत्रकार आये थे मिलने, मैं एक सांस में कह कर लौटने ही वाला था कि यह सुन कर—मैं हूं महेंद्रनाथ, आप नौ बजे की बजाय सात बजे कैसे आ गये? मुझे ठंड में भी पसीना आ गया. उन्होंने मुझे घबराहट से उबार लिया था—खैर, कोई बात नहीं, आप बैठिए मैं अभी आया. वह अंदर चले गये मुझे ज्यादा इंतजार नहीं करना पड़ा. वह कपड़े बदल कर जल्दी आ गये थे. तब भी उन्होंने मुझे बोलने का अवसर नहीं दिया था. उन्होंने इतना ही कहा था—देखिए मिस्टर वर्मा, आप बहुत लूट चुके. आपकी हिस्ट्री शीट बन चुकी है. आप अपनी हरकतें सुधार लीजिए. अन्यथा मुझे आपको सुधारना पड़ेगा. अब आप जा सकते हैं.

इसके बाद जो कुछ हुआ आप सब जानते ही हैं. मैंने उन्हें अखबारों में उछालने की कोशिश की. उनके लिए नुक्कड़ सभाएं कीं. उनकी गुमनाम शिकायतें कीं. पर जाने वह किस मिट्टी के बने हुए थे. उन पर कोई असर ही नहीं हुआ. मैंने भी ठान लिया कि जब तक इनका बोरिया-बिस्तर नहीं बंधवा दूंगा, चैन से नहीं बैठूंगा. भले ही बाद में जेल में क्यों न सड़ना पड़े. तभी एक दिन फिर उनका बुलावा आया था, जिसके लिए संभवतः मैं तैयार बैठा था. जाते समय मैं घर के लिए पूरी व्यवस्था करके गया. पत्नी से बोल कर गया कि अब मैं साल-दो साल शायद ही लौट सकूं.

इस बार भी उन्होंने मुझे बोलने का अवसर नहीं देते हुए कहा था—मिस्टर वर्मा, जिस अधिकारी की जड़ें जनता में हों और जिसे अपने काम पर भरोसा हो, उसे तुम जैसे टुटपुंजिये पत्रकार नहीं उखाड़ सकते. मुझे एक बात की जरूर खुशी हुई कि तुमने पहली मुलाकात से अब तक सिवाय मेरे ऊपर कीचड़ उछालने

के और कोई गलत काम नहीं किया है. मुझे और खुशी होती यदि तुम सचमुच मेरी कमजोरियां जनता के सामने रखते, जिससे संभवत: मैं सुधर सकता, तुम्हें ईश्वर ने कलम दी है, संवेदनशील हृदय दिया है. जाओ, इसका सदुपयोग करो.

मैं एक शब्द भी नहीं बोल पाया था पर मेरा मन जानता है उस दिन से मैं बिल्कुल बदल गया. मानव स्वभाव भी अजीब इंद्रजाल है, जब कोई शक्ति से झुकाना चाहता है तो झुकता नहीं और सहानुभूति के आगे पानी की तरह बहने लगता है.

इसके बाद महेंद्रनाथ के बंगले पर जाने का काम ही नहीं पड़ा. वैसे मैं लोगों से सुना करता था कि वह मेरा प्रशंसक बन गया है उसने मुझे एक जन समिति का अध्यक्ष भी बना दिया था पर इसके लिए भी मैं धन्यवाद देने नहीं गया.

एक दिन अचानक महेंद्रनाथ के 'एक्सीडेंट' का समाचार जिले भर में आग की तरह फैल गया. इतनी उथल-पुथल मैंने इस जिला मुख्यालय में कभी नहीं देखी. इतनी सरगर्मी, जैसे भूकंप आ गया हो. महेंद्रनाथ के बंगले में विशाल जन समुदाय उमड़ पड़ा है. सबकी आंखों में तरह-तरह के प्रश्न उभर रहे हैं. यह कैसे हुआ? क्यों हुआ? मैं भी उस भीड़ में सम्मिलित हूं.

तभी एंबूलेंस आ गयी.

मैं अपने आपको नहीं रोक पाता. बाहर बैठे एस. पी. से महेंद्रनाथ से मिलने की इजाजत ले कर अंदर जाता हूं. महेंद्रनाथ लेटे हुए हैं. पैरों में पट्टियां बंधी हैं. सिर पर भी चोट के निशान हैं. पर चेहरे पर वैसी ही ताजगी है जैसी मैंने पहले दिन देखी थी. मुझे देखते ही कहते हैं—आइए वर्मा जी...

—यह सब कैसे हो गया सर?

—अच्छा, अखबार के लिए न्यूज बटोरने आये हैं? वह वातावरण को हलका करने के खयाल से कहते हैं.

—मुझे गलत मत समझिए सर. दूसरी मुलाकात के बाद से मैं बिल्कुल बदल गया हूं. आप नहीं जानते, मैं आपकी कितनी इज्जत करने लगा हूं?

—जानता हूं भाई, इसीलिए तो मैंने तुम्हें सबके विरोध के बावजूद जन समिति का अध्यक्ष बनाया है. सुबह के भूले को रास्ते में देख कर बड़ी प्रशन्नता हुई सुधीर, महेंद्रनाथ अचानक भावुक हो कर कहते हैं.

प्यार भरे शब्दों में अपने नाम का संबोधन कितना प्यारा लगता है. मैं द्रवित हो कर कहता हूं—सर, बाहर तरह-तरह की अफवाहें हैं, लोग दबी जबान से यहां तक कह रहे हैं कि कल जिस ठेकेदार के यहां छापा डाल कर आपने १० लाख का काला धन पकड़ा है. उसके ही ट्रक से यह एक्सीडेंट हुआ है.

—मैं किसी को दोष नहीं देता, सुधीर. मैंने अपना कर्त्तव्य निभाया है. किसीने इसे व्यक्तिगत दुश्मनी समझी हो तो मैं क्या कर सकता हूं.

तभी सिविल सर्जन आ जाते हैं.—आपको बात करने के लिए मना किया गया है सर. बहुत खून निकल चुका है, आपको आराम करना चाहिए.

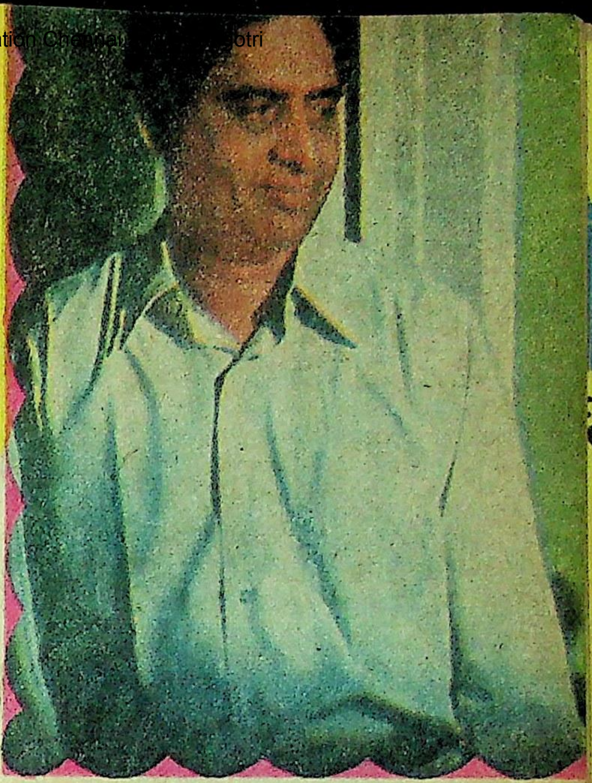

● उमेश व्यास

—अब तो जिंदगी भर आराम करना है डाक्टर, बच भी गया तो बैशाखी के सहारे इतनी धमा-चौकड़ी थोड़े ही कर पाऊंगा.

—कैसी बहकी-बहकी बातें करते हैं आप. सिविल सर्जन ने उनसे कह कर मेरी ओर देखा.

मैंने इशारा समझ कर महेंद्रनाथ से कहा—मैं निराश हो कर जा रहा हूं सर.

एक क्षण के लिए महेंद्रनाथ ध्यान मग्न हुए फिर सिरहाने से अपनी डायरी निकाल कर मुझे देते हुए कहा—जाते-जाते तुम्हें निराश नहीं करुंगा सुधीर. यह डायरी लो. इसे पढ़ लेना पर ध्यान रखना इसका दुरुपयोग न होने पाये. तुम्हें कलम के सिपाही के नाते सौंप रहा हूं, अपनी संचित निधि. शायद तुम मुझे समझ सको. मैं दुखी मन से बाहर आ गया. इसके बाद महीनों बीत गये. मैं अपनी समस्याओं में इतना व्यस्त रहा कि महेंद्रनाथ की डायरी पढ़ने का बिल्कुल समय नहीं मिला. तभी अचानक एक दिन अखबार ने चौंका दिया—लोकप्रिय जिलाधीश महेंद्र जो पिछले दिनों ट्रक एक्सीडेंट में घायल हो गये थे, उन्हें लाख प्रयत्नों के बाद भी नहीं बचाया जा सका. मेरे दिल में अजीब-सा दर्द उठा. और मैं महेद्रनाथ की डायरी में खो गया.

★ ★

१५ जनवरी.

आज यू. पी. एस. सी. का रिजल्ट निकला है. मैं आइ. ए. एस. में आ गया हूं. आज मुझे रातभर नींद नहीं आयी. जाने क्यों आंखों से आंसू बह रहे हैं, जाने कहां पढ़ा था याद नहीं. खुशी के आंसू बहुत अनमोल होते

रेज़र से त्वचा कटा कर और खूँटे से बाल उगाकर झेंपते रहिये या....

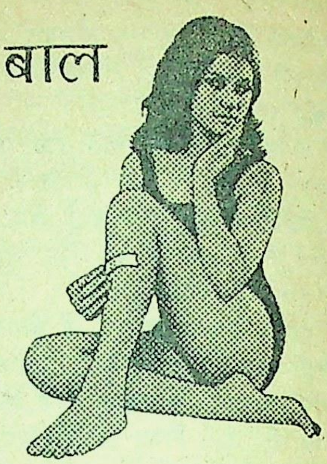

एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर से रेशम-सी कोमल त्वचा पाइए

शेविंग ? नहीं, यह तो पुरुषों के लिए है। फिर त्वचा कटने और बाल कड़े उगने का भी डर। तो ? इसके लिए एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर लगाइए। कैसे ? बिल्कुल आसान है : अनचाहे बालों पर क्रीम लगाइए, थोड़ी देर ठहरिए, फिर गीली रूई से बाँहों, बगलों और पाँवों के बालों को पोंछ डालिए। यह त्वचा के नीचे जाकर कार्य करता है। देखा, बाल ग़ायब! आपकी त्वचा हफ़्तों मुलायम! तो छोड़िए रेज़र, एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर से रेशम-सी कोमल त्वचा पाइए।

एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर

अनचाहे बालों को हटाने का मनचाहा क्रीम

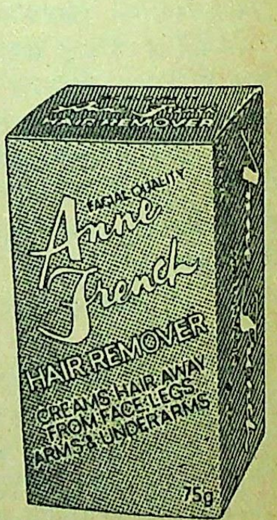
FACIAL QUALITY
Anne French
HAIR REMOVER
CREAMS HAIR AWAY FROM FACE, LEGS, ARMS & UNDERARMS
75g

दो साइज़ में सुलभ : ४० ग्रा. और ७५ ग्रा.

Licensed user of TM: Geoffrey Manners & Co. Ltd.

157 HR 203 Hin.

हैं इन्हें संजोकर रखना चाहिए. [illegible] समझ में नहीं आता. दोस्त बधाई दे रहे हैं पर मैं जल्द से जल्द पिताजी से मिलना चाहता हूं.

१७ जनवरी.

घर आ कर जैसे ही मैंने पिताजी के पैर छुए, उनकी बूढ़ी आंखें भर आयीं. वह हकलाते हुए कह रहे हैं—बेटा, काश! आज तेरी मां होतीं, कितनी तमन्नाएं थीं उसकी, तू बड़ा हो कर साहब बनेगा और . . . मुझे कुछ सुनाई नहीं पड़ता. मैं रोग ग्रसित, जर्जरित पिता को देखे जा रहा हूं. उनकी आंखों में मां की तसवीर समायी हुई है. तभी उनकी आंखें ढलक आती ह. मुझे सीने से लगा कर कहते हैं—बेटा, ईश्वर ने राजयोग दिया है. दीन दुखियों को भूलना मत. यह भी मत भूलना कि तू इन्हीं के बीच बड़ा हुआ है. मैं क्या कहूं, पिताजी का हर वाक्य मेरे लिए आदेश है.

२५ फरवरी.

आज मुझे मसूरी जाना है लोक प्रशासन संस्थान में प्रशिक्षण के लिए. अपना सामान संभाल रहा हूं. कपड़ों के नाम पर दो जोड़ी पेंट कमीज है, सुना है मसूरी में ठंड बहुत पड़ती है. देखा जायेगा. कर भी क्या सकता हूं.तभी पिताजी आ गये.उनके दाहिने हाथ में गरम सूट का कपड़ा है पर बांयें हाथ में उनकी चिर-परिचित घड़ी नहीं जो उनकी ससुराल से मिली थीं. जिसे शायद वे मां से ज्यादा चाहते थे.

—यह क्या पिताजी? मैं इतना ही कह पाता हूं.

—बेटा, अब बुढ़ापे में घड़ी की क्या जरूरत. बहुत पुरानी हो गयी थी. वैसे भी बेचना चाहता था. इससे अच्छा और कौन-सा समय हो सकता था. मसूरी में बहुत ठंड पड़ती है न, इसलिए सूट का कपड़ा ले आया.

मैं क्या कहूं. मौन में भी बहुत कुछ व्यक्त करने की कितनी ताकत होती है.

७ दिसंबर.

आज मेरी पोस्टिंग के आदेश आ गये हैं. मैं मंडला का जिलाधीश बना दिया गया हूं. मंडला बड़ी प्यारी जगह है. तीन तरफ से कल-कल करती नर्मदा. ऊंचे-ऊंचे पहाड़. विशाल वनश्री. मेरा बंगला भी रमणीक जगह पर है. कितने सारे फूल हैं बंगले में. सुबह चुपके-चुपके मोगरे के फूल चुनना, अमलताश में पानी देना, कितना अच्छा लगता है. पर दो-चार दिन पानी नहीं दे पाऊंगा इन्हें, इन्सपेक्शन में जाना है इसलिए.

२ मार्च.

आज एक अनुभव हुआ. जनता मुझे अपने आपसे अलग समझती है. मैं जानता हूं, यह कुछ लोगों का षड़यंत्र ह. वे चाहते हैं कि मैं जनता से दूर रहूं ताकि वे मध्यस्थता कर के अपना उल्लू सीधा करते रहें. पर मैं उनकी चाल सफल नहीं होने दूंगा. मैं भी तो इन्हीं के बीच बड़ा हुआ हूं विदेश से लाया अजायबघर का जानवर नहीं.

१५ मार्च.

आज कुछ तथाकथित जन प्रतिनिधियों की चालों का पर्दाफाश करने का असर यह हुआ है कि वे लोग मुझ से नाराज हो गये हैं पर मैं अपने उद्देश्य से हटूंगा नहीं, आज के छापे में कितना कालाधन मिला, बापरे बाप, मेरी तो आंखें फटी की फटी रह गयीं. क्यों बेईमानी करते हैं लोग? आखिर आदमी को चाहिए क्या? हां एक बात याद आयी. आज दो-तीन धमकी भरे पत्र मिले हैं. मुझे जान से मारने की धमकी दी गयी है. मुझे चेतावनी दी गयी है कि मैं अपना छापा मार अभियान बंद कर दूं. पर मैं इन गीदड़ धमकियों से डरने वाला नहीं हूं.

२० मार्च.

आज सुधीर वर्मा को डांटना पड़ा. वैसे उसका स्वभाव मुझे अच्छा लगा है. उसकी कविताएं मैंने पढ़ी हैं. जाने कैसे दलदल में फंस गया. शायद रास्ता बदल दे . यदि उसने रास्ता बदल दिया तो मैं उसे अपना दोस्त बनाऊंगा. कमी किसमें नहीं होती. जब समाज के मापदंड ही बदल गये हों तो उसे कैसे दोष दे सकता हूं. मुझे भी तो कुछ लोग दकियानूसी कहते हैं. न क्लब, न पार्टी, न शराब, पर मैं अपनी जगह ठीक हूं. समझने वाले चाहे जो समझें.

५ अप्रैल.

आज एल. आइ. बी. की रिपोर्ट पढ़ कर बड़ी खुशी हुई. एक नयी बात भी मालूम हुई कि जो काम डांट से नहीं हो सकता, वह प्यार से हो सकता है. दूसरी मुलाकात के बाद सुधीर कितना बदल गया है. उसने सही रास्ते पर चलने की कसम ले ली है. आज मैं बहुत खुश हूं एक भटके हुए को सही राह पर ला सका.

१५ अप्रैल.

आज सूचना मिली है कि मुरारीलाल के यहां बहुत बड़ी संख्या में कालाधन है. रिपोर्ट के अनुसार, वह बहुत खूंखार आदमी है पर डरने से काम चलेगा नहीं. यह भी रिपोर्ट मिली है कि उसीने मुझे धमकी भरा पत्र लिखा है. पिछली रिपोर्ट के आधार पर वह—हिस्ट्री सीटर है और उसका धंधा रुपये ले कर हत्याएं करना रहा है. आज सेठ बना बैठा है. यदि छापा सफल रहा तो कितना अच्छा रहेगा ? ईश्वर मुझे शक्ति दें. . .

इसके बाद की डायरी नहीं लिखी गयी है. दूसरे ही दिन उनका एक्सीडेंट हो गया था. डायरी बहुत विस्तार से लिखी गयी है पर मैं आपको कुछ अंश ही बतला पाऊंगा. मृतक महेंद्रनाथ को दिया गया वचन तो निभाना पड़ेगा. कहीं डायरी का दुरुपयोग उनके विरुद्ध ही न हो जाये. बेचारे के परिवार को पेंशन से भी हाथ धोना पड़ेगा. अन्यथा सब बातें यदि आपके सामने आतीं तो आप भी दांतों तले अंगुली दबाये बगैर नहीं रह सकते थे.

मुझे इस बात का खेद है कि कसम लेने के बाद भी मैं सब बातें आपके सामने नहीं रख सका. ऐसी पत्रकारिता से क्या लाभ जो सत्य को यथावत् उद्घाटित नहीं कर सके. इसलिए आज से पत्रकारिता छोड़ रहा रहा हूं, अब अखबारों के माध्यम से मेरी आपसे मुलाकात नहीं हो सकेगी. अलविदा. □□□

डिप्टी कलेक्टर, दमोह

कमीना

• कैलाशचंद्र

बहुत दिनों बाद अपने कस्बे लौटना हुआ था, यूं कोई उत्सुकता नहीं थी और सच कहूं कोई पुलक भरा उछाह भी मन में नहीं था. भावुक हूं नहीं और इस लिजलिजी चीज से साबका पड़ने पर साफ कतराकर निकल जाता हूं. यहां अपना पुश्तैनी मकान था, कुछ जरूरतें थीं और मकान के संदर्भ में उन जरूरतों से चंद सवालात हल होने थे, इसलिए आया था.

बस से उतरा, तो सांझ पूरी तरह घिर आयी थी. यहां कस्बे में अभी बिजली नहीं आयी थी. लारी स्टैंड की, जिसे पड़ाव कहा जाता है, दूकानों में धुंधआती लालटेनें उजिर गयी थीं. शहर की रोशनी देखते-देखते अपने पुराने कस्बे की अंधी नियत जहन से पूरी तरह उतर गयी थी. इसलिए अंधेरे की खामोशी में लिपटा यह कस्बा इतना उदास और फीका दिखा था कि मुझे कोफ्त होने लगी. मैं सोचने लगा था कि अगर रात की गाड़ी से चला होता तो पूरे दिन में अपना काम खत्म करके शाम को वापस हुआ जा सकता था, हालांकि ऐसी उम्मीद कम ही थी. क्योंकि मुझे नाटक भी करना था और एक-एक संवाद मैं अपने जहन में अच्छी तरह बिठा चुका था.

धूल की वजह से मेरे जूते बदरंग हो गये थे और मेरे आभिजात्य को ठेस लगी थी. यहां कोई होटल और लॉज भी नहीं था कि उस आभिजात्य की रक्षा कर सकता, फिर उन लोगों से संपर्क साध कर मतलब की बात भी की जा सकती थी पर ऐसी कोई सुविधा हासिल न होने की वजह से मैं धूल और मक्खियों के दस्त से चिटकी मिठाइयों की दूकान पर खड़ा हो गया था. मैंगे-से हलवाई से आधा किलो मिठाई तौलने के लिए कह, सिग्रेट सुलगा कर निष्कृति ढूंढ़ने लगा था.

एक पुराने अखबार में उसने मिठाई लपेट कर दे दी तो मुझे अपने शहर के स्वीट मार्टों के खूबसूरत डिब्बों की याद हो आयी. मन-ही-मन गालियों के कतरे उछाल कर मैंने मिठाई बैग में ठूंस ली. गलियों के बीच बहते पानी को फलांगते मैं सोच रहा था कि अब एकाध दिन मामा मामी पर मेहमानी का बोझ लाद कर उन लोगों से साफ-साफ सब कहना पड़ेगा.

★ ★

घर के पहले कमरे में, जिसे पौंर कहा जाता है. मामी, गुड्डी और सच्चू यूं पूरा नाम सच्चिदानंद है, दोनों फैले पैरों के बीच सूपा रखे बीड़ी बनाने में व्यस्त थे उनकी अंगुलियां यांत्रिक तेजी में चल रहीं थीं. पास ही पत्तियों की कतरनें फैली थीं और बीड़ी बनाने वाले पत्ते साफ अलग रखे थे.

मामी पहले तो अंधेरे की वजह से पहचान नहीं पायी फिर एकाएक आश्चर्य में डूब गयी—अरे तुम हो भइया, न चिट्ठी, न पत्री. . .वह अचकचा कर खड़ी हो गयी. मामी के आगे के दो दांत टूट गये थे. और शरीर झुलस कर काला पड़ गया था.

गुड्डी और सच्चू मेरे कपड़ों को कौतूहल से देख रहे थे. मेरे कपड़े हालांकि गंदे थे, पर उनके साफ चींथड़ों से बहुत बेहतर थे. कमरे में वही बरसों पुराना आलम बिखरा पड़ा था. एक ओर एक पलंग पड़ा था, जिसकी निवाड़ मटमैली हो कर काली पड़ गयी थी और पाये बदरंग हो गये थे. पलंग पर कंबल, पल्लेदार रजाइयां, मोटे सूत वाली दरी, चीकट तकिये, जिनके गिलाफ अरसे से बदले और धोये नहीं गये थे. गड्डमड्ड पड़े थे. एक अजीब तरह की घिन मिली बदबू उनसे उठ रही थी.

उसी कमरे में भूसे के बोरे रखे थे. सामने दीवार से लगा पुआल का विस्तर लगा था, कुछ ओढ़ने-बिछाने के कपड़े वहां भी पड़े थे. लकड़ी की संदूकें, टीन, टुटही साइकल के अस्थिपंजर, डिब्बे-डिब्बियां, चींथड़े और ईंटें जोड़ कर बनाया गया टेंपरेरी चूल्हा, उसमें भरी राख और अधजली लकड़ी के कुंडे, पास ही काला पिचका एलूमनियम का गंजा औंधा पड़ा था, जिसमें मामा का कलिया पकता था और मनोहर कहानियां पढ़ता हुआ मामा चूल्हा उकसाता रहता तथा बोटी गंजे से निकाल कर पके होने का टेस्ट मुंह से करता रहता था. गृहस्थी का पूरा जंजाल यहीं बिखरा था. .

मामी ने कुछ कपड़े इधर-उधर डाल दिये और दरी की सलवटें ठीक करने लगी. तब तक मैंने मिठाई निकाल कर सिरहाने रख दी. तब कहीं मामी को ध्यान आया, सच्चू को डांटते हुए बोली. —भइया के पांव नहीं छुए तूने.

उसने एक ललचती निगाह मिठाई पर डाली और शरमाते हुए धूल भरे बूटों को रोकते-रोकते भी छू कर वह आंगन की तरफ भाग गया.

यह किस क्लास में पढ़ता है? मैंने यूं ही पूछ लिया.

—स्कूल से उठा लिया है, पढ़ता-लिखता तो था नहीं, आवारागर्दी सीख गया था. यहां बैठ कर चार पैसे ही कमाता है, पढ़ने-लिखने से मिलता ही क्या है.

—गुड्डी के ब्याह की बात कहीं नहीं चलायी मामी?

गुड्डी इस बात से थोड़ा सकुच गयी, पर मामी की बात से तिलमिला कर रह गयी. चलायें कहां से भइया, पेट के घातम में तो सब घुस जाता है, कुछ बचता ही नहीं. तुम्हारे मामा की कमाई तो सब दारू में चली जाती है. . .मामी का स्वर एकदम सपाट था, उस स्वर में न तो कोई तलखी थी और न यातना का कोई पुट. स्थितियों के सहज स्वीकार की तीखी प्रतिध्वनि अवश्य सुनाई देती थी.

—कमला कैसी है, बाल-बच्चे अभी हुए या नहीं?

मामी ने पूछा तो मैं विंध-सा गया. कमला से शादी करने के बाद मामा-मामी को बहुत गैर जरूरी-सा समझते हुए बाद में एक पोस्टकार्ड डाल कर सूचित कर दिया था. उत्तर में उन्होंने ढेर सारे शुभाशीर्वाद तथा अशीशें लिख कर भेजीं थीं. यह पत्र किसी तरह कमला के हाथ पड़ गया था और उसने बाद में बहुत खींचा था. दरअसल बात यह थी कि कमला के पिता जी को मैंने बताया था कि मेरे कोई रिश्तेदार वगैरह नहीं हैं. मैं मामा-मामी से कोई संबंध नहीं रखना चाहता था. हकीकत यह थी कि मैं अपने अतीत को काट कर एकदम अपने से अलग फेंक देना चाहता था. गाहे-बगाहे मुझे मामा के पत्र मिलते रहते थे. और मैं आशंका में घिर जाता था कि मुझे पालने-पोसने तथा पढ़ाने-लिखाने के एवज में मामा की कुछ मांगें होंगी, पर उन पत्रों में महज सूचनाएं होती थीं. जिनका महत्व मेरे लिए नगण्य था. मामा संबंध बनाये रखना चाहते थे और मैं उन्हें तोड़ने की फिराक में था.

बात के रुख को मोड़ देने के लिहाज से मैंने कहा—बीरू कहीं नहीं दिख रहा मामी, कहीं नौकरी वगैरह कर ली है क्या?

मामी ने एक गहरी सांस ली. स्थितियों की सर्द राख में पहली बार चिनगारी दिखी. मामी के भीतर टूटा हुआ कुछ बजा—नौकरी उसके भाग्य में नहीं लिखी भइया, वह जेल में है.

—जेल में है, क्यों?

—भीखन धोबी के लड़के के साथ गंदी हरकत करता पकड़ा गया था. हरामी ने एक किसी की नहीं सुनी, थाने में रपट लिखा दी. मामी का सर्द स्वर उड़ कर चेहरे से चिपक गया. मुझे एकाएक याद आया कि मामा ने एक चिट्ठी में इस घटना का जिक्र किया था और सिफारिश के लिए लिखा था. इस खबर को जैसे कोई अहमियत न देते हुए मैंने जवाब देना भी उचित नहीं समझा था. गनीमत यही थी कि मामी को चिट्ठी का संदर्भ याद नहीं आया था. आगे किसी प्रश्न को पूछने की स्थिति में नहीं रह गया था.

मामी और गुड्डी रसोई में चलीं गयी थीं. और काला धुआं यहां पौर में भरने लगा था. थोड़ी देर बाद गुड्डी टूटे हंडिल वाले कप में बदरंग-सी चाय थमा गयी. मैं धीरे-धीरे सिप लेने लगा.

* *

तब तक मामा हाली से लौट आया था. वह खूब पिये था. दमे का मरीज होने की वजह से हर समय उसकी सांस बजा करती थी. वह हाथ में एक छोटी-सी जुगजुगाती लालटेन पकड़े था, मुझे पहिचानने के लिए उसने वही लालटेन मेरे चेहरे तक उठा दी, फिर बोला—जीवन तुम हो, मैं समझा कोई और है, अभी चले आ रहे हो? . . .कहते-कहते वह वहीं जमीन पर बैठ गया. शायद हांफ गया था, क्योंकि वह तेजी से सांस लेने लगा था.

भीतर से मामी हांक लगायी थी—कौन आया रे? जवाब सच्चू ने दिया—बाबू आया ह.

और कोई दिन होता तो मामी का गालियों का रिकार्ड चढ़ जाता, पर आज शायद मेरी उपस्थिति के कारण वह खुद को जंब्त किये बैठी रही.

—हां शाम की गाड़ी से आया हूं. कैसे हो मामा?

मामा हंसने लगा, एक खोखली हंसी—हमारी क्या पूछते हो भइया, हर कदम पर फांका-मस्ती, हर डगर पर भटकाव. तुम सुनाओ अपनी. . .मामा कभी शायरी किया करता था. पक्का गाना गाने का शौक था, जब भी मौज में होता तो आलाप भरना शुरू कर देता था.

मामा पहले ऐसा नहीं था. वह सब-रजिस्टार था. तब वह नौकरी करता था उस वक्त आवाज में बुलंदी थी. लंबी कद-काठी और आसमान को उठीं मूंछें उसे रोबीला बनातीं थीं. उन दिनों वह मामी को ब्याह कर लाया था, मामी का रंग खिलते फूल की तरह था और उसकी सुंदरता की चर्चा पूरे मुहल्ले में हुई थी. यूं मामा तुनक मिजाज शुरू से ही था, बात-बात में मामी पर हाथ खींच देता था, पर उस मार में भी प्यार था, उस खीझ में भी कोमलता छुपी हुई थी. बड़ी साफ सुथरी जिंदगी चल रही थी. तभी एकाएक उसकी जिंदगी ने पलटा खाया. उसकी ईमानदारी उसकी खुशियों के आड़े आ गयी थी. पूरा स्टाफ इस वजह से कुढ़ा रहता था. एक दिन ट्रेप हुई और उसकी ड्रार से दस्तखत किये दो सौ रुपये बरामद हुए. मुकदमा चला, सभी ने उसके खिलाफ गवाही दी. मामा को साल भर की कैद हो गयी. छूट कर घर लौटा तो वह टूट कर बिखर चुका था. तहसील के सामने उसने अनशन किया, अधिकारियों के खिलाफ भाषण दिये, एवज में पुलिस के डंडे खाये. मामा अर्ध-विक्षिप्त-सा हो गया था. उन्हीं दिनों उसने सिर और दाढ़ी के बाल बढ़ाना शुरू कर दिया था. उसने कपड़े भी त्याग दिये थे. महंतों और साधुओं की फिराक में वह रहने लगा था और उसने गांजा पीना भी शुरू कर दिया था. पर मामा की यह विक्षिप्तता पापी पेट

● सतीश मल्होत्रा

के सामने अधिक दिनों तक नहीं टिक पायी थी. भीतर के आक्रोश को दबा कर मामा को परिस्थितियों से समझौता करना ही पड़ा. उसने एक छोटी-सी तेल की दूकान कर ली थी. दिन भर किरोसिन या सरसों का तेल नापता और खाली समय से जासूसी उपन्यास पढ़ता रहता था. शाम को खाने-पीने भर के पैसे मामी को दे कर गम गलत करने वह हॉली पहुंच जाता था. लौटकर मामी के साथ गाली-गलौज करता या मारपीट.

खाना शायद पक कर तैयार हो गया था, गुड्डी बुलाने आयी थी. मैं ड्रेस चैंज करने लगा. पैंट उतार कर मैंने खूंटी पर टांग दिया और धुला हुआ पाजामा पहन लिया. पाजामे का कलफ कहीं मन में गड़ गया था. मेरी मामूली-सी चीज भी यहां के संदर्भ में विशिष्ट लग रही थी.

चैंज कर के मैंने कहा——चलो मामा खाना खाने.

मामा बैठा-बैठा दोनों हथेलियों पर माथा टेके उलटा हो गया था. सहसा उठ कर बैठ गया, उसका चेहरा लगातार खांसने की वजह से लाल पड़ गया था. और दाढ़ी के बाल लार से सन गये थे. वह बमुश्किल बोला था——तुम खालो बेटा,-मू भूख नहीं लगती अब . . सीने में भट्ठी सी. . .धधकती रहती है. पर ठहरो, अभी आता हूं. . .

देखते-देखते मामा बाहर निकल गया. उसका मंतव्य न समझ मैं भीतर रसोई में चला गया. मामी ने कांसे की थाली में रोटियां और सब्जी परस दी, गुड्डी ने अचार का पूरा आम थाली में रख दिया. मसाले भरी सूखी मिर्च, जिसमें फफूंदी लग गयी थी, सब्जी में आधी डूबी रखी थीं. मुझे अपने किचन की स्टील की कटोरियां और प्लेटें याद आ गयी थीं. डायनिंग टेबल पर बैठ कर खाना खाने का आभिजाती ढंग याद हो आया था.

खाना लगभग आधा गले के नीचे उतार चुका था, कि दरवाजे पर दोना लिये मामा दिखाई दिया. दोना गुड्डी की तरफ बढ़ाते हुए वह बोला——ले-बेटा रबड़ी. आधी भइया को दे दे, आधे में तू और सच्चू हो जाना.

गुड्डी ने दोना थाम लिया और रबड़ी कटोरे में उलट दी. दोना उसने एक ओर रख दिया, जिसे सच्चू ने फौरन लपक लिया और जीभ लगा कर चाटने लगा. मामी एक हत्थड़ उसकी पीठ पर फोड़ कर तिड़तिड़ाने लगी——आग लगे तेरी जीभ में, मीठी चीज पर तो मैरा कर टूटता ह. . .पर मामा प्यार में भरा सच्चू की इस हरकत को देख रहा था.

वहीं रसोई को थोड़ा सहेज कर गुड्डी ने फर्श का कचरा एक ओर सकेल दिया. मामी ने पौर से पलंग उठा कर रसोई में बिछा दिया और अपने हिसाब से सबसे साफ बिस्तर उस पर बिछा दिये. मामा का सोने का इंतजाम आज पियाल पर ही कर दिया गया था. दिनभर का चला था, इसलिए नींद जल्दी आ गयीं.

सहसा नींद खुल गयी. एक कोलाहल, एक हड़कंप-सा मचा था. आंगन की ओर वाले पौर के दरवाजे पर मामा मामी आपस में गुंथे थे. मामी एक हाथ में मामा की दाढ़ी पकड़े थीं और मामा मामी का झोंटा. खुले हाथों से फ्री स्टाइल चल रही थी. जो जितनी जोर से प्रहार करता गाली का प्रवाह भी उतनी ही प्रचंडता से बाहर निकलाता था——हरामखोर, नासपीटे, दारू पी कर सब भूल जाता है——मामी मामा की आरती वंदना कर रहीं थीं. . . रांड, कुतिया, मेरा खाती है और मुझी पर गुर्राती है यह मामा का स्तुति वादन था.

न जाने कैसे मामी ने टांग मोड़ कर मामा की छाती पर टिका दी और जोर लगा कर मामा को पीछे ठेल दिया. मामा का सिर जोर की आवाज के साथ फर्श पर जा टकराया. पर मामा ने भी गजब की फुर्ती दिखायी. वह उठा और उसने बगल में पड़ी एक लकड़ी उठा कर मामी की पीठ पर तीन-चार चिपका दीं. मामी ने किसी आहत जानवर की तरह चीत्कार किया और झुक कर नाबदान के पास पड़े कुस्कुट के लोटे को मामा के सिर पर दे मारा. मामा के सिर से खून बह-बह कर दाढ़ी के बाल भिगोने लगा.

पता नहीं मैं क्या सोच कर चुपचाप पड़ा रहा. बीच में दखल देना उचित नहीं समझा. यह दृश्य मेरे लिए नया नहीं था. वे लड़ाई के बहाने तलाशा करते थे और झगड़ा बहुत छोटी-छोटी बात पर शुरू हो जाता था. आज भी या तो मामी ने मामा की दारू को संदर्भ बना कर कुछ कह दिया होगा, या उसके अंडरवियर के नेफे से बंधी मैली-कुचैली थैली से तिलहे नोट उसे बेहोशी में जान झाड़ने की कोशिश की होगी, या फिर मामा ने बच्चों के सो जाने पर थोड़ा 'हलके हो लेने' की इच्छा प्रकट की होगी और मामी ने प्रत्युत्तर में उसे कुत्ता कह कर संबोधित किया होगा. एक मैले-कुचैले कपड़े से खून पोंछता मामा पौर में चला गया, थोड़ी देर बाद उसके पीछे मामी भी अस्त-व्यस्त-सी चली गयी. कोई दसेक मिनट बाद मामी रसोई में आयी और एक कपड़े को जलाने लगी. जला हुआ कपड़ा ले कर मामी पौर में चली गयीं. वह कपड़ा मामा के घाव से भरने लगी. उन दोनों ने फिर साथ ही खाना खाया, इस बीच बच्चे सो चुके थे. खाना खाने के बाद वे हम बिस्तर हो गये.

सुबह काफी दिन चढ़े उठा था. मामा आंगन में बैठा सच्चू का कनेऊ निकाल रहा था. निकाले हुए मैल को वह अंडरवियर पर पोंछता जाता था. मामी रसोई में चूल्हे पर चाय चढ़ाये थी. शायद मेरा इंतजार हो रहा था. क्योंकि चाय का जूठा कप मामा के पास ही पड़ा था.

मैं मामा के पास जा बैठा. गुड्डी चाय का प्याला रख गयी. मैं रात की उधेड़बुन से बाहर निकल आया था और सीधे मतलब की बात पर उतरने के लिए कमर कस चुका था, अन्यथा यहां आने का सारा प्रयोजन ही नष्ट हो जाता. अब मैं बता ही दूं कि मैं यहां क्यों आया था. यह घर, जिसमें मामा-मामी रह रहे थे, दरअसल मेरा था. जब मेरी मां मरी तब मैं बहुत छोटा था, पिता उससे भी पहले गुजर गये थे. मुझे

किसी के चेहरे याद नहीं हैं. मां ने मरते समय मामा की गोद में सौंपते हुए कहा था—इस जमीन-जायदाद को बेंच कर जीवन को इतना पढ़ा-लिखा देना कि चार पैसे कमाने लगे. मामा पहले किराये के किसी मकान में रहता था. मां की मृत्यु के बाद वह इस मकान में रहने लगा था. मामा ने बहन का बचन पूरा किया. पालपोस कर मुझे बड़ा कर दिया, हर संभव कोई तकलीफ नहीं होने दी. पढ़-लिख कर आज हजार से ऊपर कमाता भी हूं. पर मामा ने इस मकान को नहीं बेचा, मुझे पढ़ाने के लिए खुद अपनी फिरोजाबाद की जमीन जायदाद धीरे-धीरे बेचता चला गया.

भावुकता की तमाम परतें नोच कर फेंकते हुए मैंने कहा—मामा, मैं यह मकान बेचना चाहता हूं. दरअसल मेरे आफिस में रुपयों की गोलमाल हुई है, सरकारी पैसा है, उसे भरना जरूरी है वरना सजा हो जायेगी.

मामा के चेहरे पर अविश्वास की काली लकीर तैर गयी. अविश्वास मेरे कथन पर नहीं, वरन कथन के पीछे प्रतिभासित हो रहे कृत्य पर था. उन्हें उम्मीद नहीं थी कि मैं ऐसा कर सकता हूं.

—पर गोलमाल हुआ कैसे?

उनका विश्वास नाटक की सोची हुई स्थितियों को डिगाने लगा, मैंने दूसरा सूत्र पकड़ लिया—नहीं मामा, मैंने नहीं किया है यह सब. मेरे मातहतों ने किया है, मुझे असलियत से वाकिफ नहीं किया.

मामा के चेहरे पर संतोष तिर आया था—आजकल भइया कोई विश्वास के काबिल नहीं रहा है. पर भइया, तू क्यों बीच में पड़ता है, जिन्होंने किया है वही भुगतें.

मुझे लगा पीया हुआ झूठ बेट में गुड़गुड़ाने लगा है और उलटी की तरह बाहर फिकने ही वाला है. कमला ने फ्रिज की फरमाइश की थी. कालोनी में सभी के पास फ्रिज थे और उसे इन्फीरियोरिटी महसूस होती थी. मैंने कमला से डींग हांकी थी कि यहां मेरे नाम कुछ बैंक बैलेंस पड़ा है, हिसाब किलियर करके बस वापस लौट आना है. इसलिए धूल धक्कड़ और अंधेरे से भरे कस्बेमें इतनी दूर से आया था. मैं दोनों तरफ बोले गये झूठ के बीच फंस गया था. लेकिन मुझे निकलना भी आता था—पर मामा बदनामी तो मेरी ही होगी आखिर, मेरे प्रमोशन पर भी असर पड़ेगा. . .

मामा ने सहमति में सिर हिला दिया—सो तो है—मामा जैसे लोगों को कनविंस करना जरा भी कठिन नहीं था—तब तो जरूरी है भइया. पर नौकरी में बड़ी सतर्कता की जरूरत है. पता नहीं कब कोई कहां फंसा दे. किसी पर ज्यादा विश्वास करना आज के जमाने में ठीक नहीं है. . . मामा की आंखों के आगे उसका अतीत काले पर्दे-सा लहराने लगा था. मामा फिर भावुक हो आया था—जिज्जी ने तुम्हें और यह मकान सौंपा था, ईश्वर जानता है दोनों ही सुरक्षित हैं. मामा की आंखें छलछला आयी थीं.

—मामा तुम्हारा अहसान मैं कभी नहीं भूल सकता. तुम लोगों के लिए मेरे दिल में कितना ऊंचा भाव है, बता नहीं सकता.

—इसमें अहसान काहे का बेटा! अपने भी अपनों के ऊपर कोई अहसान करते हैं कभी! यह तो फर्ज था. मामा का स्वर मुझे बेपर्दा करने लगा.

—नहीं मामा, मेरे मां-बाप नहीं थे, तुम्हीं लोगों ने पाला-पोसा. मैं तो इसे अपने ऊपर अहसान ही मानता हूं, वरना आज के जमाने में कौन किसके लिए क्या देता है. बस जरूरत ही कुछ ऐसी आ पड़ी है, नहीं तो मकान तो अब आप ही लोगों का है.

—जानता हूं भइया, सरकारी पैसा भरना बहुत जरूरी है. पैसा से इज्जत बड़ी होती है. छोटी-सी तकलीफ ही सही. पर एकाध हफ्ता रुक जाते तो किराये का कोई मकान तलाश लेते, याचना का एक बिंदु मामा की आंखों में आ कर ठहर गया था. मैं मामा की आंखों से आंखें नहीं मिला पा रहा था. चुपचाप उसके पास से उठ आया.

दोपहर घूमने का बहाना ले कर निकल गया. मामा अपनी दूकान पर चला गया था. मैं दीना सेठ की गद्दी पर पहुंच गया. वह ठेकेदारी करता था और इसकी आड़ में पता नहीं और भी क्या-क्या करता था. मुझे देख वह कुटिलता से मुसकाराया वह मेरा परिचित था.

—सेठ, बीस हजार का मकान, दस हजार में खरीदोगे?

उसकी आंखें चमकने लगीं. वह पास खिसक आया और मैंने उसे समझाना शुरू कर दिया. बात उसकी समझ में जल्दी ही आ गयी. सात हजार नकद ले कर रुक्का लिख दिया. तीन हजार बाद में रजिस्टी के समय देना तय हुआ. उससे वायदा ले लिया कि वह दस-पंद्रह दिन, जब तक मामा को कोई किराये का मकान नहीं मिल जाता, अभी उसी घर में रह लेने देना.

लौट कर मामा को सौदा के बाबत बता दिया था. मामा ने बस इतना कहा था—ठीक है भइया. इस बीच किराये का कोई मकान ढूंढ़ लेंगे. तुम खुश रहो.

मैंने जाने की तैयारी शुरू कर दी. मामा मामी ने एक दिन और रुक जाने का भरपूर आग्रह किया. पर मैंने छुट्टी न बढ़ पाने तथा काम की अधिकता का बहाना ओढ़ लिया था.

रोकते-रोकते भी मामी ने सफर के लिए पूड़ियां और सब्जी बना कर बैग में रख दी थीं. मामा यहां के दूर दूर तक मशहूर पेड़े आधा किलो तुला लाया था. मामा मामी की आंखों में आंसू के कतरे तैरने लगे थे.

फिर चलते समय मामी ने दो रुपये का मैला कुचैला नोट, जो न जाने कब से वह मामा की आंखों से छुपाये रखे होगी, जबरन मेरी जेब में ठूंस दिया था. जब तक बस स्टार्ट नहीं हुई मैं एक अपराध बोध में घिरा-सा बैठा रहा. बस के चलते ही निष्कृति की भरपूर सांस ले मैंने सिगरेट सुलगा ली. फिर टिकिट के लिए वह दो रुपये का नोट शामिल करते हुए मुझे लगा था कि भीतर का कमीनापन बाहर तक छलकने लगा है. □□□

नायब तहसीलदार, हुजूर तहसील, रीवा, म. प्र.

छायाएं

• मधु शर्मा

सांझ ढलते ही कुछ बेचैनी-सी शुरू हो जाती है. ये बेचैनी या उदासी अकारण उत्पन्न नहीं होती. इस वक्त करने को कुछ भी नहीं होता. महज एक सोच, एक लंबा निराकार, निरुद्देश्य सोच छा जाता है दिमाग में. मां ने रामायण का आखिरी पन्ना मोड़ दिया है, फिर उसे उठा कर माथे से छुआती है, फिर गुलाबी कपड़े में बांधती हुई कुछ गुनगुना रही है. शायद भगवान राम का स्तुतिगान. सोचती हूं, कितने भाग्यशाली थे ये राम, किसी का कुछ करें या न करें किसी को कुछ दें न दें, फिर भी सब किसी न किसी तरह, किसी न किसी नाम या रूप में स्मरण कर ही लेते हैं. मां के चेहरे पर एक गहरा संतोष है., एक अविचल संतोष जैसे इस रामायण के पन्नों में ही सब कुछ पा लेती है.

अम्मा रामायण को फिर से आंखों से छुआती हुई दीवार के कोने में रखी चौकी पर रख कर मुड़ती है मेरी तरफ. फिर कुछ क्षण निर्विकार देखती रहती है मेरी तरफ. शायद अम्मा बैकुंठ धाम से विचरण करती हुई घर के बढ़ते इस अंधकार में लौट आयी है. कमरे की बत्ती जला कर रसोई में जाते हुए रुक जाती है. कुछ इधर-उधर तलाशती है. फिर रसोई में चली जाती है. मैं भी उठ कर ऊपर के कमरे में भैया के दिये हुए कुछ पेपर टाइप करने के लिए सीढ़ी पर कदम रखती ही हूं कि मां का स्वर मेरे कानों में पड़ता है.

--मन्ना नहीं लौटा कालेज से अभी तक? तुझे कुछ कह गया था क्या?

—नहीं. . . तो.

मैं दूसरी सीढ़ी पर कदम रखती हूं.

--क्या बजा होगा इस वक्त?

--साढ़े छह से ऊपर हो रहा होगा.

--जाने कहां डोलता रहता है ये इतनी देर तक! न खाने की सुध, न पीने की.

मैं दो सीढ़ियां उतर कर फिर नीचे आ जाती हूं और पापा के लगाये पौधे को निहारती हूं. सब डालियां बड़ी तेजी से फैलने की चेष्टा में हैं. मुझे इन पत्तियों को छूने से बहुत सकून-सा मिलता है. लगता है, आज भी पापा का स्पर्श इनमें अंकित है. कुछ देर तक यूं ही निहारती हूं. पैरों के नीचे घास गीली है. शरीर में कुछ कंपकंपी-सी होती है तो उठ कर भीतर आ जाती हूं.

अम्मा मनी प्लांट की बेल को मोटी डोरी से बांध कर उसको बहुत ऊंचाई तक पहुंचाने के विचार से परिश्रम कर रही है. शायद इसकी बढ़ती हुई ऊंचाई के साथ घर में पैसे भी बढ़ते जायेंगे. मगर दो बरस से वह उस बढ़ती हुई मनी प्लांट की बेल के मुताबिक दो वक्त भरपेट रोटी भी हीं खा सकी, वह यह नहीं सोच पाती, तभी भैय्या आ जाते हैं.

--ये क्या अम्मा, हर वक्त इस कमबख्त मनी प्लांट के पीछे लगी रहती हो! इसके बढ़ने से क्या मेरी तरक्की हो जायेगी? रहूंगा तो हमेशा क्लर्क!

--क्यों रे, ऐसा क्यों कहता है! सबको तो देखती हूं इत्ते पैसों में खेलने लगे, इसी मनी प्लांट के खातिर!

--वाह अम्मा तुम भी अजीब हो!

भैय्या मेरी तरफ देखते हैं. मैं उनके लिए चाय बनाने रसोई में चली जाती हूं.

चाय बना कर भैया के पास रखती हूं. भैय्या मेरी तरफ मुखातिब होते हैं—तुम्हारी चाय! और अम्मा की?

--हमने पी ली भैया

--सच!

--हां भैया, अम्मा और मैंने शाम चार बजे ही पी ली थी.

--सुन, बैठ मेरे पास. तेरे लिए एम. ए. में दाखिले का बंदोबस्त कर लिया है मैंने. कल सब सर्टीफिकेट ले कर चलना मेरे साथ. एडमिशन करवा दूंगा. पढ़ जायेगी तो अच्छा रहेगा.

मैं पलकें उठा कर भैया के शांत रूखे चेहरे की तरफ देखती हूं. कितना बोझ पड़ गया है इनके सिर पर!

--मैं और आगे नहीं पढ़ूंगी भैया!

--क्यों?

--मैंने सोचा है, अभी कहीं प्राइवेट नौकरी कर लूं, अगले बरस एडमिशन ले लूंगी. मन्ना का पढ़ना अभी जरूरी है, मेरा क्या है?

अम्मा रसोई से सब्जी काटने के लिए निकल कर हमारे पास ही चौकी घसीट कर बैठ गयी है. भैया और मेरे बीच हो रही बात का विषय अवश्य समझ चुकी है. हम सब अब चुप हैं. अम्मा बंदगोभी की परतों को अलग करती हुई मेरी तरफ देखती है. मेरे लिए समझना कठिन है कि अम्मा के मन में कौन-सा प्रश्न उभर रहा है. शायद उन्हें मुझसे सहानुभति है या फिर किरकिराहट. भैया के चेहरे पर उभरते भावों को मैं आसानी से पढ़ रही हूं. चाय का खाली कप एक तरफ सरका कर एक गहरा निश्वास खींचते हुए भैया खड़े हो जाते हैं.

शायद उनको मेरे जवाब से कुछ सांत्वना मिल गयी है. अम्मा सब्जी काट चुकी है और भैया दूसरे कमरे से कुछ कागज लाकर मेरे हाथ में थमा देते हैं.

--ये नया लेख है. खाना खाने के बाद जरा इसे टाइप कर देना.

मैं कागजों को थोड़ा पढ़ती हुई उठ कर ऊपर के कमरे में की तरफ चलने लगती हूं. अम्मा रसोई में चली गयी हैं. भैया रेडियो लगा कर सुनने लगते हैं.

टाइपराइटर को पुराने कपड़े से झाड़ती हूं. झाड़ते-झाड़ते मेरी उंगलियां वहीं ठहर जाती हैं. अगर पापा को वह आदमी रुपये की जरूरत में टाइप राइटर चार सौ रुपये में न बेच गया होता तो भैया को कितनी दिक्कत होती. मैं पहले भैया का लेख पूरा पढ़ डालती हूं. फिर नये पेपरों को चढ़ा कर टाइप करने लगती हूं. घंटे बाद मैं लेख टाइप करके भैया के सामने रख देती हूं. भैया के चेहरे पर हल्की-सी मुस्कराहट तिर आयी है. मेरी तरफ देखते हैं, फिर सिर पर हाथ रखते हुए गंभीर हो जाते हैं——तू मेरा कितना काम करती है! और मैं बदनसीब भाई तुझे कुछ भी नहीं दे पाता . . . अच्छा इस लेख के जितने पैसे मिलेंगे, सब तेरे . . . . अपने कपड़े-लत्ते सिलवा लेना . . . एक आध-सिनेमा देख लेना.

मेरी आंखों के कोनों में कहीं से आंसू आ कर ठहर गये हैं. सामने पापा की हंसती हुई किसी पार्टी में खींची गयी तसवीर पर मेरी निगाह टिक जाती है. फिर ठहरे हुए आंसू कोरों से निकल कर बाहर गालों तक आ जाते हैं. भैया कुर्सी पर बैठ कर लेख पढ़ने लगते हैं. मैं अपनी आलमारी में से धुले हुए कपड़े निकाल कर प्रेस करने को बाहर निकालती हूं. शायद गीता ने आज जरूर अपने डैडी से मेरी नौकरी की बात की होगी, नहीं तो कल सुबह ही उनके घर चली जाऊंगी, इतने बड़े आफिस में कहीं न कहीं तो टिका ही देंगे. अम्मा रसोई से मुझे आवाज देती है कि उन्होंने सब्जी काट कर चाकू जाने कहां रख दिया है, जरा ढूंढ़ तो दूं.

रसोई में जाती हूं. चाकू अम्मा के दायीं तरफ पटरे के पास रखा है. . . उठा कर दे देती हूं——लो अम्मा ये धरा है!

——जाने क्या हो गया है . . .सामने पड़ी चीज नहीं दिखाई देती . . . .क्या बज रहा है . . .

——अभी तक मन्ना नहीं लौटा न . . .?

अम्मा जानते हुए भी कई बार पूछती है और उन्हें मेरे जवाब की प्रतीक्षा नहीं क्योंकि जानती है कि मन्ना अभी तक नहीं आया है. तवे पर से रोटी उतार कर थाली में परोस रही है. मगर कुछ-कुछ क्षण बाद वह रसोई के दरवाजे से बाहर की तरफ झांकती है. सोचती हूं, इसी में कहीं अम्मा अपना हाथ-पांव न जला बैठे . . . कई बार कहती हूं कि रात का खाना भी मैं बना लिया करूंगी तो कह देती है—— न. . . तू करती तो है दिन भर.

★ ★

सबने खाना खा लिया है. अम्मा के हृदय में कोई गलत शंका जागने लगी है. भैया अपने कमरे में अखबार पढ़ रहे हैं और अम्मा बरामदे में शाल लपेट कर चारपाई पर बैठ गयी है. इस समय साढ़े दस बज रहा है. भैया अखबार पढ़ते-पढ़ते सो गये हैं. मैं अखबार एक तरफ रख कर बत्ती बुझा कर अम्मा के पास आकर खड़ी हो जाती हूं. अम्मा की आंखें दरवाजे से बाहर टिकी हैं. मैं अम्मा से कहना चाहती हूं कि वह भी भीतर आ जायें, सर्दी बढ़ रही है, मन्ना जब आयेगा तभी आयेगा. तुम ये कब तक . . .

तभी सामने से एक साया लड़खड़ाता हुआ घर की तरफ बढ़ता है. अम्मा उठ कर जल्दी से खड़ी हो गयी है. कुछ क्षण उस साये को पहचानने की कोशिश करती है, फिर कुछ कदम तेज चल कर दहलीज पर ही मन्ना को समेट लेती है. फिर वहीं चारपाई पर बैठा देती है. मन्ना बैठते ही चारपाई पर लेट जाता है. अम्मा उसके जूते उतार कर कमीज के ऊपरी बटन खोलती है. मन्ना लड़खड़ाती जुबान में बुदबुदाता है

——अम्मा तुमने जो . . .पच्चीस रुपये गांव दादी को मनी आर्डर करने को दिये थे न . . . कहीं गिर गये. अम्मा शायद बस में किसी ने जेब काट ली . . .

अम्मा माथे पर एक जोर से हाथ मारती है——अरे मन्ना, तू क्यों नहीं समझता रे . . . क्यों नहीं सोचता अब तेरा बाप नहीं रहा . . सुधीर को देख कहां-कहां से रुपया बटोरता है. और तू है कि . . .

——अम्मा, अब तुमको भी यकीन नहीं रहा मुझ पर? तुम्हारी कसम मैं जुआ नहीं खेला . . . कल नया साल है न, इसीलिए, दोस्तों ने थोड़ी-सी . . . बस. . .

□□□

● आर्यरत्न व्यास

८/१०६ देव नगर, करोल बाग, नयी दिल्ली—५

आचार्य चतुरसेन
द्वारा लिखित
काम-कला सम्बन्धी दो अनमोल पुस्तकें

यौवन और यौन-विज्ञान
यौवन और काम-विज्ञान

प्रत्येक का मूल्य चार रुपये
डाक-व्यय पृथक

प्रकाशकः-
अनुपम पॉकेट बुक्स
एफ़-17, कमलानगर, दिल्ली-7

D.A.M.

गुफ़ा का राक्षस

सदियों से रहस्य बनी उन गुफ़ाओं में गये हुए पुरातत्वशास्त्री वापस ही नहीं लौटे. उनकी खोज में गये वेताल और डायना पामर. अचानक डायना पामर भी गायब हो गई. बस पास के कुंड में कुछ छपछपाहट थी. वेताल ने कुंड में डुबकी लगायी--- सामने एक सुरंग थी. उसके पार जाकर वेताल ने जो देखा उससे वह भौंचक्का रह गया. वेताल ने क्या देखा? क्या डायना पामर और पुरातत्वशास्त्री उसे जीवित मिले?

महाबली वेताल की रोंगटे खड़े कर देने वाली कथा लेकर आ रहा है इंद्रजाल कॉमिक्स.
१५ अप्रैल, १९७६ का अंक

अपनी प्रति आज ही खरीदिए.

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन

इंद्रजाल कॉमिक्स
१५ अप्रैल, १९७६
टाइम्स आर्ट

विमली : पृष्ठ ३१ से आगे

बोला—बिमली, अब की देखतीं तो तुम्हारा उस घर में कितना मान-सम्मान होता.

विमली बोली—मान-सम्मान तो मैंने उसी दिन पा लिया था जब कि तुमने पीटा था. हाथ जोड़ती हूं, अब तुम चले जाओ. रामलाल देखता ही रह गया और विमली अपनी बिल्डिंग की तरफ भाग गयी.

ऊपर पहुंचते ही जल्दी-जल्दी उसने घंटी मारनी शुरू कर दी थी. किसी नौकर ने आ कर दरवाजा खोला, विमली घुसते ही बड़ी सिठानी के कमरे में भाग गयी. जैसे किसी हिरन को शिकारी से भाग कर पनाह मिल गयी हो. बड़ी सिठानी , जो कि पूजा के बर्तन धो रही थीं, बोलीं—अरे, तू वापस आ गयी.

विमली बोली—हमेशा के लिए और रोने लगी. और रोते-रोते बोली—सिठानी जी, धोखा, निरा धोखा, उसके कुछ होने वाला है और अब मेरी वहां जरूरत है. मैं तो यहीं अच्छी हूं. बस तुम्हारे पास.

सिठानी दुखी भी हुई, और खुश भी हुई, बोलीं—चलो, भगवान जो करता है, ठीक करता है.

उन्होंने जब विमली की तरफ देखा तो वह किवाड़ से लगी दुबकी हुई खड़ी थी. सिठानी बोलीं—विमली, तू घबड़ाती क्यों है, मैं जिंदा हूं. तुम्हारा कोई कुछ नहीं कर सकता.

बहुत सहारा मिला था विमली को , सिठानी की इस बात से, उसने अपना थैला अपनी बंधी हुई जगह पर रक्खा और रोज की तरह जैसे वह भाग-भाग कर काम करती थी, करने लगी. उसकी रगों में जैसे दुबारा खून बहने लगा हो. फिर भी वह रमेशा का दर्द भुला नहीं पा रही थी. आखिर मां थी, जब भी रमेशा का ध्यान आता, उसका मन दुबारा कहता, विमली भूल जाओ. तुम्हें तो अब दुनिया से लड़ना है. जबानी के खून में बहुत ताकत होती है, तू तैयार हो जा.

इसी चक्कर में कल से अब तक उसने एक भी पान नहीं खाया था, मन भी हुआ था, पर उसके पास था ही नहीं. उसने सोचा, अच्छा ही हुआ अगर आदमी अपनी आदतों को बदल ले तो मुश्किल नहीं होती, छोड़ दूंगी, अगर ज्यादा मन नहीं माना तो शुरू भी कर दूंगी. अब मुझे टोकने वाला कौन है.

* *

पहले दिन तो डर की वजह से कि कहीं रामलाल न मिल जाये, मोची के अड्डे पर गयी नहीं. नहीं तो सबके सामने वह कुछ कह बैठे तो इसकी इज्जत कितनी रहेगी.

दूसरे दिन दोहपहर में वह नीचे उतरी, पान उसने अभी तक नहीं खाया था. एक मन हुआ पान की दुकान तक जाये, पर पान की दुकान सड़क पर थी, कल ही बस से उतरने के बाद उसी दुकान के सामने रामलाल से उसका अंतिम वार्तालाप हुआ था. इसलिए सीधे वह अपने मोची के अड्डे पर पहुंची. सभी बाइयां, जो वहां बैठी थीं, इसको घूर-घूर कर देख रही थीं.

बिना पान खाये हुए होंठो के साथ इसका चेहरा और भी घरेलू औरत की तरह भोला भाला लग रहा था इसके बैठते ही एक ने पूछा—विमली, दो दिन कहां रही? सुना था तू अपने मरद के पास चली गयी है? विमली तपाक से बोली—किसने कहा, मैं तो अपने उस सेठ के पास गयी थी, और धीरे से मुसकरा दी.

दूसरी बाई बोली—अरे तेरा पान-तंबाकू किधर गया? अगर वह बाई यह न कहती तो थोड़ी देर में वह एक पान मांग भी लेती. पर वह बोली—अरे, मैं क्या बताऊं , वह सेठ मुझे इतना प्यार करने लगा है, कहता है कि तू पान-तंबाकू छोड़ कर मेरी औरत बन कर रह. वह मेरे लिए करता भी बहुत है, क्या करूं, दो दिन से उसीकी आदत डाल रही हूं.

तीसरी बाई बोली—अगर सेठ ने तुझे रखैल रख लिया तो यहां सिठानी का काम छोड़ देगी? विमली बोली—यही तो मैं सोच रही हूं. सिठानी से भी मुझे बहुत प्रेम हो गया है और वह सेठ तो करता ही है.

बीच में ही एक बाई जैसे ललचा के बोली—विमली, मैं तो होती तो सेठ की सिठानी बन कर शान से रहती. विमली बोली—देखो सिठानी के पास रह कर अभी मैं आजाद हूं और सेठ तो वैसे ही मुझ को प्यार देता है. अगर मैं उसकी औरत बन गयी और दूसरे दिन उसका मन बदल गया तो मैं कहां जाऊंगी. मैं तो ऐसे ही ठीक हूं. उसका भी कहना करूंगी और अपना भी.

यह सब झूठ गढ़ते उसको बड़ा आनंद आ रहा था. पर ज्यों-ज्यों वह आगे बोलती जाती थी, उसके मन का एक कोना जोर से दर्द करने लगता था. दूसरी तरफ सबको पान, तंबाकू खाते देख कर उसकी तल्ब बढ़ती जाती थी. पर किसको मालूम कि विमली कितनी अकेली है ! सिठानी के पास क्या रखा है, उसीका दूसरा रूप तो है ही .

उसका एक मन हुआ कि यह झूठ कहीं सच होता तो उस बात में कितना बल होता. यह सोच कर उसका मन उदास हो गया था. कहीं किसी को अंदर की हालत का पता न लग जाये. दूसरे पान की तलब उसकी काफी बढ़ गयी थी. वह उठी और बिल्डिंग की तरफ चल दी. □□□

वन वे ट्रैफिक

• सुधा चंदोला

सांय – सांय ! ! सांय ! !

हवा चल रही है. ऐरीजोना की धूसर भूमि. चारों ओर गर्द का अंबार और पीछे रेगिस्तान से उड़ कर आये कैक्टस के कांटों से भरा यार्ड.

कल ही सारे घर में डस्टिंग की थी और आज बालू की किरकिरी से घर भर गया है. धरती क्या है, बस रेत का टीला है. एक हवा के झोंके से ही धुंध छा जाती है. अभी परसों की ही बात तो है जब मेरे पड़ोसी जॉन की कोरियन पत्नी मरिया की डर के मारे जान निकल गयी. रेत की आंधी क्या आयी कि दिन में ही सितारे नजर आने लगे. कैक्टस के पौधे जड़ से उखड़ कर हवा में उड़ने लगे. पीछे गैलरी में रखे गार्बेज कैन गार्बेज को चारों ओर उड़ाते हुए मेन रोड पर लुढ़कने लगे और बाहर क्लाथ लाइन पर पड़े कपड़े तो ऐसे गायब हुए जैसे उन्हें हवा खा गयी या धरती निगल गयी. भला ऐसी आंधी को देख कर किसे डर न लगेगा! कभी-कभी यही आंधी प्रलयकारी रूप धारण कर लेती है.

पारसाल इन्हीं दिनों की बात है. हम हाइवे पर थे और हमारी गाड़ी ऐसे ही एक तूफान में फंस गयी थी. अचानक रेतीली आंधी का एक भारी झोंका आया. बालू के टीलों से परत की परत उड़ चली और कार का बैलेंस खराब होने लगा. कार में तीन माह के इस्तेमाल लायक सामान भरा था, उसी वजन से उलटी नहीं, अन्यथा आंधी तो कार को उलट फेंकने को तैयार बैठी थी. सत्तर मील प्रति घंटे की स्पीड से चलने वाला हाइवे जड़ हो गया. घुप्प अंधेरा छा गया और पांच मील की रफ्तार पर भी हाथों-हाथ न सूझता था. मुंह पर कपड़ा बांधे, आंखों पर चश्मा चढ़ाये, 'राम राम' का मंत्र जपते हुए किसी तरह गाड़ी हांके जा रहे हैं. जैसे गाड़ी न हुई बैलगाड़ी हो गयी.

कारें मंद गति से रेंगती जा रही हैं–– स्पंदनहीन व जड़ ही तो हैं. पर यंत्रवत जाती कारों के अंदर जो हाड़-मांस के पुतले बैठे हैं, वे यंत्र को चालित कर रहे हैं, गति को परिस्थिति के अनुरूप घटा-बढ़ा रहे हैं. पर उनके दिल पीपल के पत्तों की तरह डोल रहे हैं. वे और समय भले ही मशीन बन जायें, पर इस समय सब अपनी -अपनी सुरक्षा की मनौतियां मना रहे हैं. सत्तर मील की गति भले ही उनके दिल व दिमाग को बहका दे, पर इस समय सभी चौकन्ने हैं. कौन झोंका कब, किसकी गाड़ी को किसी खड्ड में फेंक देगा, कोई नहीं जानता.

ब्लाइथ सात मील. ये सात मील न हुए सात जनम हो गये. दिन अच्छा हो तो पांच मिनट का रास्ता इस दुर्दिन में असंभव बन गया है. काश, हमने यह हाइवे न लिया होता. गलती सुधारने का होश तब आता है जब गलती हो जाये, पर कुछ गलतियां ऐसी भी हैं जो कभी नहीं सुधर सकतीं. उमा, मेरी मुंहबोली बहिन कहती हैं–– जीजी, मुझे अगर जिंदगी एक बार और जीने को मिल जाये–– बस, एक बार और, तो मैं ऽऽ ––मैं उसे बिल्कुल नयी तरह से जीऊंगी. वही गलतियां कभी नहीं करूंगी, जो अब तक करती आयी हूं. पर सत्य, नंगा सत्य, यही है कि जिंदगी वन वे ट्रैफिक है और एक बार ही जीने को मिलती है. दूसरे जन्म की भगवान ही जाने. पर यही एक जीवन भी किसी-किसीके लिए कभी-कभी ब्लाइथ का तूफानी रास्ता बन जाता है,.

ब्लाइथ पांच मील ! नहीं नहीं. . .ये पांच मील कभी पूरे न होंगे.

बच्चा करुण क्रंदन कर रहा है. गर्मी, हाय गर्मी! पानी-पानी की पुकार हो रही है. मुझे लगता है–– वही क्या? हर कोई, यहां तक कि कार के कार्बोरेटर भी पानी ऽऽ पानी ऽऽ चिल्ला रहे हैं. मैं बच्चों को पानी देती हूं, पर मुंह में जाने से पहले ही पानी रेत की किड्च किड्च से भर जाता है. मुंह में भरा पानी वह कुल्ला कर फेंक देता है और चिल्लाता है––'ये तो गंदा पानी है. मुझे अच्छा पानी चाहिए.

––बस, मेरे बेटे, अब ब्लाइथ तीन मील है. तीन मील. . .तीन मील बस उतना होता है जितना हमारे घर से शांता आंटी का घर. . .बस अभी पहुंचे जाते हैं.

बच्चा अविश्वासी निगाहों से मुझे घूरता है. मैं उसकी नजरों से नजर नहीं मिला सकती. हम जिस विषमता से गुजर रहे हैं, उससे वह अनभिज्ञ नहीं लगता. बात बदलने के लिए मैं बाहर देखने लगी हूं.

* *

ब्लाइथ में क्या ऐंटर हुए कि पानी पड़ने लगा. यह पानी भी आशा की तरह ही जीवन का अमृत है. इसके पड़ते ही धूल दबन लगी है. हमने कार की खिड़कियां खोल दीं हैं. गरम हवा के झोंके कभी किसी को इतने सुहावने न लगे होंगे, जितने हमें लग रहे हैं. मेरे पति का मौन बहुत देर बाद टूटा है. वे कहते हैं–– सैंड स्टोर्म से रेन स्टौर्म भला, यह कहने के साथ उनकी सांस का एक भारी-सा भभका निकलता है, जैसे दिल पर रखा कोई भारी बोझ उतर गया हो.

हम सैंडी के घर पहुंच गये हैं. टूसौन वापस जाते समय ब्लाइथ में उसके पास ठहरने का हमने वायदा किया था. उससे न मिलना होता तो हम कभी यह रास्ता न लेते. कुछ साल पहले सैंडी हमारे पड़ोस में रहती थी और उससे अच्छी दोस्ती हो गयी. माइक से उसका डाइवोर्स हुआ और वह ब्लाइथ में आ कर रहने लगी. यहां उसके कई रिश्तेदार रहते हैं.

सैंडी का छोटा-सा पर धुला-पुछा, सजा-धजा, एयर फ्रेशनर की ताजगी और खुशबू से महकता घर. दरवाजा खुलते ही फ्रैश पाइन के फ्रैशनर की खुशबू

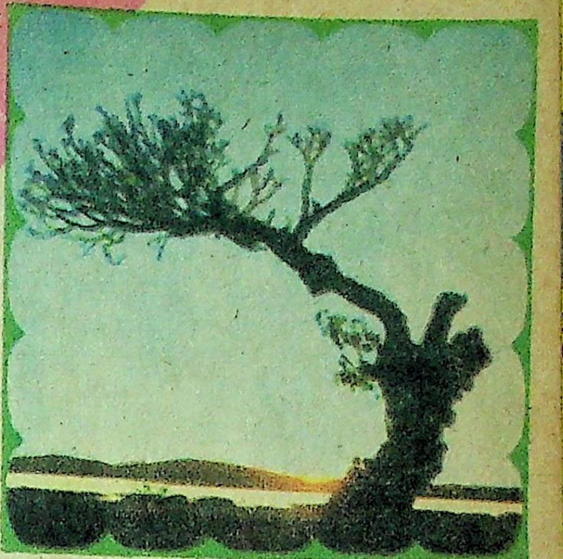
आर. एस. प्रसाद

का एक झोंका आता है. बीराने में बहार आ गयी है. रेगिस्तान में देवदारु की महक समा गयी है और मुझे अपने पहाड़ों, वनों की याद आ गयी है. पर मैं बीती जिंदगी में फिर नहीं जाना चाहती. यादें. . .! अपनों की मधुर यादें–अपने बचपन की क्रीडास्थली की यादें. . . ये यादें कितनी ही मधुर क्यों न हों, पर उनका अभाव हमारे भावनात्मक वायुमंडल में एक कसक-सी छोड़ जाता है और इच्छा होती है कि बचपन एक बार फिर आ जाये और मैं निर्भीक हिरणी-सी नैनीताल की चिरपरिचित सड़कों पर, पगडंडियों पर कुलाचें लगाऊं. पर नहीं, जो बीत गयी , वह बात गयी. मैं वर्तमान को ही जीना चाहती हूं. अन्यथा पीछे जो रेगिस्तान छोड़ आयी हूं उसे कौन जियेगा? एक सैंडी है, जो न वर्तमान में है, न भूत में है और न भविष्य में. तो कहां है सैंडी? शायद अधर में लटकी है. वर्तमान उसका अनिश्चित है. उसी के शब्दों में कहूं तो —– एकदम राटन, एमलैस. भविष्य की योजनाएं बनाना उसके नियमों के विरुद्ध है और भूत ? वह तो सचमुच भूत की तरह ही डरावना है, डरावना? हां डरावना ही कहेंगे . वह डर. . . . पुनः भूल करने का डर, मिल कर बिछुड़ जाने का डर, बिछुड़ कर बिखर जाने का डर. पर सबसे बड़ा डर– टूटी जिंदगी को फिर से संवारने की तमन्ना. हां, यह तमन्ना भी उसके लिए दुख और डर का कारण बन गयी है. बने क्यों नहीं, जब कि वह अभी भी माइक को प्यार करती है– उसी माइक को, जिसने अपना जीवन नये सिरे से बसाने के लिए उसे दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंका. बेचारी सैंडी और उसके डर! डर और तमन्ना का भीषण संघर्ष! बस बीती जिंदगी एक बार फिर मिल जाये तो. . .

एक ओर सैंडी के डर और अभाव है दूसरी ओर अहमद का केस कुछ और ही तरह का है. अहमद! कौन है यह अहमद? अहमद है जिंदगी की गाड़ी को खींचता हुआ प्रेत —– बस बहिन जी, कुछ न पूछिए. जिंदगी क्या है दोजख की आग बन गयी है. चार लड़कियों के बाद पहला ही लड़का हुआ था. पता नहीं क्या गड़बड़ हुई कि मेंटली रिटार्टेड पैदा हुआ. ये देखिए, ये रही उसकी तसवीर..

कितना मासूम बच्चा है? कितना प्यारा चेहरा है! . . .पर. . . पर बेचारा कितना भुगत रहा है!

—– चार बरस का हो गया बहिन जी, पर हरकतें उसकी एक बरस के बच्चे जैसी हैं.

मेरे सामने जिंदा लाश आ जाती है. स्लो पायजनिंग! दौड़ते भागते , जिंदगी का भार ढोते मुर्दे. कभी आंख खोल कर देखो तो चारों ओर भूत ही भूत नजर आते हैं. कंगाली के भूत, भुखमरी के भूत, रोगों के भूत. मेरा तो सर चक्कर खाने लगा है. लगता है कि भूत-भूत कह कर चीखने लगूंगी, पर लोक-लाज से चुप रह जाती हूं. इस मुल्क में साइकोलॉजिकल केस बनते देर नहीं लगती और मुझे साइकोलाजिस्टों की चक्करबाजी में फंसना क़िसी भी कीमत पर मंजूर नहीं. कुछ साल पहले की ही बात है. एक भारतीय सज्जन ने परेशान हो कर गुस्से से कह दिया —–मुझे तो जहर मिल जाये तो मेरी दवा हो जाये. बस फिर क्या था! मैंटल हॉस्पिटल की चक्करबाजी शुरू हो गयी. साइकोलाजिस्ट ने कहा —– मरने की तमन्ना करना. . . स्वीसाइडल टेंडेंसीज! यह आदमी खतरनाक है. कभी अपना जीवन ले बैठेगा. अब उन्हें कौन समझाए कि ये शब्द तो हम लोग खीझ कर न जाने कितनी बार कहते होंगे. पर उन सज्जन को फौरन भारत डिपार्ट करा दिया गया. जाते समय बेचारे बड़े दुखी-से बोले—– मुझे मालूम न था, मेरा एक वाक्य मुझे ले डूबेगा. ये लोग स्वीसाइड से नहीं डरते. वे तो होते ही रहते हैं. डरते हैं स्वीसाइडल टेंडेंसीज से. डरना भी चाहिए और पहले ही; बाद में डरने को रखा क्या है?

हां, तो शायद अहमद बोलता ही जा रहा था और मैं दूसरे ही विचारों में लीन कुछ भी न सुन रही थी. जितना सुना था वही मुझे डिस्टर्ब करन को बहुत था. आज के जमाने में पांच बच्चों की क्या जरूरत थी भाई! तुमने अगर इस ओर ध्यान दिया होता तो शायद यह ट्रेजेडी न होती. पर अभी भी कौन जानता है? यह लड़का काम का नहीं और अहमद का लड़के का अभाव अभी बना ही है.

* *

आज जैसा दिन तो शायद ही कभी देखा हो. कार एक्सीडेंट क्या हुआ कि पुलिस और इंश्योरेंस की चक्करबाजी में सारा दिन निकल गया. गलती दूसरे कार ड्राइवर की थी, परंतु नियमों की खानापूरी में मैं भी फंस गयी.

घर आ कर मैं निढाल -सी पलंग पर लेट गयी. सारे दिन की घटनाएं मेरे मानसपटल पर चलचित्र-सी घूम गयीं. पर यह कार ऐक्सीडेंट! जिंदगी और मौत में दो अंगुल का फासला! थैंक्स गॉड! दूसरे ड्राइवर को भी चोट न आयी. बस सब कुछ पलक मारते ही तो हो गया. कोई बात नहीं. कारें ही डैमेज हुईं. ठीक हो जायेंगी. . . पर. . . पर अहमद

का लड़का ! क्या कोई कुशल रिपेयरमैन. . . कोई अनुभवी डाक्टर. . . उसे कभी ठीक कर सकेगा ?

मैं शायद ऊंघने लगी थी. डर कर मैं उठ बैठी. लगा, फिर से कारें खट्ट से टकराई हैं. तभी दरवाजे पर 'खट खट' सुनायी पड़ी. जरूर लूसी होगी. वही दरवाजा पीटती है. अन्य मिलने वाले तो घंटी बजाते हैं. अलसाये मन से दरवाजा खोलती हूं. लूसी ही है. अंदर आ कर वह पूछती है—मे आइ आस्क फॉर ए फेबर?

मैं सिर हिला कर स्वीकृति देती हूं.

वह हिचकिचा कर कहती है — क्या तुम मुझे पांच डालर उधार दे सकोगी?

हां, ना कहने लायक ताकत भी शायद मेरे शरीर में नहीं रह गयी है. चुपचाप पर्स से निकाल कर पांच का नोट उसे थमा देती हूं. वह खुशी से चहक उठती है— ओह, यू एंजिल! यू नो, मैं किसी दिन असीम संपत्ति की स्वामिनी बनने वाली हूं. उस दिन मुझे याद रहेगा कि तुम मेरे प्रति कितनी दयालु थीं !

मुझे जोर से चिपटा, मेरे माथे को चूम कर वह जिस वेग से आयी थी उसी से चली भी गयी. मेरी कार के पिचके बेंक फैंडर और टूटी हुई टेल लाइट्स पर भी उसका ध्यान न गया !

लूसी के जाते ही मैं फिर विचारों में खो गयी हूं. नौकरी की तलाश में जूतियां रगड़ती, करोड़पति बाप की इकलौती बेटी लूसी को आज पांच डालर उधार लेने की नौबत आ गयी है. क्या यह कहे तो इसका बाप इसे अपनी कंपनी में कोई ढंग की नौकरी भी नहीं दे सकता ! पर लूसी को अपने मां-बाप से सख्त नफरत है. उसका रहन-सहन, उसकी विचारधाराएं उसके माता-पिता के जीवन स्तर से मेल नहीं खातीं. एक बार लूसी ने मुझे बताया था :

—दो साल पहले मां-बाप से मिलने गयी थी मैं, यू नो, सफर में जैसे कपड़े रहते हैं स्वेट शर्ट, टैनिस शूज और जीन्स में थो मैं !

—मां को देखते ही दौड़ी मैं ...एक बार फिर मां की बेबी बनने ... मामा से चिपटने ...

कहते-कहते उसका गला भर आया है. गहरी नीली आंखों में आंसू छलछलाने लगे हैं. कुछ रुक कर, गला साफ कर वह कहती है :

—मैं मां से चिपटने को हाथ ब्रढ़ाये दौड़ रही थी कि अचानक मेरी चाल थम गयी. मेरे हाथ बेजान से गिर पड़े. मां अपनी जगह खड़ी थी, जैसे मेरे आने का उसे कोई अहसास ही न हो. मां की चढ़ी हुई भृकुटियां और उसके चेहरे की कठोरता से मैं समझ न पायी कि मेरा क्या दोष! तभी मां ने कहा— यू लुक अग्ली, कपड़े तो ढंग से पहन कर आतीं. मेड देखेगी तो क्या सोचेगी? ...गो टेक ए शावर ऐंड चेंज, गो क्विक !

अब तक उसने अपने दिल के उफान पर, उमड़ते आंसुओं पर कंट्रोल कर लिया था. फिर वह करुण हंसी हंसु कर बोली :

—अपमान से मेरा चेहरा लाल हो गया. शावर में घुसते ही मेरी आंखों का शावर भी चालू हो गया... मैं यहां क्यों आयी ? दैट बिच ! मां है वह ? आइ हेट हर...

अगले दिन ही वह घर से चल पड़ी थी. मां तो अपराधिन-सी चुप रहीं पर डैडी का दिल भर आया—ह्वाइ माइ चाइल्ड ...कल ही तो आयी थीं ...तुम्हें.. यहां क्या कमी है ?

डैडी का चेहरा रोना-सा हो गया. उनकी आंखों में धुंध घिर आयी, उसे लगा, बर्फ की सिल्ली पिघल जायेगी... प्लीज डैडी, मुझे कमजोर न बनाइए. यह घर नहीं, घर का खंडहर है ... यहां सब टूटा-टूटा-सा है ... पर प्रत्यक्ष में कहती है :

—बस छुट्टियां ही नहीं है डैडी. एक बार आप लोगों को देखना था सो देख लिया. आइ प्रामिस, अगली बार लंबे समय के लिए आऊंगी.

—ओके ! टेक केयर माइ बेबी, कह कर पिता ने उसका माथा चूमा और उसके हाथ में १००० डालर का चैक थमा दिया.

—लगता है तुम्हारे डैडी तुम्हें बहुत प्यार करते हैं, मेरे पूछने पर वह खिलखिला कर हंस पड़ती है.

—डैडी को प्यार की फुरसत ही कहां है माइ डियर. उन्हें तो बस पैसे से प्यार है. ये लोग मशीन हैं मशीन ...इनके पास दिल नाम की कोई चीज नहीं... यू विल सी ...दो-तीन माह में आ रहे हैं वे यहां.

लूसी को नौकरी मिल गयी और उसने अपने आफिस के पास ही घर किराये पर ले लिया.

लूसी एक बार फिर आती है—प्लीज, कल हमारे साथ डिनर करना. इट्स टू सडन! पर मेरे डैडी-ममी दो दिन के लिए आ रहे हैं.

फ्री डिनर किसे बुरा लगता है? मैंने खुशी से हामी भर ली.

अगले दिन शाम को बाहर फिर रेतीली आंधी चालू हो गयी है. बाहर के मौसम से बेखबर पार्टी अपने यौवन पर है. बस यहीं प्रकृति मात खा जाती है. अमेरिका में मौसम की खराबी से कोई काम नहीं रुकते. एक प्रकार का पागलपन-सा लगता है कभी.

कहकहों की आवाजें और शराब के दरिया में गोते खाते जोड़े! संगीत के स्वर के साथ थिरकते जोड़े ! यहां अभद्रता जैसी चीज को ह्यमर के नाम पर उड़ा दिया जाता है. इस समय तो सब एक मूड में हैं—पार्टी मूड ! ...पर धीरे-धीरे शराब सब पर हावी होती जा रही है.

एक अधिक पी कर डाउन हो गया है. दो लोग उसे मुर्दे की तरह खींचते सैंडी के बेड रूम में डाल आये हैं. दूसरे को ऐसी चढ़ी है कि वह उमंग में कभी अपनी टाई चूमता है तो कभी अपने हाथ. बेजा हरकतें करता है और प्रलाप पर उतर आया है. उसकी हरकतें देख कर लूसी का फिस्स से हंसी का फव्वारा छूट पड़ा है. वह अपनी गोल-गोल, लाल-लाल आंखों से उसे ऐसे घूरता है जैसे खा ही जायेगा. उसको यूं घूरता देख लूसी घबड़ा कर अपना सिर घुटनों पर रख कर

उसकी प्रतिक्रिया की ऐसे प्रतीक्षा करती है जैसे भयभीत कबूतरी चील के झपटने के डर से आंखें बंद कर रही हो. तभी वह उठ कर और शराब लेने किचन-बार की ओर चला जाता है. राहत की सांस लेती हुई वह कहती है– थैंक्स गाड !

पार्टी चल रही है और चलती ही जायेगी. शायद इन नशे से धुत्त, गाड़ी चलाने में असमर्थ युवक-युवतियों को हमेशा की तरह इस बार भी लूसी यहीं रोक लेगी. उसके अमीर मां-बाप तो वापस अपने आलीशान होटल में लौट जायेंगे. तब इन शराबियों का नशा क्या गुल खिलायेगा? क्या खिड़कियों के कांच फिर टूटेंगे . . . गिलास फूटेंगे . . . और नशे में धुत्त ये रंगीले, रसीले, शराब की बू से भिनकते जोड़े . . . असंयत यौवन की आग में झुलसते-पिघलते ये युवक और युवतियां . . . . ? ? ?

हम बस चलना ही चाहते हैं कि लूसी का बाप कहता है––तुमको मालूम है कि कल मेरी बीवी को कुत्ते ने काटा? हम सब चौंकते हैं. कुत्ते ने काटा? क्या कुत्ता पगल था ? वह ठहाका लगाता है––कुत्ता ऽऽ! पागल कुत्ता ! ! अरे कुत्ता पागल होता तो दोनों को शूट करना पड़ता––कुत्ते को भी, बीवी को भी. फिर बीवी से कहता है––अरे, दिखाओ सबको ! बड़ा भारी घाव हो गया है जांघ पर, दिखाओ भी . . . शर्माती हो ? . . . मुझे दिखा सकती हो तो इन्हें क्यों नहीं दिखा सकतीं . . . तभी उसकी दृष्टि लूसी पर पड़ती है और वह फिर चालू हो गया है––लूसी, माइ डियर! आजकल तुम कई युवकों से डेट कर रही हो . . . हाट डेट्स . . . प्ले बैक होना चाहिए . . . क्या करते हो तुम लोग हाट डेट्स में ? . . . कम आन . . . कम आन . . . लेट्स बी फ्रैंड्स !

अब तो चलना ही होगा. बाहर पानी पड़ रहा है. लूसी हमें सी-आफ करने हमारी कार तक आती है. बाहर की खुली हवा व पानी की बौछारों से उसका नशा उतरने लगा है. अंदर जो कुछ चल रहा है उससे वह कुछ शर्मिंदा व बेवकूफी की हद तक गंभीर हो गयी है. अचानक वह मेरा हाथ पकड़ कर कहती है––मुझे अफसोस है कि तुम लोगों को यह सब देखना पड़ा.

हम घर की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं और मेरे मन में घिरी आक्रोश की घटाएं घुलती जा रही हैं. जिंदगी के थपेड़ों से त्रस्त ये मुसाफिर एक बार फिर अतीत को जीना चाहते हैं पर हर क्षण जो अतीत बनता जा रहा है उसे संवारने, संभालने की बात उनकी अक्ल से बाहर की बात है. फिर जिन घटनाओं पर मेरा बस नहीं, उनसे मैं क्यों व्यथित हूं ? यथार्थ यही है कि हम सबको अपनी-अपनी जिंदगी जीनी है.

हमारे घर पहुंचते-पहुंचते आकाश साफ होता जा रहा है. अभी-अभी वर्षा से धुले, उजले होते हुए आकाश में पूणिमा का चांद बादलों से आंख-मिचौनी खेलने लगा है.

□□□

डिपार्टमेंट आफ ओरियेंटल स्टडीज, यूनिवर्सिटी आफ एरीजोना, टक्सन, एरीजोना––८५७२१ यू. एस. ए.

नागा लोककथा

निर्णायक युद्ध

पक्षियों के पितामह सुंक्कोडांग के बगीचे में बेर का एक वृक्ष था. इस वृक्ष के बेर इतने मीठे होते थे कि न सिर्फ सभी पक्षी अपितु अन्य रेंगने वाले जीव-जंतु भी उनको खाने के लिए लालायित रहते थे. इस वृक्ष की रखवाली का काम जांगमेजा नामक एक पक्षी को सौंपा गया था. किंतु एक दिन उसने रखवाली करते हुए एक छिपकली को जमीन पर गिरा हुआ एक बेर खाते हुए देखा. जांगमेजा ने उसे बहुत डांटा - फटकारा और यहां तक कि उस पर चोरी का आरोप भी लगाया. छिपकली का कहना था कि उसने भूख लगने पर जमीन पर गिरे हुए बेर को खाया और वह भी पेड़ पर चढ़े बगैर अतएव वह चोरी की दोषी नहीं है. जांगमेजा ने प्रस्ताव रखा कि दोनों की बिरादरी के सभी पक्षी तथा रेंगनेवाले जंतु अमुक दिन इकट्ठे हों और तब सही निर्णय लिया जाये.

दोनों पक्षों को नियत दिन पर सुंक्कोडांग के दरबार में बुलाया गया किंतु उस पूरे दिन भर उसका कोई फैसला न हो सका. अतएव यह तय हुआ कि तीन दिन बाद युद्ध के मैदान में ही इसका निर्णय हो.

नियत दिन पर इच्छुक-अनिच्छुक, सबल-निर्बल सभी पक्षी तथा रेंगनेवाले जीव-जंतु तैयार हो कर लड़ाई के मैदान में आये. सबसे पहले रेंगनेवाले जीव-जंतुओं की ओर से एक सांप ने पक्षियों को चुनौती दी. उसका सामना करने के लिए एक 'हार्नबिल' पक्षी आगे बढ़ा. दोनों में भयंकर युद्ध छिड़ गया जो देर तक चलता रहा किंतु अंततः 'हार्नबिल' मारा गया. सभी पक्षियों ने एक - एक करके सांप को चुनौती दी किंतु सभी खेत रहे. इतने में उनकी नजर एक उल्लू पर पड़ी जो एक वृक्ष की डाली पर चुपचाप बैठा हुआ यह सारा दृश्य देख रहा था. उन्होंने उससे प्रार्थना की कि वह उनकी ओर से सांप का मुकाबला करे.

उल्लू से चुप बैठा न रहा गया, वृक्ष से उतर कर उसने सांप से लंबा युद्ध करके अंत में उसको मार डाला. उसके उपरांत वह वापस वृक्ष की शाखा पर जा कर ठाट से बैठ कर देखने लगा कि अन्य पक्षीगण अब क्या करते हैं. उत्साहित पक्षी एक-एक करके रेंगनेवाले जीवों से लड़ते रहे और विजयी हुए.

तब से ही आओ नागाओं में यह कहावत प्रचलित है कि उल्लू छोटे-मोटे पक्षियों तथा सांपों का आहार करता है.

□□□

मुखौटे

• मनजीत

रिक्शा शहर की तंग सड़कोंवाले मुहल्ले को पार कर इस शहर के आधुनिक परिवेश वाले इलाके में प्रवेश कर चुका था. सड़क के दोनों ओर खूबसूरत बंगले बने हैं और बीच-बीच में कुछ का निर्माण हो रहा है.. हर निश्चित फासले के बाद पार्क बने हुए हैं. पार्कों में आधुनिक किस्म के फव्वारे लगे हुए हैं. इसमें कुछ के तो खराब पड़े हैं. वातावरण में एक खुलापन है. शाम का वक्त है और मैं जा रहा हूं अपनी नाट्य संस्था 'रंग लोक' की एक अत्यंत आवश्यक मीटिंग में. आज की मीटिंग नाथ बाबू ने अपने यहां रखी है.

नाथ बाबू में कितनी लगन है. कला के प्रति! उस दिन मैं विपिन के यहां से लौट रहा था कि रास्ते में ही नाथ बाबू मिल गये थे. मैं उन्हें देख नहीं पाया था. उन्होंने ने ही देखा था-- कहो भाई, कहां घूम रहे हो? मुड़ कर, उन्हें देखा तो नमस्कार किया. पास आकर उन्होंने हाथ मिलाया था.

--बस, ऐसे ही एक दोस्त के यहां गया था, मैंने कहा.

तभी उनका ड्राइवर क्लाथ हाउस में से कपड़ों के पैकेट लेकर कार का पिछला दरवाजा खोलने लगा था कि नाथ बाबू बोल पड़े थे--सामान अगली सीट पर रखो, और मेरी ओर मुड़ कर बोले थे, आइये बैठिये!

--नहीं मुझे अभी एक और जरूरी काम है, यहीं पास में ही लाइटवाले से, अगले हफ्ते शो है न, मैंने कहा तो चौंक गये थे.

--शो है पर कहां?

--अबकी बार हम यह शो ओपेन एयर में कर रहे हैं, जूही लेबर कालोनी में, मैंने उत्तर दिया था.

और यह चश्मा--चढ़ी आंखों से आकाश की ओर देखते रहे थे. थोड़ी देर तक, फिर मेरी ओर होकर कहा था--परसों संडे है. याद है न, मीटिंग है मेरे यहां, प्रभाकरजी से मेरी बात हुई थी. वह बता रहे थे कि वीरेंद्र और मैं, कांसीट्यूशन तैयार कर रहे हैं. संडे तक तैयार हो जायेगा. और मेरा ख्याल है कि संडे को ही सबकी राय जानकर, मंडे को लखनऊ जाकर रजिस्ट्रेशन के लिए अप्लाई कर दिया जाये.

--हां, ऐसा ही ठीक रहेगा, मैंने उनकी बात पर सहमति प्रकट की थी.

कुछ देर खड़े रहने के बाद हम लोग चलने को हुए थे, कार पर बैठते हुए उन्होंने मुझसे कहा था--अगर पैसे-वैसे की जरूरत पड़े तो बताना. मैं इस बात पर इंकार करते हुए हल्का-सा मुस्करा दिया था. खुशी हुयी थी उनके लगाव के प्रति. उनकी कार आगे बढ़ गयी थी और मैं अनवर बिजली वाले की दूकान की ओर बढ़ गया था.

नाथ बाबू से मेरी पहली मुलाकात, शायद वीरेंद्र ने करायी थी. सुशील के एम. एस. डी. चले जाने से वीरेंद्र संस्था के सचिव पद पर नया-नया आया था. वीरेंद्र की नाथ बाबू से जान-पहचान जगदीशजी ने करायी थी. जगदीश संस्था के पुराने संरक्षक हैं. और एक दिन वीरेंद्र मुझे नाथ बाबू के आफिस में ले गया था. उन दिनों हम लोग 'तुगलक' की तैयारियां कर रहे थे. सोविनियर के लिए विज्ञापन चाहिए थे. और नाथ बाबू ने पंद्रह मिनट में ही फोन से पांच विज्ञापन एकत्रित कर दिये थे और कहा था-- दो एक और कर दूंगा, शाम तक. हजार-डेढ़ हजार के एडवर्टिजमेंट मेरी तरफ से पक्के समझिये. और एक मेरी फैक्टरी का कवर पेज का छाप लीजिए. हमारी काफी देर तक बातचीत होती रही थी. तभी उन्होंने कहा था, अगर आप लोग संस्था का रजिस्ट्रेशन करा लें तो आप लोगों को काफी सहूलियत होगी, मेरे कुछ एम. एल. ए. जान-पहचान के हैं. उनसे कह कर आपको नाटक आकादमी से एड दिला दूंगा. रजिस्ट्रेशन की जरूरत को हम लोग भी समझते थे और हम लोगों ने इस दिशा में ध्यान देना शुरू कर दिया था.

नाथ बाबू और जगदीशजी संस्था को हर संभव मदद देने के लिए तैयार हैं इसलिए हमें कम से कम दो शो लेबर कालोनी में कर देनें चाहिए और एक-आध शो नवाबगंज की हरिजन बस्ती में हो जाय तो अगले प्ले की तैयारियां की जायें, उस दिन विपिन बता रहा था.

मराठी का एक नाटक अनुवादित होकर हिंदी में आया है जिसमें कुल दो ही पात्र हैं, बता रहा था कि अच्छा है, इसलिए सोच रहा हूं कि वही किया जाये. नाथ बाबू भी खुश होंगे, इस नये प्रयोग को देख कर.

'ई' ब्लाक आ गया था. मैं जेब से नाथ बाबू के बंगले का पता निकाल कर देखने लगता हूं. रिक्शा-वाले से रिक्शा धीरे चलाने के लिए कहता हूं और प्रत्येक बंगले के नंबर को गौर से देखता हूं.

इसी बीच , एक जगह दिखायी दे गया उनका बंगला. रिक्शा वहीं रुकवाया था. पैसे दिये और बंगले की ओर बढ़ा. गेट का एक हिस्सा अंदर की ओर लुढ़का हुआ है और एक हिस्से पर टीन की एक पट्टी पर एक नोटिस लगा है, 'कुत्ते से सावधान'. मैं पढ़ कर, थोड़ा भयभीत हुआ. थोड़ा अंदर बढ़ा तो सामने विपिन की स्कूटर खड़ी थी. नाथ बाबू की कार के अलावा एक कार और खड़ी थी और पास ही जमीन में गड़े से एक कुत्ता बंधा हुआ था. वह मुझे देख कर भौंकने लगता है. कुत्ता काफी तंदुरुस्त है और लाल आंखें किये मुझे भौंक रहा है. अगर जंजीर खुल जाये तो कोई शक नहीं वह मुझ पर टूट पड़ेगा.

कुत्ते की आवाज सुन कर एक आदमी बाहर आता है और वह मुझे अंदर ले जाता है.

अंदर ड्राइंग रूम में छह या सात लोग बैठे हैं. मैं हां

जोड़ कर सबको अभिवादन करता हूं, इन सात लोगों में एक नया चेहरा दिखायी देता है-- काला कलूटा, बेहद भद्दी शक्ल लिये हुए. उसने कीमती कपड़े पहन रखे हैं, हाथों की उगलियों में कीमती हीरों की अंगूठियां हैं और कहीं टेलीफोन से बात कर रहा है. कमरा काफी ठंडा है, शायद ऐयर कंडीशनर चल रहा है. पिछली मीटिंग में जो प्रभाकरजी ने अपने यहां रखी थी, कितनी असुविधा हो रही थी!

अंदर से नाथ बाबू आते हैं. मैं उन्हें हाथ जोड़ता हूं. वह स्वीकारने की मुद्रा में मुस्करा देते हैं.

---आप सब लोग तो आ गये हैं, पर अभी तक जगदीश नहीं आया. वह उस अपरिचित आदमी की ओर होकर कहते हैं, अरे भाई पी. एल. जरा जगदीश को फोन तो करना, पता नहीं अभी तक क्यों नहीं आया, और वह आदमी फोन मिलाने लगता है. शायद उधर से आवाज आती है, वह पूछता है-- कौन ?. . . . अरे भाभीजी नमस्ते, भाभीजी जगदीश हैं. . . क्या कहा? चले गये. . . . अच्छा कितनी देर हुए. . . . . अच्छा बस वैसे ही. और वह रिसीवर रख देता है और नाथ बाबू की ओर होकर कहता है— घर से तो चल दिये हैं.

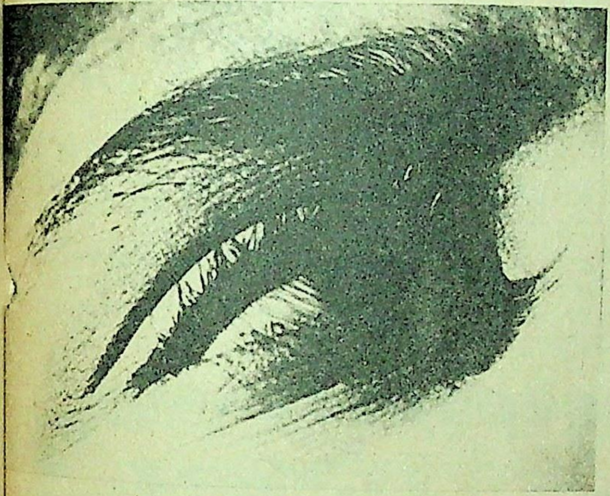

----ठीक है, थोड़ी देर और इंतजार कर लेते हैं. मैं समझता हूं कि तब तक एक दूसरे का परिचय हो जाय, नाथ बाबू कहते हैं, आपका मैं इनसे परिचय करवा दूं.

वह उस काले-कलूटे आदमी को की ओर इशारा करके कहते है---आप हैं श्री पी. एल. सिंह. एक्सपोर्ट का बिजनेस करते हैं. कल्चर से विशेष लगाव है.

इस बीच वह आदमी उठ कर हाथ जोड़ता है. नाथ बाबू कहते जा रहे हैं. मैं इन्हें संस्था में लाना चाहता हूं, अगर आप सबकी इजाजत हो.

--हमें क्या एतराज हो सकता हं. नाथ साहब, प्रभाकरजी कहते हैं.

—प्रभाकरजी, मैं तो मजाक में यह सब कह रहा हूं, नाथ बाबू हंस कर कहते हैं.

--प्रभाकरजी आप संस्था के अध्यक्ष हैं, इसलिए इन सबका परिचय आप ही करा दीजिए. नाथ बाबू के कहने पर प्रभाकरजी उठ कर परचिय कराने लगते हैं. वह वीरेंद्र की ओर इशारा करके कहते हैं-- वीरेंद्र हैं, हमारी संस्था के सचिव. वह उठ कर हाथ जोड़ता और बैठ जाता है. और आप हैं अमरजीत, उनका इशारा मेरी ओर था. मैं उठ कर हाथ जोड़ता हूं और प्रभाकरजी पी. एल. सिंह को बताते हैं-- आजकल आप ही संस्था के नाटकों का निर्देशन देते हैं. और आप इनके अभिनय से परिचित हैं ही, यह इशारा विपिन की ओर था. इन्हें नगर के रंगमंच का हीरा कहा जाता है. इनका नाम विपिन है. विपिन भी उठ कर हाथ जोड़ देता है. विपिन के बगल में दिनेश बैठा है. प्रभाकरजी उसका परिचय करा रहे हैं. दिनेश भी हांथ जोड़ कर बैठ जाता हं. अब वंदना का नंबर आ गया है. वे उसकी ओर इशारा करके कहते हैं, यह हैं वंदना, हमारी संस्था की एकमात्र महिला कलाकार.

--पिछले हफ्ते वाला आपका नाटक बेहद पसंद आया वंदनाजी, पी. एल. सिंह बोल पड़ते हैं.

--मैंने तुमसे उस दिन जिक्र किया था न, कि तुम्हारे यहां कोई वांट हो तो वंदना का ख्याल रखना. पी. एल. बेहद ओछे ढंग से मुस्करा देता है, जिसकी वजह से उसकी बड़ी-बड़ी आखें बाहर निकल आती है और उसका चेहरा बेहद डरावना लगता है.

नाथ बाबू उठ कर अंदर चले जाते हैं जहां से शायद वह किचन की ओर गये हैं. उनके पीछे-पीछे एक दुबला पतला-सा लड़का, मेरे ख्याल से उसका नौकर है, एक ट्रे में शर्बत भरे गिलास लाता है और सबके आगे रख देता है. पी. एल. सिंह इस बीच पांच-छह फोन कर चुके हैं. मुझे लग रहा है वह शायद अपनी व्यस्तता का ढोंग रच रहे ह.

इसी दरम्यान, हाथ जोड़े, बड़े रोमानी अंदाज से जगदीशजी आ जाते हैं---दोस्तो, क्या बताऊं, एक जरूरी काम से फंस गया था इसलिए देर हो गयी. जगदीशजी क्या कहते हैं, और भाई पी. एल. क्या हाल है?

--ये भाई , सुनो, यह फोन उस कमरे में रखो. जब तक यहां रहेगा मैं बातें करता रहूंगा, पी. एल. उस नौकर से कहते हैं.

---प्रभाकरजी मेरे ख्याल से अब ज्यादा वक्त न लेकर हमें मीटिंग शुरू कर देनी चाहिए. नाथ बाबू कहते हैं.

---हां वक्त बहुत हो रहा है. अब और तो किसी के आने की संभवना है नहीं, प्रभाकरजी उत्तर देते हैं. वह इशारे से वीरेंद्र से कुछ कहते हैं. वह एक फाइल उनकी ओर बढ़ा देते हैं. फाइल लेकर प्रभाकरजी खड़े हो जाते ह---साथियो, आज की मीटिंग हमने इसलिए बुलायी है कि हमने विगत कई वर्षों से इस संस्था को चलाया है और अब यह तय किया है कि इस संस्था का रजिस्ट्रेशन कराया जाये. इसलिए हमने यह संविधान तैयार किया है, जिसके लिए आप सबकी स्वीकृति आवश्यक है. और वह संविधान के प्रारूप को फाइल से निकाल कर पढ़ने लगते हैं-- नाट्य संस्था का नाम 'रंग

लोक' होगा तथा इस संस्था का उद्देश्य हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के नाटकों का मंचन करना होगा. . . .

—सिर्फ नाटक करने से क्या होगा प्रभाकरजी, प्रभाकरजी बोल रहे थे कि नाथ बाबू बीच में बोल पड़े, मैं तो समझता हूं कला की विस्तृत सेवा के लिए टाइम-टाइम पर डांस और म्यूजिक प्रोग्राम भी रखने चाहिए. क्यों जगदीश, तुम्हारा क्या ख्याल है?

—मैं तो समझता हूं कि आपकी बात ठीक है. कुछ लोगों को नाटक वगैरह पसंद भी नहीं आते. इसके लिए ऐसा किया जा सकता है. जैसे ड्रामा हुआ, उसके बाद एक-आध म्यूजिकल प्रोग्राम हो जाये या फिर किसी अच्छी डांसर का डांस, जिसके काफी भीड़ खिंच सकती है, जगदीशजी उत्तर देते हैं.

—म्यूजिकल प्रोग्राम के लिए तो अपना छोटा साला है, उसने एक म्यूजिक संस्था बना रखी है. इसके लिए उससे हेल्प ली जा सकती है. पी. एल. सिंह रिसीवर मुंह से हटा कर बीच में ही बोल पड़ते हैं.

मुझे इन तीनों की इस वक्त की राय कतई पसंद नहीं आ रही है.

—इस सांस्कृतिक संस्था का नाम 'रंग लोक' होगा, प्रभाकरजी को हार कर सांस्कृतिक संस्था कहना पड़ता है. इस संस्था का प्रधान कार्यालय कानपुर में होगा. . .

—अगर आप लोगों को एतराज न हो तो मेरे यहां आफिस बना लें, नाथ बाबू बीच में ही बोल पड़ते हैं. मैं वीरेंद्रजी की ओर देखता हूं कि मुझे लगा, जैसे उसके चेहरे पर असुविधा का भाव तैर गया हो, मगर वह कुछ बोलता नहीं. सबकी ओर से स्वीकृति का उत्तर पाकर प्रभाकरजी ने कार्यालय का पता भी लिख दिया.

—इस संस्था के सात संरक्षक होंगे, और नाथ बाबू यह आप लोगों को तय करना है कि पैट्रेंस की मेंबरशिप की रकम कितनी होनी चाहिए. . . . प्रभाकरजी कहते हैं.

—मेरे ख्याल से नाथ बाबू, पैट्रेंस के लिए ढाई हजार डोनेशन होना ही चाहिए, पी. एल. सिंह कहते हैं.

—क्या सोच रहे हैं नाथ बाबू? अरे उस दिन आपने इक्कीस सौ रुपये दिये थे. मुझे संस्था का नाम याद नहीं आ रहा, अरे उन्होंने आपको अपने वार्षिक समारोह में चीफ गैस्ट भी बताया था, पी. एल. सिंह फिर कहते हैं.

—अरे यार पी. एल., तुम बेकार में ढाई हजार कह रहे हो, मैं तो सोच रहा हूं पैट्रेंस के लिए डोनेशन कम से कम पांच हजार तो होना ही चाहिए. अरे भाई, संस्था के पास तीस-चालीस हजार का फंड तो करना ही है.

—देखिये, हमें पैट्रेन भी चुन-चुन कर बनाने हैं, उस दिन वीरेंद्र मुझसे कह रहा था, घाई को शामिल कर लिया जाय. बड़े इंट्रेस्टेड हैं. तो इसके लिए हमें ध्यान रखना है, कहीं ऐसे-वैसे लोग न घुस आये संस्था में.

जगदीशजी बड़ी देर चुप रहने के बाद बोले हैं. मुझे इनकी इन बेहूदा बातों से न जानें क्यों ऊब होने लगती है.

—अच्छा प्रभाकरजी, आगे, पी. एल. सिंह कहते हैं.

ऐटेक्स
सौंदर्य प्रसाधन
EYETEX
REGD.
EYETEX DELUXE BINDI PENCIL
AL-75176
ARAVIND LABORATORIES
MADRAS-600 033

—आगे तो कलाकारों और सदस्यों की मेंबरशिप की फीस के बारे में है जो इन लोगों ने हाल ही तय कर ली है. इन्होंने अपना वार्षिक चंदा इक्कीस रुपये रखा है. और इसके आगे है कि, इस संस्था का जितना भी लेनदेन होगा, वह बैंक द्वारा ही होगा.

—देखिये प्रभाकरजी, हम लोग जितना भी सा देंगे, वह दो नंबर का होगा. इसलिए जाहिर है कि कि से नहीं दे सकते और नाही इस पैसे को अपने यहां ातों में एंट्री ही कर सकते हैं. इसलिए आप यह लाइन ाट दें तो बेहतर होगा. नाथ बाबू ने कहा.

—मेरे ख्याल से, अब संविधान को आप लोगों के नुरूप बनाना पड़ेगा. इसको फिर से बना कर आप लोगों ी स्वीकृति में लाना पड़ेगा, प्रभाकरजी बोले.

—ठीक है, अगली मीटिंग भी हमारे यहां रख ीजिए, नाथ बाबू कहते हैं. तभी नाथ बाबू से छोटी-सी लड़की उनके पास जाकर कुछ कहती है.

—ऐसा है, डाइनिंग रूम में नाश्ता लग गया है, ब लोग उधर ही चलें. नाथ बाबू के कहने पर सब लोग ठ कर डाइनिंग रूम की ओर चल देते हैं.

* *

डायनिंग टेबल पर विभिन्न प्रकार की खाने की ाजें रखी हुई हैं. पी. एल. सिंह वंदना से बातें कर रहे प्रभाकरजी और विपिन उनके पास खड़े उनकी तें सुन रहे हैं. वीरेंद्र और दिनेश चाय बना रहे हैं. नाथ बू और जगदीशजी आपस में बातें कर रहे हैं.

—वीरेंद्रजी नाथ बाबू कहते हैं, हमनें सुना है कि ले हफ्ते आप लोग किसी लेबर कालोनी में तंबू, कनात ा कर नाटक करने जा रहे हैं. क्या चेंबर हाल खाली हीं है?

—नहीं नाथ बाबू, ऐसी बात नहीं है. हमने सोचा कि हम जब तक नाटकों को प्रेक्षागृह की दीवारों से हर निकाल कर आम आदमी तक नहीं ले जाते, तब तक ा सार्थक नहीं होगी.

—देखो भाई, अगर हाल बुक कराने के लिए पैसे ीं थे, तो हम लोगो से ले लेते. नाथ बाबू कहते हैं.

—तुम लोग शो के लिए लेबर कालोनी वालों से ा पैसा ले रहे हो? जगदीशजी पूछते हैं.

—जी, पैसा तो कुछ नहीं, सारा कुछ अपने पास से रहे हैं, वीरेंद्र उत्तर देता हैं,

—वीरेंद्रजी, यह बात मेरी समझ में नहीं आती. कर रहे हैं, वह भी मुफ्त में. अरे भाई, हाल के अंदर क का जो स्टैंडर्ड है, वह तंबू-कनात में नहीं. देखो जो हाल के अंदर आती है, वह सड़कों पर नहीं आयेगी. तरह सड़कों पर शो करके क्यों संस्था को सड़क- बना रहे हो?

मेरे मुंह में पड़े मिठाई के टुकड़े का स्वाद अंदर तक पन छोड़ जाता है. मेरी सारी धारणा, सारा ास न जाने कहां गायब हो जाता है और इस वरण से एक ऊब-सी होने लगती है. □□□

२३६, हालसी रोड,
पुर -२०८००१

बिनाका टॉप टूथपेस्ट
मुँह की पूरी रक्षा के लिये

Binaca
top
toothpaste
SUPER SIZE

ताज़गी महसूस
कीजिये
सुबूत अपनी
आँखों से देखिये

बिनाका टॉप का विशेष फैलने वाला तत्त्व आपके मुँह की पूरी रक्षा करते हुए उसे ताज़गी से भर देता है।
क्योंकि यह तत्त्व तुरंत आपके मुँह के हर कोने में फैल कर दांतों में सड़न पैदा करने वाले कीटाणुओं का नाश करता है और साँस की दुर्गंध को रोकता है; यूं कहिये आपको ताज़गी भरे आत्म विश्वास से प्रफुल्लित रखता है।

यह टेस्ट स्वयं कर के देखिये, पानी में थोड़ा सा लकड़ी के कोयले का चूरा डालिये और इसमें थोड़ी सी बिनाका टॉप टूथपेस्ट घोलिये। अब देखिये बिनाका टॉप कितनी तेज़ी से चारों तरफ फैलता है.. मैल को दूर करता है और पानी की सतह को बिल्कुल साफ़ कर देता है। आपके मुँह में भी बिनाका टॉप बिल्कुल इसी तरह काम करता है।

सीबा गायगी

ARMS-CBT-20-704 HN

प्रसंग

५० वीं पुण्यतिथि

पं. माधवराव सप्रे : एक स्मरण

● डॉ. गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैंया

आज से सात-आठ वर्ष पूर्व तक कोई नहीं जानता था कि हिंदी का प्रथम मौलिक कहानी-लेखक कौन है. आचार्य रामचंद्र शुक्ल का प्रमाणपत्र-प्राप्त व्यक्ति ही इस क्षेत्र का निर्विवाद प्रतिष्ठित व्यक्तित्व था. हिंदी साहित्य-इतिहास के सारे ग्रंथ शुक्लजी के अनुकर्ता बने रहे. जो सूची एक बार शुक्लजी ने बना दी थी, वह अंतिम न हो कर भी अंतिम ही बनी रही. लेकिन कुछ वर्ष पूर्व पहली बार 'सारिका' के माध्यम से देवी प्रसाद वर्मा ने इस तथ्य को उजागर किया कि हिंदी का प्रथम मौलिक कहानी लेखक वह नहीं, जिसे शुक्लजी ने कहा था, बल्कि सुदूर अंचल में हिंदी के लिए सर्वस्व समर्पित कर निर्भीक साधना करने वाला स्वर्गीय माधवराव सप्रे जैसा उद्भट व्यक्तित्व है.

स्व. सप्रेजी न केवल प्रथम मौलिक कहानी **'टोकरी भर मिट्टी'** के लेखक हैं, बल्कि अन्य अनेक कहानियां भी उन्होंने लिखी थीं. **'टोकरी भर मिट्टी'** को **'सारिका'** ने अविकल रूप में प्रकाशित भी किया था. इस कहानी में उस सामंती युग की अर्थ और वर्ग-विषमता के दिग्दर्शन के साथ ही निरीह मानव की विवशता, आंतरिक मानवता का मार्मिक चित्रण किया गया है, जहां सांकेतिक ढंग से बहुत कुछ कह जाने की प्रकृति दिखायी पड़ती है. ७५ वर्ष पूर्व लिखी गयी इस कहानी में आज की कहानी के बीज विद्यमान प्रतीत होते हैं. सत्य के अन्वेषण और निष्कर्ष के लिए **'सारिका'** ने लगभग छह माह तक इस संबंध में चर्चा को जीवंत रखा और अंततः सभी ने स्वीकार किया कि हिंदी की प्रथम कहानी वही है. बाद में जो भी संग्रह कहानी के ऐतिहासिक क्रम को दृष्टिगत रख कर प्रकाशित किये गये, उनमें सप्रेजी की इस कहानी को शीर्ष स्थान प्राप्त हुआ. विश्वविद्यालयों ने उसे विशिष्ट स्थान दिया. **'सारिका'** कहानी विधा की दिशा-निर्देशक पत्रिका है. प्रकाशन-संपादन की दृष्टि से उसका महत्वपूर्ण स्थान है.

सप्रेजी न केवल प्रथम मौलिक कहानी लेखक के रूप में बल्कि अन्य अनेक कारणों से सदैव स्मरण किये जायेंगे. **'छत्तीसगढ़ मित्र'** नामक साहित्यिक मासिक का संपादन-प्रकाशन उन्होंने छत्तीसगढ़ अंचल से सन् १९०० में प्रारंभ किया था और उसी में यह प्रथम कहान प्रकाशित हुई थी. उन्होंने हिं साहित्य में 'मित्र' के माध्यम समालोचना का भी प्रारंभ किय था. जब समाचारपत्रों में औ पत्रिकाओं में युद्ध के समाचा प्रकाशित होते थे, तब उन्हों ३०-४० पृष्ठों तक की समीक्षाए प्रकाशित की थीं. लोगों शिकायत भी की तो आपने स्पष् लिखा कि हमारा लक्ष्य कुछ और है. अतः आप लोग 'आ में इमली का स्वाद' ढूंढ़ने को निरर्थक चेष्टा न करें.

वह नहीं चाहते थे कि लो साहित्य के नाम पर खिलवाड़ क

टोकरी भर मिट्टी

(स्व. माधवराव सप्रे द्वारा लिखित 'टोकरी भर मिट्टी' संक्षेप में यहां दी जा रही है.)

एक जमींदार की हवेली के पास एक गरीब अनाथ विधवा की झोपड़ी थी. वह उसमें अपनी पतोहू द्वारा छोड़ी गयी पांच वर्ष की एक कन्या को ले कर रहा करती थी. जमींदार की इच्छा अपनी हवेली का अहाता उस झोपड़ी तक बढ़ाने की हुई. विधवा से बहुतेरा कहा गया कि वह अपनी झोपड़ी वहां से हटा ले किंतु वह टस से मस न हुई. इस पर जमींदार ने अदालत का सहारा लिया और वकीलों की जेब गर्म करके झोपड़ी पर कब्जा करके बुढ़िया को वहां से निकाल बाहर किया.

एक दिन जमींदार झोपड़ी के पास टहल रहे थे कि बुढ़िया वहां आ पहुंची. उसके साथ उसकी पोती भी थी. बुढ़िया ने गिड़गिड़ा कर कहा कि जब से उसकी झोपड़ी छूटी, उसकी पोती ने खाना-पीना छोड़ दिया है. यदि जमींदार आज्ञा दें तो वह झोपड़ी में से एक टोकरी मिट्टी बाहर निकाल कर उसका चूल्हा बनायेगी. उसका विश्वास है कि उस पर बनी रोटी उसकी पोती खाने लगेगी. जमींदार ने दया करके उसे ऐसा करने की आज्ञा दे दी. बुढ़िया ने भीतर जा कर एक टोकरी भर मिट्टी भर ली और उसे बाहर ले आयी. अब वह जमींदार से प्रार्थना करने लगी कि इसे हाथ लगा दीजिए ताकि मैं इसे सिर पर रख लूं. जमींदार ने पहले तो आनाकानी की फिर टोकरी उठाने को आगे बढ़ा. लेकिन पूरी ताकत लगा कर भी वह टोकरी उठाने में असमर्थ रहा. इस पर बुढ़िया ने कहा—श्रीमान नाराज न हों, इस झोपड़ी में हजारों ऐसी टोकरियां भरी मिट्टी पड़ी हैं. उनका भार आप जन्म भर कैसे उठा पायेंगे? बुढ़िया के ये वचन सुनकर जमींदार बड़ा लज्जित हुआ. उसने क्षमा मांगी और उसकी झोपड़ी भी वापस कर दी. □□□

और समालोचक अपनी मनमानी लेखकों पर थोपें. वह साहित्य में 'सत्यं शिवं सुंदरम्' के पक्षधर थे और इसी के लिए लोगों को प्रेरित, उत्साहित तथा संबोधित किया. उनका स्पष्ट अभिमत था कि समालोचक को उचित है कि गुण-दोष सप्रमाण सिद्ध करे, जिससे लेखक को मालूम हो जाये कि कौन-से गुण हैं, कौन-से दोष हैं. . . विद्वानों का यह काम नहीं है कि केवल दोष प्रकाशित करने में ही कमर बांध लें. यदि पुस्तक में गुण हों, तो उसका भी विचार करना चाहिए. वह कलम को कुल्हाड़ा नहीं बनाना चाहते थे. वह तत्कालीन रचना-स्थिति से संतुष्ट नहीं थे. तभी तो लिखा था कि "आजकल हिंदुस्तान में काव्य रस के विषय में बड़ी गड़बड़ मच गयी है. अर्थ की गंभीरता, नैसर्गिक वर्णन की कुशलता, पद की सुंदरता और अलंकार की उपयुक्तता पर कोई ध्यान नहीं देता. तुक में तुक मिला कर शब्दों के आडंबर और पदों के बैठाने में ही कई होनहार तरुण व्यक्तियों ने अपनी सारी बुद्धि उलझा रखी है."

समालोचना का आरंभ करने के साथ ही राष्ट्रभाषा हिंदी और राष्ट्रीयता के लिए उन्होंने आजीवन प्रयत्न किया. **'कर्मवीर', 'हिंदी केसरी,' 'छात्रहितकारिणी श्री शारदा'** आदि के लिए उन्होंने सभी प्रकार के प्रयत्न किये. तत्कालीन कई प्रतिष्ठित विद्वानों और पत्र-संपादकों ने स्वीकारा था कि सप्रेजी की मृत्यु **'कर्मवीर,'** के लिए अधिक श्रम करने से हुई. वह **'कर्मवीर'** के लिए पागल-से थे. प्रचार-प्रसार, धन-संग्रह, सुरक्षा-साधन सभी की व्यवस्था उन्होंने की. उनकी उत्कट अभिलाषा थी कि हिंदी को सर्वोच्च स्थान मिले, क्योंकि इसके बिना न तो देश का विकास होगा और न एकता आयेगी. हिंदी साहित्य सम्मेलन के देहरादून अधिवेशन में अध्यक्ष पद से बोलते हुए उन्होंने सन् १९२४ में अह्वान किया था कि सबको सारे मतभेद भुला कर हिंदी के लिए समर्पित होना चाहिए, बिना हिंदी की श्रेष्ठता के हमारा कल्याण संभव नहीं.

तिलकजी के **'गीता रहस्य'** का उन्होंने हिंदी में अनुवाद किया था. नौ सौ पृष्ठों के इस वृहद ग्रंथ के लिए हिंदीभाषी लोग उन्हें सदा याद करते रहेंगे. अन्य दर्जनों ग्रंथ उनके द्वारा हिंदी साहित्य को प्रदान किये गये. पांच-छह दर्जन निबंधों की उन्होंने रचना की. इन निबंधों में जीवन, साहित्य, समाज, दर्शन, धर्म-संस्कृति के अनेक पक्षों पर व्यावहारिक ढंग से विचार किया गया है.

आपकी इन्हीं तमाम सेवाओं के कारण स्वर्गीय पुरुषोत्तमदास टंडन ने उन्हें 'हिंदी का गौरव' और 'हिंदी केसरी' कहा था. स्वर्गीय महावीरप्रसाद द्विवेदी ने आपकी राष्ट्रभाषा और राष्ट्र-सेवा के लिए हिंदी वालों की ओर से कृतज्ञता ज्ञापित की थी. और श्री नरदेव शास्त्री ने उन्हें मध्यप्रदेश की उपलब्धियों का प्रतीक स्वीकार किया था.

सप्रेजी को जीवन भर शांति और सुख प्राप्त नहीं हुआ. ठेकेदारी, ट्यूटरी, मास्टरी, मैनेजरी आदि सब कुछ किया पर लक्ष्य से नहीं हटे. आंतरिक सुख ही उनके लिए सच्चा सुख था.

ऐसे अप्रतिम व्यक्तित्व का जन्म मध्यप्रदेश के दमोह जिले के पथरिया ग्राम में १९ जून १८७१ को हुआ था. आज से ५० वर्ष पूर्व २३.४.१९२६ को इस संसार को छोड़ कर चले गये. हमारा कर्तव्य है कि उनसे प्रेरणा ले कर कुछ स्थायी महत्व का कार्य करें. उनके नाम पर कहानी क्षेत्र में एक पुरस्कार का प्रारंभ किया जा सकता है. साहित्यकारों का दायित्व है कि उनका सही-सही मूल्यांकन करते हुए उनके संपूर्ण साहित्य को सुनियोजित ढंग से प्रकाशित करें. □□□

स्व. माधवराव सप्रे

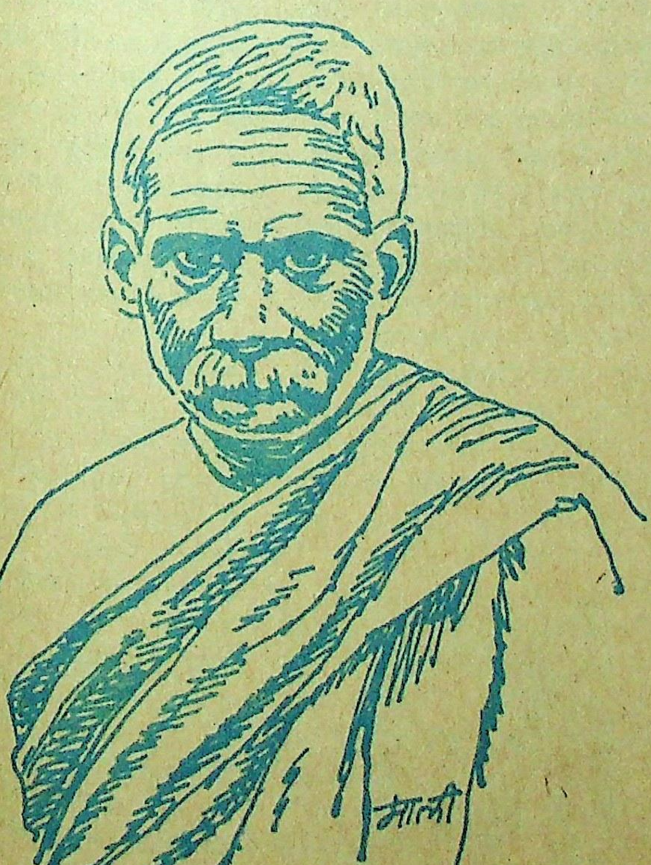

कृतियां

दो कहानी-संग्रह

'हिंदी कहानियां'

संपादक : डॉ. नामवर सिंह; नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली; मूल्य : चार रुपये पचास पैसे

● रामदेव आचार्य

नेशनल बुक ट्रस्ट ने 'कथा-भारती' शीर्षक के अंतर्गत एक सोद्देश्य पुस्तक-माला की योजना क्रियान्वित की है, जिसका लक्ष्य भारत की प्रतिनिधि भाषाओं की उत्कृष्ट कृतियों को अन्य भाषी लोगों तक पहुंचाना है.

प्रस्तुत संकलन में हिंदी की पंद्रह प्रतिनिधि कथाएं मुद्रित हैं : (१) चंद्रधर शर्मा गुलेरी: **'उसने कहा था,'** (२) प्रेमचंद : **'कफन'**, (३) जयशंकर प्रसाद: **'गुंडा'**, (४) जैनेंद्रकुमार: **'पाजेब'**, (५) यशपाल : **'पराया सुख'**, (६) रांगेय राघव : **'गदल'**, (७) फणीश्वर नाथ रेणु : **'तीसरी कसम'**, (८) निर्मल वर्मा : **'लंदन की एक रात'**, (९) राजेंद्र यादव : **'खुशबू'**, (१०) मोहन राकेश : **'उसकी रोटी'**, (११) कमलेश्वर : **'गर्मियों के दिन,'** (१२) श्रीकांत वर्मा **'शवयात्रा'**, (१३) अमरकांत : **'दोपहर का भोजन'**, (१४) ज्ञान रंजन : **'फेंस के इधर-उधर'**, (१५) काशीनाथ सिंह : **'सुख'**.

हिंदी कथा के किसी भी सजग पाठक से इन नामों और कहानियों के स्थापित महत्व का रहस्य छिपा हुआ नहीं है. विचारने के लिए ये प्रश्न उभरते हैं : (१) क्या ये कहानियां हिंदी कथा के काल - बद्ध इतिहास को एक प्रतिनिधित्व के साथ रेखांकित करती हैं? (२) हिंदी कथा के संपूर्ण व्यक्तित्व से अपरिचित यदि कोई अंतर्देशीय पाठक इन कथाओं को पढ़े तो क्या वह हिंदी कथा के विकास का सही जायजा ले सकेगा? (३) प्रस्तुत संकलन में किन नामों की अनुपस्थिति खटकती है, तथा किन कहानियों के स्थान पर इन्हीं लेखकों की कौनसी दूसरी कहानियां अधिक सार्थक सिद्ध हो सकती थीं? (४) वृद्ध कथाकार और नये कथाकार के शिल्प-विधान के बीच उभरे अंतराल की क्या पहचान है?

हिंदी कथा का प्रारंभ १९०० के आस-पास माना गया है. १९६० के आसपास तक की कथाएं इस संग्रह में हैं. हिंदी कथा किस प्रकार संपन्नता ग्रहण करती हुई विकास के मार्ग पर बढ़ी है—ऐसी आकृति इस संकलन से उभरती है. इस संग्रह की चंद कथाएं तो अपनी अभिव्यक्ति, विचार-संपदा, और मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि में बेमिसाल हैं, जिनकी तुलना विश्व के किसी भी समृद्ध कथा-साहित्य से की जा सकती है.

यह भी एक सुखद आश्चर्य है कि हिंदी कथा के प्रारंभिक दौर में ही **'उसने कहा था'** जैसी सशक्त कृति की रचना हो गयी थी, जिसमें एक मुंह-बोलती आंचलिकता और एक स्पर्शी मुहावरे की अनुपम छटा थी. यह कहानी १९१५ के समीप लिखी गयी. विकास के इसी परिपक्व क्रम में प्रेमचंद ने नितांत यथार्थवादी कथ्य को जन-भाषा में लिखना प्रारंभ किया. इस प्रकार **'कफन'** जैसी कृति की अवतारणा हुई.

हिंदी के भावी कथाकार के सामने ये सशक्त नीवें थीं.

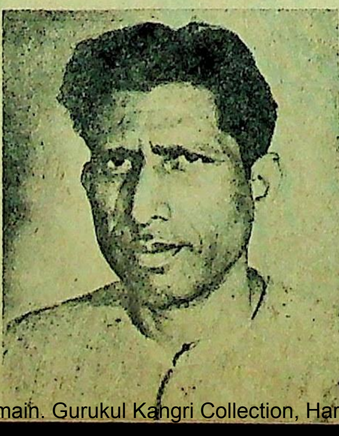

नामवर सिंह

गुलेरी ने हिंदी कथा को एक चटपटी, नाटकीय भाषा, एक जातीय आंचलिकता और एक कला-संयमितता दी. जन-जीवन के तटस्थ शिल्पी प्रेमचंद ने कथा को जीवन का ही पर्याय बना दिया. प्रेमचंद कथा की शहरी आंचलिकता को ग्राम्य-जीवन की गहराइयों तक ले गये और उन्होंने कथा-परिवेश को एक आवश्यक व्यापकता दी. प्रेमचंद ने समांतर चलते जन-जीवन की निर्मम सच्चाइयों को भाषा और भाव की नक्काशियों से मुक्त किया और उन्होंने मानव-जीवन की त्रासद हकीकतों को एक कला संयम के साथ अभिव्यक्ति दी.

'कफन' कहानी में मानव-प्रकृति के जिस तात्विक और गहन सत्य की खोज है, वह सत्य विभीषक भी है, विडंबनापूर्ण भी; कुरेदने-वाला भी है और जीवन का एक प्रामाणिक पहलू भी.

दूसरी ओर प्रसाद रूमानी अद्वितीयता के रचनाकार थे. प्रसाद की कथाएं मध्ययुगीन भावुकता, प्रकृति की सुकुमारता और संवादों की जीवंतता से लदी हुई हैं. नामवर सिंह ने बड़ी सतर्कता से प्रसाद की **'गुंडा'** कहानी संकलित की है, जिसमें प्रसाद की कथा के सभी अंतर्निहित तत्वों के बावजूद एक सामयिक सामाजिक सत्य है.

प्रेमचंद और गुलेरी की सपाटता और तर्जे-बयानी का प्रभाव जैनेंद्र, यशपाल, मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, श्रीकांत वर्मा और अमरकांत की कहानियों में, एक सूक्ष्मता के साथ खोजा जा सकता है. प्रेमचंद का प्रभाव कहानी की तटस्थता पर, सपाटबयानी पर और कलात्मक संयम पर है, और गुलेरी का प्रभाव संवादों के चटपटेपन पर और भावुकता के संयम पर है.

इस संकलन को देखते हुए इस बात पर संतोष होता है कि हिंदी कथा जीवन और कृति के अंतराल को पर्यायवाची

बनाने वाली प्रेमचंद की यथार्थवादी दृष्टि से अधिक प्रभावित है, और प्रसाद की अतिशय रूमानी भव्यता हिंदी कथा के एक अलग, विशिष्ट नक्षत्र के रूप में अकेली जगमगा रही है.

फिर भी हिंदी कथाकारों के प्रतिनिधि संकलन में युवा लेखकों की बेहतर कहानियां रखी जा सकती थीं. साथ ही भगवतीचरण वर्मा, उपेंद्रनाथ अश्क, धर्मवीर भारती, शिवप्रसाद सिंह, मार्कंडेय, कृष्ण बलदेव वैद, तथा कृष्णा सोबती के नामों की अनुपस्थिति खटकती है.

* *

डॉ. नामवर सिंह ने कथा चयन में दो बातें ध्यान में रखी हैं, जो उनके निम्न वक्तव्य में मैंने रेखांकित कर दी हैं : 'यह संपूर्ण हिंदी कहानी का प्रतिनिधि संकलन नहीं है. इसमें कुछ प्रसिद्ध कहानीकार समाविष्ट होने से रह गये हैं. शिल्पगत प्रयोगों की विविधता भी नहीं निभायी गयी है और कुछ कहानी-प्रवृत्तियां भी संभवतः छूट गयी हैं. इसका एक कारण तो संकलन के आकार की निर्धारित सीमा है और दूसरा कारण संपादक की निजी चयन-दृष्टि. सामान्यतः उस दृष्टि को सामाजिक यथार्थ की संज्ञा दी जा सकती है.'

नामवर सिंह की सामाजिक यथार्थवादी और निजी चयन दृष्टि एक-दूसरे की पर्याय हैं, और यही इस संकलन की बुनियादी कमजोरी है. नामवर की दृष्टि अनेक बार एकपक्षीय हो जाती है और उन्हें धुरीहीन छोड़ जाती है. जहां तक पुस्तक के आकार की निर्धारित सीमा का प्रश्न है, वहां यदि नामवरसिंह चंद और कहानियां जोड़ देते तो बजट में ज्यादा फर्क नहीं पड़ सकता था.

फिर भी प्रस्तुत संकलन बहुत महत्वपूर्ण और वजनदार है. □

'एक वह'

लेखक : रामदरश मिश्र;
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली.

● नंद चतुर्वेदी

'उसके भीतर एक देहात तड़पने लगता है, लेकिन उसके ऊपर बिछा हुआ शहर उसे कसे हुए है'— **'उत्सव'** कहानी की भीड़ में एकांत और अजनबीपन का जो दुख व्यक्त हुआ है, वह रामदरश मिश्र की कहानियों का मुख्य प्रसंग है. **'एक वह'** की बारह कहानियों में से दस कहानियों में गांव की बेतहाशा याद, खेत, जंगल तथा लोगों की तरफ बहुत दूर निकल जाने के बाद पीछे मुड़-मुड़ कर देखने और प्रणाम करने वाली मुग्ध दृष्टि है. लेकिन यही एक दृष्टि नहीं है—एक और दृष्टि भी है, जो **'दूरियां'** और **'घर'** जैसी कहानियों में है. दोनों ही कहानियां इसका प्रमाण हैं कि गांव में सब कुछ रूमानी और नेह-भीगा नहीं है. क्या इन कहानियों में वह क्रूर वास्तविकता है, जिसे 'मूल्य-संक्रमण' और 'आर्थिक तब्दीलियों' से गुजरते हुए तनाव की कहानियां कहा जा सके? मेरा खयाल है कि रामदरशजी के लिए गांव के सीमांत छोड़ना कठिन है. **'दूरियां'** और **'घर'** जैसी कहानियां एक पश्चाताप के साथ हैं. एक ऐसी मनःस्थिति के साथ कि देखो, गांव भी अनात्मीय हो गया है!

जो भी हो, मिश्र जी ने इन कहानियों में जिस अमानवीय राजनीति का छल बेपरदा किया है, वह उन्हें विशिष्टता प्रदान करता है. **'एक वह'** कहानी में ताऊ की मौत एक सुखद इंतजार की मौत है, जो उम्र भर अटक-अटक कर रामायण की ये पंक्तियां पढ़ता रहा है—'आरे दयहिक, दयविक भवतिक तापा, राम राज काहू नहिं बियापा.' किंतु मौत के वक्त वह आम और अदना आदमी सिर्फ नेक और

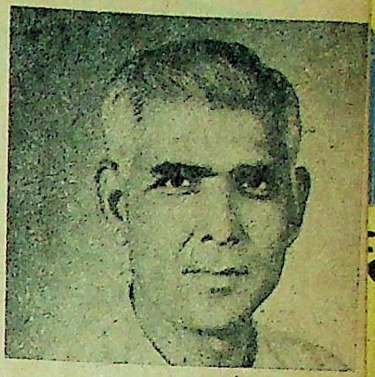

रामदरश मिश्र

खुशनुमा खयालों के पोस्टर में लिपटा हुआ था.

'सड़क' कहानी का रिटायर्ड मास्टर एक खास गर्व और स्वाभिमान के साथ खादी पहनता है, लेकिन अंत में उसे एहसास होता है कि 'एक खादी उसकी है, एक यादवजी की (यादव जी एम. एल. ए. हैं.) यादव ही खादी पहनने के हकदार हैं, क्योंकि उनके शरीर पर खादी का विकास हुआ है और वह? वह नहीं, उसके शरीर पर तो खादी फटती ही चली गयी है.' **'पराये शहर'** और **'जमीन'** कहानियां भी उस छद्मधारी वर्ग को बेनकाब करती हैं जो सीधे-सादे सामान्य लोगों को अपनी चालबाजियों का शिकार बनाता है.

समसामयिक जिंदगी की कड़ुवाहट और व्यापक सवालों को उठाने वाली कहानियां हैं **'मिसफिट'**, **'संबंध'**, **'निर्णयों के बीच निर्णय'**, लेकिन वे अधिक ध्यान आकृष्ट करने वाली कृतियां नहीं हैं, क्योंकि वे बहस की तरह हैं.

रामदरशजी की कहानियों में दुतरफा नजर रखनी पड़ती है—स्थिति की तरफ और बयान की तरफ. स्थिति ही काफी नहीं होती, उस पर पात्र अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करते हैं, जिससे पाठक की मनःस्थिति बनती रहे. यह एक तरह का नाराज करने वाला व्यवधान है. समसामयिकता पूरे समय का दबाव है, उसका एहसास अलग से होना [illegible] कराया जाना एक असुविधा है. मिश्र जी चाहें तो स्थिति में से भाषा को जन्मा सकते हैं. □□□

किस्सा किस्सागोई का

• योगेश श्रीवास्तव 'प्रवीन'

जिस जमाने में लखनऊ का सिबतैनाबाद हजरतगंज में ढल रहा था, जहां फिरंगी चहल-कदमी करने लगे थे, उन्हीं दिनों कलकत्ते के मटियाबुर्ज में एक नया सिबतैनाबाद अंगड़ाई ले रहा था.

सिबतैनाबाद क्या था छोटा-मोटा लखनऊ था. वही अंदाज, वही तहजीब, वही रंग, वही लोग, वैसी ही इमारतें और हूबहू वही नाम, शहंशाह मंजिल, नूर मंजिल, कस्र उल बक्रा, सुल्तान मंजिल, बारादरी और इमामबाड़े ...

गुजरे हुए कल के बादशाह लखनऊ से आये तो वजीर, बेगमें, मुंशी-मुसाहिब, कारीगर-कारिंदे, साजवाले, आवाज वाले सब लखनऊ से ढो आये थे ...इनसान क्या दरिंदे-चरिंदे तक शहर लखनऊ से ला कर पाले गये थे. गोमती की बहन गंगा के किनारे पर.

ये उसी सिबतैनाबाद की कहानी है ...

सब ऐशो आराइश होते हुए भी बेताज के बादशाह अंगारों पर लोट रहे थे. साजो रक्स भी उनके दिल के जलते जख्म भर सकने में नाकाम रहा करते थे.

अचानक एक दिन नवाब को खबर मिली कि शाहे दिल्ली बहादुर शाह 'जफर' को तख्त से उतार कर ब्रिटिश हुकमत ने रंगून रवाना कर दिया है, जिनका जहाज आज हुगली के दहाने से गजरेगा.

जाने आलम को लगा, जैसे उनका कोई हमदम उनके सरे राह आ रहा है. बेचैन हो कर तड़प उठे और एक दावतनामा वायसराय बहादुर के मारफत बादशाह तक भिजवा दिया. जाहिर था कि इस कदर सितमजदा आदमी वक्ते गर्दिश में घड़ी भर से ज्यादा ठहरना कब पसंद करेगा. इसलिए जफर ने दावत से तो इनकार कर दिया मगर मुलाकात को मंजूर कर लिया.

जब जहाज मटियाबुर्ज के करीब से गुजरा तो आखिरी शाहे मुगल ने दरिया हुगली में लंगर डलवा दिया और कुछ मिनटों के लिए सिबतैनाबाद में तशरीफ लाये.

एक अजीब मंजर था मुलाकात का. आमने-सामने दो बिगड़े हुए नसीब खडे थे. ताजदारे अवध ने शहंशाहे देहली को सलाम अर्ज किया. तो लुटी हुई बादशाहत ने मिटी हुई नवाबी को गले से लगा लिया, जैसे जमुना और गोमती का संगम हो रहा है और वह भी गंगा के किनारे.

वाजिद अली शाह ने नजर में याकूत की अंगूठी दी तो शाहे जफर ने जवाब में जमुर्रद की तसबीह उन्हें अता फरमायी.

वक्त ने इस इंद्रधनुषी मुलाकात के इस जज्बाती दौर को ज्यादा देर ठहरने न दिया और वह शाही शायर उस शाही गुलूकार की बांहों से जुदा हो गये.

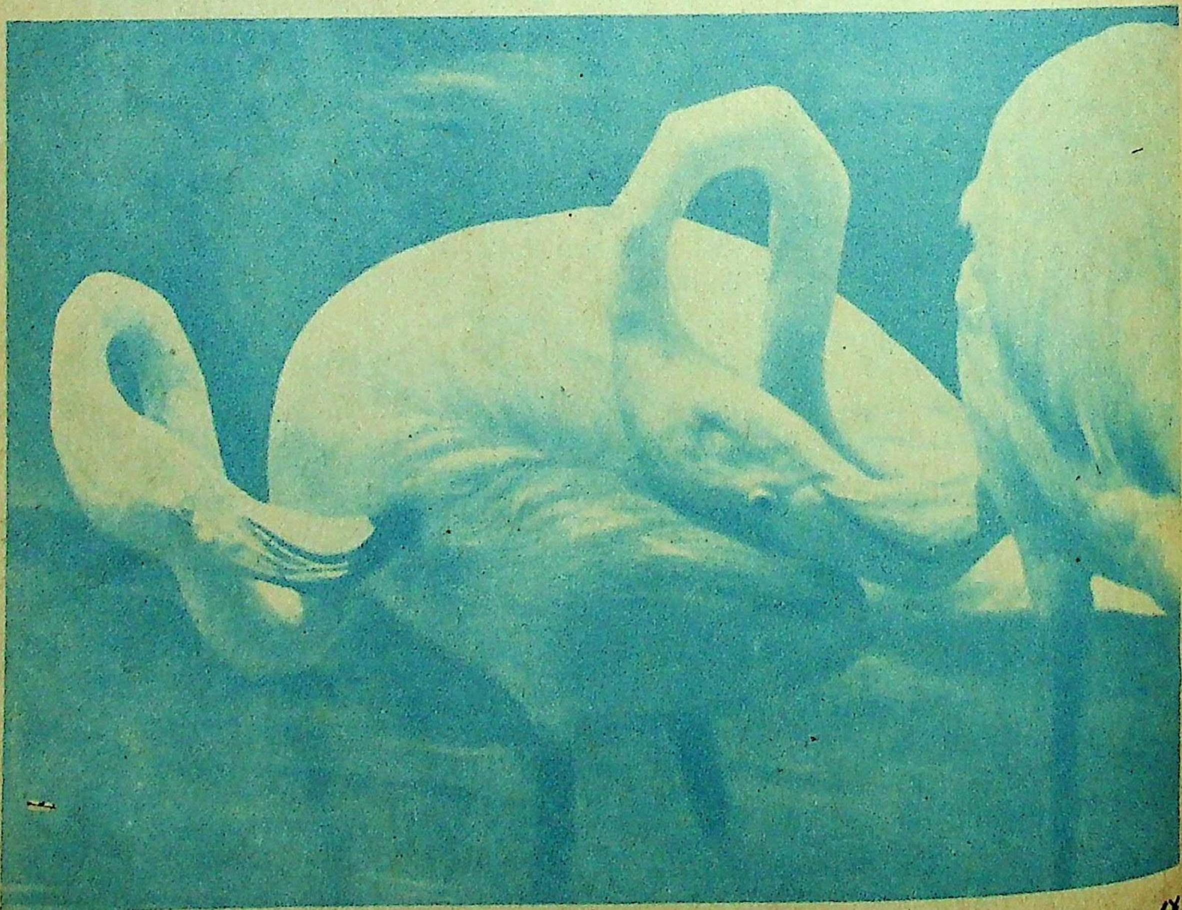

नवाब सुल्तान मंजिल में पड़े करवटें बदल रहे थे. नींद ने उन पर अपना साया भी न फटकने दिया. तब सोचा, किसी किस्सागो को बुलायें तो किसी सूरत रात कटे.

खादिम ने लखनऊ के ही एक शीरीं सुखन गुंचा दहन नवाबजादे को ला कर पेश किया.

उस युसुफ चेहरा ने झुक कर सलाम बजाया.

बादशाह ने खुश हो कर बेतकल्लुफी से उसे अपने करीब बिस्तर पर लेट जाने को कहा.

—भई कोई किस्सा कहो प्यारे मियां, जो हकीकत में अफसाना हो.

पिया जाने आलम की तबियत का रुख देख कर, अगर लोबान से महकती झिलमिली, झाड़ों की मद्धम रोशनी में उस नौजवान ने कहानी छेड़ दी—

एक जमाने में सात समंदर पार का रहने वाला एक जालिम बादशाह परिंदों का बड़ा शौकीन था. खुदा जाने किसलिए एक से एक पंछी ला कर वह अपने रंग-महल के पिंजड़ों में बंद करता रहा.

एक दिन उसी शौक में मुब्तला हो कर अपने मुसाहिबों के साथ वो शख्स दूर, बड़ी दूर हवाखोरी को गया.

तो क्या देखता है, बड़ा खूबसूरत नजारा है, ऐन बहार का इशारा है. दरिया की रवानी है, मोती जैसा पानी है, फूल महकते हैं और परिंदे चहकते हैं.

उसी बीच तमाम चिड़ियों का एक दस्ता न जाने किस सिम्त से आन पहुंचा. उन अनगिनत चिड़ियों में एक परिंदा, अजीबो गरीब कि न देखा न सुना, यानी रंगत लाजवाब, खूबसूरत बेहिसाब, पहाड़ी के ऊपर आ के बैठा, तो सारे परिंदे उसे घेर के उसके गिर्द बैठ गये और उसका ओहदा बमुताबिक शाने हस्ती बुलंद बना रहा.

वो बादशाह मुर्गबाज उस परिंदे की वजाकता पर लहालोट हो गया, बोला—इसे लिये बिना न लौटूंगा.

मुसाहिब खास ने समझाया—मगर इसे पाना नामुमकिन है.

जवाब दिया—कोई सूरत निकालो, मैं छोडूंगा नहीं.

मुसाहिबों ने कहा—इस बार नहीं, अगली बहार में कोशिश करेंगे.

गरज ये कि सब लौट गये.

मुसाहिब लोग अगली बहार के पहले ही मंसूबे बनाने लगे और तमाम दौलत इंतजाम में लगाने लगे.

फस्ले बहार आयी तो शाही दस्ते ने भी कूच किया.

ठीक उसी मकाम पर आ के बेनजीर परिंदा बलंदी पर बैठा और उसके परिस्तार हजार परिंदे उसके हुजूर में हाजिर रहे.

मुसाहिबों ने मैदान में दूर-दूर तक अनाज के दाने, सूखे मेवे, ताजे फल और गोश्त के टुकड़े बिखरा दिये मगर उन चिड़ियों की तबियत में कोई बदल न आया. जिस सूरत आयी थीं अपने सरताज के साथ उसी तरह लौट गयीं.

बादशाह बेहद मायूस हुआ और उन सबों पै सख्त नाराज हुआ.

मुसाहिब ने सब्र बंधाया—हुजूर, इस बार न सही अगली बार देखेंगे.

वक्त गया, साल गुजरा, फिर वही बहार के दिन, फिर वही जमाना आया और फिर वो शाही शिकारी अपने चारागरों के साथ वहीं पहुंचा.

इस बार जब खूराक का सामान जमीन पर बिछा तो कुछ एक परिंदे गोश्तखोर पहाड़ी से उतर आये और अपनी गिजा पा कर मस्त हो गये मगर बाकी वहीं उस शाहानी मुर्ग के करीब जमे रहे, इसलिए कुछ बस न चला और वो परिंदा हाथ न लगा.

बादशाह जामे के बाहर हो गया मगर दीवानों ने फिर समझा लिया—देखते जाइए, बेसब्र न हों...

अगली बहार में फिर वही नक्शा हुआ. इस बार जब रसद का जाल बिछा तो क्या देखते हैं कि गोश्तखोर गोश्त पर टूट रहे हैं मेवाखोर मेवे के मजे लूट रहे हैं और अनाजखोर हैं कि दाना चुगने में लगे हैं.

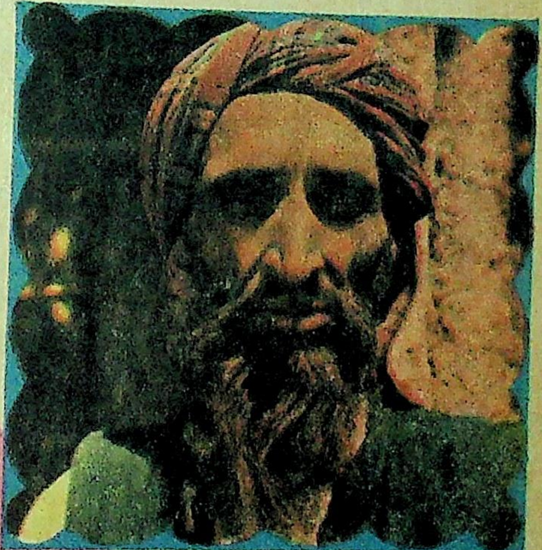

एक चालाक चिड़ीमार ने आगे बढ़ के, पहाड़ी पैं चढ़ के वो नायाब पंछी पकड़ लिया और बादशाह के हवाले कर दिया.

बड़े बेकरार हो के अख्तर पिया ने पूछा—मगर प्यारे जानी, ये क्यूं कर हुआ?

नवाबजादा बोला—ऐ हुजूर, पहली बार सारे परिंदे अपने मालिक की हिफाजत में तैनात थे, दूसरी बार उन्होंने सामाने कैफ का नक्शा देखा मगर सब्रदार रहे क्योंकि वफादार और नमकख्वार रहे, तीसरी बार चंद हरामखोरों ने मजा लूटने में, खाने-पीने में रिश्तए ईमान तोड़ा मगर हलालखोरों ने साथ न छोड़ा मगर आली हजरत, चौथी बार सबके सब बेवफाई कर गये क्या मादा, क्या नर, सब निस्बत से मुकर गये...

और वो गरीब मुर्गे नातवां कैद हो गया. इतना सुनना था कि वाजिद अली शाह नवाबजादे के गले से लिपट कर रोने लगे—हाय यही मेरे साथ हुआ.

□□□

पंचवटी, ८९, गौसनगर, लखनऊ ४.

राजगीर में :

पांचवां अखिल भारतीय समांतर लेखक सम्मेलन (२)

गत १, २, ३ दिसंबर, १९७५ को समांतर लेखकों का पांचवां अखिल भारतीय सम्मेलन राजगीर, बिहार में संपन्न हुआ. इस सम्मेलन में हिंदी के अलावा मराठी, गुजराती, सिंधी, उर्दू, पंजाबी, कच्छी, तथा तमिल के प्रतिनिधि लेखकों ने भाग लिया. पिछले अंक में आपने सम्मेलन के उद्घाटन-समारोह की रिपोर्ट पढ़ी. यहां प्रस्तुत है पहली गोष्ठी का विवरण.

राजगीर का जादू बहुत धीरे-धीरे असर करता है. पेड़ों और चट्टानों से ढंकी पहाड़ियों की तलहटी में बसे इस छोटे-से कस्बे में इधर-उधर सिर्फ दो-चार मामूली किस्म के सरकारी मकान दिखायी देते हैं, यहां-वहां छितरी छोटी झोपड़ियां और सूनी सड़कों पर दौड़ते गिनती के इक्के, जो पर्यटकों और तीर्थयात्रियों को लाने-ले जाने के काम आते हैं. छोटी-छोटी, अंधेरी दुकानें, जिनमें से ज्यादातर में मिठाई और 'खाजा' बिकता है, लंबे खाली विस्तार और ठंडी हवा में रह-रह कर गूंजती बौद्ध मंदिरों के भारी नगाड़े की आवाज जो किसी धड़कते हृदय के अनवरत स्पंदनों का-सा आभास देती है.

नालंदा की इसी पुरातन, सांस्कृतिक मिट्टी ने धीरे-धीरे सब लेखकों को अपने सहज आकर्षण में बांध लिया. शायद उस छोटी-सी जगह के लिए इतने सारे भारतीय लेखकों का जमाव एक महत्वपूर्ण घटना थी, परंतु हवा में कुछ ऐसा था कि हर लेखक उस माहौल को अपने से ज्यादा महत्व दिये जा रहा था.

दो दिसंबर की सुबह गेस्ट हाउस के सामने घास और धूप का लुत्फ उठाते हुए चार-पांच लेखक बैठे थे. यहां-वहां बिछी दो-तीन कुर्सियां, पोर्च में बतियाते लोगों का छोटा-सा समूह और कुल मिला कर वही सहज और अनौपचारिक माहौल जो समांतर गोष्ठियों की खास पहचान बन गया है. इधर-उधर बिखरे उन चेहरों को देख कर कतई यह अंदाज नहीं लगता था कि वहां कोई गंभीर बैठक होने जा रही है. लेकिन कुछ ही मिनटों में सब कुछ बदला-बदला-सा नजर आने लगा. नाश्ता खाने वालों ने खा-पी कर अपने चाय के प्यालों के साथ सिगरेटें सुलगा ली थीं, कुंड में नहाने वाले लौट आये थे और 'समांतर सहयोग' की पुस्तकों का वितरण भी कुछ वक्त के लिए रुक गया था. घास पर बैठे उन तमाम लेखकों के बीच एक बहुत गंभीर और मानीखेज खामोशी फैल गयी थी, क्योंकि वहां उस खुशनुमा धूप में सम्मेलन की पहली अनौपचारिक गोष्ठी शुरू होने जा रही थी.

गोष्ठी के आरंभ में कामतानाथ ने मद्रास और कालीकट में हुई चौथे समांतर सम्मेलन का संक्षिप्त ब्यौरा प्रस्तुत किया. उन्होंने बताया कि हिंदी के अतिरिक्त तमिल, तेलुगू, मलयालम, कन्नड, मराठी, कच्छी, गुजराती, पंजाबी, डोगरी, कश्मीरी, सिंधी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में समांतर सोच का जो स्वागत हुआ है, उसे एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना के रूप में लिया जाना चाहिए. पिछले समांतर सम्मेलन में इस सोच को सिर्फ हिंदी तक ही सीमित न रखने के प्रयास में जो कदम उठाये गये थे, उन्हीं की अगली कड़ी के रूप में मराठी दलित साहित्य से बाबूराव बागूल, दया पवार, अर्जुन डांगले, प्र. श्री. नेरूरकर, सतीश कालेसकर और प्रह्लाद चेंदवणकर, सिंधी से ए. जे. उत्तम, गुजराती से आबिद सुरती, पंजाबी से रामसरूप अणखी, कच्छी से डॉ. मनुभाई पांधी, तमिल से शौरिराजन और उर्दू से लाजपत राय जैसे प्रखर रचनाकार और चिंतक समांतर के पांचवें राजगीर सम्मेलन में भाग ले रहे थे. कामतानाथ ने अपनी रपट में यह भी बताया कि पिछले सम्मेलन में लेखकों का जो सहयोगी प्रकाशन शुरू करने की योजना बनी थी, उसका 'समांतर सहयोग' नाम से मद्रास में पंजीकृत किया जाना काफी अहमियत रखता है. और यह प्रयास भी समांतर की सर्व भाषी व्यापक पहुंच की ओर ही संकेत करता है. 'समांतर सहयोग' की पहली दो पुस्तकों का विमोचन इससे पहले पिछली शाम हो ही चुका था, और पुस्तकों की सुंदर सज्जा की सबने मुक्त कंठ से सराहना की थी.

तय यह किया गया था कि राजगीर सम्मेलन में बहस का आधार कुछ महत्वपूर्ण लेख बनेंगे जिन्हें इस सम्मेलन के लिए विशेष रूप से लिखा जायेगा. इस योजना के अंतर्गत सबसे पहले पढ़ा जाने वाला लेख था **'राजनीति और आम आदमी'**. इसके लेखक डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी किन्हीं कारणों से राजगीर पहुंच नहीं पाये और उनकी अनुपस्थिति में यह लेख डॉ. विनय ने पढ़ा.

विश्नाथ त्रिपाठी ने अपने लेख में दो-तीन महत्वपूर्ण सवाल उठाये. 'हमारे बीच ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो राजनीति को सारी बुराइयों की जड़ मानते हैं. इनके अनुसार सारी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक बुराइयां राजनीतिक नेता फैलाते हैं और इन्हीं बुराइयों का सामूहिक नाम भ्रष्टाचार है. ऐसे लोगों की विशेषता यह है कि ये राजनीति पर बहस बहुत गरमागरम करते हैं, परंतु अपने

वैचारिक निष्कर्षों के अनुसार सक्रिय नहीं होते.'

राजनीति को आदमी के लिए अहितकर समझने वाले इन लोगों की ओर इशारा करते हुए विश्वनाथ त्रिपाठी ने कहा कि ऐसे शक्की लोग रूढ़िवादी तो होते हैं, पर प्रगति-विरोधी नहीं होते. ये प्रायः उस मध्यवर्ग या निम्न मध्यवर्ग से आते हैं, जिसपर महंगाई, व्यवस्थाहीनता, अकाल आदि का सबसे अधिक असर पड़ता है. इस वर्ग की मानसिकता का विश्लेषण करते हुए इस लेख में उन्होंने यह भी कहा कि राजनीतिक प्रचार, साहित्य, मास मीडिया आदि का सबसे पहला और सीधा प्रभाव निम्न मध्यवर्ग पर ही पड़ता है. और वर्ग-संघर्ष की लड़ाई में इस वर्ग की पक्षधरता अत्यंत महत्वपूर्ण साबित होती है. परंतु इस वर्ग की वर्तमान विडंबना यही है कि यह अपने आपको उस वर्ग से जोड़ कर नहीं देख पाता, जिसके साथ उसका भाग्य नत्थी है. इसका बहुत बड़ा कारण यह है कि यह वर्ग संगठित नहीं होता. किसान या मजदूर के साथ संगठित होने और संघर्ष करने के लिए मूर्त मुद्दे होते हैं—– मजदूरी, बोनस, बेगार का खातमा, लगान आदि. लेकिन मध्य वर्ग के आदमी के पास लड़ने का कोई मूर्त सूत्र नहीं होता. उसका दुश्मन भी छिप कर वार करता है. मजदूर का दुश्मन मिल-मालिक है, खेतिहर का दुश्मन जमींदार या या बड़ा किसान है, लेकिन मध्य वर्ग के आदमी का शोषक सामने नहीं होता. वह यही समझ पाता है कि उसके पास पैसा नहीं है और इसीलिए उसे कदम-कदम पर विवशता और अपमान झेलना पड़ रहा है. और परिणाम स्वरूप वह अनिश्चित बना रहता है और उसके इस अनिश्चय का पूरा फायदा प्रतिक्रियावादी शक्तियां उठाती हैं. ये शक्तियां उसे उकसाती हैं कि किंकर्तव्यविमूढ़ता की इस स्थिति में वह दुश्मन के खातमे का नहीं, बल्कि भ्रष्टाचार के खयालों का अमूर्त नारा लगाये. कभी-कभी इसी सोच से 'हत्या की राजनीति' का भी उदय होता है. ऐसी स्थिति में बुद्धिजीवी वर्ग का यह दायित्व हो जाता है कि वह इस मध्यवर्गीय अनिश्चय को तोड़े और इस वर्ग के आदमी को उसके संघर्ष की सही दिशा दिखाये. 'मध्यवर्ग का आदमी उच्च वर्ग की ओर भी देखता है और अपने से निम्न वर्ग की ओर भी. इस तबके के व्यक्ति सीढ़ी पर चढ़ कर ऊपर भी पहुंच जाते हैं और ढुलक कर सर्वहारा भी बन सकते हैं. लेकिन यह बात तय है कि इस तबके की सही दिशा सर्वहारा की ओर है. प्रगतिशील राजनीति की सफलता इस बात पर बहुत निर्भर है कि मध्यवर्ग सचेत हो कर सर्वहारा का कितना साथ देता है. जो लोग राजनीति पर बात करते समय केवल सर्वहारा पर ही ध्यान देते हैं, निम्न मध्यवर्ग या या मध्यवर्ग पर नहीं, वे संकीर्णता का शिकार होते हैं. यहां सर्वहारा की निर्णायक भूमिका से इनकार करने का सवाल नहीं है, सवाल सर्वहारा को मजबूत और शक्तिशाली बनाने का है. क्योंकि अनिवार्यतः सर्वहारा के दुश्मन मध्यवर्ग के भी दुश्मन होते हैं.'

डॉ. त्रिपाठी के लेख पर अपनी राय व्यक्त करते हुए डॉ. विनय ने कहा कि वस्तुतः आम

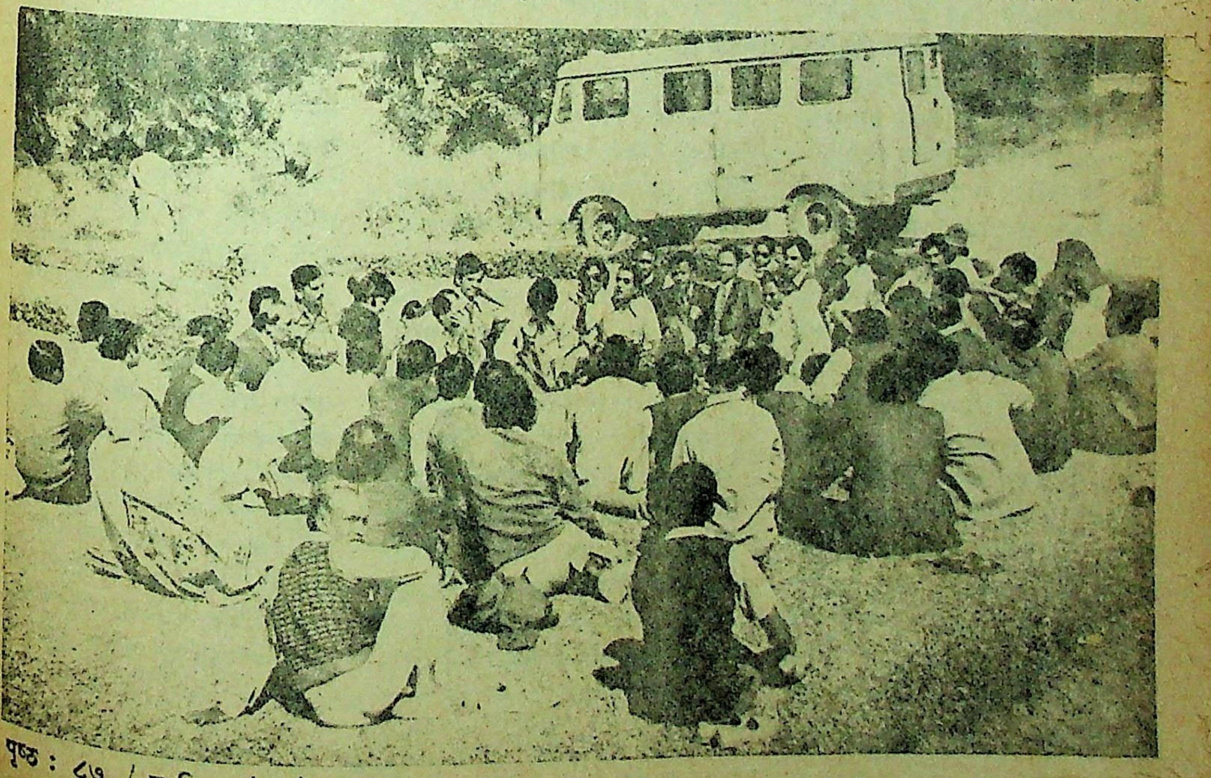

राजगीर में रेस्टहाउस के बाहर, लॉन में, पहली गोष्ठी के दौरान विचार-विमर्श में संलग्न समांतर लेखक

आदमी आज सर्वहारा से ले कर निम्न मध्यवर्ग तक व्याप्त है और उसके बीच विभाजन-रेखा नहीं खींची जानी चाहिए. लाजपत राय ने इस पर कहा कि वास्तविक विभाजन-रेखा विचारधारा, आइडियोलॉजी, और पक्षधरता से तैयार होती है और यदि सामान्य वर्ग का प्रत्येक व्यक्ति इस पक्षधरता के बारे में स्पष्ट हो जाये तो उसके सामने दिशा-निर्धारण का संकट नहीं रह जाता. शेखर व्यथित ने सामान्य जन की दिशाहीनता के संदर्भ में कहा कि प्रतिक्रियावादी शक्तियां भी कभी-कभी भ्रामक नारे दे कर, सामान्य जन को लुभाती और गुमराह करती हैं और इनसे सावधान होने की जरूरत है. लेकिन सुरेश उनियाल का मत था कि कनफ्यूजन की इस स्थिति के बावजूद आम आदमी का दुश्मन उतना अमूर्त नहीं है जितना समझ लिया जाता है. हां, इतना जरूर है कि इस दुश्मन के साथ-साथ उस बिचौलिये को भी पहचानने की जरूरत है, जो आम आदमी और सर्वहारा के बीच से ही निकलता है, लेकिन किसी मोड़ पर जा कर गलत व्यवस्था का दलाल बन जाता है. इस पर मधुकर गंगाधर ने कहा कि कभी कभी सामान्य जन की इकाइयां भी किसी रूप में शोषक का हिस्सा बन कर शोषण करने में संलग्न हो जाती हैं. इस स्थिति की ओर भी हमारा ध्यान जाना चाहिए.

राजनीति को बुरा समझने वालों पर बात करते हुए लाजपत राय ने कहा कि राजनीति से बचने की राय देना स्वयं एक राजनीति है इस प्रकार की सच्चाई को उद्‌घाटित करने के लिए जरूरी है कि लेखक सीधे आप अपने पाठकों तक पहुंचे. कमलेश्वर ने इस संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि साधारणीकरण और तादात्म्य स्थापित करने की बात का अकसर यह मतलब लगाया जाता है कि पाठक वर्ग-चेतना के एक विशेष स्तर तक उठ कर साहित्य के पास आयेगा. इसमें यह अपेक्षा भी रहती है कि लेखक जिस मानसिक भूमि पर है, उस तक पाठक भी पहुंचे. परंतु संबद्ध रचनाकार के लिए यह जरूरी है कि वह स्वयं अपने पाठकों तक पहुंचे. ऐसी स्थिति में सामान्य जन का एक सहज और प्रामाणिक सौंदर्यशास्त्र बनाने की जरूरत है, जो रचनात्मकता को खंडित किये बगैर अपने आपको आम आदमी की जिंदगी से जोड़ सके.

इस पर मधुकर गंगाधर ने कहा कि दरअसल जिन सिद्धांतों को साहित्यिक सौंदर्यशास्त्र के लिए इस्तेमाल किया जाता है, वे गलत हैं और उनमें आमूल परिवर्तन आना चाहिए. सतीश कालसेकर का कहना था कि परिवर्तन की यह प्रक्रिया एक प्रकार के रिफ्लेक्स ऐक्शन से ही पूरी हो सकती है. लेखक को स्वतंत्र-द्रष्टा होने से बचते हुए एक तरफ परिवर्तन को दृष्टि देनी चाहिए, तो दूसरी तरफ परिवर्तन से दृष्टि ग्रहण भी करनी चाहिए. बाबूराव बागूल ने कहा कि दृष्टि के इस आदान-प्रदान के दौरान यह स्पष्ट रहना चाहिए कि लेखक स्वयं भी अंततः सामान्य जन ही है, जिसके हितों की रक्षा वह अपने साहित्य में करता है. साथ ही लेखक के लिए जरूरी हो जाता है कि वह दुख, वेदना या अपमान की एकांगी अभिव्यक्ति तक ही अपना दायित्व न समझे, बल्कि आम आदमी की सारी द्वंद्वात्मक स्थितियों को रचना में उतारे.

कमलेश्वर ने कहा कि लेखक के लिए मूल्यवादी दृष्टि न रख कर वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखना जरूरी है क्योंकि विसंगतियां बगैर वैज्ञानिक विश्लेषण के बहुत एकांगी प्रतीति देती हैं. साथ ही यह भी अनिवार्य हो गया है कि हम आज के आदमी को 'बेचारा' न बना कर उसकी संपूर्ण अंतर्भूत संघर्षशक्ति को पहचानने की कोशिश करें. पहचान की इस प्रक्रिया में एक तरफ लेखक को सामान्य जन की यथास्थिति का रेखांकन करना चाहिए और दूसरी तरफ उन शक्तियों को भी बेनकाब करना चाहिए, जो आम आदमी को गुमराह करती हैं.

★ ★

इस विचारोत्तेजक बहस के बाद गोष्ठी का दूसरा लेख पढ़ा गया. लेख था **'नवलेखन और उसकी विरोधी शक्तियां'** और लेखक थे जितेंद्र भाटिया. अपने लेख में उन्होंने सबसे पहले नवलेखन को परिभाषित करने की कोशिश की. दरअसल चिरंतन वाम की परिकल्पना उसके लेखन की परिभाषा भी हमें देती है जो समय और इतिहास की स्वाभाविक प्रक्रिया स्वरूप जन्म लेता है और वर्तमान के आग्रहों को ध्यान में रखते हुए अपने माहौल को पहले से बेहतर समझने की कोशिश करता है. हमारे साहित्य में नवलेखन को अकसर आयातित वैचारिकता के आधार पर बहुत फैशनेबल ढंग से लिया जाता रहा है. परंतु समय-साक्षेप नवलेखन की जड़ें विदेशी प्रवृत्तियों में न पनप कर हमेशा उसकी अपनी मिट्टी में फैलती और मजबूत होती हैं.

समय-सापेक्ष नवलेखन की चर्चा करते हुए जितेंद्र भाटिया ने अपने लेख में कहा कि नवलेखन सामान्यतः दो रास्तों से सामने आता है. पहले के अंतर्गत के अनुभव वही रहते हैं, परंतु बदलती हुई सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थितियों के कारण उसे अपने उस अनुभव के अर्थ बदलते हुए दिखायी देने लगते हैं. ये परिवर्तित अर्थ एक सर्वथा नयी और क्रांतिकारी मानसिकता तैयार करते हैं, जिसे हम नवलेखन का महत्वपूर्ण पक्ष मानते हैं. नवलेखन का दूसरा रास्ता नये अनुभवों का है. नया लेखक अपने साथ नये अनुभव, नयी मानसिकता लाता है और इनके जरिये वह अपने समय के लिए पुराने मूल्यों को

तोड़ कर अधिक उपयोगी मूल्य बनाता है. इस नवलेखन में पुराने और नये, दोनों ही लेखकों का योगदान महत्वपूर्ण होता है.

नवलेखन के विरुद्ध कार्य करने वाली प्रतिक्रियावादी शक्तियों की ओर संकेत करते हुए जितेंद्र भाटिया ने कहा कि इनमें एक बड़ा हिस्सा रूपवादियों और सौंदर्यवादियों का है. 'साहित्य के ये ब्राह्मण हमेशा साहित्य, कला और जीवन के उन 'शाश्वत' मूल्यों का हवाला देते चलते हैं, जिनका समाज और जीवन से कोई लेना-देना नहीं होता. इनके लिए साहित्य सिर्फ साहित्य होता है, कला सिर्फ कला और धर्म सिर्फ धर्म. साहित्यिक संदर्भों की समाजशास्त्रीय व्याख्या से ये कतराते हैं और इनका सौंदर्यशास्त्र भी शाश्वत 'कला' और 'रुचि-संपन्नता' का द्योतक होता है, जीवन के प्रत्यक्ष संदर्भों का नहीं. इस प्रकार की बेईमानी वह सारा कलावादी और रूपवादी तबका कर रहा है जो कमोबेश मध्य वर्ग के उस टुकड़े से आता है, जिसकी निगाहें ऊपर की ओर होती हैं और पैर हवा में!' जीवन और समाज के जरूरी सवालों को लगातार स्थगित करने की साजिश रचने वाला यह 'अतिबुद्धिजीवी' वर्ग साहित्य के आभिजात्य की दुहाई दे कर उसे सामान्य जन से काटने की कोशिश भी करता है.

वामपंथी पूरक शक्तियों के परस्पर बिखराव की स्थिति को ले कर इस लेख में कहा गया कि भारत में वामपंथ की जड़ें कमजोर होने का एक बड़ा कारण रहा है यहां के जनजीवन पर धर्म की जबर्दस्त पकड़. यह एक दुखद स्थिति है. साहित्य में व्यापक वामपंथी चेतना का उदय होने के बावजूद हमारे देश में मार्क्सवाद चंद सोचने-समझने वाले बुद्धिजीवियों के दिमागों तक बिल्कुल उसी तरह सीमित है, जिस तरह परिष्कृत रूपवादियों के दिमागों में अस्तित्ववाद या ऐसी ही कोई अन्य धारा. समांतर की चिरंतन वाम की परिकल्पना का हवाला देते हुए जितेंद्र भाटिया ने कहा कि यह परिकल्पना वास्तव में नवलेखन की बिखरी हुई शक्तियों को निकट लाने की कोशिश करती है, गत्वर चिंतन की ओर इशारा करती है. 'नवलेखन के विरुद्ध काम कर रही सभी शक्तियों को देखते हुए यह जरूरी हो जाता है कि नया लेखक अपनी वैचारिक पृष्ठभूमि को सही और विस्तृत रूप से समझे, उसके सामाजिक और राजनीतिक प्रभाव-क्षेत्रों की संतुलित शिनाख्त करे और अपनी रचना को अपनी संपूर्ण वैचारिकता का केंद्रबिंदु मान कर सृजन करे.'

जितेंद्र के लेख पर होने वाली बहस की शुरुआत करते हुए डॉ. विनय ने कहा कि समांतर लेखन अपनी सामाजिक-राजनीतिक लड़ाई के साथ-साथ साहित्य में प्रतिष्ठित प्रक्रिया से भी लड़ रहा है. कमलेश्वर ने कहा कि नवलेखन का एक महत्वपूर्ण काम नयी तरह की प्रतिबद्धता बनाना है. नये लेखक पर कई तरह के व्यावसायिक दबाव आते हैं, परंतु नवलेखन का अभीष्ट मात्र व्यावसायिक लेखन नहीं है, न ही उससे अपेक्षा की जाती है कि वह रूढ़ साहित्यिक खेमों में बंद हो जाय. आज के नवलेखन के सामने राजनीतिक समस्याओं के अतिरिक्त जो सामूहिक मानवीय और सामाजिक समस्याएं हैं, वे इस बात की मांग करती हैं कि लेखक अपने दायरों को तोड़ कर सामने आये.

लाजपत राय ने कहा कि लेखक की राजनीतिक-सामाजिक सक्रियता में कहीं अगर कुछ नारेबाजी भी आ जाती है, तो वह कोई हेय चीज नहीं है. कमलेश्वर ने इस मुद्दे को स्पष्ट करते हुए कहा कि नारेबाजी निश्चय ही एक बेमतलब चीज नहीं है, पर एक सक्रिय लेखक को अपने लेखन में उस स्थिति से बचना होगा. जितेंद्र न इसी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा कि कभी-कभी रचना का मूल स्रोत ही राजनीति के दिये हुए सिद्धांतों की नारेबाजी हो जाती है और रचना में जीवनगत मूल्यों का ह्रास होने लगता है. राजनीति को स्वीकार करते हुए भी हमें इस नकली स्थिति से इनकार करना होगा. कमलेश्वर का कहना था कि रचना में नारेबाजी वहीं तक वाजिब है, जहां तक उसका इस्तेमाल वैचारिकता की रक्षा के लिए होता है. परंतु आरोपित सैद्धांतिकता के 'सांचों' से हमें बचना होगा, क्योंकि ये सांचे कहीं-न कहीं संप्रेषणीयता में रुकावट डालते हैं और समयगत सत्य की सही अभिव्यक्ति में भी बाधा बनते हैं.

कामतानाथ ने कहा कि कई बार ऐसी दिलचस्प स्थिति भी पैदा हो जाती है, जब एक ही रचना के बारे में उग्रपंथी यह कहते हैं कि वह नारेबाजी की हदों तक न पहुंचने के कारण अप्रभावकारी हैं, जबकि रूपवादियों का उसी रचना के बारे में कहना होता है कि उसमें नारेबाजी के कारण संप्रेणीयता नष्ट हुई है. ऐसी दोगली स्थितियों से एक निष्कर्ष यह भी निकलता है कि आज हिंदी कहानी के संदर्भ में आलोचना रचनाओं का सही ऐतिहासिक मूल्यांकन करने का दायित्व नहीं निभा रही है.

राम अरोड़ा ने कहा कि अकसर नये लेखक के सामने प्रकाशन का भी संकट आ खड़ा होता है और ऐसी स्थिति में कई बार वह व्यावसायिक पत्रिकाओं के दबाव में अरचनात्मक चीजें भी लिखने लगता है. कमलेश्वर ने इसे विस्तार देते हुए कहा कि इस तरह के खतरे अकसर सृजनशीलता के रास्ते में आते हैं और नये लेखक को इनमें विशेषरूप से सावधान रहने की जरूरत है.

(क्रमशः)

विविध

सम्मेलन-रपट

टेपा-सेवेंटी फाइव

● डॉ. शिव शर्मा

मूर्खों की लाख सिर-फुटव्वल के बाद भी टेपाओं का यह पंचम सम्मेलन, खूसट बूढ़े की नवयौवना-पत्नी-सा खूब फलता-फूलता रहा. भांड़ों और मुसाहिबों ने जोकरों के चेहरे लगा कर हमें खूब ही डराया, किंतु टेपा अभी भी एक टांग पर खड़ा हो कर, अपने हास्य-व्यंग्य का झंडा उड़ा रहा है.

इस बार बंबई-गांव से दो टेपे अपने पैसे खर्च कर हवाई जहाज में बैठ कर आये. आबिद सुरती उर्फ ढब्बू जी अपने जीते-जागते कार्टूनों के बीच आये. उन्हें टोप भी ढब्बुओं का पहनाया गया. उनकी सूरत देख कर हमें विश्वास हो गया कि वह या उनके पूर्वज यहां से ही सूरत गये होंगे. उन्होंने कुर्सी पर खड़े हो कर पदवी ग्रहण की और अपने लिए खुद ही तालियां बजायीं.

विट्ठलभाई पटेल, जिनकी फिल्टर बीड़ियां पीते हुए युवा टेपे-टेपियां काले कव्वे का लॉकेट लटकाये एक-दूसरे को 'लव' करते हैं, उद्योगपतियों में फेमस पोएट हैं और हम लोगों में बीड़ी के प्रसिद्ध व्यापारी! जब तक जंगल में एक भी काला कव्वा कांव-कांव करता लक्ष्मी-प्यारे के संगीत पर गीत गाता पाया जायेगा, आपका नाम अमर रहेगा.

भगवती शर्मा दिनकर सोनवलकर प्रभात भट्टाचार्य

उत्तर प्रदेशीय मूर्ख (स्व.) दुष्यंतकुमार भोपाल से ट्रक में बैठ कर पधारे. आपके स्कूटर का पेट्रोल हमेशा की तरह मार्ग में खत्म हो गया और आप रंग में सराबोर हो कर यहां आ पहुंचे. हमें पूरा यकीन है कि आप हमारे हास्य-व्यंग्य के कार्यक्रम को अपनी कव्वालीनुमा उदास गजलें सुना कर चौपट कर देंगे. (काश, ऐसा फिर हो!) सुना है कि आप अभी बंबई में अपनी अंगूठी कमलेश्वर रूपी शकुंतला के घर छोड़ कर भाग आये हैं. उदास इसलिए हैं कि शकुंतला ने आपको पहचानने तक से इनकार कर दिया और आप भूखे-प्यासे लौट आये!

अपने ही टेपाओं में एक श्री श्याम व्यास, इंदौर की सड़कों पर 'मगौरिया' करते फिरते हैं और ताड़ी पी कर किसी भी बिजली के खंबे को आदिवासी की झोपड़ी समझ चढ़ बैठते हैं. यार-दोस्तों के सारे 'तालाबों' का पानी पी कर भी अभी तक चिर-प्यासे ही बने हुए हैं.

दिनकर सोनवलकर को गत वर्ष 'मुनकर टेपलूनकर' की उपाधि प्रदान की गयी थी. वह अपने मुनकरों के साथ उस घर से चले, जहां दुर्घटनावश उनकी भूतपूर्व प्रेयसी उर्फ वर्तमान धर्मपत्नी रहती हैं, और इस वर्ष ठीक १ अप्रैल को यहां पहुंचे. अतः अब वह अपनी सूम रुबाइयों से अवश्य ही हमें रुलायेंगे.

कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे शरद जोशी ने टेपा-धर्म स्वीकार कर लिया है. वह अपने ही मिडल स्कूल के पास हैं. और अब बंबई में फिल्मी कहानियों की रफूगिरी की दूकान चला रहे हैं.

गत वर्ष हमारे तीन टेपाओं ने शौर्यपूर्ण कार्य कर हमें गौरवान्वित किया है. डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने काली मिट्टी की खड़िया से 'मिट्टी की बारात' लिख कर एक नहीं, तीन-तीन पुरस्कार हथिया लिये. श्री वाकणकर ने भीमबेरका में प्रवेश कर पद्मश्री ले ली और तीसरे एक मालवी सांड ने राजस्थान के ग्राम दिलावा, तहसील पिड़ावा के श्री दिलावर सिंह के बाड़े में नाम कमाया! इन तीनों प्राणियों ने अपनी अपनी कलम, बुद्धि तथा बल से मालव अंचल को यश प्रदान किया, अतः हम इन्हें सम्मानित करते हैं.

इनके अतिरिक्त लोकल टेपों में नगर निगम के मेयर श्री नजर अली जो कि शरीर से

डा. सुमन डा. शिव शर्मा दुष्यंतकुमार

योजित)

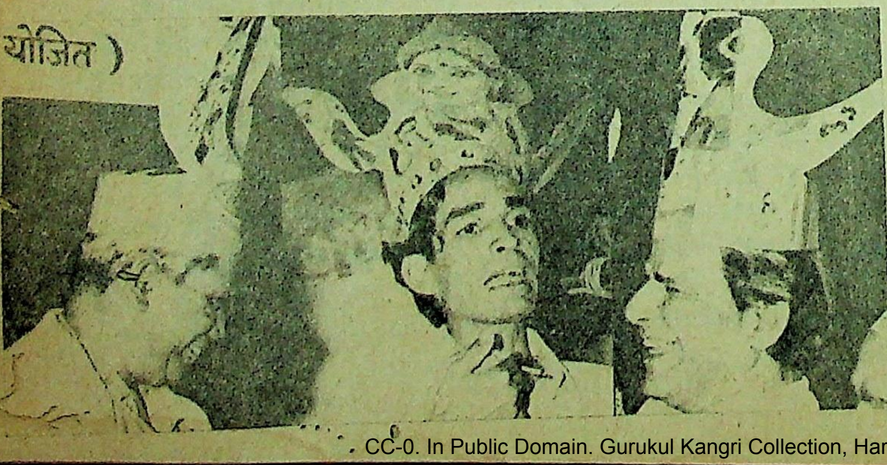

सूक्ष्म हैं, कार के स्थान पर अपनी बाबागाड़ी में बैठ कर कार्यक्रम में पधारे. नगरनिगम के चेयरमैन श्री प्रह्लादनारायण तिवारी को जब से कार मिली है, वह रातों में नींद से उठ कर कार-कार चिल्लाते रहते हैं. उनकी पत्नी ने बाबाकार खरीद ली है जो कि उनके हाथ में पकड़ा दी जाती है और वह सो पाते हैं.

युवा तुर्क नेता श्री राजेंद्र जैन जो कि अरब गोरिल्ला नेता यासर अराफात से मिल कर लौटे हैं, अपनी कमर में बाबा-पिस्तौल बांधे घूमते पाये गये हैं. उन्हें भी बहादुरी के लिए तमगा प्रदान किया जाता है. मालवी कवि भावसार बा, इस वृद्धावस्था में भी, माच में फरसिन भाभी का हूबहू अभिनय करते हैं और अपने पुत्र से ही पूछते हैं—–आयो कहां से घनश्याम. . .? साथ ही मुरलीधर सिंह, बंसी आजाद, भगवती शर्मा, प्रकाश बोहरा, नरेश भार्गव को भी लोकल उपाधियां तथा टेपाट्राफी प्रदान की गयीं.

इस बार कार्यक्रम के बीच-बीच में संगीतमय विज्ञापन भी प्रसारित किये गये! 'दिमाग की सूजन, मुंह की फूलन दूर करता है. . .मिट्टी की बारात दंत मंजन. निर्माता : सुमन सुगंधी भंडार!'

'मम्मियो! क्या आपका बच्चा रोता है . . .ढब्बू जी के कार्टून अपने सीने से चिपका कर रखिए!'

एक महिला ने यह विज्ञापन पढ़ा. .. 'मेरा पति गुम हो गया है जो पता देगा उसे मुझे इनाम देना होगा!. . .तुम जहां भी रहो खुश रहना. केवल पता भेज देना, रुपये मिल जायेंगे, आने की कोशिश मत करना. हम सब यहां बहुत प्रसन्न हैं.' सम्मेलन के एक संयोजक श्री अमरनाथ, इस पर भीड़ में से उठ कर मंच पर आ गये और अपनी पत्नी को पुरस्कार दे गये.

. . .अंत में—हम सब यहां हंसने-हंसाने आये हैं. आप अपनी जेब तथा पत्नियों से हाथ हटा कर भी हंस सकते हैं, कोई खतरा नहीं! यह वर्ष टेपियों का अंतरराष्ट्रीय वर्ष है. हमें नौकरी के अतिरिक्त चौका-चूल्हा और बाल-बच्चे भी करना होगा. अतः अगला वर्ष हमारा हो! वैसे भी ७६ का वर्ष बच्चों की संख्या सीमित करने का है. अतः हम पूर्ण विश्राम करेंगे. . . इस शपथ के साथ दसियों हजार श्रोताओं ने मालवी-गीत पर नृत्य किया.. . .'सज रही टेपों की बारात. . .' नाच उठे ढब्बू जी, विट्ठल भाई, शरद, दुष्यंत, सुमन जी, भट्टाचार्य जी और मालवा के प्रसिद्ध नर्तक प्रेम सेन और उनका दल. सोनू राव ने अपना अंग्रेजी आर्केस्ट्रा छेड़ा तो मालवी ढपले भी बज उठे और सबके साथ नाच उठे श्रोता. अंत में जिसने इतने वर्षों से शानदार टेपा-टोप बनाये, उस कलाकार रहीम गुट्टी को कैसे भूल जाऊं? और मेरे सहयोगी हरीश निगम, नारायणलाल शर्मा, नरेश भार्गव, प्रकाश उप्पल, मोहन सोनी, माना सिंह राही, जिनके अथक प्रयत्नों से ही यह सब हुल्लड़ सज जाता है!

□□

विट्ठल भाई **श्याम व्यास** **अबिद सुरती** **शरद जोशी**

'ध्रुवस्वामिनी का मंचन'

● चंद्रमोहन शर्मा

पति यदि पत्नी को कर्ज की अदायगी की किस्त के रूप में पेश करना चाहे, अफसर को खुश करने के लिए एक तोहफे के रूप में पेश करना चाहे अथवा अपने भरण-पोषण के लिए, धन कमाने के लिए ग्राहकों को पेश करना चाहे तो पत्नी क्या करे?

यह कोई काल्पनिक स्थिति नहीं है. इसी स्थिति को जयशंकर 'प्रसाद' ने अपने नाटक **'ध्रुवस्वामिनी'** की आधारशिला बनाया है. शकराज की संधि की प्रमुख शर्त है कि परम प्रतापी समुद्रगुप्त का राजदंड धारण करने वाला रामगुप्त अपनी पट्ट महिषी ध्रुवस्वामिनी को उसे सौंप दे. अंतरराष्ट्रीय महिला वर्ष के संदर्भ में लखनऊ की नाट्य संस्था 'संकेत' द्वारा इस नाटक का मंचन स्थानीय रवींद्रालय में २४ दिसंबर, १९७५ को किया गया. कथावस्तु की दृष्टि से अत्यंत उपयुक्त इस नाटक का प्रशंसनीय निर्देशन के. वी. चंद्रा द्वारा किया गया. □□□

'ध्रुवस्वामिनी' के एक दृश्य में ध्रुवस्वामिनी (रोमा कृष्ण) और राम गुप्त (कैलाशचंद्र)

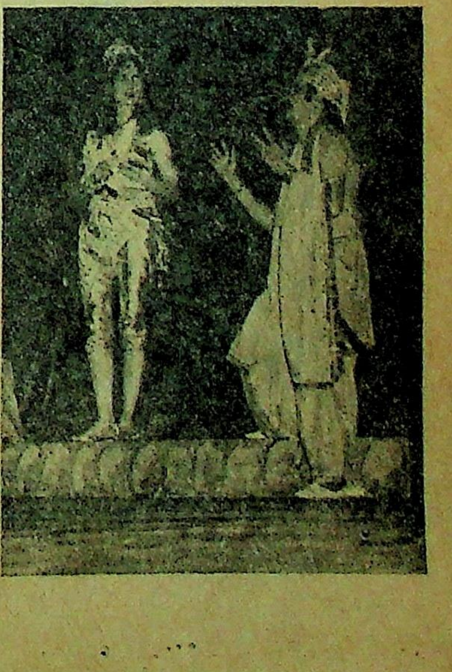

जान और माल की
रक्षा कीजिये

रेलगाडी के सवारी डिब्बों में

पैट्रोल
मिट्टी का तेल
विस्फोटक
खतरनाक
सामान
तेजाब

न ले जाएं

पश्चिम रेलवे

नेसा

वह परिधान
जिसमें जीने का
मोह हो जाता है...

नेसा में उपलब्ध है
टेरीन/सूती सूटिंग, शर्टिंग,
साड़ियाँ और विविध वस्त्रों
का असीम आकाश

न्यू स्वदेशी

द न्यू स्वदेशी
मिल्स ऑफ
अहमदाबाद लि.
नरोडा रोड,
अहमदाबाद-३८० ००२

Sobhagya NS/76-1G HN

“छोटा परिवार होने पर माता पिता हर बच्चे की अच्छी तरह देख-भाल कर सकते हैं। इससे देश के साधनों का भी अधिक अच्छा उपयोग किया जा सकता है।

परिवार नियोजन राष्ट्रीय विकास की हमारी योजना का आवश्यक अंग है। हमने पूरी शक्ति से इस कार्यक्रम को सफल बनाने का निश्चय किया हुआ है।”

इन्दिरा गांधी

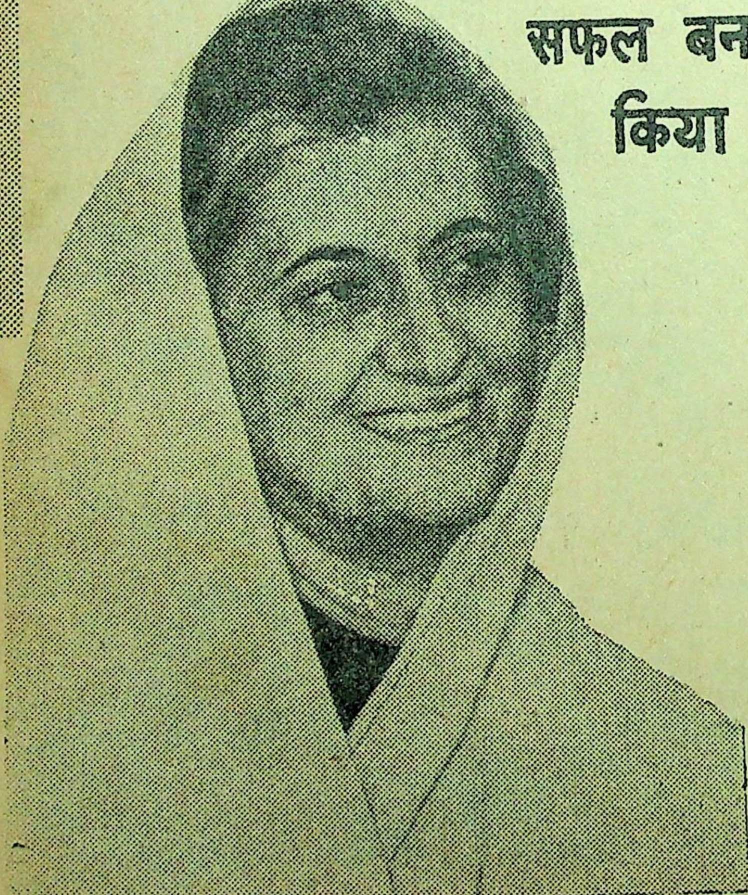

davp 75/596

धर्म

धार्मिक फिल्में समाज का संबल हैं ? पतन के गर्त में जाती हुई मानवता को उबारने में सहायक हैं ? विनाशशील संस्कारों की संरक्षक हैं ?

धार्मिक फिल्में सिर्फ रूढ़िवाद का प्रचार करती हैं ? दिमाग को कुंद करती हैं ? बच्चों के आधुनिक विकास को रोकती हैं ? स्त्री जाति की दासता की प्रतीक हैं ? सामाजिक प्रगति में बाधक हैं ?

हमारी धार्मिक फिल्में कितनी धार्मिक होती हैं ? क्या वे अपने भौंडेपन से देवी देवताओं का मजाक नहीं उड़ातीं ? क्या धार्मिक फिल्म निर्माताओं की कोई सामाजिक जिम्मेदारी नहीं है ?

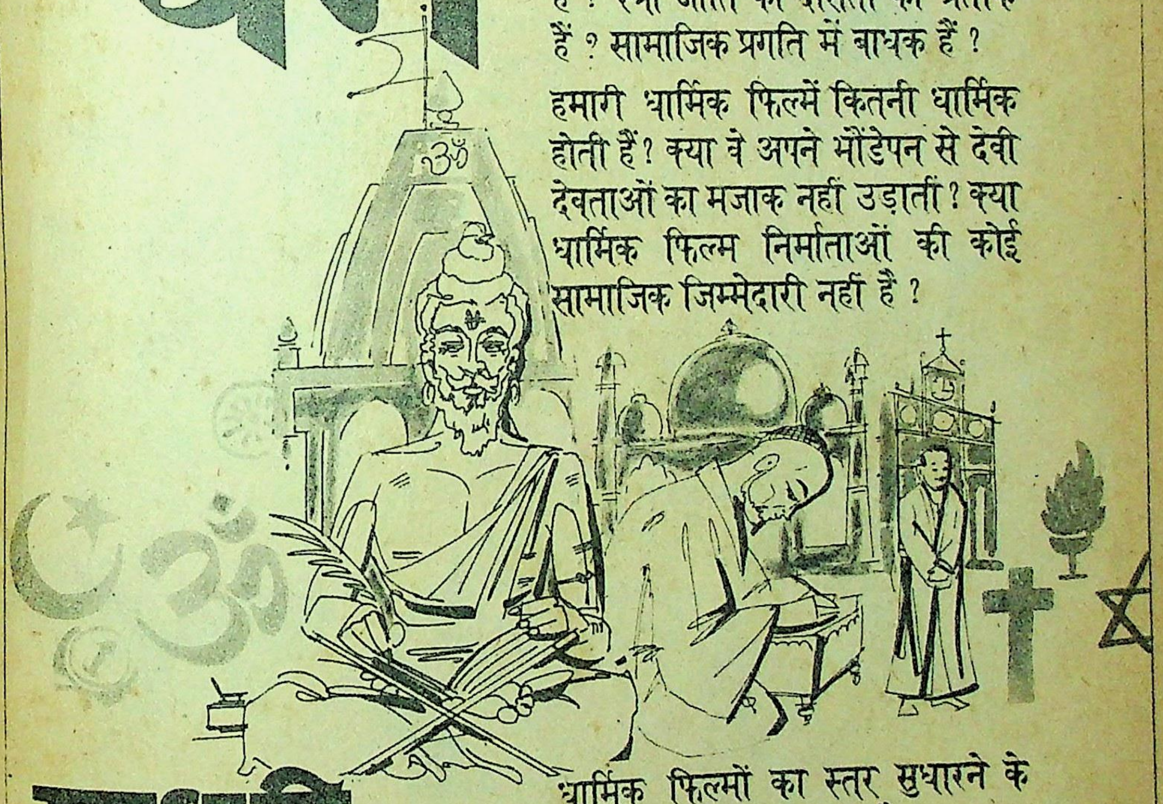

धार्मिक फिल्मों का स्तर सुधारने के लिए समाज, सरकार और हम सब क्या कर सकते हैं ?

माधुरी

२६ मार्च से
हर अंक लीजिए

एक नहीं सैकड़ों पहलू हैं—धार्मिक फिल्मों के, और इन पहलुओं पर प्रकाश डाल रही है सारे भारत की जनता—'माधुरी' द्वारा आयोजित लंबी बहस 'धार्मिक फिल्में और आप' में, २६ मार्च अंक से. आप भी ३०० शब्दों में अपनी राय माधुरी, पो. बा. २१३, बंबई १ के पते पर भेजिए.

ARMS-BC/M-3-661 HN

बेनेट कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए श्रीकृष्ण गोविंद जोशी द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित. पो. बाक्स २१३, बंबई-४०० ००१; दिल्ली आफिस : ७ बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-११० ००२; कलकत्ता आफिस : १३/१ और १३/२

पंजीयत सं. एम. एच. दक्षिण बंबई ३९१

11/6176

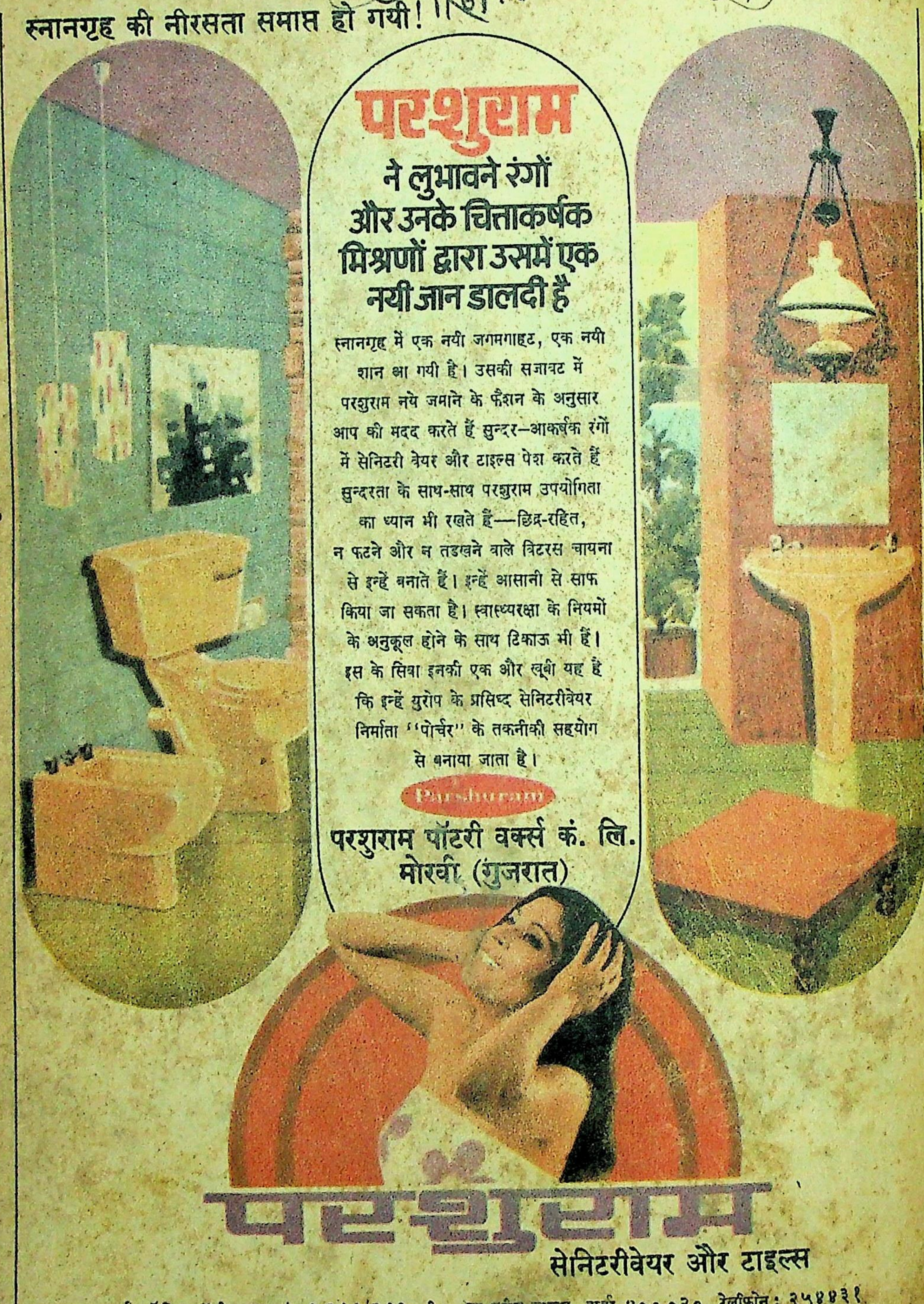

स्नानगृह की नीरसता समाप्त हो गयी!

परशुराम

ने लुभावने रंगों और उनके चित्ताकर्षक मिश्रणों द्वारा उसमें एक नयी जान डालदी है

स्नानगृह में एक नयी जगमगाहट, एक नयी शान आ गयी है। उसकी सजावट में परशुराम नये जमाने के फैशन के अनुसार आप की मदद करते हैं सुन्दर—आकर्षक रंगों में सेनिटरी वेयर और टाइल्स पेश करते हैं सुन्दरता के साथ-साथ परशुराम उपयोगिता का ध्यान भी रखते हैं—छिद्र-रहित, न फटने और न तड़खने वाले विटरस चायना से इन्हें बनाते हैं। इन्हें आसानी से साफ किया जा सकता है। स्वास्थ्यरक्षा के नियमों के अनुकूल होने के साथ टिकाऊ भी हैं। इस के सिवा इनकी एक और खूबी यह है कि इन्हें युरोप के प्रसिध्द सेनिटरीवेयर निर्माता ''पोर्चर'' के तकनीकी सहयोग से बनाया जाता है।

Parshuram

परशुराम पॉटरी वर्क्स कं. लि.
मोरवी (गुजरात)

परशुराम

सेनिटरीवेयर और टाइल्स

बम्बई ऑफिस: जॉली भवन, नं. १; २११/२१२, १०, न्यू मरीन लाइन्स, बम्बई ४०००२०. टेलीफोन: २५४४३१
न्यू देहली ऑफिस ४०५, ए, रोहित हाउस, ४था माला, कॅनाट प्लेस, टॉलस्टॉय मार्ग, न्यू देहली—११०००१. टेलीफोन: ३८५७९४

national-737 Hin

157676

सारिका

जून, १९७६

- साहित्य के ज़रिये: अफ्रीकी एकता की शिनाख़्त
- अभिमन्यु अनत के ताजा सशक्त उपन्यास 'लाल पसीना' की पहली किस्त
- तथा सभी स्थायी स्तंभ

१४
737 Hin

टाइम्स आफ इंडिया प्रकाशन
१ रुपया

यह है हमारा सबूत :

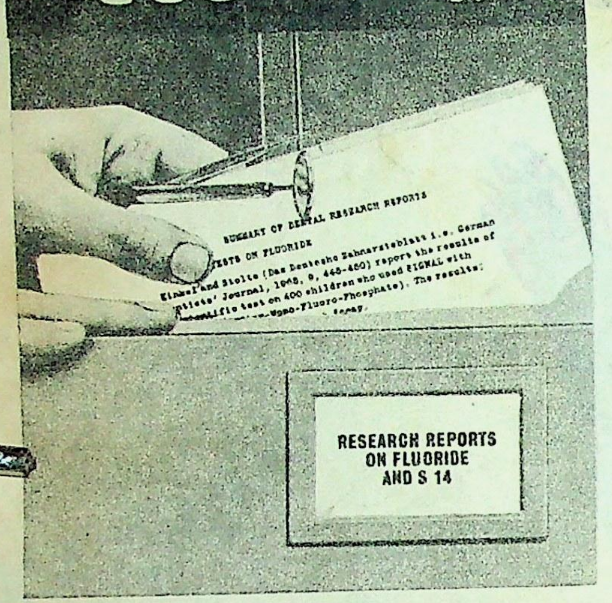
SUMMARY OF DENTAL RESEARCH REPORTS
TESTS ON FLUORIDE
Kinkel and Stolte (Das Deutsche Zahnarzteblatt i.e. German
tists' Journal, 1968, 9, 448-460) report the results of
ntific test on 400 children who used SIGNAL with
-Mono-Fluoro-Phosphate). The results:
RESEARCH REPORTS ON FLUORIDE AND S 14

यह है आपका सबूत :

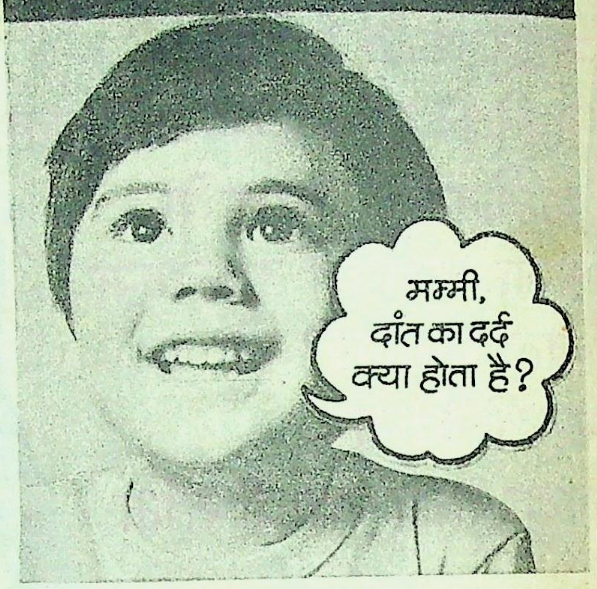
मम्मी, दांत का दर्द क्या होता है?

केवल सिग्नल फ़्लोराइड साबित करती है कि यह दांतों की सड़न और सांस की दुर्गंध रोक देती है

दंत-सफ़ाई के एक अनोखे आधार में.

सिग्नल में मिला फ़्लोराइड दांतों की सड़न रोक देता है :

दंतचिकित्सकों किंकेल और स्टोल्टे द्वारा जर्मनी में ४०० बच्चों पर किए गए परीक्षणों से यह सिद्ध हुआ है कि सिग्नल फ़्लोराइड दांतों के एनामेल पर एक घेरा बना देता है ताकि एनामेल तेजाब के हमले का और अधिक मुकाबला कर सके. इसीलिए तो सिग्नल इस्तेमाल करने वाले बच्चे यह नहीं जानते कि दांत का दर्द क्या होता है ! अपने परिवार की सुरक्षा के लिए अभी से सिग्नल चिकित्सा शुरू कीजिए.

सिग्नल में मिला S-14 सांस की दुर्गंध रोक देता है :

डा. हावर्ड ई. लिंड द्वारा यू. एस. ए. में किए गए परीक्षणों ने यह सिद्ध किया है कि सिग्नल में मौजूद S-14 मुंह में दुर्गंध पैदा करने वाले ६५% बैक्टीरिया को इस्तेमाल के १५ मिनट के अंदर ख़त्म कर देता है.

सिग्नल के दंत-सफ़ाई के अनोखे आधार से दांत ऐसे साफ़ जैसे डाक्टर करे :

सिग्नल के अनोखे अल्युमिना ट्राइ-हाइड्रेट आधार से आपके दांत ऐसे साफ़ हो जाते हैं जैसे किसी डाक्टर ने किए हों—दांतों के एनामेल को बिना नुकसान पहुंचाए. केवल सिग्नल में यह विशेष सम्मिश्रण मौजूद है : फ़्लोराइड और S-14 दंत-सफ़ाई के एक अनोखे आधार में.

कोई भी दूसरी टूथपेस्ट इतना नहीं कर सकती.

केवल सिग्नल फ़्लोराइड के पास है सबूत— अपने दंत-चिकित्सक से पूछिए.

Signal
TOOTHPASTE
fluoride
ACTUALLY STOPS TOOTH DECAY AND BAD BREATH
CAP AFTER USE

फ़्लोराइडयुक्त सिग्नल हिन्दुस्तान लीवर द्वारा गारण्टीप्राप्त है.

पेटेन्ट न. ११४७१८

लिंटास-SGF.63-140 HI

गर्मी के इन दिनों मे आप को आराम और मनोरंजन की ज़रूरत है और

स्टार पाकेट बुक्स

मनोरंजन का सर्वोत्तम एवं सस्ता साधन हैं

प्रत्येक वर्ग के पाठकों के लिए
प्रत्येक मास नई-नई सुन्दर
"स्टार बुक्स"
आप के प्रिय लेखकों की नई
रचनाओं के रूप में
प्रस्तुत की जाती हैं।

नई स्टार बुक्स

३/- श्रेष्ठ हिन्दी कहानियां

अरुणा कपूर ३.०० रेत के आंसू

महबूबा
गुलशन नन्दा

और इनके साथ ही प्रस्तुत है
आप सब के प्रिय उपन्यासकार
गुलशन नन्दा
की नई फ़िल्म का सचित्र
फ़िल्मी कथानक
महबूबा ३/-
स्टार सीरीज में प्रकाशित

साथ ही पढ़िये
स्टार की नई लेखिका
संगीता
का प्रथम उपन्यास
प्रेम संगीत
पृष्ठ 192 मूल्य 3/-

३.००

आहुति
मुसाफिर

४.००

सीमा बहू
गुरुदत्त

३.००

कागज की नाव
राजवंश

३.००

खून की परछाइयाँ
गुप्तदूत

३.००

स्वर्ण स्वीटा
समीर

३.००

प्यासा सागर
लोकदर्शी

३.००

शून्य का दर्शन
(भगवान श्री रजनीश)

अन्य स्टार बुक्स

पिजरा	गुलशन नन्दा	४.००
चिनगारी	,,	४.००
भंवर	,,	४.००
शीशे की दीवार	,,	२.००
गेलार्ड	,,	४.००
सितारों से आगे	,,	२.००
दाग़ स्क्रीनप्ले	,,	३.००
सफ़र	गुरुदत्त	५.००
दीन दुनिया	,,	४.००
अंधेर नगरी	,,	४.००
काली रातें	राजवंश	३.००
दर्द पराया	,,	३.००
शिकायत	,,	२.००
मिलाप	,,	२.००
उपासना	,,	२.००
रंगरलियाँ	,,	३.००
तूफ़ान	,,	३.००
निकम्मा	,,	३.००

मृग तृष्णा	समीर	३.००
धड़कन	,,	३.००
आवारा	,,	२.००
परिन्दा	,,	२.००
तलाश	,,	२.००
मुर्दों का षड्यंत्र	गुप्तदूत	३.००
हत्या और हत्यारे	,,	३.००
भयानक आवाजें	,,	२.००
तपस्या	स्क्रीनप्ले	३.००
उस के साजन	कुशवाहाकान्त	३.००
उन की कहानी	अमृता प्रीतम	३.००
चाकर गाथा	विमल मित्र	३.००
भैरवी	शिवानी	३.००
१९७६ में आप का भाग्य		३.००
भारत की पन्द्रह भाषायें		४.००
साईं बाबा के संदेश		३.००
सफलता कैसे मिले ?	समर बहादुर सिंह	३.००
जीवन दर्शन	भगवान रजनीश	२.००
उर्वशी (काव्य)	दिनकर	५.००

कम मूल्य की सुन्दर पुस्तकें और भी कम मूल्य में

स्टार लायब्रेरी योजना

के सदस्य बन कर घर बैठे प्राप्त करें.....

सदस्यता-नियम एवं सुविधाएं

- सदस्यता शुल्क का केवल १/- भेज कर प्रत्येक मास ११/- की पुस्तकें १०/- की वी. पी. से घर बैठे प्राप्त करें। वी. पी. भेजने का पूरा खर्च—जो प्रति मास ३/- से भी अधिक होता है—हम देंगे। इस प्रकार आप को १४/- के स्थान पर केवल १०/- देने होंगे और ४ नई एवं रोचक स्टार बुक्स आप को डाक द्वारा घर बैठे पहुंचती रहेंगी।
- योजना सदस्यों को पहिली वी. पी. में एक सुन्दर प्लास्टिक बुक कवर निःशुल्क भेजा जाता है।
- छः वी. पी. निरन्तर मंगाने वाले सदस्यों को सातवीं वी. पी. में तीन रुपये मूल्य की एक और पुस्तक भी भेंट में निःशुल्क दी जाती है।
- समय समय पर अन्य कई उपहार भी योजना-सदस्यों को दिए जाते हैं।
- और यदि कोई सदस्य किसी मास वी.पी. न मंगाना चाहें तो यथासमय सूचित करने पर वी. पी. नहीं भेजी जाती—फिर भी सदस्यता जारी रहती है। इसी प्रकार यथा समय पत्र प्राप्त होने पर सदस्य अपनी पसन्द की कोई भी अन्य पुस्तक मंगा सकते हैं।

स्टार पब्लिकेशंज (प्रा०) (लि०)
आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002

Jupiter

अन्य स्टार बुक्स की सूची पत्र लिख कर निशुल्क मंगायें

पहाड़ पर जाने में आप जितना ख़र्च करेंगे उतने में ही विदेश में छुट्टियाँ बिताइये

मॉरिशस.

अब विदेश में छुट्टियाँ बिताना पहले से कहीं आसान है. और सच पूछिये तो इसका खर्च भारत के किसी भी अच्छे पहाड़ी स्थान पर जाने के मुकाबले कम ही पड़ता है.

स्वप्नमधुर छुट्टियाँ

विशाल फूलों और खूबसूरत झरनों से शोभित तथा ज़िन्दगी की मस्ती बिखेरता एक स्वप्निल टापू है मॉरिशस.

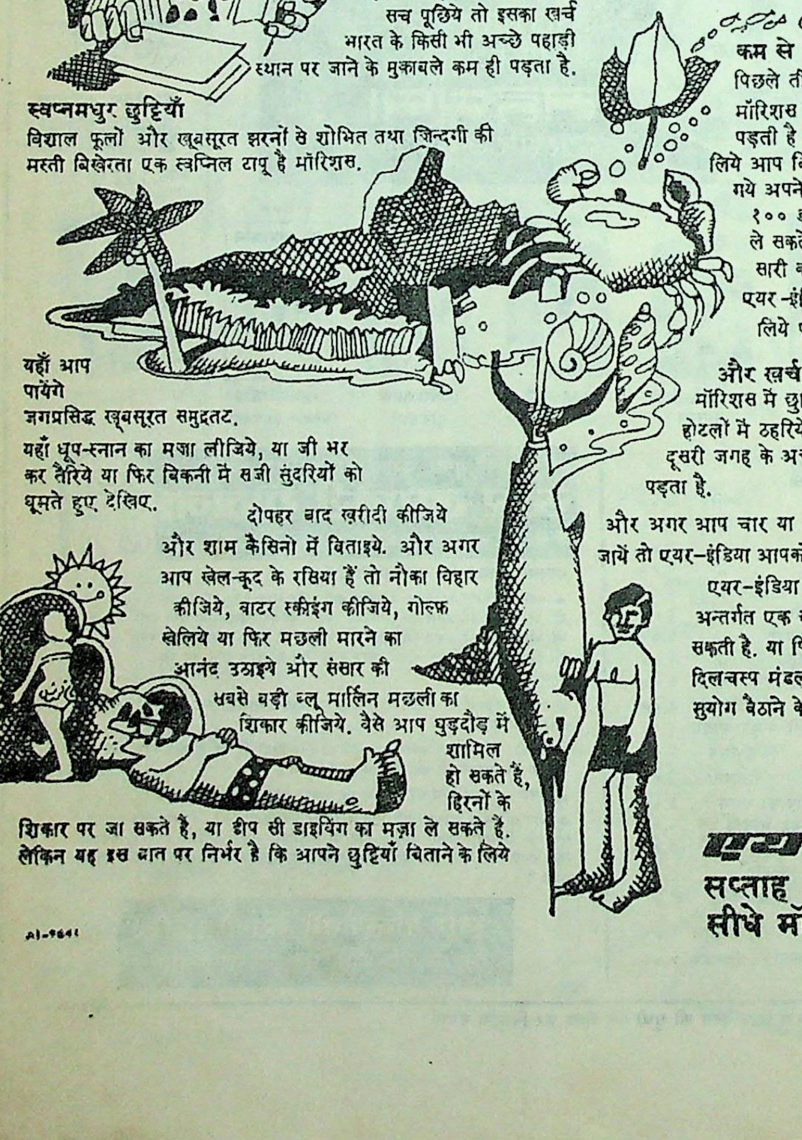

यहाँ आप पायेंगे जगप्रसिद्ध खूबसूरत समुद्रतट.

यहाँ धूप-स्नान का मज़ा लीजिये, या जी भर कर तैरिये या फिर बिकनी में सजी सुंदरियों को घूमते हुए देखिए.

दोपहर बाद ख़रीदी कीजिये और शाम कैसिनो में बिताइये. और अगर आप खेल-कूद के रसिया हैं तो नौका विहार कीजिये, वाटर स्कीइंग कीजिये, गोल्फ़ खेलिये या फिर मछली मारने का आनंद उठाइये और संसार की सबसे बड़ी ब्लू मार्लिन मछली का शिकार कीजिये. वैसे आप घुड़दौड़ में शामिल हो सकते हैं, हिरनों के शिकार पर जा सकते हैं, या डीप सी डाइविंग का मज़ा ले सकते हैं. लेकिन यह इस बात पर निर्भर है कि आपने छुट्टियाँ बिताने के लिये साल का कौन सा समय चुना है.

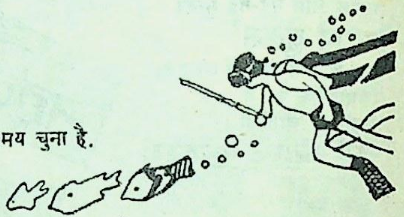

कम से कम खानापूरी

पिछले तीन वर्षों के बीच अगर आप विदेश जा चुके हैं तो भी मॉरिशस जाने के लिये आपको न तो पी फ़ॉर्म की ज़रूरत पड़ती है और न पासपोर्ट एन्डोर्समेंट या वीसा की. खर्च के लिये आप बिना रिज़र्व बैंक गये अपने साथ १०० डॉलर तक ले सकते हैं. सारी कागजी कार्रवाई एयर-इंडिया खुद आपके लिये पूरी कर देती है.

और ख़र्च इतना कम कि सहसा विश्वास नहीं हो

मॉरिशस में छुट्टियाँ बिताते समय आप अत्यधिक आरामदायक होटलों में ठहरिये या पूरा कॉटेज किराये पर लीजिये — फिर भी दूसरी जगह के अच्छे शानदार होटलों के मुक़ाबले किराया कम ही पड़ता है.

और अगर आप चार या अधिक यात्रियों की मंडली बनाकर जायें तो एयर-इंडिया आपको ज़ोरदार छूट देने को तैयार है.

एयर-इंडिया के ख़ास एक्सकर्शन फ़ेयर के अन्तर्गत एक यात्री को भी भारी छूट मिल सकती है. या फिर संपूर्ण ख़र्च सहित दिलचस्प मंडली में छुट्टियाँ बिताने का सुयोग बैठाने के लिये अपने ट्रैवल एजेन्ट को कहिये.

एयर-इंडिया

सप्ताह में दो बार
सीधे मॉरिशस

AI-९६४१

मोदी धागा कशीदाकारी प्रतियोगिता

प्रथम पुरस्कार १0,000/-रु.

५०,००० रुपये के अन्य आकर्षक पुरस्कार

२ द्वितीय पुरस्कार
२८६ लीटर का जेम रेफ्रीजरेटर

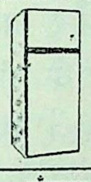

४ तृतीय पुरस्कार
फिलिप्स हाई फ्यू इन्टरनेशनल स्टीरियो सिस्टम

८ चतुर्थ पुरस्कार
रेकोल्ड मिक्सर और ग्राइंडर

१० पंचम पुरस्कार
रेकोल्ड की हॉट प्लेट

१०० सांत्वना पुरस्कार
रेकोल्ड की बिजली की इस्त्री

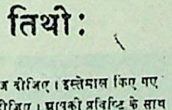

कल्पना कीजिए! १०,००० रुपये आपके हो सकते हैं! मौका न चूकिये। तुरन्त कशीदाकारी का काम शुरू कर दीजिए।

नियम सरल है

प्रतियोगिता का फैसला निष्पक्ष निर्णायकों का पैनल करेगा जो अन्तिम और मान्य होगा। आप जितने चाहें उतने प्रविष्टि भेज सकते हैं।

हर एक प्रविष्टि अलग कूपन के साथ भेजा जाना चाहिए और उन पर आपके साफ-साफ नाम पते की अलग चिट भी होनी चाहिए।

सभी पुरस्कृत प्रविष्टियों पर मोदी थ्रेड मिल्स का अधिकार होगा। बाकी प्रविष्टियां प्रतियोगिता के बाद हिस्सा लेने वालों को लौटा दिये जायेंगे। प्रविष्टि के खो जाने या खराब हो जाने की जिम्मेदारी मोदी थ्रेड मिल्स की नहीं होगी। प्रतियोगिता के नियमों के बारे में विवरण के लिए मोदी धागे के निकटतम डीलर से एक प्रविष्टि पत्र मांगिये।

जल्दी कीजिए! अंतिम तिथी: ३० अगस्त १९७६

इस कूपन को काटिए और अपनी प्रविष्टि के साथ भेज दीजिए। इस्तेमाल किए गए 'MTM' धागों के कैशमीमो और लेबल भी साथ भेज दीजिए। आपकी प्रविष्टि के साथ एक अलग चिट नत्थी होनी चाहिए जिस पर आपका नाम, पता साफ-साफ लिखा हो।

मोदी धागा कशीदाकारी प्रतियोगिता प्रविष्टि कूपन

नाम ....
पता ....
शहर .... पिनकोड ....
श्रेणी : ☐ कढ़ाई ☐ बुनाई
☐ क्रोशियाकारी ☐ टैटिंग
प्रतियोगिता के बाद :-
☐ कृपया मेरी प्रविष्टि वी०पी०पी० (डाक मूल्य) से लौटा दें।
☐ मैं मोदी नगर से अपनी प्रविष्टि खुद ले लूंगा/लूंगी।

मैं प्रमाणित करता/करती हूं कि मोदी धागा कशीदाकारी प्रतियोगिता में मैंने जो प्रविष्टि भेजी है वह मैंने खुद तैयार की है और मुझे प्रतियोगिता के नियम मान्य हैं।

....
(हस्ताक्षर)

इस पते पर भेजें : — मोदी धागा कशीदाकारी प्रतियोगिता,
मोदी थ्रेड मिल्स, मोदी नगर, उत्तर प्रदेश।

आपको क्या करना है :

मोदी धागे के 'MTM' स्ट्रेंडिड कढ़ाई के धागे, क्रोशिया धागे या सूती धागे से अपनी पसन्द की कोई चीज बनाइये। आप कढ़ाई, बुनाई, टैटिंग या क्रोशियाकारी कुछ भी कर सकते हैं। इसका कोई भी आकार या डिज़ाईन हो सकता है लेकिन काम मौलिक होना चाहिए।

आपकी कशीदाकारी के बारे में फैसला करने का आधार मौलिकता, रंगों की पसंद और टाँकों की सुन्दरता होगी। आपने इस कशीदाकारी में जिन धागों को इस्तेमाल किया हो उनके कैशमीमो और लेबल संभाल कर रखिए और अपनी प्रविष्टियों के साथ रजिस्टर्ड (ए०डी०) से भेजिए।

पता है : —
मोदी धागा कशीदाकारी
प्रतियोगिता
मोदी थ्रेड मिल्स, मोदी नगर, उत्तर प्रदेश।

मोदी धागे

३० से ज़्यादा देशों की पसन्द।

OBM/3165J

सारिका के वार्षिक ग्राहकों के लिए विशेष छूट

'सारिका' के प्रत्येक अंक का मूल्य एक रुपया है. किंतु वर्ष भर के लिए वार्षिक शुल्क मात्र दस रुपये है. यानी साल भर में दो अंक मुफ्त. यदि आप दो साल के लिए ग्राहक बनते हैं, तो शुल्क केवल उन्नीस रुपये है यानी दो वर्ष में पांच अंक मुफ्त. हां, तीन वर्ष के लिए शुल्क केवल सत्ताईस रुपये है.

आपके लिए सारिका की विशेष दरें इस प्रकार हैं:

एक वर्ष—१० रुपये
दो वर्ष—१९ रुपये
तीन वर्ष—२७ रुपये
विदेश में समुद्री डाक से एक वर्ष—३० रुपये

कृपया यह कूपन जरूरी राशि के चेक/ड्राफ्ट/मनी-आर्डर के साथ-साथ आज ही भेज दें—

सर्कुलेशन मैनेजर
सारिका, टाइम्स आफ इंडिया बिल्डिंग, बम्बई-४०० ००१.

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/दो वर्षों/तीन वर्षों के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. १० रुपये/१९ रुपये/२७ रुपये चेक/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा भेजे जा रहे हैं.

नाम -------------

पता -------------

हस्ताक्षर ----------

सारिका

कच्छी कहानियों के दो आगामी अंक

जुलाई '७६ और अगस्त '७६

कथा जगत के नये परिवेश और अनछुए, अंधेरे कोनों की तलाश सारिका का लक्ष्य रहा है, सारिका के आगामी दो अंक इसी लक्ष्य की उपलब्धि हैं. **ये दोनों अंक— जुलाई, १९७६ और अगस्त, १९७६ कच्छी कहानियों के अंक होंगे.**

कच्छ का तपता रेगिस्तान, रेगिस्तान में हहराते रेत के बबंडर और उन बबंडरों से जूझता हुआ वहां का आदमी...भूख और प्यास की छटपटाती संस्कृति और इन सबके बीच कभी न हार मानने वाली आशा और जिजीविषा...यही सब आप इन दो अंकों में पढ़ सकेंगे.

साथ ही अभिमन्यु अनत के उपन्यास 'लाल पसीना' की अगली किस्त.

तथा सभी स्थायी स्तंभ.

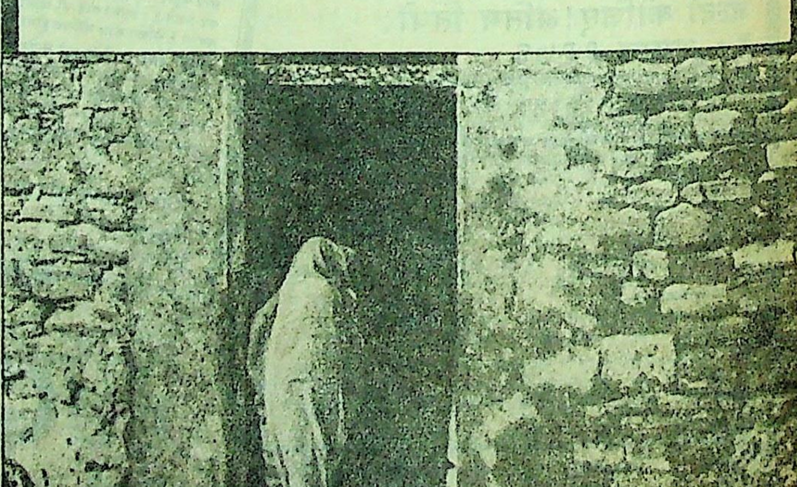

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका

जून, १९७६

वर्ष : १६ ; पूर्णांक : १८२

कहानियां

लोचन विदेशी (मॉरिशस) : तूफान : १२
र. शरीफ इस्मान (सियरा लियोन) : कोया : १६
बिरागो दियोप (सेनेगल) : नेकी की कमाई : २३
अब्दुला हामेद अल-अमीन (सूडान) : जब बूढ़े ताहा ने. . . : २४
जोसेफ जोबेल (सेनेगल) : फूल, प्यारे फूल! : २८
सिप्रियन एक्वेंसी (नाइजीरिया) : लकड़ियां : ३४
कीकी उवेचिया (नाइजीरिया) : त्रास : ३६
लुई बर्नार्दो होनवाना (मोंजाबीक) : डीना : ४०
जोसुआ म्आंगी करुकी (केन्या) : शहीद : ४४
मैबल डोव डैंक्वे (घाना) : फटा हुआ नकाब : ४८
पेटर क्वाम बुहिन (घाना) : यह अनुभव बोल रहा है : ६०
फर्दीनंद ओयोनो (कैमरून) : बूढ़े का तमगा : ६३
अब्दुल मुनइम सलीम (मिस्र) : सूटकेस : ६४

लघुकथाएं--लोककथाएं

गोरे की ताकत (केन्या) : २०
आदमी का जन्म (टोगो) : २०
मौत और चंद्रमा (सेनेगल) : २०
बाबाकोटो (मैडागासकर) : २१
आदमी और बंदर (बेनिन) : २१
चिरंतन प्यार (आयवरी कोस्ट) : २१
सृष्टि की रचना (युगांडा) : २७
बातचीत : ३२
किसके सेवक : ३३
खतरों से खेलने वाली (कांगो) : ४७
ब्याह (इथियोपिया) : ५९
जलपरी (मैडागासकर) : ८३

आद्यकथाकार (१२)

कन्या (असमिया) : एक विवेचन : नवारुण वर्मा : ५२
लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ : परिचय : ५३
लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ : कन्या (कहानी) : ५४

तीन कविताएं

गुलाम लड़की (नाइजीरिया) : ५७
सूरज के बाद (कांगो) : ५७
कारिफा (गिनी) : ५७

विशिष्ट परिचय

सर शिवसागर रामगुलाम : राजेंद्र अरुण : ७१

धारावाहिक उपन्यास : पहली किस्त

अभिमन्यु अनत (मॉरिशस) : लाल पसीना : ७२

स्थायी स्तंभ

पाठकीय : ८
कृतियां : वीरेंद्र सक्सेना, श्रवणकुमार ; धनंजय : ८४
गोष्ठी-रपटें : ८९
विविधा : ९१

विशिष्ट रिपोर्ट

अखिल भारतीय समांतर लेखक सम्मेलन (राजगीर) : ८६

- **आमुख : शब्बीर दीवान**

पृष्ठ १२-१३, १७, २५, ३२, ३३, ३७, ४४, ४८-४९, ५५, ६१, ६५ तथा ७३ के चित्रों का रेखांकन : प्रकाश विश्वासराव

संपादक : कमलेश्वर

- मुख्य उप-संपादक : आनंदप्रकाश सिंह
- उप-संपादक : अवधनारायण मुद्गल, सुदीप
- कार्यालय-सहयोगी : श्रीनाथ पांडेय, देवचंद्र झा, भिकाजी शिर्के

पाठकीय

फरवरी अंक

इस अंक में **'गर्दिश के दिन'** स्तंभ के अंतर्गत प्रकाशित श्रीमती दीप्ति खंडेलवाल की आत्मरचना पर सर्वाधिक प्रतिक्रिया हुई. इन मिश्रित प्रतिक्रियाओं के दो-तीन उद्धरण हम यहां प्रस्तुत कर रहे हैं.

श्री एम. वेंकटेश, हैदराबाद, ने अपने भाव भरे लंबे पत्र में लिखा है— **"गर्दिश के दिन'** के अंतर्गत अब तक हमने जितनी भी आत्मरचनाएं पढ़ीं उनमें सर्वश्रेष्ठ श्रीमती दीप्ति खंडेलवाल की लगी. उनकी कलम से निकली हुई हर पंक्ति सीधे अंदर पहुंच कर हृदय को छू लेती है. पाठक का समस्त व्यक्तित्व हिल उठता है उनकी वेदना से. . .नत हो जाता है श्रद्धा से सिर ऐसे व्यक्तित्व के समक्ष जिन्होंने अपनी वेदना के रिसते कणों को स्वयं पी कर हिंदी-कथा-साहित्य को यथार्थवादी मनोवैज्ञानिक कहानियां दीं. □

श्री सुधाकर, दिल्ली : "दीप्ति जी की आत्मरचना पढ़ने के बाद ऐसा महसूस होता है जैसे वे अपने नारी होने पर कुछ आतंकित हैं. लगता है जैसे नारीत्व को उन्होंने एक विवशता के रूप में स्वीकारा है. उनकी कहानियों से अधिक मुझे उनकी आत्मरचना पसंद आयी है." □

श्री कपिलदेव : "लेखिका आभिजात्य संस्कारों से संपृक्त है तथा उसकी जिंदगी का बहुमूल्य हिस्सा अभी तक उसी जमीन से जुड़ा हुआ है. यह उनकी लेखनी के पीछे से जाने-अनजाने जाहिर हो गया है. शायद इसीलिए अबकी यह कृत्रिम दुःखानुभूति पाठक को भीतर तक छूने से वंचित रह जाती है. मानसिक स्तर पर उन्होंने 'अवाम' के दुख-दर्द को भोगा है, ईमानदारी से उनके दुख-दर्दों को जीने की कोशिश की है—यह भी सच है. इसीलिए उनकी रचनाएं कभी-कभी जिस्म के भीतरी हिस्से को छू जाती हैं." □

फरवरी अंक की कहानियों में **'संज्ञा और सर्वनाम'. 'रेत के पौधे' 'एक और शुरुआत' 'नदी जा रही सागर को', 'राहु और केतु'** सबसे ज्यादा पसंद की गयीं' पसंद व्यक्त करने वाले हैं. सर्वश्री **प्रदीप सिंह पवार** (इंदौर), **अनिल कटारिया** (देहरादून), **अशोक शर्मा** (धमतरी), **डा. करनैल सिंह** (अमृतसर), **विजयशंकर मंडल** (मुंगेर), **अजयकुमार वर्मा** (मोतिहारी), **देवचंद जैन** (इटारसी), **सुरेंद्र ठकराल** (कैथल, हरियाणा) **आर. एल. ठाकुर** (ग्वालियर), **चंद्र मोहन सिंह पवार** (भोपाल), **उदयशंकर** (आरा, बिहार), **राजेंद्र परदेशी** (इलाहाबाद), **प्रदीप जैन** (टीकमगढ़, म. प्र.), **सुश्री सुषमा रमण** (पटना). □

ग्वालियर के **श्री अजीज अफसर 'राही'** की पत्नी **श्रीमती तमन्ना** को **'इंद्रधनुषः जुबेदा उर्फ जुब्बी के नाम'** कहानी ने बहुत प्रभावित किया. □

मार्च अंक

आज के पोलिश कथा-साहित्य की झलक देने वाली ३० कहानियां मार्च अंक में दी गयी थीं. पाठकों ने अधिकांशतः इस अंक को पसंद किया. **श्री श्याम मनोहर तिवारी**, जबलपुर (म. प्र.) की राय में इस अंक की **'दीवारों के बीच', 'भोर के पहरेदार', 'परिंदों ने भी देखा था,' 'जमीन का टुकड़ा', 'इनकार'** और **'चक्र'** कहानियां श्रेष्ठ रहीं. □

श्री रफीक अ. बागबान, बीजापुर (कर्नाटक) को पोलिश कहानियों का यह संग्रह अपने आप में अनूठा प्रतीत हुआ. आपने लिखा है " **'चक्र', 'चिट्ठी', 'महाराजा'**,

श्री आर. के. कश्यप, दिल्ली को मार्च अंक से संतुष्टि नहीं मिली—क्योंकि "नीरसता का प्रकोप जहां-तहां बिखरा पड़ा है." □

आगरा की **सुश्री वीरबाला जैन** का भी यह मत है कि ऐसा अंक अरुचि पैदा कर देता है—"आखिर एक ही सी शैली में लिखी गयी कहानियों को कोई कहां तक पढ़े !" इनका सुझाव है कि कुछ प्रांतीय भाषाओं की कहानियां और किसी विदेशी भाषा की कहानी प्रत्येक अंक में दी जाये. □

श्री सुरेंद्र मिश्र बड़ी दरियापुर (जमालपुर, मुंगेर) का कहना है कि यह अंक विदेशी कथा-साहित्य से पाठकों को अवगत कराने की शृंखला में एक महत्वपूर्ण कड़ी है.

" 'सारिका' पढ़ते वक्त ऐसा लगता है कि मैं पढ़ नहीं रहा हूं, बल्कि अपने गांव की उन गलियों में घूम रहा हूं, जहां बच्चे कल से बेखबर धूल से खेल रहे हैं—यह भूलते हुए कि यही धूल उन्हें कल फांकनी पड़ सकती है. और जहां लोग आज के परिवेश में रोटी के संदर्भ से जूझते हुए अपनी उपस्थिति का एहसास बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील हैं. और जहां के किशोर आज भी हवाई जहाज को आकाश में उड़ते देख मानसिक अपरिपक्वता से लाचार पूछ बैठते हैं, 'ई तनि गो के चिड़िया पर ओतै आदमी केना बैठें छै !' सारिका ने इन सभी को वाणी दी है और उसे छापकर आज के युग से जोड़ा है." □

'हिप्पी', 'स्मारक', 'दीवारों के बीच', कहानियां दिल से गुजरती हैं. प्रथम मौलिक कन्नड़ कहानी **'रंगप्पा की शादी'** को रोशनी में लाने के लिए मैं 'सारिका' का ऋणी हूं. मास्ती जी के छायाचित्र के लिए मैं बेचैन था. 'सारिका' ने उसे भी छापकर मुझे संतोष प्रदान किया है. □

श्री मोहनलाल पालरेचा, होसपेट (कर्नाटक) को **'बोगातीनिया'** अत्यंत ही रोचक एवं दिलचस्प लगी. **'इम्तहान', 'स्मारक', 'इनकार'** और **'महाराजा'** ने विशेष रूप से इन्हें प्रभावित किया. □

अप्रैल अंक

अप्रैल अंक 'नवलेखन विशेषांक' था. इसके बारे में जितने पत्र प्राप्त हुए उनमें एक को छोड़ कर सभी में इस अंक की सराहना की गयी.

श्री विजयकुमार पाठक, कटिहार (बिहार) के मतानुसार इस अंक की सभी कहानियां व्यक्तिगत, सामाजिक विसंगतियां लिये हुए हैं जो सहज ही प्रभावित कर जाती हैं. आम आदमी के बारे में सोचने के लिए युवा एवं नये लेखकों को प्रोत्साहित कर सराहनीय कार्य किया है." □

श्री गंगाप्रसाद राजौरा, दिल्ली, की दृष्टि में यह विशेषांक पिछले विशेषांकों से किसी भी प्रकार कम नहीं. □

श्री राजेंद्र शर्मा 'पुद्गल', चंदौसी (उ. प्र.) की नजर में भी यह अंक "अपनी अनुभूति एवम् अभिव्यक्ति की सार्थकता में खरा उतरा. . .नई प्रतिभाओं को उभरने के लिए दिया गया यह अवसर, 'शायर, सिंह, सपूत' का लीक छोड़ने जैसा लगा." □

और **श्री अशोक शर्मा**, धमतरी (म. प्र.) को यह अंक समांतर कहानियों की ही श्रृंखला की एक कड़ी लगा क्योंकि कथाकारों ने आम आदमी की छटपटाहट को अलग-अलग कोणों से उकेरा है. □

किंतु कानपुर के **श्री कैलाश नारायण** ने अपनी "अभिव्यक्ति के प्रथम प्रयास' में 'निष्पक्ष न हो कर कटु आलोचक ही" बने रहना चाहते हुए कहा है कि "नवलेखन अंक में राक्षसों, ब्राह्मणों, मंत्रों और रूढ़िगत संस्कारों की पुनरावृत्ति ही करनी थी तो इसे पंचतंत्र और बैताल कथाओं का अंक ही कहना चाहिए था. आज की परिस्थितियों में ऐसी कथाओं का औचित्य ही क्या है!" □

गोरखपुर के **श्री स्वप्निल** के अनुसार "इन कहानियों से गुजरते हुए ऐसा नहीं लगता कि ये नये लेखकों की कहानियां हैं. ये भावुकता से परे कठोर सच की कहानियां हैं जो संघर्षरत और जूझते हुए पात्रों की मनस्थितियों और परिस्थितियों को सूक्ष्म ढंग से व्यक्त करती हैं, चिंतन के लिए नये धरातल का निर्माण करती हैं." □

इस विशेषांक की कहानियों में **'कहर आषाढ़ का,' 'फरिश्ते की मौत,' 'टुकड़ा-टुकड़ा मौत', 'किस्सा एक बीमा कंपनी की एजेंसी का,' 'कलम हुए हाथ'** सबसे ज्यादा पसंद की गयीं. **'विमली', 'छायाएं', 'मुखौटे', 'वन वे ट्रैफिक', 'इम्तहान', 'कमीना', 'दरिंदे,' 'बुतखाना'**, और **'किस्सा किस्सागोई का'** भी पाठकों को अच्छी लगीं. □

'गर्दिश के दिन' स्तंभ में श्रवण कुमार की आत्मरचना ने जोधपुर (राज.) के **श्री नंदकिशोर अरोड़ा**, बाराबंकी (उ. प्र.) के **श्री योगींद्र शर्मा** जैसे पाठकों के मर्म को छुआ है.

श्री प्रेमकुमार मणि साहित्य सचिव, 'मधुबन', पटना से लिखते हैं कि "इस विशेषांक की कहानियां किसलय-सी कोमलता और छटा से परिपूर्ण हैं. प्रौढ़पन का अभाव है. किंतु अपौढ़पन ही अधिक रुच रहा है. मेरे एक प्रोफेसर मित्र को **'सारिका'** की कहानियां सतही लगने लगीं. उन्हें कहानी में गहराई चाहिए. किंतु मुझे तो गहराई में डूब मरने का भय लग जाता है और यह तथा-कथित सतहीपन ही सही सूझ जाता है—क्योंकि यहां टूटती तमन्नाएं पनाह पाती हैं और जी की ललक बढ़ जाती है. **'सारिका'** ने साहित्य को, विशेषकर कहानी विधा को, स्वांतः सुखाय से बहुजन हिताय की ओर एक मनोवैज्ञानिक मोड़ दिया है." □

किंतु लुधियाना के **श्री शिवमूर्ति 'वेणु'** को श्रवण कुमार से शिकायत है. उनका कहना है कि (श्रवण कुमार का) "यह कथन कि फ्रिज, कूलर्स, सोफा सेट वगैरह की सुविधाएं भोगते हुए भी वे सर्वहारा, गरीब या मामूली अभावग्रस्त लोगों की पंक्ति में अपना नाम लिखाने के हकदार हैं, सरासर ज्यादती है. साधनहीन, अभाव-ग्रस्त व्यक्ति का अपमान है, घोर अपमान!" □

संयोजन : रामगोपाल इगलासिया

श्री जाल एस. कार्डमास्टर कमर्शियल मैनेजर बेनेट कोलमैन कं. लि. केंद्रीय सूचना तथा प्रसारण मंत्री श्री विद्याचरण शुक्ल से १७ वीं अखिल भारतीय कांफ्रेंस में छपाई की उत्तमता का पुरस्कार ग्रहण करते हुए.

इस विशेषांक के लिए मॉरिशस के प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम का शुभकामना संदेश

PRIME MINISTER'S OFFICE
MAURITIUS

दिनांक 26 अप्रैल, 1976.

प्रिय कमलेश्वर जी,

मारिशस में हो रहे अफ्रीकी एकता संगठन के 13वें सम्मेलन के अवसर पर आप सारिका का अफ्रीका कथा अंक निकाल रहे हैं, और उसे मारीशस की जनता के नाम समर्पित कर रहे हैं, यह जानकर मुझे अति प्रसन्नता हुई। मुझे पता है कि 'सारिका' ने बराबर तीसरी दुनिया में हो रहे सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों से हिन्दी जगत को परिचित कराया है। विगत दिनों मारिशस के कथा साहित्य पर अपने जो दो विशेषांक निकाले उससे मौरिशस के साहित्यकारों की अभिव्यक्ति का व्यापक परिवेश मिला है।

2. आज पूरा अफ्रीका शक्ति के साथ विश्व राजनीति में उभर रहा है। राजनीतिक गुलामी की जंजीरें खंड-खंड हो टूट रही हैं। स्वाधीनता की प्रातः वेला अभी अफ्रीका को एक नया विहान दे रही है। उपनिवेशवादी और साम्राज्यवाद शक्तियों से लुटा शोषित महाद्वीप अपनी तमाम असहायता, दीनता और हेयता को त्याग कर अपनी 'पहचान' के साथ खड़ा हो रहा है। वह पहचान जो आयातित और आरोपित जीवन मूल्यों से बुरी तरह ढक गयी थी जिससे हम खुद अजनबी हो गये थे।

3. तीसरी दुनिया के तमाम देशों की तरह अफ्रीका भी एक सांस्कृतिक संशय के चौराहे से गुजर रहा है। पर जैसे हमारे भीतर आजाद होने की राजनैतिक इच्छा शक्ति थी उसी तरह इस सांस्कृतिक संशय से निपटने की प्रचंड इच्छा शक्ति है। नव उपनिवेशवाद के मंसूबों से हम अच्छी तरह परिचित हैं।

4. राजनैतिक आजादी का हमारा संघर्ष लगभग समाप्ति पर है। अब हमें एक जुट हो कर नव निर्माण में लगना है। अफ्रीकी एकता संगठन' हमारी सम्मिलित शक्ति का प्रतीक है। इसे तोड़ने के अनेक प्रयत्न हो रहे हैं। पर हम अफ्रीकी लोग अपनी समझ और दूरदर्शिता से इन सारे प्रयत्नों को विफल करके रहेंगे।

5. अफ्रीका के अध और दलित मानवमन की राजनैतिक आजादी ने चिंतन के नये क्षितिज प्रदान किए हैं। हम सामाजिक सांस्कृतिक, साहित्यिक आदि सभी क्षेत्रों में विश्व के समक्ष अपनी प्रतिभा की श्रेष्ठता प्रदर्शित कर रहे हैं। पिछले 20 वर्षों में अफ्रीका ने परिवर्तन के आकाश छुए हैं।

6. मुझे विश्वास है कि आप सारिका के इस विशेषांक में साहित्य संस्कृति और कला के क्षेत्र में नव उपनिवेशवाद से संघर्षरत और अपनी पहचान की उपलब्धि के लिए संकल्पवान अफ्रीकी मनीषा की मनःस्थिति को स्वर देंगे।

शुभकामनाओं सहित।

शि. रामगुलाम.

शिवसागर रामगुलाम
प्रधान मंत्री

साहित्य के जरिये — अफ्रीकी एकता की शिनाख़्त

आज से १३ वर्ष पूर्व ३० अफ्रीकी देशों ने 'अफ्रीकी एकता संगठन' की स्थापना की थी, जिसका उद्देश्य था अफ्रीका में सांस्कृतिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक तथा आर्थिक नीतियों का सह-निर्धारण; उपनिवेशवाद की समाप्ति के लिए सामूहिक संघर्ष; तथा सदस्य देशों की स्वतंत्रता तथा प्रभुसत्ता की रक्षा के लिए सामूहिक सुरक्षा-व्यवस्था. आज इस संगठन के सदस्यों की संख्या ३० से बढ़ कर ४६ हो चुकी है और जून, १९७६ में इसका आगामी वार्षिक सम्मेलन, मॉरिशस में हो रहा है.

पिछली एक-चौथाई सदी में विश्व के साहित्यिक मंच पर एक नयी आवाज अपनी समस्त शक्ति तथा संवेदना के साथ उभरी है. वह है अफ्रीकी साहित्य की आवाज——जन-मानस की नयी चेतना, जागरूकता, निष्ठा, राजनीतिक स्वतंत्रता व सांस्कृतिक मुक्ति-प्रयासों की अदम्य कामना से अनुप्रेरित व समाहित एक गहन-गंभीर उद्घोष!

फ्रेंच, अंग्रेजी, अरबी, स्वाहिली, हिंदी, स्पेनी, पंजाबी, जुलू, योरोबा, ईबो, हाउजा आदि अनेक भाषाओं में रचे जाने वाले इस अफ्रीकी साहित्य की अपनी पहचान, अपनी शिनाख़्त क्या है——यह सवाल बार-बार दुनिया भर के पाठकों के मन में उठता रहा है. अफ्रीकी साहित्य ने अपनी क्या पहचान स्थापित की है, यह वहां के विभिन्न देशों में लिखे जा रहे साहित्य को एक साथ पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है. समस्त अफ्रीकी साहित्य दलित और शोषित, सदियों के औपनिवेशिक आधिपत्य के जुए के नीचे पिसते आ रहे जन सामान्य की नयी आकांक्षाओं और इच्छाओं को अभिव्यक्ति देता है. इन रचनाओं का कथ्य चाहे प्राचीन हो, चाहे अर्वाचीन, पारंपरिक हो या आधुनिक, इसके पात्रों की प्रकृति, उनकी प्रतिक्रियाएं——सब कुछ अफ्रीकी हैं. उनकी सांस्कृतिक धरोहर और जीवन-दृष्टि ने मिल कर उन्हें अपनी निजी पहचान दी है. साथ ही 'ब्लैक' और नीग्रो होने में ही गर्व अनुभव करने की नयी भावना ने उनमें नया आत्मविश्वास भी जगाया है.

यह नया आत्मविश्वास अफ्रीका के आधुनिक साहित्य को विश्व के सर्वश्रेष्ठ और रचनात्मक साहित्य के समकक्ष ला खड़ा करता है.

मॉरिशस की जनता को समर्पित 'सारिका' के इस अंक में अफ्रीका के सर्वाधिक प्रतिष्ठित और चर्चित लेखकों को शामिल करने के बजाय कोशिश यह की गयी है कि अधिक से अधिक देशों को प्रतिनिधित्व मिले. चिनुआ अचेबे, वोल सोयिंका, ऐमोस टुटुला, एबियोसे निकोल, क्वेसी ब्रू, क्रिस्टीना आमा अता आयदू, ग्रेस ओगोट, उस्मान सोसे, लियोपोल्ड सेंघोर, ज्यां प्लीया, एजीकिल एम्फालेले, रिचर्ड रीव, ला गुमा, केन येंबा, अगोस्तीनो नेतो आदि श्रेष्ठतम अफ्रीकी लेखकों की रचनाओं को इस अंक में न पा कर पाठकों को अजीब लग सकता है—— इन्हें इस अंक में शामिल इसलिए नहीं किया गया है क्योंकि इनकी रचनाएं 'सारिका' में प्रकाशित होती रही हैं—— खासतौर पर 'अफ्रीकी कथा विशेषांक' तथा 'तीसरी दुनिया विशेषांक' में इन्हें ही शामिल किया गया था.

आज संपूर्ण अफ्रीका एकजुट हो कर अपनी शिनाख़्त, अपनी सांस्कृतिक पहचान तथा अपने साहित्य के साथ विश्व के समक्ष खड़ा है. काले रंग और धरती की महक से उन्हें प्यार है. घाना के एक कवि फ्रेंक पार्क्स की ये पंक्तियां इसी का उद्घोष करती प्रतीत होती हैं : 'मुझे काली आत्माएं दे दो, / उन्हें काली ही रहने दो, / या चाकलेटी भूरी, / या उन्हें बना दो / मिट्टी के रंग का / मिट्टी की तरह / मिट्टी से भी मटमैला / लेकिन यदि संभव हो तो / कृपया उन्हें काला ही रहने दो / नितांत काला!' □

**यह अंक
मॉरिशस की जनता
को समर्पित**

तूफान

• लोचन विदेशी

मॉरिशस के ख्यातनामा कथाकार लोचन विदेशी की यह कहानी मॉरिशस में आने वाले उन विचित्र तूफानों को रेखांकित करती है, जो कि वहां की भौगोलिक विशेषता हैं. ये तूफान अकसर अपने पीछे विनाश की छाया छोड़ जाते हैं.

झनाक से शीशे फूटने की आवाज हुई. बसावन के खर्राटे बंद हो गये. वह विस्मित बिस्तर पर उठ बैठा. आंखें मीच कर अंधेरे कमरे को एकटक देखा. कमरे के दरवाजे, खिड़कियां, झरोखे सभी बंद थे. बाहर कान लगाया. तूफान का कोलाहल स्पष्ट सुनाई दे रहा था. मूसलाधार वर्षा की मोटी-मोटी बूंदें हवा के झोंके से शीशे से आ टकरातीं. मगर कमरे में गजब की गरमी थी. उसे याद आया, आंख लगने से पहले बिजली की बत्ती का स्विच ऑन था. सोचा, नींद के दरमियान शायद तूफान के क्रमशः बढ़ते झंझावात के कारण करेंट काट दिया गया हो. पर. . . पर शीशा कहां का फूटा? उसने घुटनों के बल खड़े हो कर सिरहाने की खिड़की को अंधे की भांति टटोला.

—सब तो सही सलामत है! वह बुदबुदाया.

तो. . .तो कहीं वीरेंद्र के कमरे की खिड़की का शीशा तो नहीं. . .

यह सोच अंधेरे को भेदता वह कॉरीडोर में जाने के लिए दरवाजे की ओर बढ़ा. दो-तीन कदम आगे उसका दायां पैर जैसे शीशे के टुकड़ों पर पड़ा. वह एक कदम पीछे हट कर ठिठक गया. अंदाजा लगाया—फूलदान गिरा होगा. उसने मोमबत्ती जलायी. मंद प्रकाश में देखा, उसकी स्वर्गवासी पत्नी धनिया की तसवीर गिरी पड़ी है. फ्रेम का शीशा फूट कर चकनाचूर हो गया था. एक क्षण धीमी रोशनी में वह चित्र को देखता रहा. छलछलाती आंखों से उसने दोनों हाथों से बड़े ही जतन से फ्रेम को उठाया. एकाएक बसावन की सिसकियों का बांध टूट गया.

——मैं जानता हूं, तेरी रूह अभी तक भटक रही है. यह हरकत उसी की है, अन्यथा यह फोटो कैसे गिर जाती!

उसने कमरे को गौर से देखा एक बार. धुंधली रोशनी में कमरा उसे अजीब-सा लगा. दीवार पर लगी और कितनी ही फोटो थीं. बसावन की आंखें उस कील पर टिक गयीं जिस पर धनिया की फोटो टंगी थी. इसे बसावन ने खुद अपने हाथों से हथौड़े द्वारा ठोंका था. वह अभी भी अपनी जगह कायम है. रुक-रुक कर हौले-हौले कैलेंडरों के सिवा कुछ भी हिल-डोल नहीं रहा था. तो इतनी मजबूत रस्सी से लगा फ्रेम गिरा कैसे? किसी अज्ञात शक्ति ही ने गिराया होगा! शायद सात साल पुरानी घटना का स्मरण दिलाने के लिए. हां, ऐसी ही भयानक, भीषण तूफानी रात थी वह. उसकी याद से आज भी कलेजा कांप जाता है. काश! बसावन ने रेडियो की सूचना का खयाल किया होता तो आज उसे धनिया के वियोग की आग में जल-जल कर न मरना पड़ता. पर उसने ही क्यों, मौसम का गलत अंदाज तो प्रायः सभीं ने लगाया था. शाम को दूकान पर जिस किसी से भी मुलाकात हुई थी, उन सभी ने तूफान की सूचना की खिल्ली उड़ायी थी. मुंह बिचका का कहा था उन्होंने ——तूफान आयेगा! वो भी जबरदस्त! ऐसा साफ आसमान, न हवा, न बरसात. यही तूफान का लक्षण होता है कहीं! दूकान में, दूकान के बरामदे पर, रास्ते में, चौराहे पर सभी जगह क्या वृद्ध, क्या जवान, सभी ने पुलिस या ऋतु-विज्ञान-शाला की सूचना को हंसी-ठिठोली में उड़ाया था. वे बोलते, हंसी-मजाक करते और एक पल सिर उठा कर पश्चिम को शून्य दृष्टि से देख लेते.

जगदेव चाचा ने कितना समझाया था बसावन को—बेटा बसावन, मेरी बात मान जा और तू भी सपरिवार रिफ्यूजी सेंटर चला चल. पर बसावन के कानों पर जू भी न रेंगी. कितना अच्छा, नेक हमदर्द पड़ोसी था वह उसका! हमेशा उसका अदब करता था बसावन. उसकी सलाह के बिना कोई भी कार्य न करता था वह. जब फेरी का नया कारोबार करने जा रहा था तो क्या ही अच्छा मशविरा दिया था उन्होंने बसावन को. भगवान ही जाने, उस दिन जगदेव के लाख कहने पर भी बसावन अपनी झोंपड़ी छोड़ कर तूफान आने से पहले उजाले में ही रिफ्यूजी सेंटर क्यों नहीं चला गया था!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kang Haridwar

बसावन ने फ्रेम साफ किया और उसे औंधा कर मेज पर रख दिया. बाहर 'सायक्लोन जेनो' जोर पकड़ता जा रहा था, 'तूफान बेरोल' शायद उससे जबरदस्त था जिसमें बसावन का सब कुछ स्वाहा हो गया था. उस समय उसका घर घास-फूस-गोबर-मिट्टी का था. उसे पूरा विश्वास था यदि तूफान आ भी गया तो वह अपनी झोपड़ी ही में अपना बचाव कर लेगा. देखते-देखते आकाश मेघाच्छन्न हो ही गया था. हवा का रुख परख कर धनिया ने कहा था— हवा ऐसी ही तेज होती गयी तो इस झोपड़ी में हमारी कुशल नहीं.

—स्त्रियों का कलेजा गोया मुर्गी का होता है, कोई 'आलिक्स' 'काटोल' नहीं आने लगे हैं जो रिफ्यूजी सेंटर का दरवाजा खटखटायें.

बसावन झल्लाया तो धनिया ने फिर मुंह न खोला. मध्य-रात्रि के लगभग जब छत हिलने लगी, मचान में रखी चीजें इधर-उधर गिरने लगी, दीमक से खोखले खंबे चरचराने लगे तो बसावन के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं. अंत में भाग कर रिफ्यूजी सेंटर का ही आश्रय लेना पड़ा था उन्हें.

* *

विनाश के बाद नवनिर्माण होता है. आज बसावन को झोपड़ी की जगह सीमेंट का सुंदर मकान है. कारोल का बाप भी आ जाए तो भी बसावन सुरक्षित है. बसावन के शयनकक्ष को दीवार पर धनिया की और एक आधी साइज वाली फोटो टंगी थी. यह फोटो बसावन की शादी के अवसर पर ली गयी थी. वह तसवीर ऐसी निर्निमेष दृष्टि से देख रही थी गोया पूछ रही हो, तुम हमेशा कहा करती थी न मेरा वीरेंद्र बड़ी मिन्नत-मुरादों का इकलौता बेटा है, उसे किसी प्रकार का कष्ट न होने पाये! देखो तो तुम्हारा लाड़ला अपने बेडरूम में कैसे निश्चित, बेसुध बिस्तर पर सो रहा है और बाहर प्राणघातक तूफान का कैसा बवंडर है. तुमने तो खुद अपनी आंखों देखा था ऐसे बावंडर को. कैसी भयानक रात थी वह! रोंगटें खड़ी हो जाते हैं उसकी याद से. घुप्प अंधकार व्याप्त था चारों ओर. पानी की बूंदे भाले-सी चोटें करती थीं. हवा के थपेडे सहते, गिरते, उठते, सम्भलते अटकल से रिफ्यूजी सेंटर की ओर भागे जा रहे थे. अचानक बिजली चमकी थी, तुम चौंक गयी थी प्रकृति का विराट रूप देख कर. वीरेंद्र कितना छोटा था तब ! तुम्हारी गोद में चिपका भय से चीख उठता था. प्रभु की कृपा ही थी जो सही-सलामत निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच गये थे, तिस पर भी तू. . . तूने धनिया अपनी मूल्यवान जान सस्ती गवां दी. . . बारह साल मेरे साथ रही मगर समझ न पाई मुझे. मैं मानता हूं, तुमसे अकसर सख्ती से पेश आता था पर मैंने कभी मार-पीट नहीं की.

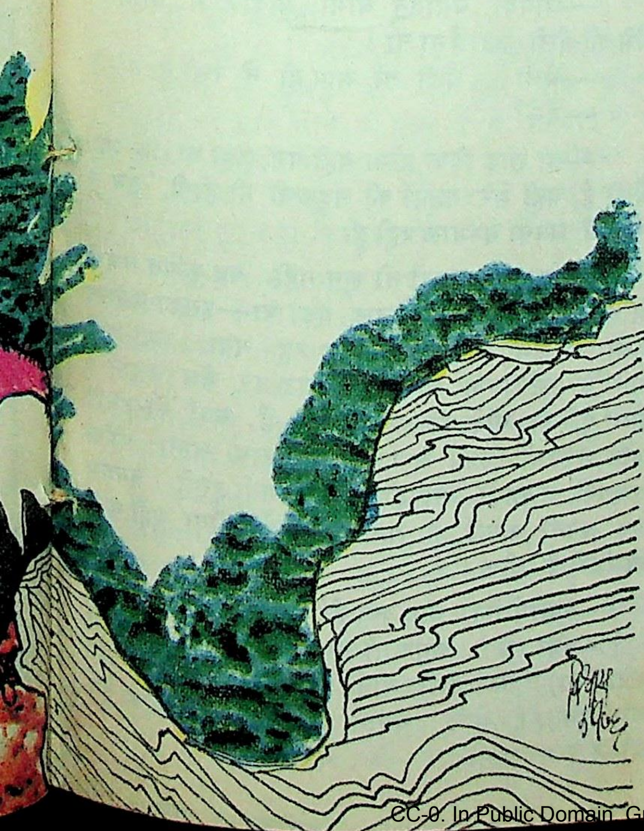

जब कभी धनिया बसावन की बेरुखी पर रूठ जाती, वह उसे मनाने, समझाने को कोशिश करता. एक दिन ऐसे ही बसावन की फटकार पर धनिया मुंह फुलाये मौन बैठी थी. जब बसावन का गुस्सा ठंडा हुआ तो वह उसे दुलारने लगा.

—धन ! तुम मेरी बात का जल्दी बुरा मान जाती हो, खास मेरी मां की तरह. वह भी पिताजी की छोटी-मोटी झिड़की पर बिना प्रतिवाद किये रूठा करती थी. वह गमखोर थी. . . . तुम्हारी जैसी! . . . पर. . .पर उस दिन की तुम्हारी वह टेक. . .

पीछे दरवाजा खुलने की आहट से उसका ध्यानभग्न हुआ, देखा वीरेंद्र है अपने पैजामे में.

—क्या है बेटा? बसावन ने कौतूहल से पूछा.

—आप जाग रहे हैं पिताजी? कुछ सुना आपने, लगता है कोई मेरे कमरे का दरवाजा खटखटा रहा है.

वीरेंद्र के स्वर में कंपन था.

—मुसीबत का मारा आश्रयहीन कोई गरीब दुखिया होगा बेटा! चल, जल्दी चल, किवाड़ खोल!

—हां पिताजी, वे भीग कर ठिठुर रहे होंगे.

बाप-बेटे ने जोर लगा कर लोहे का दरवाजा खोला. जोरदार तूफान का झटका उन्हें भी लगा. एक पुरुष और दो स्त्रियों ने प्रवेश किया. एक जो सयानी थी, उसकी गोद में तीन साल का एक बच्चा था.

—बाप रे जैसे परलय आ गया है, बसावन ने कहा, भैया चरित्तर तुम सब जल्दी कपड़े बदल लो. सरदी लग जाएगी, तब तक मैं तुम लोगों के लिए कुछ पीने का प्रबंध करता हूं.

—नहीं-नहीं बसावन भैया! तू चिंता न कर. आज हम तुम्हारे मेहमान नहीं, शरणार्थी हैं. आश्रय दे दिया, इतना ही कुछ कम है? जान बची, लाखों पाये. भगवान का शुकर ह तुम्हारा मकान बेतों (सीमेंट) का है. यहां कोई डर नहीं. हमारा घर तो अब तक, एक

दीर्घ निश्वास छोड़ कर चरित्तर बोला––शायद तूफान का ग्रास हो गया होगा भय्या!

चरित्तर बसावन का चिर-परिचित था. उसी गली की मोड़ पर उसका एक छोटा मकान था. टीन का, 'आलिक्स' तूफान में उसकी आलो, बांस और घास-फूस की झोपड़ी ढह गयी थी तो सरकार की ओर से मुआवजा मिला था. प्रति पीड़ित को पंद्रह-पंद्रह कोरूगेटेड आयरन शीट और तीस-तीस खंबे. थोड़ी और मेहनत कर्ज करके छोटा साधारण घर बनवा लिया था उसने. धूप-वर्षा से बचने के लिए एक मंडप था, सो उसे भी तूफान उड़ा ले गया होगा. बेचारे निर्धन किसान की कमर तोड़ डाली 'जेनो' ने.

धनिया को इस परिवार से बड़ी हमदर्दी थी.वह अकसर सुनाया करती थी बसवान को कि जब वह फेरी करने चला जाता था तो चरित्तर की पत्नी उसके घर आती, अपना दुखड़ा रोती. अनावृष्टि के कारण उसका मरद बेकार है. दो दिन से चूल्हा नहीं जला है. धनिया दया के वशीभूत हो कभी चावल-दाल तो कभी पैसे ही दे दिया करती थी. दया की ऐसी प्रतिमा को ईश्वर ने इतनी जल्दी क्यों बुला लिया?

धनिया गंवार, अनपढ़ तो थी ही पर कभी-कभी उसकी बुद्धि और सूझ पर बसावन को ताज्जुब होता था. कभी-कभार वह सीख उसे दे जाती कि बसावन की बुद्धि ठिकाने आ जाती. उस दिन की उसकी हरकत उसे हमेशा याद आयेगी. वह बाहर से देहली पर पैर रखते ही धनिया पर अकारण बरस पड़ा था तो उसने एक गिलास ठंडा पानी सामने रखते हुए कहा था–– लोग कहते हैं, ठंडा जल पीने से गुस्सा भी ठंडा हो जाता है. सचमुच उसके इस व्यवहार पर बसावन को अनायस हंसी आ गयी थी. इस तरह आये दिन अपने मनोविनोद से पति की थकावट दूर करने का प्रयत्न करती. वीरेंद्र के जनने से दांपत्य जीवन सुखमय, आनंदमय होने लगा था. शिशु वीरेंद्र की किलकारी से घर चुहलगड़ हो गया था. मगर जालिम क्रूर 'बेरील' ने बसावन की सुखी दुनिया उजाड़ दी.काश! आज वह होती तो तूफान के मारे अपनी पड़ोसी को कितनी सांत्वना देती इस घड़ी.

––यह तूफान तो मारिशस को तबाह कर देगा, भय्या! चरित्तर ने मटमैली धोती की टेंट कसते-कसते रसोईघर की चौखट से कहा.

––आओ भय्या चरित्तर, आओ! बैठो पीढ़े पर! सभी को यहीं बुला लाओ. वीरेंद्र, बेटा तू काफी दे गिलासों में. और हां, आलमारी से काबिन बिस्कुट का पाकिट भी लेता आ. . . . चरित्तर भय्या आतिशदान के पास सभी को बुला बैठाओ. क्या कहें, अपने बस की बात नहीं और न ही अमरीका या रूस वालों में इतनी ताकत है कि कोई बम ऐसा बनाएं जो ऐसे साले तूफान की धज्जियां उड़ा कर रख दे. लगता है जल-थल एक हो जायेगा.

––कल मेरी तरह कितने बेघर हो जायेंगे. घायलों का तांता लग जायेगा अस्पतालों में.कितने तो जान से भी हाथ धो बैठेंगे!

बच्चों के साथ पीढ़ा पर बैठते-बैठते चिंतित चरित्तर बोला. सभी आतिशदान के इर्द-गिर्द बैठे थे. बिस्कुट-कॉफी खा-पी रहे थे. श्रीमती चरित्तर शिशु को जांघ पर बिठाये उसे सेंक रही थी.

––ऐसे भयानक तूफान में भय्या को धनिया भौजी की याद तो और भी सताती होगी. बेचारी कितनी अच्छी थी! चरित्तर की पत्नी सहानुभूतिपूर्ण स्वर में बोली.

––यदि यह मकान न होता तो हमारी भी खैर न थी. हमने तो राह ली थी रिफ्यूजी सेंटर की. रास्ते में इनको कितना समझाया चलो चलें आपके घर जो दो-तीन पग ही दूर है. साथ में एक जवान बेटी भी है. ऐसी आफत में शरणार्थी-केंद्र भी गुंडों-चोरों का अड्डा बन जाता है.

बसावन को याद हो आया. उस दिन आफिसर बाबू ने भी कहा था कि 'बेरील' के कराल काल से बचने के लिए उन्होंने सरकारी स्कूल में पनाह ली थी––बसावन चाचा, अपना असबाब संभाल कर रखना, एक बार शरणार्थियों के पैसे-गहने चोरी हो गये.

एक शरणार्थी, आफिसर का अनुमोदन करते हुए बोला था–– अजी 'कारोल' में मैंने तो भाग कर एक मित्र के घर प्राण बचाये, उधर लुटेरों को मेरी उजड़ी कुटिया में सोने-रुपये न मिले तो हंडिया, मरमिट ही उठा ले गये.

इनकी बातों ने बसावन को शंकित कर दिया था. बहुत ही कठिन मेहनत- मजूरी करके गाढ़े दिन के लिए थोड़ा जमा रखा था उसने. सोचा , अच्छा हुआ कि जो आफिसर बाबू ने उसे सावधान कर दिया. अब वह रुपये की थैली धनिया से मांग कर भीतरी जेब में रख लेगा.

––धनिया, बसावन धीमी आवाज में बोला–– पैसे की थैली जरा देना तो !

––थैली . . . थैली तो आप ही ने रखी है न!

––मैंने?

––तो छोड़ दिया होगा वहीं पर. कहा था कि जहां थैली है, वहीं मेरे गहनों की संदूकची भी होगी, सब ले लो. मैं बच्चा सम्भाल रही हूं.

बसावन को काटो तो खून नहीं. वह कुपित नजरों से धनिया को देखकर उबल पड़ा था––इसका मतलब हुआ कि जमा-जत्था वहीं धरा रह गया. अभी-अभी सुने न लूटेरों के कारनामें? घर-घर सेंध लगाने के लिए ऐसे ही मौके की ताक में रहते हैं. वर्षों की कमाई और सहस्त्रों रुपये के गहनों से हाथ धोना पड़ेगा तुम्हारी वजह से. झोपड़ी तो गिर गयी होगी. बनाना घर अपनी कमाई से अब! नहीं तो जीना यहीं कहीं क्रियोलों के बीच !

––इसमें मेरा दोष क्या है?

––हां ऽऽऽ ! कसूर तो मेरा ही है. चिल्ला-चिल्ला कहा था, पहले थैली, सोने का खयाल रखो ! पर कौन सुनता है मेरी . पसीने की कमाई का दरद तुम औरत क्या जानो !

शायद पति की बात धनिया को लग गयी थी.

जगननन स्कूल का केअर-टेकर चरित्तर का मित्र था. गत तूफानी मौसम में वह दिन-दिन, रात-रात भर तूफान का मारा आश्रयहीन लोगों के साथ रहा था. वह रिफ्यूजी-सेंटर में चोर-चकारी, गुंडागिरी की कहानियां सुनाया करता था उसे.

चरित्तर ने बड़े ही उदास मन से कहा——खैर; यदि घर चौपट हो गया तो सरकारी स्कूल ही एक मात्र सहारा होगा हमारा. कल तो वहीं शरण लेनी पड़ेगी. लफंगे हमारा क्या बिगाड़ लेंगे?

——आज ही चले गये होते तो अच्छी जगह मिल जाती.

——नहीं-नहीं बहन, इतना गैर न समझो आप लोग मुझे. सब पर दुख आता है. 'बेरील' में मेरी भी झोपड़ी उड़ गयी थी तो महीनों केशव भय्या के यहां रहा. धनिया होती तो आपकी बातों से घायल हो जाती.

रात के करीब डेढ़ बज गये होंगे. सभी की पलकें नींद से बोझिल थीं. वीरेंद्र एक पुराना 'परी मार्च' देखते-देखते ऊंघने लगा था.

——वीरेंद्र, जा बेटा सो जा. चरित्तर, बगल वाले कमरे में बच्चे जा कर सो जायें.

चरित्तर के बाल-बच्चे सोने चले गये तो बसावन ने डिबिया से सिगरेट निकाली. एक अपने होठ पर रखी, एक चरित्तर को थमायी. चकमक से दोनों सिगरेटें सुलगायीं. कश का आनंद उठाते आपस में दुनियादारी की बातचीत होती रही.

——ईख काफी बढ़ गयी है, चरित्तर मुंह और नाक से धुआं निकालते बोला——झंझावात से खेती का बड़ा नुकसान होगा. साग-सब्जियां तो दो-एक महीने तक सपना हो जायेंगी.

——हां ऽऽ ! कंद-मूल पर ही गुजारा करना पड़ेगा. आजकल के कुंजड़े भी तो यही मौके जोहते हैं. पानी का माल सोने के दाम बेचेंगे. महंगाई के कारण तो हम गरीबों को अरबी, सूरन तक खरीदना मुहाल हो जायेगा. बसावन ने चरित्तर के पुराने वस्त्रों को निहारते हुए कहा. कमीज और धोती में यत्र-तत्र पैबंद थे.

——क्या कहें भय्या, ये सब हमारे ही कुकर्मों का दंड है. देखते हो न आजकल के लौंडे-लौंडियों को कैसी बेशर्मी से मटरगश्ती करते हैं. ये कल की छोकरियों को देखो. भला फैशन के नाम पर मिनी जिप, मिनी साड़ी, मिनी ब्लाउज पहने फिरती हैं. गली-गली फिरंगियों के समान नंगी टांगे दिखाती घूमती हैं.

——हमारे जमाने में तन ढंकने के लिए मारकीन राशन में मिलता था, बसावन चरित्तर की बात की पुष्टि करते बोला, फिर भी हमारी बहू-बेटियों का क्या मजाल कि घुटनों तक लहंगा पहनें या उघाड़े माथे या उघाड़ी छाती घर से बाहर आ जायें. आज इतने बेशुमार कपड़े हैं, फिर भी अधनंगा रहना फैशन समझा जाता है. पूरा कलयुग आ गया है भय्या !

——अभी उस दिन की बात है. हजामत बनाते-बनाते नाई सुना रहा था, संसार में भ्रष्टाचार, दुराचार, पापाचार और पता नहीं कितने प्रकार के ऐसे ही चार-अचार हो रहे हैं. शायद इसीलिए तो सुनने को मिलता है, कहीं भूकंप, तो कहीं जलजला, कहीं आंधी तूफान तो कहीं अकाल-अनावृष्टि होती रहती है. लोग कुत्तों की मौत मर रहे हैं. ये सब प्रभु का कहर नहीं तो और क्या है! हमारे देश में आबादी तेजी से बढ़ रही है. कहां से देगी सरकार नौकरी? बेकारी? बेरोजगारी के कारण चोरों की संख्या बढ़ेगी नहीं तो और क्या?

उस रोज भी जब बसावन चिंतालोक में ग्रस्त था कि तूफान 'बेरील' में उसका पैसा बह गया, उड़ गया या चोरों के हाथ लग गया तो चाचा जगदेव भी तूफान आने के कुछ ऐसे ही कारण बता रहे थे शरणार्थियों को. भोर की वेला का आलम था. 'बेरील' अपनी चरम सीमा पर था. बसावन स्कूल के बरामदे में खड़ा कभी इधर तो कभी उधर झांक-झूंक रहा था. आफिसर बाबू को देखते ही पूछा——मेरी पत्नी को उधर जाते देखा है आपने ?

——जी . . . जी नहीं तो! क्यों! क्या बात है चाचा? आफिसर ने साश्चर्य पूछा था.

——पता नहीं कहां चली गयी. बच्चा उठ कर कब से रो रहा है.

——तो . . . .तो शायद शौच गयी होगी.

——सूअर कहीं की ! क्या ठूंसा था जो इतनी देर पाखाने में बैठी है.

बसावन बौखला रहा था. इतने में एकाएक हवा की रफ्तार कमजोर होने लगी. बसावन को तो जैसे कुछ कचोट रहा था. वहां वह एक पल ठहरना नहीं चाहता था. वह किसी परिचित औरत के हाथ बच्चे को सौंप कर जगदेव चाचा के साथ निकला. रिमझिम वर्षा जारी थी. टूटी शाखाओं, उखड़े पेड़ों को हटाते, तनों को लांघते वे घर के फाटक तक पहुंचे. आखिर वही हुआ जिसका उसे डर था. घर की छत गिर पड़ी थी. बगल में रामलाल की ईख का खेत गोया सपाट मैदान हो. चौराहे पर से जगदेव बड़े ध्यान से देख रहा था कि किस दिलेरी और तत्परता से दो अनजान व्यक्ति उसकी गली में लोगों की छत से उड़े टीनों को ले जा रहे थे.

उधर बसावन किसी तरह घर में अलमारी तक पहुंचा. वहां जो देखा तो स्तब्ध रह गया. धनियां मचान के नीचे दबी चित मरी पड़ी थी. दायीं मुट्ठी में थैली थी.

स्मरण से बसावन की आंखों से आंसू टपक पड़े. चरित्तर ने हमदर्दी जतलाते कहा——धनिया की याद आ रही है न भय्या?

बसावन ने स्वीकारोक्ति में सिर हिला दिया. फिर आस्तीन से आंखें पोंछते हुए उठा ——चलो. दो घड़ी हम भी आराम कर लें.

दोनों एक ही पलंग पर जा लेटे. बाहर 'जेनी' तूफान का तांडव नृत्य जारी था. □□□

त्रिओले, त्रोआबुचिक मॉरिशस

कोया • र. शरीफ इस्मान

कोया अपने कमरे में से तैयार हो कर बाहर आयी. इस प्रकार सुंदर वस्त्रों से सुसज्जित होना वह अपना जन्म-सिद्ध अधिकार समझती थी, और उसका असमय इतना परिपक्व होना अकसर अन्य लोगों को चकित कर देता था. अपनी शालीनता व सम्मान को बनाये रखने का ढंग वह भलीभांति जानती थी और इसके संबंध में वह किसी की सलाह नहीं लेती थी. वह स्वयं ही इसकी निर्णायक थी. मानसिक व बौद्धिक रूप से, उसका इस छोटी-सी उम्र में इतना परिकक्व होना, उसकी उम्र की अन्य लड़कियों से अत्यंत विरोधाभास लगता था. वह अभी सिर्फ नौ वर्ष की छोटी-सी कन्या थी, जिसने अभी यौवन की देहरी पर कदम भी नहीं रखा था.

अपनी समस्त शालीनता के साथ, अपने कबीले की प्रथा के अनुसार, उसने अपनी मां के सम्मुख झुक कर प्रणाम दिया, जो कि एक सुकन्या को बचपन से ही सिखाया जाता है.

——मां फातमाता, क्या मैं अब जा सकती हूं? फातमाता ने (जो कि एक पदवी थी जो उसको उसके सौंदर्य के कारण दी गयी थी) अपनी इकलौती सुंदर कन्या की ओर प्रसन्नतापूर्वक देखा. उसका अंडाकार चेहरा जो अत्यंत सुंदर था, एक परम संतोष और अभिमान से भर उठा——शायद अपने ही प्रति, क्योंकि कोया, उसका ही वास्तविक स्वरूप थी, बिलकुल कार्बन-कापी.

——हां, तुम जा सकती हो, कोया.

कोया हौले से मुसकरायी. अपने गुलाबी रेशम के फ्रॉक में वह वसंत में खिले फूलों की भांति ताजा लग रही थी. उसका सुंदर शरीर वाटू के किसी चित्र की भांति लग रहा था. सूर्य की चमकती रोशनी में वह किसी परी की भांति लग रही थी.

उसकी मुसकराहट से, लाल-लाल होठों के अंदर छिपे मोती जैसे दांत झिलमिला उठे. लेकिन मां की अंतिम हिदायत सुनते ही वह मुसकान एकाएक चमकते चेहरे से गायब हो गयी.

——कोया मेरी पुत्री है! फातमाता अभी भी मुसकरा रही थी. और उसे यह भी नहीं भूलना चाहिए कि बड़ा होने पर उसे कितने सम्मानित युवक से विवाह करना है. उसे मेरा अब पुनः अपमान नहीं करना चाहिए.

* *

उस छोटी-सी सुंदर लड़की के चेहरे से सारी चमक एकाएक खत्म हो गयी. सिर पर बंधे रंग-बिरंगे स्कार्फ के नीचे उसकी भवें अनेक बार सिकुड़ीं और अपने होंठ दांतों से दबाती हुई वह मुड़ी.——ओह फातमाता! उसके होंठ कांपे. मैं आपकी तरह होने का पूरा प्रयत्न करती हूं.

——अवश्य! बेटी! वह तो मैं मानती हूं. लेकिन मैं अभी तक पिछली घटना को नहीं भूल सकी हूं.

कोया की आंखें जमीन की ओर झुक गयीं.

वह भी उस घटना को नहीं भूली थी. उसने घबराहट में अपना एक स्लीपर पैरों से निकाल दिया. अभी पंद्रह दिन पहले की ही तो बात है.—कोया, मां नीहां ने कहा था, अपने चूल्हे में फूंक मारो. यद्यपि उस दिन कोया आज से भी कहीं अच्छी तरह सुसज्जित थी और उन अन्य सातों लड़कियों में से सबसे अधिक नम्र थी, उसने एकदम आज्ञा मान ली. उसे इस तरह धुएं में बैठ कर फूंकना बिलकुल पसंद नहीं था. जब वह वहां से उठी तो उसका सिर चकरा रहा था. आग फिर बुझ गयी थी.

मासरे——कोया मुड़ी और अपनी अत्यंत सुंदर मुसकराहट बिखरते हुए बोली —— मासरे! जरा मेरे चूल्हे में फूंक मार दे!

तभी मां नीहां की क्रोध भरी आवाज आयी —— अपना चूल्हा स्वयं जलाओ. यदि तुम यह छोटा-सा कार्य नहीं कर सकतीं, तो अपने घर में खाना किस प्रकार बनाओगी, कोया?

ये चूल्हे, घास से बनी रसोई से दूर आम के वृक्ष के नीचे बने हुए थे. यह एक सुहावना मौसम था, अतः प्रायः सभी स्त्रियां बाहर खुले में ही खाना बनाना पसंद करती थीं. थोड़ी-थोड़ी दूर पर अनेक संतरे और केले के वृक्ष लगे थे. संतरे करीब-करीब पक गये थे.

कोया उन सबकी ओर देखने लगी. उसने मां नीहां की ओर आंख उठा कर भी नहीं देखा, उसे उसकी आज्ञा मानने से सख्त चिढ़ थी. यह सूर्य की रोशनी, और यह सारा दृश्य अत्यंत सुहावना था, यदि वह इस धुएं से छुट्टी पा सकती!

उसकी आंखें पुनः मासरे पर ठहर गयीं. मासरे ने उसे तिरछी आंखों से देखा, और फिर नीहां की ओर इशारा किया. उसकी गरदन की नसें वैसे ही फड़क रही थीं. वह एक छोटे कद की काफी मोटी स्त्री थी. उसका पति भी उसके क्रोध भरे स्वभाव से अत्यंत डरता था. और सब लड़कियां जो वहां खाना सीखने आती थीं, वे भी सब उससे भयभीत रहती थीं. यद्यपि मासरे अपनी सहेली के लिए आग जलाना चाह रही थी लेकिन सिवा उसकी ओर देख कर मुसकराने के और कुछ नहीं कर पा रही थी. ——कोया! नीहां के नथुने क्रोध से फड़फड़ा रहे थे. तुम अपनी चूल्हे में आग जलाओगी कि नहीं?

कोया को बहुत बुरा लगा. उसे बार-बार अफसोस होने लगा कि उसकी मां फातमाता ने उसे यह सब क्यों नहीं सिखाया और वह इतनी साधारण कुक क्यों है! नीहां सारे गांव में सबसे अच्छी कुक थी. अतः कोया यहां खाना बनाना सीखने आती थी. उसने एक ठंडी सांस ली, फिर घुटनों के बल झुक कर फूंक मारने लगी. कुछ ही देर में आग जल गयी.

जब वह वहां से उठी, तो उसकी आंखों में पानी भर रहा था. न तो नीहां को, न उसकी सहेलियों को ही पता लग सका कि वह धुएं की वजह से निकल रहा है,

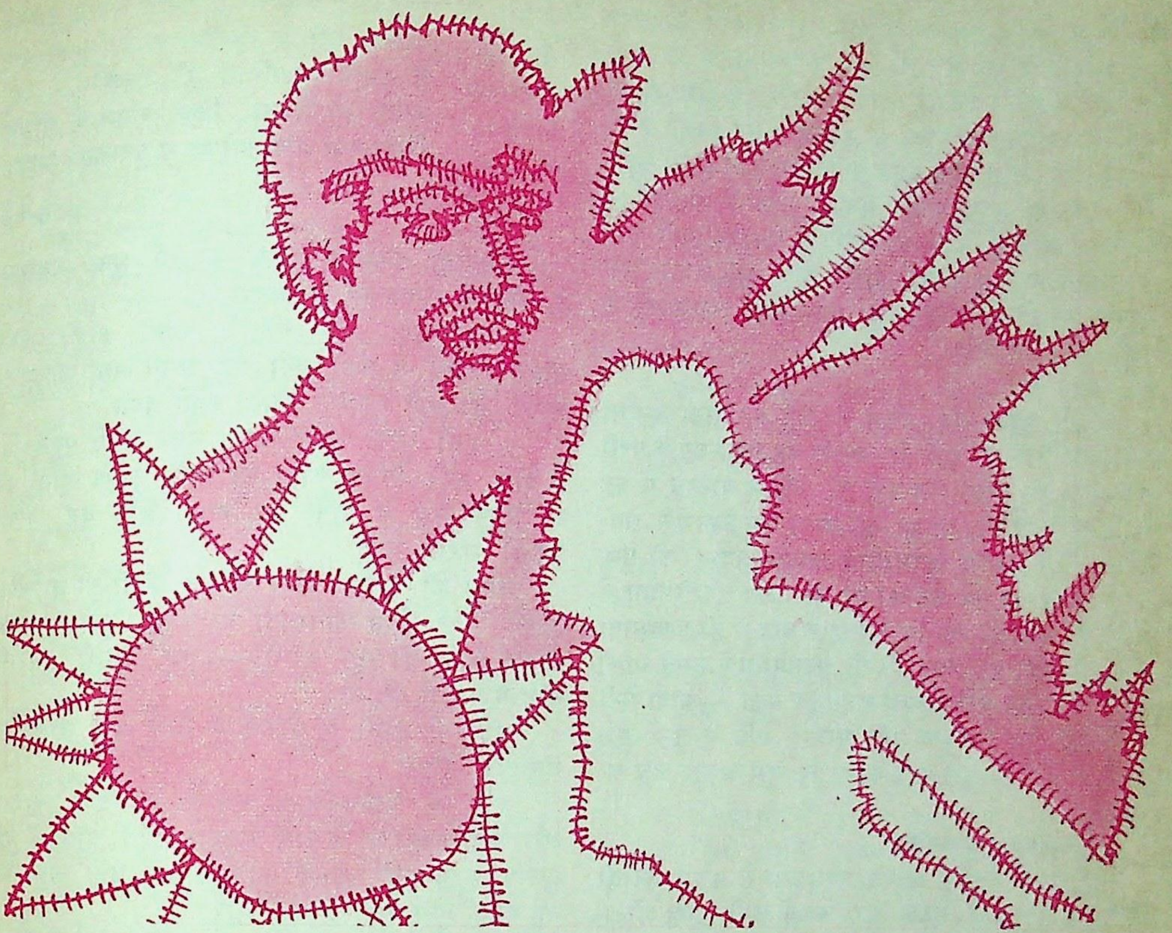

या कि अपनें सम्मान में कमी आ जाने के कारण वह रो रही थी.

करीव दस मिनट पश्चात, नीहां ने सब्जी काट कर खत्म कर दी, जो कि वह उस दिन लड़कियों को बनाना सिखाने वाली थी. वह उठी और बाहर नल पर हाथ धोने चली गयी.

तभी भाग्य ने कोया का अपमान करने की ठान ली. लेकिन उसने उससे पूर्व कोया की सम्मति नहीं ली, बस यही बुरा हुआ. कोया भी रसोई में अन्य कार्य करने लगी, जिसे कि उसे करने के लिए आज्ञा नहीं दी गयी थी; शायद सौंदर्य के प्रति उसके भारी लगाव ने ही उसे वह कार्य करने को प्रेरित किया होगा.

वह एक बड़े-से बरतन में एक प्लेट धो रही थी. उसने साबुन और स्पंज से उसे साफ किया. लेकिन जब नीहां वहां आयी तो घबराहट में कोया भूल गयी कि वह उस सुंदर डिजाइन वाली प्लेट को धो रही थी.

—ओ अल्लाह! नीहां चिल्लायी. वह प्लेट एकदम नीचे रख दो! कोया! तुम उसे तोड़ दोगी. उस प्लेट को बरतन में से निकाल कर वह घंमड से बोली—यह प्लेट मेरी अत्यंत सुंदर वस्तुओं में से एक है. यह मैं अपने दहेज में लायी थी. यह बहुत पहले की बात है, जब तुम पैदा भी नहीं हुई थीं.

यदि वह यह बात कहने की अपेक्षा, प्लेट पर ही अपना ध्यान जमाती, या वह यह नहीं भूली होती कि वह अभी-अभी एक अत्यंत फिसलने वाली सब्जी 'ओकरा' काट कर आयी है, तो सब ठीक ही था. लेकिन वह सब भूल गयी और उसके हाथों से वह प्लेट गिर कर एकदम टूट गयी.

नीहां एकदम सीधी खड़ी हो गयी. उसका चेहरा क्रोध से भयानक हो उठा. तो क्या स्वयं उसी ने वह सुंदर प्लेट तोड़ दी! उस प्रकार की चाइना-प्लेट बहुत पहले ही बाजार में आनी बंद हो गयी थी. और जैसे ही वह मुड़ी, उसकी दृष्टि कोया के चेहरे पर ठहर गयी.

कोया के होठों के कोनों में ठीक वैसी ही व्यंग्यपूर्ण मुसकान थे, जैसी उसकी मां फातमाता के चेहरे पर नींहां ने कभी-कभी देखी थी. उसके चेहरे पर वह भाव था, जो उससे कहीं उम्र में बड़ी लड़की के चेहरे पर होना चाहिए था. वह लड़की कुछ झिझकी. फिर मानो फातमाता की ही आवाज में बोल उठी——मां नीहां! हमें ध्यानपूर्वक हर काम करना चाहिए न?

नीहां को लगा मानो किसी ने गर्म-गर्म तेल उसके सिर पर डाल दिया हो. वह एक क्रुद्ध शेरनी की भांति आगे की ओर झपटी ओर अपनी समस्त शक्ति से एक मुक्का बालिका के कंधे पर दे मारा!

प्रथम बार उस अत्यंत सुसंस्कृत लड़की ने अपना सम्मान खोया. अपनी शालीनता खोयी. वह दर्द के मारे जोर से चीखी, और रोती-रोती अपनी मां के पास पहुंची.

यह दो सप्ताह पूर्व हुआ था, और अब वह अतीत की एक घटना बन चुकी थी. नीहां एकदम ठंडी पड़ गयी

थी, और अत्यंत सम्मान दे कर, उसने अपने उस दोष की क्षति-पूर्ति कर ली थी. वह फातमाता के घर गयी और यह कह कर कि वह अपने व्यवहार के लिए अत्यंत दुखी है, उसने फातमाता के अभिमान पर विजय प्राप्त कर ली थी. सु-सु लोग बहुत प्रसन्नचित होते हैं जो अपने पड़ोसियों से अच्छे संबंध बनाये रखने में गहराई से विश्वास करते हैं. दोनों परिवारों में एकाएक बनी खाई को पाटने के लिए नीहां खाली हाथ नहीं आयीं, एक अत्यंत स्वादिष्ट मिठाई बना कर उसने फातमाता के हृदय को जीत लिया.

* *

आज कोया पुनः नीहां के घर में खाना बनाना सीखने के लिए जा रही थी. यद्यपि वह एक स्वर्ग के पक्षी की भांति ही रंगीन लग रही थी, लेकिन वास्तव में वह शांति की देवी थी. उसका वहां जाना एक प्रकार से दोनों परिवारों के मध्य सामाजिक आदान-प्रदान को पुनः प्राप्त करने का एक तरीका ही था. अतः फातमाता ने शांति की सांस ली, क्योंकि विवाह के बाद से ही फातमाता व नीहां पक्की सहेलियां रही थीं. फातमाता ने उसके गालों पर पाउडर का अंतिम स्पर्श करते हुए कहा —कोया, मेरी कही हुई बात बिल्कुल नहीं भूलना. यदि वे तुम्हें कुछ खाने को दें, तो तुम यही कहना कि तुम अपना लंच खा चुकी हो.

—अच्छा, फातमाता!

कोया धीरे-धीरे अत्यंत कोमलता से कदम उठाती पाम-वृक्षों से भरी सड़क पर चलने लगी. यह छोटा-सा गांव था. कोया बीच-बीच में रुकती, और अपनी या अपनी मां की सहेलियों को अभिवादन करती हुई, आगे निकल जाती.

लगभग आधा मील चलने के उपरांत, कोया एक गली में मुड़ी और ठीक अपने जैसे ही डिजाइन वाले मकान में घुस गयी. वह मुसकराती हुई आगे के बरामदे में चली गयी और मकान-मालिक को अभिवादन किया. बा साडू लुंगी पहने आरामकुर्सी पर बैठे थे. उनके खूब बड़े चेहरे पर एक मुसकान ठहर गयी. नीहां की पाक-शास्त्र में निपुणता के फलस्वरूप ही, वह शायद सारे शहर के सबसे अधिक मोटे व्यक्ति थे, और अत्यंत संतुष्ट पति.

—मेरी नन्ही कोया! तुम कितनी सुंदर लग रही हो! तुम्हें यहां पुनः देख कर बहुत प्रसन्नता हुई.

जब कोया कमरे की ओर मुड़ी तो वह पुनः गहरी निद्रा में खो गये.

अंदर रसोईघर से आती नये चावलों की खुशबू से सारा घर महक रहा था. उसने एक लंबी सांस ली. काश! फातमाता को भी इतना अच्छा खाना बनाना आता होता!

जैसे ही वह अंदर गयी, नीहां को कोया ने बा साडू की अन्य दो पत्नियों के साथ बैठे देखा. तीनों के हाथ में एक-एक प्लेट थी. तभी कोया की दृष्टि चावलों के ढेर पर रखे चिकन, लिवर, मूंगफली से बनी सॉस की ओर गयी, जिसकी सुगंध चारों ओर बिखरी हुई थी.

कोया ने झुक कर प्रणाम किया.

सियरा लियोन के प्रतिनिधि लेखक शरीफ इस्मान पेशे से चिकित्सक हैं. मुख्य रूप से उन्होंने कहानियां ही लिखी हैं. एक नाटक भी लिखा, जिसे लंदन में मंचित किया गया और उसे प्रथम पुरस्कार मिला.

● ● ●

—ओह! तुम्हारा हमारे घर में पुनः स्वागत है, नीहां ने मुसकराते हुए कहा.

—धन्यवाद, मां नीहां! कोया बोली और बाहर बरामदे में चली गयी. वहां उसने अन्य छह लड़कियों को वही सुगंधित खाना खाते देखा.

—हलो, कोया. तुमने कितने सुंदर कपड़े पहने हैं! वे बोल उठीं. लेकिन कोया का ध्यान उनके खाने पर था. उसके मुंह में पानी भर गया, और वह स्वयं पर ही शरमा उठी.

नीहां को खयाल आया कि यह छोटी-सी बालिका पिछले पंद्रह दिन फातमाता का बनाया हुआ खराब बेस्वाद खाना खा रही होगी.—कोया, आओ, तुम भी थोड़े-से चावल खा लो!

कोया ने जल्दी से चावल ले लिये और बोली—धन्यवाद, नीहां!

कहां ये आश्चर्यजनक रूप से स्वादिष्ट चावल और कहां अपनी मां के हाथ के स्वादरहित चावल! वह तुलना करने लगी. उसने जानबूझ कर यहां आने का यह समय चुना था. . .और. . .और. . .

जैसे ही उसने सॉस और चावल का एक ग्रास उठा कर मुंह में डाला. . .तभी उसे अपनी मां की हिदायत याद आ गयी. . .—धन्यवाद. . .मां नीहां, लेकिन. . . लेकिन मैं यह नहीं खाऊंगी . . .मैंने अभी-अभी खाया है.

छोटी-सी आज्ञाकारिणी बालिका! —लेकिन नीहां क्रोध में चिल्लायी—तो अल्लाह के नाम पर तुमने लिया क्यों?

जैसे ही उसने इस अस्वाभाविक बच्ची को मारने के लिए हाथ उठाया, तभी उसे पिछली घटना याद आ गयी कि किस प्रकार उसे फातमाता से क्षमा मांगनी पड़ी थी. अपने क्रोध को अंदर ही अंदर पीती हुई वह बोली—कोई बात नहीं, तुम यह खाना मसरी को दे दो.

नीहां ने अभी कठिनाई से अपना वाक्य समाप्त ही किया था कि मसरी लपक कर आगे बढ़ी और उसके हाथ से प्लेट छीन ली. उसे आश्चर्य भी हो रहा था कि कोया किस प्रकार इतने स्वादिष्ट चावलों को खाने से इनकार कर रही है.

एक लंबी आह भर कर कोया ने चावल दे दिये और एकाएक उसका मन उन सब बच्चों के लिए तीखी नफरत से भर उठा—तुमने चावल तो खा लिये! अब तुम जाओ और मेरे लिए एक गिलास पानी ले कर आओ! उसने उसी वितृष्णा भरे स्वर में कहा.

मसरी ने सारे चावल निगलते हुए कहा—क्या तुम्हारे पैरों में चोट आ गयी है, मिस कोया?

कोया ने पुनः एक लंबी आह भरी. दो सप्ताह पूर्व इस घर के किसी भी बच्चे की हिम्मत नहीं थी कि कोया से इस प्रकार बोले. नीहां ने उस प्रकार उसे मार कर उसकी सारी इज्जत छीन ली. उसके अंदर क्रोध भड़क उठा. यद्यपि उसे यह समझ में नहीं आ रहा था कि यह क्रोध किसके प्रति है. तभी उसे ध्यान आया कि सभी की दृष्टि उसकी ओर है. विशेषकर नीहां की. उसके मन में आया कि मसरी को जोर से एक चांटा लगाये.

लेकिन उसने वैसा नहीं किया. उसकी सगाई पैरामाउंट चीफ के सबसे बड़े लड़के से पक्की हो चुकी थी. वह इस सत्य के प्रति सजग थी. और उसे यह भी मालूम था कि बहुत पहले उसके पितामह ने मसरी के पितामह को खरीदा और बेचा था, वह दासों का व्यापार करते थे. लेकिन अब समय बदल चुका है. दुर्भाग्यवश वह मसरी को नीलाम भी नहीं कर सकती. न ही वह नीहां को अपना अपमान करने का अन्य कोई अवसर दगी. अतः उसने वह किया, जो उसकी समझ में सबसे अच्छा ढंग हो सकता था. वह एक साम्राज्ञी की तरह अभिमान से धीरे से उठी और बड़ी अदा से अपने कंधे सिकोड़ कर, अत्यंत मधुर स्वर में बोली—बहुत अच्छा! यदि तुम नहीं लातीं तो मत लाओ. और बड़ी शालीनता से उठ कर बाहर रसोई की ओर चली गयी.

पीछे, नल के नीचे एक बड़े-से ड्रम में एक बरतन तैर रहा था, जिसमें वही, स्वर्गिक सॉस लगा हुआ था. पुनः कोया के मुंह में पानी भर आया और उस क्षण वह अपने समस्त सम्मान को क्षणांश भूल गयी. और तब उसने इधर-उधर देखा. सिवा कुछ मुर्गियों के वह वहां अकेली थी.

जल्दी-जल्दी वह हाथ से उसे चाटने लगी. ओह! वह चावल और सॉस कितने स्वादिष्ट होंगे जिससे उसकी मां ने आज उसे वंचित रहने दिया.

कोया ने अपनी आंखें आश्चर्य से खोलीं. क्या सच ही कोई स्त्री इतना स्वादिष्ट भोजन बना सकती है! उसने एक ठंडी आह ली... तभी किसी की खांसी की आवाज सुनायी दी. कोया ने मुड़ कर देखा... मसरी मुसकरा रही थी.—तुम्हें किस बात पर हंसी आ रही है? कोया ने चिढ़ कर कहा.

—हा! हा! मिस कोया. . हा . . हा. हमारा खयाल था...

उसकी हंसी के साथ पांचों लड़कियों की हंसी का सम्मिलित स्वर सुनायी दिया—हमारा खयाल था कि मिस कोया सच ही भूखी नहीं हैं.

उसने अपनी इन नयी दुश्मनों को देखा, जो उसकी इज्जत छीन रही हैं. रानी हो कर उनकी ईर्ष्या का शिकार बनने के स्थान पर वह उनके मजाक का शिकार हो रही है. उसके होठों के कोने कांपे. लेकिन वह रोयी नहीं. उसने उनसे कुछ कहा भी नहीं. वह झुकी और उसने अपने हाथ धोये.

शांति से तेज कदम बढ़ाती हुई वह नीहां के समीप पहुंची. मसरी ने भाग कर पहले ही नीहां को सब बता दिया था.

कोया ने अपना होंठ दांतों से दबाया. यद्यपि उसका हृदय टूट रहा था, वह तीनों स्त्रियों के सम्मुख खड़ी हो गयी और झुक कर अभिवादन किया.—मां नीहां, धन्यवाद! मैं अब जा रही हूं.

नीहां बच्चों को अत्यंत स्नेह करती थी. इस प्रकार एक बालिका का अपमान होता देख उसे बहुत बुरा लगा.

—उनकी परवाह मत करो, कोया! उसने प्यार से उसके कंधे पर हाथ रखा. क्या सच ही तुम और नहीं ठहरना चाहतीं?

—नहीं, धन्यवाद. मैं अब जाना चाहती हूं.

अपने समस्त वस्त्र पहने भी उसे लग रहा था कि वह सबके सम्मुख निर्वस्त्र खड़ी है. और वह बाहर चली गयी.

बार-बार आंसू आंखों में छलक-छलक आते. और उसे कुछ दिखायी नहीं दे रहा था—लेकिन इस प्रकार सड़क पर रोना उसकी शालीनता के विरुद्ध था.

★ ★

जब फातमाता ने उसका घृणा से भरा चेहरा देखा, जो कि उसकी उम्र की लड़की पर अत्यंत अस्वाभाविक लग रहा था, तो वह चीख उठी—ओह! कोया, फिर उन्होंने क्या कर डाला! कोया बिलकुल चुप खड़ी रही. आज की और उस दिन की घटना ने उसकी अपने प्रति सम्मान की समस्त भावना को, जो अपनी माता के प्रति अत्यंत अंधभक्ति का परिणाम थी, समाप्त कर दिया था. एक बच्ची होने के नाते अभी उसकी शिक्षा का आरंभ ही था. लेकिन उसे लगा कि उसका संसार ही खत्म हो गया है. उनके नथुने जोर से फड़क रहे थे. उसके अंदर मानो तूफान उमड़ रहा था.

उसके अंदर छाये कोहरे को स्पष्ट करती हुई सहसा एक भावना बिजली की चमक की भांति स्पष्ट हो उठी कि उसको जो आज यह दर्द मिला है, उसका कारण यह सामने खड़ी स्त्री है.

—मां फातमाता! उसने जोर की सांस ली. और समस्त आवेग से वह लगभग चीखती हुई बोली, जिससे उसका सारा शरीर बुरी तरह कांप रहा था—मैं तुमसे घृणा करती हूं.

—कोया! फातमाता स्तंभित रह गयी, मानो किसी ने समस्त शक्ति से उसके पेट में घूंसा मारा हो.

—मैं तुम से नफरत करती हूं! मैं तुमसे कितनी नफरत करती हूं, फातमाता!

फातमाता ने बच्ची को छाती से चिपका लिया, और फूट-फूट कर रो उठी.

—कोया! ओह मेरी बच्ची, उन्होंने फिर तुम्हारे साथ क्या किया है! □□□

(अनुवाद : इंदु रायजादा)

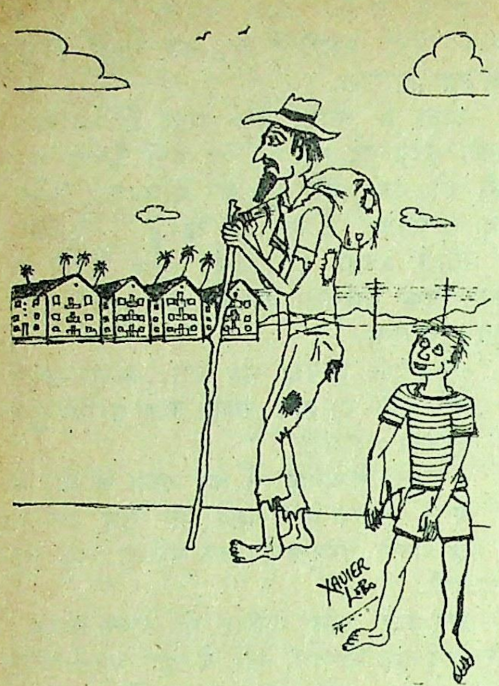

• जेवियर लोबो

गोरे की ताकत

जब खुदा ने इनसान को बनाया तो यूरोपीय लोगों के पहले पुरखे ने खुदा की नकल करने की कोशिश की—उसने भी इनसान के निर्माण का प्रयास किया. . . . और वह इसमें सफल भी हो गया. उसने कई इनसानों की रचना की जो बाहर से बिल्कुल वैसे ही दिखायी देते थे, जैसे कि वे दिखायी देने चाहिए, लेकिन आखिर में, जब उसने यह कोशिश की कि उन नये इनसानों के दिल भी धड़कने लगें, तो वह असफल रह गया.

यही वजह है कि आज तक लोग कहते हैं कि गोरा आदमी बहुत शक्तिशाली होता है, वह हर काम कर सकता है, यहां तक कि इनसानों की रचना भी कर सकता है. काश, वह उनके दिल में धड़कनें भी भर सकता ! ☐

(केन्या)

आदमी का जन्म

एक बार तीन आदमी वेंडे के पास अपनी जरूरतें ले कर आये. एक ने कहा कि उसे घोड़ा चाहिए. दूसरा बोला कि उसे कुछ कुत्ते चाहिए, जिससे जंगल में शिकार कर सके. तीसरे ने अपने आपको तरोताजा बनाये रखने के लिए एक औरत की इच्छा जाहिर की.

महान वेंडे ने उनकी इच्छाएं पूरी कर दीं. पहले को घोड़ा मिला, दूसरे को कुछ कुत्ते और तीसरे को एक औरत.

तीनों अपने घरों की ओर चल दिये. रास्ते में जोरदार बरसात हुई और लगातार तीन दिनों तक होती रही. वे जंगल में रुक गये. उस समय न तो घोड़ा काम आया और न कुत्ते. औरत ने उन तीनों को खाना बना कर खिलाया. घोड़े और कुत्तों के मालिकों ने निश्चय किया कि वे वेंडे के पास जा कर घोड़े और कुत्तों के बदले में औरत की मांग करें. उन्होंने वैसा ही किया.

वेंडे ने कृपा करके घोड़े और कुत्तों को औरतों में बदल दिया.

जो औरत घोड़े से बनी थी, वह बहुत चंचल थी और कुत्ते से बनी औरत बहुत ही कमीनी. लेकिन मूल औरत बहुत भली थी. वही मानव जाति की मां बनी. ☐

(टोगो)

मौत और चंद्रमा

एक बार एक बूढ़ा आदमी रास्ते पर चला जा रहा था कि उसने चांद की रोशनी में रास्ते के पास एक मृत व्यक्ति को पड़े देखा. उसने जंगल के अनेक जानवरों को इकट्ठा किया और उनसे कहा—बोलो, तुममें से कौन इतना ताकतवर है कि वह मुरदे और चांद दोनों को नदी के पार उठा ले जाये?

दो कछुए इस काम के लिए तैयार हो गये. एक कछुए के पंजे बड़े-बड़े थे, उसने चांद को उठा लिया, और नदी के दूसरे किनारे पर सुरक्षित पहुंचा दिया. दूसरे कछुए के पंजे छोटे-छोटे थे, उसने मृतक को उठाया—लेकिन वह नदी में ही डूब गया.

यही वजह है कि चांद, मृत्यु के बाद भी हर रात फिर उदित हो जाता है, जब कि मरा हुआ आदमी कभी लौट कर नहीं आता. ☐

(सेनेगल)

बाबाकोटो

एक समय की बात है, एक आदमी था और एक उसकी पत्नी. वे दोनों खाने की तलाश में इधर-उधर भटक रहे थे. अंत में वे एक जंगल में पहुंचे. कुछ समय बाद औरत ने एक बच्चे को जन्म दिया, फिर दूसरे को, उसके बाद तीसरे को, इसी तरह बच्चों की संख्या बढ़ती गयी. उनकी खाने की तलाश और बढ़ गयी. उनके

दिन मुसीबत में गुजरने लगे. उन्हें पत्तियों और कच्ची जड़ों पर जिंदा रहना पड़ रहा था.

जब बच्चे बड़े हुए तो उनमें से कुछ ने चावल उगाने का निश्चय किया, दूसरों ने स्वतंत्र रहने का निश्चय किया.

जिन बच्चों ने चावल की खेती की थी, वे मनुष्यों के पुरखे बने और दूसरे बाबाकोटो, अर्थात छोटी पूंछ के बंदरों के पुरखे कहलाये.

और आज तक जंगल बाबाकोटों की जाति से भरे हैं. उन्हें न भाषा आती है और न उनके पास घर हैं. पर वे किसी के गुलाम नहीं हैं. ☐

(मेडागासकर)

आदमी और बंदर

शुरू-शुरू की बात है. माहू ने दुनिया को बना दिया था और खुद जानवरों के साथ व्यस्त हो गयी थी. उसने उन्हें मिट्टी से बनाया था. मिट्टी को अलग-अलग शक्लें दी थीं. उसने अभी जानवरों के नाम नहीं रखे थे. उसने सोच लिया था कि जब सब बन जायेंगे, तब नाम रखेगी. अब वह कुछ जानवरों के पास गयी और उनसे कहा कि वे उसके काम में मदद करें. फिर वह एक ऐसे जानवर के पास गयी जिसे हम बंदर कहते हैं. उसने कहा— तुम्हारे हर हाथ में पांच अंगुलियां हैं. तुम्हें कुछ ज्यादा और बड़ा काम करना चाहिए. अगर तुमने अच्छी तरह काम किया तो मैं तुम्हें मनुष्यों की जाति में मिला दूंगी.

बंदर यह सुन कर बहुत खुश हुआ. वह उछलने और चिल्लाने लगा— ओह, अब मैं जानवर नहीं रहूंगा. मनुष्य बन जाऊंगा.

उसने अपना पूरा समय जंगली जानवरों में यही घोषणा करने में गुजार दिया.

दूसरी बार माहू जानवरों के बीच आयी और देखा कि सारे जानवर कुछ-न कुछ काम कर रहे थे और बंदर बहुत आलसी हो गया था. वह तालियां बजा-बजा कर चिल्ला रहा था कि वह आदमी बनने जा रहा है. माहू ने कहा— मुझे दुख है कि तुम कभी आदमी नहीं बन सकते. ☐

(बेनिन)

चिरंतन प्यार

बंवारा नाम का एक गांव था. उसमें दो औरतें रहती थीं. दोनों के घर पास-पास थे. दोनों ने एक ही दिन बच्चों को जन्म दिया. एक के लड़का हुआ, जिसका नाम येंगे रखा गया. दूसरी के लड़की हुई और उसका नाम सायरा पड़ा.

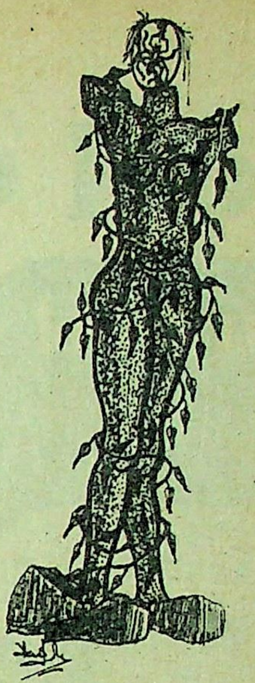

दोनों बच्चे साथ-साथ बड़े हुए. उन्हें एक दूसरे से अलग करना असंभव था.

जब सायरा बड़ी हुई तो एक अमीर व्यक्ति ने उससे शादी करनी चाही. लड़की के मां-बाप तैयार हो गये. लेकिन सायरा ने येंगे के बगैर अपने पति के साथ जाने से इनकार कर दिया. लड़की की मां ने दूल्हे से प्रार्थना की कि वह लड़की की शर्त मान ले.

ससुराल में पहुंच कर सायरा ने बड़ी कठिनाई पैदा कर दी. उसने कहा कि वह येंगे के साथ-साथ ही सुहाग-कक्ष में जायेगी. पति को भी झुकना पड़ा.

यह रोज की ही बात हो गयी. जहां-जहां सायरा जाती थी, वहां येंगे भी जाता था. इन हरकतों से सायरा का पति बहुत दुखी हुआ. उसने अपनी सारी परेशानी मुखिया को सुनायी.

मुखिया ने कहा — तुम भाग्यशाली हो, शीघ्र ही दुश्मन से लड़ाई छिड़ने वाली है. युवक होने के नाते येंगे को भी उसमें हिस्सा लेना होगा. उसे आगे कर दगे और वह मारा जायेगा. तुम्हें उससे मुक्ति मिल जायेगी.

वही हुआ. लड़ाई के बाजे बजने लगे. येंगे को भी लड़ाई में जाना पड़ा, लेकिन सायरा भी जिद करके उसके साथ गयी. येंगे मारा गया और सुनसुन नामक वृक्ष बन गया. सायरा ने भी अपने प्राण त्याग दिये और एक बेल बन कर उस वृक्ष के तने से लिपट गयी और तभी से पेड़ों के तनों से बेलें लिपटती आ रही हैं. ☐

(आयवरी कोस्ट)

लॅक्मे वैनिशिंग क्रीम

रूप रंग की छटा बिखेरे

कौन न उस को प्यार से छेड़े

आप पर लोगों की निगाहें पड़ीं कि रुकी रह गईं. इस मनोरम सौंदर्य और रूप की उज्ज्वलता का रहस्य है लॅक्मे वैनिशिंग क्रीम हल्का-फुल्का और बिल्कुल प्राकृतिक, श्रेष्ठ मेक-अप का आदर्श आधार—
लॅक्मे वैनिशिंग क्रीम

सब कुछ रूपरंग के हक में

लॅक्मे

L
Lakmé
VANISHING CREAM

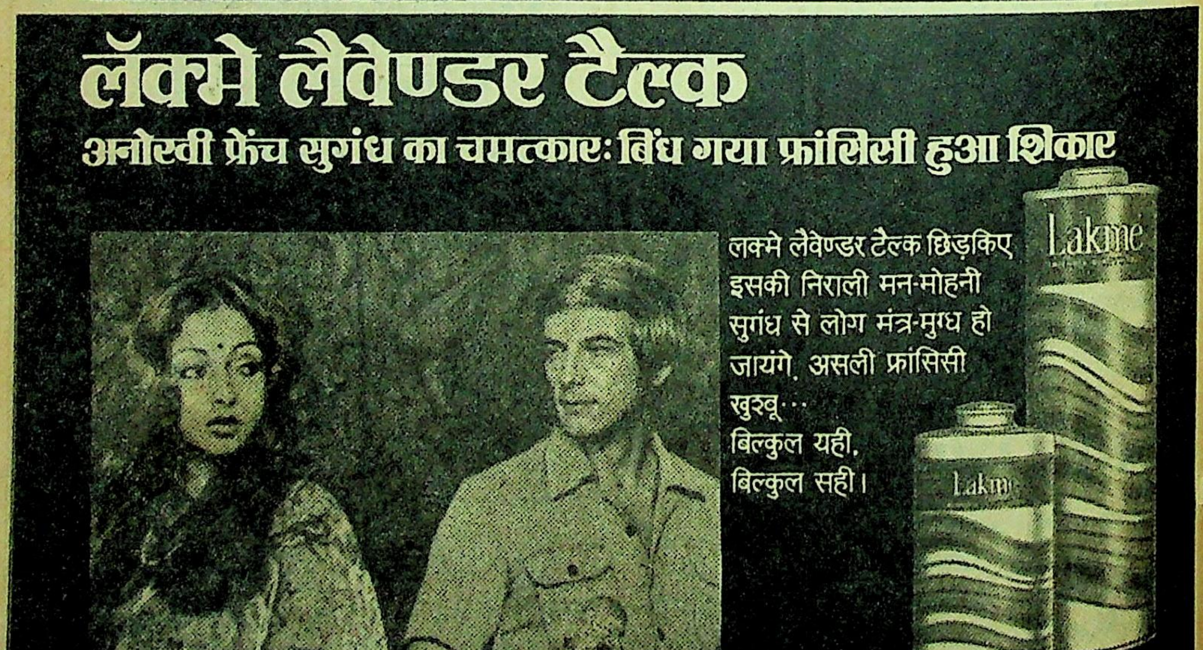

लॅक्मे लैवेण्डर टैल्क

अनोखी फ्रेंच सुगंध का चमत्कार: बिंध गया फ्रांसिसी हुआ शिकार

लक्मे लैवेण्डर टैल्क छिड़किए
इसकी निराली मन-मोहनी
सुगंध से लोग मंत्र-मुग्ध हो
जायंगे. असली फ्रांसिसी
खुश्बू···
बिल्कुल यही,
बिल्कुल सही।

dCA/L-VC-LT/1H HIN

नेकी की कमाई

बिरागो दियोप

एक खाड़ी में एक भयानक घड़ियाल रहता था. वहीं एक सुरक्षित गड्ढे को वह अपना घर कहता और आराम से शिकार करता रहता.

एक बार खाड़ी का पानी बहुत पीछे हट गया और घड़ियाल का घर सूख गया. वह अपने बचने का उपाय सोचने लगा.

दोपहर को गांव का एक बच्चा सूखी लकड़ियां चुनता-चुनता वहां से गुजर रहा था. घड़ियाल को देख कर बच्चा हंसा. —ए, तुम यहां क्या कर रहे हो?

—मैं रास्ता भूल गया हूं. मेहरबानी करके मुझे खाड़ी के पानी तक पहुंचा दो. बच्चे को उस पर दया आ गयी. उसने घड़ियाल को चटाई में लपेटा और पानी की तरफ चल दिया. जब पानी कंधों तक आ गया, तब घड़ियाल ने कहा —हां. . .यह जगह ठीक है. . .यहां उतार दो. बच्चे ने उसे पानी में डाल दिया. पानी में पहुंचते ही घड़ियाल के तेवर बदल गये. उसने बच्चे को पकड़ लिया. —मैं तुम्हें अब तो जाने नहीं दूंगा. बहुत भूख लगी है.

बच्चे को बहुत आश्चर्य हुआ. उसने कहा. —मैं तुम्हें शरीफ समझता था. . .तुम्हारे यहां क्या नेकी का बदला बदी से दिया जाता है?

—नेकी का बदला हमेशा बुरा मिलता है. . .

—तुम्हारी बात गलत है. . . नेकी का बदला नेकी ही होता है.

—ठीक है, घड़ियाल ने सुझाव रखा. हम तीन लोगों से पूछते हैं. अगर तीनों मेरी बात से सहमत हुए, तो मैं तुम्हें खा जाऊंगा.

—मुझे मंजूर है!

तब तक एक बूढ़ी गाय वहां पानी पीने आ पहुंची. . .घड़ियाल गाय से बोला —दादी . . .तुम इतनी बुजुर्ग हो, बुद्धिमान हो. . . भला बताओ कि नेकी का बदला नेकी होता है. . .या बदी!

—नेकी के बदले में हमेशा बुराई मिलती है, गाय बोली. अब मुझे देख लो. जब मैं जवान थी, दूध दे सकती थी, बछड़े और खाद दे सकती थी. . .मेरी बहुत सेवा की जाती थी. अब बुढ़ापे में चला नहीं जाता तो मुझे घर से निकाल दिया गया है. . .किसी के साथ अच्छाई करो, तो बुराई ही मिलती है.

थोड़ी देर बाद एक बूढ़ा घोड़ा भी वहां पानी पीने आ पहुंचा. . .घड़ियाल ने वही सवाल उससे भी पूछा. . .उसे भी अतीत याद आने लगा. —अच्छाई का बदला कभी अच्छाई से नहीं मिलेगा. मेरी तरफ देखो. एक जमाना था कि आये दिन युद्ध में जाता था! कितने राजाओं की मैंने जान बचायी, मैं शाही अस्तबल में रहता था, नौकर-चाकर आगे-पीछे घूमा करते थे. . . अब बूढ़ा हो गया हूं तो मेरी नेकी का बदला इस तरह मिला है. . .जंगल में भटक रहा हूं.

—दो हो गये, घड़ियाल बोला. तीसरा भी यही कहेगा. . .

बिरागो दियोप का जन्म १९०६ में डाकार, सेनेगल में हुआ. कई वर्षों तक वह अपर वोल्टा में रहे. उन्होंने अधिकतर कविताएं लिखी हैं और साथ ही अफ्रीकी लोक-कथाओं को अपने ढंग से लिखा है.

● ● ●

—ठीक है, बच्चा बोला, अगर तीसरे ने भी यही कहा तो तुम मुझे आराम से खा लेना.

तभी एक खरगोश वहां फुदकता हुआ आ पहुंचा. घड़ियाल बोला—चाचा, तुमने जमाना देखा है. . . घड़ियाल ने सवाल दोहराया.

—क्या कहा! खरगोश ने चौंक कर अपने कान झटके. लड़का तुम्हें वहां से उठा कर यहां तक लाया है?

—हां. . .मैं उठा कर लाया हूं! लड़के ने कहा.

—यकीन करो, घड़ियाल बोला, यह लड़का ही मुझे यहां उठा कर लाया है.

—अगर यह बात सच है तो तुम उठा कर दिखाओ.

लड़के ने घड़ियाल को उठा लिया.

—अब यकीन आ गया? घड़ियाल बोला.

—उठा लेना कोई बड़ी बात नहीं है. लेकिन तुमने तो कहा है कि. . .सर पर उठा कर यहां तक लाया भी है.

—हां लाया भी है.

—वहां तक ले जा कर दिखाओ!

बच्चा घड़ियाल को वापस उसी जगह ले आया.

—अब तो यकीन आ गया?

—हां, आ गया. खरगोश बोला और उसने बच्चे से पूछा कि जॉन के बेटे हो न. . .?

—हां, बच्चे ने बताया.

—इस शैतान घड़ियाल को घर ले जाओ और सब लोग पका कर खाओ. फिर खरगोश ने बच्चे को समझाया—जो अच्छाई का बदला बुराई से देना चाहे, उसके साथ ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए. □□□

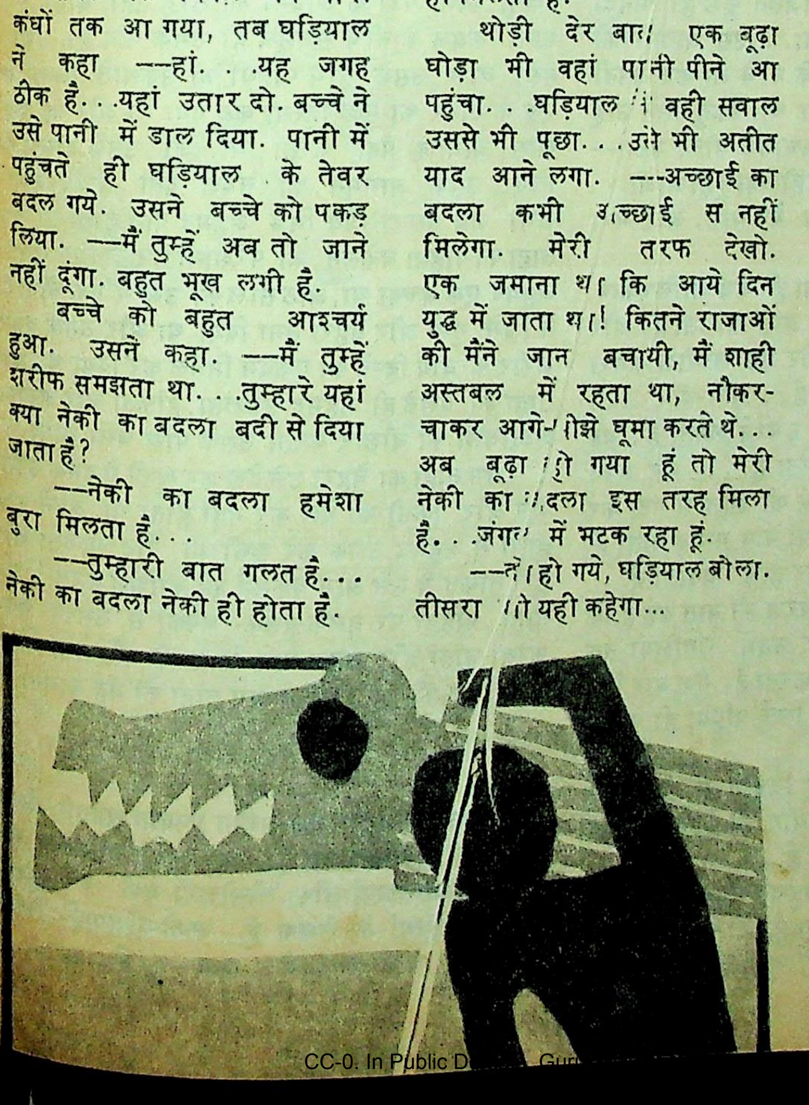

CC-0. In Public D... Guru...

जब बूढ़े ताहा ने मोजे पहने

• अब्दुला हामेद अल-अमीन

जो भी उसके पास बैठता, उसे ही वह अपनी कहानी सुनाता; और जब भी मौका लगता, वह इसे अनथक बारंबार दोहराता.

सेना से रिटायर होने के बाद वह कृषिजन्य उत्पादनों की एक बड़ी फर्म में चौकीदार की हैसियत से काम करने लगा था. उसका काम था मालगाड़ी के उन डब्बों की चौकसी करना जो उस फर्म का माल सारे देश में पहुंचाते थे. कभी-कभी रात की पाली में उनींदा हो जाने पर वह बोरों से लदे किसी डब्बे में लेट जाता, सुबह को मालगाड़ी की रवानगी के इंतजार में. यह उसकी बदकिस्मती थी कि एक रात एक ट्रेन जो बगल की पटरी से गुजरने वाली थी, पूरी रफ्तार से दौड़ती उसी पटरी पर आ गयी और वहां खड़ी मालगाड़ी से टकरा गयी. इस टक्कर ने उसे हवा में उछाल दिया और फिर वह धड़ाम से पटरियों के बीच जा गिरा : यह सब एक भयावह क्षण में घट गया. . .

उसके साथी मजदूर उसके पास दौड़े आये. स्तंभित हो वे उस व्यक्ति को देखने लगे जिसने कुछ ही मिनटों पहले उनके साथ खाना खाया था. . .उस आदमी को जिसे भाग्य ने एक ट्रेन के पहियों के नीचे आ कर अपनी इहलीला समाप्त करने के लिए चुना था. किंतु उसने उन्हें हैरत में डाल दिया, क्योंकि वह अचानक बोला उठा—— तुम लोग वहां खड़े-खड़े क्या देख रहे हो? चालू हो जाओ. . . चाबियां उठा कर यहां ले आओ मेरे पास, और मेरा बटुआ भी, मेरे पांव. . .?

वह वक्त का एहसास खो देता है. जब आखिरकार, और बड़ी मुश्किल से, वह अपनी आंखें खोलता है, और एक साफ-सुथरा सफेद बिस्तर और एक खामोश कमरा उसकी नजर के फोकस में आते हैं. . .धीरे-धीरे. . .तो धीरे-धीरे घटनाएं उसकी याद में उभरने लगती हैं; वह सुदूर धुंधले स्वप्न में लौटने लगता है. . . वह अपने हाथ को सरकाता है, अपने नितंब की बगल से सटा कर नीचे की ओर. . .वह अपना बायां पांव गायब पाता है. घबरा कर वह दूसरे पांव की ओर हाथ बढ़ाता है. . . उसे भी वहां नहीं पाता. और अचरज की बात यह है कि वह अपने पांवों के होने का और उनमें उंगलियों तक दौड़ते अस्पष्ट-से दर्द का एहसास करता है. एक बार फिर वह अपना हाथ बढ़ाता है, किंतु सिर्फ पट्टियों ही पट्टियों का स्पर्श पाता है. . .

दिन गुजरते जाते हैं और वह जिंदगी में पुनर्स्थापन के लिए और कृत्रिम अंगों के प्रयोग की ट्रेनिंग के लिए सेनेटोरियम में व्यस्त हो जाता है.

अपनी कहानी के अंत तक पहुंचते-पहुंचते अम ताहा अपनी खुरदरी ठोढ़ी को खुजलाता है, जो एक अरसा हुए उस्तरा चलने के एहसास को खो चुकी है, और अपनी झबरीली सफेद मूंछों को उमेठता है, अत्यधिक धूम्रपान के कारण जिनके सिरे जल चुके हैं. कभी ही होता था कि अम ताहा के ओठों के बीच सिगरेट न हो. वह तांबे के चंद सिक्कों में खरीदी गयी सस्ती सिगरेटों को एक के बाद एक लगातार पीता रहता था. . .और बराबर खांसता रहता था. कभी-कभी जब उसकी आखरी सिगरेट खत्म हो जाती और सिगरेटें खरीदने के लिए उसके पास पैसे का अभाव होता, तो वह मुलायम कागज में तंबाकू लपेट कर——जिन्हें वह ऐसे आड़े वक्तों के लिए अपनी थैली में रखता था——अपनी सिगरेटें खुद तैयार कर लेता. तब उसके मुंह से अधिक गाढ़ा और अधिक तीखी गंध वाला धुंआ निकलता, और उसकी कहानी में अधिक गहरी खांसी के विराम लगते जाते.

* *

सेनेटोरियम में पहुंचने पर अम ताहा को एक पहियों वाली कुर्सी मिली थी, पुरानी और खस्ताहाल. लेकिन वह इससे संतुष्ट था. उस पर बैठ कर वह कुछ बहुत दूर से देखता, बिना पैरों के आदमी की तरह नहीं, बल्कि ऐसे मानो कंबल के नीचे सचमुच ही उसके पांव हों. उभरी नसों वाले उसके हाथ पहियों को उकसाते, जिनमें से एक के टायर का कुछ हिस्सा कट गया था और वह एक खास आवाज पैदा करता था, जो उसके दोस्तों के लिए, उसके आगमन का संदेश देती थी. . .कभी-कभी जब उसका प्रिय मित्र अहमद पास होता तो अम ताहा को पहिया धकेलने की परेशानी से छुट्टी मिल जाती. अहमद एक बच्चा था, आठ साल की उम्र में एक बीमारी ने जिसे गूंगा और बहरा बना दिया था और उसके दुबले शरीर के बायें हिस्से को एकदम निर्बल कर दिया था. अम ताहा को देखते ही अहमद उछलता, हांफता और अस्पष्ट शब्दावली की बौछार करता उसके पास चला आता.

अम ताहा का चेहरा उसे देख कर खुशी से दमक उठता जैसे और किसी को देख कर नहीं होता था. अपने नन्हें हाथों से अहमद उचक कर कुर्सी की पीठ पकड़ता और पूरी ताकत से उसे आगे धकेलने की कोशिश करता; अम ताहा पहियों पर हलके-हलके धक्कों से उसकी मदद करता जाता और सहज भाव से उससे बतियाता जाता. अपने दिल की गहराइयों में अम ताहा की यह कामना थी

•••

अब्दुला हामेद अल-अमीन प्रख्यात सूडानी लेखक और समालोचक हैं. आप 'सूडानी साहित्य चक्र' के अध्यक्ष हैं और 'तीसोत्तरी वर्षों में सूडानी साहित्य' के लेखक हैं. अफ्रो-एशियाई लेखकों के आंदोलन में आप काफी सक्रिय हैं.

कि उसका भी एक बेटा होता——चाहे वह अहमद की ही तरह बदकिस्मत क्यों न होता——जो ताहम एक कोमल स्वभाव का और हंसमुख बालक था, जिसकी चमकती आंखों में कुशाग्रबुद्धि और बड़ों की कही बातों की समझ झलकती थी.

* *

अम ताहा ने चार बार शादी की थी और तलाक लिया था, इस उम्मीद में कि उनमें से कोई शादी तो फलद होगी, लेकिन अल्लाह की यही मर्जी थी कि वह संतान से वंचित रहे. बहरहाल, वह पितृत्व की अपनी वांछा को यहां पूरा करेगा, इस सरल स्नेहशील बालक के साथ बढ़ती हुई दोस्ती और हमदर्दी में. अपनी सस्ती सिगरेटों के पैकेट खरीदने के बाद जो भी पैसे बचते, उनसे अहमद के लिए मिठाइयां खरीदना अम ताहा के लिए एक सुखद कर्त्तव्य बन गया. जब अम ताहा के साथ उसके सफर का अंत टॉफियों या लॉलीपॉप के इनाम से होता, जैसा कि आमतौर से होता था, तो बच्चा खुशी से नाच उठता.

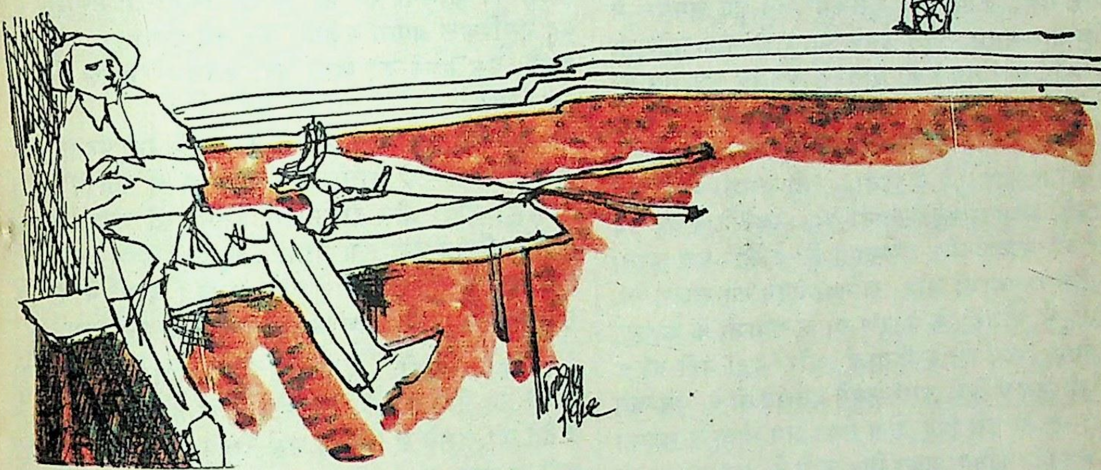

एक दोस्ती अम ताहा और एक छुट्टी बिल्ली के बीच भी बढ़ रही थी, जिसे वहां सुरक्षित ठिकाना मिल गया था. जब पहली बार उसकी नजर उस पर पड़ी थी तो वह भारी गले से म्याऊं-म्याऊं कर रही थी और भूख से व्याकुल चक्कर काट रही थी. उसने अपने सूक्ष्म आहार में से उसे गोश्त का एक टुकड़ा दे दिया था. तब से वह उसके पास से कभी ही इधर-उधर गयी थी. अगर वह कमरे से बाहर जाता तो वह पूंछ उठाये, दीवार से सटी उसके साथ-साथ चलती. स्वास्थ्यलाभ करते अन्य रोगियों के सामने बिल्ली पर अपना प्यार जताने में अम ताहा को मजा आता. जैसे ही उसकी नजर उन लोगों पर पड़ती, वह बड़े प्यार से बिल्ली को पुकारता, और वह उछल कर उसकी गोद में आ बैठती, और ज्यों ही अम ताहा अपने खुरदरे हाथों से उसकी मुलायम पीठ को सहलाता, वह गुड़ीमुड़ी हो कर हौले-हौले गुर्राती.

उसके साथी इस दृश्य पर हंसते : गूंगा अहमद, छुट्टी बिल्ली और अम ताहा, जो उन दोनों को ही प्यार करता. उन लोगों की दिल्लगी नजर-अंदाज करता अम ताहा आगे बढ़ जाता. . .लंगड़ा पहिया फर्श पर तौल देता. . . अपने मन में इस जानकारी पर खुश और संतुष्ट कि उसके वे दोनों दोस्त उसके लिए उन सबसे अधिक प्रिय और बेहतर थे. . .कम-से-कम वे निष्कपट थे और किसी को नुकसान नहीं पहुंचाते थे. निष्कपटता और स्नेहपूर्ण लगाव का समाज में अभाव था.

दरअसल, अम ताहा सामाजिक हालतों से कतई खुश नहीं था——उस छोटे समूह से भी नहीं जिसके साथ दुर्भाग्य उसे संपर्क में ले आया था. यहां अपने अनेक साथियों को वह पसंद नहीं करता था. जिन नौजवानों को वह देखता था, वे अपंग लड़कियों पर डोरे डालते थे जो उन्हें बढ़ावा देती लगती थीं और उन्हें आकर्षित करने के लिए होड़ करती थीं. जहां तक बड़ों का सवाल था, वे ज्यादातर दंभी थे, और उनमें कुछ ऐसे दुर्बल मन वाले थे जो अपने अधपके बालों को भूल कर जवान बनने की हविस रखते थे. यह निहायत शर्मनाक बात थी, अशोभनीय. बूढ़ों में से सिर्फ एक ही के साथ अम ताहा की बनती थी. वह था अल-शेख सैयद जो निहायत खुदापरस्त आदमी था और अपनी पहियेदार कुर्सी पर बैठे-बैठे ही पांचों वक्त की नमाज पढ़ता था. उसकी धार्मिक प्रार्थनाएं कानों को भली लगती थीं और अम ताहा रोज सुबह से शाम तक किसी भी वक्त महान पैगंबर की चर्चा और अल्लाह के बंदों की कहानियां सुना करता. लेकिन शेख सैयद की तमाम सीखों के बावजूद, अम ताहा कभी नमाज

नहीं पढ़ता था. अल्लाह की यही मर्जी है, वह कहता. लेकिन रमजान के दिनों में वह नमाज भी पढ़ता और रोजे भी रखता.

★ ★

अम ताहा शेख सैयद से सुबह-तड़के भी मिलता. शौचायल से अपने कमरे को लौटते हुए शेख सैयद अम ताहा के कमरे में होते हुए जाता जो उसके बिल्कुल पड़ोस में ही था. वह तब तक वहां ठहरा रहता जब तक अम ताहा, जो चाय और कॉफी का सारा ताम-झाम और सामान अपने पास ही रखता था, उसके लिए एक प्याला गर्मागर्म कॉफी तैयार न कर देता. जितनी देर छोटे-से स्पिरिट-लैंप की लपटें कॉफी की केतली के गिर्द नाचती रहतीं,शेख सैयद अम ताहा से गपशप करता रहता. इस वक्त अम ताहा कॉफी के विषय पर बात करना पसंद करता—उसके फायदों और देहात में उसकी बेहद लोकप्रियता के बारे में, जहां उसके बनाने वाले विशेषज्ञ हैं, शानदार महफिलें और उनके विशेष नियम हैं. उदाहरणार्थ, दूसरे या हद से हद तीसरे दौर के बाद और कॉफी लेना अदब-कायदे के खिलाफ होगा.

शेख सैयद कॉफी की चुस्कियां लेते हुए समर्थन में सिर हिलाता जाता, और उसके प्याले से भाप लहराती उठती जाती. अम ताहा की बातों में अमूमन अफसोस का एक स्वर उभर आता, क्योंकि उसे जमाने की रफ्तार पर दुख होता, जिसने कॉफी की परंपरा को खतम करके उसका स्थान चाय को दे दिया. . .जो उसकी निगाह में निश्चय ही भ्रष्टता की निशानी था. . .कॉफी में वह सब कुछ था जो अच्छा और गुणकारी है. कॉफी पेश करना सच्ची मेहमाननवाजी और खानदानीपन का लक्षण था. अब लोगों ने, कंजूसी के कारण या जल्दबाजी के कारण, इसका स्थान चाय को दे दिया है. और यही नहीं बल्कि वे इसे खड़े-खड़े पीते हैं. अगर उनसे बन पड़े तो वे निश्चय ही चलते-चलते इसे पियें. शेख सैयद अम ताहा से सहमत होता. बेशक! दुनिया बहुत गिर चुकी है. वह समाज की आलोचना करता और उन बुराइयों और दुष्प्रवृत्तियों की चर्चा करता जो व्यापक रूप से प्रकट हो चुकी हैं, खासकर पुरुषों और स्त्रियों के स्वतंत्र रूप से मिलने-जुलने के कारण. और इस नुक्ते पर अम ताहा पूरे जोर और आवेश के साथ फूट पड़ता. जब भी औरतों का जिक्र आता, उसे अभिभूत कर देता था. जैसा कि बार-बार दोहराना उसकी आदत थी, वे बिल्कुल भ्रष्ट हो गयी हैं; वे कपड़े तो पहने होती हैं लेकिन नंगी और लंपट हो गयी हैं. सिर्फ दूर देहातों में ही औरतें चरित्रवान और अच्छी हैं, शहरी औरतों से लाख गुना अधिक. शेख सैयद अम ताहा से सहमति जताता और इससे अम ताहा को बेहद खुशी होती. . .उसका आवेश ठंडा पड़ जाता और अंत में वह शेख सैयद को दरवाजे तक पहुंचा कर शाम को मिलने तक के लिए खुदा-हाफिज कहता.

★ ★

तब अपने कृत्रिम पांवों को इस्तेमाल करने के प्रशिक्षण के लिए उसके जाने का वक्त हो जाता. अम ताहा सरक कर चारपाई के किनारे तक आ जाता और फिर चंद सधी-सधायी हरकतों से कुर्सी में जा बैठता, और बरामदे से हो कर आगे बढ़ जाता.

लकड़ी की बैसाखियों के सहारे वह अब भी मुश्किल से ही चल पाता. वह यह देखने के लिए अपने पाजामे के पायंचों को ऊपर सरकाता कि कृत्रिम पांव किस जगह उसकी जांघों पर जमाये गये हैं.

यद्यपि वे लकड़ी के बने थे, फिर भी उनकी बनावट बिल्कुल असली पांवों जैसी थी और उनका रंग भी लगभग असली त्वचा जैसा ही था. अपने ओठों पर जीभ फिरा कर अम ताहा बारी-बारी दोनों पांवों पर नजर डालता जिनका अंत छोटी-सी एड़ी वाले शानदार जूतों में होता जैसे कि उसने पहले कभी नहीं पहने थे. उनमें से निकलते हुए और उसके टखनों से कुछ इंच ऊपर तक चढ़े साफ और खूबसूरत मोजे थे.

उसके ओठों के किनारों पर एक उदास मुसकान की रेखा खिंच जाती. उसके माथे से पसीने की नमकीन बूंदें जब टपकतीं तो वह इस विडंबना पर सोचता कि जब उसके पैर मौजूद थे तो उसने कितनी बार ऐसे जूतों और मोजों की कामना की थी. अपनी छोटी-सी तनखाह में वह बमुश्किल अपना गुजारा भर कर पाता था और वह अपने इस सपने को कभी पूरा करने में सफल नहीं हो पाया था!

दो मीटर चलने में उसे जो मेहनत करनी पड़ती, उससे उसकी सांस फूल जाती. इस कोशिश में उसका चेहरा लाल हो जाता और दोनों ओर इतना-सा चक्कर लगाने में उसे चौथाई घंटा लग जाता; वह एक कदम चलता. . . फिर थक जाता. . . और फिर उसकी जांघों में वह दर्द उठता. . . और लगभग असह्य थकान का वह एहसास.

नहीं. . . नहीं. . . ये कृत्रिम पैर बेकार हैं. अच्छा होता कि वे इन पैरों को ले लेते और वैसी ही पहियेदार कुर्सी दे देते जो लकवे से पीड़ित उस रोगी को दी थी जो ठीक नहीं हो सका था. तब इन कष्टदायक और थका देने वाले कृत्रिम अंगों के बिना ही वह इतमीनान से घर लौट सकेगा.

★ ★

डॉक्टर पास से गुजर जाता और वह खड़ा रहता. उससे जब उसके स्वास्थ्य के बारे में पूछा जाता, तो अम ताहा अपने मन की बात बता देता. काश, डॉक्टर समझ पाता कि इससे उसे कितनी राहत मिलेगी. लेकिन वह उसकी एक न सुनता और दृढ़तापूर्वक उसे सलाह देता कि वह धीरज से काम ले और अपने कृत्रिम पैरों को इस्तेमाल करना सीखे, क्योंकि तभी वह आगे चल कर अपनी रोजी कमा सकता है.

तब अम ताहा एक और दलील पेश करता कि जो पैर उसके लिए बनाये गये हैं, वे उसके असली पैरों से बड़े हैं और इसी कारण उनमें दर्द होता है. डॉक्टर पूछता कि वह कैसे कह सकता है कि वे बड़े हैं, तो वह जवाब देता कि जो गाउन वह दुर्घटना से पहले पहना करता था वह इन टांगों पर पहले से ऊंचा रहता है! इस पर डॉक्टर हंस पड़ता और अम ताहा का कंधा थपथपा देता. . .उसे

बखूबी मालूम था कि लकड़ी के पैर उसकी अपनी टांगों के ही साइज के बनाये गये हैं और निश्चय ही अम ताहा का गाउन ही सिकुड़ गया होगा.

अम ताहा अपने ओठ सिकोड़ लेता और गुस्से में अपनी कुर्सी पर बैठ जाता... उसके पैर लगभग फर्श को छूते होते. अपने कमरे की ओर बढ़ता वह बराबर बड़बड़ाता जाता और उस दिन को कोसता जाता, जब किसी ने कृत्रिम पैरों को ईजाद किया था. वह अपने से सवाल करता कि इन पैरों को ले कर, जो जरा भर ही मुड़ते हैं, गांव जा कर चटाइयों पर कैसे बैठेगा, जहां लोग ऊंची कुर्सियां या सोफे इस्तेमाल नहीं करते! लेकिन उसकी बात कौन समझेगा? शहरी लोग गांव वालों के मन की बातें नहीं समझते.

अपने कमरे में पहुंच कर वह कुर्सी से उतर कर, पांव फर्श पर लटकाये अपनी चारपाई पर बैठ जाता. एक सिगरेट सुलगा कर वह गहरे कश खींचता और नथुनों से धुआं छोड़ता और बराबर खांसता जाता.

बूढ़ी नर्स सकीना जब उसका भोजन ले कर आती तो उसे इसी तरह बैठा पाती. अम ताहा को उसे देख कर सदा एक तुष्टि और खुशी होती, क्योंकि अपने भारी-भरकम डील-डौल के बावजूद—जिससे ऐसा भ्रम होता था कि रोगियों का सारा खाना वह खुद खा जाती है—वह एक दयालु और कोमल स्वभाव की औरत थी. उसके चेहरे पर अभी भी सुंदरता की छाप थी, जिसे उसके पचास वर्ष मिटा नहीं सके थे.

सकीना उससे पूछती कि वह किस बात की चिंता कर रहा है और उसकी शिकायतों का सिलसिला शुरू हो जाता. और वह कृत्रिम पैरों और डॉक्टर की शिकायत उससे करता. वह सहमत होती कि उन पैरों में जरूर ही कोई खराबी होगी और उन्हें ठीक करने के लिए भेजा जाना चाहिए. वह उसे डॉक्टर से इसकी दरखास्त करने की सलाह देती... और इस प्रकार उसका मनबहलाव करती, क्योंकि उसे मालूम था कि बहुत-सी परेशानियां सिर्फ आदी न होने के कारण होती हैं और बेकार चिंता से कोई लाभ नहीं होता. अम ताहा का चेहरा कुछ खिल उठता और वह उससे पूछता कि आज भोजन के लिए वह क्या लायी है, और फिर उसके बेटे के बारे में पूछता जिसकी तबियत उसने पिछले दिन कुछ खराब बतायी थी. वह घुटनों के बल उसके सामने फर्श पर बैठ जाती और लकड़ी के पैरों को अलग करने में उसकी मदद करती. उसके हाथ उसकी नंगी जांघों से छू जाते और एक ठंडी कंपकंपी उसके शरीर में दौड़ जाती. वह खामोशी से शैतान को लानत भेजता, और अपना चेहरा एक ओर को घुमा लेता, मानो किसी अदम्य विचार से पिंड छुड़ाने की कोशिश कर रहा हो. लेकिन वह विचार उसका पीछा न छोड़ता... और अम ताहा को एक लंबे अरसे बाद अचानक स्मरण हो आता कि उसे एक औरत की जरूरत है... और वह निढाल-सा हो जाता... सकीना के हाथ उसकी जांघों को छूते होते, और उसकी सांस उठ कर उसके चेहरे को सहलाती होती.

□□□

युगांडा की लोककथा

सृष्टि की रचना

काबेज्या-एंपुंगु (ईश्वर) ने आकाश और धरती की रचना की. इनके साथ ही विशेष तर्क शक्ति दे कर दो मानव देहधारियों की रचना की. इनमें एक पुरुष था और एक औरत. उस समय तक इन मानवों में मुतिमा अर्थात् हृदय नहीं था. काबेज्या-एंपुंगु की चार संतानें थीं—सूरज, चांद, अंधकार और वर्षा. उसने उन चारों को बुलाया और कहा — अब मैं जाना चाहता हूं. मनुष्य मुझे नहीं देख सकेगा. मैं अपनी जगह मुतिमा को भेजूंगा. लेकिन जाने से पहले मैं तुमसे कुछ पूछना चाहता हूं. उसने सब से पहले वर्षा से पूछा — वर्षा, तुम क्या करना चाहती हो?

—मैं चाहती हूं कि लगातार बरस कर सारी चीजें पानी में डुबो दूं! वर्षा ने उत्तर दिया.

—नहीं, ऐसा मत करना, ईश्वर ने कहा. इन दो को देखो, उसने मानव और मानवी की ओर इशारा किया — क्या तुम समझती हो कि वे पानी में रह लेंगे? तुम सूरज के साथ पाली बदल कर काम करो. पहले तुम धरती पर पर्याप्त बरसात करो, फिर सूरज को उसे सुखाने दो.

फिर सूरज से पूछा—तुम क्या करोगे?

—मैं अपनी चमक और गर्मी से सारी चीजें जला दूंगा! सूरज ने कहा.

—नहीं! काबेज्या-एंपुंगु ने कहा. ऐसा मत करना, नहीं तो मेरी मानव-सृष्टि को खाना कहां से मिलेगा? जब तुम पृथ्वी को गर्म कर लो तो वर्षा को एक मौका देना कि वह फिर से सब कुछ तरो-ताजा करके फलों को उगने दे.

—अंधकार, तुम्हारी क्या योजनाएं हैं?

—मैं हमेशा राज्य करना चाहता हूं!

—दया करो, ईश्वर चिल्लाया. क्या तुम चाहते हो कि मेरे प्राणी दुनिया न देख सकें? तुम चांद को धरती पर चमकने का मौका दो. जब तुम देखो कि उसका आखिरी हिस्सा चमकने के लिए रह गया है, तब तुम अपना आधिपत्य जमा लो. अच्छा अब मैं जाता हूं.

कुछ समय बाद मुतिमा (हृदय) एक छोटे-से डिब्बे में आया.

उसने सूरज, चांद, अंधकार और वर्षा से पूछा — हमारा पिता काबेज्या-एंपुंगु कहां है?

—पिता जा चुका है.

—ओह, मैं उससे मिलूंगा और जब तक उसे ढूंढ़ नहीं लूंगा, तब तक मनुष्य में निवास करूंगा. और तभी से मानव की सभी संतानें उस हृदय के साथ पैदा हुईं.

□□□

फूल... प्यारे फूल

• जोसेफ़ ज़ोबेल

जोसेफ जोबेल का जन्म १९१५ में पेटिसबर्ग हुआ. इनका पहला उपन्यास एक मच्छीमार कस की पृष्ठभूमि पर है. १९३७ में ये पुल और रा मार्ग विभाग के सचिव रहे. १९४६ में फ्रांस च गये, १९५७ से सेनेगल में नेशनल ब्राडकास्टिंग इंचार्ज और कल्चरल सर्विसेज के निदेशक हैं.

वसंत इतनी देर से पहले भी कभी आया हो, किसी को याद नहीं था. पहली मई के दिन लिली ऑव द वैली अभी तक खिली नहीं थी. बारिश हो रही थी और आसमान भूरा था. हर आदमी कह रहा था कि फूल वालों ने बहुत पैसा बनाया होगा—और यह भी कि जो फूल वाला जंगल से ही इन फूलों को बीन लाया होगा, वह मालामाल हो गया होगा.

पर सच्चाई यह थी कि हर तरफ पत्तियां ही बेची जा रही थीं, फूल नहीं. इन पत्तियों के साथ कोई अनखिली-कच्ची कली भी आ गयी हो तो बात दूसरी है.

वसंत के आगमन में सचमुच विलंब हो गया था.

फिर भी, यह भी तथ्य है कि जंगल में हर चीज फूलने के लिए तैयार थी. हर चीज हमारी तरह वसंत के इंतजार में थी. सभी को सूरज के निकलने और अपनी ऊष्मा बिखेर देने का इंतजार था.

—जब ऐसा होता है तो वसंत जल्दी आता है! औरतें कहती थीं.

इस रविवार को भी मौसम बड़ा अच्छा था. दरअसल किसी को उम्मीद नहीं थी कि वह इतना सुहाना दिन साबित होगा.

दोपहर के भोजन के तुरंत बाद शहर जंगल में बिखर पड़ा था. वहां कारों को खड़ी करने के लिए छायादार जगह ढूंढ़ना मुश्किल हो रहा था. इसी तरह, जो लोग एकांत में पढ़ने या आराम करने की आशा ले कर गये थे, उन्हें बड़ी देर तक भटकते रहना पड़ा था. पूरा शहर वहां जमा था—कारें, प्रेमी जन, और नवविवाहित जोड़े; प्रामगाड़ियां, बच्चों के झुंड, और श्वेतकेशी जन जो धूप में भी काली पोशाक पहने रहते थे और जिन्हें सरकार ने सम्मानपूर्वक 'आर्थिक रूप से पिछड़े हुए' संज्ञा प्रदान की थी. इनके अलावा पेरिस वाले भी थे ही, जो हर जगह देखे जा सकते हैं, अपने पूरे परिवारों—बच्चों, मां-बाप और दादा-दादी—के साथ, फोल्डिंग मेंजो के गिर्द बैठे ताश खेलते हुए और प्लास्टिक की बोतलों से रंग-बिरंगे पेय पीते-पीते तर्क करते हुए.

दूसरे लोग अपनी कारों में बैठे, रेडियो पर पार्क द प्रिंसेज' के किसी फुटबाल मैच की कमेंटरी सुन रहे थे.

कुछ लोग गेंद के खेल खेल रहे थे. और कुछ गंजे, तोंदुल महाशय अपनी जाकिट उतार कर—ताकि जवान मालूम पड़ें—अपने नातियों के साथ दौड़ लगाने की तैयारी में थे. स्त्रियां इस दृश्य के मजे ले रही थीं.

धूप में हंसना-हंसाना अच्छी बात थी.

नेकर पहने ऐसे लड़के और जीन पहने ऐसी लड़कियां भी ढेर सारी थीं, जो पीठ पर थैले लादे हर मौसम में हर रविवार को जंगल की सैर किया करते थे.

वर्ष में पहली बार आइस्क्रीम बेचने वाला भी फिर दिखायी दिया था. वह सफेद लिनन की जाकिट और सफेद टोपी पहने अपनी छोटी-सी गाड़ी की छतरी के नीचे खड़ा था. गाड़ी पर नया सफेद रंग पुता हुआ था और स्पेनी जैसे नाम के अक्षर लाल रंग में चितरे हुए थे. बच्चे उसकी तरफ ऐसे लपकते थे जैसे पानी की पियाऊ की तरफ मेमने—बीस या तीस सें ले कर वह गुलाबी, पीले या ब्राउन रंग के आइस्क्रीम कोन देता था, जो दूर से फूलों के गुच्छे लगते थे.

यह सब जंगल में उस स्थान पर हो रहा था, जहां ओक और बीच के पेड़ों के बीच एक बड़ा घास का हरा मैदान था. चमकीले रंगों वाली स्कर्ट पहने महिलाएं वहां झुक-झुक कर डेजी, डेंडेलियन या चौपतिया क्लोवर के फूल चुन रही थीं.

सड़क इस बड़े हरे मैदान से हो कर गुजरती थी. इस सड़क को पार करना मुमकिन नहीं था, क्योंकि दोनों ही दिशाओं में कारों का न टूटने वाला सिलसिला चल रहा था. सड़क के किनारों पर खड़े रह कर ऐसा लगता था मानो नदी तट पर खड़े हुए, जलराशि को दो विपरीत धाराओं में बहते देख रहे हों.

कारों की तेज रफ्तार से हवा का तेज झोंका आता था जिससे सभी सचेत रहते थे, क्योंकि उस झोंके से महिलाओं के स्कर्ट ऊपर उठ जाते थे और सड़क के किनारों पर जमी बारीक धूल लोगों की आंखों में भर जाने का खतरा था.

वही एक ऐसा व्यक्ति था जो, इसके विपरीत, सड़क के किनारे खड़ा था और हर कार के गुजरने पर पीछे हटने के बजाय कुछ आगे झुक कर अपने हाथ उठा देता था. जितनी तेजी से कार जाती, उतना ही वह उसकी तरफ ज्यादा हाथ हिलाता, यहां तक कि उसकी ओर कुछ कदम बढ़ भी जाता, मानो उसे सम्मोहित करने का प्रयत्न कर रहा हो. दरअसल, कभी-कभी कोई कार धीमी हो कर कुछ आगे रुक जाती, और तब वह उन चमत्कारी सफेद फूलों के दो गुच्छों को हिलाता हुआ उस कार की ओर दौड़ पड़ता.

* *

पिछले दिन शायद उसे आभास हुआ था कि निस्संदेह सुहाना मौसम आ रहा है. और उसने लिली ऑव द वैली के बारे में सोचा था जो पहली मई से पहले खिली नहीं थी, और जिसके बारे में लोगों का कहना था: अब से करीब एक हफ्ते बाद .... ज्यों ही सूरज बादलों से बाहर निकलेगा ....

इसके अलावा वह यह भी जान सका था कि उस खिलने को काफी देर हो चुकी थी. वह हर मौसम में हर रोज जंगल में जब या तो कुकरमुत्ते, डेफोडिल या डेंडेलियन चुनने जाता या लकड़ी बीनने, तब लिली खिलते देखा करता था.

वह पूरे जंगल से परिचित था.

इसलिए वह जल्दी ही जाग गया था और वरन्युइल की तरफ चल दिया था, जो लिली ऑव द वेली का क्षेत्र है, जिस तरह रेक्लोरोज डेफोडिल का क्षेत्र है. सब यह बात जानते हैं, लेकिन उसे यकीन था कि अगर वह सबेरे तड़के ही चला जायेगा तो उससे पहले कोई और वहां नहीं पहुंच सकेगा. बड़ी लंबी दूरी थी.

और उसके अनुमान के अनुसार वहां ढेरों लिली थीं. इतनी थीं कि झुक-झुक कर एक-एक टहनी चुनने के बजाय वह हंसिया ला सकता था. पूरी सुबह वह लिली चुनता रहा, कभी उकड़ूं बैठ बत्तख की चाल चल कर, कभी घुटनों के बल घिसट कर. उसकी पीठ और कंधे दुख रहे थे और जांघें और पिंडलियां दर्द कर रही थीं, मानो उसकी डंडे से पिटाई हुई हो. इससे

उसकी चाल डगमगा रही थी. लेकिन इस बात का ईश्वर साक्षी था कि पूरे समय वह जंगल में अकेला था. लाल शराब की बोतल के बिना उसकी जीभ तालू से चिपक गयी थी. सचमुच वह इतना प्यासा था कि अपने आपसे कह उठा: हालांकि अभी कुछ भी बिक्री नहीं हुई है, लेकिन जो भी मधुशाला रास्ते में पहले पड़ेगी, उसीकी मालकिन को लिली का एक गुच्छा दे कर बदले में एक गिलास शराब ले लूंगा.

मालकिन को सौदे में घाटा नहीं होता.

बड़े सुंदर और मीठी सुगंध वाले लिली ऑव द वैली के फूल थे वे—इन पर वह गर्व कर सकता था—वे बड़ी खूबसूरती से सजाये गये थे.

फूल चुन चुकने के बाद वह घास पर उनके ढेर को टांगों के बीच रखे धूप में बैठ गया. तब थोड़ी-थोड़ी टहनियां ले कर और उनके चारों ओर नरम हरी पत्तियां सजा कर उनके छोटे-छोटे गुच्छे बनाये. फिर उन्हें बांध-बांध कर घास पर रखता गया.

* *

मानो कोई खेल हो, कुछ ऐसी बात जो दरअसल गंभीर न हो, कम-से-कम उसकी उम्र के आदमी के लिए जिससे यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि फूलों पर समय नष्ट करे.

फिर भी वह काम तो था ही, और पूरी सुबह उसमें लग गयी.

ऐसे बढ़िया लिली आव द वैली के गुच्छे तो बड़े मजे से एक-एक फ्रांक में बिक जाने चाहिए, उसने सोचा.

और दरअसल, धंधा बड़ी अच्छी तरह शुरू हुआ था. यह जगह उसने खास तौर पर चुनी थी. सड़क के एक तरफ कुछ दूरी पर एक मोड़ था और दूसरी तरफ कुछ दूरी पर एक पहाड़ी थी. यहां कारें आसानी से रुक कर फिर आसानी से ही आगे बढ़ सकती थीं.

यह सच है कि कुछ कारें पूरी रफ्तार से सीधे उसकी तरफ आती थीं और यदि वह ऐन वक्त पर उछल कर सड़क के किनारे की ओर पीछे न हटे, तो कुचल जाने का खतरा पैदा हो जाता था. लेकिन कभी-कभी उसके हाथों के लिली के दो गुच्छों को देख कर किसी खूबसूरत कार की बेतहाशा रफ्तार धीमी हो जाती और हौले से, आज्ञाकारी की भांति वह उसके पास आती—जैसे एक भला कुत्ता मिठाई दिखाने पर आता है.

—ओह, कितने प्यारे हैं ये!

हर बार यही शब्द. और उन्हें लगता कि कीमत वाजबी है.

—ओह, ये तो सुंदर हैं! अपनी कारों की खिड़कियों से बाहर झुक कर भद्र महिलाएं कह उठतीं.

और वह कहता—इनकी सुगंध कितनी मीठी है, यह तो देखिए, मैडम.

तब वह महिला कुछ क्षण रुक कर अपनी पलकों को—लंबी बरौनियों वाली सीपी जैसी पलकों को—उस गुलदस्ते पर झुका देती जिसे उसका खुरसटें लगा

बूढ़ा हाथ उसके चेहरे को समर्पित किये होता.

कभी ऐसा भी होता कि कोई महिला उस गुलदस्ते को लेने से इनकार कर देती जिसे वह पेश करता और उसे अपनी कार के और करीब आने को कहती ताकि वह उसके कंधे से लटके थैले में से खुद कोई गुच्छा चुन ले, जो उसे और भी बड़ा और ज्यादा खूबसूरती से सजाया हुआ जान पड़े.

दो गुच्छे, तीन गुच्छे—और कभी-कभी बकाया रेजगारी भी उसके पास रहने दी जाती.

—धन्यवाद, देवियो और सज्जनो! मेरी लिली ऑव द वैली आपका भाग्य जगायेगी.

तेज रफ्तार की गर्जना के साथ कार फिर दौड़ पड़ती. उस कार के दूर चले जाने से गर्जना कम होती तो फौरन दूसरी आने वाली कार से फिर बढ़ जाती.

तब, थैले पर हाथ फेरते हुए, जैसे कोई जंतु अपने रोओं की पालिश कर रहा हो, वह मंद मुसकान के साथ सोचता—अगर ऐसा ही सिलसिला चलता रहे. . . .

झटपट वह फिर सड़क के किनारे हो जाता. हाथ ऊपर उठा कर आगे झुकता या कदम बढ़ाता. नहीं तो, जब यह देखता कि किसी कार की अंधगति के कारण उसके फूलों का आकर्षण व्यर्थ गया तो पीछे को हट जाता. बात दरअसल यह थी कि किसी कार को रोकना कतई आसान नहीं था.

लेकिन कुछ समय को यह उसके लिए खेल हो गया था, और वह हिसाब लगा रहा था कि कितनी बार उसे सफलता मिली.

★ ★

नतीजा यह हुआ कि उस गाड़ी की तरफ उसका ध्यान नहीं जा सका जो उसके कुछ पीछे आ कर रुक गयी थी. वह एक काली गाड़ी थी जिसके चमकदार एनेमल की बॉडी में जंगल के और सड़क के सारे रंग प्रतिबिंबित हो रहे थे.

दो सिपाही उसमें से निकले थे, नीली वर्दियां, ऊंची टोपियां और बूट पहने हुए. उनके बूट इतने चमकीले थे कि देखने वाले को यही लगता कि वे किसी बड़े डिपार्टमेंट स्टोर की खिड़की से अभी-अभी लाये हुए एकदम नये खिलौने हों.

उसने उन सिपाहियों को नहीं देखा था.

और देखा भी होता तो क्या?

इसलिए अब, एकाएक उसे अपने पीछे एक आवाज सुनायी पड़ी—ए, तुम यहां क्या कर रहे हो?. . .

सच बात तो यह कि उसे पुलिस का डर नहीं था. न उसने कभी हत्या की थी, न चोरी.

फिर भी, उसका खयाल था कि कहीं पर सिपाहियों का आना बुरा लक्षण है, खास कर जब वे इस तरह बोलें.

लिली ऑव द वैली के गुच्छों को दोनों हाथों में लिये हुए वह पीछे को घूमा.

—मैं? उसने पूछा.

—हां, तुम! दूसरे सिपाही ने पीछे आ कर जवाब दिया. हमने तुमसे पूछा कि . . .

—लेकिन, सार्जेंट . . . . मैंने तो कुछ नहीं. . .

—तुम्हारे पास परिचयपत्र है?

—लेकिन, मैं तो कुछ नहीं कर रहा था, सार्जेंट. . .

उसकी बांहें झटके से नीची हो चुकी थीं, जैसे दो टहनियों पर गाज गिर पड़ी हो. लगा कि फूलों के दोनों गुच्छों की आब खत्म हो चुकी थी.

—मैंने तुमसे अपने कागजात देने को कहा था, सिपाही ने दोहराया.

तब फूलों के दोनों गुच्छे अपने थैले में वापस रख कर उसने एक हाथ से अपनी पुरानी जाकिट का पल्ला पलटा और दूसरे हाथ से भीतर की जेब से सड़ी-गली पत्तियों के पैकेट जैसी कोई चीज निकाली. उसे खोल कर कांपती उंगलियों से उसने उसमें से अपना परिचयपत्र निकाला.

—यह लो, सार्जेंट.

सिपाही ने पत्र को उलट-पुलट कर जांचा और ओंठ भींचे हुए, उसकी लिखावट पढ़ने की कोशिश की जो ग्रीज से मैली हो गयी थी. दूसरे सिपाही ने आगे आ कर पत्र पढ़ा और अपनी जेब से काली नोटबुक निकाली.

—लेकिन मैं तो कुछ भी गलत काम नहीं कर रहा था, हुजूर.

—कहां रहते हो तुम?

—क्या फरमाया, हुजूर?

—मैंने पूछा, कहां रहते हो तुम.

—गांव में.

उसने बारबिगू की दिशा में इशारा किया, जो नजर से ओझल था, लेकिन बिल्कुल करीब था—सड़क के रास्ते मुश्किल से दो किलोमीटर पर.

—गांव में किसके मकान में?

—देखिए, सरकार सच बात यह है कि मैं उन लोगों के साथ रहता हूं, जिनका कभी-कभी काम कर दिया करता हूं.

—और इस समय तुम किसका काम कर रहे हो?

—दरअसल बात यह है कि इन दिनों लोग इस कभी खत्म न होने वाली शीतऋतु के कारण ज्यादा मौसमी मजदूरों से काम नहीं ले रहे हैं. लेकिन कुछ लोगों ने मुझे बुक कर रखा है. आप अंदाजा लगा सकते हैं कि देर हो जाने के कारण, यहां पर ढेर सारे नये आलू बीनने को होंगे.

सिपाही ने अपनी नोटबुक के छल्ले से निकल की क्लिप वाली पेंसिल निकाल कर लिखना शुरू कर दिया था और अपने साथी के हाथ में थमे पत्र पर नजर फेंकते हुए लिखे जा रहा था.

—लेकिन हुजूर, मैंने कोई गलती नहीं की है.

सिपाही निश्चित हो कर लिखे जा रहा था.

उसने पूछा—आखिर मैंने गलती क्या की है? क्या आप मेरे साथ थोड़ी सख्ती नहीं कर रहे हैं?

—तुम्हें जंगल से लिली ऑव द वैली ला कर बेचने का कोई हक नहीं है, एक सिपाही ने झुंझला कर जवाब दिया. तुम्हें यह बखूबी मालूम है.

—क्या मतलब, मुझे कोई हक नहीं है? जंगल की लिली ऑव द वैली तो सभी की वस्तु है.

जो सिपाही लिख रहा था, उसने अपनी पेंसिल रोक कर जवाब दिया—बिल्कुल ठीक, यह सभी की है, लेकिन जब तुम इसे तोड़ लेते हो और बेच देते हो, तो यह जनता को लूटने जैसा काम हुआ. क्या यह बात तुम्हारी समझ में नहीं आती?

ये शब्द उसने धीमी आवाज में ही, रूखे रुख के साथ कहे.

बच्चे, और कुछ वयस्क भी, जो सड़क के उसी किनारे पर थे, नजदीक आ चुके थे. उनकी तरफ घूम कर उसने और भी ज्यादा झुंझलाहट से कहा—मैंने गलती क्या की है?

—और तुमने सड़क पर उछलकूद करके एक्सीडेंटों के खतरे मोल लिये, वह अलग! सिपाही ने आगे कहा.

सिपाही ने उसका पत्र उसे लौटा दिया.

—कसम से, मुझे मालूम नहीं था कि यह कानून के खिलाफ है. पिछले ही हफ्ते तो हर कोई....

—हां, लेकिन लिली ऑव द वैली को बेचने की इजाजत सिर्फ पहली मई के लिए ही होती है. बेकसूर होने का ढोंग करने से कोई फायदा नहीं!

सड़क के उस पार से वह सिपाही के सामने झुक झुक कर हाथों को नचाता हुआ और छाती ठोंकता हुआ दिखायी पड़ रहा था. सिपाही ने नोटबुक जेब में डाल ली—मानो कह रहा हो: अच्छी बात है, देख लेंगे.

हर कोई यह दृश्य देख रहा था—वे भी, जो चट्टानों पर बैठे हुए या घास पर लंबे लेटे हुए उदासीनता का भाव दरशा रहे थे.

कारों की उन्मत्त बाढ़ का बहना जारी था.

* *

एकाएक लोगों ने देखा कि वह अपने फूल बांट रहा है: एक इस पुरुष को, दो उस महिला को, और उसी वक्त दो और एक नन्हे बच्चे को, जो उन्हें ले कर चंपत हो गया. कुछ बच्चे उसकी ओर लपके, कुछ भाग कर चिल्लाये—मम्मी! डैडी! देखो!

कारें एक के पीछे एक इतनी तेजी से भागी जा रही थीं कि उस पार खड़े लोग सड़क पार करके इस ओर आ न सके. चार-पांच बढ़े भी, किंतु पीछे हट गये. आखिरकार, कारों के सिलसिले के बीच थोड़ा अंतराल पड़ते ही, वे सब के सब एक साथ शिकारी कुत्तों के झुंड के समान दौड़ पड़े. एक भयभीत महिला चीख पड़ी—ज्यां-क्लोद! ज्यां-क्लोद! अरे, भगवान!

लेकिन तब तक खेल खत्म हो चुका था. लिली ऑव द वैली का थैला खाली हो गया था.

अब वह आदमी गालियां बक रहा था, पैर पटक रहा था, अपनी टोपी को हवा में उछाल कर फिर जमीन से उठा रहा था, और चारों तरफ हाथ फेंक रहा था—जैसे कि वह फूट पड़ना चाहता हो.

बच्चे आश्चर्य से पीछे हट गये. शायद डरे कि कहीं वह एकाएक हिंसक न हो जाये. किंतु एक महिला उसके पास जा कर बोली—तुम्हारी यह लिली ऑव द वैली बड़ी सुंदर है. मेरी नातिन को तुमने जो प्यारा प्यारा गुच्छा दिया, उसके लिए धन्यवाद.

महिला ने उसे वह गुच्छा दिखाया, जिसे वह बड़ी कोमलता के साथ उंगलियों में थामे हुए थी, मानो कोई गहना हो. लेकिन वह उसकी बात सुन ही नहीं रहा था.

—क्या आपमें से कोई बता सकता है कि मैं क्या अपराध कर रहा था? वह चिल्लाया.

—लो, यह लो, महिला ने कहा.

महिला के बढ़े हुए हाथ में सिक्का देख कर उसने विरोध किया— इसे अपने ही पास रखो, मैडम. मैं उनके कथनानुसार आवारा हूं. मेरा परिवार नहीं, मुझे खाने का कोई हक नहीं.

—ओह! महिला बोली—ऐसे घबराओ नहीं.

—मुझे कारखाने जाने का अधिकार नहीं, वह कहता गया. मेरे लिए सिर्फ जेल है. समझीं आप?

उसके वहशी रुख की परवाह न करके महिला ने उसकी जाकिट की जेब में सिक्का सरका दिया और लिली के गुच्छे को अपनी नाक पर टकराती हुई चल दी.

* *

तब वह बुदबुदाता हुआ, लड़खड़ाते कदमों से किनारे-किनारे चल पड़ा. आखिर में घास पर जा कर पड़ गया, और दोनों हाथों में मुंह छिपाय सिकुड़ा पड़ा रहा.

वह रो नहीं रहा था.

वह सिकुड़ता गया, और भी सिकुड़ता गया. कभी-कभी एक कराहट उसके गले से निकलती—उस घायल पशु की तरह जिसका सारा खून बह चुका हो, या किसी आवारा की तरह, जो पी कर बेशर्मी के साथ खुमारी उतार रहा हो.

लेकिन अब कोई उसकी तरफ ध्यान नही दे रहा था.

खुले मैदान ने एक विशाल देहाती मेले का रूप धारण कर लिया था. सुबह की धूप शिखरों पर धारण किये हुए पेड़ तुरही और बीन बजा रहे थे. □□□

(अनुवाद: रामगोपाल इगलासिया)

बातचीत

अफ्रीकी लोककथा

एक दिन एक ग्रामीण अपने खेत में लगे पाम उखाड़ रहा था, तभी एक पाम बोला--ओह! तो तुम अब यहां आ गये! तुमने मुझे बोने में तो कोई कष्ट नहीं उठाया. और अब आराम से मुझे उखाड़ने चले आये! यहां से जाओ और मुझे अकेला छोड़ दो.

वह किसान अपने चारों ओर देखने लगा. किसान का कुत्ता बोला--वह तो पाम था. पाम ने कहा था कि मुझे अकेला छोड़ दो.

किसान बहुत नाराज और आश्चर्य-चकित रह गया, क्योंकि इसके पूर्व वह कुत्ता कभी नहीं बोला था. उसने एक पामवृक्ष की शाखा काटी और कुत्ते की खूब पिटाई की. तभी पामवृक्ष बोला--वह शाखा नीचे रख दो.

उस किसान की मानसिक स्थिति बहुत बिगड़ गयी. क्रोध में उसने उस शाखा को जोर से पटक दिया. अब पाम की शाखा फिर बोल उठी--मुझे फेंको मत, धीरे से रखो.

उसने उस शाखा को धीरे से एक पत्थर पर रख दिया,तो पत्थर बोला--ए! वह टहनी मेरे ऊपर से उठाओ. वह भयभीत किसान, चकित-सा वहां से अपने गांव की तरफ भागने लगा. रास्ते में उसे एक मछुआरा दिखायी दिया जो अपना जाल सिर पर रखे जा रहा था.

--क्या बात है? तुम इस तरह भागे क्यों जा रहे हो? उसने पूछा. उसने जवाब दिया-- मेरा पाम मुझसे बोला, 'मुझे अकेला छोड़ दो!' फिर कुत्ता बोला, 'जो पाम कहता है, उसे ध्यान से सुनो.' जब मैं कुत्ते को मारने गया, तो पाम-वृक्ष बोला, 'इस शाखा को नीचे रख दो.' फिर पाम की शाखा बोली, 'मुझे धीरे से नीचे रखो.' फिर पत्थर बोला, 'उस शाखा को मेरे ऊपर से हटाओ!'

--क्या यह सब इतना डरा देने वाला है?

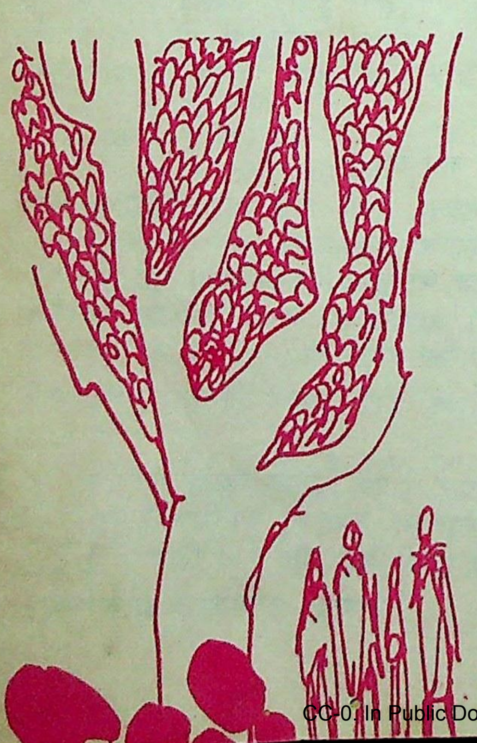

मछुआरे का जाल बोला-- अच्छा! तो क्या उसने शाखा को पत्थर से हटा दिया?

ओह! मछुआरा घबरा कर जोर से चिल्लाया. उसने अपना जाल वहीं जमीन पर फेंक दिया और किसान के साथ भागने लगा. रास्ते में उन्हें एक बुनकर मिला, जिसके सिर पर कपड़े का एक गट्ठर था.

--तुम दोनों कहां भागे जा रहे हो? वह बोला.

--मेरा पाम बोला, 'मुझे अकेला छोड़ दो.' किसान ने बताया. कुत्ता बोला, 'जो पाम कहता है, उसे ध्यान से सुनो!' पामवृक्ष बोला, 'यह शाखा नीचे रख दो!' शाखा बोली, 'मुझ धीरे से रखा.' फिर पत्थर बोला, 'यह शाखा मेरे ऊपर से हटाओ!'

--और फिर, मछुआरे ने उसकी बात को जारी रखते हुए कहा, मेरे जाल ने पूछा, 'क्या उसने वह शाखा पत्थर से उठा ली थी?'

--लेकिन इसमें इतना उत्तेजित होने की भला क्या बात है? बुनकर बोला.

--ओह! यदि तुम्हारे साथ भी ऐसा हो तो मुझे पूरा विश्वास है, कि तुम भी भागने लगोगे! उसका गट्ठर बोला.

--अरे! कह कर वह बुनकर अपना गट्ठर वहीं फेंक उन दोनों के साथ भागने लगा.

भागते-भागते वे एक नदी के किनारे आये, जहां एक व्यक्ति नहा रहा था--क्या तुम किसी का पीछा कर रहे हो? उस व्यक्ति ने पूछा.

किसान, मछुआरे और बुनकर ने सारी बातें उसे बता दीं.

--तो क्या इसी बात के कारण तुम इस तरह बेतहाशा भागे जा रहे हो?

--अच्छा! तो क्या यदि तुम उनकी स्थिति में होते तो नहीं भागते? नदी ने पूछा.

वह व्यक्ति पानी से एक छलांग में बाहर कूद गया और उन सबके साथ भागने लगा.

वे सब भागते-भागते गांव के मुखिया के यहां पहुंचे. मुखिया का नौकर उसके लिए एक कुर्सी निकाल कर बाहर लाया. और मुखिया उस पर बैठ कर उन सबकी शिकायतें सुनने लगा.

मुखिया ध्यानपूर्वक प्रत्येक की शिकायत सुनता रहा फिर अविश्वास से डांट कर बोला--इसके पूर्व कि मैं तुम्हें इस प्रकार की झूठी गप मारने के लिए कोई दंड दूं, तुम सब अपने-अपने घर चले जाओ.

वे सब व्यक्ति क्षुब्ध हो कर अपने-अपने घर चले गये. मुखिया सिर हिला कर स्वयं से ही बोलने लगा--क्या विचित्र बात है!

--विचित्र है न? उसकी कुर्सी ने पूछा. अब हक्का-बक्का हो कर भागने की बारी मुखिया की थी. □□□

(प्रस्तुतीकरण : इंदु रायजादा)

किसके सेवक

अफ्रीकी बोधकथा

कमेरा का हब्शी राजा जितना ऊपर से काला था, उससे अधिक शायद अंदर से भी था! क्योंकि दर्प के कतरे हर क्षण उसके इर्द-गिर्द बिखरते ही रहा करते थे. वह हद दर्जे का अभिमानी था. अफ्रीकी रियासत और वह भी छोटी-सी? किंतु वह ऐश्वर्यमद किसी चक्रवर्ती सम्राट की तरह प्रकट करता था. किसीसे भी सीधे मुंह तो शायद वह बात करना अपनी तौहीन ही मानता था.

प्रजा में उसके घमंड को ले कर अनेक प्रकार की दंतकथाएं मशहूर हो चली थीं. जनता उससे बहुत डरती थी, और उसकी हर छोटी-बड़ी इच्छा पूरी करने के लिए तैयार रहती थी? कौन उसके मुंह लगे वाली वृत्ति के कारण वातावरण उसके पक्ष में था, जिसे वह अपना रौब-दाब मानता था.

एक दिन भरे-पूरे दरबार में अभिमान की ठसक से ही वह बोला——अरे, सब लोग मेरे सेवक हैं! यह सारी दुनिया सिर्फ मेरी ही सेवा के लिए है!

दरबारी चुप थे. तभी एक वृद्ध हब्शी ने उसकी इस धारणा का विरोध किया और बोला——यह ठीक है कि आप हमारे राजा हैं, इसलिए हम आपके सेवक हैं. किंतु सिर्फ आप ही सेवा के लिए सेवक पाले हुए हैं, ऐसा भ्रम व्यर्थ है. अच्छा हो कि यह आपका मुगालता नष्ट हो जाये. असल में प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे का सेवक है.

वृद्ध हब्शी की इस बात को सुनते ही राजा के तन-बदन में आग लग गयी. वह चीखा——अरे वृद्ध हब्शी बोकबार! तुम पागल तो नहीं हो गये हो! क्या तुम यह कहना चाहते हो कि मैं भी तुम्हारा सेवक हूं? यदि तुम मुझे एक क्षण के लिए भी अपनी सेवा करने को विवश कर दो तो मैं तुम्हें सौ गायें और दो सौ स्वर्ण मुद्राएं पुरस्कार में दूंगा! ध्यान रखो सिर्फ आज शाम तक ही तुम्हें यह करके दिखलाना होगा! बोकबार, ध्यान रखना, तुम यदि ऐसा नहीं कर पाये तो फिर तुम्हें मृत्युदंड दिया जायेगा! तुम्हारी लाश के टुकड़े-टुकड़े करके मैं चील कौवों को नाश्ते के लिए फिकवा दूंगा!

हब्शी बोकबार बुद्धिमान और संयत विचारों वाला प्राणी था. उसने कमेरा-नरेश की यह चुनौती मंजूर कर ली. अत्यंत विनम्रतापूर्वक वह बोला——ठीक है, नरेश! आप इसे बेकार ही अपने लिए चुनौती मान रहे हैं. वस्तुतः हम सब आपस में एक-दूसरे के सेवक हैं. किसी-न-किसी रूप में एक-दूसरे की छोटी-बड़ी सेवा भी हम वक्त आने पर करते ही हैं. फिर भी आप चुनौती ही मान रहे हैं तो यह भी सही!

——ठीक है! तो तुम चील-कौवों की दावत बनने के लिए तैयार रहो! राजा ने दर्पपूर्वक कहा और चल दिया.

वृद्ध बोकबार भी छड़ी उठा कर चल दिया. ज्यों ही वह दरवाजे पर आया तो कमेरा-नरेश भी उसके पीछे-पीछे था! तभी एक भिखारी ने बोकबार के आगे भिक्षा के लिए हाथ फैलाया.

तभी बोकबार ने राजा से कहा——महाराज! मुझे आज्ञा दीजिए ताकि मैं इस भिखारी को कुछ भिक्षा दे कर अपना कर्तव्य पूरा कर सकूं.

——हां-हां, दो, तभी बोकबार के हाथ की छड़ी छूट कर गिर पड़ी. उसने जेब से कुछ सिक्के निकाल कर भिखारी को दिये. पर उसे धक्का-सा लगा और वह नरेश को ठेलता गिरने लगा. तभी नरेश ने कहा——अरे बोकबार, यह क्या हो गया! और उसने कहा——ओह! तुम्हारी छड़ी गिर गयी है! कहते-कहते राजा ने बिना कुछ सोचे-समझे छड़ी उठायी और बोकबार के हाथों में थमा कर उसे खड़ा कर दिया.

बोकबार ठहाका लगा कर हंसा. पर राजा को कुछ भी समझ में नहीं आया. छड़ी थमा कर वह चलने लगा तो उस वृद्ध ने उसे रोक कर कहा—— देख लिया न कमेरा-नरेश, आपने! सचमुच ही सज्जन महानुभाव सदा ही एक-दूसरे की सहायता करते हैं! अब देखिए न! मैंने इस भिखारी की सहायता करनी चाही और आपने मेरी!

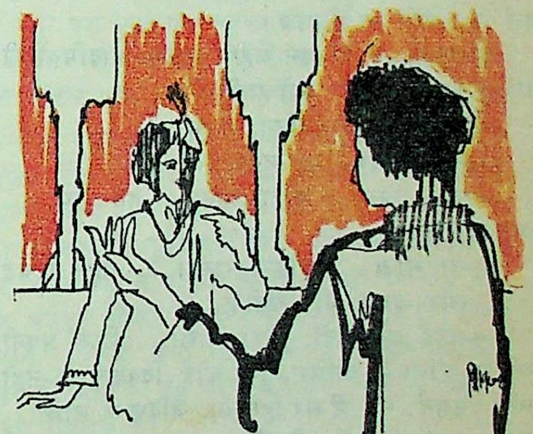

तभी नरेश को शर्त की याद हो आयी. वह बोकबार से बोला——तो बोकबार महाशय, कमाल कर ही दिया आपने! मैं सचमुच ही शर्त हार गया! अनजाने में ही छड़ी उठा कर आपकी सेवा कर दी! अब आप सौ गायें और दो सौ स्वर्ण मुद्राएं ले लीजिए.

बोकबार बोला——राजन! गायें और स्वर्ण -मुद्राएं देश की संपत्ति हैं. वे मेरे पास रहें या आपके पास, क्या फर्क पड़ता है! मेरा उद्देश्य भी आपकी बात की अवज्ञा करना कभी नहीं रहा. सिर्फ मैं यह बतला देना चाहता था कि आप जो मानते हैं वही सत्य नहीं है,सत्य यह भी है!

राजा पानी-पानी हो गया. उसने बोकबार के समक्ष आगे से बेमतलब घमंड करने की आदत का परित्याग करने की प्रतिज्ञा की और उसे सदैव निभाने का प्रयत्न भी किया. □□□

(प्रस्तुतीकरण : दुर्गाशंकर त्रिवेदी)

लकड़ियां • सिप्रियन एक्वेंसी

शाम ढल चुकी थी. कीचड़ भ छिछली नदी के किनारे बनी, अपनी झोपड़ी के बाहर बैठा जैटिफ अपनी मां से बातें कर रहा था.

---अरे ... जब उन्हें आना है, तो अब आ जाना चाहिए!

उसकी मां गहरी सांस ले कर बोली---तेरा बचपना नहीं गया, अब तक ....

जैटिफ की उमर चालीस के ऊपर है और उसकी मां की सत्तर से कुछ अधिक.

इससे पहले कि जैटिफ कुछ कहता, एक लंबी मोटरगाड़ी कीचड़ भरे रास्ते पर हिचकोले खाती आयी, और सामने आ कर रुक गयी.

दो लोग गाड़ी से बाहर निकले.

जैटिफ ने आगे बढ़ कर उनका अभिवादन किया.

---गुड ईवनिंग, मैकलारेन सा'ब.

---ईवनिंग, जैटिफ ...तुम मेरी पत्नी से नहीं मिले .... नहीं न? ....

जैटिफ हैरान था. इन लहीम-शहीम आदमियों की बीवियां इतनी ठिगनी क्यों होती हैं!

---नहीं ... गुड ईवनिंग, मैडम ...

---गुड ईवनिंग. वह मुसकरायी.

---और अब ... गोरा बोला ...हमें क्या ... तैयार है सब?

---हां, सा'ब .... लेकिन रास्ता ... बहुत कीचड़ है .... और बदबू भी आती है.

---कोई बात नहीं, गोरा बोला ... फिर अपनी पत्नी से बोला ---डार्लिंग, तुम्हें कोई दिक्कत तो नहीं होगी? उसने 'ना' में सर हिलाया. जैटिफ ने सोचा... इसकी गरदन कितनी सफेद है!

जैटिफ रास्ता दिखाने के लिए आगे बढ़ा ....

नदी-किनारे पहुंच कर जैटिफ ने रुक कर पीछे देखा. दोनों पति-पत्नी एक-दूसरे का हाथ पकड़े, बातें करते, हंसते हुए आ रहे थे.

गोरी औरत के सफेद जूतों पर कीचड़ के धब्बे थे. जैटिफ एक लट्ठे पर बैठ गया. यहां से ले कर लगभग सौ गज की दूरी तक पानी में हलके-हलके हिलते अपने लट्ठों को उसने देखा.

अचानक उसे दूर की आवाजों से कुछ आभास हुआ. गिनती रोक कर उसने उस तरफ देखा. लगता है, लट्ठों के साथ कुछ गड़बड़ है.

लंबे, सफेद चोगे पहने हुए लोगों की एक भीड़ उसे दिखायी दी. उसमें आदमी, औरतें और बच्चे, सभी थे. एक आदमी नदी की मिट्टी में एक लकड़ी ठोकने की कोशिश कर रहा था. किनारे पर खड़े लोग उसे देख रहे थे, जिनमें से कुछ के हाथों में क्रॉस लगी लाठियां थीं और कुछ के हाथों में लाल और सुनहरे किनारों वाली काली किताबें.

जैटिफ की आंखें गुस्से से लाल हो उठीं. अचानक उसे एहसास हुआ कि ये लोग किसी धार्मिक गुट के हैं और यहां मौज-मस्ती के लिए आये हैं.

लट्ठों पर आती-जाती औरतों के चोगे हवा में लहरा रहे थे.

आदमी भी हुड़दंग मचा रहे थे. एक ने तो जैटिफ का कालर पकड़ कर धक्का भी दे दिया.

---तुम्हें मालूम है, कौन हूं मैं? वह बोला. अभी बताता हूं ...मालूम है तुम्हें, कौन हूं मैं? वह आदमी बकता रहा, यहां तक कि जैटिफ झुंझला गया.

मैकलारेन और उसकी पत्नी ने वहां आ कर पूछा कि आखिर बात क्या है.

वे लोग जैटिफ की तरफ उंगलियां उठा कर इतना हो-हल्ला कर रहे थे कि इनकी बात सुनी ही नहीं.

---तुम्हें मालूम है ...कौन हूं मैं? ...वह बोला.

जैटिफ संयत हो कर बोला---भाड़ में जाओ!

जैटिफ ने उस आदमी को गौर से देखा और पहचाना---अरे, यह तो किप्पा था! ग्रेव-स्ट्रीट के मकान में रहने वाला उसका किरायेदार.

---किप्पा, जैटिफ बोला, तुम इन लोगों के बीच...

किप्पा ने पिछले दस महीनों से मकान का किराया नहीं अदा किया था.

---अभी बताता हूं तुझे! ...वह गुर्राया. वहां खड़े तमाम लोगों ने किप्पा का बढ़ा हुआ हाथ पकड़ लिया. जैटिफ ने देखा कि इस गुट में तमाम जवान और खूबसूरत औरतें हैं. वह बाद में पता करेगा कि सदस्य कैसे बने ...

जैटिफ की सोच का बहाव मैकलारेन की आवाज से टूट गया---मेरा खयाल है, हमें जो देखना था, वो तो देख ही चुके.

---हां सा'ब ...वह नजदीक आया. ये आसपास जितने भी लट्ठे हैं, सब मेरे हैं ... आइए ...

मैकलारेन ने आगे कहा---मैं यहां से तेईस तारीख को वापस लौटूंगा. मेरे आदमियों को तुम लट्ठे सौंप दोगे और तुम्हें मैं तीन हजार पाउंड का चेक दूंगा...

इतनी बड़ी रकम सुन कर जैटिफ का सर घूम गया ... बाप रे! तीन हजार पाउंड ...उसे अपनी मेहनत का अच्छा फल मिल जायेगा. अपने बेटे बायो को डाक्टरी पढ़ाने ग्लासगो भेज सकेगा ....

---ठीक है सर, ... बिल्कुल ठीक ...

★ ★

दूर जाती मोटरगाड़ी की लाल बत्तियां छोटी हो कर गुम हो गयीं. जैटिफ ने एक लंबी सांस ली.

नदी के उस पार से तेज हवा का झोंका आया. उसने आसपास देखा. पूरब का आकाश काले बादलों से

सिप्रियन एकवेंसी नाइजीरिया ही नहीं, संपूर्ण अफ्रीका के श्रेष्ठतम लेखकों में से एक हैं. अफ्रीकी जन सामान्य की आकांक्षाओं और शहरियत की ओर बढ़ती हुई उनकी जिज्ञासाओं को उन्होंने बड़ी खूबी से अपनी रचनाओं में चित्रित किया है.

● ● ●

घिरता जा रहा था. छह बज रहे होंगे. जैटिफ झोंपड़ी के अंदर गया. उसकी मां सर्दी से ठिठुर रही थी. दूर गांव की आवाजें छन कर यहां तक आ रही थीं.

बाहर तूफान बरपा था. छप्पर और छतें हवा में इधर-उधर उड़ रही थीं. धमाके के साथ बारिश शुरू हो गयी.

जैटिफ को अपने लट्ठों की फिक्र लगी थी. वह बारिश थम जाने के लिए प्रार्थना करने लगा. ग्यारह बजे तक अंधड़ चलता रहा. आधी रात तक पानी झोंपड़ी के फर्श पर बहने लगा. और छत टपकने लगी.

सुबह छह बजे जा कर कहीं ऊपर वाले की बाल्टी खाली हुई. तूफान थम गया.

जैटिफ बाहर आया. उसका दिल तेजी से धड़क रहा था. तराई के किनारे आ कर उसने दहाड़ मारी --अरे....मार डाला!...

दूर-दूर, मीलों तक एक भी लट्ठा नहीं था.

वह वापस दौड़ा. मां दरवाजे में ही खड़ी थी.

--मेरे सब लट्ठे कोई ले गया, मां... मैं तो लुट गया! ....वह रोने लगा ... अब क्या करूं?

--मूरख न बन! उसकी मां ने कहा, तू समझता है ये तूफान की वजह से हुआ ... नहीं!

--लेकिन क्या ....?

--यह सोचना छोड़ कि मैं पुराने जमाने की हूं. मेरी बात सुन. तू और बायो अभी मकोको जाओ. सुना है कि लट्ठों के लुटेरे वहीं हिस्सा-बांट करते हैं.

जैटिफ की समझ में कुछ नहीं आया. बोला-- लेकिन बायो तो लागोस में है.

--तो अकेले ही जा ...उसकी मां ने कहा.

तीन हजार पाउंड चले जाने के विचार ने ही उसे मकोको की तरफ ढकेल दिया.

खाड़ी के पास आ कर उसने अपनी नाव 'गाने-बजाने' के शोर की तरफ मोड़ दी.

लोग उसकी तरफ दौड़े, उसे कंधों पर उठा लिया, जबरदस्ती उसके मुंह में शराब उंडेलने लगे. मैं नहीं पीता, मैं नहीं पीता, वह कहता रहा और शराब से उसके होठ जलते रहे. नशे में धुत एक आदमी उसे लाल-लाल आंखों से घूरने लगा.

--तुम जानते नहीं, मैं कौन हूं?

वह आदमी खाने वाली निगाहों से जैटिफ की तरफ बढ़ा--बताता हूं.

--किप्पा! जैटिफ चिल्लाया. लेकिन किप्पा ने आगे बढ़ कर उसके जबड़े पर घूंसा जमा दिया, फिर बाकी लोगों ने भी जुट कर जैटिफ को मारते-मारते अधमरा कर दिया.

* *

उसकी आंख खुली तो उसके सामने सफेद दीवारें और थर्मामीटर लहरा गया.

दरवाजा खुलते ही नर्स अंदर आयी. उसने थर्मामीटर निकाल कर उसके मुंह में दे दिया. फिर दरवाजा खुला, इस बार एक लड़का कीमती सूट पहने हुए अंदर आया. यह बायो था. मुंह में थर्मामीटर होने की वजह से जैटिफ कुछ बोल नहीं सका.

--पैसे मुझे मिल गये हैं, बायो ने बताया. तेईस सौ पाउंड. मिस्टर और मिसेज मकलारेन पांच दिन पहले इंग्लैंड चले गये. तुम्हें यहां दस दिन हो चुके हैं. एक बार तो लगा कि तुम बचोगे नहीं. और क्या बताऊं? मैं घर गया. मां ने बताया कि तुम कहां गये थे. मैं चालीस मजदूर ले कर तुम्हारे पीछे गया, पर हमें देर हो गयी ...तुम्हें बचा नहीं सके ... लेकिन लट्ठे बच गये हैं. पता है, उन लोगों ने लट्ठे यहां से पंद्रह मील दूर छिपाये थे!

नर्स ने आ कर जैटिफ के मुंह से थर्मामीटर निकाल कर रोशनी में देखा.

--मेरी समझ में एक ही बात नहीं आ रही है, जैटिफ बोला. आखिर इस तूफान में उन लोगों ने लट्ठे चुराये कैसे?

--पता नहीं, पापा! बायो बोला. ये लोग बहुत चालाक हैं.

--हां, जैटिफ कोहनियों के बल उठता हुआ बोला. खैर, अब तुम ग्लासगो जा सकोगे.

--लेकिन वो जहाज तो छूट गया.

--तुम हवाई जहाज से जाना.

--लेकिन, पापा ... पैसे कहां? ...

--छिः! ये लट्ठों से मिले पैसे ...! तुम्हें मालूम नहीं ये सब मैंने तुम्हारे लिए ही तो किया था ...

□□□

(अनुवाद : हृदय लानी)

ब्रास

•कीकी उवेचिय

अफ्रीका में स्थित मेरे गांव से काफी दूर, उत्तर की ओर, एक ऐसा बंजर इलाका फैला हुआ है, जिसमें हाउसामन नामक एक जंगली जाति रहती है—इस जाति के लोग लंबे-तगड़े और जंगली हैं. इस इलाके में सवाना नामक लंबी-लंबी, तेज-धार घासों के अलावा कुछ भी पैदा नहीं होता.

बारिश के मौसम के बाद सवाना घास सूख जाती है. सियार और सिंह बेचैनी से उसमें घूमते रहते हैं कि कोई राह-भूला हिरन उनके हाथ लग जाये. हवा भी हलकी और खुश्क हो उठती है. तब वह नाइजर नदी के पार के इलाकों पर बड़ी भयावह गति से सिर पटकती लगती है.

१९५४ के बरस, सवाना से उठी वह हवा बड़ी अजीब थी. वह प्यासी थी और क्रूर भी. दिन के समय वह नाइजर नदी के पानियों को सोख लेती थी और रात के वक्त कच्चे घरों के आसपास धुंध के रूप में मंडराती रहती थी. वह पेड़ों के पीले पत्तों को झकझोरती थी और जमीन में छिपी जड़ों को उसने सुखा डाला था. जख्मी टांगों पर वह जहरीली रेत उंडेलती थी, जिससे टांगें सूज जाती थीं और जख्मों में से पीब बहने लगता था. उस हवा ने धरती में दरारें डाल दी थीं, जिनमें से सफेद चीटियों के झुंड के झुंड निकल कर मकानों के इर्द-गिर्द कवायद करने लगे थे.

जब हम स्कूल की तैयारी कर रहे होते, तो हमारे ओठों पर हंसी न होती, क्योंकि हमारे ओठ सूख चुके थे और जमीन की तरह ही पपड़ा चुके थे. धूल उड़ कर हमारी आंखों में पड़ती थी, हम बात करने के लिए मुंह खोलते तो मुंह में पड़ जाती और हमारे खाने को भी किरकिरा बना जाती.

यह हवा अपने साथ सिर्फ धूल, रेत और खुश्की ही ले कर नहीं आयी, मौत भी ले कर आयी.

ऊंची-ऊंची सवाना घासों के बीच मौत की घंटियों की आवाज गूंजती रहती. अनेक बच्चे चेचक के शिकार हुए थे. रोते-रोते मांएं इतना थक गयी थीं कि अब किसी बच्चे के शव को श्मशान की ओर ले जाते हुए उनके गले से किसी तरह की कोई आवाज नहीं निकलती थी.

१९५४ के उस मौसम में फैली महामारी ने नाइजर नदी की ओर बढ़ते हुए, अनेक जानों की कुरबानी ले ली.

इस महामारी के पहले-पहल हुए शिकार लोगों में डोरोथी भी थी, जो मेरी सहपाठिनी थी और तब उसकी उम्र सिर्फ दस बरस थी.

उसके मां-बाप उसे डाक्टर के पास नहीं ले गये—उन्होंने तो उसे महज एक छोटे-से कमरे में बंद कर दिया और निरंतर कुनीन की खुराकें देते रहे. उन्होंने उसके शरीर पर 'ऊली' का लेप कर दिया था, जो एक तरह का सफेद चॉक होता है, और जो रोग-मिश्रित रक्त को शरीर में फैलने से रोकता है.

हर रोज, स्कूल से छूटने के बाद, डोरोथी के मां-बाप मुझे उसके पास जाने को प्रोत्साहित करते थे. और जैसा कि उनकी आदत थी, वे हमें एक ही कटोरे में खाने को चावल भी देते थे.

और जिस शाम डोरोथी की मृत्यु हुई, मैं उसके पास ही थी. डोरोथी का चेहरा छोटा-सा था. मुंह काफी चौड़ा, जिसमें उसकी उम्र के बावजूद पानी भरा रहता था. उसकी गहरी धंसी हुई, पीली आंखें थीं, जो मुसकराहट के समय भी उदास बनी रहती थीं. उस समय मैं डोरोथी को अपने स्कूल के खेलों के बारे में बता रही थी, जब अचानक मेरे बाल-मन को एहसास हुआ कि डोरोथी वहां नहीं थी. उसकी आंखें अब भी मेरी ओर टिकी थीं, लेकिन वे भारी चमकीली हो उठी थीं. मैंने उसका नाम ले कर उसे कई बार पुकारा. . . लेकिन वह आवाजों की दुनिया से दूर जा चुकी थी.

फिर धीरे-धीरे कमरे में लोगों की भीड़ जुड़ने लगी. एकाएक सन्नाटा छा गया, और तब कोई औरत तेज, दिल दहला देने वाली चीख के साथ क्रंदन कर उठी—मेरी बांह पर किसी का भारी हाथ पड़ा और मुझे कमरे से बाहर खींच ले गया. मैंने देखा, डोरोथी की मां धरती पर लोट रही थी और मुट्ठियां भर-भर कर धूल अपने बालों में डाल रही थी.

—मेरी कोख की जन्मी! वह विलाप कर रही थी. . . . आखिर वे तुम्हें लेने आ ही गये. . . . मेरे रहते ही. . . .हाय मेरी कोख की जायी! . . .अब सर्दी की ठंडी रातों में मुझे गर्मी कौन पहुंचायेगा. . .

एक बूढ़ी औरत एक बांस की मदद से डोरोथी की आत्मा को मृतकों की दुनिया से बाहर निकालने की कोशिश कर रही थी, पर कोई फायदा नहीं हुआ. डोरोथी उस दुनिया के भोजन का स्वाद ले चुकी थी.

★ ★

एक आदमी मृत बच्ची को कोसने लगा. उसने कहा कि वह 'ओगबांजे' थी, प्रेतात्माओं द्वारा भेजी गयी आत्माओं में से एक, जो बचपन में ही मर कर अपनी मांओं को पीड़ा पहुंचाती हैं. वे उसे कुचलने जा रहे थे, उसकी अंगुलियों को काटने जा रहे थे और उसके चेहरे को विकृत बनाने जा रहे थे ताकि जब वह दुबारा इस धरती पर आये तो हर कोई उसे पहचान

● ● ●

कीकी उवेचिया का जन्म १९४६ में ओनित्शा, नाइजीरिया में हुआ. नाइजीरिया की इस नयी लेखिका ने यूरोप की भरपूर यात्राएं की हैं और 'ब्रास' इनकी प्रथम प्रकाशित कहानी है, जो मार्च, १९६९ में प्रकाशित हुई थी. इस कहानी में लेखिका ने अपने जन्मस्थान में प्रचलित विश्वासों और लोगों के सामान्य जीवन का जीवंत चित्र प्रस्तुत किया है.

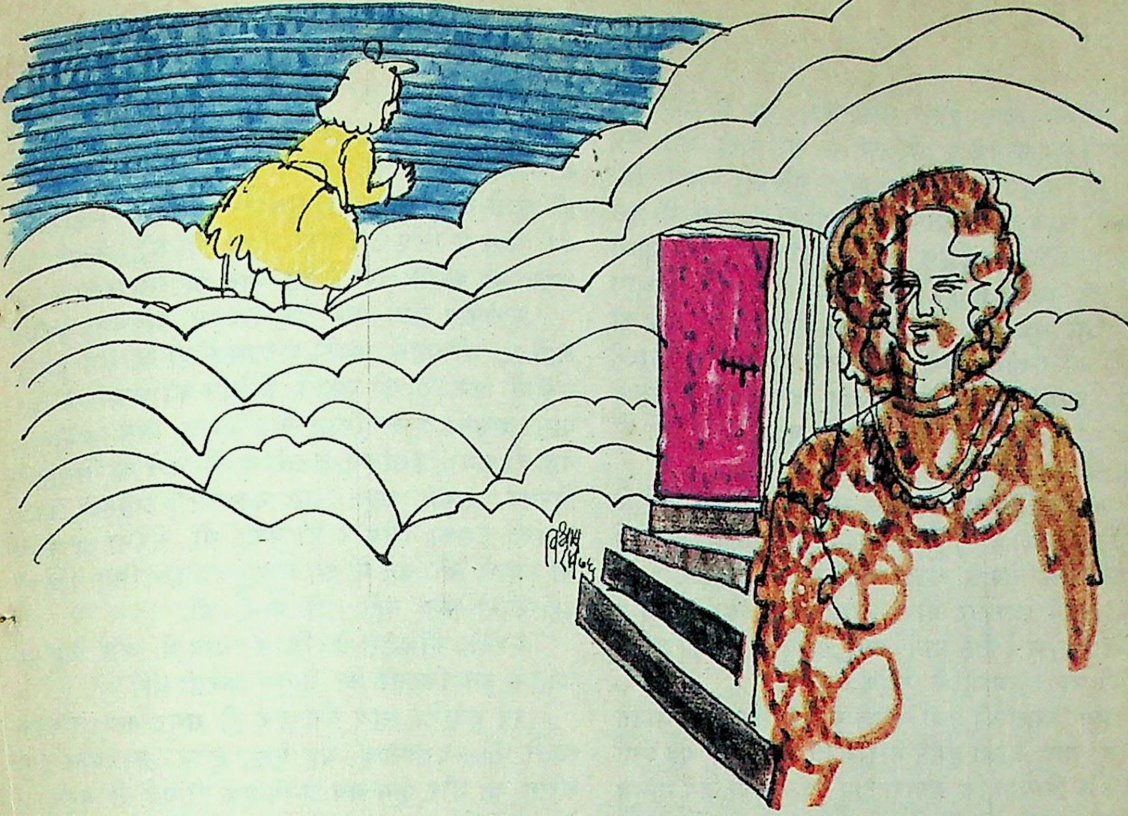

ले कि वह पहले भी इस धरती पर आ चुकी है.

अगले दिन हमने अपने स्कूल से देखा कि पुराने श्मशान की ओर एक जुलूस चला जा रहा है. डोरोथी की मां अपनी टांगों को घिसटती हुई चली जा रही थी. उसके बालों में रेत और राख भरी हुई थी. उसका चेहरा आंसुओं और पसीने से सराबोर था. एक आदमी चटाई और सफेद कपड़े में लिपटी एक गठरी उठाये हुए था.

जुलूस धीरे-धीरे स्कूल को पार कर गया. हम बच्चों ने अपनी कक्षाएं छोड़ दीं और उत्तेजित हो कर शवयात्रा के पीछे भागने लगे.

★ ★

डोरोथी की मौत के कुछ दिन बाद, मेरी अध्यापिका एक दिन मुझे मेरे घर छोड़ गयी. मेरी आंखें धंसी हुई और पीली थीं. मेरा शरीर ज्वर से तप रहा था. जब तक मैं अपने घर पहुंची, तब तक मैं करीब-करीब मूर्च्छित हो चुकी थी. निस्संदेह मुझे भी चेचक ने घेर लिया था.

मैं नहीं जानती कि अगले कुछ दिनों मेरे साथ क्या हुआ. ज्वर बहुत तेज रहा होगा, लेकिन मुझे इतना जरूर मालूम है कि उन दिनों मैं अपने माता-पिता, अपने घर, घर के पास के अमरूद के वृक्षों तथा अपने कुत्ते फीदो से बहुत दूर थी.

भारी चादरों में लिपटी जहां मैं चटाई पर लेटी थी, वहां से मैं समुद्र की लहरों की आवाज सुन सकती थी. मच्छर मेरे कानों के पास घूं-घूं कर रहे थे. लेकिन मेरी बांहें इतनी कमजोर हो चुकी थीं कि मैं उन्हें हटा भी नहीं सकती थी. कभी-कभी लोग मेरे कानों में कुछ फुसफुसाते थे, लेकिन उनकी भाषा मेरी समझ में नहीं आती थी. तब एक औरत ढिबरी लिये हुए मेरे बंद कमरे में आती थी और गर्म-गर्म, मिर्चों वाली यखनी मेरे गले में उंडेल देती थी. रात में— या जब मुझे लगता था कि रात है— वह औरत मुझे समुद्र-तट पर ले जाती थी, जहां मैं शौचादि से निवृत होती थी. तब वह एक चौड़े पत्ते से मुझे साफ करती थी और समुद्र-जल से मुझे स्नान कराती थी. मुझे कोई दवा नहीं दी जाती थी—सिर्फ यखनी दी जाती थी, काफी मात्रा में. मेरे शरीर के जोड़ों पर ऊली का लेप कर दिया गया था, और बीच-बीच में कोई व्यक्ति आ कर मेरे शरीर पर मीठी-सी महक वाले तेल से मालिश भी कर जाता था.

मैं नहीं जानती, मैं उस अंधेरे कमरे में, मौत के इंतजार में, कितने दिन पड़ी रही. . . .और न ही यह कि वह भयंकर ज्वर कितने दिनों तक मुझे घेरे रहा. लेकिन एक दिन वह दयालु स्त्री, जिसने जाने कितने दिनों तक मेरी सुश्रूषा की थी, मेरे पास आयी. उसने मेरे जर्जर शरीर को उठाया और समुद्र-तट पर, चमकीली धूप में, लिटा दिया.

मेरे चारों ओर की रेत उतनी ही चमकीली थी, जितना मेरे ऊपर चमकता सूरज.

★ ★

मैं ब्रास में रहती थी— बयाफ्रा की खाड़ी के एक द्वीप में, जहां मेरी मां और उनके पूर्वज पैदा हुए थे. अपनी बीमारी के दौरान मैंने जिन औरतों को अस्पष्ट तौर पर देखा और सुना था, वे मेरी दादियां-नानियां थीं, या मेरी मां की चचेरी-ममेरी-मौसेरी बहनें, जिन्होंने मुझे ठीक करने या अपने पूर्वजों के साथ गाड़ देने का बीड़ा उठाया था.

लेकिन मेरी बीमारी खत्म हो चुकी थी. चमत्कार ही हुआ था, क्योंकि तब चेचक के हमले के बाद भी जीवित रह पाना असंभव ही माना जाता था.

अगले दिन मेरी मौसी मुझे घर के पीछे बने झाड़ियों भरे बगीचे में ले गयी—चल पाना मेरे लिए अब भी दूभर था. वहां वह मुर्गियां पालती थी. पिछली रात बोआ नामक सर्प मुर्गियों के दरबे में घुस गया था और उसने एक चूजे को दबोच लिया था. बोआ अभी तक बगीचे में ही था और भोजन के बाद विश्राम कर रहा था. हम दूर खड़े इस विशालकाय सर्प को देखते रहे. एकाएक मेरी मौसी सर्प की आरती उतारने लगी, क्योंकि सर्प ने मेरी जान बचायी थी. 'जीवन के बदले जीवन.' मेरी जान लेने के बदले उसने चूजे की जान ले ली थी.

सर्पों में हमारा विश्वास अटूट था. हमारे टापू के समुद्र-तट और घासों में सर्प बहुत बड़ी संख्या में रहते थे. इनमें से सब से ज्यादा बोआ सर्प ही वहां रहते थे और अपने आकार और इनसानों को कभी दंश न देने के कारण देवता माने जाते थे. बोआ सर्प ही हमारे मृतकों की आत्माओं के रक्षक भी थे.

हम बोआ की पूजा करते थे, क्योंकि हम जानते थे कि यदि बोआ हमसे नाराज हो गया, तो वह ऐसा तूफान ले आयेगा कि हमारा टापू डूब जायेगा. हमें मालूम था कि धरती के चारों कोनों को महान बोआ ने ही अपनी लपेट में ले रखा था और जब भी वह बेचैन होता था, तो समुद्र में भयानक तूफान आ जाते थे.

जब वे हमारे घर में आते थे, तो हम उनका स्वागत करते थे. और जब दिन की तेज धूप में वे बाहर से गुजरते थे तो हम उनका गुणगान करते थे. हम उनके लिए भोजन भी रख छोड़ते थे—इस तरह हम अपने पुरखों को भी भोजन करा देते थे.

लेकिन हमारी आस्थाएं निर्मूल नहीं थीं. हर रोज हमें सर्पों की शक्ति के नये-नये प्रमाण मिलते रहते थे.

★ ★

वह एक सर्द रात थी. सारा दिन समंदर तूफान से घिरा रहा था और अनेक मछुआरे तबाह हो गये थे, क्योंकि उनके जाल हाथों से जाते रहे थे.

मोदू एक बूढ़ा मछुआरा था. उसके दो जवान बेटे उसे छोड़ कर चले गये थे. इस रात तूफानी लहरें जब उसका जाल खींच ले गयीं, तो वह टूट गया. लोग सोचने लगे, वह पागल हो गया है.

मोदू टापू में घूमने लगा—अपने लड़कों, अपनी गरीबी और अपने जाल को ले कर रोता हुआ.

लेकिन हमारे टापू में कुछ भी हो सकता था. और हुआ भी. उस रात जब वह बूढ़ा आदमी सो रहा था, तो एक बोआ इसके घर में घुस आया और उसने अपने आपको तकिये में बदल कर सोते हुए मोदू के सिर के नीचे लगा दिया. बाद में मोदू ने बताया, उसे ऐसा लग रहा था, जैसे उसका सिर रेशम पर टिका हो और जैसे किसी ने उसकी सारी चिंताएं चूस ली हों.

ब्रास के सभी निवासी एक-दूसरे से रिश्ते में बंधे हुए थे. इसलिए हम लोग एक-दूसरे को 'भाई' या 'बहन' कहते थे.

इन बहनों में सेरेना भी थी. वह शादीशुदा थी और अपने पहले प्रसव के लिए, अपने पति के साथ ब्रास आयी हुई थी. सेरेना दिन भर समुद्र-तट पर ही रहती थी और जाल बुनती रहती थी—और रात को सोने के लिए ही घर जाती थी. घर में उसे डर लगता था, क्योंकि घर के ढह जाने का खतरा था.

यूरोपीय लोग जब पहले-पहल पश्चिम अफ्रीका आये थे, तो सबसे पहले वे ब्रास में ही आ कर बसे थे. उन्होंने समंदर की लहरों से टापू को बचाने के लिए बांध बनाना शुरू किया था, लेकिन बांध कभी पूरा नहीं हो पाया. इसलिए धरती के धसकने का सिलसिला निरंतर चलता चला आ रहा था. टापू की अनेक इमारतें इसका शिकार हो चुकी थीं. सेरेना का मकान भी लहरों की जद में आ चुका था. इसीलिए रात को वह गहरी नींद नहीं सो पाती थी.

सेरेना को बहुत-से किस्से याद थे और वह बड़े प्यार से उन किस्सों को बयान करती थी.

वह हमारे साथ बैठ कर ही समुद्र-तट पर खाना खाती थी—दरअसल यह एक तरह का भोज हुआ करता था और हम सब लोग एक ही बड़े-से बरतन में से इकट्ठे बैठ कर खाते थे.

एक दिन दोपहर के भोजन के बाद, जब बड़ी-बूढ़ी औरतें बच्चों को सेरेना के पास छोड़ कर विश्राम करने चली गयीं, तो एकाएक उसे प्रसव-पीड़ा शुरू हो गयी. . .

बच्चे के पैदा होने में अभी काफी देर थी, लेकिन सेरेना एकदम शांत थी; यद्यपि उसके निकट आते मातृत्व ने उसे उस अजीब कहानी की याद जरूर दिला दी होगी, जो उसके अपने जन्म के साथ जुड़ी हुई थी.

बहुत-बहुत समय पहले, जब सेरेना की मां करीब दस साल की थी, तो वह अपनी दो छोटी बहनों के साथ स्नान करने या कपड़े धोने के लिए समुद्र-तट पर आया करती थी.

एक दिन जब तीनों बहनें स्नान कर रही थीं, तो एकाएक छोटी दोनों बहनों को समंदर की लहरें अपने साथ खींच ले गयीं.

चीखो-पुकार की आवाज सुन कर कुछ अन्य स्नान करने वालों ने तैर कर इन बच्चियों की ओर जाना चाहा लेकिन वे दोनों हंस रही थीं—हम किसी दिन लौट कर आयेंगी. वे कह रही थीं, हम तो सिर्फ अपने असली घर लौट कर जा रही हैं!

इस तरह सेरेना की मां ने अपनी दो बहनें खो दी थीं. जैसा कि उन्होंने वादा किया था, बारह बरसों के बाद वे लौटीं जरूर. . .और अब वे अपनी ही बहन के बच्चे बन कर आयी थीं.

सेरेना की मां का प्रथम प्रसव बेहद यातनादायी रहा और अजीब भी. एक दिन उसने सेरेना को जन्म दिया. सेरेना गोरी और सुकोमल थी. फिर एक दिन बाद दो और बच्चे उसके गर्भ से बाहर आये. इन बच्चों को तिड़वां माना जाना चाहिए था, लेकिन

जूजू-कर्ता ने कहा कि बात ऐसी नहीं है. सेरेना की मां को सिर्फ सेरेना को ही जन्म देना था, और शेष दोनों बच्चे, जो काले और चौड़ी हड्डी के थे, और कोई नहीं, सेरेना की मां की वे दोनों बहनें थीं, जो बारह बरस पहले समंदर में खो गयी थीं.

जब सेरेना हमें यह कहानी सुना रही थी, तो उसकी पीड़ा और भी बढ़ गयी. जब दर्द असह्य हो गया, तो सेरेना भाग कर समुद्र-तट पर उगी झाड़ियों के पीछे चली गयी. थोड़ी देर तक कराहों और भारी सांसों की आवाज सुनायी देती रही. और फिर एकाएक शांति छा गयी —लेकिन तभी एक नवजात शिशु के रोने की आवाज ने वातावरण को हिला दिया.

★ ★

मेरी बीमारी के कुछ सप्ताह बाद, एक युवती बीमार पड़ गयी. उसे जलपरियां सता रही थीं, और उसे अपने साथ अपने घर ले जाना चाहती थी.

इस लड़की का रंग बहुत गोरा था और उसके लंबे-सीधे बाल थे. हमारे द्वीपवासियों का विश्वास था कि खूबसूरती समंदर से आती है, इसलिए भी सुंदर लड़कियों की नियति यही थी कि वे युवावस्था में ही मर जायें ताकि वे अपने पूर्वजों की आत्माओं को मुक्ति दिला सकें. ऐसी लड़कियां अकसर भावुक होती थीं. और जरा-जरा सी बात पर उन्हें मूर्च्छा के दौरे पड़ने लगते थे.

इस तरह के दौरे पड़ने पर लड़की के परिवार वाले समझ जाते थे कि अब उसका अपने 'समंदरी' घर को लौट जाने का समय आ गया है. तब वे भोज का आयोजन करते थे, जिसके दौरान लड़की की आत्मा जलमग्न हो जाती थी और 'अपने' परिवार के लोगों से बात करती थी.

भोज के दो या तीन दिन पूर्व लड़की पर बेहोशी का दौरा पड़ता था. तब उसके शरीर पर खड़िया का लेप कर दिया जाता था. उसे हाथों के बने खूबसूरत वस्त्र पहनाये जाते थे और गले में रेशमी रूमाल बांध दिये जाते थे.

तब गीत गाती हुई औरतें इस लड़की को समुद्र तट तक ले जातीं, जहां उससे एक सफेद मुर्गी की बलि देने को कहा जाता. यह बलि उसके जल-परिवार के लिए होती. लड़की ऐसा करने से इनकार कर देती क्योंकि वह मरना चाहती थी. वह बार-बार हाथ छुड़वा कर पानी की ओर दौड़ती ताकि वह उसमें कूद जाये. तब निराश और क्रुद्ध हो कर वह गांव की ओर दौड़ती. आखिर में मुर्गी की बलि के लिए वह मजबूर कर दी जाती : लेकिन उसकी आंखों में अपने रिश्ते-नाते-दारों के लिए गुस्से की लाली होती.

गांववासियों का नाचता-गाता झुंड उसे घेर लेता, पर उसके पांव निरंतर उसे समंदर की ओर भागने को उत्साहित करते रहते.

फिर धीरे-धीरे गीत के स्वर और ढोलक की थाप लड़की को भी नाचने को मजबूर कर देती. जब नृत्य अपने पूरे जोम पर होता तो लड़की इस उत्सव के लिए रखे गये एक विशेष अंडे को कच्चा ही निगल जाती और बेहोश हो कर जमीन पर गिर पड़ती. यही वह क्षण था, जब उसकी आत्मा मुक्त होती और वह अपने जल-परिवार से भेंट कर सकती थी.

उत्सव खत्म हो जाता. उसके संबंधी उसे उठा कर घर ले आते. वह एक सप्ताह तक बेहोश पड़ी रहती. . . फिर धीरे-धीरे सब कुछ सामान्य होने लगता.

★ ★

ब्रास में कुछ महीने बिताने के बाद मैं अपनी दादी के साथ पोर्ट हारकोर्ट जा रही थी. रास्ते में ओकीरीका द्वीप पड़ता था. दादी ने सोचा, वह द्वीप में कुछ खरीदारी करेंगी. लेकिन उनके इरादे को सुनते ही एक नाविक अपने घुटनों के बल बैठ कर दादी से गुजारिश करने लगा—न मां, वहां मत जाओ. . .

दादी बहुत तगड़ी थीं. उन्होंने उसे कॉलर से पकड़ा और बोलीं—चल-चल! मेरे साथ चल!

द्वीप अभी दूर ही था कि हमें वहां अधनंगे मर्दों, बच्चों और औरतों का एक झुंड दिखायी दिया.

दादी खड़ी हो कर ब्रासी भाषा में उनसे बातें करने लगीं. तभी एकाएक वह डरपोक नाविक जोर से चिल्लाया और पानी में कूद पड़ा.

ओकीरीका के वासी—जो अगुवानी के लिए आये लगते थे—नाविक के पीछे - पीछे पानी में डुबकी लगाने लगे. कुछ मिनटों के बाद वे ऊपर आये. नाविक उनके साथ नहीं था. ओकीरीका-वासियों ने हमें बताया कि नाविक पानी में गिरते ही मर गया था और लहरें उसे खींच ले गयी थीं.

लेकिन हमें उनकी बातों पर यकीन नहीं आया.

दादी द्वीप में चली गयीं. द्वीपवासी बहुत गरीब थे. दादी को खरीदने के लिए कुछ दिखायी नहीं दिया—सिवा लाल-लाल गोश्त के बड़े-बड़े टुकड़ों के. आधा दिन भटकने के बाद दादी ने गोश्त ही खरीदने की सोची, लेकिन दूकानदार बहुत ज्यादा पैसे मांग रहा था और दादी का गुस्सा बढ़ता जा रहा था.

आखिरकार दादी चिल्लाने लगीं—अरे भाई, आखिर इस गोश्त में ऐसी क्या खास बात है कि तुम इसे इतना महंगा बता रहे हो?

दूकानदार कुछ नहीं बोला.

—बोलते क्यों नहीं? दादी बोलीं. मुझे लूटना चाहते हो?

—दरअसल यह बहुत अच्छा गोश्त है, दादी मां! तुम समझती क्यों नहीं?

—अब मुझे बनाओ मत! कह कर दादी चलने को हुईं.

—अरे, दादी मां, ले जाओ. ऐसा गोश्त फिर नहीं मिलेगा —आदमी का गोश्त है, आदमी का!. .

. . .हमारा शक सही निकला था. हमारे नाविक का आधा गोश्त तब तक लोगों के पेट में भी पहुंच चुका था. . . □□□

(अनुवाद : विजया)

डीना

• लुई बर्नार्दो होनवाना

मोजांबीक की नयी पीढ़ी के सशक्ततम कथाकार लुई बर्नार्दो होनवाना का जन्म नवंबर, १९४२ में हुआ. पिता पुर्तगाली प्रशासन में दुभाषिये का काम करते थे, फिर भी बेटे को हाई स्कूल तक भी नहीं पढ़वा सके. लुई में आत्म-विश्वास और संघर्ष का माद्दा था. . . और ये दोनों ही गुण उनकी कहानियों में बड़े सटीक ढंग से उभरे हैं. लुई की कहानियां औपनिवेशिक दमन और क्रूरता को बड़ी बेरहमी से उघाड़ती हैं.

● ● ●

मडाला ने झुके-झुके ही दोपहर के बारह घंटे सुने. उसने सर उठा कर देखा, तो दस-बारह कदम की दूरी पर, मकई के गट्ठरों के बीच ओवरसीयर की हरी पतलून दिखायी दी. वह काम करने के अंदाज में झुका रहा. इतनी हिम्मत नहीं हुई कि सीधा खड़ा हो जाये. घंटे बजने के बाद हमेशा ओवरसीयर गालियां देता हुआ चिल्लाता है—— हरामियो, काम बंद करो. .. लेकिन वह अभी तक चुप है. तेज धूप उसकी नंगी पीठ पर चुनचुना रही थी. नाक से टपकती पसीने की बूंदों से वह वक्त का अंदाजा लगाता रहा.

उसने सर उठा कर फिर देखा. . . ओवरसीयर की पतलून अब भी वहीं थी. पीछे गट्ठरों के बीच यहां-वहां दूसरे मजदूर भी काम करते-करते ओवरसीयर के हुक्म का इंतजार कर रहे थे.

'डीना' (खाने) का घंटा बजते ही भूख और भी तीखी हो जाती है. आंतें और भी ऐंठती हैं. गरदन की नसें तो ऐसे तड़कती हैं कि जान ही निकल जाये. वैसे भी मकई के पौधे जड़ से उखाड़ने में बुढ़ापे का सारा कस-बल दुहाई देने लगता है.

एक पौधे का डंठल पकड़ कर उसने झटका दिया. सफेद जड़ें काली मिट्टी बिखेरती बाहर आ गयीं. पौधा उखाड़ने से बन गये गड्ढे से भाप तक नहीं निकल रही. कितनी गरमी है!

ऐसी गरमी और यह काम! फिर बार-बार सांप की तरह लहराता दर्द. ओवरसीयर ने अभी तक काम रोकने के लिए कहा नहीं. पौधा एक तरफ फेंक कर उसने कुछ सुनने की कोशिश की. कुछ नहीं, सिर्फ हवा का एक झोंका खेतों की फुनगियों पर सरसरा गया.

घंटा बजने के बाद से वह आठ-दस पौधे और उखाड़ चुका है. कहीं ऐसा तो नहीं कि ओवरसीयर की आवाज वह न सुन पाया हो!

बाप रे! मडाला दर्द से कराहा. यह दर्द तो जान ही ले कर जायेगा. लेकिन जब तक वह जिंदा रहेगा, इसी तरह चिलचिलाती धूप में काम करते जाना है. ओवरसीयर की गालियां सुननी हैं और पौधे उखाड़ने हैं. . . . तीन, चार, पांच. . . .

पौधा उखाड़ते ही गड्ढे में एक काला बिच्छू रेंगने लगा. उसके पास कुदाली या फावड़ा होता तो वह उसे मार देता. खैर, जाने दो!

बिच्छू का जहर अब वह बर्दाश्त नहीं कर पायेगा. तीन दिन दर्द से तड़प कर चौथे दिन मर जायेगा. सांप भी निकल आते हैं कभी-कभी.

ऐसे ही एक बार खेत में काम करते-करते पितारोसी को सांप ने काट लिया था. बेचारा पानी तक नहीं मांग पाया. वहीं ढेर हो गया. इस दुर्घटना के बाद से उसकी पत्नी सिर्फ शराब के बदले में हर किसी के साथ सोने लगी थी. पूरी बस्ती में सिर्फ मैं ही उसके साथ नहीं सोया, क्योंकि मैं पितारोसी को अच्छी तरह जानता था और फिर मैं बूढ़ा भी तो हो चुका हूं!

नीचे झुकते ही आंतों की ऐंठन कलेजे को चीरती चली गयी. दर्द सहने की कोशिश में उसने अपने जबड़े कस कर भींच लिये.

——साला ओवरसीयर काम रोकने के लिए नहीं कह रहा! वह बुदबुदाया.

★ ★

——चलो, काम बंद करो! ओवरसीयर चिल्लाया.

दस, ग्यारह, बारह. मडाला ओवरसीयर के चिल्लाने के बाद भी पौधे उखाड़ता रहा. वरना ओवरसीयर सोचेगा कि साले को बहुत जल्दी पड़ी है. उसने माथे का पसीना उंगली से समेट कर छिड़का. सीधा होते-होते उसे चक्कर आ गया.

एक-दो मजदूर काम रोक चुके थे. ओवरसीयर उन पर चिल्लाया —— सालो, काम के टाइम खोपड़ी खुजलाते रहते हो. . .घंटा बजते ही डबल तेजी आ जाती है. . . . किये डाओ. . . एक दिन मारते-मारते जान निकाल लूंगा. . . कुत्ते!

फिलिमोन काम रोक कर खड़ा होने जा रहा था. ओवरसीयर को गुस्से में देख कर फिर झुक गया. लेकिन मडाला को देख कर उसे कुछ साहस मिला और वह उस तरफ देखता खड़ा हो गया.

और दूसरे मजदूर ओवरसीयर को घूरते धीरे-धीरे इकट्ठे होने लगे. जिम्मो के पसीने से तर बदन में गुस्से और नफरत की एक लहर दौड़ गयी.

——अब हम खाने के लिए चलेंगे, रजिस्टर बंद करता हुआ ओवरसीयर बोला और बाड़े की तरफ चलने लगा. सभी मजदूर चुपचाप उसके पीछे-पीछे चलने लगे.

मडाला ने चारों तरफ नजर दौड़ायी. यहां-वहां दूर-दूर तक खेतों की हरी चादर फैली थी. बिलकुल समुद्र की तरह.

गोरे लोगों के खेत बिलकुल समुद्र की तरह लगते हैं, उसने सोचा. वह खेतों की समुद्र से तुलना करने लगा. समुद्र में कौन-से पौधे उखाड़ने होते हैं?. . . कुछ पल सोच कर उसने एक उंगली उठायी —— नहीं, खेत समुद्र की तरह नहीं होते.

★ ★

मडाला बाड़े में पहुंचा. दूसरी टोलियों के कई मजदूर खाना खा चुकने के बाद छांव में जाने की

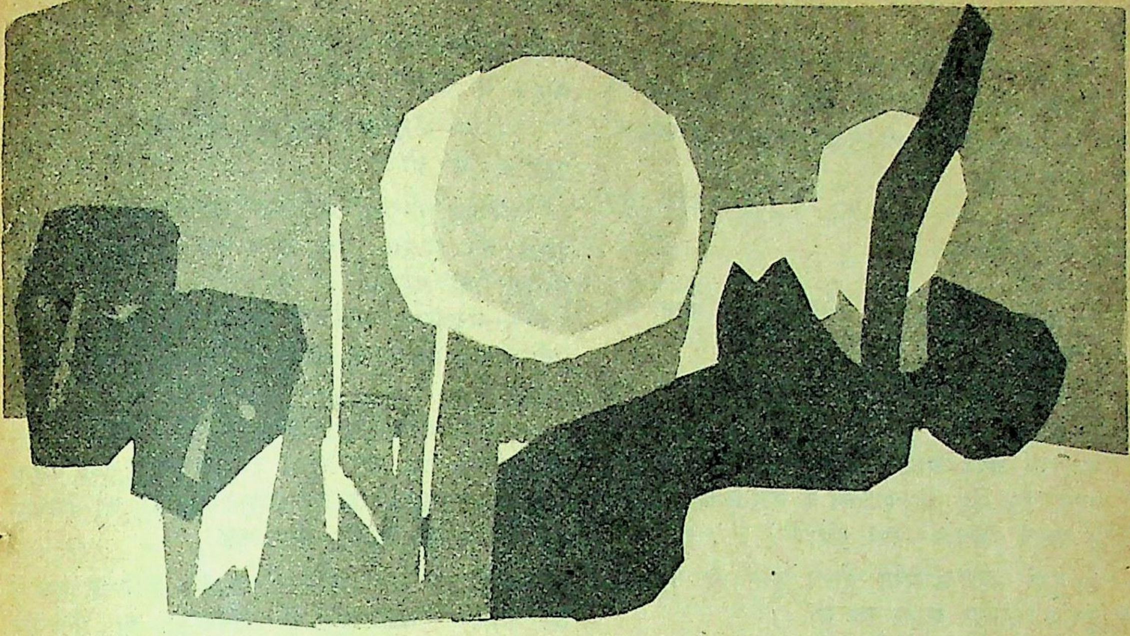

तैयारी में थे. खेतों में कटाई करने वाली टोली को हमेशा देर हो जाती है. उनकी टोली के रसोइये ने अभी देगची चढ़ायी ही है.

आसपास देख कर वह आराम करती श्माल टोली के पास आ कर छांव में बैठ गया.

—मडाला, किसी ने पूछा, तुम्हारी टोली के क्या हाल हैं?

मडाला चुप रहा, क्योंकि जवाब देने से पहले हमेशा वह सवाल को अपने जेहन में दोहराता. फिर सोचे हुए जवाब को मन-ही-मन दोहरा कर तब बोलता.

—धूप बहुत तेज है.

—हां. . . धूप बहुत तेज है. मडाला बुदबुदाया.

—और ऊपर से हर दम खोपड़ी पर सवार ओवरसीयर . . .

मडाला ने बोल रहे लड़के की तरफ देखा.

—ओवरसीयर बहुत हरामी है, लड़का बोला. साला एक मिनट के लिए भी कमर सीधी नहीं करने देता. एक बार ऐसी ही गर्मी थी. और ओवरसीयर भी था. . . . धीरे-धीरे वह अपनी टोली के लोगों की तरफ मुखातिब हो गया.

* *

ओवरसीयर छांव में एक लकड़ी के बक्से पर बैठा था. सामने रखे बक्से पर तरह-तरह के खाने की प्लेटें सजी थीं. पास ही शराब की बोतल थी. वह मजे ले कर खाना खाता और बीच-बीच में शराब के घूंट भरता जाता.

मडाला को याद आया, पिछले महीने उसने भी दोस्तों के साथ अड्डे पर शराब पी थी.

—मडाला! जिम्मो की आवाज् थी. चलो, अब हम भी खा लेते हैं. जिम्मो और नजदीक आ कर बोला, तुम्हारी बेटी मारिया तुमसे मिलने आयी है.

मारिया उसकी तरफ आती दिखायी दी.

—पापा, उसने आवाज दी.

—आ, बेटी. . . मडाला ने पूछा, कैसी है? घर पर सब लोग ठीक तो हैं?

—तुम लोग वहां छांव में जा कर आराम से बातें करो, जिम्मो बोला.

जिम्मो मारिया को बहुत चाहता है, लेकिन मारिया को मालूम है कि वह हर किसी के साथ सो जाती है, इसलिए कोई उससे शादी नहीं करेगा.

—सब ठीक-ठाक तो है घर में? मडाला ने फिर पूछा.

—सब ठीक है, मारिया बोली, तुम कैसे हो, पापा?

—मैं ठीक हूं, बेटी.

आसपास के सभी मजदूर मारिया की तरफ मुसकरा कर उसका अभिवादन करते घूर रहे थे. उनकी नजरें उसके झालरदार फ्रॉक के अंदर धंसती चली जा रही थीं. मारिया को इस तरह सब का घूरना खराब लग रहा था.

—मडाला, चलो, अब खाना खा लो, जिम्मो बोला. अगर ओवरसीयर ने देख लिया कि तुम यहां बातें करने में लगे हो तो. . . .

—नहीं, जिम्मो, तुम खाओ. . . . मडाला बोला, मैं थोड़ी देर अपनी बेटी से बातें करूंगा.

खलिहान के कोने से ओवरसीयर बाहर निकल कर इनकी तरफ आया.

—ए मारिया, वह बोला. तू यहां क्या कर रही है? मडाला को फंसा रही है क्या? लेकिन इसमें तो अब दम रहा नहीं. बूढ़ा हो चुका है. अच्छा तो जिम्मो को फंसा रही होगी.

—मैं किसी को फंसा-वंसा नहीं रही! मारिया बोली. मैं तो उससे पुर्तगाली भाषा में बात करने की कोशिश कर रही थी.

—तो क्या उसके साथ सोयेगी नहीं?

मारिया की नजरें धरती में गड़ गयीं.

मडाला अपनी बेटी का चेहरा देख कर सोचने लगा कि ओवरसीयर की फूहड़ बातों से मारिया को कैसा लगा होगा.

—तुम. . . तुम. . . सहसा मारिया बोली, तुम खाना खाओ जा कर. . . .

—क्यों?

—सुबह से काम पर लगे हो, अब खाना खा लेना चाहिए.

—क्यों, क्या बात है? वह उसकी आंखों में देख कर बोला.

मारिया अपने आप में सिकुड़ गयी. उसने मडाला की तरफ पीठ फेर ली. मडाला ने कंधे छू कर उसका चेहरा सामने किया— क्या हुआ?

—कुछ नहीं, मारिया बोली. कुछ भी तो नहीं. बस तुम जाओ और खाना खा लो.

—लेकिन मुझे तो बिल्कुल भूख नहीं है, उसने हवा में हाथ फैलाये. . . . बिल्कुल नहीं. . . लेकिन क्या तुझे खाना नहीं खाना है?

—नहीं, मारिया ने कहा, मुझे नहीं खाना. . . मैंने खा लिया है, कैंटीन में एक दोस्त मिल गया था. उसने बहुत खिला दिया.

—मडाला, मारिया ठीक कहती है! जिम्मो की आवाज थी.

—अच्छा ठीक है, मडाला उठता हुआ बोला. मैं खा कर आता हूं.

मडाला जिस जगह पर बैठा रोटी खा रहा था, वहां से मारिया दिखायी दे रही थी. वह लगातार उस तरफ देखे जा रहा था, पर उसे पता ही नहीं चला कि कब ओवरसीयर आ कर मारिया से बातें करने लगा है.

मडाला को खेद हुआ कि वह उनकी बातें नहीं सुन पा रहा. उसने सोचा, जब आदमी किसी औरत के साथ सोना चाहता है, तो क्या कहता होगा?

थोड़ी देर तक ओवरसीयर मारिया से बातें करता रहा. फिर एक तरफ चल दिया. कुछ देर बाद मारिया भी उसी दिशा में चल पड़ी.

मडाला ने उंगलियां चाट कर बालों में हाथ फेरा. खेतों में वापस जा कर जूझने में अभी थोड़ी देर थी. मडाला उस जगह पर आ कर बैठ गया, जहां कुछ देर पहले तक क्राल टोली बैठी थी.

थोड़ी देर पहले जिस लड़के ने मडाला से बात करने की कोशिश की थी, बोला —मडाला, तुम्हारी बेटी वहां, पीछे, ओवरसीयर से बातें कर रही है.

टोली के मुखिया को यह बात अच्छी नहीं लगी. लड़के को सुना कर बोला—जब किसी की समझ में कुछ न आये, तो चुप ही रहना चाहिए.

घुटन भरी खामोशी छा गयी. अपने पांवों के पास एक पौधे के डंठल को मडाला ने मुट्ठी में भींच लिया. अनजाने झटके में पीछे की जड़ें मिट्टी फोड़ कर बाहर आ गयीं.

—क्या मैं तुम्हारे लिए कुछ कर सकता हूं? जिम्मो पास आ कर बोला.

मडाला चुपचाप खेतों की तरफ जाते हुए उस रास्ते को घूरता रहा, जिस पर ओवरसीयर और मारिया जा रहे थे.

—मडाला, जिम्मो बोला, क्या तुम्हें कुछ भी नहीं लगता कि तुम्हें हमसे कुछ करने के लिए कहना चाहिए?'

मडाला ओवरसीयर और अपनी बेटी को जाते हुए देखता रहा. उसे लगा कि जिम्मो से कुछ कहना चाहिए. पर उसने सवाल दोहराया नहीं था, इसलिए उसे नहीं मालूम कि वह क्या कहे.

थोड़ी देर बाद ओवरसीयर की पूरी देह खेतों में खो गयी. . . मारिया भी लड़खड़ा कर धीरे-धीरे वहीं डूब गयी. पौधों में एक हलचल हवा के झोंके के साथ शांत हो गयी.

—मडाला! जिम्मो ने डांटा. उधर मत देखो.

मडाला के भीतर ही कुछ ऐंठ कर रह गया, लेकिन यह उस दर्द की ऐंठन नहीं थी, जो आंतों को ऐंठती कलेजे को चीरती चली जाती है.

काट खाने वाला सन्नाटा छा चुका था. किसी की हिम्मत मडाला की तरफ देखने की नहीं हो रही थी. लड़के के चेहरे पर अजीब-सी सख्ती थी.

एक-एक करके मडाला काल्पनिक पौधे की पत्तियां नोचने लगा. उसे यह सोच कर रुलाई आ गयी कि बुढ़ापे और बीमारी ने उसके हाथों में इतनी ताकत भी नहीं छोड़ी कि वह काल्पनिक पौधे को जड़ से उखाड़ फेंके, जिसकी जड़ें खेतों के पौधों से भी गहरी धरती में पैठी हैं.

होइंग टोली और कई टोलियों के मजदूर मडाला के आसपास इकट्ठे होने लगे.

* *

खेतों के समुद्र की सतह पर ओवरसीयर का धड़ बाहर आता दिखा. वह दोनों हाथों से रास्ता बनाता इस तरफ आने लगा.

थोड़ी देर बाद मारिया भी दिखायी दी. उसने अपने फ्रॉक और बदन से घास-फूस और मिट्टी झाड़ी और बच-बच कर खलिहान की तरफ आने लगी.

सन्नाटा गहरा गया था. क्राल टोली के मजदूर मारिया को रास्ता देने के लिए इधर-उधर हट गये.

—मडाला! उस लड़के ने कहा. जहां तुम काम करते हो, वहां तो बहुत तेज धूप है.

—हां, बेटे, मडाला बोला. . . . . बहुत तेज धूप है.

सन्नाटा तोड़ने की यह कोशिश बेकार गयी. खामोशी और पैनी होती चली गयी.

—मडाला, वह लड़का फिर बोला, बोलो, मडाला हमें क्या करना चाहिए? आज यहां इस सब का

फैसला हो जाये. ये लोग ज्यादा से ज्यादा हमें जान से मार देंगे. . . . लेकिन हम मरने से नहीं डरते. . . . बोलो, मडाला, कुछ तो बोलो. हमें अभी कुछ करना चाहिए.

सहमति की एक फुसफुसाहट वहां खड़े मजदूरों में फैल गयी.

—हम सब ने देखा है कि उसने तुम्हारी आंखों के सामने तुम्हारी बेटी के साथ क्या किया! कुछ तो बोलो, मडाला, इस तरह हम कब तक सहते रहेंगे?

लड़का चुप हो कर मडाला की बुझी आंखों में विद्रोह की चिंगारी तलाशने लगा.

* *

टिकटी से बाहर आ कर ओवरसीयर ने आसपास देखा और एक तरफ बैठी मारिया की गोद में चांदी का एक सिक्का उछाल दिया.

—यह रही तुम्हारी फीस!

मारिया सिक्का झटक कर खड़ी हो गयी. दोनों हाथों से छाती ढंक कर कंधे भींच लिये.

—क्या हुआ? ओवरसीयर को आश्चर्य हुआ. पैसे नहीं चाहिए क्या?

—क्यों? मारिया ने चेहरा दूसरी तरफ कर लिया. तुमने ऐसा क्यों किया?. . . मडाला ने देख लिया. वह बुदबुदायी.

—लेकिन तुझे हुआ क्या है? ओवरसीयर बोला. तुझे डर है कि लोगों को पता लग जायेगा कि तू धंधा करती है. क्यों?

गरदन झटक कर मारिया गुस्से में बोली—मडाला बाप है मेरा!

—क्या? सहसा ओवरसीयर का चेहरा पीला पड़ गया. मुझे पता ही नहीं था कि तुम मडाला की बेटी हो. वह बोला, कसम से, मडाला. . . . मुझे मालूम ही नहीं था कि तुम्हारी कोई बेटी भी है. . . सच. . . ! मडाला आज तुम आराम करो. . . छुट्टी. . . जाओ. . .

कोई कुछ नहीं बोला. खामोशी ओवरसीयर के दिल में डर पैदा करने लगी थी.

—साला मुझे कैसे पता लगता कि यह मडाला की बेटी है! ओवरसीयर मजदूरों की तरफ देख कर बोला. मुझे सपना आता था क्या?

वह मडाला की तरफ बढ़ा.

—मडाला, मैं तुम्हें पैसे दूंगा. . . . तुम अपनी बेटी के साथ कैंटीन में खाओ-पियो जा कर.

मडाला का चेहरा झुका ही रहा. ओवरसीयर बड़बड़ाता हुआ एक तरफ चला गया.

—मडाला, क्राल टोली का वह लड़का फिर बोला, हम सबने देखा है कि ओवरसीयर ने तुम्हारी बेटी के साथ क्या किया है. हमें कुछ करना चाहिए.

मजदूर लड़के की बात से सहमत थे.

ओवरसीयर आड़ से बाहर निकल कर आया. उसके हाथों में शराब की एक बोतल थी.

—चलो, सब अपने-अपने काम पर! वह बुत की तरह खड़े हुए मजदूरों को देख कर चिल्लाया. चलो टाइम हो गया है. क्राल टोली मवेशियों को पानी पिलायेगी. . . . होइंग टोली मेरे साथ आयेगी.

मजदूरों में कोई हरकत नहीं हुई.

—तुम लोगों ने सुना नहीं, हरामियो. . . ! वह चिल्लाया. घंटा बज चुका है. सुना नहीं, कामचोरो! उसने शराब की बोतल ऊपर उठायी. मडाला! वह बोला.

मडाला खड़ा हो गया. ओवरसीयर ने शराब की बोतल मडाला की तरफ बढ़ायी. मडाला ने उसके हाथ से बोतल ले ली.

सभी मडाला की तरफ देख रहे थे. लड़के ने मडाला के पास जा कर कुछ कहना चाहा. —मडाला, तुम. . .

मडाला ने आसपास खड़े मजदूरों को देखा. और एक ही सांस में पूरी बोतल खाली कर दी. खाली बोतल उसने ओवरसीयर को वापस कर दी.

—चलो, हरामखोरो. . . ! काम पर चलो! ओवरसीयर चिल्लाया.

खामोशी हार में बदल चुकी थी. बुत हिलने लगे थे. मारिया चुपचाप सब देखती रही.

ओवरसीयर बोतल को गरदन से पकड़ कर बड़बड़ाया—हरामी काले!

क्राल टोली के उस लड़के ने मडाला के सामने आ कर जमीन पर थूक दिया—कुत्ता! वह बोला.

मडाला उसे नजरअंदाज कर खेतों की तरफ जाते रास्ते पर चल दिया. दूसरे मजदूर भी उसके पीछे चल पड़े.

ओवरसीयर फिर चिल्लाया.

लड़का अब तक खड़ा था. ओवरसीयर ने बोतल लड़के के सर पर फोड़ दी.

—सुना नहीं, मां के यार!. . .

वह हिला तक नहीं. . . दूसरे वार में लड़के का सर फट गया. लड़का लहरा कर गिरा. ओवरसीयर उसके चेहरे पर बूट की ठोकर मारता हुआ बोला—साला. . . रंडी की औलाद!

* *

मडाला फिर पौधे उखाड़ने लगा था. दर्द फिर कलेजे को चीर गया था.

उखाड़े हुए पौधों को वह इकट्ठा करने लगा—तेरह. . . चौदह. . . पंद्रह. . . □□□

(अनुवाद : हृदय लानी)

शहीद

जब अपने ही घर में मिस्टर और मिसेज गैस्ट्रौन की डाकुओं द्वारा हत्या कर दी गयी, तो वह समाचार अत्यंत चर्चा का विषय बन गया. रेडियो, टेलीविजन, अखबार सब का ही वह मुख्य समाचार था. वह प्रथम अंग्रेज परिवार था जो समस्त देश में फैले विद्रोह की आग का शिकार हुआ था. इंडियन-बाजार, अफ्रीकन-ड्यूक. प्रत्येक स्थान पर वही चर्चा थी. उस हत्या के भिन्न-भिन्न अनुमान लगाये जा रहे थे.

इस हत्या की सबसे अधिक चर्चा, एक ऊंची पहाड़ी पर बने श्रीमती हिल के एकाकी घर में हो रही थी जिनके पति की पिछले वर्ष यूगांडा की यात्रा में, मलेरिया के प्रकोप में, मृत्यु हो गयी थी.

उनकी लड़की और लड़का इंगलैंड में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे. अनेक बर्षों से वहां रहने के कारण व अनेक चाय के बगीचों की मालिक होने के कारण मिसेज हिल का काफी आदर किया जाता था, भले ही वे कुछ लोगों द्वारा पसंद नहीं की जाती थीं. उसका कारण यह था कि उनका व्यवहार वहां के निवासियों के प्रति अत्यंत नम्र था. जब हत्या के दो दिन पश्चात, मिसेज स्माईल और मिसेज हार्डी उसी विषय पर, बहस करने आयीं, तो उनके चेहरे पर उदासी और विजय दोनों का ही मिला-जुला भाव था. उदासी का भाव तो स्वभाविक रूप से ही, उस यूरोपियन पति-पत्नी की मृत्यु के कारण था. लेकिन विजय का भाव इसलिए था कि मिसेज हिल के समक्ष इन नीग्रों की स्पष्ट रूप से प्रकट होड़ थी. अब मिसेज हिल यह नहीं कह सकेंगी कि आदिवासी लोगों को शिक्षा और नम्र व्यवहार द्वारा सभ्य और सुसंस्कृत बनाया जा सकता है.

मिसेज स्माईल्स एक अधेड़ उम्र की मिशनरी थीं, जिनके चेहरे पर हमेशा यह भाव रहता था कि उन्हीं यूरोपियन लोगों के कारण ही इस असभ्य देश में सभ्यता का प्रचार हुआ है. और वह नीग्रो लोगों को बार-बार इस सत्य का स्मरण करवाना भी नहीं भूलती थीं.

मिसेज हार्डी एक सीधी स्त्री थी जिसका किसी विषय पर अपना कोई भी व्यक्तिगत मत नहीं था. वह हर एक की हां में हां मिलाती थी.

जब मिसेज हिल ने कहा कि हमें उनसे सिर्फ नम्रता का व्यवहार करना चाहिए, अब मेरे ही नौकरों को देखिये, वे सब मुझसे स्नेह करते हैं तो मिसेज हार्डी ने एकदम स्वीकृति प्रदान की.

मिसेज हिल ने कुछ मकान बनवा दिये थे और एक बच्चों का स्कूल खोल दिया था, भले ही वहां अध्यापक नहीं के बराबर थे और बच्चे अधिक समय उन्हीं के चाय के बगीचों में ही काम करते थे.

——यह एक भयानक कृत्य है, मिसेज स्माइल्स ने अत्यंत कटुता से कहा. मिसेज हार्डी ने अपनी स्वीकृति दी——और मिसेज हिल तटस्थ रहीं.

——उन्होंने इतना जघन्य कृत्य किस प्रकार किया? हमीं ने उन्हें सभ्य बनाया. दास-प्रथा और कबीलों के आपसी युद्ध बंद करवाये. इससे पूर्व वे कितना दयनीय जीवन जी रहे थे! मिसेज स्माईल्स को आज अपनी वक्तृत्व-शक्ति दिखाने का अवसर मिला था. फिर वे उदास स्वर में बोल उठीं——लेकिन मैं हमेशा ही कहती आयी

•जोसुआ म्आंगी करुकी

कि ये जंगली कभी सभ्य हो ही नहीं सकते.

—हमें उनके प्रति कुछ ज्यादा सहनशील होना चाहिये, मिसेज हिल ने पुनः कहा.

—सहनशील, सहनशील! सहनशीलता की भी एक सीमा होती है. क्या गैस्ट्रोन्स से भी ज्यादा कोई सहनशील हो सकता है? और वे ही मारे गये! मिसेज स्माईल्स ने क्रोध भरे शब्दों में कहा.

—और नौकर ने, उन्हें अपने शयन-कक्ष से बाहर बुलाया और फिर मार डाला.

—सच?

—यह सब आज के अखबार में था.

मिसेज हिल अपराध की भावना से भर कर इधर-उधर देखने लगीं क्योंकि उन्होंने आज का अखबार ही नहीं पढ़ा था.

चाय का समय हो गया था और वे रसोई में नौकर से चाय के लिए कहने चली गयीं.

शीघ्र ही जोर्ज चाय ले कर आ गया. जोर्ज उनके घर में दस वर्ष से नौकर था.

—ये लोग ऊपर से कितने भोले लगते हैं, मिसेज स्माईल्स ने कहा.

—हां, बिल्कुल फूल की तरह! लेकिन अंदर जो सांप है, वह! मिसेज स्माईल्स ने शेक्सपीयर का उद्धरण देते हुए कहा.

—यह मेरे यहां पिछले दस वर्षों से कार्य कर रहा है. बहुत ही नेक है और मुझे बहुत चाहता है. मिसेज हिल ने अपने नौकर का पक्ष लेते हुए कहा.

—लेकिन मुझे यह बिल्कुल पसंद नहीं है, विशेषकर इसके चेहरे का भाव.

—मुझे भी!

काफी देर तक वे तीनों, हत्या-कांड, सरकार की नीति और समसामयिक-विद्रोह की भावना पर चर्चा करती रहीं. और जब वे दोनों स्त्रियां चली गयीं, मिसेज हिल देर तक हत्या के बारे में सोचती रहीं. आज उन्हें पहली बार इस बात का एहसास हुआ कि वे इस ऊंची पहाड़ी पर नितांत अकेली हैं. लेकिन उनके पास एक पिस्तौल है, सोच कर काफी ढ़ाढस बंधा.

* *

रात का खाना खत्म करके जोर्ज बाहर चला गया. वह एक छोटी-सी पगडंडी से हो कर, अपने क्वार्टर्स की ओर चलने लगा. उसने रात्रि के सन्नाटे और स्वयं के अकेलेपन के बोध को कम करने के लिए सीटी बजाने का प्रयत्न किया. लेकिन तभी एक उल्लू के रोने की आवाज सुनाई दी.

वह रुक गया, और एक क्षण के लिए स्तब्ध खड़ा रह गया. आगे अंधकार में वह कुछ नहीं देख पा रहा था. लेकिन पीछे, मेम साहब का शानदार बंगला बत्तियों से चमक रहा था. उसने क्रोध से उधर देखा और उसे सहसा लगा कि वह बहुत बूढ़ा हो रहा है. तुम! तुम! मैं तुम्हारे साथ इतने वर्ष से कार्य करता आ रहा हूं और तुमने मेरी यह हालत बना दी है. मेरी ही जमीन पर, तुम आराम से रह रही हो. मैंने तुमसे बदले में क्या पाया? जोर्ज जोर-जोर से चिल्ला कर यह सब और और भी बहुत-सी बातें कह देना चाहता था, जो वर्षों से उसके हृदय में संचित हो गयी थीं.

फिर उल्लू के रोने की आवाज सुनाई दी.

यह उसके लिए एक सूचना है, उसने सोचा और पुनः उसकी समस्त आत्मा विद्रोह कर उठी—उन सब लोगों के प्रति जिनकी सफेद चमड़ी थी. और उन सब विदेशियों के प्रति जिन्होंने उसके देश को हथिया लिया था.

उसे याद आया कि उसका पिता किस प्रकार, अपने अधिकारों की मांग करता-करता मारा गया था जब कि वे सब लोग शांतिपूर्ण उपायों द्वारा अधिकारों की मांग करते हुए जलूस निकाल रहे थे. तब से जोर्ज को अपनी जीविका कमाने के लिए गहरा संघर्ष करना पड़ा है. इधर-उधर नौकरी के लिए भटकते हुये, अंत में यहां पुनः लौट आया था. यह जमीन जो अब मिसेज हिल ने हथियाई है, उसी के पूर्वजों की है. अकाल के समय उसके पिता को अपने परिवार-सहित, कुछ समय तक, अपने गांव चले जाना पड़ा था. वापस लौटने पर, यह जमीन उनके हाथ से निकल गयी थी. तब वह बहुत छोटा था लेकिन उसे अपने पिता के शब्द याद हैं—'याद रखना कि यह जमीन तुम्हारी है. धैर्य रखो. जब ये यूरोपियन चले जायें तो पुनः अपनी जमीन के लिए संघर्ष करना.'

जोर्ज को मिसेज हिल बिल्कुल पसंद नहीं थीं. विशेषकर उनका हर समय यह बखान करना कि उन्होंने अपने कर्मचारियों के लिए कितना-कुछ किया है. उसने मिसेज स्माईल्स और मिसेज हार्डी की तरह, निर्मम स्त्रियों के साथ भी काम किया है. लेकिन इन स्त्रियों के साथ उसे व्यवहार भी करना आता था. लेकिन मिसेज हिल जैसी स्त्री का साथ, जो अपने अत्यंत नम्र व्यवहार का प्रदर्शन करती थी, उसे परेशानी में डाल देता था. जोर्ज अपने देश में बसने वाले सभी लोगों से घृणा करता था. उसे सबसे ज्यादा चिढ़ थी, उनके इस प्रदर्शन से और उसमें निहित आत्म-संतोष से, कि वे नीग्रों के साथ बहुत सहानुभूतिपूर्ण हैं, मित्रतापूर्ण हैं. ऐसी स्त्री के साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जाय, यही समझना कठिन है.

अचानक वह जोर-जोर से बोलने लगा—मैं उनसे घृणा करता हूं, बेहद घृणा करता हूं! और तभी वह एक आत्मसंतोष से भर उठा. आज रात मिसेज हिल के मरने की बारी है. कम-से-कम एक यूरोपियन तो कम होगा.

वह अपने कमरे में आया. अन्य सब कर्मचारियों के घर की बत्ती बंद हो चुकी थी. कुछ सो गये होंगे और कुछ पास की दुकान पर बीयर पीने गये होंगे. उसने अपने कमरे में बत्ती जलाई. अपने बिस्तर पर बैठ कर, यदि वह बांह फैलाये, तो वह करीब-करीब सभी

दीवारों को छू सकता है,तब भी वह यहां अपनी दो पत्नियों और अनेक बच्चों के साथ रह रहा है. तब भी मिसेज हिल सोचती हैं कि सिर्फ ईंटों का यह छोटा-सा कमरा बनवा कर उन्होंने अपने नौकरों के लिए बहुत-कुछ कर दिया.

जब भी उनके यहां कोई मेहमान आता था, तो वह पहाड़ी के एक कोने में खड़ी हो कर, इन मकानों को दिखाया करती थी. 'बहुत अच्छे हैं न !' वे पूछा करती थीं.

यह सोच कर कि आज रात उनको, अपने इन सब कृत्यों का फल मिल जायेगा, वह पुनः मुसकरा उठा. उसने अपने परिवार को पहले ही गांव भेज दिया था, ताकि उन पर कोई विपत्ति न आये.

अन्य लड़के भी अब आने ही वाले होगें. फिर वह उन्हें मिसेज हिल के मकान तक ले जायेगा. वह एक अत्यंत जघन्य कृत्य होगा. लेकिन वह सब कितना आवश्यक है.

उल्लू के रोने की आवाज अब और भी तेज हो गयी थी. यह एक बुरा शगुन होता है. वह फिर मेम साहब के बारे में ही सोचने लगा. वह मेम साहब व मास्टर के साथ इतने लंबे अरसे तक रहा है. वह जानता है कि वह अपने पति को बहुत प्यार करती थी और उनकी मृत्यु की सूचना पा कर वह विक्षिप्त-सी हो गयी थी. तब उसे उस पर दया करने का अवसर मिला था, सिर्फ तब. दोनों बच्चे भी उसी के सामने बड़े हुए थे. मिसेज हिल का अपने बच्चों से भी गहरा लगाव था.वह उन बच्चों के बारे में सोचने लगा, जो इंगलैंड में बिना मां-बाप रहते होंगे.

* *

और तब उसे सहसा लगा कि वह मिसेज हिल को नहीं मार सकेगा. मिसेज हिल उसके सम्मुख सिर्फ मां के रूप में आ कर खड़ी हो गयी. वह एक मां को नहीं मार सकेगा. उस परिवर्तन के लिए स्वयं से वह घृणा कर उठा.उसने अपने उस व्यक्तित्व को पुनः उभारने का प्रयत्न किया, जो उस औरत से तीखी नफरत करता था लेकिन वह असफल रहा. उसने कभी उन्हें मां के रूप में देखा ही नहीं था.

इन क्षणों में उसे क्या हो गया है? वह जानता है कि वह हमेशा वैसी ही रहेंगी--- एक अनावश्यक अधिकार जमानेवाली, झूठा प्रदर्शन करने वाली स्त्री. और तभी उसे इस बात का भी एहसास हुआ कि उसका व्यक्तित्व विभाजित हो गया है, और शायद वह हमेशा वैसा ही रहेगा. वह दस वर्षों का संबंध एकाएक समाप्त नहीं कर पायेगा, यद्यपि वे वर्ष उसके लिए सिर्फ दर्द और अपमान के वर्ष थे. वह प्रार्थना करने लगा कि इस संसार में कभी अन्याय न हो और तब काले और गोरे के मध्य यह दूरी भी नहीं होगी और वह या कोई भी व्यक्ति इस प्रकार के मानसिक-संघर्ष में भी नहीं रहा करेगा.

अब वह क्या करे? क्या वह लड़कों को धोखा दे? वह वहां अनिश्चय की स्थिति में बैठा रह गया. काश, उसने उस स्त्री को मां के रूप में न देखा होता!

वह घर से बाहर निकल आया.

जोसुआ म्‌आंगी करुकी केन्या के उन साहित्यकारों में से हैं, जिन्होंने अफ्रीकी पारंपारिक मूल्यों और यूरोपीय सभ्यता से उनके टकराव को अपनी रचनाओं में रेखांकित किया है. करुकी की कहानियां अजीब-सी करुणा जगाती हैं.

● ● ●

चारों तरफ गहन अंधकार था, और वह स्पष्ट कुछ भी नहीं देख पा रहा था. आकाश के तारे भी मानों उसी के निर्णय की प्रतीक्षा कर रहे थे. तभी उसे एक प्रबल शक्ति ने मानों मिसेज हिल के मकान की ओर पुनः जाने को प्रेरित किया. उसने उन्हें बचाने का निश्चय कर लिया था.

समय बहुत कम था. वैसे भी देर हो चुकी थी और लड़के किसी भी समय आ सकते थे. अतः वह तेज भागने लगा. सड़क पर उसे कुछ पैरों के चलने की आवाजें आयीं. वह झाड़ी के पीछे छिप गया. जब वे लड़के आगे निकल गये, तो वह पुनः चलने लगा. फिर उसे अपने इस धोखे से नफरत हो गयी.

* *

अंत में पसीने से भरा हुआ, वह मिसेज हिल के घर तक पहुंचा. दरवाजा खटखटाता हुआ वह जोर-जोर से चीखने लगा---मेम साहब! मेम साहब!

मिसेज हिल अभी बिस्तर पर नहीं गयी थीं. वह बुरी तरह चौंक उठीं. उनके मस्तिष्क में विचारों का तांता छिड़ गया. दोपहर की बातचीत के पश्चात वह स्वयं को बहुत असुरक्षित अनुभव कर रही थीं. जोर्ज के जाते ही उन्होंने अल्मारी से अपनी पिस्तौल निकाल ली थी, और वही इस समय उनके हाथ में थी. उन्हें तैयार रहना चाहिए. पति की मृत्यु से वे किस प्रकार अकेली रह गयी हैं!

अपने पुराने दिनों की याद करते हुए वे बार-बार आहें भर रही थीं. उसने, उसके पति ने और अन्य बाहर से आये व्यक्तियों ने इस जमीन पर अधिकार जमा कर, इसे निर्वासित किया है. जार्ज जैसे व्यक्ति अब, आपसी कबीलों के युद्ध की चिंता से मुक्त हो कर शांति से अपना जीवन बिता रहे हैं. उन्हें यूरोपियनों को धन्यवाद देना चाहिए. तो भी उसे वे राजनीतिज्ञ बिल्कुल पसंद नहीं, जो इन आज्ञाकारी और परिश्रमी लोगों को बिगाड़ने चले आये हैं. उन्हें गेस्ट्रोन्स की हत्या से भी बहुत धक्का लगा है. और फिर जब उन्हें इस सत्य का एहसास होता है कि वे इस घर में नितांत अकेली हैं, तो वे सोचती हैं कि उनके लिए अच्छा होगा कि वे कुछ दिनों के लिए नैरोबी अपने मित्रों के पास चली जायें.

लेकिन तब वे अपने लड़कों का क्या करें? क्या उन्हें यहां अकेला छोड़ दें? वे जोर्ज के बारे में सोचने लगीं. वह एक अजीब-सा लड़का है. क्या उसकी बहुत-सी पत्नियां हैं? क्या उसका बड़ा परिवार है? वह यह सोच कर आश्चर्य-चकित रह गयीं कि जार्ज उनके साथ इतने वर्ष तक रहा, तो भी, इन बातों के बारे में

नौकर को, बच्चों का पिता सोचते हुए बहुत अजीब-सी अनुभूति हो रही थी. फिर उन्होंने एक ठंडी आह भरी. यह एक गलती थी. अब भविष्य में वे इस बात का ध्यान रखेंगी.

* *

तभी उन्होंने दरवाजे पर दस्तक सुनी. उनका नौकर. उनका चेहरा पसीने से भर उठा. लड़का क्या कह रहा है? वे कुछ नहीं सुन सकीं. गैस्ट्रोन की हत्या की सारी स्थिति उनके सम्मुख स्पष्टता से खड़ी हो गयी. अब उनका अंत सामने है. जोर्ज अन्य डाकुओं के साथ उनकी हत्या का षड्यंत्र रच रहा था. वे कांपने लगीं और स्वयं को अशक्त महसूस करने लगीं.

लेकिन तभी उनके अंदर शक्ति मानो पुनः वापस लौट आयी. वे जानती थीं कि वे यहां अकेली हैं. वे शीघ्र ही दरवाजा तोड़ कर अंदर आ जायेंगे. नहीं, वे वीरता से मरेंगी. उन्होंने पिस्तौल को कस कर पकड़ लिया और दरवाजा खोल कर, एक फायर किया.

तभी उनके सिर में जोर से चक्कर आ गया. उन्होंने प्रथम बार एक आदमी को मारा है. वे स्वयं को अत्यंत अशक्त महसूस करने लगीं और रोती-रोती गिर पड़ीं——आओ और मुझे मार डालो! उन्हें यह नहीं पता था कि उन्होंने अपने ही रक्षक को मार डाला है. जोर्ज मर गया था.

अगले दिन वह समाचार सब अखबारों में छपा——'एक अकेली स्त्री ने पचास डाकुओं का वीरता से मुकाबला किया. सबसे आश्चर्य की बात तो यह कि उनमें से एक को मार भी डाला.'

मिसेज स्माईल्स और मिसेज हार्डी बधाई देनेवाली प्रथम महिलाएं थी.

——हम कह रहे थे न कि सब बुरे हैं.

——वे सब बुरे हैं! मिसेज हार्डी ने स्वीकृति दी और मिसेज हिल चुप रहीं. सारी परिस्थिति उन्हें अभी तक भयानक लग रही थी. जितना ही वे उसके बारे में सोचतीं, उतना ही, वे चकित हो रही थीं.

वे क्षितिज में सूनी-सूनी निगाहों से देखती रहीं. फिर धीरे से एक आह भर कर बोलीं——मुझे लगता है, मैं जोर्ज को समझ नहीं सकी.

——इन सबको बेंतो से मारना चाहिए. मिसेज स्माईल्स उत्साह से बोलीं.

——सच ही सबको खूब मारना चाहिए मिसेज हार्डी ने स्वीकृति दी.

लेकिन शायद यह कभी कोई नहीं समझ सकेगा कि जोर्ज एक शहीद था. न ही कभी किसी को यह पता चल सकेगा कि मिसेज हिल को अंदर ही अंदर अत्यंत ग्लानि हो रही थी. □□□

(अनुवाद : इंदु रायजादा)

कांगो की लोककथा

खतरों से खेलने वाली

कबाइली सरदार की बेटी नार्मबिडे को उसके पिता ने बहुत-कुछ समझाया-बुझाया कि वह ब्याह कर ले, किंतु उसने कहा कि जब तक वह भयानक तथा रहस्यपूर्ण मानी जानेवाली लूआन नदी की यात्रा नहीं कर लेती, ब्याह की बात सोच भी नहीं सकती. और सखी-सहेलियों को ले कर वह नदी तट पर जा पहुंची.

अभी वे सब नदी की धारा में स्नान कर ही रही थीं कि उनके वस्त्र रहस्यपूर्ण ढंग से गायब हो गये. कपड़े वापस पाने के लिए वे दैत्य की स्तुति करने लगीं. धीरे-धीरे उनके वस्त्र नदी तट पर पुनः दिखने लगे. किंतु गर्विता नार्मबिडे ने कहा—— मैं किसी दैत्य से भिक्षा नहीं मांगूगी ! अभी उसने यह कहा ही था कि एक विकराल दैत्य प्रकट हुआ और उसे उठा ले गया.

लड़कियों ने भाग कर कबाइली सरदार को सारी बात सुनाई किंतु वहां पहुंचते ही उसे तथा उसके समूचे बल को वह दैत्य निगल गया. सोबाविली गड़रिये के दो सुंदर जुड़वां बालक भी उसके शिकार हो गये. गड़रिये ने घर आकर जब यह समाचार सुना तो दैत्य की खोज में निकल पड़ा. थोड़ी दूर जाने पर उसने दैत्य को एक खेत में पड़े देखा. सोबाविली ने छुरे से उसका गला काट डाला और सभी बाहर आ गये.

अब नार्मबिडे ने जिद पकड़ ली कि वह सुप्रसिद्ध सर्प-पुरुष से ही ब्याह करेगी. दुरूह यात्रा के बाद वह मनयोका के घर पहुंची, सर्प-पुरुष की जो माता थी. मनयोका उस कबाइली सरदार की पत्नियों में एक थी जिसके सात बेटे थे. जब मनयोका ने अपने एक सुंदर बालक को जन्म दिया तो अन्य उसे एक जंगल में छोड़ आये थे.

जिद्दी नार्मबिडे वहीं पास की झोपड़ी में रहने लगी. हर रात वह थाली में भोजन रखती और सबेरे उसे गायब पाती. एक रात को मध्य रात्रि में कोई झोपड़ी में घुसा और भोजन करने लगा. नार्मबिडे ने हाथ फैला कर उसे टटोला, मानो वह किसी सर्प की केंचुल हो. ——क्या तुम सर्प-पुरुष हो? वह पूछ बैठी. ——हां, यदि तुम मुझसे ब्याह कर लो जादू खत्म हो सकता है.

मनयोका भी खुशी से भर उठी. सरदार के पास जा कर उसने सारी कहानी सुनायी. उसने नार्मबिडे के पिता को बुला भेजा. वह भी दल-बल सहित आ पहुंचा. सर्प-पुरुष तथा खतरों से खेलनेवाली नार्मबिडे की धूमधाम से शादी हुई. □□□

फटा हुआ नकाब

•मेबल डोव डैंक्वे

क्वाम असांटे बहुत द्विविधा की स्थिति में था. उसने अपनी पत्नी की ओर देखा जो उसके बिस्तर के पास ही स्टूल पर बैठी हुई थी. उसी ने आवाज दे कर पत्नी को बुलाया था, और अब उसे समझ में नहीं आ रहा था कि वह बातचीत किस प्रकार आरंभ करे.

——अकोसुआ, यदि मैं तुम्हें अपना व्यापार आरंभ करने के लिए पचास पाऊंड दूं तो कैसा रहेगा? तुम पाउडर, सेंट, कपड़े का व्यापार करना पसंद करोगी? पत्नी कुछ नर्वस हो कर मुस्कराई. वैवाहिक जीवन के दस वर्षों के पश्चात, पति का एकाएक इतना कृपालु होना, उसे, घबराहट से भर गया था.

वह एक काले रंग की स्त्री थी लेकिन उसके नयन-नक्ष अत्यंत गढ़े हुए थे, और अपने पिरेड रापा और सिल्क के स्कार्फ में वह अत्यंत कमनीय लगती थी. उसके लंबे चेहरे पर सोने के लंबे-लंबे झुमके बहुत फब रहे थे. स्टूल पर बैठी , वह लंबी छरहरे वदन की युवती तीन बच्चों की मां थी, यद्यपि देखने में वह बिल्कुल लड़की-सी लगती थी. अपने ग्रामीण-कानून के अनुसार विवाह के पश्चात, उसने दस वर्ष तक अपने पति की जी-जान से सेवा की थी. वह पूर्ण रूप से पति के प्रति समर्पित थी. यह यहां का कानून है कि यद्यपि पुरुष को तो संपूर्ण अधिकार प्राप्त हैं, लेकिन स्त्री की स्थिति समाज में बहुत खराब है.

——क्या तुम पचास पाऊंड लेना पसंद करोगी? पति ने पुनः पूछा, मैं सौ भी दे सकता हूं. तुम मेरी एक बहुत अच्छी पत्नी रही हो.

क्या उस स्त्री की चेतना को वस्तुःस्थिति का एहसास होने लगा था? नहीं, उसने विचार, को झटके से परे हटा दिया.

वह ऐसा नहीं कर सकता.

क्वाम ने अपना गला साफ किया——उसे अपने हृदय के भार को हल्का करना ही होगा. क्या वह स्वयं नहीं समझ पा रही है कि अब यह वैवाहिक-संबंध रखना असंभव हो गया है?

एक कपड़े का व्यापार करने वाली स्त्री पहले तो ठीक थी. जब वह स्वयं जीवन में संघर्ष कर रहा था, वह एक पत्नी के साथ-साथ एक नौकरानी भी थी. और वह नम्र और सभ्य भी थी, लेकिन आदमी को परिवर्तन की आवश्यकता है. उसने अपनी दुमंजली बिल्डिंग बनवानी समाप्त ही की है, और वह क्लब का एक महत्वपूर्ण सदस्य भी हो गया है. उसकी एकेडमी ने उसे एक महत्वपूर्ण पद भी दे दिया है. साथ ही विश्वविद्यालय से उसने एक ऊंची डिग्री भी ले ली है. उसकी बहुत बड़ी महत्वाकांक्षा पूरी हो चुकी है, और वह अब अपनी जाति का एक महत्वपूर्ण व्यक्ति हो चुका है. अब वह टाऊन काउंसिल का मेंबर भी बनना चाह रहा है.

मन ही मन कल्पना करके कि उसे काऊंसिलर क्वाम असांटे, ओ. बी. ए, ए. एस. एस., कह कर बुलाया जा रहा है, वह मुस्करा उठा. अकोसुआ उसकी ओर आश्चर्य से देखने लगी.

——अकोसुआ. . .मैं तुम्हें बताना चाहता हूं कि मैं एक लेडी से विवाह करने जा जा रहा हूं. तुम्हें सौ पाऊंड में दे दूंगा!

वह स्त्री चुपचाप बैठी रही.

——वह एक फॉक पहनने वाली लेडी है. तुम थोड़ा बहुत तो पढ़ सकती हो, फिर भी मेरे मित्र तुम्हे अनपढ़ ही कहेंगे.

——क्या तुमने दस वर्ष पूर्व मुझसे विवाह करने से पूर्व अपने मित्रों से सलाह ली थी? उसकी आवाज शांत व ठंडी थी लेकिन वे शब्द बहुत कटु थे.

——यदि तुम बहस करोगी, तो मैं तुमसे इस बारे में कोई चर्चा नहीं करना चाहता, वह उठ कर कमरे में घूमने लगा.

——इस देश में कितने लोग हैं, जो एक स्त्री को सौ पाऊंड दे सकते हैं, तुम्हें कानून के अनुसार सिर्फ पच्चीस पाऊंड ही मिलना तय होता है. मैं सिर्फ दयावश ही तुम्हें इतना दे रहा हूं. तुम्हें कुछ तो कृतज्ञ होना चाहिए. अकोसुआ ने उसकी ओर देखा. उन आंखों में अपरिमित दैन्य था.

——मैं बच्चों को अचिमोटा कालेज में डाल दूंगा. मैं सिर्फ समाज में अपना ऊंचा स्थान बनाये रखने के लिए ही ऐसा कर रहा हूं. मुझे गवर्नमेंट हाऊस व अन्य मुख्य जगह आमंत्रित किया जायेगा. . .कुछ तो कहो, अकोसुआ!

——मुझे सिर्फ यही कहना है कि तुम्हें तुम्हारे पच्चीस पाऊंड , पचास पाऊंड या सौ पाऊंड मुबारक हों. मुझे कुछ नहीं चाहिये.

——क्या!——क्या! सुनो, ऐसे क्रोध में कोई कार्य न करो.

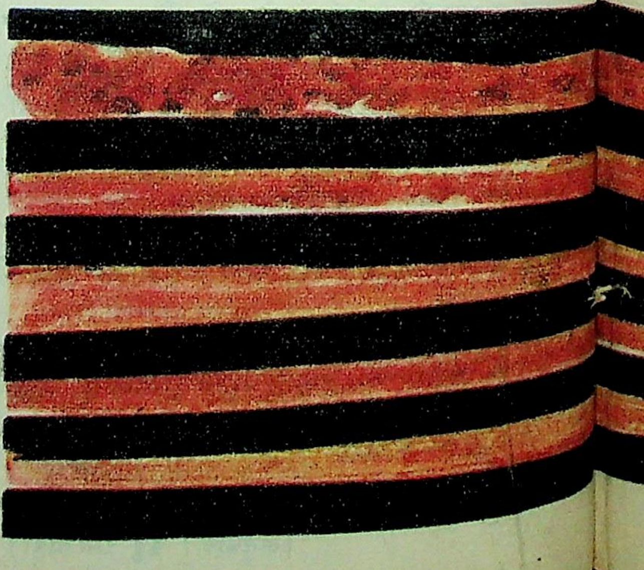

---यदि तुम मुझे स्पर्श करने का प्रयत्न करोगे तो मैं तुम्हारे चेहरे पर जोर से एक चांटा मार दूंगी.

—क्या तुम अपने पति को, अपने मालिक को मारोगी? क्या तुम पागल हो गई हो?

—मैं यह मकान छोड़ कर जा रही हूं.

—यदि तुम बिना मेरी सम्मति के मेरा घर छोड़ कर मुझे समाज में अपमानित करने का प्रयत्न करोगी तो तुम्हारी लिए ठीक नहीं होगा. मैं तुम्हारे जैसी जिद्दी औरत के साथ वैसे भी नहीं रहना चाहता. आखिर मैंने कौन-सा पाप कर दिया? मैं सिर्फ समाज का एक डीसेंट और आदरणीय सदस्य बनना चाहता हूं. यदि तुम मेरी आज्ञा के बिना मेरे घर से जाओगी, तो मैं तुमसे एक-एक पैसा क्लेम करूंगा जो मैंने इन दस वर्षों में तुम पर खर्च किया है. सिर्फ वह ही नहीं, मैं तुम्हारे पिता और संबंधियों को दिये गये सब उपहार भी वापस क्लेम करूंगा. तुम्हें हमारे ग्रामीण-कानून के सब नियम विदित ही हैं.

—हां, मुझे तुम्हारे सब ग्रामीण कानून मालूम हैं, जो स्त्री को तो जीवित ही कब्र में गाड़ देते हैं, और तुम पुरुष, उस कब्र पर खड़े हो कर नृत्य करने में मशगूल रहते हो.

—तुमने निबटना एक असंभव कार्य है, कहते हुए वह क्रोध में बाहर निकल गया.

अकोसुआ अपने कमरे की ओर भागी और कमरा बंद करके, फूट-फूट कर रोती हुई अपने बिस्तर पर गिर पड़ी. उसका दिल टूट गया था.

---मैं यहां से चली जाऊंगी, चली जाऊंगी, वह धीरे-धीरे सिसकियों के बीच बुदबुदायी.उसकी मां बचपन में ही मर गई थी. लेकिन उसका पिता कोका के एक संपन्न व्यवसायी थे. वह अपनी पुत्री से अत्यंत स्नेह करते थे, जिसने अपने लिए एक 'स्कॉलर' पति का चुनाव किया था.

वे क्या कहेंगे? लेकिन रोने से तो काम नहीं चलेगा मुझे कुछ करना चाहिये. वह बिस्तर से उठी, उसकी आंखें बुरी तरह सूजी हुई थीं. उसने अपना और बच्चों क सामान बांधा.

बच्चे स्कूल से आते ही होंगे. कल जैसे ही ये कूमासी रवाना होंगे, हम पिता के घर चले जायेंगे.

* *

कुमासी के लिए ट्रेन में बैठे-बैठे क्वाम अभी तक बहुत बुरे मूड में था और सोच रहा था, मैंने इस औरत का दिमाग सही रास्ते पर ला दिया. इस दुनिया का क्य होगा यदि एक कपड़ा बेचने वाली औरत इस प्रकार क व्यवहार करेगी, क्योंकि एक सज्जन और स्कॉलर व्यक्ति एक फ्रॉक पहनने वाली आधुनिका से चर्च म विवाह करना चाहता है.

क्वाम असांटा, अन्य पुरुषों की भांति ही अपनी गलत धारणाओं पर आवश्यकता से अधिक विश्वास करता था. पश्चिमी सभ्यता ने उनका दिमाग खराब कर दिया था यदि कोई स्पष्टवादी मित्र उसे यह स्पष्ट बता देता कि न तो वह एक सज्जन-पुरुष है, और न ही एक क्रिश्चियन है, और अकोसुआ उससे कहीं ज्यादा सभ्य है तो शायद वह हैरान रह जाता. लेकिन दुर्भाग्यवश उनका कोई सच्चा मित्र नहीं था, अतः वह अपने बारे में बहुत ऊंची धारणा रखता था.

तीन दिन पश्चात आकरा लौटने पर उसके भतीजे ने उसे स्टेशन पर ही बताया कि उसकी पत्नी बच्चों को ले कर अपने पिता के पास चली गई है.

क्वाम अत्यंत क्रोधित हो उठा. उसने अपने ससुर को तीन तार भेजे कि वे शीघ्र ही अकोसुआ को वापस भेज दें. लेकिन कोई उत्तर नहीं आया. फिर उसने दो अधेड़ स्त्रिओं को उसे लाने भेजा, लेकिन वे फिर उसको लिए बिना ही वापस लौट आयीं.

उसके मित्रों ने, सिगार और शराब पीते हुये उसे सांत्वना दी -- तुम क्यों चिंता करते हो ! कपड़ा बेचने वाली औरतें बहुत हैं. और यदि वह फ्राक पहिनने वाली औरत भी हो , तो भी क्या फर्क पड़ता है ! एक औरत की हस्ती ही क्या है!

---मैं अकोसुआ का व्यवहार बिल्कुल समझ नहीं

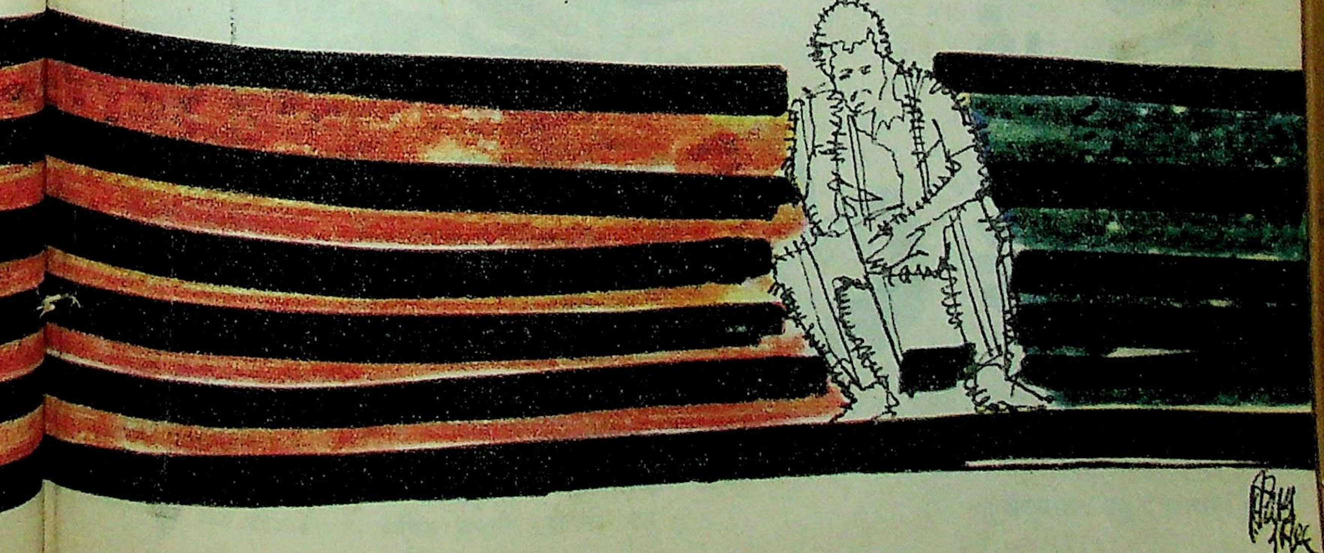

उत्साह भरा जीवन
नेस्कैफे® के ताज़ा और स्फूर्तिदायक स्वाद से
नेस्कैफे® एकमात्र इन्स्टैन्ट कॉफी जो १०० % शुद्ध कॉफी से बनी है
NESCAFÉ instant coffee
Made from finest 100% pure coffee
दुनिया भर में सबसे ज्यादा बिकने वाली इन्स्टैन्ट कॉफी
NSC-2/76 HIN

पा रहा हूं. मैं तो उसे सिर्फ छेड़ ही रहा था कि मैं शायद एक आधुनिक स्त्री से शीघ्र ही विवाह कर लूं. लेकिन वह तो सिर्फ मजाक की बात ही थी. यदि वह नहीं लौटी, तो मुझे वास्तव में ही विवाह करना पड़ेगा.

क्वाम असांटे ने, तीन सौ पचास पाउंड की एक लंबी लिस्ट बनाई. यह धन, इन दस वर्षों में उसकी पत्नी पर खर्च हुआ था, और विवाह में उपहार दिये गये थे.

आखिर अकोसुआ एक स्त्री है, और स्त्रियां हमेशा ही कमजोर होती हैं. मैं एक पत्नी को अकवापिन में और दूसरी को आकरा में रख सकता हूं. हमारे यहां एक व्यक्ति के लिए करीब आठ लड़कियां तक होती हैं. यदि मैं एक से ही विवाह करूंगा तो अन्य सात लड़कियों का क्या होगा? सोच कर वह स्वयं को सांत्वना देने लगा.

* *

माथ एरीटी, जो क्वाम की दूसरी पत्नी बनने वाली थी, एक सुंदर लड़की थी, काफी खुश-मिजाज और मोटी. उसे क्वाम असांटे को पाने पर बहुत गर्व भी था. उसने अपना नया मकान बनवा कर फर्निश कर लिया था और मार्था उसी में रह रही थी. वास्तव में वह आकरा की एक भाग्यशाली लड़की थी. कम-से-कम वह ऐसा ही समझती थी. लेकिन क्या उसने कभी उस लड़की के बारे में सोचा था जिसकी जगह वह लेने जा रही थी?

वह दिन आ गया. होली ट्रिनिटी चर्च मेहमानों और संबंधियों से भर गया. क्वाम और मार्था के चेहरे पर अत्यंत तृप्ति और आनंद का भाव था. सर्विस के बाद रोजर क्लब में एक बहुत शानदार रिसैप्शन का आयोजन हुआ. ह्विस्की, शैंपेन, के प्याले खनखना उठे. मित्रों और संबंधियों के अनेक बधाई तार आये. उनमें से कुछ तो पढ़ कर सुना दिये गये. बाकी कल पढ़ेंगे, यह निश्चय किया गया.

अंत में आमंत्रित सज्जन, नव-विवाहित जोड़े से हाथ मिला कर विदा होने आरंभ हुए. वह एक लंबी व शुष्क सेरेमनी थी, लेकिन वह शीघ्र ही समाप्त हो गयी और वे दोनों कार से घर लौट आये.

जब उन्होंने स्वंय को अकेला पाया, तो दस बज चुके थे. जल्दी-जल्दी डिनर ले कर मिसेज असांटे मुश्किल से ही अब अपनी आंखे खोल पा रही थी. वह सीधे बिस्तर की ओर चल दी. मिस्टर असांटे कुछ देर बरामदे में ताजी हवा खाने बैठ गये, शायद उन्हें भी कुछ झपकी आ गयी थी. सारे दिन की थकावट और उत्तेजना उन पर भी हावी थी. अचानक वह चौंक कर जग गये. क्या उन्होंने किसी के कदमों की आहट सुनी थी? वह तेजी से ड्राइंग रूम की ओर मुड़े.

क्या यह नार्था ही यहां दुल्हन के वेश में, सैटी पर सिर झुकाये बैठी है —— मार्था डार्लिंग, क्या तुम अभी तक बिस्तर पर नहीं गयीं?

उसने अपना सिर उठाया. असांटे ने जोर से अपनी पलकें झपकाई. आंखें मलीं. अकोसुआ उसकी ओर शर्माई हुई दृष्टि से देख रही थी. उसे वह दृष्टि याद हो आई, वह दृष्टि उसे बार-बार आकर्षित करती रही थी. वह उसकी ओर मंत्र-मुग्ध-से बढ़े.

घाना की कथा-लेखिका मेबल डोव डंक्वे ने अफ्रीकी महिला के मुक्ति-प्रयासों को अपनी कहानियों में रेखांकित किया है. मानवीय रिश्तों और बाहरी शक्तियों द्वारा उन रिश्तों को तोड़ने की कोशिश को भी उन्होंने बड़ी खूबी से चित्रित किया है.

● ● ●

अकोसुआ तुम इस समय यहां क्या कर रही हो? उसने कुछ उत्तर नहीं दिया, लेकिन वह सैटी से उठ खड़ी हुई. अपने सफेद ब्रोकेड के सिल्क के सफेद गाऊन में वह अत्यंत खूबसूरत लग रही थी. लंबा ब्राईडल-पर्दा ओरेंज रंग के फूल से नीचे रंगा हुआ था और नीचे तक लटक रहा था. वह उससे दूर जाने लगी. वह उसकी ओर तेजी से बढ़ा. उसके चेहरे पर एक व्यंग्यभरी मुस्कान थी, और उसके कदम और तेज हो उठे. असांटे की रगों में खून तेजी से भागने लगा.

कितनी गजब की सुंदर लग रही है! क्या सच ही उसने उस साधारण-सी लड़की के लिए अपनी रूपसी पत्नी को छोड़ दिया था! उसने अपनी बाहें आगे फैलाई.

—अकोसुआ, मुझे क्षमा कर दो. वह उसकी ओर देख कर मुस्कराई. वह उसकी ओर पुन: बढ़ा, वह और तेजी से आगे बढ़ गयी. बीच की मेज के चारों ओर वे दोनों तेजी से चक्कर लगाते रहे. अंत में उसने उसके नकाब के पिछले हिस्से को कस कर पकड़ लिया. मेज की टांगें उलट गयीं. उसका माथा, मेज के किनारे से जोर से टकराया और वह गिर पड़ा.

असांटे का छोटा भाई, सुबह-सुबह आया और उसने हाथ में फटे हुए नकाब के एक टुकड़े को हाथ में कस कर पकड़े हुए दूल्हे को सिटिंग-रूम में पाया. उसके चेहरे पर प्रसन्नता का भाव था. शीघ्र ही डाक्टर को बुलाया गया, डाक्टर ने बताया कि काफी पहिले ही उसकी मृत्यु हो चुकी थी. सारे घर और पड़ोस में कोहराम मच गया.

वह फटा हुआ सफेद नकाब का टुकड़ा कहां से आया, यह कोई अंदाज नहीं लगा पाया क्योंकि मिसेज असांटे का नकाब कहीं से फटा हुआ नहीं था.

—हम कल बधाई के तार पूरे नहीं पढ़ पाये थे, मैं सुबह वही खत्म करने आया था, छोटा भाई बोला 'उसकी आंखे आसुंओं से भरी हुई थी. उसने जेब से सब तार निकाले.' डाक्टर औपचारिक ढंग से उन्हें देखने लगा. वह यकायक चौंक पड़ा.

—क्या मिस्टर असांटे एक विवाहित व्यक्ति थे?

—हां, वे गांव की प्रथानुसार एक कपड़ा बेचने वाली से विवाहित थे. छोटे भाई ने उत्तर दिया.

—अच्छा ! तो एक मुख्य तार है, जो अक्वापिन से आया है, डाक्टर ने अपना गला साफ करते हुए कहा. यह कल चला था और इसमें लिखा है— तुम्हारी पत्नी अकोसुआ का आज सुबह दस बजे देहांत हो गया. शीघ्र आओ.

□□□

(अनुवाद : इंदु रायजादा)

भारतीय भाषाओं की प्रथम मौलिक कथाएं और आद्यकथाकार

(१२)

किसी भी भाषा की पहली कहानी की खोज अपने आप में एक महत्वपूर्ण और रोचक कार्य है. इस महत्वपूर्ण खोज के लिए 'सारिका' ही पहल कर रही है. पूर्व के अंकों में मलयालम, गुजराती, बंगला, तेलुगु, डोगरी, कश्मीरी, सिंधी, उड़िया, पंजाबी, मराठी और कन्नड की प्रथम मौलिक कहानियां आप पढ़ चुके हैं. इस अंक में दी जा रही है-- असमिया की प्रथम मौलिक कहानी. जब यह क्रम समाप्त होगा, तब आप स्वयं ही निर्णय ले सकेंगे--एक कि भारतीय भाषाओं में से पहली आधुनिक कहानी किस भाषा के पास है, और दो कि क्या कहानियां सचमुच पश्चिम से आयी थीं?

प्रथम मौलिक असमिया कहानी

कन्या: एक विवेचन • नवारुण वर्मा

लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा आधुनिक असमिया कहानी के जनक हैं. उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक से उन्होंने कहानी लिखना आरंभ किया था तथा उसे पूर्ण पल्लवित व विकसित करने में अपना महान मार्गदर्शन दिया.

प्रसिद्ध कथाकार योगेशदास ने बेजबरुवा की कहानी-कला के संबंध में लिखा है--'यह देखा जाता है कि पश्चिमी कहानी-साहित्य ने सबसे पहले स्पष्ट रूप धारण किया था उन्नीसवीं सदी के अंतिम भाग में जबकि बेजबरुवा का पहला कहानी-संग्रह 'सुरभि' बीसवीं सदी के प्रथम दशक में सन् १९०९ ई. में प्रकाशित हुआ. . . . वास्तव में पश्चिमी कहानी के रूप ग्रहण और असमिया कहानी के आविर्भाव के मध्य व्यवधान बहुत ही कम समय का है. अंग्रेजी और बंगला में कहानी का आभास मात्र पाकर बेजबरुवा ने असमिया में भी उसका प्रयोग कर डाला. . . . . बेजबरुवा की प्रतिभा किसी भी विषय में अंधानुकरण की नहीं थी, कुछ प्रभावित होने की बात अलग है.'

कुछ आलोचकों के विचार से लोक-कथाओं के संग्रह और पुनर्लेखन के जरिये ही उन्हें कहानी-लेखन की प्रेरणा प्राप्त हुई थी. कुछ लोगों का यह भी कहना है कि बेजबरुवा ने लोक-कला और कहानी के लेखन में घालमेल कर दिया है. परंतु यह ध्यान रखना चाहिए कि उस समय तक कहानी-लेखन की कोई विशिष्ट शैली ही नहीं बन पायी थी. अत: बेजबरुवा के समक्ष केवल कथा-लेखन की समस्या ही नहीं अपितु कला-शैली के निर्माण का प्रश्न भी था. उनकी कहानियों में लोक-कथाओं की शैली का कुछ प्रभाव अवश्य है पर उनकी कहानियों ने ही आगे चलकर असमिया कहानी-कला का मार्ग प्रशस्त किया, इसमें संदेह नहीं. इससे यह भी सिद्ध होता है कि असमिया कहानी का उन्मेष मूलत: लोक-जीवन से ही हुआ है.

प्रमुख रूप से हास्य-व्यंग्यात्मक होने पर भी बेजबरुवा की कहानियों में समकालीन समाज-चित्र बड़े ही मार्मिक ढंग से उभरा है. सामाजिक-पारिवारिक त्रुटियों पर उन्होंने इन कहानियों में मीठी चुटकियां ली हैं. असमिया उच्च वर्ग, असमिया किसान-समाज, कलकत्ते के बंगाली मध्यवर्ग तथा उड़ीसा की जनजातियों के समाज का विश्वसनीय चित्रण उनकी कहानियों में प्राप्त होता है. उनकी 'भोम केरेला, आमालै नेपाहरिब', आदि कहानियों में सामाजिक प्रवंचना के रूप हैं, 'धर्मध्वज फयसलानबीस' जैसी कहानियों में जातिभेद की कट्टरता पर प्रहार है, वहीं 'भदरी' में पारिवारिक प्रेम-संबंध का चित्रण. 'मुक्ति' कहानी में बाल-मनोविज्ञान की करुणापूर्ण झलक है तो 'रतन मुंडा' उड़ीसा के जन-जाति-समाज की सरलता का करुण चित्र.

प्रसिद्ध आलोचक श्री त्रैलोक नाथ गोस्वामी ने अपनी 'आधुनिक गल्प-साहित्य' पुस्तक में लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा की कहानी-कला संबंधी विशद चर्चा करते हुए लिखा है-- 'असमिया-समाज के एक वर्ग के लोगों में जो खामियां हैं, पाखंड-आडंबर हैं, उनके प्रति अधिक आकर्षित होने के कारण ही बेजबरुवा की कहानियों में जैविक और आर्थिक समस्याओं के चित्रण का प्रयास नहीं है. . . . पैने वाक्य बाणों से एक वर्ग के लोगों को घायल करने की बजाय उनकी खामियों को रस-घन स्थिति में प्रस्फुटित कर और कभी-कभी अतिरंजित कर वे हमें हंसाया करते हैं. और पाखंड-आडंबर के स्वरूप का मुखौटा भी खोलते चलते हैं. . . जीवन की जटिलताओं, अनुभूति की गहराई, मानव की क्षुद्रता और महत्व को कहानियों के जरिये अभिव्यक्त करना ही यद्यपि उनका सर्वोपरि आदर्श नहीं है तथापि उनकी कहानियां रसीली हैं, मनोग्राही हैं.'

साहित्यरथी लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा ने अपनी महान् प्रतिभा द्वारा प्रथम आधुनिक असमिया कहानी को जन्म दे, न केवल असमिया कहानी-साहित्य की नींव

डाली, बल्कि उसे पल्लवित भी किया, जिसके आधार पर आज की असमिया कहानी अपनी विशिष्ट सत्ता बनाये हुए समृद्धि के शिखर की ओर अग्रसर है.

'कन्या' लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा की सर्वप्रथम प्रकाशित आधुनिक कहानी ही नहीं, असमिया साहित्य की भी सर्वप्रथम आधुनिक कहानी है. असम के प्रसिद्ध साहित्यकार अध्यापक नंद तालुकदार से प्राप्त सूचना के अनुसार बेजबरुवा ने इस कहानी की रचना सन् १८९१ ई. में की थी और यह सर्व प्रथम 'जोनाकी' मासिक-पत्र में प्रकाशित हुई. (संवाद पत्रर रद्द कांचलीत असमीया साहित्य – नंद तालुकदार) सर्वप्रथम कहानी होने पर भी इसमें प्रकृति का रमणीक वातावरण जैसा मनोरम बन कर उभरा है, तथा प्रेम के अनजाने रहस्य का जो मार्मिक चित्रण है, वह वास्तव में बेजोड़ है. □□□

असमिया आद्यकथाकार : लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा

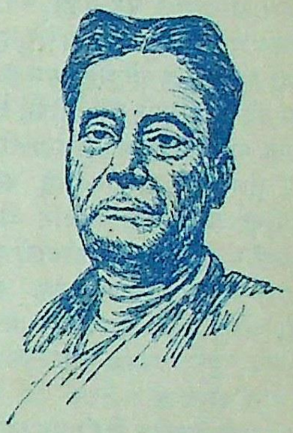

लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा का जन्म पुण्य-प्रसू लोहित की रम्य भूमि असम के एक कुलीन परिवार में हुआ.

असम में जब अंग्रेजी राज्य कायम हुआ, तब अंग्रेज सरकार ने उनके पिता दीननाथ बेजबरुवा को मुंसिफ के पद पर नियुक्त किया. नैसर्गिक सौंदर्य से पूर्ण असम के विभिन्न स्थानों में दीननाथ बेजबरुवा का तबादला होता रहता था. उन्हीं यात्राओं में बालक लक्ष्मीनाथ का साक्षात्कार जहां असम भूमि की अतुलनीय नैसर्गिक सुषमा से हुआ, वहीं विभिन्न जन-समुदायों से मिलने-जुलने का, उनके चरित्रों का अवलोकन करने का अवसर भी प्राप्त हुआ. इंट्रेंस पास करने के बाद उन्हें उच्च शिक्षा हेतु कलकत्ता भेजा गया. विद्यार्थी-जीवन में ही असमिया भाषा के विकास की उत्कट अभिलाषा उनके मन में जग उठी थी और कलकत्ते में ही उन्होंने कुछ साथियों के साथ 'असमिया भाषा उन्नति साधिनी सभा' की स्थापना की थी, जिसने आगे चल कर भाषा-साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये थे. कलकत्ते में उनकी भेंट चंद्रकुमार आगरवाला से हुई जिन्होंने सन् १८९० ई. में वहीं से असमिया मासिक 'जोनाकी' निकाला. लक्ष्मीनाथ प्रारंभ से ही इस पत्र के साथ घनिष्ठ रूप से संबंधित रहे. तीसरे साल 'जोनाकी' का संपादन-भार भी उन्हीं के कंधों पर आ पड़ा था.

बाद को लक्ष्मीनाथ उड़ीसा के संबलपुर में जाकर स्वतंत्र रूप से व्यापार करने लग गये थे. व्यापार के साथ-साथ उनकी साहित्य-साधना भी निर्बाध रूप से चलती रही.

सन् १८९१ ई. में रवींद्रनाथ ठाकुर की भतीजी प्रज्ञासुन्दरी देवी से उनका विवाह हुआ.

उन्होंने 'कृपावर बरबरुवा' नाम के एक ऐसे चरित्र की सृष्टि की जो हास्य-व्यंग्य के क्षेत्र में बेजोड़ है. लक्ष्मीनाथ की रचनाएं मूलतः हास्य-व्यंग्य प्रधान हैं. परंतु उनकी प्रतिभा ने कविता, उपन्यास, नाटक, निबंध आदि साहित्य की हर विधा में अपना चमत्कार दिखाया था. उनकी इस पहली साहित्य-साधना के फलस्वरूप सन् १९२४ ई. में उन्हें 'असम साहित्य सभा' के अध्यक्ष के रूप में सम्मानित किया गया. सन् १९३८ ई. के मार्च महीने में डिब्रूगढ़ में आपका देहांत हुआ.

असमिया संस्कृति के महान उन्नायक महापुरुष शंकरदेव तथा माधवदेव के संबंध में आपकी कृति 'श्री शंकर देव आस श्री माधवदेव' विशिष्ट शोधपूर्ण जीवनी मानी जाती है. असम इतिहास की पृष्ठभूमि पर आधारित 'चक्रध्वज सिंह' 'बेलिमार' और 'जयमती कुंवरी' उनके विशिष्ट नाटक हैं. उन्होंने असम के जातीय संगीत 'ओ मोर आपोनार देश' के अलावा अनेक उद्बोधक राष्ट्रीय कविताओं की रचना की. उन्होंने असम की लोक-कथाओं का नवीन ढंग से पुनर्लेखन कर प्रकाशित किया था. 'जुनुका' 'साधुककार कुकि', 'बुढ़ी आइर साधु' आदि आपके लोक-कथा संग्रह हैं. 'पद्म कुंवरी' प्रसिद्ध उपन्यास हैं. □

प्रथम मौलिक असमिया कहानी

कन्या

लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा

कुछ खास काम से कुछ दिनों के लिए मुझे प्रवास में रहना पड़ा. प्रवास न कह कर उसे वनवास कहना ही उचित होगा. हमारे उस निवास-स्थान के चारों ओर विशाल-विशाल वृक्ष, पर्वत और कोयले से काले वर्ण के कोल लोगों के छोटे-छोटे घर थे.हां, घर कहने से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि वे हमारे-तुम्हारे जैसे घर थे--- झोपड़ियां या कुटियां. वे भी असम के गरीब लोगों या भिखारियों की झोपड़ियों जैसी होंगी, ऐसा समझना गलत होगा. पेड़ की चार-पांच डालियां खड़ी कर लगभग चार-चार हाथ लंबे दोछत-- जैसे बना उस पर कुछ फूस बिखर दो, बिना दीवार दोनों ओर की छतों को ही जमीन से लगा कर दीवारों का काम लो, फिर मुंडर पर से आने-जाने की राह बना लो, तो देखोगे कि पती-पत्नी, बेटे-बहू और बाल-बच्चों वाले एक परिवार को रहने लायक कोल लोगों की एक झोपड़ी तुमने बना डाली है.

हमारे मकान के नजदीक से ही एक छोटी-सी पहाड़ी नदी हहराती हुई चट्टानों से होकर बहती चली जा रही थी. नदी का नाम था, कन्या. बड़ा मीठा-सा नाम. यह नाम या तो किसी कवि का दिया हुआ था या नदी ने ही अपने गुणों से आम अकवि लोगों के हृदयों में कविता की लहर जगा कर बलपूर्वक यह प्राप्य नाम रखवा लिया था. कन्या के गर्भ में छोटे-बड़े अनेक पत्थर थे. इन पत्थरों पर पानी की धारा से दिनरात लगातार हर-हर की आवाज गूंजती रहती . लगभग आधे मील की दूरी से ही, रुलाई की भांति वह विषाद-सूचक हर-हर की आवाज कानों में आने लगती, जिसे सुन कर मेरा मन बन-बैरागी बन कर कहीं चला जाना चाहता. दोनों ओर की न जाने किस आदिम युग के विशाल पेड़ों की दो कतारें. लगता था, नदी को आलिंगन किये हुए, रुलाई सुन-सुन कर संवेदना सूचक जल-बिंदुओं से उस शोक में सहानुभूति प्रकट कर रही हैं. विश्व-नियंता के राज्य में इस मर्मभेदी शोक का और हृदयस्पर्शी सहानुभूति का तात्पर्य क्या है, भला हम क्या समझेंगे? परंतु जहां ऐसी विशुद्ध सहानुभूति मिले, वहां तो रो कर भी सुख है. सुबह-शाम अवकाश के समय मैं कन्या के तट पर ही गुजार देता, बड़ा अच्छा लगता. वहां मेरे खासकर दो काम रहते. पहला लाल, काले, सफेद, नीले आदि विभिन्न रंगों के पत्थर इकट्ठे करना . दूसरा, तट पर के एक पेड़ की जड़ पर अकेले बैठे कन्या की वह रुलाई सुनना. इतने दिन बाद आज भी उन दोनों कामों और कन्या के उस तट की याद आने पर छाती हनहना उठती है.

मेरे उल्लिखित दोनों कार्यों में किसी-किसी दिन एक मित्र आ कर साथ जुट जाते. मित्रवर कुछ दुनियादार और खुशमिजाज आदमी थे याने इस दुनिया में खा-पहन कर मानवाभिमख होने में जैसा होना चाहिए, बिलकुल उसी प्रकार के. कविता का फेन खा कर जिंदगी भर 'उफ्-उफ्', 'आह आह' करते बिताने वाले न थे. किसी को कभी कविता करते देखते तो उससे दो-एक मजाकिया शब्द का प्रयोग कर हास्यरस की आवतारणा किये बगैर वे रहते न थे. अगर किसी पेड़ का सौंदर्य दिखा कर उनसे कोई बात कही जाये, तो वे जवाब में वह पेड़ लंबाई में कितने हाथ है, उसका घेरा कितने हाथ का है, और काटकर चीरने पर उससे कितने खंभे और कितने तख्ते निकलेंगे तथा उनका मूल्य कितना होगा, आदि हिसाब-किताब काव्य-रस का दशाह-श्राद्ध कर बैठते.अगर कभी कोई काला पत्थर चुन कर उन्हें दिखाकर कहता, 'अः, देखिये न, कितना सुंदर है' तो वे उसे तोड़ कर पिघलाने पर उसमें कितना लोहा या अन्य धातु निकलेगी, इसका हिसाब लगा कर बात खत्म कर देते. एक दिन एक बढ़िया-सा काला पत्थर उन्हें दिखाते हुए मैंने पूछा--- भला यह देखने में इतना चिकना-सा काला पत्थर बन कैसे जाता है? उनका जवाब था--- इन काले-काले लोगों को देख रहे हो न? मरने पर इनकी हड्डियां और मांस टुकडे-टुकड़े होकर ही ये पत्थर बन जाते हैं. मैं पत्थर ढूंढता, चुनता रहता; वे भी मेरे साथ साथ ढूंढ़ा करते, मगर कहते कि उनका उद्देश्य अलग है. वे तो पत्थर नहीं ढूंढ़ते; वे तो ढूंढ़ा इसलिए करते हैं कि कहीं कोई हीरा या अन्य बहुमूल्य पत्थर ही मिल जाये!

जिस पेड़ की जड़ पर बैठ, मैं अपना दूसरा काम करता रहता हूं, उससे लगभग चालीस हाथ दूर नदी का मोड़ था. वहीं लगभग बीस साल का एक नौजवान कोल लड़का आकर हर रोज दिन ढलने से लेकर शाम होने तक बंसी से मछली पकड़ा करता. वह रोज बंसी डाले रहता जरूर, मगर मैंने किसी भी दिन उसे एक भी मछली पकड़ते नहीं देखा. नदी में मछलियां न हों, ऐसी बात नहीं, या बंसी में मुंह मारने की उनकी आदत न हो, ऐसी बात भी नहीं. दूसरे लोगों के लड़के तो उसी नदी में बंसी से झुंड की झुंड मछलियां पकड़ कर मौज से खाया करते थे. असल बात है, हमारा वह लड़का बंसी लगाता था पानी में मगर आंखें लगाये रहता नदी के उस पार. मछलियां अपने अवसर के मुताबिक आकर बंसी को मुंह मारतीं, चारा खींचने का व्यायाम या खींचातानी भी करतीं, आखिर तक बंसी का चारा भरपेट खाकर भूख मिटा अपने घर लौट जातीं. पर बंसी लगाने वाले को पता नहीं चलता. बंसी का मालिक तो सिर्फ नदी के उस पार नजर लगाये किसी स्वप्नपुरी में चक्कर लगाया करता.

उस पार आमने-सामने ही पानी भरने का घाट था. एक किशोरी कृष्णवर्णी कोल बाला नित्य उसी समय बगल में घड़ा लिये पानी भरने आया करती. यही काला चुंबक हमारे काले कोल नौजवान की आंखों को उस पार ले जा कर खींचे रखता. कोल-सुंदरी पानी लेने आती दिन ढले ही, पर शाम हो जाने पर भी उसके घड़े की धुलाई पूरी नहीं हो पाती. उसके उस मिट्टी के घड़े के साथ मैल का इतना गहरा प्रणय क्यों था, पता नहीं. उसे घिस-मांज, धो-धाकर किसी भी प्रकार से घड़े से मैल की काट मिटा नहीं पाती.

खैर, इस मछली पकड़ने वाले और उस पानी भरने वाली में कभी एक भी बात की अदला-बदली हुई हो, ऐसा तो दिखाई नहीं पड़ा था. देखने में सिर्फ इतना ही आया था——इस ओर यह बंसी की डंडी लिये आसमान से टपके आदमी जैसा एक टक आंखें खोले रहता. उधर वह रेत से घिस-घिस कर बार-बार घड़ा धो तिरछी नजरों से इसकी तरफ देखती, समय बिताया करती थी.

इसी प्रकार कुछ दिन बीते. यही लीला नित्य चला करती. कन्या नदी के किनारे जाने के मेरे कामों की तालिका में यह लीला-दर्शन कार्य भी तीसरा स्थान-युक्त हो गया.

एक दिन हम तीनों अपने-अपने नित्यकर्म में जुटे हुए थे, तभी देखा कि वह कोल नौजवान भयंकर रूप से चौंक कर, हाथों से बंसी की डंडी फेंक, झम्म से उस नदी में गिर पड़ा. इसका कोई मतलब समझ न पाकर मैं क्षण भर देखता रहा. देखा, वह ढका-ढक पानी पीता हुआ डूबा जा रहा था. उन्हीं कपड़ों में दौड़ा जाकर मैंने भी तुरंत पानी में छलांग लगा दी. परंतु जब तक मैं पानी में जा पड़ा, तब तक तो वह नीचे चला गया था. लगभग दो मिनट खोजने के बाद उसे पा कर लस्त-पस्त बड़ी तकलीफ से उसे किनारे ले आया. मुड़ कर देखा, चार-पांच आदमी मुझे उस काम में मदद देने हेतु दौड़े आ रहे हैं. कुछ ही समय में वहां कितने ही लोग आकर इकट्ठे हो गये. दौड़ते-धूपते, रोते-चीखते उसके मां-बाप भी पहुंच गये. चीख-पुकार रोने-पीटने का कोलाहल छा गया.

कितने शोक की बात हो गयी थी! सब लोगों के नाना प्रकार के प्रयत्न करने के बावजूद उसे होश में नहीं ला पाये. उसके शरीर रूपी पिंजड़े से प्राण-पक्षी उड़ कर भाग गया.

पर वह इस तरह अचानक चौंक कर पानी में गिर क्यों पड़ा, इस बात का पता लगाने गया तो दिखाई पड़ा कि वह तट पर जहां बैठा नित्य बंसी डाला करता था, वहीं एक भयानक अजगर जमीन में दबा पड़ा है. उस सांप के शरीर पर मिट्टी जम कर घास उग आयी थी. वह लड़का नित्य उसीं सांप पर बैठा बंसी डाला करता था. वह सांप है, इसका पता ही उसे न था. शायद उस दिन वह सांप जरा-सा हिला-डुला होगा, उसी से वह 'अरे, यह क्या है' सोच, बेहद डरकर पानी में गिर पड़ा था.

गांव के कई लोगों ने आकर जमीन खोद, खूंटी गाड़, कुल्हाड़ी से काट उस सांप को मार डाला. मरने के बाद देखा गया, सांप लंबाई में बारह हाथ और घेरे में ढाई हाथ का था. उस दिन से कन्या के तट पर की वह लीला समाप्त हो गयी. डर के मारे हो या दुख से, मैं भी अब उस ओर मुंह नहीं करता था.

★ ★

इस घटना के तीन दिन पश्चात नदी से पानी लानेवाला मेरा नौकर. लड़का सुबह-सुबह बेतहाशा दौड़ा आकर पुकार उठा——बाबूजी, बाबूजी!

किसी जमाने में 'पान का जायका सुपारी में, नींद का जायका सुबह में' की कहावत को कहने वाले उस बूढ़े को बहुत-बहुत धन्यवाद देता हुआ मैं मजे में खर्राटे भरता सोया हुआ था. 'बाबूजी, बाबूजी'

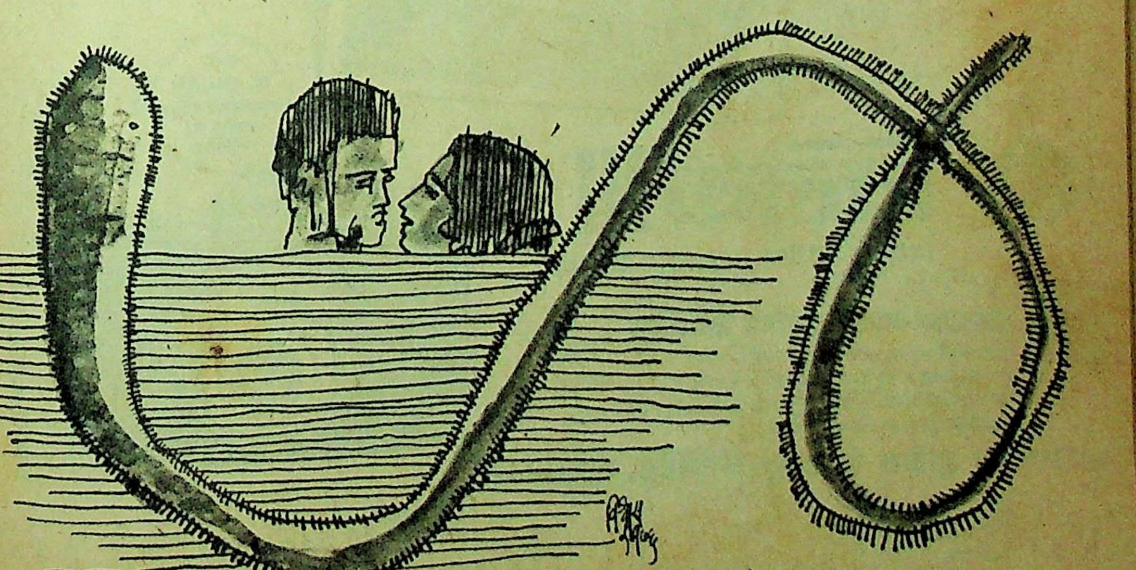

याद कीजिए-वो दिन जब पहली बार आपने अपनी तस्वीर देखी थी. तब आप दस ही साल की थीं और आपके पिताजी ने आपकी सालगिरह पर क्लिक III भेंट किया था... और पहली तस्वीर जो आपने खींची होगी, वो तो आपकी ही रही होगी (हां, ये बात और है कि कैमरा आपके पिताजी ने क्लिक किया हो). अब आप बड़ी हो गई हैं और आपको अपने खुशियों भरे दिन याद आते होंगे. अपनी बेटी को उसकी सालगिरह पर क्लिक III देना न भूलियेगा.

मूल्य :
रु. ७०.२५
उत्पादन कर सहित,
स्थानीय कर
अतिरिक्त

क्लिक III

निशाना साधिये — तस्वीर खींचियें

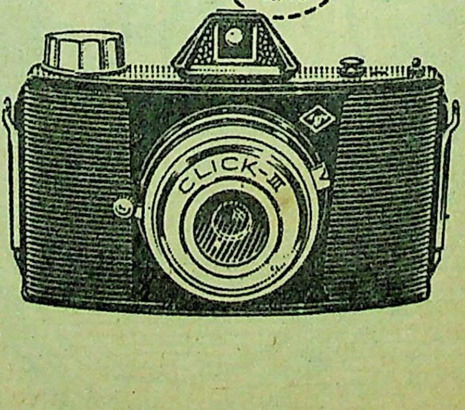

वितरक :
आगफ़ा-गेवर्ट इंडिया लिमिटेड
मर्चेंट चेंबर्स, ४१ न्यू मरीन लाइन्स, बम्बई ४०० ०२०
शाखाएं : बम्बई • नई दिल्ली • कलकत्ता • मद्रास
® फोटोग्राफी संबंधी उत्पादनों के निर्माता आगफ़ा-गेवर्ट, ऐंटवर्प/लीवरकुसेन का रजिस्टर्ड ट्रेडमार्क

निर्माता : **न्यू इंडिया इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड,** बड़ौदा • बम्बई

SIMOES/AG/22/75/HN

चीखता हुआ सुबह-सुबह मेरी नींद तोड़ने के कारण गुस्से के मारे उस कटहल-बीज जैसे सिर वाले नौकर-लड़के को मुंह बिचकाते हुए मैंने कहा—क्या बाबूजी, बाबूजी, कर रहा है! इस सबेरे-सबेरे दिन को बरबाद करने के लिए. जा, जा, भाग जा यहां से, नहीं तो अभी पकड़ कर मुंह तोड़ दूंगा.

उसने कहा—बाबूजी, आइए न, देखिए उस मोड़ में कौन-सी चीज तिर रही है. मैं जल्दी से उठ कर देखने गया. आदमी के शव जैसा दिखाई पड़ा. मैंने उसे बाहर निकलवाया. देखा, अरे, यह तो नदी के उस पार नित्य पानी भरने आने वाली वही कोल लड़की है!

□□□

(अनुवाद : नवारुण वर्मा)

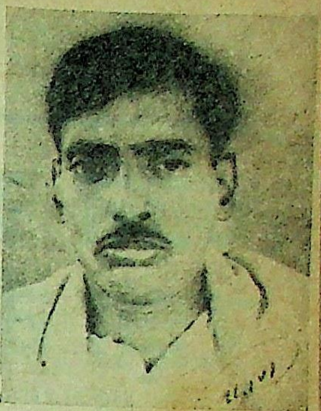

नवारुण वर्मा असम के साहित्यकार हैं—असमिया और हिंदी, दोनों ही भाषाओं में लिखते हैं और दोनों भाषाओं के बीच संपर्क-सूत्र की भूमिका बखूबी निभा रहे हैं. अब तक अनेक मौलिक व अनूदित पुस्तकें प्रकाशित.

तीन देश : तीन कविताएं

गुलाम लड़की

न तो गोरे और न गुलाम
चैन से रहेंगे;
मुझे बंदी बनाया गया है
एक गोरे की इच्छा पर.
मुझे जिबूटी ले जा रहे हैं,
मेरी मरजी के खिलाफ.
अरे, लौट जाने दो मुझे,
कहीं बीमार न पड़ जाऊं मैं.
लौट जाने दो मुझे
दर्शन करने प्रेतात्माओं का ;
मेरे गांव की प्रेतात्माएं
दया करेंगी मुझ पर.

(नाइजीरिया)

सूरज के बाद...

शांत, भैया, शांत!
पुर जाते हैं जख्म सारे,
समय बीतने पर.
कोई कितना भी रो ले चाहे,
सूरज के बाद सदा चांद आता है.
खा लो कंद-मूल-पत्ते
और बंद करो रोना-धोना
क्योंकि हमेशा-हमेशा ही,
सूरज के बाद चांद आयेगा.

(कांगो)

कारिफा ● अंसुमनी सूमा

गांव जान पड़ता है उदास और मुर्दा,
तपती दुपहरी है,
और हलचल नहीं कोई
न कोई जिंदगी, न मुसकराहट,
नौजवानों में भी.
और, कारिफा, विनती है तुम से,
मेरी बात सुनो!

दुपहरी फिर भी दोस्त है हमारी
वह मित्र है प्रेमियों की.
क्योंकि सोये हुए हैं, सब
हम अकेले हैं, दुनिया में,
और कर सकते हैं प्रेमालाप.
खौफ मंडराता है, जैसे बाज चूजों पर.
कोई हावी नहीं हो सकता हम पर :
हम प्यार करते हैं! एक-दूसरे से!
बहरहाल आने वाली है संध्या
आगमन हो ही चुका है शांति का.
जा चुका है बाज.
और बाहर निकल आये हैं चूजे अब :
मिट चुका है खौफ.
जल रहा होगा सूरज अभी,
लेकिन डर नहीं है हमें,
क्योंकि हम प्यार करते हैं एक-दूसरे को.

लो, हो गयी संध्या. शांतिमय संध्या!
और होने लगी हलचल,
सब जीवंत और प्रसन्न हैं,
कब्रों में गड़े हुए मुर्दे तक.
और कारिफा, विनती है तुमसे,
मेरी बात सुनो!
प्रेमी हैं हम, एक हैं हम!

(गिनी)

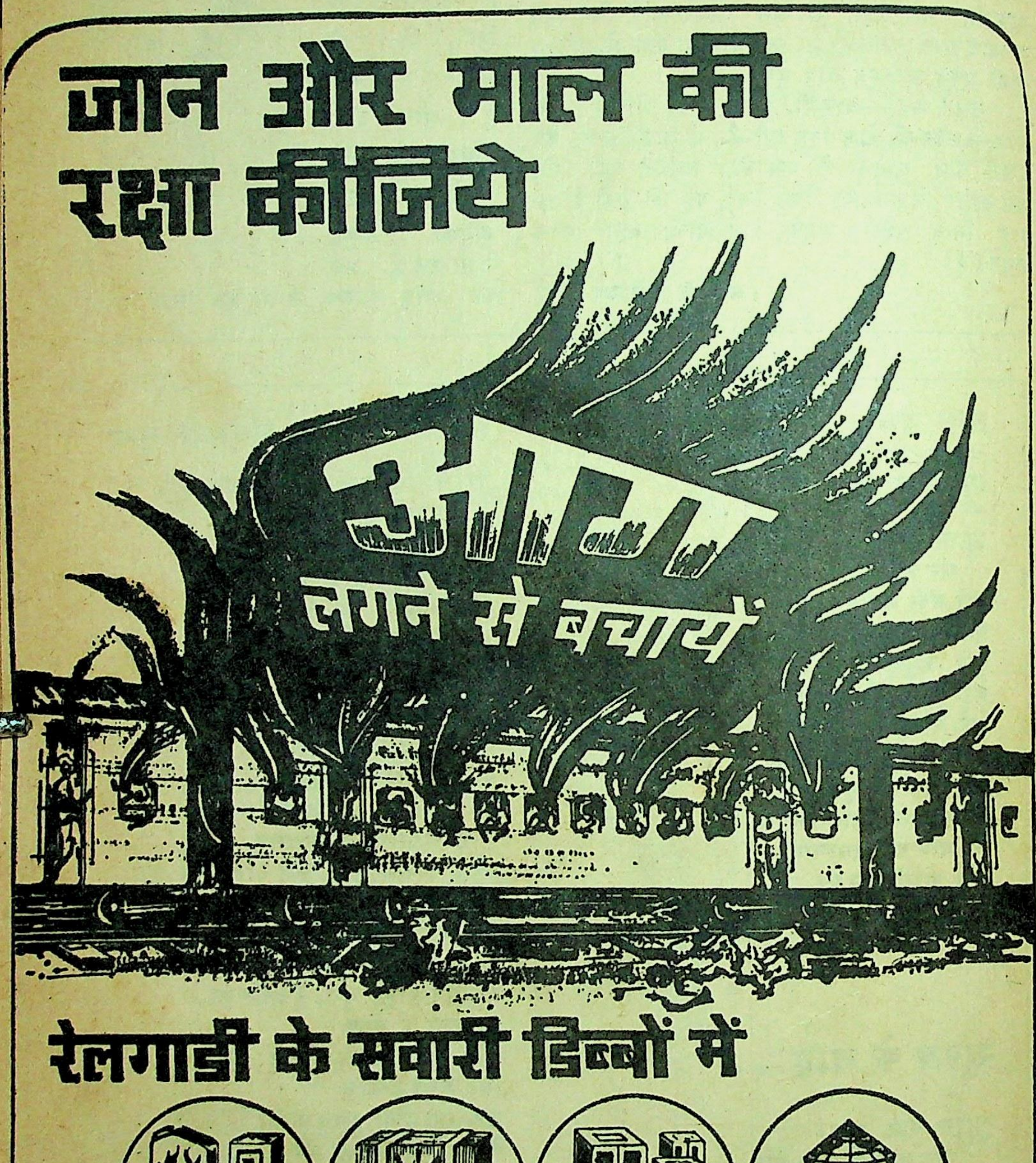
जान और माल की
रक्षा कीजिये
आग
लगने से बचायें
रेलगाड़ी के सवारी डिब्बों में
पैट्रोल
मिट्टी का तेल
विस्फोटक
खतरनाक
सामान
तेजाब
न ले जाएं
पश्चिम रेलवे

ब्याह

इथियोपिया की लोककथा

एक बार एक सुंदर चूहे ने जन्म लिया. ज्यों-ज्यों वह यौवन में पदार्पण करता गया, उसका सुंदर चेहरा, उम्दा बात-व्यवहार और शुभ्र त्वचा उसके परिवार का गर्व बन गयीं. उसके मां-बाप सोचने लगे कि ऐसे युवक के उपयुक्त पत्नी उन्हें कहां मिल पायेगी.

जब उसके लिए दुल्हन खोजने का समय आया तो उन्होंने निश्चय किया कि ईश्वर के परिवार में ही उसके योग्य युवती का चुनाव किया जाये. सो रीति के अनुसार परिवार के बड़े-बूढ़े ईश्वर के द्वार पर जा खड़े हुए.

—आप लोग दरवाजे पर क्यों खड़े हैं, ईश्वर ने पूछा और वे भीतर चले गये.

—हमें सुंदर, श्वेत चूहे के परिवार ने भेजा है, आपने भी उसके बारे में सुना ही होगा! वह हिम जैसा श्वेत तथा सभी प्राणियों में सुंदर है. सिर्फ आपका परिवार ही उसे पत्नी प्रदान कर सकता है क्योंकि आप संसार में सबसे शक्तिशाली तथा महान हैं.

ईश्वर कुछ देर के सोच-विचार के उपरांत मुसकराये और संदेशवाहकों से बोले—विचार तो नेक है किंतु आप लोग गलत स्थान पर आ गये. हमारे परिवार से भी शक्तिशाली परिवार है पवन का!

—किंतु आप उससे शक्तिशाली कैसे नहीं?

—काश ऐसा ही होता! जब पवन चलता है तो धरती को धूल से ढंक देता है, मेरी भी आंखों में धूल झोंके बगैर नहीं रहता. अब आप ही बतलाइए कि कौन अधिक शक्तिशाली है?

संदेशवाहकों को मानना पड़ा कि पवन अधिक शक्तिशाली है अतएव वे वहां से उसके द्वार पर जा खड़े हुए.

—आप लोग दरवाजे पर क्यों खड़े हुए हैं? पवन ने पूछा.

—हम सबसे सुंदर चूहे के लिए पत्नी की तलाश में हैं. हम ईश्वर के घर गये किंतु उन्होंने बतलाया कि आप उनसे शक्तिशाली हैं. अतएव अपने परिवार की कोई कन्या बतलाइए!

पवन सोच में पड़ गया. आखिर उसने कहा—आप लोगों को धन्यवाद! किंतु सचाई तो यह है कि जब मैं पूरी शक्ति से चलता हूं तो पेड़-पौधों को तो उखाड़ फेंकता हूं लेकिन पर्वत के सामने मेरी एक भी नहीं चलती. तो आप ही देखिए, पर्वत मुझसे शक्तिशाली है.

संदेशवाहक उसे धन्यवाद दे कर पर्वत के द्वार पर जा खड़े हुए.

—आप लोग दरवाजे पर क्यों खड़े हुए हैं, पर्वत ने पूछा और वे तत्काल भीतर चले गये.

—आप लोग सकुशल तो हैं न? कोई शुभ समाचार? आपके बाल-बच्चे कैसे हैं?

उन सबने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया और अंत में अपने आने का ध्येय बताया. पर्वत ध्यान से सुनता रहा और बोला—निःसंदेह ऐसे सुंदर युवा को उसके योग्य पत्नी मिलनी चाहिए किंतु मेरे परिवार में उसके योग्य कोई कन्या नहीं. मेरी अपेक्षा भी एक प्राणी शक्तिशाली है. वह मेरी जड़ में दिन-रात गढ़े कर देता है, मुझे कहीं-कहीं से ढहा देने की भी सामर्थ्य रखता है. उसका परिवार तो सबसे शक्तिशाली है.

—सचमुच ही ऐसा जीव शक्तिशाली है! हम उसे कहां पायें?

पर्वत ने उसके घर की राह बताई और वे उसके द्वार पर जा पहुंचे. वह चूहे का घर था.

—आप लोग दरवाजे पर क्यों खड़े हुए हैं, चूहे ने पूछा तो उन्होंने भीतर प्रवेश किया और अपने आने का उद्देश्य बतलाया.

चूहे ने सुन कर कहा—आपको अपने पुत्र के लिए पत्नी मिल गयी! कितनी प्रसन्नता की बात है कि हम दोनों के विशिष्टतम परिवारों को एक सूत्र में बंधने का अवसर मिला है!

और इस प्रकार सुंदर, श्वेत चूहे को उसके उपयुक्त पत्नी मिल कर रही. □□□

यह अनुभव बोल रहा है

• पेटर क्वाम बुहिन

मैं अपनी तारीफ का बाजा बजाऊं कि नहीं, यह एक समस्या बन गयी है. यह बहुत दुर्भाग्य की बात ।. लेकिन वह व्यक्ति जो अभी तक मेरी प्रशंसा का ाजा बजाता आया था, अचानक मुझे असमय में ही ोड़ कर चला गया. इसलिए नहीं कि वह अच्छा वेतन हीं पा रहा था बल्कि इसलिए कि आकरा शहर ी चहल-पहल और शोर में, उसका बाजा सुनाई ही रहा था, और लोग प्रभावित हो कर, अपनी प्रतिक्रिया ी व्यक्त नहीं कर रहे थे.

परिचय देते हुए मैं सर्व-प्रथम यही कहना चाहता कि मैं सत्य का निष्ठुर ढंग से उपासक हूं. और इतना पष्टवादी हूं कि कभी-कभी कटु होने का भी आभास ने लगता हूं.

आवश्यकतानुसार मैं छोटा या लंबा हो जाता ं. मेरा दूसरा नाम 'आल-वैदर' भी है. मेरे व्यक्तित्व में विरोधी तत्वों का अद्‌भुत समिश्रण है. मैं बी. ए. पास हूं और मैंने पामाविनोलोजी में आनर्स पास किया है. सिवाय कोलतार और टरपेंटाईन तेल के अन्य सब ड्रिंक्स का मास्टर हूं. रॉयल इंस्टीट्यूट ऑफ एलकोहोल का मेंबर हूं, और साथ ही में शराब-निषेध इंस्टीट्यूट का हेड भी हूं. मेरी नसों में हरा खून बहता है, और मेरा दिमाग 'इरास्मस' के दिमाग से भी ज्यादा तेज है. संक्षेप में कहूं, तो उस प्रकार मैं एक अत्यंत आसामान्य व्यक्ति हूं, और फिर भी अत्यंत हैरान हूं कि मेरी गवर्नमेंट ने मुझे भी, स्वतंत्रता दिवस पर आये सम्मानित वी. आई. पीस् की तरह, अत्यंत फैशनेबल और आरामदायक कार से अभी तक सुसज्जित करके सम्मानित क्यों नहीं किया?

मैं आकरा न्यू टाउन में एक ऐसे मकान में रहता हूं, जहां छिपकलियां, गिरगिटों, चूहों का साम्राज्य है. वे यहां आबाधित और प्रजातंत्रीय स्वतंत्रता का आनंद उठाते हैं अर्थात वे मेरे ऊपर टट्टी-पेशाब करने तक को स्वतंत्र हैं. और कभी-कभी मेरे साथ, मेरे ही बिस्तर पर सोने तक की हिम्मत कर बैठते हैं.

जब मैं दोपहर को सोना चाहता हूं तो वे खेलना चाहते हैं. यदि वे मुझ पर इतनी भी कृपा करें कि मुझे कम से कम शांति से लेटा ही रहने दें, तो भी गनीमत होती क्योंकि उस स्थिति में आखें बंद करके मैं सहनशीलता की ही ट्रेनिंग लेता. लेकिन स्थिति हद से गुजर रही है. वे अब मेरे ऊपर कूदने भी लगे हैं और मुझे कई बार स्किन डिजीज के कारण डाक्टर के पास इलाज के लिए भी जाना पड़ा है. अब वे मेरी आर्थिक स्थिति पर भी धावा बोलने लगे हैं.

कभी-कभी जब ये लोग अपना खेल बंद कर देते हैं, तो मिस सन् जो मेरे ऊपर के कमरे में रहती हैं, और डबल रोटी बनाने का कार्य करती हैं, अपना ओवन जला कर डबल रोटी बेक करना आरंभ कर देती हैं. वह ओवन भी, ठीक मेरे ही सिर पर है. अक्सर मैं डबल रोटी से भी ज्यादा बेक हो जाता हूं.

मैंने चूहों और छिपकलियों के दुःख से आक्रांत एक अत्यंत दयनीय किरायेदार के रूप में जो कि हमेशा ही किरायेदार के भाग्य में बदी होती है, अपने मकान-मालिक से एक ही लय में, सारी शिकायतें उड़ेलनी आरंभ कर दीं. मकान-मालिक जो 'खर्च' से छूत की बीमारी की तरह भयभीत रहता था, मेरी सीलिंग पक्की करवाने की प्रार्थना से एकाएक बुरी तरह चौंक पड़ा. उसने मुझे सलाह दी कि मैं उस दर्द-भरी स्थिति से स्वयं को उबारने के लिए एक क्वालिफाईड स्टीवर्ड अर्थात बिल्ली क्यों नहीं पाल लेता जिससे कि मेरी आर्थिक स्थिति पर धावा बुल जाये, और वह साफ बच निकले.

अब मेरे पास दो ही रास्ते थे. या तो अपनी आर्थिक स्थिति खोखली करूं और इसी मकान में रहता रहूं या फिर दूसरा मकान खोजूं, जो इस आकरा शहर में मिलना अत्यंत कठिन काम है. अतः हार कर मुझे एक बिल्ली पालनी पड़ी जो अत्यंत निपुण सिद्ध हुई. दो दिन में ही मेरे सह किरायेदार, इतने गूंगे हो गये, जैसे कि मेरे घर की दीवारें. अपने व्यक्तित्व के प्रदर्शन का अर्थ है जान से ही हाथ धोना, यह वे भली-भांति समझ गये थे. स्थिति इतनी सुधर जायेगी, मुझे आशा ही नहीं थी. प्रसन्न था, लेकिन तभी एक दुर्घटना घट गयी.

वह ईस्टर का दिन था. सूर्य अपनी समस्त मुसकान में धरती को चमका रहा था. मैंने अपना ईस्टर-संडे उसी मुसकान से पूरित हो कर मनाने का निश्चय किया. एक मुर्गा खरीद कर मैंने मिस काइंड को बनाने के लिए दिया. मुझे मालूम था कि वह एक बहुत अच्छी कुक है. वह डोमेस्टिक साइंस के स्कूल की हेड मिस्ट्रेस थी. और उसने मेरी इच्छा को वास्तविक रूप दे कर, अपनी पाक-शास्त्र कला की निपुणता का पूरा-पूरा परिचय दे डाला. उसकी खुशबू से घर महक रहा था. मैंने उसका पूरी तरह आनंद उठाने का निश्चय कर लिया और समीप की कैंटीन से शराब की बोतल लाने चला गया यद्यपि मेरा एक-एक कदम भारी हो रहा था और मुंह से लार टपकी चली जा रही थी.

लौट कर, देखा तो मेरी प्लेट साफ थी—यानी

•••

पेटर क्वाम बुहिन घाना के प्रमुखतम लेखकों में से हैं और अफ्रीकी कथा-साहित्य में उनका वही स्थान है जो विश्व-साहित्य में मार्क ट्वेन को प्राप्त है—यानी हास्य और व्यंग्य लेखन में उन्हें अद्भुत महारत हासिल है.

चिकन गायब था. इधर-उधर देखा, तो मिस केट कोने में बैठ कर अभी तक अंतिम टुकड़े का आनंद ले रही थी. मेरे क्रोध का अंत नहीं था. मैं उसे वहीं खत्म करने वाला था, लेकिन मेरी मनोव्यथा का अंदाज शायद उसने पहले ही लगा लिया था और वह एकदम भाग खड़ी हुई. उसके बाद वह कभी दिखाई नहीं दी.

अब मेरे पास सिवाय दूसरा मकान ढूंढ़ने के और कोई रास्ता नहीं बचा. एक मकान से दूसरे मकान में घूमता फिरा.

बिल्कुल अप्रत्याशित रूप से मैंने स्वयं को एक महल-नुमा बिल्डिंग के समक्ष खड़ा पाया, जो आधुनिक शिल्प-कला के सौंदर्य और वैभव का जीता-जागता प्रतीक थी.

मैं शान से अंदर घुसा और मालिक के बारे में पूछ-ताछ करने लगा. वह सामने ही बैठा था. लेकिन उसने यह कहा कि मैं चूंकि एक बैचलर युवक हूं, अतः लड़कियां मेरी तलाश में यहां की शांति भंग करेंगी. मैंने यही कह कर गलती की कि मैं एक अविवाहित युवक हूं.

अब मैंने अपना वक्तव्य बदलना ठीक समझा. मैंने उसे समझा दिया कि यद्यपि मैं अभी विवाहित नहीं हूं पर इसका अर्थ यह नहीं कि मेरा विवाह ही नहीं होने वाला है. मैं अगले सप्ताह ही विवाह कर रहा हूं और अपनी पत्नी सहित ही मकान में आऊंगा. वह उस शर्त पर तैयार हो गया. अतः उस मकान को पाने के लिए एक ही सप्ताह के अंदर विवाह करना एक शर्त हो गया. मेरे एक मित्र ने मुझे सलाह दी कि मैं एक नाइट क्लब में जाऊं और शीघ्र ही वहां से एक पत्नी का चुनाव कर लूं. अतः मैं एक बड़े नाइट क्लब में पहुंचा और शान से एक कुर्सी पर बैठ कर एक बड़े आदमी की तरह सिगार पीने लगा. मैंने एक शोट व्हिस्की और दो बीयर की बोतलों का आर्डर दिया. मेरी आशा फलीभूत होती दिखाई दी. दो खूबसूरत लड़कियां मेरी ओर चली आ रही थीं.

वे मुसकरायीं तो मैंने और भी चौड़ी मुसकान से उनका स्वागत किया. उनमें से एक ने अपना हृदय खोल कर मुझसे बातचीत आरंभ कर दी——मुझे लगता है, मैंने पहले भी आपको कहीं देखा है.

——अवश्य देखा होगा. मैं तो थाना में घूमता ही रहता हूं. मेरा काफी बड़ा बिजनस है. दोनों आश्वस्त हो कर पुनः मुसकरायीं.

वे दोनों मेरे सम्मुख खड़ी थीं. उनकी आंखें प्रेम के समुद्र में डूबी थीं—— और मेरे पास से जाने की कोई जल्दी नहीं थी. अतः मैंने उन्हें आमंत्रित किया. वे सहज ही तैयार हो गयीं. वे सौंदर्य की साम्राज्ञी शीघ्र ही अपनी स्लिम फिगर का एक बार पूर्ण प्रदर्शन कर मेरे दायें, बायें बैठ गयीं. और उन्होंने एक के बाद दूसरा ब्रांड का आर्डर दे कर अपने सोफिस्टिकेटेड टेस्ट का प्रदर्शन आरंभ किया.

शीघ्र ही डांस आरंभ हो गया. उन्होंने अपने लचकीले शरीरों को रबर की तरह तोड़-मरोड़ कर द्रुत कदमों से नृत्य आरंभ कर दिया. और उसी दौरान उन्होंने मेरे सम्मुख स्पष्ट कर दिया कि वे किसी की पत्नी बनने की कदापि इच्छुक नहीं हैं, एक हफ्ते के लिए भी नहीं.

मैं वहां से बिल्कुल टूटा हुआ बाहर निकला और मुझे उस मकान को लेने का इरादा छोड़ देना पड़ा.

सारे शहर में सिर्फ वही मकान ही तो नहीं है, सोच कर, मैंने स्वयं को हल्का करने का प्रयास किया.

अतः मैं सूट पहन कर मुंह में सिगार दबा कर, अपने मित्र के बच्चे को कंधे पर उठा कर एडवेंचर को निकल पड़ा. इस बार एक मकान-मालकिन ने मेरा स्वागत करते हुये पूछा——क्या यह आपका बच्चा है ?

मैंने कहा——हां.

—नायजाज बच्चा है, या जायज?

——जायज! संक्षेप में उत्तर दिया.

——तो आप विवाहित हैं ?

——यह तो स्पष्ट ही है!

——आप विवाहित हैं, और आप मेरा कमरा चाहते हैं. एक विवाहित व्यक्ति मेरा मित्र हरगिज नहीं हो सकता, अतः आप मेरे किरायेदार नहीं बन सकते. मैं कुछ कहने ही वाला था कि वह दरवाजा बंद कर अंदर चली गयी.

आप विवाहित हैं या अविवाहित, यह एक ज्वलंत प्रश्न है, और इसका समाधान आपमें नहीं बल्कि आपके ग्रह-नक्षत्रों पर निर्भर करता है. क्योंकि मकान विवाहित होने पर मिलेगा कि अविवाहित होने पर, इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता. □□□

(अनुवाद —— इंदु रायजादा)

१ रु. ५० पैसे बचाइए

ग्लैक्सोज़-डी के ४०० ग्राम के २ पैकेट एक साथ खरीदने पर.

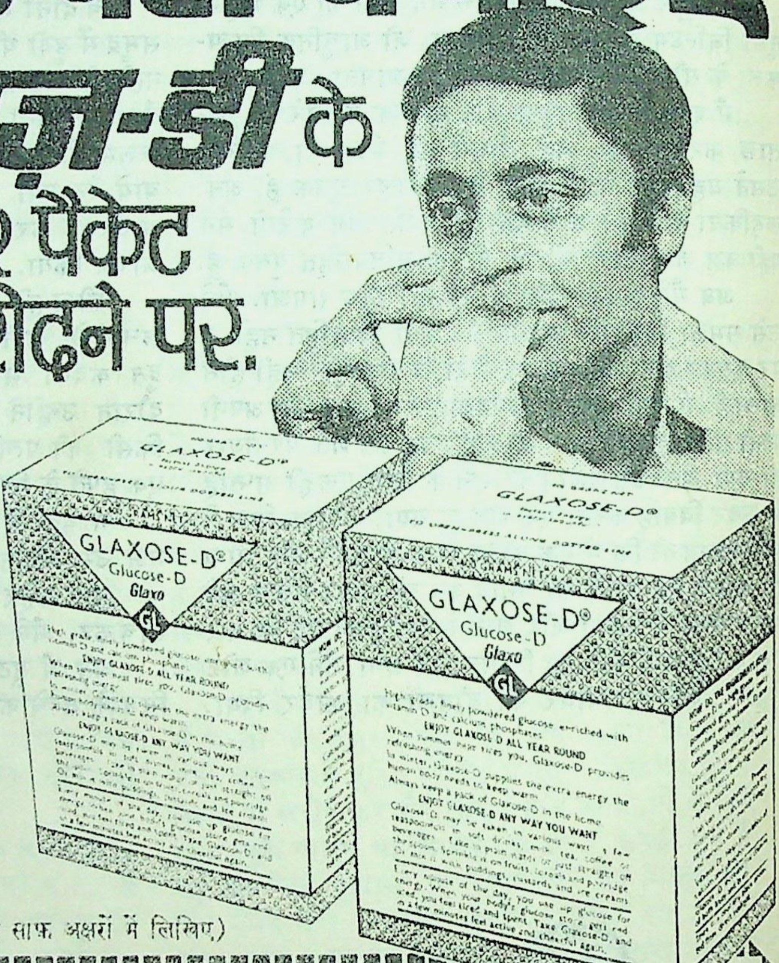

ग्लैक्सोज़-डी मिनटों में आप की थकान दूर कर के आप को नई शक्ति और ताज़गी प्रदान करता है. आज ही ४०० ग्राम के दो पैकेट ख़रीदिए और रु. १/५० की बचत कीजिए.

जल्दी कीजिए ! इस योजना का लाभ ३० जून १९७६ या माल ख़त्म होने तक ही मिलेगा. यह योजना ऐच्छिक है.

इस कूपन को भरिए और काटकर अपने दुकानदार के पास ले जाइए

(बड़े और साफ़ अक्षरों में लिखिए)

ख़रीदार का नाम और पता ....

....

विक्रेता का नाम .... शहर ....

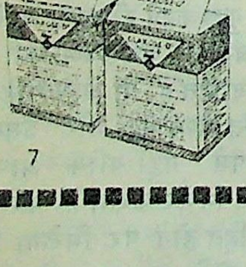

प्रिय विक्रेता, इस कूपन द्वारा ख़रीदार को ग्लैक्सोज़-डी ४०० ग्राम के २ पैकेट ख़रीदने पर रु. १/५० की रिआयत मिलती है, जिस के लिए उपरोक्त विवरण सही और साफ़ लिखना आवश्यक है.

दोनों पैक पर के ग्लैक्सोज़-डी नाम वाले छिद्रांकित ऊपरी फ्लैप काट लीजिए और उन्हें कूपन के साथ नत्थी कर के हमारे विक्रय प्रतिनिधि को दीजिए. वह आप को इस के बदले में ग्लैक्सोज़-डी का १०० ग्राम का पैकेट देगा. धन्यवाद.

फ़ैमीली प्रॉडक्ट्स डीविज़न
ग्लैक्सो लेबोरेटरीज़ (इण्डिया) लिमिटेड

7

daCunha/GL/38 G HIN.

बूढ़े का तमगा • फर्दीनंद ओयोनो

फर्दीनंद ओयोनो कैमरून में पैदा हुए और फ्रेंच में लिखते हैं. यहां दिया गया अंश उनके बहुचर्चित उपन्यास 'बूढ़ा नीग्रो और उसका तमगा' से लिया गया है.

मेका अहाते के बीचो-बीच चूने से बनाये गये एक दायरे के भीतर सावधान की मुद्रा में खड़ा था. यह अहाता एक स्टेडियम का था. मेका को तमगा मिलने वाला था, इसलिए तमाम कबीले यह रस्म देखने के लिए इकट्ठे हुए थे.

पैविलियन में गोरे लोग आराम से बैठे गोरे हाई कमिश्नर का इंतजार कर रहे थे. तमगा लेने वाला एक यूनानी आदमी भी था. लेकिन वह गोरे लोगों के साथ बैठा था.

आज तक मेका के आसपास दूर-दूर तक के कबीले में किसी को इतना सम्मान नहीं मिला था. वह अपने काले लोगों से अब थोड़ा बेहतर हो गया है. लेकिन वह गोरों के बीच भी नहीं है.

पैविलियन में बैठे कितने ही गोरों को वह अच्छी तरह पहचानता था, लेकिन यहां से उन्हें अलग-अलग पहचानना. . .तौबा! सब गोरे एक-से लगते हैं.

उसके बाप के साथ ये लोग ऐसा बर्त्ताव कर रहे हैं. इनकी समझ में यह नहीं आता कि एक बूढ़ा आदमी धूप में घंटों से खड़ा है और वह पेशाब करना चाहता है. और उसे जूते की कील चुभ रही है. . .

पैविलियन से ग्रीक उठ कर नीचे आया. . .हाई कमिश्नर ने उसे तमगा दिया. गले लगा कर . . .गाल से गाल लगाये . . .और हाथ मिलाया. . .फिर वे लोग लोग इस तरफ आने लगे.

हाई कमिश्नर उसके सामने आ कर मुसकराया. उसने तमगा मेका के सीने पर लगाया. . .उसने देखा कि यह तमगा यूनानी को दिये गये तमगे जैसा नहीं है. और अफसर ने उसे गले भी नहीं लगाया. मेका ने अपनी छाती पर लगे हुए तमगे को देखा. . .वह मुसकराया. उसने अपना सिर ऊपर उठाया और खुशी से झूम उठा. . .उसका बदन कांपने लगा. . .

एक-दो गोरे उसके पास से गुजर गये. उसने बड़े फाटक की तरफ देखा. गोरे अफसरों की एक टोली आयी. पैविलियन की तरफ चली गयी.

---नहीं. . . यह हाई कमिश्नर नहीं है. . .मेका बुदबुदाया. . . कौन होगा वह आदमी जिसका इतने लोग एक घंटे से इंतजार कर रहे हैं?. . .

घिसे हुए पुराने जूतों में कहीं एक कील सीधी अंगूठे में धीरे-धीरे अपनी जगह बनाती चली गयी. उसने बायां पैर उठा कर दाहिने पर रख लिया. थोड़ी राहत मिली. . .लेकिन धूप और पसीने से जगह-जगह खुजली हो रही थी. . .

मेका ने अपने आप को डांटा---क्या सच्चे मरद जरा-सी तकलीफ से डरा करते हैं! मेरा बाप स्वर्ग में बैठा देख रहा होगा तो क्या सोचेगा?. . .कि जबकि मेरा खतना हुआ था, मुंह से उफ तक निकली थी! . . .वही मेका. . .

उसने चुपचाप जल्दी से चेहरे का पसीना पोंछा. नीचे झुक कर टागें खुजलायीं और जल्दी से सीधा खड़ा हो गया.

उसने भगवान से प्रार्थना की ---हे भगवान, तू तो सब देखता है. तूने ही गोरे-काले बनाये हैं. . .तूने जैसा भी बनाया, तू भगवान है. . .मैं मन-ही-मन तुझे प्रणाम करता हूं. इस समय मेरी सबसे बड़ी इच्छा है कि मैं जूते उतार फेंकूं और पेशाब कर सकूं. . .उसने मन-ही-मन सीने पर क्रॉस बनाया. . .आंखें खोल कर जबान होठों पर फिरायी.

एक लंबी मोटर कार बड़े फाटक से अंदर आती दिखायी दी. . .काली चमचमाती मोटर. . . उसमें बहुत बड़े गोरे अफसर थे.

एक बूढ़ा कीमती वरदी पहने सबसे आगे-आगे चला, उसके पीछे स्थानीय अफसर उससे बातें करता उसके पीछे चलने लगा. जब मेका के पास से वे गुजरे. स्थानीय अफसर ने मेका की तरफ इशारा किया. मेका ने एड़ियां बजाने की कोशिश की.

—ये लोग मुझे तमगा दे क्यों नहीं देते! आखिर बात क्या है? कहीं ऐसा तो नहीं कि तमगा खो गया हो? तब मैं अपने कबीले वालों को और इन सब को क्या मुंह दिखाऊंगा. . ?

उसके दो बेटे फांस की लड़ाई में गोरों के लिए लड़ते-लड़ते मारे गये थे. . .

क्या उनका मरना व्यर्थ हो गया था. . .? □□□

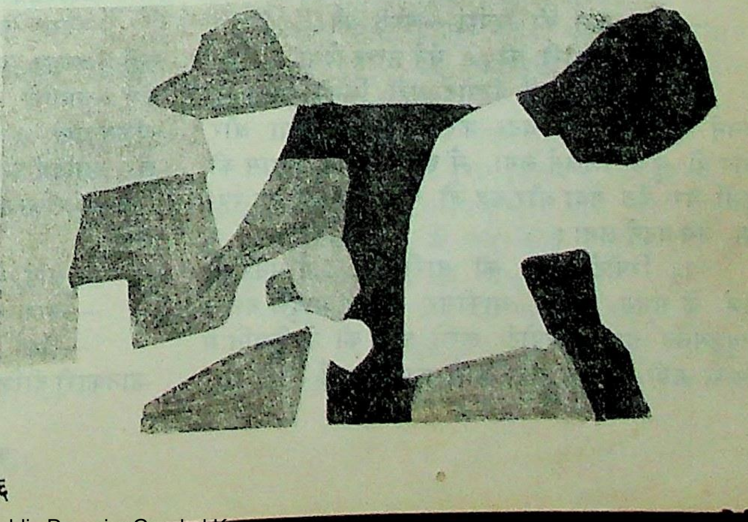

सूटकेस

• अब्दुल मुनइम सलीम

काले रंग के सूटकेस को मैंने बहुत तलाश किया, मगर उसका कहीं पता न लग सका, चार सूटकेसों में से अब सिर्फ तीन ही दिखाई दे रहे थे. ट्रेन में मेरे साथ चार सूटकेस थे, कैरो स्टेशन पर भी कुली को मैंने तीन केसों की मजदूरी दी थी, चौथा जो हल्का ही था, मैंने खुद उठा लिया था. टैक्सी में भी तीन सूटकेस मेरे बराबर सीट पर रखे थे, चौथे को ड्रायवर के पास जमा दिया गया था.

मैं कपड़े बदल कर फौरन तैयार हो गया, परंतु यह सोच कर कि शायद ड्रायवर को सूटकेस वापस करने का समय न मिला हो, मैंने रिपोर्ट करने के विचार को कल तक के लिए टाल दिया. लेकिन मेरा खयाल गलत निकला, ड्रायवर को न आना था और न वह आया. अब रिपोर्ट करना जरूरी हो गया था. मैं रोया पुलिस स्टेशन के लिए रवाना हो गया. ड्यूटी आफिसर अपने कमरे में रजिस्टर भरने में व्यस्त था.

—अस्सलाम-अलैकुम ...!

—वालैकुम अस्सलाम ... उसने रजिस्टर से नजर उठा कर मेरी ओर देखा.

—जी, मुझे एक रिपोर्ट लिखानी है.

—अगला द्वार!

—किधर ..... मैंने पूछा.

—आगे ...ड्यूटी सार्जेंट अब्दुल बसीत, उसने पहले से रूखे लहजे में उत्तर दिया. अब्दुल बसीत मेज के बराबर कुर्सी डाले आराम कर रहे थे, उनका चश्मा सामने मेज पर पड़ा था. मेरी आहट सुनते ही उसने पहले चश्मा उठा कर आखों पर रखा और फिर प्रश्नात्मक दृष्टियों से मुझे घूरने लगा.

—अस्सलाम-अलैकुम ....

—वालैकुम अस्सलाम ...

—आप ही अब्दुल बसीत हैं?

—हां, मैं ही ड्यूटी आफीसर हूं.

—मुझे एक रिपोर्ट करनी है, मैंने कहा.

—किस बात की रिपोर्ट—चोरी की ...?

—जी हां, चोरी की ..मैंने उत्तर दिया.

—ठीक, चोरी की रिपोर्टें यहीं लिखी जाती हैं, उसने बैठे-बैठे हाथ बढ़ा कर रजिस्टर उठाया और आप ही कुछ लिखने लगा. मैं इजाजत लेकर पास की कुर्सी पर बैठ गया और वह जो कुछ लिखता जा रहा था, उसे पढ़ने लगा :

'यह रिपोर्ट आज की तारीख .... में सबेरे नौ बजे के समय, ड्यूटी आफीसर बनाम अब्दुल बसीत अबुहसनैन द्वारा रिपोर्ट करने वाले की उपस्थिति में लिखी गयी. रिपोर्ट करने वाले का नाम है ....

—आपका नाम ...? मेरी तरफ देखते हुए उसने पूछा.

—अहमद शेख लुत्फी.

—पेशा. . .?

—रमल कंपनी में काम करता हूं.

—उमर. . .?

—३२ वर्ष.

—कहां पैदा हुए?

—अदफीना में.

—अदबफीना कहां ....

—रोजिता जिले में.

—क्षेत्र .....?

—बेहीरा ग्राम.

—इस समय कहां रहते हो ?

—२८, मलिकुल सालह स्ट्रीट.

—हां, तो अब कहिये क्या रिपोर्ट है आपकी. मगर जरा संक्षेप में बताइए, रिपोर्ट आप ही के शब्दों में लिखनी है.

—बहुत अच्छा ....कल जब मैं ....

—रेलगाड़ी की तरह न भागें, जरा आहिस्ता-आहिस्ता बोलें ताकि मैं लिख भी सकूं, मुझे बीच में टोकते हुए उसने कहा.

—कल ... अब आगे बोलिये.

—कल मैं चार सूटकेसों के साथ कैरो स्टेशन पर उतरा था, एक बड़ा सूटकेस था, दो छोटे साइज के थे, चौथा हैंड बैग जैसा था, जिसमें केवल कागज थे.

—हां, केवल कागजात थे ....फिर?

—स्टेशन से मैंने टैक्सी ली थी, घर पहुंचने पर काले सूटकेस को मैंने बहुत तलाश किया मगर उसका कहीं पता न लगा.

—खुदा के लिए ठहर-ठहर कर बोलिये—पता न लग .....अच्छा इसके बाद मुझे याद आया कि वह सूटकेस टैक्सी में ही रह गया...

—हूं, तो यह है ...उसने रिपोर्ट लिखते-लिखते व्यंग्यात्मक अंदाज में मुझे देखते हुए कहा, तुम्हें खबर है यह किस तरह की रिपोर्ट है? तुम क्योंकि मेरे हमवतन हो, इसलिए मुझे थोड़ी-सी हमदर्दी है, वैसे तुम्हारी सूचना के लिए यह बता दूं कि यह सब कुछ व्यर्थ है ....!

—लेकिन क्यों? . मैंने घबराते हुए पूछा.

—इस 'क्यों' का तो कोई उत्तर मेरे पास नहीं. अच्छा, यह बताओ कि हम इस चोरी का पता कैसे लगाएंगे ...तुम्हें शायद मालूम नहीं कि हम पुलिसवाले .....अगर सब बात कही जाए तो ... खैर, छोड़िये इन सब बातों को ... आगे बोलिए, वह फिर से रजिस्टर खिसका कर मुझसे प्रश्न पूछने लगा.

—आप कैरो स्टेशन पर कब उतरे ?

—चार बजे की गाड़ी से!

—ठीक ...अब उन संदूकों के बारे में भी कुछ जानकारी दीजिए, इसे भी आप ही के शब्दों में लिखना है.

—बेहतर है . . . पहला केस एक मीटर लंबा, आधा मीटर चौड़ा, रंग भूरा, दूसरा एक मीटर लंबा तीन चौथाई मीटर चौड़ा, तीसरा आधा मीटर लंबा, आधा मीटर चौड़ा रंग काला, चौथा हैंडबैगनुमा, इसका रंग भी काला है.

—अच्छा, तो इनमें से कौन-सा केस खोया?

—काले रंग का.

—क्या इसमें कपड़े थे?

—जी हां!

—तो ऐसा क्यों नहीं कहते—समय व्यर्थ बर्बाद हो रहा है.

—उसमें एक सूट, चार कमीजें, पांच टाइयां और कुछ निजी पत्र थे.

—नहीं ऐसे नहीं, एक एक करके बताइए, कमीज, सूट, टाई . . . . इनकी संख्या तथा रंग भी बताइये.

—सूट भूरे रंग का, कमीजें सब सफेद और टाइयां विभिन्न रंगों की .

—विभिन्न रंग क्या . . .साफ-साफ लिखवाइए जनाब!

—टाई का रंग लाल, दूसरी नीले डिजाइन की, तीसरी भूरे रंग की, चौथी पीली और पांचवीं सफेद.

—ठीक है—हां, तो फिर तुमने टैक्सी ली?

—जी हां!

—टैक्सी किस मॉडल की थी, उसका नंबर तथा ड्रायवर का नाम क्या था?

—टैक्सी फोर्ड थी.

—यह आपको कैसे मालूम पड़ा?

—देखने से.

—देखना-वेखना यहां नहीं चलता, मैं यह पूछना चाहता हूं, आपको यह कैसे पता लगा कि वह फोर्ड के अतिरिक्त किसी दूसरे मॉडल की नहीं है?

—मैंने टैक्सी का बोर्ड स्वयं पढ़ा था.

—हां, यूं कहिये ना—और नंबर?

—६४६४ . . . .!

—यह नंबर आपको कैसे मालूम हुआ?

—मैं जब भी टैक्सी में बैठता हूं, उसका नंबर नोट कर लेता हूं,

—आखिर क्यों?

—वैसे ही बस, यूं समझिए, यह मेरी हॉबी में शामिल है.

—यह हॉबी क्या होती है जी? सही-सही बयान दीजिए ताकि रजिस्टर में लिखा जा सके.

—नंबर नोट करना मेरी आदत है.

—खैर, हालांकि यह उत्तर आपके लिए लाभदायक नहीं, फिर भी खानापूरी तो आवश्यक है—अच्छा ड्राइवर का नाम बोलिये.

—मैंने उससे नाम नहीं पूछा.

—हूं—तो तुमको पूरा विश्वास है कि जब तुम ट्रेन से उतरे थे तो उस समय तुम्हारे साथ चारों सूटकेस थे. क्या इसके सबूत में तुम कोई गवाही पेश कर सकते हो, क्या कुली को पहचानते हो?

—नहीं, अगर देखूं तो पहचान सकता हूं.

—हां, तो वे संदूक टैक्सी में कहां-कहां रखे थे?

—बड़ा संदूक ड्राइवर के पास, बाकी के तीन अपनी

face your admirers...
AFGHAN SNOW
AFGHAN SNOW

....रेशम सा, कोमल, स्कूल छात्रा का सा मुलायम रंग-रूप, हमेशा युवा और प्रफुल्लित नजर आइये. ई. एस. पाटनवाला का अफगान स्नो उत्कृष्ट मनमोहक और नमी बनाये रखने वाले गुणों से भरपूर है. अफगान स्नो का नियमित उपयोग आपकी त्वचा को सूखने तथा रूखे होने से बचाता है और आपके नैसर्गिक सौंदर्य को बनाये रखता है.

अफगान स्नो,
सदाबहार सौंदर्य का वास्तविक रहस्य

AFGHAN SNOW
BEAUTY AIDS
E. S. PATANWALA, BOMBAY

सीट पर.

—कृपया जरा आहिस्ता बोलें!

—और फिर—मैं घर आया, ड्राइवर ने बड़ा संदूक उठाया, दो संदूक मैंने हाथों में उठाये, तीसरा वहीं रह गया.

—इस भूल का आपको कब ज्ञान हुआ?

—एक घंटे के पश्चात्.

—क्या यह संभव नहीं कि वह सूटकेस तुमने कहीं और छोड़ दिया हो!

—जी नहीं ....!

—और क्या ....हां-हां इन तमाम चीजों की कीमत भी लिखवाएं.

—संदूक की कीमत ३ पाउंड, सूट २० पाउंड, कमीज प्रत्येक डेढ़ पाउंड ....कुल रकम ३१ पाउंड.

—नहीं, यह रकम तो बहुत हो गयी, चलो १५ पाउंड लिख देते हैं. घबराइए नहीं, आशा रखिए सारी चीजें आपको मिल जायेंगी, १५ या ३१ में कोई अंतर नहीं पड़ेगा.

—जैसी आपकी मर्जी. अच्छा अब आज्ञा दें, मैंने झुंझला कर कहा.

—क्या मतलब? आज्ञा कैसी, इस रिपोर्ट पर दस्तखत क्या मैं करूंगा, अभी ठहरो. मैं जरा इसे पूरा कर लूं. उसने जल्दी-जल्दी रिपोर्ट के अंतिम वाक्य लिखे : 'निम्नलिखित बयान के साथ उक्त रिपोर्ट दोपहर साढ़े बारह बजे रिपोर्ट देने वाले के दस्तखत के साथ समाप्त की जाती है ...!'

मैंने रजिस्टर पर दस्तखत टांके और चलते-चलते पूछा—बसीत साहब, सामान मिलने की कोई आश रखूं?

—क्यों नहीं, जैसे ही हमें सूचना मिलती है, तुम्हें बता दिया जायेगा, खुदा की जात पर भरोसा रखो. वह बड़ा दयालु है.

काफी देर हो चुकी थी, कार्यालय में पहुंचते ही मैनेजर ने बुला भेजा, उसे भी पूरी कहानी सुनानी पड़ी. उसने हमदर्दी तो की, मगर पूरे दिन की अनुपस्थिति का कोई उचित कारण उसे पूरी कहानी में नहीं मिला.

* *

इस घटना को घटे अब कई दिन बीत चुके थे, मेरे जेहन से भी सूटकेस का खयाल निकल-सा चुका था. मगर एक दिन फिर अचानक मैनेजर ने बुला कर एक पीला कागज मुझे दिया, उसमें लिखा था :

'अहमद शेख लुत्फी को अपराध नंबर २५ के संबंध में पुलिस स्टेशन अबीसिया में हाजिर होने की सूचना दी जाती है.....!'

मैंने कागज को दोबारा पढ़ा, मगर कुछ अर्थ समझ में न आया. भला अबीसिया स्टेशन में अपराध नं. २५ से मेरा क्या संबंध है! यह रहस्य मेरी समझ से परे था. तीसरी बार जब मैं कागज को पढ़ने की कोशिश करने लगा तो मैनेजर की आवाज गूंजी.

—यह कौन-सा अपराध है, मिस्टर अहमद ..?

अब्दुल मुनइम सलीम मिस्र के युवा कथाकार हैं और अपनी उम्र के अनुरूप ही अपनी कहानियों में उन्होंने उन शक्तियों को बेनकाब किया है, जो आम आदमी की सहज जिंदगी जीने की इच्छा के आड़े आती रहती हैं.

● ● ●

—यकीन जानिए साहब, मुझे इसका कोई ज्ञान नहीं.

—खैर, मैं कुछ नहीं जानता, तुम फौरन पुलिस स्टेशन जाओ और वापसी पर सारी बात की सूचना दो. समझे—न जाने यह कौन-सा चक्कर है!

बाहर आ कर मैंने अपनी फाइलें समेटीं, डेस्क में ताला लगाया और सीधे पुलिस स्टेशन चल दिया. रास्ते भर मेरे जेहन में तरह-तरह की बातें उभरती रहीं. जैसे-तैसे पुलिस चौकी पहुंचा. ड्यूटी आफिसर को सम्मन दिया. वह किसी मारपीट के केस की इंक्वायरी कर रहा था, मैं बुरी तरह भयभीत था. मैं बीच में ही बोल पड़ा—कृपया यह तो बता दीजिये कि इस सम्मन का मुझसे क्या संबंध है?

—आप जरा बैठें, मैं अभी आपसे बात करता हूं.

मैं मजबूरन खामोश हो गया, कुछ देर बाद उसने मुझसे कहा—इस सम्मन का संबंध उस रिपोर्ट से है जो तुमने अपने सूटकेस के खो जाने पर एक मास पूर्व रौदा थाने में की थी.

—हां-हां वह सूटकेस—क्या वह मिल गया? मैंने खुशी से पूछा.

—जी नहीं, अभी मिला कहां.

—तो फिर?

—टैक्सी नं ६४६४ का मालिक हमारे क्षेत्र में रहता है, पुलिस स्टेशन रौदा ने इसी कारण केस हमारे कार्यालय में ट्रांसफर कर दिया है. इसी विषय पर आप से कुछ पूछताछ करनी है. कलम नचाते हुए उसने पहला सवाल किया—आपका नाम?

—मेरा नाम अहमद शेख लुत्फी, उम्र ३२ वर्ष, नौकरी रमल कम्पनी में, जन्मस्थान अदफीनिया, जिला रोजिता, ग्राम बेहीरा. . .वर्तमान पता २८, मलिकुल सालह स्ट्रीट, रौदा.

—अच्छा तो आपकी रिपोर्ट का विषय क्या है?

—लेकिन श्रीमान ये सारी जानकारी तो मैं पहले ही दे चुका हूं, यह सब रिपोर्ट में लिखा होगा.

—आप सही कहते हैं, परंतु हर आदमी का अपना तरीका होता है. मैं इस केस को अपने तौर पर डील करूंगा. जल्दी बताइये, आपकी रिपोर्ट का क्या विषय है?

—रिपोर्ट का विषय है कि मैं लगभग तीन सप्ताह पूर्व विभिन्न साइज से चार सूटकेसों के साथ कैरो स्टेशन उतरा था, बड़ा सूटकेस एक मीटर लंबा, आधा मीटर चौड़ा, रंग भूरा—दूसरा एक मीटर लंबा तीन चौथाई मीटर चौड़ा, रंग भूरा—तीसरा आधा

बिनाका टॉप टूथपेस्ट मुँह की पूरी रक्षा के लिये

Binaca
top
toothpaste
SUPER SIZE

ताज़गी महसूस कीजिये सुबूत अपनी आँखों से देखिये

बिनाका टॉप का विशेष फैलने वाला तत्त्व आपके मुँह की पूरी रक्षा करते हुए उसे ताज़गी से भर देता है।
क्योंकि यह तत्त्व तुरंत आपके मुँह के हर कोने में फैल कर दांतों में सड़न पैदा करने वाले कीटाणुओं का नाश करता है और साँस की दुर्गंध को रोकता है; यूं कहिये आपको ताज़गी भरे आत्म विश्वास से प्रफुल्लित रखता है।

यह टेस्ट स्वयं कर के देखिये, पानी में थोड़ा सा लकड़ी के कोयले का चूरा डालिये और इसमें थोड़ी सी बिनाका टॉप टूथपेस्ट घोलिये। अब देखिये बिनाका टॉप कितनी तेज़ी से चारों तरफ़ फैलता है... मैल को दूर करता है और पानी की सतह को बिल्कुल साफ़ कर देता है। आपके मुँह में भी बिनाका टॉप बिल्कुल इसी तरह काम करता है।

सीबा गायगी

ARMS-CBT-20-704 HN

चेहरे पे मुस्कान व भरकर दिल में प्यार, सहज बना सकते हैं बेडेकर अचार

जब आप तैयारशुदा [रेडी मिक्स्ड पिकल स्पाइसेज] अचार का मसाला खरीदती हैं तो मत समझिए कि यह केवल मसाला है अचार का। लेकिन यह तो आपके लिए एक नुस्ख़ा [फ़ॉर्मूला] है अपने ही घर में, बगीचे से लाये गये हरे-हरे कच्चे आमों व पके, सुनहले नींबूओं से अचार बनाने का। हर पैक के साथ दिये निर्देशों का पालन कीजिए और बढ़िया अचार बनाइए। फिर आप और आपके परिवार के लोग अचार के साथ उंगलियाँ न खा जाएँ तो कहना

और हाँ, आप भी ये अचार उतना ही बढ़िया खुद बना सकती हैं, जितना बेडेकर बनाते हैं...और वह भी बड़ी आसानी से हँसते-मुसकराते! बेडेकर के 'रेडी मिक्स्ड पिकल स्पाइसेज़' [अचार का मसाला] ले आइए और आप खुद ही अचार बनाकर देंखिए।

बेडेकर
Net Wt. 250 g
लोणच्याचा तयार मसाला
BEDEKAR'S PICKLE SPICES
K.P. BEDEKAR & SONS PVT. LTD. BOMBAY 4 · INDIA

B. Vasant/VPB/8-75

बेडेकर बम्बई-४

बेडेकर मसाले | बेडेकर अचार | बेडेकर पापड | बेडेकर चटनी

मीटर लंबा आधा मीटर चौड़ा रंग काला—चौथा हैंडबैग जैसा रंग काला.

—खूब, मगर जरा आहिस्ते बोलिये.

—बहुत अच्छा—अब आगे सुनिये, मैंने स्टेशन से टैक्सी ली, तीन सूटकेस अपनी सीट पर रखे और चौथा जो अधिक बड़ा था, ड्रायवर की सीट पर रखा था, घर आने पर मैंने देखा, काले रंग का सूटकेस नहीं है. इस सूटकेस में एक सूट—रंग भूरा, कीमत २० पाउंड, चार कमीजें रंग सफेद, कीमत प्रत्येक डेढ़ पाउंड—पांच टाइयां—एक लाल, दूसरी नीली डिजाइन, तीसरी भूरे रंग की, चौथी पीली तथा पांचवी सफेद शामिल हैं.

—लेकिन आप बहुत तेज बोल रहे हैं, पुलिस अधिकारी ने मेरी ओर देखते हुए कहा.

—श्रीमान, बात यह है, मेरे पास समय की कमी है, अभी मुझे आफिस भी पहुंचना है. और फिर यह सारा चक्कर मेरी समझ के बाहर है.

—मगर मुझे तुमसे अभी कुछ और पूछना है, यह बताओ कि उसी दिन तुमने पुलिस में रिपोर्ट क्यों नहीं की जिस दिन वह सूटकेस खोया था?

—मैं उसी दिन रिपोर्ट करना चाहता था मगर यह खयाल आते ही कि शायद ड्राइवर को समय न मिला हो, मैंने रिपोर्ट के खयाल को दूसरे दिन तक के लिए टाल दिया था.

—खूब...क्या तुम्हें पूर्ण विश्वास है कि टैक्सी का नं. ६४६४ ही है?

—बिलकुल यही नंबर है.

—यह आप किस बुनियाद पर कह रहे हैं?

—मैंने यह नंबर स्वयं पढ़ा था.

—क्या आप इस संबंध में कोई और बयान देना चाहते हैं?

—जी नहीं. मैं जल्दी से रजिस्टर पर दस्तखत करके बाहर निकल आया, मैं काफी लेट हो चुका था, मुझे दफ्तर पहुंचने की भी जल्दी थी. आफिस पहुंचते ही पहले मैनेजर के कमरे में गया,

—हां सर, बस वही सूटकेस वाला केस है——मैंने घबराई आवाज में एक साथ पूरा वाक्य कहा.

—कौन सा-सूटकेस मिस्टर अहमद?

—वही सूटकेस सर, जिसकी रिपोर्ट एक मास पूर्व रौदा पुलिस स्टेशन में की थी. टैक्सी ड्राइवर क्योंकि अबीसिया में रहता है, इसलिए केस वहां ट्रांसफर कर दिया गया है.

मैनेजर ने कोई जवाब नहीं दिया, मेरी बात अनसुनी करके वह फिर से अपने काम में व्यस्त हो गया. मैं उदास होकर अपनी सीट पर बेदम-सा धंस गया.

लगभग एक सप्ताह बाद मैनेजर ने फिर मुझे बुलाया. इस बार मुझे दो सम्मन दिये, पहला सम्मन रौदा पुलिस का था और दूसरा अबीसिया थाने का था. समझ में नहीं आ रहा था कि पहले कहां जाया जाए. मैंने पहले रौदा पुलिस स्टेशन जाना उचित समझा, कौन जाने वहां सूटकेस मिल गया हो.

रौदा में अब्दुल बसीत से भेंट हुई. मुझे देखते ही उसने कहा—आइये-आइये.

—मगर बसीत साहब, इस बार मुझे क्यों तल किया गया है, कृपया शीघ्र बता दें तो अच्छा हो, समय भ कम है और फिर यहां से मुझे अबीसिया थाने मे पहुंचना है,

—क्यों वहां किसलिए?

—वहां रिपोर्ट जो ट्रांसफर हो गयी है,

—हां-हां, अच्छा तो सुनिये हमारे जासूसों न कुछ चीजें तलाश की हैं. उनमें एक सूट भी है, भूरे रं का, शायद वह आपका हो.

—सूटकेस में है ना...मैंने पूछा.

—यह बिलकुल अर्थहीन तर्क है, चोर इतने मूर्ख नहीं होते कि चोरी की चीजों को सूटकेस में रख कर बेचें, आइये जरा सूट की पहचान कर लें. उसने अलमारी खोल कर एक मैला-सा सूट मेरे सामने कर दिया, देखिए क्या वाकई यह सूट आपका है? हां—मगर जरा ठहरिये....इससे पहले कि आप इस सूट को देखें, मुझे कुछ प्रश्न करने हैं, सूट के 'कट' के विषय में.

—आपका नाम?

—अहमद शेख लुत्फी, उम्र ३२ वर्ष, जन्मस्थान अदफीनिया, जिला रोजिता, ग्राम बेहीरा, वर्तमान पता २८, मलिकुल सालह रौदा, नौकरी रमल कंपनी...

—ठीक-ठीक इस सूट का कट क्या है?

—सिंगल ब्रेस्ट.

—सिंगल ब्रेस्ट...और जेबें..

—सीधी.

—अच्छा, आओ अब सूट देख लो, वह बराबर मेरे सामने सूट को उलट-पुलट रहा था, मगर मैंने देखते ही जान लिया था कि सूट मेरा नहीं है,

—तो फिर यह सूट तुम्हारा नहीं है?

—जी नहीं...!

—खैर, रिपोर्ट पूरी कर देता हूं...शेख अहमद लुत्फी की हाजिरी पर रिपोर्ट लिखी गयी. शेख अहमद लुत्फी बयान देता है कि सूट उसका नहीं है.

रिपोर्ट पर नियमानुसार दस्तखत करके मैंने अब्दुल बसीत से अनुरोध किया—मैं चाहता हूं, इस केस से संबंधित सारी सूचनाएं बजाए अफिस के मेरे घर के पते पर भेज दिया करें.

बारह बज चुके थे. कल मैनेजर का सामना करने के खयाल से मेरा दिल अभी से बैठा जा रहा था, अबीसिया लंच टाइम से पहले पहुंचना था. जरा-सी देर होने पर दूसरा दिन भी खराब होता, मैं तेज कदमों से बस स्टैंड चल दिया.

अबीसिया के पुलिस अधिकारी की मुसकराहट से मुझे ऐसा लगा मानो संदूक का पता लग चुका हो.

—सर, इस बार मुझे क्यों बुलाया गया है?

—भई, इस बार केस कुछ अधिक उलझ गया है.

—वह कैसे?

—बात यह है जब हमने टैक्सी नंबर ६४६४ के मालिक को यहां बुलाया तो उसने हमें बयान में बताया कि चोरी के दिन वह काम ही नहीं कर रहा था, इसके

सबूत में उसने एक सर्टिफिकेट भी पेश किया है.

—यह भी तो संभव है, उसने झूठा सर्टिफिकेट दिया हो.

—हां संभव तो है, मगर इसे सिद्ध करना बहुत कठिन है, मेरे जेहन में एक और बात आई है.

—वह क्या?

—कहीं ऐसा तो नहीं कि नंबर में कुछ भूल हो रही हो, मेरा मतलब है ६४६४ तथा ४६४६ में जरा-सा अंतर ही है, हिज्जे वही हैं, लेकिन हेरफेर से दूसरा नंबर हो जाता है. और यह कोई बड़ी भूल नहीं है, ऐसा अक्सर हो जाता है. ड्यूटी आफिसर ने अपनी बात कुछ इस प्रकार घुमा-फिरा कर रखी कि कि साथ में मेरा जेहन भी घूमने लगा, मुझे भी शक होने लगा. मैंने आहिस्ता से कहा—संभव है ४६४६ को मैंने ६४६४ बना दिया हो.

—बिल्कुल ठीक, लेकिन ठहरिये, यह बयान लिखित रूप में लेना होगा. पुलिस स्टेशन से जब मैं लौटा उस समय दोपहर के तीन बज चुके थे. कंपनी कब की बंद हो चुकी थी.

अब सिवाय घर जाने के और कोई दूसरा रास्ता न था. दूसरे दिन जानबूझ कर मैं मैनेजर से दूर-दूर रहा. इसी तरह कई दिन गुजर गये. लेकिन एक दिन बला फिर सिर पर आई, मैनेजर बहुत गुस्से में था.

—मिस्टर शेख, आखिर यह है क्या, इसका कोई अंत भी है या नहीं—ये पुलिस स्टेशन . . .अपराध . . . .पूछताछ. . . .

इस बार इंबाबा पुलिस स्टेशन में बुलाया गया था. मेनैजर बिना रुके बोले जा रहा था. उसकी आवाज की गूंज पूरे दफ्तर में फैल गयी थी, मैं किसी से आंख मिलाने के काबिल नहीं रहा था. इंबाबा पुलिस का सम्मन मेरे हाथ में था. सूटकेस को फिर से प्राप्त करने की आशा बहुत पहले मर चुकी थी. मगर यह चक्कर था कि मेरा पीछा ही नहीं छोड़ रहा था. पुलिस स्टेशन पहुंचते ही मैं गुस्से में बिना आज्ञा ड्यूटी आफिसर के कमरे में घुस गया और जेब से सम्मन निकाल कर उसके सामने रख दिया.

—आप ही अहमद शेख हैं. . .सम्मन देखते हुए उसने पूछा.

—जी हां, . . .मैं ही वह अभागा हूं.

—बैठिये, फाइल खोलते हुए उसने कहा, कुछ सप्ताह पहले रौदा में जो रिपोर्ट की गयी थी, उसमें तुम्हारा बयान था कि टैक्सी नंबर ६४६४ है.

—हूं. . .मैंने बिना सिर उठाए जवाब दिया.

—और अबीसिया में तुम्हारा बयान था कि टैक्सी नंबर ४६४६ है, इस नंबर की टैक्सी का मालिक जिसका नाम मुस्तफा है, इसी क्षेत्र का निवासी है. इस समय तुमको बुलाने का कारण यह है कि मैं कुछ इस संबंध में पूछताछ करना चाहता हूं.

—श्रीमान, मैं इस केस के विषय में सब कुछ पहले ही बता चुका हूं.

—हां-हां सही है, लेकिन अब केस मेरे पास है, इसे मैं अपने तौर पर डील करना चाहता हूं.

—मगर अब पूछने को और रहा क्या है, आप पहले टैक्सी ड्राइवर से तो मालूम कर लें. संभव है वह. . .

—खैर पूछिये, क्या पूछना है. उसने मेज की दराज से कई कागज निकाले और कलम चलाना शुरू कर दिया. इससे पहले कि वह प्रश्न करे, मैं स्वयं किसी रटे हुए तोते की तरह शुरू हो गया,

—नाम अहमद शेख लुत्फी, उम्र ३२ वर्ष. . .

—खूब. . .रिपोर्ट का विषय क्या है?

अब मेरे गुस्से का पारा अपनी अंतिम बिंदु तक पहुंच चुका था. मैंने दांत भींचते हुए कहा —आफिसर साहब. . . !

—फरमाइये.

मैंने आवाज को संतुलित करते हुए कहा—बात यह है कि सारा केस झूठा है, मेरा सूटकेस बिल्कुल चोरी नहीं हुआ.

—हांय . . .क्या मतलब?

—यही कि कैरो स्टेशन से अपने चारों सूटकेसों के साथ मैं हिफाजत से घर पहुंचा था, मेरा कोई सूटकेस चोरी नहीं हुआ.

—भई, तुम्हारा नाम अहमद शेख लुत्फी है ना—तुम्हारा जन्मस्थान अबदीया है.

—हां है—तो फिर?

—तुमने रौदा तथा अबीसिया इस संबंध में रिपोर्ट की थी?

—जी हां, मैंने की जरूर थी मगर वह सही नहीं थी.

—क्या बकते हो तुम, यह दस्तखत किसके हैं?

—ये मेरे ही दस्तखत हैं, मगर अब सूटकेस मालिक की हैसियत से ही मैं यह कह रहा हूं.

—तो फिर पहले के सारे बयानात. . . ?

—गलत थे !

—अच्छा जैसे तुम्हारी मर्जी, इस संबंध में भी बयान लेना होगा. उसने जल्दी-जल्दी रजिस्टर पर कुछ लिखा और फिर मुझसे दस्तखत करने को कहा. मैंने बिन देखे दस्तखत कर दिये, मगर जैसे ही मैं जाने के लिये मुड़ा उसकी गरजदार आवाज ने मुझे चौंका दिया. —कहां जा रहे हो . . .?

—आफिस. अब तो केस ही समाप्त हो चुका है.

—समाप्त हो चुका है . . .मेरी तरफ घूरते हुए वह जोर-जोर से आवाज लगाने लगा. . .महमूद. . .

सिपाही ने आदेशानुसार मुझे बाजू से पकड़ लिया. मैंने आफिसर की ओर देखा. वह सिर झुकाए शांतिपूर्वक कुछ लिख रहा था. . . मैंने आगे झुक कर रजिस्टर की इबारत को पढ़ा :

'अहमद शेख लुत्फी वापस पुलिस स्टेशन रौदा भेजा जाता है जहां का वह निवासी है ताकि पुलिस अधिकारियों को बिना कारण परेशान करने के अपराध में, क्रिम्नल कोड न. १३५ के अंतर्गत इसके विरुद्ध उचित कारवाई की जा सके—दस्तखत पुलिस आफिसर इंबाबा . . . . !!!'

□□□

(अनुवाद : निदा फाजली)

सर शिवसागर रामगुलाम : अपार धीरज, असीमित लोकप्रियता

● राजेंद्र अरुण

अफ्रीकी एकता संगठन के होने वाले अध्यक्ष मॉरिशस के प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम के जीवन का अंतरंग चित्र

मॉरिशस के लोकप्रिय प्रधानमंत्री डॉक्टर सर शिवसागर रामगुलाम के संघर्ष और सफलता से भरपूर जीवन को समझना तब तक आसान नहीं होगा, जब तक हम मॉरिशस में बसे भारतवंशियों के इतिहास को न समझेंगे. इस देश में हर भारतवंशी भारत से कुली बन कर आया था. यहां गौरांग प्रभुओं की चाबुक और गालियों पर नाचना उसका काम था और दिन-रात बेज़ुबान हो खटते रहना ही उसका जीवन-धर्म. ऐसे यातना और उत्पीड़न के काल में १८ सितंबर १९०० ई. को रामगुलाम परिवार में शिवसागर का जन्म हुआ. पुकार का नाम 'केवल' रखा गया.

छह-सात वर्ष की आयु में ही पिता की मृत्यु हो गयी. इसी समय उनकी बायीं आंख में गाय के सींग से चोट लगी और वह आंख खराब हो गयी. बचपन में वह गाय चराते, घास काटते थे. पर थे बहुत ही तीक्ष्ण बुद्धि के. माध्यमिक शिक्षा समाप्त कर वह डॉक्टर बनने के लिए ब्रिटेन गये.

ब्रिटेन में वह १५ साल रहे. काम कर-करके पढ़ाई करते रहे. वहां के समाचारपत्रों में लेख लिखते थे. ब्रिटेन की लेबर पार्टी तथा भारतीय स्वतंत्रता के लिए संकल्पवान युवकों के साथ काम करते थे. मॉरिशस को स्वाधीन करने का सपना उन्होंने वहीं देखा.

१९३५ में जब वह मॉरिशस लौटे तो केवल डॉक्टर ही नहीं थे, राजनीति के एक मंजे हुए खिलाड़ी भी थे. उन्होंने मॉरिशस में लेबर पार्टी की स्थापना में सहयोग दिया और उसमें सक्रिय भी हुए. चिकित्सा के लिए वह गांव में बसे भारतवंशियों के बीच जुट गये. उन्होंने जो राजनैतिक अभियान आजादी के लिए चलाया, वह १२ मार्च १९६८ को मॉरिशस की स्वाधीनता के रूप में पूर्ण हुआ. वह स्वाधीन मॉरिशस के प्रथम और सर्वप्रिय प्रधानमंत्री बने.

आज ७६ वर्ष की आयु में भी उनमें एक जवान की-सी ऊर्जा है. हर शनिवार और रविवार को कम-से-कम १० सभाओं में भाग लेते हैं. अधिकांश सभाएं गांवों में होती हैं जिनमें वह हिंदी में बोलते हैं या भोजपुरी में. वह तीन-तीन घंटे तक एक सभा में स्थितप्रज्ञ-से बैठे रहते हैं. रात के ११–१२ बजे तक वह पार्टियों में रहते हैं, पर सुबह ४ बजे उठ कर बी. सी. सी. जरूर सुनते हैं.

एक पारिवारिक चित्र : (बायें से) पुत्री सुनीता, सर शिवसागर रामगुलाम, लेडी रामगुलाम तथा तथा पुत्र नवीन

सर शिवसागर रामगुलाम स्वामी दयानंद, विवेकानंद, डॉ. राधाकृष्णन, गांधी, मार्क्स, लेनिन और एंगेल्स से बहुत प्रभावित हैं. तुलसी और रामचरितमानस के भी वह भक्त हैं.

व्यक्तिगत जीवन में वह शिव के भक्त हैं. उनका कहना है : 'मैं प्रार्थना में प्रातःकाल केवल दो चीजें मांगता हूं—किसी पर क्रोध न करूं, किसी समस्या से विचलित न होऊं.' उनका जीवन सफलता का ज्वलंत इतिहास है. विरोधी तक स्वीकार करते हैं कि वह इतने दूरदर्शी और सटीक निर्णय लेने वाले हैं कि उन्हें असफलता मिल ही नहीं सकती.

वह अपने सहयोगियों, अनुयायियों और घनिष्ठ स्वजनों से दो चीजों की अपेक्षा रखते हैं—सिद्धांतनिष्ठा और आस्था की.

औपचारिकता और तामझाम उन्हें बिल्कुल पसंद नहीं है.

यदि कोई यह सोच कर उनके निवास-स्थान पर जाये कि वह प्रधानमंत्री के घर जा रहा है, तो उसे निराशा होगी. एक पुलिसवाला बाहर खड़ा रहता है, जो आपको रोकता नहीं, आपकी सहायता करता है. सभी महसूस करते हैं कि यहां प्रधानमंत्री नहीं, उनके 'चाचा रामगुलाम' रहते हैं. उनमें अपार धैर्य है. उनके एक सहयोगी विनोद में कहते हैं :' प्रधानमंत्री में इतना धैर्य है कि मैं अपना धैर्य खो देता हूं.' और यह धीरज ही उनके महान और लोकप्रिय होने की आधारशिला है. □□□

धारावाहिक उपन्यास (पहली किस्त)

लाल पसीना

• अभिमन्यु अनत

वह नाव ताम्रपर्णी से निकली थी. दोनों भिक्षु नाविक कलिंग के थे. पांड्य देश में दोनों भिक्षुओं ने बाकी भिक्षुओं से अलग अपना निर्णय लिया था. उनसे पहले निकले भिक्षु यवन, कांबोज, गांधार जैसे देशों को पहुंच चुके थे. यह सूचना उन्हें कलिंग ही में मिल गयी थीं. लेकिन जब उनकी नौका भी ताम्रपर्णी ही पहुंच कर रही, उस समय उन्हें अपनी भूल का एहसास हुआ. वहां तो पहले ही से भिक्षु पहुंच चुके थे!

ताम्रपर्णी में उन्होंने चुनी हुई लकड़ियों से अधिक विश्वसनीय नाव बनवायी. नयी भूमि पर प्रथम पहुंचने की चाह लिये दोनों ने वहां से नयी यात्रा शुरू की. सुदूर पूर्व के द्वीपों की चर्चाएं वे सुन चुके थे. उस विस्तृत महासागर के एक द्वीप से दूसरे द्वीप को होते हुए फिर तो वे इतने अधिक आगे निकल आये कि न तो उन्हें स्थान का पता, न दिशा का. सामने सागर विस्तृत होता चला गया था. इधर कई दिनों से वर्षा न होने के कारण और जल-पात्र के खाली हो जाने पर उनकी अपनी स्थिति तो नाजुक थी ही, उनके साथ पीपल का जो अंतिम पौधा था, वह भी मुरझाने लगा था.

प्रथम भिक्षु ने दूसरे की ओर देखा. उसके साहस को बढ़ाने के लिए उसने धीरे से कहा. ––बहुजन हिताय बहुजन सुखाय. . . बढ़ते जाओ, बढ़ते जाओ! दूसरे ने अपने सूखे होठों को हिलने दिया. कोई स्वर नहीं आया. फिर भी प्रथम भिक्षु ने नेत्र बंद कर लिये ––बुद्धं शरणं गच्छामि.

नाव चलती रही .

एकाएक . . . उस दोपहर में शाम का-सा धुंधलका छा गया. दोनों एक दूसरे को देखते हुए मौन रहे. दूर, काफी दूर, जहां एक क्षण पहले सागर और आकाश के रंग आपस में मिले हुए लग रहे थे, वहां लाली छा आयी थी. देखते-ही-देखते सामने पहाड़ जैसे ऊंचे ज्वारभाटे उठने लगे. हवा में उष्णता आ गयी थी. दूर के प्रलयंकर ज्वारभाटे अपने फेनिल उफान के साथ नाव के पास-पास आते गये. कूपदंड डगमगाने लगा; उसके साथ ही पोत भी कंदुक-क्रीड़ा कर उठा. दोनों ने बड़ी स्फूर्ति के साथ पाल को नीचे उतारा. नाव डगमगाती ही रही.

सागर की उथल-पुथल बढ़ती गयी. उसके गहरे नीलेपन को भेद कर गहराई से दूध की-सी फेनिल लहरें गंभीर गर्जन के साथ उठती रहीं. उस भयानक नाद से दोनों भिक्षु सहम गये थे.

बवंडर. चक्रवात! ! और सागर चिंघाड़ता रहा. दूर की वह लालिमा विस्तार पाती गयी. अपने स्वर को सागर के गंभीर गर्जन से ऊपर उठाते हुए एक नाविक ने अपने भय को प्रकट किया आंधी? दूसरे ने उसी आश्चर्यभर स्वर में कहा– विचित्र!

यात्रा के दौरान यात्रियों ने कई आंधियां देखी थीं. चक्रवात, बवंडर, सभी देखे थे, लेकिन इससे भिन्न. अचानक ही एक घटाटोप अंधेरे ने पूरे वातावरण को अपने में लपेट लिया. हाथ को हाथ नहीं सूझ पा रहा था. धड़कनें तेज हो कर भी महसूस नहीं की जा रही थीं. नाव के डोलते रहने के कारण दोनों को अपने अस्तित्व का बोध बना रहा . दोनों के हाथ से पतवारें छूट गयी थीं. उस गहन, अदृश्य वातावरण में दोनों के हाथ आगे बढ़े. स्पर्श होते ही दोनों हाथ एक-दूसरे के साथ बंध गये. भूखड़ों पर झंझावात के थपेड़ों से दोनों ने एक बार फिर अपने जीवित होने का प्रमाण पाया. कुछ दिखायी पड़ जाना नितांत असंभव था.

दोनों एक-दूसरे के हाथों को थामे महासागर की उपद्रवी स्थिति का अनुभव करते रहे. दहाड़ती लहरों को सुनते रहे. भयानक कालेपन के बीच दोनों जकड़े रहे. भारी कोलाहल होता रहा. झटास का पानी नाव में भरने लगा. नाव के आस-पास का पानी उबलता-सा प्रतीत हो रहा था.

बिजली कौंधी. उसके साथ ही अंधेरा फट गया. दोनों ने विस्फारित नेत्रों से अपने सामने देखा. ऊंचे ज्वारभाटे एकदम पास आ गये थे. पानी का रंग नीलेपन से हट कर कालेपन को आ गया था. दोंनो ने चारों ओर देखा. कोई क्षितिज नहीं था सामने. चारों ओर से उफनती लहरें, विद्रोही ज्वारभाटे.

धमाके के साथ विस्फोट हुआ. वातावरण रंग बदलता रहा. दूसरा प्रलयंकर विस्फोट हुआ.

समर्पण---खेर जगत सिंह को, जिनके भीतर इतिहास आज भी जीवित है

---अभिमन्यु अनत

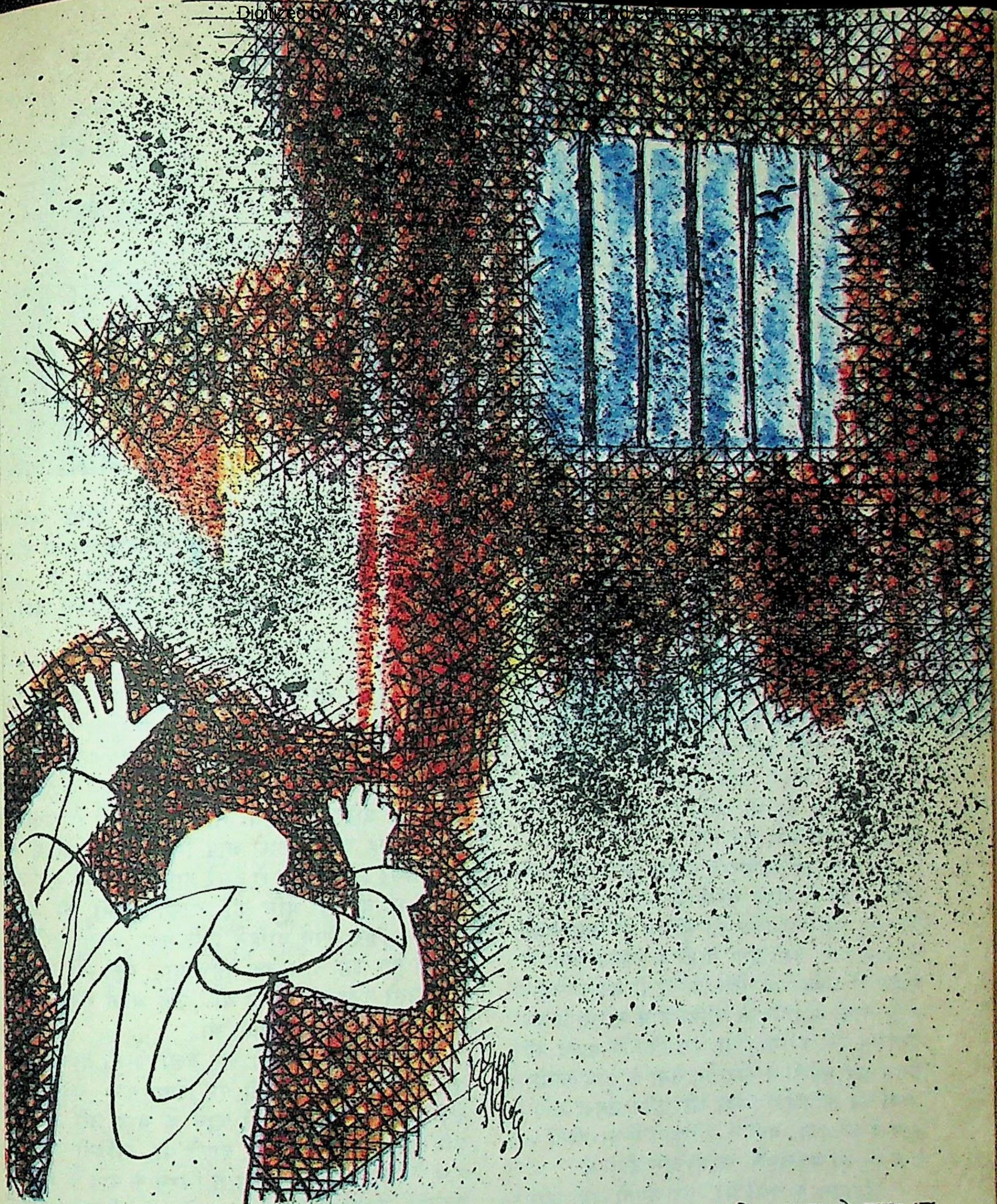

दोनों नाव के भीतर लुढ़क गये. किसी तरह एक-दूसरे का सहारा ले कर दोनों खड़े हुए —उनके नेत्र खुले-के-खुले रह गये. जीवन का सबसे बड़ा आश्चर्य उनके नेत्रों के सामने व्यतीत हो रहा था. कुछ ही दूरी पर सागर के बीच अंगारे और लपटें उठती दिखायी पड़ीं. गरमी से दोनों के शरीर दग्ध हो चले थे. उनके मुखड़ों पर पानी के छींटे अब भी थे, फिर भी उन्हें पसीने का अनुभव हुआ.

ज्वारभाटे शिथिल होते गये. सागर के रंग बदलते रहे. आंधी, चक्रवात, बंवडर, सभी कुछ थमता जा रहा था. नाव पानी से भर जाने के कारण डूबने लगी थी कि तभी बादल का-सा कोई भारी गर्जन हुआ. बिजलियां चमकीं. एक-दो साधारण विस्फोट हुए —ज्वारभाटे अपने आप में टूट-टूट कर लहरों का रूप लेते गये. तभी दोनों को लगा कि समुद्र के पानी का तापमान बढ़ता जा रहा था. लहरें उबलती दीख रही थीं. वातावरण इतना अधिक उष्ण हो चला था कि श्वास लेना कठिन प्रतीत हो रहा था.

अभी वे सोच ही रहे थे कि यह समुद्र के बीच से निकलने वाला कैसा ज्वालामुखी है कि तभी दूरी पर सागर को फाड़ कर पहाड़-सी कोई चीज ऊपर आती दिखायी पड़ी. एक बार फिर चारों ओर से ज्वारभाटे उठते दिखायी पड़े और बी. से उठने वाला पहाड़ ऊपर को उठता गया. सागर फेनिल ज्वारभाटों के साथ पीछे को हटता गया और पहाड़ फैलते गये. . . भिक्षुओं की नाव के नीचे से भी ज्वारभाटा उठा और नाव को दोनों भिक्षुओं के साथ ऊपर, बहुत ऊपर उठा कर उसने फिर अपनी लपेट में ले लिया. इससे आगे का दृश्य भिक्षुओं ने नहीं देखा. वे अथाह गहराई में विलीन हो गये. द्वीप विस्तृत होता गया जब तक कि बीच के ज्वालामुखी से अंगारे निकलने बंद नहीं हो गये.

→

और इसी तरह महासागर के बीच एक नये द्वीप का जन्म हुआ.

लंबे समय तक वह धरती बंजर बनी रही. फिर धीरे-धीरे धरती ठंडी होती गयी. ज्वालामुखी का विषाक्त प्रभाव कम होता गया. वनस्पतियों का उगना आरंभ हुआ. पक्षी और पशु भी पैदा होते गये.

इतिहास के धूमिल पन्नों से इस द्वीप को पहुंचने वाला पहला जहाज द्रविड़ नाविकों का था, जो संभवतः दिशाहीन हो कर इधर भटक आया था. उस समय द्वीप निर्जन था. द्रविड़ नाविकों को जब अन्य जहाजों और लोगों के इधर पहुंचने की संभावना नहीं दिखी, तो वे वहां से चल पड़े.

इसी तरह समय बीतता गया. ईसा के बाद पहली शताब्दी के लगभग भारत की ओर जाते हुए अरबों की नजर इस वीरान द्वीप पर पड़ी. उन्होंने भी संभवतः अधिक की उम्मीद न करके उसे छोड़ दिया. इसी तरह समय-समय पर अनेक जातियां आती रहीं, जाती रहीं.

इतिहास के पन्ने कुछ स्पष्ट हुए. हिंद महासागर से यात्रा करते हुए पुर्तगालियों का आगमन इस द्वीप में हुआ. इसे बसाना जब उन्हें टेढ़ी खीर प्रतीत हुआ, तो वे आगे बढ़ गये. उनकी इच्छा भारत जीतने की थी. पुर्तगालियों के बाद और भी लोग आये और चले गये.

भारत पर अधिकार जमाने के लिए फ्रांस और इंग्लैंड के बीच संघर्ष था. उसी समय इस द्वीप को भारत-विजय की सुविधा के लिए लक्ष्य में रखा गया. इसी द्वीप से हो कर फ्रांसीसियों ने मद्रास में अंग्रेजों के खिलाफ पहली लड़ाई लड़ी. इन्हीं लोगों के समय से मॉरिशस में भारतीयों का आगमन शुरू हो गया था. इस द्वीप के महत्व को समझ कर अंग्रेजों ने भारतीय सेना के साथ फ्रांसीसियों पर आक्रमण किया और द्वीप उनके अधिकार में आ गया. यहां से मॉरिशस में भारतीयों के आगमन की महत्वपूर्ण कहानी शुरू होती है.

इतिहास के पन्नों पर धूल जमती गयी और कई पृष्ठों को जला भी दिया गया. फिर भी कुछ पन्नों को एक ऐसी स्याही से लिखा गया था, जिन पर धूल टिक नहीं पायी. ऐसे भी पन्ने थे, जो भारतीय मजदूरों के खून-पसीने से कुछ इस तरह भीगे हुए थे कि उन्हें आग जला न सकी और जो पन्ने जले भी, उनकी राख को खाद समझ नियति ने खेतों में बिखेर दिया. इतिहास की बलि का वह सारा रक्त बह कर खेतों के रक्त से जा मिला और ...और दबोच दिया गया वह इतिहास परतों के नीचे कैसे सांसों के लिए संघर्ष करता रहा, उसकी गवाही आज भी धरती की सोंधी गंध देती है, लेकिन उस इतिहास को कैसे जिया गया था?

आगे उसी जीवन की कहानी है. . .

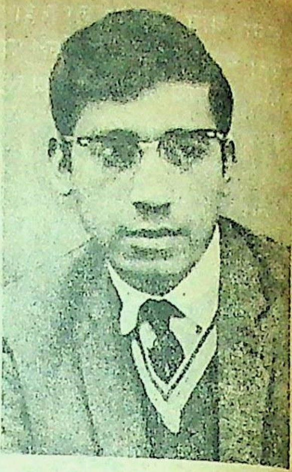

अभिमन्यु अनत मॉरिशस के श्रेष्ठतम कथाकार हैं. हिंदी के पाठक उनकी रचनाओं और ख्याति से पूरी तरह परिचित हैं. अभिमन्यु जी की कृतियों में वह गहनता और परिपक्वता मौजूद है, जो उन्हें सहज रूप से ही तीसरी दुनिया के श्रेष्ठतम रचनाकारों में ला खड़ा करती है. 'लाल पसीना' 'एक बीघा प्यार' और 'आंदोलन' के बाद उनका तीसरा उपन्यास है, जिसमें उन्होंने मॉरिशस के इतिहास को प्रगाढ़ रचनात्मकता से पुनरुज्जीवित किया है.

● ● ●

अपनी सांसों को महसूसते हुए वह घास पर पड़ा रहा.

उन सांसों के साथ-साथ वह खामोशी की गहराई को भी नाप रहा था. आकाश के झिलमिलाते तारों को अपने मस्तिष्क के भीतर टिमटिमाता अनुभव करता रहा. सामने के अंधेरे को अपनी सांसों से चीरने के प्रयास में असफल वह उसके अपने आप मिटने की आस में बैठा रहा. अंधेरे में एक हाथ से दूसरे हाथ को टटोल कर उसने घासों को हटाया. भूमि की हलकी गरमी को अनुभव किया. फिर अपने दाहिने हाथ को अपने शरीर पर दौड़ाते हुए उसे नाक तक पहुंचाया. वहां भी सांसों के साथ उसी तरह की गरमी थी. उसे अपने सही-सलामत होने का पूरा यकीन हो गया था.

उसने पैरों को हिला कर देखा. अभी ताकत बाकी थी. दोनों हाथों को धरती पर टिका कर वह धीरे से खड़ा हुआ. सीधा खड़ा हो जाने के बाद उसे लगा कि जांघों में बहुत कम ताकत बाकी थी. दाहिनी जांघ पर हाथ फेर कर उसने मुंडेर पर से गिरने के बाद के घाव को महसूसा. उसकी अंगुलियां तरल हो गयी थीं. उस कालेपन में लाल रंग को बस महसूसा ही जा सकता था. वह रंग गहरा था. अधिक था. चोट गहरी थी. हाथ से छू जाने के बाद उसे दर्द अनुभव हुआ.

आंखें ऊपर करके उसने तारों को देखा. फिर खयाल आया. धुंधलके में रास्ता टटोल कर उसे बढ़ना था. अभी वह बहुत दूर नहीं निकल पाया था. अंधेरे का लाभ उठा कर उसे दूर निकल जाना था. दूर, जहां उसके भीतर का डर मिट जाये. जहां से क्षितिज उसे विस्तृत लगे. सांसों की अकुलाहट कम हो जाये. पर वह स्थान अभी दूर था. अभी उसे बहुत अधिक चलना था. उसने कदम उठाया. एक के बाद दूसरा. बड़ी कठिनाई से तीसरा उठा, फिर चौथा भी. थकान अभी बनी हुई थी. बड़ी कठोरता के साथ जांघ की पीड़ा को नकार कर वह बढ़ने

लगा. घाव रिसता जा रहा था. वह उसे रिसने से रोक रहा था. लेकिन उसे रोक पाना आसान नहीं था. उसका दाहिना पांव जमीन पर अच्छी तरह पड़ नहीं पा रहा था. फिर भी वह चलता रहा.

उसका अपना शरीर अधिक बोझिल प्रतीत होने लगा था. लग रहा था वह इतिहास के समस्त बोझ को अपने ऊपर लिये चल रहा था. इतिहास तो कुछ लोगों को कुछ भी नहीं देता. बोझ ही सही, उसे कुछ तो मिला था! लेकिन यह गठरी इतनी भारी कभी नहीं थी. थकान और चोट का खयाल करके उसके होठों के बीच जो फीकी मुसकान आयी, वह क्षणिक रही. उस अंधेरे में उसका ओझल हो जाना बड़ा सहज और तीव्र रहा. एक क्षण उसे ऐसा खयाल भी आया कि जांघ के कारण पांव बेकार है. हाथों और घुटनों के बल चलने की इच्छा हुई. वह फीकी हंसी एक बार फिर आयी, और उसी तेजी के साथ फिर गायब हो गयी. सामने के अंधेरे को टटोलते हुए उसके हाथ झाड़ियों से छू गये. उन्हें हटाता हुआ वह बढ़ता गया.

दर्द के अधिक बढ़ जाने पर वह झींगुरों और जंगली कीड़ों की आवाजों की झनझनाहट को अपने ही भीतर पाने लगता. रात के घटाटोप अंधेरे को टटोलता-पकड़ता वह बढ़ता गया. उसकी वह पकड़ कहीं मुलायम थी, कहीं एकदम कठोर और कहीं तो वह स्पर्श से बाहर थी. तब उसके कदम अनुमान से उठते और अचानक किसी खरगोश या चिड़िया द्वारा पैदा की गयी खरखराहट से वह सिहर जाता. उसकी जोरों से आती-जाती सांसें और कांपते कदम वर्षों पहले के फौजी जीवन की याद दिला जाते. उस समय वह कभी नहीं हांफा था. उसे पसीना बहुत आता था, पर पसीना आने का मतलब थकान नहीं होता था.

* *

पैर जब जवाब-से देने लगे, तो वह क्षण भर को ठिठका, फिर रात के उस भारी सन्नाटे में उसने धीरे से कहा—नहीं! लोग मुझे यहां पड़ा हुआ नहीं पा सकते. मुझे बेबस पा कर यहां से बांध नहीं ले जा सकते. नहीं-नहीं! वह फिर से चलने लगा. वह अभी उतनी दूर नहीं आ सका था, जहां से चारदीवारी की अकुलाहट पीछे छूट चुकी हो. वह नर्क अब भी उसके मस्तिष्क के अंश-अंश में था. वह लंबा अतीत अब पास ही था. उसे मरना भी था, तो उससे दूर जा कर, उससे कट कर. जीवन के एक-दो क्षण ही सही, वह अलग से उन वेदनाओं को नकार कर ही जीना चाहता था. वह ठौर दूर था, फिर भी उसके संकल्प में वह उतना अधिक दूर नहीं था, जहां पहुंचा न जा सके. वह हाथों के बल रेंग कर भी वहां पहुंचना चाहता था. उसके अपने भीतर की सीली आवाज भीतर-ही-भीतर अकुलाती रही.

उसके कदम बोझिल थे. सभी कुछ युग-सा लंबा लग रहा था. उसकी अपनी सांसें भी. एक टिमटिमाता चिराग भी दीख जाता, तो उसका हौसला इस तरह पिघल कर बह न जाता. अपने बहते हौसले को वह अंजुली में थामे एक कदम को ऊपर उठा कर आगे बढ़ाता और दूसरे को उसके पीछे घसीट लाता. वह अपनी हड्डियों को ढीला-सा होते हुए महसूसने लगा था. उसके भीतर एक भय, जो पहले कभी नहीं था, घर करता जा रहा था. चारदीवारी के भीतर वर्षों तक रह कर वहां की उस यंत्रणा से वह जितना डरा था, उससे अधिक वह वहां फिर से लौटने के खयाल से कांप रहा था. इसी तरह की स्थिति उसकी भारत छोड़ते वक्त भी हुई थी. भावना में अंतर था, पर स्थिति वही थी. अपने गांव और देश से दूर हो कर ही वह वहां के अपनेपन को पहचान सका था. जहाज में पहली बार उसे ज्ञात हुआ था कि सभी अभावों के बावजूद वह स्थान उसका एकमात्र था. अब तो वह मर कर भी वहां नहीं लौटना चाहेगा.

* *

एक बड़े-से पत्थर से टकरा कर वह उसी पर बैठ गया. पहली बार उसे यह खयाल आया कि जंगलों में जिया जा सकता है. मारीच की कम-से-कम एक चीज तो सराहनीय रही. भयानक जंगली जानवरों से रहित इस देश का जंगल ही वह स्थान था, जहां स्वच्छंद घूमा जा सकता था. पहाड़ों, नालों, और नदियों के बीच का स्वतंत्र जीवन! सामने के गहरे अंधेरे में उसे जेल के सिपाहियों के चेहरे झिलमिलाते-से नजर आये. उस अंधेरे में मलगासी काले चेहरे और भी भयानक प्रतीत हुए. उसके खयाल को पीछे की ओर उछलते देर नहीं लगी. बहुत पीछे. . . .

बिहार की एक डरावनी रात. अहीरों के मोहल्ले से वह बिरहा सुन कर लौट रहा था. बहुत पुरानी याद समय की झिलमिल परतों से एकदम धूमिल थी. न जाने मस्तिष्क के किस भाग में मुद्दतों तक छिपा रहने के बाद आज बड़ी स्पष्टता के साथ वह दृश्य सामने कौंध गया. वह रात एकदम ऐसी ही थी. ऐसी ही बोझिल, इसी तरह की गंध लिये. दो रात पहले चंदर महतो के खेत से उसने अधकच्ची मकई चुरायी होगी और हाथ में लट्ठ लिये चंदर महतो का काला शरीर लाल और. . .और. . . बाकी यादें स्पष्ट नहीं हो सकीं और उसने भी नहीं चाहा कि उसके जीवन का वह प्रथम भय, प्रथम आंतरिक पीड़ा, उसके भीतर फिर से जीवंत हो जाये— उसने मस्तिष्क पर जोर नहीं दिया.

सामने का अंधेरा कैद की दीवार की तरह उसे अपने सामने की चीजों को देखने से रोक रहा था. उस घटाटोप अंधेरे में उसके लिए एक ही उपाय था. उसने वैसा ही किया. आंखें मूंद ली उसने. नये आने वालों से चारदीवारी के भीतर कई नयी बातें वह सुनता आ रहा था. उसने उन सारी बातों को एक-एक करके याद किया. उसी के देश, उसी के प्रांत के लोग— झोपड़ियां एकदम वहीं जैसी— वहीं की बोली— वहीं के रीति-रिवाज. किसी पिछले कैदी ने तो हनुमान जी के चौथरे तक की चर्चा की. . . उसे बिहार के गांव याद आये. अपने गांव की काली माई याद आयी. इसके साथ ही नये कैदी का फुसफुसाना उसे सुनायी पड़ा :

—हम सबन मिलके गांव में कालि माई की स्थापना

करना चाहत रहीं, पर कोठी वाले गोरवा ने आज्ञा ही ना दी—साले मौगों को मालूम नाहीं कि राज करते राजा जइहे, रूप करते रानी, बेद पढ़ते पंडित जइहे रह जयही नेक निशानी.

उसने मन-ही-मन पूछा—आखिर धरम-करम के मामले में दखल देने वाले ये कौन होते हैं? इन हरामजादों ने अभी देवी मैया का कोप नहीं देखा. सारी सेखी निकल जायेगी. इधर नये कैदियों से उसने जो कुछ सुन रखा था, उसे देखने की इच्छा उसके भीतर तीव्र हो चली थी. वह रेंग कर भी एक ऐसे गांव में पहुंचना चाहता था, जहां बिहार का कोई टुकड़ा भी आने वाले कुलियों के साथ आ गया था.

उसके कानों में मुर्गे की बांग आयी. एकदम वैसी ही, जो वह मुद्दतों पहले अपने गांव में सुनता था. उसके कदमों ने उत्साह पा लिया था. वह आगे बढ़ा. सामने के अंधियारे की आड़ से दूर कोई चिराग झिलमिलाता नजर आया. शायद वे पेड़ के पत्ते रहे होंगे, जिनसे आंख-मिचौनी खेलती हुई वह धूमिल रोशनी ओझल हो गयी. दूसरे ही क्षण एक दूसरा चिराग दिखायी पड़ा. उसी तरह दूरी की टिमटिमाहट लिये. फिर तो दो-तीन दीखने लगे. अपने घायल पांव को खींचता हुआ वह उस अनजान डगर के लिए इस तरह बेताब हो गया जैसे कि वह उसका अपना ही गांव हो और वहां उसके अपने ही लोग उसकी लंबी प्रतीक्षा कर रहे हों. उसने दो बहुत ही उतावले कदम उठाये. फिर एकाएक सहम कर स्थिर हो गया. कुछ ही समय में पौ फटने वाली थी. जिस गहरे अंधेरे को कुछ ही देर पहले वह कोस रहा था, उसके बहुत जल्द ही मिट जाने के खयाल से वह कांप उठा. यह अंधेरा उसका रक्षक था. उसके बिना सामने के गांव में पहुंचने की उसकी हिम्मत नहीं हो रही थी.

* *

बड़ी कठिनाई से उसने समय का अनुमान किया. सुबह करीब हो कर भी तो तीन-चार घंटों के फासले पर थी. बगल से जो कल-कल ध्वनि आ रही थी, उससे यह समझते उसे देर नहीं लगी कि चंद ही कदमों पर कोई नदी थी. वह गांव की ओर न बढ़ कर नदी की ओर बढ़ गया. नदी किनारे पेड़ों के झुरमुट के कारण अंधेरा और भी गहन था. चट्टान पर बैठ कर उसने सामने के अंधेरे में छिपे गांव के बारे में सोचा—वहां के लोगों के बारे में. गांव के किसी व्यक्ति की नजर उस पर पड़ जाये, इससे पहले वह खुद गांव के किसी आदमी को देख कर उस गांव के बारे में अपना विचार निर्धारित कर लेना चाहता था.

गांव के किसी व्यक्ति का इधर आना हो सके, इसमें अभी तीन-चार घंटे बाकी थे. समय पहले ही से उसके लिए युग-सा लंबा था. उसे काटने के लिए उसने एक बार पीछे छोड़ आये लोगों के बारे में सोचना चाहा—चाहे वह याद दर्दनाक ही क्यों न ठहरी. पीछे जो वह छोड़ आया था, वहां भी घनिष्ठता थी और. . . . एकाएक नदी की ठंडक को अपने भीतर तक महसूस करके उसे अपनी मुक्ति पर आश्चर्य हुआ. क्या वह संभव था? कुछ भी हो, वह सपना नहीं देख रहा था, इसका उसे पूरा यकीन था—तो फिर? खैर, कुछ भी हो, वह चारदीवारी से बाहर आ गया था.

वह सुबह की प्रतीक्षा में बैठा रहा.

वह सुबह अभी तीन-चार घंटों की दूरी पर थी. इस लंबे समय को काटने के लिए उसने चारदीवारी की उस घनिष्ठता को याद किया, जिससे घुल-मिल कर एक अलग संसार बना था. एक सीमित इच्छा का संसार. लंबी सांसों का संकुचित जीवन. . .

यादें घिस गयी थीं. अधिक आगे की यादें कोड़ों और जूतों के प्रहार से छिन्न-भिन्न थीं. इस लिए उसने अधिक आगे की स्मृति का सहारा न ले कर उसी क्षण तक अपनी याद को पीछे जाने दिया, जब वह जेल के अस्पताल में था. जहां से बाहर के ईख के खेत ठीक सामने थे. . . .

ईख के खेत ठीक सामने थे. वहां की हरियाली स्वतंत्र थी. कुंदन की चारपाई खिड़की के पास होने के कारण उसकी आंखें उस दुर्लभ स्वतंत्रता को घूरा करतीं. कुछ वर्ष पहले यह हरियाली वहां नहीं थी. सभी कुछ देखते-ही-देखते हो गया था. उस हरियाली को हाथों से स्पर्श करने को वह लालायित-सा था. वहां की स्वतंत्रता को महसूसते हुए उसके अपने भीतर की चाह सामने के कंटीले तारों की ऊंची दीवार से टकरा कर रह जाती. उन हरे-भरे खेतों से भी पास थी वह काले पत्थरों की चारदीवारी, जहां वह इतने लंबे समय से था कि वह युग-सा प्रतीत होने लगा था. इस स्थान को कैदी दो नामों से पुकारते थे. कभी वे खुश होते तो उसे ननिहाल कह लेते थे, अन्यथा वह चारदीवारी से ही जाना जाता था. सांसें जितनी वहां घुटती थीं, यहां भी घुटती हैं. अंतर केवल इतना होता कि यहां कुंदन अपने को जंजीर में नहीं पाता. पड़े रहने के लिए यहां की लकड़ी की चारपाई पर वाक्वा की चटाई होती. नंगी लकड़ी और उस पर पतली चटाई—कुंदन के लिए कोई विशेष अंतर नहीं था. दोनों स्थानों की व्यवस्था दो बूंद पानी की तरह एक-दूसरे से मिलती थी.

कैदखाने का यह बारह चारपाइयों का छोटा-सा अस्पताल कैदखाने के पिछवाड़े में पड़ता था. उस दिन कैद के भीतर एक और दीवार खड़ी करते समय कुंदन के पांव पर पत्थर लुढ़क आया था. चोट गहरी थी. यहां अस्पताल में जाने पर भी कैद का एहसास क्षण भर के लिए भी नहीं मिटता. यहां भी एक सिपाही भीतर बैठा होता और दूसरा दरवाजे पर तैनात रहता. दरवाजा एक ही था. टट्टी के लिए जाते वक्त भी एक सिपाही साथ हो जाता था. कुंदन का आज यहां दसवां दिन था. यह तो वह अंगुलियों पर गिन कर याद किये हुए था. लेकिन उसकी गिरफ्तारी के बाद आज तक कितने दिन हुए थे, उन्हें दीवार की लकीरें भी बताने में असफल थीं. पहले तीन वर्षों के बाद दूसरी लकीरों के लिए दीवार पर जगह ही नहीं बची थी. कुंदन को इतना अनुमान अवश्य

था कि इस तरह की कोई और दस दीवारें अब तक भर गयी होतीं.

उसके पैर का घाव अब भी दूसरे दिन जैसा था. दर्द भी लगभग वैसा ही था. यहां प्रवेश पा कर तीन दिन तो उसे एक दूसरे रोगी के साथ उसी की चारपाई पर टिकना पड़ा था. आज भी कई चारपायों पर दो बीमार पड़े हुए थे. अस्पताल में दाखिल होने के दो दिन तक मुंह में डालने के लिए कुंदन को एक दाना भी नहीं मिला था. दवा के नाम पर इधर दो दिन से काले रंग की कोई चीज उसके घाव में लगायी जा रही थी, जिसका कोई खास असर भी नहीं था.

रावेनाल की दीवार के बीच कटी हुई छोटी-सी खिड़की से वह दूर के नये उपजे खेतों को देखा करता. वहां की हरियाली के उस पार की कुछ यादें उसके भीतर कभी विद्रोह कर जातीं. ठीक सामने के मुड़िया पर्वत के पार्श्व में थी वह छोटी-सी बस्ती, जहां लड़ाई की जीत के तीसरे ही दिन बाद उसे अपने लोग मिल गये थे—अपने देश से आये लोग. उनमें उसका कोई नहीं था, पर सभी अपने हो गये थे. टुकड़ी के सबसे अधिक जवान सिपाही के नाते उस समय उसकी उम्र उन्नीस की रही होगी. अपने गठीले शरीर के कारण फौज में दाखिल होने में उसे तनिक भी कठिनाई नहीं हुई थी. आरा की छोटी-सी अस्थायी छावनी में उसने प्रशिक्षण पाया था और बहुत कम समय में बहादुरी की दाद कई बार पा चुका था.

. . .और एक दिन मॉरिशस को जीतने की चाह लिये वह भी सैंकड़ों भारतीय सिपाहियों के साथ जहाज पर सवार हो गया था. सभी सिपाहियों की तरह उसे भी यही बताया गया था कि अंग्रेज मॉरिशस को फ्रांसीसियों से जीत कर भारतीयों के हवाले कर देगा. अंग्रेजों के चंद ठेकेदारों ने सभी सिपाहियों को यही सुनने दिया था कि उनकी वफादारी और वीरता के लिए मॉरिशस उन्हें भेंट कर दिया जायेगा. कुंदन ने कई सिपाहियों से भी यही सुना था कि वह टापू उन लोगों का अपना हो जायेगा. कुंदन मन-ही-मन खुश था. रोवे के जी करले रहल अंखवे खोदा गईल!

उस समय कुंदन के भीतर यही एक बहुत बड़ी खुशी थी. भारत में तो वे गुलाम थे, मॉरिशस में कम-से कम इस लाघव भावना से बच जाने की आशा उसके भीतर की सबसे बड़ी प्रसन्नता थी. जहाज के सभी लोगों की आंखों में आंसू थे. अपने जनों से बिछुड़ने का दुख था. कुंदन की अपनी आंखों में आंसू नहीं थे. जिन लोगों से बिछुड़ना था, वे सभी तो बहुत पहले ही उससे बिछुड़ चुके थे. कुंदन एक नये द्वीप की ओर जा रहा था. एक नये संसार की ओर. उसके अपने भीतर एक टीस-सी अवश्य पैदा हुई थी. काश! उसके वे अपने लोग अकाल के शिकार न हो कर उस बेहतर संसार के लिए जहाज में साथ होते. इस खयाल मात्र से उस समय की कुंदन की वह खुशी सीमित और क्षणिक रह गयी थी.

* *

मलगासी था वह काला परिचारक जिसने उसके पास पहुंच कर उसके खयालों से उसे झकझोर दिया. न चाहते हुए भी कुंदन को उसके हाथ से बूयों की कटोरी लेनी पड़ी. टीन की वह पतली अधमैली कटोरी भीतर के गरम बूयों के कारण बाहर से भी गरम हो गयी थी. उसे एक हाथ से दूसरे हाथ में पहुंचाते हुए कुंदन ने काले परिचारक को गौर से देखा. वह हृष्ट-पुष्ट था. कुंदन उसके उस साहस को भीतर-ही-भीतर आजमाता रहा, जिससे उस मलगासी और उसके साथियों ने दासता को नकारा था. आज उन सभी क्रिओलों को हलके-फुलके कामों में लगे देख कुंदन कभी उनके साहस को सराह उठता, कभी उन्हें आलसी मान उन्हें कोस उठता. एकाध बार उसके मन में यह विचार भी आया था कि इन्हीं मलगासी गुलामों की तरह अगर भारतीय मजदूर भी खेतों में काम करने से हट जायें, तो मालिकों की दशा दयनीय हो सकती है. पर ऐसा होने से रहा. वह बिहारियों को बहुत अच्छी तरह जानता है.

आखिर, वह भी तो उन्हीं में से एक ठहरा. परिश्रम से कभी न थकने वाली जाति खेतों से भागे तो क्यों? लेकिन हाल के कैदियों के मुंह से जिस अत्याचार की कहानी वह सुनता आ रहा था, उसके खिलाफ तो वे खड़े हो सकते थे. यहां भी कुंदन को उन लोगों की सहनशीलता याद आ जाती, संतोष याद आ जाता. उसे इन दोनों शब्दों से चिढ़ थी. कभी वह बिहारी मजदूरों के भूमि-प्रेम को अंधविश्वास मान लेता, कभी उस आस्था को इस देश का भविष्य मान कर गंभीर हो जाता.

उसकी अपनी चारपाई के ठीक सामने मंगरू की चारपाई थी. इस अस्पताल में मंगरू ही एक व्यक्ति था, जिससे उसकी घनिष्ठता कैदखाने से शुरू हुई थी. मंगरू से जेलर के पानी का बरतन नीचे गिर कर फूट गया था, जिसके बदले में भीमकाय जेलर ने पूरी ताकत के साथ अपनी लात उस पर दे मारी थी. आसपास के सभी कैदियों के देखते-ही-देखते मंगरू उछल कर सामने की दीवार से जा टकराया था. उसके सिर से खून बहते देख कर भी किसी कैदी की हिम्मत नहीं हुई थी कि बढ़ कर उसे उठाये. हंटरों की परवाह किये बिना कुंदन ने उस वक्त उसके सिर को अपनी गोद में ले लिया था, जब उसने उसे बेहोश पाया था. फिर तो दो और कैदियों की हिम्मत आगे बढ़ने की हो सकी थी, पर किसी से कुछ नहीं हो सका था, क्योंकि दो सिपाही क्रिओली में गालियां देते हुए सामने आ गये थे.

कुंदन का खून कई अवसरों पर खौला था. सिपाहियों के कंधे से बंदूक छीन लेने के लिए कई बार उसकी अंगुलियां हिल-डुल कर रह गयी थीं. उसके दांत कई बार किटकटा उठे थे. हर बार उसके भीतर का सिपाही-आवेश मोम की तरह भीतर-ही-भीतर जम कर रह गया था. बरबस बने मलगासी सिपाहियों के कंधों की बेढंगी लटकी बंदूकों को देख कर उसे अपने बेहतर सिपाही होने का मन-ही-मन गर्व होता. कभी अवसर आ जाये, तो वह प्रमाणित कर दे. पर अवसर आये तब तो! उसे अपनी नादानी पर हंसी आ जाती. इस कैद में उसके दिमागी तर्क तक संकुचित हो गये थे. यहां उमर ढली जा रही थी, फिर भी उसका बच्चों की

तरह सोचे जाना बंद नहीं होता.

कई अन्य अवसरों की तरह उस दिन भी बड़े संयम के साथ उसे अपने को संभालना ही पड़ा था. वह पीछे हट गया था. फौजी जीवन में हमेशा आगे बढ़ना सीख कर भी वह अपनी उस सीख का उपयोग नहीं कर पाता. जब से उसके फौजी कपड़े उस पर से उतरे थे, वह लगातार पीछे ही हटता आ रहा था. उसकी हर छोटी गुस्ताखी के लिए उसके सिर पर भारी बोझ रख कर उसे पीछे को झपटाया जाता. कई बार गिरने पर सिर का भारी पत्थर उसके ऊपर आने से बचा था. उसे पीछे हटना गवारा नहीं था, पर क्या करता? पीछे हट चुकने के बाद ही उसे अपने फौजी प्रशिक्षण के चंद उसूल याद आये. आरा जिले की छावनी में कर्नल भग्गू सिंह कई बार उससे कह चुका था कि क्षत्रीय जितनी बार पीछे को हटता है, उतनी बार उसकी मृत्यु होती है. इस याद के साथ कर्नल का बड़ी-बड़ी मूंछों वाला गोरा चेहरा उसकी आंखों के सामने झिलमिलाने लगता और कुंदन का अपना गोरा चेहरा लाल हो उठता.

★ ★

आज का बूयों भी पतले मांड़ के ऊपर सहजन के चार-पांच पत्तों के सिवा कुछ भी नहीं था. नमक ज्यादा पड़ गया था. या यह भी हो सकता है कि जानबूझ कर ऐसा किया गया हो. दो दिन पहले तीन मरीजों ने यह कह कर बूयों नहीं पिया था कि वह एकदम पनछोर बना था. नमक की उस कमी को इस बार बहुत ही अच्छी तरह से पूरा कर दिया गया था. सामने के सिपाही की आंखें बचा कर कुंदन ने खिड़की के जरिये कटोरी को खाली कर दिया.

अस्पताल के भीतर बैठे सिपाही को भोजपुरी नहीं आती थी, यह जान कर कैदी आपस में कुछ समय खुल कर बातें कर लेते थे. मंगरू ने अपनी चारपाई पर पड़े-पड़े कुंदन से पूछा— क्यों कुंदन, आज भी कोई डाक्टर आयी कि नहीं?

——अभी तो डाक्टर के यहां से गये तीन ही दिन हुए हैं, मंगरू भैया! बगल के जगेसर ने धीरे से कहा.

——अरे, अभी कोयके मरे की नौबत तो आये! मंगरू ने एक लंबी सांस ले कर कहा.

——दिन मोरे ओही दिवस भये आन, खात रहली मेवा पीयत रहली गूड़ पान.

उसके चेहरे पर जो मुसकान थिरक आयी थी, वह व्यंग्य से सनी हुई थी— वह व्यंग्य जो आदमी का अपने ही ऊपर हो.

मंगरू की बगल की चारपाई पर दो रोगी दो अलग दिशाओं की ओर मुंह किये सो रहे थे. दीवार की ओर वाले जगलाल ने, जो यहां से भाग निकलने के दो असफल प्रयास कर चुका था, दबे स्वर में कहा कि उस डाक्टर के आने-न आने से क्या लाभ जो रोगी से चार कदम दूर ही पर खड़े रह कर चिकित्सा को पूरा कर जाता है! सप्ताह के भीतर दो कैदी मरे थे और चार नये आ गये थे. चारों नये दाखिल हुए रोगियों को जोरों का बुखार था. फिर भी दो दिन उन्हें नीचे के बोरों पर एक ही साथ पड़े रहने दिया गया था. कुंदन ने चाहा था कि अपनी जगह उन चारों में से सबसे अधिक पीड़ित को दे दे. इस पर अस्पताल के मुख्य परिचारक ने उसे मां की गाली सुनाते हुए पीछे को धकेल दिया था. उसके पांव की चोट से खून बह चला था. दर्द बढ़ गया था. रात को वह सो नहीं सका.

रात को काफी देर तक वह मन-ही-मन बड़बड़ाता रहा ——ओ रे मोरी नींदवा कहां खेले गुली-डंडवा!

इस अस्पताल में सुबह महीनों देर से आती थी.

सुबह होते ही दो मरीजों को हाथों में जंजीर पहनाकर काली कोठरी में लौटा दिया गया था. दूसरे दिन मंगरू की बारी थी. मुख्य परिचारक से अपनी बारी सुन कर उसे हंसी आ गयी थी. खुशी से नहीं, बल्कि उस करारे व्यंग्य के कारण, जिसे वह भीतर-ही-भीतर महसूस रहा था. उसके माथे की चोट कुछ-कुछ अच्छी हुई थी, पर इधर तीन-चार रात से उसके पेट का दर्द और भी बढ़ गया था. दर्द इतना अधिक था कि वह बच्चे की तरह रोने लगता था. चीत्कार कर उठता था. यहां के अन्य मरीजों को उसकी चीख से बचाने के लिए उसे चारदीवारी में लौटाया जा रहा था. कम-से-कम इस बात की थोड़ी-बहुत खुशी मंगरू को जरूर थी कि रोगी कैदियों का इतना खयाल तो रखा ही गया था. दिन में उसका दर्द कम होता था और उसके अपने हाथों में, कुछ न करने के कारण, खुजली-सी होने लगी थी. पिछले दिनों रोगियों को वाक्वा के पत्तों से चटाई बटनी पड़ती थी. सूखे पत्तों के अभाव के कारण वह भी बंद था.

जिंदगी में इससे पहले मंगरू कभी बीमार नहीं पड़ा था. उसकी छोटी अंगुली कभी नहीं दुखी थी. एक दिन के लिए भी वह कभी बेकार नहीं रहा, जबकि यहां पूरे तीन सप्ताह से बैठे-बैठे वह ऊब गया था. इन तीन सप्ताहों में उसे बहुत कम नींद आयी थी, पर जब भी आयी थी, सपने में उसने अपने को पत्थर ही तोड़ते पाया था. वह सभी कैदियों से अधिक फुर्तीला था. सबसे अधिक पत्थर तोड़ता था. उस काम को करते हुए चिपचिपाती गरमी में भी अपने शरीर के बहते पसीने की ठंडक को महसूसता रहता. उस सक्रियता में वह अपने परिवार की याद को बिसार जाता, जब कि अस्पताल की चारपाई पर ऐसा करना उसके लिए असंभव था. यहां तो हर क्षण उसे फूलवंती की याद आती. दोनों बच्चों के चेहरे सारा धुंधलापन लिये आंखों के सामने झिलमिला उठते. उनकी इस समय की हालत के खयाल से वह भीतर-ही-भीतर कांप उठता.

सात लंबे, नीरस साल बीत चुके थे. उसकी पुष्पा तो उसी समय दस वर्ष की थी. अब तो विवाह-योग्य हो गयी होगी. इस खयाल से उसकी धमनियों का रक्त जमता-सा प्रतीत होने लग जाता. फूलवंती क्या कर पायी होगी? यह प्रश्न वह कुंदन से कई बार कर चुका था. बार-बार उसे सांत्वना दे कर कुंदन अपनी उस सांत्वना

को अधिक खोखला पाने लगता. कुंदन ही तो था वह, जिसको सिपाही और परिचारक की आंखें बचा कर वह अपनी कहानी सुनाया करता. मंगरू को अपनी उम्र मालूम नहीं थी, पर जब कुंदन अपनी उम्र का अनुमान पैंसठ के लगभग का करता, उस समय मंगरू अपनी उम्र का अंदाजा पचास का लगा लेता. वह इससे भी दो-तीन वर्ष अधिक ही का होगा—– कुंदन सोचता. उसके चेहरे की झुर्रियों और सलवटों को देख कर वह ऐसा नहीं सोचता, क्योंकि उनसे तो वह और भी बूढ़ा प्रतीत होता था.

दिन में खाना काफी देर से पहुंचा. तीन दिन से लगातार मिलने वाले मकई के भात को इस बार भी अपने सामने पा कर मंगरू के होठों के बीच से वही फीकी मुसकान निकल पड़ी. तीन दिनों से वह अपने हिस्से के भात को बगल के मरीजों में बांटता आ रहा था. इस मकई के भात से उसके पेट का दर्द और भी बढ़ जाता था. मंगरू को एकटक मिट्टी की थाली की ओर देखते हुए कुंदन से नहीं रहा गया. उसने परिचारक से टूटी-फूटी क्रिओली में कहा—–यह आदमी इसी मकई के भात को खा-खा कर रात भर सो नहीं पाता. पेट-दर्द से चिल्लाता रहता है. कम-से-कम इस व्यक्ति के लिए किसी हलकी चीज का तो प्रबंध किया जा सकता है!

परिचारक ने पहले तो कुंदन को घूर कर देखा. उसकी आंखों में किसी तरह का भय न पा कर उसने हंस कर व्यंग्य किया —–कल से यह हलवा खाने के लिए बड़े घर को लौट रहा है. तुम्हें चिंता करने की कोई बात नहीं.

—–दोक्तेर फिन आपेस ली मांज जीरी माई. बिसेसर ने बड़े साहस के साथ कहा. परिचारक ने बिसेसर के ही स्वर में उत्तर दिया —–क्यों नहीं! डाक्टर ने सचमुच ही इसे मकई का भात खाने से मना किया है. उसने तो तुम सभी को सेहत के लिए बस्मती चावल का हुक्म दिया है. साला छिनुरझप करत है!

उसके इस व्यंग्य से भात परोसने वाला काला रसोइया अपनी भयंकर हंसी से ईख के सूखे पत्तों के छाजन तक को हिला गया. कुंदन ने तो ऐसा ही महसूस किया. हंसी थमने के बाद एक क्षण का सन्नाटा रहा. दूसरे क्षण जगेसर ने अपने मोटे स्वर में अप्रत्यक्ष प्रश्न किया —–अभी तक दवाई नहीं मिली है?

परिचारक की चिल्लाहट के साथ निकली आवाज प्रत्यक्ष उत्तर था.

—–खाने के बाद .भाई हियां त सोझिया के मुंह कुत्ता चाटेला!

कभी दवा खाने से पहले दी जाती थी, कभी बाद में. कभी यह कह कर बिल्कुल ही नहीं दी जाती कि दवा अभी पहुंची नहीं. सभी मरीजों को एक ही दवा दी जाती थी. वही सफेद रंग वाली. सूखे नारियल का आधा छिलका था वह जिससे कटोरे का काम लिया जाता. एक ही कटोरे से सभी मरीजों को पीना पड़ता था. पिछले दिनों उस लंबी चोटी वाले व्यक्ति की मृत्यु का कारण परिचारकों ने उसके दवा लेने से इनकार को बताया था. इस पर किसी ने हंस कर कह दिया था कि वह तो दवा लेने-पीने वालों से भी अधिक समय तक छटपटाता रहा. मंगरू ने पूरे गांभीर्य के साथ कहा था कि इन जल्लादों को ब्राह्मण की मृत्यु की ब्रह्म-हत्या लग कर रहेगी!

★ ★

रात को धीमे स्वर में जगलाल अपने आसपास के दो-चार व्यक्तियों को अपने दोनों बार के भागने की असफलता की कहानी सुनाता रहा. एक बार तो वह कंटीले तारों के कारण पकड़ा गया था, दूसरी बार अपने साथ के डरपोक साथी के कारण. फिर तो यहां से निकल सकने की बात को एकदम असंभव मान कर नये प्रयास की नौबत ही नहीं आयी. किसी के इस प्रश्न पर जगलाल चुप हो गया था कि अगर सचमुच ही यहां से भागना असंभव था, तो फिर कई लोग कैसे फरार हो सके थे?

मंगरू के पेट का दर्द कुछ कम था. उसे नींद आ गयी थी. लेकिन कुंदन उस कहानी को बड़े ध्यान से सुनता रहा. इससे पहले वह संतू के भाग जाने की कहानी सुन चुका था. उस युवक ने अपने ऊपर बांस की बौछार करते हुए एक गोरे को एक ही कुदाली में मार डाला था. अपनी गिरफ्तारी के तीसरे ही दिन बाद वह कैदखाने की ऊंची दीवारों को फांद गया था. दूसरे ही दिन अपने घर पहुंच कर हताश उसने अपने को फिर से सिपाहियों के हवाले कर दिया था, क्योंकि उसकी नवविवाहिता पत्नी ने बलात्कार की शिकार हो कर आत्महत्या कर ली थी.

संतू की कहानी से अपने को हटा कर कुंदन जगलाल की योजनाओं की असफलता पर गहरा दुख अनुभव करता रहा। उससे हुई भूलों पर वह उस समय तक गौर करता रहा, जब तक उसे भी सभी मरीजों के बाद नींद नहीं आ गयी.

कुंदन सबसे बूढ़ा न हो कर भी सबसे पुराना कैदी था. जिस दिन उसकी गिरफ्तारी हुई थी, उस समय तो उसके इर्द-गिर्द के ये सारे लोग इस द्वीप में पहुंचे भी नहीं थे. इन लोगों के इधर पहुंचने से कोई बीस-पच्चीस वर्ष पहले ही कुंदन अपनी टोली के कुछ मित्रों के साथ भारत लौट गया होता, अगर. . . अगर उस दिन छावनी से छुट्टी पा कर रास्ते में वह उस नदी के किनारे सुस्ताने के लिए रुक न जाता. अपनी पुरानी कहानी कुंदन को सुना चुकने के बाद मंगरू ने बार-बार यह चाहा था कि कुंदन भी उसे अपनी कहानी सुनाये. बार-बार वह कुंदन से अनुरोध करता रह गया था और कुंदन हर बार 'फिर कभी' कह कर टाल जाता. आज मंगरू के उधर लौट जाने के बाद उसका हृदय एकाएक भारी-सा हो गया था. मन-ही-मन पश्चाताप को झेलते हुए वह अपने आप को अपनी वह कहानी सुनाता रहा, जिसकी वजह से वह कैद हुआ था : नदी-किनारे के राफिया के पेड़ के नीचे वह अपने हाथों पर सिर को पीछे की ओर टिकाये

लेट गया था. सामने की पहाड़ी से आती हुई ठंडी हवा उसके शरीर के पसीने को सोखती हुई उसकी सांस तक को ठंडक पहुंचा रही थी. . .

. . .कि तभी एकाएक सामने के पानी से छपाक की आवाज हुई थी. हलकी नींद के उचट जाने की घबराहट के साथ वह अपनी जगह पर खड़ा हो गया था. आवाज को लक्ष्य करके उसने अपने सामने जो दृश्य पाया, उसे देख वह स्तंभित रह गया था. वह अपने को भीतर-ही-भीतर कांप कर गर्म हो जाने से रोक नहीं सका था.

देखता रह गया. . .सामने के उस दुर्लभ दृश्य को. वह अपनी सांसों को थामे उस दृश्य को अपलक देखता रह गया था. उस समय वह अपने सामने जो कुछ देख रहा था, जीवन में पहली बार के लिए.

अपने भीतर की उष्णता और बाहर की खामोशी के साथ वह उस वक्त भी उसी ओर देख रहा था, जब पीछे से किसी का धक्का खा कर वह मुंह के बल नहीं जा गिरा था. फिर तो फ्रेंच में चुनिंदा गालियों की बौछार थी और सामने के टोप पहने उस गोरे की लातों की मार. इससे भी बाज न आ कर गोरे ने सामने से पत्थर उठा कर कुंदन पर पटकना चाहा था, कि तभी कुंदन ने प्रशिक्षण पाये सिपाही की फुर्ती के साथ उछल कर वार को बेकार कर दिया था. गोरे ने पत्थर को दोबारा उठा कर जब उसे कुंदन पर उछालना चाहा, तो कुंदन के लिए बस अपने को बचाने का एक ही उपाय था—उसके पैरों से लिपट जाना. उसने तेजी के साथ वैसा ही किया. गोरा पत्थर के साथ गिर पड़ा था और उसकी कनपटी उसी पत्थर से टकरा कर रह गयी थी.

उस घटना के तीन ही दिन बाद कुंदन को एक गोरी औरत को नंगे स्नान करते देखने और उसके पति की हत्या के अभियोग में उम्र-कैद की सजा हो गयी थी. अपने लिए एक फौजी अदालत की रियायत मांगते हुए कुंदन ने कैदखाने की सबसे काली कोठरी पायी थी. मंगरू को अपनी कहानी न सुना कर वह अपने हृदय को बोझिल कर गया था. अपने को पश्चाताप से बचाने के लिए वह स्वयं को सांत्वना देता रहा कि चारदीवारी में लौटते ही वह मंगरू को अपनी कहानी सुना डालेगा.

★ ★

मुद्दत पहले जब वह कैदखाने के भीतर जंजीर के साथ पहुंचा था, उस समय कैदियों में सभी मलगासी गुलाम थे. तीन दिन बाद उसे पता चला था कि कैदखाने के बीच की दीवार के उस पार चार भारतीय भी थे. कुछ दिनों बाद उनमें से दो से वह मिल भी सका था. अंग्रेजों द्वारा मॉरिशस के जीते जाने के कई साल पहले वे दोनों वहां पहुंचे थे. एक व्यापार करने आया था. दूसरे का इस द्वीप में आगमन इंजीनियर के रूप में हुआ था. दोनों व्यक्तियों पर एक ही आरोप था : मजदूरों को बहका कर जमींदारों के विरुद्ध खड़ा करना. न जाने क्यों कुंदन को यह आरोप बहुत अच्छा प्रतीत हुआ था. उसने चाहा कि खून के बदले उसके ऊपर भी ऐसा ही आरोप होता.

उस समय कैदखाना विस्तृत भी नहीं था. दाहिने ओर की दीवारें नहीं खड़ी हुई थीं. कैदियों की संख्या दो सौ से अधिक नहीं रही होगी. कैदियों में एक भी गोरे रंग का नहीं था. सभी मलगासी. सांवले, काले और भीमकाय. उनके पैरों में हर वक्त जंजीरें होती थीं. शुरू में जब वे पत्थर तोड़ने के लिए एक साथ मिल कर फिर टुकड़ियों में बंटते तो कुंदन को उनसे डर लगता, लेकिन समय के साथ वह लोगों से हिलमिल गया था. लोग इसे अपनी जबान सिखाते. वह लोगों को चीजों के हिंदी नाम सिखाता.

जिस दिन कुंदन ने गाब्रियल नाम के क्रिओल कैदी को पीछे करके उसकी जगह चाबुक की मार को अपने ऊपर सह लिया था, उस दिन से सभी मलगासी कैदी उसे 'फ़ेर' कह कर पुकारने लगे थे. जब तक वे लोग वहां रहे, कुंदन लोगों का भाई ही बन कर रहा. गाब्रियल कहता —तू त्रावायेर फ़ेर!

कुंदन मन-ही-मन सोचता, काश गाब्रियल के कहे अनुसार सभी मजदूर भाई-भाई होते!

जुल्म ढाने वाले दो व्यक्ति भाई होते हैं, जुल्म सहने वाले दो व्यक्ति भाई नहीं हो पाते. मलगासी बंदियों ने सीधे बालों वाले सांवले बंदियों को अपना भाई नहीं माना.

बारी-बारी से मलगासी बंदी चारदीवारी से बाहर होते गये थे. उनमें से दो, जिन्हें उम्र-कैद की सजा थी, अवधि से पहले चल बसे थे. मलगासी कैदी जाते रहे. कुछ मालाबार-कैदी भीतर आने वाले थे. कुंदन ने उधर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया था. लेकिन मालाबार नाम से भारतीयों को कैद के भीतर पा कर उसे जितनी हैरानी हुई थी, उतना ही हर्ष भी. वह हर्ष भी अपने ढंग का था—हंसी-आंसू साथ लिये. हर दूसरे-तीसरे दिन कोई-न कोई नया कैदी भीतर आ ही जाता. कैदियों की संख्या बढ़ती गयी थी.

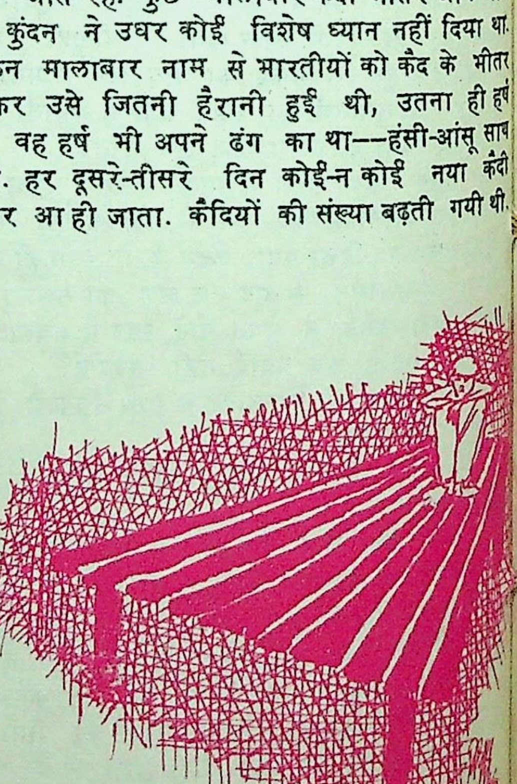

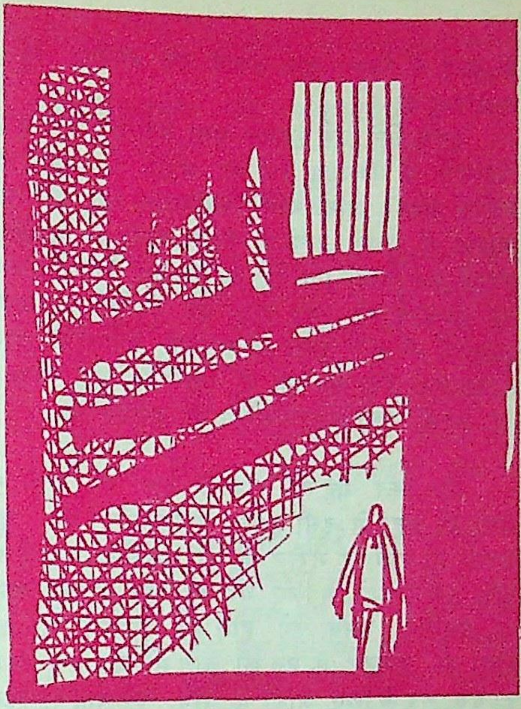

सभी की कहानियां एक-सी होतीं...

पत्थरों के नीचे से सोना पाने की वही एक-सी चाह लिये मारीच देसवा पहुंचना. जहाज से उतरते ही गले में नंबर लटकाये खेतों में झोंका जाना. आधा पेट खाना, आधी देह कपड़ा. पीठ पर बांसों की बौछार और....

कोई बैल जैसे काम से इनकार के कारण इधर आ गया था. कोई भारत लौटने की मांग करके. कोई न्याय की दुहाई देता हुआ, तो कोई बीमारी के कारण तीन दिन नौकरी पर न पहुंच सकने के कारण. किसी की गिरफ्तारी केवल इसलिए हो गयी थी कि उसने अपने गले से नंबर लिखे टीन के टुकड़े को निकाल फेंका था. किसी ने सरदार को जवाब देने की हिम्मत की थी. जिस व्यक्ति ने पहले दिन भीतर आते ही आत्महत्या कर ली थी, उसकी गिरफ्तारी इसलिए हुई थी कि सरदार की मांग पर उसने अपनी खूबसूरत पत्नी को पहली रात मालिक के घर नहीं पहुंचाया था.

★ ★

अस्पताल में कुल चार खिड़कियां थीं. वे भी इतनी छोटी कि उनसे बाहर निकलना कठिन था. यदा-कदा थोड़ी-बहुत हवा भीतर आ ही जाती थी, जिससे दोपहर की चिपचिपाती गरमी से द्वार पर का सिपाही ऊंघने लगता था. उसके पास वाला रोगी उसके पसीने की गंध से नाक सिकोड़ते ही अपने मुंह को दूसरी ओर फेर लेता. लोग बताते कि न नहाने के कारण उसके पसीने से इस तरह की दुर्गंध आती थी. इधर तो सभी रोगियों के लिए भी नहाने का कोई खास प्रबंध नहीं था. कुंदन को भी नहाये कई दिन हो गये थे, फिर भी उसके पसीने की गंध इतनी बुरी नहीं हो पायी थी. कुछ लोग इसे त्वचा-भेद बता कर चुप रह जाते.

खिड़की से हाथ बाहर करके कुंदन ने बाहर की हवा को महसूसना चाहा, पर ऐसा लगा कि हवा चल ही नहीं रही थी. अपने शरीर का पसीना उसे लेई की तरह लसलस लगने लगा था. टट्टी के द्वार की बाल्टी में भी पानी इतना कम होता था कि उससे हाथ के अलावा बाकी अंगों को भिगोना तक कठिन था. वह पानी भी बिरले ही साफ होता था. कई दिनों तक बाल्टी के न धुलने कारण उसके भीतर के रेंगते सफेद कीड़े साफ दिखायी पड़ने लगते थे.

जिस लोटे के साथ टट्टी के भीतर प्रवेश करना पड़ता था, उसकी पेंदी घिस गयी थी. भीतर निवृत्त होते-होते लोटे का आधा पानी बह जाता था.

उस प्राकृतिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए सभी को शीघ्रता होती थी. लोटे में छेद तो था ही, उसी तरह के कई छोटे छेद अस्पताल के छप्पर में भी थे. थोड़ी-सी बारिश के वक्त भी छाजन रिसने लगता था और चारपाइयों को इधर से उधर करना पड़ जाता था.

दिन में रोगियों को जो मान्योक परोसा गया था, वह अच्छी तरह सीज नहीं पाया था. यह कंद अच्छी तरह सीज जाने पर मकई के भात से अच्छा ही होता था. शायद यही कारण था कि उसे अच्छी तरह सीजने नहीं दिया जाता. उस तरह का अवसर बहुत कम होता, जब सीजे हुए रूप में मान्योक मरीजों के सामने रखा जाता. वैसा रसोइये की भूल से हो जाता होगा. अपने दांतों के नीचे उसे कच-कच पा कर कुंदन ने उसे उगल देना चाहा था, पर उसके भीतर की भूख ने उसे ऐसा करने ही नहीं दिया. किसी तरह खाना ही पड़ा था.

पिछली रात कुंदन के पांव का दर्द बहुत अधिक बढ़ गया था. बड़ी कठिनाई से वह चल सका था. उधर सप्ताह भर भूमि पर सोते रहने वाला व्यक्ति भी जो मंगरू के बाद उसकी चारपाई पर आ गया था, रात भर कराह कर कुंदन के दर्द को दोगुना कर गया था. इस व्यक्ति की जांघ का घाव पक कर चमकीले पीले रंग का हो गया था. उसके काटे जाने के दिन को रोज ही स्थगित किया जा रहा था. सात दिन से लगातार उससे यह कह-कह कर उसे जिलाया जा रहा था कि दूसरे दिन डाक्टर के पहुंचते ही पहला काम उसके घाव को काटना होगा. पिछली बार डाक्टर ने घाव को दूर ही से देख कर कह दिया था कि अभी वह काटे जाने के लिए तैयार नहीं था.

सुबह अपने पांव के दर्द से खुद दुखी कुंदन ने जब घाव वाले व्यक्ति के पास पहुंच कर उसकी हालत जाननी चाही, उस समय वह खाट पर बेहोश था. रात में उसका घाव अपने आप फूट गया था. खून और पीब में वह लथपथ था. खून कुछ इतना अधिक बहा दीख रहा था कि सभी मरीज घबरा गये थे. दिन में खबर आयी थी कि डॉक्टर खुद बीमार हो जान के कारण बिल्कुल नहीं पहुंच सकता. परिचारक घाव को बिना पोंछे ही मरीज की बेहोशी की हालत

में घाव में बिना कुछ लगाये उसे अधमैली पट्टी से बांध गया था.

दूसरे दिन उसे एकदम चंगा बता कर डाक्टर उसे कैदखाने में भिजवा देने का आदेश दे गया. वह व्यक्ति अपनी जांघ थामे गिड़गिड़ाता रहा और परिचारक ने उसके हाथों में जंजीर पहना कर सिपाही के हवाले कर दिया. एक पैर से चल कर रोता-चिल्लाता वह कैदखाने को चल पड़ा. उसे घूम-घूम कर अपनी चारपाई की ओर देखते पा कर सभी मरीजों को उसकी हालत पर दया आ गयी थी. किसी से कुछ होना तो दूर, अपनी दया जाहिर करना भी असंभव था.

और फिर यह तो रोज की बात थी. आगे भी सभी को यहां से इसी हालत में निकलना था. कुछ अच्छा हो जाने पर मरीज को घर भेज दिया जाता है, पर चूंकि इन कैदियों के लिए घर का प्रश्न ही नहीं उठता था, इसलिए उनके चंगे होने का इंतजार भी नहीं होता था. डाक्टर के मन की बात थी, जब चाहे किसी को बड़े घर के लिए आज्ञा दे जाये. जब चाहे वह किसी को अच्छा बता सकता था और जब चाहे किसी को नाजुक स्थिति में चारदीवारी में लौटा सकता था.

कुंदन के सामने वाली छोटी-सी खिड़की से वह बकाइन का निपाती पेड़ स्पष्ट दिखायी पड़ता, जिसकी डालियों पर मैना की जोड़ी फुदकती रहती थी. ये मैनाएं ही भारत के अपने गांव की सब से अधिक याद दिलाती थीं. इन मैनाओं को यहां की फसल की रक्षा के लिए लाया गया था. पहली बार कैद की दीवार पर एक मैना को देख कर वह हैरान रह गया था. पहले तो मॉरिशस में उसने कहीं भी मैना नहीं देखी थी. व बाद में उसके अन्य साथियों ने बताया था कि उ लोगों के साथ मैना की पचास जोड़ियां आयी थीं. अ साथियों से सभी कुछ सुन चुकने के बाद कुंदन ने कर कहा था---वाह रे मेरे देश की मैना! जहां तुम्हा देश के लोग खूरी घंस-घंस कर बंजर जमीन को में बदल रहे हैं, वहां तुम भी फसलों पर उत्पात क वाली टिड्डियों को मिटा कर इस देश को संवा में अपने ढंग का सहयोग दे रही हो!

भारत में मैना को देखना तक कुंदन नहीं चाह था. लेकिन यहां उसी पक्षी से उसे अगाध प्यार चला था. चारदीवारी के भीतर मैना की टांय-ट में उसके लिए जितनी आत्मीयता थी, वह कहीं नहीं वह लंबे समय तक मैनाओं को देखता और उ सुनता रहता. कभी अपनी मुट्ठी में रोटी का छो टुकड़ा या मकई का थोड़ा-सा भात छिपा कर पत तोड़ने निकलता. उन चीजों को मैनाओं के बीच कर वह गद्गद् हो जाता. उनकी कांव-कांव में उ लिए कहानियां होतीं. उनमें उसके गांव की नदियों कलकल थी.पनघट की औरतों की घांव-घांव थी. गा की वे तमाम यादें थीं, जिन्हें वह बिसार गया था. की हरियाली, वहां की सूखारी, सभी कुछ आंखों सामने बरबस ही आ जाते. कुंदन चाहता कि इन पक्ष में से एक तो कभी उसके कंधे पर आ टिके, लेकिन लग कि मैनाओं को अपनी स्वतंत्रता अधिक प्यारी थी

परिचारक को अपना पांव दिखाते हुए कुंदन चाहा कि उस पर लगाने के लिए उसे कोई दवा मि उसकी बात को अनसुनी करके परिचारक चला ग

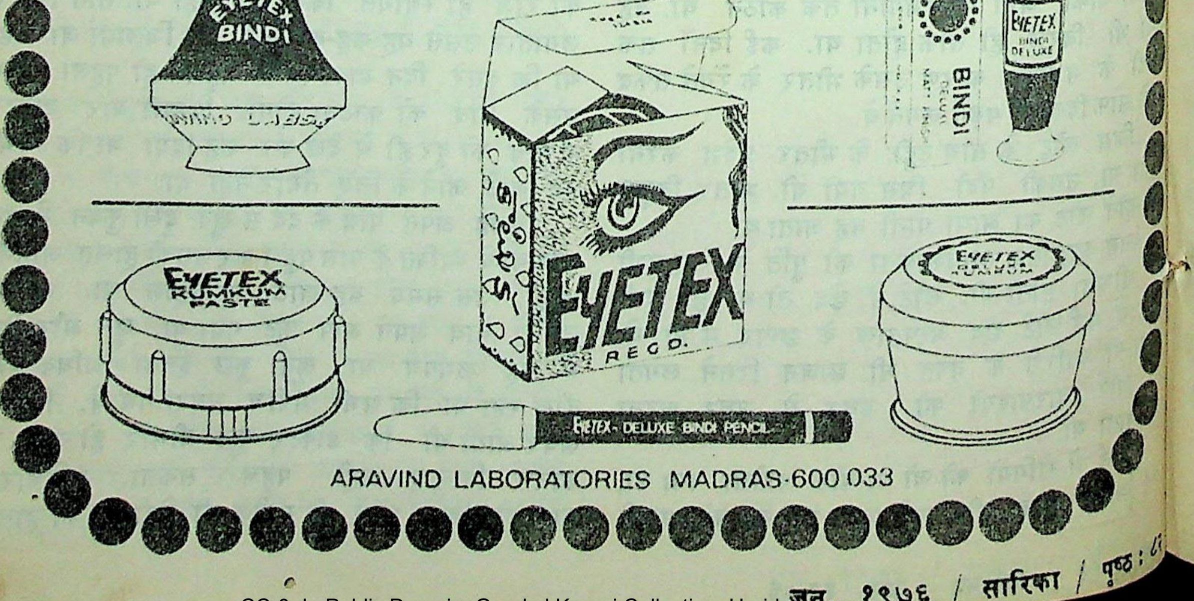

ऐटेक्स
सौंदर्य प्रसाधन
ARAVIND LABORATORIES MADRAS-600 033

दूसरी बार जब कुंदन ने फिर से दवा का आग्रह किया तो एक दूसरा मोटा परिचारक मिट्टी की सुराही जैसी किसी चीज के साथ उसके पास पहुंचा. नीले रंग के एक तरल पदार्थ की कुछ बूंदों को घाव पर टपका कर वह चला गया. उन बूंदों से कुंदन का समूचा पैर झनझना उठा.

जहर की-सी जलन थी वह. अच्छा ही हुआ, परिचारक वहां से उसी क्षण टल गया था, अन्यथा कुंदन ने अपने हाथ का जूठा बरतन उस पर चला दिया होता.

कुछ देर बाद कुंदन को अपना पैर और भी बेकार लगने लगा. घाव एक बार फिर ताजा हो गया था. जगलाल ने सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा---दवा-इयवा काम करत बाते, इही खातिर वह दुख रहल बा. सांझ तक अच्छा हो जाय, कुंदन, जरा धीरज धर.

सांझ से रात हो गयी. कुंदन के चेहरे की पीड़ा बनी रही. जगलाल ने इस बार समस्त सहानुभूति के साथ प्रश्न किया---बहुत ज्यादा अंगरत बा का?

कुंदन ने होठों के बीच एक कठिन मुसकान ला कर सचाई को छुपाने का प्रयत्न किया. रात भर बिना कराहे वह दर्द को भीतर-ही-भीतर महसूसता हुआ करवटें बदलता रहा. एक पल के लिए भी उसकी आंखें नहीं झपक सकीं. रात में कैदखाने से आती किसी कैदी की चीत्कार को वह रह-रह कर सुनता रहा. उस चीत्कार से उधर की पीड़ा का अधिक असह्य होना स्पष्ट था. अपनी पीड़ा को भूलने के लिए कुंदन को मनोबल मिला.

---तुम्हें बड़े घर लौट जाने की आज्ञा मिली है.

कुंदन को हैरानी नहीं हुई. पहले ही बात उसकी समझ में आ गयी थी. दोपहर में सिपाही अस्पताल के भीतर पहुंचा. कुंदन के हाथों को जंजीर से जकड़ा और उसे लिये अस्पताल से बाहर होने लगा. बारी-बारी से सभी मरीजों की आंखों से कुंदन की आंखें मिलीं और हटती गयीं. सभी आंखों ने गोया यही कहा . . .फिर मिलेंगे . . .चारदीवारी के भीतर!

कैदखाने की पत्थर की ऊंची दीवारों से किसी बंदी का झनझनाता हुआ स्वर गूंजता रहा :

'भूसे मारलें के खेतवा में सोना फड़ल बा
हमर तोहर हथवा में लोहा फड़ल बा !'

कुंदन इस स्वर को पहचानता था. वही पागल कैदी. लोहे की छड़ों को दोनों मुट्ठियों से पकड़े कभी उन्हें ईख समझ कर दांतों से छिलके उतारने की कोशिश करने लगता था. कहा जाता है, वह भारत का कोई बहुत बड़ा क्रांतिकारी था. अंग्रेज सरकार ने गिरफ्तारी के बाद उसे इस द्वीप में भेज दिया था. काला पानी!

अगले अंक में

अस्पताल से कुंदन की जेल में वापसी. नयी कोठरी में कुछ कागज. दूसरे दिन सड़क पर काम करते हुए उन्हें पढ़ना. सुरंग की सूचना. . .और कुंदन नदी के पास के गांव में ---जहां एक और ही तरह की गुलामी उसका इंतजार कर रही थी...

मैडागासकर की लोककथा

जलपरी

एक मछुआ नदी के किनारे बैठा मछलियां मार रहा था. उसने बंसी पानी से बाहर खींची तो क्या देखता है कि कांटे में मछली की जगह एक अतीव सुंदरी जलपरी फंसी हुई है. उसका दुग्ध-धवल शरीर बड़ा ही कोमल था. बालों की काली-काली लटें उसके कंधों पर लहरा रही थीं. नदी में वह कच्ची मछलियां खा कर जीती थी.

बाहर आयी तो उसने उस आदमी से कहा-- तुम मुझ से विवाह कर लो. पर एक शर्त है-- किसी को बताना मत कि मैं कहां से आयी.

मछुआ बड़ा खुश हुआ. वह उसे घर ले गया और उसके साथ शादी कर ली. इस खुशी के अवसर पर उसने बड़ा शानदार जश्न किया. फिर अपनी सुंदर पत्नी के लिए उसने एक झोपड़ी बनायी और उसमें उसके साथ वैसे ही रहने लगा जैसे अन्य मछुए अपनी-अपनी पत्नियों के साथ रहा करते थे.

लोगों को ताज्जुब होता कि उस गरीब मछुए को ऐसी सुंदर पत्नी कहां से मिल गयी. वे उससे तरह-तरह से पूछते पर मछुए ने अपनी पत्नी की शर्त को तोड़ा नहीं और किसी को हवा तक न लगने दी कि वह कहां से आयी है.

फिर उनके चार बच्चे हुए. दो लड़के और दो लड़कियां. वह मछुआ अपने गांव का सबसे सुखी आदमी बन गया था.

पर एक दिन क्या हुआ कि उस मछुए ने कुछ ज्यादा पी ली. दूसरे मछुओं को मौका मिल गया. उन्होंने उसे घेर लिया और उससे तरह-तरह के प्रश्न करने लगे. शराब की मस्ती ठहरी. पहले तो वह बड़ी-बड़ी बातें हांकता रहा, पर फिर उसने अपने विवाह का राज खोल दिया.

नदी की बेटी, उस जलपरी ने, जैसे ही सुना कि उसके पति ने उसके बारे में लोगों को बता दिया है, उसने उसे उसी दम छोड़ दिया और वापस नदी में कूद गयी. उसकी बेटियों ने भी उसका साथ दिया. नदी में कूद कर वे भी जलपरियां बन गयीं. उसके बेटे जरूर अपने पिता के साथ रहते रहे, पर उन्होंने अपनी उस रहस्यमयी मां को फिर कभी नहीं देखा.

□□□

(अनुवाद : महेंद्रनाथ झा)

कृतियां

तीन कहानी-संग्रह

'रथचक्र'

लेखक : हिमांशु जोशी; प्रकाशक : पांडुलिपि प्रकाशन, दिल्ली; पृष्ठ : ११२, मूल्य : आठ रुपये.

'अंततः' के बाद **'रथचक्र'** हिमांशु का दूसरा कहानी संग्रह है, जिसमें उनकी १२ कहानियां संकलित हैं. इन कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें कोई दांव-पेंच नहीं है और न ही कोई ऐसा उलझाने वाला बिंब या प्रतीक, जो इनकी संप्रेषणीयता में बाधक हो. सभी कहानियां बड़ी ही सहज, स्वाभाविक शैली में आम आदमी की रोजमर्रा की जरूरतों, आकांक्षाओं और समस्याओं को उठाती हैं और उनके लिए किये जाने वाले शारीरिक, मानसिक और आर्थिक संघर्षों का चित्रण करती हैं. हिमांशु का यह 'आम आदमी' मुख्यतः निम्न-मध्य वर्ग का है, इसलिए वह अपने वर्ग-चरित्र के अनुसार संघर्ष तो करता है, पर स्थिति को बदलने के लिए विद्रोह नहीं कर पाता—पर इस सीमा के कारण ही ये कहानियां इतनी मार्मिक हो उठी हैं कि पाठक अंत तक पहुंचते-पहुंचते शोषण के शिकार पात्रों और उनकी स्थितियों के प्रति सहानुभूति एवं संवेदना से भर उठता है.

अलग-अलग कहानियों के विचार-पक्ष का अध्ययन करने पर मुझे लगा कि **'कोई एक मसीहा,' 'भेड़िये', 'हरे सूरज का देश'** और **'रास्ता रुक गया है'** में आर्थिक एवं व्यवस्थागत शोषण के प्रति व्यंग्य का भाव है, जो अंतिम कहानी में पूरी तीव्रता के साथ अभिव्यक्त हुआ है. इसी क्रम में **'जीना-मरना', 'सीमा से कुछ और आगे'** और **'रथचक्र'** आदि ऐसी कहानियां हैं, जिनमें आर्थिक संकट और दुश्चिंताओं में दबे-फंसे व्यक्ति और परिवार इस सीमा तक विपन्न हो गये हैं कि उनसे उबरने का उन्हें कोई मार्ग दिखायी नहीं देता.

संग्रह में कुछ कहानियां व्यक्तिगत संदर्भों की भी हैं, जैसे **'न जानना', 'एक समुद्र भी'** और **'अनचाहे'**, पर उनमें भी लेखक की दृष्टि सामाजिकता और पात्रों के परिवेश के प्रति सजग रही है.

कुल मिला कर कहा जा सकता है कि हिमांशु जोशी सही अर्थों में समांतर कहानीकार हैं और उन्होंने अपने नये संग्रह में जो कहानियां संकलित की हैं, वे वैचारिक दृष्टि से समांतर कहानियों की श्रेणी में आती हैं. साथ ही विशेष बात यह है कि हिमांशु की ये सारी कहानियां रचनात्मकता की दृष्टि से भी सुदृढ़ और सशक्त कहानियां हैं.

□ **डॉ. वीरेंद्र शर्मा**

'आदमखोर'

लेखक : आशीष सिन्हा; प्रकाशक : भारती भाषा प्रकाशन, ५१८.६ बी, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली—११००३२; पृष्ठ संख्या : १५३; मूल्य : दस रुपये; आवरण : आबिद सुरती.

आशीष सिन्हा ने १९७० के आसपास लिखना शुरू किया. तब से अब तक उनकी कई कहानियां तथा दो-तीन उपन्यास सामने आये हैं. लेकिन **'आदमखोर'** उनकी पुस्तक रूप में छपी पहली कृति है. इसमें उनकी १९७४ तक लिखी पंद्रह कहानियां संग्रहीत हैं.

वैसे यह कतई जरूरी नहीं कि कोई लेखक अपनी रचनाशीलता का परिचय रचनाओं के परिमाण से दे. रचनाओं का परिमाण उसकी जिजीविषा का प्रमाण तो हो सकता है, उसकी सार्थकता का नहीं. पर खुशी की बात है कि आशीष दोनों कसौटियों पर खरे उतरे हैं, क्योंकि परिमाण में पर्याप्त होने के साथ-साथ उनकी कहानियां सार्थक भी हैं. उदाहरणार्थ संग्रह की पहली कहानी **'साजिश'** ही लें. **'साजिश'** आज के आम आदमी के खिलाफ चल रही साजिश की कहानी है. 'उसी ध्वस्त होते हुए खंडहर में एक दिन एक तेज और तल्ख आवाज गूंजी थी—यार, इतनी मेहनत करता हूं, सुबह से शाम और फिर शाम से रात तक अपनी मेहनत बेचता हूं, फिर भी जैसे जीना चाहता हूं, नहीं जी पाता. कोई है, बहुत चालाक और खुदगर्ज, जो संगठित हो कर हमारी मेहनत को बहुत ही सस्ते में खरीदता रहा है!' (पृष्ठ : १३)

लेकिन ऐसा नहीं कि लेखक उस 'चालाक और खुदगर्ज' को पहचान नहीं पाता—वह उसे अच्छी तरह पहचानता है और **'रेड टेप', 'आदिम'** तथा **'बर्फ टूटता हुआ'** जैसी कहानियों में उसे ललकारता भी है. बल्कि उसके प्रति अपना संघर्ष जारी रखता है, और यह संघर्ष तब और भी दारुण रूप ले लेता है जब शोषण अपने चरम पर पहुंच जाता है. **'आदमख़ोर'** चरम पर पहुंचे इस शोषण को बड़ी बेबाकी से सामने लाती है. बेशक यह कहानी जाहिरा तौर पर सामंती परिवेश से जुड़ी हुई कहानी दिखती है, लेकिन अपने संश्लिष्ट रूप में यह एक निहायत समय-सापेक्ष कहानी है और इस समय-सापेक्षता को कहानी की भाषा तथा शिल्प ने कई गुना बढ़ा दिया है. हां, अंत में यह बात जेहन में जरूर बार-बार उभरती है कि सरजू ने अपनी जान पर खेल कर—जबकि उसका अंतः

हिमांशु जोशी

आशीष सिन्हा

करण उसे बुरी तरह कचोट रहा था—उस मासूम बच्चे को त्रिदिव नारायण की कुटिलता से बचा क्यों नहीं लिया? तब यह कहानी एक आम आदमी की बेचारगी की कहानी न रहती, बल्कि आदमी के जीवट की कहानी बन जाती.

वैसे संग्रह की अधिकतर कहानियां **'सारिका'** के पाठकों की सुपरिचित कहानियां हैं. ऐसी कहानियों में **'आदमखोर'** और **'बर्फ टूटता हुआ'** के अलावा **'घर'**, **'अनुराग'** तथा **'प्रेम'** को लिया जा सकता है. संग्रह की बाकी कहानियां भी हिंदी की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं और अपनी बात अपने पूरे जोम में कहती हैं. **'शहर तक'** सांप्रदायिकता के शैतान का नकाब उतारती है, तो **'दिशाहीन'** तथा **'दुःख या सुख के लिए'** आदमी के भीतर की टूटन का बड़े संवेदनापूर्ण ढंग से चित्रण करती हैं. **'एक एबसर्ड नाटक'**, **'अच्छा तो फिर कभी'** तथा **'पेशा'**—ये तीन कहानियां, निस्संदेह एक दूसरी तरह का झटका देती हैं.

अंत में एक बात और : जहां आशीष में भाषागत ताजगी तथा परिवेश के प्रति भरपूर जागरूकता है, वहां वह कहीं-कहीं रूढ़ भी हो जाते हैं. बहरहाल, अपनी छिटपुट विसंगतियों के बावजूद यह संग्रह अपने लक्ष्य से चूकता नहीं और गहरी चोट करता है, और इसलिए अविस्मरणीय बन जाता है. आवरण भी अपनी विलक्षणता लिये हुए है.

☐ **श्रवण कुमार**

'एक अभियान और'

संपादक : सुरेश उनियाल, सुभाष पंत; प्रकाशक : सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली—११०००६; पृष्ठ : १४०, मूल्य : दस रुपये.

साहित्य और राजनीति के प्रति गहरी रुचि रखने वाली एक ब्रिटिश रूपसी आलिसन क्लेग ने भारत की अपनी पिछली यात्रा के दौरान बातचीत में कहा था : मेरे लिए एलिफेंटा, ताजमहल और खजुराहो वाले भारत से ज्यादा दिलचस्प वह भारत है, जहां के लोग उन असंख्य मनोसंस्कारों और भावनाओं से परिपूर्ण हैं, जिन्हें समझने के लिए एक जिंदगी भी शायद पूरी न पड़े. सामयिक व्यक्ति और उसके जीवन को पूरी तरह जानना ही किसी देश को संपूर्णता में जानना है.

इस दृष्टि से प्रस्तुत संग्रह की अधिकांश कहानियां व्यक्ति के प्रामाणिक यथार्थ की कहानियां हैं. इसमें संकलित लगभग सभी लेखक नये हैं. रचना और जीवन के प्रति इनकी दृष्टि अभी विकसित हो रही है. इस संदर्भ में यह प्रक्रिया दिलचस्प हो सकती है कि एकदम नया लेखक जीवन को देखता, समझता और पसंद करता है या रचना की चुनौती को किस स्तर पर स्वीकारता है—इसका जायजा लिया जाये. तब यह लगता है कि इन कहानीकारों की कहानियों के माध्यम से विकसित होने वाली वैयक्तिक दृष्टि व्यक्ति और उसकी जिंदगी की वास्तविकता को गहरी आत्मीयता तथा सजगता के साथ प्रस्तुत करने में सक्षम है. यद्यपि इन कहानियों में न तो जिंदगी का व्यापक रूप है और न उसे महत्वपूर्ण बना कर कहने की कोई उत्तेजना ही है, इनमें केवल इतना है कि सामयिक व्यक्ति की पहचान उसके सामाजिक-ऐतिहासिक यथार्थ के बीच से की गयी है, बाहरी और भीतरी कारणों से समाज के ढांचे में होने वाले परिवर्तन तथा इनके बीच आकार लेने वाले विघटन तथा इन रिश्तों से ग्रहण करती सामाजिकता की बड़ी स्वाभाविक अभिव्यक्ति इन कहानियों में मिलती है. **'कल'** में जग्गन की मूक छटपटाहट का तीव्र बोध है जो घर के पुरानेपन को बदलने की कोशिश करते-करते स्वयं उसका एक हिस्सा बन जाता है. **'निर्णय'** में अनु का आहत वर्तमान है. यांत्रिकता में वह इस कदर डूब जाती है कि खाने, सोने और सोचने के अलावा उसे हर बात निरर्थक और निर्जीव लगती है. इसी तरह **'वापसी'** की कनु को लंबे अंतराल और यंत्रणा से गुजरने के बाद भी लगता है कि चीजें और स्थितियां नहीं बदली हैं, केवल चेहरे बदले हैं. दूसरे स्तर पर **'काली हवा'** और **'दीवार'** में वर्तमान से उत्पन्न विसंगतियों को फैंटेसी के माध्यम से तथा **'यहां भी नहीं'** में व्यक्ति के असहाय पड़ते जाने को एक सर्वथा नये कोण से देखा गया है. सामयिक व्यक्ति के संकट का जितना स्पष्ट आभास इन नये कहानीकारों की कहानियां देती हैं, उससे यह अंदाजा लगाने में सहायता मिलती है कि सामयिक जीवन की विसंगतियों और अतिवाद के विरुद्ध आज की कहानी की लड़ाई का सही स्वरूप क्या हो सकता है.

इन कहानियों की बुनावट और भाषा सपाट और साधारण होते हुए भी तीखी है. कहानीकारों के अपने अनुभव से उपजी होने के कारण इसमें संप्रेषणीयता है. भाषा और संवेदना के लिहाज से बहुत नयी न होने के बावजूद ये कहानियां सार्थक इसलिए हैं कि अनुभव को पूरी तरह संप्रेषित करती हैं—व्यक्ति के आपसी संप्रेषण को फिर से शुरू करने का एहसास इनमें है और इतना होना भी कम नहीं है. अलकनंदा घोष, जितेंद्र शर्मा, कृष्णा खुराना, देशबंधु, सांत्वना निगम, सुभाष पंत और सुरेश उनियाल की कहानियां शिल्प और संप्रेषण की अधिक समर्थ कोशिश के लिए विशेष रूप से रेखांकित की जाने लायक हैं.

☐ **धनंजय**

राजगीर में

अखिल भारतीय समांतर लेखक सम्मेलन (४)

गत १,२, ३ दिसंबर, १९७५ को समांतर लेखकों का पांचवां अखिल भारतीय सम्मेलन राजगीर, बिहार, में संपन्न हुआ. इस सम्मेलन में हिंदी के अलावा मराठी, गुजराती, सिंधी, उर्दू, पंजाबी, कच्छी तथा तमिल के प्रतिनिधि लेखकों ने भाग लिया. पिछले तीन अंकों में आपने उद्घाटन-समारोह तथा पहली दो गोष्ठियों की रिपोर्ट पढ़ी. यहां प्रस्तुत है तीसरी गोष्ठी का विवरण.

तीन दिसंबर की सुबह राजगीर में. हवा में हलकी-सी सर्दी, मेजों पर यहां-वहां बिखरे चाय के कप और आरामकुर्सियों पर उनींदे चेहरे लिये बैठे लेखकों के अनौपचारिक झुंड. मधुकर सिंह, धूमकेतु, सतीश भास्कर और हरिहरसिंह बहुत सुबह उठ गये हैं और चाय-नाश्ते की व्यवस्था कर रहे हैं. कुछ लोग राजगीर के गर्म पानी के कुंड की ओर स्नान करने निकल गये हैं तो कुछ हवा की ताजगी को अपने फेफड़ों में भर लेने की कोशिश में यूं ही टहल रहे हैं.

पहाड़ी से गूंज कर आता बौद्ध-मंदिर के नगाड़े का परिचित स्वर और गेस्ट-हाउस के हाल में शुरू होती राजगीर सम्मेलन की तीसरी गोष्ठी. बातचीत हलके माहौल में हंसी-मजाक के साथ शुरू होती है, लेकिन यह सिर्फ सब लेखकों के हॉल में जमा हो जाने की तैयारी में है. धीरे-धीरे माहौल खामोश हो जाता है और कमलेश्वर बताते हैं कि इस गोष्ठी में कुछ महत्वपूर्ण ग्रामीण संदर्भ उठाये जाने वाले हैं और बहस की शुरुआत गोष्ठी के लिए तैयार किये गये लेखों के पाठ के बाद होगी, ताकि समय का पूरा उपयोग किया जा सके. और अजित पुष्कल गोष्ठी का पहला लेख पढ़ना शुरू करते हैं.

अजित ने अपने लेख **'ग्रामीण संदर्भ एवं परिस्थितियां'** में ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करते हुए आज की ग्रामीण स्थितियों की एक प्रामाणिक तस्वीर प्रस्तुत करने की कोशिश की. 'आज के ग्रामीण संदर्भों और परिस्थितियों की चर्चा के पूर्व संक्षेप में स्वाधीनता के पूर्व के गांव की स्थितियों का जायजा लेना आवश्यक है, क्योंकि उस आधार पर ही हम आज के गांव के परिवर्तन को सही रूप से रेखांकित कर सकेंगे . . .उस समय के गांव की तस्वीर में एक जमींदार था, जो खेतिहर किसानों से लगान वसूल कर सरकार को देता था. खेतिहर मजदूर उसके चंगुल में थे. उनका श्रम मालिक और सूदखोर महाजन के लिए होता था. इसके अलावा बेगार लेने वाले पटवारी, पुलिस के लोग और ठगने वाले पुरोहित थे. दूसरी तरफ गरीब मजदूर और अछूत थे जिनका श्रम मालिक के लिए होता था. जाति-पांति का भेदभाव प्रखर था, अशिक्षा थी और उच्च वर्ण वालों की तूती बोलती थी. सामंती व्यवस्था की नाकेबंदी बहुत तगड़ी थी. स्वाधीनता के बाद जमींदार समाप्त हुए. गांव में पंचायती व्यवस्था आयी, किंतु अधिकतर प्रधान और सरपंच उच्च वर्ण के लोग ही चुने गये. ये प्रधान पुराने जमींदार या उनके जैसे ही लोग थे. प्रारंभ में यह काम जातीय संगठन के आधार पर हुआ. चुनाव के इस हथकंडे से वर्णभेद बढ़ा. संपन्नता अपनी जगह रही, सिर्फ स्वामित्व का रूप बदल गया. यह स्वामित्व एक व्यक्ति के हाथ में न रह कर उच्च वर्ग के हाथ में चला गया. साझेदारी बढ़ गयी. परिणाम यह हुआ कि बिचौलियों का एक वर्ग तैयार होने लगा. इन लोगों को किसी प्रकार की राजनीतिक चेतना से कोई सरोकार नहीं है. उनका वेश नेताओं का है और काम है अफसरों से संपर्क बनाना, अपने अनुकूल सरकारी संस्थानों से लाभ उठाना. ऐसे लोगों का संपर्क थानों से है, ब्लाकों से है, बीज-भंडारों से है, लेखपालों तथा नहर के कर्मचारियों से है. ये लोग सरकारी संस्थानों से पैसा लेते हैं, गांव के विकास के लिए. खर्च करते हैं अपने ढंग से ये मुकदमे लड़वाते हैं और पैरवी भी करते हैं. खेतिहर मजदूर ज्यों-के-त्यों हैं. वे अब भी हल जोतने का काम करते हैं. कुछ के पास अपनी खेती है, पर बहुत कम, जिससे गुजारा नहीं होता. वे लोग अन्य व्यवसायों की ओर मुड़े हैं. उनमें से कुछ लोगों ने दर्जीगीरी और चमड़े का काम करना शुरू किया है. सरकारी तौर पर ट्रेनिंग प्राप्त की है. निम्न वर्ग के बहुत-से लोगों ने शिक्षा प्राप्त करके नौकरियां कर ली हैं. कुछ गांव से शहर चले गये हैं.

'बीच की पीढ़ी में भी परिवर्तनों के कारण आक्रोश है. वे सोचने लगे हैं कि उच्च वर्ण की तरह उनका भी जाती संगठन हो सकता है. उदाहरण के लिए चमार पंचायत करते हैं और यह तय करते हैं कि वे भी कंठी बांधेंगे और सवर्णों के हाथ का छुआ नहीं खायेंगे. वे मंदिर बनवाते हैं तो ये लोग भी मंदिर बनवायेंगे. चेतना-विहीन होने के कारण ऐसा आक्रोश उन्हें प्रतिक्रियावादी बना रहा है. निम्न वर्ग में भी नेताओं का आगमन हो गया है, पर वे संघर्ष की भूमिका तैयार करने में मददगार नहीं हो रहे. पर वे सवर्ण नेताओं के पिछलग्गू जैसे हैं और अपने अस्तित्व के लिए उन्हीं लोगों का हित साधते हैं.

'. . .मजदूरों पर अत्याचार अब भी कम नहीं हुआ. खेतिहर मजदूर अब भी विद्रोह नहीं कर सकता. यदि वह संगठित हो कर कोई निर्णय लेता है, तो उसे

कुचल दिया जाता है. उसकी बस्ती उजाड़ दी जाती है; उन पर हिंसात्मक कार्रवाई होती है. . . उच्च वर्ग की महिलाएं भी अभी अशिक्षित और घरों के अंदर कैद हैं. उनके लिए 'रामायन पढ़ने भर' की शिक्षा को ही महत्व दिया जाता है और वे अब भी पुरातन अंधविश्वासों में जकड़ी हैं. . .

'स्वाधीनता के बाद गांवों में कहीं-कहीं हाई स्कूल और इंटर कॉलेज खुले हैं, परंतु इनके व्यवस्थापक उच्च वर्ण के धनी लोग हैं. विद्यालय इनके लिए प्रतिष्ठा और धनार्जन के साधन मात्र हैं. फिर जो शिक्षा-पद्धति है, वह गांव की परिस्थितियों के अनुकूल नहीं है. कॉलिजों में उच्च या मध्य वर्ग के बच्चे ही ज्यादा जाते हैं. खेतिहर मजदूरों के बच्चे तो शुरू से ही मजदूरी में लग जाते हैं. पढ़े-लिखों में भी बहुत कम ऐसे हैं जो गांव की उन्नति के लिए कुछ करते हों. . . सरकारी तौर पर कृषि के औजारों या अन्य साधनों के लिए जो सुविधाएं प्रदान की जा रही हैं, उनका उपयोग बड़े किसान ही कर पा रहे हैं. छोटे किसान अब भी पुराने हल-बैलों के सहारे हैं और ऋण से ग्रस्त हैं.'

ग्रामीण परिवेश का बारीकी से जायजा लेते हुए अजित पुष्कल ने अपने लेख में कहा कि आज भी विभिन्न संस्थानों के रूप में गांव में सामंती व्यवस्था विद्यमान है. वहां एक मौकापरस्त सुविधावादी वर्ग तनाव की स्थिति बनाये हुए है, यद्यपि नयी पीढ़ी का एक छोटा-सा वर्ग इस सामंती व्यवस्था से टकराने की कोशिश कर रहा है.

अजित ने अपने लेख में गांव के सांस्कृतिक माहौल को भी रेखांकित किया : '. . .रेडियो, ट्रांजिस्टर वहां भी पहुंच गये हैं. सिनेमाई गीतों का प्रचार है. परंपरागत लोकगीतों का ह्रास हो रहा है. फिल्मी धुनों पर कीर्तन तथा संस्कार के गीत गाये जाने लगे हैं. रामलीला, रासलीला तथा नौटंकियों में भी ऐसी धुनों का प्रवेश हुआ है. श्रम और जमीन से जुड़े लोकगीतों का अभाव होता चला जा रहा है. लोककथाओं का रिवाज टूट रहा है. लोकनाटकों के कथानक श्रृंगारी होते हैं. उनके नायक-नायिकाएं ऐतिहासिक, पौराणिक और धार्मिक पात्र होते हैं. स्वांगों का व्यंग्य पक्ष कमजोर हो चुका है. सामाजिक संदर्भों से संबंधित नाटकों के पात्र दानवीर महाजन, सती स्त्री, डाकू, वेश्या तथा स्वामी भक्त नौकर आदि ही होते हैं. कुल मिला कर सामंतों को खुश रखने वाली संस्कृति का प्रचलन है.'

ग्रामीण परिस्थितियों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करने के बाद अजित पुष्कल ने इस कसौटी पर हिंदी के आंचलिक लेखन का मूल्यांकन करने की कोशिश भी की. प्रेमचंद की गौरवशाली परंपरा की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि प्रेमचंद अपने पात्रों से संवेदनात्मक स्तर पर संबद्ध थे और उन्हें गांव की जनता से अपार प्रेम था. **'पूस की रात', 'कफन', 'गोदान'** आदि रचनाओं का उल्लेख करते हुए अजित ने बताया कि प्रेमचंद ने कथ्य के अतिरिक्त अपनी भाषा का तेवर भी ग्रामीण संदर्भों से उठाया. यही कारण है कि उसमें सहज सरलता और जिंदगी से जुड़े मुहावरे दिखायी देते हैं. स्वातंत्र्योत्तर कथा-साहित्य का विवेचन करते हुए अजित पुष्कल ने अपने लेख में **'बाबा बटेसरनाथ'** (नागार्जुन), **'राजा निरबंसिया'** (कमलेश्वर), **'हिरना की आंखें'** (मधुकर गंगाधर) आदि कहानियों में प्रयुक्त ग्रामीण शैली का उल्लेख किया. . . ग्रामीण परिवेश को प्रस्तुत करने में नागार्जुन, रेणु, मधुकर गंगाधर, मार्कंडेय, शिवप्रसाद सिंह आदि के रचनात्मक योगदान का

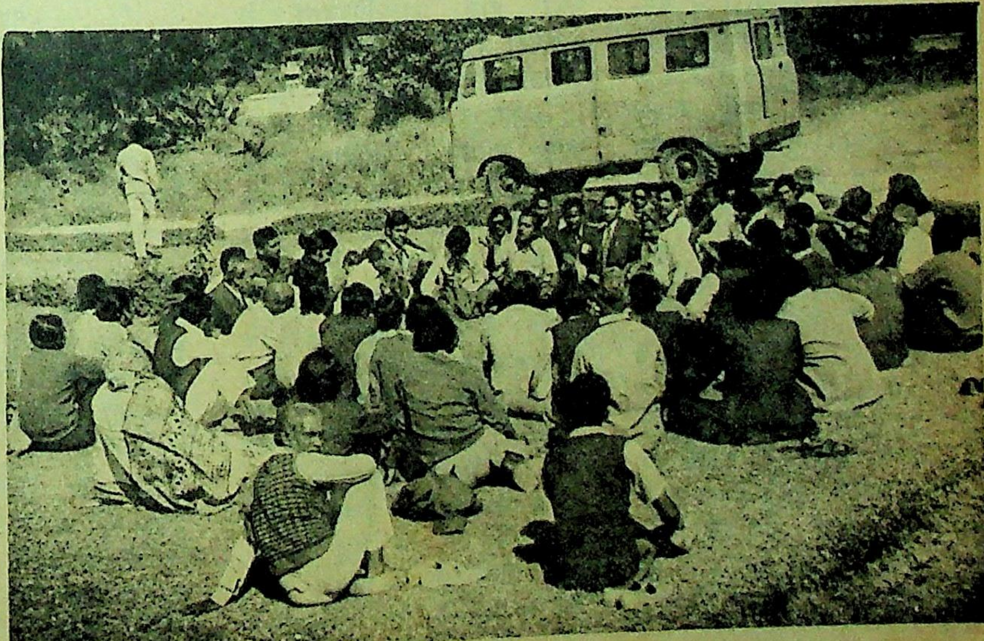

एक गोष्ठी के दौरान : समांतर लेखकों के बीच गंभीर बातचीत—कमलेश्वर अपनी बात समझाते हुए.

विवेचन करते हुए उन्होंने कहा कि इधर के कथाकारों में मधुकर सिंह, इब्राहीम शरीफ और मिथिलेश्वर ने ग्रामीण जिंदगी से प्रत्यक्ष अनुभव ले कर कुछ सार्थक कहानियां लिखी हैं.

अंत में अजित पुष्कल ने कहा कि यह सही है कि हिंदी कथा-लेखन समृद्ध हुआ है, पर इस समृद्धि के बीच लेखन में ग्रामीण चेतना का अभाव भी होता चला गया है. 'यह एक अहम मसला है और हिंदी लेखन के अधूरेपन का संकेत भी. हमें सोचना चाहिए कि प्रखर चेतना के संवाहक होते हुए भी हम गांव की जनता से कट कर क्यों चल रहे हैं? ...निस्संदेह बिना गांव को समेटे हिंदी लेखन की समग्रता खंडित ही रह जायेगी.'

* *

गोष्ठी का दूसरा लेख था **'महानगरों में बसे गांव'** जिसे राम अरोड़ा ने लिखा था. 'वे दिन कितने अच्छे थे! अब यह क्या हो गया है? ...इस तरह के हताश वाक्य आज प्रायः हर भारतीय अकसर सस्वर या मन ही मन दोहराता है और आने वाले दिनों की कल्पना या किसी बेहतरी की कामना करने में अपने-आपको असमर्थ पाता है. लेकिन कठिनाई यह है कि जो चंद मर्दाने इस लाचारी से छटपटाते हैं, वर्तमान जीवन-पद्धति उनसे सहज न्यूनतम आत्मसम्मान भरी जिंदगी की बेहद जायज और मानवीय सुविधा भी छीन लेती है. इस झल्लाये हुए छिटपुट और गाहे-बगाहे मिलने वाले आदमी को अपने सहजात कुल या फ्रेटर्निटी की सहानुभूति या सहयोग भी नहीं मिल पाता. खाने-पीने और परिवार चलाने जैसी बहुत जरूरी जिम्मेदारी और उद्यम प्रस्तुत करने के लिए उसे दैनिक जीवन में दर्जनों ऐसे समझौते करने पड़ते हैं जो उसके स्वत्व को छीन कर उसे सांस लेने और उम्र के बरस ढोने का कठपुतला बना कर रख देते हैं.

'...मेरे शहर में, लॉजिंग हाउसेज में लाखों ऐसे जवान, अधेड़ और बूढ़े पड़े हैं, जिन्होंने छोटे-बड़े विद्रोहों की सजा के परिणामस्वरूप अपने समाज से विलगाव का दंड पाया है और अब कोई भी समाजशास्त्रीय अथवा राजनीतिक भाषा उन्हें आदमी कहने से सकुचाती है. ये हारे-थके, खामोश लोग ऐसे एकाकी प्रेतों का-सा जीवन बिता रहे हैं जो आदमी कहलाने का प्रिविलेज खो बैठे हैं, मगर प्रेत-लोक के द्वार उनके लिए इसलिए बंद हैं कि वे आदमियों की दुनिया में आतंक पैदा नहीं कर सकते. ये प्रेत आज भारत के हर गांव, कस्बे और छोटे या बड़े शहर में 'जी' रहे हैं. जी भी इसलिए रहे हैं कि मरना किसी मतलब से होता है. अब यह मतलब कौन कहां से लाये? जो यह मतलब ढूंढ़ लाने का, समझने-समझाने का बीड़ा उठायेगा, धुंध के पार एक क्षितिज के बारे में भी बतायेगा, वही नयी चेतना का बिगुल भी बजायेगा. वही यह भी समझायेगा कि कठिन संघर्ष के बाद जो नयी सुबह हासिल करनी है, उसका रंग सिंदूरी होगा, मगर उस सिंदूर से जमीन पर हरियाली लहलहायेगी और उस आदमी को देखने वाले आदमी की आंखें और होंठ आत्मविश्वास से मुसकरा रहे होंगे, और मन और मस्तिष्क में बल और आस्थाएं होंगी. ....कौन होगा यह बीड़ा उठाने वाला आदमी? कौन होगा अपने आदमियों को यह सब बताने और बता-समझा कर उनके साथ चलने वाला आदमी?'

इस भूमिका के साथ राम अरोड़ा ने अपने लेख में कहा कि विभाजन और स्वतंत्रता के बाद के सामान्य जन को तकलीफों ने इतना सताया है कि वह कष्ट या पीड़ा से बिलबिलाने की जगह स्वयं से यह उम्मीद रखता है कि वह यह सब सह जायेगा. 'सह पाना आज प्रायः संपूर्ण मध्यम वर्ग के लिए आत्मनिर्भरता का पर्याय बन गया है. जो सह जाता है, वह अपने सहजात से विमुख रह कर भी उम्र काटने का ढंग सीख लेता है. जो नहीं सह पाता, वह सभी की त्योरियों का शिकार हो कर अपने-आपको समाजच्युत-सा महसूस करता है ....आज एक बहुत बड़ा वर्ग आदमी का मूल्यांकन उसकी सुविधा-संपत्ति से करने की कुत्सितता में यकीन करने लगा है. इस वर्ग व इसकी मानसिकता को आसपास की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक अराजकता का कोई भी संकट प्रभावित नहीं करता. यह मध्यमवर्ग बौद्धिक इम्यूनिटी का सबसे बड़ा मरीज है. भ्रष्ट शासन तंत्र के लिए ऐसे लोगों के बल पर न सिर्फ टिके रहना, बल्कि फलते-फूलते रहना और विदेशी अवसरवादियों और षड्यंत्रकारियों द्वारा चुपचाप तरीके से किसी व्यवस्था में सेबोटाज करवाना बहुत आसान होता है ...यह वर्ग हर शासकीय परिवर्तन को स्वीकारता है, धारण करता है और उसके प्रति भक्ति अंगीकृत करता है, इसलिए हमेशा कायम और खुश रहता है. कठिनाई यह है कि इस वर्ग को कोई यह नहीं बताता कि उसने कभी गलत किया था!

'....मगर यह सच है कि इस वर्ग को चेताने का काम सिर्फ साहित्य कर सकता है. इस वर्ग को झिंझोड़ना और जरूरत पड़ने पर पीट-पाट कर दुरुस्त करना किसी भी परिवर्तन के लक्ष्य की पहली शर्त है.'

औद्योगिक और खेतिहर मजदूरों की स्थिति पर विचार करते हुए राम अरोड़ा ने कहा कि यह वर्ग उपरोक्त मध्यवर्ग का जनक है, फिर भी उसके द्वारा डिसओंड है. यह वर्ग शासन में प्रतिनिधित्व नहीं पाता और अपनी तकलीफों के प्रति भी अनजान बना रहता है. 'हमारे सर्वहारा के साथ एक त्रासदी यह भी रही है कि उसे बुरे से बुरे दिन ही देखने-जानने

को मिलते रहे.'

'मानसिक तौर पर शहरी और ग्रामीण आदमी कभी एक-दूसरे को जानने, चाहने और अपनी-अपनी तुलना करने में समर्थ नहीं हो सका.... गांव और शहर के आदमी के बीच का फासला बढ़ गया है. आज गांव का एक विपन्न आदमी शहर आ कर दिमागी तौर पर थोड़ा और विपन्न हो जाता है और दूसरी तरफ शहरी आदमी की यथोचित उपाय होने के बावजूद गांव जा कर बसने और प्रसन्न रहने की कल्पना मात्र कुंठित हो चुकी है. इससे भी तकलीफें बढ़ी हैं. और ज्यों-ज्यों तकलीफें बढ़ी हैं, उनका असर कम हुआ है.'

देश के औद्योगिक और आर्थिक विकास को स्वीकार करते हुए राम अरोड़ा ने कहा कि इससे नवधनाढ्य वर्ग तेजी से पनपा है तथा परिवार और मैत्रिक संबंधों को गंभीर आघात पहुंचा है....आज आर्थिक असमानता के आधार पर न तो कोई किसी का अपमान करने से झिझकता है और न ही अपमानित व्यक्ति इसका बुरा मानता है.

'साहित्य की भूमिका इस परिप्रेक्ष्य में आज पहले से कहीं ज्यादा स्पष्ट और सुनिश्चित है. कल तक साहित्यकार आम आदमी की इन रोजमर्रा की तकलीफों को ग्लोरिफाई करके एक तरह से सिखाया करते थे कि कष्ट सहने से आत्मा का उत्थान होता है. कल तक का साहित्यकार त्याग की महत्ता बड़ी निष्ठा के साथ अभिव्यक्त करता था. मगर आज उसके सामने इन साहित्यिक मूल्यों को नकारने के साथ-साथ नये लक्ष्यों की ओर इंगित करने का दायित्व भी है. और परिवर्तनकामी साहित्यकार को इन लक्ष्यों की ओर आम आदमी के साथ-साथ चलना भी है.'

(क्रमशः)

गोष्ठी-रपटें

समांतर और दलित-साहित्य

उन्नीस अप्रैल, रात के नौ बजे, अकोला नगर की साहित्यिक संस्था 'अक्षर' में दलित कथाकार एवं कवि केशव मेश्राम की उपस्थिति में नगर के युवा साहित्य-प्रेमियों के साथ समांतर एवं दलित-साहित्य पर एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया.

केशव मेश्राम ने दलित-साहित्य के आंदोलन को स्पष्ट करते हुए कहा—समाज का एक विशिष्ट वर्ग हजारों वर्षों तक बराबरी के व्यवहार के लिए सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर तरसता रहा और आर्थिक स्तर पर तड़पता रहा. उसने उच्च वर्ग का नेतृत्व हजारों वर्षों तक स्वीकारा, परंतु उसे दलितता के अतिरिक्त कुछ नहीं मिला. आज वही 'दलित' शब्द उसी वर्ग के कान खड़े कर रहा है, यह भी संयोग की बात है.

प्रा. श्रीनिवास शर्मा के यह कहे जाने पर कि आर्थिक पिछड़ापन भी दलितता है, केशव मेश्राम ने कहा—यह प्रमुख आंदोलन से विचलित करने की एक स्थिति भी हो सकती है. इस बारे में समांतर और दलित लेखक सदा जागरूक रहेगा. अपनी बात आगे बढ़ाते हुए उन्होंने कहा, साहित्य सदियों तक मांसल और रेशमी आवरणों के बीच फंसा था. कमलेश्वर ने ठीक ही कहा है—सौंदर्यशास्त्र 'जांघों के जंगलों' में भटक गया था. अब उसे इनसानों की मेहनतकश दुनिया में भी बहुत कुछ पाने लायक दीख रहा है. इस प्रकार समांतर और दलित साहित्य उपेक्षितता को यथार्थ रूप में उजागर करने का एक माध्यम है.

आज हमारे देश का उच्च वर्ग काफी चालाक और धूर्त है. वह राजनीतिक और साहित्यिक क्षेत्र में भी किसी समस्या का 'आउटपुट' ऐसा निकालता है कि समस्या का समस्यापन समाप्त होने लगता है. वह आम आदमी के लिए 'सेक्स' का साहित्य देता है. बाबूराव बागूल की बात का संदर्भ देते हुए अपनी बात उन्होंने कही—कोई भी हृष्ट-पुष्ट औरत-मर्द दो घंटे से अधिक समय तक 'सेक्स' का आनंद नहीं ले सकते. जबकि तथाकथित वर्ग ने तथा लेखकों ने उन्हीं दो घंटों में संपूर्ण साहित्य की दुनिया बनायी. यह जीवन के बाईस घंटों पर किया गया सरासर अन्याय है.

इसी संदर्भ में दामोदर खड़से ने प्रश्न उठाया कि क्या कारण है कुछ समांतर कहानियां आम आदमी की होते हुए भी आम आदमी की समझ में नहीं आतीं? उत्तर में उन्होंने स्पष्ट किया—आम आदमी आज तक एक निश्चित ढांचे की मनोरंजक कहानियां ही पढ़ा करता था, पर अब उसे आचार्यों के सांचों से अलग जब अपने ही माहौल की बात बतायी जा रही है, तब वह अपनी रुचि को एडजस्ट नहीं कर पा रहा है.

कैलाश सेंगर ने पूछा—क्या यह आवश्यक है कि समांतर और दलित-साहित्य के लिए भोगा हुआ ही दर्द हो? सहानुभूति से काम नहीं चल सकता? उन्होंने कहा—स्वानुभूति किसी भी विषय-वस्तु में जान फूंकती है, वैसे शार्प लेखक सहानुभूति को अनुभूति बना सकता है. इस आंदोलन में विशेषकर दो नामों की चर्चा की गयी—कमलेश्वर और इब्राहीम शरीफ. उन्होंने कहा इसी प्रकार कई लेखक हैं, जो प्रस्थापित होने के बाद भी इस लेखन में अपना योगदान दे रहे हैं.

हिंदी साहित्य के संदर्भ में बोलते हुए डा. पटनायक ने कहा—प्रेमचंद ने भी **'ठाकुर का कुआं'** में दलितों के बारे में लिखा है. पर वह दलित मात्र सहानुभूति ही अर्जित कर पाता है. इस संदर्भ में केशव मेश्राम ने अपनी मराठी

तरुण साहित्य संगम
राजसमन्द (राज.)

विचार गोष्ठी : (बायें से) चतुर कोठारी, कमर मेवाड़ी, देवेंद्र कुमार हिरण, एम. एस. भटनागर, डा. आलमशाह खान तथा डा. नवल किशोर

कहानी **'मालण'** सुनायी, जिसमें नायक अपनी भावनात्मक रक्षा के लिए बदले की भावना और घृणा से 'लैस' हो जाता है. इस पर आक्षेप करते हुए अशोक कुलकर्णी ने कहा—यह समाज-व्यवस्था के लिए घातक है. मेश्राम जी ने कहा—तीन हजार वर्षों तक दलितों का सवर्णों पर कर्ज है कि वे उनकी मर्जी के अनुसार जियें. इतने वर्षों तक शोषित व्यवस्था में रहने के बाद इस मोड़ पर थोड़ी-बहुत खड़खड़ाहट तो होगी ही!

पुरुषोत्तम बोरकर ने शंका उपस्थिति की कि कुछ चालाक लेखक प्रसिद्धि के लिए समांतर और दलित-साहित्य आंदोलन में घुसने का प्रयत्न कर रहे हैं. उत्तर में उन्होंने कहा—मांग और पूर्ति के सिद्धांत पर लिखा गया साहित्य समय की कसौटी पर खरा नहीं उतर सकता.

लगातार तीन घंटे तक समांतर और दलित-साहित्य पर चर्चाओं द्वारा उनकी संभावनाओं पर विचार किया गया.

□ दामोदर खड़से

आम आदमी

राजसमंद (राजस्थान) में 'आम आदमी और आज की कहानियां' विषय पर विचार गोष्ठी तरुण साहित्य संगम के आयोजन में हुई. विषय का प्रवर्तन करते हुए कमर मेवाड़ी ने कहा कि आज की कहानी आम आदमी के संघर्ष और रोटी के लिए लड़ी जा रही लड़ाई की कहानी है. संयोजक चतुर कोठारी ने कहा कि आज की कहानी में आम आदमी के जीवन का वास्तविक चित्रण हो रहा है, इसलिए वह समय का सत्य है और उसके महत्व से इनकार नहीं किया जा सकता.

गोष्ठी के प्रमुख अतिथि डा. आलमशाह खान के विचार में लंबी गुलामी के बाद आज के आदमी में सही बयानी का जो हौसला हुआ है, वह आज की कहानी की ही देन है. डॉ. शंभूलाल शर्मा ने आम आदमी के सही बात कहने की स्थिति में होने का कारण उसकी गरीब से दोस्ती होना बताया.

अध्यक्षीय भाषण में डा. नवल किशोर ने कहा कि आज की जिंदगी में जो दुखी है, पीड़ित है या सताया हुआ है. वही आम आदमी है और आज की अधिकांश कहानियां इसी आदमी की कहानियां हैं.

गोष्ठी के अंत में संगम के अध्यक्ष देवेंद्र कुमार हिरण ने आभार व्यक्त किया.

□ कमर मेवाड़ी

कहानी की भूमिका

पटना में साहित्य संगम द्वारा आयोजित गोष्ठी का विषय था 'कहानी की भूमिका'. मधुकर सिंह ने विषय का प्रारंभ करते हुए कहा कि कहानी की बात करते ही संपूर्ण साहित्य के प्रति हमारी संबद्धता और रचनात्मक सक्रियता का प्रश्न उजागर हो जाता है. आज की स्थिति में हम केवल मनुष्य-सापेक्ष की ही नहीं, समय-सापेक्ष की भी बात सोचते हैं. सीताराम यादव तथा गौरीकांत चौधरी ने ग्रामीण परिवेश को कहानी का विषय बनाने पर जोर दिया. सत्यनारायण ने यह विचार प्रकट किया कि अपने समय से जुड़ाव हर सही और ईमानदार कहानीकार के लिए बुनियादी जरूरत है. उन्होंने चेतावनी दी कि रचनाशीलता को सतही ढंग पर लेने के खतरे को समझना चाहिए.

गोष्ठी का समापन करते हुए मधुकर सिंह ने कहा कि लेखक की तरह फार्मूलाबद्ध और पुरानी धारणाओं में जीने वाला पाठकों का एक बड़ा समुदाय भी है, जिसे हमारी रचनाएं प्रभाववादी नहीं लगतीं. आज का समय सापेक्ष पाठक भी **'बड़े घर की बेटी'** और **'नमक का दारोगा'** को नहीं, **'कफन'** और **'सवा सेर गेहूं'** को ही सही परंपर. के रूप में स्वीकार करता है.

□ हरिहर प्रसाद

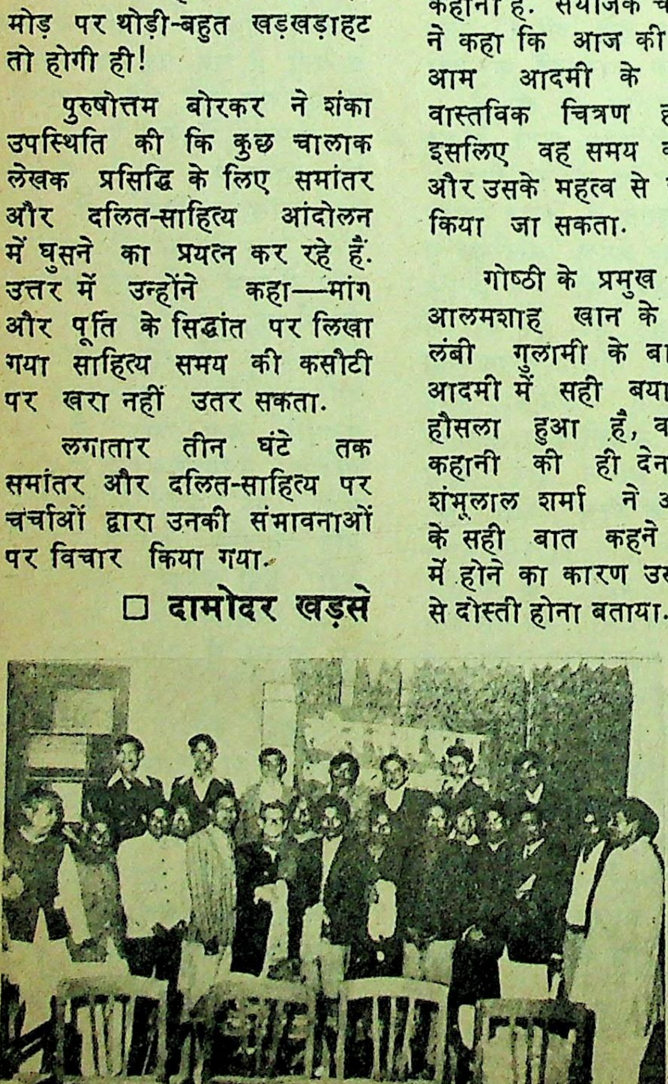

पटना गोष्ठी में भाग लेने वाले लेखक एवं पाठक

विविधा

मोहन राकेश की स्मृति में नाट्य-महोत्सव

स्व. मोहन राकेश की स्मृति में पिछले दिनों एक सात-दिवसीय नाट्य-महोत्सव का आयोजन रायपुर (म. प्र.) में ख्याति प्राप्त रंग-संस्था 'वर्तमान' ने किया जो अनेक दृष्टियों से सफल रहा. प्रतिदिन एक नाटक प्रस्तुत हुआ. कलकत्ता के संगीत कला मंदिर ने **'किसी एक फूल का नाम लो'** और **'बर्फ की दीवार'** का; ग्वालियर के कला मंदिर ने **'युवा अजब बूढ़े गजब'** और **'पगला घोड़ा'** का; कानपुर की रंग-संस्था 'प्रतिध्वनि' ने **'फंदी'** का; जबलपुर की 'विवेचना' ने **'गिनी पिग'** का; रायपुर के महाराष्ट्र नाट्य मंडल ने **'खामोश, अदालत जारी है'** का मंचन किया.

इन नाटकों में **'फंदी'**, **'किसी एक फूल का नाम लो'** और **'गिनी पिग'** की अत्यंत सराहना हुई.

नाट्य समारोह के साथ ही पहले दिन **'रंगमंच की स्थिति और संभावनाएं'** विषय पर एक विचार-गोष्ठी भी हुई, जिसमें डा. शंकर शेष, श्री कन्हैयालाल नंदन, श्री प्रमोद वर्मा तथा श्रीमती अनीता राकेश ने भाग लिया. संचालन किया श्री गिरिजा शंकर ने.

दूसरे दिन प्रसिद्ध रंग-समीक्षक नेमिचंद्र जैन का **'आधुनिक रंगमंच की नयी दिशाएं'** विषय पर व्याख्यान हुआ. जैन जी ने रंगमंच की पिछले दशक में हुई प्रगति पर और उसकी आवश्यकताओं पर प्रकाश डालते हुए कहा कि नाटक को बड़े शहरों में केंद्रित करने की अपेक्षा उसका विस्तार छोटे-छोटे शहरों में करना चाहिए, ताकि उसे अधिकाधिक लोगों तक पहुंचाया जा सके.

☐ **आशा जरगर**

वर्तमान, रायपुर की गोष्ठी : (बायें से) अनीता राकेश, कन्हैयालाल नंदन तथा डा. शंकर घोष

दमोह का छात्र रंगमंच

दमोह में आधुनिक सज्जा-सुविधा वाले रंगमंच भवन का तो अभाव है, किंतु यहां के विद्यालयों के वार्षिकोत्सवों के अवसर पर प्रस्तुत नाटक इस अभाव की कुछ अंशों में पूर्ति करके रंग प्रेमियों की किंचित तुष्टि करते रहते हैं. शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय के रंगमंच पर प्रस्तुत हरिशंकर परसाई की प्रख्यात व्यंग्यकथा **'भोलाराम का जीव'** का नाट्य-रूपांतर इसका ताजा उदाहरण है. रूपांतर तथा निर्देशन श्रीकांत चौधरी ने तथा पार्श्वसंगीत का संयोजन अशोक चक्रवर्ती और प्रो. राममोहन अग्रवाल ने किया. प्रमुख भूमिकाओं में सुनील जैन, संदीप जैन, प्रदीप टंडन, के. सी. मलैया खूब जमे.

दूसरा उदाहरण है भूतपूर्व छात्र कलाकारों द्वारा प्रस्तुत **'बुंदेली बीटल नृत्य-गीत'**. यह एक प्रयोग था. बुंदेली लोकगीत के मुखड़ों को अंग्रेजी धुन में, लोकनृत्य तथा रॉक एन रोल की कॉकटेल में पेश किया गया. धुनें अशोक चक्रवर्ती और प्रो. राममोहन अग्रवाल ने बनायी थीं, नृत्य निर्देशन किया गजराज ठाकुर ने.

छात्र-छात्राओं द्वारा प्रस्तुत नाटक **'रिहर्सल'** तथा हास्य एकांकी **'नाटक जो हो न सका'** भी प्रशंसनीय रहे.

☐ **श्रीकांत चौधरी**

'नीला घोड़ा' का एक दृश्य : वीसेंट (अपराजिता) से घोड़े का भेद लेने की कोशिश करते हुए दो साजिंदे (बिंदु और राजीव)

ब्राजीली बाल-नाटक

गोरखपुर में नवगठित समांतर युवा और बाल रंगमंच का प्रथम प्रदर्शन ब्राजीली बाल-नाटक **'नीला घोड़ा'** था. इसकी सफलता का श्रेय रहा बाल-निर्देशकों अनिल श्रीवास्तव तथा अपराजिता को. अपराजिता ने अपनी अभिनय-क्षमता से भी दर्शकों को चमत्कृत किया.

हिंदी में बाल रंगमंच के अभाव की पूर्ति करने की दिशा में यह एक सराहनीय प्रयास है.

☐ **कृष्ण गोपाल**

टिनोपाल* का नया नाम

रानीपाल+

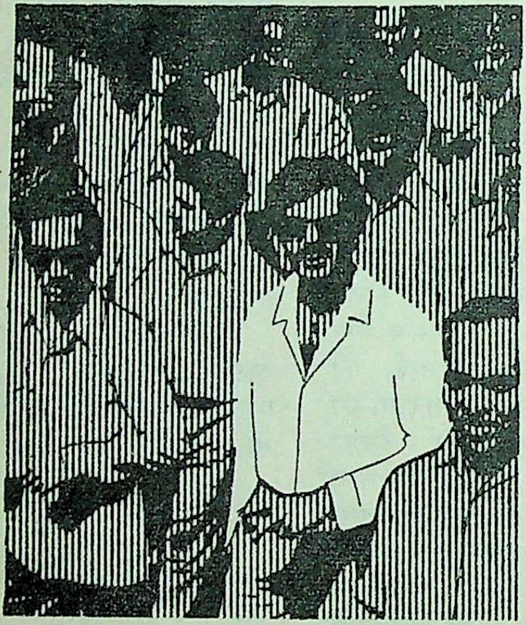

सूती वस्त्रों के लिए
रानीपाल+

सिन्थेटिक और
ब्लैंडिड वस्त्रों के लिए
रानीपाल+-एस

Ranipal
formerly marketed as
Tinopal
whitener
for cottons
Ranipal+-S
formerly marketed as
Tinopal-S
whitener for
synthetics and
blends

वही चीज़, वही काम, लेकिन अब नया नाम

सर्वोत्तम सफ़ेदी के लिए रानीपाल+

Suhrid Geigy
LIMITED

+ सुहृद गायगी लि. का ट्रेडमार्क.

* पहले सीबा-गायगी लि. से प्राप्त लाइसेन्स के अधीन बेचा जाता था.

Shilpi SGT 6/76

कितना खूबसूरत.. कितना शान्त.. कितना आरामदेह
खेतान
आपका अपना पंखा

khaitan

५ साल की गारन्टी
श्रेष्ठता का प्रमाण

खेतान फैन्स प्राइवेट लिमिटेड १८, रवीन्द्र सरणी, कलकत्ता-१

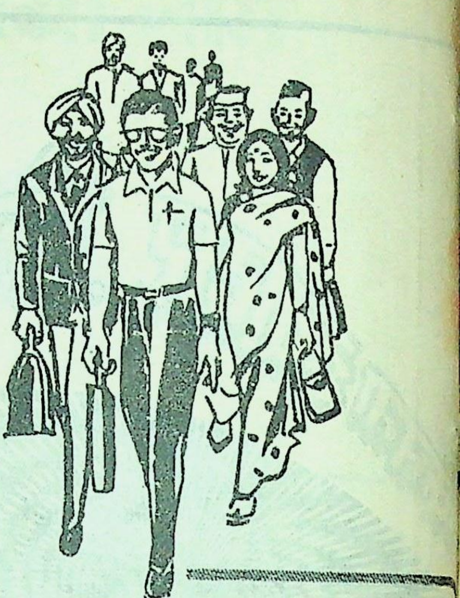

पंजाब नैशनल बैंक

में पधारिए
हमारे पास सबके लिए
आकर्षक
बचत
योजनाएं हैं

होल लाइफ मन्थलि इन्कम : केवल सात वर्षों तक नियमित मासिक किस्तें जमा कीजिए: फिर मज़े से जीवन भर अपनी मासिक किस्त के बराबर स्वयं पेंशन लीजिए और अपने उत्तराधिकारियों के लिए व्यवस्था कीजिए। आपकी असल पूंजी ज्यों की त्यों रहेगी।

मल्टी-बेनिफिट एन्ड ओल्ड एज डिपाजिट : 20 वर्ष की योजना में लगा आपका पैसा 31.6% प्रति वर्ष की दर से बढ़ता है; 5,000 रु० बढ़कर 36,640 रु० हो जाते हैं। 100 रु० या इससे अधिक राशि 13 महीने से लेकर 241 महीनों के लिए जमा कराई जा सकती है।

रिकरिंग डिपाजिट : अपने भविष्य की आवश्यकताओं की योजना आज ही बनाइए। हर महीने 5 रु० या 5 रु० के गुणितों में कोई भी राशि 12 से लेकर 252 महीनों के लिए जमा कराइए।

स्पेशल फिक्स्ड डिपाजिट : अपनी सावधि जमा पर मासिक ब्याज लीजिए। उदाहरण के लिए 61 महीने के लिए जमा किए गए 30,000 रु० पर 250 रु० मासिक ब्याज मिलेगा। मूल राशि ज्यों की त्यों बनी रहती है।

आटोमेटिक एक्सटेंशन डिपाजिट : अपनी सावधि जमा पर लगातार ब्याज कमाते रहिए। हमारे पास स्थायी हिदायतें छोड़ दीजिए। हम परिपक्व होते ही आपके खाते की अवधि बढ़ा देंगे।

डिपाजिट-लिन्क्ड हाउसिंग लोन : अपना मकान बनाने का सपना पूरा करने के लिए आज ही नियमित मासिक किस्तों में बचत शुरू कीजिए। आपकी जमा के परिपक्व होने पर हम आपको, आपके द्वारा जमा की गई राशि के बराबर, ऋण देंगे—ताकि आप अपनी पसन्द का मकान बनवा या खरीद सकें।

स्टूडेंट डिपाजिट : 14 वर्ष से बड़े छात्र अपने नाम से खाता खोल सकते हैं—और अपना चेक जारी कर सकते हैं।

ब्योरे के लिए हमारी समीपस्थ शाखा से सम्पर्क कीजिए

पंजाब नैशनल बैंक

davp 76/3

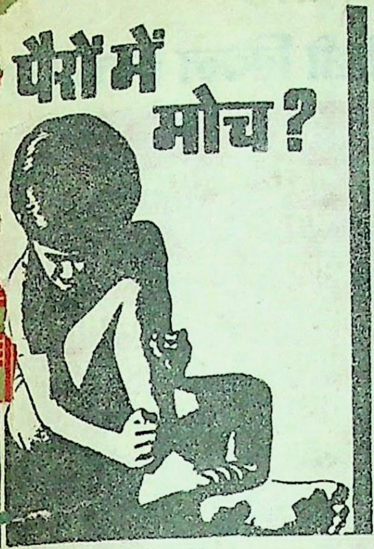

आयोडेक्स मलिए, जो पीड़ा हरे, अच्छा करे

दूसरे बाम पीड़ा से आराम भले पहुंचाएं, आयोडेक्स आराम पहुंचाने के साथ साथ अच्छा भी करती है. क्योंकि इसमें आयोडीन मिली है.

जोड़ों और मांसपेशियों की पीड़ा के लिए एकमात्र बाम—आयोडेक्स.

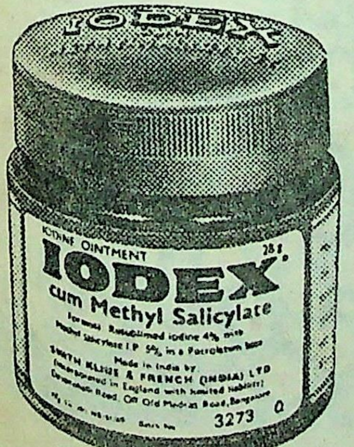
IODEX
OINTMENT
28g
IODEX
cum Methyl Salicylate
Made in India by
SMITH KLINE & FRENCH (INDIA) LTD
3273

आयोडेक्स मलिए-अपने काम पर चलिए
लिंटास-IODEX.3-140 HI

बेनेट कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए श्रीकृष्ण गोविंद जोशी द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित. पो. बाक्स २१३, बंबई–४०० ००१; दिल्ली आफिस : ७ बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली–११० ००२; कलकत्ता आफिस : १३/१ और १३/२ गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट लंदन आफिस : ३०–ए, डिस्ट्रिक्ट रोड, सडबरी, वेम्बले, मिडिलसेक्स, यू. के.

पंजीयत सं. एम. एच. दक्षिण बंबई ३९९

20/10/
241476

क्या "कट पीस" से आप की रौनक रानी जैसी खिल सकती है?

जी, नहीं, कट-पीस काउण्टर के चक्कर में न पड़िए। कमला के बेहतरीन ड्रेस मटीरियल मिट्टी के मोल लीजिए। कमला के वस्त्रों से रानी जैसी शान भी दिखाइए और पैसे भी बचाइए।

कमला
पॉलिएस्टर
ड्रेस मटीरियल

कमला वस्त्रों के सस्ते दाम-धनवान सी शान

CU-A 186

ारिका

जुलाई १९७६

सं. ३६
१६।-८।७६

मांतर
च्छी साहित्य-१

क:
लेश, डॉ. जयंत खत्री,
भाई पांधी,
। भाटिया,
श्या शंकर अजाणी,
ु केशवाणी, वनु पांधी,
ज पाठक,
ुरी शाह,
ह मेहता, आदि

श के दिन:
जल पुष्कल

ममन्यु अनत के
वाहिक उपन्यास
ल पसीना' की
ी किस्त

ी स्थायी स्तंभ.

CC-0.

यह है हमारा सबूत :

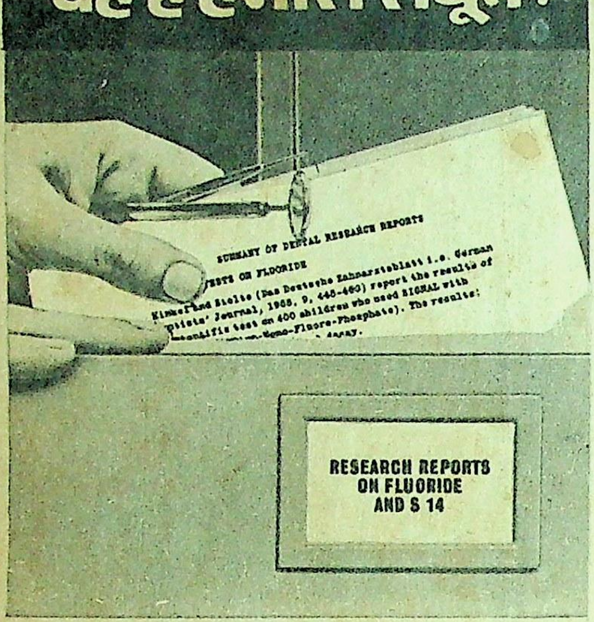

SUMMARY OF DENTAL RESEARCH REPORTS
TESTS ON FLUORIDE
Kinkel and Stolte (Das Deutsche Zahnaerzteblatt i.e. German
tists' Journal, 1965, 9, 445-460) report the results of
ntific test on 400 children who used SIGNAL with
-Mono-Fluoro-Phosphate). The results:
decay.

RESEARCH REPORTS
ON FLUORIDE
AND S 14

यह है आपका सबूत :

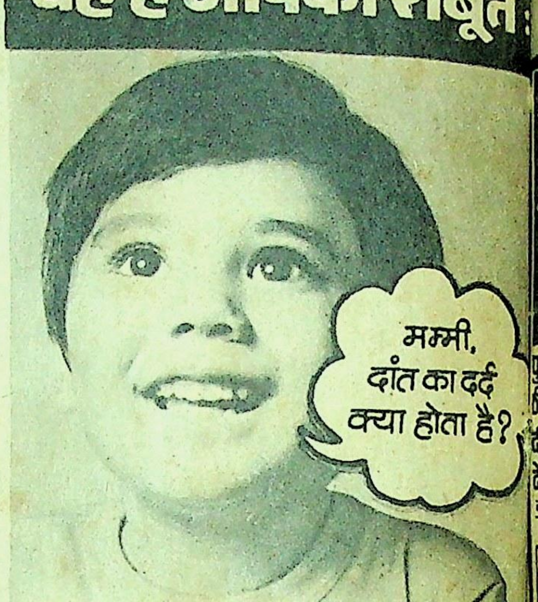
मम्मी,
दांत का दर्द
क्या होता है?

केवल सिग्नल फ़्लोराइड साबित करती है कि यह दांतों की सड़न और सांस की दुर्गंध रोक देती है

दंत-सफ़ाई के एक अनोखे आधार में.

सिग्नल में मिला फ़्लोराइड दांतों की सड़न रोक देता है :
दंतचिकित्सकों किंकेल और स्टोल्टे द्वारा जर्मनी में ४०० बच्चों पर किए गए परीक्षणों से यह सिद्ध हुआ है कि सिग्नल फ़्लोराइड दांतों के एनामेल पर एक घेरा बना देता है ताकि एनामेल तेज़ाब के हमले का और अधिक मुक़ाबला कर सके. इसीलिए तो सिग्नल इस्तेमाल करने वाले बच्चे यह नहीं जानते कि दांत का दर्द क्या होता है ! अपने परिवार की सुरक्षा के लिए अभी से सिग्नल चिकित्सा शुरू कीजिए.

सिग्नल में मिला S-14 सांस की दुर्गंध रोक देता है :
डा. हावर्ड ई. लिंड द्वारा यू. एस. ए. में किए गए परीक्षणों ने यह सिद्ध किया है कि सिग्नल में मौजूद S-14 मुंह में दुर्गंध पैदा करने वाले ६५% बैक्टीरिया को इस्तेमाल के १५ मिनट के अंदर ख़त्म कर देता है.

सिग्नल के दंत-सफ़ाई के अनोखे आधार से दांत ऐसे साफ़ जैसे डाक्टर करे :
सिग्नल के अनोखे अल्युमिना ट्राइ-हाइड्रेट आधार से आपके दांत ऐसे साफ़ हो जाते हैं जैसे किसी डाक्टर ने किए हों-द के एनामेल को बिना नुक़सान पहुंचाए. केवल सिग्नल में यह विशेष सम्मिश्रण मौजूद है : फ़्लोराइड और S-14 दंत-स के एक अनोखे आधार में.
कोई भी दूसरी टूथपेस्ट इतना नहीं कर स

**केवल सिग्नल फ़्लोराइड के पास है सबूत–
अपने दंत-चिकित्सक से पूछिए.**

लिंटास-SGF.63-140.HI

CAP AFTER USE
Signal
TOOTHPASTE
ACTUALLY STOPS TOOTH DECAY
फ़्लोराइडयु
सिग्नल
हिन्दुस्तान लीव
द्वारा गारण्टीप्राप्त है
पेटेन्ट न. 1

पेश है वेट लॉस कोर्स

१०,२० बल्कि ३० किलो तक वज़न घटा लीजिये !

पुरुषो, महिलाओ क्या आप जानते हैं कि आपका ठीक-ठीक वज़न क्या होना चाहिए? नीचे एक आदर्श तालिका दी जा रही है। इसमें अपनी ऊँचाई के अनुसार वज़न देखकर अपने वास्तविक वज़न से तुलना कीजिये।

ये वज़न २५ वर्ष और इससे अधिक की उम्र के पुरुषों और महिलाओं के औसत वज़न हैं।

पुरुष		महिला	
ऊँचाई	वज़न	ऊँचाई	वज़न
१६० सैं.मी.	५६ किलो	१४५ सैं.मी.	४१.१ किलो
१६२.५ सैं.मी.	५७.३ किलो	१४७.५ सैं.मी.	४२.९ किलो
१६५ सैं.मी.	५९ किलो	१५० सैं.मी.	४४.९ किलो
१६७.५ सैं.मी.	६०.१ किलो	१५२.५ सैं.मी.	४६.८ किलो
१७० सैं.मी.	६२.७ किलो	१५५ सैं.मी.	४८.२ किलो
१७२.५ सैं.मी.	६४.५ किलो	१५७.५ सैं.मी.	४९.५ किलो
१७५ सैं.मी.	६५.५ किलो	१६० सैं.मी.	५०.८ किलो
१७७.५ सैं.मी.	६८.२ किलो	१६२.५ सैं.मी.	५१.३ किलो
१८० सैं.मी.	७०.४ किलो	१६५ सैं.मी.	५४.४ किलो
१८२.५ सैं.मी.	७२.३ किलो	१६७.५ सैं.मी.	५६ किलो

अगर ऊँचाई के अनुपात में आपका वज़न ज़्यादा है तो आप अपना फ़ालतू वज़न बड़ी जल्दी घटा सकते सकती हैं।

लीजिये पेश है वेट लॉस कोर्स

आपको एक नयी आकृति देने में मदद करता है — उचित भागों में आपका वज़न घटाता है। आपका वज़न आपकी ऊँचाई के साथ मेल रखने के लिए ही इसकी बनावट रखी गयी है।

वेट लॉस प्लान एक वैज्ञानिक १० मिनट का निरंतर समताल कोर्स है। इस कोर्स के अनुसार व्यायाम करने से रक्त-प्रक्रिया और श्वसन व्यवस्था की गति तेज़ हो जाती है जिससे शरीर की फ़ालतू चर्बी जलकर खत्म हो जाती है और फ़ालतू वज़न घट जाता है। परिणामस्वरूप आपके शरीर की आकृति सुधरती है और उसमें कसाव आ जाता है।

दो प्रमुख कारण शायद जिनके कारण आपका वज़न ज़रूरत से ज़्यादा बढ़ जाता है:

१. [illegible]

२. [illegible]

यह बिल्कुल सच है कि इस 'वेट लॉस कोर्स' के शुरू करने के कुछ ही हफ़्तों के अंदर ही आपका शरीर नयी आकृति प्राप्त करने लगेगा, बेडौल उभार और दूसरे [illegible] ही जायेंगे और आपकी त्वचा तरो-ताज़ा और कोमल हो जायेगी।

वेट लॉस प्लान' की इतनी सफलता के ५ मुख्य कारण:

१. इसकी वज़न घटाने की क्रिया उन भागों पर केन्द्रित रहती है जहां चर्बी ज़्यादा होती है जैसे कमर, कूल्हे और रानें।

२. इसका उपयोग बिल्कुल आसान है। जब कभी भी आपको समय मिले, चाहे आप टी.वी. देख रहे/रही हों, दरवाज़े के हैंडल के साथ जोड़ दीजिये और कमरे के फ़र्श पर एकदम सीधी लेट जाइये। दिन में दो बार।

३. खाने पर कठोर प्रतिबंध नहीं। हम खाने का एक चार्ट साथ देते हैं जिसे विशेषज्ञों ने विशेष रूप से तैयार किया है।

४. सुरक्षित है और समय बचाता है: न तनाव न थकावट। करने में आसान। आपकी थकान दूर करता है और ताज़गी देता है।

५. यात्रा: साथ भी ले जाइये। [illegible] इस कोर्स की निरंतरता के कारण ही शीघ्र परिणाम प्राप्त होते हैं। वज़न में हल्का होने के कारण इसे आप अपने साथ कहीं भी ले जा सकते हैं।

शीघ्र परिणाम जांचिए

मुफ़्त

नापने का फ़ीता ७ दिन के अंदर कूपन भेजने पर !

अब भारत में वह वेट लॉस कोर्स उपलब्ध है जो अमेरिका में ५,००,००० की संख्या में बिक चुका है। केवल हमसे मिलता है—इस जैसी और कोई चीज़ नहीं !

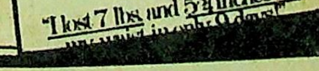

"I lost 7 lbs. and 5¾ inches off

श्रीमती शहनाज़ बाटलीवाला

पहले

"वेट लॉस प्लान का पालन करके मैंने अपना वज़न ३० किलो घटा लिया। अब ज़रा मुझे देखिए! यह जिस प्रकार काम करता है वह सचमुच आश्चर्यजनक है।

बाद में

वेट लॉस से अतिरिक्त लाभ:

आपका चेहरा तरो-ताज़ा दिखाई देता है। खिंचाव के निशान और झुर्रियां साफ़ हो जाती हैं, शरीर का लटकाव सीधा हो जाता है, दोहरी ठोढ़ी गायब हो जाती है, यहां तक कि सूजी हुई नसें (जो मुटापे के कारण उभर आती हैं) भी सुधरने लगती हैं।

अधिकतर डाक्टर और वज़न विशेषज्ञ इस बात से सहमत हैं

कि वज़न घटाने का सबसे ज़्यादा समझदारी का तरीका नियमित व्यायाम और खाने पीने में सावधानी है—वेट लॉस प्लान ऐसा ही एक कोर्स है।

यह आसान, तेज़ रफ़्तार और प्रभावकारी है!

यह चार्ट औसत वेट लॉस दर्शाता है

नाम	वज़न में कमी किलो	नाप में कमी सैं.मी.	समय
एस.एस.	१० किलो	१४ सैं.मी.	१४ दिन
पी.सी.	१४.५ किलो	१८ सैं.मी.	२४ दिन
पी.के.	६ किलो	९.३ सैं.मी.	१४ दिन
एन.एस.	९.७ किलो	१३.१ सैं.मी.	२१ दिन
एच.जी.	४.४ किलो	८ सैं.मी.	१५ दिन

यह कूपन आपके बाज़ुओं, गर्दन, कमर, रानों, कूल्हों, नितम्ब और पिंडलियों पर से तेज़ी के साथ वज़न कम करने में आपकी मदद करेगा। अगर आप अपना वज़न घटाने में सचमुच रुचि रखते हैं तो यह कूपन काटकर आज ही डाक से भेज दीजिये!

पेश है वेट लॉस

वेट लॉस कोर्स (कृपया आपका पता अंग्रेजी में लिखिये)
३४ मित्तल चैम्बर्स, नरीमान प्वाइंट, बम्बई ४०० ०२१.
कृपया मुझे रु. ६४/- में वेट लॉस कोर्स शीघ्र भेजिए। SA/7/76
☐ वीपीपी ☐ चैक ☐ मनी आर्डर ☑ किसी एक जगह निशान लगाइये।
मैं वी.पी.पी. से ऑर्डर कर रहा हूं। मैं पोस्टमनको पैसे देनेकी गारंटी देता हूं।
For M.O. please write your address and the products name.
PLEASE send the M.O. receipt along with the order.

नाम________________ उम्र________
पता________________
डाकघर________________ पिनकोड________

चैक, मनीआर्डर 'रॉस-मुरारका इंडिया प्राइवेट लिमिटेड' के नाम से भेजिए।

Headstart WL-524-HN.

उत्साह भरा जीवन

नैस्कैफ़े® के ताज़ा और स्फूर्तिदायक स्वाद से

नैस्कैफ़े®
एकमात्र इन्स्टैन्ट कॉफ़ी
जो १००%
शुद्ध कॉफ़ी से बनी है

दुनिया भर में सबसे ज़्यादा बिकने वाली
इन्स्टैन्ट कॉफ़ी

NESCAFE
instant coffee
Made from finest
100% pure coffee
ESC-3/76 HIN

लॅक्मे वैनिशिंग क्रीम

रूप रंग की
छटा बिखेरे

कौन न उस को प्यार से छेड़े

L
Lakmé
VANISHING CREAM

आप पर लोगों की निगाहें पड़ीं कि रुकी रह गईं, इस मनोरम सौंदर्य और रूप की उज्ज्वलता का रहस्य है लॅक्मे वैनिशिंग क्रीम हल्का-फुल्का और बिल्कुल प्राकृतिक, श्रेष्ठ मेक-अप का आदर्श आधार—
लॅक्मे वैनिशिंग क्रीम

सब कुछ रूपरंग के हक में

लॅक्मे

लॅक्मे लैवेण्डर टैल्क

अनोखी फ्रेंच सुगंध का चमत्कार: बिंध गया फ्रांसिसी हुआ शिकार

लक्मे लैवेण्डर टैल्क छिड़किए
इसकी निराली मन-मोहनी
सुगंध से लोग मंत्र-मुग्ध हो
जायंगे. असली फ्रांसिसी
खुश्बू...
बिल्कुल यही,
बिल्कुल सही।

Lakmé
Lakmé

dCA/L-VC-LT/1H HIN

सारिका के वार्षिक ग्राहकों के लिए विशेष छूट

'सारिका' के प्रत्येक अंक का मूल्य एक रुपया है. किंतु वर्ष भर के लिए वार्षिक शुल्क मात्र दस रुपये है. यानी साल भर में दो अंक मुफ्त. यदि आप दो साल के लिए ग्राहक बनते हैं, तो शुल्क केवल उन्नीस रुपये है यानी दो वर्षों में पांच अंक मुफ्त. हां, तीन वर्ष के लिए शुल्क केवल सत्ताईस रुपये है.

आपके लिए सारिका की विशेष दरें इस प्रकार हैं:

एक वर्ष—१० रुपये
दो वर्ष—१९ रुपये
तीन वर्ष-२७ रुपये
विदेश में समुद्री डाक से एक वर्ष—२२ रुपये

कृपया यह कूपन जरूरी राशि के चेक/ड्राफ्ट/मनी-आर्डर के साथ-साथ आज ही भेज दें—

सर्कुलेशन मैनेजर
सारिका, टाइम्स आफ इंडिया बिल्डिंग, बम्बई-४०० ००१

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/दो वर्षों/तीन वर्षों के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. १० रुपये/१९ रुपये/२७ रुपये चेक/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा भेजे जा रहे हैं.

नाम ----------------

पता ----------------

हस्ताक्षर ----------------

समांतर कच्छी साहित्य—२

कच्छ का तपता रेगिस्तान, रेगिस्तान में हहराते रेत के बवंडर, दूसरी ओर पछाड़ें खाता समुद्र और उन सबसे जूझता हुआ वहां का आदमी...भूख और प्यास की छटपटाती संस्कृति और इन सबके बीच कभी न हार मानने वाली आशा और जिजीविषा...यही सब आप जुलाई '७६ अंक में पढ़ रहे हैं और इसी की अगली कड़ी है अगस्त '७६ अंक—समांतर कच्छी साहित्य — २

इस अंक के लेखक—

सुकानी, बीनेश अंताणी, अशोक हर्ष, भगवान खत्री, मूलराज रूपरेल, हीरालाल फ़ोफलिया, नानालाल जोशी, धीरेंद्र मेहता, भानु माकड़, गौतम शर्मा, नानालाल वसा, यशोदा पलाण और कीर्ति खत्री आदि.

साथ ही—

अभिमन्यु अनत के धारावाहिक उपन्यास—
'लाल पसीना' की
तीसरी किस्त
तथा सभी स्थायी स्तंभ

सारिका
अगस्त, १९७६

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका।
जुलाई, १९७६
वर्ष : १७;　　पूर्णांक : १८३

समांतर कच्छी साहित्य - १

कहानियां

डॉ. जयंत खत्री : भरी दोपहर : १२
बकुलेश : लाल आंखें ! लाल रत्तियां ! लाल गेरू ! : १६
मनुभाई पांधी : बेकाबू : २४
तरला भाटिया : प्रतीक्षा : ३२
उमिया शंकर अजाणी : धरती का कलंक : ३६
वीनु केशवाणी : १५ डाउन : ४४
वनु पांधी : लॉस्ट प्रापर्टी : ४८
माधुरी शाह : घर - बाहर : ५२
सरोज पाठक : शिव निर्माल्य : ६०

लोककथाएं और लघुकथाएं

नानी की कहानी : २१
शिकारी या पुजारी : २२
अतिथि-सत्कार : २३
भोज : ३५
मामैदेव : ४२
विश्वास का व्यापारी : ४३
क्षत्राणी का स्वाभिमान : ५०
चार लघुकथाएं : ६३

विशिष्ट लेख

कच्छी साहित्य एवं कच्छी साहित्यकार : मनुभाई पांधी : १०

गर्दिश के दिन

अजित पुष्कल : ६४

धारावाहिक उपन्यास : दूसरी किस्त

अभिमन्यु अनत (मॉरिशस) : लाल पसीना : ७२

स्थायी स्तंभ

पाठकीय : ८
विविधा : ८३
कृतियां : वीरेंद्र सक्सेना , से. रा. यात्री , श्याम गोविंद : ८४
गोष्ठी रपट : ८९

विशिष्ट रिपोर्ट

अखिल भारतीय समांतर लेखक सम्मेलन (राजगीर) : ८६

आमुख तथा कच्छी कहानियों की सज्जा : महिम पांधी.

संपादक : कमलेश्वर

- मुख्य उप-संपादक : आनंदप्रकाश सिंह
- उप-संपादक : अवधनारायण मुद्गल, सुदीप
- कार्यालय-सहयोगी : श्रीनाथ पांडेय, देवचंद्र झा, भिकाजी शिर्के

महिम पांधी ने इस अंक की सभी कच्छी कहानियों और आवरण की सज्जा की है. इनकी पारदर्शियों और चित्रों का कहानियों से सीधा संबंध नहीं है, ये चित्र स्वयं में एक कहानी हैं और कच्छ के जनजीवन की झांकी प्रस्तुत करते हैं.

महिम पांधी का जन्म १५ मार्च, १९४६ में कच्छ में हुआ. इन्होंने गुजराती साहित्य के साथ बी. ए. किया. फोटोग्राफी और चित्रकला की ओर इनकी विशेष रुचि है. साथ ही कहानियां और लेख भी लिखते हैं. आजकल गुजराती साप्ताहिक 'युव दर्शन' के सह संपादक हैं.

पाठकीय

अप्रैल अंक

'गर्दिश के दिन'

इस स्तंभ के अंतर्गत प्रकाशित श्रवणकुमार के आत्मकथ्य ने अनेक पाठकों को उद्वेलित किया, उन्हें यह प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान करने वाला लगा, किंतु **सुरेश सरल** (जबलपुर) के मतानुसार, "श्रवण कुमार के गर्दिश के दिन आम भारतीय लेखकों के गर्दिश के दिन हैं." उनका प्रश्न है : "जो अभी भी गर्दिश में हैं, उनकी तरफ आप या वे लेखक, जो गर्दिश के दिनों से पार पा चुके हैं, कब देखेंगे ?" और यह सुझाव : "जो गर्दिश से उबर चुके हैं, उनकी सुनिए, पर जो आज भी गर्दिश में हैं, उन्हें भी देखते चलिए." ☐

श्रीमती अनु कोतवाल (जम्मू तवी) की राय में "बड़े-बड़े लेखकों की यह आत्म-रचनाएं टूटे-फूटे मनुष्य का आत्मबल बढ़ाती हैं." ☐

श्रीशंकर शुक्ल, (मझखोरिया, उन्नाव, उ. प्र.) को यह रचना पढ़ कर 'तिलमिलाहट हुई कि एक मान्यता प्राप्त लेखक बनने तक व्यक्ति को कितने-कितने पापड़ बेलने पड़ते हैं." ☐

शिवप्रसाद भारती (बांदा, उ. प्र.) के विचार से यह आत्म-कथ्य "साहित्यकार को मार्गदर्शन कराता है. उनके सच्चे साहित्य सेवी जीवन को यदि मील का पत्थर कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी. ☐

अप्रैल अंक की कहानियां

यह नवलेखन विशेषांक था. अधिकांश पाठकों ने **'कहर आषाढ़ का' कलम हुए हाथ' 'फरिश्ते की मौत, दरिंदे 'टुकड़ा टुकड़ा मौत' छायाएं,** पसंद कीं. **'बुतखाना', 'कमीना' 'मुखौटे', 'किस्सा एक बीमा कंपनी के एजेंट का,'** भी पसंद की गयीं. ☐

और, टीकमगढ़ (म. प्र.) के **रामखिलावन सेन** का यह मत : "सारिका हम मजदूरों की प्रिय पत्रिका है. हमारे कारखाने के सभी मजदूर भाई इसे चाव से पढ़ते हैं और हर माह इसकी प्रतीक्षा में रहते हैं. . .अप्रैल अंक की कहानियां एक से बढ़ कर एक हैं.**'फरिश्ते की मौत'** अविश्वसनीय होते हुए भी मर्म को छूती है. काश, सब प्रशासक इतने संवेदनशील दयावान होते, और सब पत्रकार सही बात नहीं लिख पाने पर पत्रकारिता छोड़ सकते !" ☐

मई अंक

दुष्यंत कुमार स्मृति अंक ने पाठकों को भाव विभोर कर दिया. **ओमप्रकाश उपाध्याय** (मंडलेश्वर, म. प्र.) को मुखपृष्ठ का चित्र "युगल और दुष्यंत का हाथ टहनी पर बरबस ही 'यहां दरख्तों के साये में धूप लगती है' की याद दिलाता है." आप आगे लिखते हैं : वह कवि था (हृदय से) किंतु उससे अधिक वह अकवि था (शरीर से). तभी तो 'कैसे-कैसे मंजर सामने आने लगे हैं, गाते-गाते लोग चिल्लाने लगे हैं. . . . साफगोई और बेबाक बयानी जैसी दुर्लभ विशेषताओं का वह बेताज बादशाह था.

हरगोविंद 'चेतक' (बंबई) की राय में "दुष्यंत विशेषांक उतना ही वजनदार है, जैसे कोई शेर बार-बार पढ़ने को जी होता है!"

अवधेश अमन (लखीसराय, बिहार) यह "अंक मिलते ही, एक ही बैठक में, दुष्यंत कुमार की पूरी जिंदगी की किताब" पढ़ गये. "कम से कम एक बार मैं मिल लेता उससे ! यह तमन्ना तो मेरे भीतर उसी दिन से पल रही थी, जिस दिन उसकी गजल 'यहां दरख्तों के साये में धूप' 'धर्मयुग' में छपी थी. लेकिन सख्त अफसोस है मुझे—"आज सिर्फ उसकी कुछ गजलें मेरे पास रह गयी हैं, खुद को चिढ़ाने के लिए."

डा. ओ. पी. अरोड़ा (नयी दिल्ली) का मत है कि " 'सारिका' जीवन के बहुत नजदीक आ गयी है. अब उसमें पी-एच. डी. की कहानियों के बजाय आम आदमी की कहानियां हैं ! 'सारिका' को इसी सुख-दुख भरे जीवन के पास ही रखें."

एक गुमनाम पाठक का पत्र

काश ! दुष्यंत को पहले पढ़ा होता! कम-से-कम उस महान इनसान का शुक्रिया तो अदा करते.

एक दिन जरूर आयेगा जब हम सब उनकी नज्म को मशाल बनायेंगे.

आपका

एक पाठक जो पुस्तकें खरीदने की हैसियत नहीं रखता और 'सारिका' जैसी पत्रिकाओं द्वारा ही मन की मशाल जलाये रखना चाहता है.

गांव वालों की किताब

परीक्षा की तैयारी हेतु गांव आया, तो मेरी अप्रैल अंक की प्रति गांव वालों के हाथ लग गयी, और कई दिन तक मुझे फिर पढ़ने को न मिल सकी. 'सारिका' पूरे गांव में आज चर्चा का विषय बन गयी है. ग्रामीण परिवेश की कहानियां भी होने से इन लोगों को 'सारिका' में अपनापन लगा, और मुझसे पिछले अंक भी मांग कर पढ़ रहे हैं, और 'गांव वालों की किताब' के नाम से पूछते हैं.

—मुकुट विद्यार्थी (नगला बरी, इटावा, उ. प्र.)

घनश्याम अग्रवाल (अकोला) लिखते हैं: "दुष्यंत के बारे में लिखने के लिए मुझे पूरी एक जिंदगी चाहिए और उसी के साथ-साथ चाहिए'—संपादक के उक्त शब्द बड़े मार्मिक और भोले लगे. 'सारिका' दुष्यंत कुमार स्मृति अंक निकाल कर हमें दुष्यंत कुमार के कृतित्व एवं व्यक्तित्व के एकदम करीब ले आयी. बधाई."

उज्जैन (म. प्र.) से **मनोहर बैरागी** का कहना है : "इस अंक के जरिये आपने दुष्यंत जी के चाहने वालों पर इतना बड़ा अहसान किया है कि धन्यवाद के लिए सारे शब्द छोटे मालूम पड़ते हैं."

बंबई के **डा. विष्णु भटनागर** लिखते हैं : "एकल कला प्रदर्शनियां बहुत देखीं, मगर सचित्र व्यक्ति-साहित्य - अंक केवल एक याद रहगा— 'सारिका' का यह अंक . आपकी भरे मन से श्रद्धांजलि निजी नहीं, पूरे साहित्य और जन-समुदाय की हार्दिक व्यथा है. . .इस अंक में दी गयी पठनीय सामग्री और जलील कुरैशी व नवल जायसवाल के सुंदर छायाचित्रों ने दुष्यंत को पुनरुज्जीवित कर दिया है, अमर कर दिया है."

इटारसी के छात्र **पंकज कुमार शुक्ला** के मत के अनुसार, "यह लिखना कि 'वह एक साहित्यकार बन कर आया था और एक आदमी बनकर चला गया, सटीक तो है ही, दुष्यंत जी की जिंदादिली, आम आदमी के लिए आम आदमी हो कर अपनी बात कहने और संवेदनशीलता के संबंध में बहुत कुछ कह देता है.

जो दुष्यंत कविता को चौंकाने या आतंकित करने के लिए प्रयोग नहीं करते थे, उन्होंने क्या अंत में, अंदर तक नहीं चौंकाया? वास्तव में ऐसा लगता है कि—

न हाथ थाम सके, न पकड़ सके
दामन,
बड़े करीब से उठ कर चला गया
कोई." ☐

यह अंक

प्राकृत और अपभ्रंश या कह लीजिए कि डिंगल साहित्य का कच्छी-साहित्य पर विशेष प्रभाव रहा है. कच्छी का प्रारंभिक साहित्य संत, चारण और भाट कवियों की देन है. उसमें या तो दार्शनिक तत्व हैं या वीरगाथा के तत्व हैं. कच्छी में अन्य भारतीय भाषाओं की अपेक्षा वीरगाथा और लोककथा की परंपरा ज्यादा लंबे समय तक रही है. इसका कारण कच्छ की दुर्गम भौगोलिक स्थिति है. तीन ओर हहराते समुद्र और एक ओर तपते रेगिस्तान ने कच्छ को देश के अन्य भागों से लगभग अलग रखा है.

कच्छी की अपनी कोई लिपि नहीं है. इसलिए इसने नजदीक होने के कारण गुजराती लिपि को ही स्वीकार लिया है. आज कच्छ के लेखक गुजराती में ही अपनी अभिव्यक्ति को साकार करते हैं फिर भी उनके लेखन में अपनी बोली और जमीन की महक रहती है. यही महक उनके लेखन की सार्थक उपलब्धि है.

बीसवीं सदी के प्रारंभ में कच्छी साहित्य ने लोककथाओं की लीक को छोड़ा और पांचवां दशक समाप्त होते-होते वह वक्त की धारा से जुड़ गया.

सबसे पहले 'बकुलेश' ने यथार्थवादी प्रगतिशील कहानियां लिखीं. इस धारा से इनके दो साथी और आ जुड़े—डॉ. जयंत खत्री और मनुभाई पांधी.

'सारिका' के दो अंक (जुलाई और अगस्त) कच्छी कहानियों के अंक हैं. इन अंकों में उन सभी (वयोवृद्ध-युवा) कथाकारों की कहानियों का प्रतिनिधित्व है जो अपने वक्त से जुड़े हुए हैं, जिनकी मानसिकता आम आदमी की तकलीफों को भोगती और स्वर देती है.

इन अंकों के माध्यम से आप जान सकेंगे कि आज कच्छी कथाकारों की 'सोच' क्या है, उनकी दृष्टि के आयाम क्या हैं और वे कच्छ के संपूर्ण परिवेश को किस वैचारिक स्तर पर देखते, परखते और स्वीकारते हैं? आज के कच्छ का लोक-मानस शेष भारतीय लोक-मानस से कितना अलग या कितना जुड़ा हुआ है? ☐

कच्छी साहित्य एवं कच्छी साहित्यकार

● मनुभाई पांधी

भारत का पश्चिमोत्तर कोना, पाकिस्तान की सीमा पर स्थित कच्छ, सदियों तक देशी रियासत रहने के पश्चात, भारत में विलीन हो, स्वतंत्र भारत का ही एक अंग बन गया हैं.

तीन तरफ असीम अरब सागर एवं एक तरफ दुर्गम रण से घिरे हुए इस प्रदेश ने सदियों से अपने आस-पास के प्रदेश, सिंध, मारवाड़, सौराष्ट्र से भौगोलिक पार्थक्य सहा है. यातायात के साधनों की दुर्लभता के कारण भारत के अन्य प्रदेशों से भूमि-मार्ग से भी अधिक संपर्क स्थापित नहीं कर सका है. इससे भारत की बहुत-सी सहज बातों के प्रभाव से कच्छ अछूता रहा है.

इसके लोक-साहित्य में, इसकी गीति-कथाओं में, कहावतों में एवं चुटकुलों में इसकी गहरी कटाक्ष-शक्ति का तथा सुभाषित आदि में चुभता मार्मिक, अल्पाक्षरी वाक्पटु लावण्य है.

प्रायः पर्वतीय पथरीली भूमि, अल्प वृष्टि, बार-बार के अकाल, बारहों मास जल से पूरित रहने वाली नदियों के अभाव तथा रण की उड़ती बालुका राशि के कारण कच्छ की कृषि आकर्षक एवं लाभदायक व्यवसाय नहीं बन सकी है. इसलिए कच्छी लोगों ने आजीविका के लिए सागर का सीना रौंदा है एवं सर्वत्र समुद्र-यात्री के नाम से विश्व के अन्य देशों के साथ संपर्क स्थापित किया और उन देशों के साथ आचार-विचार का आदान-प्रदान किया है. इस तरह भौगोलिक परिस्थिति ने कच्छ के सामाजिक-जीवन, संस्कार-संस्कृति को भारत तथा गुजरात का एक अंग होने के बावजूद पृथक व्यक्तित्व उपहार-स्वरूप दिया है और उसे शीर्षस्थ कच्छीपन मिला है. कच्छी कला, कारीगरी उद्योग, वेशभूषा, रंग-चयन, लोकनृत्य, लोकगीत, बोली, साहित्य सभी में इस शीर्ष स्थान को सहेजा है.

पंद्रह लाख कच्छ वासी, कच्छी बोली बोलते हैं. कच्छी की कोई निजी लिपि नहीं है. किंतु इसकी बोली में इसका जिजी माधुर्य एवं विशेषता है. कच्छ में बसते छह लाख एवं प्रवासी नौ लाख कच्छी अपने सामाजिक व्यवहार कच्छी बोल कर ही करते हैं और गुजराती अथवा देवनागरी लिपि में साहित्य सर्जना करते हैं. साहित्यिक प्रवृत्ति कच्छी और गुजराती दोनों ही भाषाओं में होती रही है. मूल अपभ्रंश-प्राकृत से उद्भूत सिंधी, पंजाबी एवं गुजराती भाषा से प्रभावित हो कच्छी बोली का निर्माण हुआ. कच्छी में इसे 'बाबाणी बोली' पितृभाषा कहते हैं. इस भाषा में स्त्रीलिंग एवं पुलिंग दो जातियां हैं, इनसे इतर अन्य कोई जाति नहीं है.

पूर्वकालीन कच्छी सायहित्य भाट, चारण, संतो तथा फकीरों द्वारा सुरक्षित रहा था. उनके गीत, दोहे, काफियां, भजन तथा लोककथाएं, कहावतें जन-समुदाय के लिए मार्ग-प्रदर्शक का कार्य करती थीं. लोक जीवन में घुल-मिल गया उच्च-कोटि का यह साहित्य प्रायः पद्य में रचा एवं गाया गया है. इसमें प्रेम, शौर्य, आत्मोत्सर्ग की यशस्वी गाथाओं के महाकाव्य रचे गये हैं. वे तत्कालीन इतिहास एवं लोक-जीवन को प्रकाशित करते हैं. कच्छ के संत मेकण, दादा, मामई, माकरशा, शाह लतीफ, गौस मुहम्मद, रतन बाई आदि ने अपने कच्छी साहित्य द्वारा ऊंच-नीच की दीवार को हटा कर, खेत-खलिहान तथा झोपड़ों के श्रमजीवियों के श्रम सीकर में उसका प्रकाश फैलाया है. वे भजन, काफियों वेदांत एवं सूफी के भक्तिमय ज्ञानोदय का उत्कृष्ट उदाहरण हैं. शाह अब्दुल लतीफ, जेसल, तोरल, माण साहब, रवि साहब, खीम साहब, त्रीकम साहब और मोरार साहब के साहित्य की गांव-गांव में गहरी जड़ें फैली हुई हैं. कच्छी साहित्य में कच्छी काफियों का स्थान अद्वितीय है. इसकी ३६ विशिष्ट कोटियां हैं और उन सभी को शास्त्रीय कहा जा सकता है, उनमें लय-बद्धता है. कच्छी काफियों में करीम, देवायत, उमर सुहाब आदि कवि अग्रगण्य हैं.

संत मेकण दादा, सहाराव देशलजी के गुरु थे. उस समय में वे नारी स्वातंत्र्य के उग्र समर्थक थे और निम्न स्तर के लोगों के हित के लिए इन्होंने कार्य किये हैं. इनके भजन, पद और साखियां कच्छी लोकों में बहुत गायी जाती हैं.

अठारहवीं सदी के मध्यभाग में यह प्रवाह परिवर्तित हुआ. राव लखवत जी ने, भारत में सर्व प्रथम कवि शाला ब्रजभाषा पाठशाला स्थापित की जिसने दो सौ वर्षों तक कच्छ, सौराष्ट्र गुजरात, राजस्थान के कवियों को राज्य की सहायता से शिक्षा दी. इससे पद्य अब शास्त्रोक्त नियमबद्धता से, भिन्न-भिन्न छंदों एवं रागों में रची जाने लगी. यहीं शिक्षा पा कर गुजरात के विख्यात कवि दलपत राय ने **'पिंगल'** रचा. इस शाला ने अनेक कवियों का निर्माण किया है. चारण कवियों ने भी कच्छी साहित्य को समृद्ध किया है. कच्छी कवियों ने गुजराती एवं हिंदी में भी अपनी अनेक रचनाओं का सृजन किया है.

उसके उपरांत गुजराती साहित्य में श्रेष्ठ एवं प्रामाणिक ग्रंथ **'रण पिंगल'** की रचना श्री रणछोड़ भाई 'उदयराम ने कच्छ में ही की थी. और उसका प्रकाशन भी वहीं हुआ था.

मगन भाट, हम्मीरजी, केशवजी, देवीदास जी, रणमलजी गढ़वी, इलु बारोट, लघाणी, धुंला बारोट एवं पात्रो इनमें प्रमुख हैं.

पात्रो कवि ने तो उस असय में 'एवसर्ड' काव्य की रचना की थी जो लोकों की जबान पर अभी भी मौजूद है.

उनके बाद के कवियों में 'खेता बावनी' के रचयिता कवि राघव, केशव, स्वामी त्रिविक्रमानंद सरस्वती, साजन भगत आदि ने उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में कच्छी साहित्य को विकास के पथ पर आगे बढ़ाया. संत कवि निरंजन ने कच्छी में कच्छ को राष्ट्रगीत **'मुंजी मातृभूमि के नमन'** प्रदान किया एवं वह गीत प्रत्येक कच्छी के हृदय में बस गया. 'टीपे मिंज महेशमणा मायो' (बिंदु में सिंधु समाया) जैसे साहित्य के अमर काव्यों को उन्होंने ही रचा है, जिनके अनेक भाषाओं में भाषानुवाद हुए हैं. लालजी नान जी कवि ने पौने सौ के लगभग कच्छी नाटकों की रचना की, जिनका सफल मंचन भी हुआ. चमन ने उर्दू एवं कच्छी भाषा में **'दीवाने चमन'** एवं **'बहारे चमन'** नामक दो ग्रंथों में उत्कृष्ट गजल साहित्य दिया है. कवि दुलेराय काराणी ने कच्छी भाषा को माधुर्य प्रदान किया.

कच्छ के हाजी मुहम्मद अलारखिया ने गुजरात एवं गुजराती भाषा का प्रथम सचित्र मासिक पत्र 'बीसवीं सदी' प्रकाशित किया. उसके माध्यम से अनेक लेखक एवं कलाकार प्रकाश में आये. गुजराती भाषा में कच्छ में से समाचार पत्रों का निकलना प्रारंभ हो चुका था. गुजरात को अनेक ऐतिहासिक उपन्यास नाराणजी विसनजी ठक्करे ने दिये.

कच्छी बोली है, किंतु उसकी निजी लिपि नहीं है इसलिए गुजराती लिपि का उपयोग करने वाले गुजराती लेखक गुजराती एवं कच्छी दोनों ही भाषा बोलने, लिखने, समझने एवं पढ़ने के समान अधिकारी हैं. गुजराती पाठकों की संख्या अधिक होने के कारण कच्छी लेखकों ने अपनी रचनाएं गुजराती में ही लिखनी आरंभ कर दीं.

सन् ३० से पूर्व आदर्शवाद एवं प्रेम भावना की मिथ्या आंखमिचौनी प्रधान विषयवस्तु से पूर्ण गुजराती कथा साहित्य की भरमार थी. तत्कालीन कच्छी प्रगतिशील लेखक 'बकुलेश' अपनी नवीन कहानियों के द्वारा लोकचर्चा के विषय बन गये. विश्व साहित्य के अध्येता 'बकुलेश' ने गुजराती कहानियों में दलित-पीड़ित मनुष्यों का सच्चा स्वरूप उपस्थित किया. वे यथार्थवाद के कट्टर समर्थक थे, उनके कारण गुजराती कहानियां भारत के अन्य प्रांतों के कथा-साहित्य में सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकीं.

'बकुलेश' के पश्चात डा. जयंत खत्री की कृतियों ने गुजराती कथाओं को भारतीय एवं पाश्चात्य कथाओं की श्रृंखला में उच्च स्थान प्राप्त कराया.

गुजराती कहानी-साहित्य की सर्जना में उसके रचनात्मक स्वरूप को यथार्थ किंतु कलात्मक मोड़ देने वाले गुजराती के श्रेष्ठ कथाकार के रूप में इस कच्छी लेखक ने स्थान प्राप्त किया. **'लोहो नुं टीपु' 'खराब पोर'** एवं **धाड़** जैसी श्रेष्ठ कहानियां इन्होंने रची हैं.

बकुलेश एवं खत्री के निकटस्थ मित्र डा. मनूभाई पांधी ने मानव मन एवं संसार के व्यवहार का सूक्ष्म निरीक्षण करने वाली, वातावरण एवं पात्रों को सजीव करती **बेकाबू, 'वेदना'** एवं **'अश्रु' भूरियों फिणांश'** जैसी श्रेष्ठ यथार्थ का दर्शन कराने वाली कहानियां दी हैं. प्रगतिशील विचार शक्तियों को उनका प्रोत्साहन मिला है.

कच्छी सपूत श्री 'सुकानी' ने श्रेष्ठ सागर-कथाएं दी हैं. **'देवों धाधल'** जैसे गुजराती साहित्य में अमर सागर उपन्यास भी दिये हैं.

उपरोक्त पीढ़ी के द्वारा उत्पन्न किये हुए नवीन कथा प्रवाह को नयी पीढ़ी के लेखक अशोक हर्ष, अनील कोठारी, वनु पांधी, बीनु केशवाणी, गौतम शर्मा, नाना लाल जोशी, धीरेंद्र मेहता, हीरालाल फोर्फालिया, रसिक मेहता आदि कच्छी लेखकों ने अपनी श्रेष्ठ कृतियों द्वारा अग्रसर किया. इस नवीन प्रवाह ने परंपरा के नवीन मानदंड की रचना की. उन लेखकों की कलम में मानव हृदय की संवेदना को कलात्मक रूप से गुंफित करने की शक्ति है. श्री वनु पांधी ने इस प्रवाह में कलात्मक योगदान दिया और उस योगदान के द्वारा नवीन श्रृंखला का सृजन किया. **'सेठ'** एवं 'सुकान' जैसे श्रेष्ठ सागर - उपन्यास वनु पांधी की महत्त्वपूर्ण देन है.

अनील कोठारी ने **'गंदा नाला'** आदि उपन्यास लिखे हैं. गौतम शर्मा ने **घेन घुंटेल दर्दों** आदि अनेक उपन्यास एवं कहानियों दी हैं. रसिक मेहता ने लगभग पचास उपन्यास रचे हैं. विनु केशवाणी का **'आठ दिवस'** उपन्यास मौलिक जासूसी उपन्यास होने के साथ-साथ उच्च कोटि की साहित्यिक कृति बन गया है. कितने ही छोटे-बड़े कच्छी साहित्यकारों ने कच्छी साहित्य-सृजन में हाथ बंटाया है. श्रीमती सरोज बेन पाठक ने कथा एवं उपन्यास साहित्य में नवीन सीमा का निर्माण किया है. ऐतिहासिक उपन्यास में असीम योगदान श्री प्रीतम लाल कवि, श्री मूलराज रूपारेल, श्री दुलेराय काराणी श्री उमियाशंकर अजाणी का है.

कवि गौतम शर्मा, प्रीतम लाल कवि, जगदीश ओझा आदि कवियों ने नवीन प्रयोग कर नवीन धारा को प्रवाहित किया है.

नवीन मोड़ पर स्थित यह साहित्य अब एबसर्ड एवं एब्स्ट्रेट प्रयोगों की तरफ आगे बढ़ रहा है. उसमें भी वीनेश अंताणी उभर कर, आने वाले कल की कथा आज गुजरात को दे रहे हैं. **'नगरवासी'** एवं **'एकांत द्वीप'** उनके नवीन सफल उपन्यास हैं.

कच्छ में आकाशवाणी केंद्र होने के कारण कच्छी भाषा को उसमें स्थान मिला है. कच्छी भाषा में नाटक, वार्तालाप, गद्य-पद्य होने के कारण नवीन प्रवाह सजीव हुआ है, परंतु कच्छी लेखकों की प्रगतिशील अभिव्यक्ति तो गुजराती भाषा के द्वारा ही होती रहेगी एवं गुजराती साहित्य को समृद्ध करने में कच्छी लेखकों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है एवं रहेगा.

पर, मात्र इतनी उपलब्धियों से उन्हें संतोष नहीं है. वे हिंदी के माध्यम से हिंदी भाषी जगत के समक्ष उपस्थित हो सकें, ऐसे प्रतिभाशाली लेखकों का आगमन हिंदी में हो, ऐसे प्रयास होने चाहिए और 'सारिका' के माध्यम से हो रहे हैं. . . □□□

भरी दोपहर

• डॉ. जयंत खत्री

उस भरी दोपहर को, जब आकाश से अंगारे झर रहे थे, एक स्त्री अपने झोपड़े के दरवाजे पर खड़ी क्षितिज की ओर नजर ठहराये हुए थी.

जेठ की उस दोपहर में ऐसी लू फुंक रही थी कि मिट्टी की दीवारों और घास की छत वाले उस झोपड़े की छाया में भी बदन झुलसा जा रहा था. जेठ महीने के शैतानी बगूले चारों दिशाओं में उठ-उठ कर डोल रहे थे. सामने रण का लंबा फैलाव था जिसमें भटकते गोल-गोल घूमते बगूले, आकाश तक पहुंच रहे थे.

दोपहर जब जवान नहीं हुई थी, तभी से वह स्त्री क्षितिज की चौकसी पर तैनात थी. सपाट रण पर घूम रही उसकी बेधक दृष्टि एक पल के लिए भी असावधान नहीं हुई थी. उसकी आंखों पर थकान का भार था. दरवाजे पर बुत की तरह स्थिर उसका शरीर यों तो स्वस्थ ही लग रहा था, किंतु तीव्र व्यग्रता ने उसके सुंदर, रूखे चेहरे पर बदसूरत रेखाएं अंकित कर दी थीं.

धूल के एक दौड़ते बगूले के पीछे से एक परछाईं उभरने लगी, तो उस स्त्री की नजर में तुरंत आ गयी.

स्त्री की आंखें चमक उठीं. बुत की तरह जमी हुई उसकी अदा में तत्काल चंचलता आ गयी. परछाईं जब कुछ और नजदीक आयी, तो उसका आकार स्पष्ट होने लगा. उसकी गति मंद थी. उसकी कमर झुकी हुई थी और सिर निढाल.

स्त्री की आंखों की चमक बुझने लगी. .

शायद आज भी वह मर्द खाली हाथ ही वापस आया था. ज्यों-ज्यों वह घर के नजदीक पहुंच रहा था, त्यों-त्यों उसकी शक्तियां रीतती जा रही थीं. जब वह एकदम नजदीक आ गया, तो उसके पैरों में लड़खड़ाहट पैदा हो गयी. उसने झट से दोनों हाथ आंगन पर टेक कर सहारा ले लिया. कमर को बेहद मोड़ कर और सिर एकदम ही निढाल करके वह जोर-जोर से हांफने लगा.

चारों तरफ शांति फैली हुई थी. उल्लू, तीतर, बुलबुल या कौआ. . .कहीं कोई पक्षी उड़ता नजर नहीं आ रहा था. .एक छोटी-सी टेकरी की ओट में, सिर्फ एक कुएं के आसरे पर बसा हुआ, बारह-तेरह झोपड़ों का वह गांव मुर्दे की भांति पड़ा था. जेठ की भरी दोपहर के निर्दय ताप ने धरती को तड़पा दिया था.

हांफते मर्द ने स्त्री की ओर एक बार देख लिया. नजर मिलते ही स्त्री की आंखों में तिरस्कार और उलाहने का जो आभास मिला, उससे मर्द का सिर फिर निढाल हो गया. वह सिर्फ हांफता रहा. तीन-तीन दिनों की भुखमरी के बावजूद इस स्त्री की आंखों में तिरस्कार और उलाहने की चौंध है! इतनी भुखमरी के बाद तो सारी चौंध खत्म हो जानी चाहिए. . . जबकि स्त्री के चेहरे पर अब भी ताजगी और लुनाई का आभास है.

मर्द ने दांत पीसे——आंखें फाड़ कर क्या देख रही है, नीच! बदजात!

स्त्री ने जैसे सुना ही नहीं. दरवाजे के पीछे पानी का भरा हुआ लोटा उसने पहले से तैयार रखा था. उसे उसने मर्द के हाथ में थमा दिया. मर्द का हाथ ऐसे थरथराया, जैसे लोटे का वजन भी भारी पड़ रहा हो. चुल्लू में पानी ले कर उसने आंखों पर छींटा, थोड़ा पानी उसने गर्दन के पीछे भी डाला. उसकी शीतलता अनुभव करने के लिए वह पल-दो-पल रुका रहा. फिर उसने तपाक से लोटा होंठो से लगा लिया.

स्त्री ने एकदम झपट कर लोटा उससे छीन लिया, वरना उसने तो सारा ही पानी पी लिया था——दे, पानी दे! उसने बिफरते हुए कहा. दोनों हाथों से झपट्टा मार कर उसने स्त्री को पकड़ने का प्रयास किया. स्त्री ने लोटे वाला हाथ दूर हटा लिया. क्रोधित होकर मर्द ने उसका दूसरा हाथ खींच कर मरोड़ दिया.

स्त्री वेदना से चीत्कार कर उठी——छोड़िए भी! इतनी लू में भटक कर आये हैं. एकदम से इतना पानी कैसे पी सकते हैं?

मर्द ने स्त्री का हाथ छोड़ दिया. आंगन पर चढ़ कर, झोपड़े के दरवाजे को बेढंगेपन से धकेलता हुआ वह अंदर आया. दरवाजे के पास बिछी फटी-पुरानी

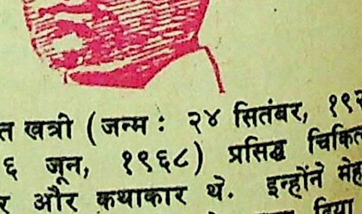

डा. जयंत खत्री (जन्म : २४ सितंबर, १९२९; मृत्यु, ६ जून, १९६८) प्रसिद्ध चिकित्सक, चित्रकार और कथाकार थे. इन्होंने मेहनतकश इनसानों के दर्द को स्वर दिया है. इनका साहित्य गुजराती और विशेष रूप से कच्छी की महत्वपूर्ण उपलब्धि है. इनके तीन कथा-संग्रह—— 'फोरां', 'बहेता झरणां' और 'खरा बपोर' प्रकाशित हो चुके हैं.

टाट पर वह लेट गया. स्त्री दरवाजे का सहारा लेती बैठ गयी.

रण में अब ऐसा बवंडर फुंकने लगा था, जिसके बगूले मनुष्य तो मनुष्य, भारी-भरकम पशु को भी अधर उठा कर फेंक सकते थे.

मर्द लगभग बाईस साल का और स्त्री अठारह-उन्नीस की लग रही थी. मर्द छरहरा किंतु सुगठित था. स्त्री भी छरहरी लंबी, फीकी और कमनीय थी.

भरपूर चढ़ा हुआ एक धूल का बगूला, अचानक अंदर धंसता चला आया. उन दोनों ने आंखें मींच कर सिर झुका दिया. झोपड़े का दरवाजा, दीवार के साथ जोर से टकराया. किसी जबर्दस्त थप्पड़ जैसे उस झोंके के गुजर जाने पर दोनों के चेहरे ऊपर उठे. स्त्री के होंठ थरथराने लगे. उसने पूछा—कुछ भी न मिला?

मर्द ने अपना भावहीन चेहरा स्त्री की ओर घुमाया. फिर दरवाजे से बाहर ताकते हुए जवाब दिया—अगर थोड़ा-सा ही और दौड़ा होता, तो मिल जाता. प्यास से अधमरा एक हिरन दौड़-दौड़ कर थक गया था. . . दूर तक दौड़ सकने की ताकत उसमें नहीं थी. अगर मैं लपक जाता, तो उसे जरूर पकड़ लेता किंतु. . .उतना दौड़ने के बाद, उसे उठा कर, वापस यहां तक आने की ताकत मुझमें भी शेष नहीं थी. .

पिछले दो महीनों से उन दोनों को रोज केवल एक बार खाना मिल सका था—वह भी भरपेट नहीं. तीतर पकड़ने के फंदे मर्द ने रोज इधर-उधर फैलाये थे. प्राय: रोज ही वे फंदे खाली रह जाया करते. कभी-कभार कोई अभागा खरगोश पकड़ में आ जाता. दो-दो, तीन-तीन परिवार, गुट बना कर, हिरन के शिकार पर निकलते किंतु शायद ही कभी सफल होते. पिछले तीन दिनों से तो इन दोनों को बिल्कुल ही कुछ खाने को नहीं मिला था.

स्त्री ने धीमे से कहा—आप जब भी एकाध बार शहर में कोशिश करिए.

—शहर में क्या जाना, मरने के लिए जाऊंगा?

—भला मैं आपको मरने के लिए कह सकती हूं? क्यों ऐसी बातें मुंह से निकालते हैं? इन दिनों हो क्या गया है आपको? और वह फूट-फूट कर रो उठी.

रोने से जब मन थोड़ा हलका हुआ, तो उसने फिर आग्रह किया—बैसाख-जेठ में खाने की तंगी कोई इसी साल की बात तो नहीं! यह तंगी तो हमारी जिंदगी के साथ जुड़ी हुई है. इसीलिए कहती रहती हूं कि अगर आप शहर में जायें और कोशिश करें तो हम इस भुखमरी से हमेशा के लिए छूट जायें.

—शहर एक बार मैं गया तो था! मर्द रोब से उठ बैठा—मेरी वहां कैसी गत बनी थी, क्या तुम्हें मालूम नहीं? फिर भी तुम दुबारा शहर जाने को कहती हो?

—हर बार वैसा ही थोड़े होगा. आखिर इतने सारे लोग शहर जाते हैं. सबको मजदूरी या नौकरी मिलती ही है. थोड़ा धीरज चाहिए.

—इससे ज्यादा और कितना धीरज रखूं? इतने बरसों से तुम्हारा पेट कौन भर रहा है? मैं या कोई गैर? क्या यह सब बिना धीरज के हो गया? तुम्हीं बेकद्र और बदजात होती जा रही हो.

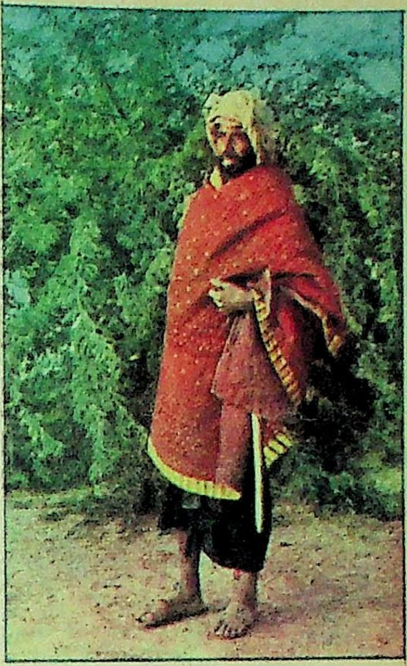

—मेरे अर्थ का अनर्थ क्यों कर रहे हैं?

—चुप! अब यदि एक शब्द भी कहा तो गला घोंट दूंगा. और उसने स्त्री को पकड़ने के लिए झप्प-से हाथ बढ़ाया. स्त्री तुरंत हट गयी. मर्द दो पल उसे गुस्से से देखता रहा. फिर स्त्री की ओर उंगली उठा-उठा कर वह क्रोध से चिल्लाया—कुछ पता भी है? कभी खुद जाकर देखा भी है शहर? वहां के लोग तो हम जैसों के बोलने का भी मजाक उड़ाते हैं. कोई किसी की सुनता नहीं. दिन डूबे प्यार का एक शब्द भी सुनने के लिए इनसान तरस जाता है. ऐसी जगह में अगर भरपेट खाना मिलता भी हो, तो किस काम का? वहां कुत्ते की जिंदगी जीने से बेहतर है यहां आदमी की तरह बेमौत मर जाना. ऐसे शहर में मैं पैर भी नहीं रख सकता.

स्त्री सिर झुका कर पैर के अंगूठे से जमीन खोदती रही. मर्द लगातार उसे घूरता रहा. जब लगा कि वह कुछ बोलेगी ही नहीं, तो मर्द ने फिर से दरवाजे से बाहर देखना शुरू कर दिया.

नि:श्वास छोड़ती हुई स्त्री उठी. मिट्टी की हंडिया में से उसने पीतल का एक कटोरा उठाया और मर्द के पहलू में रख कर प्यार से कहा—लीजिए, इतना खाकर पानी पी लीजिए.

मर्द ने कटोरे में देखा. उसकी आंखें आश्चर्य से

फैल गयी. आधे बीते जितना लंबा और दो अंगुल चौड़ा, तेल से सना, मांस का एक टुकड़ा कटोरे में पड़ा था. —कहां से लायी?

—पड़ोसन दे गयी है.

—तुम मांगने गयी थीं?

—नहीं वह आप ही दे गयी.

—क्या कहा? मर्द का चेहरा फक पड़ गया. मांस के टुकड़े पर ठहरी उसकी आंखें मानो अंधी हो जातीं लगीं. उसके होंठ भिच गये तो. . .उनकी भुखमरी की खबर अब सारे गांव में फैल गयी है. अब कहीं-न-कहीं से उनके लिए थोड़ा-बहुत खाना आता रहेगा. अब तक की जिंदगी में उसने भुखमरी के दिन तो कई निकाल दिए थे, लेकिन किसी की दी हुई मुफ्त की चीज खाने का उसके लिए यह पहला ही मौका था. कटोरे को उसने दूर खिसका दिया. दोनों हाथों के बीच सिर दबा कर वह फटे टाट पर औंधा सो गया.

स्त्री उठ कर उसकी बगल में बैठी और बोली—नाहक जी न जलाइए. अब तो यह जिंदगी और मौत का सवाल है. उठिए, इतना खा कर पानी पी लीजिए.

और उसने अपने मर्द के घुंघराले, धूल-सने बालों पर प्यार से हाथ फेरा. मर्द उसी क्षण करवट बदल कर दूर हट गया और बोला—छूना मत, कमीनी!

स्त्री मुंह बिदका कर पीछे हटी और दरवाजे का सहारा लेती हुई बैठ गयी.

कुछ क्षण ऐसे बीते, जैसे कुछ भी न हुआ हो. फिर एक बार हवा का तेज झोंका आता सुनायी दिया. मर्द ने तेजी से हाथ बढ़ा कर कटोरे को अपने पंजे से ढांक दिया. कुछ और घड़ियों के बीतने के बाद मर्द ने कटोरे पर से पंजा उठा लिया. मांस का टुकड़ा उसने मुंह में रख कर चबाना शुरू किया. स्त्री ने आंख के कोने से देखा कि आखिर वह खाने लगा है.

मांस खाने और पानी पीने के बाद मर्द ने पीठ घुमा कर खड़ी स्त्री पर नजर डाली. वह उसे अग्निशिखा जैसी छरहरी और तीखी लगी. उस स्त्री के अंग-अंग में सुख भरा हुआ था.

मर्द शिकारी जैसी अदा में उठा और हौले से एकदम आगे आया. पीछे से उसने स्त्री के दोनों कंधे अचानक पकड़ लिये और स्त्री की गर्दन पर काट खाया.

—उई! स्त्री ने मर्द के शिकंजे से छूटने के लिए तड़पना शुरू किया. लेकिन मर्द ने उसे घुमा कर आमने-सामने कर लिया. फिर जोर से अपनी छाती के साथ दबाया. थोड़ी देर तक उसने उसे उसी तरह जकड़े रखा, फिर छोड़ दिया. मर्द के पूरे चेहरे पर एक अजब-सा हास्य उभर आया.

छूटते ही स्त्री दूर हट गयी. थोड़े आश्चर्य से, और फिर मीठे रोष से, उसने मर्द की तरफ देखा. मर्द ने गर्दन पर जहां काटा था, वहां छूते हुए उसने नखरा करने की तरह कहा—बिलकुल जानवर की तरह काट लिया. जरा भी दया नहीं आयी. हाय-हाय! आंखें नचा कर वह दूर हटी और मर्द की तरफ गहरे अर्थ की मुसकान फेंकने लगी.

मर्द ने कूद कर उसे फिर पकड़ लिया. 'बस-बस नहीं-नहीं' कहती और खिलखिला कर हंसती हुई वह उसके हाथों में फिसलती चली आयी.

मर्द ने उसे दोनों बाजुओं में समेट कर अपनी छाती में समा लिया. अवाक होकर वह एकटक उसकी आंखों में देखती रही. उसकी गीली और गर्म सांसें मर्द के गालों पर टकरायीं. इससे मर्द और भी उत्तेजित हो गया. उसका चेहरा विकराल लगने लगा. स्त्री को उसने अधिकतम शक्ति के साथ भींच डाला स्त्री. 'ओह! ओह!' करने लगी.

सहसा मर्द की बांहें कांपने लगीं. स्त्री पर कसी अपनी पकड़ को उसने ढीला होते महसूस किया.

स्त्री उसकी बांहों में से सरकती हुई, जमीन पर ढेर की तरह फैल गयी. मर्द स्वयं गिरने वाला था लेकिन उसने झट दरवाजे का सहारा ले लिया. हाथ पर सिर निढाल कर वह हांफने लगा.

थोड़ी देर बाद जब आंखों के सामने से अंधकार हटा, तो उसकी पहली नजर स्त्री पर पड़ी. वह अब भी ढेर की तरह फैली हुई थी और उसी तरह पड़ी-पड़ी अपने मर्द को तिरस्कार से ताके जा रही थी.

गहरी सांस के साथ वह तन कर खड़ा हो गया. वह स्त्री अब भी अपनी मोहिनी अदा में जमीन पर निढाल पड़ी थी. उसकी बड़ी-बड़ी भूरी आंखें मर्द को उसी वेधकता से देख रही थीं. मर्द के रोम-रोम में आग लग गयी. इतनी भुखमरी के बाद भी इस स्त्री की आंखों में जवानी के शोले भड़क रहे हैं! मर्द ने दौड़ कर स्त्री की पीठ पर जोर से लात मारी—बेशर्म! बेहया!

स्त्री वेदना से चीख उठी. जल्दी से करवट बदल कर वह झोपड़े के कोने में दुबक कर जोर-जोर से रोने लगी. मर्द के चेहरे पर संतोष की रेखाएं तिर आयीं.

झोपड़े के अंधेरे-उजियाले में लाल मिट्टी हवा बन कर उड़ रही थी. घड़ियों पर घड़ियां बीतती चलीं, मगर स्त्री के रोदन ने रुकने का नाम न लिया. बिफरा हुआ मर्द भी अभी शांत हो कर फटे टाट पर लेट नहीं गया था, तभी झोपड़े के बाहर से एक पुकार सुनायी दी—अम्मा! ओ अम्मा! रोटी का टुकड़ा दे दो, अम्मा! फकीर दुआएं देगा, अम्मा!

कोई फकीर, आंगन के सामने, भीख मांग रहा था. उसका गला बैठ चुका था. उसकी आवाज बार-बार रुक जाती. —अरे ओ अम्मा के बच्चे! मर्द ने झोपड़े के अंदर से ही गर्जना की— भरी दोपहर में चिल्ला कर कान क्यों फाड़ रहा है? चल, भाग! जा यहां से!

—छोटा-सा टुकड़ा दे दे, बच्चा! गरीबनवाज तुझे बहुत देगा.

झोपड़े में दुबकी उस स्त्री ने रोना बंद कर दिया.

—कहां से दूं? घर में हो, तो दूं या चोरी करके लाऊं और दूं? दूसरे के पसीने की रोटी खाकर पेट भरते शर्म नहीं आती? कहता हुआ मर्द दरवाजे की चौखट पर आ खड़ा हुआ.

—शर्म आती तो है, बेटा! फकीर आंगन के सहारे बैठता-बैठता बोला, लेकिन खुदाताला ने मुझे

ऐसा लाचार कर दिया है कि. . .देख! और उसने अपने चिमड़े हुए, पतले, दो हाथ उठा कर दिखा दिये. दोनों हाथों की उंगलियां आड़ी-टेढ़ी थीं और अजब ढंग से कांप रही थीं.

—लाचार हो, तो मर जाओ. दुनिया के लिए किस काम के हो?

—खुदा मौत भी तो नहीं भेज रहा.

—तो क्या तुम दूसरों का खाना लूटते फिरोगे? क्यों? चल, जा-जा. निकल जा आगे. और मर्द ने फकीर की ओर धमकीभरा हाथ उठाया.

दरवाजे पर खड़ी स्त्री की आंखें फैलने लगीं. फकीर उसे मौत के कगार पर खड़ा दिखाई दिया. अथवा. . . स्वयं फकीर ही मौत का दूसरा रूप था—जिंदा मौत. घर में अगर रोटी का एक टुकड़ा भी होता, तो फकीर को दे देती और उसकी दुआएं लेती.

—तू यों नहीं जायेगा. ठहर, हरामजादे! कह कर मर्द ने लाठी उठा ली. फकीर पर वह झपटने ही वाला था कि स्त्री ने उसका हाथ पकड़ लिया—रहने दीजिए. चिल्ला-चिल्ला कर थकेगा तो अपने-आप चला जायेगा.

—अम्मा! इन पैरों में अगर ताकत होती, तो पहले इनकार पर ही चला जाता. जब जा ही नहीं सकता, तो यहीं क्यों न मरूं?

—ऐसा? मर्द चिल्लाया, ठहर! तेरी कब्र वाकई यहीं बनेगी. और मर्द ने लाठी उठाने के लिए जोर इकट्ठा करना शुरू किया.

मर्द ने जोर से लाठी घुमाई. लाठी ने फकीर का सिर जरूर तोड़ दिया होता, लेकिन स्त्री उसी वक्त मर्द के हाथ से लिपट गयी—नहीं, नहीं; मेरी कसम.

स्त्री मर्द को झोपड़े के अंदर वापस ले जाने की कोशिश में थी. मुड़ कर उसने फकीर की ओर देखा—खुदा की खातिर . . .चले जाओ, भाई!

लेकिन फकीर टस से मस न हुआ. भूखे पशु की तरह वह उन दोनों को अपलक निहारता रहा.

—कम्बख्त! हरामजादे! मर्द बेहद गुस्से में आ गया. स्त्री के हाथ पर मुक्का मार कर उसने उसे अलग कर दिया. फिर उसकी जांघ पर इतने जोर से लात मारी कि वह झोपड़े के अंदर फिंक गयी.

—अरे! ठहरिए! सुनिए तो! स्त्री तड़प कर उठी और मर्द को रोकने के लिए दौड़ी. मगर उससे पहले ही मर्द ने फकीर की छाती पर लाठी का छोर भाले की तरह दे मारा था.

—या अल्लाह! करता वह दुर्बल, बूढ़ा फकीर आंगन की धूलभरी जमीन पर चित हो गया. उसके गिरने से धूल का एक छोटा बादल-सा उड़ा और चारों तरफ बिखरने लगा. रस्से जैसी पतली उसकी गर्दन बल खा गयी और सिर लुढ़क-सा गया.

—हे, भगवान! यह आपने क्या किया? कहती हुई स्त्री दौड़ कर फकीर की लाश तक पहुंची और झकने लगी. उसने फकीर की छाती पर हाथ रखा, मुंह हिला कर देखा. फिर, मर्द की ओर फटी आंखों से देखा—आपने इसकी जान ले ली!

स्त्री का रोदन सुन कर अगल-बगल के झोपड़ों से लोग निकलने और इधर आने लगे. क्रोध से कांपते मर्द के हाथ से लाठी गिर गयी.

लोगों को उसने अपने झोपड़े के एकदम नजदीक आ जाते देखा. उन्होंने फकीर की लाश के साथ-साथ उन दोनों को भी घेर लिया और पूछने लगे—क्या हुआ? क्या हुआ?

दो स्त्रियों ने रो रही स्त्री को हाथ पकड़ कर उठाया. मर्द ने ऊंची आवाज में अटपटे ढंग से बोलना शुरू किया—मैंने बार-बार उससे कहा कि हमारे यहां कुछ भी खाने को नहीं है, लेकिन उसने हटने का नाम न लिया. खुद हम लोग तीनों दिन से भूखे हैं. उसे क्या देते और कहां से ला कर देते?

भीड़ में से एक ने कहा—उसे मेरे यहां भेज देना था न? मैं कुछ-न-कुछ दे देता. . .लेकिन यह मर कैसे गया?

—जैसे सब मरते हैं, वैसे. और कैसे? पूछने वाले की तरफ टेढ़ी नजर से देखता हुआ मर्द बोला, पैर सूजे हुए थे. इतनी लू में चार कोस पैदल चल कर आया था. उसे भगाने के लिए मैंने जरा धक्का दिया नहीं कि बेहोश हो कर गिर गया. गिरते ही मर गया. . .मेरा क्या कसूर?

सबकी आंखें फकीर पर ठहरने लगीं. सभी आंखें गमगीन थीं. भयंकर शांति छा गयी.

फिर किसी ने भी मर्द से खास कोई पूछताछ न की. वे आपस में खुसर-पुसर करने लगे जिसमें मर्द को कोई रुचि नहीं थी. अकुलाहट और आक्रोश को दबाने की चेष्टा के साथ वह दूर-दूर देखता रहा.

पांच-छह मर्द, न जाने क्या बातें करते हुए, दूर के झोपड़ों की तरफ जाते दिखाई दिये. शेष मर्द वहीं आंगन में बैठ गये या झोपड़े की ओट में चले गये.

दूर के झोपड़ों की ओर गये मर्द जब लौटे, तो एक खाली ठठरी उठाये हुए थे. उन्हें देखते ही वहां बैठे सब व्यक्ति एक-साथ उठ पड़े. फकीर की लाश उन्होंने ठठरी में लिटा दी. कफन ओढ़ा सजने फकीर का जनाजा निकाला.

वह मर्द उनके साथ-साथ चलने लगा.

बावड़ी के बाजू में एक छोटे वृक्ष की छाया में, फकीर को दफना दिया गया. सब अपने-अपने झोपड़ों की ओर लौट आये.

मर्द भी अपने झोपड़े में वापस आया.

मर्द ने स्त्री को दरवाजे की चौखट पर खड़े देखा. देखते ही मानो आघात लगा हो, इस तरह मर्द ठिठक गया. स्त्री एकटक उसे देख रही थी. उसका दिल एकदम बैठ जाने लगा. स्त्री की बगल से गुजरता हुआ वह झोपड़े में घुसा. भीतर अंधेरा था. स्त्री भी तुरंत उसके पीछे-पीछे झोपड़े के अंधेरे में आ गयी.

रात जब काफी बीत गयी, तो घनघोर अंधकार को चीरता हुआ एक रोदन झोपड़े से बाहर फूटने और वायु के झोंको पर सवार होकर उड़ने लगा. दीवानों की तरह भाग रहे झोंके टेकरी के पहलू से टकराये. रोदन का वह स्वर टेकरी की ढलान पर बिखर गया.

(अनुवाद : मनहर चौहान)

लाल आंखें! लाल रत्तियां लाल गेरू!

बकुलेश

लाल आंखें : लाल रत्तियां : लाल दहकते अंगारे; लाल गेरू! . . .

. . .और शिवलाल सोनी की आंखें एकदम लाल हो गयीं. सुड़सुड़ाती हुई नाक पर टूटी कमानी का पुराना चश्मा अधिक नीचे खिसक आया था. कांच में से झांकती उसकी दृष्टि, अपने सामने पड़े हुए छोटे-से तराजू के एक पलड़े में पड़ी हुई लाल रत्ती, लाल पाई, छह रुपया, छह तोला और दूसरे पलड़े में पड़ी हुई कंगन की जोड़ी को लगातार जोख रही थी. क्रोध से उसकी आंखें लाल हो रही थीं. अपनी विचित्र शैली में उसने दांत किटकिटाये और मुंह के भीतर स्वर्ण-जड़ित दांत पर हलके से जीभ फिरायी.

सामने छोटे-से चूल्हे में अंगारे दहक रहे थे—लाल. निकट ही तांबे के एक कटोरे में लाल गेरू रखा था. एक छोटी-सी पीतल की कटोरी में लाल रत्तियां पड़ी थीं जो एक-आध वाल सोना वजन करने के काम आती थीं.

शिवलाल सोनी ने पुनः क्रोध से दांत किटकिटाये. फिर छोटे-से तराजू में से कंगन की जोड़ी हाथ में ले कर स्वयं से बुदबुदा उठा—ह्! . . .साढ़े छह तोला, तीन वाल, सात रत्ती! उसने गरदन घुमायी तथा दाहिने हाथ से अपना सिर सहलाया और फिर बड़बड़ाने लगा—साला! . . .मेरे जैसे गिरहकट को भी यह दीप चंद्र उल्लू बना गया! . . .ठीक है! बच्चू को कुछ सबक सिखाना ही पड़ेगा.

मन-ही-मन लाल-पीला होता हुआ शिवलाल चूल्हे में सुलगते हुए अंगारों को स्थिर दृष्टि से घूरने लगा.

. . .लाल आंखें : लाल रत्ती : लाल अंगारे : लाल गेरू!

* *

शिवलाल सोनी ने जमाना देखा था. जिंदगी के उतार-चढ़ाव, कड़वे-मीठे अनुभवों से वह गुजर चुका था. अपनी जवानी उसने धन कमाने में तथा रुपये जोड़ने में गुजार दी थी, किंतु यौवन की रसिकता अब भी कभी-कभी कसमसा उठती थी, जिसे उसने धन-संचय की प्रवृत्ति से वनवास दे दिया था. . .! एक-आध बार उसने दो-चार कन्या वालों के संबंध स्वीकार कर लेने का भी निश्चय किया था. ऐसे समय अकसर गुलाब सेठानी के यहां शादी का प्रसंग आ उपस्थित होता था. और वह फिर से रात-दिन सुलगते हुए अंगारों के समक्ष नाजुक हथौड़ी के साथ चांदी-सोने के सुंदर, मोहक गहने गढ़ने में जुट जाता. चूल्हे में फूंकनी फूंक-फूंक कर धन कमाने के चक्कर में उसने अपना सुनहरा समय फूंक दिया था. कन्या पक्ष वाले लड़की की बढ़ती हुई उम्र के तकाजे के कारण प्रतीक्षा न कर सके तथा दूसरी जगह ब्याह कर उऋण हुए. शिवलाल के यहां जब भी गृह-लक्ष्मी के आने का संयोग जुड़ा, वह हमेशा धन-लक्ष्मी के पीछे भागा और उसी में बुरी तरह उलझ कर रह गया.

. . .किंतु एक दिन चूल्हे के अंगारे दहकाते हुए बांस की फूंकनी उसके होठों के बीच दबी ही रह गयी, जब गांव की वह सुंदर वाघरण अपना गोटेदार लहंगा झमकाती हुई उसकी गद्दी पर चढ़ बैठी.

वाघरण जात और मुई गद्दी पर बेहिचक चढ़ बैठी—शिवलाल के मन में करक गया. किंतु वह इस कमसिन के मिजाज से अच्छी तरह परिचित था. उसने बायीं आंख से, गुलाबी किमखाब में यत्न से छुपाये गये गदराये यौवन को ठंडी दृष्टि से देख कर एक भारी निश्वास छोड़ा. साली की जवानी क्या है! . . .फटी पड़ रही है!

शब्द अगर सुंदरी के कानों तक पहुंच जाते तो शिवलाल की मजाल थी जो वह चैन से अपनी गद्दी पर बैठ सकता. हरी मिर्च की तरह तीखे मिजाज वाली

बकुलेश : इनका पूरा नाम रामजी अर्जुन बकुलेश है. इनका जन्म कांडगरा (कच्छ) में ११ अगस्त, १९१० को हुआ और ६ नवंबर, १९५७ को इनकी आकस्मिक मृत्यु हो गयी. इनके छह कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं. बकुलेश फिल्म-जगत में प्रचार और प्रसार-क्षेत्र से संबद्ध रहे हैं. यह प्रतिभाशाली पत्रकार भी थे. इनकी कहानियां पिछड़े तथा दलित वर्ग के मानवीय पक्ष के प्रति विशेष संवेदनशील हैं.

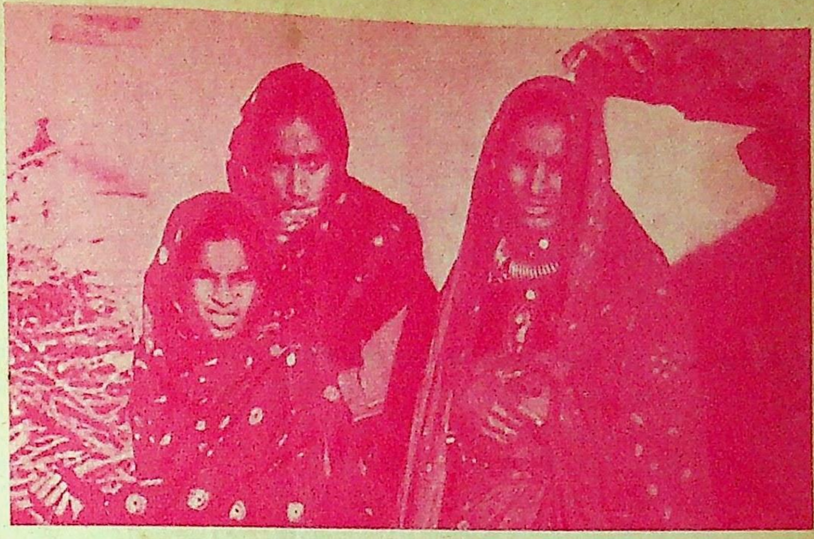

तुनकैल, गांव की सारी वाघरणों में मजाल थी कि कोई इस जवान सुंदरी से छेड़-छाड़ तो कर ले!

बायें हाथ से फूंकनी को होठों से अलग करते हुए टूटी कमानी वाले चश्मे में से उसने सुंदरी को देखते हुए प्रश्न किया—क्या हुकुम है, छोरी?

और उस सुंदर छोरी ने जरा नखरे से मटक कर कहा—शिवलाल काका. . .

—किंतु. . .किंतु . . .! बात की नस पकड़ कर जरा शोखी से मुसकराते हुए शिवलाल बोला—किंतु . . . पगली, मैं तुम्हारा काका किस रिश्ते से हुआ?. . .यह तो बता!

छोरी खिलखिला कर हंस पड़ी. उसने बड़ी आत्मीयता से अपना एक हाथ मैली गद्दी पर बैठे हुए शिवलाल की मैली धोती में से झांकती बालों भरी जांघ पर रख दिया.

—क्या बताऊं, शिवा काका. . .एक ऐसी बात है जो बड़ी परेशानी की है.

—क्या बात है?. . . हड़बड़ाते हुए उसने पूछा.

—कहूं कि न कहूं? सुंदरी छोटी आंखें नचाते हुए बोली.

शिवलाल मन-ही-मन समझ गया कि छोरी के दिल में कोई ऐसी बात है जिसके लिए वह उसका उपयोग करने के एवज में इतना स्वांग कर रही है.

—शिवा काका . . .गुलाब सेठानी की बहू के गहने तो आपके यहां से ही. . .आपकी ही कारीगरी, सुंदर मीनाकारी से सजे . . .सच है न? . . .रंभा बहन के पास मैंने देखे हैं. . . किंतु वर राजा . . .गुलाब सेठानी का जमाई . . .

—अपने भूपत सेठ का लड़का . . जो अफ्रीका जा कर काफी कमा कर लौटा है. . .अरे जैसिंग!

—हां! जैसिंग भाई! वही जैसिंग भाई, आग लगे उसकी कमाई में! उसीं ने एक दिन मुझे छेड़ा. मैं तो भाग निकली और उसे ऐसी टांग मारी कि मुंह के बल जमीन चाटता नजर आया. . . बेचारे के दांतों से खून निकलने लगा! यह जैसिंग बिल्कुल अच्छा आदमी नहीं है, शिवा काका. . .!

—किंतु इन सब बातों से मुझे क्या?

—शिवा काका!. . .क्या कहूं? . . .आप जैसे भले-मानसों के आसरे ही तो हम लोग पल रहे हैं. बाकी उस हजार हाथ वाले की दया है! . . .छोरी ने रुआंसा-सा मुंह बना कर कहा.

—अरे, तुझे जो कहना हो वह कह ना!

—क्या कहूं? वह मेरा . . .मेरा. . .मैंने उसका घर बसाने का निश्चय . . .

—किंतु किसके साथ?

—आपको पता नहीं? वह मेघू!. . .मेघजी! कितना गबरा जवान है, क्या धोती पहनता है. . .क्या साफा बांधता है, बिल्कुल कन्हैया जैसा बांका लगता है!. . .मेघ जी की मां ने कहा, मेरा बेटा तुझे सिर आंखों पर रखेगा, उसका घर बसायेगी तो सोने से लद जायेगी.

—तो इसमें किसी को क्या परेशानी है?

—भाई साब!. . .मेरे बाप! परेशानी है तो नकद-नारायण की!

—यह बात है!

—हां, मेरे बाप! सुंदरी छोरी ने. हलके से अपना हाथ शिवलाल की जांघ पर फिराया. फिर वह अजब नशीली हंसी हंसने लगी.

छोरी की नशीली काजल-भरी पुतलियां शरारत से चमक रही थीं. उसका हाथ शिवलाल की जांघ पर हलके-हलके घूम रहा था.

—कितना चाहिए?

—अढ़ाई सौ . . . आप अपना ब्याज ले लीजिएगा. . .
उसने पुनः एक मादक अंगड़ाई लेते हुए शिवलाल पर एक उड़ती नजर डाली और उसे पानी-पानी कर दिया.

तब अपने टूटे चश्मे में से उस पर भ्रष्टता भरी दृष्टि फेंकते हुए शिवलाल ने कहा—ब्याज! . . .हां, अरे, वह सब रहने दे, पीछे देख लेंगे. . .लुच्चाई से वह बांकी हंसी हंसा—आज रात को आना. अभी नहीं. खाना-वाना खाने के बाद, शांति से निकाल कर दूंगा. . . परंतु मेघ जी की सही जरूर चाहिए. . .किंतु रात में तो तू अकेली ही आना. . .

★ ★

इस घटना को बीते हुए एक महीना निकल गया, दूसरा बीत गया. और एक दिन सांझ को जब उसकी दुकान के सामने से गुलाब सेठानी की गाड़ी निकल गयी तो बरबस उसके मुंह से निकल पड़ा —साली छोरी. . . मुझे हथेली में चांद दिखा कर उल्लू बना गयी, रांड!

यह बात उसे जब भी याद आती, वह आग-बबूला हो उठता. सुंदरी और मेघजी तो गांव छोड़ कर ऐसे भागे, दुबारा दिखायी ही नहीं पड़े. उसकी मां भी पता नहीं कहां गायब हो गयी. अपने हृदय के जख्म वह दिखाये भी तो किसे? और दिखाये भी तो उसकी गिनती मूर्खों में होगी तथा दूसरे भी उसे मूर्ख बनाने से नहीं चूकेंगे. शिकायत कैसे करे?. . .कोई सबूत भी तो नहीं है! साली हाथ झटक कर रुपये की थैली छीन कर भाग गयी . और फिर रात के समय वह अगर उसके पीछे भागता भी तो सारे लोग क्या कहते. . .?

ऐसे अनुभवों से शिवलाल ने बहुत कुछ सीखा था. . .परंतु. . .उसकी दृष्टि पुनः सामने पड़ी हुई कंगन की जोड़ी पर चली गयी! दांत किटकिटा कर वह पुनः बड़बड़ाया —साला. . .दीपचंद भी अंधेरे में बना गया.

सच पूछा जाये तो लोग कहते हैं, सुनार को कौन पकड़ सकता है, वह तो अपने बाप का भी नहीं होता. और इस मान्यता का कायल शिवलाल भी था. फिर भी दीपचंद नकली कंगन गिरवी रख कर उससे रुपये ऐंठ ले गया था. वह समझ गया, आजकल जमाना बहुत बुरा चल रहा है. उसके जैसे भले मानस की कौन सुनेगा भला?. . .

वैसे तो इसी दीपचंद ने उसकी एक बार काफी मदद की थी. गांव का कल्लू अपनी उतरती हुई उम्र में नयी बहू ब्याह कर लाया था. उसी के लिए उसने शिवलाल से नये गहने गढ़वाये थे और विनीत स्वर में कहा था—यह शादी का टैम निकाल दो, मेरे बाप, अभी हाथ जरा तंग है—बाद में सब चुकता कर दूंगा. और वह भी जो भागा, दुबारा अपना चेहरा मुड़ कर नहीं दिखाया.

वह तो दीपचंद ही था जिसने पूरे अढ़ाई साल बाद कल्लू से तीस रुपये वसूल करके उसकी हथेली पर रख दिये थे. तब शिवलाल ने आत्मीयता से उसके कंधे थपथपाते हुए विभोर स्वर में कहा था—दीपचंद! तुम धन्य हो.

उस दिन से दीपचंद पर शिवलाल का काफी विश्वास हो गया था और जिस दिन दीपचंद कंगन की जोड़ी ले कर उसके पास रुपये लेने आया था, उस दिन उसने देखा, उसकी दुकान से दूर एक गली में सांझ के अंधेरे में घूंघट काढ़े एक स्त्री खड़ी है. वह उसकी जवान गदराई पीठ भर देख सका था. और दीपचंद ने मूंछों में ही हंसते हुए कहा था—शिवलाल काका. . .अब तो एक सुंदर-सी काकी घर में ले आओ और हम लोगों का भी मुंह मीठा करो. . .

शिवलाल यह सुन कर मन-ही-मन प्रफुल्लित हो उठा था. दीपचंद ने भांप लिया था कि औरत शिवलाल की कमजोरी है. बरसों पहले उसने अपनी जिस इच्छा और वासना को आग के समक्ष रुपये कमाने के चक्कर में फूंक दिया था, आज वह दयनीय रूप में उसके चेहरे से टपकी पड़ रही थी.

—कोई योग्य कन्या हो तो बताना.

शिवलाल की यह बात सुन कर दीपचंद ने तुक्का मारा—आपके लिए लड़की खोजना तो मेरे बायें हाथ का खेल है. बस देखते जाओ, इसी महीने न आपका ताल-मेल बैठा दूं तो मेरा नाम दीपचंद नहीं! कहते हुए वह कुटिल हंसी हंस दिया.

शिवलाल गद्गद् हो उठा. उसने झट से रुपये गिन कर दीपचंद के हाथ में थमा दिये.—राम-राम काका! कहता हुआ दीपचंद झपाटे से बाहर निकल गया.

★ ★

लाल आंखें! . . .लाल रत्ती ! . . .लाल अंगारे! . . . लाल गेरू! . . .

शिवलाल सोनी माथे पर हाथ दिये बैठा था. सहसा गली में कुत्ते जोर-जोर से भूंकने लगे. सांझ के झुटपुटे में आदमियों का एक टोला उसकी दुकान की ओर आता दिखायी पड़ा. धूल उड़ रही थी. और कुत्ते भूंक रहे थे. कौतुहल-भरे लोग शोर मचाते हुए साथ चल रहे थे और आगे - आगे था एक पुलिसमैन. पुलिसमैन उसकी दुकान पर आ कर ठहर गया. उसने जोर से हुंकार भर कर, डंडा जमीन पर पटक कर, इकट्ठा हुए लोगों को बिखेर दिया. और फिर अक्खड़ दादागीरी के साथ दुकान पर चढ़ आया. और पुलिसाना लहजे में कड़क कर बोला—शिवलाल काका, चौकी चलिए. आपको फौजदार साहब ने बुलाया है.

—पर बात क्या है? शिवलाल के भय से थरथराते हुए होंठों से शब्द निकले.

—वहीं चल कर पता चल जायेगा.

शिवलाल ने नाक पर उतर आये अपने चश्मे को जब दाहिने हाथ से ऊपर चढ़ाया, तब उसका हाथ बुरी तरह थरथरा रहा था. किसी प्रकार उसने अपनी धोती की लांग ठीक की तथा खूंटी पर लटकता हुआ अपना कुर्ता उतार कर पहना. चीकट-सी टोपी किसी प्रकार उसने सिर पर पहनी तथा चप्पलें उसे काफी प्रयत्न के पश्चात दिखायी पड़ीं. दुकान में ताला लगाया तथा सुरक्षा के लिए उसे पुनः खींच कर देख लिया.

चौकी पर पहुंच कर उसे सारे मामले की जानकारी हुई. गुलाब सेठानी के एकलौते नव परि-

नीत पुत्र शामण शाह का ब्याह हुए अभी एक महीना भी पूरा नहीं हुआ था कि उसका खून हो जाने की खबर मिली और इसी सिलसिले में शिवलाल को यहां पकड़ बुलाया गया था. लेकिन इस खून के साथ उसका क्या संबंध हो सकता है?

फौजदार ने शिवलाल की आंखों में पढ़ने वाली दृष्टि से घूरते हुए सख्त आवाज में कहा—देखो शिवलाल! . . .इस खून के विषय में तुम्हें जो कुछ भी पता हो, सब सच्ची-सच्ची बता दो. . .नहीं तो तुम्हारा हाल बहुत बुरा होगा, यह जान लो.

—परंतु, माई-बाप, मुझे तो कुछ भी पता नहीं.

—क्या पता नहीं?

—नहीं, माई-बाप! मैंने तो उनके ब्याह के सारे गहने खुद गुलाब सेठानी की उपस्थिति में गढ़े थे. वह स्वयं सब हिसाब-किताब करके ले गयी थीं. मैंने ब्याह का टीका भी स्वयं ही बनाया था. . .राम, राम! राम, राम! . . .भगवान का नाम भजो, क्या जमाना आ गया है!

—तुम उस सुंदरी वाघरण को तो पहचानते हो न?

—हैं? कौन?

—वही सुंदरी . . .फौजदार साहब की आवाज पुनः सख्त हो गयी.

—हां माई-बाप. . .वह तो मेरी दुकान से ब्याज पर रुपये उधार ले गयी है! रांड. . .जिस दिन से ले गयी है, पीछे मुड़ कर चेहरा नहीं दिखाया है उसने.

—ऐसा क्या?

—हां, माई-बाप!

—कब?

—लगभग महीना-डेढ़ महीना हुआ होगा. मेरे खाते में सब लिखा है. . .

—किसके साथ भाग कर गयी, पता है तुम्हें? कड़कती आवाज में दूसरा प्रश्न गोली की तरह शिवलाल के कान में पड़ा.

—हां, माई-बाप. . .वह मेघजी के साथ भाग गयी है, ऐसा मैंने सुना है.

—नहीं! . . .मेघजी तो पकड़ लिया गया है. वह तो कह रहा है कि मुझे सुंदरी का मुंह देखे हुए महीना हो गया है.

—अरे!

—हां!

—तब सुंदरी किसके साथ भागी थी? शिवलाल अवाक रह गया.

—दीपचंद को पहचानते हो तुम?

—हां, माई-बाप! उसे तो सारा गांव पहचानता है, पर है पक्का घाघ.

—क्यों? क्या तुम्हारे साथ कुछ किया है?

इस प्रश्न से शिवलाल का माथा झनझना उठा. वह थोड़ा अनमना-सा हो उठा. फौजदार तुरंत भांप गया कि दाल में कुछ काला है.

फौजदार ने पुनः कड़कती आवाज में उससे प्रश्न किया—मेरे सवाल का जवाब क्यों नहीं दे रहे हो?

—हां, साहब, माई-बाप! क्या कहूं? कुछ. . .

शिवलाल सोच रहा था, अगर वह दीपचंद के विषय में कोई ऐसी-वैसी बात कहेगा तो दीपचंद पता चल जाने पर उसे साबुत नहीं छोड़ेगा! . . .किंतु फौजदार की उमेठी हुई मूंछ तथा लाल दहकती हुई आंखें उसके चेहरे पर सब जान लेने के लिए टिकी हुई थीं.

—माई-बाप! . . .वह कांपती आवाज में बोला. दीपचंद तो है ही खुर्राट, मुझे नकली कंगन थमा कर उनके एवज में सौ रुपये ऐंठ ले गया.

—कहां हैं वे कंगन?

—दुकान में रखे हैं, माई बाप!

—ले आओ, देखूं तो!

फिर से शिवलाल ने अपनी धोती की कांध संभाली, चश्मा ठीक किया, सिर की चुटिया को टोपी के भीतर किया और पुलिसमैन के साथ दुकान पर गया. थोड़ी ही देर में वह कंगन समेत फौजदार के समक्ष था. फौजदार ने कंगन उसके हाथ से ले लिये तथा उसे वहीं बैठा कर वह पास की एक अंधेरी कोठरी में गया.

फौजदार ने लालटेन के उजास में कोठरी के कोने में बैठी हुई एक स्त्री को आवाज दी.—सुन री.

—हां, माई-बाप!

—देख सुंदरी, सब सच-सच बता दे, ये कंगन तुझे किसने गढ़ कर दिये थे?

—साब. . .सुंदरी ने लालटेन के प्रकाश में फौजदार की उंगलियों में लटके हुए कंगन की जोड़ी को देखा. फिर बोली—साब. . .गुलाब सेठानी के बेटे शामण शाह ने यह कंगन की जोड़ी मुझे दी थी. . . .पीछे तो आप सब जानते ही हैं, साब!

—कब?

—शादी से पहले, बाप जी!

—फिर?

—मैंने ये कंगन दीपचंद को दे दिये थे. उस भले मानस ने मुझसे कहा, सुंदरी, ये कंगन तो नकली हैं, गिलट के!

—तुमने ये कंगन शामण शाह के पास से किस कारण लिये?

—साब, मैंने उसे बहुत ना कही. बाद में मुझे भरमाने के लिए उसने यह पैंतरा रचा!

—एकदम सही?

—हां, साब.

—किंतु शामण शाह के कत्ल के विषय में जब तक तू सच्ची बात नहीं बतायेगी, मैं तुझे हरगिज नहीं छोड़ूंगा. . .बोल साली!

—मेघजी तो बिलकुल निर्दोष है, माई-बाप, उसे कुछ मत कहिएगा. . .

—किंतु मेघजी है कहां?

—मुझे भी पता नहीं. मैं क्या करूं? कह कर सुंदरी रो पड़ी.

फौजदार ने उसे कस कर एक लात मारी—रांड मक्कारी करती है!

सुंदरी जोर से रोने लगी. कचहरी के बरामदे में

बैठे हुए शिवलाल ने उसकी आवाज सुनी तथा सब मामला समझ गया.

उस रात पुलिस-चौकी में काफी सरगर्मी रही. आधी रात को शिवलाल को जाने की छूट मिली. वह राम का नाम जपते-जपते घर की ओर चल दिया.

* *

एक महीने का समय बस ऐसे ही निकल गया. काफी बीती रात खिड़की-दरवाजे बंद करके शिवलाल अपने बही-खाते खोले हुए अपना भाग्य नाप-तौल रहा था. पास ही रखा हुआ दिया जल रहा था तथा आरे पर टिमटिमाती लालटेन भी मद्धिम रोशनी में जल रही थी.

उघड़ी छाती, मैली धोती में सुसज्जित शिवलाल सारी दुनिया से बेखबर अपने बही-खाते के आंकड़ों में मग्न हो गया लगता था.

बाहर शांति थी. हवा के ठंडे झोंके वातावरण में हलकी-सी सिहरन भर रहे थे. अंधियारी घुप रात में सारा गांव निद्रा-मग्न पड़ा था. उसी समय अंधेरे में छुपी हुई शिवलाल की दुकान की कुंडी किसी ने खड़खड़ायी. शिवलाल भय से चौंक उठा. उसने धीरे से बरामदे की ओर मुंह करके आवाज की—कौन है, भाई? यह भी कोई आने का समय है?

—खोलो . . .शिव काका! यह तो मैं हूं. . .मैं. . .

शिवलाल ने आवाज पहचान ली. उसके मुंह से बरबस निकल पड़ा—दीपचंद!

—हां, मैं.

शिवलाल ने हलके से थोड़ा किवाड़ खोला. इतने में दीपचंद ने बलपूर्वक धक्का दे कर पूरा दरवाजा खोल दिया. बेचारा शिवलाल नीचे गिरते-गिरते बचा.

दीपचंद का श्वास धौंकनी की तरह चल रहा था. उसने आते ही बरामदे का दरवाजा बंद कर दिया, फिर अपनी नाक पर उंगली रख कर आश्वासन भरे स्वर में बोला—घबराने की आवश्यकता नहीं है.

—किंतु इस समय?. . .आधी रात को. . .?

दीपचंद का शरीर इतनी सर्दी में भी पसीने से तर था और शिवलाल कंपकपा रहा था.

—बोलो, क्या है?

—मेरी अमानत वापस दो. यह लो अपना रुपया! नकद!. . .गिन लो.

शिवलाल घबड़ा गया. कंगन की जोड़ी तो उसने फौजदार के हवाले कर दी थी. अब क्या करे? दीपचंद कभी आ कर रुपये वापस करेगा, यह आशा भी उसे नहीं थी. उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि अब करे तो क्या करे.

—जरा शांत हो. यहां बैठो!

—बैठने का वक्त कहां है? दीपचंद ने हांफते हुए स्वर में कहा. लाओ मेरे कंगन की जोड़ी!

—परंतु. . .

—परंतु क्या?

—वह तो . . .वह कंगन की जोड़ी तो. . .भाई साहब . . .फौजदार साहब ले गये. शिवलाल ने हिम्मत करके धीरे-धीरे उगल दिया.

—. . .अब! इस नये प्रश्न ने दीपचंद को उलझन में डाल दिया था.

—लो, शिवलाल! मैं तुम्हारा रुपया रखूं, ऐसा नहीं हूं. वह कंगन की जोड़ी बनावटी है, यह भी मैं जानता था. मैंने तुम्हें उल्लू बनाया, यह भी मैं जानता हूं. . .और तुमने कंगन फौजदार के सुपुर्द कर दिये, इसकी भी मुझे जानकारी है. किंतु दीपचंद मर्द है. हां! . . .लो, गिन लो अपना रुपया.

और . . .लोभी के आगे मनपसंद वस्तु फेंकी जाये, भूखे के आगे अन्न, तो वह तुरंत लपक कर ले लेगा, उसी तरह शिवलाल ने रुपया ले लिया — जैसे-तैसे गिन कर उसने रुपये तिजोरी में रख दिये.

—लेकिन शामण शाह का खून किसने किया? शिवलाल ने प्रश्न किया.

—उससे तुम्हें क्या मतलब है?

—परंतु पुलिस जब मुझे परेशान करती है, तब मैं क्या करूं?

—सुन लो. . .शिवलाल. . .इन गुलाब सेठानी का रंग-ढंग अच्छा नहीं है. उनके सुपुत्र शामण शाह के रंग ढंग भी ठीक नहीं थे. सुंदरी को रात में फंसाने के लिए उसने इन बनावटी गिलट वाले कंगन का उपयोग किया था. उस रात उसकी बहू बेचारी उसकी बाट जोह रही थी और गुलाब सेठानी का सुपुत्र एक वाघरण के रूप पर लट्टू हो गया था. बेचारी बहू!. . .परंतु वाघरण का रूप क्या रास्ते का ठीकरा है. . .! रुपयों से किसी का रूप और इज्जत नहीं खरीदी जा सकती.

दीपचंद लगातार बोले जा रहा था और शिवलाल कंपकंपा रहा था. दीपचंद बोलते-बोलते धीरे-धीरे शिवलाल की ओर बढ़ रहा था. शिवलाल धीरे-धीरे पीछे हट रहा था. जहां दीपचंद ने बोलना बंद किया, उसके दोनों हाथ शिवलाल की तरफ बढ़ने की तैयारी कर रहे थे, उसी समय शिवलाल अपनी गद्दी पर धसक पड़ा.

पास ही पड़ी थीं—लाल रत्तियां, लाल गेरू का कटोरा . . .दिये में अरंडी के तेल से सुलगती हुई लाल लौ और दीपचंद की खूंखार लाल आंखें. . .

दूकान के बाहर ठंडी हवा के सिसकारते झोंके थे और यहां भयंकर शांति में शिवलाल कांप रहा था. दीपचंद की आंखें अंगारे बन रही थीं.

—परंतु, मेरे बाप! भाई साहब. . .मुझे क्यों. . . किसलिए. . .हैरान कर रहे हो? . . .मैं तो गरीब आदमी हूं. . . .और वह सुंदरी भी मुझसे ब्याज पर रुपये ले गयी है. उसका क्या?

—रुपये चाहिए न! दीपचंद की आंखों के डोरे और लाल हो उठे. शिवलाल पत्ते के समान थरथरा रहा था. उसकी बोलती बंद हो गयी.

थोड़े पल ऐसे ही व्यतीत हो गये. अचानक रात की नीरव शांति में पांच-छह आदमियों की इसी ओर बढ़ती पदचाप सुनायी पड़ी. दीपचंद जड़वत् हो गया. उसने

खिड़की की तरफ नजर डाली. पास पड़ा हुआ डंडा उठा कर खिड़की पर मारा. उसके पल्ले चरमरा कर खुल गये. परंतु वहां तो सरिये लगे थे.

शिवलाल की दुकान का दरवाजा बाहर से पड़े जोरदार धक्के से सहसा खुल गया. पांच हथियारबंद पुलिस मैनों तथा फौजदार ने दीपचंद को चारों तरफ से घेर लिया.

—तू ही खूनी है. गुलाब सेठानी से हमें सारी बातों का पता चल गया है! फौजदार ने कड़कती आवाज में कहा.

—हां! मैं ही खूनी हूं, यह सच बात है. किंतु मैंने शामण शाह का खून सुंदरी को उसके बलात्कार से बचाने के लिए किया था. मैं अगर ऐसा न करता तो गुलाब सेठानी ने स्वयं वही किया होता, क्योंकि गुलाब सेठानी सारे गहने-कपड़े-लत्ते के साथ मेरे साथ भागने को तैयार थी, किंतु मैंने ऐसे लालच को ठोकर मार दी, और गुलाब सेठानी को ही फटकारा!... दीपचंद ने एक भयानक चीख मारी.—बेचारी सुंदरी को क्यों ठूंस रखा है?...सुंदरी निर्दोष है. उसे छोड़ दीजिए.

—तुम्हारे हुक्म से उसे नहीं छोड़ा जायेगा... समझे? चलो अब चौकी! फौजदार कड़का.

—परंतु फौजदार साहब...तो लो यह प्रमाण!... मेरे नाम गुलाब सेठानी की लिखी हुई चिट्ठियां!.. इनमें जो कुछ भी लिखा है, उसे पढ़ कर तो आपको मुझे इनाम देना चाहिए.

दीपचंद ने अपनी जेब से कागज का एक बंडल निकाल कर फौजदार के समक्ष फेंका.

फौजदार का चेहरा ताज्जुब से भर गया. गुलाब सेठानी के लिए सारे ग्रामवासियों के मन में पूज्य भाव था, आदर था. और वही सेठानी ऐसी?...

फौजदार दीपचंद की चौड़ी छाती, कसरती बदन तथा प्रतिभाभरा विशाल मन देख कर मन-ही-मन उसकी तारीफ से भर उठा.

—एक दूसरी बात सुन लीजिए. सामान्य स्वर में दीपचंद बोला—देखिए...कंगन की जोड़ी की बात तो यह शिवलाल आपको सब बता देगा...अपनी गिरफ्तारी से पहले मैं आपको एक बात और बता देना चाहता हूं...आपकी गुलाब सेठानी ने अफीम खा ली है! मैं यहां आने के पूर्व उससे मिल कर आ रहा हूं.

फौजदार दीपचंद द्वारा एक के बाद एक रहस्योद्घाटन से चमत्कृत हो उठा. अब सारा मामला उसकी समझ में आ गया था.

बाहर वही ठंडी बयार के सिरहन भरे झोंके थे. भीतर शिवलाल अब तक कांप रहा था. और फौजदार की पेशानी पर पसीने की बूंदें उभर आयी थीं.

—चलिए अब! दीपचंद ने धीरे से कहा.

दीपचंद की लाल आंखें, लाल रत्तियां...दिये की लाल लौ... □□□

(अनुवाद : चित्रा मुद्गल)

कच्छ की तीन दंतकथाएं

नानी कहा करती थीं

एक

कच्छ के जाडेजा ठाकोर लड़की की शादी के दहेज में सारी चीजों के साथ-साथ जहर की एक पुड़िया भी दे देते थे. और मां लड़की को अंतिम बार गले लगाते हुए, विदा के समय सीख देती थी कि जब भी जीवन दूभर हो जाये, वह उस जहर का उपयोग कर ले. और लड़की हमेशा के लिए विदा कर दी जाती. एक बार ससुराल की राह पकड़ने के बाद-फिर कभी लौट कर नैहर की देहरी पर वह पैर नहीं रख सकती थी. बारात के विदा होने के बाद माता-पिता लड़की के नाम का "छेणां" (गोबरी) जला लेते.

दो

हमारे ननिहाल लठेडी में नयी फसल के आने के बाद "ठाक-डेरे" (कृष्ण-मन्दिर) में किसी एक दिन गांव के हरिजन बैठ कर "ठाकर-थारी" (भजन-कीर्तन) करते. वहां से वे गांव के मुखिया के घर "ठाकर-थारी" करते, जिसके बदले में मुखिया की ओर से आठ-दस सेर खजूर उन्हें मिलती और उनके द्वारा सारे गांव में वह खजूर बांटी जाती और इस प्रकार ठाकर-थारी का समापन होता.

तीन

बरसात का रुख जानने के लिए जेठ सुदी एकादसी को समुद्र के किनारे 'दरिया पीर' का मेला भरता. जिसमें गांव के अन्य लोगों के साथ गांव का मुखिया भी सम्मिलित होता. मुखिया की ओर से वहीं समुद्र के किनारे पर मिट्टी की 'तोलड़ी' (हांडी) में 'लप्पई' (लापसी) बनायी जाती. समुद्र की लहरें यदि तोलड़ी को भिगोकर लौट जातीं तो आनंद की लहर दौड़ जाती, क्योंकि लोगों के विश्वास के अनुसार यह बरसात के आने का संकेत था. उसके बाद वह 'लप्पई' सब लोगों के बीच प्रसाद रूप में बांटी जाती. पर यदि लहरें 'तोलड़ी' को अपने साथ ले जातीं तो अगले वर्ष की चिंता लिये, उदास मन, लोग घर लौट जाते. □

(प्रस्तुतीकरण : माधुरी शाह)

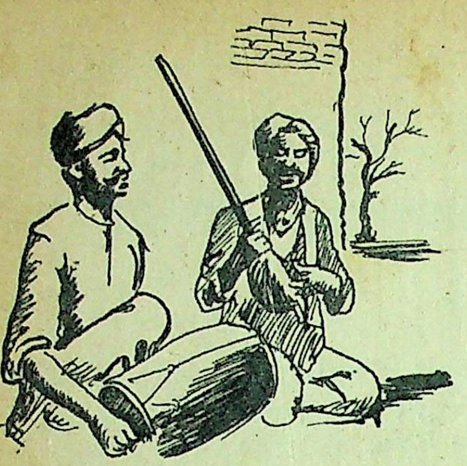

कच्छ की दो लोककथाएं

शिकारी या पुजारी

• मूलराज रूपारेल

घूमते-घूमते लाखा फुलाणी जब 'बै' गांव पहुंचा तो उसने देखा कुएं पर एक सुंदरी पानी भर रही है . प्रथम दृष्टि में ही वह उस सुंदरी पर मुग्ध हो उठा. किसी शिल्पी ने जैसे धवल संगमरमर को गठीले सुघड़ अंगों में ढाल दिया हो. . .

—बाबा, यह तो एक साधारण ठेठड़ी है. . . डरते-डरते एक साथी ने लाखा से कहा. ये साथी लाखा के अंगरक्षक थे. मन के भी सच्चे सरल कच्छ तथा कच्छ के बाहर भी जिसकी कीर्ति ध्वजा फहरा रही थी, लोक-कवि जिसकी शूरता तथा महानता में पद-रचनाएं करते थे, ऐसे महाप्रतापी लाखा की दृष्टि एक सामान्य 'ठेठड़ी' पर अटक कर रह गयी. उसके साथी उसके इस आचरण पर चिंतातुर हो उठे.

अचानक उस औरत का ध्यान इन लोगों की ओर गया. लाखा पर दृष्टि पड़ते ही वह उसे पहचान गयी. तथा मीठी हंसी हंस पड़ी. उसके मोती से दांत मोगरे के फूल की तरह खिल पड़े. शंकित दृष्टि से उस औरत को देख रहे लाखा के साथियों को उसका इस तरह हंसना बिल्कुल न भाया, किंतु लाखा तो निहाल हो उठा. वह धीरे से उसके समीप पहुंचा और बोला—मुझे पहचानती हो ?. . .मैं लाखा फुलाणी हूं. . .आज रात हमने इसी गांव में डेरा डालने का निश्चय किया है. . .

—जरूर-जरूर, अभी मैं गांव जा कर आपके विषय म बताती हूं तथा आप लोगों के ठहरने की व्यवस्था करवाती हूं. वह अपना आंचल सिर पर डाल, यह कह कर गांव में चली गयी.

—बाबा, यह तो निपट उजाड़ गांव दिखता है, खास बस्ती भी नहीं दिखती, अभी ज्यादा दर भी नहीं हुई है, हम लोग किसी और गांव के समीप डेरा डाल सकते हैं.

लाखा उत्तर में हंस पड़ा—उजाड़ या ज्यादा बस्ती न होने से हमें क्या फर्क पड़ता है. यह लोग तो हमारी 'सीमा' में आते हैं. कभी -कभी इनके बीच भी रहना चाहिए. . . और फिर रात में कौन हमें सोना है जो ताम - झाम की चिंता करें !

यह सुन कर उसके साथी तो घबड़ा गये. आखिर लाखा का मतलब क्या है?

लेकिन उन लोगों ने जो सोचा था, वैसा कुछ नहीं हुआ. लाखा ने रात को सारे गांव वालों को 'भजन' के लिए आमंत्रित किया. पूरी रात भजन चलता रहा. लाखा एकाग्र हो भजन सुनता रहा, बीच बीच में ताल देता रहा तथा कभी-कभी उस सुंदरी को मीठी दृष्टि से देख लेता था. उस सुंदरी को दीये मे तेल डालने का काम सौंपा गया था, जिससे दीये की उजास में उसका मुख वह ठीक से देख पा रहा था.

लाखा उसे बार-बार देख रहा है, मुसकरा रहा है, यह बात उस औरत से छिपी नहीं थी. वह भी उसकी तरफ बार-बार देखने लगी तथा प्रत्युत्तर में मुसकराने लगी.

यह सब देख कर लाखा के साथियों को बड़ा आघात लग रहा था.

भजन का कार्य-क्रम समाप्त होने पर सारे लोग एक-एक कर उठने लगे तथा लाखा से आज्ञा ले कर जाने लगे. आखिरी में रह गयी वह सुंदरी, जो एक तने की आड़ में खड़ी हुई लाखा की ओर देख रही थी कि कब वह सबको विदा कर के फुरसत में हो तथा उसकी दृष्टि इस पर पड़े.

और वह घड़ी भी आ पहुंची, जब लाखा ने उसे देखा. वह उसके समीप पहुंचा.

लाखा पर निगाह रखे हुए एक साथी यह सब देख रहा था किंतु अगर वह उसे किसी बात से टोकता तो लाखा के गुस्सा हो जाने का भय था अतः वह मूक-सा सब कुछ देखता रहा.

उन दोनों की बातें खत्म हो चुकी थीं, औरत जाने के लिए प्रस्तुत हो रही थी. पता नहीं इन दोनों के बीच क्या बात हुई होगी. . .

उसने देखा, जाते-जाते वह सुंदरी थोड़ा ठिठक गयी है, और लाखा की तरफ देखते हुए उसने कहा—अच्छा तो फिर बिल्कुल निश्चित है न, अमावस की रात को आवोगे न तुम!

लाखा ने हंसते हुए कहा—बिल्कुल! और वह सुंदरी चली गयी .

अमावस आते-आते क्या देर लगती है. . . और अमावस का दिन आ पहुंचा . लाखा जाने के लिए निकल पड़ा. उसे अकेला न जाने देने की

वजह से उसके साथी भी उसके संग निकल पड़े वे सूर्यास्त के समय 'बै' गांव पहुंचे.

पहले से ही पता होने की वजह से ग्रामवासी उसके स्वागत के लिए खड़े प्रतीक्षा कर रहे थे. उन लोगों ने लाखा के खाने-पीने की अच्छी व्यवस्था की थी. उसके साथी गांव वालों की ऐसी आव-भगत देख कर खुश भी हो रहे थे, परेशान भी. वे सोच रहे थे, इन भोले ग्रामवासियों को लाखा के कलुषित विचारों के बारे में जब पता चलेगा, तब...

एक चौक के बीच स्त्रियां 'रास' के लिए तत्पर हो रही थीं. बीच में रेशमी रजाई बिछा कर अत्यंत आदर से लाखा को बैठाया गया. उसके समक्ष चांदी का सुंदर पच्चीकारी मंडित हुक्का रखा गया तथा मान पूर्वक उसकी आज्ञा ले रास शुरू हुआ. लाखा अपनी जमीन के इन कलाकारों को देख रहा था...स्त्रीयां गोल-गोल घूमती हुई चक्कर ले रही थीं, इसमें कुछ नया-सा तो नहीं था किंतु यह रास...अमावस की रात...लाखा को पूरा समा अद्भुत-सा महसूस हो रहा था...

अमावस की रात को अपना विशेष आकर्षण था. इसीलिए यह रात शायद तय की गयी थी. अंधेरी रात में रास करती हुई सुंदरियां, कुछ के हाथ में जलती हुई मशालें तथा बाकी के हाथ में डांडिया, और वे रास कर रही थीं. मध्य में एक ढोल बजाता हुआ युवक था.

लाखा मगन हो रास देख रहा था किंतु विशेष रूप से उस सुंदरी पर ही उसकी दृष्टि थी, जो अपने एक हाथ में मशाल इस तरह उठाये थी कि उसका चेहरा उस उजास में स्पष्ट दीख सके. रास में घूमते हुए भी उसकी नजर बार-बार लाखा पर चली जाती तब वह हलके-से मीठी हंसी हंस देती.

दूर-दूर तक फैली हुई लाखा की कीर्ति आज धूल में मिल जायेगी, यह तो निश्चित है, उसके साथियों न सोचा. किंतु अब उनसे यह सब सहा नहीं जा रहा था. वे इतनी सहजता से यह सब नहीं होने दे सकते. किसी प्रकार रोकने की चेष्टा करनी ही होगी. चाहे परिणाम जो भी निकले. उनमें से एक साथी लाखा के समीप जा कर बोला—आप जिस ठेठड़ीं को देख रहे हैं वह शादी-सुदा है...

—मुझे पता है, तुम पहचानते हो उसके घर वाले को?...वह जो ढोल बजा रहा है न बीच में, वही उसका घरवाला है. मैं पहचानता हूं उसको, लाखा ने सामान्य स्वर में कहा.

खत्म! बिल्कुल खत्म! अब कुछ भी नहीं हो सकता है, इस मामले में उसका घरवाला भी शामिल हो तो...?

काफी रात बीते रास खत्म हुआ. लाखा ने रास में भाग लेने वाली प्रत्येक स्त्री की भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा उन्हें कुछ-न-कुछ पुरस्कार दिया. अंत में उस रूपसुंदरी की बारी आयी. शरमाती हुई वह आगे आयी, लाखा ने प्रेम से उसके सिर पर हाथ रख कर कहा—तू तो मां, इस मुल्क की शोभा है, यह सब मैं आज देख सका, वह तुम्हारा ही प्रताप है....तुम्हें मैं क्या दूं?....आज से यह ग्राम तुम्हारा है. भाई की तरफ से बहन को सादर और जो पास में ही वह जमीन है न वहां तुम नया ग्राम बसाना तथा स्वयं भी अच्छा घर बनाना, मैं बनवा कर दूंगा.

लाखा पर शंका करने वाले साथियों का माथा शर्म से झुक गया. कच्छ में लखपत के समीप आज भी उस सुंदरी द्वारा बसाया ठेठड़ी गांव है आज भी वे लोग लाखा की सौंदर्य पारखी दृष्टि की प्रशंसा करते नहीं अघाते. □

(अनुवाद : चित्रा मुद्गल)

अतिथि-सत्कार

• मूलराज रूपारेल

अतिथि-सत्कार के लिए कच्छ पुराने समय से ही प्रसिद्ध है. चाहे कैसे भी अपरिचित गांव में जाओ, आपको भोजन (रोटला) और शयन (ओटला) तो आराम से मिलेगा ही. गांव के किसी भी घर का मेहमान हो सारा गांव पूरी रात मेहमान के पास मिलने के लिए आता रहेगा. रात देर तक दुनिया भर की बातें होंगी, तब जा कर मिलना बंद होगा.

लेकिन इसमें कच्छ का घुपी गांव बाजी मार ले गया है. अतिथि-सत्कार में यह गांव और भी प्रसिद्ध है. प्रख्यात हो या कुख्यात! इस गांव में कोई मेहमान बन कर जाने की जल्दी हिम्मत नहीं करता.

घुपी गांव के व्यक्ति ऐसे प्रेमी हैं कि आपसे मिलने के लिए आते ही रहेंगे...एक उठेगा, तो दूसरा आ जायेगा....ऐसे ही सारी रात निकल जाती है... बड़े सवेरे खेत में जाने वाले व्यक्ति भी लौट कर मेहमान की हाजिरी में आ कर बैठ जायेंगे. और बातें करते रहेंगे. वे थक कर उठेंगे तो दूसरे नींद निकाल कर फिर लौट पड़ेंगे.

उनका कहना है कि गांव का मेहमान, अपना मेहमान. उसे अकेलापन खलेगा. इसलिए उसके पास कोई-ना-कोई तो होना ही चाहिए. वर्ना कितना खराब लगेगा? और आराम से लंबे पांव पसार कर वे बीड़ी फूंकने लग जायेंगे. बातें करते रहेंगे. बेचारे मेहमान का तो दम ही घुटने लग जायेगा. ऐसा है हमारे कच्छ के घुपी गांव का मिलन. □

(संकलन और संयोजन : रामगोपाल इगलासिया)

(अनुवाद : हरमन चौहान)

बेकाबू

मनुभाई पांधी

मनुभाई पांधी (जन्म: ६ सितंबर, १९१४, करांची) आप एक कुशल डेंटल सर्जन हैं. इन्होंने १९३६ में करांची से मांडवी (कच्छ) में आ कर प्रैक्टिस शुरू की, साथ ही लेखन कार्य में भी व्यस्त रहे. इनकी कहानियां सामान्य जन की जिंदगी की कहानियां हैं.

वह हिनहिनाया.

उसकी गर्दन पर रेशमी बाल अस्तव्यम्स्त हो गये. चमड़े का साज उतरा तो उसके मदमस्त बदन की चमकदार खाल पर पसीने की लकीरें नजर आने लगीं. रमजू अपने घोड़े को टमटम में से खोल तबेले की ओर ले गया.

घोड़ा नाच उठा, हिनहिनाया और अगले दोनों पैर हवा में उठा कर मस्ती से झूमने लगा.

—ए शैतान, रमजू ने उसके गले की डोरी को झटका दिया. जिंदगी भर घोड़े के साथ रहते हुए रमजू के बाल पक गये थे. वह घोड़े की जबान जानता था. घोड़ा उसके काबू में आ गया.

—बेटा कमाल, रमजू ने उसकी पसीने भरी गर्दन थपथपायी.

कमाल ने जवाब में अपने दोनों कान सीधे किये, गर्दन झुकायी और टाप से जमीन खोदने लगा.

कमाल की पीठ थपथपाते हुए रमजू को हुसैन की याद आ गयी. बगैर मां-बाप के उस अनाथ छोकरे को भी रमजू ने कमाल की तरह ही पाल-पोस कर बड़ा किया था. कमाल और हुसैन जुड़वां भाइयों की तरह ही रमजू के पास पले-बढ़े थे. कमाल बहुत शैतान था, मस्त था. मगर रमजू चाचा ने—सब उसे रमजू चाचा ही कहते थे, उस पर आसानी से काबू पा लिया था. मगर . . .रमजू चाचा अपनी सफेद दाढ़ी में अंगुली खोंसे सोच रहे थे—दोनों ही शैतान निकले हैं, दोनों ही बेकाबू हैं. . . हुसैन तो इस जानवर से भी ज्यादा हाथ से निकल गया है.

उन्होंने लंबी सांस खींची.

यादों की परतें खुलती गयीं और उन्हें बरसों पीछे ले गयीं. उनका चेहरा खिंच गया, भौंहें सिकुड़ गयीं. . .

नीच. . . बदमाश. . . नालायक, गुंडे. . . . बेशरम. . . .

लोगों की गालियां, मार और जूठन खाता, किसी के दरवाजे खुजली भरे कुत्ते की बगल में सो कर रातें काटता, वह छोटा बिखरे बालों वाला रूखा और सूकट चेहरा याद में उभर आया और रमजू की आंख की पलकें ममता से भीग उठीं.

हुसैन को रमजू का स्नेह-संरक्षण मिला और घोड़े की दोस्ती—ए छोकरे, एक सिंगल चाय ला, और देख साथ में पानी का गिलास दे और डबल चूना तमाखू तैयार कर. . . .

उस सिंगल चाय में से भी रमजू आधी तश्तरी चाय हुसैन को देता. हुसैन कमाल की देखभाल करने लगा. वह थके हुए घोड़े के लौटने पर उसका साज-सामान उतारता, सहलाता, रेती में ले जा कर लोटाता और रगड़-रगड़ कर उसकी चमड़ी साफ करता, कूद कर उसकी नंगी पीठ पर सवार हो उसे पानी पिलाने ले जाता, लीद से सने घास के विस्तर को साफ कर नयी घास बिछाता और भीगे हुए चने का तसला उसके आगे रखता. . . .ऐसे ही नये-नये काम वह करता जाता और इस तरह धीरे-धीरे घोड़ा हुसैन की जिंदगी का प्रमुख अंग बन गया.

हुसैन जब घोड़े को घुटने तक पानी में खूब नहलाता और खुद भी छींटें उड़ाता तैरता तो घोड़ा उसे अपना जिगरी दोस्त और नजदीकी संबंधी नजर आता. कमाल को भी लड़के की सोहबत अच्छी लगती. दोनों ही जैसे एक-दूसरे के दिल की बात समझते थे.

मगर एक दिन कमाल ने हुसैन की बात बिल्कुल नहीं सुनी. हर दिन की तरह कमाल की नंगी पीठ पर सवार हो वह उसे नहलाने के लिए तालाब की ओर ले जा रहा था. अचानक कमाल ने छलांग लगायी. झटका खा कर हुसैन दूर जा गिरा. उसके घुटने से खून बहने लगा, कमीज की बांह फट गयी.

हुसैन गुस्से में चिल्लाया—कमाल!

हुसैन समझ ही नहीं पाया कि क्यों अचानक

कमाल का मिजाज बिगड़ गया और क्यों वह हिनहिना कर दौड़ता हुआ आंखों से ओझल हो गया. वह फिर चिल्लाया-- कमाल!

और तब वह फटी आंखों और खुले मुंह अचंभे से देखता रह गया. घोड़ा दूर पेड़ से बंधी एक घोड़ी से जा भिड़ा था. घोड़ी भी हिनहिना रही थी. लोग खड़े हो कर तमाशा देखने लगे. दोनों प्राणी एकदम बेकाबू हो गये थे. हुसैन फटी आंखों कमाल की यह हरकत देख रहा था.

उसके बाद कमाल का पागलपन शांत होने में कई दिन लगे थे. चाचा ने उस दिन हुसैन को खूब फटकारा- घोड़ा को कोई संत बनाने के लिए इतना तगड़ा नहीं किया. अब वह तांगे के लायक भी नहीं रहेगा और एक दिन किसी की जान ले लेगा, कहते हुए उन्होंने हुसैन के घुटने पर तेल में भिगोयी पट्टी बांध दी.

हुसैन को तब रमजू की बात बिल्कुल समझ में नहीं आयी, मगर फिर एक दिन जब पहली बरसात की बौछारों से धरती महक रही थी, उसने गुलाब को देखा और उसका दिल मुंह में आ गया. वह गुलाब के पीछे दीवाना हो गया. तब उसे उस दिन का कमाल का पागलपन और फिर रमजू चाचा के गुस्से की बात समझ में आ गयी. जब से उसने कमाल की वह हरकत देखी थी, वह लड़कियों की ओर दूसरी ही नजरों से देखने लगा था. आंख के कोने से जवान लड़कियों को चोरी-चोरी देखना उसे अच्छा लगने लगा था गुलाब को देखते ही वह स्वयं पर से काबू खो बैठा और कई दिन तक बेचैन रहा. धीरे-धीरे वह बदमाश हो गया, लड़कियों के छेड़ने में उसे मजा आने लगा.

लोग रमजू के घोड़े के चौड़े सीने, मस्त अदावाली चाल और गर्व से तनी गर्दन पर फिदा थे. मेले के दिनों में रमजू उसे खूब सजाता. कानों में कपड़े की लटकनें, सिर पर रंग-बिरंगी पंखों की कलंगी लगाये कमाल छैला बना बाबुओं को ले कर घूमता रहता. तब हुसैन को लगता— काश मेरे पास भी ऐसी ही मामूली-सी टमटम और कमाल जैसा जिगरी घोड़ा हो! उसके कान में वह रेशमी झालर लगाये, सिर पर तोते के पंखों की कलंगी सजाये और माथे पर रेशमी दुपट्टा डाले— और फिर उस टमटम में किसी और को बैठने न दे.

इन्हीं सपनों में वह खो जाता.

रमजू की अनुपस्थिति में वह इधर-उधर रखड़ता रहता. सतगिप्पी से शुरू कर वह कालेज में खेले जाने वाले सभी खेलों में माहिर हो गया. उसका जीवन संवारने वाला कोई नहीं था. परती जमीन पर उगी घास की तरह वह बड़ा होता गया.

मूंछ की रेखाएं फूटने तक उसने अपने ही जैसे अनेक साथी ढूंढ़ एक मंडली जुटा ली.

हुसैन का मन एकदम चंचल और व्यवहार बेकाबू घोड़े जैसा होता गया. उसके अरदब में आकर कौन कितना घायल हुआ, किसका कितना नुकसान हुआ, वह पीछे मुड़ कर देखता ही नहीं था. नीच, बदमाश, नालायक, मवाली जैसी गालियां खाने पर वह घोड़े की तरह हिनहिना कर हंस देता. इन सबके लिए उसकी खाल बहुत मोटी हो चुकी थी.

हवा का एक झोंका आया. तबेले की घास के तिनके उड़ कर छप्पर में अटके, फिर गिर गये. घोड़े की रस्सी रमजू के हाथ में ही रह गयी. उसका दिमाग आज

नया पैकिंग नई शान

REGD.

रत्न छाप

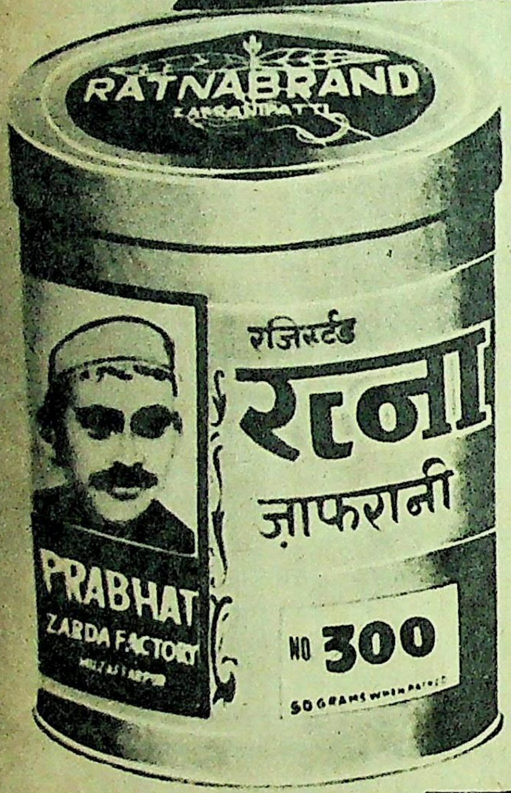
RATNA BRAND
ZARDA NIKATTI
रजिस्टर्ड
रत्ना
ज़ाफरानी
PRABHAT
ZARDA FACTORY
MUZAFFARPUR
NO 300
50 GRAMS WHEN PACKED

ज़ाफरानी पत्ती

नं. १३, २०, ३०, ६४, १५०, २००, ३००, ४५०.

प्रभात ज़र्दा फैक्ट्री, मुज़फ्फरपुर

अब नये पैकिंग में माँग करें

AVANTIKA/76

इधर-उधर भटकता, टकराता फिर रहा था.

हुसैन. . . हुसैन. . . उसके दिल के कोने से आवाज उठ रही थी.

जानवर से भी ज्यादा बेकाबू हो गया है. रमजू का दिल कह उठा—— हुसैन—— उस बदजात की जीभ ही चमड़े की है. वह किसके बस में रही है जो उसके बस में रहेगी! साली जीभ को गाली देने के बजाय लोग हुसैन को क्यों गाली देते हैं? बिला . . . वजह. . .ही तो, उसने सोचा—— उसकी जवान आंखों का क्या दोष? गुलाब, चंपा, चमेली जैसी लड़कियों का आकर्षण ही कुछ ऐसा होता है—— चाहे जिसे चक्कर में डाल दें.

रमजू को अपनी जवानी के दिन याद आ गये. उसने लंबी सांस ली. आंखों में समा गयी धूल साफ करता हुआ वह सोचने लगा—— इन आंखों को भी जितना ही रोको, पीछे घूम-घूम कर देखने की कोशिश करती हैं. दो घोड़ों की गाड़ी में बैठा मन ही तो चाबुक मार-मार कर आंखों को दौड़ाता-नचाता है.

'मन'—— और ऊंचे हिंडोले पर चढ़ा रमजू का मन दूसरी दिशा में दौड़ गया.

मन के कितने ही दर्द उसने नहीं दबा डाले? साले—— उसकी फातिमा के पीछे पड़े थे . पर वह भी तो न जाने कितनी बार मन ही मन फातिमा को गिरा कर उसका शील. . . या अल्ला! इस उमर में भी मन पर काबू नहीं कर पाया तो बेचारे हुसैन को क्या कहूं? यह अल्लाह का ही कुसूर है. अल्लाह ताला ऐसे भयानक गुनाह की कोई सजा नहीं देता इसलिए मन निर्द्वंद्व हो कर बेकाबू घोड़े जैसा हो जाता है. जैसे-जैसे लगाम खींचो, वैसे-वैसे और जोर से भागता है.

रमजू को लगा कि यह जीभ, बेशरम आंखें और नालायक मन इनसान को दे कर अल्ला ने उसे अपने से दूर रखने की चालाकी की है.

वह नमाज पढ़ने की तैयारी करने लगा.

* *

हुसैन ने छक्का-पंजा और तीन पत्ते खेलते-खेलते ऐसे ही लोगों की एक मंडली जुटा ली. उसने जुए के अड्डे शुरू किये और नीले नोट उसके हाथ में खेलने लगे.

पठानी सलवार जैसा पजामा, मलमल का कुरता, रंगीन जाकिट और तेल से चुपड़े घुंघराले बाल, मुंह में डबल चूने और किमामवाला पान, कान में कानपुरी हिना इत्र के फावे की महक—— यह हुसैन का परिवेश था.

नीले नोटों की गरमी जब असह्य हो गयी तो उसे बचपन से अपने दिल में पलता सपना याद आया और वह सीधा चाचा के पास दौड़ गया.

——चाचा, यह तैयार टमटम मुझे दे दो, इस पर मेरा दिल लगा हुआ है. और कमाल तो मेरा बचपन का यार है, हुसैन ने नोटों की एक गड्डी रमजू चाचा की ओर उछाल दी और कहा, चाचा, इसमें से जितना रुपया चाहिए ले लो, पर मेरी बात न टालना.

सुन कर चाचा जी भर कर हंसे. उनकी सफेद दाढ़ी हवा में फरफरा उठी.

——ले लो बेटा, तुम्हारी ही तो है. मुझे कोई और दिलवा देना. इस उम्र में अब मैं इन नोटों का क्या करूंगा. कहते हुए उन्होंने हुसैन की पीठ थपथपायी.

दोनों घोड़े के पास गये. रमजू ने कमाल पर ममता भरा हाथ फेरा और उसके कान में कहा——नहीं बेटा कमाल, यह सौदा नहीं है . मैं तो तुम्हें तुम्हारे यार के हाथ सौंप रहा हूं. बुरा मत मानना. हां, और देखो, दोनों एक दूसरे के काबू में रहना.

कह कर उसने फिर घोड़े की पीठ थपथपायी. दोनों हंस पड़े. घोड़े ने भी हिनहिना कर जैसे उस हंसी में भाग लिया. हुसैन दौड़ कर कमाल के गले में लिपट गया.

हुसैन ने घोड़े के कानों पर रेशमी कपड़े की झालर और माथे पर कलंगी लगायी और उसके बालों पर इत्र की पूरी शीशी उंड़ेल दी.

हुसैन के बालों की लटें और कमाल के बाल एक ही सुगंध से वातावरण को महकाने लगे.

वह दौड़ता हुआ जाकर रमजू चाचा से लिपट गया——चाचा, तुम भी बस बेजोड़ चाचा हो!

रमजू ने हंस कर हुसैन की पीठ थपथपायी. उसकी आंखों के कोने नम हो गये.

हुसैन आज जैसा खुश कभी नहीं हुआ था. आज उसका बरसों का सपना पूरा हुआ था. हुसैन ने जी भर कर कमाल से बातें की. कमाल ने अपने दोनों कान सीधे कर मालिक की बात का हुंकारा दिया. दोनों पुराने साथी थे.

* *

सांझ ढल रही थी. बहुत दिन बाद आसमान खुला था, सारे दिन धूप निकली थी. लगातार बरसात से शहर के तालाब में पानी लाने वाली नहर फट गयी थी और चारों ओर पानी ही पानी बिखर गया था. रास्ते टूट गये थे. जहां -तहां पानी के गड्ढे भर गये थे. बाढ़-सी आ गयी थी.

हुसैन छलांग लगा कर टमटम पर चढ़ गया. लगाम हाथ में ली और हांक लगायी——'च'. धीरे से लगाम कमाल की पीठ को छुआई और घोड़ा चल पड़ा.

—सलाम, रमजू चाचा, हुसैन चाबुक वाला हाथ उठा कर चिल्लाया .

रमजू चाचा ने हाथ ऊंचा किया——उनकी आंखें स्थिर हो कर कमाल को देख रही थीं. उनके हाथ हुसैन को विदा दे रहे थे और आंखें कमाल को. टमटम अदृश्य होने तक वे उसी ओर देखते रहे.

शाम की खुशनुमा हवा में मीठी मादकता भरी हुई थी. बहुत दिन से घर में कैद लोग प्रसन्न मन बाहर निकल पड़े थे.

मेडिमिक्स उपहार योजना

रु. 100000

एक लाख मूल्य का गृह उपकरण मुफ्त

FRIDGE • LUNA MOTOR CYCLE • ELECTRIC WASHING MACHINE • CAMERA • GODREJ ALMIRAH • ELECTRIC SUMEET MIXIE • DUNLOP BED • ELECTRIC OVEN • TAPE RECORDER • DINING TABLE WITH SUNMICA • SEWING MACHINE • GEYZER • TRANSISTOR • BYCYCLE • PRESSURE COOKER • BENARAS SILK SAREE • TABLE FAN • KANCHEEPURAM SILK SAREE • LADIES WRIST WATCH • PEN SET • SUIT CASE • SILVER KOLUSU • EVER SILVER GLASSES • EVER SILVER PLATES • FRYING PAN • DOUBLE KNIT PANT • ELECTRIC IRON • Rs 100/- • STEEL CHAIRS • Rs 25/- • LADIES HAND BAG • MEDIMIX SOAP 1 DOZEN • Rs 10/- • 2 PAISE

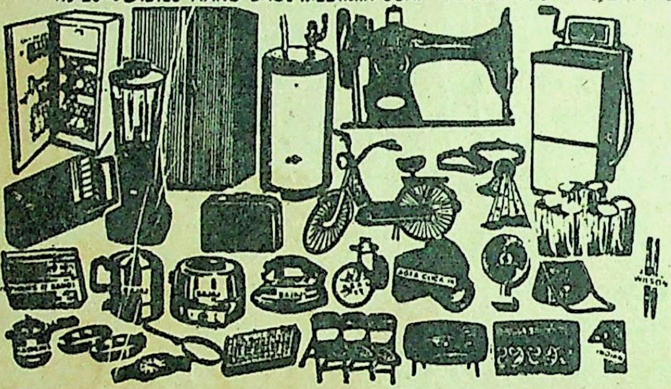

सभी मेडिमिक्स साबनो के रेपर के अन्दर इनामी कूपन रखे हुए है।

इनामी कूपनों पर बताये गये अनुसार ईकट्ठे कीजिए एवं उनपर लिखे इनाम पाइए।

उनमे ३५ अलग-अलग चिजों के लिए ३५ अलग-अलग कूपन है।

आपको मिलनेवाले कूपन मे यह भी दर्शाया गया है कि उनपर अंकित वस्तु को पाने के लिए आप को कितने कूपन ईकट्ठे करने होंगे।

उदाहरण के लिए: यदि आप मेडिमिक्स साबून के अन्दर बाईसाइकल के लिए कितने बाईसाइकल कूपन इकट्ठे करके भेजने है वह भी उनपर छापा होगा। समझ लीजिए कि उसपर ९ बाईसाइकल कूपन के लिए लिखा है तो आपको बाईसाइकल पाने के लिए ९ बाईसाइकल कुपन ही भेजने होगें।

आप जितनी चाहे इनामी चिजों के कूपन भेज सकते है परंतु विविध किस्मों के अनेक कूपनो पर कोई ईनाम नही मिलेगा।

ईनाम जहाँ तक होगें वहाँ तक कूपन मिलने के ४५ दिनों के अन्दर रजिस्ट्री डाक से अथवा हाथो हाथ पहुँचते कर दिये जाएंगे। यह योजना ३० फरवरी १०७७ तक पहुँचने वाले कूपनो के लिए खुली रहेगी।

चोलयिल फार्मास्यूटिकल्स की निर्णय सभी मामलों मे अंतिम एवं मान्य होगा।

CHOLAYIL PHARMACEUTICALS

I, Palayakara Street, Madras-600 023

चर्म
रोगों के लिए
डाक्टर लोग
सिफ़ारिश करते हैं

MEDIMIX
AYURVEDIC TOILET SOAP

मेडिमिक्स दवाई साबून

- चोर्भी फेन
- जंघे और कमर मे घाव
- नाई फेन
- छाला
- मधुरिकास्पर्शरोग
- गर्मी के फोड़े
- खुजली
- काले धब्बे
- रंग परिवर्तन
- फुन्सी
- बालों की रूसी रोकने के लिए

मेडीमिक्स एक बेहतरीन
नहाने वाला साबुन भी है।
इससे त्वचा की चिकनाहट
और खूबसूरती बढ़ती है।

— SUBHODAYA

हुसैन को लगा कि कमाल की चाल भी आज कमाल की है. वह रंगीले नौजवान की अदा से चल रहा है.

हवा का एक झोंका आकर हुसैन के बालों की लटों को बिखराता हुआ गुजर गया.

—शुक्रिया, हुसैन ने मस्ती में झूमते हुए झोंके से कहा और मन-ही-मन मुस्कराने लगा.

उसके पैर अपने आप घंटी पर पहुंच गये और घंटी की मधुर आवाज गूंज उठी. तभी उसकी नजर दूर मुड़ते हुए एक तांगे पर पड़ी. शिकारी जैसी फुर्ती से हुसैन सतर्क हो गया. तेजी से अदृश्य होते तांगे में उसे काली किनारी वाली रेशमी साड़ी और काला ब्लाउज नजर आया.

—या अल्ला! वाह!

उसके दिल की धड़कन बढ़ गयी. उसका रोमांस जाग उठा. शिकारी जैसे शिकार को टटोलने के लिए नजरें सिकोड़ता है, उसी तरह वह चुंधी हुई आंखों से देखने लगा.

—क्या शुभ शकुनी घोड़ा है. पहले दिन ही फतह. सलाम यार, मेरे कमाल, सलाम, उसकी कर्कश हंसी से कमाल भड़क गया.

—आज मेरे हाथ से बच कर कहां जायेगी! उसने दांत किचकिचाये और चाबुक उठायी.

घोड़ा उसका मतलब समझ गया. हुसैन ने लगाम खींची, ढीली दी, फिर खींची. फिर तेजी से ढील दी और चाबुक धीरे से घोड़े की पीठ को लगायी. घोड़े ने इशारा समझा, लंबे टाप भरता वह तेजी से दौड़ने लगा. हुसैन का दिल भी आगे के तांगे को पकड़ने के लिए तेजी से दौड़ने लगा.

★ ★

मोड़ पर आ कर हुसैन ने देखा कि सारा रास्ता भीड़ से भरा हुआ है और अगले तांगे का कहीं पता नहीं है.

—आज भी छोकरी चकमा दे जायेगी? अरे, इस बात में कोई दम नहीं है, हुसैन बड़बड़ाया और और अधिक तेजी से बाग के बड़े रास्ते की ओर जाने वाली छोटी पगडंडी पर उसने टमटम मोड़ दी. ऊबड़खाबड़ रास्ते पर से उछलती टमटम तेजी से आगे बढ़ने लगी. पगडंडी पूरी कर टमटम जब मुख्य रास्ते पर आयी तो हुसैन ने देखा कि वह तांगा एक फर्लांग दूर आगे चला जा रहा है.

—शाबास कमाल, वाह बेटे, कह कर उसने घोड़े की पीठ पर फिर चाबुक लगायी और कमाल और अधिक लंबे टाप लेता तेजी से आगे बढ़ने लगा. हुसैन लोलुप दृष्टि से आगे देख रहा था. उसकी बेचैनी बढ़ गयी थी.

उस लड़की की नजर तेजी से निकट आती टमटम पर पड़ी और हुसैन को देख कर वह कांप उठी. इसी तरह जब वह एक दिन कालेज से लौट रही थी तो हुसैन ने उसका पीछा किया था. उस दिन वह एक मकान में घुस कर पीछे के दरवाजे से निकल गयी थी. आज के पहले कितनी ही बार हुसैन उसका पीछा कर चुका था, पर हर बार वह बच कर निकल भागी थी.

—भाई, जरा तेजी से चलो, उसने अपने तांगेवाले से कहा.

लड़की की भयभीत आवाज सुन कर तांगे वाले ने घूमकर पीछे देखा —हुसैन कमाल की पीठ पर चाबुक मार रहा था.

—साला. . .मवाली. . .गांव की बहू-बेटियों. . . जरा संभाल कर बैठना, बहन, रास्ते में बहुत गड्ढे हैं. तांगा उछलेगा. घबराना नहीं, कह कर तांगेवाले ने दूध जैसे सफेद रंग की अपनी घोड़ी तेज की.

पीछे आता घोड़ा हिनहिनाया.

हिनहिनाहट सुन कर घोड़ी चारों पैरों से उछली और जैसे जान बचाने के लिए भाग रही हो, तेजी से दौड़ने लगी.

तांगेवाला घोड़ी की घबराहट समझ गया. उसने लगाम खींची, पर घोड़ी नहीं रुकी. वह और तेजी से दौड़ने लगी. तांगेवाला घबरा गया और हुसैन को गाली देने लगा.

हुसैन की टमटम की लपेट में आकर एक कुत्ता चीखने लगा.

किसी के बिखेरे दाने चुगते हुए कबूतर घबरा कर उड़ गये. एक कुत्ता हुसैन के तांगे के साथ दौड़ता हुआ भौंकने लगा. एक मां ने अपने बच्चे को तेजी से खींच कर टमटम के नीचे आने से बचा लिया.

—ए बुढ़िया! . . .ओ गंवार. . .हट, हट जाओ गधे, चीखते हुए हुसैन ने साथ दौड़ते हुए कुत्ते पर चाबुक जमायी. कुत्ता जोर से चीख उठा.

लोग चकित से खड़े हो कर यह घुड़दौड़ देखते हुए एक दूसरे से बतियाने लगे—कौन है यह जंगली घोड़ावाला?

—उस लड़की के पीछे पड़ा लगता है.

—अरे, यह तो हुसैन है, उसे पहचानते हुए कोई बोला.

—ये हुसैन है? उसकी नाक की धाक थी.

—बहुत बेकाबू हो गया लगता है. उसे न जानने वाला एक आदमी बड़बड़ाया, पक्का गुंडा लगता है, पकड़वा देना चाहिए.

पर टीका-टिप्पणी करनेवालों में से किसी ने उत्साह नहीं दिखाया.

★ ★

हुसैन जिद में आकर टमटम भगा रहा था, बिना किसी की परवाह किये. उसने फिर चाबुक उठायी मगर फटकारने से पहले ही कमाल हिनहिनाया और चारों पैरों पर उछल पड़ा.

रेज़र से त्वचा कटाकर और खूँटे-से बाल उगाकर झेंपते रहिए या...

एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर से रेशम-सी कोमल त्वचा पाइए

शेविंग ? नहीं, यह तो पुरुषों के लिए है। फिर त्वचा कटने और बाल कड़े उगने का भी डर। तो ? इसके लिए एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर लगाइए। कैसे ? बिल्कुल आसान है : अनचाहे बालों पर क्रीम लगाइए; थोड़ी देर ठहरिए, फिर गीली रूई से पोंछ डालिए। यह त्वचा के नीचे जाकर कार्य करता है। देखा बाल ग़ायब! आपकी त्वचा हफ़्तों मुलायम। तो छोड़िए रेज़र, एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर अपनाइए!

एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर

अनचाहे बालों को हटाने का मनचाहा क्रीम

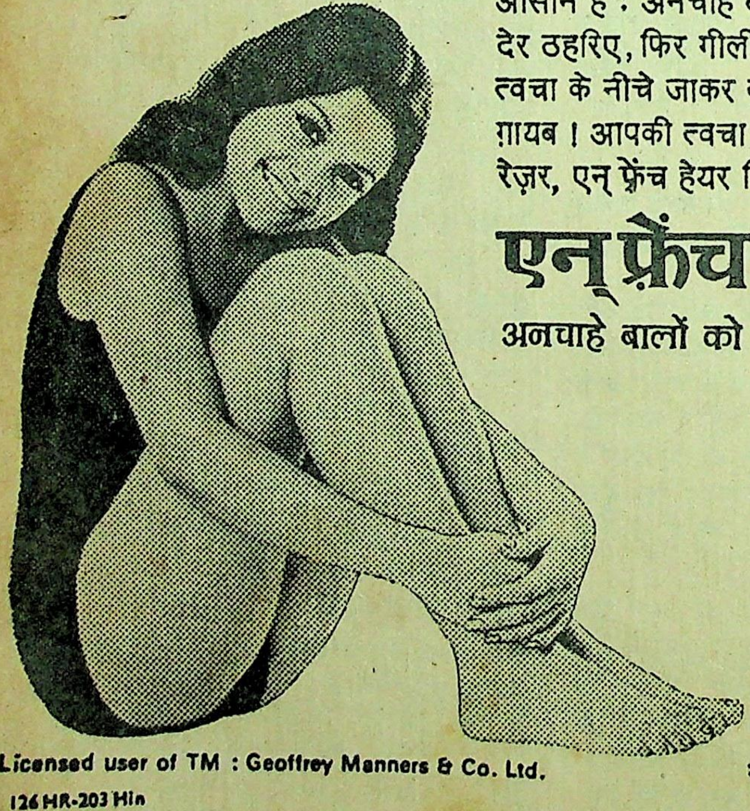

FACIAL QUALITY
Anne French
HAIR REMOVER
CREAMS HAIR AWAY FROM FACE, LEGS ARMS & UNDERARMS
75g

Licensed user of TM : Geoffrey Manners & Co. Ltd.

126 HR-203 Hin

२ साइज में सुलभ : ४० ग्रा. और ७५ ग्रा.

ऐसे ही पहले एक दिन हिनहिना कर, हुसैन को दूर फेंक वह एक घोड़ी से जा भिड़ा था, हुसैन को याद आया और उसने लगाम खींची.

घोड़ा सरपट चाल छोड़ चारों पैरों से कूदता हुआ और तेजी से दौड़ने लगा. टमटम समुद्र में डूबती-उतराती मछली की तरह हिचकोले खाने लगी.

हुसैन ने फिर लगाम खींची, पर घोड़ा फिर भी धीमा नहीं हुआ.

—कमाल, तुझे क्या हो गया है?

जवाब में उसे कमाल की तेज हिनहिनाहट सुनायी दी. और यह हिनहिनाहट सुन पतली धीमी हिनहिनाहट के साथ आगे जाती घोड़ी घायल हिरनी की तरह तेजी से भागने लगी.

—तू घोड़ी की गंध से पगला गया है क्या? बड़बड़ाते हुए हुसैन ने पैर अटका कर दोनों हाथ से लगाम खींची घोड़े का मुंह लगाम खींचे जाने से ऊंचा उठा, पर नकेल से अभाव में वह घोड़े को रोक नहीं पाया. घोड़े का पागलपन और बढ़ गया . उसने पूंछ से झपट्टा मार कर हुसैन के हाथ से लगाम छीन कर अपनी पूंछ के नीचे ही दबा ली. किसी तरह अपने को संतुलित कर हुसैन नीचे झुका और उसने लगाम वापस ऊपर खींच ली.

—कमबख्त , हुसैन दहाड़ा.

उसकी नजर नजदीक आ गये तांगे की बीच की लकड़ी से चिपक कर लटक जाती युवती पर चिपकी हुई थी. उसकी साड़ी ढल गयी थी. और छाती सहमे हुए पक्षी की तरह ऊपर-नीचे होती धड़क रही थी उसके कपड़े अस्तव्यस्त हो कर उड़ रहे थे और उसकी पीला कोमल चमकता बदन देख कर हुसैन बेकाबू हुआ जा रहा था.

एक मैले पानी के गड्ढे से पहिया गुजरा और चारों ओर गंदा पानी फैल गया. मच्छर उड़े और फिर आ कर वहीं बैठ गये.

कहीं-कहीं पानी पर तक आयी काई की बदबू फैल गयीं थी.

बाग में जाने के रास्ते के दोनों ओर आते-जाते स्त्री-पुरुष-बच्चे एक किनारे हट कर ठिठक कर खड़े हो गये थे. किसी हादसे का डर चारों ओर छा गया था.

★ ★

तभी चीख पुकार मच गयी .

सामने से मिलिट्री का एक ट्रक चला आ रहा था. उसे देख तांगेवाले ने अपना तांगा जरा किनारे पर लाने की कोशिश की, पर उसका पहिया एक गहरे गढ्ढे में धंस गया. तांगा उछला, संतुलन बिगड़ गया, तांगे का वह हिस्सा नीचे की ओर सिखका और वजन के जोर से पुल का उस ओर का हिस्सा कड़-कड़ा कर टूट गया. घोड़ी उस पर से नीचे फिसली. उसका शरीर पुल के ऊपर के डंडे और मोटे चमड़े के बंद के बीच फंस गया.

तांगा एक तरफ से नीचे झुक गया. दूसरी ओर का पहिया हवा में चक्कर खाने लगा. हवा में तटके घोड़ी के पैर जमीन का आधार ढूंढ़ खड़े होने की कोशिश में फड़फड़ाने लगे. उसके मुंह से फेन निकल रहा था.

एक चीख के साथ लड़की बगल के गंदे पानी के गढ़े में जा गिरी . उसके कपड़े और शरीर कीचड़ से लथपथ हो गये. बाल बिखर गये. उसकी अर्धनग्न देह को कीचड़ ने ढक लिया था.

मिलिट्री के ढंक के ब्रेक की तीखी आवाज गूंज गयी.

ट्रक रुकने से पहले ही उसके अंदर से कुछ सैनिक बाहर कूद पड़े और घोड़े के चमड़े के बंद को चक्कू से काटने में तांगेवाले की मदद करने लगे. तांगेवाला अब भी हुसैन को गाली दे रहा था.

कुछ लोगों ने दौड़ कर लड़की को कीचड़ से निकाला. वह भीगी बिल्ली की तरह कांप रही थी.

आगे का तांगा घचकते-घचकते पीछे से हुसैन का तांगा आ गया. घोड़ा घोड़ी के बगल आ कर दो पैरों पर खड़ा हो गया. फिर तेजी से आगे के उठे हुए पैर जमीन पर टिका कर पिछले पैरों को उठा कर उसने दुलत्ती झाड़ी और हिनहिनाने लगा.

टमटम का संतुलन बिगड़ गया और घोड़े की दुलत्ती की अचानक मार से हुसैन हवा में उछल दूर पड़े पत्थर और कांटों के झाड़ के बीच सिर के बल जा गिरा. पहिया मुड़ कर टूट गया, चमड़े के पट्टे टूट गये और घोड़ा टमटम से निकल गया.

मगर आगे बढ़ने के पहले ही सैनिकों ने घोड़े को पकड़ कर एक ओर खींच लिया. उसका पागलपन अभी थमा नहीं था. तेजी से सांस लेने में कारण उसके नथुने फूल रहे थे. बार-बार वह दो पैर हवा में उछाल कर छूटने की कोशिश करता हुआ हिनहिना रहा था.

चार-छह लोगों ने हुसैन को उठाया. उसके सिर से खून बह रहा था. चेहरा कुचल गया था.

★ ★

शाम ढल चुकी थी. रात के रंग छाने लगे थे. ट्रक से उतर आया अफसर घोड़े पर चाबुक फटकारता हुआ चीख रहा था.

ऐसे खतरनाक बेकाबुओं को तो बंध्या कर देना चाहिए.

सैनिकों पर लद कर ऊपर आते हुसैन ने मुड़ कर अफसर की ओर देखा . उसे लगा, अफसर उसी से यह कह रहा है, उसके कानों में अफसर के शब्द गूंजने लगे. उसकी आंखों के आगे अंधेरा छाने लगा. फिर उसे वही शब्द सुनायी दिये.

हुसैन ने अपना होश संभालने की नाकाम कोशिश की और वह बेहोश हो गया ☐☐☐

(अनुवाद : केशव झा)

प्रतीक्षा

•सरला भाटिया

स्मिता ने घड़ी की तरफ देखा. अभी तो एक बज कर पांच मिनट ही हुए थे. वह अलसा उठी. दोनों हाथ उठा कर उसने अंगड़ाई ली तब कहीं कुछ अच्छा-सा लगा. न जाने आज समय जल्दी क्यों नहीं कट रहा था. अभी तो दो-ढाई. . .तीन. . .साढ़े तीन. . . तब कहीं जा कर चार की घंटी बजेगी. कितनी देर थी अभी चार बजने को हां. . . चार. . . बराबर चार. वह घड़ी में चार की घंटी बजने की बाट जोह रही थी. . . कारण. . .कारण कि चार बजे अरुण आने वाला था. . . अरुण, उसका प्रियतम. . . उसके हृदय का हार. . . मन से माना हुआ. . . उसने कहा था कि वह जरूर आयेगा. . . मंगलवार की शाम को. . . चार बजे. . . और आज मंगलवार था।

अभी चार दिन पहले की ही तो बात थी. शाम की शॉपिंग कर के लौट रही थी, तो अचानक पास से गुजरती कार धीमी हो गयी थी और पीछे रुक कर लगातार पों पों किये जा रही थी. उस शोर से घबरा कर जब उसने पीछे देखा था तो. . . उसकी सारी घबराहट खुशी में बदल गयी थी. वह अरुण था. . . अरुण, जिसे सिर्फ उसके हृदय ने ही नहीं, उसके अणु-अणु ने चाहा था. . . रोम-रोम ने चाहा था. कैसे मिल गया अचानक! नहीं तो कहां वह अरुण, जो अपने काम-धंधे के लिए अफ्रीका जा चुका था और उसके नाम-ठाम का कोई पता नहीं था और कहां वह खुद, जिसका अरुण के अफ्रीका चले जाने पर मां-बाप ने अश्विन के साथ विवाह कर दिया था. अश्विन, उसका पति, जो जाहिरा तो उसके तन-मन का स्वामी था, मालिक था, अधिष्ठाता था. . . पर वास्तव में उसके तन का ही मालिक था. . . हृदय का नहीं. . . वह तो केवल अरुण था. . . अरुण. . . जिसे जीवन की पहली बीसी में उसने जी भर कर चाहा था. . . यौवन के प्रांगण में कदम रखते ही जिसे हृदय में भर कर प्यार किया था. अंतर की उमंगों से जिसे सतत स्वीकार किया था. वह रसिया रोमांटिक, सदा हंसता-खिलखिलाता अरुण. . . जिसके संपर्क का एक-एक पल रंगीन बन गया था. . . जिसके सान्निध्य का एक-एक क्षण आह्लादमय हो उठा था. वह था अरुण. और यह अश्विन था कि बिल्कुल शुष्क, हृदयहीन, अरसिक अभी तो और न जाने कितने विशेषण बाकी थे जो उस पर लगाये जा सकते थे. अश्विन के साथ बिताये गये क्षणों में उसे हमेशा अरुण याद आता रहा था और फिर अनजाने ही वह अरुण के साथ अश्विन की तुलना कर जाती थी. कहां राजा भोज, कहां गंगू तेली.

पत्नी के साथ बातें करता तो लगता मानो कोई शिक्षक अपने विद्यार्थी से बातें कर रहा हो. . . दौरे पर जाता तो वहां से ऐसे पत्र लिखता जैसे कोई मुनीम व्यापारिक पत्र लिख रहा हो. . . रोमांस का तो उनमें नामोनिशान तक न होता. . . किसीको पढ़ाऊं भी तो क्या पढ़ाऊं और उधर अरुण के वे रसभरे बोल, उसके पत्रों की याद उसका हृदय झकझोर जाती. और एकांत के ये क्षण. . . शुष्क रूखे. . . रसिक होना तो उसे पसंद ही नहीं था. पर साथ ही भोला भी उतना ही. . . हां. . . उसके चेहरे और और उसकी आंखों में ऐसे भाव होते थे, जिनमें उसके हृदय की निश्छलता और कोमलता के स्पष्ट दर्शन होते थे. स्मिता के हृदय में उसकी कोई जगह नहीं थी पर उसके लिए स्मिता सब कुछ थी. . . एक आदर्श पत्नी. . . आर्य नारी. . . ! स्मिता के मुंह पर एक मार्मिक हंसी आ गयी. उसके एक-दो प्रसंग भी अनायास ही याद हो आये. . .

उस दिन जब वे दोनों साथ घूमने निकले थे तब रास्ते में उसके कालेज का साथी सौमित्र मिल गया था. स्मिता उसे देख हंस पड़ी थी. मुसकरा-मुसकरा कर उससे बातें करने लगी थी. अश्विन जरा दूर खड़ा

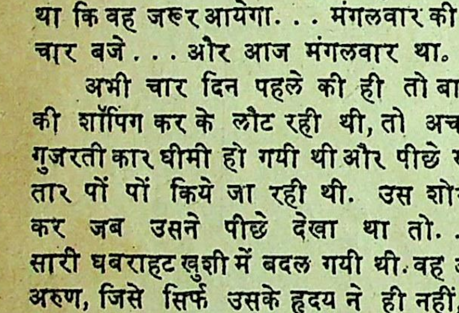

सरला भाटिया का जन्म बंबई में हुआ और इन्होंने अर्थशास्त्र में शिक्षा प्राप्त की. इन्हें बचपन से ही साहित्य के प्रति लगाव रहा है लेकिन लेखन पिछले कुछ वर्षों से ही शुरू किया है. इन्होंने नाटक, रेडियो रूपक, लेख और कहानियां लिखी हैं. इस समय एक उपन्यास लिख रही हैं.

रह गया था. जब पास आया तो उसने यह भी नहीं पूछा कि वह कौन था, वह किसके साथ बातें कर रही थी. उलटे स्मिता को ही कहना पड़ा था— अभी मैं जिससे बातें कर रही थी न, वह मेरा मित्र सौमित्र था.

—अच्छा! बस, इतना कह कर वह चुप हो गया था.

स्मिता का मन उससे मजाक करने को हो आया था. बोली थी— क्यों, चुप क्यों रह गये? मुझ पर कोई शंका. . .

—नहीं, नहीं. तुझ पर शंका. . . तुझ पर . . . मेरी स्मिता पर. . . . जा रे जा, उसकी तो तू केवल मित्र ही होगी, मेरी तो मित्र भी है, मंत्री भी है, भार्या भी है, गृहिणी भी है, अर्द्धांगिनी भी है. . . तू तो मेरी सर्वस्व है. . . समझी न? और फिर चुप हो जाने की बारी स्मिता की थी. . . अब उसे हृदयहीन न कहे तो क्या कहे!

और आफिस से कभी जल्दी आ जाता और स्मिता बाहर गयी होती तो चुपचाप ईजी चेयर पर बैठ कर अखबार पढ़ने लगता था. कहां गयी थी, देर क्यों हो गयी, साग खरीदने में इतनी देर लगती है क्या! . . . कोई शंका नहीं. . . कोई प्रश्न नहीं.

विवाह होने के बाद से अब तक उसे अरुण का कोई पता नहीं था. जैसे-जैसे दिन गुजरते गये, वह अधिक-अधिक याद आने लगा. सूखी खाज को खुजाने की प्रबल इच्छा जैसी इच्छा. . . और उसने मान लिया था, समझ लिया था कि उसे भुलाया नहीं जा सकेगा. . . कभी भी नहीं. . . इस जीवन में तो नहीं ही. . . जिंदगी की अंतिम श्वासों तक नहीं. उसे लगता, मान लो वह कहीं मिल जाये तो? तो कितना अच्छा हो! उसकी अदृश्य आकांक्षाएं जाग उठतीं. अतृप्त हृदय चीत्कार कर उठता, एक बार. . . केवल एक बार मिल जाये.

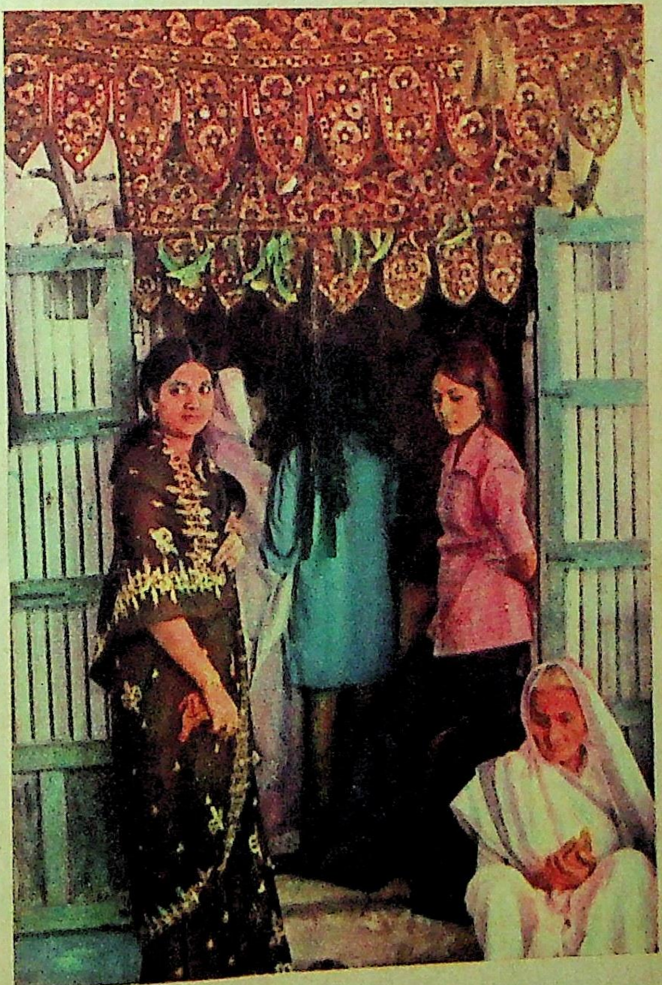

श्रेष्ठतम कपड़ों के लिए
श्रेष्ठतम धागे
आदित्य के मिश्रित
रंगीन धागे

आदित्य के धागे—'यार्न डाइड' और 'फाइबर-डाइड' दोनों ही अपनी एकरूपता के लिए प्रसिद्ध हैं ... और इनसे कई नामी सूटिंग, शर्टिंग, और ड्रेस मॅटीरियल्स बनाए जाते हैं। उत्पादन के समय इनकी ऊंची श्रेणी का पूरा-पूरा ख्याल रखा जाता है.....और मन भावन रंगों के ये धागे कपड़ों में जान डाल देते हैं।

आदित्य मिल्स लिमिटेड

मदनगंज – किशनगढ़
(राजस्थान) फोन : ९८
स्टेडियम हाउस, २री मंजिल, २रा ब्लॉक
वीर नरीमन रोड, बम्बई-४०० ०२०
फोन : ३१०४०४ – २९६४५४
३१८ १/२ कूचाघासीराम, चाँदनी चौक,
दिल्ली ११० ००६ फोन : २७४२६८

Sobhagya/AM/75/2

और सचमुच ही वह मिल गया था. चमचमाती लाल फियेट में वह जिस अदा से स्टीयरिंग संभाले हुई था, उसे देख कर वह उस पर न्यौछावर हो गयी थी. वही था. . .वही तो था, उसका प्रियतम. . .

—हलो, मितु. . .कह कर उसने उसे बुलाया था. वर्षों पहले जैसी वही मधुर आवाज, वैसा ही रसभरा स्वर. . .आवाज का वही लहजा. . .आनंद के अतिरेक में वह कुछ बोल भी न पायी थी.

—मितु, क्या मुझे अपने घर आने का निमंत्रण नहीं देगी! क्या डर लग रहा है कि मैं बहुत-सा खा जाऊंगा! पतिदेव से इतना घबराती है? कौन है वह भाग्यवान, बता तो सही. . .स्मिता ने थोथे में उसे सब कुछ बता दिया था.

—अच्छा तो भाई साहब नौकरी करते हैं, ठीक, उनसे मुलाकात तो करवायेगी न! देख, मंगलवार को चार बजे आऊंगा तेरे यहां. पर ए, अपना पता तो बता. अरे, तू बोलती क्यों नहीं?

स्मिता क्या कहती! देवता की आराधना करने वाले भक्त पर देवता प्रसन्न हो जायें और जरूरत से ज्यादा वे दे डालें, कुछ ऐसी ही हालत उसकी भी हो गयी थी. वह उसे कैसे बताये कि उसका हृदय पल-पल उसे ही चाहता रहा था! अंतर के कोने-कोने से हर क्षण उसके नाम की ही पुकार उठती रही थी. उसके रक्त की एक-एक बूंद उसके लिए तरसती रही थी. वह उससे कुछ भी नहीं कह पायी थी. . .कुछ भी नहीं! यह भी नहीं कि उसका पति कल ही काम से बाहर गया हुआ था और कुछ दिनों तक लौटेगा नहीं.

अरुण ने फिर पूछा था—तू कहां रहती है. बता तो सही. नहीं तो तेरी जगह कहीं और ही. . . बोलते-बोलते वह हंसने लगा था और स्मिता को उसके शब्दों में से रसिकता झरती हुई लगी थी. . .

—मैं, मैं यह पोस्ट आफिस की बगल में जो गुलाबी रंग का मकान है न. . . उसने अरुण की ओर देखते हुए कहना शुरू किया था कि अचानक उसकी चमकती हुई दो लोलुप आंखों में उसे अपने पति के चेहरे की वे दो निर्दोष आंखें याद आ गयी थीं. फिर उसके मस्तिष्क में घूमने लगी थी उसकी निश्छलता और कोमलता, याद आने लगा था उसका शुद्ध प्रेम, अगाध विश्वास, अपार श्रद्धा. . .उस गुलाबी मकान के ठीक सामने ग्रे रंग का जो पत्थरिया मकान है, उसमें मैं रहती हूं—चौथी मंजिल पर ब्लाक नं. ४१.

* *

और स्मिता नें फिर घड़ी की ओर देखा. दो बज कर पैंतालीस मिनट हुए थे. अभी सवा घंटा बाकी था. यानी कि पचहत्तर मिनट. . .चार हजार पांच सौ सेकंड. . .समय क्यों नहीं बीत रहा है. . .घड़ी इतनी धीमी क्यों चल रही है उसके कांटों पर किसीने मन मन भर के बजन रख दिये हैं क्या?. . .वह सोच रही थी.

स्मिता को लगा था कि अब उसे तैयार हो जाना चाहिए. उसने अलमारी खोली. क्या पहने? हलके ब्लू रंग की साड़ी और वैसा ही ब्लाउज! नहीं. . .यह रंग तो अश्विन की पसंद थी, आज तो वह अरुण की पसंद की ही. . .अरुण को हमेशा गहरा रंग पसंद रहा था. उसने नेवी ब्लू रंग की साड़ी निकाली. यह अरुण का प्रिय रंग था. वह कहता था—गहरे आकाश में चमकती चंद्र रेखा जैसी लगती है तू इस रंग में तो! मुंह पर पाउडर लगाया था, लिपिस्टिक भी गहरे लाल रंग की चुनी थी.

श्रृंगार पूरा हो गया. अब उसे आना ही चाहिए. उसने रास्ते पर देखा. सचमुच वह आ ही रहा था. स्मिता की धड़कन बढ़ गयी थी. वही था, वही तो था. स्मिता की पसंद की मटमैल रंग की शर्ट और काफी रंग की पेंट पहने हुए. वही चाल, चेहरे पर वही भाव. बालकनी में से स्मिता उसे अच्छी तरह देख सकती थी.

अब वह मकान के बहुत नजदीक आ गया था. जीने के मुख्य द्वार में वह प्रवेश कर गया था. अब उसका दिखना बंद हो गया था. स्मिता सोचने लगी थी, अब वह सीढ़ियां चढ़ने लगा होगा. उसने मन-ही-मन गिनना शुरू किया. . .अब वह पहला जीना चढ़ चुका होगा अब दूसरा . . .तीसरा . . .अब चौथा भी चढ़ चुका होगा.

बस. . .अब वह ब्लाक के दरवाजे पर रुक गया होगा. . .नहीं, घंटी नहीं, उसे कुंडी खटखटाने की आदत थी. . .वह कुंडी ही खटखटायेगा. . .

पर वह उठी नहीं थी, जहां थी वहीं बैठी रही. उसने अपनी नजर रास्ते पर से हटा ली और दूर-दूर क्षितिज पर गड़ा दी थी. एकटक . . .

कारण . . .? कारण उसके दरवाजे की घंटी नहीं बजी थी. . .कुंडी नहीं खटकी थी. . .बजनी भी नहीं थी. . .क्योंकि वह तो पोस्ट आफिस के बगल वाले गुलाबी मकान में रहती थी न! □□□

(अनुवाद : महेंद्र झा)

कच्छी लोककथा

भोज • माधुरी शाह

सुथरी गांव का पंच और गांव वाले बैठे-बैठे विचार-विमर्श कर रहे थे कि संवत्सरिक समूह-भोजन में कौन-सी मिठाई बनायी जाये.

कोई कहता "सीरो भनायो" (हलुआ बनाओ), कोई कहता "दूधपाक भनायो" और कोई कहता "सेवूं भनायो" (सेवैयां बनाओ). सात-आठ साल का लड़का बीच में ही बोल उठा—सुतरफेणी जो जेमण कयो. (भोजन में सुतरफेणी बनाओ) उसकी बात सुन सब हंस पड़े.

पांच साल बाद बारह-तेरह बर्ष की उम्र में लड़का कच्छ छोड़ व्यापार के लिए जंगबहार चल पड़ा. बारह वर्ष बाद जब वह सुथरी लौटा तब सिर पर टोकरे रखे मजदूरों की एक लंबी कतार उसके पीछे आ रही थी. दूसरे दिन सारे गांव को उसकी ओर से भोजन का न्यौता था. और भोज में सुतरफेणी बनी थी. □□□

धरती का कलंक

• उमियाशंकर अजाणी

सुबह की हवा ठंडी होने लगी थी. नौ-नौ महीनों का सफर करके लौटी हुई नावें उथले पानी में आड़ी-तिरछी पड़ी हुई थीं, मानो अपने लंबे सफर की थकान मिटा रही हों. मछुए-मल्लाह दौड़ भाग कर रहे थे. समुद्री मार्गों को रौंदने वाले नाविकों तथा नाव के मालिकों और माल के मालिकों के बीच व्यापारिक खुसफुस चल रही थी. मौसम के बदलने के आसार दिखाई देने लगे थे. कीचड़ में धंसी हुई कोटिया, नावडी, गंबीरा, बच्चा, बगला, मंजा, धराव, बतेला, डांगी, फत्तेमारी, घाऊ, जुंगदेगी, ब्रम बगला और न जाने कितने किस्मों की छोटी-बड़ी नावों पर पठानों की निगाहें लगी हुई थीं और वे उनकी पिछले नौ महिने की कमाई का इतिहास खुलवाने का प्रयत्न कर रहे थे. बीमा वाले अपने-अपने हिसाबों में व्यस्त थे और नावों के मालिक अपनी नावों के इधर-उधर भटक जाने पर हूए उस नुकसान को भी बीमा वालों से वसूल लेने की जुगत जुड़ा रहे थे. बीमा-कारकुनों और नाविकों की झड़पों से किनारा गूंज रहा था. ऐसे मौकों पर अगर बात फंस जाती तो मामला जमादार फतेह मुहम्मद के सामने पेश होता और वह उनके कामों और फेरों के मुताबिक अपना फैसला दे देता.

और इस सारे कोलाहल को देखते-देखते अस्सी वर्ष का बूढ़ा हुसैन 'बवारीज' थकता नहीं था. फतेह मुहम्मद की तेज नजरों का अंदाज लेते-लेते वह भूतकाल में खो जाता. कहते हैं कि कच्छ के चारों कोनों पर जमादार के नुकीले भाले गढ़े हुए थे. जिनमें से एक इस किनारे पर था. अपनी इस सीमा के बीच उसने एक जबरदस्त समुद्री काफिला तैयार कर रखा था जिसने तीन-तीन बार अंग्रेजी आरमारों के हमलों को नाकाम कर दिया था. ओखा में देवचंद ने जब समुद्री डाकुओं का दल खड़ा किया तब जमादार की फौज ने ही उसे वहां से भगाया था और कच्छीगढ़ और वालंभा के किनारे उसका बेड़ा यों स्वच्छंद हो कर सागर में विचरने लगा था जैसे कोई मगरमच्छ डोल रहा हो. एक बार फिर बेफिकर हो मल्लाह अपने व्यापारी मार्गों पर आने-जाने लगे थे और समुद्र मस्ती से गूंज उठा था.

'बवारीज' हुसैन! जिसके सिर पर सरकारी इनाम घोषित था. इनाम की घोषणा का पहला परवाना जब फतेह मुहम्मद के पास आया तब उसने किसीकी परवाह किये बिना हुसैन को जीवनदान दे दिया था. पिछले पचास वर्षों से समुद्र के खारे पानी से मुहब्बत करने वाले हुसैन के हृदय पर नमक की तहें जम चुकी थीं. उसने सच्चे मन से सागर के दर्शन किये थे और कच्छ के इस वजीर फतेह मुहम्मद से दोस्ती की थी. औरत के वेश में जब वह निकट के टापू पर चढ़ गया और दिन में ही उसे लूट लाया तो सोती हुई सरकार ने एक बार फिर घोषित इनाम की रकम बढ़ा दी थी. उधर फतेह मुहम्मद के पास सरकारी आदेश आते रहते और इधर हुसैन अपनी पगड़ी की कलंगी को उठाये निश्चित मांडवी के किनारे और भुज के बाजार में लहराता रहता.

आखिर कंपनी सरकार ने उसे ऊंची पदवी से विभूषित किया—"मासा मेंकार बवारीज."

वृद्ध हुसैन को पुरानी यादें बड़ी मीठी लगीं. जमादार की स्वप्नों जैसी बातों को वह उन दिनों हंसी में उड़ा देता था, पर आज सारे सागर-तट पर मचे हुए कोलाहल में उसे अपना स्वप्न साकार होता हुआ दिखाई दे रहा था. समुद्र का किनारा जिंदा हो उठा था. यह उसकी मेहनत का फल था कि कच्छ के मछुए-मल्लाह वेफिकरी से दूसरे किनारे आ-जा सकते थे.

उमियाशंकर अजाणी (जन्म: २० नवंबर, १९३४, भुज, कच्छ) को साहित्य और इतिहास दोनों के प्रति समान रुचि है. उन्होंने प्रागेतिहासिक संस्कृति को रूपायित किया है. इतिहास-कथाओं के अतिरिक्त इन्होंने सामाजिक कहानियां भी लिखी हैं, जिनमें से कुछ को पुरस्कार भी प्राप्त हुए हैं.

'जमादार जीता रहे' के नारों से उठते हुए मीठे स्वरों को पीता हुआ हुसैन सांझ की उतरती बेला में अपने घर की तरफ घूमा. उसके थके हुए शरीर में अभी भी सागर का नशा था, जीवन जीने की इच्छा थी. रतनचंद भाटिया और देवा बवारीज जैसे ढीठ छोकरों से आज भी दो-दो हाथ करने की हिम्मत थी. कच्छ के साहस और शौर्य की मूर्ति समादेव झुंझार, देवा घाघल और बलसाड़ के अमोलख देसाई जैसे बहादुरों से दोस्ती करने की आज भी आकांक्षा थी.

एक तरफ अरब के रेगिस्तान की ओर से आती हुई रेती भरी गरम हवा और दूसरी तरफ सागर की भीगी मिट्टी की सोंधी सुगंध, उसके साथ खेल रही थी. उसने एक बार फिर मुड़ कर समुद्र की तरफ देखा. दूर समुद्र के देवता रावल पीर की ध्वजा लहरा रही थी. सागर की लहरें मौज में उछालें ले रही थीं. अस्सी वर्ष की उसकी सागर से प्रीत थी. अभी जब वह दस वर्ष का ही था, काका ने उसके हाथों में पतवार संभाल दी थी. चिकने और ऊंचे स्तंभ पर ठेठ ऊपर तक चढ़ जाना और गरम हवा के तूफानों के बीच भी पलक झपकते रस्सी को बांध या खोल आना. . .स्तंभ की ऊंचाई को देख वह कांप उठा था और दूसरे ही पल उसकी पीठ पर जल्लाद के कोड़े के निशान उभर आये थे. उसने काका को आवाज दी थी. पर सुनने वाला वहां कौन था. उसने अपने जीवन की आशा त्याग दी थी... और फिर खारे पानी का सत्य उसकी समझ में ठीक-ठीक आ गया. पीने के पानी के भंडार, पतवारों, लंगरों के बीच उसकी काया रम गयी और पांच हाथ के शरीर में डेढ़ हाथ की चौड़ी छाती, सागर में उठती भंवरों जैसी चमकती आंखों, मुंह पर फूटती मसों और लोहे जैसी भुजाओं वाले हुसैन की काया समुद्र के साथ अटपटे खेल खेलने लगी. फिर तो मानो सागर की बूंद-बूंद पर उसका नाम लिख गया हो. कच्छ की खाड़ी से अफ्रीका के दूसरे किनारे तक वह सागर में हिलोरें लेता और कई-कई बार तो ठेठ नौरोज के ३२० वें दिन वापस लौटता. आखिर मौसम की मार से थके शरीर को देख कर लखी को ही हठ करना पड़ा था कि अब एक भी फेरा नहीं करने दूंगी.

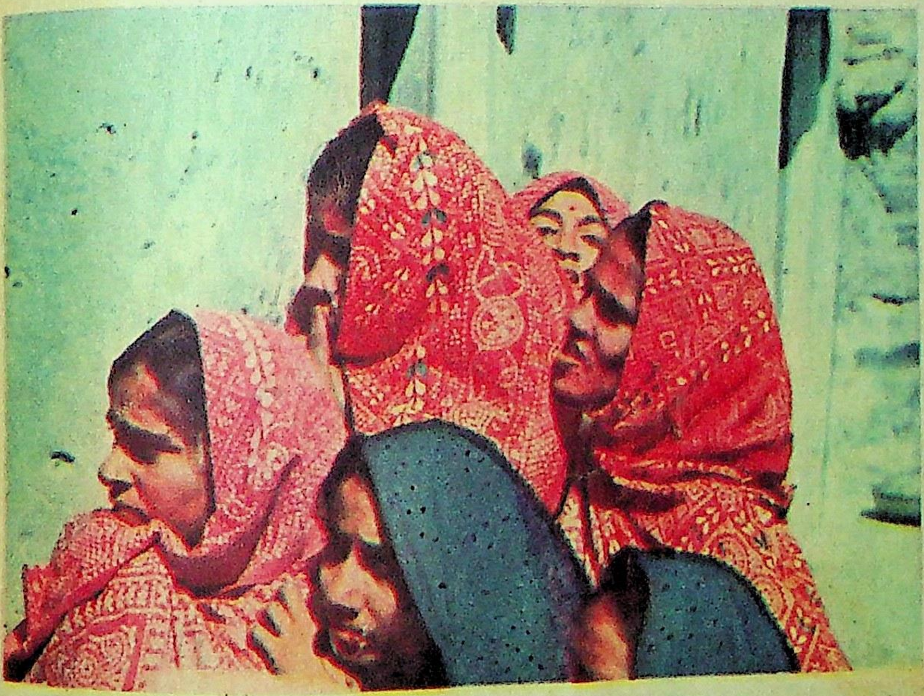

पर फेरा नहीं करने देने का मतलब यह तो नहीं था कि अस्सी-अस्सी वर्ष की सागर की प्रीति से रंगीन हुई जिंदगी को वह भूल जाये, सागर के मंदिर का मार्ग वह छोड़ दे! उसके जीवन में भी सागर के भाटे जैसा उतार आ सकता है, यह वह मानने को तैयार ही नहीं था. अपने थकते शरीर पर लखी की यों मीठी नजर पड़ते देख वह प्रफुल्लित हो उठा.

* *

समुद्र में ज्वार चढ़ आता तो मछुए-मल्लाहों के टेढ़ी-सीधी पड़ी हुई नावों को दूर समुद्र तक ढकेल देने के शोर से आकाश गूंज उठता. तेज हवा के झोंकों को झेलती हुई उनकी फटी कमीजें नावों के पालों के समान फरफरा उठतीं. सागर के प्रति उनका प्रेम उमड़ पड़ता और तीन-तीन महीनों तक अपनी पत्नियों के साथ उठने-बैठने और प्रीतभरी बातों को भूल कर वे सागर

पहाड़ पर जाने में आप जितना ख़र्च करेंगे
उतने में ही विदेश में छुट्टियाँ बिताइये

मॉरिशस.

अब विदेश में छुट्टियाँ बिताना पहले से कहीं आसान है. और सच पूछिये तो इसका खर्च भारत के किसी भी अच्छे पहाड़ी स्थान पर जाने के मुकाबले कम ही पड़ता है.

स्वप्नमधुर छुट्टियाँ
विशाल फूलों और ख़ूबसूरत झरनों से शोभित तथा ज़िन्दगी की मस्ती बिखेरता एक स्वप्निल टापू है मॉरिशस.

यहाँ आप पायेंगे जगप्रसिद्ध ख़ूबसूरत समुद्रतट. यहाँ धूप-स्नान का मज़ा लीजिये, या जी भर कर तैरिये या फिर बिकनी में सजी सुंदरियों को घूमते हुए देखिए. दोपहर बाद ख़रीदी कीजिये और शाम कैसिनो में बिताइये. और अगर आप खेल-कूद के रसिया हैं तो नौका विहार कीजिये, वाटर स्कीइंग कीजिये, गोल्फ़ खेलिये या फिर मछली मारने का आनंद उठाइये और संसार की सबसे बड़ी ब्लू मार्लिन मछली का शिकार कीजिये. वैसे आप घुड़दौड़ में शामिल हो सकते हैं, हिरनों के शिकार पर जा सकते हैं, या डीप सी डाइविंग का मज़ा ले सकते हैं. लेकिन यह इस बात पर निर्भर है कि आपने छुट्टियाँ बिताने के लिये साल का कौन सा समय चुना है.

कम से कम खानापूरी
पिछले तीन वर्षों के बीच अगर आप विदेश जा चुके हैं तो भी मॉरिशस जाने के लिये आपको न तो पी फ़ॉर्म की जरूरत पड़ती है और न पासपोर्ट एन्डोर्समेंट या वीसा की. खर्च के लिये आप बिना रिज़र्व बैंक गये अपने साथ १०० डॉलर तक ले सकते हैं. सारी कागजी कार्रवाई एयर-इंडिया ख़ुद आपके लिये पूरी कर देती है.

और ख़र्च इतना कम कि सहसा विश्वास नहीं हो
मॉरिशस में छुट्टियाँ बिताते समय आप अत्यधिक आरामदायक होटलों में ठहरिये या पूरा कॉटेज किराये पर लीजिये — फिर भी दूसरी जगह के अच्छे शानदार होटलों के मुक़ाबले किराया कम ही पड़ता है.

और अगर आप चार या अधिक यात्रियों की मंडली बनाकर जायें तो एयर-इंडिया आपको ज़ोरदार छूट देने को तैयार है. एयर-इंडिया के ख़ास एक्सकर्शन फ़ेयर के अन्तर्गत एक यात्री को भी भारी छूट मिल सकती है. या फिर संपूर्ण ख़र्च सहित दिलचस्प मंडली में छुट्टियाँ बिताने का सुयोग बैठाने के लिये अपने ट्रैवल एजेन्ट को कहिये.

एयर-इंडिया
सप्ताह में दो बार
सीधे मॉरिशस

AI-7641

से प्रीत जोड़ने चल देते और यह बात भी कि नौ महीनों तक अपनी पत्नियों से मिलना नहीं हो सकेगा, उन्हें रोक नहीं पातीं. उन्हें लगने लगता कि सागर में खारा पानी नहीं, मानो अमृत भरा हो, और वे उसे रौंदने निकल पड़ते.

विचारों में मग्न हुसैन अपने घर की ओर चलता जा रहा था. पश्चिम दिशा में क्षितिज का तारा खूब ऊंचे चढ़ आया था. अंधकार छा चुका था.

झोपड़ी के दरवाजे के बीच खड़ी लखी अंधेरे में आंखें गड़ाए हुए अपने पति हुसैन की राह जोह रही थी. बीस वर्ष का उसका जवान पुत्र सागर के अटपटे खेलों को खेलने गया हुआ था और उसका बाप यों पागल हुआ घूमता-फिरता था. उसकी जान की तो मानो दोनों में से किसीको भी परवाह नहीं थी. अंडी के तेल के दिये के हलके प्रकाश से बनी अपनी लंबी छाया को देखती हुई वह अपने पति के खयालों में खोयी हुई थी. सागर की लौटती हुई तरंगें अब उसे आनंद नहीं देती थीं ...किनारे पर उठते शोर से वह घबरा उठती थी ...संभाल वेली संभाल....वांइयां जुसां वाइयां ...के उठते स्वर मानो अब उसे ही संभलने की चेतावनी देने लगे थे.

अपनी तीन चौथाई जिंदगी वह सागर की तरफ आंखें गड़ाये हुए गुजार चुकी थी. इस विचार से ही उसका मन अब कांप उठा था.

अचानक किसी के निश्वास भरे हलके कदमों की आहट उसके कानों में पड़ी. उसकी नजर दूर तक घूम गयी.

दूर से आवाज आयी—हुसैन मां!

—कौन है?

—मैं रतन बाई ...हुसैन भाई नहीं हैं !

—क्यों ? ...आते ही होंगे ...पर अगर उस किनारे की तरफ निकल गये हुए तो फिर तो भरोसा ही क्या, रतन बाई ... !

रतनबाई! उसके पति के दुश्मन की घरवाली के विचारों में भटकती लखी की आंखों के सामने वर्षों पहले का समय घूम गया—जीवन ठक्कर! दुश्मन से टक्कर लेने को तैयार किसी जंगली जानवर की जलती हुई आंखों जैसी आंखें, भैंसे जैसा विकराल चेहरा, और उसके पति का जनम-जनम का दुश्मन——जीवन ठक्कर! और आज उसकी घरवाली उसके पति को पूछ रही है! जिंदे लोगों को गुलाम बना कर बेचना, पकड़ना और संभालना जीवन ठक्कर का व्यापार था और उन गुलामों को छुड़ाना, उन्हें लाद कर समुद्र की छाती पर बहने वाले जहाजों को लूट लेना और गुलामों को स्वतंत्र कर देना, हुसैन का धंधा था. डाकुओं के बीच हुसैन की ख्याति 'दूज के चांद' के रूप में फैल चुकी थी ...इस हुसैन ने, कच्छ की खाड़ी से अरब सागर होते हुए हिंद महासागर तक के सभी हिंदू-मुसलमानों और अंग्रेज-फ्रांसीसियों के दोस्त जीवन ठक्कर के व्यापार का सत्यानाश कर दिया था. पश्चिम घराने के दो-दो हजार मछुए जब विदेशी बरछों से गुलामों को टोंचा करते तब यह जीवन ठक्कर उन परदेसियों की सेवा-टहल किया करता था. भूतकाल की बातों को समय ने भुला दिया था ...आज तो जीवन ठक्कर दाने-दाने के लिए भी मोहताज हो चुका था. पर हुसैन का वह पहले जैसा ही दुश्मन था. उसकी पत्नी हुसैन को क्यों पूछ रही है, यह लखी की समझ में नहीं आ पाया. उसने पूछा— किस काम से आयी है, रतनबाई ?”

—पूछ मत मेरी बहन, कहती हुई रतनबाई लखी के पैरों पर गिर पड़ी. आंखें पोंछते हुए, सुबकियां लेते हुए वह बोली— आज तीन दिन से ...

अपने आंगन में किसीकी सुबकियां सुन कर धीमी चाल से चला आता हुसैन अचानक दौड़ पड़ा. उसने देखा कि कोई स्त्री लखी के पैर पकड़ कर रो रही है.

—कौन है? हुसैन ने पूछा.

—हुसैन, हुसैन. कहती हुई रतनबाई आगे बढ़ी.

—यह रतन है, भा जीवन की बहू लखी ने सारी बात साफ की.

—हां, पहचाना, हुसैन की आवाज एकदम ठंडी थी.

सुबकियां भरती हुई रतन ने हुसैन के चेहरे की तरफ देखा. वहां न हंसी थी न रंज, न आनंद था, न शोक. अफाट समुद्र की सीमा की तरफ वह टकटकी लगाये देख रहा था. समुद्र में आये ज्वार का कोलाहल अभी तक उसके कानों में समाया हुआ था. सागर में ज्वार आते ही कुछ नावें दूसरे किनारे के लिए कूच करने वाली थी. उठते कोलाहल से पता चल रहा था कि तैयारियां पूरी हो चुकी होंगी ...और यहां रतनबाई उसके सामने खड़ी थी.

—पुरानी बातें भूल जा, हुसैन भा ...रतन ने कुछ कहने के प्रयत्न में अपनी आंखें उसके चेहरे पर गड़ायीं.

पर हुसैन तो मानो कुछ सुन ही नहीं रहा था.

रुआंसी आवाज में रतन बोली—मेरी बेटी, हुसैन भा!

—तेरी बेटी! कौन है तेरी बेटी? हुसैन की वाणी में रोष भर आया था.

—उसे बोलने दे हुसैन, लखी ने उसे टोका और रतन की तरफ मुखातिब हुई, जरा भी घबरा मत बहन. बता क्या हुआ है तेरी बेटी को ?”

—बेटी मेरे पेट की भले ही न हो, पर हुसैन भा, वह मेरी है. सागर के दूसरे किनारे पर वह मुझे मिली थी और मैंने उसे अपनी बेटी ही माना है. आज सत्रह वर्षों से मैं उस रेवी की मां हूं...”

हुसैन अभी तक बेन-सा था, मानो कुछ सुन ही नहीं रहा हो.

—तू आगे बोल, रतन, लखी ने कहा.

—बोलूं क्या. हुसैन भा सुनें तब न ! मेरी वह बेटी आज तीन दिन से गायब है. उसका कोई पता नहीं है. मुझे उसका पता चाहिए.

—तुझे उसका पता चाहिए! हुसैन बोला. रतन बाई, समुद्र की बूंद-बूंद तेरे पति की आवाज से थर्राती है, और तू कहती है कि तुझे अपनी बेटी . . .

—बस कर हुसैन! लखी चीख पड़ी.

और पलभर रतनबाई उन दोनों को देखती रह गयी.

—हुसैन भा, खबर है कि लड़की को डाकू उठा ले गये हैं, उसे तेरे सिवा और कोई नहीं छुड़ा सकता मेरे बाप !

—रतनबाई, जा शांति से नींद ले, हुसैन तेरी बेटी का पता ढूंढ़ लायेगा . . . जा . . . लखी बोली.

और हुसैन फटी-फटी आंखों से लखी की तरफ देखता रह गया कि वह क्या कह रही है.

रतन लखी के पैरों पर गिर पड़ी, रुंधे गले से वह कुछ बोल नहीं पा रही थी. घर से चली थी, तब उसे जीवन के साथ झगड़ा करना पड़ गया था. जीवन ने स्वीकार किया था कि हुसैन के सिवाय उसे कोई नहीं बचा सकता ! पर हुसैन उसका दुश्मन था . . . जनम-जनम का बैरी था . . .

रतन लौटी तो बेटी की उसे जरा भी चिंता नहीं हो रही थी.

घर की तरफ लौटती रतन की पीठ की तरफ ताकती हुसैन की आंखों से चिनगारियां-सी निकल रही थीं. उसके नन्हें से दिल में से निकल कर शिराओं में जाता हुआ गरम खून उसकी नस-नस को जलाये दे रहा था.

—धीरज रख मेरे मालिक मैंने भी तेरे साथ पचास वर्ष गुजारे हैं . . .

—पर . . .

—क्या सागर का सत तेरे शरीर से निकल चुका है हुसैन? तू यह कहना चाहता है न कि वह दुश्मन की बेटी है पर . . . पर मैंने उससे 'हां' कहा है, क्योंकि मुझे भरोसा था कि मेरे रवैये ने जब सारी जिंदगी ही गुलामों को दुश्मनों के पंजों से छुड़ाने में लगा दी तो वह एक लड़की को मात्र दुश्मन की बेटी होने के कारण नहीं छोड़ देगा. अरे, दुश्मन तो जीवन ठक्कर है न! उसकी पत्नी या बेटी तो नहीं! . . .

लखी के ऊपर आया हुआ हुसैन का रोष पिघल गया. उसने मजाक में ही उसे जुहार की और उसके मुंह की तरफ देखा. फिर हंसता-हंसता बाहर निकल गया.

* *

आधी रात को नाविकों और मल्लाहों के होहल्ले से किनारा गूंज उठा. हुसैन के साथी 'लखमी पसा' को तैयार करने लगे. पतवारें संभाल ली गयीं. रस्से खोले बांधे जाने लगे.

हुसैन तब तक कस्टम की चुंगी पर हो आया. आते-आते लखी को आखिरी जुहार भी करता आया था. 'लखमी पसा' का साज सज गया था. उसने लकड़ी की एक बल्ली का सहारा ले 'लखमी पसा' को जरा टेढ़ा किया. पाल में भरी हुई हवा ने उसे मदद की 'लखमी पसा' एक ओर को झुक गया. फिर साथियों ने हाथ लगाया और धक्का देते उसे वे सागर में ढकेलते चले गये.

तड़का होने लगा था. तारे बुझने लगे तो हुसैन ने लंगर उठाने की आवाज लगाई.

कड़ . . . कन्र्र् . . . कड्ड्ड् . . . कर् . . . कर् सूना किनारा गूंज उठा. हुसैन ने कमान संभाली और 'लखमी-पसा' के डेक पर इकट्ठे उसके साथियों ने लहरों की टक्कर की आवाज से आवाज मिलाते हुए चारों किनारों को हिला दिया. रावलपीर की जय के नारे लगे, नारियल फोड़े गये और 'लखमी पसा' कुलाचें भरने लगा.

खाड़ी में हिचकोले लेते-लेते वह महासागर में आ पहुंचा और मानो उसकी छाती पर नाचने लगा. उगते सूर्य की सुनहरी किरणें पानी पर गिरने लगी थीं और 'लखमी पसा' उनके प्रकाश में दमकने लगा था.

'लखमी पसा' यों आप ही भागता जा रहा था जैसे पीछे से हवा उसे ठेल रही हो. हुसैन की नजरें सागर की सीमा पर लगी हुई थीं. उसके साथी उसे उत्साह दिला रहे थे—

—संभाल बेली संभाल! डामचीयो मासा! कंधे कंधे . . . संभाल !"लखमी पसा' में तीर की सी तेजी आ गयी थी. मछुओं का गीत आगे बढ़ा— ये कुवाथम नेत्रे त्रिकोण सढ़ वहाणवाणो दसाजे मडुई . . . ने कोटीयो कच्छजो ! समाल बेली . . . !"

क्षितिज पर लगी नजरों के बीच अचानक एक नाव आ समायी. उस पर फहराती ध्वजा कह रही थी कि वह कुछ सामान ले कर फेरी करने निकली है. 'लखमी पसा' ने फिर भी उसका पीछा किया.

उस नाव के कप्तान ने अपना पीछा करती हुई इस नाव को परखा. उस पर से उठ रहे गाने के स्वरों को जांचा. और फिर उसके कान में आवाज पड़ी—गुलामों को कहां लिये जा रहा है, साले?

मेरी नाव में गुलाम, एक बार तो मल्लाहों का मुखिया चौंका. दूसरे ही क्षण उसने लंगर डाल दिया और घबराते हुए यात्रियों को हिम्मत बंधाने लगा—अरे, यह तो भा हुसैन की नाव है !

हुसैन उस नाव पर उतर गया. ऊपर-नीचे सारी नाव उसने देख डाली छोटे-मोटे सामान के अलावा उसमें और कुछ भी नहीं था.

'लखमी पसा' ने मुंह फेरा और चल दिया.

पानी में उठने वाली भंवरों के समान आसमान से अंधकार उतर कर सागर के पानी को चूमने लगा. लहरों की मौज भरी आवाजें मस्ती का आलम बिखेरने लगीं. अंधकार गहराता गया और पानी को काटता हुआ 'लखमी पसा' पानी में पड़ते हुए अपने ही प्रतिबिंब से खेलता हुआ आगे बढ़ने लगा.

सारी रात निकल गयी. तीसरे दिन बड़े सबेरे मल्लाहों की पहली आवाज ने हुसैन को आगाह किया सागर में दूर कोई परदेसी जहाज दिखाई दे रहा था. पांच पालों का वह 'फत्तेमारी' जहाज तेज गति से भाग रहा था. हुसैन ने 'लखमी पसा' की गति बढ़ाई नीचे हल में बंधी हुई लोहे की सांकले यों हिल उठी मानो कोई जलचर पीछा कर रहा हो.

सारा दिन और फिर सारी रात बीत गयी. अगली सुबह वह उसके बहुत पास पहुंच गया. उस जहाज की गति बढ़ाने का असफल प्रयास करते देख हुसैन ने उन्हें ललकारा. मल्लाहों ने उसका साथ दिया और जहाज की चाल बदली. जहाज पर से एक गोला छूटा और पानी में जा गिरा. दूसरा गोला छूटा. एक चक्कर लगा कर हुसैन ने 'लखमी पसा' को बायीं ओर झुका दिया और फिर वह यों आगे पीछे घूमने लगा जैसे सातिया (स्वस्तिक) पूर रहा हो.

सौ हाथ का एक बड़ा-सा चक्कर लगा कर 'लखमी-पसा' उस परदेसी जहाज के सहारे जा लगा. और फिर हुसैन ने निशाना ताका तो एक ही धड़ाके से सारा जहाज कांप उठा. दूसरे ही पल में उसका स्तंभ टूट कर गिर पड़ा.

पर जहाज रुका नहीं. वह भागने की बेकार कोशिश करता रहा. हुसैन समझ गया कि वह ऐसे नहीं रुकेगा. उसकी कमान शैतान फिरंगियों के हाथ में थी न! उसने अपना जहाज बायीं ओर घुमाया और एक निशाना और दागा.

अचानक मौत जैसी चीख उठी और सागर में समा गयी. जहाज टेढ़ा हो गया था और समुद्र का पानी उसमें घुसने लगा था. उसे डूबने से बचाने के लिए हुसैन ने रस्सों के बड़े-बड़े फंदे फेंके और उसे जकड़ लिया. जहाज के 'डेक' पर कितनी ही लाशें फड़फड़ा रही थीं. खून ही खून फैल रहा था.

हुसैन ने छलांग लगायी और उस जहाज पर कूद गया. खून से रंगे जहाज को देख कर एक बार तो वह कांप गया, पर दूसरे ही क्षण उसके खंभे को संभाल लिया वह जहाज के गमारे (गर्भ गृह) में उतर गया गुलाब की कली जैसी दो मासूम लड़कियां फर्श पर पड़ी थीं. उनके चेहरे पर घड़ी भर पहले की लाचारी के चिन्ह थे, वेदना थी. माथे पर जख्म था, शरीर पर मार के निशान थे, गालों पर आंसू सूख चुके थे... घड़ी भर पहले ही गुलाब की खिलती हुई कली जैसी रेवी अत्याचार का भोग बन चुकी थी. समुद्र के शैतान उसकी जिंदगी से खेल चुके थे. हुसैन का कठोर दिल भी विलाप कर उठा. सारा सागर ही मानो रो पड़ा.

इतने में इब्राहीम की आवाज आयी. हुसैन ने उस तरफ देखा. एक हाथ में कागजातों भरी एक छोटी-सी थैली और दूसरे हाथ से एक फिरंगी का कान पकड़े वह पीछे खड़ा था. फिरंगी को सामने देख हुसैन की आंखों में खून उतर आया और उसने उसके गाल पर एक चांटा जमा दिया.

—कागजातों भरी यह थैली मिली है. इसमें तरह-तरह की हुंडियां भरी हुई हैं. जीवन भा का लिखा हुआ एक कागज भी है...

—जीवन भा का—

—हां जीवन ने रेवी को बेच दिया है!

—क्या? ...

—हां, पांच सौ कौड़ियों में... कुल पांच सौ में...

चार-छह पंक्तियों के उस कागज को देख कर उसका पत्थर-सा कलेजा भी चूर-चूर हो गया. उसने नाव की दीवार पकड़ ली—उसके साथियों ने उसे पकड़ लिया पर हुसैन बेहोश हो चुका था.

फिरंगियों के जहाज को रोके हुए रस्सों को काट दिया गया और वह सागर के पेट में समा गया. 'लखमी-पसा' ने दिशा बदली और वापसी सफर पर चल दिया. जहाज के किनारे पर से सागर के पानी में न जाने क्या ताकता हुआ हुसैन मुर्दे के समान खड़ा था.

* *

अगली सुबह लखमी पसा ने लंगर डाला. कागज का टुकड़ा संभाले हुसैन नीचे उतरा. सागर किनारे की रेत पर कदम गड़ाते हुए वह रतनबाई के घर की तरफ बढ़ा.

आंगन में पैर रखते ही उसने रतनबाई को आवाज मारी.

सामने ही बैठी रतनबाई ने हुसैन को देखा तो छलांग लगाती हुई उसके निकट जा पहुंची—हुसैन भा, मेरा बाप...

—रतनबाई, मैं रेवी का पता ले आया हूं.

एक पल, केवल एक पल के लिए वातावरण सुगंधित हो उठा. मीठी कल्पनाओं में खोये बैठे जीवन ने लखमी पसा के लौट आने की खबर सुनी तो उसने खिड़की में कान लगा दिये.

—कहां है, कहां है, मेरे बाप... मेरी बेटी, मेरी रेवी... और हर्ष के अतिरेक में वह हुसैन की तरफ एक टक देखती रह गयी.

—यह रही, कह कर हुसैन ने अपनी जेब से कागज का वह टुकड़ा निकाला और रतनबाई की तरफ बढ़ा दिया. जीवन की आंखें अंधेरे में न जाने क्या-क्या कल्पनाएं करने लगीं...

—हुसैन भा... रतनबाई ने कातर हो कर कहा. जीवन को लगा कि रतनबाई हुसैन का आभार मान रही है...

—रतनबाई तुम पढ़ सकती हो? नहीं, तो इसमें लिखा है, जीवन भा ने लिखा है... "मैंने रेवी को पांच सौ कौड़ियों में बेच दिया है..." और कागज का टुकड़ा उसके हाथ में थमा कर हुसैन बाहर निकल गया. आंगन के बाहर कदम रखते ही उसे ऐसी आवाज आयी जैसे कोई पीछे गिर पड़ा हो.

पिछले कमरे में छिपा बैठा जीवन फटी-फटी आंखों से अंधेरे में देख रहा था... उसकी युक्ति नाकाम रही थी. हुसैन बच गया था...! और..

धरती पर अंधेरा छाने लगा था... लड़की की मां जमीन पर सिर पटक-पटक कर रो रही थी. □□□

(अनुवाद : महेंद्र झा)

कच्छ की दो लोककथाएं

मामैदेव

• मूलराज रूपारेल

जूनागढ़ के रा नवघण के साथ चौपड़ खेलते-खेलते मामैदेव उठ खड़े हुए तो रा ने पूछा—क्यों-क्यों, देव, उठ क्यों खड़े हुए?

—अब खेल में मन नहीं लग रहा है.

—क्यों, मुझे बताने में आपत्ति है?

—आपत्ति तो नहीं, किंतु मैं बताना नहीं चाहता था. मेरा मारनेवाला आज आपके वंश में जन्म ले चुका है.

—ऐसा कैसे हो सकता है...

—होनहार हो कर ही रहता है.

* *

रा नवघण के समा वंश में जन्मने वाले जामनंदा के हाथ स्वयं की मौत होनेवाली है, यह बात देव को कई वर्ष पहले ही मालूम थी. अगला दिन उनके जीवन का आखिरी दिन था. किंतु इसके बावजूद जामनंदा का आज तक का व्यवहार उनके साथ इतना भला रहता आया था कि उन्हें स्वयं पर ही संदेह होने लगा था.

वर्षों पहले सिंध के रूमशाल नाम के गांव में उनके पूर्वज रहते थे. विद्वान, शास्त्रपारंगत और त्रिकालदर्शी की ख्याति पाये हुए उनके परदादा के पांच पुत्र थे. उनकी मृत्यु के बाद लड़-झगड़ कर उन्होंने पिता की इज्जत को धूल में मिला दिया. पांचों भाइयों में जो सबसे छोटा था, वह समझदार था. पिता द्वारा जीवन भर तैयार किये गये त्रिकालदर्शी ग्रंथों को ले कर वह निकल भागा, अन्य भाई उसकी जान के प्यासे हो उसके पीछे लग गये.

नगरसमे में प्रवेश करते ही जो घर सामने पड़ा, उसने उसकी सांकल खटखटायी. घर मेघवाण हरिजन का था जिसमें एक वृद्ध मेघवाण अपनी युवा बेटी के साथ रहा करता था. जल्दी-जल्दी में अपनी बात कह कर उसने आश्रय लिया.

इतने में ही उसके भाई भी आ पहुंचे. होशियारी से काम ले कर मेघवाण ने अपनी बेटी को तुरंत भीतर के कमरे में धकेल कर बैठक का दरवाजा खोला. दरवाजा खुलते ही एक भाई ने पूछा कि यहां कोई आया था तो उसने कहा— भीतर कमरे में मेरा दामाद तथा बेटी सो रहे हैं. यह बात हो ही रही थी कि तभी भीतर से मेघवाण की बेटी ने आवाज दी— कौन है जो इस बात वक्त शोर मचा रहा है, क्या काम है? ये तो सो गये हैं.

बाप-बेटी की बात सुनकर चारों भाई चुपचाप लौट गये.

उसके बाद उस ब्राह्मण ने उस कन्या से ब्याह कर लिया. धर्मध्यान, क्रियाकांड में व्यस्त रहनेवाला वह जिज्ञासु पिता द्वारा रचित सभी ग्रंथों का अध्ययन करता रहा. कुछ समय उपरांत उसे एक पुत्र रत्न हुआ. यह पुत्र था मामैदेव का दादा मातंग देव.

मातंगदेव का पुत्र हुआ माते. इसका पुत्र हुआ स्वयं मामै... तो उत्तराधिकार में मिली यह विद्या कभी गलत साबित नहीं हुई थी. कल क्या होगा....

किंतु दूसरे दिन जो होना था, हो कर रहा. मामैदेव को निश्चय था कि उसकी मृत्यु आज ही होगी और वह भी जामनंदा के हाथों अतएव वह स्वयं उससे मिलने निकल पड़ा.

जाम ने उसका पूरा-पूरा सत्कार कर के बैठाया. बातों के उपरांत जामनंदा ने कहा—मामा, आपने तो कई लोगों को चमत्कार दिखलाये हैं, मुझे भी दिखलाइए न?

मामैदेव को लगा कि कहीं जाम इसी बहाने तो उसे मार नहीं डालना चाहता अतएव बोले— क्या देखना चाहते हो, बोलो?

—मैं तो जवान व्यक्ति हूं. कोई ऐसा चमत्कार दिखलाइए कि तबीयत फड़क उठे.

—तो, मेरे पैर पर मस्तक रख आंखें मींच लो.

जामनंदा ने वैसा ही किया तो कल्पना से परे एक दृश्य उसकी आंखों के सामने घूमने लगा.... दिल्ली के बादशाह के महल के विशाल स्नानागार का दृश्य.... उसमें स्नान करती हुई इंद्रलोक की असप्राओं जैसी उसकी बेगमें. कब तक वह यह दृश्य देखता रहा, उसे होश नहीं था. होश तब आया जब मामा ने अपना पैर पीछे खींच लिया.

दूसरे ही क्षण उसके मन में एक विचार कौंध आया. कि मामा ने आज वस्त्ररहित बेगमों को मुझे दिखलाया, कल मेरी रानियों को यह दूसरों को दिखलाये नहीं, इसका क्या भरोसा!

इतने में ही उसका सेवक आ पहुंचा जो उसकी तलवार पर धार कराने ले गया था. तलवार हाथ में ले धार का निरीक्षण करते-करते पलक झपते ही उसने उसका एक भरपूर वार मामैदेव की गर्दन पर किया. मामैदेव का मस्तक धड़ से अलग हो गया, किंतु मामैदेव ने उठ कर उसे हाथ में ले लिया. और वह मस्तक बोलने लगा जिसका आशय था कि जामनंदा के बाद ही उसके कुल का विनाश हो जायेगा.

देव के कथनानुसार जाम अंधा हो गया और उसके बाद मुसलमानों ने सिंध पर कब्जा कर लिया. आज भी कच्छ के आंगड़ाई गांव के चंदारिमा टीले पर मामैदेव का स्थान है. चैत्र सुदी आठम को हरिजन भाई इसकी पूजा करते हैं.

□□□

(अनुवाद : अलका सिंह)

विश्वास का व्यापारी

• मूलराज रूपारेल

बहुत वर्षों पूर्व की बात नहीं है, एक व्यापारी था. नाम था मनजी ठक्कर. खाता-पीता, मस्त, सुखी जीवन था उसका. साल भर में काफी कुछ कमा लेता था. इन सब के बावजूद वह भक्त था तो, 'माधव राव' जी का. रोज सुबह-शाम मंदिर जाने का उसका नित्यप्रति नियम था. धंधा वह एक कुशल व्यापारी की तरह करता था किंतु उसे सच्ची शांति और सुख मिलता था मंदिर जा 'माधव राव' के दर्शन करने में.

मांगने आनेवालों में से कोई खाली हाथ न लौटे, और अगर किसी को जाना पड़ता था तो उसका हृदय दुख से चीत्कार कर उठता.

अकसर किसी मांगनेवाले को देख कर लोग मजाक में कहते, 'उधर जाओ, वह 'माधव राव' की पेढ़ी है, वहां मिलेगा. वह सुन कर हंस देता. 'हां भई, यह सब कुछ उन्हीं का तो है.' कोई खाना मांगने आता, कोई तन का वस्त्र या कोई तीर्थयात्रा के लिए राहखर्च.

एक बार व्यापार में उसे काफी नुकसान हुआ. उसने हिम्मत न हार कर दुबारा पूंजी लगा कर नुकसान पूरा करने का प्रयत्न किया किंतु दुर्भाग्य से उसे पुनः मार खानी पड़ी. उसने एक बार फिर 'माधवराव' जी का नाम ले दांव लगाया किंतु हर तरफ से उसका भाग्य खोटा था. मनुष्य पर से तो विश्वास उठ जाना स्वाभाविक है किंतु 'माधवराव' जी पर से भी उसका विश्वास उठ गया. उसने जो धंधा किया था, उसमें नुकासान के अवसर कम ही थे, किंतु दगा तो उसे उसके साझीदार ने दिया था.

उसने अपना घर बेच दिया, गहने बेच दिये, बखार बेच दी, दूकान बेच दी, जो कुछ था सब बेच डाला, एक-एक बर्तन तक. किंतु इसका उसे बिल्कुल रंज न था, रंज था तो इस बात का सब कुछ खत्म कर देने के बावजूद भी उस पर अभी एक कर्ज' बाकी रह गया था.

एक दिन भरे बाजार में लेनदारों ने उसकी इज्जत नीलाम की, कहे या सुने न जा सकने वाले शब्द कहे, कभी उसे कल्पना भी न थी, वैसा बर्ताव किया उसके साथ. किसी तरह उनसे छूट कर गिरता-पड़ता वह सीधे 'माधवराव' जी के मंदिर गया. चाहे जो हो जाये किंतु हर परिस्थिति में हिमालय की तरह अडिग विश्वास तथा पवित्र हृदय वाले इस आदमी के सब्र का बांध टूट चुका था.

वह माधवरावजी की मूर्ति के समक्ष हिचकियां ले-ले कर रो रहा था, उनके चरणों में माथा पटक रहा था, और कह रहा था— प्रभो, तुम्हारे ऊपर विश्वास रखने का यह परिणाम? ऐसा दिन दिखाया तुमने? मेरी यह स्थिति देख कर भी पसीजे नहीं आप?

मूर्ति में संवेदनशीलता होती, तब तो पसीजती. वह क्या जवाब देती?

धीरे-धीरे सबने उसका यह विलाप देखा, उन्हें लगा इस तरह से माथा पटक-पटक कर तो यह अपनी जान दे देगा या पागल हो जायेगा.

गांव के दो-चार अच्छे व्यापारियों ने उसके लेनदारों को खूब बुरा-भला कहा, जिनकी वजह से उसकी यह हालत हो गयी थी. वे उसके पास गये, उसे शांति से समझाया, हौसला दिया तथा घर वापस चलने के लिए मिन्नतें कीं. लोगों का कहना मान कर वह घर तो लौट आया किंतु रात भर उसे नींद नहीं आयी. बार-बार यह विचार उसे कोंचता, 'माधव राव' को जरा भी दया मुझ पर नहीं आयी?

अफसोस में किस तरह रात कट गयी और सुबह हो गयी, उसे पता भी न चला. दातुन करने वह बरांडे में लोटा लिये हुए बैठ गया. इतने में सामने से एक लेनदार आता हुआ दिखाई पड़ा. सुबह के वक्त लेनदार का मुंह देख कर वह घबड़ा उठा. उसे लगा, वह अभी चक्कर खा कर ढुलक जायेगा.

लेनदार ने उसके समीप आ कर पहले तो अपने उस बर्ताव की उससे माफी मांगी, फिर बोला— सेठजी, कर्ज की रकम आपने पूरी की पूरी भेज दी, इसके लिए आप को धन्यवाद, किंतु आपने ये पांच सिक्के घिसे हुए भेजे थे. इन्हें लाया हूं, कृपा कर आप इनके बदले दूसरे भिजवा देना.

फटी आंखों से वह यह सब देखता रह गया. यह क्या माजरा है उसकी समझ में ही नहीं आया. उसने तो किसी को रुपये भरने भेजा ही नहीं था फिर किसने. . . . ? 'माधवराव' जी ने तो नहीं. . . .

रातोंरात उसका यह कर्ज कौन चुका सकता है ? 'माधवराव' के सिवा. . . .

उसका संपूर्ण शरीर थरथराने लगा. खुशी से आंखें छलक आयीं. किसी के साथ उसने कोई बात न की, बस सरपट दौड़ पड़ा, 'माधवराव' जी के चरणों में.

आज मनजी ठक्कर नहीं हैं किंतु अंजार का वह 'माधवराव' जी का भव्य मंदिर वहीं है. उस मंदिर में दर्शनार्थ आये हुए भक्तगण अभी भी मनजी ठक्कर की चर्चा बड़े प्रेम तथा श्रद्धा से करते हैं. □□□

(अनुवाद : चित्रा मुद्गल)

१५ डाउन

वीनु केशवाणी

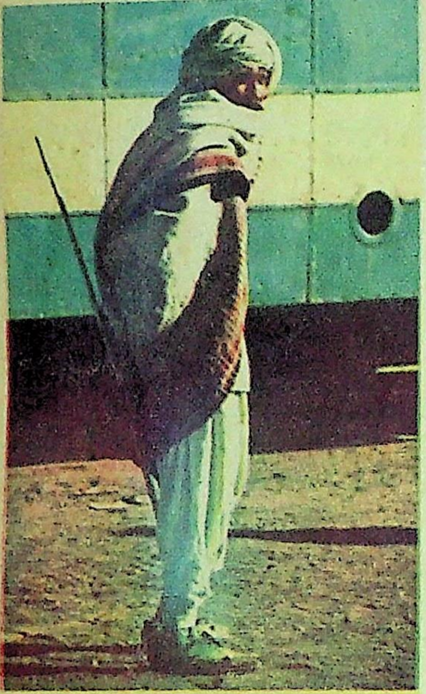

ट्रेन बांबे सेंट्रल से रवाना हुई थी. बंबई की सीमा इसने कब की पार कर ली है. बढ़ी जा रही है आगे. टू-टायर स्लीपर-कोच की टॉप बर्थ नंबर नौ पर किसी ने मेरा बिस्तर बिछा दिया था और वापसी की मेरी यह यात्रा शुरू हुई थी–– मुझे एकाएक याद आ जाता है.

बुखार फिर तेज हो रहा है. न जाने कितनी डिग्री तक पहुंच गया हो. थर्मामीटर है नहीं. न कोई कोमल और ममतामयी मां या बहन की बुखार-मापक हथेली है. नारी के इन्हीं दो रूपों की पहचान मुझे है. तीसरा रूप देखना अभी शेष है. . . . यह सब भी सहसा याद आ जाता है.

सिर दर्द से फटा जा रहा है. जिस्म तप रहा है. भूख भी कोई कम नहीं लगी हुई. शरीर की न जाने किन गहराइयों से, अजीबोगरीब लक्षण एकाएक सतह पर प्रकट हो रहे हैं. रवानगी से पहले सिडेटिव्स की दो गोलियां मैंने गटक ली थीं. उनका असर, उन विचित्र लक्षणों पर सवार हो कर उन्हें नाथने का प्रयास कर रहा है. पता ही नहीं चलता, कब मैंने नशे जैसी ऊंघ में डूबना शुरू कर दिया है.

आंखें जब दुबारा खुलती हैं, तो कंपार्टमेंट के सहयात्रियों को अचानक सामने पा कर मैं चौंक-सा जाता हूं. लगता है कि वह प्रभावशाली पुरुष, जिसकी उम्र साठ के आसपास होगी, अन्य यात्रियों का आकर्षण केंद्र बन चुका है–– बोल वही रहा है. शेष सब श्रोताजन हैं.

इच्छा न होने के बावजूद उठ कर बैठ जाता हूं. सिरहाने रखी बैग का जिप खोल कर भीतर से बुखार-शामक दो गोलियां ढूंढ़ निकालता हूं. वाटर-बैग से पानी ले कर दोनों गोलियां हलक से नीचे उतारता हूं और फिर से लंबा हो जाता हूं.

कान सहयात्रियों की बातों पर लगे तो हैं, किंतु कभी सुनता हूं और कभी कुछ भी नहीं सुनता. आंखें बंद हैं. मन हो रहा है, ट्रेन से बाहर की दुनिया में गुम जाऊं. ऊपर की बर्थ पर लेटे-लेटे बाहर का कुछ भी देखना संभव तो नहीं है; लेकिन फिर भी ऐसा लगता है, जैसे. . . . बाहर. . . . आकाश में बादल-ही-बादल हैं. यदि न होते, तो क्या सूरज निकलते का जरा भी आभास न मिलता? खेत. छलकते नदी-नाले. वृक्ष. आयल पैंटिंग जैसी हरियाली. इन सबके बीच से झांक-झांक कर थमी हुई झोपड़ियां . कुछ झोपड़ियां तो ऐसी कि समूची की समूची लताओं से ढकी हुई हों. केवल उनके दरवाजे पर लताओं की हरियाली नहीं है. ऐसे दरवाजों

वीनु केशवाणी (जन्म : ५ जुलाई, १९२९, भुज, कच्छ) ने मानव जीवन की प्रक्रिया को अलग-अलग पात्रों के माध्यम से जिया है और उसे अपने लेखन में ढाला है. ये उर्दू के भी अच्छे जानकार हैं और गजलों के प्रेमी हैं. चित्रकला में भी इनकी अच्छी पैठ है.

में अंधकार जम्हाई ले रहा है. इस तमाम सौंदर्य की पूर्वभूमिका स्वरूप जगह-जगह जल स्थिर हो गया है. जल के इन विस्तारों में कमल यों खिले हुए हैं, जैसे किसी कवायद की तैयारी में कतारबद्ध निकल पड़े हों. इतने ज्यादा कमल हैं कि गिने न जायें. यह सब और ऐसा ही और अब भी बहुत कुछ, ट्रेन के दोनों ओर से गुजर रहा होगा. . . .

यदि बुखार न होता, तो नीचे उतर कर, किसी खिड़की पर आसन जमा, मैं अवश्य देखता—बंबई पर घेरा डाल कर पड़े पहाड़ और टेकरियां. . . . उनसे लिपट रहे काले, सफेद महाकाय कबूतरों जैसे बादल-दल. . . . न जाने किन-किन दूरियों से, वायु-प्रवाहों में खिच कर जाये, वे बादल ऐसी तन्मयता से बैठे होंगे, जैसे अंडे से रहे हों. . . .

यह सब मैंने अवश्य देखा होता, किंतु . . . क्या देखने की जरूरत सचमुच है? यह सब तो मुझे पहले ही से ज्ञात है. इसी ट्रेन से न जाने कितनी बार यात्राएं कर चुका हूं. सब याद न हो जायेगा ?

दवा का नशा मन के विस्तार को वातावरण में से खींच कर समेट लेना चाहता है. ऊंघ बार-बार सतह पर आ जाती है, लेकिन मन है कि चंचलता छोड़ नहीं रहा. इधर भागता है, उधर भागता है. ऊंघ अपना काम करना चाहती है, मन अपना. . . .

* *

अनौपचारिक पार्टी में बैठा हूं. सब के सामने, मेज पर, शीतल पेय के गिलास पड़े हैं. हर गिलास में सबकी अपनी-अपनी पसंद के रंग हैं. सफेद, नारंगी, जामुनी, सुनहरे. . . .

दूर की कुर्सी पर बैठे वह मित्र महोदय, उनकी सफेद धोती, गले तक बंद सफेद शर्ट, सफेद कोट और मेज पर रोबदाब के साथ रखी उनकी वह काली टोपी— ये सब खासे अच्छे मूड में मालूम पड़ते हैं. शास्त्रीय संगीत के खजाने में से चुन-चुन कर 'खास चीजें' वह मित्र सुनाये जा रहे हैं. उनके सामने बैठे हुए सज्जन, तबले की गैर-मौजूदगी में भी, पूरी वफादारी के साथ डोल रहे हैं. उनके बगल का व्यक्ति बुत की तरह स्थिर बैठा है. दत्तचित्त हो कर सुन रहा है न! बुत के चेहरे पर आनंद का स्थायी भाव है. लेटेस्ट फैशन के हेयर-स्टाइल वाली सुंदर जवान लड़की मेरी बायीं ओर बैठी है और मात्राएं गिन रही है. मेरी दाहिनी ओर बैठे मित्र और उस लड़की के बीच चुपके-चुपके नजरों का जो आदान-प्रदान चल रहा है, उसका रहस्य समझने की कोशिश में, उस मित्र के बाद बैठा हुआ मित्र तन्मय हो गया है.

लेकिन मैं अपने गिलास में बर्फ डालते जाने की प्रक्रिया में ही मगन हूं, मुझे टेंपरेचर जो है. मेरे शरीर से भाप निकल रही है, मुझे इसे लगातार शीतल रखने की चिंता है.

मैं एकाएक सबको बताता हूं—मुझे तेज बुखार है. सब मेरी मिजाजपुरसी करने लगते हैं— सिर में दर्द तो नहीं?

—नहीं!

—बदन टूट रहा है?

—नहीं.

—ठंड तो नहीं लग रही?

—नहीं.

—फिर यह कैसा बुखार है?

मैं चुप.

—दो दिन बाद तुम अपने वतन जा रहे हो न?

—हां.

—जाने की ऐसी भी क्या जल्दी है?

—जाना जरूरी है.

—पक्का फैसला कर डाला है क्या?

—हां.

—रद्दोबदल की बिल्कुल गुंजाइश नहीं?

—नहीं .

—हुं. . . . हुं. . .

—क्या 'हुं-हुं' ? 'हुं-हुं' क्या?

—याने तुम टेंशन में हो. टेंशन का ही बुखार है.

—टेंशन का बुखार?

—तुम सब कुछ छोड़ कर वतन जा रहे हो. ये तमाम दोस्त, प्रियजन, बंबई में तुम्हारे निवास के धड़कनपूर्ण संस्मरण— सब छोड़ कर तुम्हें वतन जाना है. टेंशन जरूर होगा. यह बुखार टेंशन का अनुवाद है.

—ओह, नॉनसेंस.

मेरे सीधे-सरल बुखार का इतना अटपटा स्पष्टीकरण? सिर को झटका दे कर मैं ऊंघ को गिरा देता हूं. फलस्वरूप, कुछ देर तक ट्रेन की परिचित आवाजें सुनायी देती रहती हैं. कोई सूना स्टेशन सरक कर नजदीक आता है और ट्रेन के बाजू में चुपके से फिट हो जाता है.

—गाड़ी आज बिल्कुल सही चल रही है. लेट जरा भी नहीं, डिब्बे में, दूर से, किसी की हताशाभरी आवाज सुनायी देती है. ट्रेन अगर लेट होती, तो सहयात्रियों के साथ इस बाबत लंबी चर्चाएं हो सकतीं. ट्रेन के लेट होने में ही आनंद है. वापस वतन पहुंचने की जल्दी भला किसी होती है ?

जो यात्री पहले सिर्फ सुन रहे थे, वे ही अब बोलने लगे हैं. फलस्वरूप , साठ के आसपास के उस प्रभावशाली पुरुष का तेज कुछ फीका पड़ रहा-सा महसूस होता है.

—आपको तो फर्स्ट क्लास में ट्रैवल करना चाहिए था.

—फर्स्ट क्लास एक दम फुल चल रहा है. रिजर्वेशन कैसे मिलता?

—तो प्लेन से आना चाहिए था.

—प्लेन का ट्रैवल भी कोई ट्रैवल है? उड़े नहीं कि पहुंच गये. ट्रैवल का मजा लेना अभी शुरू भी नहीं किया कि खेल खतम!

—. . . इसके अलावा, शायद आपके डाक्टर ने भी मना किया होगा.

—नहीं-नहीं, ऐसा कुछ नहीं है. मैं हार्ट का पेशेंट नहीं.

मैं तो बिल्कुल तंदुरुस्त हूं. यह स्पष्ट उत्तर मैं सुनता हूं. इसके बाद, प्रश्नकर्ता को सहसा कोई नया प्रश्न नहीं सूझ पाता. इससे उस प्रभावशाली पुरुष को 'ओपनिंग' मिल जाती है और वह झट अपनी बात शुरू कर देता है.

—बंबई में हमारी पांच दूकानें हैं. कपड़ों और रेडीमेड ड्रेसों के पांच स्टोर्स. रोजाना बीसेक हजार का माल बेचते हैं. पांचों लड़कों को एक-एक स्टोर सौंप दिया है. सब भगवान की दया है. बड़ी मेहनत की. बड़ा पसीना गिराया. कमाई डट कर की और मौज-मजे भी कम नहीं किये. यों पूछिये कि बंबई में हमने क्या नहीं किया और क्या नहीं भोगा. अब पांचों लड़के मिल कर मेरे पास आते हैं और कहते हैं— बापू, अब आप वतन चले जाइए और आराम करिए. जितना चाहे उतना धरम-करम करिए. दो-दो सालों से पांच-पांच लड़के यही कहते चले आ रहे हैं. आखिर मैंने भी सोचा कि ठीक ही कहते हैं. लिहाजा. . . रिटायर हो कर चल दिया हूं वतन की तरफ. . .

—लगता है, बंबई के साथ आपको बड़ा ही लगाव हो गया है. क्यों? फिर आप बंबई में ही रिटायर होते? उस कौतूहली प्रेमी सहयात्री ने फिर से एक सवाल खोज निकाला है.

सवाल का जवाब क्या दिया गया, मुझे ध्यान नहीं. मुझे फिर से नींद आ जाती है.

★ ★

डिफेक्टिव टेलीविजन के स्क्रीन पर जैसी लकीरें दीखती हैं, वैसी ही लकीरें-लकीरें-लकीरें, धब्बे-धब्बे-धब्बे आंखों के सामने उतरा रहे हैं. साफ और धुंधले चित्रों का एक सिलसिला उभर रहा है. कोई न्यायाधीश है. कुछ पूछ रहा है. मुझसे क्यों पूछ रहा है?

—अपने बचाव में आपको कुछ कहना है?

—बचाव? किस बाबत?

अरे! ये सब कहां से आ टपके? यह जेलर? ये खाकी ड्रेसों वाले? और यह जल्लाद?

कोई पूछ रहा है—आपकी आखिरी इच्छा क्या है?

मेरी आखिरी इच्छा? बहुत बड़ा, बहुत ही बड़ा, जबर्दस्त सवाल है यह तो!

नहीं, नहीं; मामला कुछ और है. मेरे कान के पास होंठ ला कर, भावुक स्वर में किसी ने पूछा है—क्या तुम्हें कुछ नहीं कहना? कुछ भी नहीं बोलोगे तुम? कोई लड़की, कोई युवती पूछ रही है मुझसे. एक लंबी और चौड़ी सड़क है. हाई वे. मैं उस पर चल रहा हूं. बगल में, सटी-सटी वह चल रही है. मुझे तेजी पकड़नी है, जबकि वह कतई जल्दी में नहीं. वह मेरी गति को रोक रही है. उसे गुमान ही नहीं कि सड़क की दाहिनी ओर से जबर्दस्त बाढ़ लपक रही है. थोड़ी ही देर में यह हाई वे डूब जायेगा. डूबने से पहले मुझे यहां से अधिकतम फासले पर चले जाना है. इसके लिए यदि दौड़ना पड़ जाये, तब भी कोई हर्ज नहीं.

—सचमुच कुछ नहीं कहोगे? सुनोगे भी नहीं?

फिर वही बात? ओह! सड़क पर, दूर-दूर तक, पानी आ चुका है. देख, देख. वह बस पानी में तैरती हुई इधर बढ़ रही है. उसके पीछे एक और बस है. फिर एक और. न जाने कुल कितनी बसें सिलसिले में आ रही होंगी. पहली बस की खिड़कियों से यात्रियों के चित्र-विचित्र चेहरे चिरपरिचित चिंता के हैंगर पर लटक रहे हैं.

★ ★

यह आवाज कैसी है? तीखी, कर्कश किरकिराहट? न जाने कैसी आवाज है. नजर घुमाता हूं. पूछ बैठता हूं—मैं कहां हूं?

—हम रण पार कर रहे हैं. कोई यात्री जवाब देता है.

यात्री हड़बड़ा गये हैं, अपने साजोसामान और बच्चों को संभालने लगे हैं.

—खिड़कियां बंद करो, बंद करो. मैं चिल्लाता हूं. यात्री फटाफट खिड़कियां बंद करके, एक तसल्ली-सी अनुभव करते हुए बैठ जाते हैं. उन सबकी नजरें मेरी ओर ऐसे उठती हैं, जैसे खिड़कियां बंद करने का हुक्म सही वक्त पर दे कर मैंने उन्हें आभार से दबा दिया हो.

रिटायरमेंट स्वीकार करने वाले वह सज्जन एकदम ढीले पड़ गये हैं. खिड़की के कांच पर माथा टिका कर उन्होंने आंखें मूंद ली हैं. सिर पर चांद का विस्तार जहां फैलता-फैलता आ कर रुका है, वहां ब्लैक-डाई उड़ जाने के कारण बाल अजब-से सफेद लग रहे हैं. जरूर उन सज्जन को आराम की जरूरत है. खिड़की के जिस कांच पर उन्होंने मत्था टेका है, उस पर बाहर से रण की रेत के रेले उड़-उड़ कर टकरा रहे हैं. पटरियों और रेल के चकों के बीच रेत कुचली जा रही है. यह तेज और कर्कश किरकिराहट इसी की है.

★ ★

उस तेज, कर्कश आवाज के आरपार एक और आवाज लाउड-स्पीकर पर घोषणा कर रही है— यात्रियों को सूचित किया जाता है कि यह ट्रेन अब पूरी-पूरी रेत में विलीन हो चुकी है.

सबकी बोलती बंद हो जाती है. खामोशी इस हद तक पहुंचती है कि सभी यात्री, अभी-अभी होने जा रहे आवाज के पुनर्जन्म के इंतजार में, हाथ-पर-हाथ धरे बैठे मालूम पड़ते हैं.

—लेकिन मैं कहां हूं? मैं दुबारा पूछ बैठता हूं.

—आफिस में, सा'ब! सामने खड़ा मेरा असिस्टेंट मुझे बताता है.

ठीक ही तो है—आफिस ही में हूं. टेबल. कुर्सी. फोन. पिनकुशन. आदि-आदि.

—मेरी गैरहाजरी के दौरान क्या-क्या हंगामे हुए? क्या पूरा शहर कहीं भाग गया था? तुमने कितने खरबूजे चुराये? किसने कितनी धांधली चलायी? बोलो.

—ऐसा तो कोई हंगामा नहीं हुआ, सा'ब! और मैंने भी कोई खरबूजा नहीं चुराया.

—झूठ! अगर कोई हंगामा नहीं हुआ, तो ऐसा भाषण किसने दिया कि यदि मैं थोड़ा भी और गैरहाजिर रहा, तो यहां का पूरा समाज समाज-विरोधी हो

जायेगा? सब उलट-पुलट जायेगा? सारी व्यवस्थाएं अस्त व्यस्त हो जायेंगी? गुस्से से बेकाबू हो कर मैं उठ पड़ता हूं. पास में ही खड़े एक लंगूर को तमाचा जड़ देता हूं.

—नहीं, नहीं. वह मैं नहीं था. क्या मैं वैसा भाषण दे सकता हूं? लंगूर सकपका जाता है— मैं तो पहले ही से गुनहगार हूं. आपके खिलाफ कैसे जा सकता हूं?

* *

फिर वही सीटी. ट्रेन दुबारा कहां से आ गयी? ट्रेन नहीं आयी. स्टेशन आया है. मैं प्लेटफार्म पर टहल रहा हूं. सहसा देखता हूं— चार-पांच जने किसी को स्ट्रेचर पर लाद कर ले जा रहे हैं. मैं उनके पीछे दौड़ पड़ता हूं. चिंतित हूं— स्ट्रेचर पर कहीं स्वयं मैं ही लदा हुआ न होऊं.

स्ट्रेचर के नजदीक पहुंचने पर ध्यान देता हूं कि उसे तो किसी ठठरी की तरह उठाया गया है. गार्ड आगे-आगे चल रहा है. एन्जिन-ड्राइवर, टी. टी. और दो कंडक्टरों के कंधों पर ठठरी उठी हुई है.

—रख दो. नीचे रख दो. देखने दो. कौन मर गया है? मैं गार्ड से कहता हूं.

—कोई नहीं मरा है यार! यह सज्जन तो बंबई से रिटायर हो कर लौटे हैं. इन्हें हम टैक्सी तक छोड़ने जा रहे हैं. यह सब इस ट्रेन के कर्मचारियों की ड्यूटी में शामिल है. आप भी जब रिटायर हो कर आयेंगे, तो इन सुविधाओं का लाभ आपको भी मिलेगा. इसके लिए किसी को धन्यवाद-वन्यवाद देने की जरूरत नहीं.

गनीमत! लाश का चेहरा खुला है. काले-सफेद बालों वाले वह रिटायर्ड गृहस्थ स्ट्रेचर पर लेटे हुए हैं. मुंह और मस्तक पर गुलाल छिड़का हुआ है. वह मेरी ओर नजर घुमा कर कहते हैं— फिर मिलेंगे. रिटायर हो गया हूं. बस, अब वतन में सिर्फ आराम करना है. आइएगा! वह हाथ का इशारा करते हैं. १५ डाउन के कर्मचारी उन्हें उठा कर चलते बनते हैं.

लाल कमीज वाला एक कुली मुझे जगा रहा है. चेहरा परिचित लगता है. क्या सभी कुलियों के चेहरे एक-जैसे होते हैं? सा'ब! उठिए. गांधीधाम आ गया. आखिरी स्टेशन.

मैं हड़बड़ा कर उठ बैठता हूं. मस्तक छू कर देखता हूं. बुखार अभी भी है. बर्थ से उतर कर नीचे की खाली सीट पर बैठ जाता हूं. कंपार्टमेंट खाली हो गये हैं. कुली ने मेरा बिस्तर बांध लिया है. अब सामान इकट्ठा कर रहा है. सामान उठा कर वह चलने लगता है. मैं उसके पीछे-पीछे घिसटता हूं. प्लेटफार्म से निकलने वाला मैं आखिरी मुसाफिर हूं. लोग घोर अधैर्य से प्लेटफार्म पर आने के लिए लपक रहे हैं. उनके चेहरे मेरी नजर के साथ टकराते जा रहे हैं. आशा, उल्लास और उत्सुकता से ओतप्रोत चेहरे! ये सब १६ अप के यात्री हैं. १६ अप के रवाना होने की तैयारी में सारा स्टेशन हंगामी ढंग से मुस्तैद हो उठा है. □□□

(अनुवाद : मनहर चौहान)

कच्छी लोककथा

जब्बर काका

• मूलराज रूपारेल

नाम तो उसका नारायणजी दामजी था, लेकिन वह जब्बर काका के नाम से प्रसिद्ध था. भरावदार मूंछें, प्रभावशाली चेहरा, हट्टा-कट्टा शरीर.

राजा साहब का प्रिय. उसे वह 'काका' कह कर ही पुकारते. खूब इज्जत देते. राजा के जन्म दिवस के अलावा काका कभी दरबार में नहीं जाते. लेकिन तब भी खजाने से उन्हें घर बैठे तनख्वाह पहुंच जाती. काका एक बार बीमार पड़ गये. उन्हें विश्वास हो गया कि अब वह ज्यादा जीने वाले नहीं हैं. काकी को बुलाया. इकलौते लड़के को भी बुलाकर कहा– सारी जिंदगी मैं सिंह की तरह जिया हूं. मेरी मृत्यु पर रोना-धोना मत. अगर रोना ही हो तो सिंह की मृत्यु पर सिंह की तरह ही रोना.

उन्होंने लड़के को गोबर और गोमूत्र लाने के लिए कहा. जमीन को लिपवाया. गंगाजल और तुलसी के पत्ते मंगवाये. तब सहारा लेकर नीचे जमीन पर उतरे. वैद्यराज पास आये. नब्ज देखी. सबको उम्मीद जाती रही.

काका जमीन पर लेटें, उससे पहले किसी ने खबर दी—काका-काका! दीवानजी तुमसे मिलने आ रहे हैं.

यह सुनकर काका के चेहरे पर तेजस्वी चमक आ गयी. दीवान उनका प्रतिस्पर्धी था. काका सारी उम्र उससे जूझते रहे और कभी भी उसके समक्ष झुके नहीं.

काका जोर से चीखे–छोकरे! जल्दी से तकिया ला, मुझे वहां बैठा. . .मेरा हुक्का भर. . .

दीवान ने जब दरवाजे पर पांव धरा, तब काका तकिये के सहारे बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे. उसे घोली हुई अफीम पिलायी गयी. महमानबाजी से दीवान धन्य-धन्य हो गया. काका को स्वस्थ देख आश्चर्यचकित हो गया.

भांड़ ने कहा—हमें समाचार मिले थे कि आप बीमार हैं. . .इसलिए. . .

—बीमारी का तो ऐसा है ना. . . वृद्धावस्था में तो बीमारी आती ही है. . .लेकिन इतना सच है कि मेरा कोई दुश्मन मेरी मौत देख कर खुश होने आये तो मैं जब्बर काका हूं. . .दो घड़ी तो मौत को भी वापस धकेल दूं!

दीवान ने जैसे ही दरवाजे से बाहर कदम रखा, काका ने दम तोड़ दिया. □□□

(अनुवाद : हरमन चौहान)

लॉस्ट प्रॉपर्टी

—वनु पांधी

वनु पांधी (जन्म : १५ दिसंबर, १९२८, टप्पर, कच्छ) ने मुख्यतः वन्य समाज और संस्कृति की मान्यताओं को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है. इसके साथ ही इन्होंने कच्छ के रण के विस्तार और सागर की लहरों से जूझते लोगों के संघर्ष-चित्रों को शब्द दिये हैं.

एक बस-अड्डा. भव्य. लंबा-चौड़ा.

उसके दोनों तरफ विज्ञापनों के बड़े-बड़े बोर्ड. विज्ञापन कपड़ों के, आयल-एंजिन के, चश्मे, खाद और शानदार फसल के. हर विज्ञापन में औरत—मनमोहक, जवान, सर्प-सीढ़ी के खेल जैसे उतार-चढ़ाव वाली. एक-एक सीढ़ी चढ़ कर ऊपर आइए, अचानक सांप के मुंह में चले जाइए, नीचे उतरिए, सांप की दुम में से निकल आइए. ऊपर.नीचे.ऊपर.नीचे. मर्द के साथ औरत का वही युगों पुराना खेल.

—क्यों, जी, सुन रहे हैं ?

एक मधुर स्वर. सांवली युवती. आंखों पर गॉगल्स, यौवन का साक्षात् मधुछत्ता. राजा शांतनु से ले कर सदाअत हसन मंटो तक इस औरत की तारीफों के पुल बांधे गये हैं; वही रूप, वही रंग.

—जी नहीं, सिर्फ देख रहा हूं, मैंने कहा.

—जी?

—देख रहा हूं कि आपने अभी तक पैसे नहीं दिये.

—क्या मतलब?

—मतलब इतना साफ है कि ....

—मेरी समझ में नहीं आया.

—आपको रिजर्वेशन का जो टिकट चाहिए, वह मैंने पहले से तैयार कर रखा है.

—ओह!

काउंटर पर मनी-पर्स आ बैठा. खुला. भीतर से मेकअप की चीजें झांकने लगीं. काले बादल भी चांदनी का स्पर्श पा कर सुंदर हो जाते हैं.

—आपको पहले से मालूम था?

आंखों पर से गॉगल्स का उतर आना. शरबती आंखों की शरारत.

—मालूम था और नहीं भी था. मैं बोला.

—इसका मतलब?

—स्त्रियों के सान्निध्य में मेरी दशा सहदेव पाण्डव जैसी हो जाती है. जब तक कोई पूछे नहीं, तब तक मैं कुछ बता नहीं पाता.

भौंहों का तन जाना. रोष. गुलाब के कांटे चुभने की शिकायत क्या आज तक किसी ने की है?

—बड़े उद्दंड हैं आप, वह बोली.

—आप मेरी गार्जियन तो हैं नहीं...

होंठों का परस्पर दब जाना. हास्य का छिपाए न छिपना.

—सुबह आ कर, सबसे पहले, आपका रिजर्व्ड टिकट ही तैयार करता हूं, फिर कुछ और. मैंने बताया.

—मान लीजिए, कभी मैं आऊं ही नहीं. आपको पैसे खोने पड़ेंगे.

—रामायण और महाभारत भी इस खोने के पीछे ही रचे गये हैं न!

—खासे रोमांटिक हैं आप.

—मजनूं भी तो था. हरियाली पर जहां-जहां उसके पैर पड़े, वहां-वहां रेगिस्तान खड़ा होता गया, मैंने कहा.

हास्य के साथ विदा.

एक टेलिफोन कॉल. थोड़ा समय पास हो जाना.

एक करारा चेहरा—कौन थी वह?

—वह? वह याने कौन?

—वही, जो अभी-अभी गयी.

—क्या आप सी. आई. डी. के आदमी हैं? मैंने पूछा.

—नहीं.

—सी. बी. आई. के?

—नहीं.

—एफ. बी. आई. के?

—नहीं.

—फिर आप कौन हैं?

—उसका बाप.

मेरा चेहरा पसीना-पसीना हो गया.

—क्या वह आपके पास रोज आती है? उसने

सत्तावादी स्वर में पूछा.

—हां.

—किस खुशी में?

—रिजर्वेशन लेने.

—उसका रिजर्वेशन हो गया है.

—मैं...समझा नहीं.

– उसकी सगाई हो चुकी है.

—अच्छा?

—शादी भी जल्दी होने वाली है.

—असंभव.

—उसका पति मिलिटरी अफसर है.

—ओह! मेरा दिमाग घूम गया. युद्ध समाप्त क्यों हो जाया करते हैं?

—बारात की वापसी के लिए मुझे स्पेशल बस की जरूरत है. किससे मिलूं? उन्होंने पूछा.

—सिवा मेरे किसी से भी.

बुजुर्ग महोदय रवाना हो गये. थोड़ी देर तक मैं काम में डूबा रहा. फोन की घंटी बजी.

—हैलो ...एस. टी. इंक्वायरी?

—यस, सर. कहिए, क्या सेवा करूं?

—राजकोट की बस कब मिलेगी?

—अभी. फौरन. निकलने की तैयारी में है.

—यह नहीं. सुबह की पहली बस.

—पांच बजे. मैंने कहा.

—उसके बाद?

—पांच पैंतालीस पर.

—याने कि पौने छह. है न?

—जी हां.

—उसके बाद?

—सात बजे.

—लोकल है या एक्सप्रेस?

—एक्सप्रेस.

—सात ...ज्यादा ही जल्दी कहा जायेगा. मेरी वाइफ जरा देर से उठती है.

—आप वाइफ को जल्दी सोने नहीं देते होंगे.

—मिस्टर, यह मेरा पर्सनल मामला है.

—बेशक है लेकिन शुरू आपने किया, मैंने नहीं.

—ओ के! सुबह दस-ग्यारह बजे राजकोट जाने की कोई बस है या नहीं?

—पहले आप सोच कर बताइए. दस बजे या ग्यारह?

—ग्यारह.

—है.

—तो उसमें मेरा रिजर्वेशन कर दीजिए.

—असंभव!

—वो क्यों?

—यह बस आगे से आती है. हर सीट पहले से घिरी रहती है.

—ऐसे कैसे काम चलेगा? स्वर में गुस्सा.

—क्या हो सकता है? अगर कोई सीट पहले से रिजर्व्ड हो, तो उस पर कोई और कैसे बैठ सकता है?

—खैर! मुझे इस सिस्टम में रद्दोबदल करवाने के लिए कुछ करना होगा.

मैं उत्साह से बोला—जरूर करिए. रद्दोबदल होना ही चाहिए.

—जी?

—यह सिस्टम, दरअसल, शादी के सिस्टम जैसी . हस्बैंड वाइफ में से कोई अपनी जगह छोड़ता नहीं. फलस्वरूप, उनकी जगह पर कोई आ नहीं पाता.

—आप समाज-सुधारक मालूम पड़ते हैं.

—सुधरने के लिए कोई तैयार हो, तब न !

—सच्ची बात है ! जनतंत्र की सबसे बड़ी कमजोरी यही है. हां, तो मैं कह क्या रहा था?

—राजकोट की बस.

—हां-हां, याद आ गया. राजकोट की बस. ऐसा करिए न, सारे दिन के सारे ही वक्त बता दीजिए, जिससे रात जल्दी निबट जाये.

मैंने उन्हें, फोन पर ही बता दिया कि सुबह से रात तक, किस-किस वक्त बसें राजकोट जाती हैं.

—थैंक्यू ! फोन पर उनकी खरखराती आवाज सुनाई दी—अब. . .राजकोट से यहां आने वाली तमाम बसों के वक्त भी अगर बता सकें, तो . . .

—आप अपना एड्रेस दे सकेंगे?

—वजह?

—आपके घर खुद आ कर मैं टाइम टेबल की बुकलेट पहुंचा दूंगा. उसी में सारे वक्त देख लीजिएगा.

—पूरी इन्फर्मेशन न देने के लिए मुझे आपकी शिकायत करनी पड़ेगी.

—जी? क्या कहा? नयी फिल्म कौन-सी लगी है? भाई जान, आप थियेटर में फोन करिए.

भारी आवाज के साथ रिसीवर का क्रेडिल पर रख दिया जाना.

* *

फिर वही ऊबाऊ काम. किसी तरह बीतता समय.

—बेटे?

मैंने नजर उठायी— हां, मांजी.

भीतर आ कर एक वृद्धा मेरे एकदम नजदीक खड़ी हो गयी. फटे हुए वस्त्र. जीर्णशीर्ण शरीर.

—गुमी हुई चीजें यहीं मिलती हैं न?

—जी हां. कहिए.

—बेटे! मेरी एक पोटली बस में रह गयी थी.

—क्या था उसमें?

—गरीब के पास भला क्या होगा? दो मुट्ठी खिचड़ी थी.

—ठहरिए, देखता हूं.

मैं रजिस्टर के पन्ने पलटने लगा.

—नहीं, मांजी; खिचड़ी यहां तो किसी ने जमा नहीं करवायी है. मैंने बताया.

वृद्धा के मुंह से निःश्वास निकल पड़ा— कैसा जमाना आया है! लोग अनाज-चोर होने लगे हैं. दो दिन से कुछ खाया नहीं था.

लाठी टेक-टेक कर बाहर जा रही वृद्धा को मैं ताकता रह जाता हूं. थोड़ी देर तक दिखाई पड़ने के बाद वह भीड़ में गुम हो जाती है.

—लक्जरी का रिजर्वेशन मिल सकेगा?

एक युगल. नव-परिणित. शादी याने लक्जरी.

—दोनों सीटें साथ ही रखिएगा हं? युवक बोला.

—खिड़की के पास मैं बैठूंगी.

—यहां आते समय तेरे लिए खिड़की मैंने छोड़ दी थी या नहीं? तू खुद वहां से क्यों उठ गयी?

—आपकी बहन ऐसी-ऐसी बातें कर रही थी कि मारे शर्म के मुझे उठ जाना पड़ा.

—किसकी बातें?

—आपकी. और किसकी?

शर्म! स्त्री के जीवन में पुरुष के प्रवेश के साथ ही पैदा होने वाली उलझन!

टिकटें ले कर दोनों चलते बने. पैर धरती पर नहीं पड़ रहे थे. जब पड़ेंगे, तब धरती का कोई पत्थर उन्हें ठोकर न मारे, यही कामना.

—इंक्वायरी यहीं है?

सुशोभित वस्त्रों में सज्ज एक सज्जन ने प्रवेश किया.

—हां जी, कहिए.

—मुझे खबर मिली है. कि मेरे पैसे यहां लॉस्ट प्रापर्टी में जमा हुए हैं. क्या यह सही है?

—शिनाख्त के लिए अगर. . .

—श्योर. सूटकेस एकदम नयी है. ब्राउन कलर की. उसमें चार सूट हैं—स्ट्रेचेबल. एक टेप-रिकार्डर है. फॉरेन का तो नहीं है, लेकिन. . . चीज शानदार है. दो के सेट हैं. पर्स में बाहर बीस रुपयों के नोट रखे हैं. . . . नोटों की कोई ऐसी चिंता नहीं. चिंता तो उन डाक्यूमेंट्स की है, जो नोटों से भी ज्यादा कीमती हैं. कहिए, इससे ज्यादा और क्या शिनाख्त चाहिए?

—काफी है. मैं उनकी चीजें उन्हें सौंपता हुआ पूछता हूं, इन सबके मालिक आप ही हैं न?

—ऑफ कोर्स!

—आप इन चीजों को, प्लीज, यहां से हटा लीजिए न? इन्हें देख कर मुझे लगातार अपनी गरीबी का अहसास मिल रहा है.

—प्रशंसापत्र लिख दूं?

—ऐसे पत्रों की लिपि इजिप्त की चित्र-लिपियों की तरह, ऐसी कठिन होती है कि उसका जानकार ढूंढ़े नहीं मिलता.

—ओके! फिर मिलेंगे. और वह चलते बने.

अजीब-सी अकुलाहट होने लगी है. आंखों के सामने एक पुराना दृश्य उभर रहा है. . . .

* *

सामने वह जो खंबा है न. . . रोज शाम के छह बजे वहां एक युवती आ कर रुका करती थी. एक मिनट भी आगे या पीछे नहीं. बेंच पर वह बैठती नहीं थी. ज्यों-ज्यों समय बीतता, उसकी बेचैनी बढ़ती जाती. सहसा एक बच्चा दौड़ता आता और लिपट जाता. बच्चे ने स्कूल का यूनिफार्म पहन रखा है. युवती उसके हाथ में से बस्ता ले लेती है. फिर वे आपस में उंगलियां पिरो कर सामने के कैंटीन में चले जाते हैं. थोड़ी देर में बाहर निकलते हैं. सामने जो दो नंबर की बस खड़ी है, उसमें बैठ जाते हैं. अनुमान लगाता हूं; यह युवती अवश्य कहीं सर्विस करती है. नौकरी से छूट कर यहां आती है. दोनों साथ-साथ

घर जाते हैं. किसी दिन जब वे दिखाई नहीं देते, तो वह कोई छुट्टी का दिन होता है.

आज. . .खंबे के साथ टकरा कर मेरी नजर बार-बार झेंप रही है. आज कोई छुट्टी का दिन नहीं, लेकिन युवती आयी नहीं है. फिर देखता हूं—बच्चा आ गया है. चकित-सा आसपास देख रहा है. जब वापस लौटता है, तो इतना निराश है कि खड़े रहने के लिए उसे खंबे का सहारा लेने की जरूरत पड़ती है.

थोड़ी देर बाद मुझसे रहा नहीं जाता. मैं खंबे के पास पहुंच जाता हूं. बच्चे से कहता हूं—क्यों? आज तुम्हारी मम्मी नहीं आयी?

—नहीं आयी. उसका स्वर निराशा से दबा जा रहा है.

—अंदर चलो. मेरे पास बैठो.

—नहीं. मम्मी मुझे यहां नहीं देखेगी तो खबरा जायेगी.

—नहीं घबरायेगी. मैं खिड़की में से देखता रहूंगा.

वह भीतर आ गया है.

—तुम्हारा नाम? मैंने पूछा है.

—शरद. मम्मी मुझे 'ससो' (खरगोश) कहती है.

—बिलकुल खरगोश जैसे प्यारे हो. तुम्हारे पप्पा का नाम?

—निरंजन भाई.

—क्या काम करते हैं?

—लंबे टूर पर निकले हैं. भगवान से मिलने गये हैं. वापस आयेंगे, तब मेरे लिए ढेरमढेर चीजें लायेंगे. आप यहां बस-अड्डे पर काम करते हैं न?

मैं चुप रह जाता हूं.

—तुम्हें भूख तो नहीं लगी?

—बड़े जोर से लगी है.

—मेरे साथ कैंटीन में चलोगे?

—नहीं-नहीं. मम्मी गुस्सा करेगी.

—नहीं करेंगी. मैं उन्हें समझा दूंगा.

और वह चलने के लिए तैयार हो गया है.

थोड़ी देर बाद जब हम दोनों कैंटीन से बाहर निकले हैं तो उसकी मम्मी आ चुकी है और खंबे के पास खड़ी चकित-सी इधर-उधर देख रही है.

—यह रहा शरद! मैंने उसके पास पहुंच कर कहा है. हमें साथ देख कर वह हंस पड़ी है. शरद को उसने गोद में उठा लिया है.

—शरद. और मैंने आपकी काफी राह देखी. शरद ने मेरे साथ नाश्ता किया है. आप नाराज तो न होंगी?

उसके होंठों पर मुस्कान खिल उठी है—मैं आपको पहचानती हूं.

मेरे विचार थम गये हैं. इतने-इतने बरसों के सहवास के बावजूद मैं खुद अपने से अपरिचित हूं.

—मैं रोज आपको उस विंडो पर बैठे देखती हूं.

मेरा उद्वेग शांत हो गया है.

कुछ देर बाद वे दोनों चले गये हैं.

उसके बाद से. . .जब भी वह खंबे के पास आकर खड़ी होती, तो मेरी ओर एक मंद मुसकान अवश्य फेंकती. घर जाने से पहले शरद मुझसे मिलने के लिए जरूर आता. हम दोनों दोस्त हो गये थे.

फिर, एकाएक, वे दोनों नजर आने बंद हो गये. मुझे रोज बेचैनी महसूस होती. शाम के वक्त मेरी नजर खंबे की ओर बार-बार चली जाती. धीरे-धीरे वह दृश्य भी धुंधला पड़ने लगा. समय के प्रवाह में शायद वह पिघल ही जाता, लेकिन एकाएक पाया कि वह युवती फिर आने लगी. है. खंबे के पास जरा-सा रुकती है. फिर चली जाती है.

एक दिन उसके पास पहुंच कर मैंने पूछ ही लिया—शरद कैसा है आजकल? दिखाई नहीं पड़ रहा है.

उसकी नजरें झुक गयीं. कई क्षणों तक वह कुछ बोल ही न सकी. जब पलकें उठायीं तो उसकी आंखों में आंसू थे—शरद अब इस दुनिया में नहीं है. और वह बड़ी तेजी से दूर हट जाती है.

मौत का फंदा मेरे गले पर कसता जाता है: हमारे लॉस्ट प्रापर्टी आफिस में तो मालिक आकर सामान की शिनाख्त करके उसे ले जा सकता है. ईश्वर के लॉस्ट प्रापर्टी ऑफिस में जमा हो चुके शरद की मालकिन उसकी मां यहीं है. क्या वह शरद की शिनाख्त करके उसे वापस ला सकती है?

अभी भी. . .अनायास मैं उस खंबे को देख लेता हूं. शरद की मम्मी फिर कभी नजर न आयी.

—जरा मेरे साथ तो आइए, चौकीदार का स्वर सुनायी दिया.

यादों की दो-तीन घड़ियां भी कितनी लंबी होती हैं.

मैं उसके पीछे-पीछे चला, प्रतीक्षालय में एक नौजवान युगल बैठा हुआ था. स्त्री ने पुरुष के कंधे पर सिर टिका दिया था. पुरुष का हाथ स्त्री के बालों को स्नेह से थपथपा रहा था.

मैं प्रतीक्षालय से निकल आया. चौकीदार से पूछा—जानते हो, वे क्या कर रहे हैं?

—हां. बुरा काम.

—नहीं.

—लेकिन . . .लेकिन . . .सरेआम?

हंसकर, बिना कोई जवाब दिये. मैं वापस घूम जाता हूं.कैसी विडंबना! सरेआम कोई किसी से प्रेम नहीं कर सकता! प्रेम केवल रात को ही जायज है—अंधकार में बंद दरवाजों और खिड़कियों के पीछे घुटते हुए. इसी घुटन की उत्पत्ति यह समाज. . .यह संस्कृति . . .

काम समेटने से पहले लॉस्ट प्रापर्टी का हर आइटम मैं चेक करता हूं. बाहर निकल आया हूं. सामने की टेकरी पर रात लेटने की तैयारी में है. चूंकि चल रहा हूं और हर कदम धरती पर ही पड़ रहा है, यकीन कर सकता हूं कि धरती अभी पैरों के नीचे से खिसकी नहीं है.

आम रास्ता पार कर, गलियों के बीच भटकता हुआ मैं अपने घर में दाखिल होता हूं—लॉस्ट प्रॉपर्टी के एक आइटम की तरह. □□□

(अनुवाद : मनहर चौहान)

घर-बाहर

• माधुरी शाह

मुझे रह रह कर 'बाई' (मां) पर गुस्सा आ रहा था. हालांकि इसमें उनकी कोई गलती नहीं थी. इन्होंने कभी भी वहां जाने के लिए हम पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डाला था और न ही कभी आग्रह किया था. पर वे अक्सर दूसरे-तीसरे दिन वहां की बातें करने लगतीं. वे बातें हमारे लिए न मानने योग्य और अजीब होती थीं. भाई कभी-कभी बातें सुनते-सुनते उकता कर उठ जाता. क्योंकि उसके लिए कोई नयापन नहीं था. पर मैं और छोटा सुदीप मंत्रमुग्ध भाव से सुनते रहते. आश्चर्य और कुतूहल हमारे लिए हर अंग में जाग उठता था शायद. पर बाद में मैं अक्सर महसूस करने लगी थी कि बाई वहां की बातें सुनाने के बहाने जिये जा चुके जीवन को, क्षणों को और स्थान को, फिर से जी लेने की कोशिश करती है. बाई की यह भीख मांगती सी असफल कोशिश देख धीरे-धीरे मेरा कुतूहल उनके प्रति दया में बदलता गया.

ऐसा नहीं था कि बाई वहां जा नहीं सकती थी, बल्कि वहां जाने का कोई न कोई कारण हर साल निकल आता. पर बाई किसी-न-किसी बहाने जाना टाल देती. आसपास का वातावरण देख कर शायद बाई मन-ही-मन डरती रहती है, कि वहां जाने पर शायद सब कुछ वैसा ही न मिले जैसा वह छोड़ आयी थी. बाई और 'अघा' (पिताजी) दो साल के भाई को ले कर लगभग पच्चीस साल पहले वहां से चले थे, तब यह नहीं सोचा था कि पच्चीस-तीस साल तक लौटना ही नहीं होगा.

आजादी के बाद कई वर्षों तक तो बाई बहुत उत्साह में भर कर हमें कहा करती थी—"अरे! तुम लोग कच्छ देखोगे, तब तक तो वह कितना ही बदल चुका होगा. हमारे समय का कच्छ कहां तुम्हें देखने को मिलेगा. तुम जाओगे तब तक तो यहां जैसी ही बिजली और नल लग चुके होंगे और बसें दौड़ने लगेंगी. 'वाय' (कुंआ) पर से पानी भर कर लौटती हुई पनिहारियों की एक-दूसरे से आगे निकल जाने की दौड़ देखना, बैलों के गले में बंधे घुंघरुओं की मीठी रुन-झुन के बीच धीरे-धीरे चलते 'गड्डे' (बैलगाड़ी) में एक से दूसरे गांव का सफर तुम्हारी तकदीर में कहां. कहते-कहते बाई की आंखों में एक चमक और तरलता साथ-साथ प्रतिबिंबित हो उठते और फिर बाई धीरे-धीरे गुनगुनाने लगती,'

'कच्छ मेठो मेराणं
असांजे कच्छ वेनधासी'

(बड़ा मीठा है हमारा कच्छ ! हम तो अपने कच्छ जायेंगे.)

किंतु बाद में यह उत्साह क्रमशः ठंडा पड़ता गया. अपने आसपास का न बदलता या प्रतिकूल रूप में बदलता वातावरण शायद उन्हें कच्छ संबंधी जानकारी देता रहा था. किंतु फिर भी कच्छ का जिक्र वह जब-तब कर लिया करतीं. और बाई की यही बातें मुझे उकसाती रही थीं कच्छ के लिए.

ट्रेन के अहमदाबाद छोड़ने के बाद काफी समय अच्छा कट गया. नया-नया वातावरण मन को अपनी ओर खींचे था. अपनी भूमि का लगाव शायद कुछ उत्साह भरता था मन में. पर जैसे-जैसे ट्रेन आगे सरकने लगी, वातावरण का सुहावना, सुंदर रूप बदलने लगा. और आगे-आगे धरती का उजड़ा चेहरा आकार लेने लगा. छोटे-छोटे अकेले निस्तब्ध स्टेशनों के बीच रेत और धूल उड़ रही थी और यहीं से मन में घुटन पैदा होने लगी थी . अपने शहर से न जाने कितनी दूर निकल आने की भयपूर्ण अनुभूति होने लगी. आगे जैसे-जैसे यह निस्तब्धता और उजड़ापन घने होते गये, मन की घुटन बढ़ती गयी. मन में न जाने कैसा एक अनाम भय समाता जा रहा था. पिछड़ा प्रदेश देख लगता था, सभ्य समाज से नाता ही टूट गया हो. और उस मनःस्थिति में बार-बार एक बचकानी आशंका उभर-उभर आ रही थी कि इतना लंबा फासला तय कर वापस लौट सकूंगी या नहीं! दूरी की यह अनुभूति दो जगहों के बीच के फासले से शायद वातावरण के बदलाव की अधिक थी. और इसीलिए इस समय बाई पर गुस्सा आ रहा था. उन्हीं की बातें सुन-सुन कच्छ जाने के लिए मैं उत्सुक हो उठी थी और इस समय इच्छा हो रही है, बीच में से ही वापस लौट जाऊं.

माधुरी शाह ने हिंदी और गुजराती भाषाओं में कहानियां लिखी हैं, साथ ही कुछ समीक्षात्मक लेख भी लिखे हैं. ये हिंदी में एम. ए. करने के बाद आजकल बीड़ (महाराष्ट्र) में अध्यापन कार्य कर रही हैं. भारतीय और विशेष रूप से हिंदी कथा-साहित्य का इन्होंने अच्छा अध्ययन किया है. मराठवाड़ा विश्वविद्यालय से स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा-साहित्य पर अनुसंधान कर रही हैं. कच्छ जन्मभूमि होने के कारण कच्छी संस्कृति और वहां के जन-जीवन के प्रति इनका गहरा लगाव है.

गर्मी और प्यास के मारे बार-बार गला सूख रहा था. पर कई-कई स्टेशनों के बाद किसी एकाध स्टेशन पर बड़ी मुश्किल से पानी मिलता. आखिर परेशान हो कर मैंने संतरे की गोलियां निकालीं. प्लास्टिक की थैलियों में मैंने बहुत-सी गोलियां, बिस्कुट आदि ले लिये थे. हमारे अपने घर में तो कोई छोटा बच्चा था नहीं, पर पास-पड़ोस में तो होंगे. बच्चों को यों भी बाहर से आने वाले लोगों के प्रति उत्सुकता होती है. पर मुझे लग रहा था कि अचेतन में इन सारी चीजों को लाने के पीछे अधा की कही बातें ही प्रेरणा रही हैं.

अधा कई बार बताया करते थे. वे जब बहुत छोटे, शायद चार-पांच साल के थे तभी उनके अधा की मृत्यु हो चुकी थी. घर में कोई बड़ा आदमी नहीं था. उन दिनों भी बहुत से लोग कच्छ छोड़ कामकाज के लिए बंबई की राह लेते थे. पर परिवार कच्छ में ही रहता. साल में एक बार कुछ दिनों के लिए बंबई से लोग लौटते, तब घर के बच्चों के लिए खाने की चीजों से भरी 'कोथड़ी' ले आते. उन दिनों चीजें बड़ी सस्ती थीं. इसीलिए 'कोथड़ी' गोली या बिस्कुट से नहीं, बल्कि काजू, किसमिस, बादाम और माहिम के हलवे से भरी रहतीं. और अधा बताया करते कि उनके घर का कोई व्यक्ति बंबई में न होने पर भी वे कभी इन चीजों से वंचित नहीं रहे. क्योंकि बंबई से आने वाला हर व्यक्ति सबसे पहले 'कोथड़ी' की मिठाई मुहल्ले के उन बच्चों के घर भिजवाता, जिनके लिए मिठाई लाने वाला घर में कोई न होता.

पानी न मिलने पर मैं और माई उन्हीं संतरे की गोलियों को मुंह में रख लेते.

अहमदाबाद से ट्रेन में 'मोज' (मुज), मोज से 'मडदू' (मांडवी) और मडदू से फिर बस में मोजाय का यह लंबा सफर बड़ी मुश्किल से कटा. मोजाय पर उतरने वाले हम दो ही थे. हमारे उतरते ही बस चल पड़ी. और मैंने अपने उस गांव पर नजर डाली, जिसकी कहानियां मैं बचपन से सुनती आ रही थी. बाई का अनुमान था कि गांव के बाहर छोटा-सा बस-स्टाप जरूर बन गया होगा, पर जहां बस रुकी, वहां बस-स्टाप तो नहीं था, हां एक प्राचीन और विशाल पेड़ जरूर

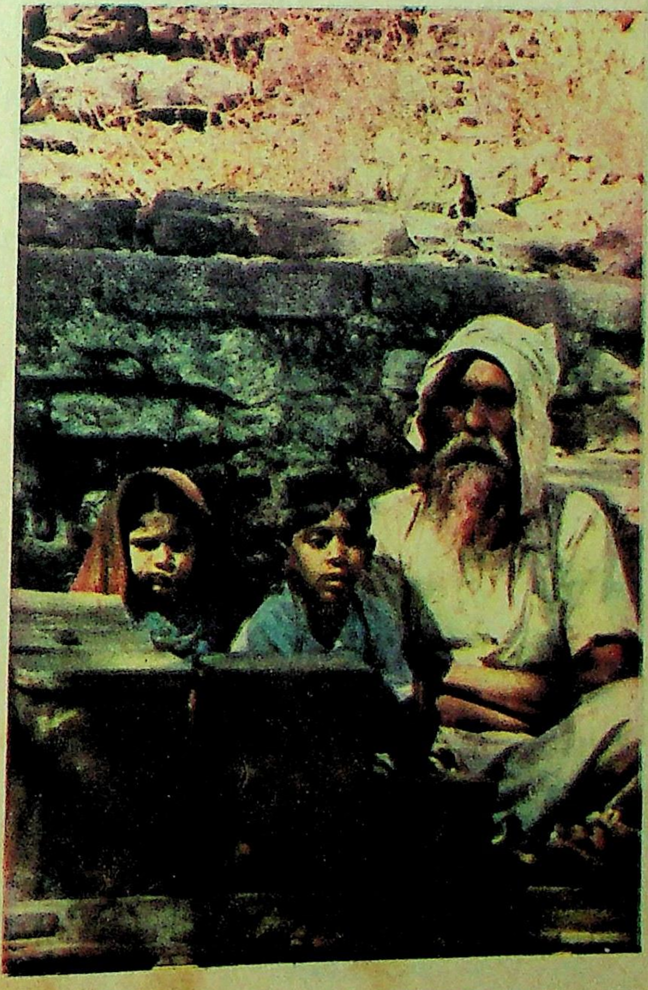

था, जिसके चारों ओर एक गोल चबूतरा बना था. मैंने अनुमान लगाया, शायद यह वही पेड़ है, जिसके विषय में बाई बताई करती थी कि जब भी कोई बारात गांव में आती या जाती तब उन्हें लेने या विदायी देने एकत्रित हुए लोग इसी चबूतरे पर बैठा करते थे. एक ओर आदमी बैठ जाते, चिलम पीते हुए और दूसरी ओर रोते हुए बच्चोंवाली मांएं बैठ कर बच्चों को साड़ी के पल्ले से ढक कर 'धावण' (दूध) पिलाने लगतीं.

बस के चलने से उड़ती हुई धूल का गुबार जब पूरी तरह से नीचे बैठ गया, तब वातावरण में छायी भयावह शून्यता साकार हो उठी. दूर-दूर तक कोई नजर नहीं आ रहा था. उदास और बोझिल शाम वातावरण में घुल रही थी. छोटे-छोटे टीले बेबस गूंगों की तरह हमारी ओर देख रहे थे. चारों ओर फैले खेत विधुरों की तरह अकेले सोये थे.

हमने गांव की ओर कदम बढ़ाये. मैंने कभी भी नहीं सोचा था कि गांव के स्वभाव के विरुद्ध, अपने गांव में पहली ही बार मेरा स्वागत सिर्फ धूल भरे रास्ते और फैले सन्नाटे के द्वारा होगा. उसी समय दूर से एक आदमी और उसके पीछे एक बहुत ही बूढ़ी हो चुकी वृद्धा आते दिखायी दिये. आगे-आगे भागते उस आदमी को रुकने के लिए शायद वृद्धा आवाजें लगा रही थी. जैसे-जैसे हमारे बीच का फासला कम होता गया, उसकी आवाज स्पष्ट होती गयी—मुरजी, ए.. .ए... ई...मुरजी! वह रूक-रूक कर आवाजें लगा रही थी, ओभो रो बेटा, हीं धोड़ न. पाछो घरें हल बेटा, तोके मुंजा सों अर्दू. (ठहर जा बेटा, ऐसे दौड़ मत. वापस घर चल, तुझे मेरी कसम है.) पर आदमी जरा रुकता, पीछे मुड़ कर देखता और हंसते, मुंह चिढ़ाते फिर आगे बढ़ जाता और दौड़ने लगता. उसकी हरकतें बड़ी अजीब-सी लग रही थीं. बुढ़िया दौड़ते-दौड़ते थक कर हांफ रही थी. पता नहीं क्यों, थक जाने के कारण या हमें देख कर वह पेड़ के पास रुक गयी. जैसे ही हम निकट पहुंचे, वह ध्यान से हमें देखते हुए पहचानने की कोशिश करने लगी. आंखें उसकी कमजोर लग रही थीं. भाई शायद उसे पहचानता था इसीलिए हाथ का सूटकेस नीचे रख, वह उसके पैरों की ओर झुकता हुआ बोला——पेडाम मां (प्रणाम दादी मां!)

——पेडाम बेटा, मां ने सिर पर हाथ रखते हुए उत्तर तो दे दिया पर अभी भी न पहचान पाने की उलझन चेहरे पर झलक रही थी और फिर दुविधापूर्ण स्वर में उसने पूछा——तूं आसबाई मां जो वसंत त नईंयें? (तूं आसबाईमां का वसंत तो नहीं है?)

——अरे वाह मां! तुमने तो मुझे बराबर पहचान लिया. भाई ने हंसते-हंसते कहा तो मां उत्साह में आ गयीं, वहां कैसे हैं सब? बाई-अधा क्यों नहीं आये? और ये कौन हैं? एक साथ कई प्रश्न कर डाले मां ने. अंतिम प्रश्न मेरी ओर देखते हुए पूछा उन्होंने.

——यह तो अपनी मालती है, मां. भाई ने सिर्फ आखरी प्रश्न का उत्तर दिया.

——हैं ! ए मां ! केड़ी बड़ी थेइ रह असांजी धी. (हैं ! आ हा ! कितनी बड़ी हो गयी है हमारी बिटिया) कहते-कहते मां ने मुझे बांहों में भर लिया.

——पेडाम मां, मैंने धीरे से कहा.

——ये अपनी गोमी मां हैं, भाई ने परिचय कराया.

वह शायद दूर के किसी रिश्ते में हमारी दादी लगती थी. पर मैं जानती थी, यहां इस स्थूल सामाजिक और तथ्यात्मक रिश्ते को ठीक से न भी जानें तो कोई फर्क नहीं पड़ने वाला है क्योंकि गांव के हर घर की वृद्धा को मैं 'मां' ही कहूंगी और हर मां मेरे साथ वैसा ही व्यवहार करेगी, जैसा मेरी अपनी मां.

गोमी मां को देखने से पूर्व मैं समझ रही थी कि यहां भी परस्पर व्यवहार के तरीके बदल गये होंगे, पर उन्हें देख लगा, पुराना बहुत कुछ अभी शेष है.

हमारे आने की खुशी में अब तक मुरजी को भूली हुई गोमी मां को उसकी याद आयी और वहीं खड़े-खड़े उसने चारों ओर नजर दौड़ायी पर दूर-दूर तक उसका पता नहीं था. थके हुए स्वर में उसने लंबी सांस ली और हमारी ओर मुड़ कर बोलीं——चलो.

——क्यों, क्या हुआ मुरजी भाई को? कहां चले गये वे? भाई ने चलते-चलते पूछा.

——कुछ नहीं. गया होगा यहीं कहीं. मां के अस्पष्ट-से संक्षिप्त उत्तर के आगे फिर भाई ने कुछ नहीं पूछा. अब घर दिखायी दे रहे थे. दो मोड़ों वाली गली के तिराहे पर मां रुक गयीं.

——अच्छा, अभी तो चलती हूं बेटा, बहुत-सा काम पड़ा है. रात को आऊंगी. सामने से आते किसी वृद्ध को देख झट सिर का पल्ला नीचे खिसका, मुंह पर घूंघट डालते हुए मां ने कहा.

——अच्छी बात है मां, भाई ने उत्तर दिया और मां धीरे-धीरे गली में चली गयीं. मैं आश्चर्यचकित हो उसे देखती रही. जिनकी आंखों की बरौनियां तक सफेद हो गयी थीं, वह किसी वृद्ध को देख, जिसे शायद ठीक से दिखाई भी नहीं देता था, घूंघट में मुंह छिपा ले, यह मेरे लिए असाधारण आश्चर्य था. हम भी आगे बढ़े.

शाम के धुंधलके में हर घर उदास लग रहा था. हमारे स्वागत के लिए न तो किसी घर में चेतना का संचार हुआ और न ही कोई घर मुसकाया. इसी नीरवता और शून्यता के बीच भारी कदमों से हम अपने घर की ओर बढ़ रहे थे. सारा गांव शांत था. किसी-किसी घर में आग की छोटी-सी झलक खिड़की में से दिखायी पड़ती थी. जगह-जगह कुत्ते आंखें मींच सोये थे.

हम घर पहुंचे तब हमारी मां दरवाजे के पास बैठ माला फेर रही थीं. भाई तो हाथ का सामान नीचे रख तुरंत पैर छूने झुक गया, किंतु मैं मां को देखते ही बेतहाशा चौंक पड़ी. अभी-अभी मैं जिन कपड़ों में गोमी मां को देख आयी थी, बिल्कुल वैसे ही, बिल्कुल वहीं, उसी रंग के कपड़े मां पहने थीं.

* *

——हां बेटी, अपने यहां यही प्रथा है. बड़ी उम्र की विधवा औरतें ऐसे ही, एक जैसे कपड़े पहनती हैं. जीतू मा कह रहे थे.

तो यह वैधव्य-चिह्न है! मुझे मन में थोड़ी-सी कसक हुई. गहरे कत्थई रंग के कपड़े पहनी हुई कई औरतें रात को हमसे "मेड़ावा" (गप्पें लड़ाने) करने इकट्ठी होती थीं. लालटेन के मंद प्रकाश में, जो अंधेरे को और भी घना बना देता था, गहरे कत्थई रंग के कपड़े पहनी हुई वृद्धाएं बड़ी डरावनी लगती थीं. इसीलिए आखिर में एक दिन जीतू भा से पूछ बैठी. जीतू भा से दो दिन में ही मेरी अच्छी-खासी दोस्ती हो गयी थी.

धूप धीरे-धीरे आंगन से विदा ले रही थी. अनमनापन भी बढ़ता जा रहा था. ऐसे में खिमजी बापा (दादा) की बातों ने और भी अधिक उदास कर दिया. बातों ही बातों में उन्होंने कहा—हां बेटा, आदमी को तो जो भी कुछ मिलता है, उसी में से अपने छोटे-छोटे सुख बना लेता है. पर आज तो वह भी हमसे छिन गये हैं, कहते-कहते आंखें बंद कर बापा ने दीवार से पीठ टिका दी, जेठी मां भी दीवार के पास बैठी थीं. वह कुछ नहीं बोलीं. यों भी वे चुप थीं. खड़े घुटने पर रखी ठोड़ी के चारों ओर दोनों बाहें लिपटाये नीचे देखती हुई वह खामोश बैठी थीं. पर मुझे लग रहा था, उनकी वह खामोशी ही बहुत कुछ बोल रही है. दोपहर को हम गांव में निकल पड़ते. सारे गांव में दोपहर में ही आधी रात का-सा सन्नाटा छा जाता. घर से बाहर 'ओसरी' में ही हाथ से मक्खियां उड़ाते, मिचमिची आंखें बंद कर, धीमी-धीमी सांस लेते बूढ़े दामजी बापा, खिमजी बापा, रायशीं बापा या मेघजी बापा में से कोई बैठा होता. पास ही मिट्टी में कान खुजलाता कुत्ता लेटा होता. हमें देख कर आंखें मींच पहचानने की कोशिश की जाती और फिर इधर-उधर की बातें, एक औसत स्वर में शुरू हो जातीं.

—अब तो दिन-ब-दिन यहां रहना मुश्किल होता जा रहा है. खेती की तो खैर बात ही जाने दो, दो-दो, तीन-तीन साल पानी न बरसने के कारण अब तो कुंए भी सूख चले हैं. कुछ देर बाद जेठी मां ने खामोशी तोड़ी.

मुझे एकदम से लगा कि ये सारी बातें जा कर बाई से बतानी हैं. उनसे कहना है, बाई, तुम्हारी आधी बात तो सच हो गयी है. तुम्हारे समय से तो आज कच्छ कितना ही बदल गया है. नल तो नहीं लगे, पर हां लगातार अकाल के कारण 'वाय' (कुंआ) के पानी जरूर सूख गये हैं. बिजली भी नहीं लगी. उसकी जरूरत भी नहीं. यहां तो अब सिर्फ वे बूढ़े ही रह गये हैं, जिनकी आंखें देख ही नहीं पातीं. पानी के घड़े सिर पर रख कर दौड़ने वाली उस समय की पनिहारिनें तो अब बूढ़ी हो चुकी हैं और उनकी बहू-बेटियां पतियों के साथ शहरों में जा कर बस गयी हैं.

—पर यहां न रहें तो और जायें भी कहां? बड़े लाचारी भरे स्वर में जेठी मां ने कहा तो मैं भी बेबसी से उनकी ओर देखने लगी. बुढ़ापे में शायद सबके चेहरे एक जैसे हो जाते हैं. झुर्रियों भरा, टिमटिमाते दीये-सी आंखोंवाला एक ही चेहरा मुझे हर धड़ पर लगा हुआ दिखायी देता और मेरे लिए दामजी बापा, खिमजी बापा, कुंवरजी बापा या सोमजी बापा के चेहरे में फर्क करना मुश्किल हो जाता. और तब मेरी घुटन और बढ़ जाती और हम घर लौटने लगते. लौटते में गांव के टूटे-फूटे बेबस घरों को देख, बाई की कही कुछ पंक्तियां याद आती रहतीं. किसी कवि ने कहा था—

धींगा धणी हली नेकर्या, मेडियुं माढ छड़ी
डेलियुं थेयुं डोरवाणेल, अंगण ओसियारा ओआ

(घर के शक्ति-संपन्न समर्थ घर वाले तो घर छोड़ चल पड़े. अब पीछे दुःख में डूबा घर और अनाथ आंगन खड़े हैं.)

अधिकांश घरों की दशा ऐसी ही थी और घर जैसे ही टूटे-फूटे बूढ़े पीछे घरों में रह गये थे. यह कहना मुश्किल था कि पहले घर गिर पड़ेगा या बूढ़ा चल बसेगा.

चेहरों को देख प्रतीत होता था कि शायद इस प्रदेश में धरती के स्वरूप और व्यक्ति के चेहरे में बहुत अधिक साम्यता है. सूखी धरती में पड़ी हुई दरारों का प्रतिबिंब हर चेहरे पर दिखायी दे रहा था. चारों ओर उड़ती रेत और असीम तक फैला रेगिस्तान. हवा की सांय-सांय, डरावनी आवाज और दूर तक फैली भयावह शून्यता, सांस रोक सन्नाटा, नीचे तपती धरती और ऊपर कभी-कभी गलती से बरसता आकाश, छोटे-छोटे पड़-पड़ करते मिट्टी के घर और मानो इन सबको मुंह चिढ़ाते, चुनौती देते, जीवन को जीने के संघर्ष में रत रहे यहां के लोग, छोटे-छोटे रंग-बिरंगे खूबसूरत खिलौने जैसे लोग. पानी न बरसने पर और अधिक विनीत और कातर हो कर ईश्वर से प्रार्थना करते, लाचारी भरे न कटते दिनों में, दुःखभरी बातें कर दिन काटने वाले, किसी साल पानी के बरसते ही जिंदगी के उल्लास से चेतन हो उठते यहां के ये लोग, आज न जाने किस शाप से पुरानी जर्जर सदियों में तब्दील हो गये हैं! मैं सोचती रहती.

रात को जीतू भा के साथ-साथ और लोग भी जमा हो जाते और देर तक बातें होती रहतीं. कच्छ के सिवा अन्य किसी स्थान से शायद इन लोगों का कोई नाता ही नहीं था, इसीलिए भाई की बातों में वे काफी रुचि लेते. शहर की बातों पर अविश्वास की हद तक आश्चर्यचकित हो उठने वाले इन लोगों को देख तीसरी या चौथी क्लास में पढ़ी एक कहानी याद आती थी जिसमें प्रियंवदा के दादाजी कई वर्षों की नींद के बाद जब जागते हैं तो एकदम बदली हुई दुनिया को देख भौंचक्के रह जाते हैं.

इसी संदर्भ में मैंने बहुत दिनों से मन में चक्कर काटती बात चलायी—जीतू भा! कच्छ तो लगता है बिल्कुल बदला ही नहीं है. दूसरी ओर देखो सब कितना आगे बढ़ रहे हैं.

—हां बेटे, सुना तो था कि यहां भी धूल उड़नी बंद हो जायेगी और ताजी हवा आयेगी. राह भी देखते रहे थे, पर हवा आयी नहीं. सोच में डूबे से जीतू भा कहने लगे, कुछ लोग कहते हैं, हवा आयी तो थी, पर यहां पहुंचते-पहुंचते जहरीली हो चुकी थी. अतः जो थोड़ा बहुत जिंदा था, वह भी अब मर चुका है. हमेशा जिंदादिल दिखायी देने वाले जीतू भा का दर्द भरा स्वर भीतर सुलगती आग पर से राख हटा रहा था.

—इस मुरजी को ही देखो, शायद वही जहरी

हवा इसे लग गयी है. अच्छा-खासा सीधा-सा लड़का था. बाप के न रहने पर कम उम्र में ही घर की जिम्मेदारी समझ, बंबई जा कमाने लगा था. पर स्वतंत्रता की, गांधीग्राम और 'मुडइ' के विकास की बातें सुन इसके मन में अपनी 'भोमका' (भूमि) का मोह जाग उठा. भारत के आजाद होते ही, दुकान समेट कच्छ लौट आया था. यही सोच कर कि अब तो यहां भी 'डार-मानी' (दाल-रोटी) लायक काम तो मिल ही जायेगा और अपनी भूमि की कुछ सेवा भी कर पायेंगे पर कुछ नहीं हुआ. हालत अधिक खराब होती गयी. और जब नये सरकारी नियमों के अनुसार तीन साल तक बिना बोया उसका खेत जब्त हो गया, तब पहली बार इसकी आंखों में पागलपन झलक उठा था. और बस तब से इस पागल मुरजी के रूप में बुढ़िया के लिए जीती-जागती चिता खड़ी हो गयी है. 'जीतू भा के कथन में मुरजी की स्थिति के प्रति सहानुभूति से अधिक व्यवस्था के प्रति रोष झलक रहा था.

गोमी मां ने सिर उठा कर देखा—पागल की क्या चिंता करें भाई? सयाना होता तो चिंता भी होती, शादी-ब्याह की, बढ़ते परिवार की सारी चिंताओं से मुक्ति मिल गयी. अब तो बेटे आराम है. कहते-कहते गोमी मां की बूढ़ी आंखों में आंसू छलक पड़े. उन्हें देख न जाने क्यों मुझे बड़ी जोर से बाई की याद आने लगी. गोमी मां की हालत देख भाई ने दो-एक दिन में हमारे लौटने की बात छेड़ दी.

मां ने चम्मच भर दही मुंह में डाला और गुड़ की डली मुंह में डालती हुई हिदायत देने लगी कि एक बार घर से बाहर निकलने के बाद हम पीछे मुड़ कर न देखें. चलने की सारी तैयारियां हो चुकी थीं. उसी समय जीतू भा आ गये. निकलने से पूर्व भाई ने झुक कर जीतू भा के पैर छुये तो मैं भी उनके पैरों की ओर झुकी. बिच्छू के डंक लगने के समान एकदम उछल कर वे पीछे हटे—अरे, अरे बेटा! तू त असां के पाप में वेजेंती (अरे, अरे बेटा! तू तो हमें पाप में डाल रही है.) एकदम बौखलाये हुए स्वर में उन्होंने कहा. उनके एकदम उछलने और बौखलाने से मैं इतना तो समझ गयी कि यह महज औपचारिकता नहीं है बल्कि जरूर मुझसे कोई गलती हो गयी है. मैं अपराधी-सी उनकी ओर देखने लगी. मेरी अज्ञानता शायद उन्होंने पढ़ ली थी.

—बेटी, अपने यहां लड़की सिवा पति के कभी किसी पुरुष के पैर नहीं छूती. वह सबसे पहले मां मानी जाती है. और मां कहीं बच्चों के पैर छूती है? कहते-कहते वे ही मेरे पैरों की ओर झुक गये. मैं अचकचा कर, पीछे हटी, पर तब तक वे पैर छू चुके थे..

—बेटी, तू हमारी बेटी बाद में है, पहले तो मां है, सम्मानपूर्वक स्वर में जीतू भा ने कहा, तुम लोगों को यह बात किसने पढ़ायी जीतू भा. मैं मन-ही-मन पूछ रही थी, भीतर तक भीगी हुई.

सामान पर एक नजर डाल, हम घर से बाहर निकले. आगे मोड़ पर खड़ी छोटी-सी भीड़ हमारे साथ चली, हमें बस तक छोड़ने के लिए.

—बेटा अब जल्दी-जल्दी आना.

—इतनी देरी मत लगाना.

—बाई-अधा को भेजना.

—हम तो तुम सबको देखने को तरस जाते हैं.

—जल्दी आना बेटा फिर, क्या पता अब हम कितने दिन रहें!

सिर और पीठ पर घूमते हाथों के भीगे स्पर्श और भीगे हुए कई स्वर मुझे व भाई को नहलाते रहे. रूमाल से नाक व आंखें पोंछती हुई मैं सिर्फ सिर हिला-हिलाकर उत्तर देती रही. और उस समय तो मैं अवाक रह गयी जब औरतें पांच, दस पैसे या चार आने के सिक्के मेरी मुट्ठी में बंद करने की कोशिश करने लगीं. मुझे हाथ पीछे करते देख कह उठीं—तू पहली बार यहां आयी है बेटी, देना तो और भी बहुत चाहिए, पर अभी तो इतना ही है बेटे, यह तो तेरा हक है.

मुझे लगा उन हथेलियों पर पड़े पांच और दस पैसे के वे सिक्के हमारी सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था को, हमारे सारे संस्कारों को मुंह चिढ़ा रहे हैं.

और वापस लौटती बस में बैठे-बैठे मैं सोचती रही कि **'कच्छ मेठो मेराण, असांजे कच्छ वेनथासीं'** गुनगुनानेवाली बाई को जा कर क्या कहना है?

□□□

हाथ का पानी

• माधुरी शाह

—मैं और कितने दिन जीऊंगी. पासुआ! यहीं रहने दो मुझे. तुम्हारी सेवा-करते करते बाकी दिन आसानी से कट जायेंगे. असलम और उमर जैसे दो जवान बेटों की मां आसबाई आंचल पसारे हाथ जोड़ कर पासुभाई और तेजबाई से विनती कर रही थी क्योंकि असलम तो मां और वतन को छोड़ कहां चल पड़ा था, पता ही नहीं लगा और उमर को भूख खा गयी. अब आसबाई को किसी सहारे की जरूरत थी.

पासुभाई और तेजबाई असमंजस में पड़ गये—तुम इस घर में रहो, इसमें हमें कोई एतराज या कठिनाई नहीं है. पर तुम्हारा निर्वाह यहां कैसे हो पायेगा. तुम्हारा खान-पान, रहन-सहन. . .बड़े हिचकिचाहट भरे स्वर में पासुभाई कहने लगे,तो आसबाई उनका इशारा समझ गयी.

—भाई, मुझे तो दो वक्त पेट भरने से काम है. चाहे वह मांस से भरे, चाहे रोटी से. मैं आज ही तुम्हारे सामने हाथ में पानी ले लेती हूं कि आज से मांस को हाथ भी नहीं लगाऊंगी.

उसके बाद पासुभाई और तेजबाई ने उसे उसकी मृत्यु तक अपने घर रखा और उसने मृत्यु तक हाथ का पानी नहीं छोड़ा. □

कच्छी लोककथा

क्षत्राणी का स्वाभिमान

धरण वाघेला की असाधारण रूपवती कन्या धारीणी देवी से ब्याह करके फूलकुमार धन्य हुआ. पति-पत्नी चौपड़ खेलने बैठे तो बाजी जीतते– जीतते धारीणी पांसा फेंकते हुए कहती जाती थी––चल पांसा, मेरे पिता की चाल ! तो वह गुस्से से उठ खड़ा हुआ.

एक बार जब वे दुबारा खेलने बैठे तो खेल में विजयी धारीणी ने पहलेवाली बात हंस कर दुहराई. इस पर फूल क्रोध से पुनः उठ खड़ा हुआ. जिस रूप के पीछे वह पागल था, वह अब उसे जहर जैसा लगने लगा. धारीणी चाहती तो बात का बतंगड़ बनने से पहले उसे मना सकती थी. उधर फूल के मन में भी स्वाभिमान फुफकार करता गया, ठान लिया कि धरण वाघेला को मार कर ही वह धारीणी से कहेगा–– देख लो, धरण का पांसा कैसा पड़ा है !

किंतु धरण को कैसे मारा जाये? एक दिन योजनानुसार फूलकुमार के साथियों ने घेरकर उसे जीवित ही पकड़ लिया. फूलकुमार ने धरण की हत्या करवा कर शरीर से चर्म हटवाकर उसके सिर को काटकर सुरक्षित रख लिया और कुछ दिन उपरांत रानी को संदेश भेजा––बहुत दिनों से चौपड़ नहीं खेला, खेलने आ रहा हूं.

धारीणी अत्यंत स्वाभिमानी थी. उदर में फूल का उत्तराधिकारी आकार ले रहा था. फूल को इस बात का पता था, फिर भी उसने उसकी खोज-खबर नहीं ली थी, इससे वह दुखी थी.

ऐसे में संदेश पाकर हर्षित हुई. उसने यह भी तय कर लिया कि आज वह जानबूझ कर बाजी हार जायेगी.

नियत समय पर फूलकुमार दलबल सहित आ पहुंचा तो धारीणी को अच्छा न लगा ; फिर भी उसने उसका माला पहनाकर स्वागत किया. साथ ही उसकी आंखों में, पिछली बातें याद कर के, अश्रु छलक पड़े. फूलकुमार ने माला पहनाते उसके हाथों को झिड़कते हुए कहा––क्यों मेरा आना अच्छा नहीं लगा, रुलाई आ रही है !

यह सुनते ही धारीणी के मन से उसके प्रति अच्छी भावनाएं लुप्त हो गयीं. किंतु पहली ही बाजी वह हार गयी. दूसरी बाजी में पांसा फेंकते हुए फूल ने कहा––तुम्हें जीतना हो तो मुझसे सीखना होगा, धरण वाघेला की चाल काम नहीं आयेगी.

धारीणी सावधान थी किंतु यह सुनते ही उसका मन बेकाबू हो गया . बाजी वह जीत गयी और उठ खड़ी हुई.

––क्यों हारने का डर लग गया? जीतना हो तो शान से जीतो, फूल की तरह. . .

पेट में असह्य पीड़ा होने पर भी वह पुनः खेलने बैठ गयी.

फूल प्रत्येक बाजी जीतता जा रहा था और उस पर नशा चढ़ता जा रहा था––अब बंद कर दें न? तुम्हारे बस का अब नहीं न?

उसे शरणागत देखकर फूल रंग में आ गया––धरण वाघेला की बेटी बुरी तरह हार गयी!

धारीणी ने दांत पीसा और नीचे पड़ा हुआ पांसा हाथ में लेकर बोल पड़ी––इस भूल में न रहो, राजा ! धरण वाघेला की बेटी आधे खेल में हार नहीं मानने की ! . . और उसने पांसा फेंका. आज भाग्य उसके साथ नहीं था पांसा ठीक नहीं पड़ा. फूल ने हंस कर कहा–– फेंकते समय बाप का नाम नहीं लिया था न!

और वह पुनः हो-हो करके हंस पड़ा.

यह सुन कर और उसकी व्यंग्य भरी हंसी देखकर धारीणी आपा खो बैठी, पांसा फेंककर बोली––चल, धरण वाघेला की चाल!

यह सुनना था कि फूल कह उठा––धरण वाघेला की चाल देखनी हो तो जिस आसन पर बैठी हो, उसे जरा ध्यान से देखो.

बात धारीणी की समझ में नहीं आयी किंतु जब उसने वही बात दुहरायी तो वह उठ खड़ी हुई, और चादर उठा कर जो देखा तो. . .

उसकी रगों का रक्त मानो जम गया, फटी आंखों से वह देखती रह गयी–– पिता का मृत चेहरा! तो उसका इस कदर अपमान!

उसका शरीर थरथर कांप रहा था. अपने वस्त्रों में छिपी कटार उसने निकाल ली. . .

बैर के नशे में फूल यहां तक बढ़ चुका था किंतु धारीणी स्वयं की हत्या कर ले, यह उसे स्वीकार्य न था. उसका कटारवाला हाथ पकड़ कर उसने कहा––नहीं, रानी. . .

किंतु धारीणी हाथ छुड़ा कर दूर जा खड़ी हुई . उसका कटारवाला हाथ पुनः उठ चुका था और कलेजे के आरपार होने ही वाला था कि फूलकुमार चिल्लाया––अपनी जात पर तुम जुल्म भले कर लो किंतु दूसरे जीव पर नहीं कर सकती हो ! मरना ही हो तो मरो किंतु मेरी धरोहर मुझे सौंपने के बाद!

किंतु धारीणी का निश्चय कुछ और ही था. वह तत्काल बोल उठी––तुम्हें चाहिए न तुम्हारी धरोहर, तो लो!

और स्वयं के पेट को कटार से चीरकर उसमें से गर्भ को बाहर करती हुई वह बोल पड़ी–– लो, सम्हालो अपनी धरोहर !

और इसके साथ ही निढाल होकर वह गिर पड़ी. □□□

(प्रस्तुतीकरण : मूलराज रूपारेल, अनुवाद : अलका सिंह)

क्या आप सिर्फ़ देखकर कपड़े की उत्कृष्टता परख सकते हैं ?

**जी हाँ।
हम आपको
बताते हैं कैसे।**

सीधी-सी बात है। बस यह इत्मीनान कर लीजिये कि कपड़े पर 'टेरीन'® ट्रेडमार्क है। क्योंकि इसका अर्थ यह है कि आप ऐसा पॉलिएस्टर कपड़ा ख़रीद रहे हैं जिस की जाँच-परख पहले ही हम– पॉलिएस्टर रेशे 'टेरीन' के निर्माता केमिकल्स एण्ड फ़ाइबर्स ऑफ़ इंडिया लिमिटेड (कॅफ़ी)– कर चुके हैं। अनेक जाँचों में से एक है 'क्रीज़' अवरोध जाँच।

इस जांच से हमें २ मिनट में मालूम हो जाता है कि दिनभर की भाग-दौड़ के बाद आपके कपड़े कैसे दिखाई देंगे।

हम कपड़े का एक नमूने का टुकड़ा लेकर उसको तह करके अपनी 'शर्ली क्रीज़ रिकवरी टेस्टर' मशीन पर रखते हैं। फिर इस पर एक मिनट के लिए भारी वज़न रखा जाता है। कपड़े को अपनी पहली हालत पर आने के लिए एक मिनट का समय दिया जाता है। अगर कपड़ा हमारे मानदंड पर पूरा नहीं उतरता तो उसे 'टेरीन' ट्रेडमार्क नहीं दिया जाता।

जब आप 'टेरीन' कपड़े ख़रीदते हैं तो आपको अपने पैसों की पूरी-पूरी क़ीमत वसूल होती है।

क्योंकि हमें कपड़े पर पूरा भरोसा है कि इस से आपको अपने पैसों की पूरी क़ीमत वसूल होगी। हम कपड़े की 'क्रीज़' अवरोध की ही जाँच नहीं करते बल्कि हम कपड़े की रगड़-अवरोध, सिकुड़न-अवरोध और रंग पक्का होने की भी जाँच करते हैं। इसके सिवा और भी कई जाँचें की जाती हैं। अगर कपड़ा किसी एक जाँच पर पूरा नहीं उतरता तो उसे 'टेरीन' ट्रेडमार्क नहीं दिया जाता।

इसका कारण यह है कि हम इस ओर विशेष ध्यान देते हैं कि आप को केवल चुने हुए कपड़े ही 'टेरीन' ट्रेडमार्क के साथ मिलें। इन्हें गुणवत्ता का विशेष ध्यान रखने वाले मिल बनाते हैं– वे कुछ मिल जो नये-नये ढंग के फ़ैशन निकालते हैं, नये-नये डिज़ाइनों और बुनावटों के कपड़े पेश करते हैं और सबसे महत्वपूर्ण यह कि जिनके बनाये हुए कपड़े हमारी कड़ी गुणवत्ता जाँचों पर खरे उतरते हैं।

खुद अपनी भलाई के लिए कपड़े पर 'टेरीन' ट्रेडमार्क देख लीजिये।

TERENE

®'टेरीन'– केमिकल्स एण्ड फ़ाइबर्स ऑफ़

CHAITRA-CAFI-458 HIN

शिव निर्माल्य

—सरोज पाठक

पुष्पु वैसे तो नेपथ्य में ही रहता. पर्दा खुला तथा नाटक शुरू हुआ कि उसका काम शुरू. वैसे तो संवाद उसे मुंहजबानी याद हो जाते थे, अतः प्रोंप्टिंग वह बिना स्क्रिप्ट के भी कर देता.

कौन-सा पात्र कहां भूल कर रहा है, यह उसे तुरंत पता चल जाता. ऐसे वक्त प्रोंप्टिंग की कला के साथ उसकी सोलह कलाएं प्रस्फुटित हो उठतीं. नाटक के समय किसी भी प्रकार की कठिनाई उपस्थित हो, पुष्पु का होना अनिवार्य बन जाता. एक विंग में से दूसरी में छलांग लगा कर, मौका पड़ने पर चाहे जिस पात्र की प्रोंप्टिंग करनी हो वह चुटकियों में कर आता. कई बार तो स्टेज पर कोई सामग्री दृश्य अनुकूल छूट गयी है या फिर भूल से रह गयी है, उसे भी वह बड़ी चतुरता से रफादफा करने में गजब की सूझ-बूझ प्रदर्शित करता था.

'रामायण' के सीता-हरण वाले दृश्य की रिहर्सल में हमेशा रावण-सीता लड़ पड़ते. 'सीता' शिकायत करतीं— मैं वाक्य बोलूं या न बोलूं. इनको तो हरण करना है न? ये रास्ता किस बात का देखते रहते हैं? तुम्हारी अपेक्षा तो राम भले हैं, वे 'सीता'! 'सीता'! विलाप करते हुए तुरंत खोजने निकल पड़ते हैं!

तब से रावण दृश्य के समय तुरंत हरण कर के ले जाता, बिलकुल रास्ता न देखता कि सीता अपना वाक्य बोलती है या नहीं, पुष्पु देखता रहता, जैसे ही सीताजी अपने संवाद में कुछ अटकीं . . .वह सब संभाल लेता, और सीता का हरण कब हो, यह उसके हाथ की बात हो गयी थी और रावण उसका इशारा पाते ही . . .

'शिव निर्माल्य' नाटक की पंद्रहवीं रात तक तो पुष्पु को उस नाटक के सारे संवाद कंठस्थ हो गये थे. कई बार उसकी इच्छा होती कि कोई भी पात्र किसी भी रूप में बीमार पड़ जाये या गुस्सा हो जाये या फिर चला जाये तो . . .तो एसी आफत को भी वह सीना तान कर दूर कर सके और अपनी काबिलियत का झंडा और मजबूती से गाड़ सके!

'शिव निर्माल्य' नाटक में ज्यादा से ज्यादा संवाद स्त्री पात्रों को ही बोलने होते थे. पुरुष के हिस्से में अन्याय सहन करना, मौन वेदना की घुटन में तड़पना, हुक्म मानना और अंत में निराश हो कर इस नाटक के नायक को एकाकी, संपूर्ण वेदना को अपने चेहरे की भाव-भंगिमा द्वारा 'अभिव्यक्त कर, निश्वास छोड़ते हुए खड़े रहना था और इस प्रकार बोलना था! यह सब पुष्पु को बड़ा सहज लगता था अगर उसे यह पात्र अभिनीत करना पड़े . . . . ! . . . परंतु . . .

—मेरा भी एक नाम है जिसे मां बाप ने दिया, शिक्षा-दीक्षा ने उसे अपनाया, शादी के पश्चात् पति ने दुलराया, सरनेम बदल गया तो क्या, किंतु नाम तो है मेरा अपना ही . . . मिस्टर पार्थ सारथी !

तूफानी बरसात से और भयंकर आंधी से गिरते-पड़ते वृक्षों के धराशायी होने का प्रभाव स्टेज पर नेपथ्य से अपनी सधी आवाज से पैदा करना पुष्पु का दायें हाथ का खेल था. सब कुछ इतना स्वाभाविक बन पड़ता था जैसे सचमुच आंधी चल रही हो, भयंकर बरसात गिर रही हो और यह सब स्वर का आरोह-अवरोह संवाद बोलने के तुरंत बाद ही उत्पन्न करना पड़ता था. यह पुष्पु की सबसे बड़ी खूबी थी.

. . .बरसों की वफादारी, प्रेम के अटूट गठबंधन को जन्मजन्मांतर का संयोग मान कर हाथ में हाथ डाल कर जीने वाली स्त्री सहसा अनौपचारिक क्रूरता के साथ अपने नाम के साथ जुड़े पति के नाम 'पार्थ सारथी' को थूक की तरह फेंक दे तो बेचारा नायक कैसे और किस तरह अपना मुंह छिपाये? इस ऐक्टिंग, . . .इस मौन वेदना को प्रकट करने के लिए लेखक को कुछ पंक्तियां जरूर लिखनी चाहिए थीं, . . .किंतु लेखक ने नायक की इस मौन वेदना को मुखरता प्रदान करने के लिए कुछ भी नहीं लिखा, इसलिए कुछ प्रोंप्टिंग भी नहीं करनी थी. पुष्पु नायक को मूक अभिनय करते देखता रहता.

नाटक की दुनिया ही कुछ और है. 'भ्रमर न्याय की तरह' अच्छा हुआ कि. . .पुष्पु ने अपने मन को

सरोज पाठक (जन्म : १९२९, जखो कच्छ) ने अपनी साहित्यिक गतिविधियां १९४६ से प्रारंभ कीं. इनका पहला वार्ता-संग्रह 'प्रेम घटा घिर आयी' १९४९ में प्रकाशित हुआ और इसे महाराष्ट्र सरकार की ओर से पुरस्कृत किया गया. इनके कहानी-संग्रह 'विराट-टपकुं' को भी पुरस्कार मिल चुका है. इन्होंने जिंदगी के यथार्थ को अपने कथ्य के रूप में स्वीकारा है.

समझा लिया,. . .उसका भी दिल एक लड़की के साथ जरा लग गया था. लड़की सच्ची थी या झूठी, यह तो ईश्वर जाने पर पुष्पु के लिए तो वह अच्छी ही कहलायेगी. पुष्पु के घर में खुद की पत्नी थी. किंतु नाटक का काम ऐसा था कि इस गांव से उस गांव बस घूमना ही घूमना. पिछले डेढ़ साल से पारिवारिक जीवन तो जैसे रह ही नहीं गया था. पत्नी जहां रहती थी, उसी गांव में पुष्पु की एक प्रेमिका भी रहती थी बेचारी. यह सब होते हुए भी इस नाटक की एक लड़की ने उसके मन में अपने लिए आकर्षण पैदा कर दिया था. किंतु एक दिन इस नाटक को लड़की ने अपने मन की बात कह दी थी.

—देखो पुष्पु, इस नाटक में तुम्हारी कितनी ज्यादा आवश्यकता पड़ती है. अगर तुम्हारी मदद न होती तो यह नाटक सफल ही न होता. . .सच तो यह है कि मैं तुम्हारे मोह में पड़ गयी थी. मैं विवाहित हूं. मेरा कैरियर भविष्य में क्या होगा, क्या कह सकती हूं. . . तुम भी शादीशुदा हो, इस मोह में . . .मोह. . .अच्छा हो हम लोग प्रेम-वेम के ढकोसले में न पड़ें. यह मीठा संबंध साथ में काम करने भर तक ही समझो. आगे कुछ नहीं .

यह सब गीता-प्रवचन उसकी समझ में आ गया. यह नाटक की लड़की उसे गृहस्थ मानती थी और स्वयं. . .प्रेम कैसा था, यह उस लड़की ने ठीक से समझा दिया था. प्रेम तो पीतल और सगाई सोना है. . .नाटक के संसार में सब कुछ नाटक होता है, घर-गृहस्थी का तीरथ नहीं हो सकता —

बेचारी पत्नी. डेढ़, दो साल में उसने पत्नी की खूब उपेक्षा की थी. अब पुष्पु चाहता था, एक बार छुट्टी लेकर घर हो कर आये.

अब तो गांव की वह लड़की षष्ठी भी बी. ए. पास हो गयी होगी. सबसे ज्यादा खूबसूरत, थोड़ी औरों से एडवांस भी है. एडवांस ही है नहीं तो पुष्पु को कोई खड़े होने देता और फिर पुष्पु तो बिल्कुल रमताराम है, आज यहां कल. . .

'शिव निर्माल्य' की रिहर्सल चलती रहती थी और वह यंत्रवत् प्रोंप्टिंग करता रहता. सब कुछ बड़ा ठहरा-सा प्रतीत हो रहा था. गांव की लड़की षष्ठी अकसर याद आ जाती, पत्नी भी.

नायक की दाढ़ी कांपती है; भ्रमर की तरह वह उत्तेजित कली को मसल देने की दुबिधा में अचकचा जाता है, तभी प्रोंप्टिंग वाक्य पुष्पु नेपथ्य से फेंकता है व नायिका उसे लोक लेती है. फिर बोलती है. . .शरण आई हुई मेरी विधवा मां को तुमने ही बिगाड़ा था, याद है न ! . . .

उसका मुंह बंद करने के लिए नायक एकदम दांत किचकिचा कर उसकी ओर दौड़ पड़ता है. और उसके कुछ कहते न कहते . . .तब पत्नी बोल उठती है—उस नाटक में तुम्हारे इस जहरीले स्पर्श से मैं ऊब गयी हूं. दूर हट जाओ मेरी नजरों से! यह नदी का एक किनारा या रेस्टोरेंट नहीं है. यह मेरा घर है. अब मैं त्यक्ता किंतु मुझे या मेरी वेदना को तुम्हारी दया भी नहीं चाहिए. न मैं किसी तरह का और अपमान सहन कर सकती हूं. अपने बच्चों के लिए मैं मां हूं और मैं ही उनके लिए बाप बन कर दिखाऊंगी. मैंने अब निर्णय कर लिया है, आप मेहरबानी करके चले जाइए.

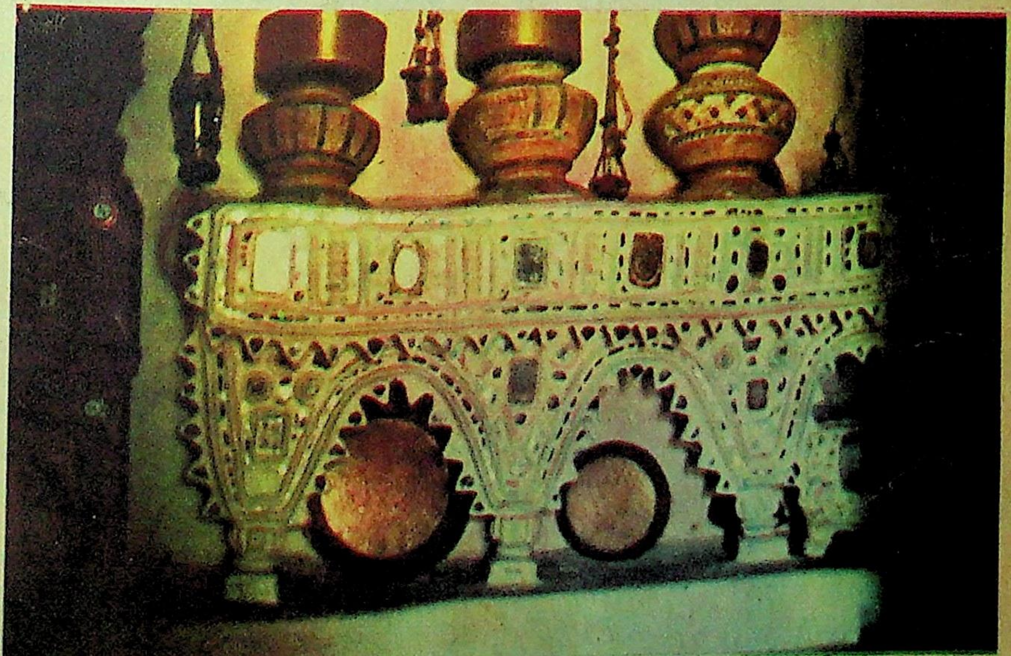

पुष्पु ने पन्ना उलटा. . .

मानो लहू जम गया हो, ऐसे नायक बैठा रह गया. ं से दिलरुबा की चीत्कार करती हुई स्वर लहरी उठी. पूर्ण-विराम की जगह एक तर्ज . . .दूसरी र्ज. नायक पुरुष पर जैसे किसी चीज का असर हो हो. स्पाट में उजाला, और जहां आवाजें कुछ मी होती थीं, या सुर कुछ अस्फुट, वहां नायक कुछ ने के लिए अपने होंठ खोलता है. हाथ ऊंचा करता . .और अंक पूरा हो जाता है. . .

★ ★

पर्दा खुलता है, आधुनिका दृढ़ता से होंठ भींचे हुए ड़ी है. अपने मन की सारी भड़ास व्यक्त कर दी, फिर ाश जड़वत् हो गये पुरुष को एक गठरी के समान झोड़ते हुए क्षण भर उसे देखती रही.

पुष्पु ने स्क्रिप्ट के पन्ने पलटे. पुरुष के अहम् और ामित्व की ग्रंथि को पुराने वस्त्रों की तरह फाड़ र फेंक देने के पश्चात् आर्त नारी स्वर उठा—स्त्री के हम् को तुमने नहीं समझा. अपना सब कुछ अर्पण कर भी मुझे प्रत्येक पल अधूरा लगा. प्रेम शब्द ने मुझे भी साहस नहीं दिया, मैं असहाय नहीं हूं, यह एहसास झे कभी प्राप्त नहीं हुआ.

एक भारी निश्वास के पश्चात्—मेरी पढ़ाई-लिखाई भी भी मेरे साथ है, वही मेरा भविष्य है परंतु . . .प्रेम ी व्याख्या अब बदल गयी है, मैंने प्रेम को दौलत माना ा किंतु . . .तुम्हारे प्रेम में वह ताकत नहीं है. तुम ासना के कीड़े मात्र हो और उन कीड़ों का शरीर पर गना अब सहनशक्ति से परे है. जिस प्रेम को कवियों ने ाया है, ऐतिहासिक प्रेमियों ने खूबसूरत मकबरे बनाये ं, उन्हें मैं पत्थर मार कर तोड़ देना चाहती हूं.

. . .मुझे मुक्ति चाहिए. मैं अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व े प्यार करती हूं. मैं प्रेम के बिना जीवन जीना पसंद करूंगी. प्रेम की किसी भी चेष्टा, किसी भी अदा से अब मैं नफरत करती हूं . . . मैं ऐसे आदमी को पसंद करूंगी जो मुझे मेरा घर दे, भले प्रेम दे या न दे. . .

पुष्पु दर्शकों की तालियों की गड़गड़ाहट का रास्ता देख रहा है. अगर वह छुट्टी ले कर घर जाये और जिस दिन वापस आये उस रात भी 'शिव निर्माल्य' खेला जा रहा हो तो घर जाकर वह वापस आया है या अभी छुट्टी लेकर घर जाना बाकी है, उस दुबिधा में अगर वह प्रोंटिंग करना भूल जाये तो उसका क्या दोष? कभी-कभी स्टेज पर ऐसा होता है कि कलाकार अक्षरशः संवाद नहीं बोल पाते, वे विचार जान लेते हैं और उसी को फिर अपने शब्दों में व्यक्त करते हैं, तब भी नाटक हो सकता है. पुष्पु ने यह सब भोगा है. वह जहां तक हो सकता है लिंक देता है और पिछले वाक्यों से अगर लिंक न मिले तो सामने वाला पात्र बोलने में अचकचा जायेगा.

परन्तु 'शिव निर्माल्य' नाटक में पुरुष पात्र को 'लिंक' की खास जरूरत नहीं पड़ती थी. ज्यादा स्त्री पात्रों को ही बोलना था. पुष्पु को मात्र पन्ने पलटने होते थे कि कहां तक संवाद हो गये हैं? वह सोचता नाटक का नायक तीनों पात्रों के द्वारा लांछित हो कर आयेगा तभी सच्चा 'शिव निर्माल्य' हो कर रंगमंच पर हाथ हिलाता हुआ खड़ा रहेगा और करुण स्वर में दिलरुबा के तार झनझना उठेंगे.

जब वह पत्नी के पास जाकर खड़ा होता है तो पत्नी का उत्तर मिल जाता है. यह दृश्य पूरा होने के पश्चात् वह प्रेमिका के पास जाता है.

'प्रेमिका !' जन्म-जन्मान्तर तक एक साथ रहने की कसम खाने वाली प्रेमिका की मोह-निद्रा भंग होती है और उसके भी जवाब नुकीले पत्थरों की तरह उसके हृदय को छलनी कर देते हैं. वह वहां से भी भागता है.

अंत में तीसरा, सबसे आखिरी पड़ाव आता है, नायक के हृदय परिवर्तन हेतु ही वह लड़की जैसे बनी हो, उसके पास जाता है. उसकी सच्ची भावनाओं का अभिनंदन करना चाहता है, उससे सहारा पाना चाहता है किंतु. . .

तब उसके कानों में आखिर के ये शब्द पड़ते हैं :

'पराधीनता, समर्पण और विश्वास की भी एक सीमा होती है. मेलोड्रामा की मुझे खूब समझ है. मर्द हो कर, माथे पर हाथ रख कर रोने जैसा मुंह बना रहे हो? इससे तो अच्छा होता कि मुझे विलेन से मुहब्बत होती. तुम्हारे साथ दुश्मनी करना बेवकूफी होती और दोस्ती. . .अत्याचार बन गयी है, ऐसा मुझे लगता है.

ट्रेन आने का तथा आ कर चली जाने का इफेक्ट नेपथ्य में पैदा करना था तथा भक-छुक-भक-छुक के साथ उठती हुई चिंघाड़ती सीटी के माध्यम से पूरा जीवन हिल उठा है, यह इफेक्ट भी देना था. ऐसा ही इफेक्ट जब रावण सीता का हरण कर के ले जा रहा होता है, तब 'ड्रम' पर लकड़ी से पीट कर तथा राक्षसों का अट्टहास व आंधी के वेग का, आवाज द्वारा इफेक्ट पैदा किया जाता. पुष्पु किसी भी तरह का इफेक्ट पैदा करने में या प्रोंप्टिंग करने में भूल न करता और जो काम उसे नेपथ्य में मूक हो कर करना पड़ता था, वह भी वह सही रूप में करता रहता, भले उसके जीवन में भारी उथल-पुथल हो गयी हो . . .वह घर जा कर वापस आ 'शिव-निर्माल्य' नाटक की नेपथ्य में प्रोंटिंग करने बैठे तो उसे ऐसा ही लगता, कि——

ओहो ! यह तो बिल्कुल ऐसा ही है ! लेखक ने वैसा ही लिखा है जैसा उसके. . .! कलाकार कोई गलती न करें, वैसा ही बोलें, पुष्पु को यह ध्यान रखना है. परंतु उस दिन उसे ऐसा महसूस हुआ कि 'शिव-निर्माल्य' नाटक में अगर नायक के मुंह से कुछ कहलवाया होता तो कितना अच्छा होता. या नाटक के अंत में नायक रावण की तरह हो गया होता तो? रावण की तरह चिल्लाकर, चोटी पकड़ कर पहली नायिका का हरण कर लेता तो ?

किंतु नाटक में ऐसा हो सकता है क्या ? ऐसा नहीं हो सकता.

जीवन में ऐसा हो सकता है! ऐसा हुआ होता ? किंतु पुष्पु तो बेचारा नाटक का आदमी है. उस पर भी नेपथ्य में रहने वाला, गौण अंश ! उसका काम तो सिर्फ प्रोंप्टिंग करना था. . .

□□□

(अनुवाद : चित्रा मुद्गल)

चरवाहे का सौदा

गांव के एक जमीनदार की तेज घोड़ी को देख कर भेड़-बकरी वाले चरवाहे को भी घोड़ी लेने का दिल हुआ. अपनी इच्छा को वह रोक न सका. वह जमीनदार के पास गया. अपनी सारी भेड़-बकरियों के बदले में उसने घोड़ी मांगी.

जमीनदार ने कहा कि तेरी भेड़-बकरियों की कीमत इतनी नहीं कि मेरी घोड़ी तू ले सके. हां, ऊपर से अगर सौ "कोरी" देगा तो सौदा मंजूर.

बकरी वाले की इच्छा इतनी तेज थी कि उसने शर्त मंजूर कर ली और अपनी सारी भेड़-बकरियां जमीनदार को दे कर घोड़ी ले आया. अब उसके पास कुछ न रहा. इस तरफ जमीनदार पैसों के लिए दबाव डालने लगा. घोड़ी रखने का उत्साह अब तक खतम हो गया था. जमीनदार की रोज़ की धमकिओं से डर कर उसने बाकी पैसों के बदले में घोड़ी वापस कर दी. इस तरह घोड़ी की कीमत में भेड़-बकरियां गयीं और बाकी पैसों में घोड़ी भी गयीं. □

सत्यानाश और रुपया

कच्छ के एक गांव में एक बेवा औरत अपनी जवान बेटी के साथ रहती थी. पैसों के लालच में आ कर उसने मांडण नामक एक दलाल की सहायता से अपनी बेटी का ब्याह एक बूढ़े के साथ कर दिया.

बेटी जब ससुराल से लौटी तब मां ने कहा—
—बेटी, आ मेरे गले लग जा. बेटी ने कड़ुआहट के साथ कहा—मैं तो बूढ़े को गले मिल के आयी हूं !

बेटी के रोने से द्रवित हो कर मां ने कहा—
हाय, ये मांडण ने तो सत्यानाश कर दिया.
—मां ! किसी को दोष देने से क्या फायदा ? सत्यानाश तो रुपयों ने कर दिया ! □

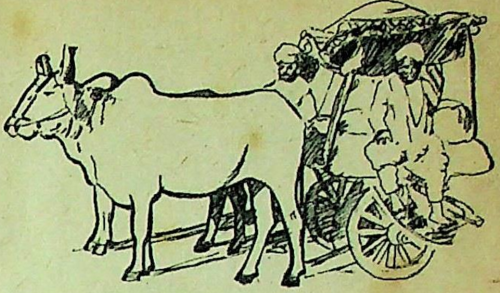

मूंठ और ऊंट

एक मियां थे. काम था तिल का तेल निकालने का. हर एक ग्राहक के टिल में से एक मुट्ठी तिल चुराने की उन्हें आदत थी. एक-एक मुट्ठी करके उसने अच्छे पैसे बनाये और एक ऊंट खरीदा. और खुश हो कर गीत गाते-गाते अपनी तेल की घानी चलाने लगा.

थोड़े दिनों के बाद अचानक ऊंट बीमार पड़ा और काफी इलाज के बावजूद मर गया. और मियां पहेले जैसे बन गये.

लोग कहने लगे—'मियां ने मारा 'मूठ', से, अल्लाह ने मारा ऊंट से. □

गरीब का खाना

गरीब मां ने बालक को सूखी रोटी परोसी.
बालक—मां मक्खन?
मां—मक्खन बिगाड़े लक्खन, बेटा !
बालक—तब खीर ?
मां—खीर जींदा पीर! वह नहीं मांगते.
बालक—मां तब दहीं?
मां—दही नहीं सही, प्यारे!
बालक—तब मां, घी?
मां—घी, बदन में घसता जी.
थक-हार कर—
बालक—तब मां. छाय ? (छाछ)
मां—छाय तो मेरा प्यारा लाल खाय!
झट से पड़ोस से मांग कर लायी पानी जैसी छाछ मां ने परोसी.

□ **कवि दुलेराय काराणी**

आत्मरचना (३०)

गर्दिश के दिन

• अजित पुष्कल

ून, १९७२ से सारिका में इस महत्वपूर्ण ेखमाला की शुरुआत हुई थी और अब क आप इसमें हरिशंकर परसाई, ानी, से. रा. यात्री, राही मासूम रजा, मोहन राकेश, भीष्म साहनी, चंद्रकांत क्षी, शैलेश मटियानी, मधुकर गंगाधर, ईश्वर वंदर, शांतनु आचार्य, कृष्णा सोबती, मधुकर सिंह, इब्राहीम शरीफ, रवींद्रनाथ त्यागी, फिक्र तौंसवी, दामोदर सदन, हृदयेश, रामसरूप अणखी, एम. टी. वासुदेवन नायर, कृष्णप्रसाद मिश्र, श्रीलाल शुक्ल, रॉबिन शा पुष्प, राजेंद्र यादव, दीप्ति खंडेलवाल तथा श्रवण कुमार की आत्म-रचनाएं पढ़ चुके हैं. तमाम संघर्षों, व्यक्तिगत तनावों और दुख-सुख के क्षणों के बीच से गुजरते हुए कोई प्रतिभा किस तरह रचनात्मकता ग्रहण करती जाती है और सामान्य व्यक्ति के रूप में किस तरह संघर्षरत रहती है—इसी संघर्षशील यथार्थ का निरूपण करने वाली, प्रख्यात लेखकों की आत्म-रचनाएं, इस स्तंभ के अंतर्गत दी जा रही हैं. इस अंक में पढ़िए हिंदी कथाकार अजित पुष्कल की यह आत्मरचना.

महीने भर बाद जब आज फिर से कुछ लिखने की आहट अपने अंदर महसूस कर रहा हूं तो अपनी ही कविता उभरती है. मैं उसी कविता से अपनी बात की शुरूआत करना चाहता हूं.

जिस दिन मेरा जन्म हुआ
उस दिन
किसी महाकवि की मां के पेट में दर्द था
और वह मेरे जन्म के
दो दिन बाद पैदा हुआ.

सीधा-सा क्रम है. जन्म. फिर संघर्षजन्य अनुभवों की पीड़ा. तब रचनाकार का अभ्युदय. अपने होने का एहसास ही जन्म की सार्थकता का एहसास है. अपना जन्म-स्थान और जन्मतिथि तो सभी को याद रहते हैं. मुझे भी याद है. बांदा जिले के पैगंबरपुर गांव में एक खेतिहर परिवार में पैदा हुआ. खास बात यह थी कि उस दिन सिद्दत की गर्मी थी. मेरे गांव के पहाड़ का जर्रा-जर्रा सूरज के अगिन ताप को पी रहा था. आज भी जब मेरे मन में उमस पैदा होती है तो उस पहाड़ की याद आ जाती है और मैं गंभीरता से उस उमस को अपने अंदर सोखने लगता हूं. मैंने कई बार यह अनुभव किया है कि गांव के कुछ प्राकृतिक स्थल मौन साथी की तरह मेरे साथ हो लेते हैं. मेरी कविताओं में प्रतीक एवं बिंब बनकर मुखर हो उठते हैं.

बुंदेलखंड के बड़े-बड़े पहाड़. . .फैले-फैले करौंदों की गंध से भरे जंगल. . .नदियां . . .चौड़ी काठीवाले बरधा जैसे मेहनतकश मर्द. . .और बलिष्ठ औरतें अपनी सारी अच्छाइयों और बुराइयों के साथ मेरी चेतना में अभी तक मौजूद हैं. वहां के लोगों के बीच रहकर जो संस्कार, जो भाषा तथा जो शब्द मुझे मिले थे, उन्हीं के सहारे मैं अपने कथा पात्रों के करीब पहुंच जाता हूं. अजीब-सी प्रतिक्रिया होती रही है. उन लोगों के साथ घुलते-मिलते ही बीच का अंतराल खो जाता था. मैं बचपन वाली आंखों से उन लोगों को देखता-परखता और आत्मीय बोध से भर जाता. चुपचाप उनके जीवन से बहुत कुछ खींच लाता. फिर कलम के सहारे उपन्यासों में उतरता रहता. इसीलिए मेरे सभी उपन्यास आंचलिक हैं और जीते-जागते पात्र हैं. आज जब कि गांव का संपर्क टूटता-सा जा रहा है, मेरे अंदर एक अविश्वास भी पनप रहा है कि अब मैं उपन्यास नहीं लिख पाऊंगा.

मेरे इच्छा नहीं होती कि गर्दिश के दिनों की चर्चा करूं क्योंकि कभी-कभार ऐसे दिन देखने को मिले हों तो चर्चा करने का एक अलग सुख होता. उन्हीं में रस-बस जाने के बाद वैसी उत्तेजना ही नहीं पैदा होती. फिर भी, मन के अंदर कहीं कुछ कौंधने लगा है.

मेरे लिए गर्दिश के दिन पहचान और परख के दिन होते हैं. जूझने और जोखिम उठाने के दिन हैं. अकेलेपन और चोट खाने के दिन होते हैं. चिंतन और अनुभूतियों के दिन होते हैं. समझ और निर्णय के दिन होते हैं.

जिंदगी की समझ का पहला सबक तथा जोखिम उठाने का साहस बचपन में ही मिले. दीदी (चाची) का हार्दिक स्नेह जिन्होंने मेरा पालन-पोषण किया, चाचाजी का वाह्य संरक्षण, पिताजी की घुड़कियां, और मां की तटस्थता, परिवार के अनुशासन के लिए जिन्होंने कभी जानबूझकर मां होने का दावा नहीं किया. तेरह साल की उम्र तक मैंने दीदी के सामने उन्हें मां नहीं माना. उनकी कमी का एहसास भी नहीं हुआ. खाने-पीने का प्रबंध दीदी ही करतीं. उन्हीं के साथ सोता. बीमार पड़ता तो वे अपनी छाती से चिपकाये रात-रात भर आंगन में टहलती रहतीं और देवी-देवताओं से मनौती करती रहतीं. चुमकारती-पुचकारती रहतीं.

इन्हीं लोगों के बीच मेरी पारिवारिक मानसिकता बनी. जहां आत्मीयता थी और अपने से अधिक दूसरे

का ख्याल रखा जाता था. घर के बाहर जो दोस्त मिले, उनके साथ नंगे पांव ढेलों में दौड़ा और तलुओं में कई तरह के कांटों की चुभन पाई. पेड़ों पर चढ़ा तो फल खाने को मिले. तैराकी की तो डूबते-डूबते बचा. घुड़सवारी की तो बुंदेलों की बहादुरी का अहं भी महसूस किया और एक दिन पत्थर पर गिरकर दोनों घुटने तुड़वा कर बहुत दिनों तक अपंग बना रहा. अतीत के झूठे गौरव को लादने की सजा भोगी. इन्हीं साथियों के साथ चाचाजी के खैराती मदरसे में पढ़ाई शुरू की. चाचाजी यह स्कूल अपने एकमात्र स्वर्गीय पुत्र की स्मृति में चलाते थे. दिन भर बच्चों के साथ माथा मारते. हिंदी, उर्दू और गणित की पढ़ाई करते. अपने इस स्कूल में उन्होंने गांव की चार पीढ़ियों को शिक्षित किया था. आज भी उनके छात्र उनके सामने खाट पर नहीं बैठते. इसके बाद गांव से डेढ़ मील दूर प्राइमरी स्कूल में मेरा नाम लिखवाया गया. मां कंडी की आंच में गकरियां सेकती और घी में चुपड़कर कपड़े में बांध देती. कपड़ा घी में ऐसा सीझता कि दो-एक दिन बाद उसे कुत्ते घसीट ले जाते. इस तरह कई बार मुझे अपने कपड़े का टिफिन बाक्स बदलना पड़ता.

बुंदेलखंड की लाठियां तो प्रसिद्ध ही हैं. हम लोगों के पास एक-एक लाठी थी. मैं और मेरे साथी घोड़ा समझ कर उन पर सवारियां गांठते. दुलकी चाल चलते हुए समय से स्कूल हाजिर हो जाते. कुछ दिनों पूर्व जब मुझे अपने बेटे को स्कूल जाने के लिए साइकल देनी पड़ी तो मुझे अपनी लाठी के घोड़े की बहुत याद आई थी. साथ ही यह भी सोचने लगा था कि अपन दो उपन्यासों में जिस लगाव से घोड़ों का जिक्र कर गया हूं, उसके मूल में मेरी लाठी ही थी क्या? या मुझे बचपन से ही शक्ति के प्रतीक की खोज थी. देहगंध की आउटडोर शूटिंग के समय हम लोगों को सफेद बरजिया घोड़े की तलाश में कई गांव घूमने पड़े थे. कहानी में जिस तरह का घोड़ा है, वैसा मिला भी नहीं. लोगों का कहना था यदि घोड़े वाले दृश्य को हटा दिया जायेगा तो नायक के व्यक्तित्व का एक जरूरी पहलू नहीं उभर सकेगा. ऊबकर घर से भागते रहनेवाले नायक का जानवर से आत्मीयता पैदा कर लेना और फिर अपने अहं की तुष्टि के लिए कुछ दिनों के लिए घोड़ा चुराकर भाग जाने में उसकी 'इनर फीलिंग' का बोध होता है. इस टिप्पणी से भी मैं मजबूरन अपने बचपन की घटनाओं में उलझ गया था.

बहुत जल्द प्राइमरी स्कूल की पढ़ाई खतम हो गयी. घर की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि सुविधापूर्वक शहर में रहकर पढ़ सकूं. किसी तरह पिताजी हाई स्कूल तक पढ़ाकर कचहरी का पेशकार बनाना चाहते थे. कम पढ़ाई और ज्यादा कमाई के लिए नौकरी उत्तम तो थी ही. बहरहाल यह तय किया गया कि बांदा में बुआ के घर में रहकर मुझे आगे की पढ़ाई शुरू करनी है. मैंने शहर जाने की खुशी का अनुभव किया. किंतु कभी-कभी मन से उच्चाटन भी होता, क्योंकि गांव छूट रहा था, साथी छूट रहे थे. वे इतने निर्धन थे कि पढ़ने के लिए शहर जा भी नहीं सकते थे. न शहर में उनकी रिश्तेदारी ही थी. मैं अनुभव कर रहा था कि मैं बाबू बनूंगा और वे सब किसान और मजदूर ही बने रहेंगे. उस साल गांव में चेचक और हैजे का विकराल कोप हुआ. दो दिनों के अंदर मेरी दो छोटी बहनें चेचक से मर गयीं. ऐसा सदमा लगा कि वीरानगी देखने की आदत-सी पड़ गयी. मेरी आंखें बराबर उनको ढूंढ़ती रहतीं. उनकी आवाज मेरे कानों में गूंजती. व्याकुल होकर मैं अटारी में चढ़ जाता और वहां से मरघट की ओर देखता जहां मुझे भीड़ दिखलाई पड़ती. ऐसा लगता मुर्दे उठ कर टहल रहे हैं. मुझे बहनों की तलाश में वहां पहुंचना चाहिए. शायद वे वहां हों. किंतु घर से बाहर निकलने पर रोक लगी हुई थी. चारों ओर हताशा का वातावरण था. तब से खोई-खोई-सी उदासी मेरे स्वभाव में भर गयी. शहर जाने पर यह उदासी बढ़ी, घटी नहीं. खेलकूद की रुचि जाती रही. बात-बात पर अंतर्द्वंद्व उत्पन्न हो जाता और मैं परेशान हो उठता.

घर में छोटा होने के कारण मुझे और संतू भइया को घर का बहुत-सा काम करना पड़ता. साठिया कुएं से पानी भरना. . .सब्जी लाना. बाजार-हाट करना. आटा पिसाना. इतने काम की जिम्मेवारी तो बंधी हुई थी. हम उम्र होने के कारण हम दोनों अच्छे दोस्त बन गये थे. उन्हें पतंग उड़ाने का शौक था. मुझे लटाई पकड़नी पड़ती. कभी-कभी कांच पीस कर मंझा बनाते. और खेल ऐसा कि हरदम ऊंट की तरह गरदन ताने आसमान की ओर ताकते हुए झरबेरी वाली सराय में नंगे पांव घूमते रहो. एक दिन पतंगबाजी के पीछे मास्टर साहब के बेंत खाने पड़े. बस, उस दिन से कान पकड़कर उठ-बैठ लिया. पतंगे और लटाई कुएं के अंदर फेंक दी गयी थी और लटाई वाले धंधे से मुझे छुट्टी मिल गयी थी.

अपने मनोरंजन के लिए हम लोगों ने एक रास्ता निकाल लिया था. शहर में घूमते वक्त अकसर टिपिकल चेहरे तलाश लेते. उनके हाव-भाव तथा संवाद याद कर लेते. घर पहुंच कर उनकी नकल की जाती और एक ड्रामा तैयार हो जाता . हमारे ड्रामे के पात्रों में गप्पी.. . .घुम्मे. . .लड़ाके. . .कंजूस. . .दूकानदार बेवकूफ. . .चिड़चिड़े. . .पागल. . .शराबी आदि थे. कभी-कभी परिवार के मनोरंजन के लिए हमें अपने ड्रामे पेश करने पड़ते. हमारा कल्लन मियां का ड्रामा काफी पापुलर था. घर का अकेला वह बूढ़ा आदमी मिट्टी की चिड़ियां बनाकर बच्चों को ठगा करता था. मैं उसकी दूकान में जाकर अपने को ठगाया करता था क्योंकि उसकी अतिशयोक्ति भरी बातें किसी कहानी से भी ज्यादा रुचिकर होती थीं. मुझे पहली बार पता चला कि बांदा शहर से भी बड़ा एक जहाज है जो सात समुद्र पार से मिट्टी और सीप ढोकर लाता है. जहाज के अंदर एक पूरी बस्ती बसी होती है. वह मिट्टी सिर्फ कल्लन मियां को ही मिल पाती है क्योंकि सबसे पहले उसने अंग्रेजों को 'ढइया मारना' (गोली का खेल) सिखाया था. वह पात्र चेतना में जाकर रह गया था. मेरे पहले उपन्यास 'नयी धरती, नये लोग' में नव्वुल नाम का पात्र वही है. मुझे लगता है कि अपनी कहानियों में साधारण पात्रों के चुनाव के पीछे वही प्रवृत्ति मौजूद है.

★ ★

अब एक दूसरा पहलू. ऊंचे दर्जे तक पहुंचते-पहुंचते ऐसी उम्र आ गयी जो जीवन में केवल एक ही बार आती है, भले ही व्यंग्य में उसे गधापचीसी की उम्र कहा जाय. संयोग से इस उम्र के दुःख -सुख भोगने में मैं अपने साथियों से पहले ही बाजी मार ले गया. कक्षा में एक लड़की किसी विशेष लड़के से लगाव पैदा कर ले, तब तो बड़ी आफत हो जाती है. सारे लड़के ईर्षा करने लगते हैं. सड़क चलते व्यंग्य कसते हैं. मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ. एक बार ऐसा खीझा कि अपने सहपाठी रिश्तेदार से हाथापाई के लिए उतारू हो गया. बात बड़े लोगों के कानों तक पहुंच गयी. मैंने खुद भी सही बात स्वीकार कर ली. उन दिनों मुझे नये अस्तित्व का आभास हुआ करता था. सौंदर्यबोध भी जागृत हो गया था. अपने अंदर ज्वार-भाटे जैसा आवेग था. अब मुझे धुली चांदनी की रात याद आ रही है. इस घटना का वह अंतिम दृश्य था. छुट्टियां हो गयी थीं. पहली बार हम अकेले हुए थे. पहली बार फूल जैसे हाथों की जकड़न मिली थी. मैं घबरा गया था किंतु लड़की की उदास, प्यासी आंखों से झरते आंसुओं के बीच जो भाषा उभरी, वह सदा के लिए मेरे मन में लिख गयी. और वह भाषा मेरे गीतों में विस्तार पाने लगी थी. उन गीतों में कुछ ऐसा भी था जिनकी फरमाइश अभी तक लोग कर देते हैं. कई लोगों ने टेप भी कर रखे हैं. 'कित्ती' उपन्यास में एक घटना है. चांदनी रात में नायिका नायक के पास दूध लेकर जाती है और वह उसे समझा-बुझाकर वापस कर देता है.

कुछ दिनों बाद मेरा संपर्क श्री केदारनाथ अग्रवाल से हुआ. उन्होंने मेरी वैयक्तिक चेतना को सामाजिक चेतना से जोड़ने में मदद की. उनके द्वारा साहित्यिक आंदोलनों का ज्ञान हुआ. नयी-नयी पत्रिकाओं और पुस्तकें पढ़ने को मिलीं. नये कवियों और लेखकों के बारे में जानकारी हुई. साफ-सुथरी दृष्टि मिली. साहित्य को अन्याय के विरुद्ध खड़ा होना चाहिए.

कृष्ण मुरारी पहाड़िया मुझसे अच्छी कविताएं लिखता था. मुझमें विषय की विविधता अधिक थी. हम दोनों अभी तक अभिन्न हैं. पारिवारिक कुंठाओं ने उसके कवि की क्षति की है. उसकी इस छटपटाहट को मैं आज भी अनुभव करता हूं. इतना तो तय है कि साहित्य के संबंध में यदि पृष्टि न मिली होती तो मैं भी कुछ तुकबंदियों के बाद बुझ गया होता, समय के साथ जुड़कर आगे न बढ़ पाता.

एक शाम हम दोनों रेल की पटरियां पार करते हुए केदारजी के घर पहुंचे, अपनी नयी कविताएं सुनाने के लिए. वे उदास-से नीम के नीचे आरामकुर्सी में अकेले बैठे थे. हम दोनों ने अपनी-अपनी कविताएं सुनाईं. बातचीत हुई. गीत-विधा में लिखी उन्होंने मेरी एक कविता की प्रशंसा की थी. वही मेरी पहली छपी कविता थी.

रधिया का बेटा रोता है. दूध मलाई को रोता है.
लाल खिलौने को रोता है. रधिया का बेटा रोता है.

बैठकी के बाद जब हम लोग चलने को हुए तो उन्होंने टूटी लय में कहा—मेरी मां का देहांत हो गया है. मैं कुछ नहीं बोला. सिर्फ उनके गंभीर चेहरे की ओर ताक कर रह गया. पहली बार यह धारणा बनी कि कवि और लेखक ऐसे ही सहनशील व्यक्ति होते होंगे.

आगे चलकर यह भ्रम बुरी तरह टूटा.

इलाहाबाद आने पर कई कई ऐसे अनुभव हुए यह सोचना ही पड़ा कि मौखिक सिद्धांतों चाहे कितने ही क्रांतिकारी हों, किंतु व्यक्तिगत आचरण में कई लेखक पटेबाज भी होते हैं. व्यक्तिगत तौर से उनका व्यवहार उनके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न करता है. नये लेखक उनसे जुड़ना पसंद नहीं करते. अप्रत्यक्ष रूप से ऐसे लेखक अपनी ही विचारधारा के प्रवाह को कुंठित करते हैं. शायद इसीलिए कि वे ही माइल स्टोन बने रहें. भले ही उनकी संवेदना कुंठित क्यों न हो गयी हो? भले ही उनका लेखन ठस क्यों न हो गया हो ? आज तक ऐसे लेखकों से मैं आत्मीय नहीं हो सका हूं. किंतु इसका यह अर्थ भी नहीं है कि मैं उनकी उपलब्धियों को नकारता हूं.

'कादंबिनी' में राव साहब ने मेरी तीन कविताएं स्वीकृति कीं. दोषीजी आये तो उन्होंने वापस कर दीं. कोई हर्ज नहीं. . .न कोई शिकायत. किंतु आफिस में ही तीन घंटे तक जो कविता के संबंध में उनका प्रवचन सुना तो पनाह मांग गया. आफिस छोड़ते ही उसकी निरर्थकता अपने आप साबित हो गयी. कुछ भी याद न रहा. केवल यह प्रतीति बची कि बड़ी पत्रिका का

अजित पुष्कल (जन्म : ८ मई, १९३५) ने कस्बे के आदमी की जिंदगी और वहां की व्यावसायिक राजनीति को अपनी कहानियों का आधार बनाया है. इनके पात्र ईमानदारी और संवेदनशीलता के बीच से सही मार्ग की तलाश करते प्रतीत होतें हैं. कथ्य की सहजता और सपाट बयानी इनकी विशेषता हैं.

● ●

संपादक केवल पारखी होने का दावा ही कर रहा था.

वैचारिक स्तर पर अपनों से जुड़ कर कुछ सीखने की लालसा मेरे मन में भी थी. एक बार एक गोष्ठी में उपन्यास का एक अंश पढ़ा. उस गोष्ठी में नकारने की मुद्रा में भैरवजी ने मेरी बड़ी खिंचाई की. रचना को लेकर बात कहीं गयी होती तो ठीक भी था. किंतु वहां तो व्यक्तिगत संबंधों की बात थी यानी नागार्जुन और मैं ही विषय बने रहे. साथ ही यह आरोप कि नये लड़के शहर आकर गांव के बारे में कुछ नहीं जानते, वे बहुत गलत-सलत लिखते हैं. एक बार नाटक पढ़ा तो फिर वैसी ही बातें. कई लेखक ऐसी बातों का समर्थन भी कर रहे थे. मुझे लगा गांव से शहर में आकर फिर कभी गांवों न जाने वाला लेखक ही शायद गांव के बारे में सही लिख सकता है. नये लोग तो कुछ कर ही नहीं सकते. करना भी चाहें तो उन्हें कुंठित कर दिया जाय. मैं क्षोभ से भरा हुआ था. एक टिप्पणी लिख मारी. उसका असर कुछ बुरा ही हुआ. सोचा इस प्रपंच में न फंसकर अकेले संघर्ष करूंगा और लिखूंगा. बिना अपने मरे स्वर्ग नही मिलता. मैंने गोष्ठियों में रचनाएं पढ़नी बंद कर दीं. जाता भी तो चुपचाप ही रहता. कुछ दिनों बाद गोष्ठियां भी बंद हो गयीं. आठ-दस सालों से मैं बराबर यह सोच रहा हूं कि मुझे इतना खतरनाक आदमी क्यों समझ लिया गया? पिछले वर्ष बाहर से कुछ लेखक बंधु आये थे. सचमुच मैं उस गोष्ठी में नहीं जाना चाहता था. किंतु अमरकांतजी के आश्वासन पर वहां चला गया तो स्पष्ट शब्दों में वापस कर दिया गया. सही भी था, मैं साहित्यिक गोष्ठी की नियति से भेजा गया था, पार्टी की मीटिंग के लिए नहीं. किंतु ये ऐसी बातें हैं जो मुझे बलिष्ठ बनाती हैं. बैसाखी के सहारे कोई लेखक बनता भी नहीं.

मैं कॉफी हाउस भी नहीं जाता. वहां की चांव-चांव से मेरे मन में घुटन पैदा होती है. बहस करना मैं जानता नहीं. संवेदना को कुंठित करने के लिए लादी हुई बनावटी बौद्धिकता से क्या फायदा? इसीलिए कभी-कभार उतना समय मैं किसी फटीचर टी स्टाल में गुजारना ज्यादा पसंद करता हूं क्योंकि वहां जिन मेहनतकश, ठेठ, गंवार, बुद्धू तथा फटेहाल लोगों से मिलने का अवसर मिलता है, उससे मेरा 'गंवइयां' मन तृप्त होता है. इसीलिए मेरी कहानियों के पात्र एक ही वर्ग के नहीं होते. अपने में लीन होने की अपेक्षा मैं परिवेश से जुड़े रहने की कोशिश करता हूं. मुझे जीवंत एवं जिंदगी के प्रति आस्थावान चरित्र ही अच्छे लगते हैं. उनमें जुझारूपन होता है, कुंठा नहीं. आज जब कि सामान्य आदमी हर ओर से टूटकर हताश हो रहा है, उसे ऐसी ही कहानियां बल दे सकती हैं जिनके माध्यम से ऐतिहासिक प्रयोजन का ज्ञान हो सके, जो उन्हें उकसायें और सोचने-समझने को मजबूर करें. इस धारणा के पीछे मेरा व्यक्तिगत अनुभव है.

* *

तीन वर्ष पहले मैं बुरी तरह से बीमार पड़ गया था. पेट की अंतड़ियों में छेद हो गये थे. उन दिनों कालेज में भी दो-दो महीने तक तनख्वाह नहीं मिलती थी. पी. एफ. से रुपया लेना चाहा तो मिला नहीं. (ठीक हो गया तब मिला था) दिन भर अकेले खाट पर पड़े रहना पड़ता. पत्नी भी अधिक छुट्टी न ले सकती थी. वह अपने स्कूल चली जाती. बच्चे अपने स्कूल. अनंत चिंताओं से घिरा मैं कमरे की छत ताकता रहता. ठीक से दवादारू न हो पाई तो क्या होगा? कुछ दिनों बाद ऐसा हुआ कि एक काली बिल्ली छत से उतरकर सीढ़ियों पर बैठ जाती और रोना शुरू करती. बिल्ली का रोना तो वैसे भी अपशकुन माना जाता है. सच तो यह है कि उसकी आवाज इतनी भयावह होती कि वह मुझे अंदर से हिला जाती. मेरा रुग्ण मन अंधकार से भर जाता. किसी तरह खाट से उठकर कांपती आवाज से उसे भगाता और वह रोती हुई फिर छत पर चली जाती. मैंने यह बात पत्नी से कही तो वह भी घबड़ा गयी. बोली –मरी यह बिल्ली कहां से आ जाती है! अभी तक तो कभी देखा नहीं.

मैंने कहा—घबड़ाओ नहीं, जानवर भी अच्छे-बुरे समय को पहचानते हैं. किंतु स्थिति यह थी कि मैं उनसे ज्यादा घबड़ाया रहता था. उसकी आवाज याद करके आज तक सिहरन हो उठती है. मैंने अपनी स्थिति के बारे में बहुत कम लोगों को सूचित किया था. दूसरे-तीसरे अमरकांतजी आ जाते. शिवकुटीलाल वर्मा एवं ज्ञान प्रकाश भी आते. इन लोगों के साथ थोड़ा समय कट जाता. एक पत्रिका से अग्रिम मिल जाने के कारण थोड़ी राहत मिली थी. कुछ दिनों बाद एक मित्र का पत्र मिला जिसमें लिखा था कि यदि मैं किसी तरह बंबई पहुंच जाऊं तो दवा-दारू की पूरी व्यवस्था हो जायेगी. दुःख के समय आत्मीयता की चोट भी भारी पड़ जाती है. इस पत्र की आत्मीयता ने मुझे बेहद भावुक कर दिया था और मैं दिन भर असामान्य-सा रहा. संयोग ऐसा कि उन्हीं दिनों प्रकाशचंद गुप्त तथा रमेश वर्मा की मृत्यु का समाचार भी पढ़ा था. उस घबड़ाहट में बिल्ली का बोलना मेरे लिए अर्थवान हो गया था. सोचा, किसी तरह बंबई चला जाऊं, कम से कम इस बिल्ली से तो पिंड छूट जायेगा. कतिपय कारणों से मैं बंबई नहीं जा सका. वह बिल्ली आती रही और मैं उसे भगाता रहा. अंत में मैं ही जीता. उन दिनों मुझे ऐसा लगता जैसे मेरी जिंदगी कुछ ऐसी होती जा रही है. अपने अंदर बल समेटने के लिए मैं कुछ न कुछ पढ़ता ही रहता.

उन दिनों 'सारिका' में रेणुजी की एक कहानी पढ़ी. वे भी बीमारी से उठे थे और उसी से संबंधित

मोदी धागा कशीदाकारी प्रतियोगिता

प्रथम पुरस्कार १0,000/-रु.

५0,000 रुपये के अन्य आकर्षक पुरस्कार

२ द्वितीय पुरस्कार
२८६ लीटर का जेम रेफ्रीजरेटर

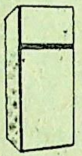

४ तृतीय पुरस्कार
फिलिप्स हाई फ्यू
इन्टरनेशनल स्टीरियो सिस्टम

८ चतुर्थ पुरस्कार
रेकोल्ड मिक्सर और ग्राइंडर

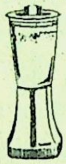

१० पंचम पुरस्कार
रेकोल्ड की हॉट प्लेट

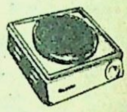

१०० सांत्वना पुरस्कार
रेकोल्ड की बिजली की इस्त्री

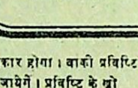

कल्पना कीजिए! १०,००० रुपये आपके हो सकते हैं! मौका न चूकिये। तुरन्त कशीदाकारी का काम शुरू कर दीजिए।

नियम सरल है

प्रतियोगिता का फैसला निष्पक्ष निर्णायकों का पैनल करेगा जो अन्तिम और मान्य होगा। आप जितने चाहें उतने प्रविष्टि भेज सकते हैं।

हर एक प्रविष्टि अलग कूपन के साथ भेजा जाना चाहिए और उस पर आपके साफ-साफ नाम पते की अलग चिट भी होनी चाहिए।

सभी पुरस्कृत प्रविष्टियों पर मोदी थ्रेड मिल्स का अधिकार होगा। बाकी प्रविष्टियां प्रतियोगिता के बाद हिस्सा लेने वालों को लौटा दिये जायेंगे। प्रविष्टि के खो जाने या खराब हो जाने की ज़िम्मेदारी मोदी थ्रेड मिल्स की नहीं होगी। प्रतियोगिता के नियमों के बारे में विवरण के लिए मोदी धागे के निकटतम डीलर से एक प्रविष्टि पत्र मांगिये।

जल्दी कीजिए! अंतिम तिथी: ३० अगस्त १९७६

इस कूपन को काटिए और अपनी प्रविष्टि के साथ भेज दीजिए। इस्तेमाल किए गए 'MTM' धागों के कैशमीमो और लेबल भी साथ भेज दीजिए। आपकी प्रविष्टि के साथ एक अलग चिट नत्थी होनी चाहिए जिस पर आपका नाम, पता साफ-साफ लिखा हो।

मोदी धागा कशीदाकारी प्रतियोगिता प्रविष्टि कूपन

नाम ....
पता ....
शहर.................................... पिनकोड ....
श्रेणी : ☐ कढ़ाई ☐ बुनाई
☐ कोशियाकारी ☐ टैटिंग

प्रतियोगिता के बाद :-
☐ कृपया मेरी प्रविष्टि वी०पी०पी० (डाक मूल्य) से लौटा दें।
☐ मैं मोदी नगर से अपनी प्रविष्टि खुद ले लूंगा/लूंगी।

मैं प्रमाणित करता/करती हूं कि मोदी धागा कशीदाकारी प्रतियोगिता में मैंने जो प्रविष्टि भेजी है वह मैंने खुद तैयार की है और मुझे प्रतियोगिता के नियम मान्य हैं।

....
(हस्ताक्षर)

इस पते पर भेजें : — मोदी धागा कशीदाकारी प्रतियोगिता,
मोदी थ्रेड मिल्स, मोदी नगर, उत्तर प्रदेश।

आपको क्या करना है :

मोदी धागे के 'MTM' स्ट्रेन्डिड कढ़ाई के धागे, क्रोशिया धागे या सूती धागे से अपनी पसन्द की कोई चीज़ बनाईये। आप कढ़ाई, बुनाई, टैटिंग या क्रोशियाकारी कुछ भी कर सकते हैं। इसका कोई भी आकार या डिज़ाईन हो सकता है लेकिन काम मौलिक होना चाहिए।

आपकी कशीदाकारी के बारे में फैसला करने का आधार मौलिकता, रंगों की पसंद और टांकों की सुन्दरता होगी। आपने इस कशीदाकारी में जिन धागों को इस्तेमाल किया हो उनके कैशमीमों और लेबल संभाल कर रखिए और अपनी प्रविष्टियों के साथ रजिस्टर्ड (ए०डी०) से भेजिए।

पता है : —
मोदी धागा कशीदाकारी
प्रतियोगिता
मोदी थ्रेड मिल्स, मोदी नगर, उत्तर प्रदेश।

MTM
मोदी धागे
३० से ज़्यादा देशों की पसन्द।
OBM/3165

कहानी लिखी थी. मैं पूरी कहानी नहीं पढ़ सका. एकाएक घबड़ाहट बढ़ गयी. सोचने लगा, बीमार को बीमारी की कहानी नहीं पचेगी. यह बीमारी से उबारती नहीं, बीमारी बढ़ाती है. फिर मैंने गोर्की पढ़ा. सच कहता हूं, उस लेखन ने मेरे रुग्ण मन में जीने की इच्छा जगा दी. उस दिन मैंने लेखक की शक्ति पहचानी. सोचने की बात है कि लेखक को यह आंतरिक शक्ति कहां से मिलती है?

मैं उन लेखकों को अपनी आस्था के दायरे में पाता हूं जो व्यवस्था से उत्पन्न असंगतियों से संपर्क करते हुए परिवर्तन की भूमिका बनाने में रत हैं. ऐसे लेखकों की रचनाएं पढ़ कर मैं स्वयं के अकेलेपन की बिडंबना से बच जाता हूं. लेखक होने का मुझे तनिक भी गुमान नहीं है. लेखक की जो इमेज मेरे दिमाग में है, उस तक मैं कतई नहीं पहुंचा. साहित्य के पहाड़ के नीचे मैं ऊंट की-सी लघुता लिये खड़ा हूं. पता नहीं मेरा यह बोध मेरी हीनता है या संभावनाओं की खोज का मार्ग. रचना प्रक्रिया के बारे में कोई भी दावा व्यर्थ है. वैसे लेखक के लिए जिंदगी के अनुभवों की जानकारी पहली शर्त है. आम आदमी के अनुभवों से मेरे अनुभव भिन्न नहीं है.

पढ़ाई के मामले में मेरी जिद के सामने पिताजी हार गये. संयोगवश उनके मामा मुझे कानपुर ले गये. वे पुलिस विभाग में थे और कानपुर में उनके अपने दो मकान थे. वे पुत्र-शोक से पीड़ित थे. इस बात का मैं बराबर ध्यान रखता. सादगी के कायल, उन्होंने मुझे मलेसिया का पैंट बनवा दिया था. सिला भी बेढंगा था, फिर भी मैं शौक से पहनता था. खाने-पीने की पूरी सुविधा थी. परेशानी यह थी कि मुहल्ले के लोग आपस में दिन-रात लड़ते रहते थे. वह मजदूरों की बस्ती थी. वे-छोटी-छोटी अंधी कोठरियों में रहते थे. उनमें से कुछ लोग झुग्गियां बनाने का काम करते थे. कुछ मिल में काम करते थे. कुछ लोग फेरियां लगाते थे. रिक्शे चलाते थे. उनके बच्चे नंग-धडंग बेगानों की तरह घूमते रहते. औरतों को फैशन पसंद था. कान-झाड़ गलियां बकने और झगड़ने में माहिर. आपस में वे कब झगड़ जायेंगी, कहा नहीं जा सकता था. दो दल आपस में लड़ते तो एक-दो ऐसी औरतें थीं जो दोनों के बीच में खड़े होकर ढोल बजाया करती थीं. एक लैला थी जो अपने सफेद चूहों को बच्चों से भी अधिक चाहती थी. एक हट्टी-कट्टी औरत थी. वह अपने बीमार आदमी को बांधकर रखती थी और मिल में काम करने वाले एक युवक से इश्क फरमाया करती थी. उसकी तनख्वाह का बहुत सारा हिस्सा अपनी गृहस्थी में खर्च किया करती थी. कुछ ऐसे लोग भी थे जो दूसरे मोहल्ले में बदमाशी के लिए बदनाम थे. उनकी तलाश में अक्सर पुलिस आया करती थी. वहां रहकर ऐसे लोगों का भी अनुभव हुआ. डायरी लिखता तो बड़ी उपलब्धि होती. अब तो बहुत-सी बातें याद भी नहीं रह गयीं. वैसे मेरे लघु उपन्यास 'सूखी रेत का समुद्र' में इस बस्ती की झलकियां उभर कर आयी हैं.

बी. ए. पास करने के बाद रीवां से निकलनेवाले एक दैनिक अखबार में साठ रुपये माहवार पर विज्ञापन मैनेजर हो गया. नाम बड़े, दर्शन छोटे. आठ घंटे की ड्यूटी में प्रूफ रीडिंग से लेकर बिल बनाने तक का काम करना पड़ता. वहां भी बहन का खाली घर रहने को मिल गया था. इतने कम पैसों में खर्च पूरा न पड़ता. खाना घर में ही बनाता. यह काम मेरे लिए बहुत दुखदायी था. अक्सर आटा गीला हो जाता, रोटी फैल कर जूते के तल्ले के आकार जैसी हो जाती. फिर भी, उसे मालपुआ समझ कर खा लेना पड़ता. एक दिन सब्जी के अभाव में लहसुन की चटनी से काम चलाया. प्रोपराइटर के पास किसी काम से गया तो डकार आ गयी. लहसुन की गंध उसकी वैष्णवी नाक के अंदर प्रवेश कर गयी तो वह तमतमा उठा. मैंने नौकरी छोड़ दी. किसी के खान-पान की बुराई करना कोई अच्छी बात तो नहीं होती. एकाएक बैठ जाने के कारण जो पैसे मिलते थे, वो भी नहीं मिले. एक मित्र के साथ आठ दिनों तक हास्टल में पड़ा रहा. छात्र जीवन बिताने की इच्छा मरी नहीं थी. दरबार कालेज के हिंदी के अध्यक्ष श्री महावीर प्रसाद अग्रवाल ने मेरी भरपूर मदद की. बस काम चलने लगा.

* *

कालेज में घनश्याम सिंह से परिचय हुआ. वे छात्र संघ के अध्यक्ष थे. उनकी कहानियां 'साहित्यकार' 'कहानी' तथा 'नई कहानियां' में प्रकाशित हो चुकी थीं. कथाकार जितेंद्र से उनके माध्यम से ही मुलाकात हुई थी. प्रगतिशील विचार के युवकों का अच्छा गुट बन गया था. वैचारिक स्तर पर गोष्ठियां होती थीं. लोग नये साहित्य से परिचित होने लगे. हम लोगों ने नागार्जुनजी को बुलवाया. बड़ी धूम रही. उनके जीवंत व्यक्तित्व से सभी लोग प्रभावित हुए थे. तभी किसी कवि की मेहरबानी से हम लोग का नाम सी. आई. डी. की डायरी में लिख लिया गया. सोचा अब तो सरकारी नौकरी से भी गया. उन्हीं दिनों नागार्जुनजी ने गद्य लिखने की सलाह दी. बोले—माना, तुम कविता में रेशम बुनते हो. मगर कविता तो है कपूर की आरती. गद्य का युग है. गद्य लिखा करो. बात ठीक थी. नयी कविता बिंबों और प्रतीकों के कारण दुरूह हो रही थी. सीधे संवाद के लिए गद्य ही उपयुक्त था. उन दिनों इलाहाबाद हम लोगों के लिए आकर्षण का केंद्र था. कहानी' के माध्यम से नये कथाकार उभर कर आये थे. कहानियों को नया मोड़ मिला था. साहित्यकारों की संगति का मोह मुझे इलाहाबाद की ओर खींचने लगा था. किंतु वहां तक पहुंचने के लिए कोई साधन भी नहीं था.

यह सच है कि मेरे विकास में व्यवस्था का कम, संयोग का अधिक हाथ रहा है, परीक्षा से मुक्त होकर गर्मी की छुट्टियों में गांव चला गया. वहां पता चला कि दीदी ने एक लड़की देख ली है और मेरी शादी करना चाहती हैं. इस स्थिति में मैं शादी करने को कतई

तैयार न था. उन्होंने आंखों में आंसू भर कर कहा—जब मैं मर जाऊंगी, तब करोगे? मैंने स्वीकृत दे दी. घर में बुजुर्ग होने के नाते उनकी इच्छा के विरुद्ध पिताजी भी न जा सके. तुरंत शादी हो गयी . इलाहाबाद पहुंचने का एक जरिया निकल आया.

रोजी-रोटी ढूंढ़ते समय बराबर यह अनुभव होता कि मैं दो जबरदस्त फंदों से जकड़ा हूं. एक फंदा मेरे पेट में है और एक गले में. किसी तरह इलाहाबाद से चालीस मील दूर एक कस्बे के स्कूल में अस्सी रुपये की नौकरी मिल गयी. पत्नी इलाहाबाद में अपनी मौसी के पास रहती थी. इलाहाबाद आने-जाने में ही बहुत-सा पैसा खर्च हो जाता. एक दिन एक अध्यापक ने कहा कि मैनेजर साहब की शिकायत है कि तुम उन्हें सलामी देने नहीं जाते. मैं इस शिकायत से चिढ़-सा गया था. अब तो जानबूझकर सलामी बंद कर दी. बोर्ड की परीक्षाओं के बाद मेरी छुट्टी कर दी गयी. खैर, गर्मियों भर दौड़-धूप की तो स्थानीय विद्यालय में घुस गया. फिर गर्मियों में छुट्टी का परवाना मिल गया. कारण? अपनी जाति का आदमी मिल गया है तो हम दूसरी जाति के आदमी को क्यों रखें.

ऐसी विशेष योग्यता की बातें सुनकर मैं चकरा जाता. तीसरा साल पूरे युग बोध का समय था. नौकरी कहीं मिली नहीं. पिता ऊपर से बन गया. पत्नी ऐसी बीमार पड़ी कि मरने-जीने की लग गयी. परिवार से जो भी मदद मिलती, पर्याप्त न थी. मौसी के परिवार की आय भी अधिक नहीं थी किंतु उनका दिल बहुत बड़ा था. ऐसे निःस्वार्थ लोग कम ही दिखते हैं. बच्चे का पालन-पोषण वीरेंद्र दादा ने संभाला . मैं तो अपनी उलझनों में कैद नौकरी की तलाश में इधर-उधर भागता रहता. थका-मांदा बीमार पत्नी के पास बैठता तो अरक्षित-सा महसूस करता. अक्सर उघड़ेबुन में जगकर सारी रात काट देता. सोचता सारे देश के चुनाव तो जातिवाद के आधार पर होते हैं, क्यों न जीविका के लिए समझौता कर लूं? सांठ-गांठ बैठाई गयी और मुझे नौकरी मिल गयी. व्यावहारिक दुनिया सचमुच बहुत कठोर होती है.

बहरहाल एक कमरे का किराया और महीने भर के राशन की व्यवस्था तो हो ही गयी. इतनों दिनों बाद अपना छोटा-सा परिवार बस गया. मर-खप कर पढ़ो और डिग्रियां हासिल करने पर क्षोभ हुआ. अच्छा था किसान ही होता तो पिताजी की सलाह क्या बुरी थी. पढ़ने-लिखने में समय और शक्ति ही तो खराब हुई. शैक्षणिक योग्यता का यहां कोई मूल्य नहीं है. विद्यालयों में तरक्की इस बात पर निर्भर करती है कि कौन आदमी कितनी जल्द चमचा बन सकता है ? अपने हित के लिए लोग पालतू और उपजीवी बन भी जाते हैं. कुछ लोग सारा कुछ बर्दाश्त करते हुए चुप रहते है. नौकरी का अर्थ ही होता है न 'ना' करी न 'नू' करी.

एक वर्ष शिक्षक संघ की यूनिट में रहा. शिक्षक आंदोलन में शामिल हुआ. विद्यालयों के बारे में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त की. ये प्राइवेट विद्यालय सामंती व्यवस्था पर आधारित धनार्जन के साधन मात्र हैं यहां तक कि अध्यापक के श्रम का शोषण भी किया जाता है. ग्रांट मिलने के बावजूद भी छह-छह माह की तनख्वाह नहीं दी जाती. कहीं-कहीं हस्ताक्षर ज्यादा रकम पर करवाये जाते हैं और पैसे कम दिये जाते हैं. एक गांव के अध्यापक ने बताया कि हमें तो अपने प्रधानाचार्य के चरण स्पर्श करके ही कक्षाओं में जाना पड़ता है. अगर किसी दिन चूक जाओ तो चरण स्पर्श के लिए चपरासी से बुलवाया जाता है. आतंरिक व्यवस्था के लिए उनके पास अपने गुंडे-बदमाश भी हैं. प्रिंसिपल के बाद हमें उनकी सहनी पड़ती है: पी. एफ. कटता है और हमारे खाते में नहीं जमा होता. थोड़ी हेर-फेर के साथ ऐसी अराजकता सभी विद्यालयों में होती है. अध्यापक मर जाता है तो उसका जमा पैसा परिवार वालों को वर्षों बाद और मुश्किल से मिल पाता है. इधर वेतन वितरण की व्यवस्था बैंकों के माध्यम से कर दी गयी है किंतु कहीं-कहीं अध्यापकों को अपनी 'चौथ' नकद रकम के रूप में चुकानी होती है. कालेजों में लगी जमीन की पैदावार प्रबंधकों की होती है. बहरहाल बहुत पुराना कोढ़ है. यह. . .जाहिर भी है. इधर उ. प्र. सरकार का ध्यान इस ओर गया है. संभव है अच्छे परिणाम सामने आयें. फिर भी, इस समस्या पर अब भी कई 'राग दरबारी' लिखे जा सकते हैं.

* *

स्थायित्व आ जाने के बाद फिर साहित्य में काम करने का जोश उभरा. एक प्रकार के सोच वाले नये लेखकों का एक गुट बन गया इस गुट में कुशल संपादक, चित्रकार. . . .लेखक. . .कवि एवं प्रकाशक भी शामिल थे. नये सिरे से काम करने का संकल्प लिया गया. 'उत्तरशती' नाम की एक पत्रिका निकाली. सोचा शायद इस पत्रिका के माध्यम से लेखकों को संगठित कर सकेंगे. किंतु यह योजना असफल हो गयी. कुछ दिनों बाद मित्रों ने साहस किया और 'परिकथा' नामक कहानी पत्रिका निकाली. आर्थिक कारणों से छह-सात अंकों के बाद पत्रिका बंद कर देनी पड़ी. रोजी-रोटी की तलाश में सारा गुट बिखर गया. मैं फिर अकेला हो गया. 'परिकथा' से संबद्ध होने के कारण मुझे कहानी लेखन को समझने का अवसर मिला. उन दिनों मैं उक्त पत्रिका तथा 'शताब्दी' में कालम लिखा करता था. 'शताब्दी' में सामान्य लोगों के इंटरव्यू हुआ करते थे और 'परिकथा' में उनकी समस्याओं पर बातचीत. इस प्रकार के लेखन ने कहानी लिखने में नींव का काम किया. मित्रों के उकसाने पर मैंने कहानी लिखी. सन् १९६५ में मेरी पहली कहानी 'वर्जित स्वाद' भारतीजी ने 'धर्मयुग' में साज सज्जा के साथ छापी. उन दिनों 'नयी कहानियां' का सम्पादन भीष्म साहनी कर रहे थे.

उन्होंने कई कहानियां छापीं. इस प्रकार से लेखन का सिलसिला आगे बढ़ता चला गया.

विकास की यह प्रक्रिया अब भी जारी है. जिंदगी अनुभवों से खाली तो रहती नहीं. बस अनुभवों को अर्थ और मूल्य देने भर की कोताही न हो तो कहानियां तो मिल ही जाती हैं.

ये गर्दिश के दिन! कुछ न पूछिए! कभी-कभी ये दिन इतना दे जाते हैं कि पानेवाले की झोली कट जाती है. और कभी-कभी अंदर से इतना खाली कर जाते हैं कि जिंदगी परेशानियों से बंधी पक्की गांठ-सी लगने लगती है. इधर एक अप्रत्याशित घटना घटी. कई परिवारों को भावात्मक चोट लगी. मेरी सासजी को सबसे अधिक. पारिवारिक राजनीति इतनी भयावह हो सकती है, यह बहुत नजदीक से देखने को मिला. मुझे उस स्थिति में जाना पड़ गया जहां क्षुद्र मुद्राएं मुखौटे पहनकर उल्टे मुझ पर ही अट्टहास कर रही थीं. एक पक्ष का सारा यथार्थ समेटे मैं उस कृत्य में शामिल तो हुआ किंतु अनायास ही अपने अंदर पनपे विश्वास और सत्य की भी हत्या कर डाली. किसी संवेदनशील व्यक्ति के लिए एकबारगी इतनी हत्याएं. . .! वहां से हट कर जब निर्जन सड़क पर पहुंचा तो अपनी कमजोरी और भावुकता पर खिलखिला कर हंसने लगा था. जिन पाले-पोसे मूल्यों की हत्या की थी, उनके लिए आंखें भी डबडबा आई थीं. बाहर की चोटों का डर था. कहीं लाठी से मेरा सिर न तोड़ दिया जाय. इस चोट से तो बच गया किंतु आरोपों से नहीं बच सका. बचने का कोई उपाय भी नहीं था.

वे दिन रक्त से सने पंजों की तरह मुझे डरवाते थे. और मक्कारी ऐसी कि मैं ऊपर से बहुत गंभीर बना हुआ था. मेरे ख्याल में एक साथ ऐसी चोट बहुत कम लोगों को लगती होगी कि यदि हंसी आये तो बिडंबनाओं को फोड़ कर निकले और टीस उठे तो कलेजा मुंह तक आ जाय. उसी समय लोहे की एक कील लग गयी. बुखार चढ़ा और शरीर ऐंठने लगा. डाक्टर को टिटनिस का शक था. मैं चीखता था किंतु जो अंदर था बाहर नहीं निकल पाता था. दालान में बातें हो रही थीं. मुझे शरीर का ताप बर्दाश्त नहीं हो रहा था किंतु आरोपों की बौछार बर्दाश्त कर रहा था. प्रतिरोध करने की स्थिति में नहीं था.

मैंने जिन मूल्यों की हत्या की थी, उनकी दुर्गंध अब भी अपने कमरे में मिल जाती है और तुरंत बारजे में आकर टहलने लगता हूं. मैंने ऐसी हत्याएं क्यों कीं? किसी प्रकार के जस्टीफिकेशन के लिए नहीं, वरन निसंग होने के लिए. ऐसी निसंगता जिसके आधार पर व्यापक संदर्भों में पूरी रचनात्मकता के साथ उस भोगे हुए यथार्थ को अभिव्यक्ति दे सकूं.

धीरे-धीरे वे दिन भी गुजर ही गये हैं. सहनशक्ति भी बढ़ गयी है. अब तो ऐसे दिन आ गये हैं कि मैं ही क्यों हजारों-लाखों को गर्दिश के दिन देखने को मिल रहे हैं.

□□□

लघुकथा

संस्कार

● मानसिंह 'दीप'

जब बूढ़ा चित्रकार वहां पर पहुंचा तो कस्बे का मशहूर गुंडा पन्ना, डकैत मदनी तथा उसके अन्य साथियों के बीच एक लड़का कुर्सी पर बैठा किसी कागज के टुकड़े पर कोई चित्र बना रहा था. उसके द्वारा बनाए हुए चित्र को देख कर चित्रकार को बड़ा आश्चर्य हुआ.

चित्रकार ने लड़के को बुलाया और उसका नाम पूछा.

लड़के ने अपना नाम सुल्तान सिंह बताया.

चित्रकार ने सुल्तान से कहा—बेटा, तुम इतने होनहार बालक हो कर इस गंदी जगह और गंदे लोगों के साथ! अपने जीवन का दुरुपयोग करो. तुम्हें यह शोभा नहीं देता. क्या गंदे वातावरण को त्यागकर अच्छे वातावरण में नहीं आ सकते? तुम मेरे साथ आओ, मुझे अपना गुरु स्वीकार करो. तुम्हारे संदर्भ में कुछ ऐसा करूंगा कि सारा विश्व तुम्हें सम्मान देगा.

मगर सुल्तान ने चित्रकार की बात स्वीकार नहीं की. इस बात से चित्रकार बहुत दुखित हुआ.

—यदि मेरी बात तुम्हें स्वीकार्य नहीं तो जाओ, किंतु अपना अमूल्य चित्र मुझे देते जाओ, चित्रकार ने आग्रह किया.

चित्रकार की बात सुनकर सुल्तान जोर से हंसा—इतनी छोटी मूल्यवान चीज के लिए इतना आग्रह! चित्र दे कर सुल्तान वापस दल के साथ चला गया और चित्रकार-चित्र लेकर अपने घर चल पड़ा.

एक दिन एक चित्र प्रतियोगिता में उसने उस चित्र को विचारार्थ भेज दिया, जो वह सुल्तान से मांग कर लाया था. उस चित्र पर मात्र सुल्तान का नाम लिख दिया था.

समाचारपत्रों में जब प्रकाशित हुआ कि सुल्तान के चित्र को प्रथम स्थान तो चित्रकार की खुशी का ठिकाना न रहा. उसी समाचार के नीचे यह भी प्रकाशित था कि सुल्तान नामक डकैत पकड़ा गया.

उसके दूसरे दिन लोगों को पता चला-कि हृदय की गति रुक जाने से बूढ़े चित्रकार की मृत्यु हो गयी !

□□□

धारावाहिक उपन्यास (दूसरी किस्त)

• अभिमन्यु अनत

लाल पसीना

अब तक आपने पढ़ा है :

सदियों पूर्व विस्तृत महसागर के बीच ज्वालामुखी के विस्फोट से मॉरिशस द्वीप का जन्म हुआ. सदियों तक यह द्वीप वीरान पड़ा रहा. फिर विभिन्न देशों ने इसे भारत तक पहुंचने का रास्ता बनाया. फ्रांस और इंग्लैंड ने इस पर आधिपत्य स्थापित किया. भारतीय मजदूरों के दल वहां पहुंचाये जाने लगे—इस आश्वासन पर कि अंग्रेज लोग मॉरिशस को फ्रांसीसियों से मुक्ति दिला कर भारतीयों को सौंप देंगे. इन मजदूरों में कुंदन भी था, जिसे स्वर्ण के बदले मिली उम्र-कैद. उसका कसूर भी कुछ नहीं था. एक दिन अनायास नदी-किनारे बैठा होने पर एक गोरी औरत नदी में स्नान करते उसे नजर आ गयी थी. उसके पति ने कुंदन पर वार किया और खुद ही पत्थर से चोट खा बैठा. कुंदन को मिली काल-कोठरी, पर वहां वह अकेला नहीं था. अनेक भारतीय वहां थे— निर्दोष, भोले-भाले भारतीय लोग, जो अकसर बिना बात जेल भेज दिये जाते थे. अब कुंदन को जेल से निकलने का रास्ता मिल गया था. . . और वह अंधकार की परत के नीचे जंगल में आगे बढ़ रहा था—इस उम्मीद में कि वह किसी ऐसे गांव में पहुंच सकेगा, जहां भारतीय रहते होंगे . . . . अब आगे पढ़िए . . . .

इस द्वीप के चारों ओर समुद्र-ही-समुद्र था, जिसे लांघने के प्रयास में उसी में विलीन हो जाना कई लोगों ने बेहतर समझा. उन ज्वारभाटों के बीच अकुलाते हुए दम का घुटना क्षणिक था, चारदीवारी की तरह वह लंबा और स्थायी नहीं था.

चारदीवारी के भीतर कई नये लोग आ गये थे. वापसी पर कुंदन को लगा कि वह किसी यात्रा के बाद अपने घर लौट आया था. अपने पैर के दर्द के बावजूद वह खुश था. जानी-पहचानी दीवारें, अपने जैसे लगने वाले खंबे. वही तारों का परदा, लोहे की सलाखें. पहरेदारों की वही सूरतें, वही सिपाही. परिचारक भी वही. बंदी-बंधुगण. जंजीरों की वही झनझनाहट, वही खनखनाहट. जेलर का कर्कश स्वर! सभी कुछ वही था. वहां के धुंधलके में अपनेपन का वही एहसास था.

दुख अगर थोड़ा-बहुत हुआ था, तो बस इस बात का कि उसे पैंतालीस नंबर की वह कोठरी नहीं मिल सकी थी, जिसकी दीवारों पर उसने समय की छाप छोड़ी थी. सिपाही से पूछने पर पता चला कि उसमें किसी बहुत ही खतरनाक कैदी को रखा गया है. यह बात कुंदन को दूसरे कैदी से मालूम हुई कि उसकी पुरानी कोठरी में जो कैदी था, उसे बगावत के जुल्म में सात वर्ष की सजा हुई थी. कुंदन के भीतर उस व्यक्ति को जल्द से जल्द देखने की इच्छा पैदा हो गयी थी. लेकिन उसकी उस इच्छा और उस बागी के बीच एक दूसरी ऊंची दीवार थी. वह उत्तरी विभाग में था और कुंदन तो इस नये पूर्वी विभाग में आ गया था.

कैदियों के बीच बंदीगृह के सिपाहियों के अलग-अलग नाम थे. उनके सही नाम जानना कैदियों के लिए असंभव था, इसलिए एक सौ पैंतीस नंबर का कैदी मरने से पहले सभी को अपने ढंग के नाम दे गया था. किसी का नाम दुश्शासन था, किसी का जरासंध. वह जो द्वार पर खड़ा-खड़ा ऊंघने का आदी था, उसे भी कुंभकरण नाम से जाना जाता था. लंबी मूंछों वाले सिपाही को कंस मामा कह कर पुकारा जाता था. वह दुबला-पतला सिपाही, जो कुछ रहमदिल था, उसे कैदी विभीषण कह कर पुकारते थे. यह विभीषण अपने नाम की तरह जितनी डरावनी सूरत का था, भीतर से वह उतना ही कोमल था. यही एक सिपाही था, जिसे सभी कैदी आदर से देखते थे. उसे पास से गुजरते देख कर कुंदन ने कहा —विभीषण भैया, नमस्ते!

उसके पास पहुंच कर सलाखों के इसी ओर से विभीषण ने उसकी नमस्ते का उत्तर देते हुए पूछा—कां तो फिन रेतुरने?

—आज ही.

—तुम्हारा पांव कैसा है?

—कुछ अच्छा है. शिष्टाचार के नाते कुंदन को झूठ बोलना पड़ा.

एक तरह से इस चारदीवारी के भीतर सारी कठोरता और बेरहमी के बावजूद कुंदन का कभी-कभार थोड़ा-बहुत आदर-सा हो ही जाता था. विभीषण के अलावा दूसरे सिपाही भी अच्छी मनःस्थिति में होने पर उससे एकाध बात कर ही लेते थे. दो कारणों से. एक तो उसके स्वयं सिपाही होने के कारण और दूसरी वजह थी उसका यहां सबसे पुराना होना.

कुछ देर पहले एक परिचारक कुंदन को उसकी पुरानी गठरी दे गया था. लकड़ी की खाट पर बैठ कर कुंदन ने गठरी खोली. उसके हाथ के कड़े छोटे के छोटे रह गये थे, और वह बढ़ कर अब ढलने को था. बीते दिनों की याद दिला जाने वाली कई चीजें थीं उस गठरी में. लेकिन . . . कुंदन उन बीते दिनों को याद करके चुभन का शिकार होना नहीं चाहता था, इसलिए उन चीजों को उसने फिर से बांध दिया. बस उस फूलदार रूमाल को अपने हाथ में रह जाने

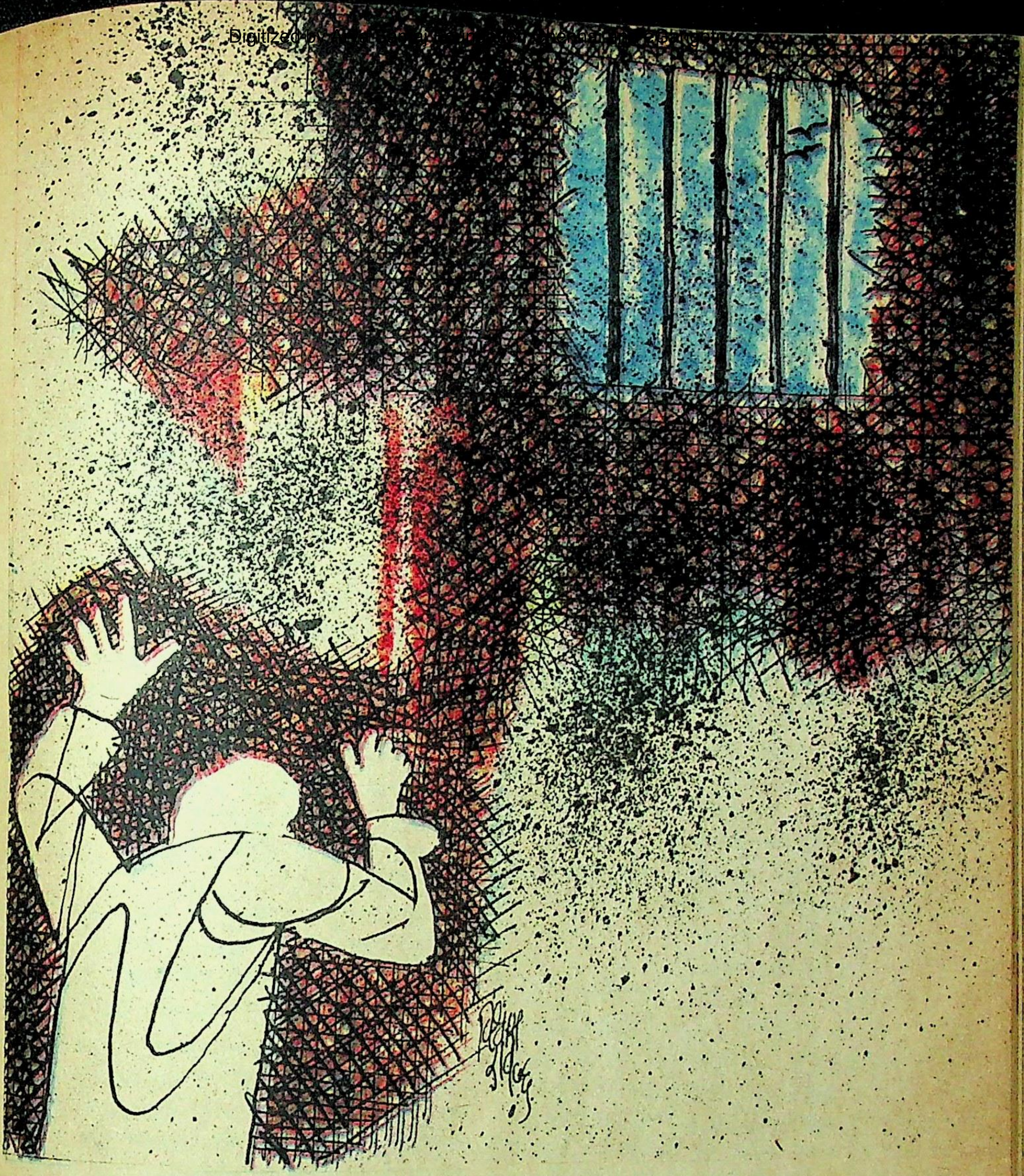

दिया जिसे मरने वाले ने अपनी मृत्यु के एक दिन पहले कुंदन को भेंट किया था. उस मरने वाले के बारे में भी कुंदन ने अधिक सोचना नहीं चाहा. बस रूमाल को अपने सिर और दीवार के बीच तकिये की तरह रख कर उठंग गया. चारदीवारी के भीतर पहली बार आ कर कुंदन ने इस छोटी-सी गठरी को बांधा था. उस क्षण वह गठरी उससे ले ली गयी थी. उस दिन वह जेलर की हिफाजत से निकल कर फिर से उसके हाथों में आ गयी थी, जब चारदीवारी के भीतर उसके तीस वर्ष पूरे होने को थे. तब से यह गठरी लगातार उसकी अपनी कोठरी में थी. जिस दिन वह अस्पताल को जाने लगा था, उससे गठरी ले ली गयी थी. आज उसे फिर से पा कर उसने अपने एक घनिष्ठ साथी को पा लिया था.

दूसरे दिन कुंदन के साथ रियायत की गयी. उसकी टोली के कैदियों के साथ उसे शहर के रास्ते बनाने को नहीं ले जाया गया. उसे कोठरी से निकाल कर ऊंची दीवारों के बीच के विस्तृत स्थान में मकई के दाने छुड़ाने का काम सौंपते हुए विभीषण ने हंस कर कहा—दो दिन के लिए तुम बड़े काम के लिए नहीं जा रहे हो.

वहां से जाने से पहले उसने कुंदन के घायल पैर को गौर से देखा. फिर यह बोलता हुआ आगे बढ़ गया—जल्द अच्छा हो जायेगा. पा त्राकासे.

कुंदन को लगा कि उसके घाव पर यह पहली मरहम-पट्टी थी.

जिस स्थान पर वह दो अन्य कैदियों के साथ मक्की के दाने छुड़ाने के लिए बैठा था, वहां से सामने

की पत्थरों की दीवार के बीच की दो खिड़कियां एकदम सामने पड़ती थीं. खिड़कियां काफी चौड़ी थीं, पर सलाखों के फासले बहुत कम थे. फिर भी बाहर के दृश्य काफी विस्तृत थे. दूर आदमी की-सी आकृति में खड़ा पहाड़. वहां के आसपास की हरियाली. दूसरी ओर शांत समुद्र का गहरा नीलापन. . . उड़ते हुए पक्षी—सभी कुछ कुंदन को एक दूसरी दुनिया की तरह लग रहा था. वह कोई अदृश्य गिरजाघर था, जिसके घंटे की आवाज कैद की चारदीवारियों के भीतर भी प्रतिध्वनित हो रही थी.

जिस मरने वाले की गठरी को अपनी गोद में लिये हुए भी कुंदन उसके बारे में सोचना नहीं चाहता, उसकी आवाज इस घंटे की आवाज के साथ मिल कर उसके कानों में गूंजने लगी. उन प्रतिध्वनियों के बीच कुंदन उस नौजवान के स्वर की अनुध्वनियां सुनता रहा—कुंदन भैया . . . मुझसे बार-बार यही कहा जाता कि मैं अपने गले के उस तावीज को उतार फेकूं, जिसके भीतर हनुमान जी का चित्र था. मैं इनकार करता रहा. मेरी पीठ पर कोड़े बरसते रहे. मुझे गिरजाघर के आंगन में खड़ा करके घंटे को जोर से बजाया जाता . . . और . . . और. . . फिर मुझसे कहा जाता कि मैं घुटनों के बल टिक कर असली परमात्मा का नाम लूं. कुंदन भैया, मैंने सलीब वाली चेन लेने से इनकार किया—मेरे गले से मेरी मां की निशानी उस तावीज को नोच लिया गया—बस यही मेरा जुर्म रहा—इसीलिए मैं यहां हूं. . . जिन्होंने चेन ले ली, वे चैन से हैं. तुम पतियाओगे नहीं, भैया, उनके साथ हमारे अपने लोग भी मिले हुए थे.

कुंदन हंस कर रह जाता.

—उग्रसेन के बंस में कंस!

कुंदन की आंखों में आंसू नहीं आये. वे बहुत अधिक मात्रा में बह चुके थे. वह अपने होंठों के बीच की उस विचित्र मुसकान के साथ मकई के दानों को छुड़ाता रहा. ये दाने छुड़ाने का काम कुंदन को तनिक भी पसंद नहीं था. पहले भी कई अवसरों पर वह ऐसा कर चुका था. बड़ा अजीब था यह काम! अंगुलियों की सक्रियता के साथ मस्तिष्क के तारों की सक्रियता भी बढ़ जाती थी. खयाल बरबस ही पीछे को लौट जाते और . . .

वह बार-बार एकाग्रता का प्रयत्न करता और एकाग्रता बार-बार खंडित होती रहती. एक याद से दूसरी याद से तीसरी. . . और वह यादगारों के खोखले जर्जर सोपानों के सहारे शून्य से घिर जाता.

★ ★

शाम को रोटी लेने के लिए कतार में आगे बढ़ते हुए कुंदन को मंगरू मिल गया. कड़कती धूप में पत्थर फोड़ने के बाद लौटा था वह. उसकी आंखों में अब भी थकान थी. चेहरे का रंग अधिक सांवला हो चला था. उसके समूचे शरीर से कमजोरी फूट रही थी. कुंदन को लगा जैसे यह आदमी वर्षों से बीमार हो. पहली बात कुंदन के मुंह से निकली—तुम्हारे पेट का दर्द कैसा है?

—लगता है उसके साथ ही जाना पड़ेगा.

—ऐसा क्यों कहते हो!

—छोड़ो इस बात को! तुम इसे अपने पास रख लो. यह कहते हुए मंगरू ने एक छोटी-सी पुड़िया कुंदन के हाथों पर रख दी.

—क्या है यह?

दुश्शासन के सामने आ कर खड़ा हो जाने से दोनों चुप हो गये. तार के बीच की छोटी-सी खिड़की के रास्ते बासी फ्रांसीसी रोटी के टुकड़े लिये कैदी अपने-अपने ठौर को जाते रहे. सिपाही जंजीरों का निरीक्षण कर-करके लोगों को कोठरियों की ओर भेजते रहे, जहां दूसरे सिपाही पहले ही से तैनात थे. दुश्शासन के हटते ही अपनी मुट्ठी में छिपायी वस्तु को गौर से देखते हुए कुंदन ने दोबारा पूछा— क्या है यह?

—तुम्हारे घाव में लगाने के लिए.

—कहां मिला?

—मैंने खुद तैयार किया है, घास-पत्तों से. तीन बार लगाओगे, बस पांव एकदम चंगा हो जायेगा. मैंने अपने बाप से सीखा था. और भी कई दवाइयां मुझे आती हैं. बस अपने पेट के इस जालिम दर्द की क्या दवा है, यह नहीं आती मुझे. साला नया रोग होगा, नहीं तो इसका क्या चलता!

कुछ देर चुप रह कर उसने आगे कहा —साले, आदमी अस्पताल जाता है अच्छा होने के लिए. यहां तो रोग को और भी बढ़ाने के लिए जाना पड़ता है! जहां लग्गी से पानी पिलाया जाता है. दवाई तक के लिए छिछियाय पड़ेला!

दुश्शासन फिर सामने आ गया. बातें फिर रुक गयीं. इस बीच कुंदन के हाथ में पत्थर की-सी कठोर रोटी आ गयी. उसे लिये वह पूर्वी इलाके की ओर जाते हुए मंगरू को उत्तरी विभाग की ओर बढ़ते देखता रहा.

अपनी कोठरी में पहुंच कर सबसे पहले उसने उस पुलिंदे को खोला, जिसमें हरे रंग का लेप था. उसने तुरंत उसमें से थोड़ा-सा ले कर अपने घाव पर लगाया. लगाते ही उसे एक ठंडक-सी महसूस हुई. पुड़िया को उसी तरह बंद करके उसने उसे कोठरी के भीतर संजो कर रख दिया. यह नयी कोठरी उसकी पिछली कोठरी से थोड़ी बड़ी थी. इसमें दो-तीन कैदियों को एक साथ रखा जाता था. कुंदन को अकेले रखने का उन लोगों का न जाने क्या कारण रहा हो. यहां रोशनी भी अच्छी थी. तीन ओर पत्थर की दीवारें थीं. सामने लोहे की छड़ें थीं. दाहिनी ओर की दीवार के पत्थरों के बीच से मुठ्ठी-बराबर के एक पत्थर को हटा लिया गया था, जिससे बगल की कोठरी तक कम-से-कम आवाज पहुंचायी जा सकती थी.

बाहर अंधेरा छाने में अभी कुछ देर थी, लेकिन कोठरियों के भीतर रात होने लगी थी. निरीक्षण पर निकले हुए विभीषण को रोक कर कुंदन ने पता लगा लिया कि यह कोठरी छह महीनों से खाली थी. इससे पहले इसमें एक इंजीनियर दूसरे कैदी के साथ तीन

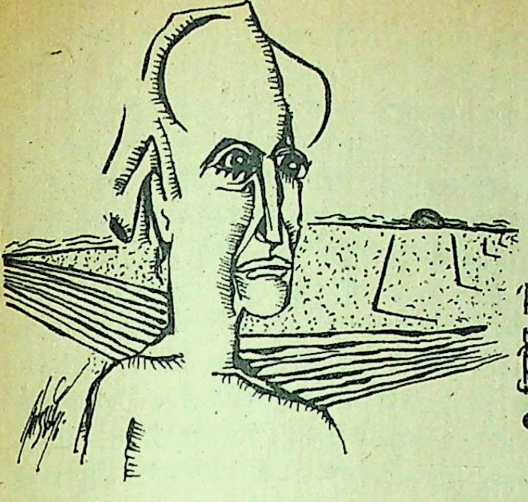

● विनोद दुबे

साल की सजा भुगत कर एक पहरेदार की गोली का शिकार हो गया था. विभीषण ने बड़ी धीमी आवाज में कुंदन को बताया कि यह इंजीनियर बहुत ही साहसी था. अपने साथी को चाबुक की मार से बचाने के लिए उसने एक सिपाही की गरदन दबोच ली थी. पीछे से पहरेदार ने उस पर गोली चला दी थी.

बहुत जल्दी-जल्दी बातें बता कर विभीषण वहां से आगे बढ़ गया था. ऊंची दीवार के उस पार से कुंदन इस कहानी को उसी समय सुन चुका था, पर सच्चाई पहली बार मालूम हुई. जाते-जाते विभीषण उसके हाथ में आधी रोटी थमा गया था. हाथ से छूट कर नीचे गिर जाने पर कुंदन उसे उठाने के लिए झुका ही था कि उस धुंधलेपन में भी चारपाई के निचले भाग में उसने कागज के एक टुकड़े को लटके पाया. उसे बिना ज्यादा महत्व दिये वह खड़ा हो गया. चारपाई पर बैठते हुए फिर एकाएक न जाने क्या सोच कर वह नीचे आ गया. उकड़ूं बैठ कर उसने कागज को ध्यान से देखा और हाथ बढ़ा कर उसे वहां से निकाल लिया. कागज का अधफटा, पुराना टुकड़ा कई तहों में लिपटा हुआ था. उस पर काफी अस्पष्ट हिंदी में कुछ लिखा हुआ था. मुद्दत बाद किसी दूर देश में निहत्थेपन की स्थिति को जीते हुए अपनी भाषा के अक्षरों पर नजर पड़ जाने का मतलब होता है नवजीवन पा लेना और किसी घटाटोप अंधेरे में एकाएक प्रकाश का कौंध जाना . . .

कोठरी के भीतर गलियारे से आते हुए प्रकाश का केवल एहसास-सा होता. उस दूरी से आते-आते वह कुंदन की कोठरी में दम तोड़ता-सा लगता था. अपने हाथ के कागजों को कुंदन उलट-पलट कर देखता रहा. यह जान कर कि उस पर की लिखी हुई भाषा को वह पढ़ सकता था, उसके भीतर एक उत्सुकता जाग उठी थी. वह अपने किसी बंधु के विचार जानने को अधीर हुआ, पर उस धुंधलेपन में उसे पढ़ पाना कठिन रहा. पहली ही नजर में अक्षरों की अस्पष्टता उसे दिखायी पड़ गयी थी. दिन के उजाले में भी आसानी से वह उसे नहीं पढ़ पायेगा, यह उसे मालूम था. कागजों को टेंट के हवाले कर वह चारपाई पर जा बैठा.

उसके पांव का दर्द कम था. बगल की कोठरी से छिद्र के रास्ते दूसरे कैदी के बिरहा की धीमी आवाज रह-रह कर आती रहती. कुंदन को बहुत जल्दी नींद आ गयी. यहां की चारपाई बकाइन के तने के अलावा कुछ नहीं थी, फिर भी अस्पताल की चारपाई से अच्छी ही थी. कुंदन की पीठ की कठोरता की चारपाई की सख्ती से काफी घनिष्ठता हो चली थी. कुंदन की नींद इतनी गहरी रही कि सुबह चार बजे के घंटे की प्रलयंकर आवाज से भी वह नहीं जाग पाया. दुश्शासन ने लोहे की छड़ों को जोर से झनझना कर उसे जगाया.

कैदियों के जमा होने वाले विस्तृत स्थान पर पहुंचने पर उसने सभी कैदियों को पहले ही से कतार में खड़े पाया. हवा में शरीर को सिहरन दे जाने वाली ठंडक थी. सूरज की किरणों के ऊपर आने में अभी काफी समय था. फिर भी अंधेरा धीरे-धीरे मिट कर उजाले के लिए स्थान बना रहा था. दूर से आती हुई मुर्गों की एकाध बांगें सुनायी पड़ जाती थीं. जरासंध ने अपने भारी-भरकम स्वर में चिल्ला कर कतारों को सीधा करने का आदेश दिया. पहले शोरगुल के साथ कैदी हिल-डुल कर सीधे खड़े होने लगे. जरासंध ने दोबारा चिल्ला कर हल्लागुल्ला बंद करने का हुक्म दिया. उसने तथा कैदियों ने सभी कुछ यांत्रिकता के साथ किया.

—प्रिजोन्ये दे सां त्रुवा!

एकदम पहली कतार के उस छोर से इस छोर तक चिल्लाता हुआ कंस मामा बीच में आ खड़ा हुआ. उसकी इस आवाज की पुनरावृत्ति अन्य सिपाहियों ने भी की. अंत में विभीषण ने अपने क्रिओली उच्चारण के साथ हिंदी में आवाज दी.—कैदी दो सौ तीन!

कोई उत्तर नहीं मिला.

पंद्रह मिनट बाद कैदियों की कानाफूसी से पता चला कि कैदी दो सौ तीन अपनी कोठरी में मरा पाया गया. कुंदन उसे अच्छी तरह जानता था. रूपलाल तो सबसे तगड़ा, सबसे चंगा कैदी था! उसकी यह अकस्मात मौत? कैदियों के बीच एक बार फिर कानाफूसी हुई. कई प्रश्न उठे. कहीं रामदेव की तरह सिपाहियों ने इसे भी जहर तो नहीं दे दिया? दबी आवाज में कई लोगों ने सहमति दी.

—ऐसा ही हुआ होगा. कई दिनों से ये लोग उसे रास्ते से हटाने की सोच रहे थे. अभी परसों उसने अधपका पनछोछर भात रसोइये के मुंह पर फेंक दिया था.

पीछे से एक दूसरी आवाज आयी.

—अरे कल की बात है. उसने जरासंध के गाल पर थप्पड़ जड़ते हुए कह दिया था—एक दिन

तोर पारी, एक दिन मोर पारी, आज भैया पारी-पारी.

लोगों की कानाफूसी देर तक नहीं चल सकी. कैद के लगभग सभी कर्मचारी सामने आ गये थे. रामदेव के शव को दफनाने की बात सुन कर कुंदन से चुप नहीं रहा गया. उसने कंस मामा को संबोधित करके कहा—कंस मामा, पिछली बार भी हमने इस बात के लिए अपना विरोध प्रकट किया था, रूपलाल भी हिंदू है. उसे दफनाया नहीं जा सकता. जलाना होगा.

पल भर का सन्नाटा रहा.

कुछ देर बाद कंस मामा ने क्रोध भरे स्वर में कड़क कर कहा—ठीक है, उसे जला आने की तैयारी की जाये.

—इतनी जल्दी क्यों पड़ी है! डाक्टर को तो आने दिया जाये.

—फेर्म ता गेल! कंस मामा चिल्ला उठा.

और कुंदन को चुप रह जाना पड़ा. उसके पीछे से किसी साथी ने धीरे से कहा—डाक्टर के आइल न आइल बराबर का, कुंदन भैया.

* *

मान्योक-वितरण करते वक्त विभीषण ने कुंदन के कानों में कहा कि उसकी छुट्टी रद्द कर दी गयी. उसके साथ कोई रियायत नहीं होगी और उसे घायल पांव के साथ शहर की सड़कें बनाने जाना ही होगा. कुंदन को इस बात से जरा भी दुख नहीं हुआ. मान्योक खा कर उसने भरपेट पानी पी लिया और फिर काम पर जाने के लिए अपने को तैयार पाया.

उजाला होने लगा था, फिर भी सूरज की प्रथम किरणें धरती को छू नहीं पायी थीं, जब कैदखाने के फाटक से कैदियों की दो टोलियां निकलीं. तीन-तीन कैदियों के पैर एक लंबी जंजीर में बंधे हुए थे. हेमंत की आखिरी ठंडक को अनुभव करते हुए वे चल रहे थे. जंजीरों की खनक के साथ उनके कदम बढ़ रहे थे. कभी-कभार आदत से मजबूर सिपाही उन्हें अनुशासन में लाने के लिए अकारण ही चिल्ला पड़ते.

शहर के उस भाग में पहुंचने तक, जहां कैदियों को काम में लगना था, सूरज पूर्वी पेड़ों के ऊपर आ गया था.

चल कर आने की थकान अभी मिटी भी नहीं थी कि उन्हें काम का हुक्म मिल गया. चलने के कारण कुंदन के पैर का दर्द बढ़ गया था. उसे भीतर-ही-भीतर झेलता हुआ वह कंकड़ों को सड़क पर बिछाने में लगा रहा. कैदियों को तीन-तीन के बंधन से हटा दिया गया था. अलग-अलग होने पर भी सभी के एक-एक पांव और हाथ में जंजीर थी. इस पर भी किसी को कमर सीधी करने की इजाजत नहीं थी. मुंह पर बहते पसीने को पोंछने तक का मतलब था पीछे से बंदूक की मूठ का पीठ से लग जाना. पुल और इमारतें बनाते समय भी लोगों की यही दशा होती है.

पांच घंटों के लगातार काम के बाद सीटी बजी. जिसको जहां जगह मिली, बैठ जाना पड़ा. मैले हाथों ही सभी को सूखी रोटी और उबली हुई अरबी लेनी पड़ी. खाने के दौरान कुंदन का हाथ कोई तीन-चार बार टेंट पर पहुंचा. उस कागज को वह अब भी उसी स्थान पर महसूस रहा था. उसे एक बार पढ़ जाने की चाह अब भी उसके भीतर बनी हुई थी. अपनी उत्सुकता को उसे दबाना पड़ा, क्योंकि इस खुली जगह में सिपाहियों की आंखें एक क्षण के लिए भी उन्हें नहीं छोड़तीं. उसके ठीक सामने था जरासंध. कुछ देर के लिए अगर वह थोड़ा-सा हट जाता, तो संभवतः कुंदन उस कागज पर नजर दौड़ा सकता. कुंदन इस ताक में रोटी को धीरे-धीरे चबाता रहा. कुछ देर बाद, आखिर वह हो कर रहा जो कुंदन मन-ही-मन चाह रहा था. धूप से तंग आ कर जरासंध कुछ आगे जा बैठा, जहां थोड़ी-सी छांव की उसे उम्मीद बंधी. उसके हटते ही कुंदन ने आगे-पीछे देख कर टेंट से कागज को बाहर निकाला. सींक और किसी जंगली फूल के रस से लिखी हुई अस्त-व्यस्त पंक्तियां थीं:

'जिस दिन सिर पर बोझ लिये, दंड भुगतता हुआ मैं बड़ी दीवारों के चक्कर काट रहा था, उसी समय मेरी पैनी नजर को मेरी कोठरी के नीचे सुरंग का पता लग गया था. यह बात तो मुझे पहले ही से मालूम थी कि इस इलाके में जल-दस्यु सुरंग बना कर अपने खजाने छुपा जाते थे. दूसरी ही रात मैंने अपनी कोठरी में सूराख की खोज शुरू कर दी थी. आज पूरी सुरंग का पता चल गया है. अपनी चारपाई के नीचे के दो पत्थरों को हटा कर मैंने उनको सतही रख दिया है. सुरंग चालीस फुट की है. इसका यह मतलब है कि वह नाले के पास निकलती होगी. दीवार-पार मेरा साथी, कुछ डरपोक है, फिर भी कल रात हमें इस नर्क से बाहर हो कर रहना है, लेकिन यहां हर दूसरे क्षण कुछ से कुछ हो जाता है... कल की रात हम दोनों के लिए कैसी रहेगी, मालूम नहीं. इसलिए सुरंग का पता इस कागज पर लिखे जा रहा हूं. . .भाग्य हमारे पक्ष में रहा, तो यह कागज भी हमारे साथ इस चारदीवारी से पार हो जायेगा. और अगर ऐसा नहीं हुआ तो. . .जिसके हाथ यह कागज लगे, उसे आजादी मुबारक . . .'

कुंदन ने जल्दी से कागज को मरोड़ कर टेंट के हवाले कर दिया. उसकी हैरानी कम होने पर पहला प्रश्न उसके मस्तिष्क में पैदा हुआ:

लिखने वाला है कौन?

* *

सीटी बज चुकी थी. काम शुरू हो चुका था. हाथों की सक्रियता के साथ-साथ कुंदन का दिमाग भी सक्रिय रहा. वह सोचता रहा . . .

गोली खा कर मर जाने वाला इंजीनियर. . .?

एक दूसरी उत्सुकता से कुंदन का खयाल बोझिल होता गया. अपनी कोठरी में पहुंच कर सच्चाई जानने की उसकी अधीरता बढ़ती गयी. कैदी जीवन की इस लंबी अवधि ने कुंदन को जीवन की अलग परिभाषा दे दी थी. यही मान कर सांसें लेने में उसे

सुविधा होती कि उसका तो जन्म ही इस चारदीवारी के भीतर हुआ था और मरना भी उसे इसी के भीतर था. इस दायरे से बाहर हो कर सोचने से कोई लाभ नहीं था. चारदीवारी के बाहर की कल्पनाओं को अगर कभी-कभार सोच लेता तो न जाने किस भावना के वश हो कर. अपने शरीर को दीवारों के भीतर कैद रख कर वह अपने खयालों को भी अपने ही भीतर बंद किये हुए था. लेकिन . . . आज अचानक ही उसके खयालों ने मुक्ति के लिए संघर्ष किया. उसने अपने आगे के चंद बचे हुए दिनों की कल्पना की. कैसी हो सकती है वह? अब तक उसका यह खयाल असंभव की सलाखों के भीतर बेबस था. वे सलाखें एकाएक गल गयी थीं. दीवारें ढह गयी थीं. और सामने पहाड़ थे, नदियां थीं, खेत थे, हरियाली थी—सांसों की स्वतंत्रता थी. . .विस्तृत क्षितिज था . .और क्या था? . . .उसने अपने खयाल को एक बार फिर असंभव की सलाखों . . .बेबसी की ऊंची दीवारों के बीच बंद हो जाने दिया.

* *

शाम को अपनी कोठरी के भीतर पहुंचने के लिए वह सामने खड़ा विभीषण का इंतजार कर रहा था. विभीषण बाकी कैदियों को भीतर पहुंचा कर कुंदन की कोठरी के पास आया. उसकी बगल में मंगरू था. कुंदन से उसने धीरे से कहा —कुंदन, मुझे लगता है कि मेरा दिन एकदम पास आ गया है. शायद तीन-चार दिन और. . .खैर, तुम्हारी बगल में मरना लिखा है, इसलिए मेरी कोठरी बदली जा रही है. ठीक तुम्हारी बगल वाली में आ रहा हूं.

कुंदन कुछ कह पाता कि तब तक विभीषण ने सलाखों वाला दरवाजा खोल कर कुंदन को धीरे से भीतर ढकेल दिया.

—तुम्हें कल शाम जेलर साहब के सामने हाजिर होना है. यह कहते हुए विभीषण मंगरू के साथ दूसरी कोठरी की ओर बढ़ गया. जाते-जाते कुंदन ने मंगरू की आंखों में देख लिया था. उनमें मृत्यु की निर्धारित आभा थी.

अपनी कोठरी के भीतर कुंदन ने विभीषण के वाक्य को दोहराते हुए मन ही मन कहा, कल शाम जेलर साहब के सामने? वही धूप में नंगी पीठ पर सौ कोड़े और पंद्रह दिनों तक उस बड़ी चक्की को अकेले चलाना? या इससे भी अधिक?

चारपाई पर बैठ कर वह अंधेरा छाने की प्रतीक्षा करता रहा. बार-बार उसकी आंखें चारपाई के नीचे पहुंच कर कुछ ढूंढ़ निकालना चाहती थीं. वहां अंधेरा था. यह अंधेरा कुछ ही समय में पूरी कोठरी को अपने में कस लेगा. बगल की कोठरी से बिरहा की आवाज आती रही. अंधेरे को टटोलती हुई कुंदन की अंगुलियां आगे बढ़ीं.

धीरे-धीरे उसने चारपाई हटायी. दीवार को टटोलता रहा. उसकी अंगुलियां एक अडिग पत्थर से दूसरे अडिग पत्थर की ओर जाती रहीं. एकाएक उसकी धड़कनें तेज हो गयीं. एक पत्थर डगमगाया, फिर दूसरा. अपनी सांसों को थामे उसने एक पत्थर को धीरे-धीरे खिसका कर पीछे की ओर हटाया. दूसरा पत्थर आसानी से पीछे आ गया. कुंदन ने हाथों से सुरंग का अंदाज लगाया. तीन फुट. वह आसानी से उसके भीतर रेंग सकता था. मंगरू की कोठरी में मौत-सा सन्नाटा था. बगल की दूसरी कोठरी से बिरहा की कंपन भरी आवाज आती रही. गठरी उठा कर कुंदन ने अंधेरे की आंखों से एक बार कोठरी के चारों ओर के अंधेरे को देखा. पहली बार उसे अंधेरा प्यारा लगा. उसमें आत्मीयता थी, शीतलता थी. उस अंधेरे में शांति की भीनी-भीनी-सी गंध थी.

गन्ने का रस उबलते समय हवा सोंधी गंध से लद जाती है. कारखाने के काले धुएं से वातावरण धूमिल और बोझिल प्रतीत होने लगता है. धुएं से मुक्त स्थानों में आकाश जितना स्पष्ट दीखता है, कारखाने के इर्द-गिर्द वह उतना ही मैला-मैला सा लगता है. इसीलिए काम समाप्त होते ही किसन पहाड़ी की गोद में चला जाता और वहां की साफ नदी में साफ आकाश को देखा करता. ऐसा करने का अवसर उसे बहुत कम मिलता, क्योंकि उसका काम कभी न खतम होने वाला काम था. यही कारण था कि वह उस पहाड़ी और शीतल नदी-तट के लिए हमेशा लालायित रहता. नदी के पानी में तैरती हुई पेड़ों की हरियाली. परैन और कच्चू के पत्ते. उन पर चमकती हुई पानी की बूंदें. वह सभी कुछ उसके भीतर के तार-तार को झंकृत कर जाता. चट्टानों से टकराती फेनिल तरंगों की थपकियां उसे उस रोज के नीरस और ऊब भरे जीवन से काट कर क्षणिक स्वतंत्रता और आनंद का आभास देती थीं. कल ही रात की निर्मल चांदनी को वह नदी

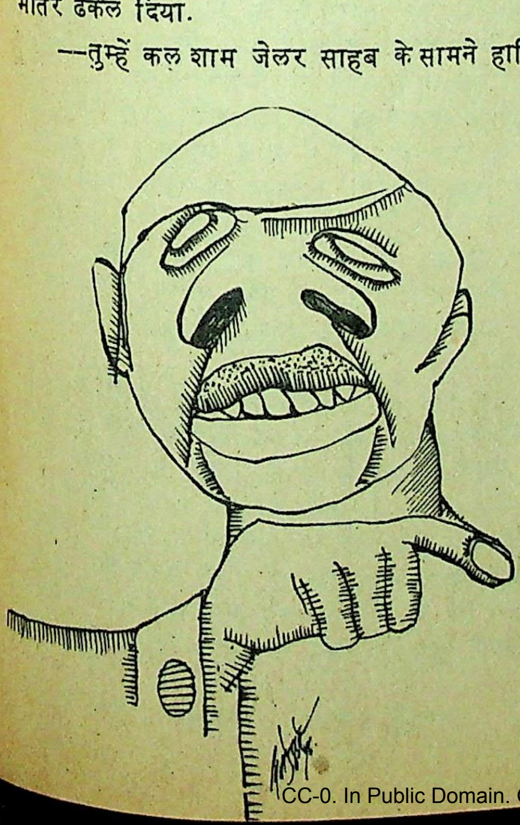

● विनोद दुबे

के पानी में देख रहा था. स्वच्छ आकाश के तारे इतने पास लग रहे थे कि किसन सोच उठा था—बस थोड़े ही ऊपर जाने पर उन्हें छुआ जा सकता था. ये ही तारे उसकी अपनी धुएंदार बस्ती में कितनी दूर प्रतीत होते थे!

कल काम से छूट कर वह सीधे नदी-किनारे पहुंच गया था. वहां से नहा कर घर लौटा था और फिर चांदनी रात का खयाल आ जाने पर वह अपनी मां द्वारा लाख रोके जाने पर भी फिर से नदी को दौड़ गया था. किसन अपना उन्नीसवां वर्ष पार कर चुका था. अठारह की उम्र तक वह इतना अधिक डरपोक था कि रात का एक कदम भी अकेले चलने में डरता था. अठारह के बाद एकाएक उसमें भारी परिवर्तन आ गया था. पहली बार जब रात के वक्त वह नदी की ओर निकला था, उस समय उसके बाप के साथ-साथ पूरी बस्ती हैरान रह गयी थी. नदी एकदम दूर न हो कर भी एकदम पास नहीं थी. एक बार किसन ने गिन कर देखा, पूरे बारह सौ कदम पर थी.

आज जब फिर काम पर से लौटते ही किसन ने नदी की ओर पहला कदम उठाया, तो रघुसिंह ने उसे रोकने का प्रयत्न किया.

—अभी कल रात ही दस बजे रात के ऊपर लौटल रहले. तोर मां हियां रात भर परेशान रहल!

—आज रात होने के पहले लौट आऊंगा.

—ई अपन साथ का लिये जात रहे हो?

—नहा कर बदलने के लिए फतूही.

झूठ बोल कर किसन दौड़ गया. लंबी, चक्करदार पगडंडी से होता हुआ वह जब नदी-किनारे पहुंचा तो वहां के पेड़ों के झुरमुट के कारण शाम का सांवलापन घना था. काली चट्टान पर खड़े हो कर उसने चारों ओर देखा. जोर से सीटी बजायी. फिर अपने हाथ की मारकीन की फतुही को चट्टान पर रख कर वहीं बैठ गया. उसकी आंखें रह-रह कर अगल-बगल को देख जातीं. चट्टान से टकराती फेनिल लहरें उसके पांवों से भी आंखमिचौनी-सी खेल जातीं. कुछ दूरी पर के किसी घने पेड़ पर गांव भर के पक्षी इकट्ठे हो कर अजीब कोलाहल पैदा कर रहे थे. इस स्थान से किसन को बहुत अधिक प्यार था.

जब वे लोग कुएं-सी संकुचित उस दूसरी कोठी से इस इलाके में आये थे, उस समय किसन दस-ग्यारह का रहा होगा. इस जगह का पता उसे तीन-चार वर्ष बाद ही लगा था, जब पहली बार कंधे पर कुदाली लिये वह नौकरी के लिए निकला था. इससे पहले अपने घर के आसपास के पेड़ों के झुरमुट को वह बस देखा करता था और सुनता रहता था कि वहां नदी है. उसके पार्श्व की पहाड़ी तो उसी समय से उसे मोहे हुए थी. नदी और पहाड़ी की सुंदरता को निरखते हुए वह मन-ही-मन पूछा करता कि जब लोगों को गांव ही बसाना था, तो फिर इस सुंदर स्थान पर क्यों नहीं बसाया? अगर उसकी बस्ती नदी के करीब और पहाड़ी के एकदम नीचे होती, तो कितना अच्छा होता! इसके साथ ही उसे यह भी खयाल आ जाता कि यहां अपनी पसंद से कौन कुछ कर पाता है! कोठी वाले चाहें तो पहाड़ पर बिठा दें, चाहें तो बाड़े में बिस्तर लगवा दें.

* *

किसन के पास केवल प्रश्न ही प्रश्न थे, उत्तर नहीं थे उसके पास. जब भी वह प्रश्न करता, रघु उसके मुंह पर हाथ धर देता. उसका हर वक्त यही कहना होता कि दास प्रश्न नहीं करते, आज्ञा का पालन करते हैं. इतने पर भी किसन के प्रश्न नहीं रुकते. वह उसी स्वर में अपने बाप से पूछ बैठता—आखिर हम दास क्यों?

किसन अपने हर प्रश्न को गंभीर प्रश्न मानता, जबकि रघुसिंह उन्हें बच्चों की जिज्ञासा मान कर इधर-उधर के उत्तरों से टाल जाता. अपने आप के किसी भी उत्तर से किसन संतुष्ट नहीं था. उसने तय कर लिया था, उसके प्रश्नों के उत्तर मिलें, न मिलें, वह प्रश्न करता ही रहेगा. अपने इर्द-गिर्द के लोगों की हालत को देखते हुए उसे लगता कि इन सारे लोगों ने प्रश्न करने की अपनी ताकत को भुला दिया है. उनके अभावग्रस्त जीवन का यही कारण था. अपनी जीभ को भीतर चिपका कर वे चुपचाप दारुण दंडों को झेलते आ रहे थे. किसन बार-बार पूछता, यह चुप्पी क्यों?

एक बात वह समझ नहीं पाता. तीन वर्षों से वह इधर काम कर रहा था. अपने बड़ों का अनुकरण करते हुए वह भी देह-तोड़ परिश्रम करता. उसकी अपनी किस्मत में भी गालियां थीं, बांसों की बौछार थी. वह क्यों चुपचाप सह लेता था? क्या केवल इसलिए कि शुरू से अब तक सभी लोग सहते आ रहे थे, इसलिए उसका भी वैसा ही करना अनिवार्य था? या वह भी उतना भी बेबस था, उतना ही डरपोक था, जितना कि सभी लोग थे? उसके अपने पास केवल प्रश्न होते तो फिर क्या कारण था कि इन प्रश्नों को जिनके सामने करना चाहिए, न करके वह अपने लोगों से किया करता? यह उसका अपने आप से प्रश्न होता.

पिछले सप्ताह खेतों में काम करते हुए वह मुंडेर से नीचे आ गया था. पैर में मोच आ जाने के कारण दो दिन काम पर नहीं जा सका था और उसके लिए उसके चार दिन के पैसे जब्त कर लिये गये थे. कुली बीमार हो कर भी घर पर नहीं रह सकता. ऐसा क्यों? जिस गोरे से वह यह प्रश्न करना चाहता था, उसके सामने पहुंचते ही उसकी हिचकियां बंध जाती थीं. क्यों?

जिस दिन अपनी आंखों से उसने अपने बाप को बैल की जगह ईख के बोझ को खींचते पाया था, उस दिन उसके भीतर के सभी प्रश्नों ने पिघल कर आक्रोश का रूप ले लिया था. वह आक्रोश भी सीला निकला. वह कुछ नहीं कर सकता था, क्योंकि औरों की तरह उसके अपने खयालों में भी उसके अपने हाथ-पांव बंधे हुए थे. उस दिन वह और कुछ न कर सका था. उसके मन और हृदय से कुछ आंसू बह कर रह

गये थे. वे आंसू भी इतने गाढ़े थे कि वे उसके तमाम सवालों को बहा न सके. लेकिन क्या प्रश्नों से मुक्ति पा कर वह जी लेगा? उसने तो प्रश्न करते रहने को जीवन मान लिया था. एक बार अपने बाप से यहां तक कह गया था कि उसके प्रश्न करने की शक्ति को बने रहने दिया जाये.

...अगर शुरू से ही प्रश्न किया गया होता तो स्थिति यह नहीं रहती, उसे लगता.

...प्रश्न तो आज भी नहीं किया जा रहा. जो आवाज हस्तियों के कानों के लिए हो, उसके अपनी चारदीवारी के भीतर गूंजते रहने से क्या होता है?

वह यह मानने को विवश हो जाता कि वह आज भी डरपोक था, कायर था, भीरु था. एक वर्ष पहले की उसकी वह कायरता, वह भीरुता आज भी उसकी अपनी धमनियों में सजीव थी. उसका इस तरह अपने को बहुत अधिक साहसी बताते हुए रात में जंगलों की ओर आ जाना उसकी निर्भयता का द्योतक नहीं था. वह उसके अपने ढंग का भय था. उसकी यह ऊपरी निर्भयता उसके भीतर के भीषण भय को छिपाने का तरीका थी, और कुछ नहीं.

इस एकांत स्थान में पहुंच कर किसन अपने आप से संघर्ष करता रहता. जब थक जाता, तो प्राकृतिक सुषमा में अपने अंतर्द्वंद्व को डुबो देता. आज भी लहरों को चट्टानों से टकरा कर उन्हें चूर-चूर करने के उस प्रण पर वह गंभीरता से सोचते रहने के बाद अपने से प्रश्न कर बैठा—इस तरह अपनी सतही निर्भयता का प्रदर्शन करके क्या मैं भी लहरों की तरह सीले आक्रोश को ही व्यक्त तो नहीं कर रहा? क्या मेरा यह साहस भी इसी तरह फेनिल नहीं? अगर यही साहस है तो फिर?

वह उस व्यक्ति के बारे में सोचने लगा जो सचमुच ही साहसी था. जो कल रात को उसे यहां मिला था. जिसे देखते ही उसकी सारी निर्भयता काफूर हो गयी थी. वह डर गया था. भीतर-ही-भीतर कांप गया था.

इस समय उसे उसी व्यक्ति की प्रतीक्षा थी. उसी साहसी व्यवित की. उस ढलती उम्र में भी उस आदमी के भीतर के साहस की कल्पना मात्र से किसन प्रभावित था. वह सचमुच ही हिम्मत वाला था. निर्भीकता थी उसमें, तभी तो.

सूरज ढलने के बाद उसके पहुंचने की बात हुई थी. क्षितिज की लालिमा भी धीरे-धीरे मिट रही थी. थके-मांदे दिन को विदाई दे कर शाम रात की अगवानी करती हुई सूरज की दिशा को बढ़ी जा रही थी. कल किसन उससे बहुत अधिक बातें नहीं कर सका था. अगर वह ठीक समय पर पहुंच जाता तो काफी बातें हो सकती थीं. किसन उसके लिए फतुही ले आया था. कुल मिला कर किसन के पास दो ही कमीजें थीं. एक उसके शरीर पर थी, दूसरी को वह घर से उठा लाया था. कल रात उसे यह खयाल जरूर आया था कि अगर वह एक फतुही उस व्यक्ति को दे बैठता है, तो फिर एक ही से वह कैसे पार पायेगा? एक क्षण चिंतित हो कर दूसरे ही क्षण उसने अपने आपसे कहा था कि आगे की बात आगे देखी जायेगी.

अंधियारे को बढ़ते पा कर उसे इस बात की चिंता हो चली कि कहीं वह नहीं पहुंचा तो! उसने इस चिंता को अपने भीतर घर करने नहीं दिया. उसे झकझोर कर वह अगल-बगल को देखता रहा. एक बार फिर से जोर की सीटी बजायी. उधर का कलरव धीरे-धीरे कम होने लगा था. नदी की कलकल की आवाज बढ़ गयी थी. अंधेरा अभी उस गहनता को नहीं पहुंचा था, कि सामने की चीज दिखायी न पड़े. किसन ने अपने से पूछा—और अगर वह नहीं आया तो? पर क्यों नहीं आयेगा? कई कारण हो सकते हैं. यह भी हो सकता है कि वह गिरफ्तार कर लिया गया हो.

पर नहीं, किसन इतनी आसानी से यह मानने को तैयार नहीं था. उस आदमी के आने का विश्वास उसे अब भी था. शायद अपने छिपे हुए स्थान से बाहर आने के लिए वह कुछ और अंधेरा चाह रहा हो. हालांकि कैद की पतलून को बदल कर उसने अधफटी पुरानी धोती पहन रखी थी, फिर भी कैद की कमीज तो उसी पर थी. किसन इस तरह सोच ही रहा था कि झाड़ियों के बीच खरखराहट हुई. उसने उधर देखा. दूसरे ही क्षण आकृति दिखायी पड़ी और धुंधलके में भी किसन ने कुंदन को पहचान लिया. सामने आते ही कुंदन ने पूछा—क्यों बेटे, तुम अकेले हो न?

—मैंने कहा था न, अकेले ही आऊंगा.

—गांव में तुमने किसी से मेरी चर्चा तो नहीं की है न?

—मैंने आपको न करने का वचन दिया था.

कुंदन ठीक किसन के पास चट्टान पर बैठ गया.

—दिन भर आप भूखे रहे क्या?

—नहीं...कुछ पपीते मिल गये थे.

—मैं आपके लिए फतुही ले आया हूं. आप इसे तुरंत पहन लीजिए...कुछ छोटी होगी. पर कोई बात नहीं.

कुंदन ने जल्दी से अपने ऊपर से कैद की कमीज उतारी. आत्मशांति की गहरी सांस ली. अपने शरीर को बिल्कुल स्वच्छंद और बोझ से निवृत पाया. वर्षों बाद की स्वतंत्र मुसकान के साथ किसन की ओर देखा. उसके हाथ से फतुही ली और उसे पहन लिया.

वह क्षण था वह, जब आदमी के भीतर दर्द पहुंचाने वाले कीड़े कुतरना भूल जाते हैं और चोट-सी नहीं लगती.

अगले अंक में

कुंदन के लिए नयी जिंदगी की शुरुआत ...किसन तथा रघुसिंह की मदद से मिला काम...काम की कसक...एक और तरह की यंत्रणा...और नये गांव के नये लोग...उनकी अपनी यातनाएं...

फिल्में

श्याम बेनेगल की आगामी फिल्म--'मंथन'

'अंकुर' के गूंगे-बहरे साधु मेहर की पीठ पर उभरते निशान, जमींदार के घर की खिड़की का टूटा हुआ शीशा, **'निशांत'** की उजड़ी हवेली. . . .चौपाल में घूमता हुआ शीशा तोड़ने वाला वह लड़का—लगता है वह श्याम की तीसरी फिल्म **'मंथन'** का वयस्क भोला बन गया.

आजादी के बाद पनपी शोषणवादी ताकतों के नये मुखौटे—सरपंच (कुल भूषण), दूधवाला मिश्रा (अमरीश पुरी); विरासत में मिली मानसिक और आर्थिक गुलामी में जकड़े हरिजन और इस व्यवस्था के विरुद्ध आक्रोश से भरा विद्रोही भोला (नसीरुद्दीन). सरपंच और मिश्रा जैसी ताकतों के हथकंडे, कानूनी दावपेंच, बही-खातों का जंगल, मीठी बातें और उसके पीछे लगातार शोषण करते चले जाने की अंतहीन प्रक्रिया से लड़ने के लिए अनगढ़ भोला के पास कोई हथियार नहीं. उसका साथी हरिजनों का प्रतिनिधि मोती (हृदय लानी) उसकी बात की सच्चाई को समझते हुए भी, सब कुछ चुपचाप सहते रहने को मजबूर है. भोला और मोती जानते हैं कि सब गलत हो रहा है, लेकिन इस व्यवस्था की जड़ें उखाड़ फेंकने की उनमें समझ नहीं है.

लेकिन जब निस्वार्थ डॉक्टर बाबू पर भोला और मोती को विश्वास हो जाता है, तब उन्हें डॉक्टर बाबू की दूध वालों की कोआपरेटिव सोसायटी की योजना में अपने लोगों की भलाई की बात समझ में आने लगती है. सोसायटी की बात मिश्रा और सरपंच को बौखला देती है. गांव वालों को अपने प्रभाव से बाहर निकलते देख पाना उनके लिए सह्य नहीं. अवसरवादी सरपंच सोसायटी की आड़ में अनपढ़ हरिजनों को पहले की तरह अपने आधिपत्य में रखने के उद्देश्य से कोआपरेटिव प्रमुख का पद भी हथियाना चाहता है. भोला प्रमुख-पद के लिए हरिजनों की तरफ से मोती का नाम रखता है. जात-पात, ऊंच-नीच और गरीबी-अमीरी के अंतर को बखूबी समझने वाला मोती इतने प्रभावशाली व्यक्ति के सामने अदना-सा महसूस करता है. आखिर में भोला की सच्चाई और जिद, डाक्टर बाबू की निस्वार्थता और समझ तथा अपने साथियों का सहयोग और भलाई की भावना मोती को चुनाव लड़ने को मजबूर कर देती है. मोती प्रमुख पद का चुनाव जीत लेता है. भोला और हरिजनों का उत्साह दुगना हो जाता है और उन्हें अपनी ताकत का एहसास होने लगता है.

ईर्ष्या की आग से झुलसे हुए सरपंच और मिश्रा हरिजनों के आत्माभिमान और आत्मविश्वास की कोंपल को कच्ची समझ कर उखाड़ फेंकने के लिए ओछे हथकंडों का एक जाल बुनते हैं.

मिश्रा की दूकान के सामने गांव वालों की लंबी लाइन, शोषणवादी ताकतों के जबड़े में जाते मजबूर चेहरे भोला को हिला कर रख देते हैं. वह हरिजनों को आर्थिक और सामाजिक गुलामी के गर्त में गिरने से बचा कर उनका रुख सोसायटी की ओर मोड़ देता है. इस बार बनी सोसायटी उनके संघर्ष और सुदृढ़ आत्मविश्वास की नींव पर खड़ी है.

☐ **ओम**

'मंथन' के दो दृश्य

श्री ...नाथ ...
प्रो. श्री जी.पी.मिश्र

बंबई टेलीविजन पर 'समांतर' फिल्में

बंबई टेलीविजन ने पिछले दिनों एक नया और अपने ढंग का पहला कार्यक्रम शुरू किया, जिसका नाम है **'समांतर'**. इस कार्यक्रम के अंतर्गत भारतीय भाषाओं की समय-संगत समांतर कहानियों पर बनी फिल्में दिखायी जाती हैं. साथ ही महत्वपूर्ण समांतर रचनाकारों की रचना एवं जीवन-दृष्टि से भी दर्शकों का परिचय कराया जाता है. टेलीविजन का यह प्रयास सराहनीय है, क्योंकि इसमें एक ओर चालू हिंदी फिल्मों तथा 'मनोरंजक' पलायनवादी कार्यक्रमों के अभ्यस्त दर्शकों को अपने समय की जरूरी सच्चाइयों से अवगत कराया जा सकेगा और दूसरी ओर इसके माध्यम से 'कहानी' और 'फिल्म' जैसी भिन्न विधाओं के समन्वय की संभावनाएं भी खोजी जा सकेंगी. इस कार्यक्रम की परिकल्पना पूना फिल्म इंस्टीट्यूट के उत्साही स्नातक तुंगेशनाथ मोहन ने की. **'समांतर'** की शुरुआत के बारे में उनका कहना है कि इस समय हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में समांतर साहित्य के माध्यम से जिस सम्यक चेतना की बात की जा रही है, टेलीविजन का कार्यक्रम उसी का सहभागी और पक्षधर है.

'समांतर' के पहले कार्यक्रम में इस नये आयोजन का स्वागत करते हुए कमलेश्वर ने इसे एक सार्थक कदम बताया और **'समांतर'** की वैचारिकता को स्पष्ट और सरल शब्दों में दर्शकों के लिए प्रस्तुत किया. इसके साथ ही सुधा अरोड़ा की हिंदी कहानी **'युद्धविराम'** पर आधारित आधे घंटे की फिल्म **'दिशांतर'** भी दिखायी गयी. इस फिल्म में प्रमुख भूमिकाएं नाना पलसीकर, दुलारी, जगजीत उप्पल, अमर स्नेह आदि की थीं. **'समांतर'** के दूसरे कार्यक्रम में जितेंद्र भाटिया ने लेखक की राजनीतिक पक्षधरता पर बातचीत करते हुए प्रतिक्रियावादी एवं उग्र वामपंथी खतरों का सवाल उठाया. इसके साथ ही कमलेश्वर की **'जोखिम'** तथा हृदय लानी की **'सजा'** कहानियों पर आधारित एक फिल्म दिखायी गयी जिसका नाम था—— **'सच, सिर्फ सच और सच के सिवा कुछ नहीं. . .'** इसमें पांच मिलते-जुलते आततायी चेहरों की भूमिका निभायी नमित कपूर ने और 'मरती हुई मां' के लिए लड़ने वाले युवक का काम किया स्वयं हृदय लानी ने.

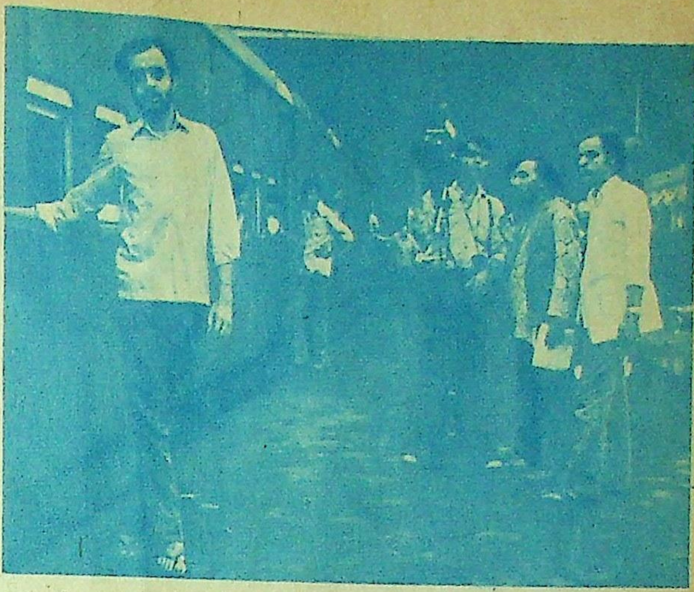

'रक्तजीवी' की शूटिंग के दौरान (बायें से): नायक नमित कपूर, कैमरामैन बी. पी. सिंह, निर्देशक तुंगेशनाथ मोहन तथा कहानी और पटकथा-लेखक जितेंद्र भाटिया

'समांतर' की एक विशेषता यह भी है कि इन फिल्मों में मूल कहानी को पूरी अहमियत देते हुए इस बात की कोशिश की जाती है कि फिल्म का स्वर मूल कहानी से भिन्न न हो. यही नहीं, मूल कहानियां पढ़ने के इच्छुक दर्शकों को उन कहानियों की प्रतियां भिजवाने की व्यवस्था भी की गयी है. इस प्रकार इस कार्यक्रम के माध्यम से पाठकों और दर्शकों के उस बहुत बड़े वर्ग तक पहुंचने की कोशिश की जा रही है, जो समकालीन साहित्य से लगभग अपरिचित है. इस कार्यक्रम ने बहुत कम समय में ही अपनी विशिष्टता का परिचय दिया है और इसकी आगामी फिल्में भी ध्यान आकर्षित करने वाली हैं. भीष्म साहनी की **'चीफ की दावत'** पर बन रही फिल्म में सुपरिचित कलाकार सुधा शिवपुरी, इफ्तेखार, नंदिता ठाकुर, नमित कपूर आदि काम कर रहे हैं. इस फिल्म के अतिरिक्त बाबूराव बागूल, कामतानाथ, इब्राहीम शरीफ, मधुकर सिंह, और बहुत सारे अन्य सुपरिचित कथाकारों की श्रेष्ठ कहानियों पर भी फिल्में बनाने की योजना हैं. जितेंद्र भाटिया की **'रक्तजीवी'** पर **'समांतर'** के अंतर्गत ही दो घंटे की एक फीचर फिल्म भी बन रही है, जिसमें रीता भादुड़ी, नाना पलसीकर, लीला मिश्रा, देवेन वर्मा, अरूप गांगुली, नमित कपूर आदि भूमिकाएं निभा रहे हैं.

बंबई टी. वी. का यह नया प्रयास काफी समय-संगत है और इसके माध्यम से पहली बार सभी प्रतिबद्ध सांस्कृतिक विधाओं को एक-दूसरे का पूरक बनाने की बात सोची जा सकती है.

☐ **दर्शक**

भारत सरकार के प्रकाशन

उपयोगी पुस्तकें

	रु०
भारत सरकार के औद्योगिक और वाणिज्यक उपक्रमों के कार्य की रिपोर्ट भाग-I 1973-74	135.00
भारत के समाचारपत्र 1974 प्रथम भाग	37.00
बंगाल से आने वाले चक्रवात तूफानों की पुस्तिका	16.00
मंत्रालयों में संसदीय कार्य करने की नियम पुस्तिका	5.25
केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की वार्षिक रिपोर्ट 1974	5.00
पेटेन्ट अधिनियम 1970 (1970 का 39) की धारा 155 के अधीन पेटेन्ट डिजाइन और ट्रेडमार्क के महानियंत्रक का तृतीय वार्षिक प्रतिवेदन 1974-75	4.00
केन्द्रीय चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों की भर्ती, पदोन्नति, वरिष्ठता आदि के सम्बन्ध में नियम पुस्तक	2.00
गोंद और राब्त	2.00
स्व नियोजन की ओर	1.60
मैट्रिक से कम शिक्षित व्यक्तियों के लिए व्यवसाय	1.40
हिन्दी टाइपराईटिंग प्रशिक्षक	1.20
विक्रय एक व्यवसाय	1.20
मुद्रण व्यवसाय	1,05
महिलाओं के लिए व्यवसाय	1.00
राज्य सभा सदस्यों की सूची जिसमें स्थायी पते तथा दिल्ली के पते और टेलीफोन नम्बर दिये गये हैं 2 फरवरी—1976	1.00
छोटे बल्व	0.80
इस्पात प्रबलित अल्युमीनियम कोर के विद्युत चालक	0.80
लेखाकारिता के क्षेत्र में रोजगार के अवसर	0.80
संविदा के संदाय से आयकर की कटौती	0.75
फुटकर काम की छापे की मशीन	0.25

सभी अधिकृत विक्रेताओं से प्राप्त

नकद बिक्री के लिए

किताब महल

यूनिट नम्बर 21, एम्पोरिया बिल्डिंग,
बाबा खड़ग सिंह रोड, नई दिल्ली (फोन: 44783)

भारत सरकार बुक डिपो

8, के.एस. राय रोड, कलकत्ता-1 (फोन : 23-3813)

भारत सरकार बुक डिपो

ग्राउंड फ्लोर, न्यू सी.जी.ओ. बिल्डिंग,
न्यू मैरीन लाइन्स, बम्बई- 20

दिल्ली में प्रकाशन विभाग के बिक्री केन्द्र :

- उद्योग भवन (फोन : 372082)
- प्रकाशन विभाग, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054
- सी.बी.आर. बिल्डिंग, बहादुरशाह जफर मार्ग

मिलने का पता :

नियंत्रक, प्रकाशन विभाग
सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054

डाक बिक्री के लिये :
प्रकाशन नियंत्रक
सिविल लाइन,
दिल्ली-110054

टिप्पणी :

भारत में डाक से प्राप्त 5 रु. से कम के आर्डरों पर डाक खर्च अलग, मूल्य के 20% की दर से। डाक से 2 रु. से कम के आर्डरों पर रजिस्ट्री खर्च अलग।

davp76/113

विविध

नाट्य समारोह

जयपुर में मोहन राकेश की स्मृति में एक चार-दिवसीय नाट्य समारोह का आयोजन 'त्रिमूर्ति' द्वारा किया गया.

पहली शाम को दो आंग्ल नाटिकाओं का मंचन 'अभिसारिका' के तत्वावधान में हुआ. एक थी डेविड कांपटन की हास्य-व्यंग्य नाटिका **'लिटल ब्रदर, लिटल सिस्टर'** तथा दूसरी, हेरल्ड पिंटर की स्त्री-पुरुष के एकांत-संबंधों की मर्मांतक कहानी **'ए स्लाइट एक'.** निर्देशक थे श्री अजय प्रकाश.

दूसरी शाम शंभु मित्र का नाटक **'कंचन रंग'** (अनुवाद : श्री नेमिचंद जैन) श्री एस. वासुदेव के निर्देशन में प्रस्तुत किया गया.

तीसरी शाम विजय तेंडुलकर के बहुश्रुत मराठी नाटक **'घासीराम कोतवाल'** का हिंदी अनुवाद श्री एस. वासुदेव के निर्देशन में प्रदर्शित हुआ.

अंतिम शाम मोहन राकेश के **'आधे-अधूरे'** का मंचन हुआ जो इस समारोह का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन था. निर्देशक श्री एस. वासुदेव ने महेंद्रनाथ, बॉस, जगमोहन और जुनेजा की चारों मुख्य भूमिकाओं में, इन पात्रों की प्रवृत्तियों के अनुकूल तथा भिन्न-भिन्न अभिनय तकनीक के द्वारा, दर्शकों को प्रभावित किया. श्रीमती एस. वासुदेव ने सावित्री की भूमिका में मानसिक द्वंद्वों को सफलतापूर्वक अभिव्यक्ति दी और बिन्नी के रूप में माधवी प्रकाश ने.

'आधे अधूरे' : माधवी प्रकाश (बिन्नी), श्रीमती वासुदेव (सावित्री) एस. वासुदेव (बॉस)

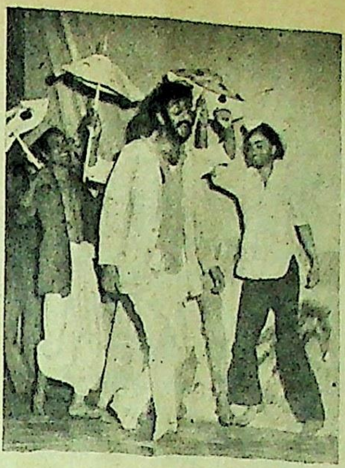

'छतरियां', : दीपक सूथा, अशोक गोस्वामी , तथा मनजीत

त्रिमूर्ति का यह महत्वपूर्ण और सफल आयोजन था, जिसके लिए प्रमोद भसीन विशेषत: साधुवाद के पात्र हैं.

☐ भानुस्वरूप 'विवश'

प्रतिध्वनि

कानपुर में उत्तर प्रदेश की प्रमुख नाट्य संस्था 'प्रतिध्वनि' ने पिछले दिनों मोहन राकेश के एकांकी **'छतरियां'** का अत्यंत मनोहारी मंचन किया. सफलता का श्रेय है पं. विजय दीक्षित (निर्देशन), ओम प्रकाश अवस्थी (ध्वनि संयोजन), भोलानाथ शर्मा (प्रकाश), नवरतन (मंच-सज्जा) और अशोक गोस्वामी, तपन डे, के. कुमार, दीपक सूथा, जीवन शर्मा तथा मनजीत (अभिनय) को.

'गिनी पिग' : अलख नंदन (तीसरा) तथा मधुभासचंद्र (पहला)

विवेचना

जबलपुर की प्रसिद्ध रंग-संस्था 'प्रतिध्वनि' ने म. प्र. प्रगतिशील लेखक संघ के प्रांतीय सम्मेलन के अवसर पर **'गिनी पिग'** का प्रदर्शन किया, जिसे दर्शकों की प्रचुर प्रशंसा प्राप्त हुई. मधुभास चंद्र, रीना भारत, कुमार किशोर तथा निर्देशक अलख नंदन का अभिनय श्रेष्ठ था. प्रमोद सोलंकी की प्रकाश-व्यवस्था और अजय घोष का ध्वनि-संयोजन भी सराहनीय था.

☐ विद्याभूषण दुबे

अध्यक्ष-पद से बोलते हुए श्री करुणापति त्रिपाठी

प्रचारक बुक क्लब

वाराणसी में हिंदी प्रचारक संस्थान की प्रचारक बुक क्लब योजना के अंतर्गत प्रकाशित पुस्तकों के प्रथम सेट का विमोचन २५ अप्रैल को आयोजित समारोह में 'नारदन' इंडिया पत्रिका' के संपादक तुषार कांति घोष ने किया और प्रथम सेट समारोह के अध्यक्ष, संस्कृत विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री करुणापति त्रिपाठी को भेंट किया.

संस्थान के संचालक कृष्णचंद बेरी ने योजना पर प्रकाश डालते हुए बताया कि इसके अंतर्गत पाठकों को सर्जनात्मक और सुरुचिपूर्ण साहित्य अत्यल्प मूल्य पर उपलब्ध कराया जायेगा. ☐☐☐

कृतियां

उपन्यास-संकलन

'मेरा अपना संसार'

लेखक : नरेंद्र कोहली ;
प्रकाशक : पराग प्रकाशन,
दिल्ली–३२ ;
पृ. सं.–१३१ ; मूल्य–दस रुपये.

'मेरा अपना संसार' में नरेंद्र कोहली के दो छोटे उपन्यास संकलित हैं, यद्यपि तकनीक और कथा-क्रम की दृष्टि से ये दोनों ही लंबी कहानियों की श्रेणी में आते हैं न कि उपन्यासों की.

'मेरा अपना संसार' का पहला 'उपन्यास' **'मेरा अपना संसार'** शीर्षक से ही है, जिसमें एक निम्न-मध्यम परिवार की एक लड़की किसी छोटे शहर से दिल्ली में नौकरी करने आती है. वह अविवाहित लड़की और उसकी विधवा मां, एक अपेक्षाकृत संपन्न परिवार की शरण में आ कर उसके मकान का पिछला भाग किराये पर ले लेती हैं. लड़की धीरे-धीरे संपन्न परिवार के एक नवयुवक के संपर्क में आती है तथा उसके प्रति आकर्षण महसूस करने लगती है. परस्पर संपर्क से वह युवक भी, जो लड़की से अवस्था में कुछ छोटा है, उसके निकट आने लगता है, और तब सहसा लड़की को लगता है कि यह ठीक नहीं हो रहा. अंत में लड़की अपनी नैसर्गिक इच्छाओं का दमन करके अपने आपको उस युवक से काट लेती है.

इस प्रकार 'उपन्यास' का कथ्य सीधा-सादा ही है, पर चूंकि वह जीवन के यथार्थ से उद्‌भूत है, अतः उसमें मार्मिकता है. आर्थिक रूप से हीन स्तर के परिवार और व्यक्ति, किस प्रकार एक विशेष प्रकार के हीन भाव से पीड़ित हो जाते हैं, यह भी इस कथ्य में सुस्पष्ट है. पर इस 'उपन्यास' का दुर्बल पक्ष यह है कि लेखक ने इस पर अपेक्षित श्रम नहीं किया है और कई स्थल बड़े ही सतही और चलताऊ ढंग से लिख डाले हैं.

दूसरा संकलित 'उपन्यास' **'एक ही विकल्प?'** है, जिसमें एक ऐसी निम्नमध्य वर्गीय लड़की की कहानी है, जिसे अपने परिवार में हर समय प्रताड़ना मिलती है और लड़की को अपना परिवार एक जेलखाना-सा लगता है जिससे वह किसी भी कीमत पर मुक्ति चाहती है. यह दूसरा 'उपन्यास' अपेक्षाकृत छोटा है और कथ्य की दृष्टि से सुगठित भी है. इसमें वातावरण और विभिन्न पात्रों के कार्य-कलापों और परस्पर व्यवहार का चित्रण भी अपेक्षाकृत अनारोपित ढंग से और स्थितियों के अनुकूल हुआ है. आर्थिक रूप से विपन्न परिवारों के सदस्य जब जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं से भी वंचित रह कर छोटे-छोटे कमरों में कीड़ों-मकौड़ों के समान जिंदगी जीते हैं, तो इसका दुष्प्रभाव उनके पूरे व्यक्तित्व को ग्रस डालता है. नरेंद्र कोहली के साहस की यहां सराहना की जा सकती है कि उन्होंने **'एक ही विकल्प?'** में कुछ ऐसी ही कष्टप्रद स्थितियों को भीतर से देखने की कोशिश की है और उसमें वह काफी सीमा तक सफल भी हुए हैं.

□ डॉ. वीरेंद्र सक्सेना

नरेंद्र कोहली

उपन्यास

'सीपी भर प्यास'

लेखक : पाल भसीन; प्रकाशक : लोकवाणी प्रकाशन, दिल्ली; पृष्ठसंख्या––८०, मूल्य – पांच रुपये.

'सीपी भर प्यास' पाल भसीन का प्रथम उपन्यास है. इस अति क्षीण-कलेवर उपन्यास का उपजीव्य कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है. सामंती संस्कृति की गलित प्रवृत्तियों का पोषण हमारे समाज तथा देश में आज भी भयावह विकटता के साथ हो रहा है ––केवल अंतर यह है कि उसका बाहरी मुखौटा बदल गया है. आजादी के बाद अमरबेल की तरह पनपती नियोरिच क्लास रूप, संस्कृति, कला तथा ज्ञान पर अपना एकाधिकार स्थापित कर चुकी है––श्रम से घृणा करने वाला नव धनाढ्य वर्ग जोंक बन कर श्रमशिथिल जन का न केवल आर्थिक स्तर पर शोषण कर रहा है, वरन् उसके आंतरिक संसार को भी विषाक्त बना रहा है.

द्वारका प्रसाद चमड़े का एक कुटिल, व्यापारी ऐसे परिवार में प्रवेश करता है, जिसका मुखिया आजादी के संघर्ष में अपनी समस्त सांसारिक उपलब्धियों का उत्सर्ग कर चुका है. परिवार में तीन लड़कियां, एक पुत्र तथा उनकी माता है. लोलुपता से आक्रांत द्वारका प्रसाद विकट हत्यारा भी है. वह इस साधनहीन परिवार के मुखिया को जहर दे कर मार डालता है और परिवार की दो वयस्क लड़कियों का शीलभंग करता है. यह अर्थ-पिशाच परिवार के एकमात्र पुत्र नंदू को भी कुटेवों में धकेल कर निर्लज्ज, लबार और अमानवीय बना देता है. सबसे छोटी पुत्री शकुन को भी विविध हथकंडों का इस्तेमाल करके अपनी दुर्दम वासना का शिकार बनाने को हरदम उद्दत

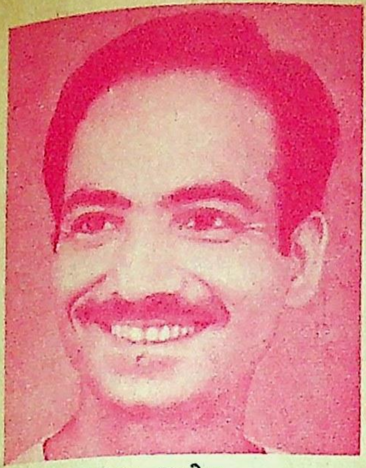

पाल भसीन

रहता है. किंतु शकुन भाव-प्रवण और जहीन होने के साथ-साथ इस्पाती जिजीविषा से संयुक्त है. शकुन अपनी बहनों तथा भाई की परोपजीवी वृत्ति से भीतर-ही-भीतर उत्कट घृणा करती है और अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करती है. वह अथक श्रम और अध्यवसाय से शिक्षा ग्रहण करते हुए धनलोलुप वर्ग से दृढ़ता पूर्वक जूझती रहती है. अंततः वह अपनी राह चुनने में समर्थ हो जाती है और जीवन के उज्ज्वल पक्ष को ही तरजीह देती है.

शकुन के मानसिक घात-प्रतिघात का पाल ने अनुभूतिपरक स्तर पर प्रामाणिक विश्लेषण किया है और अकेले पड़ जाने वाले पात्र की आंतरिक छटपटाहट को तीव्रता से व्यक्त किया है. उपन्यास का वैचारिक पक्ष भी लेखक की अंतर्दृष्टि का परिचय देता है.

निम्न-मध्य वर्ग की समस्त रुग्ण मानसिकता पाल भसीन की इन पंक्तियों में उजागर हो उठती है : 'वे जन-जातियां जिनमें औरत की खरीद-फरोख्त का प्रचलन है, उन्हें हम असभ्य कहते हैं. इसके विपरीप मैं समझती हूं उनमें भी औरत की आजादी कायम है और फिर वे (मध्य वर्ग की तरह) अपने सभ्य और सुसंस्कृत होने के फतवे भी तो नहीं देते. इस. . .सफेदपोश, सभ्य (तथाकथित) वर्ग की भीतरी पर्तों को मुझसे ज्यादा कौन जानता है.' (पृष्ठ ६५).

पाल भसीन के इस छोटे-से उपन्यास में ज्वलंत समस्याओं को वैचारिक स्तर पर भी गहराई से जांचा-परखा गया है.

□ से. रा. यात्री

आलोचना

'कहानी और कहानी समीक्षा का मूल्यांकन'

संपादक : इंद्रनाथ मदान, राकेश वत्स; प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली. मूल्य : २५ रुपये

साहित्य में जो रचना आलोचना को जन्म नहीं दे सकती, वह रचना नहीं है. रचनात्मकता होगी, तो उसकी आलोचना होगी ही. सिर्फ कहानी की ही आलोचना होती हो, ऐसी बात नहीं. आलोचक आलोचना की भी आलोचना करता है, कि जो हुआ,वह ठीक है?

अनुभव क्या कहता है? अनुभव अवधारणा के मुकाबले बेहतर रहता है. हम अनुभव-आधृत वैचारिकता के पक्षधर हैं. साहित्यिक तो खैर क्या, जिसे हम और आप 'आम आदमी' के नाम से पुकारते हैं, वह 'जब' तक इतनी-सी बात समझता है, चाहे व्यक्त करने के लिए वह कैसी भी भाषा का उपयोग करता हो, बहस के लिए बहस का कोई अर्थ नहीं. हम अपनी और अपने परिवेश की जिंदगी को, पश्चिम की तरह, एक फ्रॉड नहीं मान सकते. जीवन में आस्था ही आदमी का संबल है.

कहानी के भीतर गुजर कर कहानी तक पहुंचा जा सकता है.

'नयी कहानी' हो या छठे दशक की कहानी या फिर, आज की, समांतर कहानी, रचना के गुणदोष को विवेच्य माना जा सकता है; लेकिन रचनात्मकता की केवल सराहना करना आवश्यक है. सही आलोचना हमेशा रचना की सराहना करती है, उसे समझने की कोशिश करती है. चिंतन के क्षेत्र में केवल विवेकसम्मत ही स्थान पा सकता है.

स्वतंत्रता के समानांतर 'नयी कहानी' का जन्म हुआ. 'नयी कहानी' मूलतः सामाजिक संबंधों को ले कर आम आदमी के जीवन में उभरे अंतर्विरोधों की कहानी थी. आर्थिकता और संवेदना-ह्रास की कहानी भी वह थी लेकिन उतनी ही नहीं, जितनी कि आदमी की गरिमा और पीढ़ीगत अंतर की. सातवें दशक की कहानी केवल सेक्सगत नहीं थी. इस दशक के दौरान धर्मवीर भारती, कमलेश्वर, सुधा अरोड़ा, श्रवणकुमार, मधुकर सिंह, प्रभृति लेखकों ने उल्लेखनीय रचनाएं दी हैं. इन लेखकों ने स्थिति की आर्थिकता को रेखांकित किया. ये लोग अन्य लोगों की तरह 'एब्सर्ड' नहीं हुए. एब्सर्ड होना अपने आप में कोई गलत बात नहीं है, लेकिन उसका उपयोग बिरले ही कर पाते हैं. इन रचनाकारों की रचनात्मकता के संदर्भ में ही हम समांतर कहानी को बेहतर समझने की स्थिति में हो सकते हैं. श्रवणकुमार, कामतानाथ, मधुकर सिंह, भारती, कमलेश्वर —और कौन नहीं? —सभी कहानी में सहयोग कर रहे हैं.

एक मूक समर्पित व्यक्तित्व लिये आम आदमी जी रहा है. वह अपनी तकलीफ किसी से कह भी तो नहीं सकता. आज की कहानी ऐसे आदमी की, सही आदमी की, भाषा है.

गद्य युग-संगति का साहित्यिक रूप है. अन्याय है, तो क्या उसका प्रतिकार नहीं है? आज की कहानी सही मायने में मामूली आदमी की कहानी है. यथार्थ की संवेदना से चल कर बात अब संवेदना के यथार्थ तक पहुंच गयी है.

□ श्याम गोविंद

राजगीर में

अखिल भारतीय समांतर लेखक सम्मेलन (५)

गत १, २, ३ दिसंबर, १९७५ को समांतर लेखकों का पांचवां अखिल भारतीय सम्मेलन राजगीर, बिहार, में संपन्न हुआ. इस सम्मेलन में हिंदी के अलावा मराठी, गुजराती, सिंधी, उर्दू, पंजाबी, कच्छी तथा तमिल के प्रतिनिधि लेखकों ने भाग लिया. पिछले चार अंकों में आपने उद्घाटन-समारोह, पहली दो गोष्ठियों तथा तीसरी गोष्ठी में पढ़े गये दो लेखों की रिपोर्ट पढ़ी. यहां प्रस्तुत है तीसरी गोष्ठी में ही इन लेखों पर हुई बहस का विवरण.

राम अरोड़ा और अजित पुष्कल के विचारोत्तेजक लेखों ने ग्राम्य-जीवन पर चर्चा के लिए सही जमीन तैयार कर दी थी. सभा में बिहार एवं अन्य प्रांतों के आंचलिक जीवन से बहुत अंतरंगता से जुड़े हुए अनेक लेखक मित्र उपस्थित भी थे. लिहाजा एक बहुत सार्थक विश्लेषण के आसार सभी को दिखायी देने लगे थे.

बहस की शुरुआत करते हुए धूमकेतु ने कहा कि पिछले दस-पंद्रह सालों में गांव की स्थितियों में काफी परिवर्तन आया है. निम्न-मध्य वर्ग का एक टुकड़ा तरक्की करके मध्यवर्ग में शामिल हो गया है और दूसरी तरफ एक निम्नतर वर्ग भी बनता जा रहा है, जो हर दृष्टि से बहुत पस्त और टूटा हुआ है.

कमलेश्वर ने कहा कि प्रजातांत्रिक व्यवस्था होने के बावजूद आर्थिक कारणों से सामान्य ग्रामीण जन की मताधिकार की मूल शक्ति भी दूसरों के हाथों में रही है और गांव का प्रभुताशाली तबका इन बदली हुई स्थितियों में भी निम्न वर्ग का शोषण करता रहा है.

जयराम प्रसाद सिंह ने कहा कि गांव में बसे हुए भूमिहीन मजदूर जब जमीन पाने के लिए संघर्ष करते हैं तो कई बार उन्हें नक्सलवादी या उग्रपंथी घोषित करके दबाने की कोशिश की जाती है. इस तरह का दमन गांव का वह संपन्न तबका करता है जो वास्तव में अपना प्रभाव-क्षेत्र दूर-दूर तक फैला सकता है. निम्न वर्ग के किसानों के बच्चों को पढ़ने का प्रोत्साहन नहीं दिया जाता, क्योंकि संपन्न तबके को लगता है कि ये बच्चे पढ़-लिख कर उनका विरोध करना भी सीख सकते हैं. शायद इसलिए आज भी गांव का गरीब लड़का अकसर स्कूल जाने की जगह बकरियां चराता हुआ पाया जाता है. संपन्न वर्ग गांव में धर्मांधता फैलाता है और उपवर्गों के बीच आपसी भेदभाव भी पैदा करता है. गांव में होने वाले सामूहिक आयोजनों में निम्न - मध्य वर्ग और निम्न वर्ग के व्यक्तियों को अलग-अलग स्तर का खाना दिया जाता है. बल्कि सबसे नीचे का तबका तो बड़े आदमी के श्राद्ध के समय भी भूखा रह जाता है. इस वर्ग के लिए जीवन-स्थितियां इतनी दारुण बन चुकी हैं कि वह नियमित भोजन पा कर जिंदा रहने की चिंताओं से आगे कुछ सोच ही नहीं पाता. उसका वंचित रहना असल में संपन्न वर्ग की सुरक्षा का द्योतक बन गया है.

अवधेश अमन ने गांव में शोषण की स्थितियों का जिक्र करते हुए कहा कि इन कठिनाइयों से घबरा कर ही अकसर गांव का नौजवान शहर की ओर भागता है. इस तरह के पढ़े-लिखे वर्ग का कोई इक्का-दुक्का नौजवान जब शहर के मजदूर संगठनों की जानकारी हासिल करके गांव लौटता है, तो संघर्ष की सही शुरुआत होती है, परंतु ऐसा शायद ही कभी होता है. क्योंकि गांव का पढ़ा-लिखा युवक वर्ग गांव की अपेक्षा शहर में बसना ही पसंद करता है. इस तरह गांव में सिर्फ 'अंगूठा छाप' अनपढ़ लोग ही बचे रह जाते हैं जो अकसर आर्थिक दबावों के कारण संपन्न वर्ग के कहने पर चुनावों में अपनी इच्छा के विरुद्ध ठप्पा लगाते हैं. इस प्रकार प्रभुताशाली वर्ग इस निम्न वर्ग की ओर से सभी निर्णय लेता है और एक दूसरी तरह की सत्ता जन्म लेने लगती है.

मिथिलेश्वर ने कहा कि अकसर गांव का आदमी सामंती साजिश में गुम होता हुआ दिखायी देता है. आज के कथाकार का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह गांव के इस शोषित व्यक्ति को इस साजिश से बचने का रास्ता दिखाये.

कमलेश्वर ने कहा कि सारी रचनात्मक ईमानदारी के बावजूद आज का अधिकांश साहित्य एक अत्यंत सीमित जिंदगी की तस्वीर प्रस्तुत करता है और गांव की सही अनुभूतियों का तो उसमें सर्वथा अभाव है. कथाकार को अब पूरे देश की जिंदगी की धड़कनों को समझने की कोशिश करनी होगी, क्योंकि जिस सीमित जिंदगी को वह अपनी रचना में उतार रहा है, उससे ग्रामीण जन सामान्य का सीधा संपर्क नहीं है.

दया पवार ने कहा कि गांवों में नयी चेतना फैलाने के लिए यह जरूरी है कि प्रचार-प्रसार के उन साधनों पर प्रतिबंध लगाया जाये जो मनोरंजन की आड़ में रूढ़िवाद और अंधविश्वास फैलाते हैं. कुछ फिल्मों

राजगीर : एक गोष्ठी के दौरान विचार-विमर्श में संलग्न लेखक

का हवाला देते हुए उन्होंने बताया कि गांवों तक पहुंचने वाले अधिकांश चित्र एक गलत और यथास्थितिवादी समझ भोले दर्शक को देते हैं. इस तरह के गलत प्रचार पर रोक लगाने की जरूरत है.

ए. जे. उत्तम ने कहा कि इस तरह का सांस्कृतिक शोषण सिर्फ गांवों में ही हो रहा हो, ऐसा नहीं है. संतों और बाबाओं का प्रभाव-क्षेत्र शहरों में भी फैला हुआ है और इनमें से अधिकांश को शहरों के धनी व्यक्तियों का प्रश्रय उपलब्ध है. गलत चेतना देने वाली धर्म-प्रधान फिल्में आज भी हिट होती हैं और इनके जरिये निर्माता करोड़ों रुपये पैदा कर लेते हैं. धार्मिक सहिष्णुता का यह मतलब नहीं है कि इन सबको खुले-आम छोड़ दिया जाये. यहां यह भी देखने में आता है कि समाचारपत्र और प्रेस के उपकरण अपनी स्वतंत्रता की बात तो पूरी बुलंदी से करते हैं, परंतु इस तरह की गलत प्रवृतियों के विरुद्ध अपनी आवाज उठाने से साफ कतरा जाते हैं.

कमलेश्वर ने कहा कि यहां सबसे अहम सवाल यह नहीं है कि फिल्म का प्रोड्यूसर कितने रुपये खर्च करके कितने बनाता है, सवाल यह है कि जो चीज वह दर्शकों के लिए प्रस्तुत करता है, उससे साठ करोड़ लोगों की मानसिकता भ्रष्ट होती है.

दलितों के संदर्भ में स्थिति का विश्लेषण करते हुए बाबूराव बागूल ने कहा कि गांव में दलित वर्ग को आर्थिक, सांस्कृतिक शोषण के अतिरिक्त लगातार अपमान और जलालत का भी सामना करना पड़ता है. परंतु शहरों में स्थिति कुछ अच्छी है. दलित वर्ग का आदमी शहर में आ कर कुछ हद तक राहत महसूस करता है, क्योंकि वहां उसे जाति और वर्ग को ले कर उसी सीमा तक प्रताड़ित नहीं किया जाता.

प्रह्लाद चेंदवणकर ने कहा कि गांवों और शहरों में जो जातीयतावादी संगठन निम्न वर्ग के लोग बनाते हैं, उन्हें समझने का प्रयास करना चाहिए. ये सभी संगठन निम्न वर्ग की असुरक्षा की भावना को प्रतिबिंबित करते हैं.

प्र. श्री. नेरूरकर ने बात को विस्तार देते हुए कहा कि जातीय संगठन साधन मात्र होते हैं, साध्य नहीं. जब उन्हें साध्य बना दिया जाता है तो उनकी रही-सही सार्थकता भी समाप्त हो जाती है.

अर्जुन डांगले ने महाराष्ट्र के गांवों पर चर्चा करते हुए बताया कि वहां 'शूगर सिंडिकेट' की नयी ताकत भी मराठा यानी उच्चवर्गीय जाति के हाथ में आ गयी है. इस प्रकार आर्थिक संगठन भी अकसर जातीय संगठनों में बदल कर निम्न वर्ग के शोषण का हथियार बन जाते हैं.

बिहार के गांवों पर चर्चा करते हुए शंकर ने कहा कि शोषण की दारुण स्थितियों और सांस्कृतिक चेतना के अभाव के कारण वहां कहीं-कहीं उग्रवादी प्रवृत्तियां भी विकसित हो रही हैं. हर तरह से पिछड़े हुए इन तबकों की मानसिकता को समझने की जरूरत ह.

ओंकार ठाकुर ने कहा कि इसी के साथ आदिवासी जातियों का प्रश्न भी जुड़ा हुआ है. अधूरी चेतना के कारण ये लोग गलत रास्ते अपनाने लगते हैं.

कमलेश्वर ने कहा कि गांव के लोगों को जब बाहर से अधूरी सुविधाएं मिलती हैं तो वे उन्हें अपनी पुरानी स्थितियों से भी अधिक कष्ट देती हैं. इसी तरह उनकी परंपरावादी दृष्टि जब बाहरी दबावों के कारण कुछ हद तक परिवर्तित होती है तो इस अधूरी प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप गलत प्रवृत्तियां पैदा होती हैं.

बाबूराव बागूल ने कहा कि पूंजीवादी शोषण ने गांव के निम्न वर्ग को संघर्ष के लिए प्रेरित अवश्य किया है, परंतु इस संघर्ष को सार्थक दिशा नहीं मिल पायी है. दिशा-भ्रम के कारण इस वर्ग के कुछ लोग अकसर भटक

जीवन भर मासिक आय की गारंटी

आजीवन मासिक आय योजना

आप हर महीने जो भी राशि 7 वर्ष तक बचाकर जमा करायेंगे, उसके बाद पंजाब नैशनल बैंक वही राशि आपको हर महीने जिन्दगीभर देता रहेगा। और, आपकी पूंजी भी आपके नाम जमा रहेगी। यह है हमारी नई योजना—आजीवन मासिक आय योजना

आपको क्या करना है	हर महीने हमारे पास 10 रु० या अधिक, जितना भी आप चाहें, जमा कराइए। 84 महीने तक जमा करते रहिए। फिर बन्द कर दीजिए।
हम क्या करेंगे	इसके बाद हमारा काम शुरू होता है। हम हर महीने आपको उतनी ही राशि देना शुरू करेंगे, जितनी आपने जमा कराई थी। हम यह राशि आपको जिन्दगीभर या उसके बाद आपके उत्तराधिकारियों को भी देते रहेंगे।
आपकी 'भविष्य निधि'	इस योजना की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सात वर्ष बाद हमारे पास आपकी एक अच्छी खासी राशि—आपकी मासिक किस्त की 120 गुनी—इकट्ठी हो जाएगी। यह आपकी भविष्य निधि होगी, और यह हमेशा उतनी ही बनी रहेगी।
कौन शामिल हो सकता है	कोई भी, यहां तक कि अवयस्क बच्चे भी। आप संयुक्त खाता भी खोल सकते हैं।

अधिक ब्योरे के लिए हमारी पास की शाखा में पधारिए

पंजाब नैशनल बैंक

davp 76/27

जाते हैं.

राम सुरेश ने कहा कि कभी-कभी शहर का आदमी भी गांव के बारे में भ्रांतियां फैलाता है और उसका शोषण भी करता है.

अवधेश अमन ने कहा कि आज ग्रामीण सामान्य जन के सामने वर्ग-संघर्ष, वर्ण-संघर्ष और व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष, ये ही तीन स्थितियां हैं. ये तीनों परस्पर जुड़ी हुई हैं.

नर्मदेश्वर ने यहां बताया कि गांवों की दारुण स्थितियों को देखते हुए यदि कतिपय वर्ग दिशा के अभाव में उग्र पंथ की ओर बढ़ जाता है, तो कोई आश्चर्य नहीं.

शंकर ने इन स्थितियों के कुछ उदाहरण देते हुए कहा कि बंधक मजदूरी की प्रथा आदमी के संपूर्ण आर्थिक, सांस्कृतिक शोषण का ज्वलंत उदाहरण है. इसके अंतर्गत न सिर्फ गांव की वर्तमान पीढ़ी, बल्कि आने वाली पीढ़ियां भी मालिक के साथ अनाम अनुबंध में कैद हो जाती हैं. इतनी कठिन जिंदगी जीने वालों के लिए सही रास्ता ढूंढ़ सकना लगभग असंभव है.

रामसरूप अणखी ने यहां पंजाब के गांवों की स्थिति से अवगत कराया. उनका कहना था कि पंजाब में स्थितियां कुछ भिन्न हैं. वहां जन साधारण में जागरण अथवा वर्ग-चेतना का सर्वथा अभाव है और लोग बगैर सोचे-समझे आपस में लड़ रहे हैं. पंजाब में भी दलित वर्ग है, परंतु उस वर्ग के लोग आपस में ही एक-दूसरे को काटने में व्यस्त रहते हैं. राजनीतिक चेतना के स्तर पर भी वहां लोगों में असंबद्धता दिखायी देती है. लोग वोट उसी पार्टी को देते हैं, जिसकी सरकार बनने के आसार दिखायी देते हैं. ऐसी स्थिति में लेखक के सामने सबसे बड़ा सवाल यही खड़ा होता है कि क्या यथास्थिति का वर्णन करके ही उसका दायित्व समाप्त हो जाता है? क्या दिशा का बोध कराने का काम लेखक को किसी दूसरे व्यक्ति के लिए छोड़ देना होगा?

तमिलनाडु के गांवों का ब्योरा शौरिराजन ने प्रस्तुत किया. उन्होंने बताया कि तमिलनाडु में वर्ण-व्यवस्था दो हजार वर्ष पहले ही टूटने लगी थी. वहां अब सिर्फ दो ही वर्ण दिखायी देते हैं—ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर. ब्राह्मणों में भी ब्राह्मण धनाढ्यों की तर्ज पर नये ब्राह्मण खड़े हो गये हैं जो अपने स्वार्थों के तहत निम्न ब्राह्मणों और दूसरे व्यक्तियों का शोषण करते हैं. पहले वहां लोग जातिवाद को अपने हित में इस्तेमाल करते थे, अब कुछ हद तक जाति-विरोध की भावना वहां जागृत हो रही है. परंतु ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर वहां शोषण और शोषित की विभाजन रेखा द्वारा बांटे नहीं जा सकते, क्योंकि दोनों ही वर्गों में शोषक और शोषित उपस्थित हैं.

ग्रामीण अंचलों पर इतनी सार्थक बातचीत को अधिक विस्तृत रूप देने की दृष्टि से इस गोष्ठी में यह तय किया गया कि विभिन्न अंचलों की स्थितियों को लेकर कुछ रिपोर्टें तैयार की जायें, जिन्हें व्यापक पाठक वर्ग की जानकारी के लिए प्रकाशित भी किया जाये. इस तरह की दस रिपोर्टों को तैयार करने का कार्यक्रम इस गोष्ठी में बनाया गया.

गोष्ठी का समापन करते हुए कमलेश्वर ने कहा कि ग्रामीण स्थितियों का पूरा खुलासा आज के रचनाकार को चेतना देने के लिए अनिवार्य है. यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि लेखक आज भी इन स्थितियों के प्रति अनजान बना हुआ है. हम समांतर के लेखक संकल्प करते हैं कि इन तमाम स्थितियों और इन संदर्भों को पूरी अंतरंगता से समझेंगे, क्योंकि अंततः हमें इन स्थितियों में से ही ग्रामीण संदर्भों की रचनाएं ढूंढनी होंगी और ग्रामांचलों में रहने वाले नये लेखकों को खोजना और सामने लाना होगा.

(क्रमशः)

गोष्ठी-रपट

चुरू में युवा लेखक सम्मेलन

युवा रचनाकार समुदाय राजस्थान के तत्वावधान में चुरू में संपन्न राजस्थान राज्य युवा लेखक सम्मेलन राजस्थान में अपने प्रकार का प्रथम आयोजन था, जिसमें २० से ५० वर्ष की आयु के स्वतंत्र और साहित्यिक गुटबंदी से परे लगभग ५० रचनाकार एक मंच पर एकत्र हुए. सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए **'नवभारत टाइम्स'** दिल्ली के समाचार-संपादक हरिदत्त शर्मा ने युवा लेखक-लेखिकाओं का आह्वान किया कि उन्हें देश-काल के अनुरूप सोद्देश्य एवं स्वस्थ उपयोगी साहित्य का सृजन करना चाहिए.

इस दो-दिवसीय सम्मेलन में चार विचार-गोष्ठियां हुईं, जिनमें प्रमुख विषय थे : युवा रचनाकार वैचारिक क्रांति के लिए कैसा साहित्य दें, प्रकाशन क्षेत्र में युवा रचनाकार की समस्या तथा समाधान, २० सूत्री आर्थिक कार्यक्रम और युवा रचनाकार का दायित्व, ग्रामीण समाज और युवा रचनाकार, आदि.

सम्मेलन की अध्यक्षता जामिया मिलिया के प्रोफेसर श्यामस्वरूप शर्मा ने की. संयोजक थे युवा पत्रकार बालमुकुंद ओझा. युवा रचनाकार समुदाय के अध्यक्ष चुरू के युवा साहित्यकार दुर्गादत्त दुर्गेश चुने गये.

☐ **बालमुकुंद ओझा**

ऐटेक्स
सौंदर्य प्रसाधन

ARAVIND LABORATORIES MADRAS-600 033
EYETEX BINDI
ARAVIND LABS.
EYETEX REGD.
EYETEX BINDI DELUXE MATT FINISH
EYETEX BINDI DELUXE
EYETEX KUMKUM PASTE
EYETEX DELUXE KUMKUM
EYETEX-DELUXE BINDI PENCIL

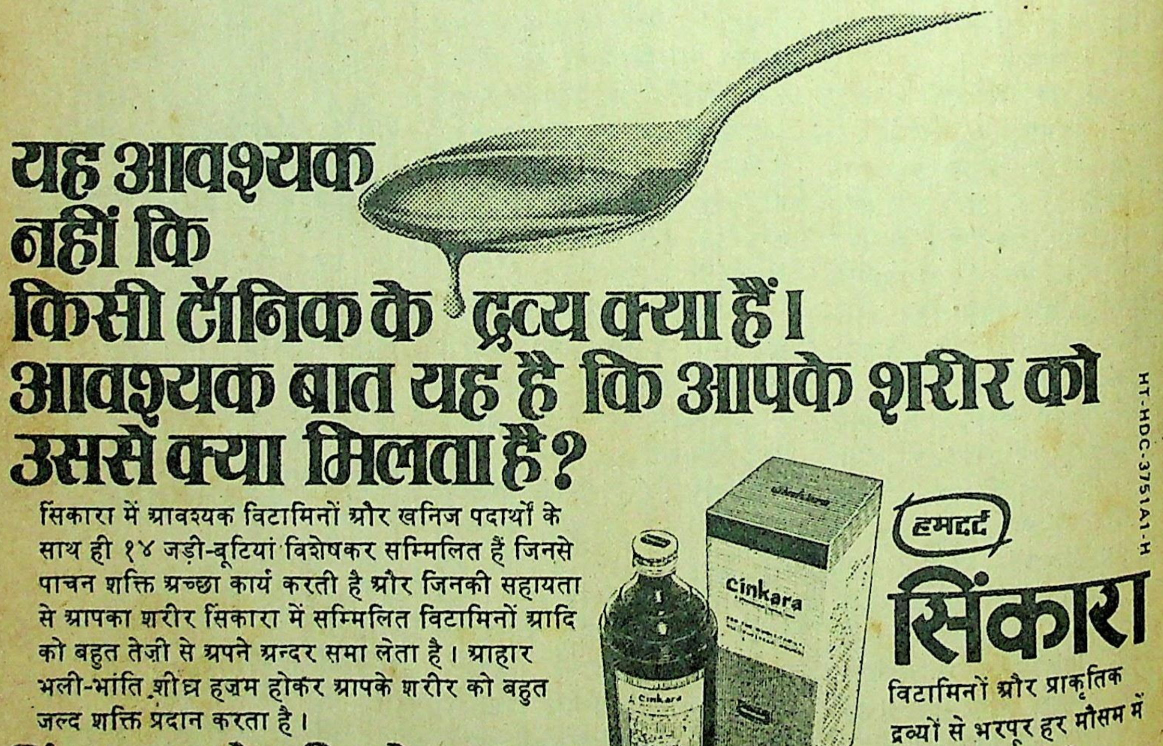
यह आवश्यक नहीं कि किसी टॉनिक के द्रव्य क्या हैं। आवश्यक बात यह है कि आपके शरीर को उससे क्या मिलता है?

सिंकारा में आवश्यक विटामिनों और खनिज पदार्थों के साथ ही १४ जड़ी-बूटियां विशेषकर सम्मिलित हैं जिनसे पाचन शक्ति अच्छा कार्य करती है और जिनकी सहायता से आपका शरीर सिंकारा में सम्मिलित विटामिनों आदि को बहुत तेज़ी से अपने अन्दर समा लेता है। आहार भली-भांति शीघ्र हज़म होकर आपके शरीर को बहुत जल्द शक्ति प्रदान करता है।

सिंकारा आपके शरीर को बहुत कुछ देता है।

हमदर्द
सिंकारा
विटामिनों और प्राकृतिक द्रव्यों से भरपूर हर मौसम में पूरे परिवार के लिये अद्वितीय टॉनिक

HT-HDC-3751A1-H

'चमचमाती' सफ़ेदी के लिए

पैक करने के समय वज़न १३५ ग्राम नेट
सुप्रीम
डेट
डिटर्जेण्ट धुलाई की टिकिया
चमचमाती सफ़ेदी के लिए

सुप्रीम डेट डिटर्जेण्ट धुलाई की टिकिया

अब नयी 'पहले से भी बढ़िया' डेट टिकिया बाज़ार में मिलने वाली सबसे उत्तम डिटर्जेण्ट टिकिया है.

इसकी ज़्यादा सफ़ाई की शक्ति, भरपूर झाग और महक कुछ ऐसी ख़ूबियाँ हैं जो किसी अन्य धुलाई की टिकिया में नहीं पायी जातीं.

आज ही इस्तेमाल कीजिए और ख़ुद देखिए!
सुप्रीम डेट टिकिया से 'चमचमाती' सफ़ेदी!

शानदार सफ़ेदी,
डेट की सफ़ेदी

Shilpi-DM 7/76 Hin

तस्करी समाज विरोधी है

आप तस्करी के
माल का
बहिष्कार करके
इसे रोक सकते हैं

सच्चे भारतीय बनिए, स्वदेशी माल खरीदिए

davp 76/82

जोड़ों में दर्द ?

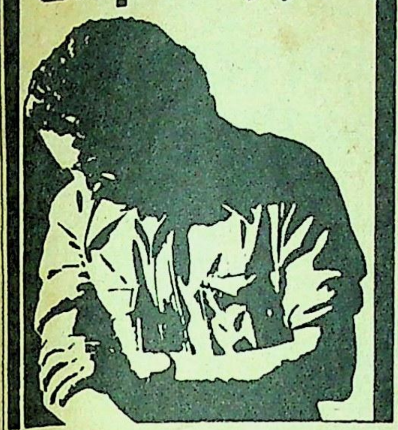

आयोडेक्स मलिए, जो पीड़ा हरे, अच्छा करे

दूसरे बाम पीड़ा से आराम भले पहुंचाएं, आयोडेक्स आराम पहुंचाने के साथ साथ अच्छा भी करती है. क्योंकि इसमें आयोडीन मिली है.

जोड़ों और मांसपेशियों की पीड़ा के लिए एकमात्र बाम—आयोडेक्स.

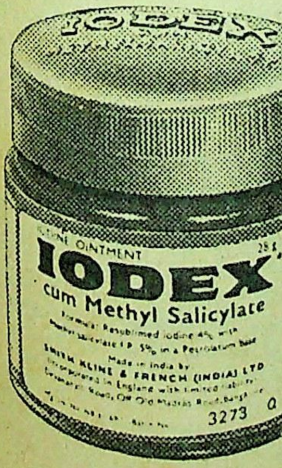
IODEX
IODINE OINTMENT
IODEX
cum Methyl Salicylate
SMITH KLINE & FRENCH (INDIA) LTD
3273

आयोडेक्स मलिए-अपने काम पर चलिए

लिंटास - IODEX-4.1 40 HI

सर्दी-ज़ुकाम और फ़्लू का हमला और उसका मुकाबला

आपके लिए कुछ ज़रूरी बातें

"मैंने एनासिन को बहुत गुणकारी पाया है," नर्स एंजेला फ़र्नान्डेस का बयान है।

इन्होंने यही देखा है कि एनासिन सर्दी-ज़ुकाम और फ़्लू की पीड़ा से जल्द आराम दिलाने के लिए काफ़ी तेज़ असर है।

सर्दी-ज़ुकाम और फ़्लू कैसे होते हैं?
ये छूत से फैलने वाले उस विष से होते हैं, जो इन रोगों में ग्रस्त लोगों से हवा में फैलता है। आम तौर से शरीर में उसके मुकाबले की शक्ति होती है। परन्तु ज़्यादा मेहनत या कम ख़ूराक के कारण शरीर में कमज़ोरी आ जाती है और रोग के मुकाबले की शक्ति कम हो जाती है।

रोग लक्षण क्या हैं?
बदन का दर्द, सर का भारीपन, छींकें आना और नाक बहना, जिसके साथ अक्सर कँपकँपी छूटती है, बेचैनी महसूस होती है और पसीना आता है। उसके बाद खाँसी, गले की ख़राबी, भूख की कमी और थकावट की शिकायत हो सकती है।

क्या इस से और तकलीफ़ें भी हो सकती हैं?
यदि लापरवाही बरती जाय तो निमोनिया और साँस की ऊपरी नाली में छूत का असर हो सकता है।

एनासिन कैसे सहायक होती है?
एनासिन सर्दी-ज़ुकाम और फ़्लू की पीड़ा से आराम दिलाती है। एनासिन तेज़ असर है— क्योंकि इस में वह दर्द-निवारक दवा ज़्यादा है जिसकी दुनिया-भर के डॉक्टर सब से ज़्यादा सिफ़ारिश करते हैं। एनासिन पर लाखों लोगों को विश्वास है— क्योंकि यह आपके डॉक्टर की दवा की तरह दवाओं का नपा-तुला सम्मिश्रण है। सर्दी-ज़ुकाम या फ़्लू के पहले लक्षण देखते ही दिन में चार बार एनासिन लीजिए।

आपको और क्या करना चाहिए?

- उबाला हुआ पानी, सन्तरे या मौसंबी का रस और पीने के दूसरे पदार्थ काफ़ी पीजिए।
- पौष्टिक आहार खाइए।
- पूरा आराम कीजिए।
- पानी में ऐंटिसेप्टिक दवा या नमक डालकर ग़रारे कीजिए।
- कमरों को हवादार रखिए।

ANACIN
ANACIN

तेज़ असर और विश्वसनीय

एनासिन

भारत की सब से लोकप्रिय दर्द-निवारक दवा

A 14-6/76

Regd. User of TM: Geoffrey Manners & Co. Ltd.

बिनाका टॉप टूथपेस्ट मुँह की पूरी रक्षा के लिये

Binaca
top
toothpaste
SUPER SIZE

ताज़गी महसूस कीजिये सुबूत अपनी आँखों से देखिये

बिनाका टॉप का विशेष फैलने वाला तत्त्व आपके मुँह की पूरी रक्षा करते हुए उसे ताज़गी से भर देता है।
क्योंकि यह तत्त्व तुरंत आपके मुँह के हर कोने में फैल कर दांतों में सड़न पैदा करने वाले कीटाणुओं का नाश करता है और साँस की दुर्गंध को रोकता है; यूं कहिये आपको ताज़गी भरे आत्म विश्वास से प्रफुल्लित रखता है।

यह टेस्ट स्वयं कर के देखिये, पानी में थोड़ा सा लकड़ी के कोयले का चूरा डालिये और इसमें थोड़ी सी बिनाका टॉप टूथपेस्ट घोलिये। अब देखिये बिनाका टॉप कितनी तेज़ी से चारों तरफ़ फैलता है... मैल को दूर करता है और पानी की सतह को बिल्कुल साफ़ कर देता है। आपके मुँह में भी बिनाका टॉप बिल्कुल इसी तरह काम करता है।

सीबा गायगी

आपके सपने
सच हो सकते हैं....

मल्टी-बेनिफिट एन्ड
ओल्ड एज डिपोजिट स्कीम

हमने 5, 10 और यहां तक 20 वर्ष बाद आपकी आवश्यकताओं के बारे में सोचा है। हम आपको अपने सपने सच करने में सहायता देंगे।

मल्टी-बेनिफ़िट एन्ड ओल्ड एज डिपोजिट स्कीम के अधीन जमा किए गए 5,000 रु० आपके बच्चे की उच्च/तकनीकी शिक्षा का खर्च उठाने या उसके लिए नया कारोबार शुरू करने के लिए काफी होंगे। इस राशि से आप निश्चित होकर रिटायर्ड जीवन भी बिता सकते हैं।

20 वर्षीय योजना में आपका पैसा 31.6% प्रति वर्ष की दर से बढ़ता है। आज लगाए गए 1,000 रु० अवधि समाप्ति पर 7,328 रु० और 5,000 रु० 36,640 रु० हो जाते हैं। इस योजना में आप 100 रु० या अधिक 13 महीने से लेकर 241 महीनों के लिए जमा कर सकते हैं।

ब्योरे के लिए हमारी समीपस्थ शाखा से सम्पर्क कीजिए

पंजाब नैशनल बैंक

davp-75/697

बेनेट कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए श्रीकृष्ण गोविंद जोशी द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित. पो. बाक्स २१३, बंबई–४०० ००१; दिल्ली आफिस : ७ बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली–११० ००२; कलकत्ता आफिस : १३/१ और १३/२ गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट. लंदन आफिस : ३०–ए, डिस्ट्रिक्ट रोड, सडबरी, वेम्बले, मिडि

पंजीयन सं. एम. एस.-दक्षिण [illegible]

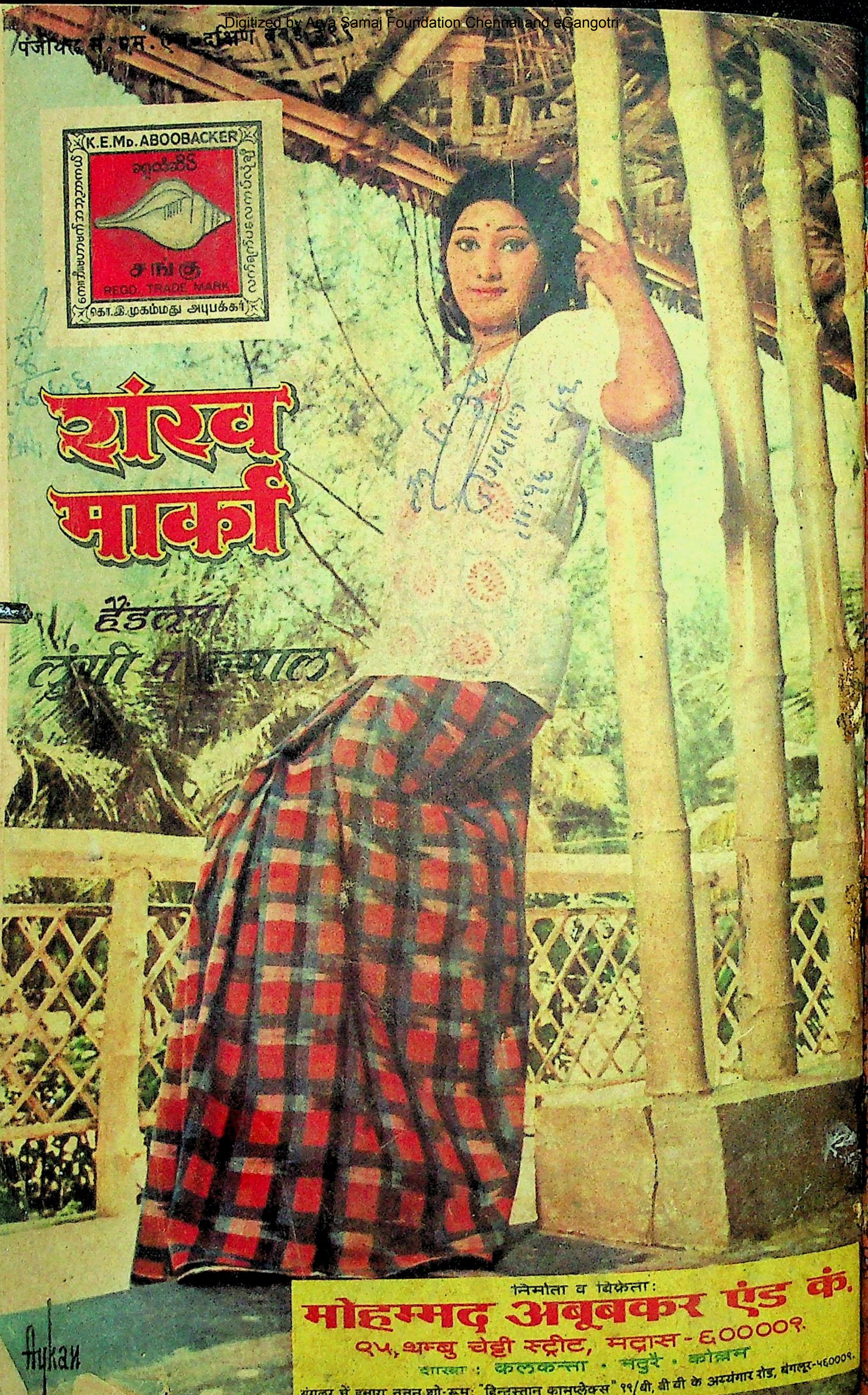
K.E.Md. ABOOBACKER
சங்கு
REGD. TRADE MARK
கோ.இ.முகம்மது அபுபக்கர்
Aykan

शंख मार्का

हैंडलूम
लुंगी व रूमाल

निर्माता व विक्रेता:
मोहम्मद अबूबकर एंड कं.
९५, थम्बु चेट्टी स्ट्रीट, मद्रास - ६००००१.
शाखा : कलकत्ता • मदुरै • कोल्लम
बंगलूर में हमारा नूतन शो-रूम: "हिन्दुस्तान काम्पलेक्स" ११/बी, वी वी के अय्यंगार रोड, बंगलूर-५६०००१.

सारिका

अक्तूबर १९७६

हिंदी: चार लंबी कहानियां तथा पांच अन्य कहानियां

3/11/76

भिमन्यु अनत
ारावाहिक
न्यास
ल पसीना'
पांचवीं किस्त

कथाकार
ाल)

खक:
राक्षस
ाष पंत
लभ डोभाल
ेंद्र भाटिया
कुमार त्रिपाठी
थिलेश्वर आदि

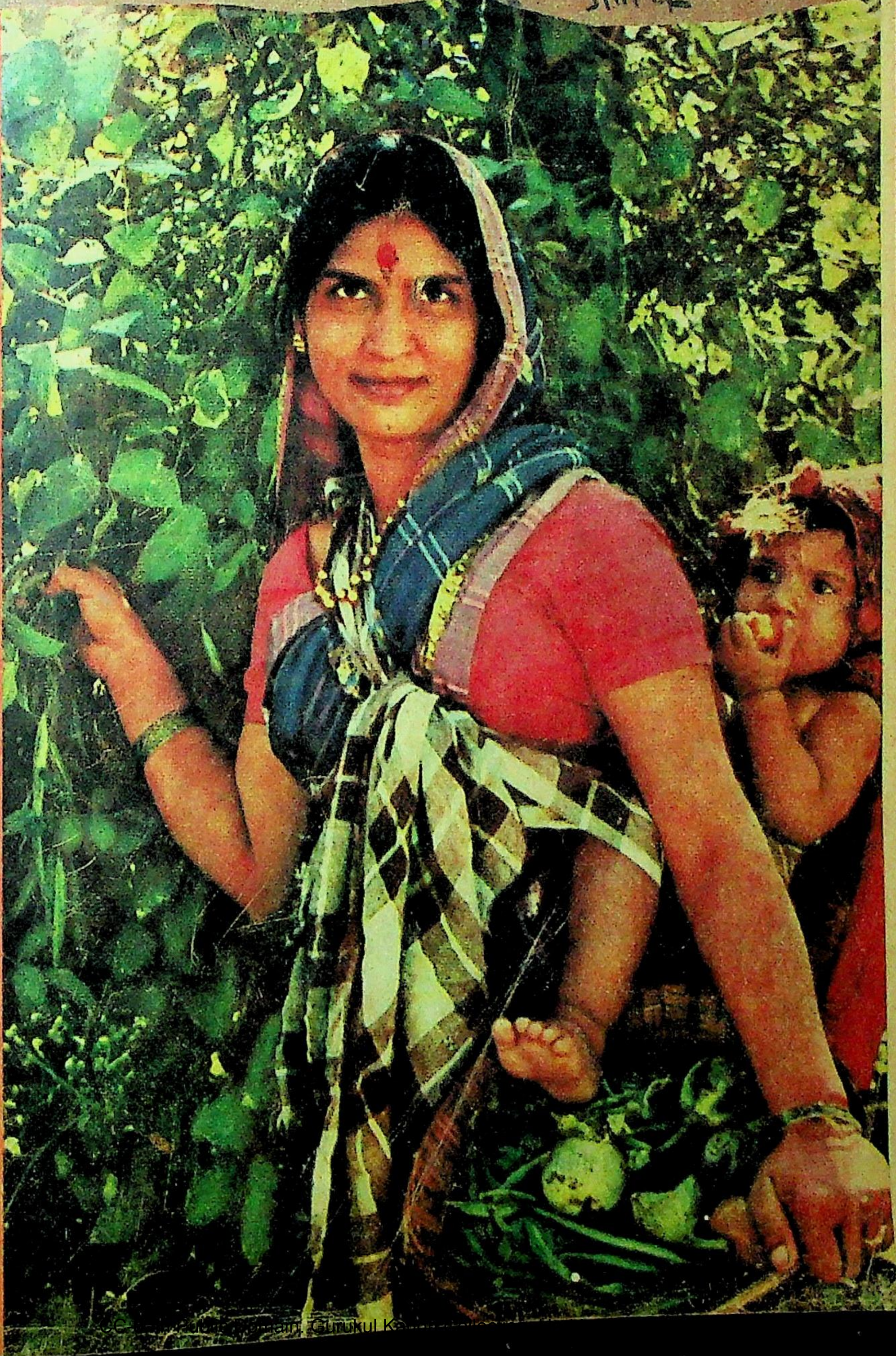

Gurukul K

वेस्टन की अनुपम सीमाएं

जबसे हमने इलैक्ट्रानिक्स के क्षेत्र में प्रवेश किया है तभी से हम इसमें श्रेष्ठता प्राप्त करने की कोशिश करते रहे हैं। अपनी इन खोजों से हमने भारतीय इलैक्ट्रानिक्स उद्योग के स्तर को बराबर संवारा है। हर वर्ष हम अपने लक्ष्य के और भी पास पहुंचते गये हैं। और अब हमारा प्रत्येक उत्पादन हर दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ कहा जा सकता है।

वेस्टन के उत्पादन :- टेलीविजन, कैसेट टेप रिकार्डर टू-इन-वन, कार स्टीरियो, ट्रांजिस्टर रेडियो और इलैक्ट्रानिक कैलकुलेटर

Weston®
The electronics people

मान्यता प्राप्त निर्यातक
वेस्टन इलैक्ट्रानिक्स लिमिटेड
रजिस्टर्ड आफिस :- 244 ओखला इन्डस्ट्रियल एस्टेट नई दिल्ली-110020
नई दिल्ली 632277, बम्बई 362979 कलकत्ता 231459, मद्रास 811028, अमृतसर 51313,
• पुणे 24343, लखनऊ 25885, कानपुर 66250.

अपने दोस्तों में मैं सबसे ज़्यादा मोटी थी.... अब मेरा शरीर उन सबसे छरहरा और सबसे ज़्यादा आकर्षक है !

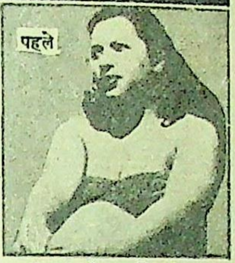

मिस जे. डिसोज़ा

मेरे दोस्त मेरी हंसी उड़ाते थे; मुझे बैठने के लिए हमेशा दुगनी जगह देते ! मेरे बॉस हमेशा कहा करते "ज़रा ध्यान से बैठना, कहीं कुर्सी न टूट जाये !" कोई मुलाकाती उनके पास बैठा हुआ होता तो वह 'डिक्टेशन' देने के लिए बुलाते हुए भी शर्माते थे । मेरी मां मुझे दिलासा देने के लिए कहा करती थीं, "फ़िक्र न करो, इतनी मोटी होते हुए भी तुम्हें पसंद करने वाला कोई न कोई मर्द मिल ही जायेगा ।" मैं ३० वर्ष की हो चुकी हूँ । हालांकि मेरी आंखें बड़ी आकर्षक हैं और मेरे दांत भी बड़े सुन्दर हैं, फिर भी मेरी मां ने जितने भी नवजवानों से मेरा परिचय कराया उन सबका व्यवहार मेरे साथ बड़ा शरीफ़ाना रहा लेकिन कभी किसी ने मुझे अपने साथ घूमने फिरने के लिए नहीं कहा । वास्तव में मेरे पिता मेरे मुटापे के जिम्मेदार हैं जो बचपन से ही मुझे हर वक्त कुछ न कुछ खिलाते रहते थे और कहा करते थे कि मेरा शरीर स्वस्थ और मजबूत और गठीला होना चाहिए । वह खुद जरूरत से ज़्यादा मोटे थे । अभी पिछले वर्ष हृदय की गति बंद होने के कारण ५०.वर्ष की उम्र में हम से बिछुड़ गये — अच्छे-खासे जवान थे उस वक़्त ! इसी बात ने मुझे चिंतित कर दिया । इस तथ्य ने मुझे सोचने पर मजबूर कर दिया कि मुटापे से प्रभावित हृदय के कारण वह भरी जवानी में चल बसे । फिर इस वर्ष फ़रवरी के महीने में मैंने 'वेटलॉस' का विज्ञापन देखा । चोरी-छुपे खरीद लायी, २ महीने तक लगातार अभ्यास किया । मई के महीने में मेरा वज़न १५ पौंड कम हो गया ! बड़ी आश्चर्यजनक बात थी ! मुझे देखकर कोई विश्वास ही नहीं करता था कि यह मैं हूँ । मेरे सभी कपड़े ढीले हो गये और मुझे सब कपड़े नये बनाने पड़े । और मेरे बॉस ! उनका तो कुछ पूछिए ही मत ! जब भी मैं उनके पास से गुजरती हूँ, वह ज़ोर-ज़ोर से सीटियां बजाते हैं ! मेरा परिचय एक नवजवान से हुआ जो मुझे काफ़ी पसंद आया और उसने भी मुझे पसंद किया । मैं अब तक दो बार उसके साथ बाहर घूमने-फिरने जा चुकी हूँ ! बस, अब कुछ ही महीनों में हमारी मंगनी हो जायेगी ! मैं आपकी आभारी हूँ, आपके 'वेटलॉस' कोर्स ने मेरी काया पलट दी : J. D'souza

बाद में

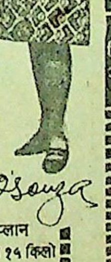

अब जरा मुझे देखिए "वेटलॉस प्लान का पालन करके मैंने अपना वज़न १५ किलो घटा लिया जिस प्रकार यह काम करता है वह सचमुच आश्चर्यजनक है ।

कॉलिज में मेरा नाम 'मोटू' पड़ गया था, दफ़्तर में सब मुझे 'भौंदू' कहते थे ! लेकिन अब सब 'गुले-गुलज़ार-जाने-बहार' कह कर बुलाते हैं ! और मैं खुद अपने स्वास्थ्य का जाम पीता हूँ !

जे. खन्ना

मैं कब मोटा होना शुरू हुआ ? सच्ची बात तो यह है कि मैं बचपन से ही काफ़ी मोटा-ताज़ा था । इसी वजह से यह नाम पड़ गया । लेकिन इसका एक फ़ायदा तो था कि दूसरे बच्चे मुझ पर धौंस नहीं जमा सकते थे । लेकिन कॉलिज में दूसरी ही कहानी थी । जब भी मैं किसी सवाल का जवाब देने खड़ा होता दूसरे लड़के शोर मचाने लगते, "बैठ जाओ मोटू, बैठ जाओ !" इस से मुझे तकलीफ़ तो सख्त पहुंचती थी लेकिन मेरी पढ़ाई अच्छी चलती रही । मैंने बी.एस.सी. पास कर लिया ! अब मैं एक 'बिज़नेस एक्ज़ीक्यूटिव' हूँ । बरसों तक मैंने काम में सख़्त मेहनत की लेकिन बॉस मुझे भौंदू ही समझता रहा । यूं तो मैं अपने काम में बड़ा होशियार था, पर न जाने क्यों वे मुझे 'सेल्स विभाग एक्ज़ीक्यूटिव नहीं नियुक्त करते थे । लेकिन मैंने भी दृढ़ निश्चय कर लिया कि मैं 'सेल्स एक्ज़ीक्यूटिव' बनकर ही रहूंगा । इस वर्ष जनवरी में 'वेटलॉस' का विज्ञापन मेरी नज़रों से गुज़रा और मैं उसे खरीद लाया । ३ महीने तक मैं ने लगातार अभ्यास किया । अप्रैल में मेरा वज़न इतना कम हो गया कि मेरी पतलून कमर से खिसकी पड़ती थी ढीली होकर ! मई में मैंने दिल्ली में सेल्स एक्ज़ीक्युटिव की नौकरी का एक विज्ञापन देखा । मैंने तुरंत आवेदन कर दिया, और यह नौकरी मुझे मिल गयी । मुझे इसका विश्वास ही नहीं होता था । बॉस ने जीभरके मेरी प्रशंसा की और कहा कि उनकी नौकरी छोड़कर दिल्ली न जाऊँ । मेरे वेतन में ३०० रुपये बढ़ा दिये और मुझे सेल्स एक्ज़ीक्यूटिव भी बना दिया ! अब हर शाम मैं खुद अपने स्वास्थ्य का जाम पीता हूँ और 'वेटलॉस' को धन्यवाद देता हूँ !

बाद में

'वेटलॉस प्लान' का बहुत-बहुत धन्यवाद। इसके कारण मेरा वज़न ९४ किलो से ७८ किलो तक कम हो गया

J. Khanna.

क्या मर्द और औरतें इस लिए आपकी ओर ध्यान नहीं देते कि आप ने अपने शरीर की रूप-रेखा की ओर ध्यान नहीं दिया ? 'वेटलॉस' आपका कायापलट कर सकता है !

अगर आप

मोटे

[illegible] हो गये हैं और अपना मोटापा घटाना चाहते हैं तो नया [illegible] किलो तक वज़न घटाने में आप की मदद करेगा।

यह कूपन आपके बाजुओं, गर्दन, कमर, रानों, कूल्हों, नितम्ब और पिंडलियों पर से तेज़ी के साथ वज़न कम करने में आपकी मदद करेगा। अगर आप अपना वज़न घटाने में सचमुच रुचि रखते हैं तो यह कूपन काटकर आज ही डाक से भेज दीजिये

वेट लॉस प्लान ३४ मित्तल चैम्बर्स, नरीमान प्वाइंट SARK/OCT/76
बम्बई ४०००२१. मैं वी.पी.पी. से ऑर्डर कर रहा हूँ। मैं पोस्टमैन को [illegible]
कृपया मुझे रु. ६६/- में वेट लॉस प्लान शीघ्र भेजिए। ☐ वीपीपी ☐ चैक
☐ मनी आर्डर ☐ किसी एक जगह निशान लगाइये।(कृपया अपना पता अंग्रेजी में लिखिये।)
उम्र
नाम
पता
डाकघर पिनकोड चैक, मनीआर्डर
'रॉस-मुरारका इंडिया प्राइवेट लिमिटेड' के नाम से भेजिए

CUT OUT AND MAIL

HEADSTART-WL536

हमने कहा था 'मूल्य की तुलना कीजिये, गुणवत्ता की जाँच कीजिये'। हमारे इसी दावे पर ४७,१६२ लोगों ने मुफ़्त भेंट पैकेटों से 'पॉइंट' को जाँचा और अन्य हज़ारों ने स्वयं ख़रीद कर परखा। परिणाम— दस लाखवें पैकेट की बिक्री मार्च में, हमारे प्रथम विज्ञापन के प्रकाशित होने के छः माह के अन्दर ही। जानते हैं क्यों? आप स्वयं ही क्यों न विचार करें।

नया
पॉइंट
मूल्य की तुलना कीजिये।
गुणवत्ता की जाँच कीजिये।

लाखों पैकेटों की बिक्री
सिर्फ़ छः महीनों में !

Point
Point
DETERGENT WASHING POWDER
For sparkling white and brilliant colour washes
पॉइंट
Rs.8.70
Net Weight 750 gms
for sparkling white and brilliant colour washes

मूल्य की तुलना कीजिये
गुणवत्ता की जाँच कीजिये

पॉइंट

पॉइंट पैक मूल्य	७५० ग्रा. रु. ८.७०	५५० ग्रा. रु. ६.६६	२०० ग्रा. रु. २.५८
(स्थानीय कर अतिरिक्त)			

आप स्वयं आज़माइये

गवर्नमेंट सोप फ़ैक्टरी, बंगलौर का एक उत्कृष्ट उत्पादन

बिक्री व्यवस्थापक : मैसूर सेल्स इंटरनेशनल लिमिटेड, बंगलौर

MCA/PD/52 Hin

स्वस्थ और भरपूर
मनोरंजन के लिये

एक नया नाम !

भारत की सर्वश्रेष्ठ अंग्रेजी पॉकेटबुक ओरिएंट पेपरबैक्स की ओर से अब हिन्दी में एक नयी भेंट–

आनंद पेपरबैक्स

● हर दूसरे मास अच्छी और रोचक नयी पुस्तकों का सेट ! ● हर सेट में : उपन्यासकार शेखर के रोमांटिक उपन्यास / बेजोड़ जासूसी उपन्यासकार कमांडर देव के रहस्यपूर्ण रोमांचक उपन्यास / प्रसिद्ध उपन्यासकार चन्दर के सनसनीखेज जासूसी उपन्यास / 'स्वयं सीखिए' पुस्तकमाला में महत्त्वपूर्ण पुस्तक / और भी बहुत सी सबकी मनपसन्द पुस्तकें !

रहस्य-1
कमांडर देव
फिल्मी हीरो की हत्या

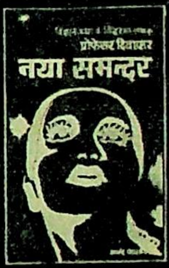
प्रोफेसर दिवाकर
नया समन्दर

सरल
होम्योपैथिक
इलाज
डा० युद्धवीर सिंह

आनंद पेपरबैक्स का नया सेट

- शेखर
  अपराधी
  (रोमांटिक उपन्यास) 3.00
- चन्दर
  आग के शोले
  (दिलचस्प जासूसी उपन्यास) 3.00
- प्रो० दिवाकर
  नया समन्दर
  (वैज्ञानिक उपन्यास) 3.00
- ख्वाजा अहमद अब्बास
  इन्दिरा गांधी
  सफलता के वर्ष 3.00
- महर्षि वाल्मीकि
  वाल्मीकि रामायण
  (अमर रचना) 3.00
- प्रभाकर द्विवेदी
  सेक्स के सौ सवाल 3.00
- कमांडर देव
  फिल्मी हीरो की हत्या
  (रहस्यपूर्ण रोमांचक उपन्यास) 3.00
- डॉ० युद्धवीर सिंह
  सरल होमियोपैथिक इलाज
  (स्वयं सीखिए पुस्तकमाला) 3.00

प्रत्येक रेलवे, रोडवेज़ बुकस्टालों
और पुस्तक विक्रेता से प्राप्त करें।

सूचीपत्र और विशेष सूचना
के लिये कृपया लिखें

आनंद पेपरबैक्स
36-सी, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली-110001

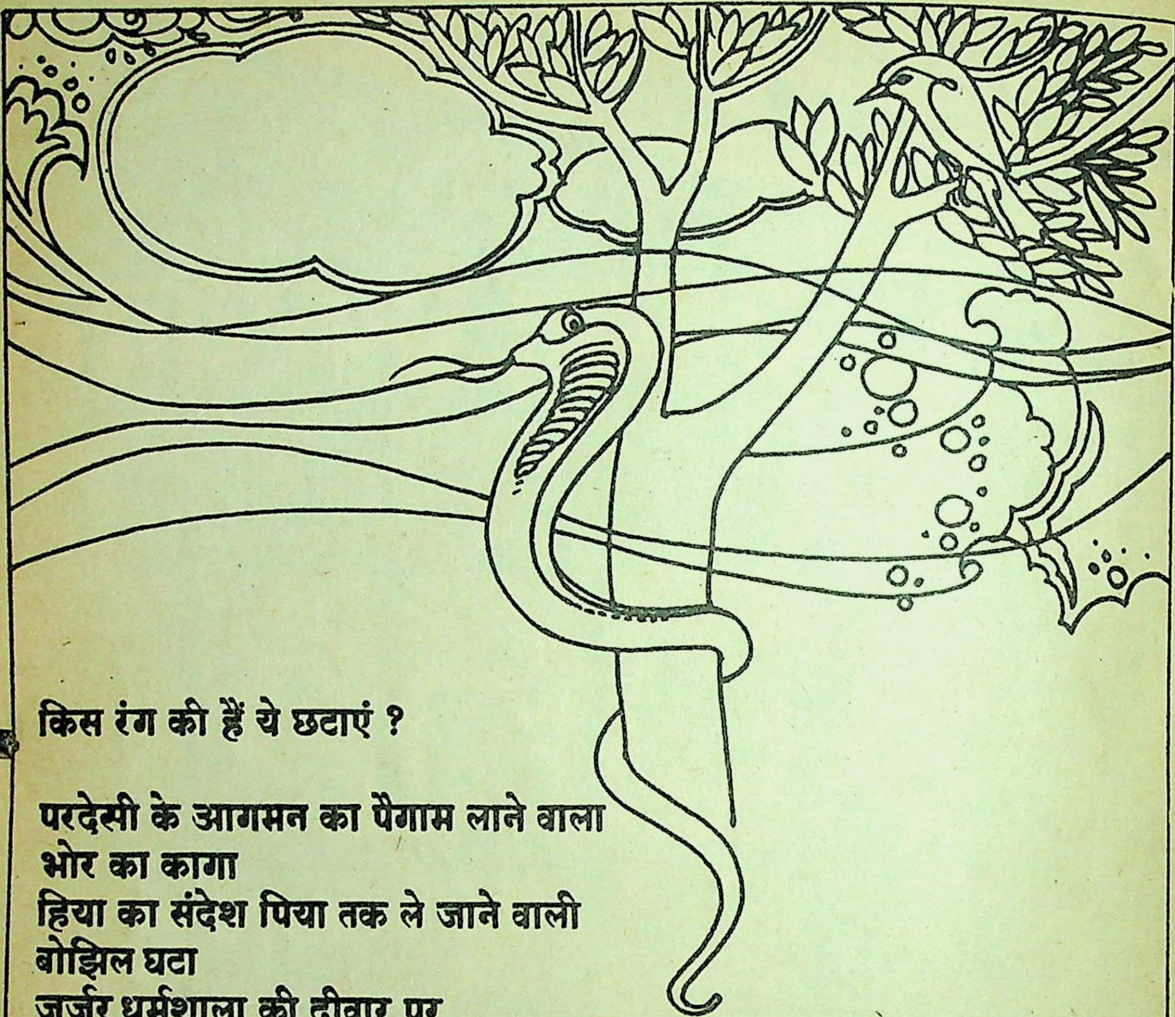

किस रंग की हैं ये छटाएं ?

परदेसी के आगमन का पैगाम लाने वाला
भोर का कागा
हिया का संदेश पिया तक ले जाने वाली
बोझिल घटा
जर्जर धर्मशाला की दीवार पर
कोयले से डली कुछ लकीरें
प्रेयसी बीन की पुकार पर मतवाला नाग
ऋतुराज का आह्वान करती
विचलित कोयल
पिघलती अमावस की रात
मिलन के लिए आतुर दीवानी यमुना
विरह
भय
विषाद

काले रंग की अनेक छटाएं

NEROLAC
ACRYLIC EMULSION
SOLDIER
NEROLAC
SYNTHETIC
ENAMEL

नेरोलॅक

U.GNH-34

20-सूत्री कार्यक्रम के अधीन अपनी प्रगति की योजना बनाइए

पनैबैं आपको सहायता देगा

आपकी जरूरतों के लिए अनेक स्कीमें

ट्रान्सपोर्ट को

ऋण :

- राष्ट्रीय परमिट और राज्य परमिट प्राप्त ट्रान्सपोर्ट आपरेटरों के लिए
- रिक्शा खरीदने के लिए (मोटर लगे साइकिल रिक्शा सहित)
- तांगा, रेहड़ा, ठेला आदि खरीदने के लिए

किसानों को

ऋण

- बीज, उर्वरक और कीड़ामार दवाओं के लिए
- छोटी सिंचाई के लिए
- भूमि विकास के लिए
- फार्म की मशीनों के लिए (ट्रैक्टर और अन्य उपकरणों की खरीद)
- सहायक कृषि कार्यों के लिए (डेरी, मुर्गी पालन, भेड़ और बकरी पालन, सूअर पालन आदि)

रोजगार और पुनर्वास के लिए

ऋण :

- मुक्त बंधुआ मजदूरों और भूमिहीन किसानों को उत्पादक कार्यों के लिए
- बुनकरों को करघों और सूत की खरीद के लिए
- छात्रों को शिक्षा और पुस्तक बैंकों के लिए
- डाक्टरों को देहाती क्षेत्रों में दुकान या दवाखाना खोलने के लिए
- कारीगरों, दस्तकारों और कुटीर उद्योगों को
- गृहिणियों को परिवार की आय बढ़ाने के लिए
- कृषि स्नातकों को खेती के लिए जमीन खरीदने को
- फुटकर व्यापार के लिए
- छोटे व्यापार के लिए
- ग्रामीण क्षेत्रों में खेत में झोंपड़ी बनाने के लिए
- किसानों को आवश्यक घरेलू जरूरतों, शिक्षा एवं चिकित्सा सहायता दोनों के लिए

सभी सुविधाएं आसान शर्तों और ब्याज की रियायती दरों पर उपलब्ध हैं

अधिक ब्योरे के लिए हमारी समीप की शाखा से सम्पर्क कीजिए

पंजाब नैशनल बैंक

davp 76/286

सारिका के वार्षिक ग्राहकों के लिए विशेष छूट

'सारिका' के प्रत्येक अंक का मूल्य एक रुपया है. किंतु वर्ष भर के लिए वार्षिक शुल्क मात्र दस रुपये है. यानी साल भर में दो अंक मुफ्त. यदि आप दो साल के लिए ग्राहक बनते हैं, तो शुल्क केवल उन्नीस रुपये है यानी दो वर्षों में पांच अंक मुफ्त. हां, तीन वर्ष के लिए शुल्क केवल सत्ताईस रुपये है.

आपके लिए सारिका की विशेष दरें इस प्रकार हैः

एक वर्ष—१० रुपये
दो वर्ष—१९ रुपये
तीन वर्ष—२७ रुपये
विदेश में समुद्री डाक से एक वर्ष—३० रुपये

कृपया यह कूपन जरूरी राशि के चेक/ड्राफ्ट/मनी-आर्डर के साथ-साथ आज ही भेज दें—

सर्कुलेशन मैनेजर
सारिका, टाइम्स आफ इंडिया बिल्डिंग, बम्बई-४०० ००१

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/दो वर्षों/तीन वर्षों के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. १० रुपये/१९ रुपये/२७ रुपये चेक/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा भेजे जा रहे हैं.

नाम ----------------

पता ----------------

हस्ताक्षर ----------------

सारिका

नवंबर १९७६

हिंदी की तीन लेखिकाओं की कहानियां तथा ग्यारह अन्य कहानियां.

इस अंक के लेखक

शैलाभ, श्रवणकुमार, प्रीतम बेली, प्रभु जोशी, बसंतकुमार, सुरेंद्र अरोड़ा, गुरुबचन सिंह, मेहरुन्निसा परवेज, सुधा अरोड़ा, मधुकर सिंह, चंद्रकांत बक्षी, रमेश गुप्त, चित्रा मुदगल, ब्रह्मदत्त आदि

साथ ही ● लघु कथाएं ● गर्दिश के दिन ● अभिमन्यु अनत के धारावाहिक उपन्यास 'लाल पसीना' की छठी किस्त

तथा सभी स्थायी स्तंभ

प्रतीक्षा... प्रतीक्षा... प्रतीक्षा

सारिका के अगले अंकों में एक नयी शुरुआत—

आपके सपने

'सारिका' के पाठकों के लिए, पाठकों का ही, एक नया स्तंभ 'आपके सपने' प्रारंभ करने की हमारी योजना है. हम जो सपने देखते रहते हैं (निद्रावस्था में) उनमें अधिकांश तो बिल्कुल साधारण होते हैं, और प्रायः हमें याद भी नहीं रहते. किंतु कभी हमें अपने जीवन से संबंधित कुछ ऐसे विचित्र और अद्भुत स्वप्न दिखायी पड़ते हैं, जो हमें उद्वेलित कर देते हैं, जिन्हें हम भुला नहीं पाते और जो हमारे जीवन पर गहरा प्रभाव डालते हैं. पाठकों से निवेदन है कि वे अपने किसी ऐसे ही सपने का वर्णन तथा उसने उसके जीवन को किस प्रकार प्रभावित किया, इसका विवरण, लगभग ६०० शब्दों में लिख भेजें. जो सपने रोचक और विशिष्टता लिये हुए होंगे, उन्हें इस स्तंभ में प्रकाशित किया जायेगा. लिफाफे पर लिखें—

'आपके सपने'
'सारिका'
टाइम्स ऑफ इंडिया
बंबई-१

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका
अक्तूबर, १९७६
वर्ष : १६; पूर्णांक : १८६

हिंदी की चार लंबी कहानियां तथा अन्य कहानियां

लंबी कहानियां

जवाहर सिंह : अपना-अपना महाभारत : १६
जितेंद्र भाटिया : सिद्धार्थ का लौटना : ५२
प्रभातकुमार त्रिपाठी : सब्जी : ६४
मिथिलेश्वर : सरेआम : ७२

अन्य कहानियां

मुद्राराक्षस : अविश्वास : १२
विनेश पाठक : शायद यह अंतहीन : २४
सुभाष पंत : श्रीमानजी : ३२
बल्लभ डोभाल : आहार, निद्रा, भय. . .: ४४
रवींद्र राजहंस : डरेवर साहेब: ४८

लघुकथाएं

राजकुमार लाखा : १५
शेर और बढ़ई : २९
नंवकिशोर अरोड़ा : ये दिन : ३०
मोहरसिंह यादव : अर्थ का गणित : ३०
शैलेंद्र जॉर्ज : अंतर : ३१
दुर्गावत्त दुर्गेश : व्यापारी : ३१
पश्चाताप : ३१
विचित्र पुरस्कार : ३१
धमेंद्र चोपड़ा : वर्ग-संघर्ष : ४३
नटखट बालिका : ४७
शंकर पुणतांबेकर: विद्यालय : ५१

धारावाहिक उपन्यास : पांचवीं किस्त

अभिमन्यु अनत : लाल पसीना : ८४

आद्य कथाकार (१४)

तालाब के किनारे पीपल का वृक्ष (तमिल)
एक विवेचन : एस. शिवप्रसाव सुंदरम् : ३६

स्थायी स्तंभ

पाठकीय : १०
गोष्ठी-रपटें : ७९
कृतियां : ८०
फिल्में : ८२

● आमुख : गोविंद बेंद्रे

संपादक : कमलेश्वर

- मुख्य उप-संपादक : आनंदप्रकाश सिंह
- उप-संपादक : अवधनारायण मुद्गल, सुदीप
- कार्यालय-सहयोगी : श्रीनाथ पांडेय, देवचंद झा, भिकाजी शिर्के

पाठकीय

जुलाई अंक

समांतर कच्छी साहित्य-१

'बंधु' कुशावर्ती, लखनऊ : **'धरती का कलंक', 'लास्ट प्रापर्टी', 'घर-बाहर'** बेहद सशक्त और प्रभावित करने वाली कहानियां हैं. **'शिकारी या पुजारी', 'अतिथि सत्कार', 'विश्वास का व्यापारी', 'जब्बर काका', 'क्षत्राणी का स्वाभिमान'**, दिल को छूते हुए अपना अमित प्रभाव तो छोड़ती ही हैं, ये सब वहां की संस्कृति और लोकमानस के करीब भी ले जा कर खड़ा कर देती हैं. ☐

सीताराम मित्तल, खरसिया, रायगढ़ (म. प्र.). कच्छी साहित्य की लघुकथाओं ने अंतर को छू डाला. ऐसा लगता है कि 'सारिका' लघुकथाओं के रूप में शुक-सारिका के मीठे सुखप्रद कलरव की तरह पाठकों को आनंदित कर रही हो. ☐

नंदिनी ब्रह्मा, बसंतपुर (बिहार) : समांतर कथा-साहित्य का झंडा प्रबुद्ध मानस-पटल पर फहरा रहा है. और इसके पीछे एक जमात है जो समांतर कथा-साहित्य का जय बोल रही है, नारे लगा रही है. किंतु फैंकू मुसहर का दुख-दर्द दिल्ली से नहीं समझा-परखा जा सकता. उसके लिए गांव आना होगा. आज इमरजेंसी में भी फैंकू को जीने के लिए पूर्ववत ही संघर्ष करना पड़ता है. भविष्य में 'सारिका' के कथाकार इस वस्तुस्थिति को भी मुखरित करें, युगधर्म यही कहता है. समांतर कच्छी साहित्य—१ में कच्छी जीवन मुखर हो उठा है. तरला भाटिया की **'प्रतिक्षा'** इस अंक की सबसे अच्छी कहानी जान पड़ती है. ☐

कृष्णगोपाल, जलालपुर, बस्ती (उ. प्र.) : **'बेकाबू'** और **'लास्ट प्रापर्टी'** के तीखे व्यंग्य ने विशेष प्रभावित किया. आरंभिक अंशों में मनु भाई बलराज मैनरा से और अंतिम अंशों में निर्मल वर्मा से प्रभावित दीखते हैं. रक्तपात और भयावहता के प्रतीकों को बार-बार दोहराते हुए आगे बढ़नेवाली **'लाल आंखें, लाल रत्तियां, लाल गेरू,'** भी कम रोचक नहीं. **'भरी दोपहर'** ने अपनी मांटी की सुगंध और करुणा बहुत कायदे से पेश की है. हां, अंतिम पांच पंक्तियां उसके प्रभाव को कम करती-सी लगीं.

'धरती का कलंक' जहां जयशंकर प्रसाद के **'आकाशदीप' 'गुंडा'** की याद दिलाती है, वहीं भाषा की आंचलिकता और अपनी संस्कारगत विशेषता के लिए उल्लेखनीय है. **'प्रतीक्षा'** में कई परिचित कोण आते हैं, जो आम प्रेम-कहानियों जैसे बोध देते हैं. किंतु एक कोण अपूर्व है—वही अंतहीन, अनंत प्रतीक्षा के लिए बुने-गढ़े गये झूठ का सहज कोण. ☐

लालसा लाल रंग, गढ़हरा, बेगूसराय (बिहार): सभी कहानियों में पृथक-पृथक धरती के तथ्य सिमटे मिले. आंचलिकता की वस्तुगत स्थिति एवं हिंदी साहित्य के लिए इसकी आवश्यकता का सामान्य बोध तो इस अंक में होता ही है. कच्छ के सूखे वातावरण में शबनमी धरातल की आहें, गुजराती दर्दों, दलित एवं पिछड़े आदमियों की प्रतिच्छाया, कच्छी संस्कृति तथा जनजीवन का स्पष्ट रेखांकन, इंसानों के जीवन-मूल्यों का विशुद्ध चित्रण तथा आम आदमी की मुहरों का दर्पण स्पष्ट रूप से परिलक्षित हुआ है. लोककथाएं भी सत्य को परिभाषित करती हैं. अच्छा होता, इसी प्रकार अन्य प्रांतों की आंचलिकता से भी परिचित कराते. ☐

अनिलचंद्र ठाकुर, समेली, कटिहार (बिहार) : 'सारिका' सस्ती है, परंतु महंगी सामग्र देती है. साथ ही विश्व-साहित की कहानियों तक सेतु काय करने में यह जो परिश्रम कर र है, हिंदी साहित्य के लिए अवि- स्मरणीय और प्रशंसनीय है. ☐

प्रा. विजय शर्मा, जालना (महाराष्ट्र) : कच्छी जनजीवन को अभिव्यक्ति देने वाली बकु-लेश, जयंत खत्री, तरला भाटिया, सरोज पाठक आदि की कहा-नियां कथ्य की दृष्टि से बिलकुल ही कमजोर लगीं. ये तथ्य का उद्घाटन भले ही करती हों. परंतु इनमें कहानीपन का अभाव खटकता है. अच्छी लगनेवाली कहानियां हैं : **'बेकाबू' 'घर-बाहर'** और **'लास्ट प्रापर्टी'**. कच्छ की मान्यताओं और जीवन-पद्धति का सशक्त कथ्य अपनी संपूर्ण ईमानदारी के साथ **'घर-बाहर'** में मुखरित हुआ है. किंतु कच्छी सभ्यता के प्रति भी कुछ शंकाओं की जमीन यह कहानी बनाती है. मुझे नहीं लगता किसी वर्ग सभ्यता में किसी बुजुर्ग को प्रणाम कहे जाने पर वह भी उत्तर में प्रणाम कहेगा और अधिक उम्रवाला पुरुष अपने से कम उम्र की कन्या के पैर छूकर ही रहेगा.

'सुधाकर, दिल्ली : **'लास्ट प्रापर्टी', '१५ डाउन',** और **'धरती का कलंक'** के साथ **'प्रतीक्षा'** ने भी जगह पायी है, यह आश्चर्य

जुलाई और अगस्त अंक टटका फूल नियर हाथ में आइल. महक चारों ओर छितराइल. कुछ कहानी करेजा के भक् से छू गइल, लेकिन कुछ कहानी ओस बनके रह गइल अउर घाम लागते हवा हो गइल. गांव के किताब के थोड़ा अउर रसगर बनाईं. परनाम !

—प्रमोद लोहिया
बक्सर (भोजपुर)

की बात, कम से कम मेरे लिए जरूर है. कच्छी लोककथाएं कथाएं आश्चर्यचकित करने वाली लोककथाएं हैं.

प्रेम नारायण, पटना : समांतर कच्छी साहित्य का कहानियों और सामान्य जनजीवन में कोई फर्क नजर नहीं आया. जहां मानव की **'लास्ट प्रापर्टी'** सचमुच परमेश्वर के दरबार में खोजी नहीं जा सकती, वहीं जीवन के नाटक को कहानियों की प्रांपटिंग के जरिये समझने में 'सारिका' का मासिक टूर स्मिता की **'प्रतीक्षा'** जैसी घुटनभरी और निरर्थक नहीं होती है. मन की अकुलाहट को भरी दोपहर में फूटे रोदन ने **'धरती का कलंक'** में दिलोदिमाग के वार पर चढ़ा दिया, पर **'बेकाबू'** के हुसैन की बेचैनी की मिजाज पुरसी **'लाल पसीना'** में रंगभेदीय अन्याय के दर्द से तड़पते कुंदन की आजीवन कैद से सहज मुक्ति की मुसकान के द्वारा हो गयी. **'गर्दिश के दिन'** में अजित पुष्कल के जीवन विकास की प्रक्रिया उनके संघर्षजन्य अनुभवों से बखूबी अभिव्यक्त हुई है. □

विमल झा, गोरखपुर (उ.प्र.) **लास्ट प्रापर्टी,** काफी आकर्षक महसूस हुई. एक सामान्य धरातल पर, संवादों से सजी यह कहानी काफी अंदर तक झकझोर गयी, बौखला गयी मुझे, और अंत में प्रश्न-चिह्न बन कर प्रस्तुत हो गयी मेरे सामने. **'लाल आंखें! लाल रत्तियां! लाल गेरुं!**, **'भरी दोपहर'**, **'घर बाहर'**, **'१५ डाउन'** भी काफी पसंद आयीं. वास्तविकता तक इनकी पहुंच रही. □

चौधरी राजेंद्र सिंह, धनपुरी (म. प्र.): 'सारिका' जैसी स्तरीय पत्रिकाओं के पाठकों के सिवा अन्य 'पढ़े-लिखे लोगों में से अधिकांश तो 'आज के आम जीवन (चर्चा)' से जुड़ी कहानियों को कहानी मानते ही नहीं. और ये वे लोग हैं जो नियमित रूप से समाचारपत्र पढ़ते हैं, क्लब जाया करते हैं और फिल्मों पर भी अच्छी बहस किया करते हैं, यानी जो अपने आपको आधुनिक कहलाना पसंद करते हैं, वे कहते हैं कि हीरो-हीरोइन (और विलेन) की स्टोरी न हो तो कहानी कैसी? ये पढ़े-लिखे लोग **'दरिंदे'** के सुनील और **'दमन-चक्र'** के दामू को नायक मान ही नहीं सकते.

कहीं यह समस्याग्रस्त जीवन-संग्राम से बौद्धिक पलायन तो नहीं ? □

(नोट : इस पर हम अपने सुधी पाठकों के विचार आमंत्रित करते हैं—सं.)

रतन बहन शाह, जालना (महाराष्ट्र): तीन तरफ से समुद्र और एक ओर से रेगिस्तान से घिरे कच्छ को किसी एक प्रांत से नहीं, बल्कि राष्ट्र और अंतरराष्ट्रीयता से जोड़ दिया है, और ऐसा पुल बना है जो सिर्फ दो स्थानों को जोड़नेवाला नहीं, बल्कि मानव से मानव को मिलाने वाला है. कच्छ की गाथा और संपूर्ण परिचय को जन-जन तक पहुंचाने का ऐतिहासिक कार्य स्वतंत्रता के बाद पहली बार शायद 'सारिका' के द्वारा संपन्न हुआ है.

मुझे विश्वास है कि देश-विदेश में बसते कच्छी 'सारिका' पढ़ कर छूटे वतन के एक टुकड़े को पाने की अनुभूति करेंगे और यह उनकी चेतना को गति दे कर अपने वतन के विकास के प्रति क्रियात्मक होने को प्रवृत्त करेगी. □

सत्यप्रिय शर्मा, उदगीर (महाराष्ट्र) : **'घर बाहर'** विशेष उल्लेखनीय है, इसके बाद **'भरी दोपहर'** और **'धरती का कलंक'**. लोककथाओं में **'शिकारी या पुजारी'**, **'अतिथि सत्कार'**, **'विश्वास का व्यापारी'**, **'क्षत्राणी का स्वाभिमान'**, तथा **'जब्बर काका'** बहुत पसंद आयीं.

'बेकाबू' सचमुच एक वास्तविक परिस्थिति तथा प्राणिमात्र की निसर्ग-प्रवृत्ति का चित्रण है. जहां **'प्रतीक्षा'** पाठक को अंत में थोड़ा-सा धक्का देती है, वहां **'लास्ट प्रापर्टी'** अनेक सामाजिक तथा व्यक्तिगत पहलुओं पर सोचने के लिए मजबूर कर देती है. अजित पुष्कल के आत्मकथ्य से मेरे जैसे सामान्य व्यक्ति को प्रेरणा मिलती है : आगे बढ़ो! □

गत मई से थायसिस ग्रस्त हो कर शैय्याग्रस्त हूं. पढ़ाई-लिखाई पर सख्त प्रतिबंध है. लेकिन 'सारिका' का हर अंक इस प्रतिबंध को तोड़ देता है. शायद भीतर ही भीतर कोई राहत मिलती है. तभी तो 'सारिका' का प्रयोग स्ट्रेप्टोमाइसिन के इंजेक्शन की तरह नियमित करने को बाध्य महसूसता हूं. दवाएं तो 'टाइम-बार्ड' भी हो जाती हैं, 'सारिका' कभी 'टाइम-बार्ड' नहीं होती.

जुलाई अंक में मनुभाई पांधी का लेख कच्छ-जनजीवन एवं कच्छ-संस्कृति को उभारता है. **प्रतीक्षा** एवं **क्षत्राणी का स्वाभिमान** बहुत पसंद आयीं.

—श्रीकुमार
संपादक, 'तीर' त्रैमासिक
गोड्डा, संथाल परगना
(बिहार) □

ए. कुमार 'अनु' मेरठ (उ.प्र.): तरला माटिया की **'प्रतीक्षा'** पढ़ी. उसके अंत को पढ़ कर ऐसा लगा जैसे बिजली का करंट छू लिया हो.

बृज कुमार गांधी : मेरठ (उ. प्र.) : बंबई दूरदर्शन पर समांतर फिल्मों के विषय में जानकर हार्दिक संतोष मिला है. समांतरी पक्ष का यह एक सशक्त एवं विस्तृत पक्ष होगा, और इसके लिए **'समांतरी पत्रिका'** बधाई की पात्र है. यह बात कितनी सटीक है कि इस कार्यक्रम के माध्यम से पाठकों और दर्शकों के उस बहुत बड़े वर्ग तक पहुंचने की कोशिश की जा रही है, जो समकालीन साहित्य से लगभग अपरिचित है.

(संचयन और संयोजन : रामगोपाल इमलासिया)

अविश्वास

• मुद्राराक्षस

उसका चेहरा बारिश में भीगे जूते की तरह चिपचिपा हो आया और बांहें थोड़ी छोटी-छोटी-सी लगने लगीं. लगा अगर वह इसी तरह ज्यादा देर भावुक रहा तो उसके हाथ छोटे होकर गायब ही न हो जायें. अपनी बात को विश्वसनीय बनाने में वह कुछ हास्यास्पद-सा ही होता जा रहा था. मैं जानता हूं —— मुझे यकीन है कि आपको मैं अपनी बात सही तरह नहीं समझा पा रहा हूं लेकिन आप कल्पना कीजिए उसकी खूनी आंखें —— मैं, सिर्फ मैं ही महसूस कर सकता हूं कि वह किसी भी वक्त मेरा खून कर सकता है —— और फिर जनाब आप देखिए किस बदतमीजी से वह थूकता है.

समझ रहा हूं —— रावल ने मुनमुनाते हुए कहा, हालांकि वह बराबर उससे आंखें चुरा रहा था. गोकि वह निरंतर आनंद के प्रति अपनी सहानुभूति जाहिर करता जा रहा था लेकिन इतनी देर में उसे खुद अपनी सहानुभूति भी एक माफीनामा जैसी लगने लगी थी. इतनी देर के बाद उसे यह भी लगने लगा था कि आनंद से ज्यादा सहानुभूति की जरूरत उसे खुद हो आयी थी.

आनंद पूरे सवा घंटे से लगातार एक पांव फुटपाथ पर चढ़ाए हुए बोलता जा रहा था और रावल की बांह पर अपना कांपता हुआ पंजा, पसीने से चिपकाता जा रहा था, न जाने अपनी बातों के प्रति विश्वास की याद दिलाने के लिए या सहारे के लिए.

रावल उससे थोड़ा हट कर खड़ा होना चाहता था लेकिन उसे डर था कि आनंद अगली बार पंजा बढ़ाने पर उसे वहां न पाकर शायद भरभरा कर गिर ही जायगा. एक परेशानी और थी. रावल को महसूस हो रहा था कि आनंद के मन में उसकी सहानुभूति के प्रति शायद अविश्वास भी होगे लगा था. बीच-बीच में आनंद शिकायत भी करता था कि रावल उसकी बात ध्यान से नहीं सुन रहा. इससे रावल थोड़ा हड़बड़ा जाता था और अक्सर या तो आनंद की बातों का संदर्भ ही भूल जाता था या फिर सुनी हुई बातों का सिलसिला ही गड़बड़ा जाता था.

आनंद की बातों से अपरिचित वह कतई नहीं था. वही क्या, आनंद का शायद ही कोई परिचित हो जिसने आनंद और उसके पड़ोसी के इस झगड़े का किस्सा न सुना हो और कई लोग ऐसे भी थे जिन्होंनें लिहाज में आकर कई-कई बार सुना था. किस्सा कुछ अजीब ही था. जिस किस्से का अंत 'उसने मुझे खूनी आंखों से घूरा' जैसे निरामिष वाक्य से होता है, उसे सुनाने में या सुनने में आम तौर पर चार, साढ़े चार घंटे का समय लगता था. उस झगड़े का किस्सा आनंद अक्सर यों शुरू करता था- इस किस्से की शुरुआत जिस हादसे से होती है, उसका बयान करने से पहले मैं एक ऐसे किर्दार यानी करेक्टर का मुख्तसर-सा खाका देना चाहूंगा जो मुझसे पहली बार सन् उन्नीस सौ तिरेपन में सितंबर की तेईस तारीख की सुबह नौ बजकर अठ्ठाइस मिनट पर मिला था और उस वक्त मैं एक इस कदर बदइख्लाक आदमी से मिलकर आ रहा था जिसके चाद डायलाग्ज जो जाहिर हैं बाकी डायलाग्ज के आखिर में बोले गए थे, कुछ इस तरह मुझ पर पटके गए थे ——

इसके बाद आनंद की उस कहानी का या उसकी मुसीबत की दास्तान का वह हिस्सा शुरू होता था जो चार या सवा चार घंटे बाद अनवर नाम के एक ऐसे प्राणी पर जा सिमटता था जो इत्तफाक से आनंद का पड़ोसी था.

आनंद की आदत से रावल अपरिचित कतई नहीं था.

रावल ने अपना पूरा जोर लगा कर कहा—लेकिन भाई जहां तक मैं समझता हूं, ऐसे वक्त में आदमी को धीरज नहीं खोना चाहिए.

एक क्षण के लिए ऐसा लगा जैसे आनंद उसकी बात समझा नहीं लेकिन दूसरे ही क्षण उसकी आंखें फैल गयीं. वे अचानक इतनी ज्यादा फैल सकती हैं, यह रावल ने सोचा भी नहीं था.

वैसे आनंद की समस्या इतनी मामूली भी नहीं थी. वह निजामुद्दीन जैसी उम्दा जगह पर रहता था लेकिन वहां एक बेहद "पाजी" किस्म का आदमी आ गया था और कुछ दिनों से वह आनंद के पीछे हाथ धोकर पड़ गया था. इस आदमी से अपनी जान को खतरा है, यह बात आनंद कई रोज से अलग-अलग आदमियों को समझा चुका था. उसने अपना बयान इतनी मेहनत से तैयार किया था कि किसी भी वक्त, कहीं भी उसमें न तो शब्दों का क्रम बदलता था, न शब्दों की सूची. बल्कि एक सांस में वाली जाने पर वह विपत्ति-गाथा अच्छी-खासी, छपी-छपाई किताब लगती थी. कभी-कभी तो सुनने वाले को यह शक होने लगता था कि वह अचानक ही बोल पड़ेगा —— छपाई साफ-सुथरी और गेटप अच्छा है.

★ ★

कल रात जो घटना हुई, वह आनंद के विचार से और ज्यादा खतरनाक थी. वह रात के कोई ग्यारह बजे कनाट प्लेस की टेढ़ी-मेढ़ी, जलकुंभियों से पटी हुई झील के किनारे एक घंटा गुजारने के बाद घर लौट रहा था. चूंकि उसने अलग-अलग यात्री बिठाने वाली टैक्सी पकड़ी थी इसलिए बड़े चौराहे से घर तक का रास्ता पैदल ही तय करना था.

आनंद को खयाल भी नहीं था कि उसका पीछा किया जा रहा था. मगर यह सच था. सड़क पर दूर तक एक कतार में भूरी रोशनी वाले खंबे लगे हुए थे. जिस वक्त वह रोशनी में आता, उसका पीछा करने वाला अंधेरे में होता और जिस वक्त वह उजाले में चल रहा

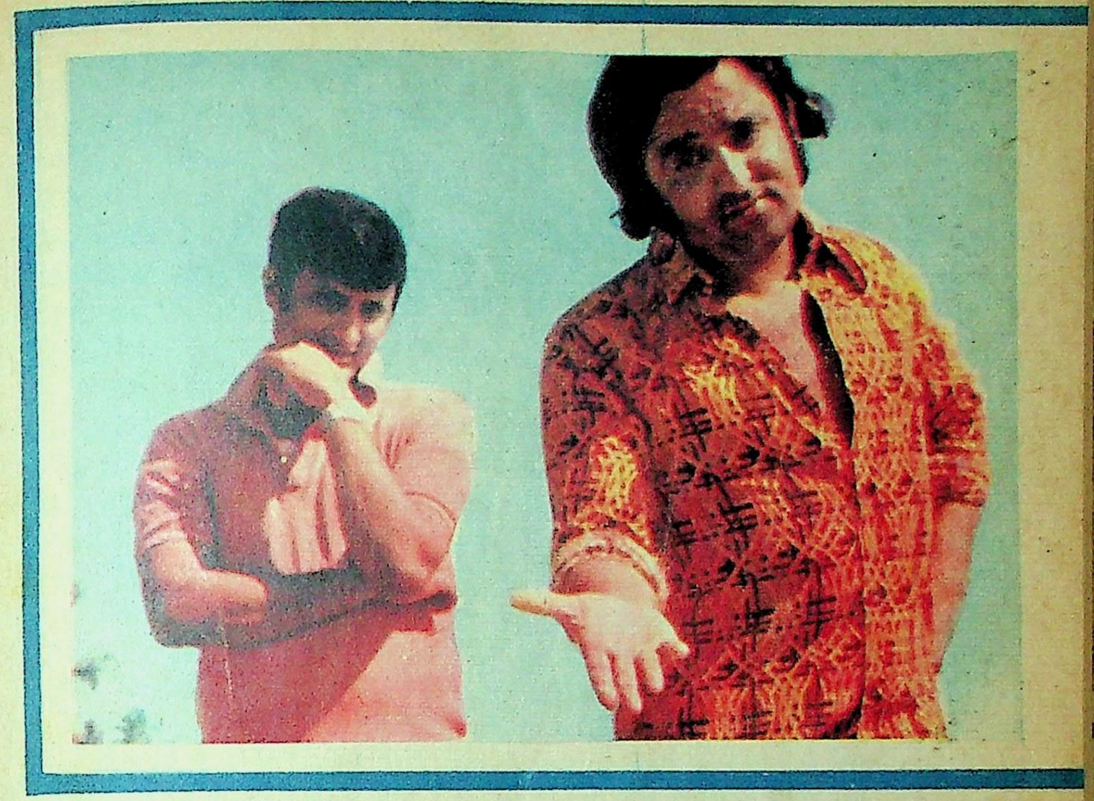

होता, आनंद अंधेरे में चल रहा होता था.

आनंद को एक अजीब बात महसूस हुई. उसे लगा, गालीनुमा मदमदी-सी आवाज के साथ जूते बजाता हुआ वह आदमी उसका पीछा कर रहा है. अगर आनंद अपने कानों पर विश्वास कर सकता था तो निश्चय ही वह आवाज उससे एक निश्चित दूरी बनाए रखने की कोशिश कर रही थी.

इस बेहूदगी पर आनंद को थोड़ा गुस्सा आया. अपनी चाल को पीछा करने वाले आदमी से अलग करने के लिए उसने जानबूझ कर अपनी गति बारी-बारी से धीमी या तेज की. उसके पीछे की वह आवाज भी उसी क्रम से धीमी या तेज हो गयी.

इस तरह तो वह आदमी और शह पा जायगा — आनंद ने सोचा. लिहाजा अपने आपको लापरवाह बनाते हुए उसने एक खंभे के करीब रुक कर अपने जूते का तस्मा बांधने की कोशिश शुरू कर दी.

पीछा करने वाले की आवाज नजदीक आ गयी और फिर आनंद को लगभग कंपाती हुई, ठहर गयी. आनंद को लगा, हो सकता है वह मक्कार आदमी भी शायद अपने जूते का तस्मा बांधने लगा हो क्योंकि उसके रुकने के बाद कई पल और कुछ नहीं हुआ. आनंद तस्मा छोड़ कर फुर्ती से उसकी ओर घूम गया. चूंकि पीछा करने वाले आदमी ने रोशनी के दायरे में पूरी तरह प्रवेश नहीं किया था इसलिए वह एकदम काला और बेडौल लग रहा था.

आनंद ने अंधेरे के बावजूद उसे पहचानने की कोशिश की. साफ कुछ नहीं दिखा लेकिन उसने अनुमान लगाया कि वह काफी भद्दा होगा. शायद खूंखार और रोएंदार भी हो. उसे ताज्जुब हुआ कि ऐसे मौके पर उसे कुछ चीजें धुंधली क्यों दीखती हैं और कानों में सुरसुराहट-सी क्यों होगे लगती है. आनंद को सुनाई कुछ नहीं दिया लेकिन उसे लगा कि उस शख्स ने मुरमुरी-सी आवाज में कुछ कहा.

— जनाब मैं अपने जूते के तस्मे बांध रहा था. आनंद ने किसी कदर क्षोभ से हकलाते हुए कहा, और जनाब तस्मा खुल जाना कोई अजीब बात तो है नहीं. और फिर जनाब अगर किसी के जूते का तस्मा सड़क पर खुल जाय तो क्या वह उसे घर ही जाकर बांधे?

इन असंबद्ध वाक्यों को सुनकर सामने वाला आदमी इस तरह खड़ा रहा जैसे उसे कुछ भी सुनाई न दिया हो. इस बात ने आनंद को और ज्यादा डरा दिया. उसे पता था कि अपराधी तर्क नहीं सुनता, आनंद अभी सोच ही रहा था कि वह आदमी हिला, हिलने के बाद उसने अपने अगले दांत चमकाए जैसे कोई घोड़ा हंसने की कोशिश कर रहा हो. दांत चमकाने के बाद वह आदमी मुड़ा और सड़क पर उतर गया. उसके बाद लापरवाही से चलता हुआ दूसरी ओर के अंधेरे में गायब हो गया.

आनंद जैसे नींद से जागा. उसने सबसे पहले अपनी घबराहट पर काबू पाना चाहा लेकिन यह आसान नहीं था.

अगर आनंद को इस घटना के एक दूसरे पहलू ने यकायक न घेरा होता तो निश्चय ही वह काफी देर इसी बात को लेकर परेशान होता रहता कि अब उसे अपने दांतों के अलावा इन अजनबी दांतों की देखभाल भी करनी पड़ेगी.

वह सचमुच डर गया था. वह आदमी भले ही छुरा

न मारता लेकिन मारपीट में लगी चोट की तकलीफों से वह अपरिचित नहीं था. अगर उस आदमी ने वैसी कोशिश की होती तो आनंद को शायद अपने आपको ठीक तरह से बचाना भी नहीं आता था और इस तरह असहाय होकर पिटना निश्चय ही अपमानजनक था.

वह दिन सचमुच ही खराब था. ऊपर की मंजिल पर जंगले से घिरी, लंबी-चौड़ी छत वाले अपने कमरे में वह पहुंचा तो उसने पाया, वह फिर वहीं बैठा हुआ था, स्थिर, जैसे माफी-सी मांगता हुआ.

इस बार उसकी मौजूदगी पर आनंद यकायक गुस्सा नहीं हो पाया. बल्कि वह हताश हो गया. हल्के हरे रंग की साफ-सुथरी दीवार पर आनंद ने कभी एक कील लगायी थी. उसी कील के माथे पर बड़े इत्मीनान के साथ हमेशा की ही तरह वह नन्हा-सा मच्छर बैठा था. वह नन्हा-सा मच्छर पिछले कुछ दिनों से एक और समस्या बन गया था.

आनंद का मकान, यों तो काफी होशियारी से बनाया गया था. बल्कि कहा जा सकता है कि ऐसी घटनाओं के प्रति सावधानी बरतने का खासा खयाल रखा गया था दरवाजे और खिड़कियों में दुहरे पल्ले लगे हुए थे जिनमें से एक में बारीक जाली थी जिससे हवा तो अंदर आ सकती थी लेकिन मच्छर नहीं आ सकता था. जालीदार पल्लों के साथ स्प्रिंग भी थे ताकि असावधानी से खुले छोड़ देने पर भी वे खुद-ब-खुद बंद हो जायं. ऐसी हालत में कोई बहुत ही फुर्तीला और चालाक मच्छर ही अंदर आ सकता था. वह भी सिर्फ इस शर्त पर कि वह अंदर आने की घात में काफी देर से वहीं डटा रहा हो.

आनंद अगर इस बात पर विश्वास कर भी लेता कि वह मच्छर उसके साथ ही साथ चालाकी से अंदर आया है तो इस बात पर यकीन करना मुश्किल होता कि इतनी जल्दी वह अंदर आने के बाद कील खोज कर उस पर बैठ भी गया. ऊंघने भी लगा.

आनंद को उसकी इस मक्कारी से जबर्दस्त चिढ़ थी. आनंद को पता था कि वह ऊंघ नहीं रहा था बल्कि निश्चय ही वह कोलतार की नहीं-नन्हीं बूंदों जैसी चिपचिपी आंखों से आनंद की एक एक हरकत पर गौर कर रहा होगा. और बेहूदगी यह कि बैठने के लिए वह इतने बड़े कमरे में सिर्फ वह कील ही चुनता था.

मच्छर मारने के लिए आनंद एक बार लंबी मूठवाला कड़छीनुमा, प्लास्टिक का हथियार भी खरीद लाया था लेकिन कील के ऊपर बैठे उस मच्छर को इस हथियार से मारना आसान नहीं था. इस कोशिश में एक बार वह हथियार में छेद भी कर बैठा था.

यों उस बदतमीज कीड़े में धीरज की भी इन्तहा थी. वह तब तक इंतजार कर सकता था जब तक कि आनंद कपड़े बदल कर सोने से पहले कुछ पढ़े, बत्ती बुझाए, लेट कर ऊंघे और फिर सो जाय. ठीक पहली नींद आने के बाद ही शायद वह धूर्तता के साथ मुस्कराता होगा और कील से उतर कर आनंद की ओर चल देता होगा. अक्सर वह उसके बदन के किसी न किसी हिस्से में काटने में सफल हो ही जाता था.

आनंद और उस नन्हें-से कीड़े की लड़ाई काफी अरसे से चली आ रही थी. वह छोटी-सी लड़ाई कितनी कुशलता और सूझबूझ से लड़ी जाती थी, इसका एहसास सिर्फ छापामार युद्ध देखकर ही हो सकता है.

कभी-कभी नींद में मच्छर के निकट आने पर किसी छोटे-मोटे हवाई जहाज की-सी भिनभिनाहट सुनाई पड़ जाती तो उसकी नींद खुल जाती थी. उसकी हथेली इस बात के लिए तैयार हो जाती थी कि वह कान के पास बैठे और हथेली वहां जा टकराए.

मच्छर के बैठते ही हथेली मार बैठने पर चालाक मच्छर बिना कोई नुकसान उठाए भाग खड़ा होता था. इसलिए आनंद अक्सर इस बात का इंतजार करता था कि वह वहां बैठे और बाकायदा डंक जमा दे.

लेकिन मच्छर को भी उसकी चालाकियों का पता चल गया था. अक्सर डंक जमाने के बावजूद थप्पड़ वहां पहुंचने से ठीक एक पल पहले वह उड़ लेता था. और ऐसे कई झूठ बोलने के बाद वह मच्छर यकायक आनंद के शरीर पर किसी ऐसी जगह काट लेता था जहां उसे गुमान भी न हो सके.

ऐसी हालत में तिलमिलाता हुआ आनंद उठ कर बत्ती जलाता था और कड़छी जैसा प्लास्टिक का हथियार उठा लेता था. उसके बाद मच्छर की भागदौड़ लगभग दयनीय ही होती थी. कड़छी नुमा हथियार आखिरकार कहीं न कहीं उसे दबोच ही लेता था. आनंद जिस वक्त मच्छर की लाश नजदीक से देखता था, उसे एक अलौकिक सुख मिलता था.

इसके बाद उसे बहुत अच्छी नींद आती थी. यह दूसरी बात है कि अगले रोज ठीक उसी जगह वैसा ही एक और मच्छर बैठा मिलता था.

लेकिन वह दिन यों भी खराब था कि कमरे में घुसते ही सबसे पहली चीज उसे जो दिखी, वह थी वही मच्छर.

* *

आनंद निश्चय ही इस वक्त इस दूसरी लड़ाई के लिए तैयार नहीं था. बल्कि पिछली थोड़ी देर में ही थकने के बाद इतनी प्यास लग रही थी कि वह खासी कमजोरी महसूस कर रहा था. ऐसे वक्त में उसे यह भी डर हुआ कि शायद इस बार यह मच्छर खुद भी लड़ाई में उसका साथ नहीं देगा बल्कि उसी रहस्यमय आदमी की तरह लिजलिजे दांत चमका कर एक ओर चल दिया.

आनंद ने घबरा कर बत्ती बुझा दी और तेजी से कमरे से बाहर आया गया.

उस सोई हुई बस्ती में काफी सन्नाटा था. बहुत दूर कोई जिद्दी कुत्ता रुक-रुक कर भौंक देता था. इसी लापरवाही भरी खामोशी में एक आवाज गूंजी, किसी के हंसने की.

आनंद ने घूम कर देखा. वही थे. वही तीनों. अनवर और उसके दो घटिया दोस्त. काफी फासलो पर

अपनी छत पर पीली रोशनी वाले बल्ब के नीचे कतार में खड़े थे. वे फिर हंसे और इस बार एक साथ मिल कर हंसे.

इसके आगे आनंद कुछ भी बर्दाश्त करने को तैयार नहीं था. वह सब कुछ उसके व्यक्तित्वमात्र को एक चुनौती था. लगातार होती जा रही ज्यादतियों के खिलाफ यकायक उसने एक फैसला कर लिया — अब वह प्रतिरोध करेगा, जरूर करेगा, पूरे जोर से करेगा.

हां, यह दूसरी बात है कि इस फैसले को हाथ में पकड़ने के बाद वह थोड़ा बेढंगा-सा हो आया क्योंकि शायद वह किसी तरह के फैसले के लिए बना ही नहीं था. वह इस तरह डगमगाने लगा जैसे उसने अपने से कहीं ज्यादा वजनी कोई चीज बलात उठा ली हो.

कमरे के दरवाजे के बाहर खुली छत को घेर कर जो जंगला खड़ा हुआ था, उसे आगे बढ़ कर उसने थाम लिया और आगे की ओर झुक गया. दूसरी तरफ की छत पर उजाले की गुफा में वे तीनों अभी हंसे जा रहे थे.

आनंद पसलियों का पूरा जोर लगा कर ऊंची आवाज में कुछ बोला. उसने जो कुछ कहा वह लगभग इस तरह था —जनाब, आप दूसरों के लिए परेशानी पैदा करने वाली यह बत्ती बंद कीजिए.

उजाले की उस गुफा में खड़े लोगों की हंसी यकायक रुक गयी. आनंद ने और अधिक उत्तेजित हो कर वही बात फिर दुहराई. इस बार वे तीनों हिले और बड़े इत्मीनान से वहां पड़ी कुर्सियों पर जा बैठे.

बोलते-बोलते उसका गला खुश्क हो गया और आंखें इस कदर सुर्ख हो गयीं कि खून टपकने को हो आया. पसलियों की जड़ों में तीखी चुभन महसूस होने लगी और होंठों के सिरों पर लंबी दौड़ से थके घोड़े की तरह झाग निकलने लगा. पसलियों के तीखे दर्द पर काबू पाने की भरपूर कोशिश करते हुए एक आखिरी वाक्य उसने बोला — और जनाब बेहूदगा घुसेड़ कर रख दूंगा हां, घुसेड़ कर. समझ में आया, घुसेड़ कर. . .

आनंद ने लगभग बेचारगीभरी आवाज में रावल को बताया था कि इतना बोलने के बाद वह बेहोश हो गया और जंगले के पास ही गिर गया.

—हो जाता है. अक्सर ऐसा हो जाता है, रावल ने उसे सांत्वना देते हुए अपनी आवाज को भरसक भारी बना कर कहा, बात ये है कि आदमी को गुस्सा ज्यादा आ जाय तो समझो गुस्से से ही काफी दबाव पड़ता है और गुस्से में बोलने से तो पेट में गैस भी बनने लगती है.

आनंद इस बात से संतुष्ट नहीं हो सका, यह रावल ने महसूस किया. निराशा के साथ आनंद ने अपने दोनों बाजू लाचारी की तरह नीचे लटका लिये, बिल्कुल ढीले, जरा-सी आहट पर झड़ कर गिर पड़ने को तैयार.

□□□

द्वारा श्री शिवचरणलाल,
७८, दुर्विजय गंज,
लखनऊ.

कच्छी लोककथा

राजकुमार लाखा

राजकुमार लाखा प्रातः दातून कर रहे थे कि उनकी भाभियों ने उन्हें रंग से सराबोर कर दिया. पांचों रानियों में से एक सोढ़ारानी को यह तनिक भी अच्छा न लगा कि उसके अपने पुत्र पर किसी भाभी ने रंग नहीं डाला. उसने रंग का भरा एक घड़ा लाखा के पास पहुंचाया और उसे उसकाया कि वह भी भाभियों पर रंग डाले. जब लाखा पर दुबारा रंग की बौछार होने लगी तो उसने भी पिचकारी से भाभियों को रंग दिया. दुर्भाग्यवश उस रंग से सोढ़ारानी भी जो जानबूझ कर कपड़े बदल कर मुंह छुपा कर उस झुंड में खड़ी थी, रंग से सराबोर हो गयी. इस पर वह क्रोधित हो गयी और जामफूल के पास शिकायत ले गयी.

उसकी इस हरकत से जामफूल भी नाराज हो उठे और उसे देश-निकाला दे दिया. लाखा ने पिता के आदेश का पालन किया किंतु जाते-जाते कह गया कि जो कोई जामफूल के स्वर्ग जाने अथवा शीणाय सरोवर के सूखने का समाचार मेरे पास सर्वप्रथम लायेगा, उसका सिर मैं धड़ से अलग किये बिना न रहूंगा.

और लाखा ने अनहिलपुर-पाटण में जा कर वहां के शासक सामंत सिंह के यहां शरण ली. वह राजकाज संबंधी उसके गुणों पर इतना मुग्ध हुआ कि उसने अपनी पुत्री का ब्याह लाखा से कर दिया.

उधर लाखाकुमार के कच्छ छोड़ते ही वर्षा ने भी वहां से विदा ले ली. अकाल पड़ गया. जामफूल और उसकी एक रानी भी संतप्त हो चल बसे. प्रजा लाखा की वापसी के लिए बेचैन हो उठी. ऐसे में बचपन में लाखा के साथ खेली हुई डाही कुमारी तानपुरा ले, छद्मवेष में घूमती-फिरती मध्यरात्रि के समय अनहिलपुर-पाटण पहुंच लाखा कुमार के शयन-गृह के नीचे आ पहुंची. स्वदेश के मधुर संगीत को सुनकर वह उठ बैठा. उसने झरोखे में से पूछा—मुझे स्वदेश लौटने की मांग करनेवाले तुम्हारे दुखी हृदय को किसी ने ठेस पहुंचायी है?

चतुर डाही ने लाखा की आवाज पहचान ली और बोली—फूल तो अब बगीचे में ही दिखलाई पड़ता है. शीणाय सरोवर की शोभा जाती रही. यह सुन लाखा को बड़ा आघात पहुंचा. प्रातः होते ही वह सामंत सिंह से आज्ञा लेकर दलबल सहित स्वदेश कच्छ को लौट चला. और कच्छ की भूमि पर उसके चरण पड़ते ही वहां मूसलाधार वृष्टि होने लगी. □□□

अपना-अपना महाभारत

• जवाहर सिंह

बुटाई ने चाय का एक हल्का-सा घूंट ले कर कुछ अजीब ढंग से मुंह सिकोड़ा और गिलास को जोर से पटक दिया—साला, यह चाह है या शरबत ...लीकर का कुछ पता ही नहीं चलता ...

कांच का गिलास बांस के खंभे से टकरा कर चूर-चूर हो गया.

रामराज, धनपत और खोमारी होठों से चाय का गिलास लगाये भौंचक्के-से बुटाई के चेहरे की ओर देखने लगे. बुटाई की नाराजगी का काई कारण उनकी समझ में नहीं आया. ...इतनी बढ़िया... मीठी चाय बुटाई ने क्यों फेंक दी ...और केवल चाय ही नहीं फेंकी, शीशे का गिलास भी फोड़ दिया—साला, पगला गया है क्या ...! दो साल पर कलकत्ते से लौटा है ...तो इसके दिमाग का कोई थाह-पता ही नहीं मिलता ...

—माय...! यह चाह बनी है या लस्सी ! ... फिर पानी गरम करने को बोल दो, मैं खुद बनाऊंगा ... वह बाहर से ही इतने जोर से चिल्लाकर बोला कि आंगन में उसकी पत्नी भी आवाज सुन ले.

बहू ने अपनी सास की ओर आश्चर्य से देखा—माईजी, अभी तो एक लोटा चाह बनी है ... फिर काहे को पानी गरम होगा ... !

बुढिया ने हाथ के हुक्के को दीवाल से टिकाया और दोनों घुटनों पर हाथ रख कर 'हाय...राम' कर के उठी. दरवाजे पर आकर बोली—किसुना की माय पूछ रही है कि अब पानी गरम करके का होगा .. !

—उसका कपार होगा ...! कान में क्या ठूसा है—केला ...! सुनती नहीं, फिर चाह बनेगी ...! बुटाई ने पैंट की जेब से चार मीनार की डिब्बी निकालते हुए तमक कर कहा.

धनपत गिलास के पेंदे में बची चाय की अंतिम किस्त को जोर से सुड़कते हुए बोला—क्यों बुटाई भाय, चाह तो फसट किलास बनी है ...तुमको काहे नहीं अच्छी लगी?

तब तक बुटाई ने डिब्बी से एक सिगरेट निकाल ली थी. उसका एक सिरा डिब्बी पर ठोकता हुआ लापरवाही से हंसकर बोला—तुम लोग ठहरे साल-छह महीने पर कहीं मेले-ठेले में चाह पीनेवाले मनई ...शरबत की तरह मीठी चाह गटर-गटर पी लोगे और होंठ चाटते हुए कहोगे कि 'हाई किलास' की चाह है. लेकिन यहां तो सिगरेट और चाह पर ही जिंदगी चलती है... होटल का काम तो बिना सिगरेट-चाह के होगा ही नहीं. दिन भर चाह और सिगरेट ...चाह और सिगरेट, एक घंटा भी न मिले तो मेरा माथा दुखने लगता है.

उसने होठों के बीच सिगरेट को तिरछे दबाया और लाइटर जला कर एक गहरा कश लिया. होठों के बिलकुल दूसरे किनारे से धीरे-धीरे धुआं निकालते हुए बोला—असल में धनपत भाई, बंगालियों के साथ रहते-रहते मुझे भी बंगला चाह पीने की आदत हो गयी है ... खूब कड़ी लीकरवाली चाह.

...इस्स ! साला, सिगरेट भी बंगालियों की ही तरह पीना सीख गया है ... ! खोभारी ने मन ही मन कहा—बलौक के डाकदर दासबाबू भी तो ऐसे ही मुंह में एक किनारे सिगरेट दबाये रोगियों का हाल-चाल पूछते रहते हैं ...की रे, पेट में दोरद होता हाय ... कोल में किया-किया खाया रिहा ....खोमारी को हंसी आ गयी.

—यों हंसते हो खोभारी भाय ...! बुटाई को लगा कि उसका सिगरेट पीना देखकर ही खोभारी हंसा है.

—किसुना का माय कहती है कि अब दूध कहां है कि फिर चाह बनेगी ... बुढ़िया फिर दरवाजे पर आकर खड़ी हो गयी थी.

—माईजी, बोल दीजिये कि बटोरन काका की गाय एक घंटा के बाद लगेगी, तो वह दूध देने को बोले है. बुटाई की पत्नी सास की ओट में पीछे खड़ी सकुचाते-शरमाते बोली.

—उसी समय क्यों नहीं बोली ...? ...मुंह में क्या भरा था—कद्दू ! आंखें तरेरकर पत्नी की ओर घूरते हुए बुटाई चीखा. मेरे सूटकेस में 'बिलैती' दूध का डब्बा है, निकाल लेना. साला बुटाई किसी की गाय-भैंस के दूध के आसरे चाह नहीं पीता है ...सारा सामान सूटकेस में बंद कर कलकत्ते से ही चला है.

उसकी पत्नी दौड़ती हुई आंगन की ओर भागी, जैसे बुटाई की तनी हुई भौंहें उसे धक्का मार कर घर की ओर ठेलती जा रही हों.

बुटाई ने अपने साथियों की ओर हिकारत से देखा. उनके चेहरों पर उसका रोब चिपका हुआ था. उसे प्रसन्नता हुई ...एक गहरा संतोष. गांव में पहली विजय तो उसे मिल गयी ...साथियों पर धाक जम गयी थी. लेकिन अब देखें ...आगे का प्रोग्राम कैसा होता है, असली लड़ाई तो वही है ... गांव में भी शायद रेडियोवाली खबर लोगों को मालूम हो गयी होगी ... बाबू टोले में कई लोगों के पास रेडियो हैं. नंदलाल सिंह ने जब सुना होगा कि सरकार ने कानून बनाकर हरिजनों और गरीब लोगों के सारे कर्ज माफ कर दिये, और उनकी बंधक पड़ी जमीन बिना पैसा दिये ही लौटवा रही है, तब तो उस मुच्छर राम ने अन्न-पानी सब छोड़

दिया होगा.

अपने मालिक नंदलाल सिंह का नाम बुटाई ने मुच्छर राम रख दिया था. गिलहरी की पूंछ की तरह बेतरतीब फैली उनकी मूंछें कुछ अजीब घिनौनी-सी लगती भी थीं. एक क्षण के लिए नंदलाल सिंह का वह मूंछयुक्त बदसूरत चेहरा उसकी आंखों में कौंध गया. दो साल पहले की वह घटना. पांच ही दिन पहले वह गौना करा कर गंगौलीवाली को घर लाया था. शादी के समय तो वह दुबली-पतली नन्हीं-सी बच्ची थी. देख कर उसका मन न जाने कैसा-कैसा हो गया था. लेकिन पांच साल के बाद जब गौना करा कर ले आया, तो सुनयनी को देख कर वह पहचान भी न सका था. उसका तो जैसे चोला ही बदल गया था. अंग-अंग से जवानी गामा से धान की बालियों की तरह फूट-फूट कर निकल रही थी. इन्हीं बालियों को सहेजने-संवारने में वह इतना व्यस्त हो गया था कि मालिक के खेत में हल चलाने की बात भी उसे याद न रही थी.

और तभी एक दिन पौ फटने के पहले ही आकर बाबू नंदलाल सिंह ने उसकी झोपड़ी के दरवाजे पर इतनी जोर से लात मारी थी कि उसे लगा था, भूकंप आ गया. बांस के फट्ठों से बनीं झोंपड़ी की दीवारें बड़े जोर से हिल उठी थीं और सारा घर चरमरा उठा था. वह हड़बड़ाकर चारपाई पर से कूद कर दरवाजे की ओर भागा था. पर दरवाजा खोलते समय उसे अपनी पत्नी का ख्याल हो आया था. अस्त-व्यस्त कपड़ों में सुनयनी अब भी बेखबर पड़ी थी. उसका हाथ पकड़ झकझोरते हुए उसने उठाया था—उठ सुनयनी, जल्दी भाग . . . धरती डोल रही है . . . भाग. . . भाग. . .

लेकिन दरवाजा खोला, तो मालिक नंदलाल सिंह भूकंप के रूप में खड़े मिले थे. वह बेतरह सिटपिटा गया था. नंदलाल सिंह की आंखें उस पर नहीं, कमरे के भीतर अपने कपड़े संभालती सुनयनी पर गिद्ध की तरह टिकी हुई थीं. क्यों रे बुटइया, तू यहां मेहरी की टांग पर टांग चढ़ा कर मस्ती काट रहा है और उधर मेरा खेत परती पड़ रहा है . . . ! नंदलाल सिंह ने सुनयनी पर आंखें बिछाये होंठों पर जीभ फेरते हुए कहा था— तू तो मेहरी का रूप चाट कर जी लेगा. . . पर मेरी गृहस्थी नहीं हुई तो मैं क्या तुम्हारी . . . मार कर जीऊंगा . . . ! . . .साला देहचोर, पहले मेरा कर्जा चुका दे . . . फिर बीवी को गोद में लेकर आराम से सो रह . . .हां. मैं उसी रुपये से दूसरा हलवाहा ठीक कर लूंगा . . . नमकहराम. . . बेईमान . . . !

एक ही सांस में वह सब कुछ बक गये थे. बुटाई को लगा था कि तब नहीं, तो अब भूकंप जरूर आ गया है . . . . खून खौलकर रह गया था उसका. और उसी खौलते खून का उबाल उसके मुंह से आग की तरह निकल पड़ा था—बाबू साहब, कौन अपनी मेहरी के साथ नहीं सोता . . . ! क्या आप नहीं सोते . . . गांव के और लोग नहीं सोते . . . . ? हम गरीब हैं . . .हरिजन हैं . . .आपके कर्जदार हैं . . .तो क्या हमारी इज्जत नहीं है . . . . ! नयी दुल्हन के सामने आप ऐसी-ऐसी बेपर्द बातें बोल रहे हैं . . . गालियां दे रहे हैं . . . आखिर गरीब की भी अपनी एक इज्जत होती है . . .

——अरे वाह रे इज्जतवाले . . . ! नंदलाल सिंह ने मुंह ऐंठ कर कहा था, देखूं तो तेरी इज्जत कितनी बड़ी है . . . ! अपने दादा का खाया कर्ज तो अभी चुका नहीं पाया . . .जिस जमीन पर खड़ा हो कर अपनी इज्जत दिखा रहा है, वह भी तो बीस वर्षों से मेरे यहां बंधक पड़ी हुई है . . . और बन रहा है इज्जतदार . . ! हरामखोर साला, मुझसे जबान लड़ाता है . . . !

बुटाई को लगा था कि उसे गांव की पंचायत में नंगा कर के चूतड़ पर जूते लगाये जा रहे हैं . . . काश, यह धरती फट जाती और वह उसमें डूब जाता!

सिर झुकाये ही वह बोला था—केवल अस्सी रुपये ही तो मेरे बाबा ने किसी जमाने में आपसे लिये थे . . . . ! उसी के एवज में वह आपका हल चलाते-चलाते खुद भी चले गये . . . मेरा बाप जिंदगी भर आपके खेतों में बैल की तरह खटता रहा और बीमार होकर बिना दवा-दारू के भरी जवानी में मर गया, सात वर्ष की उम्र से मैं आप की भैंसों की चरवाही करता रहा और पंद्रह लगते-लगते आपने हल की मूंठ मुझे पकड़वा दी. दस बरस हो गये मुझे भी आपका हल चलाते . . . क्या अब भी आपके अस्सी रुपयों की सधान न हो सकी . . . ? मेरे बाप की शादी में पचास रुपये दे कर आपने इस घर की जमीन केवाला लिखवा ली थी, तब से सैकड़ों रुपये आपको मेरे बाप ने दिये . . . मैंने भी पचास रुपये दिये हैं लेकिन आप

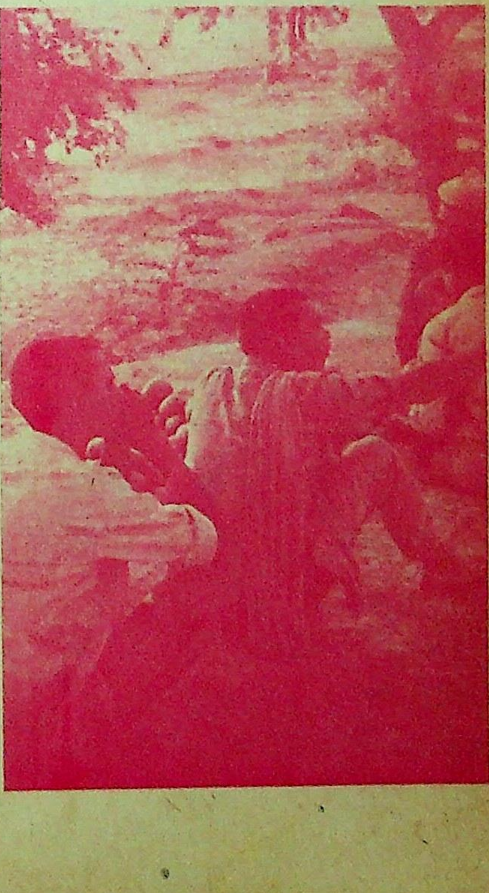

● फ़ो. पी. सक्सेना

उत्साह भरा जीवन

नेस्कैफे® के ताज़ा और स्फूर्तिदायक स्वाद से

नेस्कैफे®
एकमात्र इन्स्टैन्ट कॉफी
जो १०० % शुद्ध कॉफी से
बनी है

NESCAFÉ instant coffee
Made from finest
100% pure coffee

दुनिया भर में सबसे ज्यादा बिकने वाली
इन्स्टैन्ट कॉफी

NSC-2/76 HIN

जमीन का कागज नहीं लौटा रहे हैं, तो हम क्या करें...?

—जरा सुनो तो इसकी बातें...! नंदलाल सिंह बेशर्मी से हंसे थे, बुटाई की मां, जरा अपने बेटे का कानून बघारना तो सुनो....! साला, सबेरे-सबेरे ताड़ी-दारू पी आया है क्या...! तुम लोगों ने मेरे खेत में मजदूरी की, तो उसके बदले में दो सेर अनाज और 'जलखई' भी तो देता रहा हूं.....तुम लोगों का मन सुराज होने के बाद बहुत चढ़ गया...तभी तो इतनी लंबी-लंबी बातें निकल रही हैं तुम्हारे मुंह से. असल बाप का बेटा है, तो मेरे सारे रुपये अभी लौटा दे...मैं ढूंढ़ लूंगा दूसरा हरवाहा.

ठेस लगने से चोट तो सबको लगती है...पक्की सिलाई वाले मजबूत से मजबूत जूते का मुंह भी ठोकर लगने से कभी-कभी बेतरह खुल जाता है. बुटाई भी इस करारी चोट को बर्दाश्त नहीं कर सका था. उसका मुंह फटे जूते-सा बेबाक खुल गया था——ठीक है बाबू सा'ब, आपके रुपये मिल जायेंगे...पाई-पाई का हिसाब मिल जायेगा. एक साल के अंदर-अंदर अगर सारे रुपये आपके मुंह पर बुटाई ने नहीं फेंक दिये...तो....अपने बाप की बूंद का नहीं...!

पार्थ-प्रतिज्ञा...! जयद्रथ-वध की पार्थ प्रतिज्ञा...गांव में एक बार तिरहुतिया नौटंकी पार्टीवालों ने 'पार्थ-प्रतिज्ञा' नाटक किया था....तड़-तड़...तड़...धराम...धराम..नगारे की चोट पर अर्जुन ने प्रतिज्ञा की थी ...सूर्यास्त के पूर्व अगर...लेकिन परिणाम की कल्पनाकर बुटाई का कलेजा कांप गया था! ...कहां है कृष्ण जैसा मायावी कोई सहायक उसका जो चक्र सुदर्शन से सूरज को छिपा दे....समय के रथ को रोक दे...समय के रथ को...

और उसी दिन अपनी पत्नी की हंसुली बीस रुपये में ठाकुर साह के यहां बेंच कर वह रात की गाड़ी से कलकत्ता के लिए चल पड़ा था. महाभारत युद्ध शुरू हो गया था...निहत्था पार्थ...बंधु-बांधवहीन पार्थ ..अपना रथ भी स्वयं चलाना और दुश्मनों से युद्ध भी करना...! कलकत्ते की बेशुमार भीड़वाली गलियों में जब वह अकेला ही ठेला खींचता हुआ गुजरता, तो कभी-कभी उसे नौटंकी वाले उस अर्जुन का चेहरा याद हो आता. सूरज को डूबता हुआ देख कर अर्जुन कितना घबड़ा गया था ...चेहरा पसीना-पसीना हो गया था. और बुटाई अपने चेहरे का पसीना गमछे से पोंछ कर मुस्करा पड़ता.

लेकिन समय का रथ उसके रोकने से नहीं रुक सका था. देखते-देखते दो वर्ष बीत गये पर कहां मार सका वह जयद्रथ को ...अपने पिता के हत्यारे जयद्रथ को...! इस बीच कई बार वह घायल हुआ...लहू-लुहान हुआ...थक कर फुटपाथ पर बेहोश हो गिरा भी ...लेकिन प्रतिज्ञा पूरी नहीं कर सका. एक बार ढाई सौ रुपये जमा भी हो चुके थे कि पुलिसवालों ने ओवर लोडिंग के केस में चालान कर दिया——अकेला ठेलावाला पांच बोरे से अधिक लाद कर नहीं ढो सकता, उसके ठेले पर सात बोरे थे. जान छुड़ाते-छुड़ाते सारी जमापूंजी समाप्त. फिर होटल की नौकरी में आ गया था.

महीने में सौ रुपल्ली! बेयरे तो दस-बीस रुपये रोज 'टिप' से ही कमा लेते हैं पर यहां तो उसी सौ रुपये में अंगा-धोती भी...बीड़ी-तंबाकू भी...क्या बचा पायेगा आदमी...! हर महीने घर पर कुछ न भेजूं तो यहां का काम ही न चले.

—बेटा, पानी गरम हो गया, किसुना की माय पूछती है कि बिलैती दूध कैसे डाला जायेगा...? बुढ़िया ने फिर दरवाजे पर प्रकट होकर कहा तो युद्ध के मैदान में दौड़ते हुए पार्थ के रथ के दोनों चक्के जैसे अचानक ही गहरे कीचड़ में धंस कर सहसा रुक गये.

—बिलकुल जाहिलों से पाला पड़ा है...! बुटाई झल्ला उठा, अब चाय में दूध डालना भी बुटाई ही सिखायेगा...एकदम जाहिल-चपाट औरत...देहाती

* *

वह उठकर अंदर चला गया. कुछ देर बाद लौटा तो उसके हाथ में चाय का गिलास था. थोड़ी देर तक मित्रों से इधर-उधर की बातें होती रहीं...कलकत्ते की रंगीन जिंदगी की बातें...हंसी-मजाक की कहानियां. फिर धनपत और रामराज चले गये. खोभारी बैठा रहा 'कलकतिया बीड़ी' के लालच में.

खोभारी को कलकतिया बीड़ी के बदले चार मीनार सिगरेट जब मिल गया, तब बुटाई भैया के प्रति उसकी कृतज्ञता कंठ फोड़कर निकल पड़ी——भैया. नंदलाल सिंह वाला रुपया तो इस बार दे ही दोगे...किसी तरह जान छुड़ा लो उस कसाई जोंक से. हरामी बुड्ढा उसी रुपये के बहाने सांझ-सबेरे तुम्हारे घर का चक्कर लगाया करता था...कभी-कभी तो आधी रात तक यहां बैठा रहता था. भौजी से काई बार बोला कि दुख-तकलीफ उठाने की जरूरत नहीं है किसुना की मां, बुटाई नहीं है तो क्या हुआ, मैं तो हूं. जिस चीज की जरुरत पड़े, मुझसे मांग लिया करना...खदुका-महाजन में तो लेन-देन चलता ही रहता है. लेकिन वाह रे भौजी, कभी उस बुड्ढे से भर मुंह बात भी नहीं की...घूंघट उठाकर कभी उसकी ओर देखा तक नहीं...फिर भी साले टोले-मुहल्लेवाले तरह-तरह की बातें उड़ाने से बाज नहीं आये...! अब तो सब सुनोगे ही. लेकिन भैया, काली माता की कसम खाकर कहता हूं, गंगोली वाली जैसी सती औरत इस पूरे गांव में कोई नहीं है...तुम किसी की बात पर विश्वास मत करना ...हां.

बुटाई को लगा, जैसे आग का कोई जलता हुआ गोला उसके कंठ से नाभि की ओर धीरे-धीरे उतरता जा रहा है. तेजाब की तरह सब कुछ जलता हुआ...फूंकता हुआ.

गौना के पांच दिनों के बाद ही वह कलकत्ता चला गया था. फिर कई महीनों के बाद उसे चिट्ठी मिली थी

लॅक्मे वैनिशिंग क्रीम

रूप रंग की छटा बिखेरे

कौन न उस को प्यार से छेड़े

Lakmé
VANISHING CREAM

आप पर लोगों की निगाहें पड़ीं कि रुकी रह गईं. इस मनोरम सौंदर्य और रूप की उज्ज्वलता का रहस्य है लॅक्मे वैनिशिंग क्रीम. हल्का - फुल्का और बिल्कुल प्राकृतिक, श्रेष्ठ मेक - अप का आदर्श आधार— लॅक्मे वैनिशिंग क्रीम.

सब कुछ रूपरंग के

लॅक्मे

लॅक्मे लैवेण्डर टैल्क

अनोखी फ्रेंच सुगंध का चमत्कार: बिंध गया फ्रांसिसी हुआ शिकार

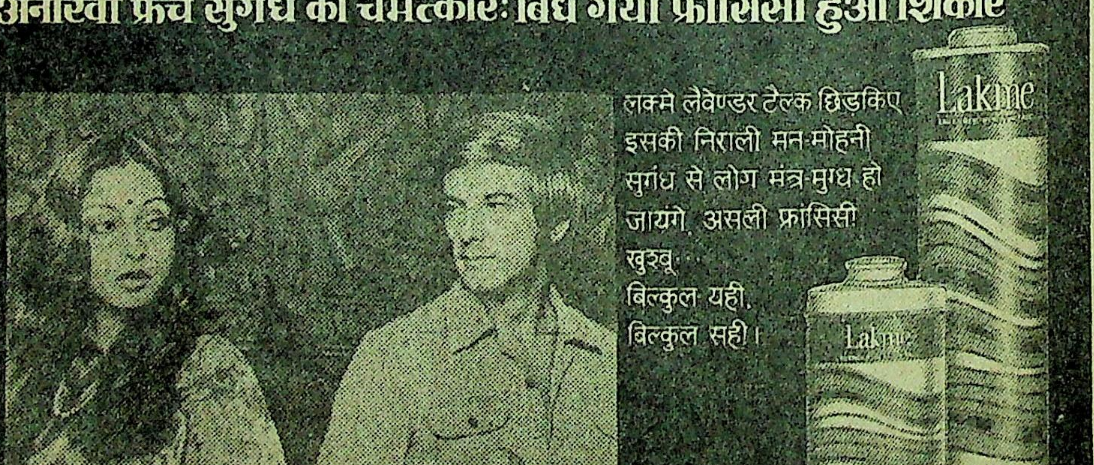

लक्मे लैवेण्डर टैल्क छिड़किए इसकी निराली मन-मोहनी सुगंध से लोग मंत्र-मुग्ध हो जायगे. असली फ्रांसिसी खुश्बू.
बिल्कुल यही,
बिल्कुल सही।

dCA/L-VC-LT/1H HIN.

कि उसे बेटा हुआ है. मैया ने ही किसी से चिट्ठी लिखवायी थी कि बचवा का नाम सिरीकिसुना जी रखा गया है. . . .किसुन भगवान की ही तरह सांवला-सलोना है. . .सुंदर है.

बुटाई मन ही मन अंगुलियों पर गिन कर कोई हिसाब लगाता रहा. . .सावन में वह घर से गया था. . . .सावन-एक . . . भादों-दो. . .आसिन-तीन. . . बेटा होने की चिट्ठी पहुंची थी, फागुन में. . .नहीं. . .नहीं, होली के बाद ही तो राम प्रसाद घर से कलकत्ता गया था, तो चिट्ठी ले गया था. . .चैत में किसुना पैदा हुआ था. . . .हिसाब तो ठीक ही आता है. . .लेकिन. . . लेकिन. .

वह चौकी पर से उठा और तेजी से आंगन की ओर चला पर दो-चार कदम चलकर ही उसके कदम रुक गये. थोड़ी देर तक वह बुत की तरह चुपचाप खड़ा रहा फिर धीरे-धीरे लौट कर उसी जगह बैठ गया. . .गुमसुम. . .

खोभारी को मन ही मन बात कचोटने लगी. . . बेकार ही वह बात मैंने कह दी! बेचारा अभी-अभी तो दो साल के बाद घर लौटा है. . .धीरे-धीरे सारी बातें उसे मालूम हो ही जातीं. . .अभी ही कह देने की क्या जरूरत थी. . .क्या! खोभारी ने अंधकार में ही टटोलकर अपने दोनों कान पकड़ लिये. . .उन्हें जोर से ऐंठा —— नहीं, अब ऐसी गलती वह जिंदगी में कभी नहीं करेगा. . . कभी नहीं. उसे एक अपूर्व शांति-सी मिली. . .दिल हलका हो गया.

—कितने दिनों की छुट्टी में आये हो भैया?. . . एक-दो महीना तो रहोगे ही. . .बुटाई का मन दूसरी ओर फेरने के लिए खोभारी ने विषय बदल दिया.

—समझो कि अब सदा के लिए ही छुट्टी लेकर आ गया हूं. . .बुटाई ने एक फीकी हंसी हंसकर कहा, अब गांव में ही रहने का विचार है. . .परदेश का मजा बहुत लूट लिया. सब जगह पैसे वालों का ही जमाना है. . . उन्हीं के लिए सारे सुख-आराम और भोग-विलास हैं. गरीब के लिए गांव ही ठीक है. . .अब तो सरकार ने कानून भी बना दिया है कि खेतों में काम करनेवाले मजदूरों को भी पांच रुपये रोजाना से कम मजदूरी नहीं मिलेगी. गांव में रहकर अगर महीने में सौ-सवा सौ भी मजदूरी मिल जाये तो कलकत्ता के चार सौ रुपये के बराबर समझो. अभी-अभी सरकार ने कानून बनाया है कि जिसको घर बनाने के लिए जमीन नहीं होगी, उसे सरकार मुफ्त जमीन देगी. . .खेती के लिए भी हरिजनों को जमीन दी जा रही है.

—अच्छा. . .! यह कानून कब पास हुआ भैया. . .? खोभारी खुशी से ताली पीटते हुए बोला, तब तो मजा आ जायेगा भैया. . .एकदम चकाचक हो जायेगा. . .

—और केवल इतना ही नहीं, असली चीज तो अभी मैंने सुनायी ही नहीं. . .बुटाई भी उत्साहित हो गया था. बोला, अब किसी साले सूबेदार-महाजन को एक पैसा भी लौटाने की जरूरत नहीं है. . .सरकार ने सारा कर्ज माफ कर दिया. बहुत दिनों से बंधक पड़ी जमीन भी बिना भरना दिये जमीनवालों को लौटा दी जायेगी. . .एक अधेला भी नहीं देना होगा.

—ऐसा. . .! तब तो हद हो गयी. . .एकदम जुलुम. . . खोभारी चौकी पर से उठकर नाचने लगा, बुटाई भैया, कहीं झूठ तो नहीं बोल रहे हो! . . .डिल्ली-कलकत्ता के शहरू लोग बड़ा झूठ भी तो बोलते हैं. चुनाव के समय हर बार तो लोग यही सब कहकर जाते हैं और फिर बाद में. . .

—अरे नहीं रे, मैं अपने कान से रेडियो की खबर सुन चुका हूं. रेडियो तो कभी झूठ नहीं बोलेगा.

—लेकिन महाजन लोग क्या ऐसे ही छोड़ देंगे. . .? खोभारी को अब भी इन सारी बातों पर विश्वास नहीं हो रहा था. .

—छोड़ना पड़ेगा! . . .सरकार के कानून से तो महाजन लोग बड़े नहीं हैं, बुटाई दृढ़ता से बोला, डोरीगंज के जमींदार पदारथ साह को कैसे अपनी चार लाख की जमींदारी छोड़ देनी पड़ी, वैसे ही महाजनों को भी छोड़ना पड़ेगा. . .सालों ने कम तंग नहीं किया है. . . जोंक की तरह सारा लहू पी गये हैं सब. लेकिन इसके लिए एक ही बात का ख्याल रखना पड़ेगा कि हम गरीबी में आपसी मेल रहे. . .फुटमत होगा, तो ये जमीन और पैसेवाले महाजन लोग सरकार की भी एक न चलने देंगे. पांच रुपये मजदूरी वाली बात भी गांव के बाबू लोगों को माननी पड़ेगी. अगर हम सभी मजदूर एक साथ मिलकर रहें. सुबह से शाम तक ये लोग खेतों में हल-कुदाल चलवायेंगे और मजदूरों देंगे डेढ़ कीलो अनाज. . .! और आनाज भी वही देंगे जो बाजार में सबसे सस्ता हो. . .जो जानवरों को खिलाया जाता हो. . .! बहुत सताया है इन लोगों ने. . .

—अब हम लोग सतायेंगे उन्हें. . .! खोभारी चहक कर बोला.

—नहीं, इसमें किसी को सताने की क्या बात है. . .! यह तो न्याय का मामला है. . .हम काम करेंगे, तो उचित मजदूरी हमें मिलनी ही चाहिये. बैल हल-गाड़ी खींचता है, तो उसको भी भरपेट खुराक मिलती है, हम तो आदमी हैं. . .

—बुटाई बेटा, रसोई बन गयी है. . .आकर खा लो. बुटाई की मां ने आंगन से ही आवाज लगायी.

—हां भैया, अब खा-पीकर आराम करो. . .भौजी थाली परोसकर कब से बैठी होगी. खोभारी ने चौकी से उठते हुए हंसकर कहा, गरमा-गर्म खाना ही अच्छा होता है.

बुटाई के होठों पर भी मुसकान आयी पर दूसरे ही पल लोप हो गयी. एक अजीब कड़वाहट से उसका मुंह भर गया.

★ ★

बुटाई अभी थाली पर बैठा ही था कि बाहर से आवाज आयी —बुटाई बेटा, कलकत्ते की सारी मिठाई अपने ही दोनों प्राणी मिलकर न खा जाना. . .दरवाजे पर मैं भी खड़ा हूं.

आवाज बाबू नंदलाल सिंह की थी, बुटाई को पहचानते देर न लगी. उसकी इच्छा हुई कि खाना छोड़-

कर पहले उसी मुच्छर राम से निबट आये. रुपये पाने की उम्मीद में कैसी मधुरी वाणी बोल रहा है बुड्ढा!... सूदखोर...हरामी आज बेटा का नाता जोड़ रहा है...!

—पहले भरपेट भोजन कर लो, तब बाहर जाना. सुनयनी ने पत्नी के अधिकार भाव से कहा. यह बुड्ढा तो रुपयों के लिए दरवाजे की मिट्टी खोदकर खा गया.

बुटाई ने पत्नी के चेहरे पर ध्यान से देखा. उसके मन में आया कि पूछे क्या बुढ्ढा केवल रुपयों के लिए ही दरवाजे की मिट्टी खोद रहा है या कुछ और के लिए भी... पर वह कुछ बोला नहीं. क्षण भर के लिए उसका मुंह चलाना बंद हो गया और वह कहीं और खो-सा गया.

—बुटाई अभी खाने के लिए बैठा है बाबूजी... थोड़ी देर दरवाजे पर ही बैठ जाइये. बुटाई की मां ने भीतर से ही जवाब दे दिया.

—अच्छा . . .अच्छा. . .! खूब आराम से खाये... खूब प्रेम से चभुलाये. . .आज किसुना की मां मन से खिलायेगी भी तो. . .नंदलाल सिंह खोखली-सी हंसी हंसते रहे लेकिन मुझे भी कलकत्ते की कालीजी का प्रसाद जरूर मिलना चाहिये. दो साल से आस लगाये बैठा हूं.

—आप आस लगाये बैठे रहिये. . .आस पूरी होने वाली नहीं है... बुटाई खाना खाकर गमछे में हाथ पोंछता हुआ बाहर निकलते ही बोला.

नंदलाल सिंह को जैसे लकवा मार गया. . .न सलाम . . .न प्रणाम . . .न हाथ जोड़ना. . .यह तो सीधे लाठी की तरह तनकर सामने खड़ा हो गया. . .और बंदूक की तरह ठांय-ठांय फायर करने लगा! कुछ क्षणों तक वह हतप्रभ से चुपचाप खड़े रहे, फिर धीरे-धीरे उनके राजपूती खून में कुछ उबाल-सा आने लगा, पर दूसरे ही क्षण उनकी खानदानी साहुकारी प्रवृत्ति ने उस उबाल को फूंक मार कर ठंडा कर दिया. उन्हें अपने पिता की कही हुई बात याद हो आयी, अपना काम निकालने के लिए गदहे को जीजाजी भी कहना पड़े तो शरमाना नहीं चाहिये बेटा !

—हें. . .हें. . .हें. . .शरीर तो खूब आबाद है बुटाई. . .! नंदलाल सिंह ने तुरत पैंतरा बदलकर घोड़े की तरह हिनहिनाते हुए कहा, होटल के बैरा की नौकरी अच्छी होती है. . .तभी तो एकदम बंगाली बाबू की तरह लग रहे हो. उनकी आंखें बुटाई की छापवाली चारखाने की लाल लुंगी और छोटे-छोटे छेदों वाली सैंडो बनियान पर टिकी हुई थीं.

बुटाई कुछ न बोला. अपने आप में खोया हुआ-सा चुपचाप खड़ा रहा, जैसे आगे आनेवाले तूफान का सामना करने के लिए भीतर ही भीतर अपने को तौल रहा हो...

—कितना दर माहा मिलता है बुटाई. . .?

—चार सौ. बुटाई ने जैसे बम-विस्फोट कर दिया.

—वाह. . .! बहुत बढ़िया. . .खूब अच्छी नौकरी है ! खूब फलो-फूलो. . .सुख-आराम से रहो. . .उन्नति करो. . .और. . .और . . .नंदलाल सिंह को आगे बोलने के लिए कोई शब्द नहीं मिल सका. आज उन्हें अपनी ही आवाज अपरिचित-सी लग रही थी...

—तब. . .बेटा बुटाई, तुम थके-हारे कलकत्ता से आये हो. . .अभी जाकर आराम करो. कल सबेरे दरवाजे पर आ जाना. . .कागज-पत्तर देख कर मैं हिसाब कर दूंगा. महाजन का रुपया जितना जल्द दे दिया जाये, वही अच्छा . . .मुरई-पलानी वाले घर में रुपये रखना भी ठीक नहीं होता है. शादी कमाई का पैसा कोई चोर-चुहार उठा ले जायेगा तो रो-कलप कर रह जाओगे... आ जाना कल खूब सबेरे. . .हिसाब-किताब साफ कर लेना.

—मेरा हिसाब-किताब तो साफ हो चुका है बाबू सा'ब. आखिर बुटाई के गले में देर से फंसा हुआ बलगम बाहर निकल ही गया, तीन पुश्तों से हम लोग आपके घर बेगारी करते रहे हैं. . .बीच-बीच में कई बार दस-बीस रुपये करके देते भी रहे हैं. फिर भी क्या आपके अस्सी रुपयों का हिसाब-किताब बाकी ही रहा. . .?

—अरे बुटाई बेटा! हंसी-मजाक करने के लिए अब क्या मैं ही बच गया हूं. . .! नंदलाल सिंह ने गले के थूक को गटक कर सूखी हंसी हंसते हुए कहा, अभी जाओ आराम करो. . .किसुना की माई से जरा ठंडा तेल सिर में मलवा लेना, गर्मी उतर जायेगी. कोई जल्दबाजी नहीं है. . .सबरे टाइम न मिले तो शाम को ही आ जाना. . .या फिर मैं ही आ जाऊंगा. .

—मैं कह चुका हूं कि मेरी ओर से आपका हिसाब बिलकुल साफ हो चुका है. . .अब मुझे एक भी पैसा नहीं देना है. . .लाल पैसा भी नहीं. बुटाई ने थोड़ा तैश में आकर कहा और अपने आंगन की ओर लौट पड़ा.

★ ★

नंदलाल सिंह कई क्षणों तक हक्का-बक्का-सा खड़े के खड़े रह गये. जब बुटाई आंखों से ओझल हो गया तब एक-ब-एक उनकी चेतना लौटी. दो कदम आगे बढ़ कर वह आंगन के दरवाजे पर से दहाड़ कर बोले—कान खोल कर सुन ले धनपत का बेटा, नंदलाल सिंह का रुपया कोई झींगी मछली नहीं है कि बिना चबाये ही निगल जाओगे. . .एक-एक पाई वसूल करके छोड़ूंगा. . .हां!. . .तुमको कलकत्ते की हवा लगी है, तो मैं हवा-बयार को फूंक मार कर उड़ा दूंगा...

—यह बंगाल और कलकत्ते की ही हवा नहीं है बाबू साब ! बुटाई फिर आंगन से बाहर निकल आया, यह हवा जमाने की हवा है. . .सारे देश की हवा है. . . अपनी सरकार की हवा है. . .आपके फूंक मारने से नहीं उड़ेगी. समझ गये न. . .!

—मान लो, आज तुमने मेरे रुपये मार लिये. . .लेकिन कल तुम्हें किसी काम के लिए कर्ज लेने की जरूरत पड़ गयी, तो गांव में कौन तुम्हें रुपये देगा ! इस बात पर भी कभी कुछ विचार किया

है. . .? नंदलाल सिंह का स्वर अपने आप ही फटे हार्मोनियम की तरह धीरे-धीरे मंद पड़ता गया.

—अब जरूरत पड़ते पर कर्ज सरकार देगी. . . सरकारी बैंक से रुपये मिलेंगे. .

—अरे, देख लेंगे कि सरकार और बैंक तुम लोगों को कितने रुपये देता है. . .बैंक से कर्ज लेना क्या हंसी-ठट्ठा है!. . .जिसके पास जमीन-जायदाद है, उसको तो बैंक से कर्ज लेने में साल-छह महीने लग जाते हैं. . .तुम जैसों मुफलिसों को तो बैंक वाले दरवाजे पर से ही गर्दन में हाथ डाल कर भगा देंगे.

—भगा देंगे, तो भाग आयेंगे. . .लेकिन आपके दरवाजे पर अब कर्ज लेने नहीं जायेंगे. बुटाई ने दृढ़ता से कहा.

नंदलाल सिंह उसकी ओर देखते रहे. . .समझौते की अब कोई राह उन्हें दिखाई नहीं दे रही थी. सहसा एक पतली-सी गली दिखाई पड़ गयी. बोले—क्या बैंक और सरकार अपने कर्जों का सूद तुमसे नहीं लेगी. . ?

—लेगी, लेकिन आप की तरह गर्दन तो नहीं काटेगी. . . जोंक की तरह सारी जिंदगी खून तो नहीं पीती रहेगी. . . .

—अच्छा. . .अच्छा. . .! यह भी देख लेंगे. . .सरकार को बहुत बार देखा है. . .! नंदलाल सिंह मुड़ कर दो कदम चले, फिर रुक कर बोले. याद रखो बुटाई, जो बादल बहुत गरजता है, वह बरसता नहीं. सरकार केवल गरजती है. . .उसी से यह मत समझ लेना कि यह बरसेगी भी. . . और वह कुछ बड़बड़ाते हुए आगे बढ़ गये.

* *

बुटाई ने एक लंबी सांस ली और धीरे-धीरे छोड़ता रहा. यह राहत की सांस थी. . . क्षणिक अंधकार समाप्त हो गया था और सूरज का गोला क्षितिज पर फिर सहसा दिखाई पड़ने लगा था. . .जयद्रथ-वध का सुयोग . . .अच्छा. . .! देखें, आगे क्या होता है. . .जयद्रथ मारा जाता है या नहीं. . .बुटाई ने जैसे अपने आप से ही कहा और अंदर चला गया.

सुनयनी गौनेवाली लाल साड़ी पहने चारपायी पर बैठी थी. किसुना शायद दूध-पीते पीते उसकी छाती से चिपका सो गया था. कमरे में बुटाई के पहुंचते ही उसने बच्चे को खाट पर सुला दिया और सिर झुकाकर एक तरफ खड़ी हो गयी. बुटाई को गौने के बाद वाली पहली राद यात हो आयी. . .ठीक ऐसे ही . . .इसी साड़ी में उस रात भी तो यह खड़ी थी. उस रात घूंघट कुछ अधिक लंबा था. . .शरीर कुछ अधिक सिकुड़ा हुआ, बस.

उसकी आंखें बच्चे पर टिक गयीं. वही आग का जलता हुआ गोला फिर कंठ से नाभि तक . . .एक अजीब-सी जलन से वह फड़फड़ा उठा. वह अपने बेटे को पहली बार देख रहा है. . .फिर यह चलन. . .उस साले खोमरिया ने कैसी एक आग भीतर लगा दी. . .; उसकी बेचैन आंखें बड़ी बेसब्री से बच्चे के चेहरे पर कुछ तलाशती-सी रहीं. . .शायद कोई पहचान. . .कोई प्रयत्न!. . . . . .यह तो ठीक मेरे ही जैसे है. . .कान. . .नाक. . .आंखें सांवला रंग भी. . .! बचपन में मैं भी ऐसा ही रहा हूंगा. . .ठीक ऐसा ही. . .! बुटाई ने जैसे अपने आपसे ही कहा. . .अपने को ही समझाया. . .पर भीतर का जलता हुआ गोला अब भी कहीं कलेजे में ही अटका-सा रहा. उसकी आंखें कमरे में इधर-उधर कुछ तलाशती रहीं—शीशा !. . .शीशे में वह अपना चेहरा देख लेना चाहता था!. . .उसे लगा, वह अपना ही चेहरा जैसे भूल गया है.. . .एक लंबे अरसे से उसने शीशे में अपने को नहीं देखा है.

——क्या ढूंढ़ रहे हो. . .? सुनयनी ने कुछ परेशान स्वर में पूछा.

—शीशा. . .मुंह देखनेवाला शीशा. . .! बुटाई की आवाज जैसे किसी गहरे कुएं में से निकली. सुनयनी को हंसी आ गयी. मुंह में आंचल ठूंस कर वह हंसी रोकने की चेष्टा करती रही पर अंत में खिलखिलाकर हंस ही पड़ी. हंसते-हंसते ही पति की ओर तिरछी नजरों से देख कर बोली——क्या तुम भी टिकुली-सिंदूर करोगे. . .? रात में शीशा लेकर क्या करोगे. . .?

उसने ताखे से उठाकर शीशा पति के हाथ में दे दिया . इच्छा हुई, सिंदूर की डिबिया भी उठाकर सामने रख दे पर स्वयं ही लजा गयी. खड़ी-खड़ी मुसकराती रही.

बुटाई ने दीपक के पास जाकर शीशे में अपने को देखा . . .देखता रहा. फिर छिपी नजरों से चारपाई पर सोये बच्चे को देखा. उसके होठों पर एक चटक मुसकान खिल गयी. चारपाई के पास आकर वह बच्चे के चेहरे पर झुका और अपने होंठ उसके मक्खन जैसे गाल पर रख दिये.

सुनयनी देखकर मुसकराती रही. उसके मन में आया, वह भी होंठ बच्चे के दूसरे गाल पर रख कर आंखें बंद कर ले. . .बंद ही रखे.

——आज सोओगे नहीं क्या. . .? सुनयनी ने जंभाई लेते हुए पूछा.

——तुम सुला दो. . .

——हत्. . .! तुम भी क्या कोई बच्चा हो. . .! वह हंसी. वहां कौन सुलाती थी. . .? बुटाई ने तकिये पर सिर रखकर आंखें मूंद लीं. उसे लगा, उसकी बंद आंखों में भी एक अजीब-सी रोशनी झलमला रही है.

——दीया बुझा दूं. . .? सुनयनी उसकी बगल में आकर बोली.

——नहीं, जलने दो. दीया जलता रहता है,तभी अच्छा लगता है. . . .

□□□

हिंदी विभाग, राजकीय डी. एम. कालेज
इम्फाल (मणिपुर).

शायद यह अंतहीन

दिनेश पाठक

वैसे बात यहां से शुरू की जानी चाहिए कि पंडित गोबरधन पांडेयजी का निवासस्थान किस टोले में है? हालांकि पंडितजी के अनुसार इससे क्या फर्क पड़ता है कि कोई किसी भी टोले में रहे? हर कोई अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार किसी न किसी टोले-मुहल्ले में तो रहता ही है. फिर भी यह एक तयशुदा बात है कि जिस टोले में पंडितजी रहते हैं या रहते चले आ रहे हैं, वहां रहे जाने के प्रति शायद ही कभी उनके हृदय ने खुलकर गवाही दी हो. अकसर विपरीत इसके, उन्हें इस टोले में रहे जाने के प्रति जब-तब अपने अन्तस के घोरतम विरोध को सहना पड़ा है. . .लेकिन स्थिति यह है कि आज भी वे इस टोले को नहीं बदल सके हैं.

यह एक निहायत गंदा व बदबू से इस कदर गमकता हुआ टोला है कि यहां किसी भी भद्र पुरुष को जाना स्वीकार्य नहीं होता. यदि किसी को किन्हीं विवशताओं के तहत जाना ही होता है तो बिना नासिकाओं में रूमाल रखे घुस पाना संभव नहीं हो पाता. हालांकि टोले वाले पूरी तरह इस गंदगी व बदबू के आदी हैं, लेकिन पंडित गोबरधन पांडेयजी हैं कि आज भी टोले में घुसते व निकलते समय नाक में धोती का एक सिरा रखना व 'राम-राम' का उच्चारण करना नहीं भूलते.

टोले के बिलकुल दक्षिणी सिरे पर पंडितजी का वह एकमात्र कमरा है जिसमें वे पिछले चौदह वर्षों से सपरिवार रहते चले आ रहे हैं. मेन रोड को छोड़कर जो कि निहायत उबड़-खाबड़ है, एक लंबी कच्ची-सी गली टोले के दक्षिणी सिरे को चली गयी है. यह गली बरसात में घुटनों-घुटनों पानी से भर जाती है. गंदगी का ढेर गली के चारों ओर बिना किसी दुराव के पसरा रहता है. साथ ही इस गली के दोनों सिरे पर आसपास के बच्चे आराम से बैठकर खुले आम पायखाना भी करते रहते हैं. अपने अंतिम सिरे पर जाकर यह गली काफी चौड़ी हो गयी है और उस चौड़े भूभाग में ढेर सारे कच्चे-पक्के मकान बेतरतीबी से बिखरे पड़े हैं. कुछ मकान सीमेंट के हैं जिनका पलस्तर जहां-तहां से उखड़ चुका है व कुछ कच्चे टीन की छतवाले मकान हैं. ऐसे ही टीन के छतवाले एक कच्चे मकान के इकमंजिले कमरे में पंडितजी का भी निवास-स्थान है. टोले की तरह यह मकान भी बेहद जर्जर व गंदा है. जर्जर कुछ इस तरह कि जब भी कोई मकान के दुमंजिले में चलने लगता है तो समूचा मकान ही कुछ इस अंदाज में चरमरा उठता है कि मानो दुमंजिला अब गिरा कि तब. हालांकि दुमंजिला नहीं गिरता पर पंडितजी के कमरे में आकर ढेर-सारी मिट्टी जरूर गिर जाती है. ऐसे अवसरों पर पंडिताइन जोरों से चीख पड़ती हैं—'जरा संभल कर चला करो ऊपरवालो, नीचे भी आदमी रहते हैं. जानवर नहीं. . .'

पंडितजी के उस कमरे तक पहुंचने के लिए इस लंबी गली के अतिरिक्त एक लगभग अंधेरा गलियारा भी पार करना पड़ता है, जिसकी चौड़ाई बमुश्किल २–२ १/२ फुट होगी. इस गलियारे को पंडितजी ने उपगली की संज्ञा से विभूषित किया हुआ है. पंडितजी के कमरे के ठीक बाएं हाथ की ओर पूरे मकान के किरायेदारों के उपयोग के लिए लिए बना हुआ एक लैट्रीनघर है. यद्यपि यह लैट्रीन फ्लश की बनी हुई है तथापि अपने पुरानेपन के कारण इसका फ्लश सिस्टम अकसर बोल जाता है. ऐसे अवसरों पर एक भयावह व असह्य बदबू पंडितजी के कमरे में बेरोक-टोक घुलती रहती है. लैट्रीन के लिए शुरुआत में लगभग हर सुबह मकान में रहनेवाले किराएदारों के बीच एक अच्छी-खासी झड़प हो जाया करती थी. पर इधर कारपोरेशन द्वारा गली के मुहाने पर कुछ सार्वजनिक लैट्रीनघर बना दिये जाने से यह झगड़ा अब लगभग समाप्त हो गया है. लैट्रीनघर के बगल में ही मकान का एकमात्र नल भी है. इस नल को लेकर भी कम झगड़ा नहीं होता रहा है. औरतें पानी को ले कर आपस में इस तरह टूट पड़ती रही हैं हैं गो कि वे आपस में में ही एक दूसरे की शिकार हों. पर इधर बाहर ट्यूब वेल लग जाने से यह झगड़ा भी स्वयंमेव ही कम हो गया है.

शुरुआत में पंडितजी इस टोले में आने से बेहद खिन्न रहे थे. पंडिताइन अपनी चर्चाओं में आज भी इस बात को अकसर दुहराती रहती हैं कि उनके पंडितजी इस टोले से मानसिक रूप में दिनरात कितना परेशान रहा करते थे. यह भी कि उन्होंने मुहल्ला बदले जाने की कितनी चेष्टा की थी. लेकिन अब इधर उन्हें इस टोले में चौदह वर्ष हो गए हैं और लगता है कि इस स्थिति के प्रति कहीं कोई असंतोष उनके भीतर शेष नहीं रहा है. चर्चा उठने पर वे ज्यादातर अब यही कहते हैं——कहीं न कहीं तो रहना ही हुआ, चलो यहीं सही. . .और फिर टोला-मुहल्ला खराब या गंदा होने से क्या होता है? मनुष्य का अपना हृदय गंदा नहीं होना चाहिए. . .

पर कभी तो वे सही अर्थों में खिन्न हो जाते हैं और तब उनकी विवशता एक भयावह कातरता का रूप ले लेती है. बेहद दयनीय स्वर में तब वे कहते हैं—'जीते जी नर्क भुगत रहा हूं, भाई. पता नहीं भगवान भी इतना निर्दयी क्यों है? जब कि रोज नहा-धोकर पूजा पाठ करता हूं. शाम को भी बिना संध्या-पूजा किये कभी नहीं खाता. फिर भी. . .फिर भी. . . कहते-कहते वे क्षण भर के लिए रुक जाते हैं. फिर लगभग रुआंसे होकर कहते हैं—— 'यह भी भला कोई रहने

की जगह है? मैं तो कहता हूं, दुष्ट संग जन देहु विधाता. . .किसी को भी नहीं. मेरे तो तीनों बेटे इस सोहबत में बिगड़ते चले जा रहे हैं. सोहबत भी तो यहां लुच्चों-लफंगों की है. कोई सिनेमा के टिकट ब्लैक करता है, कोई छोटी-मोटी चीजों पर हाथ साफ कर लेता है, तो कुछ शराब-वराब का धंधा करते हैं. ऐसे में भला. . .' कहते-कहते वे भीग जाते हैं, और फिर छत की ओर देखने लगते हैं. कुछ इस तरह जैसे उन सारी समस्याओं के समाधान को कमरे की छत में कहीं ढूंढ़ा जा सकता हो.

★ ★

अभी तक पंडितजी का परिवार कुल आठ सदस्यों का है. इस एक कमरे में वे किस प्रकार रहते हैं, यह समझना गणित के किसी कठिन प्रश्न की तरह है.

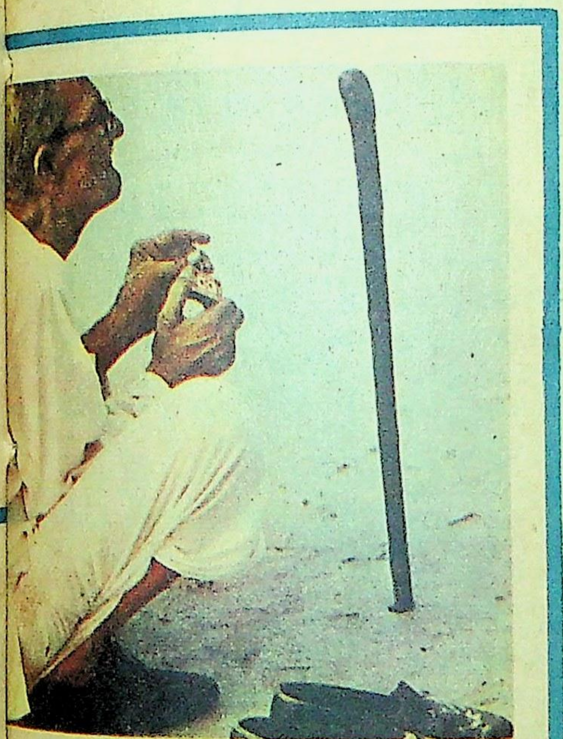

• सुरेश सेठ

पंडितजी के पास बहुत पुरानी किस्म की जर्जर-सी चार चारपाइयां हैं. कमरे में यूं तो एक ही चारपाई लगी रहती है जिसमें एक पुराना-सा मैला टल्लीदार गद्दा और ऊपर से एक पुरानी लेकिन धुली-सी चादर बिछी रहती है. शेष चारपाइयां अंधेरे गलियारे के बाहर खड़ी रहती हैं. रात का खाना बन-बनाकर जब सारा काम पूरा हो जाता है तो संदूक सहित सारे सामान को मुख्य चारपाई के नीचे डालकर शेष तीनों चारपाइयां कमरे में आड़ी-तिरछी डाल दी जाती हैं. चारों चारपाइयों को लगा दिये जाने के बाद दरवाजा खुल पाना संभव नहीं हो पाता, क्योंकि एक चारपाई दरवाजे से बुरी तरह चिपक जाती है. इसी स्थिति को ध्यान में रखते हुए पंडितजी के घर का एक नियम है कि जिसे रात सोने में पहले लघुशंका आदि से निबटना हो तो वह चौथी चारपाई के लगने से पहले-पहले हो आए. यही होता भी है.

पंडिताइन बेचारी बहुत सीधी-सादी हैं. जब-तब कुछ न कुछ करती दिखाई देती हैं. ज्यादातर उन्हें फटे कपड़ों को ही सिलते हुए देखा जा सकता है. पंडितजी को पूजा में जो सस्ती-सी सफेद धोतियां प्राप्त होती हैं, उन्हीं को दोनों मिल-बांटकर पहनते हैं. फर्क सिर्फ इतना होता है कि पंडिताइन पहनने से पहले सफेद धोती को हरे या किसी दूसरे रंग में रंग लेती हैं.

पंडितजी की अभी तक कुल छः संतानें हैं. सबसे बड़ी व सबसे छोटी लड़की. और बीच के चारों के चार लड़के हैं. पंडितजी की बहुत इच्छा है कि वे अपने सभी बच्चों को अच्छा-खासा पढ़ा पाते. उनकी ऐसी चेष्टा भी रही है. पर एक ओर टोले की कुछ सोहबत ही ऐसी रही है कि पढ़ने-लिखने में सबके सब बिलकुल सिफर हैं, और दूसरी ओर अच्छे मोहल्ले में जाकर बसने की औकातहीनता उनके आगे खुले हुए आकाश की तरह है. यूं उनके बड़े पुत्र घर से तो रोजाना ही टोले में स्थित कारपोरेशन के मिडिल स्कूल के लिए चलते तो जरूर हैं लेकिन बहुत कम ऐसा होता है कि वे वहां तक पहुंच पाते हों. ज्यादातर उन्हें सिनेमा हाल के इर्द-गिर्द ही टोले के दो-चार छोकरों के साथ चक्कर काटते हुए देखा जा सकता है. कभी-कभी जब कोई पर्व या तीज-त्योहार होता है और पंडितजी को अपने सभी यजमान कवर करने होते हैं तो वे अपने बड़े पुत्र को भी (जिसे वे प्यार से 'बड़के' कहते हैं) अपने साथ जरूर ले लेते हैं. उनका कहना है कि कुछ भी नहीं तो पूजापाठ ही करना सीख लेगा ताकि कम से कम अपनी गुजर-बसर तो कर सके. पर बड़के का मन है कि जजमानिका में भी नहीं रमता. स्वयं पंडित गोबरधन पांडेयजी भी कभी-कभार इस पंडितपने से बेहद खिन्ना जाते हैं. खिन्नता की इस स्थिति में वे अकसर यही कहते हैं—'पूजा पाठ सीखकर भी क्या करना है, भाई? अब तो सबसे ज्यादा दुर्गत पंडितों की ही है. वह जमाना रहा कहां जबकि इस देश में पंडितों की इज्जत-विज्जत हुआ करती थी. अब तो स्थिति यह है कि दुम हिला-हिलाकर खुद ही दस घरों का चक्कर लगाओ तब जाकर कहीं गुजर-बसर हो पाती है. दुनिया के लिए तो महंगी भी बढ़ी लेकिन पंडितों के लिए साली महंगाई नाम की भी कोई चीज नहीं होती. दो घंटा चिल्ला-चिल्लाकर पाठ करो तो आज भी दक्षिणा वही सवा रुपया. . .इस तरह तो यह धरम-करम सारा खत्म हो जाएगा. देखते तो रहिए आप, अगली पीढ़ी में तो चिराग लेकर ढूंढ़ने पर भी कोई पूजापाठ करानेवाला नहीं मिलेगा. भगवान जाने क्या होने जा रहा है. इस हिंदू धर्म का. . .' अपने इस अंतिम वाक्य को अकसर वे इस रूप में चिंतातुर होकर कहते हैं कि सुननेवाले भी उनके साथ उदास हो जाया करते हैं.

बाद के दोनों बेटे भी यूं तो कारपोरेशन के मिडिल स्कूल में ही पढ़ने के लिए जाते हैं पर सही अर्थों में

दाँतों के डाक्टरों की राय में

नियमित रूप से दाँत ब्रश करने और मसूढ़ों की मालिश करने से मसूढ़ों की तकलीफ़ और दाँतों की सड़न दूर ही रहती है

देखिए, फोरहॅन्स टूथपेस्ट नियमित इस्तेमाल करनेवालों ने अपने आप क्या लिखा है :

"...मेरी पत्नी को दाँतों में बड़ी पीड़ा थी... लेकिन जबसे उसने फ़ोरहॅन्स इस्तेमाल करना शुरू किया, इतना अच्छा रहा कि अब किसी को भी दाँत या मसूढ़ों में तकलीफ़ होते ही वे फ़ोरहॅन्स उपयोग करने की सलाह देती हैं। वही क्यों, इंगलैंड में मेरे भाई हैं न उन्होंने भी भारत से फ़ोरहॅन्स के ६ ट्यूब भेजने के लिए बार बार लिखा है।"

(सही) टी. जी. एम. डी'सूजा
बम्बई

"...राजमहेन्द्री के एक दाँतों के डॉक्टर हैं... उन्होंने मुझे दाँतों व मसूढ़ों की भलाई के लिए फ़ोरहॅन्स टूथपेस्ट इस्तेमाल करने की सलाह दी। मैंने फ़ौरन ऐसा ही किया। थोड़े ही दिनों में साँस की दुर्गन्ध जाती रही, मसूढ़े फिर अच्छे हो गये। तब से, सच मानिए, मैं ही नहीं, मेरे पूरे परिवार के ९ लोग फ़ोरहॅन्स ही इस्तेमाल करते हैं और मुझे पूरा विश्वास है कि हमारी यह आदत और हमारी यह आस्था पीढ़ियों तक चलती रहेगी।"

(सही) पी. जे. लाजार
चिराला, आन्ध्र प्रदेश

(इन पत्रों की फोटोस्टॅट कॉपी आप ज्यैफ़्री मैनर्स एण्ड कं. लि. के किसी भी कार्यालय में देख सकते हैं।)

९९% भारतीयों में मसूढ़ों की तकलीफ़ पायी गयी

कलकत्ता में २४–३० वर्ष की उम्र के ४००० लोगों के दाँतों की अलग अलग दो जाँच की गयी। पता चला कि ९९.६% से लेकर १००% लोगों को मसूढ़ों की तकलीफ़ थी।

दाँतों की सही देखभाल के लिये हर रोज रात और सवेरे अपने दाँतों को ब्रश करने और मसूढ़ों की मालिश करने के लिये फ़ोरहॅन्स इस्तेमाल कीजिए।

मुफ़्त! 'आपके दाँतों और मसूढ़ों की रक्षा' नामक रंगीन सूचना-पुस्तिका। अपनी प्रति प्राप्त करने के लिए (डाक-खर्च के लिए) २५ पैसे के टिकट साथ भेजकर इस पते पर लिखिए : मैनर्स डेण्टल एडवाइज़री ब्यूरो, डिपार्टमेंट T 117 पोस्ट बैग नं. ११४६३, बम्बई–४०० ०२० अपनी पसन्द की भाषा अवश्य लिखिए।

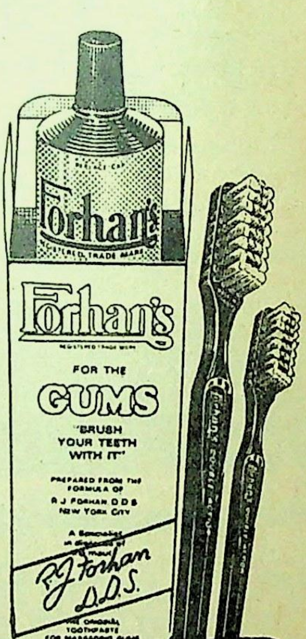
Forhan's
Forhan's
FOR THE
GUMS
"BRUSH YOUR TEETH WITH IT"
PREPARED FROM THE FORMULA OF R J FORHAN D D S NEW YORK CITY
R.J. Forhan D.D.S.
THE ORIGINAL TOOTHPASTE FOR MASSAGING GUMS

फ़ोरहॅन्स
दाँतों के डाक्टर का बनाया हुआ टूथपेस्ट

161F 183 HN

उन्होंने भी अब धीरे-धीरे बड़के के चरणचिह्नों का अनुसरण करना शुरू कर दिया है. लेकिन थके-हारे लौटे हुए पंडितजी के कानों में जब कभी अपने लाड़लों की करतूतों की कहानी पड़ती है तो एकाएक ही वे विक्षिप्तों की तरह उबल पड़ते हैं. विक्षिप्तता की ही इस स्थिति में वे सबसे पहले तो अपने लड़कों को कोसते हैं, फिर बेचारी पंडिताइन को और अंत में अपने उजड़े हुए भाग्य को. कभी-कभी तो उन पर उत्तेजना इस कदर हावी हो जाती है कि वे सिवा जोरों से हांफने के और कुछ नहीं कर पाते.

सबसे छोटे ने अभी स्कूल जाना नहीं सीखा है. उसके बाद की जो बिटिया है, उसे अभी दूध पीती ही कहा जा सकता है. लेकिन बड़ी बिटिया ने मिडिल स्कूल तक की मुफ्त शिक्षा तो पास कर ली है, पर आगे को फीस वाले स्कूल में दाखिला देकर पढ़ा पाना पंडितजी के वश की बात नहीं है. वैसे बड़ी बिटिया की बहुत इच्छा है कि वह आगे को पढ़े, लेकिन. . .और इस 'लेकिन' पर झूलते हुए उसे अब पांच वर्ष खो गए हैं.

जाड़ा हो या बरसात पंडित गोबरधन पांडेयजी का नियम है कि वे रोज सुबह चार-साढ़े चार बजे ही उठ जाते हैं. उतने प्रातः ही उच्च स्वर में मंत्रोच्चार करते हुए खुले में ट्यूबवेल के नीचे उन्हें नहाते हुए देखा जा सकता है. नहा-धोकर वे पूजापाठ का नियम पूरा करते हैं. फिर आठ बजते-बजते कपाल पर एक चंदन का लंबा-चौड़ा टीका, शरीर पर एक मटमैली-सी सफेद धोती व पुरानी खद्दर की कमीज उड़ेलकर वे जमानिका की ओर निकल जाते हैं. लगभग साल भर से उनके पास एक सफेद जूता है जिसे वे आज भी पहन रहे हैं. जूते बदले जाने की चर्चा पर एक दिन वे अपनी बिटिया से बोले थे—देखो कहीं कोई तेरहवीं का जुगाड़ बैठ जाय तो शायद. . .

जाते हुए अपने कंधे पर वे एक थैला लटका लेते हैं. उस थैले में मदारी के सामान की तरह कई सारी चीजें हुआ करती हैं. मसलन कुछ एक आवश्यक पूजापाठ की पुस्तकें, कुछ छोटे थैले, कुछ एक कपड़े के टुकड़े, एकाध खाली डब्बा व एकाध खाली शीशी भी. छोटे थैलों में वे दान-पूजा में मिले चावल-दाल आदि अनाज की पोटली बांध लाया करते हैं. पूजा आदि में ही यदि कहीं से डालडा, घी या तेल जैसी कोई चीज मिल जाए तो उसे खाली डिब्बे या शीशी में रखकर ले आते हैं. शेष खाली कपड़े के टुकड़े भी अकसर पोटली बांधने का ही काम दे जाती है.

इस तरह अपने पूरे ताम-झाम के साथ सुबह आठ बजे से ही वे जजमानों के घरों के चक्कर लगाना शुरू कर देते हैं. तीज-त्योहार ही कुछ ऐसे मौके होते हैं जबकि कुछ मोटी आमदनी हो जाती है. शेष दिनों में छिटपुट पूजा-पाठ का काम भी यदि मिल जाय तो गनीमत है. इसी तरह से पूजापाठ की तलाश में ही वे जजमानों के घरों में दौरे मारते रहते हैं. उन्हें अकसर यह लगता है कि तीज-त्योहार के अतिरिक्त दूसरे दिनों में उन्हें अपने वहां आता देख कर कोई भी जजमान प्रसन्न नहीं होता. वे जैसे पंडितजी को देखकर व्यंग्य के लहजे में मुस्करा दिया करते हों. इस मुस्कराहट को समझते हुए भी पंडितजी ने कुछ ऐसी आदत बना डाली है गोकि वे कुछ भी न समझते हों. भीतर ही भीतर यदा-कदा उनको इतनी जबरदस्त पीड़ा व तिलमिलाहट होती है कि वे रोने-रोने को हो आते हैं.

थके-हारे से रात आठ नौ बजे तक लौटते हैं वे. वैसे लौटते हुए दो-चार पोटलियां उनके थैले में लगभग रोजाना ही बंधी होती हैं. जेब में थोड़ी-बहुत रेजगारी भी खनकती होती है. लेकिन रोज ऐसा हो यह आवश्यक नहीं. कभी-कभी तो लगातार दो चार दिनों तक कुछ भी नहीं मिलता. ऐसी स्थिति में कभी-कमार फाके की नियति भी भोगनी पड़ जाती है. कई बार ऐसा हुआ है कि घर में कुछ भी नहीं था, और पंडिताइन सहित छहों बच्चे रात गए तक पंडितजी की प्रतीक्षा करते रहे थे. . . . लेकिन सबसे अधिक दुर्भाग्य तो तब शुरू होता है जब पंडितजी ऐसी प्रतीक्षारत रातों में भी खाली हाथों ही लौट आने के लिए विवश होते हैं. ऐसे अवसरों पर बच्चे मायूस होकर चुपचाप इधर-उधर लुढ़क जाते हैं और पंडितजी की आंखें असहायता व निरुपायता के भयावह बोध से नम हो आती हैं.

★ ★

पंडितजी आज अभी-अभी लौटे हैं. बड़के भी आज उनके साथ गया था. जाहिर है, आज कोई तीज-त्योहार रहा होगा. क्योंकि बड़के को वे ऐसे ही अवसरों पर अपने साथ ले जाते हैं. अभी जबकि वे दोनों लद कर लौटे हैं. दूर स्थिति मिल ने रात के दस बजे का सायरन बजाया है. पंडितजी के दोनों कंधों में भरे हुए थैले लटके पड़े थे. एक बड़ा-सा भरा हुआ थैला बड़के के कंधे पर भी लटका हुआ था.

दोनों रिक्शे से उतरे हैं. रिक्शे से आने-जाने के पंडितजी के जीवन में बहुत गिने-चुने मौके आए हैं. ऐसा ही एक मौका आया है. उतरते ही दोनों धड़ाधड़ कमरे में घुस आए हैं. कमरे के एक कोने में बैठी पंडिताइन ऊंघ रही हैं. बड़ी बिटिया भी एक ओर बैठी छत की ओर निहारे जा रही है. बीच के दोनों लड़के लालटेन की मंद रोशनी में किताबें खोले ऊंघ रहे हैं. कभी-कभी वे अचकचा कर जग-से जाते हैं और फिर धीरे-धीरे बड़बड़ाने की-सी आवाज में कुछ पढ़ने लगते हैं. सबसे छोटा लड़का व दूध पीती बिटिया चारपाई पर लदे खर्राटे ले रहे हैं. शेष चारपाइयां अभी तक कमरे में नहीं लगी हैं.

दरअसल आज भी फाके का दिन रहा है. सुबह बचे हुए कुछ चावलों का मांड़-भात बना कर जरूर खा लिया गया था. लेकिन इस समय किसी ने कुछ नहीं खाया है. इस समय सब प्रतीक्षारत हैं, और सबको यह विश्वास है कि पंडितजी आज जरूर ही लदे-फदे आएंगे.

पंडितजी व बड़के के घुसते ही निस्तब्ध व सुस्ता रहे कमरे में एकाएक सजगता-सी लौट आयी है. पंडिताइन उठ बैठी हैं और दोनों ऊंघ रहे बेटे भी

तनकर बैठ गए हैं. दोनों को लदा-फदा देखकर सभी लोगों के मुखमंडल पर एक अपूर्व संतोष की लहर दौड़ गयी है. सबने मिलकर पंडितजी व बड़के को घेर लिया है.

पंडितजी आते ही जमीन पर बिछी चारपाई पर पसर गए हैं. उन्होंने अपने हाथपांवों को पूर्ण विश्राम की मुद्रा में फैला दिया है. पंडिताइन थैले खोलने लगी हैं. पहले वाले बड़े थैले में आपुरा चावल की बंधी पोटलियां हैं. साथ में कुछ एक छोटी-सी पोटलियां भी हैं जिनमें कि नमक-मिर्च जैसा कुछ बंधा होगा. दूसरे थैले में लाल-पीले रंग के कुछ वस्त्र व दो सफेद धोती एवं तीन-चार लाल गमछे हैं. एक छोटे-से थैले में डालडा से भरा हुआ डिब्बा व तेल से भरी हुई शीशी भी है. तीसरा बड़ा थैला पकवान, फल व मिठाई से भरा हुआ है. दोनों बीच वाले लड़के उस थैले पर टूट पड़े हैं. लेकिन पंडिताइन उन्हें हलके-से झिड़क देती हैं. बड़ी लड़की राशन-पानी संभालने में मां का हाथ बंटाने लगी है. राशन-पानी को अच्छी प्रकार से एक कोने में संभाल कर पंडिताइन ने भूखे बच्चों के सामने पकवान रखी है.

पंडितजी पूरी तरह सुस्त मुद्रा में लेटे पड़े हैं. अभी-अभी उन्होंने थोड़ा-सा पानी मांगकर पीया है. उनकी आंखें अजीब ढंग से मुंदने लगी हैं. वे बार-बार करवट बदल रहे हैं. बड़का भी उन्हीं की तरह एक ओर जाकर पसर गया है.

पंडिताइन, पंडित गोबरधन पांडेयजी को बार-बार करवट बदलते व पेट पर हाथ फेरते देखकर शायद थोड़ा-सा घबड़ा गयी है. पंडितजी के निकट सरकते हुए पूछा है—क्या बात है? थक गए हैं क्या?

प्रतिक्रिया में पंडितजी ने धीरे से अपनी बंद आंखें खोला हैं, फिर हल्के से मुस्कराने की चेष्टा करते हुए कहा है—गले-गले तक भर गया हूं. .

पंडिताइन हल्के-से मुस्करायी हैं. ठिठोली की मुद्रा में बोली हैं—इतना ज्यादा क्यों खा लिया फिर? इस बार झल्लाए हैं पंडितजी. झुंझलाकर कहा है—तू रही मूरख की मूरख ही . . . समझी ना . . . ? अगर पांच-सात जजमानों के वहां भी पूजा कराने के बाद थोड़ा-थोड़ा जीमना पड़ा होगा तो समझ ले कितना हो गया? बिना वाम्हन को अपने सामने खिलाए कोई ससरा मानता भी तो नहीं. जब भोजन जीमो तब जाकर कहीं दक्षिणा मिलती है. . . कहते-कहते पण्डितजी ने एक जोरदार 'डकार' छोडी है.

पंडिताइन चुप हो गयी हैं. पंडितजी ही बोले हैं पुनः—देखो जरा उस पोटली में अज्वाइन बंधी होगी, थोड़ी-सी अज्वाइन व एक गिलास पानी लाकर दे दो. . . पेट बुरी तरह ठुंस गया है. . . पंडिताइन ने अज्वाइन व पानी लाकर दे दिया है. अज्वाइन चबाने व पानी पी चुकने के बाद वे पुनः लंबायमान हो गए हैं. जेब से मुड़े-तुड़े नोट व रेजगारी पंडिताइन के हवाले करते हुए वे बोले हैं, देख तो कितने हैं. . .?

बड़ी बेटी व पंडिताइन रेजगारी व नोट गिनने लगी हैं. इस बीच दोनों बीच वाले बेटों की ललचाई दृष्टि उन नोटों व रेजगारियों में आकर पड़ी है. पंडिजी अ भी रुक-रुक कर करवट बदल रहे हैं. चारपाई में ले हुए दोनों छोटे एक पुत्र व एक पुत्री अब भी खर्राटे में हैं.

——बावन रुपए. . .! बड़ी बिटिया ने कहा है.

——बसऽ.ऽ. . . पंडितजी का बेहद बुझा हुआ स्वर सुनाई दिया है. आठ घरों में पूजा कराने के बाद कुल बावन रुपए. . .? वे बड़बड़ाए हैं. महंगी स्साली दुनिया को जरूर आयी है. लेकिन वाम्हनों के लिए नहीं. . बहुत खिन्नता की अवस्था में ही उनके मुंह से गाली छूटती है. पंडिताइन बेहद उदासीनता की मुद्रा में उन नोटों व रेजगारियों को ताक रही हैं. गोकि वे नोट न हो कर कोई समस्या हो. अचानक बोली हैं—इस पर्व से तो बहुत कुछ सोचा था. . .

पंडितजी कुछ नहीं बोले हैं. केवल एक हल्की-सी हुंह उन्होंने भरी है. खिन्न होकर बोले हैं—बनिए के बकाया पचास रुपए तो दे ही दो, कम से कम गाहे-बगाहे फाके से तो बचा जा सकेगा. . .

——इस माह का मकान किराया भी तो बाकी है. पंडिताइन ने सूचना देने के भाव में कहा है. पंडितजी को लगा है जैसे ऊपर की छत भरभराकर उनपर गिरने ही वाली है. उन्होंने भयग्रस्तता की मुद्रा में आंखें मूंद ली है.

——रमा बिटिया के पास बाहर भीतर जाने के लिए चप्पल नहीं है. . .जवान बिटिया है, पंडिताइन फिर फुसफुसाई हैं.

लेकिन बड़ी बिटिया ने तत्काल संभाल लिया है, बोली है——नहीं बाबूजी, चप्पल की कोई खास जरूरत नहीं है. काम चल रहा है. . .प्रतिक्रिया में पंडितजी ने बेहद दयनीयता से आखें खोली हैं. लगभग निरुपायता व निस्साहयता के बोध से भर कर करुणामिश्रित आद्रभाव से वे चुपचाप बिटिया की ओर ताकते रहे हैं.

——बनिए का फिर देख लेंगे. . .बच्चे ठंड से ठिठुर जा रहे हैं, सो पहले एक रजाई बनवानी जरूरी है. लगभग निर्णायक स्वर में पंडिताइन ने कहा है.

पंडित गोबरधन पांडेयजी बहुत बुरी तरह अनमना गए हैं, बोले हैं——कुछ भी करो. . . कुछ. . .बाकी फिर देख लूंगा, . . .सबने खाना खा लिया है कि नहीं? पंडितजी को लगा उनका स्वर असामान्य हो आया है.

सबने अब तक खा लिया था. केवल पंडिताइन बची थीं. नोट व रेजगारी को संदूक में रख कर वे चुपचाप कुछ सोचती हुई-सी खाने लगी हैं. पंडितजी बिलकुल चुप हैं. एक गहरे किस्म की सोच की गिरफ्त में वे बहे जा रहे हैं.

अचानक पंतडिजी की तंद्रा टूटी है. लगा है जैसे बाहर से किसी ने 'पांडेयजी' कहकर आवाज लगाई हो. इस समय कौन हो सकता है भला? पंडिताइन ने जल्दी से अपना भोजन चारपाई के नीचे छिपा लिया है. बड़के ने दरवाजा खोलकर देखा है, सामने पंडित त्रिभुवन नारायण तिवारी खड़े हैं.

——आओ भाई तिवारी . . . पंडितजी ने लेटे-लेटे

ही कहा है, कहीं जजमानिका से आ रहे हो क्या? तिवारी ने उत्तर में हामी भरी है.

पंडित गोबरधन पांडेय व पंडित त्रिभुवन नारायण तिवारी में वाह्य रूप में कोई विशेष अंतर नहीं है. हां, तिवारीजी कद, काठी में अवश्य लंबे हैं. बाकी सब कुछ वैसा ही है. लगभग वही पहनावा—मटमैली-सी धोती, उसी ढंग का लंबा-सा खद्दर का कुर्त्ता. बगल में वैसा ही पोथी-पत्रों वाला लटकता हुआ एक थैला और कपाल पर पं. गोबरधन पांडेयजी की तरह ही लगा हुआ लंबा -चौड़ा-सा चंदन का टीका—कहो, कैसे आना हुआ पं. गोबरधन पांडेयजी ने लेटते ही पूछा है.

तिवारी ने पहले तो हथेलियों से अपनी आंखें मींचीं हैं, फिर जम्हाई लेते हुए कहा है–तुम्हें ही बुलाने आया था. बात दरअसल यह है कि मेरे दो मारवाड़ी जजमानों ने आज पांच ब्राह्मणों को भोज देने का निश्चय किया है. तीन का जुगाड़ तो बैठ गया है. चौथा मैं स्वयं हुआ ही, सोचा पांचवां तुम्हें ले चलूं. . . .

पंडित गोबरधन पांडेयजी एक क्षण के लिए चुप रहे हैं. पंडिताइन, बड़ी बेटी व बड़के की आंखें पंडितजी के चेहरे पर जाकर टिक गयी हैं. पंडितजी संक्षिप्त मौन. अंतराल के बाद बहुत धीमे स्वर में पंडितजी के स्थान पर पंडिताइन बोली हैं–वे नहीं जा पाएंगे, तिवारी भैया. अभी-अभी तो जजमानिका से लौटे हैं. . . .पेट पूरी तरह ठुंसा पड़ा है, ऐसे में . . . .

लेकिन पंडिताइन की बात पूरी हो इससे पहले ही पंडितजी ने बात काट दी है—तू चुप रह. . . फिर पं. तिवारी की ओर उन्मुख होते हुए बोले हैं, दक्षिणा क्या मिलेगी भोज में?

—यही कोई दस-दस रुपया, व एक गमछा मिलना तय हुआ है दोनों जगह से. . .पं. तिवारी ने बीड़ी सुलगाते हुए कहा है.

पंडितजी ने आंखें मूंद ली हैं. सोचने लगे हैं, सिर्फ भोज में भाग लेने के बीस रुपए तो बहुत हैं. कम से कम इस माह का मकान का किराया तो उतर ही जाएगा. साले ने कहां से फांस लिये हैं मारवाड़ी जजमान! मारवाड़ी तो केवल अपने क्षेत्रीय ब्राह्मणों को ही पूछते हैं. उन्होंने भी तो चेष्टा की थी दो एक मारवाड़ी जजमानों को फांसने की. लेकिन . .

—क्यों चलना चाहोगे या नहीं. . .? पं.तिवारी ने गोबरधन पांडेयजी को चुप देखकर पूछा है.

पंडित गोबरधन पांडेय जी ने आंखें खोली हैं. फिर जल्दी ही चारपाई के डंडे को पकड़ कर उठ खड़े हुए हैं, एक बार पंडिताइन बड़की बेटी के चेहरे की ओर ताका है, फिर पं. तिवारी की ओर उन्मुख होते हुए बोले हैं—चलता हूं अभी. . .बस एक क्षण में आया. . . कहकर सीधे बाहर निकल आए हैं. बाहर सामने से एक गंदी-सी नाली बहती है. उन्होंने क्षण भर के लिए अपने चारों ओर इधर-उधर ताक कर देखा है, और फिर जल्दी से नाली नें उकडूं बैठते हुए गले के भीतर उंगलियां डाली हैं और कै करने लगे हैं. □□□

मु. पनिया उडियार, रानीधारा, अल्मोड़ा

पचतंत्र की एक कथा

शेर और बढ़ई

एक बढ़ई प्रति दिन भोजन ले कर अपनी पत्नी के साथ लकड़ी काटने एक जंगल में जाया करता था. उसी जंगल में एक शेर अपने दो मांसाहारी पिछलग्गुओं सियार और कौवे के साथ रहा करता था. एक दिन बढ़ई ने ज्यों ही जंगल में प्रवेश किया कि शेर को सामने खड़ा देख कर पहले तो उसके प्राण सूख गये. किंतु अपने को सम्हाल कर वह नम्रता से बोल पड़ा—वनराज, आज आपको मेरा साथ लाया हुआ भोजन करना होगा जिसे मेरी पत्नी अर्थात आपकी बहन ने बनाया है.

—मित्र, वैसे तो मैं शाकाहारी नहीं हूं, फिर भी आज मैं तुम्हारा लाया भोजन चख देखूंगा.

इस पर बढ़ई ने अपने साथ लाये हुए भोजन में कुछ स्वादिष्ट वस्तुएं मिला कर शेर को खाने को दीं. बदले में शेर ने जंगल में उसकी रक्षा का अभय वचन दिया.

अब तो बढ़ई शेर को रोज ही भोजन कराने लगा किंतु एक शर्त पर कि वह अपनी साथ किसी अन्य को कभी नहीं लायेगा.

उधर सियार तथा कौवा जो शेर के लाये शिकार पर निर्भर थे, भूखे रहने लगे. उन्होंने शेर से पूछा—स्वामी, आप प्रति दिन कहां जाया करते हैं जो इतने खुश हो कर लौटते हैं?

शेर ने कुछ झिझक के साथ उत्तर दिया—मेरा एक मित्र प्रति दिन जंगल में आता है, उसकी पत्नी रोज मेरे लिए स्वादिष्ट भोजन तैयार करती है और मैं उनके प्रति स्नेह दिखलाने के लिए रोज भोजन किया करता हूं.

इस पर सियार और कौवे ने सलाह की, क्यों न हम चल कर उसे मार कर मोटे-ताजे बन जायें? शेर ने उनकी यह बात सुन ली और गरजा—मैं इस वन का राजा हूं, मैंने बढ़ई को रक्षा का वचन दिया है. हां, मैं उससे तुम दोनों के लिए भी स्वादिष्ट भोजन देने का आग्रह करूंगा. सभी इस पर सहमत हो गये.

अब तीनों बढ़ई की तलाश में निकले. अभी वे दूर ही थे कि बढ़ई ने शेर और उसके धूर्त साथियों को आते देख लिया और दूसरे ही क्षण वह तथा उसकी पत्नी एक वृक्ष पर जा चढ़े. उन्हें वृक्ष पर चढ़ता देख कर शेर भी तेजी से वृक्ष के नीचे जा पहुंचा और बोला—मित्र, मुझे देख कर तुम वृक्ष पर क्यों चढ़ने लगे? मैं तो तुम्हारा पुराना मित्र हूं.

किंतु बढ़ई वृक्ष पर से नहीं उतरा, वहीं से बोला—तुम्हारे दोनों ही मित्र ऐसे हैं जिन पर विश्वास नहीं किया जा सकता. □□□

छह लघुकथाएं

ये लोग

● नंदकिशोर अरोड़ा

एक आदमी एक जगह बैठा-बैठा अपना काम कर रहा था. कुछ लोग उधर से निकले, ठिठके, काफी देर तक देखते रहे, फिर उनमें से एक बोला——बताओ, काम कर रहा है.

आदमी ने काम करना बंद कर दिया और देखने लगा. दूसरा बोला——बताओ, देख रहा है.

आदमी उठ कर खड़ा हो गया और देखने लगा. तीसरे ने कहा——बताओ, खड़ा हो गया.

आदमी ने कुछ बोलने की कोशिश की. चौथा बोला——बताओ, बोल रहा है.

आदमी चुप हो गया, तो पांचवा बोला——देखो, चुप हो गया.

आदमी अपने घर के अंदर घुस गया. सब चिल्लाये——बताओ, घर में घुस गया. आदमी नहीं निकला. तब तक कुछ और भीड़ जुट गयी थी और इन लोगों के स्वर में स्वर मिला कर चिल्लाने लगी थी.

वह नहीं निकला. आदमी उसके मकान के सामने जुटते रहे. लोग पत्थर मारते रहे. गालियां देते रहे. ताने कसते रहे, पर वह नहीं निकला. आखिरकार लोगों ने सोचा कि क्यों न दरवाजा तोड़ डाला जाये. हो सकता है, दरवाजा बंद करके काम कर रहा हो.

दरवाजा तोड़ डाला गया. अंदर आदमी की लाश छत से झूल रही थी——बताओ, मर गया. एक आदमी ने कहा और भीड़ वहां से हट गयी. अब सुना है, ऐसी भीड़ किसी दूसरे आदमी के घर के सामने जुट रही है. □

अर्थ का गणित

● मोहरसिंह यादव

वर्तमान काल में प्रतिष्ठित सभी ज्ञान-विज्ञान शाखाओं का जन्म यूनान काल में हो गया था.

एक बार ऐसा ही समय आया जब सारे यूनान में कला और विज्ञान का एक भी प्रेमी न रहा. राजा से ले कर प्रजा तक सभी का दृष्टिकोण गणनात्मक हो गया. व्यक्तिगत संबंधों को भी आर्थिक मापदंड की तुला पर तौला जाने लगा. जिस काम में तनिक भी नुकसान की संभावना दिखती, उसे शुरू ही नहीं किया जाता था.

उस संक्रांति काल में महान रेखा-गणित यूक्लाइड का जन्म हुआ. उनकी नवीन खोजों व सिद्धांतों से नागरिक प्रभावित होने लगे. दिन प्रति दिन यूक्लाइड के शिष्यों एवं समर्थकों की संख्या बढ़ने लगी.

तत्कालीन यूनान के महाराजा को जब यूक्लाइड की विद्वत्ता तथा प्रसिद्धि की सूचना मिली तो उनके दिल में भी रेखा गणित संबंधी ज्ञानार्जन की उत्कंठा जाग्रत हुई. वे दूसरे ही दिन यूक्लाइड की कुटिया पर जा पहुंचे. यूक्लाइड उस समय अपने शिष्यों के बीच बैठे पढ़ा रहे थे. राजा भी शिष्यों के साथ बैठ कर यूक्लाइड को सुनने लगे.

लगातार सात दिन तक यूक्लाइड की कक्षा में राजा आते रहे. एक रात अपने महल में सोते समय राजा ने रेखा गणित के पढ़ने से होने वाले फायदे के बारे में सोचा, किंतु फायदा एक पैसे का भी न सूझा.

दूसरे दिन राजा ने यूक्लाइड से पूछा——साधु, मैं सात दिन से तुम्हारी कक्षा में रेखा गणित पढ़ रहा हूं, किंतु फायदा एक पैसे का भी न हुआ. अब तुम बताओ, रेखा गणित पढ़ने से क्या फायदा है?

यूक्लाइड ने शांत भाव से पूछा——पहले मुझे यह बताइये, आप कौन हैं? राजा ने गर्व से कहा——अरे, तुम नहीं जानते? मैं यूनान का महाराजा हूं.

यूक्लाइड ने उस समय की प्रचलित मजदूरी चार आना प्रतिदिन के हिसाब से आठ दिन के दो रुपये राजा के हाथ पर रखते हुए कहा——यह लो अपनी आठ दिन की मजदूरी और कल से हमारी कक्षा में मत आना.

राजा बहुत लज्जित हुआ और अपने महल लौट आया. □

अंतर

● शैलेंद्र जॉर्ज

एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के यहां नगर के कई प्रतिष्ठित व्यक्ति गप्प-शप्प कर रहे थे.

एक सुसज्जित ट्रे में चाय आयी. चाय पीते हुए सभी लोग पुनः गप्प-शप्प में लग गये.

उसी समय उनमें से एक आगंतुक प्रतिष्ठित व्यक्ति के हाथ से कप फिसल कर फर्श पर बिखर गया और नीचे बिछी हुई कीमती विदेशी कालीन गंदी हो गयी.

मेजबान ने नौकर से टूटा कप बाहर फेंक आने तथा एक कप चाय और लाने का आदेश दे कर मुसकराते हुए पुनः गप्प-शप्प में लग गया.

कुछ देर बाद गप्प-शप्प समाप्त हुई. सभी लोग अपने-अपने रास्ते चले गये.

नौकर पुनः आया. सभी खाली कप-प्लेट उठा कर जाने लगा, उसी समय उसके हाथ से एक कप फर्श पर गिर कर टूट गया.

वह प्रतिष्ठित व्यक्ति बहुत बौखलाया—नौकर को लंबी-चौड़ी डांट पिलायी, अनेक गालियां दीं, तथा नौकरी से निकाल देने की धमकी दी, और बैठक छोड़ कर चला गया. बेचारा नौकर रुआंसा हो पुनः टूटा हुआ कप समेटने में लग गया. ☐

व्यापारी

दुर्गादत्त दुर्गेश

एक पूंजीपति ने बेहद पैसा लगा कर प्रकाशन प्रतिष्ठान की स्थापना की. धंधा चमक गया. धड़ल्ले से पुस्तकें बिकने लगीं. शुरू-शुरू में काफी लाभ हुआ . अपनी व्यापारिक बुद्धि पर उसे गर्व था. लेकिन कुछ समय बाद उसने देखा कि पुस्तकों की बिक्री के साथ-साथ लेखकों की संख्या भी तीव्र गति से बढ़ रही है. और एक समय आया, जब उसके ग्राहकों की संख्या लेखकों की संख्या से बहुत ही कम रह गयी. व्यापारी भी पूरा व्यापारी था. इस स्थिति से घबराया नहीं. उसने लेखकों से पैसा ले कर पुस्तकें पढ़ने वालों को पारिश्रमिक देना शुरू कर दिया. कुछ समय बाद स्थिति पूर्ववत थी. ☐

पश्चाताप!

एक ऋषि किसी नगर में से गुजर रहे थे. नगर-निवासी किसी आनंदोत्सव में व्यस्त थे. ऋषि ने एक नगर-निवासी से पूछा —यहां क्या हो रहा है भाई?

—नगरी के राजा के यहां वृद्धावस्था में लड़का पैदा हुआ है. उसी की प्रसन्नता में उत्सव मनाया जा रहा है.

ऋषि राजा के भवन में जा पहूंचे. राजा रास-रंग में मग्न था. ऋषि के आगमन की सूचना पा वह तुरंत उसके स्वागत में पहुंचा.

—राजन्, तुम्हारे यहां लड़का पैदा हुआ है?

—हां, मुनिवर.

—वह लड़का मुझे दे दो, मैं उसे राजनीति में कुशल बना दूंगा.

—ले जाइए मुनिवर. . .

—हां! जब लड़का पढ़-लिख जाये तो उसे वापस बुला लेना.

—जैसी आपकी आज्ञा.

ऋषि लड़का ले कर चले आये.

कुछ वर्ष बाद :

राजा ऋषि के आश्रम में पहुंचा.

—आओ राजन्! , ऋषि ने राजा का सत्कार किया.

—मेरा लड़का. . .राजा ने हिचकिचाते हुए कहना चाहा.

—हिचकिचाओ नहीं राजन्! ऋषि ने उत्साहित किया, तुम्हारा लड़का इसी आश्रम में है. पहचान कर ले जाओ.

राजा कई दिन उस आश्रम में रहा, अंत में खाली हाथ लौट गया.

वह अपने लड़के को न पहचान सका था. ☐

विचित्र पुरस्कार

एक पापी आदमी को पकड़ कर धर्मराज के सामने लाया गया. धर्मराज ने उसके कार्यों का लेखा-जोखा देखा. विवरण पत्रिका में उसके नाम पर एक भी अच्छा काम लिखित नहीं था. धर्मराज ने उदासी से उस आदमी की ओर देखा और बोले—तुम अति पापी हो, तुम्हारे हिस्से में एक क्षण का भी स्वर्ग नहीं है.

यह सुनते ही पापी क्रुद्ध हो कर बोला—तुम्हारा बही-खाता ही झूठा है.

—वह कैसे?

—मैं कुछ भी नहीं करता रहा.

—तो ये सब बुरे काम किसने किये?

—ये सब काम मुझसे तुमने करवाए हैं.

—वह कैसे?

—ये चांद, सितारे, गर्मी, सर्दी, हवा पानी, सूरज, धरती मेरे बनाए हुए नहीं हैं. इनकी व्यवस्था को मैंने नहीं बनाया. तुम्हारी इस व्यवस्था का कैदी बन कर, परिस्थितिवशात् जो कुछ मैंने उचित समझा, किया. यदि मेरा कोई काम तुम्हें बुरा लगा तो वह बुराई मेरी नहीं, तुम्हारी और तुम्हारी बनायी हुई व्यवस्था की है.

धर्मराज ने उस व्यक्ति की बात पर प्रसन्न हो कर पुरस्कार स्वरूप उसे पत्थर बना दिया. ☐

(चयन एवं संयोजन : वीरेंद्र जायसवाल)

श्रीमान जी

सुभाष पंत

आप नाक-भौं क्यों सिकोड़ रहे हैं श्रीमान जी? अब वक्त आ गया है जब आपको हमारी बात सुननी ही होगी. आप बहुत दिन रूमानी और मांसल साहित्य के धुंधलके में भटक चुके हैं. अब होश में आइए और ऐसे साहित्य से साक्षात्कार कीजिए जिसमें आज के जलते हुए सवाल हों, जिसका काम आपको गुदगुदाना मात्र न हो, बल्कि समय की बेरहम सच्चाइयों के प्रति सोच पैदा करना हो. मैं आपको एक ऐसी ही बात सुनाने जा रहा हूं. आप इसे कहानी की संज्ञा देना चाहें तो शौक से दे सकते हैं, यूं यह एक हकीकत है.

मैं एक मजदूर हूं या कह लीजिए था. मेरा बाप भी मजदूर है. इस वक्त मुझे मालूम नहीं वह जिंदा है या मर गया है. बाप का बाप भी मजदूर था. इससे पीछे की वंश परंपरा के बारे में मुझे कुछ मालूम नहीं. यूं भी मजदूरों की वंश परंपरा कोई गौरवशाली वंश परंपरा तो होती नहीं, कि इतिहास उन्हें अपने पन्नों में सुरक्षित रखे. पर यह निर्विवाद सत्य है कि वह भी मजदूर रहा होगा क्योंकि यह एकदम स्पष्ट और सार्वभौम सत्य हैं कि मजदूर का बेटा मजदूर ही होता है.

—आपने क्या पूछा? मेरा नाम.

—जी, नाम कुछ भी हो सकता है. अंतर ही क्या पड़ता है? आप अपनी सुविधानुसार जो नाम चाहें, दे दीजिए. बस खयाल रहे, कोई कलात्मक नाम न हो.

तो किस्सा यूं है.

उन दिनों मैं स्कूल में पढ़ रहा था. मैं कोई जहीन विद्यार्थी तो नहीं था, पर औसत रूप से पढ़ने में अच्छा था. बस गलती यहीं शुरू हो गयी थी. यानी मैंने स्वप्न देखने शुरू कर दिये थे. यह एक खतरनाक बात थी और वक्त के खिलाफ एक गहरी साजिश थी, कि मेरे दो नन्हे डैने निकल आये थे, कि मैं स्वप्नलोक में उड़ने लगा था. श्रीमानजी, स्वप्नों पर आपका और महज आपका अधिकार है. मैंने अतिक्रमण किया था. मैं अपराधी हूं. न जाने क्यों मुझे अहसास हो गया था कि मैं अपने परिवार को इस कलंक से मुक्त कर दूंगा. दरअसल मुझे यह पूरी उम्मीद थी कि मैं मैट्रिक पास करके बाबू बन जाऊंगा.

तभी एक दिन मेरा बाप मेरे सामने खड़ा हो गया. कहने लगा कि घर की हालत एकदम बिगड़ गयी है और मुझे मजदूरी कर लेनी चाहिए. घर की हालत तो सचमुच बिगड़ी हुई थी ही, दो जून सूखी रोटी भी मयस्सर नहीं थी. ऊपर से मां बीमार थी. पर मैं विद्रोह में चीखा —नहीं, अभी मैं पढ़ना चाहता हूं.

बाप ने कोई जवाब नहीं दिया. यूं वह गुस्सा कर सकता था. पर वह खुद भी गहरी मानसिक यंत्रणा से पीड़ित था. उसकी आंखें एक साथ खोखली हो गयीं, चेहरा सैकड़ों-सैकड़ों झुर्रियों से भर गया और वह विकलांग लगने लगा. वह भीतर कहीं बहुत दूर तक टूट गया था. दुनिया का कोई भी आदमी उसे देख कर पिघल सकता था. मैं तो आखिर उसका बेटा ही था.

सहसा मेरे दोनों नन्हे डैने जलने लगे. मैंने पाया अब मैं उड़ नहीं सकता. भविष्य में भी कभी नहीं उड़ पाऊंगा. स्वप्न एकदम धराशायी हो गये. पैरों के नीचे की मिट्टी सख्त हुई और इस्पात में तब्दील हो गयी. मैं गर्दन झुका उसके पीछे चलने लगा. यह वह समय था जब मेरे भीतर एक लावा पिघल रहा था. पर फर्क क्या पड़ता है, लावा किसी मजदूर के बेटे के भीतर ही तो पिघल रहा था. फिर क्या आपने कोई ऐसा मजदूर भी देखा है जिसके भीतर पिघलता हुआ लावा न हो. पर नहीं, आप कभी उसके भीतर झांकने की कोशिश करेंगे ही नहीं. वरना आपको संभ्रांतों की पंक्ति से अलग हटा दिया जायेगा.

बाप आगे था. मैं पीछे. नहीं दो दहकती हुई भट्टियां थीं जो कतारबद्ध आगे-पीछे चल रहीं थीं. हवा थी ही नहीं पर न जाने क्यों किनारे खड़े पेड़ों के पत्ते हिल रहे थे जैसे वे बेहद बेचैन हों. जी हां, सूरज था जो वाहियात तरीके से हंस रहा था और उसकी किरणों ने फंददों की तरह हमारी गर्दनें दबोच रखी थीं. सन्नाटा बहुत खतरनाक ढंग से छाया हुआ था. आसमान एकदम सलेटी था. अक्सर ऐसा आसमान चेतना पर किसी शोकगीत की तरह हावी होने लगता है. ऐसे में मन उदास और बहुत-बहुत उदास हो जाता है.

सहसा आगे चलता मेरा बाप सुबकने लगा.

मैं लपक कर उसके पास पहुंचा. अब वह फूट-फूट कर रोने लगा. यह हार स्वीकार करने की ही नहीं बल्कि एक इन्सान के पूरी तरह खंडित हो जाने की प्रक्रिया है. दरअसल जिस गर्त में वह जिंदगी भर क्षय हुआ था, उसमें मुझे याने अपने बेटे को अपने हाथों धक्का देते हुए उसे घोर परिताप हो रहा था.

मैंने आगे बढ़ कर दोस्ताना लहजे में उसके कंधे पर हाथ रख दिया. मुझे दुख नहीं है. मैं अपनी नियति से समझौता करने को तैयार हूं.

★ ★

उन दिनों यहां एशिया का सबसे बड़ा सिनेमा हाल बन रहा था. इतना विराट और भव्य कि उसके दीर्घाकार पिलर देख कर आदमी को आतंक दबोच लेता था. मेरा बाप उन दिनों वहीं काम करता था. उसे देख कर न जाने मुझे क्यों लगा था कि उसके विशाल पिलर जमीन पर नहीं, मेरी और मेरे बाप की छाती पर उगे हुए हैं. उसकी पहली मंजिल पर, जो तकरीबन पूरी होने वाली थी, पचास-साठ मजदूर काम कर रहे थे. ऊपरी मंजिल पर कोई डेढ़-सौ, दो सौ मजदूर होंगे.

काम रात-दिन चल रहा था, फिर भी कोई उम्मीद नहीं थी कि वह समय पर पूरा हो जायेगा. इसलिए कुछ मजदूरों की और जरूरत थी, कि काम वक्त से पूरा हो जाये.

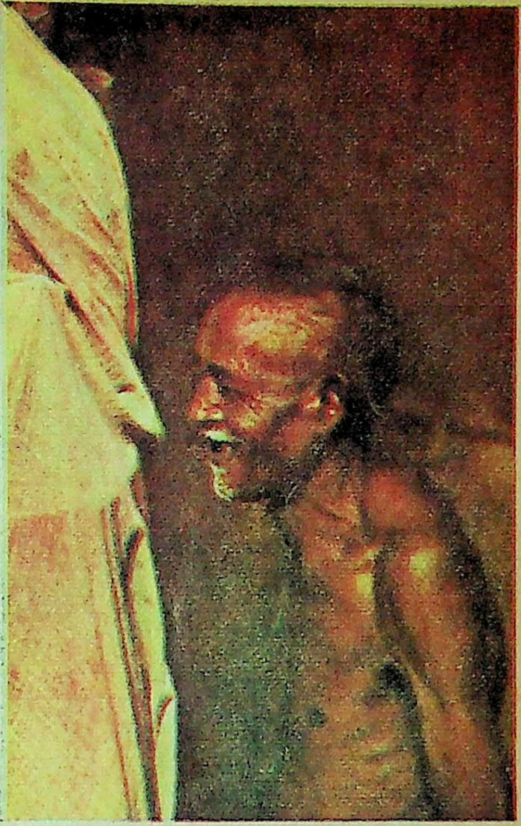

• सिद्धार्थ पटेल

मेरा बाप मुझे किसी कंट्रैक्टर के मुनीम के पास ले गया था. वह मेज पर कई रजिस्टर सजाये कुर्सी पर दुबका बैठा था, और खुद आदमी कम और रजिस्टर ज्यादा दिख रहा था. उसकी नाक लंबी थी और लगता था कि यह आदमी नाक से भी काट सकता है. यूं उसकी आंखों पर चश्मा था, पर चश्मे के भीतर से उसकी दो खूसट आंखें बदसूरती से झांक रहीं थीं.

मेरे बाप ने कमान की तरह जमीन तक झुक कर उसे नमस्कार किया. उसने कोई जवाब नहीं दिया. परिचय का कोई संकेत उसके चेहरे पर नहीं था, बल्कि एक-अजीब-सी वितृष्णा उसके चेहरे पर आयी और वे तिड़क गये. उसने जेब से एक मुड़ी-तुड़ी-सी सिगरेट निकाल कर अपने होठों से लगायी, उससे पहले कि वह माचिस ढूंढ कर उसे सुलगाता, मेरे बाप ने फुर्ती से अपनी दियासलाई से उसे जला दिया.

मुझे दुख हुआ कि मेरा बाप छह रुपये रोज पर पूरी तरह बिक चुका है. सिगरेट का धुंआं छोड़ते हुए उसने कहा — तेरा बेटा काम पर लिया जाता है. उसे दूसरी मंजिल पर तसला ढोने के लिए भेज दे.

बाप फिर अदब से झुका और बोला -- बड़ी मिहिरबानी सरकार. और मेरा हाथ थाम कर घूम गया.

—ठहर! तभी मुनीम की कड़कती हुई आवाज सुनायी दी. पलट कर देखा. मुझे डर लग रहा था कहीं मुनीम चश्मा उतार कर बात न करने लगे. दरअसल उसकी आंखों की भयानकता से मैं बचना चाहता था.

गनीमत थी, उसने चश्मा नहीं उतारा था, पर वह गुर्रा रहा था — तेरे बेटे को स्कूल में सलाम करना नहीं सिखाया गया है.

मैं उसे सलाम नहीं करना चाहता था. पर मैंने पाया कि मेरे हाथ जुड़े थे और मैं कमान की तरह जमीन पर झुका खड़ा था यानी मैं पूरी तरह मजदूर हो चुका था.

—ठीक है, यह अनधिकृत मजदूर की तरह काम करेगा. मस्टर रोल में इसका नाम नहीं लिखा जायेगा और इसे तीन रुपये रोज पगार मिलेगी.

बाप ने विवशता के साथ इसे स्वीकार कर लिया था. अंदर का लावा था जो बेसाख्ता आंखों से टपकने को तैयार था, उसने जबर्दस्ती उस पर काबू पाया और मुझे खींच कर ले गया, कहीं मैं अनाप-शनाप न बकने लगूं.

मैं दूसरी मंजिल पर काम करने लगा था. मेरी तरह वहां और भी कई मजदूर थे जो अनधिकृत थे, जिनका नाम मस्टर रोल में नहीं था और जिन्हे आधी पगार मिलती थी. हम सबको गारा ढोने के काम पर लगाया गया था. और हम सभी यह महसूस कर रहे थे कि हम तसलों में गारा नहीं अपनें अरमान ढो रहे हैं, और उन्ही अरमानों से किसी पूंजीपति के महल की नींवें चिपक और बढ़ रही हैं. दिन भर की जी तोड़ मेहनत के बाद मुझे तीन रुपये मिले थे. मेरी इच्छा हुई थी कि उन्हें फैली हथेली पर टिकाये शहर में जुलूस निकालता हुआ चला जाऊं, कि देखो आदमी का शोषण यहां कैसे होता है. पर बाप ने मेरी हथेली से वे तीन रुपये उठा लिये थे और खिस्से में डाल दिये थे. मुझे खयाल नहीं रुपये उठाते वक्त उसके हाथ कांपे थे या नहीं. हां, मेरे भीतर जरूर अंदर तक धुआं भरा था.

पांच-छह रोज़ बाद ही काम में मेरा मन रमने लगा था. समय एक धारा प्रवाह है, डूबते-उतराते आदमी उसमें बहने लगता है. हम कई हमउम्र मजदूर थे. हम गप्पें लड़ाते, हंसी-मजाक करते और हमउम्र मजदूनियों को देख कर सीटियां बजाते और भद्दे इशारे करते. जीवन का एक नया और बिल्कुल अछूता अर्थ खुल रहा था. रधिया की आंखें तो हर वक्त मेरे दिमाग में ही छायी रहती थीं. तभी हम जबर्दस्त हादसे के शिकार हो गये.

उस वक्त मेरा बाप साठ-सत्तर मजदूरों के साथ निचले हिस्से में काम कर रहा था और मैं सौ-डेढ़ सौ साथियों के साथ ऊपरी हिस्से में. हम गीत गा रहे थे और काम कर रहे थे. . .

यकायक बिल्डिंग कांपने लगी.

जी नहीं, भूकंप नहीं आया था. पता नहीं कैसे पिलरों पर स्थित गर्डर अपनी जगह से सरकने लगे थे. देखते ही देखते छत बीच से घसकने लगी. सरिये टूट कर गिर रहे थे, ईंट और मलवा तेज आवाज के साथ नीचे छूट रहा था. भगदड़ और चीख-पुकार का कोहराम मच गया. पर इससे पहले कि कोई बच सकता, पूरी की पूरी छत सब मजदूरों को अपने में समेट एक खौफनाक आवाज के साथ नीचे बैठ गयी. पिलर कांपे और चीखते हुए गिर पड़े. इत्तफाक से मैं दो-चार साथियों के साथ उस वक्त छत की मुंडेर पर था. हम प्राण बचाने के लिए सौ-डेढ़ सौ फुट से नीचे कूद पड़े और जमीन पर गिर

- आप he हो या she।
- याने स्त्री हो या पुरुष।
- श्री कुमकुम के 'Match-the-Bindi' contest में सभी भाग ले सकते हैं।
- पहला इनाम...
- पाँच हजार तक की अपनी पसंद की कोई भी चीज। T.V., FRIDGE etc. etc...
- एक हजार इनाम और भी हैं।
- बहुत ही आसान प्रतियोगिता है। श्री की सुमेल बिन्दी प्रतियोगिता।
- Shree's 'Match-the-Bindi' contest! Entry form अपने करीब के Shree Kumkum dealer से लीजिये।

Shree's
MATCH-THE-BINDI CONTEST
Simple.... exciting!
FABULOUS PRIZES

Shree-Cosmetics
Kurla, Bombay 400 070

श्री
Shree
KUM-KUM
DELUXE
श्री

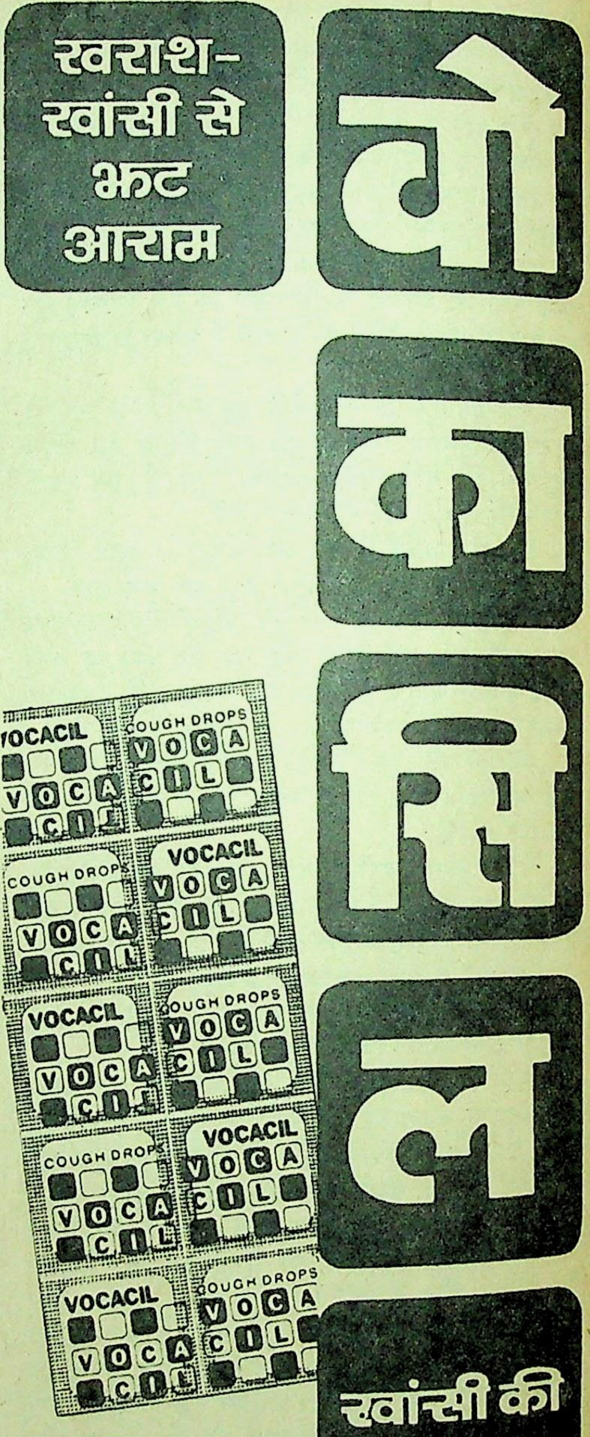

खराश-खांसी से झट आराम

वोकासिल

खांसी की टिकिया

VOCACIL
COUGH DROPS
VOCA
CIL

कर खील-खील हो गये, सिवा मेरे जो मलवे के ढेर पर सीधा गिरा था और धड़ तक उसमें धंस गया था.

तभी सायरन गूंजने लगे. सुरक्षादल की गाड़ियां एक सिरे से दूसरे सिरे तक दौड़ने लगीं. पर वे लाचार थीं, क्रेन के सहारे पिलर हटाये बिना किसी भी मजदूर को बचाया जाना नितांत असंभव था. क्रेन वहां नहीं थी यूं भी किसी के जिंदा रहने की उम्मीद काफी कम थी. मैं मलवे में धंसा हाथ पटक रहा था और सहायता के लिए चिल्ला रहा था. मैंने देखा था सामने एक पेड़ की टहनी से मेरे बाप का कोट लटक रहा था और जमीन पर पोटलियों में बंधा हमारा खाना रखा था. मैं सन्न रह गया, मुझे लगा था टहनी पर कोट नहीं, मेरे बाप की लाश लटकी हुई है.

तभी मुझे मुनीम आता दीख गया. उसकी आंख पर चश्मा नहीं था और वह काफी घबराया लग रहा था. उसके साथ दो-चार आदमी और थे. मुझे देख कर उसने उनके कानों में फुसफुसा कर कुछ कहा. आदमियों ने मुझे तुरंत मलवे से खींच लिया.

—इसे तुरंत अस्पताल ले जाओ. उसने कहा और आंख दबायी.

—मेरा बाप. मैं चिल्लाया. मैं दौड़ना चाहता था. पर मेरे पैर पूरी तरह नष्ट हो चुके थे. मैं चीखा, मेरे पैर, और बेहोश हो गया.

जब मेरी आंख खुली उस समय मैं एक हिचकोले खाती गाड़ी में था. गाड़ी उबड़-खाबड़ और वीरान बस्तियों के बीच से गुजर रही थी. मैं कराहा— आप लोग मुझे कहां लिये जा रहे हैं?

ड्राइवर की सीट की बगल में बैठा आदमी हंसने लगा. उसके गॉगल्स में से उसकी दो अंगारों-सी दहकती आंखें झांक रहीं थी. दूसरे ने पीछे घूम कर मुझे आश्वस्त किया— कत्ल करने.

मैं समझा नहीं,पर एक आतंक अंदर तक झिंझोड़ गया. मैंने साहस करके पूछा— आप तो मुझे अस्पताल. . .

दोनों फिर हंसने लगे— हम तुझे कत्ल करने ले जा रहे हैं. तू अनधिकृत मजदूर है. सरकार मजदूरों को मुआवजा दिलवाने की मांग करेगी. अगर तू जिंदा रहा तो कई तरह की परेशानियां पैदा हो सकती हैं. मजदूर जात होती ही बेवफा है. जिस थाली में खाती है, उसी में छेद करती है. स्साली दो-दो गज जुबान निकाल कर मुआवजे की मांग करने लगती है. मस्टर रोल में तेरा नाम नहीं है, कानून की गिरफ्त में हम नहीं फंस सकते.

मैंने निगाह उठा कर विंड-स्क्रीन से बाहर झांका. मेरी निगाहें अस्थिर हो गयी थीं. टुकड़े-टुकड़े, झिलमिलाते पेड़-पौधे और आसमान दिख रहा था. पेड़ गहरे आतंक से लिपटे हुए थे. पूरा शहर कहरों की बस्ती था. यह तो हो ही नहीं सकता था कि मैं दौड़ती गाड़ी से कूद पड़ूं, मेरे पैर पूरी तरह लुंज हो चुके थे. अलबत्ता मैं दर्द से कराह जरूर रहा था. मौत सामने थी, पर मुझे आश्चर्य हुआ, मैं काफी सहज हो गया था. मैं अतीत के किन्ही सुखद क्षणों की तलाश करने लगा. पर मुझे ऐसा कोई क्षण याद नहीं आया. आपको आश्चर्य हुआ होगा, पर बात एकदम सही है मजदूरों के जीवन में ऐसे क्षण होते ही नहीं जिन्हें स्मृतियों में अंकित रखा जा सके. मैंने मां की, बाप की, रधिया की शक्ल याद करने की कोशिश की, पर कुछ भी उभर नहीं पाया. इसके बाद मैं शायद फिर बेहोश हो गया था.

जब मुझे फिर होश आया तब गाड़ी यमुना के किनारे खड़ी थी. उसका पानी एकदम काला था और क्रुद्ध सिंह की तरह गर्जना करता हुआ किनारों से पछाड़ खा रहा था. उसकी छाती पर झुका आसमान उससे भी ज्यादा काला और डरावना था.

दोनों आदमी गाड़ी से बाहर निकल आये थे और बोनट पर पैर टिकाये इस विचार-विमर्श में लीन थे, कि हत्या कैसे की जाये.

—गोली से. एक ने कहा.

—बेवकूफ हो. दूसरे ने जवाब दिया. पिद्दी न पिद्दी का शोरबा, इस पर गोली खराब नहीं की जा सकती. हत्या छूरे से की जा सकती है.

—बेवकूफी है. गला घोट कर क्यों न मार दें और नदी में फेंक दें.

उन्होंने पिछला दरवाजा खोल कर मुझे खींचने की कोशिश की. मैंने प्रतिरोध करना चाहा, सिमट कर सीट के पिछले हिस्से में दुबक गया और चीखा— मुझ पर रहम कीजिए. मैं विश्वास दिलाता हूं कि मुआवजे की मांग नहीं करूंगा. जीने का हक तो मुझे है. परमात्मा के लिए. . .

प्रत्युत्तर में वे केवल हंसे.

मुझें लगा मेरे सीने में एक नन्हा कबूतर पंख फड़फड़ा रहा है. उन्होंने मुझे खींच कर जमीन पर पटक दिया.

—खड़ा होने की कोशिश कर, एक ने हुक्म दिया.

दोनों हाथ जमीन पर टेक कर मैंने खड़ा होने की कोशिश की, पर मैं उठ नहीं सका, उनके पैरों के पास ही गिर पड़ा. एक ने मुझे कंधों से दबोच लिया दूसरे ने पूरी ताकत से मेरा गला दबा दिया. रिरियाती हुई आवाज निकली. शायद मेरी आंखें फट कर बाहर आ गयी थीं और मैंने ढेर सारा खून उगल दिया, जिससे हत्यारों के हाथ खून से भर गये. मेरी सांस रुक गयी और मैं मर गया. योजना के अनुसार मुझे नदी में फेंक दिया गया.

आपको आश्चर्य हुआ, कि जब मेरी हत्या कर दी गयी है तब मैं आपको अपनी कहानी कैसे सुना रहा हूं?

श्रीमान जी, मेरा विनम्र निवेदन है कि मजदूर कभी नहीं मरता. रामू, श्यामू, पंचम, गुड्डी, हाशिम मर सकते हैं. मजदूर नहीं मर सका. आखिर देश तो उसके कंधों पर ही टिका होता है न! जिस दिन वह मर जायेगा उस दिन देश धड़धड़ा कर गिर पड़ेगा. जी हां, मैं अब भी जिंदा हूं और उन कातिलों को ढूंढ़ रहा हूं, जिन्होंने मेरा कत्ल किया था. पहचान बहुत साफ है, जिन लोगों ने मेरा कत्ल किया है और जो इस साजिश में संलग्न हैं, उनके हाथ अब भी मेरे खून से रंगे हुए हैं.

श्रीमानजी, कृपया झुकिए और अपने हाथ फैला कर देख लीजिए कहीं आपके हाथ पर भी तो खून के दाग नहीं हैं. □□□

१५३, डोभालवाला, देहरादून

भारतीय भाषाओं की प्रथम मौलिक कथाएं और आद्यकथाकार

(१४)

किसी भी भाषा की पहली कहानी की खोज अपने आप में एक महत्वपूर्ण और रोचक कार्य है. इस महत्वपूर्ण खोज के लिए 'सारिका' ही पहल कर रही है. पूर्व के अंकों में मलयालम, गुजराती, बंगला, तेलुगु, डोगरी, कश्मीरी, सिंधी, उड़िया, पंजाबी, मराठी, कन्नड़, असमिया और उर्दू की प्रथम मौलिक कहानियां आप पढ़ चुके हैं. इस अंक में दी जा रही हैं—तमिल की प्रथम मौलिक कहानी. जब यह क्रम समाप्त होगा, तब आप स्वयं ही निर्णय ले सकेंगे—एक कि भारतीय भाषाओं में से पहली आधुनिक कहानी किस भाषा के पास है, और दो कि क्या कहानियां सचमुच पश्चिम से आयी थीं?

प्रथम मौलिक तमिल कहानी

तालाब के तट पर पीपल का वृक्ष: एक विवेचन

• एस. शिवपाद सुंदरम्

कहानी हमारे लिए नयी चीज नहीं. हजारों-हजारों सालों से मौखिक रूप से कहानियां समस्त भारतीय भाषाओं में प्रचलित रहीं, फिर भी पाश्चात्य देशों से छापाखाने के यंत्र भारत में जब से आये, तब से ही कहानियों को साहित्यक रूप मिला—वह भी अंग्रेजी के ज्ञाता उस भाषा में प्राप्त विभिन्न साहित्यक रचनाओं का रसास्वादन कर सके. उसी प्रणाली को अपनाकर जब से लिखना शुरू किया गया, तभी नॉवेल और 'शॉर्ट स्टोरी' का जन्म हुआ.

तमिल में प्रथम मौलिक कथा कौन-सी है, यह जरा कठिन प्रश्न है. अठारहवीं सदी के मध्य काल में 'वेस्की' नामक एक इतालवी पादरी तमिलनाडु में धर्म-प्रचार करने आये. उन्होंने तमिल भाषा का अध्ययन किया और इतना पांडित्य अर्जित कर लिया कि स्वयं ही कई व्याकरण के ग्रंथों और काव्य ग्रंथों की भी रचना की. यह तो सचमुच बड़े आश्चर्य की बात है. उनका व्याकरण ग्रंथ तमिल भाषा का एक अमूल्य निधि माना जाता है. उन्होंने सरल, सुबोध शैली में 'परमार्थ गुरु की कथा' के नाम पर एक कहानी लिखी. इस तरह उन्होंने कुल सोलह कहानियां लिखीं. कुछ लोग इसी कहानी को तमिल की पहली कथा मानते हैं. ये कहानियां १९२२ में पुडुच्चेरी के मुत्तुस्वामी पिल्लै द्वारा छपवायी गयीं. यह मानने की बात है कि कथा के रूप में पहले पहल प्रकाशित कहानियों 'बेस्की' की ही हैं. तमिल की गद्य शैली का प्रारंभ भी यही है, ऐसा कह सकते हैं. मात्र इनको साहित्यिक दृष्टि से नावेल या शार्ट स्टोरी के रूप में नहीं ले सकते.

उन्नीसवीं सदी के बीच में अंग्रेजी भाषा के शिक्षण केंद्र, स्कूल और मद्रास के विश्व विद्यालय इत्यादि की संस्थापना के उपरांत जब अंग्रेजी नॉवेल पाठय ग्रंथ में स्थान पाने लगे, तभी तमिल भाषा में भी १८७९ में प्रथम मौलिक उपन्यास लिखा गया. इस उपन्यास का नाम था 'प्रताप मुदलियार चरित्रम्.' इसके लेखक उस जमाने के डिस्ट्रिक्ट मुंसिफ मायूरम् वेदनायकम् पिल्ले थे.

छापाखाने के प्रचलन के उपरांत तमिल में पत्र-पत्रिकाएं निकलने लगीं तो कहानी, लेख, निबंध इत्यादि की मांग हुई. १८५५ में पेरसिवल पादरी द्वारा संपादित 'दिनवर्त्तमानी' नामक साप्ताहिक पत्रिका में वीरासामी चेट्टियार नामक एक लेखक ने कुछ कहानियां लिखीं. १८९२ में 'विवेक चिंतामणी' के नाम पर प्रकाशित साहित्यक मासिक पत्रिका में वि. आर. राजमअय्यर ने अपने सुप्रसिद्ध उपन्यास 'कमलाम्वाल चरित्रम्' को धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया. लेकिन जहां तक मेरा ख्याल है १८९९ के पहले 'शार्ट स्टोरी' अर्थात कहानी कला की दृष्टि से साहित्यक मान्यता

तमिल के आद्य-कथाकार :

व. वे. सु. अय्यर

तमिल की मौलिक कहानी के जन्मदाता श्री व. वे. सु. अय्यर का जन्म तमिलनाडु के तिरुच्ची जिले के पास वरकनेरी नामक गांव में १८८१ में हुआ था. इन्होंने तिरुच्ची के अर्च. सूचप्पर. कालेज में शिक्षा पायी. तिरुच्ची और बाद में रंगून में वकालत की. कुछ सालों के उपरांत १९०४ में से बैरिस्टरी करने लंदन गये. वहीं पर इंडिया हाउस में वीर सावरकर से उनकी मुलाकत हुई.इस मुलाकात ने उनके जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया. सावरकर, उनके चलाये आंदोलन और उनके क्रांतिकारी साहित्य ने उनको इतना प्रभावित कर दिया कि उन्होंने सावरकर की पुस्तक का अंग्रेजी में अनुवाद किया. यही नहीं, उनके जीवन में एक नया, रोमांचकारी अध्याय भी खुल गया. ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध क्रांति का झंडा उठाने वाले विप्लवकारियों में अय्यर एक हो गये. इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी. . आदि देशों में क्रांतिकारी कार्य करते हुए सावरकर के साथ लापता हो गये. कई प्रकार की अमानुषिक यातनाएं और घोर संकटों का सामना करते हुए छद्म वेश में आखिर भारत में फ्रेंच प्रदेश पुदुच्चेरी (जो आजकल पांडिच्चेरी है) आ पहुंचे. यहां पर पहले ही क्रांतिकारी आंदोलन में सफल न हो कर आध्यात्मिक साधना में जुटे अरविंद घोष, कविवर भारती आदि शरण ले चुके थे. व. वे. सु. अय्यर अब उनसे मिल गये और साहित्य साधना में जुट गये.

व. वे. सु. अय्यर बड़े विद्वान व बहुभाषा पंडित थे. उनको अंग्रेजी, तमिल, संस्कृत, लेटिन, फ्रेंच, जर्मन, हिंदी, उर्दू आदि कई भाषाओं का अच्छा खासा ज्ञान था. कम्बरामयण के वे बड़े रसिक और प्रेमी थे. कम्बरामयण के बालकांड को संपादित करके नये ढंग से उसका प्रकाशन किया. 'कम्बन निलयम्' नाम से एक प्रकाशन शुरू किया था. इस प्रकाशन संस्था द्वारा 'तिलक्कुरल' का अंग्रेजी अनुवाद करके १९१६में प्रकाशित किया. एक कहानी संग्रह निकाला जिसका नाम है 'मंगैय्यरक्करस्पियिन काडल' (मंगैय्यरकरसि का प्रेम). इसका पहला संस्करण १९१७ में निकला. दूसरा संस्करण १९२७ में राजाजी की भूमिका के साथ प्रकाशित हुआ

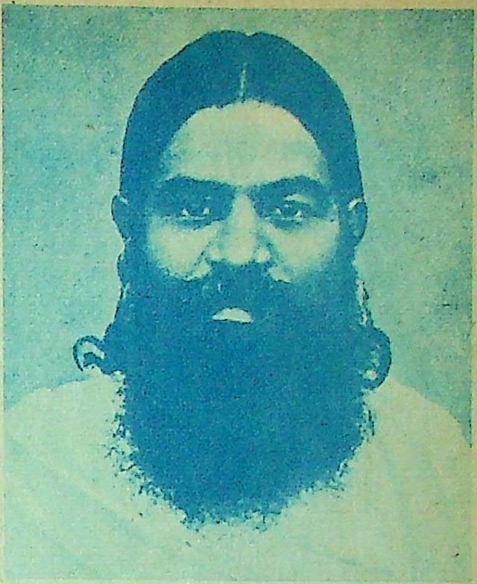

'कुलत्तंगकरै अरसमरम' (तालाब के किनारे पर का पीपल का वृक्ष) जो तमिल की प्रथम मौलिक कहानी मानी जाती है.

व. वे. सु. अय्यर प्रथम महायुद्ध के बाद पुदुच्चेरी से मद्रास आये. युद्ध के उपरांत कई राजनैतिक कैदियों को मुक्ति मिली थी. वे भी मुक्त हो 'देश भक्तन' के संपादक के रूप में काम करने लगे. उस समय 'देश भक्तन' में प्रकाशित उनके कुछ लेखकों में राजद्रोह की गंध पा कर सरकार ने उनको फिर कैद कर दिया. 'बेल्लारी' की जेल में उन्होंने अपनी सजा के दिन बिताये. कारावास से छूटते ही उन्होंने उत्तर भारत की यात्रा की. लौटकर तिरुनेलवेली जिले में ताम्रवणी नदी के सुंदर तट पर 'चेरमादेवी' में उन्होंने अपने गुरुकुल की स्थापना की. यहीं पर उन्होंने 'बाल भारती' नामक साहित्य पत्रिका मुद्रण की.

यदि इस वीर अद्वितीय साहसी पुरुष के जीवन का ऐसा नाटकीय अंत न होता तो तमिलनाडु का भाग्य कुछ और होता. अय्यर अपने विद्यार्थियों को लेकर १९२५ में पापनाशम जल-प्रपात में गये थे. एकाएक अय्यर की इकलौती बेटी झरने के बहाव में बह गदी. बेटी को बचाने हेतु अय्यर प्रवाह में कूद पड़े, निकले नहीं. एक महान व्यक्ति का अंत हो गया और तमिल साहित्य की भारी क्षति हुई.

प्राप्त कहानी लिखी नहीं गयी. १८९९ में ही 'विवेक चिंतामणी' में 'लक्ष्मी' शीर्षक से शिवसाम्बन ने एक कहानी लिखी है. कहानी का कथानक यों है—अंडमान की कैद से भाग आया एक कैदी, बीस साल से बिछुड़ी पत्नी से मिलने आता है. वह सीधा अपना परिचय न देकर ज्योतिषी के छद्मवेष में आता है और पत्नी से कहता है कि उसका बिछुड़ा पति बहुत शीघ्र ही उससे मिलने आ जायगा. बाद में उस दिन के अखबार में जेल से भाग आए उस कैदी का पूरा विवरण पाकर, सब की आंख बचाकर एक निर्जन स्थान पर आत्महत्या कर लेता है. कथानक काफी रोमांचक है. स्वरूप, शिल्प और संयोजना की दृष्टि से यह कलात्मक कहानी है, ऐसा कह सकते हैं. मगर लगता है कि यह 'हार्डी' का छायानुवाद है. अलावा इस कहानी के लेखक का सही विवरण भी हमें नहीं मिल रहा है.

इसके उपरांत कई कहानियां लिखी गयीं. 'विवेक चिंतामणी' तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुई हैं, फिर भी आलोचना की दृष्टि से चर्चित सबसे प्रथम मौलिक कहानी १९१७ में ही प्रकाशित हुई. इस कहानी के लेखक थे व. वे. सु. अय्यर और कहानी

का नाम है 'कुलत्तगकरै अरसमरम'. तमिल के प्रथम मौलिक कहानीकार होने का गौरव प्राप्त है श्री वरकनेरी वैंगट सुब्रमणीय अय्यर--व. वे. सु. अय्यर को.

व. वे. सु. अय्यर को अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन लैटिन आदि कई एक विदेशी भाषाओं पर अच्छा पांडित्य था. वे बहुभाषी थे. प्राचीन ग्रीक साहित्य का गहरा परिचय था. तमिल के महाकवि कंबन के बड़े रसिक थे. कंबरामायणं और तिरुकुरल का उन्होंने अंग्रेजी में अनुवाद किया है.'मंगैय्यक्करसियिन कादल' (मंगैय्यरकसि का प्रेम) आदि छह कहानियों को अंग्रेजी शार्ट स्टोरी की स्टाइल में लिखा. ये कहानियां किसी पत्रिका में प्रकाशनार्थ नहीं लिखी गयीं. शार्ट स्टोरी अर्थात कहानी को सुचारु साहित्य का रूप देने के लिए ही लिखी गयीं. अंग्रेजी कहानी कथा को ध्यान में लेकर उसके आदर्श पर अय्यर ने मौलिक कहानियां लिखीं. इस कहानियों का संकलन १९१७ में प्रकाशित हुआ. इसी का दूसरा संस्करण १९२७ में राजाजी की भूमिका के साथ निकला. इन कहानियों में विशेषत: 'कुलत्तंकरै अरसमरम' अय्यर की मौलिक कहानी है. इसके अलावा कहानी कला की दृष्टि से यह उत्तम रचना है.

इस कहानी का प्रयोग नवीन है. एक गांव के तालाब के किनारे पर खड़ा पीपल का वृक्ष अपनी भाषा में कहानी सुनाता है. इस शिल्प में नवीनता है. गांव में रुक्मिणी नामक एक लड़की है. बड़ी सुंदर, सुशील लड़की है. उसकी शादी छुटपन में ही गांव के एक युवक नागराज से हो जाती है. लड़का भी बड़ा सुंदर, नेक और पढ़ा-लिखा है. सास-ससुर भी उससे बड़े प्यार का व्यवहार करते हैं. अचानक लड़की के पिता का सारा धन लुट जाता जाता है कि वे दरिद्र हो जाते हैं. समधिन की यह हालत देखते ही नागराज के मां-बाप का दिल बदल जाता है, अपने बेटे नागराज की दूसरी शादी एक धनी के यहां पक्की कर लेते हैं. नागराज का मन दूसरी शादी करने में नहीं लगता, फिर भी मां-बाप को मजा चखाने के इरादे से वह सहमत हो जाता है. विवाह के मुहूर्त्त के समय मांग्लमधारण करने से इंकार कर के वह मां-बाप के मुंह पर वह कालिख मलना चाहता था. अपने इस विचार को वह गुप्त रखना चाहता था. इसलिए रात के वक्त तालाब के किनारे रूक्मिणी से भेंट होते वक्त भी इसे प्रकट नहीं करता. रुक्मिणी बेचारी इसे जान नहीं पाती. नागराज शादी करने जा रहा है, यह सोचकर वह आत्महत्या कर लेती है. नागराज अपनी मूर्खता पर पछताता है और संन्यास धारण करके गांव से चला जाता है.

इस कहानी की उन दिनों में विशेष प्रशंसा हुई और आज भी मेरी राय में करुण रस प्रधान यह कहानी उत्कृष्ट है. वरपक्षवालों की दहेज और धन-लालसा ने रुक्मिणी-नागराज जैसे सच्चे प्रेमियों के जीवन को कितना दुखद और अभिशप्त कर दिया, इसे समकालीन भावबोध के साथ चित्रित किया है.आज भी इस समस्या का हल कहां हुआ है? इस कहानी पर अय्यर ने अपनी भूमिका में लिखा है--यह कहानी हमारे गांव के तालाब के किनारे खड़े पीपल के वृक्ष ने सुनायी है. पीपल के वृक्ष ने नन्तूल आदि व्याकरण ग्रंथों का अध्ययन नहीं किया है. इसलिए उसी की कथित भाषा में (गंवारू भाषा में) लिखा है मैंने. आशा है पाठक इसमें सुसंस्कृत साहित्यिक भाषा की आशा नहीं करेंगे.

एस. शिवपादसुंदरम् का जन्म २७ अगस्त १९१२ को श्रीलंका में हुआ था और वहीं पर उन्होंने शिक्षा भी प्राप्त की. वे वहीं से प्रकाशित एक तमिल साप्ताहिक 'इल्लाकेसरी' के संपादक थे और बाद में रेडियो सिलोन तथा बी. बी. सी. लंदन से संबद्ध रहे.

इन्हें अपनी तमिल रचनाओं पर मद्रास राज्य सरकार तथा सिलोन सरकार से पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है. आजकल ये आधुनिक तमिल साहित्य का इतिहास लिखने में व्यस्त हैं.

व. वे. सु. अय्यर की कुछ कहानियां ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखी गयी काल्पनिक कहानियां हैं. उन्होंने स्वयं लिखा है है : 'मंगैय्यरक्करसियिन कादल' एक हद तक तमिलनाडु की प्राचीन काल की अद्वितीय वीरता, संस्कृति और सभ्यता पर प्रकाश डालती है. 'अकेनलक्के की कहानी' १९१४, १९१५ में महायुद्ध के समय की एक सच्ची घटना पर आधारित है. 'कमल विजयम्' इस युद्ध काल की पृष्ठभूमि पर अंकित काल्पनिक कथा है. एक जगह पर अय्यर ने लिखा है--कहानियों को कवित्व से पूर्ण और रस भावभेदों से युक्त रहना है.

इस कहानी संकलन के दूसरे संस्करण को १९२७ में उनकी भाग्यलक्ष्मी ने प्रकाशित किया है. इसमें अय्यर की दो और कहानियां 'लैला मजनूं' और 'अनारकली' सम्मिलित हैं.इसकी भूमिका में राजाजी ने लिखा है--आशा है व. वे. सु. अय्यर की देशभक्ति और दुर्दमनीय साहस, धैर्य और सत्य प्रेम पर विमुग्ध होकर उनकी प्रशंसा करने वाला हर कोई उनके कहानी संग्रह को प्रकाशित करनेवाली श्रीमती भाग्यलक्ष्मी अम्याल के प्रति कृतज्ञ होकर उनका उद्देश्य सफल होने में अपना पूरा सहयोग देगा.

व. वे. सु. अय्यर क्रांतिकारी थे. भारत की आजादी के लिए लड़नेवालों में से एक थे. तमिल साहित्य में नवविकास व नवीनता को लाने का श्रेय इनको है. तमिल कहानी के जन्मदाता व. वे. सु. अय्यर कवि भारती के निकटतम मित्र थे. कवि भारती तमिल कविता में विलक्षण नवीनता ले आये तो गल्प के क्षेत्र में व. वे. सु. अय्यर ने नये प्रयोग करके आगे की पीढ़ी का मार्गदर्शन किया. इसमें कोई संदेह नहीं कि व. वे. सु. अय्यर को तमिल साहित्य के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है.☐☐☐

(अनुवाद : सरस्वती रामनाथ)

प्रथम मौलिक तामिल कहानी

तालाब के तट पर पीपल का वृक्ष

• व.वे.सु. अय्यर

कहने को मैं तो निरा वृक्ष हूं. जड़ हूं. लेकिन अपने दिल की बात सुनाने लगूं तो चौबीस घंटे काफी न होंगे. अब तक मैंने अपनी आंखों से कितनी घटनाएं देखी हैं, कितनी बातें सुनी हैं. आपकी नानी की नानी को घुटनों चलते देखा है. . . .हंसिए मत ! एक सौ साल पहले की बात कहता हूं. आप लोगों की दादी, परदादी इसी तालाब के पनघट पर पानी लेने घड़ा ले के आयेंगी. कुछ तो आपने बाल-बच्चों को भी ले के आयेंगी. ओह. . . वे बच्चे. . .कितने सुंदर, कितने प्यारे होंगे ! बच्चों को किनारे पर खेलते छोड़ कर वे अपने सारे कपड़े-लत्ते धो लेंगी, फिर तो हलदी-उबलटन लगा के स्नान करेंगी. उन दिनों में . . . देखा न ! उक्त कोने पर प्रकाल वल्ली का एक पौधा था. अनूठी मोतियों-सी खिली उन कलियों की बहार ! . . . ओह सारा तालाब उन फूलों की सुगंध से महक उठेगा . . . हूं. . .उन दिनों की स्मृतियां कितनी मधुर लगती हैं.

लेकिन . . .अब तो मैं उन दिनों की बीती बातें सुनाना नहीं चाहता. मेरा दिल जब हलका व खुश रहेगा, तब सुनाऊंगा. गत चार-पांच दिनों से मुझे रह-रह कर रुक्मिणी की यादें आती रहती हैं. पंद्रह साल गुजर गये. मगर मुझे लगता है मानो कल की ही बात है. आप लोगों में से किसी ने उसे न देखा होगा, स्वर्ण प्रतिमा-सी लगती थी वह बच्ची. उसका वह हंसता हुआ मुखड़ा याद आते ही लगता है, वह मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी है. उसके शुभ्र, सुंदर ललाट को देखते आंखें न थकतीं. लंबा कद. कमल के डंठल-सा कोमल हाथ-पांव. नव मल्लिका-सा मृदुल सुडौल शरीर. सारा सौंदर्य मानो उन आंखों में समा गया था. कितनी . . विशाल . .बड़ी-बड़ी स्निग्ध, स्नेहपूर्ण, आंखें थीं वे. उन आंखों को देखते ही नीलोत्वकों से सुशोभित निर्भीक सरोवर की स्मृति आयेगी. सोमवार की अमावस्या के दिन परमात्मा की पूजा करके, मेरी प्रदक्षिणा करती, तब वह स्नेहपूरित दृष्टि से मेरी ओर देखती रहती कि मेरी सूखी शाखाएं भी लहलहा उठतीं. ओह ! मेरी लाड़ली बिटिया रुक्मिणी ! . . . . तुम जैसी बेटी को न जाने कब देख पाऊंगा?

जब बच्ची थी तब से लेकर आखिरी सांस लेने तक वह तालाब पर न आती, ऐसा एक दिन न रहता. नित्य ही मैं उसे देखता रहता. चार-पांच वर्ष की उम्र तक सहेलियों के साथ मेरी ही छाया में खेलती रहती. बच्चों से मुझे बड़ा प्यार है और वह तो रानी बिटिया थी. गांव भर की वह लाड़ली थी. उसे देखते ही मैं अपने को भूल जाता. उस पर थोड़ी-सी भी धूप न लगने देता. वह जरा. . दूर हट के थिरकती रहती तो भी शाखा रूपी हाथ फैलाकर उसे छाया देने के लिए विह्वल हो जाता. भक्तिभाव से अपने प्रियतम सूर्य भगवान का दर्शन लेते ही मुझे रुक्मिणी की याद आ जाती. फिर क्या पलकों का पांवडा बिछा के उसकी राह देखता रहता.

उसके पिता कामेश्वर अय्यर उस वक्त काफी संपन्न दशा में थे. घरबार, धन, दौलत सब कुछ था. बेटी तो उनकी आंखों का तारा थी. फिर क्या कहना, बाजार में कोई भी नयी चीज आये, तो वे अपनी बेटी के लिए लाना न भूलते. हीरे-जवाहरात के आभूषणों से बेटी को लाद दिया था उन्होंने. जब वह दस उम्र की थी 'जोत्रा' के लिए रेशमी घाघ रा और सिल्क की ओढ़नी ले आये थे. 'जोत्रा' के दिन उसके सौंदर्य का क्या कहना! पूनम की रात में, अलंकारभूषिता रुक्मिणी के सुंदर शरीर पर रेशमी का घाघरा और ओढ़नी ने चार चांद लगा दिया था . . .सच कहता हूं. . . मैं आत्म-विस्मृत हो गया था, ओह ! उसके कंठ के बारे में कहना ही भूल गया . . . उसके मधुर कंठध्वनि के समक्ष कोयल आखिर क्या चीज है! सोने के तार-सी लचकती-गमकती आवाज थी उसकी कि सुननेवाले झूम उठते. 'जोत्रा' के दिनों में मैंने उसका गाना सुना है. हां, अब भी उसकी वह मीठी, मधुर, मादक आवाज मेरे कानों में गूंज उठती है.

लड़की बड़ी अच्छी थी. दया व करुणा से भरा हृदय था उसका. हर किसी से प्यार का वर्त्ताव करती. अमीर-गरीब का भेदभाव नहीं उसके मन में. खासकर अभावग्रस्त लोगों के प्रति ही उसे अधिक ममता थी. अंधे, लूले-लंगड़े भिखारियों को देखते ही उसकी आंखों से आंसू बहने लगता. अधिक क्या कहूं, उसकी याद आते ही, झुलसती घोर गरमी के उपरांत वर्षा की शीतल धारा से प्राप्त आलौकिक आनंद की सरस अनुभूति मिलती है.

ओह! मेरी प्यारी बिटिया. . .की ऐसी दुर्गति क्यों हुई? मुझ भाग्यहीन का सारा मनोरथ मिट्टी में क्यों मिल गया? ब्रह्मदेव अंधा है क्या? ना-ना . . मानव के निर्मम अत्याचार पर भगवान को क्यों दोष दूं?

रुक्मिणी बारह साल की हुई तो उसकी शादी गांव के मणियम (मुखिया) रामस्वामी अय्यर के पुत्र नागराज के साथ हुई. बड़ी धूमधाम से विवाह संपन्न हुआ. सहेलियों के साथ (तोषि पोंगल के दिन), और जुलूस में सर्वालंकार भूषिता रुक्मिणी जब गांव की सड़कों पर आयी, मुझे लगा मेरी दृष्टि ही लग जायेगी सहेलियों

के बीच में आंखों को चौंधिया देनेवाली बिजली की लता-सी. . .वह दमक रही थी.

कामेश्वर अय्यर ने बेटी को गहने, कपड़े, बरतन-भांडे सब खूब दिया था. रुक्मिणी के सास-ससुर का दिल भर गया. विवाह के बाद उसकी सास अकसर उसे अपने घर पर ले जाती. बड़े प्यार से उसका बाल संवारती, फूलों से सजाती. नाते-रिश्ते के यहां जाते वक्त रुक्मिणी को साथ ले जाना न भूलती. रुक्मिणी का पति नागराज भी सुंदर, सुशील लड़का था. वह मद्रास में पढ़ रहा था. हर किसी के मुंह में यही बात थी . . . जोड़ी ठीक बैठी है. रूप, सौंदर्य-बुद्धि व धन . . .सब दृष्टि से एक दूसरे से कम नहीं.

तीन साल गुजर गये. इन तीन सालों में कितना बड़ा हेरफेर हो गया था. कामेश्वर अय्यर की दशा अब शोचनीय हो गयी थी. सुना है आर्थनाट कंपनी में उन्होंने अपनी सारी रकम जमा कर रखी थी. हमारे देशवालों के चार करोड़ रुपयों को उस विलायती कंपनी ने एकाएक डकार लिया . . .बस . . .एक ही दिन में लखपति कामेश्वर अय्यर राह के भिखारी बन गये. रुक्मिणी की मां मीनाक्षी के शरीर पर जो कुछ आभरण थे, वही बचे. अपनी पैतृक संपत्ति, घर और जमीन आदि बेच कर ही उनको अपना कर्ज भरना पड़ा. अपना मकान बेच कर, अभी नाले के किनारे पर कुप्पुस्वामी अय्यर रहते हैं न, उसी मकान पर वे आ गये थे. मीनाक्षी भी देखने में महालक्ष्मी-सी लगती. बड़ी शांत स्वभाव की स्त्री थी.

इतनी बड़ी विपत्ति आ गयी, हाय क्या करें, ऐसा वह अकुलायी नहीं. इतने दिन सुख से रहे. भगवान ने इतना सुख-वैभव दिया था, अब उन्हीं ने सब कुछ ले लिया. और क्या? मेरे 'वे' और रुक्मिणी जब तक जीते रहें, मुझे कोई अभाव नहीं, कोई दुख नहीं. . .पूस महीने में रुक्मिणी का गौना करके ससुराल भेज दें तो फिर हमें क्या चिंता? रूखा-सूखा जो मिले खा के, भगवान के ध्यान में अपना दिन चैन से बिता देंगे . . . ऐसा कहती रहती रही. लेकिन . . .बेचारी . . . . भावी को क्या जानती थी?

कामेश्वर अय्यर की सारी संपत्ति लुट गयी, अब कुछ बचने की आशा नहीं, यह जानते ही रामस्वामी अय्यर का सारा स्नेह ठंडा पड़ गया. पहले तो वे अक्सर उनसे मिलने आते, रास्ते में कहीं देखते तो भी दस-पांच मिनट बोलते रहते. लेकिन अब तो कहीं दूर पर उन्हें देखते ही कन्नी काटने लगते जैसे कोई जरूरी काम हो, मुड़कर दूसरी तरफ चले जाते. उनकी पत्नी जानकी ने भी मीनाक्षी से मिलना-जुलना बंद कर दिया. लेकिन मीनाक्षी और कामेश्वर अय्यर ने इसकी परवाह न की. मगर वे लोग रुक्मिणी के प्रति भी विमुखता दिखाने लगे तो वे दोनों बेहद दुखी हो गये. आर्थनाट कंपनी के डूबने के पहले हर शुक्रवार जानकी, रुक्मिणी को ले आने के लिए नौकरानी को भेजना न भूलती. उस दिन बहू को अपने हाथ से साज-संवार कर संध्या को अखिलांडेश्वरी के मंदिर में ले जाती और अगले दिन ही घर भेजती. मगर आर्थनाट कंपनी के डूब जाने की खबर पाते ही उस शुक्रवार को नौकरानी द्वारा उसने खबर भेज दी कि आज घर में बहुत काम है इसलिए अगले शुक्रवार को रुक्मिणी को बुला लूंगी. अगले शुक्रवार न नौकरानी आयी, न कोई खबर. सास के इस व्यवहार पर रुक्मिणी भी दुखी हो गयी.

* *

दिन बीतते रहे. गांव में तरह-तरह की बातें उठती रहीं. सारी गपशप और अफवाहें तालाब के तट पर जोरों से चलतीं. पूरी बातें मेरे कान तक कहां पहुंचती? इधर-उधर से एकाध शब्द सुन लेता . . . मेरा मन बिल्कुल बेकरार था. लगा—इतनी कानाफूसी और गुप्त बातें अनर्थकारी हैं. . . मैं आतंकित हो उठा.

आखिर काट-कूट के इधर-उधर की बातें मिला कर देखा तो बात धीरे-धीरे समझ में आने लगी. रामस्वामी अय्यर और जानकी ने अपने बेटे की दूसरी शादी करने का निश्चय कर लिया है. हाय . . . क्या करूं . . . मैं एकदम टूट गया. रानी बिटिया रुक्मिणी के जीते जी ऐसा करने का कैसे मन आया उन नराधमों को ! हाय री पापिन जानकी! वह बच्ची तुम्हारी जैसी ही एक स्त्री है न? उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था? उसका मुखड़ा देखते तो पत्थर का हृदय भी पिघल जाता. तुम लोगों का दिल क्या पाषाण से कड़ा है? मेरी ही यह हालत रहे . . . तो उस मासूम बच्ची व उसके मा-बाप की दशा का क्या कहना?

अब तो केवल नागराज का भरोसा है. वह तो मद्रास में पढ़ रहा था. माघशीर्ष महीना आ गया और मैं दिन गिनता रहा . . .आखिर वह भी आ गया. जिस दिन गांव में आया, उसका चेहरा हमेशा के जैसा प्रफुल्लित था. हंसी-खुशी और मजाक करता रहा. मगर कुछ दिनों में वह बहक गया. लगा . . . मां-बाप उसका मन बहकाने लग गये. सुनते हैं, पानी के बहते-बहते पत्थर भी घिस जाता है. उसका कसा हुआ चेहरा देखते ही मेरा कलेजा बैठ जाता. मेरी आशा जाती रही. केवल उसी का भरोसा था लेकिन अब तो वह भी . . .

पूस का महीना आ गया. अब खुलकर बातें होने लगीं. सुना, कोई पूरब की लड़की है. लड़की के पिता के नाम चार लाख संपत्ति है. कोई लड़का नहीं यही एकलौती लड़की, नहीं एक और लड़की भी है. जो भी हो, रामस्वामी अय्यर के परिवार के हिस्से को दो लाख अवश्य आ जाएगा. . .यह सब बातें मुझे कर्णकठोर लगतीं . . . मगर क्या गरता? मेरा वश ही क्या है? सब्र करके सुन लेता.

जब से इस तरह की चर्चाएं उठने लगीं, मीनाक्षी ने दिन में घर से निकलना बंद कर दिया. सूर्योदय के पहले मुंह अंधेरे में ही आ जाती व स्नान करके पानी ले के चली जाती. उसकी सूरत देखते ही मेरे मन में ढेर-सी दया उमड़ आती. खाना-पीना नींद तक हराम हो गयी. इस दुख ने उस के सौंदर्य को मलिन कर दिया. अपना घरबार सोना-चांदी लुट गया, मंगलसूत्र के अलावा

मेरे शरीर पर अब कुछ न रहा . . . ऐसी वह अकुलायी नहीं . . .सोने की चिड़िया-सी बहू के रहते जानकी उस पर तिल भर भी दया न दिखा अपने बेटे की दूसरी शादी का प्रबंध कर रही है न? बस इसी दुख की आग में वह दिनरात जलती रही बेचारी!

बेचारी रुक्मिणी पर क्या बीत रही थी, यह तो मैं नहीं जानता. आखिर मुहूर्त का लग्न निश्चित हो गया. लड़कीवालों ने आकर लग्नपत्रिका दे दी. उस दिन उनके द्वार पर नादस्वर के मंगल बाजे की ध्वनि सुनकर मेरे प्राण कांप उठे. न जाने मीनाक्षी व रुक्मिणी कैसी छटपटाती रहीं.

नागराज की निर्ममता पर मैं आंसू न बहाऊं, ऐसा एक दिन न बीतता. हर क्षण सालता, दुख में तड़पता रहा कि सूखे पर गिरी वर्षा की बूंदों-सी एक खबर आयी कि श्रीनिवास आनेवाला है. श्रीनिवास नागराज का कालेज का साथी है. बीस-तीस मील की दूरी पर उसका गांव है. किसी ने उसे पत्र लिख दिया कि नागराज की दूसरी शादी होनेवाली है. बस तुरंत डाकगाड़ी-सा दौड़ता आ गया. उस दिन शाम को दोनों तालाब के किनारे पर आये. गुप्त रूप से एकांत में दिल खोलकर बातें करना है, तो तालाब का किनारा छोड़ के और जगह कहां है? छूटते ही श्रीनिवास ने पूछ लिया कि जो कुछ मैंने सुना है, वह सब सच है क्या? नागराज बोला—मां-बाप ने बात पक्की कर ली है. अब मेरे कहने से थोड़े ही रुकनेवाली है! सुना है, लड़की बड़ी रूपवती है और उसके पिता ने उसके नाम पर लाख रुपये की संपत्ति लिख रखी है. उनकी मृत्यु के बाद और एक लाख मिलेगा . . . कहो यार! घर आयी लक्ष्मी को क्यों कर दुत्कारें?

यह उत्तर सुनने वक्त श्रीनिवास का चेहरा कितना विवर्ण हो गया था. लगभग आधे घंटे तक वह अपने मित्र को धर्म और न्याय का पक्ष ले कर ऐसी-ऐसी दलीलें पेश करता रहा कि पत्थर का हृदय भी पसीज उठे. बोला—चाहे कितने ही लाख मिलें अग्नि के समक्ष लिए मंत्र-प्रमाण को तिलांजलि दे दोगे? एक मासूम, निर्दोष लड़की के जीवन की बरबादी कर दोगे—ऐसा बहुत कुछ कहा. मैं मन ही मन उसे आशीश देता रहा. अंत में नागराज ने कहा—श्रीनिवास! मैंने केवल तमाशे के लिए ऐसी बातें कहीं . . . क्या मानते हो कि केवल पैसे के लिए मैं इतना नीचतापूर्ण काम काम करूंगा . . . ? मैं तो बात को गुप्त रखना चाहता था लेकिन अब चारा नहीं. बात यहां तक बढ़ गयी तो तुमसे छिपाने से क्या मतलब? लेकिन एक बात है, तुम किसी से न कहना है. ये लोग अपना आर्य संस्कार छोड़कर इतनी नीचता पर उतर गये हैं तो मैं इनके मुंह पर कालिख मलने का निश्चय कर चुका हूं. इसलिए मैं मन्नारकोइल जाता हूं. विवाह की वेदी पर बैठूंगा मगर ऐन वक्त पर मांगल्य धारण करने से इनकार कर दूंगा. अदरख खाये बंदर-सा सब अपना-सा मुंह लिये खड़े रहेंगे . . . और क्या? मित्र तुम मानते हो कि . . . रुक्मिणी के अलावा और किसी का हाथ पकड़ूंगा . . .

लेकिन श्रीनिवास को यह ठीक नहीं जंचा. कहा—तुम मन्नारकोइल चले जाते तो रुक्मिणी और उनके मां-बाप पर क्या बीतेगी, इस पर कभी सोचा है? इस बात पर थोड़ी देर चर्चा करते रहे. मुझे कुछ ठीक सुनाई नहीं दिया. उस दिन रात को मुझे नींद नहीं आयी. अपने को धिक्कारता रहा कि नागराज जैसे सत्पात्र की मैंने कितनी निंदा की. सोचा अब रुक्मिणी को कोई चिंता, कोई अभाव नहीं.

* *

शनिवार का दिन है. सारा गांव सो गया. साढ़े नौ बज गया होगा. नागराज अकेले तालाब के किनारे पर आया और नीम के वृक्ष की छाया में बैठा चिंतामग्न हो गया. थोड़ी देर पर दूर से आती हुई एक स्त्री दिखाई पड़ी. वह भी तालाब की ओर ही आ रही थी मगर बार-बार पीछे मुडकर देखती आ रही थी. आखिर नागराज के पास आ कर खड़ी हुई तो मालूम हुआ कि वह और कोई नहीं रुक्मिणी है. मैं चकित-सा रह गया. आंखें मल कर ध्यान से देखने लगा.

पांच मिनट गुजर गया मगर नागराज का ध्यान उसकी ओर गया ही नहीं. वह तो गहरी चिंता में निमग्न हो गया था. रुक्मिणी भी अचल प्रतिमा-सी खड़ी थी. अचानक उसने सिर उठाया कि सामने रुक्मिणी को पाकर अचकचाकर रह गया. लेकिन तुरंत संभलकर पूछा—रुक्मिणी इतनी रात बीते अकेले यहां . . .
—जहां आप हैं वहां मैं, अकेली कैसी? वह दिन तो अब तक न आया है. इतना कहकर वह मौन हो गयी. दो-तीन मिनट गुजर गये. मगर दोनों न बोले. आखिर वह बोला—इस वक्त हम दोनों को यहां देख कर लोग अनापशनाप बकने लग जाएंगे. आओ, घर चलें. रुक्मिणी बोली—समझ में नहीं आता कि आपसे क्या कहूं? कैसे कहूं? गत तीन महीनों से मुझ पर जो कुछ बीत रहा है, वह देवी अखिलांडेश्वरी ही जानती है. सोचा था, आपके मद्रास से लौटते ही मेरी सारी चिंता दूर हो जाएगी. मामा और मामी चाहे जो कुछ भी करें, आप मेरा साथ न छोड़ेंगे, यही भरोसा था. आप मेरा तिरस्कार कर दें तो मैं किसका सहारा ले के जीऊंगी? मेरा दिल चूर-चूर हो गया है. आप उसे संभालकर न रखें तो बस. . .

कहे देती हूं . . . मेरा निश्चय नहीं. . .इसमें कोई संदेह नहीं, इतना कहते-कहते उसे रोना आ गया. मगर नागराज कुछ न बोला. चुप बैठा था. थोड़ी देर के बाद रुक्मिणी ने पूछा–– सुना है, कल बारात रवाना होगी. आप भी जाने वाले हैं?

थोड़ी देर सोचने के बाद नागराज बोला––हां . . . जाने का इरादा है. उसके ये शब्द सुनते ही दुख से रुक्मिणी की छाती फटने लगी. शरीर थरथर कांप उठा. आंखों में पानी उमड़ आया. लेकिन बड़ी मुश्किल से अपने को रोकते हुए उसने कहा––तब तो आपने मेरा तिरस्कार कर दिया?

पर नागराज बोला––तुम्हारा तिरस्कार करता. . . नहीं. कभी नहीं. मगर मां-बाप को तृप्त करना भी मेरा कर्त्तव्य है न? इसीलिए उनकी बात मानकर कल जाता हूं. लेकिन कहे देता हूं, तुम जरा भी चिंता न करना. मैं कभी तुम्हारा तिरस्कार न करूंगा.

रुक्मिणी की सब्र का बांध टूट गया––आप दूसरी शादी कर लें और मैं चिंता न करूं? आप मेरा तिरस्कार न करेंगे मगर मां-बाप की बात रखेंगे. ओह! आगे मेरे कहने को क्या रखा है . . . मेरी अब कोई गति नहीं . . .वह बेचारी हताश हो कर बैठ गयी.

नागराज सोचता रह गया, 'शादी नहीं होगी' इन शब्दों के अलावा और कौन-सी बात है जो उस बेचारी को सांत्वना दे सकती है? लेकिन अभी तो उसे खुलकर कहने को वह तैयार न था. इसलिए बिना कुछ कहे, मौन भाव से अपने दिल में उसके प्रति जो प्रेम व प्यार है, उसे व्यक्त किया. उसके हाथ अपने दोनों हाथों में लेकर प्रेम से सहलाता रहा जैसे किसी रोती बच्ची को आश्वासन दे रहा हो. बड़े प्यार से उसने पीठ पर हाथ फेरा कि उसके हाथ उसके रूखे केशों में उलझ गये तो हड़बड़ाकर बोला–– अरी! तुमने यह क्या कर रखा है? तेरा मुलायम केश . . . कैसे जटा-सा उलझा पड़ा है. . . ओह! तुम्हारी यह दशा मुझसे देखी नहीं जाती. रुक्मिणी! यहां देखो न? तुम्हारा मुंह देख लूं तो सही. हाय! तुम्हारी आंखें कैसी लाल हो गयी हैं! मुख की वह कांति कहां चली गयी? मेरी प्रिये! मुझ पर विश्वास करो. मैं तुम्हें कभी न छोड़ूंगा. जरा भी न घबराना. हृदयपूर्वक कहता हूं. . . तुम्हारी यह हालत देखकर मेरी छाती फट रही है. सपने में भी न सोचो कि बचपन से लेकर हम दोनों का जो प्यार है, उसे भूल जाऊंगा. . .अच्छा! उठो. . . देर हो गयी न? घर चलें.

रुक्मिणी उठी नहीं. उन्मादिनी-सी बैठी रही. उसे देखते ही नागराज की आंखें भर आयीं. पल भर ख्याल आया कि मन का रहस्य खोल दूं! कह दूं उससे. . .हाय! उसी वक्त कह देता तो कितना अच्छा हुआ होता! लेकिन उस वक्त उसे वह अगले दिन जो चमत्कार दिखाने वाला है, वही सबसे बड़ी व महत्वपूर्ण लग रही थी. रुक्मिणी के कोमल, दुर्बल शरीर को जैसे किसी फूल को सहेज कर उठा रहा हो, धीरे से हाथों में भरकर नागराज ने अपनी छाती से लगा लिया––रुक्मिणी! बोलती क्यों नहीं? कहो न! और क्या चारा है?. . . मैं क्या करूं? उसकी आवाज बड़ी करुणापूर्ण थी. रुक्मिणी ने आंखें उठाकर एक बार उसकी ओर देखा. . .उस दृष्टि में जो कुछ था. . .उसे मैं आपसे कैसे कह पाऊंगा? बात के तेज प्रवाह में असहाय बहनेवाला कहीं दूर पर तैरती लकड़ी को देखकर बड़ी आशा के साथ-साथ हाथ-पांव मारते, डूबते. उतराते उसके पास पहुंचता 'हाय बच गया आखिर. . .' ऐसा मन में आशा बांधता हुआ जब उस पर हाथ लगाता है. . .तो मालूम होता है कि वह लकड़ी नहीं केवल कूड़ा है . . . तब उसकी मनोदशा . . . उसके चेहरे का भाव कैसे होता? वैसी हालत थी रुक्मिणी की थी.

* *

उस मर्माहत दृष्टि में असीम यातना, अपरिमित वेदना, भरी थी. इस पर भी नागराज को मौन खड़ देखकर वह उसके आलिंगन से अपने को छुड़ाती हुई बोली––अब कहने को कुछ नहीं है, मैं मन्नारकोइल न जाऊंगा, ऐसा कहना आप नहीं चाहते. अच्छा यही मेरी नियति है, मेरा प्रारब्ध है. जब आप मुझे इस तरह असहाय छोड़ने को तैयार हो गये, अब मैं किसके लिए किस भरोसे पर जिंदा रहूं! पर मुझे आपसे जरा भी शिकायत नहीं. जानती हूं. . .इस कृत्य पर आपकी सहमति नहीं है. आपका मन ऐसा करने पर सहमत न होगा. लेकिन मेरी विधि––मेरा भाग्य––मेरे मां-बाप के दुर्दिन, आपको ऐसा करने को प्ररित कर रहे हैं. बस, इतना याद रखिए कि रुक्मिणी नामक कोई एक थी जो मुझसे बहुत प्यार करती रही और मरते वक्त भी मेरी ही याद करती रही. रुक्मिणी उसके चरणों में गिरकर, उसका पांव पकड़ कर फफक फफक कर रोने लग गयी.

नागराज ने झट उसे उठाकर कहा–– पगली कहीं की! ऐसा-वैसा कुछ न कर बैठना! देखो, बूंदाबूदी होने लग गयी. . कैसा घटाटोप हो गया. लगता है झड़ी लग जाएगी. आओ, घर चलें. नागराज उसका हाथ पकड़ कर जाने लगा. आकाश पर अब चांद, नक्षत्र कुछ भी दिखाई न पड़ते थे. जहां देखो एकदम अंधकार ही अंधकार है. जैसे कोई बादल पर तलवारों का आघात कर रहा हो, रह-रह कर बिजली की रेखाएं पल भर लपलपाती, भभक उठतीं और अगले क्षण अंधकार और गाढ़ा हो जाता. धरती और आकाश को कंपा देनेवाले गर्जन होते. हवा तूफान-सी चल रही थी. कहीं दूर पर झड़ी लगा कर बरसती वर्षा का शोरगुल आसुरी गति से निकल आता-सा लग रहा था. प्रलय मचायी-सी इस घोर हलचल में रुक्मिणी और नागराज में जो बातें हो रही थीं, उन्हें ठीक तरह से मैं सुन न पाया. वे दोनों तेजी से कदम बढ़ाये जाते दीख पड़े. बिजली की एक चमक में देखा. . . रुक्मिणी घर लौटना नहीं चाहती है मगर नागराज उसे मना करके बरबस लिये जा रहा है. एकाध शब्द चलती हवा में मेरे कानों तक पहुंचे. . . मेरा प्राण न रहेगा. . .मां का दिल तृप्त होगा. . .शुक्रवार सबेरे . . . स्त्रियों का. . .टूट जाएगा. . .ना. . .ना. . .

ऐसा मत कहना. . . जो भाग्य में लिखा है, नहीं मिलेगा न. . . बस. . .कम से कम उस लड़की को सुखी रखना... हृदयपूर्वक अपना आशीर्वाद दे रही हूं. . .ना. . .उस दिन तुमको मालूम होगा कि. . .मेरा अंतिम नमस्कार... तक सब्र करना. . .गरजते बादल और बरसती वर्षा में इतना ही मैं सुन पाया.

अगले दिन पौ फटी. वर्षा थम गयी थी मगर आकाश धुंधला ही रहा. बादलों का घटाटोप अब तक न खुला था. सांत्वना देनेवाला कोई न होने से लगातार बिलखती बच्ची-सी. हवा सिसक रही थी. मेरा मन भी अशांत था. जितना भी अपने आपको समालने की कोशिश करता रहा, उतना ही मन की बेकरारी बढ़ती जाती. समझ में न आया-कि आज क्यों मेरा मन इतना उदास, इतना बेचैन हो रहा है. दुख क्यों ऐसा उमड़-उमड़ कर आता है, इसका कारण टहोलता ही रहा कि मीना की चीख सुनाई पड़ी—हाय री! यह क्या!. . .कोई साड़ी तैर रही है! झट हड़बड़ाकर उस दिशा की ओर दृष्टि फिरा दी मैंने. अकेले मैं नहीं—तालाब में स्नान करती हर महिला की दृष्टि उस तरफ घूम गयी और वे फुसफुसाने लग गयीं. मेरा दिल धक से रह गया. मां-बाप को रुलाकर रुक्मिणी ने तालाब में डूबकर अपना प्राण दे दिया है. . . .बस. . .मुझे मूर्छा-सी आ गयी.

थोड़ी देर के बाद ही मैं होश में आया तब तक तालाब के आसपास भारी भीड़ लग गयी थी. हर कोई रामस्वामी अय्यर और जानकी को गाली दे रहा था. गांव की सारी शोभा, अपने मां-बाप का प्राण. . .मेरी हंसी-खुशी सब को एक लाथ लुटाके मेरी सोने की बिटिया रुक्मिणी चल बसी. नीचे उसी नवमल्लिका की छाया में उसे लिटाया था. ओह! कितनी बार अपने कमल-से कोमल हाथों से उसने नवमल्लिका की कल्लियां तोड़ी हैं! उसके मृदु चरणों का स्पर्श न पड़ा हो, ऐसी जगह यहां कहां है! तालाब के आस-पास का ऐसा कौन-सा वृक्ष, कौन-सी लता, पौधा है जिसने उसके स्पर्श का सुख न लिया हो? हाय! मेरा दिल दुर्वह दुख से कलप उठता है. वे सुंदर चरण, कोमल हाथ-पांव; मृदुल शरीर, सब कुछ मुरझा गया है. लेकिन उसके चेहरे का वह गांभीर्य, वह अनूठा सौंदर्य, मात्र वैसे ही उज्ज्वल है. चेहरे पर अब दुख व व्यथा की वह मलिन छाया तक नहीं, उलटे अतिशय विलक्षण. . .असीम शांति है.

इतने में भीड़ में 'नागराज आ रहा है, आ रहा है की हलचल मच गयी. हां. . .वही है. . .बेतहाशा दौड़ा आ रहा है. लो. . .आ गया वह, नवमल्लिका के निकट आते ही न भीड़ का ख्याल किया, न अपने मां-बाप का—रुक्मिणी मेरे प्रिये! यह क्या कर दिया तुमने? ऐसा करुण चीत्कार करता हुआ धड़ाम से गिर गया. भीड़ में एक दम मौन छाया गया. बड़ी देर तक वह उसी हालत में पड़ा रहा. रामस्वामी अय्यर ने घबड़ा कर उसके मुंह पर पानी का छींटा मारा और पंखा किया. आखिर वह होश में आया लेकिन उसने उनसे एक शब्द भी न कहा. रुक्मिणी के निर्जीव शरीर को देखकर बड़बड़ाया—मेरी प्रिये! मेरी सारी आशाओं को मिट्टी में मिला के तुम भी जूलियट-सी उड़ गयीं री! ओह! मुझ अधम के कारण ही तुमने अपना प्राण छोड़ दिया. . .ओह! श्रीनिवास का कथन ही सच निकला! मैं ही हत्यारा हूं. यदि कल तुमसे सच-सच बता दिया होता तो. . . हमारी यह दुर्गति न होती.

—हाय! अब मेरे जीवन में क्या रखा है!. . . रुक्मिणी. . .तुम तो हमेशा के लिए मुझे छोड़ कर चली गयीं. . .अब मुझे सांसारिक जीवन क्यों. . .लो मैं संन्यास लेता हूं. . .ऐसा कहता हुआ किसी के रोकने के पहले उसने धोती और उत्तरीय फाड़ दिया. उसके मां-बाप भौंचक्के-से खड़े थे. उनके कुछ कहने के पहले ही उनके चरणों पर साष्टांग नमस्कार करके कौपीनधारी नागराज तीर-सा वहां से निकल गया.

प्यारे बच्चो. . .यही मेरी बिटिया रुक्मिणी की करुण कथा है. नारी के हृदय को ठेस पहुंचाने की सूझेती तो इस कहानी की याद कर लीजिएगा. कहता हूं. . .सुनो, मेरे बच्चो! खेल-तमाशे के लिए भी नारी का दिल न दुखाइए.

□□□

(अनुवाद : सरस्वती रामनाथ)

वर्ग-संघर्ष

● धर्मेंद्र चोपड़ा

बस-स्टेशन पहुंचा तो बस चल पड़ी थी. लेकिन रिक्शेवाला चुस्त था. उसने बस भी रुकवा ली और मुझे अटैची सहित अगले दरवाजे से ऊपर भी चढ़ा दिया.

बस में कोई सीट खाली नहीं थी. बहुत से यात्री खड़े थे. मैं भी खड़ा रहा. कंडक्टर ने मेरे चमकदार सूट और टाई को निहार कर मेरा टिकट बनाते कहा—साहब, आप बैठिये नां!

मुझे उसके इस आग्रह से कुछ चिढ़-सी हुई. कुछ रूखे स्वर में बोला—कहां बैठूं?

—जगह अभी हुई जाती है, कह कर वह आगे बढ़ गया.

—उठ रे, चल, पीछे फर्श पर बैठ. यहां कैसा बाबू बना बैठा है! उसने किसी को डांटा.

—हम भी टिकस लिये रहिन. उसने विरोध किया.

—अबे टिकस लिये रहिन, कोट-पतलून तो नहीं सिलाये न ! कंडक्टर ने तर्क किया. चल उठ पीछे चल. आइये बाबू साहब, यहां बैठिये.

मैंने बैठते समय देखा, एक गंदी धोती, कुरता और फटी पगड़ी वाला किसान अपनी गठरी संभाले पीछे बैठने जा रहा था.

पहले मुझे थोड़ी चिंता हुई. फिर थोड़ा दिमागी हिसाब-किताब करके सोचा—नहीं, यह और कुछ भी हो, कम से कम वर्ग-संघर्ष तो नहीं है. यह सोच कर मैं संतुष्टि से आस-पास के हरे-भरे खेतों और फसलों को देखने लगा.

(चयन और संयोजन : रामगोपाल इगलासिया.)

आहार निद्रा भय...

• बल्लभ डोभाल

जाड़े के दिन हैं. प्रायः इन्हीं दिनों गांव के लोग शहरों की तरफ आते हैं . .चंद रोज के लिए. कहते हैं कि आजकल खेती-पाती का काम नहीं है. जिन दिनों खेती पर काम नहीं होता, उन्हीं दिनों कहीं आने-जाने की फुर्सत मिलती है. तफरी के लिए दस-पंद्रह दिन का वक्त काफी है. हवा-पानी बदल हो जाता है. लेकिन हवा-पानी बदल के साथ-साथ ये लोग तो अपनी उस दुनिया को भी बदलने की बात करते हैं— अब गांव रहने के काबिल नहीं रह गये हैं, सब तरह की दिक्कतें वहां भी पैदा हो गयी हैं. खाने-खर्चे की तंगदस्ती बढ़ गयी है. इन लोगों का ख्याल है कि गांव की अपेक्षा अब यही जगह टीक है. कम से कम राशन-पानी तो वक्त से मिल जाता है.

इन लोगों की यही दुनिया पसंद है. यह भीड़-भाड़ और खाना-पहनना. . .सभी कुछ अच्छा लगता है.

पहाड़ से आये हुए लोग. अपने गांव-घरों के लोग. . . रतन की घरवाली तो पहली बार रजधानी में आयी है. साढ़े तीन वर्ष का बच्चा गोद में है. लंबी उमर वाली सास और गांव के एक दूसरे आदमी को भी साथ लायी है. आसपास के क्वाटरों में इन दिनों खासी भीड़ हो जाती है. सर्दी के दिन हैं. सर्दियों में प्रायः यही होता है. खाने-पीने की तंगदस्ती के साथ सोने की भी. . . छोटे-छोटे कमरे हैं, छोटी रसोइयां हैं. इन छोटे क्वाटरों में दो परिवार सनातन रहते आये हैं. लेकिन शिकायत यही कि खाने-पीने की तंगदस्ती भले हो जाय पर उठने-बैठने के लिए तो खुली जगह चाहिये. सर्दी की ठिठुरती रातें हैं. नींद और दूसरी कई बातें हैं.

तंगदस्ती की बातें फिर-फिर शुरू होती हैं. गांव-वाले अपनी कहानी सुनाते हैं. राजधानी वाले स्पष्ट भले न कहें; तंगदस्ती की झलक उनकी बातों में भी मिलती है. समझ में नहीं आता कि जब दोनों तरफ तंगदस्ती है तो आदमी कहां जाये कोई ऐसी जगह जहां पहुंचने पर तंगदस्ती महसूस न हो.

लोग कहते हैं कि बातों में कुछ है. और नहीं तो बात को बाहर उगलने से मन हल्का जरूर हो जाता है. सुनने से भी मन पर असर पड़ता है. जो लोग कुछ कह नहीं सकते, वे सुनकर ही काम चला रहे हैं. जीवन से जुड़ती हुई हर कथा का श्रीगणेश तंगदस्ती, मंहगाई और अभावों के मंत्रोच्चार से जब शुरू होगा, तभी कोई दूसरा कथानक जम सकता है. कितनी ही बातें सुनकर आदमी हैरत में पड़ जाता है. तब मैं भी इन लोगों से अपनी बात कहना टीक समझता हूं. इन लोगों से कहता हूं कि यारो! अब जो चीज सामने है, उसके बारे में ज्यादा कुछ नहीं सोचना है. रोजमर्रा जिंदगी के साथ बनी रहनेवाली चीज के बारे में भला क्या सोचना है. तंगदस्तियां तो अनादि काल से रही हैं. गरीबी और तंगदस्ती का नाम ही जीवन है, इसलिए इन बातों को छोड़ो. सोचना उसके लिए है जो कि अपने पास नहीं है. पर नहीं, हम लोगों को तो अपने से बेतरह चिपकी हुई चीजों के बारे में सोचने की आदत पड़ गयी है. सोच-सोचकर अंततः दुख ही हासिल करते हैं. जरा सोचो, तंगदस्ती है तो उसको दोहराने से क्या मिल जायेगा? कभी-कभी उसे भूलना चाहिये. भूलने में सुख है.

कुछ कदर अपने आप को भूलने के लिए ही मैं इन लोगों के बीच बैठता हूं. सोचता हूं, इन्हें जरा जोर देकर समझाऊं. कुछ देर के लिए तंगदस्ती और अभावों की दुनिया में निकाल कर इन्हें गांव की खुली आबादियों तक पहुंचा दूं. लेकिन कहां? वे आबादियां तो इनसे बुरी तरह चिपकी हुई हैं. इनके दिल और दिमाग विस्तार से फैले हुये रेगिस्तान की तरह बन चुके हैं. उस एकांत और अव्यवस्थित फैलाव से ये लोग दुखी हैं, तंग आ चुके हैं इसलिए फैलाव की बात नहीं करते. ये लोग सिमटना चाहते हैं. खुली आबादियों की अपेक्षा यह तंगदस्ती इन्हें ज्यादा पसंद है, रजधानी पसंद है. रजधानी के मुहल्ले-कूचे पसंद हैं. दरारनुमा सिमटी हुई गलियां और गलियों का उबलता हुआ वातावरण पसंद है.

ऐसी तंगदस्ती का भी अपना मजा है. सुबह-शाम जब-तब चाकू-छुरियां तेज करानेवालों की भनभनाती

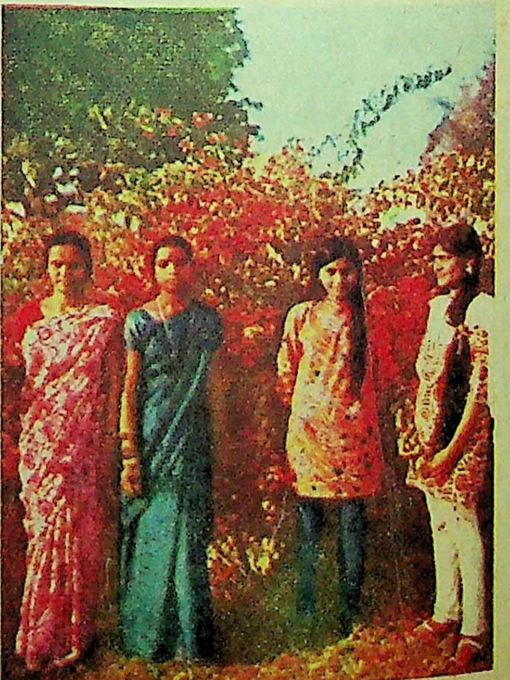

• के. पी. सक्सेना

आवाज कानों को गर्माती हुई निकल जाती हैं. गन्ने-गुड़ वाले, मूंगफली, मुरमुरे वाले, रेशम के परांदे, जड़ाऊ हार टिच्च बटन बेचने वालों की लंबी अनुनासिक स्वर-लहरी फिल्मी धुनों को बांटती ही रहती है. रतन की घरवाली को ये धुनें अच्छी लगती हैं, हर चीज को गाकर बेचा जा रहा है. धुन अकेली नहीं है. उसके साथ माल भी है. चूड़ियां, बिंदली हार आदि. हाथ को पिलपिला बना कर चूड़ीवाला कलाइयों में झमाझम चूड़ियां भर जाता है.

बंदरवाला भी गली में आकर क्या कमाल दिखाता है. खेल दिखा चुकने के बाद बंदरिया को सलाम करने के लिए भेजता है. पैसे और आटे के लिए दिन भर घूमता ही रहता है.

जादूगर तो सचमुच जादूगर ही है. उसका जमूरा भी उससे कम चीज नहीं. कमाल यह कि अपनी ही बेटी के पेट में वह छुरा घोंप देता है. लड़की बेहोश होकर गिर पड़ती है. ताजा खून देखकर औरतें चीख उठती हैं. गांव की औरतों ने कब-कब खून देखा है. वे चिल्ला उठती हैं —हा रे . . .क्या कर दिया पापी. . . बिन मांगे ही गांव-घरों से आये हुए लोग चवन्नी-अठन्नी निकाल कर फेंक देते हैं. कटोरा भर आटा लाकर उसकी झोली में डाल देते हैं.

—पेट के लिए सब कुछ करना पड़ता है बेटा! पेट बुरी चीज है. लंबी उम्रवाली बुढ़िया लोगों से कहती है. याऽऽ. . . हम लोग भी गांव में क्या करते हैं! सुबह से लेकर शाम तक हड्डियों का चूरा हो जाता है , फिर भी खाने को भरपेट नहीं मिलता.

खाने-पीने की बात जब कभी चलती है तो साधूराम सबको हड़का देता है. आदमी को सिरफ खाने के लिए थोड़े ही बनाया है? खाने के अलावा दूसरी भी कई बातें हैं.

इस वक्त साधूराम होता तो अपना असलोक सुना कर मजमा बांध देता —अहार निद्रा भय मैथुनं च. . . यानि ये बातें आदमी और पशु में एक बराबर हैं. लेकिन धरम-करम ही एक ऐसी चीज हैं जो आदमी को पशु से अलग करती है और फिर धरम की बात करते-करते वह कहीं से कहीं पहुंच जाता है.

—वा रे साधुरामा! तूने भी धरम के नाम पर खूब जमा रखी है. साथ वाले बिसनसिंह की उससे पट जाती है. कहता तो वह साधूराम को चिढ़ाने के लिए है, पर बात सच्ची करता है. फिर भी सच-झूठ का पता किसे चलता है? पता चलाने की जरूरत क्यों पड़ी है? जिसे जरूरत है, वह अखबार पढ़ ले. अखबार सबके घरों में आते हैं, रेडियो भी लगे हैं. अखबार-रेडियो जो कहते हैं, वही सच है. लेकिन उस सच को सुनने की फुर्सत किसे है.

साधुराम जब कभी आकर बैठता है तो अखबार भी पढ़ा जाता है. रेडियो भी तब बज जाता है. 'विविध भारती लगाओ ' 'कश्मीर लगाओ' 'सिरनगर लगाओ'. एक ही चोट में सब लगा दो. तब कहीं न कहीं लगा ही रहता है. जब लगाने वाला कोई घर में नहीं तब बिसन की घरवाली ही मरोड़-तरोड़ करती रहती है. बरामदे में दोनों टांगें फैलाकर बैठी लक्ष्मी धूप सेंकती है. सर्दी के दिनों में धूप अमरित के बराबर है. धूप में बैठ कर साधुराम को ग्यान-ध्यान याद आता है. बड़ा ही गियानी आदमी है. शिव-तांडव की अमरित धुन तो उसके कंठ में बस गयी है. हर वक्त गाता रहता है—स्मरच्छिदम. . .पुरच्छिदम्. . ..

ठाकुरों को धूपबत्ती दिखा चुकने के बाद जब उसका दरवाजा खुलता है तो सुगंधित धूप की बासना गली में दूर-दूर तक फैलती है. धूप-बत्ती और सुगंध बासना में गली से लेकर दफ्तर तक की विघनबाधाओं को दूर करने की शक्ति है.

'बिशे बिकार मिटाओ, पाप हरो देवा. . .सरधा भक्ति बढ़ाओ. . .' पक्ति को उच्चरित करता हुआ जब वह सूरज को अरघ चढ़ाने के लिए बरामदे में आता है तो पड़ोस में रहनेवाली मोटी औरत की नाक सिकुड़ जाती है—बड़ा गियानी बणेंता है मरज्जाणें. . .धकच्चिकम् धकच्चिकम्. . .लगा ही रहता है और करम देखो तो.

मोटा आदमी भी किस काम का है! .. साधूराम का हकना है कि मुफ्त में बैठ कर खानेवाले आदमी को ही मुटापा मारता है. दिन भर खाना-सोना और. . . इन लोगों के पास दूसरे काम ही क्या है.

* *

वह समय था जब साधूराम अपने बरामदे में बराबर चारपाई डालकर इस मोटी औरत से बात करता था. देख कर इस तरफ से आने जाने वाले यही समझते थे कि पति-पत्नी दोनों बैठे हैं. लेकिन अब जाने क्या हुआ कि सामने बैठने की हिम्मत नहीं पड़ती . पडोस की एक यही औरत है जिससे साधूराम डर जाता है. जाने क्यों. मोटी औरत को उसके धकच्चिकम् से घृणा है, इसलिए अब वह बरामदे में नहीं है कमरे में बैठकर 'प्रेमसागर' के पन्ने वही पलटता रहता. उसके क्वार्टर में अब नये किरायेदार आ गये हैं. इन लोगों को साल में कभी दस बार भी जगह बदलनी पड़ती है. क्वार्टर मालिक लोग कम से कम छः महीने का एडवांस किराया लेते हैं. फिर ज्यादा बच्चे हुए तो मुश्किल से जगह मिलती है. मकान मालिक इसी में खुश रहते हैं कि किरायेदार के बच्चे न हों. लेकिन यहां तो 'रोक लगाने पर भी किरायेदारों के बच्चों ने पंगत लगा दी है.

अस्सी रुपया एक कमरे का देकर पति-पत्नी दोनों रह रहे हैं. खाना भी वहीं बनता हैं, मेहमान सगा-संबंधी आता है तो वह भी वहीं टिकता है. परदा करने की भी गुंजाइश नहीं.

—परदा डालकर क्या करोगे भई? कभी-कभी मौका मिलने पर साधुराम की उनसे बातचीत हो जाती है. परदे से कौन-सी बात छिप जायेगी भाईजान!

आज जब कि इस देस की लाज सब तरफ से उघड़ रही है तो एक तुम्हारे ही परदा डालने से क्या बन जायेगा.

साधूराम की बातें सुनकर किराये दार सकपका जाते हैं. कैसा आदमी है? गली के लोग चाहते हैं कि यह आदमी यहां से हटे. यह आदमी जनता के बीच बैठने के काबिल नहीं है. लोग तो चाहते हैं, पर साधूराम तो तभी हटेगा जब सरकार उसे हटायेगी. जब उसकी नौकरी के दिन पूरे होंगे. नौकरी जब तक है, तब तक तो वह अमरित ही पीता रहेगा.

——अमरित राज सम्मानम्. . . अपने मुंह से वह गिनाता है कि कौन-कौन-सी चीजें अमरित तुल्य हैं. सर्दियों के दिन हो. सरकारी मकान हो और बरामदे में तेज धूप सेंकी जा रही हो तो वह भी अमरित के बराबर है. नौकरी एक तरह का राज-सम्मान ही है. काम-धाम चाहे कुछ नहीं, पर पहली तारीख को जब पैसा हथेली पर आता है तो वह अमरित की तरह लगता है.

साधूराम की बातों में सबको मजा आता है. लंबी उमर वाली बुढ़िया तो साधूराम को उठने नहीं देती—— बेटा, कुछ ज्ञान-ध्यान की बात सुना जाया कर, कुछ देस-काल की बात. . .

तब लछमी भी दरवाजे की आड़ में बैठती है. दिन में बरामदे का फर्श तपकर गरम हो जाता है, इसलिए रात की सारी ठंडक और सिकुड़न फर्श पर लंबी टांगें फैलाने से दूर होती है. अब टांगों में जैसे जान आ गयी है और तब वहीं बैठे-बैठे वह बिसन की घरवाली को आवाज देती है —— दिदी, जरा सुना दे न! कैसा-कैसा गाता है तुम्हारा टरांजिस्.

बिसन की घरवाली चूल्हा छोड़ उठ खड़ी होती है. चड़ाक् से ! जैसे कि बच्चे का कान मरोड़ दिया हो. ट्रांजिस्टर पतली आवाज में चीख उठता है —— चिकन ऽ. . चिकन ऽ . . चिकना,

कमल के फूल जैसा, बदन तेरा. . .

वा ऽ ! कई दिन से इस गीत को लछमी बराबर सुन रही है, यह गीत उसके तन-मन को गुदगुदा देता है. भीतर ही भीतर अमरित जैसा कुछ पैदा हो रहा है. शरीर के हर अंग से यह अमरित फूटकर बाहर आने को है. कल भी जब बिसन घर आया तो यही गाना बज रहा था. बिसन की घरवाली को उसके टैम-बे-टैम घर आने का पता रहता है. सरकारी नौकरियां तो जिंदगी भर साथ रहेंगी. लेकिन घरवाली का साथ हमेशा कहां मिलता है.

लछमी जब भी अपने आदमी से दिन में घर आने को कहती है तो वह हर बार यही कहता है कि मैं सरकारी नौकर नहीं हूं. सरकार और पराइवेट में यही फर्क है कि पराइवेट को सिर्फ रात की छूट है और सरकारी लोगों को चौबीसों घंटे की. फिर अपनी-अपनी नौकरियां हैं. अपने-अपने रसूक हैं. अपनी सरकार है, यानी हम लोग ही सरकार हैं. अच्छाई-बुराई जो कुछ है, वह हमारे-तुम्हारे ही अंदर है. पर नहीं, गांव के लोग तो समझते हैं कि सरकार हम-तुम से अलग कोई दूसरी चीज है. जिसने गांव के इतने सारे लोगों को नौकरियों में खपा रखा है.

हाय! लछमी तो सरम के मारे सिकुड़ जाती है. कल बिसन के घर आते ही वह बरामदे से उठ गयी. उसके चले जाने का दुख मन ही मन बिसन को हुआ. वह समझ गया था कि गाना सुनने के लिए ही लछमी यहां आकर बैठती है. गांव के सीधे-सादे लोग . . . गांव का जीवन है. पहले तो काम से ही फुर्सत नहीं मिलती. तिस पर भी खाने को भरपेट नहीं. फिर यदि मन में कोई इच्छा जनम लेती है तो साथ ही कई तरह की बातें हैं. सरम सब तरफ से खा जाती है. भय और आशंकाएं ऐसी कि कोई इच्छा मन में टिक ही नहीं पाती. सोचकर बिसन ने आवाज को एकदम ऊंचा उठा दिया. दीवारों को झनकारती हुई आवाज दूर तक जाती है, . . चिकन ऽ चिकन ऽ चिकना —— कमल के फूल जैसा. . .

अब लछमी अपनी रसोई में बैठकर ही सारा कुछ सुनती है. गाना खत्म होते ही वह सोचने लगती है —— यहां तो दिनरात चिकना-चिकना. . . ही रहता है. गांव में भी अब रेडियो टरांजिस् पहुंच गये हैं. पिछले साल सम्मू दो टरांजिस् ले आया था. सारे गांव वालो को बारी-बारी सुनाया . कैसे-कैसे गाने. . च्छि : !

* *

साधुराम ही ठीक कहता है, दुनिया में सरम नाम की कोई चीज नहीं रह गयी है. सोचती है लछमी – यहां तो चिकना-चिकना खप सकता है, लेकिन गांव में कहां है चिकना-चिकना? वहां तो जिंदगी भर लोगों के हाथ-पांव फटे ही नजर आते हैं. तब-बदन के साथ मन और आत्मा भी फटी-फटी है. लछमी अपने हाथों की तरफ देखती है. इन हाथों का खुदरापन अभी तक दूर नहीं हो सका. हाथ अगर किसी चिकनी जगह पहुंचते हैं तो लगता है जैसे आरियां चल गयी हैं. सोचती है लछमी. . . चिकना- चिकना तो नहीं, पर यह गाना तो सब जगह पहुंच गया होगा. लछमी को कभी धोखा हो जाता है. दरार में घूमने वाले लोग भी उसी तर्ज में अपनी चीजें बेचते हुए निकल जाते हैं. रेडियो में विविध भारती वाले भी वैसा ही बोलते हैं. गली या आसपास में जब कभी भगवती जागरण होता है तो भजनों की तर्ज भी चिकना. . चिकना की तर्ज पर जमती है. उसकी समझ में नहीं आता कि यह चिकना. . चिकना आखिर है क्या चीज. . ? कौन लोग हैं जो ऐसी तर्जें बनाते हैं?

देखने से भी मन की भूख हटती है. इसी भूख को हटाने के लिए लोग फुर्सत के मौके पर शहरों की तरफ आते हैं. पिछले दिनों ये ही लोग 'विविध भारती' दफ्तर देखने गये. उनकी बातें सुनकर लछमी की भी इच्छा हुई. अपने आदमी से जब उसने फरमाइश की तो वह बोला कि इतनी दूर जाने की क्या जरूरत है. अपनी यह गली ही विविध भारती है. यहां भी तरह-तरह के लोग विराजमान हैं. हर जाति के, हर धरम के लोग. छोटे-बड़े सभी तरह के लोग. . . रतन ठीक कहता है कि देश के हर हिस्से से आकर लोगों ने राजधानी के हर गली-कूंचे को

विविध भारती बना दिया है. इन लोगों ने सरकारी क्वाटरों में ही अपने काम चालू कर दिये हैं. किसी ने मुर्गियां पाल रखी है तो कोई बकरी और सुअर रखने लगा है. कुत्ते-बिल्ले रखना तो आम हो गया है. तीतर-बटेर और तोते पालने का शौक भी बुरा नही. विविध प्रकार के पशुपक्षी और नाना प्रकार के शौक ये लोग रखते हैं. गली में तकरीबन हर आदमी के पास रेडियो-ट्रांजिस्टर हैं. अपने-अपने रेडियो की ऊंची आवाज में जब एक साथ अनेक भाषाओं के लोकगीत और धुनें मुखरित होती हैं तो वहां 'विविध भारती' बन जाता है. तब कानों में कोई चीज साफ नहीं आती. आवाजें मिल-कर ब्रह्मांड में बैठ जाती हैं. बाहर गली में गन्ना-गुड़ बेचने वालों, चारपाई बुनने वालों और जूते गांठने वालों की संगीतात्मक आवाजें उभर कर गूंजती है जो कि विविध भारती में विज्ञापन कार्यक्रम को पेश करती हुई लगती हैं. दिन भर यही कार्यक्रम चलता है. चलता ही रहता है. सुबह से शाम तक धुआंधार काले इंजन की तरह तेजी से दौड़ने वाली कोई चीज शरीर के भीतर दौड़ती रहती है. यही दौड़-धाप जीवन को पस्त किये है. लंबी उम्रवाली बुढ़िया जब-तब यही कहती है——बेटा! इस पापी पेट के लिए क्या नहीं करना पड़ता. सब पेट की खातिर हो रहा है.

बुढ़िया तो सिर्फ पेट की ही बात कहती है पर दूसरे लोग कहते हैं कि पेट ही सब कुछ नहीं है. भोजन के साथ नींद भी जरूरी है. नींद न आये तो खाना हजम नहीं होता.

इन लोगों को रात में नींद भी खूब आती है, भूख भी लगती है. आहार, निद्रा आदमी के लिए जरूरी चीजें हैं. लेकिन ये चीजें आसानी से कहां मिलती हैं? खाने-पीने को यदि मिल भी जाता है तो जगह की तंगी के कारण रात में घुटने बांध कर रह जाना पड़ता है. सर्दियों के दिन .. अच्छा होता कि ये लोग राजधानी घूमने का अपना समय बदल देते. अच्छा होता ये बच्चे भी ससुरे पैदा न होते. इस तंगदस्ती में बच्चों का क्या काम? सरकार भी कितनी निर्दय हो गयी है. नौकरी देती है, खाना-कपड़ा सभी कुछ देती है, पर यह नहीं सोचती कि कड़ाके की सर्दी के दिनों में इतनी तंग जगह किस काम की है. इस तरह की तंगियां ही झगड़े की बुनियाद खड़ी करती हैं. रोज ही सुबह-शाम गली में चख-चख बनी रहती है.

अमरित जहर में बदल जाता है. गली में जब चख-चख ज्यादा बढ़ जाती है, तब वह आदमी भी अपने कोने से गालियां फेंकना शुरू करता है——स्साले. . .कुत्तों की औलाद. खूब खा-पी रहे हैं. हाय-तौबा फिर भी मचा रखी है. यह नहीं सोचते कि आज जो मिल रहा है, उसे चुपके से खा लें. कल का देखा जायेगा. लेकिन कहां का कल. . इन लोगों को तो जमा कर रखने की आदत पड़ गयी है. कल के लिए जमा कर रखो, स्साले जानते नहीं कि कल किसका हुआ है. कल की चिंता में स्सालों ने आज को भी लुटा दिया है, परेशानियां पैदा कर रखी हैं.

अपनी औरत से यह आदमी प्रायः कहता है कि जितने दिन आराम से निकल जांय, उतना ही अच्छा. अब चिंता किसी बात की नहीं करनी है. चिंता करने का वक्त निकल गया है. लेकिन औरत भी क्या चीज है. उसके मन में धीरज कभी टिक सका है? साधूराम ठीक कहता है. कि सारे झगडों की जड़ औरत है——स्त्रियो हि मूलं कलहस्य पुंसः सोचते हुए वह कभी ठिठक जाता है. इस ज्ञान को बघार कर वह घरवाली को नाराज नहीं करना है, चाहता. उसकी नाराजी बहुत कुछ कर सकती और नहीं तो अहार, निद्रा भय . . . आदि से बंचित तो कर ही सकती है. वह सोचने लगा —— ऐसा ज्ञान-ध्यान भी किस काम का है जो आदमी को एकदम निसकाम कर दे, औरत से भी परे कर दे.

सोचते हुए वह धीरे से अपने बरामदे के नुक्कड़ पर बैठ जाता है. गली में चख-चख बदस्तूर चल रही है. ऐसी चख-चख में भी बिसन की घरवाली रेडियो को ऊंचा छोड़ देती है और तब वही गाना सब जगह गूंजता है —— चिकन ऽ चिकन ऽ चिकना – कमल के फूल जैसा!

□□□

६३६, अलीगंज, लोदी कालोनी,
नयी दिल्ली – ३

नटखट बालिका

मैंने केवल इतना कहा——सायंकाल जब पूर्ण चंद्रमा कदंब वृक्ष की डालियों के बीच में फंस जाता है तो क्या कोई उसे पकड़ नहीं सकता?

किंतु दादा मुझ पर हंसने लगे और बोले——बच्ची, तुम्हारी जैसी मूर्ख लड़की मैंने आज तक नहीं देखा. चंद्रमा हमसे इतनी दूर है तो उसे कोई पकड़ कैसे सकता है?

मैंने कहा——दादा, वास्तव में मूर्ख आप हैं! जब मां खिड़की में से मुसकराती हुई बाहर झांकती है और हमें खेलते हुए देखती है, तब हम उसे दूर कहेंगे?

फिर भी दादा ने कहा——तुम नटखट लड़की हो! किंतु यह तो बताओ चंद्रमा को पकड़ने के लिए इतना बड़ा जाल तुम्हें कहां मिलेगा?

मैंने कहा——आप निश्चय ही उसे अपने हाथों से पकड़ सकते हैं!

किंतु दादा हंस कर बोले——तुमसे बढ़कर मूर्ख मैंने आज तक नहीं देखा. पास आने पर तुम देख पाओगी कि वह कितना बड़ा है.

मैंने कहा——दादा, यही व्यर्थ की बातें आपको स्कूल में सिखाई जाती हैं! जब मां हमारा चुंबन लेने के लिए अपना चेहरा नीचे को झुकाती है तो क्या वह बड़ा लगता है?

फिर भी दादा कहते ही रहे——तुम नटखट लड़की हो.

□□□

(रवींद्रनाथ ठाकुर की एक लघुकथा का अनुवाद)

डरेवर साहेब

रवींद्र राजहंस

होठ के पीछे चुटकी से खैनी चुनियाते हुए लखन महतो ने कहा— रामबिरिछ!

—क्या?

—रामबिरिछ! ऐ रामबिरिछ!

—साला खाली नाम पुकारता है. कुछ बोलता क्यों नहीं?

—रिक्शा हाकने वाले को लोग डरेवर साहेब क्यों नहीं कहते?

—चूंकि रिक्शा वाला घोड़ा के गिनती में आता है.

—ऐसा काहे, भाई?

—चूंकि दूनो ज्यादातर सत्तू खाता है, घास-पात चबाता है.

—चोप्प, झुट्ठा कहीं का. रोज रात में नगेसर के होटल में दाल-भात-मछरी खाता है आउर बोलता है वो सत्तू खाता है. लछमिनियां जब पंखा हांक के खिलाती है तो तीन-तीन पलेट खींच जाता है.

—उ खाना भी कोई खाना है. उ त नाद में का सानी-पानी है. इंजन का कोयला-पानी . खाना तो खाता है टैक्सी-ट्रक डरेवर. कलिया रोटी खा के, इंग्लिश दारू पी के जब ट्रक डरेबर रात में चलता है तो फिर देखने ही लायक होता है.

फिर लखन गुनगुनाने लगता है, पहले धीरे-धीरे, फिर बाद में जोर-जोर से, 'परबहु आस हमार, ए भोला बाबा. . . . पुरवहु आस हमार.

—कौन-सी आस?

—अगले जनम में डरेवर साहेब बनने की आस.

—दुत! डरेवर कौन ऐसी चीज है, जिसके लिए भोला बाबा से प्रार्थना करता है.

—चीज कैसे नहीं है. हम तो अगले जन्म में डरेवर होना चाहेंगे— दो नंबर वाले ट्रक या टैक्सी के डरेवर. लाख-लाख रुपयों का सामान लाद कर पंजाब मेल की तरह गाड़ी हांकेंगे. सुनते हैं ऐसे डरेवर से पुलिस वाले भी डरते हैं. एक बार जरनैल सिंह नाम के एक पंजाबी डरेवर को हम रिक्सा पर बैठाये तो अपने साथ बैठे एक दोस्त को अपने लेन की बातें बता रहा था.

—तुमको उसका नाम कैसे मालूम हो गया.

—कोई-कोई पसिंजर सब बात में अपना नाम ले के बोलता है. उ बोलता था जे कि आज तक जरनैल सिंह की बांह कोई भेन. . . .सिपाही नहीं पकड़ सका. हर चौकी पर वह शान से, हाथ निकाल कर, नोट का पुलिंदा रोकने वाले को थमा देता है. फिर चौकी का बांस उठा कर उसकी सलामी ठोंकता है, और वह भर्. . .कर के वह अपना गाड़ी बढ़ा देता है. और एक ठो हम लोग हैं. जहाजघाट पर लेन में रिक्शा खड़ा करने के लिए भी पुलिस को दस-बीस पैसा सुंघाते रहते हैं. ऊपर से जब-तब हंटर भी खाते हैं. "मामा" को जब मन आता है ठुस-ठुस हवा निकाल देता है हमारी गाड़ी की ट्यू से.

—लखना, इतना पसंद है तुम्हें का डरेवर होना?

—क्यों नहीं. ट्रक का डरेवर बरखा-बुन्नी में तनिक नहीं भींगता है. और, हम लोग! पसिंजर को पर्दा से झांप कर चलते हैं और खुद बाहर भींगते रहते हैं. पसिंजर साले दुल्हा-कनिया जैसे अंदर बैठते हैं, मजा मारते है और हम को वहीं से वे लात से खोदते हैं. कहते हैं— जरा तेज चलाओ, जरा तेज चलाओ. घर पहुंचा देने पर, अक्सर रेट से कम भाड़ा मिलता है.

—भाग साला! तुम्हारे दिमाग पर ट्रक-टैक्सी के डरेवर का भूत है. डरेवर, डरेवर, घड़ी से डरेवर. . .

—नहीं रामबिरिछ! तुम उसका महात्म समझो या न समझो, मगर है उ एगो भारी चीज. इसीलिए उसके नाम के साथ साहेब जोड़ना पड़ता है.

—साहेब जोड़ने से क्या होता है. साहेब तो कभी-कभी लोग दूसरों को चूतिया बनाने के लिए भी कह देते हैं जैसे मास्टर साहेब. अब तुम्हीं बताओ गरीब मास्टर कौन बात का साहेब है?

—छोड़ो भाई माट साहब की बात. हम तो डरेवर साहेब बनेंगे, डरेवर साहेब. डरेवर साहेब से रिक्शावाला का क्या मुकाबला. आज तक कभी देखा है रामबिरिछ, खून वाले किसी बैंक में किसी ट्रक-टैक्सी डरेवर को अपना खून बेंचते हुए.

—ना, देखा तो मैंने सचमुच नहीं है.

—रामबिरिछ!

रवींद्र राजहंस एक कालेज में अंग्रेजी के प्राध्यापक हैं. उनका कहना है कि मेहनतकश लोगों की रोटी कोई और न हड़पे तथा वे आदमी की तरह जी सकें इसलिए हिंदी में लिखता हूं. इन्हें व्यंग्य-लेखन के प्रति आस्था है. अधिकतर व्यंग्य कविताएं लिखी हैं. यह इनकी पहली कहानी है.

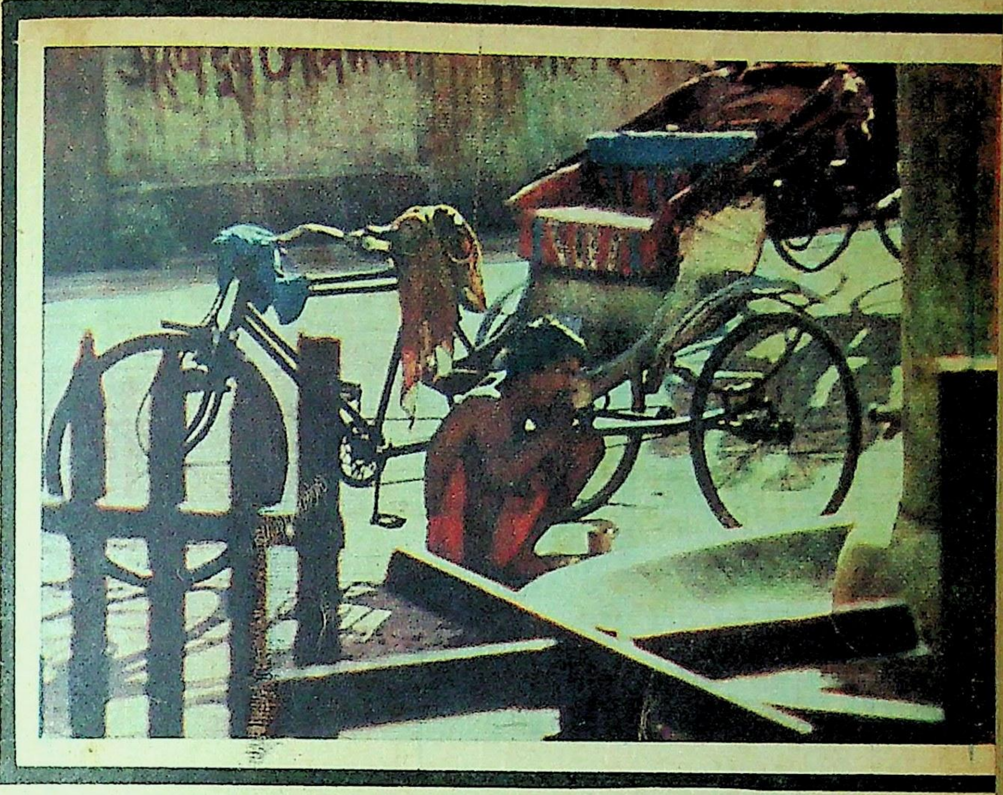

● एस. के. उपाध्याय

—अब क्या है रे?

—नींद नहीं आती.

—मालूम है अब तू कहेगा— बहुत मच्छर काटता है, नाली के बगल में सोयेगा तो मच्छर काटेंगे ही.

—रामबिरिछ, इतना बड़ा शहर है. हजारों रिक्शा चढ़ने वाले हैं. फिर किसीको यह चिंता क्यों नहीं सताती कि साला रिक्शा वाला कहां सोता है.

—जो तुम्हारे लिए फिक्र करते हैं, वे रिक्शा पर नहीं चढ़ते.

—रामबिरिछ? हमको एक दिन मुंह धो के कुल्ला करते समय मुंह से खून आ गया था. डर के मारे डागडर से नहीं दिखवाया. जानता हूं बीमारी की "मुंह दिखायी' सोलह रुपये लग जायेंगे. फिर सब तरह की जरूरी-गैरजरूरी जांच करवानी पड़ेगी. उसका फेरा हम खूब जानते हैं. फोटूवाले डागडर साब के पास तो हम खुद ही मरीज बझा कर ले जाते हैं.

—तो किसी एक्सारा वाला डागडर बाबू से कह-सुन कर छाती का फोटू क्यों नहीं करा लेता?

—रामबिरिछ, फोटूवाला डागडर से हम कभी नहीं मिला है. उसका कंपोडर हमको पहचानता है. पैसा-कौड़ी का हिसाब वही करता है.

—उससे एक बार कह के तो देखो...

—उससे एक बार मैंने कहा था. मगर उ बोला—देख भाई, मरीज बझा कर के सही में तुम देते हो मगर उसकी जगह पर तो हम तुम्हें कमीशन देते ही हैं. अपने आप को दिखाना है तो वह बात और है. हां, ऐसे तुमको हम दो-चार रुपये कम करवा देंगे. अब तुम ही बोलो रामबिरिछ, हम तो कनसेसन रेट पर भी अपना इलाज नहीं करवा सकते.

—लखना रे, अब तो सो जा. गरीब का तो सबसे बड़ा दोस्त होता है उसकी वह बीमारी जो जल्दी उसे इस दुनिया से छुट्टी दिला दे.

—रामबिरिछ, हम तो जीना चाहते हैं. चार गो बाल-बच्चा है उसको कौन देखेगा.

—कुत्तों के मरने के बाद उसके बच्चे को कौन देखता है?

—तो क्या हम कुत्ते हैं?

—और नहीं तो क्या. हम सभी कुत्ते हैं.

—तो रामबिरिछ, तो हम भेटनरी अस्पताल में जा कर भरती हो जायं?

—अबे, जानता है भेटनरी अस्पताल में का डागडर किन लोगों का इलाज करता है?

—हां, हां, घोड़ों का, बैलों का, भैंसों का—— जानवरों का. तुम्हीं ने तो कहा कि हम सब साले कुत्ते हैं. तुम कभी बोलते हो कि रिक्शेवाले घोड़े होते हैं और कभी बोलते हो कि रिक्शेवाले कुत्ते होते हैं.

—उ तो साला मैंने गुस्से में कहा था.

—गुस्से में बोले थे या फुस्से में, मगर बोले थे सच.

—लखना, दिमाग मत चाट. सो जा. कल खूब सुबह में गाड़ी निकालनी है. बड़े मैदान में अंटीफासिस्ट का मिटिन होने वाला है. खूब सवारी मिलेगी.

—रामबिरिछ, इ अंटीफासिस्ट कौन चीज है? कौन उ अच्छा चीज लगता है!

—चुप साला! हम इतना अंगरेजी समझते तो रिक्शा ही हांकते. □□□

कचहरिया कोठी रामकृष्ण एवेन्यू, पटना ८००००४

IODINE OINTMENT
IODEX
cum Methyl Salicylate
3273

पैरों में मोच?

आयोडेक्स मलिए, जो पीड़ा हरे, अच्छा करे

दूसरे बाम पीड़ा से आराम भले पहुंचाएं, आयोडेक्स आराम पहुंचाने के साथ साथ अच्छा भी करती है. क्योंकि इसमें आयोडीन मिली है.

जोड़ों और मांसपेशियों की पीड़ा के लिए एकमात्र बाम—आयोडेक्स.

आयोडेक्स मलिए-अपने काम पर चलिए

लिंटास-IODEX.3-140 HI

विद्यालय

शंकर पुणतांबेकर

अध्यक्ष ने राधाकृष्णजी को बुला भेजा जो उनके विद्यालय के अध्यापक थे. कहा—शिकायत मिली है कि तुम हमारे बच्चे को मारते हो.

—बात यह है श्रीमान, राधाकृष्णजी ने कहा, वह पढ़ाई में बहुत कमजोर है. जब वह गलती करता है तो थोड़ा-बहुत मारना भी पड़ता है.

इस पर अध्यक्ष ने कहा— हमने तुमको क्या कहा था? जब हमारा बच्चा गलती करे तो तुम उसके बगलवाले बच्चे को मारो. इससे डरकर वह आगे गलती नहीं करेगा. . .

—जी, कहा था.

—यही बात तुमको डाक्टर साहब ने, वकील साहब ने, सेठ बनवारीलाल ने और डिप्टी साहब ने भी कही थी. तुम बिलकुल भूल गये और उनके बच्चों को भी तुम मारते हो.

—श्रीमान, यह तो अन्याय है कि गलती आप बड़े लोगों के बच्चे करें और बदले में बेचारे गरीबों के निर्दोष बच्चे पीटे जायें.

लेकिन अध्यक्ष को उनकी यह बात धृष्टतापूर्ण लगी. क्रुद्ध होकर बोले——न्याय-अन्याय की बात करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है. हम तुम्हें जो भी आदेश दें, उसका तुम्हें बराबर पालन करना होगा. जानते हो, हमारा आदेश विद्यालय की व्यवस्था-कमेटी के अध्यक्ष का आदेश है?

राधाकृष्णजी इस पर कुछ जवाब देना ही चाहते थे कि अध्यक्ष आगे बोले— और तुम जानते हो डाक्टर साहब, वकील साहब, सेठ साहब और डिप्टी साहब, ये सभी व्यवस्था-कमेटी के सदस्य हैं. इनके बच्चों पर भी तुम हाथ नहीं उठाओगे.

अब तक राधाकृष्णजी का मुंह तमतमा उठा था. बोले— क्या आपकी संस्था का नियम है कि व्यवस्था-कमेटी के सदस्यों के बालकों को पीटा न जाये? बदले में निर्दोष बच्चे पिटें?

—मैं कहता हूं, यह मेरा आदेश है.

—यह आदेश नियमबाह्य है.

—इस आदेश को नियम में भी बदल सकता हूं.

—आपके हाथ में डंडा है, आप कुछ भी कर सकते हैं. लेकिन मैं अन्याय की बात कभी नहीं अपनाऊंगा.

दूसरे दिन राधाकृष्णजी को नौकरी से निष्कासित किये जाने के आदेश की सूचना मिली.

राधाकृष्णजी के स्थान पर अब रामप्रसादजी की नियुक्ति हो गयी. अध्यक्ष को इस बात का संतोष था कि रामप्रसाद उनके आदेशों का पालन करेंगे. वे बड़ों के बच्चों की गलती पर छोटों के बच्चों को मारते. . . और डटकर मारते. छोटों के बच्चों को इसमें अन्याय लगा. आखिर एक दिन उनमें से नेकराम नामक बच्चे ने अध्यापकजी से कहा— अध्यापकजी आप दूसरे बच्चों की गलती पर हमे क्यों मारते हैं?

—अपने पेट की खातिर बेटे.

—मैं समझा नहीं अध्यापकजी.

—नही समझोगे. अभी तुम छोटे हो, रामप्रसादजी ने कहा, जब बड़े हो जाओगे, आप समझ जाओगे. और बेटे देखो, यह तो परोपकार की बात है कि दूसरों के कष्ट स्वयं झेलो. फिर इनकी वे भूल कभी नहीं करोगे जिनके लिए तुम मार खाते हो. इस तरह तुम दुनिया के अच्छे आदमी बनोगे और अच्छे आदमी ही दुनिया में बड़े बनते हैं. और यह भी सोचो बच्चों, इस विद्यालय में ये हैं इसलिए यह विद्यालय भी है.

यह सुनकर नेकराम चुपचाप अपनी जगह बैठ गया. बड़ों के बच्चों के बदले में गसीबों के बच्चे पिटते रहे और वे एक दिन सचमुच दुनिया के अच्छे मनुष्य बन गये.

अब इस स्कूल में नेकराम अध्यापक है. एक दिन वर्ग में आते ही वह दीवार से अध्यक्ष की फोटो को उतारकर उसके स्थान पर नया फोटो टांगता है. यह नया फोटो अध्यक्ष के बेटे का था जो अपने पिता के बाद इस संस्था का अध्यक्ष बना था. और आज उन बड़ो के बच्चों के बच्चे इस विद्यालय में पढ़ रहे थे. नेकराम ने फोटो टांगने के बाद बच्चों से कहा—इसको प्रणाम करो.

बच्चे उठे और प्रणाम किया. हां, इनमें बड़ों के बच्चे नहीं उठे और न ही उन्होंने प्रणाम किया.

—क्यों, तुमने प्रणाम क्यों नहीं किया, नेकराम ने उन बच्चों से पूछा.

बच्चे कुछ नहीं बोले.

—ठीक है, तुम इस तरह नहीं मानोगे. जब तक तुम्हें भय न बैठे, तुम ऐसे ही बैठे रहोगे.

और इतना कह नेकराम आगे बढ़ा और उनके बगल में बैठे बच्चों को एक-एक तमाचा जड़ दिया. अपनी जगह लौटकर आया नहीं कि चमाचा खाये एक बालक ने उठकर कहा— आप दूसरों की गलती पर हमे क्यों मारते हैं?

सुनकर नेकराम एकदम चौंका. उस बालक की ओर कुछ देर अपलक देखने के बाद बोला— अपने पेट की खातिर बेटे.

—मैं समझा नहीं अध्यापकजी.

—जब बड़े हो जाओगे, आप समझ जाओगे और बेटे देखो, इनकी गलती पर यदि तुम लोग मार खाते भी हो तो परोपकार की बात है. फिर इनकी वे भूलें कभी नहीं करोगे जिनके लिए तुम मार खाते हो. इस तरह तुम दुनिया के अच्छे मनुष्य बनोगे. और अच्छे आदमी ही दुनिया में बड़े बनते हैं. और यह भी सोचो बच्चों, इस विद्यालय में ये हैं, इसलिए यह विद्यालय भी है.

इतना कह नेकराम ने पुस्तक खोली और बच्चों को पढ़ाने में लग गया. □ □ □

(चयन एवं संयोजन : वीरेंद्र जायसवाल)

सिद्दार्थ का लौटना

• जितेंद्र भाटिया

उसकी सातवें माले की बालकनी से समुद्र दिखायी देता था. नीले पानी का दूर तक फैला विस्तार, जिसके इस ओर लाल पलाश के पेड़ों की कतारें थीं. सुर्ख फूलों से लदे वे लहलहाते पेड़ अकसर उसे रिझाते और न जाने कितनी बार वह भावुकता के आवेग में फैसला करता कि यह सब छोड़-छाड़ कर किसी दिन वह भाग जायेगा—गंगा के किनारे की उस स्वप्निल वादी में पनाह लेने, जहां ठंडी हवा की महक में बसी एक छोटी-सी, साफ-सुथरी जिंदगी बरसों से उसके इंतज़ार में पलकें बिछाये बैठी होगी.

अपने कॉलेज के दिनों से ही उसने उस दृश्य को अपनी कल्पना के इर्द-गिर्द फैले हुए देखा था और अब भी उस खयाली गांव की खयाली जिंदगी किसी प्रेम-प्रसंग की यादों की तरह उसके दिमाग में रह-रह कर ताजा हो जाती थी. एक छोटा-सा कॉटेज, उसके सामने पोखर में बिछे कमल के फूल, सीधे-सादे, अबोध बच्चों-से गांव वाले, चौपाल पर गुड़गुड़ाते हुक्के के स्वर और हवा में यहां से वहां तक फैली शांति—अपार शांति. लेकिन यह सब उसकी कल्पनाओं का संसार था, जिसमें किसी की दिलचस्पी नहीं थी. उसकी बीवी की भी नहीं, जो सिर्फ डरी-डरी आंखें लिये उसकी तमाम बातें सुनती थी और फिर उठ कर दूसरे कमरे में पेशेंस के पत्ते बांटने चली जाती थी. दरअसल उसका अकेलापन इन तमाम बरसों में काफी क्रॉनिक बनता चला गया था, जिसे देख कर कोई सहानुभूति जतलाने के सिवा कुछ नहीं कर सकता था. और ज्यादातर लोगों को तो उसका यह अलगाव दिखायी ही नहीं देता था. साल-छह महीनों के फासले पर उसके मां-बाप या भाई-बहन उससे मिलने उसके पास आते और उसकी 'सुखी" जिंदगी पर संतोष भरी नजरें डाल कर चले जाते.

लेकिन असलियत यह थी कि फ़ांसी का एक सख्त फंदा धीरे-धीरे उसे अपनी गिरफ्त में कसता जा रहा था . . .

★ ★

आदमी आखिर जिंदगी से क्या चाहता है, या फिर जिंदगी आदमी से क्या चाहती है? वह खाली लम्हों में अकसर अपने आपसे पूछता. लेकिन उसे कभी कोई जवाब नहीं मिलता. उसने सुन रखा था कि महत्वाकांक्षा बहुत खतरनाक चीज होती है. हर मोड़ पर उसने इस खतरे से अपने आपको बचाना चाहा था, लेकिन तरक्की की हर सीढ़ी पर उसके दिमाग में बसे उस छोटे-से गांव की कशिश लगातार बढ़ती चली गयी थी.

यूं देखा जाये तो शिकायत करने जैसा क्या था?—यू हव ऑल दि क्वालिटीज ऑफ ए सक्सेसफुल एग्जेक्यूटिव! उसके बॉस ने उसकी मंथली रिपोर्ट देख कर कहा था और वह सुन कर एक फीकी हंसी हंस दिया था. प्रशंसा उसे भीतर तक दहला देती थी. आई हैव ऑल दि क्वालिटीज ऑफ ए सक्सेसफुल एग्जेक्यूटिव!—उसने घर लौट कर अपने टाइपराइटर पर टाइप किया था. लेकिन न चाहते हुए भी टाइप किये हुए उसके शब्द एक अंतहीन कविता का रूप धरते चले गये थे—

आई हैव ऑल दि क्वालिटीज ऑफ ए सक्सेसफुल एग्जेक्यूटिव
आई हैव ऑल दि क्वालिटीज ऑफ ए सक्सेसफुल
आई हैव ऑल दि क्वालिटीज
आई हैव ऑल
आई हैव
आई
. . . . .

उसके बाद क्या था? . . . घंटा! उसके दिमाग में फिटर कुलकर्णी का वह प्रिय शब्द किसी धमाके की तरह गूंज गया था . . .

★ ★

—भाई-बाप, मैं एक स्कूल-टीचर बनना चाहता था, पर मेरे असली बाप ने मुझे अफसर बना दिया! उसके खयाली नाटक की यह पहली दलील थी. और इसके साथ ही उसके दिमाग में उभरने लगते थे, भाप के फुंफकारते बॉयलर, फर्नेस ऑयल का धुआं उगलती भट्टियां, जलते हुए कार्बन के चमकते, सुर्ख टुकड़े, और उदासी—चुप, बेआवाज उदासी. देखना, एक-न-एक दिन मैं जरूर भाग जाऊंगा! . . .हर रोज अपने कैबिन की कुर्सी पर बैठे-बैठे वह किसी गुरुमंत्र की तरह दोहराता और फिर बहुत बेमन से ओवरहेड पेमेंट्स के बिल साइन करने में जुट जाता. बस, यही कुल मिला कर उसकी जिंदगी थी. उम्मीदों से भरी, लेकिन फिर भी पस्त और जकड़ी हुई. किसी कलफ लगे कॉलर की तरह सख्त और बार-बार चुभने वाली . . .

★ ★

एसोसिएटेड कार्बन प्राइवेट लिमिटेड में नौकरी करते हुए उसे पांच साल हुए थे. इन पांच सालों में घुटन और धुएं में बर्बाद हुई सुबहों और शामों का हिसाब लगाने अगर वह बैठता, तो शायद पागल हो जाता. लेकिन उसके दोस्त बताते थे कि इस छोटे-से अरसे में उसकी तरक्की का ग्राफ हैरतअंगेज था.—योर्स हैज़ बीन ए मीटियॉरिक राइज! उनका प्रिय वाक्य

था. उसके सहयोगियों में बहुत-से ऐसे भी थे, जो उसे ईर्ष्या भरी नजरों से देखते थे. क्लर्कों के साथ उसे राउंड पर जाता देख कर कभी-कभी कोई व्यंग्य भी कस देता कि देखो, कंपनी का अगला पर्सनल मैनेजर जा रहा है! इस तरह की छींटाकशी को निगल पाना उसके लिए बहुत मुश्किल होता था. एक बार क्लब में दो-चार पेग पी कर नशे की हालत में उसने अपने एक दोस्त को अपनी तकलीफ समझानी चाही थी तो वह बड़ी तटस्थता से बोला था——जॉब सैटिस्फैक्शन नहीं है, तो दूसरी नौकरी ढूढ़ लो. और क्या! लेकिन 'जॉब सैटिस्फैक्शन' की असली परिभाषा क्या थी? इनकम टैक्स और पी. एफ. कटने के बाद हर महीने उसके बैंक में जमा हो जाने वाले वे ढाई हजार रुपये, जिनके बूते पर उसकी बीवी महीने में दो बार ताज हेल्थ क्लब जाती थी? या फिर दफ्तर से कार में लौटते हुए सोसायटी के गेट पर गोरखे का वह नपा-तुला सलाम, जो हरशाम उसे बिला नागा मिलता था? क्या थी आखिर संतोष की परिभाषा? और फिर इस बात का क्या यकीन था कि एक नौकरी दूसरी नौकरी से अधिक जानलेवा नहीं होने वाली थी . . . ?

अपनी इस सारी दिमागी कशमकश का हल उसे उस सुदूर गांव में दिखायी देता था, जहां घास के सपाट मैदान और इमली के दरख्त किसी सम्मोहन की तरह बिछे हुए थे. लेकिन उसकी पत्नी उसकी इस सनक को बर्दाश्त नहीं कर पाती थी.——यू ऐंड योर क्रेजी आइडियाज! अकसर झुंझलाते हुए वह उसे डांटती. तुम्हें तो गौतम बुद्ध या किसी साधु-संन्यासी के आश्रम में पैदा होना चाहिए था! . . .

लेकिन दुर्भाग्य से उसका जन्म एक कुलीन परिवार में हो गया था. उसके पिता एक रिटायर्ड अफसर थे और इस कंपनी का एम. डी. उनका पुराना दोस्त था. शायद इसी वजह से उसे एम. ए. करने के तुरंत बाद इस कंपनी में नौकरी मिल गयी थी, हालांकि तब उसकी हैसियत एक छोटे-मोटे क्लर्क से अधिक नहीं थी. यूं भी साहित्य में एम. ए. करने के बाद कालिख बनाने वाली उस कंपनी में नौकरी करने की कोई खास तुक नहीं थी, पर उसने सिर्फ इस उम्मीद पर यह नौकरी मंजूर कर ली थी कि कहीं टीचरी मिलते ही वह सलाम ठोक कर बाहर निकल आयेगा.

. . . लेकिन टीचरी नहीं मिली थी और वह अटका रह गया था—पहले कैंटीन की सख्त टेबलों पर देशपांडे और मल्ला और कुलकर्णी के साथ 'कांदा भजिया' और चटनी खाता, और बाद में साहबों के साथ पिल्सनर बियर के मग हाथ में ले कर 'चीयर्स' करने का स्वांग रचता. . .

उफ! उन साले ढोंगियों की वह नपी-तुली, मेड-इन-कंबाला-हिल हंसी! वह अकसर वितृष्णा से सराबोर हो उठता . . .उस हंसी के मुकाबले कुलकर्णी और इम्तियाज के वे ठहाके कितने जीवंत थे, जिनसे उसका परिचय कैंटीन की उन टेबलों पर पांच साल पहले हुआ था! . . .उस हंसी ने जैसे उसकी सारी जिंदगी का नक्शा बदल दिया था. . .

गुजरा हुआ वह वक्त अकसर उसे कचोटता और तकलीफ देता था. धुएं और धूल भरी उस जिंदगी से लड़ने की ताकत उसे उसी वक्त से मिली थी . . . फैक्टरी के प्लांट की हदों में माचिस या लाइटर्स जलाना मना था और वह उन तमाम लोगों के साथ सिगरेट के कश खींचने की फिराक में बाथरूमों की कतारों के पीछे छिपता फिरता था. . . वे सब ऑपरेटर मिल कर उसका मजाक बनाते थे कि उसे फर्नेस

● शीला इं९

ऑयल की भट्टियों को अंग्रेजी सिखाने के लिए नौकरी पर रखा गया है. उसकी अंग्रेजी साहित्य की डिग्री सारी फैक्टरी में एक चलता-फिरता चुटकुला बन गयी थी और वह स्वयं भी बहुत सहजता के साथ इस मजाक में शरीक हो लेता था . . . लेकिन मजाक की भी अपनी हदें तय थीं और जनरल शिफ्ट खत्म होने के बाद वह खासे मास्टराना अंदाज में कुलकर्णी और उसके साथियों को अंग्रेजी सिखाया करता था. बदले में देशपांडे ने उसे बैग फिल्टर ऑपरेट करने का तरीका समझाना शुरू किया था कि साले सीख ले, क्लर्की चली गयी, तो ऑपरेटर की नौकरी तो मिल जायेगी. . . पेचकसों, पाइप पानों और स्क्रू पानों की वह दुनिया धीरे-धीरे उसे अपनी चपेट में लेती चली गयी थी. कभी-कभी रात में देर हो जाने पर तमाम दोस्तों के साथ वह पाली खत्म होने तक रुकता और फिर उन्हीं के साथ नजदीक के अड्डे पर 'बेवड़ा' मारने भी चल देता. ऑगस्टीन का वह छोटा-सा अड्डा इतनी रात गये भी फैक्टरियों से छूटे मजदूरों से भरा रहता था और जगह पाने के लिए इंतजार करना पड़ता था. . .

देसी दारू का वह तीखा, तल्ख स्वाद अब भी कभी-कभी उसे याद आता था, हालांकि अब उसका कोई फायदा नहीं था. बीवर्स क्लब की संभ्रांत टेबलों पर सिर्फ व्हिस्की या जिन टॉनिक सर्व की जाती थी, जिसे पूरे मुंह में तहजीब के साथ घुमा कर निगलना जरूरी होता था. . . . महीने के महीने इनामदार साहब के टैरेस पर कॉकटेल पार्टियां होती थीं, जिनमें आधे से ज्यादा पुरुष अपनी कमीजें उतार कर नाचने लगते थे और औरतें अपनी लोकट मैक्सीज में फाहशपन की हद तक उतर आती थीं . . . मिस्टर बिंदरा के घर कट थ्रोट या तीन पत्ती के लंबे सेशन होते थे, जिनमें चार-चार हजार तनख्वाह पाने वाले मैनेजर रात के तीसरे पहर में दो-दो रुपयों के लिए जानवरों की तरह झगड़ते थे . . . और एम. जी. की हर विदेश-यात्रा से पहले सांताक्रुज एयरपोर्ट के लाउंच में जमा होने वाली मैनजरों की वह वफादार कतार, जिसके एक कोने में अपनी पत्नी को ढाल बना कर खड़े-खड़े वह अभिवादन में जुड़े अपने दोनों हाथों में एक अजीब-सा शर्मनाक खिचाव महसूस करने लगता था. लेकिन फिर भी होठों की मुसकराहट थी कि उतरने का नाम ही नहीं लेती थी, जैसे किसी ने उसे कील से वहां ठोक दिया हो. . . . अपनी मोटी खाल पर कभी-कभी उसे स्वयं बहुत आश्चर्य होता था, लेकिन वह हमेशा यह सोच कर अपने आपको बहलाता रहता था कि एक-न एक दिन वह सचमुच सबको चकमा दे कर भाग जायेगा और फिर कोई भी उसे वापस बुला नहीं पायेगा . . .

★ ★

—क्या तुम मुझसे प्यार करती हो? कभी-कभी वह अपनी पत्नी से पूछता. उसकी पत्नी उत्तर में अपने चेहरे पर एक बहुत सहज-सा भाव ओढ़ लेती.

—सच-सच बताना, क्या तुम मुझसे प्यार करती हो? वह जिद्दी बच्चों की तरह अपना सवाल दोहराता.

—हां बाबा, करती हूं! उसकी पत्नी कुछ खीज कर उत्तर देती.

—सच? वह कुछ अविश्वास भरी नजरों से पत्नी की ओर देखने लगता. फिर अपने सवाल को वह दूसरे ढंग से रख देता.—अच्छा, अगर मैं ए. पी. एम. होने की जगह गांव की पाठशाला में अध्यापक होता, तब भी क्या तुम मुझसे इसी तरह प्यार करतीं?

—तब? उसकी पत्नी की आंखों में शरारत चमकने लगती. तब तो डैडी तुमसे मेरी शादी ही नहीं करते! . . .

पत्नी की खिलखिलाहट से सारा कमरा भर जाता, लेकिन वह उदास आंखें लिये खामोशी से खिड़की के बाहर देखने लगता. यह सच था कि उस सारे सिलसिले में पत्नी का कोई दोष नहीं था. वह एक वर्ग विशेष से आयी थी और उसकी पूरी जिंदगी में कहीं कोई विरोधाभास नहीं था. उसकी जरूरतें भी बहुत साफ और समझ में आने वाली थीं. दरअसल अगर उस घर में कोई उलझा हुआ व्यक्ति था तो वह स्वयं, जो एकाएक बदबूदार, पथरीली टेबलों से उठ कर बीवर्स क्लब के डाइनिंग हॉल में चला आया था और जिसका मन अब भी किसी तीसरी ही दुनिया में आम और नीम के दरख्तों के बीच लगातार किसी बैताल की तरह भटक रहा था. . . .

★ ★

उसका अधिकांश कॉलेज-जीवन होस्टल में गुजरा था. शायद यहीं से उसकी जिंदगी मां-बाप और दोस्तों के शब्दों में 'गलत' हो गयी थी. होस्टल में उसके इर्द-गिर्द रहने वाले दोस्तों का घेरा किसी भी लिहाज से संभ्रांत नहीं था. कमरों में फटी हुई लुंगियां या जींस पहने वे सब बैठे-बैठे बीड़ियां सुलगाते थे और ढाबे में जो कुछ अंट-संट मिलता था, खा लेते थे. पढ़ाई से बचने वाले वक्त में या तो वे पैदल लंबी 'हाइक' पर निकल जाते थे, या फिर कमरों में लेटे-अधलेटे किसी अमूर्त-से सवाल पर बहस करते रहते थे. इस अस्त-व्यस्त जिंदगी का वह इस कदर आदी हो गया था कि छुट्टियों में घर जाने पर उसे निपट अकेलापन महसूस होता था. कई बार तो वह छुट्टियां खत्म होने से पहले ही वापस होस्टल लौट जाता.

पढ़ाई पूरी होने के बाद उसने दो-तीन महीने यूं ही बंबई की गर्दिश में गुजारे थे और फिर अंत में वहां एक किराये का कमरा ले लिया था. उन्हीं दिनों घर से उसके पिता का पत्र आया था कि फलां कंपनी का एम. डी. उनका दोस्त है और अगर वह जा कर उनसे मिले तो वह उसके लिए नौकरी का कुछ-न कुछ इंतजाम जरूर कर देंगे. वह पांच-सात दिनों तक रूखेपन से इस बात को टालता रहा था, फिर एक दिन अनिश्चय की उस जिंदगी से तंग आ कर उसने एम. डी. से मिलने का फैसला कर लिया था. एम. डी. ने उसे बहुत प्यार के साथ अपने कमरे में बिठाया था, उसके पिता की सेहत के समाचार पूछे थे और फिर चेहरे

पर मुसकराहट उभार कर उसके हाथों में अपाएंटमेंट लेटर थमा दिया था—इट्स ए मॉडेस्ट जॉब! बट यू विल राइज इफ यू वर्क हार्ड. गुड लक!

और वह अपने पिता की प्रभावशीलता पर ताज्जुब करता एम. डी. के एयर-कंडीशंड कमरे से बाहर निकल आया था. बाहर एम. डी. का पी. ए. हाथ में कागज लिये, उसे काम समझाने के लिए, तैयार खड़ा था. . .

★ ★

—सला, तुम हैंडल मार के इदर आयेला हय, तबी ये हमाली काय को करता हय? कुलकर्णी उसे शाम के वक्त ऑफिस में देख कर काम करते देखता और चिल्लाता—तुमको बड़ा साब काय के वास्ते नईं बनाया?

—हैंडल थोड़ा-सा छोटा पड़ गया होगा! वह हंसता और पिछले साल की ऐक्टिविटीज का सिनॉप्सिस बनाने में जुट जाता. लेकिन मशीन की तरह काम में जुटे रहने के बावजूद उस माहौल में उसका मन बिल्कुल नहीं लगता था. . .

कॉलेज के दिनों में एक बार अपने दोस्तों के साथ वह इंदौर के नजदीक के एक छोटे-से गांव में गया था. वहां गुजरे चार दिनों में उसने पेड़ों की छांह में सुस्ताने, रहट पर ताजा गन्ने का रस पीने और खेत से मूलियां तोड़ कर खाने के सिवा कुछ नहीं किया था. पर वे चार दिन उसकी स्मृति में हमेशा के लिए एक सपना बन कर अंकित हो गये थे.— यार कुलकर्णी, यह साली धुएं की जिंदगी अपने बस की नहीं है! वह खाली ऑफिस में टेबल पर पैर रख कर सुस्ताते हुए कुलकर्णी को बताता. . . . मेरा तो मन होता है कि सब कुछ फेंक-फांक कर गांव में खेती शुरू करूं या फिर खुली हवा में पेड़ के नीचे बच्चों का एक छोटा-सा स्कूल बनाऊं. . . .

—सला, तुम तो पिक्चर का डायलाग बोलता हय! गांव में जाने का था तो ये कार्बन मिल में मगजमारी करने काय को आया? कुलकर्णी आश्चर्य से उसके चेहरे की ओर देखता और फिर उसके दराज में से खाली लिफाफे चुराने में व्यस्त हो जाता. वह स्वयं भी सब कुछ भूल कर काम में अपने आपको खपा देने की भरसक कोशिश करता, मगर परछाइयां उसका पीछा नहीं छोड़ती थीं. . . . खासतौर पर नौकरी करने के बाद से वह कॉलेज के उन बेफिक्र दिनों को बार-बार याद करने लगा था. लेकिन अब पीछे के सारे इतिहास पर नजर डालते हुए वह खुद अपने आपको भी बहुत अविश्वास भरी नजरों से देखने लगता था, जैसे वह स्वयं भी किसी दिन यूं ही उस सारी संभ्रांत साजिश का शिकार हो जायेगा.

★ ★

—एई चोपड़ी माष्टर! तुम सच्ची अपना यूनियन का मेंबर बना? देशपांडे और कुलकर्णी ने एक बार उसकी यूनियन की पर्ची को देख कर पूछा था.

—क्या करने का! वह सेक्रेटरी इम्तियाज की ओर आंख मार कर झूठी लाचारी में मुसकराया था. ये सला सेक्रेटरी लोक किदर छोड़ता हय! मेंबर नईं बनेगा तो ये लोक का सूट-पैंट, दारू-पानी का खर्चा किदर से आयेंगा? बोलो?. . . .

—यू सला इंग्लिश लिट्रेचर ब्लाडी. . . ! इम्तियाज पाइप पाना हाथ में ले कर उसकी तरफ दौड़ा था और देशपांडे, कुलकर्णी खड़े-खड़े हंसने लगे थे.

यूनियन के छोटे-मोटे काम को ले कर इम्तियाज उसके पास मदद के लिए आने लगा था. साल के अंत में जमा की जाने वाली सालाना रिपोर्ट, कंपनी को दिये जाने वाले औपचारिक प्रोटेस्ट नोट, या लेबर ऑफिसर के नाम डिमांड्स का पेटीशन, सब की रूप-रेखा वही बनाने लगा था, क्योंकि उसकी अंग्रेजी अच्छी थी और वह लोगों के साथ सलीके से बात भी कर सकता था. एक बार कंपनी के किसी कर्मचारी को जब दो दिन का सस्पेंशन नोटिस मिला था, तो पर्सनल मैनेजर से बात करने के लिए इम्तियाज उसे अपने साथ ले गया था. पर्सनल मैनेजर ने उसे वहां देख कर अपनी त्यौरियां खींची थीं और उसकी ओर सख्त नजरें डालते हुए बोले थे—यू शुड नॉट बी कमिंग हीयर लाइक दिस! इस बात का असली मतलब वह तब समझा था, जब अगले ही दिन एम. डी. ने उसे अपने दफ्तर में बुलाया था. कुछ चिढ़ी हुई-सी आवाज में उन्होंने उसे यूनियन की गतिविधियों से अलग रहने की सलाह दी थी.—यू आर नॉट वन ऑफ देम! गुस्से में अपनी मुट्ठियां भींचते हुए वह बोले थे. ऐंड आई डोंट वांट यू टू बी आइदर. . . . ! अगर यही सब करना है, तो इसके लिए दूसरी जगहें हैं, दूसरे तरीके हैं.

करीब आधे घंटे तक एम. डी. उसे डांट पिलाते रहे थे. वह अपनी तरफ से बिना कुछ भी कहे चुपचाप सुनता रहा था. जब बाहर निकला था तो पसीना उसकी कनपटियों से चू रहा था—एयर-कंडीशंड कमरे की ठंडी हवा के बावजूद.

. . . . उसी शाम कुलकर्णी के साथ ताड़ी की दुकान पर बैठे-बैठे उसने तय किया था कि नौकरी छोड़ कर वह कहीं दूर निकल जायेगा, कभी वापस न आने के लिए. शायद वह चला भी जाता, लेकिन उसी शाम उसे अपने पिता के बंबई आने की सूचना मिली थी और वह बहुत अनिच्छा से कहीं अटका रह गया था.

पिता स्टेशन से सीधे उसके कमरे पर ही आये थे. लेकिन वहां आ कर शायद वह कुछ बुझ-से गये थे. आरामकुर्सी पर बैठे-बैठे उन्होंने उसके मामूली कपड़ों, रहने के ढंग, खाने-पीने के स्तर, हर चीज की ओर हिकारत भरी नजरों से देखा था और दूसरे ही दिन कमरा छोड़ कर वह ऐंबेसेडर होटल में चले गये थे, जहां उनसे मिलने वह पांच दिनों तक लगातार हर शाम जाता रहा था. पिता ने इस बीच एम. डी. से भी मुलाकात की थी और उसे शक हुआ था कि उन्होंने उसके पिता को सब कुछ बता दिया है. लेकिन ताज्जुब की बात थी कि पिता ने उससे इस बारे में कुछ भी नहीं कहा था. और इसी तरह एक दिन चुपचाप वह वापस लौट गये थे. . . .

रेलगाड़ियों में आग की दुर्घटना रोकिये

अपनी एवं दूसरों की सुरक्षा हेतु—

कृपया डिब्बे में पटाखे, मिट्टी का तेल, पेट्रोल आदि साथ मत रखिये.

डिब्बे में जलती तीलियां अथवा सिगरेट के टुकड़े मत फेंकिये.

गाड़ी में स्टोव अथवा कुकर का उपयोग मत कीजिये.

गाड़ी में अपने साथ विस्फोटक सामग्री मत रखिये.

आग जला डालती है, विनष्ट कर देती है और जान से मार डालती है.

आपकी सहायता करने के लिये हमारी मदद कीजिये.

पश्चिम रेल

पिता के जाने के बाद वह डावांडोल स्थिति में लावारिसों की तरह घूमता रहा था. कोई भी सीधा निर्णय ले पाने में असमर्थ. इस बीच उसका ज्यादातर वक्त कुलकर्णी और देशपांडे के साथ गप्पें मारते और बेवड़ा पीते हुए गुजरा था और बात ने अपना वह पैनापन खो दिया था. चौथा दिन खत्म होने तक वह काफी शिथिल पड़ चुका था. शहर छोड़ कर चले जाने का खयाल उसे बहुत असुरक्षा भरा लगा था. और इसी तरह धीरे-धीरे वह फिर से दफ्तर के काम की चपेट में आ गया था. . . .

* *

. . .यह उन दिनों की बात है जब कंपनी में काम करते हुए उसे तीन साल होने को आये थे और घर से उसके शादी के रिश्ते को ले कर चिट्ठियां आने लगी थीं. इन्हीं दिनों कंपनी में बोनस के सवाल को ले कर हड़ताल भी हुई थी. पिछले साल की शुरुआत में एम. डी. ने मजदूरों से वादा किया था कि यदि साल भर में उत्पादन उम्मीद के अनुसार हुआ तो वह पंद्रह प्रतिशत बोनस का ऐलान करेंगे. उत्पादन की असली हालत यह थी कि भारी मांग के कारण माल के तैयार होने से पहले ही ऑर्डर बुक हो जाते थे. परंतु साल खत्म होने के बाद बोनस को सिर्फ इसलिए रोक दिया गया था, क्योंकि मुनाफे का एक बड़ा हिस्सा नया प्लांट बैठाने में खर्च हो गया था. इस प्लांट के तैयार हो जाने के बाद उत्पादन के डेढ़ गुना हो जाने की आशा थी. यही नहीं, कंपनी के सभी मैनेजरों को साल के अंत में उनकी सेवाओं के पुरस्कार स्वरूप दो-दो हजार रुपये 'एक्स ग्रेशिया' दिये गये थे. लेकिन मजदूरों को कुछ नहीं मिला था. . .

मजदूरों की यूनियन ने पहले मैनेजमेंट को चेतावनी का नोटिस दिया था और फिर कोई उत्तर न मिलने पर अचानक हड़ताल हो गयी थी. कंपनी के इतिहास में यह पहली हड़ताल थी. एम. डी. ने सोचा था कि असंतोष की यह भावना शायद कुछ मजदूरों तक ही सीमित है, इसलिए उन्होंने कंपनी के सभी अफसरों, ऐडमिनिस्ट्रेशन कर्मचारियों और 'वफादार' मजदूरों को बंद गाड़ियों में अपने-अपने घरों से कंपनी तक ले जाने की व्यवस्था की थी. यही नहीं, 'वफादार' कर्मचारियों को पैसे का लालच भी दिया गया था. परंतु इस सबके बावजूद अफसरों के अतिरिक्त एक भी कर्मचारी हड़ताल की घोषणा के बाद काम पर नहीं आया था. ऐडमिनिस्ट्रेशन कर्मचारियों में से अधिकांश यूनियन के सदस्य थे. जो नहीं थे, उनमें से कुछेक 'चमचागीरी' की राजनीति में विश्वास रखते थे, पर ये सब भी यूनियन के डर के मारे हड़ताल के दिनों में काम पर नहीं आये थे. हड़ताल के दूसरे दिन से ही इम्तियाज और उसके साथियों ने कंपनी के गेट पर एक छोटा-सा खेमा बना कर वहां नारे लगाने शुरू कर दिये थे. जब किसी अफसर की कार कंपनी के गेट से गुजरती तो नारे लगाने वालों का स्वर कुछ और तेज हो जाता. इन नारे लगाने वालों के गिरोह में वह स्वयं भी शामिल था. बल्कि हड़ताल के सभी अंग्रेजी के पोस्टर उसी के लिखे हुए थे. एक बार शाम के वक्त बाहर निकलते हुए एम. डी. ने अपनी कार में से उसे नारे लगाते देख लिया था. लेकिन उसे देखने के बाद उन्होंने सिर्फ हलके से अपना मुंह बिचकाया था. . .

पांच-छह दिनों के बाद लेबर कोर्ट में हड़ताल के केस की पेशी हुई थी. इस पेशी में विशेष प्रतिनिधि के रूप में इम्तियाज उसे अपने साथ ले गया था. लेबर ऑफिसर के अतिरिक्त वहां कंपनी की तरफ से पर्सनल मैनेजर खन्ना भी उपस्थित थे. उन सबके सामने पूरी हड़ताल को ले कर मजदूरों के पक्ष को स्पष्ट करने की जिम्मेदारी उस पर डाल दी गयी थी. उसने अपने बयान में बोनस की जोरदार मांग करते हुए कहा था कि जहां एक तरफ कंपनी में मजदूरों के स्वास्थ्य और उनकी सुरक्षा की पूरी व्यवस्था नहीं है, वहीं दूसरी ओर मैनेजमेंट अपना सारा मुनाफा नये प्लांट बनाने में खर्च कर रही है. कार्बन और धूल भरे माहौल में काम करने वाले मजदूरों को दस-बीस रुपये के गैस-मास्क तक नहीं दिये जाते और कालाबाजार में कच्चा माल खरीदने के लिए कंपनी लाखों रुपये खर्च कर देती है. पूरी स्थिति को संक्षेप में रखते हुए उसने कहा था कि कंपनी की एकमात्र रुचि कम-से-कम पैसे खर्च करके अधिक-से-अधिक माल बनाने में है और मजदूरों के हितों की उसे कोई परवाह नहीं है. उसकी जिरह के बाद पर्सनल मैनेजर ने मैनेजमेंट का पक्ष प्रस्तुत किया था, लेकिन लेबर ऑफिसर शायद उसकी दलीलों से इतना प्रभावित हो चुका था कि पर्सनल मैनेजर के भाषण के दौरान वह न जाने कौन-से कागज ढूंढ़ता और उलटता-पलटता रहा था. पर्सनल मैनेजर ने अपने बचाव में वही सब दोहराया था——बढ़ती हुई महंगाई, टाइट क्रेडिट सिचुएशन, मजदूरों का असहानुभूतिपूर्ण रवैया, आदि. लेबर ऑफिसर ने सब कुछ सुन कर तीन दिन बाद फैसला देने का ऐलान किया था और मीटिंग बर्खास्त हो गयी थी. . .

फैसला मजदूरों के हक में आया था. कंपनी ने मजबूरी में सभी कर्मचारियों को बोनस देने का ऐलान किया था और बहुत उत्साहपूर्ण ढंग से हड़ताल खत्म हो गयी थी. हड़ताल के खत्म होने के बाद उसने पाया था कि वह रातोंरात हीरो बन गया है. कंपनी में हर जगह उसी की बातें होने लगी थीं. बहुत-से लोग उसे यूनियन के अगले चुनाव में खड़े होने की सलाह भी देने लगे थे.

. . . . लेकिन वह सारे सिलसिले को इसी सुखद मोड़ पर छोड़ कर कहीं दूर चला जाना चाहता था. इतनी गहमागहमी उससे बर्दाश्त नहीं होती थी. महाराष्ट्र के ही एक गांव में रहने वाले अपने एक समाजसेवक दोस्त से उसने सारी बातें तय भी कर ली थीं, हालांकि वह स्वयं उसके वहां आने के पक्ष में नहीं था.

शायद उसकी योजनाएं कोई निश्चयात्मक मोड़ ले लेतीं, पर हमेशा की तरह एक बार फिर उसकी जिंदगी में एक निर्णायक बिंदु आ गया था. दोपहर के वक्त उसे खबर मिली थी कि एम. डी. किसी खास मसले पर

उससे बातचीत करना चाहते हैं. एम. डी. के कमरे में जाने पर उसने पाया था कि वहां कंपनी के तीन-चार दूसरे अफसर भी बैठे हैं. सब ने बारी-बारी से उसके साथ हाथ मिलाया था और उसके बाद एम. डी. ने मुसकराते हुए उसे सूचना दी थी कि अगले महीने की पहली तारीख से उसे असिस्टेंट पर्सनल मैनेजर के रूप में तरक्की दी जा रही है. . . .

. . . . उसकी सारी दुनिया एक झटके के साथ बदल गयी थी. हालांकि इस बात का एहसास उसे कुछ वक्त बाद ही हुआ था. जिस दिन उसे तरक्की का पत्र मिला था, उसी शाम काम से छूटने के बाद उसने यह खबर कुलकर्णी, इम्तियाज और अपने दूसरे साथियों को बतायी थी. खबर सुनाते वक्त उसने भरसक अपने चेहरे और आवाज के जरिये अपनी मानसिक चिंता उन लोगों तक पहुंचानी चाही थी, पर फिर भी पता नहीं कहां क्या गलत हो गया था. उसकी सारी बातें सुन कर उन सब ने दबे स्वर में उसे बधाई दी थी और फिर बिना कुछ भी कहे, चुपचाप वे वहां से चले गये थे.

उसकी सारी रात करवटों में गुजरी थी. एक क्षण उसके मन में इस सारे सिलसिले के लिए तीखी वितृष्णा उभरती, तो दूसरे की क्षण न चाहते हुए भी वह सोचने लगता कि तरक्की के बाद उसे जो पैसे मिलेंगे, उनसे वह क्या-क्या कर सकता है. एक तरफ उसे एहसास होता कि यह सारी साजिश उसे पालतू बनाने के लिए रची गयी ह, तो दूसरी तरफ उसे यह भी लगता कि नया पद संभालने के बाद वह अपने पुराने साथियों की काफी मदद कर सकता है. बहुत व्यावहारिक हो कर सोचने पर उसे लगा था कि अगर वह उस स्थान को लेने से इनकार करेगा तो शायद उसकी जगह कोई ऐसा व्यक्ति रख लिया जायेगा, जिसका रवैया मजदूरों के पूरी तरह खिलाफ हो. माहौल खराब है तो क्या हुआ, इस नयी जिम्मेदारी को आजमा देखने में क्या हर्ज है? वह मन-ही-मन सोचता चला गया था. उसे महसूस हुआ था कि उस नयी पोस्ट पर वह कुछ ऐसा भी करके दिखा सकता है, जैसा आज तक किसी ने नहीं किया. . . . और इस तरह लंबे मानसिक तर्क-वितर्क के बाद उसने 'फिलहाल' उस नयी जिम्मेदारी को मंजूर कर लेने का फैसला किया था. . . .

और इसी 'फिलहाल' ने उसे कहीं का नहीं छोड़ा था. . . .

★ ★

अगर कभी कार्बन के उस गोदाम में आग लग जाये तो? उसके दिमाग में आग और दुर्घटनाओं की ये संभावनाएं अब लगातार घुमड़ने लगी थीं. वैसे सच पूछा जाये तो उस चहारदीवारी के भीतर उसका सीधा वास्ता सिर्फ लोगों की सामाजिक जिंदगी से था और दुर्घटनाओं का खयाल रखने के लिए तो एक सेफ्टी ऑफिसर अलग से था. लेकिन यह बात उसकी तसल्ली के लिए काफी नहीं थी. . . अगर मैं यह नौकरी छोड़ दूं तो क्या लोगों को यकीन आ जायेगा कि मैं वही हूं, मुझमें कोई बदलाव नहीं आया है? दिमागी सवाल-जवाब के सिलसिले में वह बार-बार अपने आपसे पूछने लगा था. लेकिन कोई साफ उत्तर देने की जगह वह अपने ही मन में अपने लिए फिजूल-से स्पष्टीकरण तैयार करने लगता था. . .

यह सच था कि अपनी खुद की तरफ से उसने चीजों को बदलने न देने की भरसक कोशिश की थी. खासतौर पर ए. पी. एम. का पद संभालने के बाद उसने पुराने रिश्तों को कायम रख सकने के लिए बहुत जोर लगाया था. परंतु धीरे-धीरे, उसके न चाहते हुए भी, न जाने कैसे उसके इर्द-गिर्द एक अजीब-सी प्रतिरोधक दीवार खड़ी होनी शुरू हो गयी थी. उसके साथी मैनेजर इसे 'टेंपररी कल्चरल क्राइसिस' की संज्ञा देते थे, लेकिन वह खुद अपने मन के भीतर जानता था कि उसकी यह छटपटाहट उतनी अस्थायी नहीं है, जितनी उन सब लोगों को लगती है. . . .

पहले वह पब्लिक बस से ऑफिस आया करता था, कुलकर्णी या किसी दूसरे ऑपरेटर के साथ. वे सब उसे नजदीक के रेलवे स्टेशन पर मिल जाते थे. प्रमोशन मिलने के बाद भी उसने उसी तरह बस में आना जारी रखा था, पर अब कोई भी पुराना साथी बस में उसके साथ नहीं बैठता था. कई बार वह गौर करता, बस की क्यू में उसे खड़ा देख कर कुलकर्णी और इम्तियाज जानबूझ कर बस छोड़ देते. कभी-कभार गलती से उसी के साथ बस में चढ़ जाने पर भी वे अपनी दूरी बनाये रखते थे. एक बार उसने पहले की तरह उन लोगों की टिकट भी लेनी चाही थी, पर इससे स्थिति और अजीब हो गयी थी. धीरे-धीरे उसने पाया था कि बस का वह छोटा-सा सफर भी दफ्तर की आठ घंटों की जिंदगी की तरह नकली स्थितियों से भर गया है. और उसने हार कर अपने गिर्द एक मोटा खोल बना लिया था. इसी के कुछ दिनों बाद फैक्टरी मैनेजर ने उसे अपने दफ्तर में बुला कर कहा था कि वह रोज वर्कर्स के साथ बस में यात्रा करता है, यह अच्छी बात नहीं है. साथ ही उन्होंने उसे सूचना दी थी कि कंपनी ने उसके नाम एक ब्याज रहित कर्ज ग्रांट किया है, जिससे वह कार खरीद सकता है. यही नहीं, इसके एक हफ्ते बाद ही कंपनी की एक सैकंडहैंड गाड़ी रियायती दामों पर उसे बेच दी गयी थी और एक दिन अचानक उसने पाया था कि दफ्तर का क्लर्क उसके डेस्क पर कार की चाबियां रख कर चला गया है. . .

कुछ ही दिनों बाद उसे कंपनी का फ्लैट भी मिल गया था. बड़े-बड़े दो बेडरूम, एक लंबा-चौड़ा हॉल और बालकनियां— जिनमें से हरेक के सामने फैला समुद्र दिखायी देता था. क्लब की मेंबरशिप, डॉक्टर और अस्पताल का चुनाव, छुट्टियों में हिलस्टेशन पर होटल की बुकिंग, दोपहर के समय ऑफिसर्स मेस में उपयुक्त खाना— इन सब का इंतजाम भी कंपनी ने उसके लिए कर दिया था. कंपनी के दफ्तर में जिस बाथरूम का इस्तेमाल अब वह करता था, उसके बाहर 'ऑफिसर्स ओनली' का बोर्ड लगा हुआ था. कभी-कभी उसे लगता था कि अब शायद किसी दिन एम. डी.

उसे दफ्तर में बुला कर यह भी बतायेगा कि इन दिनों उसे क्या सोचना चाहिए और क्या नहीं. . .

इस फैशनेबल गुलामी के सबसे तकलीफदेह लम्हे वे होते थे, जब उसे अपने पुराने दोस्तों से मुखातिब होना पड़ता था. पर्सनल मैनेजर के छुट्टी पर चले जाने के बाद उसे अकसर कर्मचारियों की समस्याओं को सुलझाने की जिम्मेदारी निभानी पड़ती थी. ऐसे में कभी-कभी वह न चाहते हुए भी उन्हीं पुराने चेहरों से सीधे टकरा जाता था.

पर्सनल मैनेजर ने छुट्टी पर जाने से पहले यूनियन के एक सक्रिय कार्यकर्ता पर चोरी का आरोप लगा कर उसे चार्जशीट दी थी. बाद में यह केस उसे सौंप दिया गया था और मजदूरों में एक अफवाह फैल गयी थी कि कुछ दूसरे यूनियन-कार्यकर्ताओं को भी जल्दी ही चार्जशीट दी जाने वाली है. . . . इसी सिलसिले में एक बार चार्जशीटेड कार्यकर्ता सावंत का लिखित उत्तर ले कर आठ-दस मजदूर उसके कैबिन में उससे मिलने आये थे. उनमें इम्तियाज भी था. उन लोगों को इस तरह अपने कमरे में देख कर वह एकबारगी अपराधी हो उठा था. बिल्कुल इसी तरह कुछ दिनों पहले वह इम्तियाज के साथ पर्सनल मैनेजर के दफ्तर में गया था. बिल्कुल इसी मुद्रा में.

—इम्तियाज, सुनो. . . . उसने बुदबुदाने की कोशिश की थी. मैं तुम्हारा दुश्मन नहीं हूं, मैं तुम्हारी मदद करना चाहता हूं. लेकिन इम्तियाज सिर्फ पथरीली निगाहों से उसकी ओर घूरता रह गया था. सावंत का लिखित स्पष्टीकरण उसके हाथों में थमा कर वह व्यंग्य से मुसकराया था और फिर मुड़ने से पहले धीरे से बोला था—सा'ब, तुमको तो सब मालूम हय. . . . चार्जशीट का डर बता के यूनियन बंद होने वाला नईं हय!. . . कायको फिर तकलीफ करता हय? और बोल कर इम्तियाज कमरे से बाहर चला गया था, उसे सोचने के लिए छोड़ कर कि इम्तियाज का उसे 'साहब' कह कर बुलाना एक संस्कारगत कमजोरी थी या फिर उसने जानबूझ कर उसका अपमान करने की कोशिश की थी?. . .

सावंत के स्पष्टीकरण के आधार पर उसने नोट बना कर फैक्टरी मैनेजर को भेज दिया था. नोट में उसने लिखा था कि सावंत की दलीलें अच्छी हैं और कंपनी के पास उस पर लोहे का सामान चुराने का इल्जाम लगाने के लिए पर्याप्त कारण नहीं हैं. यही नहीं, इस तरह की सख्त कार्रवाई से मैनेजमेंट और मजदूरों के बीच तनाव पैदा होने का खतरा बन सकता है, उसने आगे लिखा था. नोट की एक प्रति उसने एम. डी. के पास भी भेज दी थी. दो-तीन दिनों तक कुछ नहीं हुआ था, सिवा इसके कि हर सुबह फैक्टरी के गेट से भीतर घुसते वक्त बहुत-से मजदूर संशय से उसकी ओर देखते रहे थे. चौथे दिन एम. डी. ने उसे अपने दफ्तर में बुलाया था. उसे बैठने के लिए कहने के बाद उन्होंने एक कागज उसके हाथों में थमा दिया था. वह कागज सावंत के नाम लिखा गया एक छोटा-सा पत्र था, जिसमें कहा गया था कि चोरी की सूचना पुलिस को दी जा रही है और अदालत में फैसला होने तक उसे नौकरी से सस्पेंड किया जाता है. इस कागज को उसके हाथ में थमाने के साथ ही एम. डी. ने टेबल पर से उसका लिखा हुआ नोट भी उठाया था और व्यंग्य से उसकी ओर देखते हुए उसे टुकड़े-टुकड़े करके रद्दी की टोकरी में फेंक दिया था. . . .

* *

सावंत सस्पेंड हो गया था और कुलकर्णी, इम्तियाज, रानाडे वगैरा सभी ऑपरेटरों के लिए वह मैनेजमेंट की साजिश का जीता-जागता स्वरूप बन गया था. उसके पास से गुजरते समय वे दबे स्वर में एक-दूसरे को संबोधित करके गालियां बुदबुदाते, जिनका असली निशाना वह स्वयं होता था. एक बार गुड्स शेड की दीवार पर उसे अपने नाम के आगे कई गंदे विशेषण लिखे हुए मिले थे. उधर मैनेजमेंट के उसके सहयोगी भी उसकी ओर अजीब हिकारत भरी नजरों से देखने लगे थे. एक बार मंथली मीटिंग के बाद एम. डी. ने उसे अलग बुला कर कहा था कि वह स्टाफ के साथ बहुत नर्मी का बर्ताव कर रहा है और यह उसके कैरियर के लिए अच्छा नहीं है—आई ऐम वेरी लिबरल! उन्होने सख्त आवाज में ऐलान किया था. बट आई मस्ट गेट लॉयल्टी फ्रॉम माई पीपल!

. . . . और हर तरफ से अपने ऊपर पड़ने वाली संदेह भरी निगाहों को झेलते हुए वह बदहवासी की हालत में सोचता रहा था कि आखिर उसकी वफादारी किसकी तरफ है? कभी-कभी उसके मन में कुलकर्णी, इम्तियाज आदि को अपना पक्ष समझाने की एक बहुत भोली-सी ललक उठती, परंतु इन सख्त निगाहों का सामना करते हुए वह भीतर-ही-भीतर कुछ सहम-सा जाता था.

. . . . जब घुटन बहुत बढ़ गयी थी, तो उसने लंबी छुट्टी के लिए अर्जी दे दी थी. छुट्टियों में वह यहां-वहां अकेला भटकता रहा था. जैसे अपने-आपकी तलाश में अपने आपसे भाग रहा हो. इसी बीच मां-बाप की ओर से शादी का एक सुनिश्चित प्रस्ताव भी उसे मिला था जिसने उसकी उलझनों को और बढ़ा दिया था. जिस लड़की के लिए उसके मां-बाप जोर दे रहे थे, वह समाजशास्त्र में एम. ए. थी और खासी प्रबुद्ध होने का एहसास देती थी. उसने ऊपरी तौर पर मां-बाप के सामने अपनी असहमति जाहिर की थी, पर उसे लगा था कि कहीं किसी भीतरी सतह पर उसका अपना अकेलापन लगातार उस लड़की के पक्ष में उसे कमजोर बनाता जा रहा है. शायद मां-बाप भी उसकी इस कमजोरी को भांप गये थे और दो-चार हफ्तों की मामूली गहमागहमी के बाद उन्होंने उसे राजी कर लिया था. . . .

और इस तरह उसकी शादी भी हो गयी थी. ताजमहल होटल में हुए उसकी शादी के रिसेप्शन में एम डी. भी आये थे. उसके करीब आ कर उसे बधाई देते समय वह एक बहुत कुटिल-सी हंसी हंसे थे और फिर मुड़ कर उसके पिता से बात करने लगे थे

उनकी उस मुसकराहट का मतलब वह उस वक्त नहीं समझ सका था, पर शादी के बाद धीरे-धीरे उसे इसका मतलब समझ में आने लगा था. बीवी के घर में आ जाने के बाद उसके उग्र खयालों पर एक ब्रेक-सा लगता चला गया था और उसकी चिंताएं दोहरी हो गयी थीं. उसकी पत्नी खासे संपन्न परिवार से थी और उसे शुरू से ही आरामतलब जिंदगी बिताने की आदत रही थी. उसकी साहित्यिक अभिरुचि, कलात्मकता और समझ के भी अपने अलग मानदंड थे, जिनमें शरीक होना उसके लिए बेहद मुश्किल था. उसकी घरेलू जिंदगी भी इस तरह धीरे-धीरे दफ्तर में उसके स्तर के ही अनुरूप बनती चली गयी थी और एक दिन इसी तरह उसने गौर किया था कि शादी के बाद के उस एक वर्ष में गांव की तरफ भाग खड़े होने की उसकी पुनर्जीवी ललक पता नहीं किन बोझिल खयालों में दबती चली गयी है.

★ ★

—साब, खाना क्या बनेगा? यह श्रीधर की आवाज थी.

उसने नजरें उठा कर देखा, उसका नौकर दरवाजे में खड़ा बहुत अजीब-अजीब निगाहों से उसकी ओर देख रहा था. शायद ऐसा साहब उसने जिंदगी में कभी नहीं देखा था जो क्लब जाने की जगह सारी शाम अपने कमरे में बैठा जाने क्या-क्या सोचता रहता था.

—मेम साहब कुछ कह कर गयी हैं? उसने टालने के लहजे में नौकर से पूछा.

—नको! नौकर ने शिद्दत के साथ गरदन हिलायी.

उसकी बीवी की अपने ब्यूटी क्लिनिक पर शाम की अपॉइंटमेंट थी और वह उसके आते ही गाड़ी ले कर निकल गयी थी. बीवी के जाने के बाद से वह अपने बिस्तर पर औंधा लेटा था.

—साब, खाने का. . . . श्रीधर उसे आसानी से छोड़ने वाला नहीं था.

—ओ, हां. . . उसने कुछ झुंझलायी हुई नजरों से नौकर की ओर देखा. . . . तुम ऐसा करो, जो मन में आये, बना लो. . . . और पहले जरा मुझे एक कप कॉफी देते जाना. . .

नौकर चला गया और वह उसी तरह बिस्तर पर औंधा पसरा सोचता रहा कि इस घर में आने के बाद वह कितना आलसी और आरामपसंद हो गया है. एक वक्त था, जब उसकी सारी शाम कंपनी में ही बीतती थी, ऑपरेटरों को अंग्रेजी पढ़ाते हुए, उनसे मराठी की चुनिंदा गालियां सीखते हुए और यूं ही इधर-उधर की गप्पें लड़ाते हुए. अब सुविधाओं का रेगिस्तान उसके चारों तरफ बिछा दिया गया था और शामें उससे काटे नहीं कटती थीं. . .

क्या इस जहरीले घेरे से निकल भागने का कोई रास्ता नहीं? उसने फिर वही फिजूल-सा सवाल अपने दिमाग में दोहराया और पैनी निगाहों से छत पर चिपके वॉल-पेपर की ओर देखने लगा. उसके दिमाग में पिछले पंद्रह-बीस दिनों की घटनाएं तेजी से चक्कर लगाने लगी थीं. ये पंद्रह दिन उसके लिए बेहद मुश्किल साबित हुए थे. हर रोज दफ्तर से लौटने के बाद वह अपनी पत्नी से वे चिंताएं छिपाने की कोशिश करता, पर अब शायद पत्नी को भी लगने लगा था कि कहीं कुछ गंभीर रूप से गलत हो गया है. . .

दरअसल कंपनी की मैनेजमेंट ने अब बहुत चालाकी के साथ एक शतरंज के मोहरे की तरह उसका इस्तेमाल करना शुरू कर दिया था. खासतौर पर पर्सनल मैनेजर अपने हर साजिश भरे निर्णय की जिम्मेदारी उसके कंधों पर डाल कर तमाशा देखने का आदी हो गया था. इन दिनों इस बात ने गंभीर रुख ले लिया था, क्योंकि यूनियन की गतिविधियां बढ़ गयी थीं और मैनेजमेंट ने इसको तोड़ने के लिए एक लंबी-चौड़ी योजना बनायी थी. और इस योजना का सारा 'श्रेय' उसे दे दिया गया था.

हुआ यूं था कि कंपनी के एक अकाउंट्स क्लर्क ने ऐडमिनिस्ट्रेशन विभाग के कर्मचारियों के 'हितों' का खयाल रखने के लिए एक अलग यूनियन बनाने का ऐलान किया था. इससे पहले इनमें से अधिकांश कर्मचारी इम्तियाज की यूनियन के सदस्य थे. इस नयी यूनियन को बनाने के लिए जो पहली सभा हुई थी, उसमें ऐडमिनिस्ट्रेशन विभाग के मुश्किल से दस या बारह कर्मचारी उपस्थित रहे होंगे, पर सभी जानते थे कि उन सभी कर्मचारियों की पीठ पर पर्सनल मैनेजर का हाथ है. इस सभा के हो जाने के बाद इम्तियाज ने अलग से उन सब कर्मचारियों को समझाने की कोशिश की थी कि अलग यूनियन बन जाने से मैनेजमेंट के लिए कर्मचारियों पर दबाव डालना बहुत आसान हो जायेगा. वे सब इम्तियाज की बातों से सहमत हुए थे, पर दूसरे ही दिन पर्सनल मैनेजर ने स्वयं ऐडमिनिस्ट्रेशन विभाग के हर कर्मचारी के पास जा कर कहा था कि अगर वह इस नयी यूनियन का सदस्य नहीं बनता है, तो उसके प्रमोशन की संभावनाएं काफी कम हो जायेंगी. और इस तरह जोर-जबरदस्ती से इस नयी यूनियन की स्थापना कर दी गयी थी. इस नयी यूनियन के बनने के दो ही तीन दिन बाद मैनेजमेंट ने इसे

● मधु करंदीकर

अपनी औपचारिक स्वीकृति दे दी थी. स्वीकृति मिलने के दूसरे ही दिन इम्तियाज एक बार फिर उससे मिलने आया था. उसने कुछ सहमी हुई आवाज में इम्तियाज को समझाना चाहा था कि इस नयी यूनियन को बनाने में उसका कोई हाथ नहीं है, लेकिन इम्तियाज सिर्फ अविश्वास और व्यंग्य भरी आंखें लिये मुसकराता रहा था. ——तबी ये क्लर्क लोग क्या अपने-आपसे यूनियन बनाने की बात सोचा?

स्पष्टीकरण देने की जल्दबाजी में वह इम्तियाज के साथ जरूरत से कुछ ज्यादा ही खुल गया और उसने परोक्ष रूप में उसे यह भी बता दिया था कि पर्सनल मैनेजर ने कुछ कर्मचारियों पर दबाव डाल कर उन्हें यूनियन का सदस्य बनाया है. इस बात को सुन कर इम्तियाज कुछ चौंका था, और फिर कुछ ही मिनटों के बाद उसके कैबिन से बाहर चला गया था.

दूसरी सुबह कंपनी के बाहर दीवारों पर जगह-जगह हस्तलिखित पोस्टर लगे हुए मिले थे, जिनमें अन्य बातों के अलावा यह भी कहा गया था कि पर्सनल मैनेजर ने अपने सेक्शन के लोगों पर व्यक्तिगत दबाव डाल कर उन्हें यूनियन का सदस्य बनाया है. इस खबर से सारी फैक्टरी में सनसनी फैल गयी थी और दोनों यूनियनों के बीच काफी तनाव पैदा होने लगा था. दोपहर के खाने के वक्त पर्सनल मैनेजर ने उसकी उपस्थिति में अपने एक साथी मैनेजर से कहा था कि पता नहीं कंपनी की 'टॉप सीक्रेट' गतिविधियों की भी खबर उन मजदूरों को कैसे लग जाती है. और यह कह कर वह बहुत अर्थ भरी नजरों से उसकी ओर देखने लगे थे....

साजिश भरा यह माहौल लगातार उसे अपनी चपेट में लेता चला गया था. इम्तियाज की यूनियन द्वारा मैनेजमेंट के विरुद्ध चलाये गये इस अभियान के दो दिन बाद ही एक और अप्रिय घटना घट गयी थी. शाम की पाली के छूटने के बाद ऐडमिनिस्ट्रेशन की यूनियन के दो सदस्यों के साथ अंधेरे में किसी ने मारपीट की थी और उनकी जेबों से पैसे छीनने की कोशिश की थी. ऐडमिनिस्ट्रेशन के सभी कर्मचारी इस वारदात के बाद इम्तियाज और उसकी यूनियन के खिलाफ हो गये थे, क्योंकि उन्हें शक था कि मारपीट का यह काम इम्तियाज ने ही करवाया है. इम्तियाज सुबह से शाम तक सबके सामने सफाई देता रहा था कि वह गुंडागीरी में विश्वास नहीं रखता, परंतु उसकी दलीलें फिजूल साबित हुई थीं. शाम से पहले ही कंपनी के नोटिसबोर्ड पर पर्सनल मैनेजर का नोटिस लग गया था कि कंपनी हिंसा की इन वारदातों की निंदा करती है और इस तरह की घटनाओं के लिए जिम्मेदार लोगों के साथ कड़ाई का बर्ताव किया जायेगा.

● दिलीप बंनर्जी तथा एल. जे. उपाध्याय

इसी शाम ऑफिस छूटने के बाद एम. डी. ने उसे अपने दफ्तर में बुला कर पूछा कि बताओ, आखिर तुम्हारा इरादा क्या है? क्यों तुम इस सिस्टम में अपने-आपको नहीं ढाल सकते? वह उत्तर देने की जगह चुपचाप खाली दीवार के पार देखने लगा था, जहां एक बार फिर उसकी आंखों के सामने उस जाने-पहचाने, सुदूर गांव की धुंधली रेखाएं उभरने लगी थीं.

यह उसकी शादी की दूसरी सालगिरह के बाद अभी दो दिन पहले की बात थी और ऐसा इन दो सालों में पहली बार हुआ था...

* *

—तुम अभी यहीं हो? बीवी के सपाट सवाल ने उसे चौंका दिया. उसकी ओर अपनी नजरें उठा कर देखते ही वह समझ गया कि वह हेयरड्रेसर के पास से हो कर लौटी है. उसके जूड़े का स्टाइल बदल गया था.

—तुम्हें यह क्या हो गया है? अंदर आते ही बीवी कोमल स्वर में बोली और पलंग पर उसके पास आ कर बैठ गयी. उसका हाथ अपने हाथों में थाम कर वह बहुत चिंता के साथ उसके पसीने से लथपथ चेहरे की ओर देखने लगी.

पूरा माहौल खामोश था, सिवा खिड़की के बाहर नीचे के फ्लैट में टी. वी. पर चल रही फिल्म की छन कर आती आवाज के. उसका मन हुआ कि बीवी के सामने वह पूरी तरह फूट पड़े. परंतु बीवी का बदला हुआ चेहरा इस आत्मीयता में रुकावट बन रहा था. —कुछ नहीं. ...लंबी चुप्पी के बाद वह बोला. मैं इस जिंदगी से तंग आ गया हूं. मेरा यहां दम घुटता है...

——सब कुछ तो है यहां! तुम्हें कमी किस बात की है? पत्नी का उत्तर हमेशा की तरह ठंडा और बेवकूफी से भरा हुआ था. वह आगे कुछ भी नहीं कह सका. सिर्फ वितृष्णा भरी निगाहों से खिड़की के बाहर समुद्र-तट के करीब टहलते स्त्री-पुरुषों को देखता रहा. पत्नी कुछ देर बाद उठ कर रसोईघर की तरफ चली गयी.

लेकिन खाना खाते समय वह बोझिल-सा एहसास फिर किसी अप्रिय घटना की यादों की तरह उन दोनों के बीच उतर आया. सब कुछ पहले ही की तरह खामोश था. दोनों को खाना खिलाने वाला नौकर श्रीधर चपाती परोसने से पहले हर बार कनखियों से उन दोनों के चेहरों की ओर देखता जा रहा था. खाने के दौरान उन दोनों के आपस में बात न करने की यह स्थिति

उसके लिए काफी परिचित थी.

लेकिन तभी बाहर के दरवाजे की घंटी जोरों से बजी और खामोशी का वह वक्फा एक झटके के साथ टूट गया. नौकर ने हाथ में थमी प्लेट मेज पर रख दी और उलटे पांव दरवाजे की तरफ भागा. उसके जाते-जाते घंटी अधीरता का एहसास देती हुई एक बार फिर बजी. इस बार वह स्वयं भी रोटी का कौर हाथ में पकड़े-पकड़े घूम कर आवाज की दिशा में देखने लगा.

नौकर को दरवाजा खोलने में पांच या दस सैकेंड लगे होंगे. दरवाजा खुलने की आवाज के साथ ही उसे लगा कि भीड़ का एक रेला उसके कमरे में घुस आया है.

वह और उसकी पत्नी लगभग एक साथ बाहर के कमरे की ओर दौड़े. वहां पहुंचने पर उन्होंने पाया कि श्रीधर बमुश्किल अधखुले दरवाजे पर जोर लगाये पंद्रह-बीस आदमियों की भीड़ को बाहर ही रोकने की कोशिश कर रहा है. ——जल्दी से दरवाजा बंद करो! उसकी पत्नी चिल्लायी, लेकिन उसने ठहरी हुई आवाज में श्रीधर से कहा कि वह दरवाजे को छोड़ दे. श्रीधर हिचकिचाया हुआ एक तरफ हुआ ही था कि भीड़ में एक हलचल-सी हुई और चेहरों का वह रेला ड्राइंग-रूम में घुसता चला आया. वे सब मजदूर थे और उन्होंने दो लहूलुहान आदमियों को गरदन से पकड़ रखा था. उनमें से एक का होंठ फट गया था और उसमें से लगातार खून बह रहा था.

——वहां नहीं! वहां नहीं! सारी कार्पेट पर गिरेगा! उसकी बीवी उन्हें आगे बढ़ते देख कर पागलों की तरह चिल्लायी. दोनों लहूलुहान आदमियों को घसीट कर आगे लाता गिरोह वहीं ठहर गया. उसने गौर किया, एक कोने में कुलकर्णी भी सहमा हुआ खड़ा था.

——क्या हुआ? क्या बात है?. . .वह कुछ आश्वस्त हो कर ऊंची आवाज में चिल्लाया.

——पूछो स्साले हरामी के पिल्ले से. . .लहूलुहान, लंबे बालों वाले पहले आदमी की नाक पर एक करारा मुक्का जमाते हुए भीड़ का एक चेहरा बोला. खून का एक ताजा फव्वारा उस आदमी की कमीज पर फैलता गया. . .——बोल साले अपने बाप के सामने! किसने दिया पैसा तेरे को. . . .?

वह आदमी घिघियाता हुआ कुछ बोलने को हुआ, परंतु इससे पहले ही एक और करारा झापड़ उसकी गरदन पर पड़ा.——बोल, तुझा आई च्या. . .

——मनेजर खन्ना साहेब! वह आदमी रोते-रोते फट पड़ा. खन्ना साहेब मनेजर मला दोन शे रुपये दिले. . . आय्या! दर्द के बारे उसका बदन दोहरा होने लगा था.

वह पत्थर बना उन लहू-पसीने से सने चेहरों की ओर देखता रह गया.

——ये साला भड़वा जो बोला, उसका साक्षी तुम हय साहेब! एक और चेहरा गुस्से में चिल्लाया. ये भाड़े का लोक इम्तियाज को चाकू से मारा . . .उसको कुछ हो जायेंगा तो हम साला पूरा कंपनी में आग लगा देगा! और तुमारा सगे वाला वो खन्ना साब. . .

——चाला, सगले जाऊ! इसके साथ ही दूसरी आवाज उभरी. साला लोक को पुलिस टेशन लेके चलने का. . .

भीड़ की गर्मी में से दो-चार भद्दी गालियां और उभरीं और उसके बाद वे उन दोनों की गरदनों पर अपने हाथ कसे पीछे की ओर हटने लगे. भीड़ के दरवाजे से बाहर निकलते-निकलते उसने सुना कि उसके नाम के आगे भी कई तरह की गालियां जोड़ी जा रही हैं.

उसकी नसों में खून जैसे जमने-सा लगा.——कुलकर्णी! भीड़ के आखिरी आदमी के बाहर निकलते-निकलते वह चिल्लाया.——कुलकर्णी! मेरी बात तो सुनो. . . उसकी आवाज टूटने लगी थी. . .इम्तियाज क्या सचमुच. . .

कुलकर्णी आखिरकार ठिठक गया. फिर उसकी ओर बहुत क्रूर नजरों से देखते हुए बोला——नइं, अबी मरा नइं हय. . .! के. ई. एम. हॉस्पिटल लेके गया है. तुमारा मेरबानी होयेंगा तो मर बी सकता हय. . .

व्यंग्य भरी मुसकान बिखेरता हुआ कुलकर्णी चला गया और फर्श पर फैले खून के छींटों को नफरत भरी निगाहों से देखते उसे लगा कि जिस दीवार का सहारा ले कर वह खड़ा है, वह थरथराने लगी है.

——मैं तुम्हें वहां नहीं जाने दूंगी! उसे तेजी से निश्चयात्मक ढंग से पीछे मुड़ता देख कर उसकी पत्नी चिल्लायी. यू आर नॉट गोइंग देयर!

वह उस चेहरे से बेखबर, अंदर कार की चाबियां लाने चला गया. लौटा तो उसकी पत्नी रोने-रोने को थी. ——हैव यू गॉन आउट ऑफ योर माइंड? उसे बाहर निकलते देख कर वह चिल्लायी. यह पुलिस केस है, तुम्हें इतना भी नहीं मालूम. . .?

लिफ्ट के आने में देर देख कर वह यूं ही सीढ़ियां फलांगता नीचे उतर गया. . .

* *

के. ई. एम. में इम्तियाज का वार्ड ढूंढ़ने में कुछ वक्त लगा. पूछताछ करता हुआ वह एमरजेंसी वार्ड तक पहुंचा.

दरवाजे से चौथे बेड पर, घिसा हुआ लाल कंबल ओढ़े इम्तियाज बेहोश पड़ा था. शायद उसकी मरहम-पट्टी की जा चुकी थी. इम्तियाज के सिरहाने एक औरत, जो संभवतः उसकी पत्नी थी, खामोश बैठी थी. औरत से सट कर आठ-दस साल की दो बच्चियां खड़ी थीं. बड़ी ने एक बदरंग सलवार-कुर्ता पहन रखा था और छोटी का फ्रॉक सेफ्टी पिनों के सहारे टिका हुआ था. दोनों बच्चियां आतंकित नजरों से इम्तियाज के चेहरे की ओर देख रही थीं.

उसके करीब पहुंचने पर इम्तियाज की बीवी ने सिर्फ एक बार नजर उठा कर उसकी ओर देखा. फिर तरल हो आयी अपनी आंखों को उसने दूसरी तरफ कर लिया. अपनी गरदन झुकाये हुए भी उसे लगा कि वे दोनों बच्चियां कौतुक भरी निगाहों से उसके महंगे जूतों, लापरवाही से मोड़ी गयी कमीज की आस्तीनों और हाथ में बंधी ऑटोमैटिक घड़ी

की ओर देखती जा रही हैं...

अचानक न जाने क्या हुआ कि इम्तियाज ने अपनी आंखें खोल दीं. धुंधले होते हुए उस क्षणांश में उसे लगा कि इम्तियाज ने अपनी फीकी पड़ती हुई आंखों पर जोर डालने की कोशिश की है और पता नहीं कब और कैसे उसे पहचान लिया है. . .सिर्फ एक लम्हे के लिए कंबल के भीतर से ही इम्तियाज का हाथ अभिवादन-की मुद्रा में कांपा, उसके होठों पर एक क्षीण-सी व्यंग्य भरी मुसकराहट उभरी और फिर उसने दर्द से कराहते हुए दुबारा अपनी आंखें बंद कर लीं....

उसके लिए सब कुछ बहुत निर्मम और थका देने वाला बनता चला गया था. इम्तियाज की बहुत छोटी-सी लगने वाली उस पत्नी की ओर एक आखिरी अपराधी निगाह डाल कर वह मुड़ा और माथे का पसीना पोंछता हुआ वार्ड से बाहर निकल आया....

घर लौट कर फिर उससे खाना नहीं खाया गया. सारा सिलसिला ही जैसे गलत हो गया था. करीब आधे घंटे के बाद उसे कुलकर्णी का फोन मिला कि उन्होंने उन दोनों आदमियों को पुलिस में दे दिया है और अगली सुबह अगर वह गवाही देने पुलिस-स्टेशन चला जाये तो उसकी बहुत मेहरबानी होगी!

--चलो, यहां से कहीं दूर निकल चलें! उसे इस तरह मनहूसों की तरह सोफे पर बैठा देख कर उसकी बीवी बहुत दबे स्वर में बोली. उसने कुछ आश्चर्य में पड़ कर बीवी के चेहरे की ओर देखा, लेकिन वहां गहरी चिंता के अलावा कुछ नहीं था.--चलो, यहां से चलें! बीवी ने फिर दोहराया. मुझे भी आजकल यहां तुम्हारी वजह से एक अजीब-सा डर लगने लगा है...

वह एक ठंडे, विरक्त भाव से कमरे की छत की ओर देखने लगा.

लेकिन तभी फोन की घंटी फिर से बज उठी. सोफे पर बैठे-बैठे ही हाथ बढ़ा कर फोन उठाने पर उसे पता चला कि एम. डी. उससे बात करना चाहते हैं. --हैलो, कांग्रेचुलेशंस! कोई दस सैकेंड बाद एम. डी. की आवाज फोन पर कांपी. आई हैव ए बिग सरप्राइज फॉर यू!...हमने तुम्हें कैलकटा ब्रांच का मैनेजर बनाने का फैसला किया है. दिस इज इमीडियेट. . .तुम वहां प्रमोट हो कर जाओगे और सीधे मुझे रिपोर्ट करोगे. तुम्हें परसों सुबह वहां रिपोर्ट करना है और मुझे उम्मीद है कि तुम्हें वहां अच्छा लगेगा.. . .मैंने टिकेट्स के लिए कह दिया है, पर तुम कल सुबह रघुनाथन से मिल कर अपनी फ्लाइट कनफर्म करवा लेना. .. और हां, मैंने सुना है कि कंपनी के बाहर मारपीट के किसी डिसप्यूट में तुम्हारा नाम लिया गया है.. . मेरी अपनी सलाह है कि पुलिस के चक्कर में मत पड़ो. . .खामख्वाह प्रॉब्लम्स हो जायेंगे और तुम्हारा जाना डिले हो सकता है. . .ओके?. . .गुड लक!

फोन का रिसीवर हाथ में पकड़े-पकड़े उसे चक्कर-सा आने लगा और वह सोफे पर थक कर फैल गया. लेकिन पास ही बैठी अपनी बीवी को जब उसने यह खबर सुनायी थी तो वह खुशी से चहक उठी थी.--देखा, तुम्हारे सितारे कितने बुलंद हैं! वह उससे लिपट गयी थी. तुम यहां से कहीं चले जाना चाहते थे. और तुम्हें यह प्रमोशन मिल गया. . .ओह, आयम सो हैपी!. . .अब सब ठीक हो जायेगा. . .

--हां, सब ठीक हो जायेगा. . .उसने छाती पर एक बोझ-सा महसूस करते हुए उत्तर दिया था और सिगरेट लगा कर बालकनी की तरफ मुड़ गया था.

* *

सारी रात उसकी आंखों में नींद की जगह न जाने क्यों सपनों का वह गांव उभरता रहा था. फूस और खपरैलों से ढंकी झोंपड़ियां, नारियल के पेड़ों के इर्द-गिर्द दौड़ती पगडंडियां, नागफनी की झाड़ियां और लोग--सीधे, सरल, सहज और उसके नितांत अपने लोग. लेकिन न जाने कब और कैसे वे चेहरे विकृत होने लगे थे और उसने पाया था कि उस माहौल में भी कार्बन के धुएं की महक फैल गयी है, दीवारों पर धड़ाधड़ पोस्टर चिपकाये जा रहे हैं. . .अंधेरे के उस सैलाब में उसे बिजली की कौंध की तरह इम्तियाज के चेहरे की वह आखिरी मुसकराहट दिखायी दी थी और फिर जैसे हर चीज पर वह फटा हुआ, फिनाइल की बू में बसा लाल कंबल फैलता चला गया था. . . धुएं में चिनचिनाती आंखों से उसने देखा था कि छोटी लड़की के फ्रॉक में बटन की जगह सेफ्टी पिन लगे हुए थे और बड़ी अपने हाथों में शराब के अद्धे की बोतल में भरा दूध पकड़े निस्तेज नजरों से उसके बांड्ट्रेक्स कॉलर को देखे जा रही थी....

--आई हैव. . .आई हैव. . .आई हैव. . .वह अंधेरे में मुट्ठियां भींच कर वहशियों की तरह चिल्लाता हुआ बिस्तर से उठ खड़ा हुआ था और इसके साथ ही उसके पूरे स्वप्निल गांव का ढांचा किसी स्टूडियो के सेट की तरह भरभराता हुआ जमीन पर आ गिरा था.

* *

सुबह उसकी बीवी का चेहरा बालकनी के बाहर फैले समुद्र की सतह की तरह ही सौम्य और शांत था. उसने गौर किया कि उसकी तिपाई पर बेड टी रखते हुए वह साफ-साफ गुनगुना रही है. उसे नाश्ता देते वक्त भी वह अतिरिक्त सजगता से उसे हर चीज परोसती रही थी. बाद में तैयार हो जाने के बाद वह उसे लिफ्ट तक छोड़ने आयी थी. --जल्दी वापस आना! लिफ्ट के चलते-चलते उसने मुसकरा कर हवा में अपना हाथ हिलाया था. . .उत्तर में वह भी मुसकराया था. उसने भी अपना हाथ हवा में हिलाया था.

. . .दरअसल दांपत्य के उस उजले-उजले एहसास से गुजरते हुए वह अपनी पत्नी को यह बताने का साहस नहीं बटोर पाया था कि कहीं दूर भाग खड़े होने का अपना पुराना इरादा उसने बदल दिया है और वह रघुनाथन के पास फ्लाइट कनफर्म करने नहीं, बल्कि पुलिस स्टेशन बयान देने जा रहा है. . .

□□□

४०३, सी क्रेस्ट-१,
सात बंगला, वर्सोवा, बंबई-४०००६१

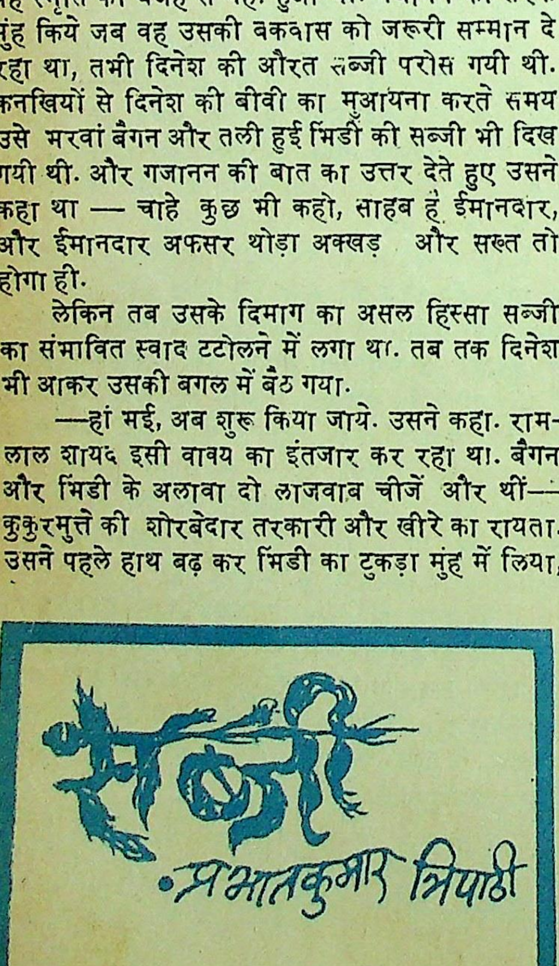

सब्जी

•प्रभातकुमार त्रिपाठी

रसोई-घर के पास वाले बरामदे में ही खाने का इंतजाम था. हाथ-मुंह धोने के बाद लंबी बिछा दी गयी दरी पर वे बैठे गये. तौलिये से हाथ-मुंह पोंछते हुए गजानन अभी भी साहब और दफ्तर की बातें उगल रहा था. दिनेश रसोई-घर के भीतर चला गया था — शायद खाना निकालने में अपनी स्त्री का हाथ बंटाने के लिए. मजबूरन रामलाल को गजानन की बातों में अकेले शामिल होना पड़ा. कोई घंटे भर से चल रहे इस निंदा-पुराण में उसकी दिलचस्पी अब नहीं रह गयी थी. साढ़े बारह हो चुके थे और उसकी अतड़ियां कुलबुलाने लगी थीं. सुबह चाय के साथ, सूखी रोटी भिगोकर जो नाश्ता किया था, उसका कोई नामोनिशान रामलाल के सुखट्टे शरीर और बद्दू चेहरे में नहीं था. भूख ने उसकी स्मृति के सुन्न इलाके में थोड़ी हलचल पैदा की थी. गहरे धुंधलके में डूबे वृक्षों के काले चेहरों से, बचपन के अस्त हो चुके दिन उसे अचानक याद आये थे — तब दो बजे की छुट्टी के समय वह भागता हुआ घर आता था, और मां के खाना निकालने के पहले ही चौके के चूल्हे पर रखी डेगची के भात में पनियायी दाल सानता हुआ खाने पर ऐसे टूट पड़ता था, मानों महीनों का भूखा हो. आलू-तुरई का झोल हो, या कुकुरमुत्ते की सब्जी, उसकी जीभ ही नहीं, उसकी आत्मा भी तर हो जाती थी.

इस अचानक स्मृति के झोंके ने रामलाल में अदृश्य झेंप की सिहरन जगा दी और उसे लगा कि शायद उसी की वजह से उसका मुंह लार से भर गया है. दरअसल, यह स्मृति की वजह से नहीं हुआ था. गजानन की तरफ मुंह किये जब वह उसकी बकवास को जरूरी सम्मान दे रहा था, तभी दिनेश की औरत सब्जी परोस गयी थी. कनखियों से दिनेश की बीवी का मुआयना करते समय उसे भरवां बैंगन और तली हुई भिंडी की सब्जी भी दिख गयी थी. और गजानन की बात का उत्तर देते हुए उसने कहा था — चाहे कुछ भी कहो, साहब है ईमानदार, और ईमानदार अफसर थोड़ा अक्खड़ और सख्त तो होगा ही.

लेकिन तब उसके दिमाग का असल हिस्सा सब्जी का संभावित स्वाद टटोलने में लगा था. तब तक दिनेश भी आकर उसकी बगल में बैठ गया.

—हां भई, अब शुरू किया जाये. उसने कहा. रामलाल शायद इसी वाक्य का इंतजार कर रहा था. बैंगन और भिंडी के अलावा दो लाजवाब चीजें और थीं— कुकुरमुत्ते की शोरबेदार तरकारी और खीरे का रायता. उसने पहले हाथ बढ़ा कर भिंडी का टुकड़ा मुंह में लिया, तो स्वाद उसके पूरे बदन में रेंगने-सा लगा. भिंडी यूं तो, मामूली तरीके से तली गयी थी, लेकिन रामलाल अरसे के बाद खा रहा था और वह उसे एकदम नयी लगी. रसेदार तरकारी में रोटी डुबोते तक, वह सोचना बंद कर चुका था — कुछ इस तरह कि गजानन की औपचारिक प्रशंसा के नकली बोल जब उसके कानों से टकराये तो उसे लगा कि उसके नंगे और घने एकांत में कोई बिना किसी पूर्व सूचना के घुस आया है. गजानन के ऊपर चिढ़ते हुए उसने याद किया कि उसके दादा हमेशा कहा करते थे कि खाना खाते हुए अगर तुम्हारा ध्यान कहीं और है, तो तय जानो खाना तुम्हारी देह में नहीं लग रहा है.

उसने देखा भी था, खुद दादा बड़ी तन्मयता से खाते थे. खासकर जब गोश्त बना हो या सहिजन का डाटा, तो उस चूसते-चबाते, वे कुछ नहीं तो आधा घंटा जरूर लगा देते थे. रामलाल को बचपन के वे धुंधले दिन दुबारा याद आये तो उसे थोड़ी तकलीफ हुई. खीरे का एक बारीक टुकड़ा उसके पोले दांतों के बीच कहीं फंस गया था और बड़ा अटपटा लग रहा था. उसने उंगली से वह टुकड़ा पकड़ने की कोशिश की, और उसे लगा कि वाकई अगर खाना स्वादिष्ट बना हो तो कितनी सारी फिजूल की परेशानियां अपने आप गायब हो जाती हैं.

रामलाल खुद अपनी इस बात का जिंदा उदाहरण था. पिछले वर्षों की उसकी जिंदगी अगर नीरस और खामोश रही आयी थी, तो इसका एक कारण यह भी है कि इन वर्षों धीरे-धीरे चीजों का शारीरिक स्वाद उसकी चेतना से अलग होता गया है. यह सच है कि अपने मामूली वेतन और बढ़ती हुई महंगाई को, दीवार की तरह तानकर, वह इस सारी शुष्कता का सामना करने में, इस हद तक सफल रहा है कि ऐन आज तक अपने जीने के तौर-तरीकों से, उसे कोई गहरी और ताबड़तोड़ शिकायत नहीं हुई है — लेकिन रात के काले सन्नाटे में, जब करवट बदलते-बदलते उसने अपने को असहाय महसूस किया है, तो हमेशा उसे लगा है कि उसका पेट ठीक से नहीं भरा है. सात-आठ सूखी चपातियां और पानी जैसा आलू झोल पेट में डाल देने भर से तृप्ति नहीं मिल सकती, यह बात वह अपने अनुभव से जानता है. आदमी का जिस्म किसी खटारे बस की पेट्रोल टंकी नहीं है कि उसे चलाने के लिए आप हर रोज खलासी की तरह पेट्रोल डाल दें. लेकिन अपने को चलाने के लिए उसने खाने का इस्तेमाल इसी तरह किया है और पाया है कि आहिस्ते-आहिस्ते वह अपने जिस्म के तमाम हिस्सों से कटता गया है.

और ऐसे में अचानक किसी मंत्र विद्या के जादू से कोई अगर महसूस करे कि वह अभी भी अच्छे-बुरे स्वाद की तमीज कर सकता है — तो कैसा लगेगा? रामलाल ने, कृतज्ञता के किसी शिष्ट अनुभव से परे, चावल में रसा मिलाते हुए सोचा कि शोखो के मसाले में तेजपत्ते की सुगंध का अभाव कहीं-कहीं चावल में कंकड़ की तरह गड़ रहा है. अगर मसाले में तेजपत्ता भी शामिल होता, तो शायद वह रसे में समूचा डूब चुका होता, मगर बाव-

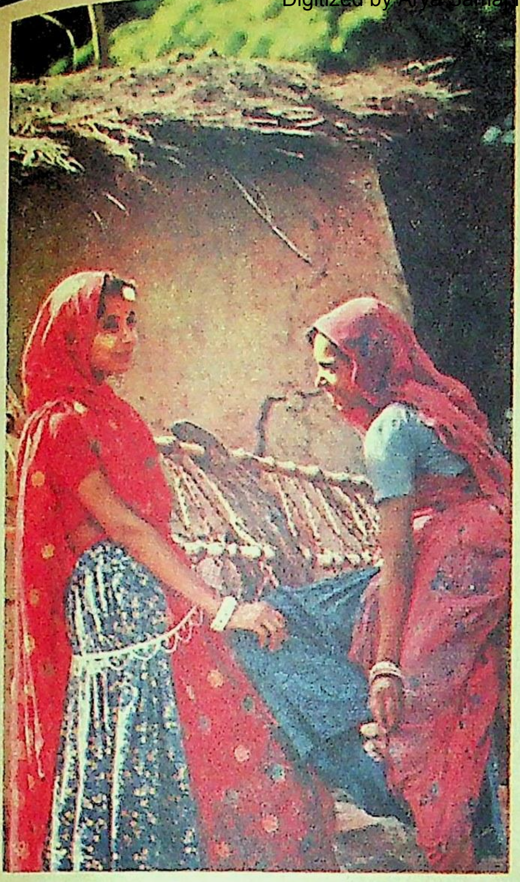

जूद इस कमी के सब्जी में जान थी. ऐसा लग रहा था कि चवन्नी-पाव वाली यह खालिस आदिवासी डिश फ्राइड-लीवर का मुकाबला करने में कतई कमजोर साबित नहीं होगी. वैसे भी इसकी तुलना प्रायः लोग गोश्त से करते हैं -- सोचकर उसका हाथ, खाली हो चुकी कटोरी की तरफ बढ़ा. उसकी चिंता के एक खास हिस्से में, सब्जी का स्वाद किसी जिंदा जिस्म की मानिंद खुबा था और अपने सारे ऊल-जुलूल सोच के दौरान, वह स्वाद को छूने और उसे अपने में समो लेने के किसी नैसर्गिक आदेश की गिरफ्त में हरकतें कर रहा था. खाली कटोरे से हाथ वापस लाते हुए उसने चावल का दूसरा कौर मुंह में डालना ही चाहा था कि दिनेश की श्रीमती सब्जी का बर्तन हाथ में लिए उसके सामने खड़ी हो गयी.

—बस और नहीं, कहते हुए उसने कटोरे के ऊपर दोनों हाथ फैला दिये. और तृप्त भाव से सामने खड़ी औरत को निहारने लगा.

दिनेश की औरत सुंदर थी. गोरा रंग और इकहरी देह की शालीन ऊंचाई में, उसकी आंखें अद्भुत शांत चमक से परिपूर्ण थीं. गाल भरे थे और पूरा जिस्म किसी कुशल खिलाड़िन की तरह हरकतों से जीवित था. वह सब्जी परोसने के लिए झुकी थी और उसके बड़े-बड़े, गोल-गोल स्तन, रामलाल की आंखों में एक धड़कता हुआ बिंब रच रहे थे. एक ही पल में रामलाल के दिमाग में सैकड़ों इच्छायें उभरीं और उसे लगा कि सुंदर और जवान औरत ही इस बात का मर्म जानती है कि आदमी की जुबान उसके जिस्म का एक नाजुक हिस्सा है.

वह इसरार कर रही थी — क्यों? क्या सब्जी अच्छी नहीं लगी?

रामलाल मुस्कराया. सब्जी बनाने वाली साल भर पहले ब्याह कर आयी इस औरत में पल भर के लिए उसने अपना अतीत टटोलने की कोशिश की. वह वह थी. उसकी अपनी शख्सियत इतनी आजाद और अलग थी कि अपने नये नशे की झोंक में भी, रामलाल उसे अपनी कल्पना के इलाके में नहीं खींच सका.

—ठीक है थोड़ी-सी डाल दीजिये.

—थोड़ी-सी क्यों, कहकर उसने कटोरा पूरा भर दिया और फिर चावल ले आयी. रामलाल ने इंकार नहीं किया लेकिन उस वह चुप भी नहीं रह सका — आप खाना लाजवाब बनाती हैं.

वह मुस्करायी. उसके पतले, ईषत गुलाबी ओठों पर की वह मुस्कान, उसकी देह में रच गयी. रामलाल ने जीभ पर तैर रहे स्वाद की गिरफ्त से मुक्त होकर उसे देखा. अभी-अभी बारिश में नहाये, किसी हरे बगीचे की जीवंत चमक से घिरी यह औरत भी तरावट और स्वाद से भरी है, लेकिन. . .

वह अपने सोच के रास्ते में ठिठका. दिनेश की औरत पलटकर रसोई-घर की तरफ बढ़ रही थी. और दिनेश अपनी मूढ़ प्रसन्नता जाहिर कर रहा था— भई, उसे ज्यादा मत फुलाओ वरना अगर रोज-रोज उसने षटरस व्यंजन बनाने शुरू किये तो अपन तो लुट जायेंगे.

पति की बात उसे चुभ गयी. पलटकर उसने जो कुछ कहा, उसमें इस फूहड़ मजाक पर दुख का भाव था. उसने घुटे हुए स्वर में कहा था— ऐसा कौन-सा खजाना गड़ा है हमारे यहां जो लुट जाने की बात कहते हो.

दिनेश ने फिर कुछ नहीं कहा, लेकिन रामलाल को लगा कि वह शायद अपनी औरत के साथ बेहद हिसाबी तरीके से पेश आता है. उसने अंदाज लगाने के लिए बगल में बैठे दिनेश की तरफ कनखियों से ताका और तब उसे यकीन हो गया कि किसी दुर्भाग्यपूर्ण संयोग से इतनी खूबसूरत औरत इसके हाथ पड़ गयी है. दिनेश जिस तरीके से भात में तमाम सब्जियां सानकर उसकी लुगदी बना कर खाना भकोस रहा था, उससे साफ पता चलता था कि खाने के स्वाद की बारीक पहचान से यह आदमी कोसों दूर है. जो आदमी इस तरह के लजीज खाने के साथ, इस तरह का वहशी सलूक करता है, उसके साथ किसी खूबसूरत औरत का रहना और सोना कितना तकलीफदेह है, रामलाल ने सोचा और धन्यवाद देते हुए कहा— तबीयत हरी हो गयी यार! मैं सोचता हूं आदमी की सालगिरह साल में एक ही बार क्यों आती है.

दिनेश मुस्कराया. गजानन खाना खाने के दौरान अप्रत्याशित रूप से चुप रहा था. सौंफ चबाते हुए उसने अपना योगदान दिया— प्यारे! यही आदमी अगर इस टपरिया ब्लॉक का अफसर होता, तो साल में तीन सौ

पैंसठ दिन सालगिरह मनाता.

दिनेश उसकी बात पर हंस पड़ा. ठहाके-सी हंसी, रामलाल के भीतर मछली के कांटे-सी खुब गयी. उसने इजाजत मांगी. उसका क्वार्टर भी उसी लाईन में था, और उसे ऐसी कोई जल्दी भी नहीं थी, लेकिन उसे डर था कि अगर कुछ देर इन दोनों के साथ रहा तो दिल और दिमाग में रच गये इस स्वाद की ऐसी-तैसी हो जायेगी.

अपने घर में कदम रखते ही उसे लगा कि भूल हो गयी है. बेहतर होता कि वह दिनेश के यहां ही रुक जाता—यहां तो. . .

उसकी पत्नी खाट पर दोनों टांगें पसारे चित्त सोयी थी और नन्हा बच्चू, उसकी उघरी छाती चूसते-चूसते सो गया था. बच्चू ने भात शायद इसी कमरे में खाया था क्योंकि उसकी जूठी थलिया स्टूल पर रखी थी और मक्खियां भिनभिना रही थीं. सोयी हुई औरत को अपनी पत्नी की तरह सोच कर रामलाल का जी मितला गया. दिनेश के घर की सब्जी, मानों एक-एक जलनभरी खट्टी डकार में बदल कर, उसके जायके को बदमजा कर गयी.

पत्नी का यह फूहड़-शयन देख कर, उसने अपनी स्मृति से झांक रहे सुकुमार चेहरे को जबरन परे ठेला. नहीं! उसे तुलना करने तक का हक नहीं है—उसने सोचा—घुटनों तक सरक आयी साड़ी को आहिस्ते से ठीक कर देने के बाद, रामलाल स्टूल पर रखी जूठी प्लेट उठा कर रसोई-घर के बर्तनों के बीच डाल आया.

और अब? रामलाल ने दुबारा अपनी औरत की तरफ देखा और फिर जैसे किसीने धकियाया हो, सामने के कमरे की ओर बढ़ गया. लंबी बेंच पर सीधा होते हुए उसे लगा कि जिस लजीज खाने की स्मृति को वह संजो-कर जीवंत रखना चाहता था, वह उसकी मुट्ठी से पानी की तरह फिसली जा रही है. उसकी मुट्ठी भिंच रही है. वह तय नहीं कर पा रहा है कि बेंच की कठियल सतह की वजह से नींद नहीं आ रही, या इस या उस औरत की वजह से.

★ ★

इतवार! हर इतवार को रामलाल इसी ढलान पर सायकिल उतारते हुए सब्जी मार्केट तक जाता है. पूरे एहतियात के साथ तीन दिनों के लिए हरी सब्जी खरीदता है और लौट कर झोला अपनी औरत के हाथ में थमा देता है.

इतवार! रामलाल ने कहा—चलो आज पिकनिक हो जाये. पिकनिक! रामलाल की औरत रसोई में प्याज के कतरे भूनती हुई भुनभुनायी—ना बाबा, आज तो ढेर काम है. आटा खत्म होने को है, सारे कपड़े धोने हैं—ढलान पर तेजी से भागती सायकिल पर बैठे रामलाल ने ब्रेक के झटके का अनुभव किया. घर से निकलते समय पत्नी ने झोले के साथ तीन रुपये उसे थमाये थे. न तो उसने किसी पिकनिक की बात की थी और नही उसकी पत्नी ने कुछ कहा था और इस तरह पूरे वाक्यों के साथ औरत का याद आना. . . रामलाल को लगा कि वह हर पल अपने साथ अपनी समूची गृहस्थी लाद कर चलता है.

ढलान के बाद की यह पहली चढ़ाई थी. पैरों को तान कर उसने कुछ अतिरिक्त ताकत उंड़ेलने की कोशिश की और फूलती सांस के बीच महसूस किया कि रंगीन तितलियों-सी कुछ बेजुबान इच्छाएं हर कहीं उसके साथ रहती हैं. ऐसा लगता है, जैसे वे कभी नहीं मर सकतीं. रामलाल ने अपनी तरफ से पूरी कोशिश की है कि इन फिजूल की इच्छाओं से निजात पा जाये लेकिन उसे लगता है कि अगर ये उसके साथ नहीं रहेंगी, तो चढाव-उतार वाली दैनिक सड़क पर वह इस कदर बेमालूम ढंग से ढेर हो जायेगा कि उसकी लाश की शिनाख्त भी नहीं की जा सकेगी.

इतवार! उसने जानबूझ कर याद किया. आखिर दिनेश भी तो उसी दफ्तर का एक किरानी ही है. उसे भी तो कुल जमा तीन सौ रुपये मिलते हैं. उसने अपने घर में कोई खजाना तो नहीं गाड़ रखा है.सच पूछो तो सब कुछ आदमी की इच्छा का खेल है. महीने पंद्रह दिन में आप, एक बार भी अगर वक्त की रफ्तार से छिटक कर नहीं सुस्ता रहे, तो तय जानिये यह रफ्तार आपको खा जायेगी. महीने पंद्रह दिन में—उसने लगभग निर्णय करने-सा सोचा, चेंज जरूरी है.

आदमी के भीतर का अदृश्य हिस्सा किसी तिलिस्मी बक्से की तरह है, रामलाल ने अपने भीतर झांकते हुए सोचा. जाने कितने गुप्त स्थान उस बक्से में होते हैं. ढक्कन खोलो तो फिर एक के बाद एक. . . रामलाल खुद यह नहीं समझ सका था कि कुछ चेंज की बात सोचते-सोचते, वह धुइयां और गोश्त की तरकारी और लौकी के लच्छों की स्वीट-डिश तक कैसे पहुंच गया था. अरबी के बारे में तो वह श्योर था कि चार आने पाव तक जरूर मिल जायेगी लेकिन गोश्त. . .?

धुइयां और गोश्त की तरकारी की बात सोचते हुए रामलाल के दिमाग में, अपने बाल्य-बंधु रशीद का चेहरा भी उभर रहा था और कितनी ही शक्लहीन इच्छाएं कुलबुला रही थीं. रशीद के घर में ही उसने पहली बार इस तरह की कोई तरकारी चखी थी. कितने साल हो गये उस बात को? रशीद के चेचकभरे चेहरे और उसकी मुक्त हंसी के बीच, गिलट की थाली में भात और गोश्त की तरकारी का वह मिलन अब इतिहास की एक किताबी-बात हो कर रह गया है. रशीद की अम्मी, कभी करेले की सूखी जायकेदार सब्जी, कभी तली हुई मछली, कभी गोश्त की तरकारी से उसकी किशोर-आत्मा को तर कर देती थी. अब अगर रशीद की याद आती है तो इस तरह, कि वह अपनी सिलाई-मशीन लिये अपनी टपरा-दूकान पर बैठा है. रामलाल वहां से गुजर रहा है. रशीद उसे चिल्ला कर आवाज दे रहा है. दोनों साहू के कालिख-भरे होटल में घुस कर चाय पी रहे हैं. और रशीद पछतावे के ईर्ष्या मिश्रित स्वर में कह रहा है—बड़ी गलती हो गयी यार, कि मैं दुबारा मैट्रिक के इम्तहान में नहीं बैठा, नहीं तो तुम्हारी तरह किसी दफ्तर में बैठा ऐश कर रहा होता. . .

सब्जी -बाजार हर दिन-सा हरा और ताजा था; लोग भी उसी तरह व्यस्त और भागते हुए. थोड़ी देर पहले, रामलाल ने रशीद के बुझे चेहरे के साथ तुलना करते

हुए एक गहरी सांस भरी थी. बाजार पहुंच जाने के बाद उसने शायद सोचा भी नहीं कि अभी-अभी वह गोश्त की बात सोच रहा था, सेर भर आलू-प्याज लेने के बाद, उसके पास एक रुपये का मला कुचला नोट भर बचा था. एक बार तो उसकी इच्छा हुई कि इतना ही ले कर लौट चले. लेकिन अगर यही खरीदना था, तो क्वार्टर के पास वाले मारवाड़ी की गुमटी क्या बुरी थी. अपनी इतनी दूर की यात्रा को सही सिद्ध करने के लिए उसने चार आने का साग खरीदा और फिर उसी रास्ते पर मुड़ गया.

उसकी औरत बाल्टी में धुले-निचुड़े कपड़े लिये, उसे आंगन में तने तार पर सुखा रही थी. उसे, उसके आने की खबर तक नहीं हुई. वह चुपचाप खड़ा, काम में डूबी अपनी स्त्री को देखने लगा. पता नहीं क्यों, रामलाल को लगा कि यह औरत नहीं है, जिसे वह ब्याह कर लाया था— हर्गिज नहीं ह. इस बात पर विश्वास करना कितना कठिन है, कि यह मरियल हड्डी, हांफती हुई औरत वही है, जिसके बाजुओं में कसे जाने के बाद , उसके जिस्म का हर हिस्सा सितार की तरह बजने लगता था; और यह. . .चिरौंटे के पौधे शुरू गरमी में ही खड़खड़हे हो जाते ह, शायद उसीमें से किसी ने औरत की शक्ल ले ली ह— हर्गिज नहीं; रामलाल ने सोचा और कहा— सब्जी ले आया हूं.

औरत मुड़ी— अरे; आज तो बड़ी जल्दी आ गये, क्या-क्या ले आये?

रामलाल ने थैला आगे बढ़ा दिया और खुद घर के भीतर घुसा. स्त्री उसके साथ-साथ घुसी. उसने तब तक थैले का मुआयना कर लिया था— क्या बात है? आज कोई हरी सब्जी नहीं मिली?

—नहीं, मन नहीं हुआ, उसने अहिस्ते से कहा. वह चुप थी. उसे देखते हुए, रामलाल ने पता नहीं किससे पूछना चाहा— यह ऐसी इतनी बीमार, इतनी जीवनहीन क्यों हो गयी है?

* *

शुरू बारिश के दिन थे. मौसम किसी मनमौजी की तरह कपड़े बदलता था. कभी तार आने की खबर-सी अचानक बरसात, तो कभी मीठी नीलिमा से भरा युवा आसमान. . .क्वार्टर के सामने, दरवाजे पर बैठा रामलाल आंगन की ओर चुपचाप ताक रहा था. आंगन मैदान-सा विस्तृत था. और बारिश की वजह से वहां घास उगने की शुरुआत हो गयी थी. चिरौंटों की झाड़ियां धरती फोड़ कर बाहर निकल आयी थीं, और उनके शिशु चेहरों के हरे रंग में अभी नवजात बच्चों की-सी पवित्रता थी.

इतने खुले, इतने हरे इलाके में अपने को पा कर रामलाल थोड़ी देर के लिए सब कुछ भूल जाता था. उसे लगता था जैसे उस आजाद हरियाली ने उसे चारों तरफ से घेर कर उस कुरूप संसार से अलग कर दिया है और अब वह सांस ले रहा है, अपनी सांस.

लेकिन इस तरह का कोई अहसास इतनी कम देर क्यों टिकता है? रामलाल ने सोचा. अभी थोड़ी देर पहले की झमाझम बारिश के बाद आकाश निथर कर नीला हो गया था. बारिश की नन्हीं-नन्हीं बूंदे, चिरौंटों की कोपलों पर ठहरी थीं. रामलाल उन्हें गौर से देखता हुआ, खामोश टहलने लगा.

—वहां बाहर क्या कर रहे हो? बच्चू को गोद में लिये-लिये उसकी औरत ने पूछा.

—कुछ नहीं, यूं ही, बस. . . रामलाल ने वाक्य पूरा नहीं किया. स्त्री ने, उसे फिर से, घर में, संसार में खींच लिया था. उसका संन्यास बिखर उठा था.

औरत बाहर आ गयी. आंगन के चारों तरफ आंख फेर कर बोली— कितना बड़ा आंगन है, अगर बाड़ लगा दो तो पूरा बगीचा तैयार किया जा सकता है.

रामलाल चौंक कर पलटा. घूर-घूर कर अपनी औरत की तरफ देखने लगा. क्या हो गया है? पल भर में. ये शब्द शब्द नहीं हैं, मानों किसीनें परीक्षा हाल में बैठे रामलाल को चुपके से गणित का कोई कठिन सवाल बता दिया है. इसके बाद? इसके बाद, क्या मुमकिन है कि रामलाल थिर खड़ा रहे? उसकी चेतना लहरायी, उसके सामने किसी भी समुद्र की विशाल लहरें बौनी थीं. उन लहरों में डूबते-उतराते वह पल भर में कितना कुछ सोच गया. कितना कुछ हरा मीठा जीवनभरा कि ज़ुबान बच्चे की किलकारी में बदल गयी. एक ऐसी खुशी में, जिसका इजहार सुनाने के मकसद से नहीं होता— सुनने और सुनाने की सांसारिक-भाषा से मुक्त हो कर रामलाल ने कहा— बाड़ का क्या है, किसी पेड़ की चार डगालें काट लो, तो कुछ नहीं तो बारह चार फुटिये खूंटे तो बन ही जायेंगे.

यह सब कहते हुए रामलाल का मन उड़ने लगा था. वह खूंटे काटने और गाड़ने, बाड़ लगाने की प्रारंभिक बाधाओं को पार कर, जहां खड़ा था, वहां तुरई की लतर थी, और भिंडी के इठलाते हुए नन्हें पौधे— बैंगन और मेथी का साग. कुम्हड़ा और लौकी. वह इन्हें जीवित बच्चों की तरह, अपनी आंखों के सामने जवान होते, मस्ती से बढ़ते देख रहा था. . .

रामलाल को पत्नी की आपत्ति पर गुस्सा नहीं आया. एक अप्रत्याशित कामनाभरी दृष्टि से, पल भर को वह उसे ताकता रहा, जैसे अपनी आंखों से छू कर उसके इच्छाहीन जिस्म के तमाम हिस्सों को जगा रहा हो.

—मालती, उसने आहिस्ते से कहा, लगता है तुम कभी देहात में नहीं रहीं, वहां के लोग कंटीले तार की फेंसिंग की कल्पना ही नहीं कर सकते, उन्हें तो सब कुछ अपनी धरती से मिलता है, अगर डगालों से खूंटे बनाये जा सकते हैं, तो छोटी डगालियों से पूरा बाड़ भी तैयार किया जा सकता है, प्राइमरी स्कूल के शिक्षक की तरह अपनी स्त्री को समझाते हुए, उसने निर्णय करने-सा कहा— मैं अभी संतू के यहां से कुल्हाड़ी ले कर आता हूं.

—क्या तुम खुद डगालें काटोगे? स्त्री ने आशंकित हो कर पूछा.

—तो क्या तुम समझती हो, मेरे हाथ सिर्फ वही सब करने को हैं, कहते हुए रामलाल ने लाड़ में आंख मारी, तो मालती लजा गयी. रामलाल फिर नहीं रुका.

आंगन से थोड़ा परे अनेक वृक्षों का एक छोटा-मोटा-

बेडेकर अचारों की शीशी जैसी ही शीशी और फिर वैसे ही लेबल फिर भी असली बेडेकर अचार नहीं!

जिन दिनों में अचार को शीशी में भर कर बेचने का रिवाज न था, उन दिनों हमनें अचार को शीशी में भर कर बेचने की शुरुआत की। शीशी का खास मोल्ड (सांचा) बनवाया, लेबल तैयार किये, मशीन से सीलबंद करनेवाले ढक्कन बिठाये। इतना ही नहीं शीशी में अचार ज्यादा दिन टिकें, इसके लिये अधिक परिश्रम भी किया।

मनपसन्द रुचि और आल्हादक स्वाद के अचार पेश करने के लिये हमने जो जो कष्ट झेले, उसकी सीमा नहीं।

मतलब यह अचार बनाने के क्षेत्र में हम अग्रणी हैं।

शीशी में अचार मिलना अब कोई नयी बात नहीं, लेकिन इनकी लोकप्रियता का श्रेय है बेडेकर को। लेकिन हमारी इस लोकप्रियता को देख कर अनेक अचार-निर्माताओंने बेडेकर अचार की शीशी जैसी ही शीशी और वैसा ही लेबल लगाकर अचार बेचना शुरू किया है।

लेकिन ग्राहक भी समझदार है। वे असली बेडेकर अचार ही खरीदते हैं।

बढ़िया जायका और आल्हादक स्वाद केवल बेडेकर अचार का ही है।

बढ़िया अचार बनाने का हमारा दीर्घ अनुभव है। जी हाँ, १९२१ से!

बढ़िया अचार बनाना इतना आसान नहीं कि चट मँगनी, पट ब्याह! बढ़िया और विविध प्रकार के अचार केवल बेडेकर ही दे सकते हैं क्योंकि अनुभव लेते लेते बेडेकर के अचार भी अपने ढंग के निराले हो गये हैं।

बेडेकर बम्बई ४

बेडेकर नाम पढ़कर ही अचार खरीदिये

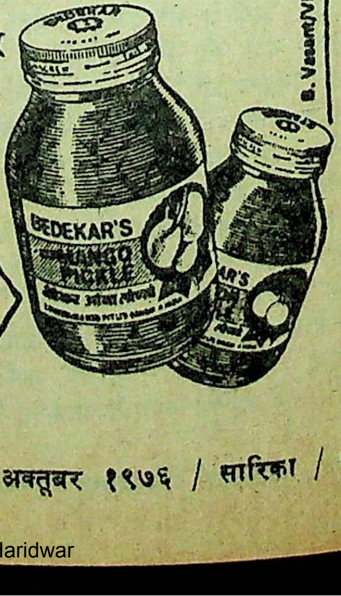

B. Vasant/VPB/2-76

सा जंगल था. संतू के पास से कुल्हाड़ी ले कर, वह उसी की तरफ बढ़ा. एक विशाल वृक्ष के मोटे खुरदुरे तने के करीब खड़े हो कर, उसे लगा कि बावजूद अपने संकल्प और इरादे के, उसके पैर थरथरा रहे हैं. उसने कुल्हाड़ी की सख्त बेंट कस कर पकड़ ली. और कल्पना करने लगा, कि कुल्हाड़ी लिये-लिये, वह चारफुटिये तने के ठीक बाद शुरू होने वाली, दो विशाल शाखाओं के बीच की, दोलना जैसी जगह पर उछल कर बैठ गया है. इस खयाल से उसके पैर जोर से कांपे. एक बार तो विचार हुआ कि संतू से कह कर भी डगालें कटवायी जा सकती हैं. तभी भीतर किसी ने ललकारा, और उसने बिना कुछ सोचे मालती को आवाज दी.

वह रसोई घर में थी. बच्चू शायद दूसरे कमरे में चीख-चिल्ला रहा था. बच्चू को गोद में ले कर लाड़ से चूप कराते वह पेड़ तक आयी.

—तुम थोड़ा कुल्हाड़ी पकड़ो, मैं जब ऊपर बैठ जाऊं, तो मुझे थमा देना.

—तुमसे नहीं होगा. मालती ने कुल्हाड़ी लेते हुए कहा. अपमान और गुस्से में भर कर उसने मालती की तरफ देखा. फिर किसी अनजानी ताकत की पेंग में सवार, खुरदुरे तने से लिपट गया. थरथराते हुए, मगर पूरी सावधानी और विश्वास के साथ पंजे गड़ाते हुए, जब वह उस सुरक्षित जगह पर पहुंच गया, जहां से शाखाएं शुरू होती थीं, तो उसने विजय की गर्व-भरी आंखों से मालती की ओर देखा— लाओ, अब कुल्हाड़ी मुझे दो और वह पतला तौलिया तो ले आना.

बुरबक की तरह खड़ी मालती उसकी ओर ताक रही थी. वह मुड़ी और दुबारा दौड़ती हुई आयी. तौलिये को कमरपट्टे की तरह लपेट कर, कुल्हाड़ी की बेंट उसमें फंसा देने के बाद, उसने अनुभव किया, कि उसके विश्वास ने उसकी स्मृति को हाथ-पैर दे दिये हैं. किशोर-दिन, उसके शरीर में उछल-कूद मचा रहे थे, और वह डगाल पर आगे बढ़ रहा था. आधे घंटे के परिश्रम के बाद उसने पेड़ की खूब मोटी और घनी शाखा काट कर गिरा दी और अपनी हथेलीयों को देखने लगा. दोनों हथेलियां छिल गयी थीं और लाल गांठे उभर आयी थीं, लेकिन उसका मन ऐसे उछल रहा था, मानो कबड्डी मैच के हाफ-टाइम तक उसकी टीम जीत में चल रही हो. वह सरसराता नीचे आ गया. उसकी हरकतों से, उसका दैनिक व्यक्तित्व कट कर अलग होता जा रहा था. उसके भीतर उसका अतीत ही नहीं भविष्य भी घुमड़ रहा था. यह बादलों की घुमड़ थी. वारिश और गीली मिट्टी की सोंधी गंध थी— और वह, वह गड्ढा खोद रहा था. वह कुदाल चला रहा था. वह पसीना पोंछ रहा था. वह पसीने में नहा रहा था. वह याद कर रहा था. वह सपने देख रहा था. वह अपनी इच्छा को नाम दे रहा था.

—देखा, पूरा हो गया न, चारो तरफ से घिरे, किसी खेत की तरह तैयार आगन को मुग्ध हो कर ताकता हुआ वह बोला.

—मालती बुदबुदायी— तुमको अगर धुन लग जाये तो. . .

—देवीजी, यह धुन-फुन नहीं है, प्यार है प्यार, उसने कहा और एकबारगी मालती से लिपट गया.

—तुम्हें तो घर-बाहर कुछ नहीं सूझता, मालती छूटती हुई बोली, लेकिन रामलाल अपने अचानक कहे गये वाक्य में डूबा था.

इतनी थकान के बाद भी रात को रामलाल की आंखों में नींद नहीं थी. बगल की बड़ी खाट पर मालती बच्चू के साथ बेखबर सोयी थी. बाहर बादलों की गड़गड़ाहट और कौंधती हुई बिजली की चमक. रामलाल चुप लेटा रोशनदान की ओर ताक रहा था. ज्योंही बिजली कौंधती, उसकी इच्छा होती कि मालती को जगा दे और बताये कि बारिश हो रही है. वह बारिश की सोचता, तो उसे अपना आंगन हरा, लहलहाता हुआ दिखाई पड़ता. तुरई की बेल ऊपर चढ़ गयी है. मिर्चो के फूल आ रहे हैं. बैंगन की दोनों किस्में जवान हो रही ह. भिंडी तो दो फीट ऊंची हो गयी. लेकिन कितने दिन में आते हैं फल? वह सोचता तो लगता, जैसे वह मालती का पेट छू कर अंदाज लगा रहा है, अपनी रचना को जीवित महसूस कर थरथरा रहा है. वह एकदम उत्तेजित हो गया.

—देखो, देखो—कितनी जोर से बिजली चमक रही है. उसने मालती को हिला कर जगा दिया.

—क्या हुआ? वह निंदासे स्वर में बोली.

—बारिश होगी, खूब जोर की बारिश होगी, वह बुदबुदाया और मालती को फिर हिलाने लगा—सुनो, कहीं ऐसा तो नहीं कि बारिश में बीज बह जायें और. . .

मालती कूं-कां करती रही. वह उस पर हाथ फेरता रहा. फिर मालती तुनक गयी — क्यों तंग कर रहे हो, सोने दो न!

वह चुप हो गया. उसने आंख मूंद कर सोने की कोशिश की. तभी जोरों की गडगड़ाहट हुई और बड़ी बड़ी बूंदों वाली टपाटप बारिश शुरू ही गयी. उसे लगा जैसे वह खाट पर नहीं है, बल्कि खुले आंगन में भीग रहा है. अर्थहीन आवाज में चीख रहा है, चिल्ला रहा है — चिल्लाये जा रहा है कि अचानक उसे याद आया कि गेट के खूंटों पर जो टेढ़े कील लगाये गये थे, वहां तो उसने कोई बाड़ नहीं फंसाया है. लकड़ी उसने जरूर काटकर रखी थी. मालती से कहा भी था कि जब कोई बाहर जाये, या भीतर आये तो लकड़ी को कील में फंसाकर रास्ता बंद कर दे. पता नहीं उसने बंद किया भी या नहीं? उसे शंका हुई कि अगर गेट खुला रह गया तो गाय-गोरू घुस आयेंगे, लेकिन फिर उसने सोचा कि आज तो बीज डाले हैं, जब तक पौधे अंकुरा नहीं जाते जानवरों के घुसने का डर नहीं है. अपने को दिलासा देने की कोशिश में भी, उसके मनमें बराबर खटका बना रहा और इस परेशानी में उसने बत्ती जला दी.

मालती रोशनी की चौंध से चौंक कर जाग गयी— क्या हुआ? उसने पूछा.

—क्या तुमने गेट पर वह लकड़ी फंसायी थी उसने पलट कर सवाल किया.

—लगता है, तुम इस बगीचे के पीछे पागल हो जाओगे, अगर नहीं भी लगा हो तो आज ही कोई तुम्हारे

Sobhagya NS/76-2 HH

नेसा

**वह परिधान
जिसमें जीने का
मोह हो जाता है...**

नेसा में उपलब्ध है टेरीन/सूती सूटिंग, शर्टिंग, साड़ियाँ और विविध वस्त्रों का असीम आकाश

न्यू स्वदेशी

द न्यू स्वदेशी मिल्स ऑफ
अहमदाबाद लिमिटेड
नरोडा रोड,
अहमदाबाद ३८० ००२

नंदन कानन को तहस-नहस नहीं किये दे रहा है. मालती गुस्से में बोली.

उसने कुछ नहीं कहा. दिमाग में बैठ गये शक को दूर करना जरूरी था. उसने छाता लिया और झमाझम बारिश में दरवाजा खोल कर बाहर आ गया. गेट सावधानी से बंद किया गया था. वह चुपचाप छता खोले काले सन्नाटे में अपने आंगन को देखता रहा.

* *

इतवार था. अभी कुछ दिन पहले पैदा हुए बच्चे के जन्म की खुशी से भरा और पूर्ण. रामलाल आंगन में लहलहाते पौधों को ताकता प्रसन्न खड़ा था. तुरई की बेल बांस के सहारे ऊपर चढ़ कर लहलहा रही थी. तुरई लगी भी थी खूब. भिंडी ज्यादा नहीं फल रही थी, लेकिन तीन-चार दिनों में एक जून की सब्जी के लिए काफी थी. बैंगन, चिकने ताजे और खूबसूरत लगते थे. अपनी रचना में अपनी आत्मा के जीवन का प्रमाण देखते हुए रामलाल चिल्लाया -- सुनो, प्याज जब तक पूरा बादामी न हो जाये, सब्जी मत डालना.

--तुम खुद ही आ कर क्यों नहीं पका लेते.

--अरे नहीं भाई, जिसका काम हो, उसीको अच्छा लगता है. रामलाल ने क्रोधहीन स्वर में कहा. आज वह प्रसन्न था. कोई मिलावट नहीं करना चाहता था, आज की प्रसन्नता में. आज उसके बच्चे का जन्मदिन था. उसने पूरी योजना के साथ भरवां बैंगन बनाने का संकल्प किया था. बाजार से गरम मसाला वह स्वयं खरीद कर लाया था. देर तक खुद सिलबट्टे पर प्याज पीसता रहा था. और सब्जी ताजा थी -- उसके अपने बगीचे की.

अगर दिनेश और उसकी श्रीमती को भी बुला लेते तो अच्छा होता -- उसने सोचा. चुप रहा. पता नहीं क्यों उसे लगा कि ऐसा करना आत्म प्रदर्शन होगा. पर भरवां बैंगन की बात सोचते हुए दिनेश की औरत की मुख-छवि उसकी आंखों के सामने स्थिर हो गयी.

--तुमने बैंगन में तेजपत्ता तो छोड़ा है न?

--तुम्हारा दिमाग तो नहीं खराब हो गया है; बैंगन की सब्जी तुमने खुद पकायी है.

-ओह, रामलाल बुदबुबादाया. फिर घर के भीतर घुसा. बच्चू रसोई के बगल वाले कमरे में बैठा अपनी चित्रकारी चला रहा था. लाल पेंसिल हाथ में लिये सादे कागज पर घोड़ा, हाथी, बंदर और जाने क्या-क्या बनाने के लिए लकीरें खींच रहा था.

आज खाना खा कर शहर की ओर चलेंगे, उसने सोचा और मालती के लिए कुछ ले आयेंगे. निर्णय की उत्तेजना से भरा वह दौड़ कर मालती तक पहुंच गया. ताजा भिंडी और मसाले की मिली-जुली गंध उसके नथुनो में भर गयी. उसके मुंह में लार आ गयी.

—भूख लग गयी है क्या? मालती ने पूछा.

—ऐसी लाजवाब सब्जी के इतने करीब किसे भूख नहीं लग जायेगी.

—मेरे मुंह में तो बनाते-बनाते ही पानी आ रहा है, मालती मुसकरा कर बोली— चलो फटाफट भिंडी तल लेती हूं, फिर सब एक साथ खाने बैठ जायेंगे.

और थोड़ी ही देर बाद उनकी थालियां लग गयी थीं. भरवां बैंगन के स्वाद के नशे में विभोर, रामलाल मालती को घूरने-सा देख रहा था. मालती ने आज बाल धोये थे. धुले गीले केश उसकी पीठ पर बिखरे थे. गोरे माथे पर लाल बिंदी दिपदिपा रही थी. बच्चू नायलोन के नीले बाबा-सूट में दमक रहा था.

* *

लेकिन सब कुछ एक भयानक सपने की तरह था. नींद टूटने के साथ ही उसकी सहमी आंखे बच्चू की तरफ मुड़ी थीं. बच्चू मां की छाती से दुबका, गाफिल था, लेकिन रामलाल के कानों में दहाड़ अभी भी गूंज रही थी. इस सिरपैरहीन सपने के आंतक में डूबा, रामलाल सोच रहा था कि कलकत्ते का चिड़ियाखाना उसके दिमाग में कहां दुबका पड़ा था. पिंजरा अचानक कैसे खुल गया था, अगर मान लो सचमुच खुल जाये तो, रामलाल ने सोचा और सिहर गया. तभी उसने संतू की आवाज सुनी — रामलाल बाबू ऽऽ संतू ने खूब जोर से पुकारा था. उसकी आवाज सुन कर रामलाल को लगा कि जरूर कोई दुर्घटना हो गयी है. रामलाल कमरे के भीतर से ही चिल्लाया—क्या बात है संतू?

--अपना बगीचा बचाइए सरकार, सांड़ घुस आया है, संतू चिल्लाया. उसकी आवाज के साथ ही पत्थर का एक टुकड़ा, दरवाजे पर आ कर लगा. रामलाल ने कांपते हाथों से दरवाजा खोल दिया.

पेड़-पत्तों की बाड़ फलांग कर एक मुस्टंडा सांड भीतर घुस आया था और गुर्रा रहा था. संतू दूर से पत्थर मार-मार कर, उसे भगाने की कोशिश में लगा था. देखकर रामलाल हतवाक् हो गया. घबराहट में उसे रुलायी आ गयी. उसने आर्तनाद-सा किया और चिल्लाया— मालती ऽऽऽऽ घबरायी हुई मालती दरवाजे तक आयी तो नजारा देख कर कांप गयी— हे राम, इसने तो पूरा सत्यानास कर दिया है.

रामलाल ने देखा कि बच्चू फुदकता हुआ जा कर बगीचे मे खड़ा हो गया है. सांड गर्राता हुआ उसकी तरफ बढ़ रहा है. सांड उसके बिलकुल करीब आ गया है. नन्हा बच्चू बिना कुछ सोचे मस्ती में किलक रहा है. ताली बजा रहा है. छोटी-छोटी कोपलों की तरह उसकी नर्म नाजुक हथेलियां धूप में चमक रही हैं. सांड आगे बढ़ रहा है. . .

उसने आहिस्ते से मालती को परे हटाया और गेट का मोटा डंडा हाथ में ले कर कूद पड़ा. पहला वार सांड के माथे पर भरपूर पड़ा. क्रोध में तमतमा कर वह रामलाल के ऊपर झपटा. हवा में उछल कर रामलाल चारो खाने चित्त गिर पड़ा. उसके सिर से खून की फुहार छूटने लगी. मालती चिल्लायी —कोई बचाओ ऽऽऽऽ! रामलाल की आंखें मुंदने लगीं लेकिन. . . लेकिन उसके हाथ का डंडा हवा में ऐसे घूमता रहा, जैसे मरते-मरते भी अपने दुश्मन को ढहा देने की आखिरी पवित्र कोशिश कर रहा हो. □□□

लेक्चरर, हिंदी विभाग, गवर्नमेंट कालेज, राउरकेला (ओड़िसा)

सरेआम

मिथिलेश्वर

अभी पिछले हफ्ते ही मेरे दोस्त की हत्या कर दी गयी. मुझसे तथा अपनी पत्नी और बाल-बच्चों से दोस्त सदा-सदा के लिए अलग हो गये. अब वे कभी लौट कर नहीं आयेंगे. उनका अभाव अब कभी भी पूरा नहीं होगा. उनके अरमान और सपने तथा उनकी योजनाएं सब धरी की धरी ही रह गयीं. अपने परिवार को वे एकदम बेसहारा तथा अनाथ करके चले गये. अब उनके परिवार के लिए हर शहर की हर गली अनजान तथा हर रास्ता अंधेरे से भर गया है. कल किराये के मकान से उन्हें निकाल दिया जायेगा. फिर वे कहां जायेंगे? कहां रहेंगे? क्या खायेंगे? तथा क्या करेंगे? इतने सारे सवाल मेरे सामने खड़े हो जाते हैं हालांकि यह बात दोस्त भी जानते थे. वे जानते थे कि उनके बाद उनका परिवार गहन अंधेरे के बीच घिर जायेगा. उन्होंने कई बार मुझसे इसकी चर्चा भी की थी. शायद अपनी हत्या की सूचना पा कर वे इसीलिए ज्यादा चिंतित भी हो गये थे. अपने को बचाने के लिए उन्होंने हर संभव प्रयास भी किया था. लेकिन वे सफल नहीं हो पाये थे. अपनी पूर्व निश्चित हत्या का शिकार वे काफी आसानी से हो गये थे. उनकी पत्नी तथा उनके बच्चों के साथ-साथ मैं भी उनकी होने वाली हत्या से अवगत था. लेकिन हममें से कोई भी दोस्त को नहीं बचा सका. वे हमारी आंखों के सामने ही लुट गये. हमने उनके लिए कुछ भी नहीं किया हालांकि हमें कुछ करना चाहिए था. लेकिन क्या करना चाहिए था? और परस्पर विरोधी ये सवाल हमें घुटते रहने के लिए ही मजबूर कर देते हैं. घुटते रहने के अलावा हम कुछ भी नहीं कर पाते. विकल्पहीन स्थितियां हमारे अंदर पूरी तरह पसर चुकी हैं.

* *

इस शहर में दोस्त का कहीं भी अपना मकान नहीं है और न जगह-जमीन ही. इस शहर से काफी दूर भोजपुर जिले के एक कस्बे में दोस्त का जन्म हुआ था. लेकिन वहां भी उनका अपना मकान नहीं था. उनके मां-बाप किराये के मकान में ही रहते थे तथा जीने-खाने के लिए कई रोजगार करते थे. पता नहीं वे कहां से आये थे तथा मूल निवासी कहां के थे? दोस्त ने इसके बारे में मुझे कुछ बताया ही नहीं. दोस्त ने मुझे सिर्फ इतना ही बताया है कि अट्ठारह साल की उम्र में उनके मां-बाप उन्हें छोड़ कर सदा-सदा के लिए चले गये. फिर मजबूरन दोस्त को किराये के मकान को छोड़ देना पड़ा, क्योंकि दोस्त कुछ भी नहीं कमाते थे. अट्ठारह साल की उम्र तक वे मां-बाप की ही कमाई पर पलते रहे थे. लेकिन मकान मालिक को दोस्त के प्रति तनिक भी दया और सहानुभूति नहीं आयी. उसने काफी सख्ती से काम लिया तथा दोस्त को अपने मकान के बाहर कर दिया.

मकान से बाहर होते ही अपनी जन्मभूमि वाला वह कस्बा दोस्त के लिए एकदम बेगाना हो गया; फिर वे उस कस्बे को छोड़ कर शहर की ओर चल पड़े. तब कुछ भी नहीं था उनके पास. सिर्फ दो चीजें ही उनके पास बची थीं—एक अट्ठारह साल की उनकी उम्र तथा दूसरी मैट्रिक की डिग्री. मां-बाप की जिंदगी में ही कस्बे के स्कूल से दोस्त ने मैट्रिक की डिग्री ले ली थी. यही दोस्त की संपत्ति तथा सारी जमा-पूंजी थी.

वैसे दोस्त से दोस्ती बनने और जान-पहचान से पहले भी मेरी कई बार मुलाकात हो चुकी थी—कभी किसी इम्प्लायमेंट एक्सचेंज की क्यू में खड़ा हो कर नाम दर्ज करवाते वक्त तथा कभी मैट्रिक की योग्यता वाले पद पर इंटरव्यू देने के लिए जुट आये युवकों के बीच. फिर भी हम एक दूसरे के लिए अजनबी ही थे. हालांकि चेहरों से हमें यह स्पष्ट लगता था कि इससे पहले भी हम कहीं मिल चुके हैं लेकिन चाह कर भी हम यह जता नहीं पाते थे. शायद कभी नहीं ही जानते. इसी तरह बराबर मिलते रहने के बाद भी अजनबी बने रहते. लेकिन एकाएक एक घटना घट गयी. भीड़ से निकल कर अनायास ही हम एक दूसरे के करीब आ गये. फिर अपने खालीपन और टूटन को सहने के लिए एक दूसरे से जुड़ना हमारे लिए जरूरी हो गया.

दरअसल, बात यह हुई कि हजारों उम्मीदवारों के बीच से कुछ पद के लिए चुने गये चंद उम्मीदवारों में हमारा नाम भी आ गया. लेकिन साक्षात्कार के लिए जब हम पहुंचे तो हमें यह कह कर आफिस से बाहर कर दिया गया कि आप लोगों का नाम गलती से आ गया है. जितनी सीटें खाली थीं, उतने कैंडिडेट पहले ही आ चुके हैं. हमें खेद है कि आफिस की असावधानी के चलते आप लोगों को तकलीफ उठानी पड़ी.

और बेरहमी से कुचली गयी अपनी तमाम आशाओं और आकांक्षाओं को नजरअंदाज करते हुए, खालीपन और टूटन के साथ हम आफिस के बाहर की बेंच पर आ बैठे थे. सिवा हम दोनों के वहां कोई भी न था. फिर भी हम दोनों ने एक-दूसरे से कोई बातचीत नहीं की. सिर्फ आमने-सामने बैठे एक-दूसरे को घूरते रहे. फिर वहां से एक ही साथ उठ कर, एक ही रास्ते की ओर चुपचाप चल पड़े. कुछ दूर आगे जाने पर दोस्त ने पूछा—आप कहां से आये हैं?

—एक गांव से.

फिर मैंने पूछा—आप?

—एक कस्बे वे.

फिर एक चाय-दुकान के पास हम दोनों बैठ गये.

दो चाय का आर्डर मैंने दिया. पर दोस्त ना-नुकूर करने लगे. उनके ना-नुकूर का अर्थ उस समय मुझे मालूम नहीं हुआ. हालांकि बाद में मुझे यह पता चला कि दोस्त की दोनों जेबें खाली थीं और इसीलिए एक अनजान आदमी के साथ वे चाय पीने के लिए तैयार नहीं हो रहे थे. लेकिन मेरी जिद ऐसी थी कि उनसे भी टालते नहीं बनी. फिर अंदर की बेंच पर बैठ कर हम चाय पीने लगे. चाय पीने के क्रम में ही हमने बातें शुरू कीं. सत्ता, व्यवस्था, महंगाई, भ्रष्टाचार और आंदोलन से लौट कर हमारी बातें जल्द ही अपने-अपने घरों पर आ गयीं, जहां हमारे बापों ने विरासत के रूप में कुछ भी नहीं छोड़ा था बल्कि हमारी जिंदगी को ऐसे खौफनाक और अंधेरे चौराहे पर छोड़ दिया था. जहां से जाने वाला हर रास्ता जल्द ही अवरुद्ध हो जाता था, मंजिल तक पहुचाने वाला कोई भी रास्ता स्पष्ट और साफ नहीं था.

चूंकि एक-सी स्थितियों, तकलीफों और यातनाओं के हम सहयात्री और सहभोक्ता थे इसीलिए जल्द ही हम एक-दूसरे से जुड़ गये. फिर एक-दूसरे का अता-पता भी हमने नोट किया. एक दूसरे को जान-सुन लेने के बाद एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति और अंतरंगता भी हमने ज्ञापित की. भविष्य में बराबर एक-दूसरे से मिलते रहने तथा पत्राचार होने की बातें भी हमने पक्की कीं. फिर हाथ मिला कर अपनी-अपनी दिशाओं की ओर हम लौट गये.

* *

मुझे अच्छी तरह याद है, पहला पत्र दोस्त का ही आया. दोस्त ने लिखा कि जिस कस्बे को छोड़ कर वे शहर की ओर भागे थे, अब पुनः लौट-पौट कर उसी कस्बे में आ गये हैं तथा किसी भी तरह जिंदगी जीने के लिए कस्बे के बच्चों को ट्यूशन पढ़ाना शुरू कर दिया है. हालांकि यह ट्यूशन वे शहर में भी पढ़ा सकते थे. लेकिन शहर में इसके लिए उन्हें अपनी पहचान कायम करनी पड़ती जिसके लिए काफी समय गंवाना पड़ता. पर कस्बे में तो उन्हें सब पहचानते थे. वे वहीं पले-बढ़े थे तथा मैट्रिक तक की पढ़ाई भी उन्होंने वहीं पूरी की थी.

दोस्त के पत्र का जवाब मैंने ठीक समय से दिया. दोस्त के दुःखों और तकलीफों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करते हुए अपना दुखड़ा भी मैंने दोस्त से सुनाया कि गांव में मेरी स्थिति भी दोस्त की तरह ही है. बाबू जब तक जिंदा थे, दूसरों का खेत ठेका-बटाई पर ले कर जिंदगी गुजारते थे. अब वह सब कुछ मुझसे नहीं हो पाता है. जीने-खाने के लिए दूसरों के कामों में हाथ बंटाना पड़ता है. हां, अंतर सिर्फ यही है कि मकान किराये का नहीं बल्कि अपना है.

फिर इसी तरह दूसरा, तीसरा, चौथा. . .और अनेक पत्रों के आने-जाने का क्रम जारी रहा. पत्रों के माध्यम से ही हम अपनी परेशानियां एक-दूसरे तक पहुचाते रहे तथा समस्याओं से निरंतर लड़ते रहने और संघर्ष करने की बातें एक-दूसरे को बताते रहे. फिर आगे चल कर किसी-किसी इंटरव्यू में साथ-साथ जाने की योजनाएं भी हमने पत्रों के माध्यम से तय कीं. मुझे अच्छी तरह याद है, पत्रों के माध्यम से तय की हुई योजनाओं पर कई इंटरव्युओं में हम एक साथ रहे थे. हममें से जो पहले आता था, वह दूसरे की प्रतीक्षा काफी बेसब्री से करता था. फिर मिल जाने पर साथ ही साथ इंटरव्यू देने, किसी झोंपड़ीनुमा होटल में सत्तू खाने तथा रेलवे प्लेटफार्म या फुटपाथ के किनारे सो जाने के साथ-साथ रात भर एक दूसरे से बतियाते रहने का भी लोभ हम संवरण नहीं कर पाते थे. आज यह सब बातें मुझे याद आती हैं तो लगता है कि हम

• डी. ए. राणा

नया पैकिंग नई शान

REGD.

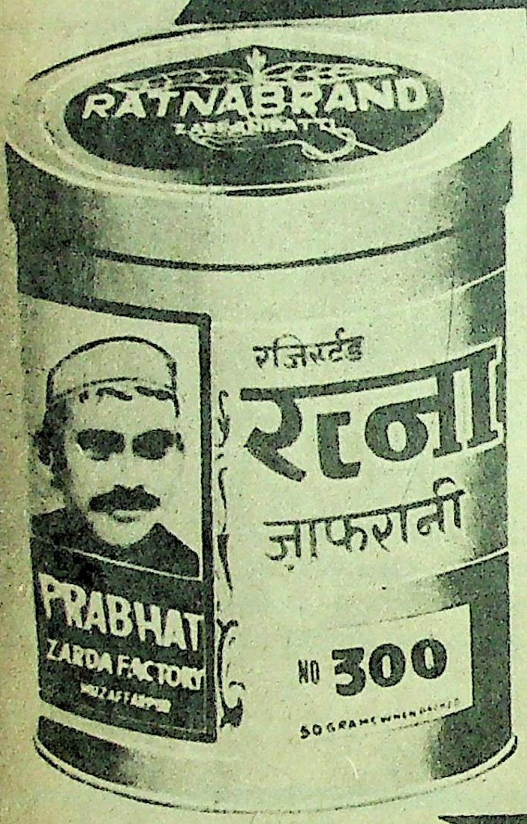
RATNA BRAND
रजिस्टर्ड
रत्ना
ज़ाफरानी
PRABHAT
ZARDA FACTORY
MUZAFFARPUR
NO 300
50 GRAMS WHEN PACKED

रत्ना छाप

ज़ाफरानी पत्ती

नं. १३,२०,३०,६४,१५०,२००,३००,४५०.

प्रभात ज़र्दा फैक्ट्री, मुजफ्फरपुर

अब नये पैकिंग में माँग करें

AVANTIKA/76

कहीं बहुत गहरे में एक-दूसरे से जुड़ गये थे. काश! उस गहराई से हत्यारे अवगत होते तो संभवतः मेरे दोस्त को मुझसे तथा अपनी पत्नी और बाल-बच्चों से अलग नहीं करते.

हां, तो बहुत प्रयत्न करने और बहुत समय गंवाने के बाद बिहार राज्य पथ परिवहन निगम में बुकिंग क्लर्क के पद के लिए मेरी नियुक्ति हुई. यह शुभ-सूचना सबसे पहले मैंने दोस्त को दी. दोस्त बहुत प्रसन्न हुए. उन्होंने लिखा कि 'मित्र, यह खबर पाते ही कि तुम व्यवस्थित हो गये, मेरी आधी गर्दिश अपने आप टल गयी.'

लेकिन मैं कब बैठने वाला था. काउंटर बुकिंग क्लर्क के पद पर इत्मीनान होते ही मैंने दोस्त के लिए भाग-दौड़ शुरू कर दी. लेकिन नौकरी कहां मिलनी थी? फिर भी एक लंबे समय तक मैं प्रयत्नशील रहा. इस बीच दोस्त के अनेक पत्र आये. पत्रों से ही मालूम हुआ कि दोस्त की शादी तय हो गयी. उसने मुझे बुलाया भी. किंतु परेशानी वश मैं नहीं जा सका. फिर दोस्त की शादी भी हो गयी. नाराज होकर दोस्त को मैंने एक पत्र लिखा कि उसे इन स्थितियों और हालातों में अभी शादी नहीं करनी चाहिए थी. जवाब में दोस्त ने मेरी नाराजगी को एकदम खत्म कर दिया. दरअसल, दोस्त की शादी स्वेच्छा से नहीं, बल्कि आरोपित ढंग से हुई थी. लड़की के मां-बाप दोस्त के मां-बाप की तरह ही उस कस्बे के मूल निवासी नहीं, बल्कि शरणार्थी थे. लड़की उनकी एकमात्र संतान थी. उनकी साख कस्बे से उठ चुकी थी. महंगाई ने उन्हें बुरी तरह तोड़ दिया था. फलस्वरूप रोजगार बदलने के लिए वे कहीं दूसरी जगह जा रहे थे. मगर जाने से पहले लड़की को वे अपने स्तर के लड़के, यानी मेरे दोस्त के हाथों सौंप देना चाहते थे. क्योंकि उन्हें कहीं दूसरी जगह लड़की का हाथ सौंपने में काफी कठिनाई मालूम पड़ती, क्योंकि इस कस्बे के सिवा कहीं भी उनकी पहचान कायम नहीं थी. लेकिन दोस्त स्वीकार नहीं कर रहे थे. वह अपनी फटेहाल स्थितियों में शादी के लिए कतई तैयार नहीं थे. मगर लड़की के मां-बाप और कस्बे वालों ने उन्हें बाध्य कर दिया. फिर मजबूरन ही सही, लड़की को उन्हें अपनी पत्नी बनाना ही पड़ा.

शादी के बाद से दोस्त के पत्र बहुत अधिक लाचारी और विवशता का जिक्र छेड़ने लगे. मैंने अपना चैन और नींद हराम कर दी. जितनी परेशानी अपनी नौकरी को लेकर मैंने नहीं उठायी थी, उतनी परेशानी दोस्त के लिए उठायी और फिर बिहार राज्य पथ परिवहन निगम में ही एक कंडक्टर के पद के लिए दोस्त की बातचीत भी मैंने पक्की कर ली. हालांकि इसके लिए घूस स्वरूप पांच सौ रुपये भी देने के लिए मुझे वचनबद्ध होना पड़ा. मैंने तत्काल दोस्त को इसकी सूचना दे दी. दोस्त का मरता हुआ उत्साह जग गया. वह शीघ्र ही चार सौ रुपये का इंतजाम कर मेरे पास आये. तीन सौ रुपये उन्होंने पत्नी के चांदी के जेवरों को बेच कर इकट्ठा किये थे तथा सौ रुपये कस्बे वालों से मांग कर. शेष सौ रुपये का इंतजाम मैंने किया. फिर अप्रैल की चिलचिलाती दुपहरी में ही इधर से उधर दौड़-दौड़ कर मैंने दोस्त को कंडक्टर के पद पर व्यवस्थित कर दिया.

अब हम साथ-साथ रहने लगे. एक ही कोठरी में साथ-साथ रहने, खाने तथा सोने का इंतजाम भी हमने कर लिया. इससे हमें बहुत फायदा हुआ. भयंकर महंगाई के बावजूद भी हमने टूटन और असमर्थता महसूस नहीं की. आधे-अधूरे मिल कर हम पूरे हो गये. हमने एक-दूसरे को ढंक लिया. लेकिन चिंताएं खत्म नहीं हुईं. दोस्त की पत्नी को भी बुलाना तथा साथ-साथ रखना जरूरी था. क्योंकि दोस्त ने मुझसे कहा था कि वह जिन लोगों के घर ट्यूशन पढ़ाता था, पत्नी को उन्हींके घर छोड़ आया है. मगर वे नंबर एक के टुच्चे और कमीने हैं, उनकी मानसिकता निहायत ही क्रूर और पूंजीवादी है. दोस्त के सामने ही वे उनकी पत्नी को छेड़ देते थे. अब तो . . .

हम दोस्त की पत्नी को बुलाने के लिए शहर में कमरे की खोज काफी व्यग्रता से करने लगे. इस बीच दोस्त की पत्नी के दो पत्र अपने माहौल के प्रति घुटन और उदासी को लेकर आये. फिर उसके तीसरे पत्र ने तो हमारे धैर्य को तोड़ दिया. बगैर कमरा ठीक किये ही उसे बुला लेना पड़ा तथा उसी एक कमरे में रखना पड़ा.

★ ★

दोस्त के साथ घटी घटनाएं अब मैं कभी नहीं भूलूंगा. चूंकि जिंदगी के अनेक महत्वपूर्ण क्षणों को हमने साथ-साथ जिया और भोगा है, इसीलिए उन्हें भूलना संभव भी नहीं है. यह इसलिए भी कि हम समान गर्दिशों के सहभोक्ता तथा समान आकांक्षाओं के सहयात्री थे. शायद यही कारण है कि आज दोस्त का अभाव न सिर्फ मुझे बुरी तरह साल ही रहा है बल्कि अंदर कहीं गहरे में न बिखरने वाली अमिट चुभन और टीस भी दे रहा है. दोस्त की पत्नी और बच्चे अब कहां जायेंगे? कहां रहेंगे? क्या खायेंगे? क्या करेंगे? इतने सारे सवालों ने मुझे घेर लिया है. और इन सवालों के पीछे दोस्त के साथ घटी घटनाएं सिनेमा की रील की तरह आंखों के सामने से गुजरने लगी हैं. एक-एक घटना, एक-एक बात सब अच्छी तरह याद आ रही है.

दोस्त की पत्नी कोठरी के भीतर सोती थी तथा दोस्त के साथ मैं कोठरी के बाहर बरामदे में. अपनी तकलीफों और इच्छाओं को नजरअंदाज करते हुए काफी समय तक हम ऐसे ही रहे थे. लेकिन एक दिन जब दोस्त ने मुझसे कहा था कि मेरी पत्नी को बच्चा होने वाला है तो शादी करने की मेरी वह इच्छा भी, जिसे मैंने जबरन दबाया हुआ था, जाग गयी थी. फिर दोस्त और दोस्त की पत्नी के लिए एक अलग कमरे की तलाश हमने जारी कर दी थी. चूंकि हमें संघर्षों में विश्वास हो गया था, हम जान गये थे कि संघर्ष के बाद सफलता हमें निश्चय ही मिलेगी, इसीलिए बगैर निराश हुए शहर के इस छोर से उस छोर तक कमरे की तलाश

हमने अनवरत रूप से जारी रखी. हालांकि मकान कई खाली थे, लेकिन एक पूरे मकान में रहने की हैसियत हमारी नहीं थी. हम चाहे पारिवारिक स्तर पर बड़े हों या छोटे, हमारी हैसियत एक कोठरी की ही थी.

फिर खोजते-खोजते एक कोठरी हमने पा ही ली. उस कोठरी की दूरी मेरी कोठरी से लगभग एक मील थी. लेकिन शहर के लिए यह दूरी कोई खास नहीं थी. जब सड़कें रात-रात भर जगी रहती हैं और मुसाफिर चलते रहते हैं, तब फिर यह दूरी कोई माने नहीं रखती है. हम कभी भी एक-दूसरे के पास आ-जा सकते हैं, एक-दूसरे से मिल सकते हैं, यही सोचा हमने. और यही सोच कर दोस्त की पत्नी को उस कोठरी में ठहरा दिया.

दोस्त की पत्नी को, उस कोठरी में जाने के पांचवें महीने बाद ही एक लड़का पैदा हो गया और आठवां महीना पूरते-पूरते मेरी शादी भी हो गयी. हम दोनों दोस्त इन मौकों पर एक साथ रहे तथा आपस में सलाह-मशविरा कर हंसते-हंसते इन समस्याओं पर से निबट गये. अब हम अलग-अलग कोठरियों में अपने परिवार के साथ रहने लगे. वैसे बस डिपो पर दोस्त से मेरी मुलाकात रोज ही होती रही, क्योंकि वहीं से दोस्त किसी गाड़ी को ले कर जाते थे तथा पुनः लौट कर वहीं आते थे. लेकिन बावजूद इसके हम रोज ही एक-दूसरे के डेरे पर आते-जाते रहे तथा हफ्ते में तीन या चार बार हमारी पत्नियां भी एक-दूसरे से मिलती रहीं. हमारी जिंदगी ठहर गयी. हमारे अंदर का संघर्ष चुक गया. हम जहां थे, वहीं जड़ हो गये. पहले हम अकेले थे इसीलिए संघर्ष करते थे. अब पारिवारिक झमेलों ने हमें फंसा लिया. दोनों जून अच्छा खाना खाने के लिए आर्थिक तनावों के बीच हम कस गये. कभी-कभार हम अपनी अच्छे खाने की मुराद पूरी करने के लिए पैसे भी इकट्ठे कर लेते लेकिन ऐन वक्त पर या तो बच्चे बीमार पड़ जाते या पत्नी. फिर हमारी खुराक डाक्टर के पेट में चली जाती. थोड़ा-बहुत जो कुछ बचता उसे मकान मालिक ऐंठ लेता. तब यहीं से हमने गलत रास्ता अख्तियार किया. ट्रैफिक इंस्पेक्टर को पैसा दे कर, बगैर टिकट काटे ही कम पैसों में लोगों को दोस्त सफर करवाने लगा और मैंने भी हर गाड़ी का चालान बनाते वक्त कंडक्टर से दो रुपया लेने का नियम बांध दिया. लेकिन इससे हमारी स्थितियों में बहुत अधिक सुधार नहीं आया. फिर भी हम अपने ढंग की जिंदगी जीते रहे. हमें लगा कि हमारे जैसे लोगों की जिंदगी यही है. इससे अच्छी जिंदगी जीने की ख्वाहिश गलत है. और यही सोच कर एक लंबे अरसे तक चुपचाप हम वह जिंदगी जीते रहे जिस जिंदगी का वर्तमान तो धुंधलका और कोहरा भरा था ही, भविष्य एकदम अंधकार से पूर्ण था.

★ ★

अब दोस्त नहीं रहे. हत्यारों ने हमसे उन्हें छीन लिया. जिस अंधकारपूर्ण भविष्य की संभावनाएं हमें नजर आ रही थीं, दोस्त का परिवार उसके गर्त्त में डूब गया. मैं चाह कर भी दोस्त के परिवार को अब उबार नहीं सकता हूं. आखिर एक बुकिंग क्लर्क की हैसियत ही क्या है? जो अपने परिवार को संभाल सकने की क्षमता रोज खोता जा रहा है, दूसरे के परिवार को कैसे संभाले? लेकिन यह जानते हुए भी कि दुनिया में अब उनका कोई नहीं है, उन्हें कैसे छोड़ दें? चाहे जैसे भी हो, उन्हें अब साथ रखना ही होगा. चाहे जिस तरह हो, उनका गुजर-बसर करना ही होगा. पर इतने से ही बात बनेगी नहीं. जब आदमी अपना संतुलन ही कायम नहीं कर पायेगा, तो फिर कैसे कुछ करेगा.

और मेरे साथ यही हुआ है. दोस्त की निर्दोष हत्या के बाद से मैं अपना संतुलन एकदम खो चुका हूं. घर पर, रास्ते में या आफिस में हर जगह भय महसूस करने लगा हूं. कोई जगह और कोई वातावरण मुझे सुरक्षित नहीं लग रहा है. हर जगह बिखरे असुरक्षित माहौल के भयावने पंजे आगे की ओर सरकते नजर आने लगे हैं. अब एक अदने आदमी से भी कड़ा होकर बोलने की शक्ति नहीं रह गयी है मुझमें. हर आदमी का चेहरा हत्यारों की तरह लग रहा है. लग रहा है जैसे दया, माया, मानवता और ममता नामक चीज इस धरती से उठ गयी. रुपये-पैसों का तो सवाल अलग है. नन्हीं-नन्हीं आवश्यकताओं और चीजों के लिए भी हत्याएं शुरू हो गयी हैं. कुछ पता नहीं कि कब बीच सड़क पर आपको छुरा भोंक दिया जायेगा. और मरते वक्त आपसे ये कहा जायेगा कि अमुक गाड़ी में आप अपनी सीट पर पसर कर बैठे थे और लाख कहने पर भी सीट खाली नहीं कर रहे थे, जिससे काफी मुसीबत उठानी पड़ी थी, इसी से आपको मारा जा रहा है.

मेरी नींद और चैन हराम हो गया है. खाना भी नहीं खाया जा रहा है. असुरक्षित देश के अनेक सवाल मुझे बुरी तरह डस रहे हैं. अगर आफिस में मैं बैठा हूं और कोई मेरे सीने में रिवाल्वर सटा दे कि टिकट देने में तूने देर की इसीलिए बस छूट गयी, तो मैं क्या करूंगा? अगर मेरी जेब से सिर्फ एक अठन्नी निकालने के लिए बीच सड़क पर मुझे छुरा मार दिया जाय, तो मैं क्या करूंगा? अगर कोई मुझसे कहे कि मैं तुम्हारी पत्नी को तुम्हारी आंखों के सामने बेइज्जत करूंगा, बोलोगे तो छुरा मारूंगा तो मैं क्या करूंगा? मैं कुछ भी नहीं करूंगा. कोई मेरी फरियाद नहीं सुनेगा. कोई मेरी सहायता नहीं करेगा.

मेरे दोस्त के साथ भी ऐसा ही हुआ है. वे बस डिपो से गाड़ी लेकर जा रहे थे, चालान बन चुका था तथा गाड़ी अब खुलने ही वाली थी. लोग ऊपर से नीचे तक बुरी तरह लदे थे. ट्रेन हड़ताल के चलते बसों से सफर करना ही लोगों के लिए एकमात्र विकल्प बचा था. भीड़ के बीच परेशान दोस्त लोगों को व्यवस्थित कराते हुए ड्राइवर से गाड़ी खोलने का तथा खलासी के ह्विसिल बजाने का आदेश दे रहे थे. मैं काउंटर से सब कुछ देख रहा था. ठीक इसी समय गुंडे किस्म के कुछ लोग एक लड़की को लेकर आये. लेकिन अब तक बस स्टार्ट हो चुकी थी तथा बहुत धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी थी. वे लोग चिल्ला कर बोले—ऐ कंडक्टर!

गाड़ी रोको. इस लड़की को चढ़ा कर खोलना.

परेशानी से खीझते हुए दोस्त ने जवाब दिया—अब तनिक भी जगह नहीं है. गाड़ी नहीं रुकेगी.

फिर गुंडों में से एक गरजा—तुम पहचानते हो किससे बात कर रहे हो?

—हां, पहचानता हूं. तुम्हारे जैसे लोग रोज ही यहां आते हैं. दोस्त की आवाज भी गर्म हो उठी.

—अच्छा साले, बाद में तुम्हें पता चलेगा. एक गुंडे ने दूसरे गुंडे की ओर देख कर कहा. फिर एक ही साथ सभी आक्रोश में आ गये. बोले, लौटने पर साले को पूछा जायेगा.

लेकिन उनकी यह आवाज दोस्त तक नहीं पहुंच पायी क्योंकि गाड़ी अपनी रफ्तार पकड़ चुकी थी.

किंतु यह क्या? गाड़ी खुलने के दस मिनट बाद ही गुंडों का एक दूसरा दल वहां आ धमका और पहले दल से लड़की छीनने लगा. हमें सब कुछ समझ में आ गया. वह लड़की पेशेवर थी तथा दूसरे दल के अधीनस्थ रह रही थी. पहला दल उस लड़की को भगा कर कहीं दूर जगह ले जाना चाहता था. लेकिन बस छूट जाने के कारण वे पकड़े गये. फिर देखते ही देखते दोनों दलों में खींचातानी शुरू हो गयी. पता नहीं कब चमचमाते छुरे भी दोनों ओर से निकल गये. इससे पहले कि फोन करके हम पुलिस को बुलाते, एक गुंडा वहीं धराशायी हो गया. शेष गुंडे आपस में लड़ते-झगड़ते तथा एक-दूसरे को धमकियां देते हुए कहीं चले गये.

दूसरी सुबह गुंडों का एक जत्था बस डिपो आया तथा दोस्त को खोजने लगा. संयोग अच्छा था कि दोस्त अभी नहीं आये थे. निश्चित था कि दोस्त मिल जाते तो गुंडे डिपो पर ही दोस्त को कत्ल कर देते. मैं तत्काल भागते हुए दोस्त के घर पहुंचा तथा बस डिपो आने से दोस्त को रोक दिया. फिर एक महीने की दोस्त की छुट्टी भी मैंने मंजूर करवा दी.

तीसरी सुबह दोस्त दौड़ते हुए मेरे घर आये तथा हांफते हुए कहने लगे कि पड़ोसियों ने बताया है कि जब मैं बाजार गया था तब काफी गुंडे मुझे खोजने के लिए आये थे तथा देर तक मेरी प्रतीक्षा किये थे.

मैं मुसीबत में पड़ गया. हालांकि किसी भी सूरत पर मैं दोस्त को बचा लेना चाहता था. इसीलिए रातों रात ही मैंने दोस्त के डेरे को चेंज करवा दिया तथा शहर के अंतिम छोर पर उन्हें ठहरवा दिया. फिर दो-तीन दिन गुजर गये. इस बीच डिपो पर रोज ही गुंडे आते रहे तथा दोस्त की खोज करते रहे.

फिर अपने कुछ परिचितों से उन गुंडों के बारे में मैंने पता लगाया. मुझे पता लगा कि वे इस शहर के नामी और पेशेवर गुंडे हैं. एक बार जिसको अपनी नजर पर चढ़ा लेते हैं, फिर इस शहर में उसे कोई नहीं बचा पाता.

मैंने सोचा कि दोस्त को जाकर गुंडों के पैरों पर गिरवा दूं और बिना किसी गलती के ही प्रायश्चित करवा दूं. किंतु मेरे एक परिचित ने डांट दिया. कहा—भूल कर भी आप ऐसा मत कीजिएगा. इन गुंडों के पास क्षमा नाम की कोई चीज नहीं.

फिर मैं दूसरे विकल्प की खोज में लग गया. इस बीच समय निकाल कर दोस्त को ढाढ़स देने तथा उनकी पत्नी को चुप कराने में मैं रोज ही उनके डेरे जाता रहा. एक दिन दोस्त को ले जा कर थाने में सनहा भी लिखवा आया तथा गुंडों का नाम भी दर्ज करवा दिया. फिर चार-पांच दिन गुजर गए. अचानक मेरे आफिस जाने के वक्त ही एक दिन दोस्त आ धमके तथा हांफते हुए ही कहने लगे कि उस मुहल्ले का पता भी गुंडों को लग गया है. नुक्कड़ के पान वाले ने दोस्त से कहा था कि काफी गुंडे उन्हें खोजने आये थे.

मैं दौड़ा-दौड़ा आफिस गया तथा पत्नी के बीमार होने का बहाना बना, पुनः वापस आ गया. फिर अपने कमरे में दोस्त के साथ बैठ कर बचाव के रास्तों पर घंटों सोचता तथा बातें करता रहा. देर तक विचार-विमर्श के बाद भी हम कोई निष्कर्ष नहीं निकाल पाये. अंत में दोस्त को मैंने यही सुझाव दिया कि इस शहर के किसी थाने के बगल में डेरा ले कर रहना उचित होगा. फिर हम शहर भर के तमाम थानों की बगल वाली कोठरियां तलाशने लगे. दोहरा ही नहीं, बल्कि तिहरा किराया देने को राजी होने पर, एक थाने की बगल वाली कोठरी मिली. फिर रातोंरात ही दोस्त उस कोठरी में आ गये. उस कोठरी में आ जाने के बाद दोस्त को काफी बल मिला तथा मुझे भी शांति महसूस हुई. थाने पर सिपाही रात भर पहरा देते हैं इसीलिए थाने की बगल वाली कोठरी पर आक्रमण होने का सवाल ही हमारे सामने पैदा नहीं हुआ. अब हम निश्चित हो गये तथा चिंतारहित हो कर समय गुजारने लगे.

पर हठात् एक सुबह दोस्त की पत्नी रोती-बिलखती आयी. और रात में गुंडों द्वारा उसी थाने की बगल वाली कोठरी में ही दोस्त की हत्या की सूचना दी.

* *

कल मकान-मालिक दोस्त के परिवार को निकाल देगा लेकिन वह समय मैं आने नहीं दूंगा. आज ही शाम तक दोस्त के परिवार को अपने कमरे में ला रखूंगा. दोस्त थे तो सुख-दुख बांट कर जी लेता था इसीलिए मुसीबत ज्यादा नहीं अखरती थीं. अब किस तरह जिंदगी बिताऊंगा? दोस्त को थाने की बगल वाली कोठरी में नहीं ठहराना चाहिए था. लेकिन एक सवाल खड़ा हो जाता है मेरे सामने कि दोस्त को कहां ठहराना चाहिए था? फिर मेरी नजर पूरे शहर पर दौड़ जाती है. लेकिन इस शहर में निराश हो कर पुनः दूसरे बड़े शहर पर जा टिकती है. वहां भी उसे निराशा ही मिलती है और वह तीसरे बड़े शहर पर जा टिकती है, फिर वहां से भी निराश हो कर वह आगे बढ़ती है और दिल्ली के इस छोर से उस छोर तक पूरे देश को टटोलती है. पूरे देश में मुझे कहीं भी ऐसा सुरक्षित स्थान नजर नहीं आता है जहां रह कर दोस्त अपने को बचा सकते थे. □□□

महाराजा हाता कतीरा, आरा (बिहार)

प्रस्तुत है

अधिक शक्तिशाली
अधिक प्रभावशाली
अधिक सुरक्षित
प्लसप्रिन

PLUSPRIN

यह अधिक तेज असर करती है

प्लसप्रिन दर्द से छुटकारा दिलाने में सामान्य पीड़ा निवारक औषधियों की तुलना में कम समय, बहुत कम समय लेती है। क्योंकि केवल प्लसप्रिन में ही दर्द से अति शीघ्र छुटकारा दिलाने वाले शक्तिशाली और प्रमाणित तत्व विद्यमान हैं!

सिर दर्द, पीठ दर्द,
शरीर दर्द जुकाम और फ्लू

आदि से छुटकारा पाने के लिये आपको केवल एक ही टिकिया की आवश्यकता है। यह सुरक्षित है फिर भी प्रभावशाली है!

यही बस नहीं
प्लसप्रिन हानि-रहित है।

इससे आलस्य, अधिक पसीना आना, पेट से खून बहना, तेजाबी मादे का बढ़ना, पेट में गड़बड़ी या आदत बन जाना आदि विकार उत्पन्न नहीं होते।

प्लसप्रिन एसप्रिन नहीं है।

शीघ्र आराम के लिए अधिक शक्तिशाली PLUSPRIN लीजिये।

JAISONS

पंजाबी कहानी

बायें से : शशि तिवारी, सच्चिदानंद देशमुख, गणपत सिंह, रघुवंशी विकल, अनूपसिंह परिहार, डॉ. रवि अग्रवाल, आचार्य निर्भय, 'हीरा', महेंद्रकुमार श्रीवास्तव तथा अन्य लोग

पंजाबी में आजकल कहानी-गोष्ठियों की बाढ़-सी आयी हुई है. ३ जुलाई की शाम को एक नये प्रकार की कहानी-गोष्ठी जिला बठिंडा के एक गांव भीखी में रखी गयी. इस गोष्ठी में न तो किसी आलोचक को बुलाया गया था और न ही किसी पाठक को. जितने भी थे, सब कहानीकार थे. कोई प्रधान नहीं था, और न ही कोई मंत्री. नछत्तर सिंह, आर. स्याल, गुरचरन चाहल भीखी और सिद्धू दमदमी ने अपनी नयी एवं अप्रकाशित कहानियां पढ़ कर सुनायीं. इन पर भरपूर समीक्षा की गयी.

रात का खाना लेने के पश्चात कच्चे घरों की छत पर चारपाइयों के ऊपर बैठे सभी कहानीकार पंजाबी कहानी का जायजा लेने लगे. चलते-चलते बात 'समांतर' पर आ ठहरी. रामसरूप अणखी ने हिंदी में समांतर के नाम पर हो रहे काम का संक्षिप्त ब्योरा दिया. उन्होंने बताया कि समांतर सोच न तो कोई नया अंदोलन है और न ही कोई साहित्यिक गुटबंदी. समांतर नाम आने से पहले भी इस सोच की कहानियां लिखी जाती रही हैं. हमारे पंजाबी साहित्य में भी. नयी बात यह है कि इस सोच ने सभी भारतीय भाषाओं के लेखकों को एक मंच पर इकट्ठा कर दिया है और दिशा दी है. उपस्थित सभी कहानीकारो ने इसे स्वीकार किया और यह तय हुआ कि हर वर्ष बीस-पच्चीस समांतर कहानीकारों की एक-एक सर्वश्रेष्ठ कहानी ले कर एक शानदार संकलन प्रकाशित किया जाये.

दूसरे दिन सुबह नौ बजे बीबा कुलवंत, गुरुपाल और प्रेम गोर्खी ने अपनी कहानियां पढ़ीं. समीक्षा हुई. शमशेर सिंह संधू ने अपना लेख 'पंजाब के गायक कलाकार' पढ़ा. ☐

बायें से : रामसरूप अणखी, नछत्तर सिंह, आर. स्याल, धर्मसिंह, शमशेरसिंह संधू, नछत्तर चाहल, अश्विनी जेतली, किरपाल कजाक, अजीतपाल सिंह, सिद्धू दमदमी, प्रेम गोर्खी, गुरुचरण चाहल भीखी, बीबा कुलवंत, मनजीत सिंह और गुरपाल. (नीचे) रोहीराम

सारिका का नवलेखन अंक

गोंदिया की साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्था कवि संसद द्वारा १५ मई को शाम ७ बजे डॉ. रवि अग्रवाल की अध्यक्षता में 'नवलेखन अंक' पर एक विचार-गोष्ठी का आयोजन किया गया.

हीरा ने कहा कि **'सारिका'** ने हिंदी कहानी को नयी-नयी प्रतिभाएं दी हैं. डॉ. रवि अग्रवाल ने हिंदी कहानी के क्रमिक विकास पर गंभीर विवेचन प्रस्तुत किया. साथ ही नवलेखन अंक की कहानियों पर अपने विचार प्रगट किये.

तत्पश्चात संस्था के अध्यक्ष आचार्य चतुर्भुज मसानी एवं महेंद्र कुमार श्रीवास्तव महेंद्र ने नवलेखन अंक की कहानियों पर विचार रखते हुए **'फरिश्ते की मौत'** को अंक की सर्वश्रेष्ठ कहानी निरूपित किया. तत्पश्चात नवलेखन अंक की प्रत्येक कहानी पर विस्तृत चर्चा हुई.

☐ **हीरालाल जायसवाल**

कृतियां

एक कहानी-संग्रह

'मेरी प्रिय कहानियां'

लेखक : शानी;
प्रकाशक : राजपाल एंड संज, कश्मीरी गेट, दिल्ली–६;
पृष्ठ-संख्या : १२७; मूल्य : सात रुपये.

प्रस्तुत संकलन में शानी की कुल दस कहानियां हैं — **'जली हुई रस्सी, 'नंगे', 'एक नाव के यात्री', 'एक कमरे का घर', 'पत्थरों का तालाब', 'जगह दो, रहमत के फरिश्ते आयेंगे, 'जनाजा', 'युद्ध', 'इमारत गिराने वाले'** तथा **'शर्त का क्या हुआ.'**

ये कहानियां पहले भी छप कर पाठकों के सामने आ चुकी हैं, और इनमें से कुछ विशेष रूप से चर्चित भी हुई हैं.

शानी की उपर्युक्त कहानियों में जो सबसे बड़ी विशेषता दिखायी पड़ती है, वह है अनुभव और अभिव्यक्ति की ईमानदारी. 'अनुभव की ईमानदारी' या 'अनुभूति की प्रामाणिकता' जैसे मुहावरे को पिछले वर्षों जितना दुहराया और पीटा गया है, उतना उसका निर्वाह नहीं किया जा सका है. अधिकांश लेखक राजनीति के आधार पर साहित्यिक खेमे बना कर अपनी रचनात्मक क्षमता नष्ट करते रहे. कविता और कहानी इस तरह के खेमों का अखाड़ा रही. कुछ ने अपने लेखन को फार्मूलाबद्ध कर लिया तथा कुछ चौंकाने का प्रयास करके अपने को प्रतिष्ठित करने के फेर में ज्यादा रहे. तात्पर्य यह कि सही लेखन जो अनुभव और अभिव्यक्ति की ईमानदारी में चरितार्थ होता है, बहुत कुछ सामने नहीं आया. शानी की कहानियों पर विचार करते हुए कहा जा सकता है कि उनकी कहानियां गुटबंदियों, फार्मूलों और चमत्कारों से मुक्त हैं.

पिछले कुछ वर्षों की अधिकांश कहानियों में आधुनिक औद्योगिक-यांत्रिक जीवन तथा नगरों-महानगरों की समस्याएं विशेष रूप से चित्रित मिलेंगी. शानी की इन कहानियों में इस तरह की समस्याएं नहीं हैं. इनके कथानक व्यक्ति और परिवार की समस्याओं को ले कर बुने गये हैं. लेखक ने जिस जिंदगी को अपने चित्रण का विषय बनाया है, वह मध्यवर्गीय अभावग्रस्त जिंदगी है— उसके आसपास की जिंदगी है. इसीलिए इन कहानियों में एक प्रकार की आत्मीयता मिलती है. यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि इन कहानियों में कहानीकार ने पाठकों को सेक्स का स्वाद चखाने की कोशिश नहीं की है. दरअसल ये कहानियां उस खाते-पीते वर्ग की कहानियां नहीं हैं, जिसकी जिंदगी शराब और औरत में रमी होती है. इसके विपरीत ये उस मामूली जिंदगी की कहानियां हैं जो अपनी अतृप्तियों और तकलीफों में सांस खींच रही है. **'जली हुई रस्सी'** कहानी की सफिया मुनीर साहब की जेवरों से लदी बीवी को देख कर अपने नसीब को कोसती है. उसका पति वाहिद मुअत्तल कर दिया गया है. मुनीर साहब के यहां आलीशान दावत है, मगर वाहिद के लिए घी अब एक ख्वाब है. सफिया कहती है : 'प्राविडेंट फंड के पैसे मिलेंगे, तो घी ला दोगे? बहुत दिनों से अपने यहां पुलाव नहीं बना.' **'नंगे'** कहानी की रुबीना के लिए ईद का कोई महत्व नहीं है. जैसे रोज, वैसे ईद. इस कहानी का मुख्य पात्र 'मैं' ईद के दिन अपनी फूफी के यहां जाता है, पर वहां अपने भतीजों को देने के लिए उसके पास कुछ नहीं है. उन लोगों के सामने उसे लगता है, जैसे वह एक उटुंग-सी कमीज के द्वारा जैसे-तैसे अपने को ढंकने की कोशिश कर रहा है, पर पेट ढंकता है, तो पीठ खुल जाती है. **'एक कमरे का घर'** शीर्षक कहानी भी ऐसे ही अभाव की कहानी है--अभाव जो न केवल पारिवारिक संबंधों बल्कि व्यक्ति के मानसिक संतु को भी बिगाड़ कर रख देता है.

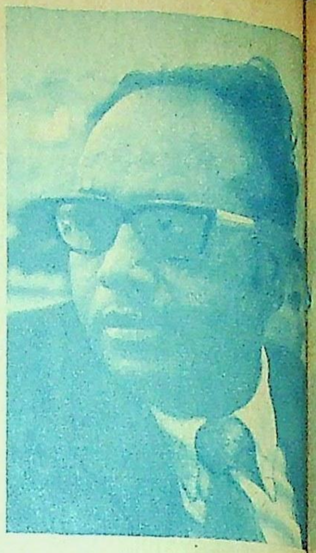

● नवल जायसवाल

शानी

'एक नाव के यात्री' शीर्ष कहानी एक अलग स्तर पर पा वारिक संबंधों को खोलती इसी जमीन से मिलती-जुल कहानी है **'शर्त का क्या हुआ** **'पत्थरों का तालाब'** शीर्ष कहानी उस सामाजिक बदबू सामने लाती है, जो सारे परिवे में व्याप्त है और विडंबना यह कि सब इसी कीचड़ में कैद **'जगह दो, रहमत के फरि आयेंगे'** 'तथा **'इमारत गिरा वाले'** शीर्षक कहानियां मानवीय और मूल्यों का एक विशि असर छोड़ जाने वाली क नियां हैं. **'जनाजा'** और 'यु शीर्षक कहानियां विभाजन बाद के भारतीय मुसलमानों भय और उनके लगाव-विलगा की कहानियां हैं. यहां यह भी उल्ले नीय है कि शानी की लग सभी कहानियों के पात्र मुस्लि समाज से लिये गये हैं. ऐसा लेख ने जानबूझ कर किया है. प्रस्तु संग्रह की भूमिका में वह लिखता है 'जातिगत पूर्वग्रह और वर्ण संस्कार सचमुच कितने भयान होते हैं—इस हद तक खतरना कि वे ऊपरी तौर पर बौद्धिक ल वालें आदमी को भी इनसानि

की बुनियादी शर्तों को बलाये-ताक रखने पर मजबूर कर सकते हैं ... इस बात की जरूरत आज पहले से कहीं ज्यादा है कि ऊपर-ऊपर से लिये हुए भोले विश्वास पर संदेह करने वाली यह छानबीन जातीय संवेदनाओं और वर्णगत संस्कारों तक गहराई से की जाये.'

यह कहा जा सकता है कि शानी अपनी कुछ कहानियों को अधिक सांकेतिक बना सकते थे, और उन्हें संवेदना के अधिक गहरे स्तर से उठा सकते थे. पर इसमें संदेह नहीं कि शानी की ये कहानियां शिल्पगत चमत्कारों से मुक्त साफ-सुथरी कहानियां हैं, जो व्यक्ति और परिवार की जिंदगी को अनेक स्तरों पर पहचानती और चित्रित करती हैं.

□ विश्वनाथप्रसाद तिवारी

एक उपन्यास

'बहुत देर कर दी'

लेखक : अलीम मसरूर : प्रकाशक : कहानीकार प्रकाशन, के ३०/३७ अरविंद कुटीर, वाराणसी; मूल्य : बीस रुपया, पृष्ठ-संख्या : २४५.

'बहुत देर कर दी' मूल रूप में उर्दू का उपन्यास है. उपन्यास शुरू करते हुए बहुत कुछ उलझन-सी होती है, क्योंकि एक बंबइया फिल्म का पूरा परिवेश इसमें मौजूद है, परंतु उपन्यासकार ने उपन्यास को आगे चल कर गंभीरता से लिया है और पाठक को विश्वास में ले लिया है.

उपन्यास का नायक दाऊद बनारस का निवासी है. वह एम. ए. पास एक प्रबुद्ध युवक है. बंबई जैसे महानगर में उसे महज डेढ़ सौ रुपया माहवार की नौकरी मिलती है. वह पुस्तकों की दुकान में मामूली किरानी है. रहने का कहीं ठिकाना नहीं है. तंग आ कर दाऊद बंबई के एक कुख्यात गुंडे करीम के सामने अपनी समस्या रखता है. करीम उसकी इस समस्या का चुटकी बजाते हल खोज लेता है. अपनी चहेती वेश्या सुलताना को पंद्रह दिन के लिए दाऊद की पत्नी बना कर उसके साथ कर देता है. दाऊद सुलताना के साथ रहता जरूर है, परंतु उसके साथ दैहिक संबंध स्थापित करने से परहेज रखता है. एक स्तर पर उसके संस्कार तथा दूसरे स्तर पर सुलताना के वापस चले जाने की शर्त उसे सुलताना के प्रति तटस्थ तथा ठंडा बनाये रखती हैं.

इसी दौरान एक अन्य युवती कायनात उसके संपर्क में आती है, जिसका उपन्यास दाऊद की कोशिश से प्रकाशित हो जाता है और अप्रतिम ख्याति अर्जित करता है. कायनात दाऊद के प्रति पहले दिन से ही आकर्षित है. दाऊद भी बेचैन रहता है, लेकिन कायनात को अपनी तकलीफ साफ ढंग से बता नहीं पाता कि वह दुनिया-दिखावे के लिए एक वेश्या को अपनी पत्नी बना कर रखे हुए है. दाऊद सोचता है कि जैसे ही करीम सुलताना को अपने पास बुलायेगा, वह कायनात से शादी कर लेगा. इसी दौरान करीम को तीन माह की सजा हो जाती है और सुलताना को अपने पास रखने की विवशता से वह कुढ़ उठता है. कायनात की बेचैनी से भी वह परिचित है. उसका मस्तिष्क कोई हल खोजने के लिए परेशान रहता है. सुलताना दो दिन के लिए अपने घर बड़ौदा जाने लगती है, तो दाऊद को उसे विदा देते हुए पहली बार एहसास होता है कि वह सुलताना की अनुपस्थिति में जीवित नहीं रह सकता. जो सुलताना दाऊद को हमेशा जीवंत बनाने की कोशिश में लगी रहती थी, वह स्वयं दाऊद के विषाद से परिचित होते ही गंभीर हो जाती है.

आखिर क़रीम जेल से छूटता है और सुलताना को वापस बुला भेजता है. दाऊद सुलताना को करीम के घर वापस छोड़ कर बाहर जाते ही अपनी मनःस्थिति को एकदम बदला हुआ पाता है. वह अत्यंत पीड़ा और अपमान का अनुभव करता है कि उसने अपनी पत्नी को कायरता और निर्लज्जता से एक गुंडे के हवाले कर दिया है. वह गहरे मानसिक द्वंद्व में आलोड़ित होते हुए करीम के घर जाता है और सुलताना को उससे छुड़ा ले जाता है. सुलताना को साथ ले कर कायनात के घर जाता है और बतला देता है कि सुलताना उसकी पत्नी है. कायनात यकायक कुछ समझ नहीं पाती. वह केवल इतना कहती है : 'सुलताना, तुमने बहुत देर कर दी!'

'बहुत देर कर दी' अलीम मसरूर का पहला उपन्यास है लेकिन कथा-तत्व की जबरदस्त बुनावट इसमें मौजद है. पूरा उपन्यास गहरी सतर्कता से संवारा गया है. रचना के स्तर पर आने वाली चुनौतियों को लेखक ने जिम्मेदारी से झेला है. संपूर्ण कृति में गहरे चिंतन और महीन विचारों की धारा सतत प्रवाहित हुई है. उपन्यास के भीतर बहुत कुछ ऐसा है जो पाठक को झकझोर देता है, और अनुभव की सपन्नता दे जाता है.

□ से. रा. यात्री

अलीम मसरूर

ध्रुवीकृत वातावरण : वह प्रतिबद्धता कहां है?

• राम अरोड़ा

अब फिर वैसा ही ध्रुवीकृत वातावरण है. एक तरफ अभेद्य सन्नाटा है, जिसमें नये (या बेहतर या समांतर) सिनेमा का जिक्र तक करने से लोग बचते घूम रहे हैं, दूसरी तरफ दिशाएं और रास्ते साफ न होने की विपदा को भूले अलमबरदार तबके सेंसर वगैरा जैसी सामयिक कठिनाइयों को एकमात्र समस्या मान लेने के लिए शोर मचाये जा रहे हैं. आठवें दशक के प्रारंभ में उभरी आशाओं का कहीं कुछ पता नहीं. बागी सिनेशिल्पी करीब-करीब गुम हो गये हैं, या बड़े कौशल से विशुद्ध व्यावसायिक हलकों में कैमुफ्लाज कर गये हैं. **'दस्तक'** जैसी एक हद तक ठीक-ठीक फिल्म बनाने के बाद **'फागुन'** जैसी चोंचलेबाजी से पिटने वाले राजेंद्रसिंह बेदी को **'आंखिन देखी'** जैसी विनम्र यथार्थपरक फिल्म बनाने में चारों तरफ से दिक्कतें पेश आती हैं, और वह पस्त हो कर कहते हैं : 'प्रतिबद्धता से कुछ हासिल नहीं हुआ. हम किनारे धकेले जा रहे हैं.'

जबकि **'सारा आकाश'** के सहनीय रोमानवाद से चल कर **'चितचोर'** तक आते-आते बासु चटर्जी बड़ी सूक्ष्म नीति से पलायनवाद के पोत पर विहार करते दिखायी देते हैं. **'छोटी-सी बात'** संबंधी एक दूरदर्शन-चर्चा के दौरान अपने अंदाज में छाती ठोंकते हुए डॉ. गोपालदत्त से वह कहते हैं : 'हां, साहब! यह (**'छोटी-सी बात'**) यथार्थ नहीं, पलायनवाद ही है.' क्यों?

व्यक्तिपरक फिल्म के पैरोकार

और दूसरे बासु—भट्टाचार्य—**'अनुभव'** के बाद **'आविष्कार'** जैसी ठेठ व्यक्तिपरक फिल्म (इंडिविजुअल्स फिल्म) बनाते हैं, और फिर पता नहीं क्यों डकैती और **'बॉबी'** टाइप कथानकों के बेतुके प्रयोगों में रम जाते हैं. समीक्षकों से वह साफ-साफ कह देते हैं, 'मुझे फिक्र नहीं अगर आप मेरी फिल्म पसंद नहीं करते तो . . . ' और सामान्य प्रेक्षक से उनकी शायद कभी मुलाकात ही नहीं हुई. कुछ-कुछ ऐसा ही रवैया मणि कौल का भी रहा है, जो तीन नितांत 'व्यक्तिगत' फिल्में, **'उसकी रोटी'**, **'आषाढ़ का एक दिन'** और **'दुविधा'** बनाने के बाद फिल्मकारी के मसीहा बन गये और पता नहीं कहां चले गये.

गुलजार और हृषिकेश मुखर्जी 'साफ-सुथरी' फिल्मों के टिपिकल उदाहरण हैं. दोनों अपने साफ-सुथरे स्टैंड पर दृढ़ता से टिके ही हुए हैं, और शायद कभी भी अपनी स्थिति नही बदलेंगे, हालांकि **'परिचय'** और **'कोशिश'** के बाद **'आंधी'** और **'मौसम'** और एक हद तक **'अचानक'** में भी गुलजार थोड़े विवादास्पद जरूर बने. मगर **'चुपके-चुपके'** के माध्यम से हृषि ने प्रदिबद्धता के प्रति अपनी अरुचि कुछ स्पष्ट कर दी. दोनों ही शिल्पी सामान्य प्रेक्षक की सीमाओं से भयंकर दहशत खाते हैं. इसीलिए जब हृषि कहते हैं कि 'किसी भी फि
का अधिक से अधिक जनता
स्वीकार्य होना बहुत जरूरी है,'
उनका थोड़ा किया कम-से-
उनके संदर्भ में बहुत मान ले
पड़ता है.

'कोरा कागज' के बाद अनि
गांगुली भी साफ-सुथरी फिल्मों
निर्देशक बन कर सामने आये
(**'तपस्या'** और **'संकोच'**) औ
बहुत साफ शब्दों में कहते है
'हमारी फिल्मों में बहुत कु
आपत्तिजनक है. मगर, क्षम
कीजिए, फ्लॉप हो कर मैं कु
भी नहीं कह या कर सकता
इसलिए थोड़ा कहा बहुत समझि

एक साहसी फिल्मकार

'अंकुर' और **'निशांत'**
फिल्मकार श्याम बेनेगल का अभ्
दय हालिया है, मगर अत्यंत प्रब
है. कम पैसों और नये या अपेक्षा
कृत छोटे सितारों से उन्हें को
फर्क नहीं पड़ता, और कल्पना
तकनीकी सिद्धहस्तता पर बैठा
भव्यता, अभिनवता और दृश्या
त्मक यथार्थता रचने में वह प्राय
मास्टर हैं. किसी लकीर के
फकीर भी नहीं हैं और ९९ प्रतिश
अन्य फिल्मकारों की भांि

मृणाल सेन

अनिल गांगुली

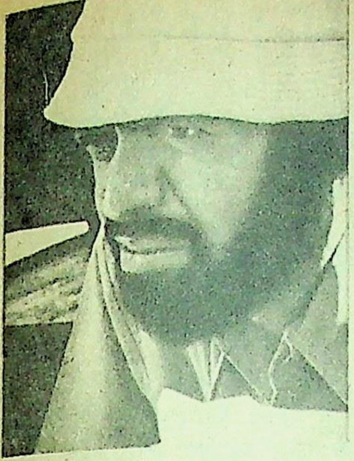

श्याम बेनेगल

वह प्रेक्षक की सीमाओं से भी नहीं डरते. वह कहते हैं: 'माना कि स्पांसरशिप व्यावसायिकता के शिकंजों में है, मगर उससे सीधे जूझे बिना कोई रास्ता भी नहीं है' और वह यह मानने से कतई इनकार करते हैं कि कतिपय ट्रेंड्स (जिनकी हमेशा हर कोई दुहाई देता है) वास्तविक हैं. 'ये ट्रेंड्स उद्योगियों की निजी भीतियों के परिणाम हैं, इसलिए बेमानी हैं.' . . .श्याम की ताजा फिल्म **'मंथन'** उनकी पिछली फिल्मों से कुछ नवीनतापरक है, और अगर क्लिक कर जाती है तो उनकी बात हर स्तर पर सही साबित हो जायेगी.

* *

सत्यू (**'गर्म हवा'**) के निजी व्यक्तित्व में श्याम जितनी दबंगता नहीं है, मगर शिल्पधर्मिता में गरिमा कहीं अधिक है. अपनी वर्तमान फिल्म के संदर्भ में सिर्फ इतना ही कहते हैं: 'अगर मैं किसी विडंबना, अत्याचार या विरोधाभास पर प्रहार नहीं कर सकता तो मेरा कथाफिल्म बनाना बेकार है.'

दिक्कत यह है कि बेहतर सिनेमा के पैरोकारों, शिल्पियों और रसिकों के पास अब फिल्म वित्त निगम जैसी संस्था का सक्रिय समर्थन पहले जैसा नहीं रहा. इसलिए सत्यू या श्याम जैसे इक्के-दुक्के सिपाही पर्याप्त नहीं लगते. दूसरी तरफ फिल्म एंड टेलिविजन इंस्टीट्यूट ने बढ़िया रंगरूट तैयार करना एक अरसे से बंद-सा कर रखा है.

* *

आज मृणाल सेन प्राय: अकेले फिल्मकार बचे हैं, जो सामाजिक और राजनीतिक प्रतिबद्धता अपनी हर फिल्म में निभाते चले जा रहे हैं. इस मामले में सत्यजित राय से वह कई कदम आगे हैं. शैली और सुहानेपन को कथ्य के करीब नहीं फटकने देते, चाहे यह स्पष्टता कितनी भी करख्त हो. **'प्रतिद्वंद्वी'** के मुकाबले वह **'इंटरव्यू'** बनाते हैं. **'आशानी संकेत'** के मुकाबले **'पदातिक'** पर टिके रहना बेहतर समझते हैं. आजकल का पूरा हिसाब-किताब उनके लिए व्यथा का विषय है; क्योंकि 'यह तो ठीक है कि प्रतिबद्ध सिनेमा निर्देशकों की वैचारिक क्षमताओं पर निर्भर करता है, मगर निर्देशक तब तक मोरचों पर पूर्ण सफल नहीं हो सकते, जब तक लेखक, अभिनेता, तकनीशियन और वित्तीय संस्थाएं भी उतनी ही प्रतिबद्ध न हों.'

यह प्रतिबद्धता क्यों गायब है, इसका जवाब किसी संजीव कुमार (या अमिताभ बच्चन या शबाना आजमी), किसी कमलेश्वर, किसी के. के. महाजन और किसी गुलशन राय के सिवा कोई नहीं दे सकता. और फिर फिल्म वित्त निगम को क्यों असफलता का यह मुंह देखना पड़ा?

सही फिल्मों के अनुकूल वातावरण

. . .मगर यह स्वीकारना होगा कि सही फिल्मों के लिए वातावरण आज जितना अनुकूल है, उतना पहले कभी नहीं था. और इस वातावरण के निर्माण में उन सब का भी सहयोग रहा है, जो सही सिनेमा के कम लाभदायक क्षेत्र से व्यावसायिक क्षेत्रों में कैमुफ्लाज कर गये. जगहें खाली हैं. . . □□□

यथार्थवादी सिनेमा के प्रथम आचार्य

भारतीय सिने-पटल पर जिन दिनों धार्मिक-पौराणिक फिल्मों का जादू चल रहा था, और पोस्टर और साइनबोर्ड जब विभिन्न देवी-देवताओं के नाम से संप्रदाय विशेष को टिकट खरीदने के लिए उकसाया करते थे, तब धीरेंद्रनाथ गांगुली अपनी अर्थ, व्यंग्य और प्रहार भरी फिल्में ले कर फिल्म-क्षितिज पर उदित हुए थे. 'विलेत फेरात', 'द मैरिज टॉनिक' और 'द लेडी टीचर' जैसी चटीली फिल्मों में उन्होंने अंग्रेजी जीवन शैली के अंध भक्तों की डट कर खबर ली थी. रवींद्रनाथ टैगोर को 'ताप्ती' की पटकथा लिखने के लिए भी उन्होंने प्रेरित किया था और शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय के 'चरित्रहीन' को फिल्माने का साहस भी दिखाया था. १९३० के आसपास धीरेन गांगुली यदि फिल्म-निर्माण में न आते, तो पता नहीं अभी और कब तक सामाजिक कथानक परे पड़े रह जाते. और शायद पी. सी. बरुआ और देवकी बोस जैसे समर्थ शिल्पी भी फिल्म-संसार से परिचित न हो पाते.

भारतीय फिल्मों में यथार्थ की जीवनधारा को संचारित करने वाले ८५ वर्षीय धीरेन गांगुली को १९७६ के दादा साहब फाल्के पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया गया है. □

धारावाहिक उपन्यास (पांचवीं किस्त)

लाल पसीना

• अभिमन्यु अनत

अब तक आपने पढ़ा है

सदियों पूर्व विस्तृत महासागर के बीच ज्वालामुखी के विस्फोट से मॉरिशस द्वीप का जन्म हुआ. सदियों तक यह द्वीप वीरान पड़ा रहा. फिर विभिन्न देशों ने इसे भारत तक पहुंचने का रास्ता बनाया. भारतीय मजदूरों के दल वहां पहुंचाये जाने लगे— इस आश्वासन पर कि अंग्रेज लोग मॉरिशस को फ्रांसीसियों से मुक्ति दिला कर भारतीयों को सौंप देंगे, और मॉरिशस की धरती का सारा सोना उन्हें मिलेगा. इन मजदूरों में कुंदन भी था, जिसे स्वर्ण के बदले मिली उम्र-कैद. अब कुंदन को जेल से निकलने का रास्ता मिल गया था. . . . वह जेल से भाग निकला और एक गांव में जा पहुंचा. गोरे मालिक लोग भारतीय मजदूरों पर तरह-तरह के जुल्म ढाते थे. कुंदन ने अपना नाम बदल कर देवननन् कर लिया और मजदूर बन कर रहने लगा. इन मजदूरों में गांव के मुखिया रघुसिंह का लड़का किसन भी था. किसन अपनी जाति के लोगों की बेबसी देख कर परेशान रहता था. उसके मन में तरह-तरह के सवाल थे. भूखे पेट काम करने और उसके बाद पिटने से जतन की मृत्यु हो गयी— और फिर एक बैठक बुलायी गयी. अब आगे पढ़िए. . . .

इधर किसन के घर के सामने गाने-बजाने का कार्यक्रम भी जारी थी. वैसा करके सरदारों के ध्यान को इधर आकर्षित होने से रोक दिया गया था. किसन ने सबसे बाद में वाक्वा की चटाई पर जगह ली. कुंदन उसी की ओर देख रहा था. आंखों से उसका इशारा पा कर उसने बात शुरू की —पहले क्या होता रहा है, मैं नहीं जानता, लेकिन जब से मैं यहां हूं, इस तरह की यह दूसरी घटना है. अब आप ही लोग सोच लें कि इस तरह की और कितनी घटनाओं को होने देना है.

फिर से किसन की ओर देखा और किसन ने उसे इशारे से बात को जारी रखने को कहा.

—गोपाल की मां को आप लोगों में से कुछ लोगों की सुना-सुनी मैं भी बेटी कहने लगा था. उसके पति की मृत्यु किन हालतों में हुई थी, उसे तो आप लोग मुझसे अधिक अच्छी तरह जानते हैं. गोपाल की मां को पहली बार देख कर मैंने कभी यह नहीं सोचा था कि उसका गोपाल जैसा लड़का हो सकता है. गोपाल की मां की तरह अभी और भी कई विधवाओं को जबरदस्ती अपने यहां मंगवा कर ये लोग ऐसा करते रहेंगे.

वह चुप हो गया. कुछ लोगों के बीच कानाफूसी शुरू हो चुकी थी. उन्हें शांत करते हुए कुंदन ने आगे कहा —हम लोग यहां इसलिए जुटे हैं कि और कुछ तो हमसे हो नहीं सकता, कम से कम अपनी बहू-बेटियों को लुटने से तो बचायें.

—देवननन् भाई, ऐसा सोचे के तू पहला ना बानी. बगल से दाऊद के बाप ने कहा.

—मैं जानता हूं चाचा, कि तुम लोग पहले भी इस पर सोच चुके हो. पर अब तक कुछ कर नहीं पाये.

—ऊ त अब भी ना. होई, देवननन्!

—क्यों नहीं होगा? किसन ने धीरे से पूछा.

—कौन करेगा?

—हम सभी को करना होगा.

किसन की इस बात पर दो-तीन बूढ़े हंस पड़े. उनकी हंसी का गोया यह मतलब हो कि अरे, कभी हमने भी ऐसा ही कहा था! बीच में कई लोगों ने धीमे स्वर में बातें कीं. कई लोग कुंदन के साथ थे, कई उसे आज भी इधर की वास्तविक परिस्थिति से अनभिज्ञ समझते रहे. जब लोगों के बीच घांव-मांव होने लगा, तो किसन के बाप ने पहली बार बात शुरू की. —देवननन् जो आज सोचता रहली, ओके हम लोगन बरीसन पहले से सोचते आवत बानी. पर सोचल कुछ होवेला और करल और कुछ. सौ बात के एक ही बात बा.

—वह क्या?

—किसी से कुछ भी होने को नाहीं.

—तो फिर जो कुछ हो रहा है, उसे आंखें मूंद कर होने दिया जाये?

रघुसिंह ने अपने बेटे की ओर देखा. अपने नारियल के हुक्के का लंबा कश लिया और उसी गांभीर्य के साथ कहा —मरके क्या पाना है?

कुछ देर तक कानाफूसी होती रही. किसन ने ऊंचे स्वर में सभी को चुप करा कर उनके ध्यान को अपनी ओर आकर्षित किया.

—अब तक हम सोचते रहे हैं. और अगर अब तक कुछ नहीं हो सका तो इसका यह मतलब थोड़े ही हो जाता है कि हम कभी भी कुछ नहीं कर सकते!

रघुसिंह ने डांट भरे स्वर में पूछा— क्या?

—यह तो हम सभी को मिल कर सोचना है.

—गोरवन से जा कर ई कहना है कि वे लोगन अपन ई आदत को छोड़ें, नाहीं तो. . .

—बापू, तुम इस बात को इस तरह कह रहे हो जैसे कि यह दुनिया का सबसे कठिन काम हो!

—तुम एके सबसे आसान मानत हो तो करके देखो.

—मैं अगर इसे आसान नहीं मानता तो कठिन भी नहीं.

—तो फिर देरी काहे के? कोशिश करके देख ले,

● टॉ. ए. राणा

बेकहल कहीं के! हर बखत उलटी-सीधी बातें करत रहत हो. अगर हम सभन को दिन-दहाड़े मरवाना है तो फिर अपने इस देवननन् को साथ ले ले और बढ़ जा मालिकन की टांग तोड़ने.

किसन पर से आंखें हटा कर वह देवननन् को घूरता है.

—तू तो आते ही इन लड़कवन के उलटा-सीधा पाठ सिखला गयले. लगत बा कि जौन कोठी से भाग के इधर आल बाले, उधर भी तू एही तरह के उटपटांग काम किया होगा.

पीछे से किसी ने कहा—मियां के हारे मियायन के बुकोटे.

फिर वह सभी को संकेत करके शांत स्वर में बोला —हम सब कोई के मालूम बा कि गोरवन के विरुद्ध एगो शब्द के नतीजा का है.

—इसका तो यही अर्थ होता है कि हम गूंगे के गूंगे रहें? किशन ने पूछा.

—जहां ना बोले के बा, हुआं काहे बोलल जाये?

बहस में कुछ और लोगों ने भाग लिया और अंत में बाप-बेटे के बीच की तनातनी और भी बढ़ गयी. रघुसिंह अपनी जगह से उठ खड़ा हुआ और क्रोध से कांपते हुए उसने सभी को चेतावनी दी—तुम लोगन के कुत्ता के मौत मरे के बात जौन मन में आय कर स. पर बोल देवत हैं कहीं गोरवो तरेके और हचुवो तरे के न चल जाये.

इसके साथ ही वह उस भीगी अंधेरी रात में बाहर निकल गया.

★ ★

क्षण भर की खामोशी में दूसरी ओर से आता हुआ बिरहे का स्वर सुनायी पड़ा. फिर बातों के शुरू होते ही बंद हो गया. दाऊद के बाप ने अपनी खांसी के दौरे के बीच पूछा कि क्या करने को सोचा गया है. इस पर कुंदन ने बताया कि पहले से कुछ भी सोचना है, उसे यहां सोचा जायेगा.

किसी ने पीछे से कहा —जब मुखिया ही चला गया, तो फिर क्या सोचना बाकी है?

—अभी बहुत कुछ सोचना बाकी है! किसन ने कहा.

—पहले हम यहां आदमी तो समझे जायें! जब तक हमारी गिनती यहां आदमी में नहीं होती, तब तक कुछ भी होने को नहीं.

—हमें आदमी तभी समझा जायेगा, जब हम भी जानवर की तरह पेश आयेंगे.

दाऊद के बाप की इस बात को सभी लोगों ने अपने-अपने ढंग से समझा. किसन ने अपने ढंग से. इसीलिए उसने झट से कहा —तो फिर एक बार जानवर बन जाने में मुझे कोई दिक्कत नहीं.

—हम अपनी स्थिति में सुधार की बात सोचते तो ज्यादा अच्छा होता. . . देवननन् को अभी कुछ और कहना था, कि किसी ने बीच में ही कह दिया.

—यह काम एक जगह से नहीं शुरू हो सकता.

—मतलब?

—जब तक हर कोठी के मजदूर एक साथ न खड़े हों, तब तक कुछ भी संभव नहीं.

—मैं इसके ठीक विपरीत समझता हूं.

कुंदन के बाद किसन के कहा —मैं भी यह नहीं मानता कि जब तक हर कोठी के लोग तैयार न हो जायें, तब तक हमें इसी तरह मन मारे बैठे रहना है. कहीं से शुरू तो होना है. अगर हम यहां पूरे संकल्प के साथ खड़ा हो पाते हैं, तो फिर कोई कारण नहीं कि

धीरे-धीरे सभी कोठियों के लोग हमारा साथ देने को तैयार न हो जायें.

अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए दाऊद के बाप ने सिर हिलाया, जिसे सभी लोगों ने यही समझा कि शुरुआत तो कहीं-न कहीं से होनी ही है.

—हम अपने यहां से शुरू करने को तैयार हैं. पर क्या शुरू करना है? सोनालाल का बाप जो अब तक चुप था, अपने कमजोर स्वर में बोला —जब तक हम अपने ऊपर उठने वाले हाथों में से एक को मरोड़ते नहीं, तब तक ये रुकने को नहीं.

सोनालाल के बाप से इस तरह की बात सुनने की उम्मीद किसी को नहीं थी. चिराग के प्रकाश के साथ-साथ लोगों की आंखों में हैरत भी चमकी. एक लंबे सन्नाटे के बाद किसन ने एकाएक कहा —नहीं! सभी लोगों की आंखें उसकी ओर मुड़ गयीं.

—हमारे पास उतनी ताकत नहीं है कि हम अपने ऊपर उठते हुए हाथ को मरोड़ सकें.

—तो फिर?

—हमें पहले अपने को ताकतवर बनाना है.

—यह जो आधा पेट खाना मिलता है, उससे?

—हां, उसी से.

—असंभव.

—नहीं! हजारों की संख्या में होते हुए भी अगर हम शक्तिशाली नहीं बन सके, इस देश को फल-फूल दे कर भी अगर हम आज ही की-सी स्थिति में रहना मान लें, तो बस वह हाथ हमारे ऊपर उठते रहने से कभी नहीं रुकेगा और तब सचमुच ही आने वाले हर कल के लिए हम कमजोर रह जायेंगे. हमें अपनी ताकत को बहुत ही सावधानी और होशियारी से बढ़ाना है. इस तरह धीरे-धीरे इस काम को करना है ताकि किसी को कानों-कान इसका पता न चले. एक कोठी से दूसरी कोठी तक जाना इस समय हमारे लिए बहुत ही कठिन होता है. पहले इस बाधा को हम दूर करें. हर कोठी के लोगों से हम मिल सकें, इसका प्रबंध सबसे पहले करना है. फिर तो हमारे एक स्थान का निर्णय दूसरे स्थान से तीसरे तक पहुंचेगा और अवसर आने पर सभी कोठियों के लोग एक साथ खड़े होंगे. तब कहीं जा कर लोगों को हमारी शक्ति का भान होगा और हमारे ऊपर उठने वाले ये हाथ दोबारा उठने की हिम्मत नहीं कर सकेंगे.

किसन की बातें सभी लोगों की समझ में नहीं आयी थीं, पर जिन थोड़े लोगों की समझ में आयी थीं, उससे किसन संतुष्ट था. कुंदन भी.

किसन का संतोष कभी-कभी बहुत जल्दी ही व्यग्रता का रूप लेता. इधर कुछ दिनों से किसन में एक व्यग्रता-सी देख कर रघुसिंह कह उठता कि हड़बड़ी से गूलर ना पकेला. किसन हमेशा से यही तो सुनता आ रहा था कि वह समय अपने आप आयेगा. वह जानता था कि जिस समय की सभी को प्रतीक्षा थी, वह कभी नहीं आयेगा. इस तरह के समय को सामने लाने के लि
आगे बढ़ना पड़ता है और उसे घसीट कर ही अप
बीच लाया जा सकता है. बहुत सोचने के बाद किस
को लगता कि समय को घसीट लाने की वह शक्ति
अभी बस्ती के लोगों में नहीं आयी है. वह कुंदन से क
बार पूछ चुका था कि उस बल को कैसे पैदा किया जाये
उत्तर में कुंदन कहता— वह बल समय के साथ ही
आयेगा. और किसन फिर से उसी प्रश्न के सामने अपने
को खड़ा पाता— वह समय कब आयेगा?

समय को समय से पहले घसीट लाने के प्रयास
किसन को लगता कि समय उससे बलवान था. कुंद
यह भी कहता कि हम आस-पास की सभी बस्तियों क
शक्ति को अगर एक सूत्र में बांध कर आगे बढ़ें तो
संभवतः हम समय से अधिक बलवान प्रमाणि
हो जायें. लेकिन यह काम संभव था?

कुंदन के यहां पहुंचने से पहले उस दिन जब फू
वंती के बच्चे की मृत्यु हुई थी, मातमपुरसी के समय कु
वृद्धों और जवानों के बीच बहस छिड़ गयी थी. व
पहला अवसर था कि जब सभी जवानों का अपन
अलग स्वर था. बेचारगी की स्थिति को उस दिन पहल
बार नकारा गया था. बूढ़ों के भीतर पहली बार य
डर पैदा हुआ था कि इस धरती के ये पहले जन्मे बच्
कहीं हिंसक न हो उठें. इधर कुंदन की उपस्थि
में रघु सिंह के भीतर यह डर और भी बढ़ गया था.

बीस-पच्चीस वर्ष से वे जिस जीवन को जीते
आ रहे थे, उसके इतने अधिक आदी हो गये थे कि
स्थिति में परिवर्तन का विचार उन्हें कभी छूता भी नहीं
था. जबकि जवानों में एक चेतना-सी आने लगी थी
उसी चेतना के विरुद्ध बोलते हुए रघुसिंह कहता कि
उफनल दूध बरतन से बाहर जा गिरेला. किसन को इ
बात की परवाह नहीं थी. इसके लिए रघुसिंह उसे कोसता
ही रहता. कभी किसन की मां पर भी बरस पड़ता था
यह कहता हुआ, कि वही उसे बढ़ावा देती है. अप
सामने कुंदन को पा कर किसन एक प्रक्रिया का स
तैयार करने लगा था और उसका बाप उस प्रक्रि
को दुध-मुंहा बच्चा मानता.

किसन की मां सिल पर नीम के पत्ते पीस रही थी
जब रघुसिंह ने बात छेड़ी थी.

—कैसनो त मुट्ठी भर खायके मिलत बा. पर तो
लड़का के कारन लगत बा एकरो मोहाल हो जाए
तुम्हारा बेटा त बस कालहे बनिया आजहें सेठ, जम
चुकाये सारा देश. हम पूछत बानी कि दूसर लोगन क
झंझट कोई अपन माथे काहे लेवत फिरत ह?

लोढ़े को चलाती हुई बिना सिर उठाये किसन की
मां बोली —तोहरा त ओकर कोई भी काम अच्छ
ना लगेला.

—सरदार लोगन के त मुंह देखत ही रहल, अब
मालिक के साथ भी झगड़ा खोज रहल बा. आजकल
देवननन् ओकर गुरु बनल बा.

कुछ ही दूरी पर किसन बस्ती के बच्चों को
कबड्डी सिखाने में लगा हुआ था. दो दिन पहले इन्

बच्चों को सरदार ने अपने यहां मक्की के दाने छुड़ाने की आज्ञा दी थी. और किसन ने बच्चों को उस मुफ्त के काम से रोक लिया था. रामजी सरदार शिकायत लिये रघुसिंह के पास पहुंचा था. एक-एक करके सभी बच्चों के बापों को धमकी दी थी. यह कह गया था कि अगर आज वे बच्चे काम नहीं करते तो फिर वह उन सभी से ईख की गाड़ियां खिंचवा कर रहेगा. किसन अगर तड़के ही बच्चों को कबड्डी के खेल में लगा चुका था तो बस इसीलिए कि वे सरदार के यहां न पहुंच कर अपने खेल में लगे रहें.

अपने हाथ के दतवन को फेंकते हुए रघुसिंह ने कहा—पानी में रहके इ लईका मगरमच्छ से बैर करत बाते.

* *

पक्षियों के कलरव के बंद होने पर जब किसन खेत की ओर बढ़ा, उस समय बस्ती के सभी मजदूर आ चुके थे. वह पिछड़ गया था. उसे इमली के पेड़ तक छोड़ने के लिए पुष्पा साथ हो गयी थी. पगडंडी की दूबों पर ओस की बूंदें चमक रही थीं. पावों से छू जाने वाली उनकी ठंडक प्रिय थी. किसन की अंगुली को छोड़ते हुए पुष्पा बोली—बस्ती के कुछ लोगों को तुम्हारी बातें पसंद नहीं हैं.

—तुम्हें तो पसंद हैं न?

—कभी-कभी तो मुझे भी. . . .

—इसका मतलब है कभी-कभी तुम भी बूढ़ों की तरह सोचने लगती हो!

दोनों उस स्थान पर पहुंच आये थे, जहां से पुष्पा को पीछे लौट जाना था. दोनों रुक गये. किसन की निगाह ईख के कारखाने की ओर थी. पुष्पा ने किसन को देखा. उसके आगे आ कर उसने धीरे से कहा—तुमने कल वाला उत्तर नहीं दिया.

—कल वाला उत्तर?

—भूल गये?

याद करने का अभिनय करते हुए किसन ने मुसकरा कर कहा—कल तुमने एक ही बात थोड़े पूछी थी!

—मुझे पिछली बात का उत्तर चाहिए.

—क्या थी वह?

—कुछ लोग सत्या से तुम्हारे ब्याह की बातें करते हैं.

—मुझे जिस लड़की से ब्याह करना है, वह अभी मुझे दीखी ही नहीं है.

—तुम सत्या से ब्याह मत करना.

—क्यों? वह अच्छी लड़की नहीं?

—अच्छी तो है, लेकिन. . . .

—बोलो!

—उससे ब्याह करके तुम भी बड़े आदमी बन जाओगे.

—क्यों, मेरा बड़ा बनना तुम्हें गवारा नहीं?

—मेरे कहने का मतलब है कि फिर तो तुम हम गरीबों से कट जाओगे.

—कैसे कट जाऊंगा?

—जिस लड़ाई की तुम बात करते हो, उसे फिर कैसे लड़ सकोगे?

किसन जाने लगा. पुष्पा की ओर देखा और ऊंचे स्वर में बोला —मैं सत्या से ब्याह नहीं कर रहा हूं.

पुष्पा दौड़ती हुई बस्ती की ओर लौट पड़ी.

* *

कुछ देर बाद आकाश पर जो सूरज चमकता दिखायी पड़ा, वह इस प्रण के साथ ऊपर आया था कि मजदूरों के शरीर से सारे पसीने को निचोड़ कर रहेगा. दौड़ती हुई पुष्पा कुएं के पास से गुजरी ही थी कि हरबसिया ने उसे आवाज दे कर रोक लिया.

—क्या है चाची?

—अरी कलमुंही के बार तोके कह लीं कि हम तोर चाची नाहीं मौसी लागत बानी.

—ठीक है, चाची और मौसी दोनों एक ही बात है.

—हमर डोलवा उठा के जाना.

—मौसी, मरदों को तुम्हारे हाथ का पानी बहुत मीठा लगता होगा. सूरज की चमकती किरणें सीधे पुष्पा के चेहरे पर पड़ रही थीं. हरबसिया कुछ देर तक उसे एकटक देखती रही.

—क्या देख रही हो, मौसी?

दौड़ कर आने के कारण पुष्पा अब भी हांफ रही थी. नीचे-ऊपर होती उसकी छाती को देखती हुई हरबसिया बोल उठी—देखत ही देखत तोर में त जवानी डबडबा गईल, पुष्पी!

पुष्पा कुछ और लाल हो गयी.

—मौसी, मैं डोल उठा लूं?

—अरे कोई जल्दी ना बा. थोड़ा बात कर ले.

—तुम्हारा लहंगा बहुत सुंदर है, मौसी.

—पुष्पी, तू हमार एक बात मानेगी?

—तुम्हारे पास तो बस एक ही बात होती है, कोई नयी बात हो तब तो!

—तू जेतना पगली हवे ओतना ही तोर मां भी बाते.

—मैं डोल तो उठा लाऊं, मुझे भी पानी भरना है.

—तू हमार बात मान जइबे त मादाम बन के जीबे.

—चाची, फिर वही बात!

—अरी पगली तु लोग दूनों के दिन फिर जाये.

—तुम्हें डोल नहीं उठवाना है, तो मैं चलती हूं.

—हमर संगे खाली कोठी घूमे चलिए.

—मैं जाती हूं.

—अरी हमर डोर उठाती जा.

हरबसिया ने अपने सिर पर कपड़े का बीठा रखा और पुष्पा ने झुक कर डोल को उठा कर उसके सिर पर रख दिया. खेतों की ओर बढ़ने से पहले हरबसिया ने एक बार फिर कहा—घर पहुंच के सोचना.

पुष्पा मन-ही-मन खुश थी कि आज हरबसिया ने बात को थोड़े ही में खत्म कर दिया. अपने प्रयोजन को न तो विस्तार दिया और न ही प्रलोभन गिनाये. उन प्रलोभनों के असर से अपने को बचाते हुए पुष्पा कई बार सोचती रही थी—कोठी. . . वहां की हवेली. . . गहने. . . . सुंदर कपड़े. . .

उसकी मां ने एक ही थप्पड़ में उसके गाल को

लाल कर दिया था. . .बहुत अधिक गरमी थी.

हरबसिया की कुछ पुरानी बातों को सोचती हुई पुष्पा घर की ओर बढ़ गयी. वह गरमी जितनी बाहर थी, उतनी ही भीतर भी. वह मन-ही-मन सोचती रही. चंद बातों में किसन सचमुच ही बहुत पीछे थे. उन्हीं चंद बातों की उष्णता से जूझती हुई वह चलती रही. उसकी पलकें बोझिल हो चली थीं. उसके चेहरे पर पसीने के कई दाने चमक आये थे. भीतर से उस गरमी की अकुलाहट को लिये वह घर पहुंची. खटिया पर लेट कर उसने आंखें मूंद लीं. सूरज उसके भीतर धधकता रहा.

पुष्पा के बारे में कुंदन ने सबसे पहले किसन के ही मुंह से कुछ सुना था. जतन के यहां टिकते हुए एकाध बार उसने उस सांवली धुआंधार आंखों वाली लड़की को देखा भी था. इधर जब से जतन का घर उसका अपना घर हो गया था, तब से पुष्पा सुबह-शाम उसके सामने होती थी. जतन के घर के ठीक सामने वाली कतार में था वह घर. दोनों तरफ के घरों के बीच में जो बरगद का विस्तृत पेड़ था, उसी के नीचे के चबूतरे पर वह कभी चक्की में आटा पीसती नजर आ जाती, तो कभी कपड़ों में पैबंद जोड़ती हुई. दिन में दो-तीन बार कुंदन की अनुपस्थिति में भी वह कुंदन के घर पहुंच कर उसके जूठे बरतनों को मांजने के लिए उठा लेती और घर के बाकी कामों को भी निबटा जाती.

किसन ने जो बातें कुंदन को नहीं बतायी थीं, उन्हें पुष्पा ने भी उसे नहीं बताया था. फिर भी कुंदन के बारे में पुष्पा जो भी बात करती, उससे एक दुर्लभ घनिष्ठता का आभास होता. उसकी उन धुआंधार आंखों की धुंधली मायूसी कुंदन को बहुत अच्छी लगती. उसे बात-बात पर मुसकराते पा कर कुंदन मन-ही-मन दुआ कर बैठता कि वह निर्मल मुसकान सभी मजदूरों की स्थायी मुसकान बन जाये.

इस घर में आ कर और पुष्पा को नजदीक से जान कर कुंदन को एक रात अचानक ही खयाल आया कि कहीं पुष्पा तक अपनी पहुंच को अधिक सुविधाजनक बनाने के लिए तो किसन ने उसे उस घर का नहीं बनाया था? दूसरे क्षण वह अपने आप पर झुंझला उठा था. उसने इस बात को संयोग ही मानना चाहा कि पुष्पा के घर के पास ही घर खाली हुआ था. किसन का जो नदी की ओर कम जा कर इधर की ओर अधिक जाना शुरू हो गया था, उसे भी कुंदन अपने ही कारण समझा.

किसन के बारे में सोचते हुए उसे लगता कि पूरे गांव में वह अकेला था, अकेला, जिसके भीतर एक चिनगारी थी. कई वर्षों से चली आने वाली एक बेबसी को जला कर राख कर देने वाली चिनगारी. किसन के मुंह से वह संतू और मदन की कहानी सुन चुका था. वे दोनों प्रथम चिनगारियां थीं, पर एक को चारदीवारी निकल गयी थी और दूसरे की छाती से बग्घी गुजर गयी थी. इस खयाल से कुंदन कांप जाता कि कहीं किसन के भीतर की चिनगारी को भी भड़कते ही उसे मिटा न दिया जाये. पुष्पा को उसने सुबह और शाम के धुंधलके में अधिक देखा था, फिर भी वह उसे बहुत निकट की मानने लगा था.

यहां नये घर में आये कुंदन का पहला रविवार था. पहली बार वह काम पर से सूर्यास्त से पूर्व लौटा था. पहली बार बरगद के नीचे वह पुष्पा से काफी देर तक बात कर सका था.

—तुम पराठे बहुत अच्छी बनाती हो!

—मां तो कहती है कि मेरा पकाया पराठा लीटी की तरह होता है.

—घर की मुरगियां साग बरोबर, बेटी.

—पर क्या आपको सचमुच ही पसंद है?

—जो चीज अच्छी न लगे, उसे अच्छा क्यों कहूं?

—मुझे खुश करने के लिए आप कह भी सकते हैं.

—अच्छा यह तो बता कि तू कब तक मेरे लिए पराठे बनाती रहेगी?

—जब तक यहां रहूंगी.

—क्या, यहां से कहीं जाने की बात भी तुमने सोच रखी है क्या?

—चाचा! उसका ठुनक कर कहना कुंदन को बहुत अच्छा लगा.

—पुष्पी!

पुष्पा ने आंखें उठा कर कुंदन की ओर देखा.

—अगर तुम्हारा बाप होता तो तुम उसे क्या कहतीं?

—बाप कहती और क्या कहती?

—नहीं, मेरा मतलब यह नहीं.

—तो?

—तुम उसे आप-आप कह कर पुकारतीं या प्यार से तुम कहतीं?

—यह तो मैं नहीं जानती, चाचा!

—अच्छा तो तुम अपनी मां को कैसे पुकारती हो?

—तुम कह कर!

—तो फिर इसका मतलब है कि तुम मुझे कम चाहती हो?

—और आपको भी तुम कहना शुरू कर दूं तो?

—तो अधिक चाहने लगोगी.

—तो फिर अब आपको तुम कहूंगी.

कुछ देर के लिए दोनों के बीच बातें बंद रहीं.

—पुष्पी, तुम्हारी मां बीमार रहती है, फिर भी, वह सरदार की गाय के लिए घास काटती रहती है.

—उसी से तो हमें थोड़ा-बहुत आटा-चावल मिल जाता है, चाचा!

यह तो कुंदन को बाद में मालूम हुआ था कि रोजाना तीन गाय और दस बकरों के लिए घास जुटाने पर पुष्पा की मां को क्या मिलता था. सप्ताह में दो डिबिया चावल, तीन डिबिया आटा, मुट्ठी भर दाल और अंजुली पर तेल. उसी में दो प्राणियों का गुजारा हो जाता था, इस पर कुंदन को हैरत हुई थी. प्रश्न करने पर पुष्पा की मां के मुंह से उसने सुना था.—भैया.

चिरैई के पेट खातिर चिरैई ही के खुराक चाही न.

शाम को काम से लौटते हुए कुंदन कुएं के पास रुक गया था. पुष्पा कुएं से पानी निकाल रही थी और कुछ औरतें कुएं के इर्द-गिर्द खड़ी थीं. कुंदन को अपने बीच आते देख सभी को हैरानी हुई थी. पुष्पा ने हंस कर पूछा था—देवननन् चाचा! प्यास लगी है क्या?

किसी को यह नहीं मालूम हो सका था कि कुंदन सामने से आते हुए दो सिपाहियों से आंख बचाने के लिए औरतों के बीच पहुंचा था. बस्ती में पहली बार दो सिपाहियों को देख कर कुंदन डर गया था. एक के हाथ में जो जंजीर थी, वह काफी देर तक कुंदन के कानों में खनकती रह गयी थी. बाद में जब पुष्पा की मां के मुंह से उसने सुना कि वे यों ही गश्त लगाने आ गये थे, तो कुंदन ने चैन की लंबी सांस ली. फिर अपने चेहरे पर की लंबी दाढ़ी-मूंछ पर हाथ फेरते हुए मन-ही-मन हंस पड़ा. उसे पहचानना आसान थोड़े ही था.

* *

बरगद के पेड़ के नीचे औरतें मकई पीसती हुई चक्की की घड़घड़ाहट के साथ स्वर मिलाये गाये जा रही थीं. जांते की उस घड़घड़ाहट ने सबसे पहले उसे कैद की याद दिलायी, फिर जतसार के राग से बिहार का वह गांव याद आ गया, जहां उसकी मां एकदम इसी तरह सतवा पीसती हुई गाया करती थी. उन जतसारों की इधर-उधर की एकाध पंक्तियां उसे आज भी याद थीं. औरतों के स्वर के साथ वह भीतर-ही-भीतर गुनगुनाता रहा. धुन के बाद कुछ शब्द भी आ गये, अस्पष्ट से :

'मोरे नैहर के संदेसवा बेके तू पहुंचो
मोरे सैंया ताकत हूं मैं तोरी राह
गवां के कुवां पानी से भरल होवे
कि अकाल मचेला चहुं ओर
ननदीया मोरी जो तोहे आने न देवे
मोरे भैया देना न तू ओके चंदरहार
मोरे नैहर. . . .'

गौतम की मां अपने सातवें बच्चे को नहलाने के लिए उसके पीछे-पीछे चिल्लाती हुई दौड़ रही थी. कुंदन ने आगे बढ़ कर बच्चे को पकड़ लिया. गौतम की मां एक हाथ से अपनी ओढ़नी को ठीक करती हुई आगे आयी और दूसरे हाथ को आगे बढ़ा कर बच्चे का हाथ थामना चाहा कि कुंदन ने बच्चे को पीछे कर लिया.

—इसे मारोगी तो नहीं?

घूंघट के नीचे से गौतम की मां ने सिर हिला दिया और कुंदन ने बच्चे के हाथ को उसके हाथ में थमा दिया.

अपने हाथ-पांव धोते हुए भी कुंदन चक्की की घड़घड़ाहट और जतसार सुनता रहा. बिहार के खलिहानों और कैद की दीवारों के बीच भटकता रहा, जब तक कि पुष्पा सामने आ कर खड़ी न हो गयी. उसके हाथ में मिट्टी का बरतन था.

हाथ-पांव धो चुकने के बाद खड़े होते हुए कुंदन को पता चला कि मिट्टी के बरतन में ईख के रस से बनी भेली के दो टुकड़े थे. उसे समझते देर नहीं लगी कि एक टुकड़ा उसके लिए था और दूसरा किसन के लिए, जो वहां पहुंचने की वाला था. बस्ती में ईख की भेली चुपके-चोरी तैयार की जाती थी. अगर किसी सरदार को यह बात मालूम हो जाती तो उस घर के मजदूर कोरस की चोरी के अभियोग में मालिक के सामने पेश किया जाता था. फिर तो उस व्यक्ति के शरीर से कुर्त्ता और धोती उतार ली जाती थी और चकोतरे के कंटीले पेड़ के साथ उसे बांध कर तब तक कोड़े लगाये जाते थे, जब तक कि चीत्कार बंद न हो जाता और वह बेहोश हो कर लुढ़क न जाता.

यह दृश्य अभी कुंदन को देखने को नहीं मिला था. पर जो उसने सुना था, उससे तो यह भेली सहज में पचने वाली चीज-सी नहीं लगी. उसे डर था कि इस चीज को खाने का मतलब कहीं अपने जिगर पर लोहे के टुकड़े रख लेना तो नहीं था.

पुष्पा जब घर के भीतर जाने लगी, तब कुंदन ने देखा कि उसका लहंगा फटा हुआ था. उसे दुख हुआ. यह दुख उस समय और भी बढ़ गया, जब उसे मालूम हुआ कि पूरे वर्ष में एक ही लहंगे और एक ही चोली भर का कपड़ा सभी औरतों को मिलता है. मर्दों के लिए भी तो वही बात थी. एक धोती, एक कुरते में पूरा वर्ष बिताना पड़ता था. पुष्पा का लहंगा उस हालत में बिल्कुल नहीं था कि उसमें पैबंद आदि लगा कर कुछ और दिन बिताये जा सकते.

उसे उस गठरी की एकाएक याद आ गयी, जिसे अपने साथ लिये वह कैद से भागा था. उसमें मंगरू की वह पीली धोती अब भी उसी तरह थी. कई यादें सामने आने के लिए दिमाग में छटपटायीं, पर कुंदन ने उन्हें जेहन के भीतर ही बंद रहने दिया. एकाएक उसके भीतर एक उल्लास की व्यग्रता पैदा हो गयी थी. पहली बार उसके सामने किसी को कुछ भेंट करने का अवसर आया था. वह उससे चूकना नहीं चाहता था. वह तुरंत अपने स्थान से आगे बढ़ा. घर के कोने में पहुंच कर उसने पुस्तकों के तख्ते के बगल वाले मचान पर हाथ पहुंचाया. गठरी उसके हाथ आ गयी. उसने उसे खोला. मंगरू की वह पीली धोती अपनी दयनीय हालत में उसके सामने थी. एक बार फिर यादों ने उसके भीतर अकुलाहट पैदा की. एक बार फिर कुंदन ने यादों को फेनिल बुलबुलियों की तरह मिट जाने दिया. उसने उस धोती को उलट-पलट कर देखा. अब भी उससे पुष्पा के लिए दो लहंगे और दो चोलियां बन सकती थीं.

अगले अंक में

कुंदन ने मंगरू की वह पीली धोती पुष्पा को दी तो उसे देख कर पुष्पा की मां, फूलवंती के सामने पति का चेहरा आ गया—यानी मंगरू का चेहरा... और उन दिनों की यादें, जब वह बिहार से मारीच देश के लिए चली थी. . . .

ऐटेक्स्
सौंदर्य प्रसाधन

EYETEX
REGD.
EYETEX
KUMKUM PASTE
11 IN 1
EYETEX
BINDI

ARAVIND LABORATORIES
MADRAS-600 033

लिखाई में एक
नया आनन्द

लक्सर-कैमलिन
प्रस्तुत करते हैं
लिखाई के आधुनिक साधनों
में १००% डायनाफ्लेक्स निब
के साथ में :
एक्सैला और हालमार्क
हर एक के साथ धातु का एक
अतिरिक्त रिफिल

खूबसूरत कलमों की उच्चकोटि की डायनाफ्लेक्स निब की जांच आधुनिक स्वचालित मशीनों से की जाती है।

बिना रुके सरलता से चलती हैं और लिखाई का पूरा आनन्द देती है। एक्सैला और हालमार्क सुन्दरता और कारीगरी का उत्कृष्ट नमूना है। इन्हें खुद इस्तेमाल कीजिये या उपहार में दीजिये।

एक्सैला
luxor camlin CASSET DYNAFLEX TIP REFILL
हालमार्क

मुफ्त
एक खूबसूरत
पेनकेस पैनस्टैन्ड
आप के लिये।

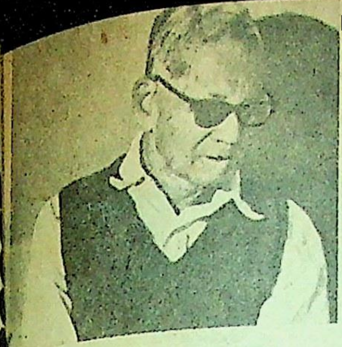
वि. स. खांडेकर

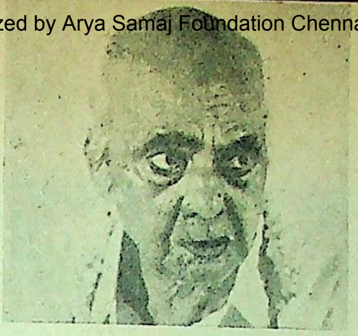
काजी नजरुल इस्लाम

जी. पी. वास्तव

श्रद्धांजलियां

यह एक दुखद संयोग ही है कि कुछ ही दिनों के अंतराल से हिंदी, मराठी और बंगला के तीन महान साहित्यकार हमारे बीच से उठ गये—और यह भी एक संयोग ही है कि इन तीनों के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये 'कला जीवन के लिए' के आदर्श में विश्वास रखते थे.

वि. स. खांडेकर

मराठी के मूर्धन्य साहित्यकार विष्णु सखाराम खांडेकर का नाम आने वाली पीढ़ियों श्रद्धा और आश्चर्य से लेंगी. ७८ वर्ष के अपने जीवनकाल में अधिकांश समय खांडेकर किसी-न किसी बीमारी से पीड़ित ही रहे, पर इसके बावजूद जो साहित्य वे छोड़ गये हैं, उस पर आश्चर्य ही हो सकता है—१५ उपन्यास, ३० कथा-संग्रह, १० निबंध-संकलन, ११ आलोचनात्मक ग्रंथ, १ जीवनी, १ नाटक, ५ अनुवाद, आदि.

पर परिमाण किसी लेखक की विशिष्टता नहीं बताता—विशिष्टता उसके कथ्य में होती है. अपने बारे में एक बार खांडेकर ने कहा था: 'मैं मात्र यथार्थवादी नहीं हूं—मैं सौंदर्यप्रेमी यथार्थवादी हूं. जीवन जैसा है, उसे वैसे ही चित्रित करना मुझे अभीष्ट नहीं, जीवन कैसा होना चाहिए, उसका चित्रण भी मैं करना चाहता हूं.'

ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त करने वाला उपन्यास **'ययाति'** उन्होंने १९५९ में लिखा था. पर इसके पूर्व ही **'उल्का'**, **'दोन ध्रुव'**, **'हिरवा चापा'** और **'दो मणे'** आदि उपन्यासों से वह महाराष्ट्र के युवा-वर्ग का मन जीत चुके थे.

काजी नजरुल इस्लाम

बंगाल के विद्रोही कवि नजरुल इस्लाम उन गिने-चुने बंगला साहित्यकारों में से थे जो अपने लेखन को रवींद्रनाथ टैगोर के प्रभाव से मुक्त रख सके. पर नजरुल के लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह जनता के कवि थे. उन्होंने अपनी रचनाओं में जन-भावनाओं को स्वर दिया. यही कारण था कि नजरुल के गीत आजादी के दीवानों के लिए मंत्र बन गये.

स्वयं को महाप्रलय का नटराज और वर्तमान का कवि कहने वाले नजरुल की कविताओं ने आजादी के दीवानों को नयी गीता, नयी चेतना और नया ओज दिया था. उनके प्रथम काव्य संग्रह **'अग्निवीणा'** ने ब्रिटिश शासन का तख्ता हिला दिया था. संग्रह जब्त कर लिया गया. पर कवि अब भी स्वतंत्र था. वह उसी जोश से से दहाड़ता रहा. **'विषेर बांशी'**, **'मांगर गान'**, **'प्रलय शिखा'**, **'दोलन चप्पा'**, **'नजरुल गीतिका'**, **'संचायिका'** आदि उनकी रचनाओं में विद्रोह का वही स्वर था.

जी. पी. श्रीवास्तव

लोगों को हंसाना भी अपने आप में कितनी गंभीर बात है, इस बात का सबसे पहले एहसास कराने वाले लेखक का नाम है गंगाप्रसाद अर्थात जी. पी. श्रीवास्तव. जी. पी. ने अपनी रचनाओं से पाठकों को खूब हंसाया है—यहां तक कि उनकी रचनाएं भुवाली सेनिटोरियम में क्षय रोगियों को पढ़ने के लिए दी जाती थीं ताकि वे प्रसन्न चित्त रहें.

व्यंग्यकार विसंगतियों में जीता है, सामाजिक विद्रूपताओं को समझता है और फिर स्वयं को जोकर बना कर इन विसंगतियों और विद्रूपताओं को स्वर देता है. ऐसा करते समय वह स्वयं कितना निरीह लगता है, यही उसकी सफलता की कसौटी है. और **'गड़बड़झाला'** (१९१२) से ले कर **'मिस्टर अकिल बहादुर'** (१९७१) तक का जी. पी. का लेखन इस कसौटी पर खरा उतरता है. अपने ८६ वर्ष के जीवन में उन्होंने ३५ ग्रंथ प्रकाशित करवाये.

पर इतना सब लिखने के बावजूद जी. पी. अभावों में जिये और अभावों में ही मरे भी. उन्होंने कहीं लिखा था: 'हिंदुस्तानी लेखक जब खुद ही कुआं खोदता है, तब कहीं उसे हलक तर करने के लिए दो-चार बूंद पानी नसीब होता है.' जी. पी. जिंदगी भर दो-चार बूंद पानी के जुगाड़ में लगे रहे. कुल मिला कर आम आदमी की यही स्थिति है. इसीलिए जी. पी. ईमानदारी के साथ आम आदमी की बात कह सके थे.

इन तीनों महान साहित्यकारों को हमारी श्रद्धांजलि! ☐☐☐

यह है हमारा सबूत :

SUMMARY OF DENTAL RESEARCH REPORTS
TESTS ON FLUORIDE
Kinkel and Stolte (Das Deutsche Zahnarzteblatt i.e. German
ntists' Journal, 1955, 9, 445-450) report the results of
scientific test on 400 children who used SIGNAL with
-Mono-Fluoro-Phosphate). The results
RESEARCH REPORTS
ON FLUORIDE
AND S 14

यह है आपका सबूत

मम्मी,
दांत का दर्द
क्या होता है?

केवल सिग्नल फ़्लोराइड साबित करती है कि यह दांतों की सड़न और सांस की दुर्गंध रोक देती

दंत-सफ़ाई के एक अनोखे आधार में.

सिग्नल में मिला फ़्लोराइड दांतों की सड़न रोक देता है :
दंतचिकित्सकों किंकेल और स्टोल्टे द्वारा जर्मनी में ४०० बच्चों पर किए गए परीक्षणों से यह सिद्ध हुआ है कि सिग्नल फ़्लोराइड दांतों के एनामेल पर एक घेरा बना देता है ताकि एनामेल तेज़ाब के हमले का और अधिक मुक़ाबला कर सके. इसीलिए तो सिग्नल इस्तेमाल करने वाले बच्चे यह नहीं जानते कि दांत का दर्द क्या होता है ! अपने परिवार की सुरक्षा के लिए अभी से सिग्नल चिकित्सा शुरू कीजिए.

सिग्नल में मिला S-14 सांस की दुर्गंध रोक देता है :
डा. हावर्ड ई. लिंड द्वारा यू. एस. ए. में किए गए परीक्षणों ने यह सिद्ध किया है कि सिग्नल में मौजूद S-14 मुंह में दुर्गंध पैदा करने वाले ९५% बैक्टीरिया को इस्तेमाल के १५ मिनट के अंदर ख़त्म कर देता है.

सिग्नल के दंत-सफ़ाई के अनोखे आधार से दांत ऐसे साफ़ जैसे डाक्टर करे :
सिग्नल के अनोखे अल्युमिना ट्राइ-हाइड्रेट आधार से आपके दांत ऐसे साफ़ हो जाते हैं जैसे किसी डाक्टर ने किए हों—
के एनामेल को बिना नुक़सान पहुंचाए
केवल सिग्नल में यह विशेष सम्मिश्रण मौजूद है : फ़्लोराइड और S-14 दंत-स
के एक अनोखे आधार में.
कोई भी दूसरी टूथपेस्ट इतना नहीं कर स

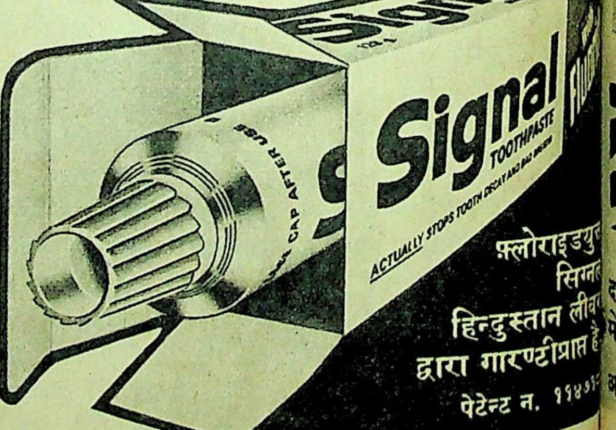
Signal
TOOTHPASTE
ACTUALLY STOPS TOOTH DECAY AND BAD BREATH
CAP AFTER USE
फ़्लोराइडयुक्
सिग्नल
हिन्दुस्तान लीवर
द्वारा गारण्टीप्राप्त है
पेटेन्ट न. ११४३

**केवल सिग्नल फ़्लोराइड
के पास है सबूत–
अपने दंत-चिकित्सक से पूछिए.**

लिंटास-SGF.63-140 HI

यह है एक बहुपयोगी घरेलू दवा जो कि, दादाजी की पीठ का दर्द, दादीमाँ के बदन का दर्द, माँ का सर दर्द, पिताजी का जुकाम और लड़के की मोच, सबकुछ ठीक कर देती है।

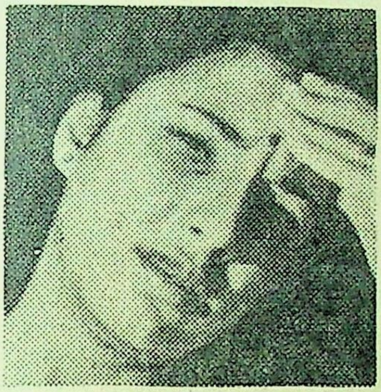

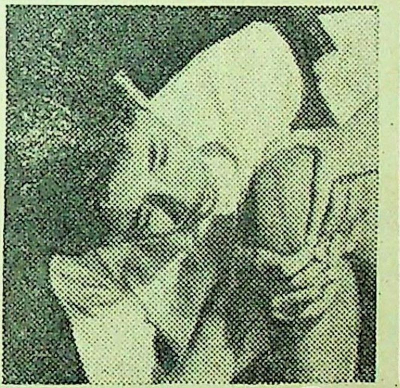

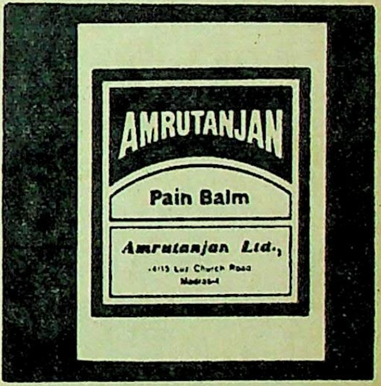
AMRUTANJAN
Pain Balm
Amrutanjan Ltd.,

अमृतांजन

दर्द, सर्दी-जुकाम और मोच की जगहों पर थोड़ा-सा मृदुल अमृतांजन लगाकर मालिश कीजिये। कुछ मिनटों में ही आप इसके प्रभावकारी दस दवाओं का असर महसूस करेंगे और आपको आराम भी पहुँचेगा।

अमृतांजन—जार, शिशियों और कम कीमत वाली टिन की डिबियों में मिलता है।

अमृतांजन— ८० साल से अधिक समय से एक निर्भरयोग्य घरेलू दवा

AM 1254

अमृतांजन लिमिटेड

उन पत्नियो के लिए
जो परिवार की
"वित्त मंत्री" हैं

बजट बनाते समय
वेतन के दिन ही जीवन बीमा
प्रीमियम के लिए व्यवस्था कर लें

वेतन का दिन
प्रीमियम भरने का दिन है

लाइफ इन्श्योरेन्स
कारपोरेशन आफ इण्डिया

क्या आपका जीवन बीमा पर्याप्त है ? क्या आपने बच्चों की शिक्षा, विवाह कर-देयताओं, बुढ़ापे व अन्य आकस्मिक ख के लिए पहले से प्रबन्ध कर रखा है।

आपके जीवन बीमा एजेन्ट या निकटतम जीवन बीमा निगम के कार्यालय को हमारी योजनाओं के विस्तृत लाभों समझाने में प्रसन्नता होगी।

RADEUS/LIC/AS-17

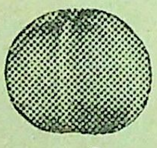

आमला आपके बालों के
लिये फ़ायदेमंद है

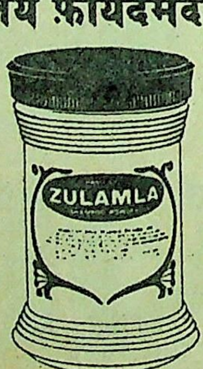

ज़ुलामला
उस से भी अधिक
फ़ायदेमंद है।

HD-3831 AI-H

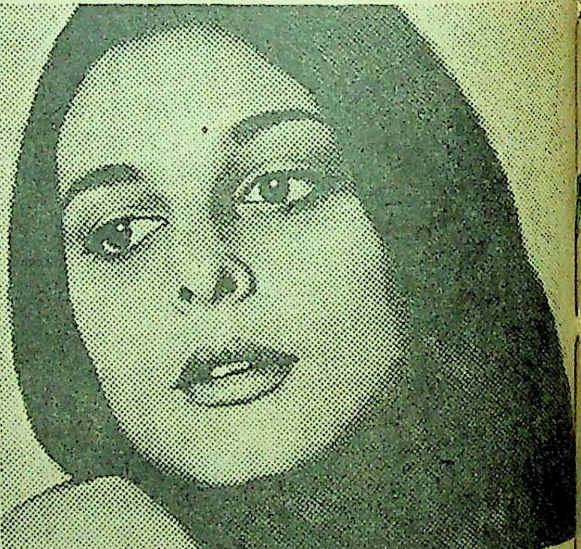

क्योंकि ज़ुलामला में आमला के साथ साथ शिकाकाई, सरसों और दूसरी जड़ी-बूटियां भी शामिल हैं।

ज़ुलामला बालों को धोता ही नहीं बल्कि बालों का पोषण भी करता है। ज़ुलामला की जड़ों में प्राकृतिक चिकनाहट को कायम रखता है जिसे साधारण साबुन और कैमिकल शैम्पू ख़त्म कर देते हैं। यह आप के सिर की ख़ुश्की को दूर करता है, बालों गिरने से रोकता है और समय के पूर्व बालों को सफ़ेद होने से बचाता है।

ज़ुलामला बालों की हिफ़ाज़त के लिये

हमद

रेज़र से त्वचा कटाकर और खूँटे-से बाल उगाकर झेंपते रहिए या...

एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर से रेशम-सी कोमल त्वचा पाइए

शेविंग ? नहीं, यह तो पुरुषों के लिए है। फिर त्वचा कटने और बाल कड़े उगने का भी डर। तो ? इसके लिए एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर लगाइए। कैसे ? बिल्कुल आसान है : अनचाहे बालों पर क्रीम लगाइए; थोड़ी देर ठहरिए, फिर गीली रूई से पोंछ डालिए। यह त्वचा के नीचे जाकर कार्य करता है। देखा बाल ग़ायब! आपकी त्वचा हफ़्तों मुलायम। तो छोड़िए रेज़र, एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर अपनाइए।

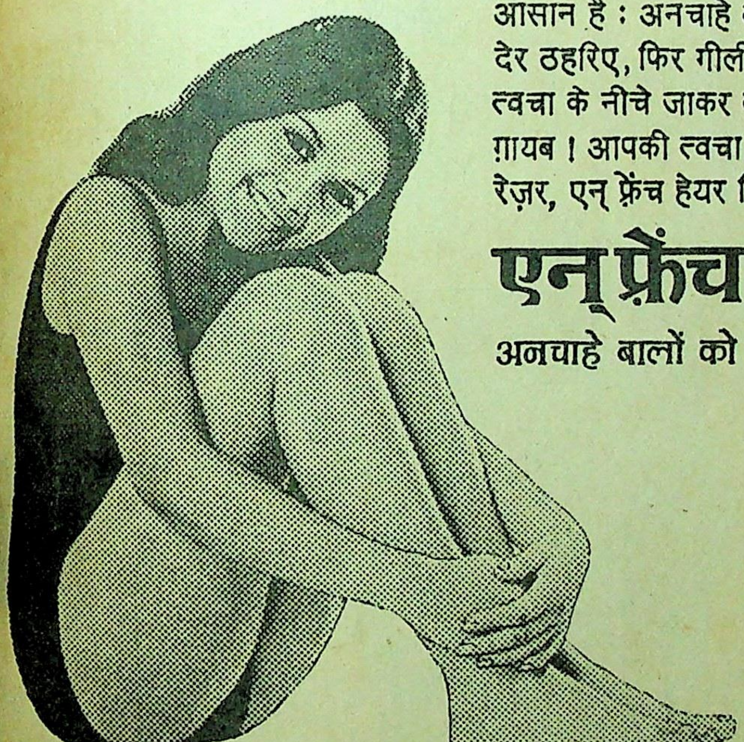

एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर

अनचाहे बालों को हटाने का मनचाहा क्रीम

HAIR REMOVER
FACIAL QUALITY
Anne French
HAIR REMOVER
CREAMS HAIR AWAY FROM FACE, LEGS, ARMS & UNDERARMS
75g

Licensed user of TM : Geoffrey Manners & Co. Ltd.

126 HR-203 Hin

२ साइज में सुलभ : ४० ग्रा. और ७५ ग्रा.

बेनेट कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए श्रीकृष्ण गोविंद जोशी द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित; जनरल मैनेजर : डॉ. राम तरनेजा; पो. बाक्स २१३, बंबई-४०० ००१; दिल्ली आफिस : ७ बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-११० ००२; कलकत्ता आफिस : १३/१ और १३/२ गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट. लंदन आफिस : ९६, द फर्स, एलेक्जेंड्रा रोड, हौंस्लो टी डब्ल्यू ३, ४ आर एच, मिडिलसेक्स, यू.के.

पंजीयत सं. एम. एच. दक्षिण बंबई-३१९

शंख मार्का
K.E.Mb. ABOOBACKER
சங்கு
REGISTERED
TRADE MARK
கொ.இ.முகம்மது அபுபக்கர்
लुंगी
रुमाल

मोहम्मद अबूबकर एंड कं.
२५, थम्बु चेट्टी स्ट्रीट, मद्रास-६००००१.
शाखा : कलकत्ता • मदुरै • कोल्लम
बंगलूर में हमारा नूतन शो-रूम: "हिन्दुस्तान काम्प्लेक्स" ११/बी, बी वी के अय्यंगार रोड, बंगलूर-५६०००१.

दी:तीन लेखिकाएं
या
ारह अन्य लेखक

सारिका

गुरुकुल कांगड़ी

नवंबर १९७६

12-11-76

अभिमन्यु अनत के धारावाहिक
उपन्यास 'लाल पसीना' की
छठी किस्त

15.11.76
रु. 2.66

●

गर्दिश के दिन-गुरुबचन सिंह

●

मधुकर सिंह के शीघ्र प्रकाश्य
उपन्यास का एक अंश

●

और
सभी स्थायी स्तंभ

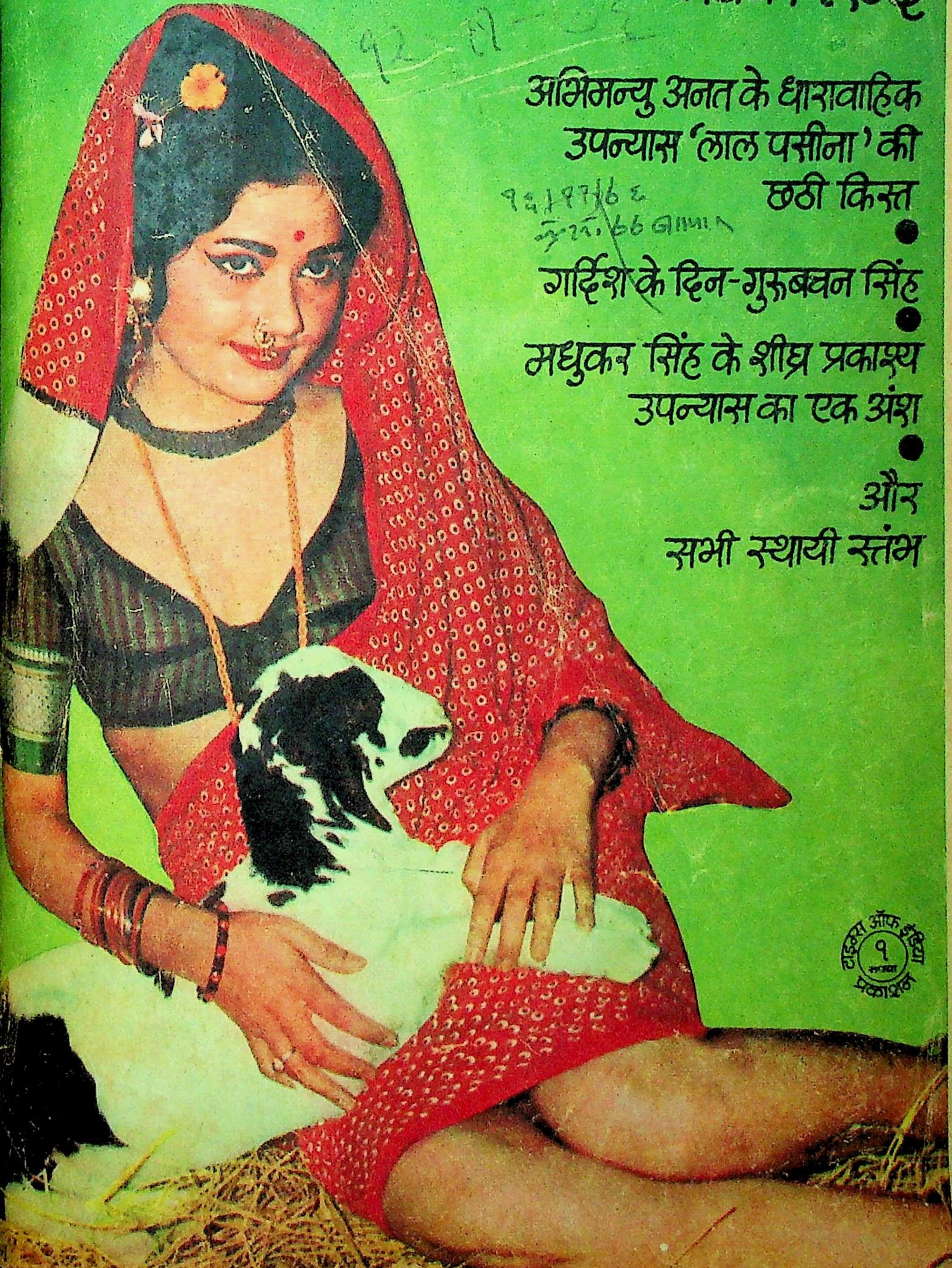

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन
१

मॉडेला कम्बल की मांद में गुलाबी गरमाहट का आनन्द लीजिये

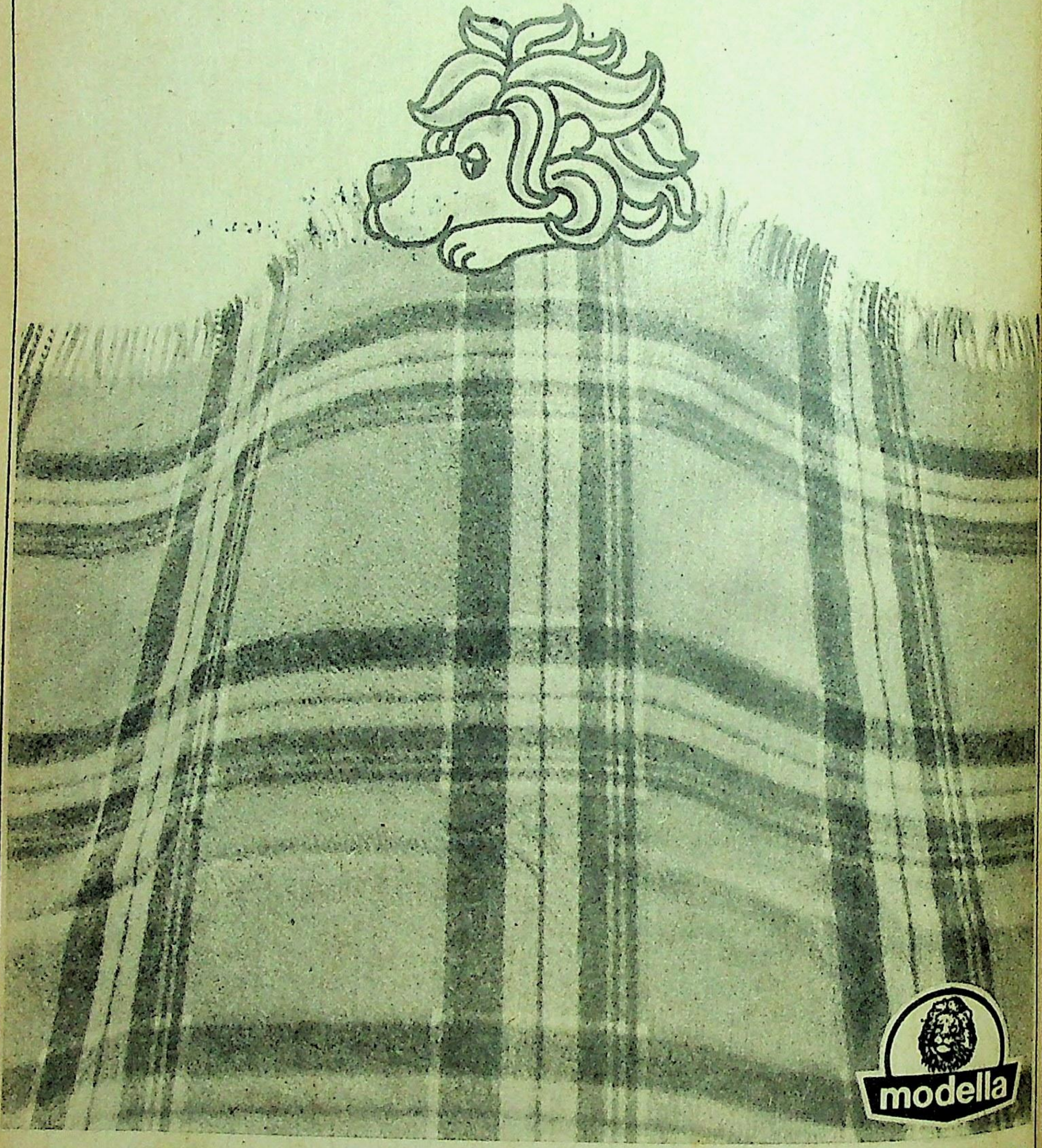

मॉडेला टेक्सटाईल इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड, मॉडेलाग्राम, थाना, महाराष्ट्र

CONCEPT-MTI-2533 HIN

Learn a language in 3 months
the LINGUAPHONE way

FIRST YOU LISTEN THEN YOU UNDERSTAND
THEN YOU SPEAK

When you were a child you learnt to talk naturally, in your mother tongue. To begin with, you didn't speak at all. You listened. As you listened you gradually absorbed the sounds. Soon you began to connect in your mind the sounds with the objects. You heard people say "Ma" and you saw your "Ma" in front of you.

This is how you learn ENGLISH FRENCH GERMAN RUSSIAN JAPANESE SPANISH through Gramophone records or Cassettes & books.

For a FREE copy of our prospectus write to
LINGUAPHONE INSTITUTE 156/E11 359, D. Naoroji Road, Bombay 400023

LINGUAPHONE INSTITUTE, 156/E11 359, D. Naoroji Road, Bombay 400023

Please send me a FREE Prospectus for...
(specify language)

Name...

Address...

....

INTERNATIONAL CORRESPONDENCE SCHOOLS
ICS

POSTAL COURSES FOR BRIGHT CAREERS

Hotel Reception
ARCHITECTURAL DRAWING & DESIGN
ELECTRONIC ENGG.
ELECTRONIC INSTRUMENTATION & CONTROL SYSTEMS
Industrial Electronics
PLASTIC TECHNOLOGY
REFRIGERATION & AIR CONDITIONING
AUTOMOBILE ENGG.
Radio & TV Servicing
Radio & TV Technicians
SANITARY ENGINEERING
Practical Plumbing
C. & G. TELECOM. TECH.
COTTON CARDING & SPINNING
Electronic Technicians
Purchase Officer

Sales Promotion
High Speed Diesel
Textile Technology
Textile Designing
Textile Mill Supervisor
Paper Manufacturing
Pulp Making
Boiler Engineering
Gas & Electric Welding
Industrial Instrumentation
Mechanical Engineering
Electrical Engineering
Chemical Engineering
Computer Engineering
Civil Engineering
Television Servicing
Institute of Marketing Exam.
Television Engineering

Transistor Radio Servicing
ACCOUNTING & AUDITING
PRIVATE SECRETARY
PUBLIC RELATIONS
COST ACCOUNTING
Storekeeping
GOOD ENGLISH
Advanced English
German, French
Effective Business Letters
Shorthand & Typing
General Advertising
Administrative Accounting & Data Processing Exam.
T.V. Script Writing
Cartooning
Computer Programming
Business Training
INST. OF BOOK-KEEPERS EXAM.

CAREERS IN MANAGEMENT

HOTEL & CATERING MGT
INDUSTRIAL MANAGEMENT
General Management
Works Management

Personnel Management
Office Management
Sales Management
Management Practice

Industrial Psychology
Marketing Management
BUSINESS MGT.
Production Control

YOUR PROFESSION—YOUR HOBBY

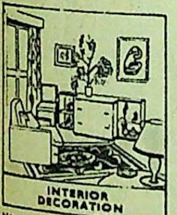

Water Colour Painting
Portrait Painting

Etiquette & Entertaining
Poultry Keeping
Flower Arranging
Gardening
INTERIOR DECORATION
PATTERN CUTTING & DESIGNING
BEAUTY CARE & PERSONALITY
FREE LANCE JOURNALISM
SHORT STORY WRITING
PRACTICAL PHOTOGRAPHY
FINE ART
OIL PAINTING
Commercial Art
BEAUTY CARE & PERSONALITY

DRESSMAKING

Mention subject of interest and post coupon or Write today for a free prospectus to
INTERNATIONAL CORRESPONDENCE SCHOOLS
156/C11, UCO Bank Bldg., Hutatma Chowk, P.O. Box 1931, Bombay 400 023

INTERNATIONAL CORRESPONDENCE SCHOOLS
156/C11, UCO Bank Bldg., Hutatma Chowk, P.O. Box 1931, Bombay 400023

Send me a FREE Prospectus in the SUBJECT...

Name... Education ....

Address...

....

NORVICSUN

BIET BRITISH INSTITUTES
HOME-STUDY COURSES ENSURE BETTER FUTURE

These Bodies recognise our courses:

D.B.M. Business Mgt. • Cert.A.I.I.B. • D.Com. Business Organisation • D.Com. Accounts & I. Tax • D.Com. Banking • D.Com. Company Secretary • D.Com. Costing • A.I.A.M. A.M.I. Mech. E. (India) Govt. recog.

Successful Managers

Marketing Manager, Industrial Adm. & Mgt., Sales Manager, Personnel Manager, Purchase Officer, Mgt. Executive, D.Com. Business Organisation, Pract. and App. Psychology, Mgt. Accountancy, Export Mgt., Junior Executive, Materials Mgt., D.Com. Accts. & Income Tax, Business Administration

EXAMINATIONS—NO-PASS-NO-FEE
D.B.M. Business Mgt. ★★ C.A. ENTRANCE ★★ D.Com.
A.M.I. Mech. E. (India) Govt. recog.
A.M.I.E. India, A.M.I.I.CHEM.E., A.S.E. (Chem.), A.S.E. (Civil), A.M.Ae.S.I., A.S.E.(MECH.), A.S.E. (ELECT.), A.C.S. Company Secretary, Govt., recog., N.P.C. SUPERVISOR'S

LEARN COMMERCIAL ART
Art Training by Nature's Method, Cartoon, Caricature and Humorous Drawing, COMMERCIAL ART, Magazine, Book and Newspaper Illustration, Water Colour Painting
Essential Artist's material supplied.

PRIVATE SECRETARY Learn Business Correspondence. Office Organisation, Psychology. Public Relations.

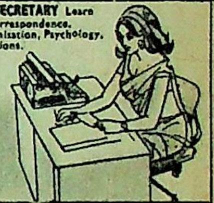

TELEVISION
We teach RADIOMEN & NOVICES to trace FAULTS and REPAIR Television Sets.

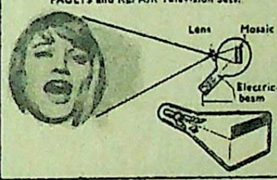

BUILD YOUR OWN TRANSISTOR
LEARN to find FAULTS and REPAIR and SERVICE Transistor Radios. PHILIPS Transistor Trainer Kit is supplied by us.

Select Your Course NOW
GOOD ENGLISH, GERMAN, FRENCH, COLLEGE ENGLISH, RUSSIAN

FICTION WRITING
Reporting
ARTICLE WRITING
T.V Writing
Writing for Children
TEXTILE MANUFACTURE
TEXTILE TECHNOLOGY
Income Tax Practitioner
Export Mgt.
BUILD YOUR RADIO (Our Kits & Comp.)
Chemical Engg.
C. & G. Electrical Engg.
Jig & Fixture Design
I.I.T. ENTRANCE EXAM.

Computer Programming IBM 360
AUTOCODER PROGRAMMING
BUSINESS LETTERS
INDUSTRIAL CHEMISTRY
ARCHITECTURE
AUTOMOBILE ENGG.
CIVIL ENGINEERING
Diesel Engineering
ELECTRICAL ENGG. & ELECTRONICS
ELECTRICAL SUPERVISOR
Mech. Draughtsmanship
LCC Higher Stage Exam. in Salesmanship
Personality Development and Human Relations

MECHANICAL ENGG.
Overseers (Bldg. & Roads)
REFRIGERATION & Refrigerator Servicing
RUBBER TECHNOLOGY
Bank Officer
Company Secretary
ADVERTISING OFFICER
Cost Accountancy
Salesmanship
Sales Engineers
Shorthand (Pitman)
PETROLEUM TECHNOLOGY
ACCOUNTANCY
Industrial Engineers
PUBLICITY EXECUTIVE
Psychology

Our FREE career guide will give you full information about our courses and system of teaching. ACT NOW.
SEND COUPON OR WRITE TODAY TO
THE BRITISH INSTITUTES, 156/A11 P.O. Box 1025, 359, D. N. Road, Bombay 400 023

POST THIS COUPON TODAY
THE BRITISH INSTITUTES, 156/A11 P. O. Box 1025, 359, D. N. Road, Bombay 400 023

Send me a FREE Prospectus in the SUBJECT ....

Name... Education ....

Address...

....

वेस्टन का अनोखा संसार

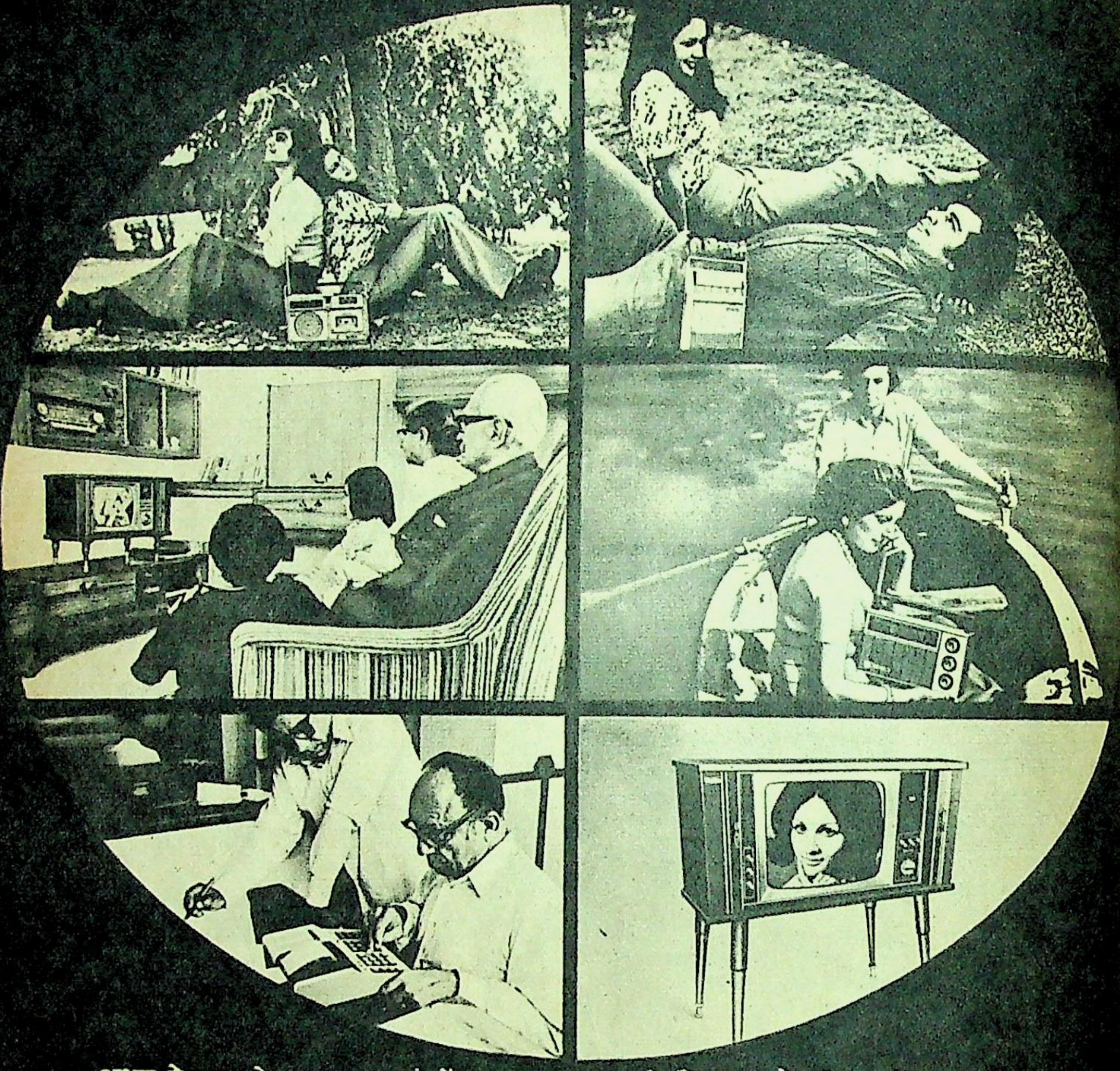

आज वेस्टन के उत्पादन पांचों महाद्वीपों में पहुंच चुके हैं. ये चालीस देशों में लोगों के जीवन का अंग बन गए हैं. विदेशी मुद्रा में इनका मूल्य करोड़ों रुपये में है.

यह है वेस्टन की दुनिया, और इसका जन्म उच्च तकनीक के युग में हुआ. इसके उत्पादन इसी युग के अंग हैं. ये आधुनिक और प्रगतिशील हैं. वे साधन आज आपका मनोरंजन करते हैं. आपके जीवन में नयापन लाते हैं.

वेस्टन के उत्पादन :- टेलीविजन, कैसेट टेप रिकार्डर, टू-इन-वन, कार स्टीरियो, ट्रांजिस्टर रेडियो और इलैक्ट्रानिक कैलकुलेटर.

Weston®
The electronics people

मान्यता प्राप्त निर्यातक

वेस्टन इलैक्ट्रानिक्स लिमिटेड

रजिस्टर्ड आफिस :- 244 ओखला इन्डस्ट्रियल एस्टेट नई दिल्ली-110020

नई दिल्ली 632277, बम्बई 362979, कलकत्ता 231459, मद्रास 811028,
पुणे 24343, लखनऊ 25885, कानपुर 66250, अमृतसर 51313.

CHAITRA-WE-325-HIN

क्या आपको वह दिन याद है जिस दिन आपकी शादी हुई थी? आप अत्याकर्षक दुल्हन थीं, दूसरी लड़कियां आपके प्रति ईर्ष्या अनुभव कर रहीं थीं। या आप सबसे ज़्यादा सजीले-अलबेले दूल्हा थे...गर्वपूर्ण!

अब जरा आईने में अपनी शक्ल देखिए!
पहले और अब में क्या फर्क दिखाई देता है?
इन प्रश्नों के उत्तर ईमानदारी से दीजिये
क्योंकि इस से आपको अपना शरीर छरहरा, सुन्दर
और स्वयं को प्रसन्न बनाने में सहायता मिलेगी।

१. क्या आपके मोटे होने के कारण आपके पति दूसरी महिलाओं को ताकते रहते हैं?

बेशक आपके पति आपसे प्रेम करते हैं लेकिन आप उन्हें दूसरी महिलाओं की ओर ताकते रहने पर दोषी नहीं ठहरा सकतीं, जो छरहरे शरीर और आकर्षक रूप वाली होती हैं। उन्हों ने तो आप से नहीं कहा था कि आप मोटी हो जायें—क्या उन्हों ने आपसे कहा था कि आप सुस्त और आलसी हो जायें? फिर आप उन्हें कैसे दोष दे सकती हैं? सारी ख़ता खुद आपकी है। लेकिन अब भी आप खुद को बदल सकती हैं—पहले जैसी आकर्षक और छरहरे शरीर वाली हो सकती हैं। कूपन भरकर भेज दीजिये—यह आपके पति को अपना बनाये रखने में आपकी मदद करेगा।

मिस जे. डीसूज़ा

"वेटलॉस ने २ महीने में मेरी जिंदगी बदल डाली। मेरा वज़न १५ किलो घट गया। वेटलॉस आश्चर्यजनक है!"

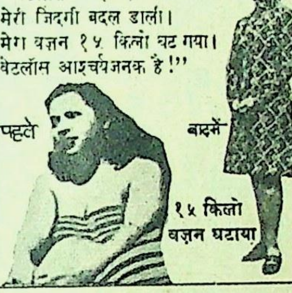

वेट लॉस फोर्स
३४ मित्तल चेम्बर्स. नरीमान प्वाइंट,
बम्बई ४०००२१.

यह कूपन आपको बाजुओं, गर्दन, कमर, रानों, कूल्हों, नितंब और पिंडलियों पर से तेज़ी के साथ वज़न कम करने में आपकी मदद करेगा। अगर आप अपना वज़न घटाने में सचमुच रुचि रखते हैं तो यह कूपन काटकर आज ही डाक से भेज दीजिये।

कृपया मुझे रु. ६६/- में वेट लॉस प्लान शीघ्र भेजिए। ☐ वी.पी.पी. ☐ चैक ☐ मनी आर्डर ☐ किसी एक जगह निशान लगाइये। SA/NOV/76
मैं वी.पी.पी. से ऑर्डर कर रहा हूं। मैं पोस्टमनको पैसे देनेकी गारंटी देता हूं।
(कृपया आपका पता अंग्रेजी में लिखिये)

नाम ____________________
पता ____________________
____
डाकघर ____________ पिनकोड ____________ उम्र ______
चैक, मनीआर्डर रॅास मुरारका इंडिया प्राइवेट लि. के नाम से भेजिये।

Cut out and mail

कोई भी एक कूपन काटकर भेजिए।

२. क्या आपके मोटे होने के कारण आपकी पत्नी आपसे चोरी-छिपे घृणा करती हैं?

बेशक आप कमाऊ हैं और आपको खूब डटकर खाने का अधिकार प्राप्त है लेकिन इसका यह अर्थ तो नहीं कि आप 'तोंदू' हो जायें या 'गोल-गप्पा' बन जायें। आपको अपनी उम्र से ज्यादा का नहीं दिखाई देना चाहिए। ऐसे में अगर आपकी पत्नी चोरी-छिपे आपसे घृणा करती है तो इसका कारण यह है कि आपने खुद को एकदम छूट देदी—इसमें खुद आपका ही दोष है। वह तो उस गबरू जवान को ढूंढा करती है जिसके साथ उन्हों ने शादी की थी। लेकिन अब आप अपने को बदलकर पहले से बेहतर दिखाई दे सकते हैं। यह कूपन भरकर भेज दीजिये, आपकी पत्नि फिर आपके प्रेम की माला जपा करेंगी।

मिस्टर जगदीश खन्ना

"केवल ५ महीने में मेरा वज़न १६ किलो घट गया! वेटलॉस का शुक्रिया!"

बादमें
पहले
१६ किलो वज़न घटाया

वेट लॉस फोर्स
३४ मित्तल चेम्बर्स. नरीमान प्वाइंट,
बम्बई ४०००२१.

यह कूपन आपको बाजुओं, गर्दन, कमर, रानों, कूल्हों, नितंब और पिंडलियों पर से तेज़ी के साथ वज़न कम करने में आपकी मदद करेगा। अगर आप अपना वज़न घटाने में सचमुच रुचि रखते हैं तो यह कूपन काटकर आज ही डाक से भेज दीजिये।

कृपया मुझे रु. ६६/- में वेट लॉस प्लान शीघ्र भेजिए। ☐ वी.पी.पी. ☐ चैक ☐ मनी आर्डर ☐ किसी एक जगह निशान लगाइये। SA/NOV/76
मैं वी.पी.पी. से ऑर्डर कर रहा हूं। मैं पोस्टमनको पैसे देनेकी गारंटी देता हूं।
(कृपया आपका पता अंग्रेजी में लिखिये)

नाम ____________________
पता ____________________
____
डाकघर ____________ पिनकोड ____________ उम्र ______
चैक मनीआर्डर रॅास मुरारका इंडिया प्राइवेट लि. के नाम से भेजिये।

Cut out and mail

३. क्या आपके मोटे होने के कारण आपके 'बास' नयी सेक्रेटरी रखना चाहते हैं?

लेकिन क्या इसमें उनकी कोई ग़लती है। जब उनसे मिलने वाले आते हैं तो उनपर पहली छाप आपकी ही पड़ती है और वह सोचते हैं कि "अगर उसकी सेक्रेटरी ऐसी 'मोटी' है तो वह खुद भी 'भोंदू' होगा' ऐसी हालत में अगर वह नयी सेक्रेटरी रखना चाहते हैं तो बिलकुल निर्दोष हैं। आखिर एक आकर्षक सेक्रेटरी का फ़ायदा यही तो है कि 'बॉस' का काम कम तनावपूर्ण रहे। अब भी आप खुद को बदल सकती हैं—वज़न घटाना बिलकुल आसान है। यह कूपन भरकर भेजिये, यह नयी नौकरी ढूंढने से आसान है।

मिसेज़ शहनाज़ बाटलीवाला

"शरीर का वज़न ३० किलो घट जाना कितना अच्छा लगता है! वेटलॉस वाक़ई सबसे बढ़िया है।"

पहले
बादमें
३० किलो वज़न घटाया

वेट लॉस फोर्स ३४ मित्तल चेम्बर्स,
नरीमान प्वाइंट, बम्बई ४०००२१.

यह कूपन आपको बाजुओं, गर्दन, कमर, रानों, कूल्हों, नितंब और पिंडलियों पर से तेज़ी के साथ वज़न कम करने में आपकी मदद करेगा। अगर आप अपना वज़न घटाने में सचमुच रुचि रखते हैं तो यह कूपन काटकर आज ही डाक से भेज दीजिये।

कृपया मुझे रु. ६६/- में वेट लॉस प्लान शीघ्र भेजिए। ☐ वी.पी.पी. ☐ चैक ☐ मनी आर्डर ☐ किसी एक जगह निशान लगाइये। मैं वी.पी.पी. से ऑर्डर कर रहा हूं। मैं पोस्टमनको पैसे देनेकी गारंटी देता हूं।
SA/NOV/76

नाम ____________________
पता ____________________
____
डाकघर ____________ पिनकोड ____________ उम्र ______
चैक, मनीआर्डर रॅास मुरारका इंडिया प्राइवेट लि. के नाम से भेजिये।

Cut out and mail

आपको हास्य का पात्र समझते हैं? अगर आप अपने शरीर की उपेक्षा नहीं करेंगे/करेंगी तो लोग भी आपकी उपेक्षा नहीं करेंगे!

HEADSTART-WL-547-HN

उत्साह भरा जीवन
नेस्कैफे® के ताज़ा और स्फूर्तिदायक स्वाद से
NESCAFE
instant coffee
Made from finest 100% pure coffee
नेस्कैफे®
एकमात्र इन्स्टैन्ट कॉफी
जो १००%
शुद्ध कॉफी से बनी है
दुनिया भर में सबसे ज्यादा बिकने वाली
इन्स्टैन्ट कॉफी
NSC.3/76 HIN

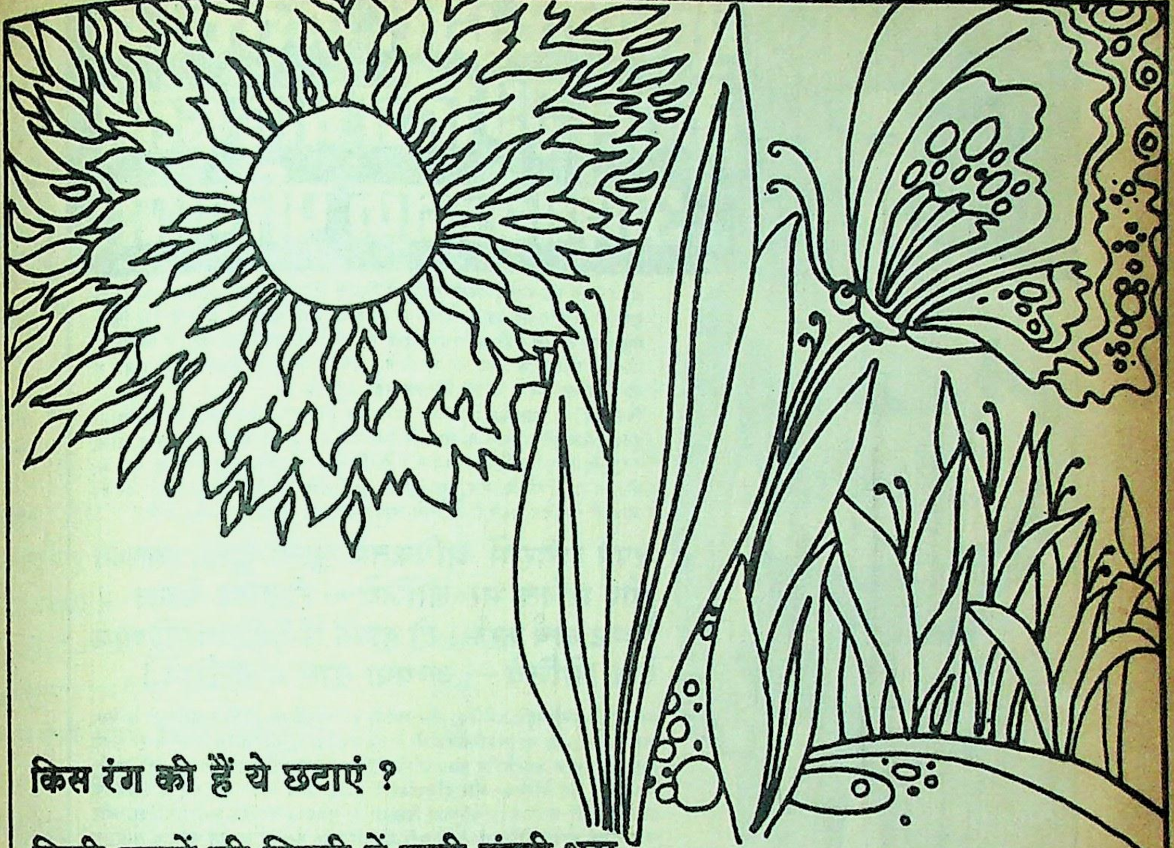

किस रंग की हैं ये छटाएं ?

खिली सरसों की पियरी में सजी-संवरी धरा
दुलहन केतकी का कौतुक करती
चुनरिया ओढ़ी तितलियां
दूल्हे आकाश के मस्तक पर प्रदीप्त
चन्दनी टीका
बाराती पर्वतों की चोटियों पर
बची-खुची धूप की पगड़ियां
समर्पण सेतु आंचल में बंधे
दूल्हा-दुलहन
मूक क्षणिक साक्षी अग्नि
उल्लास
शुभ
परिपक्व

पीले रंग की अनेक छटाएं

NEROLAC
NEROLAC
SOLDIER

नेरोलॅक

U.GNH-31

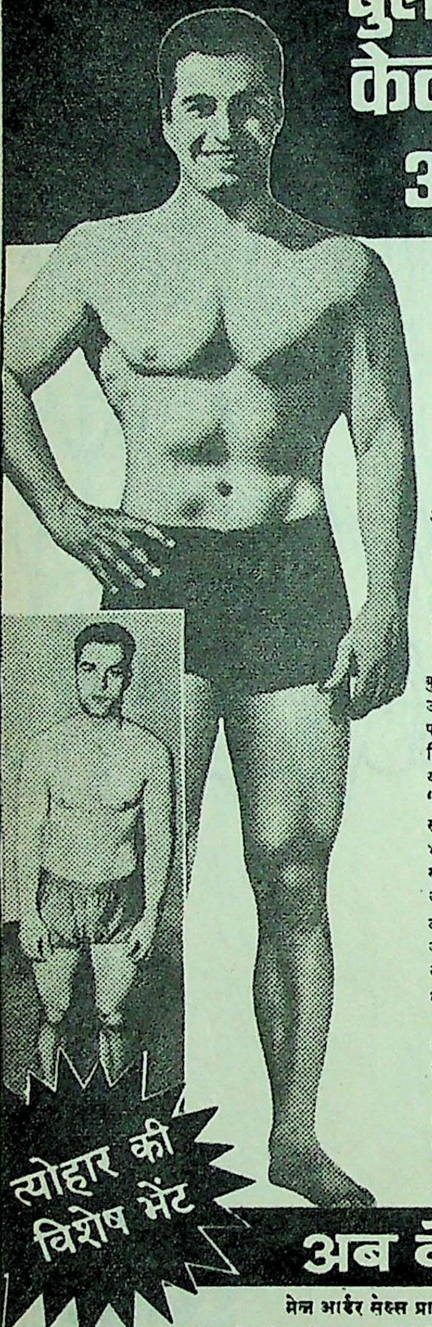

बुलवर्कर द्वारा कसरत के केवल ३५ दिन बाद इतने आश्चर्यजनक परिणाम!

श्री जे. एच एक व्यस्त एक्ज़ीक्युटिव हैं जिनके दिन का ज़्यादा भाग एक दफ़्तर में गुज़रता है और जब वह घर वापस लौटते हैं तो इतने थके-मांदे होते हैं कि किसी प्रकार की कसरत नहीं कर सकते। सुबह को भी ऐसी भाग-दौड़ रहती है कि उल्टा-सीधा नाश्ता करके दफ़्तर को भागते हैं। सच तो यह है कि स्कूल छोड़ने के बाद से वह नियमित रूप से कसरत बिल्कुल **नहीं** कर पाये...

फिर उन्हों ने **बुलवर्कर** से कसरत करनी शुरू की। ज़रा इन दो फ़ोटोओं को ध्यानपूर्वक देखिए जो ५ हफ़्ते के अंतर से लिये गये थे। इन ५ हफ़्तों में उनका सीना १२.५ सें.मी; पुट्ठे ५ सें.मी; गर्दन २.५ सें.मी; रानें ८ सें.मी: और पिंडलियां २.५ सें.मी. बढ़ गयीं। श्री जे. एच. अब चुस्ती-फुर्ती और शक्ति से भरपूर दिखाई देते हैं। आप भी ऐसे बन सकते हैं... इसमें आपके रोज़ाना सिर्फ़ ५ मिनट लगेंगे!

अपने शरीर में अधिकतम चुस्ती-फुर्ती, स्वास्थ्य और शक्ति भर लीजिये— रोज़ाना केवल ५ मिनट खर्च करके! दो हफ़्तों में निश्चित परिणाम देख लीजिये— अन्यथा दाम न दीजिये!

बुलवर्कर को सबसे पहले अमेरिका और जर्मनी की ऑलम्पिक टीमों के प्रशिक्षण के लिए उपयोग किया गया था (अमेरिकन टीमों ने ३० स्वर्ण पदक और जर्मन टीमों ने १० स्वर्ण पदक जीते) आज अंतर्राष्ट्रीय बुलवर्कर को कैशियस क्ले (मोहम्मद अली) एडी मर्क्स, विम रसका जैसे चैम्पियन और दुनियाभर में लाखों अन्य लोग प्रयोग कर रहे हैं क्योंकि यह 'अति-शी-घ्र' शानदार परिणाम दिखाता है! बुलवर्कर 'स्टेटिक आईसोमेट्रिक्स' और 'डायनमिक आईसोटॉनिक्स' के फ़ायदों का सम्मिश्रण है—यह कसरत करने के सामान्य साधनों की अपेक्षा ४ गुना ज़्यादा तेज़ी से असर करता है। चाहे आपकी आयु २०, ४०, ६०... कितने भी वर्ष हो, बुलवर्कर आपके कंधों को चौड़ा कर देगा, बाज़ुओं, सीने और टांगों की मांसपेशियों को मज़बूत बनायेगा और ४% प्रति हफ़्ता की दर से आपकी शक्ति में वृद्धि करेगा।

आसान कसरतें: बुलवर्कर के साथ आपको सम्पूर्ण सचित्र मार्गदर्शक पुस्तिका मिलेगी जो यह दिखायेगी कि रोज़ाना सिर्फ़ चन्द मिनट के अभ्यास से मांसपेशियों के विभिन्न समूहों का विकास कैसे किया जाये।

दोहरी गारंटी:

१. दाम वापसी की गारंटी: अगर २ हफ़्ते में आप परिणामों से पूर्णरूप से संतुष्ट नहीं हैं तो सब कुछ वापस लौटा दीजिये आपके दाम तुरंत और पूरे के पूरे वापस कर दिये जायेंगे।

२. ५ वर्ष की सर्विस गारंटी: आपको बुलवर्कर के विषय में कोई शिकायत हो, जिसकी संभावना नहीं है, तो हम खरीदारी की तारीख से ५ वर्ष के अंदर प्रसन्नतापूर्वक इसकी मरम्मत करेंगे या बदल देंगे। इससे ज़्यादा आपको और क्या चाहिए? जल्दी कीजिये! आज ही कूपन भेजिये!

© Mail Order Sales Pvt. Ltd., 15 Mathew Road, Bombay 400 004

अब केवल रु. १९८

आज ही यह कूपन भेज दीजिये!

BWN-1-H

मेल आर्डर सेल्स प्रा. लि. (ऑर्डर डिपार्टमेंट) १५ मैथ्यू रोड, बम्बई ४०० ००४.

कृपया मुझे त्योहार के अवसर की विशेष कम क़ीमत पर बुलवर्कर तुरंत भेजदीजिये। पूर्ण संतोष न होने की स्थिति में मैं १४ दिनों की आज़माइशी अवधि पूरी होने से पहले सब कुछ वापस लौटा दूंगा/दूंगी ताकि आप किसी वाद-विवाद के बिना पूरी रक़म वापस लौटादें।

क़ीमत की अदायगी का प्लान चुनकर अपनी पसंद के खाने में ☑ निशान लगाइये।

☐ रु. ६४ (+ रु. १५ डाक खर्च व सर्विस चार्ज) और रु. ४० प्रति मास की दर से ४ मासिक क़िस्तें ☐ रखने के केस के साथ उपर्युक्त प्लान, शुरू में रु. ७९ (+ रु. १५ डाकख़र्च व सर्विस चार्ज) और रु. ४० प्रति मास की दर से ४ मासिक क़िस्तें। SB-1

एक ही बार पूर्ण अदायगी से रु. २६ बचाइये

☐ रु. १९८ (+ रु. १५ डाकखर्च व सर्विस चार्ज) ☐ रखने के केस के साथ रु. २१३ (+ रु. १५ डाकखर्च व सर्विस चार्ज)
☐ पैसे चैक/ड्राफ्ट/इंडियन पोस्टल आर्डर/मनी आर्डर नं.............. दिनांक................ द्वारा भेजे जा रहे हैं।
☐ वी.पी.पी भेजिये। मैं पार्सल वसूल होने पर बतायी गयी रक़म अदा कर दूंगा/दूंगी।
हस्ताक्षर .... नाम ....
पता ....

रखने का केस अब सिर्फ़ रु. १५/- में

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की
संपूर्ण पत्रिका

नवंबर, १९७६

वर्ष : १६; पूर्णांक : १८७

हिंदी : तीन लेखिकाएं तथा ग्यारह लेखक

लेखिकाएं

चित्रा मुद्गल : अग्निरेखा : ३६
मेहरुन्निसा परवेज : पितृशोक : ४४
सुधा अरोड़ा : दहलीज पर संवाद : ४८

अन्य कहानियां

शैलाभ : अंतर : १२
श्रवणकुमार : धब्बा : १६
सुरेंद्र अरोड़ा : अपना-अपना डर : २०
प्रभु जोशी : किस हाथ से : २४
बसंतकुमार : अंतिम इच्छा : ३०
प्रीतम बेली : एक कमीज, एक झूठ : ३२
चंद्रकांत बक्षी : दुनिया भगवान की : ५२
रमेश गुप्त : अंतिम संस्कार : ६४
ब्रह्मदत्त : ठहाका : ७०

उपन्यास अंश

मधुकर सिंह : जनसेवक : ६०

लघुकथाएं

मुनव्वर हुसैन 'गुबार' : एक छोटी कहानी : १५
गिरधारी सिंह 'तुरंत' : रोटी : तीन पहलू : १९
सीतेश आलोक : अपमान : २३
तावीज : २९
जाफर मेहदी जाफरी : एक हकीकत, कदरदां : ३५
ब्रह्मदत्त : धर्मकुमार : ४१
छह लघुकथाएं : ४२
भिक्षु, जो नित्य स्वर्ग जाया करता था : ४७
ब्रह्मदत्त : अभयकुमार : ५७
अभिमन्यु अनत : मारिशस की चार लघुकथाएं : ५८

देवव्रत जोशी : महात्मा और मनुष्य : ६३
रिजवान जहीर उस्मान : सिंहासन : ६३
कृतघ्नता का फल : ७७

धारावाहिक उपन्यास : छठी किस्त

अभिमन्यु अनत : लाल पसीना : ८४

गर्दिश के दिन

गुरुबचन सिंह : ७२

विशिष्ट लेख

विश्वनाथ त्रिपाठी : राजनीति और आम आदमी : ७८

स्थायी स्तंभ

पाठकीय : १०
कृतियां : राजकुमार गौतम, रामदेव आचार्य ८०
गोष्ठी रपटें : ८२
आमुख : विद्याव्रत

संपादक : कमलेश्वर

- मुख्य उप-संपादक : आनंदप्रकाश सिंह
- उप-संपादक : अवधनारायण मुद्गल, सुदीप
- कार्यालय-सहयोगी : श्रीनाथ पांडेय, देवचंद झा, भिकाजी शिर्के

पाठकीय

अगस्त अंक

योगेंद्र प्रसाद आजाद, जमालपुर (बिहार) : इसके पूर्व मेरी तो धारणा थी कि भारत के कच्छ भूखंड पर केवल श्रमजीवी या व्यापारी ही रहा करते हैं. मगर कच्छी साहित्य के दो अंकों से अब यह धारणा बनी है कि गुजराती इन कच्छी साहित्यकारोंके कारणभी समृद्ध है, **'श्मशान'**, **'हड़की आली मां'**, **'रात को बात करेंगे'** बड़ी सशक्त लगीं. लोककथाओं को बच्चों ने भी चाव से पढ़ा. □

विनोद पांडेय, अंडाल (प. बं.) . **'लाल पसीना'** पढ़ने से ऐसा लगता ही नहीं कि हम भारत के बाहर की किसी कथावस्तु पर आधारित उपन्यास पढ़ रहे हैं. लगता है मानो यह बिहार का आंचलिक उपन्यास हो. इससे हमारे प्रवासी भाइयों की दर्द भरी कहानी को जानने का मौका मिला है. □

कु. उर्मिला कैशवास, चांदामेटा (म. प्र.) : पढ़ कर लगा, अपनी धरती के कच्छ से कितनी अनभिज्ञ थी. कच्छी जीवन का यथार्थ चित्रण हृदय को स्पर्श कर गया. मनुभाई पांधी और मूलराज रूपारेल के लेख गागर में सागर थे. **'भरी दोपहर'**, **'लाल आंखें! लाल रत्तियां! लाल गेरू!'**, **'धरती का कलंक'**, **'घर-बाहर'**, **'कब्र'**, **'यातना तीस महीने की'** बेहद पसंद आयीं. □

साधुराम गर्ग, एडवोकेट, मुजफ्फर नगर (उ. प्र.): **'कब्र'** ने अकस्मात आघात-सा किया हृदय पर. पढ़ने के बाद लगा कि उस दिन दुष्यंत कुमार की पंक्तियां पढ़ कर क्यों रोया था और आज भी यह कहानी पूरी होने से पहले ही टप से दो आंसू निकल पड़े. इतना स्वस्थ साहित्य, पाश्चात्य प्रभाव होने पर भी मिल रहा है, लगता है प्रेमचंद्र आदि का पुराना वक्त लौट कर आ रहा है. □

प्रेमनारायण, पटना : आम आदमी की मानवीय संवेदनाओं की सही अभिव्यक्ति देने में 'सारिका' की कहानियों की कोई तुलना नहीं है. **'यातना : तीस महीने की'**, **'रेत के फूल'**, **'धड़कन'**, **'कब्र'**, **'प्रतीक्षा'**, जीवन की विसंगतियों से जूझते परिवेश में अंतर्निहित हैं. □

हेमंत हेमेंद्र, भोपाल : सर्वाधिक प्रभाव मुखपृष्ठ ने मुझ पर डाला है, विषय और रंग चुनाव में सराहनीय दक्षता उन्होंने बरती है. प्यारे बच्चे, कदम बढ़ाते हुए. कलाकार की सूझबूझ प्रशंसनीय है. □

अ. खुराना, हापुड़ (उ. प्र.) दिल पर एक खाका-सा खींच दिया कच्छ का. विशेष तौर पर **'भरी दोपहर'**, **'प्रतीक्षा'**, **'रण'**, **'नीलकंठ'**, **'रेत के फूल'** ने प्रभावित किया. **'लाल पसीना'** ने तो बुरी तरह जकड़ रखा है. □

पंकज शुक्ल, इटारसी : शर्तों और स्वार्थों पर आधारित संबंधों के युग में हमें गर्व है कि हमारे संबंध आम आदमी की बात कहने वाली 'सारिका' की जमीन पर हैं. अंतर्महाविद्यालयी वादविवाद प्रतियोगिता में हमारी सफलता का कोई राज पूछे तो वह 'सारिका' की पैनी भाषा-शैली होगी. □

बीरखे क्षत्री 'नेपाली', कटल गुड़ी (प. बं.) : 'सारिका' के हजारों अहिंदी भाषी पाठकों में मैं भी हूं. मेरी मातृभाषा नेपाली है. 'सारिका' के सभी अंक पठनीय ही नहीं, संग्रहणीय भी होते हैं. मेरा अनुरोध है कि आप एक **'नेपाली साहित्य अंक'** भी निकालें.

हंसराज, बसंतपुर (मंडी–हि. प्र.) अपने गांव से ३० कि मी. दूर कस्बे से, ५ रु. खर्च करके भाड़े पर , 'सारिका' लाता हूं. लेकिन यह तो हमारी पत्रिका है, जिसमें आम आदमी की सारी वेदना मुखरित होती है, अपना दर्द लिखा होता है. इसलिए यह सब अनुभव नहीं होता कि एक रु. के पीछे पांच और गंवाने पड़ते हैं.

कच्छी कहानियों के दोनों अंक अत्यधिक पसंद आये. मेरी विनती है कि डोंगरी कहानियों का अंक भी अवश्य निकालें. □

उर्दू की प्रथम मौलिक कहानी

बशीर अहमद, कोरारी कलां (उन्नाव—उ. प्र.) : श्री सादिक ने **'गुजरा हुआ जमाना'** (रचना काल सन् १८७०) को उर्दू की प्रथम मौलिक कहानी माना है और उसके लेखक श्री सैयद अहमद खां को उर्दू का आद्यकथाकार. कहानी विवेचन में उन्होंने उर्दू के प्रसिद्ध शायर इंशाअल्लाखां का उल्लेख किया है. उनकी कहानी **'रानी केतकी की कहानी'** का एक नाम **'उदयभानु चरित'** भी है, और इसका रचनाकाल सन् १७९८ से १८०५ के मध्य ठहरता है (रामचंद्र शुक्ल का हिंदी साहित्य का इतिहास).

इस कहानी का उल्लेख हिंदी साहित्य संदर्भ में भी मिलता है, तो प्रश्न यह भी खड़ा होता है कि इंशा अल्लाखां ने यह कहानी किस लिपि में लिखी.

पुराने अंक

'सारिका' के पुराने अंक मेरे यहां उपलब्ध हैं. किसी पाठक को जरूरत हो तो कृपया संपर्क करें.

—शैलेंद्र श्रीवास्तव, पार्सल क्लर्क, दिल्ली जंकशन, दिल्ली—६.

समांतर फिल्में

बृजकुमार गांधी, मेरठ : बंबई दूरदर्शन पर **समांतर फिल्मों** के विषय में जान कर हार्दिक संतोष मिला है. यह बात कितनी सटीक है कि "इस कार्यक्रम के माध्यम से पाठकों और दर्शकों के उस बहुत बड़े वर्ग तक पहुंचने की कोशिश की जा रही है, जो समकालीन साहित्य से लगभग अपरिचित है." □

श्री सादिक **'रानी केतकी की कहानी'** को एक दास्तानी रंग का किस्सा मानते हुए कहते हैं कि वह कहानी की कसौटी पर खरा नहीं उतरता. पर **'गुजरा हुआ जमाना'** को क्या उसी कसौटी पर कसा है?

वास्तव में **'गुजरा हुआ जमाना'** एक उद्देश्य विशेष के अंतर्गत लिखा आधा लेख और आधी कहानी जैसा है.

यह सुधारवादी, इस्लाम-धर्मनिष्ठता के प्रति लिखी गयी रचना है.

सच तो यह होगा कि सैयद अहमद खां ने स्वयं इस रचना को कथा या किस्सा मान कर नहीं लिखा होगा.

कथा के विषय में ही क्या कहा जाय जब उसमें कोई कथानक ही नहीं हो?

श्री सादिक इसे इसलिए 'अपनी अपरिपक्वता और न्यूनता के बावजूद' कहानी मानते हैं क्योंकि 'आज की कहानी से उसमें एक सदी का अंतर है', तो **'रानी केतकी की कहानी'** को उर्दू की प्रथम मौलिक कहानी मानने में क्या आपत्ति है जो उससे ७५ वर्ष पहले लिखी गयी? इसमें मूल कथानक तो है.

वैसे यह सत्य है कि **'रानी केतकी की कहानी'** को कहानी की संज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती.

लेकिन **'गुजरा हुआ जमाना'** पढ़ कर तो यही लगता है कि इसे उर्दू की प्रथम मौलिक कहानी बताना एक षड़यंत्र है या श्री सादिक की पक्षपातपूर्ण नीति.

अतः अब 'सारिका' का दायित्व हो जाता है कि चर्चा एवं शोध के द्वारा, हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी की खोज की तरह, उर्दू की प्रथम मौलिक कहानी की खोज कराये. ☐

समांतर लेखक सम्मेलन : घोषणा-पत्र

खुशालसिंह पुरोहित, काछी बड़ौदा (धार – म. प्र.) : राजगीर में समांतर लेखक सम्मेलन में स्वीकृत दलित और समांतर लेखकों का संयुक्त घोषणा पत्र बहुत ही सामयिक और उद्देश्यपूर्ण है. समकालीन संदर्भ में रचनाकार अपनी प्रतिबद्धता का निर्धारण करें, यह एक अनिवार्य आवश्यकता है. साहित्यकार सर्वहारा वर्ग से जुड़ कर समय सापेक्ष सत्य को स्वीकार करे यह आज की महती आवश्यकता है. इस संदर्भ में सम्मेलन के सभी निर्णय महत्वपूर्ण हैं.

इस सम्मेलन ने उन तथाकथित साहित्यकारों के चेहरे बेनकाब किये हैं, जो समकालीन राजनीतिक परिवेश में ऐसे ही तथाकथित जन-प्रतिबद्धता के आवरण में जी रहे थे. उन्हें अब पता लग गया कि कोरी रचनाधर्मिता ही जन-संघर्ष में काफी नहीं है, उसमें सीधी हिस्सेदारी भी जरूरी है. इस सम्मेलन ने बता दिया कि सही प्रतिबद्धता क्या है, क्योंकि आज भी बहुत सारे साहित्यकार तटस्थ दर्शक की भांति हैं, जो सामान्य जन के संघर्ष की बात तो करते हैं, किंतु उसमें शरीक होना नहीं चाहते.

वैसे भी इतिहास इस बात का साक्षी है कि दुनिया में जितनी भी क्रांतियां हुई हैं उनमें सभी वर्गों की या सभी लोगों की हिस्सेदारी कभी नहीं रही. कुछ ही लोग क्रांति के संवाहक होते हैं. उन्हींके द्वारा राष्ट्रीय चेतना में युगांतरकारी परिवर्तन होते हैं. इस सम्मेलन ने उन लोगों के लिए वैचारिक भूमिका के नये क्षितिज प्रदान किये हैं.

ज्ञानात्मक संवेदना की कलात्मक अनुभूति ही साहित्य है. विचार-विरोधी षड्यंत्र के बावजूद साहित्य विचार से कभी जुदा नहीं हो सकता. इस सम्मेलन से साहित्यिक एकता और सहअस्तित्व की दिशा में प्रगति हुई है.

मेरी राय में यह सम्मेलन मानवता की दिशा में ऐतिहासिक कदम है. इतनी भाषाओं के इतने लेखकों ने एक साथ बैठ कर समकालीन संदर्भों की चर्चाएं कीं और निर्णय लिये, यह स्वातंत्र्योत्तर साहित्य यात्रा की महत्वपूर्ण उपलब्धि है. मैं उन सभी साहित्यकारों को हार्दिक मुबारकबाद देना चाहता हूं जिन्होंने इस सम्मेलन में हिस्सा लिया और जो समांतर आंदोलन की मशाल को प्रज्ज्वलित रखने में अपना अमूल्य योगदान दे रहे हैं, क्योंकि आज के अर्थाभाव युग में रचनाकार के लिए अग्नि-परीक्षा का समय है कि वह किस प्रकार परिस्थितियों के बावजूद अपने अंतर के रचनाकार को शाश्वत रखता है. यह सचमुच बहुत ही साहस का काम है. ☐

राजेंद्र चंद्रकांत राय, जबलपुर: अगस्त की 'सारिका' में लेखकों का घोषणा पत्र देखा. आजादी के बाद भारतीय साहित्य का यह एक ऐतिहासिक दस्तावेज है, जो प्रतिबद्धता की स्पष्ट घोषणा करते हुए, अपने को सर्वहारा वर्ग से ईमानदारी के साथ जोड़ रहा है. पर इधर एक बात यह भी काबिले गौर है कि प्रगतिशीलता और सर्वहारा साहित्य के नाम पर कुछ मुखौटे झंडेबरदारी कर रहे हैं और अपनी दुकान चला रहे हैं. ☐

अंतर

• शैलाभ

थोड़ी विलंब से गाड़ी राजधानी पहुंची. धक्का-धुक्की से बचते हुए शशीश बाबू प्लेटफार्म पर उतरे. बुकस्टाल पास ही था. देखते ही तीस वर्ष पुरानी घटना कौंध गयी. बी. ए. का रिजल्ट जानने के लिए बड़ी बेताबी से अखबार के पन्ने उलट रहे थे. एकाएक किसी ने भुजाओं में ले लिया था. स्पर्श परिचित लगा था. मुड़ते ही धर्मेंद्र के खिले चेहरे पर नजर पड़ी थी. दोनों को सेकंड क्लास मिला था. शुभसंवाद धर्मेंद्र ने ही दिया था.

—सामान है बाबू?

कुली ने अतीत छीन लिया. नकारात्मक जवाब देकर स्टेशन से बाहर आये. होटल पास ही में था. जाकर मिठाइयों के मोलभाव किये. पंद्रह रुपये किलो ने उत्साह पर पानी फेर दिया. पचीस रुपये ही बचे थे. वापसी भाड़े के लिए बीस बचाना ही था. सो केवल चाय पीकर बाहर निकल गये.

सौगात की बात परेशान करती रही. संतोष के लिए कपड़े के बैग को देखा. गांव से थोड़ा मालदह आम साथ लाये थे. पीला रंग, मीठी खुशबू. निरुपम स्वाद.

यही सब कुछ था कि धर्मेंद्र मचल जाता था. जब भी गांव जाने के लिए तैयार होते थे कि इन्हें लेते आने की याद दिला देना था. और लाकर साफ-सुथरा भी करते नहीं थे कि उठाकर छिलका नोचने लगता था. याद करके संतुष्ट हुए. एक रिक्शावाला पास आया. पाटलिपुत्र चलने को कहकर सवार हो गये.

* *

पाटीलपुत्र कालोनी की सफाई, सुंदरता और संपन्नता ने उन्हें मोह लिया. इसी स्वर्गीय इलाके में रहता है धर्मेंद्र! रहेगा क्यों नहीं? इतना बड़ी पोस्ट! अच्छी तनखाह के साथ-साथ. . . नहीं, खराब नहीं सोचना! ऐसा वह रहता तो मामूली गजटेड पोस्ट से तरक्की पाते-पाते डिप्टी सिक्रेटरी तक नहीं पहुंच पाता!

सोच ही रहे थे कि नयी इंपाला कार गुजरी. सवारियों को देखा. सभी अपरिचित लगे. धर्मेंद्र भी कार सरसराता होगा. बगल में रति रहती होगी. बाल-बच्चे रहते होंगे. करीब अट्ठाइस साल पहले रति उन्हें विशेष चाहती थी. फिर भी दोस्ती के नाम पर मन पर जो पत्थर रख लिया, सो अच्छा ही किया. नहीं तो, आज क्या दे पाता उसे? अभाव, विपन्नता और परेशानी ही न! यों. . . ओह, लगा न फिर गड़ा मुरदा उखाड़कर चीर-फाड़ करने! दोनों खुश हैं, अब यही संतोष की बात है मेरे लिए. . .

रिक्शा के रुक जाने से चिंतनधारा रुकी. सामने लोहे का फाटक था. फाटक पर एक प्लेट टंगा था जिस पर सुंदर अक्षरों में धर्मेंद्र बाबू के नाम और पोस्ट थे. पढ़ते-पढ़ते एक विशिष्ट आत्मीयता उमड़ी. भाड़ा देकर भीतर आ गये.

सुसज्जित कोठी. मखमली लान.फूलों की क्यारियां. सुवासित वातावरण. अंग्रेज साहबों के बंगले से भी अधिक खूबसूरत. . . . सचमुच धर्मेंद्र बहुत बड़ा आदमी हो गया. जितना सोचता था, उससे भी बड़ा. . .

देख-देख कर सोच ही रहे थे कि बरामदे में बंधा कुत्ता जोरों से भौंकने लगा— कोई है! डर कर घिघियाने लगे. पैंट और शर्ट के किर्च ठीक करते एक तगड़ा युवक निकला. कुत्ते को चुप कराके अपने कंधे तक झूलते बालों को झटका दिया और कंधा उचका कर उनकी ओर बढ़ने लगा.

उसकी सूरत पहचानी लगी. धर्मेंद्र का बड़ा लड़का होगा. अनुमान लगा के कुछ बोलने को हुए ही कि हिकारत भरी आवाज सुनाई पड़ी.

—किनसे मिलना है?

—तुम्हारे पिता से . . कालेज के दिनों का वह मेरा मित्र है, बेटा!

—ओ. . . आई सी, मगर वे तो शाम को लौटेंगे.

—अच्छा, इस बैग को रख लो, गांव से थोड़ा आम लाया हूं.

—इतनी दूर से बेकार ढोते लाये, यहां आम की कमी नहीं है.

उनकी मुलायमी पर बिना गौर किये उसने कहा और 'मिसिर-मिसिर' की हांक लगाने लगा. एक बूढ़ा आदमी धड़धड़ाते हुए निकला और इशारा पाकर उनसे बैग ले लिया.

—तो अभी चलता हूं , बेटे! उसके आवभाव को ताड़कर बुझते स्वरों में बोले.

—ठीक है, जाइये. . . कहकर वह सीधे भीतर चला गया.

उन्हें बड़ा खराब लगा. डाक्टर बनने वाली अपनी बड़ी बेटी, इंजीनियरिंग पढ़ रहे उससे छोटे बेटे. . . . की शिष्टता अनायास उभर गयी. यहां और वहां अंतर थोड़ा स्पष्ट हुआ. थोड़ी ही देर के लिए सही, मगर आत्मतृप्त होते गेट से बाहर निकल गये.

जुलाई का खुला आसमान. दहकती दोहपरी. दुबकी हवा. पसीने से लथपथ शरीर. तीखी प्यास. आराम के के लिए छांह की व्याकुल तलाश. पैदल. . . केवल पैदल. . . दूर दिखते एक पार्क की ओर.

* *

माली ने थपथपाया. काठ की बेंच से हड़बड़ा कर उठे. जिस अशोक की छांह में लेटे थे, वह पूरब की ओर दूर तक फैल गयी दिखी. शाम की क्षीण लालिमा का जल्दी ही अंत दिखा. जल्दी से चेहरे की सफाई की और तेजी से चल पड़े.

धर्मेंद्र बाबू को मुलकातियों से घिरे देखा. उनमें जिनकी ओर भी वे मुखातिब होते, उन्हें गिड़गिड़ाते और फरियाद सुनाते पाया. कुछ गये तो कुछ आये

भी. जो भी आये कुछ न कुछ लिये ही आये, फलों की टोकरियां, मिठाइयों के डिब्बे और प्लास्टिक के बंद बर्तनों तथा बैगों में न मालूम क्या-क्या!

उन्हीं सलाम दागने तथा भेंट चढ़ाने वालों के बीच खड़े होकर शशीश बाबू अपने मित्र को देखते जा रहे थे—रुआबदार भरा चेहरा, गालों और बालों पर चमक,. कनपटी के पास सफेद बाल, मोटे फ्रेम का चश्मा, चमकता सूट, तोंद का उभार...... दस ही वर्ष पहले तो मिला था—दरभंगा स्टेशन पर. इतने ही दिनों में इतना अंतर! सोच ही रहे थे कि आंखें चार हो गयीं.

—अरे भाई तुम!

—हांऽ. . . शशीश बाबू की आंखें चमक गयी. पास जाने के लिए लोगों ने रास्ता दे दिया. धर्मेंद्र बाबू ने बैठे-बैठे हाथ बढ़ाया जिन्हें हथेलियों में लेकर सामने की कुर्सी पर बैठते और विभोर होते बोले— कैसे हो?

—देख ही रहे हो, जरा भी फुरसत नहीं. थोड़ी ही देर पहले आया. ठीक से किसी से बात भी नहीं की कि मंत्रीजी का फोन आ गया. इमरजेंसी तो और जान खा रही है. खैर, अपनी सुनाओ! . . .

—अच्छा ही है. यों अपना क्या, वही हाई स्कूल और. . . .

—वही छात्रों की चरवाही! खुद वाक्य पूरा करके दांत निपोर दिये.

—तुम्हारे हेड मास्टर तो मिस्टर प्रसाद ही हैं? उनके मनोभाव को ताड़कर चालाकी से प्रसंग बदला.

—हां, संभलते हुए बोले.

—अरे भाई, जोंक है जोंक! लास्ट इयर एक्सटेंशन के लिए आये थे. जब तक करवा नहीं दिया, काहे को छोड़ें. खैर, अब तो रिटायर करने ही वाले होंगे?

—हां, करीब दो महीने बाकी हैं.

—अच्छा समझा. यों इस समय सब स्ट्रिक्ट हो गये हैं. बट आई विल टेक इट ऐज माई वोन वर्क.

आहिस्ते से बोले. मुलकातियों को चले जाने के लिए कहा. मिसिर पर उनकी देखभाल करने का भार सौंप, ड्राइवर को गाड़ी लाने का इशारा किया. और गाड़ी के आते ही फुर्र-से उड़ गये.

★ ★

कोठी में प्रवेश करने के पहले ही ठिठक गये. पूरा फर्श गुदगुदे कालीन से ढंका था. झुक कर जूता खोलने ही वाले थे कि मिसिर ने मना किया. सकपका कर संभले और भीतर आ गये. लंबे-चौड़े खूबसूरत कमरे, देशी-विदेशी मनोहर चित्रकारी, बेलजियम ग्लास का चांदी से मढ़ा बड़ा-बड़ा आईना, गोदरेज की आलमारियां, ढेर-से स्टील के बर्त्तन, पंखे, फ्रीज, टेलीविजन सेट, रेडियो.....रेशमी झालरदार परदे, रंग-बिरंगी बत्तियां. . . . देख-देख कर विस्मय से भरते रहे—म्युजियम में पहली बार आये देहाती बच्चे-से! एकाएक पश्चिमी कोने में टंगे फ्रेम-चित्र पर नजर पड़ी. एक रूपसी के हाथ में हाथ डाले फूलों की क्यारियों में धर्मेंद्र बाबू खड़े थे. बगल में एक और चित्र था. सूखी मालाओं से ढंके रहने के कारण आकृति स्पष्ट नहीं हुई. कुछ सोच कर पास गये. मालाओं को उठाया. पांखुरियां झरने लगीं. चित्र में रति थी—परिचित मुस्कान में! मन भारी हो गया.

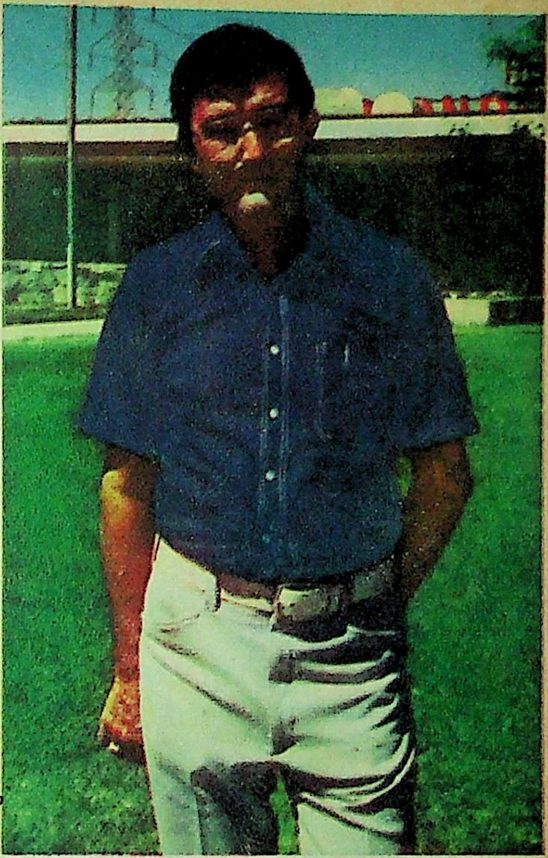

● मुरलीधर जालान

मिसिर को नाश्ता लाते देख संभले. हाथ-मुंह धोकर टेबल के पास आये. नाश्ता के वक्त मिसिर ने अपने को उन्हीं के इलाके के निवासी होने की बात बतायी. बड़े प्यार से थोड़ा अधिक खाने का आग्रह किया. मगर कहां खा सके! मन तो न मालूम कहां-कहां भटक रहा था !.....

चाय के समय मिसिर से रति के बारे में पूछा. बार-बार कुरेदने पर पता चला कि धर्मेंद्र बाबू के कुव्यवहार से तंग आ कर करीब नौ वर्ष पहले वह बिजली के तार से सट गयी. मगर किसका क्या बिगड़ा? उसका इकलौता बेटा मौज मार ही रहा है! प्राइवेट बीवी सामाजिक हो ही गयी है. सब कुछ और भी नंगा हो गया है. . .

अपराध-भार से मन दबने लगा. पश्चाताप हुआ तो होता ही रहा— काश, तब उसकी भावना की कदर की होती! उसे समझा-बुझा कर धर्मेंद्र के लिए राजी न किया रहता! . . .

किसी बच्ची की चहचहाहट ने अतीत फिर छीन लिया. उठा कर खिड़की के पास आये. एक सात-आठ वर्ष की सजी-धजी बच्ची आया की अंगुली थामे उधर ही आ रही थी. धर्मेंद्र की छोटी बेटी होगी, उन्होंने सोचा.—कौन है आप? उन्हें देखते ही वह तन गयी.

परिचय दे कर स्नेह उड़ेला. धीरे-धीरे वह घुलने-मिलने लगी.

—लो बेटी, पार्क से आते वक्त एक बाल-पत्रिका खरीदी थी, उसे बढ़ाते हुए बोले.

—नौट सो गुड अंकल! आई हैव मेनी बेटर मैगजिंस दैन दिस वन!

जल्दी-जल्दी पन्ने उलटती हुई बोली. शशीश बाबू बुझ गये. कुछ क्षणों के लिए कुछ भी कहते नहीं बना. फिर संभलते हुए बोले— तो और क्या लोगी बेटी?

—कहूंगी, मगर पहले मुझे पम्मी कहिए!

—क्यों?

—छिः यह भी नहीं जानते! बेटी तो देहाती बोलते हैं!

—तुम्हें किसने बताया?

—मम्मी ने!

—ओ. . . बनावटी मुस्कान के साथ चुप हो गये.

—मेरे लिए वह रेकार्ड ला देंगे, अंकल?

—कौन-सा?

—जूली का वह— माई हार्ट इज बीटिंग. . . वह झूमकर गाती हुई बोली.

जवाब नहीं दे सके. चेहरे पर रूक्षता फैलने लगी. जिसे बिना देखे पम्मी एकदम मचल गयी—तो ला देंगे न अंकल?

—हां, ला दूंगा. . .मगर इससे करोगी क्या? एकाएक पूछ लिया.

—बजाऊंगी, गाऊंगी और डांस करूंगी. आप डांस नहीं करते हैं, अंकल?

—नहीं, उनका चेहरा लाल हो गया.

—तो आप भी देहाती हैं!

और कुछ वह नहीं बोल सकी. आया ने उसे पास बुला लिया और उसके साथ दूसरे कमरे में चली गयी. अपने छोटे लड़के से, जो सैनिक स्कूल में दाखिला के लिए चुन लिया गया था, पम्मी की तुलना फिर करने लगे. कैसे भी मेल मिला ही नहीं. अपना-अपना अर्जन— अपनी-अपनी उपलब्धि! फिर सोचने लगे.

★ ★

फाटक के पास एक लाल कार रुकी. उसमें से जो सूटेड-बूटेड अधेड़ पुरुष उतरा, उसे पहचान गये. वह उनके ही इलाके का कुख्यात स्मगलर हदीस था. कुछ वर्ष पहले उसे गांजे-अफीम के साथ गिरफ्तार होते देखा था और तब से आज ही नजर पड़ी थी. उसके पीछे जो औरत उतरी, उसे भी पहचान गये. पम्मी की मम्मी थी. नाइलोन की साड़ी. स्लीवलेस ब्लाउज. ढेर-सारे आभूषणों से लदी.

एकाएक क्या सूझा कि बाथरूम में खिसक गये. खिड़की की फांक से उन्हें देखा. विभिन्न सामानों से भरे बास्केट लिये ड्राइवर और उसके पीछे एक बड़ी अटैची उठाये हदीस को कोठी की ओर बढ़ते देख पम्मी की मम्मी पिछली सीट की ओर लपकी. अकेले बैठे किसी बड़े आफिसर-से दिखते आदमी को जल्दी से चुंबन दिया और इठला कर उससे विदाई ली.

—बोर तो नहीं हुए? नौ बजे लौटकर जूते खोलते धर्मेंद्र बाबू ने कहा.

—नहीं भाई, पम्मी और उसकी मम्मी के समीप कोई बोर हो सकता है!

बिल्कुल सहज ढंग से उन्होंने व्यंग्य कसा जिसे बिना लखे धर्मेंद्र बाबू बोले—दोनों हैं ही ऐसी ही. सचमुच रति के बाद यह औरत मेरे जीवन में नहीं आती तो उसके गम में डूबकर मैं कहीं का नहीं रहता भाई!

कह कर चुप हो गये. कुछ क्षणों की चुप्पी के बाद भावुकता में बहने लगे. रति की कर्तव्यनिष्ठता और परायणता की हल्की-सी झलक दी और पम्मी की मम्मी की प्रशंसा के पुल बांधने लगे. उसके बाद देश की वर्त्तमान परिस्थिति में लौटे. सारी समस्याओं की छिछली व्याख्या की. करीब आधा घंटा गुजर गया. केवल सुनाते रहे. सुनने का मौका ही नहीं दिया. उसके व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन के प्रति कोई भी जिज्ञासा प्रकट नहीं की. उनकी सारी छाप शशीश बाबू के चेहरे पर दिख रही थी.

टैलीफोन की किरकिराहट! चपरासी ने दौड़ कर चोंगा थमा दिया. बात करते ही खिल गये—थैंक यू. . . एस सरटेनली. . . हां-हां, क्यों नहीं. . . जब भी कहिये जैसे वाक्य-खंड चमक-चमक कर उछालने लगे. पम्मी की मम्मी भी आ गयी.

—बात कर लो डार्लिंग! लेबर कमिश्नर श्रीवास्तव हैं.

चोंगा पकड़कर वह चहकने लगी. परसों रात में खाने-पीने के लिए उन्हें निमंत्रित किया. फुरसत पाते ही शरारती हो गयी— कोई बनाना सीखे तो आप से सीखे! इतनी अच्छी खबर पायी और बिना बताये चोंगा पकड़ा दिया!

—इसमें बनाने की क्या बात है डार्लिंग! अपनी मेहनत का फल अपने से सुनने में मजा है!

—क्या बोल रहे हैं?

—ठीक ही तो बोल रहा हूं, डार्लिंग! तुम नहीं भिड़ती तो अपन थर्ड डिविजनर को 'सेल्स एन्ड परचेज आफिसर' जैसा इमपारटेंट जाब मिलता! बोलो? उसकी बाहें थामकर उसे नजरों से पीने लगे.

—अच्छा आप ही सही, अब चलिए, इनको भी लेते आइएं, आपका लाड़ला भी आ ही गया है, लेट अस सेलिब्रेट द आकेजन!

—यस वंडरफुल आइडिया! मौके बार-बार नहीं आते! . . . . . . चलो भाई! उनकी ओर उमड़ते हुए बोले. पम्मी की मम्मी चली गयी थी.

डाइनिंग टेबुल के पास भी उनकी उदासी नहीं गयी. धर्मेंद्र बाबू ने बार-बार उकसाया. 'इनर्ट' कहकर हंसी की, मम्मी ने व्यंग किया. मगर न उन्होंने बियर लिया, न जिन, न स्काच और न ह्विस्की ही. दो-तीन बार मुस्करा दिये. छिटफुट मजाक कर लिये. वह भी न मालूम कैसे! क्योंकि वह खाना, वहां की तीखी गंध, उनका आयातित व्यवहार. . . सब कुछ बिल्कुल अपरिचित थे उनके लिए!

भोजन के बाद अकेले पड़ गये. बिछावन पर बैठकर धर्मेंद बाबू के आने की विकल प्रतीक्षा की. ऊबकर बाहर

आये. मखमली लान में कुछ देर टहलते रहे. लाल-लाल फूलों से लदे बौगेन बेलिया की छांह में पत्थर की एक बेंच थी. वहीं बैठ गये. पुरानी घटना फिर याद आ गयी.

यही धर्मेंद्र था. घंटों पास बैठा रहता था. जब तक मतलब-बेमतलब की बातें नहीं करता था, तब तक खाना हजम नहीं. मगर आज? सचमुच उसकी वह मित्रता छिछली नदी की बाढ़ की तरह उमड़कर सूख गयी शायद!

सोचते ही आने का प्रयोजन निष्फल दिखने लगा. मगर और प्रयत्न करके थक गये थे. बाढ़ ने घर छोड़कर सब कुछ निगल लिया था. तिस पर समय कम और सारे आत्मीय लोगों के हाथ खाली. सो हारकर ही तो यहां आये थे अतः आने का पछतावा नहीं हुआ. एकदम निराश भी नहीं हुए. एकाएक उठे और जैसे ही चलने को हुए कि धोती बौगेन बेलिया की टहनी में उलझी रहने के कारण चर्र-से फट गयी. बुरी तरह झल्लाये और टहनी को नोचकर फेंक दिया.

बिछावन पर लेटते ही एक और घटना याद आयी. बी. ए. के फार्म भरने का अंतिम दिन था. धर्मेंद्र को परीक्षा फीस और कालेज ड्यूज चुकाने के लिए सौ रुपये घट रहे थे. कोई भी जुगाड़ नहीं लग रहा था. सो बुरी तरह परेशान थे. उस विकट परिस्थिति में प्रिंसिपल साहब की दया की बात उन्हें सूझी थी. यों छूट के मामले में वे सख्त थे. फिर भी उन्होंने धर्मेंद्र को प्रोत्साहित किया था. आवेदन-पत्र लिखकर उनसे दस्तखत करवाये थे और साथ लिये उनके चेंबर के पास आ गये थे.धर्मेंद्र को भीतर घुसने का साहस नहीं हो रहा था.दरवाजे के पास जाना था. परदा पकड़कर खड़ा होता था और थूक गटक-गटक कर उन्हें देखने लगता था —भाई , साली गरीबी गठिया होती है. इससे पीड़ित आदमी अकड़ नहीं सकता. ठीक से कहीं बात नहीं कर सकता. हकला कर स्थिति हास्यास्पद बना सकता है बस ! अंत में उसने कहा था.

—गठिया की ऐसी-तैसी! चल मेरे साथ! कहकर उसकी बांह पकड़ ली थी. प्रिंसिपल साहब को सब कुछ समझाया था. और दीन छात्र-कोष से पचास रुपये पाकर बाहर आ गये थे. पचास की समस्या फिर भी रह ही गयी थी.

एकाएक पिताजी आये थे. गरम कपड़े और किताब खरीदने के लिए उन्होंने साठ रुपये दिये थे. उनके जाते ही उन्होंने रुपये बढ़ा दिया था. फिर वही तीखा जाड़ा, वही पतला कंबल. लाचारी में दोनों एक ही बिछावन पर. शारीरिक गर्मियों का विनिमय. सचमुच मधुर दोस्ती के क्या दिन थे वे भी जहां दुख और अभाव भी प्रिय थे! और सुख का तो कहना ही नहीं! . . . .

—नींद नहीं आ रही है क्या?

चुपके से आकर धर्मेंद्र बाबू ने उन्हें चौंका दिया. हुलस कर बैठे. स्लीपिंग ड्रेस में उन्हें थिरकते देखा.

—कोई खास बात है क्या? उन्होंने फिर पूछा.

—हां ऽ . . . उन्होंने लंबी सांस छोड़ी.

—ओ आई सी ऽ. . . , हेड मास्टर वाली बात ही न ?

—नहीं भाई !

—तब क्यों परेशान दिखते हो?

—धर्मेंद्र, मेरा छोटा लड़का सैनिक स्कूल में दाखिला के लिए चुन लिया गया है और उसके लिए कुछ रुपये चाहिये. टूटे बांध के पानी की तरह एकाएक बह गये.

—कितने? उन्होंने तपाक से पूछा.

—यही करीब एक हजार. गला साफ करके उन्होंने कहा.

—एक हजार! मुझे तो पता है कि तुम्हारे जैसे लो इनकमवालों के लड़के वहां मुफ्त में पढ़ते हैं!

—यह तो बाद की बात है, भाई! अभी तो उसकी पोशाक के ही दो दर्जन सेट चाहिये.

—नो, यू आर एग्जैगेरेटिंग द फैक्ट (तुम सच्ची बात को बहुत बढ़ा कर कह रहे हो)! खैर, फिफ्टी. . . एस फिफ्टी एंड थर्टी इअर्स. . . . . . बड़बड़ाते हुए अपने कमरे की ओर तेजी से बढ़ गये.

शशीश बाबू के लिए पहेली अबूझ नहीं रही. समझते ही दर्द से वैसे छटपटाने लगे जैसे ठिठुरते आदमी पर किसी ने उबलता पानी बरसा दिया हो!

—लो गिन लो, पूरे एक हजार हैं! सौ-सौ के नोटों का पतला बंडल फेंकते बोले. कुछ क्षण उन्हें देखने के बाद उन्होंने धर्मेंद्र बाबू के विकृत चेहरे की ओर देखा और सारी कड़ुवाहट को भरसक छिपाकर भी खुल गये—क्या गिनूं भाई ! मैं तुम्हारे पास सुदामा बनकर आया था, शाइलाक बनकर नहीं! अतः रख लो, कभी काम आयेंगे.

वाक्य पूरा होते ही नोटों का बंडल उनकी ओर खिसका दिया. तुरंत अपना बैग उठाया और तेजी से बाहर निकल कर चलने लगे. सड़क पर आने के बाद पीछे से पुकारे जाने की आवाज सुनाई पड़ी. मुड़कर देखा—कहीं कोई नहीं, सिवाय गलियों में आवारा-से फिरने कुछ भौंकते हुए कुत्तों के ! . . . . □□□

पो. एफ. आर. आई., धनबाद.

एक छोटी कहानी

—अफसोस! चूहे ने कहा, दुनिया दिन-ब-दिन छोटी होती जा रही है. आरंभ में तो यह इतनी बड़ी थी कि मुझे भय लगता था. मैं भागता रहा, और उस समय बहुत प्रसन्न हुआ था जब आखिरकार मुझको दूर पर दाहिने-बायें दीवारें दिखाई दीं. लेकिन यह लंबी दीवारें इतनी तेजी से तंग हुई हैं कि सरकते-सरकते अब मैं अंतिम कोठरी में आ पहुंचा हूं और इस कोठरी के सिरे पर चूहेदानी लगी हुई है, जिसमें मुझको दाखिल होना ही पड़ेगा.

—तुमको केवल अपनी दिशा बदल देनी है, बिल्ली ने कहा और उसे खा गयी. □

(काफ्का की एक लघुकथा का अनुवाद :
मुनव्वर हुसैन 'गुबार')

धब्बा

• श्रवणकुमार

गाड़ी में इतनी भीड़ थी कि लगता था, हम उस पर चढ़ नहीं पायेंगे. डब्बों में लोग ठुंसे पड़े थे.

आखिर एक डब्बे में थोड़ी-सी जगह दिखी तो हम दूसरों को रौंदते-से आगे बढ़ने लगे. लेकिन हम ज्यादा बढ़ भी न पाये, क्योंकि दूसरे कैबिन के पास हमें एक ने आगाह किया—संभल के, टट्टी है! वाकई, किसीके पांव तले कुचले जाने से वह जगह बेहद गंदी दिख रही थी. फिर भी बैठने वाले नाक को कपड़े से ढांपे, मुंह दूसरी तरफ घुमाये, वहीं पास की सीटों पर बैठे हुए थे.

हमारी मजबूरी थी. हम पहले कैबिन में बर्थों के बीच की जगह में खड़े हो गये.

थोड़ी देर खड़े रहे, तो एक बुढ़िया ने खुद ही कहा—यहां बैठ जाओ. और वह थोड़ा-सा सरक गयी. उसके सामने वाली बर्थ पर एक और बुढ़िया बैठी थी. वह भी थोड़ा सरक गयी. जिससे हम दोनों को आमने-सामने बैठने की जगह मिल गयी.

बैठ गये तो गौर किया कि मेरे साथी की बगल में बैठी बुढ़िया कुछ अजब-सी दिख रही है. कहां तो मेरे सूट-नैकटाई-धारी साथी का भरा-भराया शरीर और कहां उस बुढ़िया की सिकुड़ी-सी, कीचट हुई, गष्ठरी-सी काया. और तो और, उसके चेहरे की खाल इस कदर खिंची हुई थी कि आसानी से यह कहना भी मुश्किल था कि वह किसी उम्रयाफ्ता का चेहरा है या कि एक बच्ची का. मेरी बगल में बैठी बुढ़िया भी किसी मायने में दूसरी से ज्यादा तंदुरुस्त न थी, पर उसकी खाल उस तरह खिंची हुई नहीं थी.

मेरे वाली बर्थ पर, मुझसे थोड़ा हट कर, एक जवान औरत भी बैठी थी, जिसके ऐन सामने एक जवान आदमी बैठा था. वे अकसर किसी-न-किसी बात को ले कर आपस में ठट्ठा करते थे.

मेरे साथी ने सहज ही उस औरत से उसके बारे में आवश्यक जानकारी प्राप्त कर ली, और फिर वह उसी सहज ढंग से अपनी बगल में बैठी बुढ़िया से भी बतियाने लगा.

—कहां जा रही हो?

—हाथरस!

—वहां क्या घर है?

—नहीं, काम के लिए.

—कैसा काम?

—क्लेसर पर.

'क्लेसर' से उसकी मुराद 'क्रेन क्रशर' से थी. यह शब्द मैंने उसी दिन अपने साथी के गांव में सीखा था. वहां ऐसे कई 'क्लेसर' थे. मैं साथी के साथ उसके गांव से ही लौट रहा था.

—क्या तुम्हारे अपने यहां क्लेसर पर काम नहीं? लोग तो काम के लिए उलटे वहां जाते हैं.

बुढ़िया ने बड़ी लाचारी से सिर हिलाया. उसका इशारा प्रारब्ध की ओर था.

—क्या दिहाड़ी देते हैं?

—पता नहीं. लड़कों ने तय किया है. शायद सौ रुपये पर दो रुपये. चार-छह रुपये दिहाड़ी बन जायेंगे.

—तुम गांड्डे लगाओगी?

—हां.

'गांड्डे लगाने' से उसका अभिप्राय मशीन में गन्ने डालना था.

—यह क्या गांड्डे लगा पायेगी? मैंने हैरत दिखायी.

—अरे, इसमें हैरान होने की क्या बात है? गांव में देखा नहीं, यह काम तो छोटे-छोटे बच्चे भी कर लेते हैं.

मेरे साथी ने ठीक कहा था. मैंने गांव में कई छोटे-छोटे सात-आठ वर्ष की उम्र के बच्चों को गन्ने छीलते, 'क्लेसर' में गांड्डे लगाते और भट्टी में खोई-पत्ती झोंकते देखा था. मुझे यकीन नहीं हो रहा था कि इस युग में भी इतनी कम उम्र के बच्चों को रात-रात भर इस तरह के काम करने पड़ते हैं. मेरे साथी ने भी उस कम उम्र में रात-रात भर ये सब काम किये थे, और फिर सुबह बस्ता उठा कर दो कोस दूर स्कूल में पढ़ने जाता था. यह सिलसिला तब तक चलता रहा, जब तक कि उसने मिडल पास नहीं कर लिया. बाप गरीब हरिजन. मां बहुत छुटपन में ही मर गयी थी. बस, किसी तरह धीरे-धीरे आगे बढ़ता रहा. मेरे साथी ने मुझे यह भी बताया था कि इन 'क्लेसरों' पर अधिकतर हरिजन, यानी चमार, ही काम करते हैं. मेरे साथी को 'चमार' शब्द से खास चिढ़ थी. —क्यों लोग चमार को इतनी-इतनी हिकारत से देखते हैं? उसने मुझे पिछले दिनों गांव की ओर बढ़ते हुए पूछा था. —किसीको गाली देने के लिए भी उन्हें इससे बढ़िया शब्द नहीं सूझता.

साथी के प्रश्न ने मुझे चक्कर में डाल दिया था. समूची समाज-व्यवस्था को चुनौती थी. अपने मन को टटोलने की भी बात थी. हमारे समाज में, दरअसल, यही सब होता रहा है. हुनरमंद आदमी के प्रति हमारे यहां हमेशा एक तरह की उपेक्षा बरती गयी है. राज, बढ़ई, ठठेरा, लोहार—इन सबको समाज ने निचला दरजा दिया. और तो और, ये हुनरमंद लोग स्वयं एक-दूसरे को कैंडी नजरों से देखने लगे. सुनार ठठेरे से अपने को बड़ा मानने लगा, ठठेरा लोहार से अपने को एक बालिश्त ऊंचा समझने लगा. और फिर चमार? वह भी कूड़ा कमाने वाले से दो हाथ की दूरी बनाये रखने लगा. यानी सब इस बात का गर्व पाने की फिराक में पड़ गये कि वे किसी से दो अंगुल बड़े हैं. यह कैसी विडंबना है हमारे समाज की! सबके शरीर पर ठप्पे लगे हैं और सब अपने-अपने टप्पे को सुंदर मान रहे हैं.

मैं अपने साथी को कोई उत्तर नहीं दे पाया था, लेकिन कुछ याद कर मन ही मन कुढ़ने लगा था. मुझे अपने कस्बे के उस कुबड़े ब्राह्मण की एक बात अब भी कचोटती थी. शक्ल ऐसी, जैसे किसीने दो पाटियों के बीच मींच दिया हो, पहनावा ऐसा जैसे किसी ढाबे में तमाम उम्र बरतन मलता रहा हो. हमारे घर से थोड़ी दूर उसकी तंबाकू की एक छोटी-सी दुकान थी. वहां अकसर वह खुद ही तंबाकू कूटता दिखायी देता. उसकी बीवी हमारे यहां 'हंदे' लेने आती थी. हम उसे लिहाज से मौसी कहते थे.

एक दिन मौसी हंदा लेने नहीं आयी तो मां ने मुझे ही दो चपातियां दे कर के वहां भेज दिया. इत्तिफाक से उस समय वह ब्राह्मण, यानी मौसा, भी घर में मौजूद थे. मुझे मौसी की ओर चपातियां बढ़ाते देख कर वह एकाएक दहाड़ते-से बोले——अरे, यह कब से? पैसा हो गया तो इससे इनकी जात भी बदल गयी? हैं तो छीबे ही न! छीबे, यानी कपड़ों पर बेल-बूटों के ठप्पे लगाने वाले. कब? कहां? शायद मेरे परदादा यह काम करते थे. लेकिन मेरे दादा इस क्षेत्र के एक जाने-माने डाक्टर थे और मेरे पिता एक जाने-माने पत्रकार. लेकिन कपड़ों पर ठप्पे लगाना या कपड़े सिलना क्या नीच जाति का काम है? जाने क्यों मेरे मन में इस बात को ले कर एक प्रकार का भय-सा बैठा रहता है. क्या पता कहां यह ...राज ...? लेकिन फिर सोचता हूं, इस बात से डरूं क्यों? मैंने इस तथ्य का कभी कोई गलत फायदा तो उठाया नहीं!

* *

गाड़ी पैसेंजर होने की वजह से हर स्टेशन पर रुक रही थी. बीच में दो-एक फ्लैग स्टेशन भी आये थे, जहां हरी झंडी पाने के कारण गाड़ी ने अपनी रफ्तार बरकरार रखी थी. इस बीच मुझसे थोड़ा हट कर बैठी वह जवान औरत ऊंघने लगी थी और उसके सामने बैठा वह जवान आदमी कभी आंखें खोलता था, कभी बंद करता था.

मेरे साथी को एकाएक जाने क्या सूझी कि उसने अपनी बगल में बैठी बुढ़िया से, थोड़ा झुक कर, पूछा——चमार हो?

बुढ़िया की आंख पहले तो एक सैकंड के लिए थिरकी, लेकिन फिर सहज ही उसने स्वीकृति में सिर हिला दिया.

साथी की जैसे कि हिम्मत बंधी, उसने तत्परता दिखाते हुए कहा——मैं भी चमार हूं.

अपनी आंखें बंद करने और खोलने वाला वह जवान, साथी की स्वीकारोक्ति से एकाएक सतर्क हो गया और साथी को घूरने लगा. उन दोनों बर्थों पर बैठे बाकी लोग भी उसकी तरफ गौर से देखने लगे.

साथी ने बुढ़िया को अपने गांव का परिचय दिया और फिर उससे गांवड़ी बोली में बतियाने लगा. बातों-बातों में उसने बुढ़िया को यह भी बताया कि वह अब दिल्ली में रहता है और अफसरी ओहदे पर है.

मैं साथी के साहस पर हैरान था. कितने लोग ऐसे हैं जो अच्छी पोजीशन पर पहुंच कर ऐलानियां कह सकें कि वे चमार या कहार परिवारों से हैं? स्वयं मैं यह कभी ऐलानियां स्वीकार नहीं कर सका कि मेरे पूर्वज छीबे थे. और तो और, छीबों के सामने भी मुझे ऐसा स्वीकार करने की कभी हिम्मत नहीं हुई, और मैंने उनके सामने यही जाहिर किया कि मैं बहुत ऊंचे वर्ग से हूं.

• भगवानदास झपानी

गांव में मेरे साथी ने मेरा अपने एक भतीजे से परिचय करवाते हुए कहा था कि यह बी. ए. पास है, और एम. ए. की तैयारी कर रहा है. भतीजे की वेश-भूषा कुछ ऐसी थी कि वह पढ़ा-लिखा बिल्कुल नहीं दिखता था, बल्कि अंग्रेजी भी वह बहुत कम समझता था. मेरे यह पूछने पर कि क्या कालेज में तुम्हें किसी तरह के भेद-भाव का सामना करना पड़ता है, उसने बिना अधिक सोचे बताया था कि उसने अनुसूचित जाति से संबद्ध होने का कभी कोई लाभ ही नहीं उठाया और न ही उठाना चाहता है, और यही कारण है कि कोशिश करने के बावजूद अब तक वह किसी प्रकार की नौकरी नहीं पा सका है.

——लेकिन जब तक बेकार हो, तब तक अपने गांव में ही कोई काम क्यों नहीं कर लेते? मैंने उसे सुझाव दिया था.

——कैसा काम? उसने विस्मय से पूछा था.

——क्लेसर पर ही.

गांव में घूमते समय एक क्लेसर मालिक ने मुझे बताया था कि उसके यहां लोग बत्तीस रुपये दिहाड़ी तक बना लेते हैं, यद्यपि मालिक का वह दावा उसके यहां काम करने वालों ने वहीं गलत साबित कर दिया था. फिर भी यह तो था कि वे बीस रुपये दिहाड़ी तक बना

लेते हैं. मुझे लगा था आज के हालात में गांव में बैठे-बिठाये बीस रुपये रोज कमा लेना कोई कम नहीं है.

—काम में तो कोई बुराई नहीं है,' मेरे साथी के भतीजे ने बड़ी हलीमी से कहा था—'लेकिन आप देख ही रहे हैं कि इन तथाकथित बड़ी जाति वालों का व्यवहार अब भी हमारे प्रति बदला नहीं है.

—मसलन?

—मसलन यह कि चारों तरफ खेत ही खेत हैं, लेकिन उनमें हमारा कोई हिस्सा नहीं.

—यानी यह कि तुम लोगों में से किसीके पास अपनी कोई जमीन नहीं?

—बिलकुल नहीं. यहां तक कि हमारी भैंसों के चरने के लिए भी कोई जमीन नहीं है.

एक अजनबी के गांव में आने की खबर पा कर लोग उत्सुकतावश वहां जुटने लगे थे, और मेरे बारे में सही जानकारी न पा सकने के कारण कई तरह की तुक लगा रहे थे.

लेकिन मैंने अपने साथी के भतीजे के साथ अपनी बात जारी रखी थी. मुझे याद था कि हमारे कस्बे में घोसी हमारी गाय चराने ले जाता था और जिस दिन गाय चरने नहीं जाती थी, उस दिन वह ढीली पड़ जाती थी.

—भैंसें चर न पायें, तो उन्हें क्या खिलाते हो?

—बस, ऐसे ही खूंटे से बंधी रहती हैं. हम लोग स्वयं ही खेतों से घास काट लाते हैं और कभी-कभी जब खेत वाले उसके लिए भी मनाही करते हैं, तब लड़ाई की नौबत भी आ जाती है.

मुझे याद आया, ऐसी लड़ाई की अखबारों में इधर कई खबरें छपी हैं, और कहीं-कहीं तो हरिजनों को अपनी जान से भी हाथ धोने पड़े हैं.

वहां जो लोग जुट पड़े थे, उनमें अब केवल हरिजन ही नहीं थे, जाट, ब्राह्मण, जोगी, बाल्मीकि— सब तरह के लोग थे, और सब मेरे बारे में अटकलें लगा रहे थे. एक को तो मैंने धीमे से यह भी कहते सुना था—होगा कोई यह भी झींगरे की तरह का नवीन शर्मा! झींगर मेरे साथी का गांव का नाम था, और नवीन शर्मा तो आप समझ ही गये होंगे.

नवीन शर्मा की उपाधि मेरे साथी को डंक की तरह पीड़ा पहुंचाती थी.

—नहीं, यह हमारी तरह के नवीन शर्मा नहीं हैं, आपकी तरह के पुरातन शर्मा हैं! मेरे साथी ने उन्हींके शब्दों में मेरा परिचय दिया था. . . रेडियो पर इनके कई ड्रामे आते हैं.

—तो ये डिरामा लिखने वाले हैं? एक ने सवाल किया था. क्या ये रेडियो पर बोलते भी हैं?

मेरे परिचय का प्रभाव कोई बुरा नहीं पड़ा था, लेकिन मेरे भीतर ही भीतर कुछ कुतर-कुतर-सी शुरू हो गयी थी. अगर इनको यह पता चल जाये कि मेरे कुछ सगे-संबंधी अब भी अपना वही परंपरागत पेशा—यानी कपड़े पर रंग चढ़ाना या उस पर ठप्पे लगाना—अपनाये हुए हैं, तो इन पर इसका क्या असर पड़ेगा?

अंधेरा काफी गहरा होता जा रहा था. गांव में अंधेरा वैसे भी काफी गहरा होता है. फिर यह तो है भी दिसंबर का महीना. हमारे चारों ओर जुटे हुए लोग अब धीरे-धीरे लोप होते जा रहे थे.

रात को हम सब एक ही जगह सोये थे— यानी मेरा साथी, मैं, उसके भाई तथा रिश्तेदार, तथा उसका वही बी. ए. पास भतीजा. रात को सोने से पहले मुझे वे किस्से भी बताये गये थे, जब जमींदार लोग अपने कम्मी-कमीनों को घसीट कर काम पर ले जाते थे और हुक्म-अदूली करने पर घर-बार से बेदखल कर देते थे. मेरे साथी के रिश्तेदारों ने मुझे यह भी बताया था कि कुछ हरिजनों को अब भी दो जून रोटी नसीब नहीं होती और वे गन्ने के रस से उतरने वाली 'मैल्ली' को पका कर ही उससे अपनी भूख शांत कर लेते हैं. वैसे आमतौर पर यह 'मैल्ली' सूअरों को खिलाने के काम आती है.

* *

गाड़ी अपनी उसी रफ्तार से चली जा रही थी. जो लोग जहां बैठे थे, वहीं बैठे थे; जो जहां खड़े थे, वहीं खड़े थे. खड़े हुए लोगों में जाने एक को क्या सूझी कि वह एकाएक बोल उठा—शेड्यूल्ड कास्ट्स को बहुत सिर चढ़ा लिया गया है. जहां देखो, उनके लिए जगहें सुरक्षित हैं. अब तो मामला वास्तव में उलटा होने लगा है. यहां हम तड़पते रह जाते हैं, और ये हाथ पे हाथ मार रहे हैं !

—तो इसमें बुराई क्या है? मेरे साथी ने कहा—हम भी तो सदियों से तड़प रहे थे. अब जरा हालत सुधरने लगी तो आप लोगों को परेशानी हो उठी!

—क्या ऐसा नहीं हो सकता, मैंने बीच-बचाव करते हुए कहा—कि एक बिंदु तक तो ये जगहें सुरक्षित रखी जायें लेकिन फिर बराबर का मुकाबला हो?

—हां, यह भी किसी हद तक ठीक है. वह आदमी बोला—पर यहां तो मामला और भी खराब है. ब्राह्मण के घर पैदा क्या हुए कि मुसीबत हो गयी. पिता मामूली स्कूलमास्टर थे. किसी तरह मैट्रिक करवा पाये. मैं मुश्किल से सत्रह वर्ष का था, जब से क्लर्की कर रहा हूं. इस बात को पंद्रह वर्ष होने को आये. मेरे साथ जो शेड्यूल्ड कास्ट लगा था, वह अब सुपरिंटेंडेंट है, और हर बात पर हमारी बेइज्जती करता है.

लगा, जैसे साथी मन-ही-मन बहुत खुश है.—माना आपके साथ ज्यादती हो रही है, महोदय, उसने टेक-टेक कर अपनी बात उठायी, लेकिन आपके ये तथाकथित सवर्ण लोग जो हम पर जुल्म ढाते रहे, उन्हें आप भूल गये? स्वयं बाबा आंबेदकर, जो इतने बड़े विद्वान थे, और जिन्होंने भारत को संविधान दिया, इस जुल्म से न बच सके. आप जानते हैं एक तथाकथित सवर्ण ने उनके झूठे बरतन छूने से इनकार कर दिया था?

बहस शायद ज्यादा खिंच जाती, लेकिन खिड़की के पास बैठी जवान औरत ने एकाएक आंखें खोल कर जम्हाई ली और सब लोगों की तरफ ऐसे देखने लगी जैसे कोई बहुत खराब सपना देख कर उठी हो. उसके सामने बैठे जवान आदमी ने अपनी टांगें ऐसे फैला रखी थीं, जिससे वे औरत की टांगों को छूती रहें.

मेरा साथी अब तक काफी जोश में आ चुका था. उसकी आवाज कानों पर बड़ा तीखा प्रहार कर रही थी. वह कहे जा रहा था—— शैड्यूल्डकास्ट का आप मतलब समझते हैं? इसका मतलब चूढ़े चमार से नहीं, बल्कि सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़े उन लोगों से है, जिनको ऊपर उठाने के लिए सरकार ने एक लिस्ट में शामिल कर लिया. क्या लिस्ट में शामिल हो जाना ही अपने में एक गुनाह हो गया? मैं तो कहूंगा कि उन सब तथाकथित सवर्णों को, जो आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हैं, उसी सूची में उतार लिया जाये.

एक बार तो मुझे लगा कि यह सुझाव बहुत बढ़िया है, लेकिन फिर एकाएक मेरे मुंह से निकला—— लेकिन यह तो नाइनसाफी को और तूल देना होगा. अगर अनुसूचित जाति से ताल्लुक रखना एक स्टिगमा है, तो इस स्टिगमे को, इस कलंक को, दूर करने की बजाय, फैलाया क्यों जाये? मैं तो फिर यही कहूंगा कि जैसे-तैसे अनुसूचित जातियों के लोग एक मिनिमम स्टैंडर्ड तक पहुंच जायें, उन्हें सवर्ण मान लिया जाय. . . .

बहस का, लगता था, कोई अंत ही नहीं था. उधर हम अपनी मंजिलेमकसूद तक पहुंच चुके थे. गाड़ी से उतर रहे थे तो साथी अपने को कहने से रोक न सका—मैं तुम सवर्णों की सब चालबाजी समझता हूं. यह धब्बा तुमने सिर्फ हमारे लिए ही सुरक्षित कर छोड़ा है. . . .

□□□

एच-२५२, डी. डी. ए. फ्लैट्स,
नारायण विहार नई दिल्ली—२८.

रोटी : तीन पहलू

● गिरधारी सिंह तुरंत

(१)

वह मेंहदी रंगे बाल-दाढ़ी वाला दंतविहीन बुड्ढा था. एक सस्ते से होटल के सामने बैठा था. उसके हाथ में बाजरे की सूखी रोटी थी. उसे खाने की चेष्टा में सफल नहीं हो रहा था.

तंग आ कर वह बोला—ए रोटी! देख, तू ऐसे तंग मत कर. चुपचाप पेट में चली जा.

रोटी पेट में कैसे जाती. मुंह जाने देता तब न. उसकी ओर से कोई प्रतिक्रिया न हुई.

बुड्ढा बोला—देख रोटी, अगर तूने मेरी बात नहीं मानी तो मुझे होटल वाले से एक गिलास दूध लेना पड़ेगा.

रोटी चुप.

—अच्छा, तू नहीं मानती, तो ले, मैं होटल वाले से कहने जा रहा हूं.

रोटी बेचारी क्या कहती.

बुड्ढा क्रोध से चिल्लाया—तू क्यों मेरी इज्जत लेना चाहती है? क्या तू समझती है कि मेरे पास पैसे नहीं हैं तो कोई उधार भी नहीं देगा?

होटल वाला ध्यान से बुड्ढे की बातें सुन रहा था. अब उससे नहीं रहा गया. उसने एक गिलास दूध ला कर बुड्ढे के सामने रख दिया.

बुड्ढा रोटी के टुकड़ों को दूध में भिगो-भिगो कर खाने लगा.

(२)

वह भिखारी-सा लगता था. उसने अपने चार साल के लड़के को नंगा करके प्लेटफार्म पर लगे नल पर नहलाया. फिर उस कड़कड़ाती ठंड में वह बालक विचित्र प्रकार के व्यायाम का प्रदर्शन करने लगा. भीड़ इकट्ठी हो गयी.

एक व्यक्ति ने दया करके एक रोटी भिखारी को दी. उसने चुपचाप स्वीकार कर ली. एक बार लड़के की ओर देखा, दूसरी बार रोटी की ओर. फिर कुछ सोच कर रोटी खाने लगा. वह सारी रोटी खा गया. लड़के की लालसा भरी नजर रोटी पर लगी रही.

रोटी देने वाले ने पूछा—लड़के को रोटी क्यों नहीं दी?

उसने जवाब दिया—यह अभी बच्चा है. भूख सह सकता है. इसके अलावा, यों टुकुर-टुकुर ताकने की आदत भी उसमें डालनी है. जिंदगी में बहुत बार ऐसे मौके आयेंगे. हमारा यही जीवन है.

(३)

वह ट्रेन के डिब्बे में घुसा. एक-एक करके यात्रियों को देखता हुआ आगे बढ़ा. वह अधेड़ उम्र का व्यक्ति था. शक्ल-सूरत से भले घर का दिखायी पड़ता था.

एक जगह रुक कर उसने कहा—आपमें से किसी सज्जन के पास अगर दो-एक रोटी हो तो मुझे दे दें. दो दिन से पेट में कुछ नहीं गया.

लोगों ने हिकारत भरी नजरों से उसे देखा. सब बाबू लोग थे. उनकी नजरों की भाषा पढ़ते हुए वह बोला—बाबू लोगो, मुझे बहुत शर्म आ रही है. पर क्या करूं. मेरे पास जो पांच सौ रुपये थे वे किसीने जेब से निकाल लिये हैं. यहां किसी से जान-पहचान नहीं है. दो दिन भूखे निकाल लिये. अब सहा नहीं जाता.

लोगों की नजरों में अविश्वास था.

शहरी बाबू कुछ दे न सके. एक गरीब देहाती उसके पास आया, और अपने झोले में से भुने चने निकाल कर उसे खिलाने लगा. □

(संकलन संयोजन : इगलासिया)

अपना-अपना डर

• सुरेंद्र अरोड़ा

उसके शरीर के रोये फूल आये थे और पूंछ मोटी हो कर सीधी खड़ी हो गयी थीं. वह बार-बार मुंह को सिकोड़ कर अपनी मूंछों को फैला लेती थी और शरीर के साथ-साथ नन्हीं-नन्हीं पलकों में आंखों को भी समेट लेती थी. भय का एक तेज आरा उसके नन्हे से जिस्म के आर-पार दौड़ रहा था. सड़क के किनारे पड़े पाइपों की लंबी कतार पर वह कभी इस पाइप से उस पाइप पर और कभी उस पाइप से इस पाइप पर कूद-कूद कर तीनों ओर से होने वाले आक्रमण को रोक रही थी.

वे तीन थे और वह अकेली. गोल्फ लिंक के समानांतर चलती हुई लंबी सड़क भरी दुपहरी में अंतहीन नदी की तरह लग रही थी. सड़क के किनारे कोठियों की एक कतार की आखिरी कोठी के फाटक से वह बड़े इत्मिनान से निकल ही रही थी कि तीनों ओर से वे उस पर झपट पड़े थे. और एक ने अपने दांत उसकी गर्दन पर गड़ाये ही थे कि उसने बिजली की-सी फुर्ती से अपने शरीर को पूरी तरह समेटा और एक लंबी छलांग लगा कर इन तीनों के बीच से कूद कर सड़क के किनारे पड़े एक लंबे पाइप पर चढ़ गयी. उसकी गरदन से थोड़ा-सा खून छलक आया था और वहां एक घाव स्पष्ट दीख रहा था. वह बुरी तरह से गुर्रा रही थी. और एक पाइप से दूसरे पाइप पर कूद रही थी. और वे तीनों भरपूर शक्ति से उस पर आक्रमण करने का प्रयास कर रहे थे.

तीनों ने अपनी-अपनी 'पोजीशन' ले ली थी. उनमें से चितकबरा ज्यादा खूंखार नजर आ रहा था, उसीने अभी कुछ समय पहले उसकी गरदन पर दांत गड़ा कर उस पर वार करने की कोशिश की थी, जिसे वह पूरी सफाई से बचा कर तीनों के बीच में से कूद कर पाइप पर चढ़ गयी थी. चितकबरा पाइप के दांयीं ओर से उस पर वार कर रहा था, काला बांयी ओर से और सफेद पाइप के मुंह के सामने खड़ा हो कर उस पर भौक रहा था. और वह गुर्राती हुई एक पाइप से दूसरे पाइप पर कूद जाती थी.

इस तरह से वह कूदती हुई काफी आगे निकल कर अंतिम पाइप पर पहुंची ही थी कि सफेद उस पर भौक कर कूदा और चितकबरे और काले ने उसको दोनों तरफ से घेर कर चक्रव्यूह-सा बना लिया था. अब बच निकलने की किसी ओर से कोई संभावना नजर नहीं आ रही थी. उसकी पूंछ उसी तरह फूल कर खड़ी हो गयी थी और मुंह की मूंछ भी फैल कर एक जाल-सा बना रही थीं. उसने अपने शरीर को पूरी तरह इस प्रकार से सिकोड़ा मानो वह अपने अस्तित्व को स्वयं में विलीन कर लेना चाहती हो, और फिर बड़ी जोर से गुर्रा कर उन तीनों के वार को बचा कर उनके बीच में से कूद कर सड़क के बीचों-बीच आ कर खड़ी ही हुई थी कि एक लंबी मर्सीड़ीज गाड़ी को जोरों से ब्रेक लगे और वह जोर से मिमियाई और फुदक कर फिर पाइपों पर चढ़ गयी.

मर्सीड़ीज को अचानक रुकने से झटका-सा लगा और स्टीयरिंग पर बैठी महिला के मुंह से एक चीख-सी निकल गयी. अपनी सीट की बैक से लग कर उस महिला ने धीरे-धीरे आंखें खोलीं और चारों ओर का जायजा लिया और एक लंबी सांस छोड़ी—'ओ गांड, पुअर थिंग वुड हैव जस्टर बीन किल्ड', कह कर उस महिला ने अपनी गाड़ी के लुकिंग-ग्लास को घुमा कर अपनी ओर किया और झटके से बाबकट बालों को पीछे किया ही था कि वह पाइप से कूद कर उस महिला की गाड़ी के बोनेट पर चढ़ गयी. 'ओह! माई गाड.' महिला अपनी सीट पर ही कूद पड़ी. वे तीनों अब गाड़ी के इर्द-गिर्द खड़े जोर-जोर से भौक रहे थे और वह गाड़ी की विंड स्क्रीन से बिल्कुल सट गयी थी.

यू ब्लडी. . . महिला फुसफुसाई और उसने भरपूर शक्ति से दोनों हाथ हार्न पर रख दिये. हार्न की आवाज सुनते ही तीनों दुम दबा कर पीछे हो गये और वह भी बोनेट से कूद कर फिर पाइपों की लंबी सुरंग के सामने जा खड़ी हुई. अब उसने अपनी पूंछ अपनी पिछली टांगों में दबा ली थी और धीरे-धीरे रोने की आवाज में म्याऊं-म्याऊं कर रही थी. उसकी गरदन के बीचों-बीच हुए वार से जो घाव हुआ था, शायद वह उसे तकलीफ दे रहा था.

—पुअर थिंग. उसके घाव को देख कर महिला के मुंह से एक छोटी-सी आह-सी निकली. उसने छोटे से हैंकी से मुंह पोछ कर सिर को झटका दिया और क्लच पर पैर रख कर एक हाथ से 'इग्नीशन की' घुमा दी और दूसरे हाथ से गाड़ी को गियर में डाल कर अपनी कोठी के फाटक की ओर मोड़ दिया. गाड़ी को बढ़ते देख वह पाइपों की लंबी और अंधेरी सुरंग में घुस गयी .

गाड़ी ने फर्राटे से फाटक के अंदर प्रवेश किया. गाड़ी को गैरेज में पार्क करते ही उन्होंने गाड़ी के लुकिंग ग्लास को अपनी ओर मोड़ कर रूमाल के कोने से आई-ब्रोज से पसीना पोंछा. फिर पर्स से काम्पेक्ट निकाल कर चेहरे पर हलका-सा पफिंग करके दरवाजे की ओर हाथ बढ़ाया ही था कि नीली वर्दी से लैस एक नौकर ने फुर्ती से दरवाजा खोल दिया और झुक कर एक ओर खड़ा हो गया.

'एनी फौन राम सिंह? उन्होंने गाड़ी से उतरते हुए रोबीले स्वर में पूछा.

—जी वह चोपड़ा मेम साब का. . .

—ठीक है. ठीक है. देखो तुम खाना लगवाओ जा कर, हम अभी आते हैं. और वह तेजी से फाटक

की ओर वापस मुड़ गयीं. उसके म्याऊं-म्याऊं के स्वर में लगातार रोने की तेज आवाज उनके कानों से टकरा कर उनके अंदर आशंका की एक-लंबी-सी लकीर पैदा कर रही थी.

—स्टुपिड. आज जरूर कुछ होगा. इट्स ए बैड ओमन. उफ. व्हाई दज शी क्राइंग एट माई हाउस. उफ्फ! और वह पैर पटकती हुई अपनी कोठी के फाटक पर पहुंच गयीं और उन्होंने चारों तरफ नजर दौड़ायी. सड़क विकराल अजगर की तरह मुंह खोले हुए भरी दुपहर को अपनी छाती पर झेल रही थी. इक्का-दुक्का लोग या वाहन उसको रौंदते हुए गुजर रहे थे. उसका रोना उसी तरह से जारी था. वे तीनों अब उन पाइपों के किनारे खड़े थे. काला और सफेद दोनों निढाल से हो गये लगते थे. और वे सिर झुकाये कूं-कूं कर रहे थे. लेकिन चितकबरा अभी शायद उतना थका नहीं था और वह धीरे-धीरे गुर्रा रहा था. उन्हें दूर-दूर तक इन तीनों के अलावा कोई और खड़ा नजर नहीं आया. हां बस एक आवाज—रोने की आवाज लगातार उनके अस्तित्व को अपने पंजे में कसती जा रही थी.

—समथिंग बैड विल डेफिनेट्ली हैप्पेन, समथिंग... वह बुदबुदाती हुई आगे बढ़ गयीं और जमीन से एक पत्थर उठा कर उन्होंने पूरी ताकत से उन तीनों की ओर निशाना बना कर फेंका. हवा में उनको हाथ घुमाते देख कर ही काला और सफेद दुम दबा कर अपनी जगह से भाग खड़े हुए. लेकिन चितकबरा गुर्रा कर उछला और उनकी ओर बढ़ गया. वह घबरा कर पीछे हटीं और उन्होंने जल्दी से फाटक बंद कर दिया और जोर से चिल्लाई—राम सिंह, पूरन, जल्दी आओ. क्विक.

—जी मेम साब? और दोनों नौकर पलक झपकते ही वहां हाजिर हो गये.

—देखो वह. . .दे-देखो. उसको भगाओ राम सिंह. उसको भगाओ. वह अब कांप रही थीं.

रामसिंह ने एक बड़ी ईंट उठायी और फाटक खोल कर चितकबरे पर भरपूर वार किया. और वह कें-कें

● आर. के. अग्रवाल

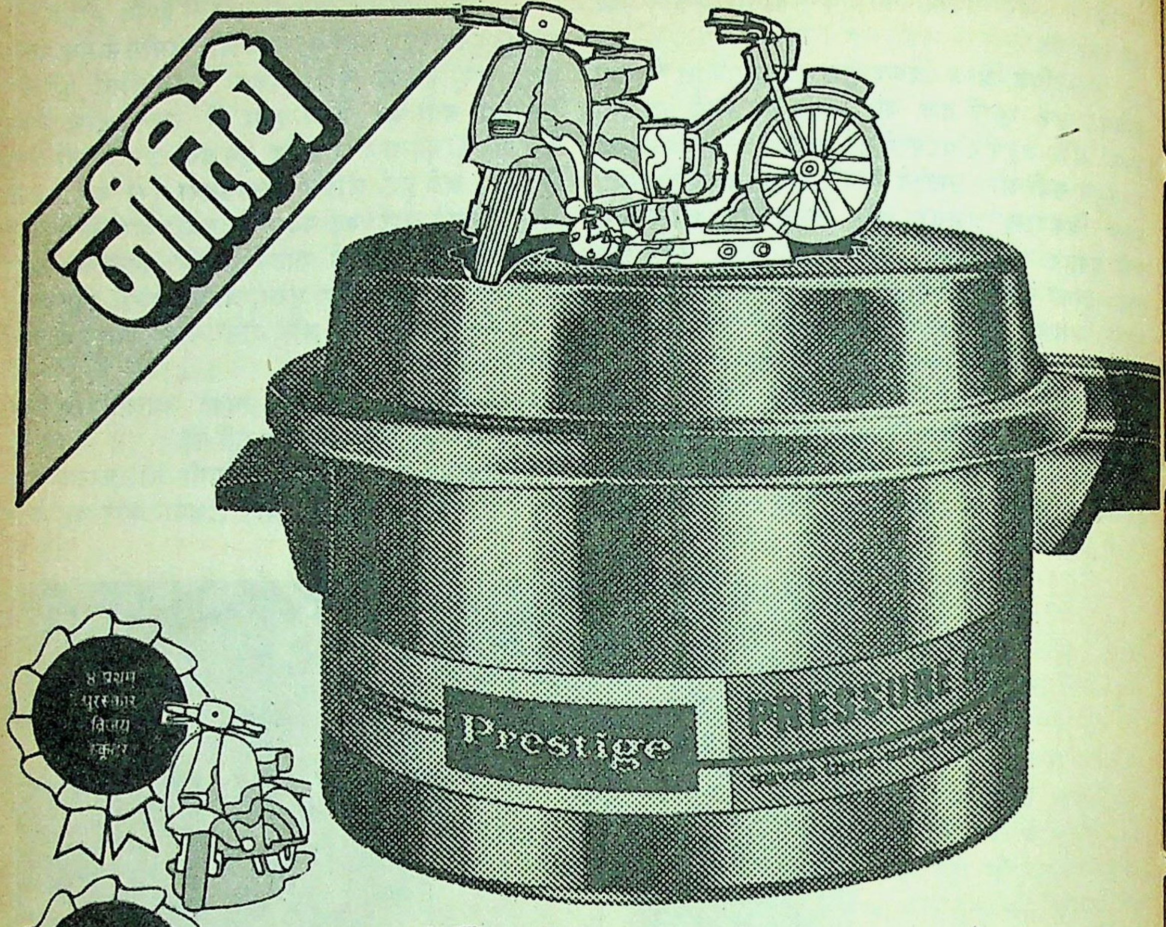
जीतिये
Prestige
PRESSURE
४ प्रथम पुरस्कार विजय स्कूटर

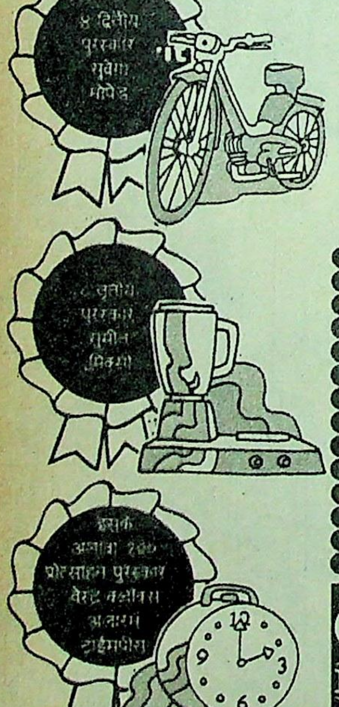
४ द्वितीय पुरस्कार सुवेगा मोपेड
८ तृतीय पुरस्कार सुमीत मिक्सी
इसके अलावा १०० प्रोत्साहन पुरस्कार वेस्ट एण्ड वॉच्स अलार्म टाइमपीस

प्रेस्टिज के साथ—४ विजय स्कूटर और १०० से अधिक अन्य महान पुरस्कार.

Prestige

प्रेस्टिज प्रेशर कुकर के निर्माताओं की "महान पुरस्कार" प्रतियोगिता में !

पूरब, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण—
हर क्षेत्र के लिये
अलग-अलग
प्रथम, द्वितीय, तृतीय
और प्रोत्साहन पुरस्कार—
कुल पुरस्कार १०० से
भी ज्यादा !

प्रतियोगिता और प्रवेशपत्र की पूरी जानकारी के लिए आज ही अपने नज़दीकी प्रेस्टिज विक्रेता से संपर्क कीजिए.

प्रतियोगिता का परिणाम, प्रतियोगिता बंद होने की तिथि से ६ सप्ताह के भीतर घोषित कर दिया जाएगा.

टीटी. (प्राइवेट) लिमिटेड,
बैंगलोर ५६० ०१६.

प्रेस्टीज—भारत के लिए
Prestige
PREETT
प्रीत–निर्यात के लिए
दोनों एक ही हैं।

जल्दी कीजिए ! आज ही अपने नज़दीक के प्रेस्टिज विक्रेता से प्रवेश-पत्र लेकर इस पुरस्कार प्रतियोगिता में भाग लीजिए !

जल्दी कीजिए
प्रवेश पत्र पहुंचने की
आखिरी तारीख—
१० जनवरी १९७७

SAA/TTP/2289 R/HN

करता हुआ दुम दबा कर भाग खड़ा हुआ.

—ओह, माई गुडनेस. उन्होंने एक लंबी सांस ली और साड़ी में खुसे रूमाल से पसीना पोंछा और फाटक से बाहर निकल आयीं.

म्याऊं-म्याऊं के स्वर में उसके रोने की आवाज अब तक उसी तरह आ रही थी. उन्होंने आगे बढ़ कर उस आवाज का पीछा किया और पाइपों की लंबी अंधेरी सुरंग के मुहाने पर आधा झुक कर देखा. ये रोने की आवाज इसी सुरंग से आ रही थी. उन्होंने एक पत्थर उठा कर पाइपों की सुरंग के अंदर बड़ी जोर से फेंका. पाइपों की दीवारों से टकराहट होते ही टन्न-सी एक झनझनाती हुई आवाज ने वातावरण की निस्तब्धता को भंग किया. उसने फुर्ती से अपने को समेट कर अपने को बचाया और पाइपों की सुरंग के अंधेरे में आगे बढ़ कर उसमें विलीन हो गयी. अब वह अदृश्य हो गयी थी. लेकिन उसके क्रंदन का स्वर अब और तेज हो गया था.

उन्होंने कमान-से झुक आये अपने शरीर को सीधा किया और चारों ओर नजर दौड़ायी. लेकिन उनकी दृष्टि पाइपों की अंतहीन कतार के दूसरे छोर को पकड़ नहीं पायी—कैसे निकलेगी ये! कैसे रोना बंद होगा इसका? उफ्फ. समथिंक बैड. . .कुछ बुरा जरूर होगा. सरटैन्ली. . .उस दिन भी तो यह इसी तरह रो रही थी. जिस दिन रामसिंह के साहब को पुलिस पकड़ कर ले गयी थी. अब आज फिर. . .उफ्फ! वह अस्फुट स्वर में बुदबुदाई और फिर पैर पटक कर चिल्लायीं—रामसिंह टेलिफोन डायरेक्टरी निकालो चल कर. जल्दी. और बदहवास-सी वह जल्दी-जल्दी अपनी कोठी के मुख्य द्वार की ओर बढ़ने लगीं. उसके क्रंदन की आवाज उसी तरह से पीछा करती हुई उनके रोम-रोम में सीसा घोलती जा रही थी. उन्होंने अपने कानों पर हाथ रख लिये. अब वह हांफ रही थीं. दोनों नौकर विस्फारित नेत्रों से उन्हें देखते हुए उनके साथ कदम से कदम मिलाने की कोशिश कर रहे थे. उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि ये उनकी मेम साहब के साथ क्या घट रहा है—रामसिंह, डायरेक्टरी. ड्राइंग रूम में प्रवेश करते ही वह चिल्लायीं.

—जी मेम साब! ये. . .और भौंचक नजरों से उनकी ओर देखते हुए नौकर ने डायरेक्टरी उनकी ओर बढ़ा दी.

उन्होंने फर फर करते हुए पन्नों को तेजी से पलटा और फुर्ती से बढ़ कर रिसीवर उठाया ही था कि फोन के पास कागजों पर रखा पेपरवेट उछल कर उनके पैरों पर गिर पड़ा. और वह चीख कर उछल पड़ीं और फिर बुदबुदाने लगीं—ओ गाड, ये क्या हो रहा है. ये क्या हो रहा है. . ., उन्होंने कुछ क्षणों में अपने को संभाला और झुक कर कुछ देर तक अपने पैरों को सहलाया और उठ खड़ी हुईं. उन्होंने फिर डायरेटरी के पन्ने पलट कर नंबर ढूंढ़ निकाला और जल्दी-जल्दी नंबर डयल करने लगीं.

—हेलो! फायर ब्रिगेड, मिसेज खोसला दिस एंड फ्रांम फाइव गोल्फ लिंक्स. प्लीज कम एट वंस. फौरन आइए. देयर इज ए स्ट्रे कैट विफोर माई हाउस. एक आवारा बिल्ली. मेरी जान मुश्किल में है. माई लाइफ इज इन हाट वाटर्स. फौरन आइए. हां-हां फाइव गोल्फ लिंक्स. क्या कहा? इस काम के लिए नहीं आ सकते. प्लीज ऐसा मत कहिए. मैं चार्जेस दे दूंगी. एनी एमाउंट टू हंड्रेड, थ्री हंड्रेड. आ विल पे! मैं सब चार्जेस दूंगी. मेरी जान मुश्किल में है. आप फौरन आ जाइए प्लीज. उनके हाव से रिसीवर छूट गया था और वह बिफर-विफर कर रोने लगी थीं. बिल्ली के रोने की आवाज अभी भी उनके रोम-रोम में सीसा घोल रही थी.

□□□

ई. जी. २३, इंद्रपुरी, नई दिल्ली—१२

एक लघुकथा

अपमान

• सीतेश आलोक

एक संपन्न घर में विवाह करके जाते समय उसने अपने रोते हुए निराश प्रेमी को समझाया—भाग्य ने हमें नहीं मिलने दिया तो क्या! मैं तन-मन-धन से तो तुम्हारी ही हूं. . .सदा तुम्हारी रहूंगी.

वियोग में निराश प्रेमी दुनिया ही भुला बैठा. नौकरी भी छूट गयी. फाके की नौबत आ गयी. वह अपनी प्रेमिका के पास पहुंचा. वह बोली—धन तो सब मेरे पति का है. मेरे पास होता तो तुम्हारा ही होता. हां! मेरा तन-मन तो तुम्हारा ही है.

प्रेमी ने अपने को संभाला. फिर एक नौकरी ढूंढ़ी. एक नई जिंदगी प्रारंभ करने की ठानी. एक दिन फिर उसे अपनी प्रेमिका की याद आयी. वह बोली—अब यह तन दूषित हो चुका है. . .अब यह तुम्हारे योग्य नहीं बचा. हां, मन से मैं तुम्हारी ही हूं. तुम्हारी ही रहूंगी.

प्रेमी चकराया. एक दिन इसने मुझे विश्वास दिलाया था कि यह तन-मन-धन से मेरी रहेगी. अब एक-एक करके इसने धन और तन से छुट्टी पा ली. मन का क्या भरोसा! वह पूछ ही बैठा—तन और धन से तो तुमने किनारा कर लिया. क्या तुम्हें पूरा विश्वास है कि तुम मन से मुझे प्यार करती रहोगी?

प्रेमिका पहले तो सकपकाई, फिर बिगड़ते हुए बोली—यह पूछ कर तुमने मुझ पर अविश्वास ही नहीं किया, मेरे प्यार का भी अपमान किया है. फिर कभी अपनी सूरत भी न दिखाना. . .

□□□

किस हाथ से

प्रभु जोशी

खुल्ली खिड़की के चौखट्टे से तीखी हवा ने घुस कर 'जिसम' में चिकौटी काटी. राघू गुड़ी-मुड़ी अवस्था में पड़ा-पड़ा गोदड़ी के भीतर अधमरे केंचुए-सा थोड़ा सलमलाया. फिर, एकाएक झटके के साथ उठ बैठा. गोदड़ी देह से छूट कर 'अलग' गिर गयी, किताब की तरह, जिसमें फूटे करम के हरूफ लिखें हों. गोदड़ी में जिगह-जिगह पर टेकलेनुमा छेद पड़े हुए थे जो गोदड़ी को माथे से पांव तक ओढ़ लेने के बाद भीतर के नीम अंधेरे में तारों की तरह चमकने लगते हैं— राघू को तब 'बसंती' की याद आने लगती है. . . पहले आंख, फिर सकल और फिर पूरी देह. . .

मौसम ठंड का था. और रात को गोदड़ी की छत के तारे, बजाय 'बसंती' की आंख के बर्फ के डल्ले-से उसके शरीर पर टपकते रहे थे. राघू इस ठंडी बरफ से बचने के लिए पूरी रात में छाती में टांग व हाथ छिपाये, ऐसा कचकची खा कर सोता रहा था, जैसे इत्ती मोटी कलजुग की दुनिया में उसकें सब कुछ केवल ये टांगें और हाथ ही हैं— हाथ, जो तारे तोड़ने के लिए नहीं, 'टिफिन' से लदी साइकिल का हेंडल थामने के लिए बने हैं, और पैर पैडल मारने के लिए!

वह उठ कर दोनों पंजों को कांख में छुपा कर खिड़की के सामने आ गया. धूप गरम पेशल चाय-सी कड़क रंगत पर आ गयी थी. देख कर बड़बड़ाया— साली, आज फिर सुमेरे-सुमेरे गाढ़ी नींद लग गयी. कल से सेकिंड शो में बिलैक करना बंद कर देगा, बल्लू चच्चा के खातिर करता है वर्ना, राघू को क्या? भली उसकी टाटी, इसी में मिले घी-बाटी.

'खडं गऽऽ खडं ग. . .' बल्लू चाचा सड़क पर अपना तांगा लिये जा रहा था. कंवेंट के बच्चों को बीनने. नजर मिली तो कांख में से हाथ बाहर किये बगैर घोघ हिला कर दुआ-सलाम का काम निबटा दिया— हुंह! इस पियारे का काम भी ऊंचा है— घोड़ा है त, खूंटे से खोलो और जोत दो. इस सोच के साथ ही उसके दिमाग में अपनी साइकिल घूम गयी.

कल याकूब मियां से पंक्चर पकवाया था. अठन्नी चित करवा ली. और रात फिर पहिये से हवा फुसकी पड़ी है. 'साइकिल की तरह कोई दिन तेरी भी हवा फुसक जायेगी.' राघू ने दलित-दार्शनिक की तरह धंधें के प्रतीक में से दर्शन खींचा और उदास हो गया. तभी चिंता ने सब बिरोबर कर दिया— देर हो जायेगी, पहले ही तो नींद देर से खुली है, फिर साले तुंदियल लोगों के बोल सुनने पड़ेंगे.

उसने खिड़की में से हट कर कोने में से रखी गागर में से पानी ले कर चेहरे पर चुपड़ा और छलनी होती जा रही बनियान पर गंदी कमीज डाल ली. इसके बाद रोटी का डिब्बा संभाला. एक ही बची हुई थी, डिब्बे के पैंदे में, जो नीचे से हरी कच्छ हुई जा रही थी. उसने चटपट ऊपर-ऊपर की पपड़ी खरोंची और पानी के साथ निगल ली. पानी ने आंतों तक पहुंचते-पहुंचते शरीर में ठंड की 'रकीर' खींच दी.

फिर, तेजी से ताला ढूंढ़ा और नकुंचे से मेंढक की तरह लटका दिया. कई बार ताला लगाते हुए उसे खुद पर हंसी आत जाती है— 'क्यों कर के ताला लगाता है, तू? केवल चाभी रखने के लिए? वर्ना, घर में फटी गोदड़ी, फूटे तवे और काणी मटकी के अलावा है ही क्या! पर चाबी जेब में पड़ी रहने से उसको लगता तो रहता है कि वह दर-दर भटकता बंजारा नहीं, घर-गिरस्ती वाला मिनख है— वर्ना ताले की जरूरत तो गोदाम वालों को होती हैं, फटी गोदड़ी व फूटी मटकी वाले राघू को काय की!' चाबी जेब में पटकी तो टन्न की आवाज आयी. राघू एकाएक अप्रत्याशित रूप से खुश हो गया— तो जेब में लछमी टनटना रही है. याने रात को बल्लू को अठन्नी नहीं लौटायी. . . चलो, पंक्चर भी जुड़ जायेगा और चालू 'चा' भी पी लेगा. उसको लगा, देह में एकाएक तर्राटी आ गयी है.

साइकिल गलियारे से निकाल सड़क पर याकूब मियां की दूकान के सामने आ गया. सोचा— पिछला पहिया दिखवा ले, फिर 'चा' पीने आगू निकल जायेगा. मगर, इस टैम याकूब एक 'गिराक' से उलझा हुआ था. वह ठिठक गया.

——रन दे मियां, तू पइसे अब्भी रख, नी तो एक झटके में 'झालन' हेड़ दूंगा.

——मान लो भईजान, कल सब चुकता कर दूंगा.

——मान लो की ऐसी-तैसी, मेरे कूं तो इसी दम पइसे चइये और पूरे चइये, नी तो एक झटके में खोपड़ी की 'झालन' हेड़ दूंगा, याकूब मिया ने फिर वही बात दूने जरीके से दोहरायी तो राघू का मन हुआ 'गिराक' की तरफ से दो बोल वो भी बोल दे. मगर चुप रहा. साली अभी ही साइकिल का पंक्चर पड़ा रहेगा. सिल्ला नीत्रे हाथ हो तो जबान भी कटी रहती है.

——ये भी कोई बात है, लाद दो, लाद दो और लादने वाला साथ दो, इसकूं मैं साइकिल दी, बरफ दिलवाया और किराये की टैम पर पछवाड़ा कर रिया है, याकूब मियां ने लगभग शहर को संबोधित करने की अदा से कहा और फिर वही 'झालन हेड़ने' वाली धौंस को दोहराया. गिराक फिर छूट के लिए गिड़गिड़ाया.

याकूब मियां ने फिर कहा——अपन एक बाप रखते हैं, और एक ही बात, सो जो कह दिया याने कह दिया, पैसे पूरे नी दिये तो मैं झालन हेड़ कर. . .

राघू वहां से हट गया. साइकिल समेत. साइकिल में टिकाने का स्टैंड नहीं है न, इसलिए अपंग औरत-सी अपने ऊपर ही लदी रहती है. 'चा' की गुमटी के पास आकर दीवार से टिका दी, फिर गुमटी में घुस गया. गुमटी में दो-तीन गिराक और जमे थे, जिनमें रामू गुब्बारेवाला, हसन टोस्टवाला और मंगीपारे का रत्लू कबूतरबाज था. वे सब ताजे अखबार में 'बंबई' के मटके' को लेकर बहस कर रहे थे.

—रत्लू, लोग कहते हैं न, आंख फूटती है तो घर के डांडे से, तेरी भाभी ने ही तीन रोटियां एक साथ थाली में परोसीं, तीन गोल-गोल. और थाली भी गोल. मैंने ग्यान जमाया, मिंडी से तिर्री (शून्य से तीन) लगा दे. . . जबकि, मैं केवल मिंडी से मिंडी की ही सोच रिया था. . . और साली ओपिन व किलोज में, दोनों में मिंडी फंस गयी. . . मिंडी से मिंडी केवल दो रुपये की ही लगा देता तो. . . इसके बाद जिस तरह वह हताश लग रहा था, उससे शक होने लगता था कि वह टेबल से सिर फोड़ने लग जायेगा.

—ये तो तेरी बात हुई, अब मेरी सुन, मैं सुबू जैसेई घर से निकला, तो क्या देखता हूं कि वो अपना नाम सड़क पर साइकिल का टूटा टायर पड़ा हैगा, मैंने भी सोचा कि हसन प्यारे! मार मिंडी से मिंडी, पर जब लालसींग की दूकान को पहुंचा तो देखा कि चार गिराक पान बंधवा रहे हैं, दो मर्द, दो औरतें, फिर एक छोरा आया तो दो पान मांगे और दो सिगरेटें, मैंने अपने से ही कहा—दुर्री से दुर्री क्यों न लगा दूं, मिजान भी तो जम रहा है और कसम खुदा कि जेब में हाथ डाला तो बिरमसींग का दिया दो का नोट हाथ लग गया—और अखीर में साली ये मिंडी से मिंडी ही निकल गयी न!

राघू को उनके पारस्परिक आत्मकथा- से लुत्फ आने लगा. फिर, एकाएक देरी की याद आयी. उसने तुरत 'चा' का आर्डर दिया और सोचा—वह अच्छा बचा है, इस झंझट से , एक नयी पाई का भी सट्टा नहीं लगाया. अपना तो ये ही धंधा अच्छा है, उठाव साइकिल, लादो टिफिन और डाल आओ फैक्ट्री को. . . राघू कभी-कभी सोचता है, इस धंधे को करते-करते पता नहीं कौन टैम से उसका नाम कोई रखा गया और वो केवल डिब्बे वाला भर रह गया. छोटे-मोटे सभी 'डिब्बावाला' बोलते हैं. गुमटी वाले ने चाय दी. पीकर वह वापस याकूब के पास आ गया.

याकूब ने पिछले पहिये का टायर खोला और ट्यूब देख कर बोला— मियां तू कब तक बनवाता रहेगा, साला' छिद-छिद कर रामजनी का कलेजा हो गया है. . . दूसरा ट्यूब डलवा ले न!

राघू उलझन में पड़ गया— ट्यूब बदलाने में टिफिन का टैम हो जायगा . . . और पैसे अभी हैं नी.

—क्या करो, तेरे लिए आंकड़ा पीयेंगे, कर देंगे उधार, याकूब बोला.

—तो फिर फटाफट डाल दो, नया ट्यूब, राघू ने बहुत तत्परता के साथ कहा.

—तू भी खसम की तरहां, सिर पे खड़ा हो कर काम करवायेगा?. . .ले अभी तो दूकान से किराये की गाड़ी लिये जा.

राघू ने चुपचाप गाड़ी उठायी. और सीट पर सवार होते ही सोचने लगा, पांच का ट्यूब है, उधारी में छह लगायेगा और अपनी दूकान से किराये की सायकल दे दी, डेढ़ रुपिया इसका यानी पांच की चीज के साढ़े सात वसूल लेगा, लेकिन फैक्ट्री की पहुंच की दूरी से इतना

मुरलीधर जालान

घाटा सहन करने की मजबूरी स्पष्ट थी–– क्या करो? बांकी बखत, लूट्यो तखत!

अब वह कालूनी में था. इस कालूनी में घुसते ही राघू का दम घुटने लगा है, सारी कालूनी की हवा में ऐसी 'बास' फैली रहती है कि नथुनों को छूते हीं अंतड़ियों में भूख के पलपटे उठाने लगती है–जहां जाव, साली तर घी और पकते खाने की खसबू ही खसबू होती है. राघू को लगता है, इन घरों की नाली में नाक मार दो तो वहां भी यही खसबू आयेगी. यह सब पा कर उसे ऐसी चिकनी सड़क पर भी साइकिल चलाने में थकान लगने लगती है. एक से एक आला बंगले और बंगलों में खाना–आखिर, ये लोग ऐसा बनाते कैसे होंगे? उसे खन्ना बाई साहब वाली बात याद आयी. वो बाई को 'लेंस-किलब' ने मछली के पकौड़े बनाने पर इनाम दिया था. अखबार में फोटू तक भी छपा था. और,' अपने घर की बाइयों की जिनगी रोटी बेलते-सेंकते हो जाती है, मगर दुनियां में कोई नहीं जान पाता–– ऐसा सोच कर राघू तय नहीं कर पाता कि अब हंसे कि रोये. . . या गाली गाने लगे.

★ ★

तभी सामने से मोती आता दीखा. उसके गांव का है न, इसलिए भीतर भाव-भजन बाकी है. उसने करीब आते ही 'बिरिक' मारा और उतर गया. हांफ रहा था और पूरा बदन पसीने से लथपथ हो रहा था. इसीलिए ही हवा के उतने घेरे में एक अलग तरह की 'बास' (गंध) भर गयी थी. पकवान और घी-तर मसालेदार सब्जियों के बघार के खिलाफ एक रजी-सी अपनेपन की बास. राघू को लगा, टिफिन खाने वाले अदमियों की 'बीड़' में इस तीली ने आग धर दी हो. उसके नथुनों में घुसती बू ने राघू को गांव में उतार दिया. ओस में भीगी कच्ची घास की पत्तियों को जब कुंवार की धूप में सेंकने लगती है, तो जो गंध उठती है, वह गांव के हर कण में समा जाती है. बसंती के कपड़े-लत्तों की तो बात छोड़ो, रात को पास सोता है तो उसकी सांस को झेलते हुए लगता है, वह ऐसी गंध से भरी घास की नरम और गीली बीड़ में उतर गया हो.

मोती ने बीड़ी दी तो उसने होठों के बीच खोंस कर सिरे को आगकड़ी से भून दिया. दो-एक कश और दो-चार बोल की लेन-देन भी नहीं हुई थी कि राघू ने बीड़ी का जलता सिरा हेंडल के सिर पर बुझा, बीड़ी कान में खोंस ली. और पांव पेडिल पर रख दिया. मोती भी बढ़ लिया.

आज पंद्रा मिलिट देर से जा रहा है, तो भी 'भड़कमकर बाई' पंद्रा मिनिट और लेगी. अपने आदमी के आफिस जाते ही दूसरे दुदांते-जवान से इश्क लड़ाती है, मगर वो शक न करे इसलिए साली खूब-सारा व तरेह-तरेह का खाना बना कर भिजवाती है, और वो भी गरम. . . जल्दी डिब्बा लेने पहुंच जाओ तो डांट दिया करती है, 'इतने जल्दी कायकू आ जाते हो, फिर टिफिन वाला रखने की क्या जरूरत, वे अपने साथ ही न लिये जाया करें. . .' और देर से आओ तो और देर करती है, कई बार इसी के मारे उज्जैन रोड का रेल्वे क्रासिंग फाटक बंद हो जाता है और वह पंद्रा बीस मिलिट और लेट है जाता है. फिर, उधर लंच का सायरन हो चुका होता है तो साब लोग धौंस देते हैं, 'टिफिन छोड़ दो. . .' राघू का जी करता है कहे, 'तुम सब की बीवियां बेलकुल कढ़ाई और तवे से उतरता खाना भिजवाना चाहती हैं तो जल्दी कैसे आ पाऊंगा. . . मेरे पास कोई हेलिकोफ्टर तो हैगा नी! जो उधर लिया और फुर्र-दने से इधर डिब्बे ला दिये. अपने पास तो वही है, दुपहिया कच्चे का राकेट!' राघू ने कल्पना की वाकई उसके पास हेलिकाफ्टर होता तो वह सभी के डिब्बे पा जाता और बिलकुल गर्मागर्म ही खाना मिलता. . . तभी उसने हेलिकाफ्टर की प्राप्ति को पुनर्मूल्यांकन किया तो पाया कि गणित गलत हो गया है. अरे, हेलीकोफ्टर होता तो डिब्बे काहे को डालता. . . .

उसे फिर देर होने की याद आ गयी. उसने तेजी से सायकिल धुनक दी. रफ्तार ऐसी थी कि दो-एक जगह टकराते-टकराते बचा. छलनी बनियान पसीने से लथपथ हो गयी.

––बाई साब, डिब्बा! पहली हांक से घर की व्यवस्था में कोई सलमलाहट न हुई तो उसने दूसरी दफा ये ही शब्द गोफन शैली में कांच की खिड़कियों वाले मकान पर फेंके. आवाज आयी–– गला क्यों फाड़ रहे हो, क्या कच्ची चपातियां ही डिब्बे में रख दूं?

राघू चुप हो गया. बेचैनी को दाबी तो पैरों में सलसलाहट के साथ चली गयी. वह डिब्बे आने को साइकिल का पेडेल उल्टा घुमाने लगा. उसे याद आया, उसकी साइकिल का फ्री-व्हील का तार भी तो जब-तब गायब हो जाता है, बसंती की अकल का-सा और खास कर रेल्वे क्रांसिग तक के तोड़े की चढ़ाई पर. कितना ही मनाओ, लौटता नहीं.

वह डिब्बा ले आयी. उसने लिया तो लगा, डिब्बा नहीं रोटी के फूलों का ताजा गुलदस्ता है. जब तक हेंडल पर टंगा रहेगा, खसबू का सांप अंतड़ियों को डंसता रहेगा. लेबर आफिस का डिब्बा उसने इसीलिए तो छोड़ा था. पंजाबन-पत्नी रोज-रोज नयी-नयी तरेह की खसबूदार खाने की चीजें बना कर रखा करती थी और उस खसबू से वह रोज उदास हो जाया करता था. टपरी की मर्दानी रोटियों का कौर चबाते हुए वह तैश में आ जाता था कि साले वे लोग ऐसा खाना क्यों खाते हैं? एक बार तो नीयत ऐसी हो गयी थी कि टिफन तोड़ताड़ कर खुद खा जाये. पर तब उसने खुद को समझाया था, इस साला में घी या तेल नहीं– लाखन, गल्लू, हरदेव आदि का खून का खून है. साला हर बार उनकी तनख्वाह कटवा दिया करता है. ऐसी रोटियां को खाना तो क्या, देखना भी पाप है, राघू! तू जबान जफोत!

डिब्बा टांग कर साइकिल दूसरे साहब के घर की ओर धुनक दी. धुनकते हुए उसे लगा, भूख तो रोज ही लगती है, पर आज जोर की प्यास लग रही है. किससे पानी मांगे? कालूनी के बंगले वाले से तो पानी भी नहीं

मिलता. पानी मांगे तो दुत्कार मिलती है, उसे हंसी आयी, नेताजी सुबास बाबू ने जब कहा था, तुम मुझे खून दो. . . . तो क्या उसने भी कहा होगा? और कहा होगा तो इनने उनकूं क्या दिया होगा ?. . .

राघू ने और साइकिल तेज कर दी. दूसरे बंगले के पास पहुंचते हुए उसे लगा, हांक लगाने में भी कुछ विशेष जोर लगाना पड़ रहा है. बाई साब आयी और डिब्बा टांग गयी. इस बाई साब को देख कर राघू को एक बार अपनी बसंती पर सुबहा हो गया था, 'मेरे शहर आ कर रहने के बाद से बसंती भी तो ऐसा नहीं करती. . .' इसके घर में रोज नये-नये मुर्गे देखे जाते थे. तब वह उसी दिन सायकिल धुनकता हुआ गांव जा पहुंचा था, तो देखा था, बसंती भूखे सोनू को बहला रही है और उसके लिए 'मीठे गांठिये' भेजने को आटा गूंथे बैठी है. तब राघू को लगा था, पवित्रर है, पवित्रर! गंगा जैसी. और उसकी आंखें नम होते-होते बचा ली थी, उसने.

ये बाई देती हैं, 'दुपहर का खाना', और उसे देखती ऐसी नजर से कि राघू की रात के खाने की भूख लग आती है. तब उसकी नाक में कच्चे घास की ओस में भीगी बीड़ में डूब जाने का भरम होने लगता है— जहां तैर कर निकलने का सवाल नहीं उठता.

लेकिन टिफिन देख कर इस समय अंतड़ियों में छुपी भूख ही भड़कने लगी थी. उसका मन हुआ, पानी मांग ले. लेकिन, फिर सोचा, लाखन के यहां ही पी लेगा. अंत में लाखन का ही डिब्बा तो लेता है. एक बार आफिसर लोगों ने उसे धमकाया था, मजदूरों के टिफिन हमारे साथ मत मिलाया करो तो उसने बंद कर दिये. अब लाखन का भर ले जाता है और उसे भी एक अच्छे-से झोले में ताकि एलूमीनम का डिब्बा अलग से नजर न आये.

* *

राघू को लाखन के मुहल्ले में घुसते ही लगा, वह अपने गांव के 'कांकड़' के अंदर आ गया है. उसने आवाज दी तो छोरे दौड़ कर डिब्बा ले आये. उसने पानी मांगा तो एक दूसरे को दौड़ते-धकेलते पानी ले आये. मन हुआ था, भाभी से कह के दो-एक रोटियां मांग ले. फैक्ट्री पहुंच कर खा लेगा. मगर महीने की तारीखें याद कर के उसने साइकिल बढ़ा दी. फिर, उधर रेल्वे क्रांसिग का फाटक बंद हो जाने की चिंता भी थी. मगर, भूख में उससे आज साइकिल भी नहीं खिच पा रही थी. पहली दफा उसे टिफिन के वजन के बारे में सोचते हूए लगा कि लोग, जो फैक्ट्री की गद्देदार कुर्सियों पर बैठे हैं, आदमी के हिसाब से नहीं, भैंसों के हिसाब का खाते हैं. वह टिफिन नहीं, भैंसों के लिए भूसा लादे जा रहा है.

शहर छूटते ही सड़क की निर्जनता बढ़ने लगती है. उसने दूर निगाह फेंक कर देखा, आसमान की छाती में गर्म सलाख-सी निरंतर खुबी रहने वाली आटोमेटिक गेट की बल्लियां गाड़ी के स्वागत में जरखरीद गुलाम-सी सिर झुकाने लगी थीं. राघू ने भूखी टांगों के बावजूद साइकिल तेजी से धुनकनी शुरू कर दी. उसने चाहा कि गेटमैन नारायण बाबू को आवाज दे ले और तब तक तो उसने राघू को देख ही लिया. सो वहीं से चिल्लाया-- जल्दी चला आऽऽऽ! राघू ने और तेजी से पेडिल मारे और क्रांसिग पार कर गया. क्रांसिग पार करते ही उसे लगने लगा, सांस फेफड़ों में समा नहीं पा रही है, और पेडिल पर से पांव फिसलने लगे हैं. . . उसने लंबी-लंबी सांस ले कर काबू किया और धीमे-धीमे साइकिल को खींचने लगा. उसे लगने लगा था वह किसी भी क्षण गिर पड़ेगा. आखिर, किसी तरह वह खींचता हुआ थके बैल-सा फैक्ट्री के गेट के पास हांफता हुआ आ लगा. चौकीदार ने डिब्बे उतारे और कैंटीन में पहुंचा दिये.

वह चौकीदार की कॉटेज के बरामदे में भीत से देह टिका कर सुस्ताने लगा. फिर नल से मुंह जोड़ दिया. 'ब्रेक' का सायरन बजा. . . कैंटीन से, चम्मचों, प्लेटों और गिलास की आवाजें आने लगीं, जो पहले उसके कान में घुसीं फिर आंतों में काटने लगीं.

* *

लंच के खात्मे पर सायरन बजा तो राघू को एकाएक ताज्जुब हुआ. लोग इत्ती देर तक क्या खाते हैं? और कैसे खाते हैं? इन्हें मिलता कैसे है? और क्यों?

खाली डिब्बे कैंटीन से लौटे तो उसने सबों को धीरे-धीरे हैंडल पर टांगे और लद कर चल दिया. पहला ही पैडिल मारते हुए लगा, सीधी रस्सी-सी आंत में एकदम कोई गिठान पड़ गयी है. मगर फैक्ट्री व शहर के बीच की निर्जनता और धूप ने उसे इस निष्कर्ष पर पहुंचा दिया था कि किसी भी तरह वह खुद को शहर की छाती में घुसेड़ दे, फिर तो किसी से आठ-चार आने मांग चने चबा कर पेट का खालीपन दूर कर देगा.उसने तेजीसे पांव मारना शुरू किया. लगातार पंद्रह मिनट चलते रहने के बाद उसे लगने लगा, पेड़, सड़क, पहाड़ी, सब कुछ चल रहे हैं. वह पल भर के लिए बुरी तरह घबड़ाया और साइकिल समेत धूप से बचने पुलिया के नीचे उतर गया. आंख मूंद कर पड़ गया. और जब आंख खुली तब पाया, पेड़-पहाड़ी सब कुछ थम गया है. पास में साइकिल थी. मगर 'उसे महसूस हो रहा था, उसमें उठने का जोश भी शेष नहीं है. पेट खाली ढोल में मारी जाने वाली मूंठ-सा गुंगआने लगा था.

उसने साइकिल को कुछ गौर तलब निगाह से घूरा. फिर उसके हैंडिल पर लटके टिफिन केरियर्स की टिफिन्स पर निगाह पड़ते ही उसको नथुनों के आसपास गंध घूमती लगी. उसने सूखे गले के नीचे थूंक उतारा और बैठ गया. फिर डगडगाती आंखों से चारों ओर घूरा. धूप ने आवा-जाही का सिलसिला तोड़ कर सन्नाटा छींट दिया था. यह उठा और चुपचाप कांपते हाथों से टिफिन बाक्स हैंडल से उतार कर जमीन पर रखने लगा. फिर, धीरे से वहीं बैठ गया.

सबसे पहले उसने भड़कमकर का टिफिन बाक्स खोला. देखा, पूरे खंड खाली थे. केवल बीच के खंड में सब्जी के टुकड़े चिपके थे. आंतों के भीतर की लपटें पूरा पेट झुलसाने लगी थी. अचानक उसे याद आया, पांडे की नयी-नयी बीवी लड़ैती में अपनी चौके की चतुराई दिखाने के लिए उसका डिब्बा ठसमठस भर दिया करती है,

मैक्सी-मन को भाये!
TF
मैक्सी, मिडी, मिनी, फैशन के अनुरूप
कपड़े मनपसंद [illegible]
ठाकरसी के नित नए लिबास में छूट का
[illegible]
[illegible]
[illegible]
ठाकरसी फॅब्रिक्स
TF
ठाकरसी लेके लाया
नया ज़माना, नया तराना

हिंदुस्तान स्पिनिंग एन्ड वीविंग मिल्स लि.
१८, बम्बई समाचार मार्ग, बम्बई ४०० ०२३

everfresh® 67% 'Terene' 33% Cotton · DOUBLE EDGE 'Terene' Suitings · easycare® 67% 'Terene' 33% Cotton · easylene® 80% Polyester, 20% Cotton · Tanlene® Polyester/Cotton · Tonester® Polyester/Cotton

जरूर उसमें कुछ बचा होगा. तेजी से उसने झोले में से उसका डिब्बा निकाला और देखते ही उसे लगा, जैसे किसी ने हलक में हाथ डाल कर पेट में जाता कौर खींच लिया है. टिफिन के नकुचे पर छोटा-सा स्टील का ताला लगा था. राघू ने सांस खेंच कर भीतर ही भीतर खुद से कहा—— राघू, ताले बड़े लोगों के गूदामों पर ही नंईं, जूठन पर भी लगे होते हैं और तू घर पर लगाते हुए हिचका करता है.

सारे टिफिन-बॉक्स हैंडिल पर टांगते हुए एकाएक लाखन के डिब्बे में किसी चीज के लुढ़कने की आवाज आयी. पहले उसने सोचा, सब्जी की खाली कटोरी होगी. मगर, खोल कर देखा तो राघू को लगा, सोच की चढ़ाई चढ़ते हुए दिमाग की बाइसिकल के पहिय्ये का फटाक-दने से 'फिरी-व्हील' का तरा टूट गया है. वह सुन्न रह गया. डिब्बे में कटोरी नहीं, बासी 'बाटी' थी, जो सूख कर बाहर से पत्थर की तरह कड़क हो चुकी थी. राघू के सामने सवाल का पुरना पेंच खुल गया कि लाखन के दांत इत्ते-इत्ते बड़े होने के बावजूद भी वह उस नरम और गरम गोश्त के लेबर आफिसर को क्यों नीं खरोंच खा पाता, जो लाखन की जिनगी बरबाद किये है.

डिब्बे में से बासी 'बाटी' राघू ने खाने के लिए हाथ में ली तो पल भर के लिए उसे भरम हुआ कि उसके हाथ में गेहूं के आटे से बनी गोल-मटोल 'बाटी' है या कि कोई हथगोला? और, उसे अब अपने कुलबुलाते पेट में डाले या कि नरम -और गरम गोश्त वाले लेबर आफिसर के सिर पर! —— उस सिर पर जिसमें हरदम लाखन के भले-सले की जिगों पर केवल लछमणराव एण्ड कंपनी प्राइवेट लिमिटेड के भले की तिकड़में तैयार होती रहती हैं. . .

तभी सड़क की निर्जनता को उसने बहुत बेहरमी से रौंदे जाने का अनुभव किया. घबरा कर उसने गरदन उठाई और देखा, टॉप गियर पर एक ओवर-लोडेड टिरिक चला आ रहा था—— बेलकुल नाक के सामने सिर के ऊपर. राघू की भूखी मुट्ठी में बंधी 'बाटी' और कस गयी. □□□

५, कालिदास मार्ग, देवास, म.प्र.

इथियोपिया की लघुकथा

तावीज़

एक मियां-बीवी में पटती नहीं थी. दोनों ही तुनक मिजाज थे. एक दूसरे के सुख का कारण बनने के बजाय वे परस्पर क्रोध, जलन और तिरस्कार का कारण बनते. औरत एक फकीर के पास गयी और बोली——मुझे ऐसा तावीज दीजिए कि मेरा पति मेरे बस में हो सके.

फकीर ने आग जलायी. आग पर धूप डाली और कुछ मंत्र पढ़े. फिर बोला——तेरे पति को वश में करना बहुत कठिन है. उसके ऊपर एक प्रेतात्मा का साया है. लेकिन एक उपाय है.

——क्या उपाय है? औरत ने आतुरता से पूछा.

——तावीज तैयार करने के लिए उसमें शेर की गर्दन के तीन बालों की जरूरत पड़ेगी. यही बाल मंत्र पढ़कर उस तावीज में भरने होंगे.

——मगर शेर की गर्दन के तीन बाल कहां मिलेंगे? क्या किसी मरे हुए शेर की गर्दन के बाल चल सकते हैं?

——नहीं! मरे हुए शेर के नहीं, जीवित और जोशीले शेर के बाल चाहिए.

जिंदा और जोशीले शेर की गर्दन के बाल कौन ला सकता है? औरत बहुत निराश हुई.

फिर उसे खयाल आया कि एक शेर गांव से कुछ दूर आकर रोज किसी की बकरी या गाय को उठा ले जाता है. गांव के सभी लोग उससे भयभीत हैं. उसने कई युवकों से बात की. मगर कोई तैयार नहीं हुआ. औरत ने बहुत सोचा, बहुत सोचा. अंत में एक उपाय उसकी समझ में आया. वह एक बकरा ले कर उसी रास्ते पर पहुंची, जिधर से शेर आता था. शेर आया और बकरे को मुंह में दबा कर झाड़ियों में ले गया, औरत अपने घर वापस आ गयी. अगले दिन भी उसने बकरा ले जाकर शेर के रास्ते में खड़ा कर दिया. कई दिन तक यह सिलसिला चलता रहा. शेर अब उस औरत को पहचानने लगा था.

धीरे-धीरे उस औरत ने शेर को अपने वश में करना शुरू किया. पहले वह उसके पास गयी. फिर पुचकारने लगी. धीरे-धीरे उस पर हाथ भी फेरने लगी. शेर रोज एक बकरा पा कर संतुष्ट था. फिर हिम्मत करके एक दिन जब शेर बकरा खा रहा था, उस औरत ने उसकी गर्दन पर हाथ फेरना शुरू किया और धीरे से एक-एक करके तीन बाल उखाड़ लिये.

बाल लेकर वह फकीर के पास पहुंची. फकीर चकित रह गया. उसने पूछा——यह असंभव कार्य तुमने कैसे किया? औरत ने शेर को रोज बकरा खिला कर वश में करने की बात बतायी.

फकीर ने कहा ——भली औरत, जब तूने खिला-पिला कर एक शेर को अपने वश में कर लिया, तो इसी तरह अपने पति को वश में नहीं कर सकती? आखिर पति तुझसे चाहता क्या है ? यही प्रेम का व्यवहार, अच्छी तरह देखभाल और खाने-पीने का खयाल. तू उसकी परवाह न कर अपनी ही उससे मनवाना चाहती है. इसी कारण झगड़ा होता है. यदि तू सिर्फ उसे प्यार दे तो क्या वह तेरा खयाल नहीं करेगा?

(प्रस्तुतीकरण : इशरत अमीर) □□□

अंतिम इच्छा

• बसंत कुमार

बाहर से आये ऑडिटर से वे कह रहे थे--इस बार देखिएगा ऑडिटर साहब, मैं किसीको छोड़ने वाला नहीं. बकाया रकम सबों की 'पे' से काट लूंगा. और ऑडिटर को 'पे-बिल' दिखाते हुए बोलने लगे--देखिए, सबों के नाम के सामने मैंने साफ लिख दिया है--नाट टू पे रूपीज सिक्सटी --नाट टू पे रूपीज सेवेंटी फाइव--यानी जिसके पास जितना बाकी है सीधे काट लेना है. फिर पे-बिल समेटते हुए कुछ झुंझलाती आवाज में बोलते --मैं क्या कर सकता हूं, आफिस का पैसा है. मुझे भी ऊपर जवाब देना पड़ता है.

पर ऐसा कभी नहीं हो पाता. ठीक पे मिलने के दिन वे बकाया रकम में से किसीको आधा माफ कर देते, किसीको चौथाई, तो किसीको तिहाई और अगले महीने पूरी काट लेने की धमकी सभी संबंधित कर्मचारियों को देते. जब कोई हमउम्र उनसे मजाक में पूछता--क्यूं सब बकाया वसूल हो गया, तो बड़ी बेचारगी, यानी ऐसा लगता जैसे उन्होंने ही एडवांस लिया था और पूरा न कर पाये हों, वाली सूरत से कहते--क्या करूं भई, मुझसे उनकी तकलीफें सुनी नहीं जातीं, सबों की हालत तो एक जैसी है.

ऐसे हैं श्री सुरेश्वर प्रसाद, हेड-क्लर्क, एकाउंट्स सेक्शन. पूरी नौकरी इन्होंने ईमानदारी से बिता दी. अब तो चार-पांच महीने में रिटायर करने वाले हैं. वे इतना भी नहीं जोड़ पाये कि एक छोटा मकान भी अपना हो पाता. वैसे कम-से-कम पिछले पांच साल से तो वे वैसी जगह पर हैं ही कि पूरा कमा पाते. एकाउंट्स का पूरा मामला उनके हाथ में है. चाहे प्राइवेट पार्टी हो या सरकारी पेमेंट, सब उन्हींके द्वारा होता है. पूछने पर कहेंगे--भाई हराम की कमाई से मुझे बड़ा डर लगता है, फिर जब इतना किसी तरह बीत ही गया तो काहे चार-पांच महीनों के लिए. . .

उन्हें चार बेटियां और दो बेटे हैं. दोनों बेटे लड़कियों के बाद के हैं. रिटायरमेंट को ले कर कभी कोई बोल देता है तो कहने लगेंगे--मुझे अब रिटायरमेंट से कोई डर नहीं लगता. चारों बेटियों को ब्याह दिया, और हथेली नचाते हुए कहेंगे--अब क्या? बड़ी बेफिक्री से कह देते हैं. पर उनका चेहरा साथ नहीं दे पाता है. कैसा तो लगता है कि दया आ जाती है.

★ ★

चौथी बेटी की शादी तक वे आर्थिक रूप से पूरी तरह टूट चुके थे. कभी जब खुलते हैं तो उस शादी की बात करते हैं. उस बेटी की शादी में उन्हें सबसे ज्यादा परेशानी हुई थी. रिटायरमेंट के पहले मिल सकने वाला जी. पी. एफ. से आखिरी कर्ज उन्होंने ले लिया था, फिर भी वे उतना पैसा नहीं जुटा पाये थे कि लड़के वालों की मुंहमांगी पूरी कर पाते, पंद्रह-बीस घर की खाक छानने के बाद तो जा कर एक लड़का वाला तैयार हो पाया था. लड़का बहुत साधारण-सी नौकरी में था पर उसकी मांगें साधारण नहीं थीं. किसी तरह उन लोगों की सारी मांगें मान कर उन्होंने शादी पक्की कर ली. तिलक में सारा सामान भी उन्होंने भेज दिया. सिर्फ लड़के को दी जाने वाली घड़ी उन्होंने अपने पास रख ली. सोच रखा था कि किसी और रस्म में दे दूंगा. पर बारात जब स्टेशन पर पहुंची तो किसीने लड़के के पिता से कह दिया कि --घड़ी तो अब तक मिली नहीं, पता नहीं वे लोग देंगे भी या नहीं, फिर क्या था? बारात स्टेशन पर ही रुक गयी और सुरेश्वर बाबू को खबर भेज दी गयी. बारात स्टेशन से ही वापस लौट जायेगी. इतना सुनते ही उनका दिमाग चकरा गया. वे पूरी स्थिति समझ भी नहीं पाये और बेहाल अवस्था में स्टेशन पहुंचे. वहां पचासों आदमियों की भीड़ में उन्हें गिड़गिड़ाना पड़ा--कोई भूल हो गयी हो तो माफ किया जाये. . .घड़ी मैंने खरीद ली है. आप लोग मेरा विश्वास कीजिए, मैं इज्जतदार आदमी हूं. इसी बीच बारात में से कोई बोला --तो घड़ी तिलक में ही क्यों नहीं भेज दी. अगर अब भी चाहते हैं कि शादी हो तो घड़ी तुरंत भिजवाइए उनका तो खून खोल उठा, 'इतना अविश्वास तो आज तक उन पर किसीने नहीं किया था. उनके अफसर तक उनके बारे में बराबर कहते रहते हैं, इतना विश्वासी हेड-क्लर्क तो आजतक नहीं देखा, इन्हींके चलते आफिस टिका हुआ है. उनकी तो इच्छा हो रही थी बोलने वाले का सिर तोड़ दें. पर अपनी बेटी को याद कर वे चुप रह गये. उन्होंने तब सिर्फ इतना ही कहा--घड़ी अभी भिजवा देता हूं. वे घर लौट आये पर उस सदमें ने उन्हें भीतर से खोखला कर दिया. शादी के ठीक पंद्रह दिनों बाद पहला 'अटेक' हुआ. अब तो वे डायबिटिज और ब्लड-प्रेशर दोनों के मरीज हैं. सारे संयमों के बावजूद अब वे बीमार-से लगते हैं. पहले वे विभाग के पहलवान कहलाते थे. पर अब स्वाथ्य बिल्कुल खत्म हो चुका है. तीन साल के अंदर ही वे पूरी तरह निचुड़ गये हैं. किसी दिन लिफ्ट खराब हो जाती है तो ऊपर आते-आते वे पूरी तरह हांफ जाते हैं. सीट पर निढाल हो कर आंखें मूंद पड़ जाते हैं. करीब आधे घंटे

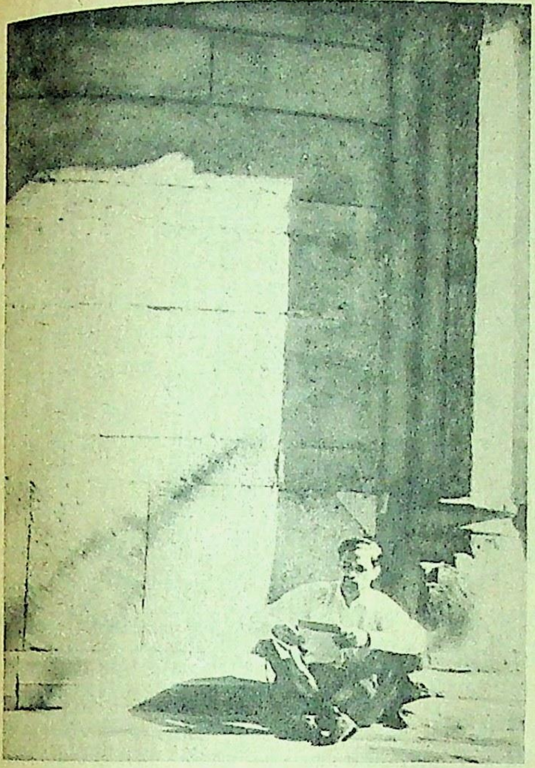

● आर. के. गोयल

बाद वे नार्मल हो पाते हैं. सभी अफसर उन्हें जानते हैं और उन पर भरोसा करते हैं. इसीलिए 'आराम करते हुए काम करने की' उन्हें विशेष अनुमति मिली हुई हैं.

★ ★

अब वे किसीको नहीं डांटते. अपने बेटे तक को नहीं. उनका बड़ा लड़का पिछले दो साल से एम. ए. करके बैठा हुआ हैं. यही एक चिंता है जो कभी उनके चेहरे या कभी उनकी आंखों से झलक जाती है. कुछ दिनों तक लड़के ने सब्र किया पर अब वह भी टूट चुका है. लड़के का चेहरा धीरे-धीरे कठोर होता गया, जिसे देख कर उन्हें दहशत होने लगती थी. वही लड़का, जो कभी उनके सामने ऊंची आवाज में बोलता नहीं था, अब दिन भर उन्हें कोसता रहता—किसी काम के नहीं हैं, जिंदगी भर सक्सेना साहब की जूती चाटते रहे और जरा-सा कहा कि मेरे बारे में कह दीजिए तो कहने लगे, अच्छा नहीं लगता. और गुस्से में थूकता हुआ बोलता— खाक अच्छा नहीं लगता. वे घर में सुनते पर चुप रहते. कभी किसी अंधेरे कोने में रो लेते और फिर रिटायरमेंट के बारे में पूछे जाने पर कहते—मुझे अब रिटायरमेंट से कोई डर नहीं लगता, चारों बेटियों को ब्याह दिया, अब क्या? और हमेशा की तरह हथेली नचा देते.

पर कभी-कभी अंधेरा कोना उन्हें बहुत परेशान करता. घंटों खुली आंखों बिस्तर पर पड़े रहते— बड़का को दो साल हो गया, छोटका भी इस बार एम. ए. दे रहा है. एक-दो महीने बाद उसका भी रिजल्ट निकल जायेगा. तब फिर? तब फिर वह भी कहेगा मुझे नौकरी चाहिए. . . सोचते-सोचते वे पसीने से भीगते रहते या फिर कलेजे की धड़कन बढ़ जाती और तकिए के नीचे से एक टेबलेट निकाल कर पत्नी को पानी के लिए आवाज देने लगते. वे टेबलेट हमेशा अपने पास रखते, चाहे घर हो या दफ्तर.

धीरे-धीरे वे अपने दोनों बेटों और पत्नी से भी कटने लगे. घर में बहुत कम बोलते. जब कभी पत्नी टोकती—आजकल आप बड़े चिंतित रहते हैं, तो हलके मुसकरा कर कहते— तुम तो जानती हो डाक्टर ने ज्यादा बोलने को मुझे मना कर रखा है. और तकिये पर दूसरी करवट ले मुंह फेर लेते. उन्हें लगता, सबकी निगाहों में वे ही अपराधी हैं. वे अपने में ही घुटते रहते, बिना किसी शिकायत, बिना किसी चाह के.

★ ★

एक शाम वे बड़े खुश-खुश-से आफिस से लौटे. आते ही उन्होंने पत्नी से बेटों के बारे में पूछा— दोनों कहां गये हैं?

—नहीं जानती, कहीं बाहर गये हैं, कह कर पत्नी चुप हो गयी.

तो वे पत्नी से ही कहने लगे— जानती हो हमारे आफिस में इस बार बहुत बहाली होने वाली है और— फिर वे कुछ क्षणों के लिए कहीं भटक-से गये तो पत्नी ने पूछा— और क्या?

—आं! . . . अरे कुछ नहीं. वे लोग आयें तो बता देना. अब दिक्कत नहीं होगी— और कोई भजन गुनगुनाते हुए कपड़े बदलने लगे.

दूसरे दिन लिफ्ट ठीक रहते हुए भी वे धड़धड़ा कर आफिस की सीढ़ियां चढ़ गये. ऊपर पहुंच कर और दिनों से ज्यादा ही हांफ रहे थे. अपनी सीट पर जा कर पहले की तरह निढ़ाल हो कर आंखें मूंदे पड़ गये. थोड़ी देर बाद उन्हें कलेजे में दर्द होने लगा. उन्होंने आंखें खोल कर चारो ओर देखा— सभी काम में व्यस्त थे. फिर उन्हें लगा, आंखों के सामने अंधेरा छाता जा रहा है और आदतन टेबलेट के लिए अपना हाथ जेब में डाला. फिर कुछ याद आते ही उन्होंने हाथ बाहर खींच लिया— उस दिन वे टैबलेट घर पर ही भूल आये थे. पर जब दर्द बर्दाश्त से बाहर होने लगा और सांस लेने में कठिनाई होने लगी तो थरथराती उंगलियों से अपना कलेजा दबा कर चीख उठे— पानी . चारों ओर से कर्मचारियों ने एक साथ उनकी ओर आश्चर्य से देखा और लगभग दौड़-से पड़े. वे बेहोश होते जा रहे थे. किसीने पानी का छींटा उनके चेहरे पर दिया. तब तक उनके अफसर भी उस कमरे में आ गये. तुरंत उन्हें अस्पताल पहुंचाने की व्यवस्था की गयी. पर शायद उनकी मृत्यु बीच रास्ते में ही हो गयी. क्योंकि अस्पताल पहुंचने पर उन्हें मृत घोषित किया गया और कारण बताया गया था—हार्ट अटैक!

वैसे एक दिन पहले उनके विभाग की ओर से एक निर्देश निकला था कि— 'कार्यकाल में अगर हमारे किसी कर्मचारी की मृत्यु हो जाती है तो उसके वार्ड को आगामी बहाली में योग्यतानुसार प्राथमिकता दी जायेगी.' □□□

—१८९ बी. आर . के. एवेन्यू,
राजेंद्र नगर, पटना –८०००१६ (बिहार).

एक कमीज़, एक झूठ

• प्रीतम बेली

बेचर के साथ इससे पहले कभी ऐसा नहीं हुआ था. उसने कभी कमीज नहीं पहनी थी, कभी काम पर नहीं गया था और न ही कभी इस प्रकार रात आंखों में काटी थी.

सारी रात बेचर करवटें बदलता रहा. एक क्षण भी सो न सका. नयी कमीज, झोंपड़े में, उसके सामने एक पुराने, जंग लगे, टीन के डिब्बे पर पड़ी थी.

बेचर ने इससे पहले कभी कमीज नहीं पहनी थी.

गरमी की रुत किसी जलते हुए कंबल की तरह आती. उस कड़कड़ाती गरमी में कमीज की आवश्यकता ही न होती.

वर्षा में खूब पानी बरसता. तिरछी बौछार चाबुक की तरह शरीर पर पड़ती. तेज बूंदों की हजारों सुइयां आकाश से गिरती रहतीं और उनकी तेज नुकीली नोकों से बचता हुआ बेचर किसी काले कछुए की तरह टांगों में सिर छुपाये झोंपड़े में गुमसुम पड़ा रहता. वर्षा बंद होती तो कस्बे के बाहर भीलों की उस तंग बस्ती में, पास की पहाड़ियों पर, उनकी ढलानों पर और पास के खेतों में चारों तरफ हरी-हरी मुलायम दूब की चादर बिछ जाती, तो कमीज की जरूरत तब भी न पड़ती.

शरद की ठंड चाकू की तेज धार की तरह शरीर में धंसती, तो बेचर एक पुराने टाट का टुकड़ा अपने शरीर पर लपेट कर घूमता रहता.

लकड़ियां काटने वाले कारखाने का बूढ़ा बनिया सेठ, जब बिजली के आरे से कट कर मर गया, तो सेठ के बेटे ने बूढ़े के अच्छे-अच्छे वस्त्र ब्राह्मणों को भेंट कर दिये, और पुराने कपड़े गरीबों में बांट दिये. एक पुराना कंबल बेचर के बाप, मंगलू, के हिस्से आया.

मंगलू ने पुराने कंबल के दो टुकड़े किये. एक टुकड़ा उसने बेचर की मां को दिया और दूसरा बेचर को.

बेचर ने पुराना टाट अपने आबनूसी शरीर से अलग किया, उसके छोटे-छोटे टुकड़े किये और उनमें सूखी घास भर कर छोटी-छोटी गेंदें बनायीं. शरीर के गिर्द पुराने कंबल का टुकड़ा लपेटे वह बस्ती में घूमता रहा और झोंपड़ियों में जा-जा कर सारी गेंदें अपने साथियों में बांटता रहा.

गेंद बांटना तो बहाना मात्र था. वास्तव में बेचर अपने हमजोलियों को अपना कंबल दिखाना चाहता था. उस शाम सारे लड़के बेचर की बनायी गेंदों से खेलते रहे. जान-बूझ कर तथा अनेक बहानों से उसके कंबल को हाथ लगाते रहे. कंबल को छूने मात्र से उनके शरीर में जैसे कोई गरमी-सी बिखर जाती.

कंबल का टुकड़ा अब झोंपड़े में, बेचर के नीचे, जमीन पर बिछा हुआ था और नयी कमीज सामने जंग लगे, टीन के डिब्बे पर रखी हुई थी.

* *

बेचर धीरे से उठा और अपनी कमीज पर हाथ फेरने लगा. बेचर की मां तथा मंगलू, दोनों खर्राटे भर रहे थे. बाप के खर्राटे ऊंचे थे और मां के नीचे. बेचर ने दोनों के ऊंचे-नीचे खर्राटे सुने, तो उसको आनंद आने लगा. और फिर उसने भी नकली खर्राटे भरने शुरू कर दिये. फिर उन तीनों के असली-नकली खर्राटे एक-दूसरे में खो-से गये.

खर्राटों की नकल करते-करते बेचर का गला सूख गया, तो पानी पीने के लिए वह झोंपड़े से बाहर निकल आया. बस्ती का कुत्ता, बांका, एक बार जोर से भौंका और फिर बेचर के पावों की आहट पहचान कर उसकी तरफ चला आया. बेचर ने पीपल के पेड़ के नीचे पड़े घड़े में से पानी भर कर पीया. घूंट भरते, पानी में उसे अचानक एक तारा टिमटिमाता और कांपता हुआ दिखायी दिया और फिर बेचर सिर उठाये देर तक काले आकाश की ओर देखता रह गया. दूर तक, भीलों की बस्ती के हर तरफ, कस्बे के उस पार और दूसरी ओर पहाड़ियों के परे रात बिखरी हुई थी, और रात की काली ओढ़नी में सैकड़ों तारों की मुकैश जड़ी हुई थीं. बेचर देर तक सोचता रहा— आकाश की यह सलमें-सितारों जड़ी कमीज कितनी सुंदर है! दूर खेतों में सैकड़ों जुगनू जगमग-जगमग कर रहे थे. बेचर बहुत देर तक यह सब कुछ देखता रहा. उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था— ये तारे, ये जुगनू, यह रात, यह आकाश की सितारों जड़ी कमीज और एक उसकी अपनी कमीज, जो अंदर पुराने, जंग लगे टीन के डिब्बे पर पड़ी हुई थी.

* *

बांके ने बेचर के पावों को सूंघ कर उसका ध्यान अपनी ओर खींचा. बेचर ने झुक कर उसका मुंह अपने हाथों में ले लिया. कुत्ते ने आंखें बंद कर लीं.

—बांके, मेरी नयी कमीज देखेगा? बेचर ने कुत्ते से पूछा. ओ बांके. . .

बांका पूंछ हिलाता रहा.

बेचर दौड़ कर झोंपड़े से अपनी कमीज उठा लाया. बांके को दिखाता रहा और बांका पूंछ उठाये बेचर के आगे-पीछे घूमता रहा. खुशी में लहराते बेचर ने बांके की पूंछ खींची तो बांका चीं-चीं करता भाग गया और बेचर खुशी-खुशी झोंपड़े में वापस आ गया. कमीज फिर पुराने टीन के डिब्बे पर रख दी और करवटें बदलते हुए, मां-बाप के खर्राटे सुनता हुआ, सुबह की प्रतीक्षा करने लगा.

उस शाम मंगलू ने घर आ कर यह खुशखबरी सुनायी थी कि बेचर के लिए काम मिल गया है. कस्बे

● के. एस. पारीक

के साथ वाली जमीन में से, कुछ रूसियों की मदद से, सरकार तेल ढूंढ़ रही थी. तेल ढूंढ़ने के लिए कुएं खोदे जा रहे थे. ठेकेदारों ने काम शुरू कर दिया था और एक सुपरवाइजर से कह-सुन कर मंगलू ने बेचर के लिए भी काम पक्का कर लिया था.

बेचर की मां यह सुन कर खुशी से फूली न समायी. और फिर बेचर की मां ने जब कहा कि बेटे को पहली बार काम मिलने पर उसे कमीज ले दी जाये, तो मंगलू देर तक अपने बेटे बेचर के आबनूसी शरीर की ओर देखता रहा, और रात को बाजार से लौटते वक्त बेचर के लिए दो रुपयों की कमीज ले आया. बेचर ने इससे पहले कभी कमीज नहीं पहनी थी, कभी काम पर नहीं गया था और न ही कभी इस प्रकार सारी रात आंखों में काटी थी.

करवटें बदलते हुए उसकी सारी रात बीत गयी. रात, जुगनुओं की जगमग तथा आकाश की सितारों-जड़ी कमीज— सब चले गये, तो सुबह अपने रंग-बिरंगे वस्त्र पहने आ गयी.

बेचर एक बार देखना चाहता था कि पहनी हुई कमीज उसे कैसी लगती है. कमीज पहन कर बहुत देर तक वह एक टूटे हुए शीशे में घूरता रहा. किंतु टूटे हुए उस शीशे में कभी आधा हाथ नजर आता, कभी सिर्फ गला दिखायी देता और कभी अगले भाग का ऊपर वाला हिस्सा या नीचे वाला हिस्सा. पिछला भाग बिल्कुल दिखायी न देता. बेचर एक नजर में सारी की सारी पहनी हुई कमीज देखना चाहता था.

प्रातःकाल बांके को साथ लिये बेचर साथ के खेतों में चला गया.

एक खेत में फसल-मार पक्षियों को दूर रखने के लिए 'काग-भगौड़े' से बेचर ने पुराने कपड़े अलग किये. बांका भौंकता रहा. कपड़े से बेचर ने 'काग-भगौड़े' को साफ किया. बांका देखता रहा. उलटा-सीधा करके और खींचातानी करके बेचर ने 'काग-भगौड़े' को अपनी पूरी की पूरी कमीज पहना दी. बांके ने 'काग-भगौड़े' को इस नये रूप में देखा तो एकदम भौंक कर टांगों में पूंछ दबाये वहां से भागा. बेचर को बहुत आनंद आया और वह 'काग-भगौड़े' के इर्द-गिर्द चक्कर काटता पूरी की पूरी कमीज जी भर कर देखता रहा.

और फिर कमीज उतार कर वह नदी-किनारे नहाने चला गया.

एक छोटे-से पत्थर को एक पुरानी कील से रगड़-रगड़ कर बेचर ने उसका झांवा बनाया और फिर नदी में झावें से रगड़-रगड़ कर अपना शरीर साफ किया. शरीर का आबनूसी रंग चमकने लगा. फिर अपनी पहली कमीज जब उसने पहली बार पहनी तो उलटी पहन ली. फिर उतार कर सीधी की, फिर पहनी तो फिर उसने कमीज को कई बार उतारा और कई बार पहना.

घर लौटते हुए बेचर मुसकरा रहा था और अपनी ही खुशी से लजा रहा था.

बेचर की मां ने बेटे को नयी कमीज में देख कर उसका माथा चूमा. मंगलू ने उसके सिर पर हाथ फेरा तो फिर मंगलू और बेचर की मां बहुत देर तक इस बात का फैसला न कर सके कि बेचर को मिलने वाली एक रुपये की रोजी में से 'मजा-मारने' के लिए जेब-खर्च के दो पैसे दिये जायें या पांच पैसे.

बेचर की मां ने गौर से बेचर के चेहरे की ओर देखा,

बेडेकर अचारों की शीशी जैसी ही शीशी और फिर वैसे ही लेबल फिर भी असली बेडेकर अचार नहीं!

जिन दिनों में अचार को शीशी में भर कर बेचने का रिवाज न था, उन दिनों हमनें अचार को शीशी में भर कर बेचने की शुरुआत की। शीशी का खास मोल्ड (सांचा) बनवाया, लेबल तैयार किये, मशीन से सीलबंद करनेवाले ढक्कन बिठाये। इतना ही नहीं शीशी में अचार ज्यादा दिन टिकें, इसके लिये अधिक परिश्रम भी किया।
मनपसन्द रुचि और आल्हादक स्वाद के अचार पेश करने के लिये हमने जो जो कष्ट झेले, उसकी सीमा नहीं।
मतलब यह अचार बनाने के क्षेत्र में हम अग्रणी हैं।
शीशी में अचार मिलना अब कोई नयी बात नहीं, लेकिन इनकी लोकप्रियता का श्रेय है बेडेकर को। लेकिन हमारी इस लोकप्रियता को देख कर अनेक अचार-निर्माताओंने बेडेकर अचार की शीशी जैसी ही शीशी और वैसा ही लेबल लगाकर अचार बेचना शुरू किया है।
लेकिन ग्राहक भी समझदार है। वे असली बेडेकर अचार ही खरीदते हैं। बढ़िया ज़ायका और आल्हादक स्वाद केवल बेडेकर अचार का ही है। बढ़िया अचार बनाने का हमारा दीर्घ अनुभव है। जी हाँ, १९२१ से!
बढ़िया अचार बनाना इतना आसान नहीं कि चट मँगनी, पट ब्याह! बढ़िया और विविध प्रकार के अचार केवल बेडेकर ही दे सकते हैं क्योंकि अनुभव लेते लेते बेडेकर के अचार भी अपने ढंग के निराले हो गये हैं।

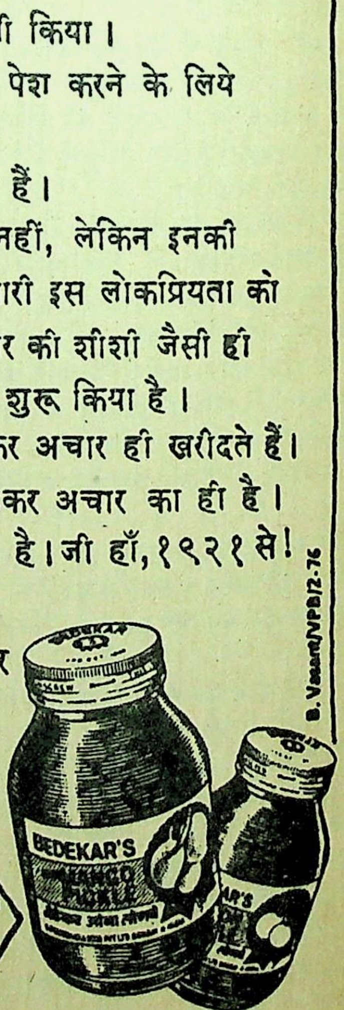

B. Vasant/VPB/2-76

बेडेकर बम्बई ४

बेडेकर नाम पढ़कर ही अचार खरीदिये

तो उसे लगा कि बचपन में मंगलू का नाक-नक्श बिल्कुल ऐसा ही रहा होगा. फिर उसने मंगलू को मनवा लिया कि बेचर को 'मजा-मारने' के लिए पांच पैसे दिये जायेंगे.

मंगलू लकड़ी के कारखाने की तरफ अपने काम पर चला गया. बेचर बाप के कहे-अनुसार, कस्बे से बाहर तेल के कुओं की खुदाई वाली जगह की ओर चल पड़ा. उसके जाने से पहले उसके हमजोली बेचर के इर्द-गिर्द इकट्ठे हो गये और ललचायी नजरों से उसकी नयी कमीज की ओर देखते रहे. उसके हमजोली उसकी कमीज की बातें करते रहे और बेचर को बार-बार लड़कों में बांटी गयी गेंदें याद आती रहीं.

रास्ते में बेचर को ऐसा लगा कि सभी उसकी नयी कमीज की तरफ देख रहे हैं. वह भी लोगों की कमीजों की ओर देखता रहा. किसी की सूती, किसी की रेशमी, किसी की खद्दर की, कोई नंगा और किसी की कमीज विलायती टैरिलीन की—– साधारण कमीजें और रंग बिरंगी कमीजें. बेचर के लिए सड़क पर आज आदमी नहीं, कमीजें आ-जा रही थीं.

* *

खुदाई वाली जगह पर आये भील मजदूर बेचर को नयी कमीज में देख कर पहले तो बहुत खुश हुए, फिर सब हंसने लगे. लड़का 'दूल्हा' बन कर मजदूरी करने आया था. सभी उसकी कमीज की कीमत पूछते रहे और फिर देखते-देखते कई हाथों के दाग उसकी नयी कमीज पर लग गये. बेचर को बहुत बुरा लगा. काम पर आयी भील लड़कियों ने उसे आवाज दे कर बुलाया तो बेचर ने गुस्से से इनकार कर दिया.

खुदाई वाली जगह पर कई मजदूर काम में व्यस्त थे. बेचर को देख कर सबने काम छोड़ दिया. बेचर को ऐसा लग रहा था कि उन सबकी ईर्ष्यालु और प्रश्न-सूचक, तीक्ष्ण और मुसकराती आंखों से उसकी कमीज में जैसे छेद हो जायेंगे.

वहां भील मजदूरों ने घिसी-फटी पुरानी बनियाइनें या फटी-पुरानी कमीजें पहन रखी थीं. गहरी झुर्रियों वाले बूढ़े मजदूरों ने शरीर के इर्द-गिर्द केवल पुराने अंगोछे लपेटे हुए थे. कुछ पुलिस वाले थे, पुलिस की पोशाक में. मूछों वाला एक सुपरवाइजर था, खाकी पोशाक में. एक बड़ा सरकारी अफसर था, सफेद सूट और खाकी हैट में. और फिर देखते-देखते और कई हाथों ने बेचर की कमीज को खींचा, तो कमीज के कुछ बटन उखड़ गये.

एक बूढ़े भील ने अपना तौलिया एक तरफ रख कर तसले में गारा भरा तो बेचर को कमीज उतारने के लिए कहा. बेचर चौंक उठा.

मूछों वाले सुपरवाइजर ने रूमाल से अपने चेहरे का पसीना पोंछते हुए एक भद्दी-सी गाली दी, और बेचर को कमीज उतार कर काम करने के लिए कहा.

बेचर वहां से ऐसे भागा कि अपने झोंपड़े में पहुंच कर उसने दम लिया. मां का चेहरा उतर गया.

शाम को बाप के पूछने पर बेचर ने बताया कि वहां खुदाई वाली जगह पर तो उसे किसी ने काम पर लिया ही नहीं.

मंगलू सोच में पड़ गया और फिर दोबारा कहने-सुनने के लिए सांझ ढले सुपरवाइजर के घर गया.

रात को बहुत देर के बाद मंगलू जब घर आया तो धुली हुई कमीज बाहर रस्सी पर सूख रही थी और बेचर झोंपड़े से बाहर रस्सी के पास जमीन पर सोया हुआ था.

कमीज की जेब में एक जुगनू जगमगा रहा था. मंगलू ने हाथ मार कर जुगनू को झाड़ दिया.

बेचर ने नींद में कुछ बड़बड़ाते हुए करवट बदली.

मंगलू सोये हुए बेचर की ओर देखता रहा. वह इस बात को तो समझता था कि बेचर ने इससे पहले कभी कमीज नहीं पहनी थी, किंतु उसे इस बात की समझ नहीं आ रही थी कि बेचर यदि काम नहीं करना चाहता था तो यह झूठ बोलने की क्या आवश्यकता थी, कि वहां काम वाली जगह उसे किसी ने काम पर नहीं लिया.

मंगलू ने न तो आकाश की सितारों जड़ी कमीज की ओर देखा, और न ही अनगिनत जुगनुओं की जगमगाहट की ओर. गरदन झुकाये अंदर झोंपड़े में सोने चला गया.

रात, चारों तरफ बिखरी रात, बेचर की नींद की तरह खामोश थी, और कमीज किसी मेमने की उतरी खाल की तरह रस्सी पर लटकी हुई थी. □□□

२७/४३२, आजाद नगर, अंधेरी (पश्चिम),
बंबई-४०००५८

—दो लघुकथाएं

एक हकीकत

मैंने एक कहानी सुनी थी:

एक तालाब था. उसमें कमल के बड़े-बड़े फूल खिले हुए थे. एक लड़के ने जब उन फूलों को देखा तो उन्हें पाने के लिए बेताब हो उठा और तालाब में उतर गया. वह जैसे-जैसे आगे बढ़ता गया, तालाब की गहराई भी बढ़ती गयी. यहां तक कि वह उसमें डूब गया.

और आज मैं सोचता हूं कि वह कहानी नहीं थी, एक हकीकत थी. वह तालाब गुनाह थे. वे फूल रोटियां थीं. और वह लड़का सिर्फ इनसान था. □

कद्रदां

मैं एक दस पैसे का सिक्का हूं. बैंक के दरवाजे के सामने पड़ा, बड़ी देर से एक-एक को तक रहा हूं.

मैं अपनी किस्मत पर अभी आंसू बहा ही रहा था कि एक सूखा हाथ मेरी तरफ बढ़ा और उसने मुझे उठा कर अपनी मैली पगड़ी में उड़ंस लिया. मैंने हैरत से उसे देखा. वह मुसकरा रहा था, जैसे कह रहा हो — छोटों की कदर छोटे ही करते हैं. बड़े तो उस वक्त कद्रदां होते हैं, जब छोटे एक समूह में होते हैं.

□ जाफर मेहदी जाफरी

अग्निरेखा

चित्रा मुद्गल

लगता है, 'वह' आवाज न हो कर एक 'चीख' बन गयी है, जो घर के जमे हुए सन्नाटे को अकसर तोड़ती रहती है. कभी-कभी उसे ऐसा भी महसूस होता है कि उसके आस-पास भयानक चीखों की बेशुमार भीड़ इकट्ठी हो गयी है जिनके तीखे स्वर वह खुद नहीं सुन पाती. कोशिश करके भी अपनी आवाज को नहीं पहचान पाती, उसे आश्चर्य होता है, पता नहीं कब, कैसे, इन सबके मायने बदल गये हैं जो कभी उसके अपने नहीं थे, या शायद, उसीकी खातिर बदल दिये गये हैं और अकसर उसे यह समझाने की चेष्टा हर कोई करता है कि जो कुछ 'वह' सोचती है, उसका मायने यह था, वह नहीं, जो कुछ वह सोचती है. उसे यह सब इतना अधिक असहनीय लगता है जैसे वह सिर्फ उन लोगों का 'समझाना' मात्र बन कर रह गयी है, जो वह कभी नहीं रहना चाहती...

बिस्तर पर पड़े-पड़े उसकी दृष्टि घर की हर हलचल का स्पर्श करती रहती है और जब वह थक कर चूर हो जाती है तो अपने सिरहाने रखी हुई, दवाइयों की शीशियों से लदी, गोल नन्हीं टेबल पर अटक जाती है. तब उसे लगता है, फिर से उसकी चीखों का सैलाब फट पड़ा है. वह 'वह' न हो कर इन तमाम दवाइयों की छोटी-बड़ी शीशियों में विभक्त हो गयी है, जो धीरे-धीरे खाली होती जा रही हैं और फिर वह घबड़ा उठती है — सुबह उसने डा. दत्ता से कहा था, आप कुछ और दवाइयां लिख दीजिए न! ये तो खत्म होने को आ रही हैं. वे मुसकरा पड़े थे. कई बार आंखों की कोरों को खींचते हुए उन्होंने न जाने क्या जांचा और एक लंबी सांस जो उनकी थी, उसने अपने सूखे चेहरे पर 'भाप' की तरह महसूस की... और अपने अस्तित्व के प्रति आश्वस्त हो कर उसने इत्मिनान से अपनी पलकें मूंद ली थीं. उसे पेपर लिखने तथा फाड़ने की आवाज से महसूस हुआ था कि 'प्रिस्क्रिप्शन' पास खड़ी हुई शशी को पकड़ाया जा रहा है. और उसने यह हिदायत भी सुनी कि दवाइयां आज दोपहर तक अवश्य आ जानी चाहिए. डॉ. साहब की पदचाप के साथ-साथ शशी के स्लीपरों की आहट भी दूर होती चली गयी थी. वह कोशिश कर के भी अपनी भारी होती हुई पलकें खोल नहीं पायी. पता नहीं, डा. साहब ने जो 'डोज' उसे अभी दिया था शायद उसमें नींद की दवा भी मिली हुई थी.

★ ★

नींद खुली, तो शाम हो आयी थी. उसे पॉट की जरूरत महसूस हुई. आवाज दे कर उसने बाई को पॉट दे जाने के लिए कहा तथा बाद में 'रनिंग चेयर' भी ले आने की हिदायत दी. न जाने क्यों, आज उसका बड़ा मन कर रहा था, 'बालकोनी' में बैठ कर निस्सीम समुद्र के एकाकीपन को अपनी दृष्टि में समा ले, वह — जो अपने अंतर में सबको समा सकता है किंतु स्वयं किसी में नहीं. उसका अकेलापन शायद उससे बहुत बड़ा है... उसकी गर्जना — शयाद मनु की चीखों से ज्यादा ऊंची है...

समंदर से लगे हुए इस 'मनुबेला' अपार्टमेंट्स में फ्लैट लेने के समय, अमरेंद्र तथा उसके बीच काफी कहा-सुनी हुई थी. अमरेंद्र की फैक्टरी से यह घर दूर भी बहुत पड़ता था. 'ड्राइविंग' में पौना घंटा लग जाना तो निश्चित था ही, उसके साथ-साथ अमरेंद्र का एक और 'रीजन' था. स्वास्थ्य की दृष्टि से वह बचपन से ही 'स्नोफीलिया' का मरीज रह चुका था. इस दृष्टि से समुद्री हवा उसके लिए नुकसानदेह साबित हो सकती थी, किंतु हुआ वही, जो उसने सोचा और निर्णय लिया. पहली बार जब वह इस घर को देखने आयी थी तो उसे महसूस हुआ था, बस! यही वह घर है जिसे वह कब से ढूंढ़ रही है. बना भी इतना सुंदर था कि हर कमरे की खिड़की समुद्र की ओर ही खुलती थी...

—दीदी, बाहर 'बालकोनी' में बैठेंगी क्या? शशी उससे पूछ रही थी तथा बाई 'रनिंग चेयर' भी ले आयी थी.

—हां, उसने अपने आपमें लौटते हुए संक्षिप्त-सा उत्तर दिया.

शशी तथा बाई ने उसे सहारा दे कर 'चेयर' पर बैठा दिया. फिर 'बालकोनी' में पड़ी हुई आराम कुर्सी पर अगल-बगल दो कुशन लगा कर उसे पुनः सहारे से बैठा दिया.

.. उसके सामने सांझ के झुटपुटे में डूबते हुए सूरज का 'लाल' गोला था. किनारे की ओर दौड़ती चली आ रही लहरों पर सुनहरी ललाई तैर रही थी. सब कुछ वैसा ही ... एक शाम अमरेंद्र के साथ जब वह इस 'बालकोनी' में बैठी थी तो डूबते हुए लाल सूरज की ओर देख कर अमरेंद्र थोड़ी देर कुछ सोचता रहा था फिर सहसा उसका चेहरा अपनी ओर घुमा कर बोला था — लगता है, तुमने अपने माथे पर डूबता हुआ सिंदूरी सूरज टांक लिया है मनु...

वह सुन कर कुछ अन्यमनस्क हो उठी थी, पता नहीं, यह प्रशंसा थी या उस वातावरण की अभिव्यक्ति. पर यह सच था, जो कुछ भी तुलना में कहा गया था वह उसे अच्छा नहीं लगा था... और उसने उस दिन से माथे पर सिंदूर की बिंदी का आकार छोटा कर दिया था.

—आपके लिए 'काफी' बना लाऊं दीदी? शशी का स्वर काफी उल्लसित था.

इस लंबी बीमारी के दौरान आज पहली बार दीदी पहले की तरह 'बालकोनी' में बैठीं थीं. मां के पास से जब वह इस घर में आयी थी तब अकसर दीदी तथा जीजा जी को इस जगह शाम की चाय पीते हुए देखती रहती थी.

—कॉफी नहीं, चाय अगर. . . मनु का स्वर अधूरा ही रह गया.

—ओ, श्योर, श्योर दीदी, अभी लायी.

—देखो, शक्कर जरा मेरे हिसाब से.

—बिल्कुल! साथ में ले आऊंगी. वह हंसती हुई किचिन की ओर मुड़ गयी. बहुत दिनों बाद शक्कर ज्यादा डालने की आदत पर दीदी ने पहले की तरह चुटकी ली थी.

. . . एक अरसा हो गया है शशी की यह निश्चल हंसी सुने हुए तथा खुद भी हंसे हुए. और यह अरसा. . . जो भयानक नियति की तरह उस पर गुजरा है —उसने उसका ही नहीं, सबके चेहरे बदल दिये हैं, अब जो कुछ भी वे एक दूसरे के सामने हैं, कितने अपरिचित, कितने अजनबी हैं. शायद इस हंसी की तरह, कभी-कभी वे अपनी पुरानी शक्ल में आत्मीयता के साथ उभर आते हैं. . . उसे महसूस होता है, क्या वक्त हमारे चेहरे बदल देता है? या हम खुद ही अपने आपको बदल लेते हैं. . .

. . . अम्मा ने लिखा था — मैं तो यही चाहती हूं कि इस खुशी के अवसर पर मैं तुम्हारे करीब रहूं, लेकिन बेटे-बहू के चक्कर में इस तरह फंसी हूं, न तुम्हारे पास आ सकती हूं, न तुम्हें यहां बुला सकती हूं, बहू का भी छठा महीना चल रहा है, सब कुछ उसे बिस्तर पर ही चाहिए, ऐसे में उसे अकेला छोड़ने का मतलब समझती हो न! मैं जानती हूं, तेरा भी समय नजदीक है और अमरेंद्र के घर से भी तेरे पास खड़ा होने वाला कोई नहीं है. . . पर तू घबड़ाना बिलकुल नहीं, अस्पताल में तो सब कुछ बड़े-बड़े डाक्टर संभालते हैं, नर्सें हर तरह का ध्यान रखती हैं. . . खैर, मैं शशी को तेरे पास भेजना चाहती हूं. एक बात मैं तुझे छुपा कर लिखवा रही हूं, भाई-भाभी के रहते हुए भी अब शशी का सारा जिम्मा तेरे ऊपर है, उसे वहीं किसी कालेज में दाखिल करवा देना. तुझे भी सहारा रहेगा और वह भी तुम लोगों के भरोसे कहीं लग जायेगी. मैं जानती हूं, अमरेंद्र तुझे बहुत मानता है. . . यह चिट्ठी पढ़ कर फाड़ देना.

. . . अम्मा को अपने जिंदा रहने का बहुत दुख था. बाद में भी उन्होंने कई चिट्ठियां लिखवायी थीं और उसने उनके कहे मुताबिक उन्हें फाड़ कर फेंक भी दिया था.

उसी बीच अमरेंद्र को किसी 'आफीशियल वर्क' से दिल्ली जाना था और अपने टाइट शेड्यूल से किसी तरह वक्त निकाल कर वह आगरे गया तथा शशी को अपने साथ ले आया. अमरेंद्र ने बताया था. . . अम्मां बहुत रो रही थी, सच कहूं तो मनू, इस बार मुझे वे जितनी मजबूर लगी. . . साले रास्कल हैं दोनों. . .

बाद में शशी से पता चला था, भाभी, आया को तो दस बार ठीक से पेट भर कर खा लेने की हिदायत देंगी, खुश हो कर उसे पिक्चर देखने का पैसा भी दे देंगी. दोपहर में थोड़ा आराम करने के लिए भी कहती रहेंगी, उसे जरा-सी छींक आयी नहीं कि तुरंत दवाखाने भेजेंगी. इस भय से कि कहीं वह काम छोड़ कर न चली जाये, लेकिन अम्मा का रहना उन्हें फूटी आंख भी नहीं भाता. . . न उनका बेहिसाब पान खाना, न बेवजह जिस-तिस को खाने पर बैठा लेना. एक दिन तो भाई साहब के सामने ही भाभी ने अम्मा से कह दिया. . . 'पेंशन तो आपको सिर्फ अस्सी रुपये मिलती है. . . अम्मा भी चिढ़ आयी थीं यह सब सुनते-सुनते. और बेलिहाज बोल ही पड़ी थीं—धोतियां

● आर. एम. सक्सेना

प्रस्तुत है

अधिक शक्तिशाली
अधिक प्रभावशाली
अधिक सुरक्षित
प्लसप्रिन

PLUSPRIN

यह अधिक तेज असर करती है

प्लसप्रिन दर्द से छुटकारा दिलाने में सामान्य पीड़ा निवारक औषधियों की तुलना में कम समय, बहुत कम समय लेती है। क्योंकि केवल प्लसप्रिन में ही दर्द से अति शीघ्र छुटकारा दिलाने वाले शक्तिशाली और प्रमाणित तत्व विद्यमान हैं!

सिर दर्द, पीठ दर्द, शरीर दर्द जुकाम और फ्लू

आदि से छुटकारा पाने के लिये आपको केवल एक ही टिकिया की आवश्यकता है। यह सुरक्षित है फिर भी प्रभावशाली है!

यही बस नहीं

प्लसप्रिन हानि-रहित है।

इससे आलस्य, अधिक पसीना आना, पेट से खून बहना, तेजाबी मादे का बढ़ना, पेट में गड़बड़ी या आदत बन जाना आदि विकार उत्पन्न नहीं होते।

प्लसप्रिन एसप्रिन नहीं है।

शीघ्र आराम के लिए अधिक शक्तिशाली PLUSPRIN लीजिये।

JAISONS 30.

तक तो तीन साल से मैं मनु की उतारी हुई पहनती चली आ रही हूं. . .

आगे जो कुछ शशी ने बताया था, वह मनु को उद्वेलित कर गया. . . आदमी नौकरानी रख सकता है मां नहीं?. . .

* *

उसने तो बस उस छोटी-सी शशी को देखा था जो अक्सर चिट्ठियों में उसे अपनी फरमाइश की लिस्ट भेजा करती थी. . . दीदी, अब की बार जब आप बंबई से आयें तो मेरे लिए एक ब्राऊन स्लैक्स ले आना. हां, बाटा की हिल्स वाली सेंडिल भी, जैसी पिछली बार आप आगरे पहन कर आयी थीं. यहां बाटा की किसी भी दुकान पर आपकी जैसी सैंडिल दिखाई ही नहीं देती. . . और दीदी एक 'कंडक्टर' टाईप वाला 'पर्स' भी. . . चिट्ठी में घर के हाल-चाल पर बस यही सब होता था. . . जब वह आगरा स्टेशन पर उतरती तो पाती, भइया के साथ शशी भी उसे लेने आयी है. सलवार कमीज पहने छोटी-सी शशी. वही निश्चल खिलखिलाहट. . . तांगे पर बैठते-बैठते वह पूछती, दीदी,—जीजाजी कैसे हैं? वे कब तक आयेंगे? आप कितने दिन रहेंगी? — हम नहीं जाने देंगे जल्दी. . और जल्दी-जल्दी ये तीन चार आवश्यक प्रश्न पूछ कर फिर वह अपनी बात पर आ जाती, दीदी, आप मेरी लिखी हुई चीजें लायी हैं या नहीं? वह जोरों से हंस पड़ती—अरे घर तो पहुंचने दे पगली.

—नहीं दीदी, अभी, प्लीज . . . प्लीज. . .

. . . और यह शशी, जो अमरेंद्र के साथ आयी थी वह सचमुच और थी. एक दम बड़ी हो गयी शशी, — नहीं, एक लंबा अरसा बीत गया था उसके बड़े होने के बीच. भाभी तथा भाई साहब के लफड़ों की बजह से वह तीन-चार साल से घर भी नहीं गयी थी. फिर पापा भी अब नहीं रहे. . . अम्मा के हाल-चाल चिट्ठियों से मिल ही जाया करते थे. कई बार अम्मा लिखवा भेजती थीं, —मैं जानती हूं वे नहीं रहे — यह घर भी तेरे लिए नहीं रहा. . .

कितना सच लिखा था अम्मा ने. वह घर तो तब तक उसे अपना लगा था जब तक पापा थे.. . .

पेंटिंग करने का उसे कितना शौक था बचपन में! जब वह पापा के लेटर पैड पर आड़ी-तिरछी रेखाएं खींचती तो अम्मा उसे पकड़ कर बाथरूम में बंद कर देतीं, हजार रुपये फूंक दिये गये इन पैडों के पीछे. तेरी चित्रकारी के लिए छपवाये हैं? अम्मा के क्रोध से वह डरती थी किंतु पापा. . .

—कितनी पुरानी बातें हैं. . .

एक दिन जब वह स्कूल से लौटी तो उसने पाया, कल शाम उसने जो हनुमानजी का रेखाचित्र बनाया था वह ड्राइंग रूम में बड़े सलीके से 'कार्ड बोर्ड' पर चिपका कर लगाया गया है, तथा किसीने उसका नाम भी बड़े सुघड़ अक्षरों में लिख दिया है, 'मनु'.

ऐसे ही एक दिन उसने पाया, बेड रूम के एक कार्नर में पड़ी पापा की 'स्टैंडी टेबल' की ऊपरी दीवार उसके अजीबो-गरीब चित्रों से भरी पड़ी है. दीवार के इस दुरुपयोग से अम्मा ने दुखी हो कर पापा को जली-कटी सुनाई थी—यह तो रंग और पेपर खराब करती है ऊपर से तुम उसे टांकते फिरते हो. फिर गुस्से से पैर पटकती हुई वे किचन में चली गयी थीं. वह जो इस समय पर्दे की ओट में छुपी खड़ी अम्मा का आपे से बाहर होना देख रही थी झट से दौड़ कर पापा के पास पहुंच गयी. पापा ने उसे बाहों में भर लिया, और बोले — बहुत डांट पड़वाती हैं तू!

—तो फिर मार खाने के लिए तैयार हो जाइए. उसने शरारत से भर कर पापा की नाक से नाक रगड़ते हुए कहा.

—कुछ और बनाया है क्या?

—हां, यह देखिए! उसने हंसते हुए उन्हींकी टेबिल पर रखी हुई एक किताब के नीचे से एक पेपर खींच कर उनके सामने कर दिया. हंसी अब भी नहीं रुक रही थी उसकी.

—अरे वाह! रेलगाड़ी!

—कैसी बनायी है पापा?

—भई बहुत बढ़िया, बस लगता है, धुंआ छोड़ती हुई अभी पटरी पर दौड़ने लगेगी. . . .

—पापा. . .

सब कुछ अच्छी तरह याद आ रहा है. मन एकदम अशांत हो उठा . . आंखों की नमी बूंद बन कर गालों पर बह चली. गले के भीतर कुछ घुमड़ रहा था जिसे वह जज्ब करने की कोशिश कर रही थी! पर . . .

—दीदी! आपकी चाय एकदम पानी हो चुकी है. शशी की आवाज उसे कोसों दूर से आती हुई लगी.

—तुमने पी ली? उसका स्वर भारी था.

—कब की, पता नहीं आपको रह रह कर क्या हो जाता है, कुछ कहने से भी लगता है वह आप तक नहीं पहुंच पाता. फिर से गर्म कर लाऊं?

—हां, कर दो तो. . .

वह कप उठा कर किचिन की ओर बढ़ गयी. दीदी की आंखों की नमी उससे छुपी नहीं थी. सच, तो यह था कि कप रख कर वह वहां से हट गयी थी. दीदी का इस तरह ऑफ हो जाना वह फेस नहीं कर पाती, न खुद ही सामान्य रह पाती है — कभी-कभी तो उसे लगता है, दीदी की इस लंबी बीमारी की वजह से नहीं शायद उसकी वजह से, इन चारदीवारों के भीतर कई दीवारें खड़ी हो गयी हैं, जिन्हें लांघ कर न दीदी उस तक आ पाती हैं, न वह दीदी तक पहुंच पाती है जब कि उसकी हर कोशिश, हर प्रयत्न यह होता है कि दीदी की देखभाल में कहीं कोई कसर न रह जाये, इस घर की भी नहीं, जो दीदी का है . . .अमरेंद्र की भी नहीं!

* *

परसों रात की ही बात है, अमरेंद्र काफी देर से आये थे. आते ही उन्होंने दीदी के विषय में पूछा था तथा डाक्टर दत्ता की रिपोर्ट के बारे में भी. उसके बाद में वे दीदी के कमरे की ओर मुड़ गये किंतु शीघ्र ही लौट आये. शायद दीदी सो रही थी. फिर शशी को खाना लगाने के लिए कह कर वह नहाने के लिए चले

गये. नहा कर लौटे तो शशी को वे काफी फ्रेश लगे. खाना उन्हें विशेष पसंद आया था. खुश हो कर उन्होंने शशी की काफी तारीफ की. तुमने भरवां करेले बिलकुल मनु की तरह बनाये हैं शशी! और यह खीर... मखाने की खीर मेरी कमजोरी है यह मनु जानती है...

अमरेंद्र जब बैड रूम की ओर मुड़े तो उसने उन्हें आग्रह पूर्वक थोड़ी देर और बैठने के लिए कहा. वह उन्हें एक सरप्राइज देना चाहती थी... ठीक बारह बजे जब उसने अमरेंद्र को नर्गिस के फूलों का गुच्छा भेंट करते हुए उनके जन्मदिन पर बधाई दी तो वे सहसा स्तंभित रह गये, आज?

—यह देखिए डेट चेंज हो गयी है, नौ मई...

—तुम्हें याद कैसे है?

—मुझे याद है, दीदी इसी तरह आपको..., शशी की बात फिर अधूरी रह गयी थी, अमरेंद्र ने उसे बाहों में भर लिया था... उसे महसूस हुआ, उसकी गर्दन, पलकें, होठ... सब अमरेंद्र के होठों की तपिश से जलने लगे हैं. और वह उनके लिए शशी नहीं, मनु बन चुकी है. पूरी तरह मनु...

सुबह जब उसने दीदी को बताया कि अमरेंद्र को, उनके जन्मदिन पर उसने ठीक उनकी तरह सरप्राइज बधाई दी तो सहसा वे उल्लसित हो उठीं-सच, फिर स्वयं बुदबुदा उठीं — पता नहीं, मैं कैसे भूल गयी... शायद बिस्तर पर पड़े-पड़े अब दिन, तारीखें, बातें मेरे लिए नहीं रहीं...

शशी दवाइयों की टेबिल पर कुछ ढूंढने के लिए झुकी. दीदी के बुझे से स्वर ने उसे चौंका दिया—तेरी गर्दन पर वह नीला दाग कैसा है?

...प..पता नहीं. वह सकपका उठी. उसका एक हाथ अपनी गर्दन पर चला गया. उसे महसूस हुआ, रात जैसे बीती नहीं, उसकी गर्दन पर चिपक कर रह गयी है.

चाय के फदफदाने की आवाज से उसका ध्यान जब चाय पर गया तब तक आधी चाय जल चुकी थी. हड़बड़ा कर उसने आधा कप दूध डाल कर पुनः एक बार चाय को उबाला. फिर उसे लगा, इतनी उबली हुई चाय दीदी को देना ठीक न होगा. अतः उसने दुबारा ताजा चाय बनायी तथा मग में डाल कर दीदी के पास आयी.

दीदी, धीरे-धीरे चाय सिप् करने लगीं. शशी उठ कर रेलिंग पर कुहनियां टिकाये घुप्प अंधेरे में ताकने लगी. आमने-सामने पड़ने पर न दीदी सहज हो पाती हैं न वह स्वयं. लेकिन आज लग रहा है दीदी काफी सामान्य हैं—बिलकुल उसकी अपनी दीदी, और वह पहले की तरह उनके कंधे पर सिर रख कर खूब रोना चाहती है, उन्हें सब कुछ बताना चाहती है. उनका वह दुलार भरा स्पर्श चाहती है... लेकिन ऐसा नहीं हो पाता. दूरियां लगता है उनकी शिराओं में बहने लगी हैं.

—कालबेल की आवाज से वह चौंक उठी, रेलिंग से अलग हो पैसेज़ की ओर मुड़ी कि दीदी पूछ बैठीं —क्या अमरेंद्र आ गये?

—शायद बाई है, वे तो साढ़े दस या ग्यारह के करीब आने के लिए कह गये हैं.

मनु को चाय काफी कड़वी लग रही थी. शायद दुबारा गर्म करने की वजह से या शशी की इस बात से. शायद अमरेंद्र के विषय में अब जो कुछ भी जानना होगा वह शशी के माध्यम से ही!...

* *

आज डा. दत्ता कुछ जल्दी ही आ गये थे और इत्तिफाक से अमरेंद्र घर पर ही थे. उसको 'एक्जामिन' करने के बाद वे अमरेंद्र से बोले थे — भई, कोशिश यह कीजिए कि ये उलूल-जलूल सोचना-विचारना बिल्कुल छोड़ दें, तभी दवाइयां असर भी करेंगी. वैसे बायें पैर में थोड़ा मूवमेंट होना शुरू हो गया है. 'लेट अस होप' मालिश वगैरा वैसी ही होती है न? वे शशी की ओर मुखातिब हुए?

—जी, बाई और मैं दोनों ही नियम से ध्यान रखते हैं.

—गुड! वैसे छह-सात दिन हास्पिटल लाना ही होगा, शाक आदि के लिए. फिर वे मनु की ओर मुड़े तथा झुक कर उन्होंने उसके गाल स्नेह से थपथपाये— बी ब्रेव!... फिर अमरेंद्र तथा शशी के साथ हाल की ओर मुड़ गये.

—डा. साहब, चौबीस घंटे तो मैं इनके साथ रहता नहीं हूं, इन्हें खुद भी अपना ध्यान रखना चाहिए... जाते हुए अमरेंद्र का स्वर उसके कानों को सुन्न कर गया... यह सब बातें कितनी खोखली हैं. उसका जो कुछ छिन गया है या जो छीना जा रहा है वह अनायास नहीं है, सप्रयास है. उसकी मानसिक यंत्रणा उसकी अपनी गढ़ी हुई नहीं है बल्कि उनके जीने की शर्त की स्वार्थपूर्ण देन है. एक दिन उसने जब अमरेंद्र को इस बात की शिकायत की थी तो वे बोले थे—तुम्हें मैं किसी भी रूप में पाता हूं तो पा लेना चाहता हूं. मैं उसे उतनी ही सहजता से स्वीकार भी कर लेता हूं और तुम... तुम इसे अपने खिलाफ षडयंत्र समझती हो...

सच तो यह है, वह जो कुछ भी समझती रही वैसा कुछ भी तो नहीं हुआ... दोषी वह है या ये घटनाएं जो नियति बन कर उसे हर तरह से, हर तरफ से तोड़ती रहीं, और शेष है... गिजगिजे केंचुए-सी वह.

बड़े-बड़े डाक्टर कुछ भी नहीं संभाल पाये—न बच्चा बचा न मनु के बचने की उम्मीद थी. उपायहीन अमरेंद्र ने घबड़ा कर अम्मा को टेलीग्राम कर दिया था तथा आने के लिए पैसे भी भेज दिये, और पांचवें दिन जब अम्मा अस्पताल पहुंचीं तो नर्स ने उन्हें दुखित स्वर में बताया—साढ़े आठ पौंड के उस खूबसूरत बच्चे ने तो दुनिया में आ कर आंखें ही नहीं खोलीं, मनु...

...और मनु की नाक में आक्सीजन की नलियां थीं, ग्लूकोज तथा ब्लड चढ़ाया जा रहा था. वे खामोश उसका हाथ पकड़े बैठी रहीं और उसका निस्तेज नीला पड़ता चेहरा देखती रहीं.

—वे, जो कृत्रिम सांसे उसें दी गयी थीं, कितनी कम थीं उसके लिए... वे जान दे सकीं तो बस कमर के ऊपरी हिस्से तक ही. इतना जीवित हिस्सा भी उसे अस्पताल में चार महीने तक अनवरत जीवन संघर्ष के बाद

प्राप्त हुआ था. वह जो कार से उतर कर अपने वार्ड तक चल कर गयी थी— लौटी तो अपाहिज हो कर.

अपाहिज ऽऽऽऽ

लगता है वह अपने शरीर से कहीं ज्यादा अपाहिज दिमाग से हो चुकी है जो कभी उसे शायद इस काबिल नहीं छोड़ेगा कि वह 'सही चीज को सही मायने में सोच सकें, जी सकें, पा सकें. . .

उसे लग रहा था कि एक भयानक तूफान ने उसके घर को जड़ से उखाड़ फेंका है. वह मांस के एक बेडौल लोथड़े की तरह उसमें उड़ी जा रही है. दो खौफनाक पक्षी उसके करीब सिमट आये हैं और अपनी सुर्ख चोंचें खोल कर उसे निगल जाने के लिए झपट पड़े हैं, वह अचानक चीख पड़ती है — नहीं. . . नहीं. . .

—क्या हुआ मनु? अमरेंद्र की आवाज उसके कानों में पड़ती है. वह देखती है कि अमरेंद्र उसकी बगल में लेटा है और उसे बाहों में भरे है. वह पसीने से भीगी हुई हांफ रही है.

उसने आंखें बंद कर लीं. उसे दौड़ कर आती हुई शशी के नंगे पैरों की धप-धप आवाज तूफान में उभर कर आये पक्षी के डैनों की आवाज की तरह अपने मस्तिष्क पर छाती हुई महसूस होने लगी. . . □□□

७४, पत्रकार नगर, बांद्रा (पूर्व) बम्बई –५१

एक लघुकथा

धर्मकुमार

● ब्रह्मदत्त

नाम ?

—धर्मकुमार.

—काम ?

—स्त्रियों के क्रय-विक्रय का व्यापार है इसका. चित्रगुप्त ने क्रोधित हो कहा.

—क्या स्त्रियों की बहुतायत है इसके पास ?

—नहीं, महाराज ! फंसा कर, फुसला कर लाता था. कई एजेंट भी थे जो इसका काम करते थे. सभी नगरों के वेश्यालयों को यही सप्लाई करता था.

—क्या पृथ्वी पर इतनी स्त्रियां थीं कि इसकी जरूरत पूरी हो जाती थी? धर्मराज ने पूछा.

—नहीं, कठिनाई तो इसे भी हुई है कई बार, लेकिन फिर भी किसी-न-किसी तरह यह अपना काम चला लेता था. नकली शादियां अथवा एजेंटों से अपहरण करवा लेता था. एक बार तो इसने अपनी हिमिका नाम की पत्नी को भी बेच डाला था.

—अच्छा! तब तो यह बड़ा कुशल व्यापारी मालूम होता है. इसे फौरन दक्षिणी ध्रुव भेज दो. धर्मराज ने हाथ हिला कर कहा.

—दक्षिणी ध्रुव? . . .प्रभु! चित्रगुप्त ने विस्फारित नेत्रों से धर्मराज की ओर देखा—यह तो कुंभीपाक नरक का अधिकारी है.

—वह तो ठीक है, मगर चित्रगुप्त, इक्कीसों नर्कों में स्थान रिक्त नहीं है, तुम्हींने बताया था. और जल्दी खाली होने की आशा भी नहीं है, क्योंकि सभी लंबी अवधि के लिए आये हैं. इसके अलावा, चित्रगुप्त, जरा बाहर तो देखो, अगणित आत्माएं पंक्ति बांधे खड़ी हैं. सृष्टि के आरंभ से इतनी लंबी पंक्ति मैंने कभी नहीं देखी.

—सत्य है, महाराज! चित्रगुप्त ने नतमस्तक हो कहा—दक्षिणीध्रुव में इसे दंड देने के लिए अपने आदमी भी भेजने पड़ेंगे?

—नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी. मैंने एक नई विधि अपना ली है. ये पृथ्वी के प्राणी बड़े कुशल हैं. सब अपने कर्मफल तो भोगेंगे ही. साथ ही इनकी कार्य-कुशलता की परीक्षा भी हो जायेगी.

—वहां यह अपनी क्या कुशलता दिखायेगा?

—वही, जो इसने अब तक दिखायी है. दक्षिणी-ध्रुव में हिमशिलाओं की कोई कमी नहीं है, खूब बेचे और खूब खरीदे वहां जा कर! धर्मराज ने आंखें तरेर कर कहा. चित्रगुप्त ने मुसकरा कर कहा—अगर सब बेच ले जाये तब?

—तब इसे उत्तरी ध्रुव भेज दी. धर्मराज ने हंस कर कहा.

—एवमस्तु ! चित्रगुप्त ने होठों में बुदबुदा कर कहा. धर्मराज मुसकरा कर चल पड़े.

—सेठ ! सेठ !! धर्मकुमार चीखा.

—क्या है? धर्मराज रुक गये.

—मेरे कमीशन का क्या होगा, सेठ ? धर्मकुमार गिड़गिड़ाया.

—बहुत मिलेगा. धर्मराज गंभीर हो गये—चित्रगुप्त, इसका कमीशन एडवांस में दे दो.

—जो आज्ञा, महाराज. चित्रगुप्त ने सिर झुका कर कहा और फुरती से अपनी मेज की दराज खोल कर उसमें से एक छोटी झोली निकाल कर धर्मकुमार के सिर पर हिला दी.

धर्मकुमार के सारे शरीर में सफेद-सफेद कीड़े बिलबिलाने लगे. □□□

● एस. टी. चौधरी

छह लघुकथाएं

मशविरा

बादशाह हिलाकू खान के दरबार में नसीरउद्दीन तूसी की बड़ी इज्जत थी. हिलाकू खान के मंत्रिमंडल में एक और मंत्री था जो तूसी से द्वेष रखता था वह हमेशा उसके विरोध में कोई न कोई साजिश करता रहता था.

जब हिलाकू खान की मां का देहांत हुआ तो इस मंत्री ने मौके का फायदा उठाया और जंगजू हिलाकू खान से बोला—हुजूरे आला, यह तो आप जानते हैं कि कब्र में फरिश्ते मरने वाले से तरह-तरह के प्रश्न करते हैं. तूसी एक अति विद्वान मनुष्य है उसको आपकी प्यारी मां के साथ ही दफना दिया जाये तो वह मां के बदले में माकूल उत्तर दे सकेगा.

हिलाकू खान ने इस मशविरे का जिक्र तूसी से किया. प्रत्युत्तर में तूसी बोला—हुजूर, मुझे तो आप विशेष रूप से अपने लिए रखें और अपनी प्रिय मां के साथ उस विद्वान को दफना दें, जिसने आपको यह मशविरा दिया है.

हिलाकू खान ने ऐसा ही किया. □

विश्वास

एक बार मिस्र के राज्यपाल मदीना पहुंचे. मदीना के खलीफा अमर फारुक को उन्होंने देखा कि वह जैतून की चटनी के साथ जौ की रोटी खा रहे हैं. उन्होंने प्रश्न किया—महोदय, आजकल मिस्र में काफी गेहूं आ रहा है. आप गेहूं की रोटी क्यों नहीं खाते? हजरत उमर ने उत्तर दिया—मेरे भाई, इस समय मुझे केवल इतना मालूम है कि मेरे देश के प्रत्येक आदमी को जौ की रोटी तो मिल रही है मगर गेहूं की रोटी सबको नहीं मिल रही है. जिस दिन मुझे विश्वास हो जायेगा कि सबको गेहूं की रोटी मिल रही है मैं उसीकी रोटी खाना पसंद करूंगा. □

(प्रस्तुतकर्ता : अहद 'प्रकाश')

पारिश्रमिक

प्रसिद्ध लेखक पतझड़ की पहली पुस्तक 'कांटे' उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशनार्थ स्वीकृत हुई. यह पुस्तक उनके बेटे की मृत्यु के कुछ समय बाद छप कर बाजार में आयी. इस पुस्तक का पारिश्रमिक उनके पौत्र की मृत्यु के पश्चात् उनके वयोवृद्ध प्रपौत्र को मिला जो उसके पुत्रों के काम आया. □

(प्रस्तुतकर्ता : दुर्गादत्त दुर्गेश)

गड़बड़ी

● वि. स. खांडेकर

ग्रीष्म ऋतु में एक दिन अत्यधिक ताप से म्लान हो कर एवं अपना खेल छोड़ कर कामदेव विश्राम करने के लिए एक गुफा में गया. दुर्भाग्यवश यह गुफा मृत्यु की थी. गुफा में जाते ही वह लेट गया. अतएव उसकी पीठ पर लगे तरकस के बाण जमीन पर गिर पड़े और वहीं पड़े हुए मृत्यु के बाणों के साथ मिल गये. नींद से उठने पर कामदेव अपने बाण एकत्रित करने लगा, लेकिन मृत्यु के बाणों के साथ उसके बाण इतने मिल गये थे कि अपने बाण छांटना उसके लिए मुश्किल हो गया. अतएव उसके कुछ बाण मृत्यु के बाणों में मिल गये और उसके तरकस में मृत्यु के कुछ बाण आ गये.

वृद्ध और गलितांग मनुष्यों को काम-पीड़ित होते एवं सुंदर तथा तरुण पुरुषों को मृत्युवश होते हुए जो हम देखते हैं, उसका यही कारण है. □

(अनुवाद : प्रभाकर वासुदेव जैन)

नयी मान्यता

● कुमार

एक शिक्षक था. उसके चार बेटे थे. जब शिक्षक बूढ़ा हो गया तो उसके लड़कों में बंटवारे के लिए लड़ाई होने लगी. जब स्थिति काफी नाजुक हो गयी तो शिक्षक ने बेटों को बुला कर समझाया—साथ रहने में ही बल है. अलग हो जाने पर तुम सब कमजोर पड़ जाओगे. कथन को पुष्ट करने के लिए शिक्षक ने बेटों को लकड़ी का एक गट्ठर दिया और तोड़ने के लिए कहा. गट्ठर किसीसे न टूटा. तब शिक्षक ने गट्ठर को खोल दिया और लकड़ियों को अलग-अलग करके तोड़ने के लिए कहा, बेटों ने तुरंत लकड़ियों को तोड़ दिया.

लेकिन शिक्षक का यह दृष्टांत ज्योंही समाप्त हुआ कि उसका छोटा लड़का बोल उठा—यह मान्यता बहुत पुरानी पड़ गयी है पिताजी!

यह अर्थ-संकट का युग है. इस युग में हमें नयी मान्यताओं को स्वीकार कर के ही जीवन जीना होगा.

इतना कह कर उस लड़के ने पिता के समक्ष मिट्टी के दो गमलों को हाजिर किया. पहले गमले में जअमरुद का एक पौधा लहरा रहा था. दूसरे गमले में अमरुद के चार पौधे लगे थे. पिता को संबोधित करते हुए लड़के ने कहा—देखिए पिताजी! जिस गमले में अमरुद का एक पौधा लहरा रहा है, वह कितना पुष्ट हरा-भरा एवं होनहार है. परंतु जिस गमले में अमरुद के चार पौधे लगे हैं, वे सब के सब कितने दुर्बल, पीले एवं अल्पजीवी दीख रहे हैं. यदि आप अपने बेटों को होनहार, विकासशील एवं समृद्ध नागरिक के रूप में देखना चाहते हैं तो इन गमलों से सीख ग्रहण कीजिए.

शिक्षक कभी बेटे और कभी गमलों को देखता अवाक रह गया. □

घर

● संतोष खरे

तीन पीढ़ियों से उस चिड़िया का परिवार उस मकान के ड्राइंग-रूम की दीवार के छेद में अपना घोंसला बना कर रह रहा था. घोंसले का उपयोग मुख्य रूप से यह था कि जब चिड़िया गर्भवती होती तो वह उसी घोंसले में अंडे देती और बड़े होने तक बच्चे उसी घोंसले में रहते.

चिड़िया और चिड़ा ने घोंसला काफी मजबूत और सुंदर बना रखा था. अक्सर वे आपस में बातें करते कि उन्हें रहने की काफी अच्छी जगह मिल गयी है. सही बात तो यह थी कि अन्य चिड़ियों के लिए उनका घोंसला ईर्ष्या की वस्तु बन गया था.

उस दीवार से सटी गृहस्वामी की बड़ी आलमारी रखी रहती थी. जिस पर उसकी ढेर-सी पुस्तकें और फाइलें रखी थीं. गृहस्वामी देखता कि उसकी किताबों पर घोंसले के तिनके गिरते. कभी-कभी चिड़िया उन पर बीट भी कर देती. एक दिन सफाई करवाते समय गृहस्वामी ने वह घोंसला निकलवा कर फिंकवा दिया और दीवार के छेद में ईंटें लगवा दीं.

ठंड का मौसम शुरू हो चुका था. चिड़िया गर्भवती थी. हमेशा की तरह चिड़िया-चिड़ा अपनी चोंच में तिनके ले कर आये पर अपने घर के दरवाजे पर ईंटें लगी देख कर हक्का-बक्का रह गये. चिड़िया ने कई बार पंख फड़फड़ा कर निरीक्षण किया. ईंटों पर चोंच से चोट की पर ईंटे टस-से-मस न हुई. चिड़ा ने कई बार उसके आसपास चक्कर काटे. दोनों थक कर उदास हो कर आलमारी पर बैठ गये.

चिड़िया ने कहा—अब क्या हो? यह गृहस्वामी तो बड़ा दुष्ट निकला. इसने हमें पुश्तैनी मकान से बेदखल कर दिया.

चिड़ा ने क्रुद्ध हो कर जोर से चूं चूं कहा और सोफा पर बैठे गृहस्वामी को देख कर बोला—यह मोटा गृहस्वामी बदमाश है. इतने बड़े मकान में रहता है पर हमें इतनी-सी जगह नहीं दे सकता.

—आखिर गृहस्वामी ने ऐसा क्यों किया? चिड़िया ने चिंतातुर स्वर में समस्या की तह तक पहुंचना चाहा.

—मेरा खयाल है, हम अपने रहने का कोई किराया नहीं देते इस वजह से इसने यह कार्यवाही की है. यह बहुत लालची है. चिड़ा ने व्यावहारिक तर्क प्रस्तुत किया.

—हम किराया दे ही कहां सकते हैं! अपनी मीठी आवाज से सिर्फ गीत सुना सकते हैं, वह तो करते ही थे, चिड़िया ने भोलेपन से मायूस आवाज में कहा.

—हम इससे खाने को भी तो नहीं मांगते थे. जो थोड़ा-बहुत इसका फेंका हुआ अन्न मिलता था वही लेते थे, चिड़ा बेबसी की आवाज में बोला.

—अब मैं क्या करूं? पंद्रह दिनों के बाद मैं फिर मां बनने वाली हूं क्या तुम कुछ नहीं कर सकते . . .कहते-कहते चिड़िया की आंखों में आंसू आ गये.

चिड़ा बहुत दुखी हुआ. उसे क्रोध आया और उसकी इच्छा हुई कि वह चोंच से गृहस्वामी का चेहरा घायल कर दे पर फिर अपने मकान मालिक के पिछले एहसान याद कर अपने क्रोध को पी गया.

दोनों उड़ कर पेड़ पर जा बैठे और वहां अन्य साथियों से अपनी विपत्ति बतायी.

गंभीर विचार-विमर्श के बाद बुजुर्ग ने राय दी—उस लालची और दुष्ट गृहस्वामी से उलझना ठीक नहीं क्योंकि ऐसे लोगों में दया, ममता नहीं होती. इसके अलावा ये लोग बंदूकें और लाठियां भी रखते हैं. यदि लंबे संघर्ष के बाद गृहस्वामी ने ईंट हटा भी दी तो इस बात का क्या भरोसा कि किसी दिन जब तुब लोग घोंसले में बैठे हो और यह गृहस्वामी ऊपर से ईंटें लगवा दे तब तुम अपने बच्चों सहित घुट कर मर जाओगे. अतः बेहतर हो कि तुम लोग अन्य चिड़ियों की तरह रहो. आदमी की तरह घरबार के चक्कर में मत पड़ो.

चिड़िया चिड़ा ने मजबूर हो कर अन्यत्र घोंसला बना लिया. पर चिड़िया अपने पुराने घर का मोह नहीं छोड़ पायी थी.

वह रोज शाम को आती और आलमारी पर बैठ कर दीवार के छेद की ओर देखती और उसकी आंखों से दो बूंद आंसू गिर जाते. □

पितृशोक

• मेहरुन्निसा परवेज़

लोहे की जंग-खाई कुर्सी, जिसे पिताजी ने रजवाड़े की चाबुक सवारी की नौकरी से पैसा जमा कर खरीदा था, उस पर वह बैठा था. इन कुर्सियों का भी अपना इतिहास है, उस जमाने में कुर्सियां रखना बहुत बड़ी बात समझी जाती थी. चार पैर वाली, सीधी पीठ वाली लोहे की कुर्सी, बड़े अरमानों से तब ही खरीदी गयी थी. आसपास के लोगों में चर्चा भी रही थी कि फलां के यहां कुर्सियां हैं. अब वही कुर्सी जंग खाकर बीच-बीच से छेद होकर विचित्र-सी हो गयी थी, अब इन कुर्सियों को देख हंसी आती है.

सामने छोटी-सी झोल खाई खाट पर, आधे पैर मोड़े जो आदमी कंकाल की तरह पड़ा है, उसे ही देखने वह इतनी दूर दिल्ली से दौड़ा चला आया था. इस आदमी के लिए हमदर्दी में वह दौड़ा चला आया था पर इतनी भागदौड़ के बाद भी वह उसके प्रति नरम नहीं हो पा रहा है. यही कंकालनुमा जिंदा आदमी उसका बाप कहलाता है.

वह उसे जब भी याद करता है, वह आदमी से ही याद करना शुरू करता है, पिता का वह गुदगुदाया शब्द कभी सामने नहीं आया. परसों शाम ही तो वह दिल्ली से चला था. मौसेरे भाई ने तीन टेलीग्राम किये. लगातार तीन टेलीग्राम मिले तो उसे यही उम्मीद बंधी थी कि वह चल बसा होगा और अब उसे हो ही आना चाहिये, वरना उस छोटे शहर में यदि वह बाप की मौत के बाद भी नहीं पहुंचा तो वहां के लोग उसे कभी क्षमा नहीं कर पायेंगे.

छोटे शहर की आत्मा में दो-चार पुरानी बातें अब भी धड़कती हैं, जिसे लोगबाग सीने से चिपकाये रहते हैं. तीसरे टेलीग्राम के मिलते ही पत्नी ने रोना शुरू कर दिया था जिसे देखते ही बच्चों ने भी साथ दिया था, पड़ोस की मिसेज पाठक , मिसेज वर्मा को बच्चों से खबर मिल गयी थी कि बच्चों के दादा चल बसे हैं.

बाप के मरने की सूचना देकर ही उसने छुट्टी की दरख्वास्त दी थी. कुछ दोस्तों ने तो पहली बार जाना था कि उसका पिछला अब भी बाकी है.

——क्या करते थे यार, तुम्हारे पिता? दोस्तों ने आश्चर्य से पूछा.

• छ. एस. पारीक

—वह यकायक जवाब देते नहीं बना, पुरानी जमींदारी थी, अब तो वैसे कुछ बचा नहीं था पर हां मरा हाथी भी सवा लाख का होता है न, बस जायदाद की निगरानी करते थे. उसे संतोष हुआ कि चलो मौके से जवाब सूझ गया. जमींदारी थी, कहकर आसानी से पुराना वैभव जतला कर सामने वाले का मुंह बंद किया जा सकता है. नौकरी करते थे, कहने पर कई प्रश्न और आगे चलते हैं, कौन -सी नौकरी थी? कितना मिलता था? कितने दिन हुए रिटायर हुए? बिलावजह के प्रश्नों का लंबा सिलसिला.

—अब तक तो मिट्टी उठ गयी होगी, उसने भरोसे से पत्नी को जतलाया, इस आशय से कि जाने से कोई फायदा नहीं, सिर्फ पैसों की बरबादी होगी.

—तुम यह क्यों नहीं सोचते, तुम्हारे वहां नहीं जाने से लोग कितने किस्म की बातें करेंगें. फिर बाद में तुम वहां क्या जा पाओगे? उन लोगों का सामना कर पाओगे?

और उसे लगने लगा था, बिना जाये चारा नहीं. सफर के दौरान उसे एक बात कचोटती रही कि एक बिला जरूरत आदमी के लिए वह इतना पैसा फूंक रहा है. इससे तो अच्छा यही था कि दोस्तों में बैठकर बढ़िया बोतल खोली जाती, दो -तीन दिन ऐश करते, ठहाके लगाते, सिगरेट के धुंआं से कमरे को भर देते. दोस्तों के बीच खर्च करने में उन्हें जरा दुख नहीं होता. सही भी तो है, दोस्तों के सहारे वह इतना बड़ा हुआ और दोस्ती के भरोसे ही आज वह सारे वैभव पा गया था, जिसको पाना किसी जमाने में उसने अपना ध्येय बना लिया था.

आज वह बड़ा आदमी है, उसके पास बढ़िया तीन कमरों का फ्लैट है, आधुनिक सामान है, बच्चे ऊंचे कांवेंट में पढ़ते हैं, पत्नी ने सलीके से रहना सीख लिया है, पर इतनी सारी सुविधा इकट्ठी करने के लिए उसे क्या - क्या नहीं करना पड़ा, यह अलग और लंबी कहानी है जिसे वह खुद भी याद करना नहीं चाहता.

—जाओ नहा लो, कोई मिलने आ जायेगा, पत्नी ने उसे कपड़े पकड़ाते हुए कहा.

सच है उसे नहा-धोकर तैयार हो जाना चाहिये, कोई जान-पहचान के लोग आ सकते हैं.

अभी वह गीले पैरों को, गीली चप्पलों में फंसाये, टावेल से सर पोछते बाहर आया ही था कि पत्नी सामने आ खड़ी हुई.

—बाहर कुछ लोग तुमसे मिलने आये हैं, पत्नी ने बताया तो उसने गीला तौलिया पत्नी के ऊपर डाल दिया शरारत से, पत्नी ने आंखे तरेर कर उसे धमकाया और वह तुरंत सतर्क हो गया.

वह बाहर आया . दालान में जाते ही बैठे लोग खड़े हो गये. सबने अधीर होकर हाथ मिलाये , किसी ने उसे गले से लगा लिया. कुछ तो अपने बचपन के मित्र थे, कुछ उसके प्रायमरी के शिक्षक थे.

—अब कैसी हालत है पिताजी की?

—अभी तो मैं आया हूं, जब से ठीक लग रहे हैं, मैंने रस पिलाया, थोड़े सोये भी हैं.

—चलो भगवान का लाख-लाख शुक्र है, वरना बेटा बाप का दुख सह तुम नहीं पाते. दुनिया में सब मिल सकता है, मां बाप नहीं मिलते, उन्होंने शोकमुद्रा ऐसी बनाई जैसे खुद उनके पिता चल बसे हों.

वह मूंह लटका कर बैठ गया, इस तरह बैठने से उसे कोफ्त हो रही थी, पर क्या करता, मजबूर था.

—पेपर में उसकी सूचना दे देता हूं कि आपके पिताजी की हालत अब सुधर रही है, एक नें कहा.

उसने आश्चर्य से उन्हें देखा. सामनेवाले के चेहरे पर पश्चाताप था कि काश पिता मर गये होते तो वह अपने पेपर में इसकी पहले सूचना प्रकाशित करते पर जब वह नहीं मरे तो हालत मे सुधार की सूचना देकर ही तसल्ली पा लेना चाहते हैं.

—ठीक है दे दीजिये, कहिये कैसा चल रहा है आपका पेपर?

—जी, दया है आपकी, सामने वाले का चेहरा चमका, जरा रजिस्ट्रेशन में तकलीफ हो रही है, आप जरा कोशिश कर दें.

—जरूर-जरूर, पहले ही लिखा दिया होता, करवा देता.

—कितनी तकलीफ देता? पिताजी को वजीफा दिलवा कर क्या आपने कम एहसान किया है?

—हां, अचानक उसे याद आया कि इस बात का एहसान तो जतला ही दिया जाये, उस केस में मुझे काफी तकलीफ उठानी पड़ी. आपके पिताजी उस काबिल नहीं थे, उनके नाम कुछ जायदाद वगैरह थी. पहले उनका नाम उस लिस्ट में नहीं आता था, मैंने कोशिश कर के करवा दिया था.

जी हां वह तो हम लोग समझते थें, सामने वाला एहसान से झुक गया. चलिए आपके पिता बीमार हुए तो कम से कम इसी बहाने आ गये, वरना दस साल से ज्यादा हो गये आपको यहां आये.

हां वह सोचने का अभिनय करता बोलता है. क्या किया जाये. ऊंची नौकरी जितनी दूर से भली लगती है, उतनी ही झंझटवाली होती है. दस किस्म की परेशानियां होती हैं जो सर नहीं उठाने देती. आज किसी को परमिट चाहिए. आज उनका पासपोर्ट तैयार करना है. किसी को कुछ चाहिए, किसी को कुछ . . . .रात-दिन फोन बजते रहते हैं.

★ ★

सामने वाले लोग नम्रता से झुक कर चले जाते ह.

—क्या कहूं बेटे, ऐसी मुसीबत आयी इन दो महीनों में, तेरे बाप जनरल वार्ड में पड़े रहे, बाहर से दवा लाने को पैसे नहीं थे. डाक्टर कहते फल दो. पैसे हों तो फल दें? सारे लोग पराये हो गये थे. मैंने एक-एक से कहा, मेरा बेटा फलां है, पर किसी ने ख्याल नहीं किया. अब तुम आये हो तो कैसे मक्खियों की तरह भिनक रहे हैं, मां सर का पल्ला ठीक करती बताती है.

वह चुपचाप बैठा मां को देख रहा है, जो चार आने की सुपारी ला कर कतर रही है. कितना अजीब है घर का वातावरण, वही का वही है. मां अभी भी सामने के

ठेले से चार आने की सुपारी, दस पैसे की चाय, चार आने की शक्कर वगैरह बंधा कर लाती है. वह खुद छोटा था तो यह ड्यूटी किया करता था. आधा पाव तेल से कभी ज्यादा तेल घर में नहीं आया. आज सोचने से ही विचित्र लगता है, इस वातावरण में पल कर बढ़ने वाला वह कैसे इतनी ऊंची नौकरी पर पहुंच गया? आज यह वातावरण कितना अजनबी, कितना पराया लगता है.

मां तेज और कर्कश, उसकी अपनी शक्ल जरा भी किसी कोण से मां-बाप से नहीं मिलती. उसे आज भी हैरानी होती है कि क्या सच यही उसके मां-बाप हैं? बाप की याद आते ही उसका मुंह कड़वा हो जाता है. वह बड़ी कहर भरी आखों से अपने बीमार बाप को देखता है. यह ही है उसका बाप? दुनिया भर की गंदी औरतों की गलियां नापने वाला. हर नौकरी में गबन कर के निकला, फिर जेल गया वह. शराब पी कर खाली बोतल-सा इधर-उधर लुढ़कता पड़ा रहता. मां नंगे पैर उसे खोजती. एक-एक रांड का दरवाजा खटखटाती घूमती. कहीं मिल जाता तो सारे रास्ते चिल्ला-चिल्ला कर गालियां बकती लाती और धक्का दे कर कमरे में बंद कर देती.

मोहल्ले के घरों से एक-एक चीज उधार आती-जाती रहती. यही नरक था जिसका जहर पी-पी कर वह बड़ा हुआ था. दोनों बहनें कुंआरी मां बन-बन कर आखिर में किसी खांसते, दमे के रोगी के पल्ले बंध कर चली गयी थीं. फिर उसने दोनों बहनों की शक्ल कभी नहीं देखी. जी रही हैं या मर गयी, इसकी भी खोज-खबर किसी के पास नहीं है. वह बड़ा हुआ, उड़ने के लायक जब पर हो गए तो उसने यहां से जाना ही बेहतर समझा और एक दिन मौका देख कर उड़ गया. फिर संघर्ष का लंबा सिलसिला था. शरीर का सड़ा अंग काट कर फेंक देना ही बेहतर होता है, उसने भी लाख कोशिश की कि अपने पिछले को काट कर फेंक दे, पर पिछला हमेशा बादल की तरह उसके जीवन पर छाया रहा.

* *

पत्नी दिल्ली ट्रंक करके बच्चों की खैरियत जानना चाहती थी, पर लाइन ही नहीं मिल रही थी. पत्नी के चेहरे से उसने झुंझलाहट साफ पढ़ ली थी कि कहां आ फंसे, ससुर को दवा देना, चादर बदलना, रस देना, वहां बैठना आदि बहुत से छोटे-छोटे काम उसने अपनी सास से ले लिये थे.

छोटा भाई घर पर नहीं था, वह पत्नी को लाने उसके मायके गया था, बाप की ऐसी हालत में घर छोड़ना ठीक नहीं है. पर वह समझता है बाप के लिए किसी के मन में हमदर्दी नहीं है.

नीची छत वाले दो कमरे, जो आधे सामान से भरे थे, अंधेरे सीलन और धूल की महक से भरे हुए थे. सफेद छुई से लिपी दीवारें. काले फ्रेम में जड़ी ढेर सारी पीली पड़ गयी फोटो टंगी थी. तस्वीरों को देखो तो पुराने चेहरे याद आ जाते हैं. पर तुरंत थोड़ी देर में वे चेहरे शून्य में लुप्त हो जाती हैं. गंदे हुए से बिस्तर, गंदी तेल-तेल हुई रजाई, ढाबे में चढ़ने की लगी लकड़ी की सीढ़ियां ऊपर के अंधेरे कमरे में पहले वह घंटों पड़ा रहता था, तब उसे अपना वही कमरा कितना अच्छा लगता था.

उफ. यहां भी कितनी गर्मी पड़ने लगी, उसने इधर-उधर देखा, फिर हाथ का पंखा उठा कर घुमाने लगा, बिजली और पंखे की कमी उसे बुरी तरह खटकने लगी.

हवा से आम के पेड़ के पत्ते हिलने लगे थे. छोटे-छोटे लगे हुए आम बहुत भले लग रहे थे. उसे याद आया जब वह छोटा था तब उसने यहां आम खा कर गुई फेंक दिया था और उस घूरे पर उगा हुआ नन्हा-सा पौधा उसकी उम्र के साथ-साथ बढ़ता गया था. बहुत पहले मां बतलाती है, पहले यहां छोटा, कच्चा बरसाती कुंआ था जो बाद में भीतर ही भीतर पोला हो कर भसकने लगा था, जिसे बाद में पाट दिया गया था, घर का सारा कूड़ा-कचरा उसी में फेंका जाने लगा था. आंगन में जहां, तहां टूटी बाल्टी, झाड़ू, राख, पीपे, बेकार घड़े आदि पड़े थे, पीछे से कमरों को घेरती मिट्टी की जो दीवार थी वह जगह-जगह से उखड़ गयी थी बरसात का पानी खा-खा कर खुरदुरे पत्थर-सी निकल आयी थी. लगता है बरसों से उसे किसी ने लीपापोता नहीं था.

* *

——बेटा, तुम्हारे बाप चल बसे, मां ने उसे हड़बड़ा कर उठाया. वह कच्ची नींद से जागा और झुंझलाया-सा मां और पत्नी के पीछे जा कर देखा तो उसी झोलखाई खाट पर वह मरा पड़ा था. उसने धीरे से उसे हिलाया. कोई आहट नहीं हुई. सच. वह मर गया था. तो यह आज मरा? पर उसके लिए तो वह बरसों पहले मर चुका था.

मां ऊंचे स्वर में रोने लगी पर वह समझ रहा था यह रोना केवल दिखावा है. बस मोहल्लेवालों को सूचित करने के लिए, वरना वह जानता है मां रोज उसकी अर्थी गालियों में निकालती थी. वह लोहे की टूटी कुर्सी को खींच अर बैठ गया. उसने घड़ी में देखा, अभी रात के तीन बज रहे थे, सुबह होने में अभी पूरे दो-तीन घंटे बाकी थे, कल लगभग सौ, दो सौ रुपये का खर्च था और उसने जेब से रूमाल निकाल कर चेहरा पोंछ लिया.

सुबह मोहल्ले भर में यह खबर फैल गयी कि फलां का बाप मर गया. सारे मित्र, परिचित इकट्ठे हो गए. इतने लोगों की हमदर्दी वसूलते-वसूलते वह थक-सा गया था. मौत का वही चिर-परिचित वातावरण था. वही सन्नाटे भरी हलचल थी. बच्चे सहमे-से थे, उनके चेहरे से लग रहा था वह वहां से जाना भी नहीं चाहते और खड़े रहने से भी सहम रहे हैं. अच्छा हुआ, वह अपने छोटे बेटे को साथ नहीं लाया. वरना पता नहीं वह इस वातावरण से कितना सहमता.

सुबह से भागदौड़ कर वह बुरी तरह थक गया था, अर्थी तैयार हो गयी थी, उसने बढ़ कर कांधा लिया पर शीघ्र ही किसी ने बढ़ कर कांधा ले लिया. मां-पत्नी औरतों के बीच खड़ी रो रही थीं. छोटे गांव का वही दिल दहला देने वाला वातावरण. सारी औरतें इकट्ठा हो कर रो रही थीं. बड़े शहरों में तो मौत भी कितनी खामोशी से होती है.

वह कांधे पर धोती रखे चुपचाप पीछे चलने लगा,

अर्थी में काफी लोग थे, सारे उसके अपने मुलाकाती और मित्र थे. पिताजी के मिलने-जुलने वालों में कोई नहीं था. घरों के दरवाजे-खिड़की और बरामदे में औरतें-बच्चे खड़े हो कर जाती अर्थी को देख रहे थे.

देखो वह जा रहा है फलां का बेटा, दिल्ली में बहुत बड़ा आदमी है, बेचारा बाप की बीमारी की खबर सुन कर कैसे दौड़ कर आया है. देखो तकदीर. ऐसे शराबी बाप का कितना होनहार लड़का निकला. एक औरत उसकी तरफ इशारा कर के दूसरी को बता रही थी.

उसने सर उठा कर उस औरत को देखना चाहा पर कुछ सोच कर नीचे ही सर दिये रहा. मन एकदम हलका-फुलका-सा हो गया था.सर का वह बोझ जो दो दिन से उस पर हावी हो रहा था, वह अचानक जैसे उतर गया. उसे लगा, यहां आना, इतना खर्च करना, सफल हो गया है.

□□□

द्वारा रऊफ्त परवेज, एडवोकेट,
प्रतापगंज, जगदलपुर

पंचतंत्र की एक कथा

भिक्षु जो नित्य स्वर्ग जाया करता था!

कोशल देश में एक महाप्रतापी राजा राज्य किया करता था. एक दिन उसके वन-निरीक्षक ने उसके पास आ कर हाथ जोड़ कर, कहा---महाराज, सभी बन-सामंत विद्रोही हो उठे हैं, अब समय आ गया है कि आप उनके सरदार विध्यक को उचित तौर-तरीके सिखला दें. राजा ने उसकी सलाह मान कर अपने मंत्री को वहां जाने का आदेश दिया ताकि वह विद्रोहियों को कुचल सके. इधर मंत्री की गैरहाजिरी में एक निर्वस्त्र भिक्षु नगर में आया. उसने अपने खगोल विद्या के ज्ञान तथा अन्य रहस्यात्मक ज्ञान द्वारा पूरे नगर को अपना बना लिया . यह खबर कानोंकान राजा तक भी पहुंची तो उसने भिक्षु को बुला भेजा और कहा---हे विद्वान भिक्षु, क्या यह सत्य है कि आप दूसरों के मन की बात भी बता सकते हैं?

---यह तो आप स्वयं देख लेंगे, उसने उत्तर दिया. इस पर राजा की उत्सुकता चरम सीमा को पहुंच गयी. वह भिक्षु को प्रतिदिन महल में बुलाने लगा.

एक दिन वह भिक्षु नित्य के समय पर राजमहल नहीं पहुंचा. अगले दिन उसने घोषित किया---महाराज आपके लिए मैं एक शुभ समाचार लाया हूं. आज अपनी कुटिया में मैंने अपना चोला छोड़ दिया था और दूसरा शरीर धारण कर स्वर्गलोक को चला गया था. वैसे मैं प्रायः रोज ही स्वर्ग जाया करता हूं, किंतु आज कुछ विलंब हो गया. क्षमा करें. अभी-अभी वहां से लौट कर सीधे यहीं आ रहा हूं. देवगण मुझसे आपका कुशल-मंगल पूछ रहे थे. मैंने विस्तार में बतला दिया.

इस पर राजा उससे इतना प्रभावित हुआ कि राज्य के कामकाज छोड़ कर रनिवास को त्याग कर उस पर ही ध्यान केंद्रित करने लगा. इस बीच वन के सामंतों का विद्रोह दबा कर मंत्री वापस आ गया. उसने भी निर्वस्त्र भिक्षु का राजा पर जो प्रभाव देखा तो चकित रह गया. कुशल-क्षेम के बाद राजा ने उससे पूछा--- इन ज्ञानी भिक्षु को आप जानते हैं न?

---इनको कौन नहीं जानता! ये तो ज्ञानियों में ज्ञानी हैं. मैंने यह भी सुना है कि ये प्रतिदिन स्वर्ग-लोक को भी जाया करते हैं. क्या यह सत्य है राजन?

---बिलकुल सत्य है, राजा ने उत्तर दिया, देवगण की इन पर विशेष कृपा है.

इस पर भिक्षु ने कहा--- यदि आपको कोई संदेह हो तो स्वयं देख सकते हैं कि मैं स्वर्ग किस तरह जाया करता हुं.

और ऐसा कह कर वह अपनी कुटिया में चला गया. और भीतर से द्वार बंद कर लिया. इस पर मंत्री ने राजा से पूछा---महाराज, अब ये स्वर्ग लोक से कब वापस आयेंगे?

---धैर्य रखिए, मंत्रीजी, आपको मालूम होना चाहिए कि महाभिक्षु अपना निष्प्राण शरीर छोड़ कर स्वर्ग चले जाते हैं. और वहां से एक अलौकिक शरीर धारण कर वापस आते हैं.

---यदि ऐसी बात है तो कृपया प्रचुर मात्रा में ईंधन मंगवाइए ताकि मैं इस कुटिया को आग लगा सकूं.

---क्यों भला, राजा ने अचरज से पूछा.

---ताकि जब उनका निर्जीव शरीर जल कर राख हो जाये तो वे आपके सम्मुख दूसरे शरीर में उपस्थित हो सकें

राजा निरुत्तर खड़ा रह गया. (प्रस्तुतीकरण : अलका सिंह) □□□

दहलीज़ पर संवाद

•सुधा अरोड़ा

अंधेरी ड्योढ़ी को पार कर दोनों शिथिल आकृतियां जीने की तरफ बढ़ती हैं. पुरानी चप्पलों की धीमी चरमराहट के साथ-साथ सीमेंट के फर्श पर छड़ी के बार-बार टिकाये जाने का अपेक्षाकृत तेज स्वर उभरता है, फिर रुक जाता है.

—देख कर आना सुमित्रा, अंधेरा है.

—बत्ती क्या हुई?

—तोड़-ताड़ दिया होगा बल्ब, पड़ोस के बच्चों ने.

—गये थे तो ठीक था.

—हरामखोर कहीं के!...

चप्पलों की चरमराहट और छड़ी की टक्-टक् का समवेत् स्वर फिर शुरू होता है. इस बार उसमें हांफने की भारी आवाज भी जुड़ जाती है. ऊंची चढ़ती हुई छड़ी की टक्-टक् दो-तीन क्षणों के लिए ठिठकती है.

—थक गयीं?

—हांऽ....

—कहा था, रिक्शा ले लेते.

—अढ़ाई रुपये मांग रहा था.

—तो क्या हुआ? आराम से तो आ जाते!

—पैसे का खयाल नहीं है आपको.

—सेहत के मामले में कंजूसी नहीं दिखानी चाहिए. इस उम्र में सेहत ही नियामत है.

—खैर...हम कौन-सा रोज-रोज स्टेशन जाते हैं.

छड़ी की आवाज काफी ऊपर जा कर एक बार फिर रुकती है. चप्पलों की चरमराहट के साथ-साथ गहरे निश्वास जारी रहते हैं. झुर्रियों वाला एक हाथ नीचे अगली सीढ़ी तलाशता है.

—मैं आऊं?

—नहीं, मैं धीरे-धीरे चढ़ रही हूं. आप दरवाजा खोलिए.

—चाबी तो तुम्हारे पास है.

—हाय रब्बा ऽऽ....

—ठंड तो नहीं लग रही?

—नहीं.

—मुझे तो लग रही है.

—अच्छा?

—डॉक्टर कह रहा था कि इस उम्र में रात को बाहर नहीं निकलना चाहिए.

—पर जाना तो था ही.

—मैं यह थोड़े ही कह रहा हूं.

—चलो, अब तो आ गये....

चाबियों की खनखनाहट शुरू होती है. फिर दरवाजा खुलता है. स्विच के ऊपर-नीचे होने की आवाजें आती हैं. उसके बाद गहरी खामोशी छा जाती है.

—क्या हुआ?

—बत्ती ही नहीं है.

—फिजूल बेचारे बच्चों को कोस रहे थे. अब?

—तुम भीतर तो आओ.

—हूं.

—मोमबत्ती है घर में?

—ढूंढ़नी पड़ेगी.

—और वह जो राज की टॉर्च थी...

—उसका मसाला कहां बदलवाया!

—चलो, खैर, सोना ही है अब.

—खाना नहीं खाओगे?

—भूख नहीं है.

—क्यों?

—पता नहीं. तुम खा लो.

—नहीं.

—क्या हुआ?

—ऐसे ही. जी नहीं करता.

—तो फिर दरवाजा बंद कर दो.

—अच्छा.

* *

तेज खड़खड़ाहट के साथ दरवाजा बंद होता है. घरघराती हुई सांसें कमरे में गूंजती रहती हैं. फिर बिस्तर पर किसी बोझ के ढह जाने की आवाज आती है. एक मिनट के लिए जैसे सब कुछ रुक जाता है.

—हाय, मेरे रब्बा!

—थक गये न आप भी?

—नहीं तो.

—आपकी आवाज से लग रहा है.

—क्या हुआ है मेरी आवाज को?

—आपको नहीं पता चलता?

—नहीं.

—जैसे गले में कुछ फंसा हुआ होता है.

—क्या?

—जैसे गला अकड़ गया हो.

—ठंड जो थी रास्ते में.

—गुलूबंद ले लेना था.

—उससे क्या फर्क पड़ना था!

—फिर भी. डेढ़ मील तो होगा ही यहां से स्टेशन.

—ज्यादा.

—अब वह शरीर भी तो नहीं रहा.

—हूं....

—जूते उतार लिये?

—उतार रहा हूं.

—टाइम क्या हुआ?

—साढ़े बारह.

—वे लोग इटावा पहुंच गये होंगे.

—अभी कहां! एक बजे आता है.

—टिन्नी दूध के लिए रो रहा होगा.

—हूं.

—बहुत रोता है.

—आदतें बिगाड़ रखी हैं.

—और क्या!

—अपना राज नहीं रोता था इस तरह.

—आजकल की लड़कियों को बच्चे पालने नहीं आते.

—क्योंकि बच्चे पाले जाते हैं आजकल. पहले तो अपने आप पल जाते थे.

—कहो तो बुरा लगता है.

—जमाना नहीं है किसी को कुछ कहने को.

—हूं. . . .

—तुमने कहा तो नहीं था कुछ?

—नहीं. ऐसे ही एक बात की है.

—खैर. . .

—कपड़े बदलने हैं आपने?

—नहीं.

—ऐसे ही सोयेंगे?

—हां.

—कंबल ले लेना ऊपर.

—ले लिया है.

—पानी पीना है?

—नहीं.

—और कुछ?

—नहीं.

—मैं सो जाऊं फिर?

—हां.

★ ★

चुप्पी कमरे पर छायी रहती है. दूर कहीं चौकीदार आवाज लगाता है. फिर जोर-जोर से बात करते हुए लोगों का झुंड नीचे फुटपाथ पर से गुजर जाता है. फिर दूर-दराज तक वही चुप्पी.

—मैंने कहा. . .

—हूं.

—सो गये क्या?

—नहीं.

—नींद नहीं आती?

—पेट अजीब-सा हो रहा है.

—खाना जो नहीं खाया.

—तुमने भी तो नहीं खाया.

—अब कौन सियापा करे. . .

—राज और इंद्रा के सफर के लिए जो खाना बना था. . .

—सारा ही मैंने टिफिन में डाल दिया था. इंद्रा मना करती रही. मैंने जबरदस्ती रख दिया. गाड़ी में भूख ज्यादा लगती है. दो रातों का सफर है.

—रात बहुत हो गयी है. . .

—हूं. . .

—मैंने कहा. . . सुनते हैं. . . ?

—हूं. . .

—घर कैसा चुप-चुप हो रहा है!

—क्या?

—कैसा मनहूस लग रहा है घर!

—बच्चे की रौनक तो होती ही है.

—बड़ा शैतान है.

—बाप पर गया है.

—मां पर नहीं?

—नहीं.

—मैंने राज को बताया था.

—क्या?

—कि टिन्नी बिल्कुल तेरे पर गया है.

—फिर?

—फिर क्या?

—राज ने क्या कहा?

—कहने लगा, अपने दादा पर गया है. धीमी, पोपली खिलखिलाहट से सारा कमरा भर जाता है. फिर करवट बदलने की सरसराहट शुरू होती है.

● आबिद सुरती

—तुम्हें याद है?

—क्या?

—अपना राज बिल्कुल टिन्नी जैसा था.

—हां, मगर भारी ज्यादा था.

—मोहल्ले के बच्चों से तो उठता ही नहीं था.

—बीस साल हो गये. . .

—नहीं, पच्चीस. . .

—अब भी कितना साफ-साफ याद है!

—सारे कमरे में घिसटता रहता था.

—बच्चे कितनी जल्दी बड़े हो जाते हैं!

—ओमी, पाल, नीलू के तो अपने बच्चे भी कितने बड़े-बड़े हो गये. . .

—सब छोटे थे, तो सुबह-शाम कितना ऊधम मचाते थे!

—पर प्यार कितना था आपस में!

—अब तो चिठ्ठी-पतरी भी नहीं. . .

—पीछे देखो तो पता चलता है.

—जमाना था वह भी. अब तो कुछ भी नहीं. . . .

—क्या?

—कुछ नहीं. . .

* *

खामोशी फिर से उतर आती है. तभी घंटे की तेज आवाज सुनायी देती है. उसके बाद फिर वही करवटें बदलने की सरसराहट.

—एक बज गया.

—दूध मिल जाता है वहां?

—हां, बड़ा स्टेशन है.

—तकलीफ होगी.

—वो तो होगी ही. रात का सफर है.

—कहा था, दिन की गाड़ी से चले जाते.

—अपनी मर्जी के मालिक हैं सब.

—फिर भी. . . .

—तुमने रुपये पकड़ा दिये थे टिन्नी के हाथ में?

—हां.

—कितने?

—दस.

—बीस देने थे.

—दस ही थे मेरे पास.

—परसों मैंने दिये जो थे!

—उनसे मैंने टिन्नी को खिलौने खरीद दिये थे.

—ओ. . . .

दो क्षणों तक सब चुपचाप रहता है. फिर चारपाई चरमराती है. खंखारने की आवाज के साथ फिर सन्नाटा छा जाता है.

—कितने के आये खिलौने?

—सोलह रुपये कुछ पैसे के थे.

—बड़े मंहगे लिये!

—सस्ती कौन-सी चीज आती है आजकल!

—हमारे बच्चे तो चम्मचों से ही खेल कर खुश हो जाया करते थे.

—तब की बात और थी.

—अच्छा, सुनो.

—हूं? . . .

—बाकी कितने पैसे रह गये अलमारी में?

—तीस.

—कितने?

—तीस.

—बस?

—हां.

—इस महीने बड़ा खर्च हो गया! अभी आधा महीना भी नहीं. . .

—बच्चे भी तो तुम्हारे ही हैं!

—हां, लेकिन. . .

—क्या?

—कुछ नहीं.

—बोलो भी.

—नहीं, कुछ नहीं. . . .

* *

बूट पटकता हुआ, लाठी की ठक्-ठक् के साथ, चौकीदार एक बार फिर सड़क से गुजर जाता है. सांस लेने की थकी हुई सरसराहट और सन्नाटा —दोनों बने रहते हैं.

—इस बार राज खुश था बहुत.

—यहां आ कर?

—नहीं, वैसे ही.

—कोई बात तो होगी.

—खुद तो वह कुछ नहीं बोला, पर इंद्रा बता रही थी.

—क्या?

—कह रही थी, यहां से लौट कर जायेंगे तो बदली होगी और तरक्की भी. . . राज ने तुमसे कुछ नहीं कहा?

—बदली होगी?

—हां.

—इधर पास कहीं?

—कह रही थी, आसाम की तरफ. . .

—आसाम की तरफ?

—हां. क्यों?

—वह तो बहुत दूर है.

—अच्छा?

—एक तरफ के सफर में ही तीन-चार दिन लग जाते हैं. . .

—हाय मेरे मालिक!

—आना-जाना मुश्किल हो जायेगा.

—हमारा क्या होगा?

—हूं?

—हमारा क्या होगा?

—हमारा क्या हो सकता है?

एक मनहूस चुप्पी कमरे में खिंच जाती है. काफी देर तक कोई आवाज नहीं उभरती. उसी सन्नाटे में कहीं गहरे में से एक थकी हुई आवाज जैसे गूंजती है.

—कितनी तनख्वाह हो जायेगी अब राज की?

6

—सत्रह सौ.

—स-च?

—हां, इंद्रा कह रही थी.

—मैं कल सोसायटी वालों को बताऊंगा. खोसला साहब को भी. बड़ा रोब मार रहे थ.

—और आप कर भी क्या सकते हैं!

—क्या कहा?

—कुछ नहीं.

—कभी-कभी बहुत कड़वी बात कह जाती हो!

—सच नहीं है क्या?

—होगा.

—होगा नहीं, है.

—पर हमारे पास खुश होने के लिए इसके अलावा रास्ता भी क्या है!

—मैंने तो एक बात कही थी.

इस बार एक आकृति उठ कर चारपाई पर बैठ जाती है. चारपाई जोरों से चरमरा उठती है.

—उठ गये?

—हां.

—क्यों?

—नींद नहीं आ रही.

—तबीयत ठीक है?

—हां.

—तो फिर?

—बस, नींद नहीं आ रही.

—वे लोग भी गाड़ी में जाग रहे होंगे.

—सो गये होंगे शायद. रात काफी हो गयी है.

—टिन्नी तंग न कर रहा हो कहीं.

—तुम्हें क्या पड़ी है?

—ऐसे ही . . . खयाल तो आता ही है. . . .

—हूं. . .

—क्या सोच रहे हैं?

—. . . .

—बताइए भी. यही आपकी खराब आदत है.

—सोच रहा हूं, पिछले दस दिन कितने अच्छे गुजरे.

—वो तो हैं ही.

—अब मनहूस लग रहा है सब कुछ.

—बड़े कम वक्त के लिए आते हैं हर बार.

—खर्च भी तो बहुत हो जाता है.

—क्या करें!

—दिल पर पत्थर रखना पड़ता है.

—. . . .

—अपने बच्चों को भी खयाल नहीं आता. . .

—. . . . .

—कि इस उम्र में इस तरह अकेले. . . .

—चलो जी, राजी-खुशी रहें, अपने घर. . .

—दस दिन रह कर जाते हैं तो मेरा तो कलेजा कट जाता है.

—क्या?

—कलेजा कट जाता है.

—एक हफ्ता और रुकने के लिए कहना था.

—कहा था.

—फिर?

—इंद्रा बोली कि छुट्टी नहीं है. . .

—पर राज तो कह रहा था. . .

—मुझे भी कहा था.

—फिर?

—मैंने इंद्रा और राज की बातें सुनी थीं. . . .

—क्या कह रहे थे?

—. . . . . .

—बताओ भी, क्या कह रहे थे?

—इंद्रा रो रही थी कि यहां उसका मन नहीं लगता. सारा दिन करने को कुछ नहीं होता. घूमना भी अच्छा नहीं लगता.

—. . . . . .

—कह रही थी कि बीमारों के बीच उसके बच्चे को कुछ हो गया तो. . .

—. . . . . . .

—आप चुप क्यों हो गये?

—कुछ नहीं.

—बोलो भी.

—ऐसे ही. एक बात याद आ गयी.

—क्या?

—मेजर लाल सुनाते थे न — जिस तरह पिछली लड़ाई में सिपाही जख्मियों को साथ ढोने से तंग आ कर पीछे छोड़ जाते थे, उसी तरह. . .

—क्या उसी तरह?

—कुछ नहीं, सुमित्रा. अब सोना चाहिए.

—बोलो भी. क्या कह रहे थे?

—मुझे तो लगता है. . .

—क्या लगता है?

—बताऊं?

—हां.

—कि हम न इधर हैं, न उधर. . .

—क्या?

—तुम्हें ऐसा नहीं लगता?

—कैसा?

—कि हमें अब. . . .

—हाय मेरे रब्बा, मनहूस बातें ही निकालोगे. . .

—नहीं क्या?

—अब बस भी करो. . . .

—सच बताओ, क्या तुम्हें भी ऐसा लगता है?

कोई उत्तर नहीं मिलता. सिर्फ अलग-अलग चारपाइयों पर सांसें उठती-गिरती रहती हैं. ऊपर छत पर धूल-सना, मैला पंखा धुंधला, और धुंधला होता जाता हैं. दूर कहीं दो का घंटा बजता है तो अंधेरेदार सन्नाटा यूं कांपता है जैसे कोई अधमरी चीज हवा में उलटी लटक रही हो. . . □□□

४०३, सी क्रेस्ट–१,
सात बंगला, वर्सोवा,
बंबई – ४०० ०६१

दुनिया भगवान की

चंद्रकांत बक्षी

रिसर्च लेबोरेटरी में प्रवेश करने से पहले रिसेप्शन के कांच के बड़े क्यूबिकल में जा कर नाम दर्ज करवा लेना आवश्यक था. भीतर दो टेबलों पर दो आदमी दो-दो टेलिफोन ले कर बैठे थे और कोने में एक पब्लिक टेलिफोन लगाया हुआ था. एक सरदार था, दूसरा दक्षिण भारतीय इसाई-सा लग रहा था.

एक टेबल के पास जा कर मैं खड़ा रहा.

—मेरा नाम है व्यास. . .और मुझे डाक्टर निंजुर से मिलना है.

रिसेप्शन के इसाई जैसे लग रहे आदमी ने सामने खुला पड़ा हुआ रजिस्टर पास खींचा और वह आज के मुलाकातिओं की लिस्ट देखने लगा. तुरंत ही मैंने अपने नाम पर उंगली रख दी—यह रहा मेरा नाम! मैंने आगे से ही अपांईटमेंट ले रखा है.

—बैठिये.

उसने डाक्टर निंजुर को फोन लगाया—विजिटर टु यू, सर!. . . येस सर. . .!

फिर रिसिवर मुझे देते हुए कहा—टाक टु डाक्टर निंजुर.

—मैं व्यास बोल रहा हूं. . .

—कितनी देर हुई?

—बस. . .अभी-अभी ही आया.

—अच्छा, यू वेट!. . .मैं लेबोरेटरी की बस में आ रहा हूं. . .फिर जरा रुक कर, तू बैठना इत्मनान से, व्यास. . .मैं मीनी-बस से आऊंगा. दस मिनट इंतजार करना पड़ेगा!

—इट्स ओल राईट . . .टेक योर ऑन टाईम!

मैंने एक सिगरेट पूरा किया और लेबोरेटरी की मीनी-बस आती हुई दिखाई पड़ी. औरत-मर्द उतरने लगे, डाक्टर निंजुर भी उतरा—दूर से वेव किया, मैं कांच की दीवार के आरपार देख पाया.

मैंने भी वेव किया.

—हाय! प्रवेश करते हुए उसने कहा.

—हाय!

—तू. . .कैमरा नहीं लाया?

—आज सिर्फ देख ही लेना है. कैमरा-वर्क बाद में आ कर कर लूंगा, मैंने कहा.

—अच्छा, कम ऑन! इसी मीनी-बस में बैठ जांय... वर्ना इसे लौटने में दस मिनट लग जायेंगे.

—चल!

मैं और निंजुर कांच के क्युबिकल से निकल कर कर्ब के पास खड़ी मीनी-बस में बैठ गये. सीट पर से खिड़की के बाहर सरोवर और पहाड़ियां दिखाई पड़ रहे थे. ड्राइवर सिगरेट के दो त्वरित कश फूंक कर, सिगरेट को पैर तले दबा कर, फिर से आ कर अपनी सीट पर बैठ गया. मुंह घुमा कर, बस के भीतर देखते उसने गियर बदला.

निंजुर ने पूछा—तू स्टुडियो पर से हो आया है?

—हां यार, घर जाने का टाइम रहा ही नहीं. फिर यहां तुम लोग बहुत सख्त सिक्यूरिटी रखते हो!

—रखनी ही चाहिये! दूर पानी के बीच बनाये हुए काठ के प्लेटफार्म की ओर देखते हुए वह बोला, रिसर्च लैब है!

मैं खिड़की के बाहर पानी का विशाल पट, धूप में चमकता हुआ और शांत, देखता रहा. हवा में ठंड थी, और थोड़ी थर्राहट. बायीं तरफ के पर्वत के ढलान पर काटे गये जंगली वृक्षों के दरख्त स्पष्ट दिखाई पड़ रहे थे—शायद यातायात में उनकी टहनियां टकरा जाती होंगी या फिर पतझड़ के समय झड़ते हुए पत्तों की सफाई की समस्या हो जाती होगी.

—अच्छा, व्यास! तू कितनी शूटिंग करेगा?

—फिनिरड. . .तकरीबन एक हजार फीट.

—और खास?

—खास-वास कुछ नहीं. लेबोरेटरी में कैमरा-वर्क की इजाजत नहीं मिली है. और सिर्फ वैज्ञानिक बातें नहीं करनी. इधर के कर्मचारी, इनकी दुनिया, इनका जीवन यही सब आ जाना चाहिये. और यह सब भी जरूरी नहीं है. अगर एक ही वैज्ञानिक या चपरासी या लिफ्ट बॉय में दिलचस्पी लग जाय तो मैं सिर्फ उसी को शुट कर लूंगा. अगर कोई खरगोश-जैसी गुदाज लैब-एसीस्टंट दिखाई पड़ जाय तो. . .हम लोग इसी की फिल्म उतार लेंगे!

—साले!

—इट हैज टु बी ह्यूमन! . . .बिलकुल डॉक्यूमेंटरी नहीं लगनी चाहिए, और क्या?

—समझ गया, निंजुर कुछ सोच कर बोला.

मीनी-बस एक चौरास्ते पर आ कर खड़ी हो गयी. आसपास अद्यतन मकान, लंबे, ऊंचे, वर्नुशाकार, कांच और क्रोमीअम की चमक और विज्ञान की कीटाणु-रहित तीव्रता. . .

हम उतर गये.

—चल. . .पहले मेरी लैब में. . .

★ ★

मैं निंजुर के पीछे-पीछे चलने लगा. एकाएका रुक कर उसने प्रश्न किया—व्यास! तुझे जो पास दिया गया था, है न?. . .खो मत देना, वर्ना बाहर निकलने के लिए एक घंटे की विधि करनी पड़ेगी!. . .

● दयाराम चावड़ा

निंजुर ने अपनी लैब में जा कर, उसकी दो एसीस्टंटों का परिचय करवाया, कॉफी पिलाई, फिर फोन ज्वाइन किया, फोन एंगेज्ड होने के कारण रिसिवर क्रेडल पर रख कर कहा—मेरी इच्छा है कि प्रश्न हम बेसमेंट से शुरू करें. पर एक बात, तू जरा गंध तो सह सकेगा न?

—मतलब? व्होट डु यू मीन?

—आई मीन. . .गंध, बदबू. बहुत नहीं होगी, लेकिन होगी जरूर!

—क्यों? तू मुझे नर्क में ले जा रहा है?

—नर्क में नहीं यार, पृथ्वी पर. नीचे एक और ही दुनिया है—और तेरे देखने लायक है.

—बेसमेंट में है?

—हां, वहां हमारा एनीमल-फार्म है! हमारी लेबोरेटरीज के लिए जो जानवरों की जरूरत पड़ती है, हम लोग नीचे से मंगवा लेते हैं. लेकिन वहां ये सब नहीं हैं—निंजुर ने अपनी लैब में दृष्टि फेरते हुए कहा, यह तो स्वर्ग है. यहां तो, उसने स्वर जरा धीमा कर कहा, अप्सरायें भी हैं. . .नीचे पृथ्वी पर दस हजार प्राणी हैं—चूहे!

—तू मुझे चूहे बताना चाहता है?

—उन चूहों पर तो हमारी लेबोरेटरी चलती है दोस्त!. . .है देखने लायक. बहुत बड़ा विस्तार है. एक-एक पिंजड़ा, उसी में एक-एक परिवार, सभी के खाने-पीने की व्यवस्था. प्रतिदिन उनका खयाल रखना, रिकार्ड रखना. जन्म से मृत्यु तक प्रत्यक जानवर का रिकार्ड रखना पड़ता है. जन्म से पहले नर और मादा का रिकार्ड रहता है. मरने के बाद उनके पोस्ट-मार्टम का रिकार्ड रहता है! निंजुर हंस दिया, साली बड़ी विचित्र दुनियां है. बाहर वाले को हम भीतर भी नहीं जाने देते!

मैं जरा सोच में पड़ गया.

—ओ. के.

निंजुर ने फोन किया. इस बार लाइन मिल गयी—चल!

निकलते समय उसने एक अप्सरा को पास बुला कर कहा—मेनका! मैं और व्यास बेसमेंट में जा रहे हैं. जरूरत पड़ने पर ही फोन करना. . .बाकी मेसेज ले लेना!

—राईट, सर! मेनका ने प्रेमपूर्वक उत्तर दिया.

मूलभूलैया जैसी लाबियां और रेलिंग, छोटी-छोटी एकदम साफ सीढ़ियां जिनमें से डिसइंफेक्टंट की तेज खुश्बू आ रही थी. नीची सिलींग, बिलकुल एक-दूसरे के सामने खड़ी व्हाईटवास की हुई बेदाग और सफेद दीवारें, सफेद ओवरआल पहन कर जल्दी-जल्दी चले जा रहे बुद्धिशाली लोग, आंखों को धक्का मारनेवाली स्वच्छता, कहीं-कहीं से आती हुई लिफ्टों की भी आवाजें. . .निंजुर कहीं गायब न हो जाय, इसी चिंता में मैं उसके पीछे-पीछे चलता-उतरता रहा. वह बिना बात किये जल्दी-जल्दी चल रहा था. आखिर एक लिफ्ट में प्रवेश करके वह बोला—अब हम आ गये!

लिफ्ट खड़ी रही. हम बाहर निकल आये और फिर कांच के एक दरवाजे को खोल कर अंदर घुस गये. सामने एक दूसरा वजनदार काला दरवाजा नजर आया. भीतर प्रवेश किया. सफेद ओवरओल पहने हुए कर्मचारी ट्रालियां चलाते हुए लाबी में दिखाई पड़े.

निंजुर ने एक लड़के से पूछा—साहब कहां हैं?

—तीन नंबर में.

तीन नंबर के कमरे का द्वार खोल कर हमने प्रवेश किया, एक बड़े हाल में चारों तरफ एक ही साइज के पिंजरे कतार-दर-कतार रखे हुए थे और बदबू—निंजुर ने जिक्र किया था, वही बदबू—नाक में-से होती हुई फेफड़ों तक घुस गयी. सामने टेबल के पार बैठे हुए आदमी ने स्मित किया. एक काला आदमी, मोटे कांच वाले चश्मे, सफेद ओवरओल, टेबल पर रखी हुई उंगलियां और पंजों का उंगलियों तक का हिस्सा श्वेत कुष्ठ के कारण पूरा सफेद—और टेढ़े दांत. . .

—यह मेरा दोस्त है, व्यास, निंजुर परिचय देने लगा, मैंने इसी के बारे में सब कुछ बताया है तुझे. . .और, मेरी ओर मुंह फेर कर, यह है हमारा भगवान! हम लोगों का एनिमल-फार्म इसी के अंदर है. इस दुनिया में जन्म से मृत्यु तक सभी कुछ इसी के हाथ में है. ही इज एन एथोरीटी ओन हिज सब्जेक्ट!. . .

मैंने श्वेत कुष्ठ वाली मोटी उंगलियों से हाथ मिलाये.

—मैंने इनका नाम मिस किया, मैंने निंजुर की ओर देखा, प्रश्नार्थ.

—इसका नाम कोई मिस भी कर सकता है? इसका नाम है भगवान सिंह. लेकिन हम लोग इसे भगवान ही कहते हैं.

हम तीनों हंस पड़े, कहकहे के साथ.

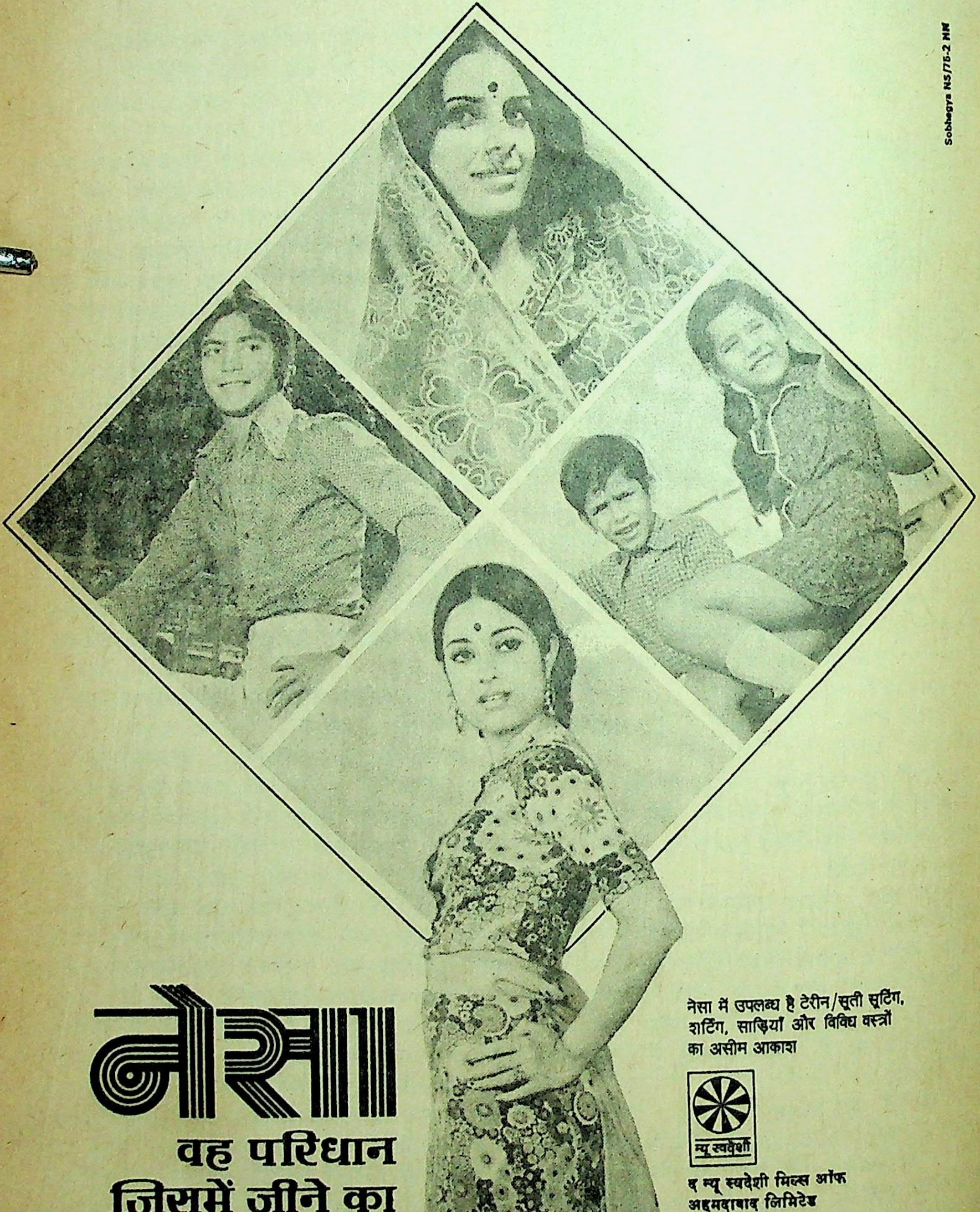

Sobhagya NS/75-2 HN

नेसा

वह परिधान
जिसमें जीने का
मोह हो जाता है...

नेसा में उपलब्ध है टेरीन/सूती सूटिंग, शर्टिंग, साड़ियाँ और विविध वस्त्रों का असीम आकाश

न्यू स्वदेशी

द न्यू स्वदेशी मिल्स ऑफ
अहमदाबाद लिमिटेड
नरोड़ा रोड,
अहमदाबाद ३८० ००२

लकड़ी की एक आलमारी से भगवान ने दो सफेद खुरदरे लंबे कोट निकाले, एक निजुर ने पहन लिया, दूसरा उसे देख कर मैंने. इंफेक्शन से बचने की यह विधि थी. पूरा बेसमेंट एयर-कंडिशंड था और दस हजार जानवरों की बू से यहां की हवा भी तीव्र और बोझिल महसूस हो रही थी. लाबी वर्तुलाकार थी, बीच में बड़े-बड़े कमरे थे, जिनमें पिंजड़े रखे गये थे और पिंजड़ों में जानवर थे. और एक से लग रहे कर्मचारी, सफेद कपड़े, सफेद टोपियां . . .और ठंडी खामोशी.

इधर एक ही दिशा में आगे जाना था—जहां से गुजरते हैं, वहां वापस आने का इस स्थान का नियम नहीं है, भगवान ने समझया.

फिर आगे चलते हुए वह कहता रहा—सालाना पचास हजार रुपये का गेहूं हम खरीदते हैं. खाद्य भंडार में चार विराट मशीन चूहों के लिए खूराक तैयार कर रहे थे, इसके सिवा चने और दूसरी सामग्री...

हम बाहर निकल आये. मुझे हुआ कि निजुर को कह दूं यह सब देखने में मुझे खास रुचि नहीं है लेकिन भगवान को देख कर मैं चूप रहा.

दूसरे कमरे में प्रवेश करके हम खड़े रह गये. एक आदमी एक पिंजड़ा खोल कर छोटे-छोटे सफेद चूहों की गर्दन को पकड़ कर उन्हें नंबर दे रहा था. उसके सामने टेबल पर, बस-कंडक्टर टिकट पंच करने के लिये रखते हैं, वैसा एक पंच पड़ा था और एक कैंची थी. उसने पकड़े हुए एक चूहे के एक कान में पंच करके एक छेद किया, फिर कैंची ले कर आगे के एक पैर का दूसरा नाखून और पिछले पैरों के आखिरी नाखून काट डाले. तब चीत्कार करते हुए चूहे को पकड़ कर भगवान ने कहा—नंबर लगाने का यह हमारा सिस्टम है. यह चूहा अब किसी भी पिंजड़े में आ जाय, हम उसे उसी के पिंजड़े में रख सकते हैं—कान पंच किया मतलब एक हजार, दूसरा नाखून काटा मतलब दो सौ, और पीछे के नाखून मतलब सौ के भीतर के आंकड़े. अब यह चुहे बड़े हो कर मर जायेंगे तो भी यह नंबर उनके शरीर पर रहेंगे. फिर भगवान ने पिंजड़े के बाहर झुलते हुए कार्ड को पकड़ कर समझाना शुरू किया, इसी में सभी डिटेल्स हैं. नर का नंबर एफ एक्स ३६५२ है. मादा एफवाई ४२१७ है. यह मादा का दूसरा लिटर है, पहली बार इसे आठ बच्चे हुए थे, चार नर और चार मादा. यह पहले लिटर की तारीख, फिर दूसरे लिटर की तारीख और डीटेल्स हैं. प्रत्येक बच्चे की अलग फाइल-कार्ड है. सभी डीटेल्स हैं. एक फाइल में-से एक कार्ड निकाल कर वह समझाने लगा, यह अमेरिकन स्ट्रेईन है. छह महीने समाप्त होने तक में इस चूहे को कैंसंट होना ही चाहिए—अगर न हुआ तो यह स्ट्रेईन निकम्मा है. मरने न के बाद चूहे का पोस्ट-मार्टम होगा और रिपोर्ट फाइल की जायेगी. इसी बीच अगर लेबोरेटरी में जरूरत पड़ गयी तो हम यहां से सप्लाय करेंगे.

—ये सभी चूहे. . .कैंसर के हैं?

—हां, इस कमरे में ल्युकेमिया, ब्रेस्ट-कैंसर और कैंसर के हैं.

पिंजड़ों में छोटे-बड़े सैकड़ों चूहे थे, मटियाले, सफेद और एश रंग के. प्लास्टिक का एक ट्यूब पिंजड़े के अंदर तक जाता था जिसमें से चूहे पानी पी सकते थे. दूसरी तरफ टीन का एक चौड़ा टुकड़ा था जो पिंजड़े के अंदर तक तिरछा उतरा हुआ था. इसी के ऊपर से खूराक भीतर सरकाते रहने की व्यवस्था थी. प्रत्येक पिंजड़े में चूहे सरकाते खूराक को काटते रहने की कोशिश में जुटे हुए थे.

यह स्ट्रेईन बदल जाय तो? या. . .समझिये, इसमें क्रोसबिडिंग हो जाय—

भगवान के चेहरे पर आश्चर्य आ गया, यहां की सृष्टि के कोई नियम भंगवाली कुछ बात मेरे मुंह से निकल गयी थी ! वह बीच में ही बोलने लगा—यह कैसे हो सकता है? यहां हम भाई और बहन की ही मेटिंग करवाते हैं और उसी में-से नयी प्रजा पैदा होती रहती है. स्ट्रेईन सौ फी सदी बराबर रहता है. हमारे पास सफेद, एश, मटियाले, बादामी, काले, गुलाबी सभी स्ट्रेईन है. सभी की प्रजाएं अलग रहेंगी. एक और बात भी है. इन चूहों को पिंजड़े के बाहर भी रख दिया जाय, वे भागेंगे नहीं. वजह यह है कि इनका जन्म हुआ है पिंजड़े में, मरेंगे भी पिंजड़े में. इन्हें पता ही नहीं है कि स्वतंत्र हो कर पिंजड़े के बाहर भी निकला जा सकता है. इनका स्वभाव ही नहीं है. सौ में से एक भी केस नहीं बनता ऐसा—प्रत्येक जानवर का कार्ड है, फाइल है, इतिहास है, नंबर लगाया जाता है. . .और आपने देखा? इन्हें पेट भर कर स्टटीलाइज्ड खूराक खिलायी जाती है, पानी पिलाते हैं, पिंजड़े के बाहर निकलने का कोई कारण नहीं है—सिवा कि लैब में प्रयोग के लिए इनकी जरूरत पड़े. . . भगवान मुसकराने लगा. ये दुनिया के सबसे सुखी चूहे हैं. प्रतिवर्ष हम लोग लाखों का खर्च करते हैं इनके पीछे. . . ! . .

निजुर कहने लगा—व्यास, भगवान को खरगोश या गिनिपीग से चूहे ज्यादा पसंद है. . .क्योंकि चूहिया एक साथ चौदह बच्चे भी देती है, जब गिनिपिग एक प्रसव में मात्र तीन ही पैदा होते हैं. और दो प्रसवों के बीच समय भी कई दफा ज्यादा लग जाता है. गिनिपिग को पिंजड़ा भी बड़ा चाहिये, जगह भी विशेष चाहिये, खाते भी बहुत हैं. चूहों के लिए एक ही साईज का पिंजड़ा चल सकता है. आठ-दस चूहे एक साथ रह सकते हैं. इनका लिटर भी जल्दी आ जाता है . . .हमारा एनीमल-फार्म बड़ा ही मशहूर है. भगवान के चूहे एसपोर्ट भी होते हैं.

मैं भगवान को देखता रहा. वह एक बड़े चूहे को पिंजड़े से निकाल कर, लेटा कर, उसकी पीठ पर अपनी मोटी, सफेद, कुष्ठवाली उंगलियां फेर रहा था. चूहा, पालतू प्राणों की तरह, खामोश था.

—ये लोग भी बड़े समझदार हैं. जो उंगलियां उन्हें खिलाती-पिलाती हैं, उन उंगलियों को ठीक पहचान लेते हैं, भगवान ने बड़े संतोष से कहा.

★ ★

निजुर की लैब में लौट आने पर भी नाक में-से

अमृतांजन

दर्द, सर्दीजुकाम और मोच के लिये एक बहुपयोगी घरेलू दवा

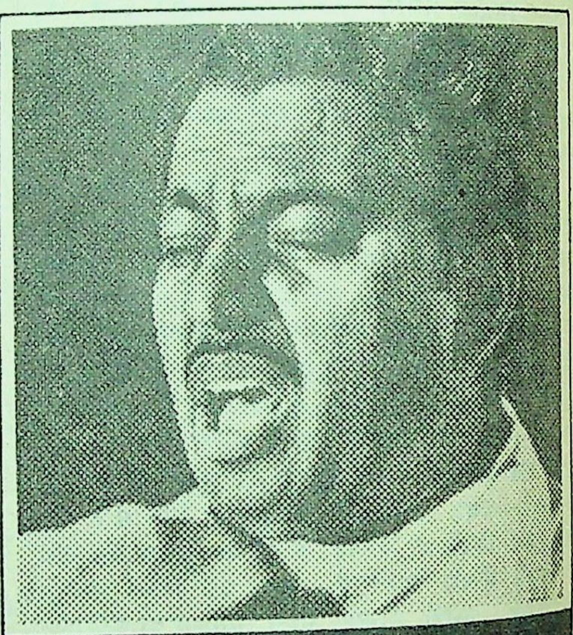

दर्द, सर्दीजुकाम और मोच की जगहों पर थोड़ा-सा अमृतांजन लगाकर मालिश कीजिये। कुछ ही मिनटों में आप इसके प्रभावकारी दस दवाओं का असर अनुभव करेंगे और आपको जल्द आराम भी पहुँचेगा।

अमृतांजन–जार, शिशियों और कम कीमतवाली टिन की डिबियों में मिलता है।

अमृतांजन–८० साल से
अधिक समय से एक
निर्भरयोग्य घरेलू दवा

AMRUTANJAN
Pain Balm
Amrutanjan Ltd.

अमृतांजन लिमिटेड

AM 1255

बेसमेण्ट की दुनिया की विचित्र बू---चूहों के शरीरों की, खूराक की, विष्टा की, भगवान की हटती न थी.

---काफी-वाफी पी करके अब हम लेब्स देख लें, निंजुर बोला.

---नहीं यार, अब मुझे लेब्स नहीं देखनी.

---क्यों? क्यों?

इसलिए कि मैं जो फिल्म बनाना चाहता हूं उसका सामान मुझे मिल गया है. कुल हजार फीट चाहिए. नौ सौ होने पर भी चल जायेगा. फिल्म स्लो घुमाने पर समय उतना ही लगेगा. शुरू में कुछ मोन्ताज शॉट्स इस्तेमाल करेंगे. बाकी तेरे भगवान की दुनिया तो बहुत बड़ी है---कुछ प्रश्न पूछ लूंगा, बाकी शूटिंग कर लेंगे. काम अफलातुन होगा---इसमें कोई शक नहीं. और. . . अब सिर्फ डोक्युमेंटरी होना संभव नहीं है.

निंजुर देखता रहा.

---साले तू क्रेजी हो गया है, हमारे भगवान की तरह. लेब्स नहीं देखनी ?

---देखूंगा. पर शूटिंग बेसमेंट में ही होगी. .

काफी आ गयी और मेनका भी. मेनका ने सबकी काफी बनानी शुरू की मैं देखता रहा, मेनका की रेशमी उंगलियां. . .पसंद आयीं.

२५, संगम, दूसरा माला, बंगाल केमिकल के पास
बंबई–२५ .

□□□

एक लघुकथा

अभयकुमार ● ब्रह्मदत्त

अभय कुमार थरथर कांपता खड़ा था. धर्मराज ने भौंहें चढ़ा कर चित्रगुप्त से पूछा---यह कौन है ?

बही खाता देखते हुए, चित्रगुप्त ने बताया--- यह बुकिंग क्लर्क है, स्वामी.

---हूं, धर्मराज नाक से बोले---इसने अपने जीवन में कभी टिकट ली ?

बहीखाते के पन्ने तेजी से उलटते हुए चित्रगुप्त ने कहा--- कभी नहीं, महाराज . इसे कभी आवश्यकता ही नहीं पड़ी.

---हूंऽऽ, धर्मराज ने आंखें मूंद कर कहा---तब तो यह स्वर्ग जा ही नहीं सकता. और नर्क में तिल रखने की जगह नहीं है. ऐसा करो, इसे अरब महासागर भेज दो !

---अरब महासागर? चित्रगुप्त ने कलम हाथ में ले कर आश्चर्य से पूछा.

---हूं.

---वहां भेज कर इससे क्या काम लेंगे, प्रभु ?

---बुकिंग का काम लेंगे और क्या! धर्मराज ने मुंह बना कर कहा---इसे और आता भी क्या है!

---परंतु महाराज ! वहां यह बुकिंग किसकी करेगा? चित्रगुप्त ने धीरे से हंस कर पूछा.

---बालू की बुकिंग करेगा और किसकी! नान-स्टाप बुकिंग ! बालू ही बालू, अनंत बालू. धर्मराज ने हाथ फैला कर कहा.

---तब तो बोर हो कर मर जायेगा, महाराज.

---नहीं. बीच-बीच में लहरे भी बुक करता रहेगा. एक लहर , दो लहर, हजारों , करोड़ों लहरें.--- अरबों-अरबों लहरें.

---इसमें तो एक युग बीत जायेगा, सर, अभयकुमार ने हाथ जोड़ कर कहा.

---एक नहीं, तुम्हारी पृथ्वी की गणना के अनुसार, अनेक, धर्मराज ने दया से उसकी ओर देखा---परंतु नर्क से तो तुम्हारी जान बची. इतना कह कर वे जाने के लिए मुड़े.

---सर ! अभयकुमार ने बड़े जोर से चिल्ला कर पुकारा---सर, सर !

---एस ? धर्मराज ने मुड़ कर पूछा---एस, बोलो, क्या बात है?

---ड्यूटी मेरी जहां भी लगेगी, मैं करूंगा सर, मगर सर. . . ?

---एस? बोलो, बोलो. . .

---ऊपर की कमाई का क्या होगा, सर? अभयकुमार ने सर नीचे झुका कर अत्यंत दुःखी स्वर से कहा.

---ऊपर की कमाई? धर्मराज ने जैसे चौंक कर चित्रगुप्त की ओर देखा. चित्रगुप्त के ओठों पर एक महीन मुसकराहट जन्मी.

---वह तुम्हारे आर्ट पर निर्भर करता है, मिस्टर बुकिंग-क्लर्क! धर्मराज ने एक उंगली उठा कर कहा---बालू से लो, लहरों से लो. न मिले तो सूरज, चांद-सितारों से वसूल करो! समझे?. . . .चित्रगुप्त, हटाओ इसे. दूसरा कौन है? तत्क्षण उसे हाजिर करो. बोलते-बोलते धर्मराज पुनः चित्रगुप्त की मेज के पास आ खड़े हुए.

□□□

मारिशस की चार लघुकथाएं

• अभिमन्यु अनत

प्रभाव

अध्यापक अच्छी तरह जानता था कि अशोक मनोहर एक अच्छे खासे मंत्री का बेटा था. बच्चे की उम्र कठिनाई से आठ वर्ष की होगी. वह प्रारंभिक पाठशाला की तीसरी कक्षा में था. उसकी पारिवारिक विशेषता के कारण अध्यापक का ध्यान उस पर सभी बच्चों से अधिक रहता था.

अशोक मनोहर के हाथ से उस दिन कांच का गिलास टूट गया था और अध्यापक बस हंस कर रह गया था. दूसरी बार अशोक मनोहर ने एक बच्चे की स्लेट फोड़ दी थी. उस पर भी अध्यापक उसी तरह हंस पड़ा था. लेकिन उस दूसरी बार की उसकी हंसी खाली नहीं जा सकी थी. अशोक मनोहर ने बड़ी-बड़ी आंखों के साथ अध्यापक को इस तरह देखा था कि क्षण भर के लिए अध्यापक दहल गया था. उसे ऐसा आभास हुआ कि मंत्री महोदय कक्षा में आ गये हों और वे अजीब आंखें उन्हींकी हों. बाद में उसे बड़ा आश्चर्य हुआ था. आठ वर्ष का लड़का और क्रोध की वह मुद्रा! उस तरह की आंखें उसने कभी नहीं देखी थीं. टमाटर-सी लाल.

कल जो कुछ घटा था उससे अध्यापक और भी कांप गया था. मंत्री महोदय का बेटा एक बच्चे की कमीज फाड़ कर उलटे खुद रोने लगा था. अध्यापक ने उसके पास पहुंच कर बड़े प्यार से कहा था—शांत हो जाओ मनोहर!

यह सुनते ही अशोक मनोहर ने सामने से झाड़ू उठा लिया था और उसे अध्यापक के सिर तक उठा लिया था.

आज की बात और भी अजीब थी. बच्चा जोर-जोर से चिल्ला रहा था, ज़ब अध्यापक ने उसे चुप होने को कहा. वह प्रार्थना भरा स्वर था. स्वर सुनते ही मनोहर चिल्ला उठा था—मैं तुम्हारे औहदे से नहीं डरता!

अध्यापक आंखें फाड़े रह गया था. आठ वर्ष का बच्चा और ऐसी हरकतें! वह असमंजस में पड़ कर काम नहीं कर सका. उसके बाल-मनोविज्ञान का सभी ज्ञान काफूर हो गया था. वह अपने से बार-बार पूछता रहा. . . यह कैसे हो हो सकता है? सपना? नहीं तो. . .

शाम को मंत्री महोदय का लड़का अशोक मनोहर अपने घर पहुंचा. दो कमरों से होते हुए वह उस बड़े से कमरे में पहुंचा जहां उसका बाप मंत्रालय की फाइलों के साथ बैठता था. उस समय भी वह अपनी फाइलों में ही खोया हुआ होगा, जब वह घटना घटी जिसका गवाह अशोक मनोहर था. उसने अपनी मां को चंडी मुद्रा में अपने बाप के सामने खड़े पाया, टमाटर-सी लाल-लाल आंखें लिये हुए. मंत्री ने नम्र स्वर में अपनी पत्नी से कहा.

—शांत हो जाओ मनहरी!

यह सुनते ही अशोक मनोहर की मां ने सामने का झाड़ू उठा लिया और कड़क कर बोली—मैं तुम्हारे ओहदे से नहीं डरती!

अशोक मनोहर रसोई की ओर बढ़ गया. ☐

रंग

कटाई के मौसम में काम कुछ सवेरे समाप्त हो जाता है. घर पर की दोनों बकरियों के लिए घास जुटाते हुए मुझे कुछ देर हो गयी थी. धूप अब भी हड्डियों के भीतर तक चुभ रही थी और पगडंडी बहुत अधिक लंबी प्रतीत हो रही थी.

रास्ते के दोनों ओर के गन्ने काटे जा रहे थे. सर पर घास का बोझ लिये मैं जल्द घर पहुंचना चाह रहा था. दूसरे दिन हमारा स्वतंत्रता दिवस था. गांव की ओर से सांस्कृतिक कार्यक्रम की जिम्मेवारी मेरे ऊपर थी. पाठशाला के छात्र मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे.

मैंने अपनी रफ्तार तेज की.

निकोले साहब की कोठी से हो कर बस्ती को पहुंचना था. ईख के खेतों के बीच में निकोले साहब के तरबूज के लहलहाते खेत थे

मैं मोड़ पर पहुंचा ही था कि निकोले साहब का दामाद बरगद की आड़ से निकल कर मेरे सामने आ गया. उसकी तनी हुई बंदूक को देख कर मुझे हैरानी हुई. मैं कुछ पूछता कि इससे पहले उसने कड़क कर कहा :

—तो आज तुम पकड़े गये. नीचे गिराओ अपने बोझ को.

मेरी हैरानी और भी बढ़ गयी, मैंने धीरे से पूछा :

—क्या बात है साहब? .

अपने लाल हो चले गोरे चेहरे से पसीने को पोंछते हुए उसने कहा :

—बोझ नीचे फेंको और मेरे साथ चलो.

—पर कहां और क्यों? साहस के साथ मैंने पूछा.

—तीन दिन से तुम रोज तरबूज चुराते आ रहे हो.

—साहब मेरे सिर पर घास है, तरबूज नहीं.

—मैं सामने नहीं आता तो अब तक तुम्हारी घास के भीतर तरबूज पहुंच ही जाते.

आपको गलतफहमी हुई है. मैं अपने गांव की बैठक का प्रधान हूं.

—बंद करो! बड़े साहब के सामने अपनी सफाई देना,

—लेकिन साहब मैंने तरबूज नहीं चुराया. आप चोर पहचानने में भूल कर रहे हैं.

—सरदार ने चोर का जो हुलिया बताया है वह तुमसे एकदम मिलता है.

तर्क करके अपने को बचाना कठिन था, इसलिए मैं बंदूक की नली के आगे-आगे चल पड़ा.

हुलिया एकदम मिलने का मतलब था रंग. □

अपने लोग

शहर में पहुंचे उसका सातवां दिन था.

—गांव में बस जिंदगी भर ईख ही काटते रह जाओगे.

किसी की इसी बात पर वह गांव छोड़ आया था. वहां अगर गन्ने काटने का काम ही उसे मिल जाता तो इधर नहीं आता.

सात दिन से उसने कोई सात सौ दरवाजे खटखटाये.

नौकरी कहीं नहीं थी.

जिस १५ रुपये के साथ वह शहर पहुंचा था वह तो चार ही दिन बाद समाप्त हो गया था. अपनी कलाई घड़ी बेच कर उसने जो ३० रुपये पाये थे उसीका १५ रुपया उसकी जेब में था.

गलियों के चक्कर काटने के बाद वह उसी बाग की एक बैंच पर जा बैठा जहां उसकी रातें बीती थीं. बैंच पर पहले से एक आदमी बैठा हुआ था. कुछ दूरी पर पत्थर की दूसरी बेंच पर कॉलिज के दो विद्यार्थी बैठे हुए थे. लड़की का फ्राक ठीक सामने के फूल के रंग का था.

वह औरत आज भी उसी तरह सैलानियों की तलाश में सामने से गुजर गयी. कुछ देर बाद उसकी बगल में बैठे हुए आदमी ने उसकी ओर देख कर उससे पूछा :

—गांव से आये हो न?

—हां.

—नौकरी की तलाश में?

—हां.

—नौकरी तुम्हें मिल सकती है.

उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ. आदमी ने आगे कहा :

—पच्चीस रुपये चाहिए.

—मेरे पास सिर्फ पंद्रह हैं.

सौदा तय हो कर रहा. उसने आदमी को पंद्रह रुपये दे दिये. आदमी ने जेब से एक अधमैला लिफाफा निकाल कर उसकी ओर बढ़ा दिया.

—इस पते पर पहुंच कर तुम चिट्ठी मनैजर को दे देना. उसी वक्त नौकरी मिल जायेगी.

चिट्ठी ले कर वह दौड़ गया. कई गलियों के चक्कर काटने के बाद उसे मालूम हुआ कि लिफाफे पर जो पता था उस नाम की न तो कोई गली शहर में है, और न ही कोई कारखाना. लेकिन लिफाफा खाली नहीं था. उसके भीतर कुछ था जरूर. उसने लिफाफे को फाड़ा. छोटे से कागज का टुकड़ा था जिस पर लिखा हुआ था :

—यार मुझे माफ करना. घर पर बीमार पत्नी और तीन बच्चे हैं, जिनके लिए यह धंधा करना पड़ता है. इस धंधे के अलावा मैं भी तुम्हारी तरह बेकार हूं.

उसे जोरों से भूख लगी थी, पर बेचने के लिए कुछ नहीं था. □

भीतर की बातें

महाराज ने सभी अखबार फड़वा डाले.

—झूठे होते हैं ये सभी अखबार. शासन की निंदा करते हैं.

मंत्रियों ने भी राजा को यही बताया कि अखबार सनसनी पैदा करते हैं, बेबुनियाद बातें छाप-छाप कर. राज्य में कोई दुखी नहीं था.

दूसरे दिन राजा अपनी डेमलर कार में बैठा. ड्रायवर को आदेश दिया कि सबसे गरीब इलाके की ओर चले. राजा को विश्वास था कि गरीब इलाका हो सकता है प्रजा नहीं.

अभाव-ग्रस्त परिवार अपने घर राजा को पा कर पहले तो प्रसन्न हुआ, पर बाद में चिंतित होना पड़ा. राजा को क्या खिलायें, क्या पिलायें?

कुटिया से बाहर आ कर घर के मालिक ने अपनी पत्नी से बातें कीं. घर में दाना भी नहीं था. गिरवी रखने लायक जो आखिरी चीज थी वह दो दिन पहले जा चुकी थी. बहुत सोचने के बाद बच्चे की पुस्तकों पर ध्यान गया. पत्नी ने खिड़की के रास्ते तीनों पुस्तकें अपने पति को थमा दीं. उन्हें लिये वह उसी दुकान को दौड़ गया जहां दो दिन पहले उसने वर्षों पुरानी रामायण बेची थी.

आधे घंटे बाद वह घी की मिठाइयों के साथ घर लौटा.

उसी रात राजा ने अपने दरबार हॉल में प्रेस कानफ्रेंस की.

दूसरे दिन लगभग सभी अखबारों में राजा जी के चित्र के साथ मोटे अक्षरों में राजाजी का भाषण आया.

जिस देश की सबसे गरीब प्रजा के घर मेहमान को घी की मिठाइयां खिलायी जाती हों उस देश को दुखी देश नहीं कहा जा सकता. □

(संचयन एवं संयोजन : इगलासिया)

उपन्यास अंश

जन सेवक

मधुकर सिंह

सीताराम पांडे बहू को पढ़ाने-लिखाने और अकल-ज्ञान देने के बहाने से आधी-आधी रात तक उसके कमरे में रह जाते हैं. और नींद आने लगती है तो उसी कमरे में सो भी जाते हैं. पत्नी जब भी टोकती है, समझा-बुझा देते हैं कि बी. डी. ओ. और 'जनता बरतन कारखाना' के मालिक बनवारी सिंह एम. एल. ए. का विचार है कि इस बार हमारी बहू मुखिया के लिए चुनाव लड़े. अब तक हमारे यहां अनपढ़ ही मुखिया होते रहे हैं. पढ़ी-लिखी, समझदार महिला मुखिया हुई तो खानदान और गांव की मर्यादा बढ़ेगी. वह समझाते रहते हैं-- देखो बहू, गांव एकदम शहर में तब्दील हो गया है. जनता कारखाना चालू होने वाला है. बिजली, बड़ी-बड़ी दुकानें, स्कूल, कालेज, पोस्टआफिस, सब कुछ यहां बनेगा. शहर में अकेले कैसे रहोगी? आजकल नौजवान अच्छे मिजाज के नहीं हैं. पच्चीस-छब्बीस साल की उमर में कहीं भी भटक जाओगी. लछमनपुर में मशीन तुम्हारे जीने के लिए ही तो बैठ रही है!

बहू ज्यादा उत्तेजित हो, इसके पहले ही उसे पकड़ कर पलंग पर दबा देते हैं और बुढ़ापे की हविस नसों के ऊपर-ऊपर दौड़ने लगती है. बहू जब ज्यादा गुस्से में आती है, तो उसे लालच देते हैं---बहू, यह जनता कारखाना किसका है? तुम्हारा!

—आपके बाबा का है, न? बहू खिलखिलाती है.

—तुम पहले मुखिया बनोगी. इसके बाद मुखियाओं के ऊपर प्रमुख. इलाके में ही नहीं, कारखाने पर भी तुम्हारा रौब रहेगा. जिसे चाहना, कारखाने में रखना, जिसे चाहना, निकाल देना.

—आप क्या करेंगे, बूढ़े बाबा?

—मैं तो मैना के साथ भजन गाता रहूंगा. तुम बी. डी. ओ. से मेल-जोल रखना. शहर की सारी सुविधाएं बी. डी. ओ. के साथ मिल-जुल कर अपने घर में खींच लाना.

बहू जितना ही नागिन की तरह गुस्से में आती है, सीताराम उतना ही उसे लालच में डाल कर धर्म से डराते हैं.—हम लोगों में विधवा-विवाह नहीं, बहू, नीच जातियों में है. माना कि तुम जवान हो, मगर धर्म तुम्हें इसकी अनुमति कभी नहीं दे सकता.

—मुझे मुक्ति चाहिए, बाबा!

—कैसी मुक्ति?

—आपसे और गांव से.

—यह सब कैसे संभव है, मेरी बेटी?

—मेरी बेटी! बहू जोर-जोर से खिलखिलाती है और ऐसी उत्तेजित हो जाती है कि पत्नी की भी नींद खुल जाती है और वह बहू को शर्म सिखलाने के लिए चली जाती है.

* *

—अब तो तुम चरन ठाकुर से भी बड़ा कहलाओगी.

—किस तरह, बाबूजी?

—अब तो वह जेल जायेगा.

—उसका कसूर क्या है?

—बनवारी सिंह का विरोध. युवकों को राजनीति सिखाना. हरिजनों का साथ देना— यह सब अपराध नहीं हैं? बनवारी सिंह उसका नाम डकैती में दे चुके हैं. उनकी बात कौन उठायेगा?

—उसने किसी के घर डकैती भी की थी, बाबूजी?

—उसके रहने से कारखाने को हर तरह से खतरा है. रोज किसी-न किसी बात के लिए झंझट बनी रहती. कुछ दिनों के बाद कहता कि यह कारखाना जनता का है, काम करने वाले मजदूरों का है. अब आराम से जेल में पड़ा रहेगा.

—आप लोग जो चाहें करा सकते हैं न, बाबूजी?

—तुम धीरे-धीरे समझदार होती जा रही हो, बहू.

—मुझमें तो सब कुछ आपका दिया हुआ है.

सीताराम पांडे अपने जो भी कपड़े उतार कर सिरहाने रखते हैं, उन्हें बहू कहीं छिपा देती है. उन्हें वस्त्रहीन होने की आदत होती चली जा रही है. आधी रात के बाद जब बाहर जाने के लिए कपड़े ढूंढ़ते हैं, तो बहू उन्हें बहुत छकाती है. आज एक घंटे से बहू उन्हें परेशान किये हुए है. उन्होंने दौड़ कर बत्ती बुझा दी है.

—बाबूजी, आज से आप इसी तरह रहने की आदत बना लीजिए.

—तुम्हें यह सब अच्छा लगता है?

—गांव में एक बार हो आइए.

—लोग क्या कहेंगे?

—लोग कुछ नहीं कहेंगे. अवतारी पुरुष मान कर सभी आपको प्रणाम करेंगे. आप ऐलान कर दीजिएगा कि मुझे ऊपर से इसी तरह रहने का आदेश मिला है. सबको मानना पड़ेगा.

आंगन में मैना सीताराम पांडे की आवाज सुन कर जोर-जोर से नारा लगाती है— खाना हो तो गम खाओ, कौवा-मैना मिल कर गाओ. सीताराम! सीताराम! बहू फिर हंसती है— मैना भी आप ही का नाम रटती है!

—यही नाम प्रभु का भी है और मेरा भी है!

—सब आपकी माया है, बाबूजी. मैं आपकी माया में कैसे फंसती जा रही हूं! आपने मुझ पर क्या जादू कर दिया है? आप साठ वर्ष के बूढ़े हैं और मैं जवान हूं. हमारे बीच रिश्ता क्या है?

—जनता बरतन कारखाना की मालकिन हो कर ऐसा सोचती हो?

—मालकिन बना कर मेरी इज्जत जैसे भी लूटो, मैं कहां कुछ कहती हूं? अभी कुछ देर आपसे खेलूं नहीं?

—जी भर खेलो, बहू!

—तब कपड़े क्यों मांगते हैं? खेत, घर, सब कुछ मेरे नाम कर दीजिए. नहीं तो कपड़े कभी नहीं दूंगी.

—कसम से, बहू, सब कुछ कचहरी में चल कर लिख दूंगा. मेरे कपड़े बता दो कहां हैं?

बहू कपड़े निकाल कर उन्हें देती है. पांडेजी कपड़े पहन कर जल्दी-जल्दी वहां से भागते हैं. मैना उन्हें पुकारती रह जाती है, मगर कुछ भी नहीं सुनते. वह बदहवास हो कर घर से बाहर निकलते हैं और तार का पंखा ले कर बाहर खाट पर सो रहते हैं.

* *

सामने कारखाने की दीवार दैत्याकार नजर आती है. पीछे से पेट्रोमैक्स की रोशनी भभक कर आती रहती है. युद्धस्तर पर काम चल रहा है, रात-दिन. इसका उद्घाटन होगा, कोई बड़ा आदमी इसकी मशीन छू कर उद्घाटन करेगा, तब बड़ा मजा आयेगा. वह बड़ा आदमी बनवारी सिंह और सीताराम पांडे को एक ही आदमी समझेगा. वह सोच-सोच कर गदगद हो रहे हैं.

उन्हें नींद बिल्कुल नहीं आ रही है. बाकी रात पहाड़ से भी ज्यादा भारी और असह्य है. नींद की गोली मंगा कर रखते हैं और एकाध खा लेते हैं. तब भी नींद क्यों नहीं आती? क्या बुढ़ापा खाली झख मारने के लिए ही होता है? इस बुढ़ापे से तंग आ गये हैं. वह मृत्यु से बहुत चिढ़ते हैं. जहां बहू बोली कि भगवान आपको जल्दी उठा क्यों नहीं लेता! वहीं बच्चों की तरह बिफर कर रोना शुरू कर देते हैं. पत्नी समझाते-बुझाते थक जाती है, मगर कोई सहारा नजर नहीं आता. आंखों में जो आंसू भरते हैं, उनमें पुतलियां डूब जाती हैं और दुनिया बिल्कुल कालिख बन जाती है. हविस रेशे-रेशे में सुलगती रहती है. तबीयत होती है, अंधेरे को कच्चा चबा जायें. बहू को जब भी उनसे घृणा हुई है, मैना से भी ज्यादा तेज रटने लगती है.—मर जा बूढ़े, मर जा! जल्दी-जल्दी मर जा!

एक दिन बहू मैना को आंगन में सिखला रही थी—त्यागो बूढ़े रसना काम, मर जा बेटा, सीताराम! जय-जय प्रभुजी सीताराम! उन्होंने सुन लिया था. तब से मैना को अलग नहीं रखते. पिंजरा हाथ में लटकाये फिरते हैं. बहू से उन्होंने पूछा था—बहू, अमरफल कहां मिलता है? बहू हंस कर बोली थी—लोककथाओं में. कह कर हंसने लगी थी. मगर नासमझ सीताराम पांडे अचकचा कर कहने लगे थे—चलो न, अमरफल वहीं से काढ़ लायें. हम-तुम, दोनों खा कर अमर हो जायेंगे. बहू फुसफुसाने लगी—त्यागो बूढ़े, रसना; काम. मर जा बेटा, सीताराम! जय-जय प्रभुजी सीताराम!

● के. के. गोयल

वह खाट पर उलट कर बैठते हैं और कारखाने की दीवार की ओर टकटकी लगाते हैं, जैसे उसके भोग के लिए उन्हें काफी दिन जिंदा रहने का भगवान की ओर से वरदान मिला है. हरिजन, मजदूर, राजनीतिज्ञ, नीच, सब के सब रावण हैं. मृत्यु-भुवन के सभी भार हैं. सब को जल्दी-जल्दी मरना होगा. उन्हें खयाल आता है, कहीं पेट्रोमैक्स जलता छोड़ कर सब के सब सो न गये हों. मजदूर देहचोर, कामचोर, जूताचोर होते हैं. इनकी वजह से राष्ट्रीय उद्योग खतरे में पड़ जायेगा. चल कर देखना चाहिए कि क्या स्थिति है. बनवारी सिंह देख-भाल करने का सारा भार इन्हीं पर छोड़ गये हैं. इन्हें मजदूरों को बर्खास्त करने का भी अधिकार है.

पिंजरे के बदले लालटेन उठाये सीताराम पांडे उसी आखिरी पहर रात को कारखाने की ओर चले आ रहे हैं. फाटक के पास लालटेन उठा कर साइनबोर्ड पढ़ते हैं—जनता बरतन कारखाना, लछमनपुर. उन्हें तसल्ली होती है. अंदर इनकी धारणा के विपरीत काम बड़ी तेजी से चल रहा है. ठेकेदार का मुंशी बाहर चौकी निकलवा कर आधी नींद पड़ा हुआ है. जब भी आंख खुलती है, चारों तरफ नजर दौड़ा कर आंखें मूंद लेता है. काम की यही रफ्तार रही, तो एक महीने के भीतर ढांचा खड़ा हो जाने में कोई संदेह नहीं है.

—ठेकेदार बाबू, सो गये हैं क्या? सीताराम पांडे लालटेन की रोशनी में उसका चेहरा पहचानने की कोशिश करते हैं.

मुंशी अचकचा कर उठता है. —पांव लागी, पांडे बाबा. मैं हूं हरिलाल मुंशी! वह फिर जम्हाई लेता है.

—आशीर्वाद. सोय रहत हो अंधेरे में, मुंशीजी?

—अभी तो अढ़ाई बजे के लगभग लेटा था. जोरों

से नींद आ रही है.

—मुझे तो नींद ही नहीं आती, इसलिए काम देखने चला आया.

—आपको हमारा बहुत खयाल रहता है.

—रिटायरमेंट के बाद जन-सेवा ही तो बच रही है. वरना झख मारता, और क्या?

—आपको एक बात मालूम है?

—कैसी बात? सीताराम पांडे लालटेन नीचे रख कर चौकी पर बैठ जाते हैं.

—कारखाने के लिए जो एक खतरा था, वह फिलहाल टल गया है. चनर ठाकुर गिरफ्तार हो गया.

सीताराम पांडे खुशी से उछल पड़ते हैं. —यह सब अचानक कैसे हो गया?

—बाबू बनवारी सिंह ने डकैती और खून के मामले में फंसा दिया है. बरिस-दो बरिस तक वहीं सड़ता रहेगा.

—मगर खून का मामला कैसे साबित हो गया?

—बुलाकी चमार की हत्या के जुर्म में. बुलाकी की कल रात हत्या हो गयी. चमारों का लीडर बन कर अखबार में खबर देने जा रहा था.

—बुलाकी को किसने मारा?

—यह मुझे क्या मालूम, पांडे बाबा!

—गांव में इतनी बड़ी-बड़ी घटनाएं हो गयीं और मुझे अभी तक कुछ भी मालूम नहीं था. असल में घर की लड़ाई और नौजवानों की चरित्रहीनता से रात-दिन परेशान रहता हूं. अखबार और राजनीति का कोई पता नहीं चलता.

★ ★

सीताराम पांडे को कुछ-कुछ खयाल आता है, बुलाकी चमार ने एक रोज राजा बनवारी सिंह से मुंह लग कर बातें की थीं और बहस भी कर रहा था. चनर के बहकावे में आ गया होगा. रोक रहा था, यह गैरमजरुआ जमीन है. चमारों की बस्ती है. कारखाना बनता है, तो लोग-बाग उजड़ जायेंगे. और खयाल आता है, उसने बनवारी सिंह को यह भी धमकी दी थी कि सरकार की आंखों के सामने ही छटपटा कर मरेंगे.

—डर गये, पांडे बाबा?

—मुंशी की बात! जब राजा बनवारी सिंह हमारा रक्षक है तो डर किस बात का?

—तब चुप क्यों हो गये हैं?

—चुप कहां हूं? मैं तो रात-दिन बोलता रहता हूं. मुझे नींद बहुत कम आती है. भोलू याद पड़ता है तो रात के वक्त डर भी लगता है.

—डर की कोई बात नहीं. धीरे-धीरे लोग उस घटना को भूल गये हैं. बाप-भाई का भी घाव भर गया है. बनवारी सिंह ने जयराम को नौकरी का वचन दे दिया है.

—डर की बात नहीं. भोलू की अकाल मृत्यु है न! हालांकि मैं भूत-प्रेत कुछ भी नहीं मानता.

सीताराम पांडे तो मानते हैं. किस्सा बताने लगे कि उन्होंने भूत देखा है. मुंशी के दिमाग में उनके किस्से के साथ-साथ भोलू का चेहरा ताजा होता जा रहा है. लगता है, भोलू, सिर पर पंद्रह ईंटें एक साथ उठा कर फाटक की ओर से चला आ रहा है.

—रात बहुत थोड़ी बची होगी. आप भी यहीं सो रहिए न, पांडे बाबा!

—अब तो सुबह होगी. अब सोना क्या? तुम्हीं कुछ और जानते हो तो सुनाओ.

—मुझे तो नींद आ रही है. मुंशी को डर भी लगता है कि सो जाने पर ठेकेदार साहब से कहीं अनाप-शनाप न बक दें. इनकी जी-हुजूरी भी बहुत जरूरी है. पूछता है— एक और खुशी की बात जानते हैं कि नहीं?

—झटपट बता दो न, हरिलाल!

—मूर्तियों के लिए नमूना भी पूना चला गया है.

—कैसी मूर्तियां? सीताराम पांडे को हठात् महसूस हो रहा है कि वह जानकारी में बहुत पिछड़ गये हैं.

—राजा साहब की दो आदमकद कांसे की मूर्तियां बनायी जायेंगी. राजा साहब दोनों हाथ जोड़ कर झुके रहेंगे.

राजा साहब, जिंदाबाद! सीताराम पांडे की आह्लाद में नारा लगाने की तबियत होती है.

—क्या एक बात की तुम्हें और जानकारी है? चनर की ओर से गवाह कौन-कौन है?

—इसकी तो मुझे कोई जानकारी नहीं है.

—इस तरह से तो कोई हिम्मत नहीं कर सकता. मगर हरिलाल, एक बात तय मान लो. बनवारी सिंह जो चाहते हैं, वह हो कर रहेगा. मेरी बहू को अब कोई नहीं हरा सकता. बहू लछमनपुर की मुखिया बनेगी.

मुंशी उठ कर एक बार देख आता है. एक आदमी कौड़ी बांटने का काम कर रहा है. इसलिए देहचोरी का कोई सवाल ही नहीं है. जितनी खेप ढोयेगा, उतनी कौड़ी बनती जायेगी. कौड़ी के हिसाब से उन्हें पैसे मिल जाते हैं. फिर भी, मुंशी उठ कर घूम आता है.

★ ★

दोनों कुछ देर तक खामोश बैठे हैं. मुंशी उठंग कर ही झपकी ले रहा है. खामोशी के बीच अचानक उन्हें पिंजरा याद आता है. कहीं बहू मैना को अनाप-शनाप न सिखा रही हो! झटके से खड़े हो जाते हैं. —अच्छा हरिलाल, तुम्हें नींद आ रही है. मैं चलता हूं. मुझे नींद वालों से चिढ़ है, मगर तुमसे प्यार करता हूं.

—पांव लागी! मुंशी उन्हें अलसाये हुए देखता है.

रास्ते भर उन्हें बहू का भजन सताता रहा है— 'त्यागो बूढ़े रसना, काम. मर जा बेटा सीताराम. जय-जय प्रभु जी सीताराम.' कहीं मैना सीख न गयी हो! बहू को नींद बहुत आती है. जवानी में सब को आती है. मगर गुस्से में होगी तो मैना को अब तक पढ़ा चुकी होगी. घर जाते ही लालटेन को पटक देते हैं और मैना के पास जा कर परीक्षा लेते हैं. मैना उन्हें भजन सुनाने लगती है— खाना है तो गम खाओ, कौवा-मैना मिल कर गाओ. सीताराम, सीताराम.

सीताराम पांडे को तसल्ली होती है. बहू की सीख

का इस पर कोई असर नहीं हुआ है. खिड़की से झांक कर देखते हैं, बहू अंग भंग कर सो रही है. बदन पर कपड़ों की कोई चिंता नहीं है. एकदम निर्लज्ज है. मिजाज ललचाता है, फिर ढुक चलें. मगर अब बहू की नींद खराब करना बुरी बात है.

पिंजरा उतार कर बाहर निकलते हैं. पत्नी टोक देती है — रात भर नाटक करते रहेंगे, सोयेंगे नहीं?

मन तिलमिला उठता है. जी में आता है, बुढ़िया का सिर डंडे से फोड़ दें.

—तुम्हें मार कर चमड़ी निकालेंगे.

—दिमाग खराब हो गया है? मर क्यों नहीं जाते?

सीताराम पांडे तमतमा कर पत्नी पर थप्पड़ चला देते हैं. पत्नी उनके नाजक अंग को पकड़ कर लटक जाती है. वह बाप-दा कह कर चीखने लगते हैं. इस चीख-चिल्लाहट में हू निकल कर आती है और बुढ़िया को धकेल कर चित्त पड़े सीताराम की टांग घसीटते हुए ले जाती है. वह उन्हें चौखट के बाहर कर देती है. जगह-जगह बदन में खरोंचें आ गयी हैं. मगर भय के मारे कुछ बोल नहीं रहे हैं. — बहू, धोती खुल कर आंगन में रह गयी है. उसे तो दौड़ कर ला दो.

बहू धोती ला कर उनके ऊपर फेंकती है और दांत किटकिटाते हुए पूछती है— आपका हंगामा, शोर-गुल कब तक चलता रहेगा? आपसे सच कहती हूं, जहर खा लूंगी. किसी के साथ हमेशा के लिए भाग जाऊंगी. आपका महाभारत मुझसे बर्दाश्त नहीं होता.

बहू रोने लगती है.

वह तड़प उठते हैं— मेरे प्राण तुममें बसते हैं, बहू! तुम्हारे बगैर मेरा सत्यानाश हो जायेगा. तब जनता कारखाना के बनने का कोई मतलब नहीं रहेगा. मेरे सपने की दीवार को मत गिराओ. मगर तुम भाग कर किसके साथ जाओगी? बुलाकी चमार तो मार दिया गया है!

—लछमनपुर में एक हजार बुलाकी हैं. बुलाकी को आप लोग कैसे मार सकते हैं?

सीताराम पांडे को संदेह होता है, बुलाकी से इसका पुराना संबंध तो नहीं था? मगर बुलाकी यहां तक पहुंच कैसे सकता है? बहू को किसी और बात को ले कर बुलाकी से सहानुभूति होगी.

—आप लछमनपुर के लाउडस्पीकर हैं!

—जनसेवक जी क्यों नहीं कहतीं?

बहू के मुंह में थूक इकट्ठा होता जा रहा है. वह उनके मुंह पर थूक देती है और झटके से दरवाजा बंद कर देती है. सीताराम पांडे चेहरे के थूक को धोती से सोखते हुए चिल्लाते हैं— पिंजरा उतार कर दे जाना, बहू! मेरे बगैर मैना मर जायेगी. दरवाजा खोलो!

बहू कुछ भी सुन नहीं रही है. सीताराम पांडे रोते और भद्दी गालियां बकते हुए दरवाजा पीट रहे हैं.

□□□

धरहरा, आरा (बिहार)
(राजपाल एंड संस, दिल्ली से शीघ्र प्रकाश्य उपन्यास 'सीताराम नमस्कार' का एक अंश)

दो लघुकथाएं

महात्मा और मनुष्य

● देवव्रत जोशी

गांधी जी विशाल हृदय वाले, निपुण सेनानी थे. उनके नियम-संयम और व्रत-निष्ठा में संदेह की गुंजाइश नहीं थी. उनके साथ (नियम-पालन संबंधी) निर्वाह दिग्गजों से भी नहीं हो पाता था. प्रतिकूल परिस्थितियों, विषम आंधियों के आघातों से भी वह पराभूत होते नहीं देखे गये.

अग्रज कवि शिवमंगलसिंह सुमन ने बापू संबंधी एक अनुद्घाटित सत्यकथा सुनायी, जिसने एकबारगी स्तब्ध और विचलित कर दिया.

सांप्रदायिक तनाव की चरम सीमा के थे वे दिन. बापू की ऐतिहासिक नोआखाली यात्रा. घृणा की लपटों के बीच वह कमलवत् मुसकराते, प्यार बांटते, घायल दिलों पर मरहम लगाते घूमते थे दिन भर. कभी उन्हें खिन्न, उद्विग्न, अभिभूत नहीं देखा गया.

नोआखाली में बापू की कुटिया. रात का गहरा सन्नाटा. सब थके, चैन की नींद सोये. सहसा कुटी के बाहर जोर से रोने की आवाज. . . जो धीरे-धीरे सिसकियों में बदल गयी. फिर सब कुछ पूर्ववत्. . . शांति. . . सन्नाटा. . .

एक बापू-भक्त को इस रुदन की 'आहट' मिल गयी थी. सोचा, कोई दुखी जन आया होगा. वह चुपचाप बाहर आया.

देखा, बापू थे. . . कुटिया से बाहर आ कर उस नीरव, निर्जन निस्तब्धता में रो कर हलके हो रहे थे. . .

बापू ने उसे देखा. निकट आ कर उसके कंधे थपथपाये. फिर फीकी मुसकान चेहरे पर ला कर बोले—महात्मा ही थोड़े हूं. . . मनुष्य भी हूं, भाई! . . . आज सहा नहीं गया तो दिल का गुबार निकालने अकेले बाहर आ गया, ताकि तुम लोगों को कष्ट न हो. . .

भक्त अकाल-पुरुष के चरणों में गिर कर फफक उठा. □

सिंहासन

● रिजवान जहीर उस्मान

एक राजा था. राजा अंधा था. राजा ने ढिंढोरा पिटवाया—जो मेरी आंखें लौटा देगा, राजपाट उसी को दे दिया जायेगा.

राजधानी में एक संन्यासी आया. संन्यासी ने राजा की आंखें ठीक कर दीं. संन्यासी को राज-पाट मिल गया. संन्यासी सिंहासन पर बैठा. संन्यासी अंधा हो गया. □

अंतिम संस्कार

रमेश गुप्त

पांच अप धड़धड़ाती हुई गुजर गयी. गति चली गयी, शेष रह गयी एक गूंज, एक अनाम शोर और कसमसाता-सा सन्नाटा.

रेलवे लाइन के पास कंकड़-पत्थरों से भरी पगडंडी पर वे दोनों चले जा रहे थे. साथ-साथ गंदगी के बदबू भरे ढेर और उन ढेरों से सटी झुग्गियां और क्लोरोफॉर्म भरी ट्यूबों जैसी उन झुग्गियों में कैद केंचुए जैसे छटपटाते, अर्द्धचेतन, चेतनालुप्त और मरे हुए तक भी इनसान.

उन दोनों में से एक बुरी तरह खांस रहा था. शायद उसे खांसी का दौरा पड़ गया था. खांसते-खांसते उसका शरीर कांप गया, सांस फूल गयी और टांगें लड़खड़ा गयीं. उसने रेलवे लाइन पर ढेर सारा बलगम उगल दिया.

—अब तो जिंदगी दूभर हो गयी है, पहलवान, इससे तो अच्छा है, भगवान मौत दे दे! उसने हांफते हुए कहा.

—सर्दी बहुत बढ़ गयी है, पहलवान बोला. वह एक बड़े-से कंकड़ की वजह से लुढ़कते-लुढ़कते बचा.

पहले वाले को रेलवे लाइन के पास एक सिगरेट का टोंटा पड़ा मिल गया. उसने उसे उठाकर सुलगा लिया और उसका एक कश खींचते ही वह फिर खांसने लगा.

—मर जायें तो इन सब झंझटों से छुटकारा हो जाये. न रोटी की फिकर, न सर्दी का डर!

—अरे रामू के काका, मरना भी तो आसान नहीं !

—सो तो है, पहलवान!

मौत की छाया में जिंदगी तलाशते वे लोग रेलवे लाइन के पुल के नीचे बनी झुग्गियों की ओर बढ़ गये.

डूबती शाम का सहमा-सहमा-सा अंधेरा नीचे लटक आया था. जिंदगी की सारी विवशताएं, असमर्थताएं तथा विपन्नताएं काले नाग की तरह कुंडली मार कर उस बस्ती में बैठी हुई थीं. जीने के सारे सूत्र टूट कर बिखर गये थे.

★ ★

—धन्नो फटी धोती से ठंडी हवा के थपेड़ों से अपनी रक्षा करती, मिट्टी की सील भरी दीवार से टिकी, तार-तार चटाई पर पड़े रामू को ताक रही थी.

—मां, बापू अभी तक क्यों नहीं लौटा? भैया की तबीयत तो और ज्यादा बिगड़ती जा रही है. रामू से एक साल छोटी प्यारी की खोखली आवाज झुग्गी के मृतप्राय: सन्नाटे को कसमसा गयी.

अभी कुछ दिन पहले दीवाली हो कर चुकी थी. छोटू अमीरों की कोठियों के बाहरी सिरों पर जलती हुई ढेरों मोमबत्तियां चुरा लाया था. उसी की वजह से दस-बीस दिन के प्रकाश का प्रबंध हो गया था. उन्हीं में से एक मोमबत्ती का पीला प्रकाश झुग्गी में फैल रहा था.

रामू का बापू उसके लिए दवा लाने के बहाने खिसक गया था. बाकी के चार बच्चे पास ही के बाजार में मशहूर चाटवालों की दुकान के बाहर रखे कूड़े के डिब्बों से झूठे पत्ते उठा कर चाट रहे थे.

धन्नो को लगा, रामू के बदन में होने वाला हलका कंपन भी बंद हो गया है. वह आगे को झुक गयी. रामू की आंखें मुंद गयीं. उसका बदन बर्फ की तरह ठंडा पड़ चुका था.

धन्नो पल भर को कांपी. एक गहरी हिचकी उसे आयी. पर बिजली की-सी गति से उसने मौत से समझौता कर लिया.

—प्यारी, वह नासपीटा तो न जाने कहां मर गया! जा, पहलवान काका को तो बुला ला. घर में मिट्टी पड़ी है. एक गहरी सांस छोड़ कर धन्नो बोली.

—रामू मर गया! प्यारी बिलख पड़ी.

—चीख काहे रही है, कलमुंही! वैसे तो बड़ी सावितरी बनती है! मैं दस नंबर में काम नहीं करूंगी... अरी चुड़ैल, वहां काम करती होती तो रामू की दवा के लिए कुछ पैसे तो मिल जाते!...पर तुझे तो वह साहब खा जाता न!

—मां, दस नंबर वाला साहब बहुत खराब है. पर रामू मर गया...छोटू...नहीं मां, मैं कल से काम पर चली जाऊंगी.

—काम पर जब जाना हो, तब जाना...इस समय तो पहलवान काका को बुला ला.

इससे पहले कि प्यारी उठती, झुग्गी के बाहर खांसी के स्वर गूंज गये.

—आ गया, करमजला! धन्नो बुदबुदायी. वह विवशताभरी दृष्टि से शून्य में ताक रही थी. भावना-संवेदना शून्य-सी वह हिमबिंदु बनी बैठी थी. वे दोनों अंदर आ गये.

—मुक्ति हो गयी बेचारे की! पहलवान ने रामू के निर्जीव शरीर पर एक नजर डाली.

—कफन के लिए कुछ पैसे हैं?

—पैसे? धन्नो बुदबुदायी. उसके ओठों पर एक फीकी-सी मुसकान उभर आयी. उस मुसकान में दुनिया भर का सारा व्यंग्य तथा विद्रूपता समायी हुई थी.

—पैसे होते तो यह मरता ही क्यों?

—कुछ भी नहीं है?

—जो जिंदा हैं, उनकी रोटी के लिए पैसे नहीं हैं और तुम मरे हुए...

धन्नो ने अपनी बात अधूरी छोड़ दी. उसका स्वर

नागफनी का कांटा बन गया.

—पहलवान , चलो, अमीरों की बस्ती से मांग लायें, कहेंगे, घर में जवान लड़के की लाश पड़ी है.

—बेकार है. नहीं मिलेंगे.

—क्यों?

—उनके लिए हमारी यह मजबूरी बेकार हो गयी है.

—पहले तो मिल जाते थे.

—अब वे इसे बहाना समझने लगे हैं. रामू की मां, कोई फटी-वटी चादर हो तो...

—वह तो निकालनी ही पड़ेगी.

—मैं अभी आया. थोड़े-से बांस-फूस, और दो आदमियों का इंतजाम भी तो करना है.

पहलवान चला गया. सिर्फ नाम पहलवान. . .पर बदन में हड्डियों के सिवा और कुछ नहीं था.

★ ★

—क्या सोच रही है, घन्नो? रामू के काका की जड़ दृष्टि 'घन्नो से जा टकरायी.

—कुछ नहीं,

—कुछ तो सोच रही होगी!

—कहीं से कुछ आटे का इंतजाम हुआ?

—न—हीं. .

—फिर कुछ क्षण का कसमसाता-सा मौन. छटपटाती प्यारी की हल्की, दबी-घुटी हिचकियों का धीमा स्वर झुग्गी की रिक्तता को और ज्यादा घनीभूत किये दे रहा था.

—मैं कल से दस नंबर में जाऊंगी.

रामू के काका ने अविश्वास भरी दृष्टि से प्यारी को देखा. एक अनाम, अव्यक्त -सी खुशी का स्रोत अंतर में उमगने को हो आया.

—क्या सोच रहा है, तू?

—कुछ नहीं.

—कुछ तो सोच रहा होगा.

—सोच रहा हूं, अच्छा हुआ रामू चला गया. . . एक मुंह तो कम हुआ.

घन्नो जड़ हुई सब कुछ सुनती रही.

★ ★

पीपल के पेड़ से किसी पक्षी की मनहूस आवाज गूंजी तो रघु भैरव के मंदिर के चबूतरे से नीचे उतर आया. वह मरी हुई चाल से तीनों वेदियों के पास से गुजर कर जमुना की ओर जानेवाली सीढ़ियों के पास ठिठक कर खड़ा हो गया.

दूर तक मायावी वीरानी व्याप्त थी. क्षय रोगिणी-सी जमुना की धारा पीली रेत के बिस्तरे पर पड़ी छटपटा रही थी.

रघु पलटा. उसने गहरी सांस छोड़ कर घन्नों के नीचे तीनों सूनी वेदियों की ओर ताका. वे सचमुच सूनी थीं. एकदम बर्फ की तरह ठंडी तीन दिन से एक भी मुर्दा नहीं आया था.

रघु के अंतर में रेत-सी घुल गयी. उसका मन वितृष्णा से भर गया. वह बुरी तरह उत्तेजित हो गया.

एक तरफ कहते हैं कि आबादी को बढ़ने मत दो, दूसरी तरफ ससुरे नये-नये अस्पताल खोल कर, दवाइयों के कारखाने लगा कर, नयी-नयी दवाइयां और इलाज के तरीके ईजाद करके लोगों को मरने भी नहीं देते!

पुराने दिन भी क्या थे! हर साल-दो साल में कोई-न -कोई महामारी फैल जाती थी. कभी प्लेग, कभी चेचक, कभी मलेरिया. . .उसे याद वे दिन हैं. तब उसके बाबा यहीं थे.. . .एक-एक दिन में दो-दो सौ मुर्दे आते थे. तब रोटी छोड़, रोज जलेबियां खाने को मिलती थी.

और अब? ऊपर वाला भी कैसे-कैसे मजाक करता है! तीन बार में पांच बच्चे दे दिये. दो बार जुड़वां. एक लाभ आये, तब दो प्राणियों का पेट नहीं भरता.. . .तिस पर घर में सात प्राणी हैं. तीन दिन से एक भी मुर्दा नहीं आया है.. . .अगर यहीं हाल रहा तो. . .

श्मशान पर उतरते गहराते कोहरे के आवरण में रघु प्रेत-छाया जैसा छटपटा रहा था. . .

महंगाई का यह हाल है और ससुर लोगों ने मरना छोड़ दिया है. चारों तरफ महंगाई है, पर सिर्फ इसी धंधे में मंदी आयी है.

जो भूले-भटके मर जाते हैं, वे शहर से दूर इस श्मशान भूमि तक नहीं पहुंच पाते. आधे से ज्यादा तो उस कमबख्त बिजली के श्मशान में पहुंच जाते हैं. आधे शहर के बीच बनी श्मशान-भूमियों से आगे नहीं बढ़ पाते.

जी चाहता है, इस बिजली के श्मशान को बम से उड़ा दूं. कल-कारखानों और जिंदा आदमियों को तो बिजली मिलती नहीं पर मुर्दों के लिए इनके पास बिजली है!

एस. पी. सिन्हा

अनुभवी वीविंग मास्टरों की पहली पसंद—आदित्य के मिश्रित रंगीन धागे

उनके लंबे अनुभव ने उन्हें बढ़िया श्रेणी के धागे पसंद करना सिखाया है। वे आदित्य के मिश्रित धागों का प्रयोग करते हैं। क्योंकि इसके कई लाभ हैं, ये बेहतरीन धागे हैं जो एकरूप, टिकाऊ और मजबूत होने के कारण करघे की क्षमता को बढ़ा देते हैं। ये धागे बार बार नहीं टूटते—जिससे उत्पादन भी ज्यादा होता है और लाभ भी। इतना ही नहीं, आदित्य के 'यार्न-डाइड' और 'फाइबर-डाइड' दोनों तरह के धागे कई चमकीले रंगों में मिलते हैं। जिनसे आकर्षक साड़ियां, सूटिंग, शर्टिंग और ड्रेस मॅटीरियल्स बनाए जा सकते हैं।

आदित्य मिल्स लिमिटेड

मदनगंज – किशनगढ़
(राजस्थान) फोन: ९८
स्टेडियम हाउस, २री मंजिल, २रा ब्लॉक
वीर नरीमन रोड, बम्बई-४०००२०
फोन: २१०४०४–२९६४५५
३१८ १/२ कूचाघासीराम, चाँदनी चौक,
दिल्ली ११०००६ फोन: २७४२६८

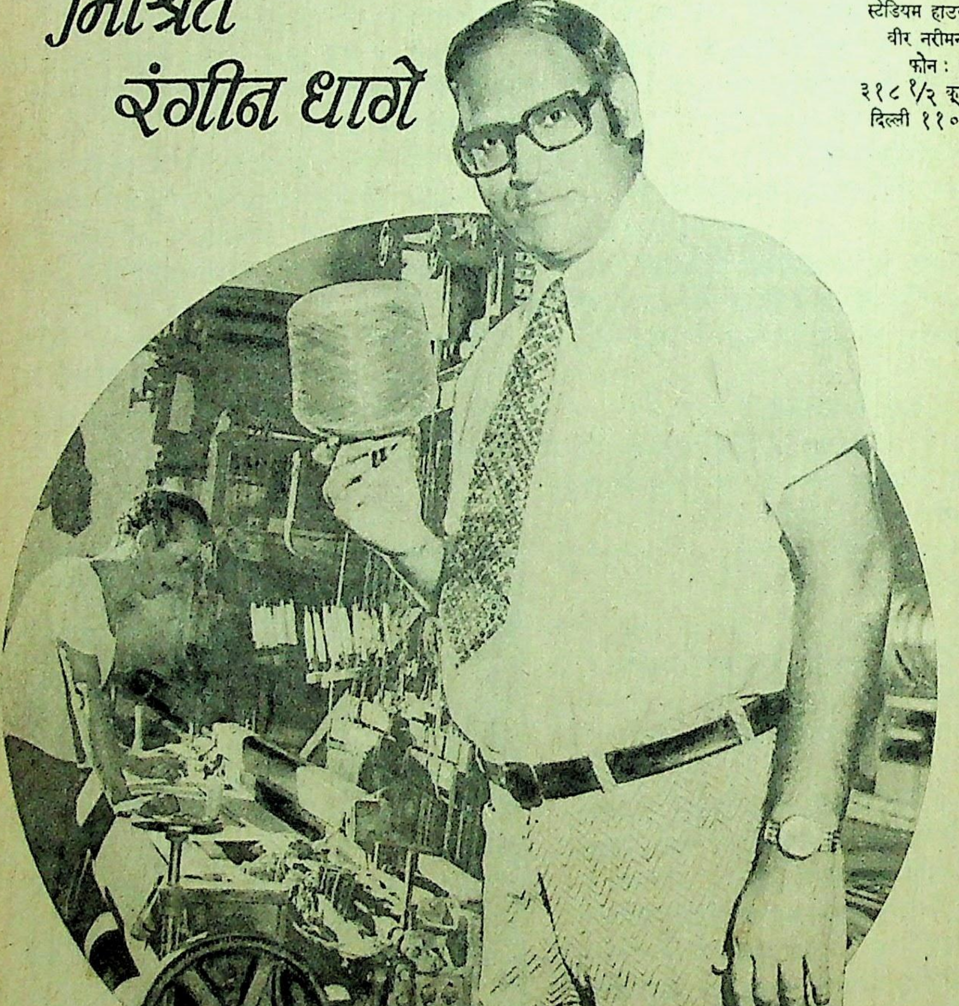

क्या जमाना आ गया है! लोग अपना धर्म-कर्म तक भूल गये हैं. हर काम में भागदौड़ जल्दबाजी. आदमी मरा नहीं कि जल्दी-जल्दी से उसे बिजली से फूंक कर भाग गये. यहां तक आने की किसे फुर्सत है? जितना टाइम यहां तक आने में लगेगा, उतने में लाखों के वारे-न्यारे हो सकते हैं.

कहीं बिजली से फुंकने में मुक्ति मिलती है? मुर्दे को बिना गंगा-जमुना में नहाये, कहीं उसकी मिट्टी संवरती है? पर आजकल के नास्तिक लोगों को अंतिम क्रिया-करम भी ठीक से करने की फुर्सत नहीं!

रघु पलटा. उसने लकड़ी की सूनी टाल की तरफ देखा. खचेरू टाल के दरवाजे के पास ऊंघता-सा बैठा बीड़ी फूंक रहा था.

रघू ने खचेरू को देखा और तमतमा गया.

इस साले खचेरू के लालच ने मरवा दिया, वरना पिछले साल तक सब कुछ ठीक था. बिना मुर्दों के आये भी काफी आमदनी हो जाती थी.

सरकार ने लावारिस लाशों के अंतिम संस्कार के लिए लट्ठे और लकड़ियों की मंजूरी दे रखी थी, एक-दो लावारिस लाशें आतीं. एक-दो और फर्जी. अंतिम संस्कार हो जाता. बिना लट्ठे और कम लकड़ियों के साथ काम हो जाता. काफी पैसे बच जाते थे.

पर इस साले खचेरू को ज्यादा लालच चढ़ गया. आटे में नमक की तरह तो बेईमानी खप जाती है. पर नमक में आटा डालो तो पकड़े ही जाओगे. रजिस्टर में रोज आठ-दस लावारिस लाशों के अंतिम संस्कार दर्ज होने लगे. सरकार को शक हुआ. खुफिया जांच-पड़ताल हुई. लावारिसि लाशें मेडिकल कालेज में भेजी जाने लगीं.

कई बार जी चाहता है. . .मुर्दे आयें या न आयें, मैं इस खचेरू के बच्चे का गला दबा कर इसका यहीं अंतिम-संस्कार कर दूं!

रघु भुनभुनाता हुआ अपनी अनमापी विपन्नता के इतिहास को दोहराता रहा. उसने हसरत भरी निगाहों से उन तीनों सूनी वेदियों को देखा और मरी चाल से, दोनों बिवाइयों से भरे पांवों को घसीटता हुआ अपनी झोपड़ी की ओर चल पड़ा.

★ ★

रात गहरा रही थी और अब किसी के आने का सवाल ही नहीं उठता था.

—राम नाम सत्य है! सत्य बोलो गत है!!

रघु के पांव जम गये. उसकी आंखें चमक उठीं. वह ठिठका और चौकन्नी निगाहों से अंधेरे के आवरण को भेद कर चारों तरफ देखने लगा. .

क्या यह वास्तविकता थी या भ्रम?

घने कोहरे और रात के अंधेरे के सायों को भेद पाने में उसकी आंखें असमर्थ थीं. उसकी सारी संज्ञाएं उसके कानों में एकत्र हो चुकी थीं.

—राभ नाम सत्य है!

स्वर पास आ चुका था. यह भ्रम नहीं, नंगी सच्चाई थी. मृत्यु की घोषणा करनेवाले इस वर्फीले स्वर ने रघु के मृतप्राय अंतर में नवजीवन की गर्मी फूंक दी.

वह खुशी से झूम उठा. पर तभी उसने सोचा, रात के अंधेरे में ये लोग क्यों आये हैं? कहीं कोई गोल-माल, हत्या-वत्या का केस न हो?

तब तक वे लोग विश्राम-चबूतरे तक पहुंच गये. पास ही सरकारी बिजली का खंभा था, जिसके छोटे बल्ब की पीली-सी रोशनी में वे लोग उसे साफ दिखायी दे गये. रघु ने अर्थी को देखा. पलक झपकते ही वह सब कुछ समझ गया.

जिस मरने वाले को चौथा आदमी और कोरा लट्ठा तक मयस्सर नहीं, वह रघु गुरु को क्या कुछ दे सकता है? रघु बड़बड़ाया और उसका दिल डूब गया. उन लोगों ने अर्थी विश्राम-चबूतरे पर रख दी.

—कौन है? आदमी या औरत? रघू ने चबूतरे के पास जा कर पूछा.

—लड़का.

—कितना बड़ा?

—सोलह साल का.

—कैसे मरा?

वे दोनों हंस पड़े—भयंकर मायावी और घिनौना-सा अट्टहास. तीसरा गर्दन झुकाये खड़ा रहा.

—बोलते क्यों नहीं? रघु ने उन्हें डांटा.

—मौत आयी और बस मर गया.

—रात में कैसे ले आये?

—रात में जिंदों के लिए तो झुग्गी में जगह होती नहीं. . .फिर. . .

—ठीक है. . .ठीक है. कितनी लकड़ियां चाहिए?

—लकड़ियां? उनको खरीदने के लिए पैसे कहां हैं? जमुना में बहाने की इजाजत दे दो, पंडितजी. तुम्हारा बड़ा उपकार होगा.

—जमना में तो बच्चे बहाये जा सकते हैं. पर यह तो पूरा आदमी है! इसे बहाना गैरकानूनी होगा. तुम्हें लकड़ियां लेनी ही पड़ेंगी. रघु ने दृढ़ता से कहा. उसने सोचा, खचेरू से ही कुछ कमीशन मिल जायेगा तो किलो-डेढ़ किलो आटे का जुगाड़ लग सकता है.

—क्या भाव है?

—बारह रुपये मन. कम से कम चार मन तो लग ही जायेंगी.

—बाप रे बाप! मरे हुए को फूंकने के लिए भी पचास-साठ रुपये चाहिए! इत्ते पैसों में तो महीने भर का आटा आ जायेगा.

अनायास काले बादलों के बीच जैसे सुनहरी बिजली चमक गयी. रघु का अंतर जगमगा गया.

—तो तुम्हारे पास इतने पैसे नहीं हैं?

—पैसे होते तो फिर बात ही क्या थी?

—ठीक है! तुम मुर्दे को छोड़ जाओ.

—सच! पहलवान बोला.

—तुम इसका क्या करोगे?

—परोपकार.

—भगवान करे, तुम जुग-जुग जियो, पंडितजी.

भारमुक्त हो वे चले गये.

रघु हुमक उठा.

सारिका के वार्षिक ग्राहकों के लिए विशेष छूट

'सारिका' के प्रत्येक अंक का मूल्य एक रुपया है. किंतु वर्ष भर के लिए वार्षिक शुल्क मात्र दस रुपये है, यानी साल भर में दो अंक मुफ्त. यदि आप दो साल के लिए ग्राहक बनते हैं, तो शुल्क केवल उन्नीस रुपये है यानी दो वर्षों में पांच अंक मुफ्त. हां, तीन वर्ष के लिए शुल्क केवल सत्ताईस रुपये है.

आपके लिए सारिका की विशेष दरें इस प्रकार हैः

एक वर्ष—१० रुपये

दो वर्ष—१९ रुपये

तीन वर्ष—२७ रुपये

विदेश में समुद्री डाक से एक वर्ष—३० रुपये

कृपया यह कूपन जरूरी राशि के चेक/ड्राफ्ट/मनी-आर्डर के साथ-साथ आज ही भेज दें—

सर्कुलेशन मैनेजर

सारिका, टाइम्स आफ इंडिया बिल्डिंग, बम्बई-४०० ००१

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/दो वर्षों/तीन वर्षों के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. १० रुपये/१९ रुपये/२७ रुपये चेक/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा भेजे जा रहे हैं.

नाम ------------------

पता ------------------

हस्ताक्षर ------------------

सारिका

दिसंबर १९७६

- ग्यारह विशिष्ट कहानियां ○ आद्यकथाकार — हिंदी
- श्री दुष्यंतकुमार की पहली पुण्यतिथि पर कन्हैयालाल नंदन का विशिष्ट लेख.
- महत्वपूर्ण लघुकथाएं
- अभिमन्यु अनत के धारावाहिक उपन्यास 'लाल पसीना' की सातवीं किस्त. ○ सभी स्थायी स्तंभ.
- इस अंक के कहानीकार

इस्मत चुगताई, रणजीतकुमार साहा, सच्चिदानंद धूमकेतु, राकेश वत्स, कन्हैयालाल गांधी, भगवान, बीरराजा, शांता वर्मा, वीरेंद्र सक्सेना, अनय, राही मासूम रजा आदि.

प्रतीक्षा... प्रतीक्षा... प्रतीक्षा

सारिका के अगले अंकों में एक नयी शुरुआत—

आपके सपने

'सारिका' के पाठकों के लिए, पाठकों का ही, एक नया स्तंभ 'आपके सपने' प्रारंभ करने की हमारी योजना है. हम जो सपने देखते रहते हैं (निद्रावस्था में) उनमें अधिकांश तो बिल्कुल साधारण होते हैं, और प्रायः हमें याद भी नहीं रहते. किंतु कभी हमें अपने जीवन से संबंधित कुछ ऐसे विचित्र और अद्भुत स्वप्न दिखायी पड़ते हैं, जो हमें उद्वेलित कर देते हैं, जिन्हें हम भुला नहीं पाते और जो हमारे जीवन पर गहरा प्रभाव डालते हैं. पाठकों से निवेदन है कि वे अपने किसी ऐसे ही सपने का वर्णन तथा उसने उसके जीवन को किस प्रकार प्रभावित किया, इसका विवरण, लगभग ६०० शब्दों में लिख भेजें. जो सपने रोचक और विशिष्टता लिये हुए होंगे, उन्हें इस स्तंभ में प्रकाशित किया जायेगा. लिफाफे पर लिखें—

'आपके सपने'
'सारिका'
टाइम्स ऑफ इंडिया
बंबई-१

—जय भैरव बाबा की ! वह चीख पड़ा और सोचने लगा, भैरव बाबा की कृपा हुई तो इन पांचों पिल्लों को रोटी तो मिलेगी ही, दो-दो जलेबियां भी पल्ले पड़ जायेंगी.

—कहां पंडित काका, यह माजरा क्या है? तब तक खचेरू उठ कर रघु के पास आ खड़ा हो गया.

—खचेरू , चबूतरे पर अर्थी रखी है. तनिक ध्यान रखियो. मैं अभी आधे घंटे में आया.

—तुम चल कहां दिये, काका? खचेरू ने खांसते हुए पूछा. रघू ने कोई उत्तर नहीं दिया. उसमें तो जैसे नयी जिंदगी आ गयी थी. श्मशान से बाहर आ कर वह कुछ ही दूर पर बनी अपनी झोंपड़ी के पास पहुंचा. बगल की झोंपड़ी में दीनू रहता था. वह सुबह अखबार बांटता है. उसके पास साइकिल है.

रघू ने दीनू से साइकिल मांग ली. वह सीधा प्रोफेसर कुलश्रेष्ठ की कोठी की ओर रवाना हो गया.

★ ★

वह काफी तेज रफ्तार से साइकिल चला रहा था. उसे पुराने मेडिकल कालेज की याद आ रही थी. वह तब मेडिकल कालेज में लाशों को सप्लाई किया करता था. हर लाश पर उसे दस रुपये मिलते थे. तब सस्ता जमाना था. जल्दी ही उसका यह धंधा चौपट हो गया. मेडिकल कालेज को एक अस्पताल से जोड़ दिया गया. अस्पताल में ही इतने लावारिस लोग मरने लगे कि. कालेज वालों को विद्यार्थियों को चीरफाड़ सिखाने के लिए शवों की कमी नहीं रही.

अभी एक साल पहले पास ही में, शहर से काफी दूर, एक नया मेडिकल कालेज खुला था. भैरव बाबा की कृपा से कालेज के साथ कोई अस्पताल नहीं जुड़ा था. वह भागा-भागा प्रोफेसर कुलश्रेष्ठ साहब के पास गया था. उसने उनसे मुर्दों के लेने का आग्रह किया था.

—भई, हमारे पास अन्य अस्पतालों से शव आ जाते हैं अगर कभी जरूरत हुई तो हम तुम से संपर्क कर लेंगे. तुम भैरव श्मशान घाट वाले हो न?

—जी, हां तब रघु ने भरे स्वर में कह दिया था.

उस समय प्रोफेसर साहब टाल गये थे. आज वह प्रोफेसर से ऐसी विनती-चिरौरी करेगा कि उनसे न करते नहीं बनेगा. फिर कम से कम बीस-तीस तो कहीं नहीं गये!

रघु प्रोफेसर साहब की कोठी में पहुंच गया. वह पाइप पीते हुए अपने लान में टहल रहे थे. उनका शक्तिशाली अलसेशियन कुत्ता पोर्टिको में बंधा था. रघु को अंदर आता देख वह जोर-जोर से भौंकने लगा.

—नो वाल्टर. . . नो ! प्रोफेसर साहब ने पाइप निकाल कर कहा. फिर वह रघु की ओर बढ़ आये. फिर उन्होंने पूछा, कौन हो?

—हुजूर, मैं रघु हूं. वही भैरव श्मशान घाटवाला.

—ओ हां, रघु! कहो, कैसे आना हुआ?

—हुजूर, एक बार तो सेवा का मौका दे दीजिए! सिर्फ एक ही है. बड़ी उम्मीद ले कर आया हूं.

—रघु, हमने तुमसे पहले भी कहा था कि यहां कोई स्कोप नहीं है. तुम तो जानते ही हो, हमारे लिए लाशों की कोई कमी नहीं. . . लोग मरते हैं. . . धड़ल्ले से मरते रहते हैं. . . सड़क-दुर्घटना में, भूख से, झगड़ों में, शीत-लहर से, लू से, बाढ़ से, दिल टूटने से, मिलावटी दवाओं से, विषैली शराब से. . .

रघु सोच में डूब गया — इत्ते सारे लोग मरते हैं! पर मर कर वे कहां गायब हो जाते हैं? पर उस पर इस तर्क का कोई असर नहीं हुआ.

—हुजूर, आज एक तो ले लीजिए. मैं बड़ी आशा ले कर आया था. घर में अन्न का एक दाना भी नहीं है.

—तुम्हारी समझ में क्यों नहीं आता?

—हुजूर, नौजवान लड़का है. एकदम ताजा लाश है. कहीं कोई बदबू, घाव, खून नहीं. . .आप देखेंगे तो. . .

प्रोफेसर कुलश्रेष्ठ पाइप पीते रहे. वह कुछ नहीं बोले. विचारमग्न-से वह इधर-उधर टहलते रहे. फिर उन्होंने जेब से एक नोट निकाल कर रघु की ओर बढ़ाते हुए कहा—ठीक है. हम उसे मंगवा लेंगे. यह लो, तुम्हारा इनाम.

रघु ने हुलस कर वह नोट थाम लिया. पर वह कितना हलका नोट था.

—कुल पांच रुपये, हुजूर? हुजूर. . माई-बाप. . . दस साल पहले तो दस रुपये का रेट था. रघु ने डूबे स्वर में कहा.

—तो क्या अब सौ रुपये चाहिए? प्रोफेसर साहब का स्वर चिड़चिड़ा हो आया.

—हुजूर, आजकल महंगाई का जमाना है. गेहूं तीन रुपये किलो, भुने चने सात रुपये. . . लकड़ियां बारह रुपये मन. . . .

—तो तुम्हें जहां ज्यादा पैसे मिलें, वहीं चले जाओ. . लाओ, नोट वापस करो.

रघू घबरा गया. उसने नोट को कस कर मुट्ठी में भींच लिया और दो कदम पीछे हट गया. वह सोच रहा था— और चीजों के स्टॉक दबाओ तो दो के चार हो जाते हैं. पर इसे रोकने पर. . . सुबह पांच रुपये की जगह पांच पैसे भी नहीं मिलेंगे.

—अब तुम जा सकते हो, रघु! हम शव को मंगवाने का प्रबंध करते हैं.

रघू चलने को हुआ तो प्रोफेसर साहब ने कॉलेज के थियेटर की ओर बढ़ते हुए कहा — रघु, चीजों के दाम डिमांड और सप्लाई पर निर्भर करते हैं.

रघु लौट पड़ा. उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था. साइकिल उसके पास थी. फिर भी वह शोकमग्न-सा पैदल चला जा रहा था. उसे लग रहा था, जैसे वह किसी का अंतिम संस्कार करके लौट रहा है. पर किसका?

१, बाबर प्लेस, नयी दिल्ली – १ □□□

ठहाका

• ब्रह्मदत्त

लाल रंग की वह छाया एक पांच मंजिला इमारत में प्रविष्ट हो गयी. कुणाल ने मेरी तरफ देख कर खीसें निपोरीं. मैंने सिर उठा कर ऊपर पांचवी मंजिल पर दृष्टि डाली, लेकिन देखा, विस्तृत स्याह आसमान. आसमान में काफी बादल लटके हुए थे और मुझे उनमें नीचे सड़कों की, मकानों-दुकानों की रोशनियां झिलमिलाती दिखायीं पड़ीं. मालूम नहीं, मैंने सच देखा हो या कल्पना जागी? मेरी आंखें सदा से कमजोर हैं.

—चलो, कुणाल ने मेरी पीठ छू कर कहा.

मैंने एक गहरी सांस ली.

—चलना यार! कुणाल ने पीठ पर हाथ दबा कर ठेला.

—चलो, मैंने कुछ चिढ़ कर कहा और चल पड़ा—रात वाला प्रोग्राम पक्का है न, यह जानते हुए भी कि कुणाल झूठा है, मैंने पूछा.

—हे-हे-हे...' खीसें निपोरीं.

—चल! मैंने दांत पीस कर कहा—खीसा खाली था, तो इतना चलाया क्यों?

—व्यायाम है! चला करो खूब. कभी बीमार नहीं पड़ोगे. कुणाल बेशरमी से बोला.

—अबे...मैंने घूंसा उठा कर कहा—बड़ा बुद्धिमान हो गया है ?

—हां थोड़ा-थोड़ा तो हूं. उसने मुसकरा कर कहा-मगर क्या करूं? कोई मेरी बुद्धि का उपयोग नहीं करता!

—चलो, मैं कर देता हूं, मगर पहले यह बताओ कि तुम्हें यदि दुनिया का राजा बना दिया जाये तो सबसे पहले कौन-सा आर्डर निकालोगे? मैंने आंखें तरेर कर पूछा.

—मेरी बात छोड़ो! वह ओंठ बिदका कर बोला—पहले तुम बताओ कि तुम होओगे तो क्या करोगे?

कुणाल बेशरम है, पर चालाक भी कम नहीं है. बड़ा चालू है. मैंने सोचा भी नहीं था कि वह मेरा प्रश्न मुझ पर ही उलट देगा. हड़बड़ा कर बोल पड़ा—अरे यार, अगर मैं दुनिया का राजा हो जाऊं तो हरेक आदमी को...याने कि तुझको एक-एक मोटर, बंगला और...और...त....

अभी मैं पूरी बात कह भी न पाया था कि कुणाल का चेहरा विचित्र रूप से तुड़मुड़ा गया. मैं समझ गया कि अब वह लगायेगा एक ठहाका.

और उसने लगाया.

चूंकि मेरी आंखें सदा से कमजोर हैं. मैंने समझा कि वह मेरी खिल्ली उड़ा रहा है.

—अगर मैं, अगर मैं...कांपते होंठों से मैं बोला—अगर मेरे हाथ में किसी भी प्रकार की सत्ता दे दी जाये, कुणाल, तो पहला आदेश मैं यही निकालूंगा कि...कि आज से ठहाका लगाना अनिवार्य है.

अनवरत हंसी के मध्य उसने पूछा—क्यों?

—क्योंकि ठहाका लगाना सबसे बड़ा पुण्य है कुणाल! अभी तू चाहता तो मुझे मार सकता था और तू जीत भी जाता, क्योंकि मैं कितना बलवान हूं, मैं जानता हूं. पर तू क्या मुझे पीट सकता है? वह भी इस तरह अट्टहास करते हुए?

—कभी नहीं, गुरु, कभी नहीं!

—इसलिए मैं आर्डर जारी करना चाहता हूं सबसे पहले कि दुनिया में कोई भी काम शुरु करना हो तो पहले लगाओ एक ठहाका . हो सके तो काम के दौरान में भी ठहाका जारी रहे. और काम के अंत में तो ठहाका लगाना ही है, चाहे जो हो जाये!

—क्या बात कहीं है! कुणाल ने सिर घुमा कर मेट्रो के बस-स्टॉप पर तन कर खड़ी एक खूबसूरत लड़की पर नजर डाली. मैंने गौर किया, उसके चेहरे पर एक चमक आ गयी है.

ठहाका लगाने वाला बड़ा साफ सुथरा, श्लील और सुंदर होता है, मैंने सोचा भले वह कुणाल की तरह घर में पैसे मारता हो, औरत या दारुखोरी करता हो; लेकिन जब कभी ऐसा आदमी ठहाका लगाता है, सब कचरा बाहर फिक जाता है. भीतर रह जाता है, आईने की तरह लकदक करता हृदय, सिर्फ हृदय.

आह कैसी होगी वह दुनिया , जहां हर काम के पहले लोगों को एक ठहाका लगाना पड़े? रात को सोने के पहले ठहाका, सुबह बिस्तर छोड़ने के पहले ठहाका. भोजन के पहले, बच्चों को डांटने के पहले और दफ्तर में घुसने के पहले , एक ठहाका . सिर्फ एक ठहाका. बस में, टैक्सी में, घर में, दुकान में, सब जगह एक ठहाका. ठहाका ही ठहाका.

बॉयलर खोलने के पहले ठहाका.
खेत में हल उतारने के पहले ठहाका.
बंदूक का घोड़ा दबाने के पहले ठहाका.
ठहाका और ठहाका.
बच्चा पैदा होने के पहले ठहाका.
मुर्दा चिता पर चढ़ाने के पहले ठहाका.

बिना ठहाका के दुनिया में कोई भी काम न होने पाये काम तो काम, जिंदगी को हो जाने दो एक ठहाका! जिंदगी और जिंदगी. ठहाका और ठहाका.

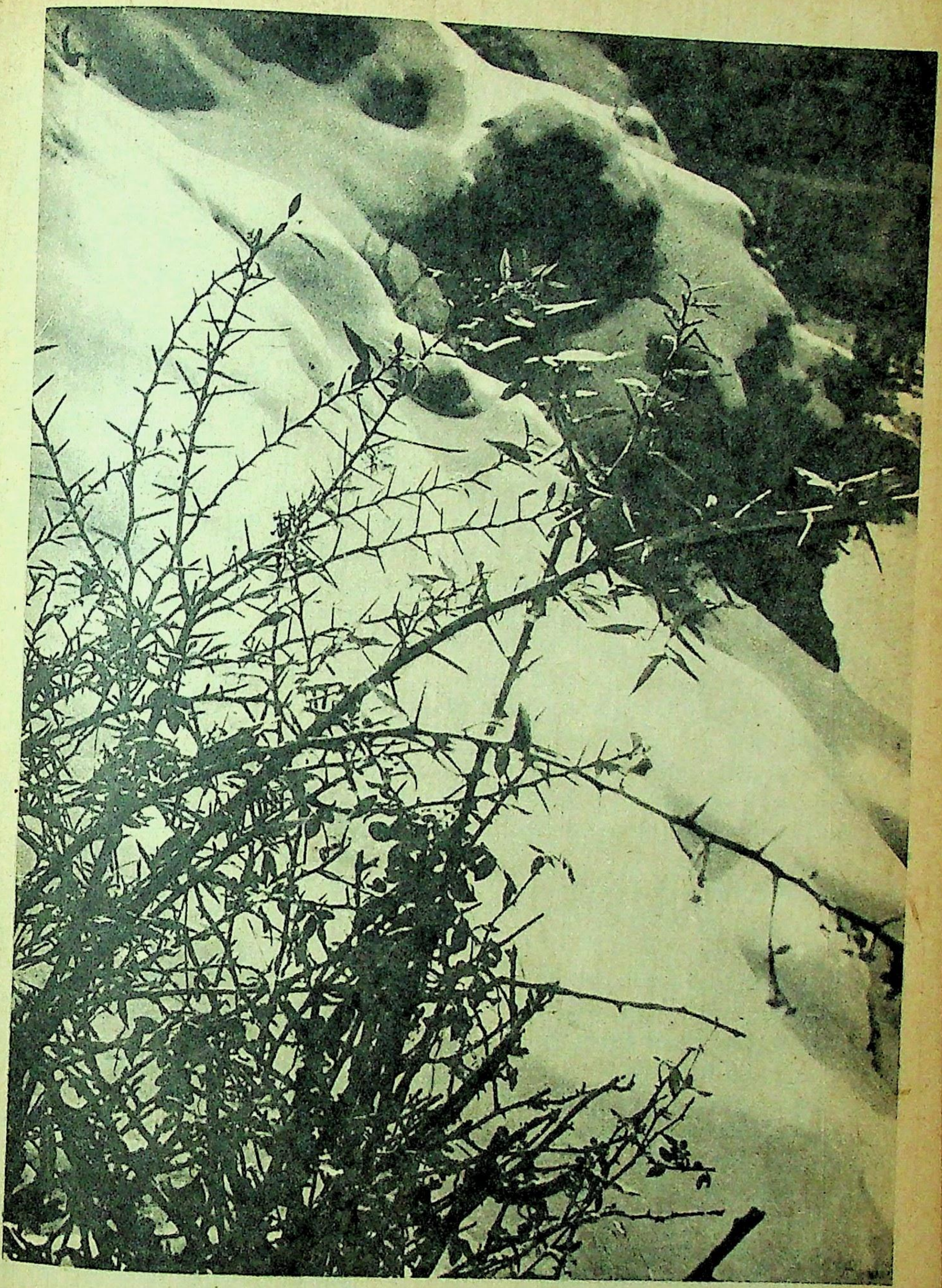

● एस. एल. खुल्लर

मैं सोचता हूं, यह दुनिया इसीलिए इतनी बेरौनक है, इतनी बदसूरत और इतनी बदनाम हो गयी है. क्योंकि लोग ठहाका लगाना भूल गये हैं!

अगर ठहाका आये, तो मुझे पूरा यकीन है कि इस दुनिया में फिर कोई जंग पैदा नहीं होगी. कोई स्त्री फिर कभी किसी चकले पर नहीं बैठेगी. बच्चा भीख नहीं मांगेगा, आदमी ईमान नहीं बेचेगा. मैं दावे के साथ कहता हूं कि ठहाका लगाने वाला न तो किसीका हक मार सकता है, न खून कर सकता है. जो काम-जिस प्रेम और शांति का प्रसार कभी कोई धर्म नहीं कर सका है, मैं डंके की चोट पर कहता हूं. कि वह एक काम, एक ठहाका अकेले ही पूरा कर देगा !

क्योंकि ठहाका लगाना गंगा-स्नान है और ठहाके लगाने वाला तीर्थ-स्थान! □□□

१२-३४६, बेलासिस ब्रिज, तारदेव, बम्बई–४०००३४

आत्मरचना (३२)

गर्दिश के दिन

• गुरुबचन सिंह

जून, १९७२ से सारिका में इस महत्वपूर्ण लेखमाला की शुरुआत हुई थी और अब तक आप इसमें हरिशंकर परसाई, शानी, से. रा. यात्री, राही मासूम रजा, मोहन राकेश, भीष्म साहनी, चंद्रकांत बक्षी, शैलेश मटियानी, मधुकर गंगाधर, ईश्वर चंदर, शांतनु आचार्य, कृष्णा सोबती, मधुकर सिंह, इब्राहीम शरीफ, रबींद्रनाथ त्यागी, फिक्र तौंसवी, दामोदर सदन, हृदयेश, रामसरूप अणखी, एम. टी. वासुदेवन नायर, कृष्णप्रसाद मिश्र, श्रीलाल शुक्ल, रॉबिन शा पुष्प, राजेंद्र यादव, दीप्ति खंडेलवाल, श्रवण कुमार, अजित पुष्कल, ओम गोस्वामी की आत्म-रचनाएं पढ़ चुके हैं. तमाम संघर्षों, व्यक्तिगत तनावों और दुख-सुख के क्षणों के बीच से गुजरते हुए कोई प्रतिभा किस तरह रचनात्मकता ग्रहण करती जाती है और सामान्य व्यक्ति के रूप में किस तरह संघर्षरत रहती है—इसी संघर्षशील यथार्थ का निरूपण करने वाली, प्रख्यात लेखकों की आत्म-रचनाएं इस स्तंभ के अंतर्गत दी जा रही हैं. इस अंक में पढ़िए हिंदी-उर्दू कथाकार गुरुबचन सिंह की यह आत्मरचना.

कुछ दिन हुए, मैं उस गली से होकर गुजरा था और उस घर की ओर हसरत भरी नजरों से देखा था, जिसमें मैंने कभी आंखें खोली थीं. उन दिनों उस क्वार्टर की खूबी यह हुआ करती थी कि उसमें एक ही कमरा था, जिसकी एक खिड़की और एक दरवाजा हुआ करता था. रोशनदान कोई नहीं. सामने छोटा-सा बरामदा, जिस पर टीन का छाजन, छोटा-सा आंगन, जो दीवार से घिरा हुआ था. उस घर के अंदर दिन के समय भी लालटेन या मोमबत्ती जलाकर कोई खास वस्तु तलाश की जाती थी. जब खाना पक रहा होता तो कोठरी चूल्हे या अंगीठी के धुंएं से भर जाती. गरमी के दिनों में कुछ ही क्षणों में पसीने से नहा लिया जाता. इस घर में मेरे दो भाई, एक बहन और माता-पिता का गुजर हुआ करता था. आए-गए मेहमान भी इसी में समा जाते. ऐसे तंग माहौल में मैंने आंखें खोली थीं.

जिस लाइन में हमारा घर पड़ता था, उसमें कुल मिलाकर बारह क्वार्टर थे. –एक दूसरे से सटे हुए. इस तरह आमने-सामने और अगल-बगल कई लाइनों में भी अनेक क्वार्टर थे, जिनमें भारत के विभिन्न प्रांतों और विभिन्न जातियों के लोग रहते थे. उनका ताल्लुक मजदूर वर्ग से था. उनका जीवन, रहन-सहन और सोचने-समझने का ढंग लगभग एक जैसा था. यह वह वातावरण था, जिसमें मैं परवान चढ़ा.

मेरे पिता बहुत गरीब घर से थे. बाप का साया बचपन हीं में सिर से उठ गया था. जो थोड़ी-बहुत जमीन थी, वह दादा-परदादा के जमाने ही में निकल गयी थी. मेरे पिता मेरे ताऊ के साथ दूसरे के खेतों में मजदूरी करते थे यानी हल चलाते थे. फिर वे ताऊ के साथ ही नौकरी की तलाश में गांव से निकल पड़े थे. वह उम्र उनकी नौकरी की नहीं थी. जगह-जगह की ठोंकरें खाते हुए जमशेदपुर पहुंच गए थे. तब टाटा का कारखाना कोई बड़ा नहीं था. सुना तब इलाकों में छोटे-छोटे गांव और बस्तियां हुआ करती थीं. कहीं-कहीं कंपनी के क्वार्टर और साहबों के बंगलें और फिर जंगल ही जंगल.

हमारे पूर्वज ब्राह्मण थे. गांवों के ब्राह्मण हमारे कुनबे का आदर करते थे, निर्धनता को भी वरदान मानते थे. जब पिताजी बाप-दादा और बड़े-बूढ़ों के जमाने की कहानियां सुनाने लगते तो, हम सब भाई-बहन अतीत में कहीं ऐसे खो जाते जैसे सब कुछ हमारी आंखों के सामने ही घटा हो. मां के संस्कार कट्टर थे. खानदान और रख-रखाव में कड़ी और गंभीर. हम भाई-बहनों को भरसक ताड़ कर रखतीं. बहुत कम किसी के घर जाने देतीं और कुछ खाने तो बिल्कुल न देतीं. सो मेरा स्वभाव आज भी ऐसा बना हुआ है, मैं कहीं किसी के यहां, चाहे वह रिश्तेदार ही क्यों न हो, उनके खाने के निमंत्रण को किसी बहाने से अस्वीकार करने की चेष्टा किया करता हूं.

मां को रामायण के काफी अंश कंठस्थ थे. जब मेरे पिताजी 'बी' शिफ्ट पर होते, रात ग्यारह बजे के करीब वापस घर लौटते, मां घर का सारा काम निबटा कर हमें रामायण की टीका सुनाने बैठ जातीं. करुण, मार्मिक शब्दों में बालकांड उन्हें बहुत प्रिय था. सुनते-सुनते जाने कब हमारी आंख लग जाती. वे शायद पिताजी के लौट आने तक रामायण बांचती रहतीं.

हिंदी का अक्षर-ज्ञान मां ने दिया था. मां ने जैसे अपनी करुण पीड़ा और संस्कार कूट-कूट कर मुझमें भर दिये थे. मैं दो भाइयों और एक बहन में सबसे बड़ा था. मैं बीमार हीं पैदा हुआ हूं और बीमार ही रहा हूं. बचपन में मेरे जिंदा बचने की उम्मीद कम हुआ करती थी. मैं बड़ी मुश्किलों से पाला-पोसा गया था. इसलिए शायद मां को मुझसे विशेष स्नेह और मोह था जिसने मुझे और भी नाजुक और भावुक बना दिया था. ये सब ऐसी स्थितियां थीं, जिन्होंने मेरे अंदर के लेखक को जन्म दिया.

मेरे पिता मुझे इंजीनियर बनाने के हवाई किले बांधा करते थे लेकिन घर की माली हालत ऐसी थी कि मैट्रिक तक जाते-जाते मैं एक बार टाटा के टेक्निकल इंस्टीट्यूट में दाखिल होते-होते किसी प्रकार बच गया था. एक-दो मरतबा इधर-इधर कारखाने की नौकरी पर भी गया. लेकिन लेखन के रंग ने जो हाई स्कूल में आते-आते स्कूल मैगजिन को देखकर जोर पकड़ चुका था, मुझे कहीं भी टिकने नही दिया. मैं स्कूल का छात्र बना रहा.

लेखन का आरंभ अपने आप में एक बहुत बड़ी घटना थी. लड़कों के साथ खेलते-खेलते मेरी बांयी टांग के घुटने के पीछे कृपाण चुभ गयी थी. तीन-चार दिनों ही में विष के कारण मेरा पांव सूज गया था और अंदर ही अंदर गलने लगा था. डाक्टरों ने तजरबे के लिए आपरेशन या फिर आधी टांग काटने का निर्णय दिया था लेकिन आपरेशन कामयाब रहा. इस घटना ने मुझे बड़ा भयभीत और कुछ उन मौतों ने जो वार्ड में मेरे अगल-बगल की चारपाईयों पर घटी थीं, आत्मकेंद्रित कर दिया था. मेरे मन में जीने के प्रति मोह जाग गया था. फिर मर कर जीवित कैसे रहा जा सकता है, इसे मैंने रवि ठाकुर पर एक छोटा-सा लेख पढ़ कर जो कोर्स की अंग्रेजी पुस्तक में था, समझने की कोशिश की थी. मृत्यु कब कैसे दगा दे जाती है, इसे मैंने बचपन की एक मित्र करमों की मौत देखकर महसूस किया था, जो दस वर्ष की उम्र में टाईफाइड से मर गयी. आज भी वह दृश्य आंखों के सामने आ जाता है जब कि करमों को अर्थी पर लेटाया गया था. ऊपर से चादर डाल दी गयी थी और उसके चार बड़े भाई अपनी सबसे छोटी बहन को कंधों पर लाद कर श्मशान की ओर ले चले थे. मैं भी पीछे-पीछे हो लिया था. तभी गली की एक औरत ने मेरा हाथ पकड़ कर कहा था — तुम कहां चले? जाओ, अपने घर जाओ.

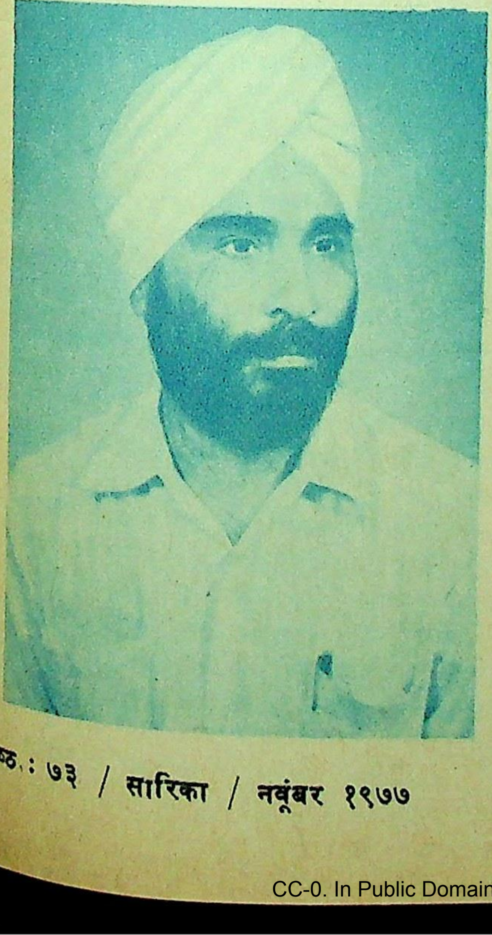

मैं खड़ा उस अर्थी का जाता देखता रहा था. मेरी आंखें नम थीं. मैं कमजोर स्वास्थ्य, शांत स्वभाव के कारण लड़कों की अपेक्षा लड़कियों से अधिक मिलना और खेलना पसंद करता था. वे मुझसे मिलकर खुश भी होती थीं. धीरे-धीरे समझ में आता गया था कि, लड़कियों का साथ ज्यादह दिनों तक नहीं टिकता.

मैं किताबी कीड़ा कहलाता था. रवि, शरत और बंकिम बाबू की बंगला पुस्तकों के हिंदी अनुवाद तथा प्रेमचंद आदि की पुस्तकें जो स्कूल के पुस्तकालय में उपलब्ध हुआ करती थीं, मैंने आरंभ में ही पढ़ डाली थी. लिखने का चस्का इससे भी लगा. गद्य और पद्य दोनों. मां मेरी इस कोशिश पर खुश थीं. लेकिन जब मैं चार-छः घंटे लगातार इसी काम में लगा रहता, खाना-पीना और सोना भी भूल जाता, तब वे मुझे डांटती और टोकती भी थीं क्योंकि मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था.

* *

मैंने उर्दू गली के एक पंजाबी पंडितजी से और पंजाबी एक ज्ञानीजी से सीखनी शुरू की थी और बंगला हाई स्कूल के एक छात्र से जो घर के पास रहता था.

मैं हिंदी-उर्दू दोनों भाषाओं में लिखने का प्रयास करता. एक ओर किसी प्रकार मैट्रिक पास करने की चिंता, दूसरी ओर कोई पक्की नौकरी पा लेने की लालसा. तीसरी ओर कहीं छप जाने का मोह. मेरे अंदर इतना संघर्ष रहा करता था कि मैं अपने आपको बहुत अभागा समझने लगा था. उन दिनों जमशेदपुर में कोई कालेज नहीं हुआ करता था बल्कि पंद्रह-बीस बरस पहले भी यहां कोई कालेज नहीं था. औकात वाले अपने बच्चों को दूसरे शहरों में ऊंची शिक्षा के लिए भेजा करते थे. मेरा ऐसा सौभाग्य होगा, मैं इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता था.

कंपनी के स्कूल में मेरे साथ अमीर घरों और अफसरों के लड़के पढ़ा करते थे. उनमें से आज कई ऊंचे पदों पर हैं, कई अच्छे बिजनेस चलाते हैं. उनमें से चंद एक कभी मुझसे हमदर्दी रखते थे. लेकिन मैं तब भी अपने आप को उनसे जोड़ पाने में सफल नहीं हो पाता था. मेरी उनसे कोई पहचान ही नहीं है.

मेरे बचपन का एक साथी हुआ करता था, इस्माईल. तीन क्वार्टर छोड़कर चौथे क्वार्टर में रहता था. उसका बाप एक मामूली खलासी था. इस्माईल को कोई मेरा हमदम कह देता, कोई दोस्त. उसने जहां-तहां से लाकर मुझे उर्दू की जितनी पुस्तकें पढ़ने को दी थीं, उतनी शायद मैं खुद नहीं जुटा सकता. उसका एहसान तो जिंदगी भर नहीं भूलूंगा. उसे खुद भी पढ़ने का बहुत शौक था, इतना कि उर्दू में उसे सौ में पचहत्तर से अस्सी तक मार्क आते थे और हिसाब में जीरो. और वह मिडल क्लास से आगे नहीं पढ़ सका था. उसे मेरा नाम किसी पत्रिका में देखने का बहुत शौक हुआ करता था. और जिस दिन अपने समय की उर्दू की श्रेष्ठ पत्रिका 'साकी' के कहानी विशेषांक में मेरी प्रथम कहानी 'न जाने कब' जो कि कोयले की खदानों में काम करने वाली मजदूर औरतों पर लिखी गयी थी, प्रकाशित हुई, उसने गली-महल्ले में

मेरा वह ढिंडोरा पीटा था कि सब चौंक गए थे. लोगों को पास जमा करके वह मेरी कहानी पढ़ कर सुनाया करता था. और इस गर्व से मेरी प्रशंसा किया करता था जैसे उसके इलाके में किसी नए अफ्लातून ने जन्म ले लिया हो. लेकिन अफसोस मेरा वही मित्र कपड़े रंगने के एक करखाने में नौकरी करता हुआ टी. बी. का शिकार हो गया था. और जिस प्रकार मैंने उसे सूखकर दम तोड़ते हुए देखा था, ऐसी मौत मैंने फिर कभी नहीं देखी. लंबे बरस बीत गये उसकी मौत को. उस दिन के बाद मैं किसी को उस जैसा लंगोटिया दोस्त नहीं कह सका. ताश खेलने में वह मेरा पार्टनर हुआ करता था. उसकी मौत के बाद आज तक मैंने कभी ताश को हाथ नहीं लगाया. जो ताश हम खेला करते थे, वह ढूंढ़ने से आज भी घर में कहीं मिल जाएगी.

चारपाई से लगने से पहले उसने मुझे एक दिन कहा था, 'बचन नौकरी छोड़ो और पढ़ाई पूरी करो. नहीं तो सारी जिंदगी धक्के खाओगे.' तब मैं एक मिल में बारह आने रोज पर काम करने लगा था. मैंने ऐसा ही किया था, जो उसने कहा था.

ऊपर की घटनाएं शायद दूसरों के लिए कोई महत्व न रखें लेकिन इनका मेरे जीवन और लेखन पर जो असर पड़ा, मेरी लेखनी को जो गति मिली, उसे मैं ही समझ सकता हूं. मेरा विश्वास है जिस लेखक के जीवन में जितनी अधिक, जितनी करुण, मार्मिक घटनाएं घटती रहती है, उतना ही उसका लेखन प्रखरता से गति पाता है.

आज तक मेरी दर्जनों कहानियां प्रकाशित हो चुकी हैं, तीन कहानी संग्रह और दो उपन्यास निकल चुके हैं. एक-दो पुस्तकें इस वर्ष प्रकाशित हो जाएंगी. सोचता हूं यदि आज इस्माईल जिंदा होता तो उसे यह सब देख कर जाने कितनी खुशी होती.

★ ★

यह कहना अन्याय और स्वार्थ में नहीं गिना जाएगा कि जमशेदपुर से उर्दू और हिंदी की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाला सबसे पहला कहानीकार मैं ही था. जमशेदपुर के पुराने कथा-लेखकों में श्री राजनाथ राय और कमल जोशी भी हैं लेकिन वे नौकरी के सिलसिले में बाद में बाहर से यहां आए थे.

अंजुमन तरक्की-ए-उर्दू, जमशेदपुर ने कभी कहा था—यह हमारे लिए फखर की बात है कि गुरुबचन सिंह ने उर्दू दुनिया को यह एहसास कराया कि जमशेदपुर में सिर्फ लोहा ही नहीं बनता , यहां अदब भी पैदा होता है.

मैं जब हिंदी में प्रकाशित होने लगा तब न यहां कोई कालेज था, न प्रोफेसर, न संस्थाएं जो गद्य-लेखन को प्रोत्साहित कर सकें. ले-देकर कुछ स्कूल के टीचर और कवि छोटी-मोटी गोष्ठी और समय-समय पर कुछ पुस्तकालयों की ओर से कवि सम्मेलन अवश्य हो जाते थे. मैं भी कवि-सम्मेलनों में कविता-पाठ किया करता था.

हिंदी में मेरी प्रथम रचना 'नया समाज' में आयी थी. स्वर्गीय मोहन सिंह सेंगर ने बहुत प्रोत्साहित किया था. हिंदी में निरंतर लिखते रहने को कहा था. मैं जैसे संस्कारों में पला था, भाव अभिव्यक्ति के लिए उर्दू और उसे पढ़ने वालों का वातावरण आड़े आता था. ऐसा लगा करता था जो मैं कहना चाहता हूं, नहीं कह पा रहा हूं. कहीं संकोच है, कहीं भाषा की पाबंदी और कहीं तंगनजरी. मैं हिंदी ही में लिखता गया. समय की लगभग सभी पत्रिकाओं में लिखा, जिनमें से कुछ अच्छी पत्रिकाएं बंद हो चुकी हैं. मैं लेखन के क्षेत्र में हमेशा उत्साहित रहा हूं. अब भी हूं. यदि धक्का पहुंचता है तो हिंदी के प्रकाशकों के व्यवहार या उनकी नानुकुर से.

★ ★

कुछ नौकरी करने और मैदान छोड़कर भागने से सिद्ध हो गया था कि मैं प्रैक्टिकल काम के योग्य नहीं. इसे मेरे पिताजी ने भी महसूस किया. तब मुझे दफ्तर की नौकरी करनी पड़ी और आगे की पढ़ाई भी. जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, जमशेदपर में कोई कालेज नहीं था. पैसे वाले या जरूरतमंद अपने बच्चों को दूसरे शहरों में शिक्षा-प्राप्ति के लिए भेजते थे. किसी प्रकार मुझे आई. ए. की परीक्षा के लिए रांची के डिग्री कालेज में बैठना पड़ा था.

जमशेदपुर के शिक्षा के इतिहास में वह एक नया उज्ज्वल मोड़ था जब कुछ साहसियों द्वारा यहां नाईट कालेज कीं स्थापना हुई. संचालकों के पास न कोई विशेष फंड था, न अपनी बिल्डिंग. मैं भी उस कालेज का क्षात्र बन गया.

बचपन में मैं एक ऐसे स्कूल में पढ़ने जाया करता था, जहां लड़के-लड़कियां एक साथ पढ़ा करती थीं. जिस कालेज में दाखिला लिया, वहां भी यही हाल था. लड़के-लड़कियां एक साथ कीट्स और बायरन की कविताएं समझने की कोशिश किया करते थे. शेक्सपीयर के विचारों की गहराई तक उतरने का प्रयत्न करतीं. अच्छा-खासा रोमानी माहौल रहता. जाने कैसे मैं शह पा कर एक अमीर घर की लड़की के संपर्क में आ गया था. उसने कुछ दिनों बाद मुझे गलत समझाना शुरू किया तो लगा उसकी बगल में एक चेहरा ऐसा भी है, जो मुझे सही समझता है. उसकी ओर नजर घूमी तो पता चला, वह बड़े-बड़े सपने देखती है, यहां तक कि उसे बंबई जाकर एक्टिंग करने का भी शौक है.

विश्वास करें तो किस पर? समझ में नहीं आता. मुझे इस बात का हमेशा दुख रहा है. गैर तो गैर, अपनों ने भी मुझे गलत समझने की कोशिश की है जब कि मैं अपने प्रति किसी के द्वारा किए गए अन्याय को भी भूल जाता हूं. खैर, मैंने इस घटनाओं से यह सीखा कि इस युग में सैकड़ों बातें ऐसी हैं जिन्हें न तो गंभीरता से लेना चाहिए, न जिनके प्रति भावुक बनना चाहिए.

★ ★

जो साहित्यिक संस्था कभी यहां सबसे अधिक सक्रिय रहा करती थी, वह थी——अंजुमने तरक्की-पसंद-मुसन्नफीन यानी प्रगतिशील लेखक संघ. इसमें उर्दू लेखकों और कवियों की संख्या अधिक हुआ करती थी और हिंदी के कुछ लेखक और कवि भी शामिल हो जाया करते थे. मैं बरसों इस अंजुमन का ज्वाइंट सेक्रेटरी

रहा. अधिक व्यस्त रहने के कारण सेक्रेटरी की जिम्मेवारी नहीं लेता था. मेरी लेखनी और हरकतों को महज झूठे शक की बिना पर कुछ सरकारी लोग मांपते रहते थे. इसकी प्रतिक्रिया नौकरी के दायरे में होती रही. अब वे बातें पुरानी हो चुकी हैं. पुरानी घटनाओं को याद करता हूं तो हंसी आती है.

बरसों पहले मैं किरानी था और आज भी मेरा वही दर्जा है क्योंकि मैं सीधा-सपाट आदमी हूं. मैंने महसूस किया है, दुनिया में ईमानदारी से चलकर जीना काफी जोखम का काम है. इस जीने के लिए भी संघर्ष करना पड़ता है, सो करता रहता हूं. आखिर चैन कहां है? आराम और निश्चितता कहां है? मेरी रचनाएं मनुष्य की परेशानियों और संघर्ष की रचनाएं हैं, जिनमें प्रायः स्वयं बोलता हूं क्योंकि मैं सामान्य जन से अलग नहीं, उसकी एक इकाई हूं.

पिछले चार-पांच वर्षों के दरम्यान कुछ घटनाएं ऐसी घटीं हैं जिन्होंने मुझे लगभग परास्त कर दिया. लगभग चार वर्ष पहले जैसे मेरे जीवन का एक और अध्याय समाप्त हुआ और दूसरा आरंभ हुआ. इसे मैं नया जीवन नहीं मानता बल्कि एक ऐसा मोड़ कहने को विवश हूं जिस पर मुझे नए ढंग से सोचने-समझने और जीवन पथ पर आगे बढ़ने के लिए मजबूर होना पड़ा है. पहली घटना थी, मां की मृत्यु. शायद कोई बहुत बड़ी घटना नहीं थी. सबकी मांएं होती हैं और एक दिन वे बेटे-बेटियों को छोड़ इस दुनिया से चली जाती हैं. यह तो स्थितियों और समय की बात है कि ऐसी घटना का कौन कितना असर लेता है. मां की मृत्यु के पश्चात जो अभाव मैंने महसूस किया, उसकी पूर्ति के लिए मैं प्रत्येक अधेड़ उम्र या बूढ़ी औरत के चेहरे पर मां का चेहरा तलाश करने लगा. मैंने अक्सर ऐसा महसूस किया है कि सबके साथ मैं एक ऐसे पथ पर हूं, जहां अचानक एक जगह कहीं भी रुक जाना पड़ता है. शायद वही सांसारिक मंजिल है. 'काल याचना' कहानी मासिक में छपी मेरी रचना में इसी मनोव्यथा का चित्रण है.

लेखन एक कठिन काम है. लेखन को कठिन मैं इसलिए कहता हूं कि बहुत सोच-विचार के बाद बहुत गहराई तक जाकर कुछ लाने से ही सफल रचना तैयार होती है. उसमें संचित अनुभवों का पुट देना पड़ता है. जिसने जीवन देखा या उसकी कटुता को भोगा ही नहीं, वह सार्थक रचना कैसे दे सकता है? लिखना उसके लिए फैशन है या ऐय्याशी है.

दस-पंद्रह साल पहले की बात है. एक उपन्यास के संबंध में अपने एक बंधु के साथ, उस समय के कलकत्ता के सबसे अधिक वीभत्स वेश्यालय सोनागाछी में गया था. कुछ गलियां घूमकर जो मैंने देखा, जो कुछ अनुभव किया, प्रतिक्रियास्वरूप शोक और गम में डूबा हुआ-सा उस बाजार से बाहर आ गया था. मैंने महसूस किया था, जो देख रहा हूं, उसका चित्रण संभव ही नहीं. वह उपन्यास कुछ परिच्छेदों के बाद आगे ही नहीं बढ़ पाया था. उसकी अधूरी पांडुलिपि ढूंढ़ने से कहीं मिल जाएगी. धन्य है वह रूसी साहित्यकार एल्कजेंडर कुप्रिन जिसने बरसों रंडियों के मुहल्ले में रहने के बाद यामा (अनुवाद : गाड़ीवालों का कटड़ा) जैसा उपन्यास लिखा था.

लेखक जिस दुनिया में रहे, जिसे उसने देखा हो, समझा हो, ईमानदारी से उसका चित्रण अपने लेखन में करे, तो यह अपने आप में साहित्य के प्रति एक बहुत बड़ा न्याय है. यह दूसरी बात है कि उसकी रचनादृष्टि उसे साहित्य में कौन-सा स्थान दिलाती है.

जितने मेरे पिता कंपनी के प्रति वफादार रहे, उतना ही मेरा छोटा भाई कभी बागी माना जाता रहा. यह जमाना था जब वह समाजवादी पार्टी का सक्रिय कार्यकर्ता था. मजदूर आंदोलनों में जेल जाता रहा. बरसों नौकरी से डिसमिस होकर घर बैठा रहा. उसे भी लेखन की ललक थी. पंजाब से प्रभाकर कर आया था. उसने अपने मित्र स्वर्गीय बृजनंदन प्रसाद के सहयोग से 'नई दिशा' पाक्षिक का प्रकाशन आरंम्भ किया था. जमशेदपुर की पत्रिकारिता के इतिहास में इस पत्र को प्रथम साहित्यिक स्थान मिलेगा. अर्थाभाव के कारण 'नई दिशा' बंद हो गयी थी.

निश्चित है कि ऊपर की घटनाओं का मेरे लेखन पर प्रभाव पड़ता. मेरी कई रचनाएं छद्म नाम से भी कभी पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं हैं. जानने वाले इसे जानते ही हैं.

★ ★

मैंने ऊपर दो घटनाओं की ओर संकेत किया था, जिनके कारण मैं टूट-सा गया. उसी क्रम में दूसरी घटना है, मेरे पिता की मृत्यु. मेरे पिता ने अपने जीवन में जितना संघर्ष किया, हमारे परिवार के लोगों में से और किसी ने नहीं किया. सारे परिवार के लिए उनका जीवन एक आदर्श है. उन्होंने सबको दिया, लेकिन कभी मांगा किसी से कुछ नहीं. जो कष्ट और कठिनाइयां आगे चल कर हमारे सिर पर आतीं, उन्होंने खुद ही एक हद तक झेल लिया. यही उनका हम पर सबसे बड़ा उपकार है. वे हमारी जिंदगी को इतना आसान कर गए कि हमें कभी किसी के सामने हाथ फैलाने की नौबत नहीं आयी. जो उन्होंने दिया, वह फलता-फूलता गया.

बड़ी से बड़ी कठिनाइयों के दिनों में भी जैसा कि मैंने सुना है, उन्होंने किसी से पैसा उधार नहीं लिया था. और जिन्होंने उनसे लिया, उन्होंने कभी लौटाया नहीं. उनके बारे में यह मशहूर था कि वे गली-महल्ले में कभी किसी से नहीं झगड़ते थे. मेरे सामने वे एक आदर्श श्रमिक थे. कितने चाव से मुझे किसी बहाने कारखाने में बुलवा लेते थे. कई बातें समझाते. अपने अधीन काम समझने को कहते. छेनी और हथौड़ा हाथ में में दे कर सीधा हाथ चलाने का ढंग बताते.

वे मामूली खलासी से उठकर फिटर, मिस्त्री और लोको इंचार्ज के ओहदे तक गए थे. पढ़े-लिखे नौजवान जो उनके अंतर्गत काम करते थे, उनका आदर करते थे उनकी सूझ-बूझ का लोहा मानते थे.

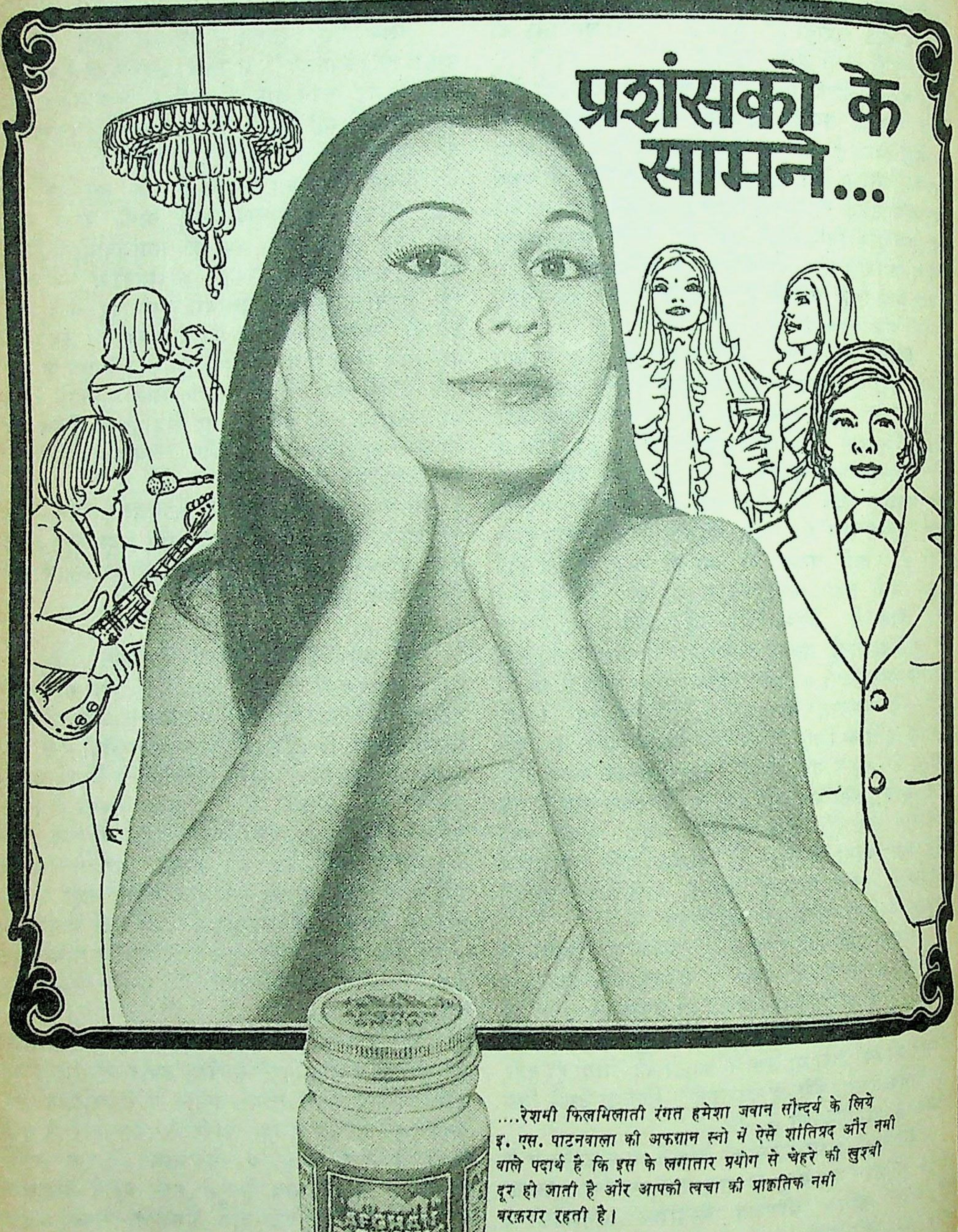

....रेशमी झिलमिलाती रंगत हमेशा जवान सौन्दर्य के लिये इ. एस. पाटनवाला की अफ़ग़ान स्नो में ऐसे शांतिप्रद और नमी वाले पदार्थ हैं कि इस के लगातार प्रयोग से चेहरे की खुश्की दूर हो जाती है और आपकी त्वचा की प्राकृतिक नमी बरक़रार रहती है।

अफ़ग़ान स्नो
सदा बहार सौन्दर्य का सच्चा राज़

अफ़ग़ान स्नो

ब्यूटी ऐड्स

इ. एस. पाटनवाला बम्बई

उन्हें जिंदगी भर जिस बात का गम रहा, वह था शिक्षा न प्राप्त कर सकने का. प्राय: करुण स्वरों में उनके मुंह से सुना जाता, काश मैं कुछ पढ़ा-लिखा होता. . .

इसमें दोष किसी का नहीं था. परिस्थितियां ही कुछ ऐसी थीं. दूसरे के खेतों में हल चलाना और फिर नौकरी के लिए गांव छोड़ सैकड़ों मील दूर चले आना. बड़ी मार्मिक कहानी है.

वे न तो मुझे किसी कारीगर के रूप में देख सके और न ही इंजीनियर के रूप में. लेकिन जब उन्होंने मेरी कुछ छपी हुई पुस्तकें देखी थीं तो बहुत खुश हुए थे. इधर जब रेडियो से नाटक आदि प्रसारित होता, मैं रेडियो स्टेशन जाता तो बड़े खुश होते.

उनका मंझला लड़का ट्रेड यूनियन के संबंध में जब सारे एशियाई मुल्कों का दौरा करके और फिर स्विट्जरलैंड आदि से भी हो कर घर लौटा और एक दिन उनके चरण छुए तो वे गद्गद हो उठे थे. उन्हें अपना सबसे छोटा लड़का याद आ गया था जिसकी बरसों पहले मृत्यु हो चुकी है. उस बूढ़े बाप के संसार से उठ जाने से घर ऐसा सुना हो गया कि वे सारी कहानियां रुक गयीं, जिन्हें वे अपने जीवन पुस्तक से सुनाया करते थे.

* *

उसके बाद मेरी जिंदगी का एक और नया मोड़ आ गया. मैंने अपना आसन उस कमरे में वहां बना लिया, जिस स्थान पर वे सोते या आराम करते थे, लेटे रहते थे. उनके आदेशानुसार वहीं बैठ कर पाठ करता हूं. लेखन-कार्य भी वहीं चलता हूं.

मेरे परिचित लेखकों का दायरा काफी बड़ा है. लेकिन यह आश्चर्य की बात है कि मैं बहुत कम लेखकों से व्यक्तिगत रूप से मिल से पाया हूं. मैं स्वभाव का संकोची हूं. मां की छत्रछाया में यह कुछ संस्कारों का असर है कि मैं चाय-कॉफी आदि कुछ भी नहीं पीता.

श्रीमती के सहयोग से इधर मेरी कुछ रचनाएं पंजाबी में आयी हैं. आठ-दस रचनाओं ने ही कुछ प्रतिष्ठा बना दी है. विभिन्न भाषाओं के लेखक आज जितने एक दूसरे के निकट हैं, पहले शायद कभी नहीं थे. इसमें 'सारिका' ने सराहनीय दायित्व निभाया है.

इतना कुछ कह कर भी मैं बहुत कुछ नहीं कह पाया हूं क्योंकि सब कुछ एक साथ कहने को नहीं होता. मैंने इस आत्मकथा में गर्दिश के दिन का शब्द-व्यवहार नहीं किया क्योंकि गर्दिश में तो अब भी हूं. जरा रुकूं, सांस लूं, तब न कहूं? क्या पता इसी गर्दिश में कहीं खो जाऊं और लोग मेरे बारे में सोचते ही रह जाएं क्योंकि तृप्ति की कल्पना में जो आनंद है, शायद तृप्ति में नहीं. □□□

कृतघ्नता का फल

एक नगर में एक ब्राह्मण रहता था जिसे अपनी पत्नी से बेहद प्रेम था. किंतु वह दिन-रात परिवार के अन्य सदस्यों के साथ लड़ा-झगड़ा करती. तंग आकर ब्राह्मण उसे साथ लेकर एक दूर देश के लिए निकल पड़ा.

वे एक वन से होकर गुजर रहे थे कि ब्राह्मण की पत्नी प्यास से बेचैन हो उठी. वह उसके लिए पानी की खोज करके वापस आया तो उसे निष्प्राण पाया. देववाणी हुई—यदि तुम उसे अपनी आधी जिंदगी दे दो तो वह जीवित हो सकती है. ब्राह्मण ने पूजा के साथ ज्यों ही कहा कि मैं अपनी आधी जिंदगी अपनी पत्नी को देता हूं कि वह जीवित हो उठ बैठी. वे एक नगर के द्वार पर एक बगीचे में पहुंचे तब ब्राह्मण ने कहा—मैं भोजन तलाश लाता हूं.

उस बगीचे में एक अपंग व्यक्ति पनचक्की चलाते हुए मधुर कंठ से गा रहा था जिसे सुनकर ब्राह्मण-पत्नी उस पर मुग्ध हो उससे बोली—यदि तुम मेरे नहीं बने तो एक ब्राह्मणी की हत्या के दोषी बनोगे. और उसे मानना पड़ा.

जब ब्राह्मण भोजन लेकर लौटा और दोनों भोजन करने लगे तो वह बोली—तुम्हारे चले जाने पर मैं निर्जन महसूस करती हूं. इस अपंग को एक टोकरी में बैठा कर स्वयं ढो लूंगी.

इस पर ब्राह्मण को राजी होना पड़ा.

एक दिन जब वे एक कुएं के पास आराम कर रहे थे तो ब्राह्मण-पत्नी ने अपने पति को कुएं में ढकेल दिया. फिर टोकरी सिर पर ले वह नगर में पहुंची, एक राज-सैनिक ने उसे चोर समझ कर राज दरबार में पहुंचा दिया.

राजा ने टोकरी खुलवायी तो उसमें एक अपाहिज व्यक्ति को पाकर अचरज में आ गया. तभी ब्राह्मण-पत्नी बोली—महाराज, यह मेरा अपंग पति है. नाते-रिश्तेदारों ने इसे इतना तंग किया कि मैं इसे सिर पर उठा कर आपके पास लायी हूं, न्याय पाने के लिए.

—तुम मेरी बहन हो. मैं तुम्हें दो गांव देता हूं. राजा ने प्रभावित हो कर कहा.

'ठीक उसी समय वह ब्राह्मण भी वहां आ पहुंचा. उसे देखते ही ब्राह्मण-पत्नी चीख उठी—राजन्, यही है हमारा शत्रु!

राजा ने उसे तत्काल मृत्युदंड दे दिया. इस पर ब्राह्मण ने कहा—इस स्त्री ने मेरी एक वस्तु ले रखी है. कहिए कि वह वस्तु मुझे लौटा दे.

राजा के डर से ब्राह्मण-पत्नी ने कहा—मैं इसकी वस्तु इसे वापस करती हूं. इतना कहते ही वह गिर कर मर गयी. □□□

विशिष्ट लेख

राजनीति और आम आदमी

● विश्वनाथ त्रिपाठ

राजनीति और आम आदमी के आपसी संबंधों को विश्लेषित और रेखांकित करने वाला यह लेख दिसंबर, १९७५ में राजगीर में हुए समांतर लेखक सम्मेलन में पढ़ा गया था.

हमारे बीच ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो राजनीति को सारी बुराइयों की जड़ मानते हैं. लेकिन ये लोग सभी राजनैतिक विषयों पर अपने विचार अवश्य रखते हैं. उन्हें उग्र लहजे में प्रकट भी करते हैं. इनकी विशेषता यह है कि ये राजनीति पर बहस बहुत गर्मागर्म करते हैं, किंतु अपने वैचारिक निष्कर्षों के अनुसार सक्रिय नहीं होते. जो सक्रिय होते हैं, उन्हें ये लोग गाली देते हैं.

ऐसे लोग प्रायःमध्यवर्ग या निम्न मध्यवर्ग के होते हैं. ये लोग प्रायः स्वभावतः रूढ़िवादी संस्कारों के तो होते हैं, लेकिन प्रगति-विरोधी नहीं होते. महंगाई का, अकाल का, व्यवस्था-हीनता आदि का सबसे भयंकर असर इसी वर्ग पर पड़ता है. निम्न वर्ग — यानी आर्थिक दृष्टि से इनसे भी नीचे का वर्ग— तकलीफें इनसे ज्यादा सहता है, लेकिन वह रूढ़िवादी संस्कारों से इतना ग्रस्त नहीं होता.

आज के समय में सबसे गत्वर वर्ग दो हैं, पूंजीपति वर्ग और निम्नतम वर्ग. मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग अपनी परेशानियां अपनी रूढ़िवादिता और संस्कारों के कारण भी बहुत बढ़ा लेते हैं. मेरा अनुमान है कि जिसे 'आम आदमी' कहा जाता है, वह निम्न मध्यवर्ग के ही घेरे में आयेगा. 'आम आदमी' कहने से उच्च वर्ग अथवा निम्नतम वर्ग या सर्वहारा का बोध नहीं होता.

यह 'आम आदमी' एक ओर रूढ़िग्रस्त संस्कारों से मुक्त नहीं होता, दूसरी ओर सभी प्रकार के राजनैतिक आंदोलनों से सबसे ज्यादा प्रभावित होता है. हमारे देश में शीर्षस्थ नेता — खासतौर पर दक्षिणपंथी पार्टियों के--ज्यादातर उच्च वर्ग या उच्च मध्यवर्ग से आये हैं. आम आदमी के समूह ने ज्यादातर अनुगामियों की ही सेना तैयार की है.

'आम आदमी' चाहे सर्वहारा न हो, किंतु उसका भाग्य उसी वर्ग के साथ नत्थी है. यह 'आम आदमी' की बहुत बड़ी विडंबना है कि वह उस वर्ग से अपने को जोड़ नहीं पाता, जिसके साथ कि उसका भाग्य बंधा हुआ है. इसका बहुत बड़ा कारण यह है कि यह वर्ग संगठित नहीं होता. किसान-मजदूर के पास संगठित होने और संघर्ष करने के लिए मूर्त्त मुद्दे होते हैं, मजदूरी, बोनस, लगान, बेगार का खात्मा. लेकिन 'आम आदमी' के पास लड़ने का कोई सूत्र— मूर्त सूत्र—नहीं होता. मजदूर का दुश्मन मिल-मालिक है, खेतिहर का दुश्मन जमींदार है, लेकिन 'आम आदमी' का शोषक सामने नहीं होता. वह यही समझ पाता है कि उसके पास पैसा नहीं है और इसीलिए उसे कदम-कदम पर विवशता और अपमान झेलना पड़ता है. उसके सामने शोषक निश्चित नहीं होता, इसीलिए वह संघर्ष में सर्वहारा की तरह आगे नहीं रहता—इसीलिए वह संगठित नहीं होता. संघर्ष और संगठन के अभाव में ही वह रूढ़िवादिता के जुए को उतार कर फेंक नहीं पाता.

इस कमजोरी का दुष्परिणाम यह होता है कि वह अपना वास्तविक हित-चिंतक भी नहीं पहचान पाता. उसे यही समझ में आता है कि महंगाई दूर होनी चाहिए, उसके बच्चे को शिक्षा मिलनी चाहिए, उसे . मकान मिलना चाहिए, भ्रष्टाचार दूर होना चाहिए. लेकिन यह सब कौन करेगा— कौन करना चाहता है? यह सब समाजवाद से होग या सर्वोदय से? इस बारे में वह निश्चित नहीं है. कहने की जरूर नहीं कि उसके इस अनिश्चय क पूरा फायदा प्रतिक्रियावादी ताक उठाती हैं. आम आदमी का अनि श्चय, उसकी किंकर्तव्य-विमूढ़ता फासिज्म की सबसे बड़ी शक्ति है. यह किंकर्तव्य-विमूढ़ता ह सांस्कृतिक क्षेत्र में मूल्यांधता फैलाती है. इस अनिश्चय, यानं सही दुश्मन और सही दोस्त क पहचान के अभाव में ही व दुश्मन के खात्मे का नारा नहीं भ्रष्टाचार के खात्मे का ना लगता है. विरोध किसी व्यवस्थ का नहीं, किन्हीं व्यक्तियों का कि जाता है.यह विवेक हीनता उन लो में सबसे ज्यादा दिखलायी पड़ है, जो राजनीति मात्र को बु और भ्रष्टाचार की जड़ मान हैं. इस विवेक-हीनता का शिका 'आम आदमी' बहुत आसानी हो जाता है. विचित्र विडंबना कि जो समझ राजनीति मात्र विरोध करती है, वही हत्या राजनीति का साधन बनायी जाती

इसलिए हमारे बुद्धिजीवि कलाकारों और सबसे ज्यादा रा नीतिज्ञों को 'आम आदमी' सचेत करने की बहुत जरूरत है. सर्वहारा फासिस्ट प्रचार शिकार कभी नहीं बनता. फासि और अंधराष्ट्रवाद का शिक 'आम आदमी' बन सकता

वस्तुतः 'आम आदमी' सचेत करने की सबसे ब जिम्मेदारी प्रगतिशील राजनीति पार्टियों की होती है. 'आ आदमी' गलत रास्ते पर जाता है, जब देश में साफ औ स्पष्ट राजनीति का अभाव हो हैं, जब प्रगतिशील राजनीति 'पह नहीं करती. हमारे देश में 'आ आदमी' को सबसे ज्यादा प्रभा गांधी के व्यक्तित्व ने किया

इसका सबसे बड़ा कारण था कि गांधी ने देश की आम जनता की आशाओं-आकांक्षाओं को जानने के साथ-साथ उसकी सीमाओं को समझ कर उनका आवाहन किया था. बड़ी बात यह हुई कि गांधी ने देश की जनता के सामने ठीक नारा दिया. बुद्धिजीवियों, खासकर साहित्यकारों के बीच 'नारा' शब्द बहुत बदनाम है. ठीक समय देश को ठीक नारा दे पाना कितना मुश्किल और महान कार्य है, यह वही समझ सकता है, जिसने कभी कोई 'नारा' देने की कोशिश की हो. ये नारे देश के 'आम आदमी' के सामने एक उद्देश्य प्रदान करते हैं, एक स्वप्न का निर्माण करते हैं और उसे सक्रिय होने की प्रेरणा प्रदान करते हैं. कुल मिला कर ऐसे नारे अपने समूचे युग को सार्थकता, मूल्य और नैतिकता देते हैं. इस सार्थकता, नैतिकता और मूल्यवत्ता का सबसे निर्णायक वाहक और प्रचारक देश का 'आम आदमी' होता है. इसलिए इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि किसी राजनैतिक आंदोलन की कसौटी यह है कि वह आम आदमी को कितना विवेकवान बनाती है, और आकृष्ट करती है.

विश्वनाथ त्रिपाठी नये साहित्य के समर्थ और जागरूक समीक्षक हैं. वामपंथी, जनवादी और प्रतिबद्ध चिंतक होने के कारण उनकी संपूर्ण संवेदना सामान्य जन के नजरिये से साहित्य का विश्लेषण करती है.

'आम आदमी' उच्च वर्ग की ओर भी देखता है और अपने से निम्न वर्ग की भी ओर. इस तबके के व्यक्ति सीढ़ी पर चढ़ कर ऊपर भी पहुंच जाते हैं और ढुलक कर सर्वहारा भी बन सकते हैं. लेकिन एक बात तय है कि इस तबके की, यानी 'आम आदमी' की, सही दिशा सर्वहारा की ओर है. प्रगतिशील राजनीति की सफलता इस बात पर बहुत निर्भर है कि मध्यवर्ग सचेत हो कर सर्वहारा का कितना साथ देता है. जो लोग राजनीति पर बात करते समय केवल 'सर्वहारा' पर ही ध्यान देते हैं, निम्न मध्यवर्ग या मध्यवर्ग पर विचार नहीं करते, वे संकीर्णतावाद के शिकार होते हैं. सर्वहारा की निर्णायक भूमिका से इनकार का सवाल नहीं है, सवाल सर्वहारा को मजबूत और शक्तिशाली बनाने का है. हमारे देश में ऐसी वामपंथी राजनैतिक पार्टियां भी हैं, जो मध्यवर्ग की क्रांति-सहयोगी भूमिका न समझ पाने के कारण संकीर्णतावाद का शिकार बनती हैं, विचारों में उग्रपंथिता दिखाती हैं और आचरण में फासिस्ट तत्वों का साथ देती हैं. इस दृष्टि से भी 'आम आदमी' के महत्व को समझना बहुत जरूरी है. यह बात भी निर्विवाद है कि निम्न मध्यवर्ग सर्वहारा का सबसे निकट का समूह है. इसीलिए न केवल राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक बल्कि कला के क्षेत्र में भी आम आदमी किसान-मजदूर के साथ बहुत दूर तक दिखलायी पड़ता है. यह अकारण नहीं है कि किसान की जिंदगी पर सबसे ज्यादा लिखने वाले प्रेमचंद के साहित्य में निम्न मध्यवर्ग के चरित्र सबसे ज्यादा दिखलायी पड़ते हैं.

कहने का मतलब यह कि समाजवाद की दिशा में अग्रसर होने वाले देश को 'आम आदमी' के मोर्चे पर अनिवार्यतः लड़ना पड़ेगा. इस समय हमारे देश की प्रगतिशील लड़ाई का सर्वाधिक महत्वपूर्ण मोर्चा शायद 'आम आदमी' का मोर्चा है. इस मोर्चे की लड़ाई निर्णायक रूप से जीत लेने पर ही समाजवादी व्यवस्था की स्थापना की निर्णायक तैयारी संभव है. हम सब जानते हैं कि 'गरीब' की सही और सम्मानजनक संज्ञा गरीब नहीं, 'सर्वहारा' है. लेकिन 'गरीबी हटाओ' नारे को हम सामयिक और ऐतिहासिक आवश्यकता के अनुकूल मानते हैं, क्योंकि गरीब 'सर्वहारा' से अधिक व्यापक शब्द है. इससे हमारी संख्या बढ़ती है, हमारी शक्ति बढ़ती है. जो लोग सर्वहारा के विरोधी हैं, वही गरीब के भी दुश्मन हैं. महंगाई, चोरबाजारी, मिलावट, नौकरशाही, मूल्यांधता, निराशावादिता आदि गरीब, निम्नवर्ग, मध्यवर्ग, खेतिहर मजूर सबके दुश्मन हैं. इस नारे का समर्थन करने और इस लंबे जुलूस में शामिल होने से हम अपने 'समान दुश्मन' को आसानी से पहचान लेते हैं और इस समय अपने दुश्मन को पहचान पाना सबसे जरूरी काम है.

आम आदमी को सचेत करना वामपंथी, जनतांत्रिक और प्रगतिशील राजनीति की जिम्मेदारी है. इस बात से सचेत करने की कि राजनीति और राजनीति में अंतर होता है. सभी तरह की राजनीति बुरी नहीं होती. राजनीति भी अच्छी होती है और बुरी होती है. हमारे देश ने आजादी राजनीति से पायी है, जमींदारी-प्रथा राजनीति ने समाप्त की है, बैंकों का राष्ट्रीयकरण राजनीति ने किया है, बंधुआ मजदूरी राजनीति ने समाप्त की है. भ्रष्टाचार भी अराजनीति नहीं, राजनीति ही समाप्त करेगी. शर्त केवल यह है कि आम आदमी अपना फायदा - नुकसान समझने की दृष्टि प्राप्त कर ले, अपने सही दुश्मन को पहचान ले और सर्वहारा के साथ हो ले. प्रगतिशील राजनीति को इस बात का प्रयास करना पड़ेगा कि इस देश का 'आम आदमी' राजनैतिक आंदोलनों से अलग-अलग न रहे. वह अपने देश की राजनीति में सक्रिय साझेदारी करे. आम आदमी को सही राजनीति की दृष्टि देने और फिर उसे सक्रिय करने का अर्थ होता है प्रतिक्रियावाद की जड़ काटना. आम आदमी सक्रिय होगा तो वह प्रत्येक सुधार के लिए सरकार की ओर नहीं देखेगा. उसमें पहल करने की क्षमता उत्पन्न होगी. तब वह शायद सही और गलत राजनीति में फर्क भी कर सकेगा. □□□

कृतियां

एक उपन्यास

'सोनभद्र की राधा'

लेखक : मधुकर सिंह; प्रकाशक : राजपाल एंड संज, कश्मीरी गेट, दिल्ली–६; पृष्ठ संख्या : ११७, मूल्य : सात रुपये.

> **'जिस दिन काम करने वाले लोग वस्तुओं के हकदार बनेंगे, उसी दिन ये सारी दीवारें आप ही गिर जायेंगी. अभी तो आदमी को बहुत लड़ना है.'**

मधुकर सिंह का उपन्यास सामाजिक बीमारियों को 'एक्सपोज' करता चलता है.यद्यपि उपन्यास का नायक एक 'सुपरमैन' है, वह साधारण रंग-रूप या गुणों वाला युवक नहीं है, फिर भी उपन्यास के मूल संदर्भ में वह सक्रिय-संघर्षी है. गोबिन (नायक) का बाप चमार है और मिसिर बाबा के यहां हल चलाता है. मिसिर बाबा बनगांव के सबसे धनी व्यक्ति हैं, उनके मुकाबले का केवल बलेसर रैदास ही उस गांव में है. बलेसर अपने आपको मिसिर बाबा से बिल्कुल भी कम नहीं समझता. पैसा पास में होने से बलेसर भी अपने आप को चमार की जगह पंडित समझने लगता है और 'चमार बिरादरी से घृणा रखता है'. मिसिर बाबा की लड़की अनुराधा गोबिन से प्यार करती है. उसका भाई महेश प्रगतिशील मस्तिष्क का प्रतीक है. गांव में चेचक फैल जाने से अचानक महेश की मृत्यु हो जाती है और परिस्थितियां एक बार फिर से अनुराधा को अकेले 'लड़ने' के लिए विवश कर देती हैं.

गोबिन गांव में आयी एक रामलीला पार्टी के साथ चला जाता है. रामलीला पार्टी के महंतजी गोबिन की सुंदरता से बहुत प्रभावित हैं और अंततः जमुनापुर के सुदामा तिवारी जी के अनुरोध पर गोबिन को रामलीला में राम का पार्ट दे दिया जाता है. तिवारी जी गोबिन पर लट्टू हैं.

इन्हीं सुदामा तिवारी जी की एक अट्ठारह वर्ष की विधवा बहू है, जो शादी के एक महीनें बाद ही विधवा हो गयी थी. तिवारी जी को 'तो चिंता इस बात की करनी है कि बहू की जिंदगी का निर्वाह कैसे हो!' और निर्वाह के लिए 'एक दिन तो उसने अपनी बहू का ही हाथ पकड़ लिया. यह तो कहो कि वह बेचारी रोने लगी और तिवारी की आंख भी अपनी बेटी गौरा से मिल गयी.' इस विधवा बहू की स्थिति गोबिन बताता है : 'एक रोज उनकी बड़ी बहू मुझे ड्योढ़ी के अंदर घेर कर कह रही थी—मैं इस नरक की जिंदगी से ऊब चुकी हूं. मुझे ले कर कहीं भाग चलिए. मेरे पास काफी रुपये हैं, और मेरे सारे गहने भी. हम कहीं भी जिंदगी अच्छी तरह बसर कर सकते हैं.' और यही विधवा बहू कई बार पहले भुनेसर को आंख मार कर अपने पास बुला भी चुकी थी. और अंत में अपनी ननद गौरा और भुनेसर की सहायता से अपने पूर्व-प्रेमी प्राण गुप्त के साथ गांव छोड़ कर चलीजाती है.

उपन्यास का मूल स्वर व्यापक है. आदमी को 'आदमी' कहे जाने की मांग सर्वोपरि है. गोबिन कवि भी है और रामलीला के बाद वह स्टेज पर अपनी कविताएं पढ़ता है : 'जो बाज हमारा चैन छीन कर आकाश में भाग रहे हैं—हम उनका पीछा करें! हमारे पास लड़ाई के लिए क्या है! आओ, सहस्रों-लाखों हाथों को एक में जोड़ दो—' गोबिन रामलीला पार्टी को छोड़ कर एक अलग गांव सिरीपुर में आ कर सक्रिय हो जाता है. गांव के सारे परिवार एक जगह रहने-खाने लगते हैं. वहां कोई जात-पांत या अमीर-गरीब की दीवार नहीं रहती. अनुराधा बाढ़ के दिनों में बाढ़ से संघर्ष करती अपने गोबिन के पास पहुंच जाती है, और गोबिन अपने जैसे 'हजारों' गोबिन तैयार करने में सफल हो जाता है.

मधुकर सिंह

इस पूरे उपन्यास में एक उत्तेजना-सी व्याप्त है और उपन्यास का अंत इन कविता-पंक्तियों से होता है—'मेरे दोस्तो! यही लोग तुम्हारे हत्यारे हैं, तुम्हें आदमी समझने से इनकार कर रहे हैं. इस असली सूरज की कसम, तुम्हें मरते दम तक इस लाल और इनसान सूरज के लिए संघर्ष करते रहना होगा!'

हालांकि उपन्यास को कहीं-कहीं नाटकीय मोड़ व संयोग भी मिले हैं, तो भी वे अतिरिक्त नहीं महसूस होते. उपन्यास एक नये क्रांतिकारी समाज की वैचारिक-भूमिका तो बांधता है, मगर दिशा धुंधली देता है. उपन्यास की सबसे बड़ी लड़ाई है—'तुम किसी से यह न बताना कि तुम आदमी हो और जिंदा रहना चाहते हो. और न यह बताना कि तुम्हारी जवान बेटियां और जवान बहुएं जालिमों के बिस्तरों पर सोते-सोते लाश रह गयी हैं—रोटी के टुकड़ों के लिए और अब कितने जन्मों तक फैलाते रहोगे हाथ!'

उपन्यास में सामंत वर्ग का पूरी तरह से बहिष्कार किया गया है और उसकी 'जगह समाजवादी मुल्क में जीने का क्या सुख होता है' को उदरस्थ करने की बात पर जोर दिया गया है.

☐ **राजकुमार गौतम**

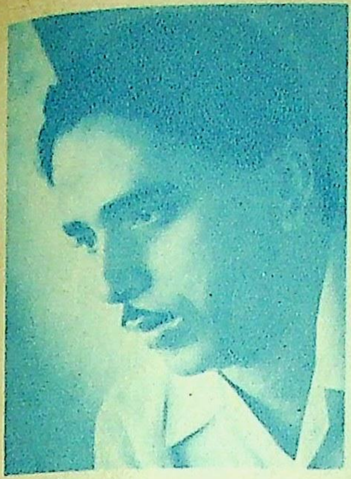

शैलेश मटियानी

एक कहानी-संग्रह

'महाभोज'

लेखक : शैलेश मटियानी; **प्रकाशक :** पराग प्रकाशन, दिल्ली–३२; **पृष्ठसंख्या :** १४१; **मूल्य :** दस रुपये.

● विद्यावत

'महाभोज' की कथाओं में यदि कोई अभाव है, तो बस इतना कि लेखक के नाम की चरितार्थता को सिद्धि तक पहुंचाने वाली रचनात्मक विशिष्टता इनमें नहीं है. कथाएं कमजोर नहीं हैं, न कथा-व्यक्तित्व को आघात पहुंचाने वाली अक्षमता ही है. पारखी दृष्टि सर्वत्र व्याप्त है. पर पाठक को घायल मर्मावस्था तक पहुंचाने वाली संपूर्णता नहीं है. कथाएं औसत अनुभवों की तहों को टटोलती हैं; पात्रों की आंतरिकता में गहरे झांकने का प्रयत्न भी करती हैं. कमी है तो उस मार्मिकता की, जो पाठक को चरम की उपलब्धि तक पहुंचा सके. हो सकता है कि इस निर्णय की पृष्ठभूमि में लेखक से जुड़ी हमारी अपेक्षाएं एवं आकांक्षाएं अधिक उत्तरदायी और दोषी हों! लेकिन आकांक्षाओं का भी एक सत्य होता है, जो सार्थक चरितार्थता की खोज करता है. मटियानी मात्र एक शब्द नहीं है, बल्कि इतिहास के पन्नों पर राह बनाता एक सत्य है. नाम की प्रामाणिकता रचना के मर्मांतक एहसास से उभरती है. **'महाभोज'** के कथा-सूत्रों में इतिहास-बोध जाग्रत करने वाला वह मर्मांतक एहसास नहीं है.

शैलेश ने शिल्प के स्तर पर कोई अन्वेषणात्मक अध्याय नहीं जोड़ा है. कथानक और पात्र जिंदगी की धड़कनों से जन्मे हैं; आम आदमी की संवेदनाओं से जुड़े हैं. इनमें मानव-स्वभाव की अनोखी रागात्मकता भी है, पर राग-संवेदना को योगदान में रूपांतरित करने वाली कलात्मक विशिष्टता नहीं है. इन कथाओं के पात्र और कथ्य जिंदगी के विभीषक रागों-अनुरागों से भरे-पूरे हैं; त्रासदायक मनःस्थितियों को भोगते हुए संवेदनशील जन-मन हैं; विचित्र प्रवृत्तियों में रचे-बसे कथा-पुरुष हैं, पर अनुभव को इतिहास की अनिवार्यता की हदों में पहुंचाने वाला शिल्पी अनुपस्थित है. आम आदमी की, रवानगी में बहती भाषा है, जिसमें कलाकार की नयी बिंबात्मकता है, पर क्या मात्र इतनी सक्षमता शैलेश के प्रति जाग्रत हमारी आकांक्षाओं को तृप्त कर सकती है? इसीलिए इन कथाओं के प्रति हमारी प्रतिक्रिया हमारी अपनी अपेक्षाओं से जन्मती है, शैलेश की कथाओं से नहीं.

यों इन कथाओं में क्या नहीं है, जो हमें असंतोष की मुद्रा सौंपे? मैमूद बकरे को संतान की तरह पोषती जद्दन की आत्मीयता है, जो मेहमानों के लिए कटे मैमूद की मौत में स्वयं को कटा हुआ पाती है (**'मैमूद'.**) अपने भविष्य को खोजता अपराधी राधे काछी है, तथा जिंदगी की पूर्णता को टटोलती शांति अहीरन है (**'भविष्य'.**) छिद्दा पहलवान के अन्याय से जूझने की असमर्थता में घुटता, विघटित होता रामभरोसे है (**'छिद्दा पहलवान वाली गली'.**) अपने बच्चों की परवरिश के लिए अपंग लालमन के मलमूत्र को धोती गनेशी है, जो जिंदगी की भयानकता को समक्ष कर पूरी वयस्क हो गयी है (**'मिट्टी'.**) अपनी शिकार बुढ़िया महिला के दर्द में छटपटाता उठाईगीर गफूर मियां का मन है (**उठाईगीर.**) उत्सव में विधवा मन का परित्राण खोजती अभागिन गीता है, जो उत्सव के बाद फिर अभागिन हो जाती है (**'उत्सव के बाद'.**) अपने बेटे के हत्यारे सत्यप्रकाश को फांसी के तख्ते तक पहुंचा कर अपना बयान बदलती गिरिजादेवी हैं, जो सत्यप्रकाश की मां की मृत्यु की करुणा से मातृत्व की भीतरी तहों में आहत हो जाती हैं (**'पत्थरों के बीच से लौटते हुए'.**) एक रामखिलावन नामधारी बोझ-स्वरूप बालक है, जो अपनी अभागिन मां की पीड़ाओं से भावात्मक रूप से जुड़ा है, पर उसके पास न अपनी भूख का विकल्प है, न मां की मौत का (**'चील'.**) आखिरी बकरी को हलाल करते-करते खुदा के हाथों हलाल हो गये खत्तन मियां हैं, जो सलमा बीबी की याद को मन के अंधेरे में मोमबत्ती की तरह जलाये थे (**'हलाल'.**) आदर्शों में अस्तित्व की सार्थकता खोजती अनुत्तरदायी चौतीराम की आदर्श-अनुराग से भरी पत्नी शिवरती है, जिसकी आत्मा पर आदर्श पवित्रता की बलिवेदी की तरह चिपका है (**'महाभोज'.**)

फिर क्या नहीं है इन कथाओं में? भाषा नहीं है कि प्रामाणिक चित्रांकन नहीं है कि चील जैसा प्रतीक नहीं है कि कायरता का विस्फोटक अहं यानी छिद्दा पहलवान का आतंक नहीं है? **'महाभोज'** की कथाओं में शैलेश के नाम को बचाये रखने वाली सारी बारीकियां मौजूद हैं, पर शैलेश के नाम को आगे बढ़ाने वाली मर्मांतक कथात्मा नहीं है, जो अनुभूति का नया अध्याय खोल सके.

☐ **रामदेव आचार्य**

गोष्ठी रपट

समांतर कहानी पर एक चर्चा-गोष्ठी

दिल्ली के 'लेखिका संघ' की ओर से पिछले दिनों 'कांस्टीट्यूशन क्लब,' नयी दिल्ली में समांतर कहानी पर एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया. इस गोष्ठी की अध्यक्षता कथाकार श्री कमलेश्वर ने की और प्रख्यात कथाकार श्री जैनेंद्रकुमार, श्री उपेंद्रनाथ अश्क और श्री राजेंद्र यादव ने भी गोष्ठी में भाग लिया. गोष्ठी में श्रीमती सुमन मेहरोत्रा और श्री हिमांशु जोशी ने अपने निबंध पढ़े.

हिमांशु जोशी ने अपने लेख में कहा कि '**कफन**' और '**पूस की रात**' के बाद, यानी स्वतंत्रता के बाद, आयातित संस्कृति का दौर शुरू हुआ. पश्चिम का दर्शन अपना रंग दिखलाने लगा, जिसने अपने ही देश में लेखक को अजनबी बना दिया. इस दौर की कहानियों पर विचार करते हुए हिमांशु ने आगे कहा कि '**खोयी हुई दिशाएं**' ने इस दृष्टि से (समांतर सोच की दृष्टि से) नयी दिशा की ओर संकेत किया. मानव-यंत्रणा तथा बाह्य शक्तियों के उस पर दबाव के कुछ और पक्ष उजागर हुए. 'नयी कहानियों के दौर में जहां व्यक्तिगत सामाजिकता का स्वर अधिक उभर कर आया, वहां समांतर कहानी समग्र समाज की समस्याओं के प्रति अधिक जागरूक रही. इसके साथ ही व्यक्ति तथा समाज के प्रति प्रतिबद्धता का महत्वपूर्ण स्वर भी उभरा.'

हिमांशु का आधारभूत तात्पर्य यह था कि 'प्रश्न नये पुराने का नहीं, एक सही-साफ दृष्टिकोण का है. हर आदमी के लिए जीना ही नहीं, सही रूप से जीना भी जरूरी है. जो हम हैं, वह आज का यथार्थ है, जो हमें होना है, वह कल का—वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं. आज का लेखक एक की निर्मम अभिव्यक्ति करते हुए दूसरे के लिए संघर्षशील है.'

श्रीमती सुमन मेहरोत्रा ने अपने लेख 'समांतर कथा साहित्य में आम आदमी की तस्वीर' में कहा कि आज के कथा-साहित्य के अनुभव बोध, संवेदना के आग्रह, आधुनिक जीवन-दृष्टि की प्रक्रिया, समांतर विकास तथा उसके स्तरीय संदर्भों की रचना आदि ने उसे शिव और सुंदर पर नहीं, प्रमुखतः सत्य पर केंद्रित किया है. . . आज का आम आदमी दोहरा जीवन जीने की त्रासदी से गुजर रहा रहा है. उन्होंने आम आदमी और समांतर लेखन पर विस्तार से विचार करते हुए कहा : 'आज का समांतर लेखन कई व्यक्तिगत प्रश्नों को समयगत धारणाओं की तुला पर तोलता है और इसी में अपनी आंतरिक शक्ति का उद्बोधन करता है. . .आम आदमी की केंद्रीय स्थिति यह है कि वह 'बाहरी' शक्तियों के समक्ष असमर्थ, जिंदगी की विसंगतियों को भोगता हुआ, बहुस्तरीय संत्रास का अनुभव करता है, फिर भी जीना चाहता है.'

इन दोनों लेखों के बाद चर्चा प्रवर्तन करते हुए कथाकार कामतानाथ ने कहानी के ऐतिहासिक विकास की पृष्ठभूमि में समांतर कहानी की अनिवार्यता पर विचार किया. कामतानाथ ने समय के सत्य को परिभाषित करते हुए कहा कि जनसंघर्ष ही समयगत सत्य का वास्तविक रूप है. उन्होंने प्रगतिशील आंदोलन की चर्चा की और कहा कि उसकी सबसे बड़ी विशेषता जन जीवन से जुड़ा होना थी. उस समय की सामाजिक विसंगतियों और संस्कारगत रूढ़ आदर्शों पर उस दौर की सशक्त कहानियों में तीखा प्रहार मिलता है—लेकिन उनकी दुर्बलता यह थी कि वे जीवन की सत्यता और यथार्थ पर कम आधारित थीं, उनमें फार्मूलाबद्धता और विचारात्मक इकाइयां अधिक थीं. कामतानाथ ने नयी कहानी की 'प्रामाणिकता की खोज,' उसके संपूर्ण स्वीकार को किन्हीं अंशों में मानते हुए यह भी स्वीकार किया कि 'नयी' कहानी ने व्यक्ति को उसके परिवेश से जोड़ा, लेकिन इसमें भी सबसे बड़ी दुर्बलता यह रही कि लेखक की अपनी प्रतिबद्धता गायब रही.

कामतानाथ ने कहा कि समांतर कहानी साधारण जन की जिंदगी, व्यवस्था के विरुद्ध उसके संघर्ष और जिंदगी को बेहतर बनाने की आकांक्षाओं को आत्मसात करती है. आम आदमी संघर्षरत है, अपने संपूर्ण अस्तित्व के संकट के दौर से गुजर रहा है—समांतर

समांतर साहित्य पर बहस : (बायें से) सर्वश्री उपेंद्रनाथ अश्क, जैनेंद्र कुमार, कमलेश्वर और भीष्म साहनी

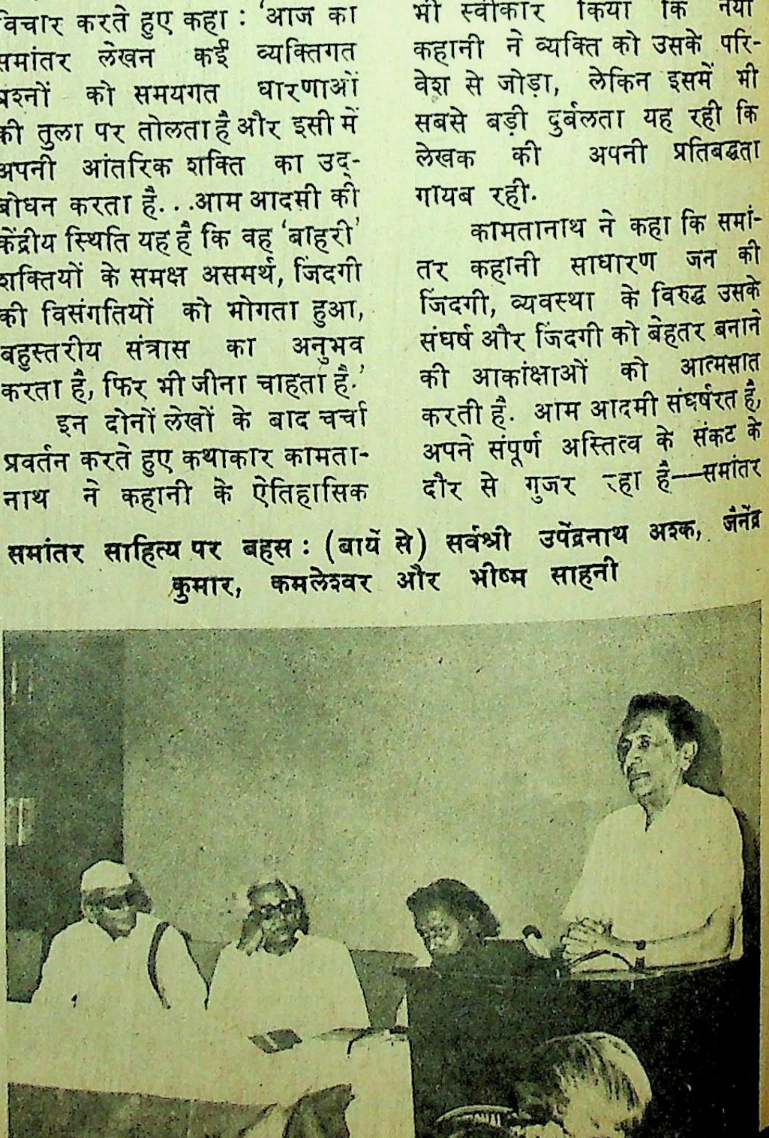

कहानी उसके इसी संकट की कहानी है, जिसमें पूर्ववर्ती संबंधहीनता, मूल्यहीनता और अनास्थावादी धारणाओं का भी निषेध है.

प्रख्यात कथाकार भीष्म साहनी ने समांतर कहानी में आम आदमी की तस्वीर पर विचार करते हुए कहा कि आम आदमी संकटपूर्ण स्थितियों में जी रहा है, उसके सामने कई समस्याएं हैं, लेकिन वह उतना असहाय नहीं है. उसमें अपने स्वत्व के प्रति संघर्षशील होने की क्षमता है.

डॉ. विनय ने कहा कि प्रत्येक युग के साहित्य का एक केंद्रीय चरित्र होता है, जो युगीन परिस्थितियों के आग्रह से एक अनिवार्य प्रक्रिया के रूप में रचनाशीलता को प्रेरित करता है. लेखक उसी को चित्रित करता है. समांतर कहानी की केंद्रीय धुरी सामान्य जन है. कथा की प्रस्तुत संवेदना युग के आग्रह का ही परिणाम है. समांतर कहानी न केवल आम आदमी की असहायता और विवशता का चित्रण करती है, वह उसकी जुझारू, संघर्षशील प्रकृति को भी उजागर करती है, जिसके तहत वह अपने जीने की खोयी हुई शर्तों को पाने की कोशिश करता है.

इसके बाद श्री जैनेंद्रकुमार ने आम आदमी पर बात करते हुए आम और खास की दार्शनिक व्याख्या की और कहा कि आम आदमी पर विचार करते समय कहीं हम आदमी के किसी एक रूप की उपेक्षा तो नहीं कर रहे? क्या वह लालकिले के दीवाने-आम, दीवाने-खास की तरह ही पृथक तो नहीं? उनका विचार था कि सिर्फ आदमी की बात की जाये, जिससे मानवता का व्यापक भाव आ सके. बाद में न बोलना चाहते हुए भी अश्क जी ने कहा कि वह तो पिछले तीस साल से आम आदमी की ही बात कर रहे हैं, लिख रहे हैं, तब किसी ने उसे नहीं माना. . . . व्यंग्य की चुटकी लेते हुए उन्होंने कहा कि कहानी चाहे सामान्य व्यक्ति की हो या विशेष की, कहानी होनी चाहिए. अश्क जी के विचार में विशेष व्यक्ति की मानसिक यातना भी अच्छी कहानी का विषय हो सकती हैं. जैनेंद्र जी के दार्शनिक कथन पर आपत्ति करते हुए डॉ. गंगाप्रसाद विमल ने कहा कि विशेष और सामान्य को जोड़ कर मानवतावाद की बात करना वास्तविक स्थिति को नकारना और सही दिशा को अवरुद्ध करना होगा.

अब गोष्ठी के अध्यक्ष श्री कमलेश्वर ने बोलना शुरू किया और समांतर कहानी पर अनेक आरोपों का सीधा जिक्र न करते हुए ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में कहानी की यात्रा बताते हुए समांतर कहानी की समय-सापेक्षता की अवधारणा पर प्रकाश डाला. उन्होंने समांतर कहानी के वैचारिक पक्ष को प्रस्तुत करते हुए कहा कि शाश्वत और समय-निरपेक्ष साहित्य का सृजन काफी समय से होता आ रहा है, जो अंततः आत्मविस्मृति से भरा है और सामान्य व्यक्ति के दुख-दर्द की उपेक्षा करता रहा है. अब समय इस बात का है कि वास्तविक स्थितियों को पहचान कर आम आदमी के संघर्ष में लेखक भागीदार बने. स्थितियां जिस तरह से बदलती हैं, उनकी सही जांच-पड़ताल जरूरी है, जिससे साहित्य को सही दिशा मिले. अपने मत की पुष्टि के लिए कमलेश्वर ने कई लघुकथाएं उदाहरणार्थ सुनायीं और इस बात पर बल दिया कि आम आदमी से संबद्ध साहित्य के प्रश्न को ले कर प्रतिबद्धता के साथ संबद्धता को भी जरूरी मानना चाहिए. हमें जो कुछ भी अभिव्यक्त करना है, वह मनुष्य-सापेक्ष होने के साथ समय-सापेक्ष हो. 'केवल व्यक्ति की असहायता को वाणी देना समांतर साहित्य का दायित्व नहीं, उसका दायित्व उस व्यवस्था पर चोट करना है, जिसके तहत व्यक्ति कमतर जिंदगी जीने पर विवश होता है.'

□ **प्रमिला विनय**

अखिलन

ज्ञानपीठ पुरस्कार-'७५

ग्यारहवां ज्ञानपीठ पुरस्कार–१९७५, तमिल के विख्यात कथाकार श्री अखिलन को उनके उपन्यास 'चित्तिरप्पावै' के लिए दिया गया है. पुरस्कार-समर्पण समारोह संभवतः दिसंबर के पूर्वार्द्ध में होगा, जिसमें श्री अखिलन को पुरस्कार की राशि एक लाख रुपया, प्रतीक वाग्देवी की कांस्य प्रतिमा और प्रशस्तिपत्र भेंट किया जायेगा.

अखिलन का जन्म १९२३ में तिरुचिरापल्ली के एक छोटे-से कस्बे पेरुगलूर में हुआ. छोटी उम्र में ही अखिलन अपनी स्कूली पढ़ाई छोड़ कर स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े. इन्होंने १९४२ में 'भारत छोड़ो' आंदोलन में युवकों को संगठित किया और जेल गये. १९४५ से १९५७ तक इन्होंने रेल डाक सेवा में कार्य किया. आजकल आकाशवाणी के मद्रास केंद्र पर प्रोड्यूसर हैं.

अखिलन ने लगभग ४० पुस्तकों की रचना की है, जिनमें उपन्यास, कथा-संग्रह, नाटक, निबंध और बाल-कथाएं शामिल हैं. इन्हें तमिल अकादमी, साहित्य अकादमी तथा अन्य राज्य पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है. □

धारावाहिक उपन्यास (छठी किस्त)

लाल पसीना

• अभिमन्यु अनत

अब तक आपने पढ़ा है :

सदियों पूर्व विस्तृत महासागर के बीच ज्वालामुखी के विस्फोट से मॉरिशस द्वीप का जन्म हुआ. सदियों तक यह द्वीप वीरान पड़ा रहा. फिर विभिन्न देशों ने इसे भारत तक पहुंचने का रास्ता बनाया. भारतीय मजदूरों के दल वहां पहुंचाये जाने लगे—इस आश्वासन पर कि अंग्रेज लोग मॉरिशस को फ्रांसीसियों से मुक्ति दिला कर भारतीयों को सौंप देंगे और मॉरिशस की धरती का सारा सोना उन्हें मिलेगा. इन मजदूरों में कुंदन भी था, जिसे स्वर्ण के बदले मिली उम्र-कैद. पर वहां वह अकेला नहीं था. अनेक भारतीय वहां थे— निर्दोष, भोले-भाले भारतीय लोग, जो अकसर बिना बात जेल भेज दिये जाते थे. . . अब कुंदन को जेल से निकलने का रास्ता मिल गया था. . . . वह जेल से भाग निकला और एक गांव में जा पहुंचा. गोरे मालिक लोग भारतीय मजदूरों पर तरह-तरह के जुल्म ढाते थे. कुंदन ने अपना नाम बदल कर देवननन् कर लिया और मजदूर बन कर रहने लगा...इन मजदूरों में गांव के मुखिया रघुसिंह का लड़का किसन भी था. किसन अपनी जाति के लोगों की बेबसी देख कर परेशान रहता था. पुष्पा से उसका स्नेह था. कुंदन ने पुष्पा को एक भेंट दी. . . . एक पीली धोती. . . अब आगे पढ़िए—

पुष्पा के हाथ से पीली धोती ले कर फूलवंती ने उसे गौर से देखा. दूसरे ही क्षण उसकी आंखों के सामने एक के ऊपर एक कई चित्र झिलमिला उठे. उन पिछले सैकड़ों सपनों की तरह इसे भी उसने सपना ही समझा. लेकिन सपने दूसरे क्षण मिट जाते थे. यह तो आंखें मूंदते खोलते ज्यों का त्यों बना रहा. धोती को हाथ में लिये फूलो बाहर से आते हुए बिरहे को सुनती रही. वह बिरहा सपना नहीं था—और अगर वह बिरहा सपना नहीं था, तो वह धोती सपने की नहीं हो सकती थी. वह उसे उलट-पलट कर देखती रही. वर्षों पहले की कई यादें एक साथ आयीं.

. . .नदी किनारे धोती धोते समय उसके निचले छोर में केले के दाग का लग जाना. . . . एकदम ऊपर के भाग में अपने पति की रक्षा के लिए फूलो ने केले के दूध से जो मंगलचिह्न बना दिया था—वह भी ज्यों का त्यों था.

यह वही धोती थी.

इस बात का पूरा विश्वास हो जाने पर फूलो बारी-बारी से पुष्पा और धोती को देखती रही. काफी चेष्टा के उपरांत भी उसके मुंह से शब्द नहीं निकला. उस कम समय में अपनी मां के चेहरे की उन विचित्र प्रतिक्रियाओं से पुष्पा हैरान थी. वह भी निःशब्द उसे घूरती रही. उसने अपनी मां की आंखों को सजल हो जाते देखा और अंत में उसके मुंह से निकल ही पड़ा —क्या बात है, मां?

फूलवंती कुछ नहीं बोली. उसने जल्दी से अपनी आंखें पोंछ लीं. फिर भी भीतर से डबडबायी आंखों के कारण उसके सामने की चीजें धूमिल रहीं. पुष्पा का चेहरा भी धुंध में डूबा रहा.

फूलवंती की ओर एकटक देखते हुए पुष्पा ने दोबारा प्रश्न किया.

उसकी मां फिर भी चुप रही. उसकी वह ऊपर की चुप्पी भीतर की खलबली को स्पष्ट कर रही थी. भीतर की उथल-पुथल के कारण को जानने के लिए अधीर पुष्पा एकदम छोटी बच्ची की तरह मां से लिपट गयी. ऐसा करके मौन रूप से उसने अपने प्रश्न को फिर से दोहराया. उत्तर में फूलवंती का हाथ उसके बालों को सहलाता रहा. दिन में पुष्पा की एक छोटी-सी भूल पर वही हाथ थप्पड़ के रूप में उसके गाल पर पड़ा था.

कई बार ऐसा हुआ था.

कई बार अपनी मां के थप्पड़ खाने के कुछ ही देर बाद पुष्पा को उसका स्नेह मिल जाता, पर आज का स्नेह भिन्न था.

सूर्य की किरणों के साथ बाहर के बकाइन के पत्तों की जो छाया भीतर आ गयी थी, उसी कंपन के साथ पुष्पा के खयाल भी भीतर ही भीतर कंपित रहे. जब एकाएक किसी बदली के कारण पत्तों की छाया सूर्य-किरणों के साथ ओझल हो गयी, तो उसकी जगह पुष्पा ने अपने भीतर के खयालों को आंखमिचौनी खेलते पाया.

. . . मां को बीते दिन याद आ गये होंगे. . . पर यह धोती? . . . शायद पिताजी इसी रंग की धोती पहनते होंगे . . .

और भी कई तरह के खयाल धूप में पत्तों की परछाईं की तरह झिलमिलाते रहे. जिस तरह धूप के बीच से पत्तों की परछाईं को पकड़ना असंभव था, ठीक उसी तरह अपने संभावित खयालों में से एक को सही मान लेना उसके लिए कठिन रहा. उसकी मां कई बार रोयी थी. कई बार उसकी आंखों से आंसू बहे थे. कई बार पुष्पा को अपने से सटा कर उसने परिस्थिति की पीड़ा को सहा था. लेकिन हर बार की विकलता के कारण स्पष्ट होते थे. वजह जानने में पुष्पा को इतनी देर कभी नहीं हुई थी. स्वयं विकल हो कर उसने धीरे से भिन्न स्वर से पूछा—क्या बात है, मां?

फूलवंती की खामोशी टूट कर रहीं.—है धोती तोके के देलक, बेटी?

—देवननन् चाचा ने.

दूसरे ही क्षण पुष्पा के साथ फूलो कुंदन के घर के भीतर थी.

—भैया, है केकर धोती है?

—मेरी है, क्यों?

—नाहीं— ई आपकी नाहीं.

—कैसे कह सकती हो?

—सच-सच बता भैया, ई केकर ह?

—सच, सच यह है कि. . . . कुंदन के चुप होते ही पुष्पा ने कहा— चुप क्यों हो गये, चाचा?

—मेरे एक मित्र की है.

फूलवंती ने तुरंत कहा—नाहीं देवननन् भैया, ई धोती मेरे पति के राहल.

—तुम्हारे पति की?

—हां, भैया.

—तुम भूल रही हो. धोती की तरह धोती हुआ करती है.

—भैया, आप कैद से आईल हैं न?

—नहीं तो.

—है धोती त हम लाख धोती में पहचान लेवब.

—क्या था तुम्हारे पति का नाम?

—बता दे, पुष्पा.

—मेरे पिता का नाम मंगरू है, चाचा.

कुंदन को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ.

बाहर बच्चों का शोर पराकाष्ठा पर था.

★ ★

एक सप्ताह पहले बस्ती के बच्चों को चोर-सिपाही का खेल खेलते पा कर कुंदन ने सभी को अपने इर्द-गिर्द बुला लिया था. बच्चों के सामने ही उसने अमरूद की लकड़ी काट कर गुल्ली-डंडा बनाया था और अपने बचपन के दिनों को याद करते हुए बच्चों को वह खेल खिलाया था. चोर-सिपाही का खेल खेलते हुए बच्चों को उसने इसलिए गुल्ली-डंडे की ओर आकर्षित किया था, क्योंकि जिस ढंग से वे बच्चे चोर-सिपाही का खेल खेल रहे थे, वह कुंदन को अच्छा नहीं लगता था. नये खेल से बच्चे खुश थे. उनकी उमंग कोलाहल का रूप ले लेती थी.

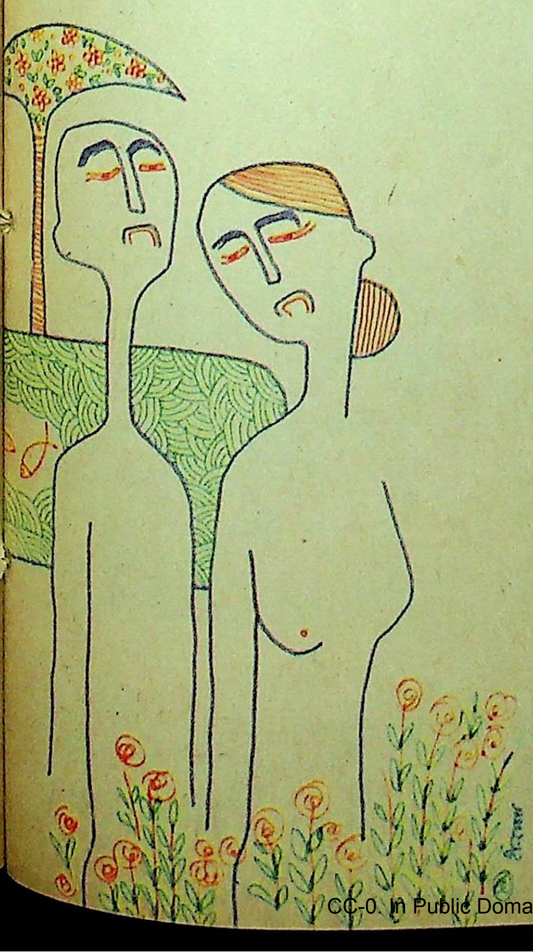

डी. ए. राणा

शाम के उस धूमिल वातावरण में भी घरों की दोनों कतारों के बीच के खुले भाग में बच्चे खेल में लगे थे. किसन काम से अभी-अभी लौटा था. हाथ-पांव धोने के लिए घड़े में पानी नहीं था. कुएं सूखे पड़े थे. किसन चौखट के पास बैठे बच्चों का खेल देख रहा था. काम से लौटते हुए रास्ते में उसने ईख की जो पिछली गुल्ली चूसी थी, उससे उसके हाथ-मुंह लसलस हो गये थे.

किसन का जी बच्चों के साथ मिल जाने को करता. वे सभी खेल में इस तरह खोये हुए थे कि आस-पास की बाकी चीजों का उन्हें तनिक भी भान नहीं था. किसन ने बार-बार चाहा था कि वह भी कुछ घड़ियों के लिए अपने को सामने की स्थिति-परिस्थिति से काट ले. असंभव था ऐसा करना. एक बार उसने गोपाल के बाप से पूछा था कि उसके गांजा पीने का क्या कारण था. इस पर गोपाल के बाप ने गांजे के धूएं से ललछौंह मूछों पर ताव देते हुए कहा था— अपन को इ सब झंझट से अलग करेके और कोई उपाय भी तो नाहीं.

अपने को झंझटों से अलग करने के लिए एक बार किसन ने भी चुपके से उस पौधे का एक कश ले ही लिया था, जिसे गोपाल का बाप चोरी-चुपके पिछवाड़े के जंगल से ले आता था. सुना गया था कि इस पौधे को रोपने वाला वही पहला आदमी था. उस कश से किसन का सर चकरा कर रह गया था. उसे झंझट से राहत नहीं मिली थी.

इस समय बच्चों को निश्चितता के साथ खेल में जुटे पा कर उसका मन ललच-ललच कर रह जाता था. दिन भर की अपनी सारी थकान को भूल कर वह भी बच्चों के साथ बच्चा बन जाने की सोच रहा था.

घर के भीतर से आती हुई चक्की की घरघराहट उसके भीतर के खयालों को और भी बोझिल किये जा रही थी. चावल के पकाने योग्य न होने के कारण चक्की में मकई पीसी जा रही थी. मां का गुनगुनाना, जो उसे हमेशा बहुत अच्छा लगता था, इस समय उसके कानों को खल रहा था. जांते की वह घरघराहट उसके कानों में बजती हुई, उसे कीड़े भरे चावल की याद दिला रही थी. कानों के रास्ते से चुभती हुई मस्तिष्क तक पहुंच कर वह आवाज उसे झनझनाती रही.

अंधेरा एकाएक घिर आया था. इसका खयाल किये बिना किसन हाथ-पांव धोने के लिए नदी की ओर चल पड़ा. अपने आप में यह सोचते हुए कि जब कारखाने में पानी ही की जरूरत थी, तो वह नदी से भी लिया जा सकता था. गांव का सारा पानी क्यों बटोर लिया गया था? छोटी-छोटी बातों पर मजदूरों को बड़ी-बड़ी

सुलक्षणा पंडित
प्रस्तुत करती हैं
फिनिलिन
दिनभर की ताज़गी के लिए
अतिसुंदर **पॉलिएस्टर**
साड़ियों का नया संग्रह
PHOENIX
भारत के सर्वोत्तम परिधान !
CONCEPT-PM-1698

यातनाएं देने के लिए? निर्ममता की हद उसके खयालों को और भी अस्त-व्यस्त कर जाती.

वह रास्ते से लौट कर कुंदन के घर आ गया. कुंदन पहले ही नदी पर पहुंच गया था. पुष्पा घर के भीतर चिराग जला कर बाहर आ रही थी. किसन को देख कर ठिठक गयी. उसके मुंह से निकला—देवननन् चाचा नदी की ओर गये हैं.

—मैंने कुछ और ही सोचा था.

—क्या सोचा था?

—मैं जाती हूं.

—पूरी बात तो सुन जाओ.

—तुम्हीं बोलो, तुम्हीं सुनो.

—अच्छा तो फिर नहीं बोलता. अब तो ठहरो.

—मैं नहीं ठहरती.

नीचे बिछी हुई वाक्वा की चटाई पर बैठते हुए किसन ने पूछा—क्यों नहीं ठहरतीं?

—तुम अब पहले जैसे नहीं रहे.

—तुम चाहती हो कि मैं पहले ही जैसा रहूं—उसी घुटनों तक की कमीज में बहती हुई नाक के साथ. . .

—तुम मेरा मतलब अच्छी तरह समझते हो.

—समझता हूं, तभी तो कह रहा हूं कि. . . .

—पहले तुम इस तरह रूखेपन से बातें नहीं करते थे. हर समय मेरे पीछे-पीछे रहते थे. कहानियां सुनाते थे. मेरे लिए गीत गाते थे.

—तुम उस समय की बात कर रही हो, पुष्पा, जब मैं गुलाम की उम्र का नहीं था.

कुछ क्षण के लिए दोनों चुप हो गये.

घर के बीच की दीवार के पीछे से सहमे हुए स्वर में हनुमान चालीसा सुनायी पड़ता रहा.

लोटे को राख से मांज चुकने के बाद उसे अपनी ओढ़नी के छोर से पोंछती हुई फूलवंती उसके चमकीले भाग में अपलक आंखें गड़ाये रही. धीरे-धीरे सामने के माहौल से कटती हुई वह पीछे को लौटती गयी. . . .

वह भारत छोड़ कर सात समुद्र पार आना चाहती थी. उसने तो अपनी मां से कहा था कि वह वहीं रह कर सभी कुछ झेल सकती है. उसकी मां, जो पति की मृत्यु के बाद से अपनी कमर को सीधा नहीं कर पायी थी, फूलो से लिपट गयी थी. उसे अपने जीवन की कोई आशा नहीं थी. महामारी में सभी कुछ तहस-नहस हो गया था. उस लंबी सूखारी ने उसे भी भीतर-बाहर से सुखा दिया था. बिहार की भूमि बंजर-सी पड़ी हुई थी. आरा के इस छोर से उस छोर तक हाहाकार था. फूलो का गांव बेबसी की सांसें लेता-सा लग रहा था. खेतों में अस्त-व्यस्तता थी. न काम था, न रोटी थी. फूलो की मां अपने दो बच्चों को भूख से मरते देख चुकी थी. उसका बड़ा लड़का माधो मारीच देश को चला गया था. धीरे-धीरे गांव खाली होने लगा था. झोपड़ियों की छतों पर कौवों की संख्या बढ़ती गयी थी. तालाब, नदी, नाले, सभी सूखे पड़े थे. जहां-तहां बची हुई फीकी हरियाली के ऊपर पीलापन गहरा होता जा रहा था.

तीन दिन की भूखी-प्यासी फूलो के माथे पर हाथ फेरते हुए उसकी मां ने उससे यही तो कहा था कि बस्ती उजड़ी जा रही थी. सगे-संबंधी, सभी, रोटी की तलाश में इधर-उधर जा चुके थे. गांव में कोई नहीं बचा था, जिससे जान-पहचान हो. फूलो की मां को अपनी अंतिम घड़ी पास आती-सी प्रतीत हुई थी. वह चाहती थी कि कोई काफिला बनारस की ओर जाता मिल जाये, तो वह उसमें से किसी एक व्यक्ति के जिम्मे फूलो को सौंप सकती थी. अपनी मृत्यु पर अधिकार जमाये वह प्रतीक्षा करती रही.

उस दिन पंद्रह-बीस व्यक्तियों के साथ धनवा सरदार गांव से गुजरा था. फूलो की मां से भी उसने वही कहा था, जो गांव-गांव कहता आ रहा था. उसकी बातों पर फूलो की मां कैसे विश्वास नहीं करती, जब कि उसके माथे का टीका उतने गहरे रंग का था! उस झुंड में सात स्त्रियां भी थीं. उन्हीं में से सबसे अधेड़ के हाथों में फूलो को सौंपते हुए मां ने कहा था—बहन, अपन ही समझयो.

लोटा ही वह आखिरी चीज थी, जिसे गठरी में रख कर फूलो की मां अपनी बेटी से लिपट गयी थी. मन-ही-मन उसने प्रार्थना की थी कि मारीच में फूलो को माधो मिल जाये. दोनों भाई-बहन मिल कर सुख से रहेंगे. धनवा सरदार की बात सच निकलेगी. हर पत्थर के नीचे से सोना निकलेगा, और यहां रोटी-कपड़े के मुहताज ये लोग धनधान्य से भरपूर हो जायेंगे.

जहाज में फूलो एक क्षण अपनी मां के बारे में सोचती थी, तो दूसरे क्षण सात समुद्र पार के उस जजीरे के बारे में, जहां वह जहाज के तीन सौ व्यक्तियों के साथ जा रही थी. अपनी मां, अपने गांव, अपनी झोपड़ी से दूर होने के दुख को वह यह सोच कर कम कर जाती थी कि मारीच में उसे अपना भाई मिल जायेगा. दोनों मिल कर उस मायावी देश के पत्थरों के नीचे से बहुत सारा सोना बटोरेंगे और फिर अपने देश को लौट आयेंगे. उस समय वह सोलह पार कर गयी थी, फिर भी उसकी कल्पना बच्चों की-सी हो गयी थी. जहाज के सभी लोग प्रायः उसी की तरह सोच रहे थे. सरदार ने कुछ इस तरह से बातें सुनायी थीं कि जहाज का हर आदमी यही सोचने लगा था कि वह परियों के देश को जा रहा है. यात्रा कई दिनों की हो जाने पर भी जब किसी द्वीप का नामोनिशान नहीं दिखा, तो लोग विचलित-से हो कर एक स्वर में पूछ बैठे थे—कहां बाटे मारीच का देश?

सरदार ने हंस कर उत्तर दिया था—मैं तुम सब की अधीरता को समझता हूं. बस, कुछ दिनों की बात है. सबूरी रखो. सभी मालामाल हो जाओगे.

अधीरता के दिन लंबे प्रतीत होने लगे थे. सभी यात्रियों को ऐसा लग रहा था कि जहाज अथाह सागर में रुक गया था. फूलो के मन में कई बार यह विचार पैदा हुआ था कि वह जहाज से कूद कर पीछे को लौट जाये. अगर ऐसा कर पाना सरल होता, तो वह कर गयी होती. उसके लिए बस अपने को कोसना ही बाकी रह गया था. उसे किसी भी हालत में

अपनी मां को नहीं छोड़ना चाहिए था. उसे अंतिम क्षण में उस दयनीयता में छोड़ कर उसने पाप किया था. वह दुखी थी, भयभीत थी. इस अनर्थ के लिए आगे के आने वाले दिनों में उसकी क्या दशा होगी? जिस पराये देश में वह जा रही थी, वहां शांति से कैसे रह सकेगी? क्या करे?

सिर पर फूलदार रूमाल बांधे रहने वाला वह आदमी, जो यात्रा के पहले दिन से उसके आसपास ही रहता था, उसके अति पास आ गया था. उस समय मौसी, जिसके जिम्मे फूलो को किया गया था, जहाज के दूसरे छोर पर थी. वह व्यक्ति उसके पास की गठरियों को हटा कर फूलो के पास बैठ गया था. उसने प्रश्न किया ––तू एतना उदास काहे बानी?

फूलो ने एक क्षण उसे देख कर फिर से आंखें झुका ली थीं. आसपास के लोग अपनी-अपनी बातें किये जा रहे थे. एक क्षण चुप रह कर उस व्यक्ति ने दूसरे प्रश्न का साहस किया था.

––घर के बहुत याद आवता न?

जहाज के बोरों के बीच इधर-उधर सभी लोगों ने अपने लिए जगह बना रखी थी. कभी-कभार जहाज के कर्मचारी उनके साथ इस तरह पेश आते जैसे कि बोरों के बीच वे भी बोरे थे. एक दिन चावल का बोरा समझ कर जहाज का एक कर्मचारी नींद में सोयी हुई फूलवंती को उठा कर एकांत कोने में पहुंच गया था. फूलो चिल्लायी थी. कई लोग अपनी-अपनी जगह पर उठ कर बैठ गये थे. पर आगे कोई नहीं आया था. कर्मचारी ने फूलवंती को दूसरे बोरों के ढेर पर पटक दिया था. सामने खड़े दलाल के हाथ से चांदी का सिक्का ले कर वह वहां से टल गया था. दलाल ने मीठे स्वर में बात शुरू की थी. फूलो अपने में सिमटती गयी थी. धीरे-धीरे दलाल उसके पास आता गया था और फूलवंती भीतर दहलती गयी थी. अपनी डरावनी मुसकान के साथ दलाल ने हाथ आगे बढ़ाया था–– पर उसका वह हाथ फूलो के लहंगे तक पहुंच जाता कि तभी पीछे से किसी ने उसकी गरदन दबोच ली थी. फूलो ने उस धुंधलके में भी उस आदमी को पहचान लिया था. वह वही, उसका हाल पूछने वाला आदमी था. अपनी सारी ताकत के साथ दलाल को पीछे खींच कर उसने उसे पीछे के बोरों पर फेंक दिया था. दलाल ने कठिनाई से उठ कर उसे तरेरा था और गालियां बकता हुआ चला गया था.

तीन दिन बाद जहाज बंदरगाह से लगा था और तीन सौ बीस कुलियों में से तीन सौ उन्नीस ही जहाज से उतरे थे. एक कम था, पर उस मामूली कमी पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया था. उसके लिए कोई चिंतित भी नहीं हुआ. इसके बाद फूलो का हाल पूछने कभी कोई नहीं आया. हिंद महासागर की गहराई अथाह थी. उसके भीतर की आवाज बाहर कभी नहीं सुनायी पड़ती थी. चट्टानों से टकराती सतही ज्वार-भाटे की आवाजें फूलवंती तब से अब तक सुनती आ रही है. समुद्र की उन लहरों के कारण को वह कभी नहीं जान सकी. आज बुढ़िया हो जाने पर भी वह एकांत में अपने प्रश्न को सुना करती है––इस द्वीप की ये लहरें इस तरह कराहती क्यों हैं?

आज तक किसी ने उसको यह नहीं बताया कि चारों दिशाओं से ये लहरें ही थीं जो द्वीप में घटने वाले एक-एक क्षण की गवाह थीं. सभी ऊंचे पहाड़ अपनी कठोरता के कारण खामोश थे, पर ये लहरें अपनी फेनिल तरलता के कारण गाने को विवश थीं.

कुछ असह्य क्षणों को जीते समय फूलो कई बार अपने से पूछ चुकी थी कि उसके भारत छोड़ने की नौबत क्यों आयी थी. कौन-सा ऐसा संकट था, जो इससे भी भयंकर था? फिर तो पुरानी, धुंधली यादें धीरे-धीरे उसके मस्तिष्क में उभरने लग जातीं. भारत में स्वतंत्रता के लिए आंदोलन हो रहे थे. उसका भाई माधो बिहार के गांव-गांव में लोगों को उस आंदोलन में सक्रिय भाग लेने के लिए प्रेरित कर रहा था. अंग्रेज उसके पीछे थे. पकड़े जाने के भय से वह मारीच को भाग आया था. अंग्रेजों के हाथ जब क्रांतिकारी नहीं आये, तो उन्होंने बिहार को मटियामेट कर देने के खयाल से वह सभी कुछ किया, जिससे महामारी दोगुनी हो गयी.

खेत सूखारी से सूखते रहे और झोपड़ियां आग से जलती रहीं. प्रकृति की निर्दयता के साथ-साथ अंग्रेज की निर्दयता मिल गयी. खेत उजड़ते गये, बिहार का ऐश्वर्य मिटता गया, भूख बढ़ती गयी, लाशें सड़ती गयीं और बीमारियां बढ़ती गयीं. फूलो ने कई लोगों से सुना था कि बिहार पांच सौ वर्ष पीछे हो गया था. तभी तो उसकी मां ने भी उससे यही कहा था कि जो धरती पांच सौ वर्ष पिछड़ गयी, वहां जीवन के चंद वर्षों को किस आस से जिया जाये! बहुत बाद में मारीच की कठिनाइयों को झेलती हुई, जूझती हुई, फूलो ने कई बार अपने से कहा था कि इधर भाग आने से बेहतर तो यह होता कि वहां की उस स्थिति को वहीं झेला जाता.

अभी उस दिन सात मजदूरों का पूरे महीने का पैसा जब्त कर लिये जाने पर उसके मुंह से निकल ही गया था ––अपन देश के संकट में छोड़ के भाग आवल के ई सब फल मिल रहल बा.

बाड़े से सटी हुई छोटी-सी कोठरी से छूट कर जब गौतम घर लौटा तो उस समय वह आधे दम का था. फूलवंती ने अपने हाथों से तीन दिन मांड़ पिला कर उसे हिल-डोल सकने के काबिल बनाया था. तीन फीट चौड़ी और पांच फीट ऊंची उस कोठरी में गौतम को पंद्रह दिन रहना पड़ा था. दिन में बस एक मुट्ठी अध-उबले चावल दरार से उसके सामने फेंक दिये जाते थे. पंद्रह दिन में कभी एक पल के लिए भी उस कोठरी का दरवाजा नहीं खोला गया था. पंद्रह वर्ष से उस कोठरी में न कभी झाड़ू फेरा गया था और न कभी वहां की सीली दुर्गंध को बिखर जाने के लिए दरवाजे को पूरा खोला गया था. आठ-दस दिन के भीतर दंडित मजदूर या तो अपने ही मल-मूत्र की दुर्गंध से लाश में बदल कर दुर्गंधित हो उठता था, या पंद्रह दिन बाद दरवाजे के थोड़ा खुलने पर अधमरी हालत में बाहर आता.

तीसरे दिन फूलो ने गौतम को दाल का पानी दिया.

वह थोड़ा-बहुत बात कर सका था. उसने अपने बाप का हाल पूछा. फूलवंती ने कोई उत्तर नहीं दिया. शाम को गौतम ने किसन से पूछा. किसन ने उसके प्रश्न का उत्तर दिया तो सही, पर झूठ बोल गया. दो दिन और बीते, जब गौतम खाट से उठ कर चल-फिर सका.

शाम को वह अपने बाप के घर पहुंचा. बहुत दिनों बाद वह भीतर गया. उसके सभी भाई-बहनों ने उसे घेर लिया. उसकी मां उससे लिपट गयी पर. . . उसका बाप सामने नहीं आया.

उसके घर में एक मर्द की आवश्यकता थी, इसलिए गौतम नहीं लौटा.

वह वहीं रह गया.

फूलवंती को जब यह बात मालूम हुई तो उसकी आंखों में खुशी के आंसू भर आये.

ऊपर आकाश की काली बदली ने चांद को रिहा कर दिया था.

चांद की चांदनी उसकी आंखों में धीरे-धीरे टपक रही थी. उन सारी बूंदों को अपनी आंखों में डबाडब भर कर उसने किसन की ओर देखा. किसन ने सूखी लकड़ियों की जो आग जलायी थी, वह अब भी लपटें लिये धधक रही थी. माहौल गूंगा था. दोनों पेड़ों की ओट में चले गये, जहां वातावरण अंधा था. झाड़ी से नेवला निकला और भाग गया. झुरमुट के बीच के गड्ढे में इकट्ठा बरसात का पानी सो रहा था. किसन के हाथ से हाथ छुड़ा कर उसने एक कंकड़ को पानी में फेंका. छपाक् की आवाज हुई. पेड़ों की छाया से दूर खुली जगहों पर चांदनी ने अपनी सफेदी को छितरा रखा था. खेतों की हर मुंडेर पर वह रंग छितरा हुआ था, पर ये दोनों उस उजाले से दूर थे. पहाड़ी से ले कर दूर तक के फैले खेतों ने रात के एक-एक टुकड़े को आपस में बांट लिया था. हवा के झोंकों से झर-झर की आवाज ने एकाएक महौल के गूंगेपन को तोड़ डाला.

—तुम मुझसे दूर क्यों भागते हो?

किसन चुप रहा.

—तुम बोलोगे भी नहीं? मेरे बाप से डरते हो न?

किसन ने अपनी आवाज अकेले सुनी.

—नहीं. मैं किसी से नहीं डरता.

—तुम्हारा बंधन बहुत ढीला है, किसन! कहते हुए उसने किसन की छाती से अपने पूरे बोझ को लगा दिया.

इस समय किसन को ईख के कारखाने में होना चाहिए था. मलगासी नौकरों ने ईख पेरने के काम को बीच से छोड़ दिया था. बस्ती के पंद्रह मजदूर चीनी पकाने में लगे हुए थे. किसन को वहां से उठा लाया गया था.

—तुम्हें मालूम है, किसन, साहब ने एक बार मेरे बाप से क्या कहा था?

किसन ने सिर हिला दिया.

—उसने कहा था कि मैं बस्ती में सबसे ज्यादा मादक हूं. यह बात मेरी मां ने मुझे सुनायी थी. जानते हो मैंने मां से क्या कहा था?

किसन ने फिर से सिर हिला दिया.

—मैंने कहा था, साहब से कह देना कि मेरी मादकता का हकदार कोई है. वह हकदार तुम हो, किसन!

अपने से सटी मांसलता को महसूस कर किसन भीतर से ज्वालामुखी बनता रहा.

—किसन! अगर तुम नहीं बोलते तो मैं चुप हो जाती हूं.

उसकी सांसों की गरमी ने, जो किसन की अपनी सांसों के अति निकट थी, किसन की उष्णता को और भी उत्तेजित कर दिया. दोनों चुप रहे.

सांसें बोलती रहीं. चांदनी पत्तों के छिद्रों से चुपचाप झांकती रही. डाली के पक्षियों ने करवटें लीं. डैनों की फड़फड़ाहट हुई. दोनों की सांसों ने एक ही साथ रफ्तार तेज की.

टप्-टप् बूंदें टपकीं. झींसी आयी. उसके बाद बारिश भी शुरू हो गयी. दोनों पाकड़ से सटे रहे. किसन ने नहीं चाहा कि जो उसके साथ थी, वह भीगे. उसने उसे जकड़ कर अपने सिर को उसपर झुका दिया. वह बच्ची की तरह उसके अंक में सिकुड़ गयी. चांदनी लुप्त थी. अंधेरा ईख के पके हुए रस की तरह गाढ़ा हो चला था.

किसन ने अपने कान के पास गुदगुदी अनुभव की. होठों की गरमी और फिर कराहती हुई-सी फुसफुसाहट —किसन, तुम अपने बाप को मेरे बाप से मिलने क्यों नहीं भेजते?

किसन की अंगुलियां अनायास ही उसके लंबे, भीगे बालों में दौड़ गयीं. उसी तरह ठंडी अंगुलियों को उसने अपने होठों पर विचरते पाया. उसके समूचे शरीर में फिर से सिहरन पैदा हो गयी. फिर से गरमी पा कर धमनियों का खून खौला. . . . फिर से. . . .

एक सुस्ती-सी आयी. दोनों निर्जीव पड़े रहे. एक लंबी खामोशी बनी रही. डैनों की फड़फड़ाहट ने उसे तोड़ा.

—किसन! तुम उत्तर नहीं दोगे?

—. . .

—कब भेजोगे अपने बाप को मेरे यहां?

किसन जानता था कि इस प्रश्न का कोई अर्थ ही नहीं था. वह क्षणिक था— इस क्षणिक बंधन के खुलते ही वह प्रश्न ठंड से जम जायेगा.

किसन ने बंधन को थोड़ा-सा शिथिल किया.

—मुझे लौटना होगा.

—अभी कारखाने का काम पूरा नहीं हुआ.

—तड़के ही खेतों में पहुंचना है.

—अभी समय है.

—तुम्हारा बाप अगर घर पहुंच गया हो तो?

—कुछ नहीं होगा.

जिस सरलता के साथ उसने उत्तर दिया, वह किसन को बहुत अच्छा लगा.

किसन कई बार अपने आप से पूछता रहता था कि आखिर जो साहस और निर्भयता लड़कों में है, वह लड़कियों में क्यों नहीं? घूंघट वाली लड़की किसन को कभी भी अच्छी नहीं लगी. उसने चाहा था कि लड़कियां भी स्थिति को बदलने में सक्रिय भाग लें. यह

लड़की कुछ हद तक स्वतंत्र और दिलेर थी, लेकिन इसकी यह स्वतंत्रता और दिलेरी उस लक्ष्य को नहीं छू पाती, जो किसन का था.

बारिश के थमने के बाद भी चांद ओझल ही रहा. समय का अनुमान नहीं हो पा रहा था. किसी तरह अपने को अंधेरे की झालर से मुक्त करके किसन ने उस ओर देखा, जहां टिमटिमाते चिराग अंधेरे को चीरने का भरसक प्रयत्न कर रहे थे.

—चलो, पहले तुम्हें अहाते तक छोड़ आऊं!

—अभी तो मुर्गों की बांग भी शुरू नहीं हुई.

—तुम भीग गयी हो. कपड़े बदलने होंगे तुम्हें.

—भीगे तो मुझसे अधिक तुम हो.

—मैं आदी हूं.

—तुम तो बहुत चीजों के आदी हो.

—समझा नहीं.

—खैर. . . अब कब मिलोगे?

—तुम सोचती हो, हमारा इस तरह का मिलना अच्छा होगा?

—अच्छे-बुरे की परख मुझे नहीं, तुम्हें है क्या?

—केवल एक स्थिति होती है, जब आदमी बरसात और गरमी के प्रभाव को भी परख नहीं पाता.

—कौन-सी स्थिति होती है वह?

—वह बीत गयी.

—दोहरायी नहीं जा सकती क्या?

—बस, अब चलना होगा.

—तुम पुष्पा से भी इसी तरह कतराते हो?

—मैं तुम्हें कारखाने के उस पार तक छोड़ आता

—सुना है, पुष्पा तुम्हें देखे बिना भात नहीं खाती

—कारखाने में मेरा काम अधूरा रह गया होगा.

दोनों उस कुछ-कुछ फटते हुए अंधेरे में चलने लगे

—तुम डरती नहीं हो? किसन ने पूछा.

—तुम से?

—नहीं. अंधेरी रात में अकेली!

—मैं अकेली हूं क्या?

चीनी पकने की गंध से भीगा माहौल तर था. क की आवाज रुकी हुई थी. किसन ने अनुमान लगा जान लिया कि कल में फिर से गड़बड़ी आ गयी होगी और उसकी जगह मजदूर उस भारी पहिये को घुमा रहे होंगे

उनका पसीना ईख के रस में मिल कर चीनी ब रहा होगा. एक आवारा खयाल आ गया उसे. . .

. . .कभी ऐसा नहीं होगा कि मजदूरों के पसीने की मात्रा चीनी में कुछ अधिक हो जाये और चीनी मीठी न हो कर नमकीन हो जाये?

कारखाने के भीतर मशालें जल रही थीं. बाहर भ उनका प्रकाश था. उस प्रकाश से कतरा कर दोनों पत्थ की ऊंची दीवार के आसपास चलने लगे. भीतर काम पराकाष्ठा पर था. सरदार के चिल्ला की आवाज दीवारों को भेद कर बाहर तक आ रही थी.

किसन ने रुक कर कहा — अब मैं कारख को लौट रहा हूं.

आमला आपके बालों के लिये फ़ायदेमंद है

ZULAMLA

ज़ुलामला
उस से भी अधिक फ़ायदेमंद है।

क्योंकि ज़ुलामला में आमला के साथ साथ शिकाकाई, सरसों और दूसरी जड़ी-बूटियां भी शामिल हैं।

ज़ुलामला बालों को धोता ही नहीं बल्कि बालों का पोषण भी करता है। ज़ुलामला बालों की जड़ों में प्राकृतिक चिकनाहट को कायम रखता है जिसे साधारण साबुन और कैमिकल शैम्पू ख़त्म कर देते हैं। यह आप के सिर की ख़ुश्की को दूर करता है, बालों को गिरने से रोकता है और समय के पूर्व बालों को सफ़ेद होने से बचाता है।

ज़ुलामला बालों की हिफ़ाज़त के लिये

हमदर्द

HD-3831 AI-H

—वहां मेरा बाप पहुंच गया होगा.

—तो फिर क्या करूं?

—घर क्यों नहीं चले जाते?

—घर?

—हां, तो क्या? पर देखो, यह बता कर ही जाना होगा कि अब कब मिलोगे.

—तुम मेरे लिए एक काम नहीं कर सकती हो?

—मुझे इस योग्य तो समझा तुमने!

—तुम वचन दो तो मैं कुछ कहूं.

दोनों के बीच थोड़ा-सा जो फासला बन गया था, वह कम हो गया.

—मैं तुम्हारे इतने करीब हूं. और किस दूसरे वचन की बात कर रहे हो?

—तुम अपने बाप को मना तो सकती हो.

—हमारी शादी के लिए?

—इससे भी बड़ी चीज के लिए.

—इससे भी बड़ी चीज क्या हो सकती है?

—तुम अपने बाप से कहना, वह मजदूरों के साथ कुछ कम क्रूरता के साथ पेश आये.

—जहां तक मैं जानती हूं, मेरा बाप सभी सरदारों से अच्छा सरदार है.

—जो तुम जानती हो, वह सच नहीं.

—मेरा बाप सभी से क्रूर है क्या?

—मजदूरों से पूछ कर क्यों नहीं देखतीं?

—मैं अपने बाप को मना लूंगी...एक...शर्त...

—कैसी शर्त?

—हमारे बीच का संबंध!

—क्या मतलब इसका?

—कोई मतलब नहीं इसका?

—मेरा मतलब है, क्या करना है हमारे बीच के संबंध के साथ?

—इसे सही संबंध बनाया जा सकता है.

अधिक अनजान बनना किसन से नहीं हो सका. इस सौदे के भाव को वह पहले ही से जानता था. दोनों के बीच का यह संवाद हमेशा इसी ठौर पर आ कर रुकता था. दोनों यहीं से विदा हो कर कई दिनों तक एक-दूसरे से दूर रहते थे.

किसन ने अपनी गरदन से उसकी बाहों को ढीला किया और अपनी भीगी आस्तीन से मुंह पोंछ कर उसने धीरे से कहा— शायद तुम्हारी मां अब भी जाग रही है.

किसन की नाक को जोरों से खींच कर सत्या अपने घर की ओर दौड़ गयी. दूसरे क्षण किसन भी अपने घर की ओर चल पड़ा. किसन की अंधी चाल के लिए रास्ता वहां से सीधा था.

अगले अंक में

दूसरी बस्ती के मजदूरों से मेलजोल की योजना... सोनालाल का पकड़ा जाना और उसकी सजा...किशन और सत्या की मुलाकातें ...और बढ़ता हुआ संघर्ष

खराश-खांसी से झट आराम

वोकासिल

VOCACIL
COUGH DROPS
VOCA
CIL

खांसी की टिकिया

नया पैकिंग नई शान

REGD.

रत्ना छाप

ज़ाफरानी पत्ती

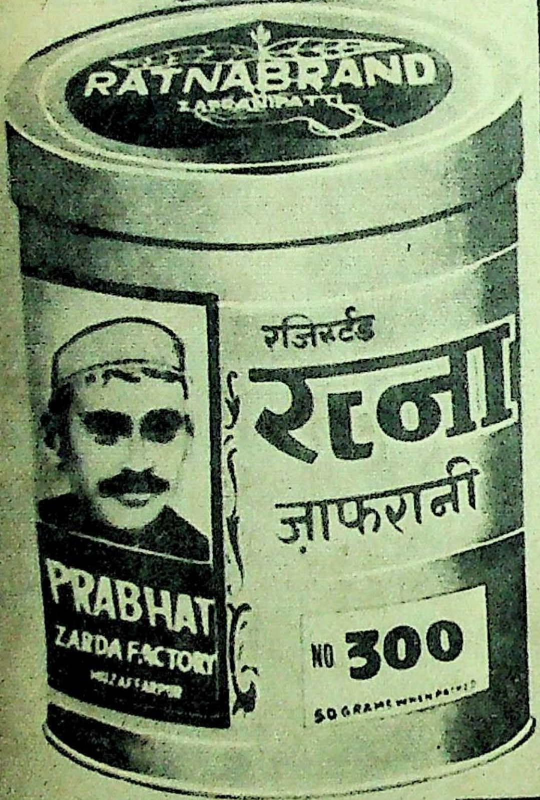
RATNABRAND
ZARDA
रजिस्टर्ड
रत्ना
ज़ाफरानी
PRABHAT
ZARDA FACTORY
MUZAFFARPUR
NO 300
50 GRAMS WHEN PACKED

नं. १३, २०, ३०, ६४, १५०, २००, ३००, ४५०.

प्रभात ज़र्दा फैक्ट्री, मुज़फ्फरपुर

अब नये पैकिंग में माँग करें

AVANTIKA/76

बेहतरीन कारोबारी टॉनिक
यूरोप
रोज़ाना दो बार

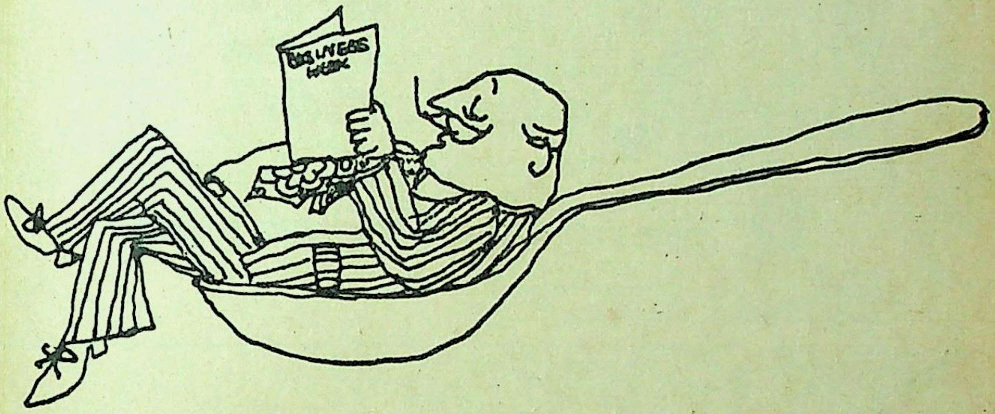

यूरोप में अपनी कारोबारी क्षमता
बढ़ाइये. पेश है हमारा नुसख़ा—
रोज़ाना दो उड़ानें.
१४ प्रति सप्ताह.
महाद्वीप के सभी महत्त्वपूर्ण व्यापार-
केन्द्रों से संपर्क स्थापित करते हुए.

लंदन के लिए १५. रोम के लिए ५.
जिनेवा के लिए ३. फ्रैंकफ़ुर्ट के लिए ६.
पेरिस के लिए ५. मौस्को के लिए २.
आम्स्टरडम के लिए १.

एयर-इंडिया

AI-1215 A

विश्वसनीय तीन
परिवार के सर्वोत्तम मित्र

दिवाली के शुभ अवसर पर इनको अच्छी तरह पहचान लीजिए। जीवन बीमा निगम ने तीन नई पालिसियां— विशेष तौर पर आप ही के लिए बनाई हैं।

जीवन बीमा निगम की मनी बैक, कैश एण्ड कवर और प्रोग्रेसिव प्रोटेक्शन पालिसी।

लाइफ इन्श्योरेन्स कारपोरेशन आफ इण्डिया

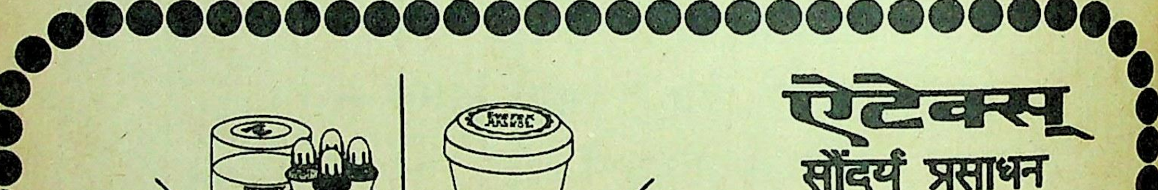

ऐटेक्स
सौंदर्य प्रसाधन

ARAVIND LABORATORIES
MADRAS-600 033

EYETEX
REGD.
EYETEX
BINDI
EYETEX
KUMKUM PASTE
11 IN 1
EYETEX
3 IN 1

आपको ब्याज पर भी ब्याज मिलता है?

स्टेट बैंक रिइन्वेस्टमेंट प्लान

में पूँजी (मूलधन) पर तो ब्याज मिलता है ही, उसके ब्याज पर भी ब्याज मिलता है

पैसा कमाने के लिये आप जी तोड़ मेहनत करते हैं। अगर आप चाहते हैं कि अब पैसा आपके लिये कमा कर दिखाए, तो स्टेट बैंक चले आइये। रु. १०००/- (या इसकी गुणक रक़म) स्टेट बैंक के रिइन्वेस्टमेंट प्लान में लगाइये फिर देखिए आपको ब्याज पर भी ब्याज मिलने लगेगा।

आपको अपनी जमा की गयी रक़म पर तो ब्याज मिलता है ही, इस मासिक ब्याज पर भी नया ब्याज मिलता है।

आपकी अपनी कई जिम्मेदारियाँ हैं जैसे बेटी की शादी, लड़के की उच्च शिक्षा और आपकी अपनी जिन्दगी की शाम। इन जिम्मेदारियों को निभाने के लिये सही वक़्त पर उचित रक़म चाहिये। इसके लिये आप इतने अरसे के लिये जमा कीजिये कि आपकी बचत की रक़म बढ़कर उतनी हो जाय। पैसे की अचानक जरूरत पड़ भी जाय और वक़्त बहुत कम हो तो आप अपनी जमा रक़म में से 'लोन' ले सकते हैं।

टैक्स-लाभ

ब्याज पर इन्कम टैक्स (आय कर) आप साल दर साल दे सकते हैं— ऐसा नहीं है कि जमा खाते की अवधि पूरी होने पर सारा ब्याज इकट्ठा देना पड़े। बैंक में जमा की गयी रक़म पर या अन्य अमुक प्रकार की लागत पर हर साल रु. ३,००० तक की ब्याज की कुल रक़म पर कोई आयकर नहीं लगता।

आपकी रोकी गयी वेतन/मँहगाई भत्ते की रक़म वापिस मिलने पर उससे दीर्घकालीन लाभ उठाने का सुअवसर।

अपनी रक़म को हमारी स्टेट बैंक की पुनर्विनियोग (रिइन्वेस्टमेंट) योजना में लगाइये।

रु. १०० या उससे अधिक की राशि (रु. १० के गुणक में) स्वीकार की जाती है।

महीने	स्टेट बैंक रिइन्वेस्टमेंट प्लान में रु. १००० की रक़म से ब्याज पर ब्याज समेत मिलनेवाली कुल रक़म
१३	रु. १०९०.२२
२५	रु. ११८०.७१
३७	रु. १३१८.४६
४९	रु. १४४२.१४
६१	रु. १६५९.०२
६२	रु. १६७२.८४
७२	रु. १८१७.५९
८४	रु. २००७.९२
९६	रु. २२१८.१७
१०८	रु. २४५०.४५
१२०	रु. २७०७.०४

अधिक जानकारी के लिये देशभर में स्थित स्टेट बैंक के ४००० कार्यालयों में से किसी भी शाखा में पधारिये।

स्टेट बैंक

SBI-22-203 R Hin

PIN CODE FOR FAST MAIL

रक्तदान कीजिये
किसीकी जीवन-रक्षा कीजिये

बेनेट कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए श्रीकृष्ण गोविंद जोशी द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित; जनरल मैनेजर: डॉ. राम तरनेजा; पो. बाक्स २१३, बंबई-४०० ००१; दिल्ली आफिस: ७ बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-११० ००२; कलकत्ता आफिस: १३/१ और १३/२ गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट; लंदन आफिस: ९६, व फर्स, एलेक्जेंड्रा रोड, हौंस्लो टी डब्ल्यू ३, ४ आर एच, मिडिलसेक्स, यू.के.

पंजीयत क्र. एम. एच. दक्षिण बंबई-३१९

K.E.Md. ABOOBACKER
சங்கு
REGISTERED
TRADE MARK
கொ. இ. முகம்மது அபுபக்கர்
शंख
मार्का
लुंगी
रुमाल
art ads

निर्माता व विक्रेता:
मोहम्मद अबुबकर एंड
९५, थम्बु चेट्टी स्ट्रीट, मद्रास - ६००००१.
शाखा : कलकत्ता • मदुरै • कोल्लम • बम्बई
बंगलूर में हमारा नूतन शो-रूम: "हिन्दुस्तान काम्प्लेक्स" ११/बी, वी पी के अय्यंगार रोड, बंगलूर-

र पर प्रथम मौलिक कहानी
नत के धारावाहिक उपन्यास
'की सातवीं किस्त
की पहली पुण्य तिथि पर
व
नियां तथा सभी स्थायी स्तंभ

months
way

बर १९७६

21/12/76

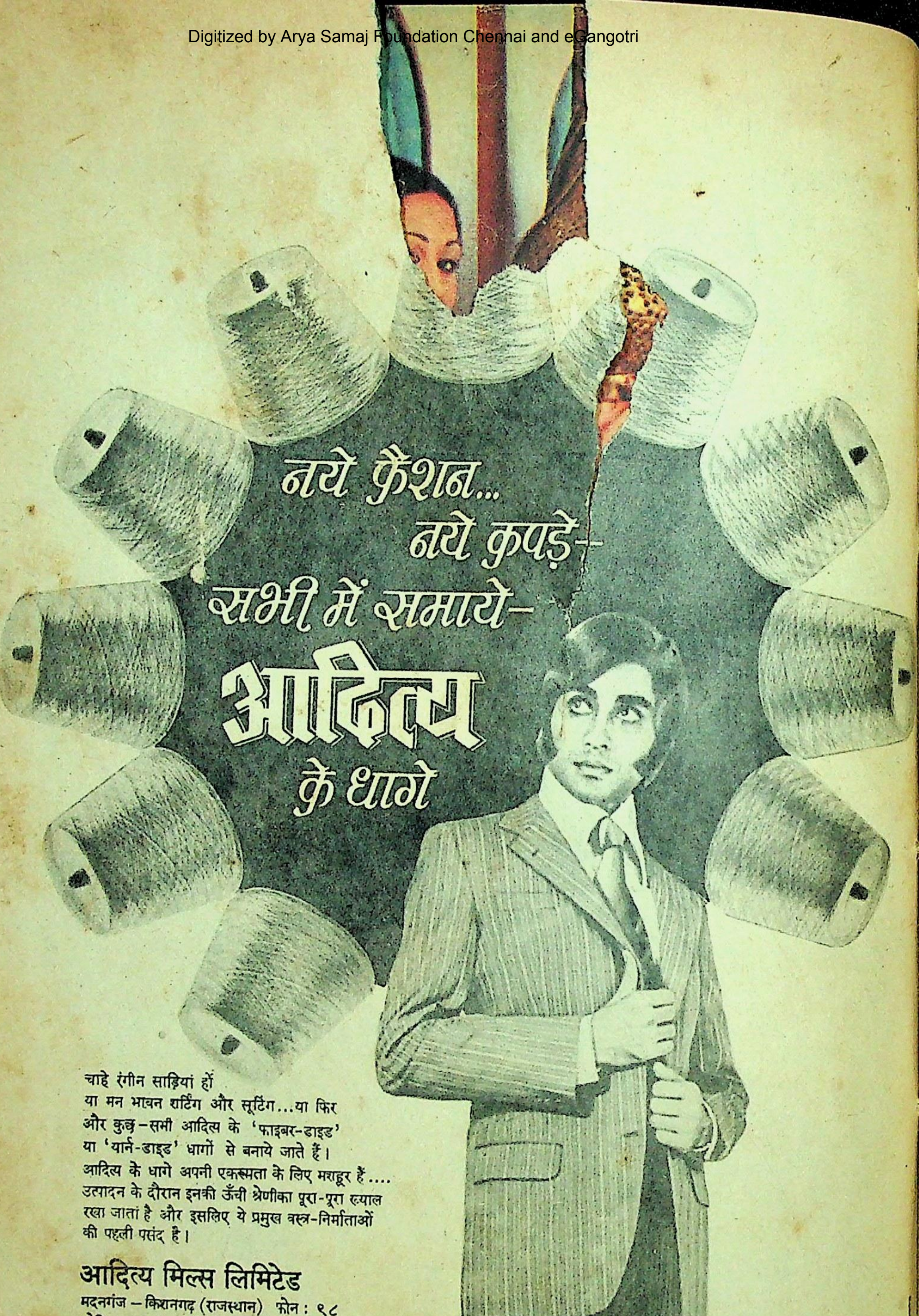

चाहे रंगीन साड़ियां हों
या मन भावन शर्टिंग और सूटिंग...या फिर
और कुछ-सभी आदित्य के 'फाइबर-डाइड'
या 'यार्न-डाइड' धागों से बनाये जाते हैं।
आदित्य के धागे अपनी एकरूपता के लिए मशहूर हैं....
उत्पादन के दौरान इनकी ऊँची श्रेणीका पूरा-पूरा ख्याल
रखा जातां है और इसलिए ये प्रमुख वस्त्र-निर्माताओं
की पहली पसंद है।

आदित्य मिल्स लिमिटेड
मदनगंज - किशनगढ़ (राजस्थान) फ़ोन : ९८
स्टेडियम हाउस, २री मंजिल, २रा ब्लॉक
वीर नरीमन रोड, बम्बई-४०० ०२०
फ़ोन : ३१०४०४-२९६४५४
३१८ १/२ कूचाघासीराम, चाँदनी चौक,
दिल्ली-११० ००६ फ़ोन : २७४२६८

Learn a language in 3 months the LINGUAPHONE way

FIRST YOU LISTEN THEN YOU UNDERSTAND THEN YOU SPEAK

When you were a child you learnt to talk n[illegible] in your mother tongue. To begin with, [illegible] didn't speak at all. You listened. As y[illegible] you gradually absorbed the sounds. Soo[illegible] to connect in your mind the sounds with th[illegible] objects. You heard people say "Ma" and you saw your "Ma" in front of you.

This is how you learn **ENGLISH FRENCH GERMAN RUSSIAN JAPANESE SPANISH** *through Gramophone records or Cassettes & books.*

For a FREE copy of our prospectus write to
LINGUAPHONE INSTITUTE 156/E11 359, D. Naoroji Road, Bombay 400 023

LINGUAPHONE INSTITUTE, 156/E11 359, D. Naoroji Road, Bombay 400 023

Please send me a FREE Prospectus for .... (specify language)

Name ....

Address ....

....

INTERNATIONAL CORRESPONDENCE SCHOOLS

ICS

POSTAL COURSES FOR BRIGHT CAREERS

Hotel Reception
ARCHITECTURAL DRAWING & DESIGN
ELECTRONIC ENGG.
ELECTRONIC INSTRUMENTATION & CONTROL SYSTEMS
Industrial Electronics
PLASTIC TECHNOLOGY
REFRIGERATION & AIR CONDITIONING
AUTOMOBILE ENGG.
Radio & TV Servicing
Radio & TV Technicians
SANITARY ENGINEERING
Practical Plumbing
C. & G. TELECOM. TECH.
COTTON CARDING & SPINNING
Electronic Technicians
Purchase Officer
Sales Promotion
High Speed Diesel
Textile Technology
Textile Designing
Textile Mill Supervisor
Paper Manufacturing
Pulp Making
Boiler Engineering
Gas & Electric Welding
Industrial Instrumentation
Mechanical Engineering
Electrical Engineering
Chemical Engineering
Computer Engineering
Civil Engineering
Television Servicing
Institute of Marketing Exam.
Television Engineering
Transistor Radio Servicing
ACCOUNTING & AUDITING
PRIVATE SECRETARY
PUBLIC RELATIONS
COST ACCOUNTING
Storekeeping
GOOD ENGLISH
Advanced English
German, French
Effective Business Letters
Shorthand & Typing
General Advertising
Administrative Accounting & Data Processing Exam
T.V. Script Writing
Cartooning
Computer Programming
Business Training
INST. OF BOOK-KEEPERS EXAM.

CAREERS IN MANAGEMENT

HOTEL & CATERING MGT
INDUSTRIAL MANAGEMENT
General Management
Works Management
Personnel Management
Office Management
Sales Management
Management Practice
Industrial Psychology
Marketing Management
BUSINESS MGT.
Production Control

YOUR PROFESSION—YOUR HOBBY

INTERIOR DECORATION

Water Colour Painting
Portrait Painting
Etiquette & Entertaining
Poultry Keeping
Flower Arranging
Gardening
INTERIOR DECORATION
PATTERN CUTTING & DESIGNING
BEAUTY CARE & PERSONALITY
FREE LANCE JOURNALISM
SHORT STORY WRITING
PRACTICAL PHOTOGRAPHY
FINE ART
OIL PAINTING
Commercial Art
BEAUTY CARE & PERSONALITY

DRESSMAKING

Mention subject of interest and post coupon or **Write today** for a free prospectus to

INTERNATIONAL CORRESPONDENCE SCHOOLS
156/C11, UCO Bank Bldg., Hutatma Chowk, P.O. Box 1931, Bombay 400 023

INTERNATIONAL CORRESPONDENCE SCHOOLS
156/C11, UCO Bank Bldg., Hutatma Chowk, P.O. Box 1931, Bombay 400 023

Send me a FREE Prospectus in the SUBJECT ....

Name .... Education ....

Address ....

....

NORVICSUN

BRITISH INSTITUTES

HOME-STUDY COURSES ENSURE BETTER FUTURE

These Bodies recognise our courses:

D.B.M. Business Mgt. • **Cert.A.I.I.B.** • **D.Com.** Business Organisation • **D.Com.** Accounts & I.Tax • **D.Com.** Banking • **D.Com.** Company Secretary • **D.Com.** Costing • **A.I.A.M. A.M.I. Mech. E. (India) Govt. recog.**

Successful Managers

Marketing Manager, **Industrial Adm. & Mgt.,** Sales Manager, **Personnel Manager, Purchase Officer, Mgt. Executive, D.Com. Business Organisation,** Pract. and App. Psychology, **Mgt.** Accountancy, **Export Mgt.,** Junior Executive, **Materials Mgt., D.Com. Accts. & Income Tax, Business Administration**

EXAMINATIONS—NO—PASS—NO—FEE

D.B.M. Business Mgt. ★ ★ **C.A. ENTRANCE** ★ ★ **D.Com.**

A.M.I. Mech. E. (India) Govt. recog.
A.M.I.E. India, A.M.I.I.CHEM.E., A.S.E. (Chem.), A.S.E. (Civil), A.M.Ae.S.I., A.S.E.(MECH.), A.S.E. (ELECT.), A.C.S. Company Secretary, Govt., recog., N.P.C. SUPERVISOR'S

LEARN COMMERCIAL ART Art Training by Nature's Method, Cartoon, Caricature and Humorous Drawing, COMMERCIAL ART, Magazine, Book and Newspaper Illustration, Water Colour Painting. Essential Artist's material supplied.

PRIVATE SECRETARY Learn Business Correspondence, Office Organisation, Psychology, Public Relations.

TELEVISION
We teach RADIOMEN & NOVICES to trace FAULTS and REPAIR Television Sets.

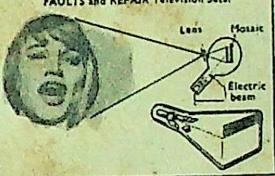

BUILD YOUR OWN TRANSISTOR
LEARN to find FAULTS and REPAIR and SERVICE Transistor Radios. PHILIPS Transistor Trainer Kit is supplied by us.

Select Your Course *NOW*

GOOD ENGLISH, GERMAN, FRENCH, COLLEGE ENGLISH, RUSSIAN

FICTION WRITING
Reporting
ARTICLE WRITING
T.V Writing
Writing for Children
TEXTILE MANUFACTURE
TEXTILE TECHNOLOGY
Income Tax Practitioner
Export Mgt.
BUILD YOUR RADIO (Our Kits & Comp.)
Chemical Engg.
C. & G. Electrical Engg.
Jig & Fixture Design
I.I.T. ENTRANCE EXAM.
Computer Programming IBM 360
AUTOCODER PROGRAMMING
BUSINESS LETTERS
INDUSTRIAL CHEMISTRY
ARCHITECTURE
AUTOMOBILE ENGG.
CIVIL ENGINEERING
Diesel Engineering
ELECTRICAL ENGG. & ELECTRONICS
ELECTRICAL SUPERVISOR
Mech. Draughtsmanship
LCC Higher Stage Exam. in Salesmanship
Personality Development and Human Relations
MECHANICAL ENGG.
Overseers (Bldg. & Roads)
REFRIGERATION & Refrigerator Servicing
RUBBER TECHNOLOGY
Bank Officer
Company Secretary
ADVERTISING OFFICER
Cost Accountancy
Salesmanship
Sales Engineers
Shorthand (Pitman)
PETROLEUM TECHNOLOGY
ACCOUNTANCY
Industrial Engineers
PUBLICITY EXECUTIVE
Psychology

Our **FREE** career guide will give you full information about our courses and system of teaching. **ACT NOW.**

SEND COUPON OR WRITE TODAY TO
THE BRITISH INSTITUTES, 156/A11, P.O. Box 1025, 359, D. N. Road, Bombay 400 023

POST THIS COUPON TODAY

THE BRITISH INSTITUTES, 156/A11, P. O. Box 1025, 359, D. N. Road, Bombay 400 023

Send me a FREE Prospectus in the SUBJECT ....

.... Education ....

Name ....

Address ....

....

उत्साह भरा जीवन
नेस्कैफे®
के ताज़ा और
स्फूर्तिदायक स्वाद से
नेस्कैफे®
एकमात्र इन्स्टैन्ट कॉफी
जो १०० % शुद्ध
कॉफी से बनी है
NESCAFE
instant coffee
from finest
100% pure coffee
NSC-4176 HIN
दुनिया भर में सबसे
ज्यादा बिकने वाली
इन्स्टैन्ट कॉफी

लंबाई बढ़ाइए

बढ़िए और बढ़िए
(महिलायें भी !)

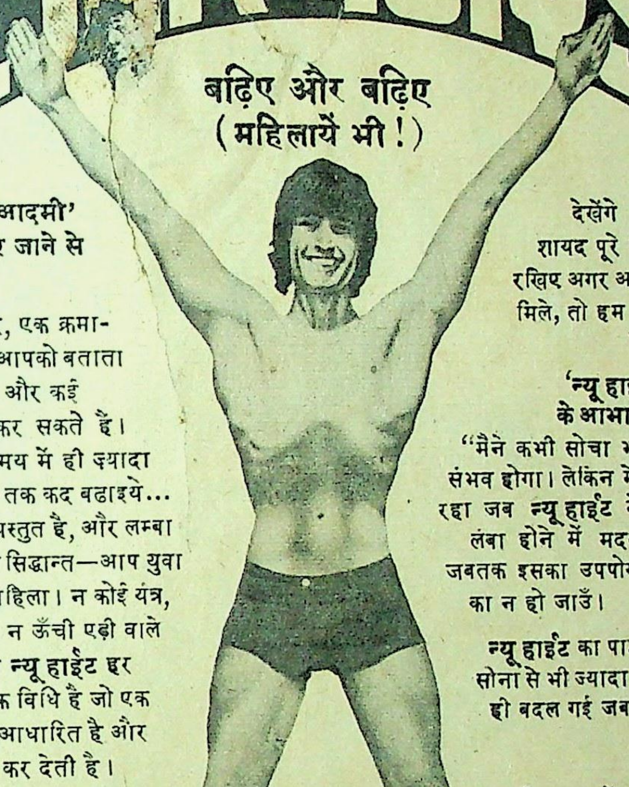

क्या आप 'नाटू', 'छोटा आदमी' या 'ठिगने' कहकर पुकारे जाने से ऊब चुके हैं?

अब एशिया में पहली बार, एक क्रमानुसार सचित्र तारीका जो आपको बताता है की आप अपने कद में और कई सेंटीमीटर की वृद्धि कैसे कर सकते हैं। केवल २ सप्ताह के कम समय में ही ज़्यादा से ज़्यादा ५ से १५ सें. मी. तक कद बढाइये... अन्यथा कुछ न दीजिए। प्रस्तुत है, और लम्बा होने के लिए **न्यू हाईट** का सिद्धान्त—आप युवा हो या प्रौढ़ पुरुष हो या महिला। न कोई यंत्र, न कोई मुश्किल व्यायाम, न ऊँची एड़ी वाले जूते जैसे बनावटी साधन **न्यू हाईट** हर तरह से नई और वैज्ञानिक विधि हैं जो एक अनोखे स्विस सिद्धांत पर आधारित है और सारे शरीर को क्रियाशील कर देती है।

न्यू हाईट पुरुष और महिला दोनों के लिए काफी प्रभाव पूर्ण है—यह सत्य, यूरोप भर में हजारों लोगों के साथ प्रमाणित हो चुका है। अब, क्रमानुसार निर्देशन का अनुसरण करते हुए हर रोज केवल कुछ मिनटों का समय दीजिए—२ सप्ताह के कम समय में ही अपना कद नापिए। आप देखेंगे कि यह बढ़ गया है—शायद पूरे १५ सें.मी. तक। और याद रखिए अगर आपको संतोषप्रद परिणाम न मिले, तो हम बिना कुछ पूछे आपके पूरे पैसे तुरंत वापिस कर देंगे।

'न्यू हाईट' इस्तेमाल करने वालों के आभार का एक सतत उपहार:

"मैंने कभी सोचा भी नही था कि कद बढ़ाना संभव होगा। लेकिन मेरी खुशी का ठिकाना नहीं रहा जब **न्यू हाईट** ने मुझे ७.५ सें. मी. और लंबा होने में मदद की। मेरी इच्छा है कि मैं जबतक इसका उपयोग करता रहूँ तबतक ६ फीट का न हो जाउँ। एस. आर. के.

न्यू हाईट का पाठ, इसके ही वजन के बराबर सोना से भी ज्यादा मूल्य का है! मेरी तो जिंदगी ही बदल गई जब से मैंने अपनी लंबाई में ११ सें.मी. और जोड़ लिया हैं।
आर. एच.

चाहे समाज में आगे रहने की बात हो, प्रणय, खेल-कूद, नौकरी व आनंद की लंबा आदमी हरदौर में अग्रिम रहता है। इसलिए खुद को एक नया रुप देने के लिए अभी से लग जाइए। तेजी से स्थायी कद बढाइए।

कूपन भेजिए

१० दिनों के मुफ़्त घरेलू अभ्यास के लिए।

महिलाओं के लिए भी उत्तम।

© Mail Order Sales Pvt. Ltd., 15 Mathew Road, Bombay 400 004

न्यू हाईट सिर्फ़ रु. २९ में

यह कूपन आज ही भेजिए

NH6-H

मेल आर्डर सेल्स प्रा. लि., (आर्डर-विभाग) १५, मैथ्यू रोड, बम्बई ४०० ००४.

हाँ, मैं कद बढ़ाना चाहता हूँ। अपने १० दिनों के घरेलू अभ्यास योजना के अंतर्गत, मुझे न्यू हाईट शीघ्र भेजिए यदि मैं पूरी तरह संतुष्ट नहीं हुआ तो मैं सब कुछ लौटा दुँगा ताकि तुरन्त पूरे पैसे वापिस पा सकूँ, कोई पूछताछ नहीं होगी!

SB-I

(कृपया सही चौकर पर ☑ निशान लगाईए)

☐ रु. २९ (तथा रु. ४ डाक-व्यय खर्च) चैक/ड्राफ्ट/आई. पी. ओ. द्वारा भेजा है. ☐ रु. ३३ का मनी आर्डर भेजा है. मनी आर्डर रसीद नं.........तारीख......... ☐ वी. पी. पी. द्वारा भेज दीजिए. डिलीवरी के समय मैं पोस्टमेन को रु. ३३ दे दुंगा.

हस्ताक्षर -.............................. नाम :-..............................

पता :-..............................

लम्बाई बढ़ने की गारंटी, वर्ना कुछ भी मत दीजिए।

Soubhagya NS/76-11 HIN.

■ पॉलिएस्टर/विस्कॉस
■ पॉलिएस्टर/कॉटन
साड़िया ■ ड्रेस मॅटीरियल्स
सूटिंग्स ■ शटिंग्स

युवा तन–मन–
गुलशन गुलशन
युवा तन को सजानेवाले
ये प्यारे-प्यारे कपड़े—
नेसा ने आपके लिए ही
बनाये है।

नेसा

वह परिधान जिसमें जीने का मोह हो जाता है...

न्यू स्वदेशी

दि न्यू स्वदेशी मिल्स
ऑफ अहमदाबाद
लिमिटेड,
नरोडा रोड,
अहमदाबाद ३८० ००२.

पॉइंट
रूस पहुँचा!

ПОЙНТ
Point
for sparkling white and brilliant colour washes

पाइंट का सबसे पहला विदेशी आर्डर—
३०० टन के लिए— रूस से आया।
अप्रैल में, प्रथम माल भेजने के बाद
५ लाख पाइंट रूसी घरों को बेचा गया।
रूसी लोगों की इस पसंद का
रहस्य क्या है?

आप स्वयं ही क्यों न विचार करें।

मूल्य की तुलना कीजिये.
गुणवत्ता की जाँच कीजिये.

पॉइंट पैक मूल्य	७५० ग्रा. रु. ८.७०	५५० ग्रा. रु. ६.६६	२०० ग्रा. रु. २.५८
(स्थानीय कर अतिरिक्त)			

आप स्वयं आज़माइये.

गवर्नमेंट सोप फ़ैक्टरी, बंगलौर का उत्कृष्ट उत्पादन
वितरक : मैसूर सेल्स इंटरनेशनल लि., बंगलौर

MCA.PD.53 Hin

प्रस्तुत है

अधिक शक्तिशाली
अधिक प्रभावशाली
अधिक सुरक्षित
प्लसप्रिन

PLUSPRIN

यह अधिक तेज असर करती है

प्लसप्रिन दर्द से छुटकारा दिलाने में सामान्य पीड़ा निवारक औषधियों की तुलना में कम समय, बहुत कम समय लेती है। क्योंकि केवल प्लसप्रिन में ही दर्द से अति शीघ्र छुटकारा दिलाने वाले शक्तिशाली और प्रमाणित तत्व विद्यमान हैं!

सिर दर्द, पीठ दर्द, शरीर दर्द जुकाम और फ्लू

आदि से छुटकारा पाने के लिये आपको केवल एक ही टिकिया की आवश्यकता है। यह सुरक्षित है फिर भी प्रभावशाली है!

यही बस नहीं
प्लसप्रिन हानि-रहित है।

इससे आलस्य, अधिक पसीना आना, पेट से खून बहना, तेजाबी मादे का बढ़ना, पेट में गड़बड़ी या आदत बन जाना आदि विकार उत्पन्न नहीं होते।

प्लसप्रिन एसप्रिन नहीं है।

शीघ्र आराम के लिए अधिक शक्तिशाली PLUSPRIN लीजिये।

JAISONS 30.

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की
संपूर्ण पत्रिका

दिसंबर, १९७६

वर्ष : १६; पूर्णांक : १८८

कहानियां

इस्मत चुगताई : मुगल बच्चा : १२
रणजीतकुमार साहा : बरामदे पर. . .: १६
सच्चिदानंद धूमकेतु : छिपे हुए हाथ : २४
शांता वर्मा : प्यार की सीमाएं हैं : ३२
राकेश वत्स : समझौता : ३६
राही मासूम रजा : चम्मच भर चीनी : ४१
कन्हैया लाल गांधी : रात के साये के बाद : ४४
भगवान अटलानी : आस्था की कतरनें : [illegible]
बीर राजा : वापस नहीं : ४८
वीरेंद्र सक्सेना : घिसे हुए पुर्जे : ५
अनय : समय-सूर्य : ६४

लघुकथाएं

कैले की बहू : **रामसरूप अणखी** : ४३
बल बनाम बुद्धि : ४७
गौरैया और बंदर : ५१
इज्जत : **रामसरूप अणखी** : ५८
भेंट भगवान की : ७१

गजलें

महेश अनघ : १५, ३५, ६३

आद्यकथाकार (१५)

प्रणयिनी परिणय : एक विवेचन :
डॉ. बच्चन सिंह : ७२

दुष्यंत कुमार की पहली पुण्य तिथि पर एक विशिष्ट लेख

कन्हैयालाल नंदन : मैं किसी पुल-सा
थरथराता हूं. ६९

धारावाहिक उपन्यास : सातवीं किस्त

अभिमन्यु अनत : लाल पसीना : ८४

स्थायी स्तंभ

पाठकीय : १०
कृतियां : ८०
गोष्ठी रपट : ८२
विविधा : ८३

आमुख : एम. एस. अग्रवाल

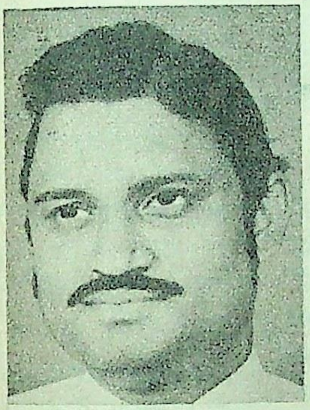

डॉ. मधुकर राव वासनीक नागपुर के दलित नेता, समांतर चिंतक और प्रतिष्ठित चिकित्सक हैं. ये नागपुर विश्वविद्यालय की फैक्टरी आफ मेडीसिन के डीन निर्वाचित हुए हैं. इन्होंने भूतपूर्व केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री तथा कस्तूरबा हेल्थ सोसाइटी की अध्यक्ष डॉ. श्रीमती सुशीला नायर को बुरी तरह पराजित कर यह पद प्राप्त किया है. संगठन कांग्रेस की नेता डॉ. नायर को जनसंघ का भी पूर्ण समर्थन प्राप्त था. डॉ. नायर के समर्थकों ने प्रचार किया था कि डॉ. वासनीक हरिजन हैं और उक्त पद के उपयुक्त नहीं हैं लेकिन मतदान में डॉ. वासनीक को ३७ में से २९ मत तथा डॉ. नायर को कुल ८ मत प्राप्त हुए. डॉ. वासनीक 'निकाय' के संपादक भी हैं और प्रमुख समाजसेवी भी.

संपादक : कमलेश्वर

- मुख्य उप-संपादक : आनंदप्रकाश सिंह
- उप-संपादक : अवधनारायण मुद्गल, सुदीप
- कार्यालय-सहयोगी : श्रीनाथ पांडेय,
  देवचंद झा, भिकाजी शिर्के

पाठकीय

सितंबर अंक

सितंबर अंक में पांच नये कहानीकारों की नयी रचनाशीलता एक विशिष्ट खंड के रूप में दी गयी थी. प्रतिक्रिया व्यक्त करने वाले प्रायः सभी पाठकों ने इन पांचों कहानियों -- **'भूमिका'** (शशांक), **'दधीचि का अंत'** (श्रीनाथ), **'सफेद पत्थर का ख्वाब'** (नीला चावला), **'टूटे हुए चेहरे का आईना'** (सुरजीत प्रकाश) और **'बेघर'** (सुधाकर) की सराहना की है.

छह विशिष्ट कहानियों में **'ओ हरामजादे'** और **'आवाज की अरथी'** सबसे ज्यादा पसंद की गयीं.

आदित्य कुशवाहा, राउरकेला: नवलेखन का जामा पहनी कहानियां किसी भी स्थापित कथाकार की आम जिंदगी से जुड़ी कहानियों से कम नहीं.

विश्व के उपेक्षित मन का एक अस्वीकार हमारा-प्रवासी भारतीय मानस, उसका दर्द, उसकी माटी की महक का अद्वितीय प्रेम **'ओ हरामजादे'** में उजागर है. **'आवाज की अरथी'**, **'अपना परिवेश'**, **'तालपत्री'**, **'त्वमेव माता'**, **'शहीद'** पठनीय हैं.

अनेपालसिंह चौहान, दिल्ली : सर्वोत्कृष्ट कहानियां **'ओ हरामजादे'**, **'एक शिक्षाप्रद कथा'**, **'शहीद'** और नये लेखकों की कहानियां **'भूमिका'** और **'बेघर'** हैं. **'गर्दिश के दिन'** तो पत्रिका की धड़कनें हैं. **'लाल पसीना'** एक बारगी दिल में संजो लेना चाहता हूं.

प्रतापसिंह खेतवाल, पूना : पांचों **नये लेखकों की कहानियां** पढ़ कर संतोष हुआ कि हमारा युवा वर्ग जीवन को बहुत निकट से देख रहा है, उसके प्रति सजग है. वह प्रयत्नशील है, तैयारी कर रहा है, आने वाले कल की.

'तालपत्री' में बहुत सच्ची बात और **'ओ हरामजादे'** में बहुत ही स्वाभाविक छूने वाली बात कही गयी है.

नंदकिशोर अरोड़ा, जोधपुर : कालगत नवीनता होते हुए भी, नये लेखकों की इन कहानियों में रचनात्मक प्रौढ़ता की झलक स्पष्ट दिखायी देती है. **'अपना परिवेश'** रिपोर्ताज से प्रमाणित हो गया कि यह विधा भी कलात्म[illegible] पर कहानी के समकक्ष दृ[illegible] खड़ी रह सकती है.

लघु कथाओं में **'घोंसला चिड़िया का'** और **'पर उपदेश कुशल'** सबसे सशक्त रहीं.

मिथिलेश दीक्षित, शिकोहाबाद : सभी नयी रचनाएं उत्तम हैं. आम आदमी के परिवेश के इर्द-गिर्द हैं.

'एक शिक्षाप्रद कथा' धनाढ्य और अवसरवादियों पर करारा व्यंग्य है. **'आवाज की अरथी'** में क्षेत्र विशेष के निम्नवर्गीय पात्रों का सजीव चित्रण है.

सी. बी. बोरकर, बंबई : **'आवाज की अरथी'** आम जिंदगी और विशेषतः दरिद्रता में निर्मित विसंगतियों की ज्वलंत व्यथा है. **'तालपत्री'** सशक्त रचना है. **'अपना परिवेश'** देश के किसी भी गांव-कस्बे में घुमा ले आता है और सोचने को मजबूर करता है.

आर. एस. केशरी 'परमेश्वरम्', बिलासपुर : हमारी धरती पर रहने वाले लोगों की तकलीफों, विवशताओं, संत्रासों, विसंगतियों, आघात-प्रतिघातों को जिस खूबी से और सरल ढंग से इन **नये लेखकों** ने चित्रित किया है, उसके लिए वे बधाई के पात्र हैं. **'ओ हरामजादे'** में लेखक ने अपनी धरती की मीठी सुगंध भर दी है.

राजेंद्र प्रसाद तिवारी 'अकेला', गोरखपुर : सर्वाधिक धारदार कहानी **'बेघर'** है. **'दधीचि का अंत'**, **'ओ हरामजादे'** ने भी विशेष रूप से प्रभावित किया. **'लाल पसीना'** अपने आप में एक अलग ही उपलब्धि है.

विजय शंकर मंडल, सूर्यग (मुंगेर) : **'शहीद'** और **'टूटे हु चेहरे का आईना'**, यथार्थ अनुभू और संवेदना की देन हैं. **'ओ हरामजादे'**, **'त्वमेव माता'** तथा नं लेखकों की अन्य कहानियां जोरदार हैं. **'गर्दिश के दिन'** ओम गोस्वामी लेखक जीवन साक्षात्कार कराते हैं. ☐

यशवंत कोठारी, उदयपुर नये कहानीकारों की कहानियों के अलावा **'आवाज की अरथी'** सबसे आगे निकल गयी. **'एक शिक्षाप्र कहानी'** जमी नहीं. **'त्वमेव माता'** और **'ओ हरामजादे'** भी सुंदर हैं लघुकथाएं **'सारिका'** की अपनी उपलब्धि है.

भैरव शर्मा, चंदौसी : ओम गोस्वामी की **आत्म-रचना** पढ़ कर लगता है मानो आम निम्न-मध्यम वर्गीय बुद्धिजीवी युवा की जिंदगी खुद अपना हाल बयान करने उत आयी हो.

'ओ हरामजादे' का भावा धिक्य सहज संवेद्य है. कहानी क्या है, प्रवासी मनसागर में पूर्णिमा को उठने वाला ज्वार है. नये लेखकों की कहानियां भी बहुत अच्छी लगीं. ☐

नवेंदु, आरा : नये रचनाकारों की कहानियों के अलावा **'ओ हरामजादे'** का भारतीय प्रवासी देर तक याद रहा. उसके देशप्रेम, देश के लोगों से मिलने की अकुलाहट और उसकी मानसिक छटपटाहट, सबका अत्यंत सूक्ष्म विश्लेषण हुआ है.

"नयी प्रतिभाएं जब भी और जहां भी मिलती हैं, 'सारिका' उनका स्वागत करती है," यह नीति अत्यंत सराहनीय है. इससे नये रचनाकर्मियों को नयी दिशा, बल और प्रोत्साहन मिलेगा. ☐

सरदारसिंह, अजमेर: 'सारिका' की कहानियों को आज के आम जीवन से जूड़ी कहानियां न मानना, अपने आसपास रोज होने वाली घटनाओं को सपन

मान कर नकारना है, फिर भी गालियों का अधिक प्रयोग, तथा बोलचाल की भाषा के नाम पर भाषा को अत्यधिक गंवारू बना देने का प्रयोग चुभने लगता है. ☐

जगदीशप्रसाद सिन्हा, जमुई (आरा) : 'लाल पसीना' के किसन ने गोरों के शोषण के विरोध में सशक्त बिखरे आक्रोश को संगठित किया, यह गर्व की बात है.

हजारों किलोमीटर की दूरी पर, शताब्दियां बीत जाने पर भी भोजपुरी अभी भी मौरीशस की सशक्त एवं प्रमुख भाषा है, संघर्ष के थपेड़ों के बावजूद वह नहीं बदली है, यह उसकी असाधारण लोकप्रियता एवं प्रौढ़ता का द्योतक है. ☐

कु. कृष्णा कुमारी गुप्ता, सहारनपुर: यह जान कर प्रसन्नता हुई कि अब 'सारिका' में देश के, भारती के कहानीकार पुनः आने लगे हैं. एक बात और : देशी लेखक अश्लील भाषा ही लिखता है क्या? सितंबर में ऐसी दो रचनाएं थीं जिनम अश्लील वाक्यों के सिवा कुछ नहीं था.

ऐसा ही कई बार लघुकथाओं में भी देखती हूं. लघुकथाओं में ऐसा कुछ नहीं होता जिसे कुछ नवीन या वस्तुतः कहानी माना जाये. हम अभी तक न पंचतंत्र कथाओं से आगे गये हैं और न लोक कथाओं से अपना पिंड छुड़ा सके हैं. 'सारिका' से हम कुछ ऊंची उम्मीद ही लगाते हैं. ☐

(चयन-संयोजन : इगलासिया)

सारिका के जून १९७५ के अंक में श्री सुरेंद्रसुकुमार लिखित 'अगिहाने' शीर्षक कहानी के प्रकाशन से गोरहा एटा निवासी कुंवर नगेंद्र सिंह जी की भावनाओं को जो आघात पहुंचा है, उसके लिए हमें खेद है

—संपादक

प्रगतिशील चिंतन और प्रतिगामी बौखलाहट

प्रतिक्रियावाद हमेशा मौकापरस्ती के सुरक्षित फुटपाथों पर चलने का आदी रहा है. मुखौटे बदलने में इसका कोई सानी नहीं है. हवा का रुख सूंघने की इसकी क्षमता अद्‌भुत है. आपात्स्थिति से पहले तक जो लोग 'विचार स्वातंत्र्य' और 'अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य' के नाम पर सरकार की प्रगतिशील नीतियों की चिंदियां बिखेरने पर अड़े हुए थे, वही आज 'सरकार-भक्त' बन बैठे हैं और [illegible] स्वतंत्रता का मखौल उड़ा रहे हैं. जिनका प्रगतिशील चिंतन से दूर का भी रिश्ता नहीं, वे उसके धुरंधर व्याख्याता बनने की पेशकश में हैं. यह भी सत्य है कि जब फिर हवा का रूख बदलेगा तो इन्हें अपना मुखौटा उतारते देर नहीं लगेगी. ये प्रतिगामी शक्तियां समय सापेक्ष सामाजिक संदर्भों की वैज्ञानिक परख और व्याख्या की कोशिशों में रुकावट पैदा करने की कुटिल हरकतें करती आयी हैं, कर रही हैं और करती रहेंगी, लेकिन प्रगतिशील चिंतन कभी इनसे भयभीत नहीं रहा. प्रगतिशील सोच की धारा हमेशा आम आदमी के साथ रही है और समाज के कमजोर वर्ग को समुचित सामाजिक न्याय दिलाने की कोशिश करती आयी है. साथ ही इसने न केवल प्रतिक्रियावादी साजिशों का सफल मुकाबला किया है, बल्कि उनके मुखौटों को नोंचकर फेंका भी है.

आज फिर साहित्य और चिंतन के नाम पर इस तरह की घृणित साजिशें हो रही हैं. प्रतिक्रियावादियों तथा निहित स्वार्थ वाले अलेखक और अर्धलेखकों ने राष्ट्रहित और जनहित के नारों की रेशमी रामनामी ओढ़ कर अपनी नितांत प्रतिक्रियावादी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से, जिस साजिश का प्रारंभ किया है, वह सही प्रगतिशील चिंतन को भ्रमित नहीं कर सकती.

'पहल' में प्रकाशित शाकिर अली के जिस लेख पर इतना हंगामा उठ रहा है उतना तो सी. आई. ए. के किसी षड्यंत्र पर भी इन लोगों ने नहीं उठाया था. साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी चिंतन के मोहताज ये लोग, अपनी जमीन की महक, अपने वक्त और अपने आदमी से जुड़ कर जिंदगी के यथार्थ के प्रति संबद्धता की सही सोच को सहज स्वीकार नहीं कर सकते और इसके लिए प्रगतिशील लेखक को चिंतित नहीं होना चाहिए.

'पहल' जैसी प्रगतिकामी और पाजिटिव पत्रिका के विरुद्ध जो अभियान शुरू किया गया है, उस प्रतिक्रियावादी अभियान की भर्त्सना भारत की सभी भाषाओं के समांतर और दलित लेखक करते हैं.

महामंत्री,

समांतर लेखक संघ.

मुग़ल बच्चा

• इस्मत चुगताई

फतहपुर-सीकरी के सूनसान खंडहरों में गोरी दादी का मकान पुराने सूखे जख्म की तरह खटकता था. ककैय्या ईंट का दो-मंजिला घुटा-घुटा-सा मकान एक मार खाये रूठे हुए बच्चे की तरह लगता था. देखकर ऐसा मालूम होता था कि वक्त का भूचाल उसकी ढिठाई मे हार कर आगे बढ़ गया और शाही शानो-शौकत पर टूट पड़ा.

गोरी दादी सफेद झक चांदनी बिछे तख्त पर सफेद बेदाग कपड़ों में एक संगमरमर का मकबरा मालूम होती थीं. सफेद ढेरों बाल, बेखून की सफेद धोयी हुई मलमल जैसी खाल, हलकी-भूरी आखें जिन पर सफेदी रेंग आयी थी, पहली नजर में सफेद लगतीं थीं. उन्हें देखकर आंखें चकाचौंध हो जाती थीं जैसे पिसी हुई चांदी की धूल उनके आस-पास छायी हुई हो.

न जाने कब से जिये जा रही थीं. लोग उनकी उमर सौ से ऊपर बताते थे. खुली-खुली गुमसुम बेनूर आंखों से वो इतने साल क्या देखती रहीं थीं, क्या सोचती रहीं थीं, कैसे जीती रही थीं. बारह-तेरह बरस की उमर में वो मेरी अम्मा के चचा-दादा से ब्याही तो गयीं थीं मगर दूल्हा ने दुल्हन का घूंघट भी न उठाया था. क्वांरेपन की एक सदी उन्होंने इन्हीं खंडहरों में बितायी थी. जितनी गोरी बी सफेद थीं, उतने ही उनके दूल्हा स्याह-मट्ट थे, इतने काले कि उनके आगे चिराग बुझे! गोरी बी बुझ कर भी धुंआ देती रहीं.

सरे-शाम खाना खाकर झोलियों में सूखा मेवा भरकर हम बच्चे लिहाफों में दुबककर बैठ जाते और पुरानी जिंदगी के पत्ते उल्टे जाने लगते. बार-बार सुन कर भी जी न भरता, अदबदा कर गोरी बी और काले मियां की कहानी दुहरायी जाती. बेचारे की अकल पर पत्थर पड़ गये थे कि इतनी गोरी-गोरी दुल्हन का घूंघट भी न उठाया.

अम्मा साल के साल पूरा लाव-लश्कर लेकर मैके पर धावा बोल देतीं. बच्चों की ईद हो जाती. फतहपुर-सीकरी के रहस्यमय शाही खंडहरों में आंखमिचौली खेलते-खेलते जब शाम पड़ जाती तो खोये-खोये सुरमई वातावरण से डर लगने लगता. हर कोने से साये लपकते. दिल धक-धक करने लगता.

—काले मियां आ गये! हम एक दूसरे को डराते, गिरते-पड़ते भागते और ककैय्या ईंट के दो-मंजिल मकान की गोद में दुबक जाते. काले मियां हर अंधेरे कोने में छिपे महसूस होते. बहुत से बच्चे मरने के बाद हजरत सलीम चिश्ती की दरगाह पर माथा रगड़ा तब गोरी बी का मुंह देखना नसीब हुआ. मां-बाप की आखों की ठंडक गोरी बी बड़ी जिद्दी थीं. बात-बात पर अखाटी-खटवाती लेकर पड़ जातीं. भूख हड़ताल कर देतीं. घर में खाना पकता, कोई मुंह न जुठालता. ज्यों का-त्यों उठवा कर मसजिद में भिजवा दिया जाता. गोरी बी न खातीं तो अम्मा-बाबा कैसे निवाला तोड़ते?

बात इतनी -सी थी कि जब मंगनी हुई तो लोगों ने मजाक में छींटें कसे.

ऐ—गोरी दुल्हन, काला दुल्हा!

मगर मुगल बच्चे मजाक के आदी नहीं होते. सोलह-सतरह बरस के काले मियां अंदर ही अंदर घुटते रहे. जल कर मुरंडा होते रहे.

—दुल्हन मैली हो जायेगी. खबरदार यह काले-काले हाथ न लगाना!

—बड़े नाजों की पली है. तुम्हारी तो परछांयी भी पड़ी तो काली हो जायेगी.

—बड़ी बद-दिमाग है. सारी उमर जूतिया उठवायेगी.

★ ★

अंग्रेजों ने जब मुगलशाही का अंतिम संस्कार किया तो सबसे बुरी मुगल बच्चों पर बीती क्योंकि वे ही ज्याद ओहदे संभाले बैठे थे. ऊंचे ओहदे और जागीरें छिन जाने के बाद लाख के घर देखते-देखते खाक हो गये. बड़ी-बड़ी ढ़ंढ़ार हवेलियों में मुगल बच्चे भी पुराने सामान की तरह जा पड़े, भौचक्के-से रह गये जैसे किसी ने पैरों-तले से तख्ता खींच लिया.

तभी मुगल बच्चे अपने गौरव व आत्माभिमान की तार-तार चादर में सिमट कर अपने अंदर ही अंदर घुसते चले गये. मुगल बच्चे अपनी दिमागी धुरी से थोड़ा खिसके हुए होते हैं. खरे मुगल की यही पहचान है कि उसके दिमाग के दो-चार पेंच ढ़ीले या जरूरत से ज्यादा तंग होते हैं. आकाश से धरती की तरफ लुढ़के तो मस्तिष्क का संतुलन डगमगा गया. जिंदगी की कदरें गडमड हो गयीं. दिमाग से ज्यादा भावनाओं से काम लेने लगे.

अंग्रेज की चाकरी लानत और मेहनत-मजदूरी शान के खिलाफ. जो कुछ धन-दौलत बची, उसे बेच-बेच कर खाते रहे. हमारे अब्बा के चचा रुपये-पैसे की जगह चाची के दहेज के पलंग के पायों से चांदी का पत्तर उखेड़ ले जाते थे. जेवरों और बर्तनों के बाद गोटे-टके कपड़े नोच-नोच कर खाये. पानदान की कुलियां सिलबट्टे से कुचल कर टुकड़ा-टुकड़ा बेचीं और खायीं. घर के मरद दिन भर पलंग की अदवायन तोड़ते, शाम को पुरानी-धुनी अचकन पहनीं और शतरंज-पचीसी खेलने निकल गये. घर की बीबियां छुप-छुप कर सिलायी कर लेतीं. चार पैसों से घर का चल्हा जल जाता या मुहल्ले के बच्चों को कुरान पढ़ा देतीं तो कुछ नजराना मिल जाता.

● नरेंद्र एन. शाह

काले मियां ने दोस्तों की छेडखानी को जी का घाव बना लिया. जैसे मौत की घड़ी नही टलती वैसे मां-बाप की तय की हुई शादी न टली. काले मियां सिर झुका कर दूल्हा बन गये. किसी सर-फिरी ने ऐन मुंहदिखाई के वक्त और छेड़ दिया.

—खबरदार, जो दुल्हन को हाथ लगाया, काली हो जायेगी.

मुगल बच्चा चोट खाये नाग की तरह पलटा. बहन का आंचल सिर से नोचा और बाहर चला गया. जब दूल्हा अंदर औरतों में आता है तो उसकी बहन उसके सर पर अपना आंचल डाल कर लाती है.

हंसी में खंसी हो गयी. एक मातम बरपा हो गया. मरदानखाने में इस ट्रैजड़ी की खबर हंसी से उड़ा दी गयी. बगैर मुंहदिखाई की रस्म के बिदाई एक कयामत थी.

—खुदा की कसम मैं उसके घमंड को चकनाचूर कर दूंगा. किसी ऐसे-वैसे से नहीं, मुगल-बच्चे से वास्ता पड़ा है, काले मियां फुंफकारे.

★ ★

काले मियां शहतीर की तरह पूरी मसहरी पर फैले पड़े थे. दुल्हन एक कोने में गठड़ी बनी कांप रही थी. बारह बरस की बच्ची की बिसात ही क्या!

—घूंघट उठाओ, काले मियां डकराये.

दुल्हन और गुड़ी-मुड़ी हो गयी.

—हम कहते हैं, घूंघट उठाओ, कोहनी के बल उठ कर बोले.

सहेलियों ने तो कहा था, दूल्हा हाथ जोड़ेगा, पैर पड़ेगा. और खबरदार जो घूंघट को हाथ लगाने दिया. दुल्हन जितना भी अपने बचाव के लिए हाथ-पैर मारे, उतनी ही ज्यादा पवित्र समझी जाती है.

—देखो जी, तुम नवाबजादी होगी अपने घर की. हमारे तो पैर की जूती हो. घूंघट उठाओ, हम तुम्हारे बाप के नौकर नहीं.

दुल्हन को जैसे लकवा मार गया.

काले मियां चीते की तरह लपक कर उठे. जूतियां उठा कर बगल में दाबीं और खिड़की में से पायीं-बाग में कूद गये. सुबह की गाड़ी से वो जोधपुर दनदना गये.

घर में सोता पड़ा था. एक एक्काबी जो दुलहन के साथ आयी थी, जाग रही थी. कान दुल्हन की चीखों की तरफ लगे थे. जब दुल्हन के कमरे से चूं की आवाज भी न आयी तो उनके पैरों का दम निकलने लगा.

—हय! —हय! कैसी बेहया लड़की है. लड़की जितनी भी ज्यादा मासूम और क्वांरी होगी उतना ही ज्यादा द्वंद्व मचायेगी. क्या काले मियां में कुछ खोट है? जी में सोचने लगी. दिल चाहा कुएं में कूद कर किस्सा खतम करे.

चुपके से कमरे में झांका तो जी सन्न रह गयी. दुल्हन जैसी की तैसी धरी थी और दूल्हा गायब! बड़े उल्टे-सीधे किस्म के हंगामें हुए. तलवारें खिचीं. बड़ी मुश्किल से दुल्हन ने जो उस पर बीती थी कह सुनायी. इस पर तरह-तरह की खुसर-पुसर होती रही. खानदान में दो पार्टियां बन गयीं. एक काले मियां की, दूसरी गोरी बी की.

—आखिर वो उसका शौहर है, उसका देवता है. उसका हुक्म न मानना गुनाह है, एक पार्टी इस बात पर जमी हुई थी.

—कहीं किसी दुल्हन ने खुद घूंघट उठाया है? दूसरी पार्टी का कहना था.

काले मियां को जोधपुर से बुलवा कर दुल्हन का घूंघट उठवाने की सारी कोशिशें असफल रहीं. वे वहां

घुड़सवारों में भरती हो गये. और बीवी को रोटी-कपड़ा भेजते रहे जो गोरी बीबी की मां समधिन के मुंह पर मार आतीं.

गोरी बी कली से फूल बन गयीं. हर अठवाड़े हाथ-पैर में मेंहदी रचाती रहीं. बंधे-टके दुपट्टे ओढ़ती रहीं और जीती रहीं.

फिर खुदा का करना ऐसा हुआ कि बाबा की मरण घड़ी आन पहुंची. काले मियां को खबर गयी तो न जाने किस मूड में थे, भागे आये. बाबा मौत का हाथ झटक कर उठ बैठे. काले मियां को हाजिरी का हुक्म दिया. दुल्हन का घूंघट उठाने की कला-कौशल्य पर मिसकौट हुई.

काले मियां ने सिर झुका दिया. मगर शर्त वो ही रही कि चाहे जो हो जाय मगर घूंघट तो दुल्हन को अपने हाथों ही उठाना पड़ेगा.

—अब्बा हुजूर, मैं कसम खा चुका हूं. मेरी गर्दन उड़ा दीजिए मगर कसम नहीं तोड़ सकता.

मुगल-बच्चों की तलवारें जंगिया चुकी थीं. आपस की मुकद्दमेबाजियों ने सिर का कस-बल निकाल दिया था मगर मूर्खतापूर्ण जिद्दें रह गयी थीं. बस उन्हीं को कलेजे से लगाये बैठे थे. किसी ने काले मियां से न पूछा कि तुमने ऐसी बेवकूफी की कसम खायी ही क्यों कि अच्छी-भली जिंदगी एक शाप बन गयी.

खैर साहब, गोरी बी फिर से दुल्हन बनायी गयी. ककैय्या ईंटवाला मकान फिर फूलों और इतर की खुशबू से महक उठा.

अम्मा ने समझाया — तुमसे उसका विवाह हुआ है बेटीजान, घूंघट उठाने में कोई ऐब नहीं. उसकी जिद्द पूरी कर दो. मुगल-बच्चे की आन रह जायेगी. तुम्हारी दुनिया संवर जायेगी. गोदी में फूल बरसेंगे. अल्लाह रसूल का हुकम पूरा होगा.

गोरी बी सिर झुकाये सुनती रहीं. कच्ची कली सात साल में कयामत ढा देने वाली नवयुवती बन चुकी थी. हुस्न और जवानी का एक तूफान था जो तन-मन से फूटा निकलता था.

औरत काले मियां की सबसे बड़ी कमजोरी थी. उनके सबके सब सोच-विचार इसी एक बिंदू पर केंद्रित थे. मगर उनकी कसम एक कारोंदार लोहे के गोले की तरह उनके कंठ में फंसी हुई थी. उनकी वासनाओं के सात सालों ने आंखमिचौली खेली थी. उन्होंने बीसियों घूंघट नोच डाले. रंडीबाजी, लौंडेबाजी, बटेरबाजी, कबूतरबाजी मतलब कोई बाजी न छोड़ी. मगर गोरी बी के घूंघट की चोट दिल में पंजे गाड़े रही जो सात साल सहलाने के बाद घाव बन चुकी थी. इस बार उन्हें यकीन था कि उनकी कसम पूरी होगी. गोरी बी ऐसी अक्ल की कोरी नहीं कि जीने का यह आखिरी अवसर भी गंवा दे. दो उंगलियों से हल्का-फुल्का आंचल ही तो सरकाना है. कोई पहाड़ तो नहीं ढोने.

—घूंघट उठाओ, काले मियां ने विनीत भाव से कहना चाहा मगर मुगलवी दबदबा विजयी रहा.

गोरी बेगम गरूर से तमतमायी सन्नाटे में बैठी र

—आखिरी बार हुक्म देता हूं. घूंघट उठा द वरना इसी तरह पड़ी सड़ जाओगी. अब जो गय फिर न आऊंगा.

मारे गुस्से के गोरी बी लाल भूभूका हो गयीं काश उनके सुलगते हुए चेहरे से एक शोला लपक और वो मनहूस घूंघट जल कर खाक हो जाता!

बीच कमरे में खड़े काले मियां कौड़ीयाले सांप की तरह झूमते रहे. फिर जूते बगल में दबाये पायीबाग में उतर गये.

युग बीत गये. अब तो पायीबाग कहां? उधर पिछवाड़े लकड़ियों की टाल लग गयी. बस दो जामु के पेड़ रह गये थे और एक विशाल बरगद. बेले चमेली की झाड़ियां, गुलाबों के झुंड, शहतूत और अना के दरख्त पेड़ कब के लुट-पिट चुके.

जब तक मां जिंदा रहीं, गोरी बी को संभाले रहीं उनके बाद वह ड्यूटी गोरी बी ने खुद संभाल ली हर जुम्मे रात को मेहंदी पीस कर पाबंदी से लगातीं दुपट्टा रंग चुन कर गोटा टांकतीं और जब तक ससु राल जिंदा रही, हर त्योहार पर सलाम कर जाती रहीं.

अब की तो काले मियां लुप्त ही हो गये. बरस उनका सुराग न मिला. मां-बाप रो-रो कर अं हो गये. वो न जाने किन जंगलों की खाक छानते फिरे. कभी दरगाहों में उनका पता मिलता, कभी किसी मंदिर की सीढ़ियों पर पड़े पाये जाते.

गोरी बी के सुनहले बालों में चांदी फूल गयी. मौत की झाड़ू काम करती रही. आसपास की जमीनें और मकान कौड़ियों के मोल बिकते गये., कुछ पर नये लोग जबरदस्ती बस गये. कुंजड़े-कसाई आन बसे. पुराने महल ढ़ह कर नयी दुनिया की नींव पड़ने लगी. परचून की दुकान, डिस्पेंसरी, एक मरगिला-सा जनरल स्टोर भी उग आया जहां अल्यूमीनियम की पतीलियां और लिपटन की चाय की पूड़ियों के हार लटकने लगे.

एक अधमुई मुट्ठी की दौलत रिस-रिस कर बिखर रही थी. कुंछ जानदार उंगलियां समेटने में लगी थीं. जो कल तक पलंग की अदवाइन पर बैठते थे, झुक-झुक कर सलाम करते थे, आज साथ उठना-बैठना भी अपनी शान के खिलाफ समझने लगे.

गोरी बी का जेवर आहिस्ता-आहिस्ता लालाजी की तिजोरी में पहुंच गया. दीवारें ढह रहीं थीं. छज्जे झूल रहे थे. बचे-खुचे मुगल-बच्चे अफीम का अंटा निगल कर पतंगों के पेच लड़ा रहे थे. तीतर-बटेर सधा रहे थे और कबूतरों की दुमों के पर गिन कर हलकान हो रहे थे. लफ्ज 'मिर्जा' जो कभी शान और दब दबे की निशानी समझा जाता था, मजाक बन रहा था. गोरी बी कोल्हू के अंधे बैल की तरह जिंदगी के छकड़े में जुती धुरी पर घूमे जा रही थीं. उनकी नीली आखों में सूनेपन ने डेरा डाल दिया था.

उनके लिए तरह-तरह की कहानियां मशहूर थीं कि उन पर जिन्नों का बादशाह आशिक था. ज्यूंही काले मियां उनके घूंघट को हाथ लगाते, चट तलवार सूत कर खड़ा हो जाता. हर जुम्मे रात को आधी रात की नमाज के बाद वजीफा पढ़ती तब सारा आंगन कौड़ियाले सांपों से भर जाता. फिर सुनहरी मुकुट वाला नागराज अजगर पर सवार हो कर आता है. गोरी बी के पाट की धुन पर सिर धुनता है. पौ फटते ही सब सिधार जाते हैं.

जब हम किस्से सुनते तो कलेजे उछल कर हलक कंठ में फंस जाते और रात को सांपों की फुंकारें सुन कर उठते और चीखें मारने लगते.

गोरी बी ने सारी उम्र कैसे-कैसे नाग खिलाये होंगे, कैसे अकेली नामुराद (अभिशप्त) जिंदगी का बोझ ढोया होगा? उनके रसीले होंठों को कभी किसी ने नहीं चूमा. उन्होंने अपने जिस्म की पुकार को क्या जवाब दिया होगा?

अच्छा होता, यह कहानी यहीं खतम हो जाती.

किस्मत मुस्करा रही थी.

पूरे चालीस बरस बाद काले मियां अचानक आप ही आ धमके. उन्हें किस्म-किस्म की लाइलाज बीमारियां लग चुकी थीं. पोर-पोर सड़ रही थी. रोम-रोम रिस रहा था. बदबू के मारे नाक सड़ी जाती थी. मगर आंखों में हसरतें जाग रहीं थीं, जिनके सहारे जान सीने से अटकी हुई थी.

—गोरी बी से कहो मुश्किल आसान कर जायें.

एक कम साठ बरस की दुल्हन ने रूठे हुए दुल्हा को मनाने की तैयारियां शुरू कर दीं. मेंहदी, घोल कर हाथ-पैरों में रचायी. पानी गरम कर के पिंडा पाक किया. सुहाग का चिकटा हुआ तेल सफेद लटों में बसाया. संदूक खोल कर भर-भर टपकता-झड़ता शादी का जोड़ा निकाल कर पहना और इधर काले मियां दम तोड़ते रहे.

जब गोरी बी शरमाती-लजाती धीरे-धीरे कदम उठाती उनके सिरहाने पहुंचीं तो झिलगे पलंग पर चीकट तकिये और गूदड़ बिस्तर पर पड़े हुए काले मियां की मुट्ठी हड्डियों में जिंदगी की लहर दौड़ गयी. यमदूत से झूजते हुए काले मियां ने हुक्म दिया :

—गोरी बी, घूंघट उठाओ!

गोरी बी के हाथ उठे मगर घूंघट तक पहुंचने के पहले गिर गये.

काले मियां दम तोड़ चुके थे.

वो बड़े सकून से उकड़ूं बैठ गयीं. सुहाग की चूड़ियां ठंडी कीं और रंडापे का सफेद आंचल माथे पर खींच लिया. □□□

(अनुवाद : राज बेदी)

३, ईस्टन कोर्ट 'ए' चर्च गेट, बंबई-२०

एक गजल

• महेश अनघ

ऐसे देख रहे हैं हम अपने जीवन-व्यापार को।
जैसे कोई प्रेत निहारे छूट गये परिवार को॥

ऐसी बौरा गयी हमारी अभिलाषा उन्माद में।
बौना हाथ बढ़ा कर पकड़े परछाई के प्यार को॥

यहीं कहीं महकी क्यारी पिछले जन्मों की याद-सी।
सपनों में सुन रहे किसी की सांसों की झंकार को॥

कई-कई चमकीले चेहरे दिख जाते आकाश में।
इन चेहरों में खोज रहे हैं अपने रिश्तेदार को॥

इस पूरी घटना के हीरो लगता है जैसे हम थे।
देख रहे हैं पर्दे पर चलते-फिरते संसार को॥

बरामदे पर...

रणजीतकुमार साहा

बंदरों को मारने के लिए चाहे जिस किसी ने भी पत्थर उठाया हो, नुकसान मुरला का ही होता. बंदर पीपल की डालों से सीधे उसके घर की छत पर ही कूदते. टिन और ऐसवेस्टस शीट या दूसरे ठुके-पीटे चद्दरों को थोप-थापकर जमाई गयी छत की बधिया ही उधेड़ देते. उन बंदरों को रोकने की सारी गुंजाइशें चुक गयी थीं. कस्बे के एक दूर कोने पर बिना छत के और बिना सलीके के दरवाजे का घर, लूट-पाट और ताक-झांक के ड़र से जिसकी सारी खिड़कियां पहले ही मुंद-तोप दी गयी थीं.

पीछे मुसलमानों के आठ-दस घर थे जिनकी ठिगनी चारदीवारी पर कांच की नुकीली किर्चियां उगा दी गयी थीं. उस पर चढ़े मुर्ग की कुड़कुड़ाती आवाजें, मुरला के कानों में शीशे की तरह चुभने लगतीं. फिर भी वह सोने का लंबा बहाना खींचे पड़ा रहता. जब काफी ऊपर रोशनदान पर सूरज चढ़ जाता और बंदरों की हुफ्फ. . .हुफ . . .फ. . .हुफ फ. . .से उसकी कनपटी दिप जाती, तब यह घबड़ाकर अपनी आंखें खोल देता. रोशनी की दो चमकती शमशीरें—ऊपर से सीधे उसकी आंखों में आकर खुबतीं और वह आंखें बंद कर अपना मुंह तकिये में डाल देता.

नीचे गीले सहन पर शामू, सोनू को बंदर की तरह मुंह बनाकर चिढ़ाता रहता. सोनू के कुलबुलाने पर शामू उसकी बगलों में उंगलियां नचा कर, उसे गुदगुदाता. पर सोनू हंसता ही नहीं. उसकी आंखें डबडबाने को होतीं कि राजो दौड़ी हुई आती और सोनू को अपने कलेजे में छुपा लेती. शामू हाथ में संटी लिये घर से निकल कर बाहर सड़क पर कूदने लगता.

पूरा मोहल्ला एक खुला यतीमखाना था. नाले के एक सिरे से दूसरे सिरे याने यहां से वहां तक; इधर चैती दुर्गा थान से लेकर उधर मंसूर मियां की 'डेली ब्रेड बेकरी' तक. शाम गहराने के बाद पता चलता जैसे सारा मोहल्ला गूंगा हो गया है. कभी-कभी प्रदीप प्रिंटर्स की ट्रेडल मशीन कीं 'शऽप. . .शअऽप. . .अप. . . शटप' की आवाज से लगता कि रात उस मनहूस बस्ती में घुसना नहीं चाहती. . .पर कोई है जो उसकी नंगी पीठ पर सड़ाक-सड़ाक चाबुक मार कर घसीटता ले ही आता है. तभी पता चलता, इस मोहल्ले की धूल से सने और सड़कों पर बहते कीचड़ से लिथड़े-लिपटे बच्चों के शायद मां-बाप भी हैं. सड़क पर अपनी खाट निकाल कर कुछ बहादुर किस्म के लोग जांघ खुजाते-खुजाते सो जाते. सुबह होते ही खाट अंदर कर लेते और बच्चों को बाहर धकेल देते. घर या चौखट के सामने वाली धूल भरी सड़क का हिस्सा लोगों ने अपनी मिल्कियत में ही शुमार कर लिया था. वहां गाय बांधी जाती, बकरी को घास डाली जाती, धान सूखने दिया जाता, पापड़ फैलाया जाता, मालिश की जाती और लड़कियां 'चूचू' भी खेलती थीं. प्रायः हर दरवाजे के सामने चिकने पत्थर का एक बड़ा टुकड़ा था जिस पर कपड़े साफ किये जाते और स्नान-ध्यान कर पूर्वजों के लिए 'जल-तर्पण' भी किया जाता.

मुरला जब भी घर आता, बिछावन छोड़ते ही चड्ढी ऊंची करता हुआ दरवाजे की नाली की तरफ भागता. राजो शामू के हाथ झाड़ू भिजवा देती. मुरला झाड़ू लेकर अपने हिस्से की सड़क से धूल के बगूले चारों ओर हवा में छितराने लगता. अगल-बगल राह चलते राहगीर थूकने लगते. यूं भी चारों ओर ऐसी तीखी और तेजाबी बू फैली रहती कि नाक सड़ जाती थी. सामने बिंदा हलवाई जोर-जोर से अपने चूल्हे की मांद के सामने पंखा झलने लगता ताकि धूल का जवाब धुएं से दिया जा सके. मक्खियां भिनभिनाकर उड़तीं तो पता चलता कौन-कौन-सी परातों में मिठाइयां रखी हैं. आकार से उन्हें पहचानना कठिन ही था. मक्खियों के खिलाफ दूसरा तगड़ा आंदोलन तब किया जाता, जब ग्राहकों के आने का समय हो जाता या दही की कतरी या जलेबी की ठंडी चासनी में चार-आठ मक्खियां चिमट कर दम न तोड़ चुकी होतीं. बिंदा के झल्लाने पर उसकी साली असिया भिन्न-भिन्न करती निकलती और जलेबी, बताशा, शकरपारा, लड्डू, बूंदी या पेड़ों की थालों पर बारी-बारी से पंखा झलने का तमाशा करने लगती. ग्राहक जुटने लगते.

मुरला बीड़ी पीकर निश्चिंत हो, तीली से कान का मैल निकालने लगता. मोहल्ले में संडासों की सफाई का काम तब तक जोरों से शुरू हो चुका होता. सर पर कनस्तर लिये मेहतरानियों की हिलती और आपस में ही टकराती छातियों को देखते हुए उसका ध्यान तब टूटता जब नाले में कोई बेंग फुदकता. नाले के किनारे कतार बांधे नंगे बच्चे चूतड़ लटकाये बैठे रहते. कुछ तो हमेशा वहीं जमे रहते. कुछ के मुंह भी चलते रहते.

राजो सोनू के फतुए की गांठ बांध कर नाले के किनारे बैठा जाती—इस पर जरा नजर रखियो जी. . .

—शामू कहां गया है, मुरला जैसे सड़क से पूछता.

—गया होगा, बेकरी की तरफ.

मोहल्ले के सभी होनहार, जिनकी-जिनकी टांगें सीधी हो चुकी थीं, उनका पहला काम था—सुबह, अल्ल सुबह मंसूर मिया की बेकरी के सामने खड़े हो जाना. आजकल मैदा जिस भाव ब्लैक से मिलता

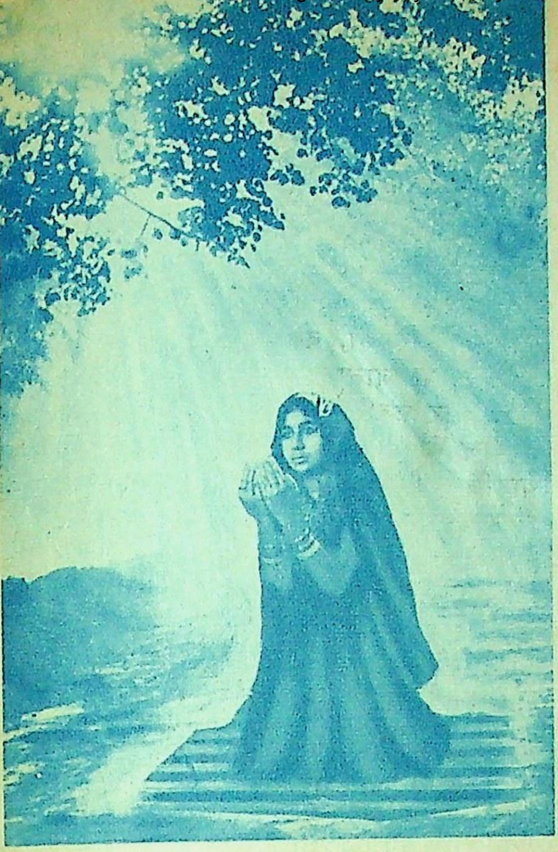

● सत्यपाल भारद्वाज

है, उससे हिंदुस्तान छाप 'स्लाइस्ड मिल्क ब्रेड' बनाने में बड़ी दुश्वारियां थीं. मंसूर मियां का ब्रेड होटलों में जाता, कुछ ब्लाक के अस्पताल में और कुछ बंधे-बंधाये ग्राहकों के पास. लड़वा, तलवार, कटार, तिकोनी या गोला जैसे नाम से पुकारे जाने वाले बिस्कुटों या बनों की खुरचन का ढेर भी गलियों की सफाई के समय निकलता था. उस बुहारी जाती हुई दौलत के दरवाजे से बाहर आने के पहले ही लड़के उसे झपटने के लिए झगड़ पड़ते या सरफुटौवल कर लेते. तब उनके मां-बाप को खानदानी झगड़ा करना पड़ता. कभी-कभी इस झगड़े में हिंदुस्तान-पाकिस्तान के झंडे और डंडे लहराने लगते और गांधी या जिन्ना भी चार-चांद लगा जाते.

राजो ने बेकारी का नाम सुना तो उसके माथे की नस एक बार तड़की पर उसने पांव नहीं पटका. इस महीने के बीतने के बाद शामू को प्रदीप प्रिंटर्स में सुबह ही चला जाना पड़ेगा क्योंकि दस-ग्यारह साल का लड़का पढ़ना छोड़ कर बड़ी आसानी और ईमानदारी से ट्रेडल मशीनों की सफाई कर सकता है. ग्राहकों को गिलास धोकर पानी पिला सकता है...चाय और पान ला सकता है. ..

शामू को प्रेस ठेलने के पीछे मुरला की चाल थी... वह बताना चाहता था कि वह हराम की कमाई खा-लुटा नहीं रहा—पसीने बहाता है तो राशन उठाता है. पिछले आठ-दस साल तक तो वह केवल मटरगश्ती ही करता रहा. काम खोजने का बहाना कितना अच्छा था, पहले दासू बाबू के रिक्शा खटास में मरम्मत-मिस्त्री था. जिस दिन उसने एक रिक्शा 'फिट' कर दिया, उसी दिन उसे साठ रुपये महीने मिलने की बात तय हो गयी. दासू बाबू खुद मुरला के घर आये थे और बुढ़िया को कहा था—अब तुम पोते का शादी बनाउइ देउ...लड़का कमासुत होय गेया..

बुढ़िया दौड़कर मदन सोनार के यहां गयी. सोने की चार चूड़ियां बंधक रख आयी. फिर घर-घर मंडराती फिरी. सबके यहां एक ही रट 'मुरला के लिए सन्हौला में एक लड़की देखी है —तुम लोग जरा देख आइयो... भय्या. पसंद आने पर पनचढ़ी कर दीजियो. मैं अकेली सबासिन...बुढ़िया...कहां-कहां दौड़ती फिरूं...तुम्हीं लोगों का तो आसरा है...'

बुढ़िया किसी को फूटी आंख न भाती थी. लोगों के दरवाजों पर जब किसी का नाम लेकर पुकारती तो लोग बीवी के पास तक से उठ कर बाहर चले आते ताकि वह घर न घुस आये और जाने का नाम ही न ले. लोगों ने ठंडी-सी 'हां-हूं' करके उसे टाल दिया.

हफ्ता भी नहीं बीता था कि शनीचरी रात को मोहल्ले के सभी घरों की बत्तियों की टेन अचानक ऊंची हो गयी. हरकिशोर बाबू जल्लाद की तरह हाथों में नंगी भुजाली और टार्च लेकर बुढ़िया के बरामदे पर चढ़ आये और दरवाजे पर एक लात जमायी. दरवाजा भिड़का भर था—भड़ास से खुल गया. बुढ़िया हड़बड़ाकर उठी.

—मुरला कहां है ?

—क्या हुआ, बुढ़िया का जबड़ा खुला रह गया. यह क्या ! वह कुछ समझ ही न पायी.

हरकिशोर बाबू ने घर के सारे सामान को लात मार-मार कर एक दूसरे में घोंट दिया. दूसरे लोगों ने भी उठा-पटक में खासी मदद दी.

—आज वह घर लौटा ही नहीं...हरि बाबू... बुढ़िया झूठ बोल गयी और उसने लोगों के पांव पकड़ लिये, ...वह खटाल पर ही सोय गया होयेगा आज...

—अब कभी इस मोहल्ले में आ भी नहीं पायेगा बुड्ढी, समझी आयेगा तो इसी भुजाली से जिबह कर थोकचा कर दूंगा...हरकिशोर बाबू ने कोतवाली मुहावरे में इतना ही कहा और धार चमकाते चले गये. शायद 'डेलीब्रेड' बेकरी के कारीगरों के साथ जुए के अड्डे पर जमा हो— उसे ढूंढ़ निकालना ही था.

मुरला तब तक छोटी लाइन की गुमटी नं. तीन के पार, सीमेंट की एक टंडी बेंच पर चितांग लेटा हुआ था. सुरजा उन दिनों उसका नया-नया शार्गिद बना था. उसने शिवलिंग छाप सुर्ती को हथेली पर रगड़ा—फिर क्या हुआ गुरू...छौड़िया तो बमक गयी होगी.

—साली एकदम गरमा गयी थी....इस उमस में ब्लाउज कौन डाले...लेकिन ...साड़ी उठाने दे ही नहीं. मेरा मन तो औना गया...जोर-जबरदस्ती में उसका मामू जाग गया होगा...साली की खातिर इतना जोखम उठाया...और...खैर...अरे, मैं तो पीछे गोहाल

की तरफ कूद गया. फिर [illegible] मुरला अब तक सांसों में अटक रहा था...

—गुरु, तुमको तो उसी दिन 'ओनामासीघंग' कर देना था जिस दिन लौंडिया खीर-दालपूरी बांट गयी...

—अरे, बुढ़िया दादी. . .हरामजादी . . .बरामदा छोड़ती ही नहीं. हरदम किराये की कथरी सीती रहेगी या पापड़ बेलती रहेगी.

—घर भी तो चलाना है गुरु. . .लो. . .सुरजा ने चुटकी में सुरती आगे बढ़ायी.

—अरे काफी रुपये जमा रखी है. बाजार में एक दुकान किराये पर लगी है. वैसे घर और दुकान के लिए उसके देवरों में अरसा हुआ गोतियारी झगड़ा चल रहा है. एक देवर तो मोहरिल है. लगता है सब वही हथिया लेगा. मैं बालिग हो गया हूं. पर मेरा कोई हिस्सा या हक निकलता नहीं है. मुरला ने सुरती को कल्ले में दबा लिया और आंखें बंद कर लीं.

★ ★

सुबह होते ही, बुढ़िया ने सर पर आसमान उठा लिया— अरे एक मसोमात की हाय क्यों लेते हो. . . मेरी तरह सबके नसीब पर बज्जर गिरे. . .सबकी मांग मेरी तरह सूनी हो जाय. मुरला का कलेजा खानेवाले राक्षसों . . अपने बेटे और बहू-बेटी का खून क्यों नहीं पीते! कहां हो. . .हो हर किशोर बाबू. . .मुरला आ गया है. . .उसको काट कर देवी मैया थान में बलि दे दो. . .बिना माय-बाप का बेटा. . . किसी से कुछ मांगता है भी क्या. . . इन्हीं ध्रुव पदों के साथ वह झोंटा झटकाती जगदीश ठठेरा, महावीर कसेरा, अर्जुन पंसेरा, भीमा आतिशबाज, दीना मास्टर, इसरो मिस्त्री और लड्डू पहलवान के यहां गयी. मुरला की शादी की चर्चा भी कर आयी. . .बाबू जवान लड़का है. . .किसी को फूटी आंख नहीं सुहाता. . .मुहल्ले में न जाने कितनी छिनालें कोठे से उठ-उठ कर यहां आ गयी हैं. मेरे मुरला को कोई डाइन खा जायगी तो मैं. . .किसके आसरे जीऊंगी हो. . .बाबू फिर वह थूक घोंट कर वही-वही बयान देती. . .अरे मैया. . . कुछ तो तरस खाओ. . .मेरे समांग में तो कीड़ा फूट रहा है. . .

लड्डू वीरयुवक व्यायाम शाला में बनेठी भांज रहे थे. वे मोहल्ले के नये तुर्क थे. अपनी पसलियों को बटोरते हुए उसने सैंडो गंजी पहनी और हनुमान चौरा के सामने जाकर डकराया—कौन माय का लाल है जो मुरली भाई को काट देगा. . .एक बार बोल दे. . .बोल दे, बजरंगबली की जय. . . सींकिया पहलवानों की टुकड़ी ने लंगोट की छोरों को कस लिया और फतवा दिया, लड्डू उस्ताद की जय! ऊपर हनुमान-ध्वजा फड़फड़ाने लगी.

शगुन बनाकर शादी का दिन ठीक कर लिया गया. अगुआ बने लड्डू लाल. पास ही गांव की शादी थी—बहुत ही कम लोग थे, जो बाराती जाते. लड्डू लाल की विधवा बहन किसी पनेड़ी के साथ भाग गयी थी. . . लोग [illegible] पाये थे. मुरला के कारनामों को तो लोगों ने कंठस्थ कर रखा था. खैर, व्यायामशाला के शोहदे-शागिर्द ही काम आये. उन्हें पत्तों पर पूरी-कचौड़ी , रतुआ, बुंदिया और दही परोस कर बुढ़िया विवाह की सामग्री और रुपये निकालने भीतर गयी तो दो घंटे से ऊपर हो गया. बारातियों को उबासियां आने लगीं. लड्डू लाल ने 'मम्मा. . .मम्मा' कहकर कमरे के अंदर झांका तो पाया—चावल, दाल, आटा, के मटके लुघड़े पड़े हैं. आलू-प्याज, कद्दू-कुम्हड़े सब आंगन में फिंके पड़े थे. शादी में आयी हुई सबासिनें ढोल-ढकना छोड़ बुढ़िया को बांधने की कोशिश में थीं. बुढ़िया की आंखों से लावा भकभका रहा था और मुंह से झाग. . .बाईस सौ रुपये की पोटली चावल के हंडे से गायब थी. मुरला पहले तो कुछ समझ ही नहीं पाया, फिर अचानक फूट-फूट कर रोने लगा. लड्डूलाल थाने की तरफ बढ़ गये.

इतने सारे ड्रामे और हंगामे के बीच शादी हुई. घर में बहू भी आ गयी. गलसेंकी और चौकचुमौना के बाद औरतों ने बहू का मुखड़ा देखा और एक कोने में जा कर मुंह बिचकाना शुरू कर दिया. चौड़ी काठी की ठिंगनी बहू— फैली नाक और मोटे होंठ. रंग भले ही कुछ साफ था. बुढ़िया ने पता नहीं, फिर कहां से कुछ रुपये इकट्ठे कर लिये—कहीं जमीन से खोद कर निकाला या जेवर गिरवी रख आयी. लड्डूलाल ने बहू-बिदाई की रात को, अपने बाप की याद में दारू पी. बुढ़िया उसे अपने हाथों खस्सी का मांस और परोठा खिला रही थी. लड्डूलाल अघा कर उठे—ऐसे नहीं मम्मा. . . .एक दिन तुम्हारे हाथ की बनी मछली खाऊंगा तब फिर. . . बताना. . . साले की बोटी नुचवा दूंगा.

बुढ़िया रेंगती हुई बरामदे से बाहर निकली और नाली के किनारे एक टांग फैला कर अकड़ गयी. मुरला ने मुंह फेर लिया. सुबह के नौ बज रहे होंगे. उसने अंदाज लगाया. बायीं कलाई पर घड़ी के पट्टे का सफेद निशान भर बाकी था. घड़ी बंधक में चली गयी थी, पैंसठ रुपये में. उसने सोनू को अपने दोनों हाथों से उठाया. सोनू का वजन पिछले दो महीने में आधा हो गया है— एकबारगी वह डर से सिहर गया.

—अरे, इसके चूतड़ पर पानी डाल दो, मुरला ने उसे आंगन में बहुत धीरे-धीरे शीशे के मर्तबान की तरह रखा.

—और काम ही क्या है, जिंदगी भर गांड पर पानी ही उझलाते रहो, राजो बुदबुदाती हुई तो निकली पर सोनू को देख कर उसकी झुंझलाहट कम हो गयी. कैसा पाखाना हुआ था?

—मैंने नहीं देखा.

—इधर हफ्ता भर पहले पेट से केंचुआ गिरा था. तुम्हें चिट्ठी में लिखवाया नहीं, तुम बेकार अंदेशा में रहते. . .

—मेरा तो मन कहता है कि इसे सुशील बाबू होमियोपैथ को दिखा दूं. . . . मुरला ने कहा.

बाहर बरामदे पर बुढ़िया गरज रहीं थी— पानी देना बहू.

—दादी चिल्ला रही है. मुरला ने ध्यान दिलाया.

—चिल्लाने दो बुड्ढी को . . . आज भोर से तीन बार हग चुकी. पानी का अकाल वैसे पड़ा रहा है. रास्ते का चापाकल भी खराब पड़ा है. हलवैया के यहां से पानी खींचते-खींचते दम फूल जाता है.

—तुमने मुंह-हाथ धोया. . . . मुरला ने बात बदली.

राजो को यह तो अरमान रह ही गया था कि सुबह नहा-धो कर गोविंदजी के दरस को जाए और गोचरनामिरित पा सके. बाल-बच्चों वाले का और होता ही कौन है? नैहर में रहती थी तो कभी-कभार गंगाजी में नहा आती. मनसा घाट तक तैर भी आती. तब उसे क्या मालूम था, पुआती औरत को ज्यादा देर नहीं नहाना चाहिए. भारी छाती लिये भी वह पानी से खेलती रहती— पता नहीं, फिर कब नैहर आना हो. कातिक पूनो की ठंडी धार में नहा कर आयी तो आंखें मोटी हो गयीं. ननकी के मुंह में दूध लगाया ही था कि ननकी का कलेजा घर्र-घर्र बजने लगा था. छोटा-सा अटट्ट गांव. ननकी की नन्हीं-सी जान बचाने के लिए साइकिल पर राजो के भाई नंदेसर शहर की तरफ दौड़े. गाय का पुराना घी गरम कर गले में मालिश भी किया. मुरला भी नंदेसर के साथ ही लौटा— पर चौदह महीने की ननकी की आंखें बीस घंटे में ही जम गयीं. राजो पत्थर बनी रही.

कितनी मिन्नतों के बाद, गंगा मैया ने उसकी गोद हरी की और सूनी भी कर गयी. अब राजो को गंगा मैया से डर लगने लगा था. नैहर भी जाना होता तो टाल जाती. रेल से पुल पार करते समय वह आंचल से कुछ पैसे निकाल कर पानी में उछाल देती— गंगा मैया, कुछ दे न सको तो मत दीजिए पर दे कर छीन मत लीजिए.

बुढ़िया गालियां देने लगी थी— आज मेरा समांग ऐसा हो गया है, तब न. . . . कुछ देर चुप रहने के बाद वह नरम पड़ी— शामू कहां गया है. . .बहू?

—चूल्हे में, राजो ने डपट कर कहा.

—ऐसे झमार के काहे बोलती है गे. . . .चूल्हे में जाय तेरा भड़वा बाप, बुढ़िया खिसिया कर दोनों हाथ टेक-टेक कर बरामदा पार कर जाती. पानी नहीं देगी तो मैं जा कर तेरा हड़िया-ढंकना सब चूथ दूंगी. . . मत डाल पानी. . . . बुढ़िया झपटने को फिर आगे बढ़ जाती.

—मैं तेरा हाथ तोड़ कर रख दूंगी बुड्ढी. . . .

—मैं भी तेरा लेल्हुआ पकड़ कर मरोड़ दूंगी. . . . री फोकची. तेरे थोथना में आग लगे मुंहझौंसी. . . पांव तोड़ कर संतोख नहीं हुआ. . . .हे भगवान. . . . और बुढ़िया बिलखने लगी और ऐसे ही वाहियात टुकड़ों को जोर-जोर से अलापने लगी.

मुरला तब तक पाखाने से दौड़ आता और मारने का डर दिखाता— अब चुप्प भी रहेगी कि मारूं लोटा फेंक कर. . . . चुप हर्राम. . .ज्यादी. . .

बुढ़िया की घिग्घियां हिचकियों में बदल जातीं. यह सिलसिला रोज का था. पास-पड़ोस के लोगों की आंखें इस सदाबहार झगड़े को देख कर पथरा चुकी थीं और कान भोथे पड़ गये थे. कौन किसको दोष दे? पूरा मोहल्ला एक तरफ से सड़े आम की टोकरी की तरह दागी था.

बुढ़िया के लिए अलग से एक बालटी में पानी रख दिया जाता. उसी में उसे दिनरात गुजारना पड़ता— चाहे कुल्ला करे, सर के जूं धोए, थाली-बाटी मांजे या ना मांजे.

पिछले चार साल से, जब से उसकी टांग टूटी है— घुटने के जोड़ लिथड़-लिथड़ कर चीकट हो गए हैं. जांघ के ऊपर खाल सिकुड़ कर पटसन की बोरी की तरह रुखड़ी हो गयी है. किसी को अगर यह नेक खयाल हो कि इसकी टांगों को सीधा करना चाहिए तो आरा मशीन से तख्ते चीरने की तरह उसे भी चीरना होगा. टांगें सीधी हो ही नहीं सकीं. . . किसे क्या मालूम था कि उस रात गाज पड़ेगी.

बुढ़िया ने तो इतना ही कहा था— बिना मछली मैं खाना नहीं खाऊंगी. . . और थाली आगे सरका दी थी.

राजो ने बाबा बासुकीनाथ से कोई मन्नत मांगी थी, इसलिए मछली खा-पका नहीं रही थी. चौथे हफ्ते बुढ़िया ने मुरला को फिर टोका— बेटा आज सोमवार है. . . न हो एक पाव पुठिया ही ले लेना. . . .

मुरला ने कहा— हां-हां, ले आऊंगा. . . .

बेफिकर बुढ़िया बीड़ी सुलगाने लगी. सोचा, जब तक मुरला हटिया से मछली ले कर आये, वह लछमन बाबू की बीवी को कथरी ही दे आये. बहू को कह गयी— मछली आ जाये तो शामू को भेज कर डाक बाबू के बंगले से बुलवा लेना. . . . मैं आ कर खुद बना लूंगी.

राजो नाक सिकोड़ कर रह गयी.

बुढ़िया को आने में देर हो गयी. सोचा, राजो ने सब तैयार कर रखा होगा. लेकिन रसोई में कोई 'बिषैन' बू नहीं थी. राजो सोई हुई थी. बुढ़िया ने सोचा, उसके पेट में बच्चा है— छोड़ो भी. ढंकी हुई थाली खोल कर देखा— वही एक मुट्ठी भात, मांड़ से पतली की गयी दाल, आलू का भुरता. . . नमक और आग में जली भुनी मिर्च. बुढ़िया जैसे लू में बड़बड़ाने लगी— दिन-दिन खाने में भी आग लगती जा रही है. न तरकारी का पता, न मसाले का. भात दुबारा तो परोसा जाता ही नहीं है और वह न थाली में जूठन ही बचा पाती है. शामू छोटा था तो आध सेर, तीन पाव दूध भी लिया जाता था. . . अब दूध-दही घी के लिए कभी कोई पूछता ही नहीं. मछली से खाना थोड़ा रुचता है तो अब मछली भी बंद. आखिर. . .किराये की रकम तो मिलती है ही, तीन कोरी. . . साठ रुपये और आठ रुपये. . . . सत्तर में दो रुपये कम. . . .

नत्था हलवाई से वह पाव भर दही उधार ले आयी और किसी तरह खाना गले से उतारा.

दूसरे दिन फिर उसने टोका—बेटा, हटिया जरा जल्दी चले जाना. . .सुबह-सुबह झींगा मछली आती है. . लड्डू बोल रहा रहा था. . . कि .

—हां-हां, सुन लिया, मुरला की आवाज एकदम चिढ़ी हुई थी. उसे अपमानित करता हुआ मुरला चप्पल घसीटता बाहर चला गया. वह आज फिर चुप रह गयी.

तीसरे दिन वह खुद हटिया गयी और गोरला मछली ले आयी. राजो के पेट में दर्द था—सह सोयी ही रही. बुढ़िया ने मछली को प्याज में भून कर लाल किया. फिर झोल में गरम मसाला डाल उसे धीमी आंच में चढ़ा नहाने चली गयी.

* *

मुरला दोपहर बाद लौटा . बुढ़िया ने बड़े उत्साह से उसका खाना परोसा. राजो उठ कर खटिया पर बैठी थी. मुरला के सामने थाली आयी. . . भात. . . कलाई की सोंधी दाल. . . रायते की चटनी. . . आलू का भुजिया. . .. उनका रंग तपने लगा. और जैसे ही मछली की बाटी सामने आयी कि वह तमक कर उठ खड़ा हुआ और थाली को एक लात मारी. . . . सारा खाना आंगन में छितरा गया.

बुढ़िया सन्न रह गयी —क्या हुआ बेटा?

—हरामजादी यहां बेटा कहती है. . . मुरला उबलने लगा. . . और बाहर जाकर सारी दुनिया में डुगडुगी पीटती है. . .मुरला चोर है, जुआरी है, रंडीबाज है. . . मेरे किराये के रुपये पचा गया. . .

बुढ़िया बिलखने लगी — हारे बेटा ऽ. . .अरे किसने तेरा दिमाग खराब कर दिया है?

—चोप् प. . . वह तीर-सा सनसनाता बाहर निकल आया, जो स्साली अपना बेटा-भतार खा गयी. . . वह पोता और परपोता चीन्हेगी?

बुढ़िया ने अपना बिसूरना जारी ही रखा. फिर राजो के पास उंगलियां नचाने लगी – हाय गे भतरखौकी . . . तुमने तो मेरे बेटे पर मंतर मार दिया है. . . राजो खाट पर पड़ी रही.

कलेजा पीटते-पीटते बुढ़िया घर से बाहर निकल आयी— एक कुटिया मछली के वास्ते इत्ता बड़ा तूफान मच गया हो बाबू. . . और वह धाड़ मारकर पछाड़ खाने लगी.

राजो ने बाहर निकलकर कहा— भीतर आकर नाच बुढ़िया.

—तू भीतर खाट पर जाकर राजपाट कर. . .

—गाली मत दे बुढ़िया, वर्ना. . .

—वर्ना. . .वर्ना क्या करेगी गे खसमखानी, बुढ़िया ने मुट्ठियां खोल दीं.

—तेरे मुंह में गू के पिल्लू पड़ेंगे बुड्ढी. . .

—और तेरी मांग में खाक. . . बड़ा सिंदूर भमकाती है. जिसकी खातिर भटकती फिरती है. . . उसके मुं में तेरा बेटा आग देगा. . . और वह हाथ नचाती फूटने लगी.

राजो ने उसका हाथ पकड़कर खींचा तो बुढ़िया ने उसकी साड़ी की छोर पकड़ लिया. मोहल्ले के लोग जमा हो रहे थे. राजो की पेट-पीठ खुल गयी थी. . . पेट में छः-सात महीने का बच्चा ! ! उसने फिर जोर लगाया और बुढ़िया को भीतर लाने की कोशिश की . .. पर बेकार. बुढ़िया जमीन से चिपक गयी थी. तब वह खुद घर लौटने को तैयार हुई. . . पर बुढ़िया ने उसकी साड़ी का छोर न छोड़ा. . . —किसके पैसे का खाना खा-खाकर पेट फुला रही है. . . फोकची. . . भतार आज तक एक पैसा कमाकर लाया भी है?

राजो ने आखिरी कोशिश की. दांत पर दांत जमाकर उसने जोर लगाया. आंखों के सामने चिनगारियां नाच उठीं . . . अंधेरे में. उसने अपनी चिंता छोड़ दी और बुढ़िया को पीछे धकेल दिया. बुढ़िया छिटककर सामने गहरे नाले में बड़ी आसानी से जा धंसी. राजो ने अपनी साड़ी को खींचा, समेटा-चिथड़े पेटीकोट पर लपेटा और दौड़कर घर में घुस गयी. भीतर से हुड़का लगाकर वह फफक-फफक कर रोने लगी. स्कूल से लौटने पर शामू ने बहुत दरवाजा पीटा. . . पर दरवाजा नहीं खोला राजो ने.

बुढ़िया को लोगों ने जबर्दस्ती नाले से घसीटकर बाहर निकाला. वह निकलना ही नहीं चाहती थी. वह सिर्फ मुरला को खोज रही थी, जो सिनेमा देखने शहर चला गया था. कीचड़ से लथपथ और सड़ांध से लिपीपुती गलीज बुढ़िया दरवाजा छेंक कर बैठी रही. लोग समझाते-समझाते हार गये. . . व्यायामशाला के सभी पहलवान और लड्डू उस्ताद उसे कपड़ा बदलने और पानी डालने पर राजी न कर सके. बेशरम बुढ़िया टस-से-मस न हुई. रह-रह कर उसे दौरा पड़ता और वह गालियां धौंकने लगती —तेरा सत्यानाश हो . . . तेरा बेटा भी तुझे इल्लत में धकेल कर तुझ पर मूत दे. . . अगले जनम में भगवान मुझे तेरी पतोहू बनाये तो. . . शामू बैठे-बैठे ऊंघने लगा था.

बुढ़िया ने टांग मोड़ने की कोशिश की. . . पर उसे लगा टखने के अंदर कुछ रोड़ा-सा अटक गया है. वह चाह रही थी कि उठे पर किसी जिद की वजह से वह जमी रही. बिना मुरला के उठाये और राजो के पांव पर गिर कर मांफी मांगे वह उठेगी नहीं.

शामू की नींद खुली तो वह कुछ समझ ही नहीं पाया. हाथ पकड़ कर उठाया भी — उठ न गे दादी. . . पर बुढ़िया ने हाथ झटक दिया—मैया ने घर से नाले में धकेल दिया, तू मसान में डाल दे रे बेटा. . . हाय रे बेटा. . . हाय गे मुरला कनियान . . तेरे बप्पा के खानदान में घुन लग जाये. . .

सारे मोहल्ले की आंखें सास-पतोहू की नौटंकी की अभ्यस्त थीं. बुढ़िया के दो-दो देवर ऐसे फसादों के होने का इंतजार करते रहते थे. एक ने रिक्शा भी बुलवाकर रोके रखा. पर बुढ़िया के जेहन में यह बुरी तरह बैठा था कि इनको मुझसे कुछ लेना-देना नहीं —मेरे नाम से किये गये किराये की दुकान और मकान का केवाला अपने नाम से करा लेंगे और फिर जहर परोस कर खिला देंगे.

लड्डूलाल ने भी बहुत हाथ-पांव जोड़ा — चल

म्मा, मेरे यहां रहना. पर बुढ़िया मुरला की बाट जोह रही थी. आज का दिन देखने के लिए ही वह मुरला को मौत के मुंह से खींच लाया था. अपने भाई के बेटे की आखिरी निशानी —— सारा कटिहार शहर जब प्लेग की मुट्ठी में दम तोड़ रहा था, वह उसे लेकर चली आयी थी —— मौत की आंधी से बचाकर. उसका गू-मूत ींकती रही. संगम नहाने गयी थी तो वहां से लटाई ला दिया था—— चांदी के छोटे-छोटे घुंघरू जड़वा दिये थे. पतंग उड़ाते-उड़ाते मुरला जब भागवत महतो की छत से गिर कर सुन्न पड़ा था तो भागलपुर सदर अस्पताल के बरामदे पर तीन हफ्ते लगातार उस कड़कड़ाती ठंड में पड़ी रही थी.

मुरला आया तो उसकी कनपटी पर की रगों में आग नाचने लगी. घर के दरवाजे पर से लोग जा चुके थे. सीतो कलवार बाहर खटिया निकालकर मसहरी टांगने की फट्टियां कस रहा था.

बुढ़िया ने कलेजा पीटना शुरू कर दिया. मुरला पर कोई दूसरा ही रंग चढ़ा था. उसने बातों को कितना सुना, कितना समझा, कौन जानता है! आदमखोर मच्छरों के बीच शामू, बरामदे पर, जहां वह दातुन-कुल्ला करता है —— सोया हुआ था. पलटकर मुरला ने दरवाजे पर जोर की एक लात मारी—दरवाजा फिर भड़ाम से खुल गया. राजो ने उठकर लालटेन की टेम को ऊंचा करना चाहा ही था कि दूसरी लात उसकी पीठ पर पड़ी.

* *

झगड़ा वहीं खतम हो गया. बुढ़िया का छाती कूटना बंद हुआ. शामू की नींद खुल गयी थी. मुरला का नशा तब झड़ा जब एकदम सुबह उसे पेशाब करने की जरूरत हुई. कस कर बांधे गये नाड़े की गांठ खोलता हुआ जब वह गली पार कर सामने आया तो पाया —— बुढ़िया दरवाजे से सटी सोई थी. गले तक नाली का कीचड़ सूख कर स्याह हो चुका था. कपड़े की तहें चिपक गयी थीं. लगता था, लोटे की कोई जंग लगी टूटी-फूटी मूर्त्ति कहीं खुदाई से मिली हो. बुढ़िया का जबड़ा एक तरफ टूटा और लटका हुआ लगता था. नथुने में तारकोल डाल गया दीखता था —— सन जैसे सफेद बाल ग्रीज में लिथड़ गये थे. आंखों को जैसे किसी ने गर्म सलाखों से दाग दिया था. मुरला डर कर पीछे हट गया. उसे लगा, बुढ़िया की एक टांग कहीं से बहुत छोटी हो गयी है.

उसने बुढ़िया के पास तीन-चार तिलचट्टों को चक्कर काटते देखा. उसका मन भिन्ना गया. नाले में पेशाब उतार कर वह वापस आया तो उसने देखा—— राजो आंगन में मुंह लटकाये बैठी है. . . नीचे आंगन में ढेर सारा खून थक्का होकर जमा है.

फिर वही भाग-दौड़. . . किराये के मजूर राजो को खाट पर लाद कर फिर भागलपुर सदर अस्पताल के फीमेल वार्ड में दाखिल कराया गया. पेशाव-पखाना-थूक-खून जांच, दवाइयां और सुइयां और सास-पतोहू के जेवरों के बंधक का सिलसिला. . . नतीजा बहुत बुरा नहीं हुआ, राजो तो बचा ली गयी, बच्चा नहीं बचा.

इस आड़े वक्त में मुरला की बड़ी बहन सिमिया बहुत काम आयी. उसने ही सारा घर और मोर्चा आकर संभाल लिया था. मुरला को भी समझाती. कोई रोजगार करने की सलाह देती——बादाम तो बेच सकते हो. बुढ़िया के मरने के बाद दुकान का किराया तो दूर, लोग तुम्हें घर से बाहर उठाकर फेंक देंगे. न हो, कुछ रकम बचाकर रिक्शे ही बनाओ. उसे किराये पर लगाओ.

बुढ़िया अलग राग अलाप रही थी. वह इस काबिल भी न थी कि बैसाखी का सहारा ले चल सके. पहले तो कुछ दिन झाड़-फूंक और राख की मालिश चलती रही. पर जब हड्डियां तड़कने लगीं और गांठ सूजने लगी तो देवरों के दबाव में आकर मुरला ने बुढ़िया को अस्पताल में भरती करा दिया. एक्स-रे से पता चला कि बायें चूतड़ की हड्डी टूटकर घिसक गयी है और जिसके वापस जुड़ने का कोई इमकान भी नहीं है. इस बुढ़ापे में हड्डी अब खाक जुड़ेगी. अस्पताल के बरामदे में छः हफ्तों तक पड़ी रही बुढ़िया. फिर पीठ से लेकर जांघ और टखने तक प्लास्टर चढ़ा दिया गया. सफेद प्लास्टर की आधी कब्र साथ लिये बुढ़िया खाट पर घर लौटी. लेकिन नतीजा और भी खराब हुआ. बुढ़िया की बायीं टांग सूखने लगी और खाली होती जगह से खटमल और भुनगे बुढ़िया की देह पर चढ़ जाते, तब बुढ़िया जबड़ा मींच-मींच कर गालियां निकालने लगती.

हार कर मुरला ने मेटल कटर, जिससे वह रिक्शे की बॉडी पर ठोंकी जानेवाली अलमुनियम की शीट काटता था, लाकर बुढ़िया का प्लास्टर कतर कर फेंक दिया. टांगों की दुर्दशा हो गयी थी—— जगह-जगह लाल चकत्ते उभर गये थे. कहीं-कहीं मांस सीझ गया था. लगता था, पानी में उपलाती किसी लाश की टांग काटकर जोड़ दी गयी हो. वैसी ही सड़ांध तैर रही थी, जैसी वुआली मछली के सड़ जाने पर होती है. लेकिन इस सफेद केंचुल को उतार फेंकने के बाद, बुढ़िया और भी जहरीली हो गयी. वह समझ गयी आखिरी सांस तक उसे इसी बरामदे पर रेंगते रहना है. मुरला इन दिनों काफी परेशान रहा – लेकिन उसने दो काम किये ——थोड़ा-बहुत कर्ज लेकर देवी थान के पीछे की जमीन किराये पर लेकर फूस की छौनी डाल दी और चार रिक्शे तैयार कर चलवाने लगा.

सादे कागज और रसीदी टिकट के ऊपर बुढ़िया के अंगूठे का निशान लेने के लिए मुरला को भी काफी कुछ कर गुजरना पड़ा. एक हफ्ता तक लगातार मछली लानी पड़ी——कभी पुठिया, कभी गोरला तो कभी मिरका या कतला. कटहल की तरकारी, कदीमा का खटमिट्ठा चक्का, कलाई की दाल, मेथी का साग और बूंट कलेजी बुढ़िया की कमजोरियां थीं. धीरे-धीरे यह सब हंगामा शांत होने लगा तो बुढ़िया भुनभुनाने लगी. वह शामू को भेजकर मोहल्ले के घरों का चक्कर लगवाती और कटोरे में कहीं से दाल, तरकारी या चटनी मंगवाती. राजो कुछ दिन तो बर्दाश्त करती रही. लेकिन जब शरीर में ताकत फिर आयी तो वह शामू को बहाने से बाहर भेज देती. बुढ़िया के बार-बार गुहारने और निहोरा करने पर वह छन्नी लिये चौके से बाहर निकलती और

लंगड़ी की चेता जाती — खबरदार जो मेरे बेटे को भिखमंगा बनाया, बुड्ढी. . . कोई जहर दे देगा तो दुनिया मुझ पर ही थूकेगी. . .

—तुमको चुम्मा कौन ले रहा है. . . गे. . . महारानी. . . बुढ़िया दांत पीसती.

मुरला धीरे-धीरे निश्चित हो गया. उसके छः-छः रिक्शे चल रहे थे. शाम के बाद रिक्शाखटाल पर अद्धा और माल्टा की बोतलें खुलने लगी थीं. शामू बाप की मदद करने लगा था — दौड़कर पकौड़े, कचरी, मसालेदार चाट और दालमोट या भुने चने और प्याज ले आता. जिस शाम लालटेन की टिकानी उचकाकर वह बीड़ी सुलगाकर ले आया, उस शाम गिलास को फर्श से टिका सुरजा ने उसकी पीठ ठोंकी — शाबाश भतीजे, दौड़कर जा और माय को बोल आ कि आज बाबू और चच्चा खटाल पर ही खाना खायेंगे. तुम खाना तो ले आओगे न !

शामू ने 'हां' वाली गर्दन हिलायी.

—लेकिन बप्पा. . . घर पर ही आकर सोयेगा. . . यह भी कह देना माय को . . . और किशोरी का गला लंबी हिचकियों में इस कदर फंसा कि वह हंस ही नहीं सका. . . आंखों में आंसू चुहचुहा गये.

मुरला उस दिन जुए में कुछ ऐसा रमा कि हफ्ते भर की कुल जमा पूंजी हार गया. इधर उसका खाना ढंका रहा और उधर राजो ब्लाउज की बटनें खोलकर बरसाती उमस में एड़ियां रगड़ती रही.

दुर्गापूजा के बाद धीरे-धीरे आसमान से बादल अलग हो गये थे. भोर के वक्त खासी ठंड उतर आती. उस समय राजो को अपने पेट में हमेशा कुछ रेंगता हुआ महसूस होता. पहले तो सारे लच्छन वह टालती रही. उसे उम्मीद न थी कि पिछले हादसे के बाद भी वह कभी मां बन सकेगी लेकिन बाद में उसे अपनी तैयारी का अहसास हुआ. बुढ़िया भी मांप गयी. . . उसके जरा-सा टोकने-रोकने पर राजो के मूंह में जो भला-बुरा आता बक देती —एक बच्चा खाकर संतोष नहीं हुआ, डायन.

कालीपूजा भी आ गयी. राजो ने नयी साड़ी पहनी. चौक पूजा. गुसाईं थान पर सिंदूर चढ़ाया. दिया जलाया. घरौंदे सजाकर चांदी से चमकते कुढ़वों में लावा और खिलौना भरा. . . अगले साल. . . तीन कुढ़वे भरने होंगे. . वह मुस्करायी. शामू बाप को बुलाने गया था — 'लक्ष्मी घर, दलिद्दर बाहर' की रस्म पूरी करनी थी. 'हुक्का-पानी' बन कर तैयार था. पटाखों की धूमधाम से कुढ़कर बुढ़िया कोने में दुबकी पड़ी थी. कपड़े के नाम पर फटा-पुराना गमछा और गुदड़ी. राजो की नयी लाल साड़ी देख कर उसकी देह में आग लग गयी.

शामू दौड़ा हुआ आया. कहने लगा—माय गे, सुरजा चाचा और बाबू में मारपीट . . और पुलिसवाला दोनों को पकड़ कर ले गया. . .

राजो दो फलांग तक बदहवास दौड़ गयी. सारा रिक्शाखटाल खाक में मिल चुका था. दो-तीन रिक्शावाले खाली और भरी बाल्टी लिये दौड़ रहे थे. भीड़ छंटती जा रही थी. राजो चक्कर खाकर गिर पड़ी. जब होश आया तो देखा किशोरी उस पर झुका पंखा झल रहा है. किशो ने ही बताया कि पिछले कई दिनों से जुआ चल रहा था. मुरला काफी रुपये हार चुक [illegible]. इसके पहले भी रिक् बेचकर हार की रकम चुक [illegible]. आज भी दो रिक् दांव पर हारने के बाद, सुर[illegible] उन्हें खटाल से बाह खींचने लगा तो मुरला ने ज्यादती की. उसने सुरजा को रोका, जो जीता हुआ माल वहां से ले जाना चाहता था. इसी खींचतान में मारपीट हो गयी. सुरजा उफन कर बाहर निकला. उसने टायर जला कर खटाल पर फेंक दिया. फूस का खटाल . . . धू-धू कर जलने लगा. दोनों बाहर गुत्थमगुत्थी कर रहे थे कि हवलदार साहब आये और उन्हें पकड़ कर ले गये.

राजो और किशोरी तड़के ही थाने पहुंचे. थानेदा और हवलदार सभी 'दीवाली मूड' में थे. दो तीन-तीन दफा लगाकर मुरला और सुरजा को हवालात में बंद कर दिया गया था. दोनों की आंखों में खानदानी दुश्मनी का नंगा नाच हो रहा था. सुरजा की दायीं कनपटी से अबतक खून रिस रहा था— किसी भारी औजार से उस पर वार किया गया था. राजो की सिसकियों से मुंह फिराकर मुरला दीवार की पलस्तर को नाखून से खुरचने लगा था. राजो ने उसे बहुत पुकारा पर मुरला ने सर नहीं फिराया.

* *

आठ महीने की सजा भुगतने के बाद मुरला जब जेल से छूटा तो उसे लगा सारी दुनिया नामालूम ढंग से बदली ही नहीं, उससे नफरत भी करने लगी है. जमानत के लिए भी वह किशोरी के मार्फत बहुतों के सामने गिड़गिड़ाया था पर किसी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया. बुढ़िया घर के सामने बरमादे पर से लोगों को हकार कर अपने दुखड़े रोती रही पर किसी ने उत्साह न दिखाया. लड्डू पहलवान दूर से यही बताता था— बस मम्मा. . .अभी आया. . . .

राजो अपने नैहर चली जाना चाहती पर अपाहिज बुढ़िया का सवाल था. उसकी अपनी भी कठिनाइयां थीं. पेट में बच्चा लेकर बस, ट्रेन और नाव की यात्रा. न जाने कितनी छटपटाहट और बेचैनी के बीच उसे फिर एक बेटा हुआ. पर मुरला की बहन सुमिया फिर आ गयी. खूब दौड़-धूप करती रही. . . कैंप जेल जाकर मुरला को खबर भी दे आयी.

मुरला वापस लौटा तो नौकरी के लिए हांथ-पांव मारने लगा. अपने बहनोई की पैरवी पर उसे किसनगंज की एक खांडसारी मिल में नौकरी मिल गयी. लेकिन नौकरी का यह क्रम गन्ना पेराई तक ही बना रहा. बाकी समय उसे घर में या दूर उधर ट्वंटी नाइन खेलकर काटना पड़ा.

बुढ़िया की तिलमिलाहट अब और बढ़ गयी थी. उसके किराये के पैसों पर ही यह गृहस्थी टिकी थी. लेकिन उसे कोई एक झींगा आग में भून कर देनेवाला न था. वह यही सोचते-सोचते कि अब उसके पास रहा क्या, सो जाती. घबड़ाकर तब उठ पड़ती जब उसे लगता मुरला उसका गला दबोच कर उसके हाथ की चूड़ियां और

नाकफूल उतार रहा है.

फटा गमछा पहने वह बरामदे के एक कोने से दूसरे कोने तक भटकती रहती. किसी परिचित को पहचान पाती तो कपड़े का एक टुकड़ा पेट पर रख लेती. लेकिन इस चिथड़े का लिहाज भी उस समय टूट जाता, जब उसे नाले की तरफ दौड़ना पड़ता. उस समय उसके साथ सारा मोहल्ला अंधा हो जाता—— बेशरम बुढ़िया दिनदहाड़े बाहर की नाली में कुतिया की तरह टांग ऊंची कर देती और. . .केहुनी पर टिक जाती.

मुरला जब भी घर लौटता, उसे इन सब गलीज हरकतों से कुढ़ होती. उसने टाट की एक आड़ भी बनवा दी थी पर बुढ़िया को पर्दे में कोई दिलचस्पी न थी. उसे केवल मछली से लगाव था—— मसालेदार घुघनी और तली हुई भज्जी से प्रेम था. इन सबके अभाव में बुढ़िया अपनी कल्पना को साकार करती.

मुरला दो-चार दिन ठहरकर कहीं चला जाता. जाते समय जबर्दस्ती बुढ़िया के अंगूठे पर रोशनाई रगड़ किसी कागज पर टीप ले लेता था. बुढ़िया ना-नुच करती तो यही समझाता—— अरे दादी, रुपये तू रख, खर्च कर और फिर देख कि कितने पैसे बचते हैं. तेरे पैसे से गुजर होती तो शामू की पढ़ाई नहीं छुड़वाता. इस कच्ची उमर में उसे प्रेस की नौकरी करनी पड़ेगी. सोनू का इलाज भी नहीं हो रहा है. . . एक तू है हर हमेशा खाऊं. . . मछली का भाव साला आसमान पर चढ़ा हुआ है.

बुढ़िया अगर नखरा कर आंखें मटमटाने लगती, हाथ-पांव मोड़ने लगती तो उसके मुंह में बीड़ी सुलगाकर ठूंसने के बाद मुरला फिर समझाता—— याद रख दादी, मरने के बाद तेरे मुंह में आग मैं ही दूंगा. जो दो-चार पैसे जोड़ने हैं, वो तेरे श्राद्ध के लिए ही तो.

ऐसी चुपड़ी बातें बुढ़िया खूब समझती थी. वह आंख बंद करने को होती कि मुरला एकबारगी कड़कता—— ऐ बुड्ढी, आंख खोल. . . नहीं तो एक लात मारकर पेट की अंतड़ी-भोंटी सब बाहर कर दूंगा. . . चल यहां पर लगा टीप. . . लीला कर रही है. . .

* *

इस बार मुरला के काम पर वापस जाने के पहले बुढ़िया की तबीयत खराब चल रही थी. . . उसे बार-बार दस्त आ रहा था. गोरला मछली वैसे ही बादी होती है—— और यह लड़वा साला मौके-बे-मौके बुढ़िया को मछली खिला कर या बीड़ी पिला कर पता नहीं क्यों पोटना चाहता है. . . . बुढ़िया के पास कोई ऐसी-वैसी चीज तो नहीं. उस रात मुरला और राजो ने बुढ़िया का बक्सा छान मारा. मरियल-सा ताला लगा था. बुढ़िया नाले की तरफ गयी तो उसका गेंदरा-मोथरा सब झाड़ कर देखा. बीड़ी रखने का डिब्बा—— उसमें विक्टोरिया के जमाने के आठ-दस सिक्के थे. दांत का मैल खुरचने और कान खोदने की एक चांदी और पीतल की तीली थी. एक छोटी-सी पुड़िया में सोने की एक टिकुली थी. . . बस! मुरला बहुत उदास हो गया. . . . दुकान और मकान तो खैर जब तक बुढ़िया है, तब तक वह किसी को —— मुरला का विश्वास था—— मिल नहीं सकते.

जाने के पहले उसने बुढ़िया को एक बार पलटकर देखा. उसे लगा यह शायद आखिरी भेंट है. मुंह पर भिनभिनाती मक्खियों को बुढ़िया आंख बंद कर ही अपने हाथों से उड़ाने की कोशिश भर करती. सारा शरीर कहीं से सूजा और कहीं से पुराने बर्तन की तरह पिचक गया था. नाखून बेहद बढ़ गये थे जिनसे खुजलाते हुए शरीर पर सफेद धारियां खिंच गयी थीं. फटी हुई बिवाइयों ने पांव के तलवे को काट-कूट कर जैसे सारा खून बहा दिया था. वे एकदम पीले पड़ कर जम गए थे. मुरला ने कपड़ा उढ़का दिया और तेजी से बाहर निकल आया.

मुरला को काम पर गए पांच ही दिन बीते थे कि उसे तार मिला—— 'जल्दी आओ—— किशोरी!' वह तो तैयार ही बैठा था. इतना सोचकर कि अगर बुढ़िया एक दिन बाद मरती तो उसे एक हफ्ता की मजदूरी मिल जाती, वह मशीन हो गया. तब शायद वह शनिवार की शाम पूर्णिया चला जाता और इतवार को गुलाब बाग मेला. तार एक दिन पहले का था, खैर.

घर जाते ही रुपये चाहिए. . . बुढ़िया की लाश फूंकने में. . . इसलिए वह मिल मैनेजर से दो सौ रुपये उधार मांगने गया. सौ रुपये मिले और इस चक्कर में पहली गाड़ी छूट गयी. दूसरी गाड़ी से बिहपुर जंक्शन पहुंचा तो छोटी लाइन के इंतजार में घंटों बैठना पड़ा. कोयले की कमी के कारण या किसी हड़ताल के कारण क्या पता, गाड़ी आये न आये. बुढ़िया की लाश अब तक जल भी गयी होगी. . . मरने के पहले बुढ़िया के पास पहुंचने की साध ने उसे रुला दिया. . . . बुढ़िया किसी-न-किसी रूप में उसे मानती तो थी, उसे छोड़कर कहीं नहीं गयी. राजो ने ऐसे में रुपयों का इंतजाम कैसे किया होगा? शामू ने मुंह में आग दी होगी. मोहल्ले में और लोग हैं. . . . किशोरी और लड्डूलाल पहलवान तो हैं ही. बुढ़िया के दो-दो देवर हैं—— आये ही होंगे.

दोहपर बाद गाड़ी आयी. फिर स्टीमर से बरारी घाट पार हो वह ट्रेन के आसरे में बैठा नहीं रहा. उसने एक टमटम ठीक किया—— आठ रुपये में—— बारह मील का सफर. दो घंटे बाद वह घर के दरवाजे पर उतरा तो उसे लगा यह उसका नहीं, दूसरे का घर है. बारिश में सारा घर धुल चुका था, हथिया नक्षत्र की बारिश. नीचे भींगी धरती और हर ओर घुप्प अंधेरा. सामने बिंदा हलवाई ने लालटेन की टेम ऊंची की. . . . टमटमवाले को पैसे चुकाने में भी उसे काफी देर लग गयी. कलेजे को ठोंक-पीट और जबड़े जमाकर वह दरवाजे से भीतर बरामदे पर आया ही था कि किसी पोटरी से टकरा गया. . . .

——कौन मुरला. . .?. . . बुढ़िया अचानक चौंक कर बैठ गयी. . . . फिर छाती पीटने लगी. . .अरे बेटा रे. . सोनू हम सबको छोड़ के चला गया रे! □□□

हिंदी भवन, विश्व भारती,
शांति निकेतन (प. बं.)

'छिपे' 'हुए' 'हाथ'

• सच्चिदानंद धूमकेतु

पूरे दो वर्ष बाद छंगुरी गांव वापस लौट रहा था. सूखी नदी में पांव रखते ही चिरपरिचित गांव की सोंधी महक भकभकाकर उसके नथुने में घुसने लगी. पीपल वृक्ष के साये में पगुरते डांगरों की रखवाली करनेवाले छोकड़े गिल्ली-डंडा का खेल छोड़ कर छंगुरी को देखते ही शोर मचाने लगे.

आधे फर्लांग से अधिक चौड़ी भरगंग के बालू भरे रास्ते पर चलता हुआ छंगुरी पसीने से तर हो गया था.

गांव बिल्कुल करीब था. बावजूद इसके छंगुरी पीपल के घने साये में सुस्ताने लगा. मवेशी चराने वाले छोकरे उसे चारों ओर से घेरकर खड़े हो गए. एक शोख लड़के ने कहा— छंगुरी भैया, शहर से इतने दिनों बाद कमा कर लौटे हो. हम लोगों के लिए क्या लाये हो?

छंगुरी को उसकी बातें बहुत भली लगीं. वह बोला—शोर मत मचाओ. मैं तुम्हें लेमनचूस खिलाता हूं.

पास पड़ी गठरी से लेमनचूस वह बच्चों को बांटने लगा. लड़के तालियां बजाने लगे. आंखों से धूप चश्मा उतारकर उसने एक छोटे लड़के को पहना दिया. लड़का पहले तो हिचका, फिर चश्मे के अंदर अपनी आंखें मिचमिचाकर बोला— चारों ओर मेघ ही मेघ लग रहा है. काला भुजंग मेघ. दूसरे लड़के भी धूपचश्मा पहनना चाहते थे लेकिन छंगुरी ने टूट जाने के भय से उसे अपने पाकेट के अंदर कर लिया.

थोड़ी देर घने वृक्ष के साये में सुस्ताने के बाद लाइटर से उसने अपनी बीड़ी जलाई और अपने टोले की ओर चल पड़ा. पड़ोस के एक लड़के ने उसके हाथ की गठरी उठा ली थी.

मैं छंगुरी को बचपन ही से जानता हूं. उन दिनों हम लोग साथ-साथ गांव के प्राइमरी स्कूल में पढ़ते थे. हम लोगों को पाठशाला के पीठक पर बैठने की मनाही थी. जुलाहों और चमरटोली के लड़के अपने साथ ताड़ के पत्ते की बुनी छोटी चटाइयां साथ लाते. हेड पंडित जाति के ब्राह्मण थे और ललाट पर हमेशा रामनामी तिलक लगाये रहते थे. हम लोगों को स्कूल के अहाते में बने कुएं की जगत पर चढ़ने और पानी खींचने की मनाही थी. जब कभी हमें प्यास लगती, हम हेड पंडित को कहते. वे लगातार टालते रहने के बाद किसी सवर्ण लड़के को पानी पिलाने का आदेश दे देते थे. लड़का हम पर मेहरबानी प्रदर्शित करता हुआ उठता और बाल्टी से हमारे सामने पानी गिराता. हम चुल्लू मुंह में लगा कर पानी पी लेते. यह सिलसिला दिन में प्रायः एक ही बार चलता. दूसरी दफा पानी पीने की इच्छा जाहिर करने पर हेड पंडितजी तड़क उठते और पतली लंबी छड़ी सटाक से पीठ पर देने के बाद कहते— स्साले, यह तुम्हारे बाप का कोई नौकर है जो बार-बार पानी पिलायेगा! मालूम होता है कि सत्तू से अधिक नमक खाकर आया है. पढ़ना तुम लोगों के वश का रोग नहीं है. जाओ कर हरवाही करो. भैंसे चराओ. दूसरों के पथार में कुदाली चलाओ. मालूम होता है कि पढ़कर लाट साहब बनेंगे.

पीतल की तरह दपदप चेहरे पर खोंसी उनकी लाल आंखें देखकर हम लोगों की घिग्घी बंध जाती. उनकी आंखों से अधिक भय उस लपलपाती खजूर की छड़ी का होता जो जाने-अनजाने सटाक-से पीठ पर बैठ जाया करती थी. उनकी प्रति मेरे दिल में हमेशा अनादर की ही भावना जमी रहती थी. एक दिन मैंने बाबू से उनके बारे में पूछा था. बाबू ने कहा था कि वे धरम करनेवाले पंडित हैं और हम लोग डोम-चमार. उस कुएं का पानी अगर वे नहीं पीने देते हैं तो ठीक ही करते हैं. उसी कुएं से वे भी नहाते-धोते और पानी पीते हैं.

हेड पंडितजी हम लोगों के स्लेट कभी छूते नहीं थे. पहाड़ा लिख कर हम दूर से ही उन्हें दिखाते थे. सिर्फ पढ़ते और गलतियां पाने पर दूसरे लड़के के द्वारा हमारे गाल पर तमाचे मरवाते. बाबू की बातें सुनने के बाद मेरे मन में पंडितजी के प्रति अनादर का भाव खत्म हो चुका था और मैं भी औरों की तरह उन्हें आदर करने लगा था.

शनिवार को स्कूल की पढ़ाई सुबह में होती. उस दिन पढ़ाई के नाम पर स्कूल भवन की लिपाई होती. ओसारा, कोठरियां और मिट्टी की दीवारों को गोबर से लीपा जाता. यह सारा काम मुद्दत से हम लोगों के जिम्मे था. उस समय दूसरे टोले के लड़के तकली काटते, ड्रिल का अभ्यास करते और हम लोग लीपते रहते. उसके बाद गणेश की पूजा होती, गुड़ और चावल मिला हुआ प्रसाद बंटता और हेड पंडित कंधे पर तरह-तरह की गठरियां जो उन्हें लड़कों से प्राप्त होतीं, लेकर अपने गांव की ओर चल पड़ते. शनिवार को गए वे सोमवार की दोपहर तक स्कूल वापस लौटते. इसी बीच हम लोगों के ऊपर गांव के तहसीलदार का लड़का रोब कसता रहता. अपनी कापी में शरारती लड़कों के नाम नोट कर रखता और मास्साब के आते ही कापी उनकी ओर बढ़ा दिया करता.

पंडितजी का मूड उस दिन प्रायः ठीक रहा करता था. वे छड़ी से सटासट देने के बजाय गलती करनेवाले लड़के को मुर्गा बनने के लिए कहते. कान पकड़े घुटने

झुका कर लड़के को तब तक खड़ा रहना पड़ता था जब तक कि थककर वे गिर नहीं पड़ते. इस सजा के भागीदार प्रायः हम लोग ही होते. उनकी अनुपस्थिति में तहसीलदार साहब का लड़का हमपर रोब झाड़ता. उसके टोले और ब्राह्मण परिवारों के लड़के तो उससे भय खाने से रहते लेकिन हम लोगों के ऊपर उसकी धौंस काफी रहती. इसे नाराज करने का मतलब था— हेड पंडित द्वारा पिटाई.

एक बार शनिवार को पाठशाला भवन की लिपाई हो रही थी. ओसारे की लिपाई का जिम्मा छंगुरी को दिया गया था. हम लोग अपने-अपने काम में जुटे हुए थे लेकिन वह अपना काम छोड़ कर ड्रिल का दिलचस्प खेल देखने में लग गया. घंटी बजने के बाद पूजा के लिए सभी ओसारे पर जमा होने लगे. उस समय लिपाई का काम अधूरा ही पड़ा था. अपनी आज्ञा का उल्लंघन होते देखकर पंडितजी गुस्से से बिफर उठे और उन्होंने तहसीलदार के लड़के को छंगुरी की पीठ पर पांच मुक्के जमाने का आदेश दिया.

● नरेंद्र एन. शाह

उनका आदेश पाकर अचानक छंगुरी उठा. आंखें तरेर कर बोला— आप हम लोगों से ही क्यों सफाई का काम कराते हैं? राजपूत-ब्राह्मणों के लड़कों से यह काम क्यों नहीं कराते? फिर क्या था, हेड पंडितजी आपे से बाहर हो गए. उस दिन उन्होंने लक्ष्मण-रेखा पार कर ली और अपने ही हाथों से छंगुरी को घूंसे-लात और मुक्के धमाधम देने लगे वे मारते हुए बके जा रहे थे— साला जबान लड़ाता है! बोली भिड़ाने का मजा चखा देता हूं.

अचानक छंगुरी की आत्मा विद्रोह कर उठी थी और पास पड़ी एक ईंट को उठाकर उसने हेड पंडित के सिर पर दे मारा था.

चोट करारी बैठ गयी. खून के फव्वारे छूट पड़े और छंगुरी गालियां बकता हुआ पाठशाला से भाग खड़ा हुआ.

मार खाकर पंडितजी हाय-तोबा मचाने लगे. लड़के छंगुरी को पकड़ने के लिए दौड़ पड़े लेकिन वह पीछा करते लड़कों पर ईंटों की वर्षा करता हुआ भाग ही गया, पुनः वह पाठशाला वापस नहीं लौटा.

इस घटना के बाद हम सभी हरिजन लड़कों की छुट्टी पाठशाला से हो गयी. लगातार पंद्रह दिनों तक इधर-उधर छिपे रहने के बाद छंगुरी दिखाई पड़ा था. उस समय उसके चेहरे पर अप्रतिम प्रसन्नता थी. मालूम होता था कि वर्षों की कैद पड़ी छटपटाहट का वह खुलकर इजहार कर चुका है और वह उस हादसे से काफी आश्वस्त है. उसकी आंखें में अपने आपसे तनिक भी शिकायत नहीं थी, बल्कि जर्द होंठों पर तरल मुस्कान तिर रही थी.

हम लोगों की पढ़ाई रुक गयी. रुकी नहीं बल्कि रोक दी गयी. बहुतों ने तो पहले ही पंडितजी की आंखों का शिकार होकर पढ़ना छोड़ दिया था. टोले के दस-पांच हम लोग थे जो कोपभाजन बनकर भी बस्ते को ढोये चल रहे थे. लेकिन अकेले छंगुरी के द्वारा किये गए पाप का प्रायश्चित हम सबको भुगतना पड़ा.

तीन-चार वर्षों तक टोले में ही निठल्ला घूमते रहने के बाद मैं चाचा के साथ बाजार में जूते की दूकान पर काम करने लगा और छंगुरी दूसरे लड़कों की तरह जमीन के छोटे-से टुकड़े को गोड़ने-उपजाने में जुट गया.

काका भी तो पुश्तैनी धंधा ही करते थे. आस-पास के गांव से मरे हुए मवेशी के चमड़े खरीद लाते और उसे बाजार के चमड़ा-गोदाम में बेंच आया करते थे. इससे उन्हें थोड़ी आमदनी हो जाती और अपनी जमीन नहीं होने का संताप उन्हें नहीं सताता.

एक साल इलाके में पशुओं के बीच महामारी फैली हुई थी. धीरे-धीरे बीमारी गांव में भी घुस आयी. बहुत से मवेशी मरे. डकहा बीमारी थी. रात में वे खूंटे में अच्छे-खासे बंधे रहते. सुबह होते ही उनकी सांसें धौंकनी-सी चलने लगतीं. पेट फूल आया करता और कुछ ही घंटों में वे सिधार जाते.

अचानक यह बात गांव में फैल गयी कि काका ही अपने रोजगार की खातिर दूर-दराज के गांव से इस छुआछूत के रोग को बस्ती में लाये हैं. फिर क्या था, वे तहसीलदार साहब द्वारा दबोच लिये गये. उनकी काफी पिटाई हुई. टोले के अतिरिक्त सारी बस्ती में उनकी इज्जत उतर गयी.

इस घटना ने काका के दिल को बुरी तरह तोड़ दिया और उन्होंने कच्चे चमड़े का रोजगार बिल्कुल ही बंद कर दिया. रोटी के लिए बाजार की शरण ली और दुकान में नौकरी कर ली. दिन भर जूते बनाना और शाम को ताड़ी पीकर मौज-मस्ती में गीत गाते हुए गांव वापस लौटना, बस यही उनकी जिंदगी बन गयी.

कभी-कभी मैं सोचता हूं कि काका इस तरह क्यों टूट गए. कभी वे ही अपने को टोले का सरगना कहते थे. जो कोई भी दारू-ताड़ी पीता, उसके खिलाफ जाति-पंचैती करके, उसका हुक्का-पानी बंद करा देते. प्रत्येक घर से चंदा उगाह कर उन्होंने टोले में पक्का कुआं बनाने की की योजना बनाई थी. वे ही अब नशे में धुत्त होकर अनाप-शनाप बकते हुए गलियों में घूमते. किसी के

विलोभनीय वस्त्रविलास!

फैशन की दुनिया में छा जाइये — ठाकरसी के टिकाऊ डेनिम और ब्लेंडेड कपड़ों से. आप इन्हें जब चाहें पहनें, आप हमेशा रौबीले नज़र आएंगे. ठाकरसी के कपड़े आपको खूबसूरती से सजाते हैं.

ठाकरसी फॅब्रिक्स

TF

हिंदुस्तान स्पिनिंग एन्ड वीविंग मिल्स लि
१६, दर्याई समाचार मार्ग, बम्बई ४०० ०२३

ठाकरसी ब्लेंड नया...
नया ज़माना, नया तराना

Dattaram.TG-43

everfresh® 67% 'Terene' 33% Cotton DOUBLE EDGE 'Terene' Suitings easycare® 67% 'Terene' 33% Cotton easylene® 80% Polyester, 20% Cotton Tonlene® Polyester/Cotton Tonester® Polyester/Cotton

द्वारा छेड़ दिये जाने पर खिसिया कर कहते, 'इस धरती पर उन लोगों की हुकूमत है. हम सारे अपाहिज नशाखोरी के लिए ही तो पैदा हुए हैं. नशा नहीं करोगे तो तुम्हें याद रहेगा कि तुम्हारे सभी अंग साबूत हैं. तुम लुंज नहीं हो. उसे भुलाना हो तो नशे में डूबे रहो. भुला देने में ही फायदा है. नहीं तो तुम्हारा अस्तित्व मिट जायेगा.'

धीरे-धीरे मैं भी काका के साथ काम पर जाने लगा. नित्य सुबह उनके साथ पांच मिल दूर बाजार चला जाता. हम लोग जूते बनाने वाली एक छोटी-सी दूकान में काम करते थे. वहां अधिकतर चमरौधे जूते ही बनते थे. काका अच्छे कारीगर थे. कभी-कभी जरूरतमंद ग्राहकों को शहरी फैशन के भी जूते बना कर देते थे.

मैं सुबह से शाम तक चमड़े को सिभनता, कूटता और रेशे छुड़ाता. इतवार को बाजार की दुकानें बंद रहतीं. उस दिन मैं निश्चित होकर टोले के दूसरे लड़कों के साथ सारा दिन बिताता. छंगुरी के साथ हम लोग अपने मवेशी-डांगर लेकर पहाड़ियों पर चले जाते. दिन का कलेवा साथ ले लेते. मवेशी ढलान पर कंकरीली मिट्टी में उगी हुई घास चुनते रहते और हम लोग पहाड़ी की चोटी पर आसमान को छूने की कोशिश करते. जंगली फूल नंगी पंखुड़ियां फैलाये हम लोगों की अगवानी करते मिलते. वहां आसमान इतना सटा हुआ दिखाई पड़ता कि शाम के अधबने चांद को मुट्ठियों में पकड़ लाने को जी चाहता. सरकंडे के जंगलों में कलम बनाने के लिए पतली-पतली छड़ियां काटते और छुरियों से तराश कर ढेर सारी कलमें तैयार करते. धूल की परतों में गुम हुई स्कूली जीवन की याद ताजी हो जाती. अचानक सोचने लगते कि इन कलमों का क्या होगा. कौन पढ़नेवाले हैं जिन्हें कलमें दी जायं. टोले के लड़कों को स्कूल जाने की मनाही थी.

सोचते हुए आतंक भरा दुख हमें चारों ओर से जकड़ लेता. सरकंडे की बनी सारी कलमें फेंक दी जातीं. पिछले कई घंटों की मेहनत बालू के घरौंदें की तरह ढहाकर हम लोग अपने अतीत को भूलने की कोशिश करते. फिर भी कोई अबूझी प्यास हमें बहुत देर तक खदेड़ती हुई थमा देने के लिए अमादा दिखती रहती. कभी-कभी छंगुरी कहता—— जब हम बड़े होंगे तो टोले में हो पाठशाला खोलेंगे. वहां दूसरे टोले के लड़कों को घुसने भी नहीं देंगे. और न चंदनधारी हेड पंडितजी को ही जाने देंगे.

हमें उसकी बातें बहुत अच्छी लगतीं. लगता कि हमारी गर्म सांसों में किसी ने ठंडी हवा भर दी हो. रात के भीषण तमस् से कोई सूर्योदय का ठौर पूछ रहा हो.

हम लोग स्थिति के समझौता कर अपने में ही खो जाया करते. हमारे चारों ओर ऊंची-ऊंची पहाड़ियां होतीं, चिकनी-नंगी चट्टानें होतीं, गदराये हुए वृक्षों के संवाल और बांसवान में सरसराती हुई हवा होती. ढलान पर मवेशी के गले की घंटियां सुकती रहती. आजाद हवा हमें दुलराती रहती. बंधनमुक्त सांसें हमारे फेफड़ों में अनवरत भरती रहती. वहां न तो तहसीलदार साहब की जलती हुई आंखों का विस्तार होता और न ही हेड पंडित जैसे लोग जिन्हें हमारी देह की गंध से उल्टी होने का डर बना रहता था.

★ ★

छंगुरी के आने की खबर गांव भर के में फैल गयी. उसका बड़ा भाई जागेसर इसके आने की खबर सुनते ही खुशी से झूम उठा था. दरवाजे-दरवाजे जा कर इसकी जानकारी लोगों को दे आया था. छंगुरी की पत्नी दुखनी फूली न समाती हुई टोले की लड़कियों से ठिठोली कर आयी थी.

बाईस वर्षों तक गांव में ही खेत-पथार की रखवाली करने के बाद छंगुरी कलकत्ता जूट मील में मजदूरी कर रहा था. जिसके घर के लोग रुपये-आठ आने के लिए लालायित रहते, उसके यहां महीने में मनि आर्डर-चिट्ठियों का तांता लग गया. बाजार के पोस्टमैन बबुआन टोले और तहसीलदार साहब की ड्योढ़ी पर जाने की अपेक्षा हरिजन टोली की गलियों में घूमते नजर आने लगे.

जब कभी पीतल की बटन से लैस खाकी वर्दी वाले पोस्टमैन को गांव की ओर मुड़ते हुए देखते, राजपूत, ब्राह्मणों के पेट में अनपच की बीमारी हो जाती. तहसीलदार साहब के मुंह का स्वाद खट्टा हो जाता और वे कान पर जनेऊ चढ़ाए हुए उतरती धूप को बड़ी तल्लीनता से देखने लग जाते. मालूम होता था कि कोई बहुत बड़ी योजना ज्वालामुखी की तरह उनके हृदय के अंदर ही अंदर उमड़-घुमड़ रही है, ऐसी साजिश को मूर्तरूप देने के लिए वे छटपटा रहे हों, जहां सारे अनुपेक्षणीय तल्ख प्रश्नों का समाधान हो.

आंगन में अमरूद के पेड़ के नीचे मूंज की बनी खाट पर दोनों भाई बैठे थे. जागेसर बोड़ी सुलगाता हुआ बोला—— अगर रुपये हों तो तहसीलदार साहब से चलकर हिसाब कर आओ. महज तीन सौ रुपये की खातिर छः कट्ठे जमीन रेहन पड़ी हुई है. महीने में जो भेजते हो, खाते चले जा रहे हैं.

छंगुरी की आंखों में स्वाभिमान की रेखाएं स्पष्ट रूप से खिंच आयीं. दुखनी की ओर आंखें डालता हुआ बोला —— भैया, तुम जाकर हिसाब कर आओ. पाई-पाई चुका दूंगा. तहसीलदार से ही पिंड छुड़ाने के लिए कंपकंपाती जाड़े की रात में भी ओभरटेम काम करते रहे थे.

उसकी बातें सुन कर खुशी से जागेसर के लाल मसूढ़े दिखाई पड़ने लगे थे. मोटे होठों से निकली नुकीली आवाजें बड़ी सुखकर लगीं. बीड़ी को खाट की पासी पर रगड़ते हुए वह बोला —— आखिर जमीन भी तो तुम्हें ही भोगना है. मेरा क्या है, एक देह भर. दो शाम भात-नमक और मरन के बाद दो गज मारकीन का कफन. कुछ दिनों तक और कलकत्ता में नौकरी करने के बाद गांव में ही आकर खेती-बारी करो. घर-गृहस्थी चलाओ. तब मैं निश्चित हो लंगोटी पहनकर किसी संत-महात्मा की कुटिया में धूनी रमा लूंगा.

——नहीं भैया, तुम घर से क्यों निकलोगे. तुम निर्बंश हो गए तो क्या हुआ, मैं तो तुम्हारे ही बेटा जैसा

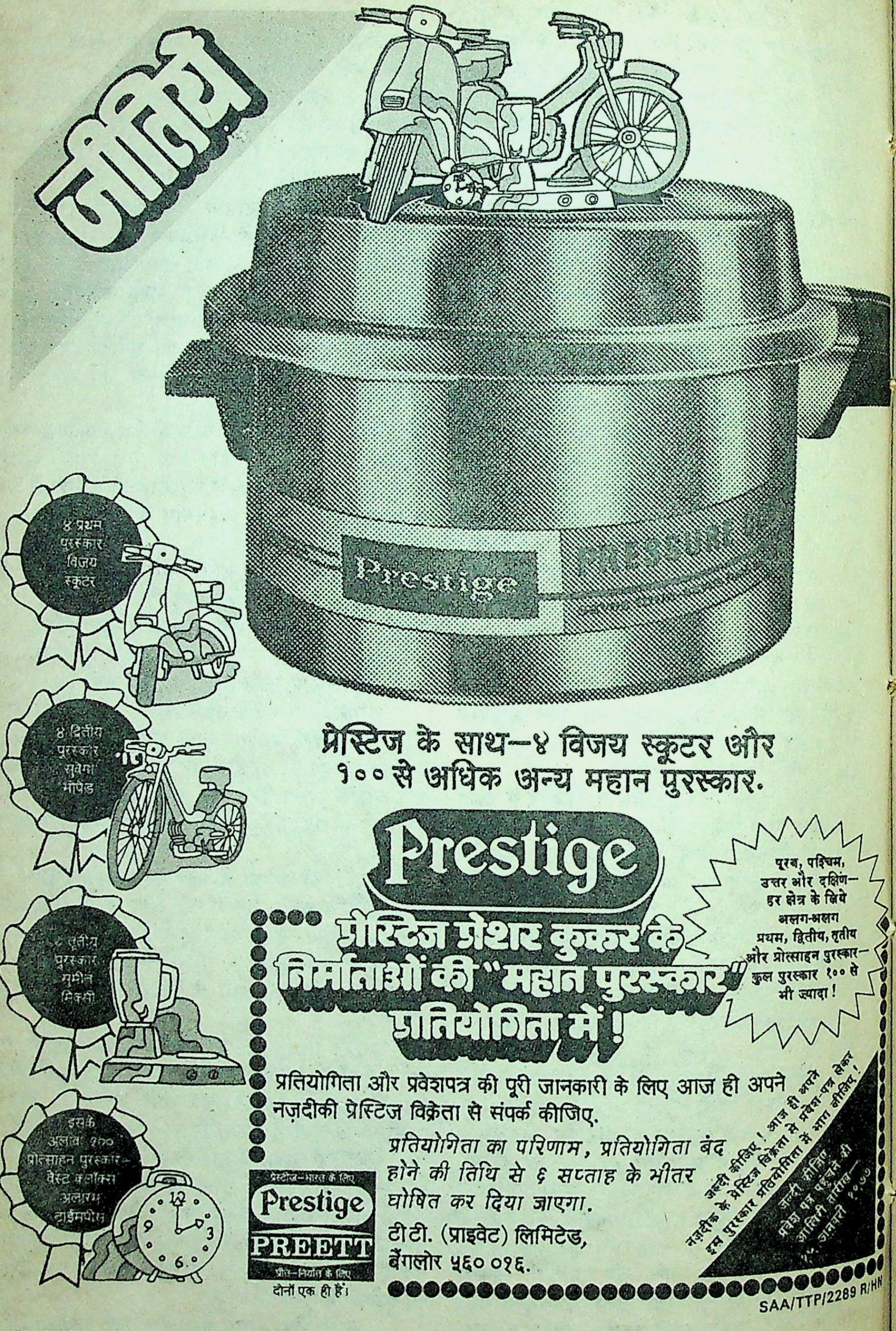
जीतिये
Prestige
PRESSURE
४ प्रथम पुरस्कार विजय स्कूटर
४ द्वितीय पुरस्कार सुवेगा मोपेड
८ तृतीय पुरस्कार सुमीत मिक्सी
इसके अलावा १०० प्रोत्साहन पुरस्कार— वेस्ट क्लॉक्स अलार्म टाईमपीस

प्रेस्टिज के साथ—४ विजय स्कूटर और १०० से अधिक अन्य महान पुरस्कार.

Prestige

प्रेस्टिज प्रेशर कुकर के निर्माताओं की "महान पुरस्कार" प्रतियोगिता में !

पूरब, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण—हर क्षेत्र के लिये अलग-अलग प्रथम, द्वितीय, तृतीय और प्रोत्साहन पुरस्कार—कुल पुरस्कार १०० से भी ज्यादा !

प्रतियोगिता और प्रवेशपत्र की पूरी जानकारी के लिए आज ही अपने नज़दीकी प्रेस्टिज विक्रेता से संपर्क कीजिए.

प्रतियोगिता का परिणाम, प्रतियोगिता बंद होने की तिथि से ६ सप्ताह के भीतर घोषित कर दिया जाएगा.

टीटी. (प्राइवेट) लिमिटेड,
बैंगलोर ५६० ०१६.

प्रेस्टीज—भारत के लिए
Prestige
PREETT
प्रीत—निर्यात के लिए
दोनों एक ही हैं।

जल्दी कीजिए ! आज ही अपने नज़दीक के प्रेस्टिज विक्रेता से प्रवेश-पत्र लेकर इस पुरस्कार प्रतियोगिता में भाग लीजिए !

जल्दी कीजिए
प्रवेश पत्र पहुंचने की
आखिरी तारीख—
३१ जनवरी १९७७

SAA/TTP/2289 R/HN

हूं. मुझे तो याद भी नहीं कि बाबू कैसे थे. तुमने ही तो बेटे की तरह मुझे पाल-पोसकर बड़ा किया.

छोटे भाई की बातें सुनकर जागेसर की आंखें छलछला आयीं. दोनों आत्मीय सुख भोगते रहे. दुखनी बगल में खड़ी खून के रिश्ते का मधुर आनंद ले रही थी.

जागेसर आश्वस्त होकर बोला—आज छोड़ दो. थके हुए आये हो. कल हिसाब करने चलेंगे. वहां से ही पलटू मालिक के सराध का भोज भी खाते आयेंगे.

भाई की बातें सुनकर अचानक छंगुरी की भवें कस गयीं लेकिन वह कुछ नहीं बोला. भाई के चेहरे पर पीढ़ी-दर-पीढ़ी की भूख की स्पष्ट छाप दीख रही थी. श्राद्ध और विवाह के जूठे पत्तलों का भोज. अभिजात्य संस्कारों के मुंह से उगले हुए अंधेरे का भोज. इसी अंधकार को टोले के लोग सदियों से चाटते रहे हैं. बड़ा भाई आज पकवानों की याद में क्षुधा-पीड़ित हो गया था. उसके बाप और पूर्वजों की सारी आत्माएं इसी अबूझी प्यास को ले मसान तक गयी थीं. फिर भी यह जालिम भूख नहीं मिटी. उनकी हथेलियों में कितना गहरा सूराख या कि तमाम नैराश्यजनित अंधकार को पीने के बाद भी वे आज तक भूखे ही थे.

जागेसर आह्लादित हो कर बोला—बड़े ही घर के आदमी थे बेचारे. कभी किसी को दुख नहीं पहुंचाया. सुनते हैं कि पांच मिठाइयों का भोज है. शुद्ध घी की बनी हुई सारी चीजें हैं. मैं तो आज रात खाना भी नहीं खाऊंगा. तब कल डटकर माल उड़ाया जायगा. मेरी बात क्या करते हो, टोले के अधिकांश घरों में आज चूल्हे नहीं जलेंगे. दूसरे घरों में गांव-ज्वार के रिश्तेदार आकर जम गये हैं. मेरे यहां तो पत्तल लूटनेवालों की ही कमी है. अगर मेरा तीनों छोड़ा रहता तो आंगन में पत्तलों का ढेर लग जाता. लेकिन विधाता को तो कुछ और ही मंजूर था.

जागेसर को अचानक बेटे की याद आ गयी और एक बार उसकी आंखें फिर से गीली हो गयीं. छंगुरी भाई के निष्कपट चेहरे को चुपचाप देखता रहा.

सचमुच ही दूसरे दिन जब टोले के लोग श्राद्ध का भोज खाने जाने लगे तो छंगुरी ने उनका रास्ता रोक लिया. उसकी हरकत किसी को भी पसंद नहीं आयी. छंगुरी ने उत्तेजित हो कर कहा था—एक दिन भरपेट खाने से तुम्हारी भूख हमेशा के लिए नहीं मिट जायेगी. फिर क्या जरूरत है कि दूसरे के जूठे पत्तलों को चाटा जाये.

काका ने कहा था— ये भूख कभी मिटने वाली नहीं है. जो पेट आज तक नहीं भर सका, वह सराध का भोज खाकर नहीं भरेगा, लेकिन सामाजिक परंपरा के अनुसार हम लोगों को जूठे पत्तलों को लूटना है और तुम्हें मना करने का कोई अधिकार नहीं है.

काका अपनी बातों की पुष्टि के लिए उपस्थित लोगों को देखने लगे थे. सभी के चेहरे पर खामोश स्वीकृति की स्पष्ट छाप दिखाई दे रही थी. कुछ ने तो भुनभुनाकर कहा— भला गांव-ज्वार की बातों में शहरिया फैशन लादने का कौन-सा रिवाज है? बड़े बबुआ की शादी-सराध में हम लोग जूठे पत्तलों को उठाते रहे हैं. अगर हम छोटी जाति के लोग यह काम नहीं करेंगे तो क्या वह लोग अपने हाथों से पत्तल उठायेंगे?

छंगुरी निरुत्तर हो गया था. उसे कतई आशा नहीं की कि सदियों से दमनचक्र में पिसते रहने के कारण उनकी मानसिकता इतनी टूट चुकी है कि उस पर स्वाभिमान का लेप नहीं चढ़ाया जा सकता.

उस दिन मैंने छंगुरी की बातों का समर्थन किया था लेकिन टोले के अधिकांश लोग हमारी खिलाफत करते रहे. जागेसर भाई को भी मन मसोस कर रुक जाना पड़ा था. छंगुरी के दिल का आक्रोश देखकर भोज में जाने की उनकी हिम्मत नहीं हुई थी.

तीन-चार दिन बाद टोलेवालों ने हम लोगों को जातिच्युत कर दिया था. हम पर तरह-तरह के व्यंग्यबाणों की वर्षा की गयी, हमें टोले का दुश्मन करार किया गया और टोले की तमाम कद्दावरी आंखों का शिकार बने हुए मुझे फिर एक बार और छंगुरी के पाप का प्रायश्चित करना पड़ा.

* *

सुबह से ही जागेसर बहुत खुश था. दोनों भाइयों के बीच यह बात निश्चित हुई कि तहसीलदार साहब के कर्ज का बोझ आज से हमेशा के लिए उतार देंगे और अपनी रेहन पड़ी जमीन वापस ले लेंगे. खानदान के पाप को हमेशा-हमेशा के लिए उतार देने की खुशी में जागेसर मछलियां पकड़ने चल पड़ा था और बांस पर दिन उगते ही छिवड़ी भरकर मछलियां ले आया था.

अपने छोटे भाई को देखते ही बोला—आज से इस वंश का नया जीवन शुरू होगा. तुम जाकर तहसीलदार को रुपये चुका दो और रेहन का कागज ले आओ. मैं आज तुम्हें अपने हाथों से मछलियां बनाकर खिलाऊंगा.

छंगुरी को देखते ही तहसीलदार साहब भीतर से जलभुन गए. चारखाने की रंगीन लुंगी और लंबे बालों से टपकते खुशबूदार तेल पर नजर पड़ते ही उनका दिल ऐंठने लगा.

छंगुरी के आने की सूचना उन्हें मिल गयी थी. उन्हें यह भी पता था कि पलटू बाबू के श्राद्ध में इस छोकरे ने जातिवालों को जूठे पत्तल नहीं उठाने के लिए उकसाया है.

यह बात किसी को पसंद नहीं थी कि जागेसर अपनी रेहन पड़ी जमीन धीरे-धीरे छुड़ाता चला जाये. सचमुच ही जूट मिल में नौकरी करता हुआ अपनी तेरह कट्ठे जमीन रेहन से मुक्त करा चुका था और अब सिर्फ यही छः कट्ठे गिरवी पड़ी थी.

कल ही तहसीलदार साहब ने अपने कुछ आदमियों के साथ सलाह-मशविरा किया था. सिर से ऊंचा होते पानी को देखकर सभी सशंकित हो उठे थे. पानी का निकास आवश्यक था.

छंगुरी उनके सामने बैठ कर लाइटर से बीड़ी जलाता हुआ बोला — बाबू, मेरा हिसाब कर दीजिए. कल तक ही छुट्टी ली है. ड्यूटी पर वापस लौट जाऊंगा.

उसकी बातें सुनकर तहसीदार साहब के रोएं जल उठे. लेकिन उन्होंने अपने चेहरे पर लिजलिजी संवेदना

क्या तुम्हारी इच्छा नहीं होती ?

पड़ोस के दोस्त को 'इंद्रजाल कॉमिक्स' पढ़ते देखकर तुम्हारे मन में भी तो उसे पढ़ने की इच्छा जगी होगी. क्या तुम महाबली वेताल, जादूगर मैण्ड्रेक, फ्लैश गॉर्डन आदि की रोमांचक कहानियां पढ़ना चाहते हो ? क्या तुम उनके साहसिक कारनामों, बुराई के विरुद्ध उनकी लड़ाइयों का विवरण जानना चाहते हो ? क्या कभी तुमने मैण्ड्रेक की जादुई दुनिया देखने का सपना देखा है ? अपने देश के शूरवीरों और महान संतों के बारे में तुम कितना कुछ जानते हो ? उनकी वीरता और बलिदान की कितनी कथाओं से तुम परिचित हो ? क्या जरूरी है कि तुम अज्ञानी बने रहो ? नहीं, कदापि नहीं, आज ही अपने माता-पिता से कहो कि वे तुम्हें हर पखवाड़े में इंद्रजाल कॉमिक्स लाकर दिया करें.

इंद्रजाल कॉमिक्स

इंद्रजाल
कॉमिक्स

इंद्रजाल
कॉमिक्स

हिंदी, अंग्रेजी और बंगला में
प्रकाशित होता है.

टाइम्स आर्ट

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन

प्रकट करते हुए कहा—अरे भैया, थोड़ी देर सुस्ता लो. तुम्हारा हिसाब कर देता हूं. तुम्हारे बाबू जबतक जिंदा थे हमलोग उसे ही तुम्हारे गांव का सरगना मानते रहे हैं. तुम कोई गैर थोड़े ही हो. कहो तो तुम्हारे सामने रेहन का कागज फाड़ कर फेंक दूं.

छंगुरी उनकी आत्मीयता देखकर अनजाने ही उनकी ओर खिंच गया. दोनों घर-द्वार, जूट मिल और कलकत्ते की रेलमपेल वाली जिंदगी के बारे में घुलमिल कर बातें करने लगे.

अचानक तहसीलदार साहब ने अपना मोहरा फेंकते हुए कहा— देखो छंगुरी, तुम मेरी बातों का गलत मायने मत लगा लेना. तुम तो घर के लड़के जैसे हो. तुम्हें आगाह करना हमारा कर्तव्य हो जाता है. क्यों नहीं तुम अपने साथ अपनी बीवी को रखते हो? दस मुंह, दस तरह की बातें.

छंगुरी की समझ में कुछ नहीं आया. उनके चेहरे पर आंखें गड़ाते हुए उसने पूछा——क्या बात है, साब? दस मुंह-दस तरह की बातें. आखिर बात क्या है?

तहसीलदार साहब द्वारा फेंका गया मोहरा शतरंज के चौकोर खाने में जमकर बैठ चुका था. उन्होंने कहा—मुझे कहनी तो नहीं चाहिए लेकिन लोगबाग कहते है कि तुम्हारी बीवी ओर जागेसर के साथ बुरा संबंध है. देखो भैया, मेरे कहने का मतलब है कि अपनी स्त्री को भी साथ ही रखो तो दूसरे लोगों को बोलने का मौका तो न मिलेगा. इज्जत बार-बार नहीं मिलती है.

उनकी बातें सुनते ही छंगुरी की उंगलियों में सुलगती बीड़ी छूटकर नीचे गिर गयी. कुछ देर तक वह शून्य मस्तिष्क से तहसीलदार साहब को देखता रहा. उसे महसूस होने लगा कि कोई खौफजदा अंधेरे का शैलाब उसे चारों ओर से जकड़ता जा रहा है. दुहरे-तिहरे धुंध में वह धीरे-धीरे डूब चुका है और उसके चारों ओर परोक्ष रूप से जागेसर और दुखनी के कहकहे उसे झंझोड़ रहे हैं. वह बोला——अभी हिसाब-किताब बंद रखिए. मैं जरा इसकी सही जानकारी ले लूंगा. याद रखियेगा, अगर आपकी बातें सही निकलीं तो मैं अपने ही हाथों से भाई और बीवी के टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा और अगर गलत हुई तो वे ही हाथ आपकी ओर बढ़ जाएंगे.

तहसीलदार साहब ने पैंतरा बदलते हुए कहा—इसमें इस तरह बौखलाने की क्या जरूरत है. जा कर गांव वालों से पूछ लो. एक ही नहीं, सारे गांव के लोग इस बात को जानते हैं.

छंगुरी बुझती हुई बीड़ी अपने जूते से मसलता हुआ उठ खड़ा हुआ. जिस रास्ते से वह गुजरा, लोगों ने जागेसर और दुखनी के बीच बुरे संबंधों की ही बातें उठायीं. पाठशाला के सामने दो-चार व्यक्ति पुआल पर बैठे हुए धूप में देह सेंक रहे थे, छंगुरी को टोकते हुए एक व्यक्ति ने कहा— तुम तो अपने को इज्जतदार कहते हो, लेकिन बीवी यहां सूने घर में रामलीला करती है, भैंसुर के साथ. . . . . छि : छि :. फिर ठहाकों की अनुगूंज से वह भयाक्रांत हो उठा था. वह चाहता था कि टोले तक पहुंचनेवाली पगडंडी जल्दी-से जल्दी समाप्त हो जाय और अंधेरी परतों में घुसकर वह अपनें अस्तित्व को हमेशा के लिए विलीन कर दे.

आंगन में पहुंचते ही उसने देखा कि भाई चूल्हे के पास बैठा हुआ मछलियां तल रहा था और दुखनी उसे मदद पहुंचा रही थी. छंगुरी को देखते ही जागेसर बोला—आ गया. ले आया रेहन का दस्तावेज? तुझे अपने हाथों से आज मछलियां खिलाऊंगा. कड़ू तेल में बनायी हैं. कनियां क्या जानेगी कि तली हुई मछलियों का क्या स्वाद होता है. इसके मां-बाप तो तेल का इस्तेमाल सिर्फ पर्व-त्यौहार में ही करते हैं.

दुखनी बड़े भाई का मजाक सुनकर हंसनें लगी थी. निष्कलुष चेहरे पर स्निग्ध मुस्कान बहुत देर तक तैरती रही. अचानक छंगुरी दुखनी के बाल पकड़ कर बोला——बता तेरे और जागेसर भाई के बीच क्या संबंध हैं?

सुनते ही कड़ाही पर जागेसर के झुके हाथ ढह गये. ठोकर से चूल्हे पर चढ़ी कड़ाही उलट गयी और सारी मछलियां आग और जमीन पर छनछन की हल्की आवाज छोड़ती हुई बिखर गयीं.

छंगुरी आपे से बाहर हो गया था. दुखनी को जमीन पर पटक कर घूंसे-लात से मार रहा था और अपने प्रश्नों को पूछता जा रहा था. जागेसर आंखें तरेर कर बोला——किसने तुम्हें क्या कह दिया जो अगिया-बैताल बने आये हो ? पहले बात तो समझ लो. वे लोग चाहते है कि. . . .

छंगुरी बिना कुछ समझे भाई से उलझ गया और देखते ही देखते दोनों आपस में गुंथ गये. चूल्हे की आग बिखर कर उनकी देह और कपड़ों को झुलसाने लगी. दुखनी भयभीत नेत्रों से उन्हें देखती हुई चीख-पुकार मचाने लगी. लड़ते हुए आखिर छंगुरी ने अपने भाई को दबोच ही लिया और उसके मुंह तथा शरीर पर तबतक जलती हुई लकड़ी से प्रहार करता रहा जब तक कि टोले के लोग जमा नहीं हो गये.

जागेसर अस्पताल में पड़ा-पड़ा आखिरी सांसें गिन रहा था. छंगुरी के शरीर में भी जगह-जगह फफोले उग आये थे और बगल की खाट पर पड़ा हुआ वह भी कराह रहा था. दोनों भाइयों की अवस्था देख कर दुखनी की आंखें रोती हुई सूज गयी थी. मैं बार-बार दुखनी को चुप कराता हुआ धैर्य बंधा रहा था.

बरामदे पर पुलिस तैनात थी और हत्या करने के प्रयास में खाट पर कराहते हुए अभियुक्त छंगुरी पर नजर रखे हुई थी.

अचानक छंगुरी बेहोशी की हालत में बड़बड़ाने लगा— मुझे बचाओ. इन हाथों से मुझे बचाओ. ये मुझे दबोचने के लिए चले आ रहे हैं. इन्हीं हाथों ने मेरे भाई को मुझसे अलग कर दिया. अब ये मुझे अपनें आपसे अलग कर रहे हैं. छंगुरी की खौफजदा बातें सुन कर मैं भी भयभीत हो उठा था. मुझे लगा कि शून्य की परतों से कई छिपे हुए हाथ मेरी ओर लपके चले जा रहे हैं और उनकी गिरफ्त में मेरा गला भी निरंतर कसता चला जा रहा है. □□□

विशेष भूअर्जन पदाधिकारी,
गंडक योजना नं.–२, मोतीहारी (बिहार)

प्यार की सीमाएं हैं

शांता वर्मा

उस दिन बाबा एकाएक बड़ा लगने लगा था. उसका नर्सरी में एडमिशन हो गया था. और जब उसको स्कूल ड्रेस पहना कर जूते-मौजे बांध कर खड़ा किया गया, तो उसकी मम्मी, मीरा को लगा कि उसका बेटा एकदम से पढ़-लिख कर पायलट बन जायेगा, जैसा कि वह अकसर अपनी सहेलियों के बीच में बैठ कर कहती थी—मैं तो अपने बेटे को पायलट बनाऊंगी और सारी दुनिया घूमूंगी. . . वैसे भी उसको घूमने का बहुत शौक था. बड़ी मम्मी 'मीरा की सास' ने जब बाबा को देखा तो उनको अपने बेटे के बचपन के दिन याद आने लगे थे, जब कि वह ऐसे ही स्कूल ड्रेस पहन कर स्कूल जाता था, उनके बेटे की और पौते की शक्ल काफी मिलती-जुलती थी. कई आदतें भी एक-सी थीं, जैसे किसी चीज का मोह तक नहीं, सभीसे साफ बात करना आदि-. आदि. . . उन्होंने बहुत ही प्यार से उसके बालों पर हाथ फेरा और मीरा से बोलीं—ठीक ऐसा ही मेरा जीतू लगता था, बाबा के पापा का पूरा नाम जीतेंद्र था. बड़ी मम्मी उनको प्यार से जीतू बुलाती थीं.

बाबा स्कूल क्या जा रहा था, सभी को खुशी हो रही थी. उसके पापा भी कमरे से निकल कर बाबा के पास आ कर उसको ऊपर उठाते हुए बोले—तू ही तो मेरा भविष्य है, बाबा का नाम भी उन लोगों ने भविष्य रखा था. बाबा अपने पापा को देख कर बोला—मैं स्कूल जाने से डरता नहीं हूं, पापा. सचमुच वह और बच्चों की तरह स्कूल जाने से घबड़ा नहीं रहा था.

उसके दादा अपने कमरे से ही चिल्ला रहे थे कि—बाबा को मेरे पास लाओ, मैं भी तो देखूं. उनकी तबियत ठीक नहीं रहती थी. उनके बायें हाथ-पैरों में पैरालेसिस का असर था, इसलिए वह जल्दी से अपनी खाट से उठ नहीं पाते थे.

बस चुपचाप जो थी वह थी उसकी पंद्रह साल की आया अन्नी, वह समझ ही नहीं पा रही थी, न आगे, न पीछे, बिल्कुल भौचक्की-सी बाबा को लगातार देख रही थी, मीरा के कहने पर वह बाबा की चीजें उठा-उठा कर देती जा रही थी, जैसे कोई मशीन हो यद्यपि वह कई दिनों से सुन रही थी कि बाबा को स्कूल जाना है उसके लिए यह लाना है, वह लाना है. पर उसने कभी देखा भी नहीं था कि बच्चे स्कूल कैसे जाते हैं. वह लगातार सोचती जा रही थी कि बाबा तो स्कूल चला जायेगा फिर वह क्या करेगी इस घर में. उसका सब काम बाबा से ही जुड़ता था. अब वह अकेले क्या करेगी. और सब कामों के लिए एक दूसरी आया थी. वह सिर्फ बाबा के काम संभालती थी. वह अपनी तकलीफ कहे भी तो किससे. उस समय तो बाबा के स्कूल जाने की सबको इतनी खुशी हो रही थी कि जैसे बाबा दुबारा जन्म ले रहा हो. उस बीच वह यदि उदास हो गयी तो लोग यही सोचेंगे कि अन्नी ने कहीं अपशगुन तो नहीं कर दिया है. इसलिए चुपचाप वह बाब की तैयारी देखती रही, वैसे रोज वही बाबा को कपड़े पहनाती थी पर उस दिन मीरा ने सारा काम अपने हाथ में ले लिया था इस बात से वह और भी दुखी थी. बाबा को तैयार करके मीरा स्वयं तैयार होने अपने कमरे में चली गयी थी. उस बीच बाबा अन्नी के पास आ कर बोला—अन्नी, तू भी चल न मेरे साथ स्कूल, अन्नी अपन साथ-साथ बैठेंगे. अन्नी को शायद बाबा की बात अच्छी लगी थी, वह तुरंत बड़ी मम्मी के पास खुशी-खुशी पहुंची और बोली—बड़ी मम्मी मैं भी स्कूल जाऊंगी, बाबा के साथ पढ़ूंगी. यह सुन कर बड़ी मम्मी को बहुत जोर से हंसी आ गयी. बोलीं—क्या पागल हो गयी है अन्नी, बच्चों के साथ इतनी बड़ी लड़की पढ़ती है? उनकी हंसी देख कर अन्नी सहम गयी थी. उसको यह नहीं समझ में आया कि क्यों नहीं पढ़ सकती. वह चुपचाप बाबा की उंगली पकड़ कर किचन से बाहर वाले कमरे में आ गयी थी. उसीके पीछे बड़ी मम्मी भी हंसते हुए बाहर वाले कमरे में आ कर मीरा से बोलीं—उस समय तक मीरा तैयार हो कर आ गयी थी—सुनो मीरा, अन्नी भी बाबा के साथ स्कूल पढ़ने जायेगी, कितनी भोली है बिचारी. मीरा भी अन्नी की तरफ देख कर मुसकरा दी थी. अन्नी अभी तक समझ नहीं पायी थी कि उसने क्या गलत कह दिया है. वह चुपचाप बाबा को ले कर मीरा के साथ स्कूल चल दी थी.

* *

बात असल में यह थी कि अन्नी अनाथालय की लड़की थी, उसने देखा ही नहीं था कि इतना भरा-पूरा घर. उसने मां-बाप को भी किताबों में पढ़ा था. वह क्या जाने मां अपने बच्चे को कैसे-कैसे प्यार करती है, कितनी-कितनी आशाएं लगाती हैं. उसने तो एक यंत्र की तरह जीना सीखा था. सुबह उठना, खेलना-कूदना, पढ़ना-लिखना, खाना खा लेना और वक्त से सो जाना.

बस सुबह उठने के बाद सब बच्चों को लाइन बना कर जो प्रार्थना गवायी जाती थी, वह उसे अभी तक याद थी.

तुम्हीं हो माता
पिता तुम्हीं हो
तुम्हीं हो बंधू
सखा तुम्हीं हो.

इससे उसको बहुत ताकत मिलती थी. वहां यही सिखाया जाता था कि जिसकी कोई मदद नहीं करता उसकी भगवान मदद करता है. अन्नी बारह साल तक उन चाहर दीवारियों में बंद यही सुनती आ रही थी. शायद उसी ताकत से वह एक दिन रात में वहां से भाग निकली थी. और बिना टिकट गाड़ी में बैठ कर पूना से बंबई आ गयी थी. उसके बाद कितने ही दरवाजों के चक्कर लगा-लगा कर इस घर तक पहुंच गयी थी, जहां कि उसको पूर्णरूप से सुरक्षित आश्रय मिल गया. शुरू-शुरू में उसको किसी बात का सलीका ही नहीं था. फ्राक फटी है तो फटी है, बाल बिखरे हैं तो कुछ परवाह ही नहीं है, जैसे किसी आजाद पंछी की तरह इधर-उधर बाबा को लिये-लिये घूमा करती थी.

बड़ी मम्मी का मन बहुत नरम था. उन्हींके प्यार से इन तीन सालों में वह काफी निखर आयी थी. जब भी वह मैकसी पहन कर बाबा को ले कर बाहर निकलती थी, तो दो-चार लोगों की निगाहें उसके ऊपर जरूर अटक जाती थीं. पर उसको किसी चीज की जैसे परवाह ही नहीं रहती थी. वह तो अपने बाबा में इतनी डूबी हुई रहती थी कि कोई क्या देख रहा है, उसको मालूम ही नहीं पड़ता था. उसको तो जैसे आदमी से बोलते डर लगता था.

घर-बाहर उसको एक धुन थी वह और उसका बाबा. अन्नी के आने से मीरा भी बाबा की तरफ से मुक्त हो गयी थी. उसकी ताश गोष्टी जोर पकड़ने लगी थी. ढेर सारी सहेलियां घर में आती थीं, और जाती थीं, और ताश चलता रहता था, कभी-कभी मीरा भी जीतेंद्र के आफिस जाने के बाद स्वयं सहेलियों के साथ बाहर चली जाती थी. इस बीच अन्नी और भी आजादी के साथ बाबा को ले कर बतियाती रहती थी. या कोई तसवीरों वाली किताब निकाल कर देखती रहती थी. और बाबा को उलटी-सीधी कहानियां गढ़-गढ़ कर सुनाया करती थी. इन सबसे बाबा भी अन्नी को बहुत प्यार करने लगा था. खाये तो अन्नी, सोये तो अन्नी, खेले तो अन्नी, सारे दिन उसको अन्नी चाहिए थी. और अन्नी भी उसका जो काम करती थी बड़े प्यार से करती थी. खाना खिलाती थी तो उसकी पसंद की चीजें ही प्लेट में परोसती थी, फिर एक-एक कौर ढंग से बना कर स्वयं खिलाती थी.

कभी-कभी बड़ी मम्मी अपने पड़ोसियों के बीच बैठ कर कहती थीं कि — जितना बाबा का अन्नी ध्यान रख सकती है, मैं भी नहीं रख सकती हूं. वह तो उसको ऐसे रखती है कि उसको कहीं कांटा तक न चुभ जाये. मैं तो दादा के कामों में ही इतनी फंसी रहती हूं कि बाबा को प्यार करने तक का समय नहीं मिलता, और मीरा को तो तुम लोग जानते ही हो, कितनी मस्त है. उसे नहीं मालूम उसका बच्चा क्या खा रहा है; क्या पी रहा है. बस कपड़े बनवा कर रख दिये हैं जिसका कि उसको खुद शौक है. उसके अलावा उसे कुछ फिकर ही नहीं.

इन तीन सालों में अन्नी और बाबा का रिश्ता जैसे भाई-बहन का हो गया था. यहां तक कि रक्षा बंधन वाले दिन अन्नी उसको बड़ी-सी राखी बांधने लगी थी.

इन्हीं सब कारणों से वह यह सोच ही नहीं सकती थी कि बाबा उससे अलग हो कर स्कूल भी पढ़ने जायेगा. वह तो यही सोचती थी कि हमेशा हमेशा बाबा और उसका खेल ऐसे ही चलता रहेगा. इसीलिए सुबह से बाबा की तैयारी वह अचंभित हो कर देख रही थी. और अंदर नितांत अकेलापन महसूस कर रही थी.

एक बार बाबा ने कहा भी था — मम्मी आज तुम क्यों मुझको कपड़े पहना रही हो, तुम जा कर सो जाओ, अन्नी सब ठीक कर देगी. परंतु मीरा ने कहा — तू बेटा आज स्कूल जा रहा है न, अगर तेरे कपड़े ठीक नहीं होंगे तो तेरी टीचर तुमको पप्पी नहीं करेगी. बाबा को स्कूल जाने का बहुत मन था. उसके सामने वह अन्नी का प्यार भी भूल गया था. उसने अपने पापा से सुन रखा था कि जो बच्चे स्कूल जाते है उनको परियां दिखाई देती हैं, और उनको ढेर सारी मिठाई खाने को मिलती हैं, मिठाई उसको बहुत पसंद थी. इसलिए वह स्कूल जाने के लिए मन से तैयार हो गया था.

रास्ते में चलते-चलते यही सब बातें उसके दिमाग में घूम रही थीं. आज वह बाबा के मामले में मीरा से नीचा महसूस कर रही थी.

वैसे हमेशा बाबा जब भी मीरा से जिद्द करता तो वह अन्नी से ही कहती थी— 'देखो, इसे संभालो और नीचे जा कर आइस्क्रीम टाफी खरीद दो जिसकी वह जिद्द कर रहा होता था. इसीसे अन्नी को लगता था कि बच्चा बाबा को पूरा संभालने वाली वह है, मीरा नहीं है.

रास्ते में अचानक उसने देखा कि बाबा की उंगली मीरा ने पकड़ ली थी. जिस तरह से अन्नी सब कुछ बर्दाश्त करती जा रही थी, उसको एकाएक मीरा से ईर्ष्या होने लगी थी, वह सोचने लगी थी कि यही मेमसाहब है, जिसने बाबा को उससे अलग किया है. उसका अधिकार छीना है. पर मीरा को इस बात का कहीं अहसास ही नहीं था.

स्कूल पहुंच कर इतने सारे बच्चे देख कर उसका अपना अनाथालय याद आने लगा था, उसको लगा कि

● आर. एन. प्रसाद

इन चहारदीवारियों के अंदर भी बच्चे कितने खुश रह सकते हैं. बहुत से मां-बाप उसको इकट्ठे देखने को मिले थे. वह उत्सुकता से इधर-उधर देखने लगी थी.

स्कूल में पहुंचते ही मीरा ने बाबा की नर्सरी क्लास का पता लगाया और बाबा को ले कर वहां पहुंची. उसी समय एक सुंदर-सी टीचर बाहर निकल कर आयी. मीरा से कुछ अंग्रेजी में बात कर के बाबा को अंदर ले गयी. पर बाबा बराबर अन्नी को नरमाई आंखों से देखता जा रहा था. अन्नी का भी मन हुआ कि उसको जाने से रोक ले, पर बीच में मीरा थी. जिसकी डांट से वह डरती थी. बस, उसने मीरा से डरते-डरते यही सब पूछा था कि बाबा कब घर आयेगा. मीरा ने उसे समझाते हुए कहा था—ठीक साढ़े बारह बजे बाबा को यहां लेने आ जाना.

उसी समय से अन्नी का मन उखड़ने लगा था. यद्यपि वह मीरा के साथ-साथ घर वापस जा रही थी फिर भी उसको लग रहा था कि वह बहुत खाली-खाली लग रही है. उसको बराबर बाबा का ध्यान आ रहा था कि कहीं स्कूल में उसको किसी चीज की जरूरत हो गयी, तो किससे कहेगा.

एकाएक उसको उसकी सुंदर-सी टीचर का ध्यान आ गया था. उसका मन भारी होने लगा था. उसने उस टीचर को बहुत ध्यान से देखा था, वह उससे कहीं अधिक सुंदर थी. उसकी ड्रेस भी उससे अधिक साफ और अच्छी लग रही थी. उसको लगा कि बाबा यदि उसको प्यार करने लगा तो वह कहां जायेगी, कौन है उसका इस दुनिया में. बड़ी मम्मी मुझको क्या दे सकती हैं, बस खाना कपड़ा, पैसा और अपना बंटा हुआ प्यार.

★ ★

घर आते ही सीधे वह शीशे के सामने पहुंची, उसने अपनी बिखरी हुई लटों को धीरे से संभाला और अपनी मैक्सी को बड़े गौर से देखा. उसी समय से उसने सोच लिया था कि क्यों नहीं वह बाबा की टीचर से ज्यादा सुंदर लग सकती है. उसके मन में एक स्पर्धा की भवना आ गयी थी. वह सीधे बड़ी मम्मी के पास पहुंची. वह नाश्ता बनाने में व्यस्त थीं. उसी समय बोल उठी—मेमसाहब, मैं ऐसे कपड़ों में स्कूल नहीं जाऊंगी, मुझे तो अच्छे वाले कपड़े चाहिए.

बड़ी मम्मी ने उड़ती हुई नजर से उसको देखा और दिलासा दी कि सब बन जायेंगे, तसल्ली रखो और प्लेट में आमलेट डाल कर दादा के कमरे में चल दीं. दादा उसी समय नाश्ता करते थे. जिसको बड़ी मम्मी स्वयं अपने हाथों से बनाती थीं.

अन्नी चुपचाप उनको देखती रही, उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह किधर से अपना काम शुरू करे. मीरा भी अपने कमरे में जा कर लेट गयी थी, वह इतनी दूर पैदल चल कर थक गयी थी. अन्नी चुपचाप दरवाजे खोल कर बाहर निकल आयी थी और बाहर गेट पर जा कर चुपचाप खड़ी हो गयी. खाली मन जाने कहीं भटकने लगा था. एक तो बाबा का ध्यान उसको लगातार आ रहा था. दूसरी तरफ उस टीचर से ईर्ष्या जोर पकड़ती जा रही थी. तीसरे साढ़े बारह तक अपना समय भरना चाह रही थी.

उसी समय दो लड़के बिल्डिंग से हंसते हुए निकले. अन्नी की खाली निगाह आज अचानक उनकी तरफ चली गयी. उनमें से एक ने, जो कि थोड़ा तेज था, अन्नी को देख कर आंख मारी. अन्नी को बहुत अटपटा-सा लगा. वह चुपचाप घर की तरफ चली आयी. घर में आते ही फिर एक खालीपन, इतने में बड़ी मम्मी ने उसे देखा, देखते ही बोलीं—अन्नी तू कहां चली गयी थी? मैं तो दादा के कामों में इतनी फंसी रही कि तेरा ध्यान ही नहीं रहा. तू ने कुछ खाया है या नहीं, अन्नी उनकी तरफ उदास-सी देखती रही. बड़ी मम्मी ने किचन में जा कर उसको दो पराठा और सब्जी खाने के लिए दी और कहा—जा बेटा, बाबा के गंदे कपड़े पड़े हैं उनको धो कर डाल दे.

अन्नी ने जल्दी से कपड़े धो कर सूखने को डाल दिये और जा कर घड़ी देखने लगी. घड़ी में अभी साढ़े दस बजे थे. उसके मन में आया कि क्यों न अभी से स्कूल चली जाये और बैठे-बैठे वहां के बच्चों के साथ बाबा को देखे. उसने तुरंत अपनी छोटी-सी अलमारी से अच्छी वाली मैक्सी निकाली, जो कि बड़ी मम्मी ने उसके बाहर जाने के लिए बनवायी थी और पहन कर शीशेके सामने खड़ी हो गयी. उसने अपने बाल भी थोड़े-थोड़े बाबा वाली टीचर की तरह काढ़ने की कोशिश की, पर कुछ बात नहीं बन पा रही थी, इसलिए खुले ही छोड़ दिये. जो कि उसके ऊपर अच्छे लग रहे थे. और बड़ी मम्मी को वहीं से आवाज लगायी और कहा—मैं स्कूल बाबा को लेने जा रही हूं, उसे डर था कि बड़ी मम्मी कहीं उसे रोक न दें. इसलिए जल्दी से बाहर भाग गयी.

बाहर आ कर उसने देखा कि दोनों लड़के वहीं जमे हुए हैं. वह तीर-सी स्कूल की तरफ चल दी. दोनों लड़के बिल्डिंग के ही नौकर थे. उनमें से एक, जो थोड़ा तेज था, वह अमेरिकन कपल के घर में काम करता था. वह दस बजे के बाद फ्री हो जाता था क्योंकि उसके साहब और मेमसाहब दोनों काम पर चले जाते थे. दूसरा निठल्ला था वह हमेशा काम न करने के बहाने नीचे घूमा करता था. अन्नी को देखते ही दोनों उसके पीछे लग गये. और स्कूल तक पहुंच गये थे. अन्नी को डर भी लग रहा था और सुख भी हो रहा था. वह मन में सोच रही थी कि उसकी ड्रैस जरूर अच्छी लग रही होगी इसलिए यह दोनों उसके पीछे आ रहे हैं.

स्कूल की छुट्टी में अभी देर थी, उसे गेट पर से ही एक चपरासी ने रोक दिया था. उसने यह नहीं सोचा था, वह तो सीधे बाबा के क्लास तक जाना चाहती थी. और उसकी टीचर को अपनी ड्रैस दिखाना चाहती थी. पर मजबूरी में वह वहीं स्कूल की सीढ़ियों पर बैठ गयी थी. उसने देखा, लड़के दूर पर खड़े-खड़े उसे घूर रहे हैं. वह भी उनको कभी-कभी देख लेती थी.

★ ★

छुट्टी होते ही बाबा को ले कर सीधी घर चली आयी थी. और जल्दी-जल्दी बाबा की स्कूल ड्रैस उतारने लगी थी. बाबा बराबर उसको स्कूल की बातें बता

रहा था---अन्नी पहले तो मुझे तुम्हारी बहुत याद आयी. मैं रोने लगा. अन्नी को इस बात से बहुत तसल्ली हुई, उसने कहा---तू चला क्यों नहीं आया? मैं कैसे आता, टीचर जी हैं न, उसने मुझको गोदी में उठा लिया और मुझको टाफी दी, मैंने वह टाफी तेरे लिए रख ली है. और जेब से टाफी निकाल कर अन्नी के मुंह में दे दी. फिर अन्नी को अच्छा नहीं लगा, उसे जिस बात का डर था वही हुआ. उसको लगा कि कुछ दिनों में बाबा को अपनी टीचर अच्छी लगने लगेगी. फिर वह कहां जायेगी, उसी समय उसको वह दोनों लड़के याद आने लगे, जो उसे बाहर मिले थे. फिर भी वह बाबा के काम रोज की तरह करने लगी.

बाबा का स्कूल का और उन लड़कों का सिलसिला ऐसा बंधा कि धीरे-धीरे अन्नी का मोह बाबा की तरफ से हट कर उस तेज वाले लड़के की तरफ हो गया.

कभी-कभी तो वह बाबा को घर में छोड़ कर सीधे नीचे आ जाती थी और उन लड़कों को खोजने लगती थी.

अब दोनों में तेज वाले लड़के ने अन्नी की कमजोरी पकड़ ली थी. वह कभी-कभी अन्नी से अकेले में भी मिलने लगा था. और अन्नी भी न जाने कितने-कितने बहाने करके बाहर भाग आती थी. बड़ी मम्मी ने उसको कई बार रोका भी---अन्नी, तू पहले की तरह बाबा को अपने पास नहीं रखती है. . .इसका उसने एक ही उत्तर सीख लिया था---मम्मी, अब तो वह थोड़ा बड़ा हो गया है, वह अपने आप सब कुछ कर लेता है. बड़ी मम्मी को ज्यादा डांटने की आदत नहीं थी. वह यही सोच लेतीं कि--बच्ची है, कुछ तो मन का करेगी. इसी तरह मीरा ने भी उसको टोका था पर अन्नी उसके सामने पड़ती ही नहीं थी.

एक बार बड़ी मम्मी से किसी पड़ोसिन ने ही कहा, जिनके पास उनका बैठना-उठना होता था, 'कि अन्नी आपकी एक लड़के से लगी हुई है, कभी इधर-उधर पांव पड़ गया तो आपकी बड़ी मुसीबत हो आयेगी. सुनते ही बड़ी मम्मी के दोनों कान गर्म हो गये, और गुस्से से मुंह लाल हो गया. बोलीं---कौन कहता है? पड़ोसिन ने कहा---हमारा नौकर तो बाहर आता-जाता रहता है. उसीने बताया है, मैंने तो आपसे इसलिए कह दिया कि वह लड़की है उसको संभालना भी आपको ही है.

बड़ी मम्मी का वहां मन नहीं लगा---सीधे घर चली आयीं और अन्नी को घर में ढूंढ़ने लगीं. अन्नी उस समय घर पर नहीं थी. उन्होंने तुरंत अपनी दूसरी वाली आया को अन्नी को बाहर ढूंढ़ने के लिए भेजा.

अन्नी तीसरे माले की सीढ़ियों पर बैठी अमरीकन के नौकर के साथ कमर में हाथ डाल कर कुछ बातें कर रही थी. उसने जब आया को उसकी तरफ आते हुए देखा तो उठ कर घर की तरफ चल दी. घर में घुसते ही सबसे पहले सोफे पर बैठी बड़ी मम्मी मिलीं, उनका मुंह लाल देख कर वह एक कोने में दुबक गयी. दूसरी वाली आया ने उन्हें पूरी सूचना दी. बड़ी मम्मी से गुस्से के कारण ठीक से बोला नहीं जा रहा था. उन्होंने यही कहा---अन्नी, तुमको यह क्या हो गया है?

पहले तो अन्नी उनको गौर से देखती रही फिर बिलकुल ऐसे बोली, जैसे कुछ हुआ ही नहीं---मम्मी, गुस्सा क्यों होती हो. पहले बाबा मुझको प्यार करता था तब तो तुम कभी गुस्सा नहीं हुईं अब वह नौकर प्यार करता है तो तुम . . . और नरमाई आंखों से बड़ी मम्मी को देखने लगी.

बड़ी मम्मी को लगा कि उसको अपने सीने से लगा लें. पर उनकी हिम्मत नहीं हुई. चुपचाप जा कर बिस्तर पर लेट कर सोचने लगीं. □□□

एक ग़ज़ल

● महेश अनघ

हम खोज रहे हैं उसे जो आस-पास है,
ये जिंदगी अपने लिए घर की तलाश है.

जो भी मिला वो एक टुकड़ा उम्र ले गया,
जुड़ता नहीं किसी से भी ये मन उदास है.

जितने भी उजले ख्वाब थे वे रात बन गये,
फिर भी न जाने कौन सी सुबह की आस है.

पूजा के वक्त देवता पत्थर बना रहा,
वैसे तो जर्रे-जर्रे में उसका निवास है.

स्केऔंगा

राकेश वत्स

रातरानी की खुशबू हवा में घुली है. थोड़ी-थोड़ी नमी भी है. साफ है कि बरसात अपना बचपन छोड़ने की तैयारी कर रही है.

एक दस-बारह साल का मोहक शक्ल वाला लड़का ब्रश माथे पर लगा कर सलाम करता है और पूछता है——साब पालिश?

मैं उसको मना करने से पहले आसमान की ओर ताकता हूं. लड़का समझ जाता है और मुझे भी समझाने की कोशि करता है——ये साब, बरसने वाले बादल नहीं हैं. इस वक्त की पालिश कल दिनभर भी आपके जूतों का साथ देगी, लाइये दो मिनट में कर देता हूं.

लड़के के बात करने के ढंग से मैं प्रभावित होता हूं. लेकिन बियर बार का जलता-बुझता लाल अक्षरों नाम मुझे अपनी ओर खींच लेता है. मैं लड़के की तरफ बीस पैसे का सिक्का बढ़ाता हूं——पालिश, फिर कभी सही. लड़का ले लेता है और बिना कोई जबाव दिये खिसक जाता है.

बार के अंदर ही हल्की-हल्की-सी चकाचौंध और दबे-से शोर में जब तक पूरा नशा नहीं हो जाता, तब तक मैं एक ही सवाल से लड़ता रहता हूं——लड़के ने जाते वक्त मुझे सलाम क्यों नहीं किया? नशा बहुत तेज हो जाता है तो मैं अपने हाल ही में बने दोस्त मिस्टर चावला की कोठी पर सो रहा होता हूं. चावला एक पैसे वाला आदमी है और मैं इनकमटैक्स आफिसर का अभिन्न मित्र हूं. बीसवी सदी की दोस्ती के लिए बस इतना-सा आधार काफी है.

सुबह आंख खुलती है तो लड़का ट्रे में चाय का कप रखे मुझे जगाता है. कप मेरे हाथ में थमा कर चला जाता है, लेकिन एक क्षण बाद ही वापस लौट आता है और बीस पैसे का सिक्का टेबल पर रख कर बोलता है—— ये आपके पैसे! और बिना मेरी ओर देखे तेजी से मुड़ जाता है.

मैं उसे 'जरा रुको' कह कर रोकता हूं.

——जी? वह मेरे सामने खड़ा होकर उंगलियों के नाखून कुतरने लगता है.

——एक पैकेट सिगरेट तो मंगवा देना, मैं जेब से पैसे निकाल कर उसे पकड़ाना चाहता हूं.

——रहने दीजिये, सिगरेट आपके पास अभी पहुचती है, बोल कर वह कुदाली-सी मार कर बाहर निकल जाता है, पर दहलीज को पार करते ही मिस्टर चावला से टकरा जाता है. चावला उसकी धकेल से गिरते-गिरते संभलता है और एक बार लड़के की सहमी आंखों में कड़वी नजरों से देख कर अपना कीमती नाईट गाऊन झाड़ता है. इसके बाद वह कुर्सी पर आ बैठता है और मुस्करा कर पूछता है——कहो, नींद अच्छी आयी भी?

मैं नींद के सवाल का जवाब देकर लड़के की बाबत पूछता हूं. पता चलता है कि वह चावला साहब का छोटा भाई है. नाम है समीर, प्यार से लोग उसे सोमू कहते हैं. स्वर्गवासी मां-बाप के प्यार ने उसे बिलकुल बिगाड़ कर रख दिया है. अक्सर स्कूल से भाग जाता है. पूछो तो जवाब देता है, पढ़ने-लिखने से क्या लाभ?. . . . जब बी. ए.,-एम. ए. पास भी रिक्शा चलाते हैं तो वह तो बिना पढ़े-लिखे भी आराम से चलाई जा सकती है! छोटे किस्म के लोगों के साथ घूमना ज्यादा पसंद करता है. वह जह चावला जैसे इज्जतदार आदमी के खानदान पर एक बदनुमा धब्बा है और यह धब्बा दिन-ब-दिन फैलता चला जा रहा है आदि-आदि.

मैं लड़के के साथ हुई रात की मुलाकात को दबा जाता हूं और पूरे आठ साल तक दबाए रखता हूं. आज के इस दिन तक भी जब कि हम दोनों दोस्त एक-दूसरे को लंगोटिया कहते हैं, दो-चार छोटे-छोटे बिजनेस भी हमारे साझे हैं, चावला जैसा धनवान हो जाना मेरी मंजिल है और चावला को मेरी जरूरत. कभी किसी बात पर अनबन भी हो जाती है तो हम दोनों इनकम टैक्स आफिसर की सलाह से फैसला कर लेते हैं. अब वे हमारे दोनों के अभिन्न मित्र हैं.

चावला का इस बीच बहुत विकास हुआ है. आज उसके पास कार तथा कोठी है और शोहरत भी. लेकिन आज भी वह छोटे भाई सोमू को अपने खानदान के उज्ज्वल इतिहास पर एक कलंक-सा मानता है. इस कलंक के बारे में वह चिंतित भी दिखाई देता है. कभी-कभी नशे में तो यहां तक बक देता है, 'शायद यह लड़का मेरी मां के किसी गुप्त अपराध का परिणाम है!' और ऐसा बक कर वह नीट पीना शुरू कर देता है.

आज फिर बारिश आने के आसार हैं. देसी गुलाबों की खुशबू हवा में घुली हुई है. मैं और मेरा दोस्त रोज गार्डन के किनारे लगी कार में बैठे बियर पी रहे हैं. पता नहीं कहां से बेमतलब की एक बहस हमारे बीच आकर बैठ गयी है. दोस्त का विश्वास है कि चाहे व्यवस्था कोई भी हो, चाहे भगवान ही सीधा दुनिया का शासन क्यों न सम्हाल ले, छोटे आदमी की नियति छोटापन ही रहेगी. उसे कोई बदल नहीं सकता. बदल जाने की क्षमता, जिस वर्ग को सर्वहारा कहा जाता है, उसमें होती ही नहीं.

मैं दोस्त के इन विचारों को एक ढकोलसा करार देता हूं. सुरक्षित लोगों के दिमागों में पैदा हुआ शोषण का पुराना हथकंडा कहता हूं. दिशा बदल कर बहस इस दर व्यक्तिगत स्तर पर उतर आती है कि उदाहरण भी व्यक्तिगत ही पेश होने लगते हैं. मैं परोक्षतः मिस्टर चावला को बुर्जुआ और उसके छोटे भाई को सर्वहारा सिद्ध करने की कोशिश करता हूं. वह मुझे पेटी-बुर्जुआ कहकर दोगलेपन का मुझ पर आरोप लगाता है. बढ़ते-बढ़ते बात यहां तक बढ़ जाती है कि चावला गुस्से में आकर बियर की बोतल सड़क पर पटक कर तोड़ देता है और कार स्टार्ट कर के घर की ओर चल देता है.

पूरा रास्ता इंजन चलने की आवाज के सिवा दूसरा कुछ भी सुनाई नहीं देता. कार घर के सामने आकर रुकती है तो तेज हार्न के लगातार बजने की आवाज से सारा मुहल्ला चौंक उठता है. एक चीखती-सी आवाज के साथ गैरेज का शटर खुलता है, कार के अंदर पहुंचते ही वह बंद भी हो जाता है.

अपने सोने के कमरे में पहुंच कर देखता हूं तो बिस्तर हमेशा की तरह बड़े ही साफ-सुथरे ढंग से बिछाया हुआ मिलता है. घर का इस तरह का सारा काम छोटा ही करता है और प्रायः बाजार से छोटी-मोटी चीजें लाने का काम भी वही सम्हालता है. न जानने वाला आदमी सोच भी नहीं सकता कि वह चावला साहब का भाई है. देखते ही पहला खयाल यही आता है कि घर का नौकर है.

गैरेज की बत्ती बंद करके छोटा खाना गर्म करता है और टेबल पर लगा कर मुझे आवाज देता है. मेरे टेबल पर पहुंचने से पहले ही चावला भी चुपचाप आकर बैठ जाता है. यहां भी मुंह में ग्रास चबाने की चप-चप के सिवा दूसरा कुछ भी सुनाई नहीं देता. कभी-कभी चम्मच किसी कटोरी या प्लेट के साथ टकरा जाता है तो लगता है कि बहस मेरे और चावला के बीच अभी भी मंडरा रही है.

खाना खत्म होता है तो छोटा हाथ पोंछने के लिए दोनों को तौलिये देता है. हाथ पोंछ कर मैं अपने कमरे में चला जाता हूं और चावला अपने कमरे में. बाद में छोटा किचन में जाकर खाना खाता है और सारे बर्तन एक जगह इकट्ठे करके, जीने के पास ही, बरामदे में बिछे तख्तपोश पर लेट जाता है.

कुछ देर बाद ही हमारे मकान की बत्तियां बुझने लगती हैं, मिसेज चावला किचन को ताला लगा कर चाभिया छनकाती हुई चावला के कमरे की ओर चली जाती हैं. इधर मुझे नींद ही नहीं आती. बरसाती हवाएं बार-बार खिड़की का पर्दा उठा जाती हैं. रात के काले सन्नाटे में मुझे, तख्तपोश पर छोटे के मुंह से लगी बीड़ी का लाल अंगारा बड़ा डरावना-सा लगता है.

* *

सुबह इस लाल अंगारे की समस्या का ही हल ढूंढ़ा जाना है. मुझे पता है, वास्तव में इस समस्या के हल के लिए ही फोन करके मुझे बुलाया गया है. छोटे ने पहली बार पैत्रिक संपत्ति का बंटवारा करने की बात उठाई है और वह इस बात के लिए कटिबद्ध है.

छोटा मेरी बात आसानी से मान जाता है, यह सब को पता है. वह मेरे से जरा दबता है, यह मुझे भी पता है. छोटे की कुछ ऐसी कमजोरियां मैं जानता हूं, जिन्हें शायद चावला नहीं जानता. जानता होता तो आज छोटा इस घर में न होता. छोटा भी इस बात को जानता है, इसलिए चोर-उचक्का साबित होने से वह डरता है. कभी-कभी अकेले में मुझे आगाह भी कर देता है—बंधु, यह सब कुछ बीरजी को न बताना, बीरजी उसका अर्थ कुछ और भी निकालेंगे, पैसे वाले लोगों की समझ कुछ और ही ढंग की होती है, वे भूख और गरीबी की रोशनी में किसी घटना को देखते ही नहीं.

मेरा भी उस घटना या दुर्घटना से अचानक ही सामना हो गया था. उस दिन मैं बस से उतर कर स्कूटर का

इंतजार कर रहा था कि अचानक मेरी नजर छोटे पर जा पड़ी थी. एक मामूली-से ढाबे के सामने लोग उसे घेरे खड़े थे. उस पर आरोप था कि लगभग एक महीना पहले जेब में पैसे न होने पर भी उसने ढाबे में खाना खाया, जब पैसे वसूल करने के लिए ढाबे के मालिक ने, ढाबे के पिछवाड़े इससे बर्तन साफ करवाने शुरू किये तो मौका पाते ही एक बड़ा-सा पतीला लेकर खिसक गया और उसे कबाड़ी की दुकान पर बेचकर चंपत हो गया.

ढाबे का मालिक छोटे को पुलिस के हवाले करना चाहता था, लेकिन मेरी रुचि उसमें देख, उसने ऐसा नहीं किया. ढाबेवाला भी जानता था कि मैं इनकम टैक्स आफिसर का दोस्त हूं. अपनी पेशियां भुगतते हुए उसने कई बार मुझे उसके पास बैठे देखा था. जाते-जाते उसने मुझे अलग बुला कर कह भी दिया था, 'जनाब जरा साब से सिफारिश कर देना, क्यों मुझे परेशान कर रहे हैं? आप देख ही रहे हैं, मैं एक गरीब आदमी हूं.'

बाद में छोटे ने मुझे बताया था कि लेट घर पहुंचने की वजह से भाई साहब ने भाभीजी को खाना देने से मना कर दिया था. उसका खयाल था कि उसकी जेब में पैसे हैं, लेकिन खाना खा लेने के बाद उसे याद आया था कि पैसे तो वह रिक्शा के मालिक को बकाया किराए के दे आया है. उस समय उसने यह स्वीकार करने में भी आनाकानी नहीं की थी कि कभी-कभी वह शहर से दूर, माडल टाऊन में रिक्शा चलाकर अपनी ऊपर की जरूरतें पूरी करता है. जरूरत की बात पर उसने अपना दर्द भी रोया था कि अपनी जरूरतें इसी तरह खून-पसीना बहा कर तब तक पूरी करनी पड़ेगी, जब तक दुनिया में सही सुबह नहीं हो जाती और आदमी के हकों का बंटवारा नहीं हो जाता. उसी दिन मैंने भी छोटे को अपने शोषकों और शोषितों के बारे में विचार बताये थे. विचार सुनकर वह मुग्ध हो गया था कि मैं कामरेड हूं. उसी दिन से मुझे उसने बंधु कहना शुरू कर दिया था.

बहरहाल इस वक्त अपने मुलायम पलंग पर लेटा मैं भी छोटे की तरह सुबह का इंतजार कर रहा हूं. मुझे लग रहा है कि जैसे यह सारी समस्या छोटे की नहीं, मेरी भी है. मैं अपने आपको समझा रहा हूं कि मुझे छोटे का पक्ष ले लेना चाहिए और कोई ऐसा रास्ता निकालना चाहिये जिससे छोटा अपने पैरों पर खड़ा हो जाए, बड़े भाई का मोहताज न रहे. छोटे का सारा अतीत और सारा भविष्य मेरी आंखों के सामने घूम रहा है, मैं उससे बचने के लिए सोने की कोशिश कर रहा हूं.

आंख लगे अभी थोड़ी ही देर होती है कि मुझे लगता है जैसे कोई दरवाजा थपथपा रहा है. समझता हूं, पड़ोस का कोई आवारा लड़का सिनेमा देख कर लौटा होगा. उस तरफ से ध्यान हटाकर सोने की फिर कोशिश करता हूं लेकिन मेरा खयाल गलत निकलता है. वास्तव में दरवाजा इसी घर का पीटा जा रहा था. पहले छोटा चावला के सोने के कमरे का दरवाजा पीट रहा था, जिसके खुलते ही एक भयंकर समस्या खड़ी हो गयी थी, और अब चावला मेरे कमरे का दरवाजा पीट-पीट कर मुझे जगाने की कोशिश कर रहा है.

मैंने अपने कमरे का दरवाजा खोला तो चावला के कमरे में से छोटे का बोलना सुनाई देने लगा— तुम लोग मुझे इस तरह नहीं दबा सकते, सिर फोड़ दूंगा या फुड़वा लूंगा. मैं कुत्ते की तरह मारा-मारा फिरूं और तुम लोग ऐश करो! अब यह नहीं चल सकता. पुलिस को बुलाने की धमकी देते हो तो बुलाओ. पुलिस क्या साली मुझे खा जाएगी? वह अंधी है कि नहीं देखेगी? मेरा हक मार-मार कर कारें खरीदी गयी हैं, बिल्डिगें बनाई गयी हैं. बुलाओ पुलिस को! पुलिस को भी देख लूंगा और तुम्हें भी!

चावला मुझे पकड़ कर स्टोर रूम की तरफ ले गया. वहां खड़े होकर पहले उसने सामने की हवेली की ऊपर की मंजिल पर निगाह दौड़ाई. मंजिल की खिड़कियां खुली थीं और उनमें से अंधेरे के कारण कुछ भूत से लग रहे चेहरे झांक रहे थे. चावला ने उनकी तरफ पीठ कर ली और मुझ से धीरे-से पूछा — बहुत ज्यादा पिये हुए है, कहो तो पुलिस को फोन किया जाए!

—अभी ठहरो! कहकर मैं छोटे के पास पहुंचा. मिसेज चावला बीच के कमरे में खड़ी कांप रही थीं. दोनों बच्चे मम्मी की टांगो के साथ चिपके टुकर-टुकर ताक रहे थे. छोटा अंदर चावला के मसहरी लगे गुदगुदे बिस्तर पर पसरा था और पूरे कमरे में ठर्रई बदबू प्रेत की तरह मंडरा रही थी.

मुझे देखते ही वह उठ बैठा और बोला — जी नहीं, मैं दारू नहीं पीता. आज मन बहुत दुःखी था, बहुत कलप रहा था, बर्दाश्त नहीं हुआ तो थोड़ी-सी पी ली. देखो तुम बीच में न पड़ना, बंधु! मेरा हक है, मुझे अपने हक के लिए लड़ने दो. तुम अगर दलाल का काम करोगे तो मुझसे बुरा कोई न होगा, मैं कहे देता हूं.

मैंने प्यार से उसका बाजू पकड़ कर उसे खड़ा किया. छाती से लगाकर उसका माथा चूमा. फिर दाढ़ी को हाथ लगाकर कहा— चलो, चलकर तुम मेरे बिस्तर पर सो जाओ, तुम्हारे हक की बात कल सुबह होगी, सोफी हालत में!

उसने धक्का देकर मुझे पीछे धकेल दिया और चीखा—देखा बन गये न दलाल! ज्यादा से ज्यादा तुम क्या कर सकते हो? हां-हां क्या कर सकते हो? यही साबित करोगे न कि मैं चोर हूं, उचक्का हूं? हां मैं चोर हूं, उचक्का हूं. लेकिन सब कुछ अपने हक के लिए हूं. मेरा हक है इसलिए मैं यहीं सोऊंगा. तुम में ताकत हो तो उठाओ. उठाओ!! वह फिर बिलकुल सीधा पलंग पर पसर गया और जेब से शीशी निकाल कर लेटे ही लेटे दारू डकारने लगा.

उस वक्त पलंग पर पसरा वह पूरा दानव लग रहा था. आठ साल पहले की, उसके चेहरे की मोहकता बिलकुल खत्म हो चुकी थी. उसकी घंसी हुई आंखें और पिचके हुए गाल किसी नरकंकाल के सिर की तरह डरा रहे थे. टांगों पर से पायजामा उठ जाने से पिंडलियों

की मांसरहित मोटी-मोटी हड्डियां साफ दिखाई दे रही थीं. और वह रह-रह कर बेबसी में हिचक रहा था.

बाहर आकर मैंने चावला को समझाया. मिसेज चावला और बच्चों को सोने के लिए अपने कमरे में भेजा. इसके बाद रात के पूरे दो बजे मैं और चावला मिसेज चावला के कमरे में बैठकर समस्या का हल ढूंढ़ने लगे.

अंदर से अब भी छोटे का बहकना सुनाई दे रहा था. लेकिन हम अपने काम में मस्त थे. काम के साथ-साथ ड्रामा चल रहा हो जैसे— साले समझते हैं दूसरों को बरबाद करके खुशी की जिंदगी जी लेंगे. मजदूर जाग उठा है तो वह हक के लिए क्यों नहीं लड़ेगा? मजदूर कुत्ता नहीं है कि सूखी हुई दो रोटियां पाकर सारी जिंदगी दुम हिला-हिला कर गुजार देगा. कहां गया त्रिपड़ीबाली जमीन का पैसा? कहां गयी अदालत वाली गली की हवेली की रकम? हरामजादे सब बेच के हड़प कर गये. हड्डियां चबा जाऊंगा, हड्डियां. मजदूर जाग उठा है तो अपने हक के लिए लड़ेगा. हक नहीं मिलेगा तो मार देगा या मर मिटेगा.

सहसा अंदर से आवाजें आनी बंद हो गयीं. आवाज की जगह अब सुनाई देने लगे गहरी नींद में सो जाने के बाद के खुर्राटे. हम दोनों ने इस शोर-शराबे के बीच समस्या का जो हल निकाला , उससे पूरी तरह सहमत हो कर अंदर गये और बेखबर छोटे को उठा कर बाहर तख्तपोश पर ले आए —एक बार सो कर अब यह सुबह ही उठेगा, चावला बड़बडाया. चावला की आवाज सुनकर मिसेज चावला बाहर निकलीं और मेरे पास आकर जैसे पति अपने से छुपाकर मुझे बताने लगीं— देखिये, आप शायद नहीं जानते, सारे झगड़े की जड़ है रिक्शा, छोटे को सिर्फ नयी रिक्शा चाहिये.

—हां, अंकल रिक्शा में बिठाकर हमें रामलीला दिखाने ले जाया करेंगे. बड़े लड़के ने भी हामी भरी.

फिर चावला के निकट आते ही मिसेज चावला बच्चों को साथ लेकर अपने कमरे में चली गयीं. चावला साहब भी मेरी पीठ थपथपाकर अपने कमरे में चले गये. जाते-जाते वे मुझसे कह गये — जरा बाहर का खयाल रखना, दरवाजे बंद करके न सोना जबकि अंदर जाते ही उन्होंने अपने दरवाजे अच्छी तरह से बंद कर लिये थे.

* *

चावला के दरवाजे बंद होते ही सामने की खिड़कियां भी एक-एक करके बंद होने लगीं. भुतहे चेहरे अब पूरे शरीरों के साथ जलते हुए शीशों के अंदर हाथ नचा-नचा कर नाच रहे थे. मैंने सिगरेट सुलगायी और छोटे के तख्तपोश पर बैठकर नाच को देखने लगा. बत्तियां बुझ गयीं तो नाच भी बंद हो गया और मैं उठकर अपने बिस्तर पर चला आया.लगा जैसे नींद अब नहीं ही आएगी. थोड़ी देर करवटें बदलने के बाद खयाल आया, छोटे की शीशी में अगर थोड़ी-सी बची पड़ी हो तो क्यों न उसे चुपके से मारा जाए, सुबह छोटा जो पूछेगा सो देखा जाएगा, सुसरी नींद तो ठीक ढंग से आ जाएगी.

सुबह छोटा हमेशा की तरह ट्रे में चाय का कप लेकर आया तो वह हल्का-हल्का मुस्करा रहा था. चाय लेकर मैंने उसे पास ही बिठा लिया. रात के कारनामे के लिए उसे शबाशी दी और पूछा — अब तुम्हारा क्या प्रोग्राम है?

मेरा सीधा सवाल सुनकर पहले वह थोड़ा हिचका, फिर बोला—बंधु, मेरा हक बस मुझे दिला दो, कौन आदमी क्या करता है, कैसी जिंदगी जीता है, हमें इससे कोई मतलब नहीं.

—हक कैसा?

वह थोड़ा चौंका— हक कैसा होता है?

—मेरा मतलब है जमीन-जायदाद, रुपया—पैसा, कपड़े-गहने, इनमें से क्या?

—यही कि मां-बाप की जायदाद, इन्होंने जो दस साल पहले बेची थी, उसमें से मेरा हिस्सा मुझे मिल जाना चाहिये.

—ठीक है, कहकर मैं अंदर गया और अपने साथ चावला को लेकर लौट आया. चावला ने पहले से ही सारा हिसाब बना रखा था. पूंजीपति भविष्य के खतरों के प्रति सचेत होता है. मांग सुनते ही अंदर से वह बही उठा लाया. पता चला कि जमीन और मकान के पूरे पंद्रह हजार मिले थे. छोटे के हिस्से आए साढ़े सात हजार. साढ़े छः हजार छोटा थोड़े-थोड़े करके अबतक ले चुका है. चावला ने बीड़ियों के लिए लियेगये दस पैसे से लेकर वैष्णोदेवी जाने के लिए दिये गये पचास रुपये तक की पूरी एक फहरिस्त छोटे के हाथ में थमा दी.

छोटा फहरिस्त को उलट-पलट कर देखता रहा. फिर मेरी तरफ देखकर बोला—नतीजा क्या निकला?

उसके सवाल का जबाव दिया चावला ने —नतीजा यह निकला मेरे भाई कि अब तक इस घर में रहकर जो तुम खाते-पीते रहे हो, उसको मिला कर पूरा पांच हजार तुम्हारी तरफ निकलता है.

छोटा तड़पा —है न सरासर बेईमानी? घर में रहकर जो नौकरों की तरह काम करता रहा हूं, उसका कोई हिसाब ही नहीं?

मुझे समझने में देर नहीं लगी कि चावला इस वक्त जो कुछ है, उस पंद्रह हजार रुपये की ही बदौलत. पंद्रह हजार दिखा कर ही वह बैंक से लोन लेकर इतना बड़ा बिजनेस खड़ा कर सका. कायदे से छोटे को सारी कमाई का आधा मिलना चाहिये था. लेकिन मुझे सिर्फ चावला से मतलब था, इसलिए मैंने बात सम्भाली —देखो भाई, हिसाब तो तुमने सुन लिया, अब बताओ कि तुम्हें पैसा किस बात के लिए चाहिये?

—मैंने रिक्शा खरीदनी है, गुस्से में छोटे की गर्दन की नसें फूल गयी .

छोटे की मांग की सीमा देख, चावला के मुखमंडल पर रौनक उभर आयी. वह गदगद होकर बोला— यह हुई न अपनेपन की बात. यूं कहो कि काम करना है. मिस्टर सुरेश, पूछो कि आजकल रिक्शा कितने की आती है?

छोटे ने मेरे पूछने से पहले ही बता दिया —नौ सौ रुपये की.

आज मैं फ़ाइनल इन्टरव्यू दूं तो कैसे ! सर बुरी तरह दुख रहा है ।
मेरी मानो तो एनासिन ले लो ।

जल्द आराम पाने के लिए तेज़ असर और विश्वसनीय एनासिन लीजिए

तेज़ असर–एनासिन में वह दर्द-निवारक दवा ज़्यादा है, जिस की दुनिया-भर के डॉक्टर सिफ़ारिश करते हैं। इसी लिए एनासिन दर्द से जल्द आराम दिलाती है।

विश्वसनीय–एनासिन आपके डॉक्टर की दवाई की तरह दवाओं का नपा-तुला सम्मिश्रण है। इसी लिए एनासिन पर लाखों लोगों को पूरा भरोसा है।

एनासिन बदन के दर्द, दाँत के दर्द, सर्दी-ज़ुकाम और फ़्लू की पीड़ा से भी जल्द आराम दिलाती है।

तेज असर और विश्वसनीय
एनासिन

भारत की सब से लोकप्रिय दर्द-निवारक दवा

A/2/8-76 Regd. User of TM: Geoffrey Manners & Co. Ltd.

चावला ने सौ-सौ के दस नोट निकाल कर उसके सामने बिछा दिये. छोटे की आंखों में चमक आ गयी. वह जोश में आकर मस्ताया—ठीक है, बस मुझे नयी रिक्शा दिला दीजिये, बाकी न मैंने आपसे कुछ लेना न आपको देना, आप अपना खुद समझें.

—लेकिन यह बात लिखकर देनी पड़ेगी साथी? मैंने छोटे को टटोला.

—जब मैं वह कह रहा हूं तो लिख देंगे.

सुनते ही चावला लपक कर अंदर चला गया और टाइप किया हुआ एक छोटा-सा कागज लेकर लौट आया. आते ही उसने कागज मुझे थमा दिया —इस पर दस्तखत होने चाहिये.

मैंने कागज छोटे के हाथ में थमा दिया. उसने कागज उलट-पलट कर देखा. अदालती भाषा समझ नहीं आयी तो बोला — तुम ही बता दो बंधु, क्या लिखा है?

कागज लेकर मैंने सारांश में बता दिया कि यही लिखा है कि हिसाब करके मैंने अपने बड़े भाई चावला से अपने हक के सारे रुपये बसूल पाए, अब मुझे कुछ भी लेना-देना नहीं है.

—यह तो ठीक लिखा है, कहकर छोटे ने झट से दस्तखत कर दिये. मैंने दो सौ रुपये और दिला दिये. छोटा कृतज्ञता से भर उठा और जेब में रुपये डालता हुआ इस बात के लिए भी वचनबद्ध हो गया कि इस कोठी में वह दुबारा कदम नहीं रखेगा.

उधर टेबल पर नाश्ता लगने की सूचना मिसेज चावला ने छोटी बच्ची के हाथ भिजवा दी थी. लेकिन छोटे ने नाश्ता करने से भी इनकार कर दिया. 'जब इस घर पर हमारा कोई हक ही नहीं तो फिर नाश्ता कैसा?' बोल कर वह खड़ा हो गया और भरी-भरी-सी आंखों से बड़े भाई तथा बड़े भाई के बीवी-बच्चों को देखता हुआ कोठी से बाहर हो गया. मिसेज चावला अपने दोनों बच्चों के साथ खिड़की में से उसे जाता देख रही थीं. मुझे लगा जैसे एक अत्याचार उन पर भी हुआ है, क्योंकि औरत और बच्चों का कोई वर्ग नहीं होता, कोई जात नहीं होती, मर्द जो कुछ बोला है, वह उसे करना ही पड़ता है. मेरे मुंह से निकल गया — इस समझौते पर छोटे का टिके रहना मुझे मुश्किल लगता है.

सचमुच कुछ दिन बाद ही जब कि मैं चावला की नयी कार में बैठा वियर-बार की तरफ जा रहा था कि गली के मोड़ पर छोटे की रिक्शा अचानक गाड़ी के सामने आकर अड़ गयी. बड़े भाई ने हार्न बजा-बजा कर छोटे को हट जाने के लिए चुनौती दी, लेकिन छोटा गर्दन अकड़ा कर, पागलों की तरह मुस्कराता रहा. सहसा पास से एक सिपाही भागकर आया और गाड़ी को सैल्यूट मारकर छोटे पर पिल पड़ा. विवश हो कर छोटे ने कुत्ते के अंगड़ाई लेने की तरह शरीर तानकर कार के मडगार्ड में उलझी रिक्शा बाहर खींची और गली का मोड़ काटकर, कड़वी आंखों से हमें देखता हुआ आंखों से ओझल हो गया. □□□

सरस्वती कालेज, अंबाला छावनी, हरियाणा

चम्मचभर चीनी

• राही मासूम रज़ा

पता नहीं रात खत्म हुई थी या नहीं. पता इसलिए नहीं कि आंखें बंद हों तो रात और दिन में फर्क करना मुशकिल हो जाता है. और वह लगभग बारह -चौदह साल से आंखें बंद किये जी रहा था —या शायद मर रहा था.

मैंने उससे कई बार कहा भी कि आंखें बंद करने से वास्तविकता नहीं बदलती पर उसने हर बार यही जवाब दिया कि—यार यह आंखें खोलने का युग ही नहीं है,किसी ने सूरज के सातों घोड़ों को समय के रथ के पीछे जोत दिया है. और वर्तमान से भविष्य की तरफ जाने वाला रास्ता जैसे बंद हो गया है. सूरज के घोड़े समय को अतीत की तरफ खींचे लिये जा रहे हैं. समय सूरज के उलटे जुते हुए घोड़ों से कमजोर है. तो इस चक्कर में कौन पड़े—जब मैं जानता हूं कि मैं अकेला धारे की दिशा नहीं बदल सकता तो आंखें खोल के अपने डूबने और हारने का तमाशा क्यों देखूं—

उसकी यह बात एक तरह से दिल को लगती भी है. इसीलिए हमेशा की तरह मैं फिर चुप हो गया. पर मुझे लगा कि वह अपनी बंद आंखों से मेरी तरफ देख रहा है. और उसके मुर्दा होंठों पर बहुत दूर से चल के आयी हुई, थकी-मांदी-सी एक मुस्कराहट है.

बोला — मेरी चाय में शकर जरा ज्यादा डालना.

मैंने पूछा — क्यों? शकर यूं ही बहुत मंहगी है—शकर खाने से दिल की बीमारियां भी हो जाती हैं.

वह हंस पड़ा. फिर बोला — दिल? जाना जाता है कि इस राह से लशकर गुजरा. दिल है कहां यार यह नगर सौ मरतबा लूटा गया . . .

मैंने जल कर कहा—जिंदगी गजल के बाहर भी है.

वह बोला—हां. पर जिंदगी गजल के अंदर भी है—एक चम्मच चीनी तो और डालो यार.

मैं झल्ला गया—कहा न कि शकर मंहगी हो गयी है.

उसने पूछा—अच्छा यह बताओ कि पिछले सत्ताईस-अट्ठाईस बरसों में मेरे सिवा सस्ती क्या चीज हुई है?

यह सवाल सुन कर मैं कांप गया.

उसके सवाल के प्याले में जो जहर था उसे देख कर तो शायद शिवजी भी घबरा कर दो कदम पीछे हट जाते.

देवताओं ने समुंदर को मथा,
जहर भी, अमृत भी मिला.
जहर पीने के लिए,
एक ही हाथ बढ़ा.
देवताओं ने समुंदर को मथा.
—एक कतरे को मगर कौन मथे?
देवता मुझसे बड़े हों,
तो मथें मेरी तरह,
एक कतरे को जरा——:
जहर पी लेने को तैयार हूं मैं.
इंद्र दरबार में है कोई,
जो आगे बढ़ कर,
बूंद मंथन का उठा ले बीड़ा?
किसने अपने को मथा,
मेरे सिवा —
मेरे ही जैसे दीवानों के सिवा?
इंद्र दरबार में कोई नहीं,

• एम. टी. चौधरी

सब उठ गये,
सन्नाटा है.
अब यहां कोई नहीं, कोई नहीं, कोई नहीं------
मेरे सिवा.
देवताओं के नगर से तो वही मेरी जमीं अच्छी थी.

उसकी आवाज मेरे दिल के गुंबद में गूंजती रही. फिर आवाज खत्म हो गयी. गूंज बाकी रही. और वह गूंज मुझ पर तपती हुई रेत के जर्रों की तरह बरसती रही और मेरे विचारों और मेरी भाषा और मेरे शब्दों और मेरी आवाज , मेरी जाग और मेरी नींद के बदन पर छाले पड़ते रहे. —

और गूंज के उस बेरहम सहरा में उसकी आवाज फिर आयी इसीलिए कहता हूं कि मेरी चाय में एक चम्मच चीनी और डाल दो.

फिर सन्नाटा.

उसकी आवाज इतनी साधारण थी कि मैं डर गया. मैंने जल्दी से शकर-दान में चमचा डाला. परंतु चमचे ने शकर को जैसे ही छुआ वैसे ही भरा हुआ शकर-दान खाली हो गया और दो मुट्ठी चीनी सिमट कर आधा चम्मच चीनी बन गयी.

और वह खिलखिला कर हंस पड़ा. बोला — कथाकारजी, इस शकर-दान में बस इतनी ही चीनी थी. वास्तविकता बस यही आधा चम्चम है. बाकी सपना है. सपना, यह आधा चम्मच चीनी जल्दी से मेरी चाय में डाल दो नहीं तो यह भी गायब हो जायेगी. और मुंह की कड़वाहट कम करने के लिए इस आधा चम्मच वास्तविकता की मिठास भी नहीं मिलेगी.

मैंने घबरा कर आधा चम्मच चीनी की तरफ देखा. मुझे लगा कि चीनी जैसे आधा चम्मच से भी कम रह गयी है. मैंने जल्दी से वह आधा चम्मच से भी कम चीनी उसकी प्याली में डाल दी.

उसने प्याली को अपनी तरफ सरका लिया और फिर अपने बायें हाथ से प्याली में चीनी घोलने लगा.

मैंने पूछा—बायें हाथ से शकर क्यों मिला रहे हो?

उसने कहा— जिसे तुम मेरा बायां हाथ समझ रहे हो, वह दर-अस्ल मेरा दायां हाथ है.

मैंने कहा— अच्छा, अच्छा. मैं समझा कि लेफ्टिस्ट होना फैशन हो गया है इसलिए तुम प्रैक्टिस कर रहे हो.

वह हंस पड़ा—फैशन की बात नहीं. बात यह है कि दाहिना हाथ सलाम करते-करते इतना थक गया है कि कोई काम करना हो तो मजबूरन बायां हाथ चलाना पड़ता है. पर मुझे तो कुछ करना ही नहीं है. बायां हाथ बेकार पड़ा-पड़ा खराब हो रहा है. चाहो तो यह बायां हाथ बेच कर थोड़ी-सी चीनी खरीद लावो. चाय साली अब भी कड़वी है.

चाय की दूसरी चुसकी ले कर उसने बुरा-सा मुंह बानाया.

मैंने सोचा कि उसका बायां हाथ में ही क्यों न लेलूं. मुझे एक बायें हाथ की जरूरत भी है. मेरा अपना बायां हाथ तो इधर बरसों से सुन्न पड़ा हुआ है. तो मैंने पूछा—क्या लोगे अपने बायें हाथ का?

उसने कहा — एक चम्मच चीनी.

मैंने कहा— अभी लाया.

उसकी हंसी ने दरवाजे तक मेरा पीछा किया. पर मेरे पास उसकी हंसी का मतलब समझने का वक्त नहीं था. मैं अपने पुराने बायें हाथ की जगह एक नया बायां हाथ पाने की जल्दी में था.

चम्मच भर चीनी के लिए मैं दुकान-दुकान भटका. दुकानों पर चीनी की बोरियां थीं पर मेरे हाथ का चम्मच नहीं भरा. दुकानदारों से चम्मच में बोरियें डलवाता और देखता कि चम्मच आधा खाली है. मैंने सारे शहर की चीनी खरीद ली पर चम्मच खाली का खाली रहा.

मैं थका-हारा फिर उसके पास लौट आया.

उसकी आंखें बंद थीं और अपने बायें हाथ से चाय की प्याली में चीनी घोंट रहा था.

—लाये? उसने मेरे पैरों की थकी हुई आहट से पूछा.

—न, मैंने कहा— इस शहर में चम्मच भर चीनी है ही नहीं.

—दुकानों पर गये होगे?

—हां, और कहां जाता?

वह हंस दिया—पागल! दुकानों में चीनी है पर तुम्हारी जेब में दाम नहीं है. चम्मच भर चीनी का दाम नहीं है.

मैं झल्ला गया — दाम नहीं है?

—हां.

—तो फिर यह क्या है? और मैंने उसके मुंह पर अपने बैंक की किताब खींच मारी. वह हंसने लगा. मेरा पारा चढ़ने लगा. मुझे यकीन था कि वह मेरा मजाक उड़ा रहा है.

वह हंसते-हंसते बोला — गुस्सा थूक कर आंखें बंद करो और लेट जाओ. एक चम्मच चीनी लाना तुम्हारे बस की बात नहीं.

—हरामजादे. मैं चीख पड़ा. सामने पड़ी हुई खाली दवात मैंने उसे खींच मारी—एक छनाका हुवा. आईना टूट गया और मैंने महसूस किया कि जैसे मेरे मुर्दा हाथ में धीरे-धीरे जान आ रही है.

कड़वी चाय की ठंडी प्याली उसी बायें से उठा कर मैंने एक सांस में खाली कर दी.

इंद्र दरबार में है कोई,
जो आगे बढ़ कर,
बूंद मंथन का उठाले बीड़ा?
किसने अपने को मथा,
मेरे सिवा,
मेरे ही जैसे दीवानों के सिवा?
इंद्र दरबार में कोई नहीं, .
सब उठ गये,
सन्नाटा है

वह सन्नाटा चम्मच भर चीनी बन गया और मेरी चाय मीठी हो गयी. □□□

१०, देवदूत, बेंडस्टेंड, बांद्रा (पश्चिम), बंबई – ५०

एक पंजाबी लघुकथा

कैले की बहू

● रामसरूप अणखी

गज्जन, चन्नण और कैला—तीनों भाई थे. मां की उम्र अस्सी के आसपास होगी. गज्जन वगैरा बहन-भाई तो आठ-नौ थे, पर बाकी अब वही तीनों बचे थे. गज्जन बुढ़ापे में पांव रख रहा था. चन्नण चालीस से ऊपर और कैला पैंतीस से ऊपर था.

बाप उनका अमली था पूरे तौर पर. पांच पांच तोले की भरी डिबिया को आठवां दिन पार नहीं करने देता था.

बाप अफीम खाता था और गज्जन ने शराब को मुंह से अलग न करना सीख लिया था. शराब में अंधा हुआ, सोता पड़ने पर, जब वह घर लौटता तो बड़बड़ाता हुआ ललकार कर कहता—उठा दूंगा तेल में से कौड़ी! और मां माथे पर हाथ मार कर वहीं बैठ जाती. बाहर खेत में जा कर बाप-बेटे ने कभी एक फली तक नहीं तोड़ी थी. आये साल जमीन का टुकड़ा गिरवीं रख देते और फिर पूरी क्यारी चबा जाते! जब बाप मरा, मां ने सुख की सांस ली.

गज्जन के बाप को आसपास के लोग खूब जानते थे. गज्जन के रिश्ते के लिए लोग आते और लौट जाते. और फिर चन्नण की बात भी शरीके वालों ने नहीं बनने दी. घर में भूख बसी हुई थी . . .

एक दिन चन्नण ने मां से सलाह की.

—गज्जन की बात तो अब सौ कोस दूर गयी. मेरी भी छोड़. अगर कैले का हम ब्याह कर दें, तो मां, तुझे जाती बार का कुछ सुख मिल जायेगा.

—अब तो पैसों का कोई रिश्ता ही सिरे चढ़ेगा! चन्नण की मां बोली.

—आदमी का बच्चा तो भई, लाख और करोड़ में भी मुश्किल से मिलता है. पैसों के रिश्ते में कोई बुराई तो नहीं!

चन्नण ने कई लोगों से बात की कि कहीं पैसों वाला रिश्ता ही मिल जाये.

आखिर सुलक्षिणी घड़ी आयी. भेड़ों वाले घीचर ने दो हजार का एक रिश्ता ला दिया. सात सौ सगाई से पहले दिया गया. तेरह सौ ब्याह से दस दिन पहले देने की बात रही.

आज ब्याह में पूरे दस दिन बाकी थे. तेरह सौ रुपयों की बात तो अलग, तेरह सौ ठीकरियां इकठ्ठी करना भी मुश्किल बात थी.

सेठ धौंकलमल का पूरे धौले में ब्याजू नावां चलता था. नब्बे दे कर वह सौ पर अंगूठा लगवा लेता.

जैसे-तैसे करके चन्नण दोपहर को ही धौंकल की दुकान पर पहुंचा. एक-दो बार सिर मार कर धौंकल मान गया—जिसके साथ उठना-बैठना हो, उसे जवाब भी तो नहीं दिया जाता! फिर उसने धीरे से कहा—दस ऊपर तेरह सौ दे कर चौदह सौ का लेखा—तीस तुझे छोड़े! दिन छुपते ही आ जाना. दो गवाह ले आना.

मां के साथ पूरी बात करके चन्नण आटे वाली मशीन पर गया, इधर-उधर भी देखा पर गज्जन कहीं भी बैठा नजर नहीं आया. भारती का डेरा उसका पक्का अड्डा था. चन्नण भी वहीं जा पहुंचा. गज्जन नीम से पीठ टिकाये बाहें टांगों को लपेटे वहां बैठा था.

—हम कब से वहां बैठे तेरा इंतजार कर रहे हैं! धीरे से खांस कर चन्नण ने कहा.

—भई जब एक बार मैंने कह दिया कि मेरी उमर नहीं है! मुझे बता, इसमें मुझे क्या कमाई होगी? गज्जन का कोरा जवाब था.

—लेकिन भाई से बड़ी कौन-सी चीज है, बता? चन्नण ने नरमी धार ली.

—मैंने तुझे सिरे की बात बता दी है, अब तुम दोनों जैसे जी में आये करो.

—गज्जन, तुझे कुछ सोचना चाहिए. मां के हाथ देख, अब कांपते हैं और सिर हिलता है. अगर कैले का परिवार बस जाये तो हम दोनों की रोटी भी चलती रहेगी.

—ये बातें लौंडों-लपाड़ों को शोभती हैं. मैं तो साठ के पास पहुंचा हुआ हूं. धौंकल बनिये का तेरह सौ अगर न दे पाये तो मेरी गरदन में फांसी अलग पड़ी रहेगी. मेरी तो अब उम्र ही नहीं रही! गज्जन ने सही बात दोहरा दी.

—मैं ही कौन बाईस साल का हूं! मैं तो कहता हूं कि भई, अगर छोटा भाई ब्याहा जाये, तो हमारा भी टुक्कड़ पकता रहेगा. बुढ़िया अगर घर पर न हो तो कोई पड़ोसिन तक आग लेने नहीं आती.

गज्जन गरदन झुकाये तिनके से लकीरें खींचता रहा. चन्नण उससे पास खड़ा सांटी से धरती पर बैल-मूतने बनाता रहा. थोड़ी देर सुस्ता कर वह फिर बोला—कैले की बहू जब बाहर जाया करेगी और जब उसके फूल-सितारों वाले घाघरे का नाड़ा टखनों तक लटकता होगा तो गज्जन, तेरे कलेजे में आग न मचेगी?

—फिर तो सालो, तुम दोनों एका कर लोगे. मुझ खूसट को कौन पास फटकने देगा!

—तू बड़ा भाई है. पांच करना चाहे पचास करना! चन्नण ने बांह से पकड़ कर गज्जन को खड़ा कर लिया . . . □□□

(अनुवाद : सुदीप)

रात के साये के बाद

• कन्हैयालाल गांधी

उसने देखा तो दो बजने में दस मिनट बाकी थे. रात का सन्नाटा सायं-सायं कर रहा था. वह दुबला-पतला इनसान अब भी अपने छोटे से आंगन में ऊपर-नीचे घूम रहा था. कभी उसके चलने की रफ्तार तेज हो जाती तो कभी वह ऐसे संभाल कर पैर रखता जैसे जमीन को भी अपने बोझ से बरी रखना चाहता हो.

यकायक जोर से बादल गरजे. बिजली की टेढ़ी-मेढ़ी कौंध आकाश में घूम गयी. सुषमा ने देखा कि उसका भाई इतनी रात बीते दालान के चक्कर काट रहा है. बड़े स्नेह से उसने पुकारा—भैया? अचानक यह शब्द सुनकर तुषार ने अपनी चारपाई की ओर कदम बढ़ाये, लेकिन दूसरे क्षण लौट कर उसने वही क्रम जारी रखने का निर्णय किया.

सुषमा का तुषार के प्रति स्नेह 'राखी' और 'भैयादूज' तक ही सीमित नहीं था. दस वर्ष पूर्व जब उसके पिता की मृत्यु हुई थी, तो उस समय उसने अभी किशोरावस्था में भी पदार्पण नहीं किया था. वह अभी ग्यारहवें वर्ष में ही थी. बीमार हालत में ही बिस्तर पर पड़े-पड़े जब पिता ने सुषमा का हाथ तुषार और रीता भाभी के हाथ में दिया था, उस समय की सारी तसवीर आंखों के सामने छा गयी. उस समय तुषार अट्ठाईस का था. बड़ी दीदी की आयु चौबीस की थी और छोटी की बाईस. यह वह जमाना था कि जब कन्या का विवाह बीस की आयु तक न होता, तो आशंका होने लगती थी और चौबीस के बाद आशंका निराशा में बदलने लगती. बूढ़े बाप की आंखों से यही आशंका और निराशा आंसू बन कर उस समय बही थी. सुषमा को मालूम था कि भैया ने कितनी तकलीफों में डूब कर भी अपने दायित्व को निभाया है. वह दफ्तर में केवल असिस्टेंट ही है, फिर भी उसने सुषमा को बी. ए. तक पढ़ाया था और छह जनों का परिवार भी चलाया .

लेकिन भैया आज इतने व्याकुल क्यों हैं? उदास तो वह प्रायः रहते ही हैं. लेकिन प्रायः ग्यारह बजे तक तो सो ही जाते हैं. क्या कहीं वह लड़के वाले, जो दो रोज पहले मुझे देखने आये थे, उन्होंने 'न' तो नहीं कर दी. लड़के की मां तो मां, लड़का खुद भी यही जानने के लिए बेचैन था कि हमारा मकान अपना है या किराये का, क्या कोई हमारी जमीन भी है या नहीं? भैया क्यों नहीं समझते कि लड़का साथी की नहीं, सम्पत्ति की तलाश में में था. लेकिन भैया भी करें तो क्या करें, समाचार पत्रों के विज्ञापन देखते-देखते हार गये; इधर-उधर जा-जा कर जूते घिस डाले. किसी को केवल पंजाबी कन्या चाहिए, तो किसी को ऊंचे व्यापारी की बेटी. किसी के लड़के की भांवरें तभी पड़ेंगी जब लड़की वाला अस्सी हजार खर्च करेगा और किसी की शर्त है कि लड़की वाला लड़के को एफ. आर. सी. एस. के लिए इंग्लैंड जाने का खर्चा देगा. और फिर उनके सामने बड़ी और छोटी दीदी की तसवीरें घूमती होंगी. इसी प्रकार के विलोड़न और मन्थन की प्रक्रिया के बीच सुषमा की आंख फिर लग गयी.

चिंता भी एक निराली स्थिति है. कुछ लोग इसे पी कर मिटा लेते हैं और कुछ सो कर. जो जागते रहते हैं, उन्हें चिंता मिटा डालती है. तुषार अब भी दालान में घूम रहा था. वातावरण में सन्नाटा था. रोशनी के नाम पर चांद-सितारे भी आकाश से रूठ कर न मालूम कहां चले गये थे. उनका स्थान काली घटनाओं ने ले लिया था. उस घने अंधेरे में व्यक्ति को अपना हाथ भी दिखाई नहीं देता था, तो वहां पड़े व्यक्तियों में कौन जाग रहा और कौन सो रहा है, इसका तो पता लगने का प्रश्न नहीं था.

एकदम बादल की दो-तीन बार गरज से फिर आकाश गूंज उठा. पांच साल का नीटू, जो रीता के साथ चारपाई पर सोया हुआ था, अपनी मां के गले चिपक गया और अर्द्ध-जाग्रतावस्था में बड़बड़ाने लगा—मैं गाड़ी जरूर लूंगा. रीता ने जोर से उसकी पीठ पर एक तमाचा रसीद किया और चिल्ला कर बोली—फिर वही बात? सुबह से 'गाड़ी'-'गाड़ी' का मंत्र जपते

● सतीश चव्हाण

चले जा रहे हो. सो जाओ चुपचाप? चपत से नीटू पहले तो पूरी तरह जागा और फिर सिसकना शुरू किया ही था कि रीता ने गुस्से में दो तमांचे और रसीद करते हुए डांट कर कहा—चुप हो जाओ, नहीं तो जान निकाल लूंगी. और फिर नीटू को सिसकियां धीरे-धीरे नींद में डूब गयीं.

तुषार एक धोती और बनियान पहने अभी भी आंगन के चक्कर काट रहा है. नीटू रीता और तुषार की अकेली संतान था. नीटू को लगा हुआ तमाचा उसे चाबुक जैसा लगा था और उसकी रफ्तार और भी तेज हो गयी थी. थोड़ी देर में रीता फिर चिल्लाई—दालान के चक्कर लगाने से क्या बनेगा? जब कुछ कर नहीं सकते, तो अपनी और दूसरों की नींद क्यों हराम करते हो? उबाल निकलने के थोड़ी देर बाद, रीता को नींद आ गयी क्योंकि दिन में बहुत वर्षा के कारण घर में पानी भर गया था और भाभी और ननद का शरीर पानी निकालते-निकालते टूट गया था.

तुषार अभी तक नंगे पैर घूम रहा था. ऐसा लगता था कि रीता की डांट का उस पर कुछ भी असर नहीं हुआ. 'तंग आमद, बजंग आमद' रीता ने कई दिनों से तुषार को हर संभव अवसर पर फटकारना शुरू कर दिया था. उसका स्वभाव भी उसके रूखे बालों और शरीर के समान रूखा हो चुका था. लेकिन तुषार इससे परिचित हो गया था. उस पर रीता के प्रहारों का प्रभाव यों नहीं पड़ता था, जैसे सूखे पेड़ पर ओले या वर्षा का. लेकिन रह-रह कर नीटू की गाड़ी की मांग उसके शरीर में ऊपर से नीचे तक लहर मार उठती . कल उसका जन्मदिन है और उसे भी पावस की तरह अपने जन्मदिवस पर पच्चीस रुपये की खिलौना-गाड़ी चाहिए. वे लोग परसों सुषमा का शगुन मांगते हैं. उन्होंने कहा है, कि शगुन में पांच सौ एक से कम में काम नहीं चलेगा. और अभी तक मुश्किल से इधर-उधर से बटोर कर तीन सौ ही मिल पाये हैं. फिर यह पच्चासी कहां से लाऊं?

फिर बादल गरजे . आकाश में बिजली की कौंध से उजाला हो गया . रीता की आंख फिर खुली तो उसने देखा कि तुषार अभी वैसे ही घूम रहा है. सुबह के पौने पांच हो चुके थे. औरत का मन आखिर कब तक कठोर रहता, पिघल गया. वह उठकर बैठ गयी और बोली—अब तो थोड़ा आराम कर लो. फिर दिन भर तुम्हें काम करना है. सुबह नौ बजे के गये शाम को सात बजे लौटते हो. अड़तीस वर्ष की आयु में तुमने बाल सफेद कर लिये और मुंह पर झुर्रियां भी पड़ने लगीं. आज्ञाकारी पति की भांति तुषार रीता के पास पड़ी अपनी चारपाई पर लेट गया. रीता ने बात जारी रखते हुए कहा—अपने पड़ोसी पावस के पिता को देखो. तुम्हारी अपेक्षा उसकी तीस रुपये ही तो अधिक आय है और उसके घर में रेडियो, फ्रिज, कालीन, बढ़िया फर्नीचर सभी कुछ है. दो लड़कियां और एक लड़का है. लड़कियों के लिए एक-एक टुकड़ा जमीन का है और लड़के के लिए मकान है. और यहां दिन का भोजन है तो रात का नहीं . तुम घर में अधिकांश धोती-बनियान में रहते हो और मैं पुराने पेटीकोट और ब्लाउज में. आखिर लड़कियां और नीटू भी उन्हें देखते हैं. वे हमारे बारे में क्या सोचते होंगे. मैंने तुम्हें यह कभी नहीं कहा कि तुम किसी के सामने हाथ फैलाओ, लेकिन आती माया को तो न दुत्कारो. अगर कुछ पल्ले नहीं होगा तो सुषमा के हाथ कैसे रंगोगे? नीटू को कैसे पढ़ाओगे? मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं, जैसे कि मैं कई बार पहले भी कह चुकी हूं कि इस आमदनी को मैं अपने लिए कभी न छुऊंगी. रीता कभी बोलती जा रही थी, कि दिन का उजाला होने लगा. उस प्रकाश में रीता ने देखा कि तुषार तो सो चुका है. वह उठी और अंदर घर के काम में लग गयी.

* *

समय था सुबह के सात. सूरज की प्रथम किरणों से तुषार की आंख खुली, तो उसनें देखा कि केवल नीटू सो रहा है, बाकी सब उठ गये हैं. वह जल्दी से उठा तो आधे घंटे में दफ्तर के लिए तैयार हो गया. साधारणतया वह दफ्तर के लिए आठ बजे रवाना होता था परंतु आज वह साढ़े सात बजे ही चल पड़ा.

रास्ते में जिलाधीश चंद्रकांत का घर था और वह रोजाना उसको कोठी के सामने से गुजरता था. जब वह दफ्तर जाता तो चंद्रकांत समाचारपत्र पढ़ रहे होते और जब तुषार लौटता तो जिलाधीश महोदय अपने कुत्ते से खेल रहे होते. आज तुषार कुछ पहले जा रहा था. जिलाधीश अपने लान में घूम रहे थे. उन्होंने थैला हाथ में लिये तुषार को आफिस की ओर जाते देखा. वे काफी दिनों से तुषार से बातचीत करने को उत्सुक थे. काफी सोचने पर उनसे यह गुत्थी हल न हो सकी थी कि यह व्यक्ति जब सुबह को हिरण की भांति भागता हुआ दफ्तर जाता है, तो शाम को घर लौटते समय इसकी टांगें बोझल क्यों लगती हैं? चंद्रकांत कोठी के गेट पर आये और तुषार से 'हैलो' करते हुए कहा— आज इतनी जल्दी कैसे जा रहे हैं? तुषार ने कहा— बस, ऐसे ही.

जिलाधीश के कहने पर तुषार उनकी कोठी के अंदर गया. इतने में खानसामा चंद्रकांत के लिए चाय लाया. खानसामा ने एक प्याली तुषार को दी और एक अपने मालिक को. खानसामा चला गया और दोनों परस्पर बातें करने लगे. बातचीत के दौरान चंद्रकांत को पहली बार पता चला कि तुषार उसी के दफ्तर में काम करता है. जब बहुत-सी दूसरी बातों के बाद चंद्रकांत ने तुषार को 'उस गुत्थी' को सुलझाने के लिए मजबूर किया तो उसने कहा— श्रीमान्, इसके लिए आपको मेरे घर तक चलना होगा. तुषार का घर कोई दो किलोमीटर की दूरी पर था. चंद्रकांत ने गाड़ी निकाली और तुषार को उसमें बिठा दोनों उसके घर की ओर चल पड़े. घर से दो सौ गज की दूरी पर तुषार ने देखा कि उसकी तीनों बहनें और उसका इकलौता पुत्र नीटू घर से बाहर चारपाई पर बैठे हैं. नीटू उठ गया है और तीनों बहनें बारी-बारी उसका माथा और मुख चूम

कर उसे जन्मदिन की बधाई दे रही है. तुषार आगे जाने से घबड़ा रहा था, इसलिए उसने चंद्रकांत से प्रार्थना की कि वह गाड़ी वहीं रोक दें. चंद्रकांत ने ऐसे ही किया.

तुषार ने कहा— ये तीनों मेरी बहनें हैं. पिता इनकी सारी जिम्मेदारी मुझ पर छोड़ दस वर्ष पहले इस दुनिया से चल बसे. बड़ी दो बहनें अब चौंतीस और बत्तीस वर्ष की हो चुकी हैं. जिसने छोटे बच्चे को हाथ में लिया है, उसकी आयु इक्कीस के लगभग है. इसके विवाह के लिए बड़ी मुश्किलों से लड़का ढूंढ़ा है. शगुन पर लड़केवालों की मांग पांच सौ एक रुपये की है. बाद की बात बाद में होगी. यदि परसों तक उनको शगुन देने का प्रबंध न हो सका तो यह अवसर भी हाथ से जाता रहेगा. अभी तक तीन सौ ही जुटा पाया हूं. दुर्भाग्य की बात कि, आज ही मेरे पुत्र का जन्मदिन है. उसकी मांग है कि पड़ोसी के लड़के के समान उसे भी आज खिलौना-रेलगाड़ी चाहिए जिसका मूल्य पच्चासी रुपये है. इसीलिए उसके जाग जाने से पहले ही मैं घर से निकल पड़ा था, यद्यपि मैं प्रतिदिन आठ बजे घर छोड़ता हूं.

इतने में चंद्रकांत और तुषार ने देखा, सुषमा नीटू को लिये गाड़ी की ओर आ रही है. बच्चों की मोटर-गाड़ी के लिए स्वाभाविक उत्सुकता होती है. तुषार ने साहब से जल्दी गाड़ी लौटाने की प्रार्थना की. साहब के बंगले पर पहुंच, तुषार उतर कर चल गया और शाम को नित्य के समय ही घर लौटा. घर आने पर पत्नी ने प्रसन्न मुद्रा में एक पैकेट हाथ में दिया. पत्नी खुश थी कि सुबह के परामर्श पर अमल हो गया. तुषार के पूछने पर कि पैकेट कहां से आया, रीता ने बताया कि एक सफेद गाड़ी पर कोई महिला आयी थीं, वे दे गयी हैं. सुषमा कह रही थी कि यही गाडी सुबह भी इधर आयी थी. तुषार को पहेली कुछ खुल गयी. पैकेट खुलना शुरू हुआ. घर के सभी सदस्य आसपास बैठ गये. नीटू रीता की गोद में था. लो, पैकिट खुल गया. उसमें एक थी रेलगाड़ी और एक था लिफाफा जिसमें दो सौ-सौ के नोट थे. उसने पैकेट रीता और नीटू की गोद में दे दिया और नीटू का सिर चूम लिया.

फिर रात आयी. आज आसमान साफ था. न वहां बादल थे और न बादलों की गरज. लेकिन तुषार आज भी जाग रहा था. यह क्यों? संभवतः बिजलियां उसके मन में अब भी बार-बार कौंध रही थीं. यह बिजलियां थीं, पुरानी यादों की. जिलाधीश की सहानुभूति के प्रति गहरी कृतज्ञता उसकी संकल्प शक्ति को और भी दृढ़ कर रही थी. अनेक स्मृतियां उसके अवचेतन मन से उभर रही थीं. कितने लोगों ने उसे मोहने की कोशिश की थी? उसकी ईमानदारी के प्रति एक जिलाधीश की मान्यता ने उसके संकल्प को एक नयी स्फूर्ति दे दी थी. उसे एक नयी रोशनी दिखाई देने लगी थी और वह इस नयी रोशनी की बांहों की ओर खिंचता जा रहा था. □□□

९७, लोदी एस्टेट, नयी दिल्ली.

उन पत्नियों के लिए
जो परिवार की
"वित्त मंत्री" हैं
बजट बनाते समय
वेतन के दिन ही जीवन बीमा
प्रीमियम के लिए व्यवस्था कर लें
वेतन का दिन
प्रीमियम भरने का दिन है
लाइफ इन्श्योरेन्स
कारपोरेशन आफ इण्डिया
क्या आपका जीवन बीमा पर्याप्त है? क्या आपने बच्चों की शिक्षा, विवाह कर-देयताओं, बुढ़ापे व अन्य आकस्मिक खर्चों के लिए पहले से प्रबन्ध कर रखा है।
आपके जीवन बीमा एजेन्ट या निकटतम जीवन बीमा निगम के कार्यालय को हमारी योजनाओं के विस्तृत लाभों को समझाने में प्रसन्नता होगी।
योगक्षेमं वहाम्यहम्
RADEUS/LIC/AS-17

बल बनाम बुद्धि

एक जंगल में एक सियार रहता था. एक दिन उसने एक हाथी को अपनी मौत मरा पाया. किंतु वह उसके शरीर के कड़े चमड़े को काट न पाया. इतने में ही एक सिंह उधर आ निकला. सियार ने नत-मस्तक हो कर कहा-- वनराज, मैं इस हाथी की रक्षा आपके लिए कर रहा हूं. कृपया इसे अपना भोजन बनाइए.

--मैं दूसरे द्वारा मारे गये प्राणी का भक्षण नहीं करता. इसे तुम अपना ही भोज बनाओ, कहकर सिंह अपने रास्ते लगा.

सिंह के जाते ही एक चीता उधर आ निकला. सियार ने सोचा, कि यह भी बलवान है अतएव इसको भी चतुराई से ही निपटना होगा. ऐसा सोच कर उसने झुंझलाये हुए स्वर में चीते से कहा-- चाचा, आप मौत के मुंह में क्यों जाना चाहते हैं? इस हाथी को एक सिंह ने मारा है और रक्षा का भार मुझ पर सौंप कर स्नान करने गया हुआ है. मुझे कह गया है कि यदि कोई चीता पास में आये तो उसे तत्काल सूचना दूं-- क्योंकि एक बार जब उसने एक हाथी मारा था, और स्नान करने चला गया था तो एक चीते ने उस हाथी को अपना भोज बना लिया था. तब से ही वह इस जंगल को सभी चीतों से खाली कर देना चाहता है.

यह सुनते ही चीता घबड़ा गया और बोला--मेरे प्यारे भतीजे, मेरी जान बख्शो. उसे मेरे आने की सूचना न दो. और वह निकल भागा. चीते के जाते ही एक तेंदुआ आ पहुंचा. उसे देखते ही सियार ने सोचा, इसके दांत बड़े पैने हैं. मैं इनका उपयोग हाथी की मोटी खाल काटने के लिए करूंगा. ऐसा सोच कर उसने उससे कहा-- क्यों भतीजे, इतने दिनों तक कहां थे? तुम तो भूखे भी लग रहे हो. यह देखो, सिंह द्वारा मारा गया हाथी यहां पड़ा है. मैं पहरे पर हूं. तुम भी उसका भोजन कर सकते हो बशत उसे काट सको और सिंह के आने के पहले भाग सको.

--नहीं चाचा, इसका गोश्त मुझसे नहीं पचेगा, मैं चला, तेंदुआ बोला.

--घबड़ाओ नहीं, सिंह को दूर से ही आता देख कर मैं तुम्हें सावधान कर दूंगा.

और तेंदुआ ने ज्यों ही हाथी की मोटी खाल काटी कि सियार बोल उठा-- जल्दी करो, सिंह आ रहा है. तेंदुआ रफूचक्कर हो गया. इतने में ही एक दूसरा सियार वहां आ पहुंचा. उसे अपनी बराबरी का समझ सियार उस पर तेजी से झपटा. अपने नुकीले दांतों द्वारा उसे धराशायी कर दिया और स्वयं हाथी का भरपूर भक्षण कर गया.

(पंचतंत्र की एक कथा) □□□

खराश-
खांसी से
झट
आराम

वोकासिल

VOCACIL
COUGH DROPS
VOCA
CIL

खांसी की
टिकिया

आस्था की कतरनें

• भगवान अटलानी

कहते हैं, आकृति हृदय का दर्पण है. मस्तिष्क में पलता या मन में चलता कोई विचार अथवा शब्द मुखमंडल पर अपना प्रभाव अवश्य छोड़ता है. किसी व्यसन अथवा गुणविशेषयुक्त व्यक्ति की मुखाकृति पर तदनुसार चिह्न, संकेत उभरने लगते हैं. वैसे तो यह विचार विभिन्न तर्कों को पक्ष-विपक्ष में आमंत्रित करके विवादग्रस्त होने की क्षमता रखता है, फिर भी व्यक्तिगत रूप से मैं सदैव इस उक्ति की पात्रता को संदेह की दृष्टि से देखता रहा हूं. इस संदेह का कारण मेरी एक सबल मान्यता है. आज की दुनियां में बहुत कम लोग इतने सीधे-सादे रह गये हैं कि वे अपने हृदय की बात सरलता से पढ़ जाने दें. किस के साथ किस समय कैसा व्यवहार करना चाहिए, यह सामान्य बुद्धि हर पढ़े-लिखे या समझदार व्यक्ति में, मेरे अनुमान से, आदिकाल से ही रही होगी. विचारों को चेहरे से पढ़ लेना तो बहुत बड़ी बात है, आजकल तो कोई वर्षों तक साथ रहने वाले निकटस्थों के चरित्र और विश्वसनीयता का सही जायजा लेना भी मुश्किल होता है.

कुछ दिन पहले उपर्युक्त कथन की सत्यता पर मेरी थोड़ी-बहुत आस्था थी. कुछ स्थितियों में हाव-भाव से अंतर्मन को जान लेने वाली बात मुझे ठीक लगती थी. मगर अब वह हलकी-फुलकी आस्था भी टूट गयी है. आप कारण पूछेंगे तो मैं बता दूंगा. मगर आपसे एक आश्वासन पाना चाहूंगा कि आप मेरी बात को पहले पूरा सुन जायेंगे. बीच में न तो कोई प्रश्न ही पूछेंगे और न कहीं उठ कर ही जायेंगे. दर असल यह आश्वासन मैं इसलिए चाहता हूं कि भावनात्मक दृष्टि से घटना के साथ मेरा गहरा जुड़ाव है. अब तो जुड़ाव न कह कर गहरी टूटन वाली बात मुझे कहनी चाहिए. आप आश्वासन दे रहे हैं? तो ठीक है. आइए, मैं सारी बात ज्यों की त्यों बिना किसी जोड़-तोड़ के आपके सम्मुख रख देता हूं.

हम चार दोस्त हैं, बचपन के. साथ-साथ गलियों में खेले, शरारतें कीं, पिटे, बड़े हुए, स्कूल गये. बाद में कालेज गये, नौकरियों पर लगे, शादी-विवाह हुए, बाल-बच्चे पैदा किये. मगर मित्रता में कोई अंतर नहीं आया. अब केवल मैं और डाक्टर नवीन इस शहर में हैं. डाक्टर छाबड़िया अजमेर में हैं और हमारे चौथे मित्र ओमप्रकाश उदयपुर में एक कंपनी में मैनेजर है.

हां, यहां मैं यह बता दूं कि स्कूली शिक्षा के बाद हमारी पढाई अलग-अलग कालेजों में हुई थी. इसका कारण विषय-भिन्नता था. डाक्टर छाबड़िया को तो शहर ही छोड़ देना पड़ा था. उसे क्योंकि यहां प्रवेश नहीं मिला था इसलिए उदयपुर मेडिकल कालेज में जाना पड़ा था. खैर, हम चारों एक स्थान पर रहे हों या अलग-अलग स्थानों पर. मगर प्रयत्नपूर्वक वर्ष में पांच-दस दिन साथ रहने का सिलसिला जमा ही लेते थे. हम चारों का यही मानना था कि हममें से हर एक दूसरे की खुशी के लिए सब कुछ कुर्बान कर सकता है.

इस वर्ष होली से कुछ दिन पहले मैंनें और डाक्टर नवीन ने तय किया कि यह होली हम चारों एक साथ मनायेंगे. एक साथ मनायेंगे, इतना ही नहीं उदयपुर जाकर मनायेंगें. ओम प्रकाश के पास तय तो कर लिया मगर होली का त्यौहार, लोग दूर-दूर से अपने घर आते हैं और हम बाहर चले जायें, यह बात हमारे घर वालों को अच्छी नहीं लगती. पत्नियां भी रूठती, नाराज होतीं. इसीलिए हमने एक झूठ बोलने की योजना बनायी. हमने होली से एक दिन पहले अपने अपने घरों पर बताया कि उदयपुर से ट्रंक काल आया है. ओम प्रकाश की पत्नी की तबीयत बहुत खराब है. अस्पताल में भर्ती कराया है इसलिए हम दोनों उदयपुर जा रहे हैं. रास्ते में अजमेर रुकेंगे डाक्टर छाबड़िया के पास क्योंकि उसने एम. बी. बी. एस. उदयपुर से किया है, इसलिए उसकी उपस्थिति लाभप्रद सिद्ध हो सकती है. उसे साथ लेते हुए उदयपुर निकल जायेंगे.

यह बहाना चला और कुछ छिद्रों को छोड़ कर खूब चला. हमारी पत्नियों के अतिरिक्त घर के सब लोग हमारे प्रस्थान की सार्थकता से सहमत थे. हमारी पुरानी मित्रता का परिप्रेक्ष्य उन्हें संतुष्ट करने के लिए यों भी पर्याप्त था. मगर पत्नियां पूर्णतः संतुष्ट नहीं हुई थीं. उनका कहना था, भाभीजी बीमार हैं. देखभाल के लिए या तो उन्हें भी साथ ले जाय जाये या हम लोग भी न

• सुशील भारती

जायें. क्योंकि उन्हें साथ ले जाना हमें बिल्कुल भी स्वीकार्य नहीं था. इसलिए कुछ समझा कर, कुछ नाराजगी का खतरा उठा कर हम लोग अजमेर के लिए रवाना हो गये.

* *

ठीक होली के दिन सुबह हमने गाडी पकड़ी. दोपहर एक बजे जब हम डाक्टर छाबड़िया के घर अजमेर पहुंचे, वह अस्पताल से लौट कर भोजन कर रहा था. मुझे और डाक्टर नवीन को सामने पा कर, वह भी होली की दोपहर को, वह चमत्कृत और उत्साहित हो कर उछल-सा पड़ा.

लगभग दस दिन पूर्व उसके घर में दूसरी पुत्री का जन्म हुआ था. सामने पलंग पर उसकी पत्नी नवजात बालिका के साथ लेटी हुई थी. हम दोनों ने आगे बढ कर बच्ची को देखा. डाक्टर छाबड़िया और उसकी पत्नी को बधाई दी कि उन्होंने सौंदर्य को प्रतिभूत किया है. औपचारिकता के नाते हमने सौंदर्य प्रतिभूति की बात की हो, ऐसा नहीं था. गुलाबी फ्राक में लिपटी वह छोटी-सी गुड़िया सचमुच खूबसूरत थी.

हम दोनों भी डाक्टर छाबड़िया की थाली में ही भोजन करने बैठ गये. माताजी रोटियां, सब्जी पहुंचाती रहीं. हम खाते और बातचीत करते रहे. पूर्व निश्चयानुरूप यहां भी हमने ट्रंक काल आने, ओम प्रकाश की पत्नी के अस्पताल में भर्ती होने ओर इस संदर्भ में हमारे वहां जाने की बात, सत्य का मुलम्मा चढ़ा कर गंभीरतापूर्वक कह दी. डाक्टर छाबड़िया को चलने अथवा न चलने की दृष्टि से हमने कुछ नहीं कहा.

भोजनोपरांत हम लोग टहलने बाहर निकले. रास्ते में बात का रूप फिर ओम प्रकाश की ओर मोड़ कर, हम किन परिस्थितियों में घर से निकले हैं, पत्नियों ने हमारे प्रस्थान को कैसे लिया है, ये और इस तरह की अन्य बातें हमने कह डालीं. इस प्रकार जमीन तैयार करने के बाद मैंने उससे पूछा — चलने के बारे में तुम्हारा क्या इरादा है?

—चलेंगे. उसके कथन में विशेष उत्साह नहीं था. लेकिन डाक्टर नवीन और मैंने उसके इस शब्द को तूल दे कर 'मजा आ गया' 'हमेशा ऐसा ही कहा करो' 'यह हुई न कोई बात' जैसे वाक्य जड़ दिये.

घूम-फिर कर तीन बजे लगभग घर लौटे तो मैं शारीरिक रूप से क्लांत अनुभव कर रहा था. पूछा तो डाक्टर नवीन ने भी यही बात कही. इसलिए हम दोनों तो आंखें बंद करके सो गये. डाक्टर छाबड़िया की तीन वर्षीय बड़ी बच्ची नीलम को हलका-सा बुखार था. वह उसकी परिचर्या, आमोद-प्रमोद ओर सेवा-सुश्रूषा में लगा रहा.

जब मेरी नींद खुली, कमरे में हर ओर अंधेरा था. मैंने उठ कर लाइट जलायी. घड़ी देखी, सात बजे थे. मेरे उठने, लाइट जलाने ने डाक्टर नवीन की निद्रा में व्यवधान उपस्थित किया ही होगा. मैंने आवाज दे कर रही-सही कसर भी पूरी कर दी.

मैं हाथ-मुंह धोने बाहर निकल आया. लौटा तो देखा, मोढ़े पर आसीन डाक्टर छाबड़िया उनींदे-से डाक्टर नवीन को कुछ समझाने का प्रयत्न कर रहे हैं. डाक्टर नवीन की मुद्रा से लगा कि न तो वह कुछ समझने को उत्सुक है और न समझाने की कोशिश कर रहा है. तौलिये से मुंह पौंछता मैं उनके निकट पहुंचा तो डाक्टर नवीन ने एक लंबी जमुहाई ली और मेरी ओर संकेत करते हुए कहा—इसे बताओ.

मैंने डाक्टर छाबड़िया की तरफ देखा —क्या बात है, भई?

डाक्टर छाबड़िया के स्वरों में असमंजस और संकोच था—यार वो नीलम की तयबीत खराब चल रही है. फिर सी. एम. एच. ओ. से झगड़ा चल रहा है. वह छुट्टी मंजूर नहीं करेगा.

मेरे होठों पर अनायास ही मुसकराहट तैर आयी—नीलम को तुम दवा दे रहे हो न? एक-दो दिन की दवा भाभीजी को समझा दो. परसों नहीं तो उससे अगले दिन हम लौट ही आयेंगे. कल का सार्वजनिक अवकाश है. रही परसों की बात, तो तुम बीमारी की अर्जी लिख कर पड़ोसी को दे चलो. आकस्मिक अवकाश, वह भी तबीयत खराब होने की स्थिति में, सी. एम. एच. ओ. को मंजूर करना ही पड़ेगा.

—तुम समझते नहीं हो, पहले भी उससे छुट्टी के चक्कर में ही झगड़ा हुआ है. लीव विदाउट पे करवा देगा.

—मैं थोड़ा झुंझला गया, देखो, हमारी तरफ से कोई दबाव नहीं है. तुम चलना चाहो, चलो, न चलना चाहो, मत चलो. मगर ऐसे भौंडे और घटिया तर्क मत दो. साफ कह दो कि चलने की इच्छा नहीं है.

मेरे अंतिम वाक्य ने जैसे उसे बच निकलने का अवसर दे दिया—ठीक है, तुम मेरे बारे में अगर इस तरह

सोचते हो तो ऐसा ही सही. मेरी चलने की इच्छा नहीं है तो मत चलो.

हम तीनों के बीच गहन तनावयुक्त मौन ने डैने पसार लिये. हमारे सिर झुक गये. मुद्रा विचारपूर्ण हो गयी. हम इस स्थिति से तब उबरे जब माताजी ने बाजार से सब्जी लाने के लिए छाबड़िया को आवाज लगायी.

उसके जाते ही डाक्टर नवीन ने मुझे अपराधी-सा ठहराते हुए कहा— तुम्हें इच्छा-अनिच्छा वाली बात नहीं कहनी चाहिए थी. उसे इनकार करने का अवसर मिल गया.

मैं उखड़ गया — क्यों? क्यों नहीं कहनी चाहिए थी यह बात? वह हमारी बेटी की शादी में आया हुआ कोई बराती है क्या कि हाथ-पांव जोड़ कर उसे राजी करें? स्थिति की नजाकत और उसमें अपनी उपादेयता के आधार पर उसे चलने या न चलने का निर्णय करना चाहिए था. झूठी बहानेबाजी करके वह आखिर क्या सिद्ध करना चाहता था?

मेरी तल्खी से किनाराकशी करते हुए डाक्टर नवीन ने कहा— सब ठीक है. लेकिन उसे यह अवसर नहीं देना चाहिए था, बस. खैर चलो. एक बार फिर बात करके देख लेंगे.

—मैं तो अब बात करूंगा नहीं. तुम्हें करनी हो तो करो.

उसके लौटने के बाद हम तीनों बाहर निकले. बस-स्टैंड से रात्रि-सेवाओं का समय पूछ कर स्टेशन पहुंचे. प्लेटफार्म पर आ कर कॉफी का आर्डर दिया. इस दौरान मैं प्रायः मौन था. कॉफी के मग हाथ में आने के साथ ही डाक्टर नवीन ने उससे कहा — यार डाकसाब, आज मूड बड़ा फिलासफराना हो रहा है. तुम बुरा न मानों तो एक बात पूछूं?

—पूछो, डाक्टर छाबड़िया ने जिज्ञासु मुलायमियत से कहा.

—तो बताओ, हम लोग क्यों जी रहे है? मर क्यों नहीं जाते?

वाक्य समाप्त होते-होते मुझे आभास हो गया कि डाक्टर नवीन ने विषय का सूत्र पकड़ लिया है. प्रस्तुतीकरण की इस विचित्र किंतु सटीक तैयारी का स्पर्श पा कर मुझे बरबस हंसी आ गयी. अपनी हंसी को छिपाने के लिए मैं मग हाथ में ले कर उन दोनों से थोड़ा दूर हट गया. कॉफी समाप्त करके मदार गेट से अंडे, व्हिस्की और बियर खरीदकर घर पहुंचने तक डाक्टर नवीन आदर्श उपदेशक ओर डाक्टर छाबड़िया समर्पित श्रोता में परिणित हो चुके थे.

घर पहुंचे तो हम तीनों यार मुक्त अनुभव कर रहे थे. घर छोड़ने और वापस लौटने के बीच हमारा जैसे कायाकल्प हो गया था. किसी तनाव, किसी गंध की नाममात्र परछाई भी हमसे कोसों दूर थी. एक दिलखुश ताजगी, एक लुभावनी आत्मीयता हमारे स्नेह को बुरी तरह छलकाये दे रही थी.

साढ़े दस बज चुके थे. हमें साढ़े ग्यारह वाली बस पकड़नी थी. डाक्टर नवीन को मैंने घड़ी दिखाई

—अब तैयारी करो डाक साब, समय हो गया है.

—यार, तुम दोनों मेरे साथ चलो. माताजी को कन्विन्स करना पड़ेगा.

—हम क्या बात करेंगे? जो कुछ करना-कराना है, तुम ही कर लो.

वह प्रतिवाद न कर पा कर अनिच्छापूर्वक बाहर चला गया. हम दोनों ने एक दूसरे की ओर मुस्कराहटें उछाली.

—तुमने एक बात सोची है?

—क्या?

—वहां पहुंच कर जब इसे पता लगेगा कि भाभीजी स्वस्थ हैं, तब क्या होगा?

—जब तुमने यहां इतना किया है तो वहां भी कुछ कर ही लोगे.

—वहां मैं कुछ नहीं करूंगा. तुम्हें ही संभालना पड़ेगा.

हमें अपनी बातचीत का क्रम एकाएक ही तोड़ देना पड़ा. वह वापस लौट रहा था—हो गयी बात?

—नहीं. तुम लोग चलो.

—क्यों? फिर क्या हो गया?

—वे मान नहीं रही हैं. तुम चल कर समझाओ.

मैंने और डाक्टर नवीन ने आंखों ही आंखों में एक दूसरे को आने वाली स्थिति का नेता पद संभालने के संकेत किये. दोनों ने ही ये सांकेतिक प्रस्ताव ठुकरा भी दिये. अंततः प्रस्तावित करने और निरस्त करने का सिलसिला जारी रखते हुए हम डाक्टर छाबड़िया के साथ उस कमरे में आ गये जहां उसकी जच्चा, पत्नी लेटी हुई थी. माताजी कुछ फासले पर बिछी चारपाई पर बैठी थीं.

* *

माताजी से औपचारिक वाक्यों के आदान-प्रदान के बाद हम दोनों चुप हो गये. हम दोनों ही इस प्रतीक्षा में थे कि दूसरा पहल करेगा. डाक्टर नवीन ने जब मौन को तोड़ने के प्रति थोड़ी-सी भी उत्सुकता नहीं दिखाई तो विवशतः मुझे ही प्रारंभ करना पड़ा—इसे भेज नहीं रहे हैं क्या?

मैंने यह मुलायम अनुरोधपूर्ण प्रश्न छाबड़िया की माताजी से किया था. मगर उत्तर उसकी पत्नी ने दिया—ये वहां जाकर क्या करेंगे?

उनके लहजे की सख्ती मुझे अच्छी नहीं लगी. फिर भी मैंने भरसक स्वाभाविक बने रहने का प्रयत्न किया—हम लोग वहां जाकर क्या करेंगे?

—आप लोगों का क्या है? संयुक्त परिवार है. पीछे की कोई चिंता है नहीं.

—आप समझती हैं, हमारे आने से वहां सब लोग खुश हैं?

—हां! तभी तो आप जा रहे हैं.

रोकते-रोकते भी मेरे स्वर में व्यंग्य व रोष घुल मिल गये—जी नहीं, आपको गलतफहमी है. सौ-सवा सौ रुपये जबरदस्ती खर्च करके लौटने पर कोई किसी

का स्वागत नहीं करता.

—कोई स्वागत करे या न करे, हमें इससे क्या करना है. हम तो यह जानते हैं कि इन्हें उदयपुर नहीं जाना चाहिए.

—हम बुरे समय पर किसी के काम नहीं आयेंगे तो हमारे यहां कौन आयेगा. डाक्टर छाबड़िया का स्वर था. स्वर नहीं, मिमियाहट थी. यह मिमियाहट भी समर्थन की मुद्रा में मौन बैठी माताजी की ओर फूटी थी.

—इसमें बुरे समय पर काम आने की क्या बात है? यहां आपकी लड़की भी तो बीमार है. वे अस्पताल में भर्ती हैं. डाक्टर देख ही रहे होंगे. आपके जाने से कोई चमत्कार तो होने से रहा. डाक्टर छाबड़िया को डांटते हुए उसकी पत्नी ने जोर से कहा.

मुझे बेहद क्रोध आ गया——नीलम के मामूली बुखार में आपको इसकी जरूरत महसूस हो रही है. वहां भाभी-जी अस्पताल में पड़ी हैं. आपको कुछ विशेष नहीं लगता. इसकी उपस्थिति नीलम के लिए चमत्कारपूर्ण हो सकती है. जहां से इसने एम. बी. बी. एस. किया है, वहां जा कर यह कुछ नहीं कर सकता. मुझे तो आपकी मानवीयता पर संदेह होने लगा है.

वे रुद्ध कंठ से बोलीं—वो तो मैं जानती हूं. आपके दबाव में आ कर ये जरूर जायेंगे. अपनी मासूम बच्ची को मरता छोड़ कर दूसरों को ठीक करने दौड़ेंगे.

उनके कंठ की रुद्धता और आंखों में भर आये पानी ने मुझे उलटा अधिक उग्र बना दिया—हम लोग न तो दबाव डालते हैं और न बरगलाते हैं. रही इसके जाने-न जाने की बात, तो जिनके दोस्त डाक्टर नहीं हैं, वे भी इस दुनिया में जिंदा रहते हैं, मर नहीं जाते.. ये आपके पति हैं. आप चाहे इन्हें अब भेजिए चाहे मरने के बाद अर्थी को कंधा देने भी मत भेजिए, हमें क्या करना है!

फिर मैंने पिटे प्रेमी की तरह सिर झुका कर बैठे डाक्टर छाबड़िया को संबोधित किया—मैं खुले आम कह रहा हूं. चलने के लिए हमारी ओर से कोई दबाव नहीं है. हम उधर बैठे हैं. फैसला कर के बता देना.

हम लोग वहां से उठ कर आ गये. जी बिल्कुल उखड़ गया था . इच्छा होती थी, इसी क्षण यहां से चल दें. निरंकुशता और बुद्धिहीनता के तांडव ने हमें कमजोर कर रख दिया था . अगर वह छाबड़िया की पत्नी है तो हम भी तो उसके मित्र हैं. हमारा कोई अधिकार नहीं बनता है क्या उस पर?

सवा ग्यारह बजे छाबड़िया उदास और बोझिल चेहरा लिये धीरे-धीरे कमरे में गया. दो खामोशियों में सम्मिलित हो कर तीसरी खामोशी ने वातावरण को असहायता की सीमाओं तक भारी बना दिया.

अपनी दांव पर लगी प्रतिष्ठा को हम हसरत से देख रहे थे. हमारी बात अधिक वजनदार थी. इसके बाद भी यह देखना था कि पत्नी और मित्रों में से वह किसे वरीयता देता है. निर्वाक , धड़कते हृदय से हम उसके निर्णय की प्रतीक्षा कर रहे थे.

दो-तीन मिनट बाद उसने पूछा—क्या समय हुआ है?

हमारे हृदयों में एक अदृश्य आशावाद का संचार हुआ. हम अनायास ही सोच गये कि वह साथ चलने का निर्णय ले कर आया है.

—ग्यारह बीस. डाक्टर नवीन ने बड़ी अपेक्षा के साथ कहा.

—तो चलो, मैं तुम्हें बस स्टैंड छोड़ आऊं.

एक क्षण के लिए एक दूसरे को देखते हुए मैं और डाक्टर नवीन स्तब्ध रह गये. फिर अपनी-अपनी अटैचियां साथ ले कर उठ खड़े हुए.

मात्र पत्नी के दबाव के कारण, इतना घनिष्ट होते हुए भी, मित्र की सहायता से इनकार करने वाले को विश्वसनीय माना जा सकता है क्या? गनीमत है कि बीमारी वाला किस्सा हमारा गढ़ा हुआ विशुद्ध झूठ था, अगर सच होता तो? इतने लंबे समय की मित्रता भी जब हमें चकमा दे गयी तो आस्था डिगेगी नहीं क्या?

इसीलिए मैं कह रहा था कि मुखाकृति को हृदय का दर्पण मानने वाली उक्ति पर जो थोड़ी बहुत आस्था थी, अब वह भी धुल-पुंछ गयी है. □□□

भगवान भवन, १–ए–१३०, आदर्श नगर,
जयपुर—३०२००४

गौरैया और बंदर

एक जंगल में एक नर-गौरैया अपनी मादा के साथ एक वृक्ष की शाखा पर घोंसला बना कर रहा करता था. एक दिन भीषण वर्षा में एक बंदर ने उस वृक्ष के नीचे शरण ली. सर्दी से ठिठुरता हुआ वह दांत किटकिटा रहा था. उसके हाथ पैर अकड़-से गये थे. उसकी यह हालत देखकर दयावश मादा-गौरैया ने उससे कहा—तुम्हारे हाथ-पैर इस तरह बने हुए हैं कि तुम आदमी जैसे लग रहे हो. फिर क्यों नहीं इस भीषण सर्दी का अनुभव कर अपने लिए घर बना लेते, मूर्खराज?

यह सुन कर बंदर ने सोचा, कुछ लोग अपने को बड़ा बुद्धिमान समझते हैं. यह मादा-गौरैया भी उन्हीं में से एक है. अतएव क्रोध में आकर उसने कहा— ऐ बद्तमीज मादा, चुप रहती है कि मैं तेरा मजा किरकिरा कर दूं !

किंतु मादा-गौरैया उसे उत्तम घर बनाने की सलाह देती ही रही. इस पर बंदर से न रहा गया. वृक्ष पर चढ़ कर उसने उसके घोंसले को तार-तार कर दिया. नर और मादा-गौरैया असहाय-से देखते ही रह गये. □

('पंचतंत्र' की एक कथा)

वापस नहीं

• वीर राजा

वह पहले से भी ऊंची आवाज में रोने लगी. उसकी समझ में यह बात नहीं आ रही थी कि कोई कभी कसी मृत व्यक्ति के प्रति ऐसा सलूक भी कर सकता है? भाई उसकी ऊंची आवाज से और भड़क उठे—— मातम हमारे घर नहीं है, उसके घर में है. मैं भौचक्का हो कर उन्हें देखने लगा. वह चाचा तो क्या, किसीके बारे में भी ऐसी बातें नहीं कह सकते थे. लेकिन यह बातें उन्होंने खुद कही थीं, भले ही जिंदगी में पहली बार—— हमें वहां जरूर चलना चाहिए. मैं अजब कशमकश में फंसा था.

——नहीं, हम वहां नहीं जायेंगे. उसे तो बहुत पहले मर जाना चाहिए था जब तुम वहां से भाग कर नहीं आये थे. बल्कि उससे भी पहले जब हम बरबाद नहीं हुए थे. हाथ में पकड़े तार को मेरे ऊपर फेंक दिया—— मैं भी उनकी वही आवाजें सुनना चाहता हूं जो मैंने उन दिनों तुम्हारी मां की सुनी थीं. वह गुस्से में नहीं थे जो रोज होते थे, ना ही उनका वह रूप था जो मैं वर्षों से देख रहा था. वह इंतकाम की आग में जल रहे थे जो उनकी तबीयत में शामिल नहीं था. माथे पर उभरी हुई लकीरें उनके अंदर की हलचल के साथ फैलती और सिकुड़ती. उनकी आंखें बीच की हर रुकावट को भेद कर दूर देख रही थीं. जहां से उन्हें उन दिनों की बातें याद आ रही थीं, जो दिन कभी के पीछे रह गये थे और भूत थे—— मैंने वह आवाजें भी महसूस की हैं जिन्हें उन दिनों मैंने नहीं सुना था.

थोड़ी देर पहले जब तार वाले की आवाज आयी तो मैं अपने कमरे में बैठा हुआ बाहर से छन कर आती हुई आवाजें सुन रहा था. भीड़ में जिन आवाजों को सुनना मुश्किल होता है या जिनका एहसास भी नहीं होता, उन्हीं को अकेले बैठ कर सुनना और अलग-अलग करके पहचानना एक दूसरा अनुभव होता है. सुबह से शहर में बिजली नहीं थी. मैं अधूरा काम छोड़ कर बाहर के शोर-गुल में डूबा हर आवाज को पकड़ रहा था कि ऐन उसी वक्त तार वाले की पुकार सुनायी दी.

भाभी भी तेजी से भाग कर मेरे पास खड़ी हो गयी थी—— कहां से? सब खरियत तो है? उसके लिए कहीं से तार का आना सिर्फ खतरे की अलार्म होती है. तार के नाम से ही उसमें एक हलचल पैदा हो जाया करती—— क्या लिखा है? मुझे चुप देख कर उसने दुबारा पूछा.

वहां से तार तो क्या एक खत की उम्मीद भी नहीं थी. तार पढ़ने के बाद मैंने बहुत कोशिश की कि किसी तरह उनका चेहरा मेरे सामने आ जाये लेकिन मेरे साथ अक्सर ऐसा होता है, जब भी मैं किसी व्यक्ति को याद करता हूं तो उसी वक्त उसका चेहरा मेरी याददाश्त से ओझल हो कर कहीं खो जाता है. मैं तार को इस तरह देख रहा था जैसे वह वहीं से निकल कर मेरे सामने आ जायेंगे—— चाचा नहीं रहे, यह सुनते ही वह रोने लगी. मैं चौंक कर उसे देखने लगा. उसने कभी उन्हें नहीं देखा था, ना ही उनका कभी जिक्र घर में हुआ था. क्या एक अनजान व्यक्ति के लिए कोई इतनी जल्दी रो सकता है? और मैं तो एक लंबे अरसे से उन्हें भूल ही चुका था.

——क्या हुआ? तुम क्यों रो रही हो? भाई उसकी आवाज सुन कर लपके थे. वह तार देखते ही वह एकदम चुप हो गये. निरंतर तार की एक सतर को पढ़ रहे थे. थोड़ी देर में कहीं खो गये. आंखें अपने आप बंद हो गयीं और अंदर की ओर कस कर खींच लीं. तार मुट्ठी में भिच गया—— चुप करो. इसमें रोने की क्या जरूरत है? उन्होंने एक झटके से आंखें खोलीं, जैसे नींद से जगे हों.

भाई गुस्से में अपने कमरे में दीवार पर टंगी तसवीर के सामने जा कर खड़े हो गये थे—— इधर आओ. उनके स्वर में गुस्से के साथ प्रार्थना भी थी. वह पत्थर की तरह अचल थे. केवल आंखों से आंसू बह रहे थे. उस कमरे में आ कर जो खुशी सदा मिलती थी वह नहीं थी. वहां रखी हुई हर चीज पराई लग रही थी—— तुमने मां और बाऊजी की यही एक तसवीर देखी है. लेकिन मैंने उनकी वह तसवीर भी देखी है जब वह पिंजर बन चुके थे. छोटी-छोटी जरूरतों के लिए उनके हाथ पसरते थे. चाचा जालसाजी से सब हड़प चुके थे. उन दिनों मां अकसर रोती तो बाऊजी कहा करते—— अब झगड़ने में क्या पड़ा है? जिस रात उनकी मृत्यु हुई थी, उस रात मरने से पहले दरवाजा बंद कर के उन्होंने वह सारे कागजात जला दिये थे जिनमें चाचा के खिलाफ सबूत थे. इस पर भी चाचा का मन नहीं भरा था. भाई जेब से रूमाल निकाल कर तसवीर पर जमी हुई गर्द की परत को साफ करते जा रहे थे. शीशे के नीचे से दो हंसते हुए चेहरे उभरते आ रहे थे. मानो कोई आ कर उस तसवीर को आज ही वहां टांग गया हो और हम पहली बार उसे देख रहे हों—— एक दिन, उन्होंने रूमाल वाले हाथ को ऊपर उठाया—— उसने गुस्से में मुझे सीढ़ियों से धकेल दिया. मैं गठरी की तरह लुढ़कता हुआ नीचे जा गिरा और वहीं पड़ा कराहता रहा. नीचे आ कर वह मुझ पर फिर झपटा और अपने दोनों हाथों से मेरा सर पकड़ कर दीवार से पीटने लगा. वह खट-खट मैं आज भी सुन सकता हूं जैसे कोई पत्थर से दीवार को पीट रहा हो. रात को मुझे बाहर फेंक कर बोले थे—— दफा हो जा यहां से. वह रात मुझे आज भी याद है.

बंद दरवाजों के आगे मैं सोच रहा था, कहां जाऊं? मेरा कौन है? भाई को शायद यह खबर भी नहीं थी कि मैं उनके पास खड़ा हूं. उन्होंने घूम कर मेरी तरफ देखा लेकिन वह मुझे नहीं देख रहे थे. सिर्फ उनकी आंखें खुली थीं और वह कहीं और थे. पलट कर फिर तसवीर को 'देखने लगे. दोनों हाथों में कुर्सी के हत्थे

को कस कर पकड़ लिया. उनकी एड़ियां ऊपर उठ गयीं. उनके टूटते हुए शब्द सुनाई पड़ रहे थे. लैंप से निकलता हुआ कड़ुआ धुआं कमरे में भर चुका था, जिससे आंखों में जलन हो रही थी. मद्धम रोशनी में उनका वजूद रहस्य से भरा लग रहा था. उनके हिलते हुए हाथों की छाया दीवार पर तरह तरह की शक्लें बना रही थी जैसे दो व्यक्ति लड़ रहे हों, कभी गिर पड़ते, कभी उठ कर फिर लड़ पड़ते— कभी एक दूसरे को घूरने लगते.

मैं चकित था. इतना आगे निकल जाने के बावजूद वह पीछे कैसे खिसक गये? क्या अपने निजी दुख की छाया कभी बाकी चीजों पर भी छा सकती है? तरह तरह की बातें मेरे अंदर उठ रही थीं. फिर इतना गुस्सा यदि किसी को भी आ सकता था तो वह मैं था और कोई नहीं हो सकता था. मुझे आज उनकी मृत्यु पर कोई खुशी नहीं हुई और न ही गुस्सा आया. एक लंबे समय से मुझे उनका कभी ध्यान भी नहीं आया. मैं तो उन्हें भूल ही चुका था. जब कि वहां से आने के बाद मैंने उन्हें कत्ल करने का अहद किया था. उन दिनों छुरे के नाम से ही मुझ में सनसनी दौड़ जाया करती.

★ ★

यहां आने के बाद भाई ने जब पहली बार मुझे पैसे दिये, वह दिन मेरे लिए किसी त्योहार से कम नहीं था. मैं एक बड़ा चाकू खरीद कर ले आया. वह पीतल के दस्ते वाला एक लंबा चाकू था, जो कड़कड़ की आवाज के साथ खुलता था. मैं बाहर बैठा उसकी धार तेज कर रहा था. मुझे पता ही नहीं चला भाई कब मेरे पीछे आ कर खड़े हो गये— ये तू क्या कर रहा है? चाकू ले कर उसकी तेज धार पर उंगली फेरने लगे.

—मैं छुरा तेज कर रहा हूं.

—छुरा! उन्होंने हैरानी से मुझे देखा था, मानो उन्होंने इससे पहले कभी छुरे का नाम न सुना हो.

—हां हां, इससे मैं उनका खून करूंगा,

—किसका?

—मैं चाचा का खून करूंगा. छुरा उनसे छीन कर एक ही झटके में सामने दरवाजे पर दे मारा जो बीच में जड़ गया— एक ही बार में सब खत्म. मैं उछल पड़ा था. —तेरे बाजुओं में अगर इतनी ताकत थी तो तू वहां से भाग कर यहां क्यों आया? मुझे धकेल कर अंदर ले गये थे.—आयंदा ऐसी हरकत मत करना. मैं हैरानी में उन्हें देखता रह गया था. मुझे तो पूरी उम्मीद थी कि वह कहेंगे कि कर दे उसके टुकड़े.

वह सारी स्कीमें एक जासूसी उपन्यास की तरह अपने आप खुलती जा रही थीं, जो उन दिनों मैंने भाई से चोरी से बनायी थीं. एक दिन तकिये से चाचा का पुतला बना कर चाकू से वार कर रहा था. जब चाकू पुतले के सीने में उतरा— बेटे अब तेरा काम खत्म. वह पीछे खड़े थे— अरे तू फिर चाकू ले आया. बंद कर इस तमाशे को, तेरी यही हालत रही तो यहां किस किसको मारेगा?

एक दिन जब उन्हें पता चला कि मैं उनसे चोरी से काम की तलाश में घूमता हूं और मुझे कहीं काम नहीं मिल रहा तो वह हैरान रह गये थे— तुझे अभी काम की पड़ गयी है. तू पहले अपने को कुछ बना तो ले. फिर एक दिन एक खत दे कर बोले—यह चिट्ठी लो. तुझे वहां काम मिल जायेगा. जब मैं खत ले कर चित्रकार कृष्णकुमार के पास पहुंचा तो वह पत्र पढ़ कर बार बार मुझे देख कर हंस रहे थे.

—तेरा काम अभी से शुरू हो गया. उनकी आंखें शरारत से भरी थीं जो उसी पल पहले की तरह गंभीर हो गयी थीं और किसी गहरी सोच में डूब गयी थीं, यही उनकी आदत थी. मैं उन्हें देख कर सोच रहा था ना

● नरेंद्र एन. शाह

जाने खत में भाई ने क्या लिखा है?—तू काम क्यों चाहता है? मुझे चुप देख कर खुद ही बोले थे—इसीलिए कि तू भाई पर बोझ न बने. खुद अपने पांव पर खड़ा हो कर भाई की मदद करे. तेरा नाम हो. लोग तुझे तेरे काम से पहचानें, तू खुद कमाये.

—जी, हां, मैंने जोश में कहा था जब कि मैंने कभी भी उन बातों के बारे में सोचा नहीं था. मैं तो रौ में कह गया था. उन्हें चुप और सोचता देख कर स्टूडियो में टंगी पेंटिंग देखने लगा था जो बहुत अजीब और मेरी समझ से बाहर थीं. स्टैंड पर बिना सिर के एक नग्न स्त्री की अधूरी पेंटिंग रखी थी.

—लेकिन इससे क्या होगा? ऐश से रह कर, सारा दिन खा-पी कर, दूसरे दिन सुबह निकल देना भी कोई जिंदगी है? नहीं है. अपनी जिंदगी के लिए अपनी पहचान होनी चाहिए जो बिलकुल अपनी हो, दूसरों की नकल न हो. कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिनकी बातें सुनने के लिए, जिनका काम देखने के लिए लोग तरसते हैं. यही उनकी पहचान होती है. एक चित्र की ओर इशारा कर के बात जारी रखी—तुम्हें यह तसवीर समझ आ रही है? नहीं. इसके पीछे एक दूसरी भाषा है जो सभी को आ सकती है. तुम सारा दिन दीवारों पर चाचा की तसवीरें बनाते रहते हो. उन्हें छड़ियों से पीटते हो. उनके पुतले बना कर उन पर चाकू मारते हो.

मैंने अचंभे में उन्हें देखा था. यह तो मेरे बारे में सब कुछ जानते हैं? मैंने यह सोचा था उस दिन. क्या तुम उनकी ऐसी तसवीर बना सकते हो जिसे देख कर महसूस हो कि वह लोभी और जालिम थे? वह मुझे अपनी बातों और अपने प्रभाव में जकड़ चुके थे—इसके लिए तुझे बहुत काम करना होगा. सीखना होगा. छिपी हुई बातों को मालूम करना होगा. जैसे तुझे चाचा क्यों मारते थे? कौन सी बात थी जो उनसे यह सब कराती थी?

मैं बरसों उनके साथ जुड़ कर कब अपने पुराने कस्बे के संसार से टूट कर यहां की भरपूर दुनिया में खो गया मुझे इसका बिलकुल पता ही नहीं चला और न कभी इसका एहसास हुआ.

भाई तसवीर के सामने खड़े सिगरेट पी रहे थे. धुएं के चक्कर फैल कर खिड़की से बाहर भाग रहे थे. भाभी और उनके दोनों लड़के आ कर खामोश खड़े थे. लड़कों ने उन्हें कभी भी गुस्से में नहीं देखा था. वह हैरानी से उन्हें देख रहे थे—आप छोटे भैया की बात क्यों नहीं मान लेते? वहां जाने में हर्ज ही क्या है? भाभी ने मनहूसियत को तोड़ा.

—नहीं, हम वहां नहीं जायेंगे. जाने और ना जाने से क्या फर्क पड़ता है? महज एक रस्म ही तो पूरी होगी. अगर भाई साहब को इसमें ठेस लगती है तो हम वहां क्यों जायें? मुझे लगा यह बात मैंने न कही हो बल्कि कोई दूसरा आदमी कह कर भाग गया हो.

—क्या कहा? उन्होंने चौंक कर मुझे देखा. जेब से फिर रूमाल निकाल कर तसवीर को घूरने लगे, मानो वहां कुछ घट रहा हो जो आंख झपकते ही ओझल हो जायेगा—तुम कभी इस तसवीर को साफ नहीं करती?

भाई खामोश और सब कुछ बर्दाश्त करने वाले व्यक्ति थे. वह अपना निजी दुख और अंदर की बात कभी किसी पर जाहिर नहीं करते थे. एक नामालूम तसल्ली में हमेशा डूबे रहते, एक दीवानगी की हद तक मस्त रहते. दिन को एक कालेज में पढ़ाते थे. रात को टाऊन हाल के पीछे पार्क में एक फ्री स्कूल चलाते थे जो पिछले कई वर्षों से बराबर चल रहा था. वहां उनके दूसरे साथी भी आ कर पढ़ाते थे. रात को जब शहर के होटलों और रेस्तराओं में छुट्टी होती तो वह स्कूल शुरू होता था. वह स्कूल और होटल मजदूर ही उनकी जिंदगी थी.

* *

चाचा के घर से भाग कर जब वह यहां आये थे तो तीन-चार दिन से भूखे घूम रहे थे. एक होटल के बाहर वह बैठे थे तभी दिवाकर उनके पास आ कर खड़ा हो गया था—तू घर से भाग कर आया है? बेटा, यहां सभी भाग कर ही आते हैं. वह इतना कह कर भाग कर होटल के अंदर चला गया और वहां से रोटी चोरी कर के ले आया था—ले खा. जब तक यह होटल है, कोई भूखा नहीं मर सकता. हम न हों तो इन सालों के होटल बंद हो जायें. तू भी यहीं आ जा. करूं सिफारिश? वह हंसता हुआ उन्हें शहर की नयी-नयी बातें बता रहा था—होटलों में पेट भर फ्री रोटी मिलती है और पैसे भी. बस इसीलिए सब यहां आ कर दफन हो जाते हैं. फिर यहां से भाग नहीं सकते. तू भी आ बेटे अपनी कब्र में. जब भी भाई मूड में होते, यह किस्सा जरूर सुनाते. इसीलिए आगे निकल आने पर भी वह अपना रिश्ता होटल के दोस्तों से तोड़ नहीं पाये थे.

शादी के बाद शुरू में भाभी बहुत चिढ़ती थी—तू भी उन्हें कुछ नहीं समझाता, उलटा तू भी उनके साथ लगा रहता है, क्या रखा है वहां? उसने तुनक कर कहा था—कभी उन्हें ऐसी बात न कह देना, शायद इससे बढ़ कर उन्हें बुरी बात और कोई न लगे. लेकिन भाभी की समझ में यह बात नहीं आयी थी—यह भी क्या हुआ, रात के बारह बजे तो वहां पढ़ाई शुरू होती है. आधी रात तो इसी में बीत जाती है. उस रात वह उनका इंतजार करती रही—आपको कुछ घर की भी सुध रहती है? जब भी देखो आप वहीं रमे रहते हैं. वह उनके आते ही भड़क उठी थी. वह हंसते हुए सब सुनते रहे—मैं जानता हूं, तुम्हें परेशानी होती है. जिस तरह मैं तुम सबके बिना नहीं रह सकता, इसी तरह उन सबके बिना भी नहीं जी सकता. वह सब किस मजबूरी और परेशानी में घरों से भाग कर, अपने घरों की दुर्दशा संभालने यहां आते हैं—और यहां की ऊपरी तड़क-भड़क जल्दी उन्हें खा जाती है. उन्हें भी तो कोई दिवाकर मिलना चाहिए. तुम इस गटर की बदबू नहीं जानती? क्या पता, दिवाकर मुझे न मिलता तो मैं भी किसी गंदे गटर में सड़ रहा होता. तुम भी चाहो

तो मेरा हाथ बंटाया करो. उसके बाद भाभी ने उन्हें कभी कुछ नहीं कहा था.

जिन दिनों मुझ पर चाचा का जनून सवार था. एक दिन मुझे रात के स्कूल में ले गये—तू भी यहां आ कर रोज पढ़ा कर. मैं दो-तीन रात वहां जा कर फिर भाग आता. पढ़ने में मन ही नहीं था—अपने को कुछ तैयार कर लो. इस तरह घूम कर चंद जरूरतें हासिल कर लेना भी कोई बात है. फिर चंद जरूरतों में ही सारी उम्र गुजर जाये तो क्या लाभ? चंद लोग वह भी तो हैं जिन्हें यह सब सुख पैदा होते ही मिल जाते हैं. इसका मतलब तो यह होगा, हम अपनी जिंदगी वहां से पहले खत्म कर देंगे जहां से उन चंद लोगों की जिंदगी शुरू होती है! अब तू खुद फैसला कर, मैं तुझे कभी कुछ नहीं कहूंगा.

जब मैं भी उनके रास्ते पर चल निकला तो बरसों बाद मैं भी घी मिल के पास एक क्लास लेने जाता. जब कई दिन वहां नहीं गया तो वह मेरे पास आये थे—जानता है आज दिवाकर जी पैदल चल कर आये थे. पूछ रहे थे, तू बीमार तो नहीं. जानता है उन्हें इस बुढ़ापे में यहां आने में कितनी तकलीफ उठानी पड़ी. वह अपना गुस्सा इसी तरह जाहिर करते थे.

जलसे, जलूसों के दिनों में घर झंडों, बैनरों, मॉटो और प्ले-कार्डों से भर जाता. हम सब मिल कर पुराने अखबारों पर पोस्टर लिखते. बैठक उनके साथियों से भरी रहती जहां आगे की तैयारी में बहसें चलतीं. जब दिवाकर जी की मृत्यु पर मैं उनका एक बड़ा चित्र बना रहा था तो वह मेरे पास खड़े उसे देखा करते. कभी उनकी आंखें भर आतीं—यदि एक कोआपरेटिव सोसाइटी बन जाये तो इनका आखिरी सपना भी पूरा हो जाये. . .

—तुम इनके लिए मरते हो यह तो सभी बेठौर के लोग हैं. सारा दिन गंदी गालियां बकते आपस में लड़ते हैं. उनके एक मित्र ने उन्हें एक बार ताना दिया था.

—बुराइयां किसमें नहीं. जब हम पैदा ही इनमें होते हैं तो बच कैसे सकते हैं. इसका मतलब यह तो नहीं कि इन्हें ठुकरा दें. उन्होंने तड़प कर कहा था.

मैं अपने कमरे में खिड़की के पास आ कर खड़ा हो गया. सामने से आती हुई किसी न किसी कार की तेज रोशनी खिड़कियों से होती हुई कमरे में घुस आती. हर चीज उजली और धुली हुई मालूम देती. दीवार पर टंगे चित्रों, किताबों की अलमारी और कोने में रखी अधूरी पेंटिंग के ऊपर से भागती हुई रोशनी जब ओझल हो जाती तो लगता, कमरा उदासी से भर गया है. खिड़की से पूरा बाजार दिखाई दे रहा था, जिसके दोनों तरफ दूकानों की लंबी कतारें थीं. जहां हर रोज बत्तियां जला करती थीं और ऊपर जलने-बुझने वाले रंगदार नियोन साइन आंख मिचौली किया करते, आज वहां मोमबत्तियां, लैंप और गैस जल रहे थे, जिनका धुंधला प्रकाश टिमटिमा रहा था. बाजार के बीच में मंदिर के बाहर लटकते हुए घंटों की आवाज एक लय में आ रही थीं. कभी रोशनी में घंटे बजाते हुए भगत भी दिखाई दे जाते थे.

उन दिनों कस्बे में भी बिजली नहीं थी. वहां बीच में एक ही बाजार था जहां रात को लैंप टिमटिमाते थे. सिर्फ दीवाली पर वहां यहां की तरह रौनक होती थी. वहां भी बाजार में संगमरमर का सफेद मंदिर था जिसके ऊपर का सुनहरी कलश दिन भर धूप में लिशकारे में चमकता रहता. मंदिर के बाहर और पास के पेड़ पर कई घंटे लटकते रहते जो कभी-कभी तेज हवा के कारण अपने आप बज उठते थे तो उस वक्त भगत लोग झूम कर प्रार्थना करते और सिर झुका-झुका कर प्रणाम करते. मंदिर के पीछे तालाब में पांव डाल कर घंटों का स्वर सुनना, ऊपर आकाश में तारों को गिनना और गिनती गड़बड़ होते ही पांव से पानी को हिला-हिला कर लहरें बना कर फिर हंसते हुए उसमें सितारों का अक्स तलाशना. यह मामूली सुख भी चाचा की जासूस आंखों से बच कर ही मिलता था. पकड़े जाने पर धुनाई हो जाती. मंगलवार को चाचा पूरे परिवार के साथ मंदिर जाते थे. मैं राजू को गोद में उठाये जूतों की चौकीदारी कर रहा था—मैं भी घंटा बजाऊंगा—राजू को तेरा बाप उठायेगा, हरामी. उन्होंने खा जाने वाली नजरों से घूरा.

—नहीं. कभी बच्चों को नहीं डांटते, वह तो स्वयं भगवान होते हैं. पुजारी तुरंत जंगले से बाहर आ गये थे—बजाओ, बजाओ. उन्होंने मुझे गोद में उठा लिया. घंटा बजाने के बाद बहुत देर तक मैं उन्हें देखता रहा. वह सब को प्रसाद बांट रहे थे. मदी, मूषी और दीपा सभी नाच रहे थे—तू भी ले. पुजारी ने मेरे मुंह में बूंदी भर दी. मंदिर से आते ही उन्होंने मेरी पीठ पर एक लात मारी—कमीने, तू हर जगह मेरी नाक कटवाता है. घर चल.

बाजार में फोटो वाली दूकान के सामने मैं हमेशा रुक जाता. वहां पहुंचते ही मेरे कदम अपने आप जम जाते और एक टक सामने लगी एक हंसती हुई स्त्री की तसबीर देखने लगता. वह स्त्री हमेशा मुझे अपनी तरफ देखती मालूम होती. मैं जिधर भी जाता, जिस तरफ से उसे देखता, वह मुझे अपनी ओर बुलाती हुई लगती. उसकी कशिश में मैं सब कुछ भूल जाया करता. —तुझे कितनी बार कहा, तू अपनी इस मां को मत घूरा कर, पता है राजू नीचे गिर रहा है. चाची राजू को छीन कर ले गयी थी. चाचा ने एक थप्पड़ मेरे मुंह पर मारा था. मूषी ने पीछे से आ कर एक लंगड़ी मारी और मुझे नीचे गिरा देख कर आंख मार कर हंस रहा था—कहो बच्चू—बीच बाजार में तमाशा दिखा रहा है, तू? चाचा ने मुझे बालों से खींच कर खड़ा कर दिया था.

वह बड़े अजीब दिन थे. सुबह से रात तक मैं उनकी दुकान और घर के कामों में जुटा रहता, तब भी मेरे कामों में कोई न कोई गड़बड़ वह निकाल ही लेते. मुझे दबोच कर पीटते. उनकी गालियां मेरा पीछा करतीं. उनकी आवाज से ही मैं कांपने लगता. कभी जब बहुत मार पड़ती तो मेरा पेशाब निकल जाता—आज तू ने दूकान देर से खोली—कुत्ते भैंस का चारा नहीं काटा, क्यों? बन दुंवा—आज इसने कपड़े नहीं धोये. बर्तन भी जूठे पड़े हैं—तू ने आज गिलास तोड़ दिया.

जिस दिन मैं वहां से भाग कर आया था उस रात

वह बहुत देर से घर लौटे थे. नशे में धुत्त थे. उनके जूतों की खट्-खट् मेरी कोठरी की तरफ आ रही थी—कहां है वह उल्लू का पट्ठा? वह खट् खट् मुझे अपने सिर पर महसूस हो रही थी—तू शाम को पतंग लूटने गया था? तू तांगे से टकराया था? तेरी चप्पलें चोरी हो गयी थीं. तूने लोगों से चप्पलों के लिए पैसे मांगे थे. बोल हरामजादे, बोलता क्यों नहीं? हर बात के बाद वह एक छड़ी मुझ पर मारते.

मैं उस दिन शाम को पतंग लूटता हुआ एक तांगे के बम से लड़ गया था. मैं दूर जा कर गिरा. जब मुझे होश आया तो सबसे पहले मैंने देखा, मेरे पांव में चप्पलें नहीं हैं. मैं चौंक कर एकदम खड़ा हो चुका था—मेरी चप्पलें. लोग मेरी चीख सुन कर चकित रह गये, वह तो मेरे जख्म और चोटें देख रहे थे. मैं पूरे बाजार में रोता हुआ चप्पलें ढूंढ़ रहा था.

—पूरे बाजार में मेरे नाम की खाक उड़ा आया है. वह मेरे ऊपर उबले—सब कह रहे हैं, मैं तुझे नौकरों की तरह रखता हूं. मैं पीछे पड़े पुराने टब के ऊपर गिर पड़ा था. कोई तेज चीज मेरी पीठ में गड़ गयी और मैं चीख उठा—मुझे बचाओ. मैं मर गया. चाची और बच्चे बाहर आंगन में बुत्त बने खड़े थे. उनके गुस्से के आगे घर में हर चीज थम जाती थी. एक मामूली आहट भी नहीं होती थी, आस पड़ोस के सभी लोग तमाशा देख रहे थे. चाची उन्हें खींच कर ले गयी थीं. उस रात मैं कोठरी में पड़ा झींगुरों और टिड्डियों की सीटियां सुनता रहा. छत के झरोखों से कबूतरों की गुटरगूं सुनाई दे रही थी, वह सब आवाजें मेरे दुख में शरीक थीं.

मैं आंगन में फूलों की क्यारी के पास खड़ा हो कर पीपल के पेड़ को देखने लगा. हवा से पेड़ की शाखें फड़फड़ा रही थीं. पत्तों की खड़खड़ाहट गूंज रही थीं. ऊपर आकाश में तारे थे, जिनसे मेरा गहरा रिश्ता था. कई रातें जाग कर मैं उन्हें देखा करता. मैंने हर तरफ नजर दौड़ायी. हर चीज को एक बार छू कर देखा. आंगन के पीछे बरामदे में रस्सी पर लटकते हुए कपड़े मुरदों की तरह लग रहे थे. गली में सभी दरवाजे बंद थे. हर तरफ खामोशी थी. केवल नाचने वालियों के घरों से घुंघरुओं की आवाजें आ रही थीं. भागते हुए मुझे लग रहा था, कोई मेरे पीछे आ रहा है. . .

★ ★

तार आने के बाद भाई की बातों ने अतीत में एक छेद कर दिया था. वह भूला हुआ वक्त, जिसकी कोई परछाईं भी नहीं थी, अचानक जिंदा हो कर सामने आ चुका था. उसकी पकड़ किसी गहरे सपने के टूट जाने के बाद भी जकड़े हुई थी. कब भाई मेरे पीछे आ कर खड़े हुए मुझे पता नहीं था. वह बराबर मुझे ताक रहे थे. उन्होंने धीरे से मेरे कंधे पर हाथ रखा और दूसरे हाथ की उंगलियां मेरे बालों से खेल रही थीं. मैंने उनकी तरफ देखा. हमारे बीच में खामोशी थी. वैसे भी अब हम दोनों अपने कामों में इतने उलझे रहते कि आपस में बातें बहुत कम होतीं— तुमने अभी क्या कहा था? उन्होंने खामोशी को तोड़ा— जानता हूं, तुम नहीं चाहते यहां कुछ गड़बड़ हो. उन्होंने खुद ही जवाब दिया— कभी-कभी ऐसा हो जाता है. हम कितने ही शांत और चीजों के पारखी हों तब भी हम अपने जाती दुखों की गरमी में बह जाते हैं. इसपर किसी का कोई अख्तियार नहीं, लेकिन तुम इतनी देर से क्या सोच रहे हो? वह किसी बोझ से दबे थे.

—यदि चाचा ने हमारी छोटी-छोटी जरूरतें पूरी की होतीं तो हम वहीं रहते और वहीं दम तोड़ देते, उस छोटी जगह में.

—तुम में फर्क आ गया है.

—फर्क! मैंने उन्हें घूरा.

—तुम बहुत बदल चुके हो. तुम अपने निजी दुख से निकल कर दूर पहुंच चुके हो, जहां आदमी दूसरों के लिए जिंदा रह सकता है और दूसरे तुम्हारे लिए लड़ सकते हैं. इस जगह पर दूसरों के दुख और अपने बीच की दूरी खत्म हो जाती है. इसीलिए तुम्हें कभी भी अपनी मुसीबतें याद नहीं रहतीं. मैं हैरानी से उन्हें देखने लगा. यह सच था कि मैं हमेशा अपने कामों में डूबा सब कुछ भूलता रहता हूं. बाद में अपने ही अतीत पर हैरानी होती है.

—जब तुम यहां आये, उन दिनों मैं बहुत परेशान रहता, सोचता तुम यहां की शहरी जिंदगी में कैसे खप पाओगे? अपने निजी दुख को सबसे बड़ा समझने वाला एक न एक दिन जरूर टूट जायेगा. पहले मैंने सोचा, तुम्हारी नफरत और बदले की आग को एक दूसरी लड़ाई में मोड़ दूं. तभी मैंने एक दिन तुम्हें दीवार पर चाचा की शक्ल बनाते देखा. मुझे लगा तुम्हें दिवाकर की नहीं कृष्ण कुमार की जरूरत है और सचमुच उन्होंने तुम्हें सब भुला दिया और तुम्हें इसकी खबर भी नहीं हुई— क्या कहा? मैंने अपने को ठगा महसूस किया. कहीं अंदर गहरे में उनकी बात छू गयी— सच पूछो तो मैं इसी बात पर सोच रहा हूं कि जब हम वहां जायेंगे और उन पुरानी जगहों और चीजों को देखेंगे तो कितना अजीब लगेगा. जहां पर अपने परिवार के मिटने के निशान होंगे. अब उन्हें छूने और उनके सामने खड़े होने में हम क्या महसूस करेंगे. वही मकान, वही गली, वही बाजार और वही लोग होंगे जो उन दिनों थे, तब भी हर चीज गैर होगी, हम वहां भी अजनबियों की तरह घूमेंगे. कोई हमसे पूछेगा, अरे तुम उनके लड़के हो. फिर वह खामोशी आ जायेगी जो दो अनजान व्यक्तियों में आ जाती है. . . वह धीरे-धीरे एक रौ में बोल रहे थे. मेरे लिए यह यकीन करना मुश्किल लग रहा था कि थोड़ी देर पहले वह एक जहरीली आग में जल रहे थे.

—अब तुम्हें वहां की हर चीज छोटी लगेगी और वह जगहें भद्दी लगेंगी, जो तुम्हारी याददाश्त में सुंदर होंगी. उन दिनों जो रास्ते लंबे और थका देने वाले होंगे, अब बहुत छोटे होंगे. वहा का पूरा माहौल तुम स्वीकार नहीं करोगे. तुम्हारी और उसकी छाप अलग होगी. क्या मालूम जिस जायदाद के लिए उन्होंने सब

फरेब किया था आज उसीकी छतें ढह पड़ी हों. क्या मालूम उससे भी छिन गयी हो. उन्होंने हंसते हुए अपने दोनों हाथ मेरे कंधे पर रख दिये. उनकी आंखों में वही कशिश, वही जादू था, जो शुरू में मुझे डांटते और लाड़ करते उनकी आंखों में अपने आप आ जाता था—तुम्हें वहां की कभी याद तो आती होगी?

—उन बातों की याद तो कभी नहीं आयी जिन्हें मैं वहां से ले कर भागा था.

—क्या कहा? उनकी आंखों में शरारत थी.

—जिन बातों की कभी चुप के से याद आयी भी उन्हें मैं उन दिनों नहीं देख सका. जिन बातों से हम दुखी होते हैं, जो हमें भावुक बनाती हैं, वही बातें आगे आ कर हम भूल जाते हैं और वे बेजान बन जाती हैं. जो बातें कभी चोरी से, चुपके से याद आती हैं, वह दूसरी बातें होती हैं, जिनके प्रति उन दिनों हमें पता भी नहीं होता जब वह हमारे सामने हो रही होती हैं: वह चौंक कर मुझे देखने लगे. उनकी आंखों से शरारत गायब हो चुकी थी. वह अजीब निगाहों से मुझे टकटकी बांध कर देख रहे थे—उन दिनों, जब किसी दिन चाचा बहुत सुरूर में होते तो वह बैंजो ले कर आंगन में बैठ जाते और घंटों बैंजो बजाते. मदहोशी में इतना डूब जाते कि उन्हें किसी दूसरी चीज की खबर न रहती. मैं भी धीरे-धीरे उनके साथ आवाजों में खो जाता जो तारों की झनझनाहट से निकलती. कभी वह चौंक कर रूक जाते, सिर उठा कर इधर--उधर देखते—जैसे नींद से जागे हों. वहां मेरे सिवा कभी भी कोई दूसरा नहीं होता था. सभी ऊंध कर सो जाते. वह थके हुए कुछ सोचते और मेरे सिर पर दुलार से हाथ फेरते और बैंजो परे कर देते. कभी बैंजो छोड़ कर गाने लगते. बीच बीच में बुदबुदाते तू भी गा— पगले मैं कुछ भी नहीं. कोई भी नहीं बंदे. तू भी नहीं— यही एक लुत्फ है. मुझे अपनी ओर खींच लेते— तुझे मार पड़ती है. तू भी मुझे मार. दो-तीन हाथ अपने चेहरे पर मारते—तू मुझे क्यों नहीं मारता? कभी रोने लगते और अपने अतीत की गोपनीय और फोश बातें सुनाने लगते. कभी अपनी दर्दनाक आवाज में रात के सन्नाटे को छेद कर उदास बना देते. "दुनियां में हूं, दुनिया का तलबगार नहीं हूं"—नशा उतरते ही वह हमेशा अपनी पुरानी दुनिया में लौट आते और यकीन करना कठिन होता कि वह बातें उन्होंने कहीं थीं.

—बिलकुल नई तसबीर. तुम खुद ही बताओ जो बातें तुमने कही हैं, उन्हें सुन कर कोई कह सकता है, यह उन्हीं की असल शक्ल है जो एक खूंखार भेड़िये की तरह हमें मारा करते थे. तुम ही बताओ, जब सब कुछ बदल चुका है, वह बातें भी याद नहीं रहीं. तब भी यह खिड़कियां क्यों खुल जाती हैं. उन्होंने हंसते हुए खिड़की की सलाखों को पकड़ लिया और अपनी भरी हुई आंखों को उधर घुमा लिया. चाचा की नई शक्ल उन्हें दूर तक छू गयी थीं. बाहर से आती हुई रोशनी से उनकी आंखें चौंधिया गयीं. — आज चाचा भी हमारे सामने होते तो हमें न पहचान पाते. वह बराबर हंसते जा रहे थे. उनके उठे हुए हाथ की छाया दीवार पर भागती हुई नाच रही थी. जो अभी घटा वह मुझे बड़ा नाटकीय और वापस न लौटने वाला लगा. लेकिन फिर भी इस बात से तो इन्कार नहीं था कि यह है तो सच ही . एक बात और मेरी समझ में आ रही थी कि आदमी क्रोध में नाटकीय और कृत्रिम कैसे बन जाता है. जबकि सब कुछ पीछे रह जाता है और खुद वह अपनी छोटी दुनिया में रोज बदलता रहता है. □□□

सी– १०४३, महानगर,
सेक्टर– बी, लखनऊ. २२६००६

एक गजल

● महेश अनघ

नींद भर हम सो न पाये जिंदगी भर में.
इस फिकर में, दाग न लग जाये चादर में.

इस कदर कमरा सजाया है उसूलों से.
पांव फैलाना मना अब हो गया घर में.

हाथ अपना कलम अपनी, किस्मतें अपनीं.
लिख लिया जैसा बना हमने मुकद्दर में.

खुद सजायी हैं अदब की महफिलें हमने.
जोश की बातें जहां होती दबे स्वर में.

खोल कर कुछ कह न पाने का नतीजा है.
आग, पानी से निकलती है समंदर में.

एक पंजाबी लघुकथा

इज्जत

● रामसरूप अणखी

उस दिन चंदासिंह घर पर ही था. तिक्खड़ दुपहरी ढलने लगी थी. वह खुले बरामदे में चारपाई पर एक करवट लेटा हुआ था. धीरे-धीरे पंखे को झुला कर चिपचिपे मुंह पर से मक्खियां उड़ा रहा था. एकदम घड़घड़ाहट-सी उसने सुनी. भागती हुई किसी स्त्री की झलक सी मिली थी. हाथ में दुपट्टा. कुरता तो था, लेकिन सलवार?

वह चारपाई से उठ कर आंगन में आ गया.

—अरी बोल री! तू तो चरनो के पास चादर काढ़ने गयी थी! यह क्या गुल खिला आयी?. . . श्यामो का स्वर कुछ ऊंचा था.

चंदासिंह के कानों में घूं-घूं होने लगी—यह तो उसकी बेटी विद्दो थी! वह आंगन से हट कर भीतर की ओर मुड़ा. विद्दो दूसरी सलवार पहन कर जल्दी-जल्दी नाड़ा बांध रही थी. श्यामो अब धीमे स्वर में विद्दो को गालियां दे रही थी और अपनी जांघों पर दोहत्थड़ मार-मार कर बेहाल हुई खड़ी थी.

—क्या बात है? चंदासिंह कड़का.

—बात तो दिख ही रही है. मिट्टी डाल दे. चुप ही भली! श्यामो ने कहा.

चंदासिंह के दिमाग में जैसे कोई भूत घुस आया हो. दीवार के पास ही पड़ा कपड़े धोने वाला थापा उसने उठाया और विद्दो की बांह पर दे मारा. एक जांघ पर भी. श्यामो छुड़वाने लगी तो दो-तीन थप्पड़ उसने उसको भी जड़ दिये और धक्का दे कर उसे दूर फेंक दिया.

विद्दो मचली हुई-सी पड़ी रही. न चिल्लायी और न ही आंखों से आंसू बरसाये. श्यामो जमीन से उठ कर विद्दो के ऊपर लेट गयी. चंदासिंह ने हाथ रोक लिया. थापे को उसने चारपाई पर दे मारा. वह वहां से बाहर आंगन में चला आया. और फिर अपनी पहली वाली खाट पर.

चंदासिंह गांव का धाकड़ जाट था. गांव में उसका ब्याजू पैसा आम चलता था. दो लड़के थे उसके. बड़े का ब्याह हो चुका था. दोनों बेटे मिल-जुल कर खेती करते थे. बेटी बस एक ही थी. यही विद्दो. सगाई हुए चार साल हो चुके थे, पर अभी ब्याह नहीं हुआ था.

विद्दो पड़ोस में ही चार घर छोड़ कर चन्नण छींबे के घर अपनी सहेली चरनो के पास चादर की कढ़ाई के लिए जाया करती. आंख बचा कर वह वहां से उठती और कुम्हारों की खोली में जा घुसती. चौबारे की मोरी में बैठा मुंदे का लड़का सुरजीत उसका इंतजार कर रहा होता.

गिंदर बग्गा कई दिनों से लड़की की ताड़ में था. आज पीपल की जड़ों में छुपा-सा वह जाने कब से बैठा था. जब लड़की खंडहर की तरफ बढ़ी और उधर सुरजीत ने ऊपर वाली छत से नीचे छलांग लगायी, गिंदर सहज भाव से उठ कर चल दिया. उसके हाथ में एक लंबी-सी लकड़ी थी. सलवार मिट्टी की एक ढेरी पर पड़ी थी. गिंदर आगे बढ़ा. लकड़ी में अड़ा कर उसने सलवार उठा ली और तेजी से खंडहर से बाहर आ गया. सुरजीत ने उसकी पीठ देखी. खंडहर में से तुरंत निकल कर वह भी तीतर हो गया. खंडहर के बाहर आ कर विद्दो ने गिंदर को धीमी-सी आवाज दी—चाचा!. . .गिंदर ने जरा-सी गरदन घुमा कर पीछे की ओर देखा और दीवार में लकड़ी का सिरा अटका कर बांह को सिर से ऊंचा कर लिया.

चंदासिंह माथा थामे बैठा था. बेटी ने उसे जीने योग्य नहीं छोड़ा था!

उनके कानों में आवाजें आयीं. लोगों की कचर-कचर. छोटे-छोटे लड़कों की हंसी. कोई एक ऊंचे स्वर में बोल रहा था—बाहर निकल कर देख रे, बड़े सरदार! माथे से लगा कर देख रे छोकरी का झंडा! बाहर आ रे चंद, नब्बे ले कर सौ पर अंगूठा लगाये तेरी बही पर!

चंदासिंह बाहर आया.

गिंदर ही बोला—पहचान लो, चंदासिंह, सलवार तुम्हारी है?

सारी भीड़ खिलखिला कर हंस पड़ी.

मां-बेटी भी पीछे आ खड़ी हुईं.

श्यामो गालियां दे रही थी. विद्दो गालियां दे रही थी. उनके सामने गिंदर को बात ही नहीं सूझ रही थी. चंदासिंह ने गिंदर के हाथ से लकड़ी छीन ली. सलवार नीचे गिर पड़ी.

—किसकी उठा लाया रे तू यह सलवार? क्या स्वांग धरा है यह तूने? यह हमारे दरवाजे पर ही क्या खेल खल रहा है तू!

गिंदर के मुंह में जैसे जबान ही नहीं थी. अब लोग गिंदर पर हंस रहे थे.

—बोल गिंदर अब मुंह से! भीड़ में से किसी ने कहा.

—यह सलवार आपकी लड़की की नहीं है? गिंदर ने चंदासिंह से पूछा.

—तेरी बहन की होगी जो कुंआरी है! या तेरी बेटी की! हमारी सलवार यह कैसे हुई रे कंजर! श्यामो एड़ियां उठा कर बोली.

—थोबड़ा तोड़ दूंगा साले का! कौन कहता है यह सलवार हमारी है? चंदासिंह के मुंह पर पूरा गुस्सा था. लोग चुप खड़े थे. वे मुसकरा रहे थे. जाने गिंदर पर, या चंदासिंह पर.

गिंदर पीठ घुमा कर भीड़ में से खिसक रहा था.

(अनुवाद : सुदीप) □□□

सारिका ~~मासिक~~ ◦ सारिका पाक्षिक ◦ सारिका ~~मासिक~~ ◦ सारिका ~~मासिक~~ ◦ सारिका पाक्षिक ◦ सारिका ~~मासिक~~ ◦ सारिका पाक्षिक ◦ सारिका पाक्षिक ◦ सारिका ~~मासिक~~ ◦ सारिका पाक्षिक ◦ सारिका पाक्षिक

सारिका के विशाल पाठक परिवार के लिए खुशखबरी

सारिका ~~मासिक~~ पाक्षिक ✓

पाठकों के असीम स्नेह को ध्यान में रखते हुए
और उन्हें भारत और विश्व की तमाम साहित्यिक
गतिविधियों का प्रामाणिक और बेहतर जायजा
देने के ख्याल से हमें सारिका को पाक्षिक
बना देने पर मजबूर होना पड़ा है...

सारिका

बहुत जल्द ही पाक्षिक होने जा रही है !

पाक्षिक सारिका की प्रकाशन तिथि की प्रतीक्षा कीजिए !

घिसे हुए पुर्जे

वीरेंद्र सक्सेना

दो अक्तूबर को दोहपर का खाना खा कर वह उठा ही था कि दरवाजे पर टैक्सी रुकने की आवाज हुई. कुछ घबड़ाहट, कुछ उत्सुकता में उसने ड्राइंग रूम का परदा हटा कर झांका और यह देख कर संतोष एवं तृप्ति का अनुभव किया कि टैक्सी से उतर कर जो व्यक्ति गेट के भीतर जा रहा था, वह और कोई नहीं उसका बचपन का दोस्त रामनाथ था.

और ड्राइंग रूम में भीतर घुसते ही उसने दोस्त को गले लगा लिया तथा बेटे को आवाज दे कर कहा—-मम्मी से कहो, बंबई वाले रामनाथ अंकल आये हैं.

उसकी पत्नी जब तक साड़ी बदल कर और क्रीम-पाउडर की एक और पर्त जमा कर ड्राइंग रूम में आयी, तब तक रामनाथ कमरे में रखे टेलिविजन और फ्रिज पर नजर डाल चुका था. पत्नी को देख कर बोला—-कहिए भाभीजी, मजे में तो हैं.

—हां सब ठीक है. और आपके यहां भी सब लोग ठीक-ठाक हैं? भाभीजी कैसी हैं? उन्हें साथ क्यों नहीं लाते आप?

—अरे भाभीजी, रामनाथ जोर से हंसा, बिजनेस के सिलसिले में आता हूं यहां, सो उन्हें कहां साथ लिये फिरूं?

—क्यों? उन्हें ला कर यहां छोड़ दिया कीजिए और फिर आप चाहे जहां बिजनेस के लिए जाइए.

—-अच्छा, अगली बार आऊंगा तो जरूर साथ लाऊंगा. इस बार वायदा रहा.

—देखिए, वायदा पक्का कीजिए, झूठा नहीं.

—-अजी पक्का क्या, बिल्कुल पक्का समझिए. रामनाथ ने हंसते हुए कहा जिस पर वह और उसकी पत्नी भी हंसने लगी.

कुछ देर बाद पत्नी तो औपचारिकता पूरी करके अंदर के कमरे में चली गयी और दोनों मित्र घुलमिल कर धीमे-धीमे बातें करने लगे.

—-आज की रात कोई जश्न हो जाये. . .

—मैं तैयार हूं, पर यार तुम्हें मालूम है, आज गांधी बाबा का बर्थ डे है यानी ड्राइ डे और आज ही की तारीख से सरकार की ओर से मद्य-निषेध संबंधी नयी नीति की घोषणा हुई है, यह भी तुम्हें पता होगा!

—-सब पता है यार, ज्यादा बोर न करो. . . तुम्हारा फ्रिज क्या बस कोका कोला रखने के लिए है?

—हां यार, उसने स्वीकार किया, घर पर रखने की पत्नी की ओर से इजाजत नहीं है. वह कहती है, कुकर्म जो भी करो, घर से बाहर करो!

—-तब तो लगता है तुमने बीवी को काफी सर चढ़ा रखा है. भई, मैंने तो अपनी पत्नी को साफ कहा हुआ है कि तुम जो इतने ऐश-आराम से जीवन बीताती हो, मनचाहे जेवर बनवाती हो और इंपोर्टेड साड़ियां खरीदती हो, उसके लिए अंधाधुंध पैसा क्या सत्कर्म करके कमाया जा सकता है? जब मैं नाजायज तरीकों से पैसा कमा सकता हूं तो दूसरे भी नाजायज काम कर सकता हूं और उसके लिए रोक नहीं सकतीं. शराब तो शराब, मैं चाहूं तो अपने ड्राइंग रूम में किराये की लड़की भी ला सकता हूं और पत्नी से उसके लिए किसी इजाजत की जरूरत नहीं समझता.

सुन कर वह अत्यंत विस्मय से अपने मित्र की ओर देखने लगा. क्या यह वही रामनाथ है जो छात्र जीवन में हर समय आदर्शों और सिद्धांतों की बातें किया करता था तथा कहा करता था कि प्रत्येक पुरुष को एक समय में एक ही पत्नी रखना चाहिए और उसी के प्रति पूरी तरह से वफादार भी होना चाहिए. आज यह कहां से कहां पहुंच गया, इसके बारे में क्या कोई दूसरा कल्पना कर सकता है!

पर स्वयं वह भी तो कहां से कहां पहुंच गया है! अपने छात्र जीवन में वह भी तो पक्का आदर्शवादी था. हर समय समाज को बदलने या उसमें सुधार लाने की बातें किया करता था. सुधार की यह धुन उन दिनों इस बुरी तरह हावी थी उस पर कि उसने शिक्षा पूरी करके किसी और नौकरी की तरफ आंख उठा कर न देखा था और एक कालेज में लेक्चरर बन गया था. लेक्चरर होने के बाद उसने एक भले लड़के की तरह केवल एक लड़की से प्रेम किया था तथा उसी से शादी भी कर ली थी. उस समय उसने इस बात का बिल्कुल ही विचार न किया था कि वह लड़की एक निर्धन परिवार की है और उसकी जाति की भी नहीं है.

वह अचानक संवेदनशील हो कर उन पुराने दिनों के बारे में ही सोचने लगा कि रामनाथ ने उसे दुबारा एक झटका दिया— अरे यार, किस सोच में पड़ गये? शाम को तुम मेरे होटल के कमरे में आना, वहां सब इंतजाम हो जायेगा.

—पर होटल में भी शायद आज के दिन सप्लाई न करें.

रामनाथ उसके कान में फुसफुसाया, — तुम आना तो. 'डिप्लोमेट' का एक 'हाफ' तो मेरी अटैची में ही पड़ा है. आज के लिए तो वही काफी होगा. पर उसके बाद हम लोग डिनर कहां लेंगे, यह तय कर लो.

—-अरे हां, तुम इतने दिनों बाद मिले हो, इस खुशी में डिनर मेरी ओर से रहेगा, और वह ऐसी जगह होगा कि तुम भी याद रखो.

—ऐसी क्या याद रखने की बात है? कैबरे

दिखलाओगे, यही न? वे अपन ने बहुत देखे हैं कलकत्ते में.

इस अपेक्षा से उसे कुछ निराशा-सी होने लगी, पर उसने साहस न छोड़ा. बोला— कैबेरे दिखाऊंगा, पर ऐसा-वैसा नहीं. एक जगह बिल्कुल, यानी कम्प्लीटली नेकेड कैबेरे होता है, वहां ले चलूंगा तुम्हें और तुम देख कर दंग रह जाओगे.

—अरे दिल्ली में नैकेड कैबरे कहां? स्किन कलर की बिकनी जरूर रह जाती होगी आखिर में. तुमने अंधेरे में ठीक से नहीं देख पाया होगा.

—नहीं भाई, मैंने अपनी आंखों से बिल्कुल नजदीक से देखा है. उस रेस्टारेंट में रोशनी भी कम नहीं की जाती और अंतिम तीन शो में वे बिल्कुल नंगी हो जाती हैं. तुम भी अपनी आंखों देख लेना आज, फिर बात करना.

—अच्छा देख लेंगे. पर मैंने भी दोस्त इस छोटी-सी जिंदगी में ऐसे-ऐसे खेल और नाच देखे हैं पैसे के बल पर कि क्या बताऊंगा. और उन्हीं अनुभवों के बल पर अब मैं पूरे विश्वास से कह सकता हूं कि जब तक पूंजीवादी व्यवस्था इस देश में है, तब तक न तो सेक्स का ऐक्सप्लायटेशन रुक सकता है और न ही किसी दूसरे प्रकार के शोषण को समाप्त किया जा सकता है. रामनाथ में इस बार मानो बाहर पंद्रह वर्ष पुराना रामनाथ लौट आया था.

* *

कुछ देर बाद चाय-नाश्ता करके रामनाथ तो चला गया क्योंकि उसे किसी संबंधी से मिलने भी जाना था, पर वह यानी महेश कुछ पुरानी यादों में खो गया.

महेश को वह दिन याद आया जब सात-आठ वर्ष पहले वह मात्र एक लेक्चरर था और रमानाथ आज ही की तरह उससे मिलने आ गया था. तब वह एक छोटे-से दो कमरों के मकान में रहा करता था और ड्राइंग रूम में फ्रिज और टी. वी. के स्थान पर बस लाइब्रेरी से लायी गयी किताबें ही किताबें दिखाई देती थीं. उसमें फर्नीचर भी नाममात्र को ही था क्योंकि शादी में उसे कुछ मिला नहीं था और सूखी नौकरी में घर का खर्च चलाना ही मुश्किल होता था, फिर फर्नीचर कहां से खरीदता. उसकी पत्नी भी अत्यंत सादा साड़ी में बेथैल कप-प्लेटों में रेडीमेड चाय बना कर सामने ले आयी थी जिसे देख कर रामनाथ ने कुछ मुंह सिकोड़ कर कहा था — अरे भाभीजी आपने बेकार कष्ट किया, मैंने तो चाय आजकल छोड़ रखी है. बस कॉफी पीता हूं.

—कॉफी तो हमारे यहां कोई पीता नहीं है, उसकी पत्नी ने संकोच से कहा था.

—कोई बात नहीं, रामनाथ एक कीमती सिगरेट मुंह में दबा कर लाइटर से जलाते हुए बोला था, मैं भी पहले बस दूध ही पीता था, पर आप जानती हैं कि बड़े लोगों का दिन-रात का साथ रहता है तो दिन में कॉफी और रात में व्हिस्की की ऐसी आदत पड़ गयी है कि छूटती ही नहीं.

साला. महेश चंद्र ने मन ही मन कहा था और

● सतीश चव्हाण

उसका मन हुआ था कि अपने दोस्त को और भी भद्दी और गंदी गालियां दे कर कमरे से बाहर कर दे. पर न जाने क्या सोच कर चुप रह गया था.

और फिर रामनाथ के वापस जाते ही उसकी प्रेमिका-पत्नी भी उस पर ताने कसने लगी थी— क्या जरूरत है ऐसे लोगों से दोस्ती रखने की?

—अरे वह मेरा बचपन का दोस्त और सहपाठी रहा है और मैंने उसके वे दिन भी देखे हैं जब वह एम. कॉम. में थर्ड डिवीजन के बाद कानपुर की किसी मिल में सौ रुपए महीने की क्लर्की करता था.

—तो आपके दोस्त तो क्लर्क से ऊपर उठ कर 'एसोशिएटेड इंडस्ट्रीज' में सेल्स मैनेजर बन गये पर आप अभी वहीं हैं जहां से नौकरी शुरू की थी. क्या फायदा हुआ आपका एम. एस.-सी. में फर्स्ट डिवीजन लाने का? रहते जिंदगी भर लेक्चरार ही.

—तो तुम भी पैसे को इतना महत्व देती हो. आदमी की समाज में इज्जत का कोई महत्व नहीं है?

—इज्जत भी समाज में पैसे वाले की ही होती है, कह कर पत्नी सहसा चुप हो गयी थी, पर महेश को यह बात काफी देर तक कचोटती रही.

इस घटना के कुछ दिनों बाद ही जब संघ लोक सेवा आयोग से आयकर अधिकारियों के लिए एक विशेष प्रतियोगी परीक्षा की घोषणा हुई तो महेश ने भी फार्म भर दिया था तथा जी-जान से उसकी तैयारी में जुट गया था. मौका से वह उसमें चुन भी लिया गया और तब

उसे इस बात का बहुत अफसोस हुआ कि वह कालेज से निकलते ही आई. ए. एस. के कंपटीशन में क्यों नहीं बैठा था. शायद तब उसने अतिरिक्त धन और अधिकार के महत्व को नहीं समझा था. सचमुच वह कितने बड़े धोखे में था.

नये विभाग में आ कर थोड़े ही अर्से में वह वहां के सारे दांव-पेच सीख गया तथा धीरे-धीरे पूंजीपतियों के इशारों को इस सहज भाव से समझने लगा कि उन्हें किसी प्रकार की परेशानी नहीं होती थी और उसका अपना भी भला हो जाता था. घर में आवश्यकता, आराम और फिर विलासिता की अनेक चीजें आयीं, पत्नी के नये जेवर और बच्चों के नये कपड़े बने और बाद में उसकी कुछ शामें भी इस प्रकार गुजरने लगीं जिनकी इससे पहले उसने कभी कल्पना या आकांक्षा भी न की थी.

★ ★

शाम को लगभग छह बजे वह होटल पहुंच गया. रामनाथ ने उसे देखते ही पहले तो हाथ मिलाया फिर पास खींच कर चिपटा-सा लिया. सोफे पर बिठाते हुए बोला —अब बोलो क्या प्रोग्राम है ?

—प्रोग्राम क्या है, बस पहले तो यहीं बैठ कर थोड़ा मूड बनायेंगे, फिर चल कर उस होटल में डिनर लेंगे जहां पच्चीस रुपयों में तुम्हारे सामने पांच लड़कियां नंगी नाचेंगी.

—लेकिन यार, 'स्ट्रिपटीज' का असली मजा तो तब आता है जब ड्रिंक्स वहीं टेबल पर सर्व हो.

—यह तो दिल्ली में संभव नहीं है फिलहाल. पर ड्रिंक्स तो अपन लेकर ही चल रहे हैं. उसका सरूर तो रहेगा ही.

—सरूर क्या खाक रहेगा, जब तक वहां पहुंचेंगे सब खत्म हो चुगा होका. खैर देखा जायेगा—अभी से मूड क्यों खराब करें. कह कर रामनाथ उठा और अटैची से हाफ-बाटल निकाल कर मेज पर रख दी. उसे दो गिलासों में ढालते हुए पूछा, मैं तो 'नीट' लूंगा, तुम?

—पानी के साथ कह कर उसने स्वयं ही जग उठा कर थोड़ा पानी मिला लिया.

इसके बाद दोनों ने गिलास टकराये और धीमे-धीमे घूंट भरने लगे.

—तुमने कुछ नये अनुभव सुनाने को कहा था, कुछ देर के मौन के बाद उसने रामनाथ को छेड़ा.

—अरे हां सुनो, कह कर रामनाथ सुनाने लगा, कंपनी के काम से अकसर दूसरे शहरों में जाना होता ह और वहां मैं अच्छे होटलों में ठहरता हूं. इन होटलों में सारी सुविधाएं तो रहती ही हैं, रात को साथ सोने के लिए जरूरत हो तो अच्छी से अच्छी लड़की भी कमरे में भेज दी जाती है, यह तो तुम्हें मालूम ही होगा.

—हां, मालूम है, दिल्ली में भी ऐसे कई होटल हैं जहां फोन करके लड़कियां बुला दी जाती हैं. मैं भी दो-तीन बार किसी के माध्यम से ऐसे अड्डों पर गया हूं, पर उनमें ज्यादा आनंद मुझे नहीं आ पाता, क्योंकि जल्दी-जल्दी में सब कुछ निपटाना होता है. वह भी सरूर में आ कर खुलता जा रहा था तथा मित्र के सामने अपने अनुभवों को तनिक रोचक ढंग से पेश करना चाहता था.

—तुम भी रहे बस चुगद ही. अरे जब जल्दबाजी करोगे तो आनंद क्या खाक आयेगा? होटल में रात भर रुको. रात भर के लिए 'काल गर्ल' को बुक करो, तब आयेगा पूरा आनंद. उस आनंद में बढ़ोतरी के लिए साथ में एक 'डिप्लोमेट' की बोतल भी तो चाहिए.

—अच्छा तुम अपना वह अनुभव सुनाओ, उसने बीच में टोक कर बात काट दी.

—अच्छा, हां, रामनाथ रस लेते हुए बोला, यह अनुभव कलकत्ता के एक काफी बड़े और मशहूर होटल का है, जहां मैं ठहरा था. वहां सबेरे उठते ही चाय के लिए बैरा आया और बोला—आपको मसाज तो नहीं कराना है ? मैंने पूछा—कैसा मसाज? तो वह बोला—मसाज के लिए हमने खूबसूरत छोकरी रखा हुआ है. करा लीजिए सर, सारा थकान दूर हो जायेगा. मैं रात को काफी थका हुआ पहुंचा था वहां और जाते ही सो गया था. पर थकान अभी तक दूर नहीं हुई थी, अतः 'हां' कह दी.

इतना कहने के बाद रामनाथ ने गिलास में बची हुई व्हिस्की खत्म की, एक और सिगरेट सुलगायी और फिर आगे कहना शुरू किया—लड़की ठीक वक्त पर आ गयी. लड़की क्या तीसेक वर्ष की भरी-पूरी जवान औरत थी. आते ही उसने दरवाजा अंदर से बोल्ट करके अपना गाउन उतार कर एक ओर धर दिया और टू-पास बिकनी में मेरे सामने आ गयी. कहा—सर आप भी कपड़े खोल दीजिए. मैंने उससे कहा—जो कुछ करना है अपने आप करो और मैं बिस्तर पर सीधे लेट गया. वह भी बिस्तर पर ही आ गयी. पहले तो काफी देर तक हाथ-पैरों की मालिश करती रही चिकने पाउडर के साथ. फिर कपड़े हटा कर कमर, कूल्हे और पीठ को दबाकर थकान दूर की और सबसे बाद में—वही तो खास बात है. . .

—क्या?

—यही कि उसने मेरे शरीर का अंग-अंग और पोर-पोर इतने अच्छे ढंग से दबाया–सहलाया कि मुझे बहुत आनंद आया.

—पर खास बात क्या थी? उसकी उत्सुकता अब चरम सीमा पर थी.

—तुम साफ-साफ ही क्यों जानना चाहते हो खुद ही समझ लो, क्या हुआ होगा?

—तुमनें खुद उससे ऐसा करने को कहा होगा और उसके लिए ऐक्स्ट्रा टिप किया होगा.

—नही भाई, रामनाथ बोला, जो कुछ भी उसने किया अपने आप ही किया था, मैंने उससे फर्माइश किसी बात की नहीं की.

—अच्छा इस 'मसाज' के पैसे कितने लगे?

—मात्र पन्द्रह रुपए. है न सस्ता?

—तुम साले लगता है बिलकुल 'परवर्ट' हो गये हो और थोड़े दिनों में औरत के साथ स्वाभाविक संबंध के लायक ही नहीं रह जाओगे.

—और तुम रह जाओगे? मैं जिस अंधे रास्ते के छोर पर जा पहुंचा हूं, तुम भी तो उसी रास्ते पर बढ़े चले जा रहे हो. हमारे समाज में नाजायज तरीकों से पैसा कमाने की एक होड़-सी लगी हुई है और सब लोग गिरते-पड़ते इसी पैसे के पीछे दौड़ रहे हैं. क्या नहीं?

दूसरा पैग भी समाप्त हो गया. रामनाथ ने शेष बची, व्हिस्की खाली गिलासों में उड़ेल दी और उत्तेजित हो कर कहने लगा—सरकार अगर वास्तव में समाजवाद लाना चाहती है तो उसके लिए देश का सारा काला धन बाहर निकालना होगा. पर उसके लिए सरकारी मशीनरी भी ऐसी होनी चाहिए जिसमें एक भी घिसा पुर्जा न हो.

—अच्छा अब यह भाषणबाजी बंद करो और जल्दी से खत्म करके तैयार हो जाओ. यों ही बातें करते रहे तो डिनर भी रह जायेगा और कैबरे भी नहीं देख पाओगे. उसने रामनाथ को सचेत किया.

—अबे छोड़ यार, क्या रखा है कैबरे में! इतनी सारी औरतों के नंगे जिस्मों को इतने कोणों से देख रखा है कि उनमें अब कोई रुचि ही नहीं रही. तुम इतने दिनों बाद मिले हो, क्यों न यहीं बैठ कर कुछ और बातें करें. खाना भी यहीं मंगवाये लेते हैं, नीचे से.

—जैसी तुम्हारी इच्छा, कहते हुए वह उठा और बाथरूम चला गया. जब लौट कर आया तो देखा रामनाथ बिस्तर पर औंधा पड़ा रो रहा है. देख कर वह सकपका गया और सोचने लगा इसके नशे को कम करने के लिए क्या किया जाये? □□□

डब्ल्यू जेड-४३३१ ४६१, शिवनगर,
नयी दिल्ली-११००१८

दो ग़ज़लें • महेश अनघ

एक

जिंदगी जैसे बने जीना हकीकत है.
और बाकी सब किताबों की नसीहत है.

रास्ते जितने बने जिद ने बनाये हैं.
लीक तो आखिर बुजुर्गों की वसीयत है.

ओढ़ना बेहद जरूरी है नकाबों को.
आदमी की चाह नंगी है, मुसीबत है.

एक अदना आदमी भी बहुत कर लेता.
ऐन मौके पर अड़ी अफसोस, इज्जत है.

तर्क ने कितना बदल डाला सचाई को.
पर नहीं एहसास मर पाया, गनीमत है.

दो

इस अंधेरे में किधर को जाइए.
एक सपना ओढ़कर सो जाइए.

प्रश्न चिह्नों को नहीं सह पाओगे.
इसलिए अंतर्मुखी हो जाइए.

ढूंढ़ती हैं तुम्हें जिम्मेदारियां.
कुछ समय तक भीड़ में खो जाइए.

वहां कोई देखने वाला नहीं.
गलतियों के दाग सब धो जाइए.

सख्त पहरा है तुम्हारे लक्ष्य पर.
कर सको या मर सको तो जाइए.

समय-सर्प

अनय

बात इस सीमा तक परिणाम में टेढ़ी हो सकती है, माइकेल सेन कभी सोच भी नहीं सकते. अपने अंधेरे कमरे में कभी तन कर खड़े होते हैं, फिर ठंडे एहसास के साथ कुछ सोच कर बैठ जाते हैं. खिड़की के टूटे हुए कांच के टुकड़े कमरे में बिखरे पड़े हैं. तनी हुई मुट्ठियों से टूटी हुई खिड़की को देखते हैं. टूटे हुए शीशे के बाहर फैला हुआ गहरा अंधेरा दिखाई पड़ता है. अंदर से आवाज आती है, 'माइकेल सेन तुम अंधेरे के कैदी हो. तुम्हारे हाथ-पैर अंधेरे में हैं. यही नहीं तुम्हारा दिमाग भी अंधेरे में बंद है. यू आर नो मोर मैन. हा—हा—हा!' उनके गले में बैठ कर कौन हंस रहा है, खोज नही पाते. कहना चाहते हैं. समझ नहीं पाते हैं कि किससे कहें? क्या कहें?

आसपास ही नहीं शहर में भी ऐसे लोग कम ही हैं, जिनसे बात करने का उत्साह माइकेल सेन के मन में रहता है. मजबूरी में उनको उन तमाम लोगों से बातें करनी पड़ती हैं, जिनके प्रति उनके मन में गहरी घृणा रहती है. अक्सर वह अपने फ्लैट में ही रहते हैं और बुढ़िया होती हुई बीवी से लड़ते रहते हैं. खुशी के क्षणों में अपनी प्यारी कुतिया के साथ खेलते रहते हैं. किसी सुखद, शांत क्षण में यदि कुतिया से प्यार कर अपनी सुंदर चमकदार पुरानी गाड़ी को शानदार नजरों से देख रहे होते, और उसी तरह पत्नी भी कर रही होती तो बड़ ही गमगीन हो कर दोनों अतीत के समुद्र में तैरने लगते हैं. यह वह अतीत होता हैं, जब अंग्रेज हिंदुस्तान में थे. इस क्रिश्चियन कालेज में सभी प्रोफेसर अंग्रेज या क्रिश्चियन थे. आधा मील के एरिया में फैले हुए कालेज में सेन साहब और उनकी मेम साहब के अनेक दोस्त थे. हर शाम रंगीन होती थी, सेन साहब अंग्रेजी के नौजवान अध्यापक थे. अंग्रेजी पढ़ाने वाले सभी अंग्रेज ही थे. सेन साहब भी कम अंग्रेज नहीं हैं. अब तो हाथ से दालभात खाने वाले अंग्रेजी पढ़ाते हैं.कालेज एरिया में उन दिनों कोई भी देशी भाषा नहीं बोलता था. अब सब कुछ बदल गया है. सेन साहब को दुख होता है कि वह भी यदि अपने कई मित्रों के साथ पहले ही किसी तरह लंदन चले गये होते, तो इतने जाहिल लोगों के बीच न रहना पड़ता. इसे जाहिल नहीं तो और क्या कहा जायेगा? कुछ दिन पहले उन्होंने नये हिंदी टीचर से कुछ कहा. यह कहना बिलकुल मजबूरी में कहना था. स्टाफ रूम में कोई और नहीं था. अंग्रेजी विभाग के लोगों को छोड़ कर वे बोलने में सभी से उत्साह नहीं दिखाते हैं. सेन साहब की नजर में अंग्रेजी के टीचर्स को छोड़ कर बाकी सभी गंवार हैं. हिंदी टीचर की बात ने यह विचार उनके मन में पक्का कर दिया— मुझे अंग्रेजी नहीं आती, साहब. उसके मुंह से 'साहब' शब्द में सेन साहब को घृणा का भाव दिखा. दुःखी हो कर अपनी कुतिया से अंग्रेजी बोलते हुए सेन साहब ने यह बात मेम साहब से कही. मेम साहब आगबबूला हो गयीं— ये कुत्तों की औलाद हैं न. इनको हटरों से पीटनेवाले चले गये. इसीलिए ये किसी का सभ्यतापूर्वक सम्मान भी नहीं कर सकते हैं.

सेन साहब और मेम साहब को लगता है कि सारी दुनियां उनका अपमान करने पर तुली हुई है. उनके विषय में लोगों के विचार बड़े ही गंदे हैं. इसमें दोष किसी का नहीं है. यह देश ही गंदा है. इस देश में उनको क्या, उनकी कुतिया को भी सांस लेने में कठिनाई होती है. आसपास नौकरों के क्वार्टर्स हैं. देखते-देखते पुराने जमाने के अर्दली चले गये. हर बात में 'साहब-हुजूर' कह कर झुके रहते थे. अब जो नये छोकरे आये हैं, साहब नहीं कहते हैं, बाबू कहते हैं. झुकने की तो बात ही जाने दीजिए, टेढ़े रहते हैं, बुलाने पर अकड़ते हुए आते हैं. सेन साहब से ज्यादा इस बात को ले कर मेम साहब नाराज औ दुखी रहती हैं.

हर सुबह कालेज मैदान में मेम साहब अपनी कुतिया को लंबी जंजीर में बांध कर टहलती रहती हैं. साथ में साहब भी रहते हैं. पाइप पीते रहते हैं, और एक हाथ में छड़ी लिये रहते हैं. एक दिन उन दोनों की नजर नौकरों के क्वार्टरों की ओर गयी . नजर टिकी रही.अनदेखा करने का अवसर नहीं था. देखा कि एक मरियल खजुहा कुत्ता एक क्वार्टर के पास रस्सी से बांधा हुआ 'कों-कों' कर रहा है. कुत्ता देखने में बड़ा ही गंदा है. कुत्तों को ले कर साहब और मेम साहब का सौंदर्यबोध काफी ऊंचा है. उन्हें धक्का लगा, हे ईश्वर, साहब और मेम साहब ने मन में एक ही साथ सोचा, आखिर, क्या किया जा सकता है. कोई गंदा कुत्ता भी इतना गंदा हो सकता है! साहब ने मेम साहब के दर्द को समझ लिया—ठीक है मैं कुछ करूंगा.

मेम साहब चौंक गयीं. साहब क्या करेंगे? ये कमीने लोग हैं. इनको मुंह लगाना ठीक नहीं है. साहब को धीरज देती हुई बोलीं — तुम मन छोटा मत करो. भगवान इनको भले आदमियों को सताने का दंड देगा. जरूर देगा. ये लोग तुमको बाबू कहते हैं. मैं सब समझती हूं. मैं तो साहब कहती हूं. तुम्हारी तकलीफ मैं समझती हूं. साहब और मेम साहब ज्यादा देर मैदान में टहल नहीं सके. मन में दर्द था. दिमाग में आहत अभिमान का भाव दर्द को बढ़ा रहा था. सीढ़ियों में चढ़ते हुए दोनों ने देखा कि बंशी कुत्ते को रस्सी से पकड़े हुए, सिर पर गमछा बांधे हुए सड़क की ओर जा रहा है — ये बंशी बैरा साबसे बदमाश है.

जिस कोठी में सेन साहब रहते हैं, वह चौमंजिली कोठी है. इसमें चार परिवार रहते हैं. कोठी फूलों और हरियाली से घिरी हुई है. फूलों की सुगंध हवा के साथ तैरती रहती है. सुगंध की सीमा के उस पार सेन साहब के न चाहते हुए इनसानी बस्ती बस गयी है. बहुत समय पहले यह जगह खाली थी. इस बस्ती में इतने गंदे लोग रहने लगे हैं कि इस साहबी कोठी से उस ओर खुलने वाली खिड़कियां बंद रहने लगी हैं. बस्ती के लोगों के

• सतीश चव्हाण

आतंक से बचने के लए इन्सानी दया के नाम पर, प्रिंसिपल ने बस्ती की ओर की दीवाल के पास टीन की कोठरियां बनवा दी हैं. इन कोठरियों में नौकरों को रहने का आर्डर दे दिया गया है.

आसपास की फैली हुई गंदी बस्ती के नजदीक सुगंध और हरियाली से घिरी हुई, साहबी कोठी कुटिलता से हंसती हुई अपनी नजदीकी दुनियां से अलग लगती है.

पहले सेन साहब को इस बस्ती से बड़ी चिढ़ हुई थी. उन्हीं दिनों उन्होंने यह पढ़ा कि लंदन में काले और पीले लोग, काफी गंदी बस्तियां फैला रहे हैं, तो उन्हें राहत हुई— बेचारे अंग्रेज कितनी मुसीबत में हैं. नौकरों को कोठरियां देने का उन्होंने विरोध किया था, परंतु जैसे ही उन्हें इस बात का एहसास हुआ कि इन कोठरियों से उन्हें अपनी शान बढ़ाने का असरदार मौका हाथ लगेगा और साथ ही मानवता प्रेम जाहिर करने में सुविधा होगी, उनका विरोध शून्य हो गया. फायदे के लिहाज से इन कोठरियों में रहने वाले चपरासियों को वह अपना नौकर समझते थे, और अपने घर जाने वाले मेहमानों से इन लोगों की गरीबी का वर्णन कर दुःखी हो जाया करते थे. साथ ही इस देश की गरीबी की भयानकता का वर्णन करते हुए, गरीबी दूर करने के लिए अपना दर्शन बताते. वैसे तो इन कोठरियों में पांच-छः चपरासियों के रहने की बात थी पर धीरे-धीरे इन कोठरियों की आबादी बढ़ती गयी.

चाय पीते हुए सेन साहब और मेम साहब के बीच मौन लाठी ताने खड़ा रहा. भीतर हलचल है. लावा उबलता है और दब जाता है. एक गंदा आदमी बंशी रास्ते के गंदे कुत्ते को रस्सी में बांध कर टहल रहा है. सेन साहब ने चाय का प्याला अधूरा छोड़ दिया—सुअर की औलाद!

मेम साहब पीठ सहलाने लगीं—गुस्सा करने से काम नहीं चलेगा. यह लोग बहुत शैतान हैं. तुम प्रिंसिपल से बात करो. गंदे लोगों से सीधे बात करना हम लोगों की शान के खिलाफ है.

दुनिया में बहुत सारी बातें हो रही हैं जो सेन साहब के न चाहते हुए भी हो रही हैं. उनके न चाहते हुए भी गंदी बातें उनके घर में घुस आती हैं. यही प्रिंसिपल की बात. सेन साहब की नजर में वह समझौतापरस्त और ढ़ीले आदमी हैं, जो कि इस कालेज के प्रिंसिपल को नहीं होना चाहिए. सेन साहब जिन बातों को रोकना चाहते हैं, वह चाहते हैं कि प्रिंसिपल उन्हें रोकें. इसी बात से प्रिंसिपल के प्रति उनके मन में घृणा हर रोज बढ़ती जाती है. स्टाफ के लोगों पर प्रिंसिपल का रोब रहना चाहिए. सीधे मुंह बात करने से लोग कमजोर आदमी समझ लेते हैं. सभ्यता एक मूल्य है, यह सेन साहब मानते हैं. परंतु जो सभ्य नहीं हैं, उनके सामने सभ्यता एक ढोंग या कायरता है. प्रिंसिपल की यह कमजोरी है कि आफिस के क्लर्क और चपरासी तक आफिस में बैठे जमुहाई लिया करते हैं. शायद साहब और बहुत कुछ सोचते कि इसी बीच कालेज का चपरासी अहमद आ गया. अहमद पुरानी पीढ़ी के उन चपरासियों में से है, जो सेन साहब को साहब समझता है, और किसी के बुलाने पर उससे कहता है कि साहब ने 'सलाम भेजा है.' अहमद सेन साहब और मेम साहब को रोज सुबह सलाम करने आता है. इसी बहाने छोटे-छोटे घरेलू काम भी कर दिया करता है.

अहमद के सलाम करने पर सेन साहब के अंदर मैकाले का प्रेत-घूंसा तान कर खड़ा हो गया—अहमद मैं इन चपरासियों की कोठरियों में आग लगा दूंगा. ये लोग समझते क्या हैं?

अहमद चुपचाप भौचक्का-सा जमीन में आंखें गड़ाये खड़ा हो गया. उसे किसी बात का पता नहीं था. वह जानता था कि जो आदमी आग लगाने की सोच रहा है, वह यह भी बतायेगा कि वह आग क्यों लगाना चाह रहा है.

—तुम्हे पता है कि यह बंशी बैरा कहीं से एक कुत्ता ले आया है. बिलकुल गंदा, रोगी, मरियल. वह उसे रस्सी में बांध कर घूमता है.

—अच्छा साहब! यह तो बहुत गलत बात है. बहुत बेजा बात है. अहमद ने खीस निपोर दी.

—हां, वही तो मैं कह रहा हूं. मैं इसे बर्दास्त नहीं कर सकता हूं. सेन साहब गुर्राये.

अहमद कुछ सोचता हुआ बोला— नहीं हुजूर, आपको कुछ नहीं करना है. मैं जाता हूं. यह वक्त ठीक नहीं है. मैं उसे कुत्ते को भगा देने को कहता हूं.

अहमद चला गया. सेन साहब को राहत हुई. उन्हें इस बात का इत्मीनान था, कि बंशी में हिम्मत नहीं है, जो अहमद के द्वारा दिखाये गये भय के सम्मुख टिक जाये. वह कालेज जाने की तैयारी में व्यस्त हो गये.

कालेज की इमारत में घुसते ही उनकी नजर बंशी पर पड़ गयी. उन्हें लगा कि बंशी जान-बूझ कर उनके आने की प्रतीक्षा में खड़ा है. उसी क्षण उन्हें याद आया कि अहमद ने उन्हें आ कर यह तो बताया ही नहीं कि बंशी ने कुत्ते को भगाया या नहीं. अपनी हमेशा की आदत के मुताबिक वह तेज चाल से बंशी के सामने से गुजर गये. उन्हें पीछे से आभास हुआ कि बंशी मुस्करा रहा है. वह

गुस्से में सीधे प्रिंसिपल के कमरे में पहुंच गये. प्रिंसिपल ने भद्रतापूर्वक उठकर उनसे हाथ मिलाये. बैठने को कहा. उन्हें इस भद्रता में बनावट ही नहीं, छल भी नजर आया. लंबे समय तक वह इसे भद्रता ही समझते थे. परंतु जिस दिन उन्होंने प्रिंसिपल को टीचर्स काउंसिल के छोकरे प्रोफेसर को हाथ मिला कर कुर्सी देते हुए देखा, उसी दिन से उन्हें प्रिंसिपल का यह व्यवहार नकली लगने लगा.

—कैसे हैं? मिसेज सेन कैसी हैं? स्वीटी कुतिया कैसी हैं? प्रिंसिपल ने सिगरेट का पाकेट सेन साहब के सामने देते हुए, मुसकराते हुए कहा .

—मिस्टर राबर्ट मुखर्जी, मैं बहुत परेशान हूं. तुम हमेशा मुसकराते रहते हो. मेरी परेशानी को समझने की कोशिश क्यों नहीं करते?

—परेशानी की क्या बात हैं?

—मैं चाहता हूं कि आप समझने की चेष्टा क्यों नहीं करते हैं? मेरा मतलब है कि आपको समझना चाहिए.

दोनों के बीच धुआं था. मौन में उड़ता हुआ धुंआं. धीरे-धीरे धुंआ छंट रहा था . मौन पिघल रहा था. सेन साहब ने उदास हो कर भरे गले से अतीत की यादों को बीच में रख कर घटना का जिक्र कर दिया. सेन साहब कहते-कहते कई बार उत्तेजित हुए. राबर्ट मुखर्जी के भी गले के नीचे यह बात नहीं उतरी. उनकी पहली इच्छा हुई कि किसी के साथ वही सलूक करें जो सेन साहब सोचते हैं. कुछ सोच कर अहमद को बुलाया—बंशी को बोला?

—हां साहब बोला.

—वह क्या बोला?

अहमद चूपचाप खड़ा रहा. उसने कोई उत्तर नहीं दिया. उसके खड़े होने की मुद्रा से लग रहा था कि वह खुद ही किसी बात के लिए अपने को दोषी समझ रहा हैं.

—तुम चुप क्यों हो? तुम्हारे चुप होने की बात तो नहीं है, सेन साहब कहते-कहते कुर्सी से उठ पड़े और फिर बैठ गये..

सहमी और दबी हुई गर्दन को धीरे से ऊंचा करते हुए अहमद रिरियाते हुए बोला—हुजूर, यह बात नहीं है कि मैं चुप हूं. बात यह है कि इस टैम चुप रहना ही ठीक लग रहा है.

प्रिंसिपल ने बात की गहराई को पकड़ते हुए कहा—ओह यह बात है. मैं समझ रहा हूं.

अहमद कमरे के बाहर जाने लगा. सेन साहब आग की तरफ लाल हो उठे—आप जादूगर हो सकते हैं मिस्टर राबर्ट मुखर्जी, मैं इंसान हूं. मैं बिना बात को सुने हुए नहीं समझ सकता हूं. मुझे मालूम होना चाहिए कि बंशी ने क्या कहा है?

अहमद पशोपेश में पड़ गया. उसके सामने नंगी तलवार चमक रही थी. वह जानता है कि इस लटकने वाली तलवार से उसका कोई वास्ता नहीं है. —हुजूर, गलती माफ. बंशी कहता है कि कोई अपने घर में क्या करता है, इसकी जिम्मेदारी किसी और की नहीं होती है. वह कहता है कि सेन साहब अपने घर में कुत्ते की जगह बाघ भी पालें तो मैं कुछ नहीं कह सकता हूं. फिर सेन साहब को मेरे कुत्ते पालने से नाराज होने का कोई माने नहीं होता है. अहमद को खुशी हुई, उसे बात की कटुता कम करने में, तलवार को म्यान में बंद करने में अपनी समझ से सफलता मिली है. बंशी ने बाघ पालने की बात नहीं कही थी. वास्तव में बंशी ने सुअर पालने की बात कही थी.

गुस्से में सेन साहब कुर्सी से उछल पड़े— ठीक है. मैं देख लूंगा. मिस्टर मुखर्जी आप कुछ नहीं कर सकते हैं. आप कुछ भी नहीं करेंगे.

राबर्ट मुखर्जी के चेहरे पर चिंता की रेखाएं उभर आयीं —नहीं, ऐसी बात नहीं है. मैं सब ठीक कर दूंगा. बंशी को बुलाता हूं.

सेन साहब चले गये. जिधर हवा हो, उधर पीठ करना उनकी आदत नहीं है, ऐसा वह मानते हैं. इसीलिए जो बात कुछ भी नहीं होती है, उसे बहुत कुछ बना लेते हैं. ऐसा राबर्ट मुखर्जी का उनके विषय में खयाल है. राबर्ट मुखर्जी मुसकराये. उनके सामने अहमद खड़ा है. वह भी मुसकराया. मुखर्जी के मुसकराने के अपने कारण हैं—अहमद, सेन साहब बहुत दुखी हैं.

—हां, हुजूर, अहमद ने अपनी मुसकराहट को गम में बदल दिया.

—तो उन्हें दुखी होने दो. अतीत में जीने से उन्हें मलवा ही मिलेगा. राबर्ट मुखर्जी अपनी कुर्सी पर तन कर बैठ गये. उनके मन में यह बात कहीं बहुत ही धारदार ढंग से प्रहार कर रही थी, कि जिस कुर्सी पर वह बैठे हुए हैं, उस पर सेन साहब की दृष्टि है. उन्होंने कुर्सी को मजबूती से पकड़ लिया और हंसने लगे.

दूसरे दिन सेन साहब और मेम साहब के टहलने के लिए निकलने के पहले ही अहमद बंशी की कोठरी के पास जा कर खड़ा हो गया. वह प्रतीक्षा करने लगा कि जैसे ही साहब निकलेंगे वह बंशी को डांट रहा होगा. उसने सारी बातें जो बंशी से उसने कहनी थीं, कई बार दोहरायी थीं. ऐसा करने का निर्णय उसने कल ही ले लिया था. साहब के निकलने की आहट पा कर उसने बंशी को आवाज दी. बंशी ने जैसे ही टीन का दरवाजा खोला कि खजुहा कुत्ता भूंकने लगा. सेन साहब और मेम साहब सीढ़ी पर ही खड़े हो गये. अहमद ऊंची आवाज में कहने लगा— क्यों रे बंशी, तेरा मिजाज ताव खा गया है. तू हवा के घोड़े पर छलांग मार रहा है. गांव में भूखा मरता था तो शहर में आया. पेट भरने लगा, तो बदमाशी सूझने लगी.

बंशी सो कर उठा था. वह अलसाया हुआ था. —क्या बात है अहमद चाचा? सुबह से ही सत्य बोलने लगे. क्या आज कोई धार्मिक पर्व है.

—अरे तू क्या जाने धर्म की बात. अपने नौकर-धर्म को ही भूल गया है.

—आखिर बात क्या है, जो भी कहना है साफ क्यों नहीं कहते?

—तूने इस कुत्तें को भगाया नहीं. यह ठीक नहीं है.

—ओह यह बात है. बंशी तन गया, क्यों भगा दूं? गरीब का कुत्ता है. दिन भर ड्यूटी देता है.

—कुत्ता पालना हम गरीबों का काम नहीं है. कुत्ता साहब लोग पालते हैं.

—साहब लोगों के कुत्ते साहबों की तरह रहते हैं, और गरीबों के कुत्ते गरीबों की तरह रहते हैं. मैं अपना कुत्ता भगा नहीं सकता.

इसी बीच सेन साहब और मेम साहब सीढ़ियों से उतरते हुए कुतिया की जंजीर को दोनों एक साथ पकड़े हुए गुजरे. बंशी की कोठरी में रस्सी में बंधा हुआ कुत्ता गुर्राया. दुम कटी कुतिया सिकुड़ गयी. सेन साहब का चेहरा लाल हो गया. उन्होंने झुक कर सलाम करते हुए अहमद को देख कर नहीं देखा: झटपट मैदान की ओर चले गये. कुछ समय तक अहमद चुपचाप खड़ा रहा. फिर वह चला गया.

सेन साहब उदास-से टहलते रहे. कुतिया का मैदान में भागना-दौड़ना उन्हें अच्छा नहीं लगा. कुतिया का सुबह का यह खेल साहब और मेम साहब को भाव-विभोर कर देता था. सेन साहब किसी दूसरी दुनिया में खोये हुए थे.

जैसे ही वह अपने फ्लैट की सीढ़ियों में चढ़ रहे थे कि बंशी के गरजने की आवाज सुनायी पड़ी. वह चिल्लाता हुआ कुत्ते को मोटे बांस से पीट रहा था. कुत्ता 'कों-कों' कर रहा था— साला, सुबह से ही टलने की जिद करता है और ले साला! वह कुत्ते को बेतहाशा पीटे जा रहा था. क्षण भर के लिए सेन साहब ठिठके और फिर दौड़ते हुए बंशी की गर्दन झपट कर पकड़ ली— साला, कुत्ता टहलने की जिद कर रहा है. तुम साला कुत्ता पालेगा. मेरी बेइज्जती करेगा. जान मार दूंगा. सेन साहब ने कई सधे हुए हाथ बंशी को जड़ दिये. बंशी इसके लिए तैयार नहीं था. वह चीख उठा. कुत्ते का चीखना बंद हो गया. सेन साहब हांफ उठे. उन्हें याद आया कि उन्हें हार्ट-ब्लड प्रेशर है. मेम साहब उनके पीछे खड़ी हो गयीं. कुछ देर रुक कर संयत होते हुए बंशी के फूले हुए मुंह को देखते हुए सीढ़ियों से ऊपर उठने लगे.

बंशी चुपचाप जमीन पर बैठ गया. मरियल कुत्ता उससे सट कर उसके पैरों के करीब पसर गया.

राबर्ट मुखर्जी ने सेन साहब को धन्यवाद दिया— आपने सही काम किया है. सही काम कोई भी कर सकता है. मैं आपके साथ हूं. मेरी मजबूरी आप जानते हैं, समझते हैं. मैं आपके साथ हूं. जरा भी चिंता की बात नहीं है.

सेन साहब के अंदर वाला 'साहब' संशय में था. उनके अंदर वाले साहब को लगा कि उन्हें मजबूत सहानुभूति की जरूरत है. राबर्ट का समर्थन उन्हें अच्छा लगा— थैंक्स राबर्ट. मेनी मेनी थैंक्स. आप अपने हैं. आपसे यही उम्मीद है.

सेन साहब के जाते ही राबर्ट ने अहमद को बुलाया. अहमद उनका अपना निजी विश्वस्त आदमी है, जो सबके मन में सब का होने का वहम पैदा करता है— अहमद, सेन साहब ने बंशी को पीट दिया.

—हुजूर.

—बहुत बुरा हुआ.

—जी, हां हुजूर.

—सो ठीक है. सेन साहब की इसी बुद्धि को गवर्निंग बॉडी के फ्रेंड्स उनके नोबल सोल का काम समझते हैं, और उन्हें प्रिंसिपल की चेयर पर बैठाना चाहते हैं. अहमद कुछ भी समझ न रहा था. राबर्ट मुखर्जी ने मन ही मन निर्णय लिया— सुनो अहमद, लोगों को मालूम होना चाहिए कि इसमें मेरा जरा भी हाथ नहीं है. यह भी मालूम होना चाहिए कि मैंने इसे जरा भी पसंद नहीं किया है. और मैं इस तरह की हरकतों को पसंद नहीं करता.

* *

सेन साहब स्टाफ रूम में आ गये. उन्हें क्लास में जाने की जल्दी नहीं थी. उत्साह और विजेता के भाव से उन्होंने आसपास बैठे लोगों को देखा. उनसे किसी ने कुछ भी नहीं कहा. उन्हें लगा कि सभी उपस्थित नेता उनके ही विषय में बातें कर रहे थे. वह दुखी और चिंतित हो उठे. उन्होंने 'डोंट केयर' की मुद्रा को ओढ़ लिया और अंग्रेजी विभाग के उपस्थित लोगों से बातें करने लगे जिसमें उनके अधिकारों की बात आभासित हो रही थी. घंटा बजने का समय हो गया पर घंटा नहीं बजा. सेन साहब ने कई बार घड़ी देखी. स्टाफ रूप के चपरासी को आवाज दी. आवाज के साथ दौड़ कर आने वाला चपरासी नहीं आया. बैरंग आवाज गूंजती रही. प्रश्नों की लहरों में तैरता हुआ स्टाफ रूम शीघ्र ही उत्तर पा गया. पहला-पहला पोस्टर स्टाफ रूम में चिपका रहा था स्टाफ रूम का चपरासी. साथ में कई और थे—मिस्टर सेन सावधान! हमारे हाथ लोहे के हैं.

—मार का बदला मार है!

देखते ही देखते स्टाफ रूम की दो दीवारें टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में और गर्जती हुई भाषा में रंग गयीं. सेन साहब फुफकार कर उठे— प्रिंसिपल यह सब करने की छूट दे रहे हैं?

प्रिंसिपल के चेहरे पर गंभीर चिंता की रेखाएं उभर आयीं—मि. माइकेल सेन घबड़ाने की कोई बात नहीं नहीं है. आपका सम्मान अगर नहीं रहेगा, आपको अगर झुकना पड़ेगा तो हमारा किसी का भी सम्मान नहीं रहेगा. मैं आपके साथ हूं. आप इन लोगों की हड़ताल की परवाह मत कीजिए.

सेन साहब तन गये — वी विल फेस इट. वह तने हुए स्टाफ रूम में डटे रहे.

राबर्ट मुखर्जी ने कालेज के प्रेसीडेंट को फोन किया —सॉरी टू डिस्टर्ब यू सर. पर कोई उपाय नहीं था. कालेज के इतिहास में ऐसा दिन कभी नहीं आया. कालेज की प्रतिष्ठा का प्रश्न है. टीचर्स और स्टूडेंट्स भी इस स्थिति का फायदा उठायेंगे. तमाम बातें पैदा होंगी. कालेज की हड़ताल सेन साहब की नासमझी का फल है. आपकी क्या राय है? एक दुविधा और अनिर्णय

स्थिति का जन्म दे कर राबर्ट मुखर्जी फोन को कान में लगाये रहे— यह तो बहुत मुश्किल हुआ. इस बात को जहां है, वहीं रोको, प्रेसीडेंट का उत्तर था.

—पर सेन साहब की प्रेसटीज का भी तो सवाल है.

—यह प्रश्न मेरा नहीं, तुम्हारा है. वही करो जो कालेज के हक में अच्छा है.

—सर, पर आप जानते हैं कि माइकेल सेन के समर्थक हो सकता है कि मेरा विरोध करें.

—वह मैं देख लूंगा. प्रेसीडेंट ने फोन रख दिया.

प्रिंसिपल स्टाफ रूम में गये. उपस्थित टीचर चौकन्ने हो गये—यह गंभीर स्थिति है. प्रिंसिपल ने चेयर पर बैठते हुए कहा.

—हम लोग इसका मुकाबिला करेंगे. सेन साहब की इज्जत हम लोगों की इज्जत है. हिलने वाले सिर हिलते रहे. कुछ लोग चुपचाप बैठे रहे.

इधर कालेज में आये छात्र हुल्लड़ कर रहे थे.

काल़ेज बंद रहा.

सेन साहब परेशान कमरे में टहल रहे हैं. रात को उनको नींद नहीं आयी. मेम साहब को खांसी का दौर पड़ गया है. स्वीटी कुतिया कमरे में इधर-उधर दौड़ रही है. मैं झुक नहीं सकता हूं चाहे जो भी हो जाये. मैं मर जाना बेहतर समझता हूं. मैं चार फुट के आदमी से माफी नहीं मांग सकता. ठीक है. घर में नौकर काम पर नहीं आ पायेंगे तो क्या हुआ? हम अपना काम खुद करेंगे.

मेम साहब के मना करने पर भी वह सुबह मैदान में टहलने निकले. कुतिया को साथ ले कर आना नहीं हो पाया. मेम साहब की इस जिद के सामने उन्हें झुकना पड़ा. बंशी का प्रेत कल्पना के कई रूपों में सेन साहब के चारों ओर दौड़ता है. उन्हें लगता है कि बंशी ने उनकी कुतिया उनसे छीन ली है. फिर लगता कि नहीं बंशी के पास वही गंदा मरियल खजुहा कुत्ता है. बंद आंखों से देखते हैं कि कुत्ता बाघ बन गया है. वह डर कर चीखते हैं— नहीं.

राबर्ट मुखर्जी से चीखते हुए माइकेल सेन ने कहा—नहीं.

राबर्ट ने ठंडे लहजे में कहा—मिस्टर माइकेल सेन, आप समझ क्यों नहीं रहे हैं. हड़ताल का रूप बदलता जा रहा है. तनख्वाह बढ़ाओ. रहने को अच्छा घर दो. आप जानते हैं कि गवर्निंग बॉडी इस बात को आगे बढ़ाने के पक्ष में नहीं है. सात दिनों से यह हड़ताल चल रही है. कल छात्र कहेंगे, फीस ज्यादा ली जा रही है. टीचर कहेंगे कि हमें भी क्वार्टर दो.

माइकेल सेन ने गंभीर होते हुए कहा— पर आप तो हमेशा कहते हैं कि टीचर और स्टूडेंट हमारे साथ हैं.

—हमारे साथ सभी हैं क्योंकि हमारे साथ कोई नहीं है.

माइकेल गरम हो गये—तो ठीक है. मैं अकेला लड़ूंगा.

फ्लैट में आ कर सेन साहब की चिंताधारा प्रश्नवाचक हो गयी — क्या किया जाना चाहिए. बीमार हो गयी मिसेज सेन और परेशान कुतिया ने उनको प्रश्नों के घेरे में बंद कर लिया. शानदार घर की ओर, घर के सारे सामान की ओर गौरव और दुख के साथ उन्होंने देखा. ऐसे अवसर पर मिसेज सेन की जरूरत थी. वह बीमार हैं. सेन ने फोन किया, लंदन से लौटकर आये हुए अंग्रेजी के प्रोफेसर आइजक विश्वास को.

—मिस्टर आइजक, मैं लंदन जाना चाहता हूं. हमेशा के लिए.

आइजक विश्वास हंसे— दोस्त, ऐसी गलती कभी न करना. यही गलती करके मैं लंदन गया था कि हिंदुस्तान में अब अंग्रेजी पढ़ाने का कोई अर्थ ही नहीं है. वहां तुम जानते हो, अंग्रेजों ने मेरे साथ क्या सलूक किया? उन्होंने मुझे काली चमड़ी वाला ही समझा. मुझे अंग्रेजी पढ़ाने के योग्य नहीं समझा. मैं तीन बरस तक लंदन में रेल की क्लर्की करता रहा.

★ ★

छात्रों ने कालेज को २४ घंटे के अंदर खोले जाने की मांग पेश की. सेन साहब के गवर्निंग बॉडी के मित्रों ने कहा— इतनी छोटी बात प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं बनती है.

यह छोटी बात है, माइकेल सेन मान नहीं पाये. मिसेज सेन की बढ़ती हुई खांसी और स्वीटी कुतिया का सूखता चेहरा उनकी परेशानी को बढ़ाता रहा. कालेज कर्मचारी सीधे सेन साहब के त्यागपत्र की मांग करते हुए दिन में तीन बार उनके फ्लैट के नीचे नारे लगाते, हुल्लड़ करते. सेन साहब गुर्राते हुए जमीन पर थूक देते.

राबर्ट मुखर्जी ने मिसेज सेन की बीमारी पर संवेदना प्रकट करने के बाद माइकेल सेन से कहा— बात को आगे बढ़ाने देना ठीक नहीं है. अब आप निर्णय ले लीजिए.

राबर्ट मुखर्जी के चेहरे पर सेन साहब को कुटिलता नजर आयी. वह सहम गये. वह कहां जायेंगे? यह नौकरी छूट गयी तो क्या करगें?

सेन साहब ने भर्रायी हुई आवाज में कहा—राबर्ट, मुझे बताओं मैं क्या करूं? आई वांट योर हेल्प.

राबर्ट मुखर्जी कालेज के सभी स्तर के कर्मचारियों की मीटिंग बुलाते हैं. सदा मुस्कराती हुई आवाज और आंखों से बोलती हुई भाषा— कालेज एक परिवार है. कालेज के कर्मचारियों ने जिन कठिनाइयों की ओर ध्यान दिलाया है, उन पर हम विचार करेंगे. यह आश्वासन मैं देता हूं. उन्हें समझेंगे. उन्हें दूर करेंगे. पर जिस दुर्भाग्यपूर्ण घटना से यह बातें सामने आयी हैं, यह उस बात का अच्छा पहलू है. फिर भी दुर्भाग्यपूर्ण घटना के प्रति दुःख प्रकट करना ही ठीक है.

इसके बाद सेन साहब उठे और दोनों हाथ जोड़ कर कहा— जो कुछ घटित हुआ उसके लिए मैं दुःखी हूं. बंशी हंस पड़ा. अहमद ने सिर नीचा कर लिया. उनकी नजर बंशी पर टिक गयी. उन्हें लगा कि बंशी बहुत ही लंबा है. राबर्ट मुखर्जी ने धीरे से कहा— टेक इट ईजी, मिस्टर सेन. मिस्टर सेन को बंशी का आकार बढ़ता नजर आया. □□□

एल १।८, करीम बख्श, गवर्नमेंट
हाउसिंग एस्टेट, कलकत्ता–२

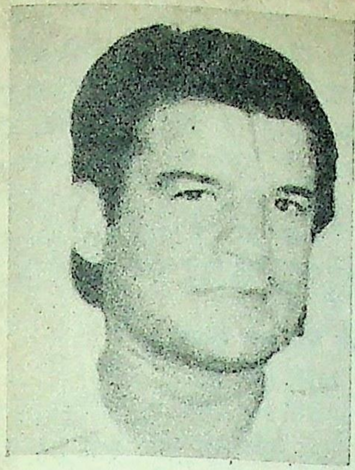

दुष्यंतकुमार की पहली पुण्यतिथि पर

मैं किसी पुल-सा थरथराता हूं

• कन्हैयालाल नंदन

मैं उन दिनों नया-नया दिल्ली आया था और दुष्यंत ने उन्हीं दिनों नयी-नयी गजलें लिखना शुरू किया था. 'सारिका' में कहानियां छपती हैं लेकिन कमलेश्वर जी को दुष्यंत की गजलों के एक-एक शेर में एक-एक कहानी का समूचा परिवेश समाया दिखा, तो उन्होंने उसकी एक गजल छापी.

कैसे मंजर सामने आने लगे हैं
गाते-गाते लोग चिल्लाने लगे हैं.

गजल छपी बाद में, पहले उन्होंने नागपुर से रामटेक जाते हुए कार में हम लोगों को सुनायी. उसी गजल का भूत मेरे सर पर चढ़ा हुआ था और मैं जहां-तहां मित्रों में उसका बातरन्नुम पाठ करता रहता था. उसी दौरान जनाब दुष्यंत साहब दिल्ली तशरीफ ले आये. रमेशचंद्रजी (दुष्यंत के घने मित्र और टाइम्स, दिल्ली के प्रबंधक) के साथ दुष्यंत के सामने उन्हींकी लंतरानियों का जिक्र छिड़ा हुआ था कि किसीने ((शायद लक्ष्मण टंडन ने) गिरह लगायी--दुष्यंत, कभी तुमने अपनी गजलें नंदन से सुनी हैं?

--गजल तो नहीं सुनी, इस कमबख्त की बेवकूफी जरूर सुन रहा हूं कि ईमानदारी से मेरी गजल कह कर सुनाता है. घर आयी शोहरत को दरवाजे से लौटा देता है.

--तुम्हारी गजल को तुमसे तो कोई सुनने से रहा, इसलिए मुझे यह धंधा अपनाना पड़ा. और इस तरह कभी ठहाका इधर और कभी उधर होता रहा. फिर दुष्यंत से कई गजलें सुनी गयीं.

दूसरे दिन हम दोनों को जम्मू रेडियो के श्री वीर सक्सेना के जमाव में जाना था. दुष्यंत ने कहा--नंदन, अभी तक चालीस से ऊपर गजलें हो चुकी हैं. सबकी सब तुझे सुनाना चाहता हूं.

--प्यार से सुनूंगा प्यारे, यारी में हर तरह की यातना सहनी पड़ती है. उस शाम विदा होने का यह आखिरी ठहाका था.

जैसा कि तय था, दूसरे दिन शाम कश्मीर मेल के डब्बे में बिस्तर लग गये. साथ में अजितकुमार, बालस्वरूप राही, गोविंद व्यास, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना और श्रीमती त्यागी (दुष्यंत की पत्नी) भी थीं, मजाक में मैंने कहा--भाभी जी, आज तो आप आराम से सो लीजिए. आज इसके पास काफी श्रोता हैं. और मेरे लिए तो आप ईश्वर से दुआएं ही कीजिए--मुझे तो चालीस गजलें पिलाने की धमकी दे कर चले हैं श्रीमान. डब्बे में एक जोरदार ठहाका, जिसमें सबसे बुलंद आवाज दुष्यंत की थी. अन्य यात्री इस ठहाकाबाज पार्टी को पागल करार देने के लिए उतावले-से लगने लगे. किस्सा कोताह--गजलों का दौर शुरू हुआ. एक से एक शानदार. . .

उस रात मुझे जुनून सवार था दुष्यंत को सुनने का और उसे सुनाने का. कविताओं के बहाने हम लोग जिंदगी के तमाम चस्पां पन्ने खोलते रहे. रात एकाध घंटे को झपक कर दुष्यंत फिर मेरे पास आ जमा. अजित जी की आंख खुली तो हम दोनों को जमा हुए देख कर बोले--आप लोग सोये ही नहीं क्या?

मैंने कहा--अजित, बड़ा मिस किया तुमने. कमबख्त ने क्या कमाल किया है गजलों में. और इसी बहाने दुष्यंत से एक गजल और सुन ली गयी.

गाड़ी पठानकोट पार करके जम्मू के रास्ते चली तो एक पुल से गुजरने लगी. दुष्यंत को जैसे अचानक खयाल आया, बोला--नंदन, यह गजल बाद में सुनाऊंगा, पहले तू अपने मतलब का एक शेर सुन ले--

तू किसी रेल से गुजरती है
मैं किसी पुल-सा थरथराता हूं.

इस शेर के बाद हम दोनों थोड़ी देर के लिए खामोश हो गये थे. मुंह से बेसाख्ता 'वाह' तो निकली और फिर पूरी गजल खामोशी में ही सुनता रहा. जम्मू की मेरी वह समूची यात्रा दुष्यंत को जानने-समझने की यात्रा बन गयी.

ऐसा नहीं कि पहले दुष्यंत को जानता या समझता नहीं था. अभी भी इलाहाबाद का वह छोटा-सा घर याद आता है, जिसमें सबसे पहले दुष्यंत से मुलाकात हुई थी. उन दिनों दुष्यंत-कमलेश्वर-मार्कंडेय की तिकड़ी जोरों पर थी. दुष्यंत का कविता संग्रह 'सूर्य का स्वागत' आया ही आया था. मैं एक दिन सुबह-सुबह पहुंचा तो श्री दुष्यंत कुमार त्यागी एक रेशमी रजाई में दुबके चाय की चुस्कियां ले रहे थे. रखरखाव कुछ राजकुमाराना. वहीं से 'एक चाय और' की आवाज मार कर याराना

अंदाज में लौट आये. जब कुछ कविता की बात मैंने चलायी तो श्रीमान जी साहित्यिक हायरार्की में मुझे 'नाचीज' समझ कर टरकाऊ शैली पर उतर पड़े. खैर मैं अपने मतलब की बात करके उनके कमरे से उतर आया. इतना मैंने जरूर समझ लिया कि यह आदमी साहित्य में 'हार्ड लाइनर' है. किसी 'कमिट' की हुई रचना को देने में भी कमलेश्वर-मार्कंडेय की मोहर चाहता है. बात आयी गयी हो गयी. एक दिन सिविल लाइन्स में इस शख्स को मेरी सूरत नजर आ गयी. पता नहीं क्या सोच कर जनाब मेरे पास आये और मेरे कंधे पर हाथ रख कर बोले—नंदन, उस दिन तुमसे मैं आदत के बरखिलाफ कुछ बोल गया होऊं तो माफ करना, तुम्हारे जाने के बाद मैं बहुत अफसोस में रहा.

मैंने दुष्यंत को भरसक याद दिलाने की कोशिश की कि उन्होंने मेरे साथ कोई भी बदसलूकी नहीं की थी लेकिन दुष्यंत मानने को तैयार नहीं थे. मैं आज तक यही मान रहा हूं कि दुष्यंत ने किसी और के बारे में कुछ गलत सोचा या किया होगा और मुझे उस व्यक्ति की जगह बैठा कर पाश्चाताप में जलते रहे हों... दुष्यंत की उस पहली तसवीर से ले कर जम्मू की तसवीर तक मेरे मन पर उसकी हजार रंगतें चढ़ी. कविता पढ़ने का उसका अंदाज मुझे उसकी कविता से भी ज्यादा शानदार लगता था. फिर दुष्यंत कब रेडियो में गये, कब दिल्ली रहे, कब नजीबाबाद गये और कब भोपाल, मुझे कुछ पता नहीं रहा. शायद तब मैं खुद अपनी जिंदगी के नाक-नक्श संवारने के फेर में इतना डूबा हुआ था कि दुष्यंत की खबर लेने की फुरसत नहीं थी.

लेकिन एक दिन अचानक फिर दुष्यंत का नाम मेरे सामने आ गया. कुछ पंक्तियां सामने पड़ गयीं. ——

देवत्व और आदर्शों का परिधान ओढ़
मैंने क्या पाया?
निर्वासन.
प्रेयसि वियोग!!
हर परंपरा के मरने का विष
मुझे मिला.
हर सूत्रपात का
श्रेय ले गये और लोग.
मैं ऊब चुका हूं
इस महिमामंडित छल से
अब मुझे स्वयं का
वास्तव सत्य पकड़ना है,
जिन आदर्शों ने
मुझे छला है कई बार,
मेरा सुख लूटा है
अब उनसे लड़ना है.

भारती जी के **'अंधायुग'** को अनेक बार पढ़ चुकने के बाद बंबई में सत्यदेव दुबे का मंचन देखा तब बार बार मन में यह उठता था कि काश हिंदी में इस दिशा में और लोग भी पहल करते. अब भारती जी को दुष्यंत के काव्यनाटक **'एक कंठ विषपायी'** की प्रति **'धर्मयुग'** में समीक्षार्थ मिली तो वह उन्होंने मेरे हाथों में थमा दी. ऊपर की काव्य पंक्तियां उसी नाटक का अंश हैं. शिव का यह आत्मानुभव कहीं गहरे तक मुझे सालता रहा, कई दिनों तक ये पंक्तियां जेहन में घुमड़ती रहीं. दुष्यंत को बधाई का पत्र लिखा तो उसने उलट कर जो लिखा वह कम घुमड़ने वाला न था. वह पहली बार था जब दुष्यंत की जिंदगी का एक नया पन्ना मेरे हाथ लगा था और मैं बेसाख्ता सूर्यभानु गुप्त की गजल का एक शेर कह बैठा था :—

जिंदादिल लोग रूह तक अपनी
दर हकीकत उदास होते हैं.

मुश्किल यह हो गयी कि उसके बाद से हमेशा मुझे दुष्यंत की हंसी में एक पहली-सी डोर बंधी हुई नजर आती रही जो कहीं बहुत गहरे जा कर एक अंधेरे तहखाने में खो जाती थी. पता नहीं दुष्यंत ने अपने अंधेरों का मुंह फाड़ कर उस क्षण क्यों मेरे सामने रख दिया था. शायद उस वक्त वह किसी कमजोर क्षण में बैठा रहा होगा. क्योंकि मैं अपने को उसके इतना नजदीक नहीं मानता था कि जिंदगी के असली अंधेरों की सीवन उघेड़ कर मेरे सामने उनमें थिगरियां लगाता.

शायद तब तक उसका संग्रह **'जलते हुए वन का बसंत'** नहीं आया था. जब मैं पहली बार भोपाल गया, जनाब उन दिनों भाषा विभाग में थे और खूब जोरों पर थे. तब तक सस्पेंड भी नहीं हुए थे और शरद जोशी के साथ मैं उसके घर पहुंचा तो दुष्यंत ने घंटे भर के अंदर अपना कमरा साहित्यकारों से इस कदर ठसाठस भर लिया कि बैठना दूभर हो गया. जब सिलसिला खत्म होते न दिखा तो मैंने शरद से कनखियों 'या इलाही ये माजरा क्या है' अंदाज में पूछा. शरद ने उच्च स्वर में कहा—यह हमारे बाबू दुष्यंतकुमार त्यागी की एक अदा है. भोपाल आये हो तो ताल ही थोड़े देखोगे. उस अदा का शबाब उसी रात चांदनी रात में टहलते हुए टी. टी. नगर सिनेमाघर के पिछवाड़े वाली सड़क पर देखने में आया. कैसे कहूं कि वह रात मेरी यादों की सबसे हसीन रात बन कर रह गयी है. लेकिन दुष्यंत के मैं बहुत करीब हूं, यह प्रतीति मुझ में तब भी पैदा नहीं हो पायी. अलबत्ता उसके लेखन से बराबर जुड़ा हुआ महसूस करता आया. इतना जुड़ा हुआ कि मुझे भी यह लगने लगा कि दुष्यंत को अपनी कविताएं मुझे सुना कर अच्छा लगता है. उसके कवि-मन से जुड़ कर चलने की यह एकात्मता मुझे भी सुख और संतोष देती रही. लेकिन क्या पता था कि उतनी ही एकात्मता उसके न रहने पर जीवन भर के लिए भारी पड़ेगी.

जब अभी पिछले दिनों जम्मू फिर जाना हुआ तो फिर वही पुल पड़ा जहां दुष्यंत ने अपना शेर सुनाया था. मैं बयान नहीं कर सकता कि मेरी क्या हालत हुई. मेरा सारा धैर्य थरथरा कर रह गया. पूरी यात्रा भर दुष्यंत की यादें मेरे इर्द गिर्द मंडराती रहीं. जम्मू के युवा कवि निर्मल विनोद ने अपना कविता संग्रह दुष्यंत की याद को समर्पित करते हुए मुझसे कुछ शब्द बोलने का आग्रह किया तो मैं बोलना तो दूर, दा

पत्रों के लिखते, मैं ही फूट पड़ा. सच दुष्यंत, पता नहीं था कि तुमने मुझे इतने करीब अपने से बांध रखा है.

सोचता हूं तो पाता हूं कि दुष्यंत का संसार छोटा संसार नहीं था, बड़ा विशाल था. उसका मित्र मंडल अपार था. वह अपने चपरासी से बीड़ी मांग कर पीता था, वह भी उसका मित्र था. वह अपने अफसरान और हुक्काम के साथ शराब के प्याले खटकाता था, वे भी उसके मित्र थे. हजारों जगह उसका दिल बंटा हुआ था. फिर किस दिल के दौरे से वह चला गया, कुछ समझ में नहीं आता. समझ में आता है तो केवल इतना :—

मौत ने तो धर दबोचा एक चीते की तरह
जिंदगी ने जब छुआ कुछ फासला रख कर छुआ.

जिंदगी का यह फासला रख कर छूना उसकी गजलों को तराशता गया. सियासी रंग वाली शायरी हो या रोजमर्रा की आपसी संबंधों वाली तल्खियां, दुष्यंत ने एक-एक शेर को नगीने की तरह संवारा और फिर उसे गजल में उतारा. सरकारी नौकरी में रह कर भी एक रचनाकार की हैसियत से वही लिखा जो महसूस किया. वह चाहता तो अपनी शायरी के बल पर कसीदे लिख कर ओहदों की सीढ़ियां चढ़ सकता था, लेकिन उसने शायद नौकरी और रचनाधर्मिता दोनों की ईमानदारी को जाना था और दोनों के पेचोखम संवारना उसे भली प्रकार आता था. उसका यह कहना :—

मैं बहुत कुछ सोचता रहता हूं पर कहता नहीं
बोलना भी है मना, सच बोलना तो दर किनार
रौन के जन्नत जरा भी मुझको रास आयी नहीं
मैं जहन्नुम में बहुत खुश था मेरे परवरदिगार.

रचनाधर्मिता की यह ईमानदारी, दुष्यंत तुम्हें कभी हिंदी साहित्य से मिटने नहीं देगी. यह मत भूलो कि तुमने इन गजलों से अपने दुश्मन भी पैदा किये हैं, मुझे मालूम है कि तुम अजातशत्रु कभी नहीं रहे, भले ही तुम्हारी शख्सियत लड़ाका नहीं रही हो. लेकिन इन गजलों के चल डगरने पर बहुत से कविकुल-दिवाकर यह ढूंढने में लग गये थे कि इन गजलों के खूंटे उर्दू के किन शायरों के तंबूओं से उखाड़ कर गाड़े गये हैं. कैसे कहूं कि ये कविकुल दिवाकर तुम्हारी तसवीर बिगाड़ने के लिए मुड़ते ही औंधे मुंह गिर गये, तो पलट कर तुम्हारे 'प्रशंसक' बन गये. इसीलिए जब पहली बार मेरे पास उज्जैन से डा. शिव शर्मा और प्रभातकुमार भट्टाचार्य का खत आया था कि दुष्यंत के साहित्यिक मूल्यांकन की दृष्टि से हम उसकी याद में 'दुष्यंत स्मृति सांझ' मनाना चाहते हैं तो मैंने लिखा था कि उसे गये अभी कितने दिन बीते हैं. साहित्यिक मूल्यांकन के लिए थोड़ा वक्त बीतने दो ताकि जज्बात सही मूल्यांकन में रूकावट न डालें. उज्जैन की वह सांझ तीन महीने बाद मनायी गयी लेकिन उसकी कविता का रंग लोगों के मन में दिनों दिन निखर रहा है. निखर इसलिए रहा है कि दुष्यंत ने आम आदमी की बात को आम आदमी की जबान में कहने का अंदाज पा लिया था :—

मेले में भटके होते तो कोई घर पहुंचा जाता
हम घर में भटके हैं कैसे ठौर ठिकाने आयेंगे. ☐

लघुकथा

भेंट भगवान की

बात तब की है जब कबीरदास के भजन जनता द्वारा गुनगुनाये जाने लगे थे. और तो और साधु-संत भी कबीर की वाणी उत्साह से सुनाने लगे थे. ब्राह्मण भला यह कैसे बर्दाश्त कर सकते थे! उन्होंने एक वेश्या से मिल कर षड्यंत्र रचा; उसके हाथ में रुपयों की थैली दे कर कहा—जल्दी ही किसी सार्वजनिक स्थान में कबीर की छीछालेदर कर दो!

महात्मा कबीर कपड़े का गट्ठर ले कर बाजार में बेचने निकले. ब्राह्मण तो इसी अवसर की ताक में थे. वेश्या को संदेश भिजवाया. भरे बाजार में वह कबीर से लिपट कर रोदन करने लगी—क्यों बगुला भगत, मुझे अकेली छोड़ कर तुम यहां चले आये! मेरे पास तो न पेट भरने को अन्न है और न तन ढंकने को वस्त्र और तुम्हारे जैसे ढोंगी की सर्वत्र पूजा हो रही है!

किंतु यह क्या, कबीर अविचलित रहे, उनके चेहरे पर लज्जा अथवा अचरज का नामोनिशान न था. हां, ब्राह्मणों का झुंड उन्हें अवश्य खरी-खोटी सुना रहा था.

कबीर बोले—निःसंदेह मैं अपराधी हूं. जब तक मेरे घर में अन्न है, तुम्हें भूखा नहीं रहने दूंगा. मेरे साथ चलो.

और भक्तराज उसका हाथ पकड़ कर उसे साथ ले चले. ब्राह्मण यह देख उनकी और भी ठिठोली करने लगे. कुछ लोग गाली देने लगे.

घर पहुंच कर कबीर ने भोजन पकाया और उस स्त्री के सामने परोस कर कहा—बहन, शरमाना नहीं, भर पेट भोजन करना. भगवान ने तुम्हें मेरे घर भेज कर मुझ पर महान कृपा की है.

और इतना सुनना था कि उस वेश्या के नेत्रों से आंसुओं की अविरल धारा बह निकली. —मुझे क्षमा कीजिए भक्तराज! आत्महत्या द्वारा ही मैं इसका प्रयश्चित कर सकूंगी.

—यह क्या कहती हो बहन? अब तो हम दोनों ही इस कुटिया में हरि-भजन किया करेंगे.

ब्राह्मणों ने यह सुना तो एक दूसरा उपाय सोचा. राजा के पास खबर पहुंचाई कि पाखंडी कबीर को सजा दी जाय. राजा ने उन्हें बुलवा भेजा. कबीर उस स्त्री का हाथ पकड़ कर राज सभा में पहुंचे. राजा विचार में पड़ गये. तदुपरांत प्रहरियों को आज्ञा दी कि उन्हें राजसभा से बाहर कर दें. वे बाहर कर दिये गये.

अब उस स्त्री से न रहा गया, उनके चरणों पर गिर कर बोली—साधुराज, मुझ पापिनी को जाने दो, नहीं तो दुनिया तुम्हें जीने न देगी.

—तुम तो भगवान की भेजी हुई भेंट हो, तुम्हें कैसे जाने दूं? कबीरदास का उत्तर था. ☐

भारतीय भाषाओं की प्रथम मौलिक कथाएं और आद्यकथाकार

प्रथम मौलिक हिंदी कहानी

(१५)

प्रणयिनी-परिणय: एक विवेचन

• डॉ. बच्चन सिंह

किसी भी भाषा की पहली कहानी की खोज अपने आप में एक महत्वपूर्ण और रोचक कार्य है. इस महत्वपूर्ण खोज के लिए 'सारिका' ने ही पहल की है. पूर्व के अंकों में मलयालम, गुजराती, बंगला, तेलुगु, डोगरी, कश्मीरी, सिंधी, उड़िया, पंजाबी, मराठी, कन्नड़, असमिया, उर्दू और तमिल की प्रथम मौलिक कहानियां आप पढ़ चुके हैं. इस अंक में हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी को तय करने के संबंध में सामग्री की प्रथम किस्त दी जा रही है.

'सारिका' ने अपने फरवरी १९६८ अंक में 'प्रसंग' स्तंभ के अंतर्गत स्व. माधवराव सप्रे की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' को हिंदी की पहली मौलिक कहानी के रूप में प्रकाशित किया था और इसकी पेशकश देवीप्रसाद वर्मा ने की थी. तब से हिंदी साहित्य के अनेक विद्वान और इतिहासकार इस तथ्य को स्वीकार करते आये हैं. अब लगभग ९ वर्ष बाद डा. बच्चनसिंह ने उसी सवाल को फिर से उठाया है. उनके अनुसार किशोरीलाल गोस्वामी की कहानी 'प्रणयिनी परिणय' हिंदी की पहली मौलिक कहानी है. हम यहां डा. बच्चन सिंह का विवेचन और 'प्रणयिनी परिणय' प्रकाशित कर रहे हैं. हम इस प्रश्न को अनिर्णित नहीं छोड़ना चाहते इसलिए इस संदर्भ में अन्य विद्वानों के विवेचन व अन्य सामग्री भी आगामी अंकों में प्रकाशित करेंगे ताकि यथासंभव उपलब्ध इतिहास के आधार पर हिंदी की पहली कहानी तय की जा सके तब तक के लिए जब तक कोई अन्य शोधकर्ता नयी सामग्री और तथ्यों के साथ किसी अन्य रचना को यह स्थान दे सके.

—सं.

फरवरी, ६८ की सारिका में श्री देवीप्रसाद वर्मा का एक लेख प्रकाशित हुआ है 'हिंदी की पहली कहानी एक महत्वपूर्ण प्रश्न!" इसमें उन्होंने माधव प्रसाद सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' को, जो सन् १९०१ में 'छतीसगढ़ मित्र' में प्रकाशित हुई है, हिंदी की पहली मौलिक कहानी सिद्ध किया है.

किशोरीलाल गोस्वामी की कहानी 'इंदुमती' (१९००ई.) को बहुत से लोग हिंदी की पहली कहानी नहीं मानते. इसके लिए कोई नया तर्क या प्रमाण न दे कर विद्वानों ने आचार्य शुक्ल के कथन का भाष्य करके इसे प्रथम कहानी कहने से इंकार कर दिया है. शुक्लजी ने अपना संशय व्यक्त करते हुए कहा है कि यदि 'इंदुमती' किसी बंगला कहानी की छाया में नहीं है तो हिंदी की यही मौलिक कहानी ठहरती है.' लोगों ने इस पर तरह-तरह की छायाएं ढूंढ़ निकालीं: किसी ने टेंपेस्ट की छाया कहा और किसी ने बंगीय कहानी की छाया. श्री वर्मा का खयाल है कि 'यदि' लगा कर शुक्लजी स्वयं को प्रथम कहानी लेखक के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते थे. जो हो, यह तो शुक्ल जी जानें और वर्माजी.

खुद वर्मा जी 'एक टोकरी भर मिट्टी' को कहानी सिद्ध करने के लिए निम्नलिखित तर्क देते हैं:—

१. 'स्व. माधवराव सप्रे द्वारा लिखित इस कहानी में कहानी के सभी तत्व विद्यमान हैं. सातवें शतक में कहानी का जो स्वरूप आज हमारे सम्मुख है, उसके सभी बीज इस कहानी में स्पष्ट हैं—आज कहानी के साथ-साथ एक और कहानी चलती है. वह मानवीय परिशांति की गाथा है. . . .वह कहानी जो ऊपर है, वह भी अपनी अभिव्यक्ति परिवेश और अंचल में नयी है.' (कमलेश्वर, नई कहानी की भूमिका) नयी कहानी के सबल पक्षधर

कमलेश्वर की बाणी किसी सीमा तक प्रस्तुत कहानी में मिलती है.'

२. 'कहानी क्रमशः स्वाभाविक क्रम से बढ़ती है. क्रूर मनुष्य में भी साधुता विद्यमान रहती है. इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को कथाकार ने स्वाभाविक गति से चरम उत्कर्ष पर पहुंचा दिया है. . .'

३. 'तत्कालीन बोझिलता से अलग अपनी संक्षिप्तता के कारण यह कहानी बहुत महत्वपूर्ण है.'

पहले तर्क में कमलेश्वर का नई कहानी का पक्षधर होना कोई समीक्षा-सिद्धांत नहीं है, जिसके आधार पर उक्त कहानी को कसा जा सके. मानवीय परिणति की गाथा तो प्रत्येक समय की प्रत्येक कहानी के साथ चला करती है. यह आख्यान साहित्य मात्र की विशेषता है. इससे कहानी के रूप विन्यास पर प्रकाश नहीं पड़ता. दूसरा तर्क भी मनोवैज्ञानिकता, चरमोत्कर्ष आदि प्रत्येक कहानी के साथ चस्पा होता है. संक्षिप्तता कहानी की मज्जागत विशेषता नहीं है.

सन् १९०१ में प्रकाशित कहानी में सातवें दशक की कहानियों का बीज ढूंढ़ निकालना प्रीतिकर आश्चर्य है. डा. धनंजय भी इसे सातवें दशक की कहानी के नजदीक मानते हैं. यदि 'एक टोकरी भर मिट्टी' को सातवें दशक की कहानी के निकट मान लिया जाये (यद्यपि यह कथन अत्यंत भ्रांतिपूर्ण है) तो यह कहानी अपने ऐतिहासिक संदर्भ से च्युत हो जाती है. किसी भी साहित्यिक विधा का क्रमिक विकास होता है. अपने समय की कहानियों के मेल में न होने के कारण सिद्ध होता है कि यह अनुवाद है.

पर 'प्रणयिनी परिणय' को पहली कहानी मान लेने के विरोध में अनेक तर्क दिये जा सकते हैं. पहला तर्क तो यही है कि जब लेखक खुद उसे उपन्यास कहता है तो हम उसे कहानी क्यों कहें? मई, ६८ की 'सारिका' में अपना मत व्यक्त करते हुए मैंने लिखा था—'मेरे विचार में हिंदी की पहली कहानी 'प्रणयिनी परिणय' है जिसे किशोरीलाल गोस्वामी ने सन १८८७ में लिखा था. सन् १८५०-१९०० और कुछ उसके बाद तक कथा साहित्य (फिक्शन) को उपन्यास कहने का चलन था. सन १९०० में 'सरस्वती' में छपी कहानी को भी उन्होंने अपने उपन्यास पत्र में उपन्यास कह कर ही छापा है.' सन् १९०० में सरस्वती में 'इंदुमती' ही छपी थी. 'सरस्वती' के हीरक जयंती विशेषांक में बालकृष्ण भट्ट के 'नूतन ब्रह्मचारी' को कहानी कहा गया है जब कि बहुत से लोग उसे उपन्यास कहते हैं.

कहानी व उपन्यास में, ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय तक, कोई ऐसा अलगाव नहीं हो पाया था कि उनके बीच कोई विभाजक रेखा खींची जा सके. उपन्यास बहु आयामी होता है अर्थात उसमें जीवन के अनेक संदर्भ सुगंफित होते हैं. कहानी एक आयामी साहित्यिक विधा है जो सब मिला कर एक भाव या विचार पर केंद्रित रहती है. इन दोनों के बीच विभाजन की यह रेखा सर्वस्वीकृत हो चुकी है. इस दृष्टि से 'प्रणयिनी परिणय' कहानी ही कही जायगी.

प्रत्येक 'निष्क' को अलग-अलग खंड मान लेने पर कहानी कई खंडों में विभक्त दिखाई पड़ती है. इस तरह खंडों में बांट कर कहानी लिखने की प्रथा चलती रहती है. हर 'निष्क' या खंड के आरंभ में श्लोकबद्ध नीति कथन है, ये श्लोक कहानी के रूप विन्यास में बाधक सिद्ध होते हैं. किंतु इन्हें उपन्यास का तत्व नहीं कहा जा सकता. गोस्वामीजी के उपन्यासों में इस प्रकार के श्लोक उद्धृत नहीं हैं. यह नीति के प्रति आग्रह का सूचक है और संस्कृत की 'आख्यायिकाओं के मेल में है. जिस प्रकार भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटकों में पूर्व और पश्चिम की संक्रमणशीलता दिखाई पड़ती है, उसी प्रकार की संक्रमणशीलता गोस्वामीजी की इस कहानी में भी है.

इसके रूप-विन्यास पर आख्यान पद्धति का पूरा असर है. इसका आरंभ, अंत, वाक्य-विन्यास, शब्द प्रयोग आदि पर आख्यान परंपरा की स्पष्ट छाप है. अंत में भरत वाक्य है. इस भरत वाक्य को तो परिष्कृत रूप में प्रेमचंद की प्रारंभिक कहानियों में भी देखा जा सकता है. भाषा संस्कृतनिष्ठ है. इसके कारण भी आपत्तियां उठाई जा सकती हैं. लेकिन संस्कृतनिष्ठता तो प्रसाद, यशपाल और अज्ञेय में भी खूब है.

असली सवाल है कि तब इसका कहानीपन क्या है? इसके उत्तर में कहा जा चुका है कि एक केंद्रीय भाव—प्रगाढ़ प्रेम की सुखांत परिणति. किंतु यह तो पुरानी कहानियों में भी मिलता है. इसका उत्तर होगा कि क्या आज की कहानियों में नहीं मिलता? किसी थीम को कहानी बनाता है उसका प्रस्तुतीकरण. इसके प्रस्तुतीकरण में साकांक्षता का जो विधान किया गया है, वह पुरानी कहानियों से इसे अलग कर देता है. इसकी साकांक्षता सपाट न हो कर नाटकीय है. नाटकीयता का यह तत्व इसे आधुनिक कहानियों के मेल में ले आता है. यह नाटकीय तत्व इसकी कथा को कथानक का रूप देता है.

उस काल के परिप्रेक्ष्य में साहित्य को नैतिकता से अलग नहीं किया जा सकता . साहित्यिक विधा का क्रमागत रूप-विकास बदलते हुए ऐतिहासिक संदर्भों में ही विश्लेषित करना संगत है. यदि उस समय में प्रकाशित कथा साहित्य को ठीक ढंग से विवेचित किया जाय तो उपदेश परकता (डाइडेक्टिसिज्म) उसकी सामान्य विशेषता होगी. जिसमें यह विशेषता न मिले, वह उस काल की सामान्य प्रवृत्ति या प्रवृत्ति के बाहर पड़ेगा.

इस कहानी में राजा की न्यायप्रियता, मित्र का त्याग, प्रेम की एकनिष्ठता आदि को उपदेश परकता में गिना जायेगा. पर पुलिस की क्रूरता, फांसी की सजा पर पुनर्विचार समसामयिक परिस्थितियों की देन है. प्रेमी और प्रेमिका को एक ही बिरादरी का मान कर परंपरागत रूढ़ि को ही समर्पित किया गया है. इस तरह कहानी में वैचारिक संक्रमणशीलता भी दिखाई देती है.

चरित्रों में पिता को छोड़ कर शेष आदर्शवादी हैं—राजा, प्रणयिनी, मारशास्त्री सभी. पिता का यथार्थ

भी मित्र के आदर्श को पुष्ट करने के लिए रखा गया है. पिता दोषी पुत्र को त्याग सकता है पर मित्र उसके दोषों को स्वयं स्वीकार करके दंड भोगने के लिए प्रस्तुत हो सकता है. चरित्रों के चित्रण के निमित्त जो स्थितियां (सिचुएशंस) उभारी गयी हैं, वे बहुत सटीक नहीं बन पड़ी हैं. पूरी कहानी को जैसा पात्रों के नाम, मारशास्त्री, परदुःख भंजन मिश्र आदि, इसे किसी हद तक अन्यान्यदेशिक भी बना देते हैं. इसलिए भी चरित्रों का विकास नहीं हो पाया है. लेकिन उस समय इतना ही बहुत था.

जैसा पहले कहा जा चुका है, उस ऐतिहासिक परिदृश्य में इस तरह की कहानी का बनना ही स्वाभाविक था. हिंदी कहानी-उपन्यासों की ही शुरुआत डाइडेक्टिक दृष्टिकोण से नहीं होती. अंग्रेजी कथा साहित्य भी ऐसी ही परिस्थितियों से होकर गुजरा है. पहली कहानी की जांच-पड़ताल के लिए इतिहास के इस संदर्भ को नजर-अंदाज नहीं करना होगा. ऐतिहासिक संदर्भ को छोड़ देने पर कहानी की विकास-यात्रा को देख पाना संभव नहीं है.

□□□

संभावित प्रथम मौलिक हिंदी कहानी?

प्रणयिनी-परिणय

• किशोरीलाल गोस्वामी

तेजस्विमध्ये तेजस्वी दवीयानपि गरायते ।
पंचमः पंचतपस्तपनोजातवेदसा ॥१॥
(सभातरंगे)

पूर्वकाल में सर्वनगरीललामभूता सुरपुर की अखिल शोभा शौष्ठव संपन्न पंपापुरी थी. उसके सर्वस्वामि गुणोपेत प्रजावत्सल नामा नृपति राज्याभिषिक्त थे. भूपति का अर्थ ही है 'प्रजा का यथार्थ पालन करना' और यह भी सत्य ही है कि प्रजा की तादृश अवस्था दृष्टिगोचर हुए बिना उसका उचित पालन हो ही नहीं सकता जब कि प्रजा पुत्रवत् है, और उसका लालन-पालन तनय के तुल्य ही करना महीप का धर्म है, तो सुसंपन्न महीपाल स्वयं उनका निरीक्षण किये बिना क्योंकर तदनुरूप व्यवहार कर सकता है? यही निश्चय करके कि अब सर्बशक्तिमान जगदीश्वर ने मुझे पृथ्वी पोषणं की क्षमता दी है, तो केवल निम्न कर्मचारियों के ऊपर ही निर्भर नहीं रहना चाहिए; स्वयं भी यथाशक्ति यत्न और अध्यवसाय कर्तव्य है.

इस प्रकार सोच-विचार कर राजा प्रायः निशीथ समय में स्वीयवेशविपर्य्यय अर्थात् प्रहरीगणों के तुल्य परिच्छेद परिधानपूर्वक नगर रक्षकों की भांति पुर के चतुर्दिक्षु निरंतर परिभ्रमण किया करता, विशेषतः भिक्षुवेश तथा कभी-कभी अन्यान्य उपायों से नागरिक मंदिरों में प्रवेश करके उनका इति-वृत्त जानने की पूर्णतः चेष्टा किया करता, सुतरां मानवी गोष्ठाओं में तो सततः प्रच्छन्न रूप से जाया करता, और उनके आशयों को हृदयंगम किया करता था. आहा! ऐसे सुयोग्यतम न्यायपरायण राज्य भारबाहक्षम "प्रजावत्सल" महीपति के राज्य में भी कदापि असच्चरित, चोर, लंपट, शठ, बदमाश, उठाईगीरे, डाकू रह सकते हैं? वा उसकी सुशीला प्रजा कभी भी दुष्टों से विविध कष्ट पाय के दुखीः, दरिद्री, पीड़ित, अन्यायग्रस्त, निक्षुण्ण भाव के रह सकती है? सुतरां सर्व सौख्य लहरी कल्लोल कौतुकावगाहन में संदेह ही क्या है परंतु क्या! ऐसे सुसमय को सुप्रबंध के कारण देख के फेर क्या महीपति को संतोष करना उचित है? क्या राज्य शासन में निश्चितता कभी भी कार्यकारिणी हो सकती है? वो निश्चितता भी राजा के तत्पर भये बिना यथावस्था में रह सकती है? बस यही विचार कर रात्रि के परिभ्रमण से राजा कदापि बिरत नहीं रहता. किंतु यह मानवी प्रकृति है कि अपने कार्य की उत्तमता देख कर मनुष्य के चित्त में अहंकार का संचार होता ही है और अहंकार ग्रस्त मनुष्य आपत्ति के बिना सुप्रबंधक क्योंकर हो सकता है? यह जानकर राजा अपने राज्यप्रबंध श्रमसिंधु में मग्न रहकर गर्वरहित सदा परमेश्वर ही को धन्यवाद दिया करता था. आहा! वह पुरुष धन्य है जो जगदीश्वरदत्त बस्तु की रक्षा करके उसकी आज्ञा पालन ही श्रेयस्कर समझता है, तभी निज कार्यों में रत मनुष्य कभी न कभी अवश्य प्राप्त मनोरथ होता ही है, यह समझ कर एक समय एक रात्रि में परिभ्रमण करते-करते राजा भव्यालय श्रेणियों के दर्शनार्थ गया. वहां अनेक प्रकार के अद्भुत कौतुकों को देख आश्चर्तंचकित हो कहने लगा, हैं? क्या आपत्ति है? क्या मेरे सब परिश्रम का इतने दिनों में आज यही फल निकला? हा! ऐसी न्यायपरायणता, सदावर्तें अनाथालय, उद्यम वाहुल्य के रहते भी यह कर्म, यह उपद्रव, यह दुर्घटना तथा यह दुर्दशा मनुष्यों की हो रही है? अन्यथा यहां इस समय इस व्यक्ति का इस प्रकार गृह में प्रवेश करने का यत्न करना क्या है? यद्यपि इसका यथार्थ निर्णय सहसा इस

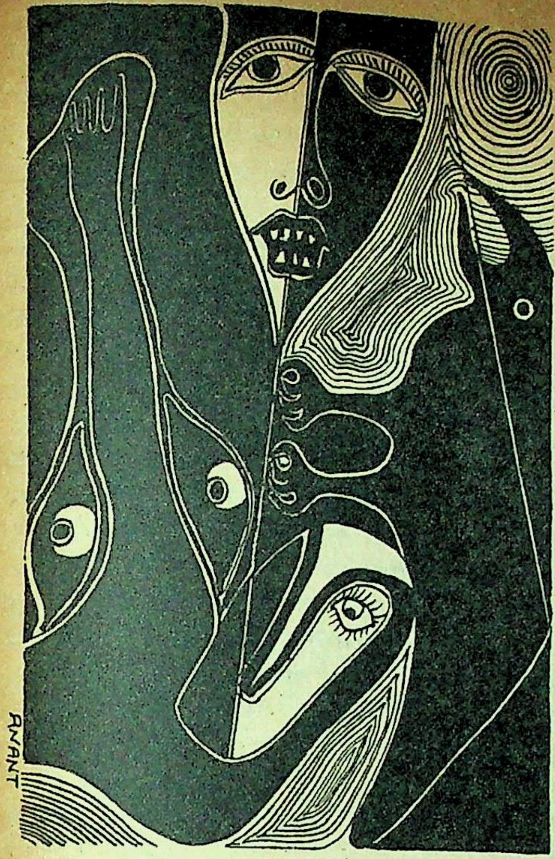

● ए. जी. भगत

समय होना किंचित दुर्घट होगा, तथापि विचार करने और इसके लक्षण से क्या अब भी कुछ संदेह रह गया है? जो हो! किंतु अब इस समय इसको यों ही छोड़ देना उचित नहीं . सुतरां यह मन में जानकर राजा उस आदमी के समीप जाकर बोला, रे दुष्ट! क्या तुझे संसार में दुसरी कोई आजीविका नहीं है, जो तू ऐसा घृणित कर्म करता है! अरे तुझे राजा का भी भय नहीं. हा! यह तू नहीं जानता कि ऐसे कर्म करने में प्राण जाते हैं? रे निर्दयी! तुझे अपने प्यारे जीव की भी कुछ दया नहीं? देख! अब तेरी मृत्यु ने तुझ पर पूरा-पूरा आक्रमण किया है, भला अब क्या तु मुझसे बच सकता है? यह कह कर राजा ने उस चोर को पकड़ा और कहने लगा कि कह तू कौन है जो ऐसा काम करता है? जान पड़ता है कि तैंने इस व्यवहार से कितने घरों को चौपट कर अनेक जीवों का प्राण-धन लिया होगा. चल तो सही कल राजा के समीप, तुझे अपने कर्मों को स्वीकार करना पड़ेगा, और क्या किसी प्रकार भी अब तेरा प्राण बच सकता है? . इस प्रकार नगर-रक्षक की बात को सुन चोर अपने मन में इस घोर दुर्घटना का परिणाम सोच बड़ा विकल हो कहने लगा कि--

हा कष्ट! अरे इस सौख्य शैल पर ऐसा वज्राघात, हा! आनंद भूमि से उठा कर यों शोक सागर में निपात अनेक रक्षा करने पर भी अनायास मृत्युमुख प्रवेश, हा हंत! हा दैव!! कृत कर्म विपाक का अशेष.

हा दैव! इस समय मैं चोर हो गया? हे जगदीश्वर क्या मुझसे व्यक्ति की भी चोरों में गणना हो सकती है? अस्तु क्या आज प्रजावत्सल राजा का न्याय इति कर्तव्यविमूढ़ हो गया. अरे! ऐसा अनर्थ! यह अदृष्ट पूर्व आश्चर्य राजा के अनुचरों की ऐसी उत्कृष्टता! यह बलात्कार! अरे अब क्या हो सकता है! कहीं कराल काल के गाल से भी कोई निहाल भया है! अरे! इन अन्यायियों के मारे अनेक निरपराधियों के अमूल्य प्राण-धन जाते होंगे; क्या ईश्वर के यहां इसका उत्तर राजा को न देना होगा परंतु इन प्रपंचों से अब मैं क्योंकर बच सकता हूं. यदि ईश्वर सत्य और में निर्दोषी,तथा राजा न्यायपरायण है, तो इन व्यर्थ भूंकने वालों के किये मेरी क्या क्षति हो सकती है? परंतु ऐसे समय में मनुष्य को धैर्य धारण करना चाहिये, आगे जो भवितव्य है तो बिना भये नहीं रहता 'हरिच्छा वलीयसी' अपिच अपनी शक्त्यानुसार आत्म-रक्षा करना मनुष्य मात्र का कार्य है, इत्यादि विचार कर वो अत्यंत बिनीत भाव से बोला—

महाशय! आपने जो मुझे इस समय अपने विचारानुसार चोर जानकर पकड़ा सो बस्तुत: मै चोर नहीं हूं, प्रत्युत एक सुप्रतिष्ठित ब्राम्हण का तनय हूं. यदि आप दयापूर्वक मुझे मेरे पिता के सन्मुख ले चलें तो वे आपको विविध सन्मान, विपुल धन द्वारा संतुष्ट करेंगे क्योंकि पुत्र पर पिता की ममता सर्वतोभाव से होती है अतएव ईश्वर के अनुग्रह से आप मुझ निरपराधी को छोड़कर अमोघ यश लाभ करें.

पाठक! यह ठीक है कि विपत्ति में कैसा ही धीर पुरुष क्यों न हो, उसकी भी विचार-शक्ति कुछ न कुछ अवश्य मंद पड़ जाती है, यद्यपि इसने (अपने मन में कहने की इच्छा करके) राजा के विरुद्ध वचन धीरे ही धीरे कहा, तथापि कोटयाल (कोतवाल) वेश में राजा ने उसे भी प्रकाश वचन के सहित सुन लिया और इस प्रकार अश्रुत पूर्व वार्ता को विचार कर वो कोतवाल बड़े आश्चर्य में आया और कहा— ऐं! यह क्या चोर नहीं हैं वस्तुत: जो इसने अपने मन में वा प्रगट कहा वही सत्य है? परंतु यह लालच कैसा है! ऐसी चपलता, क्या राज कर्मचारी ऐसे-ऐसे भयंकर लालच से बच सकते हैं? फिर तब क्या अनर्थ न्यून होने की संभावना हो सकती है? यदि इस समय मैं न होता तो इतर न्यायाधीश अवश्य ही घूस लेकर इसे छोड़ देते. सच कहा है कि राजा के राज्य में कुप्रबंध और नाश होने का कारण नृप का आलसी होना ही है, अस्तु! विचार करने से भी इसमें चोर के से लक्षण संपूर्णत: नहीं घटते, तथापि अभी यों ही बिना सोचे-विचारे इसे छोड़ देना भी न्याय-विरुद्ध है, तो चलो इसके पिता की भी महर्घता देखें. यह मन में निश्चय करके राजा और चोर दोनों वहां से आगे बढ़े.

इति प्रथमो निष्क: ।

★ ★

अथ द्वितीय निष्क: ।

रक्तत्वं कमलानां सुपुरुषाणां परोपकारित्वं ।

असतां च निर्दयत्वं त्रिषुत्रितयस्वभावसिध्डंम (नीतिशतब्दे)।

अब उस समय की दुर्घटना क्या कही जाय, एक तो अर्धनीशीथोपरांत दो बजने का समय, दूसरे रात्रि अंधकारमय हो रही थी, परंतु लालटेनों की रोशनी कुछ-कुछ कहीं-कहीं चमचमा रही थी, स्वानरव से कान बहरे होते जाते थे, इतर बड़ा सन्नाटा छा रहा था, न कहीं आदमी, न आदम जात. केवल राजा अपने अनुचरों के साथ उसके निर्दिष्ट मार्ग होकर ब्राह्मण देवता के घर पहुंचा और युवा पुरुष ने अपने पिता को आह्वान किया परंतु उस समय शास्त्रीजी घोर निद्रा में निमग्न थे, पर कोलाहल चमत्कृत वस्तु है, हार कर मनुष्यों का रव सुन कर चौंक पड़े और साथ ही कर्ण कुहर में यह ध्वनि पहुंची कि कुमार शास्त्री बाहर आओ! बस! अब क्या पूछना था, ब्राह्मणों में क्रोध की पराकाष्ठा किंचित विशेष पूर्व समय से ही चली आई है; उसमें भी कुसमय में आह्वान के कारण क्रोध ने कुमार शास्त्री के हृदय को जाज्वल्यमान कर दिया वरन किसी प्रकार बकते-झकते बाहर आये और देखकर ऐं! यह क्या हमारे सपूत मारशास्त्रीजी हैं और नगररक्षक कोतवाल क्यों संग हैं? निदान अनेक तर्क-वितर्क के उपरांत और शास्त्रीजी के पूछने पर राजा ने सब वृतांत कह सुनाया और पूर्व-कथित द्रव्य की लालसा प्रकट की. कुमार शास्त्री क्रोध में दुर्वासा से चढ़े-बढ़े थे. यह कथा सुनकर रक्तवर्णी भूत हो गये, सच है क्रोध में चित्त-वृत्ति स्थिर नहीं रहती और इसमें अनेक व्याघात भी उपस्थित होने की संभावना है; परंतु पीछे केवल पश्चाताप ही रह जाता है. यों ही क्रोध पर तंत्र कुमार शास्त्री ने जलभुन के कहा :—

ऐ न्यायाधीश! यद्यपि यह मेरा पुत्र है, पर आज यह मर गया, यह मैं अनुमान करता हूं, क्योंकि इसने मेरी एक शिक्षा न मानी, निरंतर रात-रात भर न जाने कहां भ्रमण करता और प्रभात भये यहां आता है, वर्षों से इसकी यही दशा है, अतः पिता कर्म का साक्षी नहीं होता प्रत्युत जन्म का और यह राजा ऐसे न्यायपराण हैं कि केवल अपराधी ही को उचित दंड देते हैं. तो ऐसी अवस्था में मैं क्योंकर अपने पुत्र का प्रतिनिधि बन सकता हूं? वस्तुतः इसे अपने कुकर्म का दंड पाना ही उचित है. यदि इस विषय में कुछ मेरा गड़बड़ाध्याय राजा जान जायेंगे तो व्यर्थ मुझे भी अपने सिर एक आपत्ति लेनी पड़ेगी, अतएव इस प्रपंच में आपकी जो इच्छा हो, सो कीजिए. मुझसे कोई प्रयोजन नहीं और आपको यह अधिकार है कि इस दुष्ट को न्यायकर्ता के सन्मुख ले जाइये या छोड़ दीजिये, पर मेरे पास तो टका भी नहीं है. इस प्रकार कहते हुए कुमार शास्त्री घर में प्रवेश करके किवाड़ बंद कर निश्चित हो गए. शास्त्रीजी की यह रुखावट देख राजा बड़ा आश्चर्यित हुआ, ओहो! कुकर्म ऐसी वस्तु है कि अद्वितीय प्रिय पुत्र की पिता भी सहयोगिता स्वीकार नहीं कर सकता, प्रत्युत स्वीयकर्म दंड भोगना ही चाहता है. क्या कुमार शास्त्री घूस देकर या आप उसके दोष को ओढ़कर या निर्दोष ही बनाकर न्याय से बच त सकते हैं? या श्रमशाली राजा पर यह वृत्तांत विदित न हो, यह हो सकता हैं? आहा! अविचल न्याय का अद्भुत चमत्कार है. अनंतर राजा मारशास्त्री का हाथ पकड़कर ले चला, और उस समय शास्त्रीजी कि आंतरिक वेदना की सीमा न रही. कहने लगे— हा! माया जवनिकाच्छन्न असार संसार ऐसा विलक्षण है कि यहां कोई किसी का नहीं, और जो है सो भी अपने मतलब के यार हैं, हा! 'कालस्यकुटिलागतिः' देखो! खोटे दिनों में पिता भी पुत्र का त्याग करे, माता विष दे, राजा सर्वस्व हरण कर ले तो क्या आश्चर्य है, अस्तु, फेर और दूसरी शरण क्या है और क्योंकर कल्याण की आशा हो सकती है? यह सब कुछ है परंतु प्रीतिपथ ही निराला है, उसमें कभी कोई भय नहीं, तो क्यों न एक बार और भी अपने भाग्य की परीक्षा कर लें, अंत में भात्री तो मुख्य ही है. यह स्मरण करके मारशास्त्री ने न्यायाधीश से कहा, महोदय! यदि आप मेरी दशा पर एक बार पुनः अनुग्रह करें तो आशा है कि मैं शीघ्र ही संकटमुक्त हो जाऊं और आपका चिर अनुग्रहीत होऊं— अर्थात् शुभकर मोहल्ले में मेरे एक अभिन्नहृदय प्राणैकद्विधाभूत देह 'परदुःखभंजन' मित्र रहते हैं. यदि आप उनके समीप तक और श्रम स्वीकार करें तो निश्चय है कि वे मुझे अवश्य ही बंधनमुक्त कराने की चेष्टा करेंगे और यथोचित आपका भी सन्मान करेंगे.

राजा यह आश्चर्यजनक वार्त्ता सुन कुछ काल तक तो विचार वारीस मग्न हो गया और सोचने लगा कि क्या पिता-माता से भी श्रेष्ठ उत्तम कोई और संसार में है और विशेष प्रीतिभाजन हो सकता है? अस्तु! जो हो, ईश्वर की महिमा अद्भुत है, प्रेमपथ निराला है और उसका क्षय भी नहीं होता, अथ च इसके प्रताप से अपने बिगाने और बिगाने अपने बन जाते हैं; यदि किसी को मुख खोलने की जगह नहीं है तो इसी प्रेम-मार्ग में, इत्यादि विचार कर कहा, अच्छा चलो अब तुम्हारे मित्र की भी करतूत देख लें. यह कह कर दोनों मित्र के गृह गये. कुमारशास्त्री को अपने मित्र पर बड़ा भरोसा था, पहुंचते ही बड़े वेग से किवाड़ खड़खड़ाया और पुकारा, शीघ्र ही मित्र की आंखें खुल गयीं और विचारने लगा कि इस समय मित्र क्यों आए? और ऐसा कातर शब्द क्यों मुख से निकालते हैं; क्या कारण हैं, किंतु शीघ्रता से आकर ज्यों ही किवाड़ खोला और अति उद्वेग से कुमारशास्त्री के गले लिपटना चाहा कि इतने में राजा ने डांटा, और घुड़क कर कहा, अरे मूर्ख! यह क्या करता है ? अब तो परदुःखभंजन मिश्र के कान खड़े हो गये. राजा की यह भयानक बात सुन कर उसके क्रोध की सीमा न रही और बोला,' ऐ पुररदीक! क्या तुझे तेरी मृत्यु ने घेरा है? और तू मेरा नाम , ग्राम, पराक्रम नहीं जानता, यदि तेरा दैव अनुकूल हो तो यहां से शीघ्र ही भाग जा अन्यथा ऐसा खड्ग मारूंगा कि तेरा देह अभी शिरोविहीन हो जायगा, तैंने क्या समझ कर मेरे मित्र को पकड़ा? और तेरी सामर्थ्य मेरे घर तक आने की हो गयी?;

राजा ने गंभीर भाव से कहा, 'क्यों व्यर्थ उन्माद-ग्रस्त हुआ है, शूरवीर बकते नहीं प्रत्युत अपना पौरुष दिखाते हैं; तिस पर भी तुझे राजकीय विषय में हस्तक्षेप करने का क्या अधिकार है? क्या सभ्यतापूर्वक संभाषण भी करना नहीं सीखा, शिष्टाचार तेरे पड़ोस में भी नहीं बसा? क्या तेरी सामर्थ्य मुझे खड्ग मारने की है? यह दशा देख कर कुमार शास्त्री डरा और विचार करने से निश्चय बोध हुआ कि अब अनर्थ हुआ चाहता है. मित्र ने तो वात्सल्यपूरित बीररस के परतंत्र होकर सब बातों पर चौका ही लगाना चाहा था, परंतु तिस पर भी अभी तक इस सुयोग्य सिपाही ने हठ से मित्र को अन्यथा कुछ नहीं कहा, क्या मेरे तुल्य इनको भी अभी पकड़ ले जाना इसके आधीन नहीं है? हा कष्ट! मुझे तो अपना इतना शोच नहीं है जितना कि मित्र का है. ईश्वर! ये कोई आपत्ति में न फंसे, नहीं तो पुनः रक्षार्थ कौन बचेगा? यह सोचकर परदुःखभंजन मिश्र ने कहा, प्राणप्रिय! आपको इन राज कर्मचारी महाशय से नर्म-गर्म कहने का कोई अधिकार नहीं, यह तो राजाज्ञापालन करते हैं, और यही हम लोगों में और इनमें विशेषता है. प्रत्युत प्रजामात्र को राजा का आदेश स्वीकार करना कर्तव्य है, इसी में न्यायरक्षा और राजभक्ति है. अतएव इन सुयोग्य महाशय से सभ्यता और नम्रतापूर्वक संभाषण करो, अन्यथा मेरी रक्षा क्योंकर होगी? क्योंकि यदि तुम मेरी जामिनी दो तो मैं इस समय छूट सकता हूं. यह हृदयंगम बचन सुनकर परदुःखभंजन मिश्र अत्यंत घबड़ाया और न्यायाधीश से यथार्थ वृत्तांत की जिज्ञासा प्रकट की. न्यायाधीश ने अविकल कथा कह सुनाई, यह सुनकर अभिन्नहृदय मित्रैकदाभिषिक्त परदुःखभंजन मिश्र ने अतिविनीत ही होकर अपने अपराध को क्षमापन पुरस्मर न्यायाधीश से कहा, मित्रवर! यदि ईश्वर सत्य है तो उसको मध्यस्थ मानकर मैं शपथपूर्वक कहता हूं कि जिस समय आप मेरे मित्र को चाहेंगे मैं स्वयं लेकर उपस्थित होऊंगा. इस प्रकार कातर वचन को राजा ने सुनकर तथास्तु कथनपूर्वक अपना मार्ग लिया और ये दोनों मित्र कंठाश्लेष करते हुए प्रसन्न हो कर अंतरगृह में पधारे.

इति द्वितीय निष्कः ।

* *

अथ तृतीयो निष्कः ।

मुग्धे धनुष्मती केयमपूर्बाऽपि च दृश्यते ।
यथा वद्धां सिचेतांसि गुणैरेवन शायकैः ॥
(श्रृंगार शतके)

अनंतर परदुःखभंजन मिश्र ने कहा, क्यों मित्र! क्या आपत्ति है? क्योंकर आज यह व्याघात उपस्थित हुआ! मारशास्त्री ने कहा, क्या कहूं मित्र! तुमसे क्या कुछ छिपा है? जिसके लिए संसार का सब सुख तृणवत छोड़ दिया है, आज उसी से मिलने के लिए ज्यों ही मैं कबंध डालकर प्रसादारूढ़ होना चाहता था कि त्यों ही जीवित यमदूत आकर उपस्थित हुआ. हा! इस प्रेमांबुधि में निमग्न होकर किसी स्वर्ग सुख का अनुभव नहीं होता! अरे इस नाटिका के प्रस्फुटित पुष्पों की सुगंधि त्रैलोक्य करके व्याप रही है. इस मार्ग में कोई कंटक का नाम तक नहीं है. प्रियवर! उसके प्रेमियों का मत संसार से निराला है, और इसके आनंद का अनुभव बिना प्राणपण किये विना कौन कर सकता है !

क्या ऐसे निर्मय मार्गगामियों को क्लेश समूह पराभव कर सकते हैं? क्या सच्चा प्रेमी भी प्रीतिपाशबद्ध हो कर बध से डरता है? क्या उसके लिए प्रीतिपीयूष देवामृत से कम है? अहह! आज उसी का पूर्ण आवेश और उद्वेग का उद्गार है कि कुछ भी भय और कष्ट विदित नहीं होता. कोई भी स्वीकार कर सकता है कि संसार में कोई अमर तथा सदा एक भाव में कभी नहीं रह सकता, परंतु प्रायः प्रेमामृत सेवी आकल्पजीवित और आनंदित ही रहते हैं, सत्य है, संसार एक ओर और प्रीत पात्र एक ओर है, आहा! वह प्रेममाधुरी मूर्ति नयनों के आगे नृत्य कर रही है, भला! कभी भुलाये से भूल भी सकती है जिसके क्षणिक वियोग में असंख्य यमयातना का अनुभव होता है, जिसके मिलाप में सामराज्य महेंद्र पदवी तुच्छ जंचती है, उसके बिना चंचल चित्त को क्षणिक विश्राम भी नहीं मिलने पाता. अहा, वह अलौकिक सौंदर्यप्रभा, वह हृदयबाधक प्रलंब केशपास, वह प्रणय कोपकाषायितांग कौतुक, वह अदृष्टपूर्व हावभाव विलास समूह, वह मनमानस सृष्टि की सदैव पूर्णचंद्रप्रभा, वह विशाल भाल, वह भृकुटि कुटिल शरजाल, वो तीक्ष्ण आश्रवणावलंबित नेत्र युगल, वह सर्वदा प्रसन्न चरणारविंद, वो मधुर कोकिल स्वर, वो पीनोन्नत कुच कलश, वो मुष्ठि परिमित लंक, वो मत्तमतंगगमन, वो हंसपद विन्यास, अवलोकन मात्र ही में किसे नहीं निरीह कर देता है! उसका एक बार भी दर्शन करके किस भावुक सहृदय का कठोर हृदय शतधा विदीर्ण नहीं हो जाता? क्या इसके आगे मुझे अब और कोई दुःख व्याप सकता है? क्या उसके बिना मैं किसी प्रकार भी जीवित रह सकता हूं? तो फिर मुझे मरने से डर ही क्या है? प्रियवर ईश्वर साक्षी है! मैं अभी तक केवल उसके केवल दर्शन मात्र ही का धनी हूं, इतर अभिलाषा तो इधर अंबुधि अवगाहन ही कर रही है. हा, अब क्या आशा आशा ही मात्र रह जायगी? अस्तु न सही! मैं केवल इतने ही में सर्वथा प्रसन्न हूं. ऐसा भाग्य भी तो हो ले! इतना कहां का थोड़ा है? तो अब अधिक विलंब का क्या प्रयोजन है? मित्र यदि तुम्हारी अनुमति होय तो मैं इस समय प्राणप्रिया से जाकर अंतिम भेंट कर आऊं.

परदुःखभंजन मिश्र उदास होकर बोले, हा! प्रियवर! तुम्हारी यह व्यवस्था देख औ सुनके तो मेरा चित्त ही इस समय विक्षिप्त-सा हो गया, मुझे तो अब इस समय कुछ समझ ही नहीं पड़ता, क्या कहूं? यदि निषेध करूं तो भी नहीं बनता, क्योंकि तुम्हारा चित्त इस समय उधर पूर्ण आसक्त हो रहा है. किंतु यदि तुम्हें जाने दूं तौ भी नहीं ठीक जंचता! यदि तुम गये और पुनः ऐसी किसी अन्धी आपत्ति में पड़े तो क्या होगा?

मारशास्त्री ने साहस से कहा, सुभोदर्क! संसार में प्राण जाने से बढ़ कर और कोई आपत्ति नहीं है, और आशा कम है,प्रत्युत जब मेरे भाग्य में यही लिखा है तो इससे श्रेष्ठतम दुःख और मार्ग में क्या होगा? पर दुःखभंजन मिश्र ने मंद स्वर से कहा, अस्तु, जैसी इच्छा! जाओ! इस समय तुम्हें ईश्वर के समर्पण करता हूं, वही सब अवस्था में तुम्हारी रक्षा करेगा, परंतु तुम शीघ्र ही आकर मुझे संतुष्ट करना, मेरा प्राण तुम्ही में लगा रहेगा. मारशास्त्री प्रसन्नता से कहने लगे, प्रिय मित्र! कुछ संशय मत करना, मैं शीघ्र ही आऊंगा, यह कह कर मारशास्त्री निज मित्र से विदा हुए. उन्हें निश्चय था कि जब मेरी बातों और मेरे चरित्रों का सुनने और देखने वाला यहां कौन बैठा है? इसलिए निःशंक होकर गये.

इति तृतीय निष्कः ।

★ ★

अथ चतुर्थो निष्कः ।

एतत्कामफलं लोके यद्वयोरेकचित्तता ।
अन्यचित्तकृते कामे शवयोरिव संगमः ।।१।।
(श्रृंगार शतके)

अह! क्या ही अंधकारमय मार्ग हो रहा है, हाथ से हाथ नहीं सूझता, चारों ओर सूनसान निविड़ तमाच्छादित मार्ग हो रहा है, और इस समय यहां मेरा कौन अनुसंधान ले सकता है? जो हो ! अब तो मैं अपने लक्ष्य पर आ ही गया, परंतु उधर प्यारी विचारी अभी तक मेरी बाट देखती होगी, क्योंकि दीप प्रज्ज्वलित-सा दृष्टिगोचर हो रहा है, खिड़की भी खुली है इत्यादि. चारों ओर खूब देख-भाल कर मारशास्त्री कबंध फेंक ऊपर चढ़ गया, और विचारने लगा कि अब कुछ भय नहीं. मैं तो ऊपर आ ही गया, अब खिड़की बंद कर प्राणप्रिया के पास चलूं, परंतु हा कष्ट! कदाचित प्यारी मुझ अधम के आने की प्रत्याशा करते-करते शयन करने लगी हो तो कैसे मैं उसकी सुख-नींद भंग कर सकूंगा. यद्यपि अभिन्नहृदया के इष्टदर्शन मात्र से सब दुःख समूह विस्मरण हो गया, परंतु मन की तरंगों में बहते-बहते फिर सोच हो जाता है कि क्या यह मोहिनी मूर्ति कल से दृष्टिपथ-गामिनी न होगी? यह सुख अब स्वप्नप्राय हो जायगा? हा, इस क्षणभंगुर संसार की दृष्टि मुझ पर ही थी? दैवेच्छा, यहां राजा के घर में न्याय-अन्याय कुछ भी हो परंतु ईश्वर तो बड़ा न्यायपरायण और दयालु है; ज़िसकी कोई रक्षा नहीं करता, उसकी जगदीश्वर रक्षा करता है, क्या मैंने अन्याय या कुकर्म किया है जो दंडभागी होऊंगा. राजा चाहे जो कुछ करे परंतु क्या ईश्वर भी मुझे सुख न देगा? इस प्रकार अनेक भांति करुणा का सिंघु उमड़ते-उमड़ते ऐसा प्रेमाश्रु-वर्षण भया कि प्यारी का मुखार्विद नितरां आर्द्र हो गया और निद्रा भंग हुई. परंतु ज्यों ही कि उस प्रेमपरायणा सुंदरी की दृष्टि प्राणेश्वर पर पड़ी कि उसकी अदृष्ट पूर्व दशा देख कर अबला का हृदय सहसा विदीर्ण हो गया, एक बार यह अकस्मात आश्चर्य देख कर ललना नितांत घबड़ा गयी, और बड़ी आतुरता से उठ कर अपने प्रीतम के गले में लिपट नयन-जल-कण बरसाने लगी. कुछ काल के उपरांत किंचित धैर्य धारण कर पूछने लगी कि प्यारे! यह क्या? कैसी तुम्हारी दशा है, और इसका हेतु क्या है? क्या मैं तुम्हारी बाट देखते-देखते सो गयी, इसी अपराध से तो इतने रुष्ट नहीं हो गये? या आज तुम इतनी देर कर आए अतः मैं बुरा न मानूं, इसी हेतु उदास हो रहे हो या मुझ नीचाशया से भूले कोई तुम्हारा अपराध बन पड़ा है जो बोलते नहीं, क्या उपद्रव है? और तुम्हारा हृदय ऐसे वेग से क्यों धड़क रहा है और यह प्रसन्नानन मलिन क्यों है, अरे! कहो तो सही, मेरा प्राण घबड़ाहट से बिकल हो रहा है. हा! सत्य है! सुख-दुःख की समावस्था ऐसी ही होती है, और इन विचारे प्रेमियों को क्या कहा जाय? एक प्रान दो देह. पर अब बिना सत्य हाल कहे छुटकारा कहां है? और कहने से प्यारी के क्लेश की सीमा भी नहीं रहेगी परंतु मित्र छोड़ के अपना दुःख-सुख कहा भी किससे जाय? जो कुछ हो पर अब तो सर्वतोभाव ठीक-ठीक व्यवस्थिति कहना ही उत्तम है. यही विचार स्थिर करके मारशास्त्री अपना इतिवृत्त कह के बोले, प्राणप्यारी अब मैं तुम्हें ईश्वर के समर्पण करता हूं.

हा कष्ट! इतना सुनते ही अब प्यारी के कष्ट की सीमा न रही, बस अब प्रणय-वत्सला के हृदय के शोक को कौन सहज में कह सकता है? प्यारी भीरुमिनी का मन आकाश-पाताल गमन करने लगा. हा! क्या एक बार ही ऐसा बज्राघात? अरे क्या आज ही कल्पांत आ गया? अब भी संसार शून्य होने में कुछ विलंब है, हा! आज आनंद सरिता सूख गयी, और प्रेमलता मुरझा गयी, प्यारे! क्या अब तुम संसार सूना कर चले, हा बैरी विधाता! मैंने तेरा क्या बिगाड़ा था जो मुझ-सी अबला पर ऐसा प्रबल अन्याय, धिक दुष्ट अन्यायी राजा! अरे ऐसा दारुण दंड! हे पृथ्वी! अब तू क्यों नहीं पाताल-गामिनी होती? हे बंधुगण कब सहाय होगे? क्यों प्रीतम! क्या अब ये मधुर वचन कल से मुझे नहीं सुनाई देंगे? क्या यह सब हास-परिहास, क्रीड़ा-कौतुक स्वप्नवत् हो जायगा, अथवा यह अमोघ दर्शन दुर्लभ हो जायेंगे? हा हंत! तो फिर ऐसे जीवन पर धिक्कार है, अच्छा प्यारे! अब मैं भी तुम्हारी ही अनुगामिनी होऊंगी, यदि जगदीश्वर न्यायपरायण, और वेद-पुराण सत्य हैं, तथा प्रेममार्ग सुसंपन्न एवं सुसंस्कृत है, और मेरा अंतःकरण प्रेमपूर्वक निष्कपट भाव से तुमारे चरण में अनुरक्त है, तो कभी भी दासी तुम्हारा संग न छोड़ेगी, और भली-भांति यहां न कर सकी तो परलोक ही में मन लगा के सेवा करेगी, एवम् अन्य जन्म में भी तुम्हारी ही अधिकारिणी होगी. हा! आज यह विपत्ति! वाह रे समय की खूबी, ऐसा अंधेर, यह आश्चर्य! इतना अनर्थ! एक मात्र अन्याय अन्यथा ही दंड विग्रह! व्यर्थ विचार! हा! प्यारे! क्या सचमुच अब तुम मुझ अभागिनी से नहीं मिलोगे? आज प्यारे का परम विछोह ऐसा हृदय-दाहक दारुण दावानल तन तूल तापन कर रहा

है जो अनिर्वचनीय है. हा! क्या करूं! कैसे इस आतुर, आकुल मन को शमन करूं.

इस प्रकार उस परम सुंदरी की व्यथा अत्यंत बढ़ गयी, और उधर मारशास्त्री का हाल तो अकथनीय ही था और अब समय भी आ गया, इससे विदा होने का भी अनुरोध किया, परंतु वह पतिप्रेमपरायणा क्या कर सकती थी? उसका अपने माता-पिता पर कुछ अधिकार भी न था, न स्वतः स्वतंत्र ही थी, जो अनुगामिनी होती और भागने पर भी परदुःखभंजन मिश्र पर पूरी आपत्ति आ जाती एवम् सोच-विचार युक्त प्रमदा ने अपना कर्म ठीक तथा ईश्वर पर भरोसा रख विदा करके कहा—अच्छा प्यारे! अब मैं तुम्हें ईश्वर को सौंपती हूं, और दंड स्थल में तमिस्राभिसारिका की भांति कृष्ण परिच्छद धारण करके मैं आऊंगी और तुमारे शत्रुओं का बध करके तुम्हारी अनुचरी होऊंगी, और तुम भी मेरी बाट देखते रहना—हा! लज्जा निगोड़ी क्या करेगी? उपहास-परिहास का अब क्या आक्षेप है? बंधुवर्गों का क्या डर है? और अब राजा ही का क्या भय है? जब प्राण ही चला, तब शरीर रह के क्या करेगा? और फिर इस संसार से ही क्या प्रयोजन है? प्यारे, मन की वृत्ति विचित्र है. तुमसे न्यारी होती हूं; और मुझे ठीक-ठीक अनुमान होता है कि ईश्वर निरापराधियों की रक्षा अवश्य करेगा और तुम कुशलपूर्वक चिरंजीवी होगे. इधर अब मारशास्त्री भी प्यारी से विदा हो कर चले आते हैं और उनकी सब लगी-लगाई आशाएं भी नष्टप्राय हुईं. इसी प्रकार सोच-विचार करते दो घड़ी रात शेष रहने पर मित्र के गृह आये और मित्र ने मित्र के सकुशल लौट आने के लिए हर्ष प्रकाश किया, और कल कालकूट ग्रह है, यह विचार कर सारे शोक के देहानुसंधान जाता रहा पर किसी प्रकार से मारशास्त्री को समझा-बुझा कर शयन कराया. परंतु यह क्या था? प्रेमासवप्रमाद मत्त मानव को कौन-सा शोक होता है? अब तो प्यारी भी संग चलेगी और मेरे रोके से वह अब भी नहीं रुकेगी, अतः परलोक में भेंट अवश्य होगी. फिर क्षति क्या है, प्रत्युत निद्रा का भी आक्रमण संबोधनपूर्वक होता ही है और यह भी प्राकृतिक नियम है कि भवितव्य का भाव मनुष्य के मुख पर स्वयं पूर्व ही लक्षित हो जाता है.

मारशास्त्री की प्रकृति प्रपंच से अच्छी संभावना है, तो आश्चर्य क्या है. निदान शयन करते ही मारशास्त्री तो निद्रित हुए और उस अवस्था में सब दुःख-सुख समान हो गया.

इति चतुर्थो निष्कः।

* *

अथ पंचम निष्कः।

न सभां प्रविशेत्प्राज्ञः सभ्यदोषाननुस्मरन्,
अब्रुवन् विब्रुवन वापि नरोभवति किल्विषी
(भगवते) ॥१॥

अहा, प्रभात काल की शोभा भी अतुल है. अंशुमाली भगवान भास्कर उदयाचल चूड़ावलंबी भये, संसारी जीव यावत् व्यापार में प्रवृत्त हुए. क्या इस समय प्रजापति (राजा) के निद्रा का समय है? अतएव बंदी जनों से संस्तूयमान महाराजाधिराज जागृत हुए एवं आवश्यकीय नित्य कृत्य समापन करके ईश्वराभिवादन तथा दानाध्ययनादि से निवृत्त होकर राजमंदिर में अतीवोन्नत सिंहासनाधिरूढ़ हुए. प्रहर मात्र दिन चढ़ गया था कि मंत्री आदि राज कर्मचारी अपने-अपने कार्यों की उत्कृष्टता दिखाने के लिए प्रथम ही से स्थित थे. सकल सभासद, प्रजा गण समय-समय पर उपस्थित हो-हो कर नृपति को प्रणाम कर के उचित स्थान पर विराजमान होने लगे और प्रतिक्षण के भाव जानने के लिए सर्वसाधारण प्रजा समूह की दृष्टि महाराज के सन्मुख लग रही थी, क्या ऐसे सुसंपन्न सभ्यों का विचार झूठा होता है? एकाएक सभास्थ लोगों के मन का भाव बदल गया कि आज भूपतीश्वर ऐसे खिन्नमना अपि च गूढ़ाभिप्रायग्रस्त से क्यों हो रहे हैं? परंतु वस्तुतः यह कौन निश्चय करके जान सकता था कि आज वसुंधरेश्वर को स्वीयश्रम का पारितोषिक परमेश्वर ने प्रसन्न होकर दिया है, और यही नरेश विचार भी रहे थे.

परंतु उस सर्व शक्तिमान जगदीश्वर की कृपा का उन्हीं को असंख्य धन्यवाद देना उचित है, जिसकी प्रेरणा ही से मुझे अन्वेषण करते-करते एक न एक अपूर्व न्याय-पथ मिल ही तो जाता है. अहह!! जो मैं इतना यत्न न करता और दोनों स्थानों में छिपकर उन लोगों का गुप्त तात्पर्य और मारशास्त्री का समस्त भेद न जानता एवं प्रिया-प्रियतम का अलौकिक सौहार्द्र का मर्म स्वयं न देखता, या उन्हीं दूतों की बातों पर ही केवल विश्वास करता तो आज अवश्य निरपराधी व्यक्ति का प्राण जाता. क्या आज मुझे इस न्यायसूत्र का पारिभाषिक अर्थ नहीं ज्ञात भया कि प्राणदंड सर्वथा अनुचित और दारुण दंड है? इसमें कितने निरपराधी जीवों का अमूल्य प्राण निम्न कर्मचारियों की लीला से जाया करता है. यदि कोई बास्तव में वधिक भी हो तो उसे भी प्राणदंड देना सर्वथा अयोग्य और सभ्य समाज में दूषित है क्योंकि मनुष्य की प्रकृति वधादि व्यभिचार करने के समय सम्यक् तमोगुण-वेष्ठित हो जाती है. उस समय इस दुष्कर्म के कारण हमारा भी यही प्राण जायगा, ऐसी अवस्था में उस अपराधी को प्राणदंड देने से वध-व्यापार किसी प्रकार भी कम नहीं हो सकता; क्योंकि प्राणदंड क्षणिक दुःख है और इसमें शिक्षालाभ तमोगुण के प्राकट्य में हो ही नहीं सकता, इसलिए यदि ऐसे-ऐसे घोर पापियों को सकठिन परिश्रम कारागृह निरोध हो तो प्रजासंख्या भी कम न होय, और अहर्निशि उसका दृष्टांत प्रत्यक्ष रहने से औरों को भय बाहुल्य द्वारा ऐसे घृणित कर्म करने के लिए तमोगुण की उत्पत्ति भी कम हो, तथा और फिर ऐसे-ऐसे घोर अभिचार की संख्या भी कम हो जाय, प्रत्युत उस अवस्था में उन्हीं को (जिन्होंने यह लोपलीला रची हो) उचित दंड देने का अवसर मिल सकता है, और यदि प्राणवध के अनंतर उसका (जिसका प्राणबध हुआ है) दोष झूठा ठहरे तो राजा कलंक का तुर्रा धारण करेगा और केवल पश्चाताप के और क्या

(आगे पृष्ठ ९० पर)

कृतियां

एक कहानी-संग्रह

'भरतमुनि के बाद'

लेखक : मणि मधुकर; प्रकाशक : देवनागर प्रकाशन, जयपुर; मूल्य : दस रुपये.

मणि मधुकर की कहानियां पढ़ते हुए मुझे अक्सर किसी शास्त्रीय अथवा लोकराग से जुड़ी हुई धुनों को 'सुनने' का अंतरंग सुख मिलता रहा है. और फिर लगा है कि संपूर्ण स्थितियों के आरोह-अवरोह में एक विशिष्ट संगति है. **'भरतमुनि के बाद'** की पंद्रह कहानियां, जहां जीवन की समग्र चेतना का निर्वाह करने वाली कुछ रागिनियों की सृष्टि करती हैं, वहीं दूसरी ओर उनमें यथार्थ को निर्ममता पूर्वक कुरेद कर देखने वाली तीव्र दृष्टि से भी साक्षात्कार होता है.

अनुभव की एक बड़ी दुनिया है लेखक के पास . उसके कथा-चरित्र बहुत जाने-पहचाने हैं, पर उनके भीतर जो कुछ 'अनदेखा' रह गया है, उसीको लेखक ने दर्शाया है. मणि मधुकर के पहले कहानी संग्रह **'हवा में अकेले'** की चर्चा करते हुए कहा गया था कि उनकी कहानियां हथेलियों के बीच से हवा के झोंके की मानिंद गुजर कर नहीं रह जातीं, वे पाठकों को एक जलते-तपते रेगिस्तान में छोड़ देती हैं, जहां वह अपने इर्द-गिर्द मंडराते प्रेतों और महाराक्षसों को खुली आंखों से देख और पहचान ही नहीं सकता, उनसे संघर्ष भी कर सकता है. . .वह उन कहानियों को अपने सामने रख कर एक खुला संवाद कर सकता है और अपने आपको उन कहानियों के किसी एक पात्र के व्यक्तित्व में समाहित होते देख सकता है.

रेगिस्तान की यंत्रणा-भरी जिंदगी **'भरतमुनि के बाद'** में भी है, किंतु इसमें महानगरीय विडंबनाओं को जीने वाले थके-हारे, टूटे हुए और स्वयं की सत्ता से दुःखी लोग भी हैं, जो अपने-अपने ढंग से आसपास के माहौल की निरर्थकता में अर्थ की, साबुत बची हुई आकांक्षाओं की तलाश करते हैं. सिराज, फिलिप, मौलो, सईदा, हेमा, हाफिज, ताराचंद, विनोद. . . शहरों के मध्यवर्गीय गौरव को ढोते हुए — खिन्न, खुश, अकेले और अधीर! इस किस्म के चरित्रगत अंकन एवं मानसिकता में पैठ की दृष्टि से **'दस्यु', 'रणक्षेत्र', 'भरत मुनि के बाद'** और **'उत्तरार्ध'** कहानियां उल्लेखनीय हैं.

यह आकस्मिक नहीं है कि संग्रह के अधिकांश कथा– संदर्भों का साक्षी 'मैं' है, जो समूचे द्वंद्व से गुजरता हुआ निरंतर आत्मान्वेषण के लिए सजग है. उसके चारों ओर झूठे, अहंग्रस्त, प्रतिक्रियावादी, ढोंगी और विभिन्न अलंकरणों से विभूषित 'महाजन' हैं. 'मैं' पानी में रह कर मगरमच्छ के छद्म वैभव और क्रूर सौंदर्य का शानदार वर्णन करता है. **'हालत'** में तो वह उसके पेट में पहुंच जाता है, पर निराश नहीं है. एक अच्छे भविष्य की प्रतीक्षा उसे बनी हुई है: नानी कहानी सुनाया करती थी कि एक राजकुमार जब मगरमच्छ के पेट में चला गया तो उसने चाकू से उसकी आंतें चीर डालीं और बाहर निकल आया. . . मेरी जेब में न चाकू है, न खंजर , बिल्कुल निहत्था हूं. अपने निहत्थेपन को पहचानता हूं, इसलिए अब नाखून बढ़ा रहा हूं. मुक्ति की आकांक्षा मन में है.

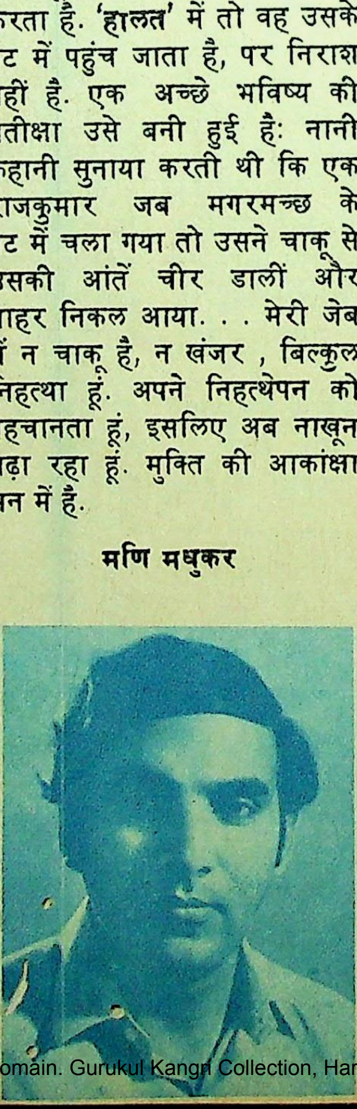
मणि मधुकर

चूंकि लोकधर्मी रचना-परंपरा से मणि मधुकर का घनिष्ठ परिचय है, इसलिए फंतासी के विविध रूप उनकी कहानियों में मिलते हैं. एक सहज, सीधी लय को अचानक 'स्वराघात' दे कर वह किसी और ही लोक में पहुंचा देते हैं और इस तरह का रूपांतर या यथार्थ का अतिक्रमण मूल अभिप्राय को अधिक व्यापकता प्रदान कर देता है. **'भुजंग', 'बैताल कथा'** और **'सुरंग'** में मानवीय यातना के भुतहे, अंधेरे, सीलन-भरे प्रसंगों की पड़ताल गहरे अर्थ से संपृक्त है.

'उजाड़ और अधमरे' संग्रह की सबसे सशक्त कहानी है, जिसमें बाड़मेर-जैसलमेर के सीमावर्ती क्षेत्र की युद्धकालीन स्थितियों का चित्रण है. फौजी चेहरों की जमात और रेत के बदलते हुए रंग! बाऊ का करारा-दबंग व्यक्तित्व और स्त्री-सुलभ दुर्बलताओं में प्यार की बलवती इच्छा से आक्रांता दाखां! धनसिंह, हमीद, बस्ती के दूसरे लोग और तमाम दुर्घटनाओं में शामिल 'मैं'—वाकई यह कहानी युद्धविरोधी जन चेतना का एक मार्मिक दस्तावेज है. इसी तरह सैद्धांतिक व्याख्याओं से हट कर, वर्ग-संघर्ष और शोषण को सही धरातल पर रेखांकित करने वाली कहानी है—'**मरी हुई पहचान**', जो सामाजिक संबंधों के खोखलेपन को भी उजागर करती है.

□ **इला सरकार**

एक उपन्यास

'दूसरी तरफ'

लेखक : महेन्द्र भल्ला;
प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, ८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली, पृष्ठ ३२६, मूल्य : २५ रुपये

'दूसरी तरफ' भारतीय युवक 'केवल' की कहानी है, जो भारत में दो वर्ष तक बेरोजगारी से क्षुब्ध हो कर मन में अनेक आकांक्षाएं लिये किसी तरह इंगलैंड पहुंचता है और प्रारंभ में वहां की हर ची

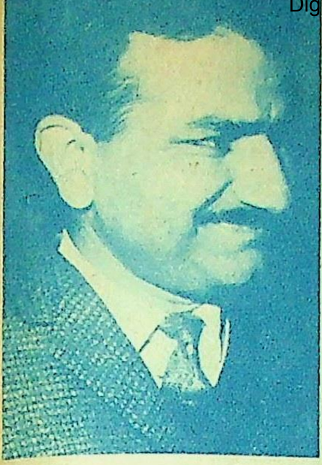

महेंद्र भल्ला

से बहुत प्रभावित होता है —— चाहे वहां की साफ-सुथरी सड़कें हों, स्वस्थ लड़कियां हों, हरी घास के लॉन हों या शाइस्तगी से कार्यरत क्यू के अभ्यस्त लोग हों. पर फिर धीरे-धीरे केवल का यह आकर्षण टूटता है, जब उसे पता लगता है कि उसे 'रंगीन' समझा जाता है और इसलिए वह घृणा का शिकार है, दूसरे दर्जे का नागरिक है और कहीं भी पीटा जा सकता है. बस यह आतंक उसके जीवन में जहर घोलने के लिए बहुत होता है, और आतंक का यह जहर सभी 'रंगीन' लोग पी कर जिंदा-मुर्दा हैं, पर अपनी लाशें ढो कर भी वहीं रहने को विवश हैं, क्योंकि उन्हें व उनके परिवार को पैसा चाहिए जो इंग्लैंड में ही मिल सकता है.

यूं उपन्यास का मुख्य पात्र केवल है, जिसके इर्द-गिर्द कहानी घूमती है, पर निश्चय ही अन्य पात्रों जैसे सूजन, विनी, योग, मुरारी, ब्रुक्स आदि का जीवंत चित्रण लेखक ने किया है तथा जिनके द्वारा लेखक कहानी को आगे बढ़ाने और अपनी बात को स्पष्ट करने में सफल हुआ है. कथानक के प्रवाह के साथ भारतवासियों और ब्रिटेनवासियों, उनके रहन-सहन, रख-रखाव और चरित्र पर भारत और ब्रिटेन पर समुचित टिप्पणियों ने उपन्यास में रोचकता ला दी है.

समूचा उपन्यास मर्मस्पर्शी घटनाओं का समूह लगता है, जो इधर-उधर बिखरी पड़ी हैं. योग का दिल्ली के बारे में रस ले कर व्यग्रता से पूछताछ करना, मुरारी का चुनाव में हार जाने और दूसरे रंगीनों की तरह पिटने के बाद, 'अंग्रेज किसी के नहीं होते' स्वीकारना, केवल का हार कर कारखाने, पोस्ट आफिस और स्टोर की नौकरी स्वीकारना और अंततः अपने को रंगीन मान लेना, बलवीर के नये आवास की पार्टी और पार्टी के बाद का आतंक, सूजन की परिवार के बोझ से छटपटाहट, बस में बैठी नन्हीं लूसी और उसकी मम्मी की बातचीत, ब्रुक्स के लिए अपमान पी कर भी अखबार लाता केवल, वेंडी के घर से परास्त हो कर खंबे से मुक्का मारता केवल आदि अनेक स्थल हैं, जो दिल में कहीं गहरे बैठ गये लगते हैं.

लेखक की शैली अत्यंत भावपूर्ण और विशिष्ट रही है. संवेदना से पूर्ण अति भावुक क्षणों में जब तब केवल का दिल्ली के अपने मित्र कैलाश तथा लिवरपूल में अपनी मित्र सूजन को संबोधन करना अपना विशिष्ट प्रभाव डालता है.

इस तरह एक मर्मस्पर्शी उपन्यास है **'दूसरी तरफ'** जो उन सभी भारतीयों को, जो विदेशों को स्वर्ग समझते हैं, उनके काल्पनिक स्वर्ग से यथार्थ की धरती पर ले आता प्रतीत होता है, तथा जिस उपन्यास में 'रंगीन' होने की पीड़ा भोगते प्रवासी भारतीयों का स्पष्ट और सफल चित्रण हुआ है.

□ विजय चतुर्वेदी

'मुक्तकंठ' का कहानी-विशेषांक

पत्रिकाओं की कुकुरमुत्ता बाढ़ में एक लघु पत्रिका कोई खास अहमियत नहीं रखती. इसी भीड़ के बीच एक साधारण-सा नाम है— **'मुक्तकंठ'**. शंकर दयाल सिंह द्वारा संपादित इस मासिक पत्रिका ने अपनी अल्पायु में ही जिस तरह साहित्यिक मानदंड स्थापित किये, वे हमें चौंकाते ही नहीं, बल्कि लघु पत्रिकाओं से लोगों की टूटती आस्था को जोड़ते भी हैं. पत्रिका का जून १९७६ का 'कहानी विशेषांक' इसी बात का परिचायक है. विशेषांक में कुल मिला कर नौ कहानियां, दो निबंध और एक लंबी समीक्षा है.

अंक की सभी कहानियां आम आदमी से प्रतिबद्ध और उसी के संघर्ष को सशक्त रूप से चित्रित करती हैं. इन सभी कहानियों के पात्र एक गहन मानवीय संवेदना की तलाश में भटक रहे हैं. उन सभी का संघर्ष मनुष्य के रूप में एक सहज जिंदगी जीने का संघर्ष है. अपने आस-पास का व्यूह तोड़ने के लिए वे कटिबद्ध हैं.

बसंत कुमार की कहानी **'मोहभंग'** के माथुर साहब, मोंगा की कहानी **'राव'** के मि. शर्मा, प्रदीप पंकज की कहानी **'ठूंठ गुलमोहर'** का 'वह' और कुलवंत सिंह कोछड़ की कहानी **'बिका हुआ दर्द'** की चंपा ऐसे पात्र हैं, जो सामाजिक, नैतिक अवमूल्यन और मानवीय असंवेदना के शिकार हैं. शंकर दयाल सिंह, देवेंद्र कुमार, बिंदु सिन्हा, और पुष्प लता कश्यप की कहानियां भी इसी गहन दर्द को चित्रित करती हैं.

डॉ. विनय ने अपने निबंध **'कथा-नायक सामान्यजन और प्रगतिशीलता की धारणा'** में **'उत्तरार्ष'** में प्रकाशित फिडेल कास्ट्रो का संदर्भ देते हुए सामाजिक क्रांति में लेखकीय दायित्व का प्रश्न उठाया है. अजित कुमार ने अपने निबंध **'कहानी की चर्चा पर एक चर्चा'** में आजकल होने वाली कहानी गोष्ठियों के कई द्वंद्वग्रस्त पहलुओं को उठाया है.

विशेषांक हमारी आज की कहानी-यात्रा के वर्तमान पड़ाव को दर्शाता है और जीवन तथा साहित्य में तेजी से हो रहे परिवर्तन का भी जीवंत चित्रण करता है.

□ त्रिवेणी प्रसाद

गोष्ठी-रपट

समांतर साहित्य और सामान्य जन : एक विचार-गोष्ठी

समांतर कथा-मंच के तत्वावधान में पिछले दिनों कलकत्ता के 'जन-संसार सभागार' में 'समांतर साहित्य और सामान्य जन' विषय पर एक विचार-गोष्ठी का आयोजन हुआ. यह आयोजन इस महानगर के सांस्कृतिक मंच पर एक नया और महत्वपूर्ण आयोजन था, जिसमें हिंदी, बंगला, उड़िया, मैथिली तथा असमिया के लेखकों ने उत्साह के साथ भाग लिया. कपिल आर्य द्वारा आयोजित इस गोष्ठी की अध्यक्षता सुप्रसिद्ध लेखक श्री समरेश बसु ने की.

कपिल आर्य ने अपने संयोजकीय वक्तव्य में समांतर साहित्य के विविध पक्षों की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की. उन्होंने कहा कि समांतर साहित्य सामयिक सच्चाइयों का एक स्पष्ट और व्यापक रूप पेश करता है तथा देश और उसकी समस्याओं को ठीक-ठीक समझने का सबसे बड़ा माध्यम सामान्य जन को ही मानता है.

डॉ. ईश्वरीप्रसाद तिवारी ने परिचर्चा में भाग लेते हुए कहा कि समांतर लेखन हिंदी साहित्य की नवीनतम धारा है. इस धारा से जुड़े लेखकों ने कई समांतर कहानियां, उपन्यास और नाटक लिखे हैं, जिन्हें सहज ही सर्जनात्मक उपलब्धियों में शुमार किया जा सकता है. लेकिन उससे भी बड़ी बात तो यह है कि समांतर लेखन अपनी प्रवृत्तियों के आधार पर सामाजिक बदलाव की भूमिका तैयार कर रहा है.

असमिया लेखक कुलनाथ गगोई ने कहा कि समांतर साहित्य सामाजिक एवं आर्थिक वैषम्य तथा जन-साधारण की पीड़ा और संघर्ष का दस्तावेज प्रस्तुत करता है. इसलिए मेरे विचार से यह प्रगतिशील चेतना से संपन्न मानवतावादी लेखन का ही प्रतिरूप है.

डॉ. रामप्रीत उपाध्याय की दृष्टि में आम आदमी को मूल कथ्य बना कर रचना करने की प्रवृत्ति हिंदी लेखकों के बीच आजादी के बाद ही शुरू हो गयी थी, किंतु यह बात और है कि समांतर साहित्य के माध्यम से ही सामान्य जन विषयक लेखन एक सक्रिय रचनात्मक आंदोलन का आकार ग्रहण कर सका. सच तो यह है कि बंगला साहित्य में भी जन-साधारण को ले कर प्रचुर मात्रा में लेखन हुआ है, और कलकत्ता के कुछेक हिंदी युवा लेखकों ने भी इस दिशा में सार्थक पहल की है.

अनय ने समांतर साहित्य को एक स्थापित आंदोलन तथा आम आदमी का लेखन मानते हुए कहा कि समांतर कहानियों में वर्तमान जन-जीवन के संकट को प्रभावोत्पादक तरीके से रेखांकित किया जा रहा है, किंतु अभी समांतर को दृष्टि की तलाश है.

मैथिली के युवा कथाकार रघुवीर राकेश ने अपने लिखित निबंध में इधर की मैथिली-कहानियों का उल्लेख करते हुए उनमें समांतर वैचारिकता को रेखांकित किया तथा इसकी सार्थकता के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की.

अतिथि-वक्ता के रूप में बंगला के कृती कथाकार सुनील गंगोपाध्याय ने अपने वक्तव्य में कहा कि साहित्य के क्षेत्र में फार्मूलाबद्ध लेखन और वैचारिक पक्षधरता की अपेक्षा मुक्त चिंतन और निरंतर लेखन श्रेयस्कर है.

श्रीनिवास शर्मा ने बताया कि सामान्य जन को ले कर लिखी गयी कहानियों को गौर से देखने के बाद यह तथ्य साफ उजागर हो जाता है कि समांतर लेखन एक सुचिंतित विचार-धारा के तहत कार्यरत है. जीवन के जिन मुद्दों को रचना के माध्यम से समांतर लेखक उठा रहे हैं, वे निस्संदेह समकालीन मुद्दे हैं, जिनसे हमारा आज का जीवन प्रभावित है.

उड़िया कथाकार श्री कंडुरी दास ने अपने पठित निबंध में बताया कि लेखक और आम अदमी के बीच कोई फासला नहीं होता, क्योंकि लेखक भी उन्हीं के बीच का एक आदमी होता है, जिसके साथ जिंदगी जीने की वे सब बुनियादी शर्तें लागू होती हैं, जो एक सामान्य जन के साथ होती हैं. उनके अनुसार लेखक और पाठक के बीच तादात्म्य स्थापित करने का सबसे कारगर तरीका रचना में जन साधारण की भाषा का प्रयोग ही हो सकता है. उन्होंने आगे कहा कि हिंदी के समांतर साहित्य की तरह उड़िया भाषा में भी जो साहित्य

बायें से—डॉ. ईश्वरीप्रसाद तिवारी, कुलनाथ गगोई, कंडुरी दास, समरेश बसु, डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र, सविता बनर्जी, रामव्यास पांडेय तथा अन्य लेखक

इन दिनों लिखा जा रहा है, उसका दृष्टिकोण सामाजिक और केंद्र-बिंदु सामान्य जन ही है.

सुरेंद्र तिवारी के अनुसार समांतर आंदोलन की सफलता इसी बात से सिद्ध हो जाती है कि उसके साथ युवा लेखकों का एक व्यापक वर्ग जुड़ गया है और अपना वैचारिक तथा रचनात्मक सहयोग कर रहा है.

डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र ने कहा कि समांतर साहित्य राजनीतिक दुराग्रहों तथा कलावादी स्वांगों से मुक्त एक सामाजिक संसक्ति का लेखन है, जिसे मैं अपना पूर्ण समर्थन देता हूं. साथ ही उन्होंने इस बात से भी आगाह किया कि समांतर का 'आम आदमी' कहीं 'खास' में न बदल जाये.

श्री समरेश बसु ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि मैं लेखक की हैसियत से भी अपने आपको सामान्य जन मानता हूं. उन्होंने अपनी रचना-प्रक्रिया के बारे में बताते हुए कहा कि मैंने एक आम आदमी की तरह अपने आसपास के सामाजिक परिवेश में हिस्सा लिया है, उसका भागीदार बना हूं. अपनी रचनाओं में मैंने बंगाल के मछुआरों, चटकल-कारखानों के मजदूरों, खेतिहर-कामगरों तथा अन्य श्रमजीवी आदमियों की जिजीविषा, आशा-आकांक्षा तथा उनके स्वप्न और संघर्ष को रूपायित-रेखांकित करने का प्रयास किया है. उन्होंने अपने वक्तव्य के अंत में कहा कि साहित्य जीवन की सतत् खोज है.

अलख नारायण महानगर से बाहर रहने के कारण एक लिखित टिप्पणी भेज कर परिचर्चा में शरीक हुए. उन्होंने अपनी टिप्पणी में कहा कि 'समांतर कहानी' के तहत लिखने वाले अनेक कहानीकारों ने समाज की केंद्रीय सच्चाई को भरसक उभारा है तथा मार्मिक तथ्यों, चित्रणों और विवरणों के माध्यम से सामयिक यथार्थ की पहचान का विवेक प्रतिष्ठित किया है. इन्होंने क़हानी को ड्राइंगरूमों, बेडरूमों, रेस्तराओं, होटलों, ऐतिहासिक खंडहरों, पिकनिकों और गिनी-चुनी समस्याओं से बाहर निकाल कर कामगरों, रिक्शाचालकों, झाबेवालों, जरखरीद चाकर, मजूदर, जूट मिल और चटकल के श्रमिक आदि की दुनिया में प्रवेश कराया है. पूंजीवाद और शोषक वर्ग की मूक तरफदारी करने वाले नवलेखनवादी - भाववादी साहित्यकारों की आम आदमी-विरोधी दृष्टि से बौखला कर यदि 'आम आदमी' का नारा भी दिया गया, तो यह बुरा नहीं है. आवश्यकता इस समझ को विकसित करने की है और इस तरह जनाकांक्षाओं के स्रोत को सूख जाने के पहले मोड़ने की है. साहित्य का संघर्ष क्रांति का संघर्ष नहीं होता. साहित्य को क्रांति का स्थानापन्न मान लेना कुत्सित समाज-चेतना का ही प्रतिफल होगा. उन्होंने आगे कहा कि मैं यह नहीं मानता कि रचनात्मक उत्तेजना भरी जटिलताएं 'समांतर' के अंतर्गत लिखने वाले कामतानाथ, मधुकर सिंह, से. रा. यात्री, इब्राहीम शरीफ, कपिल आर्य, सुदीप आदि की कहानियों में ही आकार पा सकी हैं. इस दृष्टि से **'घंटा', 'माननीय होम मिनिस्टर के नाम', 'प्रथम पुरुष', 'किस बहाने', 'सूरज कब निकलेगा'** तथा **'उसकी रोटी'** आदि कहानियां वस्तुमयता और समग्रता के स्तर पर मूल्य और संस्कार को कुरेदती हैं.

बहस-चर्चा में डा. नगेंद्र चौरसिया, विनयकृष्ण बनर्जी तथा नीलम श्रीवास्तव ने भी भाग लिया. गोष्ठी में उपस्थित अन्य व्यक्तियों में शक्ति चट्टोपाध्याय, दिनेश आचार्य, सविता बनर्जी, उपल, कृपाशंकर पांडेय, प्रो. इंदु उपाध्याय, आनंदकुमार सिनहा, कामताप्रसाद दुबे, प्रो. मीरा सिन्हा, हृदयेश पांडेय, कृष्णा पटेल, विभास सेन, कमलेश्वर प्रसाद वर्मा, कविरुद्र, रश्मि, रामव्यास पांडेय और गीतेश शर्मा के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं.

□ कपिल आर्य

विविध

पंजाब : हिंदी रंगमंच

'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक'

बेहद गर्मी, पसीने से तरबतर रंग-प्रेमियों की भीड़ कपूरथला के जगजीवन हॉल के बाहर वहां की स्थानीय संस्था इंडियन आर्ट्स रिवाइवल ग्रुप द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले सुरेंद्र वर्मा कृत नाटक **'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक'** की व्यग्रस्ता से प्रतीक्षा कर रही थी.

बोझिल-सा वातावरण लिये नाटक शुरू हुआ. महाराज औक्काक की नपुंसकता के फलस्वरूप अमात्य परिषद् द्वारा यह प्रस्ताव पारित किये जाने पर कि राजमहिषी शीलवती नियोग द्वारा संतान प्राप्ति करे, महाराज औक्काक अप्रसन्न हैं.

नाटक ज्यों-ज्यों आगे बढ़ा, प्रेक्षकों को अपने साथ लेता हुआ सूर्य की पहली किरण तक पहुंचा.

ललित बहल द्वारा निर्देशित तथा उन्हीं द्वारा तकनीकी संकलन के मार्गदर्शन के फलस्वरूप नाटक केवल सफल ही नहीं हुआ, अपितु इसने पंजाब में हिंदी रंगमंच को स्थापित करने में जो योगदान दिया है, वह अविस्मरणीय है.

अभिनय की दृष्टि से शीलवती के रूप में कुमारी कंवल प्रीत ने दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर दिया. औक्काक की भूमिका स्वयं ललित बहल ने प्रभावशाली ढंग से निभायी.

□ जसवंतसिंह विरदी

औक्काक की भूमिका में ललित बहल तथा शीलवती की भूमिका में कुमारी कंवल प्रीत

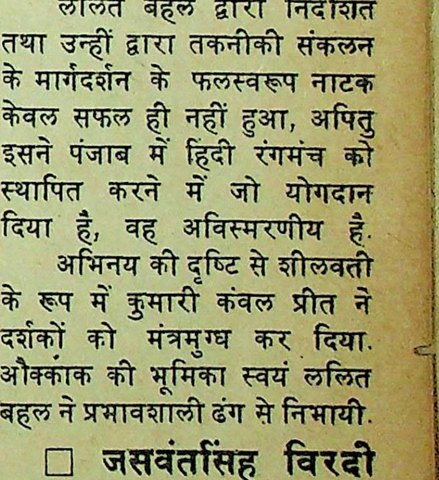

धारावाहिक उपन्यास (सातवीं किस्त)

लाल पसीना

• अभिमन्यु अनत

अब तक आपने पढ़ा है :

सदियों पूर्व विस्तृत महासागर के बीच ज्वालामुखी के विस्फोट से मॉरिशस द्वीप का जन्म हुआ. सदियों तक यह द्वीप वीरान पड़ा रहा. फिर विभिन्न देशों ने इसे भारत तक पहुंचने का रास्ता बनाया. मारीच देश में पत्थरों के नीचे सोना दबा पड़ा है—यह सुन कर अकाल और भूख से पीड़ित भारतीय किसानों के दल मजबूर बन कर वहां जाने लगे. लेकिन वहां पहुंच कर विदेशी स्वामियों के अनाचार ने उनका मोह-भंग कर दिया. कुंदन भा इन मजदूरों में से एक था. एक छोटी भूल के लिए उसे उम्र कैद मिली. बरसों बाद उसे जेल से भागने का रास्ता मिल गया. वह एक ऐसे गांव में जा पहुंचा, जहां बहुत-से भारतीय रहते थे. कुंदन मजदूरी करने लगा. गांव के मुखिया के बेटे किसन ने उसे अपना गुरू स्वीकार किया. किसन एक ओर अपनी जाति के लोगों की स्थितियों से दुखी था; दूसरी ओर पुष्पा और सत्या के प्यार में संतुलन नहीं बना पा रहा था. पुष्पा धीरे धीरे कुंदन के निकट आ गयी थी. . .उसे जैसे पिता का स्नेह मिल गया था. दूसरी ओर किसन और उसके साथियों की गतिविधियां बढ़ गयी थीं. . .अब आगे पढ़िए.

कुंदन के घर में हिंदी की पढ़ाई होती है, रामायण और आल्हा गाये जाते हैं, बैठक लगती है, इस बात का पता ठेकेदारों को चल गया था. कुंदन को चेतावनी देने के बाद उस पर कड़ी नजर रखी जा रही थी. यही कारण था कि पिछली बैठक उस समय लगी थी, जब मूसलाधार वर्षा हो रही थी. लोगों के बीच दो घंटों की जो बातचीत हुई, वह भय और झिझक के बीच हुई थी. जब दूसरी कोठियों में पहुंच कर सभी लोगों को सजग और संगठित करने की बात चली थी, तो किसन खुद जाने को तैयार हो गया था. इस पर कई लोगों ने एक साथ आपत्ति की थी. सभी ने यही कहा था कि किसन को यहीं रह कर सभी कुछ करना है. इसके बाद सोनालाल खड़ा हो गया था. सोनालाल को किस तरह दूसरी कोठियों में प्रवेश करके काम करना था, उसे सभी कुछ बताने की जिम्मेवारी को कुंदन ने अपने ऊपर ले लिया था.

उस रात पौ फटने तक लोग आल्हा गाते रहे. पानी भी जी भर कर बरसता रहा. उस रात किसन की हर बात को गंभीरता के साथ सुना और समझा गया था. भीतर के भय और झिझक के बावजूद उस रात संकल्प हुए. पहली बार एक मकसद के लिए लोग तैयार दीखे. लोगों के ध्यान को अपनी आंखों में बांध कर किसन ने कहा था—एक-न-एक दिन तो हमें इन सभी अनर्थों के विरुद्ध अपनी छाती को सामना करना ही है.

—वह दिन आज ही क्यों न हो?

सभी के बीच इस प्रश्न की प्रतिध्वनि हुई थी. काफी देर तक उसकी अनुगूंज घर के भीतर होती रह गयी थी. उस अनुगूंज के भीतर लोग उस समय तक जकड़े रहे, जब तक कि कोठरी के रखवार की आवाज की गूंज पूरी बस्ती में न फैल गयी.

—फजीर होवे के बा! काम पर पहुंचे के तैयारी में लग जावो. . .फजीर होवे के बा. . .

उस धुंधलके में सभी घरों से चिराग टिमटिमा उठे थे. बरतनों की झनक शुरू हो गयी थी.

★ ★

हाथ में पीतल का लोटा थामे सोनालाल भी मैदान को चल पड़ा. उसकी पहली मंजिल थी आंत्वानेत कोठरी, जहां उसका चचेरा भाई जमीन से पत्थर निकाल कर उसे खेतों में परिवर्तित करने में लगा हुआ था. वह इलाके की सबसे बड़ी बस्ती थी. पूरे तीन सौ मजदूरों की. अपने भीतर भय और साहस लिये वह पहाड़ी को पार कर गया.

रघुसिंह को जब रात की बैठक के निर्णय का पता चला, तो वह किसन पर बरस पड़ा. यह कहते हुए कि उसके समय में परिस्थिति इससे भी नाजुक थी. एक ही देगची में चावल पकता था और मजदूर के सामने कलछी भर फेंक दिया जाता था. कपड़े की जगह कई वर्ष बोरे पर दिन गुजारे गये थे. आंखों के सामने घर की औरतों की इज्जत लूट ली जाती थी. उन सभी परिस्थितियों को वे झेल आये थे. आज जब स्थिति में काफी सुधार आ गया था, तब इस तरह का विद्रोह करके अपने भविष्य को माटी में मिलाना था. वह यह कह कर आज के नौजवानों को कोसता रहा कि इन गरम खून वालों के भीतर 'सबूरी' नाम की कोई भी चीज नहीं थी. उनमें न संतोष था, न सहने की हिम्मत, अंत में पूरी गंभीरता के साथ उसने किसन से पूछा —तुम लोगन हमनी के समय में होत स त का करके रहत स?

किसन अपने बाप की बातों को चुपचाप सुनता रहा. उससे तर्क करके उसके क्रोध को और भी बढ़ाना था. अगर किसन को हैरत थी तो इस बात की, उसके बाप का यह आक्रोश किसी विशेष कारण के लिए क्यों नहीं था? ऐसा हो कर कम-से कम बेकार होने से तो बच जाता. लेकिन किसन के अपने भीतर का आक्रोश भी बेकार था, वह भी तो उसी पुरानी बेचारगी की

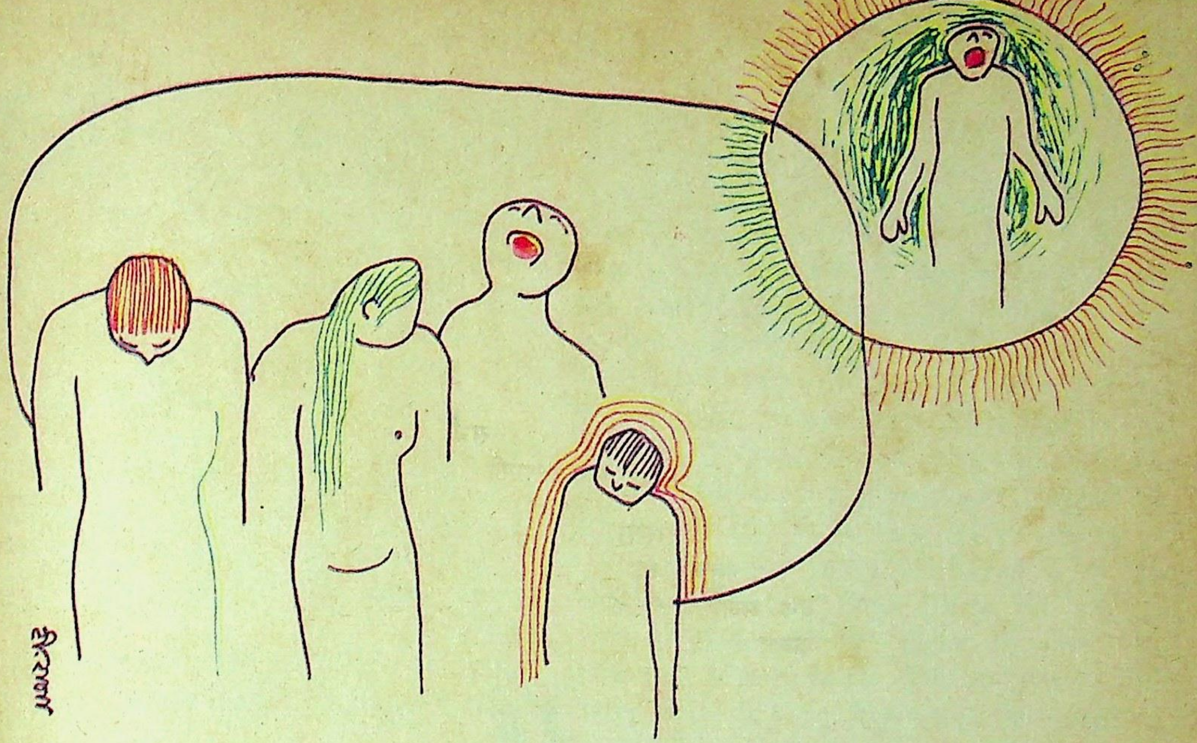

स्थिति में था. निहत्था वह भी था. वह यह भी जानता था और इन सभी के विरुद्ध उसका विद्रोह भी सीलेपन से मुक्त नहीं था.

सोनालाल की मां को जब मालूम हुआ कि उसका बेटा दूसरी कोठरी में मजदूरों को सजग और संगठित करने पहुंचा है, तो वह भय के कांप उठी. सीधे किसन के घर पहुंच कर उसने अपने बेटे के बारे में पूछताछ शुरू कर दी. सोनालाल की मां की उपस्थिति में ही रघुसिंह किसन को बुरा-भला कहता रहा. सोनालाल की मां को रोते पा कर किसन की मां भी अपने बेटे पर बरस पड़ी. रघुसिंह के घर एक लड़का और दो लड़कियां थीं. इन तीनों से पहले भी उसके यहां दो बच्चे जन्मे थे, पर कुछ ही दिन जी कर दोनों बच्चे मर गये थे. गांव की कई औरतों ने एक साथ कहा था. —रघुसिंह की बहुरिया, तुम्हारे को बच्चा नहीं सहता.

इसीलिए जब तीसरी बार किसन का जन्म हुआ था, तो सोनालाल की मां ने आगे आ कर अपने खूंटे से एक पैसा निकाला था और रघुसिंह की पत्नी के हाथों में रख कर बच्चे को अपनी गोद में ले लिया था. इसी तरह बारी-बारी से उसने किसन की दोनों बहनों को भी खरीद लिया था और तीनों बच्चों के जीवित रह जाने का यही कारण समझा जाता था. रघुसिंह के बच्चे गोपाल की मां को भी मां कहते थे. तीनों बच्चों ने सबसे पहले उसीका दूध पिया था.

सोनालाल की मां को रोते पा कर किसन ने उससे धीरे से कहा —तुम सोनालाल की चिंता नहीं करो, मां. वह एक बहुत बड़े काम के लिए उधर गया है. काम पूरा होते ही लौट आयेगा.

किसन नहीं चाहता था कि वह बात फैले, उसके फैलने से सोनालाल संकट में तो पड़ेगा ही, उसके साथ-साथ काम बनने के बदले और भी बिगड़ जायेगा. दूसरे दिन शाम के वक्त नदी-किनारे अकेले होने पर किसन ने अपने आप से बातें करते हुए कहा कि सोनालाल की जगह उसे खुद जा कर दूसरी कोठियों के मजदूरों से मिलना चाहिए था. पर उसकी अनुपस्थिति पर बहुत जल्दी संदेह हो जाता. वह अपनी कोठी से बाहर कभी नहीं गया था, जबकि सोनालाल का किसी बहाने इधर-उधर जाना होता ही रहता था. इस लिहाज से उसके बारे में संदेह की कम संभावना थी.

इन कारणों के बावजूद किसन को प्रतीत होता रहा कि निर्भयता का उसमें अभाव था, अन्यथा इस खतरे को उसे अपने सिर पर लेना चाहिए था.

* *

नदी की ओर जाते हुए सरदार के खेत के पास वाली पगडंडी पर उसे सत्या मिल गयी थी. उसके हाथ में हरी मकई थी. उसने किसन से पूछा था —भुनी हुई मकई खाओगे, किसू?

—नहीं.

—देखती हूं, तुम खाये बिना कैसे आगे बढ़ते हो!

कुछ ही दूरी पर सत्या की मां सूखी लकड़ियों के अंगारों पर मकई भून रही थी. उसके पास तक पहुंच कर सतिया एक भुट्टा उठा लायी थी. किसन के हाथ में जबरदस्ती थमाते हुए बोली थी —एकदम सोंधी है!

—मैं नहीं खाऊंगा.

—नदी की ओर जा रहे हो न?

—हां.

--तो उसी में फेंक देना.

वह एक दूसरी बात थी, जिसे सत्या ने कहा था और जो इस समय उसके कान में बज रही थी.

--किसू, लोग कहते हैं तुम बड़े साहसी हो.

वह व्यंग्य नहीं था, लेकिन इस समय वह उसे व्यंग्य-सा प्रतीत हो रहा था. उसने मन ही मन कई बार प्रश्न किया : क्या मैं सचमुच साहसी हूं? अगर सत्या ने व्यंग्य न किया हो, तब तो. नहीं, वह व्यंग्य नहीं था. और भी कई अवसरों पर कई लोगों ने इस तरह की बात कही है. लेकिन मैंने तो इसका अब तक कोई भी प्रमाण नहीं दिया. क्या वक्त-बेवक्त नदी की ओर आ जाने से कोई साहसी बन जाता है? बस्ती में गोसाईं जी सबसे अधिक पढ़े-लिखे आदमी थे. किसन एक बार साहस शब्द का अर्थ उनसे पूछ कर देखना चाहता था. हो सकता है कि उसके दो अर्थ हों. लोग उसे उस दूसरे अर्थ से पुकारते होंगे, जो उसे मालूम नहीं.

सत्या की दी हुई मक्की अब भी उसके हाथ में थी. सत्या ने उसे और भी कई अवसरों पर चीजें दी थीं. किसन उन चीजों को बस्ती के बच्चों के बीच बांट देता. मक्की का क्या करे? रात होने को थी. मक्की की सोंधी गंध में प्रलोभन था. मक्की में सत्या की याद थी, सत्या की गंध थी. किसन को भूख लग आयी थी, लेकिन उसे मक्की खाना नहीं था, कम-से-कम अपने इस संकल्प से वह बहुत अच्छी तरह अवगत था.

एक बार सत्या उसका हाथ थामे उसे मकई के खेत के भीतर घसीटे चली गयी थी. वह खेत किसन को कांटों की झाड़ी-सा लगा था. यह खेत रामजी सरदार को रेमों मालिक की ओर से भेंट में मिला था. यह वफादारी की भेंट थी. पुष्पा की मां कहती कि भोले-भाले मजदूरों की कल्पना पाला बन कर उस खेत पर गिरेगी. उसका कहना हर वर्ष गलत साबित हो कर रह जाता. सरदार की फसल हर साल अच्छी होती. कोठी के काम के बाद वह बारी-बारी से सभी मजदूरों से उस खेत में काम करवा लेता था. केवल किसन ही था, जिसने उस खेत में कभी भी काम नहीं किया था.

★ ★

तीन दिन बाद. कड़कती धूप में. ईख की कटाई के वक्त. किसन ने सुना. सोनालाल पकड़ा गया.

पूरी खबर उसे काम से लौटते समय रास्ते में मिली.

दूसरी कोठी में मजदूरों को सचेत करते हुए सोनालाल पकड़ा गया था. दूसरी कोठी वाले सरदार ने उसके हाथ-पांव बांध कर उसे लंगड़वा साहब के यहां भिजवा दिया था. लंगड़वा साहब ने उसके शरीर के कपड़े उतरवा कर उसकी देह को ईख के रस से चप-चप करवा कर कड़कती धूप में पेड़ से बंधवा दिया था. जिस समय मजदूर की नजर उस पर पड़ी थी, उसका शरीर लाल चींटियों से खदबद भरा हुआ था. पीड़ा से चिल्लाते चिल्लाते वह बेसुध हो गया था. उसके पास फटकने की इजाजत किसी को नहीं थी. लंगड़वा साहब के दोनों कुत्ते उसके इर्द-गिर्द घूमने को छोड़ दिये गये थे. बस्ती का शायद ही कोई ऐसा मजदूर था, जिसका पाला इन कुत्तों से न पड़ा हो. कइयों की बोटी-बोटी नोचे जाने से बची थी. दिल दहला देने वाली वह कड़वी यादगार आज भी कई लोगों के भीतर ताजा थी.

किसन सीधे लंगड़वा साहब की कोठी पर पहुंचा. मलगासी पहरेदार ने डांटते हुए पूछा-- कोत तो पे आले?

--मुझे मालिक से मिलना है.

--मालिक को तुमसे मिलना नहीं है.

--बहुत जरूरी काम है.

किसी तरह वह लंगड़वा साहब के सामने पहुंच कर रहा.

--सोनालाल को छोड़ दिया जाये, साहब.

--तुम्हारे कहने से हमें और क्या-क्या करना है?

दूसरे ही क्षण मलगासी पहरेदार ने पूरी ताकत के साथ किसन को ठेलते हुआ फाटक से बाहर कर दिया था.

बस्ती को लौटते हुए रास्ते में फिर सत्या मिल गयी थी और किसन बहुत देर से घर पहुंचा.

सत्या कई बार किसन से कह चुकी थी, अगर वह चाहे तो उसे कारखाने में काम मिल सकता था. किसन ने कभी नहीं चाहा था. उसके न चाहने के कई कारण थे. किसी भी हालत में वह सत्या और रामजी सरदार का एहसानमंद होना नहीं चाहता था. सिफारिश के जरिये वह कहीं पहुंचे, यह बात भी उसे पसंद नहीं थी. और ईख के कारखाने में कई संकट-कालीन स्थितियों में वह काम भी कर चुका था. वहां के सभी अच्छे काम मलगासी करते थे. वहां जो भारतीय मजदूर थे, वे तो वहां हाड़-मांस के कल की तरह लगाये गये थे. कोल्हू के बैल और उनमें कोई अंतर था ही नहीं. उन लोगों से किसन ने कई बार पूछा था कि वहां के सभी अच्छे कामों पर केवल क्रिओल क्यों थे? इसके उत्तर में उससे हर बार यही कहा जाता : क्योंकि वे लोग भारतीय नहीं. वह उत्तर तेजाब छिड़कने वाला था. उसकी जलन से किसन भीतर ही भीतर कराह कर रह जाता.

सारी योग्यता के बावजूद भारतीय लोगों को कोई भी ऐसा काम नहीं दिया जाता, जो बेहतर था और जिस पर गोरों और मलगासियों का एकाधिकार-सा था. सब से अच्छे काम गोरों के लिए होते थे. सबसे बदतर भारतीयों के लिए. बीच का काम उन लोगों के लिए होता था, जो न तो गोरे थे, और न ही भारतीय. अपने आप को सांत्वना देने के लिए अगर भारतीयों के पास कुछ था, तो यह कि काम काम होता है. उसके लिए बदतर और बेहतर का प्रश्न ही क्यों?

★ ★

देवकरन गोसाईं अब नहीं रहा. वह कहा करता था कि इस देश में सबसे अधिक काम करने वाली हमारी जाति है. एक दिन हमारी ही जाति के हाथों में इस राज

की बागडोर होगी. यही कहते-कहते देवकरन गोसाईं मरा था. कभी अकेले बैठे-बैठे किसन सोचा करता, इस देश में मेरे ही लोग जंगल काटते हैं, चट्टानों को चीरते हैं, पत्थरों को हटा कर जमीन वे ही लोग जोतते हैं, बोआई वही करते हैं, मेरे ही लोग पौधों को सींचते हैं, खाद देते हैं, उनकी रखवाली करने वाले भी वे ही लोग होते हैं; मेरे ही लोग फसल काटते हैं, जामुनी ईखों को कारखाने तक पहुंचाते हैं; रस वे ही गोड़ते हैं, शक्कर वे ही बनाते हैं, लेकिन शक्कर कोई और खा लेता है. ऐसा क्यों? उस शक्कर में कौन-सा जादू था, जिसे केवल छू कर कुछ लोग समृद्ध थे, कौन बताये?

* *

पहले ही कट गये गन्ने के अंकुर जहां-तहां घुटनों तक आ गये थे. सत्या को किसन ने दूर ही से देख लिया था. उसके पास आ जाने पर किसन उसके गले के हार और कनफूलों को गौर से देखता रहा. उसे लगा कि एक बार फिर रामजी भगत ने भारत से नयी पहुंची किसी औरत के गहनों को यह कहते हुए जब्त कर लिया होगा कि यहां किसी को गहने पहनने का अधिकार नहीं है. किसन को अच्छी तरह याद है कि उसकी आंखों के सामने जब रूपा के गहने उतारे गये थे, उस समय सरदार ने यह दलील रखी थी कि गहनों का बोझ आदमी को आलसी बना देता है. खेतों में काम करने के लिए आलसियों की नहीं, मेहनतकशों की आवश्यकता होती है. किसन सत्या को देखता रहा. अपने गहनों को अधिक चमकाने के लिए वह मुसकराती रही. किसन ने मन ही मन तर्क किया. फिर मन ही मन मुसकरा कर रह गया. सत्या इन खेतों में काम करने के लिए थोड़े ही थी! वह तो खेतों की सुंदरता थी.

सत्या चुपचाप खड़ी रही. वह अपने प्रश्न के उत्तर की प्रतीक्षा में रही. किसन ने उत्तर कुछ देर से दिया —बहुत सुंदर लग रही हो आज!

उत्तर पा कर सत्या की पलकें झपकीं. उसके चेहरे पर नया रंग आया और वह किसन के एकदम पास आ गयी. किसन को लगा कि सत्या ने आसपास के सभी जंगली फूलों को निचोड़ कर उनके रंग और गंध को अपने चेहरे में पोत लिया था.

कल शाम जब किसन पुष्पा की बगल में बैठा था, उस वक्त हवा के साथ किसी जंगली फूल की गंध आ गयी थी. उसी के साथ किसन को सत्या की याद आ गयी थी. जो उष्णता उस सुगंध में थी, वही सत्या की याद में भी थी. पुष्पा की आंखों में झांकते हुए किसन उसे बहुत सुंदर पाता था, लेकिन कभी-कमार सत्या के शारीरिक लावण्य में जो आकर्षण होता, वह उसे चुंबक की तरह अपने पास घसीट कर ही रहता.

हांफती हुई सत्या उसे और भी आकर्षक प्रतीत हुई. उसकी आंखों को महसूसते हुए किसन ने कहा—आज बहुत सुंदर लग रही हो!

—नजर मत लगाना! मेरी मां को औंछना पड़ जायेगा.

यह कह कर सत्या दौड़ गयी. किसन भी उसके पीछे दौड़ पड़ा. दोनों बरगद के पेड़ के नीचे रुके. जटाओं को थामे दोनों एक-दूसरे को देखते रहे. बोलने की जरूरत किसी ने नहीं समझी. घने बरगद के नीचे अंधेरा पहले ही आ गया था, जिससे सत्या की आंखों की वह चीज और भी चमक उठी थी. नदी की समस्त तरंगों को किसन ने अपने भीतर उफनते पाया. उसने सत्या के कान में गुनगुनाया—सरदार की बेटी गुलेल खेलेला. भर मांग सींदूर भरतार खोजेला.

सत्या नाराज नहीं हुई.

कुछ देर बाद.

अब अंधेरा और भी गहन हो गया था.

हरी दूब पर लेटे हुए दोनों शांत थे. दोनों की सांसों में शिथिलता थी.

मादक स्वर में सत्या ने धीरे से कहा— मैं फिर से कहती हूं, तुम चाहो तो मैं तुम्हारे लिए कारखाने में नौकरी का प्रबंध करा दूं.

—धूप में मैं ज्यादा सांवला होने लगा हूं न?

—मैं इसलिए नहीं कह रही.

—तो फिर?

—कारखाने में काम करने से तुम कुछ तो भिन्न हो पाओगे!

—मैं भिन्न होना नहीं चाहता हूं, सत्या.

—कारखाने का काम उतना कठिन भी नहीं.

—मैं सहज और आसान काम पसंद भी तो नहीं करता.

—चाहो तो मालिक की कोठी में.

—वह तो मर कर भी नहीं करूंगा.

—आखिर क्यों?

—कारण तो मैं भी नहीं जानता.

—तुम हठी बहुत हो, किसन!

—छोड़ो इन बातों को. अब हमें चलना चाहिए.

वह खड़ा होने लगा. सत्या ने उसका हाथ पकड़ लिया.

—तुम मेरे बाप से कब बात करोगे?

—मैं क्या बात करूंगा?

—अपने बाप से तो करवा सकोगे?

—तुम्हारे बाप की एक बात कभी-कभी मुझे बिल्कुल अच्छी नहीं लगती है. पर कभी तो वही बात बहुत जंचने लगती है.

—कौन-सी बात?

—उसका बात-बात में यह कहना कि हड़बड़ाल से गूलर ना पकेला.

—मैं जानती थी, तुम यही कहोगे.

मजदूरों को खोखले आश्वासन देने के लिए सरदार के पास यही वेद-वाक्य था.

वह यह कभी नहीं कहता कि तुम लोगों की स्थिति कभी नहीं सुधरेगी. यह उसकी अपनी नीति के विरुद्ध होता. वर्षों से वह यही कहता आ रहा था— सबूरी करो— हड़बड़ाल से गूलर ना पकेला.

बस्ती में लौटने पर किसन ने लोगों को चबूतरे पर

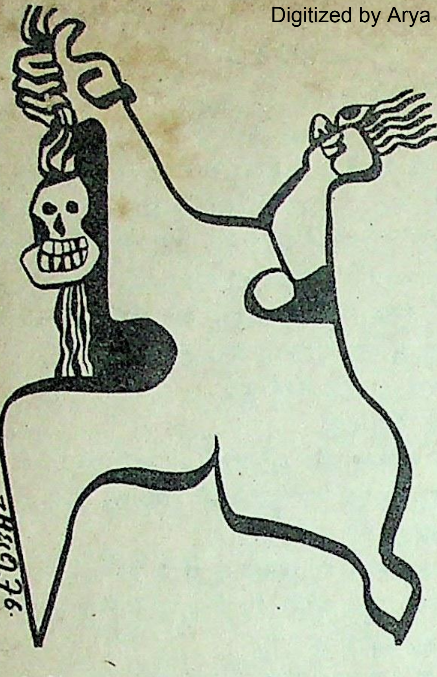

• एस. डी. चौधरी

पाया. लोगों का गाना-बजाना पराकाष्ठा पर था. पुष्पा अपनी ओड़ियानी के धुंधलके में अकेली खड़ी थी. बस्ती में पहुंचने से पहले किसन ने चाहा था कि एक बार फिर नदी में नहा आये, पर सत्या ने उसे ऐसा करने नहीं दिया था. वह नहीं चाहती थी कि उसके अपने शरीर की गंध किसन के शरीर से इतनी जल्दी धुल जाये. पुष्पा की ओर बिना देखे किसन अपने घर को बढ़ गया.

बरतन मांजने के लिए इस्तेमाल होने वाली बाल्टी में बहुत कम पानी था. किसन जब उससे हाथ-पांव धोने लगा, तो घर के भीतर से उसकी बहन ने कहा—सुबह बरतन धोने हैं. सारा पानी उछाल न देना.

चौखट के पास रखे बोरे के टुकड़े से किसन ने पांव पोंछे. हाथों को आस्तीन से पहले ही पोंछ चुका था. ओड़ियानी के पास पत्थर पर बैठ गया. उसकी बहन ने दोबारा आवाज दी— भात नहीं खाओगे?

—बाद में खाऊंगा.

—मुझे नींद आ रही है.

—तुम सो जाओ, मैं खुद निकाल लूंगा.

अंधेरे में बैठा वह उधर से आने वाले गाने को सुनता रहा. कुछ देर गुनगुना कर वह चुप हो गया. आकाश की ओर आंखें उठ गयीं. तारे कम थे. क्षीण थे. पत्ता तक नहीं हिल रहा था. कारखाने से उठता हुआ धुआं सामने के वातावरण को धूमिल और बोझिल किये हुए था. किसन को पुष्पा की याद आयी, पर टिक न सकी. सत्या के बारे में सोचने से किसन अपने को रोक नहीं पा रहा था.

अपनी जगह से उठ कर किसन आगे बढ़ गया. वह चबूतरे की विपरीत दिशा को चल रहा था. उधर से आती हुई ध्वनि में जो उल्लास था, वह क्षणिक था, मिथ्या था. वह सब कुछ अपने आपको छलना था. अपनी निर्बलता को छिपाना था. इस परिपाटी को जीते-जीते किसन ऊब गया था. ऊब जाने के बाद भी जब सामने बेबसी खड़ी नजर आ जाये तो उस ऊब को ही जीवन समझ लेना कितना स्वाभाविक हो जाता है! उसने तो कई अवसरों पर उस स्वाभाविकता को भी खंडित करना चाहा था पर. . .

पश्चिम की ऊंची दीवार के किनारे-किनारे किसन चलता रहा. दीवार ऊंची थी, पर कमजोर थी. रस्सी टूटी हुई थी. लकड़ियां सड़ी हुई थीं. छूने से दीवार ढह सकती थी, फिर भी वह खड़ी की खड़ी थी. न जाने कब तक खड़ी रहेगी. उस सड़ी हुई दीवार पर अंगुली रखने की किसी ने कभी हिम्मत नहीं की.

इस विडंबना को कौन मिटाये?

किसन सोचने लगता—क्या यह दीवार ऐसे ही बनी रहेगी?

वह तूफान नहीं आयेगा, जिसकी उसे प्रतीक्षा थी? पर जिस दीवार को एक छोटी-सी हवा गिरा सकती है, उसके लिए तूफान की प्रतीक्षा क्यों की जाये? वह छोटी हवा—वह कब तक कतरा कर निकलती रहेगी?

इसी प्रश्न के साथ किसन घर की ओर लौट पड़ा. उसकी पीठ पर दासता का जो भारी-भरकम बोझ था, वह उसकी आत्मा तक पर हावी हो गया था.

* *

कुछ लोगों को यह कहते सुना गया था कि अब दासता के कानून में संशोधन किया गया है और जो लोग भारत लौटना चाहते हैं, लौट सकते हैं—तो फिर क्यों इस नर्क से छुट्टी न पा ली जाये? कई दिनों तक यह विचार बहस का विषय बना रहा. 'गिरमिट' के मुताबिक कुछ लोगों को बहुत पहले लौट जाना चाहिए था, पर चल कर भी अपने देश को लौटना होता, तब भी यह असंभव था. किसन इस प्रस्ताव के विरुद्ध बोलता रहा. शुरू से अंत तक वह सभी नौजवानों से यही मांग करता रहा कि उनका जन्म इस मिट्टी में हुआ है, उन्हें मरना यहीं होगा. सभी लोग उसकी यह बात मानने को तैयार नहीं थे. कोई चिल्ला उठा था कि नर्क को अपना मान लेने से क्या होता है? किसन नहीं चाहता कि नर्क से भाग कर नर्क को नर्क छोड़ दिया जाये. उसे परिवर्तित कर जाने का किसन को पूरा विश्वास था. पिछले दिन की बैठक में उसका आखिरी वाक्य था— हमारे बाद के लोगों के लिए कम से कम यह वह न रहे, जो आज हमारे लिए है.

कई दिनों की लगातार बैठक के बाद सभी इसी निष्कर्ष पर पहुंच कर रहे कि जिस माटी पर उन लोगों का खून-पसीना बह रहा हो, उसे परायी धरती नहीं समझा जा सकता. वे अगर उस धरती को समृद्धि देने में लगे हुए थे, तो कम-से-कम उसे अपना कहने के हकदार भी तो हैं! और ये किसन ही के शब्द थे कि कठिन से कठिन स्थिति को झेल कर भी वे इस धरती को अपना समझने के आत्मगौरव को अनुभव करें.

अगले अंक में

सूचनाएं धीरे-धीरे दूसरी बस्तियों में पहुंचने लगीं. फिर एक दिन सोनित की लाश इमली के पेड़ से लटकी हुई मिली तो सब आक्रोश से भर उठे... और मालिक न किसन को बुलवा भेजा...

सारिका के वार्षिक ग्राहकों के लिए विशेष छूट

'सारिका' के प्रत्येक अंक का मूल्य एक रुपया है. किंतु वर्ष भर के लिए वार्षिक शुल्क मात्र दस रुपये है, यानी साल भर में दो अंक मुफ्त. यदि आप दो साल के लिए ग्राहक बनते हैं, तो शुल्क केवल उन्नीस रुपये है यानी दो वर्षों में पांच अंक मुफ्त. हां, तीन वर्ष के लिए शुल्क केवल सत्ताईस रुपये है.

आपके लिए सारिका की विशेष दरें इस प्रकार हैं:
एक वर्ष—१० रुपये
दो वर्ष—१९ रुपये
तीन वर्ष–२७ रुपये
विदेश में समुद्री डाक से
एक वर्ष—३० रुपये

कृपया यह कूपन जरूरी राशि के चेक/ड्राफ्ट/मनी-आर्डर के साथ-साथ आज ही भेज दें—

सर्कुलेशन मैनेजर
सारिका, टाइम्स आफ इंडिया बिल्डिंग, बम्बई-४०० ००१

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/दो वर्षों/तीन वर्षों के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. १० रुपये/१९ रुपये/२७ रुपये चेक/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा भेजे जा रहे हैं.

नाम ---------------

पता ---------------

हस्ताक्षर ------------

सारिका

जनवरी १९७७

- तेरह कहानियां
- आद्यकथाकार (हिंदी) : विवेचन
- अभिमन्यु अनत के धारावाहिक उपन्यास— **'लाल पसीना'** की आठवीं किस्त
- महत्वपूर्ण लघुकथाएं और ग़ज़लें. तथा सभी स्थायी स्तंभ.
- इस अंक के कहानीकार
  यशपाल, रमाकांत श्रीवास्तव, शिवशर्मा, जीवन मलाबारी, हबीब कैफ़ी, ठाकुरप्रसाद राय, सुरेंद्र सुकुमार, विकेश निझावन, रमेश राजहंस, धीरेंद्र अस्थाना, प्रतिमा वर्मा, नरसिंह बिरादार और रश्मि तन्खा.

प्रतीक्षा... प्रतीक्षा... प्रतीक्षा

सारिका के अगले अंकों में एक नयी शुरुआत—

आपके सपने

'सारिका' के पाठकों के लिए, पाठकों का ही, एक नया स्तंभ 'आपके सपने' प्रारंभ करने की हमारी योजना है. हम जो सपने देखते रहते हैं (निद्रावस्था में) उनमें अधिकांश तो बिल्कुल साधारण होते हैं, और प्रायः हमें याद भी नहीं रहते. किंतु कभी हमें अपने जीवन से संबंधित कुछ ऐसे विचित्र और अद्भुत स्वप्न दिखायी पड़ते हैं, जो हमें उद्वेलित कर देते हैं, जिन्हें हम भुला नहीं पाते और जो हमारे जीवन पर गहरा प्रभाव डालते हैं. पाठकों से निवेदन है कि वे अपने किसी ऐसे ही सपने का वर्णन तथा उसने उसके जीवन को किस प्रकार प्रभावित किया, इसका विवरण, लगभग ६०० शब्दों में लिख भेजें. जो सपने रोचक और विशिष्टता लिये हुए होंगे, उन्हें इस स्तंभ में प्रकाशित किया जायेगा. लिफाफे पर लिखें—

'आपके सपने'
'सारिका'
टाइम्स ऑफ इंडिया
बंबई-१

(प्रणयिनी परिणय : पृष्ठ ७९ से आगे)

हाथ आवेगा? तो क्या ऐसी अवस्था में विचारशील पुरुष प्राणदंड से बढ़कर आजन्म श्रमदंड नहीं उचित ठहरावेंगे? तो इन प्रकारांतर कठिनतर दंड की अपेक्षा यह घृणित (प्राणदंड) न्यायविधि किस काम का है? और आजकल विशेषतः समस्त सभ्य राजा-महाराजों ने इसका निषेध भी किया है, तो अब मैं भी सर्वथा इस महा अन्याय को ध्वस्त करने की पूर्ण चेष्टा करूंगा.

धन्य है, हे जगदीश्वर! आज आपने मुझको इस महापाप से बचाया, अब आपसे यही प्रार्थना है कि मुझे सर्वदा ऐसी सुबुद्धि देकर कृतार्थ करेंगे जिससे मैं सदा विशेष कर राज्यकार्य में निष्पाप रह कर आपके सन्मुख मुख दिखलाने योग्य रहूं और 'राज्यान्ते नरकंव्रजेत्' यह न भोगना पड़े क्योंकि ऐसे ही कृतकर्म पातक समूह से अनभिज्ञ तथा अहंमन्य राजा पंचत्व प्राप्त पश्चात् यमयातना के पूर्णाधिकारी होते हैं, और अपने अन्याय का फल भोगते हैं, परंतु ईश्वर ने आज मुझे इस दुर्घट फांस से मुक्त किया तो मैं अब उसका जितना धन्यवाद दूं, थोड़ा है——

इति पञ्चमो निष्कः ।

★ ★

अथ षष्टो निष्कः ।

क्षीणोपि रोहित तरुः क्षीणो प्युपचीयते पुनश्चन्द्रः
इति विमृशतः सन्तः सन्तप्यन्ते न ते विपदा
(नीति शतके) ॥

अब महाराज पूर्व की अपेक्षा प्रसन्नवदन दीखने लगे, साथ ही अनुरक्त प्रजाओं के मन का भाव भी बदल गया. पाठक! जिस प्रजा की राजा के हृदयस्थ भाव जानने की क्षमता है, उस (प्रजा) का राजा क्यों कर अपनी प्रजा के मन का भाव जाने बिना रह सकता है. राजा ने भी प्रजावर्ग की आकृति देख के जान लिया कि ये हमारे तर्क-वितर्क पर विचार रहे हैं, तो अब इस कौतुक का दृश्य इन प्रजावर्गों को भी अवश्य दिखलाना चाहिए. यह विचार स्थिर कर महाराज ने कहा, मंत्रिवर, कोतवाल को आज्ञा दीजिए कि सभ्य शिरोमणि महल्ले में परदुःखभंजन मिश्र नामक जो चोर है, उसे प्रतिष्ठापूर्वक न्यायालय में शीघ्र उपस्थित करे. मंत्री ने निवेदन किया, जो आज्ञा आयुष्मन्. मंत्री ने राजा से निवेदनोपरांत कोतवाल से कहा कि तुमने महाराज की आज्ञा सुना? तो शीघ्र कार्य को ठीक करो. कोतवाल ने कहा, जी हां, अच्छी प्रकार मैंने सब सुन लिया, और अभी जाकर शीघ्र ही उन्हें लिये आता हूं. यह कह कर कोतवाल ने उस मुहल्ले में पहुंचने के उपरांत परदुःखभंजन मिश्र का आह्वान किया और कहा कि महाराज ने मुझे आज्ञा दिया है कि उक्त मिश्र को (जो सरकारी चोर है) शीघ्र हाजिर करो, अतः राजाज्ञा से मैं आपके समीप आया हूं, परंतु परदुःखभंजन मिश्र पूर्व ही से चलने के हेतु सब काम से निश्चिंत हो बैठे थे और उसमें भी राजाज्ञा पाते ही शीघ्र कोतवाल के साथ हो लिये, और वे भी राजाज्ञानुकूल इन्हें ले चले. इधर नगर में इस प्रकार की यह एक नवीन बात और उसमें भी राज्य संबंधी कभी छिप सकती है? यहां तक कि शीघ्र ही महल्लों में कोलाहल मच गया, परदुःखभंजन मिश्र से उत्तम कुलीन विद्वान, राजमान्य सुसन्मान्य व्यक्ति भी चोर हो गए? परंतु प्यारे! राजनीति की पालिसी कौन समझ सकता है? उस अवस्था में ऐसे अच्छे पुरुष पर किसकी करुणादृष्टि नहीं पड़ती? सच है, सुपात्र का बड़ा आदर होता है, सहसा एक स्वर से नागरिक मात्रों के मुख से त्राहि भगवान् की घोर ध्वनि निकलने लगी और अश्रुपूर्ण नेत्रों से संपूर्ण दयार्द्र भद्रपुरुषों के मुख से यही वचन निकला कि अरे! यह विचार सुपात्र ब्राह्मण व्यर्थ अन्यायवश पददलित हो रहा है, हां! राजा जो चाहे, सो करे. सब कोई परस्पर में इधर कोलाहल करने लगे कि राजा तो दूर रहे प्रथम तो 'पुलिस' ही महाराज है. देखो! यह क्रूर प्रकृति कोतवाल परदुःखभंजन मिश्र को अनेक प्रकार के असभ्य व्यवहारयुक्त लिये जाता है.

इधर मारशास्त्री सोते ही पड़े हैं और इनके हिसाब अब कुछ कर्त्तव्य ही नहीं शेष रह गया था, बिलकुल बेफिकरी भरी थी, पर वो प्रेमप्रमाद मद था अन्यथा भला ऐसे भयंकर समय में भी पिशाचिनी निद्रा आती है! और इधर मारशास्त्री शोर-कोलाहल सुन कर कब अचेत रह सकते हैं? मित्र को गया सुन सहसा उठ कर उसी दशा में दौड़े गये और मार्ग ही में कोतवाल के साथ मित्र को देख उससे सविनय बोले, महोदय! आप उन्हें छोड़ दें क्योंकि ये महाराज के चोर नहीं वरन् मैं हूं; अतः मुझे ले चलें. मैं ही महाराज के सन्मुख चल कर अपना सत्य-सत्य दोष प्रकाश करूंगा, परंतु प्रेमवृत्ति के प्रबल होने से परदुःखभंजन मिश्र ने कहा कि ये झूठे हैं, मैं ही चोर हूं, इसी प्रकार दोनों मित्र स्वयं दोषी बन के चलने के लिए कोतवाल से निवेदन करने लगे और एक दूसरे की रिहाई चाहने लगे. परंतु उस समय कोतवाल तो निरे 'बछवा के ताऊ' बन गए और बुद्धि हजरत की घास चरने गयी थी. बड़ा धर्मसंकट पड़ गया, यही बुद्धिनाशक कौतुक है, अब बिचारा कोतवाल किसे चोर समझे और किसको ले चले? परंतु उसको उचित था कि जिसे राजा ने बुलाया था, उसको ले जाता. यहां अब अपनी प्रकृति चातुरी दिखलाने के लिए दोनों ही को महाराज के सन्मुख लाकर उपस्थित कर दिया और मार्ग में जो दोनों का इति कर्तव्य हुआ, उसे भी निवेदन किया, पर कुटिल स्वभाव के कारण अपनी आज्ञा भंग और उस नीति (जो उसने मार्ग में दोनों के संग व्यवहार किया था) का नाम तक नहीं लिया. अथ च इस बात के कहने की शक्ति वहां किसे थी? कौन कहके अपने सिर पर बला लेता? क्योंकि यदि कोतवाल की योग्यता प्रकट हो जाती तो वह अवश्य दंडभागी होता, और यह किस सन्याय, नीति

धर्मशास्त्र का वचन था, उसमें अपराध को भलीप्रकार जांच कर दंड देना राजा का स्वत्व है न कि अन्य कर्मचारी पुलिस प्रभृतियों का. परंतु जब तक राजा इस लीला से अनभिज्ञ थे, तब तक उन पर दोषारोपण नहीं करना चाहिए प्रत्युत ऐसा उपाय कर्तव्य है कि उसमें राजा यह ठगवृत्तांत जान कर उस दुराचार का संशोधन करे. इधर दोनों मित्र राजा के सन्मुख खड़े हैं, पाठकवृंद देखिये, मित्र के लिए प्राण को तृण से भी हलका समझ कर छेदन करना क्या अलौकिक गुण नहीं है? क्या बहुधा संसार में ऐसी प्रीत होती है? जिनमें ये गुण हों उनके देवता होने में क्या संदेह है, अहा! स्वार्थपरता को छोड़ कर निष्कपट प्रीति इसी का नाम है; परंतु यहां राजा को तो और ही अभीष्ट था, शीघ्र ही परदुःखभंजन मिश्र को छोड़ कर मारशास्त्री से ही कहा कि तू ही मेरा वास्तविक चोर है अतः इसी को सूली के सन्मुख करो; अनंतर जो हुक्म हो, सो करना. पाठक! वहां तो मुख से निकलने की देर थी कि मारशास्त्री सूली के सन्मुख खड़े किये गये.

इति षष्टो निष्कः।

* *

अथ सप्तमो निष्कः।

गुणेन स्पृहनीयः स्पान्नरूपेण युतो तपः।
सौगंध हो नंनादेयं पुस्पं कान्तमपिक्वचित् ॥१॥
(गुणरत्ने)

अब इस प्रकार आश्चर्यजनक वृतांत देखकर सब कोई उद्वेलित हो जाते हैं तिसमें यह घोर उपद्रव देख के कौन स्थिर रह सकता है? नगर भर में शोकध्वनि पूर्ण हो गयी. मंत्री आदि समस्त राजकर्मचारी और उपस्थित सकल प्रजागण केवल चित्रलिखे-से रह गये, बस अब केवल एक राजा की आज्ञा ही का विलंब था कि एकाएक, एक अदृष्टपूर्व अस्त्र-शस्त्र परिपूर्ण युवा अश्वारूढ़ आकर सहसा मारशास्त्री के सन्मुख खड़ा हो गया. उसकी प्रभा तथा अद्भुत वेष एवं पराक्रम देखकर सकल दर्शक गणों के चित्त में अनेक भाव उत्पन्न होने लगा और प्रबल प्रकंपनी ने सबको आकर आक्रमण कर ही तो लिया और इतने ही में अश्वारूढ़ के मुख से यह वचन निकला :

इति निजबन्धुवियोगादग्नेर्ज्वाला दहति मे देहम्।
अहह! समागयोगा दायातास्मि विसृज्यबैगेहम् ॥

यह हृदयवेधी बचन सुन के अद्वितीय पंडित मारशास्त्री ने उसे चीन्हा और उसी प्रकार उसे उत्तर दिया.

नहि शोक मे मरपो दृढ़ त्वां प्रेमरुपाभाम्।
अपिच भविष्यति लोके संयोगो मे तथातेऽद्य ॥

इस प्रकार उभय प्रेमियों के कथनोपकथन को सुन कर जो अक्षरार्थ समझे, वे भी गूढ़ाशय तक न पहुंच कर आतुर होने लगे और जो कुछ भी न समझे उनका मन तो हाथों उछलता था, परंतु राजा तो सब वृत्तांत पूर्व ही से जानता था अतः मंदस्मित पूर्वक परस्पर दोनों का अकृत्रिम प्रेम देख के प्रसन्न होने लगे तब तो और भी आनंद हुआ. महाराज के कौतुक को न जाने और यह अपूर्व दृश्य तथा राजा का हास्य देख कर सर्वदर्शक जन बड़े विकल भये, यह दशा सभों की देख आश्चर्यित और चमत्कृत हो कर मंत्रिप्रवर नीतितत्वज्ञ शारदाचार्य ने अति आतुर हो महाराज से पूछा, प्रभुवर! ऐसी अद्भुत लीला मैंने आज तक न देखी, इस समय मेरी सब बुद्धिमत्ता उड़ गयी. यदि इस लीला को व्यास, चाणक्य, सरीखे नीति के मारपेच जानने वाले देखते तो अवश्य आपके शिष्यों में नाम लिखवाते. यह कैसा अपूर्व कौतुक है? जिसकी माया वही जाने,केवल मैं ही नहीं, सब देखनेवाले चकित से हो रहे हैं. राजा ने मुस्करा कर कहा, यह भेद पीछे जानना, प्रथम मारशास्त्री के समीप यह कौन वीर काला कपड़ा पहिने खड़ा है? इसे तो देख आओ, पश्चात् इसका निर्णय हो जायगा.

शारदाचार्य उसके समीप जा कर अत्यंत सोच-विचार युक्त चेष्टापूर्वक चीन्ह कर बड़े विकल तथा लज्जायुत हुए और सदुःख राजा के समीप जाकर धीरे से बोले, महाराज! बड़ा अनर्थ हुआ और सब बनी-बनाई प्रतिष्ठा धूल में मिल गयी और मैं मनुष्य मंडली मात्र में मानहत हुआ. अरे! यह कुल कलंकिनी कन्या दास ही की है, हा! आज इसने मेरे लाज का जहाज डुबा दिया. राजा ने आश्वासनपूर्वक हंस कर कहा कि कुछ संदेह मत करो. यह जो सूली के सन्मुख युवक खड़ा है, अद्वितीय पंडित और तुम्हारा स्वजाति तथा अब मेरे पुत्रोपम है और तुम्हारी कन्या की और इनकी अतुल अलौकिक प्रीति है, अतः अब उचित यही देखा जाता है कि इन दोनों का रीत्यानुसार विवाह भी हो जाय, यह कह कर राजा ने सब गुप्त भेद गुप्त रीति पर मंत्री से कह दिया और यह भी कहा कि यदि ऐसा प्रबंध और भय न देते तो औरों की शिक्षा न होती, और ये दोनों प्रेमी मारे खुशी के आश्चर्य नहीं कि प्राण छोड़ देते.

अहाहा! अब क्या था. यह सुख-संवाद सुनकर मंत्री बड़ा प्रसन्न हुआ और उसी समय उन दोनों का विवाहोत्सव कर्म भी अच्छे प्रकार हो गया और उस समय नगरमात्र के हर्ष की सीमा न रही. एक मात्र आनंद का सागर उमड़ पड़ा, सुख-सरिता प्रबल प्रवाह से बहने लगी, आनंद कादम्बिनी छा गयी, और मंगलवर्षा होने लगी, हृदय भूमि हरी-भरी भई, प्रेमबल्ली लहलहा उठी, अनुराग पवन बहने लगा. सौहार्द प्रसून की सुगंध से आशा पूर्ण हो गयी.

आज 'प्रणयिनी' नाम्नी मंत्री की कन्या का 'परिणय' मारशास्त्री ने किया, आहा! उस समय उन दोनों प्रिया-प्रियतम के अमोध मंगल की सीमा न रही. प्रेम के मारे हठात मेरी लेखनी भी रुक गयी! क्या इससे भी बढ़ के कोई अत्यर्थ प्रेममार्ग होगा? अथवा आवालवृद्ध-बनिता से लेकर राजा-महाराज, राज कर्मचारी आदि सहृदय इसमें कुछ गूढ़ शिक्षा भी लाभ कर सकेंगे? तो फिर ईश्वर सर्वदा सच्चे प्रेमियों का महान् मंगल करे, यही याचना शेष रही.

इति सप्तमोनिष्कः

□□□

बेहतरीन कारोबारी टॉनिक
यूरोप
रोज़ाना दो बार

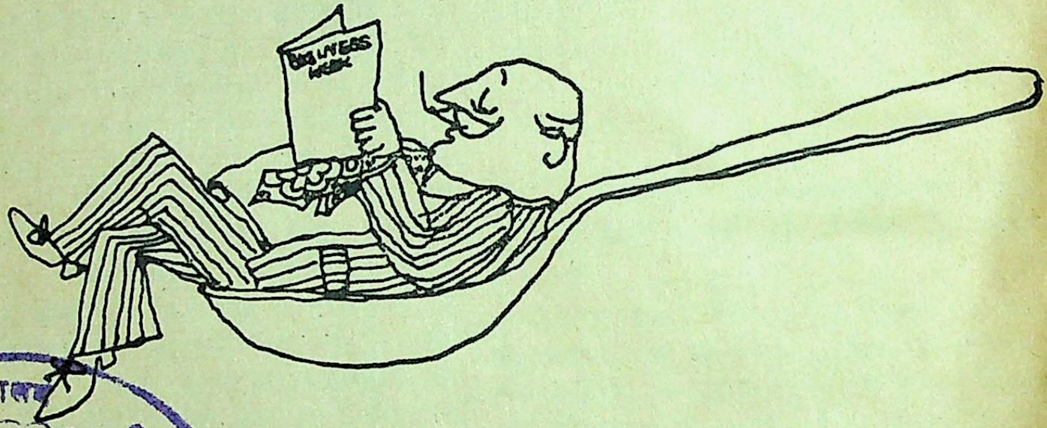

पुस्तकालय
०४०८४३
कांगड़ी विश्व

यूरोप में अपनी कारोबारी क्षमता
बढ़ाइये. पेश है हमारा नुसख़ा—
रोज़ाना दो उड़ानें.
१४ प्रति सप्ताह.
महाद्वीप के सभी महत्त्वपूर्ण व्यापार-
केन्द्रों से संपर्क स्थापित करते हुए.

लंदन के लिए १५. रोम के लिए ५.
जिनेवा के लिए ३. फ्रैंकफ़ुर्ट के लिए ६.
पेरिस के लिए ५. मौस्को के लिए २.
आम्स्टरडम के लिए १.

एयर-इंडिया

AI-1215

यह है एक बहुपयोगी घरेलू दवा जो कि, दादाजी की पीठ का दर्द, दादीमाँ के बदन का दर्द, माँ का सर दर्द, पिताजी का जुकाम और लड़के की मोच, सबकुछ ठीक कर देती है।

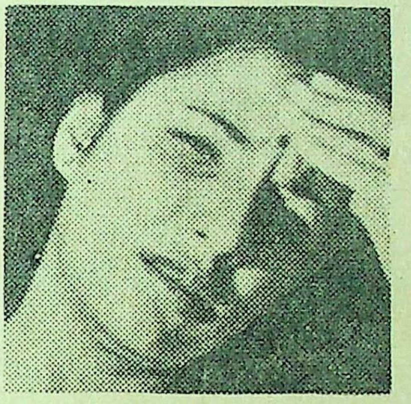

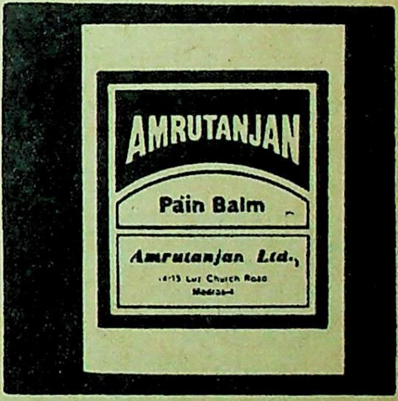
AMRUTANJAN
Päin Balm
Amrutanjan Ltd.,
42-43 Luz Church Road
Madras-4

अमृतांजन

र्द, सर्दी-जुकाम और मोच की जगहों पर थोड़ा-सा मृदुल अमृतांजन लगाकर मालिश कीजिये। कुछ मिनटों ही आप इसके प्रभावकारी दस दवाओं का असर महसूस करेंगे और आपको आराम भी पहुँचेगा।

ृतांजन—जा़र, शिशियों और कम कीमत वाली टिन की डिबियों में मिलता है।

ृतांजन– ८० साल से अधिक समय से एक निर्भरयोग्य घरेलू दवा

अमृतांजन लिमिटेड

-1215 A 1254

ऐटेक्स
सौंदर्य प्रसाधन

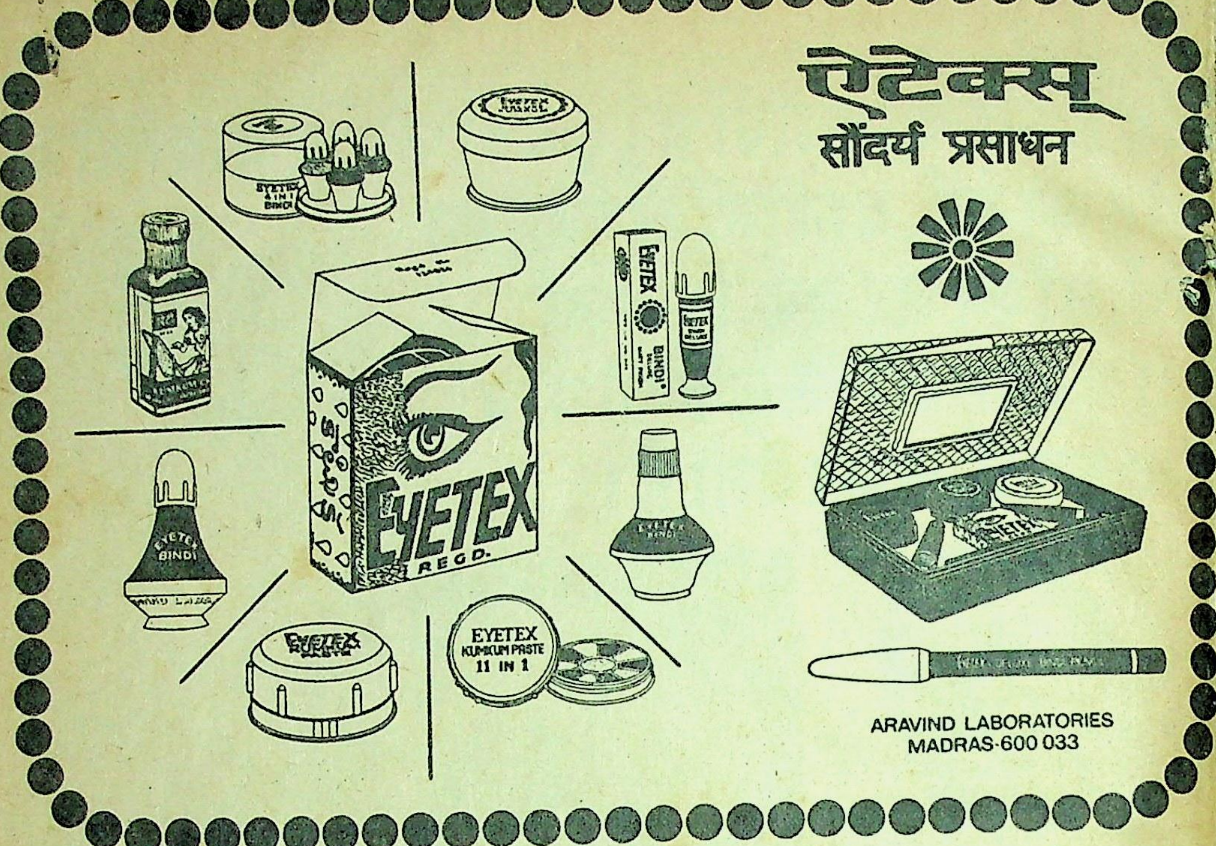
EYETEX 4 IN 1 BINDI
EYETEX
EYETEX BINDI
EYETEX REGD.
EYETEX BINDI
EYETEX BINDI
EYETEX KUMKUM PASTE
EYETEX KUMKUM PASTE 11 IN 1

ARAVIND LABORATORIES
MADRAS-600 033

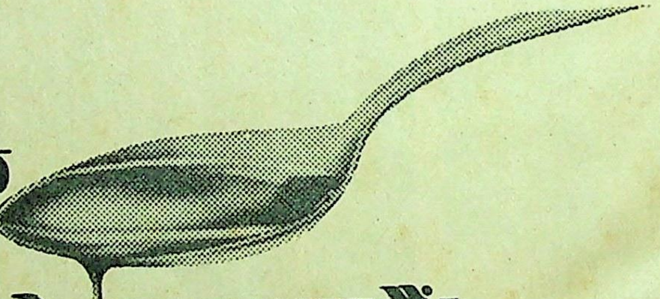

यह आवश्यक नहीं कि किसी टॉनिक के द्रव्य क्या हैं। आवश्यक बात यह है कि आपके शरीर को उससे क्या मिलता है?

सिंकारा में आवश्यक विटामिनों और खनिज पदार्थों के साथ ही १४ जड़ी-बूटियां विशेषकर सम्मिलित हैं जिनसे पाचन शक्ति अच्छा कार्य करती है और जिनकी सहायता से आपका शरीर सिंकारा में सम्मिलित विटामिनों आदि को बहुत तेज़ी से अपने अन्दर समा लेता है। आहार भली-भांति शीघ्र हज़म होकर आपके शरीर को बहुत जल्द शक्ति प्रदान करता है।

सिंकारा आपके शरीर को बहुत कुछ देता है।

Cinkara
Cinkara

हमदर्द

सिंकारा

विटामिनों और प्राकृतिक
द्रव्यों से भरपूर हर मौसम में
पूरे परिवार के लिये
अद्वितीय टॉनिक

HT-HDC:3751A1-n

नया पैकिंग नई शान

REGD.

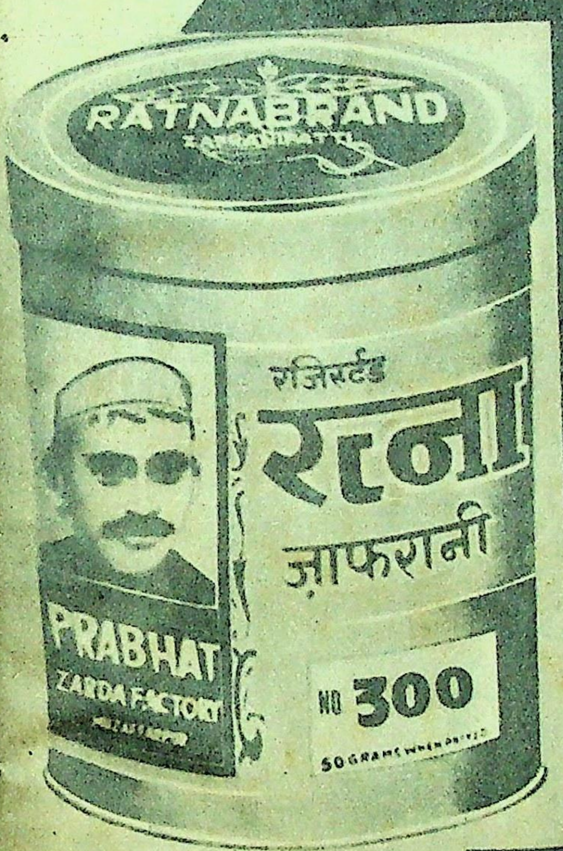
RATNABRAND
रजिस्टर्ड
रत्ना
ज़ाफरानी
PRABHAT
ZARDA FACTORY
NO 300
50 GRAMS WHEN PACKED

रत्ना छाप

ज़ाफरानी पत्ती

नं. १३, २०, ३०, ६४, १५०, २००, ३००, ४५०.

प्रभात ज़र्दा फैक्ट्री, मुजफ्फरपुर

अब नये पैकिंग में माँग करें

AVANTIKA/76

बेनेट कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए श्रीकृष्ण गोविंद जोशी द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित; जनरल मैनेजर : डॉ. राम तरनेजा; पो. बाक्स २१३, बंबई-४००००१; दिल्ली आफिस : ७ बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२; कलकत्ता आफिस : १३/१ और १३/२ गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट, कलकत्ता-७०००६९. लंदन आफिस ९६, [illegible] मिडिलसेक्स, य. के.

पंजीयन सं. एम. एच. दक्षिण बंबई-३११

शंख मार्का

K.E.Md. ABOOBACKER

கொ.இ.முகம்மது அபுபக்கர்

लुंगी

रुमाल

4-1-77

मोहम्मद अबूबकर एंड कं.

७५, थम्बु चेट्टी स्ट्रीट, मद्रास - ६००००१.

शाखा : कलकत्ता • मदुरै • कोल्लम

बंगलूर में हमारा नूतन शो-रूम: "हिन्दुस्तान कामप्लेक्स" ११/बी, बी वी के अय्यंगार रोड, बंगलूर-५६००५९.

Compiled
1999-2000